हिन्दी

विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक

श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव,

सिद्धान्त-वारिधि, शब्दरत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि, एम, आर, ए, एस

तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित।

———*———

एकादश भाग

[द्वादशमासकर्मन् — निद्दावोल]

THE

ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. XI.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, Prāchyavidyāmahārnava,

Siddhānta-vāridhi, Sabda-ratnākara, Tattva-chintāmani, M. R. A. S.

Compiler of the Bengali Encyclopædia ; the late Editor of Banglya Sāhitya Parishat and Kāyastha Patrikā ; author of Castes & Sects of Bengal, Mayurabhanja Archæological Survey Reports and Modern Buddhism ; Hony. Archæological Secretary, Indian Research Society, Member of the Philological Committee, Asiatic Society of Bengal ; &c. &c. &c.

Printed by P. C. Bose, at the Visvakosha Press

Published by

Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu

9, Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta

1926.

हिन्दी

विश्वकोष

(एकादश भाग)

द्वादशमासकर्मन् (सं० क्ली) द्वादशसु मासेषु कर्त्तव्यं कर्म । विष्णुसंहितोक्त बारह महीनेको तिथिके भेदसे दानहोमादि कर्मभेद । कृत्यतत्त्वमें द्वादशमास कर्मोंके समस्त विषय सविस्तर वर्णित हैं ।

द्वादशमासिक (सं० क्ली०) मासिभवं ठञ् मासिकं । मृतदिनावधि द्वादशसंख्याके पूरण मासमें कर्त्तव्य प्रेतोद्देशक श्राद्धभेद, वह श्राद्ध जो किसीके मरनेके बारहवें महीनेमें किया जाता है । मृत्युके बादसे प्रतिमास प्रेतोद्देश्य जो श्राद्ध किया जाता है उसको मासिक श्राद्ध और बारहवें महीनेमें इस तरहका जो श्राद्ध किया जाता है उसे द्वादशमासिक श्राद्ध कहते हैं ।

द्वादशयात्रा (सं० स्त्री०) द्वादशसु मासेषु द्वादशविधा यात्रा । स्कान्दपुराणोक्त देवोत्सवमें मासविशेषसे यात्राभेद । इसका विषय स्कान्दपुराणमें इस प्रकार लिखा है— एक दिन इन्द्रद्युम्नने जैमिनिसे कहा, 'हे मुने ! वैशाखादि बारहों महीनेमें द्वादशविध यात्रा और पूजादिको जो विधि है, वह आप कृपया मुझसे कहिये, क्योंकि यह विषय जाननेको मुझे विशेष उत्कण्ठा है ।"

इन्द्रद्युम्नके इस प्रश्न पर जैमिनीने इस प्रकार उत्तर दिया था, 'हे इन्द्रद्युम्न ! देवदेव चक्रपाणि कृष्णके द्वादश मासमें जो द्वादश यात्राका विधान है, उसे आप ध्यान दे कर सुनिये । वैशाखमासमें श्रीकृष्णको चन्दनो यात्रा, ज्येष्ठमासमें स्नापनी, आषाढ़में रथ, श्रावणमें शयनयात्रा, भाद्रमें दक्षिणपार्श्वपरिवर्त्तन, आश्विनमें वामपार्श्वपरिवर्त्तन, कार्त्तिकमें उत्थान, अग्रहायणमें छादनी, पौषमें पुष्याभिषेक, माघमें शाल्योदनी, फाल्गुनमें दोलयात्रा और चैत्रमें मदनभञ्जिका ये ही बारह प्रकारकी यात्राएं हैं । इसका एक एक यात्रोत्सव करनेसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त होते हैं ।

द्वादशराजमण्डल (सं० क्ली०) द्वादशानां राज्ञां मण्डलं, उत्तरपदद्विगुः । द्वादशविध राजाओंके मण्डल । इसका विषय अग्निपुराणमें इस प्रकार लिखा है--राजा अपने कल्याणके लिये बारह प्रकारके राजमण्डलके विषय पर विचार कर सकते हैं । अरि, मित्र, अरिमित्र, मित्रमित्र, अरिमित्रमित्र, विजिगीषुपुर, पार्ष्णिग्राह, आक्रन्द, आसार, अमन, विजिगीषुमण्डल और अरि तथा विजिगीषुका भूम्यन्तर मध्यम मण्डल ये बारह राजमण्डल है ।

(अग्निपुराण १७७ अ०)

द्वादशरात्र (सं० पु०) द्वादशभिः रात्रिभिर्निर्वृत्तः तद्धितार्थद्विगुः अच् समासान्तः । १ द्वादशदिनसाध्य द्वादशाह नामक अहीन यागभेद । बारह दिनोंमें होनेवाला यज्ञ । २ रात्रिसत्रभेद, यह यज्ञ प्रजा और समृद्धिकी कामनाके लिये किया जाता है । द्वादशानां रात्रीणां समाहारः समाहारद्विगुः अच् समासान्तः । ३ समाहृता रात्रिभेद ।

द्वादशलोचन (सं॰ पु॰) द्वादश लोचनानि यस्य। कार्त्तिकेय।

द्वादशवर्गी (सं॰ स्त्री॰) द्वादशानां वर्गाणां समाहारः समाहारद्विगो ङीष्। नीलकण्ठताजिकोक्त वर्षकालमें ग्रहोंके फलाफल निकालनेके लिये वर्गोंकी समष्टि। इसका विषय ताजकमें इस प्रकार लिखा है—

क्षेत्र, होरा, द्रेक्काण, चतुर्थांश, पञ्चमांश, षष्ठांश, सप्तमांश, अष्टम, नवम, दशम, एकादश और द्वादशांश इन्हींको द्वादशवर्ग कहते हैं। इन बारह वर्गोंमें शुभफल और अशुभवर्गमें अशुभफल होता है। विषमराशिके प्रथम होराके अधिपति रवि और द्वितीय होराके अधिपति चन्द्र हैं। समराशिके प्रथम होराके अधिपति चन्द्र और द्वितीय होराके अधिपति रवि हैं। क्षेत्राधिपति जो ग्रह हैं, वही प्रथम द्रेक्काणके अधिपति हैं और उसे राशिका पञ्चमराशिके अधिपति ग्रह द्वितीय द्रेक्काणके अधिपति तथा नवमराशिके अधिपति ग्रह तृतीय द्रेक्काणके अधिपति हैं।

स्वीय राशिके अधिपति ग्रह प्रथम चतुर्थांशके अधिपति, और उस राशिको चतुर्थराशिके अधिपति द्वितीय चतुर्थांशके, सप्तमराशिके अधिपति तृतीय चतुर्थांशके एवं दशमराशिके अधिपति चतुर्थ चतुर्थांशके अधिपति होते हैं। विषमराशिके प्रथम पञ्चमांशके अधिपति मङ्गल, द्वितीय पञ्चमांशके अधिपति शनि, तृतीय पञ्चमांशके अधिपति बृहस्पति, चतुर्थ पञ्चमांशके अधिपति बुध एवं पञ्चम पञ्चमांशके अधिपति शुक्र हैं। समराशिके प्रथम पञ्चमांशके अधिपति शुक्र, द्वितीय पञ्चमांशके अधिपति बुध, तृतीय पञ्चमांशके अधिपति मङ्गल हैं। जिस राशिके द्वादशांश अधिपतिका निर्णय करना हो, उस राशिके अधिपतिको प्रथम द्वादशांशके अधिपति, उसको द्वितीयराशिके अधिपतिको द्वितीय द्वादशांशके अधिपति और उस राशिको तृतीयराशिके अधिपतिको तृतीय द्वादशांशके अधिपति इत्यादि रूपमें चतुर्थादि द्वादशांशके अधिपति जानना चाहिये।

स्फुटाङ्कको राशिके अङ्कको अंश बना कर उसे अंशके साथ जोड़ना और पीछे गुणाङ्कको ६से गुणा करना चाहिये। बाद गुणनफलमें ३०से भाग दे कर जो भागफल निकले उसमें १ जोड़ना चाहिये। अब योगफल और मेष अवधिको गणना करके जो राशि पाई जायगी उस राशिके अधिपति ग्रहको षष्ठांशके अधिपति समझना चाहिये। यदि ३०से भाग देनेसे लब्धिका अङ्क १२से अधिक हो, तो उसे फिर १२से भाग दे कर शेष अङ्क ग्रहण करके काम करना चाहिये। इसी तरह यदि सप्तम अंशादिके अधिपतिका निर्णय करना हो तो स्फुटको राशिके अङ्कको अंश बना कर उसे अंशमें जोड़ना और पीछे ७से गुणा करना चाहिये। अष्टमांशाधिपतिके निर्णय करनेमें ८से, दशमांशाधिपतिमें १०से और एकादशांशाधिपतिमें ११से गुणा करना पड़ता है। और दूसरे सभी कार्य पूर्ववत् अर्थात् षष्ठांशाधिपतिको नाईं करने होते हैं।

ग्रहोंके बलसाधनके लिये इस तरह द्वादशवर्गका निर्णय करना पड़ता है—जिस ग्रहका द्वादशवर्ग स्थिर करना हो, वह ग्रह यदि अपने क्षेत्रादिमें वा स्वोच्चवर्गमें अथवा मित्रवर्गमें अथवा शुभवर्गमें हो, तो वह ग्रह श्रेष्ठ अर्थात् शुभफलप्रद है। फिर, जो ग्रह नीच क्षेत्रादिमें वा शत्रुवर्गमें हो वह अशुभफल देता है। द्वादशवर्ग निर्णय करके दो श्रेणीका निर्णय करना चाहिये और सोच विचार कर यह देख लेना चाहिये कि यदि द्वादशवर्गीमें शुभग्रहके वर्ग अधिक हों, तो दशाफल और भावफल शुभ होगा। यदि अशुभग्रहके वर्ग अधिक हों, तो दशाफल और भावफल अशुभ समझा जाता है।

किन्तु पापग्रह यदि अधिक शुभग्रहमें हो, तो वह शुभफल और यदि शुभग्रह अधिक शुभवर्गस्थ हो, तो वह अत्यन्त शुभफल देता है। शुभग्रह भी यदि अधिक अशुभ ग्रहके वर्गमें हो, तो अशुभ ही फल होता है और अशुभग्रह यदि अधिक अशुभ वर्गस्थ हो, तो वह अत्यन्त अशुभ फलप्रद माना गया है।

लग्न और अन्यान्य भाव यदि शुभग्रहके अधिक वर्गयुक्त हो, तो शुभफल और यदि अशुभग्रहके अधिक वर्गयुक्त हो, तो लग्न तथा अन्यान्य भावोंके अशुभफल होते हैं। इसी तरह लग्न और अन्यान्य भावोंके अधिपति यदि स्वीय क्षेत्रादिवर्गमें उच्च हो वा मित्रक्षेत्रादिवर्गमें अथवा शुभग्रहके अधिक वर्गस्थ हो, तो शुभफल एवं शुक्र-

क्षेत्रादिमें अशुभग्रहके अधिक वर्गस्थ हो, तो अशुभफल होता है। इसी तरह द्वादशवर्गोंकी गणना करके शुभाशुभफल स्थिर करना पड़ता है। (नीलकण्ठोक्त ताजिक)

द्वादशवार्षिक (सं० त्रि०) द्वादशवर्षान् अधीष्टः भृतो भूतो वा उत्तरपदवृद्धिः। १ द्वादशवर्ष तक अधीष्ट, जो बारह वर्ष तक किसी सत्कार्यमें लगाया गया हो। २ द्वादश वर्ष पर्यन्त भृत, जिसने बारह तक नौकरी की हो। ३ भूतकर्म कर, जिसने पहले काम किया हो। (पु०) ४ ब्रह्महत्यानाशक व्रतभेद, बारहवर्षका एक व्रत जो ब्रह्महत्या लगने पर किया जाता है। इसमें हत्यारेको वनमें कुटी बना कर सब वासनाओंको त्याग करके रहना पड़ता है। संवर्त्तमें लिखा है, कि ब्रह्महत्याकारी महापातकी होता है। उसे वल्कल पहन कर मस्तक पर जटा धारणपूर्वक कोई विशेष चिह्न ले कर वन जाना पड़ता है। इस तरह वनमें रहते समय सब वासनाओंको त्याग करना पड़ता है, केवल वन्यफलमूल खा कर जीवन धारण करना पड़ता है। यदि वन्यफलोंसे निर्वाह न हो, तो कोई विशेष चिह्न धारण कर बस्तीमें केवल चार वर्णोंके घरमें भिक्षा मांगनी पड़ती है। भिक्षाद्रव्य ग्रहण करके वनमें पुनः लौट आना पड़ता है और मैंने ब्रह्महत्या की है, इस तरह सबके सामने अपना दोष स्वीकार करना पड़ता है और सर्वदा निरालस्य भावसे व्यतीत करना तथा सब इन्द्रियोंको निग्रह कर बारह वर्ष तक इसी तरह व्रतानुष्ठान करना पड़ता है, इसीका नाम द्वादशवार्षिक व्रत है। इस व्रतमें ब्रह्महत्याजनित पाप नाश हो जाते हैं। किन्तु जो अशक्त हैं, उन्हें बारह वर्ष तक गाय दान करनी पड़ती है।

द्वादशशुद्धि (सं० स्त्री०) द्वादशगुणिता शुद्धिः। तन्त्रसारोक्त वैष्णवोंकी कायिकादि द्वादश शुद्धिभेद, वैष्णव सम्प्रदायमें तन्त्रोक्त बारह प्रकारकी शुद्धि। विष्णुभक्तिपरायण व्यक्तियोंके द्वादशशुद्धिका विषय तन्त्रसारमें इस प्रकार लिखा है। देवगृह परिष्कार, देवगृह गमन, भक्तिपूर्वक प्रदक्षिण ये तीन प्रकारकी पद शुद्धि हैं। पूजाके लिये फूल पत्ते तोड़ना, भक्तिपूर्वक प्रतिमाउत्तोलन (अर्घ्यादि) यह हस्तशुद्धि हुई जो सभोंमें श्रेष्ठ है। भक्तिपूर्वक भगवान्‌का नाम और गुणानुकीर्त्तन वाक्यशुद्धि है। हरिकथाश्रवण और उसके उत्सवादि दर्शनको श्रोत्र और नेत्रशुद्धि कहते हैं। विष्णुपादोदक और निर्माल्य धारण तथा देवताके सामने प्रणाम शिरःशुद्धि है। निर्माल्य गन्धपुष्पादि आघ्राण घ्राणशुद्धि है। जो सब पत्र पुष्पादि श्रीकृष्णके दोनों चरणोंमें चढ़ाये जाते हैं, वे सभीको शुद्धि प्रदान करते हैं। ललाटमें गदा और मस्तकमें चाप, शर और मन्दक, हृदयमें शङ्ख, चक्र और दोनों भौंमें भी चक्र-चिह्न धारण करनेसे सब प्रकारकी शुद्धि होती है। इस पूर्वोक्त द्वादशशुद्धिसम्पन्न शङ्खचक्रान्वित विप्रकी यदि श्मशानमें मृत्यु हो, तो, प्रयागतीर्थमें मृत्यु होनेसे जो गति लिखा है, वही गति इसमें होती है। इसलिए वैष्णवोंको द्वादशशुद्धि विशेष यत्नसे सम्पादन करनी चाहिये।

द्वादशशोधित (सं० क्लो०) द्वादशं व्ययस्थानं ग्रहराहित्येन शोधितं। व्ययस्थानमें ग्रहराहित्य द्वारा शुद्धियुक्त, लग्नस्थानसे बारहवें स्थानमें यदि कोई ग्रहादि न हो तो, उसे द्वादशशोधित कहते हैं।

द्वादशसंग्राम (सं० पु०) द्वादशविध संग्रामः। देवताओंके साथ असुरोंके बारह प्रकारके युद्ध। अग्निपुराणमें लिखा है कि देवता असुरोंसे बारह बार लड़े थे। पहला नारसिंह, दूसरा वामन, तीसरा वराह, चौथा अमृतमथन, पांचवां तारकामय, छठां आजीवक, सातवां त्रैपुर, आंठवां अन्धकवध, नवां वृत्रवध, दशवां जित, ग्यारहवां हलाहल और बारहवां कोलाहल।

द्वादशसप्तमीव्रत (सं० क्लो०) भविष्यपुराणोक्त माघादि पौष द्वादशमासमें सप्तमीके दिन कर्त्तव्य सूर्यका व्रतविशेष, सूर्यका वह व्रत जो माघसे ले कर पूस तकके बारहों महीनेकी सप्तमी तिथिमें किया जाता है। हेमाद्रि व्रतखण्डमें इस व्रतका विषय इस प्रकार लिखा है—द्वादश सप्तमी व्रत माघ महीनेकी शुक्ला सप्तमीके दिन पहिले पहल आरम्भ किया जाता है। जिस वर्ष कालशुद्धि रहती है उस वर्ष माघ मासकी शुक्लषष्ठीके दिन संयत हो कर सप्तमीके दिन यह व्रत करना पड़ता है। सवेरे सङ्कल्प आदि करके पीछे पूजा करते हैं। माघ मासमें वरुण नामक सूर्यकी पूजा की जाती है। अष्टमीके दिन भिन्न भिन्न प्रकारके उपकरणोंसे ब्राह्मणको भोजन

कराते हैं। इसमें समग्र अग्निष्टोम यज्ञका फल होता। फाल्गुन मासमें तपन नामक सूर्यकी पूजा की जाती है, इसमें वाजपेययज्ञका फल होता है। चैत्र मासमें वेदांशु नामक सूर्यको, वैशाखमासमें धाताको, ज्यैष्ठमासमें इन्द्रको, आषाढ़मासमें दिवाकरको, श्रावणमासमें अर्यमाको, भाद्रमासमें रविको, आश्विनमासमें सविताको, कार्त्तिकमासमें सहस्रांशुको, अग्रहायणमासमें भानुको और पौषमासमें भास्कर नामक सूर्यकी पूजा की जाती है। इस विधानसे जो द्वादशसप्तमीव्रत करते हैं, उन्हें चतुर्वेदाध्ययनका और सूर्ययोगका फल मिलता है। अन्यान्य विधान पूर्ववत् हैं। केवल १२ महीनेमें द्वादशादित्यके नाम ले कर पूजा करनी पड़ती है।

द्वादशसाहस्र (सं० त्रि०) द्वादश साहस्राणि परिमाणमस्य अण्, उत्तरपदवृद्धिः। द्वादशसहस्रसंख्यायुक्त, जिसमें १२ हजारकी संख्या हो।

द्वादशांशु (सं० पु०) द्वादश अंशवो यस्य। वृहस्पति।

द्वादशाक्ष (सं० पु०) द्वादश अक्षीणि यस्य, ततो षच् समासान्तः। १ कार्त्तिकेय। द्वादश मनोबुद्धिसहित ज्ञानेन्द्रियाणीति अक्षिणीव यस्य। २ बुद्ध। ३ कुमारानुचर मातृभेद।

द्वादशाक्षर (सं० पु०) द्वादश अक्षराणि यस्य। द्वादशाक्षरयुक्त मन्त्रभेद, विष्णुका एक मन्त्र जिसमें बारह अक्षर है, जैसे—'ओं नमो भगवते वासुदेवाय'। ओं क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।' श्रीकृष्णके द्वादशाक्षर मन्त्र। स्त्रियां गौरादित्वात् ङीष्। ३ शक्तिविषयक द्वादशाक्षरयुक्त समस्त मन्त्र। (क्लो०) ४ द्वादशाक्षरपादक जगती छन्दः। इसके प्रतिचरणमें बारह अक्षर होते हैं।

द्वादशाख्य (सं० पु०) द्वादश ज्ञानकर्मेन्द्रियमनोबुद्धिरूपाः पदार्थाः पूजनीयत्वेन आख्याति आ-ख्या-क। बुद्ध।

द्वादशाङ्ग (सं० त्रि०) १ द्वादश अङ्गविशिष्ट, जिसके बारह अंग वा अवयव हों। २ जैनोंका वह ग्रन्थसमूह जिसे वे गणधरोंका बनाया मानते हैं। इसके बारह भेद हैं—आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग, स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग, भगवतीसूत्र, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशाङ्ग, अन्तकृद्दशाङ्ग, अनुत्तरोपपत्तिकाङ्ग, प्रश्न-व्याकरण, विपाकसूत्र और दृष्टिवाद। जैन और दृष्टिवाद देखो। ३ धूपविशेष, एक प्रकारकी धूप जो निम्नलिखित बारह गन्धद्रव्योंके योगसे बनाई जाती है—गुग्गुल, चन्दन, पत्र, कुष्ठ, अगरु, कुङ्कुम (केसर), जातीकोष, कपूर, जटामांसी, वालक, त्वक् और उशीर। धूप देखो।

द्वादशाङ्गी (सं० स्त्री०) द्वादशानां अङ्गानां समाहारः ङीप्। द्वादशाङ्ग देखो।

द्वादशाङ्गुल (सं० पु०) द्वादश अङ्गुलयः प्रमाणमस्य वर्द्धितार्थे द्विगुः, अच् समासान्तः। वितस्ति परिमाणभेद, एक बित्ता, १२ अंगुली।

द्वादशात्मन् (सं० पु०) द्वादश आत्मनो मूर्त्तयो यस्य। १ सूर्य सिद्धान्तमें सूर्यकी बारह मूर्त्तिका उल्लेख है। २ अर्क वृक्ष, आकका पेड़। आदित्य और सूर्य देखो।

द्वादशादित्य (सं० पु०) १ धाता प्रभृति द्वादश सूर्य। २ काशीस्थ द्वादश सूर्यभेद। इसका विषय काशीखण्डमें इस प्रकार लिखा है—काशीके प्रभाववश और समस्त तिमिरनाशक सूर्य अपनेको बारह रूपमें विभक्त कर काशीमें ही रहने लगे। लोलार्क, उत्तरार्क, शाम्बादित्य, द्रुपदादित्य, मयूखादित्य, खखोल्कादित्य, वृद्धादित्य, केशवादित्य, विमलादित्य और गङ्गादित्य ये ही बारह सूर्यके नाम हैं। ये ही द्वादशादित्य काशीमें रह कर पापियोंके हाथसे सर्वदा काशीक्षेत्रकी रक्षा करते हैं।

(काशीख० ४६ अ०)

द्वादशाध्यायी (सं० स्त्री०) द्वादशानां अध्यायानां समाहारः ङीप्। १ जैमिनिकी सूत्ररूप द्वादशलक्षणी। इसमें तन्त्रोक्त लक्षणसमूह द्वारा धर्म ही एक मात्र व्युत्पादनीय है। धर्म प्रतिपादन करनेके लिये समस्त लक्षण विनिवेशित हुए हैं। २ मनुसंहिता, मनुके बारह अध्याय हैं, इसीसे इसको द्वादशाध्यायी कहते हैं।

द्वादशान्विक (सं० त्रि०) द्वादश अन्ये अन्यथाभूता अपपाठा जाता अस्य इति ठन्। जातद्वादशापपाठक कुत्सिताध्ययनकर्त्तृभेद, जो बहुत कुत्सितरूपसे पढ़ता हो।

द्वादशायतन (सं० क्लो०) द्वादशविधं आयतनं। जैनियोंके दर्शनके अनुसार पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा मन और बुद्धिका समुदाय।

द्वादशायस (सं० पु०) वैद्यकोक्त औषधभेद। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—स्वर्णमाक्षिक, हिङ्गुल, लौह, पारद,

वङ्ग, गन्धक, ताम्र, अभ्र, समुद्रफेन, गेरूमिट्टी, स्वर्ण, सीसा, चितामूल, हिङ्गु, त्रिकटु, त्रिफला, सहजनका बीज, वनयवायन, यवायन, पीपरका मूल, लहसुन, जीरा और कृष्णजीरा इन सबको एकमें मिला कर अद रखके रससे घोटते हैं। बाद १ रत्तीकी गोली बनानी पड़ती है। इसके सेवन करनेसे वातरक्त, कुष्ठ, कण्डु और अन्यान्य समस्त वेदनाएं जाती रहती हैं।

द्वादशायुस् (सं० पु०) द्वादश वर्षाः आयुः कालो यस्य। कुक्कुर, कुत्ता। यह बारह वर्ष तक जीता है इसीसे इसका नाम द्वादशायुस् पड़ा है।

द्वादशार (सं० क्ली०) द्वादश अरा रथाङ्गावयवभेदो इव यस्य। १ द्वादशकोण रथचक्रादि। २ तन्त्रोक्त सुषुम्णा नाड़ीके मध्य हृदयस्थित द्वादशदल पद्म।

द्वादशाशन (सं० क्ली०) द्वादशविधं अशनं। सुश्रुतके अनुसार अधिकारीके भेदसे बारह प्रकारके आहार।

सुश्रुतमें बारह प्रकारके अन्न सेवनके नियम कहे गये हैं। यथा—शीतल, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, द्रव, शुष्क, एककालिक, द्विकालिक, औषधयुक्त और मात्राहीन। ये सब दोष शान्तिके लिए प्रशस्त है। तृष्णा, उष्णता, मद एवं दाहपीड़ित, रक्तपित्त तथा विषरोगी, स्त्रीसमागममें क्षीण रोगियोंके लिए शीतल अन्न; कफवातरोग, विरेचनान्तमें स्नेहपायी और क्लिन्नदेहीके लिए उष्णअन्न; वातिक, रूक्षदेह, व्यायामकर्षित एवं व्यायामशीलके लिये स्निग्धअन्न; मेदुर, स्थूल, मेहरोग वा श्लेष्मल देहके लिये रूक्ष अन्न; शुष्कदेह, पिपासार्त्त वा दुर्बलके लिये द्रवअन्न; मेहरोग तथा व्रणसे शरीर क्लिन्न होनेमें शुष्क अन्न; दुर्बलाग्नि व्यक्तिके लिये एकाल भोजन; समाग्नि व्यक्तिके लिए दिवारात्रिमें द्विभोजन; औषधद्वेषीके लिये औषधके साथ अन्न तथा दुर्बलाग्नि रोगीके लिये मात्राहीन अर्थात् बहुत अल्प अन्न प्रशस्त है। उक्त नियमसे भोजन करनेसे दोषकी शान्ति होती है।

द्वादशाह (सं० पु०) द्वादशभिरहोभिर्निर्वृत्तः ठञ्, तस्य लुक्, द्वादशं अहः कर्मधारय वा द्वादशानां अह्नां समाहारः टच् समासान्तः। १ द्वादशदिनसाध्य यागभेद, प्राचीनकालका एक यज्ञ जो बारह दिनोंमें किया जाता था। २ द्वादश दिनसमाहार, बारह दिनोंका समुदाय। ३ द्वादश दिन, बारह दिन। ४ द्वादश दिन पर्यन्त सत्कर्ममें नियोजित, वह जो बारह दिनों तक सत्कर्ममें लगा हो। ५ भूत कर्मकर, वह जिसने पहले काम किया हो। ६ बारह दिनों तक रहनेवाला ज्वर। ७ वह श्राद्ध जो किसीके निमित्त उसके मरनेमें बारहवें दिन किया जाय।

द्वादशी (सं० स्त्री० द्वादश टित्वात् ङीष्। तिथिविशेष, प्रत्येक पक्षकी बारहवीं तिथि।

वामनपुराणमें लिखा है, कि द्वादशीतिथि कामरूपिणी और लक्ष्मीस्वरूपा है। इस तिथिमें जो स्त्री वा पुरुष द्वादशीव्रतपरायण हो कर घी खाता है, वह स्वर्गको जाता है।

अगहन महीनेकी शुक्लाद्वादशीका नाम मत्स्यद्वादशी, पूस महीनेकी शुक्लाद्वादशी कूर्मद्वादशी, माघ महीनेकी वराहद्वादशी, फागुन महीनेकी नृसिंहद्वादशी, चैत महीनेकी वामनद्वादशी, वैशाख महीनेकी जामदग्न्यद्वादशी, तथा जेठ महीनेकी रामद्वादशी, यह बारह द्वादश शुक्लपक्षकी द्वादशी हैं। आषाढ़ महीनेकी कृष्णद्वादशी, सावन महीनेकी बुद्धद्वादशी, भादों महीनेकी कल्किद्वादशी, आश्विन महीनेकी पद्मनाभद्वादशी और कार्त्तिक महीनेकी नारायणद्वादशीको कृष्णपक्षकी द्वादशी समझनी चाहिये।

उक्त द्वादशीका व्रत धरणीव्रत कहलाता है। यह व्रत बहुत फलदायक माना गया है। सौभाग्यकामीके लिये यह एक उत्कृष्ट व्रत है। (वराहपु०)

वैशाख मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको पिपीतकद्वादशी कहते हैं। इस द्वादशी तिथिमें केवल शीतल जलसे केशवको स्नान करानेसे मनुष्य पवित्र होता है।

श्रवणानक्षत्रयुक्ता शुक्लद्वादशीका नाम श्रवण-द्वादशी है। यह तिथि पापनाशक मानी गई है। भाद्रमासकी शुक्लद्वादशी तिथिमें श्रवणा नक्षत्रका योग होता है और उस दिन यदि बुधवार पड़े, तो शतगुण फल प्राप्त होते हैं। उस दिन उपवास करनेसे सब प्रकारके फल मिलते हैं। यह द्वादशी यदि दो दिन तक रहे, तो जिस दिन एकादशीयुक्ता होगी, उस दिन निम्नोक्त वचनानुसार उपवास करना चाहिये। जैसे—

"द्वादशी च प्रकर्त्तव्या एकादश्यान्विता विभो।
सदा कार्या च विद्वद्भिर्विष्णुभक्तैश्च मानवैः॥"
(स्कन्दपु०)

द्वादशीका योग यदि एकादशीके साथ हो, तो विष्णुभक्त मानवोंको एकादशीके दिन ही उपवास करना चाहिये। द्वादशीके दिन श्रवणानक्षत्रका योग न हो कर यदि एकादशीके ही दिन हो, तो उस तिथिको विजया कहते हैं और वह भक्तोंके लिये विजयप्रदा है। जहां तिथि और नक्षत्रके योगसे उपवास होता है, वहां किसी एकका क्षय हुए विना भोजन नहीं करना चाहिये और यदि श्रवणानक्षत्रकी वृद्धि पाई जाय, तो भी तिथिके क्षय होनेसे ही भोजन करनेका विधान है अर्थात् एकादशीतिथि क्षय होनेसे द्वादशीमें पारण करना चाहिये।
(तिथितत्त्व)

यदि एकादशीके उपवास दिन श्रवणानक्षत्रका योग न हो कर द्वादशीके दिन हो, तो दोनों दिन उपवास करना चाहिये।

एकादशीके दिन उपवास करके फिर द्वादशीके दिन उपवास करनेका विधान है; क्योंकि दोनों तिथिके देवता हरि हैं। यदि इसमें कोई आपत्ति करे, तो एक व्रत आरम्भ करके जब तक वह समाप्त न हो, तब तक दूसरा व्रत करना उचित नहीं है। एकादशीके व्रतानुसार एकादशीके दिन उपवास किया गया है, उसका पारण नहीं करनेसे एकादशीका व्रत समाप्त नहीं होता है। अभी किस तरह द्वादशीका व्रत हो सकता है, किन्तु उसमें विशेष वचनानुसार एकादशी और द्वादशी दोनों ही दिन उपवास करना होगा, इसमें विधिका लोप देखा जाता है। क्योंकि निम्नोक्त वचनोंका तात्पर्य यह है— जो दोनों दिन उपवास करनेमें असमर्थ हों उन्हें द्वादशीके दिन भोजन न करके एकादशीके दिन ही भोजन कर लेना चाहिये। इस तरह द्वादशीमें उपवास करनेसे एकादशीजनित समस्त पुण्य भी निःसन्देह मिल सकते हैं। इस द्वादशी उपवासको काम्य समझना चाहिये। क्योंकि मार्कण्डेयपुराणके वचनानुसार देखा जाता है, कि जो द्वादशीके दिन उपवास करके पुतस्वभाव रहते हैं वे चक्रवर्त्तित्व और अतुल श्रीलाभ करते हैं।

कार्त्तिकमासकी शुक्लाद्वादशी मन्वन्तरा है और अग्रहायणमासकी शुक्लाद्वादशीका नाम अखण्डद्वादशी है। विष्णुपदकी कामना करके उपवास करना चाहिये।

इस दिन यथाविधान संकल्प करके विष्णुको पञ्चगव्य द्वारा स्नान करा कर यथा शक्ति उपचारसे पूजा करनेका विधान है। पीछे जौ और धानसे पूर्ण एक पात्रको ले कर इस मन्त्रसे निवेदन करना चाहिये। मन्त्र—

"ओं सप्तजन्मसु यत्किञ्चिन्मया खण्डव्रतं कृतं।
भगवंस्त्वत्प्रसादेन तदखण्डमिहास्तु मे॥
यथा खण्डं जगत्सर्वं त्वमेव पुरुषोत्तम।
तथाऽखिलान्यखण्डानि व्रतानि मम सन्तु वै॥"

इस मन्त्रसे प्रार्थना करके दक्षिणा देनी चाहिये।
(कृत्यचन्द्रिका)

भीम एकादशीके बाद जो एकादशी हो अर्थात् माघ मासकी शुक्लाद्वादशीके दिन षट्तिलाचरण करना होता है।

तिलस्नान, तिलवपन, तिलहोम, तिलको जलमें निःक्षेप, तिलदान और तिलभोजन यही छः तिलाचरण हैं। जो इसे करते वे सब प्रकारके पापोंसे मुक्त होते तथा तीन सौ वर्ष तक स्वर्गमें वास करते हैं। (तिथितत्त्व)

गोविन्दद्वादशी—फाल्गुनमासके शुक्लपक्षकी पुष्यानक्षत्रयुक्त द्वादशीको गोविन्दद्वादशी कहते हैं। उस दिन गङ्गास्नान अतिशय पुण्यजनक है। गङ्गास्नानका मन्त्र—

'महापातकसंज्ञानि यानि पापानि सन्ति मे।
गोविन्दद्वादशीं प्राप्य तानि मे हर जाह्नवि॥" (तिथितत्त्व)

द्वादशीतिथिमें निम्न बारह प्रकारके द्रव्य वर्जन करना चाहिये, यथा—कांसा, मांस, सुरा, क्षौद्र, लोभ, मिथ्याकथन, मैथुन, दिवानिद्रा, अञ्जन, शिलापिष्ट द्रव्य और मसूर।

जो चातुर्मास्य व्रताचरण करना चाहते, उन्हें आषाढ़मासकी शुक्लाद्वादशी वा पूर्णिमाके दिन व्रतारम्भ और कार्त्तिकमासकी शुक्लाद्वादशीके दिन शेषसमाप्त करना चाहि।

द्वादशीके पारणके विषयमें द्वादशीके प्रथम भाग छोड़ कर पीछे पारण करनेका विधान है। क्योंकि द्वादशीके

प्रथम भागका नाम हरिवासर है। अतः उस समय पारण कदापि नहीं करना चाहिये। (तिथितत्त्व)

द्वादशीके दिन पूतिका (पोईका साग) भक्षण द्विजातियोंके लिये निषिद्ध है। फिर भी यहां पर विशेष करके निषेध करने पर भी अधिक दोषजनक समझा जाता है।

द्वादशीतिथिमें तुलसी नहीं तोड़नी चाहिये। जो उस दिन तुलसी तोड़ते हैं वे मानो विष्णुका शिरश्छेद करते हैं।

आह्निकतत्त्वमें लिखा है, कि संक्रान्ति, अमावस्या, पूर्णिमा, द्वादशी, रात्रि और सन्ध्याके समय तुलसी तोड़न मानो विष्णुका शिरश्छेद करना है।

द्वादशीके दिन सायंकालमें सायंसन्ध्या नहीं करना चाहिये और जो करते हैं वे ब्रह्मघ्न होते हैं।

स्मृतिमें लिखा है कि द्वादशी, अमावस्या, पूर्णिमा और जिस दिन श्राद्ध किया जाता है उस दिन सायंकालमें सन्ध्योपासना करना मना है, केवल गायत्रीका जप किया जा सकता है।

जो द्वादशीतिथिमें मैथुनकर्म करते, वे तिर्यग्योनिमें जन्म लेते हैं और कभी विष्णुलोकको नहीं जा सकते।

हेमाद्रिव्रतखण्डमें दशावतार द्वादशीका विषय इस प्रकार लिखा है—अग्रहायणमासकी शुक्लाद्वादशीतिथि भगवान् विष्णुरूपी मत्स्यकी अतिशय प्रिया है; इसीसे एकादशीके दिन उपवास करके द्वादशीके दिन सुवर्णमय मत्स्य ब्राह्मणको देना चाहिये। 'विष्णुर्मे प्रीयतां मत्स्यः।' इसी मन्त्रसे दान देना होता है। जो इस तरह व्रताचरण करते वे सब प्रकारके सुख प्राप्त कर अन्तमें विष्णुलोकको जाते हैं। (हेमाद्रिव्रतख०)।

पौषमासकी शुक्लाद्वादशी तिथि कूर्मकी अतिशय प्रिया है। उस दिन सुवर्णमय कूर्म तैयार कर कूर्मावतारका माहात्म्यादि सुन करके उसे ब्राह्मणको दान देना चाहिये। जो इस तरह दान करते हैं वे समस्त सौभाग्य प्राप्त कर विष्णुलोकको जाते हैं। इसी प्रकार विधानानुसार माघमासकी शुक्लाद्वादशीमें वराह, फाल्गुनकी शुक्लाद्वादशीमें नारसिंह, चैत्रमासकी शुक्लाद्वादशीमें जामदग्न्यराम, ज्येष्ठमासकी शुक्लाद्वादशीमें दाशरथि राम और सीता, आषाढ़मासकी शुक्लाद्वादशीमें रोहिणेयराम, श्रावणमासकी शुक्लाद्वादशीमें श्रीकृष्ण, भाद्रमासकी शुक्लाद्वादशीमें कल्कि आदि सुवर्णमय मूर्त्तियां बना कर उन्हें उक्त अवतारोंके गुणादि कीर्त्तन पाठ करनेके बाद ब्राह्मणको दान देना चाहिये। जो इस दशावतार द्वादशी व्रतका अनुष्ठान करते हैं, वे सब प्रकारके सुख भोग कर विष्णुलोकको जाते हैं। (हेमाद्रिव्रतख०।)

विविध द्वादशीव्रत—इसका विषय अग्निपुराणमें इस प्रकार लिखा है—चैत्रमासकी शुक्लाद्वादशीमें मदन और हरिको पूजा करनी चाहिये, इसे मदनद्वादशीव्रत कहते हैं। जो इस व्रतका अनुष्ठान करते हैं, वे सब प्रकारके दुःखोंसे छुटकारा पाते हैं। माघमासकी शुक्लाद्वादशीमें भीमद्वादशीव्रत करना पड़ता है। उस दिन विष्णुकी पूजा करनेसे सर्वसिद्धि प्राप्त होती है। फाल्गुनमासके शुक्लपक्षका गोविन्दद्वादशीव्रत करनेसे गोविन्द सर्वदा प्रसन्न रहते हैं। आश्विनमासकी शुक्लाद्वादशीमें व्रत करके भगवान् नारायणकी पूजा करनी पड़ती है, इसे विशोकद्वादशीव्रत कहते हैं। यह व्रत करनेसे सब शोक जाते रहते हैं। अग्रहायणमासकी शुक्लाद्वादशीमें नारायणकी पूजा कर लवण दान करनेसे सब प्रकारके धनदानका फल मिलता है। भाद्रमासकी शुक्लाद्वादशीमें गोवत्सकी पूजा करनी चाहिये, इसका नाम गोवत्सद्वादशीव्रत है। माघमासकी श्रवणानक्षत्रयुक्ता कृष्णाद्वादशीको तिलद्वादशी कहते हैं। इस दिन तिलस्नान, तिलहोम, तिलनैवेद्य, तिलमोदक, तिलदीप, तिलोदक और तिलदान करके ब्राह्मणोंकी अर्चना करनी चाहिये। बाद यथाविधि होम और उपवास कर 'ओम् नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्रसे वासुदेवकी पूजा करनेका विधान है। जो यह षट्तिल द्वादशीव्रत करते हैं, वे कुल सहित स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं। फाल्गुनमासके शुक्लपक्षमें मनोरथद्वादशीव्रत करके भगवान्‌को आराधना करनी चाहिये। केशवादि बारह नाम द्वारा द्वादशीव्रत कर एक वर्ष तक भगवान् नारायणकी पूजा करनी पड़ती है। जो यह व्रताचरण करते वे कभी नरकमें नहीं जाते हैं, उन्हें सर्वदा स्वर्ग-सुख मिलता है। फाल्गुनमासके शुक्लपक्षमें सुमतिद्वादशीव्रत करनेसे सुमति लाभ होती है।

भाद्रमासकी शुक्लाद्वादशीके दिन जो अनन्तद्वादशीव्रत करते, वे सब क्लेशोंसे विमुक्त होते हैं। माघमासमें शुक्लाद्वादशीके दिन यदि मूला अथवा अश्लेषानक्षत्र पड़े, तो 'कृष्णाय नमः' कह कर तिल द्वारा होम करके भगवान्‌को आराधना करनी चाहिये। इसीको तिल-द्वादशी कहते हैं। पौषमासको शुक्लाद्वादशीका नाम सम्प्राप्तिव्रत है। जो मनुष्य यथाविधान यह व्रत करते, उन्हें किसी चोजकी कमी नहीं रहती है। भाद्रमासके शुक्लपक्षकी श्रवणानक्षत्रयुक्त द्वादशी सबसे श्रेष्ठ है, इसका नाम श्रवणद्वादशी व्रत है। इस दिन उपवास करनेसे अक्षयफल मिलता है। नदीसङ्गमादि पुण्य तीर्थोंमें स्नानादि करनेसे जो फल मिलता है इस द्वादशीमें भी वही फल मिलता है। बुधवार और श्रवणा नक्षत्रयुक्त द्वादशीमें जो कोई पुण्यकार्य किया जाता है, उसीमें महाफल प्राप्त होता है। जो यथाविधान इस व्रतका अनुष्ठान करते, उन्हें अशेष फल मिलता है। अगहनमासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें अखण्डद्वादशीव्रत करना चाहिये। सम्यक्‌रूपसे उपवास, पञ्चगव्य जलसे स्नान और पञ्चगव्य भक्षण कर भगवान् विष्णुकी पूजा तथा ब्राह्मणोंको जो और धानयुक्त पात्र दान करनेका विधान है। बाद भगवान्‌का इस प्रकार स्तव करना पड़ता है, 'हे भगवन्! हमने सप्त जन्ममें जो कुछ खण्डव्रत किया है, वह आपके प्रसादसे अभी अखण्ड हो जावे। हे पुरुषोत्तम! जिस तरह आप हो यह समस्त अखण्ड जगत् हैं, उसी तरह हमारा व्रत भी अखण्ड हो जावे। प्रतिमास द्वादशीके दिन इसी तरह विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। जो उक्त प्रकारसे विष्णुकी पूजा करते हैं, उनकी आयु, आरोग्य, सौभाग्य और राज्यभोगादिकी वृद्धि होती है। (अग्निपु० १२४-१२६ अ०)

द्वापर (सं० पु०) द्वौ परौ प्रकारौ विषयौ यस्य, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ संशय। द्वाभ्यां सत्यत्रेताभ्यां परः पृषोदरा० साधुः। २ सत्यत्रेतायुगान्तर युगभेद, बारह युगोंमें तीसरा युग। भाद्रमासकी कृष्णात्रयोदशी वृहस्पतिवारको द्वापरयुगकी उत्पत्ति हुई थी। यह युग ८६४००० वर्षका माना गया है। इस युगमें श्रीकृष्ण और बुद्धका अवतार, आधे पुण्य और आधे पापमें हुआ था। राजा शाल्व, विराट, हंसध्वज, कंस, मयूरध्वज, बभ्रुवाहन, रुक्माङ्गद, दुर्योधन, युधिष्ठिर, परीक्षित, जनमेजय, विष्वक्‌सेन, शिशुपाल, जरासन्ध, उग्रसेन और कंस इसी युगमें हो गये हैं। इस युगके मनुष्योंकी परमायु एक हजार वर्ष थी और उनके शरीरका परिमाण सात हाथ था। प्राण रुधिरगत अर्थात् जब तक देहमें रक्त रहता, तब तक जीवन नाश नहीं होता था। यजुर्वेदका अधिकार अर्थात् कार्यकलापादि यजुर्वेदके अनुसार था। ताम्रपात्रका व्यवहार होता था और सभी मनुष्य अर्द्धधर्मरत, प्रलापी, सर्वदाचपल, ज्ञाननिष्ठ, कपट और वाक्यकुशल थे।

द्वापरयुगके धर्मभेदादिका विषय मत्स्यपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

त्रेता युगका काल जब क्षीण होने लगा, तब द्वापरने धीरे धीरे अपना प्रभुत्व जमा लिया। त्रेतायुगमें प्रजाकी जो सब सिद्धि थी, वह द्वापर युगके लगते ही जाती रही। प्रजा अत्यन्त लोभी हो चली, वणिक्‌गण आपसमें विवाद करने लगे। सभी तत्त्वोंका निश्चय करनेके लिये कोई रह न गये। सब वर्णोंका नाश और कर्मका विपर्यय आरम्भ हुआ। रजोगुण और तमोगुणके कार्य धीरे धीरे बढ़ने लगे। जिनके करनेसे त्रेतामें पाप नहीं लगता था, वे सब कर्म पाप समझे जाने लगे। वर्णधर्म, वर्णाश्रम आदि सङ्कीर्ण होने लगे। अज्ञानके कारण श्रुति स्मृति आदिका यथार्थ बोध लुप्त होने लगा। मनुष्य अपनी अपनी समझके अनुसार अर्थ लगाने लगे। जब धर्मतत्त्वकी ऐसी गड़बड़ी उपस्थित हुई, तब आपसमें अनेक प्रकारके मतभेद चलने लगे। द्वापरमें धर्मादि व्याकुलित हो कर कलिमें एक दम नष्ट हो गये। सभी मनुष्य इस प्रकार अनेक तरहके विपर्ययमें पड़ कर व्याधियोंसे बलहीन तथा तेजहीन हो गये और क्लेश उनके चारों ओर घिर आये। इस सबकी मति ह्रास हो जानेसे वेदवेदाङ्गोंके अवबोधके लिये टीका टिप्पणी होने लगी जिसमें अनेक प्रकारके मतभेद चलने लगे, कोई कुछ भी स्थिर कर न सके। इस समय प्रत्येक मनुष्यका समय कष्टकर जान पड़ने लगा। प्रायः

किसीके मनमें शान्ति न थी। इस तरह द्वापर अच्छी तरह अपना विक्रम प्रकाश कर धीरे धीरे जीर्ण होने लगा। तब कलिने आ कर द्वापरके राज्यमें अपना अधिकार जमा लिया। (मत्स्यपु० १४४ अ०) कलि देखो।

द्वामुष्यायण (सं० पु०) द्व्यामुष्यायण पृषोदरादित्वात् साधुः। १ वह पुरुष जो दो मनुष्योंका पुत्र हो। २ उद्दालक गौतम मुनि। ३ वह पुरुष जो दो ऋषियोंके गोत्रमें उत्पन्न हुआ हो।

द्वार् (सं० स्त्री०) द्वारयति-क्विप्। १ गृहनिर्गमनस्थान, घरमें आने जानेके लिये दीवारमें खुला हुआ स्थान, दरवाजा। २ उपाय, तरकीब।

द्वार (सं० क्ली०) द्वृ-णिच्-अच्। १ गृहनिर्गमस्थान, दरवाजा। २ किसी ओट करनेवाली या रोकनेवाली वस्तुमें वह छिद्र या खुला स्थान जिससे हो कर कोई वस्तु आर पार या भीतर बाहर जा सके, मुख, मुहाना। ३ इन्द्रियोंके मार्ग वा छेद। ४ उपाय, साधन, जरिया। सांख्यकारिकामें अंतःकरण ज्ञानका प्रधान स्थान कहा गया है और ज्ञानेन्द्रियां उसके द्वार बतलाई गई हैं। ५ शेष और अङ्ग।

द्वार—आसामके लाट अधीनके दो द्वार हैं, एक पूर्वद्वार, दूसरा पश्चिमद्वार।

पूर्वद्वार—यह अभी ग्वालपाड़ा जिलेमें शामिल है। इसके उत्तरमें भूटान गिरिमाला, पूर्वमें मानस नदी जो इस भूभागको कामरूप जिलेसे विभक्त करती है। दक्षिणमें असल ग्वालपाड़ा जिला और पश्चिममें गङ्गाधर वा स्वर्णकोशी नदी है जो पश्चिम द्वारसे इस भूखण्डको पृथक् करती है। यह अक्षा० २६° १८′ से २८° ५४′ उ० और देशा० ८८° ५५′ से ९१° पू० तक विस्तृत है। भूपरिमाण १५६९८८२ वर्गमील है। लोकसंख्या प्रायः ६० हजार है। इसका प्रधान शहर बिजनी है, किन्तु यहांके मुकदमे आदि धुबड़ी अदालतमें किये जाते हैं।

पूर्वद्वारकी भूमि पहाड़के नीचे होने पर भी अधिकांश समतल है। यहांकी ऊँची जमीनके मध्य केवल ४०० फुट उच्च भूमेश्वर पहाड़ देखा जाता है। इस विस्तृत समभूमिमें कहीं कहीं शालके वन हैं और असंख्य नदियां बहती हैं जिनमेंसे मानस, जनानी, पाकजनी, आई, कानामाकरा, चम्पामती, गौराङ्ग, सरलभाङ्गा, गङ्गिया, गुरुपाला और गङ्गाधर। गङ्गाधरमें बारहों महीने नावें आदि चलती हैं। अन्यान्य नदियोंमें केवल वर्षाकालमें ही नावें जाती आती हैं। यहांकी सभी नदियां भूटान गिरिमालासे निकल कर ब्रह्मपुत्रमें गिरती हैं।

यहांके जङ्गलमें मूल्यवान् काष्ठ पाये जाते हैं। इसी कारण जङ्गल-विभाग गवर्मेण्टके अधीन है। जङ्गलमें दाख, पीपर और आशु नामक लालवर्णोत्पादक गुल्म पाया जाता है। जङ्गली जन्तुओंमें हाथी, गैंडा, भैंस, बाघ, भालू, सूअर और हरिण प्रधान हैं।

इस अञ्चलके लोग धान और सरसोंकी खेती करते हैं। प्रत्येक गृहस्थके घरके चारों ओर बांस और केलेके अनेक पेड़ देखे जाते हैं।

१८६४-६५ ई०में भूटान-युद्धके बाद यह भूभाग वृटिशाधीन हुआ।

१६वीं शताब्दीमें वर्त्तमान कोचबिहारके राजाके आदिपुरुष विश्वसिंह इस अञ्चलमें रहते थे और यहींसे उन्होंने भावीराज्यका सूत्रपात किया। पीछे उत्तराधिकारियोंमें आपसमें गृह-विवाद हो जानेसे यह भूभाग कई खण्डोंमें विभक्त हो गया और हरएक भूभाग राजकुमारोंमें बांट दिया गया। इस तरह बिजनी, सिदलीद्वार और दरङ्गके राजाओंने अपने अधिकृत वर्त्तमान सम्पत्ति प्राप्त की।

मुगलोंने जब आसाम पर चढ़ाई की तब इस भूभागका पश्चिमांश मुगलोंके अधिकारभुक्त ग्वालपाड़ाके अधीन हुआ। उस समय अहोम राजगण ब्रह्मपुत्रके तीरवर्त्ती प्रदेश पर राज्य करते थे। पूर्वद्वारमें बहुत दिनों तक भूटियाका आधिपत्य रहने पर भी आश्चर्य है कि यहांके अधिवासियोंमें भूटिया लोगोंके बौद्धधर्मका चिह्नमात्र भी दीख नहीं पड़ता। किन्तु मुसलमानधर्मका प्रताप अब भी प्रत्यक्ष है। १७७२ ई०में भूटिया लोग कोचबिहार पर बहुत अत्याचार करने लगे। कोचबिहारके राजाने इष्ट-इण्डिया कम्पनीको कर दे कर उसकी शरण ली। तदनुसार अंगरेज गवर्मेण्टने राजाको

भूटियांके अत्याचारसे बचाया। कोचबिहार देखो।

१८६३ ई०में ब्रटिश-राजदूत भूटानराज्यमें अपमानित हुए। इसका बदला चुकानेके लिये १८६४ ई०के दिसम्बर महीनेमें अंगरेजी सेना भेजी गई। १८६५ ई०में भूटियाके राजा सन्धि करनेको राजी हुए जिसके अनुसार पूर्वद्वार और पश्चिमद्वार ब्रटिश गवर्मेण्टको दे दिये गये। ब्रटिश गवर्मेण्ट भी भूटानराजको प्रति वर्ष २५०००) रुपये देनेमें स्वीकृत हुई। इसके अलावा यह भी शर्त ठहरी कि ब्रटिशगवर्मेण्ट अपनी इच्छानुसार ५० हजार रुपये तक भी दे सकती है। तभीसे वहां कोई गड़बड़ी न हुई। अभी सारे भूभागमें शान्ति विराजती है। किन्तु ई० १८८७ सालके आषाढ़ मासके भूमिकम्पसे द्वार भूभागके नाना स्थानोंमें महती क्षति हुई है।

सन्धि होनेके बादसे भूटानद्वार दो भागोंमें विभक्त हुआ—पूर्वद्वार और पश्चिमद्वार। पूर्वद्वारकी सीमा पहले ही लिखी जा चुकी है। पहले पहल यह भूभाग एक डिपुटी-कमिश्नरके शासनाधीन हुआ और दलमा ग्राममें इसका सदर बनाया गया। १८६६ ई०के दिसम्बर महीनेमें द्वारका पश्चिमांश बङ्गमें और पूर्वांश आसाममें मिला दिया गया। १८७४ ई०में आसाम एक चीफ-कमिश्नरके अधीन एक स्वतन्त्र प्रदेशके जैसा गिना जाने लगा और पूर्वद्वार बङ्गसे अलग कर लिया गया। किन्तु ग्वालपाड़ा और पूर्वद्वारका शासनकार्य एक राजपुरुषके अधीन होने पर भी यहांकी शासन प्रणाली न्यारी थी। १८६९ ई०की १६वीं धाराके अनुसार यहांकी स्थावर सम्पत्ति, राजस्व, मालगुजारी आदिका मुकदमा दीवानी अदालतके अन्तर्गत नहीं किया गया। यहांका भूभाग खास गवर्मेण्टके अधीन है।

यहां कोच, मेच, कछाड़ी और राभाजातिका वास है। सब हिन्दुओंमें कोलिताकी संख्या ही अधिक है। यहांके हिन्दूलोग अधिकांश वैष्णव और गोस्वामीके शिष्य हैं।

इस अञ्चलमें तीन प्रकारके धान होते हैं—आशु, बोरो और आमन वा हैमन्तिक।

वाणिज्यमें रेंड़ीका तेल, कपास, रबर और आशु नामक रंग प्रधान है।

पश्चिमद्वार—हिमालयके नीचे बङ्गालके लाटके अधीन एक खण्ड भूभाग, द्वार प्रदेशका पश्चिम खण्ड कहलाता है। जलपाईगुड़ी जिलेमें भी इस भूभागके अन्तर्गत हिमालय पर्वतका कोई कोई अंश है। पश्चिम द्वारका समस्त भूभाग जङ्गलमय है। बीच बीचमें नदी बह गई है जिससे आबादमें बहुत लाभ पहुंचाता है। भूटान-युद्धके बाद १८६४-६५ ई०में यह भूखण्ड अंगरेजोंके अधिकारभुक्त हो कर बङ्गालके छोटे लाटके अधीन हो गया है। १८८१-८४ ई०में चायकी खेती करनेके लिये अनेक लोग यहांकी जमीन खरीदने लगे। आज कल यहां चायकी खेती बहुत होती है। यहांका जलवायु अस्वास्थ्यकर है। चायके बगीचे जितने ही अधिक प्रतिवर्ष लगाये जाते हैं उतने ही देशका अस्वास्थ्य भी दूर होता जाता है। पश्चिमद्वार प्रदेशकी पूर्व सीमा स्वर्णकोशी नदी और पश्चिम सीमा तिस्ता नदी है। यह अञ्चल नौ परगनोंमें विभक्त है, (१) मालका ११९ वर्गमील, (२) माटियाड़ी १३९ वर्गमील, (३) बक्सा ३०० वर्गमील, (४) चकात्त-लक्षिय १३८ वर्गमील, (५) मदारी १९४ वर्गमील, (६) लक्ष्मीपुर १६५ वर्गमील, (७) मराघाट ३४२ वर्गमील, (८) मयनागुड़ी ३०९ वर्गमील और (९) चेङ्गमारी १४६ वर्गमील।

द्वारक (सं० क्ली०) द्वारेण प्रशस्तेन कायति कै-क। द्वारकापुरी।

द्वारकण्टक (सं० पु० क्ली०) द्वारस्य कण्टक-इव। कपाट, किवाड़।

द्वारका—१ बरोदाराज्यके अमरेली प्रान्तके ओखामण्डल तालुकका एक बन्दर और हिन्दू-तीर्थ। यह अक्षा० २२° २२' उ० और देशा० ६९° ५' पू० अहमदाबादसे २३५ मील दक्षिण-पश्चिम तथा बरोदा शहरसे २७० मील पश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ७५३५ है। यह बरोदाराज गायकवाड़के अधीन है। यहां एक दल बम्बई प्रदेशके देशीय पदातिक रहते हैं, इसके अलावा यहां 'ओखामण्डल-बेटलियन' नामक गोरासैन्य भी है।

यहां द्वारकानाथका एक मन्दिर है जहां प्रतिवर्ष प्रायः दश हजार यात्री समागम होते हैं। हिन्दुओंका विश्वास है कि यह मन्दिर ऐश्वरिक क्षमतासे एक

रातिमें निर्माण किया गया था। मन्दिर १०० फुट ऊंचा और पाँच खण्डोंमें विभक्त है। इसके सामने एक नाटमन्दिर है जिसकी छत ६० खम्भोंके ऊपर स्थापित है और जिसकी त्रिकोणाकार चूड़ा १७१ फुट ऊंची है। मन्दिरके यात्रीसे प्रायः २ हजार रुपये वार्षिक आय होती है।

मन्दिरकी प्रतिमाका नाम रणछोड़जी है। प्रायः छः सौ वर्ष पहले रणछोड़जीकी मूलप्रतिमाको चुरा कर पुरोहितोंने गुजरातके अन्तर्गत ठाकुर नामक स्थानमें ले जा रखा। तभीसे वहीं पड़े हुए हैं। पीछे द्वारकामें जो दूसरी प्रतिमा बनाई गई, वह भी आज लगभग २०० वर्ष हुए इसी तरह अपहृत हो कर एक खाड़ीके दूसरे किनारे वटद्वीप वा शङ्खोद्धार द्वीपमें प्रतिष्ठित हुई। इसके पश्चात् द्वारकाके मन्दिरमें वर्त्तमान तीसरी प्रतिमा प्रतिष्ठित हुई है। हिन्दू लोग इसे चार धामोंमें मानते हैं। द्वारकामें यात्रियोंको सबसे पहले गोमती नामक पुण्यसलिला नदीमें स्नान करना पड़ता है। स्नानके बाद वे द्वारकाके सामन्तोंको ४।० रुपये और पुरोहितोंको ३॥० रुपये दक्षिणा दे कर देवदर्शनको जाते हैं। वहां यात्री लोग यथासाध्य पूजादि दे कर ब्राह्मण भोजन कराते हैं। द्वारकामें यात्री बड़ी श्रद्धासे छाप लेते हैं। मरमरा नामक स्थानमें ब्राह्मण लोग छाप देते हैं। लौहवलय और लौहपद्मको अग्निमें उत्तप्त कर यात्रीके अभिलषित अङ्ग पर छाप दी जाती है। साधारणतः यात्री लोग बाहु पर ही छाप लेते हैं। सभी यात्रीको छाप नहीं लेनी पड़ती है। माताके इच्छानुसार छोटे बच्चेको देह पर भी छाप दी जाती है। बन्धुबान्धव और आत्मीय स्वजनोंके लिये भी अपने शरीर पर छाप लेनेकी प्रथा है। प्रत्येक छाप देनेकी दक्षिणा १।० रुपये हैं। इसके अनन्तर वह द्वीपके रणछोड़जीका दर्शन करनेको जाते हैं। वहां पहुंच कर प्रत्येक यात्रीको ५) रुपये देने पड़ते हैं। यात्री लोग यहां रणछोड़ देवताको बहुमूल्य परिच्छद प्रदान करते हैं। परिच्छद बाजारमें खरीदना पड़ता है। देवताको चढ़ाये जानेके बाद पंडा लोग उसे बाजारमें पुनः बेच डालते हैं। इस तरह एकही कपड़ा जब तक वह सड़ पच न जाय, तब तक कई सौ बार खरीदा और बेचा जाता है।

पंडा लोगोंका कहना है, कि प्रति वर्ष एक निर्दिष्ट समयमें विशेष लक्षणाक्रान्त एक पक्षी समुद्रगर्भसे बाहर निकलता है। इसके गात्रवर्ण और लक्षणादि देख कर वे उसे मौसुम-वायुकी गति स्थिर करते हैं। यह कथा अबुलफजल भी उल्लेख कर गये हैं। बाद वह पक्षी देवमन्दिरमें आ कर देवप्रसादी तण्डुल खाता और देवताके सामने नाचता और कानोंमें गान करता है। कुछ समयके बाद वह उसी जगह मर जाता है।

द्वारकामें श्रीकृष्णकी राजधानी थी। पुराणोंमें लिखा है, कि श्रीकृष्णके देहत्यागके पीछे प्राचीन द्वारकानगरी समुद्रमें मग्न हो गई। पोरबन्दरसे २० मील दक्षिण समुद्रमें इस पुरीका अवस्थान लोग अब तक बतलाते हैं। पण्डा लोग कहते हैं, कि पूर्वोक्त पक्षी इसी स्थानसे निकलता है।

द्वारकाका दूसरा नाम कुशस्थली है। यहां आनर्त्त देशकी राजधानी थी। परशुराम कर्तृक यहां प्रथम भारद्वाजादि दशगोत्रीय ब्राह्मणोंका वास था। श्रीकृष्णने यहां राजधानी स्थापित कर नगरकी शोभा खूब बढ़ा दी थी।

महाभारतमें सभापर्वमें जहां धौम्य युधिष्ठिरको तीर्थादिका इतिहास सुनाते हैं, उस जगह ८८वें अध्यायमें द्वारका सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—

"उस प्रदेशमें (सुराष्ट्रमें) पुण्यजनक द्वारावती तीर्थ है जहां साक्षात् पुरातन देव मधुसूदन विराजमान हैं। वे ही जीवात्मा और परमात्मा हैं, अतः उन्हें व्ययात्मा और अव्ययात्मा भी कह सकते हैं। इस तरहको अचिन्त्यात्मा मधुसूदन हरि उस द्वारावतीमें अधिष्ठित हैं।" इससे जान जाता है कि श्रीकृष्णके अवस्थानकालसे ही यह तीर्थमें गिना गया है वह नहीं, उसके पहले भी इसकी प्रसिद्धि थी। द्वारवती, कुशस्थली और प्रभास देखो।

द्वारकामाहात्म्यमें द्वारकाकी उत्पत्तिके विषयमें इस प्रकार लिखा है—

शर्याति नामक एक चक्रवर्त्ती राजा थे। उनके उत्तानबर्हि, आनर्त्त और भूरिषेण नामक तीन पुत्र हुए। राजा बड़े ही दाक्षिक और ब्राह्मणप्रिय थे। एक दिन

धर्मात्मा आनर्त्तने कहा, "हे राजन्! इस समस्त राज्यमें आपका कुछ भी नहीं है, सभी भगवान् श्रीकृष्णका है।" यह सुन कर शर्यातिने क्रुद्ध हो कर उन्हें राज्यसे बाहर निकलवा दिया। समुद्रके किनारे आ कर आनर्त्तने वे कुशस्थलीकी शरण ली। तब वे कुशस्थलीमें कुछसे सौ योजन भूखण्ड उत्पाटन करके भीमनादी सागर पर सुदर्शनचक्रके ऊपर उसे स्थापित किया। उसी भूखण्ड पर आनर्त्तने पुत्रपौत्रादि क्रमसे राज्य किया। उनके रेवत नामक एक पुत्र हुए जिनसे रैवतगिरिकी उत्पत्ति हुई। इन्होंने ही कुशस्थली वा द्वारावतीपुरी निर्माण की। २ कर्पास, कपास।

द्वारकादास—शेखावतीके एक राजाका नाम। ये खण्डेल-राज गिरिधररायके बड़े पुत्र थे। पिताके मरनेके बाद ये उनके सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। परन्तु उनके सिंहासना-रूढ़ होनेके थोड़े ही दिन बाद इन्हें एक बड़ी विपत्तिका सामना करना पड़ा। शेखावत सम्प्रदायके आदिपुरुष नूनकरण थे। उन्हींके वंशधर जो उस समय मनोहरपुरके अधीश्वर थे, उन्होंने अपनी स्वाभाविक नीचताके वशवर्त्ती हो कर इन्हें उस विपत्तिमें फंसाया था। दिल्लीके बाद-शाह एक सिंह पकड़ लाये। प्रचलित रीतिके अनुसार उन्होंने उस सिंहसे युद्ध करनेके लिये विज्ञापन निकाला। इस विज्ञापनके निकलते ही मनोहरपुरके राजाने बाद-शाहसे कहा—हमारी जातिके रायसलोत द्वारकादास जो प्रसिद्ध वीर नाहरसिंहके शिष्य हैं वे ही इस सिंह-से लड़ सकते हैं। बादशाहने सिंहसे लड़नेके लिए द्वारकादासको आज्ञा दी। द्वारकादास मनोहरपुरपति-की चालाकी ताड़ तो गए, परन्तु उन्होंने बादशाहकी आज्ञाका बड़ी धीरतासे पालन किया। मैदान दर्शकों-से भर गया, द्वारकादास भी स्नान करके और पूजाकी सामग्री ले कर वहां उपस्थित हुए। द्वारकादासने जा कर सिंहको एक टीका लगा दिया और उसके गलेमें माला पहना दी; तदनन्तर अपने आसन पर धीर भाव-से बैठ कर वे पूजा करने लगे। द्वारकादासके आच-रणको देख लोग विस्मित हो रहे थे। मनोहरपुरके राजा मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे। इसी समय सिंह द्वारका-दासके पास आ कर उनका शरीर सूंघने लगा। पुनः जब बादशाहने बुलाया, तब द्वारकादास वहांसे उठ कर बादशाहके समीप चले गए। बादशाहने समझा कि अवश्य ही यह देवोशक्तिसे बलवान् है। प्रसन्न हो कर बादशाहने द्वारकादाससे इच्छानुसार मांगनेके लिए कहा। द्वारकादासने यही मांगा, कि आजसे किसीको ऐसी विपत्तिमें न फंसाना।

अन्तमें द्वारकादास खाँजहान्के हाथसे मारे गए। कहते हैं, खाँजहान् और द्वारकादास दोनों परम मित्र थे। एक समय बादशाह किसी कारणसे खाँजहान्से अप्रसन्न हुए और द्वारकादासको उन्होंने कहला भेजा कि खाँजहान्को जीता हुआ या मार कर मेरे यहां ले आओ। इस आज्ञाको सुन कर द्वारकादासको बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने खाँजहान्से कहला भेजा कि इस घृणित कार्यको सम्पन्न करनेका भार मुझ पर रखा गया, अतएव आप स्वयं बादशाहके यहां जा कर आत्म-समर्पण करें या यहांसे कहीं भाग जांय। खाँजहान्-ने ऐसा करना अनुचित समझा। दोनों वीर संग्राम-क्षेत्रमें जा कर लड़ने लगे, एक दूसरेके प्रहारसे दोनों ही पञ्चत्वको प्राप्त हुए।

द्वारकाधीश (सं० पु०) १ श्रीकृष्णचन्द्र। २ कृष्णकी वह मूर्त्ति जो द्वारकामें है।

द्वारकानाथ (सं० पु०) द्वारकाधीश देखो।

द्वारकानाथ ठाकुर—कलकत्तेके एक मान्यगण्य जमीं-दार। १७९४ ई०में इनका जन्म हुआ था। शेरबोर्न साहबके स्कूलमें इन्होंने पहले पहल पढ़ना लिखना सीखा। थोड़े ही दिनोंके मध्य अंगरेजी, बङ्गला और पारसी भाषामें इनका अच्छा प्रवेश हो गया। पीछे मुख्तारी पास कर ये कितने राजाओं और जमीं-दारोंके विश्वासभाजन हो गए। पिताके मरने पर जमीं-दारीकी देख रेख इन्हींको करना पड़ता था। मुख्तारीमें इन्होंने खूब रुपये कमाये। धीरे धीरे इन्होंने बोर्ड, कष्टम और अफीम-विभागकी दीवानी भी पाई थी। इस प्रकार प्रचुर अर्थ उपार्जन कर स्वाधीनभावसे व्यवसाय करनेके उद्देश्यसे १८३४ ई०में इन्होंने 'कार ठाकुर' नामक एक वाणिज्यालय स्थापित किया। अङ्गरेजों-के आदर्शमें वाणिज्य-कोठी बंगाली द्वारा यदि स्थापित

हुई, तो सबसे पहले यही । इनकी प्रशंसा करते हुए उस समयके गवर्नर-जनरल विलियम बेण्टिकने इन्हें एक पत्र लिखा था । इनको उत्साह वाणिज्यकी ओर दिनों दिन बढ़ता गया और कई एक गण्यमान्य अंगरेजोंके साथ मिल कर इन्होंने 'इयुनियन बैंक" नामक एक तिजारती कारबार खोला । इस समय बङ्गाल बैंकके अलावा "कमर्सियल बैंक' और 'कलकत्ता बैंक' नामक दो और भी बैंक थे । इयुनियन बैंकके साथ कलकत्ता बैंक मिला दिया गया । १८२८ ई०में कमर्सियल बैंकने दिवाला निकाल दिया । द्वारकानाथ ठाकुर इसके एक मात्र अवस्थापन्न धनी अंशी थे, इस कारण इन्हींको बैंककी कुल देन चुकानी पड़ी थी ।

'कार-ठाकुर कम्पनी' बङ्गाल और बिहारके नाना स्थानोंमें कोठियां स्थापन कर नील, रेशम और अन्यान्य पण्य द्रव्योंका अन्तर और बहिर्वाणिज्य चलाने लगी । उस समय अन्यान्य वाणिज्य-कोठियोंमें यही कोठी सबसे बढ़ी चढ़ी थी । इसकी आयसे द्वारकानाथने राजसाही, पावना, रङ्गपुर, यशोर आदि जिलोंमें जमींदारी खरीद की थी । इन्हींके उत्साहसे हिन्दू-कालेज, मेडिकल कालेज और जमींदारसभा (Land-holders' society)का स्थापन, डेपुटी मजिष्ट्रेटके पदकी सृष्टि, मुद्रण-स्वाधीनता, सतीदाहनिवारण और यूरोपीय तथा देशीयके बीच निमन्त्रणामन्त्रणादि द्वारा सद्भावको स्थापन आदि कार्य हुए थे । इन सब कार्योंमेंसे कितनेके तो आप ही नेतृत्व थे और कितनेके परिपोषकरूपमें कार्य करते थे । इन्हींकी चेष्टासे १८३६ ई०में टाउन-हालमें साधारण सभा हुई जिसमें "ब्लाक ऐक्ट" (Black act) (१८३८ ई०का ११वां आईन) के सम्बन्ध पर घोर प्रतिवाद किया गया । इन सब कार्योंके फलसे आप जष्टिस-आव-दि पीसके पद पर नियुक्त हुए ।

द्वारकानाथ गवर्नर जनरल लार्ड आकलैंडके निकट जनताके मुखपात्र रूपमें परिचित थे और सर्वदा परामर्शके लिये गवर्नर जनरलसे बुलाए जाते थे ।

१८४१ ई०में जब इन्होंने विलायत जानेकी इच्छा प्रकट की, तब अंगरेज समाजने अत्यन्त आह्लादित हो टाउन-हालमें एक सभा करके उन्हें एक अभिनन्दन-पत्र भेज दिया । १८४२ ई० ८ जनवरीको द्वारकानाथने विलायतकी यात्रा की और १० जूनको वहां पहुंच गये । इष्ट-इण्डिया-कम्पनीके डाइरेक्टर द्वारकानाथकी तारीफ पहलेसे ही सुन चुके थे । अतः उन्होंने द्वारकानाथको एक भोज दिया । १६ जूनको आप भारतेश्वरीके दरबारमें उपस्थित हुए और एक सप्ताहके बाद राजपरिवारके साथ एकत्र भोजन करनेके लिये बकिंहम-प्रासादमें निमन्त्रित हुए । ऐसा सम्मान और किसी बङ्गालीका नहीं किया गया था । भोजन कर चुकनेके बाद महारानीने उसी दिनकी मुद्रित तीन स्वर्णमुद्रा उपहारमें दीं । इसके अलावा प्रिंस एडवर्ड और महारानी विक्टोरियाकी बड़े आकारकी दो तसवीरें कलकत्तावासीको उपहार देनेके लिये द्वारकानाथको मिलीं । वह तसवीर आज भी टाउन-हालमें विद्यमान है । पीछे स्काटलैण्ड होते हुए आप १८४२ ई०के अन्तमें कलकत्ता वापिस आए । इन्हींके साथ भारतके राजनीति-आन्दोलनके आदिशिक्षक जार्ज टामसन भी भारतवर्षमें पधारे थे ।

१८४५ ई०की ८वीं मार्चको आपने दूसरी बार विलायतकी यात्रा की । इस बार इनके छोटे लड़के नगेन्द्रनाथ ठाकुर, छोटी बहनके पुत्र नवीनचन्द्र मुखोपाध्याय, डा० राले और उनके सेक्रेटरी मि० सेफ आपके साथ हो लिए थे । कायेरा तथा फ्रांस होते हुए आप २४ जूनको लण्डन पहुंचे । १८४६ ई०के जून मासमें ये कठिन रोगसे आक्रान्त हुए और १ली अगस्तको लण्डन नगरमें ही इस धराधामको छोड़ परलोकको सिधार गए । ईसाइयोंके देशमें किस प्रकार हिन्दूकी मृतदेहका सत्कार किया जायगा, यह तर्क उठा । अन्तमें स्थिर हुआ कि केनसलग्रीन नामक गिर्जाके जिस अंशमें ईसाकी समाधि नहीं होती, उसी स्थान पर बिना कोई धर्मानुष्ठान किये शवदेह गाड़ी जायगी, वैसा ही हुआ भी । पुत्र, भागिनेय और बन्धुबान्धवादिके अलावा महारानीके आदेशसे चार राज-अश्वारोही सैनिक मृतदेहके साथ गए थे ।

कलकत्तेमें जब यह शोकसमाचार पहुंचा, तब सर पीटर ग्राण्टके सभापतित्वमें टाउन-हालमें २ दिसम्बरको शोक सभा की गई ।

द्वारकानाथमित्र—बङ्गालके एक प्रसिद्ध व्यक्ति। १७३३ ई०में हुगली जिलेके अगुनसी ग्राममें इनका जन्म हुआ था। बचपनसे ही इनकी असाधारण प्रतिभा चमकने लगी थी। चार वर्षकी अवस्थामें ही इन्होंने घर पर पढ़ना लिखना सीख लिया था। १८४६ ई०में जब इनकी उमर सात वर्षकी हुई, तब हुगली ब्रैंच स्कूलमें भर्त्ती हुए। इस समयसे ले कर जितनी परीक्षाएं इन्होंने पास कीं, सभीमें इन्हें वृत्ति मिलती गई थी।

आप बड़े इतिहासप्रिय थे। पढ़नेकी क्षमता भी आपमें इतनी थी कि ऐलिसन्‌प्रणीत यूरोपके इतिहासका एक एक खण्ड आप एक ही दिनमें पढ़ लेते थे। इनकी स्मरणशक्ति भी वैसी ही प्रबल थी। पन्द्रह दिनमें ही इन्होंने ऐलिसनका उक्त इतिहास मुखस्थ कर लिया था। पिताके मरने पर इन्हें नौकरी करनेकी विशेष इच्छा हुई। उपयुक्त नौकरी कहीं नहीं मिलने पर इन्होंने दृढ़संकल्प कर लिया, कि जब तक वकालत पास न कर लूं तब तक अच्छे ओहदेकी नौकरी भी क्यों न मिल जाय, तो भी नहीं कर सकता। यह चिन्ता इनके हृदयमें रात दिन जाग्रत् रही। घर पर भी इन्होंने आईन पढ़ना आरम्भ कर दिया और उत्तम श्रेणीमें वकालत पास कर ही ली।

तदनन्तर आप सदर दीवानी अदालतमें वकालत करनेके लिए प्रविष्ट हुए। धीरे धीरे इनकी वकालत खूब चली, थोड़े दिनोंमें लाखों रुपये उपार्जन कर लिये। १८६२ ई०में "हाई-कोर्ट" स्थापित हुआ। सर बार्नेस पीकक प्रधान विचारपति हुए। द्वारकानाथकी धीशक्ति और बुद्धिकी प्रखरता देख वे दाँतों उंगली काट कर रह गए।

सत्य और न्यायनिष्ठाको इन्होंने मरते समय तक भी नहीं छोड़ा। इनकी दानशीलता और उदारता भी प्रशंसनीय थी। दरिद्र विपक्षोंसे बिना कुछ लिये ही उनके मुकदमे की पैरवी करते थे।

१८६७ ई० ६ जूनको हाईकोर्टके प्रकृत प्रथम देशीय विचारपति जज शम्भुनाथके मरने पर द्वारकानाथ ही उस पद पर अभिषिक्त हुए। इस समय इनकी अवस्था केवल ३३ वर्षकी थी।

१८७३ ई०के नवम्बर मासमें ये गलक्षत रोगसे आक्रान्त हुए और यही रोग आगे चल कर इनकी मृत्युका कारण हुआ। अङ्गरेजी आहारादिके आप बड़े प्रिय थे। जबसे गलक्षत रोगका आक्रमण हुआ, तबसे इन्होंने उक्त आहारादिका बिलकुल बहिष्कार कर दिया। वे कहते थे, कि हम लोगोंके लिये देशीय प्रथाका खाद्यादि ही स्वास्थ्यप्रकर है, इसका व्यतिक्रम करनेसे निश्चय ही स्वास्थ्य-नाश होगा। एक दिन कथाप्रसङ्गमें द्वारकानाथने कहा था, "मानवधर्मशास्त्रके प्रणेता मनुका कहना है, कि मानसिक और शारीरिक उन्नतिके सिवा आत्मतत्त्वमें अधिकारी हो नहीं सकता। मैं जो इतना कष्ट भोग रहा हूं वह केवल मनुके नियमादि उल्लङ्घनका विषमय फल है। यदि इस यातासे किसी तरह रक्षा मिल जाय, तो मैं हिन्दू जीवनका ही अवलम्बन करूंगा।" इसी आधार पर मोक्षमूलरने एक पत्र लिखा था, "यूरोपमें जो अच्छी अच्छी चीजें हैं उन्हें ले लो, लेकिन यूरोपीय मत बनो। तुम लोग मनुके वंशधर हो, रत्नप्रसविनी भारतकी सन्तान हो, सत्यानुसन्धित्सु हो, सभी जिस ईश्वरकी सेवा करते हैं, तुम लाग भी उन्हींके उपासक हो, तो फिर व्यर्थ अन्य जातिके अनुयायी क्यों होते हो? तुम लोग जो हो उसी पर आरूढ़ रहो।"

१८७४ ई०को २५वीं फरवरीको दिनके चार बजे बङ्गालकी मणिमालाके एक अत्युज्ज्वलमणि द्वारकानाथ करालकालके गालमें पतित हुए।

द्वारकानाथ विद्याभूषण—बङ्गालके एक प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान्। १७४२ शकमें दाक्षिणात्य वैदिक श्रेणीके ब्राह्मणवंशमें इनका जन्म हुआ था। ये ईश्वरचन्द्र विद्यासागरके समसामयिक थे। दोनों एक ही कालेजमें काम करते थे। इन्होंने रोमराज्यका इतिहास, भूषणसार नामक बङ्गला व्याकरण और विश्वेश्वरविलाप नामक एक क्षुद्रकाव्यकी रचना की थी। 'सोमप्रकाश' नामक एक सुविख्यात संवादपत्रका भी आप सम्पादन करते थे। १८८६ ई०को २२वीं अगस्तको आप इस धराधामको छोड़ स्वर्गधामको सिधार गए।

द्वारकेश (सं० पु०) द्वारकायाः ईशः। वासुदेव, द्वारकानाथ।

द्वारगोप (सं॰ पु॰) द्वारं गोपायति गुप-अण्। द्वारपाल।

द्वारचार (सं॰ पु॰) विवाहकी एक रीति जो बरातके लड़कीवालेके दरवाजे पर पहुंचने पर होती है।

द्वारछेंकाई (हिं॰ स्त्री॰) १ विवाहमें एक रीति। जब विवाहका वर वधू समेत अपने घर आता है, तब कोहबरके दरवाजे पर उसकी बहन उसको राहको रोकती है। ऐसे समय जब वर उसे कुछ नेग दे देता है, तब वह राह छोड़ देती है। २ द्वारछेंकाईमें दिये जानेका नेग।

द्वारदातु (सं॰ पु॰) द्वारं ददाति दा-तुन्। भूमिसह वृक्ष।

द्वारदारु (सं॰ पु॰) १ शाकवृक्ष। २ भूमिसह वृक्ष।

द्वारप (सं॰ पु॰) द्वारं पाति पा-क। १ द्वाररक्षक। २ विष्णु।

द्वारपण्डित (सं॰ पु॰) वह प्रधान पण्डित जो किसी राजाके दरबारमें रहते हों।

द्वारपति (सं॰ पु॰) द्वारस्य पतिः ६-तत्। द्वारपाल।

द्वारपाल (सं॰ पु॰) द्वारं पालयतीति पालि-अण्। १ द्वाररक्षक। इसका पर्याय—प्रतीहार, द्वाःस्थ, द्वाःस्थित, दर्शक, वेत्रधारक, दौःसाधिक, वर्त्तरुक, गवोट, दण्डवासी, द्वारस्थ, चत्ता, द्वारपालक, दौवारिक, वेता, उत्सारक और दण्डी है। दौवारिक देखो।

२ तन्त्रोक्त देवताभेद, द्वाररक्षक देवता। इन देवताओंकी पूजा पहले की जाती है। ३ तीर्थभेद। महाभारतमें इसे सरस्वतीके किनारे लिखा है। इसमें स्नान दानादि करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है।

द्वारपालक (सं॰ पु॰) पालयतीति पालि-ण्वुल् द्वाराणां पालकं द्वारपाल-स्वार्थे कन्। द्वारपाल।

द्वारपालिक (सं॰ पु॰) द्वारपाल्या अपत्यं द्वारपाली रेवत्यादित्वात् ठक्। द्वारपालीका अपत्य, द्वारपालकी सन्तति।

द्वारपिण्डी (सं॰ स्त्री॰) द्वारस्य पिण्डी पिण्डिकेव। देहली, ड्योढ़ी, दहलीज।

द्वारपूजा (हिं॰ स्त्री॰) १ विवाहमें एक कृत्य। जब बरातके साथ वर पहले पहल आता है, तब कन्या वालेके द्वार पर यह कृत्य किया जाता है। इसमें कन्याका पिता द्वार पर स्थापित कलश आदिका पूजन करके अपने इष्ट मित्रों सहित वरको उतारता और मधुपर्क देता है। २ जैनियोंकी एक पूजा।

द्वारबलिभुज (सं॰ पु॰) द्वारदत्तं बलिं भुंक्ते भुज-क्विप्। १ बक, बगला। २ काक, कौवा।

द्वारयन्त्र (सं॰ क्ली॰) द्वारबन्धकं यन्त्रं मध्यलो॰ कर्मधा॰। तालक, ताला।

द्वारवती (सं॰ स्त्री॰) द्वाराणि सन्त्यत्र, वा चतुर्वर्णानां मोक्षद्वाराणि सन्त्यत्र द्वारा मतुप् मस्य वः। द्वारका। इसका पर्याय—द्वारका, द्वारावती, वनमालिनी, द्वारिका, अब्धिनगरी और द्वारकपुरी है। इस पुरीके विषयमें ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें श्रीकृष्णके जन्मखण्डमें इस प्रकार लिखा है—

श्रीकृष्णने समुद्रके पास पहुँचकर उससे कहा था, 'हे समुद्र! मैं यहां एक पुरी बनाना चाहता हूँ, इसलिये तुम एकसौ योजन विस्तृत एक स्थल प्रदान करो, पीछे मैं तुम्हें प्रत्यर्पण कर दूंगा।" इस तरह समुद्रके किनारे स्थल पा कर श्रीकृष्णने विश्वकर्माको अत्यन्त आश्चर्यजनक यथा सुदृढ़ पुरी बनानेकी आज्ञा दी। इस पर विश्वकर्माने श्रीकृष्णसे कहा, 'हे भगवन्! किस प्रकारकी पुरी निर्माण करूंगा।" श्रीकृष्णने कहा, कि एक ऐसा सुमनोहर पुरी बनाओ जो एक सौ योजन विस्तृत हो और जिसमें पद्मरागादि मणि जड़ी हुई हों। कुबेरके भेजे हुए ७ लाख यक्षों और शङ्करके भेजे हुए वेतालकी सहायतासे विश्वकर्माने एक अपूर्व पुरी निर्माण की। स्वर्ग वा मर्त्यमें इस तरहकी मनोहर नगरी और कहीं नहीं थी। इस पुरीके तेजसे सूर्य भी पराजित हुए थे। यह तीर्थोंमें एक प्रधान तीर्थ है।

इस द्वारका-पिष्टतीर्थके जैसा और दूसरा कोई तीर्थ नहीं है। यह सभी तीर्थोंसे श्रेष्ठ तथा पुण्यप्रद है। इस पुरीमें प्रवेश करनेसे ही सब प्रकारके जन्मबन्धन खण्डन हो जाते हैं। यह तीर्थ दान, देवतापूजा तथा गङ्गादि तीर्थसे चतुर्गुण फलदायक है।

हरिवंशके ११६वें अध्यायमें द्वारकापुरीका विषय विशेष रूपसे वर्णित है। हरिवंशमें एक जगह लिखा है, कि जहां चारों वर्णोंके समस्त द्वार विद्यमान हैं, जहां

जानेसे चारों वर्ण मोक्षलाभ करते हैं, ऐसी पुरीका नाम तत्त्ववेदी पण्डितोंने चतुर्वर्णके मोक्षद्वार समझ कर द्वारवती रखा है।

यह पुरी पीठस्थानोंमेंसे एक है। यहां भगवती रुक्मिणीके रूपमें विराजती हैं। (देवीभाग० ७।३०।६८) पृथ्वी पर जो ७ मोक्षदायिका पुरी हैं उनमेंसे द्वारका एक है।

"अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिका:।
एतास्तु पृथिवी मध्ये न गण्यन्ते कदाचन॥
पुरी द्वारावती विष्णो: पाञ्चजन्योपरिस्थिता।
मुक्तिदा एता: सर्वाश्च एकत्र गणिता: सुरै:॥"

(भूतशुद्धितन्त्र)

देवताओंने अयोध्या, मथुरा, द्वारवती आदिकी गणना मोक्ष क्षेत्रोंमें की है। इनमेंसे द्वारवती पुरी श्रीकृष्ण पाञ्चजन्य शङ्खके ऊपर धारण किये हुए हैं।

द्वारका देखो।

द्वारवर्त्मन् (सं० पु०) द्वार, फाटक।

द्वारवृक्ष (सं० पु०) कृष्णपिप्पली, काली पीपल।

द्वारशाखा (सं० स्त्री०) द्वारस्य शाखा ६-तत्। द्वारका अवयव, दरवाजेका भाग।

द्वारसमुद्र—महिसुर राज्यके अन्तर्गत हसन जिलेका एक प्राचीन शहर। इसका वर्त्तमान नाम हलेबिड़ है। यह अक्षा० १३°१३' उ० और देशा० ७६° ०' पू० बानावर रेलवे स्टेशनसे १८ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या प्राय: १५२४ है। १०४७ ई०से ले कर १३१० ई० तक इस नगरमें "होयशल बल्लाल" नामक देवगिरियादव वंशीय एक शाखाने प्रभुत पराक्रमसे राज्य किया था। इसी नगरमें उन लोगोंकी राजधानी थी। यद्यपि वे कलचुरी वा चेदि राजाओंके अधीन थे तो भी उन लोगोंका प्रताप कम नहीं था। होयशल बल्लाल देखो। प्रवाद है, कि इस वंशके प्रतिष्ठाता राजा शल वा होयशलने इस नगरको स्थापित किया। चेन्नवासव-कालज्ञान नामक तामिल इतिहासमें इनका राजत्वकाल ९८४ ई०से १०४३ ई० तक लिखा हुआ है। १३वीं शताब्दीमें वीर सोमेश्वर नामका इस वंशके १०वें राजाने इस नगरका जीर्ण संस्कार किया। इसी कारण इनके समयके उत्कीर्ण शिलालेखमें इन्हींको नगरके निर्माणकर्त्ता बतलाया है। सोमेश्वरने इस नगरमें एक बड़ा और अति उत्कृष्ट शिल्पकार्यविशिष्ट शिव और विष्णुका मन्दिर निर्माण किया जिनमेंसे होयशलेश्वरका मन्दिर सबसे बड़ा है। भारतीय अट्टालिका-शिल्पके इतिहासलेखक फार्गुसनने इस मन्दिरके कारुकार्यकी विशेष प्रशंसा की है। मन्दिरकी लम्बाई २०० फुट और ऊंचाई २५ फुट है। इसके सभी पत्थर मर्मर-पत्थर सरीखे चमकीले और चिकने हैं। मन्दिरके एक कटिबन्धमें दो हजार हाथी खोदे हुए हैं। यह ७०० फुट लम्बा है। छोटे मन्दिरमें केटेश्वर नामक विष्णुकी प्रतिमा है। इसके ऊपर वृक्ष आदिके उत्पन्न हो जानेसे थोड़े दिन हुए यह तहस नहस हो गया है। १३१० ई०में दिल्लीसम्राट् अलाउद्दीन् खिलजीके सेनापति मालिक काफुर और खाजा हाजीने द्वारसमुद्र पर आक्रमण किया था और इसे अपने कब्जेमें कर लिया था। होयशल बल्लालराज भगाये जाने पर उन्होंने तोन्दानूर नगरमें राजधानी स्थापित की। इसके निकट जैनके ग्राम और अट्टालिकाओंके ध्वंसावशेष विद्यमान हैं।

द्वारस्तम्भ (सं० पु०) द्वारस्य स्तम्भ: ६-तत्। द्वाराङ्गस्तम्भ, दरवाजे परका खंभा।

द्वारस्थ (सं० पु०) द्वारे तिष्ठतीति स्था-क। १ द्वारपाल। (त्रि०) २ द्वारस्थित मात्र, जो दरवाजे पर बैठा हो।

द्वार (स्त्री० पु०) १ द्वार, दरवाजा, फाटक। २ मार्ग, राह।

द्वारा (हिं० अव्य०) कर्तृत्वसे, साधनसे, जरियेसे।

द्वारादि (सं० पु०) पाणिन्युक्त गणभेद। द्वार, स्वर, स्वाध्याय, व्यल्कश, स्वस्ति, स्वर, स्फाकृत, स्वादु, मृदु, श्वस् और स्व ये ही द्वारादि हैं।

द्वाराधिप (सं० पु०) द्वारे द्वारस्य वा अधिप:। द्वाराध्यक्ष, दरवाजेका मालिक।

द्वाराध्यक्ष (सं० पु०) द्वारे अध्यक्ष:। प्रतीहार, द्वारपाल, ड्योढ़ीदार।

द्वारावती (सं० स्त्री०) द्वाराणि प्रशस्तबहुलप्रतिहारा: सन्त्यत्र, द्वार-मतुप् मस्य व, निपातनात् पूर्वदीर्घश्च। द्वारका। द्वारवती और द्वारका देखो।

द्वारिक (सं० पु०) द्वारं पाल्यत्वेनास्त्यस्य ठन्। द्वार-पाल, दरबान।

द्वारिका (सं० स्त्री०) प्रशस्तानि द्वाराणि सन्त्यस्यां ठन् टाप् च। द्वारकापुरी।

द्वारिकादास—एक हिन्दी-कवि। इन्होंने संवत् १८२१-के पूर्व माधवनिदानभाषा नामक एक वैद्यक ग्रन्थकी रचना की।

द्वारिकाप्रसाद—१ हिन्दीके एक कवि। ये ब्राह्मण-जातिके थे। इन्होंने चौतालवाटिका नामक एक पुस्तक लिखी है।

२ हिन्दीके एक कवि। ये खटवारा जिला बांदाके निवासी तथा कायस्थजातिके थे। इनका जन्म संवत् १८२४में हुआ था। ये स्वरसम्बोधिनी और रेखता-रामायण नामक दो ग्रन्थ लिख गए हैं।

द्वारिकेश—एक हिन्दी कवि। इनकी कविता सुमधुर तथा सराहनीय होती थी। उन्होंने 'द्वारिकेशजीकी भावना' नामक एक ग्रन्थ लिखा है।

द्वारिन् (सं० त्रि०) द्वारं पाल्यतया अस्त्यस्येति इनि। १ द्वारपाल। (त्रि०) २ द्वारयुत, जिसमें दरवाजा हो।

द्वार्य (सं० त्रि०) द्वारि भवः यत्। द्वारभव, जो दर-वाजे पर हो।

द्वार्वती (सं० स्त्री०) द्वारवती।

द्वाल (हिं० पु०) दुवाल देखो।

द्वालबंद (हिं० पु०) दुवालबंद देखो।

द्वाली (हिं० स्त्री०) दुवाली देखो।

द्वाविंश (सं० त्रि०) द्वाविंशतेः पूरणः डट्। द्वाविंशति संख्याका पूरण, बाईसवां।

द्वाविंशति (सं० स्त्री०) द्व्यधिका विंशतिः द्वौच विंश-तिश्च इति वा आत्, बहुत्वेऽपि एकवचनं। १ दो अधिक विंशति, बाईसकी संख्या, २२। २ तत् संख्यायुक्त, जो संख्यामें बीस और दो हो, बाईस।

द्वाविंशतितम (सं० त्रि०) द्वाविंशत्याः पूरणः पूरणे तमप्। द्वाविंश संख्याका पूरण, बाईसवां।

द्वाविंशतिधा (सं० अव्य०) द्वाविंशति विधार्थे-धा। द्वाविंशति प्रकार, बाईस तरहका।

द्वाषष्ट (सं० त्रि०) द्वाषष्टि पूरणे डट्। द्वाषष्टि संख्या-का पूरण, बासठवां।

द्वाषष्टि (सं० स्त्री०) द्व्यधिका षष्टिः। १ दो अधिक षष्टि, बासठकी संख्या, ६२। २ तत् संख्यायुक्त, जो गणनामें साठ और दो हो, बासठ।

द्वाषष्टितम (सं० त्रि०) द्वाषष्ट्याः पूरणः पूरणे तमप्। द्विषष्टि संख्याका पूरण, बासठवां।

द्वासप्तत (सं० त्रि०) द्वासप्ततेः पूरणः डट्। द्विसप्ततिका पूरण, बहत्तरवाँ।

द्वासप्तति (सं० स्त्री०) द्व्यधिका सप्ततिः। १ वह संख्या जो सत्तरसे दो अधिक हो, बहत्तरकी संख्या, ७२। (त्रि०) द्वासप्तति प्रमाणमस्य ठन्, द्वासप्तत्याः पूरणः पूरणे तमप्। २ द्वासप्ततितम, बहत्तरवाँ।

द्वास्थ (सं० पु०) द्वारि तिष्ठतीति स्था-क खर्परे शरि वा विसर्गलोपे वक्तव्यः। पा ८।३।३६। इति विकल्पे विसर्गलोपः। द्वारपाल, दरबान।

द्वास्थित (सं० पु०) द्वारि स्थितः विसर्गस्य पाक्षिकलोपः। द्वारपाल।

द्वास्थितदर्शक (सं० पु०) पश्यतीति दृश-ण्वुल्, द्वास्थितः सन् दर्शकः। दौवारिक, द्वारपाल।

द्वि (सं० त्रि०) द्वित्व संख्या, दो। दो वाचक शब्द ये हैं,—पक्ष, नदीकूल, असिधारा, रामपुत्र, चक्षु, हस्त, स्तन, सहचर, इन्द्राग्नि, नारदपर्वत, अश्विनीकुमार और भार्यापति।

द्विक (सं० त्रि०) द्वाभ्यां कायतीति कै-क। १ द्वय, दो। द्वितीयेन रूपेण ग्रहणमिति कन् पूरणप्रत्ययस्य च लुक्। २ द्वितीयक, दूसरा। द्वयोरवयवः द्वौ अवयवौ वा यस्य कन्। ३ द्विल, दो बार, दोहरा। ४ जिसमें दो अवयव हों। (पु०) द्वौ कौ ककारौ यत्र। ५ काक, कौआ। ६ चक्रवाक, चकवा।

द्विककार (सं० पु०) द्वौ ककारौ ककारवर्णौ यत्र। १ काक, कौवा। २ कोक, चकवा।

द्विककुद (सं० पु०) द्वे ककुदौ यस्य। उष्ट्र, ऊंट।

द्विकर (सं० त्रि०) द्वौ करोति कृ-ट। १ द्वित्वसंख्या-न्वितकारक। द्वौ करौ यस्य। २ द्विभुज, दो भुजा। ३ करद्वय, दो हाथ।

द्विकर्मक (सं० त्रि०) जिसके दो कर्म हों।

द्विकल (सं० पु०) छन्दःशास्त्र या पिङ्गलमें दो मात्राओंका

समूह। इसके दो भेद हैं, एकमें तो दोनों मात्राएं पृथक् पृथक् रहती हैं और दूसरेमें एक ही अक्षर दो मात्राओंका होता है। पहलेका उदाहरण जैसे—जल, चल, वन, धन इत्यादि और दूसरेका-खा, जा, ना, श्रा, क्रा इत्यादि।

द्विकार्षापण (सं० त्रि०) द्वाभ्यां कार्षापणाभ्यां क्रीतं ठक्, तस्य वा लुक्। दो कार्षापण द्वारा क्रीत, जो दो काहन वा रुपयेमें खरीदा गया हो।

द्विकार्षापणिक (सं० त्रि०) द्वाभ्यां कार्षापणाभ्यां क्रीतं ठक्, पक्षे ठकोऽलोपः। द्विकार्षापण, जो दो काहन वा रुपयेमें खरीदा गया हो।

द्विकौड़विक (सं० त्रि०) द्वौ कुड़वौ प्रयोजनमस्य ठञ्, द्वाभ्यां कुड़वाभ्यां क्रीतं वा ठक्, न तस्य लुक्, उत्तरपद-वृद्धिः। १ द्विकुड़व प्रयोजनक, जिसे दो कुड़वको जरूरत हो। २ द्विकुड़व द्वारा क्रीत, जो दो कुड़वमें खरीदा गया हो।

द्विक्षार (सं० पु०) शोरा और सज्जी।

द्विगु (सं० त्रि०) द्वौ गावौ यस्य गौणत्वात् गोर्ह्रस्वः। १ दो गो सम्बन्धी, जिसके दो गायें हों। २ समासविशेष, वह कर्मधारय समास जिसका पूर्वपद संख्यावाचक हो। पाणिनिके मतसे द्विगु एक पृथक् समास नहीं है। उनके मतसे अव्ययीभाव, तत्पुरुष, बहुव्रीहि और द्वन्द्व ये ही चार प्रकारके समास हैं। द्विगु और कर्मधारय समासोंकी गिनती स्वतन्त्र समासोंमें नहीं है।

पाणिनिने इस समासको तत्पुरुष समासके अन्तर्भुक्त किया है। व्याकरणमें जो कुछ समास निर्दिष्ट हैं, उनके मतसे यह एक पृथक् समास है। मुग्धबोध व्याकरणमें इस समासका 'ग' यही संख्याकृत हुआ है अर्थात् ग कहनेसे ही द्विगु समासका बोध होता है। द्विगु समासके लक्षणमें इस प्रकार लिखा है—"संख्या पूर्वो द्विगुः।" (पा २।१।५२) संख्यावाचक पद पहले रहनेसे द्विगु समास होता है, अर्थात् जिस कर्मधारयके पूर्वपदमें संख्यावाचक शब्द हो, उसे द्विगुसमास कहते हैं। द्विगुसमासके तीन भेद हैं—तद्धितार्थ, उत्तरपद और समाहार। "तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च" (पा २।१।५१) तद्धितार्थमें उत्तरपदके बाद भी समाहार मालूम पड़ने पर भी द्विगुसमास होता है। "तद्धितार्थे द्विगुपञ्चभिर्गोभिः क्रीतः" इस जगह समास हो कर 'पञ्चगु' यह पद हुआ। इस तद्धितार्थ प्रत्यय बाद समास होनेसे तद्धितार्थ द्विगु हुआ।

उत्तरपदद्विगु—पञ्चहस्ताःप्रमाणमस्य' इस वाक्यमें समास हो कर पञ्चहस्तप्रमाण ऐसा पद हुआ। इस जगह प्रमाण शब्द उत्तरपदके बाद रहनेसे पञ्च और हस्त इन दो पदोंका द्विगु समास हुआ। संख्यावाचक शब्दका जिस जगह समाहार जान पड़े, उस जगह समाहारद्विगु होता है। समाहारद्विगु होनेसे अकारान्त शब्दका उत्तर ईप् होता है। यथा—त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी, चतुर्णां पदानां समाहारः चतुष्पदी इत्यादि। समाहार-द्विगुमें भुवन प्रभृति शब्दके बाद ईप् न होता। यथा—त्रयाणां भुवनानां समाहारः त्रिभुवनं इस जगह 'त्रिभुवनी' ऐसा रूप हो सकता है, किन्तु सूत्रके अनुसार ऐसा नहीं होता है। चतुर्युग पञ्चरात्रं इत्यादि। समासान्त सर्व, पुण्य, संख्यावाचक और अव्ययके परवर्त्ती अहन् शब्दके बाद अन् और अहन्को जगह अह्न होता है। यथा—द्वयो रह्नोः भवः द्व्यह्नः, पञ्चसु अहःसु भवः पञ्चाह्नः। समाहारद्विगुमें संख्यावाचकके परवर्त्ती अहन् शब्दको जगह अह्न नहीं होता है। यथा—द्वयो रह्नोः समाहारः द्व्यह, त्र्यह, दशाह इत्यादि। संख्यावाचक और अव्ययशब्दके परवर्त्ती अङ्गुलि शब्दके उत्तर अण् होता है। यथा—अङ्गुली प्रमाणास्य, द्व्यङ्गुलं। तद्धितार्थ द्विगुसमासमें गो शब्दके उत्तर ट समासान्त नहीं होता। यथा—पञ्चभि र्गोभिः क्रीतः पञ्चगु, इस जगह समासान्त होनेसे 'पञ्चगव' ऐसा पद होता। समाहारद्विगुमें नौ शब्दके उत्तर 'ट' समासान्त होता है। यथा—द्वयोर्नावोः समाहारः द्विनावं, किन्तु तद्धितार्थ द्विगुमें ट नहीं होगा। यथा—'पञ्चभि र्नौभिः क्रीतः पञ्चनौ' इस जगह ट समासान्त नहीं हुआ। इसीसे पञ्चनौ ऐसा पद बना। द्विगुसमास होनेसे द्वि और त्रि शब्दके परवर्त्ती अञ्जलि शब्दके उत्तर विकल्पसे ट समासान्त होता है। यथा—द्व अञ्जली प्रमाणमस्य द्व्यञ्जलं द्व्यञ्जलि। विकल्पविधानके कारण 'द्व्यञ्जल और द्व्यञ्जलि ये ही दो पद होंगे। समास देखो।

द्विगुण (सं० त्रि०) द्वाभ्यां गुण्यते गुण-कर्मणि अच्। दो द्वारा गुणित, दुगना, दूना।

द्विगुणाकृत (सं० त्रि०) द्विगुणं कर्षणं कृतं डाच् (संख्यायाश्च गुणान्तायाः। पा ५।४।५८) वारत्रयकर्षित खेत, जो जमीन दो बार जोती गई हो।

द्विगुणाकर्ण (सं० त्रि०) द्विगुणौ कर्णौ लक्षणमस्य 'कर्णे लक्षणस्य' इति कर्ण शब्द परे पूर्वस्य दीर्घः। दो द्वारा गुणित, दोसे गुणा किया हुआ।

द्विगुणित (सं० त्रि०) द्वाभ्यां गुणितः। १ दोसे गुणा किया हुआ, जिसे दुगना किया हो। २ दूना, दुगुना।

द्विघटिका (सं० स्त्री०) दो घड़ियोंके हिसाबसे निकला हुआ मुहूर्त। यह मुहूर्त होराके अनुसार निकाला जाता है। सात दिनको आठ घड़ियां दो दो घड़ियोंमें विभक्त की जाती हैं और पुनः शुभाशुभका विचार किया जाता है। इस मुहूर्त्तमें दिनका विचार नहीं होता, सब दिन सब ओरको यात्रा हो सकती है। यह उस जगह काममें लाया जाता है, जहां कई दिन ठहरने या रुकनेका समय नहीं रहता।

द्विचक्र (सं० पु०) १ दानवभेद, एक असुरका नाम। (त्रि०) २ दो चक्रयुक्त, जिसमें दो चक्के या पहिये हों।

द्विचत्वारिंश (सं० त्रि०) द्विचत्वारिंशतः पूरणः डट्। जिस संख्या द्वारा ४२ संख्या पूरण हो, बयालीसवां।

द्विचत्वारिंशत् (सं० स्त्री०) द्व्यधिका चत्वारिंशत्। १ दो अधिक चत्वारिंशत्, बयालीसकी संख्या, ४२। (त्रि०) द्विचत्वारिंशत्तम, बयालीसवां।

द्विचरण (सं० त्रि०) द्वौ चरणौ यस्य। १ द्विपादयुक्त, जिसके दो पांव हों। (क्ली०) २ राशिभेद, एक राशिका नाम। ३ पादद्वय, दो पांव।

द्विज (सं० पु०) द्विर्जायते सुजर्थे वृत्तौ द्विशब्दः जन-ड (अन्येष्वपि दृश्यते। पा ३।२।१०१) १ संस्कृत ब्राह्मण, वह ब्राह्मण जिसका संस्कार हुआ हो।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जब यथाविधि संस्कृत हो जाते अर्थात् जब उनके उपनयनादि संस्कारकार्य सम्पन्न हो जाते, तब उन्हें द्विज कहते हैं।

याज्ञवल्क्यमें लिखा है, कि पहले मातापितासे उत्पन्न, पीछे मौञ्जिबन्धनसे द्वितीय जन्म होता है। (उपनयन संस्कारको मौञ्जिबन्धन कहते हैं।) यह संस्कार हो जानेसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्विज कहलाते हैं। २ सद्वृत्त ब्राह्मण। एक समय अम्बरीषने वशिष्ठदेवसे पूछा था, 'हे ऋषि! कैसे ब्राह्मणको दान देना चाहिये और किस तरह वह दानदाताके उद्धारका कारण होता है, यह कृपा कर हमें बतलाइये।' इस पर वशिष्ठने कहा था कि, 'जिन्हें जाति, कुल, वृत्त अर्थात् सदाचार, स्वाध्याय और शास्त्रका ज्ञान हो उन्हें द्विज कहते हैं। हे राजन्! केवल जाति, कुल और शास्त्रज्ञानादि द्विजत्वके प्रतिकारण नहीं होते, उपरोक्त समस्त गुण जिनमें पाये जांय उन्हींको द्विज कहते हैं।' ३ दन्त, दाँत पहले दाँतके गिर जानेसे उसकी जगह दूसरा दांत निकल जाता है। इसीसे दाँतको द्विज कहते हैं। ४ अण्डज प्राणी। ५ तुम्बुरुवृक्ष, नेपाली धनिया। ६ पक्षी, चिड़िया। ७ चन्द्रमा। पुराणमें लिखा है, कि चन्द्रमाको दो बार जन्म हुआ था। एक बार ये अत्रि ऋषिके पुत्र हुए थे और दूसरी बार समुद्र-मथनके समय समुद्रसे निकले थे। ८ सर्प, साँप। (त्रि०) ९ द्विजातमात्र, जो दो बार उत्पन्न हुआ हो, जिसका जन्म दो बार हुआ हो।

द्विज—१ हिन्दीके एक कवि। इन्होंने सम्वत् १८३६में सभाप्रकाश नामका एक पुस्तक लिखी।

२ एक हिन्दी-कवि। इनका जन्म संवत् १८६०में हुआ और कविता काल १८८८के लगभग समझना चाहिए। इन्होंने राधानखशिख नामका एक उत्कृष्ट ग्रन्थ अनुप्रास एवं भावपूर्ण बनाया है। इनकी कविता अच्छी होती थी, उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं—

"अमल कमल रम्भ खम्भसे उलटि धरे,
गुजर जुगल देखी केहरी नसत है।
सुधा रस पैर कारी लर मखतूल डारी,
सीफल मृणाल कम्बु शोभा सरसत है॥
सुमन गुलाब बिम्ब मदन मुकुर कीर,
खंजन कमान उपमा न परसत है।
द्विज कवि जान कहौ राधिका सुजान छवि,
मेरे जान चंद ढिग नागिनि लसत है॥"

द्विजकवि मन्नालाल—एक हिन्दी कवि। ये बनारसके निवासी थे। इन्होंने प्रेमतरङ्गसंग्रह नामको एक पुस्तक लिखी है।

द्विजकिशोर—एक हिन्दी-कवि। इनकी कविता अच्छी होती थी। इन्होंने तेरहमासी नामक एक पुस्तककी रचना की।

द्विजकुत्सित (सं० पु०) द्विजानां द्विजेषु वा कुत्सितः। श्लेष्मान्तक वृक्ष, एक पेड़।

द्विजकेतु (सं० पु०) जम्बीरवृक्ष, जंबीरी नीबूका पेड़।

द्विजचन्द्र—हिन्दीके एक कवि। इनका जन्म संवत् १७५५में हुआ था तथा इनका कविता-काल सं० १७८०से समझना चाहिये।

द्विजछत्र—एक हिन्दी-कवि। इन्होंने सम्वत् १८४८के पूर्व कविता रचना आरम्भ कर दी थी तथा इनके बनाये हुए अनेक ग्रन्थ देखनेमें आते हैं जिनमें रूपपरीक्षा प्रसिद्ध है।

द्विजत्व (सं० क्ली०) द्विजस्य भावः द्विज-त्व। ब्राह्मणत्व, द्विजका धर्म वा भाव।

द्विजदम्पति (हिं० पु०) चाँदीका एक पत्तर। इस पर स्त्री पुरुष वा लक्ष्मीनारायणका युगल चित्र खुदा रहता है जो स्त्रियोंके मृतक कर्ममें दशाहके बाद ब्राह्मणको दान दिया जाता है।

द्विजदास (सं० पु०) द्विजानां दासः ६-तत्। १ शूद्र। (त्रि०) २ द्विजोंका दासमात्र, जो द्विजकी सेवा टहल करता हो।

द्विजदीनदास—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने संवत् १८७५के पूर्व ही गोकुलकाण्ड नामक एक पुस्तक लिखी।

द्विजदेव—एक हिन्दी-कवि। ये महाराज अयोध्या-नरेश तथा अवध-प्रदेशान्तर्गत ताल्लुकदारोंकी सभामें सभापति थे। इनका स्वर्गवास संवत् १९३०में संभवतः पचास वर्षकी अवस्थामें हुआ। ये कवियोंके कल्पवृक्ष थे। अपने मरण-कालमें ये अपने दौहित्र महामहोपाध्याय महाराज सर प्रतापनारायणसिंह के० सी० आई० ई०को अपना उत्तराधिकारी नियत कर गए थे। इन्होंने शृंगारबत्तीसी और शृङ्गारलतिका नामक दो ग्रन्थ बनाए हैं। ये ब्रज-भाषामें ही कविता करते थे। इनकी भाषा बड़ी ललित और कविता परम मनोहर होती थी।

द्विजनदास—एक हिन्दी-कवि। इनकी कविता सुमधुर तथा सराहनीय होती थी। इन्होंने गुणमाला नामक एक पुस्तक लिखी।

द्विजनन्द—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने बहुत सी अच्छी कविताओंकी रचना की।

द्विजन्मन् (सं० पु०) द्वे जन्मनी यस्य। १ ब्राह्मण। २ दन्त, दाँत। ३ पक्षी, चिड़िया। ४ क्षत्रिय, वैश्य। (त्रि०) ५ दो बार जन्मयुक्त, जिसका दो बार जन्म हुआ हो।

द्विजपति (सं० पु०) द्विजानां पतिः ६-तत्। १ चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर। ३ द्विजश्रेष्ठ, ब्राह्मण। ४ गरुड़।

द्विजप्रपा (सं० स्त्री०) द्विजानां पक्षिणां प्रपा, वा द्विजार्थं पक्षिणमुद्दिश्य प्रपा। १ वह गड्ढा जो पेड़के नीचे खोद कर उसमें पानी डाला जाता है। इसका पर्याय—तल, तल्ल और विल्ल है। २ पानीका वह कुण्ड जिसमें पक्षी और मवेशी आ कर पानी पीते हैं।

द्विजप्रिया (सं० स्त्री०) द्विजानां याज्ञिकब्राह्मणादीनां प्रिया। १ सोम। सोमरस द्विजोंके यज्ञादिके लिये प्रिय है। (त्रि०) २ द्विज प्रियमात्र, जो द्विजका प्रिय हो।

द्विजबन्धु (सं० पु०) द्विजस्य बन्धुरिव। अब्राह्मण, संस्कार वा कर्महीन द्विज, नाममात्रका द्विज।

द्विजब्रुव (सं० पु०) आत्मानां द्विजं ब्रुते ब्रू-क। ब्राह्मण-ब्रुव, नाममात्रका द्विज। जिसका जन्म तो द्विज माता-पितासे हुआ हो पर वह स्वयं द्विजोंके संस्कारों और कर्मोंसे हीन हो।

द्विजमुख्य (सं० पु०) द्विजेषु मुख्यः। द्विजश्रेष्ठ, ब्राह्मण।

द्विजयष्टि (सं० स्त्री०) भार्गी।

द्विजराज (सं० पु०) द्विजानां राजा ६-तत् टच्। १ चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर। ३ द्विजश्रेष्ठ, ब्राह्मण। ४ द्विजोत्तम, विप्र। ५ पक्षीन्द्र, गरुड़।

द्विजर्षभ (सं० पु०) द्विजश्चासौ ऋषभश्चेति, कर्मधा०। द्विजश्रेष्ठ, ब्राह्मण।

द्विजलिङ्गिन् (सं० पु०) द्विजस्य लिङ्गं चिह्नमस्त्यस्येति इनि। १ क्षत्रिय। (त्रि०) २ ब्राह्मणवेशधारी, ब्राह्मणका वेशधारण करनेवाला। मनुने ऐसे ब्राह्मणका दण्ड वध लिखा है।

द्विजवर (सं० पु०) द्विजश्रेष्ठ, ब्राह्मण।

द्विजवाहन (सं० पु०) द्विजः गरुड़वाहनं यस्य। नारायण, विष्णु।

द्विजव्रण (सं० पु०) द्विजस्य दन्तस्य व्रणः। दन्तार्बुद, दाँतका एक रोग।

द्विजशस्त्र (सं० पु०) द्विजैः शस्त्रः ३-तत्। राजमाष, बर्बट, भटवाँस। ब्राह्मण इसे नहीं खाते।

द्विजश्रेष्ठ (सं० पु०) द्विजेषु श्रेष्ठः ७-तत्। ब्राह्मणश्रेष्ठ।

द्विजसेवक (सं० पु०) द्विजानां सेवकः ६-तत्। १ शूद्र। (त्रि०) २ द्विजसेविमात्र, द्विजोंको सेवा करनेवाला।

द्विजसत्तम (सं० पु०) द्विजेषु सत्तमः। द्विजश्रेष्ठ।

द्विजस्नेह (सं० पु०) पलाशवृक्ष, ढाकका पेड़।

द्विजा (सं० स्त्री०) द्विर्जायते जन-ड, टाप्। १ रेणुका नामक गन्धद्रव्य, संभालूका बोज। इसका पर्याय— रेणुका, राजपुत्री, नन्दिनी, कपिला, द्विजा, भस्मगन्धा, पाण्डुपत्री, कौन्ती और हरेणुकाङ्ग है। २ भार्गी, भारङ्गी। ३ पालङ्गी, पालकका शाक। यह एक बार काटे जाने पर फिर होता है, इसीसे इसका नाम द्विजा पड़ा है। स्त्रियां टाप्। ४ द्विजपत्नी, ब्राह्मण या द्विजकी स्त्री।

द्विजाग्रज (सं० पु०) ब्राह्मण।

द्विजाग्रय (सं० पु०) द्विजेषु अग्रयः। विप्र, ब्राह्मण।

द्विजाङ्गिका (सं० स्त्री०) कटुकी, कुटकी।

द्विजाङ्गी (सं० पु०) द्विजस्य पक्षिणोऽङ्गमिव अङ्गं यस्याः, ङीप्। कटुका, कुटकी।

द्विजाति (सं० पु०) द्वे जाती यस्य। १ ब्राह्मण। २ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य। ३ अण्डज। ४ दन्त, दाँत। ५ पक्षी।

द्विजातिमुख्य (सं० पु०) द्विजातिषु मुख्यः। ब्राह्मणश्रेष्ठ।

द्विजानि (सं० पु०) द्विजाया यस्य, बहुव्रीहौ जायायाः जादेशः। द्विभार्यक, वह पुरुष जिसके दो स्त्रियां हों।

द्विजायनी (सं० स्त्री०) द्विजः अय्यते ज्ञायतेऽनयेति अय करणे ल्युट्। स्त्रियां ङीप्। यज्ञोपवीत।

द्विजालय (सं० पु०) द्विजानां पक्षिणां आलयः। १ तरुकोटर, पेड़की खोखली जगह जिसमें चिड़ियां अपना घोंसला बनाती है। २ ब्राह्मणोंका घर।

द्विजिह्व (सं० पु०) द्वे जिह्वे यस्य। १ सर्प, साँप। २ सूचक, चुगलखोर। ३ खल, दुष्ट। ४ चोर, चोर। ५ दुःसाध्य। ६ रोगविशेष, एक रोग। (त्रि०) ७ द्विजिह्वाविशिष्ट, जिसे दो जीभें हों।

द्विजेन्द्र (सं० पु०) द्विज इन्द्र इव उपमित समासः। १ द्विजश्रेष्ठ, ब्राह्मण। द्विजानां इन्द्रः ६-तत्। २ चन्द्रमा। ३ कर्पूर, कपूर। पक्षीन्द्र, गरुड़।

द्विजेन्द्रक (सं० पु०) निम्बूवृक्ष, नोबूका पेड़।

द्विजेश (सं० पु०) द्विजानां ईशः ६-तत्। १ गरुड़। २ चन्द्रमा। ३ कर्पूर। ४ द्विजेश्वर, ब्राह्मण।

द्विजोत्तम (सं० पु०) द्विजेषु उत्तमः। ब्राह्मण।

द्विजोपासक (सं० पु०) द्विजमुपास्ते उप-आस-ण्वुल्। द्विजसेवक, शूद्र।

द्विट्सेवा (सं० स्त्री०) द्विषो सेवा। शत्रुकी सेवा।

द्विट्सेवी (सं० त्रि०) द्विट्सेवा विद्यतेऽस्य इनि। राजशत्रुसेवी, जो राजाके शत्रुसे मिला हो या मित्रता रखता हो। मनुने ऐसे मनुष्यका दण्ड वध लिखा है।

द्विठ (सं० पु०) द्वे ठकारो लिखनाकारो यस्य। १ विसर्ग। २ अग्निजाया, स्वाहा। (क्ली०) ३ दो ठकार।

द्वित (सं० पु०) १ देवभेद, एक देवताका नाम। २ ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम। इनके तीन भाई थे, एकत, द्वित और त्रित।

द्वितय (सं० क्ली०) द्वे अवयवो यस्य द्विअवयवे तयप्। १ द्वय, दोकी संख्या। (त्रि०) २ द्वित्वसंख्याविशिष्ट, जो दोसे मिल कर बना हो। ३ दोहरा।

द्वितीय (सं० त्रि०) द्वयोः पूरणं द्वि-तीय (द्वेस्तीयः। पा ५।२।५४) १ द्वय, दूसरा। (पु०) २ पुत्र, बेटा। आत्मा ही पुत्र रूपसे जन्मग्रहण करती है, इसीसे द्वितीय शब्दका अर्थ पुत्र हुआ है।

द्वितीयक (सं० क्ली०) द्वितीयेन रूपेण ग्रहणं कन्। १ चैत्रादिके द्वितीयरूप द्वारा ग्रहण। द्वितीयेऽह्नि भवः कन्। २ द्वितीय दिनभव रोग, वह रोग जो प्रत्येक दूसरे दिन होता हो। (त्रि०) ३ द्वय, दूसरा।

द्वितीयत्रिफला (सं० स्त्री० द्वितीया त्रिफला। गाम्भारी, एक बड़ा पेड़।

द्वितीया (सं० स्त्री०) द्वितीय-टाप्। १ गेहिनी, स्त्री। २ तिथिविशेष, प्रत्येक पक्षकी दूसरी तिथि, दूज। अश्विनीकुमारका जन्म द्वितीया तिथिमें हुआ था, इसीसे वह

तिथि शुभकर मानी गई है। इस तिथिमें जो पुष्पाहार हो कर अश्विनीकुमारके उद्देशसे एक वर्ष तक व्रत करते हैं, वे अश्विनीकुमार सरीखे रूप और गुणसम्पन्न होते हैं।

रथद्वितीया—आषाढ़मासकी शुक्लद्वितीयाको रथ-द्वितीया कहते हैं। इस तिथिमें पुष्यानक्षत्रका योग होनेसे शुभ होता है। यदि नक्षत्रका योग न हो, तो केवल तिथिमें ही यह उत्सव करना चाहिये। इसमें भद्राके साथ राम और कृष्णको रथ पर बिठाते हैं और पीछे अनेक ब्राह्मणोंको खिलाते पिलाते हैं। रथयात्रा देखो।

मनोरथ-द्वितीया—श्रावणमासकी शुक्लद्वितीयाका नाम मनोरथ द्वितीया है। इस तिथिमें दिनमें वासुदेवकी पूजा और रातमें चन्द्रोदय होने पर अर्घ्य देना चाहिये। पीछे ब्राह्मणादिको भोजन करा कर आप भोजन करना चाहिये।

भ्रातृद्वितीया—कार्त्तिकमासकी शुक्लद्वितीयाका नाम भ्रातृद्वितीया है। इस दिन बहनको भाईकी पूजा करनी चाहिये। जो नहीं करतीं, वे सात जन्म तक भ्रातृ-हीन रहती हैं। भाई प्रफुल्ल चित्तसे बहनके हाथसे भोजन करते हैं। इस दिन यम, चित्रगुप्त और यम-दूतका पूजन करनेका विधान है। यमको अर्घ्य देना चाहिये। पूजा और अर्घ्यदान भाई तथा बहन दोनोंको करना चाहिये।

अर्घ्यमन्त्र—

"ओं एह्येहि मार्त्तण्डज पाशहस्त यमान्तकालोकधरामरेश।
भ्रातृद्वितीया कृतदेवपूजां गृहाण चार्घ्यं भगवन् नमस्ते॥"

प्रणाममन्त्र—

"ओं धर्मराज नमस्तुभ्यं नमस्ते यमुनाग्रज।
पाहि मां किङ्करैः सार्द्धं सूर्यपुत्र नमोऽस्तु ते॥"

यमुनाकी पूजा कर नमस्कार करना चाहिये—

"ओं यमस्वस नमस्तेऽस्तु यमुने लोकपूजिते।
वरदा भव मे नित्यं सूर्यपुत्रि नमोऽस्तु ते॥"

भाईको खिलाते समय बहन यही मन्त्र पढ़ कर अन्न देती है—

"भ्रातस्तवानुजाताहं भुङ्क्ष्व भक्तमिदं शुभं।
प्रीतये यमराजस्य यमुनाया विशेषतः॥"

बहन यदि बड़ी हो, तो केवल 'भ्रातस्तवाग्रजाताहं' यही कहना चाहिये। (तिथितत्त्व) माघमासकी दोनों पक्षोंकी द्वितीया तिथि वर्जनीय है। तिथि देखो।

द्वितीया व्रतका विषय अग्निपुराणमें इस प्रकार लिखा है—द्वितीया व्रत करनेसे स्वर्गादि फल प्राप्त होता है। पुष्पाहारी हो कर द्वितीया तिथिमें अश्विनीकुमारकी पूजा करनेसे रूप, सौभाग्य और स्वर्गलाभ होता है तथा कार्त्तिकमासकी शुक्लद्वितीयामें यमकी पूजा करनेसे स्वर्गलाभ और नरक परिहार होता है। श्रावण-मासकी कृष्णा द्वितीयामें अशून्यव्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। इस व्रतमें विष्णु और लक्ष्मीकी एक वर्ष तक पूजा कर प्रतिमासमें शय्या, फल और सोमके उद्देशसे समन्त्रक अर्घ्यदान तथा सोमरूपी हरि और लक्ष्मीका पूजन करना पड़ता है। पीछे रातमें घीसे होम कर ब्राह्मणको शय्या, दीपाक्षभाजन समेत आसन, छत्र, पादुक, जलकुम्भ, प्रतिमा और पात्र देनेका विधान है। जो स्त्रीके साथ इस व्रतका अनुष्ठान करते वे मुक्ति पाते हैं। कार्त्तिकमासकी शुक्लद्वितीया तिथिमें कान्ति-व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। इस तिथिमें नक्ताहारी हो कर व्रतका अनुष्ठान और रामका पूजन करना पड़ता है। वर्ष भर इस प्रकार करनेसे कान्ति, आयु और आरो-ग्यादि लाभ होता है। पौषमासकी शुक्लद्वितीयासे ले कर चार दिन तक विष्णुव्रत करना चाहिये। पहले दिन सिद्धार्थसे, दूसरे दिन कृष्णतिलसे, तीसरे दिन वचसे और चौथे दिन सर्वौषधिके जलसे स्नान करना पड़ता है। कृष्ण, अच्युत, अनन्त हृषीकेश इत्यादि नामसे पूजा कर यथाक्रम शशी, चन्द्र, शशाङ्क और इन्द्र इस नामसे पद, नाभि, चक्षु और मस्तकका यथा-क्रम पूजन करना चाहिये। जब तक चन्द्रमा उदित रहें, तभी तक रातमें भोजन करते हैं। इस प्रकार व्रत करने-से छः मासमें सब पाप दूर हो जाते और वर्षके अन्तमें अभीष्ट कामना सिद्ध होती है। पूर्व समयमें देवताओंने यह व्रत किया था। अतः सभीको यह व्रत करना चाहिये। (अग्निपु॰ ११२ अ॰)

द्वितीयाकृत (सं॰ त्रि॰) द्वितीयं कर्षणं कृतं डाच्, (कृञो द्वितीय तृतीय शम्बबीजात् कृषौ। पा ५।४।५८) वार-

द्वय कर्षितक्षेत्र, वह खेत जो दो बार जोता गया हो।

द्वितीयाभा (सं० स्त्री०) द्वितीया हरिद्रावत् आभातीति आभा-क। दारुहरिद्रा, दारुहल्दी।

द्वितीयाश्रम (सं० पु०) द्वितीयः आश्रमः। गार्हस्थ्य आश्रम। मनुने लिखा है कि जीवितकालके द्वितीयभागमें विवाहादि करके घरमें रहे, इसी अवस्थाका नाम द्वितीयाश्रम है। यह द्वितीयाश्रम भयानक प्रलोभनका स्थान है। जो इस आश्रममें निर्लिप्त भावसे आश्रमधर्मका प्रतिपालन करते हुए काल व्यतीत करते हैं वे ही श्रेष्ठ हैं। भविष्यत्में वे दूसरे दूसरे आश्रमको सहजमें उत्तीर्ण कर संसारबन्धनसे मुक्त हो सकते हैं। इस आश्रममें बलिष्ठ इन्द्रियां तरह तरहके उत्पात मचाने लगती हैं। शास्त्रानुसार आश्रमधर्म प्रतिपालन करनेसे सब प्रकारके पुण्य लाभ होते हैं। जिस दिनसे इस आश्रमधर्मका व्यतिक्रम हुआ है, उसी दिनसे आर्य जातिको प्रकृत अवनति आरम्भ हुई है। ब्रह्मचर्याश्रममें जो शिक्षा प्राप्त होती है, द्वितीयाश्रममें उसके कार्यक्षेत्रमें जो सम्यक्‌रूपसे उत्तीर्ण हो सकते हैं, वे ही प्रकृत मनुष्य हैं।

शास्त्र और ऋषिवाक्यमें अविचलित भक्ति रख कर उसका अनुष्ठान करनेसे ही आश्रमधर्मका प्रतिपालन हो सकता है।

द्वितीयिन् (सं० त्रि०) द्वितीयो भागो ग्राह्यतयाऽस्त्यस्य इनि। अर्द्धभागग्राहक।

द्वित्र (सं० त्रि०) द्वौ वा त्रयो वा विकल्पार्थे डच्। (बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात्। पा ५।४।७३) नित्यबहुवचनान्तोऽयं। दो वा तीन।

द्वित्व (सं० क्ली०) द्वयोर्भावः। १ दोका भाव। २ दोहरे होनेका भाव।

द्विदण्डि (सं० अव्य०) द्वौ दण्डौ यस्मिन् प्रहरणे इच् समासान्तः। दण्डद्वययुक्त प्रहरण, मिले हुए दो डंडोंका प्रहार।

द्विदण्ड्यादि (सं० पु०) पाणिन्युक्त गणविशेष। ग्रहणार्थका बोध होनेसे अव्ययीभाव समासमें द्विदण्ड आदि कर इच् समासान्त होता है। द्विदण्डि, द्विमुषलि, उभाञ्जलि, उभयाञ्जलि, उभादण्डि, उभयादण्डि, उभाहस्ति, उभयाहस्ति, उभाकर्णि, उभयाकर्णि, उभापाणि, उभयापाणि, उभाबाहु, उभयाबाहु, एकपदि, प्रोह्यपदि, आढ्यपदि, सपदि, निकुच्यकर्णि, संहतपुच्छि और अन्तेवासि ये ही द्विदण्ड्यादि गण हैं।

द्विदत् (सं० त्रि०) द्वौ दन्तौ यस्य, दन्तशब्दस्य दतृ आदेशः (वयसि दन्तस्य दतृ। पा ५।४।१४१) दन्तद्वययुक्त वृषादि, वह बछड़ा के केवल दो दाँत निकले हों।

द्विदल (सं० त्रि०) द्वे दले यस्य। १ द्विशाखायुक्त, जिसमें दो दल वा पिंड हों। २ द्विपत्रयुक्त कमल, जिसमें दो पत्ते हों। ३ जिसमें दो पटल या पखड़ियां हों। (पु०) ४ वह अन्न जिसमें दो दल हों, दाल।

द्विदश (सं० त्रि०) द्वाधिका द्विसहिता वा दशसंख्या येषां डच् समासान्तः। द्विसहित दश संख्यायुक्त, जो संख्यामें दशसे दो अधिक हो, बारह।

द्विदाम्नी (सं० स्त्री०) द्वे दामनी बन्धनसाधने यस्याः ततो ङीप्। रज्जुद्वययुक्ता गाभी, वह गाय जो दो रस्सियोंसे बंधी हो। इस तरहकी गाय नटखट होती है।

द्विदिव (सं० पु०) द्वाभ्यां दिवा दिनाभ्यां निर्वृत्तादि तद्धितार्थे द्विगुः। द्विदिन साध्य द्विरात्र यागभेद, वह यज्ञ जो दो दिनोंमें समाप्त होता हो।

द्विदैवत (सं० त्रि०) द्वे दैवते यस्य। १ द्विदेवताक चरु प्रभृति, दो देवताओंसे सम्बन्ध रखनेवाला चरु आदि। २ जिसके दो देवता हों। (पु०) ३ इन्द्राग्नी देवताके विशाखानक्षत्र।

द्विदेह (सं० पु०) द्वाभ्यां देहोऽस्येति, गजाननत्वादेवास्य तथात्वं। गणेश। इनका सिर एक बार कट गया था, फिर हाथीका सिर जोड़ा गया था। इसीसे द्विदेहसे गणेश समझा जाता है।

द्विद्वादश (सं० पु०) १ द्वितीयः द्वादशश्च। वर और कन्याकी द्वितीय और द्वादश राशिभेद।

ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है, कि जब वरके जन्मलग्नसे कन्याका जन्मलग्न दूसरे पड़े और कन्याके जन्मलग्नसे वरका जन्मलग्न बारहवें पड़े, तो वह अत्यन्त निन्दनीय है। इस द्वादशराशिमें यदि विवाह हो तो वह बहुत अशुभ होता है। (क्लो०) २ द्वितीय और द्वादश, दूसरा धनस्थान और बारहवां व्ययस्थान।

द्विधा (सं० अव्य०) द्वि-प्रकारे धाच्। १ द्वि प्रकार, दो तरहसे। २ दो खण्डोंमें, दो टुकड़ोंमें।

द्विधागति (सं० पु०) द्विधा द्विप्रकारा गतिर्यस्य। १ कुम्भीर, घड़ियाल। २ शिशुमार। (त्रि०) ३ द्विप्रकार गतियुक्त, जिसकी चाल दो प्रकारकी हो।

द्विधातु (सं० पु०) द्वि धातु यस्य देवगजदेहवत्त्वाद्देवास्य तथात्वं। १ गणेश। द्विधातु ताम्रादि धातुद्रव्ये यत्र। (क्लो०) २ धातुद्वय, दो धातुओंके मेलसे बनी हुई मिश्रित धातु। (त्रि०) ३ जो दो धातुओंके संयोगसे बना हो।

द्विधात्मक (सं० पु०) द्विधा आत्मा यस्य कप्। जातिकोष, जायफल।

द्विधालेख्य (सं० पु०) द्विधा लिख्यते यत्र लिख-आधारे ण्यत्। १ हिन्ताल वृक्ष, एक प्रकारका पेड़। (त्रि०) २ द्विप्रकार लेखनीय, जो दो तरहसे लिखा जा सके।

द्विनग्नक (सं० पु०) द्विः द्वितीयो नग्नक इव। दुश्चर्मा, वह पुरुष जिसको लिङ्गेन्द्रियके मुख पर ढाकनेवाला चमड़ा जन्मकालसे हो न हो।

द्विनवति (सं० स्त्री०) द्व्यधिका नवतिः। १ दो अधिक नवति संख्या, वह संख्या जो नब्बेसे दो अधिक हो, बानवेकी संख्या, ९२। (त्रि०) २ तत्संख्यायुक्त, जिसमें बानवेकी संख्या हो।

द्विनिष्क (सं० त्रि०) द्वाभ्यां निष्काभ्यां क्रीतं तद्धितार्थे द्विगुः। १ दो निष्क द्वारा क्रीत, जो दो निष्कमें खरीदा गया हो। द्वौ निष्कौ परिमाणमस्य अण्, तस्य लुक्। २ तत् परिमाणयुक्त, दो निष्क तौलका।

द्विप (सं० पु० स्त्री०) द्वाभ्यां शुण्डमुखाभ्यां पिबति पा-क। १ हस्ती, हाथी। यह शूंड़ और मुंह दोनोंसे पानी पीता है, इसीसे इसका नाम द्विप पड़ा। (पु०) २ नागकेशर।

द्विपक्ष (सं० पु० स्त्री०) द्वौ पक्षौ यस्य। १ पक्षिमात्र, चिड़िया। (पु०) २ एक मास, दो पक्षमें एक महीना होता है, इसीसे द्विपक्षका अर्थ एक मास रखा गया है। (त्रि०) ३ जिसके दो पर हों। ४ जिसमें दो पक्ष हों।

द्विपञ्चमूली (सं० स्त्री०) द्विधा पंचमूली। दशमूल। दशमूल देखो।

द्विपञ्चाशत् (सं० स्त्री०) द्व्यधिका पञ्चाशत्। १ दो अधिक पञ्चाशत, वह संख्या जो पचाससे दो अधिक हो, बावन की संख्या। (त्रि०) २ तत् संख्यान्वित, बावन।

द्विपञ्चाशत्तम (सं० त्रि०) द्विपञ्चाश, पूरणे तमप्। दो अधिक पञ्चाशत् संख्याका पूरण, बावनवां।

द्विपण्य (सं० त्रि०) द्वाभ्यां पणाभ्यां क्रीतं ततो यत्। दो पण द्वारा क्रीत, जो दो पणमें खरीदा गया हो।

द्विपत्रक (सं० पु०) द्वे पत्रे यस्य। संज्ञायां कन्। १ चण्डालकन्द। २ द्विदल कमल।

द्विपथ (सं० क्लो०) द्वयोः पथोः समाहारः। ततो समासान्त (ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे। पा ५।४।७४) १ पथद्वय, दो राह, वह स्थान जहां दो पथ आ कर मिलते हों। इसका पर्याय—चारुपथ है। द्वौ पन्थानौ यत्र। (त्रि०) २ मार्गद्वययुक्त देशादि।

द्विपद (सं० पु०) द्वे पदे यस्य। १ मनुष्य। २ पक्षी। ३ द्विपद घटित समास, जहां दोनों पदमें समास हो, उसे द्विपद कहते हैं। ४ ज्योतिषके अनुसार मिथुन, तुला, कुम्भ, कन्या और धनु लग्नका पूर्व भाग। (क्लो०) द्वयो पदयोः समाहारः। ५ पदद्वय, दो पैर। ६ वास्तु मण्डलस्थ कोष्ठभेद, वास्तु मण्डलका एक कोठा।

द्विपदा (सं० स्त्री०) द्वौ पादौ यस्य, टाप् पादस्य पद्भावः। द्विपादयुक्ता ऋक्, वह ऋचा जिसमें केवल दो पाद हों।

द्विपदिका (सं० स्त्री०) द्वौ पादौ दण्डौ यत्र वुन्। १ वह जिसके दो पाँव हों। द्विपदी-स्वार्थे कन् ह्रस्वः। २ गीतिभेद, ध्रुवरागका एक भेद।

द्विपदी (सं० स्त्री०) द्वौ पादौ यस्याः पादः अन्त्यलोपे कुम्भपद्यादित्वात् ङीष्, ततो पद्भावः। १ अङ्क्-भिन्न द्विपदयुक्त गीतिभेद, दो पदोंका गीत। २ मात्रावृत्तभेद, वह छन्द जिसमें दो पद हों। ३ एक प्रकारका चित्रकाव्य। इसमें किसी दोहे आदिको कोष्ठोंको तीन पंक्तियोंमें इस प्रकार लिखते हैं—दोहेके पहले चरणका आदि अक्षर पहले कोठेमें, पुनः एक एक अक्षरके बाद पहली पंक्तिके कोठोंमें भरते हैं। इसके बाद छूटे हुए अक्षर दूसरी पंक्तिके कोठोंमें एक एक करके रख दिये जाते हैं। इसी तरह तीसरी पंक्तिके कोठोंमें दोहेके दूसरे चरणके अक्षर एक एक अक्षर छोड़ते हुए रखते हैं। इन्हीं तीन कोष्ठ पंक्तियोंसे पूरा दोहा पढ़ लिया जाता है। पढ़नेका क्रम यह होना चाहिये कि पहले कोठेके अक्षरको पढ़कर उसके नीचेवाले कोठेके अक्षरको पढ़े।

बाद पहली पंक्तिके दूसरे अक्षरको पढ़ कर उसके नीचेके कोठेके अक्षरको पढ़े। तीसरी पंक्तिके कोठोंके अक्षरों को नीचेसे ऊपर इस क्रमसे पढ़े, जैसे

रा	दे	म	दे	ग	प	शु	र	म	धा
म	व	र	व	ति	र	ध	न	द	रि
वा	दे	गु	दे	ग	प	कु	र	ह	धा

रामदेव नरदेव गति परशु धरन मद धारि।
वामदेव गुरुदेव गति पर कुधरन हद धारि॥

द्विपवला (सं० स्त्री०)। १ नागवला। २ शतावरी तैल।

द्विपमद (सं० पु०) १ करिमद जल, हाथीके मदका पानी। २ गन्धद्रव्यभेद।

द्विपर्णी (सं० स्त्री०) द्वे द्वे पर्णे यस्याः ङीप्। १ वनकोली, एक प्रकारके जङ्गली बेरका पेड़। २ शालपर्णी। ३ पृश्निपर्णी, पिठवन। (त्रि०) ४ पर्णद्वययुक्त, जिसमें दो पत्ते हों।

द्विपास्य (सं० पु०) नागकेशरवृक्ष, नागकेशरका पेड़।

द्विपात्र (सं० क्ली०) द्वयोः पात्रयो समाहारः समाहारद्विगौ पात्रादित्वात् न ङीप्। पात्रद्वय, दो बरतन।

द्विपाद (सं० पु०) द्वौ पादौ वेदे नान्त्यलोपः। १ पादद्वययुक्त मनुष्यादि, मनुष्य, पक्षी आदि दो पैरवाले जन्तु। २ ग्रहभेद, एक प्रकारका ग्रह। (त्रि०) ३ जिसके दो पैर हों। ४ जिसमें दो पद या चरण हों।

द्विपाद्य (सं० क्ली०) द्वौ पादौ परिमाणं यस्य यत् (पणपादमाषशतात् यत्। पा ५।१।३४) १ द्विपाद परिमाणयुक्त दण्डप्रायश्चित्तादि, वह प्रायश्चित्त जिसमें द्विपाद परिमाणयुक्त दण्ड हो। २ द्विगुण खण्ड।

द्विपाधिप (सं० पु०) द्विपानां अधिपः। १ ऐरावत। २ गजश्रेष्ठ।

द्विपायिन् (सं० पु०) द्वाभ्यां मुखशुण्डाभ्यां पिबति पायिनि। गज, हाथी।

द्विपास्य (सं० पु०) द्विपस्य आस्यमेव आस्यं यस्य। गणेश। इनका मुख हाथीके मुखके समान है, इसीसे इनका नाम द्विपास्य हुआ।

द्विपुट (सं० पु०) द्वे पुटे यस्य। सुगन्धि श्वेतपुष्पक वृक्षभेद। (Impotiens Balsamina)

द्विपुरी (सं० स्त्री०) मल्लिका, चमेली।

द्विपुरुष (सं० त्रि०) द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्य तद्धितार्थे द्विगु, ततो मात्रचो लुक्। पुरुषद्वय प्रमाणयुक्त, जो दो मनुष्यकी लम्बाईके समान हो।

द्विपृष्ठ (सं० पु०) द्वौ पृष्ठौ यस्य। राजभेद, जैनोंके नव वासुदेवोंमेंसे एक। इसका पर्याय ब्रह्मसम्भव है।

द्विबन्धु (सं० पु०) द्वयोर्लोकयोर्बन्धुः। दो लोकोंके बन्धु, अग्नि।

द्विबाहु (सं० पु०) द्विबाहू यस्य। १ दो हस्तयुक्त मनुष्यादि, मनुष्य आदि दो पैरवाले जीव। (त्रि०) २ द्विभुज, जिसके दो बाहु हों।

द्विब्राह्मी (सं० स्त्री०) ह्रस्व दीर्घ ब्राह्मी द्वय, छोटी और बड़ी दोनों ब्राह्मी।

द्विभाग (सं० पु०) दो भाग, दो अंश।

द्विभाव (सं० त्रि०) द्वौ भावौ यस्य। द्विस्वभावयुक्त, जिसमें दो भाव हों, बुरे स्वभावका, कपटी।

द्विभाषी (सं० पु०) वह पुरुष जो दो भाषाएँ जानता हो, दुभाषिया।

द्विभुज (सं० त्रि०) द्विबाहु, दो हाथवाला।

द्विभूम (सं० पु०) द्वे भूमी यत्र, अच् समासान्तः। भूमिद्वययुक्त प्रासादादि, दो तल्ला घर।

द्विमातृ (सं० पु०) द्वे मातरौ यस्य समासान्त विधेरनित्यत्वात्, न कप्। द्विमातृक जरासन्ध, दो माताओंके गर्भसे उत्पन्न जरासन्ध।

द्विमातृज (सं० पु०) द्वाभ्यां मातृभ्यां जायते जन-ड। १ गणेश। २ राजा जरासन्ध।

द्विमात्र (सं० पु०) द्वे मात्रे उच्चारणकालभेदो यस्य। दीर्घस्वर 'आ ई' इत्यादि। जिसके उच्चारण करनेमें अधिक समय लगे उसे द्विमात्र कहते हैं।

द्विमाष्य (सं० त्रि०) द्वौ माषौ प्रमाणमस्य यत्। माषद्वय परिमाणयुक्त, दो माशे तौलका।

द्विमास्य (सं० त्रि०) द्वौ मासौभूतः 'द्विगोर्यप्' इति यप्। १ जो दो महिने तक हो। २ जिसकी उमर दो महीनेकी हो।

द्विमीढ़ (सं॰ पु॰) हस्तिनापुरकारक हस्तिनृपसुतभेद, हरिवंशके अनुसार हस्तिनापुर बसानेवाले महाराज हस्तिका एक पुत्र। ये अजमीढ़के भाई थे।

द्विमुख (सं॰ पु॰ स्त्री॰) द्वे मुखे यस्य। १ मुखद्वययुक्त राजसर्प, दो मुँहवाला सांप, गूँगी। (त्रि॰) २ मुखद्वययुक्त, जिसके दो मुँह हो। स्त्रियां माङ्गत्वात् न ङीप्। (पु॰) ३ क्षत्रिम रोगभेद, एक प्रकारका बनावटी रोग। द्वि स्वस्याः स्ववत्समुखे यस्याः ङीप्। ४ धेनु, गाय। गाय जब अर्ध प्रसूतावस्थामें रहती है, तब बच्चेका मुँह लगा कर उसके दो मुँह हो जाते हैं, इसीसे गायका नाम द्विमुखा पड़ा। काशीखण्डमें लिखा है, कि इस तरहकी अर्धप्रसूता गाय जो दान करता है, उसे कपिलादानके समान फल होता है। यह दान अत्यन्त पुण्यजनक है। स्त्रियां टाप्। ५ द्विमुख जलौका, वह जोंक जिसके दो मुँह हों।

द्विमुखाहि (सं॰ पु॰) द्विमुखं अहिः सर्पः। सर्पविशेष, एक प्रकारका सांप। इसका पर्याय—अहीवलि, राजाहि, राजसर्प, द्विमुख और सर्पभुक् है।

द्विमुनि (सं॰ अव्य॰) द्वौ मुनी पाणिनिकात्यायनौ वंश्यौ 'संख्यावंशेन' इति सूत्रेण अव्ययीभावः। तुल्यविद्यायुक्त मुनिद्वय, समान विद्यावाले दो मुनि।

द्विमुषली (सं॰ अव्य॰) द्वे मुषले यत्र प्रहरणे अव्ययीभावः इच् समासान्तः। मुषलद्वययुक्त प्रहरण, दो मुसलोंका प्रहार।

द्विमूर्द्ध (सं॰ त्रि॰) द्वौ मूर्द्धानौ यस्य यच् समासान्तः। शीर्षद्वययुक्त, जिसके दो सिर हों।

द्वियजुष (सं॰ स्त्री॰) द्वे यजुषी उपधाने यस्याः। १ इष्टकाभेद, एक प्रकारकी ईंट जो यज्ञोंमें यज्ञकुण्डमण्डप आदिके बनानेमें काम आती थी। द्वे यजुषी इव शरीरे यस्य। (पु॰) २ यजमान।

द्वियमुन (सं॰ अव्य॰) द्वयोर्यमुनयोः समाहारः। दो यमुनाका समाहार, दो यमुनाका मेल।

द्विर (सं॰ पु॰) द्वौ रौ रेफौ वाचकशब्दे यस्य। मधुकर, भ्रमर, भौंरा।

द्विरद (सं॰ पु॰) द्वौ रदौ दन्तौ प्रधानतया यस्य। १ हस्ती, हाथी। २ दुर्योधनका एक भाई। (त्रि॰) ३ दो दन्तयुक्त, दो दांतवाला।

द्विरदान्तक (सं॰ पु॰ स्त्री॰) द्विरदानां हस्तिनां अन्तकः। सिंह, शेर।

द्विरदाराति (सं॰ पु॰) द्विरदस्य अरातिः ६-तत्। १ शरभ, एक प्रकारका जन्तु जिसके आठ पैर होते हैं। २ सिंह।

द्विरदाशन (सं॰ पु॰ स्त्री॰) द्विरदं अश्नाति अश भोजने ल्यु। १ सिंह। २ अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़।

द्विरभ्यस्त (सं॰ त्रि॰) द्विर्वारं अभ्यस्तः। द्विगुणित, दूना, दुगना।

द्विरशन (सं॰ क्लो॰) द्विर्वारं अशनं। दो बार भोजन।

द्विरसन (सं॰ पु॰ स्त्री॰) द्वे रसने जिह्वे यस्य। द्विजिह्व, सर्प, सांप।

द्विरागमन (सं॰ क्लो॰) द्विः द्विवारं आगमनं। विवाहके बाद स्त्रियोंका पिताके घरसे स्वामीके घरमें दूसरी बार आना। द्विरागमनका विषय सत्कृत्यमुक्तावलीमें इस प्रकार लिखा है—

विवाह होनेके बाद पिताके घरसे उस वधूका स्वामीके घरमें दूसरी बार आनेका नाम द्विरागमन है।

द्विरागमनके समय वर्षादि और विशुद्ध काल आदिका विचार करना होता है। किन्तु इसमें विशेषता यह है, कि यदि विवाह-मासमें वधू पिताके घरसे स्वामीके घरमें न गई हो, तो पहले युग्म वर्षादिका विषय देखना चाहिये। यदि ऐसा न हुआ हो, तो देखनेका प्रयोजन नहीं पड़ता, अर्थात् विवाह-मासमें यदि द्विरागमन हो गया हो, तो उक्त विषयका विचार नहीं करना चाहिये। आठवें वर्षमें कन्याका द्विरागमन हो, तो सासकी मृत्यु, दशवें वर्षमें ससुरकी मृत्यु और बारहवें वर्षमें स्वामीकी मृत्यु होती है। इसी कारण आठवाँ, दशवाँ और बारहवाँ वर्ष द्विरागमनके लिये अशुभ माना गया है। विवाहिता स्त्री पिताके घरमें भोजन करके यदि उसी दिन स्वामीके घरमें भी भोजन करे, तो उसका दुर्भाग्य होता है और कुलनायिकागण उसे शाप देती हैं।

द्विरागमनका विहित तिथिनक्षत्रादि—पुष्या, हस्ता, स्वाति, पुनर्वसु, धनिष्ठा, उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, रेवती, मृगशिरा और रोहिणी नक्षत्र; वैशाख, अग्रहायण और फाल्गुनमास; बृहस्पति, शुक्र,

सोम और बुधवार तथा चन्द्र और तारा विशुद्ध होने पर कन्या, मिथुन, मीन, तुला और मकर लग्नमें द्विरागमन प्रशस्त है। शुक्रास्तमें द्विरागमन नहीं करना चाहिये। उक्त मासमें यदि मलमास पड़े तो भी द्विरागमन निषिद्ध है। किसी किसीके मतसे बुधवारमें द्विरागमन प्रशस्त नहीं है। (कृत्यमुक्तावली)

शुद्धिदीपिकामें इस प्रकार लिखा है—

विवाहके बाद पिताके घरसे वधू जो स्वामीके घरमें दूसरी बार आती है उसीको द्विरागमन कहते हैं। स्वोके रवि शुद्धि होने पर अग्रहायण फाल्गुन और वैशाख इन तीन महीनोंमेंसे किसी एक महीनेके शुभकालमें प्रतिलोमग शुक्र और संक्रान्तिका दिन छोड़ कर यात्रा-प्रकरणोक्त एवं गृहप्रवेशोक्त शुभदिनमें नववधूका आगमन अत्यन्त प्रशस्त है। एक ग्राममें एक घरमें अर्थात् एक घरसे दूसरे घर जानेमें प्रतिशुक्रके लिए दोष नहीं लगता। यात्रा-प्रकरणोक्त शुभ दिनमें पितृगृहसे यात्रा और गृहप्रवेशोक्त शुभदिनमें स्वामीगृहमें प्रवेश प्रशस्त है।

ज्योतिःसारसंग्रहमें इस प्रकार लिखा है—

विवाहके बाद दूसरी बार स्वामीके गृहमें आगमन करनेका नाम द्विरागमन है। यह यदि विवाहमासमें न हुआ हो, तो युग्मवर्षादिका विचार करना पड़ता है। अयुग्मवर्षमें वैशाख, अग्रहायण और फाल्गुनमासमें; रवि, गुरु और चन्द्रशुद्धिके शुद्धकालमें; कन्या, मिथुन, तुला, मीन वा वृषलग्नमें शुभग्रहयुक्त वा उससे देखे जानेमें; सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्रवारमें; शुक्लपक्षमें; मूला, पुष्या, अश्विनी, हस्ता, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, रेवती, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा और रेवतीनक्षत्रकी यात्रा-आलोक्त तिथिमें द्विरागमन प्रशस्त है। किन्तु अस्तगत और सम्मुखस्थ शुक्र होने पर कभी नहीं होता। आठवें वर्षमें द्विरागमन होनेसे सासका, दशवें वर्षमें ससुरका और बारहवें वर्षमें पतिका मृत्यु होता है। एक ग्राममें अथवा एक घरमें अथवा दुर्भिक्ष वा राष्ट्रविप्लवादिके समय स्वामीके साथ आनेसे सम्मुख शुक्रादिका दोष नहीं लगता है। पहले स्वामीके घरमें आनेके समय स्त्री पिताके घरमें भोजन नहीं करके यदि स्वामीके घरमें आ कर भोजन करे, तो उसका दुर्भाग्य होता है। (ज्योतिःसारसंग्रह)

ये सब नियम बारह वर्ष तक लागू हैं। बारह वर्ष बीत जाने पर यात्रोक्त शुभ दिन देख कर द्विरागमन किया जा सकता है।

द्विरात्र (सं० त्रि०) द्वाभ्यां रात्रिभ्यां निर्वृत्तः तद्धितार्थद्विगौ ठक्, तस्य लुक्, अच्, समासान्तः। १ रात्रिद्वयसाध्य यागभेद, दो रातोंमें होनेवाला एक यज्ञ। (क्ली०) द्वयो रात्र्योः समाहारः। २ रात्रिद्वय, दो रात।

द्विरात्रीण (सं० त्रि०) द्वाभ्यां रात्रिभ्यां निर्वृत्तादि ख, तस्य न लुक्। रात्रिद्वय साध्य, दो रातमें होनेवाला।

द्विराप (सं० पु०) द्विद्विवारं मुखशुण्डाभ्यां अम्बु पिबति पा-क। हस्ती, हाथी। यह पहले सूंड़से पी कर पीछे मुखसे पीता है, इसीसे इसका नाम द्विराप पड़ा।

द्विराषाढ़ (सं० पु०) द्विः आषाढ़ः। मिथुनस्थित रविसे लेकर शुक्ल प्रतिपदादि अमावस्यान्त मासद्वय, मिथुनके सूर्यसे लेकर शुक्ल प्रतिपदादि अमावस्याके अन्त तक दो महीने। आषाढ़ मासमें मलमास होनेसे ऐसा होता है।

ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है, कि जब सूर्य मिथुन राशिमें हो और उस महीनेमें दो अमावस्या हों, तो उसे द्विराषाढ़ कहते हैं। बाद श्रावण मासमें विष्णुका शयन होता है। २ गारुड़ोक्त मासभेद, गरुड़पुराणके अनुसार एक प्रकारका महीना।

द्विरुक्त (सं० त्रि०) द्विद्विवारं यथा तथा उक्तः। दो बार कथित, जो दो बार कहा गया हो।

द्विरुक्ति (सं० स्त्री०) वच-क्तिन् द्विद्विवारं उक्तिः। दो बार कथन।

द्विरूढ़ा (सं० स्त्री०) उह्यते इति वह कर्मणि-क्त। द्विः रूढ़ा विवाहिता, वह स्त्री जिसका एक बार एक पतिसे और दूसरी बार दूसरे पतिसे विवाह हुआ हो। इसका पर्याय—दिधिषु और पुनर्भू है।

द्विरेतस् (सं० पु०) द्वे रेतसी कारणं यस्य। अश्वतर, दो भिन्न भिन्न पशुओंसे उत्पन्न पशु, जैसे गदहे और घोड़ेसे उत्पन्न खच्चर। २ गाय और बकरेसे उत्पन्न पशु। ३ दोगला।

द्विरेफ (सं॰ पु॰ स्त्री॰) द्वौ रेफौ रकारवर्णौ यस्य। १ भ्रमर, भौंरा। २ बर्बर, एक प्रकारकी मक्खी।

द्विरेफगणसञ्जाता (सं॰ स्त्री॰) पुष्पवृक्षभेद, एक प्रकारका फूलका पेड़।

द्विर्वचन (सं॰ क्ली॰) द्विर्द्विवारं उच्यते वच-कर्मणि ल्युट्। १ द्विरुक्त, दो बार कथन।

द्विलक्षण (सं॰ त्रि॰) द्वे लक्षणे प्रकारौ यस्य। प्रकारद्वय युक्त, दो तरहका।

द्विवक्त्र (सं॰ पु॰) द्वे वक्त्रे यस्य। १ मुखद्वययुक्त राजसर्प, एक प्रकारका सांप जिसके दो मुंह होते हैं। २ दानवभेद, एक असुरका नाम।

द्विवचन (सं॰ क्ली) द्वौ द्वित्वमुच्यते अनेन वच करणे ल्युट्। द्वित्वबोधक 'औ', भ्यां' प्रभृति विभक्ति।

विभक्ति देखो।

द्विदशक (सं॰ पु॰) द्विगुणितः दश: संज्ञायां कन्। षोडशकोण गृहभेद, वह घर जिसमें सोलह कोण हों।

द्विवर्ष (सं॰ त्रि॰) द्वे वर्षे वयोमानं यस्य ठक् तस्य लुक्। १ द्विवर्षवयस्क गवादि, दो वर्षका बछड़ा। द्वे वर्षे अधीष्टो भूतो भृतो, भावी वा ठञ्, तस्य नित्यं लुक्। २ जो दो वर्ष तक सत्कारके लिये नियुक्त हो। ३ कर्मकर, काम करनेवाला। ४ स्वसत्ता द्वारा व्याप्त, जो अपने बल या प्रभावसे फैला हुआ हो। स्वार्थे क। (पु॰) ५ द्विवर्षवयस्क, वह जिसकी उमर दो वर्षकी हो।

द्विवार्त्ताकी (सं॰ स्त्री॰) वृहतीद्वय, छोटी और बड़ी कण्टकारी, भटकटैया।

द्विवाहिका (सं॰ स्त्री॰) द्विप्रकारं वाहयति वाहि ण्वुल्। दोला, हिण्डोला, झूला।

द्विविंशतिकीन (सं॰ क्ली॰) द्वाविंशति कम इति तत् परिमाणमस्य वा ख। तत् संख्या परिमित, वह जो बाईसके बराबर हो।

द्विविद (सं॰ पु॰) १ एक बन्दर। नरकासुरके साथ इसकी गाढ़ी मित्रता थी। यह बलदेवके हाथ मारा गया। २ श्रीरामचन्द्रके सहगामी बानरोंका अन्यतम। रामायणके अनुसार एक बन्दर जो रामचन्द्रकी सेनाका एक सेनापति था। इस बन्दरका नाम कीर्त्तन करनेसे ऐकाहिक ज्वर जाता रहता है।

द्विविध (सं॰ त्रि॰) द्वि विधे यस्य। दो प्रकार, दो तरहका।

द्विविन्दु (सं॰ पु॰) द्वौ विन्दु लेखनाकारे यस्य। विसर्ग वर्णभेद, विसर्ग।

द्विविषम् (सं॰ क्ली॰) पाण्डु कृष्णातिविषा, सफेद और काली अतीस।

द्विविस्त (सं॰ त्रि॰) द्वे अविस्ते इति परिमाणमस्य वा ठक्, तस्य वा लुक्। विस्त द्वयार्ह, दो बिलस्तका।

द्विवृन्त (सं॰ पु॰) नखरञ्जक क्षुप, मेंहदीका पेड़।

द्विवृहती (सं॰ स्त्री॰) कण्टकारिकावृहती। भटकटैया और बिरुती।

द्विवेद (सं॰ त्रि॰) द्वौ वेदौ अधीते वेद वाहुलकात् अण्, तस्य लुक्। द्विवेदाध्यायी, दो वेद पढ़नेवाला।

द्विवेदी (सं॰ पु॰) ब्राह्मणोंकी एक जाति, दूबे। यह ब्राह्मण जातिकी एक उपाधि है। पूर्वकालसे आज तक ब्राह्मणोंका मुख्य कर्त्तव्य वेदका पढ़ना तथा पढ़ाना चला आया है। इसी तरह पहले सभी ब्राह्मण वेद पढ़ते थे। पूर्व समयमें ऋक्, यजु, साम और अथर्व इन चारों वेदोंके पढ़े हुए ही ब्राह्मण कहाते थे। उक्त चार वेदोंको आरमंहिता भी कहते हैं तथा इनके जाननेवालेको ही ऋषिगण ब्राह्मण मानते थे। परन्तु समयके हेर फेरसे जब ब्राह्मण जातिमें वेदका अभाव होने लगा, तब ऋषियोंने ब्राह्मणोंको उपाधि उनके योग्यतानुसार बाँधी; जैसे, चारों वेदके जाननेवाले चतुर्वेदी, दो वेदोंके जाननेवाले द्विवेदी इत्यादि। अमुक वंश यदि चारों वेदोंको नहीं पढ़ सकता है, तो तीन वेदोंको अवश्य ही पढ़े, ऐसा नियम जिस ब्रह्मकुलमें नियत किया गया वह कुल त्रिवेदी कहाया जो आजकल बिगड़ कर भाषामें तिवाड़ी हो गया है। इसी तरह जिस ब्रह्मकुलमें केवल दो वेद पढ़ सकनेकी योग्यता थी उन्हें द्विवेदी पद प्रदान किया गया, जो आजकल दूबे भी कहाता है। ये पदवियां प्रायः कान्यकुब्ज ब्राह्मणोंमें ही विशेषरूपसे पायी जाती हैं।

द्विवेशरा (सं॰ स्त्री॰) द्वौ वेशौ गमनावस्थानरूपौ राति ददातीति रा दाने क। लघुरथ, दो पहियोंको छोटी गाड़ी। इसका पर्याय गव्ही और अच्ची है।

द्विव्रण (सं० पु०) द्विविधो व्रणः कर्मधा०। सुश्रुतोक्त शारीर और आगन्तुक द्विविध व्रण, शारीर और आगन्तुक नामके दो प्रकारके घाव। इसका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—

व्रण दो प्रकारका है शारीर और आगन्तुक। जो घाव वायु, रक्त, पित्त और कफसे फोड़े आदिके रूपमें होता है, उसे शारीरव्रण और जो किसी मनुष्य, पशु, पक्षी, हिंस्र जन्तुके काटनेसे अथवा पतन, पीड़न, प्रहार, अग्नि, क्षार, विष, तीक्ष्ण औषध सेवन करनेसे कपालखण्ड, शृङ्ग, चक्र, परशु, शक्ति आदि शस्त्रादिके आघातसे हो, उसे आगन्तुक व्रण कहते हैं। ये दोनों प्रकारके व्रण एकसे होते हैं। भिन्न-भिन्न कारणोंसे इसकी उत्पत्ति होनेसे इसे द्विव्रणीय कहते हैं। विशेषता यह है, कि सभी प्रकारके आगन्तुक व्रणमें शरीरसे जो शोणित निकला करता है, उसे रोकनेके लिये पित्तके प्रतिकारकी नाईं शीतल क्रियाकी आवश्यकता है और उसे जोड़नेके लिये मधु और घृतका प्रयोग करना कर्त्तव्य है। द्विव्रण अर्थात् दो प्रकारके व्रणोंका भेद करनेका यही कारण है। पीछे दोनों प्रकारके व्रणके दोषके अनुसार शारीरिक व्रणकी नाईं प्रतिकार करना होता है। दोषका उपद्रव कमसे कम पन्द्रह प्रकारका है। कोई कहते हैं, कि व्रणकी शुद्धावस्था ले कर यह दोष सोलह प्रकारका है। व्रण शब्द देखो।

व्रणका लक्षण दो प्रकारका है, सामान्य और विशेष। शरीरके विचूर्णित होनेसे क्षतका होना सामान्य लक्षण और इससे वातपित्तादिका लक्षण प्रकाश होना विशेष लक्षण है। वायुसे जो व्रण निकलता है वह छोटा, मांस हीन, अरुण वर्णविशिष्ट और रुक्ष होता है तथा उससे चड़ चड़ शब्द करता है, वेदना भी बहुत होती है और शीतल तथा स्निग्ध पीप निकलती है।

पित्तसे उत्पन्न व्रण—यह घाव पीला होता तथा उसके चारों तरफ पीली पीली फुंसी निकल आती है। यह घाव बहुत जल्द बढ़ जाता है और इससे लाल रंगका उष्ण रस हमेशा निकला करता है। कफसे जो घाव निकलता है, उसमें बहुत खुजली होती है, रंग पाण्डुवर्ण होता है, वेदना कम होती है और उससे सफेद, शीतल तथा गाढ़ी पीप निकलती है।

रक्तसे उत्पन्न व्रणका रंग मूंगेसा होता है, इससे वेदना अधिक होती है, गन्ध आमिषसी आती है और शोणितस्राव होता है। वायुपित्तजन्य व्रण तोद, दाह और उष्णा उद्गारविशिष्ट, पीत और अरुण वर्ण तथा पीत वर्णका आस्रावयुक्त होता है।

वातश्लेष्माजन्य व्रण—कण्डूयन और तोदविशिष्ट तथा कठिन होता है। इससे हमेशा पाण्डु वर्णका आस्राव निकलता रहता है।

पित्तश्लेष्माजन्य व्रण—भार, दाह और उष्णतायुक्त तथा पीतवर्ण होता है। इससे जो पीप निकलती है, उसका रंग कुछ लाली लिये पीला होता है।

वातरक्तजन्य व्रण—सूक्ष्म, रूक्ष, अतिशय तोदविशिष्ट, स्पन्दरहित और रक्तवर्ण होता तथा उससे रक्त वर्णका आस्राव निकलता है।

पित्तरक्तजन्य व्रण—घृतमण्डके जैसा वर्ण और मत्स्य-धौत जलकी तरह गन्धविशिष्ट, कोमल और प्रसारण होता है और उससे कृष्णवर्णकी पीप निकलती है।

वातपित्त शोणितजन्य व्रण—स्फुरण, तोद, दाह और उष्णस्वभावविशिष्ट, पीतवर्ण, सूक्ष्म और रक्तस्रावी होता है।

जिस व्रणका रंग जिह्वा तलके जैसा हो, मृदु, स्निग्ध, सूक्ष्म, वेदना और आस्रावशून्य तथा सुव्यवस्थित हो वह शुद्धव्रण समझा जाता है।

वातपित्तश्लेष्माजन्य व्रण वातपित्तश्लेष्मासे उत्पन्न वेदनाविशिष्ट होता तथा उससे तीन वर्णके आस्राव निकलते हैं।

द्विव्रण रोगका उपद्रव दो प्रकारका है, एक रोगका और दूसरे रोगीका। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पांच व्रणके उपद्रव हैं तथा ज्वर, अतिसार, मूर्च्छा, हिक्का, वमन, अरुचि, श्वास, अजीर्ण और तृष्णा ये सब रोगीके उपद्रव हैं। विशेष विवरण व्रणमें देखो।

द्विशत (सं० क्ली०) द्विगुणं शतं। १ शतद्वय, दो सौ। २ तत् संख्याका पूरण, दो सौ संख्याका पूरण।

द्विशतक (सं० त्रि०) द्विशतेन क्रीतं कन्। द्विशत द्वारा क्रीत, जो दो सौमें खरीदा गया हो।

द्विशततम (सं० त्रि०) द्विशत पूरणे तमप्। दो सौ संख्याका पूरण।

द्विशतिका (सं॰ स्त्री॰) द्वे द्वे शते ददाति वुन्। दो बार दो सौ दान।

द्विशती (सं॰ स्त्री॰) द्वयो शतयोः समाहारः ङीप्। शतद्वय समाहार, दो सौका समूह।

द्विशत्य (सं॰ त्रि॰) द्विशतेन क्रीतं ततो यत्। द्विशत द्वारा क्रीत, जो दो सौमें खरीदा गया हो।

द्विशफ (सं॰ पु॰) द्वौ शफौ यस्य। द्विखुर पशु, वह पशु जिनके खुर फटे हों, दो खुरवाला पशु।

गाय, बकरा, भैंस, काला सूअर, ऊंट, भेंड़ा और हिरन ये सब दो खुरवाले पशु हैं।

द्विशरीर (सं॰ पु॰) द्वे-चरस्थिरात्मके शरीरे अवयवे यस्य। चरस्थिरात्मक मिथुन, कन्या, धनु और मीन राशि। ज्योतिषके अनुसार कन्या, मिथुन, धनु और मीन राशियां जिनका प्रथमार्द्ध स्थिर और द्वितीयार्द्ध चर माना जाता है।

द्विशस्(सं॰ अव्य॰) द्वौ द्वौ ददाति करोति वा शस्। १ एक क्रिया द्वारा दोकी व्याप्ति। २ दो और दो।

द्विशाण (सं॰ त्रि॰) द्वाभ्यां शाणाभ्यां क्रीतं ठञ्, तस्य लुक्। शाणद्वय क्रीत, जो दो शाणमें खरीदा गया हो।

द्विशाण्य (सं॰ त्रि॰) द्विशाण-यत्। शाणद्वय क्रीत, जो दो शाणमें खरीदा गया हो।

द्विशाल (सं॰ त्रि॰) दो शालायुक्त, जिसमें दो कोठरियां हों।

द्विशीर्ष (सं॰ पु॰) द्वे शीर्षे यस्य। १ अग्नि, आग। (त्रि॰) २ जिसके दो सिर हों।

द्विशूर्प (सं॰ त्रि॰) द्वाभ्यां शूर्पाभ्यां क्रीतं ठञ् तस्य लुक्। १ द्विशूर्प द्वारा क्रीत, जो दो शूर्पमें खरीदा गया हो। (क्ली॰) द्वयोः शूर्पयोः समाहारः द्विशूर्पी, तया क्रीतं ठञ् तस्य न लुक् उत्तरपदवृद्धिः। २ द्विशौर्पिक, वह जो दो शूर्पमें खरीदा गया हो।

द्विशृङ्गिका (सं॰ स्त्री॰) द्वे शृङ्गे इव फले यस्याः कप्, अत इत्वं। मेढ़ृशृङ्गी, मेढ़ासिंगी लता।

द्विशृङ्गिन् (सं॰ त्रि॰) द्विशृङ्ग-इनि। दो शृङ्गयुक्त, जिसके दो सींग हों।

द्विष (सं॰ पु॰) द्वेष्टीति द्विष-क्विप्। १ शत्रु, दुश्मन। (त्रि॰) २ द्वेष्टा, द्वेष करनेवाला, विरोधी।

द्विष (सं॰ त्रि॰) द्विष् कर्त्तरि क। द्वेषकारक, शत्रु, दुश्मन।

द्विषत् (सं॰ त्रि॰) द्वेष्टीति द्विष-शतृ (द्विषोऽमित्रे। पा ३।२।१३१) शत्रु, दुश्मन।

द्विषन्तप (सं॰ त्रि॰) द्विषन्तं तापयति तप-णिच् (द्विषत् परयोस्तापे। पा ३।२।३९) इति खच्। (खचि ह्रस्वः। पा ६।४।९४) ततो मुम् (अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्। पा ६।३।६७) शत्रुन्तप, शत्रुओंको पीड़ा पहुंचानेवाला।

द्विषट्(सं॰ त्रि॰) द्विगुणितो षट्। द्वादश, बारह।

द्विषष्टिक (सं॰ त्रि॰) द्वे षष्टी अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा ठञ्, उत्तरपदवृद्धिः। जो बासठ दिनमें हुआ हो।

द्विषा (सं॰ स्त्री॰) एला, इलायची।

द्विषेण्य (सं॰ त्रि॰) द्विष-एण्यन् कित्त्व। द्वेषशील, द्वेष या ईर्षा करना हो जिसका स्वभाव हो।

द्विष्ट (सं॰ त्रि॰) द्विष-क्त। १ द्वेषविषय, जिससे द्वेष हो। द्व्यष्ट पृषोदरादित्वात् साधुः। (क्ली॰) २ ताम्र, तांबा।

द्विष्ठ (सं॰ त्रि॰) द्वयोस्तिष्ठति यः द्वि-स्था-क अम्बाम्बेति षत्वं। उभयस्थ, जो दोके बीच अवस्थित हो।

द्विस्(सं॰ अव्य॰) द्वि-सुच्। द्विवार क्रियादि, दो बार काम काज।

द्विसप्तत (सं॰ त्रि॰) द्विसप्तत्यायुतं शतादि ड। द्विसप्ततियुत शतादि। बहत्तर, सत्तरसे दो अधिक।

द्विसप्तति (सं॰ स्त्री॰) द्व्यधिका सप्ततिः। संख्या, बहत्तरकी संख्या। (त्रि॰) २ द्विसप्तति संख्याका पूरण, बहत्तरवां।

द्विसप्तधा (सं॰ अव्य॰) द्विसप्त प्रकारः प्रकारार्थे धाच्। द्विसप्त प्रकार, बहत्तर तरहसे।

द्विसम (सं॰ त्रि॰) द्वे समे परिमाणमस्य, ठञ् तस्य लुक्। १ द्विवर्ष परिमाण, दो वर्षका।

द्विसहस्र (त्रि॰) द्वाभ्यां सहस्राभ्यां क्रीतं द्वे सहस्रे परिमाणमस्य वा अण् तस्य वा लुक्। २ द्विसहस्र क्रीत, जो दो सौमें खरीदा गया हो। २ द्विसहस्र परिमाण, दो हजार। ३ द्विगुणित सहस्र, हजारका दूना।

द्विसहस्राक्ष (सं॰ पु॰) द्विराहतं सहस्रं द्विगुणं द्विगुणसहस्रं अक्षीणि यस्य षच् समासान्तः। अनन्त। इनके

एक हजार मुँह हैं। हरएक मुँहमें दो आँखें होनेसे इन्हें दो हजार आँखें हुईं इसीसे इनका नाम द्विसहस्राक्ष पड़ा है।

द्विसांवत्सरिक (सं० त्रि०) द्विवत्सरं भूतादि ठञ्। जो दो वर्षमें हुआ हो।

द्विसाप्ततिक (सं० त्रि०) द्विसप्ततिं भूतादि ठञ्, उत्तरपदवृद्धिः। जो बहत्तर दिनोंमें हुआ हो।

द्विसाहस्र (सं० त्रि०) द्वाभ्यां सहस्राभ्यां क्रीतं द्वे सहस्रं परिमाणमस्य वा अण् बाहु अणो न लुक्। १ द्विसहस्र, दो हजार। २ दो सहस्र परिमाण।

द्विसीत्य (सं० त्रि०) द्विवारं सीतया सहित द्विसीतायत्। (नौवयो धर्मेति। पा ४।४।८१) वारद्वय कृष्टक्षेत्र, वह खेत जो दो बार जोता गया हो।

द्विसुवर्ण (सं० त्रि०) द्वाभ्यां सुवर्णाभ्यां क्रीतं ठञ् ततो ठञो लुक्। १ दो सुवर्ण द्वारा क्रीत, जो दो सोनेमें खरीदा गया हो। (क्ली०) २ स्वर्णद्वय, दो सोना।

द्विस्तना (सं० स्त्री०) द्वौ स्तनाविव मृदवयवौ यस्याः अस्वाङ्गत्वात् न ङीप्। इष्टका वृत्तिभेद।

द्विस्तावा (सं० स्त्री०) द्वि द्विगुणिता तावती। वेदीका स्वभावतः जो परिमाण है, उससे द्विगुण परिमाणको वेदीको द्विस्तावा कहते हैं।

द्विस्विन्न (सं० क्ली०) द्विस् स्विन्नं द्विः पक्वं अन्नं तण्डुलं। द्विसिद्धतण्डुल, उबालेहुए धानका चावल, भुजिया चावल। यह देश विदेशमें विशुद्ध हैं, किन्तु ब्राह्मणोंके भक्षण और देवपूजन आदिमें इसका व्यवहार अच्छा नहीं कहा गया है। यति, विधवा और ब्रह्मचारीके लिये यह अभक्ष्य माना गया है। ताम्बूल खाना उन लोगोंके लिये जैसा निषिद्ध है, वैसा ही यह भी है।

द्विहन् (सं० पु०) द्वाभ्यां शुण्डादण्डाभ्यां हन्तीति हनक्विप्। हस्ती, हाथी।

द्विहरिद्रा (सं० स्त्री०) दारुहरिद्रा, दारुहल्दी।

द्विहल्य (सं० त्रि०) हलस्य कर्षयत् द्विवारं हल्यः। दो बार हलकष्टक्षेत्र, वह खेत जो दो बार हलसे जोता गया हो।

द्विहायन (सं० त्रि०) द्वौ हायनौ वयः कालो यस्य। १ द्विवर्षवयस्क पश्वादि, दो वर्षका बछड़ा इत्यादि। द्वाभ्यां हायनाभ्यां समाहारः। समाहारद्विगुः। (क्ली०) २ वर्षद्वय, दो वर्ष। समाहार द्विगुमें स्त्रीलिङ्गमें ङीप् होना चाहिये था, किन्तु 'पात्रादित्व'के लिये विशेष सूत्रके अनुसार ङीप् नहीं हुआ।

द्विहीन (सं० त्रि०) द्वाभ्यां स्त्रीपुंसाभ्यां हीनं। क्लीवलिङ्ग शब्द।

द्विहृदया (सं० स्त्री०) द्वे हृदये यस्याः गर्भिणी स्त्री, गर्भवती।

द्वीन्द्रिय (सं० पु०) वह जन्तु जिसके दो ही इन्द्रियां हों।

द्वीन्द्रियग्राह्य (सं० पु०) द्वाभ्यां इन्द्रियाभ्यां ग्राह्यः। इन्द्रियद्वय ग्रहणीय गुण, वह पदार्थ जो चमड़े और चक्षु द्वारा ग्रहण करने योग्य हो।

द्वीप—चारों ओर सागर परिवेष्टित भूखण्ड, स्थलका वह भाग जो चारों ओर जलसे घिरा हो। द्वीप छोटा और बड़ा हो सकता है। बड़े द्वीपोंको महाद्वीप और बहुतसे छोटे छोटे द्वीपोंके समूहको द्वीपपुंज वा द्वीपमाला कहते हैं। भूतत्त्ववेत्ता अनुमान करते हैं, कि इन छोटे छोटे द्वीपोंमें जिनका आकार प्रायः गोल नहीं हैं, वे पहले एक बृहत् भूखण्ड थे। पीछे समुद्रके वेगसे विभक्त हो गये हैं अथवा धीरे धीरे एक दूसरेसे मिल कर एक बड़े भूखण्डके रूपमें परिणत हो गये हैं। बहुतसे द्वीप प्रायः किसी न किसी महादेश वा उपद्वीपके कूलवर्त्ती थे, भूगोल जाननेवाले ऐसा अनुमान करते हैं कि वे द्वीप इन सब देशोंके इतने निकट थे, कि वे एक दूसरेसे मिले हुए दीख पड़ते थे। अभी भी उन सब द्वीपोंकी भग्नगठन देख कर ऐसा बोध होता है, कि वे एक समय संयुक्त रह कर एक एक महादेशके रूपमें अवस्थित थे। पीछे समुद्रके वेगसे वा किसी दूसरी भूमिके अभ्यन्तरस्थके कारण विच्छिन्न हो गये हैं।

द्वीप दो प्रकारके होते हैं साधारण और प्रवालज। साधारण द्वीप दो प्रकारसे बनते हैं—एक तो भूगर्भस्थ अग्निके प्रकोपसे समुद्रके नीचेसे उभड़ आते हैं; दूसरे आसपासकी भूमिके धंस जानेसे और वहां पानी आ जानेसे बन जाते हैं। प्रवालज द्वीपोंकी सृष्टि मूंगोंसे होती है। ये बहुत सूक्ष्म कीड़े हैं। ये थूहरकी पेड़के आकारके पिंड बना कर समुद्रतलमें एकत्रित रहते हैं। इन्हीं

क्षुद्र कीड़ोंके शरीरसे सहस्रों वर्ष में जमा होते होते बड़ा सा पर्वत बन जाता है और समुद्रके ऊपर निकल आता है, इसीका नाम प्रवालज द्वीप है। इन दोनोंके अलावा एक तीसरे प्रकारका द्वीप भी होता है जिसे सरिद्भव कहते हैं। इस तरहके द्वीप प्रायः बड़ी बड़ी नदियोंके मुहाने पर जहां वे समुद्रमें गिरती हैं बन जाते हैं।

दक्षिणसागरमें तथा पूर्वसागर और भारतसागरके संगमस्थान पर सबसे बड़े बड़े द्वीप पाये जाते हैं। दक्षिणसागरमें स्वाभाविक कारणसे उत्पन्न द्वीपावलीको छोड़ कर प्रवालकीट अर्थात् मूंगोंके कीड़े द्वारा बनाई हुई द्वीपावलीकी संख्या कम नहीं हैं। इसके अलावा वहां आग्नेयगिरिसङ्कुल द्वीपावली भी यथेष्ट हैं।

पृथ्वीके चार महादेशोंको अभी तीन वृहत् द्वीप कह सकते हैं। जब स्वेजको नहर काटी नहीं गई थी, तब एशिया, यूरोप और अफ्रिका इन तीनोंके एक जगह रहनेसे एक बड़ा द्वीप बन गया था, इसके अलावा अमेरिका भी दो खण्ड मिल कर एक बड़ा द्वीप था। अभी स्वेज-नहरके कट जानेसे अफ्रिकाको भी एक स्वतन्त्र वृहत् द्वीप कह सकते हैं। इसके सिवा उत्तरसागरमें ग्रीनलैण्ड, पूर्वसागरमें अष्ट्रेलिया, भारतसागरमें वोर्नियो, पपुआ, सुमात्रा ; दक्षिण महासागरमें मदागास्कर और पश्चिमसागरमें ग्रेटब्रटेन अतिवृहत् द्वीप है। इनमेंसे अष्ट्रेलिया पृथ्वीके अन्यान्य द्वीपोंसे बड़ा है। दक्षिणसागरमें अटलाण्टिक और उत्तरसागरके ग्रीणलैण्डका सर्वांश अब तक भी आविष्कृत नहीं हुआ है। आविष्कृत हो जानेसे क्या हो जायगा कह नहीं सकते। बहुतोंका अनुमान है, कि ये दो भूखण्ड दो मेरुस्पर्शी दो महादेशोंके अंशमात्र हैं। प्रवालद्वीप देखो। अनेक वृहत् नदीके गर्भमें और नदीके मुहाने पर जो सब चर पड़ कर आबादी हो गये हैं, उन्हें भी द्वीप कहते हैं। भारतवर्षमें गङ्गा और ब्रह्मपुत्र तथा अमेरिकाके आमेजन नदीमें इस प्रकारके द्वीपोंकी संख्या अधिक है ; भूमिकम्पसे भी बहुतसे द्वीप लुप्त हो जाते हैं और उस समय समुद्रका जल देशमें प्रवेश कर देशांशको विच्छिन्न करके द्वीपके रूपमें परिणत कर देता है। बङ्गालके पूर्वपश्चिम कोणके बङ्गोपसागरका कोई कोई द्वीप इसी तरह उत्पन्न हुआ है।

पौराणिक द्वीपका विषय भागवतमें इस प्रकार लिखा है—

सूर्यदेव सुमेरुपर्वतका प्रदक्षिण करते हैं, इसी कारण पृथ्वीके आधे भाग पर प्रकाश पहुंचता है और आधा भाग अंधेरेमें रहता है। इस पर महाराज प्रियव्रतने अत्यन्त तपःप्रभावसे प्रदीप्त हो कर प्रतिज्ञा की थी कि सूर्यके रथके समान वेगशाली ज्योतिर्मय रथद्वारा रातको भी दिन बनाऊँगा। इस तरह प्रतिज्ञा कर उन्होंने सात बार द्वितीय सूर्यकी नाईं सूर्यके पीछे पीछे परिभ्रमण किया था। इनके रथके पहियेके घसनेसे सात समुद्र उत्पन्न हुए, उन सात समुद्रोंसे सात द्वीप बने, जिनके नाम ये हैं—जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश क्रौञ्च, शाक और पुष्कर। जम्बूद्वीपका विस्तार जितना है, उससे लाख योजन विस्तृत लवण सागरसे यह परिवेष्टित है। जम्बूद्वीप द्वारा सुमेरुपर्वत घिरा हुआ है। प्लक्षद्वीप भी लाख योजन विस्तीर्ण लवण-सागरसे उसी तरह घिरा है। प्लक्षद्वीप जम्बूद्वीपसे दूना है। इसी द्वीपसे लवणसमुद्र वेष्टित है। यहां बड़ा पाकरका पेड़ है जिसकी ऊंचाई जम्बूद्वीपके जामुनके पेड़की ऊँचाईके समान है। इसी प्लक्ष या पाकरके वृक्षसे प्लक्ष द्वीप नाम हुआ है। वह वृक्ष हिरण्मय है और उसमें सप्तजिह्व अग्नि अवस्थान करती है। प्रियव्रतके पुत्र इध्मजिह्व इस द्वीपके अधिपति हैं। उन्होंने इस द्वीपको सप्तवर्षमें विभाग कर अपने सात पुत्रोंको प्रदान किया था। शिव, वयस, सुभद्र, शमन्त, क्षेम, जीमूत और अभय इस सात वर्षोंमें ७ नदी और ७ पर्वत बहुत प्रसिद्ध हैं। सप्तगिरिके नाम मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान्, सुवर्ण, हिरण्यष्ठीव और मेघमाल है। अरुणा, नृम्णा, आङ्गिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतम्भरा और सत्यम्भरा ये ही सात नदियां प्रसिद्ध हैं। ये सब स्थान बहुत पवित्र माने जाते हैं। यहांके सभी मनुष्य स्वभावतः ही धार्मिक हैं।

शाल्मलिद्वीप इक्षुर सोद सागरसे परिवेष्टित है। यह प्लक्षद्वीपसे भी दूना बड़ा है। यहां प्लक्षवृक्षके समान एक विशाल शाल्मली वृक्ष है। इसी वृक्षके नामानुसार इस द्वीपका नाम शाल्मली द्वीप पड़ा है। इस द्वीपके

अधिपति प्रियव्रतके पुत्र महाराज यज्ञबाहु हैं। उन्होंने इस द्वीपको अपने सात पुत्रोंमें उन्हींके नामानुसार सात वर्षोंमें विभाग किया है जिनके नाम सुरोचन, सौमनस्य रमणक, देववर्ह, पारिभद्र, आप्यायन और अभिज्ञात हैं। इन सात वर्षोंमें सात पर्वत और ७ नदी बहुत प्रसिद्ध हैं। पर्वतोंके नाम—सुरस, शतशृङ्ग, वासुदेव, कुन्द, कुमुद, पुष्पवर्ष और सहस्रश्रुति तथा नदियोंके नाम अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा और राका हैं। यह स्थान भी पुण्यजनक है। क्षीरोदसागरके बहिर्भागमें कुशद्वीप अवस्थित है। प्रियव्रतके पुत्र राजा हिरण्यरेता इस द्वीपके अधिपति हैं। यह द्वीप प्लक्ष-द्वीपसे द्विगुण है। यहां देवकृत एक कुशस्तम्ब रहनेसे ही इसका नाम कुशद्वीप हुआ है। यह कुशस्तम्ब सर्वदा अग्निकी नाईं देदीप्यमान है। राजा हिरण्यरेताने भी इस द्वीपको सप्त वर्षोंमें विभाग कर अपने सात पुत्रोंको प्रदान किया जिनके नाम ये हैं—वसु, वसुदान, दृढ़रुचि, नाभिगुप्त, सत्यव्रत, विप्रनाम और देवनाम। इन सात वर्षोंमें ७ सीमापर्वत और सात नदी हैं। सप्तपर्वतोंके नाम चक्र, चतुःशृङ्ग, कपिल, चित्रकूट, देवनीक, ऊर्द्धरोमा और द्रविण हैं तथा रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रवृन्दा, श्रुतविन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता और मेघमाला नामकी सात नदियां हैं। इस स्थानमें सभी मनुष्य पण्डित और धार्मिक हो जाते हैं। पांचवा क्रौंचद्वीप है जो कुश-द्वीपके बहिर्भागमें अवस्थित है। यह द्वीप कुशद्वीपसे दूना बड़ा है और क्षीरोदसमुद्रसे वेष्टित है। यहां क्रौञ्च नामक एक श्रेष्ठ पर्वत है, इसीसे इसका नाम क्रौञ्च-द्वीप रखा गया है। कार्त्तिकेयके बाणसे इस पर्वतका नितम्बदेश और समस्त निकुञ्ज उन्मथित हुए थे। प्रिय-व्रतके पुत्र घृतपृष्ठ इस द्वीपके अधिपति हैं। उन्होंने इसे सप्त वर्षोंमें विभाग कर अपने सात पुत्रोंके मध्य बांट दिया। उक्त सप्तवर्षोंमें सात वर्ष पर्वत और सात नदी हैं। पर्वतोंके नाम हैं-शुक्ल, वर्द्धमान, भोजन, उपवर्हण, नन्द, नन्दन और सर्वतोभद्र तथा नदियोंके अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, रूपवती, पवित्रवती और शुक्ला। इन सब नदियोंका जल बहुत पवित्र और निर्मल है। इस स्थानके सभी मनुष्य धर्मशील होते हैं।

छठवां द्वीप शाकद्वीप है जो बत्तीस लाख योजन विस्तृत है। दधिसमुद्र इस द्वीपके चारों ओर परिवेष्टित है। यहां शाक नामक एक प्रकाण्ड वृक्ष है जिसके पत्तोंका भीतरी भाग कड़ा और बाहरी भाग मुलायम है। इसी वृक्षसे इस द्वीपका नामकरण हुआ है। वृक्षको गन्ध बहुत सौरभयुक्त है जिससे समस्त द्वीप आमोदित हुआ करता है। इस द्वीपके अधिपति प्रियव्रतके पुत्र मेधातिथि हैं। इन्होंने इस द्वीपको अपने सात पुत्रोंके नामानुसार सात वर्षोंमें विभाग कर हरएकको एक एक विभाग प्रदान किया। इसमें भी ईशान, उरुशृङ्ग, बल-भद्र, शतकेशर, सहस्रस्रोता, देवपाल और महानस नामके सात पर्वत तथा अनघा, आयुर्दा, उभयस्पृष्टि, अपराजिता, पञ्चनदी, सहस्रश्रुति और निजधृति नामकी सात नदियां हैं।

दधिसागरके बाद पुष्करद्वीप है जो शाकद्वीपसे दूना बड़ा है तथा चारों ओर स्वादु जलसागरसे वेष्टित है। इस द्वीपमें एक बड़ा पुष्कर है जिसके अग्निशिखाकी नाईं एक लाख निर्मल कनकमय पत्र सर्वदा प्रकाश पाते हैं। इन पत्रोंमें भगवान् नारायणका उपवेशनस्थान माना गया है। यहां मानसोत्तर नामक एक बड़ा पर्वत है जो पूर्व और पश्चिमवर्षके सीमापर्वत रूपमें अवस्थित है और जिसकी ऊंचाई तथा चौड़ाई दशहजार योजन है। इस द्वीपमें लोकपालोंकी चार पुरियां हैं जिनके अग्र भागमें सूर्यका रथ है जो सुमेरुपर्वतके चारों ओर परिभ्रमण करता है। इस द्वीपके अधिपति प्रियव्रतके पुत्र वीतिहोत्र हैं। इनके रमणक और धातक नामक दो पुत्र हैं। राजा वीतिहोत्रने इस द्वीपको दो वर्षोंमें विभाग कर अपने दो पुत्रोंको घर एकका अधिपति बनाया। पीछे उन्होंने ईश्वरको उपासना करके अपना प्राण छोड़ा। (भागवत ५ स्कन्ध) (क्ली०) द्वौ अपौ ईयते इति इ गतौ बाहुलकात् प। २ व्याघ्रचर्म, बाघका चमड़ा। (पु०) हिंसा द्वयोर्द्वीपोर्वा मता आपो यत्र काकाक्षिगोलकन्यायेन द्वयोरित्य सेऽपि चतुर्दिक्षु इति सिद्धिः। ३ तोयोत्थित पुलिनमध्य, चर। ४ अवलम्बन-स्थान, आधार। ५ काकोलवृक्ष, कंकोल नामका पेड़।

द्वीपकर्पूर (सं॰ पु॰) द्वीपस्य द्वीपान्तरस्य कर्पूरः। चीन कर्पूर, चीनी कपूर।

द्वीपकर्पूरज (सं० पु०) द्वीपकर्पूरवत् जायते जन-ड। चीन कर्पूर, चीनी कपूर।

द्वीपकुमार (सं० पु०) जैनमतके अनुसार एक प्रकारका देवता जो भुवन-पति नामक देवगणके अन्तर्गत हैं।

द्वीपखर्जूर (सं० स्त्री०) द्वीपस्य द्वीपान्तरस्य खर्जूरं वा द्वीपजातं खर्जूरं। महापारेवत, द्वीपान्तरका खजूर।

द्वीपज (सं० क्ली०) द्वीपे द्वीपान्तरे जायते जन-ड। महापारेवत।

द्वीपवत् (सं० पु०) द्वीप-मतुप् मस्य वः। १ समुद्र। २ नद।

द्वीपवती (सं० स्त्री०) द्वीपः अस्त्यस्याः इति द्वीप-मतुप् मस्य वः ङीप्। १ नदीभेद, एक नदीका नाम। २ भूमि, जमीन।

द्वीपशत्रु (सं० पु०) द्वीपस्य द्वीपिनः शत्रुः। शतावरी, सतावर।

द्वीपसम्भव (सं० पु०) १ कक्कोलवृक्ष, कंकोल। (स्त्री०) २ महाखर्जूरवृक्ष।

द्वीपान्तरवचा (सं० स्त्री०) तोपचीनीका मूल।

द्वीपिका (सं० स्त्री०) द्वीपीनामाश्रतया अस्त्यस्या इति द्वीप ठन्-टाप्। शतावरी, सतावर।

द्वीपिन् (सं० पु०) द्वीपं चर्म अस्त्यस्येति इनि। १ व्याघ्र, बाघ। २ चित्रक, चीता। ३ चित्रकवृक्ष, चीता।

द्वीपिनख (सं० पु०) द्वीपिनो व्याघ्रस्य नखः। १ व्याघ्रनख, बाघका नाखून।

द्वीपिशत्रु (सं० पु०) शतमूली, सतावर।

द्वीपिपलाश (सं० पु०) हस्तिकर्ण पलाश, ढाकका पेड़ जिसके पत्ते हाथीके कान सरीखे होते हैं।

द्वीप्य (सं० त्रि०) द्वीपे जलान्तर्वर्त्तिनी स्थलभूमौ भवः यत्। १ द्वीपभव, जो द्वीपमें उत्पन्न हो। (पु०) २ रुद्र। ३ काक, कौवा। ४ कक्कोल, कंकोल।

द्वीप्या (सं० स्त्री०) शतावरी, सतावर।

द्वीश (सं० त्रि०) द्वौ ईशौ यस्य। १ द्विदैवत्य चरु प्रभृति, जो सब चरु दो देवताके उद्देश्यसे हो, उसे द्वीश कहते हैं। २ विशाखा नक्षत्र। इस नक्षत्रके अधिष्ठात्री देवता इन्द्र और अग्नि हैं।

द्व्यृच (सं० पु०) द्वे ऋचौ यत्र अच्समासान्तः बाहुलकात् वा सम्प्रसारणं। ऋक्‌द्वययुक्त सूक्तात्मक मन्त्रभेद, वह सूक्त जिसमें केवल दोही ऋचाएं हों।

द्वेधा (सं० अव्य०) द्वि-धा। (संख्यायां विधार्थे धा। पा ५।३।४२) (एधाच्। पा ५।३।४५) इति तस्य एधाच्। द्विप्रकार, दो तरहसे।

द्विष् (सं० क्ली०) द्वेष कर्त्तरि विच्। द्वेष्टा वह जो द्वेष करता हो, शत्रु।

द्वेष (सं० पु०) द्विष भावे घञ्। शत्रुता, वैर। इसका पर्याय—वैर, विरोध, विद्वेष और द्वेषण है।

मनुने लिखा है कि नास्तिकता, वेदनिन्दा, देवताओंको कुत्सा, द्वेष, दम्भ, मान, क्रोध और तीक्ष्णता इन सबका परित्याग करना चाहिए।

द्वेषण (सं० क्ली०) द्वेष भावे ल्युट्। १ द्वेष, शत्रुता। (त्रि०) द्वेष-युच्। २ शत्रु, दुश्मन।

द्वेषपक्ष (सं० पु०) द्वेषस्य पक्षः ६-तत्। द्वेषका अवान्तर भेद। क्रोध, ईर्षा, द्रोह और अमर्ष ये सब द्वेषपक्ष हैं अर्थात् दोषोंमें गिने जाते हैं।

द्वेषस् (सं० क्ली०) द्विष कर्मणि असुन्। द्वेष्य पापादि।

द्वेषिन् (सं० त्रि०) द्वेष्टि तच्छीलः द्विष-णिनि। शत्रु, दुश्मन।

द्वेष्टृ (सं० त्रि०) द्वेष्टीति द्विष-तृच्। विद्वेषकर्त्ता, द्वेष करनेवाला, विरोधी, वैरी।

द्वेष्य (सं० त्रि०) द्वेष्टुमर्हः यत्। १ द्वेष विषय, जिससे द्वेष किया जाय। (पु०) २ शत्रु, वैरी। ३ कक्कोल, एक पेड़।

द्वैगुणिक (सं० क्ली०) द्विगुणार्थं द्रव्यं द्विगुणं तत् प्रयच्छति द्विगुणं गृह्णातु एकं गुणं ददाति द्विगुण-ठक् (प्रयच्छति गर्ह्यं। पा ४।४।३०) वृद्धाजीव, द्विगुणग्राही, दूना व्याज लेनेवाला।

द्वैत (सं० क्ली०) द्विधा इतं द्वीतं तस्य भावः युवादित्वादण्, स्वार्थे अण् वा। १ द्वय, युगल, दो का भाव। २ भेद, अन्तर, भेद-भाव। ३ भ्रम, दुबधा। ४ अज्ञान। ५ द्वैतवाद।

द्वैतवन (सं० क्ली०) द्वे-शोकमोहादिके इते यस्मात्

द्वैत स्वार्थे अण्. द्वैतं वनं नामधा०। वनविशेष, एक तपोवन जिसमें युधिष्ठिरने वनवासके समय कुछ काल तक निवास किया था।

इस वनमें जो वास करते हैं, उनका मोह और शोक जाता रहता है। यहां शोक और मोह दोनों नाश हो जाते हैं इसीसे इसका नाम द्वैत पड़ा है।

द्वैतवाद (सं० पु०) द्वैतं अधिकृत्य वादः। गौतमादि प्रणीत जीवेश्वर विभेद-निर्णायक कथारूप ग्रन्थभेद, कपिलादि प्रणीत नाना जीवनिर्णायक कथाभेद। जीव और ईश्वरको पृथक् पृथक् मानना ही द्वैतवादका चरमसिद्धान्त है। कपिल गौतमादि ऋषिगण सभी विषयोंके प्रकृत तथ्यको जान कर दुःखनिवृत्ति और ब्रह्मविषयक जो सब निबन्ध कर गये हैं, वे सब ग्रन्थ दर्शनशास्त्र नामसे प्रसिद्ध हैं। उन सब दर्शनशास्त्रोंमें द्वैतवादका विशेषरूपसे प्रतिपादन किया गया है।

सभी दर्शनशास्त्रोंमें प्रायः द्वैतवादका उपदेश दिया गया है। महामति शङ्कराचार्यने जन्म ले कर अन्यान्य दर्शनशास्त्र-प्रतिपादित द्वैतवादका खण्डन कर अद्वैतवादका संस्थापन किया है। शङ्कराचार्यके बादसे ही द्वैतवाद और अद्वैतवादको ले कर बहुत मतभेद चला है।

योगिश्रेष्ठ अष्टावक्रने अष्टावक्रसंहितामें बहुत संक्षिप्त भावसे अद्वैतवादका उपदेश तो दिया था, लेकिन शङ्कराचार्यने ही केवल असाधारण प्रतिभाबलसे द्वैतबोधक सभी श्रुतियोंको अद्वैतभावमें व्याख्या करके अद्वैतमत संस्थापन किया है। शङ्कराचार्यके बादसे ही इस मतका विशेष आदर होता आ रहा है। द्वैतवाद कहते समय अद्वैतवाद भी कहना आवश्यक है। इसीसे पहले द्वैत और अद्वैतवाद दोनोंको ही एक साथ मिला कर पृथक् रूपसे उसकी आलोचना की जायगी।

द्वैत और अद्वैतवादकी मीमांसा करना बहुत कठिन है। इसीसे कोई विचार किये बिना हम यहां पर पूज्यपाद दार्शनिकोंने जो कुछ कहा है, वही लिखते हैं।

द्वैतवादी लोग कहा करते हैं, कि जीव और ब्रह्म इन दोनोंमें हम लोगोंका जो भेदज्ञान है, वह नित्य है, लेकिन अद्वैतवादी कहते हैं, कि जीव और ब्रह्ममें जो भेदज्ञान है, वह भ्रान्तिमूलक है। यह भ्रम दूर होनेसे ही जीव अपनेको ब्रह्मस्वरूप समझ कर मुक्ति लाभ कर सकता है। 'तत्त्वमसि' वेदके इस महावाक्यका द्वैतवादी जैसा आदर करते हैं, अद्वैतवादी भी वैसा ही आदर करते। किन्तु दोनों मतवाले इस श्रुतिका भिन्न भिन्न अर्थ लगाते हैं। इसीसे द्वैत और अद्वैत इस प्रकारका मतभेद हुआ करता है। द्वैतवादी जो व्याख्या करते हैं उसे असंगत नहीं कह सकते और अद्वैतवादीकी व्याख्या भी असंगत नहीं है। श्रुतिका इस प्रकार विभिन्न अर्थ होनेसे ही द्वैत और अद्वैत इन दो प्रकारके मतोंमें विभिन्नता होती है, यह मतभेद ही द्वैत और अद्वैतवादका कारण है। जिन सब धर्मशास्त्रोंको ले कर द्वैत और अद्वैतमत प्रचलित हुआ है उन धर्मशास्त्रोंका आधार कहां है? पहले उसीका अनुसंधान करना चाहिये।

वेद ही ज्ञानका आकर है। न्याय, अन्याय, सत्य, मिथ्या इत्यादिको सम्पूर्णरूपसे जाननेकी मनुष्यमें क्षमता नहीं है। मनुष्यमात्रमें ही भ्रमप्रमादयुक्त है। एक मनुष्य जिसको न्याय कहता है, दूसरा उसे अन्याय कहता है। एक मनुष्य जिसे कर्त्तव्य समझ कर उपदेश देता है दूसरा उसमें सैकड़ों दोष निकाल देता है। अतः इन सब कारणोंसे मनुष्यबुद्धिके अधीन होनेसे ही विभिन्न प्रकारके भ्रम और प्रमादपूर्ण होनेकी सम्भावना है। किन्तु ईश्वर यदि इसका एक निर्दिष्ट नियम स्थिर कर दें, तो फिर उस प्रकारकी विभिन्नता वा भ्रमप्रमादयुक्त होने की सम्भावना नहीं रहेगी। आर्यऋषिगण वेदको ईश्वरप्रणीत वा अपौरुषेय कह कर मानते हैं। इसी कारण वेदके लक्षणमें इस प्रकार लिखा है।

'इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः।' यजुर्वेदभाष्य।

इष्टप्राप्ति और अनिष्टपरिहारका अलौकिक उपाय जिस ग्रन्थसे जाना जाता है, उसीका नाम वेद है। वेदमें दो विषय प्रतिपन्न हुए हैं, धर्म और ब्रह्म। किन्तु वेदसे इन दो विषयोंको जाननेमें नाना प्रकारके सन्देह और आपत्तियां आ खड़ी होती हैं। उन सबकी मीमांसा करके ज्ञेय विषय स्थिर करनेके लिये ही दर्शनशास्त्र

हुआ है। कपिलादि महर्षियोंने इसीकी मीमांसा करके दर्शनशास्त्र बनाया है। यह दर्शनशास्त्र फिर दो श्रेणियोंमें विभक्त किया जा सकता है, धर्ममीमांसा और ब्रह्ममीमांसा। जैमिनिने जो प्रणयन किया है वही धर्ममीमांसा है।

वेदव्यासने ब्रह्ममीमांसाको प्रणयन कर ब्रह्मका स्वरूप निर्णय किया है। इसके सिवा सांख्य, पातञ्जल आदि दर्शनसमूहमें ब्रह्मज्ञान ही प्रतिपादित हुआ है। इन सब दर्शनशास्त्रोंमें प्रसङ्ग क्रमसे सृष्टि, प्रलय आदि अनेक विषयोंकी आलोचना की गई है। दर्शनशास्त्रका अवलोकन करनेसे मीमांसाकी बात तो दूर रहे, नाना प्रकारके मतोंका जटिलज्ञान उत्पन्न होता है। क्योंकि ऋषियोंने अपना अपना मत समर्थन करनेके लिये ही एक एक धर्मशास्त्रको बनाया है।

शङ्कराचार्य अद्वैतमत-प्रवर्तक थे और समस्त दर्शनशास्त्र द्वैतवादी। शङ्कराचार्यने केवल अद्वैतमतका संस्थापन किया है सो नहीं, अन्यान्य दर्शनोंके मतको खण्डन कर अन्तमें अद्वैतमतको अड़ मजबूत कर दी है। कपिलादि ऋषि ईश्वरके अवतार स्वरूप थे और शङ्कर भी 'शङ्करसाक्षात्' अर्थात् साक्षात् शङ्कर स्वरूप थे। यदि एक मत असत्य हो, तो दूसरा सत्य होगा इसका क्या प्रमाण है? यदि कणाद, गौतम, कपिल और पतञ्जलिका मत मिथ्या हो, तो वेदव्यासका मत सत्य होगा सो क्यों? कणादादि ऋषिगण यदि प्रकृततत्त्वको न जानते हों तो शङ्कराचार्य जो प्रकृततत्त्व जानते होंगे सो भी नहीं कहे सकता। जो कुछ हो, यह विषय बहुत दुरूह है और साधारण मानवबुद्धिके अगोचर है। शास्त्रमें इस विषयका जो उल्लेख है, उसीकी आलोचना करनी चाहिये।

वेदान्तिकका मत है, कि शिष्यका चित्त जब शुद्ध हो जाता है अर्थात् वह वेदशास्त्रका अधिकारी हो सकता है और जब अधीतवेदवेदान्त शमदम आदि साधनसे पूरा योग्य हो जाता है, तब गुरु उसे 'तत्त्वमसि' यह महावाक्य उपदेश देते हैं। 'तत्त्वमसि' अर्थात् तुम ही वह ब्रह्म हो। उस समय शिष्यको वैसाही ख्याल करना चाहिये। 'मैं' कहनेसे जो अपनेका बोध होता है यथार्थमें वह उपाधि मेरी नित्य उपाधि नहीं है। 'मैं' ब्रह्मशब्दका जो अर्थ है, यथार्थमें मैं वही हूं। केवल भ्रमवशसे ही अभी 'मैं' कहनेसे अपनेका बोध करते हैं। गुरुके समीप परोक्षभावमें ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया है, अभी अपनेको नित्यशुद्ध, मुक्त और उपाधिशून्य समझ कर 'ब्रह्म ही मैं हूं' ऐसा ख्याल करना चाहिये। ऐसा करनेसे धीरे धीरे ध्यान, धारणा और समाधि आदि द्वारा अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर सकते हैं अर्थात् 'मैं ही ब्रह्म हूं' ऐसा समझने लगेंगे। वस्तुका स्वरूप जाननेके बिना दूसरेसे उन वस्तुका प्रकृत विवरण सुन कर जो ज्ञान होता है उसे परोक्षज्ञान कहते हैं। मान लो, मैंने कभी मिठाई खाई नहीं है, किसीने आकर मुझसे मिठाईका हाल कह सुनाया, तब मुझे मिठाईके विषयमें जो ज्ञान हुआ उसीका नाम परोक्षज्ञान है। किन्तु वस्तुका स्वरूप जान कर जो ज्ञान प्राप्त होता है उसे अपरोक्ष ज्ञान कहते हैं, अर्थात् मिठाई खा कर मिठाईका जो ज्ञान हुआ, उसीका नाम अपरोक्षज्ञान है। ब्रह्मके विषयमें भी ठीक वैसा ही है। ब्रह्मके स्वरूपका उपदेश पानेसे ब्रह्मविषयक जो ज्ञान होता है उसका नाम परोक्षज्ञान है। जब ब्रह्मकी सत्ता उपलब्ध होती है, 'त्वं' 'अहं' तुम और मैं में कोई भेदज्ञान नहीं रहता, जब 'सोऽहं' का ज्ञान हो जाता है, तभी ब्रह्मविषयक परोक्षज्ञान प्राप्त होता है। उस समय और कुछ भी नहीं रहता। प्रत्येक वस्तुमें ब्रह्मकी सत्ता पाई जाती है, यही अद्वैतवादियोंका सिद्धान्त है।

द्वैतवादियोंके मतसे 'तत्त्वमसि' इस महावाक्यका अर्थ कुछ और है, यथा—'तत् त्वं असि' अर्थात् 'तस्य त्वं असि' हे शिष्य तुम उसके हो तुम्हें ब्रह्मविषयक जो उपदेश दिया गया है, तुम उसी ब्रह्मके हो, तुम ब्रह्मके निकट नित्यसम्बन्धसे बंधे हो। शिष्यको यह ब्रह्मविषयक उपदेश मिलनेसे शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर भाव किसी न किसी विषयमें नित्यसम्बन्ध 'मैं' मेरा नहीं है, 'मैं' उसका है, केवल 'मैं' ही नहीं, जीवमात्र सभी उसी आदिपुरुषके हैं, ऐसा ज्ञान उसे उत्पन्न हो जाता है।

अद्वैतवादी कहते हैं, कि जीव और ब्रह्ममें जो भेद-

ज्ञान हम लोगोंका है, उस भेदको यदि नित्य मानें, तो जीव-चैतन्य और ब्रह्म-चैतन्यमें एक स्वरूपतः भेद मानना होगा। किन्तु इस प्रकारका भेद माननेसे 'एकमेवाद्वितीयं' 'प्रज्ञानं ब्रह्म' 'अहं ब्रह्मास्मि' 'सर्वंखल्विदं ब्रह्म' 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्योंके साथ विरोध उत्पन्न होता है। यदि यह कहें, कि द्वैतवादियोंने इन सब श्रुतियोंकी द्वैतबोधक व्याख्या की है, तो उससे विरोध होनेकी सम्भावना ही क्या? किन्तु इसके उत्तरमें प्रकृत मीमांसा सुदूरपराहत, मानव-बुद्धिका विषय नहीं है। जिन्होंने इन सबकी व्याख्या की है, वे नित्यबुद्ध मुक्तस्वभावके हैं, एक एक मनुष्य अवतार स्वरूप हैं। किसी एक मनुष्यका स्वकपोलकल्पित युक्ति द्वारा विचार करना सङ्गत नहीं है। चैतन्यके उपाधिगत नाना प्रकारके भेद मालूम पड़ जानेसे स्वरूपतः कोई भेद नहीं रहेगा। इस संसारमें जो एक है और अद्वितीय है, वही ब्रह्म है। ब्रह्मविषयक अपरोक्षज्ञान प्राप्त करनेमें वह एक और अद्वितीय पदार्थ किस स्वरूपका है उसे जानना जरूरी है। जिसका परिणाम है, अर्थात् जो आज एक प्रकारका आकार धारण करता है, कल दूसरे प्रकारका, वह एक और अद्वितीय नहीं हो सकता। इस संसारमें जितने जीव हैं, उनमें जिस जिस विषयकी विभिन्नता है, वह विषय चैतन्य पदार्थ नहीं है, किन्तु उनमें जिस विषयकी एकता है, वही चैतन्य पदार्थ है। इस प्रकार एक और अद्वितीय क्या है उसीका अन्वेषण करके ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया जाता है।

द्वैतवादी जीव चैतन्यको ब्रह्मचैतन्यसे यदि पृथक् समझते हैं, तो वे ब्रह्मचैतन्यविषयक अपरोक्षज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। अपने चैतन्य सम्बन्धमें ही मानवका अपरोक्षज्ञान सम्भव है, क्योंकि पुरुष अपने चैतन्यको ही स्वयं अनुभव कर सकते हैं। चैतन्य इन्द्रियग्राह्य पदार्थ नहीं है, वरं वह अतीन्द्रिय है, अतः दूसरेके चैतन्यके विषयमें उसका अपरोक्षज्ञान कदापि नहीं हो सकता। जीवका चैतन्यविषयक जो अपरोक्षज्ञान है, अर्थात् 'मैं' इस ज्ञानको उपाधिशून्य करनेकी कोशिश करके उपाधिशून्य चैतन्यका अपरोक्षज्ञान प्राप्त करनेके सिवा ब्रह्मज्ञानका और कोई दूसरा उपाय नहीं है। ब्रह्मज्ञान नहीं होनेसे मुक्ति नहीं होती। किन्तु द्वैतवादीके मतसे जीवकी उपाधि नित्य है। सुतरां उस उपाधिको भूल जानेकी वे कोशिश भी नहीं करते। अतः अद्वैतवादीकी मुक्ति जिस प्रकार ब्रह्ममें लीन होना अर्थात् मैं ही ब्रह्मका हो जाना है, उस प्रकार द्वैतवादीकी मुक्ति नहीं है। उन लोगोंका कहना है, कि जो कुछ उनके पास है, उन्हींसे अनन्यकामी हो कर ईश्वरसेवा ही परम पुरुषार्थ है। ऐसी अवस्थामें उपाधि रह जाती है, क्योंकि उनके मतसे उपाधि नित्य है। किन्तु अद्वैतवादीके मतसे चैतन्यकी जो जीव-उपाधि है वह अज्ञानमूलक है। आत्मज्ञान हो जानेसे वह उपाधि जाती रहती है।

ब्रह्मका जो असीम अंश सृष्टिकार्यमें न लगा उसमें सृष्टिका कोई लगाव नहीं है। सुतरां मनुष्य किसी प्रकार उस असीम भावको बतला नहीं सकता। "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" (श्रुति) मनके साथ जहां वचन नहीं जा सकता, लौट आता है; वैसी अवस्थामें उसे निरुपाधि कहते हैं। किन्तु सृष्टिके साथ सम्बन्ध रख कर हम लोग परमात्माको जगत्कारण आदि नामोंसे पुकारा करते हैं। प्रकृति ही इसकी सृष्टिशक्ति है, इसके साथ ही उस संबन्धका सूत्रपात है। अतः प्रकृति ही सभी उपाधियोंकी जड़ है। आकाश, वायु, आदि पञ्चभूत उपाधिस्वरूप हैं, यह जड़ जगत् उपाधिस्वरूप है। जीवका स्थूल सूक्ष्म कारण-शरीर भी उपाधिस्वरूप है। ब्रह्म इन औपाधेय रूपोंमें सभी जगह वर्त्तमान है। ये सब उपाधियां ब्रह्मसे ही निकली हैं। पहले कुछ भी न थी, ब्रह्मकी ही शक्तिसे अभ्यन्तरसे प्रकाश पाती हैं। अतः ब्रह्मकी सत्तामें ही उनकी सत्ता है। ब्रह्मके साथ समस्त जगत् अभेद है, सभी ब्रह्मभुक्त हैं, कुछ भी विभक्त हो कर नहीं रहती। "जन्माद्यस्य यतः" "यतो वा इमानि भूतानि जातानि येन जातानि जीवन्ति।" (श्रुति) ब्रह्मसे यह सारा संसार सृष्टि स्थिति और भङ्ग होता है। सभी ब्रह्मशक्तिके आविर्भाव हैं, जब मनुष्यको यह ज्ञान हो जाता है, तब उपाधिको फिर भिन्न समझ नहीं सकते। स्वतन्त्र स्वतन्त्र उपाधिमें ब्रह्म अखण्डरूपसे देखे जाते हैं। अविच्छिन्न

अपने सृष्ट जीवके कारण शरीरमें वे प्राज्ञ नामसे, सूक्ष्म-देहमें तैजस नामसे, स्थूल देहमें विश्व नामसे जीवरूपमें प्रकाश पाते हैं और सब जीवोंके कारण शरीर-समष्टिमें वे (ब्रह्म) सर्वेश्वर नामसे, सूक्ष्म देह-समष्टिमें हिरण्यगर्भ नामसे और स्थूल देह-समष्टिमें वैश्वानर नामसे नियन्ता और कारणस्वरूपमें प्रकाश पाया करते हैं। जीवको इन त्रिविध देहरूप उपाधियोंमें ब्रह्म ही स्वयं जीवरूप में प्रकाश पाते हैं। अद्वैतवादियोंके मतसे कोई पदार्थ क्यों न हो, वह ब्रह्मके बाहर नहीं है, सभीमें उनका कुछ न कुछ संबन्ध है। वे सभी पदार्थोंमें सत्तारूपसे वर्त्तमान हैं। उनकी सत्तामें सभीकी सत्ता है, अतः ब्रह्म ही सब कुछ है। उनकी सत्ताका अभाव होनेसे सभी इन्द्रजालवत् तिरोहित हो जाते हैं। जीवरूपमें अन्तःकरणरूप उपाधिके योगसे वे सुख, दुःख और जन्म जन्मान्तर परिभ्रमण करते हैं। परमात्माके जीवभावकी उपाधि अविद्या है, उसके अन्तर्गत देह और अन्तःकरण है तथा ईश्वरभावकी उपाधि माया है और उनके अन्तर्गत समस्त जगत् कार्य हैं। एक सहज दृष्टान्तसे यह समझमें आ जायगा—मान लो, एक सुवर्णकुण्डल है, सुवर्ण कहनेसे जिसका बोध होता है, सुवर्णकुण्डल कहनेसे उसका बोध नहीं होता। किन्तु सुवर्ण और सुवर्णकुण्डलमें वस्तुतः कोई भेद नहीं है, अगर है भी, तो सिर्फ उपाधिगत भेद है। यहां सुवर्णनिर्मित वस्तु कुण्डल यह उपाधि पा कर अन्यान्य सुवर्णसे कुछ विभिन्नता हो गई है। इसी प्रकार जिसका कोई विशेष नाम नहीं है, वह उपाधिशून्य है। किन्तु जब कोई विशेष नाम मिल जाता है, तब वह उपाधियुक्त होता है। जिसके नहीं रहनेसे 'मेरा' और 'मैं' का ज्ञान नहीं रहता, वही मेरा चैतन्य है। जिसके नहीं रहनेसे अन्यान्य जीवोंका आत्मा और अस्तित्व ज्ञान नहीं रहता, वही उनका चैतन्य है। ब्रह्मविषयमें शास्त्रकार लोग कहते हैं, कि वे ही आत्मपुरुष है, वे ही चैतन्यमय पुरुष हैं।

जहां कहीं चैतन्य देखोगी, वहीं ऐसा मालूम पड़ेगा कि चैतन्य पदार्थ सभी जगह एक है। ऐसी हालतमें अपने चैतन्यको किसी विशेष नामसे पुकार नहीं सकोगी। उस समय अपनेको उपाधिशून्य समझोगी। किन्तु आपाततः जीवकी अहंज्ञानकी उपाधि है, जीव कहनेसे इतर जन्तुसे भिन्नका बोध होता है। इस प्रकार पृथक् ज्ञानका नाम उपाधि है। जीव जब तक अपनेको उपाधिशून्य चैतन्यमय पुरुषके जैसा नहीं समझेगा, तब तक जीवको जीव उपाधि रहेगी। भेदज्ञान होनेसे ही उपाधिकी सृष्टि हुई है। द्वैतवादियोंके मतसे जीव-चैतन्यके साथ जीव-चैतन्यका कोई भेद नहीं है, लेकिन ब्रह्म-चैतन्यके साथ अवश्य भेद है और यह भेद नित्य है। अतः जीवकी उपाधि जीव छोड़ कर कभी भी वह निरुपाधिक नहीं हो सकता। अद्वैतवादी कहते हैं कि जीवके उपाधिशून्य हुए बिना उसकी मुक्ति नहीं होती, अर्थात् वह पुरुष पुण्यात्मा होने पर भी स्वर्गादि भोगके बाद फिर उसे इस लोकमें जन्म लेना पड़ता है। अद्वैतवादियोंके मतसे चैतन्य पदार्थ सर्वत्र एक है। जीव नामधारी चैतन्य सोपाधिक है और ब्रह्मचैतन्य निरुपाधिक। जीवकी उपाधि रहने या नहीं रहने देना उस जीवकी स्वयं चेष्टाके ऊपर निर्भर है। उपाधिका नहीं रहना ही परम पुरुषार्थ है। द्वैतवादी लोग कहते हैं, कि जीव नियत उपासक है, वेदोक्त सभी देवता उसके उपास्य पदार्थ हैं। किन्तु इन सब देवताओंने विशेष विशेष कर्मोंके अधिष्ठाता हो कर विशेष विशेष नाम पाये हैं। सभी देवता नित्य नहीं हैं, सुतरां वे नित्य सुख प्रदान कर नहीं सकते। चैतन्यसत्ता निबन्धन देवगण कर्मफलानुसार सुख देते हैं। भिन्न भिन्न देवताओंके उस चैतन्यने भिन्न भिन्न उपाधि पाई है। देवता उपाधिगत चैतन्य अवच्छिन्न चैतन्य हैं, यह वैदिकज्ञानकाण्डसे जाना जाता है। एक अद्वितीय चैतन्यमय पुरुष ही नित्य पदार्थ है। ज्ञानमार्गका अवलम्बन करके उसकी उपासना द्वारा जीव नित्य सुख प्राप्त कर सकता है। उस चैतन्यमय पुरुष-विषयक मानस व्यापारका नाम ही उसकी उपासना है। प्रणव-मन्त्रादि उस पुरुषके वाचक हैं। अद्वैतवादी पुरुषार्थ-साधनके लिये पुरुषाकार अवलंबन करके स्वयं निर्गुण पुरुषत्वपद पानेकी इच्छा करते हैं। द्वैतवादी नित्य पुरुषके नित्य उपासक हो कर उपासक रहनेके लिए ही

अभिलाषी हैं। बङ्गीय कवि रामप्रसादसेन द्वैतवादियोंके मतका भाव स्पष्ट कर गये हैं, "चीनी होना मैं नहीं चाहता, चीनी खाना पसन्द करता हूं।" ईश्वरमें न मिल कर ईश्वरोपासनामें साधकको परम आनन्द मिलता है, यही द्वैतवादीका चरम सिद्धान्त है।

द्वैतवादी और अद्वैतवादी दोनोंका ही कहना है, कि ब्रह्मज्ञानके बिना मुक्ति नहीं होती, अर्थात् जन्म-जरा-मरणादिजनित दुःखभोगसे मुक्ति पानेका कोई मार्ग नहीं है। अभी इस विषय पर विचार करना होगा कि जहां ज्ञान है, वहीं ज्ञाता है और ज्ञेय भी है। ज्ञाताके नहीं रहनेसे ज्ञेय वस्तुका ज्ञान होना असम्भव है। द्वैतवादी कहते हैं, कि जब ब्रह्म हम लोगोंके ज्ञेय विषय हुए, तब ब्रह्मविषयक ज्ञेयके ज्ञाता कौन होगा? अवश्य 'मैं' ही होगा। ऐसा होनेसे ज्ञाता और ज्ञेय पदार्थमें जो पृथक् सम्बन्ध है, हम लोगोंके साथ ब्रह्मका भी वही पृथक् सम्बन्ध होगा। सुतरां द्वैतवादीके निकट ब्रह्मपदार्थ उनके अहं पदार्थसे भिन्न कोई दूसरा पदार्थ है। उन लोगोंका ख्याल है, कि मैं ज्ञाता हूं, ब्रह्म ज्ञेय है तथा ज्ञाता और ज्ञेय इन दो पदार्थोंमें जो सम्बन्ध है, वही ब्रह्मज्ञान है। अद्वैतवादी जिस पद्धतिका अवलम्बन करते हैं, उसमें जो ज्ञाता हैं, वहीं ब्रह्म हैं अर्थात् 'मैं' ही ब्रह्म है और 'मैं' ही ज्ञेय विषय है अर्थात् जीव 'मैं' है या पदार्थ है वही ज्ञेयविषय है तथा ज्ञाता और ज्ञेय ब्रह्म और जीवमें जो अभेद सम्बन्ध है, वही ब्रह्मज्ञान है। द्वैतवादी और अद्वैतवादीको जो बातें लिखी गई हैं उनमेंसे किसीकी बात सत्य है और किसीकी बात असत्य। यहां पर केवल विचारपद्धतिसे काम नहीं चलेगा क्योंकि सिर्फ तर्क द्वारा मानवबुद्धिमें इस विषयका कोई सिद्धान्त नहीं हो सकता।

'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यका प्रकृत अर्थ क्या है? अर्थात् वेदकर्त्ता उन सब विषयोंका जो अर्थ लगा गये हैं, वह वेदज्ञ व्यक्ति ही जान सकते हैं। इसीसे कोई विचार न कर केवल महापुरुषोंने जो कुछ कहा है, वही यहां लिखते हैं। पर हां, शास्त्रविश्वासी मनुष्योंको यह कहना उचित है, कि कोई मत मिथ्या नहीं है, कारण कपिलने जो उपदेश दिया है वह भी सत्य है और शङ्कराचार्यने जो कहा है वह भी प्रकृत है, कोई मत असत्य नहीं है। इसीलिये शास्त्रमें अधिकारी भेदकी इतनी गड़बड़ी है। शास्त्रकारी हो कर जब शास्त्रका अवलोकन किया जायगा, तब दिव्यचक्षु और विराटरूपसे यह ज्ञात हो जायेगा, कि किसी मतके साथ किसी मतकी विभिन्नता नहीं है। सभी मत एक हैं तथा अभ्रान्तसत्य हैं। अतः पहले शास्त्रविचार न कर किसी एक महापुरुषके वाक्योंमें श्रद्धान्वित हो कर ईश्वरोपासना करना ही जीवका अवश्य कर्त्तव्य है।

परमयोगी पतञ्जलिके योगशास्त्रके मतसे द्रष्टा जब अपना स्वरूप जान लेता है तभी वह कैवल्यपद प्राप्त कर सकता है। वेदान्तमें जिसे जीवचैतन्य बतलाया है, मालूम पड़ता है कि पतञ्जलिने उसीका नाम 'द्रष्टा' रक्खा है। योग समाधान होनेसे ही द्रष्टा कैवल्यलाभ करता है। "तदा द्रष्टुः स्वरूपेणावस्थानं" (पातञ्जल) उस समय जीव द्रष्टा स्वरूपसे अवस्थान करता है, अर्थात् कैवल्य प्राप्त करता है। महामति पतञ्जलिने स्वप्रणीत पातञ्जलदर्शनमें योगमार्ग अवलम्बन करके वे सब विषय प्रतिपादित किये हैं जो अपरोक्षज्ञानसे अनुभूति होती है। योगशास्त्रमें जो लिखा है उससे एक प्रकारकी शिक्षा मिलती है, कि चित्तका वृत्तिसमूह निबन्धन द्रष्टा है अर्थात् जीव जो भिन्न भिन्न रूपोंमें देखा जाता है, वह द्रष्टाका स्वरूप नहीं है। चित्तवृत्ति-समूहका निरोध होनेसे द्रष्टा उपाधिशून्य हो कर चैतन्य-स्वरूपमें अवस्थान करता है; अर्थात् योगमार्ग अवलम्बन करनेसे मनुष्य जब ऐसी अवस्थामें आ जाते हैं, कि चित्तके वृत्तिसमूहके साथ उनका सम्पर्क बिलकुल जाता रहता है, तभी पुरुष कैवल्य पदको पाते हैं। ऐसा होनेसे देखा जाता है, कि योगशास्त्रके मतानुसार जीवकी जो उपाधि है, वह अनित्य है। इस उपाधिके नहीं रहनेसे ही मोक्षकी प्राप्ति होती है और यही परम पुरुषार्थ है। इस पुरुषार्थको साधन करनेके लिये जिस जिस उपायका अवलम्बन कर्त्तव्य है, योगशास्त्रमें उसीका वर्णन किया गया है।

सांख्यकार कपिलदेवके मतसे पुरुष चिरकाल तक शुद्ध और मुक्त हैं। यही पुरुषतत्त्व उनके पचीस तत्त्वोंका

परमतत्त्व है। देही अर्थात् पुरुष स्वभावतः मुक्त होने पर भी देहाभिमान निबन्धन उनके दुःखका कारण हो जाता है। इस दुःखको निवृत्त करना ही पुरुषका पुरुषार्थ है। प्रकृत पुरुष सम्बन्धीय अविवेक निबन्धन पुरुष अपनेको सोपाधिक समझा करते हैं। इस अविवेकको दूर कर सकनेसे अर्थात् प्रकृति पुरुषके स्वरूपका ज्ञान हो जानेसे ही मोक्षलाभ होता है। इस मतमें जीवात्मा वा परमात्मा पृथक् नहीं हैं, अर्थात् इनके स्वरूपमें कोई भेद नहीं है। जीव जो अपनेको सोपाधिक समझता है, वही उसके बन्धनका कारण है। सांख्यकार असंख्य पुरुष स्वीकार करते हैं। पुरुष असंख्य होने पर भी मैं पुरुष, तुम पुरुष, वे भी पुरुष इत्यादि, किसीमें किसी प्रकारका प्रभेद नहीं है। कोई कोई कहते हैं, कि इनके मतसे जब पुरुषगत कोई पार्थक्य नहीं है, तब ये भी अद्वैतवादी हैं। यह मत अद्वैत है वा द्वैत, इसका विचार करना अनावश्यक है, किन्तु यह द्वैत कह कर ही प्रसिद्ध है। इसीसे हम लोग सांख्यको द्वैतवादी मानते हैं। सांख्यदर्शनके भाष्यकार विज्ञानभिक्षु वेदान्तदर्शनके अद्वैतवादको अपने मतमें अर्थात् द्वैत मतमें खींच लानेकी चेष्टा की है। किन्तु वेदान्तदर्शनमें इन सब मतोंका खण्डन किया है।

चित्तमें जब द्वैतभाव प्रबल रहता है, तब मनुष्य 'मैं'के अतिरिक्त एक औरकी खोजमें बाहर निकलता है। उस समय चित्तमें मिथुनभावात्मक वृत्ति उत्पन्न होती है, अर्थात् वृत्ति युगपत् अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी हो कर चित्तमें उदय होती है। जिस प्रकार खण्डलौह चुम्बकको पत्थरके निकट रखनेसे उस लोहेमें मिथुनभावात्मक शक्तिका प्रकाश होता है, उसी प्रकार सुखभोगकी कामना रहनेसे मनुष्यके चित्तमें मिथुनभावात्मक द्वैतभाव उत्पन्न हुआ करता है। उस समय चित्तका एक प्रान्त आत्माभिमुखी और दूसरा प्रान्त बाह्य विषयाभिमुखी हो जाता है, उस समय मनुष्य अपनेको भी अच्छा समझता है और सुखप्रद बाह्य विषयको भी। भोक्ता और उपभोग्य ये दोनों ज्ञानके प्रान्त हैं तथा एक दूसरेसे पृथक् नहीं रह सकते। भोक्ताके नहीं रहनेसे उपभोग्यका अर्थ कुछ नहीं और उपभोग्य पदार्थ नहीं रहनेसे भोक्ता नहीं रह सकता। भोक्ता और उपभोग्य ये दोनों एक ज्ञानके ही प्रान्तस्वरूप हैं। चित्तमें जब द्वैतभावकी प्रबलता देखी जाती है, तब मनुष्य अपनेको प्रीतिसुखका भोक्ता समझता है और इसीसे 'मैंके' सिवा एक और को उपभोग्य पदार्थ मानता है। द्वैतवादमें भक्त लोग अपनेको प्रीतिसुखके भोक्ता समझते हैं, सुतरां उसके आराध्य पदार्थको उपभोग्यपदार्थ स्वरूप देखना ही पसन्द करते हैं। आराध्य पदार्थका अनुभव कर जो प्रीतिसुख मिलता है, उस सुखभोगके लिये ही द्वैतवादी आराध्य पदार्थको द्वैतभावसे भक्ति करते हैं। द्वैतवादीकी ब्रह्मप्रीति सकाम है, क्योंकि द्वैतवादी यदि खूब गौरसे ख्याल करें, तो मालूम पड़ेगा कि वे अपनेको सुखभोक्ता समझते हैं और उस भोगेच्छाको त्याग करनेकी उनकी इच्छा नहीं रहने पर भी वे जीवोंका जीव नाम मिटानेकी कभी ख्वाहिस नहीं करते। जब तक मैं सुख दुःखका भोक्ता हूं, तब तक मेरी 'जीव' यह उपाधि रहेगी। क्योंकि जो सुख दुःख भोग करता है, उसीका नाम जीव है। जिनकी ब्रह्मप्रीति निष्काम है, वे ही अद्वैतवादी हैं। द्वैतभाव और अद्वैतभावकी प्रीतिमें जो प्रभेद है, वह एक उदाहरण दे कर समझाते हैं। मान लो, दो मनुष्यने घूमते घूमते एक प्रस्फुटित पद्मपुष्प देखा। पद्मकी शोभा तथा सुगन्धसे दोनोंके मनमें एक प्रकारकी तृप्ति आ गई। फिर दोनों सौन्दर्यसे आकृष्ट हो कर पद्मको देखने लगे, कुछ काल तक देखते रहनेके बाद एकने दूसरेसे कहा, 'भाई! देखो! इस पद्मकी सुगन्ध ऐसी मनोरम है, कि दिन रात इसकी गन्ध लेनेकी इच्छा होती है।' दूसरेने कहा, 'इस पद्मका सौन्दर्य देख कर मेरी इच्छा होती है कि मैं पद्मके साथ मिल जाऊं। यह पद्म जिस तरह सरोवरमें खिल कर हंसता है, उसी तरह मेरी भी पद्म हो जानेकी इच्छा है जिससे मैं भी उसीके जैसा खिल कर हँस सकूं।' दोनोंमेंसे एक तो पद्मको द्वैतभावसे पसन्द करता था और दूसरा अद्वैतभावसे। एक तो पद्मके सौन्दर्यमें अपने अहंज्ञानको मिला देनेका इच्छुक था और दूसरा अपने अहंज्ञानको अलग रख कर पद्मका सौन्दर्य ही उपभोग करना चाहता था। जिस प्रीतिमें अहंज्ञानको विसर्जन करनेकी आवश्यता उत्पन्न होती है, वही अद्वैत

भावकी प्रीति है। जहां अपने पृथक् नामको अलग रखनेकी इच्छा होती है, वहीं द्वैतभावकी प्रीति है। द्वैतभावकी प्रीतिमें मनुष्यके मनमें सुखभोगकी वासना प्रच्छन्नभावसे छिपी रहती है, इसी कारण अद्वैत ब्रह्मवादियोंने द्वैतवादके विरुद्ध अनेक प्रकारके तर्क वितर्क किये हैं। अद्वैतवादी कहते हैं, कि 'ब्रह्मनाम'-रूप अग्निमें अपने धर्म कर्म, नाम आदिकी आहुति देना ही ब्रह्मोपासना है। इनमेंसे अपने 'जीव' नामकी अर्थात् सुखदुःखभोक्ता इस नामकी आहुति देना ही ब्रह्मोपासनाकी पूर्णाहुति है। जब अहंज्ञान बिलकुल तिरोहित हो जाता है, 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'' जो कुछ है सभी ब्रह्म है ऐसा ज्ञान हो जाता है, तभी ब्रह्मोपासनाकी चरमसीमा तक पहुंच जाता है, उस समय द्वैत और अद्वैत इस प्रकारका कोई विवाद उपस्थित नहीं होता। सभी ब्रह्मस्वरूपमें अनुभूयमान होते हैं। द्वैतवादी भी ब्रह्माग्निमें सब धर्म कर्मोंकी आहुति दे कर उपासना करते हैं, किन्तु वे पूर्णाहुति देना नहीं चाहते। छिपे हुए भावमें उनका अहंज्ञान रह जाता है। जो द्वैतभावके भक्तिरसमें सिक्त हो कर आनन्द उपभोग करना चाहते, वे ब्रह्मको अपनेसे पृथक् समझ कर ब्रह्मरूपाको उपासना करना पसन्द करते हैं। किन्तु अद्वैतवादी ब्रह्माग्निमें आत्मविसर्जन करनेके लिये ही ब्रह्म नामको पसन्द करते हैं। द्वैतवाद और अद्वैतवाद इन दो विषयोंकी आलोचना करनेसे जान पड़ता है, कि द्वैतवादके पसन्द करनेसे ही संसारचक्र प्रवर्त्तित हुआ है और अद्वैतवादके पसन्द करनेसे इस संसारचक्रकी निवृत्ति हुआ करती है। जिस प्रकार पृथ्वी और सूर्यमें एक आकर्षण सम्बन्ध है—दोनों पदार्थ एक दूसरेसे आकृष्ट हो कर परस्पर मिल जानेकी चेष्टा करते हैं—जीव भी उसी प्रकार ब्रह्मके साथ मिल जानेके लिये सदा चेष्टा करता है। सूर्य पृथ्वीको अपनी तरफ लगातार खींच रहा है, किन्तु पृथ्वी उससे मिलती नहीं, सो क्यों? इसका ज्ञान हो जानेसे ही जीव जो ब्रह्मपदमें लीन नहीं हो सकता अर्थात् जीव और ब्रह्मका जो अलग अलग अर्थ रखा गया है, वह मालूम हो जायेगा। सूर्य पृथ्वीको अपने साथ मिला लेनेके लिये खींचता है और पृथ्वी भी उसी ओर आकृष्ट तो होती है, लेकिन पृथिवीकी किसी दूसरी ओर जानेकी चेष्टा है। इसी कारण पृथिवी सूर्यके साथ नहीं मिल सकती, केवल सूर्यके चारों ओर घूमती है। ब्रह्मकर्तृक जीव भी प्रतिदिन आकृष्ट होता है, किन्तु जीव उस आदिशक्तिके साथ मिलने नहीं जाता अपने सुखानुरागी हो कर दूसरी ओर चला जाता है और इसी कारण जीव संसारचक्र पथ पर घूमता रहता है। जीव भी ब्रह्मशक्तिको या तो जान कर या बे-जाने उसकी भक्ति करता है, क्योंकि जब तक जीव ब्रह्मशक्तिमें नहीं मिलेगा, तब तक वह उस आदिशक्ति द्वारा आकृष्ट होता ही रहेगा। सांख्यदर्शनमें भी लिखा है, कि जब तक मनुष्यको विवेकका ज्ञान नहीं होगा, तब तक प्रकृति उसे छोड़ ही नहीं सकती। ज्ञान उत्पन्न करा कर प्रकृति तिरोहित हो जायेगी, केवल पुरुषको ज्ञान करानेके लिये ही प्रकृति उससे मिलती है। एक बार ज्ञान हो जानेसे मनुष्यको फिर प्रकृति दर्शन नहीं होता। उस आदिशक्ति द्वारा आकृष्ट होना ही वह पसन्द करता है और इसीसे उस ब्रह्मपदार्थमें मिल कर एक होना नहीं चाहता। ब्रह्मपदार्थमें मिल जानेके सिवा कोई दूसरा लक्ष्य देख कर उसी ओर जानेकी कोशिश करता है और इसी कारण पृथिवीकी नाईं घूमता रहता है, केवल जन्ममृत्युके रूपमें दुःख भोगता है। पृथ्वीकी केन्द्राभिमुख-गतिको किसी गतिको यदि बन्द कर दिया जाय, तो पृथ्वी सूर्यसे आकृष्ट हो कर थोड़े ही दिनोंमें उससे मिल जा सकती है। उसी प्रकार जीव यदि ब्रह्मपदार्थमें मिल जानेके सिवा किसी और लक्ष्यकी ओर झुक जाय, तो थोड़े ही दिनोंमें वह ब्रह्मद्वारा आकृष्ट हो कर ब्रह्मपदमें लीन हो जा सकता है।

चाहे चेतन जगत् हो, चाहे जड़ जगत् हो सभीमें आकर्षणका नियम एक है। चेतन जीवके आकर्षणका नाम ही प्रिय, स्नेह, प्रणय और भक्ति है। यदि कोई पदार्थ दूसरे पदार्थको आकर्षण करे तथा एक आकर्षणी शक्तिके कोई दूसरी प्रतिकूल शक्ति न रहे, तो उस आकर्षणी शक्तिके वशमें वे परस्पर मिल कर एक होनेके लिये अग्रसर होते हैं और अन्तमें मिल कर एक ही हो जाते हैं। चेतन जगत्में जो प्रति-शक्तिका कार्य देखने-

में आता है उससे एक मन खोंचके वशमें आ कर दूसरे के साथ मिल कर एक हो गया है ऐसा देखनेमें नहीं आया। जीवके मनमें प्रीति है और उसके साथ साथ एक प्रतिकूल-शक्ति भी है। इसीसे जीव प्रिय हो कर भी खोंचके आधार पदार्थके साथ मिल कर एक नहीं हो सकता। प्रीतिकी प्रतिकूल-शक्तिका नाम काम है अर्थात् स्वार्थ-सुखाभिलाष है। इन दो शक्तियोंके वशसे जीव खोंचके आधार पदार्थके चारों ओर घूमा करता है। पृथिवीकी केन्द्राभिमुखगति और जीवके स्वार्थ-सुखकी प्रवृत्ति ये दोनों एकसी तुलना की जा सकती हैं।

सर्व कामना परित्याग कर केवल एक मात्र ईश्वरमें तथा अद्वैतभावमें भक्ति करो, मनके जितने प्रकारके बन्धन हैं उन्हें काट कर मनको छोड़ दो। ऐसा करनेसे ही मनकी गति ईश्वरकी ओर हो जायेगी और अन्तमें वह मन ईश्वरके साथ मिल जायगा। किन्तु जो द्वैतभावसे ईश्वरकी भक्ति करना पसन्द करते हैं, वे यदि सब कामनाओंको छोड़ भी दें, तो भी एक कामना छोड़ी नहीं जा सकती। ईश्वरमें भक्ति संस्थापन करके उनके ध्यानमें स्वयं जिस सुखका अनुभव हो सकता है, द्वैतवादी उस सुखकामनाको त्याग करनेमें समर्थ नहीं हैं। उनकी एक पृथक् अस्तित्वकी रक्षा करनेकी जो अभिलाषा है वह द्वैतवादीके मनमें रह जाती है और वे अहङ्कारशून्य नहीं हो सकते। विश्वरूप ईश्वरके सिवा हम लोगोंके पृथक् अस्तित्व है, यही ज्ञान अहङ्कार है और यही अहङ्कार निबन्धन मनुष्यको संसारचक्रको बदलता है। निष्काम ईश्वर-प्रीति-अभ्यासकी जो प्रकृत ईश्वरोपासना करना चाहते, वे ही अद्वैतवादी हैं। जिनके कोई कामना नहीं हैं, वे अपने पृथक् अस्तित्वको अलग रखना नहीं चाहते। जिन्होंने ईश्वर-प्रीतिके स्रोतमें अपनेको डुबो दिया है, वे उस स्रोतके सहारे अनन्त ब्रह्मसमुद्रमें जा मिलेंगे। किन्तु जो ईश्वर-प्रीतिरूपी नदीमें रहनेको इच्छा करते हैं उन्हें किसी न किसी आवर्त (भँवर)में रहना होता है। ईश्वर-प्रीतिरूपी नदीमें छः प्रधान आवर्त हैं। इन ६ आवर्तोंको पार करनेसे ही ब्रह्मसमुद्रमें पहुंच सकते हैं। सांख्ययोगिगण इन छः आवर्तोंको षट्‌चक्र कह कर मानते हैं। इन षट्‌चक्रोंको भेद कर ब्रह्मसमुद्रमें मिल जानेसे ही जीव मुक्ति लाभ कर सकता है। दो मनके एक साथ मिल जाना ही प्रीति-चर्चाका चरमफल है। दो मनके मिल कर एक हो जानेसे प्रीतिका वेग नहीं रहता। अद्वैतवादी कहते हैं, कि जिस भक्तिके फलसे जीव और ईश्वरकाभेद ज्ञान नहीं रहता है, वही प्रकृत ब्रह्मप्रीति है। किन्तु जो भक्ति निबन्धन जीव ईश्वरसे आकृष्ट होने पर भी भेदज्ञानको दूर करना नहीं चाहता, उसकी वह भक्ति ईश्वरके अनन्या भक्ति नहीं है। इस श्रेणीके भक्त यदि अपने अन्तरको सम्यक् आलोचना कर देखें, तो वे समझ सकेंगे कि उनके मनकी गति केवल ईश्वराभिमुखी नहीं होती। उनके सुख भोगकी वासनाका बीज उस समय भी उनके हृदयमें जाग्रत् है। मनुष्यमात्रकी ही सुखभोगकी वासना इतनी प्रबल है, कि निःस्वार्थ प्रीतिरसका आस्वादन कैसा है वह हम लोग नहीं जान सकते। अद्वैतभावकी प्रीति हम लोगोंके संसारमें अधिक वेगवती होने नहीं पाती, इस प्रकारका अधिकारी होना अनन्य सुलभ है। इसी कारण अद्वैतभावकी भक्ति किस प्रकारकी है, वह जन साधारणको मालूम नहीं। द्वैतभावके प्रणयी पृथक् पृथक् नहीं रह सकते। वे किसी दूसरे प्रणयीकी तलाशमें रहते हैं और उसे पसन्द कर उसीके साथ प्रीति करते हैं। किन्तु अद्वैतभावमें भावक अकेले रह कर स्वयं अपनेमें ही सन्तुष्ट रहते हैं, जहां द्वैतभावके स्रोतको बहते देखते हैं, वहीं उस स्रोतमें मिल जानेकी जी तोड़ कर चेष्टा करते हैं। द्वैतभावके प्रणयके मादकता-शक्तिनिबन्धन जनता अद्वैतभावको रसका ग्रहण नहीं कर सकते। इसीसे अद्वैतवाद साधारण लोगोंके मनमें प्रतिष्ठा लाभ नहीं कर सकता, उस समय भी उनकी चित्त-शुद्धिका अभाव रहता है। अतः चित्तका मालिन्य रहनेसे वस्तुका भी स्वरूप देखनेमें नहीं आ सकता। निर्मल दर्पणमें किसी पदार्थका प्रतिबिम्ब देखनेसे जैसा उस वस्तुका स्वरूपज्ञान होता है वैसा मलिन दर्पण देखनेसे नहीं होता, वरन् उसमें विकृत आकार दीख पड़ता है। इसी कारण सबसे पहले अधिकारी होना आवश्यक है। विज्ञानभिक्षुने सांख्यदर्शन-

के भाष्यमें कहा है कि ईश्वर ईश्वर करके कितना ही तर्क वितर्क क्यों न किया जाय, पर उनके स्वरूपका ज्ञान होना अत्यन्त दुरूह है। ईश्वर दुर्ज्ञेय हैं, इसीसे ईश्वर नहीं हैं ऐसा कहनेमें भी कोई आपत्ति नहीं।

"ईश्वरो हि दुर्ज्ञेयः इति निरीश्वरत्वं"

द्वैतवाद श्रेष्ठ है या अद्वैतवाद श्रेष्ठ है, यथार्थमें ईश्वरके अतिरिक्त और कोई पदार्थ है वा नहीं अथवा केवल ब्रह्म ही ब्रह्मस्वरूपमें अवस्थान करते हैं, इसकी मीमांसा कौन करेगा? ऋषिवाक्य पर विश्वास किया जाय और यदि शास्त्रको माना जाय, तो जिस प्रकार द्वैतवादका विश्वास करेंगे उसी प्रकार अद्वैतवादका भी करना होगा। तब न्यूनाधिक करनेकी कोई बात न रहेगी। सभीके वचनोंको समान भावसे मान कर उन्हींके अनुसार काम करना होगा। ऐसा नहीं होनेसे शास्त्र पर कोई विश्वास नहीं कर सकते। पर हां, शास्त्रका अभिप्राय देख कर चलना उचित है। संसारमें जन्म ले कर वा जीव उपाधियुक्त हो कर निरन्तर जिस त्रितापमें अभिभूत होता है, उस त्रितापसे उद्धार होना ही पुरुषार्थ है, जीवन्मुक्त होना ही जीवका कर्त्तव्य है। जीवनका जो प्रधान लक्ष्य है उसका प्रतिविधान ही सबसे पहले विधेय है।

प्रधान लक्ष्यकी उपेक्षा कर व्यर्थ कामोंमें समयको बिताना जीवका कर्त्तव्य नहीं है। मायाके बन्धनसे जीवकी आंखें बन्द हो गई हैं। इस बन्धनको काटना होगा इसके लिये श्रवण, मनन और निदिध्यासन अत्यावश्यक है। द्वैतवाद वा अद्वैतवादको ले कर तर्क वितर्क नहीं हो सकता। श्रवण मनन और निदिध्यासन करनेसे इसकी मीमांसा आपसे आप हो जायगी, किसीके निकट किसी उपदेशकी आवश्यकता नहीं रहेगी। उस समय द्वैतवादी वा अद्वैतवादकी सार्थकता हृदयङ्गम हो जायगी। भगवान् पतञ्जलिने ईश्वरका स्वरूप निर्देश कर ईश्वरवाचक प्रणवादि मन्त्र, जप आदिको मनःस्थैर्यका कार्य बतलाया है, अर्थात् प्रणवादि मन्त्रका जप करते करते आपसे आप मन स्थिर हो जायगा, तब फिर मन चारों ओर विक्षिप्त न हो कर ध्येय वस्तुके प्रति आसक्त हो जायगा। किन्तु पीछे उन्होंने फिर यह भी कहा है—"यथाभिमतध्यानाद्वा।" (पात० १।३९ सूत्र)

जिस किसी मनोज्ञ वस्तुसे अर्थात् जिसके मनमें आ जानेसे मन प्रफुल्ल और शान्ति होता है, एकाग्रता शिक्षाके लिये उसीका ध्यान करना चाहिये। ऐसा करनेसे एकाग्रता सिद्ध होती है। यदि रामकी मूर्त्ति अच्छी लगे, तो राममूर्त्तिका ही ध्यान करना चाहिये, यदि कृष्णकी मूर्त्ति अच्छी लगे, तो उसीकी चिन्ता करनी चाहिये और यदि बुद्धकी मूर्त्ति पसन्दमें आ जाय, तो उसीका ध्यान करना कर्त्तव्य है। तात्पर्य यह कि किसी एक अभिमत वा वाञ्छित वस्तुका अवलम्बन कर एकाग्रता सीखनी चाहिये। यह शिक्षा समाप्त हो जानेसे अर्थात् ध्येय पदार्थमें चित्तस्थैर्यका अभ्यास पड़ जानेसे वा दृढ़ हो जानेसे, तुम जहां चाहोगे वहां एकाग्र हो सकते हो। क्या अन्तर्जगत्‌का नाड़ीचक्र, क्या बहिर्जगत्‌का चन्द्र सूर्य, क्या स्थूल, क्या सूक्ष्म सभीमें चित्त प्रयोग और उनमें तन्मय हो सकता है। यही योगशास्त्रका उद्देश्य है। किसी गतिमें चित्तको स्थिर करनेसे द्वैत वा अद्वैतमें जो गड़बड़ी है वह जाती रहती है, इसमें संदेह नहीं। महामति शङ्कराचार्यने जो अद्वैतमतका विचार कर संस्थापन किया है, उसमें द्वैतमत छिपे तौर पर विराजमान है। फिर सांख्यादि दर्शनमें जो द्वैतभाव समर्थित हुआ है वह भी कुछ गौर कर देखा जाय, तो अद्वैतमतके सिवा और किसीका ज्ञान नहीं होता। सांख्यादि दर्शनके बहुपुरुष और वेदान्त दर्शनकी समष्टि व्यष्टि है, नाना भेदव्यपदेश इत्यादिमें द्वैत और अद्वैत दोनों ही सिद्ध होते हैं। मान लो, आकाश और घटाकाश, घड़ा तोड़फोड़ देनेसे जिस प्रकार घटाकाश महाकाशमें लीन हो कर एक हो जाता है, तब केवल एक ही रह जाता है। ब्रह्म अंशके रूपमें जब जीवोपाधि पाते हैं तब उसे द्वैत कहते हैं, जब जीवकी उपाधि तिरोहित हो जाती है, जब जीवचैतन्य ब्रह्मचैतन्यमें मिल जाता है, तब 'एकमेवाद्वितीय' के सिवा फिर किसीका ज्ञान नहीं होता। सांख्यमें जब पुरुषगत कोई पृथक्ता नहीं है, तब अद्वैतमत स्थापन करना उतना कठिन नहीं है जो कुछ हो, इस प्रकार द्वैत और अद्वैतको ले कर उनका विचार और मीमांसा करना अतिशय

दुरूह है तथा मानवबुद्धिका अबोधगम्य है, यह पहले ही कह चुके हैं। इनमेंसे जिन्होंने जिस मतका संस्थापन करनेकी चेष्टा की है, उन्होंने ही वह मत संस्थापन किया है। न्याय वैशेषिकने जीवात्मा और परमात्मा तथा सांख्यपातञ्जलने प्रकृति पुरुष एवं वेदान्तिकने ब्रह्म और अविद्या वा मायाको स्वीकार किया है। इन सब मतोंमें द्वैत और अद्वैत इन दो विषयोंमें केवल नामका फर्क बतलाया है और कुछ भी नहीं।

जो कुछ हो, थोड़ा इस पर और विचार करके तब शेष करेंगे। द्वैत प्रीतिरससे जिनका वैराग्य उत्पन्न हुआ है वे ब्रह्म नामक अद्वैत भक्तिका संस्थापन करके समस्त कामना सुख-दुःख-ज्ञानको विसर्जन करनेकी हमेशा कोशिश करते हैं।

"प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥"

(गीता २।५५)

हे पार्थ! जो मनोगत सभी कामनाओंका परित्याग कर जो कुछ उनके पास हैं उसीसे सन्तुष्ट रहते हैं, उन्हें स्थितप्रज्ञ कहते हैं। इस प्रकारके स्थितप्रज्ञ मनुष्य ही यथार्थमें अद्वैतज्ञानी हैं। इमारे सिवा संसारमें जितने पदार्थ हैं सभी उससे बाह्य विषय हैं।

"तस्मै सहोवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स। तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादते। रयिञ्च प्राणञ्चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति॥" (प्रश्नोपनिषद्)

ऋषिने उससे कहा, कि उस प्रजापतिने प्रजाको कामना कर तपस्या की। इस तपस्यासे मिथुन उत्पन्न हुआ। यह मिथुन अर्थात् रयि और प्राण अन्न तथा अत्ता अर्थात् जो अन्न भोग करते हैं, यही दोनों हमारी अनेक प्रकारकी प्रजा उत्पन्न करेंगी। इसी मिथुनसे संसारचक्र प्रवर्त्तित हुआ है। जो अपनेको मिथुनसे पृथक् समझते हैं, उन्हींके हृदयमें मानो प्रकृति पुरुष और विवेकका ज्ञान हुआ है तथा वे ही द्वैत प्रीतिरसमें अनासक्त हैं। अद्वैत भावमें चित्त स्थिर करना बहुत कठिन है और वह साधनाकी चरमावस्था है।

विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैतवाद और शुद्धाद्वैतवाद इन तीन प्रकारके मतोंका विषय अलग अलग बतलाया जाता है। द्वैत और अद्वैतका विषय एक साथ मिला कर कहा जा चुका है। रामानुज विशिष्टाद्वैतवादी थे। उन्होंने वेदान्तसूत्रका अवलम्बन कर विशिष्टाद्वैतवादका संस्थापन किया है। इसमें अद्वैतमतका खण्डन किया गया है। इस खण्डनमें निम्नोक्तयुक्तियां प्रदर्शित हुई हैं—

अद्वैतमतप्रवर्त्तक शङ्कराचार्यके मतावलम्बियोंका कहना है, कि एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है और श्रुतिप्रतिपाद्य है। जगत्प्रपञ्च कुछ भी सत्य नहीं, सभी मिथ्या हैं, जिस प्रकार भ्रमवश रस्सीसे सर्पज्ञान। जिस तरह रस्सीका निश्चय हो जानेसे सांपका भ्रम जाता रहता है, उसी तरह अविद्या द्वारा यह जगत्प्रपञ्च ब्रह्म ही कल्पित होता है। ब्रह्मका ज्ञान हो जानेसे ही उस अविद्याकी निवृत्ति हो कर जगत्प्रपञ्चकी निवृत्ति हो जायेगी। अविद्या भावपदार्थ है, किन्तु सत् वा असत् पदका वाच्य हो नहीं सकता, इस कारण उसे सदसद् निर्वचनीय कहते हैं। विद्या अर्थात् ब्रह्मज्ञान हो जानेसे अविद्याका नाश हो जाता है। किन्तु इस विषयमें जो उपनिषद् वाक्य अद्वैतमतावलम्बियोंने प्रमाणके रूपमें उद्धृत किया था, उससे उल्लिखित भावस्वरूप अविद्या सिद्ध नहीं हो सकती। क्योंकि श्रुतिमें जो अनृत शब्द है, उसका अर्थ है सांसारिक अल्प फलजनक कर्म और जो माया शब्द देखा जाता है, उसका अर्थ है विचित्र सृष्टिजननी त्रिगुणात्मिका प्रकृति। सुतरां उन सब श्रुतियों द्वारा अविद्या सिद्ध नहीं होती और 'मैं नहीं जानता' इस प्रकारके अनुभव द्वारा भी उक्त भावरूप अविद्या सिद्ध नहीं हो सकती। क्योंकि 'मैं नहीं जानता' इस अनुभव द्वारा ज्ञानभावका ही बोध हुआ करता है, न कि भावरूप अविद्याका। फिर उसे युक्तिसिद्ध कह कर भी स्वीकार नहीं कर सकते, कारण वह ब्रह्मज्ञानस्वरूप है, सुतरां किस प्रकार उसे आश्रय कर अविद्यारूप अज्ञान रह सकेगा। प्रकाशको आश्रय कर क्या कभी अन्धकार रह सकता है? अतएव भावरूप अविद्या अलीक और युक्तिविरुद्ध है, इसमें सन्देह नहीं। इस प्रकार जब युक्तिविरुद्ध विषयके ऊपर अद्वैतमत संस्थापित हुआ

है, तब वह किसी मतसे विज्ञ मनुष्यका आदरणीय और ग्राह्य नहीं हो सकता। रामानुजके मतसे पदार्थ तीन प्रकारका है, चित्, अचित् और ईश्वर। चित् जीवपदवाच्य, भोक्ता, असङ्कुचित, अपरिच्छिन्न, निर्मल, ज्ञानस्वरूप और नित्य है, अनादि कर्मरूप अविद्यावेष्टित भगवदाराधना और तत्पदप्राप्त्यादि जीवका स्वभाव है। केशाग्रको सौ भागोंमें विभक्त कर उसे फिर सौ भाग करनेसे वह जितना सूक्ष्म होता है, जीव भी उतना ही सूक्ष्म अचित्भोग्य है, दृश्य पदवाच्य है, अचेतन स्वरूप है, जड़ात्मक जगत् है एवं भोगत्व और विकारास्पदत्व आदि स्वभावशाली हैं। वह अचित्पदार्थ तीन प्रकारका है, भोग्य, भोगोपकरण और भोगायतन। जिसे भोग किया जाता है उसे भोग्य कहते हैं, जैसे अन्न जल आदि। जिसके द्वारा भोग किया जाता है, उसे भोगोपकरण कहते हैं, जैसे भोजनपात्रादि और जिसमें भोग किया जाता है, उसे भोगायतन कहते हैं, जैसे, शरीरादि। ईश्वर सभीके नियामक हरिपदवाच्य हैं, जगत्के कर्त्ता हैं, उपादान हैं और सभीके अन्तर्यामी हैं तथा अपरिच्छिन्न ज्ञान, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति, तेज आदि गुणास्पदतारूप स्वभावशाली हैं। चित् और अचित् उसका शरीर स्वरूप है और पुरुषोत्तम वासुदेवादि उसकी संज्ञा हैं। वे परमकारुणिक और भक्तवत्सल हैं तथा उपासकोंको यथोचित फल देनेकी इच्छासे लीलास्वरूप पांच प्रकारकी मूर्त्तियां धारण करते हैं,—प्रथम अर्चा अर्थात् प्रतिमादि, द्वितीय रामाद्यवतारस्वरूप विभव, तृतीय वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये चार संज्ञाक्रान्तव्यूह, चतुर्थ सूक्ष्म और सम्पूर्ण षड्गुण वासुदेव नामक परमब्रह्म और पञ्चम अन्तर्यामी जो सभी जीवोंके नियन्ता हैं। इस पांच मूर्त्तियोंकी क्रमशः उपासना द्वारा पापक्षय होनेसे उत्तरोत्तर उपासनाका अधिकार जन्मता है। अभिगमन, उपादान, इज्या, स्वाध्याय और योगके भेदसे भगवान्की उपासना भी पांच प्रकारकी है। देवमन्दिरका मार्जन और अनुलेपन आदिको अभिगमन, गन्धपुष्पादि पूजोपकरणके आयोजनको उपादान, पूजाको इज्या, अर्थानुसन्धानपूर्वक मन्त्र जप, स्तोत्रपाठ, नामसङ्कीर्त्तन और तत्त्वप्रतिपादक शास्त्राभ्यासको स्वाध्याय तथा देवतानुसन्धानको योग कहते हैं। इस प्रकार उपासना कर्म द्वारा विज्ञानका लाभ हो जानेसे करुणासिन्धु भगवान् अपने भक्तोंको नित्यपद प्रदान करते हैं। उक्त पद प्राप्त हो जानेसे भगवान्के यथार्थ रूपका ज्ञान हो जाता है, तब फिर पुनर्जन्मादि कुछ भी नहीं होता। चित् और अचित्के साथ ईश्वरके भेद, अभेद और भेदाभेद तीन ही हैं। देखो, जिस प्रकार विभिन्न स्वभावशाली पशु और मनुष्यमें परस्पर भेद है, उसी प्रकार पूर्वोक्त स्वभाव और स्वरूपका वैलक्षण्य क्रमशः चिदचित्के साथ ईश्वरका भी भेद स्वीकार करना होगा। फिर जिस तरह मैं सुन्दर हूं, मैं स्थूल हूं इत्यादि व्यवहार सिद्धभौतिक शरीरके साथ जीवात्माका अभेद देखा जाता है, उसी प्रकार चिदचित् सभी वस्तु ही ईश्वरके शरीर हैं, सुतरां शरीरात्मरूपमें चिदचित् सभी वस्तुओंके साथ ईश्वरका अभेद है, ऐसा भी कहना होगा। पुनः जिस प्रकार एक मात्र मृत्तिकाके ही विभिन्न घटशरीरादि नाना रूपोंमें अवस्थान करनेके कारण घटके साथ मृत्तिकाका भेदाभेद प्रतीत होता है, उसी प्रकार एकमात्र परमेश्वरके चिदचित् नाना रूपोंमें विराजमान होनेके कारण चिदचित्के साथ उसका भेदाभेद भी है, ऐसा कहना होगा। क्योंकि ईश्वरके आकार स्वरूप चिदचितका परस्पर भेद ले कर और उन दोनोंके साथ ईश्वरके शरीरात्मारूपमें अभेदवश भेदाभेद होता है। फिर देखो, जिसका जो अन्तर्यामी होता है, वही उसका शरीर कहलाता है, जिस तरह भौतिक देहका अन्तर्यामी जीव होनेसे भौतिक देह जीवका शरीर है, उसी तरह जीवके अंतर्यामी ईश्वर हैं, सुतरां जीवको ईश्वरका शरीर कहना होगा। जिस प्रकार मैं सुन्दर हूं, मैं स्थूल हूं इत्यादि व्यवहार द्वारा भौतिक शरीरमें जीवात्माका शरीरात्मभावसे अभेद प्रतीत होता है, उसी प्रकार 'तत्त्वमसि श्वेतकेतो' अर्थात् हे श्वेतकेतो! तू ही ईश्वर है, इत्यादि श्रुतिमें जीवात्माको भी ईश्वरको शरीरात्माके भावमें अभेद बतलाया है। फलतः उससे वास्तविक अभेद प्रतीत नहीं होता। अतएव इस श्रुति द्वारा जीवात्मा और परमात्माका ऐक्य स्वीकार करना तथा जगत्प्रपञ्चको झूठा बतलाना जो

केवल मूढ़ताका कार्य है, वह सहजमें अनुमित हो सकता है। श्रुतिने जहाँ ईश्वरको निर्गुण बतलाया है, उसका तात्पर्य यह कि मनुष्यको नाईं रागद्वेषादि गुण ईश्वरके नहीं हैं। फिर जहाँ उन्होंने पदार्थके नानात्व विषयों का निषेध किया है, उसका तात्पर्य यह कि ईश्वर चित्, अचित् समुदाय वस्तुकी आत्मा हैं। सुतरां सभी वस्तु ईश्वरात्मक हैं। ईश्वरसे पृथक् कोई पदार्थ नहीं है। रामानुजने इसी प्रकार विशिष्टाद्वैतवाद संस्थापन किया है और शङ्कराचार्य पर दोषारोपण करके ऐसा कहा है, कि जगत् को रज्जु सर्पवत् जानना अयुक्त है। क्योंकि सत्यस्वरूप ईश्वरको आश्रय करके असत्य नहीं रह सकता, वे सत्य सङ्कल्प हैं। जो कारण है, वही सत्य है। ईश्वर जीवके अन्तर्यामी हैं, अतः वे जीवात्मासे ठीक उसी प्रकार पृथक् हैं जिस प्रकार 'मैं' जब शरीरसे अलग हो जाता है तब अपनेको कभी कभी शरीरसे पृथक् समझते हैं। 'तत्त्वमसि श्वेतकेतो' हे श्वेतकेतो! तू ही ब्रह्म है। इस श्रुतिवाक्यका अर्थ यह है, कि हे श्वेतकेतो! तुम्हारे जीवात्माको जो अन्तरात्मा है, वे ही ईश्वर हैं। फलतः श्वेतकेतु स्वयं ईश्वर हैं, ऐसा इस वाक्यका अभिप्राय नहीं हैं। 'एकमेवाद्वितीय' इस वाक्यका तात्पर्य यह नहीं, कि केवल एक ईश्वर ही हैं और कुछ नहीं है, बल्कि इसका अर्थ यह है कि ईश्वर स्वजातीय और विजातीय भेदरहित हैं। उनका स्वजातीय वा विजातीय दूसरा कोई नहीं है। अर्थात् दो ब्रह्म नहीं हैं। एक, एवं और अद्वितीय इन तीन शब्दोंके द्वारा ही स्वजातीय और विजातीयका निराश हुआ है। यह संसार और सभी जीव उससे पृथक् हैं। अतः ब्रह्म जगत् और जीवविशिष्ट है, अर्थात् सभीमें मिले हुये हैं और प्राणके रूपमें सभीके अन्तर्यामी हैं। उनसे पृथक् कोई पदार्थ नहीं रह सकता। अतएव ईश्वरके साथ जगत् और जीवका एक प्रकारसे भेद और एक प्रकारसे अभेद भी है। शङ्करभाष्यमें और वेदान्तसूत्रमें जीवात्मा, जगत् और ब्रह्मके विषयमें जो विचार है उसमेंसे जितना अद्वैतवाद प्रकाश पाता है वह कुछ भी दोषावह नहीं है। न्याय और वैशेषिकदर्शनमें परमेश्वर, परमाणु और जीवात्मा इन तीनोंको एकसा नित्य बतलाया है। इस हिसाबसे द्वैतवाद ही दोषावह समझा जाता है। अद्वैतके मतमें पहले उसीका खण्डन है। इस मतमें ब्रह्मसे ही सब पदार्थ निकले हैं। सृष्टिके आरम्भमें दूसरा कोई पदार्थ नहीं था। अवाश्यद रामानुज स्वामीका मत इन दो मतोंके मध्यवर्तीके जैसा प्रतीत होता है और वह कितने पुरुष तथा प्रकृतिवादके जैसा है। अतः बहुतेरे मनुष्य अद्वैतवादका मनोहर तात्पर्य नहीं समझ कर ऐसा ख्याल करते हैं, कि मनुष्यात्माको ही ब्रह्म समझना यथार्थमें भूल है, मरनेके बाद जीवात्मा ब्रह्म हो जाता है, ब्रह्मसे जीवात्माको कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार कोई कोई शङ्करके मतका समर्थन करते हैं। इस मतका खण्डन करनेके लिये रामानुजने विशिष्टाद्वैत मतमें शारीरकसूत्रका भाष्य किया है।

माध्वभाष्य अथवा द्वैतवाद।—मध्वाचार्यने द्वैतवादका अवलम्बन करके वेदान्तसूत्रका भाष्य प्रणयन किया। उनके मतानुसार जीवात्मा सूक्ष्म निराकार है, अमर पदार्थ है और ईश्वरका सेवक है। "तत्त्वमसि-श्वेतकेतो" इस श्रुतिका अर्थ इस प्रकार है—हे श्वेतकेतो! तू ही ब्रह्म है। यहाँ पर कर्मधारयसमास नहीं होगा, किन्तु षष्ठीतत्पुरुषसमास द्वारा 'तत्' शब्दका अर्थ 'तस्य' ऐसा होगा। अतएव उक्त वाक्यका अर्थ यों होगा—'श्वेतकेतो! तस्य त्वं असि।' तुम उसीके हो, अर्थात् तुम उसीके नियत सेवक सहचर और अनुचर हो। सुतरां जीव ब्रह्म नहीं है। इस मतके अनुसार परमेश्वर स्वतन्त्र अर्थात् पूर्ण स्वाधीन हैं। जीव अस्वतन्त्र अर्थात् परमेश्वराधीन है। जो जीव और ईश्वरमें अभेद समझ कर अर्थात् अद्वैतभावमें केवल ईश्वरकी उपासना करते हैं, वे अन्तमें नरकको प्राप्त होते हैं। जगत् ब्रह्म भी नहीं है, भ्रम भी नहीं है, अद्वैतवादी लोग जाज्वल्यमान जगत्को जो रज्जु सर्पवत् समझते हैं तथा जीवको ही ब्रह्म मानते हैं वह युक्तिसंगत नहीं है। अतएव जगत् और जीव सत्य है तथा ब्रह्मसे पृथक् है। 'एकमेवाद्वितीयं' अद्वैतवादी इस श्रुतिका अर्थ इस प्रकार करते हैं—ब्रह्म ही एक तथा अद्वितीय है, अर्थात् जिनसे पृथक् कोई वस्तु नहीं है वे ही अद्वितीय हैं। अद्वैतवादियोंके इस प्रकारके

अर्थानुसार जगत् और जीवका नहीं होना साबित होता है। अतएव इस प्रकारका अर्थ नितान्त असङ्गत है। 'एकमेवाद्वितीय" इस श्रुतिमें 'एक' इस शब्दका अर्थ एक है अर्थात् बहुत नहीं, 'एक' शब्दका अर्थ अन्ययोगव्यवच्छेदक अथवा इतरव्यवच्छेदक अर्थात् अन्य सम्बन्धाभाव है। अन्य जो द्वितीयादि है उनके साथ सम्बन्धका अभाव है। जिस प्रकार कतिपय पदार्थोंको एक, दो, तीन, चार करके गिननेसे इसका प्रत्येक अंक ही अन्ययोगव्यवस्थापक अर्थात् अन्यसे स्वतन्त्र है, उसी प्रकार परमेश्वरका एकत्व, दो, तीन, चार आदि अन्यान्य राशियोंसे स्वतन्त्र है। 'एव' शब्दका और एक अर्थ है वह है अयोग्यव्यवच्छेदक अर्थात् जिससे सर्वदा एकत्वयुक्त हो अर्थात् जो दृढ़ पदार्थ हैं, जिन्हें अनेक भागोंमें विभक्त नहीं कर सकते और जो स्वरूपतः अनेक नहीं हो सकते हैं। शङ्खका पाण्डुवर्ण जैसा स्वभाव है, परमेश्वरके एकत्वका भी वैसा ही स्वभाव है। अतएव वे अद्वितीय हैं, द्वितीय शब्दका अर्थ यहां जगत् और जीव में वे ही प्रथम है, वे ही प्रथमावधि हैं, जगत् और जीव उन्हींके सृष्टि हैं, अतएव वे स्रष्टा हो कर सृष्ट वस्तु नहीं हो सकते, सुतरां वे अद्वितीय हैं। यहां पर 'अ' शब्दका अर्थ न है अर्थ वे 'न द्वितीय" 'स द्वितीयं न' है, द्वितीय जो सृष्ट जगत् और जीव है सो वे नहीं हैं। जैसे 'ब्राह्मणादन्य अब्राह्मणः' ब्राह्मणसे जो अन्य है उसे जिस तरह अब्राह्मण कहते हैं, उसी तरह द्वितीयादन्यः अद्वितीयः' द्वितीय अर्थात् जगत् और जीवसे जो जो अन्य हैं, वे ही अद्वितीय हैं। अब 'एकमेवाद्वितीय" श्रुतिका अर्थ यह हुआ कि परमेश्वर एक ही हैं, एकके सिवा अनेक नहीं हैं तथा वे जगत् और जीवसे भिन्न हैं। अद्वैतवादी लोग कहते हैं, कि 'नेह नानास्ति किञ्चन' परमेश्वरसे भिन्न और कुछ नहीं है, लेकिन यह अर्थ असङ्गत है। इस श्रुतिका अर्थ ऐसा होना चाहिये—इस एक ब्रह्ममें नाना पदार्थ नहीं हैं। अद्वैतवादी लोग जगत्को जो ब्रह्ममें अध्यास करते हैं, इससे वह बात भी खण्डित होती है। फिर अद्वैतवादीने माया, अविद्या, अज्ञान आदिका जो कष्टसाध्य अर्थ लगाया है मध्वाचार्य उसे स्वीकार नहीं करते हुए कहते हैं, कि उन सब शब्दोंका अर्थ केवल ईश्वरकी सृष्टिशक्ति मात्र है। उनके मतसे अद्वैतवादियोंने कष्टकल्पना कर व्यासकृत वेदान्तसूत्रका जो अर्थ लगाया है वह अश्रद्धेय है। इस मतसे जीव सूक्ष्म और ईश्वर सेवक है, वेद अपौरुषेय, सिद्धार्थबोधक और स्वतःप्रमाण है; प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम इन तीन प्रमाणों द्वारा सब अर्थ सिद्ध हुआ करते हैं। इन सब विषयोंमें पूर्णप्रज्ञ, मध्वाचार्य और रामानुज इन तीनोंका मत एक है। किन्तु रामानुजने जो भेद, अभेद और भेदाभेद इन तीन तत्त्वोंको स्वीकार किया पूर्णप्रज्ञने वह नहीं किया। वे कहते हैं: रामानुजने पूर्वोक्त विरुद्ध तीनों तत्त्वोंको अङ्गीकार कर शङ्कराचार्यके अद्वैतमतकी प्रतिपोषकता की है, अतएव उनका मत अत्यन्त अश्रद्धेय है। आनन्दतीर्थने शारीरक मीमांसाका जो भाष्य किया है, उस ओर दृष्टिपात करनेसे जीव और ईश्वरमें जो परस्पर भेद है, उसमें तनिक भी संशय नहीं रहता। उस भाष्यमें एक जगह लिखा है, "स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो" इस श्रुतिका जीव और ईश्वरमें परस्पर भेद नहीं है, ऐसा तात्पर्य नहीं; बल्कि 'तस्य त्वं" अर्थात् उन्हींका तू है ऐसा तात्पर्य है, षष्ठीसमास द्वारा इसमें जीव ईश्वरका सेवक समझा जाता है। फिर इसका ऐसा भी अर्थ किया जा सकता है, कि जीव ब्रह्मसे भिन्न हैं। इस मतसे दो ही तत्त्व है, स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र। इनमेंसे भगवान् सर्वदोष-विवर्जित अशेष सद्गुणोंके आश्रय स्वरूप हैं, अतः वे ही स्वतन्त्रतत्त्व हैं और जीवगण अस्वतन्त्रतत्त्व अर्थात् ईश्वरायत्त हैं। इस प्रकार सेव्यसेवकभावावलम्बी ईश्वर और जीवका जो भेद है, वह भी उसी तरह युक्तिसिद्ध है, जिस तरह राजा और नौकरमें परस्पर भेद देखा जाता है। अतएव जो जीव और ईश्वरकी अभेद चिन्ताकी उपासना किया करते हैं तथा उस उपासनाका अनुष्ठान करते हैं उन्हें परलोकमें कुछ भी सुख नहीं मिलता। यदि कोई नौकर राजपद पानेकी इच्छा करे अथवा मैं राजा हूं ऐसा अपनेको समझे तो राजा उसे भारी दण्ड देते हैं। फिर जो मनुष्य अपना अपकर्षद्योतनपूर्वक राजाका गुणानुकीर्त्तन करता है, राजा खुश हो कर उसे समुचित पारितोषिक देते

है। अतएव ईश्वरके गुणोत्कर्षादिके कीर्त्तनरूप सेवाके अतिरिक्त कोई अभिलषित फल प्राप्त होनेकी सम्भावना नहीं। इस मतसे ईश्वरकी सेवा तीन प्रकारकी है— अङ्कन, नामकरण और भजन। इनमेंसे अङ्कनकी पद्धति साकल्यसंहिताके परिशिष्टमें विशेष रूपसे लिखी गई है और उसकी अवश्यकर्त्तव्यता तैत्तिरीयक उपनिषद्में प्रतिपादित हुई है। नारायणके चक्रादि अस्त्रका चिह्न जिससे अङ्गमें चिरकाल तक विराजित रहे तप्त लौहादि-यन्त्र द्वारा वैसा ही करना चाहिये। दाहिने हाथमें सुदर्शनचक्रका और बायें हाथमें शङ्खका चिह्न धारण करना चाहिये। ऐसा करनेसे उस चिह्नको देख कर भगवान्‌का स्मरण हमेशा होता रहेगा और वाञ्छित फलकी भी सिद्धि होगी। द्वितीय सेवा नामकरण है। इसमें अपने पुत्रोंका केशवादि नाम रखना चाहिये, इसके बाद पीछे ईश्वरका नामकीर्त्तन हुआ करेगा। तीसरी सेवा भजन है। इसमेंसे कायिकभजन तीन प्रकारका है— दान, परित्राण और परिरक्षण। वाचिक चार प्रकारका है—सत्य, हित, प्रिय और स्वाध्याय अर्थात् शास्त्रपाठ। मानसिक तीन प्रकारका है—दया, स्पृहा और श्रद्धा। जैसे—

"सम्पूज्य ब्राह्मणं भक्त्या शूद्रोऽपि ब्राह्मणो भवेत्।"

इस वाक्य द्वारा शूद्र भी यदि भक्तिपूर्वक ब्राह्मणकी पूजा करे, तो वह ब्राह्मणकी पवित्रतादि गुणविशिष्ट हो सकता है, ऐसा अर्थ होता है। उसी प्रकार "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" इस श्रुतिवाक्य द्वारा ब्रह्म और ब्राह्मण-में कुछ भेद न रह कर ऐसा अर्थ समझा जायगा कि ब्रह्मज्ञानी मनुष्य ब्रह्मके जैसा सर्वज्ञत्वादि गुणसम्पन्न होते हैं। श्रुतिमें माया, अविद्या, नियति, मोहिनी प्रकृति और वासना इन छः शब्दोंका प्रयोग है, जिनका अर्थ भगवान्‌की इच्छामात्र है। अद्वैतवादियोंकी कल्पित अविद्या नहीं है। फिर जो प्रपञ्च शब्द कहा गया है उसका अर्थ प्रकृष्ट पञ्च भेद है। वे पञ्चभेद ये हैं—जीवेश्वर भेद, जड़ेश्वरभेद, जड़जीवभेद और जीवोंका तथा जड़ पदार्थोंका परस्पर भेद। वह प्रपञ्च सत्य एवं अनादि सिद्ध है। विष्णुका सर्वोत्कर्ष प्रतिपादन करना सभी आगमका प्रधान उद्देश्य है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ हैं। इनमेंसे मोक्ष ही नित्य है और शेष तीन पुरुषार्थ अस्थायी हैं। अतएव प्रधान पुरुषार्थ मोक्षकी प्राप्तिके लिए कोशिश करना सभी बुद्धिमान् मनुष्योंका मुख्य कर्त्तव्य है। किन्तु ईश्वर-को प्रसन्न किये बिना मोक्षलाभ नहीं हो सकता और बिना ज्ञानके प्रसन्नता भी नहीं हो सकती। ज्ञानशब्द-से विष्णुके सर्वोत्कर्ष ज्ञानका बोध होता है। केवल मन्दबुद्धि व्यक्ति ही जीवप्रेरक विष्णुको जीवसे पृथक् नहीं समझ सकते। बल्कि सुबुद्धि व्यक्तियोंके अन्तःकरणमें विष्णु और जीवका परस्पर भेद है, यह स्पष्ट रूपसे प्रतीत होता है। ब्रह्मा, शिव, इन्द्र आदि सभी देवगण अनित्य, क्षरशब्द वाच्य और लक्ष्मी अक्षर शब्दवाच्य हैं। उस क्षराक्षरसे विष्णु प्रधान हैं और स्वातन्त्र्य शक्ति विज्ञानसुखादि गुणसमूहकी आधार स्वरूप हैं, दूसरे सभी विष्णुके अधीन हैं। इन सबका सम्यक्-ज्ञान हो जानेसे विष्णु के साथ सहवास होता है। सभी दुःख दूर हो जाते हैं तथा नित्य सुखका उपभोग होता है। श्रुतिमें लिखा है, कि एक वस्तुका अर्थात् ब्रह्मका तत्त्वज्ञान हो जानेसे सभी वस्तुका ज्ञान हो सकता है। तात्पर्य यह है कि जिस तरह ग्रामस्थ प्रधान व्यक्तियों-को जान सकनेसे ग्राम जाना जाता है और पिताको जान लेनेसे पुत्र जाना जाता है, अर्थात् पुत्रको जानने-की और अपेक्षा नहीं रहती है, इत्यादि। अद्वैतमत वादी व्यासकृत वेदान्तसूत्रका जो कूट अर्थ लगाते हैं, वह कुछ नहीं है। वह सूत्र सभीके मध्य कई एक सूत्रोंको यथाश्रुत व्याख्याके रूपमें लिखा गया। जैसे— "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" इस सूत्रमें 'अथ' शब्दके तीन अर्थ हैं, आनन्तर्य, अधिकार और मङ्गल। फिर 'अतः' इस शब्दका अर्थ है हेतु, यह गरुड़पुराणके ब्रह्मनारद सम्वादमें लिखा है। जब नारायणको प्रसन्न किये बिना मोक्ष नहीं होता तथा उनका ज्ञान हुए बिना प्रसन्नता नहीं होती, तब ब्रह्मजिज्ञासा अर्थात् ब्रह्मको जाननेकी इच्छा करना हरएकका अवश्यकर्त्तव्य है। यही उस सूत्रका फलितार्थ है। 'जन्माद्यस्य यतः' इस सूत्रमें ब्रह्मका लक्षण लिखा है जिसका अर्थ है—जिससे इस जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और संहार हुआ करता है, तथा जो

नित्य निर्दोष अशेष सद्‌गुणसम्पन्न हैं वही नारायण ब्रह्म हैं। इस प्रकारके ब्रह्मका प्रमाण क्या है? ऐसा पूछने पर कहा है, 'शास्त्रयोनित्वात्'। शास्त्र सभी निरन्तर ब्रह्ममें प्रमाण हैं, अतः ब्रह्म ही सभी शास्त्रोंके प्रतिपाद्य हैं। किस प्रकार ब्रह्मका शास्त्रप्रतिपाद्यत्व स्वीकार किया जा सकता, इस आशङ्का पर कहा है 'तत्तु समन्वयात्' सभी शास्त्रोंके उपक्रम और उपसंहारमें ब्रह्मके ही प्रतिपादित होनेसे उस आशङ्काका समन्वय अर्थात् समाधान हुई है।

पूर्णप्रज्ञ इस प्रकार आनन्दतीर्थके भाष्यका अवलम्बन कर ये सब विषय निबद्ध कर गये हैं। मध्वमन्दिर और मध्व ये दो पूर्णप्रज्ञकी संज्ञा हैं।

वल्लभाचार्यका शुद्धाद्वैतवाद—वल्लभाचार्य पञ्चदश शताब्दीमें अर्थात् शङ्कराचार्यके आठ सौ वर्ष पीछे आविर्भूत हुए। इन्होंने वेदभाष्यके विष्णुस्वामीके शुद्धाद्वैत मतानुसार वेदान्तसूत्रका भाष्य किया है। इनके मतसे जगत् और जीव मायाविशिष्ट नहीं हैं, किन्तु स्वयं ईश्वरका परिणाम है। शङ्कराचार्यके मतावलंबी अद्वैतवादिगण जिस तरह जगत्‌को 'रज्जुसर्पवत्' मान कर ब्रह्ममें अध्यास करते हैं, उसे वे स्वीकार नहीं करते। किन्तु ये जगत् और जीवको ब्रह्मके साथ बिलकुल अभेद मानते हैं। 'रज्जुसर्पवत्' वा 'शुक्तिकारजतवत्' शब्दके बदलेमें ये 'अहिकुण्डलवत्' अथवा 'स्वर्णकुण्डलवत्' इत्यादि उपमाओंका व्यवहार करते हैं अर्थात् जिस तरह सर्पसे सर्पका कुण्डल पृथक् नहीं है उसी तरह स्वर्णसे स्वर्णालङ्कार पृथक् नहीं। वल्लभके मतसे इस जगत्‌के सभी पदार्थ और सभी जीव ब्रह्म हैं। इस मतको शङ्कराचार्यके मतावलम्बी कितने नवीन अद्वैतवादियोंने भी माना है।

इस प्रकार जो जैसा समझते हैं उन्होंने उसीके ऊपर निर्भर कर द्वैत और अद्वैतका मत संस्थापन किया है। कितनी श्रुतियोंसे तो मालूम होता है, कि ब्रह्म ही जगत् और जीवात्माके रूपमें परिणत हुए हैं, फिर कितनी श्रुतियां ऐसी भी हैं जिन्हें पढ़नेसे जाना जाता है कि ब्रह्म, जीव और जगत् ये सब पृथक् हैं। न्याय और वैशेषिक-दर्शन तथा सांख्यपातञ्जलशास्त्रमें द्वैतवाद स्वीकृत हुआ है। सूत्रके मध्य द्वैतवाद मिश्रित और अद्वैतवाद गूढ़ भावसे मिश्रित है। किन्तु शङ्कराचार्यने जिस प्रणाली पर शारीरक भाष्य किया है, उसके पढ़नेसे सहसा बोध होता है कि परमात्माके सिवा मानवका कोई स्वतन्त्र जीवात्मा नहीं है। पर जीवात्मा यह नाम जो सुना जाता है, वह केवल नाममात्र है अर्थात् उनकी उपाधि है। इस मतसे संसार भोजविद्याकी तरह मिथ्या माया है, सभी मानो ऐन्द्रजालिक व्यापार हैं, ब्रह्मज्ञान होनेसे ही ये सब तिरोहित हो जायगे।

द्वैत और अद्वैतवादका विषय एक तरहसे कहा गया। अद्वैतवादका विशेष विशेष विवरण शङ्कराचार्य और वेदान्त शब्दमें लिखा है। द्वैत और अद्वैत मत ले कर जो विवाद चला आ रहा है उसकी मीमांसा करना असम्भव है। लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है, कि शास्त्रमें जो सब बातें लिखी हैं, वे सभी भ्रान्त वा असत्य नहीं हैं। ईश्वरका जो एकत्व है उसका बोध होता है, शून्यगर्भ एकत्व नहीं है। किन्तु वैचित्र्यगर्भ एकत्व है अर्थात् ईश्वरने अपने अभ्यन्तरस्थित वैचित्र्यबीजको अपनी ऐसी शक्ति द्वारा जगत् रूपमें विकसित किया है, यही सृष्टि है। वेदान्तमें लिखा है कि जिस तरह मकड़ी अपने अन्तर्भूत उपादानसे अपनी इच्छानुसार जाल फैलाती है, ब्रह्म भी उसी तरह अपने अभ्यन्तरसे सृष्टि उत्पादन करते हैं। यथार्थमें यह है, कि ईश्वरकी शक्ति ईश्वरसे अवश्य अभिन्न है। अतएव ईश्वरका एकत्व शून्यगर्भ एकत्व नहीं है, वैचित्र्यगर्भ एकत्व है। मूल वैचित्र्य जो ईश्वरके एकत्वके अन्तर्भूत है उसीको कोई माया, कोई अविद्या, कोई प्रकृति मानते हैं। परमेश्वरकी ऐशीशक्ति ही जगत्‌के समस्त वैचित्र्यका मूल है और वह शक्ति ब्रह्मसे पृथक् नहीं है। कहनेका तात्पर्य यह कि वैचित्र्य सम्भावनाका मूल है। चाहे जो जैसा नाम क्यों न रख लें, माया, प्रकृति वा शक्ति किसी नामसे क्यों न पुकारें, नामसे कुछ होता जाता नहीं। वैचित्र्य सम्भावनाका एक मूल ईश्वरके अन्तर्भूत है, इसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। इस प्रकार एकत्व वा बहुत्व माननेसे

द्वैत और अद्वैतवादमें कोई गड़बड़ी रहने नहीं पाती। परमेश्वर अनन्तरूपमें सगुण और निर्गुण दोनों ही हैं तथा द्वैत और अद्वैत सब कुछ वे ही हैं। वेदान्त-शास्त्रमें लिखा है कि ईश्वरकी शक्तिका केवल एक पाद संसारमें व्ययित हुआ है और अवशिष्ट तीन पादोंमें जगत्का अतीत है अर्थात् ईश्वरका स्वरूपाश्रित है किन्तु जगत्को ईश्वर माननेसे यही समझा जायगा कि ऐशीशक्तिके ही चतुष्पाद हैं। ऐसा होनेसे स्वयं ईश्वर ही जगत् रूपमें परिणत हैं, ऐसा समझा जाता है, किन्तु श्रुति और ज्ञान दोनों ही इसके विरोधी हैं। ईश्वर कालातीत पुरुष हैं, जगत् उनका कालिक प्रतिरूप है। सुतरां उनके कालातीत स्वरूपसे जो कालिक प्रतिरूप भिन्न हैं ऐसा समझना गलत है। उस स्वरूप और प्रतिरूपके मध्य अतीव घनिष्ट सम्बन्ध विद्यमान है। क्योंकि जो प्रतिरूप है वह स्वरूपका ही प्रतिरूप है। इस प्रकार एक ओर ईश्वर और जगत्की भिन्नता अर्थात् द्वैतभाव है, तथा दूसरी ओर दोनोंका घनिष्ट-सम्बन्ध अर्थात् अद्वैतभाव सम्पूर्णरूपसे प्रकट होता है। द्वैतवाद और अद्वैतवाद दोनों ही वर्त्तमान हैं। द्वैतवाद शुद्ध केवल यही है कि ब्रह्मका कालिकप्रतिरूप ईश्वरके कालातीत स्वरूपसे भिन्न है।

शंकराचार्य, रामानुज, मध्वाचार्य और वेदान्त देखो।

द्वैतवादिन् (सं० त्रि०) द्वैतं जीव ईश्वरश्च इति वदति वद-णिनि। जीव और ईश्वरके भेदवादी, ईश्वर और जीवमें भेद माननेवाला।

द्वैताद्वैत (सं० क्ली०) द्वैतश्च अद्वैतश्च। जीव और ईश्वरका भेद और अभेद जो जीव और ईश्वरके भेद तथा अभेद दोनोंको ही मानते हैं उन्हें द्वैताद्वैतवादी कहते। उनके मतसे जीवके साथ ईश्वरका भेद भी है और अभेद भी।

यथार्थमें जो द्वैत भी नहीं है और अद्वैत भी नहीं वही पारमार्थिक सत्य है। और वे ही द्वैत और अद्वैत हैं। जो इस तरह ईश्वरके स्वरूपज्ञान लाभ कर सकते हैं, वे परम पद पाते हैं।

द्वैतिन् (सं० त्रि०) द्वैतं भेदः सत्यतया अस्त्यस्य इनि। द्वैतवादी नैयायिक प्रभृति।

द्वैतीयीक (सं० त्रि०) द्वितीय तीयादीकक्, वा स्वार्थे ईकक्। द्वितीय, दूसरा।

द्वैधम् (सं० अव्य०) द्वि-प्रकारे धमुञ्। प्रकारद्वय, दो तरहसे।

मनुने लिखा है, कि कार्यार्थ सिद्धिके लिये स्वामी और बल इन्हीं दो स्थितिका नाम पण्डितोंने 'द्वैधम्' बतलाया है।

द्वैध (सं० अव्य०) द्वि धा (संख्याया विधार्थे-धा। पा ५।३।४५) १ द्विप्रकार, दो तरहसे। (पु०) २ विरोध, परस्पर विरोध।

द्वैधीभाव (सं० पु०) अद्वैधस्य द्वैधस्य भावः। द्वैध-च्वि-भू-भावे घञ्। १ द्विधाभाव, विरोध, परस्पर विरोधी। २ षड्गुण्यान्तर्गत द्वैधरूप भाव, राजनीतिके षड्गुणोंमेंसे एक जिसमें प्रकट स्वभाव रखना पड़ता है अर्थात् मुख्य उद्देश्य गुप्त रख कर दूसरा उद्देश्य प्रगट किया जाता है अर्थात् भीतर कुछ और भाव बाहर कुछ और।

अग्निपुराणमें लिखा है, कि बलवान् शत्रुके निकट वाक्यसे आत्मसमर्पण कर काकचक्षुकी नाईं सर्वदा द्वैधीभावसे रहना चाहिये अर्थात् कौवेकी आँखें जिस तरह चारों ओर रहती हैं उसी तरह बलवान् शत्रुके निकट बहुत सावधानीसे रहना चाहिये।

द्वैप (सं० पु०) द्वैपिनो विकार द्वैपं द्वैप-अञ् (प्राणि-रजतादिभ्यो अञ्) १ व्याघ्रविकार, बाघसे सम्बन्ध रखनेवाली या बाघसे निकली या बनी हुई वस्तु। (क्ली०) २ व्याघ्रचर्म, बाघका चमड़ा। द्वीपेन चर्मणा परिवृतो रथः इति पुनरञ्। (द्वैपवैयाघ्रादञ्। पा ४।२।१२) ३ व्याघ्रचर्म द्वारा आवृत रथ, बाघके चमड़ेसे ढका हुआ रथ। द्विपिन इदं अण्। (त्रि०) ४ द्वीपसम्बन्धी, बाघके चमड़ेका।

द्वैपक (सं० पु०) द्वीपे भवः धूमादित्वात् वुञ्। द्वीपभव, जो द्वीपान्तरमें हो।

द्वैपदिक (सं० पु०) द्विपदां ऋचं वेद अधीते वा उक्थादित्वात् ठक्। १ द्विपदाध्यायी, द्विपदा ऋक् पढ़नेवाला। २ तद्वेत्ता, द्विपदा ऋक् जाननेवाला।

द्वैपायन (सं० पु०) द्वीपं अयनं उत्पत्तिस्थानं यस्य, स एव, स्वार्थे प्रज्ञादित्वात् वा अण्। व्यासदेव। इन

का जन्म यमुनानदीके किनारे एक द्वीपमें हुआ था, इसीसे इनका नाम द्वैपायन पड़ा है।

महाभारतमें लिखा है कि सत्यवतीने पराशरसे वर पा कर उन्हींके साथ अपनी इच्छा पूरी की जिससे उन्हें गर्भ रहा। उसी समय उस गर्भसे व्यासका जन्म हुआ। वीर्यमान् पाराशर्यने उसी यमुनाद्वीपमें जन्मग्रहण किया। इन्होंने माताकी आज्ञा ले कर घोर तपस्या की थी। जन्म हो जानेके बाद ये द्वीपमें फेंक दिये गये थे, इसीसे इनका नाम द्वैपायन हुआ है। वेदव्यास देखो। २ ह्रदविशेष। इसमें दुर्योधन पाण्डवोंके भयसे भाग कर छिपा था। कुरुपाण्डवकी लड़ाईमें जब सब वीर मारे गये तब दुर्योधन बहुत मुश्किलसे यहां भाग आये थे।

द्वैपारायणिक (सं॰ पु॰) द्वयोः पारायणयोः समाहारः द्विपारायणं वर्त्तयति ठञ्, प्रत्ययविधौ तदन्तग्रहण प्रतिषेधेऽपि संख्यापूर्वस्य तदन्तग्रहणं। पारायणद्वय-वर्त्ती, दो पारायण व्रतानुष्ठान करनेवाला।

द्वैप्य (सं॰ त्रि॰) द्वीपे भवं द्वीपस्य इदं वा द्वीप-यञ्, (द्वीपादनुसमुद्रं यञ्। पा ४।३।१०, द्वीप सम्बन्धीय।

द्वैभाव्य (सं॰ त्रि॰) १ द्विभावयुक्त, जिसके दो भाव हो। २ जो दो भागोंमें विभक्त हो।

द्वैमातुर (सं॰ पु॰) द्वयोर्मात्रोरपत्यं द्विमातृ-अण्-उत्वञ्च (मातुरुत्संख्यासंभद्रपूर्वायाः। पा ४।१।११५) गणेश। गणेशके द्विमातृत्वका विषय स्कन्दपुराणके गणेशखण्डमें इस प्रकार लिखा है—

हे ब्राह्मण! वरेण्य राजाके घरमें त्रैलोक्यकी रक्षाके लिये, विघ्नको शान्त करनेके लिये साधुओंकी रक्षाके लिये और स्वभक्तोंको पालनेके लिये मैं जन्म लूंगा। इतना कह कर गणेशने पुष्पिका देवीके गर्भमें प्रवेश किया था। जब नवां महीना आया, तब पुष्पिकाने एक शिशु सन्तान प्रसव की जिसके चार बाहु, हाथी सरीखा शरीर और दांत थे। आंखें सुन्दर थीं और शरीर तेजोमय था तथा चारों हाथोंमें चार शस्त्र लिए हुए थे। पुष्पिका इस अद्भुत शिशुको देख कर रोने लगी कि यह क्या अरिष्ट उपस्थित हुआ! राजा वरेण्य पुष्पिकाका क्रन्दन सुन कर अमात्योंके साथ वहां आ पहुंचे और बालककी आकृतिको देख कर डर गये। बाद उन्होंने नौकरोंसे कहा कि, 'पार्श्वमुनिके आश्रमके पास एक जलाशय है वहीं तुम लोग इसे फेंक आओ।' नौकर भी राजाके आज्ञानुसार बालकको उक्त तालाबमें फेंक आया। दूसरे दिन पार्श्वमुनि जब स्नान करनेके लिये जलाशय पर गये तो उस अद्भुत बालकको देख अत्यन्त आश्चर्यान्वित और भयभीत हो पड़े। 'मेरे आश्रममें इस बालकको कौन फेंक गया है? मालूम पड़ता है, कि किसी देवताने तपस्याका फल देनेके लिये ऐसा शरीर धारण किया है अथवा स्वयं परमात्माने अपनी इच्छानुसार सब मनुष्योंकी रक्षाके लिये ऐसा परिग्रह धारण किया है।' ऐसा कह कर पार्श्वमुनि उस बालकको अपने आश्रममें ले जा कर यत्नपूर्वक पालने लगे। बालक-को देख कर मुनीकी स्त्री दीपवत्सलाने अपने स्वामीसे कहा था, 'हे स्वामिन्! आप अत्यन्त आश्चर्य रूपधारी जिस बालकको आज घर लाये हैं, व विनायकके समान आकारधारी हैं, लक्ष्मीके आस्पदस्वरूप हैं, बहुत तपस्याके फल हैं और योगियोंके सदा ध्येय सनातन परब्रह्म हैं, सूर्य इन्हींसे तेज ले कर हम लोगोंको प्रकाश देते हैं। वेदान्तमें इन्हींको 'नेति नेति' कहते हैं, ये नहीं हैं ये नहीं हैं।' ऐसा कह कर दीपवत्सलाने उस शिशुको गोदमें ले कर स्तन पिलाया। द्वितीयाके चन्द्रमाकी नाईं वह बालक प्रतिदिन बढ़ने लगा। गणेश पुष्पिकाके गर्भसे जन्मग्रहण कर दीपवत्सलासे पाले पोसे गये थे, इसीसे इनका एक नाम द्वैमातुर पड़ा है। २ जरासन्ध। जरासन्ध देखो। (त्रि॰) ३ द्विमातृज, जिसके दो माताएं हों।

द्वैमातृक (सं॰ पु॰) द्वे मातृके इव यस्यास द्विमातृकः स एव स्वार्थे अण्। नदीवृष्टिजलजनित शस्यप्रधान देश, वह भूमि या देश जहां खेती नदीके जल द्वारा भी की जाती है और वर्षा भी होती है।

द्वैमित्रि (सं॰ पु॰) दो मित्र वा मित्रके पुत्र।

द्वैयह्नकाल्य (सं॰ त्रि॰) द्व्यह्नरूपः कालो यस्य तस्य भावः ष्यञ्, पदान्ताभ्यां द्वाभ्यां पूर्वमैच्। द्व्यह्नकाल जातका भाव, जो दो दिनोंमें हो उसका भाव।

द्वैयह्निक (सं॰ त्रि॰) द्वयो रह्नोर्भवः पचे ठञ्, समासान्त विधेरनित्यत्वात् न टच् ततो अह्नादेशः। जो दो दिनमें किया जाय या दो दिनका हो।

द्वैयाहाविक (सं॰ त्रि॰) द्वयोराहावयो निपानयोर्भवः धूमादित्वात् वुञ्, ततो ऐच्। जिसमें दो निपान या हौज हो।

द्वैयोग्य (सं॰ क्लो॰) द्विसंयुक्त, जिसमें दो मिला हो।

द्वैरथ (सं॰ क्लो॰) द्वे रथो यत्र युद्धे स्वार्थे अण्। दो रथ द्वारा उपलक्षित युद्ध, वह लड़ाई जो दो रथों द्वारा की जाय।

द्वैराज्य (सं॰ क्लो॰) वह राज्य जो दो राजाओंमें विभक्त हो।

द्वैरात्रिक (सं॰ त्रि॰) द्वयो रात्र्योर्भवः 'द्विगोर्वा रात्राहः संवत्सराच्च' इति सूत्रेण पक्षे ठञ्। जो दो रातमें हो।

द्वैराश्य (सं॰ क्लो॰) द्वौ राशी यस्य, तस्य भावः ष्यञ्। द्विविधराशियुक्तत्व, दो तरहकी राशियोंके मिले रहनेका भाव।

द्वैवर्षिक (सं॰ त्रि॰) द्वैवात्सरिक, जो दो वर्षके बाद हो।

द्वैविध्य (सं॰ क्लो॰) द्विविधस्य भावः ष्यञ्। १ प्रकारद्वय, दो प्रकार होनेका भाव। २ भ्रम, दुबधा।

द्वैशाण (सं॰ त्रि॰) द्वाभ्यां शाणाभ्यां क्रीतं ठञ्, तस्य अलुक्। दो शाण द्वारा क्रीत, जिसके खरीदनेमें दो शाण लगे हों।

द्वैपर्णीया (सं॰ स्त्री॰) द्वैपर्णमेव स्वार्थे अण्, द्वैपर्णं तदर्हति छ। नागवल्लीका एक भेद।

द्वैसमिक (सं॰ त्रि॰) द्वयोः समयोर्वर्षयोर्भवः समायाः यत्, पक्षे ठञ्। वर्षद्वयभव, जो दो वर्षमें हो।

द्वैहायन (सं॰ क्लो॰) द्विहायनस्य भावः युवादित्वादण्। दो वर्षका भाव।

द्व्यंश (सं॰ क्लो॰) द्वयो वंशयोः समाहारः, पात्रादित्वात् न ङीप्। भागद्वय, दो भाग।

द्व्यक्ष (सं॰ त्रि॰) द्वे अक्षिणी यस्य ष समासान्तः। नेत्रद्वययुक्त, जिसके दो आँखें हों।

द्व्यक्षर (सं॰ क्लो॰) द्वयोरक्षरयोः समाहारः। १ वर्णद्वय, दो अक्षर। द्वे अक्षरे यत्र। २ वर्णद्वयात्मक मन्त्रभेद, एक प्रकारका मन्त्र जिसमें केवल दो अक्षर हों।

द्व्यङ्गुल (सं॰ त्रि॰) द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य, ततो अ समासान्तः। अङ्गुलिद्वय परिमित दो उँगलीका। द्वयोरङ्गुल्योः समाहारः। (क्लो॰) २ अङ्गुलिद्वयमात्र, दो उँगली।

द्व्यञ्जल (सं॰ पु॰) द्वावञ्जलोपरिमाणमस्य। (द्वित्रिभ्याञ्जलेः। पा ५।४।१०२) इति सूत्रेण टच् समासान्तः। अञ्जलिद्वय परिमित, दो अंजलिका। द्वयोरञ्जल्योः समाहारः। (क्लो॰) २ अञ्जलिद्वयमात्र, दो अञ्जलि।

द्व्यणुक (सं॰ क्लो॰) द्वौ अणू कारणे यस्य, कप्। परमाणुसमवेतद्रव्य, वह द्रव्य जो दो अणुओंके संयोगसे उत्पन्न हो, दो अणुओंका एक संघात।

द्व्यन्य (सं॰ त्रि॰) द्वाभ्यामन्यः इति पञ्चमीतत्पुरुषः। द्विभिन्न, जो दो भागोंमें बँटा हो। द्वयोरन्ययोः समाहारः। (क्लो॰) २ अन्य द्वयका सम्मिलन, किसी दो का मेल।

द्व्यर्थ (सं॰ त्रि॰) द्वौ अर्थौ यस्य। अर्थद्वययुक्त शब्दादि, वे शब्द जिनके दो अर्थ हों।

द्व्यशीति (सं॰ स्त्री॰) द्वयधिका अशीति अशीतिपर्य्यन्तं दाशात् न आत्। १ द्वाधिकाशीति संख्या, वह संख्या जो गिनतीमें अस्सीसे दो अधिक हो, बयासीको संख्या। (त्रि॰) द्वयशीत संख्याका पूरण, बयासीवाँ।

द्व्यष्ट (सं॰ क्लो॰) द्वि-हेम रूप्ये अश्नुते कारणतया व्याप्नोति अश-क्त। ताम्र, ताँबा।

द्व्यह (सं॰ पु॰) द्वयो रह्नोः समाहारः ततो टच् समासान्तः। दिनद्वय, दो दिन।

द्व्यहीन (सं॰ त्रि॰) द्वाभ्यां अहोभ्यां निर्वृत्तादि द्विगोर्वा 'रात्राहःसंवत्सराच्च' इति सूत्रेण ख, सूत्रे अहरिति निर्देशात् न टच् समासान्तः। १ दिनद्वयसाध्य, दो दिनमें होनेवाला। (पु॰) २ क्रतुभेद, एक प्रकारका यज्ञ।

द्व्यामुष्यायण (सं॰ पु॰) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

द्व्याचित (सं॰ त्रि॰) द्वे-आचिते सम्भवति अवहरति पचति वा ठञ्, तस्य लुक्। १ आचितद्वयके मध्य अपनेमें समावेशक। २ अवहारक, ले जानेवाला। ३ पाचक, पकानेवाला।

द्व्याढक (सं॰ त्रि॰) द्वे आढके सम्भवति अवहरति पचति वा, ठञ्, तस्य लुक्। १ आढकद्वयके मध्य अपने भागमें समावेशक। २ आढकद्वय अवहारक, चार सेर तो चार से

जानेवाला। ३ षाड़ुकद्वय पाचक, चार सेर पकानेवाला।

द्व्यात्मक (सं० पु०) द्वौ रूपौ आत्मानौ यस्य कप्। द्विस्वभाव राशिभेद, मिथुन, कन्या, धनु और मीन राशि।

द्व्यामुष्यायण (सं० पु०) अमुष्य प्रसिद्धस्य अपत्यं फक् आमुष्यायणः द्वयो रामुष्यायणः द्व-तत्। प्रतिज्ञापूर्वक दो लोक कर्त्तृक गृहीत दत्तकपुत्र, वह पुत्र जो एकसे तो उत्पन्न हुआ हो और दूसरेके द्वारा दत्तकके रूपमें ग्रहण किया हो और दोनों पिता उसको अपना अपना पुत्र मानते हों। ऐसा पुत्र दोनोंको पिण्डदान देता है और दोनोंको सम्पत्तिका अधिकारी होता है।

द्व्यायुष (सं० क्लो०) द्वयोरायुषो समाहारः समाहार-द्विगौ अचतुरेत्यादि अच् समासान्तः। द्विगुणित आयुः-काल, दूनी उमर।

द्व्याहाव (सं० क्लो०) द्वयोराहावयोः समाहारः। आहावद्वय, दो तालाब या गड्ढा।

द्व्याहिक (सं० त्रि०) द्व्यहे भवः ठञ् बाहुलकात् न ऐच्। द्व्यहजात ज्वर, दो दिनमें होनेवाला बुखार।

द्व्येक (सं० त्रि०) द्वौ वा एको वा बाहुलकात् ड समासान्तः। दो वा एक।

द्व्योग (सं० पु०) द्वयोर्योगयोः समाहारः, पृषोदरादित्वात् साधुः। योगद्वय, दो जोड़ा।

द्व्योपश (सं० पु०) ईशदुपशेते आ-उप शी-ड, ओपशं शृङ्गे ओपशे यस्य। पशु, मवेशी।

ध

ध—हिन्दी या संस्कृतका उन्नीसवाँ व्यञ्जन और तवर्गका चौथा वर्ण। इसका उच्चारणस्थान दन्तमूल है।

इस वर्णका स्वरूप—

"धकारं परमेशानि कुण्डली मोक्षरूपिणी।
आत्मादितत्त्वसंयुक्तं पञ्चदेवमयं सदा॥
पञ्चप्राणमयं देवि त्रिशक्तिसहितं सदा।
त्रिविन्दुसहितं वर्णं धकारं हृदि भावय॥
पीतविद्युल्लताकारं चतुर्वर्गप्रदायकं॥" (कामधेनुतन्त्र)

हे परमेश्वरि! धकार कुण्डली और मोक्षरूपिणी, आत्मादि तत्त्वके साथ सर्वदा सम्मिलित, पञ्चदेवस्वरूप, प्राणापानादि पञ्च प्राणमय, त्रिशक्तिसमन्वित, विन्दुत्रय युक्त और पीतविद्युल्लताकी तरह आकृतिविशिष्ट है। इसका हमेशा ध्यान करो। यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चतुर्वर्गका देनेवाला है।

इस शब्दके उच्चारणमें आभ्यन्तरका प्रयत्न आवश्यक होता है। दन्तमूलका जिह्वाग्रके साथ स्पर्श होनेसे यह वर्ण उच्चारित होता है। बाह्यप्रयत्न संवार, नाद, घोष, महाप्राण हैं। धन, अर्थ, रुचि, स्वादु, सात्वत, योगिनीप्रिय, मीनेश, यक्षिणी, तोय, नागेश, विश्वपावनी, धिषणा, धारणा, चिन्ता, नेत्रयुग्म, प्रिय, मति, पीतवासा, त्रिवर्णा, धाता, धर्मप्रवक्रम, सन्दर्श, मोहन, लज्जा, वज्रतुण्डाधर, धरा, वामपादाङ्गुलिमूल, ज्येष्ठा, सुरपुर, स्वर्गात्मा, दीर्घजङ्घा, धनेश और धनसञ्चय ये सब शब्द ध-वाचक हैं।

मातृकान्यास करते समय इस वर्णका वामपादाङ्गुलि मूलमें न्यास करना होता है। इस वर्णके लिखनेकी रीति इस प्रकार है—पहले त्रिकोण रेखा बनानी होती है। बाईं रेखाके स्कन्ध पर एक वक्र चिह्न देना होता है। इस त्रिकोणरूप तीन रेखाओंमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर रहते हैं तथा बाईं रेखाके स्कन्ध पर जो चिह्न दिया रहता है, उस पर विश्वेश्वरी अवस्थित हैं।

"त्रिकोणरूपरेखायां त्रयो देवा वसन्ति च।
विश्वेश्वरी विश्वमाता वामतः स्कन्धतः स्थिता॥"
(वर्णोद्धारतन्त्र)

इसका ध्यान—

"षड्भुजां मेघवर्णाञ्च रक्ताम्बरधरां परां।
वरदां शोभनां रम्यां चतुर्वर्गप्रदायिनीं।
एवं ध्यात्वा धकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्॥"

इस धकारकी अधिष्ठात्री देवी षड्भुजसम्पन्ना हैं,

उनका वर्ण बादलसा है और वे हमेशा रक्तवस्त्र पहना करती हैं। उनका ध्यान करके दश बार मन्त्र जपना होता है, इस प्रकार ध्यान करनेसे वे चतुर्वर्ग प्रदान करती हैं।

ध (सं॰ स्त्री॰) दधाति सुखमिति धा-ड। १ धन, दौलत। (पु॰) दधाति धरति विश्वमिति धा-ड। २ ब्रह्मा, जो विश्वको धारण करते हैं, उन्हींका नाम ध है। दधाति निधिं। ३ कुवेर, कुवेरके पास सब निधियां हैं, इसीसे कुवेरका नाम ध पड़ा है। दधाति जीवानां शुभाशुभमिति। ४ धर्म, धर्म ही जीवोंके शुभाशुभका कारण है। ५ धकार वर्ण।

धई (हिं स्त्री॰) एक पौधा। इसके मूल या कन्दको छोटानागपुरको पहाड़ी जातियोंके लोग खाते हैं।

धंगर (हिं पु॰) ग्वाल, अहीर, चरवाहा।

धंदर (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका धारीदार कपड़ा।

धंधक (हिं॰ पु॰) १ काम धंधेका आडम्बर, बखेड़ा। २ एक प्रकारका ढोल।

धंधकधोरी (हिं पु॰) काम धंधेका बोझ लादे रहनेवाला।

धंधरक (हिं॰ पु॰) कामधन्धेका आडम्बर, जंजाल, बखेड़ा।

धंधरकधोरी (हिं॰ पु॰) धंधकधोरी देखो।

धंधला (हिं॰ पु॰) १ कपटका आडम्बर, झूठा ढोंग। २ हीला, बहाना।

धंधलाना (हिं क्रि॰) छल छन्द करना, ढंग रचना।

धंधा (हिं॰ पु॰) १ धन या जीविकाके लिये उद्योग, काम काज। २ व्यवसाय, उद्यम, पेशा।

धंधार (हिं॰ पु॰) लकड़ीका लम्बा औजार। इससे भारी पत्थर और लकड़ी आदि उठाई जाती हैं।

धंधारी (हिं॰ स्त्री॰) गोरखधन्धा जिसे गोरखपन्थी साधु लिये रहते हैं।

धंधाला (हिं॰ स्त्री॰) कुटनी, दूती, दलाल।

धंधेरो (हिं॰ पु॰) राजपूतोंकी एक जाति।

धंधोर (हिं॰ पु॰) १ होलिका, होली। २ आगकी लपट, ज्वाला।

धँस (हिं॰ पु॰) जल आदिमें प्रवेश, डुबकी, गोता।

धंसन (हिं॰ स्त्री॰) १ धँसनेकी क्रिया या ढंग। २ गति, चाल।

धँसना (हिं॰ क्रि॰) १ किसी नरम वस्तुके भीतर किसी कड़ी वस्तुका दाब पा कर घुसना गड़ना। २ इधर उधर दबा कर जगह खाली करते हुए बढ़ना या पैठना। ३ नीचेकी ओर बैठ जाना। ४ किसी गड्डी या नींव पर खड़ी वस्तुका जमीनमें और नीचे तक चला जाना जिससे वह ठीक खड़ी न रह सके, बैठ जाना।

धँसनि (हिं स्त्री॰) धँसन देखो।

धँसान (हिं॰ स्त्री॰) १ धँसनेकी क्रिया या ढंग। २ ढाल, उतार। ३ दलदल।

धँसाना (हिं॰ क्रि॰) १ गड़ाना, चुभाना। २ प्रवेश कराना, पैठाना। ३ नीचेकी ओर बैठाना।

धँसाव (हिं॰ पु॰) १ धंसनेकी क्रिया। २ दलदल।

धक (हिं॰ स्त्री॰) १ हृत्कम्पका शब्द या भाव, दिलके जल्दी जल्दी कूदनेका भाव या शब्द। २ उद्वेग, चोप, उमंग। ३ एक प्रकारकी जूं जो लीखसे बड़ी होती है।

धक (हिं॰ क्रि॰ वि॰) अचानक, एकबारगी।

धकधकाना (हिं॰ क्रि॰) १ उद्वेग, भय, धड़कना। २ भभकना, दहकना, लपटके साथ जलना।

धकधकाहट (हिं॰ स्त्री॰) १ जी धक धक करनेकी क्रिया या भाव, धड़कन। २ आशंका, खटका।

धकधकी (हिं॰ स्त्री॰) १ जी धक धक करनेकी क्रिया या भाव।

धकपक (हिं॰ स्त्री॰) १ जीकी धड़कन, धकधकी। (क्रि॰ वि॰) २ डरते हुए।

धकपकाना (हिं॰ क्रि॰) भय खाना, डरना, दहशत खाना।

धकपेल (हिं॰ स्त्री॰) धक्कमधक्का, रेलापेल।

धकार (हिं॰ पु॰) 'ध' अक्षर।

धकियाना (हिं॰ क्रि॰) धक्का देना, ढकेलना।

धकेलना (हिं॰ क्रि॰) धक्का देना, ठेलना, ढकेलना।

धकेलू (हिं॰ पु॰) धक्का देनेवाला, ढकेलनेवाला।

धकैत (हिं॰ वि॰) धक्कमधक्का करनेवाला, धक्का देनेवाला।

धक्कपक (हिं॰ स्त्री॰) धकपक देखो।

धक्कमधक्का (हिं॰ पु॰) १ बहुतसे मनुष्योंका परस्पर धक्का देनेका काम। २ रेलापेल, धक्कापेल।

धक्का (हिं॰ पु॰) १ आघात, या प्रतिघात, टक्कर, रेला, झोंका। २ ऐसी भारी भीड़ जिसमें लोगोंके शरीर एक दूसरेसे रगड़ खाते हों, कसमसा। ३ दुःखकी चोट, सन्ताप। ४ कुश्तीका एक पेंच। इसमें बायां पैर आगे रख कर विपक्षीकी छाती पर दोनों हाथोंसे गहरा धक्का या चपेट दे कर उसे गिराते हैं। ५ ढकेलनेकी क्रिया, झोंका। ६ आपदा, विपत्ति, आफत।

धक्कामुक्की (हिं॰ स्त्री॰) मुठभेड़, मारपीट।

धगड़ (हिं॰ पु॰) उपपति, जार।

धगड़बाज (हिं॰ वि॰) व्यभिचारिणी, कुलटा।

धगड़ा (हिं॰ पु॰) उपपति, जार।

धगड़ी (हिं॰ स्त्री॰) व्यभिचारिणी स्त्री, कुलटा औरत।

धगरा (हिं॰ पु॰) धगड़ा देखो।

धगरिन (हिं॰ स्त्री॰) धांगर जातिकी स्त्री। यह नव-जात शिशुका नाल काटती है।

धगवरी (हिं॰ वि॰) १ पतिकी दुलारी, खसमकी मुंह लगी। २ कुलटा, छिनाल।

धग्गड़ (हिं॰ पु॰) धगड़ देखो।

धचका (हिं॰ पु॰) आघात, धक्का, झटका, झोंका।

धज (हिं॰ स्त्री॰) १ सुन्दर रचना, मोहित करनेवाली। २ चाल, सुन्दर ढङ्ग। ३ बैठने उठनेका ढब, ठवन। ४ ठसक, नखरा। ५ आकृति, शोभा, रूपरङ्ग।

धजबड़ (हिं॰ स्त्री॰) तलवार।

धजा (हिं॰ स्त्री॰) १ ध्वजा, पताका। २ धज, आकृति, डीलडौल। ३ कपड़ेकी धज्जी, कतरन, चीर।

धजीला (हिं॰ वि॰) सुन्दर ढङ्गका, तरहदार, सजीला।

धज्जी (हिं॰ स्त्री॰) १ कटा हुआ लम्बा पतला टुकड़ा। २ लोहेकी चद्दर या लकड़ीके पतले तख्तेकी अलग की हुई लंबी पट्टी।

धट (सं॰ पु॰) धं धर्मं अटति गच्छति प्राप्नोति तौल्यत्वेनेति ध-अट-अच्, शकन्ध्वादित्वात् साधुः। १ तुला, तराजू। धकार शब्दका अर्थ धर्म है और टकार शब्दसे कुटिल नरका बोध होता है, अतः इन्हें जो धारण करे उसीका नाम तट है। २ तुलाराशि। ३ परीक्षाभेद, तुलापरीक्षा। ४ धर्म। ५ धव वृक्ष।

धटक (सं॰ पु॰) धटेन तुलया कायतीति कै-क। १ चतुर्दश वल्ल परिमाण, एक प्राचीन तौल जो ४२ रत्तियोंकी होती थी। २ नन्दीवृक्ष, इसका पर्याय—धव, धट, नन्दितरु, स्थिर, गौर और धुरन्धर है।

धटकर्कट (सं॰ पु॰) धटस्य कर्कटः ६-तत्। तुलाके शिक्याधारमें ईषद्वक्र कर्कटके शृङ्गके सदृश आयस कीलकभेद, वह लोहेकी कील जो तराजूकी डंडीके मुड़े हुए सिरेके जैसा होता है।

धटपरीक्षा (सं॰ स्त्री॰) धटस्य तुलायाः परीक्षा ६-तत्। तुलापरीक्षा। तुलापरीक्षा देखो।

धटिका (सं॰ स्त्री॰) पञ्चसेरात्मक परिमाण, पांच सेरकी एक तौल, पसेरी। धटी स्वार्थे कन्-टाप्। २ चीर, वस्त्र। ३ कौपीन, लंगोटी।

धटी (सं॰ स्त्री॰) धन अच्, निपातनात् नस्य ट गौरादित्वात् ङीष्। १ चीर, कपड़ेकी धज्जी। २ कौपीन, लंगोटी। ३ गर्भाधानके बाद स्त्रियोंके परिधेय वस्त्रभेद, वह कपड़ा जो स्त्रियोंको गर्भाधानके पीछे पहननेको दिया जाता है।

ज्योतिषके अनुसार गर्भाधानके पीछे मूला, श्रवणा, हस्ता, पुष्या, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद या मृगशिरा नक्षत्रोंमें स्त्रीको अच्छे दिन धटी वस्त्र पहनाना चाहिये।

धटिन् (सं॰ त्रि॰) १ तुलाधारक, डांडी पकड़नेवाला। (पु॰) २ तुलाराशि। ३ शिव।

धटीदान (सं॰ क्ली॰) धट्याः चीरवस्त्रस्य दानं। गर्भाधानान्तर स्त्री सम्प्रदानक चीरवस्त्र दान, गर्भाधानके पीछे स्त्रियोंको जो चीरवस्त्र दान दिया जाता है, उसीको धटीदान कहते हैं।

धड़ंग (हिं॰ वि॰) नङ्गा। इस शब्दका प्रयोग प्रायः अकेले नहीं होता, 'नंग' शब्दके साथ समस्त रूपमें होता है।

धड़ (हिं॰ पु॰) १ शरीरका मोटा बिचला भाग। इसके अन्तर्गत छाती, पीठ और पेट होते हैं। सिर और हाथ पैरको छोड़ कटिके ऊपरके भागको धड़ कहते हैं। २ पेड़का सबसे मोटा बड़ा भाग। यह भाग जड़से कुछ दूर ऊपर तक रहता है और इससे डालियां निकल कर इधर उधर फैली रहती हैं, पेड़ी, तना। (स्त्री॰) ३ वह आवाज जो किसी वस्तुके एकबारगी गिरने, वेगसे गमन करने आदिसे होती है।

धड़क (हिं० स्त्री०) १ हृदयका स्पन्दन, दिलके कूदने या उछलनेकी क्रिया। २ हृदयके स्पन्दनका शब्द, दिलके कूदनेकी आवाज, तड़प, तपाक। ३ भय, आशङ्का आदिके कारण हृदयका अधिक स्पन्दन, अंदेशे या दहशतसे दिलका जल्दी जल्दी और जोर जोरसे कूदना। ४ आशङ्का, खटका, अंदेशा।

धड़कन (हिं० स्त्री०) हृदयका स्पन्दन, दिलका कूदना।

धड़कना (हिं० क्रि०) १ हृदयका स्पन्दन करना, छातीका धकधक करना। २ किसी भारी वस्तुके गिरनेकासा शब्द करना, धड़धड़ आवाज करना।

धड़का (हिं० पु०) १ दिलको धड़कन। २ दिल धड़कनेकी आवाज। ३ खटका, अंदेशा, भय। ४ डंडे आदि पर रखी हुई कालो हाँड़ो जो चिड़ियोंको डरानेके लिये खेतोंमें रखी जाती है। ५ गिरने पड़नेकी आवाज।

धड़काना (हिं० क्रि०) १ हृदयमें धड़क उत्पन्न करना, जी धकधक करना। २ आशंका उत्पन्न करना, जी दहलाना, डराना। ३ धड़धड़ शब्द उत्पन्न कराना।

धड़क्का (हिं० पु०) धड़का देखो।

धड़ट्टा (हिं० वि०) १ जिसकी कमर झुकी हुई हो। २ कुबड़ा।

धड़धड़ (हिं० स्त्री०) १ किसी भारी वस्तुके गमन करनेसे उत्पन्न लगातार होनेवाला भीषण शब्द। (क्रि० वि०) २ धड़धड़ शब्दके साथ। ३ बेधड़क, बिना रुकावटके।

धड़धड़ाना (हिं० क्रि०) धड़धड़ शब्द करना।

धड़ल्ला (हिं० पु०) १ धड़धड़ शब्द, धड़ाका। २ भीड़ भाड़ और धूमधाम। ३ गहरी भीड़, कसामस।

धड़वा (हिं० पु०) एक प्रकारकी मैना।

धड़वाई (हिं० पु०) वह जो कोई चीज तौलता हो।

धड़ा (हिं० पु०) १ बाट, बटखरा। २ तुला, तराजू। ३ चार सेरकी एक तौल।

धड़ाका (हिं० पु०) धड़ धड़ शब्द।

धड़ाधड़ (हिं० क्रि० वि०) १ लगातार धड़ाकेके साथ। २ बराबर जल्दी जल्दी, बिना रुके हुए।

धड़ाबंदी (हिं० स्त्री०) १ धड़ा बांधनेका काम। २ लड़ाईके पहले दो पक्षोंका अपनी अपनी सेनाका बल एक दूसरेके बराबर करना।

धड़ाम (हिं० पु०) ऊपरसे एकबारगी कूद या गिर कर जोरसे जमीन, पानी आदि पर पड़नेका शब्द।

धड़ी (हिं० स्त्री०) चार या पांच सेरकी एक तौल।

धत् (हिं० अव्य०) १ तिरस्कारके साथ हटानेका शब्द, दुतकारनेकी आवाज। २ वह शब्द जो हाथीको पीछे हटानेके लिये किया जाता है।

धत (हिं० स्त्री०) बुरा अभ्यास, खराब आदत, बुरी बान।

धतकारना (हिं० क्रि०) १ तिरस्कारके साथ हटाना, दुरदुराना। २ धिक्कारना, लानत देना।

धता (हिं० वि०) जो भगाया गया हो, जो दूर किया गया हो।

धतिया (हिं० वि०) बुरा अभ्यासवाला, बुरी लतवाला।

धतींगड़ (हिं० पु०) १ हृष्टपुष्ट मनुष्य, मोटा ताजा आदमी, मुसंड। २ जारज, दोगला।

धतींगड़ा (हिं० पु०) धतींगड़ देखो।

धतूरा (हिं० पु०) दो तीन हाथ ऊंचा एक पौधा। इसके १०।१२ भेद हैं। पृथ्वीके समस्त ग्रीष्मप्रधान तथा नातिशीतोष्णप्रदेशमें यह बहुत उपजता है। सभी प्रकारके धतूरे विषैले होते हैं। बहुत प्राचीनकालसे औषधादिमें इनका व्यवहार चला आ रहा है। पर यूरोपखण्डमें बहुत थोड़े ही दिनोंसे इसका प्रचार है। प्राचीन ग्रीस और रोमके लोग इसका व्यवहार जानते थे, यह प्रतीत नहीं होता।

अरबी और संस्कृतसाहित्य पढ़नेसे मालूम होता है, कि प्राचीनकालके लोग धतूरेके गुणोंसे अच्छी तरह जानकार थे। किन्तु वर्त्तमान समयमें इसकी विभिन्न श्रेणियोंमेंसे कौन औषधके काम आता है और कौन नहीं, इसके विषयमें अनेक मतभेद हैं। बहुतोंका कहना है, कि जिस धतूरेमें बैंगनी रंगके फूल लगते हैं, वह सफेद फूलवाले धतूरेसे अधिक विषैला होता है, पर यह भ्रम है। क्योंकि इस देशमें जितने प्रकारके धतूरे देखे जाते हैं, उनमेंसे प्रायः सभीमें उक्त दो रंगोंके फूल लग सकते हैं। अतः यह कह सकते हैं, कि फूल देख कर धतूरेके गुणका पता लगाना युक्तिसिद्ध नहीं है।

धतूरेके १०।१२ भेद होने पर भी वे साधारणतः सफेद

और काले इन्हीं दो श्रेणियोंमें विभक्त किये जा सकते हैं। काला धतूरा (Datura fastuosa) भारतवर्षके ग्रीष्मप्रधान प्रदेशोंकी पतित भूमिमें यथेष्ट उपजता है। इसके भी फिर २।३ भेद देखनेमें आते हैं। साधारणतः इसके फूल बड़े बड़े और सफेद अथवा कुछ धूम्रवर्णके होते हैं। फूलका मध्य भाग (Coralla) प्रायः ७ इञ्च लम्बा होता है, मस्तकका भाग फैला रहता है। हरएक फूलका व्यास ५ इञ्चसे कम नहीं होता। इसके फल अंडोंके फलोंके समान गोल और काँटेदार पर उनसे बड़े बड़े होते हैं। जब भीतरके बीज अच्छी तरह पक जाते हैं, तब फल फट जाते हैं। साधारण विश्वास यह है, कि काला धतूरा सब धतूरोंसे अधिक विषैला और भयानक होता है। इसीसे नरहत्या अथवा इसी तरहके दूसरे दूसरे असदुद्देश्यको साधनाके लिये सफेद धतूरेसे काले धतूरका अधिक आदर देखनेमें आता है।

अनेक देशीय चिकित्सकोंके मतसे भी काला धतूरा बहुत उपकारी है, किन्तु The Pharmacopœa of India नामक ग्रन्थमें इसका ठीक प्रतिकूल लिखा है। साधारणतः इसके बीज ही अनेक कामोंमें आते हैं। ठग लोग बीज खिला कर पथिकोंको अज्ञान कर देते और पीछे मनमाना उनका सर्वस्व लूट लेते थे। अधिक बीज खानेसे कभी कभी मृत्यु भी हो जाया करती है। मद्यका मादकताशक्ति बढ़ानेके लिये कभी कभी उसमें बीज मिला देते हैं। अंगारके ऊपर बीजोंको कुछ जला कर उस धुएँसे कई एक बरतन भर रखते हैं। पीछे उन बरतनोंमें शराब ढाल कर मुँह बाँधे हुए उन्हें एक रात छोड़ देते हैं। बड़ी आश्चर्यका विषय है, कि बीजकी मादकता और विषाक्त गुण उस धुएँमें भी आ जाता है। भांग और शराबको तेज करनेके लिये बीजोंको चूर कर उसमें मिला देते हैं। बम्बई प्रदेशमें भी इसी तरह व्यवहृत होते देखा गया है। उत्तरपश्चिम अञ्चलमें विष प्रयोगके लिये बीजोंको भुन कर उन्हें अच्छी तरह चूर कर डालते हैं; पीछे उसे चीनी, आटा, तमाकू आदिके साथ मिला कर देते हैं। एक श्रेणीके ऐसे व्यवसायी हैं जो इसे जलमें भिगो कर इससे एक प्रकारका अरिष्ट तैयार करते हैं। इसकी दश बुंद तमाखूके साथ मिला कर पीनेसे प्रायः दो दिन तक अचेतन रहना है। शवच्छेद द्वारा इस विषकी अस्तित्व निर्णयकी कथा अत्यन्त दुरूह है। रोगी साधारणतः अचेतनावस्थामें देखा जाता है एवं श्वासप्रश्वासका कार्य बहुत तेजीसे तथा कष्टकर रूपसे होता है। ऐसी अवस्थामें रोगीको शरीरमें बिलकुल धूप नहीं लगनी चाहिये अन्यथा उसकी मृत्यु हो जायगी। शीतकालकी अपेक्षा ग्रीष्मकालमें यह विष अधिक देर तक ठहरता है। पीनेके पाँच मिनट बाद ही विष अपना प्रभाव दिखलाने लगता है और एक घण्टेके भीतर रोगी तामसी निद्रामें पहुँच जाता है। शीतकालमें १५ से २० मिनट तक विष कोई असर नहीं करता।

औषधमें काले धतूरेका प्रयोग उतना ही हितकर है, जितना सफेद धतूरेका। सचराचर जिस जिस पीड़ामें धतूरेका व्यवहार होता है, वह सफेद धतूराके वर्णनस्थान पर लिखा जायगा। अभी काले धतूरेके विषयमें चिकित्सकोंने जो विशेष मत प्रकाश किये हैं, वही इस जगह दिये जाते हैं—

मन्द्राज-निवासी किसी डाक्टरका कहना है,—"इसमें जरा भी सन्देह नहीं, कि यह पौधा जलातङ्करोगमें रामबाण है। इस प्रदेश अनेक चिकित्सक जलातङ्क निवारणके लिये प्रसिद्ध हैं, किन्तु वे अपना व्यवहृत दवा जनसाधारणको बतलाना नहीं चाहते। मैंने बहुत कष्ट और परिश्रम करके यह दवा निकाली है। इससे मैंने अनेक रोगियोंको चंगा किया है और मेरे कई एक शिष्य भी इसी तरह कृतकार्य हुए हैं। मेरी चिकित्साकी प्रणाली इस प्रकार है—

साधारणतः यह देखनेमें आता है कि पगले कुत्तेसे काटे जानेके ४० दिन बाद रोगी जलातङ्कसे पीड़ित हो जाता है। कहीं कहीं दो तीन सप्ताहके मध्य ही इस रोगका आगमन देखा गया है। मेरी प्रणालीके मतसे काटे जानेके दो सप्ताह बाद अर्थात् पन्द्रहसे पचीस दिनके मध्य निम्नलिखित औषधका प्रयोग करना उचित है। पन्द्रहवें दिनमें बहुत सवेरे लगभग ६ बजे रोगीको एक चम्मच चाय पीथीसे प्रस्तुत अङ्गारचूर्ण सेवन करावे।

आध घण्टेके बाद उसे आध छटांक काले धतूरेके पत्तोंका रस पीनेको दे। इसके साथ साथ मिसरी खानेको देवें अथवा जिस किसी उपायसे हो सके, वमन-वेग रोकनेकी कोशिश करते रहे। रोगी जिससे किसी दूसरेका अनिष्ट कर न सके, इस तरह उसे अच्छी तरह बांध कर दो पहर तक धूपमें बैठाये रखना चाहिये। ऐसा करनेसे रोगी धीरे धीरे उन्मत्त हो जायगा और ठीक पगले कुत्ते सरीखा काम करने लगेगा। यदि ये सब लक्षण दीख पड़ें, तो जानना चाहिये कि उसे सचमुच पगले कुत्तेने काटा था और अब आरोग्य लाभ करनेमें कोई सन्देह नहीं है। शामको रोगीके सिर पर कुछ काल तक पानी ढालना चाहिये। इससे रोगी बहुत विरक्त हो जायगा और चीत्कार करके लोगों पर टूट पड़नेकी कोशिश करेगा। पीछे उसे सूअरका मांस, लोणी मछली, उरद और कद्दू आदि खानेको देना चाहिये। इतना करने पर रोगीको निरोग समझे और सभीसे उसे प्रतिदिन थोड़ा खाने को दे। जिस रोगीको इससे पहले ही जलातङ्क पहुँच गया हो और यदि उसकी चिकित्सा करनी हो, तो सबसे पहले उसकी खोपड़ीको तेज छुरीसे थोड़ा चिर कर कुछ लेहू बाहर निकाल डालना चाहिये। बाद काले धतूरेके पत्तोंसे उस जगह रगड़ देना चाहिये और साथ साथ थोड़ा रस भी पिला देना चाहिये।"

डाक्टर धर्मदास बसु कहते हैं, "मैं इस पौधेको कई बार काममें लाया है। शरीरका कोई स्थान सूज कर जब दर्द होने लगता है, तब मैं वहां ताजे पत्तोंका रस लगा देता अथवा उसकी एक पुलटिस तैयार कर देता हूं। आंखका दर्द दूर करनेमें भी ताजे पत्तोंका रस बहुत उपकारी है। इससे आंखकी सूजन बिलकुल जाती रहती है। सूखे पत्तों और छोटी डालियोंको जला कर उसका धूँआ मुँहसे खींचनेसे दमा रोग जाता रहता है और चिलममें रख कर तमाकूकी नाईं पीनेसे दमाका वेग कम जाता है; किन्तु अधिक धूमपान करनेसे शिर चकराने लगता और मूर्च्छा आ जाती है। सुनते हैं, कि इसके बीज जलातङ्करोगमें विशेष उपकारी हैं। और इसकी बाव रोगमें विशेष व्यवहृत होती है।"

फिर किसी चिकित्सकका कहना है, कि कानके दर्दमें ताजे पत्तोंका रस दो तीन बूंद कानमें डालनेसे बहुत उपकार होता है।

डाक्टर थर्णटन कहते हैं, "दमारोगमें सूखे पत्तोंका धूमपान फायदामन्द है। वातकी यन्त्रणा दूर करने लिये तथा ग्रन्थिस्फीति दबानेके लिये पत्तोंके रसका वाह्य प्रयोग करना चाहिये और जहां स्त्रियोंके स्तनमें स्फोटक होनेकी सम्भावना हो, वहां उसे दूर करनेके लिये तथा अधिक दूधका गिरना रोकनेके लिये इसके पत्तोंकी पुल्टिस देनी चाहिये।

युक्तप्रदेशके हकीम लोग काटे हुए स्थानका दर्द दूर करनेके लिए रोगीको उसकी सूखी जड़ आध ग्रेन मात्रा में पानके साथ खिलाते हैं, इसके बीज भी ध्वजभङ्गरोग चङ्गा करनेके लिये निम्नलिखित प्रकारसे व्यवहृत होते हैं:- १५ धतूरा फलके बीजको अच्छी तरह सुखा और चूर कर उसे दश सेर गायके दूधके साथ अच्छी तरह सिद्ध करते हैं। पीछे उस दूधसे जहां तक हो सके घी निकाल लेते हैं। प्रति दिन दो बार करके उस घीको जननेन्द्रियमें लगाते और एक बार करके चार ग्रेन खिलाते हैं।

महिसुरमें इस रोगको आराम करनेके लिये दहीके साथ प्रतिदिन एक बार करके इसके पत्तोंका रस खानेको दिया जाता है।

किसी दूसरे डाक्टरका कहना है, इसके पत्तोंका वात पीड़ामें वाह्यप्रयोग विशेष फलप्रद है।

कर्णमूल प्रदाहमें इसको गाढ़ा करके प्रलेप देनेसे शूजन और व्यथा कम हो जाती है।

इसके पत्तोंको सिद्ध कर उसकी पुल्टिस स्फोटक इत्यादिमें देनेसे यन्त्रणा दूर होती है और पीप बहुत जल्द बाहर निकल आती है। फिर धतूरे और हल्दी को एक साथ पीस कर प्रलेप देनेसे स्तनप्रदाह जाता रहता है।

अब सफेद धतूरेका विषय लिखा जाता है। सफेद धतूरा इस देशमें बहुतायतसे उत्पन्न होता है। इसके फूल काले धतूरेके फूलोंसे कुछ छोटे हैं। इसके सिवा और कोई प्रभेद नहीं है। रंग सफेद अथवा बाहरी भाग कुछ नीला होता है।

सफेद धतूरेके दो भेद हैं. इन दोनोंके अंग्रेजी वैज्ञानिक नाम यथाक्रम Datura alba और Datura stramonium हैं। औषधमें Datura albaके बीज और पत्ते डाक्टरोंसे व्यवहृत होते हैं। बीजसे अरिष्ट, सार और प्रलेप तैयार होता तथा पत्तोंसे पुल्टिस बनती है। सूखे पत्तोंका धूम पान करनेसे दमा, श्वयकाशका श्वासकष्ट, फुसफुसका वायुस्फीति आदि रोग जाते रहते हैं। पत्तोंसे जो सार और अरिष्ट बनता है इससे मादकता और अवसन्नता उत्पन्न होती है। सुलभ जान कर बहुतसे डाक्टर अफीमके बदले उसी अरिष्टका व्यवहार करनेकी सलाह देते हैं और इसके बीस बूंद एक ग्रेन अफीमके समान कार्य्यकारी हैं। सारका भी उसी तरह बेलेडोनाके बदले काममें लाते हैं। परिमाण चौथाई ग्रेन दिन भरमें तीन बार है। यह मात्रा क्रमशः बढ़ा कर तीन ग्रेन दी जाती है। डाक्टर विडाई कहते हैं कि अस्थिगुल्मरोगमें, वातयुक्त हाथ और पैरोंकी गांठकी सूजनमें, कष्टदायक अर्बुद अथवा अर्शकी वहिर्वलिमें पत्तोंकी पुल्टिस देनेसे यन्त्रणा दब जाती है। खांसी और दीर्घकालस्थायी दमा सम्बन्धी पीड़ामें अकसर पत्तोंका "प्लेष्टर" करके दिया जाता है, किन्तु ऊपरमें किसी प्रकारका फोड़ा वा जखम हो, तो पुल्टिस अथवा प्लेष्टर देनेकी कुछ भी जरूरत नहीं। क्योंकि उससे भीतरमें विष प्रवेश कर जानेकी सम्भावना रहती है। कष्टजनक स्तनपीड़ामें दूधका गिरना रोकने लिये इस देशकी स्त्रियां धतूरेके पत्तोंको पुल्टिस देती हैं। धतूरेके प्रयोगसे आँखोंकी पुतली फैल जाती है और वह यदि अधिक विस्तृत हो जाय तो समझना चाहिये कि और अधिक इसका प्रयोग करनेसे अनिष्ट होगा।

किसी तरह पक्षाघातके बाद हनुस्तम्भ हो तो कोई कोई चिकित्सक अन्य उत्कृष्ट औषधके नहीं रहनेसे धतूरेका ही व्यवहार करनेकी सलाह देते हैं। जखमके स्थानमें दिनमें तीन चार बार धतूरेके पत्तोंको पुल्टिस देनी चाहिये। यदि जखमके ऊपर पीप आदि निकली हो, तो पहले उसे कुछ गरम जलसे परिष्कार कर देना उचित है। बाद धतूरेका अरक बीससे तीस बुन्द जलमें मिला कर दिनमें तीन चार बार करके पिलाना चाहिये। जब तक आक्षेप घटने न लगे तब तक औषधका प्रयोग करते रहना चाहिये। किन्तु इसी बीच यदि आँखोंकी पुतलियां सम्पूर्णरूपसे विस्तारित हो जांय और मस्तिष्कके ऊपर औषधका असर पड़े, तो धतूरा सेवन करनेमें कुछ हानि नहीं है। यदि आक्षेप कुछ विलम्बसे आरम्भ हो एवं धीरे धीरे कुछ काल तक स्थायी रहे तो जब तक आक्षेप बन्द न हो तब तक औषधका प्रयोग उसी तरह ठहर ठहर कर करना उचित है। शरीरके ऊपर धतूरेकी क्रिया लक्षित होने पर भी यदि रोग कुछ भी न छूटे तो और अधिक प्रयोगसे कुछ उपकार नहीं है वरन् अनिष्ट ही होनेकी सम्भावना रहती है। इसके अलावा बीच बीचमें रोगीके मेरुदण्ड पर धतूरेका मरहम अच्छी तरह लगाना उचित है। रोगीको एक अन्धेरे घरमें रखें और उसके शरीरमें जिससे ठण्ढी हवा न लगे वैसा ही प्रयत्न करते रहें। प्रयोजन पड़ने पर तारपिनकी पिचकारी दे कर रोगीका मल त्याग करा सकते हैं। रोगीको सबल बनाये रखनेके लिये शराब और हंसके अण्डेको अच्छी तरह दूधके साथ मिला कर उसी दूधको पीने देना चाहिये अथवा और कोई दूसरा पुष्टिकर एवं उत्तेजक खाद्य पदार्थ दे सकते हैं।

धतूरिया (हिं॰ पु॰) ठगोंका एक सम्प्रदाय। पूर्व समयमें ये लोग पथिकोंको धतूरा खिलाकर बेहोश कर देते और लूट लेते थे।

धत्ता (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका छन्द। इसके विषम चरणोंमें १८ और सम चरणोंमें १५ मात्राएं होती हैं। अन्तमें तीन लघु होते हैं। यह दो ही पंक्तियोंमें लिखा जाता है।

धत्तानन्द (हिं॰ पु॰) एक छन्द। इसकी प्रत्येक पंक्तिमें ११+७+१३के विश्रामसे ३१ मात्राएं होती हैं। अन्तमें एक नगण होता है।

धत्तूर (सं॰ पु॰) धरति पिबतीति प्रकृतिं धे बाहुलका-दुरच पृषोदरादित्वात् साधुः। धुस्तूर, धतूरा।

धधक (हिं॰ स्त्री॰) १ आगकी लपटके ऊपर उठनेकी क्रिया, आगकी आँच, लपट, लौ।

धधकना (हिं॰ क्रि॰) १ लपटके साथ जलना, दहकना, भड़कना। २ प्रज्वलित करना, दहना।

धन (सं० क्लो०) धनति रौनोति धन रवे पचाद्यच्। १ स्नेहपात्र, अत्यन्त प्रिय व्यक्ति, जीवनसर्वस्व। २ गोधन, चौपायोंका झुण्ड जो किसीके पास हो। ३ जीवनोपाय। ४ द्रविण, सम्पत्ति, द्रव्य, दौलत।

उद्भटमें लिखा है, कि धन रखनेसे कुलहीन मनुष्य भी कुलीन कहलाता है। मनुष्य धन द्वारा सब प्रकारकी तकलीफोंसे उत्तीर्ण होते हैं। धनके समान श्रेष्ठबन्धु और दूसरा कोई नहीं है। इस कारण सभीको यत्नपूर्वक धन उपार्जन करना चाहिये।

इसका संस्कृत पर्याय—द्रव्य, वित्त, स्वापतेय, रिक्थ, वसु, हिरण्य, द्रविण, द्युम्न, अर्थ, रैविभव, काञ्चन, लक्ष्म भोग, सम्पद, वृद्धि, श्री और व्यवहार्य है। (राजनि०) शब्दरत्नावलीके मतसे—रै, भोग और स्व है। वैदिक पर्याय—मघ, रेक्णः, रिक्थ, वेद, वरिव, श्वात्र, रत्न, रयि, क्षत्र, भग, मीलु, गय, द्युम्न, इन्द्रिय, वसु, राय, राध, भोजन, तना, नृम्ण, बन्धु, मेधस्, यशस्, ब्रह्म, द्रविण, श्रव, वृत्र और वृत है। (वेदनिघण्टु २ अ०)

विष्णुलोकमें धन प्राणके समान माना गया है। जो धन है, वही बहिश्चर प्राण है, जो धन चुराता है, वह मानो प्राण चुराता है। इसका तात्पर्य यह कि धन प्राणतुल्य है। (कूर्मपु० ३१ अ०)

गरुड़पुराणमें लिखा है, कि शुक्ल, शबल और कृष्ण यही तीन प्रकारके धन हैं। फिर इस धनके सात विभाग बतलाये हैं। क्रमायत्त, प्रीतिदाय और भार्याके साथ प्राप्त ये तीन प्रकारके धन सब वर्णोंके अविशेष धन नहीं हैं। इसके सिवा हरएक वर्णके लिए तीन प्रकारका विशेष धन निर्दिष्ट है। ब्राह्मण याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह करके जो धन प्राप्त होता है, वह विशुद्ध है और यही ब्राह्मणोंका विशेष धन है। युद्ध करके जो धन उपार्जन किया जाता, अर्थात् करज, दण्ड, और वध्य व्यक्तिका अपहारज यह तीनों क्षत्रियोंका विशेष धन है। वैश्योंका कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य करना ही विशेष धन है। शूद्रका केवल अनुग्रहप्राप्ति अर्थात् दया दिखला कर जो धन उन्हें दिया जाता है, वही उनका विशेष धन है। ब्राह्मणादि तीनों वर्ण यदि विपदमें पड़ गये हों, तो वे सूदखोरी, कृषिवाणिज्य आदि कर सकते हैं, इसमें वे पापभागी नहीं हो सकते।

सात्त्विक, राजसिक और तामसिकके भेदसे धन तीन प्रकारका है।

तामस धन—पार्श्विकके लिये अर्थात् सत्पात्रादि दिखला कर जो धन उपार्जन किया जाता है, दूसरेको कष्ट दे कर जो धन प्राप्त किया जाता, कृत्रिम रत्नप्रकृति तथा समुद्रयान गिरिरोहण आदि दुष्कर कर्म द्वारा जो धन उपार्जन किया जाता है, व्याज अर्थात् शूद्र हो कर ब्राह्मणोंका वेश बना कर जो धन जमा किया जाता है, उसे कृष्ण अर्थात् तामस धन कहते हैं।

राजस धन—कुसीद (सूदखोरी), वाणिज्य, कृषि, शुल्क तथा नाचगान करके जो धन जमा किया जाता है तथा किसीका उपकार कर उसके प्रत्युपकार स्वरूप जो धन मिलता है उसे राजस धन कहते हैं। (शुद्धितत्त्व)

सात्त्विक धन—श्रुत अर्थात् अध्यापनादि द्वारा प्राप्त धन, शौर्य अर्थात् जयादिलब्ध धन, तपस्या अर्थात् जप होम स्वस्त्ययनादि द्वारा लब्ध धन, कन्याके साथ आगत धन अर्थात् कन्याके श्वशुरोंने उसे जो धन दिया है, शिष्यागत अर्थात् शिष्यने गुरुको गुरुदक्षिणा स्वरूप जो धन दिया है, होत्रकार्य द्वारा प्राप्त धन तथा उत्तराधिकारियोंसे जो धन मिलता है, वह विशुद्ध और सात्त्विक धन है। (शुद्धितत्त्व)

कुब्ज, वामन, पङ्गु, क्लीव, क्षितरोगी, पगला और अंधा ये सब धनके अधिकारी नहीं हो सकते।

(वामनपु० ७५ अ०)

भार्या, दास और पुत्र ये तीनों निर्धन हैं। ये तीन जिसके हैं अर्थात् जिसके पुत्र स्त्री आदि हैं, वे उसीका धन पाते हैं। (मत्स्यपु० ११ अ०)

यत्नपूर्वक धन उपार्जन करना हरएकका कर्त्तव्य है, किन्तु अन्याय तौरसे धन जमा करना बिलकुल ठीक नहीं। न्यायपूर्वक यदि थोड़ा भी धन उपार्जित हो तो उसीमें सन्तोष रखना चाहिये।

मनुने कहा है—दूसरेको कष्ट दिये बिना, वेदविरोधी, नास्तिक, दुष्ट और दुर्जनके घर गये बिना तथा आत्माको क्लेश पहुंचाये बिना जो कुछ थोड़ा धन जमा किया जाय उसीको यथेष्ट समझना चाहिये अर्थात् उसीमें सन्तोष रखना बुद्धिमानोंका काम है।

"आपदर्थे धनं रक्षेत्" इस नीतिके अनुसार अर्थात् आपद्‌कालके लिये थोड़ा धन अवश्य जमा रखना चाहिये। किन्तु अति सञ्चय करना भी हानिकारक है। रामायणके लङ्काकाण्डमें श्रीरामचन्द्रने लक्ष्मणसे धनकी इस प्रकार प्रशंसा की है—

जिस तरह पर्वतसे छोटी छोटी नदियां निकलती हैं, उसी तरह विस्तृत धनसे सब क्रियायें प्रवर्त्तित होती हैं। जो धनहीन हैं, वे लोगोंके निकट मन्दबुद्धि समझे जाते हैं। ग्रीष्मकालमें छोटी छोटी नदियां जिस तरह सूखी पड़ जाती हैं, उसी तरह निर्धन मनुष्य सब क्रियाओंसे वञ्चित हो जाते हैं। जिनके धन है उन्हींके बन्धुबान्धव हैं, वे ही मूर्ख होने पर भी पण्डित तथा गुणी कहलाते हैं और जिनके धन नहीं है उनके कोई नहीं है। धन रहनेसे हर्ष, काम, दर्प, धर्म, क्रोध, शम और दम आदि उत्पन्न होते हैं। दुर्दिन आ जाने पर जिस तरह ग्रहगण खराब फल देते हैं, उसी तरह धन नहीं रहनेसे सब लोग उनकी अवज्ञा करते हैं। धन रहनेसे सब प्रकारका धर्म कर्म किया जा सकता है। फिर धन होसे नरकका मार्ग परिष्कार होता है। संसारी व्यक्तिके लिये धन अत्यावश्यक है, किन्तु मुमुक्षुके लिये इसका ठीक विपरीत है। उन लोगोंका यही एक मात्र परित्यागका विषय है। शङ्कराचार्यने कहा था कि इस संसारमें परित्यज्य विषय क्या है? "किमत्रहेयं कनकं च कान्ता" काञ्चन और स्त्री यही दोनों हेय अर्थात् परित्यागके योग्य हैं। जब तक धनादिमें मोह रहेगा, तब तक जीवका गन्तव्य पथ अलग ही रहेगा। शङ्कराचार्यने और भी कहा है—

"अर्थमनर्थं भावय नित्यं नास्ति ततः सुखलेशः सत्यं।
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः सर्वत्रैषा विहिता नीतिः॥"
(मोहमुद्गर)

अर्थ अर्थात् धनको प्रतिदिन अनर्थ समझना चाहिये। धनसे कुछ भी सुख नहीं मिलता। धनियोंके पुत्र होनेमें भी संदेह बना रहता है, यह नीति सब जगह कही गई है।

जो धनकी इच्छा करते हैं, उन्हें अग्निकी आराधना करनी चाहिये। अग्निदेवके सन्तुष्ट होनेसे धन मिलता है।

धन नहीं रहनेसे जीविकानिर्वाह नहीं होती है, इसीसे ब्राह्मणोंकी जीविकाके लिये धनोपार्जनके विषयमें मनुने इस प्रकार उपदेश दिया है—

ब्राह्मणको उचित है कि वे गुरुके घरमें जीवितकालका एक चौथाई भाग रह कर पीछे विवाह करके घरमें रहें। गार्हस्थ्यधर्मका प्रतिपालन करनेमें धनका प्रयोजन पड़ता है। तब उन्हें अद्रोह अर्थात् दूसरेको बिना कष्ट पहुंचाये शीलोञ्छादि वृत्ति अवलम्बन कर अल्पद्रोह (प्रार्थना करके लोगोंसे धन मांगनेका नाम अल्पद्रोह है) द्वारा धन उपार्जन कर जीवन धारण करना चाहिये। प्राणरक्षा और कुटुम्बोंके प्रतिपालनके लिये वे अनिन्दित निज कर्म द्वारा तथा शरीरको कष्ट दिये बिना धन सञ्चय कर सकते हैं। धनसञ्चयके लिये कौन काम निन्दित और कौन काम अनिन्दित है वह कहते हैं—ऋत, अमृत, मृत, प्रमृत और सत्यानृत इसके द्वारा ब्राह्मण धन सञ्चय कर जीवन निर्वाह कर सकते हैं। श्ववृत्ति अर्थात् नौकरी करके धन जमा करना ब्राह्मणोंके लिये बिलकुल मना है। खेतोंसे धान काट ले जानेके बाद जो सब धान वहां गिरे रहते हैं उन्हें संग्रह कर जीवन धारण करनेका नाम उञ्छशील है। इसी उञ्छशीलका नाम ऋत है। जो आपसे आप मिल जाय उसे अमृत कहते हैं। (क्योंकि इसमें किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता, बल्कि लाभ ही होता है, इसीसे इसका नाम अमृत हुआ।) प्रार्थना कर अर्थात् भीख माग कर जो धन जमा किया जाता है उसे मृत कहते हैं। (लोगोंसे कुछ चीज मांगना मृतवत् कष्टदायक है इसीसे प्रार्थित धनका नाम मृत पड़ा है।) जमीन जोत कर जो सब अनाज उपजाये जाते, उसे प्रमृत कहते हैं। (चूंकि जमीन जोतते समय अनेक प्राणियोंका वध होता है, इसीसे यह अत्यन्त कष्टकर और पापजनक होनेके कारण इसका नाम प्रमृत हुआ है।) वाणिज्य द्वारा जो धन उपार्जन किया जाता है, उसे सत्यानृत कहते हैं। (वाणिज्य करनेमें सच और झूठ बोलना पड़ता है, इसीसे इसका नाम सत्यानृत पड़ा है।) इन्हीं सब वृत्तियोंसे धन जमा कर ब्राह्मणोंको जीवन निर्वाह करना चाहिये, किन्तु श्ववृत्ति अर्थात् नौकरी करके कभी धन

जमा नहीं करना चाहिये। ये सब वृत्तियां जो कही गई हैं वे केवल जीवनधारणके लिये हैं, न कि धनसञ्चयके लिये। धनसञ्चय ब्राह्मणोंके लिये विशेष दूषित है। आपद्‌काल और परिवार-प्रतिपालनके लिये धन सञ्चय करना आवश्यक है। इसी धनसञ्चयके विषयमें भी मनुने इस प्रकार कहा है—ब्राह्मणोंके धन सञ्चयके पार्थक्यानुसार कुशूलधान्यक, कुम्भीधान्यक, त्र्यैहिक और अश्वस्तनिक ये चार प्रकारके नाम बतलाये गये हैं। जो ब्राह्मण तीन वर्ष तक अच्छी तरह खा पी सकें, इतनाही धान संग्रह कर रखते हैं, उन्हें कुशूलधान्यक और जो केवल एक वर्षके लिये धान जमा कर रखते, उन्हें कुम्भीधान्यक कहते हैं। कोई इस तरह व्याख्या करते हैं, कि जो ब्राह्मण इतना धान जमा करे जिससे छः मास अच्छी तरह चल सके उसे कुशूलधान्यक, जिससे बारह दिन चल सके उसे कुम्भीधान्यक और जिससे केवल तीन दिन चल सके उसे त्र्यैहिक तथा जो रोज लाता है और रोज खाता है उसे अश्वस्तनिक कहते हैं। इन प्रकारके ब्राह्मणोंमेंसे अश्वस्तनिक श्रेष्ठ है, तब त्र्यैहिक, कुम्भीधान्यक और सबसे पीछे कुशूलधान्यकको समझना चाहिये। केवल अश्वस्तनिक ही धर्ममें लोकजित् और अतिशय श्रेष्ठ है। अर्थ और वित्त शब्द देखो।

जो ब्राह्मण धन सञ्चय न कर प्रतिदिन जो लाते उसीसे धर्मकर्म करते हैं, वे ही एकमात्र श्रेष्ठ हैं। उक्त चार प्रकारके गृहस्थोंमेंसे एक षट्‌कर्मा हो सकते हैं अर्थात् षट्‌कर्म द्वारा जीविकानिर्वाहके लिये धन सञ्चय कर सकते हैं। जिसके अनेक पोष्यवर्ग हों, वे याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह करें; जिनके थोड़े हों, वे केवल याजन और अध्यापन करके और जो सर्वश्रेष्ठ हैं, वे एकमात्र ब्रह्मसत्त्व अर्थात् अध्यापन द्वारा धनोपार्जन कर जीविकानिर्वाह कर सकते हैं। मेधातिथि यह चार प्रकारकी वृत्तियां चार प्रकारके गृहस्थोंके लिए बतलाई गई हैं। अर्थात् कुशूलधान्यकको षट्‌कर्म द्वारा, कुम्भीधान्यकको त्रिविध कर्म द्वारा, त्र्यैहिकको द्विविध कर्म द्वारा और सिर्फ अश्वस्तनिकको अध्यापन द्वारा धनोपाय करनी चाहिये। ब्राह्मणगण आपद्‌कालमें उक्त सभी वृत्तियोंका अवलम्बन कर धनसञ्चय कर सकते हैं, किन्तु उन्हें प्राणत्याग सदृश कष्ट होने पर भी लोकवृत्तिसेवा अर्थात् नौकरी करके धन सञ्चय कदापि नहीं करना चाहिये। ब्राह्मणको उचित है, कि वे शठता कपटता आदिको छोड़ कर धर्म द्वारा धन उपार्जन करें और सर्वदा उसीमें सन्तोष रखें। क्योंकि सुख सन्तोष पर ही निर्भर करता है। ये सब विधिवाक्य देखनेसे साफ साफ मालूम पड़ता है कि ब्राह्मणको जीविका और धर्मोपार्जन करनेमें जितने धनका प्रयोजन हो उतना ही धन उपार्जन करना चाहिये। इससे अधिक धन उपार्जन करनेकी कोशिश न करनी चाहिये। लोभवश यदि कोई ब्राह्मण उक्त नियमका उल्लंघन करे, तो वह अपने महान् कर्त्तव्यसे भ्रष्ट होता है। क्षत्रियको युद्ध कर और वैश्योंको कृषि वाणिज्य करके धन उपार्जन करना चाहिए। शूद्रको उक्त तीन वर्णोंकी सेवा करके जीविकानिर्वाह करनेको कहा है, किन्तु शूद्र धन सञ्चय नहीं कर सकता। वह जो धन उपार्जन करेगा, वह उसके मालिकका होगा, न कि उसका। इसी कारण शूद्रको निर्धन बतलाया है। क्षत्रिय और वैश्यको न्यायपूर्वक धन सञ्चय करना चाहिये।

५ लग्नसे द्वितीय स्थान, जातबालकके राशिचक्रमें जन्मलग्नसे दूसरे स्थानको धनस्थान कहते हैं। जात बालक धनी होगा वा निर्धन यह अगर जानना हो, तो दूसरा स्थान देख कर ही उसका निर्णय किया जाता है। इसका विषय ज्योतिषमें इस प्रकार लिखा है—

जन्मकालमें सूर्य यदि धनस्थानमें रहे, तो मनुष्य धनहीन होता है, पर ताम्रखण्ड वा रक्तद्रव्य द्वारा धनवान् हो सकता है। दूसरेका मत है कि यदि रवि जन्मकालमें धनस्थानमें रहे तो मनुष्य स्त्रीपुत्रविहीन, कृश शरीर, अति दीन हीन, रक्तलोचन, कुपरिच्छदयुक्त, लौह ताम्रादिमें धनवान् और सर्वदा विषण्णचित्त तथा संसारत्यागी होगा।

जिसका जन्म चन्द्रमाके धनस्थानमें रहते हो वह अहङ्काररहित, धनधान्यसे परिपूर्ण, मणिरत्नप्रभृति अतुल ऐश्वर्यसम्पन्न और कर्पूर चन्दनादि गन्धद्रव्यमें आसक्त और आमोदयुक्त होता है। मतान्तरसे—चन्द्रमाके धनस्थानमें रहते जिसका जन्म हो, वह त्यागशील,

मतिमान्, निधिके समान धनपूर्ण, चञ्चल, मतिमान्, सर्वदा हृष्टचित्त, परम सुखभागी, कीर्त्तिशाली, सहिष्णु प्रफुल्ल वदन और चन्द्रमा सदृश कान्तियुक्त होता है।

मङ्गलके धनस्थानमें रहते जिसका जन्म हो, वह मनुष्य कृषिजीवी, वाणिज्यकारी, वक्ता, प्रवासवासी, अल्पधनशाली, धातुकर्ममें निरत और द्यूतक्रीड़ामें आसक्त होगा।

मतान्तरसे—जन्मकालमें यदि मङ्गल धनस्थानमें रहे तो मनुष्य धातुद्रव्य विषयमें विवादपरायण, प्रवासी, अल्पधनविशिष्ट, क्षीणचित्त, द्यूतकर, सहिष्णु, कृषिकार्य करनेमें समर्थ, क्रयविक्रयशील, लुब्धचित्त और सर्वदा अल्प सुखभागी होता है।

बुधके धनस्थानमें रहनेसे जिसका जन्म हो, वह मनुष्य सत्यवादी, प्रगल्भ, प्रवासी, पितृभक्त, सुन्दर और सम्पूर्ण सौभाग्यशाली तथा बृहस्पतिके धनस्थानमें रहनेसे धनवान्, मान्य, हर्षयुक्त, चन्दन और अन्यान्य गन्ध द्रव्य विभूषित एवं वृद्धावस्थामें धनहीन होता है।

जिसके जन्मकालमें शुक्र धनस्थानमें रहे, वह मनुष्य निज विद्याद्वारा धन उपार्जन करेगा और स्त्रीधन द्वारा धनवान् होगा; ऐसे मनुष्यका धनागार सर्वदा धनसे परिपूर्ण रहेगा। मतान्तरसे—जिसके जन्मके समयमें शुक्र धनस्थानमें रहे, वह मनुष्य दूसरेके धनसे धनवान्, युवतीके मनोरञ्जनकारी, एकमात्र रजतधनसे धनी, यौवनागमसे कपटेच्छु, रसिक और वाचाल होता है।

शनिके धनस्थानमें रहते जिसका जन्म हो वह काष्ठ, अङ्गार और तृणद्वारा धनवान् होगा, सर्वदा दुष्कार्य द्वारा धन जमा करेगा तथा नीच विद्यानुरागी और दुःखितचित्त होगा। मतान्तरसे—जन्मकालमें शनि जिसके धनस्थानमें रहेगा, वह मनुष्य काष्ठ और तृण द्वारा धनवान्, लौह और सीसकसञ्चय करनेमें यत्नशील तथा चौर्यपरायण होगा। राहुके धनस्थानमें रहनेसे जिसका जन्म हो, वह मत्स्य मांस द्वारा धनशाली, नखदन्त तथा पक्षिविक्रयी होगा। विशेषतः वह मनुष्य चोरी करके अपनी जीविका निर्वाह करेगा। मतान्तरसे—राहुके धनस्थानमें रहनेसे वह चोरोंके मतानुयायी कृतनिश्च, सर्वदा कृतघ्नहृदय, बहुदुःखभागी, मत्स्य और मांस द्वारा धनी तथा सर्वदा नीचोंकी संगत करता है।

(ज्योतिःकल्पलता)

ढुण्ढिराज कृत जातकाभरणमें धनस्थानका विषय इस प्रकार लिखा है—

पण्डितोंको सुवर्ण प्रभृति धातुओंका क्रयविक्रय, रत्न प्रभृति कोषसंग्रहका विचार धनस्थानमें करना चाहिये।

यदि सूर्य, मङ्गल, शनि अथवा क्षीणचन्द्र धनस्थानमें रहे वा धन स्थानको देखता हो, तो मनुष्य धनरोगविशिष्ट होता है। शनि धनस्थानमें रह कर यदि बुधसे देखे जाते हों, तो मनुष्यको धनवृद्धि होती है। यदि धनस्थानमें सूर्य रहें और शनिसे देखे जाते हों, तो वह निश्चय ही धनवान् होगा। कहनेका तात्पर्य यह कि शुभ ग्रहोंके धन स्थानमें रहनेसे ही उत्तम फल मिलते हैं। यदि वृहस्पति धन स्थानमें रहे और शुभग्रहसे देखे जाते हों, तो वह विपुल धनसम्पत्तिका अधिकारी होता है। यदि बुध धनस्थानमें रहकर चन्द्रमासे देखे जाते हों, तो धनकी हानि होती है। यदि क्षीणचन्द्र धन स्थानमें रह कर बुधसे देखे जाते हों, तो मनुष्यका पूर्वोपार्जित धन नाश तथा नूतनोपार्जित धनकी वृद्धि होती है। यदि शुक्र धनस्थानमें रहे और बुधसे देखे जाते हों, तो मनुष्य धनवान् होता है। किन्तु शुक्र यदि शुभग्रहसे देखे जाते हों, वा शुभग्रहके साथ मिले हुए हों, तो मनुष्य प्रचुर धन पाता है।

केतुके धनस्थानमें रहनेसे धननाश, धान्यनाश, कुटुम्ब विरोध, द्रव्य विषयमें राजभय तथा मुखरोग होता है। यह मनुष्य कहीं भी सम्मानित नहीं होता तथा बहुभाषी होता है। किन्तु वह केतु यदि अपने घरमें अथवा सौम्यघरमें रहे, तो वह सदा सुखी रहता है।

धनयोग—जिसके जन्मलग्नसे पांचवें स्थानमें शुक्र अपने घरमें एवं ग्यारहवें स्थानमें शनि रहे, तो वह मनुष्य बहुत धनी होता है। जिसके जन्मलग्नसे पांचवें स्थानमें बुध निज क्षेत्रमें तथा ग्यारहवें स्थानमें चन्द्रमा और मङ्गल रहे, वह मनुष्य प्रभूत धनाधिपति होता है। जिसके जन्मलग्नसे पांचवें स्थानमें शनिके क्षेत्रमें रवि और ग्यारहवें स्थानमें

बुध हो वह मनुष्य भी धनशाली होता है। जिसके जन्म-लग्नसे पांचवें स्थानमें यदि रवि स्वक्षेत्रमें तथा ग्यारहवें स्थानमें वृहस्पति रहे, तो वह मनुष्य प्रभूत धनाधिपति होता है। जिसके जन्मलग्नसे पांचवें स्थानमें वृहस्पति स्वक्षेत्रमें तथा ग्यारहवें स्थानमें चन्द्र और मङ्गल रहे, वह मनुष्य भी धनशाली होगा। जिसके जन्मलग्नमें रवि स्वक्षेत्रमें रहे और उन पर मङ्गल वा वृहस्पतिका योग अथवा दृष्टि पड़ती हो तो वह मनुष्य धनवान् होता है। जिसके जन्मलग्नमें मङ्गल स्वक्षेत्रमें रहे और चन्द्र, शुक्र, वा शनिका योग हो वा उनकी दृष्टि पड़ती हो, उस हालतमें भी मनुष्य धनवान् होता है। जिसके जन्मलग्नमें वृहस्पति स्वक्षेत्रमें हों और उन पर यदि बुध मङ्गलकी दृष्टि पड़ती हो, तो वह अवश्य ही धनी होगा। जिसके जन्मलग्नमें शुक्र स्वक्षेत्रमें हों और शनि वा बुधका योग हो वा उनकी दृष्टि पड़ती हो, वह मनुष्य भी धनवान् होता है।

धनहीन योग—जिसके लग्नाधिपति बारहवें स्थानमें और बारहवें स्थानके अधिपति लग्नमें रह कर मारकाधिपतिसे युक्त वा देखे जाते हों, वह मनुष्य धनहीन होता है। लग्नाधिपति छठें स्थानमें और छठें स्थानके अधिपति लग्नमें रह कर मारकाधिपतिसे देखे जाते हों, तो वह अवश्य निर्धन होगा। जिसका लग्न यदि चन्द्र और केतुसे युक्त वा दृष्ट हो, तो वह मनुष्य राजकुलमें जन्म ले कर भी धनहीन होता है। यदि लग्नाधिपति ग्रह षष्ठाधिपति, अष्टमाधिपति वा द्वादशाधिपतिसे युक्त हो कर पापग्रहसे देखे जाते हों, अथवा वह लग्नाधिपति ग्रह पञ्चमाधिपतिसे दृष्ट वा युक्त हो कर किसी शुभग्रहसे न देखे जाते हों, तो वह मनुष्य धनहीन होगा।

पञ्चमाधिपति यदि छठें स्थानमें और नवमाधिपति दशवें स्थानमें रहें और उन पर यदि मारकाधिपतिकी दृष्टि पड़ती हो, तो जातव्यक्ति निर्धन होता है। लग्नगत पापग्रह नवमाधिपति वा दशमाधिपतिसे नियुक्त हो कर मारकाधिपतिसे युक्त वा देखे जाते हों, तो जात मनुष्य धनरहित होता है। जिस जिस घरके अधिपति अष्टम, षष्ठ और द्वादश स्थानमें रहें, उस उस घरमें यदि अष्टमाधिपति, षष्ठाधिपति और द्वादशाधिपति रहते हों तथा उन पर पापग्रह वा शनिकी दृष्टि पड़ती हो, तो वह जातबालक दुःखी, चञ्चल और धनहीन होता है। जिस नवांशमें चन्द्रमा अवस्थान करते हों और उस नवांशके अधिपति यदि मारक स्थानमें हो अथवा मारकाधिपतिसे युक्त हों, तो वह मनुष्य दरिद्र होता है। लग्नाधिपति जिस नवांशमें हो और उस नवांशके अधिपति यदि द्वादश, षष्ठ वा अष्टम स्थानमें रह कर मारकाधिपतिसे देखे जाते हों, तो जात बालक धनहीन होगा। लग्नाधिपति षष्ठ, अष्टम अथवा द्वादश स्थानमें रहकर यदि पाप संयुक्त हो और मारकाधिपतिसे देखे जाते हों, तो जात-मनुष्य राजवंशीय होने पर भी धनहीन होता है। (पाराशरीय)

धनयोगके विषयमें खनाका वचन—लग्न और चन्द्रमाके दशवें स्थानमें जो ग्रह रहेगा, उसी ग्रहके द्वारा धनप्राप्तिका विचार करना होगा। यदि लग्न और चन्द्रके दशवें स्थानमें रवि हो, तो मनुष्य पितृधन पाता है। यदि चन्द्रमा हो, तो मातासे, यदि मङ्गल हो, तो शत्रुसे, बुध हो, तो मित्रसे, वृहस्पति हो, तो भाईसे, शुक्र हो, तो स्त्रीसे और यदि शनि हो, तो नौकरसे धन मिलेगा, ऐसा विचार करना चाहिये। यदि लग्न और चन्द्रमाके दशवें स्थानमें कोई ग्रह न रहे, तो चन्द्र और सूर्यके दशमाधिपति ग्रह जिस नवांशमें रहेंगे उसी ग्रहको राशिके अधिपति-ग्रहकी वृत्तिका अवलम्बन कर धन उपार्जन करना चाहिये। रविके नवांशमें रहनेसे तृण अर्थात् सुगन्धिद्रव्य, सुवर्ण, पशम और औषध व्यवसायके अवलम्बन द्वारा, चन्द्रके नवांशमें रहनेसे कृषिकर्म, जलज द्रव्यका व्यवसाय, वा स्त्रियोंके आश्रयमें रह कर; मङ्गलके नवांशमें रहनेसे धातु और मट्टीका व्यवसाय, अग्निक्रिया, अस्त्र व्यवसाय, अथवा साहसिक कार्य द्वारा; बुधके नवांशमें रहनेसे लिपिव्यवसाय अथवा शिल्पकार्य द्वारा, वृहस्पतिके नवांशमें रहनेसे मनुष्य द्विजकर्त्तव्य याजन-व्यवसाय, देवसेवा और खनिज पदार्थके व्यवसायद्वारा; शुक्रके नवांशमें रहनेसे रत्न, रौप्य और गोमहिषादि व्यवसायके अवलम्बनद्वारा एवं नवांशाधिपति यदि शनि हो, तो अधिक परिश्रम, वधकार्य, भारवहन, नीचकर्म और

शिल्पव्यवसाय द्वारा धन प्राप्त होता है। कर्माधिपति जिस नवांशमें रहेंगे, उस ग्रहकी दशा और अन्तर्दशासे प्रचुर धनप्राप्ति और कार्यसिद्धि होती है।

नवांशाधिपति यदि मित्रके गृहमें रहे, तो मित्रसे और यदि निजगृहमें रहे, तो निजसे अर्थ प्राप्त होता है। यदि वह ग्रह तुङ्गस्थ हो, तो निज बाहुबल द्वारा धनोपार्जन होगा, ऐसा स्थिर करना चाहिये। बलवान् शुभग्रह यदि ग्यारहवें स्थानमें लग्न और धनस्थानमें रहे, तो अनेक तरहके धन मिलते हैं।

धनवान् योग—जन्मकालके सिंह, धनु मीन, मेष, कर्कट और वृश्चिक राशिमें रवि और मङ्गलके एकत्र रहनेसे धनयोग होता है, अर्थात् वह मनुष्य धनवान् होता है।

धनहीन योग—लग्नसे दशवें स्थानमें, रविसे ग्यारहवें स्थानमें और चन्द्रसे आठवें स्थानमें यदि कोई ग्रह न रहे, तो जात बालक निर्धन होता है। (बृहज्जातक)

चन्द्र और शनि यदि एक घरमें रहे अथवा शुक्र और मङ्गल एक जगह रहे, तो वह मनुष्य धनहीन होता है।

धनप्रयोगनक्षत्र—अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्या, उत्तरफलगुनी, हस्ता, पूर्वाषाढ़ा, श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तरभाद्रपद और रोहिणी हैं। (ज्योतिस्तत्त्व)

६ बीजगणितोक्त ऋण भिन्न। धन-रवे अर्थ्। ७ शब्द। ८ योगचिह्न + (Plus)

धनक (सं० पु०) धनस्य कामः इच्छा धन-अक्। १ धनेच्छा, धनकी इच्छा। २ राजा कृतवीर्यके पिता।

धनक (हिं० पु०) १ धनुष, कमान। २ टोपी आदिमें लगाये जानेका एक प्रकारका पतला गोटा। ३ एक प्रकारकी ओढ़नी।

धनकटी (हिं० स्त्री०) १ धानकी कटाई या कटाईका समय। २ एक प्रकारका कपड़ा।

धनकर (हिं० पु०) १ एक प्रकारकी कड़ी मट्टी। इसमें धान बोया जाता है और जब तक अच्छी वर्षा नहीं होती तब तक इसमें हल नहीं चल सकता है। २ धानका खेत।

धनकुट्टी (हिं० स्त्री०) १ धान कूटनेका काम। २ धान कूटनेका औजार, ओखली, मूसल। ३ एक प्रकारका लाल छोटा कीड़ा। यह हवामें इधर उधर उड़ता है। इसका सारा बदन लाल पर मुंह काला होता है। वह अपना अगला धड़ इस प्रकार नीचे ऊपर हिलाता है जैसे कूटनेकी ढेकली।

धनकुबेर (हिं० पु०) वह जो कुबेरके समान धनी हो, अत्यन्त धनी मनुष्य।

धनकेलि (सं० पु०) धनैः केलिः क्रीड़ा यस्य। कुबेर।

धनकोटा (हिं० पु०) हिमालयके कम ठंडे स्थानोंमें मिलनेवाला एक झाड़ या पौधा। इससे नेपाली कागज बनता है।

धनक्षय (सं० पु०) धनस्य क्षयः। धनका क्षय, अर्थका नाश।

धनखर (हिं० पु०) वह खेत जिसमें धान बोया जाता हो, धनाऊं।

धनगर्व (सं० पु०) धनस्य गर्वः ६-तत्। धनजनित अहङ्कार, धनका घमंड।

धनगांव—मध्य-भारतका एक सामन्त राज्य। यहांके अधिपतिकी उपाधि ठाकुर है। ये सिन्धिया और होलकार दोनोंसे वृत्ति पाते हैं और अंगरेजोंको कर देते हैं।

धनगायन—बङ्गालके हजारीबाग जिलेका एक गिरिवर्त्म। सहरघाटीसे ले कर गिरिवर्त्म तक एक पक्की सड़क चली गई है। इस राह हो कर गाड़ी आदिके नहीं चलनेसे वाणिज्य नहीं होता।

धनगुप्त (सं० पु०) १ वह जो बहुत यत्नसे धनकी रक्षा करते हैं। २ एक बनियेका नाम।

धनचन्द्र—शब्दानुशासन लघुवृत्त्यवचुरिका नामक संस्कृत ग्रन्थकार।

धनचिड़ी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी चिड़िया।

धनच्छु (सं० स्त्री०) धनं छ्यति नाशयतीति छो-बाहुलकात् उः। करेटु पक्षी, एक प्रकारकी चिड़िया।

धनञ्जय (सं० पु०) धनं जयति सम्पादयति जि-खच, मुम्। १ अग्नि, आग। 'धनमिच्छेत् हुताशनात्' अग्निसे धनकी प्रार्थना करनी चाहिये, अग्निही धनाधिष्ठात्री देवता हैं, इसीसे धनञ्जय शब्दसे अग्निका बोध होता है। २ चित्रकवृक्ष, चीता। धनं जयति परीन् निर्जित्य अर्जयति जि-खच-मुम्। ३ तृतीय पाण्डव, अर्जुन।

अर्जुनने कहा है, कि मैं समस्त देश जीत कर केवल धनका आश्रय करके उसमें अवस्थान किया था, इसीसे मेरा नाम धनञ्जय हुआ है। (महाभारत ४।४२।१३)

काशीदासके महाभारतमें धनञ्जय नामकी उत्पत्ति इस प्रकार है—

किसी समय योगीश्वर नामक शिवकी पूजाके लिये गान्धारी और कुन्तीमें विवाद छिड़ा। शिवजी इस विवादको दूर करनेके लिये मन्दिरमें आविर्भूत हो कर बोले, 'तुम लोग क्यों वृथा विवाद करती हो? कल सवेरे तुम दोनोंमेंसे जो एक हजार सुवर्ण चम्पक पुष्प ले कर सबसे पहले मेरी पूजा करेगी, उसीकी यह मेरी मूर्त्ति हो जायगी।' गान्धारीने यह सुन कर अपने बड़े लड़के दुर्योधनको सुवर्ण चम्पककी कथा कही। रात्रिकालमें दुर्योधन अनेक स्वर्णकार द्वारा उक्त पुष्प तैयार कराने लगे। इधर कुन्ती देवीके मुखसे महावीर अर्जुनने यह बात सुन कर बहुत तड़के अपने दरवाजे परसे गाण्डीव धनुष द्वारा दो वायव्य तीर छोड़े। दोनों तीरोंने धनपति कुबेरको पराजित कर उनकी पुरीसे बहुत जल्द एक सहस्र सुवर्ण चम्पक ला कर शिवजीको आच्छन्न कर दिया। तभीसे कुन्तीदेवी गान्धारीके पहले शिवका पूजन करने लगी। शिवविग्रह कुन्तीका हुआ। इस तरह अर्जुन कुबेरके भण्डारको जीत कर धन लाये थे, इसी कारण उनका धनञ्जय नाम पड़ा है। (विराटपर्व) ४ अर्जुन वृक्ष। ५ विष्णु। अर्जुन देखो। ६ देहमरुत्, शरीरस्थ पाँच वायुओंमेंसे एक। यह वायु पोषण करनेवाली मानी गई है। सुबोधिनी टीकामें लिखा है, कि मरने पर भी यह वायु बनी रहती है। इससे शरीर फूलता है। यह वायु ललाट, स्कन्ध, हृदय, नाभि, अस्थि और त्वचामें रहती है। ७ नागभेद, एक नागका नाम जो जलाशयोंका अधिपति माना गया है। ८ गोत्रविशेष, एक गोत्रका नाम। ९ सोलहवें द्वापरके व्यास। (त्रि०) १० धनञ्जय गोत्रसम्भूत, धनञ्जयके गोत्रका।

धनञ्जय—एक जैन कवि। इनके बनाये हुए ग्रन्थका नाम 'धनञ्जयीनाममाला" है। बहुतोंका अनुमान है, कि "राघवपाण्डवीय" नामक द्व्यर्थकाव्यकार धनञ्जय और ये जैन कवि अभिन्न व्यक्ति हैं। क्योंकि जैन कवि धनञ्जय भी "द्विसन्धान" अर्थात् द्व्यर्थकाव्य रचनामें पटु थे, इस कारण कवि राजशेखर अपनी "हरिहरावली" में उल्लेख कर गये हैं। इनकी बनाई हुई नामावली, धनञ्जयकोष, धनञ्जयनिघण्टु, प्रमाणनाममाला और निघण्टुभाष्य नामक और भी कितनी पुस्तकें पाई जाती हैं।

धनञ्जय—कुस्थलपुरके अधिपति। गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्तसे ये पराजित और बन्दी हुए, पीछे छोड़ दिये गये थे।

समुद्रगुप्त देखो।

धनञ्जय—१ अमरुशतक, सूक्तिकर्णामृत और गणरत्नमालाधृत एक प्राचीन कवि। २ चन्द्रप्रभा काव्यके रचयिता। ३ धर्मप्रदीप और सम्बन्धविवेक नामक ग्रन्थोंके रचयिता। ४ दशरूपकके प्रणेता, इनके पिताका नाम विष्णु था।

धनञ्जय सिद्ध—भविष्य ब्रह्मखण्डके ३९वें अध्यायमें गङ्गा और गण्डकीके मध्य विशाल नामक राज्यका वर्णन है। उस विशालदेशमें दीर्घद्वार नामक एक विभाग है, जिसमें वनकेलि नामक एक वृहत् ग्रामका भी उल्लेख देखा जाता है। उक्त ग्रन्थमें लिखा है कि इसी केलिग्राममें धनञ्जयसिद्ध नामक एक योगी वास करेंगे। वे कलिकालमें आविर्भूत हो कर साधना द्वारा छोटे छोटे देवताओंको वशीभूत भी करेंगे। तपके प्रभावसे वे त्रिकालज्ञ होंगे। एक रातको कुछ डकैत उनके आश्रममें प्रवेश कर उनका शिर काट डालेंगे। इसी अपराधसे वनकेलि ग्राम ध्वंस हो जायगा।

विशाल और वनकेलि देखो।

धनतेरस (हिं० स्त्री०) कार्त्तिक कृष्णा त्रयोदशी। यह दिवालीके दो दिन पहले होती है। इस दिन रातको लक्ष्मीका पूजन होता है।

धनद (सं० पु०) धनं ददाति ददाति पालयतीति देङ् पालने क। (आतोऽनुपसर्गे कः। पा ३।२।३) कुबेर। देवीभागवतमें लिखा है कि ब्रह्मा इनकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो कर इन्हें धनाधिपति बनाया था।

पुलस्त्यके पुत्र विश्रवा और विश्रवाके पुत्र कुबेर हैं। रामायणके उत्तरकाण्डमें इनकी उत्पत्तिका विवरण इस प्रकार लिखा है—

पुलस्त्य नामक तपःपरायण एक ऋषि थे। उनके विश्रवा नामक तपःप्रभावादि सम्पन्न एक पुत्र हुए। एक दिन भरद्वाज ऋषि विश्रवा आश्रममें गये और वहां इन्हें सद्‌गुणविशिष्ट देख ऋषिने देववर्णिनी नामक अपनी कन्याको इन्हें अर्पण किया। कालक्रमसे देववर्णिनीके एक सन्तान उत्पन्न हुई। विश्रवाने ज्योतिःशास्त्रानुसार गणना करके देखा कि यह पुत्र सकल गुणसम्पन्न और धनाध्यक्ष होगा। तब ऋषियोंने इन्हें पिढ़ अनुरूप देख इनका नाम वैश्रवण रखा। पीछे वैश्रवण यथासमय धर्म ही एकमात्र परमगति है, ऐसा स्थिर कर कठोर तपस्यामें प्रवृत्त हुए। इस तरह निराहार हजार वर्ष बीत गये। बाद वायु भोजन तथा कुछ कुछ जल पान कर एक हजार वर्ष और बीते। ब्रह्माजी इनकी कठोर तपस्यासे खुश हो कर वर देनेके लिये इनके सामने उपस्थित हुए और बोले, "तुम्हारी इस तपस्यासे मैं बहुत प्रसन्न हूं, अभी तुम अभिलषित वर मांगो।" इस पर वैश्रवणने कहा, 'यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो यही वर दीजिये जिससे मैं लोकपाल और धनाध्यक्ष होऊं।' ब्रह्माजी 'तथास्तु' कह कर चले गये। (रामायण उत्तरकाण्ड ३सर्ग) २ हिज्जल वृक्ष, समुद्रफल। धनद आश्रयित्वेनास्त्यस्येति अच्। ३ हिमालयका एक देश। ४ धनञ्जय वायु। ६ अग्नि। ७ चित्रकवृक्ष, चीता। धनं ददाति दा-क। (त्रि०) ८ दाता, धन देनेवाला।

धनदण्ड (सं० पु०) धनेन दण्डः। मनुक्त धनग्रहणरूप दण्ड, मनुके अनुसार एक प्रकारका दण्ड जिसमें अपराधीसे धन लिया जाता है।

पहले वाक्‌दण्ड, तब धिक्‌दण्ड, सबसे पीछे धन दण्ड देनेका विधान है। दण्ड देखो।

धनदतीर्थ (सं० पु०) व्रजके अन्तर्गत कुबेरतीर्थ।

धनदत्त (सं० पु०) १ धन देनेवाला। २ नामभेद, किसीका नाम।

धनदेव (सं० पु०) एक कविका नाम।

धनदस्तोत्र (सं० क्लो०) धनदस्य कुबेरस्य स्तोत्रं। कुबेरका स्तोत्र।

धनदा (सं० त्रि०) १ धन देनेवाली। (स्त्री०) २ देवीका एक नाम। ३ आश्विन कृष्णा एकादशीका नाम।

धनदाक्षी (सं० स्त्री०) धनस्य कुबेरस्य अक्षीव पिङ्गलं पुष्पमस्याः षच्, समासान्तः ततो ङीष्। १ कुबेराक्षी, लताकरंज। २ पाटल वृक्ष, पाढ़रका पेड़।

धनदानुज (सं० पु०) धनस्य अनुजः ६-तत्। १ रावण, कुम्भकर्ण आदि। ये लोग विश्रवाके औरस और कैकसीके गर्भसे धनदके बाद उत्पन्न हुए थे, इसीसे इन्हें धनदानुज कहते हैं। इनकी उत्पत्तिका विवरण रामायणमें इस प्रकार लिखा है—

विश्रवाने कैकसी नामक एक स्त्रीका पाणिग्रहण किया। पहले कैकसीके गर्भसे वीभत्सरूप दशग्रीव बीस भुजावाला एक पुत्र उत्पन्न हुआ, इसीका नाम रावण था। पीछे कुम्भकर्ण, तब शूर्पनखा नामक एक कन्या और सबसे पीछे धार्मिक मुनिगुणसम्पन्न विभीषण नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

धनदायन (हिं० पु०) एक पौधा। इसके काढ़ेसे जनी कपड़ों पर माड़ी देते हैं।

धनदायिका (सं० स्त्री०) धनं ददाति धन-दा-ण्वुल्। धनदात्री देवीभेद, धन देनेवाली एक देवीका नाम।

धनदायिन् (सं० त्रि०) धनं ददाति दा-णिनि। १ धनदाता, धन देनेवाला। (पु०) २ अग्नि। 'धनमिच्छेत् हुताशनात्' अग्निसे धनके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। अग्नि सन्तुष्ट होनेसे धन देती है। इसीसे अग्निका नाम धनदायी पड़ा है।

धनदेव (सं० पु०) धनददेव, धनाधिष्ठात्री देवता, कुवेर।

धनदेश्वर (सं० पु०) काशीस्थित कुबेरका स्थापित किया हुआ एक शिवलिङ्गका नाम।

धनधान्य (सं० पु०) धन और अन्न आदि, सामग्री और सम्पत्ति।

धनधाम (सं० पु०) घरबार और रुपया पैसा।

धननन्द—महावंशके मतसे नन्दवंशीय शेष राजा। कालाशोकके दश पुत्र थे। ये दशों एकही समयमें राज्य करते थे। इन्होंने सब मिला कर बाईस वर्ष तक राज्य किया। धीरे धीरे सबसे छोटे धननन्द जब राज्यके मुख्य पद पर अधिष्ठित हुए, तब उनके साथ चाणक्य पण्डितका विवाद हुआ। चाणक्यने बहुत चालाकीसे उन्हें मार

कर मौर्य वंशीय चन्द्रगुप्तको सम्राट्‌के पद पर प्रतिष्ठित किया। नन्द देखो।

धननाथ (सं० पु०) कुबेर।

धनन्दा (सं० स्त्री०) येन धनेन आनन्दं ददाति टाक, वा धनं ददते धन वाहुलकात् खच्-मुम्। बुद्धशक्तिभेद।

धनपति (सं० पु०) धनानां पतिः ६-तत्। १ कुबेर। २ देहस्थित वायुभेद, शरीरको एक वायुका नाम। इस धनपतिका उत्पत्ति-विवरण वराहपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

ऋषिश्रेष्ठ महातपाने कहा था कि मैं धनपतिका उत्पत्तिविवरण कहता हूं, ध्यान दे कर सुनो, यह अत्यन्त पापनाशक है। शरीरस्थित धनदवायु जिस तरह उत्पन्न हुई, सो सुनो। सबसे पहले शरीरमें वायु अन्तःस्थित थी। पीछे प्रयोजन होने पर उस वायुको समस्त क्षेत्रदेवताओंने मूर्त्तिविशिष्ट किया था। उसी अमूर्त्त वायुको उत्पत्ति यहां कही जाती है। ब्रह्माने जब संसारकी सृष्टि की, तब उनके मुखसे वायु देवता निकले। ब्रह्माने उनसे मूर्त्तिमान् हो कर शान्तभाव धारण करनेके लिये कहा और वर दिया, "देवताओंको जितना धन है, सबके रक्षक तुम हो और इसीसे तुम धनपति नामसे विख्यात होगे।" इसके अतिरिक्त ब्रह्माने उन्हें एकादशीतिथि दे कर कहा, 'जो एकादशीके दिन आगमें पका अन्न न खायेगा उसके प्रति प्रसन्न हो कर तुम धनधान्य दोगे। इसी प्रकार धनपतिकी मूर्त्तिकी उत्पत्ति हुई थी। यह मूर्त्ति सब प्रकारके पापोंको नाश करनेवाली है। जो ध्यान दे कर इस वृत्तान्तको सुनता या पढ़ता है, उसके सब कष्ट दूर हो जाते हैं और अन्तमें वह स्वर्गलोकको प्राप्त होता है।

धनपति कुबेरके कानोंमें कुण्डल, गलेमें माला, हाथमें गदा और शिर पर मुकुट है। इनका वर्ण पीला और ये श्रेष्ठ-विमान पर बैठे हुए हैं और चारों ओर गुह्यक (कुबेरके दूत) घेरे हुए हैं। ये महोदर, महाकाय तथा अष्ट ऋद्धि समन्वित हैं। धनपति कुबेरके प्रसन्न होनेसे धन प्राप्त होता है। ३ एक सौदागर। ये उज्जयिनि नगरमें रहते थे। इनके दो स्त्रियां थीं जिनके नाम लहना और लहना थे।

जब ये अपने देशके राजा विक्रमकेशरीसे सिंहलद्वीपको भेजे गये थे, वहां शालवान राजाने इन्हें कैद कर लिया। पीछे इनके पुत्र श्रीमन्तने इन्हें कारामुक्त किया था। (कविकंकण-चण्डी) श्रीमन्त देखो। (त्रि०) ४ धनाध्यक्ष, जिस पर धनकी रक्षाका भार सौंप गया हो।

धनपति १ सूक्तिकर्णामृतधृत एक प्राचीन कवि। २ ज्ञानमुक्तावली नामक एक ज्योतिःग्रन्थके रचयिता। ३ दिव्यरसेन्द्रसार नामक एक वैद्यक ग्रन्थकार।

धनपतिमिश्र—विद्यारत्नाकर और शङ्करदिग्विजयडिण्डिम नामक दोनों ग्रन्थोंके रचयिता। शेषोक्त ग्रन्थ १७९८ ई०में रचा गया था। इनके पिताका नाम रामकुमारमिश्र, श्वशुरका सदानन्दव्यास, गुरुका बालगोपालतीर्थ और पुत्रका नाम शिवदत्तमिश्र था।

धनपत्र (सं० पु०) वही, खाता।

धनपात्र (सं० पु०) धनवान्, धनी।

धनपाल (सं० त्रि०) धनं पालयति पालि-अण्। १ धनरक्षक, धनको रक्षा करनेवाला। (पु०) २ कुबेर। ३ सूक्ति-कर्णामृत और भोजप्रबन्धधृत एक प्राचीन कवि। ४ एक प्राचीन वैयाकरणिक। इनके ग्रन्थमें 'आर्य' और 'द्राविड़'का उल्लेख है। ये मैत्रेयरक्षित, काश्यप और पुरुषकारके पूर्ववर्त्ती थे। माधवीय धातुवृत्तिमें इनका उल्लेख सब जगह किया गया है।

५ एक जैन ग्रन्थकार। ये "पंशाचीनाममाला" नामक प्राकृत अभिधानकर्त्ता थे। हेमचन्द्र और भानुजीके ग्रन्थोंमें इनका उल्लेख है। इनके पिताका नाम सर्वदेव और भाईका नाम शोभन था।

६ एक संस्कृत ग्रन्थकार। इनके बनाये हुए दो ग्रन्थ पाये जाते हैं, ऋषभपञ्चाशिका और तिलकमञ्जरी। तिलकमञ्जरी इनकी लड़कीका नाम था। ... की सभामें रहते थे। एक दिन राजाके ... दृढ़ पालनका ... विवाद हुआ। राजाकी आज्ञासे इनका ... भागवत नामक ग्रन्थ नष्ट कर दिया गया। ... का नाम तिलकमञ्जरी नहीं था। इतने ... श्रम और यत्नकी वस्तुके नष्ट हो जानेसे कवि बहुत दुःखसे समय व्यतीत करने लगे। एक दिन उनकी लड़की तिलकमञ्जरीने उनसे पूछा कि आप

इतना उदास क्यों है ? इस पर कविने सब बातें कह सुनाईं। तिलक हँस कर बोली, "इसके लिये चिन्ता क्यों! आप प्रतिदिन जितने श्लोक लिखते थे, उन्हें मैं रोज रोज कण्ठस्थ कर लिया करती थी जो आज तक भी सब स्मरण हैं। मैं कहती जाती हूं आप उसे लिखते जाँय।" इस तरह नष्ट ग्रन्थ फिरसे नवीन बनाया गया। कविने बहुत प्रफुल्लचित्तसे अपनी कन्याके नाम पर उक्त काव्यका नाम तिलकमञ्जरी रखा। काव्यालङ्कारमें इनका उल्लेख है।

धनपिशाचिका (सं० स्त्री०) धने पिशाचिरेव। धनाशा, धनका लोभ। इसका नामान्तर तृष्णा है।

धनप्रयोग (सं० पु०) धनस्य वृद्ध्यर्थं प्रयोगः। धनको किसी व्यापारमें लगाने या ब्याज पर उधार देनेका कार्य, रुपया लगानेका काम। धन प्रयोग करनेमें विशुद्ध नक्षत्रादिका विचार करना आवश्यक है। मुहूर्त्तचिन्तामणिमें इसके विषयमें यों लिखा है—स्वाती, पुनर्वसु, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, विशाखा, पुष्या, श्रवणा, धनिष्ठा और अश्विनी इन सब नक्षत्रोंमें ऋणदान करना चाहिये।

मङ्गलवारको ऋण न लेना चाहिये और बुधवारको न देना चाहिये। मङ्गलवारको ऋणपरिशोध करना अच्छा है। सोमवारको सञ्चय करना चाहिये। हस्तानक्षत्र, रविवार और संक्रान्तिमें जो ऋण लिया जाता है वह कभी परिशोध नहीं होता, वरं वह पुत्रपौत्रादि तक क्रमशः बढ़ता जाता है। यदि इन सब निषिद्ध दिनोंमें ऋण लिया भी जाय, तो उसे यत्नपूर्वक बहुत जल्द परिशोध कर देना चाहिये।

पूर्वभाद्रपद, भरणी, कृत्तिका, अश्लेषा, मघा, पूर्वफल्गुनी, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढ़ा, स्वाति, विशाखा और आर्द्रा इन सब नक्षत्रोंमें धनप्रयोग अर्थात् ऋणदान नहीं करना चाहिये। किन्तु अनुराधा, मृगशिरा और रेवतीमें ऋण लेना अच्छा है, पर दान भूल कर भी न करे।

धनप्रिया (सं० स्त्री०) धनवत् प्रिया। काकजम्बूवृक्ष, एक प्रकारका जामुन।

धनफल (सं० क्ली०) धनानां फलं। दानभोगादि।

धनभक्ष (सं० पु०) धनभोग।

धनभूति—मौर्यवंशके बाद सुङ्गवंशके राजा प्रबल हो उठे। पहली वा दूसरी शताब्दीमें बघेलखण्डके समीप नागोद (नगोध) नामक स्थानमें भरहुत नामका एक स्तूप बनाया गया। इस स्तूपके एक स्तम्भमें उत्कीर्ण शिलालेख पढ़नेसे मालूम होता है कि सुङ्गवंशके राजाओंके समयमें गार्गीके पुत्र विश्वदेवके प्रपौत्र, गोतीके पौत्र, अगर और वात्सीके पुत्र धनभूतिने यह तोरण (फाटक) निर्माण और समाप्त किया गया था। जर्मनके पण्डित हुलच् अनुमान करते हैं, कि ये धनभूति सुङ्गोंके अधीनस्थ कोई राजा होंगे। इस स्तूपके दूसरे स्तम्भलेखमें धनभूतिके बाद उनके पुत्र युवराज वधपालका नाम पाया गया है।

धनमद (सं० पु०) धनाय ये मदः वा धनस्य मदः। धनके लिये मत्तता, धनका घमंड। धन होनेसे मनमें एक प्रकारका गर्व आ जाता है, उसीको धनमद कहते हैं।

धनमित्र—एक वणिक्। महाकवि कालिदास-प्रणीत शकुन्तला नाटकमें इसका नाम पाया जाता है। जिस समय राजा दुष्मन्त माधव्यके साथ शकुन्तलाके विरहसे कातर हो कर उपवनमें भ्रमण कर रहे थे, उस समय मन्त्रीने राजाको इसकी अपुत्रक अवस्थामें मृत्युका सम्वाद लिपि द्वारा सुनाया था। इस पर राजाने कहा था, कि धनमित्रके अनेक स्त्रियां हैं, उनमेंसे जो पतिव्रता होगी उसीकी सन्तान इसकी उत्तराधिकारी होगी।

(शकुन्तला ६ अङ्क)

धनमाली (सं० पु०) एक अस्त्रका संहार।

धनमूल (सं० त्रि०) धनमेव मूलं यस्य। धन हो जिसका मूल है, अर्थ हो जिसका कारण है।

धनमोहन (सं० पु०) एक वणिक् पुत्रका नाम।

धनराज—महादेवीदीपिका नामक ज्योतिषके ग्रन्थकार।

धनर्च (सं० पु०) धनार्थं अर्चा यस्य। धनार्थ अर्चायुक्त अग्नि, अग्नि जिसकी आराधना करनेसे धन मिलता है।

धनलुब्ध (सं० त्रि०) अर्थलोभी, धनका लालची।

धनलोभ (सं० पु०) धनाय धनस्य वा लोभः। धनके लिये लोभ, धनकी अभिलाषा।

धनवत् (सं० त्रि०) धनमस्त्यस्येति धन-मतुप्, मस्य व। धनविशिष्ट, धनशाली, धनी, धनाढ्य।

धनवती (सं० स्त्री०) धनवत् स्त्रियां ङीप्। १ धनिष्ठा-नक्षत्र, धनदेवता इस नक्षत्रके अधिष्ठात्री देवता है, इसीसे धनवती शब्दसे धनिष्ठानक्षत्रका बोध होता है। (त्रि०) २ धन रखनेवाली।

धनवा (हिं० पु०) एक प्रकारकी घास।

धनवान् (हिं० वि०) जिसके पास धन हो, दौलतमन्द।

धनविजयवाचक—लोकनालिकसूत्र नामक ग्रन्थके भाषा-वृत्तिकार, प्रायः ११४१ सम्वत्में इन्होंने उक्त ग्रन्थकी रचना की थी। ये गच्छप्रधान विजयदेवसूरि और श्राद्ध-प्रतिक्रमणसूत्रवृत्तिके रचयिता विजयसिंहके सम-सामयिक थे।

धनशाली (हिं० वि०) धनवान्, धनिक, दौलतमन्द।

धनसञ्चय (सं० पु०) धनस्य सञ्चयः। अर्थसञ्चय, धनका जमा करना। आपदकालके लिये धनसञ्चय अवश्य कर्त्तव्य है।

धनसनि (सं० त्रि०) सन सम्भक्तौ-इन् धनस्य सनिः। धन-लाभयुक्त, जिसे धन मिला हो।

धनसम्पत्ति (सं० स्त्री०) धनाढ्यता, धनपात्र होनेका भाव।

धनसा (सं० त्रि०) किसीको धन देनेका स्वीकार करना, धन देना।

धनसाति (सं० स्त्री०) धन वा अर्थ उपार्जन।

धनसार (हिं० पु०) अनाज रखनेकी कोठरी या घेरा। इसमें अनाज रखने वा निकालनेके लिये केवल दो खिड़कियां होती हैं।

धनसिंह—भविष्यब्रह्मखण्डोक्त चम्पादेशके अधिपति। ये खड्गसिंहके पुत्र और उज्जयनीपति विक्रमादित्यके समकालवर्त्ती थे। जब इनके चाचा खड़कसिंह युवा-वस्थामें मर गये, तब ये ही सिंहासन पर बैठे। राज्या-रोहणके समय इनकी उमर थोड़ी थी। इन्हींके समयमें सौगतोंने प्रबल हो कर चम्पाके एकांश विशाल प्रदेश पर अधिकार जमा लिया था। धनसिंह बाध्य हो कर उन्हें कर देने लगे थे। एक दिन बहुत दुःखित हो ये विक्रमादित्यके निकट सहायता पानेके उद्देशसे जा रहे थे, किन्तु रास्तेमें गङ्गाके किनारे वज्राघातसे इनकी मृत्यु हो गई।

धनसिरी (हिं० स्त्री०) एक चिड़िया।

धनसू (सं० पु०) १ धन उत्पादन, धन सञ्चय करना। २ धूम्याट नामक पक्षिविशेष, धनेस नामकी चिड़िया।

धनस्थ (सं० त्रि) धन-स्था-क। धनवान्, धनी, धनाढ्य।

धनस्थान (सं० क्ली०) धनचिन्तनार्थं स्थानं। लग्नसे दूसरा स्थान। इस स्थानमें धनके शुभाशुभ विषयका विचार किया जाता है।

धनस्पृहा (सं० स्त्री०) अर्थकाम, धनलिप्सा, धनकी अभिलाषा।

धनस्यक (सं० त्रि०) लालसया धनमिच्छति धन क्यच्, लालसायां सुक्, धनस्य नामधातुः ततो ण्वुल्। १ लालसा द्वारा धनेच्छु, धनकी लालसा रखनेवाला। (पु०) २ गोक्षुरक, गोखरू।

धनस्वामी (सं० पु०) धनदेवता, कुबेर।

धनहर (सं त्रि०) धनं हरति हृ ताच्छील्यादौ ट। १ धन-हरणशील, धन चुरानेवाला। (क्ली०) २ चोर नामक गन्धद्रव्य। ३ तस्कर, चोर।

धनहारी (सं० त्रि०) १ दायभागी, जो दूसरेके धनका उत्तराधिकारी होता है। (स्त्री०) २ चोर नामक गन्ध-द्रव्य। इसका पर्याय—चण्डा, क्षेम और दुष्पत्रक है। ३ ग्रन्थिपर्णी भेद।

धनहीन (हिं० वि०) निर्धन, कंगाल।

धनहृत (सं० त्रि०) धनं हरति हृ-क्विप् तुक्। १ धनहारी, धन हरनेवाला। (पु०) २ चण्डालकन्द।

धना (सं० स्त्री०) १ रागिणीविशेष, एक रागिणी। २ आर्द्र धान्यक, गीला धनिया। ३ धान्यक, धनिया।

धनाकाङ्क्षा (सं० स्त्री०) धनाभिलाष, धनकी अभिलाषा।

धनागम (सं० पु०) धनस्य आगमः ६-तत्। अर्थागम, धनका आना या मिलना।

धनाढ्य (सं० त्रि०) सम्पत्तिशाली, धनवान्, मालदार।

धनाधिकारिन् (सं० त्रि०) धनं अधिकरोति अधि-कृ-णिनि। धनाध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, भंडारी।

धनाधिकृत (सं० त्रि०) धनेन अधिकृतः। धन द्वारा अधिकृत, जो धन दे कर ले लिया गया हो।

धनाधिगोप्तृ (सं० त्रि०) धनं अधिगोपायति अधि-गुप-तृच्। १ धनपालक, खजानची, भंडारी। स्त्रियां ङीप्। (पु०) २ कुबेर।

धनाधिप (सं० पु०) धनानां अधिपः । १ कुबेर । २ धनरक्षक, कोषाध्यक्ष, भंडारी ।

धनाधिपति (सं० पु०) धनस्य अधिपतिः । १ कुबेर । २ धनरक्षक ।

धनाधिपत्य (सं० क्ली०) धनाधिपतेर्भावः ष्यञ् । धनका अधिपतित्व, धनके अधिपतिका भाव ।

धनाध्यक्ष (सं० पु०) धनानां अध्यक्षः । १ कुबेर । २ धनरक्षक, कोषाध्यक्ष, खजानची ।

मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि जो लोह, वस्त्र, चर्म और रत्न आदिका विधान अच्छी तरह जानता हो और जो शुचि, कार्यकुशल, सर्वदा अप्रमत्त और धनके सब प्रकारके विधानोंसे अवगत हो, वही धनाधाक्ष होने योग्य है। इसे धनकी आय और व्ययका हिसाब रखना पड़ता है।

धनाना (हिं० क्रि०) १ गायका गर्भवती होना। २ गायका सांड़से संयोग करना, गायका बरदाना ।

धनायु (सं० पु०) नृपभेद, एक राजाका नाम।

धनार्थ (सं० त्रि०) धनाय अर्थः अर्थेन सह नित्यसमासः । धन प्रयोजन, धनके लिये ।

धनार्थिन् (सं० त्रि०) धनं अर्थयते अर्थ-णिनि । धनप्रार्थक, धन चाहनेवाला, रुपया पैसा मांगनेवाला ।

धनाशा (सं० स्त्री०) धनानां आशा ६-तत् । धनलोभ, धनका लालच ।

धनाश्री (सं० स्त्री) रागिणीविशेष। हनुमान्‌के मतसे यह श्रीरागको तीसरी पत्नी मानी जाती है। इसकी जाति षाड़व, ऋषभवर्जित ग्रहांशन्यास षड़्ज है। यह हेमन्त ऋतुके दूसरे पहरमें गाई जाती है। किसीके मतसे इसके गानेका समय तीसरा पहर है । कल्लिनाथके मतसे यह मेघरागकी चौथी स्त्री और भरतके मतसे मालकोष रागके पुत्र गान्धारकी स्त्री है। इसका प्रयोग वीर रसमें विशेष होता है । इसका स्वरग्राम इस प्रकार है:—

स० ग म प ध नि स ।

रागमालामें इसका रूप इस प्रकार वर्णित है—यह लाल वस्त्र पहने विरहके दुःखसे बहुत दुःखित है। इसीसे इसका शरीर बहुत क्षय है और यह मोरसरोंके पेड़के नीचे अकेली बैठ कर रोती है।

धनिक (सं० पु०) धनिना कायतीति कै-क । १ धन्याक, धनिया । २ धव, स्वामी । (त्रि०) धनं अस्त्यस्येति (अत इनिठनौ । पा ५।२।११५) इति ठन् । ३ साधु । ४ धनी, जिसके पास धन हो, मालदार ।

कलाविलासमें लिखा है, कि जो सब मूढ़ मनुष्य धूर्त्तोंके हाथमें क्रीड़नक स्वरूप हैं, वारवनिताके चरणस्थित नुपूर मणिकी नाईं हैं तथा धनिक गृहोत्पन्न हैं, वैसे मनुष्योंको मुक्ति नहीं होती है। (पु०) ५ उत्तमर्ण, रुपया उधार देनेवाला मनुष्य, महाजन। ६ दशरूपक ग्रन्थके व्याख्याकर्त्ता । ये विष्णुके पुत्र एक विख्यात पण्डित थे ।

धनिका (सं० स्त्री०) धनिक-टाप् । एक साधुनारी, अच्छी स्त्री । २ वधू । ३ युवती । ४ धनिकपत्नी, धनी स्त्री । ५ प्रियङ्गुवृक्ष । ६ प्राचीन सौराष्ट्र राज्यके अन्तर्गत द्वारकाके उत्तर-पूर्वमें अवस्थित एक ग्राम। इसका वर्त्तमान नाम धिनिकि है ।

धनिता (सं० स्त्री०) धनाढ्यता, धनीपना ।

धनिन् (सं० त्रि०) धनमस्त्यस्येति धन-इनि । १ धनवान्, दौलतमन्द । इसका पर्याय इभ्य और आढ्य है ।

"धनिनः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः ।
पंच यत्र न विद्यन्ते तत्र वासं न कारयेत् ॥" (चाणक्य)

जहां धनशाली मनुष्य, वेदविद् ब्राह्मण, राजा, नदी और वैद्य ये पांच नहीं हैं, वहां वास नहीं करना चाहिये । २ उत्तमर्ण, रुपया उधार देनेवाला ।

धनिया (हिं० पु०) एक छोटा पौधा । धन्याक देखो।

धनियामाल (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका गहना जो गलेमें पहना जाता है ।

धनिराम—एक संस्कृत ग्रन्थकार । इनके बनाये हुए ग्रन्थका नाम नैश्वयन्तसिद्धान्तज्योत्स्ना है। यह निम्बादित्य प्रवर्त्तित वैष्णवाचार निर्णायक ग्रन्थ है।

धनिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशयेन धनी इष्ठन्, इनो लोपः । अतिशय धनयुक्त, बहुत धनी ।

धनिष्ठा (सं० स्त्री०) अश्विनी प्रभृति सप्तविंशति नक्षत्रके अन्तर्गत त्रयोविंश नक्षत्र, सत्ताईस नक्षत्रोंमेंसे तेईस नक्षत्र । इसका पर्याय—श्रविष्ठा, वसुदेवता, भूति, निधन और धनवती है । इसमें पांच तारे संयुक्त हैं। इसके

अधिपति देवता वसु हैं और इसकी आकृति मृदङ्गकीसी है। फलित-ज्योतिषके अनुसार धनिष्ठा नक्षत्रमें जिसका जन्म होता है, वह दीर्घकाय, कामातुर, कफयुक्त, उत्तम शास्त्रवेत्ता, विवादी, बहुपुत्रयुक्त, लम्बहस्तविशिष्ट और कीर्त्तिमान् होता है। किसीका मत है कि धनिष्ठानक्षत्रमें जन्म होनेसे वह दाता, धनवान्, शूर, गीतप्रिय और धनलोभी होता है।

उत्तराषाढ़ाके शेष तीन पाद एवं श्रवणा और धनिष्ठाका प्रथमार्द्ध मकरराशि है। धनिष्ठाके शेषार्द्ध शतभिषा और उत्तरभाद्रपदके प्रथम तीन पाद कुम्भराशि हैं।

नक्षत्र देखो।

धनी (सं० स्त्री०) धनमस्त्यस्याः अच् गौरादित्वात् ङीष्। युवती स्त्री, बहू।

धनी (हिं० वि०) १ धनवान्, जिसके पास धन हो, मालदार। २ दक्षतासम्पन्न, जिसके पास गुण आदि हों। (पु०) ३ धनवान् पुरुष, मालदार आदमी। ४ अधिपति, मालिक, स्वामी। ५ पति, शौहर।

धनीयक (सं० क्लो०) धनाय हितं धन-छ, संज्ञायां कन्। धन्याक, धनिया।

धनु (सं० पु०) धनतीति धन (भृमृशीतृचरीति। उण् १।७) इति उ। १ चाप, धनुष्, कमान। २ प्रियङ्गु वृक्ष, पियालका पेड़। ३ ज्योतिषकी बारह राशियोंमेंसे नवीं राशि। इसके अन्तर्गत मूला और पूर्वाषाढ़ानक्षत्र तथा उत्तराषाढ़ाका एक चरण आता है। ४ फलित-ज्योतिषमें एक लग्न। इसका परिमाण ५।१७।२० है। प्रत्येक रात दिनमें बारह लग्न हैं। पौषमासमें सूर्योदय धनु लग्नमें होता है। धनुष् देखो। (वि०) ५ धनुर्द्धर, धनुष धारण करनेवाला। ६ शीघ्रगन्ता, बहुत तेज जानेवाला।

धनुआ (हिं० पु०) १ धनुष्, कमान। २ ताँतकी डोरीको वह लम्बी कमान जिससे धुनिए रूई धुनते हैं।

धनुःकाण्ड (सं० क्लो०) शरासन और शर, तीर और कमान।

धनुःखण्ड (सं० क्लो०) धनुषो खण्डं। धनुस्, कमान।

धनुःपट (सं० पु०) धनुष इव पटो विस्तारो यस्य। पियालवृक्ष।

धनुःशाखा (सं० स्त्री०) धनुषः शाखा यस्याः। मूर्वा, मुर्रा। धनुरवयव इव शाखा अस्याः। पियालवृक्ष।

धनुःश्रेणी (सं० स्त्री०) धनुषः श्रेणीव। १ मूर्वा, मुर्रा। २ महेन्द्रवारुणी।

धनुक (हिं० पु०) धनुष् देखो।

धनुकबाई (हिं० पु०) एक प्रकारका रोग जो लकवेकी तरहका होता है। इसमें रोगीके जबड़े बैठ जाते हैं और मुंह नहीं खुलता।

धनुकी—चम्पारण जिलेके सिमरौन परगनेके अन्तर्गत एक ग्राम। यह मोतिहारी रास्तेके ऊपर अवस्थित है। यहां सप्ताहमें दो बार हाट लगती है।

धनुकेतकी (सं० स्त्री०) पुष्पविशेष, एक प्रकारका फूल।

धनुगुल्म (सं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़।

धनुराज (सं० पु०) शाक्य मुनिके पूर्व पुरुषोंका नामभेद।

धनुर्गुण (सं० पु०) धनुषो गुणः ६-तत्। ज्या, धनुसकी डोरी, पतंचिका, चिल्ला।

धनुर्गुणा (सं० स्त्री०) धनुषो गुणो यस्याः। मूर्वा, मुर्रा, मरोरफली।

धनुर्ग्रह (सं० पु०) धनुस्-ग्रह-अच्। १ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। २ धनुर्द्धर। ३ धनुर्विद्या।

धनुर्ग्राह (सं० पु०) धनुस्-ग्रह-अण्। धनुर्ग्रह।

धनुर्जयनारायण—उड़ीसाके अन्तर्गत केउञ्झर राज्यके एक राजा। केउञ्झर देखो। इनका पूरा नाम महाराज धनुर्जयनारायण भञ्जदेव था। ये अपने पिताके दासीपुत्र थे। पहले उक्त राज्य मयूरभञ्ज राज्यके अन्तर्गत रहा। लगभग ढाई सौ वर्ष पहले यह स्वतन्त्रराज्य हो गया। मयूरभञ्ज राजाके भाई इस प्रदेशके राजा हुए। क्रमशः उनके वंशके २७ राजाओंने यहां राज्य किया। सत्ताईसवें राजाके कोई औरसपुत्र न था, केवल एक दासीके गर्भसे धनुर्जय नारायणका जन्म हुआ था। दासीका नाम फुलबाई था। १८६१ ई०में वृद्ध राजाके मरने पर वृटिश गवर्मेण्टने धनुर्जयनारायणको गद्दी पर बिठाया।

दासीपुत्रके राजा होनेसे भुंइया और जुयाङ्ग जातिके लोग बहुत बिगड़े। उन्होंने दत्तकपुत्रके रूपमें एक मनुष्यको उत्तराधिकार बना कर महाउपद्रव मचा दिया। अन्तमें वृटिश सरकारको सेना भेज कर यह उपद्रव

माल्म करना पड़ा। धनुर्जयनारायणके अभिषेकके समय जो गोलमाल हुआ था उसका विवरण नीचे दिया जाता है।

१८६१ ई०की २२वीं मार्चको केउञ्झरके राजाका त्रिवेणीमें देहान्त हुआ। इनके फुलभाई नामक दासीके गर्भसे धनुर्जय और चन्द्रशेखर नामक दो पुत्र थे। ३री अप्रिलको बड़े धनुर्जयनारायण राजगद्दी पर बैठे। ८वीं अप्रिलको मयूरभञ्जके राजाने यह खबर भेज दी कि स्वर्गीय महाराज उनके पोते वृन्दावनको दत्तक-पुत्र बना गये हैं, वही बालक अभी केउञ्झरका प्रकृत उत्तराधिकारी है। अतः उसे अभिषेक करनेके लिये मैं आ रहा हूं। करदराज्यसमूहके परिदर्शकोंने मयूरभञ्जके राजाको इस काममें हाथ डालनेसे मना किया, लेकिन उन्होंने एक भी न सुनी और अपने पोतेको वहां भेज ही दिया। वृन्दावन रानी तथा कई एक प्रधान व्यक्तियोंकी सहायतासे छिप कर राज्यगद्दी पर अभिषिक्त हुए। अन्तमें दत्तक ग्रहणकी बात मिथ्या साबित होने पर भी रानी धनुर्जयनारायणका पक्ष न ले कर वृन्दावनके पक्षका ही समर्थन करने लगीं। पीछे करद-राज्यके परिदर्शकोंने जब राजवंशादिके आवहमान-कालकी प्रथाका अनुसन्धान किया, तब धनुर्जयनारायण ही उचित उत्तराधिकारी ठहराये गये। वृन्दावनकी ओरसे पहले हाईकोर्टमें, पीछे विलायत तक अपील की गई, किन्तु फल कुछ भी न हुआ। इसी समय बङ्गाल गवर्मेण्टने भी धनुर्जयको ही केउञ्झरका राजा कायम किया। १८६७ ई० तक यह विवाद चलता रहा। पीछे उसी वर्षके सितम्बरमासमें धनुर्जयके होने बालिग पर उन्हें प्रकाश्यरूपसे राज्याभिषेक करनेका हुक्म दिया गया। कटकमें जब उन्हें राज्यभार देनेका समय आया, तब रानीने मुकदमेके निष्पत्ति-काल तक अभिषेक बन्द रखनेकी प्रार्थना की। छोटे लाट ग्रे साहबने जब परिदर्शकोंसे सलाह मांगी, तब उन्होंने कहा, कि कटकमें राज्यभार अर्पण करनेके समय केउञ्झरके सामन्तोंने जिस भावसे नवराजके प्रति सम्मान और वश्यता दिखलाई है, इसमें भयका कारण कुछ भी नहीं है। राजाको राज्यमें भेज देनेसे ही सब गड़बड़ी मिट जायेगी और सहकारी परिदर्शक आनन्दपुर तक उन्हें पहुंचा आवें। राजप्रासादमें प्रवेश होनेके पहले ही रानी धनुर्जयको राजा मानेंगी वा नहीं यह धनुर्जय पहले ही जानना चाहते थे।

परिदर्शकोंने पार्वतीय जातिके सरदारोंको तथा राज्यके प्रधान कर्मचारियोंको वशीभूत करके उन्हें बागी होनेसे मना किया। केवल रत्ननायक नामक एक पार्वतीय सरदार जरा भी वशीभूत न हुआ। छोटे लाट-को तार द्वारा इसकी खबर दी गई। उन्होंने अभिषेक कार्य समाप्त करनेकी ही आज्ञा दी।

उधर रानी छिप कर पार्वतीय जातियोंके साथ षड़यन्त्र कर रही थी, नवम्बर मासमें यह बात खुल गई। इनमेंसे भुंइया और जुआङ्ग लोग ही प्रधान थे। शेषोक्तकी संख्या भी अधिक थी। यही भुंइया सरदार रत्ननायक था। पीछे रानीने इस बातकी सूचना दी, 'यदि नव भूपति राजप्रासादमें प्रवेश करेंगे, तो मैं प्रासाद छोड़ कर चली जाऊंगी। मेरे प्रासाद छोड़नेसे, सम्भव है कि भुंइया और जुआङ्ग लोग बागी हो जायंगे।' परिदर्शकोंने रानी तथा पार्वतीय लोगोंको समझानेके लिये सरदारको भेजा। उन्होंने वहां जा कर देखा, कि रानीके लोगोंने अन्यान्य सरदारोंको बहका कर मयूरभञ्ज भेज दिया है। इसी बीच एक दल पार्वतीय लोग कलकत्तेमें लाटके निकट उनका प्रकृत आदेश क्या है, वह जाननेके लिये आये। छोटे लाटने कहा, यदि विलायतकी अपीलमें राय नहीं बदली जायगी, तो धनुर्जय ही राजा होंगे। पार्वतीय लोग भी इसे स्वीकार कर अपने स्थानको चल दिये। पीछे छोटे लाटके आदेशा-नुसार जब सब कोई आनन्दपुरमें एकत्रित हुए, तब ग्राममण्डलने राजाकी वश्यता स्वीकार कर ली और बहुत आदरसे उनकी अभ्यर्थना की तथा साथ साथ कर भी दिया। उधर रानी सैन्यसंग्रह करने लगीं।

इसके बाद राजाने दलबलके साथ केउञ्झरकी यात्रा की। रास्तेमें रसद घट गई और सब कोई पद पदमें विद्रोहियोंके आक्रमणकी आशा करने लगे। उस समय भी ग्रामके मण्डल [illegible] छोटे नहीं थे। [illegible] सबके सब [illegible] के राजधानीमें पहुंचे। वहां [illegible]

देखा कि रानी भागनेकी तैयारियां कर रही हैं। केवल रानी छोड़ कर राजप्रासादके सभी राजपरिवारोंने धनुर्जयको राजा स्वीकार किया। रानी जरा भी शान्त न हुईं।

दिसम्बरमासमें धनुर्जय राजा हुए। शुभाङ्ग सरदारोंमेंसे अनेकोंको वाध्य हो कर राजाकी वश्यता स्वीकार करनी पड़ी। भुंइयोंमेंसे एक भी इसमें शामिल न हुआ।

अन्तमें इतनी गड़बड़ी उठी, कि रानीको दूसरी जगह पहुँचाये विना यह विद्रोह शान्त नहीं हो सकता, ऐसा उन्होंने स्थिर कर लिया। रानीको जगन्नाथ भेज देनेकी सबोंकी सलाह हुई। १८६८ ई०को १६वीं जनवरीको रानी जगन्नाथ जानेके रास्ते पर राजधानीसे ३॥ कोस दूर वसन्तपुर नामक ग्राममें रहने लगीं। इस समय निकटस्थ जङ्गलोंके भुँइया लोग झुण्डके झुण्डमें तीर धनुष कुल्हाड़ी अपने अपने हाथोंमें लिये रानीके समीप आने लगे। मि० रावेनशने पुलिससेनाकी सहायतासे उनमेंसे बहुतोंको पकड़ा। रानीके निकट ला कर उन्हें कहा गया कि क्या रानी अपनी सन्तानको इस दुर्दशावस्थामें रखनेकी इच्छा करती है? इस पर रानीने भुंइयोंको उनका पक्ष छोड़ देनेको कहा। बाद उन्होंने मुक्ति पा कर राजाकी अधीनता स्वीकार कर ली। रत्ननायक राजाकी वश्यता स्वीकार न कर बहुत चालाकीसे भाग गया।

बाद रानी भुंइयाके कहने सुननेसे वसन्तपुरसे आ कर राजप्रासादमें रहने लगीं। १८६८ ई० को १३वीं फरवरीको धनुर्जयनारायण भुंइया लोगोंसे अभिषिक्त हुए। इस अभिषेकमें विशेषता यह है—अभिषेकके पहले ही राजा सभामें आ कर पान मिष्टान्न और माल्यादि प्रदान कर चले जाते हैं। कुछ समयके बाद वे फिर एक भीमकाय भुँइया सरदारकी पीठ पर सवार हुए सभास्थलमें आते हैं। सरदार उन्हें अपनी पीठ पर लिये अबाध्य अश्वकी नाईं नाचने लगता है। सभाके जिस ओर ब्राह्मण लोग शास्त्रीय रीतिके अनुसार अभिषेक द्रव्यादि ले कर बैठते हैं, उसके विपरीत ओर एक वेदी बनी रहती है और उस पर एक लाल वस्त्र रखा रहता है। राजा सरदारकी पीठ पर आरोहण करके नाचते नाचते उसी ओर जाते हैं। उस समय और जितने भुँइया उनके पीछे पीछे चलते हैं। सभासे थोड़ी दूरके फासले पर भुँइया लोग अपना जातीय बाजा बजाते हैं। वेदीके समीप आ कर एक दूसरा भुँइया राजाको अपनी पीठ पर ले कर उस वेदी पर बैठता है। राजा उसकी पीठ पर ठीक जिस तरह सिंहासन पर बैठा जाता है, उसी तरह बैठते हैं। इस समय भुँइया सरदार लोग राजाके निकट उनके अनुचररूपमें कोई पताका, कोई पंखा, कोई छत्र, कोई चन्द्रातपधारी हो कर खड़ा रहता है। यह अनुचर होनेका एक विशेष नियम है। ३६ सरदार पुरुषानुक्रमसे अनुचरके रूपमें अन्यान्य राजाओंके समय खड़े होते आये हैं। उन्हींके वंशधर उसी उसी अनुचरके रूपमें खड़े होनेके अधिकारी होते हैं। बाद कोई एक प्रधान सरदार एक जंगली लता ला कर उसे राजाकी पगड़ीमें खोंस देता है। यही उन लोगों द्वारा मुकुट आरोपका अनुकल्प है। इस समय पुनः बाजा बजता है, भाट लोग स्तुतिगान और ब्राह्मण लोग सामगान करते हैं। बाद एक प्रधान सरदार राजाके कपालमें चन्दनकी टीका देता है, पीछे वहां जितने राजकर्मचारी रहते हैं, सभी टीका देते हैं।

इसके अनन्तर पञ्चगव्य द्वारा स्नानादि और शास्त्रोक्त अभिषेकक्रिया सम्पन्न होती है। बाद एक तलवार राजाके हाथमें दी जाती है। यह तलवार इस राजवंशका अत्यन्त प्राचीन अस्त्र है। अभी मोरचा लग जानेसे वह नष्ट हो गई है। पीछे एक सरदार राजाके निकट घुटना टेक गला बढ़ा कर बैठ जाता है। राजा उस तलवारसे गलेको स्पर्श करते हैं। पूर्व समयमें गला सचमुच काट डाला जाता था और इसी सरदारवंशमेंसे प्रति अभिषेकके समय एक एक मनुष्यकी बलि दी जाती थी और उन्हें पुरुषानुक्रमसे जागीर मिलती थी। पहले मृत व्यक्तिका पुनर्दर्शन नहीं होता था, इसीसे आज कल यह नियम प्रचलित है कि तलवार स्पर्शके बादही वह मनुष्य उसी समय वहांसे हठात् भाग जाय और तीन दिन तक दिखाई न दे। पीछे चौथे दिनमें जिस तरह मानो किसीने देवकृपासे पुनर्जीवन लाभ किया हो, उसी तरह वह राजाके सामने उपस्थित होता है।

बाद सरदार लोग धान, उरद, पूतपूर्ण कलश, दुग्ध और मधु उन्हें उपहार देते हैं। प्रत्येक द्रव्यको सभी सरदार अर्पण करते हैं। अनन्तर वे राजाको सम्बोधन करके इस प्रकार कहते हैं, 'आवहमान कालसे पूर्व पुरुषोंकी रीतिके अनुसार हम लोग जहां तक अधिकार दिया गया है, आपको यह राज्य और इसका शासनभार अर्पण करते हैं। आप हम लोगोंके प्रति दयाधर्मका पालन करते हुए शासनकार्य करेंगे।' इसके बाद तोपकी सलामी उतारी जाती है। अन्तमें राजा फिरसे भुंइया सरदारके कंधे पर चढ़ कर सभासे चले जाते हैं। अनुचर सरदारगण अपना अपना असबाब ले कर उनके पीछे पीछे राजपुरी तक जाते हैं।

इसके बाद एक दिन भुँइया लोग राजाके निकट अपनी वश्यता जताने आते हैं। इस दिन वे दल बांध कर आते और एक एक करके राजाके धन जन हाथी घोड़े का कुशल सम्वाद पूछते हैं। राजा भी उनके शस्य, मवेशी, सन्तान आदिके कुशलकी जिज्ञासा करते हैं। बाद वे राजाके पैरों पर साष्टाङ्ग हो उनके दाहिने पैरके अंगूठेको पहले अपने दाहिने कानमें, पीछे बायें कानमें और तब कपालमें स्पर्श कराते हैं। इस प्रकार अभिषेक समाप्त होता है।

धनुर्जयनारायणको इस अभिषेकके दिन रानीने एक शिरका वस्त्र दे कर उन्हें राजा माना था। १७वीं फरवरीको भुइया और शुभाङ्ग लोगोंने उनकी वश्यता स्वीकार कर ली।

बाद अप्रिल मासके शेषमें रत्ननायक और नन्दनायकके नेतृत्वमें भुंइयां लोग हठात् विद्रोही हो उठे। उन्होंने राजाको लूट कर मन्त्री तथा एक सौ राजानुचरोंको कैद कर लिया। धीरे धीरे सभी जंगली जातियोंने इस विद्रोहमें साथ दिया। ७वीं मईको डा० हे (सिंहपुरके डिपटी कमिश्नर) कोल जातीय पुलिस-सेनाके साथ केउञ्झरमें आ पहुंचे। उन्होंने आ कर देखा कि राजा विद्रोहियोंसे घेरे गये हैं। उन्होंने राजधानीसे विद्रोहियोंको भगा तो दिया पर वे उन्हें शान्त कर न सके। बाद कमिश्नर कर्णेल डाल्टन, मि० रामिनस अंगरेजी तज्ञ और दूसरी दूसरी सेनाको ले कर विद्रोह दमनमें नियुक्त हुए। उदयपुर, बोनाई, ढेंकानल और मयूरभञ्जके राजाओंने अपनी अपनी सेना देकर अंगरेजोंको सहायता की। बोनाईके राजाने २५ भुंइया सरदारको और उदयपुरके राजाने १५ शुभाङ्ग सरदारको जीत कर अधीनता स्वीकार कराई।

१५वीं अगस्तको रत्ननायक और नन्दप्रधान पकड़ा गया। राजमन्त्रीकी हत्या करनेके अपराधमें छः मनुष्योंको फांसी और एक सौको अक्षत कैदकी सजा हुई। विद्रोह शान्त होने पर राजा धनुर्जयनारायण निष्कण्टक हो कर राज्य करने लगे। रानी ५५०) रु० नकद और ५०) रु० आयका एक ग्राम ले कर जगन्नाथमें रहने लगीं।

धनुद्रुम (सं० पु०) धनुषो द्रुमः ६-तत्। वंशवृक्ष, बांस। बांससे धनुष तैयार होता है, इसीसे इसका नाम धनुद्रुम पड़ा है।

धनुर्धर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच धनुषो धरः। १ धनुर्धारी, धानुष्क, धनुष धारण करनेवाला पुरुष, कमनैत, तीरंदाज। इसका पर्याय—धनुष्मान्, निषङ्गी, अस्त्री, तूणी, और धनुभृत है। २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम।

धनुर्धारिन् (सं० त्रि०) धनुर्धरतीति धृ-णिनि। धनुर्धर, धनुष धारण करनेवाला। जो अत्यन्त बलवान्, वीर, विशुद्ध स्वभावयुक्त और क्लेशसह हों तथा घोड़े हाथी और रथके विषयसे अवगत हों, वे ही धनुर्धारीके योग्य हैं।

धनुर्भृत (सं० पु०) धनुः बिभर्त्ति भृ-क्विप्। धनुर्धर, धनुष धारण करनेवाला योद्धा।

धनुर्मख (सं० पु०) धनुरुपलक्षितो मखः। यज्ञभेद, धनुर्यज्ञ। कंसने श्रीकृष्णको लानेके लिये छलपूर्वक धनुर्यज्ञका अनुष्ठान किया था। यह यज्ञ कंसने चतुर्दशी तिथिको विधिपूर्वक आरम्भ किया था।

धनुर्मध्य (सं० क्ली०) धनुका मध्यभाग, धनुषका बिचला हिस्सा जिसे पकड़ कर योद्धा तीर छोड़ता है।

धनुर्मह (सं० पु०) धनुषो महः। धनुर्यज्ञ।

धनुर्मार्ग (सं० पु०) धनुषो मार्गः ६-तत्। १ धनुषकी नाईं वक्र रेखा। २ वक्र, टेढ़ा।

धनुर्माला (सं० स्त्री०) धनुषो माला यस्याः। मूर्वा लता, मरोरफली, चुरनहार।

धनुर्यज्ञ (सं॰ पु॰) धनुसम्बन्धी उत्सव। मिथिलाके राजा जनकने अपनी कन्या सीताके विवाहार्थ वर चुननेके लिये इस प्रकारका यज्ञ किया था।

धनुर्यास (सं॰ पु॰) धनुरिव यासः। धन्वयास, दुरालभा, जवासा। (स्त्री॰) धनुषो लतेव। १ सोमवल्ली, सोमलता।

धनुर्वक्त्र (सं॰ पु॰) धनुरिव वक्त्रं यस्य। कुमारानुचर, कार्त्तिकेयके एक अनुचरका नाम।

धनुर्वात (सं॰ पु॰) १ एक वायुरोग। इसमें शरीर धनुषकी तरह झुक कर टेढ़ा हो जाता है। २ धनुष्काई।

धनुर्विद्या (सं॰ स्त्री॰) धनुषो विद्या। धनुरादिका प्रयोग और संहारज्ञापक विद्याभेद, धनुष चलानेकी विद्या, तीरंदाजीका हुनर।

धनुर्बीज (सं॰ पु॰) भल्लातकवृक्ष, भिलावां।

धनुर्वृक्ष (सं॰ पु॰) धनुषो वृक्षः। १ धन्वनवृक्ष, धामिनका पेड़। २ वंश, बांस। ३ भल्लातक भिलावां। ४ अश्वत्थ, पीपलका पेड़।

धनुर्वेद (सं॰ पु॰) धनुर्वि उपलक्षणेन धनुरादीन्यस्त्राणि विद्यन्ते ज्ञायन्तेऽनेनेति, विद करणे घञ्। धनुर्विद्याबोधक शास्त्र।

जिस शास्त्र द्वारा धनुष चलानेके कौशलादि जाने जाय, उसे धनुर्वेद कहते हैं। प्राचीन कालमें सभी हिन्दू राजगण अभ्यासपूर्वक धनुर्वेद पढ़ते थे। धनुर्विद्यामें जो श्रेष्ठ होते थे, वे ही राजसमाजमें प्रसिद्ध तथा माननीय समझे जाते थे। आजकल सन्थाल, कोल, भील असभ्य जातिके सिवा सभ्य देशोंमें धनुर्विद्याका उतना आदर नहीं है सही, किन्तु जब बन्दूक, गोलि, आदिका प्रचार नहीं था, तब सभी सभ्य देशोंमें धनुर्विद्याका विशेष आदर था।

रामायण, महाभारत आदि प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें धनुर्विद्याका यथेष्ट विवरण पाया जाता है। मिस्रदेशके पिरामीडमें भी धनुर्धारी वीरोंकी अतिप्राचीन मूर्त्तियां खोदी हुई हैं। ग्रीसके होमर और रोमके भर्जिल आदिके प्राचीन ग्रन्थोंमें भी धनुर्विद्याका विषय अच्छी तरह वर्णित है।

प्राचीन कालमें प्रायः सभी सभ्य देशोंमें धनुर्विद्याका यथेष्ट आदर रहने पर भी जिस तरह विभिन्न देशीय महावीरगण धनुर्विद्या पढ़ते थे, उसके विषयमें सुपाठ्योपयोगी पुस्तकादि भारतवर्षके सिवा और कहीं भी देखनेमें नहीं आती है। यों तो पारसी भाषामें भी दो एक धनुर्विद्याविषयक ग्रन्थ हैं, किन्तु वे इतने प्राचीन नहीं हैं। उनमेंसे कोई कोई संस्कृत धनुर्वेद के अनुवाद जैसा मालूम पड़ता है।

सबसे पहले आर्य ऋषियोंने क्षत्रिय-राजकुमारोंको सिखानेके लिए जिस धनुर्विद्याविषयक ग्रन्थका प्रचार किया, वही धनुर्वेद नामसे प्रसिद्ध है। मधुसूदन सरस्वतीने अपने प्रस्थानभेद नामक ग्रन्थमें धनुर्वेदको यजुर्वेदका उपवेद लिखा है।

पूर्वकालमें अनेक धनुर्वेद प्रचलित थे जिनमेंसे आज कल शुक्रनीति और कामन्दकनीतिवर्णित धनुर्वेद, अग्निपुराणोक्त धनुर्वेद, वैशम्पायनोक्त धनुर्वेद, वीरचिन्तामणि, लघुवीरचिन्तामणि, वृद्धशार्ङ्गधर, युद्धजयार्णव, युक्तिकल्पतरु नीतिमयूखप्रभृति ग्रन्थोंमें धनुर्वेदकी कथा पाई जाती है।

ब्राह्मणोंके निकट जिस तरह अपनी अपनी शाखाका वेद, चिकित्सकके निकट जिस तरह आयुर्वेद और सङ्गीतालापियोंके निकट जिस तरह गन्धर्ववेद आदृत है, प्राचीनकालमें क्षत्रियोंके निकट धनुर्वेद भी उसी तरह समादृत था। जिस तरह केवल आयुर्वेद पढ़नेसे कुछ नहीं होता, वरं उसकी परीक्षा नाड़ी देख कर ही होती है, जिस तरह आलाप आदिका ज्ञान हुए बिना गन्धर्ववेदके पढ़नेसे कोई फल नहीं होता, उसी तरह धनुर्वेद केवल पढ़नेकी वस्तु नहीं है, बल्कि उसके अनुसार शिक्षा वा कार्य करना आवश्यक है। जिस प्रणाली द्वारा धनुर्विद्या सीखनेसे प्रकृत वीरपदवाच्य हो सकता है, उसीका सदुपदेश धनुर्वेदमें विधिवद्ध हुआ है। धनुर्वेदके आचार्यगण उसीके अनुसार क्षत्रियोंको सिखलाते तथा शिक्षाकार्य करते थे। अग्निपुराणमें लिखा है, कि सबसे पहले ब्रह्मा और महेश्वरने धनुर्वेदका प्रचार किया। किन्तु वे सब धनुर्वेद लुप्त हो गये हैं। मधुसूदनसरस्वतीने प्रस्थानभेदमें लिखा है कि विश्वामित्रने जिस धनुर्वेदका प्रकाश किया था, वही यजुर्वेदका उप-

वेद है। उन्होंने इस उपवेदका कुछ संक्षिप्त ब्योरा भी दिया है। उसमें चार पाद हैं—दीक्षापाद, संग्रहपाद, सिद्धिपाद और प्रयोगपाद। प्रथम दीक्षापादमें धनुर्लक्षण (धनुषके अन्तर्गत सब हथियार लिये गये हैं) और अधिकारियोंका निरूपण है। आयुध चार प्रकारके कहे गये हैं—मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त और यन्त्रमुक्त। मुक्तायुध जैसे चक्र, अमुक्तआयुध जैसे खड्ग; मुक्तामुक्त, जैसे, भाला, बरछा। मुक्तको अस्त्र और अमुक्तको शस्त्र कहते हैं। ब्राह्म, वैष्णव, पाशुपत, प्राजापत्य और आग्नेयादिके भेदसे नाना प्रकारके आयुध हैं। साधिदैवत और समस्त चारों प्रकारके आयुधोंमें जिनका अधिकार है, वे ही क्षत्रियकुमार हैं और उनके अनुवर्त्तिगण चार प्रकारके हैं,—पदाति, रथी, गजारोही और अश्वारोही। इनके अतिरिक्त दीक्षा, अभिषेक, शाकुन और मङ्गलादिका निरूपण प्रथम पादमें है। आचार्यका लक्षण और सब प्रकारके अस्त्रशस्त्रादिका विषयसंग्रह नामक द्वितीय पादमें दिखलाया गया है। तृतीय पादमें गुरु और सम्प्रदायसिद्ध विशेष विशेष शस्त्र, उनके अभ्यास, मन्त्रदेवता और सिद्धि आदि विषय हैं। प्रयोग नामक चतुर्थ पादमें देवार्चना, सिद्धि, अस्त्रशस्त्रादिके प्रयोगोंका निरूपण है।

वैशम्पायनका धनुर्वेद पढ़नेसे जाना जाता है, कि अस्त्रोंमें सबसे पहले खड्गका प्रचार हुआ था, पीछे वेणपुत्र पृथु राजाके समयमें धनुष प्रचलित हुआ।

(ब्रह्माने पृथुको दर्शन दे कर कहा था) 'पहले मैं दुष्टोंको दमन करनेके लिए असि तैयार करूंगा। वह असि तुम्हारे पास रह कर दुष्टोंको शिक्षा देगी। अभी मैंने सोच रखा है, कि यह तुम्हें दे कर धनु-प्रभृति आयुधका प्रचार करूंगा। हे पुत्र! इस कारण तुम्हें अस्त्र शस्त्र दूंगा।'

शार्ङ्गधरने लिखा है, कि प्रधानतः धनुष दो प्रकारका है, पहले जिस धनुषसे सीखा जाता है वह योगिकधनु, और युद्धधनुष दूसरा है। जिस धनुषका व्यवहार बहुत सहजमें हो सके, वही उत्तम धनुष है। धनुर्धारीके बलकी अपेक्षा धनुष यदि अधिक भारी हो, तो धनुर्धारी थोड़े ही परिश्रममें थक जाता है, सुतरां उसका लक्ष्य ठीक नहीं रहता। युक्तिकल्पतरुके मतसे युद्धधनुष दो प्रकारका होता है, पहला शार्ङ्ग वा सींगका बना हुआ और दूसरा बांसका बना हुआ।

वैशम्पायन लिखते हैं, कि शार्ङ्गधनुषमें तीन जगह झुकाव होता है, पर वैणव अर्थात् बांसके धनुषका झुकाव बराबर क्रमसे होता है। पुराण पढ़नेसे मालूम पड़ता है, कि विष्णुके शार्ङ्गधनु था, किन्तु वह धनुष मनुष्योंके दुष्प्राप्य है। विश्वकर्माने उसे बनाया था और वह सात बित्ता लम्बा था। जो शार्ङ्गधनुष मनुष्यके काममें आता, वह ६॥ बित्तेका होता है और अश्वारोही तथा गजारोही उसे काममें लाते हैं। रथी और पैदलके लिये बांसका ही धनुष ठीक है।

बांसका धनुष होनेसे पहले उसकी गांठ जांचनी पड़ती है। ३, ५, ७ और ९ गांठवाला धनुष उत्तम माना गया है। ४, ६ वा ८ गांठवाला धनुष खराब है अतः उसे परित्याग कर देना चाहिये। बहुत पुराने कच्चे तथा घिसे बांसका धनुष अच्छा नहीं होता है। जिस धनुषके भीतर वा बाहर अथवा हाथकी जगह पर जला हो वा फटा हो, जो गुणहीन हो वा गुणाक्रान्त हो, वास्तु हो वा काण्डदोष हो अथवा जिसके गले वा तलेमें गांठ हो, वैसा धनुष काममें नहीं लाना चाहिये। अच्छे रंगका अर्थात् पक्का, कोमल और मजबूत धनुष ही व्यवहारके योग्य है।

धनुषका प्रमाण—अग्निपुराणके अनुसार चार हाथका धनुष उत्तम, साढ़े तीन हाथका मध्यम और तीन हाथका अधम माना गया है। छोटा धनुष पदाति सैन्यके कामका होता है। प्राचीनकालमें दो डोरियोंकी गुलेल भी होती थी। यह १ हाथ लम्बी और २ उंगली या उससे कुछ अधिक चौड़ी बनाई जाती थी। उस पर पत्थर फेंका जाता था, इसीसे इसका संस्कृत नाम उपलक्षेपक पड़ा है।

धनुषकी डोरी—डोरी पाटकी और कनिष्ठा उंगलीके बराबर मोटी होनी चाहिये। इसमें किसी प्रकारका जोड़ न रहे, वरं जहां तक साफ और चिकनी हो, वहां तक अच्छा है। डोरीकी मोटाई सब जगह एकसी होनी चाहिये। इस प्रकारकी डोरीसे युद्धके समय खूब टान हो सकती है।

पक्का बांस छिल कर भी डोरी बनाई जाती है। उसे सन या सूतेसे ढक देना पड़ता है। इस तरहकी डोरी बहुत मजबूत होती है और काफी टान सह सकती है। यदि सूता न हो, तो हिरण, भैंसे, बैल एवं हालकी मरी हुई गाय या बकरीकी तांतकी डोरी भी बहुत मजबूत बन सकती है। इसके सिवा प्राचीनकालमें अकवनके पेड़की सूखी छाल या मूर्वालताके सूतेसे डोरी बनाई जाती थी। धनुर्वेदमें उसका पूरा ब्योरा है।

शर-विधान—तीर बनानेके लिये कैसा नरकट लेना चाहिये उसके विषयमें वृद्धशार्ङ्गधरने इस प्रकार लिखा है—जो नरकट न तो उतना मोटा हो और न उतना पतला ही हो, जो कच्चा न हो, पक्का हो पर खराब मट्टी पर न उपजा हो, जिसमें गांठ न हो और पक कर जिसका रंग पाण्डुवर्ण हो गया हो, वैसा ही नरकट तीरके उपयुक्त है। कठिन, सुगोल तथा उत्तम स्थान पर जो नरकट उपजता है, उसका तीर बहुत अच्छा तथा टिकाऊ होता है। बाण (शर) दो हाथसे अधिक लम्बा और छोटी उंगलीसे अधिक मोटा न होना चाहिये। जहां तक सरल अर्थात् सीधा हो, वहां तक अच्छा है। अगर उसमें कहीं टेढ़ापन हो, तो उसे किसी औजारसे ठीक कर लेना चाहिये।

तीरमें पंख नहीं लगानेसे उसकी गति सीधी नहीं रहती है। पंख रहनेसे वह हवाको काटता जाता है, सुतरां तीर ठीक सीधा चलता है, टेढ़ा जाने पर भी लक्ष्य भ्रष्ट नहीं होता। किस तरहका पंख लगाना चाहिये, इसके विषयमें वृद्धशार्ङ्गधर यों लिखते हैं—काक, हंस, गृध्र, मयूर, क्रौंच, बक तथा चील इन सब पक्षियोंका पंख उत्तम है। प्रत्येक तीरमें कमसे कम ४ पंख बराबर बराबर दूरी पर देना चाहिये। एक एक ६ उंगलीका पंख रहनेसे काम चल सकता है। पर जो सब बाण शार्ङ्गधनुके लिए बनाने होंगे, उसमें दश उंगलीका पंख देना आवश्यक है। बांसके धनुषमें भी ६ उंगलीका पंख काफी है।

शर तीन प्रकारके कहे गए हैं, जिसका अगला भाग मोटा हो, वह स्त्रीजातीय है, जिसका पिछला भाग मोटा हो वह पुरुषजातीय और जो सर्वांश बराबर हो, वह नपुंसकजातीय कहलाता है। स्त्री जातीय शर बहुत दूर तक जाता है। पुरुषजाति बलभेदके योग्य है और नपुंसक जातीय निशाना साधनेके लिए अच्छा होता है।

फल—सुलक्षणयुक्त शरके आगे जिस तरहका फल लगाना चाहिए। उसके विषयमें शार्ङ्गधर इस प्रकार लिखते हैं—सब फल सुधार तीक्ष्ण और अक्षत होना चाहिए। फलके तैयार हो जाने पर उस पर वज्र लेप देना पड़ता है। वज्र देखो।

बाणके फल अनेक प्रकारके होते हैं—आरामुख, क्षुरप्र, गोपुच्छ, अर्धचन्द्र, सूचीमुख, भल्ल, वत्सदन्त, द्विभल्ल, कर्णिक, काकतुण्ड, प्रभृति। भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न प्रकारका फल बनता है।

आरामुखके द्वारा कवच और चर्म, अर्धचन्द्र द्वारा प्रतियोद्धाका मस्तक, क्षुरप्रद्वारा प्रतियोद्धाका कार्मुक (धनुष), भल्ल द्वारा हृदय, द्विभल्ल द्वारा नजदीकमें आया हुआ शर, काकतुण्ड द्वारा ३ उंगलीका लोहा और गोपुच्छ द्वारा अनेक द्रव्य भिद सकते हैं। इनके सिवा लोहकण्टक मुख नामक फलसे तीन उंगली छेद हो सकता है।

फलमें लेप देनेका नियम—लेपके गुण दोषके अनुसार अस्त्रकी धार अच्छी और बुरी होती है। इसी कारण धनुर्वेदमें लेप देनेकी व्यवस्था बहुत बढ़ा चढ़ा कर लिखी गई है। भिन्न भिन्न अस्त्रोंमें भिन्न भिन्न प्रकारका लेप देनेको कहा है। शरके फलमें किस तरहका लेप देना चाहिये, वह नीचे लिखा जाता है।

वृद्धशार्ङ्गधर लिखते हैं—पीपर, सेंधा नमक और कुट इन तीनोंको गायके मूतसे पीसना चाहिये। पीसते समय विशेष ध्यान रहे जिससे औषधका अवयव नष्ट न हो जाय। पीछे उसीको शरके फलमें अथवा वि[illegible]ता अस्त्रमें लगा कर अच्छी तरह दग्ध करना चाहिये। अग्निकुण्डसे उठा कर उसे तेलमें डुबो देना चाहिये। ऐसा करनेसे अस्त्रकी स्वाभाविक शक्तिकी अपेक्षा विशेष शक्ति उत्पन्न हो जायगी। इसके सिवा वृहत्संहिता आदि ग्रन्थोंमें और भी दूसरे प्रकारके लेपका उल्लेख है।

पायन देखो।

जो बाण सारा लोहेका होता है, उसे नाराच कहते

हैं। धनुर्वेदमें ऐसे भीषण नाराच और नालिकास्त्रका उल्लेख है। नाराच और नालिक देखो।)

स्थान। जिन सब नियमोंसे बाण छोड़ा जाता है, उन्हें स्थान या अवस्थान कहते हैं। अग्निपुराणोक्त धनुर्वेदमें आठ प्रकारके नियम बतलाये गये हैं। जिनके नाम ये हैं—सम्पद, वैशाख, मण्डल, आलीढ़, प्रत्यालीढ, दण्ड, विकट, सम्पुट और स्वस्तिक। उंगली, एँड़ीके ऊपरकी गांठ, एड़ी और पैर यदि एकत्र और श्लिष्ट हों, तो ऐसे भावके अवस्थानको सम्पद कहते हैं। दोनों पैरको वृद्धाङ्गुलिके ऊपर भार दे कर तीन वितस्तकी दूरी पर बैठने या खड़ा होनेको वैशाख कहते हैं। बीचमें यदि चार वितस्तका अन्तर हो और दोनों जानु यदि हंस सरीखा दीख पड़े, तो उसे मण्डल कहते हैं। दहिना जानु और उसके ऊरुको स्तब्ध कर हलके आकारमें पांच वितस्त फैले रहनेका नाम आलीढ़ है। यदि इस आलीढ़ अवस्थानका विपरीत भावमें रहे, तो उसे प्रत्यालीढ़ कहते हैं। बायें पैरको टेढ़ा और दाहिने पैरको सीधा करने तथा पैरकी एँड़ीको पांच उंगलीके अन्तर पर रखनेका नाम दण्ड है। दाहिने जानुको कज और निश्चल तथा बायें पैरको फल सरीखा आयत कर दो हाथका अन्तर रहनेसे विकट होता है, दोनों जानुको द्विगुण अर्थात् वक्र एवं दोनों पैरको सीधा करनेका नाम सम्पुट है। दोनों पैरको कुछ विवर्त्तित कर समान और दण्डाकारमें तथा निश्चल कर यदि रखा जाय और उनके मध्य यदि सोलह उंगलीका फर्क हो, तो इस प्रक्रियाको स्वस्तिक कहते हैं। इसके सिवा वृद्धशार्ङ्गधरमें विषमपद, दर्दुरक्रम, गरुड़क्रम, पद्मासनक्रम आदि स्थानोंका भी उल्लेख है, ये सब कायदे या नियम केवल ग्रन्थ पढ़नेका समझमें नहीं आते, वरं उपयुक्त गुरुसे सीखनेसे उनका सम्यक् ज्ञान होता है।

मुष्टि—धनुर्युद्धमें जिस तरह खड़े रहनेकी प्रक्रिया या कायदे हैं, धनुष और बाण पकड़नेके भी वैसे ही कायदे बतलाये गये हैं। दाहिने हाथकी उँगलीसे धनुषकी डोरी और बाणका पिछला भाग एक साथ पकड़नेका नाम गुणमुष्टि और बायें हाथमें धनुषका बिचला भाग पकड़नेका नाम धनुर्मुष्टि है। फिर गुणमुष्टिके भी पांच भेद हैं—पताका, वज्र, सिंहकर्ण, मत्सरी और काकतुण्डी। जब तर्जनीको अङ्गुष्ठमूलमें लगा कर सीधा रखना पड़ता है, तब उसे पताकामुष्टि कहते हैं। यह मुष्टि नालिकास्त्र प्रयोग और दूरनिक्षेपके समय उपयोगी है। तर्जनी और मध्यमा इन दो उंगलियोंके बीच अङ्गुष्ठ प्रवेश कर मुट्ठी बन्द करनेसे वज्रमुष्टि बनती है। यह शूल बाण और नाराच छोड़नेके समय विशेष उपयोगी है। वृद्धाङ्गुलिको चित कर उसे सब उंगलियोंसे दबाना चाहिए। ऐसी मुष्टिका नाम सिंहकर्ण है। यह धनुष पकड़नेमें प्रशस्त है। वृद्धाङ्गुलिके नखके मूलमें तर्जनीका अगला भाग मजबूतीसे रखनेसे मत्सरी मुष्टि बनती है। यह चित्रालक्ष्य वेधके समय उपयोगी है। अंगुष्ठके आगे तर्जनीका मुख यदि झुका हुआ हो, तो उसे काकतुण्डी कहते हैं। सूक्ष्म लक्ष्यवेधके समय यह मुष्टि काममें आती है।

धनुर्मुष्टि बायें हाथमें रखी जाती है, फिर इसके भी तीन भेद हैं—अधःसन्धान, ऊर्द्धसन्धान और समसन्धान। ये तीनों यथासमय काममें लाये जाते हैं। दूरनिक्षेपके समय अधःसन्धान, निश्चल लक्ष्यके समय समसन्धान और दृढ़ास्फोटके समय ऊर्द्धसन्धान कर्त्तव्य हैं।

शराकर्षणप्रणाली—तीरका पिछला भाग धनुषकी डोरीमें लगा कर उसे अपनी सीधमें खींचना चाहिए। तीरको जितना ही टानोगे, धनुष उतना ही नम्र होता जायगा। बायें हाथकी मुट्ठी स्थिर रहनी चाहिए और दाहिने हाथमें पकड़े हुए तीरका पुङ्ख (पिछला भाग) और डोरी धीरे धीरे टान कर कान तक लानी चाहिए। कान तक लानेसे ही तीरकी लम्बाईका हद हो जायगा और धनुष भी टेढ़ा हो कर अर्द्धचन्द्राकार बन जायगा। इस तरहके आकर्षणका नाम व्यय है। इस प्रक्रियामें बहुत कुछ बलका प्रयोजन पड़ता है। जो इस क्रियामें दक्ष हैं, वे ही बाणयुद्धमें पारदर्शी हुए हैं। यह व्यय नामक आकर्षण भी पांच प्रकारका होता है—यथा कैशिक, शार्ङ्गिक, वत्सकर्ण, भरत और स्कन्ध। केशमूल तक शराकर्षण करनेका नाम कैशिक, शृङ्ग तकका शार्ङ्गिक, कर्ण तकका वत्सकर्ण, ग्रीवा (गले) तकका भरत और

कंधे तक आकर्षण करनेका नाम स्कन्ध है। इन पांचोंमें चित्रयुद्धके समय कैशिक, लक्ष्यके नीचे होने पर आङ्किक, तिर्यक् होने पर वत्सकर्ण, दृढ़वेधके समय भरत और दृढ़भेद तथा दूर निक्षेपके समय स्कन्ध व्ययका प्रयोजन पड़ता है।

वैशम्पायनने धनुष पकड़ने और बाण छोड़नेके विषयमें इस प्रकार उपदेश दिया है—

धनुर्वेदोक्त विधिके अनुसार बायें हाथसे धनुषको पकड़ कर दाहिने हाथ द्वारा उसमें डोरी लगानी चाहिये। बाद धनुषको पीठकी ओर आश्रय कर मध्यस्थान पकड़ना चाहिये। धनुषकी पीठ पर चार अङ्गुल और उसके नीचे छ अङ्गुल हटतासे रखना पड़ता है। बायें हाथसे इस तरह मुट्ठी बांध कर दाहिने हाथमें तीर लेते हैं और उसके मूलभागको डोरीमें लगाते हैं। तीरको इस प्रकार पकड़ना चाहिये कि वह उंगलीके बीचमें पड़ जाय। बाद उसे कान तक खींच कर लक्ष्यके प्रति मन और दृष्टि स्थिर करके छोड़ना चाहिये। उस समय आत्मरक्षाकी ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये। जब तीर छूटते मात्र लक्ष्य विद्ध होते देखें तभी समझना चाहिये कि धनुर्धारी कृतहस्त हो गया है। (वैशम्पायन)

लक्ष्य—तीर द्वारा जो विद्ध करना होगा, वही लक्ष्य है। युद्धके समय कितने प्रकारके लक्ष्यभेद करने पड़ते हैं, उसका कुछ निश्चय नहीं है। कोई तो चक्र जैसा घूमता है, कोई वायुके वेगमें दौड़ता है, किसीमें छिपा कर बाण फेंका जाता है और कोई बहुत कठिन तथा कोई बहुत बड़ा होता है। भिन्न भिन्न लक्ष्य भिन्न भिन्न उपायसे किया जाता है। किस तरह वे सब लक्ष्य विद्ध करनेसे कृतकार्य हो सकता है, धनुर्वेदमें उसका उपयुक्त उपदेश दिया गया है। वैशम्पायन, शार्ङ्गधर आदिने जो चार प्रकारके विभिन्न लक्ष्योंका उल्लेख किया है, वे इस प्रकार हैं—

स्थिर, चल, चलाचल और द्वयचल यही चार प्रकारके लक्ष्य हैं। पहला स्थिरलक्ष्य है। यह लक्ष्य सीखनेके बाद चललक्ष्य, उसमें भी सिद्ध हो जानेसे चलाचल और तब द्वयचल सीखना पड़ता है। सामनेमें कोई एक स्थिर वस्तु रख कर और अपने भी स्थिरभावसे खड़ा हो कर उसे तीन प्रकारसे विद्ध करना चाहिये। इस स्थिरलक्ष्यका निशाना अच्छी तरह हो जानेसे उसे स्थिरवेधी कहते हैं। बाद समीपमें और तब उससे भी कुछ दूरमें एक सचल लक्ष्य रखना चाहिये और आप उसके सामने स्थिरभावसे खड़ा रहे। स्थिर भावसे खड़ा रह कर आचार्यके उपदेशानुसार उस सचल लक्ष्यको विद्ध करना चाहिये। जो इस तरहका लक्ष्यवेध सीख जाता है, उसे चलवेधी कहते हैं। धनुर्धारीको किसी एक स्थिर लक्ष्यके चारों ओर चाहे पाँव परसे हो अथवा घोड़े पर चढ़ कर हो, घूम घूम कर उसे विद्ध करना चाहिये। इस तरहके लक्ष्यका नाम चलाचल है। यह एक अद्भुत व्यापार है। जब तक चल लक्ष्य अच्छी तरह सीख न गया हो, तब तक चलाचल लक्ष्य नहीं सीखा जाता है। वेध्य और धनुर्धारी दोनों जब प्रबल वेगसे घूम रहे हों, ऐसी अवस्थामें यदि धनुर्धर उस सचल लक्ष्यको बलपूर्वक भिद सके, तो उसे द्वयचल कहते हैं।

किस हाथसे किस तरहका लक्ष्यसन्धान सीखना चाहिये उसके विषयमें शार्ङ्गधर इस प्रकार लिखते हैं,—पहले बायें हाथसे, पीछे दाहिने हाथसे बाण खींचने, लगाने और छोड़नेके लिये सीखना चाहिये। जो मनुष्य पहले बायें हाथसे तीर चलाना सीखता है, वह बहुत जल्द धनुर्विद्यामें कृतहस्त हो जाता है। बायें हाथसे सीख जाने पर दाहिने हाथसे तीर चलानेका अभ्यास करना चाहिये। बाद दोनों हाथसे नाराच और तीर चलानेको लिखा है। दहिने हाथके अच्छी तरह सिद्ध हो जाने पर पुनः बायें हाथसे अभ्यास करना चाहिये। विशेषतः कैशिक नामक आकर्षण-क्रियामें समविषम दोनों प्रकारसे ही अभ्यास करना पड़ता है। जो अपने बायें हाथको दहिने हाथके समान बना सके और दहिने हाथ सरीखा बायें हाथसे भी नाराचका प्रयोग कर सके, धनुर्विद्योद्गण उन्हें सव्यसाची मानते हैं।

शिक्षाके समय जिस तरह लक्ष्य स्थापन करना पड़ता है, उसके विषयमें भी शार्ङ्गधरने ऐसा लिखा है,—

सूर्योदयके समय पश्चिमकी ओर, अपराह्नमें पूर्वकी ओर और [illegible] की ओर लक्ष्य स्थापन

कर शराभ्यास करना चाहिये। युद्धकालके अतिरिक्त और दूसरे समयमें दक्षिणकी ओर लक्ष्य करना उचित नहीं है। अभ्यासके समय कितनी दूर पर लक्ष्य स्थापन करना चाहिये, उसके विषयमें यों लिखा है,—

६० धनु अर्थात् २४० हाथकी दूरी पर लक्ष्य रख कर विद्ध करना उत्तम, ४० धनु (१६० हाथ) पर मध्यम और २० धनु (८० हाथ) पर रख कर विद्ध करना अधम माना गया है।

२४० हाथकी दूरी पर लक्ष्य स्थापन करके तीर चलानेका अभ्यास करना कुछ सहज बात नहीं है। इसीके द्वारा उस समयके लोगोंका बाहुबल और बाणका वेग कितना अधिक था, वह साफ साफ जाना जाता है। शार्ङ्गधरने एक जगह लिखा है, कि तीर ४०० हाथ तक जा सकता है। आज कलकी सामान्य बन्दूककी गोली सम्भव है, कि ४०० हाथ तक नहीं पहुंच सकती।

कितनी बार अभ्यास करना चाहिये, इसके विषयमें भी ऐसा उपदेश है,—

जो पूर्वाह्न और अपराह्न में ४०० बार लक्ष्य विद्ध करके थक जाता है, वह उत्तम धनुर्द्धारी, जो ३०० बारमें थकता, वह मध्यम और जो २०० बारमें थकता है, वह अधम धनुर्धारी माना गया है। यथार्थमें जब तक शरीर और मनमें थकावट न आ जाय तब तक परिश्रम करते रहना चाहिये।

पुरुषप्रमाण अर्थात् ३॥० हाथ ऊँचा चन्द्रवत् गोलाकार काष्ठफलकमें लक्ष्य स्थापन करनेकी लिखा है।

जो उस चन्द्रक लक्ष्यका ऊर्द्धभाग वेध करता, वह श्रेष्ठ, जो नाभि वेध करता वह मध्यम और जो पैर वेध करता है, वह निकृष्ट समझा जाता है।

अग्निपुराणमें लिखा है, कि जो बाणभङ्ग, कृतावर्त्त, काष्ठच्छेदन, विन्दुक और गोलक जानता है, वह गुणी होता है।

एक मनुष्य सामने आ कर बाण छोड़े और दूसरा उस सम्मुखागत बाणको चाहे आप तिरछा हो कर वा बाणको तिरछा कर छेद डाले। धीरे धीरे जो बाण छेद कर सकता है, उसे बाणछेदी कहते हैं। कृतावर्त्त नामक चित्रलक्ष्य अनेक प्रकारका है जिनमेंसे वरा-टिका प्रधान है। एक काठके टुकड़ेमें बालसे एक कौड़ी बांध कर उसे घुमाते रहे। उस घूमती हुई कौड़ी पर निशाना लगानेका नाम वराटिका है। जो इस तरहका लक्ष्य भेद कर सकता है, वह उत्तम धनुर्धारी कहलाता है। निशाना मारनेकी जगह गोपुच्छके आकार-की एक खण्ड गोली लकड़ी रख कर उसे दूरसे क्षुरप्र नामक बाण द्वारा छेद करना सीखना चाहिये। इस तरह काठ छेद करते करते काष्ठच्छेद हो जाता है। युद्धके समय रथादिके ध्वजदण्डादि छेदना आवश्यक है, इसीसे इसका अभ्यास करना चाहिये।

लक्ष्यस्थानमें सफेद बांधली फूल सरीखा एक सफेद विन्दु बनावे। पीछे उस विन्दुका भेदना सीखे। जो इस तरह विन्दुको वेध कर सकता है, वह चित्रवेधी होता है। दूर और सामनेमें रह कर कोई आदमी काठका दो गोला फेंके। बाद धनुर्धरको गोपुच्छाकृति बाण द्वारा उन दो गोलाओंको नजदीक पहुंचते न पहुं-चते स्पर्श करना चाहिये अथवा भेद डालना चाहिये। इस तरह गोल वेध करनेमें जो पटु हो गया हो, वह धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ और राजपूज्य होता है।

इस तरह कभी रथ परसे, कभी हाथी परसे, कभी घोड़ा परसे या कभी जमीन परसे लक्ष्यसन्धानका अभ्यास करना चाहिये।

रामायणमें कई जगह शब्दभेदी बाणका उल्लेख है। राजा दशरथने शब्दभेदी बाण द्वारा हाथी परसे अन्ध मुनिके लड़के सिन्धुको मारा था। जब मेघनाद मेघकी आड़में रह कर बाण वर्षण कर रहा था, तब लक्ष्मणने शब्दभेदी बाणका प्रयोग किया था। दूसरे दूसरे बाण-प्रयोग-की शिक्षा जैसी आसान है, शब्दवेध शिक्षा उससे कहीं कठिन है। यह कठिन अभ्यासका फल है। किस तरह यह अभ्यास उत्पन्न होता है, महाभारतके अर्जुनप्रसङ्ग-में हम लोगोंको उसका कुछ कुछ आभास मिलता है। अर्जुन द्रोणाचार्यके सर्वप्रधान शिष्य और प्रिय होने पर द्रोण अपने पुत्र अश्वत्थामाको अर्जुनसे अधिक चाहते थे। इस कारण वे कभी कभी छिपके अश्वत्थामाको कोई कोई शिक्षण सिखाया करते थे। अर्जुन-की असाधारण प्रतिभा देख कर द्रोण मनहीमें

शंका करते थे कि अर्जुन चूणाक्षरसे हो सब बातका पता लगा सकता है। इस कारण उन्होंने पाचक ब्राह्मणको बुला कर कहा, कि देखो! अर्जुनको कभी भी अन्धकारमें खाने मत देना। पाचक भी उस दिनसे वैसा ही करने लगा। एक दिन अर्जुन जब भोजन कर रहे थे, तब संयोगवश हवासे दीप बुझ गया। अर्जुन दीपको अपेक्षा न कर भोजन करने लगे। अन्धकारमें ठीक यथा स्थानमें हाथ जाता है और कोई प्रतिबन्धक नहीं होता इससे उन्होंने समझा, कि यह केवल अभ्यास है। उसी समय उनके मनमें ऐसा ख्याल हो आया, कि अभ्यास करनेसे अदृश्य लक्ष्य भी अनायास ही भिद सकता है। यह सोच कर तभीसे वे अन्धेरी रातमें ठीक दो पहरको उठ कर अन्धकारमें लक्ष्यका अभ्यास करने लगे। इसी तरह उन्होंने अन्धकारमें लक्ष्यवेध सीखा था। शब्दवेधक्रिया भी इसी तरह अभ्यास करते करते सीखी जाती है। इसके विषयमें शार्ङ्गधर इस प्रकार लिखते हैं—

लक्ष्यस्थानसे दो हाथ दूर पर एक कांसेका बरतन रखे और एक आदमी उस बरतनको कंकड़से आघात करता रहे। आघातमात्र जहांसे शब्द निकलेगा, ठीक उसी जगह ध्यान गड़ाये रहे। बाद केवल कर्णेन्द्रिय द्वारा मनको दृढ़ कर लक्ष्यका निश्चय करना चाहिए। फिर एक आदमी शब्द निकालनेके लिए उस बरतनको कंकड़से आघात पहुंचावे। तिस पर भी लक्ष्यका यदि निश्चय न हो, तो शब्दस्थानके अनुसार लक्ष्य स्थिर करना चाहिए। पीछे इसी तरह रोज रोज दृढ़ अभ्यास द्वारा क्रमशः दूरमें उस बरतनको रखे और कंकड़से मार कर केवल उसी शब्दके अनुसार लक्ष्यवेध करना सीखे। धीरे धीरे उसी शब्दसे लक्ष्यके प्रति बाण छोड़ना चाहिए। यह अभ्यास हो जाने पर शब्दभेदका ज्ञान हो जायगा। यह दुष्कर अभ्यास सभीके भाग्यमें बदा नहीं रहता है।

कौन कब सिद्ध लाभ कर सकता है, वह धनुर्वेद पढ़नेसे ही बहुत कुछ मालूम हो जायगा। अभी बन्दूक गोला गोली द्वारा जो सब कार्य किये जाते हैं, प्राचीन कालमें योद्धा लोग असाधारण शिक्षा और बाहुबलके प्रभावसे धनुर्बाण प्रयोग द्वारा वे सब कार्य करते थे। दिनोंदिन मनुष्य विलासी और क्षीणजीवी होते जा रहे हैं, एवं पूर्ववत् साहस और बाहुबलके अभावसे अभी केवल कौशल द्वारा अपने परिश्रमके लाघवका उपाय ढूंढ रहे हैं, इसीके फलसे अभी रोज रोज अभिनव अस्त्रादिकी सृष्टि होती जा रही है।

धन्विन् (धनूंषि प्रयोगो संहारान् वेत्ति जानाति विद-क्विप्) (त्रि०) २ धानुष्क, धनुष चलानेवाला, कमनैत। (पु०) ३ विष्णु। ४ अष्टादश विद्याके मध्य विद्याभेद, अठारह विद्याओंमेंसे एक।

धनुष (सं० पु०) धन-बाहुलकात् उषन्। १ ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम। २ कुक्कुर, कुत्ता।

धनुषाक्ष (सं० पु०) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

धनुष्कपाल (सं० पु०) धनुषः कपालमिव 'इसुसोः सामर्थ्ये।' इति षत्वं। धनुषका अवयव।

धनुष्कर (सं० पु०) करोति धनुस् कृ-ट (दिवा विभेति। पा ३।२।२१) १ चापकारक शिल्पिभेद, धनुष बनानेवाला कारीगर। धनुः करं यस्य, ततो षत्वं। २ धानुष्क, वह जिसके हाथमें धनुषबाण हो।

धनुष्कोटितीर्थ (सं० पु०) एक तीर्थस्थान जो रामेश्वरसे दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहां समुद्रमें स्नान करनेका माहात्म्य है। रामनादको सेतुपति उपाधिधारी राजाओंने बहुत रुपए खर्च करके इस तीर्थका उद्धार और संस्कार किया।

धनुष्पाणि (सं० त्रि०) धनुः पाणौ यस्य, इसुसोः सामर्थ्ये इति षत्वं। धनुर्हस्त, जिसके हाथमें धनुष हो।

धनुष्मत् (सं० त्रि०) धनुर्धार्यत्वेनास्त्यस्य मतुप्। धनुर्धर, योद्धा, वीर।

धनुष्मान् (सं० पु०) उत्तर दिशाका एक पर्वत।

धनुस् (सं० क्ली०) धनतीति धन शब्दे धन-उसि स च णित् (अर्त्तिपृवपीति। उण् २।११८) शरनिक्षेपयन्त्र, तीर फेंकनेका अस्त्र। इसका संस्कृत पर्याय चाप, धन्व, शरासन, कोदण्ड, कार्मुक, इष्वास, स्थावर, गुणी, शरावाप, लस्तका, तिणता, अस्त्र धनु, तारक और काण्ड।

धनुस् दो प्रकारका होता है, शार्ङ्ग और वांश, कोमल और अत्यन्त कठिन। यह सुख और समृद्धिका कारण है। धनुष समसुष्टि परिमाणका होना चाहिए, विषमसुष्टिका होनेसे विपत्तिकी आशङ्का बनी रहती है।

जिस धनुसमें तीन जगह झुकाव होता है, उसे शार्ङ्ग और जिसमें सब जगह झुकाव होता है, उसे वैणव अर्थात् बांसका धनुस् कहते हैं। शार्ङ्ग धनुस् सात बिलस्त का होता है। यह स्वर्ग, मर्त्य, पाताल आदिमें कहीं भी केवल पुरुषोत्तमके भिन्न और किसीसे साधन नहीं हो सकता है। जो शार्ङ्ग धनुस् तीन बिलस्तका होता है, वह सब धनुसोंमें निकृष्ट समझा जाता है।

प्रायः शार्ङ्ग धनु अश्वारोहियों और गजारोहियोंके लिए बनाया जाता है। रथी और पैदलके लिए बांसका ही धनुस् ठीक है। वृद्धशार्ङ्गधरने बांसके धनुसका लक्षण इस प्रकार कहा है—

बांसके धनुषमें तीन, पांच या सात गाँठें होनी चाहिये। जिस बांसके धनुषमें नौ गाँठें हों, उसे कोदण्ड कहते हैं। चार, छः और आठ गांठवाला धनुस् काममें न लाना चाहिये। जो बांस अतिजीर्ण हो वा अपक्क हो, घिसा हो, दग्ध हो, छिद्रमय हो तथा हाथ रखनेकी जगह गुणहीन हो, गुणाक्रान्त हो अथवा वास्तुदोषयुक्त हो, वैसे बांसका धनुस् कदापि नहीं बनाना चाहिये। इनमेंसे कच्चे बांसका जो धनुस् बनता है, वह बहुत जल्द टूट जाता है, और अत्यन्त जीर्ण बांसका धनुस् कड़ा होता है। घिसे हुए बांसके धनुस्से उद्वेग और बान्धवोंके साथ कलह उत्पन्न होता, दग्ध होनेसे घर जलता, छिद्रमय होनेसे पराजय होती तथा हाथ रखनेकी जगह खराब होनेसे लक्ष्यवेध नहीं होता है। जो धनुस् हीन हो उसमें यदि तीर लगा कर निशाना साधा जाय, तो कृतहस्त नहीं हो सकता और उस तरह का धनुस् लड़ाईमें टूट जाता है। जिस धनुसके गले या तलेमें गांठ हो वह त्यागने योग्य है और साथ ही साथ अशुभकर भी है। ऊपर कहे गये दोष जिन धनुषोंमें न पाये जांय, वे ही श्रेष्ठ हैं तथा सब कार्योंमें सिद्धप्रद हैं। जिस धनुससे पत्थर फेंके जाते हैं, उसे उपलक्षेपक अर्थात् गुलेल कहते हैं। इस प्रकारका धनुस् तीन हाथ लम्बा और दो उंगली चौड़ा होना चाहिये। धनुर्वेद देखो।

२ हठयोगदीपिकोक्त आसनविशेष, हठयोगका एक आसन।

हाथसे कान और पैरकी उंगली पकड़ते हुए धनुस् आकर्षण करनेको धनुरासन कहते हैं। जलाशयतत्त्वमें चार हाथके आसनको धनुरासन माना है। ३ राशिविशेष, मेषादि बारह राशियोंमेंसे नवीं राशि।

धनुराशिकी संज्ञा—पुरुषराशि, सुवर्णसदृशवर्ण, समराशि, अत्यन्त शब्दकारी, पर्वतचारी दिनबली, पूर्वदिक्स्वामी, दृढाङ्ग, बलशरीर, पीतवर्ण, क्षत्रियवर्ण, उष्णस्वभाव, पित्तप्रकृति, अल्प सन्तानयुक्त, अल्पस्त्रीप्रसङ्गप्रिय, द्व्यात्मक, द्विपद, अग्निराशि और उग्रस्वभाव। अन्तभागमें चतुष्पाद है। (नीलकण्ठोक्त ताजक)

भट्टोत्पल-धृत यवनेश्वरके मतसे धनुकी संज्ञा ये हैं—धनुर्विशिष्ट, पुरुषाकार, पश्चाद्भागमें घोड़े सा आकार, जङ्घादेश, उच्च नीच भूमि, घोटक, बलवान्, अस्त्रधारी पुरुष, यज्ञरथादि एवं अश्वस्थान। इन सब संज्ञाओंमें अनेक प्रकारकी गणनाएँ हो सकती हैं, जैसे हृत और नष्ट वस्तु कहां पर अवस्थित है; प्रश्नगणनासे उसका ज्ञान एवं राशिके जिस तरह शरीर विभाग हैं, उसी उसी स्थानमें ग्रहोंके अवस्थानानुसार व्रणादिका चिह्न तथा ग्रहोंके बलाबलसे अङ्गप्रत्यङ्गकी हानि वा दौर्बल्य इत्यादि का ज्ञान होता है। इस राशिके जो स्वभाव और स्थान आदि ऊपर लिखे गये, उनका ज्ञान इस राशि पर किसी ग्रहका अवस्थान वा दृष्टि पड़नेसे होता है। फिर उन सब राशियों पर ग्रहका अवस्थान और दृष्टि पड़नेसे स्वभावादिका ह्रास, वृद्धि एवं विपरीत हो सकता है।

धनुकी संज्ञा ये सब हैं—ओज, विषम, द्व्यात्मक, क्रूर, अग्नि, पृष्ठोदय, पुरुष, दिनबली, सुवर्ण, वृहस्पतिका क्षेत्र, वृहस्पतिका मूलत्रिकोण, केतुका उच्च, तुङ्ग, राहुका नीच, पूर्वदिक्स्वामी, पर्वतचर घोटक, शूर, बलभृत्, यज्ञ और अश्व। धनुराशि धनुर्धारी होती है। इसके देवताका जङ्घा तक घोड़ा सरीखा और शेष अंश धनुर्धारी मनुष्य सरीखा होता है। यह ओज विषम क्रूर है।

धनुका पहला आधा भाग द्विपद संज्ञा और शेष आधा भाग चतुष्पाद संज्ञा है। मेष, वृष, मिथुन, कर्कट, धनु और मकर इन सबकी रात्रि संज्ञा है। धन राशि पिङ्गलवर्णकी होती है।

मूला, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा प्रथम पाद धनुराशि है अर्थात् जो उस नक्षत्रमें जन्मग्रहण करता है, उसकी धनुराशि होती है।

धनुराशिमें जो जन्म लेता है, उसका स्कन्ध और मुख खर्व होता तथा वह शिल्पधनत्यागी, कवि, वीर्यवान्, वक्ता, दन्त, कर्ण, अधर और नासिका स्थूल कर्मोंमें उद्यत, शिलावेत्ता, कुजस्कन्ध, कुनखयुक्त, स्थूलहस्त, प्रगल्भताविशिष्ट, धर्मवेत्ता और बन्धुद्वेषी होता है तथा वह बलसे वशीभूत नहीं होता, मगर प्रीतिसे वशीभूत होता है। मतान्तरसे धनुराशिमें जन्म होनेसे वह कार्मुककी नाईं गुणयुक्त, कीर्त्तिमान्, पूजनीय, कुलनाथ, रसवेत्ता, बन्धुओंका एकमात्र आश्रय, अनेक धनजनयुक्त, देवद्विजसेवापरायण, मृदुगतिविशिष्ट और असहनशील होगा।

धनुराशिमें रविप्रभृति ग्रहोंके रहनेसे निम्नलिखित फल मिलते हैं—

धनुराशिमें रविके रहनेसे मनुष्य अनेक प्रकारके द्रव्योंसे युक्त, राजाकी नाईं कार्ययुक्त, विख्यात, प्राज्ञ, देवद्विजपरायण, शास्त्रार्थ और हस्तिशिक्षामें निपुण, व्यवहारयोग्य, साधुओंके पूज्य, प्रगल्भ, मनोहर, विस्तीर्ण देहविशिष्ट, बन्धुओंके हितकारी और सत्त्वयुक्त होता है। धनुराशिस्थित रवि यदि चन्द्रमासे देखे जाँय, तो वह वाक्य, विभव, बुद्धि और पुत्रयुक्त, नृपतुल्य, शोकहीन तथा सुन्दर शरीरवाला होता है। धनुराशिस्थित रवि यदि मङ्गलसे देखे जाँय, तो वह युद्धमें यशस्वी, स्पष्ट वक्ता, द्युति और सौख्यसम्पन्न तथा तीक्ष्ण होता है। धनुराशिस्थित रवि यदि बुधसे देखे जाँय, तो जात बालक मधुर वाक्यसम्पन्न, लिपिवेत्ता, काव्यकलावित्, गोष्ठीपालक और धातुज्ञ होगा। धनुराशिस्थित रवि यदि वृहस्पतिसे दृष्ट हों, तो मनुष्य राजभवन विचरणकारी वा राजा, हस्ती, अश्व और धनयुक्त एवं विद्वान् होता है। धनुराशिस्थित रवि यदि शुक्रसे दृष्ट हों, तो वह सुगन्ध माल्यादिके साथ सर्वदा दिव्य स्त्रीभोगरत और शान्त होता है। धनुराशिस्थित रवि यदि शनिसे दृष्ट हों, तो जातबालक अशुचि, पराकाङ्क्षी, नीचानुरत, चतुष्पद क्रीड़नशील और अत्यन्त चपल होता है।

धनुराशिमें चन्द्रमाके रहनेसे मनुष्य कुशाङ्ग, हस्तचक्षु, स्थूलहृदय और कटिदेशयुक्त, पीनबाहु, वाग्मी, दीर्घमुख, दीर्घकण्ठविशिष्ट, जलतटवासी, शिल्पवेत्ता, गुप्तगुह्यदेश, शूर, वृथाभिमानी, अस्थिसार, बहुकालवेत्ता, स्थूलकण्ठौष्ठनासिकासम्पन्न, कोहवल, कृतज्ञ, असंयुताङ्घ्रि और प्रगल्भ होता है।

धनुराशिस्थित चन्द्रमा यदि रविसे देखे जांय, तो जातबालक नृपति, धनवान्, शूर, विख्यात पौरुष, अनुपम सुख और वाहनयुक्त; यदि मङ्गलसे देखे जाँय, तो सेनापति, धनवान्, सौभाग्यसम्पन्न, विख्यात पौरुष और अनुपम भृत्ययुक्त; यदि बुधसे देखे जाँय, तो बहुभृत्यसम्पन्न, बहुसारयुक्त, ज्योतिष और शिल्पादि क्रियानिपुण तथा लग्नाचार्य; यदि वृहस्पतिसे दृष्ट हों, तो अनुपम देहविशिष्ट, राजमन्त्री, धन, धर्म और सुखान्वित; यदि शुक्रसे दृष्ट हों, तो सुखी, अतिशय विषयी, सौभाग्यसम्पन्न, पुत्रार्थाभिलाषी एवं मित्रयुक्त और यदि शनिसे दृष्ट हों, तो वह प्रियवादी, शास्त्रज्ञानसम्पन्न, सत्यवादी, मनोहर तथा राजपुरुष होता है। धनुराशिमें मङ्गलके रहनेसे मनुष्य बहु क्षत द्वारा कृशाङ्ग, निष्ठुर वाक्यभाषी, पराधीन, रथ बाजी और पदातिकके साथ युद्धकारी, रथ द्वारा दूसरी सैन्यके भेदक, विफल श्रमकर, सर्वदा खिन्न, परस्पर क्रोधनिष्ठचित्तसम्पन्न तथा गुरुजनोंमें असत्यभाषी; यदि धनुराशिमें बुध रहे तो दानगुणमें विख्यात, शास्त्रज्ञानसम्पन्न, वीर्यवान्, मन्त्रणाकुशल, कुलप्रधान, महाविभवसम्पन्न, यज्ञ और अध्यापनारत, मेधावी, वाकपटु, दाता और लिपिकुशल होता है।

धनुराशिमें यदि वृहस्पति रहे, तो जातबालक व्रत, दीक्षा और यज्ञादि कर्मोंमें आचार्य, सन्तानविहीन, अर्थसम्पन्न अर्थात् सञ्चय करनेमें विशेष पटु, सक्षम, दाता, अपने सुहृत् पक्षका प्रिय व्यवहारकारी, राजमन्त्री वा मण्डलाध्यक्ष, नाना देशनिवासी एवं निर्जन तीर्थमें यज्ञकारी होता है।

धनुराशिमें शुक्रके रहनेसे वह स्वधर्म इच्छास्वरूप धनजनित फलयुक्त, जगत्प्रिय, कमनीय शरीरसम्पन्न, कुलीन, विद्वान्, गोत्रयुक्त, सच्चरित्र, स्त्रीसौभाग्ययुक्त,

राजाओंका मन्त्री, पौनीमननशील, प्रधान साधुओंके पूज्य और कवि होगा, ऐसा समझना चाहिये।

धनुराशिमें यदि शनि रहे तो वह व्यवहारबोधक शिक्षा और वेद, अर्थविद्या-कथनमें कुशलमति, पुत्रके गुणसे विख्यात, स्वधर्मपरायण, अत्यन्तसुशील, सम्मानी, अल्प वाक्ययुक्त और बहुसङ्ग विशिष्ट होता है।

धनुराशिस्थित चन्द्रमा यदि बुधसे देखे जाँय, तो वह राजाधिराज, वृहस्पतिसे देखे जाँय तो राजा, शुक्रसे देखे जाँय, तो पण्डित, शनिसे देखे जाँय, तो धनवान्, सूर्यसे देखे जाँय, तो दरिद्र और मङ्गलसे देखे जाँय, तो राजा होता है। जो सब फल कहे गये, उनसे मनुष्यको आकृति, स्वभाव और चरित्रादिका निरूपण हो सकता है।

जन्मकालीन जिस राशिमें जो ग्रह अवस्थित है उस ग्रहका राशिस्थित फल और वह ग्रह किस ग्रहसे दृष्ट हो कर किस तरहका फल देता है, उसे सावधानीसे स्थिर कर फलाफलका विचार करना चाहिये। (वृहज्जातक, सारावली) ४ लग्नविशेष। इस लग्नका परिमाण ५।१७।२० विपल है। प्रतिदिन दिन रातमें मेषादि बारह लग्न होते हैं। इसके बीच पौषमासमें धनुर्लग्नमें सूर्यका उदय हुआ करता है। धनुर्लग्नजातफल-धनुर्लग्नमें जिसका जन्म होता है, वह स्थूल ओष्ठ दशन और नासिकासम्पन्न, कफवायुप्रकृतियुक्त, जङ्घ, गुल्फ और हस्तमांसल, कृशाङ्गी, कर्ममें उद्योगी, शूर, शूद्र, नीच, तस्कर, अनल या राज-द्वारा विनष्ट धनसम्पन्न, विप्र, सबके पूज्य, आत्मघाति-च्छुक, विदेशमें कर्मप्रिय, वा राजासे लब्ध धनसम्पन्न, धर्ममें मध्यमरूप मतिविशिष्ट, स्त्रीके साथ कलहकारी और मुखरोगी होता है तथा चतुष्पद, सर्पप्रभृति बन्धन और जलसे उसकी मृत्यु होगी, ऐसा समझना चाहिये। (सत्याचार्य)

धनुलग्नमें जन्म होनेसे मनुष्य सुनीतिपरायण, धन-वान्, सुखी, कुलमें प्रधान, बुद्धिमान् और सब मनुष्योंका पोषक होता है। (कोष्ठीप्र०)।

जातकचन्द्रिकाके मतसे जिसका जन्म धनुलग्नमें होता है, वह बहु कलाकुशल, बंशशाली, महान्, निर्मल-चरित्र, प्रियभाषी और ज्ञवण होगा। ५ पियालवृक्ष, पियारका पेड़। ६ चतुर्हस्तमान, चार हाथकी माप। ७ गोलक्षेत्रके व्यासार्द्धसे न्यून अंशभेद, गोलक्षेत्रके आधेसे कम अंशका क्षेत्र। (त्रि०) ८ धनुर्द्धर, धनुष चलाने वाला, कमनैत।

धनुस्तम्भ (सं० पु) सुश्रुतोक्त विकृतवायुभेद। जिस वायु-रोगमें सारा शरीर धनुषको तरह टेढ़ा हो जाता है, उसे धनुस्तम्भ कहते हैं।

धनुहाई (हिं० स्त्री०) धनुषको लड़ाई।

धनुहिया (हिं० स्त्री०) धनुही देखो।

धनुही हिं० स्त्री०) लड़कोंके खेलनेको कमान।

धनू (सं० स्त्री०) धन-धान्ये शब्दे वा धन ऊ। (कृषि-चमितनिधनीति। उण् १।८२) १ धनु, धनुष, चाप, कमान। २ धान्यसञ्चय।

धनेयक (सं० क्लो०) धन्याक, धनिया।

धनेयु (सं० पु०) पुरुवंशीय रौद्राश्वके एक पुत्रका नाम।

धनेश (सं० पु०) धनानां ईशः। १ कुवेर। २ लग्नसे दूसरा स्थान। ३ विष्णु। ४ धनका स्वामी।

धनेश्वर (सं० पु०) धनानां ईश्वरः ६-तत्। १ कुवेर। २ विष्णु ३ मुग्धबोधके प्रणेता बोपदेवके गुरु।

धनेश्वरसूरि—शिशवाल गच्छके अन्तर्गत एक पण्डित। ये जिनवल्लभके आवश्यतक नामक ग्रन्थके टीकाकार हैं। ११७१ सम्बत्‌में यह टीका रची गई थी।

धनेश्वरी—आसामकी एक नदी। यह सामागुटि सदरके बरैलपर्वतके उत्तरसे निकल कर नागापहाड़के मध्य उत्तरको ओर जङ्गलके भीतर होती हुई दयाङ्गनदीसे जा मिली है। पीछे दोनों नदियां मिल कर उत्तरपूर्वको ओर वागहार कापरीके निकट ब्रह्मपुत्रमें गिरी हैं। नाम्बुरजङ्गलके मध्य इस नदीके निकट दिमापुरका ध्वंसावशेष है।

धनेस (हिं० पु०) एक प्रकारका पक्षी जो बगलेके आकारका होता है। इसकी गरदन और चोंच लम्बी होती है। यह बेर और बरगद आदिके पेड़ों पर पाया जाता है। लोग खानेके लिये इसका शिकार करते हैं। इसके शरीरसे पकाने पर एक प्रकारका तेल निकलता है जो वातके दर्दमें बहुत उपयोगी है।

धनैश्वर्य (सं० क्लो०) धनमेव ऐश्वर्य। धनरूप सम्पद, धनसम्पत्ति।

धनैषिन् (सं० त्रि०) धनेच्छु, धन चाहनेवाला।

धनोरो—मध्यभारतके बर्हा जिलान्तर्गत अरोई तह-सीलका एक ग्राम। यह बर्हाशहरके १३ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या प्राय: एक हजार है। अधिवासी कृषक और ताँत हैं। यहां प्रति शुक्र-वारको हाट लगती है।

धनौघन् (सं० पु०) धनलोभ, धनका लालच।

धनौती—बिहारके अन्तर्गत चम्पारण जिलेको एक नदी। पहले गण्डक नदीको उपनदी छड़ाको एक शाखा लाल-बेगी नदीसे यह धनौती उत्पन्न हुई थी। अभी इसको लम्बाई ११३ मील है। उत्पत्तिस्थानके समीप इसमें अधिक जल है। यह सीताकुण्डके निकट शिखरिणी नदीमें जा गिरी है। मोतिहारी शहरके निकट इस नदीके ऊपर रेल आनेका एक लोहेका पुल बना है। धनौती नाम धनवती शब्दका अपभ्रंश है। भविष्य-ब्रह्मखण्डके जिस अध्यायमें चम्पादेशका वर्णन है, उसीमें धनवती नामका भी उल्लेख है। (भविष्य ब्रह्मखण्ड ४२।५)

धनौदा (धरनौदा)—ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत गुणा उप-विभागका एक छोटा सामन्तराज्य। इसमें ३२ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः पांच हजार है। यहांके राजा ठाकुर कहलाते हैं। ये ठाकुर छत्रशालके वंशज हैं। छत्रशालने १८४३ ई० में रघुगढ़ नामक किला और धनौदा राज्य जागीरके रूपमें पाया था। ये खोची चौहान-वंशीय राजपूत हैं।

धनौरा—युक्तप्रदेशके मुरादाबाद जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २८° ५८' उ० और देशा० ७८° १८' ३०" पू०में मध्य गङ्गा नदीसे ४½ कोस पूर्व और मुरादाबाद शहर से २२½ कोस पश्चिम पक्की सड़कके ऊपर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः पांच हजार है। यहां चीनीका विस्तृत कारबार है।

धन्धुक—१ बम्बईके अहमदाबाद जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० २१° २६' से २२° ३३' उ० और देशा० ७१° १८' से ७२° २३' पू० में अवस्थित है। भूपरिमाण १२८८ वर्गमील और लोकसंख्या प्राय: १२८५५८ है। इसमें ३ शहर और २०४ ग्राम लगते हैं। यहांकी जमीन काली और समतल है। इसके पश्चिममें एक पहाड़ है। जंगल बहुत कम है। मध्य भागमें रुई और पूर्वांशमें गेहूं उपजता है। यहां जलका अधिक अभाव है, एक भी बड़ी नदी नहीं है। केवल भादर और उत्तावली नाम-को दो छोटो नदियां प्रवाहित हैं।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० २२° २३' उ० और देशा० ७१° ५८' पू० अहमदाबाद शहरसे ६२ मील दक्षिण-पश्चिम और सुरतसे १०० मील उत्तर-पश्चिममें भादर नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग १०३१४ है। यहां जलका बहुत अभाव है। अधिवासियोंमें बोहराओंकी संख्या अधिक है। बारहवीं शताब्दीमें यहां प्रसिद्ध जैनशिक्षक हेमचन्द्रका जन्म हुआ था। उन्हींका जन्मस्थान होनेके कारण यह शहर प्रसिद्ध है। अनहिलवाड़के कुमारपाल उनके स्मरणार्थ यहां झोहर नामका एक मन्दिर निर्माण कर गये हैं। १८६० ई०में यहां म्युनिसिपालिटी स्थापित हुई है। शहरकी आय प्राय: १६०००) रु० की है। यहां एक सब-जज की अदालत, अस्पताल और छह स्कूल हैं। यह बहुत प्राचीन स्थान है।

धन्ना (हिं० पु०) धरना देखो।

धन्नासिका (सं० स्त्री) रागिणीविशेष। इसका ग्रह षड्ज है और यह ऋषवर्जित है तथा वीर और शृङ्गार-रसके लिये गाई जाती है।

यह रागिणी श्यामवर्णा, अत्यन्त मनोहारिणी, युवती, और विदुषी है। चित्रफलकमें अपने कान्तको चित्रित करती और कान्तविरहमें सर्वदा रोदन करती हैं। इसके नेत्रजलसे नाक और दोनों स्तन धोए जाते हैं।

धन्नासेठ (हिं० पु०) प्रसिद्ध धनाढ्य, भारी मालदार, बहुत धनी आदमी।

धन्नी (हिं० स्त्री०) १ पञ्जाबके नमकवाले पहाड़ोंके आस पास मिलनेवाली गायों बैलोंकी एक जाति। २ घोड़ेकी एक जाति। ३ बेगारका आदमी।

धन्य (सं० पु०) धनाय हितः धन-यत्। १ अश्वकर्णवृक्ष, एक प्रकारका शालवृक्ष। (त्रि०) २ पुण्यवान्, सुकृती, श्लाघ्य, बड़ाईके योग्य। जो अपने नाम, यश और कोर्त्ति आदि द्वारा विख्यात हों, वे ही धन्य हैं।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके श्रीकृष्णजन्मखण्डमें धन्यत्वके

विषयमें सनत्कुमारसे इस प्रकार कहा गया है:—
विस्तीर्ण वालुकाके मध्यभागमें शतयोजन कच्छप हो धन्य है, क्षीरोदसागर धन्य है, जहां हमारे जैसे जन्तुगण विद्यमान हैं, वसुधादेवी धन्य हैं, जहां सात सागर प्रवाहित हैं। इन लोगोंके आधार श्रीकृष्णके अंशस्वरूप अनन्तदेव धन्य हैं जगत्के विधाता पितामह ब्रह्मा धन्य हैं, चारों वेद धन्य है, यज्ञसमूह और व्यवस्थाकर्त्ता धन्य हैं, समस्त शुभकर्म धन्य हैं और परमात्मा श्रीकृष्णदेव हो निश्चित धन्य है, केवल मैं धन्य नहीं हूं। ३ धनलब्धा, जिससे धन प्राप्त हो। ४ धनके लिये संयोगादि ५ श्लाघ्य, प्रशंसनीय। ६ सुखी; सुकृती। ७ कृतार्थ। ८ विष्णु। ९ नास्तिक। १० धान्यक, धनिया। ११ कैवर्त्तमुस्ता, केवटी मोथा।

धन्यग्राम—भविष्यब्रह्मखण्डोक्त यशोर प्रदेशका एक ग्राम।

धन्यवाद (सं० पु०) १ साधुवाद, प्रशंसा, वाह वाह। २ कृतज्ञता सूचक शब्द, प्रशंसा।

धन्यविष्णु—मातृविष्णुके छोटे भाई। मध्यभारतके सागर जिलेके खुराई विभागके अन्तर्गत एरण नामक ग्राममें लाल पत्थरके स्तम्भमें एक लिपि खोदी हुई है। लिपि पढ़नेसे जाना जाता है कि यह स्तम्भ एक ध्वजस्तम्भ है जिसे महाराज मातृविष्णु और उनके छोटे भाई धन्यविष्णुने प्रतिष्ठित किया है। गुप्तसम्राट् बुधगुप्तके समय यह लिपि खोदी गई है। इसके पास ही वराहमन्दिरमें वराहप्रतिमाके वक्षस्थल पर उत्कीर्ण एक लिपि पढ़नेसे मालूम होता है कि महाराज मातृविष्णुके भाई धन्यविष्णुने इस वराहप्रतिमा और मन्दिरका निर्माण किया। यह लिपि राजा तोरमाणके समयमें उत्कीर्ण हुई है।

धन्यव्रत (सं० क्ली०) धन्यं धनजनकं व्रतं। धनजनकव्रतविशेष, वह व्रत जो धन जनके लिये किया जाता है। कुबेर पहले शूद्र थे पीछे यही व्रत करके वे धनपति हो गये।

वराहपुराणके अनुसार यह सौभाग्यवर्द्धनव्रत है। अगस्त्य इस व्रतके उपदेशक हैं। निर्धन मनुष्य भी यह व्रत करके धनी हो सकता है। अगहन महीनेकी शुक्ल-प्रतिपद् तिथिमें रातको विष्णुरूपी अग्निकी पूजा की जाती है। बाद वैश्वानर नामक भगवान्के दोनों पैर, अग्निके उदर, हविर्भुक्के दोनों वक्ष, द्रविणके दोनों भुज, संवर्त्तके मस्तक और ज्वलनके सर्वाङ्गका पूजन करते हैं। अन्तमें भगवान्के सामने विधानके अनुसार कुण्ड बना कर उसमें उक्त नाम संयुक्त मन्त्रसे होम करना होता है। पीछे व्रत करनेवालेको घी मिली हुई घुंघनी खानेको लिखा है। अगहन महीनेसे ले कर फागुन तक इसी नियमसे चलना पड़ता है। कृष्णपक्षको प्रतिपदमें भी इसी तरहकी पूजा करनेका विधान है। बाद चैत्रमहीनेमें घृतयुक्त पायस भोजन कर इसी तरहका पूजन करते हैं और इसी नियमसे आषाढ़ महीने तक चलना पड़ता है। बाद श्रावणमाससे ले कर कार्त्तिक तक सत्तू खा कर रहना पड़ता है। इस प्रकार एक वर्ष ब्रह्मचारी रह कर व्रत समाप्त करते हैं। समाप्तिके दिन अग्निको स्वर्णप्रतिमा बना उन्हें एक जोड़ रक्तवस्त्र, रक्तपुष्प, कुङ्कुम, रक्तचन्दन आदिसे सजा कर पूजा करते हैं। बाद एक सर्वाङ्गसम्पन्न प्रियदर्शन ब्राह्मणका विधानके अनुसार पूजन कर उन्हें एक जोड़ रक्तवस्त्र (धोती और ओढ़ना) और कुछ अर्थ दे कर निम्नलिखित मन्त्रसे दान देना चाहिये। मन्त्र—

"धन्योऽस्मि धन्यकर्माऽस्मि धन्यचेष्टोऽस्मि धन्यवान्।
धन्येनानेन चीर्णेन व्रतेन स्यां सदा सुखी॥"

इस व्रतके फलसे मनुष्य इस जन्ममें सौभाग्य, धन और धान्यशाली होता है। पूर्वजन्म और इस जन्मके पाप भी इस व्रतके फलसे दग्ध हो कर व्रतचारी इसी जन्ममें विमुक्तात्मा हो जाता है। इस व्रतकी कथा सुनने और पढ़नेसे भी मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। पूर्वकालमें धनद कुवेर जब शूद्रयोनिमें थे, तब वे यही कथा सुन कर मुक्त हो गये थे। (वराहपु० ६५ अ०)

धन्या (सं० स्त्री०) धन्य-टाप्। १ आमलकी, छोटा आंवला। २ उपमाता। ३ पिप्पलारक वनदेवताभेद। ४ धन्याक, धनिया। ५ मनुकी एक कन्या जिसका विवाह ध्रुवके साथ हुआ था।

धन्याक (सं० क्ली०) धनति भक्ताग्निं भिरिति (पिणाकादयश्च। उण् ४।१५) इति सूत्रेण आक प्रत्ययेन साधुः। क्षुपपत्र शाकजातीय सुगन्ध सर्वोच्च मसलभेद, धनिया

(Coriandrum Sativum)। इसका संस्कृत पर्याय—छत्रा वितुन्नक, कुस्तुम्बुरु, धानाक, धनिक, धनका धानेय, धन्य, धनिका, छत्राधान्य, सुगन्धि, शाकयोग्य, सूक्ष्मपत्र, जनप्रिय, धान्यबीज, बीजधान्य और वेधक है। भावप्रकाशके मतसे इसका पर्याय—कुलटी, धेनिका, धन्यक, धान्य और धानेयक है। इसका गुण—मधुर, शीतल, कषाय, पित्तज्वर, कास, तृष्णा, छर्दि और कफनाशक है। भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—दीपन, स्निग्ध, वृष्य, मूत्रल, लघु, तिक्त, कटु, वीर्यकारक, पाचन, रुचिकर, ग्राही, स्वादुपाक, त्रिदोष, दाह, श्वास, अर्श और कृमिनाशक है।

यह पौधा भारतवर्षमें सब जगह बोया जाता है। प्राचीनकालमें धनिया प्रायः भारतवर्षसे ही मिश्र आदि पश्चिमके देशोंमें जाता था, पर अब उत्तरी अफ्रिका तथा रूस, हंगेरी आदि यूरोपके कई देशोंमें इसकी खेती अधिक होने लगी है। इसका पौधा एक हाथसे बड़ा नहीं होता है। इसकी टहनियां बहुत नरम और लताकी तरह लचीली होती हैं। पत्ते बहुत छोटे और कुछ गोल होते हैं। पर उनमें टेढ़े तथा इधर उधर निकले हुए बहुतसे कटाव होते हैं। पत्तोंकी सुगन्ध बहुत अच्छी होती है, इसी कारण वे चटनीमें हरे पीस कर डाले जाते हैं। टहनियोंके छोर पर इधर उधर कई सींकें निकलती हैं, जिनके सिरे पर छत्तेकी तरह फैले हुए सफेद फूलोंके गुच्छे लगते हैं। जब फूल झड़ जाते हैं, तब गेहूंसे भी छोटे छोटे लम्बोतरे फल लगते हैं जो सुखा कर काममें लाये जाते हैं।

हिन्दुस्तानमें इसकी खेती भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें भिन्न भिन्न ऋतुओंमें होती है। धनियेको अच्छी तरह पीस कर उसे छान लें और तब उसमें गुड़ और पानी मिला कर एक नीचे मट्टीके बरतनमें रख छोड़ें। पीछे उसमें कपूर आदि सुगन्धद्रव्य मिला कर सेवन करनेसे पित्तका नाश होता है।

धन्याकक्वाथ—क्वाथविशेष। धनियेके काढ़ेको बासी करके चीनीके साथ बहुत सबेरे सेवन करनेसे बहुत जल्द अन्तर्दाह और पैत्तिक ज्वर विनष्ट होता है।

धन्व (सं॰ क्ली॰) धनतीति धन शब्दे (कन्यादयश्च। उण् ४।९५) इति वन् प्रत्ययेन साधुः। १ धनु, धनुष, कमान, चाप। २ धन्वन्तरिके पिता। ३ दुरालभा, जवासा, धमासा।

धन्वङ्ग (सं॰ पु॰) धन्वो धनुष इव अङ्गं यस्य। धन्वनद्रुम, धामिनका पेड़। (Grewia asiatica) इसका संस्कृत पर्याय-रक्तकुसुम, धनुर्वृक्ष, महाबल, रुजामह, पिच्छिलक, रूक्ष और स्वादुफल है। इसका गुण-कटु, उष्ण, कषाय, कफनाशक, दाह और शोषकर, ग्राहक तथा कण्ठामयनाशक है। इसके फलका गुण—कषाय, शीतल, स्वादु, कफ और वायुनाशक है। २ वंश, बाँस।

धन्वचर (सं॰ त्रि॰) धन्वना धनुषा सह चरतीति चर-ट। धानुष्क, जो धनुष चला कर अपनी जीविका निर्वाह करता हो।

धन्वज (सं॰ त्रि॰) धन्वनि मरुदेशे जायते जन-ड। मरुभव, मरुदेशमें उत्पन्न।

धन्वतरु (सं॰ पु॰) सोमवल्ली।

धन्वदुर्ग (सं॰ क्ली॰) धन्वना निर्जलस्थलेन वेष्टितं दुर्गं। दुर्गभेद, ऐसा दुर्ग या गढ़ जिसके चारों ओर पांच पांच योजन तक निर्जल और मरुभूमि हो।

धन्वन् (सं॰ क्ली॰) धन्यते गम्यते दुर्गमादि स्थलेऽनेनेति धन्व-कनिन्। १ धनु, धनुष, कमान, चाप। २ स्थल, सूखी जमीन। ३ जलहीन देश, मरुदेश। ४ आकाश, आसमान।

धन्वन (सं॰ पु॰) धन्वति हृत्वं गच्छति धन्व-गतौ ल्यु। वृक्षविशेष, धामिनका पेड़। धन्वङ्ग देखो।

धन्वन्तर (सं॰ क्ली॰) चतुर्हस्त परिमित दण्डरूप परिमाणभेद, चार हाथका एक माप।

धन्वन्तरि (सं॰ पु॰) धनुरुपलक्षणत्वात् शल्यादि चिकित्साशास्त्रं तस्य अन्तं ऋच्छतीति ऋ गतौ (अच इः। उण् ४।१३८) इति इ। समुद्रोत्थित देववैद्यभेद, देवताओंके वैद्य जो पुराणानुसार समुद्रमन्थनके समय समुद्रसे निकले थे। इनकी कथा भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखी है—

एक दिन देवराज इन्द्रने जब अपनी दृष्टि संसारकी ओर डाली, तब व्याधिसे अत्यन्त पीड़ित मनुष्योंको देख उनका हृदय दयासे भर आया। तब इन्द्रने धन्वन्तरिको बुला कर कहा, 'हे धन्वन्तरि! मैं आपसे कुछ अनुरोध

करता हूं, वह यह है कि आप प्राणियोंके प्रति दया दरमाइये। परोपकारके लिये महात्माओंको नाना प्रकारके क्लेश सहने पड़ते हैं। भगवान् विष्णुने भी मत्स्यादि शरीर धारण कर प्राणियोंकी रक्षा की है। पृथ्वीके जिस ओर दृष्टि डाली जाती है उधर ही देखा जाता है कि प्राणीगण प्रतिनियत व्याधि द्वारा पीड़ित हो कर नाना प्रकारके दुःख झेल रहे हैं। अतः आप उनके उपकारके लिये भूलोकमें आ कर काशीधामका राजा होवें और व्याधि समूहकी चिकित्साके लिये आयुर्वेद शास्त्र प्रकाश करें। इतना कह कर इन्द्रने धन्वन्तरिको सब आयुर्वेद शास्त्र सिखला दिये। धन्वन्तरि इन्द्रसे सब सब आयुर्वेदशास्त्र सीख कर काशीधामको आये और उन्होंने किसी क्षत्रियके घरमें जन्मग्रहण किया। वहां वे दिवोदास नामसे प्रसिद्ध हुये। इन्होंने बाल्यकालमें ही सब कामना छोड़ कर अनन्यकर्मा हो ब्रह्माकी तपस्या की। ब्रह्माने इनकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो कर उन्हें काशीका राजा बनाया। राजा हो कर इन्होंने प्राणियोंके उपकारके लिए आयुर्वेद शास्त्र प्रचार किया। पीछे ये धन्वन्तरिसंहिता नामक एक ग्रन्थ निबद्ध कर छात्रोंको पढ़ाने लगे। (भावप्र० पूर्वख०)

हरिवंशमें इनका उत्पत्ति-विवरण इस प्रकार है—

महामति जनमेजयने वैशम्पायनसे प्रश्न किया था, 'हे महात्मन्! देव धन्वन्तरि किस लिए इस लोकमें मनुष्यके रूपमें अवतीर्ण हुए थे?' इसके उत्तरमें वैशम्पायनने कहा था—पूर्वकालमें जब देवता और असुरगण समुद्र मन्थन कर रहे थे, तब समुद्रसे ये उत्पन्न हुए। इनके उत्पन्न होते ही दिशाएँ जगमगा उठीं। उस समय ये सिद्धकार्यके उद्देशमें ध्यानपरायण थे। सामने भगवान् विष्णुको देख ये स्तब्ध हो रहे, इस पर भगवान्ने इन्हें अब्ज कह कर पुकारा। भगवान्के पुकारने पर इन्होंने उनसे प्रार्थना की, 'हे प्रभो! आप लोकनाथोंके ईश्वर और जगत्के विधाता हैं। मैं आपका पुत्र हूँ, अतः यज्ञमें मेरा भाग और स्थान नियत कर दिया जाय।' विष्णुने कहा, 'हे वत्स! देवताओंने यज्ञभागकी कल्पना कर दी है और वे महर्षियोंके बीच विधिहोत्र प्रदान कर गये हैं। अभी तुम्हारे लिए होमभाग विधान करनेमें मेरी शक्ति नहीं है। पर तुम इस जन्ममें देवताओंका पुत्र हुए हो दूसरे जन्ममें विशेषख्याति लाभ करोगे, अणिमादि सिद्धियां तुम्हें गर्भसे ही प्राप्त रहेंगी और तुम उसी शरीर द्वारा देवत्व लाभ करोगे। द्विजातिगण चरु, मन्त्र, व्रत और जपादि द्वारा तुम्हारी अर्चना करेंगे। तुम्हीं आयुर्वेदको आठ भागोंमें विभक्त करोगे।' ब्रह्मा भी ये सब जानते हैं, इतना कह कर विष्णु अन्तर्द्धान हो गये।

इनके बाद द्वापरयुगमें सुनहोत्र-वंशावतंश काशीराज धन्व पुत्रके लिए कठोर तपस्या करने लगे। 'जो उपास्य देवता मुझे पुत्र देंगे, वे ही मानो मेरे पुत्रके रूपमें जन्म ग्रहण करें।' इस अभिप्रायसे काशीराजने अब्जदेवकी आराधना की। बाद भगवान् अब्जने राजाकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो कर उनसे कहा, 'हे सुव्रत! तुम जो वर चाहो वही वर मैं अभी तुम्हें दूंगा।' इस पर राजाने कहा, 'भगवन्! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो आप ही मेरे कीर्त्तिमान् पुत्र होवें।' 'तथास्तु' कह कर अब्जदेव अन्तर्द्धान हो गये। पीछे देव धन्वन्तरि धन्वके घरमें जन्म ले कर सर्वरोगप्रणाशन महाराज काशीराजके नामसे प्रसिद्ध हुए। इन्होंने भरद्वाज ऋषिसे आयुर्वेद शास्त्रका अध्ययन करके उसे फिर भिषक्-क्रियाके साथ आठ भागोंमें विभक्त किया। यह विभक्त आयुर्वेद इन्होंने शिष्योंको सिखला दिया। धन्वन्तरिके केतुमान् नामक एक पुत्र हुए। (हरिवंश २८ अ०)

जब देवराज इन्द्र महामुनि दुर्वासाके शापसे श्रीभ्रष्ट हो गये, तब देवताओंने विष्णुके आदेशसे समुद्रमन्थन किया। उस मन्थनमें मन्दरपर्वत मन्थनदण्ड, कूर्मराज उस मन्दरके अधिष्ठान और वासुकि मन्थनरज्जु हुए थे। स्वयं भगवान् विष्णु इन्हें बलिदान करने लगे। समुद्रमन्थनमें पहले चन्द्र पीछे लक्ष्मी और तब सुरा, उच्चैःश्रवा, कौस्तुभ पारिजातवृक्ष, सुरभि गौ, बाद हाथमें अमृत लिये धन्वन्तरि, और सबसे अन्तमें विष उत्पन्न हुआ। पुराणोंमें उक्त द्रव्योंकी उत्पत्तिमें फर्क पड़ता है। भागवतके अनुसार यथाक्रमसे विष, सुरभि, उच्चैःश्रवा, ऐरावत, कौस्तुभ, पारिजात, अप्सरागण,

लक्ष्मी, वैजयन्ती और अमृत; विष्णुपुराणके अनुसार यथाक्रमसे सुरभि, वारुणी, पारिजात, अप्सरागण, चन्द्र, विष अमृतके साथ धन्वन्तरि और लक्ष्मी; मत्स्यपुराणके अनुसार विष, सुरा, उच्चैःश्रवा, कौस्तुभ, चन्द्र, अमृतके साथ धन्वन्तरि, लक्ष्मी, अप्सरा, सुरभि, पारिजात, ऐरावत, वारुणाच्छत्र और कर्णाभरण उत्पन्न हुआ। इसी समुद्र-मन्थनमें धन्वन्तरि जन्मग्रहण करके देववैद्य कहलाने लगी। ये वेदज्ञ, मन्त्रतन्त्रज्ञ और वैनतेय थे। तथा इन्होंने शङ्करका शिषात्व स्वीकार किया था। (विष्णु-पुराण, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, महाभारत और भागवत।)

२ महाराज विक्रमादित्यके नवरत्नोंमेंसे एक।

धन्वन्तरिग्रस्ता (सं० स्त्री०) धन्वन्तरिणा ग्रस्ता। कटुकी, कुटकी।

धन्वन्तरिपञ्चकम् (सं० क्ली०) धन्वन्तरि कृत ग्रन्थविशेष, धन्वन्तरिकी बनाई हुई एक किताब।

धन्वन्य (सं० त्रि०) धन्वनि मरुदेशे भवः यत्। मरुदेश-भव, जो मरुदेशमें उत्पन्न हो।

धन्वपति (सं० पु०) धन्वनः मरुदेशस्य पतिः ६-तत्। मरुदेशाधिपति, मरुदेशका मालिक।

धन्वमांस (सं० क्ली०) निर्जलदेश पशुमांस मरुभूमिके पशुओंका मांस।

धन्वयवास (सं० पु०) धन्वदेशोद्भवः यवासः। दुरालभा, जवासा, धमासा। दुरालभा देखो।

धन्वसह (सं० पु०) धन्वं धनुर्ग्रहं सहते सह-अच्। धनुर्धर, योद्धा, वीर।

धन्वाकार (सं० त्रि०) धनुषके आकारका, कमानकी सूरतका, टेढ़ा।

धन्वायन (सं० त्रि०) धन्वा मरुदेशो ऽयत्यनेन करणे ल्युट्। मरुदेश-गमनसाधन, जिससे मरुदेश पार किया जाय।

धन्वायिन् (सं० त्रि०) धन्वना सह एति गच्छति इ-णिनि। १ धनुर्धर। (पु०) २ रुद्रदेव।

धन्विन् (सं० त्रि०) धनुरापो ऽस्त्यस्येति व्रीह्यादित्वात् इनि। १ धनुर्धर, वीर। २ विदग्ध। (पु०) धन्वमरुस्त्यस्येति धन्व इनि। ३ दुरालभा, जवासा। ४ अर्जुन वृक्ष। ५ वकुल, मौलसिरी वृक्ष। ६ पार्थ, धनञ्जय, अर्जुन। ७ विष्णु। ८ महादेव। ९ तामस मुनिके एक पुत्रका नाम। १० धनुराशि।

धन्विन (सं० पु० स्त्री०) धन्व बाहुलकात् इनन्। शूकर, सूअर।

धन्विस्थान (सं० क्ली०) धन्विनां स्थानं ६-तत्। धनुष्कों या योद्धाओंकी एक स्थिति।

धप (हिं० स्त्री०) १ किसी भारी और मुलायम चीजके गिरनेका शब्द। (पु०) २ धौल, थप्पड़, तमाचा।

धपना (हिं० क्रि०) १ बहुत तेजीसे चलना दौड़ना। २ झपटना, लपकना।

धप्पा (हिं० पु०) १ थप्पड़, धौल। २ क्षति, नुकसान, हानिका आघात।

धप्पाड़ (हिं० स्त्री०) दौड़।

धबधब (हिं० स्त्री०) १ किसी भारी और मुलायम चीजके गिरनेका शब्द। २ भद्दे, मोटे मनुष्यके पैर रखनेका शब्द।

धबला (हिं० पु०) एक प्रकारका ढीला ढाला पहनावा, जिससे कमरके नीचेका अंग ढांका जाता है।

धब्बा (हिं० पु०) १ पड़ा हुआ चिह्न जो देखनेमें बुरा लगे, निशान, दाग़। २ कलङ्क, दोष, ऐब।

धम (सं० त्रि०) धमतीति धम-अच्। १ अग्नि-संयोग-कर्त्ता। २ शब्दकर्त्ता, आवाज करनेवाला।

धम (हिं० स्त्री०) भारी चीजके गिरनेका शब्द, धमाका।

धमक (सं० पु०) धमतीति ध्मा-क्वुन् अ-कुम्, धमादेशश्च (ध्मो धमश्च। उण् २।३५) १ कर्मकार, लोहार। २ धौंकने-वाला।

धमक (हिं० स्त्री०) १ भारी वस्तुके गिरनेकी आवाज। २ पैर रखनेकी आवाज। ३ गड्ढा। ४ वह आघात जो किसी भारी शब्दसे हृदय पर मालूम हो, दहल। ५ आघात आदिसे उत्पन्न कम्प या विचलता। ६ आघात, चोट।

धमकना (हिं० क्रि०) १ धम शब्दके साथ गिरना, धमाका करना। २ व्यथित होना, रह कर दर्द करना।

धमकाना (हिं० क्रि०) १ भय दिखाना, डराना। २ डांटना, घुड़कना।

धमकी (हिं० स्त्री०) त्रास दिखानेकी क्रिया, डर दिखाने-का काम।

धमगजर (हिं॰ पु॰) १ उपद्रव, उत्पात, ऊधम । २ युद्ध, लड़ाई ।

धमधम (सं॰ पु॰) धम विकारे हिलं । पार्वतीके क्रोध-सम्भूत कुमारानुचर गणभेद, कार्त्तिकेयके गण जो पार्वतीके क्रोधसे उत्पन्न हुए थे । स्त्रियां टाप् । २ धमधमा, कुमारानुचर मातृभेद । (भारत सभापर्व ४७ अ॰)

धमधूसर (हिं॰ वि॰) स्थूल और बेडौल आदमी, भद्दा मोटा आदमी ।

धमन (सं॰ पु॰) धम्यते अग्निरनेनेति धम-करणे ल्युट् । १ नल नामक तृणभेद, नरकट, नरसल । २ हवासे फूंकनेका काम । ३ पोली नली जिसके द्वारा हवा दी जाती है । ४ निम्बवृक्ष, नीमका पेड़ । (त्रि॰) ५ क्रूर, कठोर ।

धमना (हिं॰ क्रि॰) धौंकना, फूंकना ।

धमनि (सं॰ स्त्री॰) धम्यते इति धन-अनि (आर्त्ति-सृ-धृ-धमीति । उण् २।१०२) १ धमनी, नाड़ी । २ प्रह्लादके भाई ह्रादकी स्त्री जो वातापि इल्वलकी मां थी । ३ गतिकर्त्ता । गत्यर्था बुद्ध्यर्थाः, गम्यते ज्ञायतेऽर्थोऽनया ज्ञायते वा विद्वद्भिः साध्वसाधुविभागेन वा धमति इति वध कर्मस्वपि पठ्यते धमति हन्त्यनया शाखाक्रोशादि रूपया । ४ वाक् । ५ शब्द ।

धमनी (सं॰ स्त्री॰) धमनि बाहुलकात् ङीष् । १ नाड़ी, शरीरके भीतरकी वह छोटी या बड़ी नली जिसमें रक्त आदिका संचार होता रहता है ।

इसका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है,--

प्रधान धमनियां चौबीस हैं जो नाभिसे निकलती हैं । किसी किसी पण्डितका कहना है, कि शिरा, धमनी और स्रोत इनमें कोई फर्क नहीं है, धमनी शिराका विकार मात्र है । पर यह सङ्गत नहीं है । मलसन्नियम, मलमूत्रधारण और त्याग, तथा क्रियाकी भिन्नताप्रयुक्त स्रोत-शिरासे धमनी भिन्न है । शास्त्रमें इसे पृथक् बतलाया है और लौकिक व्यवहारमें भी धमनी कहनेसे शिरा नहीं समझी जाती है । मगर दोनोंके एक जगह रहने तथा शरीरके एक ही प्रकारके कार्य करनेसे वे दोनों एक ही समझे जाते हैं । दोनोंकी क्रियामें विभिन्नता है सही, किन्तु बहुत सूक्ष्म है । अतः दोनोंकी क्रिया एक ही समझी जाती है ।

ये सब धमनियां नाभिसे निकल कर दश ऊपरकी ओर गई हैं, दश नीचेकी ओर तथा चार बगलकी ओर । ऊपर जानेवाली १० धमनियों द्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, श्वास, उच्छ्वास, जंभाई, छींक, हास्य, कथन, रोदन आदि काम होते हैं । ये दश धमनियां हृदयमें पहुंच कर तीन तीन शाखाओंमें विभक्त हो कर तीस हो जाती हैं । इनमेंसे दो दो वात, पित्त कफ, शोणित और रस वहन करती हैं । इसके अतिरिक्त आठ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध वहन करनेवाली हैं । फिर दोसे मनुष्य बोलता है, दोसे शब्द करता है, दोसे सोता है, दोसे जगता है और दोसे रोता है । स्त्रियोंके स्तनोंमें दो धमनियां दूध वहन करतीं, और पुरुषोंके शरीरमें दो शुक्र । यही तीस ऊपरकी धमनियां नाभिसे ले कर उदर, पार्श्व, पृष्ठ, वक्ष, स्कन्ध, ग्रीवा और बाहु तक व्याप्त हैं ।

यह तो हुई ऊर्ध्वगामिनी धमनियोंकी बात । अब अधोगामिनी धमनियोंके कार्य दिखलाये जाते हैं ।

अधोगामिनी धमनियां इसी प्रकार वायु, मूत्र, पुरीष, शुक्र, आर्त्तव आदि इनको नीचेकी ओर ले जाती हैं । जो दश धमनियां पित्ताशयमें जा कर वहां खाये पीए हुए रसको उष्णतासे पृथक् करती हैं, रस पहुंचा कर शरीरको तृप्त करती हैं, ऊर्ध्व, अधः और तिर्यक्गत धमनियोंमें रस देती हैं तथा रसका स्थान पूर्ण एवं मूत्र, पुरीष, स्वेद प्रभृतिको परस्पर पृथक् कर देती हैं वे भी आमाशय और पक्वाशयके बीचमें पहुंच कर तीन तीन भागोंमें विभक्त हो कर तीस हो जाती हैं । इनमेंसे दो दो धमनियां वात, पित्त, कफ, शोणित और रस वहन करती हैं । आंतोंसे लगी हुई दो अन्नवाहिनी हैं, दो जलवाहिनी और दो मूत्रवाहिनी । मूत्रवस्तिमें लगी हुई दो धमनियां शुक्र उत्पन्न करनेवाली और दो प्रवर्त्तित करने या निकालनेवाली हैं । वे दोनों धमनियां स्त्रियोंके शरीरमें आर्त्तव वहन करती हैं । मोटी आंतसे लगी हुई दो मलको निकालती हैं । बाकी आठ धमनियां नाभिसे अधोभागमें जा कर पक्वाशय, कटि, मूत्र, पुरीष, गुह्यदेश, वस्ति, मेढ़्र और ऊरु आदि स्थानोंको पोषण करती हैं ।

अब तिर्यग्गामिनी धमनियोंके कार्य बतलाये

गये। अब तिर्यक्गामिनी धमनियोंके कार्य दिख- लाए जाते हैं। तिर्यग्गामिनी धमनियां उत्तरोत्तर सहस्रों लाखों सूक्ष्म सूक्ष्म शाखाओं प्रशाखाओंमें हो कर शरीरको छिद्रयुक्त बना देती हैं। उन सब सूक्ष्म धमनियोंके मुंह प्रत्येक लोमकूपमें लगी हुए हैं। इनके द्वारा भीतरका स्वेद बाहर निकलता और शारीरिक रस भीतर और बाहरमें सन्तर्पित होता है अर्थात् भीतरकी गर्मी लोमकूप द्वारा बाहर निकलती है और बाहरकी वायु जल आदि इसी तरह छिद्र द्वारा भीतर जाता है। उसी- से इस सन्तर्पित हुआ करता है। आधुनिक शरीर-तत्त्व- वेत्ताओंका कहना है, कि उक्त दो प्रकारके कार्मोंके लिये शरीरके ऊपरके भागमें दो प्रकारके छिद्र हैं। अभ्यङ्ग, परिषेचन, अवगाहन और लेपनक्रिया द्वारा तैलादिका वीर्य शरीरमें प्रवेश करता है। उसमें त्वक् पक जाता और स्पर्शके लिये सुख वा असुखका अनुभव होता है। सर्वाङ्गगामिनी धमनियोंका विषय तो कहा गया। अब मृणालसूत्रमें जिस तरह छिद्र रहते हैं, उसी तरह धमनीके भीतर भी छिद्र हैं। इन सब छिद्रोंसे शरीरमें रससञ्चारित होता है। पूर्वकथित समस्त मूलोंसे शिरा और धमनीको छोड़ कर जो सब छिद्रयुक्त नाड़ियां देहमें प्रवाहित होती हैं, उन्हें स्रोत कहते हैं। यदि शिरा वा धमनी आदिके विद्ध करते समय स्रोत विद्ध किया जाय, तो निम्नलिखित फल पाये जाते हैं। जो सब स्रोत श्वास, अन्न, जल, रस, रक्त, मांस, मेद, मूत्र, पुरीष और शुक्र वहन करते हैं, उनमेंसे श्वासवाही दो हैं। उन दोनोंका मूल हृदय और सारी रसवाहिनी धमनियां हैं। यह मूल यदि कहीं पर विद्ध हो जाये, तो क्रोशन अर्थात् शामनामें कातर और शरीर झुक जाता, मोहन अर्थात् भ्रम उत्पन्न होता, भ्रमण तथा वेपन आदि उपद्रव होते और कभी कभी मृत्यु भी हो जाया करती है। अन्न- वाहिनीस्रोत दो हैं, आमाशय और अन्नवाहिनी धम- नियां उनका मूल है। इस मूलके विद्ध होनेसे शूल, अन्न- में अरुचि, वमन, पिपासा और दृष्टिका व्याघात अथवा मृत्यु हो जाती है। उदकवाही स्रोत दो हैं, तालु और क्लोम उनका मूल है। इस मूलके विद्ध होनेसे पिपासा वा उसी समय मृत्यु हो जाती है। रसवाही स्रोत दो हैं, हृदय और रसवाहिनी धमनियां उनका मूल है। इस मूल को विद्ध करनेसे शोष अथवा श्वासवाही स्रोत विद्ध करने- से जो सब लक्षण पाये जाते हैं, वही लक्षण इसमें भी होते हैं; यहां तक कि मृत्यु भी हो जाया करती है। रक्त- वाही स्रोत दो हैं, यकृत्, प्लीहा और रक्तवाहिनी धमनियां उनका मूल है। इस मूलके विद्ध होनेसे देह श्यामवर्ण, ज्वर, दाह, पाण्डुता, अतिशय रक्तनिःसरण और चक्षु रक्तवर्ण ये सब लक्षण उत्पन्न होते हैं। मांसवाही स्रोत दो हैं, स्नायु, त्वक् और रक्तवाहिनी धमनियां उनका मूल हैं। इस मूलको विद्ध करनेसे श्वयथु, मांसशोष, शिरा- ग्रन्थि, अथवा मृत्यु तक भी हो जाती है। मेदवाही स्रोत दो हैं, कटी और दोनों वृक्क उनका मूल है। इस मूलको विद्ध करनेसे स्वेद निःसरण, अङ्गकी स्निग्धता, तालुशोष स्थूलशोष और पिपासा आदि उपद्रव दिखाई पड़ने लगते हैं। मूत्रवाही स्रोत दो हैं जिनका मूल वस्ति और मेढ़ है। इसके विद्ध होनेसे वस्तिदेश स्फीत, मूत्रनिरोध और मेढ़की स्तब्धता हो जाती है। पुरीषवाही स्रोत दो हैं, पक्वाशय और गलदेश इनका मूल है। इसके विद्ध होनेसे आनाह, दुर्गन्धता और आंतमें ग्रन्थिरोग ये सब उपद्रव होने लगते हैं। आर्त्तववाही स्रोत दो हैं, गर्भाशय और आर्त्तवाहिनी धमनी इनका मूल है। इस मूलके विद्ध हो जानेसे स्त्री बन्ध्या होती, मैथुन सह्य नहीं कर सकती तथा आर्त्तव शोणित नाश होता है। इन्हीं सब कारणोंसे बहुत सावधानीके साथ धमनी शिरा आदिको विद्ध करना होता है।

नाभिसे उत्पन्न धमनी २४ हैं।—नाभिसे ऊर्द्धगामिनी १०, अधोगामिनी १० और तिर्यक्गामिनी ४, यही २४ धमनियां हैं। प्रत्येक ऊर्द्धगामिनी धमनी हृदयमें पहुंच कर तीन तीन शाखाओंमें विभक्त हो कर ३० हो जाती है।

ऊर्द्धगामिनी ३० धमनियोंके कार्य—वायुवाहिनी २, शब्दवाहिनी २, शब्दकारिणी २, पित्तवाहिनी २, कफ- वाहिनी २, निद्राविधायिनी २, श्लेष्मवाहिनी २, रस- वाहिनी २, चेतनकारिणी २, रक्तवाहिनी २, गन्धवाहिनी अश्रुवाहिनी २, रसवाहिनी २, वाकशक्तिवाहिनी २,

और दोनों स्तनमें आश्रित २, यही ३० ऊर्ध्वगामिनी धमनियां हैं।

जो धमनियां दोनों स्तनोंमें रहती हैं, वे स्त्रीके दोनों स्तनमें स्तन्य पहुँचाती और पुरुषके स्तनमे शुक्रवहन करती हैं।

अधोगामिनी १० धमनियां पित्ताशयमें जा कर खाए पीए हुए रसकी परिपाक करती, पृथक् करती, उस रसको ऊर्ध्वगामिनी और तिर्यक्‌गामिनी धमनियोंमें अर्पण करती तथा मूत्र, पुरीष और स्वेदको पृथक् करती हैं। यही दश धमनियां पक्वाशयमें पहुँच कर तीन तीन भागोंमें विभक्त हो कर ३० हो जाती हैं।

अधोगामिनी ३० धमनिके कार्य।—वायुवाहिनी २, आँतसे लगी हुई अन्नवाहिनी २, मोटी आँतसे लगी हुई पुरीषवाहिनी २, पित्तवाहिनी २, जलवाहिनी २, श्लेष्मावाहिनी २, वस्तिसे लगी हुई मूत्रवाहिनी २, रक्तवाहिनी २, शुक्रसम्भाविनी २, अवशिष्ट ८, रसवाहिनी २, शुक्रवाहिनी २, ये तीस धमनियां स्वेद ले जाकर तिर्यक्‌गामिनी धमनियोंमें अर्पण करती हैं। शुक्रवाहिनी धमनी ही स्त्रियोंका आर्त्तव वहन करती है। तिर्यक्‌गाहिनी धमनियां सहस्रों लाखों शाखाओं प्रशाखाओंमें विभक्त हो कर शरीरके प्रत्येक लोमकूपसे लगी हुई हैं। उन्हींके द्वारा शरीरके भीतरका स्वेद निकलता, बाहर चमड़ेपरका अभ्यङ्ग अनुलेपनादि भीतर लाया जाता और शीतोष्णादिका स्पर्श अनुभव किया जाता है।

(सुश्रुतशारीरस्थान धमनीव्याकरण ९अ०)

धमनीका विषय भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है—

धमनी नाभिसे निकल कर चौबीस शाखाओंमें विभक्त हुई है। इनमेंसे दश ऊपरकी ओर दश नीचेकी ओर और चार बगलकी ओर गई हैं। ऊपरकी दश शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, प्रश्वास, जृम्भ, क्षुत्, हास्य, कथन, रोदन और गान प्रभृति निष्पन्न द्वारा शरीरको धारण करती हैं इत्यादि।

सुश्रुतमें जैसा लिखा गया है भावप्रकाशमें भी वैसा ही लिखा है।

चरकके सूत्रस्थानमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—

शरीरमें जो सब ओजोवहा चारों ओर फैली हुई हैं और जिनके बलसे प्राणी जीवित रहते हैं तथा जिनके विना क्षणकाल भी जीवन नहीं रह सकता है, उसीको धमनी कहते हैं। इनमेंसे ध्मानसे धमनी, स्रवणसे स्रोत और सरणसे शिरा नाम पड़ा है।

सुश्रुताचार्य नाभिको ही समस्त शिरा और धमनीका मूल बतलाते हैं, किन्तु तन्त्रशास्त्रके मतसे नाड़ी मेरुदण्डसे निकली है, यथा—

"द्वे द्वे तिर्यक् गते नाड्यौ चतुर्विंशति संख्यया।
मेरुदण्डे स्थिताः सर्वे सूत्रे मणिगणा इव॥"

मेरुदण्डकी प्रत्येक गांठसे दो दो नाड़ी निकल कर दोनों ओर चली गई हैं। आधुनिक शरीर-व्यवच्छेद विद्यामें भी ऐसा ही देखा जाता है। तन्त्रशास्त्रमें मेरुदण्डके ऊपरसे ले कर नीचे तकको सभी नाड़ियां स्तम्भरूपसे हैं, ऐसा ही वर्णन किया गया है।

इस तरह शरीरके अन्तर्गत मस्तिष्क, मेरुदण्ड और उसके अन्तर्गत शिरा आदिके विषयमें आधुनिक पण्डितोंके मतसे तन्त्रका मत बहुत कुछ मिलता जुलता है। अनुमान किया जाता है, कि सुश्रुतका अभिप्राय यही है, कि गर्भस्थ बालकके शरीरको गठन और पोषणके लिये जिस रसका प्रयोजन पड़ता है, माताके शरीरसे उस रसका लानेके लिये नाड़ी है और वह नाड़ी बालककी नाभिसे लगी हुई है। इस कारण नाभिसे शरीरोत्पत्ति वा धमनीका मूल बतलाना असङ्गत नहीं है। नाड़ी देखो। २ हट्टविलासिनी, हरिद्रा, हलदी। ३ ग्रीवा, गला। ४ पृश्निपर्णी, पिठवन। ५ नलिका, नली, चोंगा।

धमधा (हिं० पु०) नगाड़ा, धौंसा।

धमाका (हिं० पु०) १ भारी वस्तुके गिरनेका शब्द। २ बन्दूकका शब्द। ३ आघात, धक्का। ४ पथरकला बन्दूक। ५ वह बड़ी तोप जो हाथी पर लादी जाती है।

धमाचौकड़ी (हिं० स्त्री०) १ उछल कूद, कूद-फांद। २ धींगा धींगी, मार पीट।

धमाधम (हिं० क्रि० वि०) १ लगातार कई बार 'धम' 'धम' शब्दके साथ, लगातार गिरनेका शब्द करते हुए। २ लगातार कई प्रहार शब्दोंके साथ। (स्त्री०) ३ कई बार गिरनेसे लगातार धम धम शब्द, लगातार गिरने पड़नेकी आवाज। ४ प्रतिघात, आघात।

धमार (हिं॰ स्त्री॰) १ उपद्रव, उत्पात, उछल-कूद। २ नटोंकी उछल-कूद, कलाबाजी। ३ विशेष प्रकारके साधुओंकी दहकती आग पर कूदनेकी क्रिया। (पु॰) ४ एक प्रकारका ताल जो होलीमें गाया जाता है। ५ एक प्रकारका गीत जो होलीमें गाया जाता है।

धमारिया (हिं॰ पु॰) १ उछल कूद करनेवाला नट, कलाबाज। २ वह जो होलीमें धमार गाता हो। ३ वह साधु जो अग्निमें कूद पड़ता हो। (त्रि॰) ४ उपद्रव करनेवाला, शान्त न रहनेवाला, उत्पाती।

धमारी (हिं॰ वि॰) उपद्रवी, उत्पाती।

धमाल (हिं॰ पु॰ स्त्री॰) धमार देखो।

धमासा (हिं॰ पु॰) दुरालभा, जवासा।

धमि (सं॰ स्त्री॰) १ मन्त्र, अँतड़ी। २ धमनी, नाड़ी।

धमिका (हिं॰ स्त्री॰) १ लोहारिन। २ लोहारकी स्त्री।

धमूका (हिं॰ पु॰) १ प्रहार, आघात, धमाका। २ मुक्का, घूँसा।

धमेख (हिं॰ स्त्री॰) काशीसे दो कोसकी दूरी पर अवस्थित एक स्तूप। जहाँ बुद्धदेवने अपना धर्मचक्र अर्थात् धर्मोपदेश आरम्भ किया था उसी स्थान पर यह स्तूप बनाया गया था।

धम्मन (हिं॰ पु॰) एक प्रकारकी घास।

धम्माल (हिं॰ स्त्री॰) धमार देखो।

धम्मिल (सं॰ पु॰) धमतीति धम-विच् मिलतीति मिल क। पृषोदरादित्वात्‌ साधुः। संयतकेश, बंधी चोटी, जूड़ा।

धय (सं॰ त्रि॰) धेट श। पानकर्त्ता, पीनेवाला।

धर (सं॰ पु॰) धरति पृथिवीमिति धृ-अच्। १ पर्वत, पहाड़। २ कार्पासतूलक, कपासका डोंड़। ३ कूर्मराज, कच्छप जो पृथ्वीको ऊपर लिये हैं। ४ वसुदेव, एक वसुका नाम। ५ विष्णु। ६ श्रीकृष्ण। ७ व्यभिचारी पुरुष, विट। (त्रि॰) ८ धारक, धारण करनेवाला, ऊपर लेनेवाला। ९ ग्रहण करनेवाला, थामनेवाला।

धर (हिं॰ स्त्री॰) धरने या पकड़नेकी क्रिया।

धरकना (हिं॰ क्रि॰) धड़कना देखो।

धरण (सं॰ क्ली॰) धरतीति धृ-ल्युट्। परिमाणभेद, एक तौल जो कहीं २४ रत्ती, कहीं १० पल, कहीं १६ माशे, कहीं ⅖ शतमान, कहीं १९ निष्पाव, कहीं ½ कर्ष, कहीं ⅒ पलकी मानी गई है। धृ-ल्युट्। ३ धारण, रखने थामने, ग्रहण करनेकी क्रिया। (पु॰) ४ अद्रिपति। ५ लोक, संसार-जगत्। ६ स्तन। ७ धान्य, धान। ८ दिवाकर, सूर्य। ९ सेतु, पुल। १० अर्कवृक्ष, आकवन, मदार। ११ वैद्यक परिमाणविशेष।

धरणप्रिया (सं॰ स्त्री॰) जिनोंका एक शासनदेवता।

धरणि (सं॰ स्त्री॰) धरति जीवादीनिति धृ-इनि (अर्त्ति सृ-धृ-धमीति। उण् २।१०३) १ पृथ्वी। २ शाल्मलीवृक्ष। ३ स्कन्दभेद। ४ एक ओषध। ५ धमनी नाड़ी।

धरणिज (सं॰ पु॰) धरणितो जायते जन-ड। १ मङ्गल। २ नरकासुर। (त्रि॰) ३ धरणिजात मात्र, जो पृथ्वीसे उत्पन्न हो। स्त्रियां टाप्। ४ सीता।

धरणिधर (सं॰ पु॰) धरति इति धृ-अच्, धरण्याः धरः। १ पर्वत, पहाड़। २ कच्छप। ३ विष्णु। ४ शिव, महादेव। ५ शेषनाग।

धरणिरुह (सं॰ पु॰) धरण्यां रोहति रुह-क। वृक्ष, पेड़।

धरणी (सं॰ स्त्री॰) धरणि वाहुं ङीष्। १ पृथ्वी। २ शाल्मली वृक्ष। ३ नाड़ी। ४ कन्दविशेष। इसका पर्याय—धारणीया धीरपत्नी, सुकन्दक, कन्दालु, वनकन्द, कन्दाढ्य और दण्डकन्दक है। इसका गुण—मधुर, कफ, पित्त, आमय, रक्तदोष, कुष्ठ और कण्डूतिनाशक है। ५ खदिरवृक्ष, खैरका पेड़। ६ पुनर्नवा, एक छोटा पौधा। ७ मेदा।

धरणीकन्द (सं॰ पु॰) धरणी एव कन्दः। धरणी नामक मूलविशेष, वनकन्द।

धरणीकीलक (सं॰ पु॰) धरण्याः पृथिव्याः कीलकं इव। पर्वत, पहाड़। पुराणमें लिखा है, कि पहाड़ पृथ्वीको कीलकी नाईं दबा कर संभाले हुए हैं, इसीसे पहाड़का ऐसा नाम पड़ा है।

धरणीधर (सं॰ पु॰) धरणिधर देखो।

धरणीधृत् (सं॰ पु॰) धरणीं धरति धृ-क्विप् तुक्। १ पर्वत। २ अनन्तदेव।

धरणीन्द्रवर्मा—कम्बोजदेशमें प्रकाशित खोदितलिपिसे मालूम पड़ता है, कि व्याधपुरके राजाओंमेंसे १५वें राजा

जयवर्मा ८८० शकमें राजा हुए। जयवर्माके बाद धरणीन्द्र-वर्मा राजा हुए थे। ध्यानपुर देखो।

धरणीपुर (सं० पु०) धरण्याकारं पुरं। धराकार चतुरस्र-मण्डल।

धरणीपूर (सं० पु०) धरणीं पूरयति प्लावयति पूर-अण्। समुद्र।

धरणीप्लव (सं० पु०) प्लु भावे अप्, धरण्याः पृथिव्याः प्लवः प्लावो यस्मात्। समुद्र।

धरणीभृत् (सं० पु०) धरणीं बिभर्त्ति भृ-क्विप् तुक् च। १ पर्वत, पहाड़। २ विष्णु। ३ अनन्त।

धरणीबन्ध (सं० पु०) अधिष्ठबन्धन।

धरणीवराह—बड़वान वा वर्द्धमानपुर (काठियावाड़ राज्यके पूर्वांशमें अवस्थित) राज्यके प्राचीन राजवंशका एक राजा। ८३८ शकाब्द (९१७-१८ ई०)में इनका प्रदत्त एक ताम्रशासन पाया गया है। उक्त शासनमें ये अपने-को महीपाल नामक किसी राजाके अधीन और "साम-न्ताधिपति"का परिचय दे गये हैं। ये चापवंशके थे।

चाप देखो।

धरणीश्वर (सं० पु०) धरण्याः ईश्वरः। १ शिव। २ विष्णु। ३ भूमिपति, राजा।

धरणीसुत (सं० पु०) धरण्याः सुतः ६-तत्। १ मङ्गल। २ नरकासुर।

धरणीसुता (सं० स्त्री०) धरण्याः सुता। सीता।

धरता (हिं० पु०) १ ऋणी, कर्जदार। २ किसी रकम-को देते हुए उसमेंसे कुछ बंधा हक या धर्मार्थ द्रव्य निकाल लेना, कटौती। ३ धारण करनेवाला, कोई कार्य आदि अपने ऊपर लेनेवाला।

धरती (हिं० स्त्री०) १ पृथ्वी, जमीन। २ संसार, दुनिया।

धरन (हिं० स्त्री०) १ धरनेकी क्रिया, भाव। २ गर्भा-शयकी नस जो उसे दृढ़तासे जकड़े रहती है और इधर उधर टलनेसे बचाती है। ३ गर्भाशय। ४ टेक, हठ, अड़। ५ लकड़ी लोहे आदिका लम्बा लट्ठा। यह घरकी छत आदि पर बोझ थामनेके लिये लगा रहता है, कड़ी, धरनी।

धरना (हिं० क्रि०) इधर उधर हिलनेसे बचाना, पकड़ना। २ स्थापित करना, ठहराना। ३ स्थानमें रखना, पास रखना। ४ धारण करना, पहनना। ५ आरोपित करना, अङ्गीकार करना। ६ ग्रहण करना। ७ आश्रय ग्रहण करना। ८ फैलनेवाली वस्तुका किसी दूसरी वस्तुमें लगाना। ९ किसी स्त्रीको रखेलीकी तरह रखना। १० बन्धक रखना, रेहन रखना।

धरना (हिं० पु०) कोई बात या प्रार्थना पूरी करनेके लिये किसीके दरवाजे पर तब तक निराहार अड़ कर बैठे रहना जब तक वह बात या प्रार्थना पूरी न कर दी जाय।

धरनि (हिं० स्त्री०) धरणी देखो।

धरनी (हिं० स्त्री०) धरणी देखो।

धरनैत (हिं० पु०) वह जो किसी बातके लिये अड़ कर बैठता हो, धरना देनेवाला।

धरपट्ट—वलभीराजवंशके स्थापनकर्त्ता सेनापति भटार्कके कनिष्ठ पुत्र। ये ही अपने बड़े तीसरे भाई महाराज १म ध्रुवसेनके बाद (गुप्त सं० २०७के पीछे) राजा हुए। इन्हींके पुत्र महाराज १म गुहसेनसे इस राज्यवंशकी उन्नति हुई। युएनचवंगने तु-लु-हो-पो-ट, वा त-लो-पो-टो नामसे जिस वलभीराजका उल्लेख किया है, पाश्चात्य पण्डितोंके मतसे वह ध्रुवसेनका नाम है जो कुछ हो, महाराज धरपट्ट सूर्योपासक थे।

वलभीवंश देखो।

धरफार—भविष्य-ब्रह्मखण्डोक्त गङ्गा और गण्डकीके बीच विशाल देशका वर्णन है, उसीमें इस ग्रामका उल्लेख है। कलिकालका पादार्द्ध बीत जाने पर यहां तिलकसिंह नामक एक राजा हुए इनके विपुल जमींदारी और सेना थी। १५ वर्षके बाद यवनयुद्धमें ये मारे गये।

(भविष्य-ब्रह्मखण्ड ४१ अ० ७२ ५७ श्लो)

धरमपुर—१ बङ्गालके नोआखाली जिलेके अन्तर्गत सुधा-राम पुलिस विभागके अधीन एक शहर। यह अक्षा० २२° ५०´ ४०´´ उ० और देशा० ९१° १०´ ३०´´ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग ४ हजार है।

२ बिहार और उड़ीसाके पूर्णिया जिलेका एक पर-गना। भूपरिमाण प्रायः २०७० ४२८ बीघा है। इसमें ४४५ ग्राम लगते हैं। इस परगनेमें सैकड़े ४० बीघा जमीन परती रहती है। यहांकी प्रधान उपज टलहन अनाज, हैमन्तिक धान, भदई धान, सरसों, गेहूँ, तमाखू और

मील है। यह दरभङ्गा महाराजके अधिकारभुक्त है। यह तीन भागोंमें विभक्त है, प्रत्येक भागको जिला कहते हैं। उत्तर-पश्चिममें बीरनगर जिला, दक्षिणमें भवानी-पुर और पूर्वमें गच्छोयारा जिला है। कोसी नदीमें जब बाढ़ आ जाती है, तब इस परगनेकी महती क्षति होती है। वर्तमान शताब्दीमें नदीका पश्चिमी किनारा टूट जानेसे भवानीपुर जिलेकी अच्छी अच्छी जमीन नीचे पड़ गई है। आजसे कुछ पहले बीरनगरको ओर नदीके टूट जानेसे कितने वर्द्धिष्णु ग्राम नष्ट हो गये हैं। उस समय बीरनगरके अन्तर्गत त्रिपनिया नामक स्थानमें एक नीलकी कोठी थी, अभी उसका चिह्नमात्र भी नहीं है। धुआं निकलेकी चिमनी तक भी बालूसे ढक गई है। जिस तरह गङ्गा जमीनकी उर्वरता बढ़ानेके लिये अपने स्रोतमें पंक लाती है, उसी तरह कोसी अपने साथ धोला गिरिका बालू ला कर जमीनको ऊसर बनाती है। दर-भङ्गाके राजा इस परगनेको देखनेके लिये कभी नहीं आते हैं। क्योंकि उन लोगोंका विश्वास है कि कोसी नदी पार होनेसे अशुभ होता है। इसी कारण इस परगनेमें मालगुजारीकी दर एक सी नहीं है।

२ बम्बई प्रदेशमें गुजरातके अन्तर्गत सूरत एजेन्सी-का एक देशीय राज्य। इसके उत्तरमें सूरत जिलेका चिकली उपविभाग और बाँसदाराज्य, पूर्वमें सर्गाना और भाङ्ग राज्य, दक्षिणमें नासिक जिला तथा पश्चिममें सूरत जिलेका बलसार और पार्दी तालुक है। यह राज्य उत्तरदक्षिणमें २० कोस और पूर्वपश्चिममें १० कोस तक विस्तृत है। इसमें धरमपुर नामका एक शहर और २७२ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या लगभग १००४३० है, जिनमेंसे ८८२८० हिन्दू, १८५८ मुसलमान और २२८ पारसी हैं। राज्यका अल्पांश खेतीके लिये उपयुक्त है और अवशिष्ट पहाड़ और जङ्गलसे आच्छन्न है। दमनगङ्गा, कोलक, पर, औरङ्ग और अम्बिका नदी इस राज्यके बीच होती हुई काम्बे समुद्रमें गिरी हैं। जलवायु अस्वास्थ्य कर नहीं है। यहां महुएका फूल, सर्वकाष्ठ, लघुकाष्ठ, बाँस, धान, उरद, चना, ईख, चटाई, टोकरी, पंखा, गुड़, खैर और मट्टीके अच्छे अच्छे बरतन पाये जाते हैं। नासिक स्टेशनसे रास्ते पर इस राज्यका प्रधान शहर 'धरमपुर' अवस्थित है। इस राज्यके वर्त्तमान अधिपति शिशोदिया राजपूत हैं। वर्त्तमान राजाका नाम महा-राणा श्रीनारायणदेव जी रामदेवजी है। इन्हें ८ सलामी तोपें मिलती हैं। ये अपने राज्यमें प्रजाको प्राणदण्ड भी दे सकते हैं। किन्तु इसमें पोलिटिकल एजेण्टको अनुमति लेनी पड़ती है। इस राज्यमें खून आसामीको यावज्जीवन कारादण्ड मिलता है। राज्यको आमदनी ६ लाख रुपयेकी है। राजाके २०७ सेना और ४ कमान हैं। इस राज्यको पहले रामनगरमें राजा राज्य करते थे। उस समय यह पश्चिममें सागर उपकूल तक विस्तृत था। १५७६ ई०में रामनगरके राजाने टोडरमलके साथ बरोचनगरमें मुलाकात कर अकबरके अधीन सैनिक विभागका एक माननीय पद और उपाधि ग्रहण की थी। १८वीं शताब्दीमें महाराष्ट्रोंने इनके राज्यके ७२ ग्राम अधिकार कर लिये थे। पेशवा यहांके राजासे जो कर पाते थे, वह बेसिन नगरके १८०२ ई०में सन्धिपत्रके अनुसार अंगरेजोंको मिला करता है। यहां २२ स्कूल १ अस्पताल और एक कोढ़ियोंका अस्पताल है।

४ उक्त राज्यका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २० ३४ उ० और देशा० ७३ १४ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ६३४४ है जिसमेंसे ५३१६ हिन्दू और ८७७ मुसलमान हैं।

धरमपुरी—मध्य भारतको भील एजेन्सीके मध्य धार राज्य-का एक परगना। लोकसंख्या प्रायः १८ हजार है। इसका प्रधान शहर धरमपुरी नर्मदा नदीके उत्तरी किनारे अक्षा० २२ १० उ० और देशा० ७५ २३ पू०। धार नगरसे ३६ मील दक्षिणपश्चिममें अवस्थित है। मुसल मानोंके समय इस शहरमें १०००० अट्टालिकायें थीं, जिनका भग्नावशेष आज भी देखनेमें आता है। इसके मध्य हो कर खुरजा नामको एक नदी प्रवाहित है, जिसका प्राचीन नाम गर्दभा नदी है।

धरमपुरी—मन्द्राजके सलेम जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० ११ ५४ से १२ २७ उ० और देशा० ७७ ४१ से ७८ १८ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ८४१ वर्ग मील और लोकसंख्या प्रायः २०६०३० है। कावेरी नदी पश्चिममें सनत्कुमार नदीसे मिल कर तालुकके उत्तर-

पश्चिम हो कर बह चली है। इसमें एक शहर और ५८० ग्राम लगते हैं। तालुककी आय प्रायः २५४००० रु० है।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १२°८' उ० और देशा० ७८°१०' पू०में अवस्थित है। यहांसे १८ मील लम्बी एक सड़क मन्द्राज रेलवेके मोरापुर स्टेशन तक चली गई है। लोकसंख्या प्रायः ८१००२ है। इस शहरमें कुछ समय तक मेजर मुनरोने वास किया था। वे यहां फलके उद्यान और एक तालाब बना गये हैं। शहरमें एक प्राचीन भग्नदुर्ग है जो अभी कंटीले नासपातीसे ढक गया है।

धरला—बङ्गालके अन्तर्गत कोचविहारकी एक नदी। यह भूटानके पर्वतसे निकल कर जलपाईगुड़ी जिलेके द्वारप्रदेशमें मदाड़ी परगनेके मध्य होती हुई कोचविहार-में प्रवेश करती है। जलपाईगुड़ीमें भेलाकुवा और हाँसमारा नामक इसकी दो उपनदियां हैं। कोचविहारमें यह सिङ्गिमारी वा जलधका नदीके साथ दुर्गापुरके निकट मिली है। पीछे यह दक्षिणकी ओर रङ्गपुरमें प्रवेश कर बगोआ नामक स्थानमें ब्रह्मपुत्रनदीमें जा गिरी है। वर्षाकालमें नावें इसमें जाती आती हैं।

धरवाना (हिं० क्रि०) १ धरनेका काम कराना, पकड़ाना, थमाना। २ रखवाना।

धरसना (हिं० क्रि०) दब जाना, डर जाना, सहम जाना।

धरसेन—१ वलभीवंशके स्थापनकर्त्ता सेनापति भटार्कके प्रथम पुत्र। ये भी सेनापति धरसेन नामसे प्रसिद्ध हैं। ये शिवोपासक, महाविक्रमशाली योद्धा और दरिद्रोंके अन्नदाता थे। ये ही इस वंशके १म धरसेन हुए।

२ वलभीराज महाराज धरपट्टके पौत्र और महाराज गुहसेनके पुत्र। ये महाराज द्वितीय धरसेन नामसे प्रसिद्ध थे। सामन्त, महासामन्त, महाराज और महाराजाधिराज प्रभृति इनकी उपाधियां थीं। ये २५० और २७० गुप्तसम्वत्में अर्थात् ५६८ तथा ५८८ ई०में वर्त्तमान थे। ये भी शिवोपासक थे। स्कन्दभट्ट इनके सान्धिविग्रहिक रहे।

३ महाराज द्वितीय धरसेनके द्वितीय पुत्र १म खर-ग्रहके बड़े लड़केका नाम भी धरसेन था। ये वलभी-वंशके तृतीय धरसेन हैं। ये भारी विद्वान् थे। सब प्रकारके शास्त्रमर्म और कलाविद्यामें इनका अच्छा प्रवेश था। ये सर्वदा पण्डितोंसे घिरे रहते थे। इसके अलावा ये अच्छे घुड़सवार भी थे।

४ वलभीवंशके ४र्थ धरसेन। ये तृतीय धरसेनके छोटे भाई बालादित्य ध्रुवसेनके २य पुत्र थे। इनको परमभट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर और चक्रवर्त्ती आदि कई एक उपाधियां थीं। ये गुप्त-स० ३२६-३०-में वर्त्तमान थे। जिस समय अंशुवर्माने नेपालमें और आदित्यसेनने मगधमें चक्रवर्त्तित्व प्राप्त किया था, प्रायः उसी समय महाराज ४र्थ ध्रुवसेन भी पश्चिम भारतवर्षमें चक्रवर्त्ती कहलाते थे। वलभीवंश और गुप्त-सम्वत् देखो।

धरहर (हिं० स्त्री०) १ धर पकड़, गिरफ्तारी। २ रक्षा, बचाव। ३ धैर्य, धीरज। ४ दो या अधिक लड़नेवालोंको धर पकड़ कर लड़ाई बन्द करनेका कार्य, बीच बिचाव।

धरहरा (हिं० पु०) धौरहर, मीनार।

धरहरिया (हिं० पु०) बीच बिचाव करादेनेवाला, रक्षक, बचाव करनेवाला।

धरहार—भविष्य-ब्रह्मखण्डोक्त स्वर्गभूमिकी वर्णनामें इस नगरका उल्लेख है। लिखा है, कि गोमती नदीके दक्षिणकी ओर यह नगर अवस्थित है। धीरसिंह नामक यहां एक राजा रहते थे जो शेषनागकी कृपासे राजा बनाये गये थे। उनके पिताका नाम था चन्द्रसेन। वे बाल्यकालमें गाय चरानेके लिये प्रतिदिन गोमतीके किनारे जाया करते थे। वैशाख शुक्लपक्षमें किसी एक दिन बालक धीरसिंह थक जानेके कारण अकवनके वृक्षकी छायामें सो रहे। इसी बीच शेषनाग गोमतीके जलमें क्रीड़ा कर रहे थे। उन्होंने उस सुन्दर बालकको धूपमें सोया हुआ देख उस पर अपना फन फैलाया और छाया दी। समय पा कर वही बालक राजा हुए। इनके वंशमें केवल पांच राजा हो गये हैं। इनके पुत्र रघुसिंहने ६० वर्ष तक राज्य किया था। उन्हींके समयमें राज्यकी वृद्धि हुई थी। पीछे उनके लड़के रायसिंहने निष्कण्टकसे राज्य किया। इस वंशके अन्तिम राजा उदयसिंह थे। कलिसन्ध्यामें मुसलमानोंके हाथसे इनका नाश हुआ था।

(भ-ब्र-ख ५४ अ० ११९-१२१ श्लोक)

धरहारकग्राम—भविष्य-ब्रह्मखण्डोक्त कीकटदेशान्तर्गत पञ्चदेशके मध्य यह ग्राम अवस्थित है। गङ्गाके दक्षिणी किनारे कलिके ४ हजार वर्ष पहले राजा देवपालने यह ग्राम स्थापित हुआ। (भ०ब्र०ख० ४२।४७ अ०)

धरा (सं० स्त्री०) धरति जीवसंघानिति। धृ-अच्, वा ध्रियते शेषेन इति धृ-अप्-टाप्। १ पृथिवी, जमीन, धरती।

सब मनुष्योंको धारण किये हुये हैं इसलिए धरा और बहुत विस्तृत होनेके कारण पृथ्वी नाम हुआ है। २ गर्भाशय। ३ मेद। ४ नाड़ी। ५ महादान विशेष। धरादानका विषय मत्स्यपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

महादेव धरादानके विषयमें कहते हैं, कि यह दान सब दानोंसे श्रेष्ठ तथा पापनाशक है। जो यथाविधि इस दानका अनुष्ठान करते हैं उनका समस्त अमङ्गल नाश होता है। इस दानके करनेमें पहले जम्बुद्वीपाकार सोनेकी धरा बनानी पड़ती है। इसके मध्य-भागमें मेरु पर्वत भी देना पड़ता है। इसके आठ ओर आठ लोकपाल, नौ वर्ष, सौ नदी, सौ नद एवं सात समुद्र चिह्नित करना होता है। इसे रत्नादि द्वारा जड़ते हैं और इसमें वसु, रुद्र, चन्द्र और सूर्यकी कल्पना करनी पड़ती है। यह धरा प्रस्तुत करनेमें सहस्र पल सुवर्ण लगता है, अशक्त होने पर कमसे कम पांच सौ, तीन सौ, दो सौ वा एक सौ पल। जो नितान्त अशक्त हों, वे केवल पांच पलसे कुछ अधिक सुवर्ण द्वारा धरा बना सकते हैं।

ऋत्विकोंको मण्डपमें भूषण और आच्छादन प्रभृति एवं वेदी और उसके ऊपर कृष्णाजिन रख कर तिल फेंकना चाहिये। अठारह प्रकारके धान, लवणादिरस और आठ पूर्ण कुम्भ चारों ओर रखते हैं। रेशमीको चांदनी और चारों ओर पताका लगानी चाहिये। इस प्रकार अच्छी तरह सजा कर विधिपूर्वक अधिवासादि करते हैं। पुण्यके दिनमें विशुद्ध भावसे शुक्लवस्त्र और शुक्लमालादि पहन कर वेदी प्रदक्षिण करते और निम्नलिखित मन्त्रसे दान देते हैं—

"नमस्ते सर्वदेवानां त्वमेव भवनं यतः।
धात्री च सर्वभूतानामतः पाहि वसुन्धरे॥
वसून् धारयसे यस्मात् वसुधातीवनिर्मला।
वसुन्धरा ततो जाता तस्मात् पाहि भवार्णवात्॥
चतुर्मुखोऽपि नागच्छेत् तस्माद् यत्र तथाचले।
अनन्तायै नमस्तस्मात् पाहि संसारकर्दमात्॥
त्वमेव लक्ष्मीर्गोविन्दे शिवे गौरीति संस्थिता।
गायत्री ब्रह्मणः पार्श्वे ज्योत्स्ना चन्द्रे रवौ प्रभा॥
बुद्धिर्बृहस्पतौ जाता मेधा मुनिषु संस्थिता।
विश्वं व्याप्य स्थिता यस्मात् ततो विश्वम्भरा स्थिता॥
धृतिः क्षमा स्थिरा क्षौणी पृथ्वी वसुमती रसा।
एताभिर्मूर्त्तिभिः पाहि देवि संसारकर्दमात्॥"

यह मन्त्र पढ़ कर धरादान करना चाहिये। सुवर्णनिर्मित धराका आधा भाग वा चौथाई भाग ब्राह्मणको और शेष भाग ऋत्विकोंको देनेका विधान है।

इस प्रकार जो धरा दान करते हैं, वे विष्णुपदको पाते हैं और अर्कवर्णके विमान पर चढ़ कर विष्णुपुरमें जाते और वहां तीन कल्प तक वास करते हैं। ऐसे मनुष्योंके इक्कीस पुरुष उद्धार हो जाते हैं।

हेमाद्रिके दानखण्डमें इस दान-विधिका विषय विस्तृत रूपसे वर्णित है। ६ तौलकी बराबरी, बटखरा। ७ चार सेरकी एक तौल। ८ एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें एक तगण और गुरु होता है।

धराऊ (हिं० वि०) बहुमूल्य, मामूलीसे अच्छा।

धराकदम्ब (सं० पु०) धराजातः कदम्बः धरायां वर्षाकाले जातः कदम्बः। धारा कदम्बवृक्ष, एकप्रकारका कदम्ब।

धराङ्कुर (सं० पु०) धराया अङ्कुर इव। वायुफल।

धराजकुष्माण्ड (सं० पु०) भूमिकुष्माण्ड।

धरातल (सं० पु०) १ पृथ्वी, धरती। २ सतह। इसमें मोटाई गहराई वा ऊंचाईका कुछ भी विचार नहीं किया जाता है। ३ लंबाई और चौड़ाईका गुणनफल, रकबा।

धरात्मज (सं० पु०) धराया आत्मजः ६-तत्। १ मङ्गलग्रह। २ नरकासुर। स्त्रियां टाप्। ३ सीता।

धराधर (सं० पु०) धरायाः धरो धारकः। १ विष्णु। २ पर्वत। ३ अनन्त। ४ शेषनाग। ५ वारेन्द्र श्रेणीके वात्स्यगोत्रज ब्राह्मणोंका आदिपुरुष। (त्रि०) ६ धराके उद्धारकर्त्ता, पृथ्वीकी रक्षा करनेवाला।

धराधर (सं० पु०) सङ्गीतमें एक तालका नाम ।

धराधार (सं० पु०) शेषनाग ।

धराधिप (सं० पु०) धरायाः अधिपः । नृप, राजा ।

धराधिपति (सं० पु०) धराधिप देखो ।

धराधीश (सं० पु०) नृप, राजा ।

धराना (हिं० क्रि०) १ पकड़ाना, थमाना । २ स्थिर कराना, रखाना । ३ स्थिर करना, निश्चय करना, ठहराना ।

धरान्तरचर (सं० त्रि०) धरान्तरं चर-ट । पृथ्वी पर विचरण करनेवाला ।

धरापति (सं० पु०) धरायाः पतिः । पृथिवीश्वर, राजा ।

धरापुत्र (सं० पु०) मङ्गलग्रह ।

धराभृत (सं० पु०) धरां विभर्त्ति भृ क्विप् तुक् च । पृथिवीश्वर, पृथ्वीके मालिक ।

धरामर (सं० पु०) धरायाः पृथिव्या अमरो देवः । ब्राह्मण ।

धरासूनु (सं० पु०) धरायाः सूनुः । १ मङ्गल । २ नरकासुर ।

धरास्त्र (सं० पु०) एक प्रकारका अस्त्र । विश्वामित्र और वशिष्ठकी लड़ाईमें विश्वामित्रने वशिष्ठ पर यह अस्त्र चलाया था ।

धराहर हिं० पु०) मकानका वह भाग जो खंभेकी तरह ऊपर बहुत दूर तक गया हो और जिस पर चढ़नेके लिये भीतर ही भीतर सीढ़ियां लगी हों, मिनार ।

धरिंगा (हिं० पु०) एक प्रकारका चावल ।

धरित्री (सं० स्त्री०) धरति जीवजातमिति, ध्रियते शेषेण वा धृ-इत्र (अशित्रादिभ्य इत्रोत्रौ । उण् । ४।१७२) ततो गौरादित्वात् ङीष् । पृथिवी, भूमि ।

धरिमन् (सं० पु०) ध्रियते दृश्यतेन्द्रियेणेति धृ-इमनिच् (हृभृधृसृस्तृशृभ्य इमनिच् । उण् ४।१४७) १ रूप । २ तुला परिमाण ।

धरी (हिं० स्त्री०) १ चार सेरकी एक तौल । २ रखनी, रखेली स्त्री । ३ एक प्रकारका गहना जिसे स्त्रियां कानोंमें पहनती हैं ।

धरीमन् (सं० पु०) धरिमन् छान्दसो दीर्घः । १ सारभूत वैदिरूप स्थान । (त्रि०) २ धारक ।

धरुण (सं० पु०) धरतीति धृ-बाहुलकात् उनन् । १ धारक, वह जो धारण करता हो । २ उदक, जल, पानी । ३ अग्नि, आग । ४ धरा, पृथ्वी । ५ एकविंशति, इक्कीस की संख्या । ६ आदित्य, सूर्य । ७ ब्रह्मा । ८ स्वर्ग । ९ नीर, जल, पानी । १० सम्मत, राय ।

धरेचा (हिं० पु०) धरेला देखो ।

धरेल (हिं० स्त्री०) रखेली स्त्री ।

धरेला (हिं० पु०) वह पति जिसे कोई स्त्री बिना ब्याहके ही ग्रहण कर ले ।

धरोत्तम (सं० पु०) धराया उत्तमः । शिव, महादेव ।

धरोहर (हिं० स्त्री०) वह द्रव्य जो किसीके पास इस विश्वास पर रखा हो कि उसका मालिक जब मांगेगा तब वह दे दिया जायगा । थाती, अमानत ।

धरौली (हिं० स्त्री०) भारतवर्षमें मिलनेवाला एक प्रकारका पेड़ । यह विशेष कर हिमालयकी तराईमें विपाशा नदीके किनारेसे ले कर सिकिम तक पाया जाता है । यह पेड़ केवल भारतवर्षमें ही नहीं मिलता, बरन् अफ्रिका और अष्ट्रेलियाके गरम भागोंमें भी पाया जाता है । इसकी टहनियां लम्बी और पत्तियां सींकके दोनों ओर आमने सामने लगती हैं । इसमें सफेद लाल या पीले फूल लगते हैं । इस पेड़का कोई भाग क्षत हो जानेसे उसमेंसे पीला दूध निकलता है जिसे पानीमें घोलनेसे खासा पीला रंग तैयार हो सकता है । इसके बीजोंसे एक प्रकारका तेल निकलता है जो दवाके काम में आता है । छाल और जड़ सांप काटने और बिच्छूके डंक मारनेकी दवा समझी जाती है ।

धरौवा (हिं० पु०) बिना विधिपूर्वक विवाह किये स्त्रीको रखनेकी चाल ।

धर्णसि (सं० पु०) धृ-बाहुलकात् नसि । १ बल, ताकत । २ धर्त्तव्य वस्त्रादि, धारण करने योग्य वस्त्र ।

धर्णि (सं० त्रि०) धृ-नि । धारक, धारण करनेवाला ।

धर्त्तव्य (सं० त्रि०) धृ-तव्य । १ धारणीय, पकड़ने योग्य । २ स्थातव्य, रहने योग्य । ३ पतनीय, गिरने योग्य ।

धर्त्ता (सं० पु०) १ धारण करनेवाला । २ कोई काम ऊपर लेनेवाला ।

धस्तूर (सं॰ पु॰) धुस्तुर पृषोदरादित्वात् साधु। धुस्तूर, धतूरा।

धर्त्र (सं॰ क्ली॰) धरति ध्रियते वा धृ-त्र (गृधृवीपचीति। उण् ४।१६६) १ गृह, घर। २ धर्म। ३ क्रतु, यज्ञ। ४ गुण। (त्रि॰) ५ धारक, धारण करनेवाला।

धर्म (सं॰ क्ली॰) धरति लोकान् ध्रियते पुण्यात्मभिरिति वा धृ-मन्। (अर्तिस्तुहस्रिति। उण् १।१३८) शुभादृष्ट, पुण्य, श्रेय, सुकृत, सत्कर्म, कल्याणकारी कर्म, सदाचार, वह आचरण वा वृत्ति जिससे जाति वा समाजको रक्षा और सुख-शान्तिको वृद्धि हो, तथा परलोकमें अच्छी गति मिले।

जैमिनि-कृत मीमांसादर्शनके प्रारम्भमें ही लिखा है—"अथातो धर्मजिज्ञासा" अर्थात् धर्मकी मीमांसा दर्शनका मूलतत्त्व है। धर्म क्या है? उसका लक्षण क्या है? किस कार्यके करनेसे धर्म होता है, कौनसे कार्यके करने पर धर्म नहीं होता? इत्यादि प्रश्नोंके समाधानके लिए पहले धर्मका लक्षण करना उचित एवं आवश्यक है। धर्मजिज्ञासाका अर्थ धर्म जाननेको इच्छा है। धर्म जाननेकी आवश्यकता क्या है और धर्मके क्या क्या साधन है? कौनसा धर्म प्रसिद्ध है, कौनसा अप्रसिद्ध? धर्मका लक्षण कोई किसी तरहसे करते हैं और कोई किसी तरहसे। इन सब बातोंकी मीमांसा कर जैमिनिने "चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः" ऐसा सूत्र निर्देश किया है। क्रियाके प्रवर्तक वचनका नाम चोदना (अर्थात् आचार्य द्वारा प्रेरित हो कर योगादि करना) है, इसीको धर्म कहते हैं। आचार्यके उपदेशानुसार यज्ञादि करना ही धर्म है। जो कार्य मनुष्यके मङ्गलके लिए होते हैं, उसीका नाम धर्म है। जिससे भूत, भविष्यत्, वर्तमान तथा सूक्ष्मव्यवहित और विप्रकृष्ट अर्थका परिज्ञान होता है, उसको धर्म कहते हैं। जो भी कुछ श्रेयस्कार अर्थात् मङ्गलजनक है, वही धर्म है।

"य एव श्रेयस्कार स एव धर्म शब्देनोच्यते।"

(मीमांसा १।२ सूत्रभाष्य॰)

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उसका कुछ विशेष वर्णन करते हैं। बात यह है, कि जिस कार्यके अनुष्ठानसे पुरुषका मङ्गल होता है, उसका नाम धर्म है। ऐसा कार्य करना चाहिए कि जिसका फल मङ्गलके सिवा अमङ्गल न हो। धर्मानुष्ठान कारण है और मङ्गल उसका कार्य। न्यायदर्शनमें सुख और दुःखका लक्षण इस प्रकार लिखा है—धर्मजन्य सुख होता है और अधर्मजन्य दुःख।

धर्म करनेसे उसका फल अवश्य ही मिलेगा और अधर्म करनेसे दुःख भी अनिवार्य है। इस बातका कोई भी खण्डन नहीं कर सकता। इस मतसे भी यही प्रकट होता है, कि जिससे सुख होता है, वह धर्म है, और जिससे अधर्म होता है, वह अधर्म। भला हो चाहे बुरा, हर एक कार्यके अनुष्ठानमें हमारे एक संस्कार उत्पन्न होता है, वही संस्कार कालान्तरमें शुभाशुभ फल देता है। इस संस्कारको अदृष्ट वासना आदि नाना संज्ञाएं हैं। कुछ भी हो, नामके पार्थक्यसे कुछ बनता बिगड़ता नहीं। जिस प्रकार बीज बोनेसे वृक्ष और फलादिकी प्राप्ति होती है, उसी प्रकार वासना वा संस्कार कालान्तरमें प्रबुद्ध हो कर अपना फल प्रदान करते हैं, जिसका कि कोई निवारण नहीं कर सकता। यदि ऐसा ही है, तो यह निश्चित है कि जो जैसा काम करता है, वह वैसा ही फल पाता है। इस जगत्में कोई भी निष्क्रिय नहीं बैठ सकता; बुरा भला जो बन पड़े, करना ही पड़ता है और उसका फल भी अवश्यम्भावी है। धर्म ही यदि सुखका कारण है, तो किस कर्मके करनेसे धर्म होता है, यह भी विवेचनीय है। जगत्में कुछ कार्य तो ऐसे हैं, जिनका फल तत्काल मिलता है और कुछ कार्य ऐसे हैं कि जिनका फल प्रत्यक्ष देखनेमें नहीं आता। यदि कोई ऐसी शङ्का करे कि 'जिस कार्यका फल प्रत्यक्षगम्य नहीं है, वह कार्य धर्मका है या अधर्मका, इस बातका निर्णय कैसे हो? इसके उत्तरमें सिर्फ इतना ही कहना है, कि ऋषियोंने जो कहा है एवं जो वेद-बोधित है, वही एक मात्र सत्य और धर्म है। कौन व्यक्ति धर्मको जान सकता है, इसके उत्तरमें वेदान्तभाष्यमें लिखा है—

"आर्षं धर्मोपदेशञ्च वेदशास्त्राविरोधिना।
यस्तर्केनानुसन्धत्ते सधर्मं वेद नेतरः॥"

(वेदान्तद॰ शांकरभा॰)

ऋषियोंने धर्मविषयक जो उपदेश दिया है, उसका

वेदव्याख्याके अविरोधी तर्क द्वारा जो अनुसन्धान करते हैं, वे ही धर्मको जानते हैं। अन्य कोई नहीं जान सकता। इससे ऐसा सिद्धान्त हुआ, कि ऋषियोंने जिसको धर्म कहा है एवं वेदमें जो कहा गया है, वही धर्म है। यागादि क्रिया ही धर्म है, जो यागादिका अनुष्ठान करते हैं, वे ही धार्मिक हैं। कारण यागादि क्रियाका अनुष्ठान करनेसे शुभादृष्ट होता है और उस शुभादृष्टका फल भी शुभ होता है।

"विहितक्रियासाध्य: धर्मः पुंसो गुणो मतः।
प्रतिसिद्धक्रियासाध्यः स गुणोऽधर्म उच्यते॥
धर्मश्रेयः समुद्दिष्टं श्रेयोऽभ्युदयसाधनं॥"

(मीमांसाद० ११२ सूत्रभाष्य)

विहित क्रियाके द्वारा साध्य जो पुरुषका गुण है, उसका नाम धर्म है। शास्त्रोंमें जो क्रियाओंके विधान बतलाये गये हैं, उनके अनुसार कार्यानुष्ठान करना धर्मानुष्ठान है। शास्त्रोंमें जिन कार्योंके लिए निषेध किया गया है, उन कार्योंके करनेमें अधर्म होता है। धर्म शब्दका श्रेय अर्थात् मङ्गल अर्थ होता है, जिससे अभ्युदय साधित होता है, उसका नाम धर्म है। वेदविहित कार्योंके अनुष्ठान करनेसे धर्मानुष्ठान होता है। किसी किसीके मतसे यागादि हिंसादि दोषदुष्ट हैं, इस लिए उनके अनुष्ठानसे धर्म और अधर्म दोनों ही होता है। मीमांसा, दर्शन और स्मृति आदिमें मीमांसित हुआ है, कि इसमें जो हिंसादि की जाती है वह अधर्म नहीं है; बल्कि उसका अनुष्ठान न करना अधर्म है।

(मीमांसाद०)

मनुष्योंका धर्म ही एकमात्र बन्धु है, मृत्युके बाद कोई भी अनुगमन नहीं करता, एकमात्र धर्म ही अनुगामी होता है।

"एकएव सुहृद्धर्मः निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति॥"

(हितोपदेश १।५९)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र प्रत्येक वर्णका विभिन्न धर्म है। ऐसा भी हो सकता है कि जो कार्य क्षत्रियके लिए धर्म है, वही कार्य ब्राह्मणके लिए अधर्म है। इसीलिये प्रत्येक वर्णका विभिन्न धर्म बतलाया गया है। जिस जिस वर्ण एवं आश्रमके लिये जो जो कर्मानुष्ठान बतलाये गये हैं, वे अनुष्ठान उन्हीं वर्ण वा आश्रमके लिए धर्मस्वरूप हैं। विधिविहित अनुष्ठानोंके न करनेसे आश्रम धर्मका लङ्घन होता है और उसीका नाम अधर्म है।

पहले जो यह कहा गया है कि धर्म वा अधर्म करनेसे उसका फल सुख वा दुःख प्राप्त होता है, उसीको अब विशदरूपसे आलोचना की जाती है। मनुष्य शरीर, मन और वाक्य द्वारा जो कुछ भी अनुष्ठान करता है, अथवा जो कुछ भी अनुभव करता है, उसके द्वारा उसके चित्त वा अन्तःकरणमय सूक्ष्म शरीरमें एक प्रकारके गुण वा संस्कार उत्पन्न होते हैं और वे फिर भविष्यत् परिणामके बीज वा शक्तिविशेषको उत्पन्न करते हैं। ये संस्कार (वा शक्तिविशेष) प्राणियोंके वर्त्तमान जीवनके परिवर्त्तक वा भविष्य-जीवनके बीज हैं। वस्तुतः अनुष्ठित वा अनुभूत क्रियाकलाप मात्र ही सूक्ष्मताको प्राप्त जीवके चित्तमें रह जाते हैं। कालान्तरमें वे ही संस्कार प्रबल हो कर (अर्थात् जीवको) भिन्न भिन्न रूपमें परिणत करते हैं। इन संस्कारोंको ही कर्म, अदृष्ट, धर्माधर्म, पापपुण्य इत्यादि संज्ञाएं हैं। शरीर और मानस व्यापारसे उत्पन्न कर्म साधारणतः तीन प्रकारके हैं-शुक्ल, कृष्ण और शुक्लकृष्ण अर्थात् मिश्र। जो सिर्फ तपस्या और ज्ञानलोचनामें रत रहते हैं, उनके कर्म शुक्ल होते हैं। इस श्रेणीके लोग शास्त्रको विधियोंका किसी प्रकारसे उल्लङ्घन नहीं करते, जिससे मुक्ति प्राप्त होती है उसीका अनुष्ठान करते हैं। जो लोग प्राणिहिंसा आदि दुष्कार्योंमें रत रहते हैं, अर्थात् शास्त्रके किसी भी विधि अनुष्ठानका पालन नहीं करते हैं, सिर्फ विधियोंका लङ्घन ही किया करते हैं, उनके कर्मोंको कृष्ण संज्ञा है। जो लोग केवल यज्ञादि कार्यमें रत रहते हैं, उनके कर्म शुक्लकृष्ण अर्थात् मिश्र हैं। शुक्लकर्म अर्थात् धर्मसे भविष्यमें उन्नति होती है। कृष्णकर्म अधोगतिके और मिश्रकर्म मिश्रफलके बीज हैं। शुक्ल नामक कर्मबीजसे क्रमशः देवशरीर, कृष्णनामक कर्मबीजसे पशुपक्षी आदिका शरीर और मिश्रकर्म-बीजसे मानवशरीर उत्पन्न होता है। परन्तु योगियोंकी बात अलग है; उनके धर्मकार्यमें

किसी प्रकारका संस्कार उत्पन्न नहीं होता। उनका चित्त सर्वदा विषयोंसे विरक्त रहता है और वे अभिसन्धि पूर्वक कोई भी कार्य नहीं करते। वे जीवनधारणके लिए किसी न किसी कार्यका अनुष्ठान करते रहते हैं, सही पर उससे किसी प्रकारका संस्कार उत्पन्न नहीं होता। कारण वे सर्वदा कामनाशून्य रहते हैं और कृतकर्म ईश्वरके लिए छोड़ देते हैं। क्षण भर भी वे उन्हें अपने चित्तमें स्थान नहीं देते। यही कारण है कि उनके संस्कारों वा संसार बीजोंकी उत्पत्ति नहीं होती। मनुष्य शुक्ल, कृष्ण अथवा मिश्र किसी तरहका कर्मोपार्जन क्यों न करे, कोई भी कर्म उसे एक समय और एक प्रकारसे फल नहीं दे सकता। कुछ कर्म ऐसे हैं जो जन्मान्तरमें जाति, जन्म, आयु और भोग प्रसव करते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो सिर्फ उसी जन्ममें स्व स्व जातिके अनुसार भोगोपयुक्त स्मृति वा स्मरणात्मक ज्ञान उपस्थित करते हैं। जन्मजन्मान्तरमें सञ्चित असंख्य कर्मवासनाएं ऐसी हैं जो मरण कालमें अभिव्यक्त हो कर पुनर्जन्मकी प्रारम्भक होती हैं और कुछ ऐसी भी हैं जो उसी जन्मके उपयुक्त भोगादि (वा रुचि)के कारण हैं। जो कुछ भी कहा गया है, उसका मूल धर्म ही है। जगत्में जो कुछ वैषम्य देखनेमें आता है, उसका मूल धर्म और अधर्म है। एक व्यक्ति राजा होता है, एक भीख मांगता फिरता है, दोनों मनुष्य हैं, फिर क्यों इतना वैषम्य? इसका कारण एकमात्र धर्माधर्म ही है जिसने जैसा पुण्य-पाप उपार्जन किया है, वह वैसा फल पा रहा है और वर्त्तमानमें जो जैसा आचरण कर रहा है, उसके अनुसार भविष्यमें वह वैसा ही फल पावेगा। इसलिए प्रत्येक मनुष्यको अपने अपने आश्रम-धर्मका पालन करना नितान्त आवश्यकीय है। गीता आदिमें भी लिखा है—

"श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥" (गीता ३।३५)

सम्यक् रूपसे परधर्म अनुष्ठित होनेकी अपेक्षा, कथञ्चित् अङ्गहानि होने पर भी, स्वधर्म साधन श्रेष्ठ है। परधर्म अत्यन्त भयसङ्कुल है। स्वधर्म पालन कर चुकने पर यदि देहान्त भी हो जाय तो भी वह कल्याणकारी होता है। इसका तात्पर्य यह है, कि अर्जुन मोहवश अपना अर्थात् क्षत्रियका धर्म त्याग कर परधर्म अर्थात् ब्राह्मणोंका धर्म (भिक्षादि अवलम्बन) ग्रहण करना चाहते हैं। इस पर श्रीकृष्ण उन्हें समझा रहे हैं कि "यह तुम्हारे लिए अधर्म है; क्योंकि ब्राह्मणोंके लिये जो धर्म है, क्षत्रियोंके लिये वही अधर्म है। अतएव इस स्वधर्म (युद्धादि)के अवलम्बन करने पर यदि मरण भी हो जाय तो भी वह श्रेयस्कर है।" इससे प्रमाणित होता है कि एक वर्णके लिए जो धर्म बतलाया गया है, दूसरे वर्णके लिए वही अधर्म है। ब्राह्मण हो, चाहे क्षत्रिय, वैश्य हो वा शूद्र, जिस वर्णके लिए जो धर्म बतलाया गया है, उसका उल्लङ्घन करना ही अधर्म है। प्रत्येक वर्णके लिए विभिन्न धर्मका निर्देश किया गया है। इसीलिए "स्वधर्मे निधनं श्रेयः" ऐसा वचन प्रयुक्त हुआ है। परधर्म अर्थात् अन्य आश्रमके धर्मको ग्रहण करना उचित नहीं। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और भिक्षु ये चार आश्रम हैं। इन चार आश्रमधर्मोंका पालन करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है।

"सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान् बिभर्त्ति हि॥" (मनु६।८९)

इन चारों आश्रमवासियोंमें गृहस्थ ही श्रेष्ठ है। कारण गृही ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और यति तीनों आश्रमवासियोंको भिक्षादि द्वारा पोषण करता है। जिस प्रकार समस्त नद और नदियां समुद्रमें जा कर आश्रय लेती हैं, उसी प्रकार समस्त आश्रमवासी गृहस्थाश्रमियों पर निर्भर किये हुए हैं। चारों आश्रमके लिए दशधर्म कहे गये हैं।

"चतुर्भिरपि चैवैतै र्नित्यमाश्रमिभि र्द्विजैः।
दशलक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः॥
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणं॥
दशलक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते।
अधीत्य चानुवर्त्तन्ते ते यान्ति परमां गतिं॥"
(मनु ६।९१-९३)

धृति अर्थात् सन्तोष, क्षमा, दम अर्थात् बाह्य विषयोंसे मनको रोकना, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या,

सत्य और अक्रोध ये दश धर्मके लक्षण हैं। जो द्विज इन दश प्रकारके धर्मोंका पाठ करते हैं एवं पाठ करके उनका अनुष्ठान करते हैं, वे परमगतिको प्राप्त होते हैं। इन दश धर्मोंका जानना सभी वर्ण और सभी आश्रमोंके लिए आवश्यक है; इसलिए प्रत्येकके लिए इन दश धर्मोंका अनुष्ठान करना सर्वतोभावसे विधेय है। जो लोग धर्मानुष्ठान नहीं करते, उन्हें अनेक प्रकारके क्लेश सहने पड़ते हैं।

अधर्म अनुष्ठानकारीका विषय मनुसंहितामें इस प्रकार लिखा है—

जो व्यक्ति अधार्मिक है, असत्य मार्गसे धनोपार्जन करता है और जो दूसरोंकी हिंसा करनेमें अपनेको दक्ष मानता है, वह व्यक्ति संसारमें कभी सुखका अधिकारी नहीं हो सकता। अधार्मिकोंको शीघ्र ही विपत्तियोंका सामना करना पड़ता है। ऐसा विचार कर धर्माधर्मका अवलम्बन लेना चाहिए, धनाभावसे चाहे मरना क्यों न पड़े, पर अधर्ममें कदापि प्रवृत्त न होना चाहिए। जिस प्रकार भूमिमें बोया हुआ बीज तत्काल ही फल प्रसव नहीं करता, उसी प्रकार इस संसारमें अधर्माचरण करनेसे उसका फल उसी समय नहीं मिलता। किन्तु अधर्माचरण करते करते कालान्तरमें ऐसा होता है कि अधर्मकर्त्ता समूल विनष्ट हो जाता है। अधर्मका फल यदि अधर्मकारीको न मिले, तो उसके पुत्र वा पौत्रको अवश्य ही मिलता है। अधर्माचरण अपना फल दिये बिना नहीं रह सकता। अधर्म द्वारा लोक उसी समय वृद्धिको प्राप्त हो सकते हैं, शत्रुओं पर विजय भी पा सकते हैं; किन्तु अन्तमें वे समूल नष्ट हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं। सर्वदा सभी कार्य धर्मानुसार करना उचित है। सत्यधर्म, सदाचार और शौचमें सर्वदा रत रहना चाहिए। बाहु और उदरके विषयमें सतत संयत रहना उचित है। धर्मविरुद्ध अर्थकी कामनाको छोड़ देना चाहिए। जिस धर्माचरणसे अपनेको दुःख हो और दूसरेको आक्रोशभाजन होना पड़े ऐसे ऐसे धर्माचरण भी परित्याज्य है। (मनु ४ अ०)

धर्मके दश अङ्ग हैं। जैसा कि कहा है,—

"ब्रह्मचर्येण सत्येन तपसा च प्रवर्त्तते।
दानेन नियमेनापि क्षमा शौचेन वल्लभ ॥
अहिंसया सुशान्त्या च अस्तेयेनापि वर्द्धते।
एतैर्दशभिरङ्गैस्तु धर्ममेव प्रसूचयेत् ॥" (पाद्मे भूमिखण्ड)

ब्रह्मचर्य, सत्य और तपस्या इन तीनोंसे धर्म प्रवर्त्तित होता है और दान, नियम, क्षमा, शौच, अहिंसा, सुशान्ति और अस्तेय इनके द्वारा वर्द्धित होता है।

"अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमो भूतदया तपः।
ब्रह्मचर्यं ततः सत्यमनुक्रोशः क्षमा धृतिः ॥
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतद्दुरासदं।" (मात्स्यपु०)

अद्रोह, अलोभ, दम, जीवोंके प्रति दया, ब्रह्मचर्य, सत्य, अनुक्रोश, क्षमा और धृति ये सनातन धर्मके मूल कर्त्तव्य हैं।

कलिके दश हजार वर्ष बीत जाने पर धर्मादि विष्णुके पादमूलमें चले जायगी।

"शालग्रामो हरेर्मूर्त्तिर्जगन्नाथश्च भारतं।
कलेर्दशसहस्रान्ते ययौ त्यक्त्वा हरेः पदं ॥
सत्यञ्च धर्मं सत्यञ्च वेदाश्च ग्रामदेवताः।
व्रतं तपश्चानशनं ययुस्तै सार्द्धमेव च ॥" (ब्रह्मवैवर्त्त०)

शालग्राम शिला, जगन्नाथ और विष्णुमूर्त्ति ये कलिके दश हजार वर्ष बीतने पर विष्णुके पादमूलमें चली जायेंगी और इनके साथ ही सत्य, धर्म, सत्य, वेद, ग्रामदेवता, व्रत, तप और अनशनव्रत भी प्रस्थान करेंगी।

धर्मके आधारस्थान—

"यत्र स्थानं तवाधारो वदामि श्रूयतां विभो।
वैष्णवेषु च सर्वेषु व्रतिषु ब्रह्मचारिषु ॥
पतिव्रतासु प्राज्ञेषु वानप्रस्थेषु भिक्षुषु।
नृपेषु धर्मशीलेषु सत्सु सद्वैश्यजातिषु ॥
द्विजसेविषु शूद्रेषु सत्सु सर्गस्थितेषु च।
एषु त्वं सन्ततं पूर्णो धर्मराजो विराजसे ॥
युगे युगे तवाधारा एते पुण्यतमा जनाः।"

अपिच—"अश्वत्थवटबिल्वेषु तुलसीचन्दनेषु च।
देवार्हेषु च पुष्पेषु विद्यमानोऽसि शाखिषु ॥
देवालयेषु तीर्थेषु सतां शश्वत् गृहेषु च।
वेदवेदाङ्गश्रवणजनेषु च सभासु च ॥
श्रीकृष्णगुणनामोरुस्तुतिगीतस्थलेषु च।
व्रतपूजा तपोऽध्यायवज्ञसाक्षिस्थलेषु च ॥

दीक्षापरीक्षाशपथगोष्ठगोष्पदभूमिषु ।
गवां गृहेषु गोष्ठेषु तिष्ठन्नपि हि पश्यति ॥
कृशता ते न भविता धर्मैतेषु स्थलेषु च ।"
(ब्रह्मवैवर्त श्रीकृष्णजन्मख० ४२ अ०)

समस्त वैष्णव, यति, ब्रह्मचारी, पतिव्रता नारी, प्राज्ञ व्यक्ति, वानप्रस्थावलम्बी, भिक्षु, धर्मशील नृप, सद् वैश्य, द्विजसेवापरायण शूद्र और सत्संसर्गस्थित गृहस्थ इनके पास धर्म सम्पूर्णरूपसे और सर्वदा अवस्थान करता है। अश्वत्थ, वट, बिल्व, तुलसी, चन्दन, देवपूजार्थ पुष्पवृक्ष, देवालय, तीर्थस्थान, वेदवेदाङ्गश्रवणकारी व्यक्ति, वेदपाठका स्थान, श्रीकृष्णके नामादि कीर्तनका स्थान, व्रत, पूजा, तप, विधिविहित यज्ञ, साक्षिस्थल, दीक्षा, परीक्षा, शपथस्थल, गोष्ठ, गोष्पदभूमि और गोगृह इन स्थानोंमें धर्म अवस्थान करता है; और इसीलिए उक्त स्थानोंमें किये हुए धर्ममें मलिनता नहीं आती।

देवता आदिका धर्म वामनपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

सुकेशि नामक एक राक्षसने ऋषियोंके पास जा कर ऐसा प्रश्न किया कि "इस जगत्में श्रेय क्या है?" ऋषियोंने उत्तर दिया—"इस काल और परकालमें धर्म ही श्रेय है; साधुगण धर्मका आश्रय लेते हैं, इसलिये वे पूज्य हैं। धर्ममार्गके अवलम्बन करने पर ही सब सुखी हो सकते हैं।" इस पर सुकेशिने पुन: प्रश्न किया कि "धर्मका लक्षण क्या है और क्या करनेसे धर्माचरण होता है?" ऋषियोंने कहा—यागयज्ञादि क्रिया, स्वाध्यायतत्त्वविज्ञान, विष्णुपूजनमें रति और विष्णुकी स्तुति करना देवताओंका परम धर्म है। बाहुपराक्रम और संग्रामरूप सत्कार्य, नीतिशास्त्रकी निन्दा और हरिभक्ति करना दैत्योंका धर्म है। योगानुष्ठान, स्वाध्याय, ब्रह्मविज्ञान, विष्णु और शङ्करकी भक्ति करना भी दैत्योंका परम धर्म है। नृत्यगीतादिमें अभिज्ञता और सरस्वतीमें स्थिर भक्ति करना गन्धर्वोंका धर्म है। पौरुष कार्यमें अभिलाष, भवानी और भगवान् सूर्यके प्रति भक्ति एवं गन्धर्व विद्या उपार्जन करना विद्याधरोंका धर्म है। समस्त शास्त्र और ब्रह्मविद्याओंमें निपुणता प्राप्ति करना किंपुरुषोंका धर्म है। ब्रह्मचर्य और योगाभ्यासमें सर्वदा आनुरक्ति, समस्त स्थानोंमें इच्छानुसार गमनागमन, नित्य ब्रह्मचर्य और जप सम्बन्धी ज्ञान प्राप्ति करना पितृगणोंका धर्म है। धर्मज्ञान ऋषियोंका धर्म है। स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य, दम, यजन, मात्सर्य, अहिंसा, क्षमा, जितेन्द्रियत्व, शौचत्व, मङ्गल कार्योंमें श्रद्धा और देवताओंकी भक्ति करना मानवोंका धर्म है। धनाधिपतित्व, भोग, स्वाध्याय, शङ्करोपासना, अहङ्कार और ममतारहितत्व गुह्यकोंका धर्म है। पर भार्यामें अभिलाष, परकीय अर्थमें लोलुपता, वेदाभ्यास और शङ्करमें भक्ति करना राक्षसोंका धर्म है। अविवेकता, अज्ञान, अशुचि, मिथ्यावादित्व और आमिष-भोजनमें लोभ करना पिशाचोंका धर्म है।" (वामनपु० ११ अ०)

धर्मके अगम्य स्थान—

"एतदन्येषु कृशता यदगम्यश्च तत् शृणु ।
पुंश्चलीषु तद्गृहेषु गृहेषु नरघातिनां ॥
नरघातिषु नीचेषु मूर्खेषु च खलेषु च ।
देवतागुरुविप्रेषु पत्न्यानां धनहारिषु ॥
असत्परेषु धूर्तेषु चौरेषु रतिभूमिषु ।
दुरोदरसुरापानकलहानां स्थलेषु च ॥
शालग्रामसाधुतीर्थपुराणरहितेषु च ।
दस्युमत्तेषु देवेषु तालच्छत्राग्रगर्विषु ॥
असिजीविमसीजीविदेवलग्रामयाजिषु ।
कुवाहस्वर्णकारजीवहिंसोपजीविषु ॥
भक्तनिन्दितनारीषु स्त्रीजितेषु च पुंसु च ।
दीक्षाशुन्धिविष्णुभक्तिविहीनेषु द्विजेषु च ॥
स्वाङ्गकन्याविक्रयिषु स्वयोषिद्विक्रयिष्वथ ।
शालग्रामसुरग्रन्थभूमिविक्रयिषु प्रभो ॥
मित्रद्रोहकृतघ्नेषु सत्यविश्वासघातिषु ।
शरणागतहीनेषु आश्रितघ्नेषु तेषु च ॥
शश्वन्मिथ्योक्तिशीलेषु तथासीमापहारिषु ।
कामात् क्रोधात्तथा लोभान्मिथ्यासाक्षिप्रवादिषु ॥
पुण्यकर्मविहीनेषु पुण्यकर्मविरोधिषु ।
स्थानुमेतेषु निम्नेषु नाधिकारस्तव प्रभो ॥"
(ब्रह्मवैवर्तपु० श्रीकृष्णजन्म० ४२ अ)

पुंश्चली नारी (अर्थात् व्यभिचारिणी स्त्री) और उसका

गृह, नरघाती व्यक्ति, नीच, मूर्ख, खल, देवता, गुरु और प्रतिपाल्य व्यक्तिका धनहरणकारी, असत् नर, धूर्त, चोर, रतिभूमि, दुरोदर (द्यूतक्रीड़ा) सुरापान और कलहकी भूमि, जहां शालग्राम, साधु और तीर्थ नहीं है ऐसा स्थान, पुराणरहित स्थल, दस्युग्रस्त देवता, ताल-च्छाया, मद्यहारी व्यक्ति, असिजीवी, मसिजीवी, देवल (अर्थात् जो लोग प्रतिष्ठित देवमूर्ति की पूजा करके जीविका निर्वाह करते हैं), ग्रामयाजी, ब्रह्मबाह्य, स्वर्णकार, जीवहिंसोपजीवी, पतिकी निन्दा करनेवाली स्त्री, स्त्रीजित पुरुष, दीक्षा, सन्धि और विष्णुभक्तिविहीन द्विज, स्त्रीय मद्य, कन्या और स्त्रीको बेचनेवाला व्यक्ति, देवोत्तर सम्पत्तिको बेचनेवाला व्यक्ति, मित्रद्रोही, कृतघ्न, सत्य और विश्वासका घात करनेवाला व्यक्ति, शरणागतकी रक्षा न करनेवाला व्यक्ति, आश्रितको मारनेवाला और मिथ्या-वादी व्यक्ति, सीमापहारी, काम, क्रोध वा लोभके कारण मिथ्या साक्षी देनेवाला व्यक्ति, पुण्यकर्मविहीन और पुण्य-कर्मविरोधी, इन सबोंको धर्मका अधिकार नहीं होता अर्थात् इन सब स्थानोंमें धर्मका अवस्थान नहीं है।

हेमाद्रि-व्रतखण्डमें धर्मभेदादिका विषय इस प्रकार लिखा है—

"वर्णधर्मः स्मृतस्त्वेक आश्रमाणामतः परं।
वर्णाश्रमस्तृतीयस्तु गौणो नैमित्तिकस्तथा॥
वर्णत्वमेकमाश्रित्य यो धर्मः सम्प्रवर्त्तते।
वर्णधर्मः स उक्तस्तु यथोपनयनं नृप।
आश्रमञ्च समाश्रित्य यो धर्मः सम्प्रवर्त्तते॥
स खल्वाश्रमधर्मस्तु भिक्षादण्डादिको यथा॥
वर्णत्वमाश्रमत्वं च योऽधिकृत्य प्रवर्त्तते।
स वर्णाश्रमधर्मस्तु स्यान्मौञ्जी मेखला तथा॥
यो गुणेन प्रवर्त्तेत गुणधर्मः स उच्यते।
यथा मूर्द्धाभिषिक्तस्य प्रजानां परिपालनं॥
निमित्तमेकमाश्रित्य यो धर्मः सम्प्रवर्त्तते।
नैमित्तिकः स विज्ञेयः प्रायश्चित्तविधिर्यथा॥

(हेमाद्रि-व्रतखण्डोक्त भविष्यपु०)

वर्णधर्म, आश्रमधर्म, वर्णाश्रमधर्म, गौणधर्म, तथा नैमित्तिक धर्म, एक वर्णत्वको आश्रय कर जो धर्म संप्रवर्त्तित होता है, उसे वर्णधर्म

कहते हैं; जैसे—उपनयनादि। आश्रमको आश्रय कर जो धर्म प्रवर्तित होता है, उसे आश्रमधर्म कहते हैं; जैसे—भिक्षा और दण्डादिग्रहण। वर्णत्व और आश्रमत्व-को अधिकार कर जो धर्म प्रवर्तित होता है, उसे वर्णा-श्रमधर्म कहते हैं; जैसे—मौञ्जी और मेखलादि धारण। जो धर्म गुणोंके द्वारा प्रवर्तित होता है, उसका नाम गौणधर्म है। जैसे—यथानियम प्रजादिका पालन। किसी एक निमित्तको आश्रय कर जिस धर्मका प्रवर्त्तन होता है, वह नैमित्तिक धर्म है, जैसे—प्रायश्चित्तविधि आदि। साधारण धर्मका लक्षण इस प्रकार कहा गया है—

"श्राद्धकर्म तपश्चैव सत्यमक्रोध एव च।
स्वेषु दारेषु सन्तोषः शौचं विद्यानसूयता॥
आत्मज्ञानं तितिक्षा च धर्मः साधारणो नृप॥"

श्राद्धकर्म, व्रत (अर्थात् स्नान, दान पूजा, होम और जपादि), अक्रोध, सर्वदा स्वकीया पत्नीमें सन्तोष, विशुद्धता, विद्या, असूया-राहित्य, आत्मज्ञान और तितिक्षा ये साधा-रण धर्म हैं; अर्थात् इसे चारों ही वर्ण कर सकते हैं। विष्णुसंहितामें धर्मका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

"क्षमा सत्यं दमः शौचं दानमिन्द्रियसंयमः।
अहिंसागुरुशुश्रूषातीर्थानुसरणं दया॥
आर्जवं लोभशून्यत्वं देवब्राह्मणपूजनं।
अनभ्यसूया च तथा धर्मः सामान्य उच्यते॥"

(विष्णुसंहिता)

क्षमा, सत्य, दम, शौच, दान, इन्द्रियनिग्रह, अहिंसा, गुरुकी शुश्रूषा, तीर्थानुसरण, दया, ऋजुता, लोभ-राहित्य, देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा तथा असूया-राहित्य, ये सब साधारण धर्म हैं। चारों ही वर्ण इन्हें पालन कर सकते हैं। जो लोग इन धर्मोंका अनुष्ठान करते रहते हैं, वे मोक्षपद पानेके अधिकारी और धार्मिक कहलानेके उपयुक्त हैं। विष्णुधर्मोत्तरमें धर्मका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

"तस्य द्वाराणि यजनं तपोदानं दया क्षमा।
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यं तीर्थानुसरणं शुभं॥
स्वाध्यायसेवासाधूनां सहवासः सुरार्चनं।
गुरूणां चैव शुश्रूषा ब्राह्मणानाञ्च पूजनं॥

इन्द्रियाणां जयश्चैव ब्रह्मचर्यममत्सरं ।
गङ्गास्नानं शिवो देवो विप्रपूजात्मचिन्तनं ॥
ध्यानं नारायणस्यैतत् संक्षेपाद्धर्मलक्षणं ।"

(विष्णुधर्मोत्तर)

यजन, तपस्या, दान, सर्वभूतोंमें दया, क्षमा, ब्रह्मचर्य, सत्य, तीर्थयात्रा, स्वाध्याय, साधुओंकी सेवा, सहवास, देवार्चन, गुरुशुश्रूषा, ब्राह्मण-पूजा, इन्द्रियसंयम, मात्सर्य-राहित्य, गङ्गास्नान, शिवपूजा, आत्मचिन्तन और नारायणका ध्यान इन सब कार्योंको धर्म कहते हैं।

विश्वामित्रने धर्मका लक्षण इस प्रकार किया है—

"यमार्याः क्रियमाणं हि शंसन्त्यागमवेदिनः ।
स धर्मो यं विगर्हन्ति तमधर्मं प्रचक्षते ॥" (विश्वामित्र)

"प्रवृत्तञ्च निवृत्तञ्च द्विविधं कर्मवैदिकं ।
सर्गादौ सृजता सृष्टं ब्रह्मणा वेदरूपिणा ॥
प्रवृत्तस्त्वेकको धर्मो गुणतस्त्रिविधो भवेत् ।
सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्चेति भेदतः ॥
काम्यबुध्या च यत्कर्म मोक्षोऽपि फलवर्जितं ।
क्रियते द्विज ! कर्मेह तत्सात्त्विकमुदाहृतं ॥
मोक्षायेदं करोमीति संकल्प्य क्रियते तु यत् ।
तत्कर्म राजसं ज्ञेयं न साक्षात् मोक्षकृत् भवेत् ॥
कार्यबुध्यानपेक्षं यत् कर्मविध्यनपेक्षया ।
क्रियते द्विजवर्येह तत्तामसमुदाहृतं ॥"

आगमतत्त्वज्ञ आर्यगण जिस कार्यको करते एवं जिसकी प्रशंसा करते हैं, उसे धर्म कहते हैं और जिसकी वे निन्दा करते हैं, उसे अधर्म। ब्रह्माने सृष्टिके पहले प्रवृत्त और निवृत्त इन दोनों प्रकारके वैदिक कर्मोंका निर्देश किया है। इनमेंसे प्रवृत्त लक्षणवाले कर्मका नाम धर्म है, जो गुणभेदानुसार तीन प्रकारका है—सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। जिस कर्ममें किसी प्रकार फलकी कामना नहीं रहती, उसे सात्त्विक धर्म कहते हैं ; इसके अनुष्ठानसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। मोक्षके निमित्त संकल्प करके जो कार्य किया जाता है, उसका नाम राजसिक धर्म है। कार्यमें विविध अपेक्षा न करके केवल कार्यबुद्धिसे जो कार्य किया जाता है, उसे तामस धर्म कहते हैं। आश्रमों तथा द्विजादि वर्णोंके धर्मका वर्णन उन्हीं शब्दमें देखो।

नाना अर्थोंमें इस 'धर्म', शब्दका व्यवहार होता है। यह शब्द संस्कृत भाषाका है। संस्कृतमें जिन जिन अर्थोंमें इसका व्यवहार होता है, हिन्दीमें भी उन्हीं अर्थोंमें होता है। इसके सिवा और भी एक विशेष अर्थमें इसका व्यवहार दृष्टिगोचर होता है; उसी अर्थकी यहां प्रधानता है। सम्प्रति पृथिवीमें नाना जातियों और नाना देशोंमें नाना प्रणालियोंसे ईश्वरोपासना की जाती है। इन विभिन्न ईश्वरोपासनाकी प्रणालियोंको साधारणतः "धर्म" कहते हैं। परन्तु जिस भाषासे यह शब्द लिया गया है, उस भाषाके कोई भी प्राचीन ग्रन्थमें "धर्म" शब्दका ऐसा अर्थ दृष्टिगत नहीं होता। "हिन्दूधर्म" "जैनधर्म" "बौद्धधर्म" "मुसलमानधर्म" "ईसाईधर्म" इत्यादि स्थलोंमें "धर्म" शब्दका जो अर्थ किया जाता है एवं हिन्दी भाषामें ऐसे प्रयोगसे 'धर्मका' जो अर्थ निकाला जाता है, वह अर्थ संस्कृत भाषामें नहीं है!

संस्कृत भाषामें सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेदमें "धर्म" शब्दका उल्लेख है। जैसे—

"त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन् ॥" (ऋक् १।२२।१८)

अर्थात् परमेश्वरने आकाशमें त्रिपाद परिमित स्थानमें त्रिलोक निर्माण कर उनमें 'धर्मों'को धारण किया है। यहां 'धर्म' शब्दका अर्थ जगन्निर्वाहक नियमोंका समूह होता है। अंगरेजीमें laws कहनेसे जिस अर्थका बोध होता है यहां "धर्म" शब्दका प्रायः वैसा ही अर्थ होता है।

२ मनुष्योंके लिए जो कर्तव्य और आदरणीय बतलाया गया है, वही धर्म है। स्मृतिशास्त्रमें धर्म शब्दका ऐसा ही अर्थ मिलता है।

श्रुति और स्मृतियोंमें धर्म शब्दके अर्थका जो विरोधाभास पाया जाता है, उसकी विद्वानोंने इस प्रकार मीमांसा की है, कि दोनों ही परमेश्वर द्वारा प्रतिष्ठित या व्यवस्थित हैं, इसमें विशेष छानबीनकी जरूरत नहीं।

३ स्मृतिकारोंमें मनु ही प्रधान समझे जाते हैं। उन्होंने अपनी संहिताके द्वितीय अध्यायमें "धर्म" की मीमांसा करते हुए कहा है, कि रागद्वेष-परिशून्य विद्वान् और साधुगण समाजमें जिन नियमोंका पालन करते हैं,

उसीको धर्म कहते हैं। इसी अर्थसे वर्णाचार, आश्रमाचार, सदाचार आदिको धर्म कहा गया है।

४ पुराणोंमें धर्मका एकार्थ देखनेमें नहीं आता। नाना स्थानों पर नाना अर्थोंमें धर्म शब्द प्रयुक्त हुआ है। धीरे धीरे वे ही अर्थ काव्यनाटक आदिमें प्रविष्ट हुए हैं। धर्म शब्दके फिलहाल जितने भी लौकिक प्रयोग देखे जाते हैं, नीचे उनका विस्तृत विवरण दिया जाता है।

५ मनोवृत्तियोंको धर्म कहते हैं, जैसे—दयाधर्म, अहिंसा परमधर्म, सत्यधर्म, क्रोध अपकृष्ट धर्म। मनुके मतसे, जहां सदाचार धर्मके नामसे कहा जाता है, वहीं सदाचार धर्मके अर्थमें सङ्कोचन और उत्कर्ष हो कर ऐसा अर्थ होता है।

६ इन्द्रियोंके कार्योंका भी धर्मके नामसे उल्लेख होता है; जैसे—चक्षुका धर्म दर्शन, मनका धर्म चिन्ता इत्यादि। वैदिक अर्थसे इस अर्थकी उत्पत्ति हुई है, ऐसा अनुमान किया जाता है।

७ कर्त्तव्य भी धर्म कहलाता है, जैसे—पिताका धर्म, पुत्रका धर्म, पतिपत्नीका धर्म, भृत्यका धर्म इत्यादि। यह भी स्मृत्युक्त 'सदाचार' अर्थसे उद्भूत है।

८ गुणकी क्रियाका नाम भी धर्म है, जैसे—शीतका धर्म सङ्कोचन, तापका धर्म सम्प्रसारण इत्यादि। यह वैदिक अर्थसे उद्भूत है।

९ वृत्त्यनुसारिणी क्रियाको भी धर्म कहते हैं, जैसे—चौरधर्म, दस्युका धर्म, याजकका धर्म, व्यवसायीका धर्म इत्यादि। यह अर्थ भी स्मृत्युक्त वर्णाचार, आश्रमाचार आदि अर्थसे उत्पन्न है।

१० देशभेदसे मनुष्यके श्रेणीगत और आचारगत व्यवहारादिके विशेषत्वको भी धर्म कहते हैं, जैसे—अंग्रेजोंका धर्म, रोमकोंका धर्म इत्यादि। इसकी भी उत्पत्ति आचार अर्थसे है।

११ पदार्थके गुणको धर्म कहते हैं, जैसे—जीवधर्म। यहां धर्म शब्दसे आहार, निद्रा, भय, मैथुनादि गुण जो केवल जीवमें ही होते हैं, वृक्षलतादिमें नहीं बोध होता है, इसी प्रकार वस्तुधर्म, मनुष्यधर्म, गुणधर्म आदिमें वस्तुत्व, मनुष्यत्व, और [illegible] आदिका बोध होता है।

१२ काल एवं युगादिके भेदसे मानवाचारके भेदको भी धर्म कहा जाता है; जैसे—कालधर्म, युगधर्म, मनुके समयका धर्म, युधिष्ठिरके समयका धर्म, अकबरके समयका धर्म, अर्वाचीन धर्म इत्यादि।

१३ कुछ विशेष विशेष व्यापारकी समष्टिको भी धर्म कहते हैं, जैसे—जागतिक धर्म, लौकिक धर्म, सामाजिक धर्म, कौलिक धर्म, दैहिक धर्म, मानसिक धर्म इत्यादि।

इन अर्थोंके अतिरिक्त धर्म शब्दका एक विशेष अर्थ और भी है, जिसका कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है (जैसे—"हिन्दूधर्म" "जैनधर्म" "बौद्धधर्म" आदि)। अब उसीके सम्बन्धमें विशद आलोचना की जाती है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि हिन्दूधर्म, बौद्धधर्म, मुसलमान-धर्म आदि स्थलों पर हिन्दीमें जैसा अर्थ होता है, संस्कृतमें वैसा नहीं होता। हिन्दीमें यह अर्थ कैसे प्रचलित हुआ, कहांसे आया इसकी कुछ आलोचना करनी चाहिए। अंग्रेजी भाषाके बहुतसे शब्द इस समय हिन्दी भाषाके अङ्गीभूत हो गये हैं और कुछ शब्दोंके अर्थ एवं भावोंने हिन्दी भाषामें तद्भावप्रकाशक या अर्थके निकट सम्बन्धयुक्त शब्दोंमें संक्रामित हो कर उन शब्दोंका एक एक नया अर्थ कर डाला है। अंग्रेजीके Religion, nation, आदि शब्द इसी (शेषोक्त) जातिके हैं। अंग्रेजीके Religion शब्दसे विभिन्न जातीय विभिन्न ईश्वरोपासना-प्रणालीका बोध होता है। संस्कृतमें ईश्वरोपासना-प्रणाली 'आचार' शब्दके अन्तर्गत है; सुतरां धर्म शब्दसे आचारका बोध कराते हुए क्रमशः अर्थ सङ्कुचित हो कर आचारके विभिन्नांश भी धर्मके नामसे कहे जाने लगे। ऐसी दशामें 'रिलीजन' शब्दका अर्थ "धर्म" शब्दमें प्रविष्ट हो गया। रिलीजन शब्दका हूबहू प्रतिशब्द हिन्दी वा संस्कृत भाषामें न होनेके कारण बहुत कुछ न्यायविशिष्ट होनेसे क्रमशः "धर्म" शब्द ही बहुल-व्यवहृत होने लगा। अंग्रेजी Religion शब्दमें और हिन्दी धर्म शब्दमें कितनी व्युत्पत्ति है, यहां बतला देना उचित है। रिलीजन् कहनेसे पारलौकिक ज्ञान, ऐश्वरिक विश्वास, विभिन्न उपासना-प्रणाली और [illegible] आचार-व्यवहार-प्रायश्चित्तादिका जो [illegible]

भाव हृदयमें उदित होता है, धर्म शब्दके आपाततार्थसे भी उन समस्त भावोंका आभास पाया जाता है, किन्तु 'रिलीजन्' देशादिके भेदसे सत्य वा मिथ्या हो सकता है, ऐसा भाव धर्म शब्दमें किसी प्रकार भी प्रकट नहीं होता। ईश्वरोपासनाकी प्रणाली एक सत्य हो और एक मिथ्या, यह हो ही नहीं सकता। धर्मका अर्थ जब आचार होता है, तब जो आचार मेरे लिये आदरणीय है, वह दूसरेके लिए अनादरणीय हो सकता है, किन्तु मिथ्या नहीं हो सकता; ऐसा ही अर्थ प्रकट होता है। मेरा Religion सत्य है, दूसरेका मिथ्या है, ऐसा कहा जा सकता है, किन्तु मेरा धर्म सत्य है, दूसरेका मिथ्या है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। धर्म शब्दमें ऐसा भाव कुछ भी नहीं है। धर्म एक है बहुत नहीं, परन्तु रिलीजन् कभी भी एक नहीं हो सकता। Religion और धर्म शब्दमें इस प्रकारका पार्थक्य देख कर तथा धर्म शब्दके अर्थको हिन्दी भाषामें परिस्फुट करनेके लिये बहुत दिनसे अनेक विद्वान् अनेक शब्दोंकी आलोचना कर रहे हैं। उनकी गवेषणाके फलस्वरूप सम्प्रति एक शब्द स्थिरीकृत हुआ है, जिसका विवरण नीचे दिया जाता है।

गीताके चतुर्थ अध्यायमें लिखा है—

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्त्तन्ते लोकेऽस्मिन् पार्थ सर्वशः॥ ११॥"

अर्थात् जो जिस रूपसे मेरा भजन करता है, मैं उससे उसी प्रकारसे भजन करता हूं। इस लोकमें सभी मेरे 'पथ'का ही अनुवर्तन करते हैं।

गीताके इस श्लोकके 'वर्त्म' शब्दसे 'भजनमार्ग' अर्थ प्रकट होता है। श्रीधरस्वामीने अपनी टीकामें समझाया है, कि इन्द्रादि बहुदेवोपासकगण भी अपने अपने देवताओंकी उपासना द्वारा भगवान्‌की ही उपासना करते हैं। अब श्रीधरस्वामीकी कल्पित इन्द्रादि बहुदेवोपासनाको यदि और भी विस्तृत अर्थबोधक मान लिया जाय, तो भी दोष नहीं आता। कारण, हिन्दूधर्ममें किसी भी धर्मको मिथ्या वा अफलदायी नहीं माना है। इसके सिवा और भी एक प्रसिद्ध श्लोक देखनेमें आता है—

"वेदा विभिन्नाः स्मृतयो विभिन्ना नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः॥"

अर्थात् वेद परस्पर विभिन्न विधानदाता हैं, स्मृतियां भी वैसी ही हैं। ऐसे कोई भी मुनि नहीं हुए जो स्वतन्त्र मतावलम्बी न हों। धर्मका तत्त्व गुहामें पड़ा है, दुर्बोध्य है, इसलिए महाजन जिस प्रकार वा जिस मार्ग पर चल रहे हैं, वही पन्था है।

इस स्थल पर 'पन्था' शब्दका अर्थ भी उपासना-प्रणाली है। जरा स्थिरचित्तसे विचार कर देखा जाय तो मालूम होगा कि इसका अर्थ बहुत अंशोंमें अंग्रेजी Religion शब्दके समान हो सकता है। गीताके 'वर्त्म'को भी 'पन्था' कहा जाय, तो कोई हानि नहीं। Religion और धर्ममें जितना प्रभेद है, इस श्लोकके 'धर्म' और 'पन्था'में उतना ही प्रभेद सूचित होता है। इस श्लोकसे मालूम होता है, कि धर्मतत्त्व मालूम नहीं है, कौनसा धर्म आचरणीय है इसका निर्णय करना भी असम्भव है; किन्तु महाजन जिस 'पन्था' पर चल कर उसे दूसरोंके लिए निर्देश कर गये है, वह अपेक्षाकृत सुपरिज्ञात है, मानो इशारेमें उसे ही अवलम्बन करनेको कहा जा रहा है। अब यह निर्णय करना चाहिए कि उक्त श्लोक कहे हुए महाजन कौनसे हैं? हिन्दुओंकी समझसे ऋषिगण ही महाजन हैं; सुतरां ऋषि नामक महाजन जिस मार्ग पर चले हैं, वही 'पन्था' है। इस तरह यदि ईसामसीह, महम्मद, बुद्ध, जरथुस्त्र आदिको भी महाजन मान लिया जाय, तो कोई हानि नहीं; क्योंकि जिस प्रकार धर्मतत्त्वको अबोध्य समझ कर उसके उद्धारके लिए ऋषिगण विभिन्न 'पन्था' बता गये हैं, उसी प्रकार ईसामसीह, महम्मद आदि भी उसी धर्मतत्त्वके निरूपणके लिए एक एक पथ निर्देश कर गये हैं। इस प्रकार विवेचना करके इस 'पन्था' शब्दको यदि अंग्रेजी Religion शब्दका हिन्दी वा संस्कृत भाषाका प्रतिशब्द मान लिया जाय, तो सम्भवतः कोई हानि नहीं। 'पन्था' शब्दका यथार्थ अर्थ 'पथ' वा 'उपाय' है। हिन्दी भाषामें पन्था वा शब्दका प्रयोग न हो, ऐसा नहीं। उदाहरणार्थ 'कबीरपन्थी' 'नानकपन्थी' 'तेरापन्थी' 'बीसपन्थी' 'ढूंढियापन्थी' 'अघोरपन्थी' आदि अनेक शब्द मिल सकते हैं। इसी

प्रकार मुसलमानोंको महम्मदपन्थी, ईसाइयोंको क्रुष्ट-पन्थी, बौद्धोंको बुद्धपन्थी इत्यादि कहा जा सकता है; इसमें कोई अर्थहानि होनेकी सम्भावना नहीं। संस्कृतमें जैसे पन्था शब्द गमनार्थसूचक है, उसी प्रकार अरबीमें धर्माचारबोधक 'मजहब' शब्द 'जहब' इस गमनार्थ धातुसे निकला है। इससे भी यह प्रकट होता है कि 'मजहब' और 'पन्था' एक भावात्मक शब्द हैं तथा मुसलमान लोग 'मजहब' शब्द द्वारा ही Religion शब्दको प्रकट करते हैं। वेदमें एक जगह पन्था शब्द 'भजनमार्ग' अर्थमें प्रयुक्त हुआ है,—

"अयं पन्था अनुवित्तो पुराणो अतो देवा उद्‌जायन्ते विश्वे।"

यहां पन्था शब्दका अर्थ साधारण गमन-पथ भी है और भजनमार्ग भी।

अब कहना यह है कि जब तक इस नवीन अर्थमें शब्दका बहुत व्यवहार न होगा, तब तक Religion का हिन्दी अनुवाद 'धर्म' शब्दसे ही किया जायगा; इसलिए Religion ('रिलीजन्') शब्दमें जो कुछ लिखा जाना चाहिए, उसे यहीं लिखा जाता है।

जगत्‌के सम्पूर्ण पन्थोंके निरूपणके लिए, पाश्चात्य विद्वान् गवेषणा-द्वारा जिन सत्योंका निर्धारण कर सकते हैं, वे बड़े आश्चर्यजनक हैं; यहां उनकी कुछ आलोचना की जाती है। धर्मविज्ञान (Science of Religion) की आलोचनामें पाश्चात्य विद्वान् थोड़े दिनोंसे अग्रसर हुए हों, ऐसा नहीं; बहुत प्राचीन कालसे ही उनमें पन्थोंकी दार्शनिकता प्रचारित थी; किन्तु वह प्रायः कल्पनाओं पर निर्भर थी। कल्पनाओं द्वारा मीमांसा करनेके सिवा उस समय इस विषयमें छानबीनके साथ अनुसन्धान करनेका आयोजन वा सुविधा विशेष न थी। अतिसामान्य सूत्रके आधार पर गवेषणा-द्वारा उस समयके पाश्चात्य दार्शनिक विद्वान् इस विषयमें जितनी भी दार्शनिक मीमांसा कर गये हैं, उन्हें एक प्रकारसे उनकी कल्पनाओंका फल कहना चाहिए। उनमें ग्रीक, रोमक और कुछ प्राच्य जातियोंके पौराणिक देव-देवियोंके इतिहासादिका विश्लेषण और व्याख्या कर उनके निरूपणकी चेष्टा की थी; किन्तु उपयुक्त आयोजनके अभावसे वह भी एक प्रकारसे व्यर्थ हुई। पौराणिक जालको हटाते हटाते वे कुछ रूपक, दृष्टान्त इत्यादिकी सृष्टि कर बैठे हैं और कहीं कहीं कल्पनाके बल पर कुछ कुछ दार्शनिकता भी स्थिर कर गये हैं। उस समय दार्शनिकताकी तरह पन्थोंकी ऐश्वरिकता भी प्रचलित थी; जिनकी आलोचना कर प्राचीन पाश्चात्य विद्वान्‌गण, एकको छोड़ कर बाकी सबको मिथ्या अर्थात् ऐश्वरिकताहीन बतला गये हैं। उस समयके लोग सिर्फ दार्शनिकताको ही प्राकृतधर्म समझते थे; किन्तु अब वह भी कुसंस्कार समझ कर उपेक्षित हुआ करती है। वर्त्तमान् विद्वानोंका कहना है कि कुछ कौशली और स्वार्थी याजकोंके चक्रान्तसे ही इनकी उत्पत्ति हुई है।

शेषमें १८वीं शताब्दीमें धर्मविज्ञानकी आलोचनाके लिए इतिहासके अवलम्बन पर जो सुप्रणालीबद्ध अनुसन्धान प्रारम्भ हुआ, वह गत १९वीं शताब्दीके प्रथमार्द्ध काल पर्यन्त चली। इससे जो कुछ मीमांसित हुआ है उससे प्रमाणित होता है कि उस समय जो सत्य निर्द्धारित हुआ है वह बहुत अंशोंमें कल्पित है, सुप्रणाली सङ्गत नहीं है। फिलहाल चीन, भारतीय, पारसिक आदि कुछ जातियोंके मूल शास्त्रग्रन्थों (अर्थात् जिस भाषामें जो ग्रन्थ सर्वप्रथम लिखे गये हैं, उन ग्रन्थों) को पढ़ कर, मिस्रदेशकी चित्रलिपियों (Heirogliphics) का पाठोद्धार कर तथा आसीरीय और बाबिलोनीय कोणाकार लिपियोंका पाठोद्धार कर इस विषयमें जो तथ्य संग्रहीत हुए हैं, उससे अति प्राचीनकालसे अब तक धर्मजगत्‌का एक इतिहास बनाया जा सकता है और उस इतिहासके आधार पर आलोचना करते रहनेसे किसी समय धर्मविज्ञान गठित हो सकता है।

धर्मतत्त्व क्या है? (What is religion?) इसकी मीमांसा करनेके लिए दो विषयोंकी विशेष आलोचना करना आवश्यक है,—१म प्रत्येक पन्थाके ऐतिहासिक तत्त्वकी तुलनात्मक आलोचना और २य मानवके मनस्तत्त्वकी आलोचना। इन दो विषयोंकी आलोचनासे धर्मतत्त्वका जो निर्णय होगा, उसके द्वारा सिर्फ विद्वत्समाजका कौतूहल ही चरितार्थ हो, ऐसा नहीं। प्रत्युत इसके द्वारा मानव इतिहासकी उस प्रधान और प्रबल शक्तिका, जिससे जातियां गठित और नियुक्त

होते हैं, राज्योंका संगठन और ध्वंस होता है, अति-भयानक और बर्बर आचारादि भी मानव-समाजमें आदरके साथ गृहीत होते हैं, अति घृणा और निष्ठुर कार्य भी आचरणीय होते हैं, तथा जो शक्ति अति महान् वीरताके कार्य, आत्मत्यागके कार्य और भक्तिके कार्य कराती है एवं भीषण युद्ध, विद्रोह और विप्लव उपस्थित करती है, एवं स्वाधीनता, सुख और शान्तिको प्रतिष्ठा करती है, उस प्रबलता शक्तिके सूक्ष्मतत्त्वोंका निरूपण होगा।

अन्यान्य व्यापारोंकी तरह पन्थोंका भी एक इतिहास है। इस इतिहासका जितना भी परिज्ञान हो सके, उतना ही जान लेना उचित है। किस प्रकारसे उत्पन्न और विच्छिन्न हुए हैं, किस तरहसे उनकी उन्नति और ध्वंस हुआ है, उनकी सृष्टिके मूलमें व्यक्तिगत वा जातिगत ज्ञानकी कार्यकारिता कितनी है; यदि सम्भव हो, तो किन किन नियमोंके वशमें उनकी उन्नति हुई है, इसके निरूपण; शिक्षा, विज्ञान और तत्त्वविद्याके साथ उनकी कितनी घनिष्ठता है, राज्य और समाजके साथ उनका कितना सम्पर्क है तथा नीतिके साथ कितना सम्बन्ध है, उनका पारस्परिक ऐतिहासिक सम्बन्ध क्या है अर्थात् कौन किससे उत्पन्न हुआ है वा कुछ पन्थ एक विशेष पन्थसे उत्पन्न हैं या नहीं, इत्यादि तथा विश्वजनीन धर्मके साथ उनमेंसे प्रत्येकका सम्पर्क कैसा है? इन सब बातोंका जानना आवश्यक और उचित है। इस प्रकार की आलोचनासे पन्थोंका क्रमविकाश निर्धारित हो सकता है।

क्रमविकाश निर्धारण करनेसे पहले पन्थोंका संगठन पर विचार करना उचित है। प्रत्येक पन्थके दो प्रधान उपादान पाये जाते हैं—एक आनुभविक (Theoretical) और दूसरा आनुष्ठानिक (Practical); इनमेंसे पहलेको धर्मभाव और दूसरेको धर्मकार्य कहा जा सकता है।

धर्मभाव सम्भवतः अस्फुट धारणा (Aague concehtions), पौराणिक कथा (concrete myths), प्रशंसित रीति (PreCise dogmas) इत्यादिसे उत्पन्न हैं और वे प्रभाव धर्मधारोंसे प्राप्त हो सकते हैं। इसके सिवा सभी धर्मोंमें महाजनोपदेश (Doctrine) नामसे भी एक विषय पाया जाता है। ये उपदेश ही उन धर्मोंके प्रधान लक्षण हैं; परन्तु वे चाहे कितने ही महान् क्यों न हों, मात्र उन्हें ही धर्म नहीं कहा जा सकता। उनके सिवा प्रत्येक पंथमें कुछ नियम और आधार हैं, उनमें भी बहुतसे नैतिक (Moral) और आचारिक (Ethical) उच्चभावको लिये हुए हैं। इन दोनोंमें एक ऐसा सम्बन्ध है, कि एक दूसरेसे पृथक् कर लिया जाय तो फिर किसी भी धर्मकी सत्ता न रहेगी। इन दोनों भागोंको एकत्र करनेसे एक धर्मका संगठन तो होता है, किन्तु वह एक विश्वास (Belief) पर अनुप्राणित हुआ करता है। धर्मके संगठनके समय जो उपदेश और आचारादि संश्लिष्ट होते हैं, उन्होंसे इस विश्वासकी उत्पत्ति है।

इन विषयोंके सूक्ष्मतत्त्व जाननेके लिए एकमात्र तुलनात्मक आलोचना ही उपाय है। तुलनात्मक पद्धतिसे समालोचना करने पर पंथ दो भागोंमें विभक्त हो जाते हैं। १म इसका आनुष्ठानिक विभाग है, अर्थात् प्रत्येकके पौराणिक, औपदेशिक और आचरिक मूलतत्त्वोंका अनुसन्धान कर जिसके साथ जिसका जितना सादृश्य हो, उनके पारस्परिक विचार और आलोचना-द्वारा एक मूल स्थिर किया जा सकता हैं। इनीसे क्रमविकाश प्रदर्शित हो सकता है। इस क्रमविकाशके स्थिर करनेसे पहले, उन्होंने जिस नियमसे मानवके सभ्यता-विकाशके इतिहासका आविष्कार किया है, उस नियमसे मानवका आदिम कालमें एक स्थानमें वास, एक भाषाका व्यवहार इत्यादि स्वीकार कर प्रत्येक धर्ममें व्यवहृत शब्दादिका समत्व वा नैकट्य तथा आचारादिका समत्व वा नैकट्य निरूपित कर समस्त पंथोंको प्रथमतः दो प्रधान विभागोंमें विभक्त किया है—(१) प्राचीन आर्यधर्म और (२) सेमितिकधर्म।

यूरोप और एशियाको जितनी भी सभ्य जातियां आर्यजातिसे उद्भूत हुई हैं, उनमें एक ही धर्म था, ऐसा मान लिया गया है। यूरोपकी आर्यजातिमें जर्मनजाति अति प्राचीन है और एशियाकी आर्यजातिमें हिन्दूजाति। इसलिए उक्त उभय जातिके एकत्र

समयके धर्मको प्राचीन आर्यधर्म वा हिन्दू-धर्मनीका धर्म कहा जा सकता है। आर्योंके सिवा और जो सभ्य जातियां एशियाके पश्चिम खण्डमें वास करती हैं, उनकी आदिम अवस्थाके धर्मको उक्त नियमानुसार सेमितिक* धर्म कह सकते हैं।

प्राचीन आर्यधर्म—ऐतिहासिक कालमें जिन धर्मों वा पंथोंकी उत्पत्ति हुई है अर्थात् कनफूची मत, बौद्धमत, ख्रष्टमत, महम्मदीय मत तथा अन्यान्य सामान्य कुछ मत जिनके सृष्टिप्रभाव और ध्वंसका इतिहास मालूम हैं, उनकी उत्पत्ति और पारस्परिक सम्पर्कका निर्णय करना सहज है। किन्तु जो धर्म ऐतिहासिक हैं, जिनके सृष्टिप्रभाव और ध्वंसके विश्वासजनक विषयादि संग्रहीत नहीं है, उनके पारस्परिक सम्पर्कके निर्णयके लिए उन्होंके और आचार व्यवहारादिकी तुलना करना आवश्यक है। अध्यापक मोक्षमूलरका कहना है, कि भाषागत सादृश्यके निरूपण-द्वारा जैसे मानव-इतिहासके अनेक जटिल विषय मीमांसित हुए हैं, उसी प्रकार इसके भी हो सकते हैं। इस प्रकारसे पाश्चात्य विद्वानोंने भाषातत्त्वके अवलम्बन पर मीमांसा की है, कि प्राच्य अन्य जातियों (भारतीय आर्यगण, पारसिक आर्यगण, फ्रिगीय (Phrygion) आर्यगणके तथा पाश्चात्य आर्यों (ग्रीक, रोमक, जर्मन, (Norseman) और लेटो स्लाभीय (Lettoslavs) केल्ट (Celts) आदि जातियोंके जो ईषत् विभिन्न धर्म थे, वे सब उक्त प्राचीन आर्य वा हिन्दूजर्मनीय धर्मसे उद्भूत हुए थे। उसके बाद उनमेंसे कौनसा धर्म किससे निकला और कैसे उसका क्रमविकाश हुआ, इसका निर्णय जैसा भी हो पाया है, परवर्ती (क, ख) तालिकामें दिया जाता है; देख लें। यहां एक बात विशेषरूपसे कही जाती है; वह यह है कि पाश्चात्य विद्वान् हिन्दुओंकी तरह वेदको अभ्रान्त वा अपौरुषेय नहीं मानते। वे किसी भी ग्रंथको ऐसा नहीं मानते; सबको ऐतिहासिक दृष्टिसे देखते हैं। और तो क्या, बाइबिलको इसी निगाहसे देखते हैं। उनकी इस दृष्टिमें हिंसा वा कुटिलता नहीं है। ऋग्वेदको उन्होंने ही जगत्में सर्वापेक्षा प्राचीन और प्रामाण्य ग्रंथ माना है। ऋग्वेदके विषयमें उन लोगोंका कहना है, कि इसके प्राचीनत्वके विषयमें लोगोंका जितना विश्वास है, वास्तवमें यह उतना प्राचीन नहीं है। इसमें भी प्राचीनतम कालका वर्णन पाया जाता है। उस प्राचीनतम कालके धर्मविश्वासादि और आचारादिके साथ याज्ञिक कालके आचारादिकी मिश्रण-अवस्थामें याजक, होता, उद्गाता, ब्रह्मा आदि द्वारा ऋग्वेद गठित हुआ है। जरथुस्त्रके प्राचीन पारसिक धर्मके विषयमें भी ऐसा कहा जा सकता है। प्राचीन आर्यशास्त्रकी रीतिनीतियोंने अन्य आकारमें संगठित हो कर उक्त पंथकी सृष्टि की है। अध्यापक डेमेष्टेटर (M Jar Demesteter)-का कहना है, कि जरथुस्त्र नामक एक वा अनेक धर्मसंस्कारक प्राचीन आर्य राजनीतिको अपने अपने मतानुसार परिवर्त्तन कर उक्त रूपमें गठन कर गये हैं। वैदिक और जरथुस्त्रीय पंथमें जो एकत्व वा नैकट्य दृष्टिगोचर होता है, उससे अनुमित होता है कि किसी समय वही प्राच्य आर्योंका साधारण धर्म था। (क, ख तालिकामें उसी धर्मको "प्राच्य आर्यधर्म" कहा गया है।) यह प्राच्य आर्यधर्म ईरानीय और 'भारतीय' के भेदसे दो प्रकारका हो गया था। ईरानीयसे जरथुस्त्रीय और भारतीयसे वैदिक धर्मकी सृष्टि हुई है। विशेष विवरण (क, ख) तालिकामें देखो।

सेमितिकधर्म—सेमितिक धर्मके विषयमें पाश्चात्य विद्वान् अब तक भी विशेष आलोचना नहीं कर पाये हैं। कारण, आलोचनाके योग्य अभी तक उतनी सामग्री संग्रहीत नहीं हुई है। ईसाई-धर्मके पहले अरमीयोंके (Aramaeans), महम्मदीय धर्मके पहले प्राचीन अरबियों और प्राचीन हिन्दुओंके जो धर्म प्रचलित थे, उनकी आलोचना द्वारा जितना सम्भव था, उतनी गवेषणा करके देखा गया है कि प्राचीन आर्यधर्मकी तरह उनका भी एक मूल था; विशेषतः भाषागत सादृश्य,

* यूरोपीय मतसे नोयाके तीन पुत्र थे—होम, सेम और जाफेत। हामके वंशधर अफ्रीकामें और जाफतके वंशधर पूर्वाखण्डमें वास करते रहे (इसी वंशसे आर्योंकी उत्पत्ति है)। सेमके वंशधर पश्चिम एशियामें रहे। इन्हीं सेमके नामानुसार 'सेमितिक' (Semitic) शब्दकी उत्पत्ति हुई है। आर्योंके सिवा अन्य सभ्यजातियोंके लिए यही शब्द प्रयुक्त होता है।

आचारगत सादृश्य और नैकट्यको छोड़ देने पर भी समस्त सेमितिक धर्मोंमें कुछ विशेषताएं यह पाई जाती हैं कि उनमेंसे प्रत्येक मानव और ईश्वरमें राजा प्रजा वा प्रभु दासका सम्बन्ध समझते थे। उनमेंसे प्रत्येक का आनुष्ठानिक भाग बहुत थोड़ा था और वे हो एकेश्वरवादी थे। अरब और इसरायेल देशके धर्मका शेष तथ्य एकेश्वरवाद है। सेमितिक धर्मका क्रमविकाश (ग) तालिकामें देखना चाहिए।

अफ्रीकाका आदिम धर्म—मिस्रके प्राचीन पंथ सेमितिक वा आर्य पंथोंके लक्षणाक्रान्त नहीं हैं। इनमें प्राचीन और आधुनिक उपादान इस ढंगसे मिश्रित है, कि उससे बहुतोंने अनुमान कर लिया है कि आर्य और सेमितिक जातिके पार्थक्य संघटित होनेसे पहले जब वे एक जातिके रूपमें अवस्थित थीं, उस समय सम्भवतः उनके धर्मपंथोंका आकार कुछ कुछ इसी ढंगका था। बहुतोंने इस वृहत् जातिको भूमध्य सागरोपवर्त्ती वा ककेशीय जातिके नामसे प्रसिद्ध करना चाहा है। और बहुतसे इस अनुमानको स्वीकार करनेके लिए तैयार भी नहीं हैं। उनका कहना है, कि नोयाके तीन पुत्र हाम सेम और जाफेत हो हामितिक, सेमितिक और जाफेतिक नामसे तीन जातियां कल्पित हुई थीं, उन सबका किसी जगह एकत्र मिल कर रहना और उससे किसी समयमें एक वृहत् जातिका अनुमान करना केवल कल्पनामात्र है। कारण इसका कोई निदर्शन नहीं मिलता। शेषोक्त विद्वानोंका कहना है, कि प्राचीन मिस्रके विषयमें हमें जितना मालूम है, उससे कहा जा सकता है कि मिस्रके लोग उस समय 'पुन्त' (Punt) नामको एक जातिके साथ वाणिज्यादि करते थे। बाइबिलमें इस जातिका 'फुत्' (Phut) नामसे उल्लेख है। इन पुन्तोंके साथ उनके धर्ममतका सादृश्य था; और तो क्या पुन्तोंके देशको (पश्चिम अरबको) 'पवित्रभूमि' (*Ta* neter) कहते थे। कुशों' (Cushites)-के विषयमें भी यह बात कही जा सकती है। मिस्रके दक्षिणका आदिम जाति 'कुश' नामसे अभिहित होती थी। सेमितिक जातिके आनेके पूर्व कालवर्ती इथियोपीय और कानानवासी जाति भी इसी प्रकारसे मिस्रोंके साथ जातितत्त्वानुसार वा मौलिक उत्पत्तिके अनुसार निकट सम्बन्धविशिष्ट मालूम पड़ती है। बाइबिलके जेनिसिस् नामक खण्डमें 'फुत्' और कुशोंको भी उन्हीं जातियोंमें शामिल कर लिया गया है। इन चार जातियोंके एकत्व पर विचार करनेसे, उनके धर्मके सम्बन्धमें यह अनुमान होता है कि किसी समय सेमितिक धर्मपन्थकी तरह इनका भी एक स्वतन्त्र पन्थ था, और उसे अब 'सेमितिक धर्म' कह सकते हैं। दक्षिण-मेसोपोटेमियाके धर्मपंथको आक्कादीय वा सुमेरीय (Accadian or Sumerian) आख्या दी गई है। यह भी अनेकांशमें मिस्रके धर्मानुकूल है। इमोशग (Imoshag) वा बर्बरों (Berbers)-में इसलाम-धर्मके प्रचारसे पहले जो धर्म था, उसकी भी प्रायः मिस्रके पंथके साथ घनिष्टता थी, ऐसा अनुमान किया जाता है। इमोशगगण लिबीय (Libyons),गेतुलीय (Gaetulions) मरितेनीय (Mauriteneans) और नुमिदीय (Numidians) जातियोंके पूर्व पुरुष थे। इसीसे गवेषणा द्वारा ज्ञान हो सकता है कि मिस्रजातिके अनेक आचार व्यवहार इनमें भी प्रचलित हैं। परन्तु वास्तवमें ये सभी जातियाँ किसी समय मिस्र-जातिसे संश्लिष्ट थीं या नहीं वा उनसे उत्पन्न हुई हैं वा नहीं, अथवा प्राचीन कालमें मिस्रजातिके प्रभावसे इनमें उक्त विषय अनुकरणादि द्वारा प्रविष्ट हुए वा नहीं; इत्यादि बातोंका निर्णय करना कठिन है।

पूर्वोक्त विषयोंको गवेषणा-पूर्वक आलोचना करके पाश्चात्य विद्वानोंने यहां तक स्थिर किया है, कि मिस्रके धर्म-पंथोंके जितने भी भौतिक आचार (Magic rites) और जैववादिक प्रथाएँ (Animistic customs) देखनेमें आती हैं, वे सब अफरीकाके सर्वत्र समस्त प्राचीन धर्मोंमें प्रायः समान हैं। बहुतेरे, इस प्रकारके एकत्व वा सादृश्यको देख कर ऐसा भी अनुमान करते हैं और उसको बहुतसे विश्वास भी करते हैं, कि किसी समय एशियावासी औपनिवेशिकोंने ऐतिहासिक कालारम्भके बहुत पहले इन जातियोंको जीत कर, उन्होंने मिल-जुल कर वास किया था, सम्भवतः उन्हींके द्वारा इनमें ऐसे भावानुभाव प्रचारित हुए थे। यदि ऐसा ही है, तो

मानना होगा कि मिस्रकी सादृश्ययुक्त धर्मपंथ निग्रिसीय धर्ममतसे उद्भूत हैं। इसके सिवा अफ्रीकाके अन्यान्य मौलिक धर्मोंकी आलोचना करके भी यही स्थिर किया जाता है कि उनमें प्रत्येकका प्रत्येकके साथ मेल है पाश्चात्य विद्वानोंने गवेषणा द्वारा अफ्रीकाके सम्पूर्ण धर्मपंथोंको प्रधानतः चार भागोंमें विभक्त किया है; जैसे—(१म) कुशीयमत (Cushites) जो मिस्रकी उत्तर-पूर्वीय जातियोंमें प्रचलित है, (२य) असली निग्रिसीयमत (Nigritian proper) जो मध्य और पाश्चात्य अफ्रीका-वासी निग्रोमें प्रचलित है, (३य) बाण्टू वा काफ्रेरिय मत (Bantu) जो काफिरोंमें प्रचलित है, और (४र्थ) खोईखोइन वा हटेण्टटीयमत (Khoi-Khoin) जो दक्षिण अफ्रीकाके हटेण्टट और बुशमैनोंमें प्रचलित है। फिलहाल इन चारों विभागोंका छानबीनके साथ वर्णन नहीं किया जा सकता, कारण स्थानाभाव है। १म विभागके लक्षणादिके सम्बन्धमें पाश्चात्य विद्वान् अब तक विशेष कुछ स्थिर नहीं कर सके हैं। २य विभागके प्रधान लक्षण प्रेतरूपी पुरुषोंकी अर्चना, वृक्षार्चना, पश्वार्चना (विशेषतः सर्पार्चना) आदि हैं। इनमें पौराणिक आख्यान (Mythology) नहीं हैं ; और है भी तो अति सामान्य। उन्हीं परसे पाश्चात्य विद्वान् अनुमान करते हैं कि इनमें एकेश्वरवादकी क्षीण भित्ति भी है। प्रायः सभी जातियां एक प्रधान देवताका अस्तित्व स्वीकार करती हैं। इस देवताकी सर्वदा पूजार्चना करनेकी आवश्यकता नहीं होती। बहुतोंके मतसे ये प्रधान देवता ही स्वर्गवासी एवं वृष्टि वा सूर्यके अधिष्ठाता हैं। चन्द्रोपासना सर्वापेक्षा विस्तृत है और गाभीके प्रति अत्यन्त भक्ति सर्वत्र देखनेमें आती है। ३य विभागका मत, जिसे हम बाण्टू मत कहते हैं, प्रेतोपासना (Religion of spirits) मात्र है। जिन प्रेतोंकी काफिर लोग अर्चना करते हैं वे उनके मृत पुरुषोंके प्रेतोंसे विशेष विभिन्न नहीं हैं। परन्तु समस्त प्रेत एक प्रेतनायक (Ruling spirit)-के अधीन हैं। ये प्रेतनायक जातिभेदसे विभिन्न हैं और उन उन जातियोंके मूल आदिपुरुष समझे जाते हैं। यह प्रेतोपासना प्रथमतः चार भागोंमें विभक्त है प्रेत-नायकोंके नामानुसार ही ये विभाग कल्पित होते हैं। इन प्रेतनायकोंकी उपासना मूलतः चन्द्रोपासना मात्र है। ४र्थ विभाग खोई-खोइन मतमें हटेण्टटोंके प्रधान देवताका नाम तानी वा सुनिकोआब (Tani or Tsunikoab) अर्थात् 'टूटे घुटनोंका प्रेत' (wounded-knee) और नामाक्वोयाओंके प्रधान देवताका नाम हियेत्सोएइबिब (Heitsi-eibib) अर्थात् 'काष्ठमुख-प्रेत' (Wooden Face) है। बाण्टुओंकी तरह ये देवता भी तदुपासक जातिके आदिपुरुष समझे जाते हैं और चन्द्रमूर्ति हैं। अन्धकारके अधिष्ठाता प्रेतके साथ इनका बराबर युद्ध होता रहता है। खोई-खोइन मतमें जैवोपासना नहीं है।

मध्य एशियाका धर्म—जातितत्त्वविदोंके मतसे चीन, जापान और कोरियावासी समस्त तूरान जातियां तथा मलय-जाति, अमेरिकाकी असभ्य जाति, उत्तर-सागरोपकूलवर्ती एस्किमो, पाटागोनीय, फिउजीय (Fugians) आदि सभी जातियां एक बृहत् जातिके अन्तर्गत हैं। इस बृहत् जातिको वे मङ्गोलीय जाति कहते हैं। अमेरिकाके मौलिक धर्मके साथ तूरानके मौलिक धर्मका सादृश्य देख कर अध्यापक मूलर आदिने इनका ऐकात्म्य स्वीकार किया है। आश्चर्यका विषय यह है कि इन बहु-दूरवर्ती जातियोंमें प्रधान देवताओंके नाम प्रायः एक-से हैं। तूरानीय और जापानीय जातिमें देवता और मानवका जैसा सम्बन्ध कल्पित है, उनकी अपेक्षा बहुत उन्नत चीनवासियोंमें भी वैसा ही सम्बन्ध कल्पित होता है। चीनवासियोंके प्रधान देवता 'सियेन' (Sien) समस्त देव और मानव-राज्यके सम्राट् हैं; मानवगण प्रजाकी तरह उनके दण्डाधीन हैं। इनमें भी पितृपुरुषोंके प्रेतों पर भक्ति पायी जाती है और अत्यन्त श्रद्धाके साथ उनकी अर्चना की जाती है। इन धर्मोंके प्रधान लक्षण ये हैं—भौतिक इन्द्रजाल पर विश्वास, झाड़-फूंक, कवच, तावीज आदि पर विश्वास। अधिकांश विद्वानोंने इसे विश्वप्रेतवाद (Shamanism) नामसे अभिहित किया है। इस धर्ममतने क्रमशः अभिव्यक्त हो कर चीनमें त्रिविध मूर्त्ति धारण की है,—१म प्राचीन पंथ, २य कनफुचीमत (Confucianism) और ३य ताओमत (Taoism

ये तीनों पंथ बौद्धमतके प्रभावसे संश्लिष्ट हो गये हैं। जापानमें भी इसी प्रकार त्रिविध अभिव्यक्त हुए हैं, १म कमि-नो-मद्सु (Kami-no-moasu) नामक प्राचीन पंथ। जापानी भाषामें इसका अर्थ 'पंथ' (The way) अर्थात् देवोपासनाप्रणाली होता है; चीनी भाषा में इसे शिन्ताओ (Shintao) कहते हैं। परन्तु चीनों के मतमें प्रेतोपासनाको देवोपासना नहीं कहा है। मिकाडो नामके याजकगण इनके प्रधान हैं। २य कनफुची मत हैं कि यह ईसाकी सातवीं शताब्दीमें चीनसे जापानमें प्रविष्ट हुआ था। उसके बाद ३य बौद्धमत है जो कोरियासे यहां प्रचलित हुआ था। परन्तु ईसाकी छठी शताब्दीमें वह इस देशसे बिलकुल दूरीभूत हुआ था और फिर ईसाकी सातवीं शताब्दीमें उसने वहां प्राधान्य पाया।

तूरानीय धर्ममें फिनिक शाखाकी सभी जातियां यम (Yum) युम्मल (Yummal), युम्बल (Yambal) और युमला (Yumla) नामक एक प्रधान देवताकी अर्चना करती हैं। लाप्लैण्डवासियोंके तथा एस्थोनीय और फिनलैण्डवासियोंके धर्म मतमें जर्मन वा स्कान्डनेभियाके धर्म मतके पौराणिक उपादान यथेष्ट प्रविष्ट हुए हैं। इतना होने पर भी शेषोक्त दो जातियोंके धर्ममत ही तूरानीय धर्मके पुष्ट उदाहरण हैं, इसमें सन्देह नहीं। महम्मदीय मत ग्रहण करनेसे पहले तुरुष्क देशका आदिम धर्म भी अधिकांशमें तूरानीय लक्षणाक्रान्त था। एस्किमो लोगोंके धर्ममें अमेरिकाके मौलिक धर्म बहुतसे उपादान घुस पड़े हैं। साबिरियाके विश्वप्रेतवाद (Shamanism)में अमेरिकाके उपादान मिश्रित होने पर एस्किमोय धर्ममतकी सृष्टि हुई है। इनका प्रेतराज्य समुद्र, अग्नि, पर्वत और वायुमण्डलमें आवद्ध है। इनके प्रेतनायक वा प्रधान देवताका नाम 'तरगर्सुक (Torgarsuk) है।

अमेरिकाके मौलिक धर्मका विभाग इस प्रकार है—

१। एस्किमो-मत, यह कनाडासे मेक्सिकोको उपसागर तक विस्तृत है। इन देशोंकी विभिन्न जातियां किचेमनिटु (Kitchemanitoo), मिचाबो (Michabo), वाहकोण्डा (Wahconda), अण्डुआगुई (Anduagui) और ओकी (Oki) नामक प्रधान देवताकी उपासना करती है। ये स्वर्गवासी वायुदेवता हैं। अन्य समस्त देवता और सूर्य चन्द्र भी इनके अधीन हैं। इन जातियोंमें प्रत्येक वंशके एक एक इष्टदेवता हैं, जो एक एक विशेष पशुमन्त्र हैं अर्थात् किसी वंशको गाय, किसीको बकरी और किसी वंशका गधा इष्ट देवता है।

२. जेतक मत (Aztec arce)—अजतीक, तलतेक, नाहुआ आदि कुछ जातियां इसी मतको मानती हैं, जिनका मेक्सिको बहुवार ह्रदसे निकारागुआ तक वास है। इस मतमें मेक्सिको वासियोंकी उपासना-प्रणालीके बहुतसे महान् भाव संयोजित हैं।

३. औरटलिगोंका प्राचीन मत—इसमें युकेटनवासी मयजाति (Mayas in Yucatan) और नाचेज (Natchez) जाति शामिल है। इस मतको पौराणिक गल्पांश (Mythology) बहुत विस्तृत और कौतूहलोद्दीपक है, जिनमें अनेक महान्-भाव भी हैं। यहांकी सभ्यताके विस्तारके साथ इन महान्-भावोंमें बहुत कुछ संकीर्णता आ गई है।

४, मुयस्कामत (Muyscas)—इस धर्मको माननेवाले 'चिबचा' (Chibchas) कहलाते हैं। यह मत दक्षिण-अमेरिकामें प्रचलित है। निकारागुआ-वासियोंका मत ही इनके मतकी भित्ति है। निकारागुआ-वासियोंके प्रधान देवता 'फोमागाजदाद' हो (जो कि समस्त मनुष्यके सृष्टिकर्त्ता और अपने प्रतिदेवता चन्द्रके सृष्टिकर्त्ता हैं) इनमें 'फोमागाटा' नामक प्रधान देवता हुए हैं। इन लोगोंने अपेक्षाकृत सभ्य हो कर 'बोचिका' नामक देवताको प्रधान आसन दिया है और अब 'फोमागाटा'को उसका 'शत्रु' समझने लगी हैं तथा चन्द्रको भी शत्रुकी भार्या मानने लगी हैं। इनमें इन उद्भावना और कल्पनाओंका प्रचार पेरुवासी इङ्कोंके संसर्गसे नहीं हुआ है।

५, कुइचुआ-मत (Quichua)—अयमरा (Aymara) आदि जातियोंमें यही मत प्रचलित है। पेरुवासी इङ्कोंकी सूर्योपासना इनमें प्रचलित है। इन लोगोंने स्वयं ही अपने प्राचीनधर्मका संस्कार कर अब उसे प्रायः अध्यात्मवाद (Theism) तक ले गये हैं, परन्तु अभी तक एकेश्वरवाद (Monotheism) अव-

लङ्घन नहीं कर सके हैं। इनके धर्ममें इस अभिव्यक्ति-के मूल पर एशिया वा यूरोपका किसी प्रकारका प्रभाव नहीं पड़ा है। इनकी धर्मोन्नतिको सम्पूर्ण तथा प्राकृतिक उन्नति कहा जा सकता है।

६. युवप्रिय-कारिब और अजोआकोंका मत—इनके विषयमें विशेष कुछ मालूम नहीं हो सका है। ब्राजिल-वासियोंने टुपिगुआरोनो (Tupiguarono) नामक प्रधान देवताकी कल्पना की है।

तूरानीय धर्मको मलय-पालिनेसीय शाखामें सामान्य सामान्य विभेद देखनेमें आते हैं, जिनमें मलयमत, पोलि-नेसीयमत, मेलानेशीयमत आदि प्रधान हैं। ये सभी मत मूलतः प्रायः एकसे हैं, किन्तु अब तक इसकी मीमांसा नहीं हुई है। १म, मलयमत—मलयद्वीपपुञ्जमें पहले ब्राह्मण्यधर्म था, जिसका सम्पूर्ण रूपसे प्रभाव देखनेमें आता है। इसके पहलेकी अवस्था अज्ञात है। उसके बाद बौद्धमत, फिर महम्मदीयमत और फिर ईसाई मतका प्रचार हुआ था। २य, पोलिनेसीयमत—मालागसी (Malagasy) और मदागास्कर-वासी होवाओंमें (Hovas) प्रचलित रीति-नीति ही प्राचीन पोलिने-सीय धर्मके सदृश है। इस धर्मका प्रधान लक्षण (Taboo) 'ताबू' वा पवित्रीकरण है। आदर विशेषके द्वारा व्यक्ति वा वस्तुको ये चिरपवित्र बना लेते हैं, एक बार कोई भी विषय पवित्रीकृत होने पर फिर वह किसी प्रकार भी अपवित्र नहीं होता। मदागास्करवासियोंमें रैडामा द्वारा प्रवर्तित संस्कारके पहले इस प्रथाका विशेष आदर था। मलयद्वीपमें इसे 'पामली' (Pamali) कहते हैं और अष्ट्रेलियामें 'कुइनयुण्डा' (Kuinyunda)। पोलिनेसीय मतमें प्रधान देवताका नाम तारोआ वा तङ्गारोआ (Taroa or Tangaroa) है। ३य, मेलानेसीय-मत—इसमें प्रधान देवताका नाम 'एण्डेङ्गुई' (Ndengui) है।

भारतवर्षके दाक्षिणात्य प्रदेशमें मुण्डा, गोंड़, सिंहली आदि द्राविड़ीय जातिकी धर्मालोचना करने पर हिन्दुओंका प्राधान्य ही अधिक पाया जाता है।

आनुष्ठानिक धर्म पन्थाओंका विवरण एक प्रकार-से हो चुका। इस विषयमें और भी एक ज्ञातव्य विषय है। सभ्य-जगत्‌में अब तक वर्तमान वा लुप्त जितने भी धर्म हैं, उनको दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। जो धर्म उन्नतिशील एवं अधिकतर महान् भाव-समन्वित हैं, उनका एक विभाग और जिन धर्मोंमें मौलिक अवस्थाके भाव अधिक हैं और महान् भावोंका अपेक्षाकृत अभाव है, उनका द्वितीय विभाग बनाया जा सकता है। प्रथम विभागको 'सुगठितधर्म' (Organized religions) कह सकते हैं, इस श्रेणीमें ब्राह्मण्य-धर्म (हिन्दूधर्म), जैनधर्म (आर्हतधर्म) बौद्धधर्म, खृष्टीयधर्म, महम्मदीयधर्म तथा अन्यान्य दो एक धर्मोंको शामिल किया जा सकता है। द्वितीय विभागका नाम 'अगठितधर्म' (Inorganized religions) कह सकते हैं, इस श्रेणीमें जापानके आदिमधर्म, दाक्षिणात्यके अनार्य धर्म, अरबके प्राचीनधर्म इत्यादिकी तथा वर्तमान असभ्य जातियोंके धर्मोंकी गणना हो सकती है। इन समस्त धर्मोंको सङ्गठन अभिव्यक्तिवादके नियमान्तर्गत है; आलोचना द्वारा यह प्रमाणित हो चुका है कि अति सुगठित धर्म भी मूलतः किसी एक अगठित धर्मसे उद्भूत है। समाजकी उन्नतिका अविच्छिन्न सम्बन्ध वर्तमान है। सामाजिक प्रयोजनानुसार ही धर्मके आचार-व्यवहारका तथा बहुत कालसे प्रचलित मूल सूत्रोंका भी परिवर्तन हुआ करता है। अधिक पुरातन अवस्थामें किसी धर्मकी बात पकड़ कर विचार करनेकी अपेक्षा ऐतिहासिक कालके अन्तर्गत दो एक सुगठित धर्मके आविर्भावके विषयमें पाश्चात्य विद्वानोंने जो मत प्रकट किया है, उसीकी आलोचना करना सुगम है, इस लिए यहां उसीका उल्लेख किया जाता है।

पाश्चात्य विद्वानोंने स्थिर किया है, कि ब्राह्मण्य-धर्मके चरम प्रभावके समयमें, जब ब्राह्मणोंके प्रादुर्भावसे अन्यान्य वर्ण यन्त्रणा और अत्याचार सहने लगे, तब अधिकांश मनुष्योंके तत्कालीन मनोभावोंके लिए उप-योगी अहिंसाधर्ममूलक बौद्धमतका प्रचार हुआ। इस मतमें वर्णगत आचार-व्यवहारके पक्षपातको छोड़ कर केवल ब्राह्मण्य धर्मकी नीति और तत्त्वज्ञान मात्र गृहीत हुआ। इस प्रकारसे अनेक मतोंका विकाश हुआ। आर्यधर्मकी भारतीय शाखाके दो धर्मोंकी बात कही

गई है। ईरानीय भाषामें भी ऐसा ही हुआ है। जो द्वैतवाद ऋग्वेदमें प्रच्छन्नभावसे था, वह जरथुस्त्रीय धर्मके संस्कारके समय "जन्दअवस्ता" ग्रंथमें गृहीत हुआ। आर्यधर्मके विषयको छोड़ कर यदि सेमितिक धर्मकी ओर दृष्टिपात किया जाय, तो वहाँ भी ऐसी ही दीख पड़ती है। ब्राह्मण्य धर्मके साथ बौद्धधर्मका जैसा सम्पर्क है, जुड़ाके प्राचीन धर्म (judaism)-के साथ खृष्टीय धर्मका भी ठीक वैसा ही संबन्ध है। आर्य धर्ममें अब बौद्धधर्मकी भी ठीक वैसी ही दशा है। दोनों ही जन्मस्थानसे दूरीभूत एवं भिन्न देशवासियों द्वारा अवलम्बित हुए हैं। बुद्धको मृत्युके प्राय: २शताब्दी बाद महाराज अशोकने तथागतावलम्बी हो कर बौद्ध धर्मके आचार व्यवहारकी विधि-व्यवस्था स्थिर करनेके लिए एक सङ्घको बुलाया था। इसी तरह ३२५ ई०में रोमक-सम्राट् कनृष्टण्टाइनने खृष्टीय मत-संग्रहके लिए एक सङ्घ स्थापन किया था, जो 'निकीय-समिति' (Council of Nikæa)के नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसी समिति द्वारा 'नाइसिन रीति'(Nicene-creed) विधिबद्ध हुई थी। अशोक-सङ्घके फलस्वरूप जैसे बौद्धमतकी महान्नीति और सामान्यत: जीवननिर्वाह विधि संग्रहके साथ साथ भिक्षु श्रमणादिकी पूजा, बुद्धचिह्नावशेषकी अर्चना, धर्मयन्त्र सेवा, जपमाला-व्यवहार, बौद्ध-याजकोंका श्रेष्ठत्व स्वीकार, उनके प्रति देवतुल्य भक्ति प्रदर्शन, प्रधान याजक लामाके प्रति बुद्ध-सदृश सम्मान प्रदर्शन इत्यादि आचार व्यवहार प्रचलित हुए थे, उसी प्रकार रोमक याजकों द्वारा प्रतिष्ठित आडम्बर-बहुल खृष्टीय मत (Latin Church)-मेंसे नवनीति (New Testament) का स्वातन्त्र्य साधन भी यूरोपीय राज-शक्तिकी सहायताका फल है। जरथुस्त्रीय मत जैसे वैदिक बहु-देववादका प्रतिषेधक है, उसी प्रकार महम्मदीय मत भी, ६ठी शताब्दीमें प्रचलित पौत्तलिक आचारपूर्ण खृष्टीय मतका प्रतिषेधक है।

सुगठित धर्मोंके सम्बन्धमें जो कुछ भी कहा गया है, वह असगठित धर्मोंके विषयमें भी कहा जा सकता है। हां, इतना अवश्य है कि असगठित समाजके इतिहासके अभावके कारण दृष्टान्त द्वारा प्रमाणित करनेके लिये बहुत तर्क वितर्क उद्धृत करने पड़ेंगे। समाज आदिम अवस्थासे जैसे धीरे धीरे उन्नति प्राप्त करती है, सामाजिकोंका मनोभाव भी क्रमश: उसी प्रकार महान् भाव धारण करनेमें समर्थ हो जाता है और साथ साथ उन समाजोंके धर्मोंमें भी नैतिक व्यावहारिक महान् भाव स्थान पाने लगते हैं। इस क्रमविकाशमें भी एक स्तरसे दूसरे स्तरमें विशेष वाक्यार्थका निरूपण किया जा सकता है। पाश्चात्य विद्वानोंने मौलिक भावापन्न वर्तमान धर्मोंकी अवस्थाकी पर्यालोचना कर इस तरहके स्तरोंका निर्देश किया है। भाषातत्त्वविद् डा० सेस प्रमुख दार्शनिक विद्वानोंने इस मतका पोषण किया है। इनके मतसे मनुष्यके हृदयमें ईश्वरके विषयमें एकत्वका ज्ञान (Unity of God) होनेसे पहले ही वह धर्मके छः स्तरोंको अतिक्रम करता है और उन छः स्तरोंके बाद उसके हृदयमें धर्मका चोरमलाभ "एकेश्वरवाद' अभिव्यक्त होता है। डा० सेसके मतसे मौलिक धर्मके छः स्तर इस प्रकार है—१म पितृप्रेतोपासना (Ancestor-worship), २य जड़देववाद * (Fetishism), ३ पशुदेववाद (Lotemism), ४ र्थ मिश्रप्रेतवाद (Shamanism), ५म अद्वैतवाद (Henotheism), ६ष्ठ द्वैतवाद वा बहुदेववाद (Polytheism)। यहां डा० सेसने इन विभागोंका जैसा पौर्वापर्य निर्णय किया है, वैसा ही लिखा गया है। अध्यापक फ्लेडेरर (Prof-Pfliederer) आदि विद्वानोंने अन्य प्रकारसे स्तरोंकी कल्पना की है। इनके मतसे, सर्वप्रथम आदिम प्राकृतिक भाव (a kind of indistinct chaotic naturism) था, उसके बाद उसीसे प्रेतवादकी (Spiritism) उत्पत्ति हुई; फिर उससे जैववाद (Anthropomorphic Polythism) और जैववादसे देवश्रेष्ठवाद (Henotheism) उत्पन्न हुआ। अध्यापक सी० पी० टियल (Prof C. P. Tiele) आदि विद्वानोंने धर्मके जो विभाग किये हैं, बहुतसे उसे ही न्यायसङ्गत समझते हैं। उन लोगोंके मतसे, प्रथम जैवदेववादके (Animism) प्राधान्य और बहुप्रेतदेवविशिष्ट ऐन्द्रजालिक धर्म

* जड़वादका अर्थ Materialism नहीं है।

(Polydacmonistic magical religions), द्वितीय बहुदेवात्मक जातीयधर्म (Polytheistic national religions), ३य आत्मगत धर्म (Monistic) वा अध्यापक पुइनीके मतानुसार Moneotheistic religions और ४र्थ सार्वजनीन वा विश्वजनीन धर्म (Universal or world-religions) है। डा० डी० ब्रोसेस (Dr. De Brosses) ने गत १८वीं शताब्दीमें जड़देववाद (Fetishism)-को ही आदिम अवस्था माना है; परन्तु अध्यापक मूलरने इसे गलत बता कर तर्क वितर्क द्वारा पितृप्रेतोपासनाको ही पूर्ववर्त्ती अवस्था सिद्ध किया है।

१म। पितृप्रेतोपासना (Ancestor-worship)—मानवके अन्तःकरणमें धर्म-विषयक जो सहजात बुद्धि प्रसुप्तभावसे विद्यमान थी, उसका प्रथम विकाश पितृप्रेतोपासनासे ही है। असभ्य अवस्थामें मूढ़ मानव चक्षुदृष्ट और स्वप्नदृष्ट व्यापारके पार्थक्यको न समझ दोनोंको सत्यता और सत्ता समान रूपसे अनुभव करता है। इस स्वप्नमें वह मृत आत्मीय स्वजनको, जीवितावस्थामें उन्हें परिच्छदसे विभूषित देखता है। इस कारण, विद्यमानताका अनुभव करता है। इस अवस्थामें उसके मनमें मृत आत्माके अवस्थान, भ्रमण, गमन इत्यादि कार्योंकी आलोचना होते रहनेसे क्रमशः अलौकिक प्रभावकी बातें उदित होती हैं। इस प्रकारसे मृत आत्माओंमें अलौकिक प्रभावोंको जोड़ कर, असभ्य मानवका मूढ़ मन जीवितोंके सदृश उनको भी सचल, सज्ञान, सकाम, सक्रिय प्रेतरूपमें कल्पना कर लेता है। अन्तमें वह स्वप्नमें उनके दर्शनके साथ अपने दैनिक जीवनके कार्यफलादिका मिलान कर शुभाशुभका निर्णय करनेकी कोशिश करता है। इस चेष्टाके फलसे क्रमशः वह उस प्रेतोंमेंसे किसीको शुभदाता और किसीको अशुभदाता समझ उनमें उपकारी बन्धु और अपकारी शत्रुकी कल्पना कर बैठता है। फिर क्रमशः परस्पर फलाफलकी आलोचना कर प्रेतविशेषके गुणविशेषको चिरबद्ध कर डालता है। इस तरह जब प्रेत, प्रेतका कार्य, क्षमता इत्यादिका उद्भावन-कार्य समाप्त हो जाता है, तब वह उन अनिष्टकारी प्रेतोंकी गुणावली, प्रभाव और कार्योंका पुनः पुनः स्मरण कर अपने आप भीत और आकुलित होने लगता है, एवं क्रमशः उनकी तुष्टिके लिए बलि, पूजा, उपहारादि देनेकी कल्पना करता रहता है। वह समझता है कि जैसे जीवित व्यक्तिके असन्तुष्ट होने पर उसे उपहारादि दे कर सन्तुष्ट किया जा सकता है, उसी प्रकार इन प्रेतोंको भी उपहारादि द्वारा तृप्त कर देने पर उनसे अनिष्टकी आशङ्का नहीं रह सकती। अब प्रेतोंके वासस्थानको निर्णयकी आवश्यकता पड़ी, कारण स्थान निर्णीत हुए बिना उपहारादि दिये कहाँ जाँय? इसलिए उस समयके विभिन्न मानव-हृदयोंने अपना अपनी रुचिके अनुसार एक एक प्रेतके लिए एक एक जड़ पदार्थमें (वृक्ष पर्वत नदी आदिमें) वा एक एक जीवदेहमें उनके आवासकी कल्पना कर ली। इस कल्पनाके साथ ही प्रेतोंके मृदु वा भीषण गुणोंके साथ कल्पित वासस्थान (जीव वा जड़) की अवस्थाके घनिष्टत्वका भी अनुमान किया गया। उत्तर अमेरिकामें रहनेवाली हुरन जाति (Huron) एक जातीय घुघुओंमें (Turtle-dove) मृत आत्माओंके आवासकी कल्पना करती हैं। इसी प्रकार जुलु लोग एक प्रकारके सब रंगके निरीह साँपोंमें मृत आत्माओंके वासकी कल्पना कर उनके सामने बलि चढ़ाते हैं। पीड़ाकी यन्त्रणाके भयसे कार्योंकी असुविधा और आहारादिके लाभमें विघ्न आनेके कारण उनकी शान्तिके लिए पहले पहल इस प्रकारकी पूजाका प्रचार हुआ और कालान्तरमें वही फिर धर्मभाव समझा जाने लगा एवं उसकी पुष्टि होने लगी। इस प्रकारसे प्रेतोपासना आदि उपासनावृत्तिका परिस्फुरण कर देती है। हिन्दुओंकी श्राद्धपद्धति इस प्रेतोपासनावस्थाकी रीतिविशेषका उन्नत संस्कार है।

२य। जड़देववाद (Fetishism)—बहुतोंका मत है कि पितृप्रेतोपासनाके बाद मानवकी धर्मप्रवृत्तिके प्रगाढ़ हो जाने पर उसके मनमें जड़देववादका भाव जागरित हुआ। जब पार्थिव पदार्थोंमें पितृप्रेतोंका वास है, ऐसा विश्वास अच्छी तरह जम गया, तब लोग कालान्तरमें प्रेतोंके पितृत्वको भूल गये और धीरे धीरे कुछ वस्तुओंमें उपकारी और कुछमें अपकारी प्रेतोंका

निःश्वास मानने लगे। फिर क्रमशः उन प्रेतों और उनके अध्युषित पदार्थों में अभेदज्ञान हो गया; तो दोनों को एक समझने लगे। कालान्तरमें इस ज्ञान-परिणतिकी प्राप्ति होने पर उन अध्युषित पदार्थोंकी प्रयोजनीयता और उपकारिताके तारतम्यानुसार उनकी पूजाका नित्यत्व और स्थिरीकृत हुआ। इसी समय तीर धनुष, बरछा, फलवान् वृक्षादिमें पूज्यत्व आरोपित हुआ। परन्तु यह पूज्यत्व-बुद्धि तभी तक रहती थी, जब तक वे पदार्थ कार्योपयोगी रहते थे; बादमें उनकी कोई कदर नहीं थी और न अब है। जो लोग इस जड़देव वादको ही धर्मप्रवृत्तिके स्फुरणकी प्रथमावस्था मानते हैं उनका कहना है, कि वस्तुओंकी प्रयोजनीयताके तारतम्यानुसार उनके प्रति पहले एक प्रीति, फिर यत्न और यत्नसे फिर उन पर अल्प भयविशिष्ट एक प्रकारकी मृदु पर साथ ही मूढ़ भक्ति उत्पन्न हो गई एवं कालान्तरमें उसीसे उनका पूज्यत्व कल्पित हुआ। पीछे इसी प्रकार एक पूजित वस्तुके अभाव वा ध्वंससे अन्य एक नवीन वस्तुके प्रतिष्ठाकालमें, उनके हृदयमें जाननेकी इच्छा प्रकट हुई। तब वे विचारने लगे, कि जिस वस्तुको पूजते थे, उसके बदले इस वस्तुको स्वीकार किया; यह सम्पूर्ण स्वतन्त्र है, परन्तु इसमें ऐसी कौनसी वस्तु है, और उसमें भी थी, जिसके लिए ये पूजित हुई। इस तर्ककी मीमांसा करते हुए उन लोगोंने उन वस्तुओंमें निहित शक्तियोंको प्रेत समझ लिया और ऐसा समझना उनके लिए सहज ही था; क्योंकि अनाधार शक्तिमात्रको समझनेकी क्षमता उनमें उस समय तक थी नहीं। इस प्रकारसे शेषोक्त मतावलम्बियोंने प्रेतदेववादको परवर्ती माना है। अवक्रमूलरने इस मतका खण्डन करते हुए कहा है, कि दो पूजित वस्तुओंमेंसे साधारण गुणको चुन कर अलग कर लेना और उनमें प्रेतोंकी कल्पना करना अति उन्नत अवस्थाका कार्य है। जो लोग वस्तुसे वस्तुके गुणको पृथक् समझ सकते हैं, वे वस्तुओंमें प्रेतत्व तो दूर रहा, देवत्वकी भी कल्पना नहीं करना चाहेंगे; और पितृपुरुषोंकी आत्मा वा प्रेतोंके ज्ञानकी सहजताकी अपेक्षा वस्तुओंमें गुण-समष्टिमूलक प्रेतोंकी कल्पना करना सहज भी नहीं है। कुछ भी हो, यहां ऐसे सूक्ष्म विचारोंका उल्लेख करना व्यर्थ है, क्योंकि हमें संक्षेपमें लिखना है।

फलतः इस जड़देववाद-अवस्थाकी पूजा प्रणाली कालान्तरमें नाना प्रकारसे संस्कृत हो कर उत्तरकालके अपेक्षाकृत उन्नत पन्थोंके आचार व्यवहार और रीति-नीतिके अन्तर्गत हो गई थी। किसी किसी वर्त्तमान धर्ममें अब भी वह देखनेमें आती है। इयका पाल-डियम सेमितिक बेथ्-एल्, एफिसोय प्रस्तर (जो स्वर्गसे गिरा था), हारामिसका दण्ड, अपोलोका तीर आदि प्राचीन ग्रीसीय पूज्य वस्तुएं इस आदिम जड़देववादको उन्नत संस्कार हैं। हिन्दूधर्ममें पञ्चवटीपूजा, तुलसी, वट, बिल्व, नवपत्रिका आदि वृक्षपूजा; विश्वकर्मा-पूजामें शिल्पयन्त्रादिकी पूजा; षष्ठी पूजामें उदुखल मूषल, मन्थन-दण्ड, शिल-लोढ़ा इत्यादिकी पूजा प्रचलित है। यह हिन्दुओंकी जड़देवोपासक अवस्थाका अवशेष मात्र है। इन्द्रके वज्र, शिवके त्रिशूल, विष्णुके चक्र इत्यादिकी कल्पना और पूजा भी उसी अवस्थाका विषय है।

३य। पशुदेववाद (Totemism)—जड़देववादके समयमें ही इस भावका परिस्फुरण हुआ था। जिस समय जिस रूपसे पितृ-प्रेतोपासनासे जड़में पूज्यत्व अर्पण किया गया था, ठीक उसी समय उसी रूपसे पशुओंमें भी पूज्यत्व अर्पित हुआ था। पितृप्रेतोपासनाके समय प्रेतोंके वास-निर्णयार्थ मानव-हृदयकी रुचि, सुविधा और कल्पित घनिष्ठता द्वारा पितृप्रेतोंके वासके लिए जीवदेह वा जड़देह निर्दिष्ट हुई थी। जड़से जड़-देववाद और जीवसे पशुदेववादकी उत्पत्ति हुई। पशु-देववाद बहुत सङ्कीर्ण है। कोई एक विशेष जातीय पशु किसी एक वंशीय मानवोंके इष्टदेवता माने जाते हैं। जिस जातिके पशु जिस वंशके देवता हैं, वे ही पशु उस वंशके लोगोंके लिए चिरकाल उपास्य, अवध्य और अखाद्य हैं। पाश्चात्य विद्वानोंका अनुमान है, कि जिस वंशमें जो पशु देवता माना जाता है, सम्भव है कि उस वंशमें उस पशुकी भांति किसी न किसी विषयमें सादृश्यविशिष्ट कोई एक व्यक्ति हुआ हो और लोगोंने उसे वही नाम प्रदान किया हो; क्रमशः वही नाम उसके वंशमें उपाधिसूचक हो गया हो और कालान्तरमें अब

सत्य इतिहासको लोग भूल गये, तब तद्रूप उपाधिधारी किसी व्यक्तिने अपनी उपाधिके हेतुभूत पशुको खोदकी निगाहसे देखते हुए उस पर पवित्रता आरोपित की हो और वही धीरे धीरे देवत्वमें परिणत हुई हो। पूर्वोक्त अमेरिकाके एस्किमो-मतावलम्बियोंमें बहुतसे अपनेको 'मिचाबो' (Michabo) अर्थात् महाशशक (The great hare) से उत्पन्न बतलाते हैं। भारतमें भी मयूरभञ्ज, कश्यपका आदि स्थानोंके हिन्दू क्षत्रिय (उत्कलीय) राजा अब भी अपनेको मयूरवंश-प्रसूत मानते और बड़ी भक्तिके साथ मयूरोंको पालते हैं; यहां तक कि मयूरके मर जाने पर वे अशौच भी मानते हैं। यह भी अति प्राचीन-कालको पशुदेवप्रथाका भग्नावशेष है। हिन्दुओंकी गो-पूजा भी सम्भवतः इस पशुदेवोपासक अवस्थाकी किसी एक प्रथाका उन्नत संस्कार है। देवदेवियोंके वाहनोंकी कल्पना और उनकी पूजा भी इसी पशुदेववादका उन्नत संस्करण है।

४। विश्वप्रेतवाद (Shamanism)-- जड़देववादसे जब मानवकी दृष्टि जड़ातीत प्राकृतिक शक्ति और क्रियाओं पर पड़ी, तब उनके प्रभावको देख कर वह और भी मुग्ध हो गया; किन्तु उस समय प्राकृतिक कारण न समझ सकनेके कारण, उसने उन प्राकृतिक शक्तियोंमें भी महाप्रभावशाली प्रेतोंकी कल्पना कर डाली। वायु, तूफान, वर्षा आदिमें प्रेतोंकी कल्पना की; फिर धीरे धीरे अदृष्ट वस्तुओंमें भी गुणक्रियाओंकी उपलब्धि करना सीखा और उससे क्रमशः प्रेतोंका वह मौलिक भाव किसीके भी मनमें जागरूक नहीं रहा। कालस्रोतके साथ मानवके मनकी धारण-शक्तिकी वृद्धि होने लगी और वह अध्यासित वस्तुओंसे प्रेतोंका पृथक्त्व समझने लगा; वस्तुओंके गुण प्रेतोंमें ही आरोपित हुए, और इसी लिए प्रेतगण ही प्राकृतिक शक्तियोंके नियन्ता एवं प्राकृतिक क्रियाओंके कर्त्ता समझे जाने लगे। जर्मनोंके विद्वानोंने प्रेतोंकी इस अवस्थाको The thing-in-itself कहा है। इस समय मनुष्यका मन प्रेतराज्यकी महिमामें इतना मुग्ध हो गया था कि उसे विश्वके किसी भी विषयमें प्रेतशून्यता दीख न पड़ती थी; यही कारण है जो प्रेतोंकी संख्या इतनी बढ़ गई थी। उस समय प्रत्येक व्यक्तिके लिए प्रत्येक प्रेतकी पूजादि करना दुस्तर हो गया। कृषिकार्य, आहारान्वेषण, सन्तानपालन इत्यादि कार्योंमें व्यस्त होनेके कारण कोई भी उनकी पूजाके समय न निकाल सका और इसी कारण लोगोंने अपने अपने परिवारके एक एक व्यक्तिको (जो साधारणतः वयोवृद्ध होता था) पूजाके लिए नियुक्त किया। दूसरों पर उपासनादिका भार सौंप कर धीरे धीरे लोग इतने निश्चिन्त हो गये, कि दो-एक पीढ़ीके बाद उन पूजकोंके सिवा और कोई प्रेतादिकी खबर भी न लेता था। पूजकगण उन्हें पूजाके विषयमें जो कुछ भी कहते थे, उसका वे अविचलित चित्तसे पालन करते थे। कालान्तरमें ये पूजक ही ऐन्द्रजालिक, पुरोहित वा याजकश्रेणीमें गिने जाने लगे। इसीसे सामाजिक गृहपतिकी प्रथा (Patriarchal society) गठित हुई। बहुतोंका अनुमान है, कि ऋग्वेदीय कालके पहले यज्ञविधाता ऋषिसम्प्रदायकी सृष्टि भी इसी प्रकार हुई थी। साइबेरिया प्रदेशमें इन याजकों और ऐन्द्रजालिकोंको "शमन" (Shaman) कहते हैं। डा० सेसका अनुमान है, कि यह 'शमन' शब्द बौद्ध-भिक्षुकबोधक "श्रमण" शब्दका अपभ्रंश है। बौद्धधर्मकी पतनावस्थामें श्रमणगण तान्त्रिक इन्द्रजालादि विद्यामें निपुणता लाभ कर लोगोंको मुग्ध करनेकी चेष्टा करते थे। इसी कारण पाश्चात्य विद्वानोंने ऐन्द्रजालिक प्रभाव और प्रेतोपासनामूलक धर्मकी अवस्थाका Shamanism नामसे उल्लेख किया है।* ग्रीनलैण्ड प्रदेशमें ऐसे ऐन्द्रजालिकोंको "अञ्जेकोक" (Ange-Kok) कहते हैं हिन्दुओंमें सांपका विष तथा भूत उतारनेवाले सियाने वा ओझाओंकी उत्पत्ति भी इसी प्रकार है। पञ्चानन्द, घण्टाकर्ण, महाकाल, शीतला, मनसा, जरासुर, वनदेवी आदि देवदेवियोंकी कल्पनाओंका आधार भी यही है। वैदिक देवता वरुण, वायु, इन्द्र, सोम, अग्नि, उषा आदिकी उत्पत्ति भी धर्मकी उसी अवस्थामें हुई है; परन्तु इतना अवश्य है कि वेद-

* हिन्दीमें 'श्रमणवाद' कहनेसे अंग्रेजी नामके साथ सादृश्य तो रहता, पर अर्थ परिस्फुटित नहीं होता, इस कारण भावार्थको ले कर 'विश्वप्रेतवाद' अर्थात् विश्वकी समस्त वस्तुओंमें प्रेतवादकी कल्पना ऐसा नाम दिया गया है।

प्रतिपादित देवताओं का एकत्व और ईश्वरत्व बहुत समय पीछे कल्पित हुआ है।

अध्यापक टिएलके विभागमें जो जैववाद (Animism)-को प्रथम अवस्था बतलाया गया है, वह इन चार अवस्थाओं के धर्मविभागकी एकत्रीभूत संज्ञा है। उनके मतसे, इस तरह धर्मके विकाशका सूक्ष्म रूपसे निर्णय करना असाध्य है। आपके बनाए हुए द्वितीय विभाग (Polytheistic national religions)-की प्रथमावस्था भी विश्वप्रेतवादमें शामिल की जा सकती है।

५ द्वैतवाद और ६ अद्वैतवाद (Polytheism and Henotheism) ये दोनों अवस्थाएं प्रायः समसामयिक हैं। मक्षमूलर पहले अद्वैतवाद और पीछे द्वैतवादकी कल्पना करते हैं; किन्तु डा० सेस दोनोंको एक ही समयमें उत्पन्न बतलाते हैं। विश्वप्रेतवादसे सामाजिक उन्नतिके साथ साथ जब मानव-चिन्ताने विभिन्न प्रेतोंको महिमान्वित देख उनमें (प्रेतत्वको भूलकर) देवत्व स्वीकार किया, तब द्वैतवादकी उत्पत्ति हुई और द्वैतवादके साथ साथ अद्वैतवाद भी उत्पन्न हुआ। द्वैतवाद और अद्वैतवादकी विभिन्नता दिखानेके लिए डा० सेसने कहा है, कि द्वैतवाद (Polytheism)-में बहुदेवत्व स्वीकृत हुआ है। और अद्वैतवाद (Henotheism)में बहुदेवत्वका अनुभव मात्र होता है।

वर्त्तमानमें सुगठित धर्मावलम्बियोंमें जो द्वैतवाद और अद्वैतवादके विषयमें विवाद देखनेमें आता है, उसके साथ इस मौलिक द्वैतवाद वा अद्वैतवादका सम्बन्ध बहुत पृथक् है। मौलिक द्वैतवादके देवतागण सिर्फ प्राकृतिक शक्तियोंके अधिष्ठातामात्र समझे जाते हैं। उस समय अध्यात्मभावकी कोई कल्पना विकसित नहीं हुई थी। उसके बाद क्रमशः मानव-प्रकृतिमें परिवर्त्तन होनेके कारण मानवी कल्पना जब इन देवताओंके विषयमें चिन्ता करते करते नाना प्रकार क्रोड़ाए करने लगी, तब मानव-प्रकृतिको एक शक्तिसे विभिन्न कार्य होते देख उसके लिए विभिन्न देवताओंकी कल्पना न कर एक एक देवतामें नाना प्रकार गुणारोप करने लगी। इस गुणारोपके साथ साथ नाना प्रकारके नामकरण होने लगे। सूर्य आपोलो हुए, दिवाकर हुए, तपन हुए; वायु एरिस् हुई, पवन हुई, गन्धवह हुई इत्यादि। बादमें, एक देवतामें विभिन्न गुणारोप करनेसे जब देखा, कि कुछ गुण कुछ देवताओंमें साधारणतः पाये ही जाते हैं, तब लोगोंने सन्दिग्धचित्तसे दोनों देवताओंको एक समझना शुरू कर दिया। क्रमशः यह भाव दोसे बहुतोंमें संक्रमित हो गया। जब सन्देहका भाव दूर हो गया, तब मौलिक अद्वैतवादकी सृष्टि हुई। मक्षमूलरने अद्वैतवादका पूर्वत्व स्वीकार कर कहा है, कि विश्वप्रेतवादके बाद मानव-कल्पना बहुत अस्पष्ट भावसे काम करती रही है। उस समय लोग, विभिन्न प्रेतोंके विभिन्न कार्य और शक्तियोंका परिमाण स्थिर न कर सकनेके कारण समय समय पर एक कार्यके साथ अन्य एक प्रेतका सम्बन्ध स्थिर करने लगे। यह गड़बड़ी जब परस्पर सभी प्रेतोंमें फैल गई, तब लोग बहुत्वमें एकत्वका अनुभव करने लगे; कारण तो कुछ और है, पूजा किसी औरकी करने लगे। अन्तमें उनमेंसे एकको श्रेष्ठ पद पर (Chief-god) स्थापित किया। फलेडरने जो मौलिक अद्वैतवादके विषयमें लिखा है, वह ऐसा ही है। वैदिक बहुदेवत्वका एकत्व प्रायः इसी अवस्थाका परिचायक है।

इसी समय और एक घटना हुई। प्राचीनकालके अर्धविस्मृत (वा प्रायः विस्मृत) प्रेततत्त्वादि कालधर्मकी क्षीण स्मृतिके साथ इस समयके अपूर्व शक्तिसम्पन्न एक वा बहुभावात्मक देवताओंका मिश्रण हो जानेसे कल्पनाचारी याजकादि द्वारा नाना आख्यानोंकी सृष्टि होने लगी। इन कथनोंकी सृष्टिमें प्रधान कारण याजकों द्वारा की गई उभयकालके धर्मतत्त्वोंकी सत्ता प्रमाणित करनेकी चेष्टा है। और यदि यह चेष्टा न की जाती, तो भी नवदेवताओंके साथ प्राचीनकालके उपास्य प्रेत पशुरूपी देवताओंके संघर्षसे एक दलको अवश्य ही चिर-विसर्जित होना पड़ता। क्योंकि एक दलके सत्वके साथ अन्य दलका सामञ्जस्य न रक्खा जाता, तो याजक-सम्प्रदायके स्वार्थमें बाधा पड़ती। कुछ भी हो, इस प्रकार तत्त्वाभास-संश्लिष्ट जो उपाख्यान प्रचलित हुए उन्हींसे आचार, व्यवहार, रीति, नीति नियन्त्रित होने

लगीं। प्रत्येक धर्ममें "पौराणिक-कथा" (Mythology) नामसे इनकी प्रसिद्धि है। इन रचनाओंके प्रसादसे देवताओंमें भी पिता पुत्रादिका संबन्ध निर्णीत हुआ और जो जो जीव प्रेतावस्थामें देवताओंके वासस्थान समझे जाते थे, अब वे ही उनके वाहन समझे जाने लगे। छागचर्ममें अधिक उष्णता होनेके कारण वह अग्निका वाहन समझे जाने लगे। जल्दी चलनेमें सबसे तेज घोटक है, इसलिये उसे पवनका वाहन मान लिया। इसी प्रकार अन्यान्य वाहनोंके विषयमें समझना चाहिये। इसके बाद क्रमशः मानव-हृदयमें भय, प्रीति, श्रद्धा और भक्तिका विकाश हुआ और फिर मन्दिरादि बनने लगे। इस आदिम देवराज्यकी सृष्टिके साथ ग्रीक और रोमक देवताओंकी उत्पत्ति हुई। हिन्दुओंके वैदिक देवताओंका भाव इससे भी उन्नत अवस्थाका परिचायक है। उस समय मानवकी कल्पना मनुष्य और पशुके सिवा अन्य किसी भी जीवके आकारकी धारणा नहीं कर सकती थी, इसीलिये समस्त देवता हस्तपदादि-युक्त मनुष्यकी मनोवृत्तिके समान मनोवृत्ति विशिष्ट कल्पित होने लगे। किन्तु जिन देवताओंकी कल्पना भयसे हुई, उनका आकार आदि (भीषण मनुष्य और पशुकी मिश्रित आकृति) कल्पित हुआ। इससे पशु-मुख नराकार, नरमुख सर्पाकार मूर्तियां कल्पित हुईं। मनुष्याकार होने पर भी देवताओंकी मानवापेक्षा अलौकिक मृदु भीषण शक्तिसम्पन्न सिद्ध करनेके लिए उनके चतुर्हस्त, दशहस्त, त्रिपद, त्रिनेत्र, लोलरसना, दिग्वसन, मुण्डमाल, विराटदेह इत्यादिकी कल्पना की गई। ब्रह्माण्डभाण्डोदर, सूर्याग्निनयन, विषकण्ठ इत्यादि अवस्थाओंकी कल्पना भी इसी समय हुई होगी। इसके बाद जब मानवहृदयमें सौन्दर्यानुभव शक्ति विकशित हुई, तब उसने परम श्रद्धाकी आधारभूत उन भीषणमूर्त्ति देवदेवियोंमें भी सौन्दर्य मिला कर अट्टहास्यके पार्श्वमें स्मेरानन, शुष्क मांसातिभैरवमें भी पीनस्तन, क्षीणकटि और उज्ज्वल चक्षुओंमें भी पद्मपलाश वर्ण इत्यादिकी कल्पना की। फिर रत्नालङ्कार विचित्रवसनादि तथा पूर्ण सौन्दर्यके उपयुक्त विष्णु, मदन, कार्त्तिकेय, रति, लक्ष्मी, सरस्वती, मिनर्भा, भिनस्, क्यूपिड इत्यादि देवता भी कल्पित हुए।

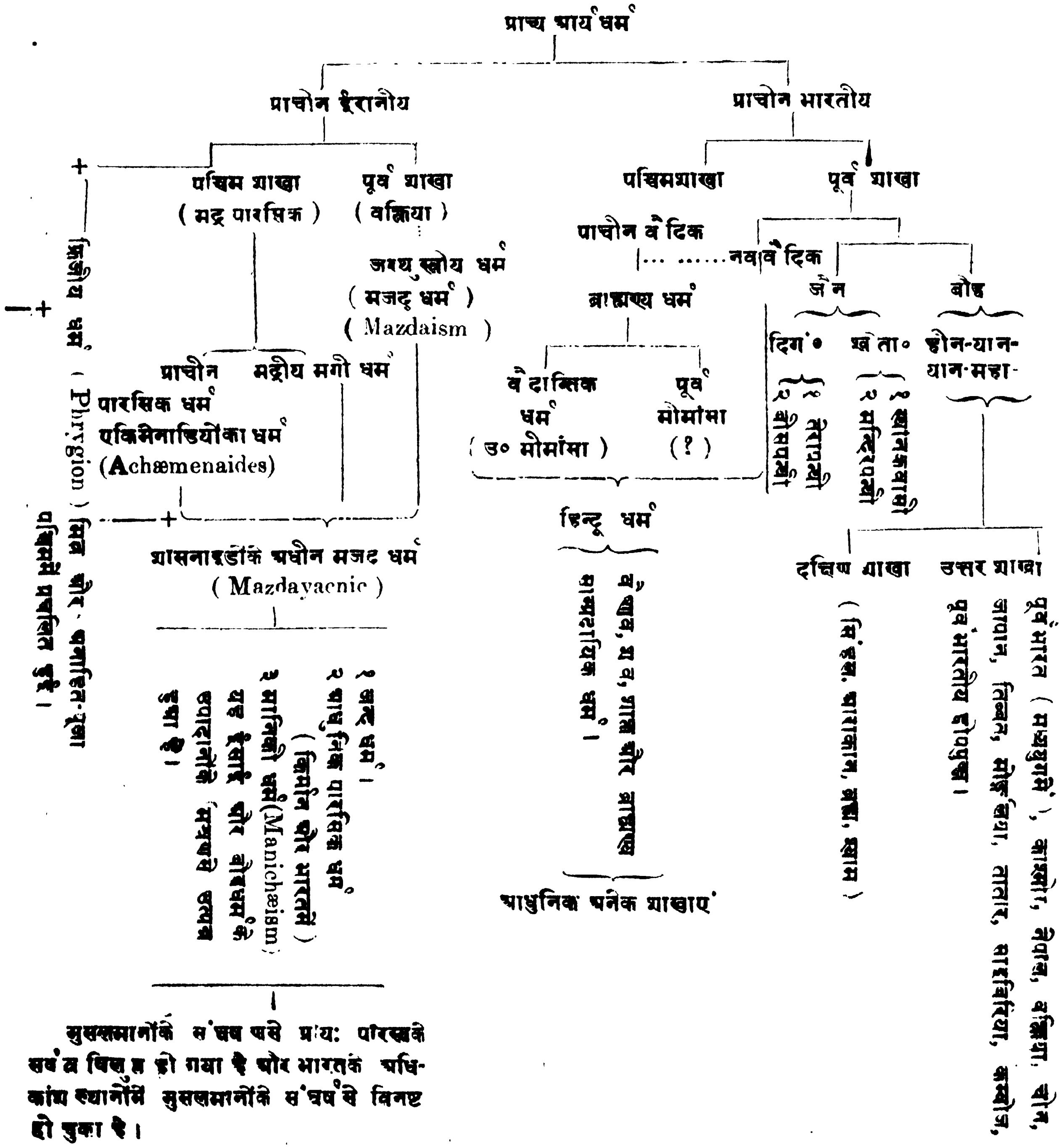
धर्मतत्त्वमें मानवीकरण—उसके बाद देवताओंके साथ मानवका सम्पर्क स्थापन करनेके लिए देवताओंका मानवीकरण किया गया, अर्थात् मानवके प्रयोजनकी सिद्धिके लिए देवता मानवादिका आकार धारण कर मनुष्योंमें आ कर रहते हैं, इत्यादि कल्पना की गई। पीछे यह कल्पना और भी आगे बढ़ी; मानवको भी देवता बना कर स्वर्ग नरककी कल्पना की गई। मानव यदि देवभावको अङ्गीकार कर कार्य करे, तो वह किसी समय देवत्व लाभ कर देवलोकमें स्थान पा सकता है, इत्यादि कल्पनाएं भी स्वीकृत हुईं। इसीलिए हिन्दुओंमें सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य और सार्ष्टि इस तरह चार प्रकार मुक्तियोंकी कल्पना की गई है। फिर इन्द्रलोक, चन्द्रलोक, ध्रुवलोक, वैकुण्ठ, गोलोक, शिवलोक, ब्रह्म-लोक इत्यादि प्राप्तिकी कल्पना हुई। हिन्दूधर्ममें राम-कृष्णकी कथा तथा इतिहासमें बुद्धचैतन्य खृष्टकी कथा इनको छोड़ देने पर भी मुसलमानोंके पीर, हिन्दुओंके परमहंसादि और यूरोपीय (Saint और Martyr ओंकी कथा इस श्रेणीमें आ जाती है। सत्यपीर, माणिकपीर, शुम्भाशाह, भोंसला शाह, शाह फरीद आदि कितने ही पीर हिन्दू-मुसलमानोंके उपास्य हो गये हैं, इसका निर्णय करना असाध्य है। मि॰ लायलका कहना है (१८७२ ई॰में) कि अंग्रेज-सेनापति जनरल निकलसनको दाक्षिणात्यवासी कुझारा नामक असभ्य जातिने देवत्व प्रदान किया था। यह जाति उनकी कब्र पर पूजा और बलि चढ़ाया करती है। यह ज्यादा दिनकी बात नहीं है।

धर्मके विभागोंका ऐसा परिवर्त्तन सभी जातियोंमें एक ही समयमें और एक ही प्रकारसे हुआ हो, ऐसा नहीं। जिस जातिकी सामाजिक उन्नति जितनी शीघ्र हुई थी, उस जातिकी आध्यात्मिक उन्नति भी उतनी ही जल्दी हुई थी। जनरल निकलसनके देवत्वलाभसे स्पष्ट ही समझ सकते हैं, कि जिस समय हिन्दू, ईसाई, बौद्ध आदि धर्म अध्यात्म-जगत्के शीर्षस्थान पर पहुंच चुके थे, उस समय भी कुझारोंका धर्म प्रेतवादके व्यूहसे बाहर न निकल सका था।

धर्मकी अभिव्यक्तिका वर्णन हो चुका। अबाध्यात्मिक

(१२५ पृष्ठमें परवर्ती अंश)

("ख" तालिका)


प्राच्य आर्य धर्म
प्राचीन ईरानीय
प्राचीन भारतीय
पश्चिम शाखा
(मद्र पारसिक)
पूर्व शाखा
(बल्ख़िया)
अथर्वणीय धर्म
(मजद् धर्म)
(Mazdaism)
फ्रिजीय धर्म (Phrygion) मित्र और कलाहित-पूजा पश्चिममें प्रचलित हुई।
प्राचीन
पारसिक धर्म
एकिमेनाडियोंका धर्म
(Achæmenaides)
मद्रीय मगी धर्म
शासनाइडोंके अधीन मजद धर्म
(Mazdayacnic)
१ मजद धर्म।
२ आधुनिक पारसिक धर्म (किर्मान और भारतमें)
३ मानिकी धर्म (Manichæism) यह ईसाई और बौद्धधर्मके उपादानोंके मिश्रणसे उत्पन्न हुआ है।
मुसलमानोंके संसर्गसे प्रायः पारस्यके सर्वत्र विलुप्त हो गया है और भारतके अधिकांश स्थानोंमें मुसलमानोंके संघर्षसे विनष्ट हो चुका है।
पश्चिमशाखा
पूर्व शाखा
प्राचीन वैदिक
नव वैदिक
ब्राह्मण्य धर्म
वैदान्तिक धर्म (उ० मीमांसा)
पूर्व मीमांसा (?)
हिन्दू धर्म
शैव, वैष्णव, शाक्त और ब्राह्मण साम्प्रदायिक धर्म।
आधुनिक अनेक शाखाएं
जैन
दिग०
१ बीसपन्थी
२ तेरापन्थी
श्वेता०
१ स्थानकवासी
२ मन्दिरपन्थी
बौद्ध
हीन-यान-यान-महा-
दक्षिण शाखा
(सिंहल, श्याम, ब्रह्म, श्याम)
उत्तर शाखा
पूर्व भारत (मध्ययुगमें), काश्मीर, नेपाल, बल्ख़िया, चीन, जापान, तिब्बत, मोङ्गोलिया, तातार, साइबिरिया, कम्बोज, पूर्व भारतीय द्वीपपुञ्ज।

("क" तालिका)

प्रतीच्य आर्य धर्म।

प्राचीन Pelasgic धर्म

- प्राचीन ग्रीसका धर्म
  - १ ग्रीक धर्म एशिया माइनर और क्रीट।
  - २ एकियन धर्म (Achæan)
  - ३ पैलासगिक (Pelasgic)
  - } हेलेनिक धर्म, इसके साथ फ्रिजाय, लिडीय और फिनिकीय धर्मके उपादान मिश्रित हुए थे।
    - { १ होमारिक धर्म
    - २ हिशियडिक धर्म
    - ३ आपोलाइनिक धर्म
    - ४ एथिनिय धर्म
- प्राचीन इटलीका धर्म
  - १ लैटिन
  - २ शबाइन
  - } ——रोमक धर्म——यह रोमक धर्म जो कुमनि द्वारा सुसंस्कृत और क्रमशः ग्रीक धर्म में मिश्रित हुआ है।
  - ३ समनाइट
  - ४ इट्रुरियन——(?)——+ (रोमक धर्म)

प्राचीन केल्ट धर्म

- १ सिमरिक शाखा (Cymric), वेल्श (Welsh), गॉल (Gauls)
- २ गधेलिक शाखा (Gadhalic), आइरिश, स्काच।

प्राचीन जर्मन धर्म

- नर्स वा स्कान्दिनेभीय शाखा
  - १ इशिर (Æsir); ओधिन (Odhin); थोर (Thor)।
  - २ भनिर (Vanir), Frey, Freya.
- ट्यूटोनीया शाखा
  - १ उच्च जर्मन (High German)
  - २ निम्न जर्मन (Low German)
    - क, निम्न जर्मन; वोदेन (Woden), गोदेन (Goden)
    - ख, फ्रिसियन; वोदा (Woda)
    - ग, ऐङ्ग्लो सकसन; वाउदेन (Vouden)

प्राचीन Windic धर्म

- स्लेविय (Slavic) शाखा
  - १ बल्टिक स्लाभ वा प्रकृत वेण्डों (Wend) का धर्म।
  - २ प्राचीन रूस वा पूर्व शाखा (Svarog, Dagbog. Ogonii)
  - ३ पोल (Poles) चेजेकों (Ozechs)-का धर्म (विवरण अज्ञात है)।
  - ४ सर्वियन और उनकी निकटवर्त्ती जातियोंका धर्म (विशेष विवरण ज्ञात नहीं है)
- लेटीय (Lettic) शाखा

("ग" तालिका)

प्राचीन सेमिटिक धर्म ।

- दक्षिण शाखा (प्राचीन अरबीय धर्म)
  - उत्तर अरबका धर्म
    - अफ्रीकियोंका धर्म
      - महम्मदीय व इसलाम धर्म
  - सेबीय (Sabæan) वा हिमैरितीय (Hemyaritic) धर्म (मेसोपोटेमियाके धर्मका संस्रव)
- उत्तर शाखा
  - पश्चिम शाखा
    - १ हिब्रू धर्म
      - प्राचीन इस्रायेल धर्म
        - मूसा-द्वारा संस्कृत धर्म
          - इस्राइलोंका धर्म
          - जुडाका धर्म
            - संस्कर्ताओं (Prophets)-का संस्कृत धर्म
              - जुडा धर्म (Judaism)
                - गम्पेल धर्म वा प्रथम ख्रृष्टीय धर्म ।
      - मोआबिटीक (Moabitic) और अम्मोनाइटिक (Ammonitic) धर्म ।
    - २ कैनानाइटिक धर्म-समूह (Canaanitic)
    - ३ फिनिसीय
      - जिब्‌सो लोगोंका धर्म (Gebal) जिबल धर्म ।
      - टायर और सीडनका धर्म ।
    - ४ क्रोटिय और फिलिष्टाइनका धर्म ।
    - ५ एशिया माइनरका सेमिटिक (Semitic) धर्म ।
    - ६ अर्मियन (Armæan) धर्म-समूह ।
  - पूर्व शाखा
    - बाबिलोनीय धर्म (विदेशीय धर्मोंका संस्रव)
      - आसिरीय धर्म

टिएल-द्वारा वर्णित धर्मके आध्यात्मिक विभागोंका वर्णन किया जाता है। आपने समस्त धर्मोंको प्राकृत और नैतिक इस तरह दो भागोंमें विभक्त किया है। प्राकृतधर्म (Nature-religions)का स्वरूप धर्मोंके तात्त्विक अंशोंकी विस्तृत आलोचनाके विना समझाया नहीं जा सकता। जैवदेववाद (Animism)के प्राकृत धर्मकी अवस्था कैसी थी, यह बात अनुमानसे जानी जा सकती है; भाषाके द्वारा समझा देना बहुत कठिन है। ऐसी दशामें जैवदेववादसे जब तक मानवकी रीति नीतिके साथ धर्मका आचार व्यवहार संमिश्रित नहीं हुआ था, तब तकके समयको धर्मको प्राकृत अवस्थाके अन्तर्गत माना जा सकता है। किसी समय सभी धर्मोंकी ऐसी अवस्था थी, यह बात उच्चाङ्ग धर्मोंके अन्तर्गत जैवदेववादकी किसी किसी प्रणालीके अवशेष निम्नाङ्गके धर्मोंमें जैवदेववादकी वर्तमानता देखकर स्पष्ट समझमें आ जाती है। इसकी पूर्ववर्त्ती अवस्थाको बहुतोंने (Polyzoic stage) आख्या दी है। पौराणिक आख्यानोंके भित्तिभाग (Original Myths) से इस अवस्थाका अत्यन्त सूक्ष्मरूपसे अनुमान किया जा सकता है। अध्यापक टिएलने धर्मकी प्राकृत अवस्थाको तीन भागोंमें विभक्त किया है--(१म) बहुप्रेतदैविक इन्द्रजालमय अवस्था (Polydemonistic Magical religions) इस समय जैवदेववादका प्राधान्य ही इसका प्रधान लक्षण था; (२य) संस्कृत इन्द्रजालमय अवस्था (Purified Magica religions or Therianthrophic Polytheism), इस समय भी जैवदेववादका प्राधान्य था, पर उसमें पशु और मानवरूपी देवताओंकी उत्पत्ति हो चुकी थी। (३य) प्राकृत शक्तिमें अलौकिक क्षमताविशिष्ट अर्द्धनैतिक अर्द्धप्राकृत देववादकी अवस्था (Religions in which the powers of nature are worshipped as manlike though superhuman and semi-ethical beings or Anthropomorphic polytheism)। इनमेंसे फिर प्रथम अवस्थाके तीन भाग कल्पित हुए। प्रथम भागकी अवस्था अत्यन्त अपरिस्फुट थी। उस समय प्रेतों द्वारा प्राकृतिक अवभास (Natural phenomenà) नियन्त्रित और उनमेंसे

शासित होता था, उन्हीं सबके प्रति मानव मनमें श्रेतत्व कल्पित होता। एकको विशेषरूपसे क्षमताशाली मान कर उसीको परात्पर समझते थे। द्वितीय भागकी अवस्थामें इन्द्रजाल पर विश्वास होनेसे मानव-हृदय नीति और अनीति कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यका भाव समझने लगा था। तृतीय भागमें मनकी अन्यान्य वृत्तियोंमें भयके आधिक्य और आधिपत्यके कारण धर्मके आचार व्यवहारादि सभी स्वार्थप्रणोदित हो गये थे।

द्वितीय अवस्थामें यद्यपि मनुष्याकारकी कल्पनाका प्रारम्भ हो गया था, तथापि पश्वाकार देवताओंका ही अधिक प्राधान्य था; परन्तु ऐसा होने पर भी इस समयमें देवताओंका अध्यात्मभाव (Spiritual) उपलब्ध हुआ था, किन्तु उस समय भी वह पदार्थादि तथा जीव-देहमें आबद्ध था। इसी समयके देवताओंका आकार नरकाय पशुमुख वा पश्वाकार नरमुख था। उस समय देवता और प्रेतोंमें पार्थक्यका ज्ञान हो जानेसे प्रेतपूजा तथा ऐन्द्रजालिक आचार और झाड़ फूंक आदिका ह्रास हो गया था। ऐसी अवस्थामें प्राचीन और वर्तमान आचार व्यवहारका एकत्र मिश्रण हो जानेसे एक प्रकारका अज्ञात कारणजात आचार व्यवहार (Mystic rituals) विधिवद्ध होता रहा। इसी अवस्थाके समय सुगठित और अगठित (organized and unorganized) ये दो भेद दृष्टिगोचर हुए।

३य अवस्थाके देवताओंमें सभी मनुष्याकार और अलौकिक शक्तिसम्पन्न हैं। वे ही प्राकृतिक शक्तियोंके नियन्ता, प्राकृतिक घटनाओंके अधिष्ठाता और सु एवं कुके जन्मदाता हैं। इस समय उनके पूर्वाधार पशुवृक्षप्रस्तरादि वाहन, भूषण वा लिङ्ग (Symbols) हो गये और वे पवित्र समझे जाने लगे। इन देवताओंने इस समय नाना रूप धारण किये। उनके अनुसार नाना प्रकारकी कथाएँ प्रचलित हो गईं। इसी समय देव और दैत्यकी कल्पना की गई। प्राचीन जैवदेववादके पिशाच, डाकिनी, प्रेत, दैत्य, Centaurs, Harpies, Satyrs इत्यादि, जिनको अब पौराणिक आख्यानोंसे नियुक्त कर विस्मृतिके गहरे गड्ढेमें डालनेका कोई उपाय नहीं रहा, वे देवताओंके अनुचर वा शत्रु समझे जाने लगे। शिव-

का भूतनाथत्व, गणेशका गणाधिपत्व, कालीका योगिनी-डाकिनी-सङ्गिनीत्व और देवासुरका ग्रहत्व, ये सब कल्पनाएं इसी अवस्थाके अन्तर्गत हैं।

नैतिक धर्म (Ethical religion) --बहुतोंका कहना है, कि जब अधिकांश धर्मपन्थ किसी न किसी शास्त्रग्रन्थके विधिनियमादिके आधार पर गठित हुए हैं, तब दो एकके लिए नैतिकादि भेदोंकी कल्पना करनेसे क्या प्रयोजन ? गवेषणा-द्वारा विद्वानोंने स्थिर किया है, कि आदिम कालमें मानवके हृदयमें भय, विस्मय और अज्ञताके कारण जो एक उच्च एवं महान्‌भाव उत्पन्न हुआ और वह कालान्तरमें श्रद्धा एवं भक्ति (ईश्वरभक्ति)-के रूपमें परिणत हो गया है, वह भाव जिसमें साधारणतः पृथिवीमें सर्वत्र विस्तृत हो जाय, धर्मके ऐसे सर्वजनीन नियमादि होना चाहिए। सत्य, दया, (अहिंसा) माया, स्नेह, उपकार इत्यादि सुनीतियां विश्वजनीन हैं। ईश्वरमें भक्तिप्रदर्शनके नियमादि भी विश्वजनीन होने चाहिए, क्योंकि ऐसा न होनेसे धर्ममें संकीर्णता रह जायगी। अब तक जितने भी धर्मपन्थोंके विषय ज्ञात हुए हैं, उनमें सिर्फ बौद्ध, खृष्टीय और महम्मदीय पंथको ही विश्वजनीन कहा जा सकता है। इनमें प्रायः साम्प्रदायिकता नहीं है। अध्यापक किउननने इसलाम-धर्मको भी इस श्रेणीसे निकाल दिया है। उनके मतसे इसलाम धर्ममें भी ऐसे कुछ नियम मौजूद हैं, जो सर्वत्र सब जातियोंके लिये पालनीय नहीं हैं। उनके मतसे इसलामधर्म विशेषात्मक (Particularistic) है, विश्वात्मक (Universalistic) नहीं। अध्यापक रवेनहफ (Prof Rauwenhoff) इन तीनोंमेंसे किसीको भी 'विश्वात्मक' नहीं मानते। इस मतभेदकी मीमांसा किसी दिन हो सकेगी या नहीं, मालूम नहीं। किन्तु अधिकांश विद्वानोंका यही मत है कि उक्त तीनों धर्मोंमें अन्य धर्मोंकी अपेक्षा साम्प्रदायिकताका लक्षण बहुत कम है। इनमें ईश्वरके प्रति भक्ति, उनका प्रीतिआकर्षण, स्वर्गगमनका लोभ इत्यादि विषयके अनुशीलनकी अपेक्षा मानव-मन और मानव अन्तःकरण (Mind and heart) की प्रसारवृद्धि और उन्नतिसाधनकी शिक्षाविधि अधिक पायी जाती है।

ईसाई-धर्मावलम्बी पाश्चात्य विद्वानोंने इस प्रकारका सिद्धान्त निर्णीत कर अन्तमें उक्त तीनों धर्मोंमेंसे ईसाई धर्मको ही प्राधान्य दिया है। यदि उनकी युक्ति और तर्क पर विश्वास किया जाय और साथ ही अपने अपने धर्म-विश्वासको शिथिल किया जाय तो सम्भव है उनकी मीमांसा सत्य प्रतीत होने लगे। परन्तु अन्य धर्मावलम्बी इस बातको स्वीकार नहीं करते।

अब यहां पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रदर्शित धर्म-पंथोंकी गठन-प्रणालीके विभागोंका उल्लेख कर यह निबन्ध समाप्त किया जाता है,--

१ प्राकृतधर्म (Nature-religions)।

(क) बहुप्रेतदैविक इन्द्रजालमय अवस्था (Polydemonistic magical religions under the control of animism)--इस अवस्थामें असभ्य वर्वरोंके धर्म भी शामिल हैं। इन धर्मोंका वर्तमान आकार भी पूर्वावस्थाका भग्नावशेष है।

(ख) सुगठित इन्द्रजालमय अवस्था (Purified or organized magical religions i. e. Therianthropic Polytheism)--यह अगठित और सुगठित-के भेदसे दो प्रकारका है। इस अवस्थाके अन्तर्गत जितने भी धर्म हैं, उनके नाम नीचे लिखे जाते हैं।

१ अगठित। (Unorganized)	२ सुगठित (Organized)
जापान-वासियोंका प्राचीन धर्म-'कामिनो मदुसु।'	मय, नाचेज आदि अमेरिकावासियोंका अर्वाचीन धर्म।
द्राविड़ीय अनार्यधर्म।	प्राचीन चीन धर्म।
फिनलैण्ड और एष्टोंका धर्म।	प्राचीन बाबिलोनीय वा काल्दीय धर्म।
प्राचीन अरबीधर्म।	मिश्रका धर्म।
प्राचीन पिलस्गीय धर्म।	
प्राचीन इटलिका धर्म।	
ग्रीक-प्रभावके पहलेका एट्रस्कीय धर्म।	
प्राचीन आर्मीनीय धर्म।	

(ग) मनुष्याकार अलौकिक शक्तिविशिष्ट अर्द्धप्राकृत अर्द्धनैतिक देववादकी अवस्था (Worship of man-like but Super human and semiethical beings i. e. Anthropomorphological Polytheism)—इस अवस्थामें निम्नलिखित धर्म शामिल है—

प्राचीनतम वैदिक धर्म (भारतवर्ष)।

जरथुस्त्रीय मतके पूर्ववर्त्ती इरानीय धर्म (बैकट्रिया, मिदिया वा मद्र और पारस्य)।

बाबिलोनीय और आसीरीय मध्य धर्म।

अन्यान्य उन्नत सेमितिक धर्म (फिनिकीय, कानान, अरमिय वा अर्मेनिय), सेथिया केलटिक, जर्मनीय, हूणीनीय और ग्रीक-जर्मनका धर्म।

२ नैतिक धर्म।

(क) साम्प्रदायिक वा जातिगत देववादकी अवस्था (National nomistic or nomstheistic)—इस अवस्थामें निम्नलिखित धर्म शामिल हैं,—ताओ (Taoism), कनफूचीय (Confucianism), जैनधर्म (अर्हत् धर्म समस्त विभागों सहित), मजद मत (Mazdaism) वा जरथुस्त्रीय मत, मूसामत (Mosaism), और जूड़ाका मत (Judaism)।

हिन्दू, खृष्टान, बौद्ध, जैन, महम्मदीय धर्म आदि शब्दोंमें उनके धर्मोंका विस्तृत विवरण देखो।

२ एक देवता। ये ब्रह्माके दक्षिण स्तनसे उत्पन्न हुए हैं। (मत्स्यपु० ४।१०)।

दक्ष प्रजापतिने धर्मदेवको १३ कन्यायें दान दीं। इन सब पत्नियोंसे धर्मके अनेक सन्तान हुईं जिनमेंसे श्रद्धाके गर्भसे सत्य, मैत्रीके गर्भसे प्रसाद, दयाके गर्भसे अभय, शान्तिके गर्भसे यम, तुष्टिके गर्भसे हर्ष, पुष्टिके गर्भसे गर्व; क्रियाके गर्भसे योग, उन्नतिके गर्भसे दर्प, बुद्धिके गर्भसे अर्थ, मेधाके गर्भसे स्मृति; तितिक्षाके गर्भसे मङ्गल, लज्जाके गर्भसे विनय और मूर्त्तिके गर्भसे नर और नारायण उत्पन्न हुए। (भागवत)

वराहपुराणमें धर्मकी उत्पत्ति इस प्रकार लिखी है-

एक दिन ब्रह्मा प्रजाकी सृष्टि करनेके अभिलाषी हो अतिशय चिन्तापरायण हुए थे। चिन्ता करनेसे उनके दक्षिणाङ्गसे श्वेतकुण्डलधारी और श्वेतमाल्य तथा अनुलेपनादियुक्त एक पुरुष प्रादुर्भूत हुए। उसे देख कर ब्रह्माने कहा, तुम चतुष्पाद वृषाकृति हो, अतः तुम ज्येष्ठ हो कर प्रजाका पालन करो।' इतना कह कर वे स्थिर हो रहे। वही धर्म सत्ययुगमें चतुष्पाद, त्रेतामें त्रिपाद, द्वापरमें द्विपाद और कलिमें एक पाद द्वारा प्रजाका पालन करते हैं। वे ब्राह्मणोंको सम्पूर्णरूपसे, क्षत्रियोंको तीन भागसे, वैश्योंको दो भागसे और शूद्रों को एक भाग द्वारा रक्षा करते हैं। गुण, द्रव्य, क्रिया और जाति ये ही चार पाद हैं। वेदमें उनका त्रिशृङ्ग नाम रखा गया है। उनके आद्यन्त ओंकार, दो शिरा और सप्त हस्त हैं, उदात्तादि तीन स्वर द्वारा बद्ध हैं। ब्रह्माने यह भी कहा था, 'धर्मदेव! आजसे तुम्हारा त्रयोदशी तिथि नाम पड़ा। इस तिथिमें तुम्हारे उद्देशसे जो उपवास करेंगे, वे सब पापोंसे मुक्त हो जायंगे।'

वामनपुराणमें लिखा है, कि धर्मके अहिंसा नामक भार्याके गर्भसे चार पुत्र उत्पन्न हुए। इनमेंसे बड़ेका नाम सनत्कुमार, द्वितीयका सनातन, तृतीयका सनक और चतुर्थका नाम सनन्द था। किन्तु दूसरे पुराणमें ये ब्रह्माके मानसपुत्र माने गए हैं।

३ धनु। ४ यम। ५ सोमप। ६ सत्सङ्ग। ७ अर्हत्, जिन। ८ न्याय। ९ स्वभाव। १० आचार। ११ उपमा। १२ क्रतु। १३ अहिंसा। १४ उपनिषद्। १५ आत्मा। १६ जीव। १७ भाग्याख्य लग्नभेद, जात लग्नसे नवम स्थानको धर्मस्थान कहते हैं। यह नवम स्थान देख कर बालक किस प्रकार भाग्यसम्पन्न और धार्मिक होगा, वह जाना जा सकता है। इसका विषय ज्योतिषमें इस प्रकार लिखा है—धर्म कार्यमें प्रवृत्ति, भाग्योपपत्ति, चरित्रशुद्धि, तीर्थयात्रा और प्रणय ये सब पुण्यालयों अर्थात् नवस्थानमें निरूपित होंगे। लग्नादि अन्यान्य स्थानोंका त्याग कर पहले भाग्यस्थानका विचार करना नितान्त आवश्यक है। कारण आयु, विद्या, यश और वित्त ये सभी भाग्याधीन हैं। गणितज्ञ पण्डितोंको अन्यान्य चिन्ताका परित्याग कर यत्नपूर्वक भाग्यका विचार करना चाहिए। भाग्यधर व्यक्तिका जीवन, माता, पिता और वंश सभी धन्य हैं। जिनके विपुल वित्त है, वही व्यक्ति कुलीन, पण्डित,

मेधावी, शास्त्रज्ञ, वक्ता, सुश्री, भाग्यशाली और बहुगुणान्वित नहीं होते।

लग्न और चन्द्रसे नवम स्थानको भाग्यालय कहते हैं। इस स्थानका अधिपति शुभग्रह यदि तत्स्थानस्थ हो, अथवा उस स्थानमें उक्त शुभग्रहसे देखा जाता हो, तो मनुष्य स्वदेशोद्भव भाग्यफल भोग करता है। और यदि वह भाग्यस्थान अधिपति भिन्न स्वीय उच्चगृहस्थ शुभग्रहसे दृष्ट वा युक्त हो, तो मानव देशान्तरमें भाग्यवान् होता है। किन्तु क्रूरग्रहसे देखे जानेपर मनुष्य विविध दुःख भोग करता है। भाग्येश्वर यदि बलवान् हो कर भाग्यस्थानमें अथवा स्वगृहमें विराज करे, तो उस स्थानके ग्रहसंस्थानको विवेचना कर शुभाशुभ फलका विचार करना होता है।

जिसके जन्मकालमें लग्नस्थ, तृतीयस्थ और पञ्चमस्थ बलवान् ग्रहके नवमस्थानमें दृष्टि रहे, वह व्यक्ति रूपवान्, विलासशील और बहुलाभयुक्त होता है। जिस मनुष्यके जन्मकालमें नवमस्थ ग्रह स्वगृहस्थ हो कर शुभग्रहसे लक्षित हो, वह मनुष्य भाग्यशाली और मानससरोवरमें हंसकी तरह निज कुलका भूषणस्वरूप होता है। नवमस्थ रवि और मङ्गल यदि पूर्णेन्दुयुक्त तथा बलवान् हो, तो मनुष्य अपने वंशके मर्यादानुसार शुभग्रहकी दशामें राजमन्त्री अथवा राजा होता है। यदि कोई ग्रह भाग्यस्थानमें रहे और वह ग्रह उसका उच्चस्थान हो, तो मनुष्य ऐश्वर्यशाली होता है। शुभग्रहसे देखे जाने पर वह मनुष्य बलवान्, विलासशील और राजा होगा, ऐसा जानना चाहिए। (जातकाभरण)

जन्मकालमें सूर्य यदि नवम स्थानमें रहे, तो मनुष्य निरन्तर भाग्यहीन होता है। किन्तु यदि वह नवम स्थान सूर्यका सम्पूर्ण उच्चस्थान हो तो मनुष्य पुण्य कार्यका अनुष्ठान करता और राजपद पाता है। सूर्यके धर्मस्थानमें रहनेसे मनुष्य भाग्यहीन और पुत्रहीन होता है। पर हाँ, यदि स्वीय उच्चस्थानमें रहे, तो मनुष्य निर्मल धर्मसञ्चय करता है। मतान्तरमें सूर्यके नवमगृहमें रहनेसे मानव सत्यवादी, उत्तम केशयुक्त, कुटुम्बजनहितकारी, देवब्राह्मणभक्त, प्रथम वयसमें रोगयुक्त, यौवन कालमें दृढ़तर, बहुधनसम्पन्न, दीर्घजीवी और उत्तम शरीरवाला होता है। यदि पूर्णचन्द्र नवम रहे, तो मनुष्य सौभाग्यशाली, बहुधनसम्पन्न और पितृयज्ञपरायण होता है। किन्तु नवममें यदि क्षीण चन्द्र रहे, तो उक्त समुदाय फल अल्पपरिमाणमें होगा। मतान्तरमें पूर्णचन्द्रके नवमस्थानमें रहनेसे मनुष्य सौभाग्यशाली, बहुधनसम्पन्न और कामिनियोंके सन्तोषजनक होगा। किन्तु यदि वह नवम गृहस्थित चन्द्र नीच गृहस्थित वा क्षीण हो, तो मनुष्य ऐश्वर्यशाली न हो कर निर्धन, तथा मूढ़ और सत्पथविरोधी होगा। मङ्गलके नवमस्थानमें रहनेसे मानव रक्तवस्त्र-व्यवसायी, पाशुपतव्रतपरायण और सौभाग्यहीन होगा। मतान्तरमें मङ्गलके नवम गृहमें रहनेसे मनुष्य रोगयुक्त, बहुधनद्वारा पूर्ण, सौभाग्यहीन, कुत्सितवस्त्रपरिधानकारी, साधु समीपमें सुवेशसम्पन्न और शिल्पविद्यामें अनुरागयुक्त होता है। इसके अलावा उसका नयन, केश और शरीर पिङ्गलवर्णका होगा ऐसा जानना चाहिए। यदि बुध नवम गृहमें रहे और वह नवम गृह यदि पापग्रह हो, तो मनुष्य मन्दभावमें और बौद्धमतावलम्बी वा अन्य कोई विधर्माक्रान्त होगा। किन्तु यदि वह बुध स्फुटरश्मि अर्थात् उज्ज्वल हो, तो मनुष्य सौभाग्यशाली, सुबुद्धि और धार्मिक होता है। मतान्तरसे यदि नवम गृहमें बुध रहे और वह नवमगृह यदि शुभ हो, तो मनुष्य स्त्रीपुत्रसम्पन्न तथा धनवान् होगा। किन्तु यदि वह नवमगृह पापग्रहका स्थान हो, तो मनुष्य दुःखितान्तःकरण और वेदनिन्दक होगा तथा वह बौद्धधर्म वा अन्य किसी अनार्यधर्मका आश्रय करेगा। बृहस्पतिके नवम गृहमें रहनेसे मनुष्य भाग्यशाली, राजप्रिय, धनवान्, गुणवान्, देवताओंके उद्देशसे यज्ञपरायण, परमार्थज्ञ, कुलवर्द्धन और प्रचुर कीर्त्तिशाली होगा ऐसा समझना चाहिए। शुक्रके धर्मस्थानमें रहनेसे मनुष्य बहुविध तीर्थपरिभ्रमण द्वारा पवित्र शरीरसम्पन्न तथा देवब्राह्मण और गुरुके प्रति भक्तिपरायण होगा। वह मनुष्य अपने बाहुबलसे परम सौभाग्य उपार्जन कर आनन्द पूर्वक कालयापन करेगा। शनिके धर्मस्थानमें रहनेसे मानव दाम्भिक कर्म द्वारा भाग्यसञ्चय करेगा और वह मनुष्य सर्वदा पिशुनवञ्चक, अधार्मिक और कुपथगामी होगा। मतान्तरमें शनिके

धर्मस्थानमें रहनेसे वह दाम्भिक, धर्महीन, पितृवञ्चक, नियत पापनिरत, धनशून्य, रोगविशिष्ट और वीर्यहीन होता है तथा उसको स्त्री पापकर्ममें रत रहेगी ऐसा विचार करना चाहिए। राहुके धर्मस्थानमें रहनेसे मनुष्य मल, कुत्सितवस्त्र-परिधानकारी और अत्यन्त दीन होगा तथा वह चण्डालके जैसा कर्म करेगा और ज्ञातिवर्गके साथ नियत आमोद प्रमोदमें रत रहेगा। वह मनुष्य सर्वदा शत्रुकुलसे डरता रहेगा। राहुके धर्मस्थानमें रहनेसे मनुष्य नीच कर्मोंमें अनुरक्त, सत्यहीन, शौचरहित सौभाग्यहीन और अति दीनहीन होगा, ऐसा समझना चाहिए। १८ द्रुह्यु वंशीय नृपभेद। (भाग० ९।२३।१४)

धर्म—कमाउन प्रदेशके अन्तर्गत हिमालयके दक्षिणस्थ एक जनपद। यह अक्षा० ३०° ५' से ३०° ३०' उ०के मध्य अवस्थित है। इस देशके मध्य लिव नामक पर्वत-शिखर १८८४२ फुट ऊँचा है। उत्तर सीमान्तमें धर्म-गिरिपथ हूणदेश नामक जनपदमें जा मिला है। यह गिरिपथ १५००० फुट ऊँचेमें अवस्थित है। इसी स्थानसे गङ्गाकी उपनदी काली नदी निकली है। कालीकी प्रधान उपनदी धौली नदी भी इसी प्रदेशमें प्रवाहित है। अधिवासिगण भूटिया और तिब्बतीय हैं। ये लोग नेप-पाल लेकर कमाउन और हूणदेशके मध्य वाणिज्य करते हैं। देशका परिमाण फल प्रायः चार सौ वर्गमील है।

धर्मकथक (सं० पु०) धर्मवक्ता।

धर्मकथादरिद्र (सं० पु०) धर्मार्थकामानां दरिद्रः। कलिकालमें जात मानव। कलिकालमें मानवगण धर्मकथा विहीन होते हैं इसीसे उन्हें धर्मकथा दरिद्र कहते हैं।

धर्मकर उपाध्याय—'तड़ागादि प्रतिष्ठापद्धति' नामक स्मृति ग्रंथके प्रणेता।

धर्मकर्म (सं० क्ली०) धर्माय धर्मस्य वा कर्म कार्य। धर्मानुष्ठान, वह कर्म वा विधान जिसका करना किसी धर्मग्रंथमें आवश्यक ठहराया गया हो।

धर्मकाम (सं० पु०) धर्म कामयते फलमिति सम्मानेन कम-अण्। कर्त्तव्य बुद्धिद्वारा धर्मकारक।

धर्मकाय (सं० पु०) धर्माय कायो देहो यस्य। बुद्ध।

धर्मकार (सं० पु०) धर्मं करोतीति धर्म-कृ-अण्। धर्मशास्त्रकर्त्ता।

धर्मकार्य (सं० क्ली०) धर्माय धर्मस्य वा कार्य। धर्मकर्म।

धर्मकीर्त्ति (सं०पु०) १ बृहन्नारदीय-पुराणोक्त एक राजा। २ एक विख्यात बौद्ध नैयायिक और प्राचीन कवि।

इन्होंने बौद्धसङ्गति नामक अलङ्कारग्रन्थ, प्रमाण-वार्त्तिक, प्रमाण-विनिश्चय और प्रशस्तपाद नामक न्याय ग्रन्थ प्रणयन किये हैं। खण्डनखण्डखाद्य, वासवदत्ता, सर्वदर्शनसंग्रह प्रभृति ग्रन्थोंमें इनका उल्लेख है और सदुक्तिकर्णामृत, सुभाषितावली, तथा धन्यालोकलोचन नामक ग्रंथोंमें इनकी बनाई हुई कविताएं उद्धृत हैं।

३ धातुप्रत्ययपञ्जिका और धातुमञ्जरी नामक व्याकरण रचयिता।

धर्मकील (सं० पु०) धर्मस्य कील इव। शासन-राज्य, शासन।

धर्मकीलक (सं० पु०) धर्मकील संज्ञायां कन्। ब्रह्म-शासन।

धर्मकुमारसाधु—एक जैन ग्रंथकार। इन्होंने शालिभद्र-चरित नामक ग्रंथकी रचना की। धर्मकुमारसाधु अपनी गुरु-तालिकाका जो उल्लेख कर गये हैं उससे जाना जाता है कि नगेन्द्रगच्छके मध्यमें हेमप्रभसूरि उत्पन्न हुए। हेमप्रभसूरिके शिष्य विद्याधरप्रभ और विद्याधरके शिष्य धर्मकुमार साधु थे। प्रद्युम्न आचार्य-ने इनके ग्रंथका संशोधन किया। उक्त शालिभद्रचरित्र नामक ग्रंथ 'जनातिशयवत्सर'में लिखा गया।

धर्मकूप (सं० पु०) एक प्राचीन तीर्थ।

धर्मकृत (सं० त्रि०) धर्म धर्मसाधनं कर्म करोति कृ क्विप् तुक्। १ धर्मसाधन कर्मकर, धर्म करनेवाला। (पु०) २ विष्णु।

धर्मकृत्य (सं० क्ली०) धर्मकार्यका अनुष्ठान।

धर्मकेतु (सं० पु०) धर्मः अहिंसारूप कर्म केतुर्यस्य। १ बुद्ध। बौद्धधर्ममें अहिंसा ही एकमात्र परमधर्म है, इसीसे धर्मकेतु शब्दसे बुद्धका बोध होता है। २ काश्यप वंशीय सुकेतु राजाके एक पुत्रका नाम। विष्णुपुराणके मतसे ये सुकुमारके पुत्र थे। ३ एक व्याध। इन्द्रके पुत्र नीलाम्बर महादेवके शापसे कालकेतु नामसे इसके पुत्र हुए थे।

धर्मकोट—पञ्जाब प्रदेशके फिरोजपुर जिलेके अन्तर्गत जीरा तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० ३०° ५७' उ० और देशा० ७५° १४' पू० फिरोजपुर शहरसे ४१ मील पूर्वमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ६७३१ है। हिन्दूकी संख्या ही अधिक है।

इसका प्राचीन नाम कोटाइसपुर था। १७७० ई०में सिखोंके सरदार तारासिंहने यहां धर्मकोट नामक एक दुर्ग निर्माण किया। उसी दुर्गके नामानुसार इसका प्राचीन नाम बदल गया है। तारासिंहका दुर्ग अभी नष्ट हो गया है। यहांकी सभी सड़कें पक्की हैं। अनाजका वाणिज्य अधिक होता है। इसके आसपास और कोई दूसरा शहर नहीं रहनेसे लुधियानाके बाद यहींका बाजार जोरों चलता है। यहां एक सराय भी है। १८६७ ई०में म्युनिसपैलिटी स्थापित हुई है। शहरकी आय लगभग १८००) रु० है। यहां केवल एक वर्नाक्युलर स्कूल और एक सरकारी चिकित्सालय है।

धर्मकोष (सं० पु०) धर्मः कोष इव, धर्मस्य कोषः समूहो वा। १ धर्मरूप रक्षणीय वस्तु। २ धर्मसमूह।

धर्मक्षेत्र (सं० क्ली०) धर्मस्य क्षेत्रं। १ धर्मार्जनार्थ क्षेत्र, कर्मभूमि, भारतवर्ष। भारतवर्ष ही एकमात्र धर्म उपार्जनका स्थान है, इसीसे भारतवर्षको धर्मक्षेत्र कहते हैं। २ कुरुक्षेत्र, कुरुक्षेत्रकी धर्मक्षेत्रमें गिनती की गई। (पु०) ३ एक प्राचीन धर्मशास्त्रकार।

धर्मगहनाभ्युद्गतराज (सं० पु०) बुद्धका नामान्तर।

धर्मगुप् (सं० त्रि०) धर्मं गोपायति गुप-क्विप्। १ धर्मरक्षक। (पु०) २ विष्णु।

धर्मगुप्त (सं० पु०) १ एक वणिक्। इसकी लड़कीका नाम देवस्मिता था। (कथासरित्सा०) २ पाटलिपुत्र-नगरवासी एक वणिक्। इसकी स्त्रीका नाम था चन्द्रप्रभा। इसके केवल एक कन्या थी जिसका नाम सोमप्रभा था। ३ रामदासका पुत्र।

धर्मग्रन्थ (सं० पु०) वह ग्रन्थ जिसमें किसी जन-समाजके आचार व्यवहार और उपासना आदिके सम्बन्धमें शिक्षा हो।

धर्मघट (सं० पु०) धर्मार्थं देयो घटः धर्माय घटः सुगन्धोदकपरिपूर्णकलशः। वैशाख मासमें प्रत्यह दातव्य सुगन्धोदकपूरित कलस, सुगन्धित जलसे भरा हुआ घड़ा जो वैशाखमें दान किया जाता है। वैशाख मासमें धर्मघटव्रत करना चाहिये।

भविष्यपुराणमें लिखा है, कि चैत्रमास गत होने पर जब सूर्य मेषराशिमें उदित हों अर्थात् वैशाख मासके दोषादिरहित समयमें यह व्रत चार वर्ष तक किया जाता है। इसमें प्रतिदिन घड़ेको चन्दनादिसे लिप्त कर भोज्यके साथ दान देते हैं। धर्मघटव्रतका विषय दूसरे प्रकारसे भी लिखा है—

शीतल और सुगन्धित जलसे घड़ेको भर कर उसके गलेमें सफेद चन्दन और पुष्पमालासे शोभित करते हैं। बाद उसमें दही और अक्षत दे कर उसके ऊपर एक सरवा रख छोड़ते हैं। घड़ेके साथ साथ छाता और जूता भी दान करनेका विधान है। धर्मघटव्रत निम्नलिखित प्रयोगके अनुसार करना चाहिये—

महाविषुव-संक्रान्ति अर्थात् चैत्र-संक्रान्तिके दिन पहले स्वस्तिवाचन करके 'सूर्यः सोमः' यह मन्त्र पढ़ कर संकल्प किया जाता है। संकल्प,—"अद्येत्यादि वैशाखे मासि अमुकपक्षे अमुकतिथौ महाविषुव-संक्रान्त्यां अमुकगोत्रा श्रीअमुकी देवी यमालयगमननिवारण-पूर्वक श्रीविष्णुप्रीतिकामा अद्यारभ्य वर्षचतुष्टयं यावत् प्रतिवर्षीय मेषस्थरवौ प्रत्यहं गणपत्यादि नानादेवता-पूजापूर्वकं श्रीविष्णुपूजा सभोज्यघटदानकथा श्रवण-रूप धर्मघटव्रतमहं करिष्ये।" इस प्रकार संकल्प करके सङ्कल्पसूक्त पाठ करना पड़ता है। जिस वर्षमें यह व्रत आरम्भ किया जाय, उस वर्षमें इसी प्रकार सङ्कल्प करना चाहिये। बाद दूसरे वर्षमें निम्नलिखित प्रकारसे,—"अद्येत्यादि महाविषुवसंक्रान्त्यां मत्सङ्कल्पित धर्मघटव्रत कर्मणि यथाविधि गणपत्यादि नाना देवता पूजापूर्वकं श्रीविष्णुपूजा सभोज्यघटदानकथा श्रवणमहं करिष्ये।" पीछे एक ब्राह्मणको प्रतिनिधि-स्वरूप हो कर विधानपूर्वक सामान्यार्घ्य, आसनशुद्धि और भूतशुद्धि करके शालग्रामशिला या घटकी पूजा करनी चाहिये। 'ह्रां हृदयाय नमः' इस प्रकार अङ्गन्यास और कराङ्ग-न्यास कर नारायणका ध्यान करना चाहिये। बाद 'ओं भगवते नमः' इस मन्त्र द्वारा षोड़शोपचारसे आपू

करनेका विधान है। बाद लक्ष्मी, सरस्वती और आवरण देवताकी पूजा कर नैवेद्य उत्सर्ग करना चाहिये।

'एते गन्धपुष्पे नमः सभोज्यवारिपूर्णघटाय नमः' इस प्रकार तीन बार अर्चना कर यह मन्त्र जप करते हैं—

'ओं घटस्त्वं धर्मरूपोऽसि ब्रह्मणा निर्मितः पुरा।
त्वयि लिप्ते सन्तु लिप्ताश्चन्दनैः सर्वे देवताः॥'

इस मन्त्रसे चन्दनानुलेपन कर 'अद्येत्यादि अमुक गोत्रा श्रीअमुकी देवी श्रीविष्णुप्रीतिकामा धर्मघटव्रत कर्मणि इमं सभोज्य वारिपूर्णघटमर्चितं श्रीविष्णु दैवतं यथासम्भव गोत्रनाम्ने ब्राह्मणायाहं ददे।' इस प्रकार उत्सर्ग कर क्षतान्जलि हो पाठ करना चाहिये।

यह पाठ करके दक्षिणा देते हैं, बाद भविष्यपुराणोक्त धर्मघटव्रतकथा सुनते और अन्तमें ब्राह्मणादि भोजन कराते हैं। इस व्रतके करनेसे स्त्री सौभाग्यवती होती है।

धर्मघड़ी (हिं० स्त्री०) ऊँचे स्थान पर लगी हुई बड़ी घड़ी जिसे सब कोई देख सके।

धर्मघोष—१ जैनियोंके युगप्रधानोंमेंसे एक।

२ एक जैनग्रन्थकार। ये 'सङ्घाचार' और 'श्रन्तियन्ति पर्यन्तविन्यस्तयम'का नामसे ख्यात २८ स्तुति रच गए हैं। ये तपागच्छीय देवेन्द्रके शिष्य और सोमप्रभके गुरु थे। १३०२ सम्वत्को देवेन्द्रने उज्जयिनी नगरमें महेभ्य जिनचन्द्रके वीरधवल और भीमसिंह नामक दो पुत्रोंको दीक्षित किया। १३२३ सम्वत्में (किसीके मतसे १३०४ सम्वत्में) वीरधवलको विद्यानन्द नाम दे कर देवेन्द्रने सूरीपद प्रदान किया और इनके भाई भीमसिंह को धर्मकीर्त्तिका नाम दे कर उपाध्यायके पद पर नियुक्त किया।

१३२७ सम्वत्को मालवमें जब देवेन्द्रकी मृत्यु हुई, तब विद्यानन्द सूरिने गुरुका पद प्राप्त किया। किन्तु तेरह दिन बाद ही विद्यापुरमें उनकी मृत्यु हो गई। पीछे उनके भाई धर्मकीर्त्ति उपाध्याय धर्मघोष नाम धारण कर सूरिपद पर प्रतिष्ठित हुए। सूरिपद पानेके पहले ही इन्होंने धर्मकीर्त्ति उपाध्याय नामसे सङ्घाचारकी रचना की। ये "कालसत्तरि" नामक एक और ग्रन्थकी रचना कर गए हैं।

३ एक जैनाचार्य, चन्द्रकुलके अन्तर्गत शीलभद्र सूरिके शिष्य और यशोभद्रके गुरु। ये वादिमदहर नामसे प्रसिद्ध थे। इन्होंने किसी एक शाकम्भरी-राजको दीक्षित किया। पद्मप्रभके गुरु वादिचूड़ामणि धर्मघोष सूरि और ये अभिन्न व्यक्ति माने जाते हैं।

४ कोटिगगणके मध्य वज्रशाखासम्भूत, चन्द्रगच्छीय चन्द्रप्रभके शिष्य और समुद्रघोषके गुरु। इन्होंने २० शिष्योंको सूरिपद प्रदान किए। इन्होंने शब्दसिद्धि नामक व्याकरणकी रचना की है। इन्होंने अपने गुरुके गु। जयसिंहके आदेशानुसार पूर्णिमागच्छ प्रतिष्ठित किया। ११४९ सम्वत्में यह गच्छ स्थापित हुआ। रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकरके मतानुसार इनके गुरु चन्द्रप्रभने ही उक्त गच्छकी प्रतिष्ठा की है।

५ एक जैन ग्रन्थकार, अञ्चलगच्छीय जयसिंहके शिष्य और महेन्द्र सूरिके गुरु। १२६३ सम्वत्में इन्होंने "शतपदिका" की रचना की और १२९४ सम्वत्में महेन्द्र-शिष्यने उसका एक सरल पाठ प्रकाशित किया। इनके गुरुका नाम था आर्यरक्षित। मेरुतुङ्गके 'शतपदिकासारोद्धार" नामक ग्रन्थमें लिखा है कि धर्मघोषने महापुरके अन्तर्गत मरुदेशमें १२०८ सम्वत्को जन्म ग्रहण किया। इनके पिताका नाम चन्द्र और माताका नाम राजलदेवी था। इन्होंने १२१६ सम्वत्में व्रतग्रहण, १२२४ सम्वत्में सूरिपद लाभ और १२६८ सम्वत्में ६० वर्षको अवस्थामें स्वर्गगमन किया। इन्होंने ही शाकम्भरीराजको जैनधर्ममें दीक्षित किया था।

६ एक सूरि। ये नागेन्द्रगच्छके अन्तर्गत हेमप्रभके शिष्य और सोमप्रभके गुरु थे।

७ एक जैनग्रन्थकार। ये महर्षिकुलकग्रन्थ बना गए हैं।

धर्मघ्न (सं० त्रि०) धर्म हन्ति हन-क। धर्मनाशक, धर्मद्वेषी।

धर्मचक्र (सं० क्ली०) धर्मस्य चक्रं ६-तत्। १ धर्मसमूह, धर्मका ढेर। २ बुद्ध। ३ अस्त्रविशेष, प्राचीन कालका एक प्रकारका अस्त्र।

धर्मचक्रभृत् (सं० पु०) धर्मचक्रं धर्मसङ्घं बिभर्त्तीति भृ-क्विप्, तुगागमश्च। जिन।

धर्मचन्द्रमणि—एक जैन ग्रन्थकार। इन्होंने 'सिद्धजयन्ती चरित्र' नामक ग्रन्थ बनाया है। ये मानतुङ्गके भांजा थे।

धर्मचरण (सं॰ पु॰) धर्माचरण।

धर्मचर्या (सं॰ स्त्री॰) धर्मस्य चर्या। धर्माचरण, धर्मका अनुष्ठान।

धर्मचारिणी (सं॰ स्त्री॰) धर्मं चरतीति चर-णिनि-ङीप्। जाया, सहधर्मिणी, स्त्री।

धर्मचारिन् (सं॰ त्रि॰) धर्मं तत्साधनकर्म चरति चर-णिनि। धर्मसाधन कर्मकारक, धर्मका आचरण करनेवाला।

धर्मचिन्तक (सं॰ पु॰) चिन्तयति इति चिन्तकः धर्मस्य चिन्तकः। धर्मचिन्ताकारी, वह जो धर्मसंबन्धी बातोंका विचार करता हो।

धर्मचिन्तन (सं॰ क्ली॰) चिन्ति भावे ल्युट् धर्मस्य चिन्तनं ६-तत्। धर्मचिन्ता, धर्मसम्बन्धी विषयका विचार।

धर्मचिन्ता (सं॰ स्त्री॰) चिन्ति भावे अ टाप्। धर्मस्य चिन्ता। धर्मविषयकी चिन्ता, धर्मविषयका विचार।

धर्मचिन्ति (सं॰ पु॰) शाक्य मुनिका नामान्तर।

धर्मज (सं॰ पु॰) धर्मार्थं जायते जन-ड। धर्मपत्नीसे उत्पन्न प्रथम औरस पुत्र। पुत्र नहीं होनेसे पितृऋण शोध नहीं होता है। पितृऋण परिशोधके लिए धर्मपत्नीसे जो प्रथम पुत्र उत्पन्न हो, उसे धर्मज कहते हैं।

मनुने लिखा है कि जिस ज्येष्ठ पुत्रको उत्पत्तिसे ही पिता पितृऋणसे मुक्त होता है और स्वयं अनन्तत्व लाभ करता है उसी ज्येष्ठ पुत्रको धर्मज कहते हैं और शेष सन्तान कामज पुत्र हैं। धर्मात् जायते जन ड। २ धर्मपुत्र युधिष्ठिर। युधिष्ठिर देखो। ३ बुद्धभेद, एक बुद्धका नाम। (क्ली॰) ४ दिव्यभेद। (पु॰) ५ नरनारायण। (त्रि॰) ६ धर्मतः जातमात्र, धर्मसे उत्पन्न।

धर्मजन्मन् (सं॰ पु॰) धर्मतो जन्म यस्य। युधिष्ठिर।

धर्मजन्य (सं॰ क्ली॰) धर्मेण जन्यः ३-तत्। धर्म द्वारा जात सुख, वह सुख जो धर्मसे होता है।

धर्मजिज्ञासा (सं॰ स्त्री॰) ज्ञातुमिच्छा जिज्ञासा, धर्मार्थं धर्माचरणाय जिज्ञासा। वेदवाक्यविचार, धर्मके विषयमें सन्देहके उपस्थित होनेसे वेदवाक्य द्वारा जो धर्मकी मीमांसा की जाती है, उसे धर्मजिज्ञासा कहते हैं।

धर्मजीवन (सं॰ पु॰) याजनप्रतिग्रहादिना परस्य धर्ममुत्पाद्य जीवति जीव-ल्यु। ब्राह्मणविशेष, जो ब्राह्मण धर्मकृत्य करा कर जीविका निर्वाह करता हो, उसे धर्मजीवन कहते हैं।

मनुने लिखा है कि धर्मजीवन ब्राह्मण यदि धर्मभ्रष्ट हो, तो राजा उसे दण्ड देवें।

धर्मज्ञ (सं॰ त्रि॰) धर्मः जानातीति ज्ञा क। धर्मज्ञानविशिष्ट, धर्मको जाननेवाला।

धर्मठाकुर—पश्चिम और दक्षिण बङ्गालको हाड़ी, पोद, डोम, कैवर्त्त आदि निम्नतम हिन्दू-जातिके उपास्य देवता। इनका नाम साधारणतः धर्मठाकुर, धर्मराज वा धर्मराय है। इसके सिवा विभिन्न स्थानोंमें विभिन्न नाम प्रचलित हैं। धर्मठाकुरको मूर्त्ति वा प्रतिमाका कोई एक निश्चित आकार नहीं है, कहीं घटमें, कहीं सिन्दूरमण्डित प्रस्तरमें, कहीं किसी एक प्रकारकी मूर्त्तिके रूपमें इनकी पूजा होती है। इनकी प्रतिमाके अनेक भेद हैं। कहीं कच्छपाकार, कहीं त्रिकोणाकार और कहीं शिवलिङ्गके अर्द्धभागके समान इनकी मूर्त्ति बनती है, इनके सिवा और भी अनेक प्रकारकी प्रतिमाएं हैं। नाना स्थानोंमें इनके मन्दिर हैं। मन्दिरमात्रमें प्रतिमा हो, ऐसा कोई नियम नहीं, कहीं प्रतिमा होती हैं, कहीं प्रस्तरखण्ड होता है और कहीं घट ही रक्खा रहता है। बहुत जगह मन्दिर भी नहीं हैं, कहीं आप वृक्षके नीचे, कहीं पुष्करिणीके तट पर और कहीं मैदानमें किसी विशेष स्थान पर अनावृत दशामें पड़े हुए हैं। इनकी नित्यपूजा नहीं होती, भक्तगण मनत मानने पर विशेष दिनमें जा कर धर्मठाकुरकी पूजा करते हैं। कहीं कहीं नित्यपूजाकी व्यवस्था भी हो गई है। धर्मका प्रतिमाखण्ड जो कुछ भी देखनेमें आता है, उनमेंसे अधिकांश पर चाँदी वा पीतलकी टोपी लगी हुई होती है। सिन्दूरकी ये टोपियां भी जगह जगह मोमसे वा कीलसे चुपका दी जाती हैं। इनमें आँखोंकी कल्पना करते हैं। इनकी कहीं तो विष्णुरूपमें पूजा होती है, बलि नहीं चढ़ती। कहीं शिवरूपमें पूजे जाते हैं, पर पञ्चानन्दकी पूजाकी भांति बलि नहीं चढ़ती और कहीं कहीं काम

मैंस, मुरगी और सूअर तक चढ़ाये जाते हैं। पूजकके भेदसे पूजनकी व्यवस्था होती है। अधिकांश स्थलोंमें निम्न श्रेणीके लोग ही इनकी पूजा करते है, जैसे डोम, पोद्दी आदि। कहीं कहीं कैवर्त्त, सद्गोप आदि भी धर्मकी उपासना करते हैं। डोम और पोदोंमें जो पण्डित कहलाते हैं, वे ही इनकी पूजा करते हैं। धर्मठाकुर एक प्रकारसे इनके निजस्व देवता हैं। जहां जितने नीच जातिके लोग इनके पूजनेवाले हैं, वहां उतनी ही नीच जातिके पशुपक्षियोंकी बलि होती है। कैवर्त्त आदि द्वारा सेवित धर्मस्थानमें बलि निषिद्ध है। धर्मठाकुरकी पूजा नीच जातिके सिवा ब्राह्मण आदि भी करते हैं। स्थानभेदसे इसके भी विभिन्न नियम हैं। कहीं कहीं एक ही धर्मालयमें निम्न श्रेणीके ब्राह्मण और नीच जातीय पूजक दोनों उपस्थित होते और पूजादि करते हैं। मन्नत माननेवालेकी रुचिके अनुसार ब्राह्मण वा अन्य कोई नीचजातीय पूजक पूजा कर सकता है। कहीं कहीं स्वयं मन्नत माननेवाले ही पुरोहितके साथ पूजा किया करते हैं। पूजाका विधान सर्वत्र ब्राह्मण्य देवताके पूजा-विधानके सदृश है। जिस धर्मालयमें बलि चढ़ानेकी मनाई है, वहां नीचजातिके लोग यदि बलि देनेकी मन्नत मान भी लें, तो भी बलि नहीं चढ़ा सकते। धर्मकी पूजा प्रायः पश्चिम मुख बैठकर की जाती है और धर्म देवता पूर्वमुख विराजमान रहते हैं। हरएक मन्नत माननेवालेको तेल और सिन्दूर चढ़ाना पड़ता है। धर्मके अधिकांश पूजक चूना देनेकी मन्नत मानते है, उस चूनेसे मन्दिरकी सफेदी कराई जाती है। इनका मेला भी लगता है। भाद्र और वैशाखकी संक्रान्तिके दिन यह उत्सव होता है। मेला पर नाना स्थानोंके यात्रियोंका समागम होता है।

यात्री लोग संक्रान्तिके एक दिन पहले हविष्य वा फलमूलादिका आहार करते हैं। फिर संक्रान्तिके दिन पूजा करके धर्मठाकुरका प्रसाद पाते हैं और दिन रात धर्मके गीत गाते हैं। मेला पर जितने भी यात्री मन्नत उतारते हैं, पूजक उन सबके नाम और गोत्रका उल्लेख कर मन्नत उत्सर्ग करते हैं। इसके लिए उन्हें प्रत्येकसे दक्षिणा मिलती है। यात्री लोग धर्मके मन्दिरमें कर्दमका ढेर करके उसमें एक लकड़ी गाड़ते हैं, उस लकड़ीके ऊपर रुई लिपटी रहती है, रुईमें घी डाल कर जलाते हैं। इस तरहसे प्रत्येक यात्रीको दीपदान करना पड़ता है। भाद्र और वैशाखकी संक्रान्तिके सिवा धर्मकी मन्नत शनि अथवा मङ्गलवारको भी उतारी जा सकती है। वहां बहुत लोग प्रायः पूर्णिमा तिथिको वा बंगला मासकी संक्रान्तिके दिन भी मन्नत उतारते हैं। धर्मठाकुरकी मन्नत मान कर लोग बाल रखते हैं, पर नख वा दाढ़ी नहीं रखते। बालक बालिकाओंके बाल भी धर्मके नामसे बढ़ाये जाते हैं। समर्थ लोग धर्मकी प्रतिमा वा घटको अपने घर ला कर बड़ी धूमधामसे पूजा उत्सव करते हैं। मेलेके संन्यासियोंको 'गति' और पूजार्थियोंको 'भगत' कहते हैं।

धर्मठाकुरके पक्के मन्दिरोंके पुजारी ही उनके अधिकारी हैं; उनकी वंशपरम्परा मन्दिरोंकी आयका भोग करती है। पश्चिम बंगालके धर्ममन्दिरोंमें काफी आमदनी है।

धर्मठाकुर नीचजातिके देवता होने पर भी सभी उनको मानते हैं। ब्राह्मण आदि गृहस्थ भी इनकी मन्नत मानते हैं। हां इतना कह सकते हैं कि उच्च श्रेणीके लोग धर्मके नाम पर संन्यास नहीं करते। मुसलमान भी इन को मानते और पूजादि करते हैं। मुसलमानोंकी पूजा पण्डित (पूजक) ही करते हैं। यजमान-व्यवसायी ब्राह्मणगण कहीं कहीं विशेषतः उस जगह जहां कि धर्मका प्रभाव नहीं है, पूजा करनेको राजी नहीं होते। किन्तु जहां धर्मके प्रसिद्ध मन्दिरादि हैं, वहां बहुतसे संस्कृतज्ञ विप्र यजमानी ब्राह्मण भी यजमानकी प्रीतिके लिए धर्म पूजा करते हैं।

पूजाके नियम।—पूजाके दिनकी तिथिका उल्लेख कर पहले सङ्कल्प किया जाता है। फिर ठाकुरकी प्रतिमाका प्रक्षालन और तुलसी वा बिल्वपत्रादिके द्वारा उनका ध्यान किया जाता है। अनन्तर धर्मके बीजमन्त्रका उच्चारण कर पञ्चोपचार वा षोड़शोपचारसे पूजा की जाती है।

पूजकके भेदसे वा ब्राह्मण्य प्रभावकी ह्रासवृद्धिके अनुसार इनकी पूजाके बंगला और संस्कृत मन्त्र हैं।

जहां ब्राह्मणप्रभाव अधिक है, वहां "धां धों धं" यह मन्त्र धर्मका बीजमन्त्र समझा जाता है। जहां धर्ममें विष्णु मूर्त्तिकी कल्पना की जाती है, वहां विष्णु-ध्यान का संस्कृत मन्त्र ही नाना परिवर्तित और भ्रमपूर्ण आकारमें धर्मके ध्यानमन्त्रके रूपमें व्यवहृत होता है। परन्तु इनका ध्यानमन्त्र स्वतन्त्र है, वह भी नाना स्थानोंमें नाना प्रकार है।

घनराम नामक बंगाली कविका मत है, कि रमाई पण्डित (एक बंगाली विद्वान्) इस पूजाके प्रवर्त्तक हैं। उन्हींकी रची हुई पद्धतिके अनुसार इनकी पूजा होती है।

इतिहास।—धर्मठाकुरकी पूजा आदिका विवरण लिख चुके। अब इस बातका निर्णय करना चाहिए कि धर्म-पूजा कबसे और कैसे प्रचलित हुई? धर्मठाकुरकी महिमाको प्रकट करनेवाला कोई संस्कृत ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। हां, चण्डीमङ्गल आदि बंगला ग्रन्थोंमें इनका उल्लेख है और कुछ मङ्गलगीत भी देखनेमें आते हैं।

घनराम चक्रवर्ती-प्रणीत श्रीधर्म-मङ्गल नामक बंगला पुस्तकके पढ़नेसे मालूम होता है कि गौड़पति धर्मपाल-की साली रञ्जावतीके पुत्र लाउसेनके द्वारा इस पूजाका प्रचार हुआ है। रमाई पण्डितने रञ्जावतीको धर्म-पूजाका उपदेश दिया था। मेदिनीपुरमें मयनागढ़ नामक स्थानमें रामाई पण्डितका आश्रम था। इसी आश्रममें मयनावतीने कण्टकशय्या पर शयन कर धर्मको तपस्या पूर्वक उन्हींके वरपुत्रके रूपमें लाउसेनको गर्भमें धारण किया था। लाउसेनने ही मयनागढ़के राजा हो कर रामाई पण्डितके उपदेशानुसार धर्म-पूजाकी कथा चलाई थी।

शून्यपुराणके मतसे, धर्मठाकुर वेदके अपौरुषेयत्व और नित्यत्वको नहीं मानते। इनका कोई आकारादि नहीं है; ये महाशून्यके मध्य शून्य मूर्त्तिमें अवस्थित हैं और शून्यसे ही सृष्टि करते हैं। यह भाव किसी भी हिन्दू पुराणादि शास्त्रमें नहीं देखनेमें आता। शून्यवाद तो बौद्ध दर्शनकी भित्ति है। लाउसेन और मैनागढ़ देखो।

धर्मण (सं० पु०) धर्मेव आमिं करोति: नमतीति नम-ड। १ वृक्षभेद, धामिनवृक्ष। २ सर्पविशेष, धामिन सांप। ३ पक्षीविशेष, धामिन पक्षी।

धर्मतः (सं० अव्य) धर्म-तसिल्। धर्मानुसारसे, धर्मका ध्यान रखते हुए, धर्मको साक्षी करके। २ धर्मके निकट, धर्मके द्वार पर।

धर्मतत्त्व (सं० क्लो०) धर्मस्य तत्त्वं ६-तत्। धर्मरहस्य, धर्मका निगूढ़ मर्म।

धर्मतीर्थ (सं० क्लो०) धर्मकृतं तीर्थ। तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

महाभारतमें लिखा है, कि धर्मतीर्थ अत्यन्त श्रेष्ठ तीर्थ है। यहां धर्मने तपस्या की थी, इसीसे यह तीर्थ धर्मतीर्थ नामसे प्रसिद्ध है। इस तीर्थमें स्नान करनेसे धर्मशील होता है और स्नान करनेवालेका सातवां कुल पवित्र हो जाता है।

धर्मत्व (सं० क्लो०) धर्मस्य भावः धर्म-त्व। धर्मिमत्व, आधेयत्व।

धर्मत्राता—एक बौद्ध धर्म पुस्तकके प्रणेता। इनका पूरा नाम भदन्त वा आर्यधर्मत्राता है। इन्होंने बौद्ध धर्म ग्रन्थ धर्मपदके उत्तरदेशीय पाठानुसारसे 'उदानवर्ग' नामक सूक्ति संग्रह की। ये वसुमित्रके मामा और सम्भवतः आर्यदेवके छात्र थे। सुतरां ये पहली शताब्दीमें वर्त्तमान थे ऐसा अनुमान किया जाता है। उनके अन्यान्य ग्रन्थोंमें "धर्मपदसूत्र" चीनी भाषामें २२४ ई० को अनुवादित हुआ है। तारानाथके मतसे ये ब्राह्मण राहुलके समकालिक थे। राहुल वसुमित्रादि चार व्यक्ति वैभाषिक आचार्योंके समसामयिक रहे। धर्मत्राताके भाजा वसुमित्र यदि कनिष्कके समयके सभापण्डित हुए हों, तो धर्मत्राता ४० ई० में विद्यमान थे ऐसा कहा जा सकता है।

धर्मद (सं० पु०) धर्मं स्वधर्मफलं ददाति अन्यस्मै संक्रामयति दा-क। १ दूसरे स्वधर्मफलका संक्रामक। २ धर्मोत्पादक। ३ कुमारानुचर मातृभेद।

धर्मदान (सं० पु०) वह दान जो किसी निमित्तसे वा विशेष फलकी प्राप्तिके अर्थ न किया जाय, केवल धर्म वा सात्त्विक बुद्धिकी प्रेरणासे किया जाय।

धर्मद्वार (सं० क्लो०) धर्मार्थं अन्तराधानाय द्वारः। धर्मपक्षी।

धर्मदासगणि—एक जैनग्रन्थकार। इनकी बनाई हुई

पुस्तकका नाम 'उपदेशमाला' है। सिद्धसाधुने इस ग्रन्थकी एक टीका की है। देवेन्द्रने १४२८ सम्वत्‌में इनके ग्रन्थसे प्रमाण उद्धार किया है, सुतरां ये १४२८ सम्वत्‌के पूर्ववर्त्ती मनुष्य थे। इनकी बनाई हुई और भी एक टीका है।

धर्मदीपिका (सं० स्त्री०) गौड़-प्रसिद्ध मीमांसा ग्रंथविशेष।

धर्मदुघा (सं० स्त्री०) धर्मान् दोग्धि, आधारस्य कर्तृत्वविवक्षया कर्त्तरि दुह-क प्रत्ययान्ताट्टाप्। धर्मदान स्थान। वह्निवेदी।

धर्मदेव—नेपालके लिच्छविवंशीय एक राजा। अपने पिता शङ्करदेवके मरने पर ये राजा हुए थे। इनके मानदेव नामक एक लड़का था।

धर्मदेश (सं० पु०) धर्मसाधनं देशः। संवर्त्तोक्त यज्ञीय देश। जहां स्वभावतः कृष्णसार मृग विचरण करते हैं उस स्थानको धर्मदेश कहते हैं। यह धर्मदेश द्विजोंके लिए धर्मसाधनक्षेत्र है।

धर्मदोष-गुप्त सम्राट् विष्णुवर्द्धनका मन्त्री। इनके पिताका नाम दोषकुम्भ था। सुविख्यात अभयदत्त इनके बड़े भाई थे। इन्हींके कौशलसे विष्णुवर्द्धनका राज्य खूब बढ़ चढ़ गया था। ये राजा और प्रजाके इतने प्रिय और मान्य थे कि इन्हें राजोचित परिच्छदादि पहननेका अधिकार मिला था। इनके छोटे भाई "निर्दोष" नामधारी दक्षने एक वृहत् कूप खुदवाया था।

धर्मद्रवी (सं० स्त्री०) धर्मजनको द्रवो यस्याः, गौरादित्वात् ङीष्। गङ्गा।

धर्मद्रोहिन् (सं० पु०) धर्माय परस्य धर्माचरणाय द्रुह्यति द्रुह-णिनि ३ तत्। राक्षस।

धर्मद्वेषिन् (सं० पु०) धर्मं द्वेष्टि धर्म-द्विष-णिनि। १ धर्मद्वेष्टा, धर्मद्वेषकारी, राक्षस। २ विभीतकवृक्ष।

धर्मधक्का (हिं० पु०) १ धर्मके निमित्त उठाए जानेका कष्ट, वह हानि या कठिनाई जो परोपकार आदिके लिये सहनी पड़े। २ वह कष्ट या प्रयत्न जिससे अपना कोई लाभ न हो, व्यर्थका कष्ट।

धर्मधातु (सं० पु०) धर्मं अहिंसारूपं परमं धर्मं दधाति धा-तुन्। बुद्धदेव।

धर्मध्वज (सं० पु०)—मिथिला नगरके जनकवंशीय एक राजा। इनके विषयमें महाभारतके शान्तिपर्वमें इस प्रकार लिखा है,—सत्ययुगमें मिथिला नगरमें धर्मध्वज नामक जनक वंशीय संन्यासधर्मतत्त्वज्ञ एक प्रसिद्ध नरपति रहते थे। वेद, मोक्षशास्त्र और दण्डनीतिके विषयमें वे पूर्ण पाण्डित्य रखते थे। आप इन्द्रियोंको वशीभूत कर सुनियमसे राज्यका शासन करते थे। वेदज्ञ पण्डित तथा अन्यान्य व्यक्ति, सब आपकी साधुताका स्मरण कर आपका अनुकरण करना चाहते थे। उस समय सुलभा नामक एक संन्यासिनी योगधर्म अवलम्बन कर अकेली पृथिवीका पर्यटन कर रही थीं। एक दिन परिभ्रमण करती हुई वे मिथिला नगरमें उपस्थित हुई और लोगोंके मुंहसे धर्मध्वज राजाकी प्रशंसा सुन, उनकी परीक्षा करनेके अभिप्रायसे योगबलसे अच्छा रूप धारण कर भीख मांगनेके बहाने राजाके समक्ष पहुंचीं। राजा धर्मध्वज उनके अपूर्व रूपलावण्यको देख कर चकित हो गये और मनमें विचारने लगे कि ये कौन हैं, किसकी कन्या हैं और कहांसे आई हैं? साथ ही आपने उनका स्वागत किया और पाद्यादि प्रदान किया। उसके बाद छद्मवेशधारिणी संन्यासिनीने राजाकी परीक्षा करनी शुरू कर दी; उन्होंने अपना सन्देह दूर करनेके लिए अपनी बुद्धि द्वारा राजाकी बुद्धिमें और अपनी आंखों द्वारा राजाकी आंखोंमें प्रवेश कर योगबलसे उन्हें वशीभूत और बद्ध कर लिया। इस समय दोनोंके वाक्यशरीर कार्यक्षम हो गये थे।

अनन्तर राजा धर्मध्वज सुलभाके अभिप्रायको जान कर लिङ्गदेहका आश्रय ले हंसते हुए बोले—"देवि! तुम्हारा वासस्थान कहां है, तुम किसकी कन्या हो और कहांसे आई हो, कहां जाओगी? बिना पूछे कोई भी किसीके शास्त्रज्ञान, वयःक्रम और जातिका विषय नहीं जान सकता। अब मेरे समक्ष मेरे शास्त्रज्ञानादिका विषय जानना तुम्हारे लिए अवश्यकर्त्तव्य है। मैं अब राज्यादिसे मुक्त हो चुका हूं। अब तुम्हारे पास अपना तत्त्वज्ञान कीर्त्तन कर तुम्हारे सम्मानकी रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है। महात्मा पञ्चशिख मेरे गुरु हैं, उन्हींसे मैंने मोक्षधर्म लाभ किया है। मैं उन्हींके प्रसादसे सांख्य-

ज्ञान, योग और निष्कामयाग इत्यादि इन त्रिविध मोक्षधर्मका यथार्थ तत्त्वका ज्ञाता और संशयविहीन हुआ हूं। उन्होंने मुझे राज्यमें अवस्थान करनेका निषेध नहीं किया, मैं उन्हींके उपदेशानुसार विषयरागविहीन हो त्रिविध मोक्षधर्मका अवलम्बन पूर्वक परब्रह्ममें मन लगा कर कालहरण कर रहा हूं। वैराग्य ही मोक्ष प्राप्तिका श्रेष्ठ उपाय है; ज्ञानसे वैराग्यकी उत्पत्ति होती है। ज्ञान द्वारा योगाभ्यास और योगाभ्यास द्वारा आत्मज्ञानके प्रभावसे ही मनुष्य योगाभ्यासनिरत हो कर सुखदुःखादिका परित्याग और मृत्युको अतिक्रम कर परमपद लाभ कर सकता है। मैं उसी आत्मज्ञानको प्राप्त कर मोहसे छुटकारा पा चुका हूं और निःसङ्ग एवं सुख दुःखादिसे विहीन हो चुका हूं। जिस प्रकार जल-सिक्त क्षेत्र बीजसे अङ्कुर उत्पन्न करता है, उसी तरह कर्म ही मनुष्योंको पुनः उत्पन्न करता है। जिस तरह भूना हुआ बीज उर्वरा भूमिमें बोए जाने पर भी वह अङ्कुरित नहीं होता, उसी तरह भगवान् पञ्चशिखके अनुग्रहसे हमारा विषयज्ञानरूप बीजविषयमें अवस्थित होने पर भी अङ्कुरित नहीं होता। मैंने बन्धनोंके आयतनस्वरूप धर्मार्थ कामसंकुल राज्यमें रहते हुए ही मोक्षधर्मरूप प्रस्तर पर शाणित त्यागरूप असिके द्वारा ऐश्वर्यरूप पाश और स्नेहरूप बन्धनको छेद दिया है। अयि शुभे! पहले मैंने तुम्हें संन्यासिनि समझा था और परम समादरके साथ तुम्हारा स्वागत किया था। किन्तु अब तुम्हारी अवस्था और रूपलावण्यको देख कर मुझे तुम्हारे योगके विषयमें सन्देह होता है। और मैं मुक्त हूं या नहीं, यह जाननेके लिए तुमने जो मेरे शरीरको रुद्ध किया है, वह तुम्हारे त्रिदण्डधारणके सर्वथा प्रतिकूल आचरण है। तुम त्रिगुणधारिणी हो कर भी योगधर्मको रक्षा नहीं कर रही हो। अब मैं स्पष्टतः तुम्हारे योगधर्मसे परिभ्रष्ट समझ रहा हूं। तुम अपनी बुद्धि द्वारा मेरे शरीरमें प्रविष्ट हुई हो, इससे तुम्हारे व्यभिचार दोषकी ही पुष्टि होती है। देखो, प्रथमतः तुम वर्णश्रेष्ठा ब्राह्मणी हो और मैं क्षत्रिय; सुतरां हम दोनोंके एकवाससे वर्णसङ्कर सन्तान होनेकी सम्भावना है। दूसरे तुम भिक्षुकी हो और मैं गृहस्थ; सुतरां हम दोनोंके संसर्गसे उत्पन्न आश्रम सङ्कर होगी। तीसरे तुम मेरी सगोत्रा हो या नहीं, यह भी मुझे नहीं मालूम; और न तुम्हें ही मेरे विषयमें कुछ मालूम है। तुम्हारे पति यदि जीवित हों, तो तुम परभार्या हो, अगम्या हो। मैं यदि तुम्हें ग्रहण करूं, तो वर्णसङ्कर सन्तान होगी। अब तुम कपटता छोड़ दो और यह बतलाओ कि किस अभिप्रायसे तुम ऐसा विपरीत आचरण कर रही हो, साथ ही अपनी जाति, शास्त्रज्ञान, व्यवहार, कृतभाव, स्वभाव और आगमन-प्रयोजनको प्रकट करो।" धर्मध्वजने इस तरह सुलभाका तिरस्कार किया; परन्तु सुलभा किञ्चिन्मात्र भी विरक्त न हुईं; अत्यन्त और भी मधुर स्वरसे बोली—"महाराज! वक्तव्य वाक्य अष्टादश दोषशून्य एवं अष्टादश गुणयुक्त होना चाहिये। सौक्ष्म्य, सांख्य, क्रम, निर्णय और प्रयोजन इन पञ्चाङ्गोंसे युक्त पद समूहको ही वाक्य कहा जा सकता है, जनसमाजमें जिन वाक्योंका प्रयोग किया जाता है, वे सब सार्थक, प्रसिद्ध पदयुक्त, प्रसादगुणसम्पन्न, संक्षिप्त, मधुर और असन्दिग्ध होने चाहिए। मैं आपको काम, क्रोध, लोभ, भय, दैन्य, दर्प, लज्जा, दया वा अभिमानवश उत्तर नहीं दे रही हूं; आपको उत्तर देना उचित समझ कर ही उसमें प्रवृत्त हुई हूं।" इसके बाद सुलभाने अपना परिचय देना शुरू किया। सुलभाका उत्तर सम्पूर्ण आध्यात्मिक था। उन्होंने शरीर और आत्माके भेदविज्ञानकी व्याख्या करते हुए राजाके द्वारा लगाये गये दोषोंका परिहार कर दिया। राजा भी निरुत्तर हो गये। (भारत शान्तिपर्व ३२१ अ०)

२ काञ्चनपुरके एक राजा, जिनका उल्लेख वेतालपचीसीमें मिलता है। इनके शृङ्गारवती, मृगाङ्कवती और तारावती नामक तीन महिषी थीं। एक दिन शृङ्गारवतीके शरीर पर कमल गिर पड़ा था, जिससे वे मूर्च्छित हो गई थीं। मृगाङ्कवतीके शरीर पर चन्द्रकिरणके पड़नेसे ही उन्हें पीड़ा हो गई थी और तारावतीके शरीर पर धान कूटनेका शब्द सुनने मात्रसे विस्फोटक हुआ था। ऐसी कोमलाङ्ग स्त्रियोंको पा कर राजा धर्मध्वज महा सुखसे कालातिपात करते थे।

धर्मध्वजी (सं० त्रि०) धर्मः धर्मचिह्नं स एव ध्वजस्येति

ध्वयति धर्मध्वज इति। जो धर्मको ध्वजा धारण करता हो और वास्तवमें धार्मिक न हो, पाखण्डी। जो ऊपरसे धर्मात्मा बन कर लोगों पर अपना महत्त्व जमाना चाहते हैं, उन्हें धर्मध्वजी वा पाखण्डी कहते हैं।

"धर्मध्वजी सदा लुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः।
वैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः॥" (मनु ४।१६५)

जो सदा लुब्ध हैं अर्थात् जिनके हृदयमें धनका लोभ निरन्तर जाग्रत हैं और ऊपरसे धर्मको ध्वजा वा चिह्नादि धारण कर जनसमाजमें अपनेको धार्मिक बतलाते हैं, वे छद्मवेशधारी, लोकवञ्चक, परहिंसा-परायण और सर्वाभिसन्धक हैं तथा दूसरेके गुणको सहन न कर सबको तुच्छ समझते हैं, ऐसे व्यक्तियोंको वैडाल-व्रतिक वा धर्मध्वजो कहा जाता है, जो ऐसा आचरण करते हैं, वे तिर्यग्योनिमें जन्म लेते हैं।

धर्मन् (सं० पु०) ध्रियते इति धृ-मनिन्। १ धर्म, पुण्य-कर्म। (त्रि०) २ धारक, धारण करनेवाला।

धर्मनद (सं० क्लो०) तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम।

धर्मनन्दन (सं० पु०) नन्दयतीति नन्दनः धर्मस्य नन्दनः ६ तत्। धर्मपुत्र, युधिष्ठिर।

धर्मनन्दिन् (सं० पु०) एक बौद्ध पण्डित। इन्होंने कई बौद्ध शास्त्रोंका चीनो भाषामें अनुवाद किया था।

धर्मनाथ (सं० पु०)—जैनोंके चतुर्विंशति तीर्थङ्करोंमें-से पन्द्रहवें तीर्थङ्कर। इनके पिताका नाम राजा भानुराय और माताका रानी सुप्रभादेवी (सुव्रतादेवी) था। ये कुरु-वंशमें माघ शुक्ला त्रयोदशीके दिन अयोध्याके अन्तर्गत रत्नपुरी नगरीमें मति-श्रुत-अवधिज्ञान सहित उत्पन्न हुए थे, इन्द्रादि देवोंने इनका जन्म-महोत्सव (जन्मकल्याणक) किया था। इनका गोत्र काश्यप था।

चतुर्दश तीर्थङ्कर भगवान् अनन्तनाथके मोक्ष जानेके चार सागर (अलौकिक समय प्रमाण) बाद भगवान् धर्मनाथ आविर्भूत हुए। इनके जन्मसे आधा पल्य पहलेसे धर्ममार्ग बन्द था। वैशाख शुक्ल त्रयोदशीको ये सर्वार्थसिद्धि नामक विमानसे चढ़ कर माताके गर्भमें आये। गर्भमें आनेसे ६ मास तक स्वर्गसे रत्नवर्षण हुई। देवियोंने माताकी सेवा की तथा इन्द्रादि देवोंने गर्भकल्याणक महोत्सव किया। इनके शरीरका वर्ण स्वर्णके समान, परिमाण ४५ धनु (१८० हाथ) और आयु १० लाख वर्षकी थी। ढाई लाख वर्ष तक कुमारावस्थामें रह कर आप राज्याभिषिक्त हुए थे। पांच लाख वर्ष राज्यसम्पदका सुख अनुभव करते हुए राज्य किया। अनन्तर एक दिन उल्कापात होते देख आपको संसारसे वैराग्य हो गया; उसी समय लौकान्तिक देवोंने आ कर स्तुतिपूर्वक आपके वैराग्यका अनुमोदन किया। अपने पुत्र सुधर्मको राज्य दे कर आपने माघ शुक्ल १३शीके दिन शालिवनमें दीक्षा धारण की। इन्द्रोंने तपकल्याणकका उत्सव किया। दीक्षा धारण करते ही आपको (४र्थ) मनःपर्ययज्ञान प्राप्त हुआ। भगवान्के साथ १००० एक हजार राजाओंने दीक्षा ग्रहण की थी। भगवान्ने छः दिन तक उपवास कर पाटलीपुत्रके राजा धन्यसेनके यहां आहार ग्रहण किया। देवोंने राजा धन्यसेनके घर पाञ्चाश्चर्य किये।

पश्चात् एक वर्ष तप करनेके उपरान्त शालिवनमें सप्तच्छदवृक्षके नीचे पौष शुक्ला पूर्णिमाके दिन चार घातिकर्मोंको नष्ट कर भगवान् धर्मनाथने केवल ज्ञान प्राप्त किया। इन्द्रादि देवोंने उसी समय समवशरणकी रचना की और केवलज्ञान कल्याणक उत्सव मनाया। उस समय भगवान्के अरिष्ट आदि ४३ गणधर थे, ९०० ग्यारह अङ्ग चौदह पूर्वके ज्ञाता ३६०० अवधिज्ञानी, ४०७०० शिक्षक मुनि, ४५०० केवली, ७००० विक्रियाऋद्धिधारक मुनिराज, ७००० मनःपर्ययज्ञानी, २८०० वादी मुनि, ६४००० मुनि, ६२४०० आर्यिका, २००००० (व्रती) श्रावक और ४००००० (व्रती) श्राविकाएं मौजूद थी।

इसके बाद भगवान् धर्मनाथने एक मास आयु अवशेष रहने तक आर्यखण्डमें विहार कर धर्मतीर्थोंकी प्रवृत्ति की और अन्तमें सम्मेदशिखर (पारसनाथ) पहाड़ पर पधारे। शेष एक मासमें अवशिष्ट चार कर्म-आयु नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मका नाश कर ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्थीके दिन ८०९ मुनियों सहित निर्वाण प्राप्त हुए। भगवान्का शरीर कर्पूरवत् उड़ गया, केवल केश और नख पड़े रहे। जिनको इन्द्रने क्षीरसागरमें निक्षेप किया और निर्वाणकल्याणक उत्सव मनाया।

(गुणभद्राचार्यकृत उत्तरपुराण)

धर्मनाभ (सं० पु०) धर्म नाभिरिव यस्य, बहु समासान्तः। १ विष्णु। २ नदीविशेष, एक नदीका नाम।

धर्मनिष्ठा (सं० त्रि०) धर्मे निष्ठा यस्य। धर्मपरायण, धर्ममें जिसकी आस्था हो, धार्मिक।

धर्मनिष्ठ (सं० स्त्री०) धर्मस्य धर्मे वा निष्ठा। धर्मविषयमें आन्तरिक आस्था, धर्ममें श्रद्धा भक्ति और प्रवृत्ति।

धर्मनीति (सं० स्त्री०) धर्मस्य नीतिः नीतिज्ञानविषयक शास्त्र, जिस शास्त्रसे कर्त्तव्याकर्त्तव्यका अवधारण और उसके फलाफलका हाल मालूम हो, उसे धर्मनीति कहते हैं। धर्मनीतिमें ज्ञान नहीं रहनेसे धर्मानुष्ठान नहीं होता है, इसीसे जो धर्मानुष्ठानके अभिलाषी हैं, उन्हें धर्मनीति अच्छी तरह जान लेनी चाहिये।

धर्मनेत्र (सं० पु०) १ यदुवंशीय एक राजा पुत्रका नाम। २ पुरुवंशीय एक राजा। ३ पौरव वंशीय तंसु राजाके एक पुत्रका नाम।

धर्मनैपुण्यकाम (सं० पु०) धर्मस्य नैपुण्यं अतिशयं कामयते कम-अण्। वह जो धर्मके विषयमें निपुण होनेकी इच्छा करता हो।

धर्मपट्ट (सं० पु०) विधिविशिष्ट लिखित पत्र, वह व्यवस्थापत्र जो किसी राजा या धर्माधिकारीकी ओरसे दिया जाय।

धर्मपति (सं० पु०) १ राजविधिके अधिकारी वा शान्तिरक्षक, धर्म पर अधिकार रखनेवाला पुरुष, धर्मात्मा। धर्मस्य पति यस्मात्। २ वरुण देवता। धर्मः पतिरिव यस्य। ३ धर्मशील।

धर्मपत्तन (सं० क्ली०) १ श्रावस्ती नगरी, धर्मपुरी। तत्कारणतया अस्त्यस्य अच्। २ गोलमिर्च। ३ वृहत्संहिताके अनुसार एक देश जो कूर्म विभागके दक्षिण देशके निकट अवस्थित माना गया है। कहीं कहीं धर्मपत्तनकी जगह धर्मपट्टन भी लिखा पाया गया है।

मन्द्राजके अन्तर्गत मलवार जिलेमें कोटायम् तालुकके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० ११° ४६' उ० और देशा० ७५° ३०' पू०। धर्मपत्तन नामक नदीके मुहाने पर अवस्थित है। भूपरिमाण ६ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ६ हजार है। यह पहले कोलत्तिरि राज्यके अन्तर्गत था। १७३४ ई०में इष्टइण्डिया कम्पनीको यह स्थान दिया गया था। १७८८ ई०में यह चिरक्कलके राजासे अधिकृत हुआ, किन्तु दूसरे वर्ष में पुनः अंगरेजोंके हाथ लगा।

४ मन्द्राजके अन्तर्गत मलवार जिलेकी एक नदी। यह तलचेरी नगरसे डेढ़ कोस उत्तर समुद्रमें जा मिली है।

धर्मपत्नी (सं० स्त्री०) धर्मार्थं धर्माचरणाय पत्नी। वह स्त्री जिसके साथ धर्मशास्त्रकी रीतिसे विवाह हुआ हो, विवाहिता स्त्री।

दक्षस्मृतिमें लिखा है, कि विवाहिता और दोषरहित स्त्रीको धर्मपत्नी कहते हैं। ब्याह कर लाई हुई दूसरी स्त्रीको कामपत्नी कहा गया है।

मनुने लिखा है कि पितृपूजनमें तत्परा तथा पतिव्रता धर्मपत्नी यदि विशिष्ट पुत्रकामी हो, तो उसे गृह्योक्त मन्त्रों द्वारा मध्यम पिण्ड अर्थात् पितामहका पिण्ड खिलाना चाहिये। मध्यम पिण्ड खानेसे उस धर्मपत्नीके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता है वह बहुत आयुष्मान्, यशस्वी, मेधासम्पन्न, धनवान्, प्रजावान्, सत्वगुणविशिष्ट और धार्मिक होता है। २ धर्मदेवकी पत्नी। दक्षप्रजापतिने धर्मको दश कन्यायें दी थीं जिनके नाम थे कीर्त्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा और मति।

धर्मपत्र (सं० क्ली०) धर्मसाधनं पत्रं यस्य, धर्माय यज्ञादिकार्यार्थं पत्रं यस्य। यज्ञोडुम्बर, गूलर। इसके पत्ते यज्ञादि धर्मकार्यमें काम आते हैं।

धर्मपथ (सं० पु०) धर्मस्य पन्था। धर्ममार्ग, कर्त्तव्य पथ।

धर्मपथिन् (सं० पु०) धर्मपथानुसारी, कर्त्तव्यनिष्ठ, धर्मात्मा।

धर्मपर (सं० त्रि०) धर्मः परो यस्य। धर्मासक्त, कर्त्तव्यपरायण, धर्ममें जिसकी आस्था हो। जिसका एक मात्र धर्म ही प्रधान हो, उसे धर्मपर कहते हैं।

धर्मपरायण (सं० त्रि०) धर्मः परः अयनो यस्य। जो धर्मको परम पदार्थ समझता है, जो शास्त्रके अनुसार धर्मपथ पर चलता है और यथाशक्ति धर्म कार्यका

अनुष्ठान करता है तथा कभी असत्य कर्मके अनुष्ठानमें प्रवृत्त नहीं होता है, उसीको धर्मपरायण कहते हैं। इसका पर्याय—धर्मात्मा, धार्मिक, धर्मशील और धर्मनिष्ठ है।

धर्मपरिणाम (सं० पु०) धर्मरूपः परिणाम। पातञ्जलोक्त चित्तधर्मोंका व्युत्थान और निरोध धर्मका अभिभव तथा प्रादुर्भावरूप परिणामभेद। पातञ्जलमें धर्मका परिणामका विषय इस प्रकार लिखा है।—

"एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्था परिणामा व्याख्याताः।" (पात० द० ३।१३)

प्रत्येक भूत और प्रत्येक इन्द्रियमें जो धर्म, लक्षण और अवस्था ये तीन प्रकारके परिणाम विद्यमान हैं, उन्हें चित्त-परिणाम समझना चाहिये। चित्तमें जिस तरह निरोध, समाधि और एकाग्रता ये तीन प्रकारके परिणाम हैं, उसी तरह पृथिव्यादि भूतोंमें भी इन्द्रियादि भौतिक वस्तुमें धर्म, लक्षण और अवस्था ये तीन प्रकारके परिणाम हैं। धर्मपरिणाम किस प्रकारका है, वह कहते हैं। मृत्तिकारूप धर्मीका पिण्डतारूप धर्मको अन्यथा हो कर अन्य एक घटाकार धर्मके आविर्भूत होनेका नाम धर्मपरिणाम है, लक्षण परिणाम है अर्थात् कालिक परिणाम है। काल तीन प्रकारका है, अतीत, वर्त्तमान और अनागत अर्थात् भविष्यत्। प्रत्येक वस्तु ही अतीतकाल वा अतीतसोपानका अतिक्रम कर वर्त्तमान कालमें वा वर्त्तमान सोपानमें आती है और वर्त्तमान सोपानका परित्याग कर अनागत अर्थात् भविष्य सोपानमें जाती है। इस प्रकारके त्रैकालिक परिणामका नाम लक्षण-परिणाम है। वस्तु जब अतीत सोपानमें रहती है, तब उसका स्वरूप एक प्रकारका रहता है, किन्तु वर्त्तमान सोपानमें आनेसे उसका वह स्वरूप नहीं रहता, एक दूसरे ही प्रकारका हो जाता है। फिर जब वह भविष्यत् गर्भमें प्रवेश करती है, तब फिर वह भी नहीं रहती, बिलकुल बदल जाती है। इसीके अनुसार हम लोग घटादिका नूतनत्व और पुरातनत्व आदि आवस्थिक व्यवहार किया करते हैं। इस प्रकारके परिवर्त्तनरूप परिणामका नाम अवस्था-परिणाम है। चित्शक्ति वा पुरुष भिन्न अन्य जितनी वस्तुएं हैं; सभीको इस प्रकारके तीनों परिणामके अधीन समझना चाहिये।

धर्मपरिणाममें जो धर्मीका उल्लेख किया है, उसके विषय पर थोड़ा और विचार करना आवश्यक है। "शान्तोदिताव्यपदेश्य धर्मानुपाती धर्मी।" (पात० द० ३।१४) जो धर्म वा शक्तिविशेषका आधार है, उसका नाम धर्मी है। प्रत्येक धर्मी अर्थात् प्रत्येक प्राकृतिक द्रव्य ही शान्त, उदित और अव्यपदेश्य इन तीन प्रकारके धर्मोंसे संयुक्त है। इसविषयको यहां पर कुछ बढ़ा चढ़ा कर लिखना आवश्यक है। वस्तुका जो धर्म वा शक्ति अपना काम समाप्त करके अथवा अपना व्यापार पूरा करके अस्तमित हो गई है, उस धर्मका नाम है शान्तधर्म, जैसे घटका भङ्ग और बीजका अङ्कुर इत्यादि। बीज अपना अङ्कुररूप काम शेष कर चुका है, अर्थात्, वह अङ्कुर होनेके पहले बीज था, किन्तु अभी वह बीज नहीं है, अङ्कुर हो गया है। सुतरां वह बीज नष्ट हो गया है वा सड़ पच गया है। इसी प्रकार घट वा घटशक्तिने भी अपना जलाहरणादि काम शेष कर धर्मान्तर प्राप्त किया है। अतः अभी वह घट नहीं है, मृत्तिका खण्डमात्र है। इसलिये अङ्कुरका शान्तधर्म बीज है और मृत्तिकाखण्डका शान्तधर्म घड़ा। इस प्रकार घटकालमें घटको, बीजकालमें बीजको, मृत्तिकाखण्डकालमें मृत्तिका-खण्डको उदित वा वर्त्तमान् धर्म मानना चाहिये। वर्त्तमानधर्म वर्त्तमानमें है, उसमें एक दूसरे प्रकारका धर्म वा कार्यशक्ति छिपी हुई है, जिसके रहनेसे वह अन्यथापन्न वा परिवर्त्तित होता है। जो जिस समय अनागत या भविष्यत् सोपानमें अदृश्य रहता है, वह उस समय उसका अव्यपदेश्य अर्थात् नामशून्य धर्म है, अथवा उसे निर्नामक शक्तिके जैसा निर्णय करना चाहिये। इस अनागत और अव्यपदेश्य धर्म और कारणोंको कार्यशक्तिके समान जानना चाहिये, अर्थात् वस्तुको भविष्यत् कार्यशक्ति ही अव्यपदेश्य नामक धर्म है। यह अव्यपदेश्य धर्म वा अनागत कार्यशक्ति इतनी सूक्ष्म है, कि वह अयोगी अवस्थामें किसी तरह बोधगम्य नहीं होती। मान लो, हमने एक वटबीज देखा, उस समय उसका उदितधर्म अर्थात् बीजभाव ही बच रहा है, किन्तु उस बीजमें जो वृक्ष है, उसे क्या कोई देख सकता? कभी नहीं। क्यों नहीं देख सकता? इसका कारण यह है, कि वह

शक्तिरूपसे अनागत सोपानमें अदृश्य रहता है, इसी कारण कोई उसे देख नहीं सकता। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु ही छिपी रहती है, जब तक काल और आकार उपयुक्त नहीं हो जाता, तब तक वह उसी अवस्थामें वर्त्तमान रहती है। सुतरां सभी सभोके कारण है और सभी सभोके कार्य हैं, यह असम्भव नहीं। तुम जिस किसी वस्तुका उल्लेख करोगे, वह कारण और कार्य दोनों होगा। बीज अङ्कुरका कारण है और अङ्कुर भी बीजका कारण है।

दूसरी बात यह है, कि सभी वस्तुओंसे सभी वस्तुओंके आविर्भाव होनेकी सम्भावना है। बीजसे तेल, मृत्तिका और कदलीका आविर्भाव देखा जाता है। सुतरां दूसरे प्रकारके आविर्भावकी शक्ति रहते भी रह सकती है, यह सहजमें अनुमान किया जा सकता है। किस प्रकारके देशसे, किस प्रकारके कालसे और किस प्रकारकी क्रियाके संयोगसे, किस क्रिया द्वारा कब और किस प्रकारका आविर्भाव होता है, वह कौन कह सकता? किस प्रकारके कारणका उपलक्ष्य कर कब कौन शक्ति अभिव्यक्त होती है, उसका कौन निश्चय कर सकता? फलतः सभी वस्तुओंमें सब शक्ति निहित वा अनभिव्यक्त-रूपसे रहती है। उपयुक्तकाल, उपयुक्तदेश और उपयुक्त कर्म वा क्रियाके मिलनेसे ही वह शक्ति अभिव्यक्त होती, आविर्भूत होती वा कार्यरूपमें प्रकाश पाती है। काल और क्रिया आदिकी विचित्रता है। सुतरां सभी जगह सर्वकार्य शक्तिके रहने पर भी देश, काल और क्रियाके भेदसे कभी कहीं तो कुछ होता है और कभी कुछ भी नहीं होता। वेत्रबीजके दावदग्ध होनेसे ही मही और उससे फिर कदलीवृक्षका आविर्भाव होता है, अन्यथा अन्य प्रकारका हो जाता है। कुङ्कुम काश्मीरादि देशोंमें ही होता है, दूसरी जगह नहीं; ग्रीष्मकालमें ही उपजता है, दूसरे समयमें नहीं उपजता। मनुष्योचित क्रियादिके नहीं होनेके कारण मृगी मृगसे विना मनुष्य प्रसव नहीं करती। किन्तु यदि उसमें मनुष्योचित क्रियादिका समावेश हो जाय तो उसके गर्भसे मनुष्यके उत्पन्न नहीं होनेका कोई कारण नहीं रहता। सभी द्रव्य सर्वशक्तिके आश्रय हैं, उनके अभिव्यक्ति देश, काल, आकार और क्रिया ये सब निमित्तनियमके अधीन हैं। सुतरां देश-कालादिका व्यभिचार नहीं होनेसे ही कार्यकारणभाव स्थिर रहता है, अन्यथा दूसरे प्रकारका हो जाता है। उस अन्य प्रकारको वा व्यभिचारोत्पन्न कार्यनिचयको मनुष्य अद्भुत मानते हैं, लेकिन यथार्थमें वह प्रकृत अद्भुत नहीं है। परिणामकी भिन्नतासे प्रति परिमाण-क्रमकी भिन्नताका रहना ही कारण है, यह सबको विदित हो गया है। (वा० जलद०)

धर्मपाठक (सं० पु०) धर्मं धर्मशास्त्रं पठति पठ-ण्वुल्। १ मन्वादि प्रणीत धर्मशास्त्रके पढ़नेवाले। २ राजविधि अधिकारी वा शान्तिरक्षक मजिष्ट्रेट। ३ एक प्रसिद्ध बौद्ध पण्डित।

धर्मपाल (सं० पु०) धर्मं पालयति पालि-अण्। वर्णाश्रम धर्मरक्षक दण्ड। केवल दण्डके भयसे लोग धर्मका पालन करते हैं। जो अन्याय काम करते हैं, वे दण्डसे शासित होते हैं। महाभारतके शान्तिपर्वमें लिखा है,—इस लोकमें जिससे सब कोई वशीभूत होते हैं, उसीका नाम दण्ड है। जिससे धर्मका लोप न हो, वरं उसका दिनों दिन प्रचार हो, उसीको व्यवहार कहते हैं। भगवान् मनु कह गये हैं, कि जो सुविहित दण्ड द्वारा प्रिय और अप्रिय मनुष्यका भरण-पोषण करते हैं, वे साक्षात् धर्मस्वरूप हैं। दण्ड प्रधान देवता हैं जिनका तेज प्रज्वलित अग्निकी नाईं और रूप नीलोत्पल दलकी नाईं श्यामल है, जिनके चार दण्ड, चार बाहु, दो जिह्वा, आठ चरण और असंख्य चक्षु हैं; जिनके कान अत्यन्त तीक्ष्ण हैं, शरीरके रोंगटे खड़े हैं, मस्तक जटाजालसे जड़ित है, मुखमण्डल ताम्रवर्ण है और शरीर कृष्णसार मृगकी नाईं चमड़े से ढका हुआ है। इस प्रकार दण्ड उग्र मूर्त्ति धारण किये हुए हैं। खड्ग, धनुस्, गदा, शक्ति, त्रिशूल, शर, मूषल, परशु, चक्र, पाश, दण्ड और तोमर प्रभृति जितने अस्त्र हैं, दण्ड उनमेंसे सभीका आकार धारण कर किसीको छिन्न, किसीको भिन्न और किसीको पीड़ा पहुँचाया करता है। दण्डके कई एक नाम बतलाये गये हैं, जैसे,—असि, विशसन, धर्म, तीक्ष्णवर्त्मा, दुराधर, श्रीगर्भ, विजय, शास्ता, व्यवहार, सनातन शास्त्र, ब्राह्मण, मन्त्र, धर्मपाल, अक्षर,

देव, सत्या, अग्रज, अश्रकु, वद्रतनय, ज्योष्ठ, मनु और शिवङ्कर। दण्ड साक्षात् भगवान् विष्णु और नारायण स्वरूप हैं। दण्डकी पत्नी नीति भी ब्रह्माकी कन्या लक्ष्मी, सरस्वती और जगद्धात्री नामसे प्रसिद्ध हैं। दण्ड अर्थ, अनर्थ, धर्म, अधर्म, सुख, दुःख, बल, अबल, दुर्भाग्य, सौभाग्य, पाप, पुण्य, गुण, अगुण, काम, अकाम, ऋतु, मास, दिवा, रात्रि, मुहूर्त्त, प्रमाद, अप्रमाद, हर्ष, क्रोध, शम, दम, दैव, पुरुषकार, मोक्ष, अमोक्ष, भय, अभय, हिंसा, अहिंसा, तपस्या, यज्ञ प्रभृति नाना प्रकारके आकार सम्पन्न हैं। इस लोकमें यदि दण्डका प्रादुर्भाव न रहता, तो सभी एक दूसरेको कष्ट देता। इस संसारमें केवल दण्डके भयसे ही कोई किसीका विनाश नहीं कर सकता है। (भारत शान्तिपर्व १२१अ०) २ धर्मका पालन वा रक्षा करनेवाला। ३ राजा दशरथके एक मन्त्रीका नाम।

(रामायण १।७ अ०)

धर्मपाल—१ गौड़के पालवंशीय प्रथम राजा। इनके पिताका नाम राजा गोपाल था। इनके दिये हुए कई एक ताम्रशासन पाये गये हैं। पालराजवंश देखो।

धर्मपाश (सं० पु०) १ न्यायबन्धन, धर्मबन्धन। २ धर्मके हस्तस्थ पाशास्त्र वह पाश नामक अस्त्र जो सर्वदा धर्मके हाथमें रहता है।

धर्मपीठ (सं० क्ली०) १ वाराणसीका नामान्तर, काशी। २ विधिनिषेधादि प्रणयनका स्थान, धर्मका प्रधान स्थान। ३ धर्मशास्त्रगत व्यवस्थाप्राप्तिस्थान, वह स्थान, जहां धर्मकी व्यवस्था मिले।

धर्मपीड़ा (सं० स्त्री०) धर्म वा न्यायके विरुद्ध आचरण।

धर्मपुत्र (सं० पु०) धर्मस्य पुत्रः ६-तत्। १ युधिष्ठिर। २ नरनारायण ऋषि। ३ धर्मके अनुसार कृत पुत्र, जिसे धर्मानुसार पुत्र मान कर स्वीकार किया गया हो उसे धर्मपुत्र कहते हैं।

धर्मपुर (धरमपुर) अयोध्याके अन्तर्गत हरदोई जिलेका एक ग्राम। यह फतेगढ़से ५॥० कोस पूर्वमें अवस्थित है। सिपाही-विद्रोहके समय यहांके राजा तिलकसिंहके भाई सर हरदेवबक्स के, सी,एस, आइ, ने अंगरेजोंको अपने दुर्गमें आश्रय दिया था। इस कारण ये अंगरेजोंके बड़े प्रिय थे।

धर्मपुराण (सं० क्ली०) उपपुराणविशेष।

पुराण देखो।

धर्मपुरी—मन्द्राजके अन्तर्गत सलेम जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० ११° ५४' से १२° २७' उ० और देशा० ७७° ४१' से ७८° १८' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ९४१ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग २०६०३० है। इसमें एक शहर और ५८० ग्राम लगते हैं। यह पहले बारमहलके अन्तर्गत था। इसके उत्तरमें होसुर और कृष्णगिरि तालुक, पश्चिममें थोपुर नदी, पूर्वमें कृष्णगिरि और दक्षिणमें उतङ्गराइ तालुक है। सलेम जिलेके दक्षिणमें थोपुर गिरिपथ है जो हैदरअली और टीपू सुलतानके युद्धकालमें बहुत प्रयोजनीय पथ हो गया था। यह देश सर्वत्र पर्वतमय है। यहां चेनार और थोपुर नामकी दो नदियां प्रवाहित हैं। इस तालुकमें जहां तहाँ लोहेकी खान देखनेमें आती है। जलवायु उष्ण और शुष्क है। वार्षिक आय प्रायः २५४००० है।

२ उक्त तालुकका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० १२° ८' उ० और देशा० ७४° १०' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ८१०२ है। शहर स्वास्थ्यकर है, जलका बन्दोबस्त सब जगह अच्छा है। १६८८ ई० तक यहां मौरा राज्यके अन्तर्गत था, पीछे उसी साल महिसुर राज्यके अधीन हो गया। १७६८ ई०में कर्नल उडने यह नगर अवरोध किया था। हैदरअलीकी सन्धिके बाद यह नगर लौटा दिया गया। कुछ काल तक मन्द्राजके गवर्नर सर टोमस मनरो यहां रहे थे।

धर्मप्रचार (सं० पु०) धर्मस्य प्रचारः। धर्म विषयका प्रचार।

धर्मप्रचारक (सं० पु०) धर्मस्य प्रचारकः ६-तत्। धर्म प्रचार करनेवाला, वह जो इधर उधर जा कर धर्मप्रचारके लिए व्याख्यान देता हो।

धर्मप्रतिरूपक (सं० पु०) १ यमपुरी। यहां शरीर छूटने पर प्राणियोंके किए हुए धर्म अधर्मका विचार होता है। २ न्यायालय, कचहरी, अदालत।

धर्मप्रदीप (सं० पु०) १ धर्मालोक, धर्मका प्रकाश। २ धर्मज्ञ। ३ धर्मनिष्ठ। ४ शास्त्रग्रन्थविशेष।

धर्मप्रभसूरि—एक जैन आचार्य। ये अञ्चलगच्छीय

देवेन्द्रसिंहके शिष्य और सिंहतिलकके गुरु थे। इनका जन्म १३३१ सम्वत्‌में हुआ था। ये १३४१ सम्वत्‌में दीक्षित हुए और १३५९ संवत्‌में सूरिपद तथा १३७१ सम्वत्‌में गच्छेशपद पा कर १३९३ संवत्‌में ६३ वर्षकी अवस्थामें परलोकको सिधारे।

धर्मप्रभास (सं० पु०) बुद्धका नामान्तर।

धर्मप्रमाण (सं० त्रि०) धर्म एव प्रमाणं यस्य। जिसका साक्षी धर्म हो, धर्म ही जिसका प्रमाणस्वरूप हो। धर्मं प्रमाणं यस्मिन्। धर्मानुसारसे धर्मको साक्षी करके।

धर्मप्रवक्तृ (सं० पु०) धर्मं सन्दिग्धार्थं अयं धर्म इति प्रवक्ति प्र-वच तृच्। धर्मनिर्णायक राजाओंके व्यवहारस्थानस्थ सभ्यभेद। राजाको उचित है कि वे इस पद पर ब्राह्मणको नियुक्त करें। उपयुक्त ब्राह्मण नहीं मिलने पर क्षत्रिय और वैश्य नियुक्त किये जा सकते हैं, किन्तु इस पद पर शूद्रको कदापि नियुक्त न करें, करनेसे राज्यका नाश होता है।

मनुने लिखा है, कि जातिमात्रोपजीवी ब्राह्मणको अथवा जो अपनेको ब्राह्मण बतला कर इधर उधर घूमते हैं, किन्तु क्रियानुष्ठानरहित और ज्ञानशून्य हैं; ऐसे ब्राह्मणोंको भी यदि राजाकी इच्छा हो तो अपने धर्मप्रवक्ता-पद पर नियुक्त कर सकते हैं, किन्तु शूद्र कैसा हो क्यों न हो, नियुक्त नहीं किये जा सकते। जिस राजाके सामनेमें ही शूद्र न्याय और अन्याय पर विचार करता हो, उस राजाका राज्य शीघ्र ही धूलमें मिल जाता है।

धर्मप्रवचन (सं० पु०) धर्मं प्रवक्ति प्र-वच-ल्यु। शाक्य मुनि।

धर्मप्रवृत्ति (सं० स्त्री०) धर्मप्रवृत्तिः। धर्मविषयक प्रवृत्ति, धर्ममें श्रद्धा, भक्ति और प्रवृत्ति।

धर्मप्रस्थ (सं० पु०) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम। यहां धर्म प्रतिनियत ही वर्त्तमान हैं, यहां जो कूप खुदवा कर उसमें स्नान करते और देवता तथा पितृगणका तर्पण करते हैं, उन्हें अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। (भारत वनपर्व, ८४ अ०)

धर्मप्रिय (सं० पु०) धर्मः प्रियः यस्य। एक बौद्धाचार्य।

धर्मवती (सं० स्त्री०) स्वर्गस्था नदी, स्वर्गमें बहनेवाली नदी। (भ०ब्रह्मखण्ड ५८।२)

धर्मवर्द्धन (सं० पु०) राजविशेष, एक राजाका नाम। (कथासरित्सा०)

धर्मबल (सं० पु०) धर्मस्य बलं। धर्मकी शक्ति।

धर्मवाणिजिक (सं० पु०) धर्मं वाणिजिक इव। फलकी कामना करके जो धर्मका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें धर्मवाणिजिक कहते हैं। ऐसा देखा जाता है, कि देवताके उद्देशसे मेरा अमुककार्य सिद्ध होने पर अमुक देवताकी पूजन एक रुपयेसे करूंगा, जो ऐसा कहता है, वह नराधम है। धर्म द्वारा तत्फल कामनाकी सिद्धि होगी, ऐसी इच्छासे आदान प्रदानके कारण इसका नाम धर्मवाणिजिक हुआ है।

धर्मबुद्धि (सं० स्त्री०) धर्मे बुद्धिः। धर्मज्ञान, धर्म अधर्मका विवेक, भले बुरेका विचार।

धर्मभगिनी (सं० स्त्री०) धर्मतः कल्पः भगिनी। १ धर्मके अनुसार मानी हुई बहन। २ गुरुकन्या, गुरुकी बेटी।

धर्मभय (सं० पु०) धर्मस्य भयः। धर्मका भय। अधर्म करनेसे धर्मके यहां दण्ड मिलता और परलोकमें अशेष यातना भोगनी पड़ती है, ऐसा विश्वास किया जाता है।

धर्मभाणक (सं० पु०) भारतादि पाठक, कथा पुराण बांचनेवाला, कथकड़।

धर्मभिक्षुक (सं० पु०) मनु‍क्त नवविध धर्मार्थ भिक्षाशील, वह जिसने धर्मार्थ नौ प्रकारकी भिक्षावृत्ति ग्रहण की हो। मनुने कहा है कि पुत्रकी कामनासे विवाह चाहनेवाला, यज्ञकी इच्छा रखनेवाला, पथिक, जो यज्ञमें अपना सब स्व लगा कर निर्धन हो गया हो, गुरु, माता और पिताके भरणपोषणके लिये धन चाहनेवाला, अध्ययनकी इच्छा रखनेवाला विद्यार्थी और रोगी ये नव धर्मभिक्षुक ब्राह्मण श्रेष्ठ स्नातक हैं। इन्हें यज्ञकी वेदीके भीतर बैठा कर दक्षिणाके सहित अन्नदान देना चाहिये। इनके अतिरिक्त और जो ब्राह्मण हों, उन्हें वेदीके बाहर बैठाना चाहिये।

धर्मभीत (सं० त्रि०) धर्मे भीतः। जो धर्मके भयसे डरता हो।

धर्मभीरु (सं० पु०) धर्मे भीरुः। धर्मभीत, जिसे धर्मका भय हो, जो अधर्म करते हुए बहुत डरता हो।

धर्मभृत् (सं० त्रि०) धर्मं विभर्त्ति भृ-क्विप् तुगागमश्च। धर्मधारक, धार्मिक, धर्मशील।

धर्मभृत (सं० त्रि०) धर्मो भृतो येन। १ रक्षित धर्मक, जो धर्मको रक्षा करता हो। (पु०) २ त्रयोदश मनुके पुत्रभेद, तेरहवें मनुके एक पुत्रका नाम।

धर्मभ्रातृ (सं० पु०) धर्मतः कृतः भ्राता। १ गुरु पुत्रादि। २ भ्रातृत्व द्वारा प्रतिपन्न एकाश्रमी। जिनके साथ एक ही आश्रममें अवस्थान किया जाय, उन्हें धर्मभ्राता कहते हैं।

धर्ममति (सं० पु०) धर्मे मतिर्यस्य। १ धार्मिक, पुण्यात्मा। २ देवभेद, एक देवताका नाम। ३ बोधि-वृक्षभेद।

धर्ममय (सं० त्रि०) धर्म-मयट्। १ जहां अधर्मका संस्रव नहीं है। २ धर्मसे परिपूर्ण, साक्षात् धर्म।

धर्ममहामात्र (सं० पु०) धर्मविषयक मन्त्री।

धर्ममित्र (सं० पु०) एक बौद्धाचार्य।

धर्ममूल (सं० क्लो०) धर्मस्य मूलं। धर्मका प्रमाण।

मनुके मतानुसार समस्त वेद, वेद जाननेवालोंकी स्मृति और उनके रागद्वेषादि परित्यागात्मक शील, साधुओंके आचार और आत्मप्रसाद ये सब धर्मके प्रमाण-स्वरूप हैं।

हारीतसंहिताके वचनानुसार धर्ममूल ये सब माने गए हैं—ब्रह्मण्य, देवपितृभक्ति, अपरोपतापिता, अनसूयता, मृदुता, अपारुष्य, मित्रता, प्रियवादित्व, कारुण्य, कृतज्ञता, शरण्य और प्रशान्ति ये तेरहों प्रकार धर्मके मूल हैं।

याज्ञवल्क्यमें श्रुति, स्मृति, सदाचार, अपनी तथा आत्माको जिससे भलाई हो ऐसा कर्म, सम्यक् सङ्कल्पके लिए कामना इन सबको धर्ममूल माना है।

धर्ममुनि—एक प्रसिद्ध जैन आचार्य। ये चन्द्रकुल और विधिपक्षगच्छके अन्तर्गत शिवसिन्धु-सूरिके गुरु थे। ये कल्याणसागरके रचयिता कल्याणसागरसुनीन्द्र उदय-सागरके गुरुपर्यायमें अर्द्धतन चतुर्थ पुरुष माने जाते हैं। उदयसागरने १२०४ सम्वत्में अपने ग्रन्थकी रचना की। सुतरां ये १३वीं शताब्दीके आरम्भमें विद्यमान थे, ऐसा कह सकते हैं।

धर्ममेघ (सं० पु०) धर्मात् मेहति वर्षति मिह-अच-घत्वान्तादेशः। पातञ्जलोक्त असंप्रज्ञात समाधि।

मनोवृत्तिकी निवृत्तिका प्रधान कारण वैराग्य है। वैराग्यके अभ्याससे चित्त सब वृत्तियोंसे रहित हो जाता है अर्थात् इतना असमर्थ हो जाता है कि उसका रहना न रहना बराबर हो जाता है। केवल कुछ संस्कार मात्र रह जाता है। जो था, उसके चले जाने पर भी जो सूक्ष्म चिह्न रह जाता है, उसका नाम संस्कार है। उस तरह संस्कारापन्न एवं रहने न रहनेके समान निरवलम्ब चित्तावस्थाका नाम धर्ममेघसमाधि है। यह असंप्रज्ञातसमाधिके अन्तर्गत है। सम्प्रज्ञात-समाधि जब अत्यन्त परिपाक हो जाती है, तब चित्त आप ही आप भावच्युत होने लगता है और सहजमें ही कमजोरी आ जाती है। चित्तको अवलम्बनशून्य करने का प्रधान उपाय अदृष्टि है। सभी विषय अदृष्ट हैं, अर्थात् चित्तमें न तो किसी प्रकारकी वृत्ति आने देनी चाहिये और न संप्रज्ञात वृत्तिको भी स्थान देना चाहिए, ऐसा ही दृढ़सङ्कल्प रहे। ऐसा करनेसे चित्त धीरे धीरे निरवलम्ब होने लगता है। सम्प्रज्ञात वृत्ति अर्थात् ध्येय वस्तुपरित्याग करने पर यदि उस समय कोई दूसरी वृत्ति अर्थात् कोई दूसरी वस्तु मनमें आ जाये, तो उसे भी मनसे हटा देना चाहिए। कहनेका तात्पर्य यह है, कि जब जो वृत्ति उत्पन्न हो जाए, उसी समय उसे दूर कर देना उचित है। इस तरह बारबार करनेसे अभ्यास धीरे धीरे दृढ़ हो जाता है। अन्तमें उसी दृढ़ाभ्यासके प्रभावसे चित्त फिर कभी भी कोई विषय ग्रहण नहीं कर सकेगा, वरं प्रसुप्तकी नाईं वा लय प्राप्तकी नाईं स्थिर हो जाएगा। सुतरां चित्त तब निश्चल, निरवलम्ब और स्वप्रतिष्ठ अवस्थाको प्राप्त होगा। वही स्वप्रतिष्ठ अवस्था योगियोंकी धर्ममेघ-समाधि वा निर्बीज-समाधि है। समाधि देखो।

धर्मयु (सं० त्रि०) धर्म अस्त्यर्थे वा यु। धर्मविशिष्ट, धार्मिक।

धर्मयुग (सं० क्लो०) धर्म प्रधानं युगं मध्यलो० कर्मधा०। सत्ययुग।

धर्मयुज (सं० त्रि०) धर्मेण युज्यते युज कर्मणि क्विप्। १ धर्मयुक्त। (क्लो०) २ न्यायार्जित द्रव्य, न्यायसे उपार्जन किया हुआ धन।

धर्मयुद्ध (सं० पु०) वह युद्ध जिसमें किसी प्रकारका अन्याय वा नियमका भङ्ग न हो।

धर्मरक्षित—योनदेशीय कोई स्थविर। धर्माशोक बौद्ध धर्मप्रचारके लिये नाना देशोंमें स्थविर भेजे थे जिनमें-से धर्मरक्षित अपरान्तक (सूरतके निकटवर्त्ती) देश भेजे गये थे। वहां पहुँच कर इन्होंने बुद्धोपदेश "अग्नि खण्डोपमन"के विषयमें उपदेश दिया था। कहते हैं, कि इनकी वक्तृता सुननेके लिये प्रतिदिन ७० हजार मनुष्य समागम होते थे। पीछे एक क्षत्रिय वर्णसे हजार से अधिक परिवार इनके शिष्य हुए। जब महास्तूप स्थापित हुआ था, तब भिन्न भिन्न देशोंसे बौद्ध याजकादि सशिष्य उपस्थित हुए थे। उस समय प्रधान स्थविर धर्म-रक्षितके निकट कौशाम्बी मन्दिरसे ३० हजार याजक और उज्जयिनीके दक्षिणगिरि मन्दिरसे ४० हजार छात्र पहुंचे थे।

धर्मरत्न (सं० क्लो०) जीमूतवाहन कृत स्मृतिनिबन्धभेद।

धर्मरथ (सं० पु०) सगर राजाके एक पुत्रका नाम। महावीर सगरने समस्त देश जीत कर अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान किया। यज्ञका घोड़ा छोड़ा गया। उस घोड़ेने समस्त देश देशान्तरोंको अतिक्रम कर रसातलमें प्रवेश किया। वहां पुरुषोत्तम कपिलके रूपमें रहते थे। सगरके लड़कोंको जब मालूम हुआ कि घोड़ेको कपिल मुनिने बांध रखा है, तो उन्होंने ऋषि पर आक्रमण किया। पीछे तंग हो कर ऋषिने जब अपनी आँखें खोलीं तो चारके अतिरिक्त और शेष उसी जगह भस्म हो गये। उन चारोंके नाम वर्हकेतु, सुकेतु, धर्मरथ और महावीर थे। ये ही चार सगरके वंशधर बच रहे। (हरिवंश १४अ०) २ अनुवंशीय दिविरथके एक पुत्रका नाम। ये रोमपाद नामसे प्रसिद्ध थे।

धर्मराज (सं० पु०) धर्मेण राजते राज-अच्। १ जिन। इनके मतसे अहिंसा ही परम धर्म है। अहिंसारूप धर्म द्वारा शोभित होनेके कारण धर्मराज शब्दसे जिनका अर्थबोध होता है। धर्मसाक्षी राजा चेति, समासे टच् समासान्तः। २ यम। यम सभोंके धर्माधर्मका विचार करते हैं, इसीसे यमको धर्मराज कहते हैं। ३ नरपति, राजा। ४ युधिष्ठिर। ५ धर्मप्रधान। ६ धर्मठाकुर।

धर्मराजपरीक्षा (सं० स्त्री०) धर्मराजस्य परीक्षा। धर्म और अधर्मकी परीक्षा। इसका विषय बृहस्पतिने इस प्रकार लिखा है—

धर्म और अधर्मको दो श्वेत और कृष्ण मूर्त्तियां भोजपत्र पर बना कर उनको प्राणप्रतिष्ठा करे। बाद गाय-त्र्यादि और सोममन्त्रसे आमन्त्रण कर श्वेत और कृष्ण पुष्पसे उनकी पूजा करे। पीछे उन्हें पञ्चगव्ययुक्त कर मट्टीके बराबर पिण्डोंमें रखे। फिर दोनों पिण्डोंको दो नए घड़ोंमें रख कर अभियुक्तको बुलावे और किसी घड़ेपर हाथ रखनेके लिये कहे। यदि उसका हाथ धर्मपिण्डवाले घड़े पर पड़े, तो उसे शुद्ध अर्थात् पापहीन समझे।

कौन मनुष्य दण्ड पाने योग्य है, कौन अर्थ प्रार्थी है अथवा कौन पातकी है, यदि इसकी परीक्षा करनी हो, तो इस प्रकार धर्मपरीक्षा करनी चाहिये। पहले चाँदीकी धर्ममूर्त्ति और सीसे वा लोहेकी अधर्ममूर्त्ति बनावे। बाद भोजपत्र वा पट पर धर्म और अधर्म सफेद और काले अक्षरमें लिखें और तब धर्म और अधर्मकी मूर्त्तिकी प्राणप्रतिष्ठा पूर्वक पूजा करे। पञ्चगव्य और गन्धमाल्यादि द्वारा अभ्यर्चण कर उनकी अर्चना करनी होती है। पीछे श्वेत पुष्पसे धर्मकी और कृष्ण पुष्पसे अधर्मकी पूजा करते हैं और गोबर वा मट्टीके दो बराबर पिण्ड बना कर उनमें धर्माधर्म लिखे हुए भोजपत्र वा पट रख छोड़ते हैं। फिर दोनों पिण्डोंको मट्टीके बरतनमें डाल कर पवित्र स्थानमें रख देते हैं। बाद अपराधीको उस स्थानपर ला कर लोकपालोंका आवाहन करने बाद धर्मका आवाहन कर यह प्रतिज्ञा-पत्र लिख देना होता है कि अगर मैं निष्पाप हूं, तो धर्म मेरे हाथमें आ जावें। ऐसा करके धर्माधर्म लिखित दोनों पिण्डोंमेंसे किसी एकको ग्रहण करे। यदि उसका हाथ धर्मपर पड़े, तो उसे निर्दोष और अधर्मपर पड़े तो दोषी समझना चाहिये। इस प्रकार विचारक धर्म-परीक्षा द्वारा धर्माधर्मका विचार कर दण्डका विधान

करे। यदि अभियुक्त निर्दोष हो, तो उसे बिना कोई दण्ड दिये छोड़ देना चाहिये। परीक्षाके स्थान पर विद्वान् ब्राह्मण और साधु व्यक्तियोंका रहना आवश्यक है। धर्मकी प्राणप्रतिष्ठाकी जगह 'आं आं, क्रौं क्रों' इत्यादि प्राणप्रतिष्ठा विधिके अनुसार करनी होती है। (दिव्यतत्त्व)

धर्मराजाध्वरीन्द्र—इनकी उपाधि दीक्षित थी। इन्होंने 'वेदान्तपरिभाषा' और अद्वैतपरिभाषा रचना की है। वेङ्कटनाथके नृसिंह यतीन्द्र इनके गुरु थे। इनके पुत्रका नाम था रामकृष्ण।

धर्मराजिका (सं० स्त्री०) १ राजविधिके ऊपर राजप्रशस्ति २ धर्मका प्रभाव ज्ञापक विहारादि।

धर्मरातृ (सं० त्रि०) धर्मं राति ददाति रा-तृच्। १ धर्मदाता। स्त्रियां ङीप्। २ अप, जल, पानी।

धर्मरुचि (सं० पु०) बोधिद्रुमके अधिष्ठाता एक देवताका नाम।

धर्मलक्षण (सं० क्लो०) धर्मो लक्ष्यते ज्ञायते ऽनेन लक्ष करणे ल्युट्। १ धर्म प्रमापक वेदादि। स्त्रियां ङीप्। २ मीमांसा। भावे ल्युट्। धर्मस्य लक्षणं, ६-तत्। ३ धर्मका लक्षण। ४ धर्मका साधन।

धर्मलुप्तोपमा (सं० स्त्री०) वह उपमा जिसमें धर्म अर्थात् उपमान और उपमेयमें समानरूपसे पाई जानेवाली बातका कथन न हो।

धर्मवत् (सं० त्रि०) धर्मविद्यतेऽस्य, धर्म-मतुप्, मस्य वः। धर्मयुक्त, धार्मिक।

धर्मवर्द्धन (सं० त्रि०) १ धर्मपोषक, धर्मका प्रतिपादक। (पु०) २ महादेव।

धर्मवर्म (सं० त्रि०) धर्मवर्म इव यस्य। १ जिसका धर्म वर्मस्वरूप हो, धार्मिक। जिस तरह कवचधारी पर कोई हठात् आक्रमण नहीं कर सकता है, उसी तरह धर्मरूप कवचधारी पर विपत्ति पड़नेकी आशङ्का नहीं रहती। (क्लो०) धर्म वर्मच। २ धर्मरक्षक।

धर्मवत्सल (सं० त्रि०) धर्मप्रिय, कर्त्तव्यनिष्ठ।

धर्मवाद (सं० पु०) धर्मसम्बन्धीय तर्क।

धर्मवादिन् (सं० त्रि०) धर्मं वदति धर्म-वद-णिनि। धर्मवक्ता, धर्मोपदेश देनेवाला।

धर्मवासर (सं० पु०) धर्मस्य वासरः। पूर्णिमा। इस दिन पुण्यकार्यादि किये जाते हैं, इसीसे इसका नाम धर्मवासर पड़ा है।

धर्मवाहन (सं० पु०) धर्मं वाहयतीति वह-णिच्-ल्यु, वा धर्मो वृषः वाहनं यस्य। १ शिव, महादेव। (क्लो०) २ धर्मका प्रापण। धर्मस्य धर्मराजस्य वाहनः ६-तत्। ३ धर्मराजका वाहन महिष, भैंसा।

धर्मबाह्य (सं० त्रि०) विधिबहिर्भूत, धर्मबहिर्भूत, जो किसी धर्मको नहीं मानता हो।

धर्मविद् (सं० त्रि०) धर्मं वेत्ति विद क्विप्। धर्मज्ञ, धर्म जाननेवाला।

धर्मविदुत्तम (सं० पु०) धर्मवित्सु उत्तमः। विष्णु।

धर्मवित्तम (सं० पु०) अयमेषामतिशयेन धर्मविद्-तमप्। १ विष्णु। (त्रि०) २ धार्मिकोंमें श्रेष्ठ।

धर्मविद्या (सं० स्त्रो०) धर्मस्य विद्या ६-तत्। १ मीमांसादि विद्या। २ धर्मोपलक्षित शास्त्र। (त्रि०) ततो ठञ्। धर्मविद्यक, धर्मशास्त्र जाननेवाला।

धर्मविप्लव (सं० पु०) धर्मस्य विप्लवः ६-तत्। धर्मका व्यतिक्रम। जब कभी धर्मका विप्लव उपस्थित होता है, तभी भगवान् लोकस्थितिके निमित्त अवतीर्ण होते हैं। उनके अवतारसे ही धर्मविप्लव निवृत्त हो जाता है।

धर्मविवर्द्धन (सं० पु०) धर्माचरण।

धर्मविवेक (सं० पु०) धर्मस्य विवेको यत्र। हलायुधकृत निबन्धग्रन्थभेद।

धर्मविवेचन (सं० क्लो०) धर्मस्य विवेचनं ६-तत्। १ धर्म निर्णय, धर्म अधर्मका विचार। मनुने लिखा है कि जिस राजाके सामने शूद्र न्यायान्यायका विचार करता है उस राजाका राज्य शीघ्र ही धूलमें मिल जाता है। २ धर्मके सम्बन्धमें चिन्तन। ३ दूसरेके किये हुए कर्मका विचार, किसीके दोषी या निर्दोष होनेका निर्णय।

धर्मवीर (सं० पु०) वीररसोक्त वीरभेद, वीर रसके अनुसार वह जो धर्म करनेमें साहसी हो।

वीररसमें चार प्रकारके वीरोंकी कथा उल्लिखित है, दानवीर, युद्धवीर, धर्मवीर और दयावीर। धर्मवीर युधिष्ठिर हैं।

युधिष्ठिरने कहा है, कि राज्य, देह, धन, भार्या, भ्राता, पुत्र और जो कुछ मेरे अधीन हैं, वे सबके सब एकमात्र धर्मके लिये उद्यत हैं। वीररस देखो।

धर्मवैतंसिक (सं० पु०) धर्मं वैतंसिक इव। वह जो

पापके द्वारा धन कमा कर लोगोंको दिखाने और धार्मिक प्रसिद्ध होनेके लिये बहुत दान पुण्य करता हो ।

अग्निपुराणमें लिखा है, कि जो पापके द्वारा धन कमा कर लोकविश्वासके लिये ब्राह्मणोंको धन दान देता है, उसे धर्मवैतंसिक कहते हैं। यह अत्यन्त पापाचारी होता और अन्तकालमें राग तथा मोहादियुक्त हो कर कलुष योनिको प्राप्त होता है ।

धर्मव्याध (सं० पु०) धर्मप्रधानो व्याधः मध्यलो०। एक धार्मिक व्याध, मिथिलापुरवासी एक व्याध। इसका विषय वराहपुराणमें इस प्रकार लिखा है—किसी समय काशीके राजा अनेक ब्रह्महत्याके पापोंसे मुक्त होनेके लिए अपने पुत्रको राज्य सौंप कर पुष्कर तीर्थको गये। वहां वे पुण्डरीकाक्षकी पूजा तन मनसे करने लगे। एक दिनकी बात है, कि उनके शरीरसे भयङ्कर नीलाभ पुरुष आविर्भूत हुआ। राजाने उससे पूछा कि तुम कौन हो? किस लिए यहां आये हो? इस पर उससे जवाब दिया, 'हे राजन्! पहले आप दक्षिण प्रदेशके राजा थे। एक समय अनवधानतावशतः मृग-वेशधारी मुनिको आपने मार डाला। तभीसे मैं ब्रह्महत्या पापके रूपमें आपके शरीरके अभ्यन्तर था। अभी पुण्डरीकाक्षकी पूजाके फलसे मैंने आपको छोड़ दिया।' यह सुन कर राजाने कहा कि आजसे तुम धर्मव्याध नामसे प्रसिद्ध होगे। महाभारतमें इसकी कथा इस प्रकार है—कौशिक नामक कोई वेदाध्यायी, तपस्वी और धर्मशील तपोधन थे किसी समय वे एक पेड़के नीचे बैठ कर वेदपाठ कर रहे थे। उस पेड़ पर एक बगली बैठी थी। इतनेमें उसने उस ब्राह्मणके ऊपर बीट कर दी। कौशिकने क्रुद्ध हो कर उसकी ओर देखा और वह मर कर गिर पड़ी। ब्राह्मणने उसे मरी देख कर बहुत दुःख प्रकट किया और वे भिक्षा मांगनेके लिए बाहर निकल पड़े। इधर उधर घूमते फिरते वे पूर्व परिचित किसी गृहस्थके घर पहुंचे और भिक्षा मांगी। गृहिणीने उन्हें बैठनेके लिये कहा। इसी बीचमें उसका स्वामी भूखा प्यासा कहींसे आ गया। तब वह पतिव्रता नारी आये हुए अतिथि ब्राह्मणकी उपेक्षा करके पतिशुश्रूषामें लग गई। पीछे जब उसे उस ब्राह्मणकी सुधि हुई, तब वह भिक्षा ले कर तुरन्त आई। यहां उसने ब्राह्मणको ज्वलन्त अग्निकी नाई क्रोधान्वित देख कर मधुर वचनसे कहा, 'प्रभो! मुझे क्षमा कीजिए, मेरे परम देवता स्वामी आप हीके जैसे भूखे प्यासे आ पहुंचे थे, उन्हींकी सेवाशुश्रूषामें मैं लगी हुई थी, यही विलम्ब होनेका एक मात्र कारण है।" यह सुन कर कौशिक और भी क्रोधित हो उठे और बोले, "तुमने ब्राह्मणोंसे अधिक अपने स्वामीको ही श्रेष्ठ समझा। तुम गृहस्थ धर्ममें रह कर ब्राह्मणोंकी अवज्ञा करती हो, मर्त्यलोकमें मनुष्योंकी बात तो दूर रहे, इन्द्र भी ब्राह्मणकी अवज्ञा नहीं कर सकते। क्या तू यह नहीं जानती अथवा किसी बूढ़ेसे भी नहीं सुनी कि ब्राह्मण लोग अग्निके सदृश हैं। जब ये क्रुद्ध होते हैं तब पृथ्वीको भी दग्ध कर सकते हैं। यह सुन कर स्त्रीने कहा, "हे द्विज! मैं बगली नहीं हूं। आप अपना क्रोध रोकिए। आपके क्रोधसे मेरा क्या हो सकता है? मैं ब्राह्मणका सब प्रभाव जानती हूं। मुझे इस विषयमें क्षमा कीजिए। हे द्विजोत्तम! सब देवताओंमें स्वामी मेरे परम देवता हैं। आपके क्रोधसे जो बगली जल मरी है, सो मैं पतिकी शुश्रूषाके फलसे जानती हूं। क्रोध मनुष्योंके शरीरका परम शत्रु है। जो क्रोध और मोहको त्याग देते हैं उन्हींको देवता लोग ब्राह्मण समझते हैं। संसारमें जो सत्य बोलते, गुरुको सन्तुष्ट रखते और हिंसित होने पर हिंसा नहीं करते, वे ही ब्राह्मण हैं। आप ब्राह्मण हैं सही, किन्तु आप धर्मके तत्त्वसे अवगत नहीं हैं। यदि आपको धर्मका यथार्थ तत्त्व जानना हो, तो मिथिलापुरवासी धर्मव्याधके पास जाइये। वह व्याध आपको धर्मका तत्त्व अच्छी तरह बतला देगा।' कौशिक क्रोधको त्याग कर स्त्रीके मुखसे यह आश्चर्यजनक बात सुन कर अवाक् हो गये और अपनेको धिक्कारते हुए धर्मको जिज्ञासा करनेके लिये मिथिलाकी ओर चल पड़े।

वहां जा कर उन्होंने देखा कि वह तपस्वी व्याध नाना प्रकारके पशुओंका मांस रख कर बेच रहा है। इधर उस व्याधको जब यह हाल मालूम हुआ, कि कोई ब्राह्मण आये हुए हैं, तो वह झट उठ कर उनके पास आया और अच्छी तरह सत्कार कर बोला, 'आपको

किसी एक ब्राह्मणीने यहाँ मेरे पास भेजी है सो मुझे मालूम हो गया। अतः आप कृपया मेरे घर पर पधारिये।' कौशिकको यह देख कर बहुत आश्चर्य हुआ और धर्मव्याधके साथ उनके घर पर आये। यहां कौशिकने व्याधसे कहा, "तुम इतने ज्ञानसम्पन्न हो कर जो यह निकृष्ट काम करते हो, वह मेरे ख्यालसे उपयुक्त नहीं है। तुम्हारे इस भयङ्कर कर्मोंसे मुझे बहुत दुःख होता है।" धर्मव्याधने कहा, "महाराज! यह पितृ-परंपरासे चला आता हुआ मेरा कुलधर्म है, अतः मैं इसीमें स्थित हूं। इसलिये आप मेरे लिये कोई चिन्ता न करें। विधाताने पहले ही मेरा जो काम लिख दिया है, उसीको मैं करता आ रहा हूं। मैं अपने माता पिता और अतिथियोंकी सेवा करता हूं, सत्य बोलता हूं, किसीसे डाह नहीं रखता, यथा शक्ति दान और देवपूजा करता हूं। इसीमें मेरा समय व्यतीत होता है। संसारमें कृषि, पशुपालन और वाणिज्य ये ही तीन मनुष्योंकी उपजीविकायें हैं; दण्डनीति, त्रयी और विद्या परलोकका साधन है। शूद्रमें शुश्रूषादि कर्म, वैश्यमें कृषि, क्षत्रियमें संग्राम और ब्राह्मणमें नियत ब्रह्मचर्य, तपस्या, मन्त्र और सत्य कर्म आदिका विधान है। मैं दूसरेके हाथ सर्वदा वराह, महिषादि बेचता हूं, लेकिन मैं उन्हें वध नहीं करता और न कि उनका मांसही खाता हूं। अहिंसा और सत्यवाक्य ये ही दो सभीके लिये परम हितजनक हैं। अहिंसा परमधर्म है जो सत्यमें प्रतिष्ठित है। सत्य हीके ऊपर निर्भर रहनेसे साधुओंकी समस्त प्रवृत्तियां प्रवर्त्तित होती हैं। आचार ही साधुओंका धर्म है। विद्या सबका समापन है; तीर्थस्नान, क्षमा, सत्य, सारल्य और शौच ये ही साधुओंके आचार धर्म देखे जाते हैं। साधु लोग सर्वदा सब जीवोंपर दया रखते, हिंसा नहीं करते, ब्राह्मणोंके प्रिय होते और कठोर वचन कभी व्यवहार नहीं करते हैं। मैं जो काम करता हूं वह अत्यन्त भयङ्कर है, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं। किन्तु हे ब्रह्मन्! दैव अत्यन्त बलवान् हैं। पूर्व जन्ममें जैसा कर्म किया जाता है, वैसा ही फल इस जन्ममें मिलता है। मेरा यह दोष पुराकृत पापके कर्मका फल है। मैं इसे छोड़ना चाहता हूं।

पहले विधाता ही प्राणियोंका वध करते हैं। लेकिन नाम घातकका ही होता है। पूर्व समयमें रन्तिदेव राजाके रन्धनागारमें प्रतिदिन दो हजार बकरे आदि और दो हजार गायें मारी जाती थीं। तिस पर भी उनके समान उस समय और कोई धार्मिक न थे। यह मेरा स्वधर्म है, ये ही समझ कर मैं इसे छोड़ना नहीं चाहता। अपना धर्म छोड़ कर दूसरेका धर्म ग्रहण करनेमें बहुत दोष है। अतः यह मेरा कुलोचित कर्म है, ऐसा जान कर इसीसे मैं अपनी जीविका निर्वाह करता हूं।" धर्मव्याधने इसी तरह ब्राह्मणको अनेक धर्मोपदेश दिये थे जिनका मर्म यह है—कुलोचितकर्म त्याग करना अन्याय है, किन्तु कदाचार त्याग कर सदाचार अवलम्बन करनेमें दोष नहीं है। दूसरेकी प्रशंसा वा निन्दा दोनोंका समान समझना चाहिये। दानपूजादि कर्म करना आवश्यक है; असत्य कभी नहीं बोलना चाहिये। कष्टसे अभिभूत होना अनुचित है, अज्ञानकृत पाप अनुतापसे ध्वंस होता है, लोभ सर्वदा परित्यज्य है, शुभ वा अशुभ कर्मका अवश्य भोग करना पड़ता है। इत्यादि। अन्तमें धर्मव्याधने कहा, 'आप कृपया मेरे पूर्व जन्मका वृत्तान्त सुनिये। मैं पूर्व जन्ममें सुनिपुण वेदाध्यायी और वेदाङ्गपारग ब्राह्मण था। आत्मकृत दोषसे ही मेरी यह दशा हुई है। धनुर्वेदपरायण कोई राजा मेरे मित्र थे। उनके साथ एक दिन मैं शिकारमें जंगल गया। वहां जा कर मैंने अपने हाथसे एक तीर छोड़ा जिससे एक ऋषि मारे गये। वह ऋषि मृगोंके रूपमें थे। जब मैं ऋषिके पास पहुँचा तो उन्होंने करुणा विलाप करते हुए मुझे शाप दिया कि, तूने मुझे बिना अपराध मारा, इससे तू शूद्रयोनिमें जा कर एक व्याधके घर उत्पन्न होगा। ऋषिसे इस तरह शाप दिये जाने पर मैंने उन्हें प्रसन्न करनेके लिये बहुत विनीत भावसे कहा, "हे प्रभो! मुझे क्षमा कीजिये। मैंने बिना जाने यह अपराध किया है।" इस तरह अनुनय विनय करने पर वे प्रसन्न हो कर बोले-शाप तो अन्यथा नहीं हो सकता, लेकिन मैं अब तुमसे प्रसन्न हूं, इसलिये तू शूद्रयोनिमें जन्म ले कर भी धर्मज्ञ होगा, पिता माताकी शुश्रूषा करेगा और महती सिद्धि

लाभ कर जातिस्मर होगा। पीछे शाप विमोचन होने पर पुनः ब्राह्मण हो जायगा।"

धर्मव्रता (सं० स्त्री०) धर्मको विश्वरूपा पत्नीसे उत्पन्न एक कन्या। इसकी कथा वायुपुराणमें इस प्रकार लिखी है—विज्ञानविशारद महातेजस्वी धर्म नामक एक राजा थे, इनके विश्वरूपा नामकी एक स्त्री थी। कालक्रमसे उनके धर्मव्रता नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। यह कन्या पातिव्रत्यकी प्राप्तिके लिये घोर तप करने लगी। इसी बीचमें मरीचि ऋषिने उसके निकट पहुँच कर उससे कहा, 'तू इस नवीन अवस्थामें क्यों ऐसी कठोर तपस्या कर रही हो? यह सुन कर धर्मव्रताने कहा, "प्रभो! मैं पतिव्रता होनेके लिये तपस्या करती हूं।" मरीचि उसकी बात सुन कर बोले, 'मैं भी पतिव्रता के अनुसन्धानमें हूं, तुम्हारे सरीखा पतिव्रता और मेरे सरीखा द्वितीय वर भी कोई नहीं है। अतएव तू मुझसे विवाह कर।' इस पर धर्मव्रताने कहा, आप यह विषय मेरे पिता धर्मसे जा कहिये। यह सुन कर मरीचि धर्मके पास गये। धर्मने उन्हें भलीभांति सत्कार कर आनेका कारण पूछा। इस पर ऋषिने जवाब दिया, 'हे राजन्! मैं कन्याकी खोजमें सारी पृथ्वी पर परिभ्रमण किया, पर आपकी कन्या सरीखा किसीको अच्छा न समझा। इसलिये आप अपनी कन्या मुझे दान देवें। धर्मने यह सुन कर विशेष आग्रहके साथ नियमपूर्वक मरीचिऋषिको अपनी कन्या ब्याह दी।

धर्मवृक्ष (सं० पु०) अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़।

धर्मशरीर (सं० क्लो०) बुद्ध बुद्ध बोधस्तूप, धर्मका चिह्न।

धर्मशाला (सं० स्त्री०) धर्मार्थ शाला। १ धर्मगृह, वह स्थान जहां पुण्यके लिये नियमपूर्वक दान दिया जाता हो, सत्र। २ विचारालय, वह स्थान जहां धर्म अधर्मका निर्णय हो। ३ वह मकान जो पथिकों या यात्रियोंके टिकनेके लिये धर्मार्थ बना हो और जिसका कुछ भाड़ा आदि न लगता हो।

धर्मशाला—पञ्जाबके काङ्गड़ा जिलेका पार्वतीय स्टेशन या सदर। यह अक्षा० ३२° १३' उ० और देशा० ७६° ११' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ६९७१ है। पहले यहां अंगरेजी छावनी थी और धौलाधार पर अवस्थित थी। इसके पास ही एक हिन्दकी धर्मशाला है और इसीके नामानुसार छावनीका नाम धर्मशाला पड़ा है। १८५५ ई०में छावनीके आसपास कई एक गाँव बसाये गये और यह स्थान सदर बनाया गया। यहां गोरखा सेना रहती थी। ऊपर जानेके लिये अच्छी अच्छी सड़कें बनाई गई हैं जिनमें एक गाड़ी जाने आनेकी सड़क है। उक्त पहाड़ पर एक गिरजा है जिसके प्राङ्गणमें लार्ड एलगिनका समाधिस्थान है। एलगिन १८६३ ई०में मरे थे।

धर्मशालाका दृश्य बहुत मनोरम है। इसके चारों ओर घने जंगल हैं जहां बहुमूल्य लकड़ी पाई जाती हैं। छावनीके पास ही दल नामका मेला प्रतिवर्ष सितम्बर महीनेमें लगता है। यहांसे दो मीलकी दूरी पर भागसू नामका एक प्रसिद्ध मन्दिर है। १८६७ ई०में यहां म्युनिसिपैलिटी कायम हुई है। सदरकी आय प्रायः १३१०० रु०) है।

धर्मशाला—कटकसे १५ कोस उत्तर ब्राह्मणी नदीके किनारे अवस्थित एक छोटा राज्य। यहांसे आध कोस पश्चिम पर्वतके नीचे एक नदीके ऊपर त्रिकोणाकार भूमि पर गोकर्णेश्वर नामक एक शिवका मन्दिर है। मन्दिरका द्वार पूर्वकी ओर है और इसके सामने बारह खम्भोंसे घिरा हुआ एक नाटमन्दिर है। मन्दिर कोणाकार है और पत्थरका बना है, साथ ही साथ पलस्तर भी दिया हुआ है। इसके चारों ओर बहुतसी सुन्दर सुन्दर पत्थरकी प्रतिमा हैं जिनमेंसे सरस्वतीकी प्रधान प्रतिमा है। ये चतुर्भुजा और शङ्खपद्मधारिणी हैं। यह प्रतिमा नदीके गर्भसे बाहर निकाली गई हैं, किन्तु पुजारी लोग कहते हैं, कि यह पहाड़से निकली हैं, और इनके स्वप्रादेशसे लोगोंने यहां इनकी प्रतिष्ठा की है।

धर्मशासन (सं० क्लो०) शास भावे ल्युट्‌ धर्मस्य शासनं ६-तत्। १ धर्मका अनुशासन। करणे ल्युट्‌। २ धर्मशास्त्र।

धर्मशास्त्र (सं० क्लो०) शिष्यतेऽनेन शास करणे ष्ट्रन्, धर्मस्य शास्त्रं। धर्मशासन, मन्वादि-प्रणीत धर्मप्रतिपादक ग्रन्थभेद, वह ग्रन्थ जिसमें समाजके शासनके निमित्त नीति और सदाचार-सम्बन्धी नियम हों।

मनु, यम, वशिष्ठ, अत्रि, दक्ष, विष्णु, अङ्गिरा, उशना, वृहस्पति, व्यास, आपस्तम्ब, गौतम, कात्यायन, नारद, याज्ञवल्क्य, पराशर, संवर्त्त, शङ्ख, हारीत और लिखित इन सब ऋषियोंने जो सब ग्रन्थ बनाये हैं उन्हें धर्मशास्त्र कहते हैं। यह आचार, व्यवहार और प्रायश्चित्त इन तीन प्रधान भागोंमें विभक्त है। याज्ञवल्क्य धर्मशास्त्रके प्रयोजकने कहा है, कि मलमास, दाय, संस्कार, शुद्धि निर्णय, प्रायश्चित्त, विवाह, एकादश्यादि निर्णय, तड़ागादि उत्सर्ग, वृषोत्सर्ग, व्रत, व्रतप्रतिष्ठा, ज्योतिष, वास्तु, दीक्षा, आह्निक, कृत्य, चैत्रमाहात्म्यादि, सामश्राद्ध, यजुःश्राद्ध, और शूद्रकृत्य इन सबकी मीमांसा करके रघुनन्दनने अष्टाविंशतितत्त्व नामक स्मृतिशास्त्र प्रणयन किया है और यह भी धर्मशास्त्रसंग्रह नामसे प्रसिद्ध है।

मूल धर्मसंहिता ही धर्मशास्त्र है। जब इन संहिताओंसे धर्मव्यवस्थाका निर्णय करना कठिन हो गया, तब उनके आधार पर जो सब संग्रहग्रन्थ प्रणीत हुए उन्होंसे सभी धर्म व्यवस्थाएं प्रचारित होने लगीं। ये सब संग्रहग्रन्थ स्मृति नामसे प्रसिद्ध हैं। स्मृति देखो।

धर्मशास्त्री (सं० पु०) धर्मशास्त्रके अनुसार व्यवस्था देनेवाला, धर्मशास्त्र जाननेवाला पण्डित।

धर्मशील (सं० त्रि०) धर्मे धर्माचरणे शीलं स्वभावो यस्य। धार्मिक, धर्मके अनुसार आचरण करनेवाला।

धर्मशीलता (सं० स्त्री०) धर्मशील होनेका भाव, धर्माचरणकी वृत्ति।

धर्मश्रेष्ठिन् (सं० पु०) एक बौद्ध अर्हत्।

धर्मसंश्रित (सं० त्रि०) धर्मतत्त्वपिपासु, धर्मतत्त्वका अभिलाषी।

धर्मसंहिता (सं० स्त्री०) धर्मज्ञापिका संहिता, धर्मः संहिता निरूपिता यत्र वा। धर्मशास्त्र, जिस शास्त्रमें धर्मका निरूपण हो, जिसमें ऐहलौकिक तथा पारलौकिक विषय मीमांसित हुआ हो, उसे धर्म संहिता कहते हैं।

धर्मसङ्कर (सं० पु०) धर्मस्य सङ्करः ६-तत्। विरुद्ध धर्मका एकत्र समवाय।

धर्मसभा (सं० स्त्री०) धर्मस्य सभा। धर्माधिकरण, वह स्थान जहां बैठ कर न्यायाधीश न्याय करे, अदालत।

धर्मसहाय (सं० पु०) धर्मे सहायः। धर्मके कार्यमें साहाय्यकारी, ऋत्विकादि।

धर्मसार (सं० पु०) धर्मेषु सारः। १ श्रेष्ठ पुण्यकर्म। २ पुण्य कर्मका साधन।

धर्मसारथि (सं० पु०) धर्मः सारथिरिव यस्य। धर्मसख्यके सहायक।

धर्मसावर्णि (सं० पु०) धर्म एव सावर्णिः। एकादश मनु, पुराणोंके अनुसार ग्यारहवें मनु। इस मन्वन्तरमें अवतार धर्मसेतु हैं, इन्द्रका नाम वैधृति है; विहङ्गम कामग और निर्माणरति नामक देवगण हैं। अरुणादि सप्तर्षि हैं तथा सत्य धर्मादि मनुपुत्रगण हैं।

(भागवत ८।१३।१२)

मार्कण्डेयपुराणमें धर्मसावर्णिका विषय इस प्रकार लिखा है—इस मन्वन्तरमें विहङ्गम, कामग और निर्माणरति ये तीन प्रकारके देवगण आविर्भूत हो कर प्रत्येक तीसगणोंमें विभक्त होंगे। इनमेंसे मास, ऋतु और दिवस ये तीनों निर्माणरति और रात्रि, विहङ्गम और मुहूर्त्त ये कामगण होंगे, प्रख्यातविक्रम वृष इनके इन्द्र बनेंगे। हविष्मान्, वरिष्ठ, आरुणि, निश्चर, अनघ, वृष्टि और अग्नितेजा ये सब इस मन्वन्तरमें सप्तर्षि होंगे। सर्वत्रग, सुशर्मा, देवानीक, पुरूद्वह, हेमधन्वा, दृढ़ायु और विभाव, ये सब मनुपुत्र राजचक्रवर्ती समझे जायेंगे।

धर्मसिंह—चौहानराज हम्मीरके प्रधान सेनापति। हम्मीर जिस समय दिग्विजय करके राजधानीमें लौटे, उस समय धर्मसिंहने समस्त कर्मचारियोंके साथ बड़ी धूमधामसे उनका स्वागत किया। उसके बाद हम्मीर अपने पुरोहित विश्वरूपके आदेशानुसार "कोटियज्ञ" नामक यज्ञका अनुष्ठान कर रणथम्भरमें अवस्थान करने लगे। उस समय अलाउद्दीन् खिलजी भारतके सम्राट् थे; सम्राट्ने जब हमीरकी जयवार्त्ता सुनी, तब उन्होंने अपने भाई उलुघखाँको ८० हजार अश्वारोहियोंके साथ चौहान राज्यके ध्वंसके लिए भेजा। हमीर उस समय यज्ञांग सुनियत अवलम्बन कर बैठे हुए थे। इसलिए वे स्वयं युद्धमें न जा सके, धर्मसिंह और भीमसिंहको भेज दिया।

प्रथम युद्धमें जयी हो कर भीमसिंह राजधानीकी तरफ लौटे। इसी मौके पर उलुघखाँने छिप कर भीमसिंहका पीछा किया। धर्मसिंहको भी यह बात मालूम न

पड़ो। विन्दावत् गिरिपथ पर उलुघखाँने सहसा भीमसिंह पर धावा किया। भीषण युद्ध हुआ; इस युद्धमें भीमसिंह मारे गये। उलुघखाँ दिल्लीको लौट गये।

हम्मीरने यज्ञ समाप्त कर चुकने पर जब भीमसिंहकी मृत्यु और युद्धमें पराजयका वृत्तान्त सुना, तब वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए और धर्मसिंहको अन्धा कह कर तिरस्कार करने लगे। कहा—"उलुघखाँने पीछा किया और आप जैसे विचक्षण सेनापतिको मालूम भी नहीं पड़ा।" हम्मीरने सिर्फ तिरस्कार ही नहीं किया, प्रत्युत उन्हें देशसे निकल जाने और मुष्कद्वय छेदनेका आदेश दिया और एक आँख निकलवा ली। इतने पर भी हम्मीरका क्रोध शान्त न हुआ, उन्होंने धर्मसिंहके एक दासगर्भजाता भ्राताको जिनका नाम भोजदेव था, प्रधान मन्त्रीका पद दे दिया। भोजदेवने अनुरोध करके निर्वासनदण्ड और मुष्कच्छेदसे धर्मसिंहका उद्धार किया।

धर्मसिंह इस तरह लाञ्छित और चक्षुहीन हो कर राजासे प्रतिहिंसा लेनेकी कोशिश करने लगे। राधादेवी नामकी एक नर्तकीसे जो राजा हम्मीरकी बहुत प्यारी थी धर्मसिंहने मित्रता कर ली। राधादेवीने धर्मसिंहको अपने मकान पर छिपा रक्खा और प्रतिदिन उन्हें राजसभाका संवाद देने लगी। एक दिन राधा कुछ दुःखित हो कर घर लौटी; धर्मसिंहने उसका कारण पूछा। राधाने कहा—"आज भेदरोगसे बहुतसे श्रेष्ठ घोटकोंकी मृत्यु हो गई है, इसलिए राजा आज खेदखिन्न थे; आज उन्होंने मेरे नृत्यगीत पर ध्यान नहीं दिया।" धर्मसिंहने कहा—तुम राजासे कह सकती हो, कि यदि वे मुझे पूर्वपद पर नियुक्त करें, तो मैं उन्हें मरे हुए घोड़ोंसे दूने घोड़े दे सकता हूं। राधाने ऐसा ही किया। हम्मीर राजी हो गए और धर्मसिंहको पुनः प्रधान सेनापतिका पद दिया। धर्मसिंहने राजाको सन्तुष्ट करनेके लिए हर तरहसे प्रजाको तङ्ग कर डाला और धन, शस्त्र, घोड़े आदिसे राजकोष भर दिया। हम्मीर आप पर बड़े खुश हुए और भोजदेवको अपने विभागका हिसाब दाखिल करनेके लिए आज्ञा दी। भोजदेव धर्मसिंहकी कूटनीतिको समझ गये और एक दिन उन्होंने राजाको समझाया। पर राजाने उनकी बात पर ध्यान न दिया। आखिर निरुपाय हो भोजदेवको राजाज्ञाका पालन करना ही पड़ा। धर्मसिंहके आदेशसे उनकी सम्पत्ति राजकोषमें मिला ली गई। भोजदेवने सब कुछ गवाँ कर भी राजाका साथ न छोड़ा। राजाने एक दिन इस बातका लक्ष्य दे कर उनका उपहास किया। भोजदेव उसी दिन राज्य त्याग कर काशी चल दिये। इसके बाद धर्मसिंहने क्या किया, यह बात नारायण चन्द्रसूरिके हम्मीरकाव्यमें नहीं लिखी है। सम्भवतः जिस समय हम्मीरके समस्त योद्धाएं अलाउद्दीन्के साथ शेषयुद्धमें मारे गये थे, उसी समय धर्मसिंह भी मारे गये होंगे।

धर्मसुत (सं० पु०) धर्मस्य सुतः। युधिष्ठिर।

धर्मसू (सं० स्त्री०) धर्मं सुनोति सु-क्विप्। १ दुन्याट पक्षी, भृङ्गराज नामकी एक चिड़िया। (त्रि०) २ धर्मप्रेरक।

धर्मसूत्र (सं० क्ली०) धर्मः सूत्र्यतेऽनेन करणे घञ्, धर्मस्य सूत्रं ६-तत्। धर्मनिर्णयके लिए जैमिनिप्रणीत धर्ममीमांसारूप ग्रन्थभेद। जैमिनिका बनाया हुआ एक प्रकारका ग्रन्थ जिसमें धर्मकी मीमांसा की गई है।

धर्मसूरि—एक अलङ्कारशास्त्रकार। इनके ग्रन्थका नाम साहित्यरत्नाकर है। वे रामायणकी घटनाके आधार पर स्वरचित श्लोकमें अपने ग्रन्थकी उदाहरणमाला रचगये हैं।

धर्मसेतु (सं० पु०) धर्मस्य सेतुरिव धारकत्वात्। १ धर्मरक्षक, सेतुकी तरह धर्मको धारण करनेवाला। २ एकादश मन्वन्तरमें आर्यकका पुत्र, हरिका अंशभेद।

धर्मसेन—१ एक महास्थविर या बौद्ध महात्मा। ये वाराणसीके निकट ऋषिपत्तन (सारनाथ) सङ्घके प्रधान व्यक्ति थे। अनुराधापुरके राजा दुष्टगामिनीने जब महास्तूपकी स्थापना की थी (प्रायः १५७ ई० सन्के पहले) तब ये बारह हजार अनुचरोंके साथ वहां उपस्थित हुए थे। २ जैनोंके द्वादश अङ्गविदोंमेंसे एक। ३ जैन युगप्रधानोंमेंसे एक।

धर्मसेनगणि महत्तर—एक ग्रन्थकार। वासुदेव-हिंडिका

दूसरा और तीसरा खण्ड इन्होंका बनाया हुआ है।

धर्मस्कन्ध (सं० पु०) आर्हत मतसिद्ध धर्मास्तिकाय पदार्थ। जैन देखो।

धर्मस्थ (सं० पु०) धर्मे-तिष्ठति स्था-क। १ प्राड् विवाक, विचारक, न्यायकर्त्ता। (त्रि०) २ जो केवल धर्ममें अवस्थित या लगा रहता हो।

धर्मस्थल (सं० क्लो०) धर्मस्य स्थलं। धर्मस्थान, जहां धर्मकार्यादि किया जाता है, उस स्थानको धर्मस्थल कहते हैं।

धर्मस्थविर (सं० पु०) धर्मस्य स्थिरः वृद्धः। धर्मवृद्ध, धर्ममें दृढ़चित्त।

धर्मस्वामिन् (सं० पु०) १ बुद्धका नामान्तर। २ काश्मीरके राजा धर्मसे प्रतिष्ठित देवता।

धर्महन्तृ (सं० त्रि०) धर्मकर्मका विरोधक, जो धर्मके कामोंमें बाधा डालता हो।

धर्महा—नदीविशेष। यह पिङ्गला नदीके तीरवर्त्ती चण्डीपुर नामक स्थानसे एक योजन उत्तरमें प्रवाहित है। (भ०ब्रह्म०)

धर्माकर (सं० पु०) ८८ संख्यक बुद्ध, जिनमेंसे १ बुद्ध लोकेश्वरराजके शिष्य हैं।

धर्मागम (सं० पु०) धर्मस्य आगमः। धर्मशास्त्र।

धर्माङ्ग (सं० पु० स्त्री०) धर्म इव शुभ्रं अङ्गं यस्य। बक, बगला। इसका अङ्ग धर्मके समान शुभ्र होता है।

धर्माङ्गज (सं० पु० प्रियङ्कर नामक एक राजाका पुत्र।

धर्माचार्य (सं० पु०) धर्मे आचार्यः। १ धर्मशिक्षक, धर्मकी शिक्षा देनेवाला गुरु। जिससे धर्मकी शिक्षा मिले उसे धर्माचार्य कहते हैं। २ ऋग्वेदियोंमें उन ऋषियोंमेंसे एक। जिनके निमित्त तर्पण किया जाता है। (अश्व० गृह्य० ३।४।४) ३ नैमित्तिकादि प्रलयहर, वैदिक धर्माचारकी शिक्षाके निमित्त बीजस्वरूप धर्मप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम।

धर्मात्मन् (सं० त्रि०) धर्मशील, धर्म करनेवाला, धार्मिक

धर्मादित्य—१ वलभीराज प्रथम शिवादित्यका नामान्तर। ये बौद्ध थे। शिलादित्य और वलभीवंश देखो। २ बङ्गके एक राजा। ये गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्तको अधीनता स्वीकार करते थे। ३ ई० सन् प्रथमके एक बङ्गराज।

धर्माधर्म (सं० पु०) धर्मश्च अधर्मश्च द्वन्द्वस०। पुण्य और पाप। यह शब्द द्विवचनान्त है। धर्माधर्मौ परीक्षणीयतया प्रस्तः अच्। २ धर्म जरूप दिग्भेद।

धर्माधर्मपरीक्षण (सं० क्ली०) धर्माधर्मयो परीक्षणं ६-तत्। धर्म और अधर्म विषयकी परीक्षा।

धर्माधिकरण (सं० क्ली०) अधिक्रियते ऽस्मिन्निति अधि-कृ-अधिकरणे ल्युट्, धर्मस्य अधिकरणं। राजाओंका विचार-स्थान, वह स्थान जहाँ राजा व्यवहारों (मुकद्दमों पर विचार करता है, विचारालय।

वीरमित्रोदयमें कात्यायनका वचन है, कि धर्मानुसार जहां अर्थशास्त्रका निरूपण होता हो अर्थात् मुकद्दमों पर विचार किया जाता हो उस स्थानको धर्माधिकरण कहते हैं। इस तरहका विचारालय कहां बनाना चाहिये उसके विषयमें यों लिखा है—दुर्गके मध्य विचारालय निर्माण करना अच्छा है। यह विचारालय खाई या वृक्षोंसे वेष्टित होना चाहिये। पूर्व दिशामें और पूर्व मुख करके सभा स्थापित करनी चाहिये। विचारकको उचित है, कि वे किसी उच्चासन पर बैठ कर विचार करें और वह आसन माला और रत्नादिसे भूषित रहे।

जो पुरुषोंके हृदयका भाव अच्छी तरह समझ जायं और जिन्हें किसी प्रकारका लोभ न हो वैसे मनुष्यको धर्माधिकरणमें नियुक्त करना चाहिये।

धर्माधिकरण सं० पु०) धर्माधिकरणं आश्रयत्वेनास्त्यस्य इति अच्। धर्माध्यक्ष, विचारक।

जो शत्रु और मित्र दोनोंको समान भावसे देखते हों और जो समस्त शास्त्रविशारद, ब्राह्मण श्रेष्ठ और कुलीन हों, वे ही विचारक हो सकते हैं।

धर्माधिकरणिन् (सं० पु०) धर्माधिकरणं विचार्य स्थानत्वेनास्त्यस्येति, धर्माधिकरण-इनि। धर्माधिकरण-विशिष्ट विचारक। इसका पर्याय—धर्माध्यक्ष, धार्मिक, प्राड्विवाक और अक्षदर्शक है।

धर्माधिकार (सं० पु०) धर्मे अधिकारः। न्याय और अन्यायके विचारका अधिकार, विचारपतिका पद या काम।

धर्माधिकारिन् (सं० पु०) धर्मे व्यवहारे तद्विचारे

करोति अधि-कृ-णिनि । १ प्राड्विवाकादि विचारक प्रभृति, धर्म अधर्म को व्यवस्था देनेवाला, विचारक, न्यायाधीश । २ दानाध्यक्ष, पुण्यकार्यादिका प्रबन्धकर्त्ता ।

धर्माधिपति (सं॰ पु॰) प्रधान विचारपति, प्रधान-व्यवस्थापक ।

धर्माधिष्ठान (सं॰ क्लो॰) धर्मस्य अधिष्ठानं । धर्माधिकरण, विचारालय ।

धर्माध्यक्ष (सं॰ पु॰) धर्मे व्यवहारे धर्मनिर्णये अध्यक्षः । १ प्राड्विवाकादि, धर्माधिकारी । २ विष्णु । ३ शिव, महादेव ।

धर्माध्वन् (सं॰ पु॰) धर्मपथ, न्यायका रास्ता ।

धर्मानपुर – अयोध्याके अन्तर्गत बराइच जिलेको नानापारा तहसीलका एक परगना । इसके उत्तरमें नेपाल, पूर्व और दक्षिणमें नानापाड़ा परगना तथा पश्चिममें कौरियाला नदी है । यह पहले औरङ्गर राज्यके अन्तर्गत था । अयोध्यामें अंगरेजोंके अधिकार होनेके बाद यह एक जिला हो गया है । इसका अधिकांश जङ्गलाकृत है । लोकसंख्या प्रायः २६ हजार है । जंगलमें शिकारके उपयुक्त अनेक जन्तु पाये जाते हैं और उत्तर अयोध्याके नाना स्थानोंसे मवेशी यहां चरनेके लिये लाये जाते हैं ।

धर्मानुगत (सं॰ त्रि॰) धर्म अनुगतः । धर्मनियमका अनुगत, धर्मयुक्त, धार्मिक ।

धर्मानुयायिन् (सं॰ त्रि॰) धर्मं अनुयाति या-णिनि । धर्मपथावलम्बी, जो धर्म पथके अनुसार चलते हों ।

धर्माम्बु (सं॰ पु॰) धर्मं ज्ञातो ऽम्बुः कूपः । तीर्थभेद । एक तीर्थका नाम ।

धर्माभास (सं॰ पु॰) धर्म इव आभासति आ-भास-अच् । श्रुति स्मृति भिन्न शास्त्रोक्त असत् धर्म, अप्रशस्त धर्म । जो स्मृति और श्रुतिमें कहा गया है, उसे धर्म और जो दूसरे शास्त्रोंमें कहा गया है उसे धर्माभास कहते हैं ।

धर्माभिषेक (सं॰ क्लो॰) शास्त्रगत अभिषेकादि ।

धर्मायतन (सं॰ क्लो॰) धर्मका मानस-स्थान ।

धर्मारण्य (सं॰ क्लो॰) धर्म इति ख्यातं यत् अरण्यं । तीर्थभेद । वराहपुराणमें इस तीर्थकी उत्पत्तिके विषयमें इस प्रकार लिखा है—जब चन्द्रमाने गुरुपत्नी ताराका हरण किया, तब धर्मने प्रपीड़ित हो कर सघन वनमें प्रवेश किया था । उस समय ब्रह्माने धर्मसे कहा था, "हे धर्म ! तुम्हारे इस वनमें रहनेसे यह धर्मारण्य नामसे प्रसिद्ध होगा ।" २ गयास्थ तीर्थभेद, गयाके अन्तर्गत एक तीर्थस्थान । इसका उल्लेख गयामाहात्म्यमें भी किया गया है । ३ धर्मसाधन अरण्यमात्र, तपोवन । ४ कूर्मविभागोक्त मध्यभागस्थ देशभेद, कूर्मविभागके मध्य भागमें एक देश । (वृहत्सं १४ अ॰) रामायणमें धर्मारण्य नामक नगरका उल्लेख देखा जाता है । यह नगर कामरूपके मध्य किसी जगह अवस्थित था, ऐसा अनुमान किया जाता है ।

धर्मार्थ (सं॰ अव्य) धर्मके निमित्त, परोपकारके लिये ।

धर्मार्थीय (सं॰ त्रि॰) धर्मसम्बन्धीय ।

धर्मालीक (सं॰ त्रि॰) छद्मवेशी कपटाचारी, पाखंडी ।

धर्मालोकमुख (सं॰ क्लो॰) बौद्धमत ज्ञानका उपक्रमण ।

धर्मावतार (सं॰ पु॰) धर्मस्य अवतारः । धर्मका अवतार, साक्षात् धर्म, धर्मात्मा । जो न्यायकार्य अच्छी तरह करते हैं, उन्हें धर्मावतार कहते हैं । इसका तात्पर्य यह है कि राजा साक्षात् धर्मस्वरूप हैं; जो विचारकार्य करते हैं, वे राजप्रतिनिधि हैं । जब वे धर्मासन पर बैठ कर न्यायान्यायका विचार करते हैं, तब उन्हें धर्मावतार कहते हैं । २ धर्माधर्मका निर्णय करनेवाला पुरुष, न्यायाधीश । ३ युधिष्ठिर ।

धर्माशोक (सं॰ पु॰) राजा अशोक बौद्धधर्म ग्रहण करने बाद "धर्माशोक" नामसे विख्यात हुए । प्रियदर्शी शब्दमें विस्तृत विवरण देखो ।

धर्माश्रित (सं॰ क्लो॰) धर्म आश्रितः २या-तत् । धार्मिक, धर्मशील ।

धर्मासन (सं॰ क्लो॰) धर्माय व्यवहारकार्यसाधनाय यदासनं । १ विचारनिर्णयार्थ आसनभेद, वह आसन या चौकी जिस पर बैठ कर न्यायाधीश न्याय करता है ।

धर्मास्तिकाय (सं॰ पु॰) जैनमतानुसार पांच अस्तिकाय पदार्थोंमेंसे एक । इसे धर्म द्रव्य भी कहते हैं । यह धर्म द्रव्य लोकमें व्यापक अरूपी अखण्ड एक द्रव्य है और जीव तथा पुद्गल द्रव्योंको चलनेमें सहायता देता है । जैन देखो ।

धर्मिक (सं॰ त्रि॰) धर्मोऽस्त्यस्य ठन् । १ धर्मयुक्त,

धार्मिक। तस्य कर्म भावादौ इति पुरोहितादित्वात् यक्। (क्ली०) २ धार्मिकत्व, धार्मिकका भाव या कर्म।

धर्मिणी (सं० स्त्री०) १ पत्नी, स्त्री। २ रेणुका। (त्रि०) ३ धर्म करनेवाली।

धर्मिन् (सं० त्रि०) धर्मोऽस्त्यस्य इनि। १ धर्मविशिष्ट, जिसमें धर्म हो। २ धार्मिक। (पु०) ३ विष्णु। ४ धर्मका आधार। ५ रेणुका। ६ जाया, स्त्री।

धर्मिष्ठ (सं० पु०) अयमेषामतिशयेन धर्मवान्, इति इष्ठन्, मतुपो लोपः। १ अत्यन्त धार्मिक, पुण्यात्मा। २ विष्णु।

धर्मीपुत्र (सं० पु०) नट, नाटकका कोई पात्र या अभिनयकर्त्ता।

धर्मीयस् (सं० त्रि०) अतिशयेन धर्मवान् इति ईयसुन्। अत्यन्त धर्मशील, जो प्राणपणसे धर्मके पथपर चलता है, मरते समय भी अधर्मके पथ पर पैर नहीं रखता, उसे धर्मीयस् कहते हैं।

धर्मेन्द्र (सं० पु०) धर्मे इन्द्र इव रक्षकत्वात्। धर्मराज, यम।

धर्मेप्सु (सं० त्रि०) धर्म आप्तुमिच्छुः आप-सन्-धर्मेप्सु ततो सनाशंसेत्यादिना उ प्रत्यय। धर्मलाभ करनेका अभिलाषी, जिसे धर्म प्राप्तिकी इच्छा हो।

धर्मेयु (सं० पु०) पौरववंशीय रौद्राश्व पुत्रभेद, पुरुवंशी राजा रौद्राश्वका एक पुत्र।

धर्मेश (सं० पु०) धर्मस्य ईशः ६-तत्। यम।

धर्मेश्वर (सं० पु०) धर्मस्य ईश्वरः ६-तत्। १ यम, धर्मराज।

धर्मोत्तर (सं त्रि०) धर्म उत्तरः प्रधानं यस्य। धर्म प्रधान।

धर्मोत्तराचार्य—एक बौद्ध आचार्य और ग्रन्थकार। इस देशमें अब तक इनका नाम और ग्रन्थादि विलुप्त थे। तिब्बतमें "तांगूर" (Tandgur) नामक सर्व साहित्यसंग्रह विषयक एक बड़ा ग्रन्थ है, जिसमें बहुतसे ऐसे ग्रन्थोंका उल्लेख है जो भारतीय विद्वानों द्वारा रचे गये हैं। इसी संग्रह ग्रन्थोंमें धर्मोत्तराचार्यके ७ ग्रन्थोंका उल्लेख है। परन्तु आज तक अनुसन्धान करने पर भी उल्लिखित ७ ग्रन्थोंकी मूल संस्कृत प्रति न तो भारतमें ही मिली और न तिब्बतमें ही, १८८७में बम्बई एशियाटिक सोसाइटीके प्रयत्नसे "न्यायबिन्दुटीका" नामक एक टीकाग्रन्थ इनका रचा हुआ आविष्कृत हुआ है। "तांगूर" नामका पूर्वोक्त संग्रह ग्रन्थमें भी इनका नाम पाया जाता है, इसलिये दोनों ग्रन्थों और ग्रन्थकारोंको एक समझनेमें कोई आपत्ति नहीं। यह ग्रन्थ 'न्यायबिन्दु' नामक संस्कृत न्यायग्रन्थकी टीका है। बौद्धोंमें न्याय-विषयक अनेक ग्रन्थ मिलते हैं। मूल सूत्रग्रन्थ 'न्यायबिन्दु' किसका रचा हुआ है, पता नहीं। परन्तु भाउदाजीकी पुस्तकागारमें संगृहीत लघुधर्मोत्तरसूत्र और जैसलमेरसे संगृहीत "धर्मोत्तरवृत्तिसे" इसका कुछ कुछ सम्पर्क अवश्य है। पाश्चात्य विद्वानोंका अनुमान है, कि 'लघुधर्मोत्तरसूत्र' और न्यायबिन्दुटीकाके मूल सूत्रग्रन्थ 'न्यायबिन्दु' में कुछ भेद नहीं है। न्यायबिन्दुटीकाके पढ़नेसे मालूम होता है, कि धर्मोत्तराचार्यने जिन सूत्रोंकी व्याख्या की है, उन सूत्रोंको उन्होंने स्वयं बुद्धके वाक्य माने हैं। इससे अनुमान होता है कि आप बौद्धधर्मके वैभाषिक, सौत्रान्तिक, माध्यमिक और योगाचार इन चारों शाखाओंमें थे। "धर्मोत्तरवृत्तिके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि आपके पहले आचार्य विनीतदेव (भर्तृहरिके भ्रातुष्पुत्र राजा गोपीचन्द्रके समकालवर्ती और श्रीनालन्दावासी)ने पूर्व मीमांसाके आधार पर प्रमाण-विषयक एक सप्ताध्यायी टीका तथा समाजभेद प्रच्छन्नचक्र नामक १८ प्रकार बौद्धशाखाओंका विवरण लिखा था; उसके बाद शान्तभद्र वा शान्तरुद्र वा सत्यभद्र नामक आचार्यने अभिधर्मकोषका प्रतिवाद कर "न्यायानुसारशास्त्र" नामक ग्रन्थ रचा था। यूएन चुआंगने चीनी भाषामें इसका अनुवाद किया है, जो कि चीनी त्रिपिटकका एक अंश समझा जाता है। उसके बाद बौद्ध कवि और आचार्य धर्मकीर्तिने प्रमाणवार्त्तिक, प्रमाणविनिश्चय, प्रसन्नपाद आदि न्यायविषयक ग्रन्थ रचे। धर्मकीर्त्ति द्वारा प्रणीत "बौद्ध धर्मसङ्गति" नामक ग्रन्थका उल्लेख सुबन्धु-प्रणीत वासवदत्तामें मिलता है। धर्मोत्तराचार्यने भी इसी प्रकार आचार्य पादोंके अनुसरण करते हुए "न्यायबिन्दुटीका" रची होगी।

धर्मोपदेश (सं० पु०) धर्म उपदिश्यते ऽनेन उप-दिश

कारणे घञ्। १ धर्मशास्त्र, मन्वादिशास्त्र। भावे घञ्, धर्मस्य उपदेशः। २ धर्मविषयक उपदेश, धर्मकी शिक्षा।

धर्मोपदेशक (सं॰ त्रि॰) धर्मं उपदिशति उप-दिश-ण्वुल्। १ धर्मका उपदेष्टा, धर्मका उपदेश देनेवाला। (पु॰) २ गुरु।

धर्मोपदेशना (सं॰ स्त्री॰) व्यवहारशास्त्रका उपदेश।

धर्मोपाध्याय (सं॰ पु॰) पुरोहित।

धर्मोपेत (सं॰ त्रि॰) धर्मो उपेतः ७ तत्। धर्मयुक्त, धार्मिक, न्यायी।

धर्म्य (सं॰ त्रि॰) धर्मादनपेतः। (धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते। पा ४।४।९२) इति यत्। १ धर्मयुक्त, जो धर्मके अनुकूल हो। धर्मेण प्राप्यः (नौवयोधर्मेति। पा ४।४।९१) इति यत्। २ धर्म लभ्य, धर्मको प्राप्ति।

धर्म्यविवाह (सं॰ पु॰) धर्म्यः धर्मादौ विवाहः। धर्मयुक्त विवाह। यह विवाह पांच प्रकारका है—ब्राह्म, आर्ष, गान्धर्व और प्राजापत्य। जिस वर्णका जो विवाह धर्मयुक्त है और जिस विवाहमें जो गुणदोष समुत्पन्न होता है और जिस विवाहोत्पन्न सन्तानमें जो गुणागुण उत्पन्न होता है वह मनुसंहिता पढ़नेसे इस प्रकार जाना जाता है—छह विवाह अर्थात् ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्रजापत्य, आसुर और गान्धर्व ये छः विवाह ब्राह्मणोंके धर्म्य अर्थात् धर्मजनक हैं; आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच ये पांच प्रकारके विवाह क्षत्रियोंके धर्मजनक हैं। वैश्य और शूद्रके लिए राक्षस छोड़ कर और कई एक विवाह अर्थात् आसुर, गान्धर्व और पैशाच धर्मजनक हैं;

धर्ष (सं॰ पु॰) धर्षणमिति धृष-भावे घञ्। १ प्रागल्भ्य, धीरता। २ अमर्ष, क्रोध, रिस। ३ शक्तिबन्धन, अशक्त होने या करनेका भाव, बेकाम करने या होनेका भाव। ४ अविनीत व्यवहार, अविनय, गुस्ताखी। ५ असहनशीलता, तुनकमिजाजी। ६ अधीरता, बेसब्री। ७ रोक, दबाव। ८ नामर्द करने या होनेका भाव। ८ नपुंसक, नामर्द, हिजड़ा। ९ हिंसा जो दुखानेका कार्य। १० अनादर, अपमान। ११ सतीत्वहरण।

धर्षक (सं॰ त्रि॰) धृष्णोति प्रगल्भ्य भवतीति धृष-ण्वुल्। १ परिभवकारक, अपमान करनेवाला, तिरस्कार करनेवाला। २ प्रगल्भ, चतुर, होशियार। ३ असहन, जो सहन न करे। ४ अभिनय करनेवाला, नट। ५ दमनकारी, दबानेवाला। ६ सतीत्वहरण करनेवाला, व्यभिचारी।

धर्षकारिणी (सं॰ त्रि॰) धर्षं कुलदूषणं करोति कृ-णिनि स्त्रियां ङीप्। दूषिताकन्या, असती, व्यभिचारिणी।

धर्षकारिन् (सं॰ त्रि॰) धर्षं करोति कृ-णिनि। १ परिभवकर्त्ता, अपमान या अवज्ञा करनेवाला। २ प्रागल्भ्यकारक, दबाने या दमन करनेवाला। डरानेवाला।

धर्षण (सं॰ क्ली॰) धृष भावे ल्युट्। १ परिभव, अनादर, अपमान। २ असहनशीलता। (पु॰) ३ शिव, महादेव। ४ रति, स्त्रीप्रसंग। ५ आक्रमण, दबोचना, डरानेका कार्य (त्रि॰) ६ धर्षधारक, दबानेवाला।

धर्षणा (सं॰ स्त्री॰) १ अवमानना, अवज्ञा, अपमान, हतक। २ दबाने या डरानेका कार्य, नीचा दिखानेका काम। ३ सतीत्वहरण। ४ संभोग, रति।

धर्षणात्मन् (सं॰ पु॰) महादेव, शिव।

धर्षणि (सं॰ स्त्री॰) कर्षतीति कृष-अणि धातोरादेश धः। (कृषेरादेश धः। उण् २।१०५) बन्धकी, असती स्त्री कुलटा।

धर्षणी (सं॰ स्त्री॰) धर्षणि कृदिकारादिति वा ङीष्। धर्षिणी, असती नारी, कुलटा।

धर्षणीय (सं॰ त्रि॰) धर्षणके योग्य, जो दबाने या डराने लायक हो।

धर्षा—मुसलमानोंके राजत्वकालमें सारा बङ्गाल कई एक विभागोंमें विभक्त थी। प्रत्येक विभागको सरकार कहते थे। वर्त्तमान अञ्चल उस समय सरकार सुलेमानाबाद नामसे प्रसिद्ध था। इस सरकारमें ४१ परगने लगते थे। धर्षा इसीके अन्तर्गत एक परगना था जो गङ्गाके पूर्व किनारे पर अवस्थित रहा। वर्त्तमान हावड़ा और श्रीरामपुर शहरके मध्यवर्ती समस्त भूभाग इसी परगनेके अन्तर्गत था।

धर्षित (सं॰ क्ली॰) धृष्यते स्मेन धृष-क्त। १ रति, संभोग, मैथुन। (त्रि॰) २ कृतधर्षण, जिसका धर्षण किया गया हो, दबाया या दमन किया हुआ। ३ अपमानित, जिसे

नीचा दिखाया गया हो। स्त्रियां टाप्। धर्षती स्त्री।

धर्षिन् (सं॰ त्रि) धर्षति इति धृष णिनि। १ धर्षक, धर्षण करनेवाला। २ आक्रमण करनेवाला, धर दबानेवाला। ३ पराभवकारी, हरानेवाला। ४ नीचा दिखानेवाला। ५ अपमान करनेवाला।

धलकिशोर (द्वारकेश्वर, दारकेश्वर)—पश्चिम बङ्गालकी एक नदी। यह मानभूम जिलेके तिलाबनी पहाड़से निकल कर बाँकुड़ा जिलेके अन्दाल, विष्णुपुर, कोटालपुर, इन्दास आदि स्थानोंके मध्य होती हुई कोटालपुरसे २ कोस पूर्व बर्द्धमान जिलेमें प्रवेश करती है। दक्षिणपूर्व और दक्षिणकी ओर जहानाबाद-से कुछ दूर बेरारी ग्रामके निकट यह हुगली जिलेमें प्रवेश करती है। हुगली जिलेमें इसका नाम रूपनारायण है। हुगलीके मुहानेके निकट यह नदी हुगली नदीमें हो मिली है। इसमें कभी कभी बाढ़ आ जाती है। बाढ़से बचनेके लिये इसमें बाँध आदि दिये गये हैं। बाँकुड़ामें केवल वर्षाके समय इसमें नावें जाती आती हैं।

धलण्ड (सं॰ पु॰) ह्रड़कण्ठकवृक्ष, अंकोलका पेड़, ढेरा।

धलदीघी—इस नामका दिनाजपुरमें एक ग्राम और एक बड़ी दिग्गी है। प्रतिवर्ष १ली फाल्गुनसे ले कर ८ दिन तक इस दिग्गीके पास एक बड़ा मेला लगता है जिसमें प्राय २५ हजार मनुष्य समागम होते हैं।

धलनभर—२४ परगनेका एक ग्राम। यहां एक पगलागारद है।

धलहर—उड़ीसाके अन्तर्गत एक जनपद।

धलेट—ब्रह्मदेशके अन्तर्गत क्यैकपैयु जिलेकी एक नदी। यह आराकान पर्वतमालासे निकल कर कम्बरमिया उपसागरमें गिरती है। मुहानेसे २॥ कोस दूर धलेट ग्राम तक इसमें नावें जाती आती हैं। कहीं इस नदीको टलक भी कहते हैं। धलेट ग्रामके समीप इसकी गति बहुत तेज है।

धलेश्वर—त्रिपुराके अन्तर्गत आगरतलासे ५ कोसकी दूरी पर अवस्थित एक पर्वत।

धलेश्वरी—बङ्गाल और आसाममें इस नामकी बहुतसी नदियां हैं। १ यमुनाकी एक शाखानदीका नाम धलेश्वरी है। यह ढाका जिलेसे होती हुई मेघनामें गिरती है। यमुनाकी ओरका मुहाना दिनों दिन बालूसे भरता आ रहा है। केवल वर्षाकालमें स्टीमर चलता है। २ सुर्मा और कुशियारा दोनों संयुक्त नदियोंके प्रवाहका नाम धलेश्वरी है जो मैमनसिंह और श्रीहट्ट जिलेके मध्य सीमारूपमें प्रवाहित है। यह मेघनामें जा गिरि है।

३ कछाड़की एक नदीका नाम धलेश्वरी है। यह लुसाई राज्यसे निकल कर हैलाकान्दीके मध्य होती हुई बराक-नदीमें गिरती है। लुसाई सीमामें कछाड़के राजाने इस नदीसे एक नहर काट निकाली है। असल नदीके ऊपर इस तरफके मुहाने पर एक बाजार अवस्थित है। इस नदीके किनारे १६ कोस विस्तृत सुरक्षित वन है जो धले जङ्गल नामसे मशहूर है।

धव (सं॰ त्रि॰) धवति, धुवति धुनोति धुनाति वा अच्। १ कम्पनकारक, कंपाने या डरानेवाला। (पु॰) २ पति, स्वामी। ३ नर, पुरुष, मर्द। ४ धूर्त आदमी। ५ स्वनामख्यात पश्चिमदेशीय वृक्षविशेष, एक जङ्गली पेड़। इसका संस्कृत पर्याय—शकटाख्य, दृढ़तरु, धुरन्धर, गौर, कषाय, मधुरत्वक्, शुक्लवृक्ष, पाण्डुतरु, धवल और पाण्डुर है। इसका गुण—कषाय, कटु, कफ और वायुनाशक, पित्तप्रकोपक, रुचिकर, दीपन, शीतल, प्रमेह, अर्श, पाण्डु, पित्त और कफनाशक, मधुर, तुवर और तिक्त है। (भावप्रकाश)

इस जातिका बड़ा पेड़ हिमालयकी तराईसे ले कर दक्षिण भारत तक पाया जाता है। इसके पत्ते अमरूद या सरीफेके पत्तोंके जैसे होते हैं। इसकी छाल सफेद और चिकनी तथा भीतरकी लकड़ी बहुत कड़ी और चमकीली होती है। फल बहुत छोटे छोटे होते हैं। इस पेड़की कई जातियां है। बड़ी जातिके पेड़को धौरा या बाकली कहते हैं। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है। इसका कोयला भी अच्छा होता है। पत्ते चमड़ा सिझानेके काममें आती है। इसके पेड़से जो गोंद निकलता है वह छींट छापनेवालेके काममें आता है। छोटी जातिका पेड़ विंध्य पर्वत पर तथा दक्षिण भारतकी ओर मिलता है। धु कम्पने भावे अप्। ६ कम्पन।

धवई (हिं॰ स्त्री॰) एक पेड़। धातकी देखो।

धवनि (सं० स्त्री०) धू-करणे अनि। अनल, आग।
धवनी (सं० स्त्री०) १ शालिपर्णी, सरिवन। २ पृश्निपर्णी, पिठवन।
धवनी (हिं० स्त्री०) लोहारोंकी धौंकनी, भाथी।
धवर (सं० क्ली०) संख्याविशेष।
धवर (हिं० पु०) एक पक्षी। इसका कण्ठ लाल और सारा शरीर सफेद होता है।
धवरहर (हिं० पु०) मकानका एक भाग जो खंभेकी तरह ऊपर दूर तक चला जाता है। इस पर चढ़नेके लिए भीतर सीढ़ियां बनी रहती हैं।
धवराहर (हिं० पु०) धवरहर देखो।
धवरी (हिं० वि०) १ सफेद, उजली। यह शब्द स्त्रीलिङ्गमें व्यवहृत होता है। (स्त्री०) २ धवर पक्षीकी मादा। ३ सफेद रंगकी गाय।
धवल (सं० पु०) धावतीति धाव-कल प्रत्यय। (धावतेर्वाहुलकात् कल। उण् १।१०८) १ धववृक्ष, धवका पेड़। २ चीनकपूर। ३ सिन्दूर। ४ श्वेतमिर्च, सफेद मिर्च। ५ रागभेद, एक प्रकारका राग। भरतके मतसे यह हिन्दोलरागका अष्टम पुत्र है। ६ वृषश्रेष्ठ, महोक्ष, भारी बैल। ७ पक्षिविशेष, धवर पक्षी, सफेद परेवा। ८ छन्दोभेद, छप्पय छन्दका ४५वां भेद। ९ अर्जुन वृक्ष। १० कुष्ठरोग, सफेद कोढ़। ११ शंख। १२ धातकी। (त्रि०) १३ श्वेत, उजला, सफेद। १४ निर्मल, झकाझक। १५ मनोहर, सुन्दर।
धवलकोष्टो (हिं० स्त्री०) बेश्योंकी एक जाति।
धवलगिरि (सं० पु०) धवलः गिरिः कर्मधा। ख्यनामख्यात पर्वतविशेष, एक पर्वतका नाम।
धवलघाट—सुसङ्ग दुर्गापुरसे दो कोस दूर कंस नदीके किनारे अवस्थित एक ग्राम।
धवलता (हिं० स्त्री०) सफेदी, उजलापन।
धवलत्व (सं० क्ली०) धवलस्य भावः 'त्वतलौ भावे' इति त्व। धावल्य, सफेदी, उजलापन।
धवलना (हिं० क्रि०) उज्ज्वल करना, निखारना।
धवलपक्ष (सं० पु० स्त्री०) धवलौ पक्षौ यस्य। १ हंस। इसके पर सफेद होते हैं। (पु०) २ शुक्लपक्ष, उजला पाख।
धवलपद्मिनी (सं० स्त्री०) श्वेत पाटलिका, सफेद पपड़ी।
धवलपाटली (सं० स्त्री) श्वेतपाटलिका, सफेद पपड़ी।
धवलभूम—भविष्य ब्रह्मखण्डमें पुण्ड्र देशान्तर्गत वरादेशके वर्णनमें इस देशका उल्लेख देखा जाता है। इसका वर्त्तमान नाम धलभूम है। वराहभूम देखो।
धवलमृत्तिका (सं० स्त्री०) धवला मृत्तिका। दुद्धी, खरियामट्टी।
धवलयावनाल (सं० पु०) धवलः यावनालः। यावनालविशेष, जुनहरी, भुट्टा। इसका पर्याय—पाण्डुर, तारतण्डुल, नखप्रकान्ति, विस्तार, वृत्त और मौक्तिकतण्डुल। इसका गुण—गौल्य, बलकारक, वृष्य, रुचिकर, पथ्य, त्रिदोष, अर्श, गुल्म और व्रणनाशक है।
धवलश्री—रागिणीविशेष, एक रागिनी जिसमें पंचम और गांधार वर्जित हैं।

नि ध ० म ० रि सा : : (संगीतरत्ना०)

धवलहाटी—देशावलीधृत यशोहरान्तर्गत एक ग्राम।
धवला—१ भविष्य ब्रह्मखण्डोक्त पुण्ड्रदेशान्तर्गत वरादेशके मध्यवर्त्ती प्रधान आठ नगरोंमेंसे एक नगर। (ब्र० ख० ५।२८) २ सुसङ्ग दुर्गापुरकी पूर्ववाहिनी एक नदी। ३ सारनाथसे प्राप्त एक शिलालेख पढ़नेसे जाना जाता है, कि काशीराज बालादित्यके पुत्र प्रकटादित्यकी माताका नाम रानी धवला था। मि० फिलट अनुमान करते हैं कि मिहिरकुलोद्भव महाराज बालादित्य यही बालादित्य हो सकते हैं। शिलालेख भी सातवीं शताब्दीके अन्तका उत्कीर्ण है। ४ नदीभेद, एक नदी।
धवला (सं० स्त्री०) धावतीति धा-कल प्रत्यय अनुदात्तत्वाभावात् न ङीष्। १ शुक्लवर्ण गाभी, सफेद गाय। २ वृन्दावनस्थ पर्वतविशेष, वृन्दावनका एक पहाड़। (पु०) ३ श्वेत वृष, सफेद बैल। (त्रि०) ४ श्वेत, सफेद, उजली। (क्ली०) ५ श्वेतशारिवा, अनन्तमूल। ६ वचा। ७ श्वेतापराजिता। ८ पापरोगान्तक रस।
धवलागिरि—हिमालय पहाड़की एक प्रख्यात चोटी। यह नेपाल राज्यमें २८° ११' उ० और देशा० ८३° ५८' पू०में अवस्थित है और समुद्रपृष्ठसे २६८२६ फुट ऊँची है।
धवलाङ्क (सं० क्ली०) धतिधृति छन्दोभेद।
धवलाङ्ग (सं० पु०) हंस।

धवलित (सं० त्रि०) धवलोऽस्य सञ्जातः तारकादित्वादितच्। शुभ्रीभूत, जो सफेद किया गया हो।

धवलिमन् (सं० पु०) धवलस्य भावः इमनिच्। १ श्वेतत्व, शुभ्रत्व, सफेदी। (स्त्री०) धवलस्यर्गादित्वात् ङीष्। २ शुक्लवर्ण गाभी, सफेद गाय।

धवली (सं० स्त्री०) १ शुक्ल गाय, सफेद गाय। २ एक रोग जिसमें बाल सफेद हो जाते हैं। ३ सफेद मिर्च।

धवलीकृत (सं० त्रि०) अधवलः धवलः कृतः अभूततद्भावे च्वि० ततो दीर्घः। धवलित, जो सफेद किया गया हो।

धवलीभूत (सं० त्रि०) शुक्लीभूत, जो सफेद हुआ हो।

धवलेक्षु (सं० पु०) श्वेताक्ष, सफेद आंख।

धवलेश्वर-गोदावरी जिलेमें राजमहेन्द्री तालुकके अन्तर्गत एक शहर। यह अक्षा० १६° ५६' ३५" उ० और देशा० ८१° ४८' ५५" पूर्वमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः साढ़े दश हजार है जिसमेंसे दश हजार हिन्दू हैं। राजमहेन्द्रीसे २ कोस दक्षिण गोदावरी नदीमें १२ फुट ऊँचा और १६५० गज लम्बा एक बाँध है। यह बांध पिपिका नामक गोदावरी नदीके मुहानास्थ द्वीप तक विस्तृत है। १८४७ ई०को इस काममें हाथ डाला गया था। यहां अभी डिष्ट्रिक्ट इञ्जिनीयरका दल बल और पूर्त्त विभागका कारखाना है। १५वीं और १६वीं शताब्दीमें जब इलोरके नवाबके साथ राजमहेन्द्रीके सीतापतिका युद्ध छिड़ा था, उस समय इसी शहरमें दोनों पक्षकी सेनायें रहती थीं। गोदावरी और कृष्णानदीकी नहर हो कर इस नगरके साथ उपकूलकी घनिष्ठता बढ़ गई है।

धवलेश्वर—१ भविष्य-ब्रह्मखण्डोक्त बङ्गदेशान्तवर्त्ती वरद देशके अन्तर्गत एक नदी। इसके किनारे बल्लालनगर अवस्थित है। (ब्र०ख० १९।१२) २ एकाम्रकाननकी एक सीमा। एकाम्रकानन देखो।

धवलोत्पल (सं० क्ली०) धवलं उत्पलं कर्मधा। कुमुद, एक फूल।

धवा (हिं० पु०) धव देखो।

धवाणक (सं० पु०) धुनाति कम्पयति वृक्षादीनिति धू-आणक (आणको लूधूशिङ्घिधाञ्भ्यः। उण् ३।८३) वायु।

धवाना (हिं० क्रि०) दौड़ाना।

धवितव्य (सं० त्रि०) धु-तव्य। व्यजनोपयुक्त, हवा देने योग्य।

धवित्र (सं० क्ली०) धूयतेऽनेन धू-इत्र (अर्त्ति लूधू सूखन सहचर इत्रः। पा ३।२।१८४) १ मृगचर्म-रचित व्यजन, हरिणके चमड़ेका बना हुआ एक प्रकारका पंखा। (त्रि०) २ अपनयनकारक, हटानेवाला, दूर करनेवाला।

धस (हिं० पु०) १ जल आदिमें प्रवेश, डुबकी, गोता। २ भुरभुरी जमीन।

धसक (हिं० स्त्री०) १ ठन-ठन शब्द जो सूखी खांसीमें गलेसे निकलता है। २ सूखी खाँसी, ठसक। ३ ईर्ष्या, डाह, जलन।

धसकना (हिं० क्रि०) १ नीचेको धँस जाना, दब जाना, बैठ जाना। २ ईर्ष्या करना, डाह करना।

धसका (हिं० पु०) फेफड़ोंमें होनेवाला चौपायोंका एक रोग। यह रोग धूतसे फैलता है।

धसनि (हिं० स्त्री०) धँसनि देखो।

धसमसाना (हिं० क्रि०) धरतीमें समाना, धँस जाना।

धसान (हिं० स्त्री०) १ धँसान देखो। २ एक छोटी नदी। यह पूर्वी मालवा और बुँदेलखण्डसे हो कर बहती है। पूर्वी मालवा प्राचीन कालमें दशार्ण देश कहलाता था और यह नदी भी उसी नामसे प्रसिद्ध थी।

धसाना (हिं० क्रि०) धसान देखो।

धसाव (हिं० पु०) धँसाव देखो।

धांक (हिं० पु०) एक जंगली जाति। इसका आचार व्यवहार भीलोंसे बहुत कुछ मिलता जुलता है।

धांगड़ (हिं० पु०) १ अनार्य जङ्गली जाति। ये विंध्य और कैमोर पहाड़ियों पर रहते हैं। २ कूएँ और तालाब खोदनेका काम करनेवाली एक जाति।

धाँगर (हिं० पु०) धाँगड़ देखो।

धाँधना (हिं० क्रि०) १ बन्द करना। २ बहुत अधिक खा लेना। ठूसना।

धाँधल (हिं० स्त्री०) १ ऊधम, उपद्रव, नटखटी। २ धोखा, दगा, फरेब। ३ बहुत अधीक जल्दी।

धाँधलपन (हिं० पु०) १ पाजीपन, शरारत। २ धोखेबाजी, दगाबाजी।

धांधा (हिं० स्त्री०) इलायची।

धांधली (हिं० स्त्री०) १ उपद्रवी, शरीर, पाजी, नटखट। २ धोखेबाज, दगाबाज।

धांय (हिं स्त्री०) धायँ देखो।

धांस (हिं० स्त्री०) सूखे तम्बाकू या मिर्च आदिकी तेज गन्ध। इससे खाँसी आने लगती है।

धाँसना (हिं० क्रि) पशुओंका खाँसना।

धाँसी (हिं० स्त्री०) घोड़ेकी खाँसी।

धा (सं० पु०) १ ब्रह्मा। २ बृहस्पति। (त्रि) ३ धारक, धारण करनेवाला।

धा (हिं० पु०) १ सङ्गीतमें धैवत शब्द या स्वरका संकेत। २ तबलेका एक बोल।

धाइ (हिं० पु०) धवका पेड़।

धाई (हिं० स्त्री०) धाय देखो।

धाउ (हिं पु) नाचका एक भेद।

धाक (सं० पु०) दधातीति धा-क। (कृदाधारार्च्चि कलिभ्यः क। उण् ३।४०) १ वृष, बैल। २ आहार, भोजन। ३ अन्न, अनाज। ४ स्तम्भ, खंभा। ५ आधार।

धाक (हिं० स्त्री०) १ आतङ्क, रोब, दबदबा। २ प्रसिद्ध, शोहरत, शोर। ३ ढाक, पलास।

धाकार (हिं० पु०) १ कान्यकुब्ज और सरयूपारी ब्राह्मणोंमें वह ब्राह्मण जो प्रसिद्ध कुलोंके अन्तर्गत न हो और इससे नीचा समझा जाता हो। २ राजपूतोंकी एक जाति। ये लोग आगरेके आस पास पाये जाते हैं। ३ बिना पानीका पैदा होनेवाला पंजाबका एक धान।

धाड़ (हिं० स्त्री०) १ डाकुओंका आक्रमण। २ झुण्ड, जत्था, गरोह।

धाड़ना (हिं० क्रि०) दहाड़ना देखो।

धाड़स (हिं० स्त्री०) ढाड़स देखो।

धाड़ी (हिं० स्त्री०) भारी लुटेरा या डाकू।

धाणक (सं० पु०) दधातीति धा-आणक (आणको लधू शिङ्घि धाञ्भ्यः। उण् ३।८३) १ प्राचीनकालका एक प्रकारका परिमाण। २ एक अनार्य छोटी जाति।

धातक (सं० पु०) धातुं करोति णिच् टिलोपः ण्वुल्। पुष्करद्वीपाधिपति वीतिहोत्रके एक पुत्रका नाम।

धातकी (सं० स्त्री०) धातक पिप्पल्यादित्वात् ङीष्। पुष्प-विशेष, धवका फूल। संस्कृत पर्याय—वह्निपुष्पी, ताम्रपुष्पी, धानी, अग्निज्वाला, सुभिक्षा, पार्वती, बहुपुष्पिका, कुमुदा, सीधुपुष्पी, कुञ्जरा, मद्यवासिनी, गुच्छपुष्पी, संघपुष्पी, धीअपुष्पिका, तीव्रज्वाला, वह्निशिखा, मद्यपुष्पा, धातुपुष्पी धातुपुष्पिका, धात्री, धातुपुष्पिका। (शब्दर०)

यह वृक्ष भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है। यथा—हिन्दी—दोधाई, धोधाई, गाव्वा, धोला, धोरा, धाय, धाव। बङ्गला—धाइ, धांइ, धाव, धादकी, धान, धाउरा। कोल—इचा, धोयि। सन्थाल—इचाक। नेपाल-दाहिरो, लालदाहरी, धागेराकाव। लेपचा—सुङ्कियेक-न्यूम। उड़िया—धातिकी, हारयारी। भूमिज—दादकी। कुर्कु—खिखि, धि। मध्यप्रदेश—धुवि, सुरतारि, धाइति, धोवरा। अयोध्या-धेवती। कमायुन-धारला, धाय, धवरा। काङ्गरा धाय, गुलदोर। गोंड़-पितिया, पेतिसुराखि। भील धान्ति। काश्मीर—थाय, थोधाई। पञ्जाब-धास, धोर, धा, सुर्द, धाहाई, धाधाई, तो। (फूलका नाम) गुल धाधाई, गुलबहार। पुस्त (अफगान)—दातकी। सिन्धु-धाय। बम्बई—धौरो, इयाति, धावरी, धावसी। मन्द्राज—पुलसत्ति, धाजातिचि। गुजरात—धवदोना। तैलगु—जारगी, वेरिञ्जि, गहारसिका, गाजी, गोदारि, धातकी। अङ्गरेजी-Woodfordia floribunda, एतद्भिन्न Wood-fordia Tomentosa, Woodfordia bruticosa, Grislea tomentosa, Grislea Punctata, Lythrum Fruticosam नामसे भी यह अङ्गरेजी उद्भिज्जशास्त्रमें अभिहित होता है।

इसका पेड़ छोटा होता तथा काँटेदार शाखाएँ होती हैं। इसमें ग्रीष्मकालमें बैंगनी रंगके अनेक फूल लगते हैं। यह हिमालय पर्वत पर ५ हजार फुट ऊंचे स्थानसे लेकर ग्रीमके निर्जल वनके मध्य सारे भारतवर्षमें मिलता है।

गोंद—मि० बलफरका कहना है, कि राजपूतानेके मध्य मेवार और हारावतीमें धायके फूलसे गोंद निकाला जाता है जो उस देशमें "धौका गोंद" नामसे प्रसिद्ध है। यह जलसे हलका होता है। कपड़ा रंगानेके समय जिस अंशमें रंग नहीं देना होगा, उस अंशमें यही गोंद लगा देते हैं। यह १० रु० मन बिकता है।

रंग—इसके फूलसे एक प्रकारका सफेद रंग बनता है। आल रंग तैयार करते समय यह फूल अपनाल

होता है। पौषसे चैत्रमास तक झाड़ियोंमें फूल लगते हैं। इस समय कलीको तोड़ कर सुखा रखते हैं। कहीं कहीं तो शरत्कालमें इसकी पत्तियां भी तोड़ कर रखी जाती हैं। पत्तियां वा फल संग्रहमें शारीरिक परिश्रमके सिवा और कुछ भी अर्थव्यय नहीं होता। पर पीछे रंग बना कर खासा लाभ उठाते हैं।

औषध—शुष्क फूल वैद्यकके मतसे उत्तेजक और सङ्कोचक है। रक्तस्राव और उदरामयादिमें कविराज लोग इसे काममें लाते हैं। २ ड्राम फूलके चूर्णको दधिके साथ सेवन करनेसे आमाशय और मधुके साथ सेवन करनेसे रक्तसाधिक्य बंद हो जाता है। घावके ऊपर सूखा चूर छिड़क देनेसे वह आराम हो जाता है। कोङ्कण प्रदेशमें जब पित्तकी अधिकता रहती है, तब रोगीका मुखगह्वर तिलतैलसे भर कर शिर पर धायकी पत्तियोंका रस घिसते हैं। इससे पित्त कट कर मुख मध्यस्थ तेलमें मिल जाता है और तेलका रंग कुछ पीला हो जाता है। इस समय वह तेल फेंक देते और पुनः शुद्ध तेल मुंहमें दे कर शिर पर पत्तियोंका रस घिसते हैं। इसी प्रकार तब तक करते रहना चाहिये, जब तक मुखस्थ तेलमें पित्तसंक्रमण निवारित न हो। उत्तर भारतमें यह सङ्कोचक, उत्तेजक और शीतल गुणविशिष्ट माना गया है। स्त्रियोंको गर्भावस्थामें देने पर भी यह कुछ अनिष्ट नहीं करता। छोटा-नागपुरमें प्रदररोगमें इसके पत्तोंको उबाल कर जलपान कराते हैं।

वैद्यकके मतसे इसका गुण—कटु, उष्ण, मदकारी, विषदोष, अतीसार, विसर्प, व्रण और रक्तपित्तनाशक है।

खाद्य—मध्यप्रदेशमें लोग इसका फल खाते हैं। बङ्गालमें इसके पत्तोंको भिगो कर शरबत तैयार करते हैं। काङ्गरामें इसकी झाड़ियोंका कोई कोई अंश शराब बनानेमें व्यवहृत होता है। इसकी लकड़ी भारी होती और जलावनके काममें आती है।

धातकीकुसुम (सं॰ क्ली॰) धातकी पुष्प, धवका फूल।

धातकीभिषुत (सं॰ क्ली॰) धातकी पुष्पकृत सुराभेद एक प्रकारकी शराब जो धवके फूलोंसे बनाई जाती है।

धातक्यादिलेह (सं॰ पु॰) बालरोगाधिकारोक्त लेहभेद। धातकी, बिल्व, धनिया, लोध्र, इन्द्रयव और वाला इन सबको चूर्ण कर मधुके साथ लेहन करनेसे छोटे छोटे बच्चोंका ज्वर और अतीसार विनष्ट होता है।

धाता (सं॰ पु॰) विधाता, ब्रह्मा।

धाता (हिं॰ पु॰) धातृ देखो।

धातु (सं॰ पु॰) धीयते सर्वमस्मिन्निति वा धा-तुन् (सितनिगमीति। उण् १।७०) १ परमात्मा। २ शरीरधारक वस्तु, शरीरको धारण करनेवाला द्रव्य; वात पित्त और कफ।

वात, पित्त और कफ ये ही तीनों शरीरको धारण किये हुए हैं, इसीसे इन्हें धातु कहते हैं।

रस, असृक्, अर्थात् रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सात शरीरस्थित धातु हैं। सुश्रुतमें इसका विवरण इस प्रकार मिलता है।—जो कुछ खाया जाता है उसका सार भाग रस होता है अर्थात् उस आहारमें कटु, अम्ल, तिक्त, कषाय, लवण और मधुर ये छः प्रकारके रस दो वा आठ प्रकारके वीर्य तथा अनेक तरहके गुण रहते हैं। अच्छी तरहसे पच जाने पर उससे जो द्रवरूप सूक्ष्म-सार बनता है, वह रस कहलाता है। इसका स्थान हृदय है जहांसे वह रस दश ऊर्द्धगामिनी रसरक्त-वाहिनी धमनियोंके द्वारा सारे शरीरमें फैलता है। पीछे अदृष्टहेतु-क्रिया अर्थात् जिस क्रियाका कारण देखा नहीं जाता उसी क्रियाके द्वारा वह रस धमनियोंमें प्रवेश कर सारे शरीरको हमेशा तर्पण, वर्द्धन, धारण और जीवमान करता है। क्षय, वृद्धि और विकार अर्थात् शरीर क्षीण होता है वृद्धि होती है और व्रणादि रूपका विकार प्राप्त होता है। इन्हीं कारणोंसे सर्वशरीरगामी उस रसकी गति अनुमानसे जानी जाती है। प्राणियोंके शरीरस्थ अव्यापन्न रस अर्थात् जिस रसमें किसी प्रकारका विकृति-भाव नहीं है तेज या पित्तके कार्यके साथ मिश्रित हो कर लाल रंगका हो जाता है और रक्त कहलाता है। वही रक्त स्त्रियोंके शरीरमें रज नामसे प्रसिद्ध है। अन्यान्य आचार्योंका कहना है कि जो जीवरक्त पाञ्चभौतिक अर्थात् पञ्चभूतसे यह शरीर उत्पन्न होता है, वही जीवके रक्तमें है। मांसगन्ध विशिष्टता, तारल्य, रक्तवर्णत्व, स्पन्द-शीलता और लघुता शोणितके इन गुणोंको ही पञ्चभूत-

का गुण कहते हैं। रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा और मज्जासे शुक्र बनता है। अन्नपान द्वारा जो रस उत्पन्न होता है, वही इन सब धातुओंका पोषणकर्त्ता है। पुरुष अर्थात् देही इसी रससे उत्पन्न होता है। रस धातुकी गति समझा जाता है। यह रसधातु तीन हजार पन्द्रह कला करके एक एक धातुमें रहती है।

इसी तरह वह रस एक महीनेमें शुक्र बन जाता है। स्वतन्त्र और परतन्त्रके रूपसे यह रसधातु अठारह हजार नब्बे (१८०९०) कलाओंमें बाँटी जा सकती है। प्रत्येक धातुमें ३०१५ अंश करके ६ धातुओंमें १८०९० कलाएँ रहती हैं और रसधातु क्रमश: परिपाक हो कर तीस दिन बाद शुक्रधातु होती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि आहारजनित और शरीरमें प्रतिदिन जो रस बनता है, वही रस पांच दिनोंमें परिपाक हो कर छठे दिनमें रक्त धातुमें चला जाता है। और उन पांच दिनोंमें नया रस जमा हो कर परिपाक हुआ करता है। रक्त भी पांच दिनोंमें परिपाक हो कर मांस उत्पन्न करता है। इस तरह क्रमशः तीस दिन बाद अन्न-रससे शुक्रधातु बनती है और वह उसी धातुमें रहता है। धातुके जिस अंशको अन्य धातुमें जाना होता है, वही इसका परतन्त्र अंश है और जो अंश अपनेमें रहता है वह इसका स्वतन्त्र अंश है। इस तरह स्वतन्त्र और परतन्त्रके रूपसे १८०९० अंश रससे ले कर मज्जा तक धातुमें रहते हैं। ये सब धातु रससे उत्पन्न हो कर शरीरको धारण करती हैं, इसी कारण उन्हें धातु कहते हैं। इन सब धातुओंका क्षय और वृद्धि शोणितकी क्षयवृद्धिसे हो जाती जाती है।

पहली धातुकी वृद्धि होनेसे पीछली धातु भी वृद्धि होती हैं, अतएव जिन सब धातुओंकी अत्यन्त वृद्धि होती है, उन्हें ह्रास करनेके लिये प्रतीकार करना कर्त्तव्य है। रससे ले कर शुक्र तक सात धातुओंका जो परम तेजोभाग है उसे ओजः कहते हैं। आयुर्वेदमें इस ओजःधातु को ही बल माना है। शरीरमें ओज: धातुके रहनेसे मांस दृढ़ और पुष्ट होता है, सब कामोंमें उत्साह बना रहता है स्वर और शरीरकी कान्ति चमकती रहती है, बाह्य और अन्तरस्थ इन्द्रियां अच्छी तरह अपना अपना काम करती जाती हैं। शरीरस्थित ओजः सोमगुणविशिष्ट है। यह शरीरमें शुक्लभावसे रहता है और इससे प्राणकी रक्षा होती है। प्राणियोंकी देहके सब अवयवोंमें यह व्याप्त रहता है। इसके नहीं रहनेसे शरीर शीर्ण हो जाता है। सब धातुओंसे जो सार निकलता है वही ओज: है। मानसिक और शारीरिक क्लेश, क्रोध, शोक, एकाग्रचिन्ता और श्रम प्रभृति द्वारा ओज: धातुका क्षय होता है। ओज: क्षय हो जानेसे प्राणियोंके तेज भी क्षय हो जाते हैं तथा सन्धिस्थानकी शिथिलता, शरीरकी अवसन्नता, वात, पित्त और श्लेष्माका प्रकोप तथा क्रियाका निरोध, शरीरकी स्तब्धता, भार, वायुसे उत्पन्न शोथ, वर्णकी मूढ़ता, ग्लानि, तन्द्रा और निद्रा ये सब लक्षण देखे जाते हैं।

बलके तीन प्रकारके दोष हैं—व्यापत्, विस्रंसा और क्षय। बलकी विस्रंसा होनेसे शरीरकी शिथिलता, अवसन्नता, श्रान्ति, वायु पित्त और कफकी विकृति एवं इन्द्रियका कार्य स्वभावत: जिस प्रमाणसे होना चाहिये उस प्रमाणसे नहीं होना आदि लक्षण पाये जाते हैं। बलका व्यापन्न होनेसे शरीरका भार, स्तब्धता और ग्लानि, शारीरिक वर्णकी विभिन्नता, तन्द्रा, निद्रा एवं वायु जन्य शोथ उत्पन्न होता है। बलके क्षय होनेसे मूर्च्छा, मांसक्षय, मोह, प्रलाप और अज्ञानता आदि लक्षण तथा पूर्वोक्त सब लक्षण देखे जाते हैं, यहां तक कि इसमें मृत्यु भी हो जा सकती है।

सब धातुओंके भीतर जो स्नेह घृत और तैलादिकी तरह पिच्छिल पदार्थ रहता है, धातुके परिपाकके समय उन सब स्नेह पदार्थोंसे शरीरके तेजःस्वरूप वसा नामक धातु बनती है। इससे शरीरकी कोमलता, सौन्दर्य, उत्साह, दृष्टि, स्थिति, परिपाकशक्ति, कान्ति और दीप्ति उत्पन्न होती है तथा शरीर कोमल और रोम छोटे होते हैं। कषाय, तिक्त, शीतल, रुक्ष अथवा मलमूत्ररोधक पदार्थ सेवन करनेसे अथवा स्त्रीप्रसंग, व्यायाम वा व्याधिसे क्षय होने पर यह वसा धातु विकृत होती है। वसा धातुके विकृत वा सुप्त होनेसे त्वक्‌का पारुष्य, वर्णकी विभिन्नता, गात्रवेदना अथवा शरीर प्रभाशून्य हो जाता है। इसके व्यापन्न होनेसे शरीरकी कृशता, अग्नि-

मांस, शरीरसे वा अग्निसे धातुक्षरण होता है और क्षय होनेसे दृष्टि, अग्नि वा बलकी हानि, वायुका प्रकोप अथवा मृत्यु होती है। वसा धातुके विकृति होने पर पूर्वोक्त तीन अवस्थाओंमें ही स्नेहपान और उससे शरीरमें मर्दन, लेपन वा परिसेचन एवं स्निग्ध और लघु द्रव्य भोजन करना चाहिये। यदि धातु क्षय हो जाय तो जिस तरह हो सके भोजन करके ही उसे पूरा कर लेना चाहिये क्योंकि शरीरमें अक्षरस सञ्चारित हो कर सब धातु समान हो जाती हैं। शरीरकी सब धातु समान होनेसे शरीर स्थूल वा कृश न हो कर मध्यभावमें रहता है, सब काम आसानीसे करता है, क्षुधा, पिपासा, शीत, ग्रीष्म, वर्षा और रौद्र सह्य कर सकता है तथा बलवान् दीख पड़ता है। स्थूल और कृश यही दो प्रकारके शरीर निन्दनीय हैं। मध्यम शरीर ही सबसे श्रेष्ठ है। सब धातुके बराबर रहनेसे ही शरीर मध्यम होता है। विशेष विवरण तत्तद् शब्दमें देखो। २ शब्दका मूल, क्रिया-वाचक। "धातुर्नाम क्रियावाचको गणादिपठितः शब्दविशेषः।" (शब्दार्थरत्न) क्रियावाचक गणादि पठित शब्दविशेषका नाम धातु है, क्रियाकी वाचक प्रकृतिका धातु है। जितने शब्द देखे जाते हैं वे धातुसे ही बने हैं, इसीसे धातुको शब्दयोनि कहते हैं। धातुके बादमें दश विभक्तियां होती हैं।

विभक्तिकी संख्या	पाणिनिके मतसे नाम	मुग्धबोधके मतसे नाम	अर्थ	किस कालका बोधक
१	लट्	की	वर्त्तमान	वर्त्तमान
२	लोट्	गी	अनुज्ञा	
३	विधिलिङ्	यो	विधि	
४	आशीर्लिङ्	टो	आशीर्वाद	
५	लृट्	ती	अनद्यतन भविष्यत्	भविष्यत् बोधक
६	लुट्	डो	अद्यतन भविष्यत्	
७	लृङ्	घी	धात्वर्थकी अनिष्पत्ति	
८	लिट्	ठी		
९	लुङ्	टी	परोक्ष अतीत	अतीत बोधक
			ह्यस्तन अतीत	
१०	लङ्	घी	अद्यतन अतीत	

इन दशोंके सिवा वेदमें लेट् नामक एक और विभक्तिका व्यवहार है। ये सब विभक्तियां परस्मैपद और आत्मनेपद इन दो भागोंमें विभक्त हैं। प्रत्येक विभक्तिमें इन दो भागोंमें नौ नौ करके अठारह रूप होते हैं। ये नौ प्रथम, मध्यम और उत्तमपुरुषके एकवचन, द्विवचन और बहुवचन ले कर बने हैं। एक एक धातुको सब विभक्तियोंमें १८० रूप होते हैं। इनमेंसे अनेक केवल आत्मनेपदी हैं। कुछ परस्मैपदी और कुछ उभयपदी भी हैं। यद्यपि हिन्दी व्याकरणमें धातुओंकी कल्पना नहीं की गई है, पर की जा सकती है, जैसे करनाका 'कर', हंसनाका 'हंस' इत्यादि। ४ बुध या किसी महात्माकी अस्थि आदि जिसे बौद्धलोग डिब्बेमें बन्द करके स्थापित करते थे। ५ शुक्र, वीर्य। ६ तत्त्व, भूत। पञ्चभूतों और पञ्चतन्मात्रको भी धातु कहते हैं। बौद्धोंमें अठारह धातु हैं—घ्राणधातु, चक्षुधातु, श्रोत्रधातु, जिह्वाधातु, कायधातु, रूपधातु, शब्दधातु, गन्ध धातु, रस धातु, स्प्रष्टव्यधातु, चक्षुविज्ञानधातु, श्रोत्रविज्ञानधातु, घ्राणविज्ञानधातु, जिह्वाविज्ञानधातु, कायविज्ञानधातु, मनोधातु, धर्मधातु और मनोविज्ञानधातु।

धातु—प्राचीन कालमें आकरिक पदार्थ मात्रको ही धातु कहते थे। अंगरेजीमें Mineral कहनेसे सचराचर जो समझा जाता है धातु कहनेसे भी अनुमान करते हैं कि इसी प्रकार "अश्म-विकृति" समझा जाता था।

"सुवर्ण-रूप्य-माणिक्य-हरिताल-मनःशिलाः।
गैरिकांजन-कासीस-सीस-लोहाः सहिंगुलाः।
गन्धकोऽभ्रकमित्याद्या धातवो गिरिसम्भवाः॥"

इत्यादि वचनोंसे ऐसा ही ज्ञात होता है। क्रमशः धातु शब्दका अर्थ संकीर्ण होता आया है और कितने विशेष धर्मविशिष्ट खनिज द्रव्य उसी नामसे पुकारा जाता है। धातुकी संख्या कभी तो ७ कभी ८ और कभी ९ निर्दिष्ट होती थी। स्वर्ण, रौप्य, ताम्र, रंग, यशद

(जस्ता), सीस, तथा लौह ये ही सात धातु हैं। पारद ले कर आठ होती हैं। कांसा और पीतलको उसमें मिलानेसे नौ होती हैं। कांसा और पीतल अन्यान्य धातुके मेलसे उत्पन्न होता है, यदि इसका निर्णय किया जाय, तो धातुकी तालिकासे उनके नाम हटा कर उपधातु नामक एक दूसरी श्रेणीके पदार्थमें उन्हें रख सकते हैं। उपधातु कहनेसे कांसा, पीतलादिके जैसे मिश्रधातुका बोध होता है, अंगरेजीमें इसे Alloy कहते हैं।

धातुके व्यवहारके साथ मानवजातिकी सभ्यताका सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ट है। अति प्राचीनकालमें मनुष्य धातुका व्यवहार नहीं जानते थे। इसका कारण यह था, कि अधिकांश धातु ही विशुद्ध व्यवहारोपयोगी अवस्थामें नहीं मिलती थी। उन्हें विशेष परिश्रम और विशेष प्रक्रिया द्वारा आकरिक पदार्थसे निकाल कर शोधन किये जाने बादसे काममें लाई जाती हैं। धातुका व्यवहार प्रचलित होनेके पहले शिलाखण्डका व्यवहार प्रचलित था। शिलाखण्डको अच्छी तरह घिस कर उससे अस्त्रादि बनाये जाते थे। क्रमशः ब्रञ्जादि उपधातु आविष्कृत हुई। बाद लोहे और अन्यान्य धातुओंका आविष्कार हो गया।

लोहेके आविष्कारके बादसे मनुष्य-जातिकी सभ्यताकी यथेष्ट उन्नति हुई है। लोहा भिन्न भिन्न कार्योंमें व्यवहृत होता है तथा यह बहुतायतसे मिलता भी है, इस कारण अन्यान्य धातुकी अपेक्षा इसका मूल्य भी कम है। फिलहाल जितनी धातु हैं, सभीमें लोहा ही प्रधान है। किन्तु यह प्रधानतः चिरकाल तक रहेगी, सो कह नहीं सकते। Aluminium नामकी धातु, ऐसा ज्ञात होता है, कि लोहेसे भी अधिक कामोंमें लग सकती है। पृथ्वीमें लोहेकी अपेक्षा भी प्रचुर परिमाणमें यह धातु वर्त्तमान है। किन्तु वर्त्तमान कालमें इस धातुका विशुद्ध आकारमें निकालना कष्टसाध्य है। यही कारण है कि आज भी इसका मूल्य लोहेसे कहीं ज्यादा है।

उल्लिखित आठ विशुद्ध धातुओंमें कौन कब आविष्कृत हुई थी, इसका निरूपण करना कठिन है।

सभी धातु सभी प्रदेशोंमें नहीं मिलती। सम्भवतः कोई धातु तो किसी प्रदेशमें और कोई अन्य प्रदेशमें आविष्कृत हुई होगी। इसके लिए एक उदाहरण काफी है। अष्टधातुओंमें तांबा बहुत दिनोंसे प्रचलित है और पीतलका भी आविष्कार प्राचीन कालमें हो हुआ था। तांबेके साथ पीतलका कुछ सम्बन्ध है, प्राचीन ग्रीक लोग भी इसे जानते थे। किन्तु पीतल एक उपधातु मात्र है, इसमें तांबा और एक स्वतन्त्र धातु जस्ता वर्त्तमान है जो अपेक्षाकृत आधुनिक कालका आविष्कार है। युरोपीय रासायनिकोंमें बेसिल वालेन्टाइनके ग्रन्थमें जस्तेका प्रथम उल्लेख देखा जाता है। पीछे पारा मेलससने जस्तेका नाम धातुकी तालिकामें रखा। कोई कोई कहते हैं कि प्राचीन कालको भारतवर्षमें जस्तेका व्यवहार प्रचलित नहीं था। पोर्त्तुगीज लोग इस धातुको पहले पहल भारतवर्षमें लाये, पीछे वह वैद्यकशास्त्रमें लाई गई।

प्राचीन कालमें परिचित धातु पदार्थोंने अपने गुरुत्व, औज्ज्वल्य, घातसहत्व आदि विशिष्ट धर्म द्वारा पण्डितोंको आश्चर्यान्वित कर दिया था। इन सब विशिष्ट धर्मके प्रभावसे वे सब पदार्थ मनुष्यजातिका विशेष विशेष प्रयोजन साधन करते थे। विभिन्न धातुओंसे उत्पन्न पदार्थ, जब मनुष्योंको अशेष फल देने लगे, तब वैद्यक शास्त्रमें भी उनका व्यवहार होने लगा था। पण्डित लोग विविध काल्पनिक धर्म और काल्पनिक सम्पर्क धातुओंके ऊपर आरोप करते थे। यूरोपके विद्वान् लोग एक समय सात विशुद्ध धातु और सात ग्रहका हाल जानते थे। एक एक ग्रहके साथ एक एक धातुका सम्बन्ध स्थापित हुआ था। ग्रहपति सूर्यके साथ धातुपति सुवर्णका कोमल कान्ति चन्द्रके साथ रौप्यका, ताम्रवर्ण मङ्गलके साथ ताम्रका, चञ्चल प्रकृति देवदूत बुधके साथ पारदका सम्बन्ध था, इत्यादि।

"हरितालं हरेर्वीर्यं लक्ष्मीवीर्यं मनःशिला।
पारदं शिववीर्यंस्यात् गन्धकं पार्वतीरजः॥"

इत्यादि वाक्यमें भी इस प्रकार काल्पनिक सम्बन्धारोपकी चेष्टा देखी जाती है। विष्णुने किसी असुरका वध किया। उसके मांससे ताम्र, शोणितसे स्वर्ण, अस्थिसे रौप्य उत्पन्न हुआ, इत्यादि नाना प्रकारके उपाख्यान पुराणादि ग्रन्थोंमें लिखे हैं। आज भी बहुतसे ऐसे

तान्त्रिक-मतावलम्बी और संन्यासि-सम्प्रदाययुक्त मनुष्य हैं जो इसी प्रकारके उपाख्यानादिकी सहायतासे जनता की कल्पनावृत्तिको चालित करते हैं।

आयुर्वेद-शास्त्रमें धातुघटित औषधका व्यवहार बहुत प्राचीन कालसे चला आ रहा है। विशुद्ध धातुके जीर्ण होनेसे वह शरीरमें प्रवेश नहीं कर सकती, इसीसे धातुको साधारणतः भस्म कर लेते अथवा जारण-मारणादि प्रक्रिया द्वारा रूपान्तरित करते हैं। ताम्र, सीस और पारदसे उत्पन्न पदार्थ साधारणतः मनुष्यके शरीरमें विष का काम करता है। उपयुक्त मात्रामें इसका व्यवहार करनेसे अनेक प्रकारके रोग दब जाते हैं।

उल्लिखित आठ विशुद्ध धातुओंके सिवा आण्टिमनि, विसमथ, आर्सेनिक आदि अनेक धातु अपेक्षाकृत आधुनिक कालमें आविष्कृत हुई हैं। वर्त्तमान शताब्दीके प्रारम्भमें परिचित विशुद्ध धातुकी संख्या ग्यारह बारहसे अधिक न थी। उस समय विख्यात सर हम्फ्री डेवीने ताड़ित-प्रवाहकी सहायतासे नूतन-प्रणालीका अवलम्बन करते हुए नाना प्रकारके क्षार पदार्थोंसे बहुतसी नई धातुओंका आविष्कार किया।

पीछे इस प्रणालीके तथा अन्यान्य प्रणालीके अवलम्बन पर बहुतसी नवीन धातुओंका आविष्कार हुआ है। सौ वर्ष पहले बुनसेन और किर्कफ (Bunsen and Kirchhoff)-ने आलोकके विश्लेषण द्वारा नूतन धातु-पदार्थके आविष्कारका उपाय निकाला। बाद गत कई वर्षोंके मध्य बहुतसी नवीन धातु इस अद्भुत उपायसे आविष्कृत हुई हैं। यह शेषोक्त प्रणालीकी असाधारण क्षमता है। प्रायः पचास वर्ष पहले सर नर्मान लकियरने सूर्यके आलोककी परीक्षा करके सूर्यमें एक नूतन धातुका अस्तित्व आविष्कार किया और सूर्यके ग्रीक नामानुसार उनका हिलियम् (Helium) नाम पड़ा। उस समय पृथिवीमें उस धातुका अस्तित्व है, ऐसा कोई नहीं जानता था। थोड़े ही दिन हुए हैं, कि उसका पार्थिव अस्तित्व आविष्कृत हुआ है। फिलहाल परिचित मूलपदार्थकी संख्या प्रायः सत्तर है। जिनमेंसे पन्द्रह छोड़ कर शेषकी गिनती धातुमें की गई है।

श्रेणी विभाग—मूल पदार्थोंको दो साधारण श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं। इन दो श्रेणियोंके अंगरेजी नाम metal और non-metal or metalloid हैं। प्रथम श्रेणीको हमलोग धातु और दूसरीको अपधातु कहेंगे। अपधातुकी संख्या कुल पन्द्रह है। आर्सेनिक और हाइड्रोजनको यदि धातुमें ले लें, तो अपधातुकी संख्या कुल तेरह रह जाती है। नीचेकी तालिकामें धातुओंके नाम और पारमाणविक गुरुत्व atomic weight दिये गये हैं। इस तालिकाभुक्त धातुके सिवा पृथ्वी वा अन्य ज्योतिष्कमें और भी धातु विद्यमान हो सकती हैं।

तालिकामें दी हुई धातुओंके नामकरणके विषयमें एक बात बतला देना आवश्यक है। स्वर्णादि कतिपय धातुओंके देशीय संस्कृत नाम प्रचलित हैं। नवाविष्कृत धातुओंके अंगरेजी वा लाटिन नामका अनुवाद हिन्दीमें नहीं हो सका, अतः ये देशिक नाम ही अक्षरान्तरित करके लिखे गये हैं।

लाटिन नामके अन्तमें um वा ium की जगह हम ने साधारणतः 'क' का व्यवहार किया है।

१। (क) लिथक (Lithium) ७
सर्जक (Sodium, natrum) २३
पटाशक (Potassium, kalium) ३९
रुबिदक (Rubidium) ८५
कीशक (Caesium) १३३
(ख) ताम्र (Copper, cuprum) ६३
रौप्य (Silver, argentum) १०८
२। स्वर्ण (Gold, aurum) १९७
(क) बेरिलक (Beryllium) ९
मग्नीशक (Magnesium) २४
कालक (Calcium) ४०
स्त्रंशक (Strontium) ८७·६
बेरक (Barium) १३७
(ख) यशद, जस्ता (Zincum) ६५
कदमक (Cadmium) ११२
पारद (Mercury, hydrargyrum) २००
३। (क) स्कान्दक (Scandium) ४४
इत्रिक (Wttrium) ८९·६
लान्थनक (Lanthanum) १३८·५

इत्तर्बिक (Ytterbium)	१७३
थोरक (Thorium)	२३२
(ख) अलुमीनक (Aluminium)	२७
गलक (Gallium)	७०
इन्दुक (Indium)	११३
थलक (Thallium)	२०३'७
४। (क) तितानक (Titanium)	४८
शिर्कनक (Zirconium)	८'४
सीरक (Cerium)	१४१'२
(ख) जर्मनक (Germanium)	७२
रङ्ग (Stannum, tin)	११८
सीसक (Lead, plumbum)	२०७
५। (क) वनदक (Vanadium)	५१'१
नवक (Niobium)	८३'७
(ख) आर्सेनिक (Arsenicum)	५७
आन्तिमनि (Stibium, antimony)	१२०
विसमथ (Bismuth)	२'७५
६। क्रोमक (Chromium)	५२
मोलिदक (Molybdenum)	८६
तुङ्गस्तक (Tungsten)	१८४
वरुणक (Vranium)	२३८'८
७। मङ्गनक (Manganese)	५५
८। (क) लौह (Ferrum, Iron)	५६
कोबाल्ट (Colalt)	५८
निकेल (Nickel)	५८
(ख) रुथेनक (Ruthenium)	१३'५
रुदक (Rhodium)	१०४
पलदक (Palladium)	१०६
अस्मक (Osmium)	१८१
इरिदक (Iridium)	१८२'५
प्लातिनक (Platium)	१८५
(ग) हेलिक (Helium)	४ (?)

क्षार, भस्म, लवण।—वैद्यक शास्त्रमें तथा और दूसरे ग्रन्थोंमें इन नामोंसे प्रसिद्ध अनेक पदार्थोंके नाम पाये जाते हैं। धातुके साथ उनका सम्बन्ध-विचार आवश्यक है। काठ, पत्ते आदिको सम्पूर्ण रूपसे जला डालनेसे जो अवशिष्ट बच जाता है, उसे बोलचालमें भस्म या राख कहते हैं। ये सब भस्म प्रायः क्षारगुण-युक्त है। विशेष उद्भिज्ज भस्ममें क्षारगुण अधिक मात्रामें देखा जाता है। आयुर्वेदमें विविध धातुको भस्ममें परिणत करनेकी प्रणाली वर्णित है। हमलोगोंके खाद्य लवणके सिवा सोरा, सज्जीमट्टी आदिको भी लवण बतलाया है। फलतः आयुर्वेद-शास्त्रोक्त क्षार, भस्म और लवण इन तीन शब्दोंका पारिभाषिक अर्थ निकालना दुरूह है। अनेक समय एक ही पदार्थ तीन नामोंसे ही पुकारा जाता है।

लौह, सीस, ताम्र आदि द्रव्य उत्तप्त और द्रव अवस्थामें वायुस्थित अम्लजन (oxygen) के साथ मिलनेसे विकृत हो जाते हैं। इस विकारके परिणामसे जो पदार्थ उत्पन्न होता है, उसका साधारण वैज्ञानिक नाम oxide है। संस्कृतमें इसे भस्म और अङ्गरेजीमें Calx कहते थे।

धातु पदार्थका इसी प्रकार भस्मीकरण अम्लजन वायुके योगसे कम हो जाता है। रसायणशास्त्रके प्रतिष्ठाता फरासी लाभोयसिर (Lavoisier)ने सबसे पहले इस तथ्यका आविष्कार किया। वैद्यशास्त्र वा प्रचलित भाषामें जिन्हें भस्म कहते हैं, वे सभी Oxide नहीं हैं। आधुनिक रसायन-शास्त्रमें उनमेंसे बहुतोंकी गिनती लवणमें करनी चाहिये।

आधुनिक रसायनमें क्षार (base) और (salt) ये दो शब्दनिर्दिष्ट सङ्कीर्ण पारिभाषिक अर्थमें प्रयुक्त होता है। अम्ल नामक एक और श्रेणीके पदार्थका रसायनशास्त्रमें उल्लेख है। एक उदाहरण देनेसे समझमें आ जायगा। चूना एक क्षार पदार्थ है और नीबूका रस एक अम्ल पदार्थ है। वे बहुत कुछ विपरीत धर्माक्रान्त हैं। दोनोंका पृथक् पृथक् आस्वादन है। कागजको जवापुष्पके रससे भिगोनेसे वह नीला हो जाता है और उसमें यदि एक बुन्द नीबूका रस डाल दिया जाय, तो वह नीला रंग लाल रंगमें पलट जाता है। फिर उसमें चूनेका पानी देनेसे वह लाल रंग पुनः नीला हो जाता है। क्षार और अम्ल बहुत कुछ विपरीत और विरुद्ध धर्मयुक्त है। अम्ल पदार्थमें क्षार मिलानेसे अम्लका अम्लत्व और

औरका आंशत्व जाता रहता है। दोनों द्रव्यके मिलनेसे जो न तो क्षार और न अम्ल नूतन द्रव्य उत्पन्न होता है, उसीका पारिभाषिक नाम 'लवण' है।

सीडा, पटाश आदि पदार्थ चूनेसे भी अधिक तीव्र क्षारधर्मयुक्त है। गन्धक द्रावक (Sulphuric acid), महाद्रावक वा यवद्रावक (Nitric acid) आदि तीव्र अम्लधर्माक्रान्त हैं। लेकिन एक दूसरेका धर्म नष्ट करता है। यव द्रावक (Nitric acid) पटाशमें मिलानेसे सोरा (Nitre) तैयार होता है। सुतरां सोरा एक लवण मात्र है।

साधारण नियम यह है। धातु द्रव्य अम्लजनके योगसे दग्ध हो कर जो (Oxide) पदार्थ बनते हैं, उनका साधारण नाम क्षार है। गन्धक, प्रस्फुरक (Phosphorus) अङ्गार आदि अपधातु अम्लजनके योगसे जिस पदार्थमें परिणत हो जाते हैं, उनका साधारण नाम अम्ल है। क्षार और अम्ल दोनोंके योगसे जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उनका साधारण नाम लवण (Salt है)।

ताम्रचूर्णको वायुमें उत्तप्त करनेसे वह जिस भस्ममें परिणत हो जाता है, वह इसी परिभाषाके अनुसार क्षार है। उसका अंगरेजी नाम है Cupric oxide। उसमें थोड़ा गन्धकद्रावक डालनेसे द्रावकका तीव्र अम्ल गुण नष्ट हो जायगा। परिणाममें जो पदार्थ होगा, वह तूतिया वा नीलाञ्जन (Cupric sulphate वा Blue vitriol) नामसे प्रसिद्ध होगा। सुतरां अवलम्बित परिभाषाके मतसे तूतियाकी गिनती लवणमें की जायगी। कुछ तूतियाको जलमें गला कर यदि उसमें लौहखण्ड डाल दिया जाय, तो उस लोहेके ऊपर तांबा जम जाता है। लोहा धीरे धीरे गायब हो जाता है और पीछे तांबेका स्थान ग्रहण कर वह गन्धकद्रावकके साथ मिल जाता और एक दूसरे लवणको उत्पादन करता है। यह लवण हीराकस (कसीस Green vitriol, ferrous Sulphate) से अभिन्न है।

तूतिया, हीराकस आदि जिस अर्थमें लवण है, उस अर्थमें और भी अगण्य पदार्थोंको लवण श्रेणीमें रख सकते हैं। अम्लजनके योगमें उत्पन्न oxide मात्रको यदि भस्म कहें, तो साधारणतः धातुज भस्मको क्षार और अपधातुज भस्मको अम्ल तथा लवण मात्रके एक अंशको क्षार और दूसरे अंशको अम्ल कह सकते हैं। इस अर्थमें भस्म मात्र देखनेमें राखके जैसा न लगेगा। यहां तक कि अनेक वायवीय पदार्थ भस्म कहलायेंगे और ऊपरमें क्षार धर्म तथा अम्ल धर्मका निरूपण करनेके लिये जो आस्वादादि सहज उपाय निर्दिष्ट किया है, वह भी नहीं चलेगा। कोयला जलानेसे जो अदृश्य वायु उत्पन्न होती है, गन्धक जलानेसे जो धुआंके जैसा तीव्र गन्धी पदार्थ उत्पन्न होता है, यहां तक कि कठिन पदार्थ जो बालू है वह भी इस पारिभाषिक अर्थसे भस्ममें गिनी जायगी। वायुमें सीसा गलानेसे उसमें जो मल या भस्म पड़ जाती है, लोहेमें जो मोरचा लग जाता है, उन सबकी भी गिनती क्षारमें होगी। फिर सोरा (Nitre) सर्जिक क्षार (सज्जीमट्टी, Comon washing soda), तूतिया (Blue vitriol), हीराकस (Green vitriol), फिटकरी (Alum), खड़ी, (Chalkt) मार्बल, सफेदा (white-lead), डाक्टरोंका व्यवहृत कष्टिक (lunar caustic); अस्थिभस्म (bone ash) यहां तक, कि मट्टी, कांच, अभ्र, प्रस्तर, साबन आदि नाना प्रकारके द्रव्य लवणश्रेणीमें गिने जांयगे।

फलतः अम्लजनके साथ प्रायः सभी धातुओं और अपधातुओंका रासायनिक मेल लगता है और कालके द्वारा प्रायः सभी पार्थिवधातु और अपधातु वायुस्थित अम्लजनके साथ युक्त हो कर विविध क्षार और विविध अम्ल उत्पादन करती हैं। यह क्षार और अम्ल पदार्थ भी पुनः नाना प्रकारके लावणिक द्रव्योंको उत्पादन कर पृथ्वीके पृष्ठदेशका निर्माण और उसका वैचित्र्य सम्पादन करता है।

अम्लजन छोड़ कर गन्धक, क्लोरिन आदि अपधातुओंके साथ और विविध धातु पदार्थोंके मेलसे नाना प्रकारके यौगिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। फलतः स्वर्ण, प्लाटिनम आदि कितनी धातुओंके सिवा अन्यान्य सभी धातु खानके मध्य दूसरे दूसरे यौगिक पदार्थोंके साथ विजड़ित अवस्थामें रहती हैं। विशुद्ध अवस्थामें वे नहीं पाई जाती। पृथ्वी पर जिन सब खानों या यौगिक पदार्थोंमें धातु रहती हैं, उन्हें विविध उपायसे विश्लेषण द्वारा निकालना पड़ता है।

धातु निकालनेकी विविध प्रणाली।—(१) क्षार, अम्ल वा लावणिक धातव-पदार्थको जलमें या उत्तापसे गला कर उसमें ताड़ितप्रवाहके चलानेसे वह पदार्थ विश्लिष्ट हो जाता है। ताड़ित-प्रवाहोत्पादक बैटरीके दोनों प्रान्तोंसे दो गुच्छा तार ला कर यदि उस द्रव पदार्थमें डुबो रखें, तो एक तारके निमग्न प्रान्तमें विशुद्ध धातु जम जाती है। आज कल गिलटी करनेके लिये यह उपाय हमेशा व्यवहृत हुआ करता है। सर हम्फ्रीडेवीने यही उपाय अवलम्बन करके पटाशक्ष, सर्जक आदि अनेक धातुओंका नूतन आविष्कार किया और उन सब धातुओंको अल्प-परिमाणमें निकालनेके लिये वह प्रणाली आज भी काममें लाई जाती है। सम्प्रति फरासी रसायनवित् म्वाइसाँ (Moissan) ने एक प्रकारकी ताड़ित चुल्लीका (Eletric furnace) निर्माण किया है। उस यन्त्र द्वारा प्रबल ताड़ित-प्रवाह और प्रबल उत्तापके योगसे अलुमीन आदि धातु भी थोड़े ही समयमें अधिक मात्रामें पाई जाती है।

(२) ऊपरमें कह चुका है, कि तूतियाको जलमें गला कर यदि उसमें लोहा डाल दिया जाय, तो लोहेके ऊपर ताँबा जम जाता है और लोहा धीरे धीरे गायब हो जाता है। इसी प्रकार ताम्रज-लवणसे ताम्र निकाला जाता है। लोहेके बदले जिस तरह ताँबा निकलता है, उसी तरह जस्तेके बदले सीसा, ताँबेके बदले रूपा इत्यादि क्रमसे धातुके बदले दूसरी धातु विशुद्ध अवस्थामें निकाली जा सकती है।

स्वर्ण, प्लातिनम आदि कितनी धातु ऐसी हैं जो दूसरे पदार्थके साथ मिली हुई नहीं रहतीं। वे प्रायः विशुद्ध अवस्थामें पाई जाती हैं। पर हाँ, विशेष सावधानीसे उनमेंसे मैली मट्टी हटा कर अलग कर दी जाती है। सोनेकी छोटी छोटी कणा बालू, मट्टी और अन्य द्रव्योंमें छिपी रहती हैं। जलमें धो लेनेसे इसकी मैल दूर हो जाती है और भारी कणिका नीचे बैठ जाती है।

पाराके साथ सुवर्णादिका विशेष सम्बन्ध है। मट्टीमें जो स्वर्णरेणु है उसमें पारा मिलानेसे ही सोना पारेमें सट जाता है। पीछे उत्ताप द्वारा पारेको अलग कर देनेसे विशुद्ध सोना निकल आता है।

(४) लोहा, ताँबा, राँगा, जस्ता आदि धातु सांसारिक कार्योंमें बहुतायतसे व्यवहृत होती हैं, उन्हें खानसे निकालनेकी साधारण प्रणाली यहाँ पर कहते हैं। भिन्न भिन्न धातुओंके लिये आकरिककी अवस्थाभेदसे और प्रादेशिक सुविधाभेदसे इस साधारण प्रणालीका विविध रूपान्तर प्रचलित है। सभी प्रणालियोंमें तीन भिन्न प्रक्रियाओंका बारी बारीसे व्यवहार करना पड़ता है।

प्रथम।—आकरिकको चूर्ण करके पहले वायु द्वारा प्रबल प्रतापके प्रयोगसे जलाना वा झुलसाना पड़ता है। इस प्रक्रियासे गन्धक आदि पदार्थ दग्ध हो वाष्पीभूत हो कर उड़ जाते हैं। धातुके कार्बनेट, नाइट्रेट वा इसी प्रकारकी दूसरी अवस्थामें रहनेसे उसका वाष्पीय भाग उत्तापके योगसे बाहर निकल जाता है। अंगरेजीमें इस प्रक्रियाको Roasting or Calcination कहते हैं।

द्वितीय।—इस बार उस धातुभस्म वा oxide के साथ कोयला (अङ्गार वा पत्थरका कोयला) मिला कर फिरसे उत्तापका प्रयोग करना पड़ता है। कोयला उस भस्मसे अक्सिजनको खींच कर आप वायवीय अवस्थामें उन्नत हो जाता है। विशुद्ध धातु अक्सिजनसे विमुक्त हो कर अवशिष्ट रह जाती है। इस प्रक्रियाका नाम है Reduction or Snelting.

तृतीय।—अम्लजनको दूर करने बाद भी एक धातुके साथ अन्यान्य धातु मिश्रित रह सकती हैं। विभिन्न रासायनिक उपायोंसे इन सब धातुओंको अलग करके फेंक देना पड़ता है। विभिन्न क्षेत्रमें विभिन्न रासायनिक उपाय निर्दिष्ट हैं। कोई साधारण नियम देनेसे काम नहीं चलता। इस प्रक्रियाका नाम Purification है।

इन तीन प्रक्रियाओं द्वारा धातु विशुद्ध और व्यवहारोपयोगी अवस्थामें आ जाती है। विभिन्न धातुके लिये विशेष विशेष नियम तत्तद्विषयक रासायनिक ग्रन्थोंमें लिखा गया है।

धातु-पदार्थका लक्षण।—धातुका विशिष्ट क्या है? धातु और उपधातुका पार्थक्य कौनसा लक्षण देख कर निर्णय कर सकते हैं? इस प्रश्नका उत्तर देना सहज नहीं है। प्राचीन कालमें जितनी धातुएँ प्रचलित

थी', उनके अनेक विशिष्ट धर्म थे। अन्यान्य पदार्थोंमें उन सब विशिष्ट धर्मोंका अभाव था। स्वर्ण, रौप्य, ताम्र, सीस, रङ्ग, लौह, पारद ये सब धातु गुरुभार-विशिष्ट हैं, इनमें उज्ज्वलापन और चमक दमक है, सभी (पारद अवश्य संहत है और कठिन अवस्थामें) घात-सह हैं। उन पर चोट देनेसे पत्तर होता है। बजानेसे भी एक प्रकारका विशेष शब्द निकलता है, इत्यादि धर्म धातुत्वके निर्णायक थे। किन्तु अभी परिमित धातुओं की संख्या इतनी अधिक है और वे इतने विभिन्न तथा विरुद्ध धर्माक्रान्त हैं, कि इस प्रकारके धातु पदार्थके विशेष धर्मका निर्देश करना दुःसाध्य है। पटाशश, सर्जक आदि धातु जलकी अपेक्षा लघु है; आन्तिमनि, विसमथ आदि धातु उतनी घातसह नहीं है। तेलूरक (Telhurium) नामक अपधातु, ग्राफाइट नामक अङ्गार (जिससे पेन्सिल तैयार होती है) ये सब पदार्थ यद्यपि धातु नहीं हैं, तो भी धातुके जैसा उनमें चमक दमक है। यथार्थमें धातु और अपधातु इन दो नामोंको पारिभाषिक संज्ञा देना ही कठिन है। कितने पदार्थ ऐसे हैं, यथा—आर्सेनिक, आन्तिमनि, तेलूरक इत्यादि, जिन्हें थोड़े गुणोंके कारण धातुकी श्रेणीमें और थोड़े गुणोंके कारण अपधातु की श्रेणीमें रख सकते हैं। नीचे कुछ स्थूल धर्मोंका उल्लेख किया जाता है। अधिकांश धातुमें ही ये सब धर्म पाये जाते हैं।

(१) धातुका आपेक्षिक गुरुत्व साधारणतः अपधातु की अपेक्षा अधिक है। जलकी तुलनामें प्लातिनकका गुरुत्व २१, स्वर्णका १८, पारदका १३.५, सीसकका ११ है, इत्यादि। पक्षान्तरमें पटासक, सर्जक, लिथक आदि जलकी अपेक्षा लघु है।

(२) अत्यन्त उष्ण नहीं होने पर धातु पदार्थ न तो द्रवीभूत होता है और न वाष्पीभूत। धातुमें एक पारद सहजमें तरल है और नवाविष्कृत हेलिक वायवीय है। अम्लजनादि अपधातु सहज अवस्थामें वायवीय और ब्रोमिन तरल अवस्थामें रहता है। गन्धक, आयोडीन, आर्सेनिक पदार्थ सहजमें वाष्पीभूत हो जाते हैं। पक्षान्तरमें अङ्गार, शिलिक, बोरक आदि अपधातु सहजमें द्रवीभूत वा वाष्पीभूत नहीं होतीं।

(३) ताप और ताड़ित परिचालनकी क्षमता धातु पदार्थको अत्यन्त अधिक है। अपधातु साधारणतः अपरिचालक है।

अपधातुओंमें ग्राफाइट, अङ्गार, तेलुरक आदिकी परिचालन क्षमता कुछ अधिक है।

(४) घातसहता, तान्तवता आदि बहुतसे धर्म धातु पदार्थमें वर्तमान हैं। इसीसे उन्हें पीट कर और खींच कर तार बनाया जाता है।

अपधातुओंमें जो सहजमें कठिनावस्थामें रहती है। (जैसे अङ्गार, गन्धक इत्यादि) वे साधारणतः भङ्गप्रवण हैं।

(५) धातु पदार्थके पृष्ठदेश पर एक प्रकारका औज्ज्वल्य वा चाकचिक्य देखा जाता है, स्वर्ण, रौप्य, ताम्रादि धातु पदार्थों में ये गुण विशेष रूपसे वर्तमान हैं। इसीसे उन सब द्रव्योंमें अच्छी तरह पालिश कर सकते हैं। यही कारण है, कि धातु पदार्थसे दर्पण तथा अलङ्कारादि बनाये जाते हैं। तेलूरक, ग्राफाइट, कठिनावस्थ आयोडीन आदिमें उज्ज्वलापन कम देखा जाता है।

(६) धातुद्रव्य साधारणतः आलोकके लिये स्वच्छताहीन है। आलोक उसे भेद कर नहीं जा सकता। अम्लजनादि वायवीय अपधातु सम्पूर्ण स्वच्छ हैं। गन्धकादिके भीतर हो कर आलोक कुछ कुछ जा सकता है। पक्षान्तरमें अङ्गार अपधातु होने पर भी वह बिलकुल स्वच्छताहीन है। जिनमें ताड़ित-परिचालनकी क्षमता अधिक है उनमें यही तत्त्व अभी निर्णीत हुआ है।

(७) धातु पदार्थ पर आघात करनेसे एक प्रकारका मीठा शब्द निकलता है। अपधातु निर्मित पदार्थों में इस गुणका अभाव है।

(८) धातु पदार्थमें अम्लजन मिलानेसे क्षार उत्पन्न होता है। अम्लजनके योगसे अपधातु अम्ल उत्पादन करती है। क्षार और अम्लके योगसे लवण उत्पन्न होता है। साधारण नियम यह है कि धातुका Oxide क्षारजनक (basio) है और उपधातुका Oxide अम्लोत्पादक (acid forming)। साधारण नियम ऐसा होने पर भी इसमें व्यभिचार हैं। अनेक धातुओंमें एकाधिक oxide है; एक ही धातु विभिन्न परिमाणमें अम्लजन ग्रहण करती है, जैसे

क्रोमक मङ्गको लौह, रङ्ग, सुवर्ण, प्लातिनम इत्यादि । इन सब धातुओंके विभिन्न oxide में जिसमें अम्लजनकी मात्रा कम है, वे ही क्षार-जनक हैं; जिनमें अम्लजनकी मात्रा अधिक है, वे अम्लोत्पादक हैं । वे अन्य तीव्र क्षार पदार्थोंके साथ मिल कर लवण उत्पादन करती हैं ।

(९) द्रवीभूत लवणमें बेटरीके दो प्रान्तोंमें संलग्न दो तारोंके निमग्न करनेसे लवण विश्लिष्ट होने लगता है । ऊपरमें बतला चुके हैं, कि लवण नामका एक भाग धातु-घटित और अन्य भाग अपधातु घटित है । बेटरीका जो तार अस्त्रके साथ संलग्न रहता है, उस तारमें धातु घटित भाग और जो तार अङ्गार वा प्लातिनमके साथ संलग्न रहता है, उसमें अपधातु-घटित भाग जम जाता है । धनताड़ितका प्रवाह अङ्गार वा प्लातिनमसे निकल कर तार द्वारा तरलपदार्थके मध्य होता हुआ बेटरीके अस्त्रकी ओर जाता है । प्रवाह द्वारा तरल द्रव्य विश्लिष्ट हुआ करता है । उसका धातुभाग ताड़ित-प्रवाहकी ओर चल कर अस्त्र-संलग्न तारमें और अपधातुभाग ताड़ित-प्रवाहकी ओर प्रतिकूल दिशामें चल कर अन्य तारमें जम जाता है ।

(१०) एक सङ्कीर्ण दीर्घ सूत्रकार वा रेखाकार छिद्रके भीतर सूर्यका प्रकाश ले जा कर वहांसे उसे यदि एक तिकोने कांचको कलम (Prism) हो कर ले जांय, तो प्रकाशका रास्ता घूम जाता है और उस रास्ते पर यदि एक कागज रखें तो उस पर भिन्न भिन्न रङ्गोंसे चित्रित एक फीता नजर आयेगा । इस फीतेका एक छोर लाल और दूसरा छोर बैंगनी रङ्गका हो जायगा । बीचमें पीला, नीला तथा भिन्न भिन्नके रङ्ग देखनेमें आयेंगे । इस प्रक्रिया द्वारा सूर्यका शुभ्र प्रकाश विश्लेषित हो कर विविध वर्णोंका प्रकाश उत्पादन करता है । इस प्रक्रियाको आलोक-विश्लेषण और तत्साधनोपयोगी यन्त्रको आलोक-विश्लेषण-यन्त्र (Spectroscope) कह सकते हैं । सूर्यके आलोक वा उस प्रकारके दीप्तिमान पदार्थके निःसृत आलोकमें जितने वर्णोंका विकाश देखा जाता है, अन्य आलोकमें उतने दिखाई देते । प्रदीपके पलीतेमें थोड़ा नमक देनेसे दीपशिखा उज्ज्वल पीतवर्णमें रंग जाती है । इस पीत आलोकका यन्त्र द्वारा विश्लेषण करनेसे केवल एक उज्ज्वल पीतवर्णकी रेखा देखनेमें आती है । नमकमें सर्जक धातु वर्त्तमान है । सर्जक धातुके दीप्तियुक्त होनेसे ही वह एक वर्णात्मक आलोक देती है । सर्जक धातुके बदले पटाशक, लिथक आदि धातुओंको प्रदीप्त अवस्थामें यदि परीक्षा की जाय, तो कितनी रेखाएं नजर आती हैं । सूर्यके आलोकमें जिस तरह असंख्य वर्ण पाये जाते हैं, उस तरह इनमें नहीं पाये जाते । साधारण नियम यह है कि धातु पदार्थ प्रदीप्त अवस्थामें केवल बहुत सी रेखाएं देता है । अपधातु प्रदत्त रेखाओंकी संख्या बहुत ज्यादा है । सूर्यके आलोकमें रेखाकी संख्या गणनातीत है । इसी प्रकार आलोक-विश्लेषण-यन्त्रके विविध वर्णोंकी रेखाकी संख्या देख कर वह पदार्थ धातु है, वा अपधातु, इसका ज्ञान आपसे आप हो जाता है ।

ऊपरमें जो सब उदाहरण दिये गये हैं, उनसे यह साफ साफ मालूम हो जायेगा, कि सचमुच धातुके लक्षणका निर्द्देश करना कठिन है । पदार्थ अकसर धातु और अपधातु इन दो श्रेणियोंमें जो विभक्त किये जाते हैं, उनकी पद्धति ठीक न्यायशास्त्रसे अनुमोदित नहीं होगी, प्राकृत पदार्थनिचयका श्रेणीविभाग करनेमें ही सभी जगह इस प्रकार देखा जाता है । जन्तु और उद्भिद् इन दो प्रकारकी श्रेणियोंमें जीवगण विभक्त हैं । कौन जीव है और कौन उद्भिद् इसका स्थिर करना बड़ा ही सहज है । किन्तु ऐसे निकृष्ट श्रेणीके प्राणी वा जीव अनेक हैं, जिन्हें जन्तु वा उद्भिद् ठीक ठीक बतला नहीं सकते । जान्तव और औद्भिद ये दो प्रकारके धर्म्म ही उनमें वर्त्तमान हैं । यहां भी बहुत कुछ वैसा ही है ।

यवजन वा यवक्षारजन (Nilrogen), प्रस्फुरक, आर्सेनिक, आन्तिमनि, विसमथ इन पांच मूल पदार्थोंको रसायनशास्त्रमें एक श्रेणीमें गिनती की गई है । इनमें परस्पर अनेक विषयोंमें सादृश्य है । अन्यान्य मूल पदार्थोंके साथ इनका सम्बन्ध भी अनेक विषयोंमें एकसा है । जिस यौगिक पदार्थमें ये वर्त्तमान हैं, उनमें भी नाना विषयोंमें परस्पर सादृश्य देखा जाता है ।

यवक्षारजनसे लेकर विसमथ तक यदि सिलसिलेवार तुलना की जाय तो यह साफ देखनेमें आवेगा कि रसायन

गुण और धर्म धीरे धीरे परिवर्त्तित होता जाता है। नाइट्रोजन एक स्वच्छ स्वादहीन वर्णरहित वायवीय पदार्थ है, उससे तीव्र अम्ल धर्मविशिष्ट महाद्रावक उत्पन्न होता है। उसमें धातुका लक्षण कुछ भी नहीं है। विसमथ कठिन श्वेतवर्ण चाकचिक्यमय, घातसह और धात पदार्थ है। उसे अक्सिजनमें दग्ध करनेसे जो भस्म उत्पन्न होती है, वह क्षारधर्मयुक्त है और अन्यान्य अम्ल पदार्थोंके साथ युक्त हो कर लावणिक पदार्थ प्रस्तुत करता है। इन सब कारणोंके विसमथको धातु श्रेणी-में रख सकते हैं। प्रस्फुरक नाइट्रोजनके जैसा अपधातुमें और आन्तिमनि पदार्थ विसमथके जैसा धातुमें गिना जाता है। किन्तु मध्यवर्त्ती आर्सेनिककी गिनती धातुमें की जायगी वा अपधातुमें, इसका निर्णय करना बहुत कठिन है। आर्सेनिक अनेक विषयोंमें प्रस्फुरकके जैसा है, इस हिसाबसे इसे अपधातु और अनेक विषयोंमें आन्तिमनिके जैसा होनेका कारण इसे धातु कह सकते हैं।

धातुओंका श्रेणीविभाग—मूल पदार्थका श्रेणीविभाग करनेमें जो गड़बड़ी होती हैं, धातुओंमें श्रेणीविभाग कर-नेमें ठीक वही गड़बड़ी सामने आती है। लिथक, सर्जक, पटाशक, रुबीदक, कीशक इन धातुओंमें परस्पर इतना सादृश्य है तथा अन्यान्य धातुओंके साथ इनका साधारण वैसादृश्य भी इतना है, कि इन्हें यदि एक स्वतन्त्र निर्दिष्ट लक्षणयुक्त श्रेणीमें रखें, तो कोई आपत्ति नहीं किन्तु अन्यान्य धातुओंकी जगह ऐसा सुलक्षणयुक्त श्रेणी निर्देश नहीं हो सकता। किसी एक धातुको मान लेने से ही ऐसा देखा जाता है, कि किसी गुणमें तो एक श्रेणीमें और किसी गुणमें अन्य श्रेणीमें स्थान पानेका उसका अधिकार है। अतः उसे किस श्रेणीमें स्थान दे सकते इसकी मीमांसा करना दुरूह है। वस्तुतः भिन्न भिन्न रासायनिक पण्डित इस प्रकारके स्वाभाविक धर्मानुसार श्रेणीविभागमें प्रवृत्त हो कर विभिन्न रूपसे इसकी मीमांसा करते हैं।

जल वा उसी प्रकारके हाइड्रोजनविशिष्ट पदार्थमें सर्जक धातु डालनेसे देखा जाता है, कि उसमेंसे हाइड्रो-जन बाहर निकलता है और सर्जक धातु हाइड्रोजनकी जगह लेकर नूतन पदार्थको उत्पादन करती है। इस हिसाबसे देखा जाता है, कि हाइड्रोजनके एक परमाणु-की जगहमें सर्जकका ठीक एक परमाणु बैठ जाता है। सर्जकका एक परमाणु हाइड्रोजनके एकमात्र पर-माणुको हटा कर उसका स्थान ले लेता है। अन्यान्य धातुओंको ले कर परीक्षा करनेसे देखा जाता है, कि इस हाइड्रोजनके परमाणुको हटानेमें सबो की एकसी क्षमता नहीं है। पटास धातुका एक परिमाणु सर्जकके हो जैसा हाइड्रोजनके एक परमाणुका स्थान लेता है। किन्तु जस्तेका एक परमाणु हाइड्रोजनके दोका अलुमीनका एक परमाणु हाइड्रोजनके तीनका स्थान लेता है। इसी प्रकार अन्यान्य धातु विभिन्न संख्या क्रमसे हाइड्रोजनके परमाणुका स्थान ग्रहण कर सकती है। किस धातुका परमाणु हाइड्रोजनके कितने परमाणुका समकक्ष है, यह व्यापार देख कर धातुओंका एक हिसाबसे श्रेणी विभाग हो सकता है। किन्तु इस प्रकारसे श्रेणी-विभाग करनेमें भी नाना प्रकारके दोष होते हैं।

मन्देलजेफ (Mendeljelf) नामक विख्यात रूस पण्डितने सभी धर्म और सभी गुणकी उपेक्षा कर केवल पारमाणविक गुरुत्व (Atomic weight) के अनुसार मूल-पदार्थोंका श्रेणी विभाग करके दिखलाया है, कि इस प्रकारसे जो श्रेणीविभाग होता है, वही अन्यान्य प्रणालीके मतसे विभागकी अपेक्षा युक्तिसङ्गत और दोष-वर्जित है। हमने ऊपरमें धातुकी जो तालिका दी है, वह मेन्देलजेफकी प्रणालीके अनुसार है। इस प्रणाली-के मतसे रूढ वा मूल पदार्थ आठ श्रेणियोंमें विभक्त होता है। किसी एक श्रेणीमें जिन सब पदार्थोंके नाम हैं। उनमें स्थूल सौसादृश्य वर्त्तमान है।

यह प्रणाली भी जो सर्वथा दोषशून्य है सो नहीं कह सकते। एक उदाहरण देनेसे ही समझमें आ जायेगा। प्रथम श्रेणीके मध्य लिथक, सर्जक, पटासक, रुबीदक, कीशकने स्थान पाया है। यह स्वाभाविक और युक्तिसङ्गत है। किन्तु उसी श्रेणीमें फिर ताम्र, रौप्य और स्वर्णको भी स्थान मिला है। अथच इन शेष तीन धातुओंके साथ प्रथम पांच धातुओंका प्रायः किसी विषयमें मेल नहीं खाता। वे सम्पूर्ण भावसे पृथक्

धर्माक्रान्त हैं। स्वर्णके साथ प्लातिनमका मेल है, ताँबेके साथ पारदका मेल है, किन्तु सर्जक वा पटाशकके साथ स्वर्ण और ताँबेका सादृश्य है, ऐसा जोरसे कह सकते हैं। यही कारण है, कि मेन्डिलजेफ साहबने अपनी प्रणालीमें सभोको एक श्रेणीमें रखा है। यह पार्थक्य दिखलानेके लिए हमने एक श्रेणीमें भी पुनः क ख इत्यादि चिह्न द्वारा उपविभागकी कल्पना की है। एक श्रेणीमें भी दो वा दोसे अधिक उपभाग बतलाये गए हैं।

धातुओंका विशेष विवरण।—१। (क) लिथक, सर्जक, पटाशक, रुबिदक, शीशक। बहुतसे विशेष धर्मोंके कारण इन्हें एक विशिष्ट श्रेणीमें रख सकते हैं। इनके साथ अम्लजन और क्लोरीणादि अपधातुओंका सम्बन्ध इतना घनिष्ट है, कि ये कहीं भी असंयुक्त विशुद्ध अवस्थामें पाये नहीं जाते। सभी जगह इन्हीं सब अपधातुओंके साथ मिले रहते हैं और उस यौगिक पदार्थमेंसे विशुद्ध धातुका निकालना भी सहज नहीं है। सर हमफ्री डेवीने पहले पहल ताड़ितप्रवाहकी सहायतासे इनके निष्काशन प्रणालीको उद्भावित किया, यह ऊपरमें कहा जा चुका है। सर्जक और पटाशक ये दो धातु विविध पदार्थोंमें पायी जाती हैं। उद्भिज्ज पदार्थको जलानेसे जो भस्म बच जाती है उसमें यथेष्ट पटाशक वर्त्तमान है। सोरेमें भी पटाशक है। हम लोगोंके आहार्य लवण, सज्जी मट्टी आदि पदार्थोंका उपादान सर्जक है। लिथक, रुबिदक और कोशक ये तीनों धातु पृथिवीमें बहुत कम पायी जाती हैं।

अम्लजनके साथ इनका सम्बन्ध इतना प्रबल है कि इन्हें वायुको श्रेणीमें रख नहीं सकते। यहां तक कि विशुद्ध धातु वायुस्पर्शमात्र अम्लजनके साथ मिला रहता है। जलमें उसे डालनेसे जल उसी समय विश्लिष्ट होने लगता है। धातु जलके अम्लजनके साथ युक्त हो जाता है और जलका हाइड्रोजन भाग भी पृथक् हो कर निकल जाता है। इस समय इतना ताप उत्पन्न होता है कि हाइड्रोजन जल जाता है। अम्लजनके प्रति इस प्रबल आकर्षणके लिए इन सब धातुओंको वायुशून्य स्थानमें रखना होता है अथवा मट्टीतेलके जैसा जिन सब पदार्थोंमें अम्लजन नहीं है, उसीमें इन्हें डुबो कर रखना पड़ता है। अम्लजनके योगसे जो oxide तैयार होता है वह जलमें गल कर तीव्र क्षार धर्मयुक्त पदार्थको उत्पन्न करता है।

उक्त बहुत सी ऐसी धातु हैं जो जलसे लघु है। इस कारण वे जलमें बहती हैं, अल्प उत्तापसे गलती हैं और वाष्पीभूत होती हैं, तथा अत्यन्त कोमलताके कारण छुरी द्वारा बहुत आसानीसे काटी जाती हैं। जिन सब लावणिक पदार्थोंमें ये सब धातु वर्त्तमान हैं वे प्रायः सभी तापके योगसे द्रवीभूत होते हैं और जलमें फेंकनेसे गल जाते हैं।

ये सब धातु दीपशिखाको उज्ज्वलवर्णमें रञ्जित करती हैं। धातु अथवा जिस किसी लवणमें यह धातु वर्त्तमान है, उसे दीपशिखामें रखनेसे दीपशिखा सफेद उजाला देती है। लिथक लोहित वर्णमें, सर्जक पीतवर्णमें, पटाशक, रुबीदक और कोशक ये तीन पदार्थ नीलाभवर्णमें दीपशिखाको रञ्जित करती हैं।

आलोकविश्लेषणयन्त्र द्वारा इन सब पदार्थोंसे निःसृत आलोककी परीक्षा करनेसे देखा जाता है, कि उसमें बहुतसी क्षीण उज्ज्वल रेखाएं हैं। उन रेखाओंका वर्ण और विन्यासप्रणाली देख कर किस धातुसे यह रेखा आ रही है, यह सहजमें कह सकते हैं। वस्तुतः इस प्रकार आलोकविश्लेषण-यन्त्रसे आलोक परीक्षा द्वारा ही रुबीदक और कोशक धातुका अस्तित्व बुनसेन (Bunsen)-से आविष्कृत हुआ था।

लिथकसे ले कर कोशक तक जितनी धातु हैं, उनके नाम पारमाणविक गुरुत्वके अनुसार सिलसिलेवार दिये गये हैं। धातुओंके धर्मकी आलोचना करनेसे भी देखा जाता है कि लिथक सबसे निस्तेज और कोशक सबसे तेजस्वी है। पारमाणविक गुरुत्व जिस तरह बढ़ता है, रासायनिक धर्मोंका प्राबल्य और तीव्रता भी उसी तरह बढ़ती है।

जिन सब सुपरिचित प्राकृतिक पदार्थोंमें इस श्रेणीको अन्तर्गत धातु वर्त्तमान हैं, उनके विषयमें दो एक बात कह देना आवश्यक है।

लवण जो खाद्य द्रव्यमें गिना जाता है, वह सर्जकके साथ क्लोरिनके योगसे उत्पन्न होता है और इसकारण

नामक Sodic chloride समुद्रके जलमें बहुत मिलता है। सिन्धुतटवर्त्ती प्रदेशमें तथा अन्यत्र स्थानोंमें आकरिक लवण (Rock salt) पाया जाता है।

सज्जी-मट्टी—सर्जिकक्षार - कार्बनेट अफ सोडा (Carbonet of soda), साबन, काँच, सोडावाटर आदि पानीय प्रस्तुत करनेके लिये आज कल यह पदार्थ बहुत काममें लाया जाता है। उनके लिये बड़े बड़े कारखाने हैं।

सोहागा—Borax, Borate of soda का स्वर्णकार लोग व्यवहार करते हैं।

उद्भिज्जक्षार—(काठ, पत्ता जलानेसे जो भस्म बच जाती है) पटाश कार्बनेट (Potassic carbonate) इसका प्रधान उपादान है।

सोरा--Nitre or potassic nitrate—प्राणिज पदार्थके सड़नेसे अमोनियां उत्पन्न होती है, अमोनियां क्षुद्र जीवाणु विशेषसे ही यवक्षारक (महाद्रावक) जलमें परिणत होती है। उद्भिज्ज क्षारपदार्थ इसी नाइट्रिक एसीडके योगसे सोरेमें रूपान्तरित होता है। उद्भिज्ज और प्राणिज पदार्थको बहुत दिनों तक गीली जमीनमें वायुके मध्य सड़ानेसे सोरा उत्पन्न होता है। यह बारुद तैयार करनेके लिए व्यवहृत होता है।

१। (ख) ताम्र, रौप्य, स्वर्ण,—इन धातओंके साथ (क) श्रेणीभुक्त उल्लिखित लिथकादि पांच धातुओंका सादृश्य बहुत ही कम है। अक्सिजनके साथ इनका उतना सम्बन्ध नहीं है। इसी कारण ये अनेक समय विशुद्ध वा प्राय विशुद्ध पाये जाते हैं।

ताम्र उज्ज्वल रक्तवर्णका और रौप्य उज्ज्वल शुभ्रवर्णका है—अक्सिजनादिके साथ इनका सम्बन्ध बहुत कम रहनेके कारण यह उजलापन जल्दी नष्ट नहीं होता। इन्हें पीट कर पतला पत्तर और खींच कर बारीक तार बनाते हैं। इन्हीं सब कारणोंसे मुद्रा और अलङ्कारादि प्रस्तुत करनेमें ये तीन धातु व्यवहृत होती हैं।

ताम्र और रौप्य महाद्रावकमें बहुत जल्द गल जाता है। सोनेको महाद्रावक भी नहीं गला सकता। ये सब ताड़ितके उत्कृष्ट परिचालक हैं। इसीसे ताड़ित-शक्ति बनानेमें ताँबेके तारका व्यवहार होता है। रूपेमें पालिश देनेसे वह यथेष्ट शुभ्र आलोक देता है, इसीसे रौप्यसे उत्कृष्ट दर्पण प्रस्तुत होता है। रौप्य और स्वर्ण अपेक्षाकृत कोमल है। ताम्र मिलानेसे वे मजबूत हो जाते हैं।

आकरिक ताम्र सर्वत्र विशुद्ध अवस्थामें नहीं मिलता। अक्सिजनके साथ रहनेसे उसे कोयलेसे उत्तप्त करना होता है। कोयला अक्सिजनका भाग खींच लेता है। गन्धकके साथ युक्त रहनेसे आकरिकको जलानेसे गन्धक जल जाती है। अक्सिजनके योगसे दग्ध हो कर भस्म (oxide)में परिणत हो जाता है, फिर कोयलेकी गर्मीसे इस भस्ममेंसे विशुद्ध ताम्र निकाला जाता है। गन्धकयुक्त आकरिक ताम्रके साथ अनेक समय लोहा मिला रहता है। इन लोहेको दूर करनेके लिए बहुत परिश्रम करने पड़ते हैं।

गन्धक-द्रावकके कारखानेका जो आकरिक जलाया जाता है, उसमें ताम्र गन्धकके साथ युक्त अवस्थामें रहता है। इस ताम्रको लवण द्वारा गलानेसे जो द्रव्य उत्पन्न होता है उसे जलमें गला कर यदि उसमें लौहखण्ड डाल दिया जाय, तो लौहखण्डके ऊपर ताम्र जम जाता है।

रौप्यको अविशुद्ध आकरिकसे निकालनेको अनेक प्रकारकी प्रणालियां प्रचलित हैं। कभी कभी पारदके प्रयोगसे रौप्य खींच कर लाया जाता है। सीसेके साथ रौप्यके मिले रहनेसे उस मिश्र धातुको गला कर धीरे धीरे उसे ठंढा होनेके लिये यदि कुछ समय तक छोड़ दिया जाय, तो उसमें सीसेके दाने (Crystal) पड़ जाते हैं। द्रवीभूत मिश्र धातुमें वायुका प्रवाह लगनेसे सीसक अक्सिजनके योगसे क्रमशः भस्मीभूत हो कर पृथक् हो जाता है।

कहीं रौप्य सह लावणिक पदार्थोंको जलमें गला कर उस जलमें ताम्रखण्डको डाल देनेसे ताम्रके ऊपर रौप्य जम जाता है।

स्वर्ण प्रायः सभी समय विशुद्ध अवस्थामें वर्त्तमान रहता है। पर हां, उसमें बालू और मिट्टी कुछ कुछ अवश्य मिली रहती है, जिसे अलग करनेमें बहुत परिश्रम लगाने पड़ते हैं। स्वर्ण खूब भारी पदार्थ है, अतः उसे पानीमें धो देनेसे ही मिट्टी सहजमें दूर हो जाती है।

ताम्ररौप्य और स्वर्ण विशुद्ध और अविशुद्ध अवस्था-में विविध कार्योंमें व्यवहृत होते हैं। पीतल काँसा आदि उपधातुओंका प्रधान उपादान ताम्र है।

तूतिया, तुत्थ, नीलाञ्जन—Cupric, Sulphate गन्धक द्रावकमें तांबा गला कर तैयार किया जा सकता है। गन्धकयुक्त आकरिक ताम्र वायुमें दग्ध हो कर भी प्रस्तुत होता है।

काष्टिक (Lunar caustic silver nitrate) डाक्तर लोग चमड़ेके ऊपर प्रलेप देनेके लिये व्यवहार करते हैं। यह रौप्यके महाद्रावकमें गलनेसे उत्पन्न होता है। यह पदार्थ भी इससे प्रस्तुत अन्यान्य रौप्यज पदार्थके आलोकयोगसे विकृत होता है। इसीसे फोटाग्राफिमें वा आलोकचित्र-विद्यामें इसका व्यवहार होता है।

२। (क) बेरिलक, मगनीशक, कालक, स्त्रंशक, बेरक—ये सब धातु अनेकांशमें सदृश धर्मयुक्त हैं। किन्तु शेष तीन धातुओंमें जितनी सादृश्य है, प्रथम दोमें उतनी नहीं है। स्थूलतः ये सब धातु १ (क) श्रेणीके अन्तर्गत लिथकादि धातुओंके साथ अनेक विषयों में समधर्मा हैं। अक्सिजनके साथ इनका भी यथेष्ट सम्बन्ध है, पर १ (क) श्रेणीके जैसा सम्बन्ध प्रबल नहीं है। ये भी विशुद्ध अवस्थामें कहीं पायी नहीं जातीं, बहुत परिश्रमसे ताड़ितप्रवाहादि की सहाय-तादि द्वारा निकाली जाती हैं। शेष तीन धातुओंको वायुकी श्रेणीमें नहीं रख सकते, रखनेसे ये अक्सिजन-के साथ युक्त हो जाती हैं। जलमें डालनेसे ये धीरे धीरे जलको विश्लेषण करती हैं और जलके अक्सिजनके साथ मिल कर हाइड्रोजनको अलग कर देती हैं। अक्सिजनके योगसे जो भस्म उत्पन्न होती है, उसे जलमें गलानेसे वह क्षार धर्मयुक्त देखी जाती है। लेकिन इनका क्षार धर्म पटाशादि क्षारके जैसा तीव्र नहीं है।

बेरक दीपशिखामें हरित्‌वर्ण और स्त्रंसक गाढ़ा लोहित वर्ण देता है। बारूद वा उसी प्रकारके पदार्थके साथ बेरक और स्त्रंसकयुक्त पदार्थको मिला कर सबूज और लाल रंगके आलोकका मसाला तैयार किया जाता है। कालकको और दीपशिखाको लोहित वर्णमें रञ्जित करते हैं लेकिन वह लोहितवर्ण उतना गाढ़ा नहीं होता। मग्नीशकके तारको जलानेसे उज्ज्वल, तीव्र और शुभ्र रोशनी होती है। रातको अन्धकारमें फोटोग्राफ उतारनेके लिए इसी रोशनीका व्यवहार होता है।

पांच धातुओंमें मग्नीशक विशेषतः कालक धातुमें ही विशेष पाया जाता है, शेष तीनोंमें अपेक्षाकृत दुष्प्राप्य है। मग्नीशकयुक्त लावणिक पदार्थमें एप्सम सल्ट (Magnesium sulphate) चिकित्सार्थमें व्यवहृत होता है।

कालक धातु चूर्ण और चूर्णज पदार्थकी उपादान है। चूर्ण—(Calcium hydaonide) खड़ी, मार्बल पत्थर (calcium carbonate) (कार्बोनेट आव लाइम)। इसके अलावा शङ्ख, शम्बुक, कौड़ी, प्रवाल आदि द्रव्य एक एक पदार्थसे निर्मित हैं। बंगाल देशमें कई जगह मट्टीके भीतर कंकड़ मिलता है, यह भी उनका एक प्रधान उपादान है, इसको कार्बनेट उत्तापसे गरम करनेसे अङ्गारकाम्ल (Carbonic acid) निकल जाता है, (Calcic oxide) वा कालक धातुकी भस्म रह जाती है। जलमें फेंक देनेसे यह भस्म जलीयमके द्वारा चूनेमें परिणत हो जाता है। चूनेको अधिक दिनों तक वायुमें रखनेसे वह धीरे धीरे अङ्गारकाम्ल वायुको ग्रहण करता है।

प्राणियोंकी अस्थिमें फसफेट आव लाइम (Calcic phosphate) बहुत पाया जाता है। अस्थि-भस्मसे चूर्णज अंशको पृथक् करके निकाला जाता है।

चूना क्लोरिन वायुके संयोगसे Chloride of lime or bleaching powder तैयार होता है।

चूना गन्धकद्रावकमें मिल कर Epsom और plaster of paris (Calcic sulphate)को उत्पन्न करता है। तसवीर उतारनेके लिये यह पदार्थ व्यवहृत होता है।

२। (ख) यशद, कदमक, पारद। प्रथम श्रेणीके मध्य (क) विभागका जैसा सम्बन्ध इस द्वितीय श्रेणी-(क) के साथ है, (ख) का वैसा नहीं है। फिर २ (क) श्रेणीमें बेरिलक किसी किसी विषयमें (ख) विभागके यशद और कदमकके साथ सादृश्यविशिष्ट है। यशद और कदमकमें जितना सादृश्य है, पारदके साथ उन दोनोंका

उतना नहीं है। यशद और कदमक ये दोनों धातु गन्धकद्रावक और क्लोरिनद्रावकमें द्रवीभूत हो कर हाइड्रोजनको निकाल देती हैं, लेकिन पारद धातु वैसा नहीं करती। वस्तुतः पारद धातु सहजमें किसी द्रावकके ऊपर कोई काम नहीं करती। यह हमेशा तरल अवस्थामें रहती है। ये तीन धातु तापके प्रयोगसे वाष्पीभूत की जाती है।

यशद और कदमकको उत्तप्त करनेसे वे बहुत कुछ मग्नीशकके जैसा उज्ज्वल आलोककी सहायतासे जलती हैं। पारदमें गर्मी पहुंचनेसे वह धीरे धीरे अक्सिजन ग्रहण करता है फिर अधिक गर्मी लगनेसे वह उस अक्सिजनको छोड़ कर विशुद्ध धातुमें परिणत होता है।

जस्ता और पारा यही दो धातु विशेष कामोंमें व्यवहृत होती हैं। जस्तेको तांबेमें मिलानेसे पीतल बनता है। जस्तेके पत्तर अनेक कामोंमें आते हैं। ताड़ित-प्रवाहोत्पादक बैटरीको तैयार करनेके लिये जस्तेकी आज कल बहुत खपत होती है। लोहेके पत्तर वा तारको तरल जस्तेमें डुबोनेसे उसमें जल्दी मोरचा नहीं लगता। पारद दर्पण बनानेके काममें आता है तथा विविध वैज्ञानिक यन्त्रके निर्माणमें भी इसका व्यवहार होता है।

आकरिक जिस्तेको जलानेसे Oxide वा भस्म उत्पन्न होती है। उसमें कोयला मिलानेसे ताप प्रयोग द्वारा वह विशुद्ध जस्ता हो जाता है। आकरिक जस्तेके साथ प्रायः कदमक भी कुछ कुछ पाया जाता है। पारद अनेक जगह विशुद्ध अवस्थामें मिलता है। पारद यदि गन्धकके साथ युक्त रहे तो उसे जलानेसे गन्धक जल जाता है और पारद वाष्प हो जाता है। इस वाष्पीभूत पारदको किसी बरतनमें जमा सकते हैं।

हिङ्गुल, सिन्दूर गन्धकके साथ पारदके योगसे उत्पन्न होता है।

कालोमल (Calomel) और करोसिव सबलिमेट ये दोनों पदार्थ क्लोरिनके साथ पारदके योगसे उत्पन्न होते हैं। डाक्तरीमें इन दोनोंका व्यवहार होता है।

१। (क) स्कान्दक, इत्रियम, लान्थनक, इत्तर्बिक।

(ख) अलुमीन, गल्लक, इन्दक, थल्लक।

अलुमीनके सिवा इस श्रेणीको अन्यान्य धातु बहुत सामान्य परिमाणमें रहती हैं। थल्लक किसी किसी विषयमें पटाश आदिके जैसा है। अनेक विषयोंमें सीसकके साथ इसका सादृश्य है। थल्लक-निःसृत आलोकको आलोकविश्लेषण यन्त्र द्वारा देखनेसे उसमें एक उज्ज्वल हरिद्वर्ण रेखा नजर आती है। गल्लक और इन्दक ये दोनों धातु आलोक-परीक्षा द्वारा आविष्कृत हुई हैं।

अलुमीन धातु विशुद्ध अवस्थामें पाई नहीं जाती। यह अक्सिजनके योगसे जो भस्म उत्पन्न करती है उसे अलुमीना कहते हैं। अलुमीनाके बालीके साथ मिलनेसे जो सिलिकेट पदार्थ बनता है, वह मट्टी मात्रका प्रधान उपादान है। विशुद्ध चीनामट्टी (Porcelain) प्रायः विशुद्ध अलुमीन सिलिकेट है, बाली पदार्थ जिस तरह अलुमीनके साथ युक्त हो कर सिलिकेट प्रस्तुत करता है, उसी तरह अन्यान्य धातु भस्मके साथ मिल कर दूसरा दूसरा सिलिकेट प्रस्तुत किया करती हैं। अलुमीना सिलिकेट अन्यान्य धातु पदार्थोंसे उत्पन्न सिलिकेटके साथ युक्त होकर अनेक प्रकारके पत्थर उत्पन्न करता है। चुर्ण आदि कुछ मूल्यवान् रत्नोंका प्रधान उपादान अलुमीन है।

अलुमीन बहुत उपकारी धातु है। इसमें चमक दमक खूब है, बहुत कुछ टीनसे मिलता जुलता है। यह खींचनेसे सूक्ष्म तार और पीटनेसे सूक्ष्म पत्तर हो जाता है। अनेक धातुओंकी अपेक्षा यह बोझ भी खूब सहता है। कभी भी जलका अक्सिजन इस पर आक्रमण नहीं कर सकता। इसी कारण लोहेके जैसा इसमें मोरचा नहीं लगता। इन सब गुणोंसे अलुमीन लोहेसे भी अधिक उत्कृष्ट है। फिर लोहेकी तुलनामें यह बहुत हलका है और जलसे ढाई गुना भारी है। जस्तेसे विशुद्ध अलुमीन तैयार होनेसे वह अनेक जगह लोहेकी जगहमें काम करता है, इसमें सन्देह नहीं। विशेषतः यह पार्थिव पदार्थोंमें लोहेकी अपेक्षा अधिक पाया जाता है। किन्तु वर्त्तमान कालमें विशुद्ध अलुमीनका निकालना बहुत कठिन व्यापार है। फिलहाल ताड़ित-चुल्लीकी सहायतासे प्रबल ताड़ित-प्रवाह द्वारा अलुमीन निकाला जाता है।

Ruby, chrysoberyl, sapphire आदि बहुमूल्य

मणि प्रायः विशुद्ध अलुमीना मात्र हैं। अन्यान्य धातु अल्प मात्रमें रह कर भिन्न भिन्न वर्णोंको उत्पादन करती हैं। अलुमीन सिलिकेटके अन्यान्य सिलिकेटोंके साथ मिलनेसे पत्थर और मट्टी तथा अलुमीन सलफेटके साथ पटाश सलफेटके मिलनेसे फिटकरी बनती है।

४। (क) तितानक, ज्रिकणक, सीरक, थीरक।

(ख) जम णक, रङ्ग, सीसक।

रङ्ग और सीसके सिवा अन्य थोड़ी धातु बहुत कम पाई जाती हैं। उनका नाम मात्र ही यथेष्ट है।

रङ्गका अंगरेजी नाम टीन है। उसकी oxide वा भस्मसे अङ्गारके द्वारा खूब आंच दे कर विशुद्ध टीन निकाला जाता है।

टीन एक चमकीली धातु है। इससे पत्तर और तार बनाये जा सकते हैं। यह सहजमें अम्लजन ग्रहण नहीं करता। इसीसे इसकी सफेदी जल्दी नष्ट नहीं होती। लोहेके पत्तर पर गलित टीनकी ढाल कर जो पत्तर बनता है, उसे भी टीन कहते हैं। कनस्तर आदि इसी पत्तरसे बनाये जाते हैं।

सीसक आकरिक अवस्थामें प्रायः गन्धकके साथ रहता है। वायुके मध्य जलानेसे गन्धक बहुत कुछ जल जाती है और सीसा भस्ममें (oxide) परिणत हो जाता है। इस सीसा भस्मको आकरिक गन्धयुक्त सीसेके साथ उत्तप्त करनेसे सभी गन्ध जल जाती है, केवल विशुद्ध सीसक बच जाता है।

सीसक निहायत मुलायम धातु है। कागज पर घरक देनेसे उस पर काला दाग पड़ जाता है। आपेक्षिक गुरुत्व जलकी तुलनामें ग्यारहवां है। अम्लजनके ग्रहण करनेसे सीसककी सफेदी नष्ट हो जाती है। वायुके संस्पर्शसे ताप दे कर जलानेसे सीसा बहुत जल्द भस्म हो जाता है। बन्दूककी गोली और यन्त्रालयके अक्षर तैयार करनेके लिये भी इसका यथेष्ट व्यवहार होता है।

सफेदा सीसेका कार्बनेट है। सीसयुक्त पदार्थ शरीरमें विषका काम करता है।

५। (क) वनदक, नवक, तन्तलक।

(ख) आर्सनिक, आन्तिमनि, विस्मथ।

(क) शेषोक्त धातुओंमेंसे कुछोंके नाममात्र ही यथेष्ट हैं।

(ख) धातुओंके साथ नाइट्रोजन और प्रस्फुरकका सम्बन्ध-विचार पहले ही किया जा चुका है। धातुके मध्य इनके अनेक विषयोंमें अपधातुके लक्षण वर्त्तमान हैं। आर्सनिक और आन्तिमनि भङ्गुर पीटनेसे पत्तर नहीं होते। उत्तापके योगसे ये बहुत जल्द वाष्प हो कर उड़ जाते हैं। आर्सनिक संयुक्त पदार्थमात्र तीव्र विष है। आर्सनिकको नाइट्रोजनसे जलानेसे संकी नामका विष बनता है। गन्धकके योगसे आर्सनिकमेंसे हरिताल और मनःशिला प्रस्तुत होती है। आन्तिमनि पदार्थ गन्धकके योगसे रसाञ्जन बनाता है। आन्तिमनि और आर्सनिकमें इतना साहश्य है, कि अनेक समय दोनोंमें भ्रम हो जानेकी सम्भावना रहती है। विशेष सावधान हो कर इसकी परीक्षा करनी होती है।

६। (क) क्रोमक, मोलिदक, तुङ्गस्तक और वरणक इनमेंसे कोई भी बहुतायतसे नहीं मिलता। क्रोमकयुक्त पदार्थ मात्र ही सफेदीके लिये प्रसिद्ध है।

७। मङ्गनक—यह धातुयुक्त पदार्थ अनेक स्थानोंमें मिलता है। किन्तु यह भङ्गुर है, अम्लजनके साथ बहुत जल्द मिल जाता है। इन्हीं सब कारणोंसे विशुद्ध धातु किसी काममें नहीं आती। मङ्गनकयुक्त पदार्थका वर्ण हमेशा उज्ज्वल रहता है।

८। (क) लौह, निकेल, कोबाल्ट।

ये तीन धातु अनेक विषयोंमें आपसमें मिलती जुलती हैं। किसी किसी विषयमें इनका पूर्वोक्त क्रोमक और मङ्गनकके साथ भी साहश्य है। सभी धातुओंमेंसे लोहेमें चौम्बकधर्म ज्यादा पाया जाता है। निकेल और कोबाल्ट भी इस विषयमें कुछ कुछ लोहेके जैसा है।

सभी जगह लोहा जैसी कार्यकर धातु है, वैसी और कोई धातु नहीं है। इसीसे इसकी मांग भी अधिक है और खानसे अधिक परिमाणमें निकाला भी जाता है। किन्तु विशुद्ध लोहेका व्यवहार बिलकुल नहीं है, ऐसा कह सकते हैं। जो सब लोहा काममें लाया जाता है, उसमें अङ्गार और अन्यान्य अपधातु रहती हैं। पीटे हुए लोहेमें अङ्गारका भाग अपेक्षाकृत

कम रहता है। ढलवाँ लोहा भङ्गप्रवण है। उसे पीट कर कोई चीज बना नहीं सकते। पर हाँ, वह अपेक्षाकृत कम उत्तापसे गल जाता है, इसीसे गढ़नेके काममें इसका आदर है। इसमें दूसरेका भाग अधिक है, प्राय: एक आनाभाग अङ्गार रहता है। इस्पात खूब स्थितिस्थापक और अत्यन्त दृढ़ पदार्थ है।

लोहा आकरिक अवस्थामें अन्यान्य द्रव्योंके साथ मिला रहता है। अक्सिजनके योगसे लोहेकी भस्ममें, गन्धकके योगसे सलफाइडमें, इसके सिवा कार्बनेट, सिलिकेट आदि नाना अवस्थामें लोहा पाया जाता है। गन्धकादि भाग जला कर फेंक देना पड़ता है। अक्सिजनयुक्त लौह-भस्मको अङ्गारके साथ द्रवीभूत करनेसे उसमेंसे अक्सिजन निकल जाता है। द्रवीभूत विशुद्ध लोहा धीरे धीरे अङ्गारको ग्रहण कर उसके साथ मिश्रित हो जाता है और ढलवें लोहे, पिट्वें लोहे, इस्पात आदिमें परिणत होता है।

गैरिक (गेरूमट्टी) नामक पदार्थका प्रधान उपादान लोहा है। जिस मट्टीमें गैरिक वा लौहज पदार्थ कुछ भी रहता है, उसका वर्ण लाल हो जाता है। छोटा नागपुरके अञ्चलमें लौहज पत्थर देखनेमें आता है और वहांसे जितनी नदियाँ निकली हैं, उनके जलका रक्त वर्ण लोहेके अस्तित्वसे कम हो जाता है।

लोहेका प्रधान दोष अक्सिजनसे आक्रान्त हो कर क्षय हो जाता है और उसकी सफेदी जाती रहती है। रंगा कर वा अन्य धातुका आवरण दे कर इसकी रक्षा करनी होती है। हीराकस लोहेका सलफेट है।

क्रोमक और मङ्गनकके जैसा कोबाल्ट भी विचित्र वर्णोंका पदार्थ उत्पन्न करता है। निकेल और लोहेमें भी यह गुण कुछ कुछ पाया जाता है। निकेलके ऊपर अच्छी पालिश की जा सकती है और शुष्क वायु इसकी सफेदीको सहजमें नष्ट कर देती है। निकेलके साथ तांबा और थोड़ा जस्ता मिलानेसे जर्मन रौप्य (German Silver) बनता है।

८। (ख) रुथीनक, ऋद्धक, पलदक, धस्मक, इरिदक, प्लातिनक ये सब धातु प्राय: समान गुणवाली हैं। प्लातिनक आजकल विशेष प्रसिद्ध है और इसमें जो धर्म वर्त्तमान है, प्राय: वोही धर्म अन्यमें भी देखे जाते हैं। अक्सिजन और अन्यान्य द्रावक द्रव्य सोनेके जैसा इन्हें भी आक्रमण कर सकते हैं। यवक्षारद्रावक (Nitrica ciod) के साथ क्लोरिन द्रावक (Hdrochlorica cid) मिलानेसे उग्र द्रावक प्रयुक्त हो जाता है, जो सोने और प्लातिनकको आक्रमण कर सकता है, पर इस श्रेणीकी सभी धातुओंको नहीं। अक्सिजनादिके साथ इनका सम्बन्ध अधिक न रहनेके कारण सोनेके जैसा ये भी विशुद्ध अवस्थामें पाये जाते हैं। आकरिक प्लातिनकमें अन्यान्य धातु भी कुछ कुछ मिश्रित रहती हैं। उस मिश्रित पदार्थोंमेंसे प्लातिनकको निकालनेमें बहुत परिश्रम करना पड़ता है।

प्लातिनक सफेद चमकीली धातु है। इससे सूक्ष्म पत्तर और बारीक तार बनते हैं। इसकी सफेदी किसीसे भी नष्ट नहीं होती। जब तक यह खूब गरम नहीं की जाती, तब तक गलती नहीं है। इन्हीं सब कारणोंसे प्लातिनक बहुतसे कामोंमें व्यवहृत होता है। ताड़ित-प्रवाहोत्पादक बैटरीमें प्लातिनकके पत्तरका व्यवहार होता है। इसके सिवा इसका पत्तर तार और पात्रादि वैज्ञानिक परीक्षामें व्यवहृत होते हैं। यह धातु सोनेसे कम दरमें मिलती है।

(ग) हेलिक—कई वर्ष हुए सर निर्माण लकियरने यन्त्र द्वारा सूर्यके आलोकका विश्लेषण करके उसमेंसे एक उज्ज्वल पीतवर्णके आलोकका अस्तित्व आविष्कार किया। आलोक अन्य किसी परिचित पदार्थसे नहीं मिलता था। उस समय लकियरने स्थिर किया था, कि सूर्य-मण्डलमें ऐसा कोई धातु पदार्थ वर्त्तमान है जो पृथ्वी पर आजतक भी नहीं मिलता। सूर्यका ग्रीक नाम हेलि (Welios) है। तदनुसार पृथ्वी पर अज्ञात उस सौर धातुका Helium नाम पड़ा है। कुछ दिन हुए (१८९५ ई०में) आर्गन नामक वायुके आविष्कारके बाद अध्यापक रामसे (Ramsay) एक प्रकारके आकरिक द्रव्यमें आर्गनका अन्वेषण कर रहे थे। उस आकरिकको उत्तप्त करनेसे उसमेंसे जो वायवीय पदार्थ निकला उसे दीप्तिमान् करके रामसेने जब उससे निःसृत आलोककी परीक्षा की, तब देखा कि वह आलोक

और धातु Helium प्रदत्त आलोकसे अभिन्न है । पीछे और भी अनेक आकरिकोंसे वायवीय धातु पदार्थ पाया जाता है । आलोक परीक्षा द्वारा यह पदार्थ धातु धर्माक्रान्तके जैसा स्थिर किया जाता है । आज तक भी यह तरल वा कठिन अवस्थामें परिणत किया जा सका है । ऊपर जितनी धातुओंका उल्लेख है, उनमेंसे एक पारद तरल पदार्थ है और सभी कठिन पदार्थ हैं। यह वायवीय धातु पदार्थ आज तक प्रचलित न था। यह वायु अत्यन्त लघु गुणयुक्त है । यह हाइड्रोजनकी अपेक्षा दुगना भारी है । यह वायु एक स्वतन्त्र मूल पदार्थ है वा एकाधिक मौलिक वायुके मिश्रणसे उत्पन्न हुई है, इसमें आज तक भी संशय बना है ।

हेलिकके रासायनिक धर्मविषयमें हम लोग आज तक भी अनभिज्ञ हैं । सम्भवतः यह धातुकी तालिकाकी अष्टम श्रेणीमें ही रखा जायगा ।

हाइड्रोजनकी धातवता—हाइड्रोजन वायु जलका अन्यतर उपादान है । इसके सिवा यह अन्यान्य विविध पार्थिव पदार्थोंमें वर्त्तमान है । हाइड्रोजन अकसर वायवीय अवस्थामें ही पाया जाता है । वायुमें भी फिर ऐसा लघु पदार्थ दूसरा नहीं है । हाइड्रोजनकी गिनती अपधातु ही की गई है । किन्तु कई एक कारणोंसे सन्देह होता है, कि हाइड्रोजनके वायवीय पदार्थ होने पर भी यथार्थमें यह धातु-पदार्थ है । रासायनिक धर्मकी आलोचना करनेसे अपधातुकी अपेक्षा धातुके साथ ही इसका सादृश्य देखा जाता है ।

एक धातु जितनी आसानीसे एक अपधातुके साथ रासायनिक-सम्बन्धमें मिलती है, अन्य धातुसे वह उतनी आसानीसे नहीं मिलती । साधारण नियम यह है—हाइड्रोजन प्रायः सभी अपधातुओंके साथ मिल कर यौगिक पदार्थ उत्पन्न करता है । किन्तु धातु द्रव्यके साथ हाइड्रोजनका जो रासायनिक सम्बन्ध है, वह प्रायः नहींके बराबर है । किसी तरल यौगिक पदार्थमें ताड़ित-प्रवाहका दबाव डालनेसे उसका धातुभाग एक ओर जा कर एक तारमें जम जाता है और अपधातुभाग विपरीत ओर जा कर दूसरे तारमें जमता है ।

यौगिक धातुमें हाइड्रोजनके रहनेसे देखा जाता है, कि वह भी उपधातुके अवलम्बित पथ पर न जा कर धातुके अवलम्बित पथ पर ही जाता है ।

धातुज (सं० पु०) शैलज, शिलाजतु, शिलाजीत ।

धातुकार (सं० पु०) १ धातुमय देह । २ पूर्वरचित एक बौद्धशास्त्रका नाम ।

धातुकासीस (सं० क्ली०) धातुरूपं कासीसं । कसीस ।

धातुकुशल (सं० त्रि०) धातुषु कुशलः । जो धातुक्रिया विषयमें दक्ष हो, जो धातु क्रियाका विषय अच्छी तरह जानता हो ।

धातुक्षय (सं० पु०) धातूनां क्षयो यत्र । १ कासरोग, खाँसीका रोग । इसमें शरीर क्षीण हो जाता है, इसीसे इसको धातुक्षय कहते हैं । २ प्रमेह आदि रोग जिनमें शरीरसे बहुत वीर्य निकल जाता है ।

धातुगर्भ (सं० पु०) देहगोप, वह कँगूरेदार डिब्बा या पात्र जिसमें बौद्ध लोग बुद्ध या अपने दूसरे भारी साधु-महात्माओंके दाँत या हड्डियाँ आदि रखते हैं ।

धातुगोप (सं० पु०) धातुगर्भ देखो ।

धातुग्राहिन् (सं० पु०) धातुग्रह-णिनि । १ वह मट्टी जो ताँबेके साथ मिल जानेसे पीतल हो जाती है । २ खर्पर, खपड़ा ।

धातुघ्न (सं० क्ली०) धातुं स्वर्णादिकं हन्ति हन-टक् । १ धातुनाशनशील, वह पदार्थ जिससे शरीरका धातु नष्ट हो । २ काञ्जिक, काँजी ।

धातुचेतनकर (सं० क्ली०) १ दुग्ध, दूध । २ आमलक, आँवला, आँवरा ।

धातुचैतन्य (सं० त्रि०) धातु या वीर्यको उत्पन्न या चैतन्य करनेवाला ।

धातुद्रावक (सं० पु०) धातुं द्रावयति द्रु-णिच्-ण्वुल् । धातु द्रवकारक, सोहागा । इसके डालनेसे सोना आदि गल जाता है ।

धातुनाशन (सं० क्ली०) धातुं स्वर्णादिकं नाशयतीति नश-णिच-ल्यु । काञ्जिक, काँजी ।

धातुप (सं० पु०) धातुं अस्थिमज्जामांसोत्पादकपदार्थविशेषं पाति रक्षतीति पा-क । १ रसरूप प्रथम धातु, शरीरमें वह रस या पतला धातु जो भोजनके उपरान्त शीघ्र ही तैयार हो जाता है ।

भावप्रकाशमें लिखा है, कि रस नाड़ी द्वारा जा कर अपने गुणसे सब धातुको पोषण करता है। यह समान वायु द्वारा प्रेरित हो कर हृदयमें प्रवेश करता है और व्यान वायु द्वारा विचलित हो कर सब धातुको बढ़ाता है। २ शुक्र, वीर्य।

धातुपाक (सं॰ पु॰) रसादि धातुका ह्रास।

धातुपाठ (सं॰ पु॰) धातूनां पाठो यत्र, धातवः पाठ्यन्ते अत्र वा आधारे घञ्। पाणिन्यादि प्रणीत अर्थात् बोधक ग्रन्थभेद।

धातुपारायण (सं॰ पु॰) धातूनां पारायणं यत्र। धातु प्रतिपादक ग्रन्थभेद।

धातुपुष्ट (सं॰ त्रि॰) वीर्यको गाढ़ा करनेवाला, जिससे वीर्य गाढ़ा हो कर बढ़े।

धातुपुष्पिका (सं॰ स्त्री॰) धातुरिव पुष्पं यस्याः जातौ ङीष् स्वार्थे कन्, पूर्वह्रस्वः। धातुपुष्पिका, धवका फूल।

धातुपुष्पी (सं॰ स्त्री॰) धातुरिव पुष्पं यस्याः जातित्वात् ङीष्। धातकी, धवका फूल।

धातुप्रदान (हिं॰ पु॰) शुक्र, वीर्य।

धातुवैरी (हिं॰ पु॰) गन्धक।

धातुभृत् (सं॰ पु॰) धातुं गैरिकादिकं उपधातुं विभर्त्ति भृ-क्विप्, तुक् च। १ पर्वत, पहाड़। (त्रि॰) २ जिससे धातुका पोषण हो।

धातुमर्म (सं॰ पु॰) कच्चो धातुको साफ करना जो ६४ कलाओंके अन्तर्गत है, धातुवाद।

धातुमल (सं॰ पु॰) धातूनां मलः ६-तत्। धातुका मल। भावप्रकाशमें लिखा है, कि कफ, पित्त, पसीना, नाखून, बाल, आँख या कानको मैल ये सब यथाक्रमसे धातु-समूह अर्थात् रसादि मज्जा पर्यन्त धातुके मल हैं। कोई कोई कहते हैं, कि चक्षु, जिह्वा और गण्डदेशगत जल भी रसजनित मल है। जब शुक्र परिपाक हो जाता है, तब मलको उत्पत्ति नहीं होती है, क्योंकि कई बार आगमें तपाये जाने पर जिस तरह सोनेमें मल नहीं रहता। उसी तरह आहारजात रस पुनः पुनः परिपाक हो जानेसे उसका मल जाता रहता है।

धातुमाक्षिक (सं॰ क्ली॰) धातुरूपं माक्षिकं। माक्षिक, सोनामक्खी नामकी उपधातु।

धातुमारिणी (सं॰ स्त्री॰) धातुं मारयति मृ-णिच्-णिनि ङीप्। सज्जिका, सोहागा।

धातुराग (हिं॰ पु॰) धातुओंसे निकला हुआ रंग।

धातुराजक (सं॰ क्ली॰) धातुषु राजते इति राज-ण्वुल् वा धातूनां राजा, समासान्त टच्, ततः स्वार्थे कन्। शुक्र, वीर्य। यह शरीरके सब धातुओंमें श्रेष्ठ है, इसीसे इसका नाम धातुराजक पड़ा है।

धातुरेचक (सं॰ त्रि॰) जो वीर्यको बढ़ा कर निकाल दे।

धातुवर्द्धक (सं॰ त्रि॰) वीर्यको बढ़ानेवाला, जिससे वीर्य बढ़े।

धातुवल्लभ (सं॰ क्ली॰) धातुषु वल्लभः। टङ्कण, सोहागा। टङ्कण देखो।

धातुवाद (सं॰ पु॰) १ चौंसठ कलाओंमेंसे एक। इसमें कच्चो धातुको साफ करते और एकमें मिली हुई अनेक धातुओंको अलग अलग करते हैं। २ रसायन बनानेका काम। ३ कीमियागिरो। ४ तांबेसे सोना बनाना।

धातुवादिन् (सं॰ पु॰) धातुं वदति, उपायान्तरेण कल्पं कथयति वद-णिनि। कारखमी, रसायनको सहायतासे सोना या चांदी बनानेवाला, रसायनी।

धातुविट् (सं॰ स्त्री॰) शीषक, सीसा।

धातुविष (सं॰ क्ली॰) १ धातुमल, सीसा। २ हरिताल।

धातुवृद्धि (सं॰ स्त्री॰) रस आदिकी वृद्धि।

धातुवृद्धिकर (सं॰ पु॰) धातुवर्द्धक देखो।

धातुवैरिन् (सं॰ पु॰) धातूनां वैरीव, दूषकत्वात्। गन्धक।

धातुशेखर (सं॰ क्ली॰) १ सीसक, सीसा। २ धातुकाशीष, कसीस (Green sulphate of iron)

धातुशोधनकारी (सं॰ स्त्री॰) हरीतकी।

धातुसंज्ञ (सं॰ क्ली॰) सीसक, सीसा।

धातुसम्भव (सं॰ क्ली॰) सीसक, सीसा।

धातुसाम्य (सं॰ क्ली॰) १ विकार उपशम रूप कार्य। २ आरोग्य।

धातुसेन—महावंशमें उक्त एक मौर्य वंशीय बौद्ध राजा। राजा मित्रसेनको मार कर जब (४३४ ई॰में) तामिलके सरदार पाण्डु सिंहासन पर बैठे थे, उसी समय मौर्य वंशीय लोग प्राण बचानेके लिये अनुराधापुर प्रदेश

को भागी और वहां महावालुक नदीके दूसरे किनारे जा कर रहने लगी। तामिलगण नदीके दूसरे किनारे अर्थात् अनुराधपुर प्रदेशको भी जीत कर वहां राज्य करने लगे थे।

जो सब मौर्यवंशीय नदीके दूसरे पार भाग कर रहने लगे, उनमेंसे धातुसेन एक भूम्यधिकारी थे। उन्होंने नन्दीवापी नामक स्थानमें अपना वासस्थान कायम किया। धाता नामक उनके एक पुत्र था जो अम्बिलोयाग नामक स्थानमें रहता था। धाताके दो पुत्र हुए, बड़ेका नाम धातुसेन और छोटेका शीलतिष्य बोधि था। इनके मामा महानाम धर्मार्थमें जीवन उत्सर्ग करके अनुराधापुरमें ही रहते थे। उनका वासस्थान मन्नो दीर्घसन्धानसे प्रतिष्ठित मन्दिरमें था। धातुसेन भी मामाके अधीन एक याजक हो गये थे। एक दिन धातुसेन जब एक पेड़के तले बैठ कर निविष्टचित्तसे स्तव पाठ कर रहे थे, उस समय खूब जोरसे पानी बरसने लगा। किन्तु धातुसेनका ध्यान उस ओर तनिक भी आकर्षित न हुआ। वे स्तवपाठमें बिलकुल निमग्न थे। इसी समय एक सांप अपने फणको उनके मस्तक तथा पुस्तक पर फैलाए वहां खड़ा हो गया। उनके मामा तथा एक दूसरे याजकने यह घटना देख ली। याजकने बुरी नीयतसे उनके मस्तक पर बहुत धूल फेंकी, किन्तु इस पर भी धातुसेन विचलित न हुए। मामाने अपने भांजेको ऐसी अवस्थामें देख सोचा कि, "एक दिन यह बालक राजा होगा। इसलिये मुझे इसके प्रति विशेष ध्यान रखना चाहिये।" अन्तमें उन्होंने धातुसेनको मन्दिरमें ले जा कर इस प्रकार उपदेश दिया, 'प्रियदर्शन! रातदिन अपनी उन्नतिके लिये अटूट परिश्रम करते रहो, कभी समयको बरबाद न करो।' इसी उपदेशसे वे सब विद्यामें पारंगत तथा पटु हो गये थे।

तामिलके सरदार राजा पाण्डुको जब यह हाल मालूम हुआ, तब उन्होंने धातुसेनको पकड़ मंगानेके लिये रातमें एक गुप्तचर भेजा। स्थविर (धातुसेनके मामा) को यह बात झट मालूम हो गई, वे अपने भांजेको स्थानान्तरित करनेका आयोजन करने लगे। जिस समय वे जानेको तैयार थे, ठीक उसी समय गुप्तचरोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। किन्तु धातुसेन और उनके मामा बहुत होशियारीसे उनकी आंखों पर धूल डाल कर अदृश्य हो गये। इस तरह वे दोनों शत्रुके पंजेसे भाग कर दक्षिणकी ओर गण नामक बड़ी नदीके किनारे आ पहुंचे। उस समय नदीमें जोरोंसे बाढ़ आई हुई थी। स्रोतका प्रखर वेग देख कर वे नदी पार कर न सके। तब स्थविरने नदीको सम्बोधन करके कहा, 'हे नदी! जिस तरह तूने हम लोगोंकी गति रोक रखी, उस तरह तुम यहां वृहत् हृदके आकारमें विस्तृत हो कर शत्रुका भी पथ रोकी रहो।' बाद वे पैदल नदी पार कर गये। वह दिन तो उन्होंने एक निर्जन स्थानमें आश्रय ले कर बिताया। दूसरे दिन उन्हें खानेको थोड़ी खीर मिली। स्थविरने एक ही बरतनमें खीरको दो भाग कर एक भाग धातुसेनको खाने कहा, किन्तु उन्होंने मामा स्थविरके पात्रमेंसे अन्न ग्रहण करना अनुचित समझ, खीरको जमीन पर डाल कर भोजन किया। इससे भी स्थविर भांजेकी महानुभवता समझ गये।

उधर पांच वर्ष राज्य कर चुकने पर तामिलराज पाण्डु पञ्चत्वको प्राप्त हुए। पीछे उनका लड़का फरीन्द्र राजा हुए। इनका कनिष्ठ भाई छोटा फरीन्द्र राज्यका शासनकर्त्ता बनाया गया। इन दो राजाओंके राजत्वकालमें (४५५ ई०में) धातुसेनने उनसे लड़ाई छेड़ दी। लड़ाईमें शत्रु सम्पूर्ण रूपसे पराजित और विनाश हुए। सोलह वर्ष राज्य करने बाद फरीन्द्रकी मृत्यु हो गई। पीछे छोटा फरीन्द्र राजा हुआ। किन्तु दो ही मासके बीचमें वे धातुसेनके हाथसे युद्धमें मार डाले गये। इनके मरने पर तामिलजातीय दाठेयने तीन वर्ष राज्य किया। पीछे वे भी धातुसेनसे मारे गये। बाद तामिल वंशके पिठेय राजा बने। ये भी सात महीनेके बाद ही धातुसेनके युद्धमें विनष्ट हुए। इसी जगह तामिल वंशका शेष हुआ और धातुसेन सिंहलके सिंहासन पर बैठे।

धातुसेनने राजा हो कर अपने भाईकी सहायतासे तामिलको अच्छी तरह पराजित किया। पीछे उन्होंने अपने देशमें २४ दुर्ग निर्माण किये, सुशासनसे प्रजाकी सुख शान्ति खूब बढ़ाई और विदेशियोंके हाथसे आक्रान्त

धर्म का पुनरुत्थान किया। जिन सब सम्भ्रान्त व्यक्तियों ने तामिलके साथ सम्बन्ध स्थापन किया था, राजा धातुसेनने उनका धन-रत्न इस ख्यालसे छीन लिया कि वे न तो मेरी ही रक्षा करते और न धर्म की। रोहणसे पलातक सम्भ्रान्त व्यक्ति पुनः आ कर राजासे सम्मानित हुए। धातुसेनने महावालुका नदीमें एक बांध दे कर जलहीन शस्यक्षेत्रमें जल-सञ्चालनका उपाय कर दिया और श्रेष्ठ याजकोंकी शालीधानके लिये वे सब जमीन दान दे दीं। उन्होंने एक आतुराश्रम भी स्थापन किया था। गण नदी और कालवापी दीर्घिकामें तीन बांध दिये गये थे। उन्होंने सेना भेज कर बोधिवृक्षका मन्दिर और महाविहारका उद्धार किया तथा धर्माशोककी नाईं याजकोंको चारों प्रकारके दानादि द्वारा उपयुक्त सम्वर्द्धना पूर्वक पिटकत्रयके विषयमें एक महासभाकी स्थापना की। इसके सिवा उन्होंने "स्थविरवाड़ा" नामक याजक-समाजके लिये १८ विहार निर्माण किये और उन अठारहों विहारके समीप १८ जलाशय खुदवाये। इन अठारहों जलाशय और विहारके नाम ये थे:—कालवापी, कोटापाश, दक्षिणागिरि, वर्द्धनम्, पुष्पावलोक, भल्लाटक, पाशनाशन, मङ्गलितपावीति, धातुसेन, पूर्वकी ओर कम्बवीति, अन्तरामगिरि, अट्टाल प्रदेशमें धातुसेन, कश्यपोठिक पर्वत पर कश्यपोठिक, रोहण प्रदेशमें दयाग्राम, शालवाण और विभीषण-विहार। इसके अलावा उन्होंने कई जगह अपने नाम पर जलाशय और विहारकी स्थापना की थी। उन्होंने २५ हाथ मयूर-परिवेण स्तम्भ तोड़ फोड़ कर २० हाथ ऊँचा एक स्तम्भ निर्माण किया। महाप्रासाद जो नष्ट होता जा रहा था, सुधारा गया। प्रधान तीन स्तूपके ऊपर छत्र दिये गये। बोधिवृक्षमें जल देनेके उद्देश्यसे बोधिवृक्षस्नान नामक देवताओंके प्रियतिष्यकी नाईं एक उत्सवकी प्रतिष्ठा की गई। उस जगह उन्होंने सचल पित्तलमयी षोडश पुत्तलिका बनवा दीं। उसी समयसे सिंहल-राजगण प्रत्येक बारह वर्षमें बोधिस्नान-उत्सव करते आ रहे थे।

अम्बमालक विहारमें महामहीन्द्र स्थविरका शरीर-दाह किया गया था। राजा धातुसेनने उस स्थान पर स्थविरकी एक प्रतिमा स्थापित की और उस समय उन्होंने एक मेला करके दीपवंशका पाठ कराया तथा उसके प्रचारके लिये एक हजार खण्ड पुस्तक वितरण की थीं। इस उपलक्षमें समागत याजकोंको चीनी दान दी गई थी। उन्होंने अभयगिरि-विहारका जीर्ण संस्कार किया था। बुद्धदेवकी प्रतिमाके लिये एक स्वतन्त्र कक्षा बनाई गई। बुद्धदासने इस प्रतिमाके जो रत्नमय नेत्र बनवा दिये थे, उनके अपहृत हो जाने पर धातुसेनने अपनी चूड़ामणि (राजमुकुटकी मणि)-से पुनः दो नेत्र, चूर्णसे प्रतिमाका केशभाग सज्जित और स्वर्णसूत्रसे सामनेके बालका गुच्छा बनवा दिया था। शाणिट प्रस्तरनिर्मित बुद्धप्रतिमाके और उपसम्भवकी प्रतिमाके मस्तकके चारों ओर प्रकाश होनेके लिये धातुसेनने अपने मुकुटके बहुतसे रत्न उसमें जड़वा दिये थे और बोधिवृक्षके दक्षिण मैत्रेय बोधिसत्वका मन्दिर बनवा कर उन्हें राजोपयुक्त वसन भूषणसे सुसज्जित करके चारों ओर एक योजन पर्यन्त सुरक्षित बना दिया। उन्होंने सभी विहारकी धातु नामक एक तरहके रंगसे चित्रित करवा दिया था और बोधिवृक्षके विहारके गलेमें रांगा दिलवा दिया था। इन्हींके यत्नसे रामस्तूप और दन्तमन्दिरका जीर्ण-संस्कार हुआ। 'दन्तधातु' की रक्षाके लिये मणि-खचित स्वर्णपुष्पमें एक पटारी बनवाई गई। तीन प्रधान चैत्यमें स्वर्ण छत्र दिये गये और एक 'कुम्बतन' निर्माण किया गया। अधार्मिक महासेनसे जब महाविहार ध्वंस किया गया, उस समय तक धर्मरुचि सम्प्रदाय चैत्यपर्वत पर रहते थे। धातुसेनने उन लोगोंकी प्रार्थनाके अनुसार चैत्यपर्वतका अवस्थान विहार उन्हें प्रदान किया था।

राजा धातुसेनके दो पुत्र थे, कश्यप और मौद्गल्यायन। पुत्रके सिवा उनके प्राणसे अधिक प्यारी मनोरमा नामकी एक कन्या थी जिसका विवाह उन्होंने अपने भांजेसे करा दिया था, पीछे भांजेको सेनापति बनाया। इसने निरपराध अपनी माताकी उत्तेजनासे राजकुमारीको चाबुकसे खूब पीटा जिससे लोहू बह निकला। लोहूसे रंगे हुए कपड़ेको देख कर जब राजाको सब हाल मालूम हो गया तब उन्होंने अपने भांजेकी माताको नंगी करा कर जीते जला दिया। राजजामाताने क्रुद्ध हो

राजकुमार कश्यपके साथ षड़यन्त्र करके राजाको कैद कर लिया। राजकुमार कश्यपने दुष्ट साथियोंके बहकावेमें पड़ कर राजपुरुषोंको विनाश कर छत्रदण्ड ग्रहण किया। राजकुमार मौद्गल्यायनने जब उन्हें दमन करना असमर्थ समझा, तब वे जम्बूद्वीप (भारतवर्ष) को चल पड़े। राजजामाताने राजा कश्यपको राज्यके गुप्त धनका पता लगानेके लिये उत्तेजित किया और कहा, "राजाने गुप्त धन अपने छोटे लड़केके लिये रख छोड़ा है।" राजा कश्यपने उसी समय बन्दी पिताको धनादि दिखा देनेके लिये कहला भेजा। राजा धातुसेन यह सुन कर अवाक् हो रहे। कश्यपने दूतसे इसका कुछ जवाब न पा कर पुनः दूत भेजा। अन्तमें बन्दी राजाने कहा, 'तुम मुझे कालवापी-सरोवरके पास ले चलो, मैं वहीं धनागार दिखलाये दूंगा।' राजा कश्यपने प्रलुब्ध हो कर पिताके लिये एक टूटी फूटी बैलकी गाड़ी भेजी। वृद्ध राजा भी उसी पर चढ़ कर काल-वापीकी ओर चल दिये। गाड़ीवानने राजाको क्षुधातुर देख थोड़ा भूना चावल जो वह खा रहा था, दिया। राजाने भी बहुत प्रसन्न चित्तसे उसे खाया और पीछे मौद्गल्यायनके नामसे एक पत्र लिखा, तथा उसे द्वार-नायकके पद पर नियुक्त किया। कालवापी-विहारके स्थविरने राजाका आगमन सुन कर उनके लिये छिपके मांस इत्यादिके साथ अच्छी रसोई पकाई। जब राजा वहां पहुंचे तो दोनोंने पास पास बैठ कर घंटों कथा-वार्त्ता की। याजकने उन्हें प्रबोध देनेकी चेष्टा की। पीछे वृद्ध राजाने भोजनादि करके कालवापी सरोवरमें प्रवेश किया और थोड़ा जल पी कर राजानुचरोंसे कहा, 'बन्धुगण! यही मेरी धनसम्पत्ति है।' राजानुचर यह सुन कर उसी समय उन्हें राजधानीको ले गये और वहां जा कर उन्होंने राजासे कहा, 'हुजूर! यह बूढ़ा जब तक जीता रहेगा, तब तक केवल छोटे लड़केके लिये धन जमा करेगा और हम लोगोंके विरुद्ध लोगोंको उत्तेजित करेगा, इससे अच्छा है, कि इसे मार डालिये।' यह सुन कर राजा कश्यप राजपरिच्छदसे भूषित हो कारागार-में पिताके सामने गये और बहुत घमंडसे उनके सामने टहलने लगे। वृद्ध राजाने जब समझा कि वह मुझे मारने को आया है, तब उन्होंने स्नेहपूर्वक पुत्रसे कहा, 'राजाधिराज! मौद्गल्यायन मेरा उतना ही स्नेहका पात्र है जितना कि तुम।' यह सुन कर कश्यप हंस पड़े और उन्होंने राजाको खुले बदनमें चाबुक मारनेकी आज्ञा दी। पीछे जीवितावस्थामें उन्हें लोहेकी जंजीरसे बांध जमीनमें गड़वा दिया, केवल सिर बाहर निकला रहा। कुछ दिन बाद दुरात्मा कश्यपने उसे भी कीचड़से ढकवा दिया। १८ वर्ष राज्य करने बाद राजा धातुसेन इस तरह ४७७ ई०में पुत्रके हाथसे मार डाले गये।

धातुसेन—सिंहलको प्राचीन राजधानी अनुराधापुरके निकटवर्त्ती एक पर्वत। राजा धातुसेनने यहां अपने नाम पर विहार और दीर्घिकाको प्रतिष्ठा की थी।

धातुस्तम्भक (सं० त्रि०) वीर्यको रोकनेवाला, जिससे वीर्यका स्तम्भन हो और वह देरसे गिर पड़े।

धातुस्तम्भनकर (सं० क्लो०) जातीफल।

धातुहन (सं० पु०) गन्धक।

धातू (सं० स्त्री०) धातु देखो।

धातूपल (सं० पु०) धातुः उपधातु रूपः उपलः। कठि-निका, खरिया मट्टी, खरी।

धातृ (सं० त्रि०) धा-तृच्। १ धारक, धारण करनेवाला। २ पोषक, पालन करनेवाला। (पु०) ३ ब्रह्मा। ४ विष्णु। ५ आत्मा। ६ वायुभेद। ७ आदित्यभेद। ८ ब्रह्माके एक पुत्रका नाम। ९ भृगु-पुत्रभेद, भृगुमुनिके एक पुत्रका नाम। १० प्रजासर्गकारक सप्तर्षि।

धातृपुत्र (सं० पु०) धातुः पुत्रः ६-तत्। ब्रह्माके पुत्र सनत्कुमार।

धातृपुष्पिका (सं० स्त्री०) धातृपुष्पी, स्वार्थे कन्, पूर्व ह्रस्व, कप., टापि अत इत्वं। धातकी, धवका फल।

धात्र (सं० क्लो०) धीयते अनाश्यत धा-अधि करणे ष्ट्रन्। १ भाजन, पात्र, बरतन। धाता ब्रह्मा-आदित्यो वा देवता अस्य अण्। २ आदित्य देवताक वा ब्रह्म-देवताक द्वादश कपालसंस्कृत पुरोडाशादि।

धात्री (सं० स्त्री०) धीयते पीयते धा-ष्ट्रन् (सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्। उण् ४।१५८) टित्वात् ङीष्। वा दधाति धरति धा-तृच् ङीप्। १ माता, मा।

आठ महीनेके गर्भका ओजः माता अर्थात् गर्भधारिणीके

एवं गर्भके प्रति बारम्बार दौड़ता रहता है; इसीसे जो बालक आठवें महीनेमें भूमिष्ठ होता है, उसकी अकसर मृत्यु होती है। २ उपमाता, वह स्त्री जो किसी शिशुको दूध पिलाने और उसका लालन पालन करनेके लिये नियुक्त की जाय, धाय, दाई। इसके लक्षणादिका विषय भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है—

धात्रीलक्षण– बालकको दूध पिलानेके लिये यदि धात्री नियुक्त करनी हो, तो उसका दोषगुण भली भांति विचार कर निम्नलिखित प्रकारकी धात्री रखनी चाहिये। जो धात्री स्वजाति हो, मध्यमवयस्का अर्थात् युवती हो, सुशीला हो, जो सर्वदा लज्जासे मुख झुकाये रहती हो, शुद्धदुग्धा अर्थात् जिसका दूध वातादि दोषसे दूषित न हो, जिसके दूध अधिक हो, जो जीववत्सा अर्थात् जिसकी सन्तान हो, जो दयाशील हो, स्वाधीना हो, जो थोड़े हीमें सन्तुष्ट हो जाती हो, जो अच्छे वंशकी हो, जिसका आचरण उत्तम हो और जो शिशुको अपनी सन्तान जान कर दूध पिलाती हो, वही स्त्री धात्रीके योग्य है।

निषिद्धा धात्रीका लक्षण—जो शोकाकुला, क्षुधिता, परिश्रान्ता, व्याधियुक्ता हो, जिसका अङ्ग भग्न या अपूर्ण हो, जो अत्यन्त मोटी वा अत्यन्त पतली हो, गर्भिणी हो, ज्वरपीड़ित हो और जिसके दोनों स्तन लम्बे और बहुत ऊँचे हों, (ऊँचा स्तन चूसनेसे बालकका श्वास बन्द हो जाता है और लम्बा स्तन बालककी नाक और मुंहको ढक लेता जिससे उसकी मृत्यु होती है,) जो अजीर्ण अथवा अपथ्य खानेवाली हो, दूषित काममें आसक्त हो तथा दुःखान्विता और चञ्चलचित्तवाली हो, ऐसी दोषयुक्त स्त्रीका दूध पीनेसे शिशु रोगातुर हो जाता है। दूध पिलाते समय बालककी माता वा धात्रीको सुन्दर वस्त्र पहन कर आसनके ऊपर पूर्वमुख किये बैठना चाहिये। पीछे दाहिने स्तनको जलसे अच्छी तरह धो कर कुछ दूध नीचे गिरा देना चाहिये और तब शिशुको उत्तरमुखी करके गोदमें ले कर दूध पिलाना चाहिये।

दधाति धारयति सर्वमिति धा-तृच्-ङीप्। ३ क्षिति, पृथ्वी, जमीन। ४ *गायत्रीस्वरूपिणी भगवती।* ५ *गङ्गा।* ६ आमलकी वृक्ष, आंवला। यह वृक्ष सर्वोत्तम गुणदायक है। इसका गुण रक्तपित्त और प्रमेहनाशक तथा अत्यन्त पुष्टिकारक और रसायन है। आमलकी अम्लरस द्वारा वायु, मधुर रस और शीतलता द्वारा पित्त एवं कषाय रस और रूक्ष-गुण द्वारा कफ नाश करती है। सुतरां आमलकी त्रिदोषनाशक है। इसकी मज्जामें भी वैसा ही गुण है। (भावप्र) आमलकी और हरीतकी देखो।

धात्रीका उत्पत्ति विवरण—पद्मपुराणमें इस प्रकार लिखा है। जलन्धरकी स्त्री वृन्दाके मरने पर जब विष्णु मोहाच्छन्न हो गये, तब देवताओंने महादेवके कथनानुसार शक्तिकी आराधना की। इस पर देवीने सन्तुष्ट हो कर कहा था, 'मैं त्रिधा हो कर सत्व, रज और तमोगुणमें वर्त्तमान हूं। वही तीनों गुण मेरी लक्ष्मी गौरी और स्वधारूप हैं। अतः उन्हींकी आराधना करनेसे तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा।' देवताओंने वैसा ही किया। तीनों गुणोंने देवताओंको तीन बीज देकर कहा, अभी जहां विष्णु हैं, वहीं इन तीनों बीजोंको ले जा कर बोओ। तीन बीजसे तीन पौधे उत्पन्न हुए और वही धात्री (आँवला), मालती तथा तुलसी कहलाये। स्वधासे धात्री, लक्ष्मीसे मालती और गौरीसे तुलसीकी उत्पत्ति हुई। इन तीन वृक्षोंके पानेसे विष्णुका मोह जाता रहा।

धात्री-माहात्म्य—माता जिस तरह अपनी सन्तानके प्रति दया रखती है, धात्रीकी भी उसी तरह मनुष्योंके ऊपर दया बनी रहती है।

जो धात्री स्नान करते हैं उनके सब विघ्न दूर हो जाते हैं और उन्हें समस्त तीर्थस्नानका फल मिलता है। जो धात्री फलसे बाल रंगाते हैं, वे कलिके सब दोषोंसे रहित हो जाते हैं और अन्तमें विष्णुपदको पाते हैं। फल खानेसे भी विशेष पुण्य होता है—

"न गंगा न गया पुण्या न काशी न च पुष्करं।
एकैव च यथा पुण्या धात्री माधववासरे॥
कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र धात्रीस्नानं समाचरेत्।
यस्य तज्जलमश्नीयात् सोऽश्वमेधमवाप्नुयात्॥"

(पद्मपु० उत्तरख० १२७ अ०)

हरिवासरके दिन एक धात्रीवृक्ष सब तीर्थोंकी *अपेक्षा पुण्यदायक है। इस दिन काशी, गया और* पुष्कर भी इसके समान नहीं है। जो कार्त्तिक मासमें

धात्री-स्नान करते हैं, उन्हें अश्वमेधका फल मिलता है। जो केवल धात्रीफलका स्मरण करते हैं, उनके पूर्व जन्मके सभी पाप नाश हो जाते हैं और जो प्रतिदिन उसका नाम लेते हैं, उनके मानसिक, वाचिक और कायिक समस्त पाप जाते रहते हैं। अष्टमी, नवमी, अमावस्या, रविवार और संक्रान्ति इन सब दिनोंमें जो धात्रीका स्मरण करते, उनके घरमें धात्री सर्वदा वास करती हैं और प्रेत, कुष्माण्ड (शिवके अनुचर) तथा राक्षस भाग जाते हैं। (पद्मपु० उत्तरख० १२७ अ०)

जो धात्रीवृक्षकी छायामें पितरोंके उद्देशसे श्राद्धादि कार्य करते हैं, उनके पितर मुक्ति लाभ करते हैं। मस्तक, हस्त, मुख और कण्ठ आदि स्थानोंमें जो धात्री फल धारण करते हैं, वे महामहिमशाली और पुण्यात्मा होते हैं।

पद्मपुराणमें और भी लिखा है, कि जो धात्रीफल अपने सारे शरीरमें लगाते अथवा सजाते तथा खाते हैं, वे नारायण तुल्य समझे जाते हैं। जो अपनी अंजलीमें निहित धात्री फल धारण करते हैं, नारायण उन्हें एक व देते हैं। जो मनुष्य अन्तकालमें मुक्ति और विपुल भोगकी इच्छा रखते हैं उन्हें करसम्पुटमें ले कर (अंजली) धात्रीफल नहीं खाना चाहिये। जो वैष्णव धात्री-फलकी माला न पहनते, ते व ैष्णवपदवाच्य नहीं हो सकते हैं तुलसीमालाकी नाईं धात्रीमाला भी कभी परित्याज्य नहीं है। धात्रीमाला जब तक मनुष्यके गलेमें लटकती रहेगी, तब तक विष्णुका वास उनके हृदयमें रहता है और उतने ही युग सहस्र वे वैकुण्ठमें वास करते हैं। धात्री सर्वाङ्गस्वरूपा हैं। इसीसे यत्नपूर्वक इस वृक्षकी रोपना, सेवना और सींचना चाहिये। जो मनुष्य यह धात्रीमाहात्म्य ध्यान दे कर सुनते हैं, उन्हें चतुर्वर्गफल मिलता है। (पद्मपु० उत्तरख० १२७ अ०)

क्रियायोगसारमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—तुलसीवृक्षका आश्रय कर जो जो देवता वास करते हैं, शुभ वा अशुभ जो कोई कार्य धात्रीवृक्षके तले किया जाता है, वह अक्षय होता है। नये पत्तों द्वारा हरिकी पूजा करनेसे पाप नाश होता है। जहां धात्री और तुलसी का पेड़ नहीं है, वह स्थान अपवित्र समझा जाता है। धात्री और तुलसीहीन स्थान पर अलक्ष्मी और कलि वास करता है। धात्रीमाला गलेमें पहने यदि संयोग-वश श्मशानकी जगह पर मृत्यु हो जाय, तो गङ्गामें मृत्यु होनेसे जो फल होता है वही फल उसे भी मिलता है। धात्री और तुलसीके मूलकी मट्टी प्रतिदिन ग्रहण करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। यदि कोई धात्री-वृक्षमें आघात करे, तो वह आघात हरिके अङ्गमें पहुँचता है। धात्री सर्वदेवस्वरूपिणी और केशव-प्रिया है। इसके गुण माहात्म्यादिका वर्णन करनेमें ब्रह्मा भी असमर्थ हैं।

एकादशीतत्त्वमें लिखा है, कि जहां तुलसीपत्र और सफला धात्री नहीं है, वह म्लेच्छ देश है, ऐसे स्थान पर वैष्णवगण नहीं जाते हैं। हरिभक्तिविलासमें इस प्रकार लिखा है—

पिता और पितामहादि तथा जो सब सगोत्र अपुत्रक हैं, जो वृक्षयोनि और कीटत्वको प्राप्त हुए हैं, जो रौरवादि घोरतर नरकमें वास करते हैं तथा जिनका जन्म पिशाचादि प्रेतयोनिमें हुआ है, वे सबके सब धात्रीमूलमें दिये हुए जलसे तृप्ति लाभ करते हैं। अष्टहत्तर सौ बार वृक्षको अभिषेक कर प्रदक्षिणपूर्वक रातको जागे रहना चाहिये। ७ सेना, फौज। ८ गो, गाय। ९ आर्याछन्दका एक भेद। इसमें १८ गुरु और १८ लघु मात्राएँ होती हैं।

धात्रीपत्र (सं० क्लो०) धात्रीपत्रमिव पत्रं यस्य। १ तालीशपत्र, तमाल या तेजपत्तेकी जातिका एक पेड़। २ आमलेकी पत्र, आँवलेकी पत्ती।

धात्रीपुत्र (सं० पु०) धात्र्याः उपमातुः पुत्रः। १ नट। २ उपमातृपुत्र, धायका लड़का।

धात्रीफल (सं० क्लो०) आमलक फल, आँवला, आमला।

धात्रीविद्या (सं० स्त्री०) धात्रीविषयक विद्या (Midwifery) जिससे प्रसवादिका ज्ञान और प्रसूतिके कार्य्यादिका निरूपण हो, उसे धात्रीविद्या कहते हैं। जो इस विषयमें पारदर्शी हैं, उन्हें धात्री (Midwife) वा दाई कहते हैं। इनमें विशेष कर प्रसव-विषयक ज्ञानका रहना विशेष प्रयोजन है। इसीसे पहले प्रसवका विषय और उसकी संज्ञाका निर्देश करना आवश्यक है।

जिस कार्य द्वारा जरायुसे भ्रूण, तत्संलग्न फूल (Placenta) और आच्छादनी झिल्ली (Fœtal membrane)-के साथ भूमिष्ठ हो कर निरपेक्ष भावसे जीवन-रक्षा हो सकती है उसे प्रसव कहते हैं। देहतत्त्वविद् पण्डित लोग इस प्राकृतिक व्यापारके अनेक कारण बतलाते हैं तथा आयुर्वेदादिमें भी लिखा है, कि गर्भवती नारी नवें, दशवें, ग्यारहवें वा बारहवें महीनेमें प्राकृतिक नियमानुसार सन्तान-प्रसव करती है। इसके व्यतिक्रम होनेसे अर्थात् नवें महीनेके भीतर वा बारहवें महीनेके बाद यदि प्रसव हो, तो वह प्राकृतिकविरुद्ध वा विकृत गर्भ समझा जाता है। प्रायः सभी जगह नवम वा दशम मास ही प्रसवका निर्दिष्ट समय बतलाया है। ग्यारवें महीनेमें कभी कभी प्रसव होते देखा जाता है। प्रसवके समय गर्भवती आसन्नप्रसवा है वा नहीं, पहले यह जान लेना चाहिये। जब गर्भवतीका कुक्षि-देश शिथिल और हृदयका बन्धन विमुक्त होता है तथा जङ्घे अर्थात् नितम्बके सामने भागमें दर्द होने लगता है, तब उसे आसन्न-प्रसवा जानना चाहिये। आसन्नप्रसवा स्त्रीको बारम्बार कटी और पूर्वदेश वेदनाके साथ मल और मूत्रका वेग उपस्थित होता है। गर्भवती ठीक आसन्नप्रसवा है, यह मालूम हो जाने पर अर्थात् प्रसव कालके उपस्थित होने पर उनके शरीरमें तेल लगा कर उष्ण जलसे उसे स्नान कराना चाहिये। बाद उसे कुछ गरम माँड़ मिले हुए भातको घीके साथ पिला देना चाहिये। अनन्तर वह आसन्न-प्रसवा स्त्री कोमल और विस्तृत शय्या पर धीरे धीरे दोनों जङ्घको फैला कर ऊर्द्ध-मुख हो सो जावे। बाद निर्भीक, प्रसव करानेमें सुशिक्षिता, हिताकांक्षिणी, प्राचीना अर्थात् जिसने अनेक प्रसव कराये हों और अनेक प्रसव देखे हों, ऐसी चार स्त्रियां अपने नाखून कटवा कर गर्भिणीके परिचारिका-कार्यमें नियुक्त रहे। इनमेंसे एक तो गर्भवतीके योनि-द्वारके चारों बगल तेल लगावे। गर्भवतीको उस समय *अपनी ताकत भर कूंथना चाहिये, किन्तु यदि प्रसव-वेदना* न हो, तो कूँथना मना है। गर्भवती यदि असमयमें कूँथे, तो गर्भका शिशु मूक, बधिर, श्वास, कास आदि व्याधियोंसे ग्रस्त रहता है और गर्भिणीकी देह भी शिथिल हो जाती है। इसीसे उसे सावधान हो कर कूथना चाहिये। पहले थोड़ा थोड़ा करके, पीछे कुछ जोर दे कर कूंथना चाहिये। बाद गर्भस्थ शिशुके योनि-द्वार पर आ जानेसे जब तक जरायुको अर्थात् गर्भा-वरण-चर्ममण्डलीके साथ बच्चा भूमिष्ठ न हो जाय, तब तक अपनी शक्तिके अनुसार खूब जोरसे कूँथते रहना चाहिये। ऐसा करनेसे प्रबल सूति-मारुत द्वारा जिस तरह धनुषसे तीर छूटता है, उसी तरह गर्भस्थ भ्रूण आपसे आप भूमिष्ठ हो जाता है।

बालकके भूमिष्ठ होने पर यथाविधि कुलाचार और स्त्री-आचार आदि जो जो पहलेसे चला आ रहा है, उसी नियमका प्रतिपालन करना चाहिये। (भावप्रका०)

सुश्रुतमें भी नवम वा दशम मास प्रसवका निर्दिष्ट समय बतलाया है। अतः नवम मासमें प्रशस्त दिन देख कर गर्भवतीको सूतिकागारमें प्रवेश करावे। यह घर पूर्व अथवा दक्षिण दिशामें रहे। घरकी लम्बाई ८ हाथ और चौड़ाई ४ हाथकी होनी चाहिये। यह घर भिन्न भिन्न श्रेणीके लिये भिन्न भिन्न प्रकारका होना बतलाया है। ब्राह्मणके लिये श्वेतवर्णकी, क्षत्रियके लिये रक्तवर्णकी; वैश्यके लिये पीतवर्णकी और शूद्रके लिये कृष्णवर्णकी भूमि प्रशस्त है। विल्व, वट, तिन्दूक और भल्लातक इन चार प्रकारकी लकड़ियोंका सूतिकागारमें पलंग बनवाना चाहिये। घरके भीतरमें भलीभांति लेप रहे। गर्भवतीका कुक्षिदेश जब शिथिल और हृदयका बन्धन मुक्त हो जाय तथा दोनों ऊरुमें दर्द होने लगे, तब समझना चाहिये, कि प्रसवका उपयुक्त समय पहुंच गया है। इस समय कटी और पृष्ठ देशके चारों ओर वेदना, बारम्बार मलमूत्रकी प्रवृत्ति तथा अपत्यपथमें वेदना मालूम पड़ती है। प्रसवके समय मङ्गल कार्य और स्वस्ति-वाचन होता रहे। छोटे छोटे लड़के पुंलिङ्ग नामक फल अपने अपने हाथमें लिये प्रसूतिको चारों ओरसे घेरे रहे। गर्भिणीको तेल लगा कर उष्णोदक परिषेचनपूर्वक *जौका माँड़ भर पेट पिला देना चाहिये।*

बाद उसे मृदु, कोमल और विस्तृत शय्या पर तकिये पर शिर दिए इस तरह सुला दे, कि उसके दोनों जङ्घ कुछ उन्नतमें रहे। प्रसव-

कार्य में कुशला परिणतवयस्का चार स्त्रियां प्रसूतिकी परिचर्या करें। बाद वे सूतिका गृहमें प्रवेश कर गर्भिणी-को अनुलोम भावसे अर्थात् ऊपरसे नीचे तमाम तेल लगावें। उस समय गर्भिणीको 'अला अला' कह कर कूंथना चाहिये। बाद गर्भनाड़ीका बन्धन जब शिथिल हो जाय और कटि, कुक्षि, वस्ति तथा शिरोदेशमें दर्द होने लगे, तब कुछ जोर दे कर कूंथना चाहिये। असमय-में कूंथनेसे शिशु वधिर और मूक होता है तथा उसके गाल और मस्तककी हड्डी टेढ़ी हो जाती है अथवा वह कास, श्वास, शोष आदि रोगोंसे ग्रस्त वा कुब्ज और विकटाकार हो जाता है। सन्तान यदि विपरीत भावमें गर्भमें रहे, तो उसे सरल भावमें ला कर प्रसव कराना चाहिये। गर्भसङ्ग होनेसे अर्थात् गर्भके निःसृत नहीं होनेसे कृष्णसर्पकी केंचुल अथवा मैनाफल द्वारा प्रसव-द्वार पर धूमप्रयोग करना चाहिये अथवा हिरण्य-पुष्पका मूल, सुवर्चल लवण वा गुलञ्च गर्भिणीके हाथ और पैरमें पहना देना चाहिये। प्रसव हो जाने पर जातबालककी जरायु नाड़ीको मधु, घृत और सैन्धव द्वारा विशोधित करना चाहिये। मूर्द्धदेश पर घृताक्त वस्त्र-खण्ड रख देना चाहिये। पीछे सूत द्वारा उसे नाभि (नाड़ीका अष्टाङ्गुल) परिमाण बाँध कर काट डाले और उस सूतेके कुछ अंशको कुमारके गलेमें बाँध देवें। बाद जातबालकको शीतल जलसे आश्वासित कर जात कर्म समाप्त करके मधु, घृत, अनन्त-मूल और ब्राह्मीरसके साथ सुवर्ण चूर्णको मिला कर चटाना चाहिये। पीछे चरबीका तेल लगा कर क्षीर-वृक्षके काढ़ेमें गन्धद्रव्यविशिष्ट जल डाल कर अथवा रौप्य और स्वर्णके साथ जलको गरम कर उस जलसे अथवा कुछ उष्ण कैथके पत्तोंके काढ़ेसे दोष काल अवस्थाका विचार कर स्नान करना चाहिये।

तीन वा चार रातके बाद हृदयस्थ धमनीका पथ साफ हो जाने पर प्रसूतिके स्तनोंमें दूध प्रवर्त्तित होता है। पीछे प्रथम दिन उसे अनन्तमूलमिश्रित घृत और मधु प्रति दो पहर और शामको, द्वितीय दिन लक्ष्मणाका क्वाथ और तृतीय दिन घृत पिलावे। बाद अपने करतल भर घी और मधुको ले कर दिनमें दो बार पिलाना चाहिये। इसके अनन्तर प्रसूतिको वैडङ्गलेका तेल लगा कर वायुशान्तिकर औषध पिलानी चाहिये। किसी प्रकारका दोष लगनेसे उस दिन अर्थात् पाँचवें दिन पिप्पलीमूल, गजपिप्पली, चित्रक और शृङ्गवेर इन सबके चूर्णको उष्ण गुड़ोदकके साथ पिलाना उचित है। इस प्रकार दो वा तीन दिन अथवा तब तक करते रहे, जब तक दूषित शोणित संशोधित न हो जाय। बादमें शोणितके संशोधित हो जानेपर विदारि गन्धादिका क्वाथ और घृत अथवा दुग्धके साथ यवका मण्ड तीन रात तक पिलाते रहे। अनन्तर बल और अग्निके अनु-सार यवकोल और कुलत्थ आदिके क्वाथ और मांसके रस-के साथ भोजन करावे। इस प्रकार अर्द्धमास बीत जाने पर शरीर संशोधित हो जाता है और सूतिकासे निकल कर आहारादिके नियमका परित्याग करना होता है। कोई कोई कहता है, कि जब तक फिरसे आर्त्तव न निकले, तब तक सूतिकावस्था मानी जाती है। (सुश्रुत)

पाश्चात्य पण्डितगण इसका विषय इस प्रकार कहते हैं। प्राकृतिक नियमानुसार गर्भस्थ जीव भूमिष्ठ होता है। महात्मा वफन इस कामको वृक्षसे सुपक्व फल गिरनेके साथ तुलना करते हैं। हार्भि और बर्डेकका कहना है, कि पूर्णमास बीत जाने पर जरायु भ्रूणाधारणमें अस-मर्थ हो कर उसे बहिष्कृत कर देती है। फलतः प्राकृ-तिक समय दशम ऋतु कालके साथ और ... है, इस कारण डाक्टर टाइलर स्मिथने बहुत खोजके बाद यह स्थिर किया है, कि डिम्बकोषका स्पान्दचेतनिक स्नायु कर्त्तृक प्रसव और ऋतु ये ही दो काम पूरे होते हैं अर्थात् जिस प्रकार उक्त द्विविध स्नायुकी क्रियासे धनु-ष्टङ्कार रोग उत्पन्न होता है, उसी प्रकार पूर्णगर्भकालमें डिम्बकोषकी चैतनिक स्नायु कसेरुमज्जा हो कर जरायु-को स्पन्दिक स्नायुको उत्तेजित करती है और उसकी मांसपेशीकी सङ्कोचकक्रियाके उपस्थित होनेसे ही भ्रूण भूमिष्ठ होता है।

स्वाभाविक प्रसव—इस प्रसवकी संज्ञा यदि स्थिर कर सकें, तो इसे विकृत और सङ्कर प्रसवके साथ श्रेणीबद्ध करना सहज हो जायेगा। प्रसव कार्यके तीन अङ्ग हैं, यथा, १ भ्रूणबहिष्करण-शक्ति, २ भ्रूणका निर्गमपथ और ३ भ्रूण-शरीर। यदि इन अङ्गोंमें कमसे कम २४ घण्टोंके

भीतर सन्तान अपना मस्तक आगे किये हुए वस्तिकोटर-में प्रवेश कर फूलके साथ सहजमें भूमिष्ठ हो जाय, तो उसे स्वाभाविक प्रसव कहते हैं। इस प्रकार यदि न हो, तो उसे विकृत वा अस्वाभाविक प्रसव समझना चाहिये। यह विकृत प्रसव उल्लिखित तीन अङ्गोंको परस्परानुप-योगिताके भेदसे तीन श्रेणियोंमें विभक्त है। इसकी प्रत्येक उपश्रेणीके दो वा तीन विभाग हैं। फिर ऐसे भी कई प्रकारके प्रसव हैं जिनका किसी अनपेक्ष घटनाके साथ योग रहनेसे वे उक्त दो श्रेणियोंमें नहीं रक्खे जा सकते। इसको सङ्कर-प्रसव कहते हैं। उपरोक्त नियमा-नुसार सभी प्रसव निम्नलिखित श्रेणी, उपश्रेणी और वर्गमें विभक्त किये गये हैं।

१म श्रेणी—स्वाभाविक प्रसव।

२य श्रेणी—विकृत वा अस्वाभाविक प्रसव।

(१) उपश्रेणी—बहिष्करण शक्तिके सम्बन्धमें—

१ वर्ग—दीर्घसूती प्रसव।

२ वर्ग—शक्तिहीन प्रसव।

(२) उपश्रेणी—निर्गम पथके सम्बन्धमें—

१ वर्ग—रोधक-प्रसव।

२ वर्ग—विकृत वस्तिकोटरीय प्रसव।

(३) उपश्रेणी—भ्रूण शरीरके सम्बन्धमें—

१ वर्ग—वस्तिकोटरमें असङ्गत भावमें भ्रूणका मस्तक, अथवा हस्तपदादिका आगे प्रवेश।

२ वर्ग—यमज, बहुभ्रूण वा अद्भुत भ्रूण प्रसव।

३य श्रेणी—सङ्कर प्रसव।

१ वर्ग—आगे नाड़ीको वहिष्कृति।

२ वर्ग—आवद्ध फूल।

३ वर्ग—अपरिमित शोणितपात।

४ वर्ग—मूर्च्छारोग।

५ वर्ग—विदारण।

६ वर्ग—जरायुकी विलोमक्रिया।

७ वर्ग—अकस्मात् मृत्यु।

किसी किसी ग्रन्थतत्त्ववित् पण्डितने हस्तकृत (Manual) और यन्त्रसाध्यप्रसवके भेदसे उपरोक्त प्रथम श्रेणीको विभक्त किया है। किन्तु इस प्रकारका विभाग बिलकुल गलत नहीं समझा जाता। इसीसे यन्त्र-साध्य प्रसवका विवरण जहां तक सम्भव था, लिखा गया।

प्रथम प्रवेशोद्यममें स्थिति (Presentation) है। निम्नलिखित कई प्रकारसे भ्रूणांश वस्तिकोटरमें प्रवेश करता है।

१म, मस्तकका पहले प्रवेश (Head-presentation) २य, नितम्ब, वङ्क्षण वा कटिका प्रवेश। ३य, चरण वा जानुका प्रवेश। ४र्थ, स्कन्ध, हस्तका प्रवेश।

जरायु वा वस्तिकोटरमें भ्रूणका सबसे पहले कौनसा अवयव आता है, उसका निरूपण करना परम आवश्यक है। इसीसे प्रत्येक प्रकारके निर्गमका लक्षण नीचे लिखा जाता है।

मस्तकका काठिन्य, करोटि-अस्थिकी सीवनी सन्धि, अस्थिशून्य अग्रकपाल और पश्चात् कपालका स्पर्श करने-से मस्तकका प्रथम प्रवेश जाना जाता है। नितम्बकी स्थूलता, कोमलता, मध्यस्थित गर्त्त, गुह्य और भगद्वार, अण्डकोष इत्यादिका उँगली द्वारा अनुभव करके वस्ति-कोटरमें नितम्बका प्रथम प्रवेश समझा जाता है। शिशु-के सबसे पहले प्रविष्ट होनेसे उसकी सगोल आकृति और फिमर अस्थिके पर्व प्रवर्द्धन द्वारा उसका निरूपण होता है। यदि सबसे पहले पद निकले, तो उससे उसकी दीर्घता एवं उसके और अङ्गके स्थानका समकोण, पदाङ्गुलकी समदीर्घता एवं गुल्फकी अप्रशस्तता आदिका निरूपण हो जाता है।

केहुनीका कूर्पर प्रवर्द्धन और जानुका जानुफलकी अपेक्षा अप्रशस्त और पतला होना, इन दोनोंका प्रभेद करना सहज है। हस्ताङ्गुलिकी असमदीर्घता और वृद्धा-ङ्गुलिकी प्रार्थक्य द्वारा हस्तका निरूपण होता है।

शिरकी स्थापना (Position)—प्रसव कालमें भ्रूण-मस्तक जो चार प्रकारसे वस्तिकोटरोंमें प्रवेश कर रह सकता है, उसे शिरका १म, २य, ३य, और ४र्थ पजिशन (Position) वा स्थापना कहते हैं। अर्थात् शिशु-मस्तकका अगला और पिछला भाग फरटेनेल वस्तिकोटर-के अण्डाकृतिछिद्रमें तथा त्रिकास्थि और कन्दास्थियुक्त अचल सन्धिमें जिस जिस प्रकारसे संस्पृष्ट हो कर वस्ति-कोटरमें प्रवेश करता है, उसीको शिरकी स्थापना कहते हैं।

प्रसवावस्था (Stage of labour)—सभी प्रसव कार्यों का सहजमें ज्ञान हो जानेके लिये वे चार अवस्थाओं में विभक्त किए जाते हैं। यथा—प्राकृत प्रसवके १।२ सप्ताह पहलेसे जरायु वस्तिकोटरके प्रवेशद्वारमें दब जाती है, जिससे प्रसूतिका निःश्वास-प्रश्वास कार्य पहलेकी अपेक्षा सुचारुरूपसे चलता है। किन्तु शिरामें रक्तके जाने आनेका व्याघात हो जानेसे, यदि पहलेसे अर्शरोग रहे, तो उसकी वृद्धि हो जाती है, पदमें सूजनके लक्षण देखनेमें आते हैं। मूत्रकोषके ऊपर दबाव पड़नेसे बारम्बार पेशाब उतरता है और मरल आँतोंमें दबाव पड़नेसे वेदना होती है। एक प्रकारके तैलवत् पदार्थके निकलनेसे जब भ्रूणका निर्गमद्वार पिच्छिल और प्रसारित हो जाता है तब प्रसव-वेदना आरम्भके थोड़े ही समय बाद सन्तान भूमिष्ठ हो जाती है। इन सब लक्षणाक्रान्त अवस्थाको प्रसवकी प्रासङ्गिक अवस्था कहते हैं। वास्तविकमें प्रसवारम्भसे ले कर जब तक जरायु ग्रीवा द्वार हो कर भ्रूणमस्तक न निकले। तब तक प्रथम प्रसवावस्था, वस्तिकोटरमें शिशुके प्रवेशकालसे ले कर भूमिष्ठ काल तक द्वितीय अवस्था और उसके बादसे ले कर जरायुकुसुमके निकलने तक तृतीय अवस्था कहलाती है।

वस्तिकोटरमें भ्रूण-मस्तकका प्रवेश और निर्गमक्रम इस विषयका वर्णन करनेके पहले प्रसवके जो तीन अङ्ग हैं उन्हें पृथक् पृथक् कर हर एक पर कुछ कुछ विचार करना आवश्यक है।

१म भ्रूण-बहिष्करण-शक्ति।—जरायुकी मांसपेशीकी क्रिया ही गर्भस्थ सन्तानके निकलनेका मुख्य उपाय है। क्योंकि जब प्रसूति अकस्मात् मूर्च्छित वा अचेतनावस्थामें मृतप्राय हो जाती है, उस समय भी कभी कभी सन्तान भूमिष्ठ होते देखी गई है। वह पेशी जरायुको भलीभांति आच्छादन करती है और उसका अधिकांश सूत्र (Fibre) जरायु-ग्रीवाके एक पार्श्वसे निकल कर उसे चारों ओरसे घिरे हुए पुनः उक्त ग्रीवाके विपरीत पार्श्वमें ही संलग्न रहता है। प्रसवके प्राक्कालमें उन सब सूत्रोंकी निष्पीड़क सङ्कोचक क्रियासे जरायु ग्रीवाद्वय जो कुछ प्रकाश पाती है, वह भी प्रसूति अनुभव नहीं कर सकती। इस कारण प्रसववेदना मालूम होनेके साथ ही यदि हाथसे जरायुकी ग्रीवाकी परीक्षा की जाय तो वह कुछ प्रसारित देखनेमें आती है। पीछे जरायुकी सङ्कोचन-क्रियाके प्रबल हो जानेसे जब प्रसूति स्वयं उसका अनुभव कर सकती है, तब उसे प्रसववेदना कहते हैं। यह क्रिया जितनी ही प्रबल होती जाती है, उतनी ही वेदना भी असह्य होने लगती है।

कटिदेशमें जो दर्द उत्पन्न होता है, वह समूचे पेटमें फैल कर दोनों ऊरुमें पहुँच जाता है। उस समय ऐसा मालूम पड़ता है, कि पेट मानो किसी तेज हथियारसे काटा जा रहा है। इसी कारण इसे छेदकव्यथा (Coting pain) कहते हैं। इस प्रकारकी वेदना प्रथम अवस्थामें होती है। द्वितीय अवस्थामें जो व्यथा होती है, वह पूर्वोक्त व्यथाकी नाईं सुतीक्ष्ण तो नहीं है, पर असह्य उससे अधिक मालूम पड़ती है। इस समय वस्तिदेशीय मांसपेशीकी क्रिया भी जरायुक्रियाके साथ साथ अपनेसे उपस्थित हो कर भ्रूणको नीचेकी ओर दबाती है। इस कारण द्वितीय अवस्थामें वेदनाके साथ साथ जब तक प्रसूति कुन्थन वेग नहीं देगी, तब तक उसे चैन नहीं मिलेगा। इसी कारण इस व्यथाका नाम सवेग-व्यथा रखा गया है। प्रथमोक्त व्यथामें प्रसूतिको बहुत कष्ट होता है, इसीसे वह रोती है। किन्तु शेषोक्त व्यथाके समय कुन्थनका जो वेग देना होता है, वह क्रन्दनको रोके रहता है। लेकिन व्यथा जब कुन्थन-वेगसे भी रुक नहीं सकती तब फिर प्रसूति रोने लगती है। फलतः व्यथाके साथ रोता है वा वेग देती है, यह मालूम हो जानेसे प्रायः प्रसवकी अवस्था निरूपण की जाती है।

प्रसवके समय जरायुकी सङ्कोचन-क्रियाके साथ साथ जो दर्द मालूम पड़ता है, उसके तीन कारण हैं, जैसे—(१) जरायु ग्रीवाके निम्न भागका प्रसारित होना, (२) योनि आदिका विस्तार होना और (३) जरायुकी मांसपेशी द्वारा उसकी स्नायुका दब जाना। असभ्य स्त्रियोंको प्रसवके समय जैसा कष्ट भुगतना पड़ता है, वैसा असभ्योक्त स्त्रियोंको नहीं। जरायुकी सङ्कोचनक्रियाका आश्चर्य नियम यह है, कि प्रत्येक क्रियाके प्रारम्भमें वेदना थोड़ी मालूम पड़ती है, पीछे धीरे धीरे वह बढ़ कर असहनीय

हो जाती है। प्रसवकार्यमें इस प्रकारको वेदना कई बार होती है और क्रमशः दीर्घकालस्थायी तथा समधिक यातना-दायक हो जाती है। अन्तमें जरायुकी एक ऐसी सङ्कोचन-क्रिया अर्थात् व्यथा उपस्थित होती है, कि उससे गर्भस्थ भ्रूण शीघ्र ही बाहर निकल आता है। प्रसवकी चरमावस्था जितनी ही सन्निकट होती है, उतना ही विरामकाल कमता जाता है। डाक्टर स्पाककोम्बका कहना है, कि प्रसववेदनाका विरामकाल जिस परिमाणसे कम जाता है, उसका स्थायित्वकाल उसी परिमाणसे बढ़ता भी है और जितना ही वह बढ़ता है, उतना ही प्रसूति उत्कट और असह्य यन्त्रणा भुगती है। सन्तान भूमिष्ठ हो जाने बाद फूलको बाहर निकालनेके लिये पृथक् सङ्कोचनक्रियाके आवश्यक होने पर, वह भी उल्लिखित नियमसे सम्पन्न होता है।

प्रत्येक व्यथाका फल यह है कि वह पहले भ्रूण-मस्तकको उठा कर पीछे नीचेकी ओर पहलेसे अधिक दबाव देती है। व्यथाके समय जरायुके ऊपर हाथ रख कर देखनेसे ऐसा मालूम पड़ता कि वह पहलेसे सुगोल और सुदृढ़ हो गई है। फिर व्यथाके विरामके समय जरायुके शिथिल भाव धारण करने पर भी वह पहलेकी अपेक्षा कुछ तान रहती है। जरायुकी सङ्कोचनक्रिया ही प्रथम अवस्थाका समाधान करती है। द्वितीय अवस्थामें जब भ्रूणमस्तक जरायुसे निकल कर वस्तिकोटरमें आनेकी कोशिश करता है, तब प्रसूति कोंथ कर उदर और वस्तिदेशकी मांसपेशी द्वारा भ्रूणको वस्तिकोटरमें ठेल देती है। कोंथना प्रथमतः इच्छाधीन होने पर भी पीछे वह व्यथाके साथ आपसे आप उपस्थित होता है। जब भ्रूण-मस्तक वस्तिकोटरके साथ बाहर निकल कर योनिमें प्रवेश करता है, तब योनिकी सङ्कोचन-क्रिया द्वारा भी ताड़ित हो कर वह भूमिष्ठ हो जाता है।

जरायुकी सङ्कोचनक्रिया प्रसूतिकी इच्छाधीन नहीं होने पर भी कभी कभी स्पष्ट रूपसे मानसिक अवस्थाकी अधीन होते देखी जाती है। जैसे—क्रोध, त्रास, विस्मय इत्यादिसे जिस प्रकार प्रसववेदना होते देखी जाती है, उसी प्रकार स्वभावतः जो व्यथा होती है वह भी उक्त कारणोंसे अकस्मात् बन्द हो जाती है। प्रसवके समय प्रसूतिके सूतिकागारमें हठात् प्रवेश करनेसे कभी कभी वेदना बंद हो जाती है, प्रसवकार्यके मानसिक अवस्थाके अधीन रहनेका यह भी एक दृष्टान्त है।

२य निर्गमपथ।—अभी वस्तिकोटरीय प्रवेशद्वारका (Inlet) तीन व्यासका विषय याद रखना आवश्यक है। यथा—अग्र पश्चात् व्यास ४ वा ४½ इञ्च, अनुप्रस्थ ५½ इञ्च, तिर्यक् व्यास ४¾ वा ५ इञ्च है। इन तीन व्यासोंका जो अनुपात होता है, वह कोटरके मध्य क्रमशः परिवर्त्तित हो कर उसके निर्गमद्वार पर (Outlet) ठीक विपरीत हो जाता है। अर्थात् अन्तर्द्वारका खर्वतम व्यास दीर्घतम और वहिर्द्वारका दीर्घतम व्यास खर्वतम हो जाता है।

यथा—उसका अग्रपश्चात् व्यास ५ इञ्च और अनुप्रस्थ व्यास ४½ इञ्च हो जाता है। निर्गमद्वारके मांसपेशी आदि कोमल पदार्थोंसे आवृत रहनेसे पूर्वोक्त अग्रपश्चात् व्याससेंसे ½ इञ्च और अनुप्रस्थ व्याससेंसे ½ निकाल लेने पर अवशिष्ट अग्रपश्चात् व्यास ½ इञ्च और अनुप्रस्थ व्यास ३½ इञ्च रह जाता है।

वस्तिकोटरके प्रवेश और निर्गमद्वार पर यदि कुछ मेरु-रेखाओंकी कल्पना करें, तो कोटरके मध्य इनके संयोग-स्थानपर जो स्थूलकोणकी सृष्टि होती है, वह पहले लिखा जा चुका है। फिर यह भी स्मरण रखना उचित है, कि वस्तिकोटर ऊपरसे नीचेकी ओर फैल जाता है। किन्तु निम्नभाग सामनेमें कुछ झोंक दिये रहता है।

वस्तिकोटरमेंसे भ्रूण-मस्तकके निकलते समय पूर्वोक्त प्रकारसे कोटरावस्थानका फल साफ साफ जाना जाता है। जरायुकी मांसपेशी द्वारा भ्रूणमस्तकके नीचेको ओर ताड़ित होनेसे वह जितनाही क्रमशः अधोगामी होता है, उतना ही घूम कर मस्तकका तथा वस्तिकोटरका प्रत्येक दीर्घ और खर्वव्यास परस्परोपयोगी हो जाता है और इस प्रकार घूम जानेके कारण जरायुकी सङ्कोचनक्रिया ठहर ठहर कर उपस्थित होती है और भ्रूण-मस्तक वस्तिकोटरमें सभी ओर सर्वतोभावसे संस्पृष्ट हुआ करता है।

भ्रूणशिरके निर्गमके समय इस प्रकारकी बाधा पहुंचती है। प्रथमतः जरायुका निम्न भाग वा ग्रीवा उसे

बन्द करती है। प्रसवके कुछ दिन पहलेसे जरायुका निम्न भाग शिथिल और उसका रन्ध्र कुछ प्रसारित हो जाता है। प्रसववेदनाके आरम्भ होनेसे अम्नियोन (Amnion) झिल्ली उसमेंके कुछ जलके साथ उक्त रन्ध्र हो कर लटक जाती है। इसीको जलकोष कहते हैं। पीछे जरायु जितनी सङ्कुचित होती है, वह जलकोष उतना ही नीचेकी ओर ताड़ित हो कर बढ़ता जाता है और उससे जरायुकी दोनों ग्रीवा दब कर क्रमशः प्रसारित होने लगता है। अन्तमें जलकोषके फाट जाने पर जिस तरह भ्रूणमस्तक जरायुग्रीवाके बहिर्भाग पर दबाव डालता है, उसी तरह जरायु उक्त बहिर्भागको भी भ्रूण-मस्तकके वाह्यतल हो कर आकर्षणपूर्वक प्रसारित करती है। जलकोष द्वारा उस बहिर्भागमें प्रसारित होनेके समय प्रसूति उतना कष्ट नहीं पाती। किन्तु जब केवल भ्रूणमस्तक द्वारा वह उस प्रकारसे फैलने लगता है, तब प्रसूतिको असह्य यातना होती है। प्रत्येक व्यथाके समय भ्रूणमस्तक थोड़ा घूम कर नीचेको ओर कुछ अग्रसर होता है और उसके विरामके समय फिर ऊपरकी ओर उठता है। किन्तु जिस परिणामसे वह नीचे जाता है, उस परिणामसे ऊपर नहीं उठता। इस प्रकार बारम्बार घूर्णितभावमें ऊर्द्ध्व प्रकारसे कुर्दन क्रिया द्वारा भ्रूण मस्तक वस्तिकोटरके बहिर्गम द्वार पर पहुँच कर एक तीसरी बाधामें प्राप्त होता है। यहां पर प्रथमतः मांसपेशी और बन्धनी आदि द्वारा वह क्षणकाल अवरुद्ध हो कर पीछे गुह्यदेश द्वारा प्रतिबन्धकताको प्राप्त होता है। इस स्थानके प्रसारित होनेमें कुछ विलम्ब हो जाता है जिसमें प्रसूतिको बहुत कष्ट भुगतने पड़ते हैं। किन्तु भ्रूण मस्तक पहलेके जैसा कुर्दन-क्रिया द्वारा अन्तमें उस कष्टको अतिक्रम कर योनि-द्वार पर पहुँच जाता है। यहां भी कुछ देरीसे जब योनि यथोचित फैल जाती है। यहां भी कुछ देरीसे जब योनि यथोचित फैल जाती है, तब भ्रूण मस्तक निकल पड़ता है।

प्रथम प्रसवमें योनिसे भ्रूणमस्तकके निकलते समय भगद्वारके पश्चात् प्रान्तवर्त्ति फोर्चेट (Fowrchette)का आच्छादक मिउकस-मेम्ब्रेण उलट कर कुछ बाहर निकल आता है और कभी कभी उक्त झिल्लीका मध्यभाग छिन्न हो जाता है। किन्तु इससे गुह्यदेशका चमड़ा जरा भी फटता नहीं। इसीसे प्रथम बारके प्रसवमें जितना कष्ट होता है, उतना पीछे नहीं होता। इस प्रकार जो स्त्री अधिक उमरमें गर्भ धारण करती है, उसे भी दूसरी अवस्थामें अत्यन्त कष्ट भोगना पड़ता है!

स्वाभाविक प्रसवमें भ्रूणमस्तकको जरायु-ग्रीवाके निम्न बहिर्भागसे निकलनेमें जितना समय लगता है, उसके आधे वा तृतीयांश समयमें वह वस्तिकोटरमें प्रवेश कर वहांसे निर्गत हो जाता है अर्थात् किसी स्त्रीके यदि १२ घण्टेमें सन्तान भूमिष्ठ हो, तो उसको प्रथम अवस्थाके अंतमें ८।९ घण्टा लगना आवश्यक है। किन्तु प्रसव दीर्घसूत्रीमें यह नियम लागू नहीं है, अर्थात् उस परिमाणसे उलट जानेसे प्रथम अवस्थासे द्वितीय अवस्था दूनी वा तिगुनी सुदीर्घ हो जाती है।

प्रसवके पहले भ्रूण मस्तककी अवस्थाका निरूपण करना परम आवश्यक है। डाक्टर निजिली कहते हैं, कि प्रसवारम्भमें यदि भ्रूणशरीरकी सञ्चालन-क्रिया गर्भवतीके तल पेटके दाहिने पार्श्वमें अधिक मालूम पड़े तो भ्रूणमस्तक प्रथम वा चतुर्थ स्थापना (Position)में और यदि बायें पार्श्वमें अधिक मालूम पड़े, तो द्वितीय या तृतीय स्थापना (Position)में रहता है, किन्तु इस लक्षणसे प्रथम पजीशनसे चतुर्थ पजीशनका और द्वितीय पजीशनसे तृतीय पजीशनका प्रभेद नहीं किया जाता।

भ्रूणमस्तकका पहले वस्तिकोटरमें प्रवेश करना यह अच्छी तरह मालूम हो जाने पर उक्त निजली साहबके मतसे भ्रूणहृत्पिण्डके धुक धुक शब्द द्वारा भी भ्रूण मस्तकका पजीसन स्थिर किया जा सकता है। अर्थात् उक्त शब्द यदि बाम कटिदेशमें सुना जाय, तो प्रथम पजीशनके और यदि दक्षिण कटिदेशमें सुना जाय, तो द्वितीय पजीशनके मस्तकमें रहनेकी खूब सम्भावना है। सन्तानके भूमिष्ठ होनेके बाद वह कोटरके मध्य किसी पजीशनमें प्रवेश करके निकली है, यह उसके मस्तकका रक्तगर्भ अर्बुद देख कर सहजमें निरूपण किया जाता है। भ्रूणके निकलते समय पहले जरायुके निम्न और योनि इन दोनों द्वारा उसके मस्तकके अग्रगामी भागके दब जानेसे जब अधिक रक्त जमा हो जाता है तब वह भाग स्फीत हो

उठता है। इसमे प्राथमिक और द्वितीयक रक्तगर्भ अर्बुदके आगिककी सृष्टि होती है। जिस प्रसवमें भ्रूण मस्तकको आगे करके जरायुसे बहिर्गमनपूर्वक उसी प्रकार वस्तिकोटरमें प्रवेश करे, कोई अनपेक्ष घटना उपस्थित न हो, प्रसूति निर्विघ्नसे अपनी जरायुकी वहिष्करण-शक्ति द्वारा कमसे कम २४ घण्टेमें जीवित सन्तान प्रसव करे और जिससे प्रत्येक प्रसवावस्था सममित समयमें शेष हो जाय, उसीको स्वाभाविक प्रसव कहते हैं ऊपरमें जो स्वाभाविक प्रसवका समय निरूपित हुआ है, वह सभी प्रसवके लिए नहीं है। यहां तक कि दो प्रसव भी एक समकालस्थायी देखे नहीं जाते। सभी स्त्रियोंके प्रथम प्रसवमें थोड़ा विलम्ब हो ही जाता है। सममित कालका विषय जो कहा गया है उसका कारण यह है कि स्वाभाविक प्रसवमें प्रथम प्रसवावस्थाके तृतीय वा चतुर्थांश समयमें अकसर द्वितीय प्रसवावस्था शेष होती है। इसका वैपरीत्य अर्थात् प्रथम प्रसवावस्थाकी अपेक्षा द्वितीय प्रसवक्रिया दूनी वा तिगुनी कालव्यापी होनेसे वह स्वाभाविक प्रसव नहीं कहला सकता। जैसे २४ घण्टेके भीतर जो प्रसव होता है उसकी प्रथम अवस्थामें १६।१८ घटिका स्थायी न हो कर २।३ घंटोंमें शेष हो जाता है। द्वितीय अवस्थामें उचित रीतिसे ४।६ घटिकाके मध्य शेष न हो कर १२।२० घण्टों तक बढ़ जाता है। इस प्रकारका प्रसव विकृत प्रसवकी श्रेणीमें गिना जाता है।

प्रसवका स्वाभाविक लक्षण, जरायुका नीचे आना और उदरका पूर्वापेक्षा थोड़ा होना (अष्टम मासकी अपेक्षा नवममासमें गर्भिणीका उदर छोटा दिखाई देना) ये सब लक्षण प्रसव होनेके पन्द्रह दिन पहलेसे ऐसे साफ साफ देखनेमें आते हैं, कि गर्भिणी भी स्वयं उसका अनुभव कर सकती है। उक्त समयमें बाहर कर एमनियाईके कुछ अंशोंका सूख जाना उसका प्रथम कारण है और जरायु अधोगामी हो कर उसके निम्नस्थ प्रान्तभागका वस्तिकोटरके प्रवेशद्वारसे युक्त होना द्वितीय कारण है तथा जरायुका मांसपेशीओके सभी सूत्रोंके शिथिल हो जानेसे उसका अधोभाग अनुप्रस्थ भावसे प्रसारित हो जाता और उसका उर्द्ध्वायतन खर्व हो जाता है, यही तीसरा लक्षण है। इस समय जरायु उदरके सामने भागको बहुत उठाये रहती है। जिन स्त्रियोंको बार बार गर्भ होनेसे उसकी चमड़ी और मांसपेशी ढीली पड़ जाती है, उनमेंसे किसी स्त्रीके उदरको तो जरायु इतना ऊपर उठाये रहती है कि बिना पेटी बन्धनीके उसका कष्ट निवारण हो ही नहीं सकता।

पुनः पुनः प्रस्राव करनेकी इच्छा। जरायुका नीचे और सामने मूत्राधारके ऊपर दबाव पड़नेसे अधिक मूत्र सञ्चित नहीं रह सकता। इसीसे प्रसवोन्मुखी स्त्री बार बार पेशाब किए बिना नहीं रह सकती। गर्भके तृतीय वा चतुर्थ मासमें गर्भिणी जो बारम्बार मूत्र त्याग करती है, उसका भी यह एक मूल कारण है। इस लक्षणका द्वितीय कारण यह है कि जरायु और मूत्र द्वारके परस्पर सहानुभावक यन्त्र हो जानेसे गर्भके शेष मासके पहले जरायु पीछे मूत्राधारमें भी ताड़न उत्पन्न करती है, इसीसे बारम्बार पेशाब करना होता है।

अन्त्रमें शूल।—जिस कारणसे लगातार पेशाब करना होता है, उसी कारणसे सरल आंतमें शूल यन्त्रणा पीड़ा हुआ करती है। कभी आमाशय रोगकी नाईं पुनः पुनः वायुकी पीड़ा होनेसे भी मल निर्गत नहीं होता। ऐसी अवस्थामें किसी उपायसे कोष्ठको शुद्ध रखनेसे ही कष्ट बहुत कुछ कम जाता है।

जरायुकी पीड़ाहीन संकोचन-क्रिया। गर्भके शेष मासमें विशेषतः प्रसवारम्भके २।१ दिन पहले उदरके अधोभागमें प्रसूति रह रह कर एक प्रकारका मरोड़ अनुभव करती हैं। गर्भस्थ भ्रूणके सञ्चालनकालमें अथवा अकाल गर्भपात होनेसे पहले जरायुकी इस प्रकारकी आक्षिक क्रिया हुआ करती है। इस कारण प्रसववेदना होनेके साथ ही इनकी परीक्षा करनेसे साभिक्य इकटोई कुछ फंसी हुई मालूम पड़ती है।

योनिसे क्लेद निःसरण।—स्वाभाविक प्रसववेदनाके २४ घण्टे पहलेसे इस प्रकारका लक्षण देखनेमें आता है। योनिरन्ध्रके उस क्लेद द्वारा पिच्छिल और तैलाक्तवत् हो जानेसे भ्रूणके बाहर निकलनेका सहज पथ तैयार हो जाता है। यह पदार्थ पहले तो गाढ़ा रहता है, पीछे प्रसववेदनाके आरम्भ होनेसे पतला हो जाता है। यह

किसीमें तो कम और किसीमें ज्यादा पाया जाता है। यह वर्णहीन है, किन्तु प्रसव-वेदना आरम्भके बाद रक्तके साथ मिल जाता है।

इन पांच लक्षणोंमेंसे तीन गर्भके शेष अवस्थामें देखे जाते हैं, चौथेमें आसन्नप्रसव अनुभूत होता हैं। पांचवां लक्षण देख पड़नेसे शीघ्र ही प्रसव होगा यह मालूम हो जाता है। प्रसवकालके उपस्थित होनेके और भी बहुतसे सामान्य लक्षण हैं,—यथासमयमें दोनों पदोंमें स्फीतता, जङ्घ और जङ्घामें खिचावट, मनकी प्रफुल्लता, साहस, क्षुधावृद्धि, श्वास लघुता श्रास, गतिमें स्फूर्त्ति और सुगमता अनुभव आदि लक्षण देखनेमें आते है।

अतिश्रम, क्लान्ति, अजीर्णता, मन्दाग्नि, कोष्ठबद्ध और गर्भस्थ भ्रूणकी विषम सञ्चलन-क्रिया इत्यादि द्वारा कभी कभी गर्भिणीको कृत्रिम प्रसव-वेदना उपस्थित होती हैं। किन्तु यह वेदना स्वाभाविक प्रसव वेदनासे सहजमें प्रभेद की जाती है। यथा, कृत्रिम वेदना जरायुकी ऊपरी भागसे (Fundus) आरम्भ हो कर उसके अल्पभाग मात्रमें व्याप्त रहती है और अनियमित विरामके बाद पुनः पहुंच जाती है। इस समय योनिसे क्लेद नहीं निकलता और न जरायुका मुँह ही प्रसारित होता है। उस हो कर जलकोष भी लटकने नहीं पाता। प्रसूतिको ऐसा मालूम पड़ता है मानो वेदना पृष्ठदेशसे निकल कर क्रमशः सामनेकी ओर समूचे पेटमें फैली जाती हो। इससे नियमित विरामकालके बाद वेदना बहुत जल्द प्रबलरूपसे पुनःपुनः उपस्थित हुआ करती है। इस समय जरायुका मुख फैल जाता है और उसके मध्य हो कर जलकोष लटक पड़ता है। कभी कभी कृत्रिम व्यथा भी प्रकृत व्यथामें परिणत होती है, इसीसे कृत्रिम व्यथाका निवारण करना आवश्यक है। १म अवस्था। इसमें जरायुकी सङ्कोचनक्रिया द्वारा जिस प्रकार व्यथा उपस्थित होती है, वह पहले ही कहा जा चुका है, यथा पहले पहले व्यथा बहुत कम मालूम पड़ती है। पीछे वह क्रमशः प्रबल और सुदीर्घ हो कर बहुत जल्द शेष हो जाती है। उससे प्रत्येक व्यथाका विरामकाल भी क्रमशः खर्व हो जाता है। प्रत्येक छेदक व्यथाके आरम्भ होनेसे प्रसूति उसे सह नहीं सकती तथा बहुत आर्त्तनाद करती है। उस समय एक स्थानमें रहना उसे पसन्द नहीं पड़ता। कभी वह सोती है, कभी बैठती है, कभी इधर उधर घूमती है, विशेष कर एकान्त व्यस्त और म्लान रहती है। किन्तु प्रसवकार्य जितना ही शेष होने आता है, इन सब कष्टदायक लक्षणोंको प्रसूति उतना ही थोड़ा थोड़ा करके अतिक्रम करती जाती है। कोई कोई स्त्री गर्भके शेष मासमें म्लान और हताश हो कर प्रसवारम्भमें साहसिक और समुत्सुक होती है। फलतः गर्भके शेष मासमें और प्रसवकी प्रथमावस्थामें प्रसूतिका मन कैसी ही अवस्थामें क्यों न रहे, दूसरी अवस्थाके आरम्भ होनेके साथ ही पहले थोड़ी थोड़ी वेदना होती है, पीछे वे सब कष्ट विलुप्त हो जाते हैं और प्रसवकार्य बहुत जल्द सम्पन्न हो जाता है, प्रसूति व्यस्त और उत्कण्ठित हो कर उस विषयमें मनोनिवेशपूर्वक यथासाध्य चेष्टा करती है। जब भ्रूणमस्तक अच्‌इउटेराईके मध्य हो कर बाहर होता है, तब प्रसूतिको बहुत कष्ट मालूम पड़ता है। यह कम्प हिमप्रयुक्त नहीं होता, वरन् उस समय शरीर उष्ण रहता है। इसका प्रकृत कारण जरायुकी एक प्रचण्ड सङ्कोचनक्रिया है। इस समय किसी किसी स्त्रीको क्षणिकप्रलाप और खिन्नता उपस्थित होती है। प्रायः सभी स्त्रियां उस समय वमन कर देती हैं। इससे पेटके अजीर्ण भुक्त द्रव्यके निकल जानेसे अच्‌इउटेराई (जरायुग्रीवाका निम्न बहिर्भाग) शिथिल हो जाती है। प्रथम प्रसवावस्था शेष होनेके समय प्रसूतिका कुन्थनवेग आरम्भ होता है। उस समय योनिके क्लेदके साथ साथ रक्तकी बुन्द भी बहुत देखी जाती हैं और जलकोषके फट जानेसे सभी लाइकर एमनियाई गिर पड़ती है। इसके बाद जो व्यथा होती है, उसीसे अच्‌इउटेराईमेंसे भ्रूणमस्तक निकल कर वस्तिकोटरमें प्रवेशोन्मुख होता है।

द्वितीय प्रसवावस्था।—इस समय व्यथाके शीघ्र शीघ्र आक्रमण करनेसे उसके मध्यस्थित विरामकाल क्रमशः खर्व हो जाता है और व्यथा भी प्रबल और दीर्घकाल स्थायी हो जाती है। स्वभावतः कोंथनेके कारण प्रसूति व्यथाके समय रोदन रोक कर श्वासको बंद किये रहती है, पीछे व्यथा जब बहुत घट जाती है, तब कुछ काल तक वह कूंके जैसा विलाप करती है। व्यथाके समय कोंथना

और पीछे रोना इन दोनों लक्षणों द्वारा ही द्वितीय प्रसव अवस्थाका निर्णय किया जाता है। व्यथाके उपस्थित होनेके साथ ही प्रसूति श्वासको रोक कर सन्निकटकी किसी अचल वा स्थापित वस्तुको पकड़ कर कोंथती है और जरायुकी सङ्कोचन-क्रियाकी सहायताके लिये शरीरकी प्रायः सभी मांसपेशियोंको नियुक्त करती है। श्वासके रुक जानेसे रक्तपरिचालनका व्याघात उत्पन्न होता है और उससे त्वक्‌को सभी शिराएँ रक्तसे पूर्ण हो कर सर्वाङ्गको विशेषतः आस्य और चक्षुको लाल बना देती हैं। कपाल, कनपटी और गलेकी शिराओंके रक्त-पूर्ण होनेसे स्फीत होती हैं, शरीर उष्ण हो कर घर्माक्त हो जाता है। नाड़ीकी गति भी प्रत्येक व्यथाके साथ साथ तेज हो जाती और सन्तान भूमिष्ठ होनेके बाद वह प्रति मिनटमें ८०।१२० बार चलती है।

किसीको बार बार वमन होते भी देखा जाता है। प्रथम अवस्थामें कोई कोई स्त्री जो वमन करती है, वह सिर्फ सहानुभावक स्नायुकी उत्तेजनासे हुआ करता है। वमन द्वारा भ्रूणको निकलनेका पथ शिथिल और प्रशस्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु इस समय जरायुकी सङ्कोचनक्रियाके हठात् बन्द हो जानेसे जो वमन होता है, उससे थोड़ी ही देर बाद शरीर उष्ण हो जाता है, नाड़ी तेजसे चलने लगती है, जीभ मैली हो जाती है और ज्वरका प्रकोप आ जाता है। इस समय वस्तिदेशको हाथसे दबानेसे जरायुमें दर्द होने लगता है।

जब दूसरी अवस्था अधिक काल तक रहती है, तब प्रसूति क्लान्त हो जाती है और मस्तिष्कमें लेह्न हो जानेसे उसे आलस्य और नींद आ जाती है। कभी कभी व्यथाके विरामके समय वह बिलकुल सो जाती है। इस प्रकारकी निद्रामें किसी प्रकारका डर नहीं रहता, वरन् उससे थकावट दूर हो जाती है। फलतः यदि व्यथा ठहर ठहर कर नहीं होती, तो प्रसूतिका गुह्यदेश और योनि क्षत विक्षत हो जाती, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

गुह्यदेश और भगद्वार यथायोग्य प्रसारित हो जानेसे जरायुकी सङ्कोचन-क्रिया दूनी हो जाती है अर्थात् एकका अच्छी तरह पूरा होते न होते दूसरी क्रिया पहुँच जाती है। इससे सभी प्रति बन्धक प्रतिक्रान्त हो कर असहनीय यातनाके समय भ्रूण मस्तक हठात् योनिसे निकल पड़ता है। थोड़ी देर बाद एक दूसरी व्यथाके उपस्थित होनेसे ही शरीर ताड़ित हो जाता है और उसके साथ शिशु बाहर निकल आता है। इसमें सम्पूर्णरूपसे यातनाकी शान्ति हो जानेसे प्रसूति अनिर्वचनीय स्वाच्छन्द्य और स्वास्थ्य अनुभव करती है। इस समय प्रसूतिके पेटके ऊपर हाथ रखनेसे ऐसा मालूम पड़ता है कि जरायु पहलेसे अधिक सङ्कुचित हो गई है। इस समय पेटके ऊपरका चमड़ा लाल दीख पड़ता है।

३य अवस्था।—इस समय जरायुकुसुम पृथक् हो कर निर्गत हो जाता है। किसी किसी प्रसूतिसे व्यथाके समय जो सन्तान भूमिष्ठ होती है, उसके साथ कुसुम भी निकल आता है। किन्तु यह अक्सर जरायु वा योनिमें ही जमा रहता है। अथवा निकलने पर भी उसका कुछ अंश आबद्ध रहता है। पीछे चाहे जरायुकी सङ्कोचनक्रियासे हो, चाहे उसके साथ साथ ही अथवा थोड़ा थोड़ा खींचनेसे हो, वह फूल एकबारगी बाहर निकल आता है।

सन्तानके भूमिष्ठ होनेमें जितना समय लगता है और उससे प्रसूति जितनी क्लान्त हो जाती है, गर्भ-कुसुम-बहिष्कारक व्यथा भी उसी परिमाणसे देरी करके होती है। अकसर देखा जाता है, कि सन्तान भूमिष्ठ होनेके २०।३० मिनट बाद ही फूल बाहर निकल आता है। स्वाभाविक प्रसवमें १।२ घंटेके भीतर फूलका निकलना उचित है। यदि इससे भी और अधिक विलम्ब हो जाय, तो उसे कष्टप्रसव समझना चाहिये।

स्वाभाविक प्रसवमें सहायताकी आवश्यता होती है, इस कारण पहले सबोंके संस्कार थे, किन्तु अभी प्रसव-कार्यको अनेक उन्नति तथा अनेक विषयोंके आविष्कार हो जानेसे उक्त संस्कारोंकी अमूलता समझी गई है। इस प्रसव विषयमें धैर्य और सहिष्णुता ही उत्कृष्ट फल प्रदान करती है। सुतरां स्वाभाविक प्रसवके समय व्यस्त हो कर कार्य करनेसे कुफल होनेकी सम्भावना रहती है। दिनके समय प्रसूति यदि अधिक काल तक सोवे, तो वह क्लान्त और अधैर्य हो जाती है। इस कारण प्रथम अवस्थामें क्रमागत प्रसवशय्या पर रहना उचित नहीं। सुतरां

उसे कभी बैठना, कभी इधर उधर घूमना और कभी घरका काम काज भी करना चाहिये।

प्रथम अवस्थामें प्रसूतिको खाने देना हानिकारक नहीं है, वरं उससे आमाशय अपने कार्यमें लग कर विशेषफल देता है। इस अवस्थाके शेषमें धात्रीको उचित है कि वे प्रसवोपयोगी शय्या प्रस्तुत करें और तोशकके ऊपर नितम्ब रखनेकी जगह पर मुलायम चमड़ा अथवा एक प्रकारका तैलाद्र-आच्छादन बिछा दे। पीछे उसके ऊपर कम्बल और कम्बलके ऊपर एक दूसरा कपड़ा, बाद सबके ऊपरमें एक कपड़ेको चार पांच तह करके नितम्बके नीचे रखना उचित है। पीछे प्रसूतिको उसके ऊपर सुला देना चाहिये और उसके परिधेय वस्त्रको खोल कर अथवा ऊपरको ओर कुछ खींच कर एक बड़ी चादरसे समस्त बदनको ढक देना चाहिये। प्रसूति शय्या पर बाईं करवट ले कर सोवे। इस देशमें प्रसूति अकसर बैठ कर ही प्रसव करती हैं। पूर्व समयमें युरोपमें भी यही प्रथा थी। चीनदेशमें और इङ्गलैण्डके कार्नवाल नामक प्रदेशमें प्रसूति घुटना टेक कर बैठती हैं। फ्रान्स और जर्मनीमें कई जगह वे चित हो कर सो जाती हैं। किन्तु इन सबकी अपेक्षा बाईं करवट दे कर सोना ही अच्छा है। इस अवस्थामें दोनों जानुके बीच एक तकिया रखनेकी बहुतोंकी सम्मति है। व्यथाके साथ साथ कुन्थन उपस्थित होती है, इस कारण प्रसूतिके अवलम्बनके लिये एक चादरमें अच्छी तरह लपेट दे कर उसके एक छोरको किस एक खंभमें बांध देना चाहिये और दूसरे छोरको उसके हाथमें लगा देना चाहिये। यदि ऐसा भी न हो सके, तो किसी दूसरेका हाथ पकड़ कर कुन्थन क्रिया करे, इसमें बहुत सुविधा होती है। भ्रूणमस्तकके गुह्यदेशमें दब जानेसे पहले प्रसूति बीच बीचमें यदि उठ बैठे, तो कोई हानि नहीं होती।

अकसर द्वितीय अवस्थाके प्रारम्भमें जलकोष फट जाता है। किन्तु एमनियन यदि सुदृढ़ हो, तो भ्रूण-मस्तकके वस्तिकोटरमें आनेसे भी तथा कभी कभी उसके निर्गत होनेके समय तक भी वह फटता नहीं है। इस-से भ्रूण-मस्तकके कोटरसे मध्य हो कर ताड़ित होनेमें बहुत देर लगती है। ऐसी अवस्थामें जरायुकी सङ्कोचनक्रियाके समय जब जलकोष स्फीत और बिलकुल गोल हो जाय तब एक अङ्गुलि द्वारा उसे विद्ध कर देने-से ही लाइकरएमनिया गिर पड़ता है। इस समय प्रसूतिको यदि कुछ गरमी मालूम पड़े तो शय्या परसे कम्बलादि उष्ण वस्त्रको अलग कर उसे शीतलवायु सेवन कराना चाहिये। भूख लगने पर दुग्धादि दे सकते हैं।

भ्रूणमस्तकके गुह्यदेशमें दब जानेसे जिससे उक्त स्थान हठात् विदीर्ण न हो जाय और वह सामनेकी ओर चालित हो, इसके लिये धात्री एक कम्बलको ४।५ तह कर उससे व्यथाके समय भ्रूण-मस्तकको सामनेकी ओर धीरे धीरे ठेले। मस्तक जब भगद्वार पर पहुंच जाय, तब योनिद्वार पर पश्चाद्भागके चमड़ेको ऊपरसे खींच कर न लावें, बल्कि उसे सामनेकी ओर और भी ठेल दें। नहीं तो गुह्यदेशके विदीर्ण हो जानेकी सम्भावना रहती है। इस समय धात्रीको चाहिये कि वह दाहिने हाथकी दो उंगलियोंको प्रसूतिके मलद्वारमें घुसेड़ कर भ्रूणके मस्तकको बाहर और सामनेकी ओर प्रत्येक वेदनाके साथ साथ ठेल देवें। ऐसा करनेसे गुह्यदेश (पेरिनियम)-की रक्षा होती है, और भ्रूण भी शीघ्र ही भूमिष्ठ हो जाता है।

मस्तक बाहर होनेके बाद यदि स्कन्ध निकलनेमें विलम्ब देखें, तो धात्री अपनी एक या दो उंगलीको शिशु-के दोनों कक्षोंमें लगा कर खींचे और सहकारिणी धात्री तथा और दूसरी जो वहां हो, उस प्रसूतिके पेटके ऊपर हाथ रख कर जरायुको जोरसे पकड़े। इससे दो फल निकलते हैं, जैसे—भ्रूणका अवशिष्टांग निकलनेके बाद फूलकी भी उसके साथ साथ निकलनेकी सम्भावना रहती है और जरायुसे अधिक शोणितस्राव भी नहीं हो सकता।

सन्तान ज्योंही भूमिष्ठ हो, त्योंही उसके मुंहमेंसे उंगली द्वारा क्लेद निकाल कर बाहर फेंक देवे, तब सन्तान नीरोग होने पर रो उठेगी। इस समय श्वास प्रश्वासको यदि अच्छी तरह बहते देखें, तो पहले नाड़ीको काट देवे। पीछे फलालैन आदि गरम कपड़ोंसे उस शिशुको

ढक कर धात्रीके पास लगा दे। [illegible] प्रसूतिके पेटके ऊपर हाथ रख कर यह देखे कि पेटमें दूसरी सन्तान तो नहीं है। यदि सन्तान न हो, तो उसी समय पेटी बन्धनसे कमरको कुछ जोरसे बाँध दे। किन्तु कोई कोई कहते हैं, कि जब तक अपरिमित रक्तस्राव न हो तब तक पेटी बन्धनीका व्यवहार अनावश्यक है। किन्तु इसका व्यवहार करनेसे जरायु संकुचित और अचल भावमें एक स्थान पर रह सकती है। उदरका लोहितचर्म और पेशी शीघ्रही पहलेके जैसा स्वाभाविक अवस्थाको प्राप्त होती है। इस देशकी विशेषतः इस प्रदेशकी स्त्रियोंके पेट लटके हुए देखे जाते हैं। इसका कारण यह है कि वे प्रसवके बाद पेटी-बन्धनीका व्यवहार नहीं करतीं।

देशीय धात्रीगण सन्तान भूमिष्ठ होनेके बाद ही फूलको बाहर खींच लेती हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा नहीं करनेसे फूल पीछे नहीं निकलता और इससे विपरीत फल होता है।

प्रसवके कुछ घण्टोंके बाद प्रसूतिकी शारीरिक अवस्थाका विषय अनुसन्धान कर देखनेसे वह केवल प्रसवकालीन आयासके ऊपर आरोप नहीं किया जाता, मल-मूत्रादिके विषयमें अनेक व्यत्यय देखे जाते हैं, नूतन रसनिःसारक यन्त्रकी क्रिया आरम्भ होती है। जननेन्द्रिय स्नायु रक्तपरिचालक यन्त्रकी क्रियाके सम्बन्धमें भी अनेक परिवर्त्तन नजर आते हैं।

मस्तिष्क और स्नायुकी अवस्था—हठात् चक्षु, मस्तिष्क, फेंफड़ेका श्वास प्रश्वास और परिचालकयन्त्रकी क्रियाका व्यतिक्रम, मल-मूत्रादि शारीरिक असार रसका भावान्तर, अवसन्नता, दौर्बल्य आदि लक्षण देखे जाते हैं। ये लक्षण मस्तिष्क और स्नायुके प्रसवजनित अवस्थान्तरके फलमात्र हैं। शरीरके रक्तपरिचालन और निश्वास प्रश्वास कार्यके अवस्थान्तरका कारण केवल प्रसवकालीन शारीरिक परिश्रम और मानसिक पीड़ा है।

जननेन्द्रियकी अवस्था।—संकोचक क्रिया द्वारा जरायु धीरे धीरे इतनी छोटी हो जाती है कि प्रसव होनेके बाद भी उसका आयतन [illegible] [illegible] हो जाता है। इससे [illegible] [illegible] बंद हो जाता है, जिससे फिर रक्तस्राव नहीं हो सकता। उसकी सभी धमनियोंका आयतन क्रमशः ह्रास हो जाता है। पीछे जरायु और भी संकुचित हो कर ८-९ दिनके भीतर वस्तिकोटरमें समावेश होनेके योग्य हो जाती है। दूसरे सप्ताहके बाद जरायु फिरसे स्वाभाविक अर्थात् गर्भकी पूर्वतन अवस्थाकी नाईं हो जाती है।

प्रसवान्तमें जरायुकी संकोचन-क्रियाजनित व्यथा।—क्रमिला अर्थात् जिसने कई बार प्रसव किया है उसको व्यथा जितनी कष्टदायक होती है, प्रथम प्रसूतिको उतनी नहीं होती। अकसर यह व्यथा प्रसवके आध घण्टेके बाद ही होती है और १०।१४ घण्टों तक रहती है।

स्तनदुग्ध।—पहले प्रसूतिके स्तनोंमें जिस दूधका सञ्चार होता है वह प्रथमतः जलवत् रहता है। उसका वर्ण कुछ पीला मालूम पड़ता है। इसके पीनेके साथ ही नव प्रसूत शिशुका मलीभूत पित्त आँतसे निकल पड़ता है। इस कारण सन्तान भूमिष्ठ होनेके बाद प्रसूतिका स्तन उसे पिलाना चाहिए। क्योंकि इसके पिलानेसे पीछे अंडीके तेल द्वारा शिशुकी आँत परिष्कार करनेकी आवश्यकता नहीं रहती। प्रसवके २४ घण्टे बाद दोनों स्तनोंमें ताड़स उत्पन्न हो कर स्फीत हो जाता है। पीछे दूधका सञ्चार होने लगता है। बाद जितनी बार प्रसव होता है उतनी बार भूमिष्ठ शिशुको पानोपयुक्त दुग्ध मिलता है।

सूतिकावस्थामें स्वास्थ्यरक्षाका उपाय।—मस्तिष्क और स्नायुकी पीड़ाको दबानेके लिए औषधकी उतनी आवश्यकता नहीं। रोगीको निर्जन और विरल अन्धकार स्थानमें शारीरिक विश्राम और मानसिक शान्तिसे रखना चाहिए। स्वास्थ्यलाभ करने पर उष्ण जल दूध और सुराको मिला कर उससे प्रतिदिन दो बार करके योनि साफ करनी चाहिए। ऐसा करनेसे दो फल निकलते हैं, एक तो उस स्थानकी व्यथा और ज्वाला बन्द हो जाती है और दूसरा योनि जल्दीसे सङ्कुचित हो कर स्वाभाविक अवस्थाको प्राप्त होती है।

[illegible] तात्पर्य यह है कि उससे [illegible] [illegible] नहीं हो सकती। [illegible] धीरे धीरे बन्द हो जाता है।

दीर्घसूत्री प्रसव।—इसमें मस्तकको आगे रख कर भ्रूण वस्तिकोटरमें प्रवेश करता है। किन्तु प्रथमावस्थामें अधिक विलम्ब होनेसे भी अन्तमें हाथ और यन्त्रकी सहायताके बिना ही प्रसव आपसे आप हो जाता है। जरायुकुसुम भी यथासमय निकल आता है। अर्थात् प्रसव यदि ६० घण्टोंमें शेष हो, तो उसीके भीतर अपर्चडेटेराईको प्रसारित होनेमें ५८।५८ घण्टे लगते हैं और १।२ घण्टेके मध्य भ्रूण वस्तिकोटरसे निकल पड़ता है। फलतः प्रथम प्रसूतिके साथ ही इस प्रकारकी घटना हुआ करती है।

शक्तिहीन प्रसव।—वस्तिकोटरके काफी प्रशस्त रहने पर भी यदि द्वितीय अवस्थामें जरायुकी सङ्कोचनक्रियाका ह्रास वा सम्पूर्ण अभाव हो जाय, तो प्रसवमें देर होती है। इसमें यदि भयानक और गुरुतर लक्षणका आविर्भाव हो जाय, तो प्रसवको उसी समय निकालना आवश्यक है।

रोधक प्रसव।—द्वितीय अवस्थामें जरायुकी सङ्कोचन क्रियाका यथोचित परिमाण रहने पर भी वस्तिकोटरमें जब कोई प्रतिबन्धक आ पहुंचता है, तब भ्रूणमस्तक बिलकुल अग्रसर नहीं हो सकता। इसमें भी पूर्वोक्त शक्तिहीन प्रसवके जितने अनिष्टकर लक्षण हैं वे धीरे धीरे देखनेमें आते हैं।

शक्तिहीन प्रसवमें जरायुकी क्रियाका ह्रास वा अभाव हो जानेसे द्वितीय अवस्था सुदीर्घकालस्थायी हो जाती है। किन्तु रोधक प्रसवमें जरायुकी क्रियाका कोई व्यत्यय नहीं रहता। प्रसूतिका वस्तिकोटर और तत्समीपवर्त्ती स्थानका कोई विकृत भाव हो कर वह द्वितीय अवस्थामें भ्रूणमस्तकके अग्रसर होनेमें बाधा देता है। रोधक और शक्तिहीन प्रसवका कारण भिन्न भिन्न होने पर भी लक्षणका उतना प्रभेद नहीं रहता। केवल एक मात्र प्रभेद यह है कि शक्तिहीन प्रसवमें जरायुको सङ्कोचन-क्रियाका ह्रास अथवा अभाव देखा जाता है और रोधक-प्रसवमें उक्त क्रिया समान भावमें रह जाती है। किसी किसी रोधक-प्रसवमें अल्प प्रतिबन्धक रहनेके कारण जरायु अपनी प्रबल सङ्कोचनक्रिया द्वारा उसे अतिक्रम कर जाती है। किन्तु प्रतिबन्धक यदि प्रबल रहे, तो धात्रीकी सहायता आवश्यक है। कितने प्रतिबन्धक तो ऐसे भयानक होते हैं, कि उसमें वस्तिकोटरके मध्य हो कर सजीव निर्जीव वा भग्नाङ्ग भ्रूण भी किसी तरह प्रसव नहीं कराया जाता।

विकृत-वस्तिकोटरीय प्रसव।—वस्तिकोटरकी वक्रतासे द्वितीय अवस्थामें कुछ देरसे प्रसव होता है, इस कारण कभी कभी यन्त्र द्वारा प्रसव करना होता है। कभी तो ऐसा हो जाता है कि यन्त्र द्वारा प्रसव कराना भी असाध्य हो जाता है और क्रमशः शक्तिहीन प्रसवके सभी लक्षण और भी भयानक देखनेमें आते हैं। अधिककाल तक प्रसववेदना रहने पर अन्तमें शक्तिहीन प्रसवके कुल खराब लक्षण देखे जाते हैं। यदि भ्रूणमस्तक अपर इनलेटमें प्रवेश नहीं भी कर सकता, तो भी द्वितीय अवस्थाके सवेग व्यथा आदि लक्षण प्रकाशित हो कर अनिष्ट करते हैं। स्वभावतः प्रसव होने पर अथवा यन्त्र द्वारा कराने पर पीछे योनि आदि स्थानोंमें प्रदाहरोग उत्पन्न होता है और उसका दैहिक पदार्थ गल जाता है। उस वक्त उपयुक्त चिकित्सा फौरन नहीं करानेसे मूत्राधार वा सरल आंत विद्ध हो कर योनिके साथ मिल जाती है। इधर भ्रूणमस्तकके स्थान स्थान पर आहत होनेसे अधिक संख्यक सन्तान भूमिष्ठ होनेके पहले ही नष्ट हो जाती है। किसीकी खोपड़ी टूट जाती, किसीके मस्तकके चमड़े पर भयानक प्रदाह होता और उससे अनिष्टकर फल उत्पन्न होता है।

अकाल प्रसव।—माता और गर्भस्थ शिशुकी प्राण रक्षा करना ही इस प्रक्रियाका प्रधान उद्देश्य है। डाक्टर मिकलेने पहले एक स्त्रीका प्रसव, पीछे डाक्टर केलोने एक स्त्रीका तीन बार अकाल प्रसव कराया, जिसमेंसे दो बारकी सन्तान बच गई थी। गर्भस्थ सन्तान पूर्ण काल तक यदि जठरमें रहे और जीवित अवस्थामें उसका प्रसव कराना असाध्य मालूम पड़े तो अकालमें प्रसव कराना ही श्रेय है। अकाल प्रसवमें प्रसूतिको किसी प्रकार अनिष्ट नहीं होता है केवल सैकड़े ५० पीछे सन्तान नष्ट होती हैं।

किसी किसी स्त्रीको बार बार गर्भ रह कर पूर्ण कालके कुछ पहले बिना किसी विशेष स्पष्ट कारणके वह गर्भ बहुत काँपने लगता है जिससे गर्भका अन्तके प्राय

नष्ट हो जाते हैं और कई दिन बाद वह मृत सन्तान प्रसूत होती है। ऐसी जगह पर अकाल-प्रसव कराना उचित है। डाक्टर डेनमैनने ऐसी जगह पर अकाल प्रसव करा कर सन्तानको बचा लिया था।

गर्भसम्बन्धीय किसी किसी पीड़ामें अकाल प्रसव कराना आवश्यक है। कोई कोई गर्भिणी इतनी उलटी करती है, कि खाया हुआ पदार्थ कुछ भी पेटमें रहने नहीं पाता और किसी औषधसे भी उसकी शान्ति नहीं होती। इसमें गर्भिणी मरने मरने पर हो जाती है। ऐसी अवस्थामें अकाल प्रसव कराना ही आवश्यक है।

किसी किसी स्त्रीके दोनों पैरमें सूजन पड़ जानेसे वह धीरे धीरे बढ़ती जाती है, जलोदरी भी हो जाती है। ऐसी अवस्थामें अकाल प्रसव विधेय है।

गर्भावस्थामें भयानक रक्तपात होनेसे गर्भपात वा अकालप्रसव कराना जरूरी है। फलतः ऐसी घटनामें प्रायः गर्भस्थ भ्रूण पहले ही नष्ट हो जाता है।

अकाल प्रसवमें गर्भिणीका पेट विमर्दन करनेसे और उसे उष्ण जलमें बिठानेसे प्रसववेदना हो सकती है। अच् यूटेराईके चारों ओरसे एक इञ्च तक एमनियन झिल्लीको अलग कर देनेसे प्रसव आपसे आप होने लगती है। फलतः स्वाभाविक प्रसव वेदनामें एमनियन झिल्ली इसी प्रकार वियुक्त हो जाती है। प्रसव-वेदनाके और भी नाना प्रकारके उपाय हैं, पर विस्तार हो जानेके भयसे उन सबका उल्लेख नहीं किया गया।

धात्रीषट्पलकघृत (सं॰ क्ली॰) गुल्मघृत।

धात्रेयिका (सं॰ स्त्री॰) धात्रेयी स्वार्थे कन् टाप, पूर्व ह्रस्वश्च। १ धात्री, धाय, दाई। २ आमलकी, आँवला।

धात्रेयी (सं॰ स्त्री॰) धात्र्या अपत्यं स्त्री स्वार्थे ढक्, वा ङीप्। १ धात्रीका स्त्री अपत्य। २ धात्री, धाय, दाई।

धात्र्यादि (सं॰ पु॰) धात्री आदि यस्य। मूत्रकृच्छ्रोक्त औषधभेद। इसकी प्रस्तुत-प्रणाली—धात्री, आमलकी, द्राक्षा, भूमिकुष्माण्ड, यष्टिमधु और गोक्षुर प्रत्येकका २ तोलेको आध सेर जलमें डाल कर उबालो। जब आध पाव पानी बच जाय तो उसे नीचे उतार लो। ठंढा होने पर उसमें आध तोला चीनी डाल दो। इसके सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्ररोग जाता रहता है। (भैषज्यर॰)

इसके दो भेद देखे जाते हैं, बड़े धात्र्यादिकी प्रस्तुत प्रणाली इस तरह है—धात्री, द्राक्षा, यष्टिमधु, भूमि-कुष्माण्ड, गोक्षुर, कुशमूल, कृष्णेक्षुमूल और हरीतकी प्रत्येकके २ माशेको आध सेर जलमें उबालो। जब आध पाव जल बच रहे, तो उसे नीचे उतार लो। ठंढा होने पर आध तोला चीनी डाल कर सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र और उससे उत्पन्न दाहादि दूर हो जाते हैं।

धात्वर्थ (सं॰ पु॰) धातुसे निकलनेवाले अर्थ, मूल और पहला अर्थ।

धादर—पश्चिम भारतवर्षकी एक नदी। यह विन्ध्य श्रेणी-की पश्चिमीय पर्वतमालासे निकल उत्तर-पूर्वकी ओर २५ मील भिलापुर तक चली गई है। भिलापुरमें इस पर एक पत्थरका पुल है। इससे कुछ नीचे दक्षिण पार्श्वमें विश्वामित्री नदी इसमें आ मिली है। यह नदी और भी ३५ मील जा कर काम्बे उपसागरमें गिरती है।

धान (सं॰ क्ली॰) धा-भावे ल्युट्। १ धारण। २ पोषण। आधारे ल्युट्। ३ धारणाधार।

धान (हिं॰ पु॰) तृण जातिका एक पौधा। धान्य देखो।

धानक (सं॰ क्ली॰) धन्याक पृषोदरादित्वात् साधुः। १ धन्याक, धनिया। २ एक रत्तीका चौथाई भाग।

धानक (हिं॰ पु॰) १ धनुर्धारी, तीरन्दाज, धनुष चलाने-वाला।

धानकी (हिं॰ पु॰) १ धनुर्धर, धनुर्धारी। २ कामदेव।

धानगाँव—मध्य भारतका एक क्षुद्र राज्य। यहांके अधिपति ठाकुर कहलाते हैं। ये सिन्धिया राज्यसे १४८० रु॰ और होलकरसे ५६ रु॰ वार्षिक पाते हैं। वृटिशराजको वार्षिक एक हजार रुपये करमें देने पड़ते हैं।

धानगायेन—बङ्गालके अन्तर्गत हजारीबाग जिलेका एक गिरिपथ। शहरघाटीका प्राचीन रास्ता इसी पथ हो कर गया है। अभी इस राह हो कर गाड़ी जानेकी सुविधा नहीं है।

धानजई (सं॰ पु॰) एक प्रकारका धान।

धानपान (हिं॰ पु॰) १ एक प्रकारकी रसम जो विवाहसे कुछ ही पहले होती है। इसमें वरपक्षकी ओरसे कन्या-के घर धान और हलदी भेजी जाती है। इस रसमके बाद विवाह-सम्बन्ध प्रायः पूर्ण रूपसे निश्चित हो जाता है। (वि॰) २ दुबला पतला, नाजुक।

धानमाली (हिं॰ पु॰) अस्त्रचलानेकी एक क्रिया जिसमें किसी दूसरेके चलाए हुए अस्त्रको रोकते हैं।

धानसरा—२४ परगनेके अन्तर्गत एक खाई। यह छाफ्रा-से ले कर यमुनानदी तक विस्तृत है। इसकी लम्बाई आध कोसकी है। इसका दूसरा नाम हुसेनाबाद खाल है। यमुनानदी हो कर सुन्दरवन जाते समय पहले इसी खालमें प्रवेश होना पड़ता है।

धाना (सं॰ स्त्री॰) धीयन्ते इति धा-न। (धापवस्यज्यतिभ्यो नः। उण् ३।६) ततः टाप्। १ धान्यक, धनिया। इसका संस्कृत पर्याय—धान्यक, धानक, धान्य, धाना, धानेयक, कुनटी, धेनुका, छत्रा, कुस्तुम्बुरु और वितुन्नक है। २ अन्नका कण, खुद्दी। ३ सत्तू। ४ धान्य, धान। ५ अङ्कुर। ६ भृष्ट यव, भूना हुआ जौ, बहुरि।

धानाका (सं॰ स्त्री॰) धान्यक, धनिया।

धानाचूर्ण (सं॰ क्ली॰) धानानां चूर्णं ६-तत्। सक्तु, सत्तू।

धानार्त्तवत् (सं॰ पु॰) एक गन्धर्व।

धानावत् (सं॰ त्रि॰) धाना विद्यते ऽस्य मतुप् मस्य व। जिसमें धनिया हो या जिसके पास धनिया हो।

धानासोम (सं॰ पु॰) धान्य समेत सोम।

धानिका (सं॰ स्त्री॰) धानी स्वार्थे क-टाप्। धानी, आधार।

धानिखोला—बङ्गालके मैमनसिंह जिलेका एक प्रधान नगर। यह अक्षा॰ २४° ३९´ १०´´ उत्तर और देशा॰ ९०° २४´ ११´´ पू॰में अवस्थित है। यह नगर नसीराबाद शहरसे ६ कोस दूर सतुआ नामकी एक छोटी नदीके ऊपर बसा हुआ है।

धानी (सं॰ स्त्री॰) धीयते धीयंतेऽत्र वा आधारे ल्युट्, टित्वात् ङीप्। १ आधार। २ वह जो धारण करे, वह जिसमें कोई वस्तु रखी जाय। ३ स्थान, जगह। ४ पोलुवृक्ष, एक प्रकारका पेड़। ५ धान्यक, धनिया।

धानी (हिं॰ स्त्री॰) १ एक प्रकारका हलका हरा रंग। यह धानकी पत्तीके रंगकासा होता है। यह प्राय: पीले और नीले रंगको मिला कर बनाया जाता है। (वि॰) २ धानकी पत्तीके रंगका, हलके हरे रंगका। (स्त्री॰) ३ सम्पूर्ण जातिकी एक संकर रागिणी।

धानुक (हिं॰ पु॰) १ धनुर्द्धर, धनुर्धारी। २ एक नीच जाति। इस जातिके लोग प्राय: व्याह आदिमें तुरही आदि बजाते हैं।

धानुर्दण्डिक (सं॰ पु॰) धनुर्दण्ड द्रव, तेन जीवति वेतनादित्वात् ठक्। धानुष्क, वह जो धनुष चला कर अपनी जीविका निर्वाह करता हो।

धानुष्क (सं॰ पु॰) धनु:प्रहरणमस्येति धनुः ठक् प्रहरणं। (पा ४।४।५७) वा धनुषा जीवति इति ठक्। (वेतनादिभ्यो जीवति। पा ४।४।१२) धनुर्द्धर, धनुष चला कर अपनी जीविका निर्वाह करनेवाला, कमनैत।

धानुष्का (सं॰ स्त्री॰) धनुरिव अवयवोऽस्याः इति ठक्, टाप् च। अपामार्ग वृक्ष, चिचड़ा। अपामार्ग देखो।

धानुष्कारि (सं॰ स्त्री॰) लताभेद। एक प्रकारकी बेल।

धानुष्य (सं॰ पु॰) धनुषि साधुरिति धनुष्-ष्यञ्। वंश, बाँस।

धानेय (सं॰ क्ली॰) धाना एव स्वार्थे ढक्। धन्याक, धनिया।

धानेयक (सं॰ क्ली॰) धानेय स्वार्थे कन्। धान्यक, धनिया।

धान्धा (सं॰ स्त्री॰) पृथ्विका, इलायची।

धान्य (सं॰ क्ली॰) धाने पोषणे साधु यत्। सतुष व्रीह्यादि, धान।

"शस्यं क्षेत्रगतं प्रोक्तं सतुषं धान्यमुच्यते।" (स्मृति)

क्षेत्रस्थित पदार्थको शस्य और सतुष द्रव्यको धान्य कहते हैं। इस वचनानुसार क्षेत्रजात पदार्थमात्र ही धान्यपदवाच्य है, किन्तु धान्य शब्दका प्रयोग करनेसे जिससे तण्डुल हो, जनसाधारण उसीको धान्य कहते हैं। पर्याय—भोग्य, भोज्य, भोगाह, अन्न, अद्य, जीवसाधन, स्तम्बकरि, व्रीहि।

इतिहास।—धान्यका जनसमाजमें कबसे व्यवहार होता आ रहा है, यह ले कर बहुतोंमें मतभेद है। कोई भारतवर्षको, कोई ब्रह्मदेशको और कोई मध्यएशियाको धान्यको जन्मभूमि बतलाते हैं। किसीका कहना है, कि पूर्व समयमें धान्य भारतवर्षसे अरब, मिस्र, ग्रीस, आदि देशोंमें भेजा जाता था, पर कोई इसे गलत बतलाते हैं। उनका कहना है, कि जब पारसिक और भारतीय आर्योंके पूर्वपुरुषगण मध्य

एशियामें रहते थे, उसी समयसे धान्यके साथ उनका विलक्षण परिचय था। जब वे लोग विभिन्न प्रदेशोंमें जा कर रहने लगे, उस समय भी उन्होंने धान्यका व्यवहार छोड़ा नहीं था। वरं धान्य व्यवहारकी दिनों-दिन वृद्धि ही होती जा रही थी। इस प्रकार मध्य-एशियावासी आर्योंके साथ ही अति प्राचीनकालमें सुदूर ग्रीस आदि देशोंमें धान्यका व्यवहार प्रवर्त्तित हुआ होगा।

हम लोग कहते हैं, कि भारतवर्ष ही धान्यकी प्रकृत जन्मभूमि है। कितने युगयुगान्तर बीत गये, अति प्राचीनतम कालसे भारतवासियोंकी धान्यके प्रति जैसी अचला भक्ति है, धान्य जैसा सर्वसम्पद्की अधिष्ठात्री देवीके रूपमें गण्य है, उच्चश्रेणीके भारतीय आर्योंका धान्य ही जैसा प्रधानतम खाद्य है, वैसा संसारके और किसी भी देशमें नहीं है।

कोई कोई कहते हैं, कि ऋक्संहिताके प्रचलन कालमें आर्यलोग धान्यका व्यवहार नहीं करते थे, जो ही उनके प्रधान खाद्यरूपमें गिना जाता था। क्या यह प्रकृत है? ऋग्वेदिक आर्यगण क्या धान्यका सम्बन्ध ही नहीं रखते थे? तब फिर ऐसा कहनेका कारण क्या? ऋक्संहितामें कई जगह 'धाना' और 'धान्य' शब्दका प्रयोग देखनेमें आता है। दो एक जगह सायणाचार्यने खण्डत भाष्यमें धाना शब्दका भृष्ट यव अर्थात् भूना हुआ जौ ऐसा अर्थ लगाया है। यथानुरागी पाश्चात्य पण्डितोंने यह देख कर ही स्थिर किया है कि प्राचीनतम आर्यगण धानका हाल कुछ भी नहीं जानते थे, भारतवर्षमें आ कर यहाँ धानका प्रचार देख उसका व्यवहार करने सीखा है। सायणने धाना शब्दका अर्थ भूना हुआ जौ किया है सही, लेकिन धान्यका अर्थ धान्य ही रहा है। ऋक्संहिताके जिस मन्त्रमें धान्य शब्दका प्रयोग है, वह नीचे देते हैं—

"अस्ते सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर्यज्ञैर्मर्त्तो निशितिं वेद्यानट्।
विश्वं स देव प्रति वारमग्ने धत्ते धान्यं पत्यते वसव्यैः॥"
(ऋक् ६।१३।४)

हे बलके पुत्र! तुम्हारा तोष्टाता जो मर्त्य (मनुष्य) स्तुति और यज्ञ द्वारा वेदी (यज्ञभूमि, पर पाते हैं) हे द्योतमान अग्नि! वे समस्त धान प्रतिधारण करते और धनसम्पन्न होते हैं।

पाश्चात्य पण्डितोंका कहना है कि 'व्रीहि' शब्द द्वारा ही वैदिक आर्योंने धानका परिचय दिया है। उनका विश्वास है कि जब अथर्ववेदमें व्रीहि शब्दका उल्लेख है, तब आर्यलोग अन्ततः ईसा जन्मके १३०० वर्ष पहलेसे कृषिजात धान्यका व्यवहार जानते थे (१)। उसके पहले अर्थात् २८०० ई० सन्के पूर्व चीनाधिपति चिन नुङ्ने धान्यवपनका पुण्यरूप एक उत्सव मनाया था (२)।

व्रीहि शब्दका उल्लेख अथर्ववेदके पूर्ववर्त्ती तैत्तिरीय और वाजसनेयसंहितामें मिलता है। यथा—

१"यवं ग्रीष्मायौषधी र्वर्षाभ्यो व्रीहीन शरदे माषतिलौ हेमन्तशिशिराभ्याम्" (तैत्तिरीयसं ७।२।१०।२)

२"व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।"
(वाजसनेयसंहिता १८।१२)

पहले ही कहा जा चुका है, कि ऋक्संहितामें धाना शब्दका प्रयोग है, सायणाचार्यने वहाँ पर भृष्ट यव ऐसा अर्थ न कर धाना ही अर्थ किया है। ऋक्संहिताके अलावा अथर्ववेद (३।२४।२—४, ५।२९।७, ६।५०।१), शाङ्खायन ब्राह्मण (११।८) षड्विंशब्राह्मण (५।५), शतपथ ब्राह्मण (१४।८।३।२२), कात्यायनश्रौतसूत्र (२२।११।१), अथर्ववेदके कौशिकसूत्र आदि वैदिक ग्रन्थोंमें धान्य शब्दका प्रयोग देखनेमें आता है। सायणाचार्य, कर्क, दारिल आदि भाष्यकारोंने धान्यका सर्वजन प्रचलित अर्थ ही ग्रहण किया है।

सब प्रकारका धान्य समझानेके लिये ऋक्संहिताकार केवल धान्य शब्दका उल्लेख करके ही चुप रह गये हैं, किन्तु यागयज्ञादिमें सब प्रकारके धान्यका प्रयोजन नहीं पड़ता था। यज्ञादिमें व्रीहि धानका व्यवहार था। यही कारण है, कि हम लोग यज्ञादिके व्यवस्थामूलक यजुर्वेद और ऐतरेय ब्राह्मणादिमें "व्रीहि" शब्दका ही अधिक प्रयोग देखते हैं। कृष्णयजुर्वेदमें शुक्ल और कृष्ण दो प्रकारकी व्रीहिका उल्लेख है—

"व्रीहीनावहेच्छुक्लांश्च कृष्णान्।" (तैत्तिरीयसं २।३।१।३)

(1) Dr. Watt's Economic Products of India, vol. V. p. 513

(2) Do Do p. 512.

डाक्टर अपार्ट प्रमुख कितने पाश्चात्य भाषातत्त्व विदोंने स्थिर किया है, कि द्राविड़में धान्यका नाम अरोषि है। इसी अरोषिसे ग्रीक ओरीजा (Oryza) नाम पड़ा है (१)। उनका अनुमान है, कि दाक्षिणात्य-से ही धान्य ग्रीस आदि देशोंमें गया था। फिर इ-युल और डाक्टर बुर्नेल-प्रमुख विद्वानोंका कहना है, कि अरोषिसे ग्रीक् ओरीजा नाम नहीं पड़ा। पर यह भले ही सकता है कि दाक्षिणात्य धानकी खेतीका आदि स्थान हो। तैलिङ्ग लोग एक प्रकारके स्वभावजात धान्यको निवारि कहते हैं। उत्तर-सरकार प्रदेशमें यह निवार आपसे आप अपर्याप्त उत्पन्न होता है। डाक्टर रसबरा अनुमान करते हैं, कि यही दाक्षिणात्यका आदि शस्य है। अरबी भाषामें धान्यको अल्-रुज्ज (वा अर्-रुज्ज) कहते हैं। यह शब्द अधिक सम्भव है कि द्राविड़ शब्दसे लिया गया हो। स्पेनियार्डोंने अरबोंसे अपना अर-रोज नाम ग्रहण किया है। किन्तु द्राविड़ भाषासे ग्रीक 'ओरीजा' नाम नहीं निकला। अलेकसन्दरके दिग्विजय-के समयसे ही ग्रीसके लोग धानका हाल जानने लगे हैं। थियोफ्रेसतसने सबसे पहले ओरीजा शब्दका उल्लेख किया। वे भी अलेकसन्दरके समयमें ही प्रादुर्भूत हुए। उनका व्यवहृत ओरीजा (२) शब्द अकृसस्ती वा पञ्जाब देशसे लिया गया है।

संस्कृत 'व्रीहि' और ग्रीक 'ओरीजा' इन दोनों शब्दोंमें जैसा निकट सम्बन्ध है, धान्यवाचक और किसी संस्कृत शब्दके साथ वैसा सादृश्य नहीं। अफगानिस्तानकी पुस्तु भाषामें धान्यको व्रीज्‌ जह कहते हैं। व्रीहिसे व्रीज्‌ हुआ है, इसमें सन्देह नहीं।

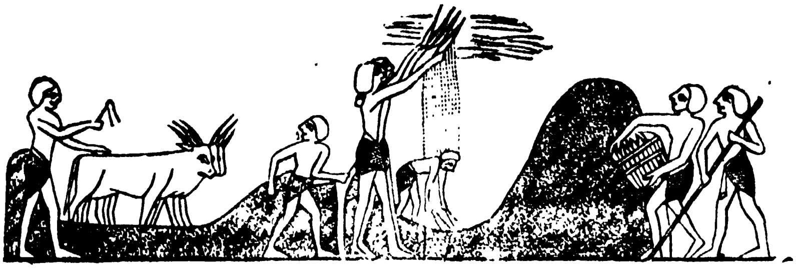
पाश्चात्य शब्दशास्त्रविदोंमेंसे किसीका मत है, कि जिस समय प्राचीनतम आर्यजाति मध्य एशियामें रहती थी, उस समय जो भाषा प्रचलित थी, उसी भाषासे व्रीहि और व्रीज्‌-ह या ये दोनों शब्द निकले हैं। इस हिसाबसे भारतवासियोंके निकटसे ग्रीकोंने ओरीजा लिया है वा नहीं, इसमें सन्देह है।

डाक्टर वाट साहबने लिखा है, कि स्वभावजात धान्य-का आदि जन्मभूमि यदि खोजी जाय, तो दक्षिण भारत-से कोचीन चीन तकके स्थानको इसका आदि स्थान कह सकते हैं। ईसा जन्मके प्रायः ३००० वर्ष पहले उक्त स्थानसे पहले चीन देशमें और उसके बाद क्रमशः उत्तर और पश्चिम भारतमें, पारस्य और अरबमें तथा सबसे पीछे इजिप्ट और यूरोपमें धानकी खेती आरम्भ हुई। अन्तमें उन्होंने यह भी कहा है कि चीन सरीखा सुसभ्य जाति ही सम्भवतः धानकी कृषियोग्यता सबसे पहले उपलब्ध कर सकी थी। स्वभावजात जङ्गली धान पर सन्तुष्ट होने वाली निम्नभारतकी गिरिशृङ्गवासी असभ्य जातिके लिये यह सम्भव पर नहीं है। चीन लोगोंने ही क्या पहले पहल धानका मर्म समझा था? धान्यके आदि स्थानके लोग क्या चीनीके पहले धान्यकी ऐसी प्रयोजनीयता उपलब्ध कर न सके थे?

पहले ही कहा जा चुका है कि ऋग्वेदमें 'धान्य' शब्दका उल्लेख है। ऋग्वैदिक आर्योंने धान्यकी विशेष आवश्यकता समझी थी, इसी कारण धान्य और धनका एकत्र व्यवहार किया है। अध्यापक बालगङ्गाधर तिलक और जर्मन पण्डित जेकोबि दोनोंने ही गणना द्वारा स्थिर किया है, कि ईसा जन्मके दश हजार वर्ष पहले वैदिक आर्यसभ्यता विस्तृत थी। अतः जगत्‌के आदि ग्रन्थ ऋक्‌संहितामें जब धान्यका व्यवहार पाया जाता है, तब क्या हमलोग यह नहीं कह सकते कि ईसा-जन्मके १०००० वर्ष पहलेसे भारतीय आर्यगण धान्यका व्यवहार जानते थे? उस समय चीनदेशमें सभ्यताका नाम भी न था। इस हिसाबसे भारतवासी सुसभ्य वैदिक आर्यों द्वारा ही धानकी खेती प्रचलित हुई थी, यह अधिका-तर सम्भवपर प्रतीत होता है। चीनवासियोंके बहुत पहले सुसभ्य मिस्रवासीगण धान्यकी कृषिप्रणालीसे अच्छी तरह अवगत थे। ५००० वर्षके प्राचीन मिस्रके एक समाधिस्थलमें धानकी दौरी और धानकी झाड़ाई-का जो चित्र है, वह नीचे दिया जाता है।

(१) Dr. Oppert's Original Inhabitants of India, p.12,

(२) ग्रीक् ओरीजासे इतालीय रिसो (riso), फरासी रिज (riz) और अंगरेजी रिस वा राइस (rice) शब्द यथाक्रम निकला है। थियोफ्रेस्तसके ग्रन्थमें Orinzus नामसे धान्यका उल्लेख है। जर्मनवासी हेनसाहबके मतानुसार ओरिजस शब्दका पारसीक और आरमायिक रूप है जो साधारणतः विरिंजी वा बिरिंजी नामसे ख्यात है।



मिस्रके एक ५००० वर्षके पुरातन समाधि-स्तम्भमें खोदित चित्र।

अभी हम लोगोंके देशमें जिस तरह बैल द्वारा दौरी होती है, उसी तरह ५००० वर्ष पहले भी मिस्र देशमें होती थी। चित्र हीसे स्पष्ट मालूम हो जायगा। यदि प्राचीन मिस्रवासी धान्यकी महोपकारिता जान कर उसे भारतवर्षसे ले गये हों, तो यहांकी कृषिप्रणाली मिस्रमें प्रवर्त्तित हुई थी, यह असम्भव नहीं है।

हम लोगोंने उदूखल मूसल द्वारा धान कूट कर व्यवहार करनेका उल्लेख पाया है। ५००० वर्ष पहले मिस्रवासी भी उसी तरह उदूखल मूसल द्वारा धान कूटकर तैयार करते थे। थिवसके प्राचीनतम चित्रमें उसका परिचय है (१)।

अति प्राचीनकालसे धान्य भारतवासीका प्रधान धन गिना जा रहा है। मनुसंहितामें धान्यके विषयमें जो कुछ लिखा है, वह नीचे देते हैं—

जिस वैश्यके पास धान्य धन अधिक है वह दूसरेकी अपेक्षा श्रेष्ठ है (२।१५५)। भूमिकी उर्वरता और कर्षणकार्यके तारतम्यानुसार धानादि शस्यका छठां, आठवाँ वा बारहवाँ भाग राजाका होना चाहिए (७।१३०)। धान्य कर्ज देनेसे पीछे उसका पांचगुना ले सकते हैं, उससे अधिक नहीं (८।१८१)। दशकुम्भ धान्य चुरानेसे पाँच रुपये और प्रस्तुत किया हुआ धान्य चुरानेसे द्रव्यस्वामीका सम्पर्कीय होनेसे ५० रुपये और असम्पर्कीय होनेसे उसे १०० रुपये जुर्माना करना चाहिये। (८।३२०-३)। ब्राह्मण लोग आश्रित शूद्रको धान्यका पुलाक वा भात खानेको देते थे (१०।१२५)। भारतवासीके निकट धान जैसा गण्य है और राजा जैसा भाग लेते हैं, ईसा जन्मके २२५६ वर्ष पहले चीनमें भी वैसी ही प्रथा थी।

(१) See wilkinson's Ancient Egyptians, (New Ed.) Vol, II P 166.

मानवोंके खाने लायक जितने प्रकारके अनाज हैं उनमेंसे धान ही सबसे श्रेष्ठ है और प्राचीनकालसे व्यवहृत होता आ रहा है। पृथ्वीके प्राय सभी देशोंमें विशेषतः बङ्गाल और विहारमें धान्य ही प्रधान आहार्य है। मन्द्राज और ब्रह्मदेशमें भी धानके बिना काम नहीं चलता।

धान्यकी भूसी अलग करनेसे भीतरमें जो बीज वा शस्य रहता है, उसे संस्कृतमें तण्डुल कहते हैं। यह तण्डुल और धान्य विभिन्न देशमें विभिन्न नामसे प्रसिद्ध है, कुछके नाम नीचे दिये जाते हैं।

धान्यका नाम।	तण्डुलका नाम।	भाषा वा देशका नाम।
धान्य, व्रीहि	तण्डुल	संस्कृत।
धान	चावल, चाउर	हिन्दी।
धान	चाउल, चाल	बङ्गाल।
धान	चावल, रावना	उड़िया।
उकिवा	किवा	खसिया।
उरि, उड़ि	...	सन्थाल।
मी	...	गारो।
देहन, तानि	...	काश्मीर, पेशावर।
धान, तै, शालियान	...	भङ्ग।
शाली	...	हजारा।
शोल	...	पेशावर, पञ्जाब।
गारि, शाल	...	राजपूताना।
शारि	...	सिंधु।
,,	तण्डुल	मारवार।
,,	तण्डाल	महाराष्ट्र।
अरोषि, शाली	नेलि, नेल	तामिल।
वुदलु, वरलु	विहम	तेलगु।
भाकी	...	कर्णाटी।

अरि	......	मलयालम ।
साव	धान, तसान	ब्रह्म ।
हाल, अरई	......	सिंहल ।
मोज, को	......	जापान ।
लुया	......	कोचीन-चीन ।
ताउ	मो	चीन ।
पाड़ी	ब्रस	मलय
ब्रसी	हाला	यवद्वीप ।
पाडी (Paddy)		इङ्गलैण्ड ।
अरुज (Arruzz)		स्पेन ।
ब्रिञ्ज (Brinj)	......	आर्मेणिया ।
अरुस, रुस, रुज		मिस्र ।
विरञ्ज	......	पारस्य ।
ब्रिजञ्जा	.....	पस्तु (काबुली)

तण्डुल और जल दे कर अग्निमें पाक करनेसे खाने योग्य एक प्रकारकी वस्तु बन जाती है जिसे संस्कृतमें 'अन्न', तेलगुमें 'भात्ता', मलयमें 'नामसी' ब्रह्ममें 'तामनी' बङ्गाल और उत्तर भारतमें प्राय: सभी जगह 'भात' कहते हैं।

जिसकी विस्तृत खेती नहीं होती वा जो आपसे आप उत्पन्न होता है, उस धान्यजातीय तृणको जङ्गली धान कहते हैं। संस्कृतमें नीवार और श्यामा दो प्रकारके धानका नाम पाया जाता है। नीवार धान 'नेवयार' 'नेवारी' आदि शब्दोंसे भाषामें प्रचलित है और श्यामा धान सम्भवत: काश्मीरमें 'दामा' कहलाता है। अयोध्या प्रदेशमें "मुञ्जी" नामक एक प्रकारका जङ्गली धान मिलता है। यह संस्कृत 'मुञ्ज' और चालू भाषाकी 'मूंज' नामक तृणका शस्य है वा नहीं, कह नहीं सकते। उत्तर भारतमें जङ्गली धानको उड़ि और दक्षिण भारतमें नेवारी कहते हैं।

कृषिजात धान्य ही साधारणत: 'धान्य' वा धान कहाता है। इसी धान्यको तामिल भाषामें 'शालि' कहते हैं। संस्कृतमें भी 'शालि' शब्दका प्रयोग है। संस्कृत 'शालि' शब्दसे—व्रीहिभेद, व्रीहिश्रेष्ठ ऐसा अर्थ पाया जाता है। मालूम पड़ता है कि संस्कृत भाषामें 'शालि' शब्दसे कृषिजात धान्य (Cultivated rice) और 'नीवार' शब्दसे वन्य धान्य (wild rice) कहनेसे काम चल सकता है। आसामसे ले कर पञ्जाब तक सब जगह शाली धान्यसे हैमन्तिक वा आमन धानका ही बोध होता है। कृषिजात धानमें हैमन्तिक धान यथेष्ट उपजता है, यही कारण है कि शालि शब्दसे केवल उसीका बोध होता है। इस कृषिजात धान्यका अंगरेजी वैज्ञानिक नाम Oryza sativa है।

वन्य धान्य—धानकी खेती भारतवर्षमें सब जगह होती है। ग्रीष्ममण्डलकी जलाभूमिमें धान स्वभावत: जंगली होता है। भारतके मन्द्राज, उड़िष्या, बङ्गाल, चट्टग्रामसे ले कर आराकान और कोचीन-चीन तक इस प्रकारका जंगली धान बहुत उपजता है। इसीसे बहुतोंका अनुमान है, कि ग्रीष्ममण्डल ही धान्यकी आदि जन्मभूमि है। इसी स्थानसे यह क्रमश: उत्तर और दक्षिणमें फैल गया है। जंगली धान उक्त स्थानके सिवा और कहीं नहीं होता, सो नहीं। नीलगिरि, युक्तप्रदेश, पञ्जाब मध्यभारत राजपूतानका आबूपर्वत, छोटा नागपुर, आसाम, बेलुचिस्तान, अफगानिस्तान, पारस्य आदि स्थानोंमें भी यह कम नहीं उपजता। कोई कोई उद्भिज्जतत्त्ववित् वन्य धान्य और कृषिजात धान्यको बिलकुल स्वतन्त्र श्रेणीके मानते हैं। डाक्तर वाटने अनेक प्रकारके वन्य धान्यकी परीक्षा कर उन्हें प्रधानत: चार भागोंमें विभक्त किया है उनका कहना है कि इन चार श्रेणियोंके साथ कृषिजात धान्यका थोड़ा बहुत फर्क पड़ता है।

(१) Oryza rufipogon—अलीगढ़, सहारनपुर आदिसे इस वन्य धानका नमूना संगृहीत और परीक्षित हुआ है। डा: वाटने उद्भिज्ज-शास्त्रानुयायी लक्षणादि मिला कर स्थिर किया है, कि सम्भवत: यही प्राय: सब प्रकारके रक्तवर्ण चावलके उत्पादक धानकी आदिमावस्था है। बाह्याकृति देख कर मालूम पड़ता है कि इसको खेतीमें कम पानीकी जरूरत पड़ती है। डा: वाटने और भी कहा है कि कृषिगुणसे इस शस्यकी परिपुष्टि और उन्नति हो कर ही, मालूम होता है, कि सफेद दाना "छोटो आमन" उत्पन्न हुई है। पूर्व बङ्गालके नविगञ्ज, हविगञ्ज आदि स्थानोंमें नदीके किनारे यह वन्य धान स्वभावत: ही उत्पन्न होता है।

(२) Oryza coarctata—इस श्रेणीकी धान्य अवस्थासे क्रमविशुद्धसे गभीर जलजात धान्यकी उत्पत्ति हुई है। इसका दाना कुछ मैला होता है।

(३) Oryza bengalensis—डा: वाटने इस श्रेणीमें बङ्गालके अन्य स्थानोंके सब प्रकारके गणना की है। यह झील और दीघीके किनारे आपसे आप होता है। भारतवर्षमें 'उड़ि' और 'झरा' नामके जितने प्रकारके धान होते हैं वे इसी श्रेणीके अन्तर्गत हैं। इसी श्रेणीसे कृषिके प्रभावसे कई प्रकारके आउस भी आमनकी तरह वृद्धि पाते हैं। किन्तु जल वृद्धिके साथ साथ इसकी भी वृद्धि है। इसका दाना कृषिजात शस्यकी तरह परिपक्व, परिपुष्ट और समान आकारका होता है।

(४) Oryza abuensis—यह सम्भवतः धान्यकी अति आदिम अवस्थाका नमूना है। इसका अभी जो आकार पाया जाता है उससे भी छोटे आकारका शस्य अति प्राचीनकालमें वर्त्तमान था, ऐसा अनुमान किया जाता है। इसमें वर्षाकी अधिक जरूरत नहीं पड़ती। पहाड़के ऊपर और उच्चभूमिमें जो सब उत्कृष्ट रोया धान्य उत्पन्न होता है, वह इसी धानसे उत्पन्न समझा जाता है। इसका धान्य कुछ काले रंगका होता है। साधारणतः यही काला धान नामसे प्रसिद्ध है।

इन्हीं सब जंगली धानोंसे अधिकांश आउस, आमन और रोया धान्यकी उत्पत्ति कल्पित हुई है सही, किन्तु बोरो धान्यकी आदिमावस्था इनमेंसे किसीमें लक्षित नहीं होती।

कृषिजात धान्य।—कृषिजात धान्यको उद्भिज्ज तत्त्वानुसारसे श्रेणीभेद करना बड़ा दुरूह है। कृषिके समय भेदसे ही इसका श्रेणीभेद किया जा सकता है। साधारणतः इसके मुख्य भेद तीन माने जाते हैं—(१) आमन (अगहनी) जो जेठ आषाढ़में बोया जाता और अगहन पूसमें कटता है। (२) आउस (भदई), जो बैसाख जेठमें बोया जाता और भादों कुआरमें कटता है, और (३) बोरो, जो पूस माघमें बोया जाता और बैसाख जेठमें कटता है। जो धान एक जगहसे [illegible] [illegible]

है। यों तो भिन्न भिन्न स्थानोंमें धानकी बोआई पूससे ले कर आषाढ़ तक होती है और कटाई जेठसे अगहन तक, पर उत्तरीय भारतमें अधिकतर धान आषाढ़ सावनमें बोया जाता है। साधारण धान तो भादों कुआर तक तैयार हो जाता है, पर जड़हन अगहनमें कटता है।

धान्यकी जमीन।—भारतमें विशेषतः बङ्गालदेशमें चावल ही लोगोंका प्रधान खाद्य है। मन्द्राज और ब्रह्मदेशमें भी यही हाल है। इसीसे इन तीन देशोंमें धानकी खेती ही प्रधान है। भारतवर्षमें बङ्गालदेश छोड़ कर अन्यप्रदेशोंमें प्रायः निम्नलिखित परिमित जमीनमें धानकी खेती होती है—

मन्द्राज	६२८५८०६	एकड़
बम्बई (सिन्धु समेत)	२२०३८१८८	,,
युक्तप्रदेश	४३३८८२३	,,
अयोध्या	४२८२३८	,,
मध्यप्रदेश	३७८५५६६	,,
उत्तरब्रह्म	१६२५८२६	,,
दक्षिणब्रह्म	४०६७६०६	,,
आसाम	१२६२६८१	,,
पञ्जाब	५६५	,,
अजमीर मेवार	७५८	,,
कुर्ग	७४४८८	,,
बेरार	१८८४०	,,
मानपुर (मध्यभारत)	८०	,,

कुल २६८१०८०६ एकड़ या ८०४१२४१८ बीघा जमीनमें धानकी खेती होती है। महीन चावलके धान अच्छे समझे जाते हैं। अच्छी जातिकी बढ़िया चावल प्रायः जड़हनके ही होते हैं। धान या चावलके बहुत अधिक भेद हैं। सन् १८७२ में अजायब घरमें रखनेके लिये जो चावलोंका संग्रह हुआ था, उसमें पाँच हजार प्रकारके चावल बतलाए गए थे। इस संख्याको ठीक न मान कर यदि घटाई भी दें, तो भी बहुत भेद होते हैं। महीन सुगन्धित चावलोंमें बासमतीके अतिरिक्त सठिया, रामभोग, रानीकाजर, तुलसीबास, मोतीचूर, [illegible], [illegible] आदि भी [illegible] चावल [illegible] [illegible] साधारण धान भी बहुत प्रकारके होते हैं

जैसे—बगरो, दुधी, साठो, सरया, रामजवाइन, केला-सार, तुलसीमञ्जरी, लटजीरा, बेगोर, काजरचोर, कृष्ण-भोग इत्यादि।

धान्यका विषय भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है। धान पांच प्रकारका है—शालिधान्य, व्रीहिधान्य, शूक-धान्य, शिम्बीधान्य और क्षुद्रधान्य। इनमेंसे रक्तशालि प्रभृतिको व्रीहिधान्य, यव प्रभृतिको शूकधान्य, मूंग प्रभृति को शिम्बीधान्य और काङ्गनिधान्य-प्रभृतिको क्षुद्रधान्य वा तृण कहते हैं।

शालिधान्यका लक्षण और गुण—जो सब हेमन्तिक धान्य कण्डन और श्वेतवर्णका होता है, उसे शालि-धान्य कहते हैं।

शालि-धान्यके नाम—रक्तशालि, कलम, पाण्डुक, शकुनाहृत, सुगन्धक, कर्दमक, महाशालि, दूषक, पुष्पा-ण्डक, पुण्डरीक, महिषमस्तक, दीर्घशूक, काञ्चनक, हायन और लोध्रपुष्पक आदि करके भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके शालिधान्य हैं।

शालिधान्यका गुण—मधुर, कषायरस, स्निग्ध, बल-कारक, मलका काठिन्य और अल्पताकारक, लघुपाकी, रुचिकारक, स्वरप्रसादक, शुक्रवर्द्धक, शरीरका उपचय-कारक, ईषत् वायु और कफवर्द्धक, शीतवीर्य, पित्तनाशक और मूत्रवर्द्धक।

दग्धभूमिजात शालिधान्य—कषायरस, लघुपाकी, मलमूत्र-निःसारक, रुक्ष और कफनाशक। खेत जोत कर धान बुननेसे जो धान उत्पन्न होता है, वह वायु और पित्तनाशक, गुरु, कफ और शुक्रवर्द्धक, कषायरस, मलका अल्पताकारक, मेधाजनक तथा बलवर्द्धक माना गया है।

जो धान अकृष्ट भूमिमें आपसे आप उत्पन्न होता है वह ईषत् तिक्तसंयुक्त, मधुर, कषायरस, पित्तघ्न, कफनाशक, वायु और अग्निवर्द्धक तथा कटुविपाक है।

वापित धान्य अर्थात् एक जगहसे उखाड़ कर जो दूसरी जगह रोपा जाता है, वह मधुर, कषायरस, बल-वर्द्धक, बलकारक, स्निग्ध, शुक्रवर्द्धक, मलका अल्पता-कारक, गुरु और शीतवीर्य होता है।

जो धान आपसे आप उपजता है उसे अवापित-धान्य कहते हैं। अवापित धान्य वापित धान्यकी अपेक्षा अल्प गुणविशिष्ट होता है।

रोपितधान्य अभिनव अवस्थामें शुक्रवर्द्धक और पुराना होने पर लघु होता है। अतिरोप्य धान्य अर्थात् रोया धान्यको उखाड़ कर दूसरी जगह रोपनेसे जो धान्य उत्पन्न होता है वह रोया धान्यकी अपेक्षा गुणयुक्त और लघुपाकी होता है।

छिन्नरूढ़ा शालिधान्यका गुण शीतवीर्य, रुक्ष, बल-कारक, पित्तघ्न, कफनाशक, मलरोधक, ईषत् तिक्त-संयुक्त, कषायरस और लघु माना गया है।

रक्तशालिका गुण—शालिधान्योंमें रक्तशालिधान्य ही श्रेष्ठ होता है। यह बलकारक, वर्णप्रसादक, शुक्र-वर्द्धक, अग्निकारक, पुष्टिजनक, और पिपासा, ज्वर, विष, व्रण, श्वास, कास और दाहनाशक है। महाशालि प्रभृति रक्तशालिको अपेक्षा अल्पगुणयुक्त होते हैं।

व्रीहिधान्यका लक्षण और गुण—वर्षाकालसम्भव धान्यमें जो छांटने पर सफेद वर्णका होता और देरीसे पकता है, उसे व्रीहिधान्य कहते हैं।

कृष्णव्रीहि, पाटल, कुक्कुटाण्डक, जतुमुख आदि अनेक प्रकारके व्रीहिधान्य हैं। जिस धान्यकी भूसी और चावल काला होता है, उसे कृष्णव्रीहि; जिसका वर्ण पाटलपुष्पके समान होता है, उसे पाटलव्रीहि; जिस धान्यकी आकृति कुक्कुटडिम्ब सी होती है, उसे कुक्कुटा-ण्डक; जिस धान्यका चावल और भूसा काला होता है, उसे शालामुख और जिस धान्यके मुखका वर्ण लाक्षाके समान होता है, उसे जतुमुख व्रीहि कहते हैं।

व्रीहिधान्य—मधुर, विपाक, शीतवीर्य, ईषत् अभि-ष्यन्दी, मलरोधक और षष्टिक धान्यके समान होता है। व्रीहिधान्यके मध्य कृष्णव्रीहि ही सबसे श्रेष्ठ तथा गुण-विशिष्ट है।

षष्टिक धान्यका नाम, लक्षण और गुण।—जिसका अन्न पेटमें जानेसे ही पच जाता है, उसे षष्टिधान्य कहते हैं। षष्टिक, शतपुष्प, प्रमोदक, मुकुन्द और महाषष्टिक आदि अनेक प्रकारके षष्टिकधान्य हैं। इन्हें कोई कोई व्रीहिधान्य भी कहते हैं। क्योंकि व्रीहिधान्य-के जो सब लक्षण हैं, वे सब इनमें भी पाये जाते हैं।

षष्टिकधान्यमें मधुररस, शीतवीर्य, लघु, मलरोधक, वातघ्न, पित्तनाशक तथा शालिधान्यके जैसा गुण माना गया है।

षष्टिक धान्योंमें षष्टिकाख्य धान्य ही श्रेष्ठ गुणयुक्त है। यह लघु, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, मधुररस, मृदुवीर्य, धारक, बलकारक, ज्वरनाशक तथा रक्तशालिके जैसा गुणयुक्त होता है। अपरापर षष्टिक धान्योंमें इसकी अपेक्षा अल्प गुण है।

शूकधान्य।—यव, शितशूक, निःशूक, अतियव, तोक्य और स्वल्पयव ये सब शूक धान्यके भेद हैं। शूकधान्योंमें यव श्रेष्ठ है।

यवका गुण—कषाय, मधुर रस, शीतवीर्य, लेखन-गुणयुक्त, मृदु, व्रणरोगमें तिलके समान हितकारक, रुच, मेधाजनक, अग्निवर्द्धक, कटुविपाक, अनभिष्यन्दी, स्वरप्रसादक, बलकारक, गुरु, अत्यन्त वायु और मल वर्धक, वर्णप्रसादक, शरीरका स्थिरतासम्पादक, पिच्छिल, एवं कण्ठागत रोग, चर्मगत रोग, कफ, पित्त, मेद, पीनस, श्वास, कास, ऊरुस्तम्भ, रक्तदोष और पिपासानाशक है। इस यवकी अपेक्षा अतियव अल्पगुणयुक्त माना गया है।

गोधूम शूकधान्यके अन्तर्गत है। इसका दूसरा नाम है सुमन। गोधूम तीन प्रकारका होता है—१ला महागोधूम, यह बड़ा गोधूम कहाता है और पश्चिम प्रदेशमें उत्पन्न होता है। २रा मधुलीनामक, यह कुछ छोटा होता है और मध्यप्रदेशमें उपजता है। ३रे प्रकारका नाम है नन्दीमुख, यह शूयाविहीन दीर्घाकृतिका होता है। यव देखो।

महागोधूमका गुण—मधुररस, शीतवीर्य, वातघ्न, पित्तनाशक, गुरु, कफजनक, शुक्रवर्द्धक, बलकारक, स्निग्ध, भग्नसन्धानकारक, सारक, ओजोधातुवर्द्धक, वर्ण-प्रसादक, व्रणका हितकारक, रुचिजनक, और शरीरका स्थिरतासम्पादक है। गोधूमकी कफजनक शक्ति नूतन गोधूममें है, पुरातनमें नहीं। मधुली गोधूम शीतवीर्य, स्निग्ध, पित्तनाशक, मधुररस, लघु और शुक्रवर्द्धक, शरीरका उपचयकारक और सुपथ्य है। नन्दीमुख गोधूम इसी के समान गुणदायक है। तिक्षित विवरण गोधूममें देखो।

शिम्बी धान्य—शमीज, शिम्बीज, सूर्य और वैदल ये सब शिम्बीधान्यके नाम हैं। इसका गुण—मधुर, कषाय रस, रुच, कटु, विपाक, वायुवर्द्धक, कफघ्न, पित्तनाशक, मलमूत्ररोधक और शीतवीर्य है। इनमेंसे मूंग और मसूरके सिवा अन्य सभी वैदल आध्मान-कारक हैं। मूंग और मसूर बिलकुल आध्मानकारक नहीं हैं सो नहीं, पर हाँ, अन्यान्य वैदलकी अपेक्षा कम है।

मूंग, माष, निष्पाव मुकुन्द, मसूर, आढ़की (अरहर) कलाय, खेसारी, कुलथी, तिल, राई आदि शिम्बीधान्य के अन्तर्गत हैं। इनका विवरण उन्हीं सब शब्दोंमें देखो।

क्षुद्रधान्य—क्षुद्रधान्य, कुधान्य और तृणधान्य ये तीन एकार्थवाचक शब्द हैं। क्षुद्रधान्य ईषत् उष्ण, कषाय, मधुर रस, कटु, विपाक, लघु, लेखनगुणयुक्त, रुच, क्लेद-शोषक, वायुवर्द्धक, मलमूत्ररोधक और पित्त, रक्त तथा कफनाशक है। क्षुद्रधान्यके जितने प्रकारके भेद हैं, उनका विवरण नीचे दिया जाता है।

कङ्गुधान्य—कङ्गु और प्रियङ्गु एकपर्यायक शब्द हैं। यह कृष्ण, रक्त, शुक्ल और पीतवर्णके भेदसे चार प्रकारका है। इनमेंसे पीतवर्ण कङ्गु सबसे श्रेष्ठ है। इसका गुण—भग्नसन्धानकारक, वायुवर्द्धक, शरीरका उपचयकारक, गुरु, रुच, कफनाशक, अत्यन्त शुक्रवर्द्धक और गुणकर है।

चीनाकि धान्य—यह काङ्गनि धान्यका प्रभेदमात्र है और काङ्गनिके समान गुणदायक भी है।

श्यामाक धान्य—शोषक, रुच, वायुवर्द्धक एवं कफ और पित्तनाशक है।

कोद्रव धान्य—कोद्रवक और कोरदूष ये दो कोदों धान्यके नाम हैं। वनकोद्रवको उद्दाल कहते हैं। इसका गुण वायुवर्द्धक, धारक, शीतवीर्य और पित्त तथा कफनाशक है। वनकोद्रव उष्णवीर्य, धारक तथा अत्यन्त वायुवर्द्धक है।

वाटकधान्य—इसका दूसरा नाम वरबीज है। इसमें मधुर, कषायरस, रुच, रक्तपित्तनाशक, कफघ्न, शीतवीर्य, लघु, शुक्रवर्द्धक, तथा वायुका प्रकोपकारक गुण माना गया है।

वंशबीज—रुक्ष, कषायरस, कटु, विपाक, मूत्रल

रोधक, कफनाशक, वायु और पित्तकारक तथा सारक है।

कुसुम्भबीज—वरटा और वरटिका ये दो कुसुम्भ बीजके पर्याय हैं। इसका गुण मधुर, कषायरस, स्निग्ध, रक्तपित्तघ्न, कफनाशक, शीतवीर्य, गुरु, मलघ्न और वायुनाशक है।

गवेधुका—इसमें कटु, मधुररस, क्षयताकारक और कफनाशक गुण है।

नीवारका दूसरा नाम प्रसाधिका और तृणान्न है। इसका गुण—शीतवीर्य, धारक, पित्तनाशक तथा कफ और वायुजनक है। यवनाल शीतवीर्य, मधुर, कषायरस, लोहित, कफघ्न, पित्तनाशक, मलघ्न, रूक्ष, क्लेदजनक और लघु है।

नूतन सभी धान्य मधुररस, गुरु और कफकारक होते हैं। एक वर्षका पुराना धान क्रमशः अपना गुरुत्व छोड़ता है, लेकिन वीर्य नहीं छोड़ता। जो धान जितना पुराना होता जाता है वह उतना ही अपना वीर्य छोड़ता जाता है लेकिन यव, गोधूम, तिल और माष ये सब नूतन अवस्थामें भी विशेष हितकर होते हैं। पुराना होने पर अर्थात् दो वर्ष बीत जाने पर ये विरस और रूक्ष हो जाते हैं। जो मनुष्य सुस्थ हैं उन्हींके लिये नवीन यव गोधूम आदि हितकर हैं, पथ्यभोजीके लिये नहीं। (भावप्रकाश)

सुश्रुतमें धान्यका विषय इस प्रकार लिखा है—लोहित, शालि, कर्दम, पाण्डु, सुगन्ध, शकुनाहृत, पुष्पाण्डक, पुण्डरीक, काञ्चन, महिष-मस्तक, हायन, दूषक, महादूषक प्रभृति शालिधान्य हैं। शालिधान्य मधुर, शीतवीर्य, लघुपाक, बलकर, पित्तघ्न, अल्पवायु और कफकार, स्निग्ध, मलका अल्पताकारक तथा मलरोधक होता है। सब प्रकारके शालिधान्योंमें लोहित धान्य ही श्रेष्ठ है। यह दोषघ्न, शुक्र और मूत्रहितकर, चक्षु और स्वरके पक्षमें हितकर, वर्णकर, बलकर, हृद्य, कान्तिनाशक, व्रणके लिये हितकर तथा सब प्रकारके दोषनाशक है।

षष्टि, काङ्गुक, मुकुन्द, पीत, प्रमोद, [illegible] [illegible] आदि षाठ धान्य हैं। ये रस और पाकमें मधुर, वातपित्तके पक्षमें शान्तिकर, गुणमें प्रायः शालिधान्यके समान हैं। यह पुष्टिकर, कफ और शुक्रका हितकर है। इनमेंसे षाठ धान्य ही प्रधान है। षाठ धान्य पश्चात् कषायरस विशिष्ट, लघु, मृदु, स्निग्ध त्रिदोषघ्न, शरीरका स्थैर्य और बलवर्द्धनकर, विपाकमें मधुर, सं‍ग्राही और लोहित धान्यके समान है। दूसरे सभी षाठ धान्य उत्तरोत्तर क्रमशः अल्पगुणविशिष्ट हैं।

कृष्णव्रीहि, शालामुख, नन्दीमुख, जवाक्षक, त्वरितक, कुक्कुटाण्डक, पारावत, पाटल प्रभृति व्रीहिधान्य अर्थात् आशुधान्य हैं। व्रीहिधान्य कषाय, मधुर, पाकमें मधुर, चक्षुःरोगकारी और षाठ धान्यके समान गुणकारी तथा मलवर्द्धक है। व्रीहि धान्योंमें कृष्णव्रीहि ही श्रेष्ठ है। यह पश्चात् कषाय रसविशिष्ट और लघु होता है। जो सब शालिधान्य दग्धभूमिमें उत्पन्न होते हैं, वे लघुपाक, कषाय, मलमूत्रके संग्राही, रूक्ष एवं श्लेष्मनाशक हैं। उखभूमिजात धान्य ईषत् तिक्त, मधुर, वायु और अग्निवर्द्धक, कफ और पित्तनाशक, कषाय और पश्चात् कटु होता है। केदार धान्यमें मधुर, वृष्य, बलकारक, पित्तनाशक, ईषत् कषाय, अल्प मलकारी, गुरुपाक, कफ और शुक्रवर्द्धक गुण माना गया है।

रोप्यातिरोप्यधान्य—लघुपाक, अतिशयगुणकारी, अदाही, दोषनाशक, बलकर एवं मूत्रवर्द्धक होता है। जिन सब शालिधान्योंके भीतरमें अङ्कुर रहता है वे रूक्ष, मलवर्द्धनकर और श्लेष्मजनक होता हैं।

कुधान्य—कोरदूषक, श्यामा, नीवार, शान्तनु, तुवर, आढ़की, कोद्दालक, प्रियङ्गु, मधुलिका, नान्दीमुख, कुरुविन्द, गवेधुका, वरुक, उपपर्वी, मुकुन्द, वेणुयव आदि कुधान्यवर्ग हैं। ये उष्ण, मधुर, रूक्ष, कटुपाक, श्लेष्म, कफरोधक और वायुपित्तके प्रकोपकर हैं। इनमेंसे कोद्रव, नीवार, श्यामा और शान्तनुमें कषाय, मधुर और शीत पित्तका शान्तिकर गुण माना गया है। (सुश्रुत) विशेष विवरण उन्हीं सब शब्दोंमें देखो।

[illegible] धान्यका विषय इस प्रकार लिखा है—

[illegible]

कुछ कुछ फलमूलादि खा सकते हैं। यव धान्यसे निकला है। धान्य नाना प्रकारका है—श्यामा, माष, मसूर, कोद्रव, सर्षप, मकुष्ट, राजमाष, तुवर, कुमर, यव, गोधूम, मुद्ग, तिल, कङ्गु, कुलत्थ, गवेधुक, नीवार, आढ़क, कलायक, माण्डुक, वजूक, रक्त, कोचक, वरक, तिलक, चणक आदि धान्य कहलाते हैं। इन सब द्रव्योंसे जो प्रस्तुत होता है उसे अन्न कहते हैं। अन्नत्याग कहनेसे उक्त सभी द्रव्योंका त्याग समझना चाहिये।

भविष्यपुराणमें धान्यका परिमाण इस प्रकार बतलाया है—पल, कुड़व, प्रस्थ, आढ़क, द्रोण ये सब धान्यके परिमाण हैं। चार पलका एक कुड़व, चार कुड़वका एक प्रस्थ, चार प्रस्थका एक आढ़क, चार आढ़कका एक द्रोण, १६ द्रोणका एक खारी और २० खारीका एक कुम्भ होता है।

धान्यका व्यवहार—भोजनके सिवा धान और भी अनेक कामोंमें व्यवहृत होता है।

रंग—पञ्जाबमें श्वेत वा पीताभ धानके तुषसे मृदु पीताभ पाटल वर्णका रंग प्रस्तुत होता है। लाहोरसे मि: टामस वार्डलने इसका नमूना पाया था।

अंशु—इसके खड़ (विशेषत: डंठल और मूलतन्तु) से कागज प्रस्तुतोपयोगी उपादान प्राप्त हो सकता है। इसकी कई बार परीक्षा भी हो चुकी है, किन्तु उससे कोई अच्छा फल नहीं निकला। पर हां, भिन्न वस्तुओंके साथ मिलानेसे इससे एक प्रकारका बढ़िया कागज बनता है। फ्रांस और बेलजियम आदि देशोंमें इसका विस्तृत व्यवसाय होता है।

औषध—आयुर्वेद शास्त्रमें धान अनेक प्रकारकी औषध और पथ्यरूपमें व्यवहृत हुआ है। चावलके चूर्णको जलमें सिद्ध कर पीछे उसमें अदरक, मिर्च तथा अन्यान्य मसाले मिलानेसे एक प्रकारका पाचक तैयार होता है। यह पाचक दुर्बल रोगीके लिये पुष्टि और रुचिकर आहार है। कड़ाहीमें धानको भूननेसे भूसी अलग हो जाती और भीतरका चावल फूल उठता है जिसे लाई कहते हैं। यह लघु आहारके रूपमें तथा [illegible] रोगीके [illegible] व्यवहृत होती है। [illegible] [illegible]

चावल तैयार करते हैं। इसी चावलको भूननेसे मूढ़ी बनती है यह भी लघुपथ्य तथा अन्नके बदलेमें व्यवहृत होती है। धानको कुछ काल तक भिगोए रखनेसे बाद उसे भूनते हैं और ढेंकी अथवा उखलीमें कूट कर उससे चिउड़ा तैयार करते हैं। दधिके साथ चिउड़ा खानेसे आमाशयमें बहुत लाभ पहुंचता है। चावल भिगोया हुआ जल अनेक औषधके अनुपानरूपमें व्यवहृत होता है। अन्नमें नीबूका रस डालनेसे वह सब प्रकारकी उदर पीड़ाके लिये उपकारी पथ्य है। चीनी संयुक्त अन्नमें अल्पपरिमाणकी रेचकता देखी जाती है। तीसीकी पुलटिसके बदलेमें डा: वारिंगने चावलकी पुलटिसकी व्यवस्था कर विशेष उपकार लाभ किया है। सार्जन मेजर डा० जयाकरका कहना है, कि सार्लि-सिद्ध जलकी अपेक्षा चावलका मण्ड अधिक उपकारी है। डा० भगवानदासने विसूचिका और आमाशयमें भातका मांड़ व्यवहार कर विशेष लाभ उठाया है।

हम लोगोंके देशमें धानसे चावल निम्नलिखित प्रथाओंसे निकाला जाता है। धानको पहले अच्छी तरह धूपमें सुखा लेते हैं। पीछे उसे ढेंकी वा ओखली-में कूटते हैं। जब उनमेंसे भूसी सब निकल जाती है, तब सूपसे साफ कर चावलको अलग रखते हैं। इस प्रकारसे प्रस्तुत चावलको आतप-चावल कहते हैं। इस प्रथासे आशानुरूप चावल तैयार नहीं होता, इस कारण अधि-कांश स्थानोंमें धानको सिद्ध कर पीछे उसे धूपमें सुखने देते हैं। तदनन्तर पूर्ववत् ढेंकी वा ओखलीमें कूट कर भूसीसे चावल अलग कर लेते हैं। इस प्रकारका प्रस्तुत चावल सिद्ध-चावल कहलाता है। सब श्रेणीके लोगोंके घरमें धान सिद्ध होता है, इस कारण हिन्दूकी निगाहमें वह अशुद्ध चावल समझा जाता है। इससे कोई शास्त्रीय कार्य सम्पन्न नहीं होता। यही कारण है, कि इस देशकी उच्च हिन्दू श्रेणीकी विधवाएँ सिद्ध चावल नहीं खातीं।

मिकरेयने समाधि-स्तम्भमें अङ्कित [illegible] हजार वर्षके पुरातन चित्रमें धानकी कटाई, [illegible] झड़ाई और [illegible] जो चित्र दिखलाया गया है, [illegible] [illegible] [illegible] आदि देशोंमें [illegible] [illegible]

उससे कुछ उन्नत भावमें सभी कार्य सम्पन्न होते हैं। *

अभी यूरोपीय वैज्ञानिकोंकी विद्याबुद्धिके प्रभावसे उक्त सभी कार्य करनेके लिये नाना प्रकारके यन्त्र आविष्कृत हुए हैं। शारीरिक बलकी अपेक्षा इन सब यन्त्रोंसे अनायास और प्रकृष्ट रूपमें कार्य सुसम्पन्न हो सकते हैं। किन्तु इस देशके कृषकोंके निकट वे सब यन्त्र उतने आदृत नहीं हैं।

धान्य हिन्दुओंके देवता-रूपमें पूजनीय है। इसकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी है। नूतन धान्य होने पर लक्ष्मी-रूपमें उसकी कल्पना कर पूजा करनी होती है। धान्य वपन वा धान्यछेदन शुभ दिन देख कर किया जाता है। कुदिनमें करनेसे अच्छा फल प्राप्त नहीं होता। कृत्य-तत्त्वमें हलवाहन और बीजवपनादिकी विधि इस प्रकार लिखी है,—

पहले भूमिको परिष्कृत कर हल चलाना होता है। अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्या, मघा, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, उत्तरफल्गुनी, हस्ता, स्वाति, मूला, श्रवणा और रेवती नक्षत्र हल कार्यमें उत्तम; अनुराधा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, और शतभिषा नक्षत्र मध्यम तथा एतद्भिन्न नक्षत्रोंमें हलकार्य निषिद्ध बतलाया है। रिक्ता, षष्ठी, अष्टमी, दशमी और द्वादशी तिथि तथा मङ्गल और शनिवार छोड़ कर सभी वार कृषिकर्ममें प्रशस्त हैं। चन्द्र और ताराके शुभ होने पर तथा वृष, मिथुन, कन्या और मीन लग्नमें हल प्रवाह करे। इसमें यथाविधि सङ्कल्प आदि करके क्षेत्रके ईशान कोणमें एक हाथ लम्बा चौड़ा गड्ढा बना उसे जलसे भर दे। पीछे प्रजापति, सूर्यादि नवग्रह और पृथ्वीकी पूजा करके निम्न-लिखित मन्त्र द्वारा पृथ्वीको अर्घ्य देनेका विधान है;—

"ओं हिरण्यगर्भे वसुधे शेषस्योपरिशायिनि।
वसाम्यहं तव पृष्ठे गृहाणार्घ्यं वसुन्धरे मे॥"

तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, प्रचेता, पर्जन्य, शेष, चन्द्र, अर्क, वह्निः, बलदेव, सीता, हल, पृथु, वृष, वायु, राम, लक्ष्मण, सीता, स्वर्ग और गगन इन सबकी पूजा करके क्षेत्रपाल अग्निका प्रदक्षिण करे और ब्राह्मणको दक्षिणा दे। बादमें आम्रपल्लव, ओदन, पायस और दधि उक्त गड्ढेमें डाल कर ऊपरसे मट्टी द्वारा उसे पूरा कर दे। पीछे दो मोटे ताजे बैलोंको उस स्थान पर ला कर नव-नीत वा घृत उनके मुखपार्श्वमें लगा दे। हलके फालमें भी उसे प्रक्षेप कर सुवर्ण द्वारा घर्षण करे। इस समय बलि, इन्द्र, पृथु, राम, इन्दु, पराशर और बलभद्रका स्मरण करना होता है। पीछे हल द्वारा एक वा तीन रेखा करे। बादमें हलवाहक प्रणत हो कर हल चलावे। इस समय वृषोंके बीच यदि द्वन्द्व उपस्थित हो जाय, तो शस्यकी हानि तथा मर्द्दन अथवा मूत्र पुरीषोत्सर्ग होनेसे चतुर्गुण शस्य होगा, ऐसा जानना चाहिये। इस समय निम्नलिखित मन्त्रसे प्रार्थना करनी होती है,—

"ओं त्वं वै वसुन्धरे सीते बहुपुष्पे फलप्रदे।
नमस्ते मे शुभं नित्यं कृषिमेषां शुभं कुरु॥
रोहन्तु सर्वशस्यानि काले देवः प्रवर्षतु।
कर्षकश्च भवन्स्वस्मा धान्येन च धनेन च॥"

इस प्रकार हल प्रवाह करके भूमिके परिष्कृत हो जाने पर बीज वपन करना चाहिये। इसमें भी शास्त्रीय नियम यह है कि, बीजवपनमें हलप्रवाहोक्त कार्य ही प्रशस्त है, केवल धान्यरोपणमें पार्थक्य देखा जाता है। इसमें रोहिणी, उत्तरफल्गुनी, विशाखा, मूला और पूर्व भाद्रपद नक्षत्र तथा वृष, वृश्चिक, सिंह, कुम्भ, स्वीय जन्म लग्न, मिथुन, कन्या, तुला और धनुका पूर्वार्द्ध लग्न प्रशस्त है। हलप्रवाहोक्त वार और तिथि तथा इसका विषय जानना आवश्यक है। उक्त शुभदिनमें प्रातःकाल को यथाविधि सङ्कल्प करके पूर्वोक्त रूपसे पूजा करनी होती है।

यह सब हो चुकनेके बाद पूर्वमुखी हो इन्द्रका ध्यान करे और सुवर्ण जल संयुक्त करके तीन मुट्ठी धान्यका बीज वपन करे।

प्रति बीघेमें १५से ले कर २० सेर तक बीज बोया जाता है और पकने पर उसमें १५।२० मनसे कम नहीं उपजता।

कार्त्तिक और पौष मास छोड़ कर अन्य सभी मासों-में धान काटे जाते हैं। किन्तु मतान्तरमें पौष मासके

* भारतवर्षके विभिन्न जिलोंमें किस प्रकार धानकी खेती होती है इस विषयमें D. Watt's Dictionary of the Economic Product of India, Vol. VI, art, Oryza sativa देखो।

शुभवारमें, पुष्या नक्षत्रमें तथा रिक्ता भिन्न तिथियोंमें और भरणी, कृत्तिका, मृगशिरा, अश्लेषा, मघा, उत्तराषाढ़ा, उत्तरफल्गुनी, उत्तरभाद्रपद, हस्ता, चित्रा, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढ़ा, श्रवणा, धनिष्ठा, पूर्वभाद्रपद, और रेवती नक्षत्रमें एवं वृष, वृश्चिक, शुभचन्द्र तारायुक्त वृष, मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनुके पूर्वार्द्ध, मकर, कुम्भ और स्वजन्म-लग्नमें धान्य छेदन प्रशस्त है। उक्त शुभदिनमें प्रातःकालको स्नानादि प्रातःकृत्य करके यथाविधि सङ्कल्प-पूर्वक पूर्वोक्त रूपसे पूजादि करनी होती है। तदनन्तर ईशानकोणस्थ धान्य-क्षेत्रमेंसे ढाई मुट्ठी धान काटनेको लिखा है। पीछे शस्यवृद्धिके लिये क्षेत्रमें बालकोंको भोजन कराना होता है। पहले धान्यछेदन पीछे धान्यगृहमें ला कर धान्यरक्षा अर्थात् धान्यस्थापन करना होता है। शास्त्रमें धान्य-स्थापनकी भी आलोचना की गई है।

धान्यस्थापन—जहां धान रक्खा जाता है, उसे गोला वा ठेक-घर कहते हैं। इसकी आकृति गोल होनेके कारण इसका नाम गोलाघर रखा गया है। संस्कृतमें इसे धान्यगृह कहते हैं। इसीमें धान सुरक्षितसे रहता है। भरणी, कृत्तिका, मृगशिरा, मघा, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद और पूर्वफल्गुनी-नक्षत्र भिन्न अन्य नक्षत्रोंमें, अभावपक्षमें आर्द्रा, मृगशिरा, पुनर्वसु, मघा, उत्तरात्रय, सोम, बुध, गुरु और शुक्रवारमें, कुम्भ, मिथुन, सिंह, कन्या, वृश्चिक, धनु, मकर और मीनलग्नमें, चन्द्र और ताराके शुद्ध होने पर धान्यस्थापन प्रशस्त है। धान्यगृहमें 'ओं धनदाय सर्वलोकहिताय च। देहि मे धान्यं स्वाहा। ओं ईहायै नमः। ईहा देवि लोकविवर्द्धिनी कामरूपिणि देहि मे धान्य" ऐसा लिख कर तब धान काटना चाहिये। बुधवारको धान्यगृहसे धान बाहर निकालना मना है। कोई कोई कहते हैं कि आचार प्रयुक्त बुधवार होने पर भी उस दिन धान निकालना बिलकुल निषिद्ध है।

(कृत्यतत्त्व)

कहीं कहीं ऐसा नियम भी प्रचलित देखा जाता है, कि धान्यागारमें धान्यस्थापन करके पीछे बिना लक्ष्मी-पूजा किये धान नहीं निकालते।

आर्योंके जो सब नियम हैं उनका प्रत्येक कार्य धर्मानुशासनसे शासित होता है। पर आज कल ये सब नियम सर्वत्र प्रतिपालित होते देखे नहीं जाते।

दुर्गोत्सवमें नवपत्रिकाके मध्य धान्य एक है। नवपत्रिकावासिनी दुर्गाका धान्य ही एक अङ्ग है। कहीं कहीं कोजागरी लक्ष्मीपूर्णिमाको नवपत्रिका-पूजा प्रचलित है। इस दिन धान्याधिष्ठात्री लक्ष्मीकी पूजा होती है।

२ चार तिलका एक परिमाण या तौल। ३ धन्याक, धनिया। ४ कैवर्त्तीमुस्तक, एक प्रकारका नागरमोथा। ५ अन्नमात्र। ६ प्राचीन कालका एक प्रकारका अस्त्र। इसका प्रयोग शत्रुके अस्त्र निष्फल करनेमें होता था। यह अस्त्र वाल्मीकिके कथनानुसार विश्वामित्रसे रामचन्द्रको मिला था।

धान्यक (सं॰ क्ली) धान्यमिव प्रतिकृतिः ततः कन् (इवे प्रतिकृतौ। पा ५।३।९६) धन्याक, धनिया। धान्यमेव स्वार्थे कन्। २ धान्य, धान। (पु॰) ३ क्षत्रिय नृपति विशेष, एक क्षत्रिय राजाका नाम।

धान्यकञ्चुकी (सं॰ पु॰) धान्यत्वक्, धानका छिलका।

धान्यकतण्डुल (सं॰ पु॰) धानका चावल।

धान्यकल्क (सं॰ पु॰) तुष, भूसी।

धान्यकोष्ठक (सं॰ क्ली॰) धान्याय धान्यरक्षणाय यत् कोष्ठकं गृहं। धान्य रक्षार्थ गृह, अनाज भरनेके लिये बना हुआ घर या बरतन, कोठिला, गोला।

धान्यगोक्षुरकघृत (सं॰ क्ली॰) भावप्रकाशोक्त घृतौषधिभेद, इसकी प्रस्तुत प्रणाली—धनिये और गोखरूके बारह सेर चूर्णको चार सेर घीमें भुनना पड़ता है। पीछे उसमें एक मन चौबीस सेर पानी डाल कर उबालते हैं। १६ सेर पानी बच जाने पर उसे उतार लेते हैं। इसके सेवन करनेसे मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र और शुक्रदोष भयङ्कर होने पर भी आरोग्य हो जाता है।

धान्यचमस (सं॰ पु॰) चम्यते, भक्ष्यते, चम-असच्, धान्यं छिन्नधान्यमिव चमसः। चिपिटक, चिउड़ा।

धान्यज (सं॰ क्ली॰) धान्य, धान।

धान्यतिक्तिक (सं॰ त्रि॰) धान्यबहुल।

धान्यतुषोद (सं॰ क्ली॰) काञ्जिक, काँजी।

धान्यत्वच् (सं॰ स्त्री॰) धान्यस्य त्वक्। तुष, भूसी।

धान्यधेनु (सं० स्त्री०) धान्यैः निर्मिता धेनुः। दानार्थ धान्यनिर्मित धेनु, दानके लिये एक कल्पित गाय जिसकी कल्पना धानकी ढेरीमें की जाती है। इसका विषय वराहपुराणमें इस प्रकार लिखा है,--

विषुवसंक्रान्ति, वा कार्त्तिक मासमें यह धान्यधेनु दान करना होता है। दानका विधान इस प्रकार लिखा है, यह धान्यधेनु दान करनेसे सब पाप नाश हो जाते हैं। दश धेनु दान करनेमें जो फल लिखा है, वही फल धान्यधेनुमें भी है।

पीछे कृष्णाजिन प्रस्तुत कर उसे वत्सकी कल्पना और जमीनको गोबरसे लीप कर वहां सुन्दर वस्त्राच्छादन पूर्वक धेनुकी कल्पना करते हैं। यह धेनु वेदिमें वैदिक मन्त्रसे पूजी जाती है। चार द्रोण धानसे जो धेनु कल्पित होती है, उसे उत्तम धेनु और जो दो द्रोणसे कल्पित होती है उसे मध्यम धेनु कहते हैं। धेनुके चतुर्थांशसे बछड़ेकी कल्पनाकी जाती है। इस कल्पित धान्यधेनुके सींग सोने और खुर चाँदीके होने चाहिये।

पलान सोनेका, नाक अगरकी, दाँत मुक्ताफलके, मुँह घी या मधुका, कान सुन्दर पत्तोंके, पैर ईखके टुकड़ोंके, पूंछ रेशमी वस्त्रकी और उसके साथ साथ तरह तरहके फल और रत्नका गर्भ बना कर उसे खड़ाऊँ, जूते, छाते आदिके साथ पुण्य कालमें तीन बार प्रदक्षिणापूर्वक दान देनेका विधान है। जो धान्यधेनु दान करते हैं, उन्हें सब प्रकारके फल मिलते हैं, तथा वे इस लोकमें सौभाग्य आयु और आरोग्यता लाभ करते हैं। अन्तकालमें वे अर्कवर्णके विमान पर चढ़ कर अप्सराओंसे प्रशंसित होते हुए स्वर्गलोकको जाते हैं।

धान्यपञ्चक (सं० क्ली०) धान्यानां पञ्चकं ६-तत्। १ भावप्रकाशोक्त शालि, व्रीहि, शूक, शिम्बी और क्षुद्र ये पांचों प्रकारके धान। २ अतिसार रोगका पाचनभेद। यह पांचों प्रकारके धान, बेल और आम आदिको मिला कर बनाया जाता है। इसके सेवन करनेसे आम, शूल और अतिसार रोग दूर हो जाते हैं। ३ पाचन औषधभेद, एक पाचक औषध। जैसे धनिया, सौंफ, नागरमोथा, बेलगिरी और त्रायमाणा प्रत्येकके दो तोलेको पाव भर जलमें औटाते हैं। आध पाव जल बच जाने पर नीचे उतार लेते हैं। पीछे ठंढा होने पर इसमें आध तोला मधु मिला देते हैं। इसके सेवन करनेसे आमातिसार और उदरशूल आदि रोग आरोग्य हो जाते हैं। इसीका नाम धान्यपञ्चक है। पैत्तिक अतिसारमें धान्यपञ्चकके अंग सोंठ छोड़ कर अवशिष्ट ४ द्रव्योंका पूर्ववत् पाचन तैयार कर सेवन करना चाहिये। इसका नाम धान्यचतुष्क है।

धान्यपटोल (सं० क्ली०) वैद्यकोक्त औषधभेद। इसको प्रस्तुत-प्रणाली—१ तोला धनियेके और परवलके पत्तोंको कूट कर ३२ तोला जलमें सिद्ध करते हैं। ८ तोला जल बच जाने पर उसे उतार कर छान लेते हैं। इसके सेवन करनेसे अग्निकी दीप्ति, कफनाश, वायु और पित्तका अधोनिःसरण, आमदोषका परिपाक और ज्वरनाश होता है।

धान्यपति (सं० पु०) धान्यानां पतिः ६-तत्। १ व्रीहि, चावल। २ यव, जौ।

धान्यपानक (सं० क्ली०) पानकविशेष, एक प्रकारका पना। इसके बनानेके लिये पहले धनियेको सिल पर अच्छी तरह पीस कर पानीके साथ छान लेते हैं। पीछे उसमें नमक, मिर्च, चीनी और सुगन्धित पदार्थ आदि छोड़ देते हैं। इसके सेवन करनेसे पित्त नाश होता है।

धान्यपिप्पली (सं० स्त्री०) १ आमज्वर। २ ज्वरका एक पाचक।

धान्यबीज (सं० पु०) धनिया।

धान्यभक्षक (सं० पु०) शस्यकर्त्ता पक्षी, एक प्रकारकी चिड़िया।

धान्यमञ्जरी (सं० स्त्री०) धान्यानां मञ्जरी ६-तत्। धान्यकाशीष, धानका अंकुर।

धान्यमद्य (सं० पु० क्ली०) धान्यकृत मद्य, धानकी बनाई हुई शराब।

धान्यमाढ़ (सं० त्रि०) धान्यं माति मा-ढ्च्। धान्य-मापक, धान नापनेवाला।

धान्यमाय (सं० पु०) धान्यं माति मा-अण्। (हवामश्च। पा ३।२।२१) ततो युक्। १ धान्यपरिमापक, वह जो धान तौलता हो। २ धान्यविक्रेता, वह जो धान बेचता हो।

धान्यमालिनी (सं० स्त्री०) [illegible] रहनेवाली एक

राक्षसी। इसे रावणने जानकीको समझानेके लिये नियुक्त था। किसी किसीका मत है कि रावणकी स्त्री मन्दोदरीका ही दूसरा नाम धान्यमालिनी था।

धान्यमाष (सं० पु०) १ द्वितण्डुल-परिमाण, प्राचीन कालका एक परिमाण जो दो धानके बराबर होता था। २ षोड़श सर्षप-परिमाण, सोलह सरसोंको एक माप।

धान्यमुख (सं० पु०) व्रीहिमुखास्त्रविशेष, सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका अस्त्र जिसका व्यवहार प्राचीन-कालमें चीर-फाड़में होता था।

धान्यमूल (सं० क्लो०) काञ्जिक, काँजी।

धान्ययूष (सं० पु०) धान्यस्य धनिकायाः यूषः। धानका काढ़ा, काँजी।

धान्ययोनि (सं० पु०) काञ्जिक, काँजी।

धान्यराज (सं० पु०) धान्यानां राजा ततः टच् समासान्तः। यव, जौ।

धान्यवनि (सं० पु०) धान्यस्य वनिः राशिः। धान्यराशि।

धान्यवर्ग (सं० पु०) धान्यानां वर्गः ६-तत्। धान्य-समूह, धान्यपञ्चक, पाँचों प्रकारके धान।

धान्यवर्द्धन (सं० क्लो०) धान्यस्य वर्द्धनं वृद्धिर्यस्मात्। अन्न उधार देनेका व्यवहार। इसमें ऋणीसे ड्योढ़ा या सवाया लिया जाता है।

धान्यवाहन—चम्पारण प्रदेशके एक राजा। भविष्य-ब्रह्मखण्डमें लिखा है, कि सूर्यचन्द्रवंश ध्वंस होने पर चम्पापुरीमें राजपूत-वंशीय अम्बुराजी नामक एक राजा हुए। उनके रामचन्द्र नामक एक पुत्र थे। रामचन्द्रके बाद इनके पुत्र धान्यवाहन राजा हुए। ये महाबली, धर्मात्मा और कुलश्रेष्ठ थे। (ब्रह्मखण्ड ४०।१८)

धान्यबीज (सं० क्लो०) १ धानका बीज। २ धन्याक, धनिया।

धान्यचोर (सं० पु०) धान्येषु चोरः बलाधायकत्वात्। माष, उरद।

धान्यशर्करा (सं० स्त्री०) औषधभेद, एक प्रकारकी दवा। रातके समय १२ तोला पानीमें २ तोला धनिया भिगो रखो। सुबहमें उसे छान कर चीनीके साथ पीनेसे अति प्रगाढ़ अन्तर्दाह जाता रहता है।

धान्यशाक (सं० क्लो०) धन्याक शाक, धनियाका साग।

धान्यशीर्षक (सं० क्लो०) धान्यस्य शीर्षकं ६-तत्। धान्य-मञ्जरी, धानकी मंजरी।

धान्यशुण्ठी (सं० स्त्री०) औषधभेद। इसके बनानेके लिये १ तोला धनिया और २ तोला सोंठ कूट कर आध सेर पानीमें मिलाते और उसे आग पर चढ़ाते हैं। जब आध पाव पानी बच जाता है, तब उसे उतार लेते हैं। यह ज्वरातिसार और कफके प्रकोपको शान्त करता है।

धान्यशैल (सं० पु०) धान्यदानार्थं कल्पितः शैलः। दानार्थ धान्यनिर्मित पर्वत, दानके लिये धानका बना हुआ कल्पित पहाड़। इसका विषय हेमाद्रि दानखण्डमें इस प्रकार लिखा है,—

अयनविषुवसंक्रान्ति, पुण्यकाल, व्यतीपात, दिनक्षय, शुक्लपक्षकी तृतीया-तिथि, चन्द्र और सूर्यग्रहणके समय, विवाह उत्सव यज्ञादिमें, अमावस्या और पूर्णिमा तिथिमें तथा शुभ नक्षत्रादिमें यथाविधान धान्यशैल दान करना चाहिये। तीर्थस्थल वा गृहमें अथवा गृहाङ्गनमें यह दान देनेको लिखा है। एक हजार द्रोण धान द्वारा जो शैल कल्पित होता है, वह उत्तम, पांच सौ द्वारा मध्यम और तीन सौ द्वारा अधम माना गया है।

दानविधि।—दान करनेके पूर्व दिन संयत हो कर रहना चाहिये। दूसरे दिन प्रातःकालमें प्रातः कृत्यादि करके स्वस्तिवाचनपूर्वक सङ्कल्प करते हैं। यथा, 'विष्णुरोम तत्सदद्य अमुके मासि अमुके पक्षे, अमुकगोत्र अमुक देवशर्मा धान्यपर्वतदानमहं करिष्ये।' इस प्रकार संकल्प करके आभ्युदयिक श्राद्ध करना होता है। पीछे ऋत्विकोंको यथाविधान वरण करते हैं, यथा, 'अद्य अमुकस्मिन् देशे अमुकस्मिन् काले धान्यपर्वतदानमहं करिष्ये तत्र तदङ्गभूतहोमादिके अमुकामुक वेदाध्यायिनं ऋत्विजं त्वामहं वृणे' इसी तरह वरण करते हैं। पीछे ऋत्विकके 'वृतोऽस्मि' कहने पर आचार्यका वरण करना होता है। जहां यह पर्वत बनाना होगा, वहां पहले गोबरसे अच्छी तरह लीप कर कुश बिछा देते और हजार द्रोण परिमित धान जमा रखते हैं। इसके मध्यस्थलमें मेरु बनाना होता है, महाव्रीहि और राजान्न शालि रखनी होती है। दक्षिणमें मन्दार, उत्तरमें पारिजात, मध्यमें कल्पतरु, पूर्वमें हरि-

चन्दन और पश्चिममें सन्तान वृक्षकी कल्पना की जाती है। चांदीके बने हुए शृङ्गमें हीरक, गारुत्मत मणि, मरकत, पद्मराग और मुक्ताफलादि यथास्थान पर रख देते हैं।

इक्षु द्वारा वंश, घृत द्वारा उदक, चित्र द्वारा कपूर और विचित्र वस्त्र द्वारा मेघ समूह बनाना होता है। धान्यपर्वत यथाविधि प्रस्तुत हो जाने पर निम्नलिखित मन्त्रसे अवस्थान करना चाहिये। मन्त्र—

"त्वं सर्वदेव गणधामनिधे! विरुद्ध-
मस्मद् गृहेऽन्यमरपर्वत! नाशयाशु।
क्षेमं विधत्स्व कुरु शान्ति मनुत्तमां नः।
सम्पूजितः परम भक्तिमता मया हि॥
त्वमेव भगवानीशो ब्रह्मविष्णुर्दिवाकरः।
मूर्त्तामूर्त्तं परं बीजमतः पाहि सनातनः॥
यस्मात्त्वं लोकपालानां विश्वमूर्त्तेश्च मन्दिरं।
रुद्रादित्यवसूनाञ्च तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे॥
यस्मादशून्यममरैर्नारीभिश्च सदा तथा।
तस्मान्मामुद्धराशेष दुःखसंसारसागरात्॥"

यही आवाहन करनेका मन्त्र है। पीछे मन्दरकी पूजा और यथाविधि होमादि कर दान देना चाहिये।

दानमन्त्र—

"अन्नं ब्रह्म यतः प्रोक्तमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
अन्नाद्भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्त्तते॥
अन्नमेव यतो लक्ष्मीरन्नमेव जनार्द्दनः।
धान्यपर्वतरूपेण पाहि तस्मान्नमो नमः॥"

बादमें यजमान यथाविधि आचार्यकी पूजा करते और उनकी अनुज्ञा ले कर दान करते हैं। इस दिन दाताको क्षारलवण नहीं खाना चाहिये। जो विधिके अनुसार धान्यशैल दान करते हैं, उन्हें स्वर्गमें सेवाके लिये अप्सराएँ और गन्धर्व मिलते हैं और यदि वे किसी प्रकार इस लोकमें आ जांय तो राजाधिराज-चक्रवर्त्ती होते हैं। (मत्स्यपु०)

धान्यश्रेष्ठ (सं० क्ली०) हैमन्तिक शालिधान्य।

धान्यसार (सं० पु०) धानस्य सारः। तण्डुल, चावल।

धाना (सं० स्त्री०) धनगाक पृषो० साधु। धनिया।

धान्याक (सं० क्ली०) धन्याक स्वार्थे अण्, धाना अकति अक-अण्। धनिया।

धान्याक्षत् (सं० पु०) कृषक, खेतिहर।

धान्याग्र (सं० क्ली०) धनियेका अगला भाग।

धान्यादि (सं० त्रि०) धान्यभोजी, धान खानेवाला।

धान्यादिपानक (सं० पु०) भावप्रकाशोक्त औषधविशेष। धनियेका चूर्ण, चीनी और चावलका पानी छोटे बच्चेको पिलानेसे उसका कास और श्वास नष्ट हो जाता है।

धान्यादिहिम (सं० पु०) भावप्रकाशोक्त औषधविशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली-धनिया, आमलकी, अडूसा, किसमिस और पित्तपापड़ इन सबसे शीत कषाय तैयार कर सेवन करनेसे रक्त पित्त, ज्वर, दाह, पिपासा और शोष रोग जाते रहते हैं।

धान्याभ्र (सं० क्ली०) १ भावप्रकाशोक्त अभ्रमारणोपयोगी वस्तुभेद, भस्म बनानेके लिये धानकी सहायतासे शोधा और साफ किया हुआ अभ्रक। इसकी प्रस्तुत प्रणाली— पहले अभ्रकको सुखा कर खरलमें खूब महीन पीस लेते हैं। पीछे उस चूर्णको चौथाई धानके साथ मिला कर एक कम्बलमें बांध देते और तीन दिन तक पानीमें रख छोड़ते हैं। तीन दिन बाद उस पोटलीको हाथसे इतना मलते हैं कि वह छन कर नीचे पानीमें गिर जाता है। यही अभ्रक निथार कर सुखाया जाता है। भस्म बनानेके लिये ऐसा अभ्रक बहुत अच्छा समझा जाता है। २ अभ्रकको इसी प्रकार शोधनेकी क्रिया।

धान्याम्ल (सं० क्ली०) धान्यविकारात् जातं अम्लं। काञ्जिक, कांजी। शालिचूर्ण और कोद्रवादि द्वारा सन्धान करने पर जो अम्लरसयुक्त तरल पदार्थ प्रस्तुत होता है, उसीको धान्याम्ल कहते हैं। धान्याम्ल धानसे बनाया जाता है इसलिये यह अत्यन्त प्रीतिजनक, लघु और अग्नि दीप्तिकारक है तथा अरुचि रोगमें, सब प्रकारके वात रोगमें तथा आस्थापनमें हितजनक है।

टूने जलके साथ धानको एक बन्द बरतनमें रख कर गाड़ दो। सात दिन पीछे उसे निकाल कर उसका पानी छान ले, यही खट्टा पानी कांजी है।

धान्याम्लक (सं० क्ली०) धानसे बनाई हुई खटाई या कांजी। भावप्रकाशमें लिखा है, कि कई तरहके धानोंकी भूसीमें जल मिला कर उसे किसी मट्टीके बरतनमें रक्खें। पीछे भृङ्गराजके साथ सुण्ठी, विष्णुक्रान्ता, पुन-

पंवा, मोगाची, सर्पाची, सहदेवी, शतावरी, त्रिफला, गिरिकर्णी, हंसपादी और चित्रक इन सबको समूल पीस कर उसमें छोड़ दे। जब तक वह खट्टा न हो जाय तब तक उसी तरह रहने दे। इसी तरह धानाम्लक प्रस्तुत होता है। रसरत्नवेदके विषयमें यह सब जगह उपयोगी है।

धानायन (सं० पु० स्त्री०) धानस्य गोत्रापत्यं कण्वादि० फक्। धानाका गोत्रापत्य।

धानारि (सं० पु० स्त्री०) धानस्य अरिः ६-तत्। धानाशत्रु, मूषिक, चूहा।

धानार्थिन् (सं० त्रि०) धानं अर्थयते धाना अस्त्यर्थे णिनि। धानारूप अर्थ विशिष्ट, जिसकी सम्पत्ति केवल धान ही हो।

धानाश्रय (सं० पु०) अन्नशाला, भण्डारघर।

धान्यास्थि (सं० क्ली०) धान्यस्य अस्थि ६-तत्। तुष, भूसी।

धानोत्तम (सं० पु०) धान्येषु उत्तमः। शालि धान्य, धान। यह सब अनाजोंमें श्रेष्ठ है, इसीसे इसको धान्योत्तम कहते हैं।

धान्व (सं० पु०) धन्वदेशे भवः अण्, वोपधन्वेऽपि वेदे निपातनात् टिलोपः। १ धन्व देशोद्भव, धन्वदेश सम्बन्धी, धन्व देशका। (त्रि०) २ जाङ्गल, जो जङ्गलमें उत्पन्न हो।

धान्वन (सं० क्ली०) धन्वन वृक्षफल।

धान्वन्तर्य (सं० पु०) धन्वन्तरि देवता अस्य बाहुलकात् ण्यत्। धन्वन्तरि-देवताक होमादि, वह होम आदि जिनमें धन्वन्तरि आदि देवता प्रधान हों।

धान्वपत (सं० त्रि०) धन्वपति सम्बन्धीय।

धाप (हिं० पु०) १ लम्बा चौड़ा मैदान। २ खेतकी लम्बाई चौड़ाई। ३ दूरीकी एक माप जो प्रायः एक मील की होती है और कहीं कहीं दो मीलकी मानी जाती है। ४ पानीकी धार। (स्त्री०) ५ तृप्ति, सन्तोष, जी भरना।

धापना (हिं० क्रि०) १ संतुष्ट होना, तृप्त होना, अघाना। २ दौड़ना, भागना।

धापा—बङ्गालके अन्तर्गत २४ परगनेका एक बड़ा लवणाक्त बिल। यह कलकत्ताके दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित। इसके चारों ओर अनेक खाल और नदी हैं। यहां तरह तरहके अनाज, तरकारी और घास उपजती है। धीवर लोग यहां मछली मार कर बहुत रुपये उपार्जन करते हैं। आज कल इस जिलेमें कलकत्ता-म्युनिसपैलिटीसे शहर भरका कूड़ाककंट फेंका जाता है, जिससे इसका एक भाग परिपूर्ण हो गया है, यहांसे म्युनिसपैलिटीको यथेष्ट आय होती है।

धापेवारा—मध्यप्रदेशमें नागपुर जिलेका एक स्वास्थ्यकर और परिच्छन्न शहर। यह अक्षा० २१° १८' उ० और देशा० ७८° ५७' पू० नागपुरसे १० कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। यह चन्द्रभागा नदीके दोनों किनारे तक विस्तृत है। लोकसंख्या: प्रायः ४ हजार है। हिन्दूकी संख्या अधिक है। यहांका वस्त्रशिल्प विख्यात और बहुत प्राचीन है। शहरमें एक दुर्गका भग्नावशेष देखनेमें आता है। पिण्डारियोंके आक्रमणसे नगरवासीको बचानेके लिये १०० वर्ष पहले यह दुर्ग बनाया गया था।

धाबा (हिं० पु०) १ छतके ऊपरका कमरा, अटारी। २ वह स्थान जहां पर कच्ची या पक्की रसोई मोल बिकती हो।

धाभाई (हिं० पु०) दूधभाई।

धाम (सं० पु०) धा बाहुलकात् मन्। १ गणदेवभेद, महाभारतके अनुसार एक प्रकारके देवता। २ विष्णु। ३ कुमारिकाभक्त चम्पक गोत्रीय एक राजा। ये चम्पकके पुत्र थे। धामके और अर्थ धामन् शब्दमें देखो।

धामक (सं० पु०) धानक पृषोदरादित्वात् साधु। १ माषक परिमाण, एक माशा तौल। २ कत्तृण, एक प्रकारकी सुगन्ध घास।

धामकेशिन् (सं० पु०) धाम ज्योतीरूपः केशोऽस्त्यस्य इनि। ज्योतिर्मय किरणयुक्त सूर्य।

धामच्छद (सं० पु०) धामानि छादयति छादि-क्विप् ह्रस्वः। न्यूनताका पूरक, अतिरिक्तका समीकारक।

धामड़ा—वीरभूम जिलेके अन्तर्गत एक ग्राम। यह बेलिया नारायणपुर और देवचा ग्रामके बीचमें अवस्थित है। यहां लोहेकी खानसे कच्चा लोहा निकाला जाता है और जिसे ढालनेके चार कारखाने हैं। कारखानेमें जो सब काम करते हैं उनमेंसे जो सबसे पहले खनिज पदार्थको आगमें दे कर कच्चा लोहा तैयार करते हैं, वे मुसलमान

जातिमें और जो पीछे गला कर उसे पक्का करते, वे हिन्दू होते हैं। एक कारखानेसे प्रति सप्ताह २० से २५ मन पक्का लोहा तैयार होता है।

धामतारि—१ मध्यप्रदेशके रायपुर जिलेकी एक तहसील यह अक्षा० २०´ १´ से २१´ २´ उ० और देशा० ८१´ २५´ से ८२´ १०´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण २५४२ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ३१०८८६ है। इस तहसीलमें एक शहर और ५४१ ग्राम लगते हैं। यहांकी आय एक लाख रुपयेसे अधिककी है।

२ उक्त तहसीलका एक बृहत् और प्रधान शहर। यह अक्षा० २०´ ४२´ उ० और देशा० ८१´ ३५´ पू० रायपुर शहरसे ४६ मील दक्षिणमें अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग ८१५१ है। गेहूं, चावल, रुई और तेलहन अनाज ही यहांकी प्रधान उपज है। यहां जल अच्छी लगती है। इस शहर तक रेलके आ जानेसे यहांकी दिनोंदिन उन्नति होती जा रही है। १८८१ ई०में यहां एक म्युनिसपैलिटी स्थापित हुई है। यहांसे लाह, खड़ और चमड़ेकी रफ़्तनी दूसरे दूसरे देशोंमें होती है। शहरमें एक अस्पताल, एक वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल और एक सरकारी बालिका स्कूल है।

धामधा (सं० पु०) पालक, रक्षक।

धामन् (सं० क्ली०) दधाति गृहस्थादिकं धीयते द्रव्यजातमस्मिन्निति वा, धा-मनिन्। (सर्वधातुभ्यो मनिन्। उण् ४।१४४) १ गृह, घर। २ देह, शरीर। ३ त्विष, शोभा। ४ प्रभाव। ५ रश्मि, किरण। ६ स्थान, जगह। ७ जन्म। ८ विष्णु। ९ तेज। १० दामोपलक्षित। ११ बागडोर, लगाम। १२ देवस्थान, पुण्यस्थान। १३ ज्योति। १४ परलोक १५ स्वर्ग। १६ अवस्था, गति।

धामन (हिं० पु०) देहरादूनसे आसाम तक साल आदिके जङ्गलोंमें मिलनेवाला एक प्रकारका पेड़ जो फलसेकी जातिका होता है। इसकी लकड़ी प्रायः बहंगीके डंडे या कुल्हाड़ी आदिके दस्ते बनानेके काममें आती है। २ एक प्रकारका बांस।

धामनगर-१ उड़ीष्याके बालेश्वर जिलेका एक परगना और ग्राम। चूड़ाकुटी और श्यामपुर इस नगरके प्रधान ग्राम हैं। भद्रक उपविभागके मध्य धामनगरमें एक थाना है।

२. चौबीस परगनेके अन्तर्गत बारईपुर उपविभागका एक ग्राम। यहां दस्तिदार उपाधिविशिष्ट एक जमींदार रहते हैं। इनके एक पूर्वपुरुष मुसलमानोंसे अपमानित हो कर एक पुष्करिणीमें डूब मरे थे। उस पुष्करिणीके बीचमें पीपलका एक पेड़ है। स्थानीय लोगोंका विश्वास है कि यह पेड़ जलके नीचे एक मन्दिरके ऊपर उगा हुआ है।

धामनेर - राजपूतानेके अन्तर्गत एक पर्वतमाला। यह निमच शहरसे २० कोस दक्षिणपूर्वमें अवस्थित है। इस पर्वतमालामें बहुतसी खोदित गिरिगुहाएं हैं जो हिन्दू-कीर्त्ति और बौद्ध-कीर्त्ति दोनों प्रतीत होती हैं। पर्वतका ऊपरी भाग समतल है। केवल दक्षिणकी ओर २०।३० फुट ऊंचा एक शिखर है। इसी शिखर पर बौद्धकीर्त्ति विद्यमान है। पर्वतमें कहीं-कहीं बहुतसी गुहाएं काट कर उनमें तरह तरहकी अट्टालिकादि खोदी गई हैं। दक्षिणपश्चिम कोणसे यदि गिनी जाय तो उस ऊंचे शिखर पर १४ प्रधान गुहाएं दीख पड़ती हैं।

१ली गुहामें एक बरामदा और उसके बगलमें ८×७ फुट करके दो घर हैं। इस पर जानेके लिये पर्वत पर सीढ़ी लगी हुई है।

२री गुहामें भी एक बरामदा है जो २७½ फुट लम्बा और १० फुट चौड़ा है। इसके भी बगलमें ८७½ फुट करके दो घर हैं। इसके पश्चिममें ८×६ फुट करके दो और घर हैं।

३री गुहामें भी एक १२ फुटका घर है। उसमें केवल एक समतल छत है। घरके भीतर ५½ फुट घेरेका एक टोप है।

४थी गुहामें एक छोटा टोपविशिष्ट चैत्यगुहा है। इसकी लम्बाई २० फुट और चौड़ाई १०½ फुट होगी। घरके सभी कोने गोल हैं और छत गुम्बज सरीखा है। इसके दक्षिणमें ६० फुट लम्बी एक दूसरी गुहा थी जिसकी छत गिर पड़नेसे भीतर जानेका रास्ता बन्द हो गया है। ५वीं गुहामें ६० फुट लम्बा और १० फुट चौड़ा एक बरामदा है जिसके पीछेमें १६×८ फुटका एक घर है। इसके भी बगलमें एक छोटासा घर

दीख पड़ता है। पश्चिमकी ओर पर्वत पर एक अर्धाङ्ग स्तूप खुदा हुआ है।

६ठी गुहाको लोग 'बड़ी कचहरी' कहते हैं। यह गुहा सबसे बड़ी है। इसके बिचले भागमें छत दो हुई है। लम्बाई करीब २० फुट होगी। यही दरबार घर है। छत चार खंभोंके ऊपर टिको हुई है। इससे दोनों ओर ७ फुट लम्बा और उतना ही चौड़ा तीन घर हैं। सामनेमें एक नाटमन्दिर और पीछेमें एक चैत्यगुहा है। बड़ा दरबारघर सम्मुख द्वार है और वह दो झरोखेसे अच्छी तरह प्रकाशित होता है, किन्तु और दूसरे दूसरे घर अन्धकार रहते हैं। नाटमन्दिरके सामने दो चौखूटे खंभे हैं और दोनों बगल कटघरेकी नाईं पत्थर के जंगलोंसे घिरे हुए हैं।

७वीं गुहामें ८×७ फुटका एक घर है। इसके सामने ऊँचाई और भी अधिक है। ८वीं गुहाका नाम 'छोटी कचहरी' है। इसमें २३½×१५ फुटकी एक चैत्यगुहा है। इसके बीचमें १६½ फुट ऊंचा एक टोप है। टोपके निम्न भागकी चौड़ाई और लम्बाई ८½ फुट होगी। इसके सामने भी बड़ी कचहरीकी नाईं एक नाटमन्दिर है जिसमें दो घर लगे हुए हैं।

९वीं गुहामें ४ छोटे छोटे घर हैं। पर्वत पर एक अर्धाङ्ग टोप है। उक्त चार घरोंमेंसे तीन घर ८×६ फुटके हैं और चौथा घर ११ फुट लम्बा है। इस घरमें पश्चिमकी ओर पत्थरकी एक बड़ी खाट है, जिस पर दो तकिये भी दीख पड़ते हैं।

१०वीं गुहाका नाम 'राजलोक' "कमीकी मकान" वा "कामनीय महल" है। यह ठीक बड़ी कचहरी सरीखा है, केवल दरबारका घर २५ फुट लम्बा और २१ फुट चौड़ा है।

११वीं गुहाका नाम "भीमका बाजार" है। यह सभी गुहाओंसे बड़ी है। इसमें एक लम्बी चैत्यगुहा और नाटमन्दिर है जिसके चारों ओर एक प्रदक्षिणा है। इस प्रदक्षिणाके तीन ओर बहुतसे खंभोंके ऊपर बरामदा और उससे बगलमें छोटे छोटे घर हैं जिनमेंसे दोमें दो छोटे चैत्य हैं। चैत्यगुहाके सहित संश्लिष्ट विहार देखने योग्य है। ईस गुहाकी चौड़ाई ८० फुट है। सामनेके चैत्यस्तम्भका गुम्बज गिर पड़नेसे इसकी लम्बाई घट कर ८० फुट हो गई है। गुहाद्वार पर ५ फुट घेरेके दो टोप हैं। प्रदक्षिण पथ ६।७ फुट लम्बा होगा। इसके पश्चिममें ८ अर्ध प्रस्तुत स्तम्भके खण्ड पड़े हुए हैं। बरामदेकी चौड़ाई सब जगह ८ फुट है। घरोंकी लम्बाई और चौड़ाई ७ फुट होगी। जो घर उत्तरकी ओर पड़ता है वह १७+१३ फुटका है। पूर्व और पश्चिममें दो चैत्यगुहा हैं। पूर्वगुहाके चैत्यके सामने एक उपविष्ट बुद्धमूर्त्ति है। १२वीं गुहा एक चैत्यमन्दिर है। मध्यस्थ टोप लम्बा है और बड़ी छतका आधार है। इसकी सरल गठनसे इसका नाम "हाथीकी मेख" (हाथीका खूंटा) और गुहाका नाम "हाथी बन्दी" (हस्तिशाला) पड़ा है। इसके दरवाजेकी लम्बाई (१६½ फुट) देख कर यह बहुत कुछ यथार्थसा प्रतीत होता है। यह घर २×२५ फुटका है। छत समतल है और उसमें पत्थरका एक बोम है। जो घरकी लम्बाई तक विस्तृत है। इसी बोम पर छत निर्भर है। इस गुहाके सामने २५ फुट विस्तृत एक समतल परिष्कार अनावृत स्थान है जिसमें नीचे तक सीढ़ियां लगी हुई हैं।

धामनिका (सं० स्त्री०) धामन्येव स्वार्थे कन्-टाप्। अत इत्वं। धमनी, नाड़ी।

धामनिधि (सं० पु०) धामानि किरणानि निधीयन्ते ऽत्र नि-धा-कि। सूर्य।

धामनी (सं० स्त्री०) धमन्येव धमनी-स्वार्थे अण्, ततो ङीप्। धमनी, नाड़ी।

धामपुर—१ युक्तप्रदेशके बिजनौर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २८° २' से २८° २५' उ० और देशा० ७८° ४१' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ४५८ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग २६५१८५ है। यह तहसील धामनपुर, सेवहारा, निहतौर और बूढ़पुर परगनोंसे बनी है। इसमें ६७४ ग्राम और ६ शहर लगते हैं। इसके उत्तर और दक्षिणमें बहुतसी नदियां प्रवाहित हैं जिनमेंसे गाङ्गन, खोह और रामगङ्गा प्रसिद्ध है।

२ उक्त तहसीलका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २९° १८' उ० और देशा० ७८° ३१' पू० बिजनौरसे १२

कोस पूर्व हरिद्वारके रास्ते पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ७०२७ है। अधिवासियोंमें बढ़ई और कसेरेकी संख्या अधिक है। सारे शहरमें लोहे और पीतलकी चीजोंकी दूकान ज्यादा हैं। यहां लोहेका ताला, कुंजी, बकसकी कल, पीतलका चिरागदान, कांसेका बरतन, घंटा और घड़ी इत्यादि बनती हैं। यहां बन्दूक भी तैयार होती है। किसीने १८६७ ई०में पेरिसकी प्रदर्शनीमें बन्दूकका एक नमूना यहांसे भेजा था. कहते हैं, कि उसे ७५० फ्राङ्क (फरासी मुद्रा) पारितोषिक मिला था। यहां प्रति सप्ताहमें दो बार हाट लगती है और प्रतिमासमें एक मेला लगता है। शहरके दक्षिणमें एक बड़ी सराय है।

१७५० ई०में रोहिलोंने यहां पर मुगलोंको परास्त किया था। १८०५ ई०में पिण्डारी नायक अमीर खांने इस शहरको लूटा और सिपाही विद्रोहके समय भी इसे लूटनेकी चेष्टा की गई थी। १८६६ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। शहरकी आय १०००० रुपयेकी है। आज कल यहां तीन स्कूल हैं।

धामभाज (सं० पु०) यज्ञस्थानभागी देवता, यज्ञस्थानमें भाग लेनेवाला देवता।

धामरा—१ उड़ीसाकी एक नदी। मताई, खरसुआ, ब्राह्मणी और वैतरणी यही चारों नदियां मिल कर धामरा नामसे प्रसिद्ध हुई हैं। यह बङ्गोपसागरमें जा गिरी है। इस नदीमें सब समय नावें जाती आती हैं, किन्तु मुहानेके निकट बालूका चर पड़ जानेसे नावका ले जाना खतरनाक है।

२ कटक जिलेमें इसी नदीके ऊपर अवस्थित एक बन्दर। यह अक्षा० २०° ४७' उ० और देशा० ८६° ५८' पू० में अवस्थित है। वैतरणी नदीके ऊपर चांदवाली और ब्राह्मणीके ऊपर हंसुआ, पटामुण्डी और खरसुआ नदीके ऊपर आउल नामक स्थान तक इस बन्दरकी सीमा है। यहां समुद्रमें चलनेवाला जहाज भी आ ठहरता है।

धामशस् (सं० अव्य०) धाम्नि धाम्नि इत्यर्थे शस्। स्थान स्थान, जगह जगह।

धामा (हिं० पु०) भोजनका निमन्त्रण, खानेकी दावत।

धामार्गव (सं० पु०) धाम्नो मार्गं पन्थानं वातीति वा गतौ क। १ अपामार्ग, चिचड़ा। २ रक्तापामार्ग, लाल चिचड़ा। ३ घोषकलता, घीयातोरी। ४ पीतघोषा, एक प्रकारकी तुरई। ५ राजकोषातकी। ६ महाकोषातकी, एक प्रकारकी तुरई।

धामि—पञ्जाब गवर्नमेण्टके अधीनस्थ एक पार्वत्य राज्य यह अक्षा० ३१° ७' से ३१° १३' उ० और देशा० ७७° ३' से ७७° ११' पू० में सिमलासे १६ मील पश्चिममें अवस्थित है। भूपरिमाण २६ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग ४५०५ है। बारहवीं शताब्दीमें जब शाहबुद्दीन घोर भारतवर्षको जीतने आये थे, उसी समय अम्बाला जिलेके रायपुरसे एक राजपूतने भाग कर इसे फतह किया और यह एक छोटा स्वाधीन राज्य बसाया। धामिके अधिपति 'राणा' उपाधिधारी और राज्यप्रतिष्ठाताके वंशोद्भव हैं। कुछ दिन तक यह राज्य बिलासपुर राज्यका करद हुआ था। अंगरेजोंने गोरखा-युद्धके समय (१८०३ १८१५) इसे बिलासपुरकी अधीनतासे मुक्त कर दिया। यहांके वर्त्तमान राणाका नाम हीरासिंह है। इन्हें ब्रटिश गवर्मेण्टको वार्षिक ७२० रु० राजस्व देने पड़ते हैं। राज्यकी आय १५८००० रु० की है। राणाको पहले अधिक कर देना पड़ता था, पर सिपाही विद्रोहके समय फतेसिंहके पिताने अंगरेजोंकी खूब सहायता की थी, इस कारण ब्रटिशगवर्नमेंटने खुश हो कर आधा कर घटा दिया। तभीसे यहांके राणा केवल आधा कर देते आ रहे हैं। अफीम यहांकी प्रधान उपज है।

धामिन (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका सांप। यह कुछ हरापन या पीलापन लिये सफेद रंगका होता है। यह बहुत लम्बा होता है और इसकी पूंछमें बहुत विष होता है। दूसरे दूसरे सांपोंकी नाईं यह काटता नहीं, बल्कि पूंछसे ही कोड़ेकी तरह मारता है। शरीरके जिस स्थान पर इसकी पूंछ लग जाती है, उस स्थानका मांस गल गल कर गिरने लगता है। इसकी चाल बहुत तेज है। २ दक्षिण भारत, राजपूताने तथा आसामकी पहाड़ियोंमें मिलनेवाला एक प्रकारका पेड़। इसकी लकड़ी जो भूरे रंगकी होती है। मेज, कुरसी और अलमारी आदि बनानेके काममें आती है।

धामिया (हिं० पु०) १ एक पन्थका नाम। २ इसी पन्थका आदमी।

धामेक—काश्मीरके निकटवर्त्ती एक वनस्थान। इसका प्राचीन नाम मृगदाव है। सबसे पहले बुद्धने इसी स्थान पर अपना मत प्रचार किया था। अशोक उनके स्मरणार्थ वहां एक स्तम्भ निर्माण कर गये हैं। यह स्तम्भ साधारणतः सारनाथस्तम्भ नामसे प्रसिद्ध है। सारनाथ देखो।

धामोनी—मध्य-प्रदेशके सागर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २४° १२´ उ० और देशा० ७८° ४८´ पू० सागर शहरसे १४ कोस उत्तरमें अवस्थित है। मण्डलाके सरदार वंशके सुरथ शा नामक किसी व्यक्तिने धामोनी राज्य स्थापन किया। प्रायः १६०० ई०में ओर्च्छा राज्यके बुन्देला-सरदार राजा वीरसिंहदेवने इसे अधिकृत कर दुर्ग और नगरका संस्कार किया था। इनके समयमें वर्त्तमान सागर और दामो जिलेका अधिकांश स्थान इसी राज्यके अन्तर्गत था और यहीं पर उनकी राजधानी थी। उस समय इस राज्यमें २५५८ ग्राम लगते थे। अन्तमें इसे पन्नाके राजा उमराव सिंहने जीता, किन्तु थोड़े समय बाद ही नागपुरके राजाने उन्हें मार भगाया और शहरको अपने कब्जेमें कर लिया। १८१८ ई०में अप्पासाहबके भगाये जाने बाद जेनरल मार्शलने अंगरेजोंकी ओरसे इस पर अधिकार जमाया। तभीसे यह अङ्गरेजोंके अधीन आ रहा है। इसकी सीमाको घटा केवल ३३ गाँव ले कर धामोनी तहसील संगठित हुई है। मुसलमान-राजत्वकी श्रीवृद्धिके निदर्शन स्वरूप प्रासादमें मस्जिदोंका भग्नावशेष और एक दीर्घ सरोवर है। धसान नदीकी उपत्यकामें बुन्देलखण्डके सामने घाट पर्वतके ऊपर एक दुर्ग अवस्थित है। सरोवर शहरके दक्षिण-पश्चिममें पड़ता है, इसका जल बहुत उमदा है।

धायँ (हिं० स्त्री०) तोप बन्दूक आदि छूटने तथा किसी पदार्थके जोरसे गिरनेका शब्द।

धाय (सं० त्रि०) दधाति धारयतीति धा-ण। (श्याद्व्यधेति। पा ३।१।१४५) धारणकर्त्ता, धारण करनेवाला।

धाय (हिं० स्त्री०) १ वह औरत जो परायेके बालकको दूध पिलाने और उसका पालन पोषण करनेके लिये नियुक्त हो, दाई। (पु०) २ धवई पेड़।

धायस (सं० त्रि०) दधातीति धा-असुन् बाहुलकात् युक्। (वहिहास्राश्च्छन्दसि। उण् ४।२२०) १ धारणकर्त्ता, धारण करनेवाला। २ पोषणकर्त्ता, पालनेवाला।

धायु (सं० त्रि०) धा-उन्, बाहुं युक्। धारक, धारण करनेवाला।

धाय्य (सं० पु०) धीयते आश्रियते मङ्गलार्थमिति धा-कर्मणि ण्यत् ततो युक्। पुरोहित।

धाय्या (सं० स्त्री०) धीयते समिदनया धा-करणे ण्यत्। अग्निसमिन्धनार्थ ऋक्, वह वेदमन्त्र जो अग्नि प्रज्वलित करते समय पढ़ा जाता है।

धार (सं० स्त्री०) धारया इदं धारा-अण्। (तस्येदं। पा ४।३।१२०) वर्षोद्भव जल, इकट्ठा किया हुआ वर्षाका जल।

वर्षाका जल धारावाही हो कर जब सफेद वस्त्र वा स्वच्छ पत्थर अथवा परिष्कृत भूमि पर गिरे, तो उसे सोने, चाँदी, ताँबे, स्फटिक और काँचके बरतनमें रख छोड़ो, इसीको धार अर्थात् धाराभव जल कहते हैं। इसका गुण—त्रिदोषनाशक, अव्यक्त रस, लघु, सौम्य, रसायन, बलकारक, तृप्तिकर, आह्लादजनक, प्राणधारक, पाचक, बुद्धिजनक, एवं मूर्च्छा, तन्द्रा, दाह, श्रान्ति, क्लान्ति और पिपासानाशक है। वर्षाऋतुके समय यह जल बहुत हितकर है। वैद्यकके अनुसार यह जल दो प्रकारका होता है, गाङ्ग और सामुद्र। साधुओंका कहना है कि आकाशगङ्गासे जल ले कर मेघ जो जल बरसाते हैं उसे गङ्गाजल कहते हैं। मेघगण प्रायः आश्विनमासमें गंगाजलकी वर्षा करते हैं। यह जल बहुत हितजनक है। चरक मुनिका मत है, कि सोने, चांदी अथवा मट्टीके बरतनोंमें रखे हुए चावल पर यदि वर्षा हो और उस अन्नका रंग यदि न बदले, तो उसे गंगाजल कहते हैं। समुद्रसे जो जल ले कर मेघ वर्षा करते हैं, उसे सामुद्रजल कहते हैं। साधारणतः सामुद्रजल खारा, नमकीन, शुक्रनाशक, दृष्टिके लिए हानिकारक, बलनाशक और दोषप्रदायक माना जाता है। सामुद्रजल आश्विन मासमें गङ्गाजलकी तरह उपकारी होता है। क्योंकि अगस्त्य तारेके उदय होनेके उपरान्त यह जल निर्विष, मधुररस, शुक्रजनक और दोषप्रदायक नहीं होता। २ जोरसे पानी बरसना। ३ जोरकी वर्षा। ४

ऋण, उधार, कर्ज। ५ प्रान्त प्रदेश। (त्रि०) ६ गम्भीर, गहरा।

धार (हिं० स्त्री०) १ अखण्ड प्रवाह, पानी आदिके गिरने या बहनेका तार। २ पानीका सोता, चश्मा। ३ जल, जमरूमध्य। ४ किसी काटनेवाले हथियारका वह तेज सिरा या किनारा जिससे कोई चीज काटते हैं। ५ किनारा, सिरा, छोर। ६ सेना, फौज। ७ आक्रमण, हमला, धावा। ८ दिशा, ओर, तरफ। ९ जहाजोंके तख्तोंका जोड़। (पु०) १० द्वारपाल, चोबदार। ११ कच्चे कूएंके मुंह पर लगाये जानेका पेड़का तना या काठका कड़ा। यह इसलिए लगा दिया जाता है जिसमें उसका ऊपरी भाग अन्दर न गिरे।

धार—मध्यभारतमें भोपावर एजेन्सीका एक प्रसिद्ध राज्य। यह अक्षा० २१° ५५' से २५° २३' उ० और देशा० ७४° ४१' से ७६° ३२' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण १७७५ वर्गमील है। इसके उत्तरमें रतलाम राज्य, पूर्वमें सिन्धियाके अधीन बड़नगर, उज्जयनी, दिकमान् और इन्दोर; दक्षिणमें नर्मदा नदी और पश्चिममें झबुआ राज्य तथा सिन्धियाके अधिकृत अमझेरा जिला है। इसमें सात परगने हैं—धार, बुदनावर, नलचा, धरमपुरी, कुक्षि, टिकरी और निमानपुर।

इस राज्यमें बहुतसे राजपूत-अधिकृत सामन्त राज्य हैं जो अंगरेज राजके चिह्नित और रक्षणावेक्षणके अधीन है, जैसे—मूलतान, कच्छि, बरोदा, धोत्रिया, बड़वाल, भक्तगढ़, कोड़, कटोदिया, मक्कोलिया, धरम्रिखेरा, काहरसिया, सुरवाड़िया और पामा। इसके अलावा अनेक भूमियां, भील और भीलाला सर्दार हैं जो अधिकांश धरमपुरी और नलचा परगनेमें रहते हैं। प्राचीन सर्दारगण ठाकुर उपाधिधारी है। ये भी छोटे छोटे राजाके तुल्य हैं। किन्तु इन लोगोंकी अपेक्षा भूमियां और भील सर्दारोंको जमींदारी विषयमें कम क्षमता है। ठाकुर लोग अपने अपने राज्यमें प्राणदण्डके सिवा और दूसरे दूसरे दण्डके अधिकारी हैं। सब स्वामीकी प्रजा धार राज्यमें अपना विचार करा सकती है।

धारराज्यमें चमला नामकी जो नदी है वह अमझेकी उपनदी मानी जाती है। यह नदी धार परगनेके पूर्वकोण हो कर प्रवाहित है। खाल नामक स्थानमें नर्मदा नदीके ऊपर एक पुल है। छोटी छोटी नदियोंमें मोन, कारम और बाकनी प्रधान है। ग्रीष्म ऋतुमें ये सब नदियां सूख जाती हैं और वर्षामें भर जाती हैं। नर्मदा उपत्यकामें विन्ध्यपर्वतकी ऊंचाई प्रायः १६ से १७ सौ फुट है। इसमें गिरिपथ भी हैं जिनमेंसे गोलपुर और बाकदपुर गिरिपथके सिवा और सभी सब दुर्गम तथा बैल गाड़ीके आने जानेके अनुपयुक्त है। पार्वत्य प्रदेशमें सब जगह लोहेकी खान है, किन्तु कहीं भी उससे काममें नहीं लिया जाता। विन्ध्याके ऊपरका प्रदेश नातिशीतोष्ण है। वहां दिनकी अपेक्षा रात्रिमें अधिक ठंढ पड़ती है और ग्रीष्म ऋतु भी कम दिन तक रहती है। घाट पर्वतके नीचे कभी कभी अधिक दिन ठहरती है। वर्षाके बादही प्रकोप देखा जाता है यहां सब प्रकारके अनाज उत्पन्न होते हैं। चना और गेहूं जो कुछ उत्पन्न होता है उसके तृतीयांशकी रफतनी होती है। रुई, ईख, तमाखू, हल्दी, तिल और अफीम भी कम नहीं उपजती।

इतिहास—धारका वर्त्तमान राजवंश परमार राजपूत हैं। ये लोग अपनेको विक्रमादित्यके वंशज बतलाते हैं। प्राचीन प्रवादके अनुसार उज्जयनी और धारा एक ही राज्य था। वर्त्तमान राजाओंमें भोज विशेष विख्यात थे। ये ही उज्जयनीसे राजधानी धारानगरमें उठा लाये। पांचवीं शताब्दीमें राजपूतोंके अभ्युदयके समय परमारोंकी क्षमता ह्रास हो गई और यहांके राजवंश पूना जा कर बसे। १३८७ ई०में दिल्लीके प्रतिनिधि दिलावर खां इस देशमें आये। इन्होंने धारा नगरीके हिन्दुमन्दिरादिको तहस नहस कर उनके उपकरणोंसे मुसलमान मसजिदें तैयार कीं। दिलावर खांके पुत्र शासनकर्त्ता हो कर धारसे माण्डूमें राजधानी उठा लाये। उस समय धारका प्राचीन गर्व जाता रहा और महाराष्ट्रोंके अभ्युदयके पहले तक यह मुगल राज्योंमें एक नगण्य राज्य गिना जाने लगा।

शिवाजीके अभ्युदयमें पूनाके धारा-राजवंशीय लोगोंने उनके सेनापति हो कर विशेष ख्याति और प्रतिपत्ति लाभ की। १७४८ [illegible] बालाजीका पेशवाने प्राचीन

धारराज-वंशीय आनन्द राव नामक एक व्यक्तिको धार-राज्य प्रदान किया। वर्त्तमान राजवंशकी प्रतिष्ठा उन्हीं-से हुई है। मालवप्रदेश अंगरेजोंके अधीन आनेके पहले होलकर और सिन्धियाके अत्याचारसे धार राज्य प्रायः तहस नहस हो गया। प्रथम राजा आनन्द रावसे अध-स्तन पञ्चम पुरुष कुमार रामचन्द्र नावालिग थे। उनकी माता मीनाबाई (२य आनन्दरावकी महिषी) बुद्धिकौशलसे केवल राज्य रक्षा करती रही। अन्तमें रामचन्द्रके दत्तकपुत्र यशोवन्तराव राजा हुए। १८७५ ई०में उनकी मृत्यु हुई। इस समय उनके वैमात्रेय भ्राता आनन्दराव नावालिग थे। वे ही राजा बनाये गये। किन्तु सिपाही विद्रोहकी गड़बड़ीके समय अंग-रेजोंने राज्यकी रक्षाका भार अपने ऊपर ले लिया। पीछे बाहरसिया जिलेको छोड़ कर समस्त राज्य आनन्द रावको लौटा दिया गया और उक्त जिला भूपालकी बेगम-के अधीन रहा। परमार शब्दमें धारके प्राचीन राजाओंका इतिहास देखो।

इसमें दो शहर और ५१४ ग्राम लगते हैं। लोक-संख्या प्रायः १४२११५ है। यहां भील, भिलाश, राज-पूत, कुनबी और ब्राह्मण रहते हैं। १८१८ ई०की सन्धि-के अनुसार धारराज्य अंगरेजोंके अधीन आया। यहांके राजाको २७७ अश्वारोही, ८०० सौ पदाति, २ कमान और २१ गोलन्दाज हैं। इन्हें १५ सम्मानसूचक तोपें मिलती हैं। राज्यकी आय ८ लाख रुपयेकी है। यहां १ कारागार, १२ स्कूल, १२ चिकित्सालय और २ यन्त्रा-लय हैं।

२ उक्त राज्यका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २२°३६´ उ० देशा० ७५°१८´ पू०में बरोदासे माव जानेके रास्ते पर अवस्थित है। माव यहांसे १६ कोस दूर पड़ता है। शहरकी लम्बाई १½ मील और चौड़ाई ½ मील है। यह चारों ओर मट्टीकी दीवारसे घेरा हुआ है। यह एक प्राचीन शहर है। पांच वर्ष तक यहां मालवा-के परमार प्रधानोंकी राजधानी थी। इस राजवंशकी पहली राजधानी उज्जैनमें रही, पीछे २य वैरिसिंह ८वीं शताब्दीमें इसे धारा नगरमें उठा लाये। मुसल-मान राजाओंके समय [illegible] नाम पीराणधार था। क्योंकि यहां अनेक मुसलमान पीर रहते थे जिनमेंसे बहुतोंकी समाधि आज भी विद्यमान हैं। अलाउद्दीनने १३०० ई०में सबसे पहले इस नगरको जीता था। १३४४ ई०में यहां घोर दुर्भिक्षके समय मुहम्मद-बिन-तुगलक आये हुए थे। १३८८ ई०में दिलावर खां धारके शासक नियुक्त हुए। कुछ दिन बाद वे स्वतन्त्र हो गये और उनके लड़के हुशेनशाह मालवके तख्त पर बैठे। ये ही मुसलमान राजाओंमें मालवाके प्रथम राजा थे। लाल-मस्जिदके लौहस्तम्भमें लिखा है, कि १५६४ ई०में जब अकबर दक्षिण प्रदेशको जीतने जा रहे थे, तब सात दिन तक वे इसी नगरमें ठहरे थे। पीछे औरङ्गजेबने इसे फतह किया। १७३० ई०में यह नगर मुगलोंके हाथसे महाराष्ट्रके हाथ आया। यहां बहुतसी मनोहर अट्टा-लिकायें हैं। लाल पत्थरकी बनी हुई दो मसजिदें उल्लेखयोग्य हैं। यहांका दुर्ग शहरके बाहरमें अवस्थित है, जिसे लोग (१३२५-५१ ई०) मुहम्मद बिन तुगलक-के समयका बना हुआ बतलाते हैं। इसी दुर्गमें १७७५ ई०को अंतिम पेशवा २य बाजीरावका जन्म हुआ था। १८५७ ई०में अंगरेज सेनापति जेनरल ष्टुवार्ट ससैन्य इस दुर्गमें रह कर सिपाहियोंका दमन किया था।

यहां कमाल मौला नामक आहातेमें चार समाधियां आज भी विद्यमान हैं। उनमेंसे एक १म महमूद खिलजीकी और दूसरी शेख कमाल मौलवीकी है। यहां हाई स्कूल और दूसरे दूसरे स्कूल, पुस्तकालय, अस्पताल और डाक—बंगला है।

धारक (सं० पु०) धरति जलादिकमिति धृ-ण्वुल्। कलश, घड़ा। इसका उत्पत्ति विवरण देवीपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

ब्रह्माने मुनियोंसे कहा था, 'हे महामुने! धारक अर्थात् कलसकी उत्पत्ति, लक्षण और परिमाणके विषय-में कहता हूं सो सुनिये। जब देवता और असुर मन्दर पर्वतको मन्थनदण्ड और वासुकीको रज्जु बना कर समुद्र मथने लगे, तब अमृत रखनेके लिये ही कलसकी उत्पत्ति हुई थी। विश्वकर्माने देवताओंको कला ले कर इसे बनाया था, इसीसे देवगणने इसका नाम 'कलस' रखा। कलसके मुखमें ब्रह्मा, गलेमें महेश्वर, मूलमें विष्णु

और मध्यमें मातृगण रहते हैं। अवशिष्ट समस्त देवता कलसके चारों ओर घेरे हुए हैं। कलसके गर्भमें सप्त-सागर और सप्तद्वीप अवस्थित है। सह्य, मलय, हिमवान्, हेमकूट, निषध, मेरु, रोहित, माल्यवान और सूर्यकान्त ये सब कुल पर्वत हैं। गङ्गा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा, यमुना, ऐरावती, शतद्रुदा, वैतरणी आदि नदियां तथा समस्त तीर्थ कलसमें अवस्थित हैं। जितने देवगण हैं, वे इसी कलसमें रहते हैं। गोभ्य, अपगोभ्य, मङ्गल, सुमहान्, भद्र, विरज, तनुदूष, इन्द्रियोपेत और विजय ये नौ कलसके नाम हैं।

विजय नामक कलसका अधिदेवता शिव, प्रथम कलसका पृथ्वी, द्वितीयका जल, तृतीयका पवन, चतुर्थका अग्नि, पञ्चमका यजमान, षष्ठका आकाश, सप्तमका चन्द्र और अष्टमका सूर्य हैं। रुद्रको ये आठ मूर्त्तियां देवी उत्पादन करतीं और शिवसे अधिष्ठित होती हैं, इसीसे शिवकी आठ मूर्त्तियां हुई हैं। प्रथम कलस पूर्वकी ओर, द्वितीय पश्चिमकी ओर, तृतीय वायु-कोणमें, चतुर्थ अग्निकोणमें, पञ्चम नैऋत कोणमें, षष्ठ ईशान कोणमें, सप्तम उत्तरकी ओर और अष्टम कलस दक्षिणकी ओर स्थापनीय है। कलसके मुखमें ब्रह्मा, ग्रीवामें विष्णु, मध्यमें मातृगण, इन्द्रादि देवगण और नागगण गर्भमें समुद्र, सप्तद्वीपा मेदिनी, लक्ष्मी, उमा, गन्धर्वगण, ऋषिगण और आधार स्वरूप पञ्चभूत अव-स्थित हैं। नदी, सरोवर, तड़ाग, वापी, कूप वा समुद्रका तोयपूर्ण सुखावह प्रसिद्ध कलसमण्डलके पार्श्वमें उज्ज्वल-रूपसे अवस्थित है।

ये नौ कलस मङ्गलयुक्त है और अभिषेक कार्यमें प्रारुय है। यात्राकालमें, विवाहकालमें, प्रतिष्ठामें और यज्ञमें ये अभीष्ट साधक नव कलस स्थापनीय हैं। मृता-पत्या, वन्ध्या, मृतगर्भा, अगर्भा, दुर्भागा और रोगार्त्ता स्त्रियोंको पुष्पमण्डलमें स्नान करना चाहिये।

यह ग्रह और मातृगणको धारण तथा कष्ट दूर करता है, इसीसे साधुओंने इसका नाम धारक रखा है। पृथिव्यादिकी एक एक कला ग्रहण किये हुए है, इसीसे इसका नाम कलस पड़ा है। यह सोने, चांदी, तांबे वा मिट्टीका होना चाहिये। इसकी मोटाई पांच अंगुल, ऊंचाई सोलह अंगुल और मुंह आठ अंगुलका होना आवश्यक है।

अष्टमूर्त्ति शिव पद्ममें और अष्टममूर्त्ति शिव-प्रमथगण कर्णिकामें अवस्थित हैं। प्रमथगण ही पद्म दल हैं, पद्मदल नागके समीप हैं और नागगण ही कलस हैं। कलसगण ग्रह, लोकपाल और दिक्समूह हैं। इन सब असीम शक्तिशाली सर्वपापनाशक अलङ्घनीय ग्रहादिसे यह चराचर जगत् व्याप्त है।' (त्रि०) २ धारण-कर्त्ता, धारनेवाला। ३ रोकनेवाला। ४ ऋण लेनेवाला, कर्जदार।

धारका (सं० स्त्री०) धारक-टाप्, वेदे अतो न इत्वं। योनि, स्त्रीको मूत्रेन्द्रिय।

धारण (सं० क्ली०) धृ-णिच्-भावे-ल्युट्। विधारण, ग्रहण, थांभना, लेना वा अपने ऊपर ठहराना। २ परिधान, पहनना। ३ सेवन, रक्षण, जैसे विष धारण करना, औषध धारण करना। ४ निवारण, सम्वरण। ५ वहन, ले जाना। ६ स्थापन। ७ कर्ज लेना, ऋण लेना। (पु०) ८ कश्यपके एक पुत्रका नाम। ९ शिवजीका एक नाम।

धारणक (सं० पु०) १ ऋणी, कर्जदार।

धारणगांव—बम्बईके खान्देश जिलान्तर्गत एरनदोल विभागका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २१° १' उ० और देशा० ७५° १६' पू० जलगांव रेलवे स्टेशनसे १० कोस पश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १४१७२ है। पहले यह भील-कोपका सदर था।

इस शहरमें कपास और तेलहनका व्यवसाय खूब चलता है। पहले यहांका कागज और कपड़ा बहुत प्रसिद्ध था। आज कल कागज तो तैयार नहीं होता, पर कपड़ेका काम पूर्ववत् जारी है। १८५५ ई०में गवर्नमेण्टके यत्नसे एक रुईको कल चलाई गई जिसकी देख रेख यूरोपियनके हाथमें रही। किन्तु इस काममें घाटा हो जानेके कारण कल उठा दी गई।

महाराष्ट्रोंके आधिपत्यके समय यहां भीलोंने खूब उत्पात मचाया था। कई बार इस नगरमें लोहूकी नदी बह चली थी। १६७४ ई०में अंगरेजोंने यहां एक कोठी बनाई। दूसरे वर्ष शिवाजी इस नगरको लूटने आये। दूसरी बार १६७० ई०में वे पहलेसे तरह इसे लूट

गये। उस समय इस अञ्चलमें यही स्थान वाणिज्यके लिये प्रसिद्ध था।

उक्त घटनाके बाद अम्भोजोंने इसे लूटा और जला कर तहस नहस कर डाला। १८१८ ई०में यह शहर वृटिश गवर्मेण्टके हाथ लगा। १८२५ से ले कर १८३० ई० तक यहां रह कर अंगरेज-सेनापति आउटरमने भील-सैन्य संगठन की। उन्हींके नामसे प्रसिद्ध यहांका बंगला देखने योग्य है। यहां सदर कचहरी, भील सेनाओंका अड्डा, डाकघर, चिकित्सालय और ६ स्कूल हैं। इस शहरमें जलका बहुत अभाव है। यहांकी आय १३८००) रुपयेकी है।

धारणयन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रोक्त पूजाङ्गयन्त्रभेद।

धारणा (सं० स्त्री०) धार्यते या सा धृ णिच् युच् टाप्। १ बुद्धि। २ न्याय्यपथस्थिति। पर्याय—संस्था, मर्यादा, स्थिति। ३ योगाङ्गविशेष, योगके एक अंगका नाम। अद्वितीय वस्तुके विषयमें अन्तरिन्द्रिय धारणका नाम धारणा है। (वेदान्तसार)

'तस्मात् समस्तशक्तीनामाधारे तत्र चेतसः।
कुर्वीत संस्थितिं सा तु विज्ञेया शुद्धधारणा॥"
(विष्णुपु० ६।७।७४)

परब्रह्ममें मनकी संस्थिति है, मनका दैर्घ्य संस्थापन है।

"ब्रह्मात्मचिन्ता ध्यानं स्यात् धारणा मनसोधृतिः।
अहं ब्रह्मेत्यवस्थानं समाधिर्ब्रह्मणः स्थितिः॥"
(गरुडपु० ४८ अ०)

ब्रह्मविषयमें आत्मचिन्ताका नाम ध्यान है और मनकी धृति धैर्य संस्थापन है अर्थात् किसी ओर विचलित न हो कर केवल ब्रह्म-विषयमें मनको समाधान करनेका नाम धारणा है। इसका विषय अग्निपुराणमें इस प्रकार लिखा है,—

ध्येय वस्तुमें मनको जो संस्थिति है, उसका नाम धारणा है। मन किसी ओर विचलित न हो, केवल ध्येय वस्तुमें निविष्ट रहे, उसीको धारणा कहते हैं। बाहरकी ओर किसी प्रकारका लक्ष न रहे, चित्तका लक्ष केवल एक ही ओर रहे; निर्वात प्रदेशमें दीप जिस प्रकार विचलित नहीं होता, स्थिर रहता है, उसी प्रकार चित्त जब किसी ओर विचलित न हो कर एक मात्र ध्येय वस्तुमें अवस्थित रहता है, तब उसे धारणा कहते हैं। जो धारणाभ्यासयुक्तात्मा है अर्थात् जिसका चित्त इस प्रकार स्थिर हुआ है, उसे अन्तकालमें स्वर्गलाभ होता है। इसीसे प्रत्येक व्यक्तिको धारणाका अभ्यास करना आवश्यक है। (अग्निपु० ३७५)

इसका विषय पातञ्जल-दर्शनमें इस प्रकार लिखा है—योगफलका प्रथम अङ्ग धारणा है। चित्तको देश विशेषसे बांध रखनेका नाम धारणा है। राग-द्वेषादि शून्य हो कर पूर्वोक्त प्रकारको मैत्रादि भावना द्वारा निर्मल चित्त हो कर यमनियमादिसे सिद्ध हो कर किसी एक योगासन पर ऋजुभावसे अर्थात् अभुग्नभावसे बैठो। अनन्तर इन्द्रियोंको अपने अपने विषय रूपादिसे वा अपने अपने गन्तव्य स्थानसे प्रत्याहरण करके चित्तके साथ मिला दो। बाद उस प्रकारके चित्तको नाभ्यग्रमें, भ्रूमध्यमें, हृत्पद्ममध्यमें, अथवा नाड़ीचक्र आदि आध्यात्मिक प्रदेशमें धारणा न कर भूत भौतिक अथवा किसी उत्तम मूर्त्ति आदि बाह्य वस्तुओंमें धारण करो। ऐसे प्रयत्नसे धारण करना चाहिये कि चित्त उससे विच्युत न हो सके। इस प्रकारसे चित्तको बांध सकनेसे ही धारणा-योग आरम्भ होगा।

धारण करनेका नाम धारणा है। उस धारणाके स्थायी हो जानेसे वह ध्यानमें परिणत हो जाती है। ईश्वर अथवा जो कुछ अभिमत वस्तु है, उसीमें मनोनिवेश करनेकी चेष्टा करो, पीछे चित्तके चारों ओरकी वृत्तियोंको उन सब वस्तुओंसे खींच कर उस अभिमत वस्तु वा ईश्वरमें अभिनिविष्ट करो। जब इन्द्रियां किसी ओर विचलित न हो कर एकमात्र ध्येय वस्तुमें स्थिर रहेंगी, तभी प्रकृत धारणा-योग सिद्ध होगा। इस प्रकारके धारणा-योगके सिद्ध हो जानेसे ध्यान होता है। उस धारणीय पदार्थमें यदि प्रत्ययकी अर्थात् चित्तवृत्तिकी एकतानता उत्पन्न हो, तो उसका नाम ध्यान पड़ता है अर्थात् जिस वस्तुमें तुमने बाह्येन्द्रिय निरोध करके अन्तरिन्द्रिय धारण की है, उस वस्तुका ज्ञान यदि तुम्हारे अनन्तरित भावमें वा अविच्छेदमें अर्थात् प्रवाहाकारमें प्रवाहित हो, तो उस प्रकारका चित्तप्रवाह ध्यान कहलाता

है। क्रमशः वह ध्यान जब केवल ध्येय वस्तुको ही उद्भासित वा प्रकाशित करता है, अपना स्वरूप अर्थात् मैं ध्यान करता हूं इत्यादि प्रकारका भेदज्ञान जाता रहता है, तब वह समाधि कहलाता है। ध्यानके प्रगाढ़ होनेसे ही उसकी परिपाक दशामें दूसरे ज्ञानका रहना तो दूर रहे, ध्यानज्ञान भी रहने नहीं पाता। इसका कारण यह है, कि चित्त उस समय सम्पूर्ण रूपसे ध्येय वस्तुमें लीन रहता है। ध्येय स्वरूप वा ध्येयाकार प्राप्त होता है। सुतरां चित्त उस समय स्वरूप शून्यकी नाईं अर्थात् नहीं रहनेके समान हो जाता है। यही कारण है, कि उस समय और दूसरा ज्ञान नहीं रहता, इस प्रकार चित्तावस्थाके उपस्थित होनेसे ही उसे समाधि जानना चाहिये। धारण, ध्यान और समाधि ये तीनों योगके प्रथम, द्वितीय और चरमावस्थाके सिवा और कुछ नहीं हैं, समाधि ही योगका चरम फल है। इस समाधिके लाभ करनेमें पहले धारणा, पीछे ध्यानका अभ्यास करना होता है। इसी ध्यानसे पीछे समाधि प्राप्ति होती है।

किसी एक आलम्बन पर उक्त तीन प्रकारका मानस-व्यापार अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि इन तीन प्रकारकी मानसप्रक्रिया करनेका नाम संयम है। संयम शब्दका उल्लेख देखनेसे ही समझना होगा कि धारणा, ध्यान और समाधि यही तीन प्रकारकी बातें हो रही हैं। उक्त प्रकारके संयमको जय अर्थात् श्वासप्रश्वासादिकी नाईं स्वाभाविक वा सम्पूर्णायत्त कर सकनेसे उससे प्रज्ञा नामक उत्कृष्ट बुद्धिका आलोक अर्थात् समाधिक नैर्मल्यजनित प्रकाश वा शक्तिविशेष प्रादुर्भूत होती है। संयम उसकी जय है और उससे प्रज्ञानामक ज्ञानका आलोक प्रकाशित होता है, ऐसा अनुमान किया जाता है। प्राकृतिक विषयसे योगीके सिवा और दूसरा जानकार नहीं है, जानकार होना भी सम्भव नहीं है। पर हां, अनुमान शक्तिकी सहायतासे इतना तो अवश्य कह सकते हैं, कि प्राचीन भाषाका संयम और आधुनिक अंगरेजी भाषाका Concentration of will-force प्रायः तुल्यानुरूप अर्थका द्योतक है।

पतञ्जलिका कहना है, कि थोड़ा सोचनेसे देखा जायगा, कि पहले धारणा पीछे ध्यान और क्रमशः उनके परिपाकमें समाधि है। इस तीन प्रक्रियाओंके मूलमें उत्तेजक और बुद्धिपरिष्कारकारक इच्छाशक्ति विद्यमान है। योगी लोग शिक्षा और अभ्यास द्वारा इन प्रक्रियाओंको जय अर्थात् स्वायत्तीकृत कहा करते हैं। स्वायत्तीकरण शब्दसे उन्हें स्वाभाविक कार्यकी नाईं आयत्त करना है। मनुष्यका श्वास प्रश्वास जिस तरह स्वाभाविक वा स्वायत्तीकृत है अर्थात् श्वास प्रश्वास निर्वाह करनेमें जिस तरह किसी प्रकारका प्रयत्न वा क्लेश नहीं करना होता, उल्लिखित संयम कार्य यदि उसी तरह स्वायत्तीकृत हो अर्थात् उसे यदि श्वासप्रश्वासकी नाईं सहजमें और बिना क्लेशके निर्वाह कर सके, तो समझना चाहिए कि संयम जय हो गया है। इस प्रकारके संयमजयी योगियोंका सङ्कल्प वा इच्छाप्रयोग अमोघ है। वे जब जो कुछ सङ्कल्प करते हैं, संयम प्रयोग द्वारा उसे उसी समय कर डालते हैं। संयमके बलसे केवल ज्ञानका विकाश होता है। दूसरा कुछ भी नहीं होता, सो नहीं, उसके द्वारा सभी सङ्कल्प सुसिद्ध होते हैं। ज्ञानका विकाश होनेसे अर्थात् प्रकाशशक्तिके बढ़नेसे क्रियाशक्ति बढ़ती है, यह अव्यभिचारी नियम है। सुतरां भूतजय प्रकृतिवशित्व अणिमादि सभी ऐश्वर्य एकमात्र संयमके प्रभावसे अज्ञातशक्ति द्वारा ही साधित होते हैं। सिद्धिलाभके प्रति एकमात्र संयम ही मूल है। यही संयम धारणा, ध्यान और समाधिसापेक्ष है। संयमके द्वारा सभी इच्छाधिकार पूर्ण होते हैं। (पातंजलदर्शन।)

बारह बार प्राणायाम करनेसे उसे प्रत्याहार कहते हैं। इस प्रकार बारह प्रत्याहार करनेसे धारणा होती है अर्थात् प्राणायामका अनुष्ठान करनेसे चित्त स्थिर होता है, विक्षिप्तादि अवस्था तिरोहित होती है, तब धारणा उत्पन्न होती है। इसी कारण प्रत्याहारका भलीभांति अभ्यास हो जानेसे पीछे ध्यानका अभ्यास करना होता है। प्राणायामका जब तक अच्छी तरह अभ्यास नहीं होता तब तक धारणा नहीं होती। इसीसे धारणाका अभ्यास करनेमें सबसे पहले प्राणायामका अभ्यास करना विशेष प्रयोजन है। हृदयमें पञ्चभूतका पृथक् पृथक् रूपसे जो धारणा है और मनका निश्चलत्व हेतु है वह धारणा कहलाता है।

"हरितालनिभां भूमिं लकारां सुमेधसः।
चतुष्कोणं हृदि ध्यायेदेषा स्यात् क्षिति धारणा ॥" (काशीख०)

हरितालसदृशी भवंगला भूमिका हृदयमें ध्यान करना चाहिये, इस प्रकार ध्यान करनेसे क्षितिधारणा होती है। विष्णुशक्तिसमन्वित अर्द्धचन्द्र सदृश जलका ध्यान करनेसे जलधारणा, इन्द्रगोपतुल्य त्रिकोण रेफ-संयुक्त रुद्रकर्त्तृक अधिष्ठित तेजका ध्यान करनेसे वह्नि-धारणा, दोनों भ्रूके मध्यस्थलमें वायुतत्त्वका ध्यान करनेसे वायुधारणा होती है। इस पञ्चभूतको धारण कर सकनेसे पञ्चभूत जय किया जाता है। इसके पांच नाम ये हैं—स्तम्भनी, प्लावनी, शोषनी, भामिनी और शमनी।

"स्तम्भनी प्लावनी चैव शोषनी भामिनी तथा।

शमनी च भवन्त्येता भूतानां पंचधारणा॥" (काशीख०)

४ वृहत्संहितोक्त जलसूचक वायु विशेष-धारणा-त्मक योगभेद। इसका विषय वृहत्संहितामें इस इस प्रकार लिखा है—

ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षके अष्टमी आदि चार दिन वायु द्वारा गर्भ धारण जाननेका समय है। मृदु शुभ वायु युक्त होनेसे वा स्निग्ध मेघाच्छन्नाकाश होनेसे वह गर्भ-धारण प्रशस्त मानी जाती है। इसमें स्वाति नक्षत्र चतु-ष्टयमें यदि वृष्टि हो, तो क्रमशः श्रावणादि मास सभीको परिस्रुत होगा। यही धारणा नामसे प्रसिद्ध है। यदि वे सब दिन एक तरहके हों, तो शुभ और स्वतन्त्र होनेसे अशुभ होता है तथा उस दिन तस्करका भय अधिक रहता है। वशिष्ठने इस विषयका ऐसा निरूपण किया है—परिच्छन्न चन्द्रसूर्ययुक्त सभी धारणायें शुभप्रद होती हैं। जब श्रेष्ठ सभी विद्युत् शुभके प्रति उपस्थित होती हैं, तब पण्डित लोग शस्यकी वृद्धि होगी, ऐसा कहते हैं। (वृहत्संहिता २२ अ०)

धारणावत् (सं० त्रि०) १ मेधाशाली, जिसकी धारणा-शक्ति बहुत प्रबल हो।

धारणी (सं० स्त्री०) धार्यते शरीरमनया, धृ-णिच्, ल्युट्, स्त्रियां ङीप्। नाड़िका, नाड़ी। २ श्रेणी, पंक्ति। ३ धारणकरनेवाली, पृथ्वी। ४ सीधी लकीर। ५ महाकन्द शाकविशेष। ६ धारणी कन्द।

धारणी—बौद्धतन्त्रका एक अङ्ग। यह प्रायः हिन्दूतन्त्रके कवचके समान है। यह अभीष्टसिद्धि, उपदेवताओंकी दृष्टिसे अव्याहति और दीर्घजीवन-लाभके उद्देश्यसे शरीरमें धारण की जाती है, इसीसे इसको धारणी कहते हैं। बौद्धोंकी धारणीमें अधिकांशके उपदेष्टा बुद्ध और श्रोता आनन्द या वज्रपाणि माने जाते हैं।

इसका प्रचार नेपाल, तिब्बत, चीन, जापान, तथा ब्रह्माके बौद्धोंमें अधिकतासे है।

हिन्दुओंमें जिस तरह रामकवच, ताराकवच इत्यादि कवच प्रचलित हैं, उसी तरह बौद्धोंमें भी महा-वैरोचन, महामञ्जुश्री, प्रत्यङ्गिरा प्रभृति बुद्ध, बोधिसत्व और बुद्धशक्तियोंकी धारणी प्रचलित है। नेपाली बौद्धोंके धारणी संग्रह नामक ग्रन्थमें इन सब धारणियोंका विव-रण पाया जाता है। शतसाहस्रिका प्रज्ञापारमिताके नववें अध्यायमें धारणीका विषय वर्णित है।

धारणीमति (सं० स्त्री०) समाधिभेद, योगमें एक प्रकार-को समाधि।

धारणीय (सं० त्रि०) धारि कर्मणि अनीयर्। १ धार्य, धारण करने योग्य, जो धारण किया जा सके। (पु०) २ धरणीकन्द।

धारणीयन्त्र (सं० क्लो०) धार्यते धारि-कर्मणि अनीयर्। धार्य देवताओंका यन्त्रभेद। यह यन्त्र पूजायन्त्रसे पृथक् है। यह सोनेकी कलमसे केसर, रोचन, लाख, कस्तूरी, चन्दन और हाथीके मदसे लिखा जाता है और शरीर पर धारण किया जाता है।

जो यन्त्र जमीन या शवसे छू गया हो, जल गया हो अथवा लाँघा गया हो, उसे धारण नहीं करना चाहिये।

धारन (हिं० पु०) १ प्रकारकी दवा जो हाथीको खिलाई जाती है। २ धारण देखो।

धारय (सं० त्रि०) धारि-श। धारक, धारण करनेवाला।

धारयत्कवि (सं० त्रि०) १ कवियोंके धारणकारी। २ जलशाली।

धारयत्क्षिति (सं० त्रि०) जो यज्ञके लिये जमीन धारण वा प्रस्तुत करता हो।

धारयद्वत् (सं० पु०) आदित्यका एक नामान्तर।

धारयिष्ठ (सं० त्रि०) धारि-तृच्। धारणकर्त्ता, धारण करनेवाला।

धारयितव्य (सं० त्रि०) धारण करने योग्य, सहनीय।

धारयित्री (सं० स्त्री०) १ धारण करनेवाली। २ पृथ्वी।

धारयिष्णु (सं॰ त्रि॰) धृ-णिच् वेदे निपातनात् इष्णुच्।
धारणशील, धारण करनेवाला।

धारयु (सं॰ त्रि॰) धारमभिषवमिच्छति क्यच् वेदे निपातनात् न दीर्घः ततः उ। १ अभिषवणकाम। (ऋक् ६।६७।१) २ धारावान्।

धारवाक (सं॰ त्रि॰) धारि कर्मणि अच् धारो धार्यो वाकः स्तोत्रं येन। स्तोत्रधारक ऋत्विकादि।

धारवार—बम्बई प्रदेशके दक्षिण महाराष्ट्रके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा॰ १४° १७' से १५° ५२' उ॰ और देशा ७४° ४२' से ७६° २' पू॰में अवस्थित है। भूपरिमाण प्रायः ४६०२ वर्गमील है। इसके उत्तरमें बेलगाम और बिजापुर जिला, पूर्वमें हैदराबाद और तुङ्गभद्रा नदी, दक्षिणमें महिसुर राज्य और पश्चिममें उत्तरी कनाड़ा है।

जमीनकी गठन, मट्टीकी अवस्था और उत्पन्न द्रव्यादिके अनुसार यह जिला दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। बेलगाम और हरिहरके रास्तेको दोनों भागोंको मध्य रेखा मान सकते हैं। उक्त रास्तेके उत्तर और उत्तर-पूर्वमें नवलगुन्द, रोन और गड़ग उपविभागकी विस्तीर्ण काली जमीन है, जहां कपास बहुत उपजती है। इस जमीनके दक्षिण-पूर्वांशमें कपड़ गिरिमाला है, इसके बाद करजगी उपविभाग तक काली जमीन और लाल जमीन महिसुर राज्यकी सीमा तक फैल गई है। मालभूमिके पश्चिमांशमें मालप्रभा नदीके किनारेसे ले कर महिसुरके सीमान्त तक बहुतसे छोटे छोटे पहाड़ हैं। इन सब गिरिमालाओं पर कहीं कहीं शाक सब्जी और छोटी छोटी झाड़ियां देखी जाती हैं और कहीं कहीं चौरस उपत्यका है जहां खेती होती है। पश्चिमांशकी शेष सीमा अधिक गिरिदरि वेष्टित और बड़े बड़े वृक्षोंसे समाच्छादित है। इस अंशका वन विभाग गवर्मेण्टके तत्त्वावधानमें है। धारवारके दक्षिणांश हाङ्गल और कोड़ उपविभागमें भी गवर्मेण्टका अधिकार है। यहां छोटे छोटे पहाड़ोंके बीच-बीचमें उर्वरा उपत्यका देखी जाती है। इस अंशमें कई एक छोटे छोटे जलाशय हैं जिनमें वर्षाके बाद ३।४ महीनेसे अधिक समय तक पानी नहीं रहता। इस जिलेमें एक भी बड़ी नदी नहीं है, लेकिन जो कुछ है भी, उनमें मालप्रभा, बेणिहल, तुंगभद्रा, वरदा, धर्मा, कुमुदती, और गंगावाली वा इक्षिमाला प्रधान हैं। पहली छह नदियां बङ्गोपसागर और शेष नदी पश्चिमको ओर अरब उपसागर तक चली गई है। इन सात नदियोंमेंसे किसीमें भी वाणिज्य नौकादि जाने आनेकी सुविधा नहीं है। हाङ्गल तालुकके मध्य प्रवाहित धर्मा नदीसे कई एक नहरें काटी गई हैं जिनसे शस्यक्षेत्र सींचनेकी अच्छी व्यवस्था कर दी गई है। ये सब नहरें हिन्दू राजाओंके समयमें प्रस्तुत की गई हैं। इन नहरोंसे कई एक जलाशय भी जलपूर्ण रहते हैं। मालप्रभा और वरदाका जल सुस्वादु है। तुङ्गभद्राका जल उससे अधिक सुस्वादु होने पर भी भारी मालूम पड़ता है।

जिलेके पश्चिमांशमें पहाड़के निकट अधिक वर्षा होती हैं, जिससे अनेक जलाशय भी बारहों मास भरे रहते हैं। किन्तु जिलेके मध्य और पश्चिम अंशमें पानीकी उतनी सुविधा नहीं है। प्रत्येक ग्राममें जलाशय होने पर भी ग्रीष्मकालमें जलका बहुत अभाव हो जाता है। जब अधिक वर्षा होती है। तब भी यहांकी मट्टीके गुणसे चैत मासमें जल सूख जाया करता है। १८६८ ई॰में यहां जलका अधिक कष्ट हुआ था। स्थानीय लोगोंको ७।८ कोस दूरसे जल लाना पड़ता था। यहां तक कि अनेक लोग अपने मवेशी आदिको ले कर तुङ्गभद्रा और मालप्रभाके किनारे आ कर रहने लगे थे। यहांके कूओंसे भी सहजमें जल नहीं मिलता, बिना ६०।६५ हाथ जमीन खोदे जल नहीं पाया जाता है। पीछे जल मिलता भी है, तो लवणाक्त। जिलेके उत्तर-पूर्वांशमें बहुतसे पहाड़ देखे जाते हैं जिनकी ऊंचाई ३०० फुटसे ज्यादा कहीं न होगी। इन सब पहाड़ोंके पत्थर भिन्न भिन्न वर्णके हैं, कहीं तो अनेक रङ्गके कोआर्ज, कहीं हर्नब्लेड, दानादार, स्लेट और कहीं अभ्रमय है। यहां मङ्गनिज (Manganese) अधिक पाया जाता है। कहीं केवल रेतीले पत्थर दीख पड़ते हैं। कपड़ गिरिमालासे दोनी नामकी एक छोटी नदी निकली है जिसके कंकड़ोंमें स्वर्णरेणु पाया जाता है। प्रवाद है, कि पहले इसमें बहुत सोना मिलता था। अब भी डम्बल नामक स्थानके निकटवर्त्ती नदियोंमें सोना देखनेमें आता है। यहांकी अलगार नामक जाति बालूके बीच

ही खण्ड रेणको तलाशमें बाहर निकल पड़ती है।

जिलेके पश्चिमांशमें पहले अधिक अच्छा लोहा गलाया जाता था। गत ५० वर्ष तक बड़े बड़े वृक्षोंके नष्ट हो जानेसे तथा लकड़ोके अभावसे यह व्यवसाय पूर्ववत् नहीं है। यहांका लोहा बहुत उमदा होता है, किन्तु विदेशसे जो लोहा आता है उसको दर सस्ता होनेके कारण यहांके लोहेकी खपत उतनी अधिक नहीं है।

इस जिलेमें बाघ, चिता, भालू, गीदड़, बराह, हरिण, कृष्णसार प्रभृति देखे जाते हैं। यहां सब तरहको मछली पाई जाती हैं।

यह जिला ११ तालुक वा उपविभागों तथा ३ परगनोंमें विभक्त है। धारवार, हुबली, गड़ग, नवलगुन्द, वङ्कापुर, रोण, रोणिबेन्नूर, कोड़, हाङ्गल, करजगी ये ही ७ तालुक हैं। एक कलक्टर और उनके अधीनस्थ ५ सहकारी द्वारा जिलेका राजस्व वसूल होता है।

यहां चार अदालत हैं, जिनमेंसे जिलेके जज अदालतके प्रधान हैं। ३० राजपुरुष द्वारा यहांके फौजदारी विचारादि सम्पन्न होते हैं। जिलेको आय उन्नोस लाख रुपयेको है। जिले भरमें दश म्युनिसपैलिटियां स्थापित हुई हैं।

यहांकी आबहवा क्या देशीय क्या यूरोपीय सभीके लिये उपयोगी है। कोई कोई यूरोपीय कहते हैं, कि बम्बई प्रदेशमें इस तरहकी जगह दूसरी नहीं है। अगहन और पूस महीनेसे जाड़ा पड़ने लगता है। माघके अन्तसे ले कर वैशाखके बीच तक ग्रीष्म रहता है। पीछे वर्षा आरम्भ होती है। वर्षाकालमें प्रायः हमेशा पानी पड़ता है। कातिक और अगहन महीनेमें पूर्वकी ओरसे और दूसरे समयमें पश्चिम, दक्षिण-पश्चिम वा दक्षिण-पूर्वसे हवा चलती है। चैत्रसे ज्येष्ठ तक यहांका ताप-परिमाण ८३° (F), वर्षाके समय ८१° और शीतकालमें ८४° है। वार्षिक वृष्टिपात लगभग ३३ इञ्च है। केवल हुबली उपविभागका वृष्टिपात २५ इञ्चसे ज्यादा नहीं है।

इस जिलेमें १६ शहर और १२८६ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः ११११२८८ है जिसमेंसे हिन्दूकी संख्या अधिक है। हिन्दूओंमें ब्राह्मण, राजपूत, वैश्य, लिङ्गायत, जङ्गम, तेली, सोनार, चमार ग्रिम्पी, धोबी, हज्जाम (नाई), कुनाबी, कोली, कोष्ठी, कुम्हार, लोहार, माली, माङ्ग, महार, धाङ्गड़, पञ्चमीशाली सूतार इत्यादि हैं। इसके सिवा बदार, लम्बनी, गोलार, ग्रड़-बिचचिर प्रभृति बहुतसे अस्थायी भ्रमणशील जातिके लोग रहते हैं। मुसलमानोंमें पठान, सैयद, शेख प्रभृति प्रधान हैं। जिलेमें तीन ईसाई समाज हैं, पहला वसलोजमेन मीसनके अधीन, दूसरा बम्बईके रोमन केथलिक बिशपके अधीन और तीसरा गोआके आर्च बिशोपके अधीन है। यहांके देशीय ईसाई लोग उक्त तीन समाजोंमेंसे किसी एकके मतानुसार चलते है, किन्तु इन लोगोंकी अवस्था अच्छी नहीं है।

यहां कनाड़ी भाषा प्रचलित है सही, किन्तु शुद्ध नहीं। उच्च श्रेणीमेंसे कितने मराठी भाषा समझ सकते हैं। हिन्दुस्तानी भाषा बहुत कम आदमी जानते हैं।

मेला।—प्रतिवर्ष इस जिलेमें तीन मेले लगते हैं। एक वङ्कापुर उपविभागके अन्तर्गत हुलगूर ग्राममें माघ महीनेमें एक मुसलमान पीरके स्मरणार्थ लगता है जिसमें प्रायः तीन हजार यात्रीसमागम होते हैं। दूसरा फाल्गुन महीनेमें नवलगुन्द उपविभागके अधीन यमनूर नामक स्थानमें एक मुसलमान फकीरके स्मरणार्थ, जिसमें लगभग २६ हजार आदमी एकत्रित होते हैं और तीसरा आश्विन महीनेमें रानीबेन्नूर उपविभागके अधीन गुड़गुड़ापुर ग्राममें प्रसिद्ध देवता मलहार-मार्त्तण्ड-स्वामीके वार्षिक उत्सवके उपलक्षमें लगता है। इस समय भी प्रायः ८ हजार यात्री जमा होते हैं। इसके सिवा और भी कई एक छोटे छोटे मेले लगते हैं।

यहांके ग्रामवासियोंको दो भागोंमें विभक्त कर सकते है—एक दल गवर्नमेण्ट-संक्रान्त और दूसरा दल निज ग्रामस्थ। गवर्नमेण्ट संक्रान्त लोगोंमें १म पटेल (ग्रामका मण्डल), कुलकर्णी, शेहसन्दी (Policeman) और तलवार, बड़की, महार प्रभृति पाइक और नौकर हैं। ग्रामस्थ लोगोंमें १म ज्योतिषी, पीछे जङ्गम वा आया, सुतार, लोहार, कुम्हार, सोनार, हज्जाम, वैद्य, चमार, मठपति (ग्वाला) और मेहतर हैं। हिन्दू समाजमें पूजादिके लिये ब्राह्मण पुजारी और मुसलमान समाजमें

धर्म कर्म निर्वाहके लिये काजी और मुल्ला हैं। छोटे ग्रामोंमें अर्थात् जहां कम मनुष्योंका वास है, प्रायः ज्योतिषी, सोनार, वैद्य और हज्जाम नहीं रहते। हाङ्गल, करजगी और कोड़ उपविभागमें नीर-मनीगर नामक एक निम्न श्रेणीके लोग रहते हैं। इन लोगोंका मुख्य काम कूआं तथा तालाब आदिका खोदना है।

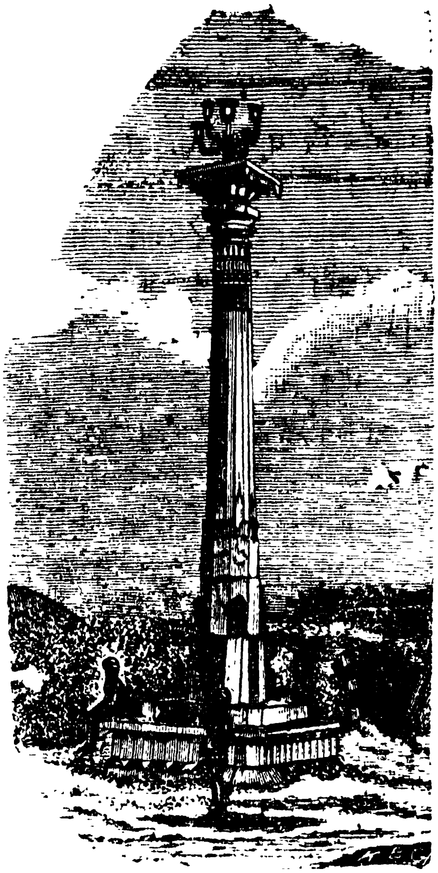
धारवारकी अनेक जमीन खास गवर्नमेण्टके अधीन है जिसे खालसा जमीन कहते हैं। प्रजा गवर्नमेण्टसे यह जमीन बन्दोबस्त लेती है।

यहांकी 'रेगार' या रुईकी जमीन ही विशेष मूल्यवान् है। वर्ष भरमें यहां दो फसल लगती है, पहली खरीफ और दूसरी रब्बी। खरीफ अनाज आषाढ़में बोया जाता और कात्तिकमें पकता है। कपासके सिवा अन्य रब्बी फसल आश्विनमें बोई जाती और माघ, फाल्गुनमें काटती है। श्रावणमासमें कपास बोई जाती और फाल्गुन या चैत्रमें तोड़ी जाती है।

इस जिलेमें १४ प्रधान नगर हैं—१ धारवार, २ हुबली, ३ रानीबेन्नूर, ४ गड़ग, ५ नरगुन्द, ६ नवलगुन्द, ७ मूलगुन्द, ८ शाहबजार वा बङ्कापुर, ९ हवेरी, १० नरेगल, ११ हाङ्गल, १२ तुमीनकट्टी, १३ ब्याड़गी और १४ गुन्दरगी।

इतिहास।—पूर्व समयमें यहांके बदामी नामक स्थानमें चालुक्य राजगण रहते थे। इस स्थानके सिवा उनके अधीन कई जगहोंमें गङ्ग, रट्ट, सेन्द्रक आदि राजगण राज्य करते थे। कभी कभी यह स्थान राष्ट्रकूट राजाओंके अधिकारभुक्त हो गया था। इस जिलेके नाना स्थानोंसे जो सब प्राचीन शिलालिपि, ताम्रफलकादि आविष्कृत हुए हैं उनसे यहांके प्राचीन हिन्दू राज्यका संक्षिप्त विवरण पाया जाता है।

१४वीं शताब्दीमें विजयनगरके हिन्दू राजाओंके अभ्युदयकालमें यह स्थान विजयनगरमें मिला दिया गया था। १८६४ ई०में तालिकोटकी लड़ाईमें जब विजयनगरके राजाओंका गौरव चूर कर दिया गया, तब यह जिला बिजापुरके मुसलमान राजाके शासनाधीन हुआ। १६७५ ई०में शिवाजीके अधीन महाराष्ट्रोंने इस ज़िलेमें लूट पाट मचाया था। इस समयसे प्रायः एक शताब्दी तक यह जिला पहले सातबार मराठा-राजाके और पीछे पूनाके पेशवाके अधिकारमें था। १७७६ ई०में हैदर अलीने इस पर अपना अधिकार जमाया। किन्तु पांच वर्ष होने न पाया था कि वृटिश सैन्यके सहायोगसे महाराष्ट्रोंने पुनः धारवार दुर्ग और नगरको दखलाया। पीछे १८१८ ई० तक महाराष्ट्रोंके सुशासनसे इस जिलेमें शान्ति विराजती रही। उसी साल पेशवाके अधःपतन होने पर यह जिला वृटिश-राजके अधीन बम्बई प्रेसिडेन्सीमें मिला दिया गया।



धारवारका दीपदान।

धारवारमें प्राचीन कीर्तिके अनेक चिह्न पाये जाते हैं। पत्तड़कलके पापनाथका मन्दिर प्राचीन हिन्दू शिल्पका विशेष परिचय देता है। इस जिलेके बदामी नामक स्थानमें प्रतीच्य चालुक्य राजाओंकी आदि राजधानी थी। चालुक्य देखो। बदामीमें भी अनेक प्रत्नकीर्त्तियां देखी जाती हैं। यह पहाड़ काट कर जो सब हिन्दू देवालय बनाये गये हैं उन्हें देख कर आश्चर्य

होना पड़ता है। * धारवारके एक दीपदानका चित्र भी दे दिया गया है। उड़ीसामें भी इस तरहको दीपदण्डी है, किन्तु इस तरहका ऊँचा स्तम्भाकार पत्थरका स्वतन्त्र दीपदान और कहीं देखनेमें नहीं आता। यह दीपदण्डी उत्कृष्ट पत्थरकी बनी हुई है। इसके ऊपर रोशनी करनेसे यह बहुत दूरसे भी देखी जाती है। पूर्व समयमें अनेक साधुचेता इस दीपदानका प्रकाश देख कर तब पीछे भोजन करते थे।

पुलिस विभागमें एक डिष्ट्रिक्ट सुपेरिण्टेण्डेण्ट और एक सहकारी सुपेरिण्टेण्डेण्ट तथा दो इन्सपेक्टर हैं। यहां १६ पुलिस स्टेशन हैं। पुलिसकी संख्या ८२५ है। इसके सिवा १० सवार और एक दफादार है। धारवार शहरमें डिष्ट्रिक्ट जेल है जिसमें केवल ३३६ कैदी रखे जाते हैं। डिष्ट्रिक्ट जेलके सिवा और कई एक छोटे छोटे जेल हैं। जिले भरमें ४४३ विद्यालय हैं जिनमेंसे ५२७ प्राइमरी, १० सेकेण्डरी, ३ हाईस्कूल और २ ट्रेनिंग स्कूल हैं। इसके सिवा यहां एक अस्पताल, आठ औषधालय और तीन रेलवे-मेडिकल स्कूल हैं।

२ धारवार जिलेका उत्तर-पश्चिम तालुक। यह अक्षा० १५° १८' से १५° ४१' उ० और देशा० ७४° ४३' से ७५° १३' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ४३० वर्गमील और लोकसंख्या लाखसे ऊपर है। इसमें धारवार और हुबली नामके दो शहर और १२८ ग्राम लगते हैं। तालुककी आय दो लाख रुपयेसे अधिकको है। वार्षिक वृष्टिपात ३४ इञ्च है।

३ उक्त जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० १५° २७' उ० और देशा० ७५° १' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग ३१२७८ है। नतोन्नत जमीनके ऊपर यहांका दुर्ग अवस्थित है। पश्चिम घाट पर्वतकी सबसे अन्तिम शाखा इसी नगरके पश्चिम हो कर गई है। नगर और दुर्गके चारों ओर ऊंची भूमि और वृक्षादिके रहनेसे पूव दिशासे यह देखनेमें नहीं आता। सर्वोच्च भूभाग पर यहांकी कलक्टरी अदालत है जहांसे समूचा शहर दीख पड़ता है। अदालतके नीचे एक सुन्दर मन्दिर है। मन्दिरसे कुछ दूर माइलरगुड़ नामका एक पहाड़ है। पहले यही पहाड़ धारवार दुर्गका सिंहद्वार माना जाता था। दुर्गसे एक कोस उत्तर-पश्चिममें छावनी है।

धारवार नगर और दुर्ग कब बनाया गया इसका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता। स्थानीय सोमेश्वर-मन्दिरमें सोमेश्वरकी उत्पत्तिका स्थलपुराण है, उसमें भी धारवारका कोई उल्लेख नहीं है। कहते हैं, कि आनगुण्डिके राजा रामराजके अधीन उनके वन विभागकी रक्षाके लिए धाराराव नामके एक कर्मचारी थे। १४०३ ई०में उन्होंने ही यहांका दुर्ग निर्माण किया। १६८५ ई०में दिल्लीके मुगल सम्राट्ने इस दुर्ग पर आक्रमण किया। १७५३ ई०में महाराष्ट्र वीरोंने यह दुर्ग दखल कर लिया। १७७७ ई०में यह हैदरअलीके हाथ लगा। १७९१ ई०में महाराष्ट्र-सेनानायक परशुराम भौने मराठा और कतिपय वृटिश सेनाको साथ ले धारवार पर अधिकार जमाया।१८१८ ई०में पेशवाके अधिकारभुक्त देशोंके साथ साथ धारवार भी वृटिश शासनाधीन हुआ। १८३७ ई०में यहांके ब्राह्मणों और लिङ्गायतोंमें दारुण विद्वेषकी आग प्रज्वलित हुई, जिससे दोनों पक्षके अनेक लोग निहत हुए। अन्तमें वृटिश गवर्मेण्टने यह गोलमाल मिटा दिया।

धारवार दुर्ग कारुकार्यविशिष्ट और सुदृढ़ है। सिपाहीविद्रोहके पहले इस दुर्गकी अवस्था अच्छी थी। पीछे इसके कई अंश तोड़ फोड़ दिये गये। अभी यह भग्नावस्थामें पड़ा है।

यह शहर ७ महल्लोंमें विभक्त है। यहां ऊँचा दो तल्ला मकान बहुत कम है। शहरसे प्रायः आध कोसकी दूरी पर माइलरगुड़ पहाड़के ऊपर एक जैनियों जैसा सुन्दर और प्राचीन पूर्वद्वारी देवमन्दिर है। इसके सभी बीम बरगे पत्थरके बने हुए हैं और उनमें अच्छी कारीगरी दिखलाई गई है। मन्दिरके एक वृहत् स्तम्भमें पारसी भाषामें लिपि भी खोदी हुई है जिसके पढ़नेसे मालूम होता है कि यह देवमन्दिर १६८० ई०में विजा-

* Architectural History of Dharwar and Mysore, 1866; Dr. Burgess' Report on the Belgam and Kaladgi Districts 1874 and Fergusson's History of Inddian and Eastern Architecture, p. 437-45

पुरके एक राजप्रतिनिधि द्वारा मसजिदमें परिणत हुआ है।

यहां ब्राह्मण और लिङ्गायत ही प्रधान हैं। वहिंणु ब्राह्मणोंमें अनेक वकील, जमींदार अथवा महाजन हैं। लिङ्गायत लोग सभी कारबारी हैं। ये कपास, बड़े बड़े काठ और अनाजका व्यवसाय करते हैं। दो एक मुसलमान धनो भी हैं। कुछ दिनोंसे पारसी और मारवाड़ी भी यहां बस गये हैं। शहरमें प्रधानतः विलायती चोजोंका व्यवसाय होता है।

आजकल धारवारमें कोई देशीय शिल्पजात नहीं है, मगर यहांके जेलमें जो गलीचे तथा कपड़े आदि तैयार होते हैं उन्हें खराब नहीं कह सकते।

पहले यहां जलका बहुत अभाव था। पर आज कल म्युनिसिपलिटीके यत्नसे वह अभाव बहुत कुछ दूर हो गया है। यहांके सभी कूओंका जल लवणाक्त है। वहां हाई तथा और दूसरे दूसरे स्कूल, पुस्तकालय, अस्पताल तथा डाकबंगला हैं।

धारा (सं॰ स्त्री॰) धार्यन्ते अश्वा यया धृ-णिच् अङ् स्त्रियां टाप्। अश्वकी गति, घोड़ेकी चाल। प्राचीन भारतवासियोंने घोड़ोंकी पांच प्रकारकी चालें मानी थीं—आस्कन्दित, धोरितिक, रेचित, वल्गित और प्लुत। अश्व देखो। २ द्रवका प्रपात, किसी द्रव पदार्थकी गति-परम्परा, पानी आदिका बहाव। ३ खड्गादिका निशित मुख, काटनेवाले हथियारका तेज सिरा, बाढ़, धार। ४ उत्कर्ष, उन्नति, तरक्की। ५ रथचक्र, रथका पहिया। ६ यश, कीर्ति। ७ अतिवृष्टि, बहुत अधिक वर्षा। ८ समूह, झुण्ड। ९ घनासारवर्षण, लगातार गिरता या बहता हुआ कोई द्रव पदार्थ। १० सादृश्य, समानता। ११ प्रवाह, पानीका झरना, सोता, चश्मा। १२ दक्षिणदेशस्थ पुरी विशेष, प्राचीनकालकी एक नगरी जो दक्षिण देशमें थी। १३ तीर्थविशेष, महाभारतके अनुसार एक प्राचीन तीर्थ। इस तीर्थमें स्नान करनेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं। १४ वाक्यावलि, पंक्ति। १५ रेखा, लकीर। १६ शिखर, पहाड़की चोटी। १७ मालवकी एक राजधानी जो राजा भोजके समयमें प्रसिद्ध थी। प्रवाद है, कि भोज ही उज्जयनीसे राजधानी धारा उठा लाये थे। १८ सेना अथवा उसका अगला भाग। १९ घड़े आदिमें बनाया छेद या सुराख। २० गुडूची, गुरुच, गिलोय। २१ हरिद्रा, हल्दी। २२ आमलकी, आंवला। २३ जीरकाकाली।

धाराकदम्ब (सं॰ पु॰) धारा कालोपलक्षितः कदम्बः वर्षाकाले जातत्वादस्य तथात्वं। कदम्बवृक्ष विशेष, एक प्रकारका कदमका पेड़। इसका संस्कृत पर्याय—केलिमद, प्रावृष्य, पुलकी, भृङ्ग वल्लभ, मेघाभ, प्रियङ्क, नीप, प्रावृष्येण्य, कलम्बक और धाराकदम्ब है।

धाराकोट—मन्द्राज प्रदेशके गञ्जाम जिलान्तर्गत एक क्षुद्र राज्य। यह आस्का नामक स्थानसे ४ कोस उत्तर-पश्चिममें ऋषिकुल्या नदीके किनारे अवस्थित है। इसमें १८८ ग्राम लगते हैं। यह राज्य जुहदामुटा, कुमानोगो गोड़ीमुटा और सहस्राङ्मुटा नामक तीन भागोंमें विभक्त है। सुराद, बड़गोछा और स्रगंदा नामक पार्श्ववर्त्ती स्थान ले कर धाराकोट प्राचीन खिदसिंही राज्यके अन्तर्गत था। १२ वीं शताब्दीमें उड़ीसाके गजपतिवंशीय राजाओंके अधीन इस राज्यका अभ्युदय हुआ था। १४७६ ई॰में खिदसिंही राजाओंने इस राज्यको आपसमें ४ भागोंमें बांट लिया था। इसी विभागके बादसे धाराकोट स्वतन्त्र राज्यमें गिना जाने लगा।

धारागृह (सं॰ क्लो॰) जलधारायुक्तं गृहं। जलयन्त्र-युक्त गृह, वह स्थान या घर जिसमें फुहारा लगा हो।

धाराङ्कुर (सं॰ पु॰) धाराया अङ्कुर इव। १ शीकर, वर्षाकी बूंद। २ घनोपल, ओला, करका। ३ नासीर। ४ लघु वृष्टि। ५ सरलका गोंद।

धाराङ्ग (सं॰ पु॰) धारा उत्कर्ष एव अङ्गं यस्य। १ तीर्थ विशेष, एक तीर्थका नाम। धारान्वितमङ्गमस्य। २ खड्ग, तलवार।

धाराट (सं॰ पु॰) धारायैः, तृष्यर्थं अटति इति अट अच्। १ चातक। धारां अटति वर्षणोशत्वेन प्राप्नोतीति २ मेघ, बादल। धारा गतिं अटति। ३ तुरङ्ग, घोड़ा। ४ मत्तहस्ती, मतवाला हाथी। स्त्रियां जातित्वात् ङीष्।

धाराधर (सं॰ पु॰) धरतीति धृ-अच्, धारायाः धरः। १ मेघ, बादल। २ खड्ग, तलवार।

धारान्तरचर (सं॰ त्रि॰) आकाशमें उड़नेवाला।

धारापात (सं० पु०) धारायाः पातः ६ तत्। जलधारापतन, पानीका गिरना ।

धारापुरम्—१ मन्द्राज प्रदेशके कोयम्बतूर जिलेके अन्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० १०° ३७' से ११° ८' उ० और देशा० ७७° १८' से ७७° ५४ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ८५३ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः २७११२७ है। इसमें एक शहर और ८५३ ग्राम लगते हैं। तालुकमें सैकड़े पीछे ७७ भाग लाल बालूमिश्रित मट्टी पाई जाती है। यहां अमरावती, उप्पार और नोयेल नामकी नदियां प्रवाहित हैं। तालुककी आय ४४७००० रुपयेकी है।

यहां वन जङ्गल वा पहाड़ नहीं है। अधिवासी खेती करके अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। उरद, मटर, तमाखू, सरसों और कपास यहांकी प्रधान उपज है। इस तालुकके अन्तर्गत शिवनमलय और नीरोए नामक स्थानमें देवमूर्त्ति देखनेके लिये सैकड़ों यात्री आते हैं। यहांकी आबहवा अच्छी है।

२ उक्त तालुकका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० १०° ४५' उ० और देशा० ७७° ३२' पू० तिरुप्पुर रेलवे-ष्टेशनसे ३० मील दक्षिण अमरावती नदीके किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग १७१७८ है। कहते हैं, कि यहां एक समय भोजराजाओंकी राजधानी थी। १६६७ और १७४६ ई०में महिसुरके राजाने मदुराके राजासे इसे दो बार छीन लिया था। जब हैदरअली और टीपू सुलतानके साथ अंगरेजोंकी लड़ाई छिड़ी थी, तब यहां पर कई बार युद्ध हुआ था। उस समय यह स्थान कभी मुसलमानों और कभी अंगरेजोंके हाथ लगा था। १७८२ ई०में यहांके दुर्गकी दीवार आदि तोड़ फोड़ दी गई। कुछ दिन यहां जिलेकी सदर कचहरी थी, अब नहीं है। यहां तालुकका सदर, थाना, डाकघर, औषधालय प्रभृति हैं। प्रति सप्ताह हाट लगता है जिसमें घी, धान, लालमिर्च, तमाखू, उरद और चमेका व्यवसाय होता है। अधिवासियोंमें हिन्दूकी संख्या ज्यादा हैं।

धारापूप (सं० क्ली०) धाराख्यं अपूप। अपूपभेद, एक प्रकारका पूआ। इसके बनानेके लिये मैदेको घी मिले हुए दूधमें सानते और तब घीमें छान कर बनाते हैं। बाद इसमें खांड़ या चीनी मिला दी जाती है। भावप्रकाशके अनुसार इसका गुण—सुमधुर, बलकारक, पित्तनाशक, सुस्निग्ध, रुचिकर, हृद्य और वातनाशक है।

धाराफल (सं० पु०) धाराफले यस्य। मदनवृक्ष, मैनफलका पेड़।

धारायन्त्र (सं० पु०) धाराया जलधारायाः प्रस्रवार्थं यन्त्रं। जलप्रस्रवयन्त्रभेद, वह यन्त्र जिससे पानीकी धार छूटे, फुहारा।

धाराल (सं० त्रि०) धारा अस्त्यस्य सिध्मादित्वात् लच्। धारायुक्त खड्गादि, जिसकी धार तेज हो, धारदार।

धारावत् (सं० त्रि०) १ धारविशिष्ट, धारदार। २ जलवत्, पानीके समान।

धारावनि (सं० पु०) धारायाः वृष्टेः अवनिः पृथ्वीव, अभिधानात् पुंस्त्वं। वायु, हवा। (कोई कोई कहते हैं 'परवल्लिङ्ग' परवत् लिङ्ग होता है, इस नियमके अनुसार यह शब्द स्त्रीलिङ्ग होना उचित है। क्योंकि 'अवनि' शब्द स्त्रीलिङ्ग है, इसलिये यह शब्द स्त्रीलिङ्ग होना चाहिये। किन्तु यहां जो पुलिङ्गका व्यवहार किया गया है, वह प्रामादिक है।)

धाराधर (सं० पु०) धारया जलधारया आवृणोत्याकाशं वृ-अच्। मेघ, बादल।

धारावर्ष (सं० पु०) धारया सन्तत्या अविच्छेदेन वर्षः। अविच्छेदरूपसे वर्षण, लगातार बरसना।

धारावर्ष—१ इस नामके कई एक राष्ट्रकूट राजा हो गये हैं। राष्ट्रकूट राजवंश देखो। २ मालवके एक राजा। ये ११वीं शताब्दीमें राज्य करते थे। परमार-राजवंश और मालव शब्द देखो।

धारावाही (सं० त्रि०) धारया सन्तत्या वहति वह-णिनि। अविच्छेदरूपसे जायमान, जो धाराके रूपमें आगे बढ़ता हो।

धाराविष (सं० पु०) धारा एव विषमिव यस्य प्राणनाशकत्वात्। खड्ग, तलवार।

धाराश्रु (सं० क्ली०) अश्रु-प्रवाह, आंसूका गिरना।

धारासत्व (सं० क्ली०) गुड़चीसार, गुरुचका रस।

धारासम्पात (सं० पु०) धाराणां सम् सम्यक् पातो यत्र। महावृष्टि, बहुत तेज और अधिक वृष्टि, जोरोंकी बारिश

इसका पर्याय—धारा, सम्पात और आसार है।

धारासार (सं० त्रि०) लगातार वृष्टि, बराबर पानी बरसना।

धारास्नुही (सं० स्त्री०) धारायुता स्नुही मध्यलो०। त्रिधारा स्नुही, तिधारा थुहर।

धारि (सं० स्त्री०) आयु, उमर।

धारिन् (सं० पु०) धृ-णिनि। १ पीलूवृक्ष, पीलूका पेड़। २ एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें पहले तीन जगण और तब एक यगण होता है। (त्रि०) ३ धारण करनेवाला। ४ ग्रन्थार्थ धारणायुक्त, किसी ग्रन्थके तात्पर्यको भली भांति जाननेवाला। ५ ऋण लेनेवाला, कर्जदार।

धारिणी (सं० स्त्री०) धारिन्-ङीप्। १ धरणी, पृथ्वी, भूमि। २ शाल्मलीवृक्ष, सेमरका पेड़। ३ चतुर्दश देवयोषिद्‌गण, चौदह देवताओंकी स्त्रियां जिनके नाम ये हैं—शची, वनस्पति, गार्गी, धूम्रोर्णा, रुचिराकृति, सिनिवाली, कुहू, राका, अनुमति, आयति, प्रज्ञा, सेला और वेला। ४ आधार स्वरूप। (त्रि०) ५ धारणकर्त्री, धारण करनेवाली।

धारी (हिं० स्त्री०) १ सेना, फौज। २ समूह, झुण्ड। ३ रेखा, लकीर। ४ पुश्ता।

धारीदार (हिं० त्रि०) जिसमें लम्बी लम्बी धारियां हों।

धारु (सं० त्रि०) धयति पिबतीति धे-रु (दाधेट सिशदसदोरुः। पा ३।२।१५८।) पानकर्त्ता, पीनेवाला।

धारुजल (हिं० पु०) खड्ग, तलवार।

धारुपुर—अयोध्याके प्रतापगढ़ जिलेके अन्तर्गत एक गण्ड ग्राम। यह माणिकपुरसे ८ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। धारुसाहने यह ग्राम बसाया था।

सिपाही विद्रोहके समय यहांके तालुकदारोंने अंगरेजोंको आश्रय दे कर उनकी रक्षा की थी। यहां लाखसे अधिक रुपयेका व्यवसाय होता है। लोकसंख्या प्रायः तीन हजार है। यहां एक गवर्नमेण्ट स्कूल और प्राचीन शिवमन्दिर है।

धारोष्ण (सं० क्ली०) धारायां दोहनप्रपाते उष्णं। थनसे निकला हुआ ताजा दूध। धारोष्ण दूध बहुत उपकारी होता है। यह कुछ गरम होता है और स्तनसे निकलनेके कुछ समय बाद तक गरम रहता है। वैद्यकके अनुसार ऐसा दूध अमृतके समान, भ्रम हरनेवाला, निद्रा लानेवाला, वीर्य और पुरुषार्थ बढ़ानेवाला, पुष्टिकारक, अग्निको बढ़ानेवाला, अति स्वादिष्ट और त्रिदोषनाशक है। गायका धारोष्ण ही सबसे श्रेष्ठ है, भैंसका उतना उपकारी नहीं होता।

धार्त्तराज्ञ (सं० पु० स्त्री०) धृतराज्ञो अपत्यं अण्, उपधालोपः। धृतराज्ञका अपत्य।

धार्त्तराष्ट्र (सं० पु० स्त्री०) १ धृतराष्ट्रके अपत्य दुर्योधनादि। स्त्रियां ङीप्। २ दुःशला। (पु०) ३ धृतराष्ट्रवंशोद्भव नागभेद, धृतराष्ट्रके वंशका उत्पन्न एक नागका नाम। धृतराष्ट्रे सुराष्ट्रदेशे भवः अण्। ४ कृष्णवर्णचञ्चुचरणयुक्त हंस, काले रंगकी चोंच और पैरोंवाला हंस।

धार्त्तराष्ट्रपदी (सं० स्त्री०) धार्त्तराष्ट्रस्य पादो इव मूलं यस्याः ङीष्, तत्पद्भावः। १ हंसपदी लता। २ रक्तलज्जालुका, लाल रंगका लज्जालु।

धार्त्तराष्ट्रि (सं० पु०) धृतराष्ट्रका अपत्य।

धार्त्तेय (सं० पु० स्त्री०) धृतायाः अपत्यं ढक्। धृताका अपत्य।

धार्म (सं० त्रि०) धर्मस्येदं अण्। १ धर्मसम्बन्धी। स्त्रियां ङीप्। प्राचुर्ये अण्। २ धर्ममय।

धार्मपत (सं० त्रि०) धर्मपतेरपत्यादि अश्वपत्यादित्वात् अण्। धर्मपति संबन्धीय। स्त्रियां ङीप्।

धार्मपत्तन (सं० त्रि०) तत्र भवः अण्। १ धर्मपत्तनभव, जो उस स्थानमें उत्पन्न हुआ हो। (पु०) २ कीलक, कील, खूंटी।

धार्मायण (सं० पु० स्त्री०) धर्मस्य गोत्रापत्यं अश्वादित्वात् फञ्। धर्मका गोत्रापत्य।

धार्मिक (सं० त्रि०) धर्मं चरतीति ठक्। (धर्मं चरति। पा ४।४।४१) यद्वा धर्ममधीते वेद वा ठक्। १ धर्मशील, धर्मात्मा, धर्माचरण करनेवाला, पुण्यात्मा।

जो विभागशील, सर्वदा क्षमायुक्त, दयाप्रवण, देवता और अतिथिभक्त हैं वे ही धार्मिक पदवाच्य हैं। जो सब मनुष्य धर्मके पथ पर विचरण करते, उन्हें धार्मिक कहते हैं। धर्मशास्त्रमें धर्मका जो लक्षण लिखा है, उसी धर्मलक्षणोक्त धर्माचरणकारीको धार्मिक कहते हैं। २ धर्मसम्बन्धी।

धार्मिकता (सं॰ स्त्री॰) धार्मिकस्य भावः तल्, ततो टाप्। धर्मशीलता, धार्मिकका भाव।

धार्मिक्य (सं॰ क्ली॰) धार्मिक पुरोहितादित्वात् भावे यक्। धर्मानुशीलन, धार्मिक होनेका भाव।

धार्मिण (सं॰ क्ली॰) धर्मिणां समूहः। धार्मिक समूह।

धार्मिणेय (सं॰ पु॰-स्त्री॰) धर्मिण्याः अपत्यं शुभ्रादित्वात् ढक्। धर्मिणीका अपत्य।

धार्य (सं॰ त्रि॰) ध्रियते इति धृ-ण्यत्। १ धारणीय धारण करनेके योग्य। (पु॰) २ वस्त्र, कपड़ा।

धार्यत्व (सं॰ क्ली॰) धार्यस्य भावः धार्य-त्व धार्यका भाव।

धार्ष्ट (सं॰ त्रि॰) धृष्ट-अण्। धृष्टका भाव, धृष्टता।

धार्ष्टद्युम्न (सं॰ पु॰) धृष्टद्युम्नका अपत्य।

धार्ष्ट्य (सं॰ क्ली॰) धृष्टस्य भावः कर्म वा ष्यञ्। प्रागल्भ्य, निर्लज्जत्व, बेशर्मी।

धार्ष्णक (सं॰ क्ली॰) धृष्णु राजाके एक पुत्रका नाम।

धाव (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका लंबा और सुन्दर पेड़। इसे गोलरा, घंवरा, बकली और खरधाया भी कहते हैं।

धावक (सं॰ त्रि॰) धावति शीघ्रं गच्छति धाव-ण्वुल्। १ धावनकर्त्ता, दौड़ कर चलनेवाला, हरकारा। धावति वस्त्रादिकं मार्ष्टि धाव-ण्वुल्। २ वस्त्रादि प्रक्षालक, रजक, धोबी।

धावक—संस्कृत अलङ्कार और नाटकमें यह नाम पाया जाता है। संस्कृतवित् अनेक पण्डितोंका विश्वास है, कि धावक एक आलङ्कारिक थे। साहित्यसार प्रभृति अलङ्कार ग्रन्थोंमें धावकका नाम पाया जाता है। साहित्यसारमें एक जगह लिखा है—धावक अत्यन्त दरिद्र थे उन्होंने मन्त्रसिद्धिके गुणसे कवित्वशक्ति प्राप्त कर १०० सर्गोंमें "नैषधचरित"की रचना की और उसके लिये हर्षराजसे पुरस्कारस्वरूप निष्कर जमीन पाई थी।

कालिदासने मालविकाग्निमित्रकी प्रस्तावनामें लिखा है-प्रतिष्ठित धावक सौमिल्ल कविपुत्रादिके प्रबन्धका अतिक्रम कर क्या वर्त्तमान कवि कालिदासका ग्रन्थ आदर पा सकता है?

इस प्रमाणसे सिद्ध होता है कि काव्यप्रकाश और कालिदासका मालविकाग्निमित्र रचे जानेके पहले धावक नामके एक कवि हो गये थे। किसीका मत है, कि धावक कविने ही श्रीहर्षका नाम दे कर नागानन्द और रत्नावलिनाटिकाकी रचना की है।

अध्यापक बुह्लर धावकका नाम मिटा देना चाहते हैं। उनका कहना है, कि काश्मीरसे सारदा अक्षरमें लिखा हुआ जो काव्यप्रकाशका ग्रन्थ पाया गया है, उसमें धावकको जगह 'बाण' देखा जाता है। सारदा अक्षरका धावक और बाण शब्द एकसा प्रतीत होता है। * अध्यापक मेक्समूलरका विश्वास है, कि नागानन्द भी बाणके बदलेमें धावकके नाम पर प्रयुक्त हुआ है। †

किन्तु हम लोग इस नामको उड़ा नहीं सकते। जब अधिकांश प्राचीन आलङ्कारिकोंने इस धावकका नाम उल्लेख किया है, जब माहेश्वर, नागेशभट्ट, वैद्यनाथ, जयराम आदि काव्यप्रकाशके प्राचीन टीकाकारोंने धावक नाम ग्रहण किया है, तब यह नाम बाणके बदलेमें जो व्यवहृत होता आ रहा है यह ठीक प्रतीत नहीं होता। कालिदासके ग्रन्थमें भी जब यह नाम पाया जाता है तब और सन्देह करनेका कारण ही न रहा। किन्तु यह धावक श्रीहर्षके समयमें विद्यमान थे वा नहीं, इसमें भी सन्देह है। यदि वे श्रीहर्षके समसामयिक थे, तो श्रीहर्षके बहुपूर्ववर्त्ती कालिदासके ग्रन्थमें धावकका नाम किस तरह आया? हो सकता है, कि धावकने श्रीहर्ष नामक किसी दूसरे प्राचीन राजाका आश्रय लिया हो। उस समयके आलङ्कारिक गण धावकका परिचय और कालिदासके परवर्त्ती कान्यकुब्जाधिपतिकी विद्योत्साहिता और पण्डितोंके आश्रयदातृत्वका परिचय पा कर हर्षके विषयमें जो सब ग्रन्थ बनाये गये हैं वे सब धावक कृत ठहराते हैं। यथार्थमें धावक कवि और आलङ्कारिकके सिवा और कोई विशेष परिचय नहीं पाया जाता है।

धावड़ा (हिं॰ पु॰) धवका पेड़।

धावण (हिं॰ पु॰) दूत, हरकारा।

धावन (सं॰ क्ली॰) धाव भावे ल्युट्। १ शीघ्र गमन,

* Dr, Bulbe inr India Antiquary,. VoI, II, P, 331 aud Hall's Vasava-data,[illegible]ref. P, I5.

† Max Muller's India, what can it teach us, p, 331,

बहुत जल्दी या दौड़ कर जाना। २ प्रक्षालन, धोने या साफ करनेका काम। ३ शुद्धि, वह चीज जिससे कोई पदार्थ धोई या साफ की जाय। ४ दूत, हरकारा।

धावनि (सं० स्त्री०) धाव बाहुलकात् अनि। १ पृश्निपर्णी, पिठवन। इसका संस्कृत पर्याय—पृश्निपर्णी, पृथक्पर्णी, चित्रपर्णी, क्रोष्टुविन्ना, सिंहपुच्छी, कलसी और गुहा है। २ कण्टकारी, भटकटैया।

धावनिका (सं० स्त्री०) १ कण्टकारिका, कटेरी। २ पृश्निपर्णी, पिठवन। ३ कंटीली मकोय।

धावनी (सं० स्त्री०) धावनि कृदिकारादिति ङीष्। १ पृश्निपर्णी, पिठवन। २ कण्टकारी, भटकटैया। ३ धातकी, धवका फूल। ४ कपिकच्छु, केवांच, कौंछ। ५ शणवृक्ष, सनका पेड़।

धावरा (हिं० पु०) धव देखो।

धावा (हिं० पु०) १ आक्रमण, हमला, चढ़ाई। २ किसी कामके लिये जल्दी जल्दी जाना।

धासस् (सं० पु०) धा-असुन्। पर्वत पहाड़।

धासि (सं० पु०) धारयति प्राणान् धा-असि। १ अन्न, अनाज। २ गृह, घर। (त्रि०) ३ धारणकारी, धारण करनेवाला।

धाह (हिं० स्त्री०) जोरसे चिल्ला कर रोना, धाड़।

धिंग (हिं० स्त्री०) ऊधम, धींगा धींगी, शरारत।

धिंगरा (हिं० पु०) धींगरा देखो।

धिंगा (हिं० पु०) १ उपद्रवी, शरारती, बदमाश। २ निर्लज्ज, बेशर्म।

धिंगाई (हिं० स्त्री०) १ उपद्रव, ऊधम, शरारत। २ निर्लज्जता, बेशर्मी।

धिंगाधिंगी (हिं स्त्री०) धींगाधींगी देखो।

धिया (हिं० स्त्री०) १ कन्या, बेटी। २ कोई छोटी लड़की।

धिक् (सं० अव्य) धक नाशने धा धारणे वा बाहुलकात् डिकन्। घृणासूचक एक शब्द, लानत। २ भर्त्सना, तिरस्कार। ३ निन्दा, शिकायत।

धिक (हिं० अव्य०) धिक्, लानत।

धिक्कार (सं० पु०) धिक् इत्यस्य कारः करणं धिक्, तिरस्कार, लानत, फटकार। इसका संस्कृत पर्याय—धीकार, अवहेला, अवमानन, क्षेप, निकार और अनादर है।

धिक्कारना (हिं० क्रि०) लानत मलामत करना, फटकारना।

धिक्कृत (सं० त्रि०) धिक् कृ कर्मणि क्त। भर्त्सित, जो धिक्कारा जाय। इसका पर्याय अपध्वस्त है।

तुम्हें 'धिक्' ऐसा शब्द जिसे कहा जाय, उसे धिक्कृत कहते हैं।

धिक्क्रिया (सं० स्त्री०) धिगित्युच्चारणमेव क्रिया। निन्दा, शिकायत।

धिग्दण्ड (सं० पु०) धिगिति दण्डः। निर्भत्सनरूप दण्ड, तिरस्काररूप दण्ड।

धिग्वण (सं० पु०) मनूक्त सङ्कीर्ण जातिभेद, एक संकर जाति। शूद्रके औरस और वैश्याके गर्भसे जो उत्पन्न होता है, उसे आयोगव कहते हैं। ब्राह्मण पिता और आयोगवी मातासे जो जाति उत्पन्न होती है, उसे धिग्वण कहते हैं। यह जाति चर्मकार्य द्वारा अपनी जीविका निर्वाह करती है। जहां तक अनुमान किया जाता है कि चर्मकार या चमार इसी धिग्वण जातिके अन्तर्गत है।

मनुने लिखा है, कि धिग्वणोंका चर्मकार्य और वेणु जातिका भाण्डवादन ही उन उपजीविका है।

धिमचा (हिं० पु०) एक प्रकारकी इमली।

धित (सं० त्रि०) धा-क्त छान्दसो न हिः। निहित, स्थापित, रखा हुआ।

धिति (सं० स्त्री०) धि धृतौ क्तिन्। धारण।

धिप्सु (सं० त्रि०) दन्भ-सन् तत उ। दम्भ करनेमें इच्छुक, जो ठगना चाहता हो।

धियंजिन्व (सं० त्रि०) कर्म वा बुद्धिके प्रीणयिता।
(ऋक् १।१८२।१)

धिय (हिं० स्त्री०) १ कन्या, बेटी। २ बालिका, लड़की।

धियसान (सं० त्रि०) धि धारणे वेदे बाहुलकात् असानच्, किच्च। धारक, धारण करनेवाला।

धिया (हिं० स्त्री०) धिय देखो।

धियासम्पत्ति (सं० पु०) धियां बुद्धीनां पतिः अलुक् समासान्तः। १ पूर्व जिनविशेष। ये मञ्जुघोष नामसे विख्यात है। २ आत्मा। ३ बृहस्पति।

धियायत् (सं० त्रि०) इ कान्ती शतृ यत् अलुक् समासः। कर्माभिलाषी, जो काम करना चाहता हो।

धियायु (सं० त्रि०) धि-धारणे धीयते ध्यायते अनया धि-बाहुलकात् करणे क्र, धिया तां प्रज्ञामात्मनः इच्छति क्यच्, ततः छान्दस उ। अपनी बुद्धि या समझके अनुसार करनेवाला।

धियावसु (सं० त्रि०) धिया कर्मणा वसु यस्मात् वेदे अलुक् समास:। कर्म द्वारा वसु निमित्त देवभेद, सरस्वतीके वर्गके एक वैदिक देवता जो 'धी' अर्थात् बुद्धिके देवता माने जाते हैं।

धिषण (सं० पु०) धृष्णोति प्रागल्भं ददाति धृष-क्यु (धृषे धिष च संज्ञायां। उण् २।८२) १ बृहस्पति। २ ब्रह्मा। ३ नारायण, विष्णु। ४ शिक्षक, गुरु। (त्रि०) ५ बुद्धिमान्, अक्लमन्द, समझदार।

धिषणा (सं० स्त्री०) धृष्णोत्यनया धृष-क्यु धिषादेशश्च। १ बुद्धि, अक्ल। २ स्तुति, प्रशंसा। ३ वाक्, वाकशक्ति। ४ प्रस्तर, पत्थर। ५ द्यावापृथिवी। ६ पृथ्वी। ७ स्थान। ८ हविर्धानको स्त्री। (त्रि०) ८ धारयित्री, धारण करनेवाली।

धिषणाधिप (सं० पु०) धिषणायाः अधिपः ६-तत्। १ बृहस्पति, देवताओंके गुरु।

धिषण्य (सं० त्रि०) धिषणामिच्छति क्यच्, छान्दसत्वोर्घाभावेऽल्लोपः। आत्मश्लाघी, जो अपनी स्तुति या बड़ाई करनेकी इच्छा करता हो।

धिष्ट्र (सं० क्ली०) धिष्ण्य निपातनात् णस्य टः। १ स्थान, जगह। २ गृह, घर। ३ नक्षत्र। ४ अग्नि, आग। ५ शक्ति। (पु०) धृष्णोति प्रगल्भो भवति धृष-ण्य निपातनात् साधुः। ६ शुक्राचार्य।

धिष्ण्य (सं० क्ली०) धृष्णोति प्रगल्भो भवतीति धृष-ण्य (सानसि वर्णसि पर्णसीति। उण् ४।१०७) निपातनात् ऋकारस्य च इकारः। १ स्थान, जगह। २ गृह, घर। ३ अग्नि, आग। ४ नक्षत्र। ५ शक्ति। ६ उल्काभेद। ७ प्राणाभिमानी देव। (त्रि०) ८ स्थानादि। ८ स्तुत्य, स्तुति करने योग्य।

धींग (हिं० पु०) १ हृष्ट पुष्ट मनुष्य, हट्टा कट्टा आदमी। (वि०) २ दृढ़, मजबूत, जोरावर। ३ उपद्रवी, बदमाश, शरीर। ४ कुमार्गी, पापी।

धींगधुकड़ो (हिं० स्त्री०) १ धींगामुश्ती। २ पाजीपन।

धींगरा (हिं० पु०) १ हृष्ट पुष्ट, हट्टा कट्टा, मुसंड, मोटा ताजा। २ कुकर्मी, गुंडा, बदमाश।

धींगा (हिं० पु०) उपद्रवी, बदमाश।

धींगाधींगी (हिं० स्त्री०) १ उपद्रव, शरारत, बदमाशी। २ बल-प्रयोग, जबरदस्ती।

धींगामुश्ती (हिं० स्त्री०) १ उपद्रव, बदमाशी, शरारत। २ बलपूर्वक लड़ना, जबरदस्ती लड़ना, हाथाबाँही।

धींगाड़ (हिं० वि०) १ दुष्ट, पाजी, बदमाश। २ हृष्टपुष्ट, हट्टाकट्टा। ३ वर्णसङ्कर, दोगला, हरामी।

धींगाड़ा (हिं० पु०) धींगड़ा देखो।

धींवर (हिं० पु०) धीवर देखो।

धी (सं० स्त्री०) ध्यै चिन्तने क्विप ततो सम्प्रसारणं। १ बुद्धि, ज्ञान, अक्ल। २ मानसवृत्तिभेद। नैयायिकोंके मतसे यह आत्मवृत्ति अर्थात् आत्माका धर्म है। किन्तु वैदान्तिकगण इसे स्वीकार नहीं करते, वे इसे मनोवृत्ति मानते हैं। बुद्धि देखो। ३ मन। ४ कर्म।

धी (हिं० स्त्री०) लड़की, बेटी।

धीगुण (सं० पु०) धियाः गुणः ६-तत्। बुद्धिका गुण। कामन्दकी वर्णित बुद्धिके अष्ट गुण, अर्थात् शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, ऊह, अपोहार्थ, विज्ञान और तत्त्वज्ञान।

धीजना (हिं० क्रि०) १ स्वीकार करना, अङ्गीकार करना, ग्रहण करना। २ अतिप्रसन्न होना, खुश होना। ३ धैर्ययुक्त होना, धीरज धरना।

धीत (सं० त्रि०) धे-क्त। १ पीत, जो पिया गया हो। धा-क्त धीत। धी-धातुक्त, प्रत्यय करनेसे लौकिक स्थानमें धीत और वैदिक प्रयोगमें धीत होता है। २ अनादृत। जिसका अनादर हुआ हो। ३ आराधित, जिसकी आराधना की जाय। ४ पिपासा, प्यास।

धीति (सं० स्त्री०) धे-क्तिन्। १ पान, पीना। २ पिपासा, प्यास। ३ अनादर। ४ आराधना। ५ अङ्गुलि, उंगली।

धीदा (सं० स्त्री०) धियं ददातीति दा-क स्त्रियां टाप्। १ कन्या, कुमारी लड़की। २ पुत्री, बेटी। (त्रि०) ३ बुद्धिदायक, अक्ल देनेवाला।

धीन्द्रिय (सं० क्ली०) धीजनकं इन्द्रियं। ज्ञानेन्द्रिय, वह इन्द्रिय जिससे किसी बातका ज्ञान प्राप्त किया जाय,

जैसे,--मन, आँख, कान, त्वक्, जीभ, नाक।

धीमत् (सं॰ पु॰) धीः विद्यतेऽस्य, अस्त्यर्थे धी-मतुप्। १ वृहस्पति। (त्रि॰) २ नरपुत्र विराजके एक लड़केका नाम। ३ उर्वशीके गर्भसे उत्पन्न पुरुरवाके एक पुत्रका नाम। ४ बुद्धियुक्त, जिसे बुद्धि हो।

धीमति (सं॰ स्त्री॰) धीमत् स्त्रियां ङीप्। बुद्धिमती।

धीमा (हिं॰ वि॰) १ जिसका वेग मन्द हो, जो आहिस्तः चले। २ जो अधिक प्रचण्ड, तीव्र या उग्र न हो, हलका। ३ जिसकी तेजी कम हो गई हो। ४ कुछ नीचा और साधारणसे कम।

धीमातिताला (हिं॰ पु॰) सङ्गीतमें सोलह मात्राओंका एक ताल। इसमें तीन आघात और एक खाली होता है।

धीमान् (सं॰ पु॰) १ धीमत्, बुद्धिमान्, समझदार। २ वृहस्पति। ३ वारेन्द्रवासी। एक विख्यात भास्कर शिल्पी।

धीमाल--दार्जिलिङ्ग और नेपालकी तराईमें रहनेवाली एक जाति। कोई इन्हें लौहित्य श्रेणीके और कोई कोच जातिकी एक शाखाके बतलाते हैं। इनकी आकृति प्रकृति सभी प्रायः कोच जाति-सी है। किसी किसीका कहना है कि इनमेंसे जो धनी होते, वे अपनेको राज-वंशीय बतलाते हैं। इस प्रकार यह पद लाभ करते समय उन्हें बहुत खर्च करने पड़ते हैं। किन्तु इस प्रकारकी घटना अति विरल है।

इस जातिकी संख्या क्रमशः विलुप्त होती जा रही है। १८४७ ई॰में हजसन साहब इस जातिकी संख्या १५००० निर्णय कर गए हैं पीछे १८७२ ई॰की लोक-गणनामें इनकी संख्या ८७३ और १८८१ ई॰की गणना-में ६६२ देखी जाती है। इस प्रकार संख्या ह्रास होनेका कारण और कुछ भी नहीं है सिवा इसके कि धीमाल इस नामका परिचय गोपन और आत्मन्तरपरिग्रह है। आज कल इस जातिके लोग अपनेको 'धीमाल' न कह कर 'मौलिक' बतलाते हैं। केवल चतुःपार्श्ववर्त्ती विदेशी लोग ही अपनेको धीमाल कहा करते हैं।

लिम्बु जातिके मध्य एक आख्यायिका इस प्रकार प्रचलित है—

कोच, धीमाल और मेच जातिके आदि पुरुष तीनों भाई कर्मसे काम्बोधाममें उतरे। वहांसे वे तीनों आते आते 'खचर' (खश ?) देशमें पहुँचे। (कोई कोई ब्रह्मपुत्र और कौशिकी नदी-तीरवर्त्ती भूभागको खचर देश कहते हैं।) कनिष्ठ सहोदर वहीं रहने लगे और उन्हींसे धीरे धीरे कोच, धीमाल और मेच इन तीन जातियोंकी उत्पत्ति हुई। शेष दो भाई समुद्भगिरि प्रदेशमें गए और उन दोनोंसे नेपालके खम्बु और लिम्बु जातिकी उत्पत्ति हुई। फिर कोई कोई कहते हैं, कि कोई नेपाली सामा-जिक नियमका उल्लङ्घन करनेके कारण देशसे निकाल दिया गया और खचर देशमें जा कर रहने लगा। यहां उसने एक स्त्रीसे विवाह किया और उसीसे मेच और धीमाल जातिकी उत्पत्ति हुई। किन्तु वर्त्तमान कालमें धीमाल लोग कोच और मेचके साथ कोई संभव नहीं रखते।

यह जाति प्रधानतः ३ श्रेणियोंमें विभक्त है—अम्निया, लातेर और दुंगिया। तीनों श्रेणियोंमें आदान-प्रदान चलता है। लेकिन अम्निया लोग अपनको श्रेष्ठ बतलाते हैं, इस कारण स्वश्रेणीमें ही विवाह करते हैं। इनमें विधवा विवाह प्रचलित है। इसके सिवा स्त्री स्वामी रहते भी दूसरेसे शादी कर सकती है, इसमें समाजकी ओरसे कोई कानवीन नहीं है। यदि कोई पुरुष किसीकी स्त्रीको बहका कर ले जाय, तो उसे स्त्रीके पतिको क्षतिपूरण स्वरूप विवाहमें दत्तपणके सभी रुपये तथा पञ्चायत्से निर्दिष्ट अर्थदण्ड देने होते हैं।

पूर्व समयमें ये लोग शवको गाड़ देते थे, लेकिन अभी शवदाह प्रथा ही जारी हो गई है। अशौच केवल दश दिन तक माना जाता है। कार्त्तिक मासमें ये लोग पितरोंके उद्देशसे तर्पण करते है। ये लोग गोमांस अथवा सर्पादि नहीं खाते, लेकिन मुर्गी, वराह, छिप-कली तथा सभी तरहकी मछलियाँ खाते हैं। कृषि, मत्स्यधारण और गोचारण इनकी प्रधान उपजीविका है। इस जातिके लोग सब दिन एक स्थानमें वास नहीं करते।

धीमोदिनी (सं॰ स्त्री॰) मद्य, शराब।

धीया (हिं॰ स्त्री॰) लड़की, बेटी।

धीर (सं॰ क्ली॰) धियं राती ति रा-क। १ कुङ्कुम, केसर। इसका पर्याय—कुङ्कुम, रक्त, काश्मीर, पीतक,

वर, सङ्कोच, पिशुन, धीर, आङ्कोक और शोषिताभिध है। (पु०) धियं राति ददाति रक्षतीति वा रा-क। २ ऋषभौषधि, ऋषभ नामको औषध। ३ वलिराज, राजा वलि। ४ मन्त्र। ५ चिदाभास द्वारा बुद्धिवृत्तिप्रेरक चिदात्मा। (त्रि०) धियं ईरयतीति ईर-अण् वा रा-क। ६ धैर्यान्वित, जिसमें धैर्य हो, जो जल्दी घबरा न जाय ७ बलयुक्त, बलवान्, ताकतवर। ८ विनीत, नम्र। ९ गम्भीर। १० मनोहर, सुन्दर। ११ मन्द, धीमा।

धीरगोविन्दशर्मा—आथर्वणरहस्य नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता। ये वर्त्तमान शताब्दीके प्रारम्भमें विद्यमान थे।

धीरज (हिं० पु०) धैर्य देखो।

धीरज (हिं० पु०) धैर्यवान् देखो।

धीरट (हिं० पु०) हंस पक्षी।

धीरता (सं० स्त्री० धीर-भावे तल्। १ अचाञ्चल्य, चित्तकी स्थिरता, मनकी दृढ़ता। २ स्थैर्य, सन्तोष, सब्र। ३ पाण्डित्य। ४ नायकगुणभेद।

धीरत्व (सं० क्ली०) धीरस्य भावः। धीरता, धीर होनेका भाव।

धीरदेव—युक्तप्रदेशके वलिया जिलेके एक विख्यात अधिपति। इन्होंने प्रायः १६४१ ई०को हलदी ग्राममें एक दुर्ग निर्माण किया था जो अभी गंगाका गर्भशायी हो गया है।

धीरपत्री (सं० स्त्री०) धीरं मनोहरं पत्रं यस्याः स्त्रियां ङीप। १ धरणीकन्द, जमीकन्द। (त्रि०) २ मनोहर पत्रयुक्त, जिसके अच्छे अच्छे पत्ते हों।

धीरप्रशान्त (सं० पु०) नायकभेद। जहां नायक बहुगुणयुक्त ब्राह्मणादि हों, वहां धीरप्रशान्त होता है। जिस तरह मालतीमाधव ग्रन्थमें माधव धीरप्रशान्त नायक हैं।

धीरललित (सं० पु०) १ नायकभेद। साहित्यदर्पणमें लिखा है, कि जो चिन्तारहित, मृदु और सर्वदा कलापरायण रहता हो, उसे धीरललित नायक कहते हैं। रत्नावली प्रभृति ग्रन्थोंमें वत्सराजादि धीरललित नायक हैं। २ छन्दोविशेष। इसके प्रत्येक चरणमें १६ अक्षर होते हैं। १।४।६।१०।१२।१४।१६ वां अक्षर गुरु और अन्य वर्ण लघु होते हैं।

धीरशान्त (सं० पु०) साहित्यमें वह नायक जो सुशील, दयावान्, गुणवान् और पुण्यवान् हो।

धीरसिंह—१ भविष्य-ब्रह्मखण्ड नामक संस्कृत ग्रन्थवर्णित एक राजा। ये चन्द्रसेनके पुत्र थे और गोमतीनदी तीरवर्ती धरद्वार नामक ग्राममें राज्य करते थे।

२ वर्द्धमानके राजा वीरसिंहके पुत्र। जब मानसिंह ससैन्य वर्द्धमान आये थे, तभी धीरसिंह राज्य करते थे।

धीरस्कन्ध (सं० पु०) धीरः अचञ्चलः भारसह इति यावत् स्कन्धो यस्य। १ महिष, भैंस। २ वनशूकर, जंगली सूअर।

धीरहाम्बीर—विष्णुपुरके राजा प्रसिद्ध वीरहाम्बीरके पुत्र। ये नरोत्तम ठाकुर प्रभृतिके अव्यवहित परवर्त्ती थे। इनकी बनाई हुई बहुत सी पदावली पाई जाती हैं। इन्होंने 'सारावली' नामक एक अति उपादेय (ऐतिहासिक और भक्तिविषयक) वैष्णव ग्रन्थकी रचना बंगला भाषामें की है। इस ग्रन्थमें अनेक भक्तोंके परिचय पाये जाते हैं।

कहते हैं, कि धीरहाम्बीरके राज्यमें एकादशीके दिन आठवर्षसे अधिक उमरवाले लोगोंको उपवास रखना पड़ता था। इस दिन सभी हरिनाम कीर्त्तन करनेमें बाध्य होते थे, इसके विपरीत चलनेवालोंको सजा दी जाती थी।

हरिनाम प्रचारके लिये राजाने अपने राज्यमें एक और नियम चलाया था जिसमें प्रत्येक गृहस्थको अपने घरमें तोता मैना अथवा कोई दूसरा पक्षी पालना पड़ता था। वे इस पक्षीको 'राधाकृष्ण' वा 'गौरनिताइ' सिखाते थे। अतः इसके साथ साथ हरिनाम उच्चारण करनेका फल उन्हें मिलता था। इस उपायसे थोड़े ही दिनोंमें विष्णुपुरमें स्वर्ग की शोभा दीखने लगी। कहते हैं, कि उनके समयमें राज्य भरमें चोर डकैतोंकी शिकायत बिलकुल नहीं थी।

धीरा (सं० स्त्री०) धीर-टाप्। १ काकोली। २ महाज्योतिष्मती, मालकंगनी। ३ गुडूची, गुरिच, गिलोय। ४ साहित्यमें वह नायिका जो अपने नायकके शरीर पर पर स्त्री-रमणके चिह्न देख कर व्यंगसे कोप प्रकाशित करे, तानेसे अपना क्रोध प्रकट करनेवाली नायिका।

धीराज (हिं॰ पु॰) प्रधान राजा, अधिराज।

धीराधीरा (सं॰ स्त्री॰) नायिकाभेद, साहित्यमें वह नायिका जो अपने नायकके शरीर पर पर-स्त्री-रमणके चिह्न देख कर कुछ गुप्त और कुछ प्रगट रूपसे अपना क्रोध दिखावे।

धीरावी (सं॰ स्त्री॰) धीरं अवति अव प्रीणने अण् ङीप्। शिंशपावृक्ष, शीशमका पेड़।

धीरी (हिं॰ स्त्री॰) आँखकी पुतली।

धीरे (हिं॰ क्रि॰ वि॰) १ मन्द मन्द, धीमी गतिसे, आहिस्तेसे। २ चुपकेसे।

धीरेन्द्र पञ्चीभूषण—नित्यकर्मलता नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता। इनके पिताका नाम धर्मेश्वर था।

धीरोदात्त (सं॰ पु॰) साहित्यदर्पणोक्त नायकविशेष। जो अपनी श्लाघा नहीं करते, जो अत्यन्त बलशाली है और जो हर्ष वा शोकादिमें अभिभूत नहीं होते, जो विनीत हैं, जिसका अहङ्कार लक्ष्य नहीं किया जा सकता और जो अपनी प्रतिज्ञाको प्राणपणसे निर्वाह करते हैं, वे ही धीरोदात्त पदवाच्य हैं। रामचन्द्र, युधिष्ठिर आदि धीरोदात्त नायकके अन्तर्भुक्त हैं। २ वीर-रस-प्रधान नाटकका मुख्य नाटक।

धीरोद्धत (सं॰ पु॰) १ साहित्यदर्पणोक्त नायकविशेष। मायापटु, प्रचण्ड, चञ्चल, अहङ्कारादियुक्त, आत्म-श्लाघापरायण इन सब गुणोंसे युक्त नायकको धीरोद्धत नायक कहते हैं। भीमसेन प्रभृति इसी नायकके अन्तर्गत हैं। २ धैर्यान्वित अथच उद्धत।

धीरोर—काशी और गोरखपुर अञ्चलके अहीरको एक जाति। तसरीहुल अकवाम नामक पारसी ग्रन्थमें ये लोग दोआबके अहीर नामसे प्रसिद्ध हैं।

धीरोष्णिन् (सं॰ पु॰) विश्वदेवभेद।

धीर्य (सं॰ त्रि॰) धीरे भवः 'भवेच्छन्दसीति, इति यत्। कातर, डरपोक।

धीलटि (सं॰ स्त्री॰) धिया बुद्धा लटति बालोक्त्या मोचयतीति धी लट-इन् (सर्वधातुभ्य-इन्। उण्॰ ४।११७) दुहिता, लड़की।

धीवत् (सं॰ त्रि॰) धी विद्यतेऽस्य, धी मतुप्, मस्य व। बुद्धियुक्त, बुद्धिमान्, अज्ञमन्द।

धीवन् (सं॰ पु॰ स्त्री॰) ध्यायतीति ध्यै-क्वनिप्, सम्प्रसारणञ्च। (धाप्योः सम्प्रसारणञ्च। उण्॰ ४।११५) १ धीवर, मल्लाह, मछुआ। स्त्रियां ङीप्। २ धीवरकी स्त्री। कैवर्त देखो।

धीवर (सं॰ पु॰) दधाति मत्स्यानिति धा-ष्वरच् प्रत्ययेन साधुः। (छित्वरछत्वरधीवरपीवरेति। उण्॰ ३।१) कैवर्त, ये लोग मछली पकड़ने और बेचनेका काम करते हैं। इस जातिका छुआ जल द्विज लोग ग्रहण करते हैं। २ मत्स्य-पुराणके अनुसार एक देश और उस देशका निवासी। ४ सेवक, खिदमतगार। ५ काला मनुष्य।

धीवरक (सं॰ पु॰) धीवर, मछुआ।

धीवरी (सं॰ स्त्री॰) धीवर ङीष्। १ धीवरपत्नी, मल्लाहिन। २ मत्स्यवेधिनी, मछली मारनेकी कुटिया। ३ शतमूली।

धीशक्ति (सं॰ स्त्री॰) धियः शक्तिः ६-तत्। बुद्धिशक्ति, बुद्धिका गुण।

धीसख (सं॰ पु॰) धियः सखा सहायः 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' इति टच् समासान्तः। मन्त्री।

धीसचिव (सं॰ पु॰) धियि बुद्धौ मन्त्रणादौ सचिवः सहायः। मन्त्री।

धीहरा (सं॰ स्त्री॰) १ एक प्रकारका मीठा कटहल। २ कुन्दुरु, विरोजा।

धु (सं॰ स्त्री॰) धु-कम्पने भावे तु। कम्पन, थरथराहट, कंपकंपी।

धुंआँ (हिं॰ पु॰) धुआँ देखो।

धुंकार (हिं॰ स्त्री॰) जोरका शब्द, गरज, गड़गड़ाहट।

धुंगार (हिं॰ स्त्री॰) बघार, तड़का, छौंक।

धुँगारना (हिं॰ क्रि॰) बघारना, छौंकना।

धुंद (हिं॰ स्त्री॰) धुंध देखो।

धुंदा (हिं॰ वि॰) अन्धा।

धुंदुल (हिं॰ पु॰) बङ्गाल और मलवारमें मिलनेवाला एक प्रकारका पेड़। इसकी लकड़ी सफेद रंगकी होती है और गाड़ियोंके पहिये तथा मेज कुरसी आदि बनानेके काममें आती है। इसके फलोंसे एक प्रकारका तेल निकाल कर खाते और सिरमें लगाते हैं। इसमेंसे एक प्रकारका गोंद भी निकलता है।

धुंध (हिं० स्त्री०) १ हवामें उड़ती हुई धूल। २ वह अंधेरा जो हवामें मिली धूलके कारण हो। ३ आंखका एक रोग। इसके कारण ज्योतिमन्द हो जाती है और कोई वस्तु स्पष्ट नहीं दिखाई देती।

धुंधक (हिं० पु०) धुंध देखो।

धुंधका (हिं० पु०) धुआं निकलनेके लिए दीवार या छत आदिमें बना हुआ छेद, धोंधका धुँवारा।

धुंधकार (हिं० पु०) १ धुंकार, गरज, गड़गड़ाहट। २ अन्धकार, अन्धेरा।

धुंधमार (हिं० पु०) धुन्धुमार देखो।

धुंधर (हिं० स्त्री०) वह धूल जो हवामें उड़ती है, गर्द-गुबार। २ वह अन्धेरा जो धूल उड़नेके कारण हो।

धुँधराना (हिं० क्रि०) धुँधलाना देखो।

धुँधला (हिं० वि०) १ धुँएके रङ्गका, कुछ कुछ काला। २ अस्पष्ट, जो साफ दिखाई न दे। ३ कुछ कुछ अन्धेरा।

धुँधलाई (हिं० स्त्री०) धुंधलापन देखो।

धुंधलाना (हिं० क्रि०) धुंधला पड़ना।

धुंधलापन (हिं० पु०) अस्पष्ट होनेका भाव, कम दिखाई देनेका भाव।

धुँधली (हिं० स्त्री०) धुंध देखो।

धुँधुकार (हिं० पु०) १ अंधकार, अंधेरा। २ धुंधला-पन। ३ नगाड़ेका शब्द, धुंकार।

धुँधुरित (हिं० वि०) १ धूमिल, धुंधला किया हुआ। २ दृष्टिहीन, धुँधली आंखवाला।

धुँधरी (हिं० स्त्री०) १ वह अंधेरा जो धूल आदि उड़नेके कारण हुआ हो। २ धुँधलापन। ३ आंखका धुंध नामका रोग।

धुँधेरी (हिं० स्त्री०) धुंध, वह अंधेरा जो हवामें मिली धूलके कारण हो।

धूधेला (हिं० पु०) १ बदमाश, पाजी। २ धोखेबाज, दगाबाज।

धुँआँ (हिं० पु०) धुआं देखो।

धुंआकश (हिं० पु०) धुआँकश देखो।

धुंआदान (हिं० पु०) धुआँदान देखो।

धुआं (हिं० पु०) १ भाप जो सुलगती या जलती हुई चीजोंसे निकलकर हवामें मिल जाती है और कोयले के सूक्ष्म अणुओंसे लदी रहनेके कारण कुछ नीलापन या कालापन लिये होती है। धूम देखो। २ भारी समूह, उमड़ती हुई वस्तु, घटाटोप। ३ धुर्रा, धज्जी।

धुआँकश (हिं० पु०) वह जहाज या नाव जो भापके जोरसे चलती है, अग्निबोट, स्टीमर।

धुआँदान हिं० पु०) वह छेद जो धुआँ निकलनेके लिये छत आदिमें बना होता है।

धुआँधार (हिं० वि०) १ धूममय, धुएँसे भरा। २ प्रचण्ड, घोर, बड़े जोरका। ३ काला, स्याह, धुएँका सा। ४ भड़कीला, तड़क भड़कका, गहरे रंगका। (क्रि० वि०) ५ बड़े वेगसे और बहुत अधिक, बहुत जोरसे।

धुआँना (हिं० क्रि०) अधिक धुएँमें रहनेके कारण स्वाद और गन्धमें बिगड़ जाना।

धुआँयंध (हिं० वि०) १ जो धुएँकी तरह महकता हो। (स्त्री०) २ वह डकार जो अन्न अच्छी तरह परिपाक न होनेके कारण आती हो।

धुआँरा (हिं० वि०) वह छेद जो धुआँ निकलनेके लिये छत आदिमें बनाया जाता है, चिमनी।

धुआँस (हिं० स्त्री०) धुआँस देखो।

धुआँसा (हिं० पु०) १ वह कालिख जो आग जलनेके स्थानके ऊपरकी छतमें जम जाती है। (वि०) २ धुएं-से भरा हुआ, आंच ठीक न लगनेके कारण स्वाद और गन्धमें बिगड़ा हुआ।

धुक (सं० पु०) भूमिबदरवृक्ष, बेरका पेड़।

धुक (हिं० स्त्री०) कलाबत्तू बटनेकी सलाई।

धुकड़पुकड़ (हिं० पु०) १ चित्तकी वह अस्थिरता जो भय आदिकी आशंकासे होती है, घबराहट। २ आगा पीछा, पसोपेश।

धुकड़ी (हिं० स्त्री) छोटी थैली, बटुआ।

धुकधुकी (हिं० स्त्री) १ पेट और छातीके बीचका भाग, यह कुछ गहरा सा होता है। २ हृदय, कलेजा। ३ कलेजेकी धड़कन, कम्प। ४ भय, डर, खौफ। ५ गलेमें पहननेका एक गहना जो छाती पर लटका रहता है, जुगनू।

धुकधुक (सं० स्त्री०) बदरीफल, बेर।

धुकार (हिं० स्त्री०) नगाड़ेका शब्द।

धुकी (सं० स्त्री०) १ भूबदर, बेरका पेड़। २ हस्तिकोली, एक पेड़का नाम।

धुगधुगी (हिं० स्त्री०) धुकधुकी देखो।

धुङ्क (सं० पु०) धुङ्क अच् पृषोदरादित्वात् साधुः। पक्षीभेद, एक प्रकारकी चिड़िया।

धुत (सं० त्रि०) धु-क्त। १ त्यक्त, छोड़ा हुआ। २ विधूत, भगाया हुआ।

धुत (हिं० अव्य०) दुत देखो।

धुतकार (हिं० स्त्री०) दुतकार देखो।

धुतकारना (हिं० क्रि०) दुतकारना।

धुतू (हिं० पु०) धूतू देखो।

धुतूरा (हिं० पु०) धतूरा देखो।

धुत्ता (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मछली।

धुधुकार (हिं० स्त्री०) १ धू धू शब्दका शोर। २ घोर शब्द, कड़ा आवाज़।

धुधुकारी (हिं० स्त्री०) धुधुकारी देखो।

धुधुकी (हिं० स्त्री०) धुधुकार देखो।

धुन (सं० त्रि०) धूनयति धूनि अच् पृषोदरादित्वात् साधुः। कम्पन, काँपनेकी क्रिया या भाव।

धुन (हिं० स्त्री०) १ किसी कामको निरन्तर करते रहनेकी अनिवार्य प्रवृत्ति, बिना भविष्य सोचे और रुके कोई काम करते रहनेकी इच्छा। २ मनको तरंग, मौज। ३ चिन्ता, सोच, विचार, फिक्र। ४ गानेका तर्ज। ५ सम्पूर्ण जातिका एक राग। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। ६ ध्वनि देखो।

धुनकना (हिं० क्रि०) धुनना देखो।

धुनकी (हिं० स्त्री०) धनुषके आकारका धुनियोंका एक औजार। इससे वे रुई धुनते हैं। यह एक मजबूत डंडेकी बनी होती है। इसके सिरे पर काठका एक टुकड़ा रहता है जिससे लकड़ीके दूसरे सिरे तक एक तांत खूब कस कर बँधी होती है। धुननेवाला डंडेको बाएँ हाथमें पकड़ कर एँड़ीके सहारे बैठ जाता है और तांतको रुईके ढेर पर रख कर उस पर बार बार हत्थेसे आघात करता है। यह हत्था हाथ भर लम्बी लकड़ीका बना होता और इसके दोनों सिरे अधिक मोटे और लट्टूदार होते हैं। इस प्रकार बार बार आघात करनेसे रुईके रेशे अलग अलग हो जाते हैं और बिनौले निकल जाते हैं। २ एक प्रकारका छोटा धनुष जो प्रायः लड़कोंके खेलने अथवा कभी कभी थोड़ी रुई धुननेके भी काममें आता है।

धुनना (हिं० क्रि०) १ धुनकीसे रुई साफ करना, जिसमें उसके बिनौले अलग हो जांय, गर्द निकल जांय और रेशे अलग अलग हो जांय। २ खूब मारना पीटना। ३ किसी काम को बिना ठहरे बराबर करते जाना। ४ बार बार कहना, कहते हो जाना।

धुनवाना (हिं० क्रि०) धुननेका काम किसी दूसरेसे कराना।

धुनि (सं० स्त्री०) धुनोति वेतसादि नदोजात वृक्षानिति, धु-कम्पने बहुवचनात् नि मच कित्। १ नदी। २ असुरभेद, एक दैत्यका नाम। (पु०) ३ जलप्रतिरोधक असुरभेद। (त्रि०) ४ कम्पक, कँपानेवाला।

धुनियाँ (हिं० पु०) वह जो रुई धुननेका काम करता हो, बेहना। हिन्दुस्तानमें प्रायः मुसलमान ही रुई धुननेका काम करते हैं।

धुनी (सं० स्त्री०) धुनि कृदिकारादिति वा ङीष्। नदी।

धुनीनाथ (सं० पु०) धुन्याः नाथः ६-तत्। समुद्र।

धुनैचा (हिं० पु०) एक प्रकारके सनका पौधा। इसे लोग बंगालमें काली मिर्चकी बेलों पर छाया रखनेके लिये लगाते हैं।

धुनेहा (हिं० पु०) धुनियां देखो।

धुन्धु (सं० पु०) मधु राक्षसका पुत्र। हरिवंशमें इसका वृत्तान्त इस प्रकार लिखा है—

महाराज वृहदश्वने अपने पुत्रोंके ऊपर राज्यभार सौंप कर जब वानप्रस्थ अवलम्बन किया, तब वहां उतङ्क नामक एक विप्रर्षिने जा कर उनसे कहा,' महाराज! आपके वानप्रस्थ अवलम्बन करनेसे प्रजाकी रक्षा नहीं हो सकती। प्रजाकी रक्षा ही राजाओंका परम धर्म है, अतः आप राजधर्मका प्रतिपालन कर अक्षय कीर्ति स्थापन कीजिये। हमारे आश्रमसे थोड़े ही दूर पर एक सुविस्तीर्ण बालुकापूर्ण समतल मरुभूमि है जिसे देखनेसे समुद्रका बोध होता है। वहां धुन्धु नामका एक

पराक्रान्त राक्षस रहता है। यह प्रसिद्ध मधुराक्षसका पुत्र है। यह धुन्धु मरुभूमिमें बालूके नीचे छिप कर संसारको नष्ट करनेकी कामनासे कठिन तपस्या कर रहा है। वह जब साँस छोड़ता है तब उससे बड़े बड़े पहाड़ और जंगल आदि हिलने लगते हैं और उसके साथ धुआँ और अंगारे भी निकलते हैं तथा पृथ्वीकी धूल ऊपर उड़ कर सूर्यमण्डलको आच्छादित करती एवं सात दिन तक अनवरत भूमिकम्प होता है। उस समय समस्त जीव जन्तु बहुत कष्ट पाते हैं। आपके सिवा उसे वध करनेका किसीका साहस नहीं होता। देवगण भी उसे वध करनेमें बिलकुल असमर्थ हैं। उसके भयसे हम बहुत व्याकुल रहते हैं। अतः निवेदन है, कि आप उसे मार कर हम लोगोंका कष्ट दूर कीजिये। हे महाराज! पूर्वयुगमें हमें विष्णुसे वर मिला है कि जो इसे मारेगा मैं उसके तेजको बढ़ाऊंगा। अल्प तेजस्वी कोई व्यक्ति यदि दिव्य शतवर्ष तक चेष्टा करे, तो भी इस राक्षसका वध नहीं कर सकते। यह सुनकर वृहदश्वने कहा, "मैं शरासनादि परित्याग कर वानप्रस्थ ग्रहण कर चुका हूं अतः परित्यक्त अस्त्र उठा नहीं सकता; हां, मेरा लड़का कुवलयाश्व उसे मार डालेगा।" इतना कह कर कुवलयाश्वको धुन्धु-विनाशके लिए आज्ञा दे आप तपस्यामें लग गये। तदनुसार कुवलयाश्व अपने सौ लड़कोंको ले कर उतङ्कके साथ धुन्धुको मारने चला। उस समय विष्णुने भी लोकहितके ख्यालसे उसके शरीरमें प्रवेश किया था। स्वर्गसे देवगण आनन्दध्वनि करने लगे। कुवलयाश्व वहां सपुत्र पहुंच कर उस बालुकापूर्ण स्थानको जब खोदने लगे तब क्या देखते हैं, कि धुन्धु बालुकाराशिके नीचे पश्चिमकी ओर सो रहा है। धुन्धु इन्हें देख कर फुत्कार छोड़ने लगा। चन्द्रोदयके समय समुद्रकी जलराशि जिस तरह बढ़ती जाती है, उसी तरह धुन्धुके मुंहसे प्रबल जलस्रोत बहने लगा। इससे कुवलयाश्वके ९७ लड़के मर गये। राजा कुवलयाश्व इस तरह अपने पुत्रोंका नाश देख धुन्धु पर टूट पड़े। पहले उन्होंने योगबलसे जलके वेगको रोका, पीछे अग्निको ठण्ढा किया, अन्तमें उसे मार डाला। इस पर संसारने शान्तभाव धारण किया, आकाशसे देवगण पुष्पवृष्टि करने लगे। महर्षि उतङ्कने भी कुवलयाश्वको वर प्रदान किया। उस वरसे राजाकी वित्तराशि अचल हुई और जो सब पुत्र इस लड़ाईमें मरे थे, वे स्वर्गको प्राप्त हुए। कुवलयाश्व धुन्धुका वध कर धुन्धुमार नामसे प्रसिद्ध हुए।

(हरिवंश ११ अ०, वनप० २००।२०२ अ०)

धुन्धुमार (सं० पु०) धुन्धुं मारयति मारि-अण्। राजभेद।

महाराज वृहदश्वके पुत्र। इनका प्रकृत नाम कुवलयाश्व था। इन्होंने धुन्धु राक्षसको मारा था, इसीसे इनका नाम धुन्धुमार पड़ा। धुन्धु प्रसिद्ध मधुकैटभका पुत्र था। भगवान् विष्णुने मधुकैटभको अनेक प्रयास कर के युद्धमें मारा था। धुन्धु देखो। हरिवंशके ११वें अध्यायमें और वनपर्वके २०० और २०१ अध्यायमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है। २ राजा त्रिशङ्कुका पुत्र। ३ गृहधूम, घरकी कालिख। ४ इन्द्रगोपकीट, बीरबहूटी नामका कीड़ा। गृहगोधा, छिपकिली।

धुपना (हिं० क्रि०) धुलना, धोना।

धुपाना (हिं० क्रि०) किसी चीजको सुखाने आदिके लिए धूपमें रखना, धूप दिखाना।

धुपेली (हिं० स्त्री०) वह फुंसी जो गरमीमें पसीनेके कारण शरीर पर निकल आती है, अंभौरी, पित्ती।

धुमारा (हिं० वि०) धूमिल, धूएंके रङ्गका।

धुर् (हिं० स्त्री०) १ वह जुआ जो बैलोंके कन्धे पर रखा जाता है। २ गङ्गाका एक नाम। ३ भाग, अंश। ४ चिनगारी। ५ उंगली। ६ बोझा, भार। ७ अक्ष, गाड़ी आदिका धुरा। ८ खूंटी। ९ शीर्ष स्थान, अच्छी और ऊंची जगह। १० धन, सम्पत्ति।

धुर (सं० पु०) १ गाड़ी या रथ आदिका धुरा। २ शीर्षका प्रधान स्थान। ३ भार, बोझ। ४ आरम्भ, शुरू। ५ जुआ जो बैलों आदिके कन्धों पर रखा जाता है। ६ जमीनकी माप जो बिस्वेका बीसवां भाग होता है, बिस्वांसी। (वि०) ७ पक्का, दृढ़। (अव्य०) न इधर न उधर, बिलकुल ठीक, सटीक, सीधे।

धुरकट (हिं० पु०) वह लगान जो असामी जमींदारको जेठमें पेशगी देते हैं।

धुरकिल्ली (हिं० स्त्री०) गाड़ीकी एक कील। यह धुरीको चाकसे अटकानेके लिए भीतरकी ओर धुरीके सिर पर लगा दी जाती है।

धुरणीफल (सं॰ पु॰) सुमहच्च, एक प्रकारका पेड़।

धुरन्धर (सं॰ पु॰) धुरं धरतीति धृ-खच, मुम् वा धुरां धारयति खच्, खचि ह्रस्वः। भारवाहक वृषादि, बोझ ढोनेवाला। जानवर, जैसे बैल, खच्चर, गधा आदि। इनका संस्कृत पर्याय—धुर्वह, धुर्य, धौरेय और धुरीण है। २ आदित्य राजाके मन्त्री। ये प्रखर बुद्धिसम्पन्न और अत्यन्त वीर थे। ये बहुत षोग्रियारीसे आदित्य राजाको मार कर राजगद्दी पर बैठे थे। इन्होंने राजाकी उपाधि धारण कर प्रजापालन किया था। ३ राक्षसविशेष, रामायणके अनुसार एक राक्षस जो प्रहस्तका मन्त्री था। ४ धवनृक्ष, धौका पेड़। (त्रि॰) ५ भारवाही मात्र, भार ढोनेवाला। ६ श्रेष्ठ, प्रधान। ७ जो सबमें बहुत बड़ा, भारी या बली हो।

धुपद (हिं॰ पु॰) ध्रुपद देखो।

धुरा (सं॰ स्त्री॰) धुर पक्षे टाप्। भार, बोझ

धुरा (हिं॰ पु॰) पहियेके बीचों बीच पिरोया हुआ वह डंडा जिस पर पहिया घूमता है।

धुरियाधुरंग (हिं॰ वि॰) १ वह गाना जो बाजे या साजके साथ न गाया जाय। २ अकेला, जिसके साथ और कोई न हो।

धुरियाना (हिं॰ क्रि॰) १ किसी चीजका धूलसे ढका जाना। २ अखके खेतका पहले पहल गोड़ा जाना। ३ किसी ऐब या बदनामीका किसी प्रकार दबना या दबाया जाना।

धुरियामल्लार (हिं॰ पु॰) सम्पूर्ण जातिका एक मल्लार। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

धुरी (हिं॰ स्त्री॰) छोटा धुरा।

धुरीण (सं॰ त्रि॰) धुरं वहति इति ख (खः सर्वधुरात्। पा ४।४।७८) १ भारवाहक, बोझ ढोनेवाला। २ श्रेष्ठ, प्रधान, मुख्य। ३ धुरन्धर।

धुरीय (सं॰ पु॰) धुर मर्हति इति छ। १ बोझ ढोनेवाला पशु। २ कारबारी मनुष्य। (त्रि॰) ३ भारयोग्य, बोझ ढोने लायक।

धुरेंडी (हिं॰ स्त्री॰) धुलेंडी देखो।

धुर्य (सं॰ त्रि॰) धुरं वहतीति धुर-यत्। १ धुरन्धर। २ श्रेष्ठ। ३ भारवाहक, बोझ ढोनेवाला। (पु॰) ४ धुर्वह वृषादि, बोझ ढोनेवाला पशु। ५ वृषभ, बैल। ६ ऋषभौषधि, ऋषभ नामकी औषधि, जो लहसुनकी तरह होती और हिमालय पर्वत पर पाई जाती है। ७ विष्णु।

धुर्र (हिं॰ पु॰) कण, रजकण, जर्रा, भुआ।

धुर्वह (सं॰ त्रि॰) वहतीति वह-अच्। धुरो वहः। १ भारवाहक, बोझ ढोनेवाला। २ कर्मिष्ठ।

धुलना (हिं॰ क्रि॰) पानीकी सहायतासे साफ किया जाना, धोया जाना।

धुलवाना (हिं॰ क्रि॰) धोनेका काम दूसरेसे कराना।

धुलाई (हिं॰ स्त्री॰) १ धोनेका काम। २ धोनेका भाव। ३ धोनेकी मजदूरी।

धुलाना (हिं॰ क्रि॰) किसी दूसरेको धोनेमें प्रवृत्त करना, धुलवाना।

धुलियापीर (हिं॰ पु॰) एक कल्पित पीर जिसका नाम बच्चे खेल आदिमें लिया करते हैं।

धुलियामिटिया (हिं॰ वि॰) १ जिस पर धूल या मट्टी पड़ी हो। २ दबाया या शान्त किया हुआ।

धुलेंडी (हिं॰ स्त्री॰) १ हिन्दुओंका एक त्योहार। यह होली जलनेके दूसरे दिन चैत वदी १ को होता है। इस दिन सवेरे लोग होलीकी राख मस्तक पर लगाते और दूसरों पर अबीर गुलाल आदि सूखे चूर्ण डालते हैं। २ उक्त त्योहारका दिन।

धुव (हिं॰ पु॰) कोप, गुस्सा।

धुवक (सं॰ वि॰) धु-क्वुन्। गर्भमोचक, गर्भ नाश करनेवाला।

धुवका (सं॰ स्त्री॰) गीतका पहला, पद, टेक।

धुवकिन् (सं॰ त्रि॰) धुवक प्रेक्षादित्वात् इन्। धुवका सन्निहित देशादि।

धुवकीय (सं॰ त्रि॰) धु-कक् पिच्छादित्वात् अस्त्यर्थे इलच्। धुवकयुक्त।

धुवड़ी—आसामके ग्वालपाड़ा जिलेका एक नगर। यह अक्षा॰ २६° १' उ॰ और देशा॰ ८९° ५९' पू॰ ब्रह्मपुत्रके दाहिने किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ३७३७ है।

१८७९ ई॰से यहां जिलेका सदर हुआ है। यहां टेलिग्राफ-तस्वाबधायकका कार्यालय, अखरका ष्टेशन है।

स्टेशन, आसाम ष्टीमरका अड्डा तथा और कोई एक दूकानें हैं।

धुवन (सं० पु०) धूनतीति धु-क्युन्। (भू सूधस् जिभ्य-श्छन्दसि। उण् २।८०) १ अग्नि, आग। (त्रि०) २ चालक, चलानेवाला, हिलानेवाला।

धुवाँ (हिं० पु०) धुआँ देखो।

धुवाकाश (हिं० पु) धूआँकाश देखो।

धुवाँरा (हिं० पु०) वह छेद जो धुआँ निकलनेके लिये दीवारमें बनाया जाता है।

धुवाँस (हिं० स्त्री०) उरदका आटा। इससे पापड़ या कचौड़ी बनती है।

धुवाना (हिं० क्रि०) धूलाना देखो।

धुवित्र (सं० क्ली०) धुयतेऽनेनेति धु-इत्र। १ अग्निज्वालनके लिये मृगचर्मादि रचित याज्ञिकोंका व्यजन, प्राचीन कालका एक प्रकारका पंखा जो हिरनके चमड़े आदिसे बनाया जाता था और जिसका व्यवहार याज्ञिक लोग यज्ञकी आग दहकानेके लिये करते थे।

धुस्तुर (सं० पु०) धुस्तूर पृषोदरादित्वात् साधुः। धूस्तूर।

धुस्तूर (सं० पु०) धुनोति कम्पयति चित्तमेवनेन धु-उर (खर्जिपिञ्जादिभ्य उरोलचौ। उण् ४।९०) 'धुनोतेः सुटच' इति उज्ज्वलदत्तोक्त्या सुट्। धतूरा। इसका पर्याय—उन्मत्त, कितव, धूर्त्त, कनकाह्वय, मातुल, मदन, धत्तूर, शठ, मातुलक, श्याम, शिवशेखर, खर्जूघ्न काहलापुष्प, खल, कण्टफल, मोहन, कलभ, मत्त, शैव, देविका, तूरी, महामोह, शिवप्रिय, धुस्तूर और धूस्तुर है। इसका गुण—कषाय, मधुर, तिक्त, उष्ण, गुरु, कटु, मद, वर्ण, अग्नि और वातकारक तथा ज्वर, कुष्ठ, व्रण, श्लेष्मा, कण्डू, कृमि और विषनाशक है। राजवल्लभके मतसे यह त्वग्दोष, खर्जू और भ्रमनाशक, मूर्च्छाकारक, अग्नि तथा चित्तवर्द्धक माना गया है। धतूरा देखो। २ उपविषविशेष। ३ घण्टाकर्ण क्षुप।

धुस्स (हिं० पु०) १ मट्टी आदिका ऊँचा ढेर, टीला। २ नदी आदिके किनारेपर बाँधा हुआ बाँध।

धुस्सा (हिं० पु०) ओढ़नेके काममें आनेवाली मोटे ऊनकी लोई।

धूँध (हिं० स्त्री०) धुंध देखो।

धूँधर (हिं० वि०) १ धुंधला। (स्त्री०) २ हवामें छाई हुई धूल। ३ अंधेरा जो हवामें छाई हुई धूलके कारण हो।

धू (हिं० पु०) १ ध्रुव तारा। २ राजा उत्तानपादका पुत्र जो भगवान्का भक्त था। ३ धुरी।

धूःपति (सं० पु०) धुरः पतिः ६-तत्। भारपति।

धूआँधार (हिं० पु०) धुआँधार देखो।

धूईं (हिं० स्त्री०) धूनी।

धूक (सं० पु०) धूनोति कम्पयति धू कन्। (अजियुधूनीभ्यो दीर्घश्च। उण् ३।४७) १ वायु, हवा। २ धूर्त्त मनुष्य। ३ काल। ३ बकुलवृक्ष, मौरसरीका पेड़। ४ बिड़ाल, बिलाव।

धूक (हिं० पु०) कलाबत्तू बटनेकी सलाई।

धूत (सं० त्रि०) धू-क्त। १ कम्पित, कँपता हुआ, थरथराता हुआ। २ भर्त्सित, जो धमकाया गया हो, जो डाँटा गया हो। ३ त्यक्त, छोड़ा हुआ। ४ तर्कित।

धूतपाप (सं० पु०) धूतं परित्यक्तं पापं येन, बहुव्री। १ त्यक्तपाप, जिसके पाप दूर हो गये हों, जो पापके दोषसे रहित हो गया हो।

धूतपापा (सं० स्त्री०) धूतपाप-टाप्। १ वेदशिरा ब्राह्मणके औरस और शुचि नामक अप्सराके गर्भसे उत्पन्न एक कन्या। काशीखण्डमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—

पुराकालमें भृगु-वंशीय वेदशिरा नामक एक ऋषि वनमें तपस्या कर रहे थे। इसी समय शुचि नामकी एक अप्सरा वहां आ पहुँची।

वेदशिरा इस निर्जन प्रदेशमें असामान्य रूपलावण्यवती शुचिको देख कर कामातुर हो पड़े और अन्तमें नितान्त अधैर्य हो कर उन्होंने अप्सराके साथ संयोग किया और उससे कहा, "तुम्हारे इस गर्भसे एक कन्या उत्पन्न होगी, जब तक सन्तान भूमिष्ठ न हो, तब तक तू इसी जगह रहना।" उपयुक्त कालमें शुचि एक कन्या प्रसव करके स्वर्गको चली गई। वेदशिराने उस कन्याका नाम धूतपापा रक्खा और बहुत यत्नसे वे लड़कीका भरण पोषण करने लगे। पिताकी आज्ञासे वह कन्या भी घोर तप करने लग गई। अन्तमें ब्रह्माने प्रसन्न हो कर उससे

कहा, "तुम कोई अभिलषित वर माँगो।" यह सुन कर धूतपापा बोली, "हे ब्राह्मण ! यदि आप हम पर प्रसन्न हैं, तो यही वर दीजिये जिससे हम संसारमें सबसे पवित्र होवें।"

इस पर ब्रह्माने कहा, 'धूतपापे! इस पृथ्वी पर जितने पदार्थ हैं, सभीमें तुम प्रधान होगी। स्वर्ग, मर्त्य और पातालमें जो साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं। वे तुम्हारे तनु और रोममें वास करेंगे।" इस तरह वर दे कर ब्रह्मा अपने स्थानको चले गये। धूतपापा भी तपः सिद्ध फल प्राप्त कर पिताके समीप आई और आनन्दसे रहने लगी। एक दिन धर्म नामक एक मुनिने, धूतपापाको अकेली देख कहा, "हम तुम्हारे असामान्य रूप-लावण्यको देख कामशरसे नितान्त पीड़ित हो गये हैं। अतः तू हमसे विवाह कर।" इसके उत्तरमें धूतपापाने कहा, "पिता ही कन्यादानके एकमात्र अधिकारी है, यदि आप हमसे विवाह करनेकी इच्छा करते हैं, तो पितासे आज्ञा ले आवें।" किन्तु धर्म उसी समय गन्धर्व विवाह करनेका हठ करने लगे। इस समय भी धूतपापाने उनसे प्रार्थना की कि 'बिना पिताके दान दिये हम अन्यायरूपसे कभी भी विवाह नहीं कर सकती।' इस पर भी धर्म शान्त न हुए और बार बार उससे संयोग करनेकी प्रार्थना करने लगे। अन्तमें धूतपापाने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर शाप दिया कि "तुम अत्यन्त जड़ और जलाधार नद हो कर बहो।" धर्मने भी क्रोधान्वित हो कर शाप दिया कि "तूने जिस तरह हमें शाप दिया है, उसी तरह तू भी पत्थर हो जा।" इस पर धूतपापा भयभीत हो पिताके पास गई और सब वृत्तान्त कह सुनाया। वेदशिराने तपके प्रभावसे अभिशापकारीको धर्म जान कर अपनी कन्यासे कहा, "हे पुत्रि ! शाप अन्यथा नहीं हो सकता, तो भी तू मत डर, मैं अपने तपके प्रभावसे जहां तक हो सकेगा तुम्हारी भलाई कर दूंगा। तू काशीमें चन्द्रकान्त नामकी शिला होगी। पीछे चन्द्रोदय होने पर तुम्हारा शरीर द्रवीभूत हो कर नदीके रूपमें बहेगा, तुम्हारा नाम धूतपापा हो रहेगा और धर्म भी उसी स्थान पर धर्मनद हो कर बहेगा और तुम्हारा पति होगा।" यह धूतपापा नामकी नदी बहुत पुनीत मानी जाती है।

(काशीखण्ड ५१ अ०)

महाभारतमें भीष्मपर्वके ९वें अध्यायमें भी धूतपापा नामकी एक नदीका उल्लेख है, पर कुछ विवरण नहीं है। इससे कहा नहीं जा सकता कि इसी नदीसे अभिप्राय है या किसी दूसरीसे।

धूतपापेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

धूता (सं० स्त्री०) भार्या, स्त्री।

धूति (सं० स्त्री०) धू-क्तिन्। १ विधूनन। २ हठयोगाङ्ग-भेद।

धूती (हिं० स्त्री०) एक चिड़िया।

धूधू (हिं० पु०) आगके दहकनेका शब्द, आगकी लपट उठनेकी आवाज।

धून (सं० त्रि०) धू-क्त। (ल्वादिभ्यः। पा ८।४२।४) इति सूत्रेण निष्ठा तस्य नकारः। कम्पित, काँपता हुआ।

धून (हिं० पु०) दून देखो।

धूनक (सं० पु०) अग्निं धूनयति संधुक्षयति इति धू-णिच्-ण्वुल्। १ अग्निवल्लभ, सालका गोंद, राल, धूप। (त्रि०) २ चालक, हिलाने डुलानेवाला।

धूनन (सं० क्ली०) धू-णिच्-ल्युट्। कम्पन, थरथराहट।

धूनना (हिं० क्रि०) धूनी देना, सुलगाना, जलाना।

धूनराज (सं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़का नाम।

धूना (हिं० पु०) आसाम तथा खसियाकी पहाड़ियों पर मिलनेवाला गुग्गुलकी जातिका एक बड़ा पेड़। इसका गोंद भी धूपकी तरह जलाया जाता है और यह वार्निश बनानेके काममें आता है।

धूनि (सं० स्त्री०) धू-क्तिन् अत्र ल्वादित्वात् नि। कम्पन, काँपनेकी क्रिया या भाव, थरथराहट।

धूनी (हिं० स्त्री०) १ देवपूजनमें या सुगन्धके लिये कपूर, अगर, गुग्गुल आदि गन्धद्रव्योंको जला कर उठाया हुआ धुआं। २ साधुओंके तापनेकी आग जो या तो ठंढसे बचनेके लिये, अथवा शरीरको तपाने या कष्ट पहुंचानेके लिये जलाई जाती है।

धूप (सं० पु०) धूपयति स्त्रीय गन्धेन सन्तोष्य राजति इति धूप-अच्। गन्धद्रव्य विशेष धूम और गन्धर्वि, किसी मिश्रित गन्धद्रव्यका धुआं और उसकी बत्ती। इसका पर्याय—गन्धपिशाचिका है। कालिकापुराणमें इसका उल्लेख इस प्रकार देखा जाता है—

"एवं वा कथितो दीपो धूपञ्च शृणुतं सुतौ ।
नासाह्लादिरेन्ध्रसुखदः सुगन्धोऽतिमनोहरः ॥
दह्यमानस्य काष्ठस्य प्रयतस्येतरस्य वा ।
परागस्याथवा धूमो निस्तापो यस्तु जायते ॥
स धूप इति विज्ञेयो देवानां तुष्टिदायकः ॥" इत्यादि
(कालिकापु० ६९ अ०)

नासिका और अक्षिरन्ध्रका प्रीतिदायक अत्यन्त गन्धयुक्त, मनोहर, दहनशील काठसे अथवा किसी दूसरे प्रकारके चूर्ण द्रव्यसे जो तापशून्य धूम निकलता है, उसे धूप कहते हैं। यह धूप देवताओंका प्रीतिप्रद है। इस धूपको तुषाग्निको नाईं प्रधूपित करनेसे वह फलदायक नहीं होता।

श्रीचन्दन, सरल, साल, कृष्णागुरु, उदय, सुरथ, स्कन्दी, रक्तविद्रुम, पीतशाल, परिमल, विमर्दिका, असन, नमेरु, देवदारु, बिल्वशाखा, दाड़िम, सन्तान, पारिजात, हरिचन्दन, वल्लभ इन सब वृक्षोंका धूप प्रीतिप्रद माना गया है। सुतके साथ प्रवाल, श्रीवास, पद्मवास, कर्पूर, श्रीकर, पराग, श्रीहर, अमल, सर्वौषधिरज, जाति वाराहचूर्ण और इसकी कणा तथा जायफलका चूर्ण भी धूप कहलाता है। यक्षधूप, वृक्षधूप, श्रीपिण्ड, निर्जर, पवित्राह, पिण्डधूप, सुगोलकाण्ड, और परस्परयुक्त निर्यास ये सब धूपके भेद कहे गये हैं। इनको अग्निके धूम द्वारा देवताओंको धूपित करना चाहिये, क्योंकि ये सब द्रव्य अत्यन्त सुगन्ध और पवित्र हैं इनको गंधसे सभी प्रीत होते हैं। निर्यास, पराग, काष्ठ, गन्ध और कृत्रिम ये पांच प्रकारके धूप देवताओंके प्रीतिप्रद हैं। इन पांच प्रकारके धूपोंमें यक्षधूप माधवके उद्देशसे नहीं देना चाहिये। क्योंकि यह उनका अप्रीतिकर है। रक्तविद्रुम, सुरथ और स्कन्दी यह धूप महामायाको नहीं देना चाहिये। किन्तु यक्षधूप, पवित्राह, पिण्डधूप, सुगोलक, कृष्णागुरु और कर्पूर इन सबका धूप महामायाका प्रिय है। महामायाको वृक्षधूप द्वारा पूजा करना ही प्रशस्त है। मेद और मज्जायुक्त धूप ग्रहणीय नहीं है। जो धूप आघ्रात वा याचित है उस धूपसे देवपूजा करना निषिद्ध है। यदि कोई इस प्रकारका धूपदान दे, तो उसका नरकमें वास होता है। मृत्तिका-

सन पर अथवा घड़ेमें रख कर धूपदान नहीं करना चाहिये। इन दोके सिवा जो कोई आधार हो, उस पर धूपदान दे सकते हैं। रक्तविद्रुम, शाल, सुरथ, सुवल, सन्तानक, नमेरु और कालागुरु ये सब वृक्षजात धूप कामेश्वरी देवीके प्रिय हैं। (कालिकापु० ६८ अ०)

पहला निर्यास जैसे धूना; २रा चूर्ण, जैसे जायफल चूर्ण आदि; ३रा गन्ध, जैसे कस्तूरिका आदि; ४था काष्ठ, जैसे कालागुरु आदि; ५वां कृत्रिम अर्थात् जो क्रिया द्वारा तैयार किया गया हो, जिसके तैयार करनेमें ५।१० अथवा उससे भी अधिक द्रव्योंकी जरूरत पड़ती हो, जैसे षड़ङ्गधूप, दशाङ्गधूप आदि।

यही पाँच प्रकारके धूप देवपूजामें प्रशस्त हैं। पांच प्रकारके धूपोंका विधान रहने पर भी हम लोगोंके देशमें कृत्रिम धूपका ही विशेष प्रचार देखा जाता है। प्रत्येक पूजादि माङ्गलिक कार्यमात्रमें जो धूना व्यवहृत हुआ करता है, यह भी धूपके अन्तर्गत है। धूपकी नामनिरुक्तिके विषयमें इस प्रकार कहा गया है—

'धूताशेषमहादोष-पूतिगन्धः प्रभावतः ।
परमानन्दजननात् धूपइत्यभिधीयते ॥" (आह्निकत०)

अपने प्रभावके अनुसार धूप अशेष दोष और पूतिगन्ध विनाश करता है तथा अत्यन्त आनन्द देता है अर्थात् दुर्गन्धको नाश कर उस जगह सद्गन्धसे आमोदित करता है, इसी कारण इसका नाम धूप पड़ा है। आह्निकतत्त्वमें धूपविधानकी जगह ऐसा विधान लिखा है—

"रुद्रिकाख्यं कनं दारु सिह्लकं सागुरुं सितं ।
शंखो जातीफलं श्रीशे धूपानि स्युः प्रियाणि वै ॥"

और भी

"पुष्पं धूपञ्च गन्धञ्च उपचारांस्तथापरान् ।
जिघ्रनूनिवेद्य देवेभ्यो नरो नरकमाप्नुयात् ॥
न भूमौ वितरेद्धूपं नासने न घटे तथा ।
यथा तथाधारगतं कृत्वा तं विनिवेदयेत् ॥
धूपदः सर्वमाप्नोति धूपदः सर्वमश्नुते ।" (आह्निकतत्त्व)

मांसी, महिषाख्य गुग्गुल, दारु, सिह्लक, अगुरु, कर्पूर, शर्करा, मधु और जायफल इन सबके द्रव्यचूर्णको एकत्र कर घीके साथ मिला करके प्रस्तुत करना

चाहिये। पुष्प, धूप, उपचार और गन्धको जो सूंघ कर चढ़ाता है उसका नरकवास होता है। धूपको भूमि पर अथवा आसन पर वा घड़ेमें नहीं देना चाहिये। इसके सिवा जो कोई आधार हो, उस पर धूपदान दे सकते हैं। जो धूपदान करते हैं, उन्हें सब प्रकारके फल मिलते हैं।

केशव पूजामें षोड़शाङ्गधूप—

मुस्तकं गुग्गुलः कुष्ठं कर्पूरं मलयोद्भवं।
देवदारु जटामांसी जातीकोषञ्च वालकं॥
मुरामांसी ह्यगुरुकं त्वगुशीरं च केशरं।
एला तथा तेजपत्रं सर्वमेतत् घृताक्तकं॥
धूपोऽयं षोड़शांगस्यात् गोविन्दप्रीतिकारकः।"

(पाद्मोत्तर ख०)

मोथा, गुग्गुल, कुष्ठ, कपूर, मलयोद्भव, देवदारु, जटामांसी, जातीकोष, वालक, मुरामांसी, अगुरु, त्वगुशीर, केशर, इलायची और तेजपत्र इन सोलह पदार्थोंको एक साथ पीस कर उसे घीमें मिला करके धूप प्रस्तुत करना चाहिये, इसीको षोड़शाङ्गधूप कहते हैं। यह धूप गोविन्दका अत्यन्त प्रीतिदायक है।

द्वादशाङ्ग धूप—

"गुग्गुलश्चन्दनं पत्रं कुष्ठञ्चागुरुकुङ्कुमं।
जातीकोषञ्च कर्पूरं जटामांसी च वालकं॥
त्वगुशीरञ्च धूपोऽसौ द्वादशांगः प्रकीर्त्तितः॥"

(पद्मपु० उत्तरख०)

गुग्गुल, चन्दन, पत्र, कुष्ठ, अगुरु, कुंकुम, जातीकोष, कपूर, जटामांसी, वालक और त्वगुशीर इन सब द्रव्योंके चूर्णको घीमें मिला कर धूप बनता है। यह विष्णु-पूजनमें प्रशस्त है।

दशाङ्गधूप—

"कर्पूरं कुष्ठमगुरु गुग्गुलुर्मलयोद्भवं।
केशरं वालकं पत्रं त्वग्जातीकोषमुत्तमं॥
सर्वमेतत् घृतयुतं दशांगो धूप उच्यते।" (पद्मपु०)

कपूर, कुष्ठ, अगुरु, गुग्गुल मलयोद्भव, केशर, वालक, तेजपत्र, त्वगुशीर और जातीकोष इन सब द्रव्योंको चूर्ण कर घीमें मिलानेसे दशाङ्गधूप तैयार होता है।

अष्टाङ्ग धूप—

"गुग्गुल्वगुरुकं तेजपत्रं मलयसम्भवं।
कर्पूरं वालकं कुष्ठं नूतनं कुंकुमं तथा॥
अष्टांगः कथितो धूपो गोविन्दप्रीतिदः शुभः। (पद्मपु०)

गुग्गुल, अगुरु, तेजपत्र, मलयसम्भव, कपूर, वालक, कुष्ठ, और कुंकुम इन सब द्रव्योंको घीमें मिला कर धूप प्रस्तुत करनेसे अष्टाङ्गधूप बनता है।

पञ्चाङ्ग धूप—

"चन्दनं कुंकुमं नूत्नं कर्पूरं गुग्गुलोऽगुरुं।
धूपोऽयं घृतसंयुक्तः पंचांगः समुदाहृतः॥"

(पद्मपु० उत्तरख०)

चन्दन, कुङ्कुम, कपूर, गुग्गुल और अगुरु, इन पांच प्रकारके द्रव्योंको घीमें मिलानेसे पञ्चाङ्गधूप बनता है।

"ऐक्षवं शालनिर्यासं पद्मकं सरलञ्च तु।
वचा मधुरिका-तैलं गन्धकाष्ठं कलम्बकं॥
गन्धकं टंकणं तालं हिंगुलञ्च मनःशिला।
कक्कोलमुषरं दार्वी गन्धमार्द्री रसांजनं॥
अष्टवर्गः शटी-मेथी-सिलाजिद्गन्धचन्दनं।
कुन्दुरुरेणुकं रास्नाजमोदा शतपुष्पिका॥
हरिद्राजीरकं ह्युत्क्षीरञ्च रक्तचन्दनं।
कच्चूरकं मरुवकं यवानी ग्रन्थिकं तथा॥
शैलजं धातकीपुष्पं नखी मोचरसादिकं।
मुकुन्दधूपे देवर्षे सर्वमेतत् विवर्जयेत्॥" (पद्मपु० उत्तरख०)

इक्षुनिर्मित द्रव्य, शालनिर्यास, पद्मकाष्ठ, सरलकाष्ठ, वट, मधुरिकातैल, गन्धकाष्ठ, कलम्ब, गन्धक, टङ्कण, हरिताल, हिंगुल, मनःशिला, कक्कोल, ऊषर, दार्वी, गन्धमाद्री, रसाञ्जन, अष्टवर्ग, शटी, मेथी, शिलाजित्, गन्धचन्दन, कुन्दुरु, रेणुक, रास्ना, अजमोदा, शतपुष्पिका, हरिद्रा, जीरक, रक्तचन्दन, कचूर, मरुवक, यवानी, ग्रन्थिक, शैलज, धातकीपुष्प, नखी और मोचरसादिका मुकुन्दधूपमें परित्याग करना चाहिये।

तन्त्रसारमें धूपविधि इस प्रकार लिखी है—

"गुग्गुल्वगुरुकोशीरः शर्करामधुचन्दनैः।
धूपयेदाज्यसंमिश्रै र्नचै देवस्य देशिकः॥" (शारदातन्त्र)

गुग्गुल, अगुरु, उशीर, शर्करा, मधु और चन्दन इन सब द्रव्योंको जला कर धूप बनाना होता है।

अन्य तन्त्रमें विभिन्न धूपोंका विषय इस प्रकार लिखा है—

"सिताज्यमधुसंमिश्रं गुग्गुल्वगुरुचन्दनम् ।
षडङ्गं धूपमेतत्तु सर्वदेवप्रियं सदा ॥"

सित, आज्य, मधु, गुग्गुल, अगुरु और चन्दन इन छः द्रव्योंसे जो धूप बनता है, तन्त्रमतसे वह षडङ्ग धूप कहलाता है। यह षडङ्गधूप सब देवताओंका प्रिय है। दशाङ्ग और षोड़शाङ्ग धूपका भी तन्त्रमें विधान देखा जाता है।

षोड़शाङ्ग धूप—

"गुग्गुलं सरलं दारु पत्रं मलयसम्भवम् ।
ह्रीवेरमगुरुं कुष्ठं गुड़ं सर्जरसं घनम् ॥
हरीतकीं नखीं लाक्षां जटामांसीञ्च शैलजम् ।
षोड़शांगं विदुर्धूपं दैवे पैत्रे च कर्मणि ॥" (तन्त्र)

गुग्गुल, अगुरु, सरल, दारुपत्र, मलयसम्भव, ह्रीवेर, कुष्ठ, गुड़, सर्जरस, घन, हरीतकी, नखी, लाक्षा, जटामांसी, शैलज इन सबको मिश्रित कर घीके साथ धूप बनानेसे भी तन्त्रोक्त षोड़शाङ्ग धूप होता है। यह धूप दैव और पितृकर्ममें प्रशस्त है।

दशाङ्गधूप—

"मधु मुस्तं घृतं गन्धो गुग्गुल्वगुरुशैलजम् ।
सरलं सिह्लसिद्धार्थं दशांगो धूप इष्यते ॥" (तन्त्र)

मधु, मोथा, घी, गन्ध, गुग्गुल, अगुरु, शैलज, सरल, सिह्लक और सिद्धार्थ इन दश प्रकारके द्रव्यों द्वारा यह धूप प्रस्तुत होता है, इसीसे इसका नाम दशाङ्ग धूप पड़ा है।

देवताको धूप निवेदन करके देना होता है। 'फट्' इस मन्त्रसे धूपको प्रोक्षित कर 'नमः' इस मन्त्रसे निवेदन करके घण्टा बजा कर दान करना चाहिये। धूप, दीप और भोग देवताओंके आगे रखना चाहिये।

"धूपदीपौ शुभोज्ज्वल्यौ देवताग्रे निवेदयेत् ।" (तिथितत्त्व)

धूपहीन पूजा करनेसे अर्थात् पूजा करके धूप दान नहीं करनेसे उद्वेग होता है।

"जलहीने तु दुर्भिक्षं गन्धहीने त्वभाग्यता ।
धूपहीने तथोद्वेगं वस्त्रहीने धनक्षयं ॥" (भविष्योत्तर)

श्राद्धादि कार्यमें एक विशेष धूपका लक्षण देखनेमें आता है।

"चन्दनागुरुणी चोभे तथैवोशीरपद्मकं ।
तुरुष्कं गुग्गुलुञ्चैव घृताक्तं धूपयद्धेत् ॥"
'उशीरं वीरणमूलं तुरुष्कं सिह्लकं ।' (श्राद्धतत्त्व)

चन्दन, अगुरु, उशीर, पद्मक, तुरुष्क और गुग्गुल इन सब द्रव्योंको घृताक्त कर जो धूप प्रस्तुत किया जाता है उसका श्राद्धादि पितृकार्यमें प्रयोग होता है।

गन्धमाल्यादि चढ़ाये बिना धूपदान करना निषेध है जो कोई करता है, उसे पृथ्वी पर कुणप हो कर जन्म-ग्रहण करना पड़ता है।

रोगनाशक धूप।—इसका विषय वैद्यक ग्रन्थमें इस प्रकार लिखा है—

बेर पेड़का मूल और मूलतन्तुकी छाल, अकवनकी छाल, कच्छिका और हिङ्गुल इनके बराबर बराबर भागको एक साथ कूट कर जो धूप प्रस्तुत होता है उसका उपदंश रोगमें प्रयोग करनेसे उपदंशजनित क्षत शुष्क हो जाता है।

अन्यविध। पारा, हरिताल, मनःशिला, मुर्दाशङ्ख, तूतिया, फिटकारी, यवक्षार, विट्‌लवण, सोहागा, मिर्च, सफेद अकवनकी छाल, प्रत्येक एक तोला, हिङ्गुल डेढ़ तोला इनके चूर्णको घीमें मिला कर धूप बनाते हैं। इस धूपसे उपदंश रोग नाश होता है। (भैषज्यर॰)

अष्टाङ्ग धूप।—गुग्गुल, निम्बपत्र, वच, कुट, हरीतकी, यव, सर्षप और घृत इन्हें एक साथ मिला कर जो धूप बनाते हैं उससे विषम ज्वर निवृत्त होता है।

अपराजिताधूप।—गुग्गुल, गन्धतृण, वच, धूना, निम्बपत्र, अकवनका पत्र, अगुरु और देवदारु इसका धूप विषम-ज्वरमें प्रयोग करनेसे वह जाता रहता है।

माहेश्वर धूप।—हिङ्गुल, देवदारु, सरलकाष्ठ, गव्य-घृत, गो-अस्थि, गन्धतृण, शिवनिर्माल्य, कटकी, श्वेत सर्षप, निम्बपत्र, मयूरपुच्छ, सांपकी केंचुल, बिल्लीकी विष्ठा, गोशृङ्ग, मदनफल, हलदी, कण्टकारी, धानकी भूसी, छागलका बिष्ठा, शृगालविष्ठा और हस्तिदन्त इन सब द्रव्योंको एकत्र कर छागमूत्रमें भावना देते हैं। बाद उसे ओखलीमें कूट कर मट्टीके बरतनमें रख करके धूपित करते हैं। अनन्तर उसे मृत्पात्रमें रख कर चांप देते हैं, ऐसा करनेसे वे सब द्रव्य जलते तो नहीं, पर

उनसे धूआँ निकलता है। यह धूप ऐकाहिक आदि ज्वरको विनष्ट करता है। जिस घरमें यह धूप दिया जाता है, वहां सर्प पिशाच राक्षस आदिका भय कुछ भी नहीं रहता। (भैषज्यरत्नावली ज्वराधिकार)

निम्बपत्र, वच, हिङ्गु, सांपकी केंचुल और सर्षप इन सब द्रव्योंको एक साथ मिला कर धूप देनेसे डाकिनी आदि दूर हो जाती है और भूतोन्माद रोग शान्त हो जाता है।

अन्यविध—कपास बीज, मयूरपुच्छ, वृहतीफल, शिवनिर्माल्य, मदनफल, गुड़त्वक्, बिड़ालकी विष्ठा, तुष, वच, मनुष्यका केश, सांपकी केंचुल, गोशृङ्ग, हस्तीदन्त, हिङ्गु और मिर्च इनका धूप देनेसे नाना प्रकारके भूतोन्माद और ज्वररोग नाश होते हैं।

(भैषज्यरत्ना० उन्मादाधिकार)

गरुड़पुराणमें रोगनाशक धूपका विधान इस प्रकार लिखा है—

"कूर्ममत्स्याखुमहिषगोऽश्वशालाश्ववानराः।
विड़ालबर्हिकाकाश्च वराहोलूककुक्कुटाः॥
हंस एषाञ्च विण्मूत्रं मांसं वा रोम शोणितं।
धूपं दद्यात् ज्वरार्त्तस्य उन्मत्तेभ्यश्च शान्तये॥
एतान्यौषधजातानि धूपितानि महेश्वर।
निघ्नन्ति रोगजातानि वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा॥"

(गरुड़पुराण)

कूर्म, मत्स्य, चूहा, महिष, गो, शृगाल, अश्व, वानर, बिडाल, बर्ही, काक, वराह, उलूक, कुक्कुट और हंस इनकी विष्ठा, मूत्र मांस, रोम अथवा शोणित द्वारा प्रधूपित करनेसे ज्वर नाश होता है और उन्मत्तता आदि प्रशमित होती हैं।

"कार्पासास्थिभुजङ्गस्य यथा निर्मोचनं भवेत्।
सर्पनिर्मोचनो धूपः प्रशस्तः सततं गृहे॥"

(मत्स्यपु० १८२ अ०)

कपास और भुजङ्गकी अस्थिका धूप देनेसे साँपका भय नहीं रहता।

धूपक (सं० क्ली०) तूलकाष्ठ, शहतूतकी लकड़ी।

धूपघड़ी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका यन्त्र जिसमें धूपमें समयका ज्ञान होता है। इसके बनानेकी रीति इस प्रकार है—पहले काठ या धातुका एक गोल चक्कर बनाया जाता है, पीछे उसके चार भाग किये जाते हैं। एक एक भागमें छः छः समान भाग करते और उस चक्करकी कोर थोड़ा छोड़ देते हैं। बाद उस कोरमें साठ भाग करते और बीचमें एक एक अंगुल चौड़ी दो पट्टियां ऐसी लगाते हैं कि उनसे उस चक्करके चार विभाग पूरे हो जांय। जहां दोनों पट्टियां मिलती हैं वहां बीचो बीच एक छेद करके एक कील लगा दे और चुम्बककी सुईसे या और किसी प्रकार उत्तर दक्षिण दिशा ठीक ठीक जान ले। उस स्थानके जितने अक्षांश हों उतनी वह कील उत्तरकी ओर उठी रहनी चाहिये। उस कीलकी छाया मध्याह्नसे पहले पश्चिमकी ओर और पीछे पूर्वकी ओर पड़ेगी। मध्याह्नके चिह्नसे पश्चिमकी ओर जिस चिह्न पर छाया पड़े उतनी ही घड़ी मध्याह्नमें घटती जानी जाती है, इसी प्रकार पूर्वका भी मालूम किया जा सकता है।

धूपछाँह (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका रंगीन कपड़ा। इसमें एक ही स्थान पर कभी एक रंग और कभी दूसरा रंग दिखाई पड़ता है। इस कपड़ेके तानेका सूत एक रंगका होता है और बानेका दूसरे रंगका। इसी कारण देखनेवालेकी स्थिति और कपड़ेकी स्थितिके अनुसार कभी एक रंग दिखाई पड़ता है, कभी दूसरा।

धूपदान (हिं० पु०) १ वह बरतन या डिब्बा जिसमें धूप रखा जाता है। २ वह बरतन जिसमें गन्धद्रव्य या धूपबत्ती रख कर सुगन्धके लिये जलाई जाती है, अगियारी।

धूपदानी (हिं० स्त्री०) धूप रखनेका छोटा बरतन।

धूपद्रुम (सं० पु०) रक्तखदिर, लाल खैर।

धूपन (सं० पु० (धूपयति संधुक्षयति अग्निमिति धूप-ल्यु। १ शालवृक्ष, शालका पेड़। इसका संस्कृत पर्याय—शालवेष्ट, सर्जरस और वह्निवल्लभ है। (क्ली०) धूप-ल्युट्। २ धूपादि द्वारा सन्धुक्षण, धूप देनेकी क्रिया। ३ धूप, धूना।

धूपपात्र (सं० क्ली०) धूपस्य पात्रं ६-तत्। धूपाधार पात्रभेद, वह बरतन जिसमें गन्ध द्रव्य जला कर धूप देते हैं।

धूपबत्ती (हिं० स्त्री०) मसाला लगी हुई सींक या बत्ती।

इसे जलानेसे सुगन्धित धुआँ उठ कर फैलता है।

धूपमुद्रा (सं० स्त्री) धूप प्रदानार्थं मुद्रा। देवपूजाङ्ग धूपदानके लिये दर्शनीय मुद्राभेद।

धूपवास (सं० पु०) धूपेन वास: सुगन्धीकरणं। स्नानके पीछे सुगन्धित धुएँसे शरीर, बाल आदि बासनेका कार्य।

पूर्व समयमें भारतवासी स्नानके बाद कुछ काल सुगन्धित धुएँमें रह कर गीले शरीर या बालको सुखाते थे। ऐसा करनेसे सुगन्धि शरीरमें बस जाती थी। रघुवंश, मेघदूत आदि काव्योंमें इस प्रथाका उल्लेख है।

धूपवृक्ष (सं० पु०) धूपसाधनं वृक्षः मध्यपदलोपि-कर्मधा। सरलवृक्ष, सलाई या गुग्गुलका पेड़। इसका गोंद धूपके काममें आता है।

धूपसरला (सं० स्त्री०) धूपाङ्ग सरलवृक्ष-विशेष, एक प्रकारका गुग्गुलका पेड़।

धूपागुरु (सं० क्ली०) धूपाय सम्बुक्षणाय यदगुरु। दाह्य अगुरुभेद, एक प्रकारका अगर।

धूपाङ्ग (सं० पु०) धूपसाधनं अङ्गं यस्य। श्रीवेष्ट नामक सुगन्ध काठ।

धूपायित (सं० त्रि०) धूप्यते स्म इति धूप सन्तापे इति आय, धूपाय क्त। १ सन्तप्त, चलने आदिसे थका हुआ, हैरान। २ दत्तधूप, धूप दिया हुआ।

धूपार्ह (सं० क्ली०) धूपाय अर्हते पूज्यते इति अर्ह-पूजायां अच्। १ कृष्णागुरु, काला अगर। १ धूपमर्हति अर्ह-अण्। (त्रि०) २ धूपदानके योग्य।

धूपित (सं० त्रि०) धूप्यते स्म इति धूप-क्त। १ सन्तप्त, चलने आदिसे थका हुआ, हैरान। २ श्रान्त, थका हुआ। ३ सन्तापित। ४ दत्तधूप, धूप दिया हुआ। (क्ली०) ५ धूप।

धूप्य (सं० पु०) नखी नामक गन्धद्रव्य।

धूबकी—नेपाल राज्यमें उत्पन्न वृक्षविशेष। इसकी शाखा मशालकी नाईं जलती है और इससे जो सौगन्धयुक्त निर्यास निकलता है, वह पूजादि तथा औषधादिके काममें आता है। इसकी लकड़ी घर आदिमें लगाई जाती है। इसका दूसरा नाम बेचियाकोटी, शाखा और सुरेन्धुल है।

धूम (सं० पु०) धमोति धयते वा ध-मक्। (इषियुधीन्धीति। उण् १।१४४) आर्द्रेन्धन प्रभव। १ धुआँ। पर्याय—मरुद्वाह, खतमाल, शिखिध्वज, अग्निवाह, तरी। इसका गुण वातपित्त रुचिकारक है। (राजवल्लभ)

"हविः शमीपल्लवलाजगन्धी पुण्यः कृशानोरुदियाय धूमः॥"

(रघु ७।२६)

२ उद्गारज वायुविशेष, डकार। जठराग्निके मान्द्य होनेसे अन्न अच्छी तरह परिपाक नहीं होता। अतएव जठरानलकी दीप्तिके अभावके कारण भीतरसे एक प्रकारका धुआँ निकलता है, इसीको धूम या डकार कहते हैं। ३ सुश्रुतोक्त धूमपान। इसका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—

धूम पांच प्रकारका है—प्रायोगिक, स्नेहन, वैरेचन, कासघ्न और वामनीय।

तगर और कुष्ठको छोड़ कर एलादियोंके दूसरे दूसरे सभी द्रव्योंको भलीभांति पीस कर चूर्ण बनाते हैं। बाद बारह उंगली सरकण्डेमेंसे आठ उंगलीको क्षौमवस्त्रसे लपेट कर उसमें वह चूर्ण लेप देते हैं। इस प्रकार वर्त्तीकी सहायतासे धूम प्रयोग करनेको प्रायोगिक कहते हैं।

तैलाक्त फलका सार, मधूच्छिष्ट, सर्जरस, गुग्गुल आदिके साथ घी वा तेल मिला कर वर्त्ती बनानेसे जो धूम प्रयोग किया जाता है, उसे स्नेह कहते हैं।

शिरोविरेचन वस्तुको वर्त्ती प्रस्तुत कर धूम प्रयोग करनेको वैरेचन कहते हैं। बृहती, कण्टकारी, त्रिकटु, कासमर्द, हिङ्गु, इङ्गुदीत्वक्, मनःशिला, गुलञ्च, कर्कटशृङ्गी आदि कासनाशक वस्तुकी वर्त्ती निर्माण कर जो धूम प्रयोग किया जाता है, उसका नाम कासघ्न है।

स्नायु, चर्म, खुर, शृङ्ग, कर्कटास्थि, शुष्कमत्स्य, और कृमि इनके द्वारा धूम प्रयोग करनेको वामनीय कहते हैं।

वस्ति प्रयोगका नल जिन सब द्रव्योंसे प्रस्तुत होता है, धूमका नल भी उन सब द्रव्योंमें प्रशस्त है।

धूम प्रयोग नलके अग्र भागकी विशालता कनिष्ठाङ्गुलिके बराबर और मूलका अग्र एक उरदके परिमाणका होना चाहिये। अर्थात् उसमें हो कर एक उरद अनायाससे आ सके, ऐसा होना आवश्यक है। धूम प्रयोगकी

अगह बत्ती प्रविष्ट करनेके लिये नलके छिद्रको दीर्घता प्रायोगिकमें ४८, स्नेहनमें ३२, वैरेचनमें २४ और कासघ्न तथा वामनीयमें १६ अङ्गुलि होनी चाहिये। शेषोक्त दो प्रकारके नलका छिद्र बेरकी गुठलीके जैसा रहे।

वमनधूपनार्थ—नलका परिणाह उरदके जैसा और छिद्रपथ कुलथीके जैसा होना आवश्यक है। धूम प्रयोग करनेसे धूमपान समझना चाहिये। जब धूम सेवन करना हो तब स्वच्छन्द भावसे प्रफुल्ल चित्त हो कर बैठना चाहिये। दृष्टिको नीचेकी ओर और चित्तको स्थिर करना एकान्त आवश्यक है। बत्तीके अग्रभागको प्रदीप्त कर उसे नलके छिद्रमें डाल कर धूमपान करना चाहिये। पहले धूमको मुख द्वारा, पीछे नासिका द्वारा पान करना चाहिये। मुख वा नासिकाके जिस द्वारा धूमपान किया जाता है, उसी द्वारा धूम निकालना भी आवश्यक है मुख द्वारा ग्रहण करके नासिका द्वारा धुआँ निकालना उचित नहीं है। इस प्रकार प्रतिलोम-क्रिया करनेसे दर्शनशक्तिमें व्याघात पहुंचता है। विशेषतः प्रायोगिकमें नासिका द्वारा, स्नेहनमें मुख और नासिका दोनों द्वारा, वैरेचनमें केवल नासिका द्वारा और दूसरे दो प्रकारमें मुख द्वारा पान करना चाहिये। प्रायोगिकमें बत्तीको छायामें सुखा कर अङ्गारसे दीप्त करके धूम पान करनेका विधान है। स्नेहन और वैरेचनमें भी यही नियम है। अङ्गार यदि निर्धूम हो, तो उसमें धूमका द्रव्य डाल कर ऊपरसे ढक्कन ढक देना चाहिये। उस आच्छादनके ढक्कनमें छिद्रका रहना आवश्यक है। उस छिद्रमें नलका मुख संयोजित कर कासघ्न और वामनीय धूमपान करना चाहिये। जब तक देह निर्दोष न हो जाय, तब तक धूमपान करते रहना उचित है।

शोक, परिश्रम, क्रोध, भीति, उष्णता, रक्त, पित्त, मद, मूर्च्छा, दाह, पिपासा, पाण्डुरोग, तालुशोष, वमन, मस्तकमें अभिघात, उद्गार, उपवास, तिमिररोग, प्रमेह, उदराध्मान, ऊर्द्धवात, बालक, वृद्ध, दुर्बल, विरक्त, आस्थापित, जागरित, गर्भिणी, रूक्ष, क्षीण, उरःक्षत आदि रोगोंमें, मधु, घृत, दधि, दुग्ध, मत्स्य, मद्य वा जौका मांड पान करने पर अथवा शरीरमें थोड़ी व्यथा रहने पर धूम सेवन करना उचित नहीं है। धूम यदि अकालमें पीया जाय, तो भ्रम, मूर्च्छा, शिरोरोग, चक्षु, कर्ण, नासिका और जिह्वाका उपघात होता है। प्रथमोक्त तीन प्रकारका धूम निम्नलिखित बारह कालमें पीना उचित है।

धूमपानके बारह काल।—क्षुत, दन्तप्रक्षालन, नस्य, स्नान, दिवानिद्रा, मैथुन, वमन, मूत्रपुरीषत्याग, क्रोध और शस्त्रकर्म। इनमेंसे मूत्रपुरीषत्याग, क्षवथु, क्रोध और मैथुन इनके बाद स्नैहिक धूम प्रयोज्य है। स्नान, वमन और दिवानिद्राके बाद वैरेचन धूम हितकर है। दन्तप्रक्षालन, नस्यप्रयोग, स्नान, भोजन और शास्त्रकर्मके अन्तमें प्रायोजिक धूम विधेय है। स्नेहधूममें स्नेह और उपलेप प्रयुक्त वायुका शान्तिकर होता है। वैरेचनसे रूक्षता, तीक्ष्णता, उष्णताप्रयुक्त श्लेष्मा निर्गत होती है। प्रायोगिक धूम पहले दो प्रकारके कारणों द्वारा श्लेष्माको उत्क्लिष्ट कर निर्गत करता है।

किसी कविका कहना है कि, 'हुक्का चार वक्त अच्छा सोके, मुंह धोके, खाके, नहाके और चार वक्त बुरा आंधीमें, अंधेरेमें, भूकमें और धूपमें।'

धूमपानका फल धूमपान करनेसे इन्द्रिय, वाक्य और मन प्रसन्न होता है, केश और श्मश्रु दृढ़ रहता है, मुख सुगन्धित और परिष्कार होता है। कास, श्वास, अरुचि, मुखका उपलेप, स्वरभङ्ग, मुखका आस्राव, वमनेच्छा, तन्द्रा, निद्रा, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, शिरोरोग, कर्णशूल, चक्षुःशूल और वातश्लेष्माके उत्पन्न मुखरोग धूमपान करनेसे प्रशमित होता है।

धूमपानमें योग और अतियोगका फल जानना आवश्यक है। उपयुक्त परिमाणमें धूमका प्रयोग करनेसे रोग शान्त होता है। अधिक परिमाणमें सेवन करनेसे रोगकी अशान्ति· तालुशोष, गलशोष, दाह, पिपासा, मूर्च्छा, भ्रम, मद, कर्णरोग, दृष्टिहानि, नासिकारोग और दौर्बल्य आदि उपद्रव होते हैं। प्रायोगिक धूमपानमें मुख और नासिका द्वारा पर्याय क्रमसे तीन तीन बार करके धूमपान करना चाहिये।

स्नैहिकमें जब तक अश्रुप्रवृत्ति न हो, तब तक धूमपान विधेय है। वैरेचनिकमें जब तक कोई दोष दीख न पड़े, तब तक धूमपान कर सकते हैं। अतिरिक्त होनेसे

दोष देखनेमें आता है। तिल, तण्डुल और जौका माँड़ पी कर पीछे वामनीय धूमपान करना विधेय है। कासघ्न धूम ग्रासके साथ पीना हितकर है। व्रणमें यदि धूमका प्रयोग करना हो, तो शरीरमें छिद्र करके उसमें नल लगा कर प्रयोग करना चाहिये। धूमके द्वारा व्रणकी वेदना शान्त होती है, निर्मलता आ जाती है तथा पीपका निकलना बंद हो जाता है। धूमकी यही संक्षिप्त विधि है। (सुश्रुत चिकित्सितस्थान)

४ धूमकेतु। ५ उल्कापात। ६ ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम। ७ देशभेद, एक देशका नाम।

धूमक (सं० पु०) १ धूम, धुआँ। २ एक शाकका नाम।

धूमकधैया (हिं० स्त्री०) उपद्रव, उत्पात, शोरगुल।

धूमकेतन (सं० पु०) धूमः केतनं ध्वजाचिह्नः यस्य। अग्नि। इसकी पताका धुआँ है। २ केतु ग्रह।

धूमकेतु (सं० पु०) धूमः केतुः चिह्नं यस्य। सन्ध्याके कुछ बाद अथवा सुबहके कुछ पहले कभी कभी आकाशमें लम्बे दुमदार सफेद तारे दीख पड़ते हैं, वही धूमकेतु हैं। इनके प्रकृत तथ्यका पता आज भी अच्छी तरह किसीको नहीं लगा है। अत्यन्त प्राचीन कालसे धूमकेतुके विषयमें जनसाधारणमें यह कुसंस्कार चला आ रहा था कि इनके उदय होनेसे राष्ट्रविप्लव, छत्रभङ्ग, दुर्भिक्ष, महामारी आदि अमङ्गल होते हैं। 'अपशकुन' जान कर धूमकेतुका जो नामान्तर प्रचलित है वही इस विश्वासका परिचायक है। यह संस्कार केवल इसी देशमें प्रचलित था सो नहीं, वरं समस्त सभ्य देशोंके ही प्राचीन अधिवासियोंमें इसके अस्तित्वका दृष्टान्त मिलता है। काल-क्रमसे विज्ञान आलोचनाके फल द्वारा ये सब भ्रान्त जनसाधारणके मनसे दूर हो गये हैं सही, किन्तु धूमकेतुका यथार्थ तथ्य बहुत ही कम प्रकाशित हुआ है। नीचे इसके विषयमें वर्त्तमान कालके प्रधान ज्योतिर्विदोंके अवलम्बित मतका सारांश दिया जाता है।

इन असाधारण तारोंमेंसे अनेक हम लोगोंके सौरजगत्के साथ मिले हुए हैं और शेषके साथ इस सौर जगत्का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। ये सब प्रकाश नभोमण्डलके जिस अंशमें सौरजगत् अवस्थित है, उसी अंश हो कर जाते हैं और इसीसे हम लोगोंकी दृष्टि उन पर पड़ती है। धूमकेतुओंमेंसे अनेक बिना दूरबीनके देखे नहीं जा सकते। जो सब बिना किसी यन्त्रके दिखाई पड़ते, वे शीर्ष और पुच्छ दो अंशोंमें विभक्त हैं। शीर्षका मध्यस्थल एक सफेद तारा सा है, इस अंशको "गर्भ" (nucleus) कहते हैं। इस अंशके चारों ओर कम प्रकाशकी एक नीहारिका रहती है। गर्भसमन्वित इस नीहारिका-मण्डलका नाम शीर्ष है। पुच्छांश भी इसी तरह नीहारिकासे संगठित है और रेखा क्रमसे बहुत दूर तक विस्तृत है, किन्तु शीर्षदेशसे इस अंशकी उज्ज्वलता बहुत कुछ कम है। धूमकेतुकी आकृति सब समय एक सी नहीं देखी जाती। बहुतोंके एक पूंछ, किसीके दो, किसीके उससे भी अधिक और किसीके बिलकुल नहीं रहती है। इस प्रकार पुच्छविहीन केतुओंमेंसे अनेकके 'गर्भ' गर्भावरण नीहारिका-मण्डलके अभ्यन्तर सुडौल रूपसे अवस्थित नहीं हैं। बहुतोंके बिलकुल गर्भ नहीं रहता है, केवल एक नीहारिका-मण्डल देखनेमें आता है, कहना फजूल है। कि सौर-जगत्का सुसम्बन्ध और सुप्रणाली-परिचालित ग्रहोंके साथ धूमकेतुका विशेष पार्थक्य है। इसके पहले ही कहा जा चुका है कि विज्ञानचर्चाके बलसे धूमकेतु सम्बन्धीय सभी कुसंस्कार दूर हो गये हैं सही, किन्तु इसके विषयमें अनेक ज्ञातव्य विषय अब तक भी अच्छी तरह किसीको मालूम नहीं है। पर धूमकेतु जो विश्व ब्रह्माण्डके अन्तर्गत कई एक सुमहती नियमावलियोंका अनुसरण करते हैं, वह एक प्रकारसे बहु मतसिद्ध है एवं भविष्यत्में जो ये अनेक ज्योतिषिक रहस्य उद्घाटनके स्वरूप होंगे, उसमें भी तनिक सन्देह नहीं है।

धूमकेतुकी संख्या कितनी है? इसका उत्तर यही है, कि धूमकेतुकी संख्या नहीं कहने पर भी अत्युक्ति नहीं होगी, सुविख्यात पाश्चात्य ज्योतिर्विद् केपलर कह गये हैं कि, समुद्रमें मछलीकी संख्या जिस तरह अनिश्चित है, व्योममार्गमें धूमकेतुकी संख्या भी उसी तरह है। इनमेंसे अनेक कभी कभी सौर जगत्के समीप रहनेके कारण हम लोगोंकी निगाहमें आते हैं। ईसामसीके जन्मके बादसे ले कर वर्त्तमान समय तक ८६२ केतु ज्योतिर्विदोंसे देखे गये हैं। इनमेंसे ११८ फिर सौर जगत्में

लौट आते हैं, और फिर दूसरी बार देखनेमें नहीं आते हैं। धूमकेतुको 'कक्षा' वा गगनमण्डल-परिभ्रमण-मार्ग एक तरहका नहीं है। कोई वृत्ताभास (Elipse), कोई पेरावो (Parabola), कोई हाइपरवोला (Hyperbola की राहसे आकाशमें विचरण करता है। यदि इनकी गतिविधि किसी प्रकार भी नियम-प्रणालीके अन्तर्गत नहीं है, तो भी यह एक प्रकारसे स्थिर हो चुका है, कि इनकी समस्त गतिविधि अन्ततः केतुओंके सौरजगत्‌के सन्निहितावस्थानके समयमें माध्याकर्षण द्वारा नियमित होती है। इसके सिवा धूमकेतु सम्बन्धीय कोई भी विशेष तत्त्व आज तक आविष्कृत नहीं हुआ है। विश्वपतिकी कोई आश्चर्य नियमावलीके अधीन हो कर ये असंख्य धूमकेतु दिन रात अनन्त गगनपथमें घूमते फिरते हैं, यह कौन कह सकता है?

धूमकेतुका प्रकाश कहांसे आता है? इसके विषयमें मतभेद है। किसीके मतसे सभी केतु सौरजगत्‌के ग्रहोंके सदृश हैं, सूर्यालोक इनके ऊपर प्रतिविम्बित हो कर इन्हें ज्योतिर्मय रूप देता है। फिर बहुतोंके मतसे धूमकेतुगण स्वप्रभ हैं, किसी गूढ़ अन्तर्निहित शक्तिके बलसे उनके शरीरसे यह प्रकाश निकलता है लेकिन अब तक इसकी पूरी मीमांसा नहीं हुई है।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि ये सब ग्रह एक एक नीहारिका-पिण्डमात्र हैं। किन्तु इनके परमाणुका लगाव (Cohesion) बहुत कम है। ये सब परमाणु माध्याकर्षणके बलसे एकसे दूसरेके साथ मिले हुए हैं, ऐसा अनुमान भी नहीं किया जा सकता। सुतरां यही अनुमान कर सकते हैं, कि केतु शरीरस्थ प्रत्येक विभिन्न परमाणु-समष्टि (Moleoule) रविके चारों ओर घूमनेवाली एक स्वतन्त्र सचल वस्तु है। कुछ काल पहले एक बार "रियेनर धूमकेतु" जो स्वतन्त्र अंशोंमें विभक्त हो कर एक दूसरेके चारों ओर घूमता दिखाई पड़ा था, वह केतुओंके परमाणु समष्टि-समूहमें संहतिके अभावका ही परिचायक मात्र था और "पेरिहेलियन" (Perihelion)-में उपस्थित होनेसे केतुका शरीर जो आश्चर्य-रूपसे सङ्कुचित होता है, उसका भी यही कारण है। इससे यह स्पष्ट जाना जाता है, कि धूमकेतुओंकी घनिष्टता (Density) बहुत सामान्य है, यही कारण है कि इनके सौरजगत्‌में छोटेसे छोटे ताराओंके अत्यन्त निकट रहने पर भी ये सब छोटे तारे तनिक भी विचलित नहीं होते। केतुशरीरस्थ परमाणुसमष्टिका आकुञ्चन और सम्प्रसारणके विषयमें ये सब मालूम होने पर भी किस तरह इनकी पूंछ उत्पन्न होती हैं, वह दुर्भेद्य रहस्य आज तक किसीको अच्छी तरह मालूम नहीं। इस विषयमें विभिन्न ज्योतिषियोंका मत उल्लेख करना निष्प्रयोजन है। अभी सबसे पहले धूमकेतुके विषयमें कई एक साधारण विषय और इनकी आकृतिके परिवर्त्तनके विषयमें दो एक बातें कह देने बाद इस विषयके दो एक मतका उल्लेख किया जायगा।

धूमकेतु कब तक देखनेमें आते हैं उसका कुछ निश्चय नहीं है। कोई कोई केतु केवल दो चार रात तक, कोई कोई एक वर्षसे अधिक समय तक नजरमें आता है। साधारणतः केतु केवल दो तीन मास तक ही दिखाई देते हैं। १८२५ ई०में अनमका और १८६१ ई०में तेवका आविष्कृत केतु एक वर्षमें अधिक समय तक दृष्टिगोचर होता था। जब तक धूमकेतु दीख न पड़ता, तब तक उसके नीहारावरणका बारम्बार परिवर्त्तन हुआ करता है, केतु जितना ही सूर्यके समीप रहते हैं, उतनी ही उनकी खर्वता बढ़ती है और सूर्यसे वे जितनी ही दूर चले जाते हैं उतनी ही उसकी आकृति फिर लम्बी हो जाती है। एनकर धूमकेतुकी कई बार इसी तरह आकृतिका परिवर्त्तन हुआ था। कोई कोई ज्योतिर्वित् ऐसा अनुमान करते हैं, कि तापका न्यूनाधिक्य ही इस आकार-परिवर्त्तनका कारण है। धूमकेतु जितना ही सूर्यमण्डलके निकट रहते हैं, उतना ही उनका नीहारावरण अधिक तापके कारण स्वच्छ अदृश्य द्रवपदार्थ हो जाता है और जितनी ही सूर्य-मण्डलसे दूर रहते हैं उतनी ही वाष्पराशि तापकी कमीसे घनी हो कर अभ्रवत् दीखती हैं।

अब उनकी पूंछकी उत्पत्तिके विषयमें दो एक बातें बतलाई जाती हैं। उदय कालमें धूमकेतुकी पूँछ प्रायः नहीं रहती, यदि रहती भी है तो वह बहुत छोटी। धीरे धीरे यह पूँछ बढ़ते बढ़ते बहुत बढ़ जाती है।

कभी कभी तो यह बीस करोड़ मीलसे भी अधिक लम्बी देखी जाती है। जिस प्रकार इस पूंछकी उत्पत्ति होती है इसके विषयमें जो मतभेद है वह पहले ही लिखा जा चुका है। कोई कोई कहते हैं, कि समस्त उपकरणोंमें धूमकेतु गठित है, उनमेंसे एक वा अधिक द्रव्य ले कर उनकी पूंछ बनाई गई है। सूर्य्यके समीप आनेसे पूंछके उपकरण अधिक गर्मीके कारण गल कर वाष्पमें परिणत हो जाते हैं और सूर्य्यकी विपरीत दिशामें विस्तृत हो जाते हैं। जब तक केतु सूर्य्यके समीप रहते हैं तब तक नये उपादान गल कर वाष्पके आकारमें परिणत हो जाते और पूंछके कलेवरकी वृद्धि करते हैं।

धूमकेतुके पुच्छोद्भवके विषयमें एक मतका उल्लेख हो चुका। इसके विषयमें और भी कई मत हैं किन्तु विस्तार हो जानेके भयसे उनका उल्लेख नहीं किया गया।

धूमकेतुके साथ हम लोगोंकी इस पृथ्वीका संघर्ष हो सकता है वा नहीं? धूमकेतुकी अधिकता देख कर और जिस तरह ये गगन-पथमें भ्रमण करते हैं उससे साफ साफ अनुमान किया जा सकता है कि कभी न कभी इस प्रकारकी घटना अवश्य हो सकती है। तब इस तरह संघर्षणका फल क्या होगा उसका अनुमान करना कठिन है।

जिस ज्योतिर्विदने जिस धूमकेतुका आविष्कार किया, उन्हींके नामानुसार उस केतुका नामकरण हुआ है, जैसे—हेलिका धूमकेतु, एनकका धूमकेतु, फेका धूमकेतु इत्यादि।

पहले ही लिखा जा चुका है कि धूमकेतुके विषयमें मनुष्योंका ज्ञान अब भी सामान्य है। ज्योतिर्वित् पण्डित लोग अनुमान करते हैं कि इस केतुसम्बन्धीय आलोचना होनेसे ही विश्वब्रह्माण्डके अनेक अद्भुत रहस्य आविष्कृत हो सकते हैं।

वराहमिहिरके मतसे धूमकेतुका उदय नामक उत्पात-विशेष है। इससे अमंगल होता है। इन्द्र धनुषकी नाईं आकाशमें जो तारे उदित होते हैं उन्हें धूमकेतु कहते हैं। इनके दो शूल, तीन शूल वा चार शूल भी होते हैं। यह धूमकेतु अनन्त आपद्-जनक है और इनके उदय होनेसे तरह तरहके उत्पात हुआ करते हैं।

धूमकेतुके उदय होनेसे माङ्गलिक क्रिया नहीं करनी चाहिये। अर्थात् पांच दिनके बाद मंगलकार्य्य कर सकते हैं। कहीं कहीं ऐसा भी लिखा है कि धूमकेतुके उदय होनेसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीन दिनके बाद और शूद्र एक दिनके बाद शुभ कार्य कर सकते हैं। केतु देखो।

२ अश्वविशेष, एक प्रकारका घोड़ा। यह घोड़ा अमङ्गलकर होता है, अतः इसे परित्याग कर देना चाहिये। जिन सब घोड़ोंकी पूंछमें भंवरी हो, उन्हें धूमकेतु कहते हैं। राजाओंको यह घोड़ा नहीं रखना चाहिये।

युक्तिकल्पतरुमें इसका लक्षण दूसरे प्रकारसे लिखा है। जिन घोड़ोंकी पीठमें एक भंवरी हो, उन्हें धूमकेतु अश्व कहते हैं। इस प्रकारका घोड़ा परित्यज्य है। ४ महादेव, शिव। ५ अग्नि। इसकी पताका धुआं है। ६ रावणका एक राक्षस सेनापति।

धूमगन्धि (सं० क्ली०) धूमस्य गन्ध इव गन्धो यस्य, ततो गन्धादित्यादिना इत्समासान्तः। १ रोहिषतृण, रूसा घास। धूमेन गन्ध्यते [illegible]। २ धूम द्वारा अनुपमेय वह्नि, वह आग जो धुएंसे अनुमान की जा सके।

धूमगन्धिक (सं० क्ली०) धूमगन्धि-कन्। रोहिष-तृण, रूसा घास।

धूमग्रह (सं० पु०) राहु ग्रह।

धूमज (सं० पु०) धूमाज्जायते जन-ड। १ मेघ, बादल, धुएंसे मेघ उत्पन्न होता है इसीसे धूमज शब्दसे मेघका बोध होता है। २ मुस्तक, मोथा।

धूमजाङ्गज (सं० क्ली०) धूमजन्यमेघस्य अङ्गं वज्रं, तस्मात् जायते जन-ड। वज्रक्षार, नौसादर।

धूमदर्शी (सं० पु०) धूमं धूमाकृतिं द्रष्टुं शीलमस्य दृश-णिनि। सुश्रुतोक्त पित्त और कफ द्वारा विदग्धदर्शन मानव, पित्त और कफके बढ़ जानेसे जिसकी दर्शनशक्ति ह्रास हो गई हो, जिसकी आंखके सामने धुआं सा दिखाई पड़ता हो, उसे धूमदर्शी कहते हैं। सुश्रुतमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—शोक, ज्वर, परिश्रम और मस्तककी अभिताप द्वारा दृष्टिके अभिहत हो जानेसे सभी पदार्थ धूम्रवर्ण दीख पड़ते हैं, इसीको धूमदर्शी कहते हैं।

धूमधड़क्का (हिं० पु०) समारोह, भारी आयोजन, ठाट बाट।

धूमधर (सं० पु०) अग्नि, आग।

धूमध्वज (सं० पु०) धूमः ध्वजः केतुरिव यस्य। अग्नि आग।

धूमनाड़ी (सं० स्त्री०) प्रायोगिकादि धूम प्रयोगार्थ नला कार यन्त्र, नलके आकारका एक यन्त्र जिससे रोगीको धुआं सेवन कराया जाता है।

धूमप (सं० त्रि०) धूमं धूमपानं पिवति पा-क। तपस्याके निमित्त धूममात्रपानकारी, तपस्याके लिए जो केवल धुआं पी कर रहता हो। २ धूमपायिमात्र, धुम पीनेवाला।

धूमपथ (सं० पु०) धूमोपलक्षितः पन्थाः अप्समासान्तः। पितृयान। २ धूमप्रचारमार्ग, धुआं निकलनेका रास्ता।

धूमपान (सं० क्ली०) धूमस्य पानं ६ तत्। सुश्रुतोक्त नेत्र और व्रणरोगनाशक धूमविशेष पान। इसका विवरण धूम शब्दमें देखो।

हम देशमें हम लोग इसे तमाकू पीना कहते हैं। तमाकू पीनेमें धूमपान करना होता है, इसीसे इसका धूमपान नाम पड़ा।

इसका विषय भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है— धूमपान ६ प्रकारका है शमन, वृंहण, रेचन, कासघ्न, वामन और व्रणधूपन। मध्य और प्रायोगिक ये दो शब्द शमन शब्दके, स्नेहन और मृदु वृंहण धूमके, शोधन और तीक्ष्ण ये दो शब्द रेचन धूमके पर्याय हैं।

बारह वर्षके लड़केको और अस्सी वर्षके वृद्धको धूम पान करना मना है। यदि धूमपान सम्यक् प्रकारसे प्रयो-जित हो, तो कास, श्वास, प्रतिश्याय, मन्याग्रह, हनुग्रह, शिरोरोग और वातश्लेष्मिक रोग प्रशमित होते हैं, इन्द्रिय, वाक्य और मनको प्रसन्नता होती है। केश, श्मश्रु दन्त मजबूत होते हैं तथा मुखकी दुर्गन्धि जाती रहती है।

जब धूम प्रयोग करना हो तब नलको त्रिखण्ड तथा तीन पर्व समन्वित करना आवश्यक है। इसके स्थूलता कनिष्ठ अङ्गुलिसे और अभ्यन्तरका छिद्र राजमाषके सदृश रहे।

नलकी दीर्घता।—शमनधूमके प्रयोगमें नलको लम्बाई रोगीकी उंगलीसे ४० उंगली, कासघ्न धूमप्रयोगमें १६ उंगली और वामन धूमप्रयोगमें १६ उंगलीकी होनी चाहिये। व्रणधूपनार्थ जो नल हो ८ उंगलीका होता है, उसकी स्थूलता मटर वा बरटके सदृश और छिद्रका परिमाण उतना ही रहना आवश्यक है जितनेमें कुलथी वा कलाय सहजमें आ जा सके।

धूमग्रहणका नियम।—१२ उंगली लम्बी साथ साथ पतले एक सरकण्डेको ले कर उसे दो तोला परिमित धूमोपयोगी औषधके कल्क द्वारा ८ उंगली तक चारों ओर लेप दे, बाद उसे छायामें सुखा ले। भलीभांति सूख जाने पर सरकण्डेको धीरे धीरे अपनीत करके उस कल्क-की बत्तीको स्नेहोक्त करे। बाद उसके अग्रभागको अङ्गारको अग्निसे जला कर उसके दूसरे भागको मुखमें लगा धूमपान करे। धूमको पहले मुख हो कर पान करना चाहिये और मुख ही कर ही निकालना चाहिये। पीछे नासिका द्वारा पान कर मुख द्वारा उसे निकाल सकते हैं।

जहां व्रणधूपन करना होता है, वहां प्रज्वलित अङ्गारके ऊपर एक सरकण्डेको स्थापन कर उसके ऊपर कल्क औषध रख देते हैं। पीछे एक दूसरे सछिद्र सर-कण्डेसे उसे ढक देते हैं। जब उस छिद्रमेंसे धुआं निकलने लगता है तब नलके एक मुखको छिद्रमें और दूसरे मुखको क्षत स्थानमें लगा कर धूमप्रयोग करते हैं।

शमनधूमके प्रयोगमें एलादियोंका कल्क, वृंहण धूममें स्निग्ध,सर्जरस, रेचन धूममें तीक्ष्ण द्रव्योंका कल्क, कासघ्न धूममें कण्टकारी और मिर्च, वामन धूपमें स्नायु चर्मादि तथा व्रणमें धूमप्रयोग करना चाहिये। धूमपान करके मनस्ताप और क्रोध बिलकुल नहीं करना चाहिये। सुवर्णादि धातु, नल अथवा वांस द्वारा धूमपानका नल बनाना चाहिये। श्रान्त, भययुक्त, दुःखित, गर्भिणी, रुक्ष, क्षीण आदिके धूमपान करनेसे अथवा असमयमें अधिक मात्रामें इसका सेवन करनेसे नाना प्रकारके उपद्रव होते हैं। उपद्रवके उपस्थित होने पर उसकी शान्तिके लिए घृतपान, नस्य, अञ्जन और सन्तर्पण करे तथा घृत, इक्षु-रस, द्राक्षा दुग्ध और मधुराम्लके संयोगसे वमन कराना हितकर है। (भावप्र० पूर्वख०) विशेष विवरणके लिये धूम शब्दमें देखो।

धूमपोत (सं० पु०) अग्निकीट, धुआँकश।

धूमप्रभा (सं० स्त्री०) धूमस्य प्रभा इव प्रभा यस्याः। १ धूमान्धकार नरक, वह नरक जो सदा धूए से भरा रहता है। (त्रि०) २ धूम्रवर्ण, धुएं के रंगका।

धूमप्राश (सं० त्रि०) धूमं प्राश्नाति प्र-अश-अण्। १ धूमभक्षक तपस्विभेद, जो केवल धुआँ पी कर तपस्या करता हो।

धूममहिषी (सं० स्त्री०) धूमस्य महिषीव इव तत्। कुज्झटिका, नीहार, कुहासा।

धूममार्ग (सं० पु०) धूमपथ, धूएँका रास्ता।

धूममृत्तिका (सं० स्त्री०) स्वर्ण शोधनयोग्य कृष्ण मृत्तिका, एक प्रकारकी काली मट्टी जिससे सोना सोधा जाता है।

धूमयोनि (सं० पु०) धूम एव योनिरुत्पत्तिकारणं यस्य। १ मेघ, बादल। यज्ञके धुएँसे उत्पन्न मेघसे जो वृष्टि होती है, वह द्विजोंके लिये शुभ है। दावानलसे जो धुआँ निकलता है, वह धनहितकर है, अभिचाराग्निके धुएँसे जो मेघ बनता है, उससे भूतका नाश होता है और मृत व्यक्तिके चिता-धूमसे जो मेघ बनता है वह अमङ्गल है। २ मुस्तका, मोथा।

धूमर (सं० पु०) दृष्टिमण्डलगत रोगविशेष, आँखका वह रोग जिससे सभी चीजें धुआँसी दिखाई पड़ती है।

धूमरज (सं० स्त्री०) १ गृहधूम, घरका धुआँ। २ घरके धुएंकी कालिख जो छत और दीवारमें लग जाती है।

धूमल (सं० पु०) धूमवद्वर्णं लातीति ला-क। १ कृष्णलोहितवर्ण, लालिमायुक्त काला रंग। (त्रि०) २ कृष्णलोहित वर्णयुक्त, धुएं के रंगका, सुँघनीके रंगका।

धूमला (हिं० वि०) १ ललाई लिये काले रंगका, धुएँके रंगका। २ धुंधला, जो चटकीला न हो। ३ जिसकी कान्ति मन्द हो, मलिन।

धूमवत् (सं० स्त्री०) धूमः विद्यतेऽस्य धूम-मतुप्। १ धूमयुक्त पर्वत। २ जिसमें या जहां धुआँ हो, धुएंवाला।

धूमवर्ण (सं० पु०) १ धूल, रज, गर्द। २ एक नागराज।

धूमवर्त्मन् (सं० स्त्री०) धूमस्य वर्त्म। धूमपथ, धुएँका रास्ता।

धूमशिख—दैत्यविशेष। कथासरित्सागर ग्रन्थमें मृगाङ्कभुज राजाकी कथा इस प्रकार लिखी है—

अग्निशिख नामक एक राक्षसके रूपशिखा नामकी अनुपम-रूप-लावण्यशालिनी एक कन्या थी। मृगाङ्कभुजने उससे विवाह करना चाहा। इस पर अग्निशिखने राजासे कहा कि यदि आप अमुक अमुक काम कर सकें तो आपकी इच्छा पूरी हो सकती है। रूपशिखा इन्द्रजाल विद्यामें निपुण थी। उसकी सहायतासे जब राजा मृगाङ्कभुज अग्निशिखके कहे हुए दुष्कर कार्य कर चुकनेके बाद उसके पास गये तो उसने फिर कहा, "यहांसे दक्षिण-दिशामें दो योजन कोसकी दूरी पर एक मन्दिर है। वहां मेरा भाई धूमशिख रहता है। अतः आप अभी वहांके लिये चल पड़ें। मन्दिरके सामने जा कर आप यह बात कहें, धूमशिख! मैं तुम्हें सदल निमन्त्रण करनेके लिये अग्निशिखसे भेजा गया हूं। जल्द दो वहां चलो, क्योंकि कल रूपशिखाका विवाह होगा।' यह काम करके यदि आप यहां पुनः लौट आवेंगे तो कल ही रूपशिखाको आपसे ब्याह दूं।" धूर्त राक्षसकी बातमें पड़ कर मृगाङ्कभुज यह काम करनेको राजी हो गये। पीछे उन्होंने रूपशिखाके पास जा कर ये सब बातें कह सुनाईं। यह सुन कर रूपशिखा उनके हाथोंमें थोड़ी मट्टी, जल, काँटा, आग तथा साथमें एक तेज घोड़ा दे कर बोली, "इस घोड़े पर सवार हो कर उक्त मन्दिरके सामने जा पहुंचिये और वहां आमन्त्रण-वाक्य उच्चारण कर वायुवेगसे पुनः लौट आइये। आते समय यदि धूमशिख आपका पीछा करते दीख पड़े, तो उसी समय पीछेकी ओर इस मट्टीको फेंक देवें। इस पर भी यदि वह अनुसरण करता ही आवे, तो इस जलको उसी तरह फेंकोगे। इतने पर भी यदि वह पीछा न छोड़े, तो तीसरी बार काँटेको और सबसे पीछे अग्निको निक्षेप करोगे। ऐसा करनेसे वह आपका अनुसरण करना छोड़ देगा। विलम्ब नहीं कीजिये, अभी तुरत रवाना हो जाइये। आज ही आपको मेरे इन्द्रजालका प्रभाव देखनेमें आयगा।" मृगाङ्कभुजने तदनुसार मन्दिरके सामने पहुंच कर पूर्वकथित भावसे निमन्त्रण वाक्य उच्चारण किया और घोड़े पर चढ़ उसे जोरसे चाबुक लगाया। थोड़ी ही दूर जानेके बाद वे क्या देखते हैं कि धूमशिख बहुत वेगसे पीछा कर रहा है। उसी समय उन्होंने रूपशिखाकी दी हुई मट्टी फेंकी। उस मट्टीसे एक बहुत ऊंचा पहाड़ तैयार हो गया। जब उन्होंने देखा कि

राक्षस बहुत आसानीसे पहाड़ लांघ कर आ रहा है, तब रूपशिखाके कथनानुसार पुनः उसकी ओर जल फेंका। इस समय जलसे एक बड़ी नदीकी उत्पत्ति हुई। बहुत कष्टसे राक्षस उसे भी पार कर आया। तब उन्होंने फिर काँटेको फेंका जिससे उस जगह एक प्रकाण्ड कण्टकाकीर्ण जङ्गलका आविर्भाव हुआ। जब राक्षस उससे भी निकल आया, तब अन्तमें शृङ्गभुजने रूपशिखाकी दी हुई अग्नि पृथ्वी पर फेंकी जिससे प्रचण्ड अग्निराशिने निकल कर राक्षसकी गति रोक दी। राक्षस बहुत डर गया और रूपशिखाके ऐन्द्रजालिक मोहसे हतबुद्धि हो बहुत थके मारे अपने मन्दिरको वापिस हो गया।

धूमस (सं० पु०) शाक, साग।

धूमसार (सं० पु०) गृहधूम, घरका धुआँ।

धूमसी (सं० स्त्री०) रोटिकाविशेष, धुआँस उरदका आटा।

उरदकी दालको पानीमें भिगो कर उसकी भूसीको फेंक देते, बाद उसे धूपमें सुखाते हैं। अन्तमें उसको चक्कीमें पीसते हैं, इसीको धूमसी कहते हैं। इसकी अच्छी रोटी बनती है। यह कफ, पित्तनाशक और वायुवर्द्धक है।

धूमसंहति (सं० स्त्री०) धूमस्य संहतिः ६-तत्। धूमसमूह, धुएँका जमाव।

धूमा—मध्यप्रदेशके अन्तर्गत सिउनी जिलेका एक ग्राम। यह लखनादनसे १२ मील और जब्बलपुरसे ३२ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। यहाँ स्कूल, थाना और छावनी है। लोकसंख्या प्रायः १००० है। यह स्थान समुद्रपृष्ठसे १८००० फुट ऊँचे पर बसा हुआ है।

धूमाक्ष (सं० पु०) धूम इव अक्षि यस्य बहुव्रीह्यस्य, षच समासान्तः। धूमतुल्य नेत्रयुक्त, वह जिसकी आँखें धुएँसी हों।

धूमाङ्ग (सं० पु०) धूम इव अङ्गं यस्य। १ शिंशपा वृक्ष, शीशमका पेड़। (त्रि०) २ धूमतुल्य अङ्गयुक्त, जिसका अंग धुएँके समान हो।

धूमाग्नि (सं० पु०) धूमप्रधानोऽग्निः मध्यलो० कर्मधा०। अग्निभेद, बिना ज्वाला या लपटकी आग।

धूमादि (सं० पु०) धूम आदिर्यस्य। पाणिनिगणसूत्रोक्त देशवाचक शब्दगण। यथा—धूम, खण्डक, शशादन, अर्जुनाव, माहकस्थली, आनकस्थली, माहिषस्थली, मानस्थली, अट्टस्थली, मद्रुकस्थली, समुद्रस्थली, दाण्डायनस्थली, राजस्थली, विदेह, राजगृह, सात्रासाह, शष्पमित्रवर्द्ध, भक्षाली, मद्रकूल, आञ्जीकूल, द्व्याहाव, त्र्याहाव, संस्फीय, बर्बर, वर्ण्य, गर्त, आनर्त्त, माठर, पाथेय, घोष, पल्ली, आराज्ञी, धार्त्तराज्ञी, आवय, तीर्थ, कुक्षि, अन्तरीप, द्वीप, अरुण, उज्जयिनी, पट्टार, दक्षिणापथ और साकेत। (पाणिनि)

धूमाभ (सं० पु०) धूमस्य आभा इव आभा यस्य। १ धूम्रवर्ण, धुएँका रंग (त्रि०) २ धूम्रवर्णयुक्त, धुएँके रंगका।

धूमावती (सं० स्त्री०) दशमहाविद्यान्तर्गत विद्याविशेष। दशमहाविद्याओंमेंसे एक देवी। धूमावतीका उत्पत्ति-विवरण तन्त्रशास्त्रमें इस प्रकार लिखा है—

एकबार पार्वतीको जब बहुत भूख लगी, तब उन्होंने महादेवसे कुछ खानेको माँगा। महादेवने कहा, घर जा कर भोजन करेंगे, इसलिये थोड़ी देर ठहरो। पर पार्वती क्षुधासे अत्यन्त आतुर हो कर महादेवको निगल गई। इस समय पार्वतीके शरीरसे धुआँ निकलने लगा। अन्तमें महादेवने माया द्वारा शरीर कल्पित कर कहा, "हे देवि! तुमने जब हमें खाया, तब तुम विधवा हो चुकी, अतः विधवाका वेश धारण करो। हमारे वरसे तुम इस वेशमें पूजी जाओगी और तुम्हारा नाम धूमावती होगा। दशमहाविद्या देखो।

तन्त्रसारमें लिखा है, कि कृष्णाचतुर्दशी तिथिमें पुरश्चरणकी सिद्धिके लिये धूमावतीका जप करना चाहिये। तन्त्रसारमें इनका पूजन, कवच, मन्त्र आदिका विशेष विवरण लिखा है।

धूमिका (सं० स्त्री०) धूम इवास्त्यस्याः इति धूम-ठन्, स्त्रियां टाप्। १ कुज्झटिका, कुहासा। २ पक्षीविशेष, एक चिड़ियाका नाम।

धूमित (सं० त्रि०) धूमोऽस्य सञ्जातः इति तारकादित्वादितच्। १ सञ्जातधूम, जिसमें धुआँ लगा हो। (पु०) २ दोषणीय मन्त्रभेद, तन्त्रोंके अनुसार वह दूषित मन्त्र जो साढ़े बारह अक्षरोंका हो।

धूमिता (सं० स्त्री०) वह दिशा जिसमें सूर्य जानेवाला हो।

धूमिन् (सं० त्रि०) धूमोऽस्त्यस्य बाहुल्येन इनि। १ बाहुल्य द्वारा धूम-युक्त, जहाँ बहुत धुआँ हो, धुएँसे भरा हुआ। जहाँ बाहुल्य या अधिकताका भाव नहीं होता, वहाँ मतुप् प्रत्यय हो कर धूमवत् होता है। स्त्रियां ङीप्। २ अजमीढ़की पत्नीभेद, अजमीढ़की एक पत्नीका नाम। ३ अग्निकी जिह्वाभेद, अग्निकी एक जिह्वाका नाम।

धूमोत्थ (सं० क्ली०) धूमादुत्तिष्ठति परस्पर सम्बन्धं नेति धूम-उद्-स्था-क। १ ब्रह्मक्षार, नौसादर। (त्रि०) २ धूमजातमात्र, धुएँसे निकला हुआ।

धूमोद्गार (सं० पु०) धूमस्य उद्गारः ६-तत्। १ धूमनिर्गम, धुएँका निकलना। २ जठराग्निके मन्दतासूचक पदार्थका उद्गार, अजीर्ण वा अपचके कारण आनेवाली धुएँकीसी कड़वी डकार। इस तरहकी डकार आने पर समझना चाहिये कि अग्नि मन्द है।

धूमोपहत (सं० पु०) धूमेन उपहतः ३-तत्। सुश्रुतोक्त धूमजात उपद्रवरूप रोगभेद। इसके लक्षणादिका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—

"अत ऊर्द्ध प्रवक्ष्यामि धूमोपहतलक्षणं" (सुश्रुत)

इसके बाद धूमकर्तृक उपहत होनेसे अर्थात् शरीरमें धुएँका प्रवेश होनेसे जैसा लक्षण होता है, उसका विषय कहते हैं। श्वास, हिचकी, खाँसी, कातरशब्द, दोनों आँखमें ज्वाला और रक्तवर्णता, निश्वासके साथ धूमका निकलना, धूमके सिवा दूसरे द्रव्यको गन्ध वा स्वाद कुछ भी मालूम न पड़ना, श्रवणशक्तिरहित होना और तृष्णा, दाह तथा ज्वरयुक्त अवसन्न और ज्ञानशून्य होना ये सब धूमोपहतके लक्षण हैं। इसका चिकित्साविधान इस प्रकार है—घृत, इक्षुरस, द्राक्षा, दुग्ध, चीनी वा मिस्रीका जल और मधुराम्लरस इनके द्वारा रोगीको अच्छी तरह वमन कराना चाहिये। वमन हो जानेसे कोष्ठ शुद्ध हो जाता है और धुएँकी गन्ध नहीं रहती। शरीरकी अवसन्नता, हिचकी, ज्वर, दाह, मूर्च्छा, तृष्णा, उदराध्मान, श्वास और कास ये सब उपद्रव भी जाते रहते हैं। बाद मधुर, लवण, अम्ल और चरपरा द्रव्य मुखमें रखनेसे जिह्वाद्वारा रस ग्रहण होता है और मन भी प्रसन्न रहता है। चिकित्सक इस रोगमें जिससे छिंक आवे, ऐसी औषधका प्रयोग करें। ऐसा करनेसे दृष्टि विशोधित होती है और मस्तक तथा ग्रीवा भी परिष्कार रहती है। पीछे जिससे अम्लरसकी उत्पत्ति न हो, ऐसे अविदाही, लघु, स्निग्ध, आहार रोगीको देना उचित है। (सुश्रुत)

धूमोर्णा (सं० स्त्री०) १ यमपत्नी, यमकी स्त्री। २ मार्कण्डेय पत्नी, मार्कण्डेयकी स्त्री।

धूमोर्णापति (सं० पु०) धूमोर्णायाः पतिः ६-तत्। यम।

धूम्या (सं० स्त्री०) धूमानां समूहः धूम पाशादित्वात् य टाप्। धूम समूह।

धूम्याट (सं० पु०) धूम्या इव अटति इति अट-अच्। पक्षिविशेष, भिङ्गराज नामकी एक चिड़िया। इसका संस्कृत पर्याय कलिङ्ग और भृङ्ग है।

धूम्र (सं० पु०) धूमं धूम्रवर्णं रातिति रा-क। पृषोदरादित्वात् साधुः। १ श्यामरक्तमिश्रितवर्ण, ललाई लिये काला रंग। इसका पर्याय—धूमल, कृष्णलोहित, कृष्णवर्ण और लोहितवर्ण हैं। २ सिल्हक, शिलारस नामका गन्ध द्रव्य। ३ तुरुष्क गन्धद्रव्य, लोबान। ४ असुरविशेष, एक असुरका नाम। ५ शिव, महादेव। ६ मेघ, बादल। ७ कुमारानुचरभेद, कुमारके एक अनुचरका नाम। ८ रामकी सेनाका एक भालू। ९ मानिक या लालका धुंधलापन जो एक दोष समझा जाता है। (त्रि०) १० धूम्रवर्णयुक्त, धुएँके रंगका, सुंघनी या भूरे रंगका।

धूम्रक (सं० पु०) धूम्र वर्णेन कायति इति कै-क। उष्ट्र, ऊँट।

धूम्रकेतु (सं० पु०) १ भरत राजाके एक पुत्रका नाम। जिस समय भगवान् संसारकी रक्षाके लिये कुछ विचार कर रहे थे, उसी समय भरतने विश्वरूपकी लड़की पञ्चजनीको ब्याहा था, जिसके गर्भसे सुमति, राष्ट्रभृत्, सुदर्शन, आवरण और धूम्रकेतु ये पांच पुत्र उत्पन्न हुए। २ तृणबिन्दुके एक पुत्रका नाम। (त्रि०) ३ धूम्रवर्ण ध्वजयुक्त, जिसकी पताका धुएँके रंगका हो।

धूम्रकेश (सं० पु०) १ पृथु राजाके एक पुत्रका नाम। २ कृशाश्वका पुत्र जो अर्चि नामकी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ

था। (त्रि०) ३ धूम्रवर्ण केशयुक्त, जिसके बाल ललाई लिये काले रंगके हों।

धूम्रपत्रा (सं० स्त्री०) धूम्रं धूम्रवर्णं पत्रं यस्याः अजादेराकृतिगणत्वात् टाप्। क्षुपविशेष, एक पौधेका नाम। इसका संस्कृत पर्याय—धूम्राह्वा, सुलभा, स्वयम्भुवा, गृध्रपत्रा, गृध्राणी, क्रमिघ्नी और श्रोमलान्त्रहा है। इसका गुण—तिक्त, उष्ण, रुचिकारक, शोथ, क्रमि और श्वासनाशक तथा अग्निप्रदीपक है।

धूम्रपत्रिका (सं० स्त्री०) धूम्रपत्रा देखो।

धूम्रमूलिका (सं० स्त्री०) धूम्रं मूलं यस्याः, कप् टापि अत इत्वं। शूलीतृण, एक प्रकारकी घास।

धूम्ररोहित (सं० पु०) धूम्रश्च रोहितश्च 'वर्णोवर्णेन' इति सूत्रेण कर्मधारयः। धूम्रवर्णमिश्रित रक्तवर्ण, ललाई लिये काला रंग।

धूम्रलोचन (सं० पु०) धूम्रे लोचने यस्य। १ कपोत, कबूतर। २ दानवराज शुम्भका एक सेनापति। जब देवीने शुम्भ निशुम्भके वधके लिये एक परम सुन्दरीका रूप धारण कर कहा था, 'जो मुझे युद्धमें जीतेगा उसे मैं वरमाला पहनाऊंगी,' तब शुम्भने सुग्रीव नामक एक दूतके मुखसे यह बात सुन कर उन्हें पकड़ लानेके लिये इसी धूम्रलोचनको भेजा था। धूम्रलोचन ६० हजार सेनाको साथ ले देवीके पास गया। जब धूम्रलोचन उनसे युद्ध करनेको प्रस्तुत हुआ, तब भगवतीने एक प्रचण्ड हुङ्कार किया जिससे ६० हजार सेनाके साथ धूम्रलोचन उसी जगह भस्म हो गया था।

(मार्कण्डेय चण्डी)

धूम्रलोहित (सं० पु०) धूम्रश्च लोहितश्च "वर्णोवर्णेन" इति सूत्रेण समासः। १ कृष्णवर्णमिश्रित रक्तवर्ण, ललाई लिये काला रंग। २ शिव, महादेव। ३ तद्युक्त, धुएंके रंगका।

धूम्रवर्ण (सं० पु०) धूम्रः वर्णः। १ कृष्णलोहित-वर्ण, ललाई लिये काला रंग। २ तुरुष्क, एक सुगन्धित द्रव्य। ३ धूमिनीसे उत्पन्न एक पुत्रका नाम। (त्रि०) ४ धुएंके रंगका।

धूम्रवर्णा (सं० स्त्री०) धूम्रवर्ण-टाप्। अग्निकी सात जिह्वाओंमेंसे एक।

धूम्रशूक (सं० पु० स्त्री) धूम्रः शूकः-इव रोम यस्य। उष्ट्र, ऊंट।

धूम्रशूल (सं० पु०) उष्ट्र, ऊंट।

धूम्रा (सं० स्त्री०) कर्कटीविशेष, एक प्रकारकी ककड़ी।

धूम्राक्ष (सं० त्रि०) धूमं धूमवर्णं अक्षि चक्षुर्यस्य, समासान्तविधौ अच् समास। १ धूम्रवर्ण-नेत्रयुक्त, जिसकी आंखें धूमले रंगकी हों। (पु०) २ तृणविन्दु वंशीय राजा हेमचन्द्रके पुत्र। ३ रावणका एक सेनापति। यह राम-रावण युद्धमें हनुमानके हाथसे मारा गया था।

धूम्राट (सं० पु०) पक्षिविशेष, भिंगराज नामकी चिड़िया।

धूम्रानीक (सं० पु०) १ शाक-द्वीपाधिपति मेधातिथिके एक पुत्रका नाम। २ तन्नामक तत्रस्थ वर्ष।

धूम्राभ (सं० पु०) धूम्रस्य आभा इव आभा-यस्य। धूम्रवर्ण आभा-युक्त, वह जिसकी कान्ति धूमले रंगसी हो।

धूम्रायण (सं० पु०) गोत्र-प्रवर ऋषिभेद, गोत्र-प्रवर्तक एक ऋषिका नाम।

धूम्रार्चिस् (सं० स्त्री०) शारदातिलकोक्त अग्निके दश विध कलान्तर्गत कलाभेद, शारदातिलकके अनुसार अग्निकी दश कलाओंमेंसे एक।

धूम्राश्व (सं० पु०) विशालराज सुचन्द्रका पुत्र, सूर्यवंशीय इक्ष्वाकुका प्रपौत्र।

धूम्राह्वा (सं० स्त्री०) धूम्रं वर्णं आह्वयते स्पर्द्धते आ-ह्वे क। धूम्रपत्रा, एक पौधेका नाम।

धूम्रिका (सं० स्त्री०) शिंशिपावृक्ष, शीशमका पेड़।

धूर (हिं० स्त्री०) एक घास।

धूरकट (हिं० पु०) लगानकी वह पेशगी जो जमींदारको असामीकी ओरसे जेठ आषाढ़में दी जाती है।

धूरडांगर (हिं० पु०) सींगवाला चौपाया, ढोर।

धूरधान (सं० पु०) धूलकी राशि, गर्द्दका ढेर।

धूरधानी (हिं० स्त्री०) १ गर्दकी ढेरी, धूलकी राशि। २ ध्वंस, विनाश।

धूरा (हिं० पु०) १ धूल, गर्द। २ चूर्ण, बुकनी।

धूरियाबेला (हिं० पु०) एक प्रकारका बेला।

धूरियामल्लार (हिं० पु०) मल्लार रागका एक भेद।

धूर्जटि (सं० पु०) धूः भारभूता जटियस्य, पारस्कर

अच्। सङ्कीर्णाख्य संख्याती इन्, धूर्गङ्गा जटास्य, अथवा धूर्त लोकचिन्ताया जटिः संघातो यत्र वा। शिव, महादेव।

धूर्त (सं० क्ली०) धूर्वतीति धूर्व-क्तन् (हसिमृग्रिण्वामि दमि लू पू धूर्विभ्य स्तन्। उण ३।८६) वा धूर-क्त। १ विट्लवण। २ लौहकिट्ट, लोहेको मैल। ३ धुस्तूरवृक्ष, धतूरा। ४ चोरक, चोर नामक गन्धद्रव्य। ५ खण्डलवण, एक प्रकारका नमक। ६ द्यूतकृत, जुआरी। जो जुआदि खेलता है, उसे धूर्त कहते हैं, क्योंकि वह सदा दूसरे पर दाव पेंच खेलनेका अवसर ढूंढ़ता रहता है, इसीसे उसका नाम धूर्त पड़ा है। (त्रि०) ७ वञ्चक, धोखा देनेवाला, दगाबाज ८ मायावी, छली, चालबाज।

"नराणां नापितो धूर्त्तः पक्षिणां चैव वायसः।

दंष्ट्रीणां च शृगालस्तु श्वेतभिक्षुस्तपस्विना॥" (पंचतन्त्र)

मनुष्योंमें नाई, पक्षियोंमें कौआ, पशुओंमें गीदड़, तपस्वीमें श्वेत भिक्षु ये स्वभावतः धूर्त होते हैं। अन्यत्र कहीं लिखा है कि स्वर्णकार, स्वर्णवणिक और कायस्थ ये तीन मनुष्योंमें धूर्त और दयाशून्य होते हैं। इन लोगोंका हृदय क्षुरधार सदृश और विनयादिशून्य होता है। मैं कहूं पीछे एक कायस्थ सद्गुणसम्पन्न हो सकता है किन्तु स्वर्णकार और स्वर्णवणिक सभी धूर्त होते हैं।

ये लोग विद्यासम्पन्न और देवद्विजके भक्त क्यों न हों, तो भी उन पर विश्वास नहीं करना चाहिये। ८ शठनायकविशेष, साहित्यमें शठनायकका एक भेद।

जहां जातिवाचक शब्दके साथ धूर्त्त शब्दका समास हो, वहां 'पोटायुवतीत्यादि' सूत्रसे परनिपात होता है और उसी जगह "वकधूर्त, शृगालधूर्त" इत्यादि रूप प्रयोग होता है।

धूर्त्तक (सं० पु०) धूर्त्त स्वार्थे कन्। १ शृगाल, गीदड़, स्त्रियां जातित्वात् ङीष्। २ कौरव्य कुलका नाग। ३ धूर्तकार, जुआरी। ४ केलिकदम्ब।

धूर्त्तकृत् (सं० पु०) धूर्व भावे तन्, धूर्त्तं हिंसनं करोतीति कृ क्विप् पितिकृतितुगागमश्च। १ धुस्तूर, धतूरा। (त्रि०) २ वञ्चनकारक, धोखा देनेवाला।

धूर्त्तचरित (सं० क्ली०) धूर्तस्य चरितं वर्णनीयत्वेनास्त्यत्र अच्। १ सङ्कीर्णाख्य नाटकप्रभेद, सङ्कीर्ण नाटकका एक भेद। २ धूर्तोंका चरित्र।

धूर्त्तजन्तु (सं० पु०) धूर्त्तश्चासौ जन्तुश्चेति नित्य कर्मधा मनुष्य। मनुष्यगण स्वाभाविक धूर्त्त होते हैं। इसीसे इन्हें धूर्त्त जन्तु कहते हैं।

धूर्त्तता (सं० स्त्री०) धूर्त्तस्य भावः धूर्त्त तल् टाप्। शठता, ठगपना, चालबाजी।

धूर्त्तमानुषा (सं० स्त्री०) धूर्त्तों हिंसितो मानुषो यया। राज्ञा।

धूर्त्तर (सं० पु०) पारद, पारा।

धूर्त्ता (सं० स्त्री०) शुक्ल कण्टकारी, सफेद भटकटैया।

धूर्त्ति (सं० पु०) धूर्वी हिंसायां क्तिच्। १ हिंसक। (स्त्री०) २ हिंसा।

धूर्धर (सं० पु०) धूरीति धृ-अच् धूरां धरः, पृषोदरादित्वात् दीर्घः। धुरन्धर, बोझा ढोनेवाला।

धूर्य (सं० पु०) १ विष्णु। २ ऋषभक।

धूर्वह (सं० त्रि०) वहतीति वह अच् धूरां वहः, पृषोदरादित्वात् दीर्घः। धुरन्धर, बोझा ढोनेवाला।

धूर्वी (सं० स्त्री०) धूर अजति अज क्विप् अजेर्वी इति वी। रथाग्र भाग, रथका अगला भाग। इसका पर्याय—यानमुख और धूः है।

धूल (हिं० स्त्री०) १ मट्टी, रेत आदिका महीन चूर, रज, गर्द। २ धूलके समान तुच्छ वस्तु।

धूलक (सं० क्ली०) धू-बाहुलकात् लक्। विष।

धूलधानी (हिं० स्त्री०) ध्वंस, विनाश।

धूला (हिं० पु०) खण्ड, टुकड़ा, कतरा।

धूलातिया—पश्चिम मालव एजेन्सीके अधीन एक छोटा सामन्त राज्य। यहांके सर्दार सिन्धियासे ४००) और होलकरसे ६००) रु० तनखाह पाते हैं।

धूलि (सं० स्त्री०) धूवति धूयते वेति धू-बाहुलकात् लि। १ पार्थिवचूर्ण, मट्टी, रेत आदिका महीन चूर। इसका पर्याय—रेणु, पांशु, रजस्, धूली, क्षितिकण, चोद्, चूर्ण, तूस, महीरजस्, व्रात, केतु, नमःकेतु, कचा और क्षिति, काचा है।

दीप, खाट, शरीरकी छाया, स्निग्धकेश, नखादि, छाग और मार्जारको धूलि पुराकृत पुण्य नष्ट करती है। झाड़ना, खर, उष्ट्र और स्त्रियोंकी पदधूलि शरीर पर नहीं लगानी चाहिये। लगानेसे इन्द्र और लक्ष्मी

भ्रष्ट हो जाती है। केवल इतना ही नहीं, बल्कि प्राणि-मात्रको ही धूलिविशेष अमङ्गलजनक है। २ व्याकुली भाव। ३ पराग। ४ गर्द्दभ, गधा।

धूलिकदम्ब (सं॰ पु॰) धूलीनां कदम्बं यत्र। १ नीप-कदम्बवृक्ष, एक प्रकारका कदम्ब। २ वरुणवृक्ष। ३ तिनिसवृक्ष। (क्ली॰) ४ धूलि समूह, धूलकी ढेरी।

धूलिकदम्बक (सं॰ पु॰) धूलिकदम्ब स्वार्थे कन्। नीप-कदम्बवृक्ष।

धूलिका (सं॰ स्त्री॰) धूलिरिव प्रतिकृतिः (इवे प्रति-कृतौ। पा ५।३।९६) इति सूत्रेण कन् टाप्। १ कुज्झ-टिका, कुहासा, कुहारा। २ नीहार, महीन जलकणोंकी झड़ी।

धूलिकुट्टिम (सं॰ क्ली॰) धूलीनां कुट्टिममिव। कृष्ट क्षेत्र, जोता हुआ खेत।

धूलिकेदार (सं॰ पु॰) धूलिप्रधानः केदारः मध्यपदलो॰ कर्मधा। १ कृष्टक्षेत्र, जोता हुआ खेत। २ वप्र, मट्टीका टीला।

धूलिगुच्छक (सं॰ पु॰) धूलीनां गुच्छक इव, इवार्थे कन्। पटवासक, अबीर जो होलीमें डाला जाता है।

धूलिजङ्घ (सं॰ पु॰) काक, कौवा।

धूलिध्वज (सं॰ पु॰) धूलिरिव ध्वजो यस्य। पवन, वायु, हवा।

धूलिपुष्पिका (सं॰ स्त्री॰) धूलिः परागस्तत्प्रचुरं पुष्पं यस्याः, कापि अत इत्वं। केतकी पुष्प। इसमें बहुत पराग रहता है, इसीसे इसका नाम धूलिपुष्पिका हुआ है।

धूलिया—१ बम्बईके खानदेश जिलेका एक तालुक। यह अक्षा॰ २०° ३८´ से २१° ८´ उ॰ और देशा॰ ७४° २६´ से ७५° पू॰में अवस्थित है। भूपरिमाण ७६० वर्ग-मील और लोकसंख्या लगभग १०४८५२ है। इसके उत्तरमें बोरदेश, पूर्वमें पवोरा और अमलनेर, दक्षिणमें नासिक जिला तथा पश्चिममें पिम्पलनेर है। यहां बहुतसे छोटे छोटे पहाड़ हैं जहां पांजड़ा और बोरी नदी प्रवा-हित हैं।

यह स्थान उर्वरा और स्वास्थ्यकर है। दक्षिणमें जलका कुछ अभाव है। यहांकी आय दो लाख रुपयेसे अधिककी है। वार्षिक वृष्टिपात २२ इञ्च है।

२ उक्त तालुकका एक प्रधान शहर। यह अक्षा॰ २०° ५४´ उ॰ और देशा॰ ७४° ४७´ पू॰ चालीसगांव रेलवे स्टेशनसे ३५ मील उत्तर पांजड़ा नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग २४७२६ है जिनमेंसे १८७६६ हिन्दू, ५३३३ मुसलमान और ४३५ जैन हैं।

यह नगर पुरातन और नूतन इन दो भागोंमें विभक्त है। पुरातन अंशमें अधिकांश दरिद्र मनुष्योंका वास है और नूतन अंशमें अच्छी अच्छी सड़कें और अट्टालिकाये हैं। वर्त्तमान शताब्दीके प्रारम्भमें यह नगर बहुत नगण्य समझा जाता था और लोलिंग या फतेहाबाद उपविभागके अधीन था। बाद निजामके आधिपत्यके समय खालिंग दौलताबादमें मिला दिया गया।

प्रवाद है, कि गोली राजाने यहां एक दुर्ग बनाया जिसका संस्कार मुगल-शासन कर्त्ताओंके समयमें हुआ था। हिन्दूराजाओंके हाथसे यह नगर पहले फरवके अधिपति, पीछे मुगल, निजाम और सबसे अन्तमें १७९५ ई॰को महाराष्ट्रोंके हाथ आया। १८०३ ई॰के भीषण दुर्भिक्षमें तथा होलकरके उत्पातसे यहांके अधि-वासिगण नगर छोड़ दूसरी जगह चले गये थे। दूसरे वर्ष बालाजी बलवन्तने बहुत कोशिश करके यहां घर बसाये। उन्होंने धूलिया नगरमें कचहरी स्थापित कर कुछ काल यहां राज्य किया। पीछे १८१८ ई॰में यह स्थान वृटिश गवर्नमेण्टके अधीन हुआ। उसी समयसे यहांकी लोकसंख्या धीरे धीरे बढ़ती जा रही है। शहरमें एक हाई स्कूल, एक शिल्प स्कूल, छः वर्नाक्यूलर स्कूल, २ अस्पताल, टेलिग्राफ और डाकघर हैं। इसके अलावा यहां राजस्वविभागके कार्यालय और दो सुबो-र्डिनेट जजकी अदालत हैं। १८६२ ई॰में यहां म्युनिस-पैलिटी स्थापित हुई है। शहरकी आय ७४४०० रु॰ है। प्रति मङ्गलवारको एक हाट लगती है जिसमें बहुतसे मनुष्य शस्यादि खरीदने और बेचनेको आते हैं।

धूलियान—बङ्गालके मुर्शिदाबाद जिलेके अन्तर्गत जङ्गी-पुर उपविभागका एक पल्ली ग्राम। यह अक्षा॰ २४° ४२´ उ॰ और देशा॰ ८७° ५८´ पू॰ भागीरथीके किनारे अव-स्थित है। लोकसंख्या प्रायः ४९८७ है। यहां धान,

उरद, चने, गेहूं और दूसरे दूसरे अनाजोंका अच्छा वाणिज्य होता है। यहां प्रतिवर्ष एक मेला लगता है।

धूली (सं० स्त्री०) धूलि ङीष्। धूलि, धूल, गर्द।

धूलीकदम्ब सं० पु०) कदम्बवृक्षविशेष, एक प्रकारका कदम्ब धूलिकदम्ब देखो।

धूलीपटल (सं० पु०) धूलीनां पटलं यत्र। १ उड्डीयमान धूलीसमूह, उड़ती हुई धूलका समूह। (क्लो०) धूलीनां पटलं ६-तत्। २ धूलिसमूह, धूलका ढेर।

धूलीमय (सं० त्रि०) धूली-मयट्। धूलिमय, जो धूलसे भरा हो।

धूलीमुष्टि (सं० स्त्री०) धूलीनां मुष्टिः ६-तत्। एक मुष्टि धूलि, एक मुट्ठी धूल।

धूल्यवगुण्ठन (सं० क्लो०) धूलीभिरिव गुण्ठनं ३-तत्। धूलिरोधक मुखाच्छादन, वह वस्त्र जो धूल रोकनेके लिये मुंह पर रखा जाता है।

धूसर (सं० पु०) धूनातीति धू-सरन्, मच् कित् (कृधूमादिभ्यः कित्। उण् ३।७३) १ ईषत् पाण्डुवर्ण, पीलापन लिये सफेद रंग, मटमैला रंग। २ गर्दभ, गदहा। ३ उष्ट्र, ऊंट। ४ कपोत, कबूतर। ५ तैलाकार, बनियोंकी एक जाति। कविकल्पलतामें धूसर वस्तु ये सब बतलाई गई हैं। यथा धूलि, मकड़ी, करभ, गृहगोधिका, कपोत, मूषिक, खङ्ग, काककण्ठ और खरादि। ५ वनचटक। (त्रि० ६ ईषत् पाण्डुवर्णयुक्त, धूलके रंगका, खाकी, मटमैला। काले और सफेद रंगको मिलानेसे धूसर रंग बनता है। ७ धूलियुक्त, धूल लगा हुआ, धूलसे भरा।

धूसरच्छदा (सं० स्त्री०) धूसर ईषत् पाण्डु वर्णो छदो यस्याः। श्वेतबुह्ना, सफेद बोना।

धूसरपत्रिका (सं० स्त्री० धूसरं पत्रं यस्याः ङीष्, ततः स्वार्थे कन्, टाप् टापि पूर्वस्वरस्य ह्रस्वः। १ हस्तिशुण्डीक्षुप, हाथी सूंडका पौधा। धूम्रविकाली। २ शिवआम्रीशाक।

धूसरवृक्ष (सं० पु०) धूसरवर्ण वृक्षविशेष।

धूसरा (सं० स्त्री०) धूसर टाप्। पाण्डुफलीक्षुप, पाण्डुफली।

धूसरा (हिं० वि०) १ धूलके रंगका, मटमैला, खाकी। २ धूल लगा हुआ।

धूसराह्वय (सं० पु०) गर्दभ, गधा।

धूसरित (सं० त्रि०) धूसरो ऽस्य सञ्जातः तारकादित्वादितच्। १ धूसरवर्णीकृत, धूसर किया हुआ, जो धूलसे मटमैला हुआ हो। २ धूलसे भरा हुआ, जिसमें धूल लिपटी हो।

धूसरी (सं० स्त्री०) १ गर्दभी गधी। २ एक किन्नरी।

धूसला (हिं० वि०) धूसरा देखो।

धूस्तूर (सं० पु०) धूस् कान्ति करणे भावे क्विप् तुर-क। धतूरा। धतूरा देखो।

धूस्तूरतैल (सं० क्लो०) तैलौषधभेद। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—कटुतैल ४ सेर, दशमूलका क्वाथ १६ सेर, कल्कार्थ दशमूल १ सेर इन सब द्रव्योंमें यथाविधान तैल प्रस्तुत करनेसे धूस्तूर तैल बनता है। इससे सान्निपातिक ज्वर, श्वास और कासरोग आरोग्य हो जाता है।

धृत (सं० त्रि०) धृ कर्मणि कर्त्तरि क्त। १ धारणविशिष्ट, धारण किया हुआ। २ स्थिरीकृत, स्थिर किया हुआ, निश्चित। ३ पतित। धृ-स्थितौ पतने च भावे क्त। ४ पतन। ५ स्थिति। ६ त्रयोदश मनु रौच्यका पुत्रभेद, तेरहवें मनु रौच्यके पुत्रका नाम। ७ द्रुह्यु-वंशीय धर्मका पुत्र।

धृतकेतु (सं० पु०) वसुदेवके बहनोई।

धृतदेवा (सं० स्त्री०) देवककी एक कन्या।

धृतपटा (सं० स्त्री०) गायत्रीभेद।

धृतमाली (सं० पु०) अस्त्रोंको निष्फल करनेका एक अस्त्र, अस्त्रोंका एक संहार।

धृतराजन् (सं० पु०) धृतो राजा प्राशस्त्येन येन। सौराज्य देश, वह देश जहां राजा अच्छी तरह प्रजापालन करते हों।

धृतराष्ट्र (सं० पु०) धृतं राष्ट्रं सुपाल्यतया यत्र। १ सौराज्यदेश, वह देश जो अच्छे राजाके शासनमें हो। २ वह जिसका राज्य दृढ़ हो। ३ नागभेद, एक नागका नाम। ४ कौरव राजभेद, एक कौरव राजा जो दुर्योधनके पिता और विचित्रवीर्यके पुत्र थे। इनकी कथा महाभारतमें इस प्रकार आई है—पुरुवंशमें शान्तनु नामके एक राजा थे जिन्होंने गङ्गासे विवाह किया। गङ्गाके गर्भसे उन्हें देवव्रत नामक पुत्र हुए जो जन-समाजमें भीष्मके नामसे प्रसिद्ध थे। भीष्मने विवाह न करनेकी प्रतिज्ञा

करके अपने पिताका विवाह सत्यवतीसे होने दिया सत्यवतीका दूसरा नाम मत्स्यगन्धा था। यह जब क्वारी थी, तभी उसे पराशरसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम द्वैपायन था। यही द्वैपायन महाभारतके प्रणेता महर्षि-श्रेष्ठ वेदव्यास हुए। सत्यवतीके गर्भसे शान्तनुको दो पुत्र उत्पन्न हुए जिनके नाम विचित्रवीर्य और चित्राङ्गद थे। चित्राङ्गद युवावस्थाके पूर्वही एक गन्धर्व द्वारा मारे गये। विचित्रवीर्य राजा हुए। इन्होंने कौशल्या-गर्भसे उत्पन्न काशिराजकी दो कन्याओं अम्बिका और अम्बालिकासे विवाह किया। कुछ दिन पीछे निःसन्तान अवस्थामें उनकी मृत्यु हुई। तब सत्यवतीने देखा कि सन्तानाभावसे यह वंश लुप्त हो जायगा।

इस कारण सत्यवती बहुत चिन्तित हुई और उन्होंने अपने पुत्र द्वैपायन वेदव्यासका स्मरण किया। स्मरण करनेके साथ ही व्यासदेव उस जगह पहुंच गये और बोले-माता मुझे किसलिये स्मरण किया है? तब सत्यवतीने कहा—पुत्र! तुम्हारा भाई विचित्रवीर्य बिना कोई संतान छोड़े चल बसा है। तुम उसके क्षेत्रमें पुत्र उत्पन्न करो। इस पर द्वैपायन सहमत हो गये और उन्होंने मातासे कहा, 'मैं आपके आज्ञानुसार धर्मका उद्देश करके आपका अभिप्राय पूर्ण करूंगा। किन्तु आपकी पुत्रवधू न्यायके अनुसार संवत्सर व्रतका अनुष्ठान करें जिससे वे विशुद्ध हो जांय। क्योंकि व्रतानुष्ठान किये बिना कोई कामिनी मेरे समीप नहीं आ सकती है।

तब सत्यवतीने कहा, 'राजमहिषीगण जिससे अभी तुरंत गर्भवती हो जांय, वैसा उपाय करो। राज्यमें राजाके नहीं रहनेसे प्रजा अनाथ हो कर विनष्ट हो जायगी; देवगण राज्यसे भाग जांयगे और राज्यमें अराजकता फैल जायगी, इसलिए तुम फौरन ही गर्भधारण करो। उस गर्भजात बालकको भीष्म संवर्द्धित करेंगे।' व्यासने कहा, यदि शीघ्र ही पुत्र लेना चाहती हो, तो महिषीगण मेरी विरूपताको सहन कर ले यही उनका परम व्रत होगा। इतना कह कर व्यासदेव अन्तर्हित हो गये। तब सत्यवती अपनी पुत्रवधूके पास जा कर बोली, 'हे सुश्रोणि! देवराज सरीखा पुत्र प्रसव करो जो हमारे इस गुरुतर राज्यभारके वहन कर सके।'

यथासमय जब कौशल्या ऋतुस्नाता हुई, तब सत्यवतीने उन्हें सुसज्जीकृत शय्या पर बैठा कर कहा, 'हे पुत्री! तुम्हारे एक देवर हैं, आज रातको वे तुम्हारे पास आयेंगे, तुम अप्रमत्त हो कर उनकी प्रतीक्षा करना।' अम्बिका सासकी यह बात सुन कुरुवंशीय प्रधान पुरुषोंके नाम ले कर शय्या पर पड़ रहीं। जब सब दीप घरमें जल रहे थे कि वेदव्यास अम्बिकाके घर आ पहुंचे। अम्बिकाने उनका कृष्णवर्ण, पिङ्गल जटाजूट, बड़ी बड़ी दाढ़ी और चमकीली आंखें देख अपनी आंखें मूंद लीं। द्वैपायनने माताके प्रियानुष्ठानके लिये अम्बिकाके साथ समागम किया, किन्तु अम्बिका डरके मारे उन्हें देख न सकीं। पीछे जब व्यास घरसे बाहर निकले, तब माताने उनसे पूछा, 'हे पुत्र! क्या इस वधूसे गुणवान् पुत्र उत्पन्न होगा?' इस पर व्यासने कहा, 'इसके गर्भसे अयुत नाग सदृश बलवान्, विद्वान्, राजर्षिश्रेष्ठ और अत्यन्त बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न होगा और उस महात्माके एक सौ पुत्र होंगे, किन्तु वह अपनी माताके दोषसे अन्धा होगा।' यथा समय अम्बिकाने वैसा ही अन्ध पुत्र प्रसव किया। इन्हींका नाम धृतराष्ट्र था। धृतराष्ट्र जन्म ही के अन्धे निकले, इस कारण वेदव्यासने अम्बालिकाके साथ नियोग किया जिससे पाण्डुकी उत्पत्ति हुई और सुदेष्णा दासीके साथ नियोग होने पर विदुरका जन्म हुआ। अन्धे होनेके कारण धृतराष्ट्र राजा न हो सके। पाण्डु, जो छोटे थे राज्यसिंहासन पर बैठे। धृतराष्ट्रके साथ गान्धार-राजकी कन्या गान्धारीका विवाह हुआ। गान्धारीके गर्भसे एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए जिनमेंसे दुर्योधन, दुःशासन, विकर्ण और चित्रसेन ये ही चार प्रधान थे। एक दिन व्यासदेव क्षुधार्त्त हो गान्धारीके समीप पहुंचे। जब गान्धारी उन्हें अच्छी तरह सन्तुष्ट कर दिया, तब उन्होंने गान्धारीको वर दिया—तुम्हारे पतिके सदृश सौ पुत्र होंगे। पीछे यथासमय गान्धारीको धृतराष्ट्रसे गर्भ रहा। गर्भधारणके बाद दो वर्ष बीत चुकने पर भी कोई सन्तान उत्पन्न न हुई। इससे गान्धारीका समय बहुत कष्टसे बीतने लगा। इसी समय जब गान्धारीने सुना कि कुन्तीने तेजस्वी पुत्र प्रसव किया है, तब उन्होंने ब्रिना किसीको कुछ कहे अपने गर्भमें आघात पहुंचाया जिससे लौहपिण्ड

सरीखा कठिन मांसपेशी बाहर निकली। ज्यों ही गान्धारीने उसे परित्याग करना चाहा, त्यों ही वेदव्यास वहां आ पहुंचे और बोले, 'क्यों तुम ऐसा अन्याय काम कर रही हो। मैंने जो वर तुम्हें दिया है, वह कभी अन्यथा नहीं हो सकता। अभी तुम घीसे भरे हुए एक सौ घड़े लावो और उन्हें किसी गुप्त स्थानमें अच्छी तरह रख छोड़ो और ठंढे जलसे इस मांस-पेशीको सिक्त कर डालो।' पीछे जलाभिषेक करते करते वह मांसपेशी विदीर्ण हो गई। उसका प्रत्येक खण्ड अङ्गुष्ठ पर्वप्रमाण-का हो कर कालक्रमसे एक सौ संख्याओंमें विभक्त हुआ। बाद वे सब मांसपेशी-खण्ड घृतपूर्ण घड़ोंमें डाल कर गुप्त स्थानमें रख दिये गये। 'इन्हें दो वर्ष बाद खोलना' यह कह कर व्यासदेव अन्तर्हित हो गये। यथासमय उन सब मांसपेशीके खण्डोंमसे पहले दुर्योधनका जन्म हुआ। दुर्योधन जन्म लेनेके साथ ही गर्भकी नाईं रेंकने लगा और उस समय बहुत अमङ्गल दिखाई देने लगे। इस पर विदुर आदिने उस पुत्रको छोड़ देनेके लिये धृत-राष्ट्रसे बार बार अनुरोध किया, किन्तु पुत्रस्नेहसे वशी-भूत हो कर धृतराष्ट्र उसे परित्याग कर न सके। बाद एक मासके अभ्यन्तर एक सौ पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुईं। गान्धारी जब गर्भके क्लेशसे दुःखित थी, उस समय एक वैश्या धृतराष्ट्रकी परिचर्यामें नियुक्त थी। उस वैश्या-के धृतराष्ट्रसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम युयुत्सु रखा गया। इन्होंने वैश्या और क्षत्रियके समागमसे जन्म ग्रहण किया था, इस कारण ये करण हुए थे। ज्येष्ठादि-क्रमसे धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंके नाम ये हैं—१ दुर्यो-धन, २ युयुत्सु, ३ दुःशासन, ४ दुःसह, ५ दुःशल, ६ दुर्मुख, ७ विविंशति, ८ विकर्ण, ९ जलसन्ध, १० सुलो-चन, ११ विन्द, १२ अनुविन्द, १३ दुर्द्धर्ष, १४ सुबाहु, १५ दुष्प्रधर्षण, १६ दुर्मर्षण, १७ दुर्मुख, १८ दुष्कर्ण, १९ कर्ण, २० चित्र, २१ उपचित्र, २२ चित्राक्ष, २३ चारु, २४ चित्राङ्गद, २५ दुर्मद, २६ दुष्प्रहर्ष, २७ विवित्सु, २८ विकट, २९ सम, ३० ऊर्णनाभ, ३१ पद्म-नाभ, ३२ नन्द, ३३ उपनन्द, ३४ सेनापति, ३५ सुषेण, ३६ कुण्डोदर, ३७ महोदर, ३८ चित्रबाहु, ३९ चित्र-वर्मा, ४० सुवर्मा, ४१ दुर्विरोचन, ४२ अयोबाहु, ४३ महाबाहु ४४ चित्रचाप, ४५ सुकुण्डल, ४६ भीम-वेग, ४७ भीमबल, ४८ बलाकी, ४९ भीमविक्रम, ५० उग्रायुध, ५१ भीमशर, ५२ कनकायु ५३ दृढ़ायुध, ५४ दृढ़वर्मा, ५५ दृढ़क्षत्र, ५६ सोमकीर्त्ति, ५७ अनुदर, ५८ जरासन्ध, ५९ दृढ़सन्ध, ६० सत्यसन्ध, ६१ सहस्रवाक्, ६२ उग्रश्रवा, ६३ उग्रसेन, ६४ सेनानी, ६५ दुष्पराजय, ६६ अपराजित, ६७ पण्डितक, ६८ विशालाक्ष, ६९ दुरा-धर्ष, ७० दृढ़हस्त, ७१ सुहस्त, ७२ वातवेग, ७३ सुवर्चा, ७४ आदित्यकेतु, ७५ बह्वाशी, ७६ नागदत्त, ७७ अनु-यायी, ७८ निषङ्गी, ७९ कवची, ८० दण्डी, ८१ दण्डधार, ८२ धनुर्ग्रह, ८३ उग्र, ८४ भीमरथ, ८५ वीर, ८६ वीर-बाहु, ८७ अलोलुप, ८८ अभय, ८९ रौद्रकर्मा, ९० दृढ़-रथ, ९१ अनाधृष्य, ९२ कुण्डभेदी, ९३ विरावी, ९४ दीर्घलोचन, ९५ दीर्घबाहु, ९६ महाबाहु ९७ व्यूढोरु, ९८ कनकाङ्गद, ९९ कुण्डज और १०० चित्रक। कन्या-का नाम दुःशला था। धृतराष्ट्रके वैश्यागर्भजात युयुत्सु-के सिवा और सब पुत्र कुरुक्षेत्रकी लड़ाईमें महावीर भीमके हाथसे मारे गये। धृतराष्ट्रके कणिक नामक एक मन्त्रणाकुशल मन्त्री थे। इन्हींकी मन्त्रणा भारत-युद्धकी जड़ समझी जा सकती है। धृतराष्ट्र बहुत बलवान् थे। वेदव्यासके वरसे इन्हें सौ हाथियोंका बल था।

महायुद्धके बाद जब इन्होंने सुना कि भीमके हाथसे सौ पुत्र मारे गये, तब इन्होंने भीमको आलिङ्गन करना चाहा। श्रीकृष्णके परामर्शसे लौहभीम इनकी गोदमें दिया गया जिसे इन्होंने क्रोधालिङ्गनसे चूर चूर कर डाला था। जब लड़ाई सम्पूर्ण रूपसे समाप्त हो गई, तब पाण्डवोंने अश्वमेधयज्ञ करके राज्यभार ग्रहण किया और धृतराष्ट्र तपस्याके लिये वन चले गये। वहां छः मास रहनेके बाद इन्होंने दावानलमें पत्नीके साथ प्राणत्याग किया। (महाभारत)

जैमिनी भारतमें धृतराष्ट्र नामक एक नागका उल्लेख देखनेमें आता है। यह धृतराष्ट्र नाग कद्रुका पुत्र था। इसके साथ पाण्डवोंकी दुश्मनी थी। जब अर्जुन अश्व-मेध यज्ञका अश्वरक्षक हो कर मणिपुर गये थे, उसी समय अर्जुनके पुत्र बभ्रुवाहनने अश्वमेधका घोड़ा पकड़ा। इससे दोनोंमें लड़ाई छिड़ गई। इस युद्धमें अर्जुन आदि

प्रायः मरने मरने पर हो गये। पातालमें वासुकीनागके पास सञ्जीवन मणि थी। उलूपीके परामर्श और माताकी आज्ञासे बभ्रुवाहन उस मणिको लानेके लिये पाताल गये। उस सञ्जीवक मणिके स्पर्शसे ही अर्जुनादि होशमें आ जायेंगे, ऐसा उलूपीने कह दिया था। इधर धृतराष्ट्र नागने वासुकीको मणि देनेसे मना किया। सुतरां सर्पोंके साथ बभ्रुवाहनको भयङ्कर युद्ध करना पड़ा जिसमें सर्पगण परास्त हो कर भाग गये। वासुकीने हार मान कर बभ्रुवाहनको सञ्जीवकमणि दे दी। बाद धृतराष्ट्रने दुर्बुद्धि और दुःस्वभाव नामक अपने दो लड़कोंको इसका बदला लेनेके लिये अर्जुनसे लड़ने कहा। इस पर दोनों नागोंने रणक्षेत्रमें जा कर अर्जुनका मस्तक काट डाला और उसे ले कर महर्षि बकदालभ्यके वनमें फेंक दिया। इधर अर्जुनके शरीरमें मस्तक नहीं देख कर चारों ओर हाहाकार मच गया। तब श्रीकृष्णकी सहायतासे धृतराष्ट्रके दोनों पुत्र मारे गये और अर्जुनका छिन्न मस्तक भी जोड़ दिया गया। पीछे उस सञ्जीवकमणिके स्पर्शसे अर्जुन पुनर्जीवित हो गये। (जैमिनीभारत)

४ जनमेजयके ज्येष्ठ पुत्र। ५ बलि राजाके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश ३।७४) ६ पक्षिविशेष, एक चिड़ियाका नाम। ७ गन्धर्वभेद, एक गन्धर्व।

(विष्णुपु० २।१०।१५)

धृतराष्ट्री (सं० स्त्री०) धृतराष्ट्र-ङीष्। १ धृतराष्ट्रकी स्त्री। २ हंसपत्नी, कश्यपऋषिकी पत्नी ताम्रासे उत्पन्न। ५ कन्याओंमेंसे एक।

धृतवत् (सं० त्रि०) धृत-मतुप्, मस्य, व। धारणकारी, ग्रहण करनेवाला।

धृतवर्मन् (सं० पु०) धृतं वर्म येन। १ गृहीत कवच, वह जो कवच धारण किये हो। २ भारतप्रसिद्ध त्रिगर्त्तके राजा केतुवर्माके पुत्र। इनके भाईका नाम सूर्यवर्मा था। जब अर्जुन अश्वमेध-घोड़ेके पीछे पीछे गये थे, तब उनके साथ इनका युद्ध हुआ था। इस युद्धमें इनके भाई केतुवर्मा और सूर्यवर्मा मारे गये थे। इनके मरनेके बाद धृतवर्मा अर्जुनके साथ कुछ समय तक लड़े, पीछे पराजित हो कर उन्होंने अर्जुनकी अधीनता स्वीकार कर ली।

(भारत आश्व० ७४ अ०)

धृतव्रत (सं० त्रि०) धृतं व्रतं येन। १ गृहीत व्रत, जिसने व्रत धारण किया हो। (पु०) २ पुरुवंशीय जयद्रथके पुत्र राजा विजयका पौत्र।

धृतात्मन् (सं० त्रि०) धृत आत्मा येन। १ धैर्यान्वितचित्त, आत्माको स्थिर रखनेवाला, धीर। (पु०) २ विष्णु।

धृति (सं० स्त्री०) धृ-क्तिन्। १ धारण, धरने या पकड़नेकी क्रिया। २ तुष्टि, सन्तोष, तृप्ति। ३ धैर्य, मनकी दृढ़ता, चित्तकी अविचलता। ४ विष्कम्भादिका अष्टम योगभेद, फलित ज्योतिषमें एक योग। इस योगमें जिसका जन्म होता है, वह बुद्धिमान्, सर्वदा सन्तुष्टचित्त, वाग्मिप्रवर, सुशील और विनयान्वित होता है। ५ सुख, मुँह। ६ गौर्यादि षोड़श मातृकाके मध्य मातृकाभेद, सोलह मातृकाओंमेंसे एक। मातृका देखो। ७ अष्टादशाक्षरा वृत्ति छन्दोमात्र, अठारह अक्षरोंके वृत्तोंकी संज्ञा। इन छन्दके प्रतिपदमें १८ अक्षर होते हैं। इसके पाँचवें छठे और सातवें अक्षरमें यति होती है तथा इसके १, २, ३, ४ पाँचवां, ग्यारहवां, बारहवां, चौदहवां, पन्द्रहवां, सत्तरहवां, और अठारहवां अक्षर गुरु और शेष लघु होते हैं। ८ मानस-धारणाभेद।

धृतिको भी धारणा कहते हैं। जिस धारणा-शक्ति द्वारा मन प्राण और इन्द्रियां सर्वदा समाधानके बलसे उन्मार्गसे प्रतिनिवृत्त की जाती हैं उसीको सात्त्विकी धृति कहते हैं। जिस धारणा द्वारा फलाकाङ्क्षियोंका मन अर्थ कामादिके ऊपर आसक्त वा अनुरक्त होता है उसका नाम राजसिक धृति है और जिस धारणा विशेष द्वारा सब लोग मनके शोक, भय, स्वप्न, विषाद, मत्तता, आदि उद्रिक्त हुआ करते हैं, वैसी धारणाको तामसिक धृति कहते हैं। ९ दक्षसुतारूप धर्मपत्नीभेद, दक्षकी एक कन्या और धर्मकी पत्नी। (पु०) १० राजा जयद्रथके पौत्र।

(हरिवंश ३१ अ०)

११ मैथिल राजभेद, भागवतके अनुसार एक मैथिल राजा। १२ विश्वदेवभेद, एक विश्वदेवका नाम। १३ साहित्यदर्पणोक्त व्यभिचारी भावभेद, साहित्यदर्पणके अनुसार व्यभिचारी भावोंमेंसे एक। १४ गुरुत्वनिमित्त वस्तुका पतनाभाव १५ विपुलाख्य विष्कुम्भ पर्वतस्थ वनभेद, एक जंगल जो विपुलाख्य विष्कुम्भ पर्वत पर माना जाता है।

१६ यदुवंशीय बभ्रुके पुत्र। १७ अश्वमेधको एक आहुतिका नाम।

धृतिमत् (सं॰ त्रि॰) धृतिरस्त्यस्य मतुप्। १ धैर्यान्वित, जिसे धैर्य हो। (पु॰) २ रैवतके एक पुत्रका नाम। ३ अजमीढ़ राजाके पौत्र। (हरिवंश २० अ॰) ४ कुशद्वीपका वर्षभेद। (भारत भीष्मप॰ १२० अ॰) ५ अग्निभेद। (भारत वनप॰ २२१ अ॰) धृत होमाङ्गमें धृति नामक अग्निका होम करना पड़ता है। ६ त्रयोदश मन्वन्तरके सप्तर्षिके मध्य अङ्गिराका अपत्यभेद, तेरहवें मन्वन्तरमें सप्तर्षि अङ्गिराकी सन्तान।

धृतिहोम (सं॰ पु॰) धृत्याख्यस्कोद्देश्यको होमः। विवाहाङ्ग होमभेद।

विवाह हो जानेके बाद यह धृतिहोम करना पड़ता है। यह आठ प्रकारका है और इसे अवश्य करना चाहिये। "इह धृतिः स्वाहा' इस मन्त्रसे होम करना पड़ता है। यहां पर धृति शब्दके योगसे चतुर्थी विभक्ति नहीं होगी। भवदेवमें यह होम-विधान इस प्रकार लिखा है—विवाहके बाद कुशण्डिकोक्त विधानके अनुसार होम करके धृति नामक अग्निकी स्थापना करे, पीछे समित् प्रक्षेपान्त व्यस्त महाव्याहृतिहोम समापन कर ८ मन्त्रसे धृतिहोम करना चाहिये।

आठ मन्त्र—'प्रजापतिऋषिर्बृहती छन्दो वधू देवता धृतिहोमे विनियोगः। ओं इह धृतिः स्वाहा। ओं इह स्वधृतिः स्वाहा। ॐ इह रतिः स्वाहा। ॐ इह रमस्व स्वाहा। ॐ मयि धृतिः स्वाहा। ॐ मयि स्वधृतिः स्वाहा। ॐ मयि रतिः स्वाहा। ॐ मयि रमस्व स्वाहा।' इन आठ मन्त्रोंसे धृतिहोम करना पड़ता है।

धृत्वन् (सं॰ पु॰) धरतीति धृ-क्वनिप्, तीङ्, कृशि वाहि जिन्नोति। उण्॰ ४।११३) १ विष्णु। २ धर्म। ३ गगन, आकाश। ४ समुद्र। ५ मेधावी। ६ विप्र। (त्रि॰) ७ धारक, धारण करनेवाला।

धृत्वरी (सं॰ स्त्री॰) धृत्वन्, ङीप्, रश्चान्तादेशः (वनोवर। पा ४।१।७७) भूमि।

धृषज् (सं॰ त्रि॰) धृष अभिभवे बाहुलकात् कजिन्। १ धर्षक, दमन करनेवाला, दबानेवाला। (स्त्री॰) २ अभिभव, पराजय, हार।

धृषद् (सं॰ त्रि॰) धृष अभिभवे बाहुलकात् कर्त्तरि अदिक्। धर्षक, दमन करनेवाला।

धृषु (सं॰ त्रि॰) धृष्णोतीति धृष-कु। (पृभिदिव्यधोति। उण्॰ १।२४) १ दक्ष, निपुण। २ प्रगल्भ, चतुर होशियार। ३ सङ्घात।

धृष्ट (सं॰ त्रि॰) धृष क्त। १ प्रगल्भ, चतुर, होशियार। २ निर्लज्ज, बेहया। ३ निर्दय। ४ उद्धत, अनुचित साहस करनेवाला। ५ नायकविशेष। साहित्यदर्पणमें लिखा है, कि जो अपराध करता है, अथच किसी बातका भय नहीं रखता, तिरस्कृत होने पर भी जिसे किसी प्रकारकी लज्जा नहीं होती और दोष दिखला देने पर जो झूठी बातसे उसे छिपानेकी कोशिश करता है, उसीको धृष्ट नायक कहते हैं। ६ चेदि वंशीय कुन्तिका पुत्र। (हरिवंश ३६।२४) ७ सप्तम मनुके एक पुत्रका नाम। (भागवत ८।१३।२) ८ अञ्जोंका संहार।

धृष्टकेतु (सं॰ पु॰) १ सत्यति राजवंशीय सुकुमारके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश २९ अ॰) २ नवें मनु रोहितके पुत्र। (हरिवंश ७ अ॰) ३ जनक वंशीय सुधृतिके पुत्र। (रामायण बा॰) ४ सत्यकेतुके एक पुत्र। ५ चेदि देशके राजा शिशुपालके पुत्र। ये कुरुक्षेत्रके युद्धमें पाण्डवकी ओरसे लड़े थे। जिस दिन जयद्रथ मारा गया, उस दिन इन्होंने असाधारण वीरत्व दिखलाया था। जब ये द्रोणाचार्यको गति रोकनेके लिये उद्यत हुए, तब वीरधन्वा नामक कौरवपक्षके एक वीरसे इनको मुठभेड़ हुई थी। जिसमें वीरधन्वा मारे गये थे। अन्तमें बहुत काल तक युद्धके बाद ये द्रोणाचार्यके हाथसे मारे गये।

(भारत द्रोण १०७, १२५ अ॰)

हिरण्यकशिपुके पुत्र अनुह्रादने धृष्टकेतु हो कर जन्म लिया था। (भारत आदि ६७ अ॰)

धृष्टता (सं॰ स्त्री॰) धृष्टस्य भावः धृष्ट-तल्, ततः टाप्। १ निर्लज्जता, संकोचका भाव, बेहयाई। २ अनुचित साहस, ढिठाई, गुस्ताखी।

धृष्टद्युम्न (सं॰ पु॰) द्रुपद राजाके पुत्र। इनकी कथा महाभारतमें इस प्रकार लिखी है—

पृषत राजाके द्रुपद नामक एक पुत्र था। पृषत राजाके भरद्वाज ऋषिको मित्रता बड़ी थी, इसीसे वे

नित्य द्रुपदको ले कर ऋषिके आश्रम पर जाया करते थे। यहां क्रमशः भरद्वाज-पुत्र द्रोण और द्रुपदमें गाढ़ी मित्रता हो गई। राजश्रेष्ठ पृषतके मरनेपर द्रुपद राजा हुए। एक दिन जब द्रोण उनके पास गये, तब उन्होंने उनकी अवज्ञा की। इस पर द्रोणने बहुत दुःखित होकर कौरवों और पाण्डवोंकी अस्त्रशिक्षाका भार लिया। पीछे अस्त्रविद्यामें उन्हें निपुण कर द्रोणने अर्जुनको इसका बदला चुकानेके लिये कहा। अर्जुन भी द्रुपदको बन्दी कर द्रोणाचार्यके पास लाये। तब द्रुपदने द्रोणाचार्यको आधा राज्य दे कर छुटकारा पाया। इस अपमानका बदला लेनेके लिये द्रुपदने याज और अनुयाज इन दो ऋषिकुमारोंकी सहायतासे एक यज्ञका अनुष्ठान किया। इस यज्ञमें धृष्टद्युम्न अग्निशिखाकी नाईं उज्ज्वल, सुन्दर किरीट, धनुर्वाण, वर्म, खड्ग और चर्म द्वारा अलङ्कृत हो दिव्यरथ पर चढ़े हुए अग्निसे निकले। इनकी उत्पत्तिके समय देववाणी हुई कि पाञ्चालोंका यशस्कर, भयानक यह राजपुत्र आप लोगोंके शोकका नाश करनेके लिये उत्पन्न हुआ है। यही बालक द्रोणका बध करेगा।

कौरव और पाण्डवमें जब लड़ाई छिड़ी, तब ये पाण्डवकी ओरसे एक प्रधान सेनानायक हो कर लड़े थे। द्रोणाचार्य जिस समय अपने पुत्र अश्वत्थामाकी मृत्युकी बात सुन कर अपना शरीर त्याग करनेके लिये योगमें मग्न थे उसी समय धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्य पर चढ़ाई कर उनका सिर काटा था। किन्तु महाभारतमें साफ साफ लिखा है, कि धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यका सिर काटा था, इसीसे अश्वत्थामाने इसका बदला चुकानेके लिये खूब चेष्टा की थी। अन्तमें भारत-युद्धके बाद जब ये पाण्डवके घरमें सोये हुए थे, तब अश्वत्थामाने भी अपने पिताका बदला लेनेके लिये इनका सिर काट लिया था।

धृष्टधी (सं० स्त्री०) धृष्टबुद्धि, कठोर स्वभाव।

धृष्टमानिन् (सं० त्रि०) उच्चाभिमानी, घमंडी।

धृष्टरथ (सं० पु०) नृपभेद, एक राजा।

धृष्टशर्मन् (सं० पु०) श्वफल्कके पुत्र, अक्रूरका एक भाई।

धृष्टा (सं० स्त्री०) धृष्यते स्मेति धृष प्रगल्भे क्त, ततः टाप्। असती स्त्री, कुलटा नारी।

धृष्टि (सं० त्रि०) धृष-क्तिच्। १ प्रगल्भ, चतुर, होशियार। (पु०) २ हिरण्यकशिपुके बड़े भाई हिरण्याक्षका एक पुत्र। ३ दशरथके एक मन्त्रीका नाम। ४ यज्ञिय उपदेशरूप पात्रभेद, यज्ञका एक पात्र।

धृष्टोक्ष (सं० पु०) कार्त्तवीर्य अर्जुनके पुत्र।

धृष्णज् (सं० त्रि०) धृष्णोतीति धृष-नजिङ्। (स्वपितृषोर्नजिङ्। पा ३।२।१७२) इति सूत्रे 'धृषेश्च' इति वार्त्तिकोक्त्या नजिङ्। १ निर्लज्ज, लज्जाहीन, बेहया।

धृष्णता (सं० स्त्री०) धृष्टता।

धृष्णत्व (सं० पु०) १ सात्वतवंशीय भजमानके एक पुत्रका नाम। २ धृष्टता।

धृष्णि (सं० पु०) धर्षति अन्धकारं अभि-भवति इति धृष-बाहुलकात् नि, स च कित्। किरण।

धृष्णु (सं० त्रि०) धृष्णोतीति धृष-क्नु। (त्रसिगृधिधृषिक्षिपेःक्नुः। पा ३।२।१४०) १ धृष्ट। २ प्रगल्भ, उद्धत। ढीठ (पु०) ३ कम्बिका, बाँसकी टहनी। ४ रुद्रभेद, एक रुद्रका नाम। ५ सावर्णि मनुके एक पुत्र। ६ वैवस्वत मनुके एक पुत्र। (हरिवंश १० अ०) सात्वतवंशीय कुकुरसुत नृपभेद, सात्वत वंशके राजा कुकुरके एक पुत्र। ८ पितामहके पुत्र कविके एक लड़केका नाम। (भा० अनु ८५ अ०)

वैदिक प्रयोगकी जगह इस शब्दके बाद सुप् होनेसे 'याच्' हो जाता है, तब धृष्णुया ऐसा रूप हो जायगा।

धृष्णुक (सं० पु०) वैवस्वत मनुवंशके एक राजाका नाम।

धृष्णुषेण (सं० त्रि० पराभिभवनशील सेनोपेत।

(ऋक् ३।५४।१५)

धृष्णोजस् (सं० पु०) राजा कार्त्तवीर्यके एक पुत्र।

धृष्य (सं० त्रि०) धृष्यते इति कर्मणि क्यप्। धर्षणीय, धर्षण योग्य, दमन करने काबिल।

धेंकानल—उड़ीसाके अन्तर्गत एक छोटा करद मित्र राज्य। यह अक्षा० २०° ३१' से २१° ११' उ० और देशा० ८५° १०' से ८६° २' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण १४६३ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः २७३६६२ है। इसके उत्तरमें पाललहरा और केउञ्झर राज्य, पूर्वमें कटक विभाग और आठगढ़ राज्य, दक्षिणमें तिगिरिया और हिन्दोल

राज्य तथा पश्चिममें तालचेर और पाललहरा हैं। ब्राह्मणी नदी इस राज्यमें पश्चिमसे पूर्वकी ओर बहती है। जिन जिन स्थानों हो कर यह नदी गई है, वहां खेती अच्छी तरह होती है। इस नदी हो कर बहुतसे वाणिज्य द्रव्य देशमें लाये जाते हैं। इस राज्यमें खेती करने योग्य बहुत सी जमीन परती हैं। यहां लोहेकी अनेक खान हैं, पर वे अधिक खोदी नहीं जाती। यहां कुछ कुछ लाहका भी व्यवसाय होता है। यहांके प्रधान ग्रामका नाम भी धेंकानल है, जहां राजा वास करते हैं। देशी वस्तुके खरीदने और बेचनेके लिये हरीपुर और सदाइपुरमें प्रति सप्ताह हाट लगती है। अधिवासियोंमें आधेसे अधिक हिन्दू हैं, शेषमें मुसलमान, बौद्ध और ईसाई हैं। इसके अलावा यहां पार्वती जंगली जाति रहती है। राज्यकी वार्षिक आय दो लाख रुपयेसे अधिक की है जिसमेंसे ५०८८ रुपये वृटिश गवर्मेण्टको कर स्वरूप देने पड़ते हैं। राज्यकी सैन्यसंख्या ४४ है। इसके सिवा ४१ नियमित पुलिस और ७४२ चौकीदार हैं।

उड़ीसामें जितने करद राज्य हैं उनसे यह राज्य अधिक सुशासित है। महाराज भागीरथी महीन्द्र बहादुरसे ही इस राज्यकी उन्नति हुई है। ये राजधानीमें एक द्वितीय श्रेणीका अस्पताल और एक अवैतनिक विद्यालय स्थापित कर गये हैं। उस स्कूलमें अंगरेजी, उड़िया और संस्कृत भाषा सिखाई जाती है। अधिकांश छात्रको वृत्ति और पुस्तक मिलती हैं। इसके सिवा उन्होंने और भी १२ पाठशालाकी स्थापना की है एवं कटकके उच्चश्रेणीके अंगरेजी विद्यालयमें दो वृत्ति दश दश रुपयेकी और दो पांच पांच रुपयेकी प्रदान की है। कृषिकार्यकी उन्नतिके लिये भी वे अधिक परिश्रम और रुपये खर्च कर गये हैं। १८६६ ई॰में जब उड़ीसामें घोर दुर्भिक्ष पड़ा था, तब उन्होंने प्रजाकी जान बचानेके लिये बहुत रुपये खर्च किये थे। उनके सुशासनसे मुग्ध हो कर १८६८ ई॰में गवर्मेण्टने उन्हें 'महाराज' की उपाधि दी थी। १८७७ ई॰में ये परलोकको प्राप्त हुए हैं। वर्त्तमान महाराजका नाम दीनबन्धु महीन्द्र बहादुर, भागीरथी महीन्द्र बहादुरके दत्तकपुत्र हैं।

धेड़ोकौवा (हिं॰ पु॰) बड़ा काला कौवा, डोम कौवा।

धेन (सं॰ पु॰) १ समुद्र। २ नद।

धेनजी—एक नगर। यह गुजरातके प्रायोद्वीपके शेष भागमें द्वारकासे संयुक्त है। यह नगर घने जंगलसे घिरा है। माणिक नामक एक व्यक्ति इस नगरके अधिपति थे, किन्तु अत्यन्त दुर्गम स्थान जान कर उन्होंने इसे छोड़ दिया था। नगरके सभी मनुष्य चोरी करके अपनी जीविका निर्वाह करते थे। पीछे १८०७ ई॰में कर्नल वाकर साहबने माणिकके साथ सन्धि करके नगरवासियोंकी दस्युवृत्ति छुड़ा दी।

धेना (सं॰ स्त्री॰) धेन-टाप्। टष्टित्वेऽपि खच्येव ङीप्, इरदत्तोक्तें न ङीप् इति केचन। नदी। इस शब्दकी व्युत्पत्ति किसी किसीके मतसे इस प्रकार है, दधाते र्लट:, ततः शानचि व्यत्ययेन एत्वाभ्यासलोपौ दधाना स्वमभिधेयं वष प्रदानेन लौकिकाय वा। अथवा धेट् पाने इति न प्रत्ययः इकारास्यान्तादेशः ततो गुणः। वा धीयते पीयते आस्वाद्यते वा अनेन, धयन्ति प्राणानिति धेना। २ आस्वाद, रस, मजा। ३ भारतीविशेष, एक प्रकारका वाक्य।

धेनु (सं॰ स्त्री॰) धयति लेढि सुतान्, धीयते वत्सैरिति वा धेट-नु इत्वान्तादेशः—(धेट इच्च। उण् ३।३४) १ गोमात्र, गाय। २ नवप्रसूता गाभी, वह गाय जिसे बच्चे जने बहुत दिन न हुए हों। इसका संस्कृत पर्याय-नवसूतिका और नवप्रसूतिका है। सवत्सा गौको धेनु कहते हैं। शास्त्रमें जहां जहां धेनुदानका उल्लेख है वहां वहां सवत्सा गोदान करनेको ही लिखा है। इसी कारण धेनु शब्दसे सवत्सा गौका अर्थबोध होता है। जहां पर धेनु शब्दसे केवल गायका अर्थ जाना जाय, वहां निम्नोक्त दश प्रकारकी गायें समझनी चाहिये। इसका विषय वृहद्धर्मपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

इस गोजातिमें कपिला गाय प्रधान, अपिङ्गला द्वितीय, रक्तपिङ्गला तृतीय, नीलपिङ्गला चतुर्थ, शुक्लवर्ण और पिङ्गलवर्ण चक्षुविशिष्ट गौ पञ्चम, शुक्लपिङ्गला षष्ठ, चित्रवर्ण और पिङ्गलवर्ण चक्षुविशिष्ट सप्तम, बभ्रु रोहिणी अष्टम, श्वेत और पिङ्गलवर्ण चक्षुविशिष्ट नवम एवं श्वेत और पिङ्गलवर्णविशिष्ट दशम है।

सबका धेनु दान करनेसे यथोक्त फल मिलता है। पुराणादिमें इस प्रकारकी धेनुदानकी व्यवस्था पाई जाती है।

पहले पापनाशक दश धेनुदानके नाम और स्वरूप कहे जाते हैं,—दान करनेकी दश प्रकारकी धेनु है, यथा—गुड़धेनु, घृतधेनु, तिलधेनु, जलधेनु, क्षीरधेनु, मधुधेनु, शर्कराधेनु, दधिधेनु, लवणधेनु और रसधेनु है। इनके सिवा किसी किसी आचार्यने सोने और मक्खनकी धेनु भी दान करनेको लिखा है। यह धेनु संक्रान्ति, व्यतीपात, पर्वदिन, ग्रहण और पुण्यकालादिमें दान करनी चाहिये। इनका विधान उन्हीं सब शब्दोंमें देखो

वराहपुराणमें कपिला-धेनुदान और उसके माहात्म्यका विषय इस प्रकार लिखा है—

कपिला-धेनुदान करनेवाले अनुत्तम विष्णुलोकको जाते हैं। कपिला-धेनुको दान करते समय उसे सब अलङ्कारोंसे युक्त तथा सब रत्नोंसे विभूषित कर दान करना चाहिये। पितामह ब्रह्माके आदेशानुसार कपिला धेनुके मस्तक और ग्रीवामें सब तीर्थ अवस्थित हैं। जो मनुष्य प्रातःकालको कपिला-धेनुके घर जा कर उसके गले वा मस्तकमें जल डाल कर पीते हैं, उनके सब पाप जाते रहते हैं। अग्नि जिस तरह लकड़ीको जला देती है, उसी तरह वह जल तुरंत समस्त पापोंको नाश कर डालता है। जो प्रतिदिन कपिला धेनुका दर्शन करते हैं उनको पृथ्वी प्रदक्षिण करनेका फल मिलता है और निश्चित रूपसे उनके दश जन्म-कृत पाप नाश हो जाते हैं। कपिलाके मूत्रसे स्नान करनेसे गङ्गादि तीर्थस्नानका फल होता है और यावज्जीवन कृत पाप विनष्ट होते हैं। एक सौ दूसरी दूसरा गाय दान करनेमें जो फल लिखा है, वही फल केवल एक कपिला गाय दान करनेमें मिलता है। कपिला धेनुका मात्र कपाङ्गण (कुजली), परिपालन और क्षुधित होनेसे तृणोदकादि दान अनन्त पुण्यजनक है। यहां तक कि जो नियमित रूपसे इसका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है और [illegible] से [illegible] विमान पर [illegible] अप्सराओंसे वेष्टित हो कर [illegible]। [illegible] लिये इस कपिला धेनुका [illegible] है। [illegible]

[illegible] तीर्थोंका सारभाग ले कर इस कपिला धेनुकी सृष्टि की है। इसकी महिमाका पारावार नहीं है।

वराहपुराणमें लिखा है, कि जो ब्राह्मण शूद्रके हाथसे कपिला धेनु दान लेते हैं, वे पतित और चण्डाल सदृश माने जाते हैं।

इसी कारण ब्राह्मणको शूद्रसे कपिला धेनुदान न लेना चाहिये। शूद्र भी कपिला धेनुके दूधसे जीविका निर्वाह नहीं कर सकता है।

कपिला धेनुके घी, दूध और मक्खनसे जो शूद्र जीविका निर्वाह करता है, वह रौरव नामक नरकमें जाता है। पीछे वह महारौद्र नरकमें एक करोड़ वर्ष रह कर कुत्ते, योनिमें जन्म लेता है। इन्हीं सब कारणोंसे शूद्रको कभी कपिला धेनुके दूध घी आदिसे जीविका-निर्वाह न करना चाहिये। जो ब्राह्मण अर्ध प्रसूतावस्थामें अर्थात् बच्चेका केवल मुँह बाहर निकला हुआ हो और सब भाग भीतरमें हो हो, ऐसी अवस्थामें यदि दान करें, तो सारी पृथ्वी दान करनेमें जो फल है, वही फल उन्हें मिलता है एवं गायके जितने रोएं हैं, उतने करोड़ वर्ष तक ब्रह्मवादियोंसे पूजित हो कर ब्रह्मलोकमें वास करते हैं।

धेनुके शरीरमें जो सब देवता सदा वास करते हैं वे ये हैं—

दांतोंमें मरुतगण, जीभमें सरस्वती, खुरमें समस्त गन्धर्व, खुरके आगे समस्त पन्नग, सन्धिस्थलमें साध्यगण, दोनों आंखोंमें चन्द्र और सूर्य, ककुदमें सब नक्षत्र, पूँछमें धर्म, अपानमें समस्त तीर्थ, मूत्रमें जाह्नवी नदी और नाना द्वीपसमन्वित चार सागर, रोमकूपमें समस्त ऋषि, गोबरमें पद्मधारिणी और रोम समूहमें विद्या वास करती हैं। धेनुके चलते समय स्मृति, मेधा, लज्जा प्रभृति मातृकागण उसका अनुगमन करती हैं।

(वराहपु०)

धेनुक (सं० पु०) धेनुरिव प्रतिकृतिः इति कन्। (इवे प्रतिकृतौ। पा ५।३।९६) असुरविशेष। बलरामने इस असुरको मारा था। हरिवंशमें इसकी कथा इस प्रकार लिखी है—

[illegible]

के लिये ताड़के वन गये थे। यह वन मनुष्य-समाजके लिये शून्य और अत्यन्त दुष्प्रवेश्य था तथा इस तरहसे अवस्थित था कि देखनेसे मालूम पड़ता कि यह केवल नरमांस-लोलुप राक्षसके वासस्थानके सिवा और कुछ नहीं है। यहां बलरामने एक ताल ठोंका जिसके शब्दसे धेनुक अत्यन्त क्रुद्ध हो उनके पास जा पहुंचा। अभिमानसे उनके शरीरके रोएं खड़े हो गये, दोनों आंखें स्तब्ध हो गईं, हुंकारसे वन गुंज उठा और खुरक्षेपसे पृथ्वीतल विदीर्ण होने लगा। इस तरह वह कालान्तक यम सरीखा बलरामके सामने उपस्थित हुआ और उन्हें दांतोंसे काटने लगा। बलरामने तुरंत ही उसके दोनों पैर पकड़ कर बार बार चारों ओर घुमाया और अन्तमें उसे ताड़के पेड़के ऊपर फेंक दिया। इस आघातसे उसकी जांघ, कमर, गला और पीठ चूर चूर हो गई और ताड़के फलके साथ जमीन पर गिर कर वह पञ्चत्वको प्राप्त हुआ। यह देख कर रामने उसके दूसरे दूसरे ज्ञातिवर्गको भी मार डाला। उसी समयसे उस ताल-वनमें और किसी प्रकारका उपद्रव न रहा। (हरिवंश ६८ अ०) २ तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम। महाभारतके वन-पर्वमें इस तीर्थका उल्लेख देखनेमें आता है।

"ततो गच्छेत राजेन्द्र धेनुकं लोक-विश्रुतम्।
एक रात्रोषितो राजन् प्रयच्छे तिलधेनुकम्॥"
(महाभारत ३।८४।८१)

धेनुकतीर्थ अत्यन्त पवित्र है। यहां एक रात रह कर तिलकी धेनु दान करनेसे सब पाप विनष्ट होते हैं और अन्तमें ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। यहां कपिला अपने बच्चेके साथ विचरण की थी। आज भी उसका चिह्न विद्यमान है जिसे स्पर्श करनेसे जो कुछ अशुभ हैं वे जाते रहते हैं। ३ षोड़श प्रकारके रतिबन्धके अन्तर्गत द्वादशबन्ध, सोलह प्रकारके रतिबन्धोंमेंसे बारहवां बन्ध। रतिबन्ध देखो।

धेनुकसूदन (सं० पु०) धेनुकं गोवर्द्धनोत्तरपार्श्वस्थताल-वननिवासिनं असुरं निसूदयति सूद-णिच्-ल्यु। श्रीकृष्ण। त्रिकाण्डशेषमें विष्णुका नाम 'धेनुकसूदन' ऐसा लिखा है। बलरामने धेनुक असुरका बध किया, ऐसा होने पर भी बलरामको ही विष्णुके अवतारमें समझना चाहिये, क्योंकि भागवत आदिमें लिखा है—

"नैतच्चित्रं भगवति ह्यनन्ते जगदीश्वरे।" (भागवत)

भगवान् जगदीश्वर अनन्तदेवने धेनुक असुरको मारा होगा, यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, इत्यादि वचनों द्वारा बलभद्रजीको भगवान् जगदीश्वर बतलाया है। इसी कारण त्रिकाण्डशेषमें श्रीकृष्णका नाम धेनुकसूदन लिखा है।

धेनुका (सं० स्त्री०) धेनुरिव प्रतिकृतिः धेनु-कन्-टाप्। १ हस्तिनी, हथिनी। २ धेनुरेव स्वार्थे कन्। ३ गाभी, गाय। ४ धान्यक, धनिया।

धेनुकारि (सं० पु०) धेनुकस्य अरिः ६-तत्। १ धेनुकके शत्रु, बलराम। २ नागकेसरका पेड़।

धेनुजम्होड़—दक्षिण प्रान्तमें औड़ ब्राह्मणोंकी एक श्रेणी। दक्षिणमें मोहिरपुरसे सात कोसकी दूरी पर धेनुज नामक एक नगर है जहां इनका वास होनेसे ये धेनुजम्होड़ कहलाये। इनकी उत्पत्तिके विषयमें ऐसा लेख मिला है कि इनके पूर्वजोंने किसी विधवा कन्याके गर्भस्थापन कर दिया था। अतः इनके स्वजाति बन्धुवर्गोंने इनसे घृणा प्रकट की और इन्हें धेनुज नगरमें रहनेकी आज्ञा दी थी। तभीसे ये लोग धेनुजम्होड़ नामसे प्रसिद्ध हुए। ये किस तरहके ब्राह्मण हैं, इसके विषयमें ग्रन्थकारोंने ऐसा लिखा है,—

"गृहस्थास्ते भवेयुश्च कुमारा धर्मविप्लवाः।
धेनुजाख्यां प्रसिध्यन्ति लोके विप्राधमा अपि॥"

अर्थात् धर्मका विप्लव करके विधवाओं द्वारा उत्पन्न हुए, इस कारण ये ब्राह्मण धर्मभ्रष्ट तथा ब्राह्मणोंमें अधम हैं।

धेनुजिह्वा (सं० स्त्री०) गोजिह्वा नामक गोक्षुप, गोजिह्वा नामकी बेल।

धेनुदुग्ध (सं० क्ली०) धेनोर्दुग्धमिव शुभ्रं फलमस्य। १ चिर्भिट, चिर्भिटा। धेनोर्दुग्धं ६-तत्। २ गोक्षीर, गाय का दूध।

धेनुदुग्धकर (सं० पु०) करोति वर्द्धयतीति, कृ-अच्, धेनोर्दुग्धकरः ६-तत्। १ गर्जर, गाजर। इसके खिलानेसे गाय अधिक दूध देती है। २ मल्लरदेव, एक प्रकारकी घास।

धेनुमक्षिका (सं० [illegible]) मच्छड़ जो चौपायोंको लगती है, डंस, [illegible]

धेनुमत् (सं० स्त्री०) धेनु विद्यतेऽस्य मतुप्। १ धेनुस्वामी, गायका मालिक। २ भरतवंशीय देवद्युम्नकी पत्नी।

धेनुमती (सं० स्त्री०) १ गोमती नदी। २ भरत वंशीय देवद्युम्नकी भार्या।

धेनुमुख (सं० पु०) गोमुख नामक बाजा।

धेनुमूल्य (सं० क्ली०) धेनूनां मूल्यं ६-तत्। प्रायश्चित्त विषयमें धेनुदानका निष्क्रयरूप मूल्यभेद। प्रायश्चित्त करनेमें धेनुदान करना होता है। जो धेनुदान करनेमें असमर्थ हों, उसे धेनुका मूल्य देना पड़ता है। मूल्यके विषयमें प्रायश्चित्त-तत्त्वमें इस प्रकार लिखा है—

"प्राजापत्यव्रताशक्तौ धेनुं दद्यात् पयस्विनीं।
धेनोरभावे दातव्यं तुल्यं मूल्यं न संशयः॥"
(प्रायश्चित्ततत्त्व)

जो प्राजापत्य-व्रतका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें धेनुदान करना चाहिये। यदि धेनुका अभाव हो, तो इसका उपयुक्त मूल्य देना होता है।

धनवानोंके लिये पञ्चकार्षापण अर्थात् अस्सी पण वा ६४०० कौड़ी, मध्य श्रेणीके लिये तीन कार्षापण और गरीबोंके लिये एक कार्षापण धेनुका मूल्य बतलाया है। केवल यही नहीं, वरं उनका जो कुछ मूल्य हो, उसे भी दान करना होता है। (प्रायश्चित्ततत्त्व)

धेनुभव्या (सं० स्त्री०) भव्या धेनुः। 'धेनोर्भव्यायां' इति सूत्रेण परनिपातः, ततो सुमुच्। भविष्यत् धेनु, वह गाय जो पीछे होगी।

धेनुष्टरी (सं० स्त्री०) अतिशयेन धेनुः-तरप्, ततो ङीप्, सुट् षत्वञ्च। प्रशस्ता धेनु, अच्छी गाय।

धेनुष्या (सं० स्त्री०) धेनु-युक्, यत् ततो निपातनात् साधुः। (संज्ञायां धेनुष्या। पा ४।४।८९) बन्धकस्थिता गाभी, वह गाय जो बंधक रखी हो।

धेनुष्ठित (सं० त्रि०) जिसने अपनी गायका दूध दूसरेको देनेका वचन दिया है और इस कारण वह उसे अपने काममें नहीं लाता।

धेमात—निर्दिष्ट उच्च संख्या।

धेय (सं० त्रि०) धीयते इति धा कर्मणि यत्। १ धार्य, धारण करने योग्य। २ पोष्य, पोषण करने योग्य। धे यत्। ३ पेय, पीनेयोग्य, पीनेका। भावे यत्। (क्ली०) ४ धारण। ५ पोषण। ६ पान।

धेर—एक अनार्य जाति। इस जातिके लोग पञ्जाब, युक्तप्रदेश, जयपुर आदि भारतवर्षके विभिन्न प्रदेशोंमें रहते और कृषि कार्य करते हैं। ये लोग मरे चौपायों आदिका मांस खाते हैं और उनका चमड़ा साफ कर चमारोंके हाथ बेचते हैं। राजपूतानेके धेर जंगली अथवा घरेलू किसी प्रकारके सूअरका मांस नहीं खाते। नगरके बाहर जहां ये लोग वास करते हैं उसे धेरवारा कहते हैं।

धेरा (हिं० वि०) भंगा।

धेलचा (हिं० पु०) एक प्रकारका सिक्का जो आधे पैसेके बराबरका होता है।

धेला (हिं० पु०) अधेला देखो।

धेली (हिं० स्त्री०) आधा रुपया, अठन्नी।

धेष्ठ (सं० त्रि०) अतिशयेन धाता, तृच्तन् तृणो लोपे गुणः। धारकतम, बहुत धारण करनेवाला।

धैताल (हिं० वि०) १ चपल, चंचल। २ उजड्ड।

धैनव (सं० पु० स्त्री०) धेनोरपत्यं इति उत्सादित्वात् अञ्। १ धेनुका अपत्य, गायका बच्चा। २ गायसे उत्पन्न।

धैना (हिं० स्त्री०) १ स्वभाव, आदत। २ काम, धंधा।

धैनुक (सं० क्ली०) धेनूनां समूहः ठक्। (अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्। पा ४।२।४७) १ धेनु समूह, गायका झुण्ड। २ स्त्रियोंका करणभेद।

धैर्य (सं० क्ली०) धीरस्य भावः कर्म वा धीर ष्यञ्। धीरता, चित्तकी स्थिरता, धीरज।

सङ्कट, बाधा, कठिनाई या विपत्ति आदि उपस्थित होने पर चित्तकी स्थिरताका नाम धैर्य है। २ अप्रमाद, अनवधानताका अभाव। ३ अव्याकुलत्व, आतुर न होनेका भाव, हड़बड़ी न मचानेका भाव, सब्र। ४ निर्विकार-चित्तत्व, चित्तमें उद्वेग उत्पन्न होनेका भाव।

विकारका कारण उपस्थित होने पर भी चित्तका विकृत न होनेका नाम धीर है। इसी धीरके भावको धैर्य कहते हैं। ५ नायक नायिकाका गुणभेद। ६ पुरुषका गुणभेद। साहित्य दर्पणमें लिखा है, कि अत्यन्त भयानक विघ्न उपस्थित होने पर भी व्यवसायसे कुछ भी विचलित नहीं होनेका नाम धैर्य है। अर्थात् कितनी ही विघ्न बाधाएं क्यों न आ पड़ें, अवलम्बित विषयसे तनिक भी आतुर न होना चाहिये, इसीका नाम धैर्य है।

अप्सराओंका गान सुनाई पड़ता है, उसी समय महादेव ध्यानमें मग्न थे। अप्सराओंका गीत सुन कर चित्तका चाञ्चल्य होना उचित था, किन्तु वैसा न हो कर शिवजी और भी ध्यानमें लवलीन हो गये, इसी कारण इसे धैर्य कहते हैं। (साहित्यदर्पण)

धैर्यकलित (सं॰ त्रि॰) धैर्येण कलितः ३-तत्। स्थिर, अटल।

धैर्यच्युत (सं॰ त्रि॰) धैर्यात् च्युतः ५-तत्। धैर्यहीन, अस्थिर।

धैर्यशालिन् (सं॰ त्रि॰) धैर्यं शालितुं शीलमस्य शाल-णिनि। धैर्ययुक्त, जिसे धैर्य हो, शान्त।

धैर्यावलम्बन (सं॰ क्ली॰) धैर्यस्य अवलम्बनं ६-तत्। शान्त होनेकी क्रिया।

धैर्यावलम्बिन् (सं॰ त्रि॰) धैर्यशाली, सहिष्णु, शान्त।

धैवत (सं॰ पु॰) धीमतामयं, धीमत्-अण् पृषोदरादित्वात् मस्य वत्वं। सङ्गीतके सात स्वरोंमेंसे छठा स्वर, नारदीय-शिक्षाके अनुसार घोड़ेके हिनहिनानेके समान जो स्वर निकले वह धैवत है; 'अश्वस्तु धैवतं रौति' अर्थात् घोड़ा धैवतके सदृश शब्द करता है। तानसेनने इस स्वरको मेढ़कके स्वरके समान कहा है। इसका स्थान ललाट है, लेकिन व्याकरणमें इसका स्थान दन्त बतलाया है। यह क्षत्रियवर्ण है और जातिका षाड़व है। इसको ७२० तानें मानी गई हैं जिनमें प्रत्येकके ४८ भेद होनेसे सब ३४५६० तानें हुईं।

सङ्गीत-दामोदरके मतसे जो स्वर नाभिके नीचे जा कर वस्ति-स्थानसे फिर ऊपर दौड़ता हुआ कण्ठ तक पहुंचे, वह धैवत है।

"मदन्ती रोहिणी रम्येत्येता धैवतसंश्रयाः।" (सङ्गीतदर्पण)

रम्या, रोहिणी और मदन्ती नामकी इसकी तीन श्रुतियां हैं। यह शुद्ध और कोमल इन्हीं दो रूपोंमें प्रयुक्त होता है। अतिकोमल कोमलका ही प्रभेद है। धैवतको सुर करनेमें स्वरग्राम इस प्रकार होता है—

ध=स, नि=ऋ, स=ग, ऋ=म,
ग=प, म=ध, ध=नि, ध=स।

कोमल धैवत सुर होनेसे—

ध=स, नि=ऋ, सं=ग, ऋ=म,
ग=प, म=ध, प=नि, ध=स,

सङ्गीतदर्पणके मतसे यह स्वर ऋषिकुलमें उत्पन्न और क्षत्रिय वर्णका है। इसका वर्ण पीत, जन्मस्थान श्वेतद्वीप, ऋषि तुम्बरु, देवता गणेश और छन्द उष्णिक् (मतान्तरसे जगती) माना गया है और यह वीभत्स और भयानक रसके उपयोगी कहा गया है। धैवतके अन्य सभी विवरण स्वरग्राम शब्दमें देखो।

धैवत्य (सं॰ क्ली॰) धीवनो भावः ष्यञ्, दाण्डिनायनेत्यादित्वात् नस्य त। धीवनका भाव।

धैवर (सं॰ पु॰ स्त्री॰) धीवरस्यापत्यं वेदे अण्। धीवरका अपत्य, मल्लाहकी सन्तान।

वैदिक-प्रयोगमें ही अण् होता है, किन्तु लौकिक-प्रयोगमें अण् न हो कर इञ् होता है, वहां धैवरि ऐसा रूप होगा।

धोंडाल (हिं॰ वि॰) जिसमें ढेले कंकड़ पत्थरके ढोंके हों।

धोंधा (हिं॰ पु॰) १ लोंदा, बेडौल पिंडा। २ मोटी और बेडौल मूर्त्ति, भद्दा और बेडौल शरीर।

धोई (हिं॰ स्त्री॰) उरद या मूंगकी दाल जिसका छिलका निकाला रहता है। पानीमें कुछ देर तक दालको भिगो कर उसकी भूसी हाथसे मल कर अलग कर देते हैं, इसीलिये दालको धोई कहते हैं।

धोंधो—हिन्दीके एक कवि। ये अनेक फुटकर कवितायें रच गए हैं, उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं—

"ए लाला जीओ जेलों गंग यमुना जल धरनी भ्रु वतारो तरुनी।
वेग बड़ो बड़ होहु विरधलट यसुमति पूत तिहारो॥
भक्तहेत अवतार लियो है मेटनको भुव भारो
धोंधीके प्रभु तुम चिरजीवी ब्रज जन-प्राण अधारो॥

धोंधे—हिन्दीके एक कवि। ये कविताकी अनेक पुस्तकें बना गये हैं। ये १७०० ई॰में विद्यमान थे।

धोकड़ (हिं॰ वि॰) हृष्टपुष्ट, हट्टा कट्टा, मोटा ताजा।

धोखा (हिं॰ पु॰) १ धूर्त्तता या छल जिससे दूसरा भ्रममें पड़े, भुलावा, छल, दगा। २ दूसरेके छल द्वारा उपस्थित भ्रान्ति, डाला हुआ भ्रम, भुलावा। ३ अनिष्टकी सम्भावना, जोखों। ४ अन्यथा होनेकी सम्भावना। ५

फलदार पेड़ों पर रस्सी लगी हुई लकड़ो। यह इसलिये लगाते हैं कि नीचेसे रस्सी खींचनेसे खटखट शब्द हो और चिड़ियां दूर रहें, खटखटा। ६ प्रमाद, भूल, चूक। ७ अज्ञान, जानकारीका अभाव। ८ भ्रान्ति उत्पन्न करनेवाली वस्तु या आयोजन, असत्वस्तु, माया। ८ असत्धारणा, भ्रम, भ्रान्ति, भूल। १० लकड़ोमें पयाल कपड़ा आदि लपेट कर बनाया हुआ पुतला। किसान लोग इसे चिड़ियोंको डरानेके लिये खेतमें खड़ा करते हैं, बिजूखा, धुखकाक। ११ बेसनका एक पकवान। इसके अन्दर गरम कटहल, मसाला आदि इस प्रकार भरा रहता है कि देखनेसे कबाबका भ्रम होता है।

धोखेबाज (हिं॰ वि॰) धूर्त, कपटी, छली, धोखा देनेवाला।

धोखेबाजी (हिं॰ स्त्री॰) धूर्तता, कपट, छल।

धोटा (हिं॰ पु॰) ढोटा देखो।

धोड़ (सं॰ पु॰) धोरति चातुर्य्येण गच्छतीति, धोर गतिचातुर्य्ये अच् रस्य डत्वं। सर्पविशेष, एक प्रकारका साँप।

धोड़प—बम्बईके नासिक जिलान्तर्गत चाँदोर तालुकका एक दुर्ग। यह अक्षा॰ २०°२३' उ॰ और देशा॰ ७४°२' पू॰, चाँदोर पहाड़ पर अवस्थित है। इस दुर्गमें अनेक कन्दरायें और अट्टालिकाओंका भग्नावशेष देखनेमें आता है। इसके सिरे पर बेलपुर नामक मुसलमानकी एक समाधि है। १६३५ ई॰में मुगल-सरदार अलोवर्दी-खाँने यहां घेरा डाला था। पोछे यह पेशवाके हाथ लगा। १७६८ ई॰में रघुनाथराव अपने भतीजे मधोरावसे इसी दुर्गमें परास्त हुए थे। जब यह पेशवाके अधिकारमें था, उस समय होलकरके दो कर्मचारियोंने इसे अच्छी तरह लूटा था। १८१८ ई॰में यह दुर्ग बिना किसी खून खराबीके अंगरेजोंके अधिकारमें आया।

धोतर (हिं॰ पु॰) गाढ़ेकी तरहका एक मोटा कपड़ा, अधोतर।

धोती (हिं॰ स्त्री) १ नौ दश हाथ लम्बा और दो ढाई हाथ चौड़ा कपड़ा। यह पुरुषका कटिसे ले कर घुटनोंके नीचे तकका शरीर और स्त्रियोंका प्रायः सर्वाङ्ग ढाकनेके लिये कमरसे लपेट कर खोंसा या ओढ़ा जाता है। २ योगकी एक क्रिया। ३ एक अंगुल चौड़ी और चौवन अंगुल लम्बी कपड़ेकी धज्जी। इसे हठयोगकी धौतिक्रियामें मुंहसे निगलते हैं। (पु॰) ४ एक प्रकारका बाज। इसकी मादाको बेसरा कहते हैं।

धोतियवैशाला—मध्य प्रदेशके धार राज्यका अधीनस्थ एक छोटा सामन्तराज्य। यहांके सरदारको उपाधि ठाकुर है। ये धारके राजाको वार्षिक २५०) रु॰ कर देते हैं। यहां विशेष कर भील जातिके लोग रहते हैं। सरदारके अधीन नौ ग्राम हैं।

धोदरअली—आसाम राज्यके अन्तर्गत एक सदर रास्ता। यह ११७½ मील विस्तृत ब्रह्मपुत्रके किनारे होता हुआ गोलाघाट जिलेकी धानेश्वरी नदीके निकट आसाम-ट्रंक-रोडमें मिल गया है। अहोम वंशके राजत्वकालमें यह रास्ता तैयार किया गया है।

धोन—मन्द्राजके कर्नूल जिलान्तर्गत रामलकोट तालुकका एक ग्राम। यह अक्षा॰ १५°२४' उ॰ और देशा॰ ७७°५३' पू॰के मध्य अवस्थित है। रेलवे ष्टेशन होनेके कारण यह ग्राम मशहूर हो गया है।

धोन (हिं॰ क्रि॰) १ जलसे स्वच्छ करना, पखारना। २ दूर करना, हटाना, मिटाना।

धोपापपुर (धौतपापपुरका अपभ्रंश)—एक नगर। यह सुलतानपुरसे ८ कोस दक्षिण गोमतीके किनारे अवस्थित है। यह स्थान पहले बहुत समृद्धशाली था। अभी यहां कुछ भी नहीं है, केवल टूटी फूटी ईंटें आध कोस तक फैली हुई हैं। यह स्थान हिन्दुओंका एक पवित्र तीर्थ माना जाता है।

धोब (हिं॰ पु॰) धुलावट, धोए जानेकी क्रिया।

धोबल—गढ़वाल-निवासी एक श्रेणीके ब्राह्मण।

धोबा—प्रतापगिरि नामक पर्वतका एक शृङ्ग। यह मन्द्राजके अन्तर्गत गञ्जाम जिलेमें अवस्थित है। इसकी ऊँचाई ४१६६ फुट है। यह भारतवर्षके त्रिकोणमितिक परिमाणका एक अड्डा है।

धोबा—पटना विभागके अन्तर्गत सबेरम जिलेकी एक छोटी नदी।

धोबाखाल—आसामके गारो जिलेका एक ग्राम। यह सोमेश्वरी नदीके किनारे अवस्थित है। इसके निकट पथरिया कोयलेकी खान है।

धोबिघटा (हिं० पु०) वह घाट जहां धोबी कपड़ा धोते हैं।

धोबिन (हिं० स्त्री०) १ धोबीकी स्त्री। २ धोबी जातिकी स्त्री। ३ जलके किनारे रहनेवाली एक प्रकारकी चिड़िया। यह दश बारह अंगुल लम्बी होती है और पत्थर आदिके नीचे अण्डे देती है। जैसे जैसे ऋतु बदलती जाती है, वैसे वैसे इसका रंग बदलता जाता है।

धोबी (हिं० पु०) रजक, कपड़ा धोनेवाला। इस जातिके लोग नीच और अस्पृश्य समझे जाते हैं। विशेष विवरण रजक शब्दमें देखो।

धोबीघास (हिं० स्त्री०) बड़ी दूब, दूबा।

धोबीपछाड़ (हिं० पु०) कुश्तीका एक पेच। इसमें जोड़का हाथ पकड़ कर अपने कन्धेकी ओर खींचते हैं और कमर पर लाद कर चित गिरा देते हैं।

धोबीपाट (हिं० पु०) धोबीपछाड़ देखो।

धोयी (सं० पु०) संस्कृतके एक कवि। इनका उल्लेख जयदेवने गीतगोविन्दमें किया है। ये लक्ष्मणसेनके सामयिक राज कवि थे। इनके प्रकृत विवरणका पता नहीं चलता है। इनका रचा हुआ पवनदूत ग्रन्थ अब तक मिलता है और मेघदूतके ढङ्गका है।

"धोयी कवि: क्ष्मापति:" (गीतगोविन्द)

धोर (हिं० स्त्री०) १ सामीप्य, पास। २ धार, किनारा, बाढ़।

धोरण (सं० क्ली०) धोरति गच्छत्यनेन धोर करणे ल्युट्। १ यानमात्र, हाथी घोड़े आदिकी सवारी। भावे ल्युट्। २ अश्वको प्रथम गति, घोड़ेकी सरपट चाल। इसका पर्याय—धोरितक, धौर्य और धोरित है। ३ दौड़।

धोरणि (सं० क्लो०) धोरति क्रमश: प्राप्नोतीति धोर-अनि। परम्परा, श्रेणी।

धोराजी—बम्बईके काठियावाड़ जिलान्तर्गत गोण्डल राज्यका एक सुरक्षित नगर। यह अक्षा० २१° ४५' उ० और देशा० ७०° ३७' पू० राजकोटसे ४३ मील दक्षिण और पोरबन्दरसे ५२ मील पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या पचीस हजारके लगभग है। १८ वीं शताब्दीमें जूनागढ़से गोण्डलके २य कुम्भाजीने इसे हस्तगत किया था। शहरसे ले कर रेलवे ष्टेशन तक घोड़ेकी ट्रामगाड़ी चलती है। यहां एक अस्पताल और घंटाघर है।

धोरित (सं० क्ली०) धोर-क्त। १ धोरण, घोड़ेकी सरपट चाल। २ वध, कतल।

धोरी (हिं० पु०) १ भार उठानेवाला। २ श्रेष्ठ पुरुष, बड़ा आदमी। ३ वृषभ, बैल। ४ प्रधान, मुखिया, सरदार।

धोलधक (हिं० पु०) एक पेड़का नाम।

धोला (हिं० पु०) जवासा, धमासा, हिंगुवा।

धोलाना (हिं० क्रि०) धुलाना देखो।

धोलेरा—१ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत अहमदाबाद जिलेके ढन्धूका तालुकका एक बन्दर। यह अक्षा० २२° १५' उ० और देशा० ७२° ११' पू० अहमदाबाद नगरसे ६२ मील दक्षिण-पश्चिम काम्बे उपसागरके किनारे अवस्थित है और रूईके कारबारके लिए प्रसिद्ध है। लोकसंख्या प्राय: ७३५६ है। लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहले धोलेरा वा भादर-खाड़ी हो कर धोलेरा नगर तक नावें जाती आती थीं। किन्तु गत १०० वर्षके अन्दर खाड़ी तहस नहस हो जानेके कारण धोलेरा बन्दर समुद्रसे प्राय: १२ मील दूर जा बसा है। धोलेरा बन्दरसे ५ मील दक्षिणमें उक्त खाड़ीके किनारे खान्-बन्दर है। खान्-बन्दर और १६ मील दक्षिणस्थ एक समुद्रके किनारे अवस्थित बावलीयारी बन्दर हो कर धोलेराका वाणिज्य चलता है। देशीय लोगोंके यत्नसे बन्दरसे ले कर मूल नगर तक ट्रामगाड़ी चलाई गई थी, अभी उसका नामो निशान नहीं है। खाड़ीके प्रवेश-द्वार पर एक आलोकस्तम्भ है। धोलेरा नगरको रूई यूरोपमें बहुत मशहूर है। इस नगरके नाम पर वहांकी एक श्रेणीकी रूईका नाम धोलेरा-रूई रखा गया है। १८७५ ई०में यहां म्युनिसपालिटी स्थापित हुई है। यहां डाकघर, टेलिग्राफ आफिस, गवर्मेण्ट विद्यालय, अस्पताल और पुलिस थाना हैं।

धोल्का—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत अहमदाबाद जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २२° २४' से २२° ५२' उ० और देशा० ७२° ०' से ७२° २३' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ६८० वर्गमील है। इसमें एक शहर और ११६ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्राय: ८८७८० है। इसके उत्तरमें साणन्द, पूर्वमें खेड़ा जिला और काम्बे, दक्षिणमें ढन्धूका तथा पश्चिममें काठियावाड़ है। इस उपविभागकी जमीन दक्षिण-पश्चिममें क्रमश: ढालू हो कर अन्तमें

रन नामक दलदलमें मिल जाती है। इसके पूर्व भागमें साबरमती नदीके किनारेका भूभाग वृक्षोंसे घिरा है, कि दक्षिण-पश्चिम भागमें एक भी वृक्ष देखनेमें नहीं आता। यहां साबरमती नामकी केवल एक नदी बहती है। वार्षिक वृष्टिपात ३४ इञ्च है।

२ उक्त धोलका उपविभागका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २२° ४४' उ० और देशा० ७२° २७' पू० अहमदाबाद शहरसे २२ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग १४८७१ है।

यह गुजरातका एक प्राचीन नगर है। आज भी बड़ी बड़ी दीवार, मसजिदें और मन्दिरादिके भग्नावशेष नगरको अतीत कीर्त्तिका परिचय दे रहे हैं। बहुतोंका अनुमान है, कि सूर्यवंशीय कनकसेन, अणहिल्लवाड़पति सिद्धराजकी माता मैनालदेवी, बघेल वंशके स्थापयिता वीरधवल और पाण्ड्य-नरपतिगण यहां रहते थे। मुसलमानोंके अधिकारके समय दिल्लीसे कई एक शासनकर्त्ता इस नगरमें आ कर रहने लगे थे। १७४६ ई०में महाराष्ट्रोंने इस स्थान पर अधिकार जमाया। १७५७ ई०में यह नगर गायकवाड़के हाथ लगा। पीछे १८०४ ई०में महाराष्ट्रोंने पुन: इसे जीता और १८५७ ई०में अंगरेजोंको सौंप दिया। यहांके अधिवासी अपनेको कसबाती अर्थात् नागरिक बतलाते हैं। १२९८ ई०में जब अल्लाउद्दीन् खिलजीने बघेलोंको अणहिल्लवाड़से मार भगाया था, तब उनके साथ जो सब सैनिक पुरुष आये थे, वर्त्तमान अधिवासिगण उन्हींके वंशधर हैं। यहांके शिल्पजातमें साड़ी बहुत मशहूर है और अहमदाबाद जिलेके मध्य यही सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है। १८५६ ई०में यहां म्युनिसपैलिटी स्थापित हुई है। नगरको आय लगभग १५००० रु०) की है। यहां एक सब-जजकी अदालत, अस्पताल, सात अंगरेजीके और पांच हिन्दीके स्कूल हैं।

धोवन (हिं० पु०) १ धोवनका भाव, पखारनेकी क्रिया। २ वह पानी जिसमें कोई वस्तु धोई गई हो।

धोवा (हिं० पु०) गुड़ आदिका सूखा हुआ लोंदा, भेल्ला, भेली।

धौंक (हिं० स्त्री०) अग्नि पर पहुंचाया हुआ वायुका आघात। २ गरमीकी लपट, ताप, लू।

धौंकना (हिं० क्रि०) १ अग्निको प्रज्वलित करनेके लिए उस पर वायुका आघात पहुंचाना। २ दण्ड आदि लगाना। ३ ऊपर डालना, सहन कराना।

धौंकनी (हिं० स्त्री०) १ लोहार सोनार आदिकी आग फूंकनेकी नली जो बांस या धातुकी बनी होती है। २ भाथी।

धौंकलसिंह—१ हिन्दीके एक कवि। ये जातिके बैस क्षत्रिय और न्यावां जिला रायबरेलीके रहनेवाले थे। इनका जन्म १८६० सम्वत्‌में हुआ था। रमलप्रश्न आदि छोटे छोटे ग्रन्थ इनके बनाये पाये जाते हैं।

२ जोधपुरके राजा भीमसिंहके पुत्र। इनका जन्म भीमसिंहके मरनेके बाद हुआ था। भीमसिंहकी मृत्युके बाद मानसिंह वहांके अधीश्वर बन गए। पोकरणके जागीरदार सवाईसिंहके हृदयमें प्रतिहिंसाका वीर जागरूक था। उन्होंने यह घोषणा कर दी, कि मृत महाराज भीमसिंहकी राणी गर्भवती हैं, उनके गर्भसे यदि पुत्र होगा, तो न्यायत: इस राज्य पर उसका अधिकार है। अतएव वह राजा बनाया जायगा। इस प्रकार घोषणा करके सवाईसिंहने कतिपय सामन्तोंको अपने पक्षमें कर लिया। एक दिन यह प्रस्ताव महाराज मानसिंहके सामने भी किया गया। महाराजने उसे कुछ मतलबका न समझ कर स्वीकृत कर लिया। कुछ दिनोंके बाद महाराणीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। महाराणीने समझा कि यह यह पुत्र यहां रहेगा तो मानसिंह उसे मार डालेगा यही सोच कर उन्होंने सवाईसिंहके यहां पोकरणमें उस लड़केको भेज दिया। दो वर्षके बाद मानसिंह जब इसका पता लगा, तब उन्होंने कहा कि यदि वह सचमुच महाराजका पुत्र होगा तो मुझे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेमें कुछ सन्देह नहीं। राणीसे पूछने पर उन्होंने यही कह दिया कि यह पुत्र मेरा नहीं है। यह सुन कर मानसिंहका बोझ बहुत कुछ हल्का हुआ, परन्तु सवाईसिंह जिस प्रतिहिंसाका बदला लेना चाहते थे उनका वह मनोरथ सिद्ध न हुआ। उन्होंने धौंकलसिंहको खेतड़ीके सामन्त छत्रसिंह भाटीके यहां भेज दिया और जयपुरके महाराज जगत्‌सिंहको मानसिंहके विरुद्ध उभाड़ा। महाराज भीमसिंहके जीते जी कृष्णकुमारीका विवाह उन्हींसे निश्चित हुआ था। अब

उनके मरने पर सवाईसिंहने जयपुरके महाराजसे कृष्णा-कुमारीका पाणिग्रहण करनेके लिए कहा। उन्होंने यह प्रस्ताव उदयपुर भेजा। लेकिन सवाईकी चतुरतासे मानसिंहने मार्गमें हो उनकी सेनासे विवाहके प्रस्तावको कुल सामग्री छीन ली और उन्हें मार भगाया। ऐसा करनेसे उनका विरोध बद्धमूल हो गया। बड़ी तैयारीसे जगत्सिंह जोधपुर पर चढ़ आये। राठौर सेनाने भी जगत्सिंहका पक्ष लिया। दोनों पक्षमें घनघोर युद्ध हुआ। मानसिंहने लड़ाईमें पीठ दिखलाई और जोधपुरके किलेका आश्रय लिया। अन्तमें जगत्सिंह यहांसे अपमानित हो कर जयपुर लौट गये। सवाईसिंहका षड़यन्त्र प्रकाशित हो गया। अमीरखांने मानसिंहके कहनेसे सवाईसिंहको मित्रताके जालमें फांस कर मार डाला। १८२८ ई०में धौंकलसिंह मारवाड़का राज्य पालन करनेके लिये कोशिश करने लगे। जयपुरके महाराज सवाई जयसिंह तथा कतिपय राठौर सामन्तोंका दल इसलिए तैयार हुआ कि मानसिंहको तख्त परसे उतार कर धौंकल सिंहको राज्य दिला दें। लेकिन वृटिश गवर्मेण्टके सुप्रबन्धसे षड़यन्त्रकारी हताश हो गये और धौंकलसिंह भी हाथ मलते रह गये।

धौंकिया (हिं० पु०) १ भाथी चलानेवाला, आग फूंकनेवाला। २ व्यापारी जो भाथी आदि लिए नगरोंको गलियांमें फिर कर टूटे फूटे बरतनोंको मरम्मत करता है।

धौंकी (हिं० स्त्री०) धौंकनी।

धौंज (हिं० स्त्री०) १ दौड़, धूप, धाव-धूप। उद्विग्नता, घबराहट, हैरानी।

धौंजन (हिं० स्त्री०) धौंज देखो।

धौंजना (हिं० क्रि०) १ दौड़ धूप करना। २ किसी वस्तुको पैरोंसे रौंदना। ३ रौंद कर तह बिगाड़ना।

धौंटा (हिं० पु०) वह ढक्कन जो कोल्हूके बैलकी आंखोंमें लगाया जाता है।

धौंताल (हिं० वि०) १ चुस्त, चालाक, फुरतीला। साहसी, दृढ़। ३ हृष्ट पुष्ट, हट्टा कट्टा, मजबूत। ४ निपुण, पटु, तेज।

धौंधौंमार (हिं० स्त्री०) शीघ्रता, हड़बड़ी, उतावली।

धौंर (हिं० स्त्री०) सफेद रंगकी ईख।

धौंस (हिं० स्त्री०) १ धमकी, घुड़की, डांट। २ अधिकार, धाक, रोब दाब। ३ छल, धोखा, भुलावा। ४ बाकी वसूल होनेका खर्च जो जमीन्दार या आसामीको देना पड़े।

धौंसना (हिं० क्रि०) १ दण्ड देना, दमन करना, दबाना। २ धमको देना, घुड़का देना, डराना। ३ मारना, पीटना।

धौंसपट्टी (हिं० स्त्री०) धोखा, भुलावा, दम दिलासा।

धौंसा (हिं० पु०) १ बड़ा नगारा, डंका। २। सामर्थ्य, शक्ति, बूता।

धौंसिया (हिं० पु०) १ धौंस जमानेवाला। २ धोखेबाज, दमदिलासा देनेवाला। ३ नगारा बजानेवाला, धौंसेवाला। ४ वह जो मालगुजारीके बाकीदारोंसे मालगुजारो वसूल करनेका खर्च लेता है।

धौ (हिं० पु०) भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र जंगलोंमें मिलनेवाला एक ऊँचा झाड़। यह हिमालय पर ५००० फुटकी ऊंचाई तक होता है। इसके पत्ते अमरूदके पत्तोंसे मिलते जुलते हैं और छिलके सफेद होते हैं जो चमड़ा सिझानेके काममें आते हैं। रङ्ग साज इसके फूलको आलके रंगमें मिला कर लाल रंग बनाते हैं। इससे एक प्रकारका गोंद निकलता है। इसको लकड़ी सफेद होती है और हल मुसल कुल्हाड़ीका बेंट आदि बनानेके काममें आती हैं। यह दवाके काममें भी आता है। धव देखो।

धौत (सं० त्रि०) धाव्यते इति धाव कर्मणि क्त। १ मार्जित, साफ किया हुआ। २ प्रक्षालित, धोया हुआ। ३ स्नात, नहाया हुआ। ४ शोधित, शुद्ध किया हुआ। इसका पर्याय—निर्णिक्त, शोधित, मृष्ट और क्षालित है। (क्ली०) ५ रौप्य, रूपा, चांदी। ६ नीलकसीस।

धौतकट (सं० पु०) धौतः कटः कर्मधा०। सूतरचित पात्र, सूतकी थैली। इसका पर्याय-स्योन, स्यूत, प्रसेवक और स्यून है।

धौतकोषज (सं० क्ली०) कोषाज्जायते इति कोष-जन-ड। धौतं कोषजं। पट्टोर्ण, सोनापाठा।

धौतकौषेय (सं० क्ली०) धौतं क्षालितं कौषेयं।। प्रक्षालित पट्टोर्ण, धोया हुआ सोनापाठा।

धौतखण्डी (सं० स्त्री०) इक्षुखण्ड, ईखका टुकड़ा।

धौतवली (सं० स्त्री०) धौताञ्जनी।

धौतमूलक (सं० पु०) चीन राजभेद, चीन देशके एक राजाका नाम। (भारत उद्योग ७३ अ०)

धौतय (सं० क्ली०) धौतमिव रौप्यमिव वर्णं याति या-क। सैन्धव, सेंधा नमक। इसका रंग चाँदी सा सफेद होता है, इसीसे इसका नाम धौतय हुआ है।

धौतरि (सं० त्रि०) धूतमेव धौतं कम्पनमृच्छति ऋ-कि। कम्पनकारक, कँपानेवाला।

धौतशिल (सं० क्ली०) धौता शिला यस्य। स्फटिक, बिल्लौर।

धौताञ्जनी (सं० स्त्री०) तरहट शिववभेद, एक प्रकारकी अञ्जनी।

धौति (सं० स्त्री०) धाव-क्तिन्। १ शुद्ध। २ विशुद्ध। ३ हठयोगकी एक क्रिया जो शरीरको भीतर और बाहरसे शुद्ध करनेके लिये की जाती है। इसका विषय योगशास्त्रकी घेरण्ड संहितामें इस प्रकार लिखा है—धौति चार प्रकारकी है—अन्तधौति, दन्तधौति, हृद्धौति और मूलशोधन। इनमेंसे अन्तर्धौतिके भी चार भेद हैं—वातसार, वारिसार, वह्निसार और बहिष्कृत।

वातसार—अपना मुख काकचञ्चु सरीखा करके पुनः पुनः वायुपान करना होता है और उस वायुको उदरके मध्य सञ्चालन कर मुख द्वारा उसे निकालना होता है। यह वातसार गोपनीय है और देह निर्मलका प्रधान उपाय है।

वारिसार—इसमें मुख द्वारा आकण्ठ परिपूर्ण कर जल पीना होता है। पीछे उस जलको उदरसे नीचेकी ओर ले कर विरेचन करना होता है। यह वारिसार प्रधान धौति है। जो यत्नपूर्वक इसका साधन करते, उनकी मलदेह शोधित हो कर देवदेह होती है।

अग्निसार—इसमें श्वासको रोक कर नाभिको एक सौ बार मेरुदण्डमें संलग्न करना होता है। इस धौति द्वारा उदरका आमादि दोष विनष्ट हो कर अग्निकी वृद्धि होती है। यह धौति अत्यन्त गोपनीय, देवताओंका दुर्लभ और योगियोंकी योगसिद्धिका कारण है। इस धौतिके सफलतासे भी मलदेह निर्मल हो कर देवताके सदृश देह हो जाती है।

बहिष्कृत—काकमुद्रा अर्थात् कौवेकी चोंच सा अपना मुख करके वायु द्वारा उदरपूर्ण करना होता है और चार दण्ड तक उस वायुको उदरमें रख कर नीचेकी ओर चालित करना पड़ता है। पीछे नाभिदेश तक जलमें मग्न हो कर नाड़ी बहिष्कृत पूर्वक जब तक सभी मल सम्पूर्ण रूपसे साफ न हो जाय, तब तक हस्त द्वारा उसे प्रक्षालित करते हैं। इस प्रकार प्रक्षालन करके फिर से उसे उदरमें रख देते हैं। यह धौति अत्यन्त गोपनीय है और देवताओंका दुर्लभ है। केवल इस धौति द्वारा ही देवदेह प्राप्त होती है। चार दण्ड पर्यन्त जब तक श्वासरोध करनेमें समर्थ न हो, तब तक इस धौतिकी परिचालना न करनी चाहिये।

दन्तधौति पांच प्रकारकी है, यथा—दन्तमूल, जिह्वामूल, रन्ध्र, कर्णद्वार और कपालरन्ध्र।

दन्तधौति—खैरके रससे अथवा मट्टी द्वारा दन्तमूलको इस प्रकार मलना चाहिये कि उसमें तनिक भी क्लेद रहने न पावे। इस प्रकार दाँत साफ करनेसे कभी दाँत नहीं गिरते।

जिह्वाधौति—तर्जनी, मध्यमा, और अनामिका इन तीन उँगलियोंको गलेमें डाल कर जिह्वामूल तक साफ करना चाहिये। इस प्रकार बारम्बार मार्जन करनेसे कफदोषका निवारण होता है।

जिह्वामूलको बार बार मक्खन द्वारा दोहन करना चाहिये और लौहयन्त्र द्वारा जिह्वाका अग्र भाग खींच कर बाहर करना चाहिये। जो यत्नपूर्वक हमेशा सूर्योदय वा सूर्यास्तके समय इस प्रकारकी प्रक्रिया करते हैं, उनकी जिह्वा लम्बी होती है और जरामरण रोगादि नष्ट होते हैं।

रन्ध्रधौति—नाक द्वारा रन्ध्रके भीतर जल ले जा कर उसे मुख द्वारा बाहर निकाल देना चाहिये और शीत्कार द्वारा मुखमें जल ले कर उसे नासापुट द्वारा नीचे फेंक देना चाहिए। यह धौति अत्यन्त गोपनीय है।

कर्णधौति—तर्जनी और अनामिका उँगली द्वारा कर्णकुहरको मलना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन मार्जन करनेसे शब्दान्तर श्रुत होता है।

कपालरन्ध्रधौति—दाहिने हाथके अङ्गुष्ठ द्वारा

कपालरन्ध्रको मलना होता है। ऐसा अभ्यास करनेसे कफदोषकी शान्ति, उत्तमदृष्टि और नाड़ी निर्मल होती है। यह धौति प्रतिदिन निद्रावसानमें, दिनान्तमें अथवा भोजनान्तमें करना होती है।

हृद्धौति—हृद्धौति तीन प्रकारकी है। प्रथम—रम्भादण्ड, हरिद्रादण्ड अथवा वेत्रदण्डको मुख द्वारा हृदयमें प्रविष्ट करते हैं। बाद कुछ काल तक उसे वहां परिचालन कर निकाल लेते हैं। ऐसा करनेसे कफ, पित्त और क्लेद मुख हो कर बाहर निकल जाता है। इस धौति द्वारा हृदयमें कोई रोग रहनेसे वह निश्चय ही आरोग्य हो जाता है।

द्वितीय—आहारके बाद आकण्ठ पर्यन्त जलपान कर कुछ काल तक दृष्टिको ऊपरकी ओर किये जल-वमन करते हैं। प्रतिदिन यह धौति करनेसे कफ और पित्त नष्ट हो जाता है।

तृतीय—चार उँगलीके सूक्ष्म वस्त्रको धीरे धीरे गलेके भीतर डाल कर फिरसे उसे बाहर निकाल लेते हैं। इस धौति द्वारा गुल्म, ज्वर, प्लोहा और कुष्ठ आदि रोग आरोग्य हो जाते हैं, पित्तका नाश होता है और दिनोंदिन देहकी पुष्टि होती है।

मूलशोधन—जब तक मूलशोधन नहीं होता, तब तक वायुकी कुटिलता नहीं जाती। इसीसे यत्नके साथ मूलशोधन करना आवश्यक है। हरिद्राके मूल अथवा मध्यमाङ्गुलि द्वारा जलसे बार बार गुह्यदेशको साफ करना चाहिये। ऐसा करनेसे कोष्ठका काठिन्य, आम, अजीर्ण आदि विनष्ट होते हैं तथा कान्ति, पुष्टि और अग्नि प्रदीप्त होती है। (घेरण्डसंहिता)

धौती (सं॰ स्त्री॰) धू-कर्त्तरि णिच्, स्वार्थे अण्, ततो ङीप्। कम्पन, थरथराहट, कँपकँपी।

धौन्धुमार (सं॰ क्ली॰) धुन्धुमारमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः अण्। महाभारतके वनपर्वके अन्तर्गत उपाख्यानभेद।

धौमक (सं॰ पु॰) धूमे तत्प्रधानदेशे भवः धूमादित्वात् वुञ्। धूमप्रधान देशभेद।

धौमत (सं॰ क्ली॰) रक्तबोल, खून-खराबी।

धौमतायन (सं॰ पु॰) राजभेद, एक राजाका नाम।

धौमायनक (सं॰ त्रि॰) धौमायनेन निर्वृत्तः ततो वुञ्। धौमायन निर्वृत्तादि।

धौमीय (सं॰ त्रि॰) धूमेन निर्वृत्तादि, कृशादित्वात् छण्। धूमनिर्वृत्तादि।

धौम्य (सं॰ पु॰) धूमस्य अपत्यं गर्गादित्वात् यञ्। धूमऋषिके पुत्र। ये युधिष्ठिरके पुरोहित थे। महाभारतमें इनकी कथा इस प्रकार लिखी है—

धौम्य देवलके भाई थे। उत्कोचक नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है, वहीं इनका आश्रम था। वहां ये रह कर कठोर तपस्या करते थे। चित्ररथने इन्हें पुरोहित बनानेके लिये पाण्डवोंको उपदेश दिया। उन्हींके उपदेशानुसार पाण्डवगण इनके पास पहुंचे और इन्हें उपयुक्त पात्र समझ कर उन्होंने ऋषिको अपना पुरोहित बनाया। इन्होंने नारदसे सूर्यका एक स्तोत्र पाया था, जिसे इन्होंने युधिष्ठिरको सिखाया था। इसी स्तवके प्रभावसे युधिष्ठिरने मुक्ति पाई थी।

२ सत्ययुगके एक ऋषि। सत्ययुगमें व्याघ्रपद नामक एक ऋषि थे। इनके छोटे पुत्रका नाम धौम्य था। एक दिन ये और इनके बड़े भाई उपमन्यु खेलते खेलते किसी एक आश्रमको जा पहुंचे जहां इन्होंने एक गायको दूहा जाते देखा। दूध देख कर ये दोनों भाई अपनी माताके पास गये और दूध पीनेकी इच्छा प्रकट की। इस पर माताने इन्हें प्रबोध दिया, 'हे वत्स! महादेवकी उपासनाके सिवा अभीष्ट वस्तु पानेकी कोई सम्भावना नहीं है।' धौम्य मातासे महादेवके स्वरूपादि सुन कर उनकी तपस्यामें लग गए। माताका उपदेश इनके लिए इष्टमन्त्र था।

महादेवने इनकी तपस्यासे खुश हो कर वर दिया, "वत्स! तुम मेरे वरके प्रभावसे अजर, अमर, तेजस्वी और दिव्यज्ञानसम्पन्न होगे। तूने सामान्य दुग्धाके लिए माताके उपदेशसे मुझे पाया। अतएव तुम्हारी इच्छासे क्षीरसमुद्र तुम्हारे सामने आविर्भूत होगा और एक कल्पके बाद तुम मेरा सालोक्य पाओगे। आजसे मैं तुम्हारे इस आश्रममें स्थायी हुआ। जब कभी तुम इच्छा करोगे, तभी तुम मुझे इस आश्रममें देख सकते हो।" इस वरको पा कर ये सुखसे रहने लगे।

(महाभारत अनु॰)

३ एक ऋषिका नाम जिन्हें आयोद भी कहते थे।

हूलके आरुणि, उपमन्यु और वेद नामके तीन शिष्य थे।

४ एक ऋषि जो ताराकृपमें पश्चिम दिशामें स्थित है। इनका नाम महाभारतमें उवङ्ग, कवि और परिव्याधके साथ आया है।

धौम्र (सं० पु०) १ धूम्र एव स्वार्थे अण्। ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम। स्वार्थे अण्। २ धूम्रवर्ण, धुएंका रंग। (त्रि०) ३ धूम्र वर्णयुक्त, जो धुएं रंगका हो। भावे अण् (पु०) ४ धूम्रवर्णत्व, धूम्रवर्णका भाव। धूम्रो देवता ऽस्य अण्। ५ वास्तुस्थानभेद।

धौम्रायण (सं० पु० स्त्री०) धूम्रस्य गोत्रापत्यं अश्वादित्वात् फञ्। धूम्र ऋषिका गोत्रापत्य।

धौर (सं० पु०) धववृक्ष, धौका पेड़।

धौर (हिं० पु०) एक चिड़िया, सफेद परेवा।

धौरा (हिं० वि०) १ श्वेत, सफेद, उजला। (पु०) २ धौका पेड़। ३ एक पक्षी। यह कुछ बड़ा और खुलते रंगका होता है। ४ सफेद रंगका बैल।

धौराकुञ्जर—मध्यभारतके इन्दोर एजेन्सीके अन्तर्गत एक छोटा सामन्तराज्य। यहांके ठाकुर अर्थात् सरदार भिमरोला घाटसे सिगवर तक राजपथकी रक्षा करनेके लिये यहांका उपस्वत्व भोग करते हैं।

धौरादित्य (सं० पु०) शिवपुराणके अनुसार एक तीर्थका नाम।

धौराहर (हिं० पु०) ऊंची अटारी, धरहरा, बुर्ज।

धौरहरा—१ अयोध्याके अन्तर्गत फैजाबाद जिलेका एक शहर। यह फैजाबादसे लखनऊ जानेके रास्तेसे २० मील और घाघरा नदीसे ४ मील दूर पर अवस्थित है। यहां मस्जिद वा मन्दिरादि कुछ भी नहीं हैं, केवल शहरके बाहरमें एक सुन्दर तोरण-द्वार विद्यमान है। यहांके लोगोंका कहना है, कि अयोध्यापति आसफ उद्दौला इसे निर्माण कर गये हैं। धौराहरसे घाघराके दूसरे किनारे एक प्रकाण्ड इमलीका वन है जिसमें महादेवका एक मन्दिर प्रतिष्ठित है। प्रवाद है, कि पहले वहां महादेव पृथ्वीके भीतर रहते थे। एक समय एक दल अयोध्या-यात्री संन्यासी महादेवके दर्शनकी कामनासे महादेवको बाहर निकालनेके लिये जमीन खोदने लगे। किन्तु जितना ही वे जमीन खोदते जाते उतना ही शिवलिङ्ग जमीनके भीतर प्रविष्ट होते गये, यह देख कर वे सबके सब डरके मारे वहांसे भाग गये। इस अलौकिक घटनाके स्मरणार्थ दो भक्त सौदागरोंने वहां पर पत्थरकी वेदी और प्राकारयुक्त एक शिवमन्दिर बनवा दिया। मन्दिर अभी भग्न दशामें पड़ा है।

२ अयोध्याके अन्तर्गत खेरी जिलेकी निघासन तहसीलका एक परगना। इसके उत्तरमें कौरियाला, पूर्वमें दहावर, दक्षिणमें चौकानदी और पश्चिममें निघासन परगना है। भूपरिमाण २६१ वर्गमील है। मुसलमानोंसे कन्नौज फतह किये जानेके पहले यह परगना विख्यात महोबा-सरदार आल्हा और ऊदलके राज्यभुक्त था। पीछे फिरोज शाहके समयमें यह गढ़ खिराबादके अन्तर्भुक्त हुआ। इस समय सम्भवतः धौरानिवासी पाणि-वंशीय राजगण यहां राज्य करते थे। मुगल-साम्राज्यके अधःपतनके समय विसेनोंने इस पर अपना अधिकार जमाया। कुछ समयके बाद चौहान जाङ्गरेजने उन्हें मार भगाया और धौराहरको अपने अधिकारमें कर लिया। आज भी यह उन्हींके दखलमें है। यहांकी भूमि जलमय है। प्रतिवर्ष सारा परगना चौका और कौरियाला नदीके जलसे डूबा करता है। कृषिकार्यकी अवस्था उत्कृष्ट नहीं है। चौका, कौरियाला और दहावर नदी हो कर वर्ष भरमें दश मास वाणिज्य व्यवसाय चलता है।

३ उक्त परगनेका एक शहर। यह अक्षा० २८° उ० और देशा० ८१° ५' पू० लखनऊसे ८० मील उत्तर और शाहजहानपुरसे ७३ मील पूर्व चौका नदीके पश्चिमी किनारे अवस्थित है। १८५७ ई०के सिपाही विद्रोहके समय शाहजहानपुर और महमदीसे भगाये जानेके बाद अंगरेजोंने लखनऊ जानेके रास्ते पर धौराहरके राजाका आश्रय चाहा था। किन्तु राजाने विद्रोहियोंके भयसे उन्हें आश्रय देनेसे अस्वीकार किया था। पीछे इसी अपराधमें उन्हें प्राण दण्ड हुआ और उनका राज्य जब्त कर लिया गया। इस शहरमें एक चिकित्सालय और दो स्कूल हैं।

धौरित (सं० क्ली०) धोरितमेव अण्। अश्वगतिभेद, घोड़ेकी एक चाल, घोड़ेकी पांच चालोंमेंसे एक।

धौरितक (सं० पु०) धौरित देखो।

धौरी (हिं० स्त्री०) कपिला, सफेद रंगकी गाय।

धौरे (हिं० क्रि० वि०) धोरे देखो।

धौरेय (सं० त्रि०) धुरं वहति धुर-ढक्। (धुरो यड्. ढकौ। पा ४।४।७७) १ धुर्वह, धुर खींचनेवाला, रथ आदि खींचनेवाला। (पु०) २ धूर्य वृष, वह बैल जो गाड़ी खींचता है।

धौर्त्तक (सं० पु०) धूर्त्तस्य भावः मनोज्ञादित्वात् वुञ्। धूर्त्तत्व, शठता।

धौर्त्तक (सं० त्रि०) धूर्त्तस्य इदं धूर्त्त वुञ् प्रत्ययेन निष्पन्नं। धूर्त्तका भाव।

धौर्त्तेय (सं० पु० स्त्री०) धूर्त्तया अपत्यं स्त्रीभ्यो ढक् इति सूत्रेण ढक्। धूर्त्तका अपत्य, छलीकी सन्तति।

धौर्त्य (सं० क्ली०) धूर्त्तस्य भावः, कर्म वा ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ्। १ धूर्त्तत्व, शठता। २ धूर्त्तकर्म, धोखेका काम।

धौर्य (सं० क्ली०) धोर धुर वा ष्यत्। अश्वगतिभेद, घोड़ेकी एक चाल।

धौल (हिं० स्त्री०) १ थप्पड़, धप्पा, चाँटा। २ हानिका आघात, नुकसानका धक्का, टोटा। ३ कानपुर बरेली आदिमें होनेवाली धौर नामकी ईख। ४ ज्वारका हरा डंठल। (पु०) ५ धौका पेड़, धौरा, बकली। ६ धौराहर, धरहरा। (वि०) ७ श्वेत, उजला, सफेद।

धौलधक्कड़ (हिं० पु०) ऊधम, उपद्रव, मारपीट, दंगा।

धौलधक्का (हिं० पु०) आघात, चपेट।

धौलधप्पड़ (हिं० पु०) १ ऊधम, उपद्रव, दंगा। २ मार पीट, धक्का मुक्का।

धौलधप्पा (हिं पु०) धौलधप्पड़ देखो।

धौला (हिं० वि०) १ श्वेत, उजला, सफेद। (पु०) २ धौका पेड़, धौरा। ३ सफेद बैल।

धौलाई (हिं० स्त्री०) उजलापन, सफेदी।

धौलाखैर (हिं० पु०) बङ्गाल, बिहार, आसाम और दक्षिण भारतमें होनेवाला बबूलकी जातिका एक पेड़। इसका छिलका उजला होता है।

धौलागिरि (हिं० पु०) धवलगिरि देखो।

धौलाधर—पञ्जाब प्रदेशके काङ्गड़ा जिलेकी एक गिरिमाला। यह गिरिश्रेणी हिमालय पर्वतमालाकी एक उपशाखा है। इसके एक ओर काङ्गड़ा और दूसरी ओर चम्बा है। मूल पर्वतश्रेणी चारों ओरकी समतल भूमिसे निकल कर १३००० फुट तक ऊँची हो गई है।

यह पर्वत अत्यन्त दुरारोह है। इसके बगलमें छोटी शाखादि नहीं है। इसके ऊपरका भाग बहुत पतला है इस कारण वहां बर्फ जमने नहीं पाता। नीचेका अधित्यका-प्रदेश देवदारु आदि वृक्षोंसे सुशोभित है। पर्वतके नीचे बहुतसे सोते बहते हैं जिनसे खेत सींचा जाता है। सबसे बड़ा शृङ्ग समुद्रपृष्ठसे १५८५ फुट ऊंचा है और उपत्यका प्रदेशकी ऊँचाई लगभग २०० फुट होगी।

धौलि—उड़ीसा प्रदेशमें भुवनेश्वर नगरके दक्षिणवर्त्ती एक गण्ड शैल। इसका प्रकृत नाम धवलगिरि है। यह अक्षा० २०° १५' उ० और देशा० ८५° ५०' पू० भुवनेश्वरसे ७ मील दक्षिणमें अवस्थित है। इसके तीन प्रधान शृङ्ग हैं। समूचा पहाड़ कहीं ऊँचा और कहीं नीचा हो कर प्रायः आठ मील तक फैला हुआ है। समतलसे शैलशिखर पर चढ़ना बहुत कठिन है। इसके चारों ओर प्रायः ८।१० मील तक एक भी पर्वत नहीं रहनेके कारण इसका दृश्य बहुत रमणीय मालूम पड़ता है। भूतत्त्वविदोंका कहना है, कि यह पहाड़ आग्नेय शक्तिसे उत्पन्न हुआ है। इसका उत्तरस्थ शैल सर्वोच्च है और पूर्वका अंश प्रायः २५० फुट ऊँचा है। इस शिखर पर एक टूटा फूटा शिवमन्दिर देखनेमें आता है और सब दूसरे दूसरे शृङ्ग उतने ऊँचे नहीं हैं।

मन्दिरके निम्न भागमें अनेक कृत्रिम गुहाएं आज भी विद्यमान हैं, जिनमेंसे अनेक नहस नहस हो गई हैं। समग्र पर्वत पर दो प्रकाण्ड गिरिगह्वर थे जिनमेंसे एक पत्थरसे भर गया है और दूसरा चालीस पचास हाथ तक खूब परिष्कार है, किन्तु रास्ता इतना अप्रशस्त और चमगादड़के मूत तथा विष्ठासे दुर्गन्धमय हो गया है कि आगे बढ़नेका जी नहीं भरता। इस गह्वरके दक्षिण पार्श्वमें बहुत कम खोदी हुई एक शिलालिपि है।

पहाड़के पश्चिमकी ओर कन्दरामें गणेश और महादेवका मन्दिर है। इसके सिवा पर्वतके सब शिखरों पर

तथा इधर उधर अनेक मन्दिरादिके चिह्न देखे जाते हैं।

इसी धौलगिरि पर्वतसे पत्थर निकाल कर ये सब मन्दिर बनाये गये हैं। कौशल्यागाङ्ग नामक सुवृहत् जलाशयके निकट अश्वत्थामा नामक धौलिका दक्षिण पूर्व भाग बहुत कुछ विख्यात है। इस अंशमें बौद्ध-धर्म-के प्रचारक ख्यातनामा सम्राट् अशोकके अनुशासन लेख दक्षिणस्थ गिरिशृङ्गके उत्तरी पार्श्वमें उत्कीर्ण हैं। शृङ्गका पत्थर काट कर प्रायः १५ फुट लम्बा और १० फुट चौड़ा स्थान परिष्कार और चिकना कर दिया गया है। उस चिकने स्थानके चार स्तवकोंमें अशोकको अनुशासन-लिपि गहरे अक्षरोंमें खोदी हुई है। पहले स्तवकके अक्षर बड़े हैं सही, किन्तु अच्छी तरह खोदे हुए नहीं हैं। इसीसे बहुतेरे लोग अनुमान करते हैं कि यह स्तवक दूसरे दूसरे स्तवकोंसे विभिन्न समयमें खोदा गया होगा। चौथे स्तवकके चारों ओर एक गहरी रेखा खींची हुई है। इसके अक्षर सिलसिलेवारसे खोदे हुए हैं।

अनुसासनलिपिके ऊपरमें जो १६ फुट लम्बा और १४ फुट चौड़ा एक चत्वर है। इसके पश्चिम पार्श्वमें सुनिपुण भास्कर-निर्मित हस्तीके सम्मुखार्द्धको प्रस्तर-मय एक सुन्दर मूर्ति है। पर्वतके एक अखण्ड पत्थरको खोद कर यह हस्तिमूर्ति बनाई गई है। चत्वरके तीन ओर ४ इञ्च चौड़ा और १२ इञ्च लम्बा गहरा नाला है। हाथीके दोनों बगलमें भी उसी तरहका एक नाला है। केवल हाथी मूर्त्तिके सामने ३ फुट स्थानमें नाला नहीं है। इससे अनुमान किया जाता है कि काष्ठनिर्मित चन्द्रातप आदि बैठानेके लिये ये सब नाले प्रस्तुत किये गये होंगे।

यह हस्तिमूर्त्ति किसीके उपास्य देवता नहीं है। किन्तु प्रतिवर्ष ब्राह्मण लोग एक बार वहां जा कर गजानन देवको तुष्ट करनेके लिये उस गजमुण्डमें सिन्दूर लेपते और उसे स्नान कराते हैं।

अश्वत्थामा-गिरिके चारों ओर असंख्य गुहाएं भग्ना-वस्थामें पड़ी हैं। कहीं कहीं मन्दिरादिकी दीवारोंके चिह्न मात्र देखनेमें आते हैं। अनुशासन-लिपिके ऊपरमें जो एक प्रकाण्ड भवनका भग्नावशेष दृष्टिगत होता है। यही सम्भवतः अनुशासन-वर्णित चैत्य होगा।

हस्तिमूर्त्तिके दक्षिणमें पांच गुहा हैं जिन्हें कोई पञ्च पाण्डव और कोई पञ्चगोसामी कहते हैं। इन पांच गुहाओंके अलावा और कितने गुहाओंके चिह्न देखनेमें आते, वे सब काल क्रमसे लुप्त हो गई हैं।

इन सब गुहाओंके सामने पत्थरके ऊपर अनेक छोटे छोटे गड्ढे देखनेमें आते हैं। बहुतोंका अनुमान है कि इन सब गड्ढोंमें गुहावासिगण उखलीका काम करते और अनुशासनोक्त आयुर्वेदवित् संन्यासीगण उनमें औषध गुल्मादि पीसते थे। खण्डगिरिमें भी इस तरहके गड्ढे देखे जाते हैं।

धौलिके अनुशासन लाट देशस्थ गिर्णरके और युसफ-जाइ देशस्थ अशोक-अनुशासनके समान हैं, केवल धौलि-अनुशासनके आदि और अन्तमें दो अधिक अनुशासन खोदे हुए हैं, दूसरे किसी अनुशासनमें वैसा नहीं है।

इस अनुशासनमें अनेक चैत्य प्रभृतिके नामोल्लेख हैं। वे सब चैत्य शायद धौलि पहाड़के पास ही अवस्थित थे, उनमेंसे अधिकांश लुप्त हो गये हैं। धौलिके निकट ही कौशल्यागाङ्ग-दीर्घिकाके चतुःपार्श्व और मध्यवर्त्ती द्वीपमें अनेक भग्नस्तूप विद्यमान हैं। वे सब मन्दिरादि सम्भवतः अशोकके बहुत पीछे बनाये गये थे।

कौशल्या-गाङ्ग पुष्करिणी भी १२वीं शताब्दीमें गङ्गेश्वर अनङ्गभीमके समयमें तैयार की गई है, ऐसा प्रवाद है। जो कुछ हो, जिस समय धौलिका अनुशासन खोदा गया था उसी समयके लगभग यहां एक जनपूर्ण वृहत् नगर था इसमें तनिक भी सन्देह नहीं किया जा सकता। बौद्ध सम्राट् अशोकने जो जनसाधारणकी भलाईके लिये लिखित अनुशासनमालाको निर्जन प्रदेशमें वा विरुद्धवादी हिन्दुओंके मध्य स्थापित किया होगा यह भी प्रतीत नहीं होता।

धौलि और उदयगिरिमें अनेक बौद्ध संन्यासी रहते थे। ये लोग बहुत श्रद्धापूर्वक जीवन व्यतीत करते थे। सुतरां अनुमान किया जाता है कि इसके पास ही अनेक बौद्धगण-परिवृत एक सुवृहत् नगर था। किन्तु धौलिके चारों ओर कहीं भी नगरका ध्वंसावशेष देखनेमें नहीं आता। बहुतोंका अनुमान है कि वर्त्तमान भुवनेश्वर जिस स्थान पर अवस्थित है उसी जगह पहले प्राचीन

नगर स्थापित था और धौलि उदयगिरि आदि उस बृहत् नगरके उपकण्ठमें अवस्थित थे। धौलि पहाड़के समीप ही धौलि नामक एक समृद्ध ग्राम बसा हुआ था। जहां आज भी एक प्राचीन बौद्धस्तूपका भग्नावशेष विद्यमान है। धौलिके अनुशासनमें उस स्तूपका नाम 'तुवाल्मवि स्तूप' लिखा है। शायद उस तुवाल्मवि टोप या स्तूपसे ही धौलि ग्रामका नाम पड़ा है। आज कल उस ग्रामको गड़धौलि कहते हैं।

धौली (हिं० स्त्री०) पञ्जाब, अवध, मध्यप्रदेश तथा मन्द्राजमें होनेवाला एक प्रकारका बड़ा पेड़। इसकी पत्तियां जाड़ेमें झड़ जाती हैं। इसकी लकड़ी नरम और भूरी होती है तथा पालकी, खिलौने, खेतीके समान बनानेके काममें आती है। इसके भीतरका छिलका दवाके काममें आता है और इससे चमड़ा भी सिझाया जाता है।

ध्रौवकि (सं० पु०) ध्रुवकाया अपत्यं अत्र ठक्, प्रतिषेधे बाह्वादित्वात् इञ्। ध्रुवकाका अपत्य।

ध्माकार (सं० पु०) ध्मा अग्निसंयोगः तं करोतीति कृ-अण्। १ लोहकारक, लोहार। २ अव्यक्त शब्दकारक, धम धम की आवाज करनेवाला।

ध्माङ्क्ष (सं० पु०) ध्माङ्क्ष-अच्। १ काक, कौवा। २ २ मत्स्यभक्षक पक्षिभेद, बगला। ३ भिक्षुक। ४ तक्षक। (स्त्री०) ५ काकोलिका, शीतलचीनी।

ध्माङ्क्षजङ्घा (सं० स्त्री०) ध्माङ्क्षस्येव जङ्घा यस्याः। काकजङ्घा, चकसेनी, मसी।

ध्माङ्क्षजम्बु (सं० स्त्री०) ध्माङ्क्षप्रिया जम्बुः। काकजम्बु, पानीमें पैदा होनेवाला एक जामन।

ध्माङ्क्षतण्डुलफला (सं० स्त्री०) काकजङ्घा, चकसेनी, मसी।

ध्माङ्क्षतुण्डी (सं० स्त्री०) ध्माङ्क्षस्येव तुण्डं यस्याः ङीष्। काकनासा लता।

ध्माङ्क्षदन्ती (सं० स्त्री०) ध्माङ्क्षस्येव दन्ता अवयवो यस्याः ङीष्। काकतुण्डी लता।

ध्माङ्क्षनखी (सं० स्त्री०) ध्माङ्क्षस्य इव नखाः यस्याः। काकतुण्डी।

ध्माङ्क्षनामा (सं० स्त्री०) काकोदुम्बरिका, एक लता।

ध्माङ्क्षनाशिनी (सं० स्त्री०) हाउबेर।

ध्माङ्क्षनासा (सं० स्त्री०) काकनासा लता।

ध्माङ्क्षपुष्ट (सं० पु०) कोकिल, कोयल।

ध्माङ्क्षमाची (सं० स्त्री०) काकमाची क्षुप, एक प्रकारको बेल।

ध्माङ्क्षवल्ली (सं० स्त्री०) काकजङ्घा, चकसेनी, मसी।

ध्माङ्क्षादनी (सं० स्त्री०) काकादनी लता।

ध्माङ्क्षाराति (सं० पु०) पेचक, उल्लू पक्षी।

ध्माङ्क्षी (सं० स्त्री०) काकोली, सतावरकी तरहका एक प्रकारका कन्द।

ध्माङ्क्षोली (सं० स्त्री०) काकोली।

ध्मापन (सं० क्लो०) ध्मा-णिच् भावे ल्युट्। इंधन, जलाने की क्रिया।

ध्मापित (सं० त्रि०) ध्मापि-क्त। इंधित, जला कर खाक किया हुआ।

ध्यात (सं० त्रि०) ध्यै-क्त। चिन्तित, विचारा हुआ, ध्यान किया हुआ।

ध्याता (हिं० वि०) १ ध्यान करनेवाला। २ विचार करनेवाला।

ध्यान (सं० क्लो०) ध्यै भावे ल्युट्। १ चिन्ता, सोच विचार। २ अद्वितीय वस्तुमें चित्तकी एकाग्रता। ३ बाह्य-इन्द्रियोंके प्रयोगके बिना केवल मनमें लानेकी क्रिया या भाव, मानसिक प्रत्यक्ष, अन्तःकरणमें उपस्थित करनेकी क्रिया या भाव। ४ भावना, प्रत्यय, विचार, ख्याल। ५ चेतनाकी प्रवृत्ति, चेत, ख्याल। ६ बोध करनेवाली वृत्ति, बुद्धि, समझ। ७ धारणा, स्मृति, याद। ८ चित्तको चारों ओरसे हटा कर किसी एक विषय पर स्थिर करनेकी क्रिया।

ध्यै धातुका अर्थ चिन्ता है। जब तत्त्व द्वारा निश्चला चिन्ता होता है तभी उसे ध्यान कहते हैं। अर्थात् जो चिन्ता किसी एक ध्येय वस्तुमें निश्चल की जाती है, वही ध्यान कहलाती है। यह ध्यान दो प्रकारका है, सगुण और निर्गुण। जो चिन्ता मन्त्रपूर्वक की जाती है, वही सगुण ध्यान कहलाती है। मन्त्रादि भिन्न जो ध्यान किया जाता है, उसे निर्गुण ध्यान कहते हैं। वातव्याधि-दर्पणमें ध्यान शब्दका विषय इस प्रकार लिखा है—

"तत्र प्रत्ययैकता ध्यानं ।" (योगसूत्र ३।२)

जिससे मनुष्य तीनों प्रकारके दुःखसे निवृत्ति लाभ कर सके, उसका अनुष्ठान करना अवश्य विधेय है। योगशास्त्रमें एकमात्र योग ही उसका प्रधान उपाय है। योगानुष्ठान द्वारा पहले धारणा, पीछे ध्यान और उसके बाद समाधि लाभ हुआ करती है। योगफलका प्रथम अङ्ग धारणा है, उसके बाद ध्यान है। जब धारणा स्थायी होती हैं, तब उसके बाद ही वही धारणा ध्यानमें परिणत हो जाती है। धारणीय वस्तुमें यदि चित्तकी एकतानता उत्पन्न हो तो वही ध्यान कहलाती है अर्थात् जिस वस्तुमें तुमने बाह्येन्द्रियको निरोध करके अन्तरिन्द्रियको धारण किया है, उस वस्तुका ज्ञान यदि अन्तरित भावसे वा अविच्छेदसे प्रवाहित हो, तो उस प्रकारका वृत्तिप्रवाह ध्यान कहलाता है। वही ध्यान जब चरमावस्थाको पहुंच जाता है, तब समाधि कहलाता है। यही ध्यान जब सिर्फ ध्येय वस्तुको ही उद्भासित वा प्रकाशित करता है और अपना स्वरूप अर्थात् मैं ध्यान करता हूं इत्यादि प्रकारका भेद ज्ञान लुप्त कर देता है, तब उसीको समाधि कहते हैं। ध्यान जब पराकाष्ठा तक पहुंच जाता है, तब सब प्रकारके दुःख जाते रहते हैं।

सब प्रकारकी क्लेशवृत्ति अर्थात् सुख और दुःखादिके आकारका परिणाम यह स्थूल शरीर भोग करता है। ये सब क्लेश वृत्ति या केवल ध्यान द्वारा ही दूर हो सकती है। ध्यान द्वारा सुखदुःखादि निराकृत हो जाते हैं, इसका तात्पर्य यह है कि जिससे किसीको यह न मालूम पड़े कि मानवजन्म ग्रहण कर हम लोग जो सुख भोग करते हैं, वही सुख है, वह हम लोगोंके निकट सुख समझा जा सकता है, किन्तु दर्शनकारियोंके मतसे वह दुःखमें गिना जाता है। इसीसे हमने सुखदुःखादि कह कर इसका उल्लेख किया है। परिपुष्ट क्लेश राशिके विनाशके लिये ही नाना प्रकारके उपाय शास्त्रोंमें निर्धारित हुए हैं। क्लेश नामक अविद्यादि जब वर्त्तमान वा प्रबल अवस्थामें रह कर सुख दुःख और मोहादिरूप त्रिविध कार्य वा भोग उत्पन्न करती हैं, तब वे स्थूल कहलाती हैं। उस स्थूल अवस्थाको नष्ट करनेका प्रधान उपाय ध्यान है। अधिक दिन तक और अनेक बार ध्यान करनेसे धीरे धीरे सुख दुःख और मोहादि नामक सभी चित्तवृत्तियां निहतप्राय वा विलुप्तप्राय हो जाती हैं। सुतरां अविद्या, अस्मिता आदि क्लेशपञ्चककी वृत्ति अर्थात् सुखदुःखादि रूप विशेष अवस्था या विशेष परिणाम ये सब ध्याननाशक माने गये हैं। जिस प्रकार पहले प्रक्षालन, पीछे क्षारसंयोग और उत्तापप्रदानपूर्वक निर्णेजन द्वारा वस्त्रको मैल दूर होती है, उसी प्रकार पहले क्रियायोग, पीछे ध्यानयोगका अवलम्बन कर चित्तकी मैल दूर करनी चाहिये। प्रक्षालन द्वारा वस्त्रमलको निविड़ता नष्ट हो जानेसे पीछे जिस तरह क्षार संयोगादि द्वारा उसका उन्मूलन सहज है, उसी प्रकार पहले क्रियायोग द्वारा चित्तक्लेशकी निविड़ता दूर हो जानेसे पीछे ध्यान द्वारा उसका उन्मूलन सहज हो जाता है। क्रियायोग और ध्यानयोग द्वारा सभी चित्तक्लेश दूर हो जाते हैं सही, लेकिन इसका संस्कार लय नहीं होता। यह संस्कार केवल समाधि भावना द्वारा विनष्ट होता है, अर्थात् चित्तके लय होनेसे ही उसके साथ साथ क्लेश और क्लेशके सभी संस्कार सहजमें विनष्ट हो जाते हैं।

क्रियायोग और ध्यानयोगादि द्वारा क्लेश समूहको दग्ध नहीं करनेसे अर्थात् दग्धवीजके जैसा निस्तेज वा निःशक्ति नहीं करनेसे चिरकाल तक शुभाशुभ कर्मोंमें जड़ित रहना पड़ेगा, कभी मुक्ति नहीं होगी।

(पातञ्जलदर्शन)

महानिर्वाणतन्त्रमें ध्यानका विषय इस प्रकार लिखा है—

"ध्यानन्तु द्विविधं प्रोक्तं स्वरूपारूपभेदतः।
अरूपं तत्र यद्ध्यानमवाङ्मनसगोचरं॥
अव्यक्तं सर्वतो व्याप्तमिदमित्थं विवर्जितं।
अगम्यं योगिभिर्गम्यं कृच्छ्रैर्बहुसमाधिभिः॥
मनसो धारणार्थाय शीघ्रं स्वाभीष्टसिद्धये।
सूक्ष्मध्यान प्रबोधाय स्थूलध्यानं वदामि ते॥
अरूपायाः कालिकायाः कालमातुर्महाद्युतेः।
गुणक्रियानुसारेण क्रियते रूपकल्पना॥"

(महानिर्वाणतन्त्र)

स्वरूप एवं अरूपके भेदसे ध्यान दो प्रकारका है। इनमेंसे

स्वरूप ध्यान वाक्य और मनका अगोचर है। यह ध्यान अत्यन्त कठिन और योगियोंका अगम्य है तथा बहुत कष्टसे साधित होता है। मनके धारणार्थ और शीघ्र शीघ्र अभिलषित सिद्धि तथा सूक्ष्म ध्यान जाननेके लिए स्वरूप ध्यान अर्थात् स्थूलध्यान कहते हैं। ईश्वर रूप-रहित होनेसे भी गुण और क्रियानुसारसे उनके रूपकी कल्पना करनी होगी। किसी मूर्तिका उपलक्ष करके जो चित्तकी एकाग्रता साधित होती है, उसीको स्वरूप ध्यान कहते हैं, ब्रह्मविषयक जो चिन्ता की जाती है, उसे ध्यान कहते हैं।

"ब्रह्मात्मचिन्ता ध्यानं स्यात् धारणा मनसो धृतिः।
अहंब्रह्मेत्यवस्थानं समाधिर्ब्रह्मणः स्थितिः॥"
(गरुड़पुराण ४८ अ०)

मनकी स्थिरताका नाम धारणा और ब्रह्मात्मविषयक चिन्ताका नाम ध्यान है।

ध्यानगोचर (सं० पु०) ध्यानस्य गोचरं ६-तत्। १ ध्यान-प्रत्यक्ष, जो ध्यान करके मालूम किया जाय।

ध्यानजप्य (सं० पु०) विश्वामित्र वंशके एक ऋषिका नाम। (हरिवंश २७ अ०)

ध्यानमय (सं० त्रि०) ध्यान स्वरूपे मयट्। ध्यानस्वरूप।

ध्यानयोग (सं० पु०) १ वह योग जिसमें ध्यान ही प्रधान अङ्ग हो। २ इन्द्रजालकी एक क्रिया। इसके द्वारा मनमें किसी आकृतिकी कल्पना करके शत्रुका नाश किया जाता है। ३ ध्यान और योग।

ध्यानबदरी—हिमालयस्थ गढ़वाल राज्यके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध शिवमन्दिर। जरगामके मध्य यह मन्दिर अवस्थित है और बदरीनाथका ही एक अंश समझा जाता है। स्कन्दपुराणके हिमवत्खण्डमें इसका माहात्म्य लिखा हुआ है।

ध्यानबिन्दूपनिषद् (सं० स्त्री०) अथर्ववेदीय एक उपनिषद्। नारायणने इसकी वृत्ति की है।

ध्यानसिंह—पञ्जाब-केशरी महाराज रणजितसिंहके एक विश्वस्त मन्त्री और काश्मीराधिपति गुलाबसिंहके भ्राता।

ध्यानसिंहका जन्म राजपूत-कुलमें काश्मीरके उत्तर-वर्ती जम्बूराजवंशमें हुआ था। आपके पिताका नाम था किशोरसिंह। किशोरसिंह स्वयं जम्बूके राजा न थे; यत्किञ्चित् राजदत्त उपस्वत्व भोग कर जीवन-यात्रा निर्वाह करते थे। किशोरसिंह (वा कथुरसिंह) के तीन पुत्र थे—गुलाबसिंह, ध्यानसिंह और सुचेतसिंह। ये तीनों भाई वीरप्रकृतिके अध्यवसायी, कूटनीतिज्ञ सुचतुर और बुद्धिमान् थे। बड़े भाई गुलाबसिंहने अपनी प्रतिभाके बल पर सामान्य अवस्थासे काश्मीरका सिंहासन प्राप्त किया था। गुलाबसिंह देखो।

महाराज रणजितसिंहके जम्बू अधिकार करने पर, वहांके राजवंशीयगण डगमगा गये थे। उसी समय गुलाबसिंह अपने सहोदर ध्यानसिंहको ले कर लाहोरके दरबारमें पहुंचे। इन दोनों भाइयोंकी वीरमूर्त्ति और कमनीय कान्तिको देख कर रणजितसिंहने आदरके साथ उन्हें अपनी सभामें स्थान दिया। थोड़े ही दिनोंमें ये महाराजके प्रिय पात्र हो गए और महाराजके आदेशानुसार छोटे भाई सुचेतसिंहको भी दरबारमें बुला लिया। दिनों दिन इनकी प्रतिभा फैलने लगी। महाराज रणजितसिंह गुलाबसिंहकी अपेक्षा ध्यानसिंह और सुचेतसिंह पर अधिक स्नेह रखते थे। रणजितसिंहके अन्यतम सभासद रामलालने जब महाराजके आदेशानुसार उपवीत त्याग कर सिक्ख-धर्म ग्रहण नहीं किया, तब महाराज उन पर बहुत क्रुद्ध हो गए। रामलालके भाग जाने पर महाराजने उनके भाई खुशालसिंहको, जो सिक्ख बन चुके थे, राजपुराध्यक्षके पदसे अलग कर दिया और ध्यानसिंहको उनके पद पर नियुक्त कर अपना क्रोध कुछ शान्त किया। कुछ दिन बाद रामलालने अपने भाईकी दुर्गति देख कर सिक्ख-धर्म ग्रहण कर लिया जिससे खुशालसिंह पर महाराजका कोप दूर हो गया। कुछ भी हो, लाहोर-दरबारमें इन तीनों भाइयोंका प्रसार और विश्वास दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा। १८२७ ई०में इन तीनों भाइयोंने दरबारमें श्रेष्ठ स्थान अधिकार कर लिया। गुलाबसिंह जम्बू और काश्मीर प्रदेशके विद्रोही मुसलमानोंको पराजित कर राज्यमें शान्ति स्थापन करनेके कारण खूब प्रसिद्ध हो गए। महाराज रणजितने प्रसन्न हो कर गुलाबसिंहको जम्बू राज्य और ध्यानसिंहको खुशालके स्थान पर प्रधान द्वार-रक्षकका पद दे दिया। इसी वर्ष तीनों भ्राता राजाकी

उपाधिसे विभूषित किए गए और ध्यानसिंह 'राजा-इ-राजगाँ राजा हिन्दपथ राजा बहादुर' की उपाधिके साथ वजीरके पद पर नियुक्त हुए। कनिष्ठ सुचेतसिंह राजकार्यकी कूटनीतिके विषयमें उदासीन रह कर केवलमात्र रणक्षेत्रमें साहसी वीरपुरुष और राजसभामें प्रियंवद, सुरसिक और शिष्टाचारी सभासद रहे।

ध्यानसिंहके पुत्र हीरासिंह पर महाराजका बड़ा स्नेह था। यहाँ तक कि, उन्हें आँखोंसे ओझल होने नहीं देते थे। हीरासिंहको भी पिता और पितृव्योंके साथ 'राजा' की उपाधि प्राप्त हुई थी और अन्य सभासदोंकी तरह वे भी राज-दरबारमें शामिल होते थे तथा महाराज रणजितसिंहके सामने एक आसन पर बैठते थे।

एक दिन कतोच-राजकुमार अनिरुद्धचन्द्र अपनी दो बहनोंके साथ लाहोर उपस्थित हुए। दोनों राजकुमारियाँ अनुपम सुन्दरी थीं। ध्यानसिंहने उन्हें कब्जेमें पा कर हीरासिंहके साथ उनके विवाहका प्रस्ताव किया। कतोच-राजवंश उस प्रदेशमें अत्यन्त सम्मानकी दृष्टिसे देखा जाता था, इसलिए महाराजकी सहायतासे ध्यानसिंहको फिलहाल अनिरुद्धचन्द्रका लिखित अङ्गीकार-पत्र मिल जाने पर भी, राजकुमारियोंकी माता इस प्रस्तावसे सहमत न हुई। वे दोनों कन्याओंको ले कर भाग गईं। ध्यानसिंहने बहुत कोशिश की; परन्तु वे किसी तरह भी उक्त राजकुमारियोंको हस्तगत न कर सके। राजमहिषी और अनिरुद्धचन्द्र ध्यानसिंहको विरुद्धतामें पड़ कर राज्यभ्रष्ट हुए और अन्तमें दोनोंकी मृत्यु हो गई। फिर महाराजने स्वयं कतोच-राजकुमारियोंकी याचना की। किन्तु इस विषयमें उन्हें भी हताश होना पड़ा और आखिरको कतोच-राजको रक्षिता स्त्रीकी अन्य दो कन्याओंको हस्तगत किया। इनमेंसे एकका विवाह हीरासिंहके साथ होनेवाला था, पर रणजितसिंह दोनों कुमारियोंको देख कर इतने मोहित हो गये कि उन्होंने दोनोंका पाणिग्रहण कर डाला। हीरासिंहका विवाह एक दूसरी कुमारीके साथ हो गया।

कुछ दिन बाद रणजितसिंहने आदेश दिया कि अब से राजकीय चिट्ठी पत्रियोंमें राजा ध्यानसिंहको 'राजा कलान बहादुर' के नामसे सम्बोधित किया जायगा। राजा ध्यानसिंह इस समय महाराजके दाहिने हाथ थे। ध्यानसिंहकी अनुमतिके बिना कोई भी महाराजसे साक्षात् कर नहीं सकता था। महाराज प्रत्येक कार्यमें ध्यानसिंहकी सुयुक्ति ग्रहण करते थे और राजकीय दुरूह विषयोंमें उनके साथ परामर्श करते थे। ध्यानसिंह बड़ी दिलचस्पीके साथ जी-जानसे कोशिश करके मालिकका काम बजाते थे और पास रह कर उन्हें प्रसन्न रखनेकी कोशिश करते थे।

१८३४ ई०में पञ्जाब-केशरी महाराजने मृत्यु-शय्यामें पड़े पड़े समस्त सभासद् और प्रधान सरदारोंको बुला कर, उनके सामने खड्गसिंहको राजटीका दे कर अपने विशाल साम्राज्यका अधीश्वर बनाया और ध्यानसिंहको नवीन राजाका प्रधान मन्त्री बना कर उन पर खड्गसिंहकी रक्षाका भार अर्पण किया। महाराज रणजितसिंहने ध्यानसिंहसे कहा कि "आज तक आपने अनुनयके साथ जैसा सम्मान और भक्ति रणजीतके प्रति दिखलाई थी, आजसे खड्गसिंहके प्रति भी वैसा ही भाव रक्खें।" आप ही खड्गसिंहके शिक्षक और अभिभावक नियुक्त हुए हैं।' सम्मान-स्वरूप इन्हें एक बहुमूल्य परिच्छद और उसके साथ 'नाइब उस्-सुलतानत्-इ-उजमा, खैरख्वाही सामिमी दौलत-इ-सरकार, वजीर-इ-मुअज्जिम, दस्तूर इ-मकर राम, मुख्तार महमकुल' इत्यादि सम्मानसूचक उपाधियाँ मिली थीं। परन्तु हाय! महाराजकी मृत्युके बाद ध्यानसिंह खड्गसिंहके प्रति वैसा व्यवहार न कर सके, जैसा कि उन्होंने महाराजकी मृत्यु-शय्याके सामने खड़े हो कर अङ्गीकार किया था। उत्कट दुराकांक्षा और स्वार्थ-परताके वशीभूत हो अन्तमें आपने अत्यन्त अकृतज्ञताका कार्य किया था। हाँ, इतनी बात जरूर है कि इसमें उनका अकेला ही दोष नहीं था, अपरिणामदर्शी खड्गसिंहकी बुद्धिके दोषसे आपको कुमार्ग पर चलना पड़ा था।

महाराज रणजितसिंहकी मृत्युके बाद ध्यानसिंहने समस्त रानियोंके सामने, महाराजकी मृतदेह और श्रीगीताजी को स्पर्श करके पुनः प्रतिज्ञा की कि वे खड्गसिंहके अनुगत और विश्वस्त रहेंगे तथा खड्गसिंह और उनके पुत्र नवनिहालसिंहमें परस्पर सद्भाव

स्थापन करेंगी। यथासमय रणजितसिंह चिता पर सुलाए गए। पतिप्राणा रानियां और बहुतसी सेविकाएं स्वर्ग-प्राप्तिकी इच्छासे रणजितसिंहके साथ चिता पर लेट गईं। चिता जलने लगी। ध्यानसिंह अपने आश्रयदाता प्रभुके वियोगसे इतने शोकाकुल हो उठे कि उन्हें अपना जीवन एक भार-सा मालूम होने लगा। आपने दो तीन बार चितामें प्रवेश कर प्राण-विसर्जन करना चाहा, पर सिख-राज्यका भावी शुभाशुभ उन्हीं पर निर्भर था, इस लिए उपस्थित व्यक्तियोंने उन्हें बलपूर्वक रोक लिया। ध्यानसिंहने एक शोकसन्तप्तहृदय विश्वासी और प्रभु-भक्तकी भांति प्रभुकी अन्त्येष्टिक्रियादि सम्पन्न की। इस समय आपके मनमें किसी प्रकार भी पाप न था।

रणजितसिंहकी मृत्युके उपरान्त खड्गसिंहने विशाल सिख-राज्यके सिंहासन पर अधिरोहण किया। परन्तु जिस शौर्य, वीर्य और राजनीति-कुशलताने रण-जितको इस विशाल राज्यके शीर्ष-स्थान पर स्थापित किया था, खड्गसिंहमें उनमेंसे कोई भी गुण न था। वे पितासे भी अधिक अफीम खाते थे और आलस्यमें दिन गमाया करते थे। खड्गसिंह यदि पिताके आदेशानु-सार ध्यानसिंहके परामर्शसे कार्य करते, तो शायद पञ्जाब-राज्यकी ऐसी शोचनीय दशा न होती और न उसका लोप ही होता। परन्तु स्वभावतः दुर्बल-चित्त खड्गसिंह चेतसिंह नामक एक धूर्त्त खुशामदीके वशीभूत हो गये। वह धूर्त्त खड्गसिंहका प्रिय वयस्य हो गया और हरवक्त उनके साथ रहने लगा। खड्ग-सिंहने चेतसिंहके कुपरामर्शानुसार ध्यानसिंह और उनके पुत्र हीरासिंहको अन्तःपुरमें प्रवेश करनेसे रोक दिया। इसलिये ध्यानसिंहको राजासे राज्यकी गोपनीय बातोंके कहनेका अवसर न मिलता था। चेतसिंहने खुशामद करके वजीरीका पद प्राप्त कर लिया, किन्तु इससे भी उसे सन्तोष न हुआ—वह ध्यानसिंहको मारने-के लिए षड़्यन्त्र रचने लगा। दुष्टने शरीर-रक्षाके लिए दो सैन्यदल नियुक्त किये और स्थिर किया कि जिसी दिन सुबह ज्योंही ध्यानसिंह दुर्गमें प्रवेश करेंगे, त्योंही वह सैन्यदल उनकी हत्या करेंगे। दुर्गके द्वार पर पहले जो सेना नियुक्त थी, वह ध्यानसिंहकी प्रति अनु-रक्त थी, इसलिए उसको हटा कर चेतसिंहने अपने आदमी, तैनात किये। परन्तु यह सब कुछ व्यर्थ हुआ। तीक्ष्णदृष्टि ध्यानसिंहको यह सब हाल मालूम हो गया; उन्होंने एक झूठी अफवाह उड़ा दी कि खड्गसिंह पञ्जाब-राज्यको अंग्रेजोंको दे कर सिख-सेना और सर-दारोंको भगा देनेका बन्दोबस्त कर रहे हैं। यह सम्वाद समस्त खालसा-सैन्य और सरदारोंमें फैल जानेसे सब उन्मत्त हो उठे। और तो क्या, रानी चांदकुमारी भी पतिके विरुद्ध हो गईं, और ध्यानसिंहने गुलाबसिंहको सब सम्वाद लिख कर शीघ्र ही उन्हें लाहोर आनेके लिए पत्र दिया। छिपी तौरसे ध्यानसिंह और सिन्धनवाले सर-दारगण चेतसिंहको मारने और खड्गसिंहको बन्दी करनेका षड़्यन्त्र करने लगे। गुलाबसिंहके लाहोर पहुंचने पर एक दिन शेष रात्रिको ध्यानसिंह अपने दोनों भाइयों और कुछ सरदारोंके साथ नंगी तलवार हाथमें लिए हुए खड्गसिंहके शयनगृहमें पहुंच गये। रास्तेमें दो भाइयोंको काट कर फेंक दिया। खड्ग-सिंहका जल-वाहक इन भीषण हत्याकारियोंको देख कर भागनेकी कोशिश करने लगा; किन्तु ध्यानसिंहने उसी वक्त उसे बन्दूकसे मार डाला। षड़्यन्त्रकारियोंका दल जब खड्गसिंहके कमरेमें पहुंचा, तब चेतसिंह अपने ऊपर विपत्ति आई जान एक अंधेरी गुप्त कोठरीमें छिप गया। दो सशस्त्र राज-शरीर-रक्षक द्वार पर खड़े थे, पहले उन लोगोंने रोकनेका इरादा किया; पर ध्यानसिंह और उनके दोनों भाइयोंको देखते ही जमीन पर हथियार रख कर वे क्षमा मांगने लगे। खड्गसिंह इस आकस्मिक विपत्तिमें किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो खड़े रहे। षड़्यन्त्रकारियोंने खड्गसिंहको कैद कर लिया। यहां तक कि यदि उस समय नवनिहालसिंह और रानी चांदकुमारी उपस्थित न होती तो, ये महाराजकी हत्या भी कर डालते तो आश्चर्य नहीं। इसके बाद चेतसिंह-को अंधेरी कोठरीसे ढूंढ़ कर निकाला गया। चेतसिंह वहां दोनों हाथमें नङ्गी तलवार लिये खड़ा था, परन्तु पकड़े जाने पर वह बच्चेकी तरह रोने लगा। सामने आने पर ध्यानसिंहने उसे पहचाना और साथ ही एक तीखी छुरीसे उसका पेट चीर डाला। अभागे चेतसिंह-

को इस तरह जीवन-लीला समाप्त हुई, ध्यानसिंहका कोप इतने पर भी शान्त न हुआ, उन्होंने चेतसिंहके घरवालोंकी भी यही हालत की। १८३७ ई०में ८ अक्टूबरको यह भीषण हत्याकाण्ड संघटित हुआ और यहींसे भविष्यमें भीषणतर हत्याकाण्ड होनेका सूत्रपात हुआ।

खड्गसिंहको कैदमें रक्खा गया और नवनिहालसिंह सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। नवनिहालसिंह तेजस्वी, तीक्ष्णबुद्धि और अहङ्कारी थे। ध्यानसिंह सम्भवतः इन पर विश्वास न कर सके थे। कुछ भी हो, ईश्वरकी विडम्बनासे जिस दिन बन्दी खड्गसिंहने भग्न एवं हताश-हृदयसे कारागारमें प्राणत्याग किया, उसी दिन तोरणद्वारका एक पत्थर खिसक कर नवनिहालसिंहके मस्तक पर पड़ा, जिससे उन्हें बड़ी भारी चोट पहुंची। साथ ही गुलाबसिंहके प्रिय पुत्रकी भी उसी दिन मृत्यु हो गई। मन्त्री ध्यानसिंह उसी समय नवनिहालसिंहको पालकीमें लिटा कर दुर्गमें ले गये। दुर्गका द्वार बन्द हो गया। केवल मन्त्री ध्यानसिंहके सिवा और किसीको भी वहां आनेका अधिकार नहीं था। नवनिहालसिंहकी माता चांदकुमारीने बहुत अनुनय-विनय किया, पर उन्हें किसी तरह भी पुत्रके पास जानेकी अनुमति न मिली। परिचारक और सरदारोंको यह कह कर कि 'राजकुमार अच्छे हैं, विश्राम कर रहे हैं' विदा कर दिया गया। कुछ समय बाद ध्यानसिंहने रानी चांदकुमारीसे कहा—"आपके पुत्रके प्राण निकल चुके। यदि आप चाहें तो रानी हो सकती हैं, मैं आपको यथासाध्य सहायता पहुंचा सकता हूं।" बहुतोंने अनुमान किया है कि ध्यानसिंह राजकुमारके इस हत्याकाण्डमें लिप्त थे। बहुतोंका यह कहना है, कि तोरणद्वारसे पत्थरका गिरना, इसमें भी जम्बू-भ्राताओंका हाथ था। कुछ भी हो, ध्यानसिंहका व्यवहार सन्देह-परिवर्जित न होने पर भी, उनके विरुद्ध कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता। कारण उस विपत्तिमें ध्यानसिंहका प्रिय भ्रातुष्पुत्र मारा गया था और स्वयं ध्यानसिंहके हाथमें भी खूब चोट पहुंची।

नवनिहालसिंहके बाद रानी चांदकुमारी सिंहासन पर बैठीं। अब ध्यानसिंहने देखा कि रानी भी उनके और विरुद्धमें हैं, अतः क्षमता प्राप्त करने पर उनका और उनके वंशियोंका उच्छेद करनेकी चेष्टा अवश्य करेंगी; इसलिए वे भी चांदकुमारीसे समक्षमें की हुई प्रतिज्ञाका पालन न कर सके। रणजितसिंहकी रक्षिता स्त्रीके गर्भसे शेरसिंह नामक एक पुत्र हुआ था; ध्यानसिंह उन्हींको सिंहासन पर बिठानेके लिये सरदारोंको उत्तेजित करने लगे। आपने सिख-सेनाको यह बात भली भांति समझा दी कि स्त्रीके शासनमें उनका कल्याण नहीं है और न किसीकी मनस्कामना ही सिद्ध हो सकती है।

रानी चांदकुमारीको मालूम पड़ते ही उन्होंने अतरसिंह सिन्धनवाला और अन्यान्य सरदारोंको बुलवा भेजा। रानीका पक्ष ही प्रबल रहा।

रानीने सबोंसे कहा कि नवनिहालसिंहकी पत्नी गर्भवती हैं, मैं गर्भस्थ शिशुके प्रतिनिधिस्वरूप राजत्व कर रही हूं। हां, यदि वह कन्या प्रसव करें, तो फिर मैं हीरासिंहको दत्तक ग्रहण कर लूंगी; महाराज रणजितसिंह भी हीरासिंहको पुत्रवत् मानते थे। इस बात पर सारा झगड़ा निबट गया। ध्यानसिंह रानीके इस प्रत्यक्ष सरल व्यवहारसे सन्तुष्ट हुए। परन्तु दुर्दान्त शेरसिंह बलपूर्वक साम्राज्य लेनेकी चेष्टा करने लगे। ध्यानसिंह इस मौके पर बीमारीका बहाना बना कर लाहोरसे जम्बू चले गये। रानीने अतरसिंह सिन्धनवाला को प्रधान मन्त्रीके पद पर नियुक्त किया।

गुलाबसिंह मौका देख कर रानीके साथ मिल गये। कूटनीतिवित् जम्बू-भ्रातृगण सभी कार्योंमें ऐसी ही चतुरता दिखलाया करते थे। जो पक्ष जयी होगा, उसी पक्षमें आ कर मिल जाते थे।

राजा ध्यानसिंह जम्बूमें रह कर छिपे तौरसे लाहोरकी सब खबर मंगाने लगे। ध्यानसिंहने खालसा-सेना और सरदारोंसे ऐसी आशा और स्वीकारता प्राप्त कर ली कि ज्यों ही वे और रणजितसिंहके पुत्र शेरसिंह लाहोरके द्वार पर उपस्थित होंगे, त्यों ही वे उनके साथ आ मिलेंगे।

इधर शेरसिंह ध्यानसिंहके परामर्शानुसार १०० सेना ले कर लुधियानासे लाहोरकी ओर चल दिये। परन्तु

उस समय ध्यानसिंहने प्रबन्धमें सहायता कुछ भी नहीं दी। जवालासिंह नामक एक सरदार इस मौके पर शेरसिंहकी कृपा पानेकी आशासे सेना सहित आकर उनमें मिल गये।

शेरसिंहके लाहोर-दरवाजे पर उपस्थित होते ही बहुतसे खालसा-सरदार और पञ्च-सरदार आ कर उनके साथ हो लिये। शेरसिंहने नगरमें प्रवेश किया। अगणित उन्मत्त सेनाने लाहोर लूट लिया। गुलाबसिंह आदि रानीके पक्षके लोग डोगरा-सेनाकी सहायतासे दुर्गकी रक्षा करने लगे। दुर्गमें अल्पसंख्यक सेना थी, तथापि उसने ६ दिन तक सारी सिख-सेनाको परास्त और महा क्षतिग्रस्त कर रक्खा था। इस अवरोधके समय सिख-सेनाने बड़ा ही घृणित और नृशंस व्यवहार किया था।

ध्यानसिंह इस समय लाहोरकी सीमामें आ पहुंचे थे। उनके आगमनका संवाद मिलते ही शेरसिंहने युद्ध स्थगित कर दिया और गुलाबसिंहको सन्धिके लिए कहला भेजा। गुलाबसिंहने कहा कि ध्यानसिंहके बिना आये सन्धिकी कोई बात नहीं हो सकती। शेरसिंहने शहरके द्वार पर जा कर ध्यानसिंहकी अभ्यर्थना की। समस्त सेना उच्चैःस्वरसे ध्यानसिंहका अभिवादन किया। ध्यानसिंहके आदेशानुसार युद्ध बन्द रहा।

राजा हीरासिंह महारानीकी ओरसे सन्धिके लिए शेरसिंहके पास भेजे गये। इन शर्तों पर सन्धि हुई,—"चांदकुमारी शेरसिंहको सिंहासन प्रदान करेंगी, उसके प्रतिदान-स्वरूप शेरसिंह महारानीको ९ लाख रुपये आयकी एक जागीर देंगे, गुलाबसिंह रानीकी तरफसे उस जागीरका शासन करेंगे। शेरसिंह चांदकुमारीके साथ विवाह करनेकी आशा त्याग देंगे और डोगरा-सेना दुर्गसे निर्विघ्न चली जा सकेगी।"

राजा गुलाबसिंह रक्षा करनेके बहानेसे चांदकुमारीके समस्त मणि-रत्नादि हड़प कर चलते बने। रानी लाहोरमें अपने पुत्रके बनाये हुए महलमें रहने लगीं।

१८४१ ई०में १८ जनवरीको शेरसिंहने राज-सिंहासन पर अधिरोहण किया। ध्यानसिंह फिर वजीर हो गए और उन्हें एक बहुमूल्य खिलात मिली। सैनिकोंका १) मासिक वेतन बढ़ाया गया। सिन्धनवाले सरदारोंकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गई और अतरसिंह सिन्धनवाला और उनके भाई लहनासिंहको बन्दी करनेका परवाना निकला। अतरसिंह और उनके भतीजे अजितसिंह कहीं भाग गये। लहनासिंह पकड़े गये और लाहोरमें कैद रहे।

शेरसिंह अत्यन्त इन्द्रियासक्त और आमोदप्रिय थे, इसलिए वे राजकार्यका समस्त भार विचक्षण मन्त्री ध्यानसिंह पर छोड़ कर स्वयं आमोद प्रमोदमें मस्त रहने लगे। वास्तवमें ध्यानसिंह ही राज्य-शासन करने लगे। अब सुचतुर ध्यानसिंहने देखा कि उनकी इस अप्रतिहत क्षमताका एक प्रतिद्वन्द्वी है। जवालासिंह शेरसिंहके विश्वासपात्र थे, उन्होंने युद्धमें शेरसिंहको विशेष सहायता पहुँचाई थी तथा लाहोर अवरोधके समय शेरसिंहके मना करने पर भी अपनी सेनाको युद्धमें नियोजित किया था। बादमें ध्यानसिंह और शेरसिंहने स्वयं जा कर अर्थ प्रदान पूर्वक युद्ध बन्द कराया था। जवालासिंहके मनमें मन्त्रित्व पानेकी उच्चाशा अब भी रह सकती है, इस प्रकार अनुमान कर ध्यानसिंहने कुटिल-मन्त्रणा द्वारा शेरसिंहको जवालाका घोर शत्रु बना दिया। शेरसिंह भी ध्यानसिंहकी बातोंमें आ गये और सामान्य अपराध पर प्रभुभक्त जवालासिंहको कैदमें डाल दिया। बेचारा कैदमें पड़ा ही मर गया। इस तरह ध्यानसिंहने अपनी उन्नतिका मार्ग निष्कण्टक किया।

अब ध्यानसिंह चांदकुमारीके पीछे पड़े। चांदकुमारीके साथ जो सन्धि हुई थी, उसमें यद्यपि यह शर्त थी कि शेरसिंह चांदकुमारीके साथ विवाह करनेकी आशा त्याग देंगे; किन्तु तथापि वे एक बार भी उस आशाको त्याग न सके थे। 'चादर-अन्दाजी' प्रथाके अनुसार उनकी अभिलाषकी आशा एक दिन पूर्ण भी हो सकती थी, किन्तु गुलाबसिंह प्रतिदिन रानीको समझाया करते थे कि विवाह-प्रार्थना केवल शेरसिंहका कौशल है, किसी तरह वशमें करके प्राण नष्ट करना ही उनका उद्देश्य है, इसलिए रानी चांदकुमारी अपने बचावके लिए पुत्रके महलमें जा कर रहने लगीं। इस

व्यवहारसे महाराज शेरसिंह सख्त नाराज हो गये और तिस पर ध्यानसिंहने आगमें घी डाल दिया कि रानी चांदकुमारी महाराजको रणजितको सुजात सन्तान नहीं समझतीं, वे और अपनेको कन्हैयावंशके सरदार जयमलकी कन्या मान अपने आभिजात्यको स्पर्द्धा करती हैं। फिर क्या था, महाराज शेरसिंह चांदकुमारीके खूनके प्यासे बन गये और षड़यन्त्र रचने लगे। रानीके क्रीतदासियोंको रुपये दे कर वशमें कर लिया और उनसे रानीको मार डालनेके लिये कह कर आप दरबारके साथ वजीराबाद चल दिये। दासियोंने एक दिन (१८४२ ई०में) पोशाक बदलते समय मस्तक पर ईंटे मार कर उन्हें मार डाला। ध्यानसिंहने उन दासियों-को पकड़वा बुलाया और कोतवालीमें जन-साधारणके समक्ष उनके हाथ और नाक कान कटवा दिये। दासियों-की जिह्वा नहीं छिदी गई थी; इसलिए उन लोगोंने सबके सामने सत्य बात कह दी। परन्तु साधारण जनताने उन कथनको उन्मादका प्रलाप समझ लिया। शेरसिंह और गुलाबसिंहको बड़ी खुशी हुई। शेर-सिंहका कण्टक दूर हो गया और गुलाबसिंहको सन्दूकमें रक्खे हुए मणिरत्नादि वापिस न देने पड़े।

इसी समय काबुलके युद्धमें सिख-सेनाकी सहायतासे जय प्राप्त कर अङ्गरेजोंने फिरोजपुरमें एक सेना-परिदर्शनका मेला किया। उस मेलेमें युवराज प्रतापसिंह और मन्त्री ध्यानसिंह उपस्थित थे।

सिन्धनवाले सरदारगण रणजितसिंहके सजातीय थे। वे शेरसिंह जैसे रक्षिताके गर्भजात पुत्रके शासनमें रहना किसी तरह भी पसन्द नहीं करते थे। ध्यानसिंह उनके पृष्ठपोषक थे, इसलिए उनसे भी महा असन्तुष्ट थे।

सिन्धनवाले सरदारोंने लहनासिंहको कारामुक्त किया और भागे हुए अतरसिंह एवं अजितसिंहको दर-बारमें बुलाया। उनकी जब्तकी हुई सम्पत्ति और उपाधियां उन्हें पुनः प्रदान की गईं। इस पर ध्यानसिंह राजासे द्वेष करने लगे। सिन्धनवाले सरदारगण भी प्रत्यक्षतया उनकी उपेक्षा कर कार्य करने लगे। महाराज भी अब किसी विषयमें उनसे सम्मति नहीं मांगते थे। ध्यानसिंहका हृदय विचलित हो उठा। उन्होंने

वे ज्येष्ठभ्राता गुलाबसिंहको बुला भेजा। उनके आने पर दोनोंने परामर्श करके अपना गन्तव्य मार्ग चुन लिया। इसी समयसे ध्यानसिंह रणजितसिंहके दूसरे पुत्र बालक दिलीपसिंह पर स्नेह करने लगे। दिलीपकी, उम्र इस समय कुल ६।७ वर्षकी थी। दलीपसिंह देखो। महाराज शेरसिंह भी ध्यानसिंहके उद्देश्यको समझ गये और उन्हें दमनमें रखनेके लिए नाना उपायोंसे काम लेने लगे। परन्तु सुकौशली बुद्धिजीवी ध्यानसिंह शेरसिंह जैसे मनुष्यके कौशलमें आनेवाले व्यक्ति न थे; वे सतर्कता-के साथ चलने लगे।

सिन्धनवाले सरदारोंके राज्यमें अतुल प्रतिभाशाली हो जाने पर भी अब तक वे शेरसिंहको सुजन्मा न होने-के कारण घृणाकी दृष्टिसे देखते थे। ध्यानसिंहने, क्षमता होने पर भी उनके पुनः प्रतिष्ठालाभके विषयमें हस्तक्षेप नहीं किया, वरन् राजाके अभिप्राय साधनमें ही प्रयत्न किया था, इस बातको सरदारगण समझते थे; किन्तु तथापि वे उनके प्रति विद्वेषभावको न त्याग सके थे। मन्त्री और महाराजमें मनोमालिन्य चल रहा है, यह देख कर वे भी इस समय 'कण्टकेनैव कण्टकः' वत् दोनोंके उच्छेदके लिए षड़यन्त्र कर रहे थे। महाराज पर इस समय सरदारोंका यथेष्ट प्रभाव पड़ चुका था, इसलिए महाराजके प्रति किसी तरहका सम्भ्रम न दिखाते थे। अजितसिंह प्रायः महाराजके मुंह पर उनकी जान लेनेका भय दिखाया करते थे। महाराज बन्धुवर्गद्वारा सतर्क रहने पर भी इन बातोंको परवाह न करते थे। सिन्धनवाले सरदारोंने षड़यन्त्र ठीक करके महाराजको, अपनी पूर्व विश्वस्तताका उल्लेख करते हुए समझा दिया कि वे आज्ञावह भृत्य हैं, उनके लिए राज्यके विरुद्ध खड़ा होना बिलकुल असम्भव है। ध्यानसिंहके विषयमें कान भर दिये कि "वे भीतर भीतर महाराजको मार कर कुमार दिलीप-सिंहको सिंहासन पर बिठानेकी कोशिश कर रहे हैं; यहां तक कि, हम लोगोंको पुरस्कारका लोभ दे कर महाराजके प्राणनाशके लिये नियुक्त किया था।" शेर-सिंह वीर और साहसी होने पर भी, इस संवादसे विचलित हो गये; उन्होंने अपना तलवार सरदारोंके

हाथमें दे दी और कहा कि "यह शस्त्र है और यह मेरी गरदन है, यदि आप लोग ध्यानसिंह द्वारा आदिष्ट हुए हों, तो लो, मस्तक छेद डालो। किन्तु एक बात याद रखियेगा, जो व्यक्ति आज आप लोगोंको यन्त्रकी तरह चला रहा है, वही व्यक्ति प्रयोजनानुसार कभी आपके भी प्राण ले सकता है।" महाराजके इस व्यवहारसे सरदारगण चौंक गये, पर विचलित न हुए; कहने लगे—"ऐसे गद्दार मन्त्रीको इसी वक्त मार डालना चाहिए।" महाराजने भी उन लोगोंकी ऐकान्तिकता पर मुग्ध हो कर उसी वक्त मन्त्रीको मार डालनेका स्वीकार-पत्र लिख कर दस्तखत कर दिये। लहनासिंह और उनके भाईने, इस वधादेशको ले कर महाराजसे कहा—"फिलहाल हम लोग अपनी जागीर राजा-साँसीको लौट जायंगे और वहाँसे एक दल साहसी सेना ले कर हजारी पहुंचेंगे। महाराज उस स्थान पर उपस्थित हो कर हम लोगोंको क्रीड़ारम्भका आदेश देंगे सेना बन्दूक आदि ले कर तैयार रहेगी, आदेश पाते ही वह क्षण मात्रमें ध्यानसिंह और उनके पुत्र हीरासिंहको घेर लेगी।"



ध्यानसिंह।

लहनासिंह और अतरसिंहने इस आज्ञाओंसे ध्यानसिंहका वधादेश-पत्र हस्तगत किया और महाराजके पाससे विदा हो कर ध्यानसिंहके पास पहुंचे। पहले नाना प्रकारकी भूमिका बाँधी, फिर उन्हें महाराजका आदेश-पत्र दिखलाया। ध्यानसिंह बड़े चतुर थे, पहले उन्होंने इस पर विश्वास नहीं किया; कहा कि कितना भी मनोमालिन्य क्यों न हो, मेरे ही अनुग्रहसे वर्द्धित शेरसिंह इस प्रकारका आदेश कदापि नहीं दे सकते; विशेषतः इसमें महाराजकी मुहर नहीं है।

लहनासिंहने यह सुन कर किसी तरहसे महाराजकी मुहर करा लाये और फिर आ कर ध्यानसिंहको दिखाया। ध्यानसिंह मुद्राङ्कित आदेश-पत्रको देख कर सचमुच ही विचलित हो गये। सिन्धनवाले सरदारोंने अवसर पड़ा देख, ठीक पूर्वोक्त कूटवाक्य कौशलसे प्रीति और विश्वास दिला कर ध्यानसिंहसे महाराजके वधादेश पत्र पर दस्तखत करा लिये। फिर सरदारोंने मन्त्रीके साथ परामर्श कर स्थिर किया कि ध्यानसिंह-हत्याके लिए निर्द्धारित दिनको राजप्रासादमें उपयुक्त सेना रखनेका बन्दोबस्त कर रक्खेंगे। परवर्ती कोई शुक्रवार मासका प्रथम दिन ही इस भयानक कार्यके लिए उपयुक्त दिन निर्द्धारित हुआ।

सरदारगण फिर राजा-साँसीको लौट गये। ध्यानसिंहने रोगका बहाना कर दरबारमें आना बन्द कर दिया।

उस दिन ध्यानसिंह, दीवान दीननाथ और राजबालक बुधसिंहको ले कर महाराज शेरसिंह क्रीड़ाकौतुक देखनेके लिए हजारी नामक स्थानमें पहुँचे। परामर्शानुसार अजितसिंहने वहाँ अपने दल सहित उपस्थित हो कर एक साथ बन्दूकका शब्द कर अपनी उपस्थिति सूचित की।

यहाँ शेरसिंह राजप्रासादके बारह द्वारीकी बैठकमें बैठे हुए कुछ पहलवानोंकी मल्लक्रीड़ा देखने लगे। इसी समय अजितसिंहने आ कर दल सहित उपस्थिति सूचित की। राजादेशसे दीवान दीननाथने तत्क्षणात् उन लोगोंको राजकीय सेनामें शामिल कर लिया। इसी समय अजितसिंहने एक नई बन्दूक निकाल कर महाराजसे कहा—"यह मैंने १४०० रु०में खरीदी है। पर तीन हजारसे कममें किसीको दूंगा नहीं।" यह कहते हुए अजितने महाराजको दिखानेके बहाने बन्दूक बढ़ाई और महाराजकी छाती पर मार दी। दुनाली बन्दूकके लगते ही शेरसिंह "ऐसी दगा!" कहते हुए

जमीन पर गिर पड़े और उसी समय उनकी मृत्यु हो गई। अजितसिंहने उसी समय तलवारसे महाराजका सिर धड़से अलग कर दिया। बुधसिंह बन्दूकका शब्द सुन कर उद्विग्न हो कर ज्यों ही कमरेमें घुसे, त्यों ही उन्होंने अजितके हाथमें खूनसे तर तलवार देख उनके दो अनुचरोंको काट डाला और फिर अजित पर आक्रमण किया, किन्तु तलवार टूट जानेसे वे शीघ्र ही अजितके आदमियों द्वारा मारे गये। अजितकी सेना राज-भृत्यों पर आक्रमण करती हुई प्रासादके भीतर घुस पड़ी। लहनासिंह शेरसिंहके रोते हुए बारह वर्षके पुत्र प्रतापसिंहको मारनेके लिए आगे बढ़े। बेचारा प्रतापसिंह उस दिन ग्रहणके उपलक्षमें उद्यानमें तुलापुरुष हो कर ब्राह्मणोंको स्वर्णादि दान कर रहा था। लहनासिंहने आ कर उसे पकड़ लिया; बालकने पिता कह कर उनसे प्राणभिक्षा मांगी, किन्तु निर्दय लहनासिंहने उसकी बात पर ध्यान न देते हुए उसी समय उसका सिर काट डाला।

अजितकी सेनामें ३०० अश्वारोही और २५०० पदाति थे। अजित सेना-सहित नगरकी तरफ चल दिये। मार्गमें ध्यानसिंहसे साक्षात् हो गया। अजितने सब हाल कह सुनाया। ध्यानसिंहने बालक प्रतापकी हत्या पर बड़ा खेद प्रकट किया और सरदारोंकी निन्दा की। अजितने ध्यानसिंहको अपने साथ दुर्गको लौट चलनेके लिए कहते। सन्देह होने पर भी ध्यानसिंहको अन्य उपाय न देख उनके साथ जाना पड़ा। प्रथम द्वार पार हो जाने पर द्वितीय द्वारमें ध्यानसिंहके अनुचरको रोका गया, किन्तु अजित सानुचर बिना किसी बाधाके भीतर चले गये। ध्यानसिंह भीतर ही भीतर अवस्था समझ गये, पर ऊपरसे कुछ कह न सके। आगे जब दुर्ग प्राकारमें सेना देखी, तब उन्होंने पूछा—"ये लोग कौन हैं?"

अजितसिंहने बीड़ा पासमें ला कर ध्यानसिंहका हाथ पकड़ लिया और कहा—"अब राजा कौन होगा?" ध्यानसिंहने भी अविचलित भावसे कहा—"दिलीपके समान उपयुक्त और कौन है?"

इस पर अजितने कहा—"दिलीप राजा और तुम मन्त्री; फिर हम लोगोंने इतना कष्ट क्यों उठाया?" ध्यानसिंह इस व्यवहारसे व्यथित हो कर हट रहे थे, कि इतनेमें छद्म भाई गुरुमुखसिंहने कहा—"बातोंसे तो यही अच्छा है कि काम करके दिखला दो, कि जिस रास्तेसे, शेरसिंहको भेजा गया है, मन्त्री महाशयको भी उसी रास्तेसे जाने दो। फिर तुम्हारा रास्ता साफ है।"

यह सुन कर अजितने इशारा किया। इशारेके साथ ही पीछेसे एक आदमीने गोली मार कर ध्यानसिंहका काम तमाम कर डाला। अन्तमें उपस्थित सेनाने ध्यानसिंहकी देहको टुकड़े टुकड़े कर अपनी रक्तपात-तृष्णाको कुछ कुछ शम किया। ध्यानसिंहके कुछ पंजाबी और एक मुसलमान अनुचरने कौशलसे दुर्गमें प्रवेश कर शत्रुओं पर आक्रमण किया; पर वे सभी मारे गये। ध्यानसिंह और इन लोगोंकी लाशें एक तोपके गड्ढेमें डाल दी गईं। अन्य विवरण हरिदासप्रभु शब्दमें देखो।

ध्यानावचार—बौद्धशास्त्रोक्त देवभेद, बौद्ध शास्त्रके अनुसार एक देवताका नाम।

ध्यानिक (सं० त्रि०) ध्यानेन निर्वृत्तः ठक्। ध्यानसाध्य, जिसकी प्राप्ति ध्यान द्वारा हो।

ध्यानिन् (सं० त्रि०) ध्यान-इनि। ध्यानयुक्त समाधिस्थ।

ध्यानिबुद्ध-ध्यानयोगकारी बुद्ध। इनकी संख्या कोई ५ या और कोई १०से भी अधिक बतलाते हैं। ये अशरीरी हैं।

ध्यानिबोधिसत्व—ध्यानि-बुद्धके पुत्र, ये भी अशरीरी हैं।

ध्यानी (हिं० वि०) ध्यानिन् देखो।

ध्याम (सं० क्ली०) ध्यायते पशुभिरिति ध्यै-चिन्तने बाहुलकात् मक्। १ दमनकवृक्ष, दौना। २ गन्धतृण, एक प्रकारकी सुगन्धित घास (त्रि०) ३ श्यामल, सांवला।

ध्यामक (सं० क्ली०) १ रोहिषतृण, रोहिस घास। २ कत्तृण, एक खुशबूदार घास, शोधियां।

ध्यामन् (सं० पु०) ध्यै-मनिन् (नामन् सीमन् व्योमन् इत्यादि। उण् ४।१५०) १ परिमाण, अन्दाज। २ तेज। ३ चिन्ता, विचार, ख्याल।

ध्युषिताश्व—राजभेद, एक राजाका नाम। (रघु० १८।२२)

ध्येय (सं० त्रि०) ध्यै-यत्। १ ध्यातव्य, ध्यान करने योग्य। २ जिसका ध्यान किया जाय, जो ध्यानका विषय हो।

ध्यायीमत् (सं० त्रि०) अज मती-मत् अध्यात्मं इति अस्य-

इन् प्रत्ययः, ततो मतुप्। प्रातिपदिकस्याद्युदात्तत्वं। शीघ्रगतियुक्त, जिसकी चाल तेज हो।

ध्राक्षा (सं० स्त्री०) द्राक्षा, दाख।

ध्रांगध्रा—बम्बईके काठियावाड़ पोलिटिकल एजेण्टके अन्तर्भुक्त एक देशीय राज्य। यह अक्षा० २२° ३३' से २३° १३' उ० और देशा० ७१° से ७१° ४८' पू० अहमदाबादसे ७५ मील पश्चिममें अवस्थित है। भूपरिमाण ११५६ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ७०८८० है। इसमें दो शहर और १२२ ग्राम लगते हैं।

यहांका भूभाग असमतल है, बीच बीचमें छोटे छोटे सोते बहते हैं। छोटे छोटे पहाड़ जो उसके चारों तरफ घेरे हुए हैं, उनसे व्यवहार करने योग्य पत्थरकी आमदनी होती है। यह स्थान ग्रीष्मप्रधान होने पर भी स्वास्थ्यकर है। उत्कृष्ट उर्वरा जमीन यहां अधिक नहीं है। प्रधानतः कपास और साधारण अनाजकी खेती होती है। नमक, तांबा, पीतलका बरतन, पत्थरका जांता, देशी कपड़ा और मट्टीका बरतन ही यहांका प्रधान वाणिज्य द्रव्य है। धोलेरा नगर ही इस राज्यका निकटवर्त्ती बन्दर है।

यहांके सरदार १८०७ ई०में वृटिश गवर्नमेण्टके साथ सन्धिसूत्रसे आबद्ध हैं। प्रथम श्रेणीके करद राज्यों की नाईं राजकीय सभी कामोंमें उनका अधिकार है। उनकी उपाधि है राजा साहब। वे राजपूत जातिकी झाला श्रेणीके अन्तर्गत हैं। वृटिश गवर्मेण्टसे उन्हें ११ मान्यतोपें मिलती हैं। राज्यकी आमदनी पांच लाख रुपयेकी है। वे वृटिश गवर्मेण्ट और जूनागढ़के नवाबको वार्षिक ४४६७७ रु० कर देते आ रहे हैं। उनके अधीन २१५० सैन्य हैं। प्रजाका जीवन मरण उनके इच्छाधीन है।

वर्त्तमान राजवंशके पूर्व पुरुष उत्तर प्रदेशसे बहुत प्राचीनकालमें काठियावाड़में आ बसे थे। उन्होंने पहले अहमदाबाद जिलेके अधीन पात्री नामक स्थानमें, पीछे हलवाड़में और अन्तमें वर्त्तमान स्थानमें आ कर अपना राज्य स्थापन किया। गुजरातके मुसलमान शासनकर्त्ताओंके समयमें इस राज्यका अधिकांश उनके अधिकार भुक्त हुआ। बाद सम्राट् औरङ्गजेबके समयमें हुसनअनसार वा हलवाड़ उपविभाग झालाओंको दे दिया गया। लिमरी, बढ़वान, चूरा, सायला और थाना लखतर नामक जो कई एक छोटे छोटे राज्य हैं, वे इसी ध्रांगध्रा राज्यकी शाखा हैं। वांकानेरके राजगण भी अपनेको इसी वंशकी एक अति प्राचीन शाखासे उत्पन्न बतलाते हैं। राज्य भरमें ३८ स्कूल, ४ कारागार, १ अस्पताल, और २ चिकित्सालय हैं।

२ उक्त राज्यका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २२° ५८' उत्तर और देशा० ७१° ३१' पू० अहमदाबादसे ७५ मील पश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग १४७७० है। नगरके चारों ओर खाई है। यहां केवल एक अस्पताल है।

ध्राजि (सं० स्त्री०) गति, चाल।

ध्राड़ि (सं० पु०) ध्राड़ इन् (सर्वधातुभ्य इन्। उण् ४।११७) पुष्पचयन, फूलोंका चुनना।

ध्राफा—गुजरात प्रदेशमें हलाल प्रान्तके अन्तर्गत एक छोटा राज्य। इसके अधीन १२ ग्राम हैं जिनमें पुनः ८ करद सामन्त रहते हैं। यहांकी आय प्रायः ६०००० रु० की है।

ध्रुति (सं० स्त्री०) ध्रु गतिस्थैर्ययोरिति धातुः। स्व-मानरूपा। (ऋक् ७।८६।६)

ध्रुपद—ध्रुवपदसे उत्पन्न, संगीत स्वरविशेष। इसका संस्कृत नाम ध्रुवक है। इसके चार भेद या तुक होते हैं—अस्थायी, अन्तरा, सञ्चारी और आभोग। किसी किसी ध्रुपदमें मिलातुक नामक और भी एक तुक है। यह केवल गायकोंके लिये निर्दिष्ट है। (संगीतरत्नाकर)

जिस गीत द्वारा देवताओंकी लीला, राजाओंका यश अथवा प्रबल-युद्धादिका विवरण वर्णित हो जिसमें स्वर, ताल, राग-रागिणीकी प्रगाढ़ता गद्यपद्यमय अंश और रचना माधुर्य अच्छी तरह विद्यमान हो, उन सब गीतोंको संगीत-शास्त्रविद् पण्डितोंने ध्रुपद बतलाया है। इसमें यद्यपि द्रुतलय ही उपकारी है किन्तु यह विलम्बित स्वरसे तथा विलम्बित लयसे गाने पर अच्छा मालूम होता है। यह मृदुकण्ठी स्त्री जातिके उपयुक्त नहीं है। अधिकांश ध्रुपदमें अस्थायी, अन्तरा, सञ्चारी और आभोग ये चार पद होते हैं। किन्तु किसी किसी

ध्रुपदमें गवाये और अन्तरा ये दो दो पद देखे जाते हैं। ध्रुपद कान्हड़ा, ध्रुपदकेदारा, ध्रुपद एमन आदि इसके भेद हैं। ये सबके सब चौताल पर गाये जाते हैं। संगीत दामोदरके मतसे ध्रुपद सोलह प्रकारका होता है— जयन्त, शेखर, उत्साह, मधुर, निर्मल, कुन्तल, कमल, सानन्द, चन्द्रशेखर, सुखद, कुमुद, जायी, कन्दर्प, जयमङ्गल, तिलक और ललित। इनमेंसे जयन्तके प्रतिपादमें ग्यारह अक्षर होते हैं। फिर आगे प्रत्येकमें पहलेसे एक एक अक्षर अधिक होता जाता है; इस तरह ललितमें कुल २६ होते हैं। छः पदोंका ध्रुपद उत्तम, पांचका मध्यम और चारका अधम माना गया है।

ध्रुव (सं० त्रि०) ध्रुवति स्थिरीभवतीति ध्रु-क (ध्रुवः क। उण् । २।६१) १ निश्चित, दृढ़, ठीक, पक्का। २ स्थिर, अचल, सदा एक ही स्थान पर रहनेवाला। (पु०) ३ सन्तति। ४ शाश्वत। ५ तर्क। ६ आकाश। ७ शङ्कु, कील। ८ विष्णु। ९ हर। १० वट, बरगद। ११ अष्टवसुका एकतम, आठ वसुओंमेंसे एक। १२ योगभेद, फलित ज्योतिषमें एक शुभयोग। यदि कोई बालक इस योगमें जन्म ग्रहण करे तो सरस्वती उसके मुखपद्म पर सर्वदा स्थित रहती हैं और वह न्यायकाव्यकर्त्ता, बन्धुवर्गके भर्त्ता, बुद्धिमान् और प्रसिद्ध होता है। १३ स्थाणु, स्तम्भ, थून। १४ शरारि नामक पक्षी। १५ ध्रुवक पद। १६ आकाशस्थित ताराद्वय, ध्रुवतारा। यह ध्रुव तारा सब नक्षत्रोंका आधार स्वरूप है। ध्रुवतारा देखो। १७ रोहिणी और वसुदेवसे उत्पन्न एक पुत्र। (भागवत ९।२४।४६) १८ पाण्डव-पक्षीय एक क्षत्रिय वीर। (भारत ७।१५६।३७) १९ नहुषके एक पुत्र। (भारत १।७५।३०) २० पुरुवंशीय रन्तिनारके एक पुत्र। (भागवत ९।२०।६) २१ यज्ञीय ग्रहपात्रविशेष, एक यज्ञपात्र। २२ नासाग्र, नाकका अगला भाग। २३ उत्तानपाद राजाके पुत्र। इनकी कथा विष्णुपुराणमें इस प्रकार लिखी है—

पुराकालमें स्वायम्भुव मनुके प्रियव्रत और उत्तानपाद नामके दो पुत्र थे। उत्तानपादकी दो स्त्रियां थीं, सुरुचि और सुनीति। राजा सुरुचिको बहुत चाहते थे। सुरुचिकी प्ररोचनासे राजाने सुनीतिको वनवास दिया। एक दिन राजा आखेटको बाहर निकले और पथश्रान्त हो वनस्थित सुनीतिकी निर्जन कुटीरमें आ पहुंचे। उस रात राजाके सहवाससे सुनीतिको गर्भ रह गया और यथासमय ध्रुव उत्पन्न हुए। एक दिन राजा सुरुचिके पुत्र उत्तमको गोदमें लिये बैठे थे, इसी बीच ध्रुव खेलते हुए राजसभामें पहुंचे और राजाकी गोदमें बैठनेकी इच्छा करने लगे। राजा सुरुचिके भयसे ध्रुवको गोदमें ले न सके। सुरुचिने जब देखा कि सपत्नीका लड़का ध्रुव राजाकी गोदमें बैठना चाहता है, तब उसने अवज्ञाके साथ लड़केसे कहा, 'हे वत्स! यह उच्चाभिलाष छोड़ दो. तुम होना सुनीतिके गर्भसे उत्पन्न हुए हो। यह स्थान सर्वश्रेष्ठ है। अतः तुम्हारे उपयुक्त नहीं। मेरा पुत्र उत्तम ही इस पर बैठ सकता है। इसलिये तुम अपनी ऊंची अभिलाषा परित्याग करो।" ध्रुव विमाताके ऐसे कठोर वचनोंको सुन कर क्रुद्ध हो उठे और अपनी माताके पास चले गये। सुनीतिने इन्हें क्रोधित देख पूछा, किसने तुम्हारी अवज्ञा की है? इस पर ध्रुवने सब बातें मातासे कह सुनाईं। यह सुन कर सुनीतिने फिर पुत्रसे कहा, "वत्स! सुरुचिने जो कुछ कहा है वह सत्य है, तुम भाग्यहीना मेरे गर्भसे उत्पन्न हुए हो, अतः तुम भी भाग्यहीन हो। इसलिए तुम्हें दुःख नहीं करना चाहिए। सुरुचिने पुण्य किया है, इसीसे राजा सुरुचिको चाहते हैं। विशेष पुण्यानुष्ठान करनेसे वह पद मिलता है। अभी हम लोग जिस अवस्थामें हैं उसीमें सन्तोष रखना उचित है। यदि तुम्हें सुरुचिके वचनोंसे अत्यन्त दुःख हो गया हो, तो पुण्यकार्य करनेके लिए तैयार हो जाओ जिससे तुम्हारी अभिलाषा पूरी हो जावे" ध्रुवने माताकी बात सुन कर कहा, 'हे माता! सुरुचिका वचन मेरे हृदयको तीरसा छेद रहा है। इस समय और कोई दूसरा स्थान प्रार्थना नहीं करता, मैं वैसा ही स्थान चाहता हूं जो मेरे पिताको भी न मिला हो।'

इतना कह कर ध्रुव घरसे बाहर निकल पड़े। पूर्वकी ओर जाते जाते उन्होंने सात मुनियोंको कुशासन पर बैठे देख उनसे निवेदन किया, हे प्रभो! मैं उत्तानपादका पुत्र हूं और अत्यन्त निर्वेद पा कर आप लोगोंका शरणापन्न हुआ हूं। यह सुन कर मुनियोंने कहा,

तुम्हारी उमर चार पाँच वर्षकी होगी और तुम्हारे शरीरमें किसी प्रकारकी व्याधि नहीं है, अतएव निर्वेद का कारण क्या है सो हम लोग समझ नहीं सकते। इस पर ध्रुवने आदिसे अंत तक सब बातें मुनिसे कह सुनाईं। यह सुन कर मुनिगण विस्मित हो कर बोले, 'क्षत्रियोंकी शक्ति और पराक्रम अद्भुत है, क्योंकि छोटेसे छोटा बालक भी किसी प्रकारकी अवज्ञा सहन नहीं कर सकता है। जो कुछ हो, अभी तुम्हारी क्या अभिलाषा है, सो हमसे कहो, यह सुन कर ध्रुवने कहा, 'मैं अर्थ वा राज्य नहीं चाहता, मैं एक ऐसा स्थान चाहता हूं जिसे किसी दूसरेने उपभोग न किया हो। आप मुझे ऐसा उपदेश दीजिए जिससे मैं बहुत जल्द वैसा स्थान पा सकूं।' वे सातों मुनि सप्तर्षि थे। उनमेंसे मरीचिने कहा, 'जो गोविन्दकी आराधना नहीं करता उसे उत्तम स्थान नहीं मिल सकता है। अतएव तुम भगवान् विष्णुकी आराधना करो।' क्रमसे अत्रि अङ्गिरा आदि मुनियोंने भी एक स्वरसे विष्णुकी आराधना करनेका उपदेश दिया। इस पर ध्रुवने ऋषियोंसे कहा, 'विष्णुकी आराधना करनेमें मुझे किस कार्यका अनुष्ठान करना होगा और किस मन्त्रसे जप करना पड़ेगा?" सप्तर्षिने यह सुन कर भगवान् विष्णुका यह मन्त्र निर्देश कर दिया—

"हिरण्यगर्भ पुरुष प्रधानाव्यक्तरूपिणे।
ओं नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वभाविने॥"

(विष्णुपु० १।११।५)

ध्रुव इस मन्त्रको पा ऋषियोंको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके यमुनाके किनारे मधु नामक एक पुण्य वनमें चले गये। शत्रुघ्नने इसी वनमें मधु राक्षसके पुत्र लवण राक्षसको मार कर मथुरा नामकी पुरी निर्माण की थी। यह तीर्थ पापनाशक है। यहां ध्रुव अनन्यकर्मा हो कर भगवदाराधनामें लग गये। ध्रुवकी इस कठोर तपस्यासे नद, नदी, समुद्र और पृथ्वी व्याकुल होने लगी। इन्द्रादि देवगण उनकी तपस्यासे भयभीत हो मन्त्रणापूर्वक माया द्वारा सुनीतिका रूप धारण कर ध्रुवके निकट आ पहुँचे और तपोभङ्गके लिये तरह तरहके उपाय करने लगे। किन्तु ध्रुवका ध्यान विष्णुकी ओर ऐसा लगा हुआ था कि उनका चित्त किसी अन्य विषयमें जरा भी आकर्षित न होने पाया। इतने पर भी ध्रुवका तपोभङ्ग न होता देख देवगण तरह तरहके उपाय रचने लगे; किन्तु उनका सभी परिश्रम व्यर्थ जाता रहा। तब सबने मिल कर भगवान् विष्णुकी शरण ली। भगवान्ने उन्हें आश्वस्त कर ध्रुवसे आ कहा, 'हे वत्स! हम तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट हो गये, अभिलषित वर मांगो।" ध्रुवने अपने सामने इष्ट देवको खड़ा देख उनसे प्रार्थना की, 'प्रभो! यदि आप हम पर खुश हैं, तो यही वर दीजिए जिससे मैं आपका स्तव कर सकूं मैं बालक हूं, मुझे आपका स्तव करनेका सामर्थ्य नहीं है। भगवान् विष्णुको देख कर ध्रुवका ज्ञान खुल गया। तब भगवान्ने ध्रुवसे कहा, 'तुमने जिस स्थानके लिये प्रार्थना की है, वह तुम्हें मिल जायगा। पूर्व जन्ममें तुम ब्राह्मणका लड़का था, अनन्य चित्त हो कर तूने मेरी उपासना की थी। धीरे धीरे तुम्हारे साथ एक राजपुत्रकी मित्रता हुई; उसके ऐश्वर्यादि देख कर तुम्हारी राजा होनेकी इच्छा हुई थी, इसीसे तुमने उत्तानपादके घरमें जन्म लिया है। मेरी आराधना करनेसे मनुष्यको बहुत जल्द मुक्ति लाभ होती है, तुच्छ स्वर्गादिका विषय कहना फजूल है। तुम सब लोकों और ग्रहों नक्षत्रोंके ऊपर उनके आधार स्वरूप हो कर अचल भावसे स्थित रहोगे। तुम जिस स्थान पर रहोगे, वह ध्रुवलोक नामसे प्रसिद्ध होगा और तुम्हारी माता सुनीति भी तारकारूपमें तुम्हारे समीप रहेगी।' भगवान् विष्णु इस प्रकार वर दे कर स्वस्थानको चले गये। ध्रुवने भी घर आ कर पितासे राज्य प्राप्त किया और शिशुमारकी कन्या भ्रमिसे विवाह किया। इला नामकी इनकी एक और पत्नी थी। भ्रमिके गर्भसे कल्प और वत्सर तथा इलाके गर्भसे उत्काल नामक पुत्र उत्पन्न हुए। एक बार इनके सौतेले भाई उत्तम शिकार करनेको जङ्गल गये और वहां यक्षोंसे मार डाले गये। इसलिये इन्हें यक्षोंसे युद्ध करना पड़ा। पीछे पितामह मनुने इन्हें शान्त किया। कुबेरने इनसे सन्तुष्ट हो कर वर मांगने कहा। इस पर ध्रुवने कहा था, 'विष्णुके पदमें जिससे मेरी भक्ति हो, वही वर मुझे दीजिए।' 'तथास्तु' कह कर कुबेर अपने स्थानको चल

दिये। अन्तमें छत्तीस हजार वर्ष राज्य करके ध्रुव विष्णुदत्त ध्रुवलोकमें चले गये। (विष्णुपु० १।११-१२ अ० और भाग०)

ध्रुवको केन्द्र बना कर सूर्य प्रभृति ग्रहगण उनके चारों तरफ अवस्थित हैं। ध्रुव कितने ऊंचे पर रहते हैं इसकी कथा भागवतमें इस प्रकार लिखी है—

सूर्यमण्डलसे दो लक्ष योजन ऊपरमें चन्द्रग्रह और चन्द्रग्रहसे दो लक्ष योजन ऊपरमें समस्त नक्षत्र सुमेरुके दक्षिणकी ओर ईश्वरसे योजित हो कर भ्रमण करते हैं। इस तरह उनके ऊपर शुक्र, तब मङ्गल और उसके ऊपर वृहस्पति है। बाद शनि रहते हैं, इस शनिग्रहसे ग्यारह लक्ष योजनकी दूरी पर देवर्षिगण वास करते हैं। ये सभी लोकोंमें शान्तिविधान करके भगवान् विष्णुके परमपदका सर्वदा प्रदक्षिण करते हैं। इस स्थानसे तेरह लक्ष योजनकी दूरी पर ध्रुवका स्थान है जिसे भगवान् विष्णुका भी स्थान समझना चाहिये। समस्त ज्योतिष्कमण्डल ही इस ध्रुवको स्तम्भ करके निरन्तर परिभ्रमण करते हैं। (भागवत ५।२४ अ०)

२३ रोमावर्त्तभेद, शरीरकी भौंरी। इस रोमावर्त्तके दश भेद हैं—वक्षस्थलमें दो, मस्तकमें दो, रन्ध्र और उपरन्ध्र इर एकमें दो दो अर्थात् चार, भालदेश और अपानमें एक एक करके अर्थात् दो, इन्हीं दश रोमावर्त्तोंका नाम ध्रुव है। २४ नक्षत्रगणविशेष, फलित ज्योतिषमें एक नक्षत्रगण। इसमें उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद और रोहिणी हैं। २५ उत्प्रेक्षा, ध्रुवशब्द उत्प्रेक्षाद्योतक है, अर्थात् ध्रुव इस शब्दका प्रयोग रहनेसे कहीं कहीं उत्प्रेक्षार्थ हुआ करता है।

साहित्यदर्पणमें लिखा है, कि क्रोध और भयमें, ध्रुव आदि शब्द उत्प्रेक्षावाचक है। २६ ग्रहनक्षत्रादिका आनयनोपयोगी अङ्कभेद। २७ सोमभेद। २८ शकुनि प्रभृति चार चतुष्क, शकुनी आदि नामके चार करण 'यथा—शकुनि, नाग, चतुष्पद और किन्तुघ्न। २९ धार्मिक स्त्री। ३० वह गाय जो दुहते समय शान्तरूपसे खड़ी रहे। ३१ नियत समय। ३२ सोमरसका वह भाग जो प्रातः कालसे सायंकाल तक बिना किसी देवताको अर्पित हुए रखा रहे। ३३ रगणका अठारहवां भेद जिसमें पहले एक लघु, फिर एक गुरु और फिर तीन लघु होते हैं। ३४ तालूका एक रोग। इसमें ललाई और सूजन आ जाती है। ३५ ग्रन्थि, गांठ। ३६ पर्वत, पहाड़। ३७ वटवृक्ष, धौका पेड़। ३८ भूगोल विद्यामें पृथ्वीका अक्षदेश। इसका विवरण भौगोलिकोंने इस प्रकार किया है—

पृथ्वी लट्टूकी तरह घूमती हुई सूर्यकी परिक्रमा करती है। एक दिन रातमें उसका इस प्रकारका चक्कर एक बार हो जाता है। जिस तरह लट्टूके ठीक बीचमें एक कील लगी रहती है जिस पर वह घूमता है, उसी तरह पृथ्वीके गर्भकेन्द्रसे गई हुई एक अक्षरेखा मानी गई है। यह अक्षरेखा जिन दो सिरों पर निकली हुई मानी गई हैं उन्हें ध्रुव कहते हैं। ध्रुवके दो भेद हैं—उत्तर ध्रुव या सुमेरु और दक्षिण ध्रुव या कुमेरु। इन स्थानोंसे २३½ अंश पर पृथ्वीके तल पर एक एक वृत्त माने गये हैं जिन्हें उत्तरी और दक्षिणी शीतकटिबन्ध कहते हैं। जो प्रदेश ध्रुवों और इन वृत्तोंके बीचमें पड़ते हैं, वे अत्यन्त ठंढे हैं, उनमें समुद्र आदिका जल सदा जमा रहता है। हम लोगोंको २४ घण्टोंका दिन रात होता है, पर ध्रुवप्रदेशमें वर्ष भरका होता है। जब तक सूर्य उत्तरायण रहते हैं, तब तक उत्तरी ध्रुव पर दिन और दक्षिणी ध्रुव पर रात और जब तक दक्षिणायन रहते हैं, तब तक दक्षिण ध्रुव पर दिन और उत्तरी ध्रुव पर रात रहती है। इससे स्पष्ट है कि वहां छः महीनेकी रात और छः महीनेका दिन होता है। इसी तरह वहां सबेरे और शामका समय भी लम्बा होता है। जिस तरह यहां सूर्य और चन्द्रमा पश्चिमसे पूर्व और पूर्वसे पश्चिमको ओर जाते मालूम पड़ते उस तरह वहां नहीं मालूम पड़ते, बल्कि चारों ओर कोल्हूके बैलकी तरह घूमते दिखाई पड़ते हैं। वहां सबेरे और शामकी ललाई क्षितिजके ऊपर बीसों दिन तक घूमती दीख पड़ती है। शब्दकी गति ध्रुव प्रदेशमें बहुत तेज होती है। इस भूभागमें सबसे मनोहर मेरु ज्योति है जो भांति भांति वर्णोंके आलोकके रूपमें कुछ काल तक दिखाई देती है।

ध्रुवक (सं० पु०) ध्रुव-स्वार्थे कन्। १ स्थाणु, थून, खंभा। २ गीतादिविशेष, ध्रुपद नामक गीत। इसके तीन भेद है—उत्तम, मध्यम और अधम, छः पदवाला

उत्तम, पाँच पदवाला मध्यम और चार पदवाला अधम माना गया है। विशेष विवरण ध्रुपद शब्दमें देखो। ३ नक्षत्रका दूरत्व, नक्षत्रकी दूरी। मीनराशिके शेषस्त जिस नक्षत्रका योग-तारा जितनी दूरी पर रहता है, उतनेको उस नक्षत्रका ध्रुवक (Celestial longitude) कहते हैं।

ध्रुवका (सं० स्त्री०) ध्रुवक-टाप्। ध्रुवा, ध्रुपद।

ध्रुवकेतु (सं० पु०) केतुभेद, एक प्रकारका केतु तारा। ध्रुव नामक एक प्रकारका केतु है। इसके आकार, वर्ण, प्रमाण वा गतिकी कोई स्थिरता नहीं है। इसके तीन भेद माने गये हैं, दिव्य, आन्तरीक्ष और भौम। यह स्निग्ध और अनियतका फलदाता है। यही ध्रुवकेतु विनाशशाली राजाओंके सेनाङ्गमें वा विनाशशील देशके क्षत्रों पर प्रायः ही देखा जाता है। (वृहत्सं)

ध्रुवक्षित् (सं० स्त्री०) ध्रुवे स्थिरे यज्ञे क्षियति निवसति। यज्ञमें वासकारी, यज्ञमें रहनेवाला।

ध्रुवक्षिति (सं० स्त्री०) ध्रुवा स्थिरा क्षितिनिर्वासो यस्य सः। स्थिरनिवास, जिसका वासस्थान दृढ़ हो।

ध्रुवक्षेम (सं० त्रि०) ध्रुवःक्षेमः वासः यस्य। स्थिर-निवास।

ध्रुवगति (सं० स्त्री०) ध्रुवा गतिः। ध्रुवपद।

ध्रुवघाट—तीर्थविशेष। मधुवनके जिस स्थानमें महात्मा ध्रुवने तपस्या की थी, उस स्थानको ध्रुवघाट कहते हैं।

ध्रुवचरण (सं० पु०) रुद्रतालके बारह भेदोंमेंसे एक।

ध्रुवच्युत (सं० त्रि०) निश्चल पर्वतादिका च्युतकारक, अचल पर्वत आदिका हिलाने डुलानेवाला।

ध्रुवतारा (Pole-star or Polaris) मेरुके अग्रभागमें विद्यमान तारका, वह तारा जो सदा ध्रुव अर्थात् मेरुके उत्तर रहता है। आर्य ज्योतिर्विदोंका मत है, कि मेरुके उत्तर अर्थात् मेरुके दक्षिणाग्र और उत्तराग्रके ऊपर आकाशमें दो तारे हैं जिन्हें ध्रुवतारा कहते हैं। जिस तरह गाड़ीके पहियेके बीचोबीच डंडेको जिसके सहारे पहिया घूमता है, धुरा वा अक्षदण्ड कहते हैं उसी तरह उत्तर और दक्षिणाकाशस्थित उन तारोंको अक्ष बना कर राशिचक्र लगातार घूमा करता है। इसी कारण वे दोनों तारे ध्रुव कहलाते हैं।

यूरोपीय ज्योतिर्विदोंके मतानुसार जो अत्युज्ज्वल नक्षत्र किसी समय सुमेरुके बहुत समीप आ जाता है, उसे सुमेरु-नक्षत्र (North star) और सुमेरुसे जिस तारेका व्यवधान सबसे कम होता है, उसे ध्रुवतारा (Pole-star) कहते हैं। सुतरां पृथ्वीके अक्षविन्दुकी सीधसे जब जो तारा सबसे कम हट कर होता है, तब वही ध्रुवतारा कहलाता है। आज कल Ursa major नक्षत्रके प्रथम तारेको ध्रुवतारा कहते हैं। जिस प्रकार सप्तर्षिमें (Ursa-major) सात तारे हैं, उसी प्रकार जिस शिशुमार नामक तारकपुञ्जके अन्तर्गत ध्रुव है उसमें भी सात तारे हैं। इन सातोंमें ध्रुव पहला और सबसे उज्ज्वल है। यह सुमेरुसे १½ अंश मात्रको दूरी पर है और इसकी गति बहुत सामान्य है। अयनांशके चारों ओर नाड़ीमण्डलके मेरुको गतिके अनुसार (प्रायः २१०० ई०में) यह तारा मेरुको पीछे छोड़ता हुआ उसकी सीधसे बहुत हट जायगा और तब अभिजित् नामक नक्षत्र ध्रुवतारा होगा। हिपार्कसके समयमें (१५६ पूर्वाब्दमें) यह तारा सुमेरुसे १२ अंशकी दूरी पर था और १७८५ ई०में २ अंश २ कला दूरवर्ती हुआ। अभी केवल डेढ़ अंशकी दूरी पर है। दो हजार वर्ष पहले सप्तर्षि नक्षत्रका दूसरा तारा और पाँच हजार वर्ष पहले थूबन तारा (Thuban or alpha Draconis) ध्रुवतारा था। अभी वे सब आकाशके ध्रुवसे बहुत दूरमें अवस्थित हैं।

आर्य हिन्दुओंके विवाह-मन्त्रमें ध्रुवताराका उल्लेख है। इससे अनुमान किया जाता है, कि आर्य ऋषिगण अत्यन्त प्राचीन कालसे ही ध्रुवताराके विषयमें अवगत थे।

विख्यात यूरोपीय ज्योतिर्विद् जेकविने नाक्षत्रिक गतिकी गणना द्वारा स्थिर किया है कि हिन्दुओंने प्रायः ३००० वर्ष पहले ध्रुवताराका आविष्कार किया था। ज्योतिष शब्द देखो।

यूरोपीय ज्योतिर्विदोंने गणना करके स्थिर किया है, कि आजसे १२००० वर्ष बाद अभिजित् नामक उज्ज्वल नक्षत्र ध्रुवतारा कहलायेगा। किसी किसी यूरोपीय ज्योतिर्विदने यह भी कहा है, कि अभी हमलोग

इसे देख नहीं सकते हैं सही, किन्तु हमलोगोंकी दृष्टि-परिच्छेदक रेखाके बाहर भूगोलार्द्धमें एक और ध्रुवतारा दिखाई पड़ेगा।

देवी-भागवतमें लिखा है—सप्तर्षि-मण्डलके ऊपर १३ लाख योजनकी दूरी पर विष्णुका परमपद है। वहीं ध्रुव इन्द्र, अग्नि, कश्यप और धर्मके साथ मिल कर उक्त पद पर विराजमान हैं। स्वयं परमेश्वरने इसध्रुवको स्पष्ट वेगशाली कालचक्रमें निरन्तर भ्रमणशील समस्त ग्रह नक्षत्रादि ज्योतिर्मण्डलोंका अवलम्बन-स्तम्भस्वरूप बनाया है। यह ध्रुव अपनी प्रतिभासे प्रतिभात हो कर सब जगह प्रकाश देते हैं। जिस तरह जूएमें लगा कर पशुगण जोते जाते हैं, उसी तरह ग्रहादि और नक्षत्रादि अन्तर्वहिर्विभागके क्रमसे कालचक्रमें नियोजित हो कर ध्रुवका अवलम्बन करते हैं और कालत्रय-मण्डल-गतिसे घूमते हैं तथा वायुसे प्रणोदित हो कर तेजोंसे विचरण करते हैं। (देवीभा० ८म स्कन्ध १७वां अ०)

ध्रुवदर्शक (सं० पु०) १ सप्तर्षि-मण्डल। २ कुतुबनुमा।

ध्रुवदर्शन (सं० पु०) विवाहके संस्कारके अन्तर्गत एक कृत्य। इसमें वर वधूको मन्त्र पढ़ कर ध्रुव तारा दिखाया जाता है।

ध्रुवदेव—नेपालके लिच्छवि-वंशीय एक राजा। शिला-लिपिमें इनकी उपाधि 'भट्टारक' और 'महाराज' देखी जाती है। इनकी राजधानी मानगृहमें थी। इनकी बहन ध्रुवदेवीके साथ गुप्तसम्राट् द्वितीय चन्द्रगुप्तका विवाह हुआ था। ये ३६७ ई०में वर्त्तमान थे। इनके राजत्व-कालकी उत्कीर्ण शिलालिपि पाई गई है जिसमें सम्वत् ४८ लिखा हुआ है। गुप्तराजवंश देखो।

ध्रुवधेनु (सं० स्त्री०) वह गाय जो दुहते समय चुपचाप खड़ी रहे।

ध्रुवनन्द (सं० पु०) नन्दके एक भाईका नाम।

ध्रुवपद (सं० पु०) ध्रुवक, ध्रुपद।

ध्रुवपाल—नागार्जुनतन्त्र और नागार्जुनीय-योगशतकके रचयिता।

ध्रुवभट—१ प्राचीन परमार-वंशीय एक राजा। इनके पताका नाम धन्धुक था। देलवाड़ासे आविष्कृत सोमे-श्वरकी प्रशस्तिमें इनका उल्लेख है।

२ वड़वानके चापवंशीय एक राजा, पुलिकेशिके पुत्र। चाप देखो।

३ गुजरातके वलभीराजवंशीय एक राजा। वलभी राजवंश शब्द देखो।

ध्रुवमत्स्य (सं० पु०) दिशाओंका ज्ञान जाननेका एक यन्त्र, कुतुबनुमा।

ध्रुवरत्ना (सं० स्त्री०) कुमारानुचर मातृभेद, एक मातृका जो कुमार वा कार्त्तिकेयकी अनुचरी है।

ध्रुवराज—गुजरातके राष्ट्रकूट वंशीय एक राजा, कृष्ण-राजके पुत्र। राष्ट्रकूटवंश देखो।

ध्रुवरेखा (सं० स्त्री०) विषुवरेखा।

ध्रुवलोक (सं० पु०) ध्रुवाधिष्ठितो लोकः। सत्यलोकके अन्तर्गत एक लोक जहां ध्रुव स्थित हैं।

ध्रुवस् (सं० त्रि०) ध्रुव-असुन्। ध्रुवनिवास, जो दृढ़ता-से स्थित है।

ध्रुवसन्धि (सं० पु०) १ कुशवंशीय हिरण्यनाभके पुत्र। (भाग० ९।१२।५) २ सूर्यवंशीय सुसन्धिके पुत्र। (रामायण १।७१ अ०)

ध्रुवसिद्धि (सं० पु०) अग्निमित्रकी सभाका एक भिषक्।

ध्रुवसेन—वलभी-वंशीय एक राजा। वलभीराजवंश देखो।

ध्रुवा (सं० स्त्री०) ध्रुवत्वनया, ध्रु-स्थैर्ये, बाहुलकात्क ततष्टाप्। १ यज्ञपात्रभेद, एक प्रकारका यज्ञपात्र जो वैकङ्कतकी लकड़ीका बनता है।

कोई कोई जुहू नामक यज्ञपात्रको ध्रुवा बतलाते हैं। वटके पत्तोंके सदृश आकृति-विशिष्ट यज्ञपात्रको भी जुहू कहते हैं, किन्तु जुहू और ध्रुवा दोनों ही विभिन्न पात्र हैं। जो इन दोनोंका एक अर्थ लगाते, वे भूल करते हैं। २ मूर्वा, मरोड़फली। ३ आठी, एक प्रकारकी मछली। ४ शालपर्णी, सरिवन। ५ साध्वी स्त्री, सती स्त्री। ६ गीतभेद, ध्रुवक या ध्रुपद गीत। अनेक प्राचीन पुस्तकों-में 'ध्रु' 'ध्रुव' यह सङ्केतयुक्त जो गीत वा गीतवत् अंश प्रति अध्यायके प्रारम्भमें देखा जाता है, उसे ध्रुवक कहते हैं। पूर्वकालमें सभी काव्य गाये जाते थे। जो दोहेका होता था, वह प्रति कविताके बाद इसी ध्रुवक द्वारा सुरकी रक्षा करता था।

ध्रुवानन्दमिश्र—भट्टनारायण-वंशके एक विख्यात कुलाचार्य।

हैवीवर राढ़ीय ब्राह्मणोंमें इन्होंने मेल करा दिया। इन्होंने कुलीनोंका कुल-परिचायक ग्रंथ और वंशावली संस्कृत भाषामें प्रकाशित की जिसका नाम महावंशावली रखा गया है। राढ़ीय ब्राह्मणोंके कुलाचार्य समाजमें यह ग्रन्थ सम्मधिक प्रामाण्य है। कुलीन देखो।

ध्रुवावर्त (सं० पु०) ध्रुवसंज्ञक आवर्तः रोम संस्थानभेदः। १ अश्वका रोमसन्धानभेद, घोड़ोंकी भौंरी। बहुतसे घोड़ोंके ललाट और केशमें जो एक आवर्त एवं रन्ध्र, उपरन्ध्र, मस्तक और वक्षमें जो आवर्त रहते हैं उसे ध्रुवावर्त कहते हैं। २ वह घोड़ा जिसके ऐसी भौंरियां होती हैं।

ध्रुवाश्व (सं० पु०) तुरङ्गमभेद, एक प्रकारका बड़ा घोड़ा। (मत्स्यपु०)

ध्रुवि (सं० त्रि०) ध्रु-क्रिन्। ध्रुव, स्थिर।

ध्रोल—बम्बईके काठियावाड़ पोलिटिकल एजेन्सीका एक देशीय राज्य। यह अक्षा० २२° ४' से २२° ४२' उ० और देशा० ७०° २४' से ७०° ४५' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण २८३ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः २१८०६ है। इसमें १ शहर और ६७ ग्राम लगते हैं। यहांका भूभाग कहीं एक जगह पर्वताकीर्ण और ऊंचा नीचा है। मट्टी हलकी होती है। नदी और कुएंका पानी चमड़ेके थैलेमें भर भर कर जमीन सींची जाती है। ग्रीष्ममें अत्यन्त गरमी पड़ने पर भी यहांकी जलवायु स्वास्थ्यकर है। ईखकी खेती यथेष्ट होती है। यहांके बहुतसे लोग मोटा कपड़ा बुन कर अपना गुजारा करते हैं।

काठियावाड़ एजेन्सीकी द्वितीय श्रेणीके राज्योंमें यह राज्य गिना जाता है। यहांके राजा क्षत्रिय राजपूतवंशीय हैं। राजाकी उपाधि ठाकुर साहब है। इन्हें १८०७ ई०में पोष्यपुत्र ग्रहण करनेकी सनद मिली है। सरकारी ओरसे इन्हें ८ सम्मान-सूचक तोपें दी जाती हैं। प्रजाका जीवन मरण राजाके हाथ है। इनकी सैन्यसंख्या ११८ है। राज्यकी आमदनी १ लाखसे अधिककी है, जिसमेंसे १०२२१ रु० गायकवाड़ और जूनागढ़के नवाबको कर स्वरूप देने पड़ते हैं। यहां ८ स्कूल और १ अस्पताल है।

२ उक्त राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २२° ३४' उ० और देशा० ७०° ३०' पूर्व राजकोटसे ३२ मील उत्तर-पश्चिम तथा नवानगरसे २४ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। लोकसंख्या ५६६० है। यहां भी एक चिकित्सालय है।

ध्रौव (सं० त्रि०) ध्रुवायां गृहीतं अण्। १ ध्रुवामें गृहीत आज्यादि, वह घी आदि जो ध्रुवा नामक यज्ञपात्रमें रखा जाता है। २ ध्रुव नामक तारासे सम्बन्ध रखनेवाला। (क्लो०) ३ आज्ञा, आह्वान, पुकार। ४ ध्रुवका, ध्रुपद।

ध्रौव्य (सं० क्लो०) ध्रुवस्य भावः ष्यञ्। १ स्थिरत्व, दृढ़ता, मजबूती। (त्रि०) २ स्थिर, दृढ़। ध्रुवाय हितं ष्यञ्। ३ ध्रुवस्थानप्रापक, ध्रुवस्थानको प्राप्त करनेवाला।

ध्वंस (सं० पु०) ध्वन्स भावे घञ्। १ विनाश, क्षय, हानि। न्याय और वैशेषिक दर्शनके मतसे ध्वंस एक अभाव माना गया है। इसका स्थूल अर्थ 'विनाश' होता है। पर सत्कार्यवादी सांख्य और वेदान्त ध्वंसको अभाव नहीं मानते, केवल तिरोभाव मानते हैं। 'इह घटो ध्वस्तः' इस जगह असत्कार्यवादी नैयायिक कहते हैं कि यह घड़ा 'ध्वस्त' अर्थात् विनष्ट हुआ है अर्थात् इस जगह घड़ोंका ध्वंसाभाव हुआ है। किन्तु सत्कार्यवादी सांख्यादि दर्शनकार कहते हैं, 'ध्वस्त' अर्थात् घटका तिरोभाव हुआ है, अर्थात् कारणमें लीन हो गया है, किन्तु वस्तु विनष्ट नहीं हुई है। उन लोगोंका कहना है कि किसी वस्तुका विनाश नहीं होता, बल्कि उसका अवस्थान्तर होता है। घड़ेकी जो प्रकाशावस्था थी, उसका तिरोभाव हुआ है, अर्थात् कारणमें मिल गया है। २ मद्यविकाररोग।

ध्वंसक (सं० त्रि०) ध्वंसयति ध्वन्स-क्वन्। ध्वंसकारक, नाश करनेवाला।

ध्वंसकला (सं० अव्य०) ध्वंसं कलयति कलि-डा। हिंसा, कतल।

ध्वंसन (सं० क्लो०) ध्वन्स भावे ल्युट्। १ नाश। (त्रि०) ध्वंस-णिच्-ल्यु। २ ध्वंसकारक, नाश करनेवाला। (क्लो०) भावे ल्युट्। ३ ध्वंस करण, नाश करनेकी क्रिया। ४ भ्रंश, नाश, तबाही। ५ अधःपतन।

ध्वंसित (सं० त्रि०) ध्वन्स-णिच्-क्त। विनाशित, नष्ट किया हुआ।

ध्वंसिन् (सं० त्रि०) ध्वंस-णिनि। १ नाश प्रतियोगी, जिसका नाश हो, कोई कोई ध्वंसिन् शब्दका अर्थ त्रस-रेणु अर्थात् सूक्ष्मकण लगाते हैं।

"जालान्तरगते सूर्यकरे ध्वंसी विलोक्यते।
त्रसरेणुस्तु विज्ञेयस्त्रिंशता परमाणुभिः॥"
(वैद्यकपरिभाषा)

झरोखे हो कर सूर्यकी किरण जानेसे 'ध्वंसी' देखा जाता है, यहां ध्वंसी शब्दका अर्थ त्रसरेणु अर्थात् सूक्ष्मकण है। इस तरहकी कल्पना भूल समझी जाती है, क्योंकि यहां ध्वंसी यह त्रसरेणुका विशेषण है। उस जगह इस प्रकार अर्थ होना चाहिये,—नाशके प्रतियोगी अर्थात् ध्वंसविशिष्ट समस्त त्रसरेणु देखे जाते हैं। ध्वंस-णिच्-णिनि। २ नाशकारक, नाश करनेवाला। (पु०) ३ पर्वतसम्भव पीलूवृक्ष, पहाड़ी पीलूका एक पेड़।

ध्वज (सं० पु०) ध्वजोऽस्यास्ति ध्वज अर्श आदित्वात् अच्। १ शौण्डिक। ध्वजा ले कर चलनेवाला आदमी।

"दशसूनासमः चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः।
दशध्वजसमो वेशो दशवेश समो नृपः॥" (मनु ४।८५)

शौण्डिक अर्थात् सूड़ी ध्वजा उड़ा कर जीविका निर्वाह करते हैं, इसीसे शौण्डिकको ध्वज वा ध्वजवान् कहते हैं। ये लोग अत्यन्त नीच समझे जाते हैं। दश सूनावान्में अर्थात् मांस बेचनेवालोंमें जो दोष है वह एक चक्रवान् तैलिकमें दोष है और दश तैलिकमें जो दोष है वह एक ध्वज अर्थात् ध्वजवान् शौण्डिकमें दोष पाया जाता है। कसाईके पशुवध स्थानको सूना कहते हैं। कोल्हूकी घानीको चक्र और ध्वजा उड़ानेवाले सूँड़ीको ध्वजवान् कहते हैं। ध्वजति उच्छ्रितो भवति ध्वज 'पचाद्यच्' इति अच्। २ खट्वाङ्ग, खाटकी पट्टी। ३ मेढ़्र, लिङ्ग। ४ चिह्न। ५ गर्व, दर्प, अभिमान। ६ पूर्वदिक्स्थित गृह। ७ पताकादण्ड। इसका पर्याय केतन है। ८ चतुष्कोणाकार वंशदण्डोपरिस्थित वस्त्रखण्डभेद, झण्डा, निशान। इसका विधान युक्तिकल्पतरुमें इस प्रकार लिखा है—

"सेना चिह्नं क्षितीशानां दण्डो ध्वज इति स्मृतः।
सपताको निष्पताकः सज्ञेयो द्विविधो बुधैः।" (युक्तिकल्पतरु)

राजाओंके सेनाचिह्नस्वरूप जो दण्ड होता है उसीका नाम ध्वज है। यह ध्वज दो प्रकारका है सपताक और निष्पताक। ध्वजका दण्ड बकुल, शाल, पलाश, चम्पक, कदम्ब और निम्ब आदिका होता है। किन्तु इन सबकी अपेक्षा वंशदण्ड ही श्रेष्ठ है। जया, विजया, भीमा, चपला, वैजयन्तिका, दीर्घा, विशाला और लोला ये ८ प्रकारके ध्वज हैं। इनमेंसे जया नामक जो ध्वज है उसका दण्ड पांच हाथ और विजयादि ध्वजका दण्ड उत्तरोत्तर एक एक हाथ बढ़ता जायगा। सभी पताकाओंका वर्ण रक्त, श्वेत, अरुण, पीत, चित्र, नील, कर्बूर और कृष्ण हो सकता है। जिस पताकामें गजादि अङ्कित रहता है उसका नाम जयन्ती है। इस प्रकारका पताका सर्वमङ्गलदायिनी समझी जाती है। गजादि शब्दसे गज, सिंह, हय और दीपीका बोध होता है। राजाओंके हंसादि चिह्नयुक्त जो सब पताका रहती है उसे अष्टमङ्गला कहते हैं; हंसादि शब्दसे हंस, केकी और शुक समझा जाता है। चामरादि चिह्नयुक्त जो पताका है उसे सर्वबुद्धिदा कहते हैं। पताकाके अग्र भाग पर सुवर्ण, रजत और ताम्र अथवा नाना धातुका कुम्भ बनाना होता है और उन्हें रत्नादिसे खचित करना उचित है। ऐसी पताकाको सपताक ध्वज कहते हैं। निष्पताक ध्वजके भी सभी दण्ड पहलेके समान होते हैं।

दण्ड, पद्म, कुम्भ, विहग और मणि ये छः पदार्थ जिन सब दण्डोंमें जड़े रहते हैं उन्हें निष्पताक ध्वज कहते हैं। यह भी राजाओंके मङ्गलजनक हैं। जहां वंश निर्मित ध्वज होगा, वहां व्रणादि युक्त न हो, ताम्रका दण्ड हो सकता है। (युक्तिकल्पतरु)

ध्वजदानकी विधि देवीपुराणमें इस प्रकार लिखी है— वस्त्रनिर्मित हो अथवा अन्य वस्तुका हो लेकिन हो सभी ध्वज नूतन, समान, अचल और चिक्कण। ध्वजमें जिससे केशादि कोई अपवित्र वस्तु रहने न पावे, इस पर विशेष ध्यान रहे। यह दण्डलम्बित करके प्रासादके ऊपर रख देना चाहिये। यदि यह शैल वा धातुनिर्मित हो तो भी उसका समान, चिक्कण और अचल होना उचित है। इसमें

कपूर और रोचना मिश्रित करके पटके मध्य एक सर्व लक्षणसम्पन्न सिंहकी मूर्त्ति अङ्कित कर उस पटको प्रासादसे भूमि तक लटका देना चाहिये। ध्वजपार्श्वमें अपने अपने वाहनके साथ दशदिक्पालकी मूर्त्ति अङ्कित रहे। किङ्किणी, चामर, घण्टा, दर्पण आदि द्वारा उसे शोभित कर यथाविधि होमादि और देवी भगवतीका पूजन करे। पीछे ध्वजोत्तलन करना होता है। इस प्रकार अनुष्ठान करनेसे विद्याधरत्व लाभ होता है और सभी कामनायें सिद्ध होती हैं। एतद्भिन्न स्वर्ण, रौप्य, वृक्ष, मृत्तिका वा प्रस्तरादि द्वारा एक सिंह इस प्रकार बनाना चाहिये। जिसे देखनेसे मालूम पड़े कि वह सिंह मानो किसी मदमत्त हाथीको विदारण कर रहा है और नख प्रहार द्वारा करिकुम्भसे मुक्ताफल निकाल रहा है। इस प्रकार सिंहका निर्माण कर पुनः देवीकी पूजा करनी होती है। ध्वजारोहणके समय ब्राह्मण और कुमारी-भोजन कराना होता है। पीछे अष्टाक्षर मन्त्र रुद्रमन्त्र जप करके मङ्गल शब्द पूर्वक सिंहको स्तम्भ पर आरोहण करे और वेदध्वनि द्वारा सिंहका ध्यान करे। तदनन्तर वस्त्राभरण-भूषित देवीका महाध्वज स्थापन कर अन्यान्य देवताओंके भी ध्वज स्थापन करे। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, रुद्र, चन्द्र, सूर्य आदि देवताओंका ध्वज-दान सर्वश्रेष्ठ दान समझा जाता है। जब तक ध्वजदान न किया जाय तब तक प्रासादमें कोई देवचिह्न न रहे। भूत, नाग, गन्धर्व और राक्षस आदि शून्यध्वजसे गृहादिमें नाना प्रकारके उपद्रव होते हैं। इसीसे गृह-द्वार, प्रासाद, पर्वत और नगरमें ध्वजदान करना शक्ति-कामी मनुष्योंके लिये उचित और हितकर है। जो मनुष्य विधिपूर्वक इस प्रकार ध्वजदान करते हैं, उनके सभी अभिलाष सिद्ध होते हैं और अन्तकालमें उन्हें शिवलोक की प्राप्ति होती है। ऐसे मनुष्योंके साथ सम्भाषणादि करनेसे भी पापक्षय होता है। क्षत्रिय राजगण आचार-पूत हो कर भक्तिपूर्वक शङ्ख, चक्र, वृष, तार्क्ष्य, हंस, मयूर, हस्ती आदि चिह्नित ध्वजयष्टि उत्तोलन करे। ऐसा करनेसे उन्हें युद्ध, व्याधि और शत्रु आक्रमण, शस्त्र, व्रण पीड़ा आदि किसी प्रकारका अनिष्ट नहीं होता। (देवीपुराण)।

ध्वजगृह (सं० पु०) ध्वजाय युक्तं गृहं शाकपार्थिव०। १ ध्वजरूप युक्त गृह, वह घर जिसमें पताका फहराया जाता है। २ वह घर जिसमें पताका रखा जाता है।

ध्वजग्रीव (सं० पु०) ध्वज इव ग्रीवा यस्य। राक्षसभेद, एक राक्षसका नाम। (रामायण ५।१२३ अ०)

ध्वजद्रुम (सं० पु०) ध्वज इव उन्नतो द्रुमः। १ ताल वृक्ष, ताड़का पेड़। यह ध्वजाकी नाईं बहुत ऊँचा रहता है इसीसे इसका नाम ध्वजद्रुम पड़ा है।

ध्वजप्रहरण (सं० पु०) ध्वजं प्रहरति नाशयति भन-क्तीति प्र ह्र-ल्यु। वायु, हवा।

ध्वजभङ्ग (सं० पु०) ध्वजस्य मेढ्रस्य भङ्गः। क्लीवताजनक रोगविशेष, क्लीवता, नपुंसकता, नामर्दीकी बीमारी। चरकसंहितामें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है,—

"अत्यम्ललवणक्षारविरुद्धासनभोजनात्।
तथाम्बुपानाद्विषमात् पिष्टान्नगुरुभोजनात्॥
दधिक्षीरानूपमांससेवनात् व्याधिकर्षणात्।
कल्याणीगमनाच्चापि वियोनिगमनादपि॥
दीर्घरोम्नीं चिरोत्सृष्टां तथैव च रजस्वलाम्।
दुर्गन्धां दुष्टयोनिञ्च तथैव च परिस्रुताम्॥
ईदृशीं प्रमदां मोहात् यदि गच्छति मानवः।
चतुष्पदादि गमनाच्छेफसश्चाभिधानतः॥
अधावनाच्च मेढ्रस्य शस्त्रदन्तनखक्षतात्।
काष्ठप्रहारनिष्पेषशूकानाञ्च निषेवणात्॥
रेतसश्च प्रतीघातात् ध्वजभङ्गः प्रजायते।" (चरक)

यदि कोई पुरुष अत्यधिक अम्ल, लवण वा क्षार भोजन, विरुद्ध भक्षण, विषमाम्बुपान, पिष्टान्नादि गुरु-भोजन, अतिरिक्त दधि, क्षीर वा अनूप मांसभोजन, व्याधिकर्षण, कल्याणी (गाभी)-गमन, वियोनिगमन, दीर्घरोमा और चिरपरित्यक्ता स्त्रीके साथ सहवास करे तथा रजस्वला, दुष्टयोनि और दुर्गन्धि योनियुक्त चतुष्पदादि-में मोहप्रयुक्त उपगत हो तथा मेढ्रदेश यदि न धोवे और वह शस्त्र, दन्त वा नखसे क्षत हो जाय अथवा काष्ठप्रहार द्वारा निष्पेषित हो जाय तथा शूक सेवन और वीर्यका प्रतिरोध करे, तो उसके ध्वजभङ्ग रोग हो जाता है। इस रोगको क्लैव्य (अर्थात् नामर्दी) कहते हैं। यही कारण है कि सुश्रुत आदिमें इसकी गिनती

क्लैब्यरोगमें की गई है। भावप्रकाशमें लिखा है कि ध्वजभङ्ग होने पर शिश्नकी उत्तेजनाके अभाव हेतु, वह फिर उत्थित नहीं होता—मैथुन करनेमें असमर्थ हो जाता है। इसका कारण यह है, कि यदि कोई रमणेच्छु व्यक्ति भय, शोक वा क्रोधादि द्वारा किंवा अहृद्य सेवन हेतु अथवा अनभिप्रेता द्वेष्टा स्त्रीके साथ मैथुन करनेसे उसके द्वारा मन असुख होता और ध्वजभङ्ग अर्थात् शिश्नकी उत्तेजना नष्ट होनेसे क्लीवता (नामर्दी) उत्पन्न होती है, इसको मानसक्लैब्य कहा जा सकता है

अतिरिक्त कटु, अम्ल, लवण और उष्ण द्रव्य खानेसे अत्यन्त पित्तवृद्धि होती है और उससे शुक्रक्षय होता है, इसीलिए ध्वजभङ्ग अर्थात् शिश्नकी उत्तेजना मन्द हो जाती है। इसे पित्तक्लैब्य कहते हैं।

जो लोग वाजीकरण औषध सेवन न कर हदसे ज्यादा मैथुन सेवन करते हैं, उनके ध्वजभङ्ग वा क्लीवता हो जाती है। अत्यधिक मेढ्र रोग होनेसे भी ध्वजभङ्ग हो जाता है और उससे ४र्थ प्रकारका क्लैब्य उत्पन्न होता है।

वीर्यवाही शिराका छेदन करनेसे ध्वजभङ्ग हो कर क्लीवता उत्पन्न होती है।

बलवान् व्यक्तिके अत्यन्त कामासक्त होने पर यदि वह मैथुन न कर शुक्रके वेगको धारण करे, तो उसमें भी ध्वजभङ्ग हो कर क्लीवता आ जाती है।

जन्मकालसे हो क्लीव होने पर उसे सहज क्लैब्य रोग कहते हैं। यह जन्म क्लैब्य असाध्य है, तथा वीर्यवाहिनी शिराछेदजन्य ध्वजभङ्ग भी असाध्य है। साध्य-क्लैब्यरोगमें हेतुके विपरीत कार्य करना चाहिए। कारण, निदान परिवर्जन ही सब प्रकार चिकित्साओंसे श्रेष्ठ उपाय है। ध्वजभङ्ग वा क्लीवतामें वाजीकरण औषध ही प्रशस्त है। व्याधिहीन मनुष्य १६ वर्षके बाद ७० वर्ष पर्यन्त कायशोधन कर वाजीकरण औषध सेवन कर सकता है, इससे आयु, काम और रतिशक्तिकी वृद्धि होती है। १६ वर्षसे कम तथा ७० वर्षसे ज्यादा उम्रवालोंको वाजीकरण औषधियां खानी चाहिये। अतिरिक्त स्त्री-संसर्गसे ध्वजभङ्ग उपदंश आदि नाना प्रकारके रोग उपस्थित होते हैं और उनसे अकालमृत्यु होती है।

विलासी, अर्थशाली और रूपयौवनसम्पन्न मनुष्योंको तथा जिनके कई स्त्रियां हैं, उनको वाजीकरण औषध सेवन करनी चाहिए। वृद्ध, रमणेच्छु, मैथुनहेतु क्षीण, क्लीव और अल्प शुक्रविशिष्ट व्यक्तियोंको तथा जो व्यक्ति स्त्रियोंके प्रिय होना चाहते हैं, उनके लिए यह हितकर प्रीतिकर और बलप्रद है। (भावप्र०)

सुश्रुतमें लिखा है—ध्वजभङ्ग होने पर पुरुष क्लीवताको प्राप्त होता है। यदि कोई रमणेच्छु व्यक्तिके अन्तःकरणमें अप्रिय भावका उदय हो, अथवा अप्रिय स्त्रीके साथ सङ्गति होनेसे मनः क्षुब्ध हो, तो ध्वजभङ्ग हो कर क्लीवता आ जाती है। इसको मानसिक क्लीवता कहते हैं। कटु, अम्ल, उष्ण और लवण ये रस यदि अधिकतासे खाये जावें, तो भी सौम्य धातुका क्षय होने लगता है और उससे ध्वजभङ्ग रोग हो जाता है। वाजीक्रिया बिना किये अतिशय स्त्री-सङ्गम करनेसे शुक्रधातुका क्षय होनेके कारण इस रोगकी उत्पत्ति होती है। अत्यन्त मेढ्ररोगके कारण वा मर्मच्छेद-वशतः पुरुष-शक्तिमें व्याघात होने पर भी यह रोग उत्पन्न होता है। सहज क्लैब्य और मर्मच्छेदजन्य क्लैब्य असाध्य है। जिन जिन कारणोंसे जैसी जैसी क्लीवता उत्पन्न होती है, उन उन कारणोंके विपरीत क्रिया द्वारा उनका प्रतीकार किया जा सकता है। सुरतसन्दीपनी-शक्तिके तारतम्यानुसार वाजीकरणके योगोंको निम्नलिखित तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया जा सकता है।

१म श्रेणीस्थ योग—तिल, उरद, जमीकन्द और शालीतण्डुलके चूर्णको वराहके मेद और सैन्धवके साथ पौण्ड्रक इक्षुके रसमें घोंट कर गोली बना लें; उन गोलियोंको घीमें पाक कर यथासाध्य परिमाणमें सेवन करनेसे वह रोग अच्छा हो जाता है। छागका कोष दुग्धके साथ पकावें, उस दुग्धमें काले तिलको पुनः पुनः भावित करें और फिर उस तिलसे पिष्टक बना कर शिशुमारकी चर्बीमें पाक करें। इसको यथासाध्य सेवन करना चाहिए। छागके कोष, पिप्पली और लवणसे दूध और घीको पका कर सेवन करना चाहिए। उरद, जमींकन्द, और लहसुनको दूधमें पका कर घी और चीनीके साथ खाना चाहिए। ये योग वाजीकरणके लिए बहुत उमदा हैं।

२य श्रेणीस्थ योग—पिप्पली, उरद, शालि तण्डुल,

जौ और गेहूं इनके समभाग चूर्ण द्वारा पिष्टक बना कर घीमें भूनना चाहिए; फिर उसे दूध और चीनीके साथ खाना चाहिए। जमीकन्दके चूर्णको जमीकन्दके रसमें भावित करके उसे शक्कर घी और मधुके साथ चाटना चाहिए और ऊपरसे दूध पी लेना चाहिए। आँवलेके चूर्णको आँवलेके रसमें भावित करके उसे शक्कर, घी और मधुके साथ चाट कर ऊपरसे दूध पीना चाहिए। इससे अशीतिपर वृद्ध भी युवाके सदृश हो जाता है। छागके कोषको पीपल और लवणके साथ घी वा शिशुमारकी वसामें पका कर खानेसे वाजीक्रिया साधित होती है।

३य श्रेणीस्थ योग—महिष, ऋषभ वा छागका शुक्र पान करना चाहिए। पीपलके फल, मूल और छालको दूधमें पका कर शक्कर और मधुके साथ पान करना चाहिए। जमीकन्दकी जड़की बुकनीको उडुम्बरके साथ घी और दूधमें पका कर सेवन करना चाहिए। इससे वृद्ध भी युवाके समान हो जाता है। एक पल परिमाण उरदका चूर्ण घी और मधुके साथ चाट कर ऊपरसे दूध पी लेना चाहिए। ये सब सामान्यतः वाजीकरणके लिए व्यवहार्य हैं। जिस वराहका वत्स वृद्ध हो गया है, उसका दूध वा उरदकी पत्ती खानेवाली गायका दूध वाजीकरणके लिए प्रशस्त है। सर्व प्रकारका दूध और काकोली आदि पदार्थ वाजीकरणके लिए उपयोगी हैं। ये सब योग नीरोग अवस्थामें भी सेवन किये जा सकते हैं। (सुश्रुत)

भैषज्यरत्नावलीके ध्वजभङ्गाधिकारमें इस प्रकार लिखा है—

भय और शोकादि तथा अन्यान्य प्रकार अहृद्य कारणोंसे मनके आहत होने पर शिश्न पतित होता है और उसमें उत्थानशक्ति नहीं रहती। विद्वेषभाजन स्त्रीके साथ सङ्गम करनेसे भी ध्वजभङ्ग होता है।

औषध—अश्वगन्धाघृत, अमृतप्राश घृत, मदनानन्द-मोदक, कामिनीदर्पघ्न, स्वल्पचन्द्रोदयमकरध्वज, बृहच्चन्द्रोदय-मकरध्वज, सिद्धसूत, कामदीपक, सिद्धशाल्मली-कल्प, पञ्चशर, त्रिकण्टकाद्यमोदक, रसाला, चन्दनादि-तैल, पुष्पधन्वा, पूर्णचन्द्र और कामाग्निसन्दीपनी वटी; इन औषधोंके सेवन करनेसे ध्वजभङ्गरोग आरोग्य होता है। (भैषज्यरत्ना० ध्वजभंगाधिकार)

शुक्रक्षय ही एक मात्र ध्वजभङ्गका कारण है। शुक्रकी क्षीणावस्थाका परिज्ञान होते ही वाजीक्रिया और बलकर खाद्यादि खाना चाहिए; फिर ध्वजभङ्ग होनेका भय नहीं रहता। इस रोगमें सर्व प्रकार वाजीक्रियाएं प्रशस्त औषधका काम करती हैं।

पाश्चात्य चिकित्सा ग्रन्थोंमें ध्वजभङ्गरोगके विषयमें कुछ विशेष तत्त्व कहे गये हैं। अधिकांश यान्त्रिक हीनता-घटित रोग आरोग्य नहीं होते, परन्तु किसी किसी प्रकारकी हीनता औषध और पथ्यादिके प्रभावसे थोड़े ही दिनोंके लिए भी दूर हो सकती है। नैतिक और क्रियाघटित रोग सुचिकित्सासे पूर्ण आरोग्य होते हैं।

यान्त्रिक असम्पूर्णता वा रोगको कोशिश करके दूर किया जा सकता है। लिङ्गमणिके साथ लिङ्गत्वकका संयोजन मुद्रा, मूत्रकृच्छ्र, लिङ्गवल्मीक अथवा अर्श वलिके सदृश रक्तस्राव आदि रोगोंके होने पर लिङ्गदण्ड-में उत्तेजित होनेकी क्षमता नहीं रहती, तथा उक्त रोगों-में अण्डकोषकी आंशिक क्षति होती है और उससे रमण शक्तिका अभाव हो जाता है; जो चिकित्साके द्वारा दूर किया जा सकता है। सङ्कुचितयोनि, क्षुद्रद्वारयोनि, वक्रयोनिमुख, अप्रशस्त-जरायुमुखी, वक्रभगोष्ठी, अस्वाभाविकरूप पुरुषतीक्ष्णदविशिष्टा वा भगमुख तथा झिल्ली द्वारा आवरित स्त्रियां भी रमणाशक्ता हुआ करती हैं। इनमेंसे कुछ औषध और अस्त्र-चिकित्सा द्वारा आरोग्य हो जाती हैं।

साधारण रोगोंमें क्रिया और नैतिक कारणोत्पन्न रोगोंकी संख्या ही अधिक है, इसको चिकित्साके लिए बहुविज्ञता और शास्त्रदर्शिताका होना आवश्यक है। इसे तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—(१) क्षयजनित, (२) अपव्यवहारजनित और (३) मानसिक एवं शारीरिक अत्यधिक उत्तेजना जनित। इन रोगोंकी चिकित्सा करते समय चिकित्सकको पहले रोगीके शरीरको नष्ट हुई शक्तिका, फिर जननयन्त्रोंकी क्षमताका उद्धार करना चाहिए। शरीरकी नष्टशक्तिका उद्धार बिना किये ही, जो पहले ही यान्त्रिक चिकित्सा करनेकी कोशिश करते हैं, वे प्रायः रोगीको चिरकग्न कर डालते हैं। ऐसे चिकित्सकसे रोगीको सावधान रहना चाहिये।

साधा रोगोंमें, ऐसा भी देखनेमें आता है कि बहुतसे रोगियोंका स्वास्थ्य तो बुरा नहीं, पर सामान्य मानसिक दुर्बलता वा शारीरिक स्थानविशेषकी दुर्बलताके कारण इस अप्रीतिकर रोगसे उन्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। ऐसी जगहमें ढूँढ़ कर चिकित्सा कराना बहुत ही लाभदायक है। ऐसे रोगोंमें परिपाकक्रिया और वीर्यक्रियाका वर्द्धन, उत्तेजक वा वातपुष्टिकर औषधादिका सेवन करना फायदेमन्द है। इस रोगमें निर्झर स्नान (फुहारेके पानीसे स्नान), समुद्र-स्नान (नुनखरे पानीमें नहाना), अनावृत स्थानमें शारीरिक चालना, अपने विषयमें मन लगाना आदि लाभदायक है। यदि शौचवेगके साथ वा रमणेच्छासे उद्रेकके साथ साथ रोगीका वीर्यस्खलन हो अथवा स्वप्नदोष होता हो, तो शीतवीर्य पुष्टिकर औषधादिकी व्यवस्था करनी चाहिए। धातवाल्मघटित औषधियों भी इस अवस्थामें उपयोगी हैं।

अपरिमित रमणसे जो रोग उत्पन्न होता है, उसके प्रभावसे रोगी प्रवृत्ति दमन करनेमें किसी तरह भी समर्थ नहीं होता। समुद्र-स्नान ही इसकी महौषधि है। इस रोगका कारण अधिकांश स्थलोंमें अनैसर्गिक उपायसे वीर्य मोचन करना ही अनुमित होता है। इस रोगमें स्त्री-सङ्गम बिलकुल बन्द कर देना उचित है।

इस रोगोंमें सामान्यतः (पूर्वकालमें और अब भी) क्या सभ्य और क्या असभ्य, सभी समाजमें उत्तेजक और उष्णवीर्य औषधादि व्यवहृत होते हैं। परन्तु इससे बहुत हानि होती है। इन रोगोंमें साधारणतः कस्तूरी, अम्बारग्रिस, कन्थाराइडिस, फस्फरस, अफीम, लवङ्गादि उष्णवीर्य मसाले, काफी, सुहागा, केशर, हींग आदिका व्यवहार होता है तथा कबूतरका मांस, अण्डे, सीप आदि पथ्यरूपमें व्यवहृत होता है; परन्तु यह व्यवस्था अच्छी नहीं—हानिकर है।

ध्वजयन्त्र (सं० क्ली०) वह यन्त्र जिसमें ध्वजाका डंडा रखा रहता है।

ध्वजयष्टि (सं० स्त्री०) ध्वजदण्ड, पताकाका डंडा।

ध्वजवत् (सं० त्रि०) ध्वजश्चिह्नं विद्यतेऽस्य, ध्वज मतुप् मस्य वः। १ चिह्नयुक्त, चिह्नवाला। २ केतनयुक्त, पताकाधारी, जो ध्वजा या पताका लिये हो। ३ जो ब्राह्मण अन्य ब्राह्मणको हत्या करके प्रायश्चित्तके लिये उसकी खोपड़ी ले कर भिक्षा मांगता हुआ तीर्थोंमें घूमे। (पु०) ४ शौण्डिक, कलवार। स्त्रियां ङीप्। ५ दक्षिणके धाकी एक कन्याका नाम। (भारत ७० २०८ अ०)

ध्वजांशुक (सं० क्ली०) ध्वजस्य अंशुकं ६-तत्। ध्वज या निशानका कपड़ा।

ध्वजा (हिं० स्त्री०) १ पताका, झण्डा, निशान। २ छन्दःशास्त्रानुसार ठगणका पहला भेद। इसमें पहले लघु फिर गुरु होता है। ३ एक प्रकारकी कसरत। इसके दो भेद हैं, मलखंभ और चौरंगी। यह कसरत मलखंभ पर तौलके ही समान की जाती है। सिर्फ इतना फर्क है कि इसमें मलखंभको हाथसे लपेट कर उसके एक बगलमें सारा शरीर सीधा करके तौलना पड़ता है। संस्कृतमें इसका नाम ध्वज है। चौरंगीमें हाथ पाँव फैला कर चारकोने ठीक दिखाए जाते हैं और दोनों पांव खूंटीसे बांध कर खड़े रखे जाते हैं।

ध्वजाग्रकेयूर (सं० क्ली०) बोधिसत्त्वोंका योगाङ्गभेद।

ध्वजाग्रनिशामनि (सं० पु०) अङ्कशास्त्रोक्त गणनाका उपायभेद।

ध्वजाग्रवती (सं० स्त्री०) गणनाका उपायभेद।

ध्वजादिगणना (सं० स्त्री०) ज्योतिषोक्त गणनाभेद, फलित ज्योतिषके अनुसार एक प्रकारकी गणना। इसमें ध्वजाकार चक्र बनाया जाता है। यदि कोई व्यक्ति शुभाशुभ आदिका प्रश्न करे, तो इस चक्रके अनुसार बहुत ही आसानीसे उस प्रश्नका उत्तर मिल जाता है। इस चक्रमें नौ घर वा कोष्ठ होते हैं। इनमेंसे पहले घरमें जिस विषयका प्रश्न होता है वही सन्निवेशित होता है। फिर आगे दूसरे घरमें ध्वजसंज्ञा, वर्ग, ग्रह, राशि और फलाफल; तीसरे घरमें धूम्रसंज्ञा; चौथे घरमें सिंह; पांचवें घरमें श्वान, छठवें घरमें वृष, सातवें घरमें गज और नवें घरमें ध्वाङ्क्ष रहते हैं। हरएक घरमें जो संज्ञा है, उसका वर्ण, ग्रह, राशि और फलाफल भी लिख देना चाहिये। गणना करनेकी प्रणाली इस प्रकार है—प्रश्नकर्त्ताको मानसिक विषय गणकके निकट स्पष्ट रूपसे कह देना चाहिये। बाद प्रश्नकर्त्ताको किसी फलका नाम लेना पड़ता है। जिस फलका नाम कह

जाय उसके आदिके अक्षरमें ध्वजादि संज्ञा निर्णय करके चक्र देख कर जिज्ञासित प्रश्नका फल सहजहीमें कहा जा सकता है।

ध्वज शब्दके नीचे अवर्ग, अर्थात् स्वरवर्ण, धूम्र शब्दमें कवर्ग (क, ख, ग, घ,), सिंहमें चवर्ग (च, छ, ज, झ,) श्वानमें टवर्ग (ट, ठ, ड, ढ), वृषमें तवर्ग, खरमें पवर्ग, गजमें यवर्ग, ध्वाङ्क्षमें श-वर्ग अर्थात् श, ष, स, और ह होता है। कथित फलका आदि अक्षर ले कर वे सब वर्गोक्त ध्वजादि निर्णय करनेसे ही फलाफल मालूम हो जायगा। इसमें प्रायः सभी प्रकारके प्रश्न किये जा सकते हैं।

ध्वजारोपण (सं० क्लो०) ध्वजस्य आरोपणं ६-तत्। देव प्रासादिमें ध्वजोत्तलन, देवालय तथा अट्टालिकाओंमें पताकाका फहराया जाना। अग्निपुराणमें लिखा है कि देवगृह और प्रासादमें पताका नहीं लगानेसे वह पवित्र नहीं माना जाता और उसमें भूत प्रेत उपद्रव मचाते हैं।

ध्वजाहृत (सं० पु०) ध्वजेन तदुपलक्षितसंग्रामेण आहृतः। १ दासभेद, स्मृतियोंके अनुसार पन्द्रह प्रकारके दासोंमेंसे एक।

युद्धमें जीत कर जिसे पकड़ा हो, उसे ध्वजाहृत कहते हैं। (क्लो०) २ अविभाज्य धनभेद। लड़ाईमें शत्रुको जीतनेपर जो धन मिलता है, उसे ध्वजाहृत कहते हैं। यह धन किसीके साथ बाँटा नहीं जा सकता है। (स्मृति)

ध्वजिक (सं० त्रि०) धर्मध्वजी, पाखण्डी।

ध्वजिन् (सं० त्रि०) ध्वजोऽस्त्यस्येति, ध्वज इनि। (अत इनिठनौ। पा ५।२।११५) १ ध्वजयुक्त, ध्वजवाला, जो ध्वजा पताका लिये हो। २ चिह्नयुक्त, चिह्नवाला। (पु०) ३ ब्राह्मण। ४ पर्वत, पहाड़। ५ रण, संग्राम। ६ सर्प, सांप। ७ घोटक, घोड़ा। ७ मयूर, मोर। ८ शौण्डिक, कलवार।

ध्वजिनी (सं० स्त्री०) पांच प्रकारकी सीमाओंमेंसे एक। इस सीमा पर निशानके लिये पेड़ आदि लगे रहते हैं। २ सेनाका एक भेद। इसका परिमाण वाहिनीका दूना माना जाता है।

ध्वजोच्छ्रय (सं० पु०) ध्वजस्य उच्छ्रयः ६ तत्। १ ध्वज या पताकाका खड़ा करना। २ लिङ्गोच्छ्रकरण, इन्द्रियका खड़ा करना।

ध्वजोत्थान (सं० क्लो०) ध्वजस्य इन्द्रध्वजस्य उत्थानं। शक्रोत्सव। यह उत्सव भाद्रमासकी शुक्ला द्वादशीमें मनाया जाता है। राजाओंके द्वार पर इन्द्रके उद्देशसे चतुरस्र-ध्वजाकारमें दिया जाता है, इसीको ध्वजोत्थान कहते हैं। इसमें इन्द्र बहुत सन्तुष्ट हो कर वर्षा देते हैं। इस उत्सवके समय प्रजा तरह तरहका आमोद-प्रमोद करती है। इन्द्रध्वज देखो।

ध्वन (सं० पु०) ध्वन ध्वाने अप्। शब्द, आवाज।

ध्वनन (सं० क्लो०) ध्वन्यते व्यज्यतेऽर्थोऽनेन ध्वनि-करणे ल्युट्। अलङ्कारोक्त वाच्य लक्ष्याभिन्नार्थको बोधनात्मक व्यञ्जनावृत्तिके रूपमें शब्दनिष्ठ व्यापारभेद। अर्थात् मैंने कोई शब्द प्रयोग किया है, वह शब्द जिस अर्थमें व्यवहृत हुआ है, उसके सिवा जो कोई दूसरा अर्थ व्यञ्जना-शक्ति द्वारा बोधित होगा, उसीका नाम ध्वनन है। भावे ल्युट्। २ अव्यक्त शब्दकरण।

ध्वनमोदिन् (सं० पु०) ध्वनेन शब्देन मोदयति मुद-णिनि। भ्रमर, भौंरा।

ध्वनि (सं० पु०) ध्वननमिति ध्वन-इ (खनिकष्यज्यसि-वसीति। उण् ४।११८) १ मृदङ्गादि शब्द, नाद, आवाज। हिन्दीमें इसे स्त्रीलिङ्ग माना है।

"शब्दो ध्वनिश्च वर्णश्च मृदङ्गादिभवो ध्वनिः।
कण्ठसंयोगजन्मानो वर्णास्ते कादयो मताः॥"
(भाषापरिच्छेद)

मृदङ्गादि द्वारा उत्थित शब्द और कण्ठतालवादि संयोगसे कादिवर्ण रूप जो शब्द उत्पन्न होता है, उसका नाम ध्वनि है। यह शब्द दो प्रकारका है—बुद्धिहेतु और अबुद्धिहेतु। मेघादिसे जो शब्द उत्पन्न होता है, उसका नाम अबुद्धिहेतु है। बुद्धिहेतु शब्द भी फिर दो प्रकारका है,—स्वाभाविक और काल्पनिक। वर्णविशेषका अनभिव्यञ्जक हसित और रुदितादिका शब्द स्वाभाविक है। हास्य वा रोदन करनेसे किसी शब्दका बोध नहीं होता, केवल अव्यक्त शब्द निकलता है। इस प्रकारके शब्दको स्वाभाविक शब्द कहते हैं। काल्पनिक भी फिर तीन प्रकारका है, वाद्यादि शब्द गीतिरूप और वर्णात्मक। भेरी

और भटक आदिसे जो शब्द निकलता है, उसे वाद्यादि, माधवादि, रागव्यञ्जक निषधादि द्वारा जो शब्द होता है उसे गीतिरूप और कण्ठताल्वादिके अभिघातसे ककारादि वर्णरूप जो शब्द होता है, उसे वर्णात्मक कहते हैं। (शब्दार्थरत्न०)

वेदान्तदर्शनके शारीरकभाष्यमें ध्वनि शब्दका जो अर्थ लिखा है, वह इस प्रकार है—

दूरसे शब्द तो सुना जाता, लेकिन साफ तौरसे उसका कुछ भी बोध नहीं होता। केवल मात्र तारत्वादि जाना जाता है, इस प्रकारके शब्दका नाम ध्वनि है।

"ध्वनिः स्फोटश्च शब्दानां ध्वनिस्तु खलु लक्ष्यते।
अल्पो महांश्च केषाञ्चित् स्वयं नैव स्वभावतः॥"
(महाभाष्य)

शब्दका स्फोट ही ध्वनि है। वैयाकरण पण्डितोंने ध्वनिको स्फोट बतलाया है। इसका कारण यह है, कि जब कोई शब्द उच्चारण किया जाता है, तब उसके सभी वर्ण मिल जानेसे एक शब्दका बोध होता है। जैसे 'कलस' यह शब्द उच्चारित हुआ, बोलनेके साथ ही शब्दका नाश हो गया। पहले क वर्ण पीछे ल और स इन तीन वर्णोंको ले कर कलस शब्द हुआ है, किन्तु ज्योंही यह शब्द उच्चारित हुआ त्योंही क वर्ण विनष्ट हुआ। पीछे शेष वर्णोंका जब अर्थ लगाया जाता है, तब कुछ भी अर्थ नहीं होता। इसी कारण वैयाकरण पण्डितगण शब्दका स्फोट स्वीकार कर परस्पर वर्णोंको एकत्र करके अर्थका बोध कराते हैं अर्थात् कलस इन तीन वर्णोंके एकत्र करनेसे फिर अर्थबोधका कोई गोलमाल नहीं रहता। यही स्फोटध्वनि है।

पाणिनिदर्शनमें भी यह स्वीकृत हुआ है कि शब्द दो प्रकारका है, नित्य और अनित्य। नित्य शब्द एक मात्र स्फोट है, इसके सिवा वर्णात्मक शब्दसमूह अनित्य है। वर्णातिरिक्त स्फोटात्मक जो एक नित्य शब्द है उसके विषयमें कई जगह अनेक युक्तियां प्रदर्शित हुई हैं। इनमेंसे प्रधान युक्ति यह है कि स्फोटके नहीं रहनेसे केवल वर्णात्मक शब्द द्वारा अर्थबोध नहीं होता। यह सभी स्वीकार करते हैं कि घ और ट इन दो वर्णोंको ले कर घट शब्द बना उससे घटका बोध होता है। किन्तु यह केवल दो वर्ण सम्पादित नहीं हो सकते, कारण यदि इन दो वर्णोंके प्रत्येक वर्ण द्वारा घटका बोध होता, तो केवल घ वा ट उच्चारण करनेसे घटका बोध नहीं होता है, सो क्यों? इस दोषको नाश करनेके लिए इन दोनों वर्णके मिलनेसे घटका बोध होता है, ऐसा नहीं कह सकते। क्योंकि सभी वर्ण आशुविनाशी हैं, पीछेके वर्णोंके उत्पत्तिकालमें पूर्व सभी वर्ण विनष्ट हो जाते हैं। सुतरां अर्थबोध होनेकी बात तो दूर रहे, उनका एक साथ रहना भी सम्भव नहीं है। इसीसे यह स्वीकार करना होगा कि पहले दो वर्णों द्वारा अभिव्यक्त अर्थात् स्फुटता होती है, पीछे स्फोट द्वारा घटका बोध हुआ करता है। यही स्फोट ध्वनि है। स्फोट देखो।

२ उत्तम काव्यभेद। साहित्यदर्पणमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

व्यंग्यके वशीभूत होनेसे जो काव्य होता है उसका नाम ध्वनि है, अर्थात् जहां व्यञ्जनाशक्ति द्वारा बोधित अर्थ जो गुणीभूत और अत्यन्त प्रशस्त होता है उसका नाम ध्वनि है। कोई एक वाक्य कहा गया, जिस अर्थमें यह वाक्य प्रयुक्त हुआ है पहले उसीका बोध कराया गया, पीछे व्यञ्जना द्वारा एक ऐसे अर्थका बोध हुआ जो गुणीभूत अर्थात् अत्यन्त उत्तम है। इस प्रकार जिस व्यञ्जनाशक्ति द्वारा जो अन्यार्थका प्रत्यय होता है उसी काव्यका नाम ध्वनि है।

व्यञ्जना बोधित अर्थ जब वाच्यसे अतिशय अर्थात् व्यञ्जनार्थसे अधिक चमत्कारित्व होता है, तब वह ध्वनि कहलाता है। ध्वनित अर्थात् व्यंजित होनेके कारण इसे ध्वनि कहते हैं। यह अत्यन्त उत्तम काव्य है।

'भेदौध्वनेरपि द्वावुदीरितौ लक्षणाविधामूलौ।
अविवक्षितवाच्योऽन्यो विवक्षितान्य परवाच्यश्च॥"
(साहित्यद० ४।२५२)

यह ध्वनि दो प्रकारका है, लक्षणा और अभिधामूलक। इनमेंसे लक्षणामूलक ध्वनि अविवक्षितवाच्य और दूसरा विवक्षितवाच्य है। अर्थ लक्षमूलक एक ध्वनिका नाम अविवक्षितवाच्य और दूसरे विवक्षितवाच्य है। लक्षणामूलक ध्वनि वाच्य अर्थका स्वरूप प्रकाशित करके पीछे व्यङ्ग्य अर्थात् व्यञ्जना शक्ति द्वारा वाच्य अर्थका प्रकाशक होता है।

"अर्थान्तरं संक्रमिते वाच्येऽत्यन्तं तिरस्कृते।
अविवक्षितवाच्योऽपि ध्वनिं द्वैविध्यमृच्छति ॥"

(साहित्यद० ४।२५३)

अविवक्षित वाच्य ध्वनि जहां मुख्य अर्थ में अर्थान्तर अर्थात् अन्य अर्थ संक्रमित होती है अथवा अत्यन्त तिरस्कृत होती है, वहां यह ध्वनि भी दो प्रकारकी हुआ करती है, अर्थान्तर संक्रामित वाच्य और अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य।

उदाहरण—

"कदली कदली करभः करभः करिराजकरः करिराजकरः।
भुवनत्रितयेऽपि बिभर्त्ति तुलामिदं नूरुयुगं न चमूरुदृशः॥"

(साहित्यद० ४ परि०)

कदली कदली अर्थात् अत्यन्त शीतल है, करभ हस्तके मणिबन्धसे कनिष्ठ पर्यन्त करभ अत्यन्त कृश है, हस्तीका शुण्डादण्ड अत्यन्त कर्कश है। अतएव इस मृगोदृशी स्त्रीके दोनों जङ्घकी त्रिभुवनमें किसीके साथ तुलना नहीं हो सकती। यहां पर कदली शब्दका साधारण अर्थ तो रम्भायष्टि है, पर इसे छोड़ कर अत्यन्त शीतल इस अर्थमें व्यवहृत हुआ है, जाड्यादि गुणविशिष्ट मुख्य अर्थको छोड़ कर दूसरे अर्थका बोध होता है और यहां जाड्यादिका आतिशय्य और व्यञ्जनाशक्ति बोध्य है। अतएव यहां पर मुख्य अर्थ तिरस्कृत वा अन्य संक्रामित यही दो हुए हैं, इस कारण अर्थान्तर संक्रमित वाच्य और अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि यही दो अर्थ हुए।

"निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते॥"

(साहित्यद० ४ परि०)

निःश्वास द्वारा अन्ध अर्थात् अप्रकाश आदर्शकी नाईं चन्द्र प्रकाशित नहीं होता। यहां पर अन्ध शब्दसे मुख्य अर्थका बोध न हो कर अप्रकाशरूप अर्थका बोध होता है और अप्रकाशकका जो आतिशय्य है वह व्यञ्जना द्वारा बोध होता है, अतएव यहां पर भी वही ध्वनि हुई।

"विवक्षिताभिधेयोऽपि द्विभेदः प्रथमं मतः।
असंलक्ष्यक्रमो यत्र व्यङ्ग्यो लक्ष्यक्रमस्तथा॥"

(साहित्यद० ४।२५४)

जहां पर विवक्षित अर्थात् बोलनेके निमित्त अभिप्रेत अर्थ स्वरूपको किसी प्रकारकी बाधा नहीं देता, उसका नाम विवक्षित वाच्य है। यह विवक्षित वाच्य ध्वनि भी दो प्रकारकी है, असंलक्ष्यक्रम और संलक्ष्यक्रम। जहां व्यञ्जना बोध्य अर्थ पौर्वापर्य सभी क्रम सम्यक्‌रूपसे अनुभूयमान नहीं होते, वहां असंलक्ष्यक्रम और जहां व्यञ्जना-शक्ति द्वारा पौर्वापर्य रूपमें सभी अर्थ सम्यक्‌-रूपसे अर्थात् स्पष्टभावसे अनुभूयमान होते हैं, वहां लक्ष्यक्रम ध्वनि होती है।

"तत्राद्यो रसभावादिरेक एवात्र गण्यते।
एकोऽपि भेदोऽनन्तत्वात् संख्येयस्तस्य नैव यत्॥"

(साहित्यद० ४।२५५)

इन दोनोंमेंसे असंलक्ष्यक्रम ध्वनिके अनेक भेद रहने पर भी एकमात्र रसभावादि भेद होगा, इसीसे इसकी गणना सम्भव नहीं है। जिस प्रकार शृङ्गारका सम्भोग ही एकमात्र भेद है, किन्तु परस्पर आलिङ्गन, चुम्बन और अधरपानादि भेद रहने पर भी उनकी गिनती नहीं होती, उसी प्रकार यहां पर भी रसभावादिके अनेक भेद क्रमतः उनकी गिनती न कर एकमात्र भेद कहा गया है।

"शब्दार्थोभयशक्त्युत्थे व्यङ्ग्येऽनुस्वानसन्निभे।
ध्वनिर्लक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यस्त्रिविधः कथितो बुधैः॥"

(साहित्यद० ४।२५६)

जहां व्यङ्ग्य अर्थात् व्यञ्जना-बोधित अर्थ केवल शब्द शक्ति वा अर्थ शक्ति अथवा शब्द और अर्थ इन दोनों शक्ति द्वारा उत्थित होता है, वहां यह लक्ष्यक्रम ध्वनि होती है। यह ध्वनि तीन प्रकारकी है, शब्दशक्त्युत्थ, अर्थशक्त्युत्थ और उभयशक्त्युत्थ ध्वनि।

शब्दशक्त्युद्भव ध्वनि वस्तु और अलङ्कारके भेदसे दो प्रकारकी है,—शब्दशक्त्युत्थ वस्तुध्वनि और शब्द-शक्त्युत्थ अलङ्कारध्वनि।

उदाहरण—

"पथिक! नात्र स्रस्तरोऽस्ति मनाक् प्रस्तरस्थले ग्रामे।
उन्नतपयोधरं प्रेक्ष्य पुनर्यदि वससि तद् वस॥"

(साहित्यद० ४र्थ परि०)

साहित्यदर्पणमें यह श्लोक प्राकृत भाषामें लिखा है, किन्तु सुविधाके लिए हमने संस्कृत भाषामें कर दिया। यह श्लोक कामार्थी पथिकके प्रति किसी नायिकाकी उक्ति है। हे पथिक! इस ग्राममें अनेक पत्थर हैं, शय्यातल एक भी नहीं है, उन्नत पयोधर (मेघ) देख कर यदि यहां

रहनेकी इच्छा हो तो रह सकते हो। इस ग्राममें एक भी शय्यातल नहीं है, इसका तात्पर्य यह कि हमलोग पत्थर पर सोते हैं, शय्याविधानका भी कोई नियम नहीं है और उन्नत पयोधर शब्दसे उन्नत स्तनका भी बोध हुआ तथा यहाँ पर संस्तरादि इस शब्द द्वारा यह बोध होता है कि यहाँ शय्या नहीं है, इसका तात्पर्य यह कि यदि तुम उपभोगक्षम हो, तो मेरे समीप रह सकते हो। क्योंकि मेरे समीप कोई विशेष शयनयोग्य स्थान नहीं है, यही यहाँ पर इसका अर्थ होता है। अतएव यहाँ पर यह शब्द शक्त्युत्थवस्तुध्वनि हुआ। अलङ्कारादिको जगह भी इसी प्रकार जानना चाहिये।

वस्तु-ध्वनि और अलङ्कारध्वनि बारह प्रकारको है— (१) स्वतः सम्भावी वस्तु द्वारा जहाँ व्यङ्ग्य अर्थात् व्यञ्जना बोधित होगी, वहाँ वस्तुरूप व्यङ्ग्यध्वनि होती है। (२) स्वतः सम्भावी वस्तु द्वारा अलङ्कार जहाँ व्यङ्ग्य होगा, वहाँ अलङ्कार रूप व्यङ्ग्य ध्वनि होगी। (३) जहाँ स्वतःसम्भावी अलङ्कार द्वारा वस्तु व्यङ्ग्य होगी, वहाँ वस्तुरूप व्यङ्ग्य ध्वनि होती है। (४) जहाँ स्वतःसम्भावी अलङ्कार द्वारा व्यङ्ग्यमान होगा, वहाँ अलङ्कार व्यङ्ग्यध्वनि होगी। (५) कवियोंको प्रौढोक्ति सिद्ध वस्तुसे व्यङ्ग्य होनेसे वस्तुरूप व्यङ्ग्य ध्वनि होगी। (६) कवि-प्रौढोक्ति-सिद्ध वस्तु द्वारा अलङ्कार रूप व्यङ्ग्यध्वनि। (७) कवि-प्रौढोक्तिसिद्ध अलङ्कार द्वारा व्यज्यमान वस्तुरूप व्यङ्ग्यध्वनि। (८) कवि-प्रौढोक्ति-सिद्ध अलङ्कार द्वारा अलङ्काररूप व्यङ्ग्यध्वनि। (९) कवि-निबद्ध प्रौढोक्तिसिद्ध वस्तु द्वारा व्यज्यमान अलङ्काररूप व्यङ्ग्यध्वनि। (१०) कविनिबद्ध वस्तुद्वारा व्यज्यमान वस्तुरूप व्यङ्ग्यध्वनि। (११) कविनिबद्ध व्यक्ति प्रौढोक्ति-सिद्ध अलङ्कार द्वारा व्यज्यमान वस्तुरूप व्यङ्ग्यध्वनि। (१२) कविनिबद्ध व्यक्ति प्रौढोक्तिसिद्ध अलङ्कार द्वारा व्यज्यमान अलङ्काररूप व्यङ्ग्यध्वनि। यही बारह प्रकारके भेद हैं। यहाँ पर प्रत्येक लक्षणका उदाहरण विस्तारके भयसे नहीं दिया गया, केवल एक ही उदाहरण दिया जाता है।

"दिशि मन्दायते तेजः दक्षिणस्यां रवेरपि।
तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे॥"
(रघु ४ स०)

दक्षिण दिशामें सूर्यका तेज मन्द हो गया था। पाण्ड्य नामक राजा उसी ओर रघुका तेज सहन कर न सके। सूर्यके दक्षिणायन होनेसे ही स्वाभाविक तेज मन्द हो गया, इस सूर्य तेजको अपेक्षा रघुका तेज अधिक है। इस प्रकार व्यतिरेक अलङ्कार ध्वनित हुआ। अतएव यह अलङ्काररूप व्यङ्ग्य ध्वनि हुआ। ध्वनि कुल ५१ प्रकारको है।

फिर इसके भी कई भेद हैं। विस्तार हो जानेके भयसे उसका उल्लेख नहीं किया गया। आलङ्कारिक पण्डितोंके मतसे ध्वनि काव्यकी आत्मा है।

इसका विषय शारदातिलकतन्त्रमें इस प्रकार लिखा है—

"सा प्रसूते कुण्डलिनी शब्दब्रह्ममयी विभुः।
शक्तिं ततो ध्वनिस्तस्मान्नाद स्तस्मान्निरोधिका:॥"
(शारदातिलक)

शब्द ब्रह्ममयी, ब्रह्मस्वरूपा है जो पहले कुण्डलिनी शक्तिको प्रसव करती हैं। उनकी शक्तिसे ध्वनि और उस ध्वनिसे नाद उत्पन्न होता हैं। सत्वबहुल चित्शक्तिशब्द-वाच्य है, यह आकाशस्वरूप हैं। इस चित्के रजोबहुला होनेसे यह ध्वनि कहलाती है।

पाश्चात्य वैज्ञानिकोंके मतसे—किसी कारणवश जड़ पदार्थके परमाणुका उत्कम्पन हो कर, वह उत्कम्पन वायु वा किसी प्रकारके परिचालक द्वारा जब कर्णकुहरमें पहुंचता है, तब श्रवणेन्द्रियमें जो एक प्रकारकी अनुभूति उत्पन्न होती है, उसीका नाम ध्वनि है। व्यक्त और अव्यक्तके भेदसे ध्वनि दो प्रकारकी है। मनुष्योंके कण्ठ तालु आदिके अभिघातसे जो ध्वनि उत्पन्न होती है, उसे व्यक्त और तद्भिन्न वस्तुके आघातसे जो ध्वनि होती है, उसे अव्यक्त कहते हैं। सङ्गीतशास्त्रवेत्ताओंने इस प्रकारको ध्वनियोंको मधुर और कठोर इन दो भागोंमें विभक्त किया है। जब निर्दिष्ट संख्यक उत्कम्पन उत्पादित हो कर नियमित और अविच्छिन्न ध्वनिको उत्पन्न करता है, तब उसे मधुरध्वनि कहते हैं। अनियमित उत्कम्पन द्वारा जो ध्वनि उत्पन्न होती है, वही कर्कश-ध्वनि है। शब्दायमान द्रव्योंके अणु जो आन्दोलित होते हैं, वे सहजमें प्रतिपन्न किये जा सकते। किसी धातु निर्मित थालीके ऊपर कुछ बालू रख कर जब उसे बजा

हैं, तब ऐसा मालूम पड़ता है, कि वह बालू नाच कर रहा है, यदि थालोके अणु कम्पित नहीं होते तो उसके ऊपरका बालू कभी नाच नहीं करता। शब्दायमान द्रव्यके समस्त अणुओंके उत्कम्पनसे तत्सन्निहित वायुराशिमें एक प्रकारकी तरङ्ग उत्पन्न होती है और वह तरङ्ग जब कर्ण कुहरमें आघात करती है, तब एक प्रकारका शब्द उत्पन्न होता है। शून्य प्रदेशमें ध्वनिकी उत्पत्ति नहीं होती। वायु जिस प्रकारका शब्द परिचालन कर सकती है, उसी प्रकार तरल और कठिन पदार्थ भी शब्द परिचालन कर सकते हैं। परीक्षा द्वारा यह स्थिर हुआ है कि वायुराशिके मध्य हो कर ध्वनितरङ्ग प्रति सेकेण्डमें ११९८ फुट जाती है।

३ शब्दका स्फोट, शब्दका फूटना, आवाजकी गूंज, नादका तार। ४ आशय, गूढ़ अर्थ, मतलब।

ध्वनिकार—ध्वन्यालोक ग्रन्थके सूत्रसमूहके प्रणेता। काव्यप्रकाश, काव्यचन्द्रिका, अलङ्कारसर्वस्व, काव्यप्रदीप और साहित्यदर्पणमें इनका सूत्र उद्धृत हुआ है।

ध्वनिकाव्य (सं॰ क्लो॰) उत्तम काव्य।

ध्वनिकृत (सं॰ पु॰) ध्वनिं तत्प्रतिपादकं ग्रन्थं करोति कृ-क्विप्, तुक् च। अलङ्कार-ग्रन्थकारके एक पण्डित।

ध्वनिग्रह (सं॰ पु॰) ग्रह भावे अप्, ध्वनेः शब्दस्य ग्रहः ग्रहणं यस्मात्। श्रोत्र, कर्ण, कान।

ध्वनित (सं॰ त्रि॰) ध्वन्यतेस्मेति ध्वन-क्त। १ शब्दित, शब्द किया हुआ। २ व्यञ्जित, प्रकट किया हुआ। ३ वादित, बजाया हुआ। (पु॰) ४ मृदङ्गादि बाजा।

ध्वनिनाला (सं॰ स्त्री॰) ध्वन्युत्पादकं नालं यस्याः। १ वीणा। २ वेणु, बांसुरी। ३ काहल वाद्यभेद, एक प्रकार का बड़ा ढोल।

ध्वनिविकार (सं॰ पु॰) ध्वनेर्विकारः ६ तत्। विकृत ध्वनि, शोक भयादिके द्वारा ध्वनिका अन्यथाभाव।

ध्वनिबोधक (सं॰ पु॰) ध्वनिं बोधयति बुध-णिच्-ण्वुल्। रोहिषतृण, रोहिस घास।

ध्वन्य (सं॰ पु॰) ध्वन-कर्मणि यत्। १ व्यंग्यार्थ। २ ऋग्वेद प्रसिद्ध राजा लक्ष्मणके एक पुत्रका नाम।

ध्वन्यात्मक (सं॰ त्रि॰) १ ध्वनिमय, ध्वनिस्वरूप। २ जिसमें व्यंग्य प्रधान हो।

ध्वन्यार्थ (हिं॰ पु॰) वह अर्थ जिसका बोध वाच्यार्थ न हो कर केवल ध्वनि या व्यंजनासे हो।

ध्वरस् (सं॰ स्त्री॰) हिंसिका।

ध्वसन् (सं॰ त्रि॰) ध्वन्स अन्तर्भूतण्यर्थे कनिन्। ध्वंसकारक, नाश करनेवाला।

ध्वसन (सं॰ क्ली॰) ध्वंसतेऽत्र ध्वंस बाहुलकात् आधारे ल्य। ध्वंसन स्थान।

ध्वसनि (सं॰ पु॰) मेघ, बादल।

ध्वसन्ति (सं॰ पु॰) ध्वन्स झिच् किच्च। ऋग्वेद प्रसिद्ध एक ऋषिका नाम।

ध्वसिर (सं॰ त्रि॰) ध्वन्स किरच्। नाशप्रतियोगी, जिसका नाश हुआ हो।

ध्वस्त (सं॰ त्रि॰) ध्वस्यते स्म इति ध्वन्स-क्त। १ च्युत, गलित, गिर पड़ा। २ नष्ट, भ्रष्ट। ३ खण्डित, भग्न, टूटा फूटा। ४ परास्त, पराजित।

ध्वस्ति (सं॰ स्त्री॰) ध्वंस भावे क्तिन्। १ ध्वंस, नाश, क्षय। कर्मणि ध्वंसन्ते ऽत्र आधारे क्तिन्। २ कर्मक्षयकी आधार क्रियाभेद।

ध्वंस्मन् (सं॰ त्रि॰) ध्वन्स बाहुलकात् मनिन् किच्च। ध्वंसक, नाश करनेवाला।

ध्वस्मन्वत् (सं॰ त्रि॰) ध्वस्मा ध्वंसो विद्यतेऽस्य ध्वंस मतुप मस्य व। १ ध्वंसयुक्त, जिसका नाश हो। (पु॰) २ उदक, जल, पानी।

ध्वस्र (सं॰ त्रि॰) ध्वन्स-रक्। १ नष्ट, बरबाद। ण्यर्थे रक्। २ ध्वंसक, नाश करनेवाला।

'ध्वस्रा' इस जगह भी विभक्तिकी जगह 'आच्' हुआ है। (पु॰) ३ राजभेद, एक राजाका नाम।

ध्वाङ्क्ष (सं॰ पु॰) ध्वाङ्क्षि अच्। १ काक, कौवा। २ मत्स्यभक्षक पक्षी, बगला। ३ तक्षक। ४ भिक्षुक।

ध्वाङ्क्षजङ्घा (सं॰ स्त्री॰) ध्वाङ्क्षस्य जङ्घा इव आकृति यस्याः। काकजङ्घा, चकसेनी, मसी।

ध्वाङ्क्षजम्बु (सं॰ स्त्री॰) ध्वाङ्क्षः काकः तद्वत् कृष्णवर्णं जम्बुः। काकजम्बु, काला जामुन।

ध्वाङ्क्षतुण्डी (सं॰ स्त्री॰) ध्वाङ्क्षतुण्ड अच् ततो ङीष्। काकनासा लता।

ध्वाङ्क्षदण्डी (सं॰ स्त्री॰) ध्वाङ्क्षस्य दण्ड इव आकृतिरस्त्यस्याः, अच् ङीष्। काकतुण्डी, कौआटोंटी।

ध्वाङ्क्षनखी (सं० स्त्री०) ध्वाङ्क्षस्य नखमिव आकृतिरस्य- स्याः अच ङीष् । काकतुण्डी, कौआटोंटी ।

ध्वाङ्क्षनाम्नी (सं० स्त्री०) काकोदुम्बरिका, कठगूलर ।

ध्वाङ्क्षनाशिनी (सं० स्त्री०) ध्वाङ्क्षं नाशयन्तीति नश-णिनि ङीष् । हवुषा, एक प्रकारका फल ।

ध्वाङ्क्षनासिका (सं० स्त्री०) ध्वाङ्क्षस्य नासिका इव फलं यस्याः काकनासा लता, कौवाटोंटी नामकी लता ।

ध्वाङ्क्षपुष्ट (सं० पु०) ध्वाङ्क्षेण काकेन पुष्टः प्रतिपालितः ३-तत् । कोकिल, कोयल ।

ध्वाङ्क्षमाची (सं० स्त्री०) ध्वाङ्क्षान् मचते फलदानेन, मच- अण्, ततो गौरादित्वात् ङीष् । काकमाची, मकोय ।

ध्वाङ्क्षवल्ली (सं० स्त्री०) ध्वाङ्क्षवत् मलीनलता । काकनासा लता ।

ध्वाङ्क्षादनी (सं० स्त्री०) ध्वाङ्क्षाणां काकानां अदनी ६-तत् । काकतुण्डी, कौवाटोंटी ।

ध्वाङ्क्षाराति (सं० पु०) ध्वाङ्क्षाणां अरातिः । पेचक ।

ध्वाङ्क्षी (सं० स्त्री०) ध्वाङ्क्ष-अच् ङीष् । काको- लिका, शीतलचीनी ।

ध्वाङ्क्षोली (सं० स्त्री०) काकोली, सतावरकी तरहका एक प्रकारका कन्द ।

ध्वान (सं० पु०) ध्वन भावे घञ् । शब्द, आवाज ।

ध्वानायन (सं० पु० स्त्री०) ध्वनस्य ऋषेर्गोत्रापत्यं अश्वादि० फञ् । ध्वन ऋषिका गोत्रापत्य ।

ध्वान्त (सं० क्ली०) ध्वन-क्त प्रत्ययेन निपातनात् साधु (क्षुब्धस्वान्तध्वान्तेति । पा ७।२।१८) १ तम, अन्धकार, अन्धेरा । २ तमः प्रधान नरकभेद, एक नरक जहां हमेशा अन्धकार रहता है ।

ध्वान्तचर (सं० पु०) राक्षस, निशाचर ।

ध्वान्तचित्त (सं० पु०) ध्वान्ते अन्धकारे चित्तः प्रथितः । खद्योत, जुगुनू ।

ध्वान्तशत्रु (सं० पु०) ध्वान्तशात्रव देखो ।

ध्वान्तशात्रव (सं० पु०) ध्वान्तस्य शात्रवः । ६-तत् । १ सूर्य । २ अग्नि । ३ चन्द्रमा । ४ श्योनाकवृक्ष, सोंटा । ५ श्वेतवर्ण ।

ध्वान्ताराति (सं० पु०) ध्वान्तस्य अरातिः । १ चन्द्र, सूर्य, अग्नि ।

ध्वान्तोन्मेष (सं० पु०) ध्वान्ते उन्मेषः प्रकाशो यस्य । खद्योत, जुगुनू ।

न

न—संस्कृत और हिंदी व्यञ्जनवर्णका बीसवां वर्ण और तवर्गका पञ्चम अक्षर। इसका उच्चारणस्थान दन्त है "दन्त्या लृतुलसाः स्मृताः॥ (शिक्षा १०) पर्याय—मेष, दोर्घ्री, सौरि। (बीजाभिधान) इस वर्णके उच्चारणमें आभ्यन्तर प्रयत्न और जिह्वाके अग्रभागका दांतोंकी जड़से स्पर्श होता है। बाह्य प्रयत्न संवाद, नाद, घोष और अल्पप्राण है। इसके वाचक शब्द ये हैं—

गर्जिनी, क्षमा, सौरि, वारुणी, विश्वपावनी, मेष, सविता, नेत्र, दन्तुर, नारद, अञ्जन, ऊर्द्धगामी, हिरण्ड, वामपादाङ्गुलिनख, वैनतेय, स्तुति, वर्म्मभव, अनवी, निरागम, वामन, ज्वालिनी, दीर्घ, निरीह, सुगति, वियत्, शब्दात्मा, दीर्घघोणा, हस्तिनापुर, मेचक, गिरिनायक, नील, शिव, अनादि और महामति।

इसकी लिखन-प्रणाली इस प्रकार है—'न' यह चन्द्र, सूर्य और अग्नि स्वरूप है; तथा वाणी नामसे इसकी प्रसिद्धि है।

इसका ध्यान इस प्रकार है—

"ध्यानमस्य नकारस्य वक्ष्यते शृणु भाविनि।
दलिताञ्जनवर्णाभां ललज्जिह्वां सुलोचनं॥
चतुर्भुजां कोटराक्षीं चारुचन्दनचर्चितां।
कृष्णाम्बरपरीधानामीषद्धास्यमुखीं सदा॥
एवं ध्यात्वा नकारस्य तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।"

(वर्णोद्धारतन्त्र)

यह वर्ण अतिशय कृष्णा, ललज्जिह्वा, सुलोचना, चारि-हस्तयुक्ता, चक्षुकोटरप्रविष्टा, चारुचन्दनादिचर्चिता, कृष्ण-वस्त्रविशिष्ट और सर्वदा ईषत् हास्ययुक्त है। इस प्रकार नकारका ध्यान कर उक्त मन्त्रका दश बार जप करना चाहिये।

नकारका स्वरूप—

"नकारं शृणु चार्वङ्गी कोटिविद्युल्लताकृतिं।
पंचदेवमयं वर्णं हृदि भावय पार्वति॥" (कामधेनुतन्त्र)

यह नकार स्वयं परम कुण्डली, और कोटिविद्युल्लता सदृश है, इसकी आकृति पञ्चदेवमय और प्राणात्मक है। मातृकान्यासमें इस नकारके वामपादके अङ्गुलिनखमें न्यास होता है। काव्यके आदिमें इस वर्णका विन्यास करनेसे सुख प्राप्त होता है। (वृत्तरत्नाकरटी०)

२ अनुबन्धविशेष। 'न' यह शब्द मुग्धबोधके सुपादि-गणका बोधक है।

न (सं० अव्य०) नह बन्धने नश नाशे वा-ड। १ निषेध, नहीं, मत। पर्याय—नहि, अ, नो, अभाव, मना, ना। विधि, अनुज्ञा, हेतुहेतुमद्भाव आदि कुछ विशेष स्थलों पर भी "नहीं" के स्थानमें "न" आता है। २ कि नहीं, या नहीं। ३ उपमा। ४ नकार स्वरूप वर्ण। ५ बन्ध। ६ सुगत। ७ हिरण्य, सोना। ८ रत्न। ९ स्तुत। नञ् देखो।

नइहर (हिं० पु०) माताका गृह, स्त्रियोंको माताका घर, पीहर, मायका।

नई (हिं० वि०) नयाका स्त्रीलिङ्ग।

नउँजी (हिं० स्त्री०) लीची नामक फल।

नउआ (हिं० पु०) नाऊ देखो।

नउरंग (हिं० स्त्री०) नारंगी देखो।

नउर (हिं० पु०) नेवला देखो।

नएपंज (हिं० पु०) वह घोड़ा जिसकी अवस्था पांच वर्षकी है, जवान घोड़ा।

नंग (हिं० पु०) १ नग्नता, नंगापन, नंगे होनेका भाव। २ गुप्त अङ्ग, शरीरका छिपा हुआ भाग। (वि०) ३ लुच्चा, नंगा, बदमाश और बेहया।

नंगधड़ंग (हिं० वि०) विवस्त्र, दिगम्बर, जिसके शरीर पर एक भी वस्त्र न हो।

नंगपैरा (हिं० वि०) जिसके पैरोंमें जूता न हो, जिसके पांव नंगे हों।

नंगमुनंगा (हिं० वि०) नंगधड़ंग देखो।

नंगर (हिं० पु०) लंगर देखो।

नंगरबारी (हिं० पु०) एक प्रकारकी साधारण नाव जो समुद्रमें चलती है और तूफानके समय किसी रक्षित स्थान पर लंगर डाल कर ठहर जाती है।

नंगा (हिं० वि०) १ वस्त्रहीन, दिगम्बर, विवस्त्र। २ लुच्चा, पाजी। ३ निर्लज्ज, बेहया, बेशर्म। ४ जिसके ऊपर किसी प्रकारका आवरण न हो, जो किसी तरह ढंका न हो, खुला हुआ। (पु०) ५ शिव, महादेव। ६ एक बड़ा पर्वत जो काश्मीरकी सीमा पर अवस्थित है।

नंगाझोरी (हिं० स्त्री०) नंगाझोली देखो।

नंगाझोली (हिं० स्त्री०) किसीके पहने हुए वस्त्रोंको उतरवा कर या यों ही अच्छी तरह देखना जिसमें छिपाई हुई चीजका पता लग जाय, जामातलाशी।

नंगाबुंगा (हिं० वि०) १ जिसके ऊपर कोई आवरण न हो, जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो।

नंगाबुच्चा, नंगाबूचा (हिं० वि०) अत्यन्त दीन बहुत दरिद्र, कंगाल।

नंगा मादरजाद (हिं० वि०) ऐसा नग्न जैसा माताके उदरसे निकलनेके समय होता है, बिलकुल नंगा, अलिफ नंगा।

नंगामुनंगा (हिं० पु०) जिसके शरीर पर एक सूत भी न हो, बिलकुल नंगा।

नंगालुच्चा (हिं० वि०) नीच और दुष्ट, बदमाश।

नंगियाना (हिं० क्रि०) १ शरीर पर वस्त्र न रहने देना, नंगा करना। २ सब कुछ छीन लेना, कुछ भी पास न रहने देना।

नंदना (हिं० स्त्री०) पुत्री, बेटी, लड़की।

नंदरूख (हिं० पु०) एक प्रकारका पेड़ जो अश्वत्थ जातिका होता है। इसके पत्ते रेशमके कीड़ोंको खानेके लिये दिये जाते हैं।

नंदिन (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मछली। यह बङ्गाल और आसाममें पाई जाती है और तीन फुट तक लम्बी होती है और तौलमें आध मनको होती है।

नंदो (हिं० पु०) नन्दिन् देखो।

नंदोघंटा (हिं० पु०) बैलोंके गलेमें बांधनेका बिना डांड़ीका घंटा।

नंदोई (हिं० पु०) पतिका बहनोई, ननदका पति।

नंदोला (हिं० पु०) मट्टीकी बड़ी नांद।

नंदोसी (हिं० पु०) नंदोई देखो।

नंबर (अं० पु०) १ गणना, गिनती। २ संख्या, अङ्क, अदद। ३ एक प्रकारका गज जिससे कपड़ा मापा जाता है। यह गज ३ फुट या ३६ इञ्च लम्बा होता है। ४ स्त्रीप्रसङ्ग, भोग। ५ किसी सामयिक पत्र या पुस्तक आदिकी कोई एक संख्या या अङ्क।

नंबरदार (हिं० पु०) गामका वह जमींदार जो अपनी पट्टीके और हिस्सेदारोंसे मालगुजारी आदि वसूल करनेमें सहायता दे।

नंबरवार (हिं० क्रि० वि०) क्रमशः, यथाक्रम, सिलसिलेवार, एक एक करके।

नंबरिंग् मशीन (अं० स्त्री०) वह यन्त्र जिससे रसीदों, टिकटों आदि पर क्रम-संख्या छापते हैं।

नंबरी (हिं० वि०) १ जिस पर नंबर लगा हो, नंबरवाला। २ प्रसिद्ध, मशहूर।

नंबरीगज (हिं० पु०) नंबर देखो।

नंबरीसेर (हिं० पु०) अंगरेजी रुपयोंसे ८० भरका तौलनेका एक सेर, अंगरेजी सेर, बीस गंडो सेर।

नंबूरी (हिं० पु०) मलबार प्रान्तके ब्राह्मणोंकी एक जाति। नम्बूरी देखो।

नंश (सं० पु०) नाशन, ध्वंस, बरबादी।

नंशन (सं० क्ली०) नंश-ल्युट्। नाशन, ध्वंस।

नंशुक (सं० वि०) नश्यतीति नश-ध्वकन्-नुमागमश्च। (वचिनश्योर्णु कन् कनुमो च। उण् २।३०।) १ नाशक, नाश या बरबाद करनेवाला। (पु०) २ अणु, छोटा टुकड़ा, कण।

नंष्टृ (सं० वि०) नश-तृच्, नुमच् (मस्जिनशोर्झलि। पा ७।१।६०) नाशाश्रय, नाश-प्रतियोगी।

नंष्टव्य (सं० क्ली०) नश-तव्य। नाशका योग्य, बरबाद होने लायक।

नःक्षुद्र (सं० वि०) नसा नासिकाया क्षुद्रः। क्षुद्रनासिक, छोटी नाकवाला।

नक् (सं० अव्य) नश-क्विप्, बाहुलकात् कुत्वं। रात्रि, रात। (ऋक् ७।७१।१)

नकंद (हिं० पु०) कांगड़ेमें होनेवाला एक प्रकारका बढ़िया चावल।

नककटा (हिं० वि०) १ जिसकी नाक कटी हो। २ निर्लज्ज, बेशर्म, बेहया। ३ जिसकी बहुत दुर्दशा हुई

हो। ४ जिसकी बहुत अप्रतिष्ठा या बदनामी हुई हो। ५ जिसके कारण अप्रतिष्ठा हो।

नककटापंथ (हिं० पु०) एक कल्पित पंथका नाम। दन्तकथा है, कि एक समय किसी कारण एक मनुष्य-की नाक कट गई। तब वह दूसरे लोगोंको भी अपने ही सरीखा बनानेके उद्देश्यसे लोगोंसे यह कहने लगा, कि नाक के कट जानेके कारण ही मुझे ईश्वर देखनेमें आ रहे हैं। उसकी बात पर विश्वास करके बहुतसे लोगोंने अपनी नाक कटा डाली। ईश्वरके दर्शन तो किसीको न होते थे, लेकिन नककटे होनेके अपवादसे बचने और दूसरोंको भी अपने समान बनानेके लिये वे उस पहले नककटेकी बातका खूब समर्थन करते थे। इसी कहानीके आधार पर लोगोंने इस 'नककटे पंथ' की कल्पना कर ली।

नककटी (हिं० स्त्री०) दुर्दशा, अप्रतिष्ठा या बदनामी। २ नाक कटनेकी क्रिया।

नकघिसनी (हिं० स्त्री०) १ जमीन पर नाक रगड़नेकी क्रिया। २ बहुत अधिक दीनता, आजिजी।

नकचढ़ा (हिं० पु०) चिड़चिड़ा, बद-मिजाज।

नकछिकनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी घास। इसके पत्ते बहुत महीन महीन और कटावदार होते हैं। इसके फूल घुंडीके आकारके और गुलाबी होते हैं जिन्हें सूंघनेसे छीकें आने लगती हैं। यह चरपरी, रूखी, गरम, रुचिकारक, अग्निदीपक, पित्तकारक और वात, कफ, कुष्ठकृमि, रक्तविकार तथा दृष्टिदोषनाशक है। इसका संस्कृत पर्याय—अवक्षुत, तीक्ष्ण, छिक्किका, घ्राणदुःखदा, उग्रा, संवेदनापटु, उग्रगन्धा, क्षवक और छिक्कनी है।

नकटा (हिं० पु०) १ वह जिसकी नाक कट गई हो। २ एक प्रकारका गीत। इस गीतको स्त्रियां विशेष अवसरों पर और विशेषतः विवाहके समय गाती हैं। ३ उक्त गीत गानेका अवसर या उत्सव। ४ एक प्रकारका पक्षी। (वि०) ५ जिसकी नाक कटी हो। ६ निर्लज्ज, बेहया, बेशर्म। ७ अप्रतिष्ठित, जिसका बहुत अप्रतिष्ठा या दुर्दशा हुई हो।

नकटेसर (हिं० पु०) एक प्रकारका पौधा। यह सिर्फ फूलोंके वास्ते लगाया जाता है।

नकड़ा (हिं० पु०) बैलोंका एक रोग। इसमें उनकी नाक सूज आती है और जिसके कारण उन्हें श्वास लेनेमें बहुत कष्ट होता है।

नकतोड़ (हिं० पु०) कुश्तीका एक पेंच।

नकतोड़ा (हिं० पु०) बहुत घमंडसे नाक भौं चढ़ा कर नखरा करना अथवा कोई बात कहना।

नकद (अ० पु०) १ धन जो सिक्कोंके रूपमें हो, तैयार रुपया, रुपया पैसा। (वि०) २ जो तैयार हो, जो तुरंत काममें लाया जा सके। ३ खास। (क्रि० वि०) ४ उधारका उलटा, तुरंत दिए हुए रुपयेके बदलेमें।

नकदावा (हिं० पु०) वह बरी या कुम्हड़ौरी जो चने या मटरकी दालके साथ पकाई गई है।

नकदी (अ० स्त्री०) १ धन, रोकड़, रुपया पैसा। २ वह जमीन जिसकी मालगुजारी नकद रुपयोंमें ली जाती है, जमई।

नकना (हिं० क्रि०) नाकमें दम होना, हैरान होना या हैरान करना।

नकफूल (हिं० पु०) एक प्रकारका लौंग जो नाकमें पहना जाता है।

नकब (अ० स्त्री०) वह बड़ा छेद जो चोरी करनेके लिये दीवारमें किया जाता है। इसमेंसे हो कर चोर किसी कोठरी आदिमें घुसता है, सेंध।

नकबजन (अ० पु०) सेंध लगानेवाला, चोरी करनेके लिये दीवारमें छेद करनेवाला।

नकबजनी (अ० स्त्री०) सेंध लगानेकी क्रिया।

नकबेसर (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी छोटी नथ जो नाकमें पहनी जाती है, बेसर।

नकमोती (हिं० पु०) नाकमें पहननेकी मोती। इसे कोई कोई लटकन भी कहता है।

नकल (अ० स्त्री०) १ वह जो किसी दूसरेके ढंग पर उसकी तरह तैयार किया गया हो, अनुकृति, कापी। २ लेख आदिकी अक्षरशः प्रतिलिपि, कापी। ३ अनुकरण, एकके अनुरूप दूसरी वस्तु बनानेका कार्य। ४ स्वांग, किसीके वेष, हावभाव या बातचीत आदिका पूरा पूरा अनुकरण। ५ अद्भुत और हास्यजनक आकृति। ६ हास्य-रसकी कोई छोटी मोटी कहानी या बातचीत, चुटकुला।

नकल-उस-शैताम—अफ्रीका देशका एक प्रकारका खजूरका पेड़। इसमें अनेक शाखाएँ निकलती हैं। प्रत्येक शाखाका मध्यकाष्ठ मनुष्यके जाँघके जैसा स्थूल होता है प्रतिशाखा २०।४० फुट लम्बी होती है। इसकी पत्तियां खूब चौड़ी होती हैं। अरबीभाषामें इसे 'शैतानका खजूर' कहते हैं।

नकलनवीस (फा० पु०) वह मनुष्य, विशेषतः अदालत या दफ्तर आदिका मुहर्रिर जिसका काम केवल दूसरेके लेखोंकी नकल करना होता है।

नकलनवीसी (फा० स्त्री०) १ नकलनवीसका काम। २ नकलनवीसका पद।

नकलमोर (हिं० पु०) एक प्रकारका पक्षी। कोई कोई इसे मुनिया भी कहता है। मुनिया देखो।

नकलपरवाना (फा० पु०) पत्नीका भाई, साला।

नकलबही (हिं० स्त्री०) दफ्तरों या दूकानों आदिका खाता। इसमें भेजी जानेवाली चिट्ठीयोंकी नकल रहती है।

नकली (अ० वि०) १ कृत्रिम, बनावटी, जो असली न हो। नकली वस्तु अकसर निकम्मी और निकृष्ट समझी जाती है, इस कारण लोगोंमें इसका आदर नहीं होता। २ खोटा, जाली, झूठा, जो असली न हो।

नकलेल (हिं० स्त्री०) वह रस्सी जो नाव खींचनेके लिये गोनरखेमें बँधी रहती है और सब रस्सियोंसे आगे रहती है।

नकशोल (हिं० पु०) नकनोल देखो।

नकश (अ० पु०) १ नक्श देखो। २ एक प्रकारका जुआ। यह दो या अधिक मनुष्योंसे ताशके पत्तोंसे खेला जाता है। इसमें सब खिलाड़ियोंको पहले एक एक पत्ता बाँट दिया जाता है और बाद एक एक खिलाड़ीको अलग अलग उसके मांगने पर और पत्ते दिये जाते हैं। इसमें पत्तोंकी बूटियोंको गिन कर हार जीत मानी जाती है।

नकशमार (हिं० पु०) ताशके पत्तोंसे खेले जानेका नकश नामका जुआ।

नकशा (हिं० पु०) नक्शा देखो।

नकशानवीस (हिं० पु०) नक्शानवीस देखो।

नकशी (हिं० वि०) नक्शी देखो।

नकशीमैना (हिं० स्त्री०) तेलिया नामकी एक प्रकारकी मैना।

नकसमार (हिं० पु०) नकश देखो।

नकसा (हिं० पु०) नक्शा देखो।

नकसीर (हिं० स्त्री०) आपसे आप नाकसे रक्त बहना। यह बीमारी विशेष कर गरमीके दिनोंमें हुआ करती है। वैद्यकमें इसे रक्तपित्त रोगके अन्तर्गत माना है। जब रक्तपितकी बीमारी होती है, तब मुंह, नाक, आँख, कान, गुदा और योनि या लिङ्गसे लोहू गिरता है। यदि यह लोहू अधिक मात्रामें बहे, तो समझना चाहिये कि रोगीकी आयु निकट आ गई। अधिक आंच या धूप लगने, रास्ता चलने और शोक व्यायाम या मैथुन करनेसे भिन्न भिन्न मार्गों द्वारा रक्त बहने लगता है। स्त्रियोंका रज जब रुक जाता है, उस समय भी यह रोग हो जाता है। विशेष विवरण रक्तपित्तमें देखो।

नकातिया (सिंहली) संस्कृत नाक्षत्रिक। सिंहलका दैवज्ञ। ये लोग वर्षका फलाफल, जलवायुका शुभाशुभ और जातक गणना करके जीविकानिर्वाह करते हैं। दो हजार वर्ष पहले इन लोगोंकी जैसी वृत्ति थी, आज भी प्रायः उसी तरहकी है। सिंहलमें फलित ज्योतिषका बड़ा आदर है। अत्यन्त उच्चश्रेणीसे ले कर अत्यन्त निम्न श्रेणीके कृषक तक सभी यह विद्या सीखते हैं।

नकाब (अ० पु० स्त्री०) १ मुंह छिपानेका महीन रंगीन कपड़े या जालीका टुकड़ा। यह सिर परसे ले कर गले तक डाला दिया जाता है। विशेष कर अरब देशकी स्त्रियां इसका व्यवहार करती हैं। उन्हींके संसर्गसे यूरोपमें भी इसका व्यवहार होने लगा है। मुसलमानी स्त्रियां अपना बदन छिपानेके लिये इसे काममें लाती हैं, लेकिन युरोपियन स्त्रियां धूल और कीड़ों पतंगो आदिसे बचने तथा शोभा बढ़ानेके लिये इसका व्यवहार करती हैं। प्राचीन कालमें जब जरूरत पड़ती थी, तब पुरुष भी इसका व्यवहार करते थे। २ साड़ी या चादरका वह भाग जिससे स्त्रियां अपना मुख ढँक लेती हैं, घूंघट।

नकार (सं० पु०) १ न स्वरूप वर्ण, नहीं। २ अस्वीकृति, इनकार।

नकारची (हिं० पु०) नक्कार भी देखो।

नकारना (हिं० क्रि०) अस्वीकृत करना, इनकार करना।

नकारा (फा० पु०) नक्कार देखो।

नकाश (हिं० पु०) नक्काश देखो।

नकाशना (अ० क्रि०) धातु, पत्थर आदि पर बेल बूटे आदि बनाना।

नकाशी (हिं० स्त्री०) नक्काशी देखो।

नकाशीदार (अ० वि०) बेल बूटेदार, जिसपर नक्काशी हो।

नकास (हिं० पु०) नक्काश देखो।

नकासना (हिं० क्रि०) नक्काशना देखो।

नकासी (हिं० स्त्री० नक्काशी देखो।

नकासीदार (हिं० वि०) नकाशीदार देखो।

नकि—मुसलमानोंके बारह इमामोंमेंसे एक मनुष्य। इनका पूरा नाम अली नकि है। इमामकी गणनामें ये दशवें हैं और अलीके वंशोद्भव माने जाते हैं। इनके पिताका नाम नवम इमाम महम्मद तकि था। ७२८ ई०में (२२५ हिजरीमें) इनका जन्म हुआ। बगदादके अन्तर्गत सर-मनराय (सामिरा) नामक स्थानमें इनका समाधि-मन्दिर है।

न-कि—फाहियनके भ्रमणवृत्तान्तमें भारतके उत्तरवर्त्ती इस नामके एक देशका विवरण पाया जाता है। बहुतों का अनुमान है, कि यही बौद्धशास्त्रोक्त नकुल नामक जनपद है।

नकिञ्चन (सं० त्रि०) नास्ति किञ्चन यस्य, अथ नञर्थस्य न शब्दस्य 'सह सुपेति' समासः। अकिञ्चन, दरिद्र, कंगाल। "सर्वकाम रसैर्हीनाः स्थानभ्रष्टा नकिञ्चनाः।"

(भारत व० १३२ अ०)

नकिम् (सं० अव्य०) नाकिम् च चादिपाठात् अव्य-यत्वं नशब्देन समासः। वर्जनार्थ, रोकनेके लिये।

नकियाना (हिं० क्रि०) १ शब्दोंका अनुनासिकवत् उच्चारण करना, नाकसे बोलना। २ बहुत दुःखी या हैरान होना या करना, नाकमें दम आना या करना।

नकिस् (सं० अव्य०) न किम् पृषोदरादित्वात् साधु। निवारण, वर्जन, रोकनेकी क्रिया।

नकीब (अ० पु०) चारण, बन्दीजन, भाट। ये लोग राजाओं आदिके आगे उनके तथा उनके पूर्वजोंके यशका गान करते हुए चलते हैं। बादशाहों या नवाबोंके यहां जो नकीब रहते, केवल सवारीके आगे वे विरुदावलीका बखान करते हो नहीं चलते, बल्कि किसीको उपाधि या पद आदि मिलनेके समय अथवा किसी बड़े पदाधि-कारीके दरबारमें आनेके पहले उनकी घोषणा भी करते हैं। २ कड़खा गानेवाला पुरुष, कड़खैत।

नकीब खाँ—मुगल-सम्राट् अकबरके समयके एक नव-शती मनसबदार। इनका असल नाम मीर गियास-उद्दीन् अली था। इनके पिताका नाम था मीर अबदुल लतीफ। ईरानके अन्तर्गत कोयाजबीन नामक स्थानमें इनके वंशका हमेशाका वास है। ये सैफी सैयद हैं। देशमें ये लोग सुन्नी-मतावलम्बी हैं। इनके पितामह मीर एहिया धर्मशास्त्रदर्शी प्रसिद्ध दार्शनिक पण्डित थे। मीर एहियाका ऐतिहासिक ज्ञान भी बड़ा चढ़ा था। वे मुसलमान-धर्मके संस्थापनसे ले कर अपने समय तककी धर्म-सम्बन्धी सम्पूर्ण घटनाओंकी तारीख तक बतला सकते थे। एहियाने पारस्यके राजा शाह तमास्प-इ-सफवी द्वारा अनुगृहीत हो कर यथेष्ट उन्नति लाभ की थी। अन्तमें शत्रुपक्षकी प्ररोचनासे विना अपराधके वे पारस्यराज द्वारा बन्दी हुए और कारागारमें ही उनकी मृत्यु हो गई। मीर अबदुल लतीफ, पिताके बन्दी होनेका संवाद पाते ही गिलान नामक स्थानको भाग गये और पीछे वे दिल्लीके सम्राट् हुमायूंके आज्ञानुसार हिन्दुस्तानमें आये। अकबरके सिंहासनारोहणके साथ साथ वे अपने परिवारवर्गको भी यहां ले आये। राज्यारोहणके दूसरे ही वर्ष अकबरने मीर अबदुल लतीफको अपने शिक्षकके पद पर नियुक्त किया। इस समय तक अकबर लिखने-पढ़नेमें कोरे थे। नकीबकी शिक्षकतामें बहुत थोड़े ही दिनोंमें बादशाह हाफिज पढ़ने लगे और पाठ करना सीख गये। मीर साहब स्वयं धर्मके विषयमें बड़े सरल और सुविवेचक थे। उन्होंने ही अकबरको सुल-इ-कुल, अर्थात् 'सबोंके साथ शान्त व्यवहार' की शिक्षा दी थी। जिस समय बैरामखां राजानुग्रहसे वञ्चित हो कर आगरा छोड़ कर चले गये थे और अलवरवाराकी तरफ

विद्रोहानल जलानेकी कोशिश कर रहे थे, उस समय अकबरने इन्हीं मीर साहबको उनके पास भेजा था। मीर साहबने उन्हें समझा कर शान्त कर दिया था। ९८१ हिजरीमें सिकरीमें आपकी मृत्यु हुई थी।

मीर साहबके ३ पुत्र थे—१ले नकीबखाँ, २रे कमारखाँ, और ३रे मीर महम्मद शरीफ। फतेपुरमें सम्राट् अकबरके साथ अश्वक्रीड़ा करते करते एक दिन मीर शरीफकी मृत्यु हो गई। मीर कमारखाँ पञ्चशती मनसबदार हो कर मुनीमखाँके अधीन बङ्गालमें, शिहाबके अधीन गुजरातमें और टोडरमलके अधीन बिहारमें सेनापति रहे थे। सुलतान बिलहरीके युद्धमें इनकी मृत्यु हुई थी।

नकीबखाँको, इस देशमें आनेके बाद ही अकबरके साथ विशेष मित्रता हो गई थी। मुनीमखाँने जब खाँ-जमान के नाम अभियोग लगाया, तब अकबर उन पर बड़े बिगड़े, पर नकीबखाँके अनुरोध करने पर उन्होंने खाँ-जमानको क्षमा कर दिया। जिस समय सम्राट् पाटन, अहमदाबाद और पटना गये थे (राज्यारोहणके १८।१८ वर्ष बाद), उस समय नकीबखाँ उनके साथ थे। अकबरके राजत्वके इक्कीसवें वर्ष इन्होंने ईदरके युद्धमें ख्याति प्राप्त की और इसके दूसरे ही वर्ष आप गुजरातके सेनापति हो कर रवाना हुए। बङ्गालके विद्रोहके समय टोडरमलके अधीन आप और आपके भाई कमारखाँने युद्ध किया था। बिहारमें मसूमी काबुलीके साथ युद्धमें इन्होंने विशेष वीरत्वका परिचय दिया था। अकबरके राज्यके २३वें वर्षमें आपको 'नकीबखाँ' यह नाम प्राप्त हुआ था।

तबकीयात-उल्-उमरा नामक इतिहासके लेखक केवलरामके मतसे, गयाके युद्धमें मसूमी काबुलीने जिस दिन रातको टोडरमलकी सेना पर गुप्त भावसे आक्रमण किया था, उस दिन नकीबखाँने वीरोचित साहस और कौशलके साथ उन्हें विध्वस्त किया था; इसीलिए बादशाहने उन्हें उपाधि प्रदान की थी। अबुल-फजलने भी इस नैश-युद्धका उल्लेख किया है, पर नकीबखाँका कोई जिक्र नहीं किया। अकबरके राजत्वकालमें यद्यपि नकीबखाँने हजारी पद पाया नहीं, तथापि दरबारमें उनका विशेष प्रभुत्व था, इसमें सन्देह नहीं। ये ही अकबरके पाठक थे।

अकबरने जिस समय महाभारतका फारसी अनुवाद कराया था, उस समय इन्हीं नकीबखाँ पर उसकी अध्यक्षताका भार था। इनके साथ बदौनी मौलाना, अबदुल कादिर और थानेश्वरी शेख सुलतान भी नियुक्त हुए थे। महाभारतके बाद इन्हीं लोगोंने रामायणका अनुवाद किया था। तवारीख-इ-अलफी नामक इतिहासका अधिकांश भाग नकीबखाँने लिखा है।

नकीबखाँके एक चचा थे, जिनका नाम था काजी ईसा। ये भी ईरानसे आये थे; उनके एक पुत्र थे, नाम था शाहगाजीखाँ। अकबरने अपने वैपित्रेय भ्राता मिर्जा महम्मद हकीमकी सहोदरा साकिन बानुबेगमके साथ शाहगाजीखाँका विवाह कर दिया। अकबरके राजत्वकालके ३८वें वर्ष नकीबखाँने उनसे कहा—"गाजीखाँका आसन्नकाल उपस्थित है, पर वे अपनी कन्याका आपके साथ ब्याह करना चाहते हैं।" भागिनेयीका सम्पर्क होने पर भी अकबरने आसन्नमृत्यु गाजीखाँके अनुरोधका स्वीकार कर विवाह कर लिया।

जहांगीरके समयमें नकीबखाँ १५शती मनसबदार हुए थे। जहाँगीरके राजत्वकालमें (१६१३ ई०में) अजमेरमें नकीबकी मृत्यु हुई। इन्होंने मुइनी-उल्-मालिक मीर महमूदकी कन्याका पाणिग्रहण किया था। इनके पहले ही इनकी स्त्रीकी मृत्यु हो गई थी। अजमेरमें मुइनी चिश्तीके दरगाहमें दोनोंकी कब्र हैं। नकीबखाँके अबदुल लतीफ नामके एक पुत्र थे। विद्यावत्तामें उनकी बहुत ख्याति थी, युसफखाँकी कन्याके साथ उनका विवाह हुआ था। अन्तको वे उन्माद हो गये थे।

नकीम (सं० अव्य०) नकिम् पृषोदरा० साधुः। निवारण, वर्जन, रोकनेकी क्रिया।

नकुं—स्वेज नहरके तीरवर्ती एक पहाड़का दुरारोह अनुच्चशिखर। सिनाईके अन्तर्गत टोरसे यह पाँच कोसकी दूरी पर अवस्थित है। यह मोटे बालूसे परिव्याप्त है। वायु द्वारा यह बालुकाराशि जब चालित होती है, तब उस क्षेत्रसे एक प्रकारका गम्भीर शब्द उत्पन्न होता है। यह शब्द पहले इउलियन बीणाके शब्दके जैसा सुननेमें लगता है। अरबी भाषामें नकुस से घण्टाका बोध होता है। इसीसे इस शब्दकी उत्पत्ति हुई है।

नकुंच (सं० पु०) न कुचति कुच सङ्कोचे न शब्देन समासः। १ मन्दार, मदारका पेड़। २ कुड़ुवृक्ष, एक प्रकारका पेड़।

नकुटी (सं० स्त्री०) न कुट्यति कुट-क, नशब्देन अत्र समासः। नासिका, नाक।

नकुल (सं० पु०) नास्ति कुलं यस्य, समासे नञो नलोपः। (नभ्राण् न पादिति। पा ६।३।७५) १ चतुष्पद स्तन्यपायी मांसाशी जन्तुविशेष, नेवला। पृथिवीमें नाना प्रकारके नकुल हैं। प्राणितत्वविदोंने प्रायः २० प्रकारके नकुलोंका विवरण लिखा है और सबोंने इसको Herpestes (Elliger) जातिमें शामिल किया है।

हमारे संस्कृत वैद्यक भावप्रकाशमें नकुलके लक्षण इस प्रकार लिखे हैं—

"स्थूलपुच्छो रक्तनेत्रो बभ्रुदेहः स नकुलः।"

पूंछ मोटी, आंखें लाल और देह पिङ्गलवर्ण होनेसे, उसे नकुल कह सकते हैं। प्राणितत्त्वविदोंने इस प्रकार लक्षण निर्देश किया है—

किसीके दांत $\frac{५--५}{५--५}$ किसीके $\frac{६--६}{६--६}$ और किसीके $\frac{६--६}{७--७}$ होते हैं।

कान छोटे और गोलाकार, पैरोंकी उँगलियां लम्बी, चौड़ी और टेढ़ी तथा गद्दोदार होती हैं। पूँछ लम्बी, पीछेकी ओर मोटी, लोम बड़े बड़े कर्कश और नानावर्णयुक्त होते हैं। भारतीय नकुलोंका मुखाग्र साधारणतः तीक्ष्ण, चक्षु क्षुद्र, प्रत्यङ्ग छोटे छोटे, पैरोंकी उंगलियां झिल्ली द्वारा परस्पर एक दूसरीसे सटी हुई होती हैं। मादाओंके स्तनोंमें चार चार वृन्त होते हैं। जिह्वा पतली और कण्टक-विशिष्ट होती है। इस जातिमें किसी किसी श्रेणीके विस्तृत मलाशय होता है, जिसमें किसी प्रकारका गन्धद्रव्य नहीं रहता और उसके तलदेशमें गुह्यद्वार होता है।

इसके संस्कृत पर्याय—पिङ्गल, सर्पहा, बभ्रु, कोटिर, सर्पद्विष, सूचीवदन, सर्पारि और लोहितानन। मध्य और उत्तर भारतमें इसे न्योला, नेवल वा नेवार, बिहारमें बिज्जी, पण्डेरा कोरस, तैलङ्गमें येन्तवा वा कीन्त येन्तवा, कनाड़ीमें मङ्गूली, मराठीमें मङ्गूस कहते हैं। हिरोदोतसके ग्रन्थमें इकनेउति (1chmeutæ) तथा आरिष्टल, दियोदोरस, इलियन आदिके ग्रन्थोंमें इकनेउमन् (1chneumon) नामसे इसका वर्णन है। पश्चिम भारतके 'मङ्गूस' नामसे ही फरासीसियोंने इसका 'मङ्गूस्ते' और यूरोपियोंने "मङ्गुस्ता" (Mangusta) नाम रक्खा है।

भारतमें प्रधानतः ७ प्रकारके नेवले देखनेमें आते हैं। बङ्गालमें जितने भी नेवले दीख पड़ते हैं, वर्त्तमान प्राणितत्त्वविदोंने उनका नाम Herpestes malaccensis or the Bengal mungoos रक्खा है। इनके मस्तक और देहकी लम्बाई १५ इञ्च, रंग ललाईको लिए भूरा, कान मुंह और अवयव ललाईको लिए, कण्ठ और वक्षस्थल क्षीण पीतवर्ण, लोम चुने हुए से होते हैं। आसाम, ब्रह्म और मलयद्वीपमें भी इस श्रेणीके नेवले दीख पड़ते हैं। इनकी मादा एक साथ ३।४ बच्चा जनती हैं। देखनेमें इसी प्रकार पर इनसे २।३ इञ्च बड़े एक श्रेणीके नेवले उत्तर और दक्षिण भारतमें पाये जाते हैं, ये ही साधारणतः मङ्गूस (Herpestes grisous or the Madars mungoos) नामसे प्रसिद्ध हैं। इनके शरीरका वर्ण अपेक्षाकृत उज्ज्वल पिङ्गलवर्ण, लोमावली पीताभ धूसर है। शरीरकी लम्बाई २० इञ्च और पूंछ १६ इञ्च तक लम्बी देखनेमें आती है।



नकुल।

ऊपर जिन दो जातियोंका उल्लेख किया गया है, उन्हींकी संख्या अधिक है। अन्यान्य श्रेणीके भी नेवले हैं, उनके वैज्ञानिक नाम इस प्रकार हैं—Herpestes monticolus (दीर्घपुच्छ), Herpestes Smithii (मद्राजके रंगीन नेवले), Herpestes Nipalensis (नेपालके स्वर्णविन्दु नेवले), H. erpestes fuscus (नीलगिरिके काली नेवले), Herpestes vitti-

collis (जिनके गले पर धारियां हों, ऐसे नेवले)। इनके अलावा दक्षिण-यूरोपमें H. widdringtonii, अफ्रिकामें H. caffer, आबिसिनियामें H. Mutgigella, उत्तर माद्रा अन्तरीपमें H. apiculatus, यवद्वीपमें H. javanicus, मलक्कामें H. brachyures, दक्षिण अफ्रिकामें H. punctulatus, मिस्रमें H. ichneumon (Egyptian ichneuneon) आदि भिन्न प्रकारके नेवले हैं। इसके सिवा आसामकी तरफ और एक प्रकारका जन्तु देखनेमें आता है, जिसको अंग्रेजीमें Urva cancrivora कहते हैं। प्राणितत्वविदोंने इसका नाम the crab-mungoos (अर्थात् केंकड़ा नेवला) रक्खा है। इस जन्तुका स्वभाव नेवलेके समान है, देखनेमें काला और पिङ्गलवर्ण है, एक एककी लम्बाई १॥-१ हाथ है।

खुले मैदानमें, झाड़ोंमें, जंगलोंमें, तालाबोंके किनारे नदियोंके करारोंमें तथा गढ़ोंमें नेवलोंका वास है। जो चिड़िया मैदान वा तालाबोंके किनारे चरा करती हैं, वे इनकी घोर शत्रु हैं। अकसर यह पालतू कबूतर, हंस वा तोतोंको पकड़ कर उनका खून पीता है और फिर छोड़ देता है। मौका पाते ही यह घरमें घुस कर पालतू चिड़ियोंको पींजड़ेके भीतरसे निकालनेकी चेष्टा करता है। जहां ज्यादा नेवले होते हैं, वहां हंस, मुरगी आदिके अण्डोंकी रक्षा करना मुश्किल हो जाता है। यह अण्डा खाना बहुत पसन्द करता है।

सर्प और नकुलकी चिरशत्रुता जगत्प्रसिद्ध है। इस देशमें बहुतोंका विश्वास है, कि नकुल और सर्पमें मिलाप होते ही विवाद होना अनिवार्य है। सर्प जब नकुलको काट लेता है, तब वह शीघ्र ही निकटवर्त्ती झाड़ोंमें जा कर दवा खा आता है, जिससे सर्पके विषसे उसका कुछ अनिष्ट नहीं होता।

महाराष्ट्रियोंका विश्वास है, कि नकुली वा मङ्गुसबेल नामक एक प्रकारकी लता है, उसीकी जड़ सर्पविष हरणमें समर्थ है। परन्तु जेर्डन आदि आधुनिक प्राणितत्त्वविद्गण इस प्रवाद पर विश्वास नहीं करते। उन लोगोंका कहना है, कि नेवलेकी चमड़ी कड़ी होती है और इसीलिए उसमें सर्प-विष प्रविष्ट नहीं होता। यही कारण है कि सर्पके काटने पर भी सहजमें उनका कुछ अनिष्ट नहीं होता। सर्प और नकुलकी लड़ाईमें प्रायः नकुलकी ही जय होती है, सर्प मर जाता है। परन्तु नेवला ख्वाहमख्वाह सर्पसे विरोध नहीं ठानता। गोखुरा (करैता) आदि विषधरोंके सामने आ जाने पर यह एक बगलसे निकलनेकी कोशिश करता है, परन्तु यदि कदाचित् छूट न सके और दोनोंका मुकाबिला हो जाय, तो यह महाविक्रमके साथ सर्प पर आक्रमण करता है और फिर उसे मार वा परास्त करके ही दम लेता है। इस देशके लोगोंका ऐसा विश्वास है, कि नकुल यदि सर्पको लांघ जाय तो सर्पके उसी समय दो टुकड़े हो जाते हैं। अथर्ववेदमें भी इसका उल्लेख है—

"यथा नकुलो विच्छिद्य संदधात्यहिं पुनः।"

(अथर्ववेद० ६।१३९।५)

परन्तु यदि किसी प्रकारसे सर्पका विष नकुलके चर्मको भेद कर शरीरमें प्रविष्ट हो जाय, तो फिर उसकी मौत ही है।

औरिष्टटल लिखते हैं,—महा विषधर सर्पके साथ नकुलका मुकाबिला होने पर जब तक दूसरा नकुल वहां हाजिर नहीं होता, तब तक वह शत्रु पर आक्रमण नहीं करता। विष शरीरमें प्रविष्ट न हो सके, इसके लिए नेवला आक्रमण करनेसे पहले ही पोखरमें डुबकी लगा कर शरीर पर अच्छी तरह कीचड़ लपेट आता है।

इस देशमें जैसे सर्प और नकुलके विरोधकी कहावत प्रचलित है, उसी तरह प्लिनीके ग्रन्थमें भी मगर और नेवलेके विरोधकी एक बड़ी आश्चर्यजनक कथा लिखी है। प्लिनीने लिखा है,—'मगर जब मुंह खोल कर सो जाता है, तब नेवला शाणित अस्त्रकी तरह तीव्रवेगसे उसके मुंहमें घुस जाता है और पेटमें जा कर भीतरकी नसोंको काटता है।' परन्तु आधुनिक प्राणितत्त्वविद् इस बात पर विश्वास नहीं करते। हां, इतना तो अवश्य मालूम हुआ है, कि जहां बहुतसे मगर रहते हैं, वहां नेवलोंकी संख्या भी अधिक होती है। ये बड़ी सावधानीके साथ मगरके अण्डोंको निकालते और खाते हैं। इनकी इस शत्रुताके कारण वहां मगरोंकी संख्या ज्यादा बढ़ने नहीं पाती।

नेवला चूहोंका भी पूरा दुश्मन है। एक एक नेवला

सैकड़ों चूहोंको मार कर उनका खून पीते हैं। बेनट साहबने लिखा है,—एक छोटेसे घरमें एक नेवलेने १॥ मिनटके अंदर १२ बड़े बड़े चूहोंको मार डाला था। महाभारतमें भी नकुलको चूहोंका शत्रु लिखा है।

"स्वैः स्वैर्हि जीवन्ति दुर्बलैर्बलवत्तराः।
नकुलो मूषिकानत्ति बिडालो नकुलस्तथा॥"

(भारत १२।५।२०)

पूर्वकालमें मिस्रके लोग नकुलकी पूजा करते थे। नकुलके मरने पर उसे एक पवित्र पेटिकामें रख देते थे। पालतू बिल्लियोंकी तरह लोग इसे बड़े शौकसे पालते थे और दूध-मछली आदि खिलाते थे। यदि कोई नेवलेको मार डालता था, तो राज-दरबारसे उसे दण्ड मिलता थी। मिस्रकी तरह भारतमें भी नकुल हत्या निषिद्ध थी। मनुसंहितामें लिखा है, कि नकुल-हत्या करनेवालेको शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त लेना पड़ता है। (मनु ११।१३) मनुसंहितामें यह भी लिखा है, कि घी चुरानेवाला मर कर नेवला होता है। (मनु ११।६२)

वैद्यकके अनुसार नकुलका मांस पिच्छिल, वात-नाशक, श्लेष्मा और कफ-वर्धक होता है। (राजनि०)

यह सहज ही परच जाता है। नेवलेको पालनेसे घरमें सर्प वा चूहे नहीं रहते।

२ महादेव, शिव। (विदग्धमुखम०)

३ पाण्डुराजके चतुर्थ पुत्र। ये माद्रीके गर्भमें अश्विनीकुमारद्वयसे उत्पन्न हुए थे। इनका विषय महाभारतमें इस प्रकार लिखा है,—"पाण्डु शापग्रस्त हो कर जिस समय पत्नीद्वयके साथ वनमें वास करते थे, उस समय कुन्तीने अपने वरके प्रभावसे तीन पुत्र जने। इस पर माद्रीने पाण्डुसे प्रार्थना की कि मुझे भी पुत्रकी प्राप्ति हो।' पाण्डुने कुन्तीसे अनुरोध किया। तब कुन्तीने माद्रीसे कहा, 'तुम किसी एक अभिलषित देवताका स्मरण करो।' माद्रीने अश्विनीकुमारोंका स्मरण किया। इन्हीं अश्विनीकुमारोंसे माद्रीके यमज पुत्र हुए, ज्येष्ठ नकुल और कनिष्ठ सहदेव। नकुल अत्यन्त रूपवान् थे। जिस समय पाण्डवगण विराटनगरमें अज्ञातभावसे वास करते थे, उस समय इनका नाम तन्त्रिपाल रक्खा गया था, ये गोरक्षा-कार्यमें नियुक्त थे। युधिष्ठिरने जिस समय राजसूय-यज्ञका अनुष्ठान किया था, उस समय इन्होंने पश्चिमदिशामें जा कर महेत्थ्यदेश अधिकार किया था। पीछे राजर्षि आक्रोशको जीत कर आपने दशार्ण, शिवि, त्रिगर्त, अम्बष्ठ, मालव, पञ्चकर्पट, मध्यमक, वाटधान और द्विजोंको परास्त किया था। उसके बाद इन्होंने पुष्करारण्यवासी उत्सव-सङ्केतोंको, समुद्रतीरस्थित आभीरोंको और सरस्वतीतीर-वासियोंको जीत कर पञ्चनद, अमरपर्वत, उत्तर-ज्योतिष, दिव्य कटपुर और द्वारपाल जय किया था। फिर रामठ, हारहूण और प्रतीच्य भूपालोंको अपने वशमें ला कर वासुदेवके पास अपना दूत भेजा था। यादवोंने जब युधिष्ठिरकी अधीनता स्वीकार कर ली, तब वे शाकल पहुंचे; वहां शल्यने भी युधिष्ठिरकी अधीनता स्वीकार की। अन्तमें म्लेच्छ, पह्लव, वर्बर, किरात, यवन और शकोंको तथा पाश्चात्य अन्यान्य राजाओंको परास्त किया। चेदिराजकी कन्या करेणु-मतीके साथ नकुलका विवाह हुआ था। करेणुमतीके गर्भसे नकुलके निरमित्र नामक एक पुत्र हुआ था। युधि-ष्ठिरने जब महाप्रस्थान किया था, तब ये भी उनके साथ गये थे। (भारत) इन्होंने 'अश्वचिकित्सा' रची थी।

जैनमतानुसार—नकुलका जन्म पाण्डुराजके औरस और माद्रीके गर्भसे हुआ था। पाण्डुराज शापग्रस्त थे ऐसा जैन-पुराणोंमें कहीं भी उल्लेख नहीं है। जैन-हरिवंशमें लिखा है, कि 'जिस समय पाण्डुने गान्धर्व विवाह कर कुन्तीसे सम्भोग किया था, उस समय उनके कर्ण नामक पुत्र हुआ और विवाह करनेके बाद युधि-ष्ठिर अर्जुन और भीम ये तीन पुत्र हुए तथा उन्हीं राजा पाण्डुके रानी माद्रीसे नकुल और सहदेव पुत्र हुए। (जैनहरिवंश, ४५।३६-३८) अन्तमें ये अन्य चार भाइयोंके २२वें तीर्थङ्कर भगवान् नेमिनाथके समवशरणमें उपस्थित हुए थे और चारों भाइयोंके साथ जिन—दीक्षा ग्रहण की थी। तपस्यापूर्वक मर कर ये सर्वार्थसिद्धि नामक स्वर्गमें उत्पन्न हुए हैं; वहांसे चयन कर मनुष्य होंगे और उसी शरीरसे मोक्ष प्राप्त होंगे। किन्तु युधिष्ठिर, अर्जुन और भीम उसी भवसे सिद्ध (मुक्त) हुए हैं। (जैनहरिवंश) ४ पुत्र, बेटा, लड़का। (त्रि०) ५ कुलरहित, जिसके कुल नहीं।

नकुल (फा॰ पु॰) वह रस जो मध्याह्नकालमें पुर आदि चलानेवालोंको पीनेके लिये दिया जाता है।

नकुलक (सं॰ पु॰) १ नकुलके आकारका एक प्रकारका प्राचीन गहना। २ रुपया आदि रखनेकी एक प्रकारकी थैली।

नकुलकन्द (सं॰ पु॰) गन्धनाकुलीया रास्ना नामक कन्द।

नकुलतैल (सं॰ क्ली॰) वात-व्याधि रोगाधिकारोक्त तैलोषधभेद, एक प्रकारका तेल जो नेवलेके मांसमें बहुतसे दूसरी औषधियां मिला कर बनाया जाता है। इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार है—नेवलेका मांस ३२ सेर, जल १६ सेर शेष ६४ सेर, दशमूल ३२ सेर जल ६ सेर, शेष ६४ सेर, एरण्डका तेल ६४, दहीका पानी ६४ सेर, यष्टिमधु, जीरा, रास्ना, सैन्धव लवण, वनयवानी, सोयाँ, यमानी, मिर्च, कुट, विड़ङ्ग, गजपिप्पली, सचल-लवण, वच, शैलज और जटामांसी प्रत्येक द्रव्य चार तोला ले कर उसे चूर्ण करते और उस तेलमें मिला देते। बाद यथाविधान तेलको पाक कर उसे नीचे उतार लेते हैं। इसका व्यवहार पान, अभ्यङ्ग और वस्तिक्रिया-में होता है। इस तेलसे कम्पवात, हस्तकम्प, शिरःकम्प, बाहुकम्प, और आमवात आदि रोग जाते रहते हैं। कमर, पीठ, जांघ, घुटने आदिका वातका दरद तथा अस्सी प्रकारका वातज रोग भी दूर हो जाता है।

(भैषज्यरत्ना॰ वातव्याध्यधिकार)

नकुला (सं॰ स्त्री) पार्वती।

नकुलाढ्या (सं॰ स्त्री॰) नकुलेन, नकुलगन्धेन, आढ्या प्रचुरा। गन्धनाकुली या रास्ना नामक कंद।

नकुलाद्यघृत (सं॰ क्ली॰) वातव्याधि-रोगाधिकारोक्त घृतौषधभेद, प्रस्तुतप्रणाली—क्वाथके लिये नेवलेका मांस ३२ सेर और पाकके लिये जल २५६ सेर, शेष ६४ सेर, उरद ३२ सेर, जल १६ सेर, शेष ६४ सेर। भेंड़ेला ३२ सेर, जल १६ सेर, शेष ६४ सेर। शतमूली ६४ सेर, दूध ६४ सेर। जीरा, ऋषभ, कंकोल, ऋद्धि, वृद्धि, मेद, महामेद, जीवन्ती, यष्टिमधु, क्षीरकाकोली, गुड़त्वक, तेज-पत्र, त्रिफला, मोथा और अमलतास प्रत्येक द्रव्य दो तोले कर उनका चूर्ण उस घीमें डाल देते हैं। इस घीका सेवन करनेसे अपस्मार, उन्माद, पक्षाघात, आध्मान, कोष्ठनिग्रह, हस्तकम्प, शिरःकम्प, वधिरता, मूकत्व, मिन्मिनभाषण और अन्यान्य नाना प्रकारके रोग दूर हो जाते हैं।

(भैषज्यरत्ना॰ वातव्याध्यधिकार)

नकुलान्धता (सं॰ स्त्री॰) नकुलस्येव अन्धता, ६-तत्। सुश्रुतोक्त एक प्रकारका नेत्ररोग। सुश्रुतमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—जिस रोगमें आँखें दोषाभिभूत हो कर नेवलेकी आँखोंकी तरह चमकने लगती हैं और दिनके समय चीजें रंग बिरंगी दिखाई देने लगती हैं, उसीको नकुलान्ध कहते हैं। इस रोगमें पित्तवर्द्धक पदार्थोंका सेवन बिलकुल मना है।

विशेष विवरण नेत्ररोगमें देखो।

नकुलारि (सं॰ पु॰) बिड़ाल, बिलाव।

नकुली (सं॰ स्त्री॰) नकुल-ङीष्। १ कुक्कुटी, मुर्गी। २ मांसी, जटामांसी। ३ कुङ्कुम, केसर। नकुलस्त्री, नेवलेकी मादा। ५ शङ्खिनी। ६ शाल्मली वृक्ष।

नकुलीश (सं॰ पु॰) १ कालापीठस्थित भैरव विशेष, तान्त्रिकोंके एक भैरवका नाम। २ हकार।

नकुलीश पाशुपत दर्शन—भारतीय एक दर्शनग्रन्थ। माधवाचार्य-प्रणीत सर्वदर्शन-संग्रहमें इस दर्शनका सारांश लिखा है। इसका मूलग्रन्थ आज कल नहीं मिलता और न इस बातका ही निर्णय होता है कि किस समय इस दर्शनकी सृष्टि हुई थी।

इस दर्शनमें एकमात्र महादेवको ही परमेश्वर और जीवोंको पशु माना गया है। महादेव जीवोंके अधिपति हैं, इसलिए पशुपति हैं। नकुलीश महादेवका नाम है और वे ही पशुपति हैं, इसलिए इस दर्शनका नाम नकु-लीश-पाशुपत-दर्शन हुआ है। इस दर्शनमें सभी विषय प्रतिपादित हुए हैं।

हम कोई भी कार्य क्यों न करें, उसमें दूसरेकी सहायता न भी लें, पर अपने हाथ पैरोंकी सहायता अवश्य लेते हैं। परन्तु जगदीश्वरने अन्य किसी भी प्रकार की सहायताके बिना ही समस्त जगत्‌का निर्माण किया है। इसलिए उन्हें स्वतन्त्रकर्त्ता कहा जा सकता है और हम जो कार्य कर रहे हैं, उनके कर्त्ता भी परमेश्वर हैं,

इसलिए उनको सर्व कार्यका कारण कह सकते हैं। इस बात पर कोई कोई यह आपत्ति लाते हैं, कि यदि समस्त कार्योंके कारण परमेश्वर ही हैं, तो एक कालमें ही भूत भविष्यत् और वर्त्तमान इन तीनों कालोंका कार्य क्यों नहीं होता और सब समय सब कार्य क्यों नहीं होते? जब कि कारण-स्वरूप जगदीश्वर सर्वदा ही समस्त स्थानोंमें विद्यमान हैं! बुद्धिमान जन-समूह किस कारणसे मुक्तिको इच्छासे घोरतर क्लेशकर तप करनेमें प्रवृत्त होता है और क्यों वह पारलौकिक सुखेच्छासे यज्ञादि कर्ममें तथा सांसारिक सुखेच्छासे धनोपार्जनादिमें प्रवृत्त होता है? परमेश्वर जब जैसा करते हैं, तब वैसा होता है। कोशिश करके उसके अतिरिक्त कुछ नहीं किया जा सकता; जब ऐसी ही बात है तो यज्ञ-विधानादि अनुष्ठानसे विरत रहना ही बुद्धिमान मनुष्यका कर्त्तव्य है। परन्तु यह आपत्ति ठीक नहीं है। परमेश्वर अपनी इच्छासे समस्त विषयोंका सम्पादन करते हैं, उनकी जब जिस विषयकी इच्छा होती है, वे उसी विषयको कर डालते हैं। किसी एक समयमें सब कार्य हों अथवा सर्वदा सब कार्य हों ऐसी परमेश्वरकी इच्छा नहीं होती और इसी कारण ऐसे कार्य नहीं होते। यदि उनकी इच्छा इस प्रकारकी होती, तो निश्चय ही वैसे कार्य हुआ करते। मुमुक्षु व्यक्ति योगाभ्यासमें, स्वर्गाभिलाषी यज्ञादि कार्यमें और सांसारिक सुखेच्छु-व्यक्ति धनोपार्जनमें प्रवृत्त हों, ऐसी ईश्वरकी इच्छा होती है, तभी लोग उक्त कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं। उनकी इच्छा कभी भी वृथा नहीं जाती। परमेश्वर सबके प्रभु हैं और उनकी इच्छा आदेश-स्वरूप है, इसलिए प्रभुके आदेश-उल्लङ्घन करनेमें असमर्थ सभी व्यक्ति उन विषयोंमें प्रवृत्त होते हैं।

इस दर्शनके मतसे मुक्ति दो प्रकारकी है—एक दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति और दूसरी पारमैश्वर्य प्राप्ति। अत्यन्त दुःख-निवृत्ति-रूप मुक्ति होने पर फिर कभी किसी प्रकारकी दुःखोत्पत्ति नहीं होती। इसलिए इस मुक्तिका नाम अत्यन्त दुःखनिवृत्ति है। दृक्-शक्ति और क्रियाशक्तिके भेदसे पारमैश्वर्य मुक्ति भी दो प्रकार है। दृक्-शक्ति द्वारा कोई भी विषय अपरिज्ञात नहीं रहता। जितना भी सूक्ष्म और व्यवहित या दूरस्थ क्यों न हो सभी वस्तुएँ स्थूल समीपवर्त्ती वस्तुकी तरह प्रतीयमान होती हैं। सभी विषय दृक्-शक्तिमान् व्यक्तिके ज्ञानपथके पथिक हैं। क्रियाशक्तिसम्पन्न होने पर जब जिस विषयकी अभिलाषा होती है, उसी समय वह सम्पन्न होता है। क्रियाशक्ति-युक्त व्यक्तिको केवल इच्छा मात्रकी अपेक्षा करती है। मुक्त व्यक्तिकी इच्छा होने पर वह तत्क्षणात् उसके मनोरथको पूर्ण करती है। इस प्रकार दृक्-शक्ति और क्रिया-शक्तिरूप मुक्ति परमेश्वरकी तत्तद् शक्तियोंके सदृश है। इसलिए उसको पारमैश्वर्य मुक्ति कहते हैं। पूर्वप्रज्ञ-दर्शनमें मुक्तिका जो लक्षण लिखा है, इस दर्शनमें उसका खण्डन है। उसमें भगवद्दासत्वप्राप्तिको ही मुक्ति माना है। ऐसी मुक्ति मुक्ति-पदवाच्य नहीं हो सकती, क्योंकि जिस मुक्तिमें दासत्वरूप अधीनता-शृङ्खलाबद्ध रहना पड़ता है, उसको किस प्रकार मुक्ति कहा जा सकता है? मणिमाणिक्यादि खचित सुवर्ण-शृङ्खलमें बद्ध व्यक्तिको भी बन्धनयुक्त कहते हैं, कोई भी उसे मुक्त नहीं कह सकता। अतएव अन्ध व्यक्तिको पद्मलोचन कहनेके समान भगवद्दासत्वरूप अधीनता पाशमें बद्ध व्यक्तिको मुक्त कहना युक्तिविरुद्ध और हास्यास्पद है, इसमें सन्देह नहीं।

इस दर्शनके मतसे, प्रधान धर्मसाधनको चर्याविधि कहते हैं। चर्या दो प्रकारकी है—व्रत और द्वार। त्रिसन्ध्या भस्म-स्नान, भस्मशय्या पर शयन और उपहार-प्रदान, इन तीनोंको व्रत कहते हैं। "ह ह हा" इस प्रकार शब्दपूर्वक हास्य, गन्धर्वशास्त्रानुसार महादेवके गुणोंका गानरूप गीत, नाट्यशास्त्र-सम्मत नर्त्तन-रूप नृत्य, पुङ्गवके चीत्कारके समान चीत्काररूप हुडुक्कार, प्रणाम और जप इन छः कामोंको उपहार कहते हैं। व्रतानुष्ठान जनसमाजमें न कर अति गुप्त स्थानमें करना चाहिए। द्वाररूप चर्या, क्राथन, स्पन्दन, मन्दन, शृङ्गारण, अवितत्करण और अवितद्भाषणके भेदसे छः प्रकारकी है। सुप्त न होने पर भी सुप्तकी भाँति प्रदर्शनको क्राथन, शरीरादिके कम्पनको स्पन्दन, खञ्जव्यक्तिकी तरह गमनको मन्दन, परम रूपवती स्त्री-सन्दर्शनसे वास्तविक कामुक न होकर भी कामुककी भाँति कुत्सित व्यवहार-प्रदर्शनको शृङ्गारण, कार्त्तव्याकर्त्तव्य-पर्यालोचन शून्यकी भाँति

विगर्हित कर्मानुष्ठानको अवितत्करण और निरर्थक वा वाधितार्थक शब्दोच्चारणको अवितद्भावण कहते हैं। इस मतमें तत्त्वज्ञानको ही मुक्तिका साधन माना है। शास्त्रान्तरोंमें भी तत्त्वज्ञानको मुक्तिका साधन बतलाया है, परन्तु शास्त्रान्तर द्वारा तत्त्वज्ञान होनेकी सम्भावना नहीं है, इसलिए मुमुक्षुओंको यह अवलम्बनीय है। विशेष रूपसे समस्त पदार्थोंका ज्ञान हुए बिना तत्त्वज्ञान नहीं होता। परन्तु समस्त वस्तुओंका विशेषरूप ज्ञान शास्त्रान्तर द्वारा होनेकी सम्भावना नहीं। शास्त्रान्तरमें केवल दुःखनिवृत्तिको ही मुक्ति बतलाया है। योगका फल दुःखनिवृत्ति है, कार्य अनित्य हैं और कारणस्वरूप परमेश्वर कर्मादि सम्पेक्ष है, ऐसा बतलाया गया है। परन्तु इस शास्त्रमें पारमैश्वर्य-प्राप्ति और दुःखनिवृत्ति इस तरह दो प्रकारको मुक्ति मानी गई है, तथा उन दोनोंको योगका फल बतलाया गया है। कार्य नित्य हैं और परमेश्वर स्वतन्त्र कर्त्ता है, यही प्रमाणादि द्वारा प्रतिपादित हुआ है। (सर्वदर्शनसंग्रह) पाशुपत तथा लकुलीश देखो

नकुलेश (सं० पु०) कालीपीठस्थित भैरवभेद, नकुलेश्वर।

नकुलेष्टा (सं० स्त्री०) नकुलस्य इष्टा ६-तत्। रास्ना, रायसन।

नकुलौष्ठी (सं० स्त्री०) तारोंसे बजाये जानेका प्राचीन कालका एक प्रकारका बाजा।

नकुवा (हिं० पु०) १ नासिका, नाक। २ तराजूकी डंडीका सूराख।

नकेल (हिं० स्त्री०) वह रस्सी जो ऊंटकी नाकमें बंधी रहती है। यह लगामका काम करती है और इसके सहारे ऊँट चलाया जाता है, मुहार।

नकोदर—१ पञ्जाबके जलन्धर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० ३०° ५६' और ३१° १५' उ० तथा देशा० ७५° ५' और ७५° ३७' पू०, सतलज नदीके उत्तरीय किनारे अवस्थित है। इसका भूपरिमाण ३७१ वर्गमील और लोकसंख्या २२२४१२ के लगभग है। अधिकांश अधिवासी मुसलमान हैं। इसमें एक शहर और ३११ ग्राम लगते हैं। आय चार लाख रुपयेसे अधिकको है, गेहूं, चना, जुम्हरी, जौ, रुई और धान यहांके प्रधान उत्पन्न द्रव्य हैं।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० ३१° ८' उ० और देशा० ७५° २८' पू०के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ८८५८ है। प्रवाद हैं, कि पहले यह नगर कम्बोनाकम् हिन्दुओंके अधिकारमें था। पीछे ऐतिहासिक समयमें मुसलमानधर्मावलम्बी एक राजपूत बादशाह जहांगीरके निकट जागीरमें इसे पाया था। जब सिख लोगोंका अभ्युदय हुआ, तब सरदार तारासिंहने राजपूतोंको भगा कर यहां एक दुर्ग निर्माण किया था। १८१६ ई०में यह नगर रणजितसिंहके अधिकारमें आया। शहरमें १६१२ और १६३७ ई०के दो समाधि-मन्दिर देखनेमें आते हैं। १८६७ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। यहां डाकघर, सरकारी अस्पताल और स्थानीय बोर्डका एक ऐङ्गलो-वर्नाक्यूलर स्कूल हैं।

नक्क (सं० पु०) नयान, बरादो।

नक्का (हिं० पु०) १ सूईमें डोरा पिरोनेका छेद, नाका। २ ताशके पत्तोंमेंका एक्का। ३ नक्की और नक्कीमूठ देखो। ४ कौड़ी।

नक्कार (हिं० पु०) अवज्ञा, तिरस्कार, अपमान, अवहेलना।

नक्कारखाना (फा० पु०) नक्कार या नौबत बजनेका स्थान, नौबतखाना।

नक्कारची (फा० पु०) १ बंबईके बिजापुर जिलावासी एक दल नगाड़ा बजानेवाला मुसलमान। वहां इस व्यवसायके एक हिन्दू भी हैं, किन्तु वे इस नामसे पुकारे जाने पर भी उतने प्रतिष्ठित नहीं हैं। इनकी संख्या बहुत थोड़ी है। इस नामके मुसलमान लोग दीर्घकद, मुण्डितमस्तक, श्मश्रुधारी और कुछ पीतवर्णके होते हैं। ये लोग हिन्दूओंकी नाईं पगड़ी बांधते और धोती पहनते हैं। इनकी स्त्रियोंका पहनावा भी हिन्दू सरीखा है। इन लोगोंमें अवरोध प्रथा नहीं है, पर हां, स्त्रियाँ कोई काम नहीं करतीं। जो केवल जाति व्यवसायसे जीविका निर्वाह करते हैं, उनकी अवस्था अच्छी नहीं है। ये लोग परिश्रमी और मिताचारी होते हैं। विवाह केवल अपने ही सम्प्रदायमें होता है। ये लोग अन्य मुसलमानकी नाईं गोमांस नहीं खाते। बल्कि हिन्दू देवताकी पूजा करते हैं। २ वह जो नक्कारा बजाता हो, नगारा बजानेवाला।

नक्कारा (फा॰ पु॰) एक प्रकारका बहुत बड़ा बाजा। यह डुगडुगी या बाएँकी तरहका होता है। इसमें एक बहुत बड़े कूंड़ेके ऊपर चमड़ा मढ़ा रहता है। इसके साथमें इसी प्रकारका पर इससे बहुत छोटा एक और बाजा होता है। इन दोनोंको सामने सामने रख कर लकड़ीके दो डंडोंसे जिन्हें चोब कहते हैं, बजाते हैं, नगाड़ा, डंका नौबत।

नक्काल (अ॰ पु॰) १ अनुकरण करनेवाला, नकल करनेवाला। २ भांड़। ३ बहुरूपिया।

नक्काली (अ॰ स्त्री॰) १ नकल करनेकी क्रिया या विद्या। २ भांड़का काम या विद्या। ३ बहुरूपियेका काम या विद्या।

नक्काश (अ॰ पु॰) नक्काशीका कारीगर, वह जो खोद कर बेल बूटे आदि बनाता हो।

नक्काशी (अ॰ स्त्री॰) १ धातु या पत्थर आदि पर खोद खोद कर बेल-बूटे आदि बनानेका काम या विद्या। २ वे बेल बूटे आदि जो इस प्रकार खोद कर बनाये गये हों।

नक्काशीदार (फा॰ पु॰) जिस पर खोद कर बेल बूटे बनाये गये हों।

नक्की (हिं॰ स्त्री॰) १ नक्की-मूठ खेलमें एकका दांव। नक्कीमूठ देखो। २ ताशके पत्तोंमेंका एक्का। ३ जुएके किसी खेलमें वह दांव जिसके लिये एक का चिह्न नियत हो अथवा जिसकी जीत किसी प्रकारके एक चिह्नके आनेसे हो।

नक्कीपूर (हिं॰ पु॰) नक्कीमूठ देखो।

नक्कीमूठ (हिं॰ स्त्री॰) जुएका एक खेल। यह खेल प्रायः स्त्रियां और बालक कौड़ियोंसे खेलते हैं। इसमें एक दूसरीको काटती हुई दो सीधी लकीरें खींची जाती हैं और उनके चारों सिरोंमेंसे एक सिरे पर एक बिंदी, दूसरे पर दो, तीसरे पर तीन और चौथे पर चार बिंदियां बना दी जाती हैं। ये बिंदियां क्रमशः नक्की, दूआ, तीया और पूर कहलाती हैं। यह खेल दो से चार तक खिलाड़ियोंसे खेला जाता है जो एक एक दांव ले लेते हैं। एक खिलाड़ी अपनी मुट्ठीमें कुछ कौड़ियां ले कर अपने दांव पर मुट्ठी रख देता है। बाद शेष खिलाड़ी अपने अपने दांव पर कुछ कौड़ियां लगाते हैं। अनन्तर वह पहला खिलाड़ी अपनी मुट्ठीकी कौड़ियां गिन कर उसमें चारका भाग देता है। भाग देने पर १ कौड़ी बच जानेसे नक्कीवालेकी, २ बच जानेसे दूएवालेकी, ३ बच जानेसे तीएवालेकी और कुछ भी न बचनेसे पूरवालेकी जीत होती है जिसकी जीत होती है, दूसरी बार वही मूठ लाता है। यदि मूठ लानेवालेका दांव आता है, तो वह दांव पर रखी हुई सबकी कौड़ियां जीत लेता है, नहीं तो जिसकी जीत होती है, उसको उसे उतनी ही कौड़ियां देनी पड़ती हैं जितनी उसने दांव पर लगाई हों, नक्कीपूर।

नक्कू (हिं॰ वि॰) १ जिसकी नाक बड़ी हो, बड़ी नाकवाला। २ जिसके आचरण आदि सब लोगोंके आचरणके विपरीत हों, सबसे अलग और उलटा काम करनेवाला।

नक्त (सं॰ पु॰) नज-क्त। १ रात्रि, रात। तद् अङ्गत्वेनास्त्यस्य अच्। व्रतभेद, एक प्रकारका व्रत।

"मार्गशीर्षे सिते पक्षे प्रतिपद्‌ या तिथिर्भवेत्।
तस्यां नक्तं प्रकुर्वीत रात्रौ विष्णुं प्रपूजयेत्॥" (वराहपु॰)

अगहन महीनेके शुक्ल पक्षकी प्रतिपदाको यह व्रत किया जाता है और रातको विष्णुपूजा की जाती है। यहां पर 'नक्तशब्द' से भोजनके बाद ऐसा समझना चाहिये। इसमें दिनके समय बिलकुल भोजन नहीं किया जाता, केवल रातको किया जाता है। नक्तका अर्थ रातके समय भोजन करना है। रात कहनेसे जिस प्रकार अर्थबोध होता है, नक्त शब्दसे ठीक वैसा नहीं होता। इसका लक्षण पृथक् रूपसे निर्दिष्ट है—

"मुहूर्त्तोनं दिनं नक्तं प्रवदन्ति मनीषिणः।
नक्षत्रदर्शनान्नक्तमहं मन्ये गणाधिपः॥" (भविष्यपु॰)

समूचा दिन प्रायः शेष हो गया हो, केवल एक मुहूर्त्त रह गया हो, ऐसे दिनको पण्डितगण नक्त कहते हैं। किन्तु मैं (महादेव), जिस समय नक्षत्रका दर्शन होता है, उसी समयको नक्त कहते हैं। देवलने भी नक्तका विषय इस प्रकार निर्णय किया है—

"नक्षत्रदर्शनान्नक्तं गृहस्थस्य बुधैः स्मृतम्।
यतेर्दिनाष्टमे भागे तस्य रात्रौ निषिध्यते॥" (देवल)

गृहस्थोंके लिये नक्त वह समय कहलाता है, जब

तारा आकाशमें दीख पड़े लेकिन यतियोंके लिये दिनके आठवें भागका नाम नक्त है। स्मृत्यन्तरमें भी नक्तका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

"नक्तं निशायां कुर्वीत गृहस्थो विधिसंयुत:।
यतिश्च विधवा चैव कुर्यात्तु सदिवाकरम्॥
सदिवाकरस्तु तत् प्रोक्तमन्तिमे घटिका द्वये।
निशानक्तं तु विज्ञेयं यामार्द्धे प्रथमे सदा॥" (स्मृति)

गृहस्थको विधिपूर्वक रातके समय, यति और विधवा को 'सदिवाकर' समयमें नक्तव्रत करना चाहिये। यहां पर निशा शब्दका अर्थ रात्रिकालका प्रथम यामार्द्ध समय है। दिवा भागके शेष दो दण्डका नाम सदिवाकर है। कहनेका तात्पर्य यह है कि गृहस्थको चार दण्ड रात्रिमें और यति तथा विधवाको दिनमें दो दण्ड रहते भोजन करना चाहिये। व्यासने नक्तका लक्षण इस प्रकार कहा है—सूर्यके अस्त होने पर त्रिमुहूर्त्तकाल प्रदोषपदवाच्य है। इस प्रदोष कालमें ही नक्तव्रत अर्थात् भोजन करना चाहिये। इस नक्तव्रतमें प्रदोषव्यापिनी तिथिका प्रयोजन होता है। रघुनन्दनने प्रायश्चित्ततत्त्वमें नक्तव्रतको जगह ऐसा लिखा है—

"प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या सदा नक्तव्रते तिथि:।
उदयात् तदा पूज्या हरेर्नक्तव्रतं तिथि:॥" (एकादशीतत्त्व)

इस व्रतमें तिथि यदि पूर्वदिनमें प्रदोषव्यापिनी हो, तो पूर्वदिनमें और यदि दूसरे दिनमें प्रदोषव्यापिनी हो, तो दूसरे दिनमें तथा उभय दिन प्रदोषव्यापिनी हो, तो दूसरे दिनको ही नक्तव्रत होगा। इस व्रतके करनेमें हविष्यभोजन, स्नान, आहार-लघुता, अग्निकार्य और अधःशय्याका आचरण करना होता है। इस व्रतके करनेसे स्वर्गलाभ होता है। (पुराण) ३ महादेव। ४ राजा पृथुका पुत्र। (त्रि०) ५ लज्जित, जो शरमा गया हो।

नक्तक (सं० पु०) नक्तमिव कायति मलिनतया कै-क, वा नक्त-स्वार्थे कन्। १ कर्पट, पुराना चिथड़ा, गूदड़, लत्ता। २ नेत्रपटल, आंखका परदा, पलक।

नक्तचर (सं० पु०) १ महादेव। २ रातको घूमनेवाला। ३ राक्षस। ४ उल्लू।

नक्तचारिन् (सं० पु०) नक्तं रात्रौ चरतीति चर-णिनि। १ बिड़ाल, बिल्ली। २ पेचक, उल्लू (त्रि०) ३ रात्रिचर मात्र, रातके समय विचरण करनेवाला।

नक्तञ्चर (सं० पु०) नक्तं चरतीति चर-ट (चरेष्टः। पा ३।२।१६) १ राक्षस। २ गुग्गुल, गूगल। ३ चौर, चोर। ४ पेचक, उल्लू। ५ बिड़ाल, बिल्ली। ६ सोमराज्य। ७ दुन्दुभ, नगारा, धौंसा। (त्रि०) ८ रात्रिचर, रात्र रातके समय विचरण करनेवाला।

नक्तञ्चर्या (सं० स्त्री०) नक्तं रात्रौ चर्या चरणं। रात्रिमें विचरणादि, रातको इधर उधर घूमनेकी क्रिया।

नक्तञ्चारिन् (सं० त्रि०) नक्तं रात्रौ चरतीति चर-णिनि। रात्रिचर मात्र, रातके समय विचरण करनेवाला।

नक्तञ्जात (सं० त्रि०) नक्तं रात्रौ जातः। १ रात्रिजात, जो रातको उत्पन्न हो। (पु०) २ ओषधिभेद, बहुत प्राचीन कालकी एक प्रकारकी ओषधि जिसका उल्लेख वेदोंमें है।

नक्तन (सं० क्ली०) नज बाहुलकात् तनिन्। रात्रि, रात।

नक्तन्तन (सं० त्रि०) नक्तं रात्रौ भवः ल्युट, तुट् च। रात्रि-भव, जो रातको हो।

नक्तन्दिव (सं० त्रि०) नक्तं च दिवा च समस्यर्थद्वन्द्वः ततो अचतुरेत्यादिना अच् समासान्त। दिवा और रात्रि, दिन-रात। "विभज्य नक्तन्दिवमस्ततन्द्रिणा" (किरात)

नक्तभोजिन् (सं० त्रि०) नक्तं रात्रौ भुङ्क्ते भुज-णिनि। १ रात्रिभोजनकारी, रातको भोजन करनेवाला। २ नक्त नामक व्रत करनेवाला। इस व्रतमें दिनको खाना मना है, इसीसे दिनके समय भोजन न कर रातको भोजन करना विधेय है।

"हविष्यभोजनं स्नानं सत्यमाहारलाघवम्।
अग्निकार्यमधःशय्यां नक्तभोजी षडाचरेत्॥"
(भविष्य०)

नक्तम् (सं० अव्य०) रात्रि, रात।

नक्तमाल (सं० पु०) नक्तं रात्रौ आ सम्यक प्रकारेण अलति पर्य्याप्नोतीति आ-अल-अच्। करञ्जवृक्ष, कंजीका पेड़।

नक्तमुखा (सं० स्त्री०) नक्तं नक्तव्रताङ्गं मुखं आदिभागो यस्याः। रात्रि, रात।

नक्तमूलकम् (सं० क्ली०) १ करञ्जमूल, कंजीकी जड़, महाकरञ्ज।

नक्तव्रत (सं० क्ली०) नक्तं रात्रौ अनुष्ठितं व्रतं। वह व्रत जिसमें दिनको न खा कर रातको खाता है। नक्त देखो।

नक्तप्रभव (सं० त्रि०) नक्तं प्रभवति प्र-भू-अप्। रात्रि प्रभव, जो रातको उत्पन्न हो।

नक्ता (सं० स्त्री०) नक्त-अच्-टाप्। १ कलिकारी, कलियारी नामक विषैला पौधा। २ हरिद्रा, हलदी। ३ रात्रि, रात। ४ तृणविशेष, एक प्रकारकी घास।

नक्तान्ध (सं० त्रि०) नक्तं रात्रौ अन्धः। रातान्ध, जिसे रातको दिखाई न दे, जिसे रतौंधी होती हो।

नक्तान्ध्य (सं० क्ली०) नक्तं अन्ध्यं। नेत्ररोगभेद। इस रोगमें रातको दिखाई नहीं देता। दूषित कफ जब चक्षुके तृतीय पटलमें जम जाता है, तब यह रोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें केवल दिनको दिखाई पड़ता है, रातको कोई चीज नजर नहीं आती। इसका कारण यह है, कि दिनमें दृष्टि सूर्यानुगृहीत होती और दूषित कफ घट जाता है, इसीसे रोगी दिनमें हर एक वस्तु देख सकता है। (भावप्र० ४र्थ नेत्ररोगाधिकार)

सुश्रुतमें भी इस प्रकार लिखा है—दृष्टिश्लेष्मा द्वारा जब विदग्ध होती है, तब सभी वस्तु सफेद नजर आती हैं और जब तीनों पटलमें यह दोष उत्पन्न हो जाता है, तब नक्तान्धता होती है। इस रोगमें दिनके समय सूर्यकी किरणोंसे कफ कुछ कम हो जाता है जिससे दृष्टिशक्ति प्रकाश पाती है। (सुश्रुत उत्त० ७ अ०)

नक्ताह (सं० पु०) करञ्जवृक्ष, कंजा।

नक्ति (सं० स्त्री०) रात्रि, रात।

नक्द (हिं० पु०) नकद देखो।

नक्र (सं० पु०) न क्रामति दूरस्थलं क्रम-ड 'नभ्राड़िति' न लोपो न। १ कुम्भीर, नाक नामक जलजन्तु। (क्ली०) २ द्वारशाखाका अग्रभाग। ३ मकरादि जलजन्तुभेद, मगर नामक जलजन्तु। ४ घड़ियाल। ५ नासिका नाक।

नक्रराज (सं० पु०) नक्राणां राजा (राजाहःसखिभ्यष्टच्। पा० ५।४।९१) इति टच् समासान्तः। १ जलजन्तु प्रधान, घड़ियाल। २ मगर। ३ नाक नामक जलजन्तु।

नक्रहारक (सं० पु०) नक्रमपि हरति हृ-ण्वुल्। हाङ्गर।

नक्रा (सं० स्त्री० नक्र-अच्-टाप्। १ नासिका, नाक। २ मक्खिका दंशसूची, मधुमक्खी आदिका डंक जिसे वे क्रोधके समय मनुष्यके शरीरमें धँसाती हैं।

नक्ल (सं० स्त्री०) नकल देखो।

नक्लनवीस (हिं० पु०) नकलनवीस देखो।

नक्लनवीसी (हिं० स्त्री०) नकलनवीसी देखो।

नक्लपरवाना (हिं० पु०) नकलपरवाना देखो।

नक्लबही (हिं० स्त्री०) नकलबही देखो।

नक्श (अ० वि०) १ जो अङ्कित या चित्रित किया गया हो, खींचा, बनाया या लिखा हुआ। (अ० पु०) २ चित्र, तसवीर। ३ खोद कर या कलमसे बना हुआ बेल-बूटे या फूल पत्ती आदिका काम। ४ मोहर, छाप। ५ एक प्रकारका ताराका जुआ। ६ एक प्रकारका यन्त्र जो सारणी या कोष्टकके रूपमें बना रहता है और अनेक प्रकारके रोगों आदिको दूर करनेके लिये भोजपत्र आदि पर लिख कर बाँह या गले आदिमें पहनाया जाता है, तावीज। ७ जादू, टोना। ८ एक प्रकारका गाना।

नक्शनिगार (फा० पु०) बनाए हुए बेलबूटे आदि, नकाशी।

नक्शबन्दी—एक सम्प्रदायी मुसलमान फकीर। ये लोग एक हाथमें प्रज्वलित दीप ले कर परमेश्वर और महम्मदकी महिमाका गान करते हुए रातको भीख माँगते हैं। बङ्गाल देशमें ये लोग "मुश्किल आसान" नामक पीरके फकीर कहलाते हैं। ये लोग हिन्दू मुसलमान दोनोंके घर भीख माँगने जाते हैं और वहाँ दीपकी कालीख ले कर छोटे छोटे बच्चोंके कपाल पर लगा देते हैं। आशीर्वादके समय ये लोग इस प्रकार कहते हैं, "मुश्किल-आसान साहब तुम्हारे कष्टको दूर करें, आपदसे बचावें, तथा छोटे छोटे बच्चोंका सुखी बनाये रक्खें" इत्यादि। ख्वाजा बहाउद्दीन् नामक एक व्यक्ति इस सम्प्रदायके प्रथम प्रवर्त्तक थे। नक्शबन्दी फकीर अपने नामके पहले 'ख्वाजा' पद लगाते हैं। तातार तुरुष्क और भारतमें इस श्रेणीके फकीर पाये जाते हैं।

नक्शवि—तुतिनामाके ग्रन्थकर्त्ता। इन्होंने गुप्त नामसे अपना परिचय दिया है।

नक्श-इ-रुस्तम—पारस्यके अन्तर्गत पार्सिपोलिसके निकटवर्त्ती कोह-इ-हसन नामक पर्वतके ऊपर अनेक खोदित शिलाफलक-विशिष्ट अत्यन्त प्राचीन समाधि-मन्दिर वर्त्तमान हैं। उन सब मन्दिरोंका एकत्र नाम 'नक्श-इ-रुस्तम' है और यहाँ जो एक पर्वत है, वह भी इसी नाम-

से पुकारा जाता है। यहां एकिमनियोंके कारुकार्य-विशिष्ट समाधिमन्दिर तथा ससेनियोंके स्तम्भादि भी हैं। सबसे प्राचीन खोदित शिलामन्दिरकी संख्या सात है। इनमेंसे चार तो नक्श-इ-रुस्तम् पर और तीन तख्त-इ-जमशेदके अहमत पर्वत पर अवस्थित हैं। नक्श-इ-रुस्तम पर्वत पर काम्बिसिस, प्रथम दरायुस, जरकसेस और प्रथम आर्त्ताजरकसेस नामक चार पारस्य-सम्राटोंके समाधिस्तम्भ हैं। सैकड़ों पर्वत पर ऐकिमिनीय राजाओंकी समाधियां देखनेमें आती हैं। नक्श-इ-रुस्तममें दरायुसके समयकी खोदी हुई एक शिलालिपि है जिसमें तात्कालिक पारस्यदेशके अधीन राजाओंके नाम लिखे हैं। बेहिस्तुन नामक स्थानमें भी दरायुसकी एक दीर्घ-शिलालिपि है।

नकशमार (हिं० पु०) नकशमार देखो।

नक्शा (अ० पु०) १ प्रतिमूर्त्ति, चित्र, तसवीर। २ आकृति, बनावट, शक्ल, ढांचा। ३ ढंग, तरज, चालढाल। ४ किसी पदार्थका स्वरूप, आकृति। ५ ढांचा, ठप्पा। ६ अवस्था, दशा। ७ किसी धरातल पर बना हुआ एक विशेष चित्र। इसमें पृथ्वी या खगोलका कोई भाग अपनी स्थितिके अनुसार अथवा और किसी विचारसे चित्रित रहता है।

साधारणतः भूमण्डल या उसके किसी खण्डका जो नक्शा होता है, उसमें यथास्थान देश, प्रदेश, पर्वत, समुद्र, नदियां, झीलें और नगर आदि प्रदर्शित होते हैं। कभी कभी इस विषयका बोध करानेके लिये कि अमुक देशमें कितनी वृष्टि होती है, या कौन कौनसे अन्नादि अथवा इसी प्रकारकी किसी और बातके लिये नक्शेमें भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न रंग भी भर दिये जाते हैं। कभी कभी ऐसे नक्शे भी प्रस्तुत किये जाते हैं जिनमें सिर्फ रेललाइनें, नहरें अथवा इसी तरहकी और और चीजें दिखलाई जाती हैं। महाद्वीपों आदिके सिवा छोटे छोटे प्रदेशों और यहां तक कि जिलों, तहसीलों और ग्रामों तकके नक्शे भी बनते हैं। शहरों या ग्रामोंके नक्शे भी बनते हैं। शहरों या ग्रामोंके नक्शेमें यह भी दिखलाया जाता है, कि किस गली या किस सड़क पर कौन कौनसे मकान खण्डहर, अस्तबल या कुंए आदि हैं। इसी प्रकार खेतों और जमीनों आदिके भी नक्शे होते हैं जिनसे यह जाना जाता है कि कौन सा खेत कहां है और उसकी आकृति कैसी है। खगोलके चित्रोंमें इसी प्रकार यह प्रदर्शित किया जाता है, कि कौन सा तारा किस स्थान पर है।

नक्शानवीस (फा० पु०) किसी प्रकारका नक्शा लिखने या बनानेवाला।

नक्शानवीसी (फा० स्त्री०) नक्शा बनानेका काम।

नक्शी (फा० वि०) जिस पर बेल बूटे बने हों।

नक्षत्र (सं० क्लो०) नक्षति शोभां गच्छति वा नक्ष-अत्रन् (अमिनक्षियजिवधिपतिभ्यो ऽत्रन्। उण् ३।१०५।) १ अश्विनी आदि सप्तविंशति तारा। पर्याय—ऋक्ष, भ, तारा, तारका, उडु, तारक, तार, दाक्षायणी। (अमर)

पुराणानुसार ये सभी दक्षकी कन्याएं हैं; चन्द्रके साथ इनका विवाह हुआ है।

रात्रिको जितने छोटे छोटे तारे ज्योतिष्क-मण्डल दिखलाई देते हैं, उनमेंसे कुछ ग्रहोंको छोड़ कर शेष सभी तारे कहलाते हैं। ग्रहोंसे तारोंका पार्थक्य इतना ही है कि तारागण परस्पर तुलनामें दृष्टतः निश्चल मालूम होते हैं और उनमें वेपन है। आपाततः देखनेसे मालूम होता है कि गगनमण्डलस्थ तारावलीमें कोई शृङ्खलता वा एकतानता नहीं है; मानो वे इतस्ततः विच्छिन्न पड़े हुए हैं और हम उनमेंसे किसी एककी आपेक्षिक अवस्थितिको निर्धारित नहीं रख सकते। परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। रात्रिको आकाशके किसी एक प्रदेशमें एक तारेको चिह्नित कर उसका अनुसरण किया जा सकता है। दिनमें वह अदृश्य हो जाता है। दूसरी रात्रिको वही चिह्नित तारा विशाल गगनप्राङ्गनमें कहां उदित हुआ, इसका निरूपण किस तरह होगा? यदि उस चिह्नितके निकटवर्ती और भी कई तारोंको चिह्नित कर लिया जाय, तो उसको ढूंढ़ निकालना तादृश कठिन नहीं है। इसलिए अति पुराकालसे ही लोग तारोंको अपने सुभीताके अनुसार दलबद्ध कर चिह्नित रखते थे और उन दलबद्ध ताराओंमें एक एक प्रकार आकृतिकी कल्पना की जाती थी। यह काल्पनिक आकृतिविशिष्ट तारा-दल ही नक्षत्र है। नक्षत्रोंके कई मानचित्र भी बन गये हैं।

अति प्राचीनकालमें ताराविन्यास देख कर प्राचीनों-ने आकाशका विभाग किया था। प्रति रात्रिमें चन्द्रको उनमेंसे जाते हुए देखा जाता है। इस प्रकारसे २७।२८ दिनमें चन्द्र एक बार अपने पथका तारोंके साथ वास करते हैं। प्राचीनोंने इन तारामालाओंका नाम नक्षत्र रक्खा था। इस प्रकारसे २७।२८ नक्षत्र कल्पित हुए। कालान्तरमें जब उन्होंने देखा कि एक अमावस्या वा पूर्णिमासे लगा कर दूसरी अमावस्या वा पूर्णिमा तक कुल ३० बार सूर्योदय होता है, तब ३० दिनका एक मास बना दिया। परन्तु सूर्योदयारम्भकालमें नक्षत्रों पर दृष्टि डालनेसे उन्हें मालूम पड़ा, कि सूर्य भी नक्षत्रोंमें हो कर गमन करते हैं। बारह बार अमावस्या होनेसे सूर्य एक बार नक्षत्रचक्रमें घूम लेता है। इस प्रकार ३० दिनमें एक मास और १२ मास वा ३६० दिनमें एक वर्ष गिना जाने लगा।

चन्द्रकी गति देख कर चन्द्रपथ २७।२८ नक्षत्रोंमें विभक्त हुआ था। सूर्य इसी पथसे १२ मास तक भ्रमण करता है। इसलिए इस पथको १२ भागोंमें विभक्त करनेकी आवश्यकता हुई।

आकाशमें तारागण ही स्थान-निर्देशक हैं। इस कारण जैसे कुछ तारोंको ले कर एक एक नक्षत्र कल्पित हुए थे, उसी प्रकार एक वा ततोधिक नक्षत्रोंको ले कर १२ राशियां कल्पित हुईं। जैसे कुछ तारोंके पारस्परिक विन्यासको देख कर उनका त्रिकोणाकार वा शकटाकार प्रतीत होने लगता है, उसी प्रकार कुछ नक्षत्रोंके पारस्परिक विन्यासको देख कर मेष-वृषादिके आकारकी कल्पना होती है। इस नाम और आकारकी कल्पनासे दो प्रकारकी सुविधाएं हुईं। आज आकाशके किस स्थानमें सूर्य वा चन्द्र है, यह नाम द्वारा व्यक्त किया जाने लगा और वह अवस्थान आकाशका कौनसा अंश है, यह भी यन्त्रकी सहायताके बिना निर्दिष्ट होने लगा है।

कोई कोई ऐसा समझते हैं कि यह राशिविभाग पहले पहल मिस्रवासियों द्वारा प्रचलित हुआ था। दूसरे यह भी कहा जाता है, कि मिस्रवासियोंकी राशि-कल्पना-को देख कर ईसासे ४०० वर्ष पहले ग्रीकोंने ग्रीक भाषा-में krios, tauros आदि राशियोंका नामकरण किया था। इन लोगोंने देखा, कि मेष-वृषादि द्वादश राशियों द्वारा सम्पूर्ण आकाशका निर्देश नहीं किया जा सकता। इसलिए उन लोगोंने कुछ तारोंके auriga, cassiopeia आदि नाम रख कर कुछ नवीन आकारविशिष्ट राशियों-की कल्पना कर ली। इस तरह कालान्तरमें ३६ अति-रिक्त आकारोंकी कल्पना हुई और पहलेकी १२ राशियों को मिला कर अब सम्पूर्ण आकाश ४८ राशियोंमें विभक्त हुआ।

परन्तु किन किन ताराओंको ले कर कौनसी राशि हुई, इसकी पहचान चित्रदर्शनके बिना नहीं हो सकती। क्योंकि हर एक तारापुञ्जका यथेच्छ आकार कल्पित हो सकता है। ईसासे ४०० वर्ष पहले ग्रीक इदक्सस (Eudoxos)-ने पहले गोलक पर राशियों-का आकार दिखलाया था। तदनन्तर ईसासे १२८ वर्ष पहले हिपार्कसने पहले पहल ताराका मानचित्र बनाया। १३१ ई०में प्रसिद्ध टलेमिने उस मानचित्रका संस्कार किया। प्रायः तीन सौ वर्ष पहले तायकोब्राहि नामक ज्योतिर्विद्ने कुछ नूतन राशियोंकी कल्पना की। इस तरह प्रायः ६० नूतन राशियोंकी सृष्टि हुई और प्रत्येक राशिके आकार और नाम दिया गया। पुरानी ४८ और नयी ६०, इस तरह सब मिला कर १०८ राशियोंके विचित्र आकार खगोलक और खगोल मानचित्रमें चित्रित होने लगे।

एक ही नक्षत्रके अन्तर्गत तारे ग्रीक अक्षरों द्वारा परस्पर विभिन्नीकृत हुए थे। वर्णमालाके प्रथम अक्षरसे उज्ज्वलतम ताराका बोध होता है। ग्रीक अक्षर निबट जाने पर रोमन अक्षरोंकी सहायता ली गई। बहुतसे अत्युज्ज्वल ताराओंके विशेष विशेष नाम हैं। औज्ज्वल्यके तारतम्यानुसार तारागण प्रथम, द्वितीय, तृतीय, आदि परि-माणोंमें विभक्त हुआ करते हैं। साधारणतः चर्मचक्षुसे जितने भी क्षुद्रतर तारे दीख पड़ते हैं, वे पञ्चम परिमाणके हैं। परन्तु अति तीक्ष्ण चक्षु द्वारा षष्ट और सप्तम परि-माणके तारे भी दृष्टिगोचर हो सकते हैं। ज्योतिर्विद् मि० हर्षेलने निर्णय किया है, कि सर्वापेक्षा उज्ज्वलतम लुब्धक तारे (Sirius)-की ज्योति षष्ठ परिमाणके तारोंकी अपेक्षा ३२४ गुण अधिक है। उत्तर गोलार्द्धके

नक्षत्रोंमें निम्नलिखित तारे प्रथम परिमाणके हैं। यथा—रोहिणी, स्वाति, Atair, आर्द्रा, Capella (ब्रह्महृदय), Procyon (प्रश्वा), Regulus vega (अभिजित्)। दक्षिण गोलकार्द्धके नक्षत्रमें Achernos, Autares (ज्येष्ठा), Canopus (अगस्त्य), Reigel (वह्नि), Sirius (लुब्धक) और Spica (चित्रा) ये सब प्रथम परिमाणके तारे हैं।

ये नक्षत्र क्या पदार्थ हैं, इनका निश्चितरूपसे निर्णय करना असम्भव है; परन्तु यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि सूर्यको यदि नक्षत्रोंके समान दूरमें स्थापन किया जाय, तो वह भी आकार और लक्षणमें एक नक्षत्र-रूपमें प्रतीयमान होगा।

नक्षत्रोंके अवस्थानके विषयमें किञ्चित् अनुसन्धान करना आवश्यक है। कोई कोई नक्षत्र रविमार्गके निकट और कोई, कोई दूरमें अवस्थित है। यथा–रोहिणी, पुष्या, चित्रा आदि रविमार्गके निकटमें हैं और स्वाति, धनिष्ठा एवं श्रवणा आदि दूरमें अवस्थित है। कोई कोई नक्षत्र परस्पर निकटवर्त्ती तथा चित्रा और स्वाती, आर्द्रा और पुनर्वसु परस्पर दूरवर्त्ती एक एक ताराको ले कर कोई नक्षत्र तथा बहुतसे तारोंको ले कर कोई कोई नक्षत्र कल्पित हुआ है। शत (बहु) संख्यक तारोंको ले कर शतभिषा, ३२ तारोंको ले कर रेवती, ११ तारोंको ले कर मूला और १ तारेको आर्द्रा एवं स्वाति नक्षत्र कल्पित हुआ है।

नक्षत्रोंकी एक प्रकारकी दृष्टतः आह्निक गति है। उसके विषयकी पर्यालोचना करनेसे विस्मित होना पड़ता है। देखा जाता है, कि अधिकांश नक्षत्र उदित हो कर, क्षुद्र वा वृहत् वृत्तखण्डाकार पथमें परिभ्रमण करते हुए पश्चिम दिशाको अस्तमित होते हैं, और कुछ अन्य नक्षत्र ख-मध्य (Zenith)के उत्तरवर्त्ती किसी एक विन्दुके चारों तरफ (वृत्ताकार) परिभ्रमण करते हैं। मेरुप्रदेशीय तारा जिस वृत्तको अङ्कित करता है, वही सर्वापेक्षा क्षुद्र है। मेरुदण्डके ऊपर पृथिवीका आवर्त्तन ही इस प्रकार दृश्यमान् गतियोंका कारण है। पृथिवीकी यदि उक्त आवर्त्तन-गति ही रहती, तो वर्षमें सभी समय एक ही नक्षत्र आकाशके एक ही स्थानमें दीख पड़ता। परन्तु ऐसा नहीं है। सूर्यके चारों तरफ पृथिवीकी जो वार्षिक गति है, उसीके कारण आकाशका दृश्य बड़ी बड़ी परिवर्त्तित होता रहता है। आज एक नक्षत्र किसी समय आकाशके जिस स्थानमें दीखेगा, कल वही नक्षत्र चार मिनट पहले उसी स्थानमें नजर आयेगा और ठीक एक वर्ष बाद एक ही नक्षत्रको उसके पहले स्थानमें देखेंगे।

कुछको छोड़ कर अधिकांश नक्षत्रोंका दूरत्व अभी तक निर्णीत नहीं हुआ है। परन्तु वह दूरत्व अत्यधिक है, इसमें संदेह नहीं। ब्रैडलिके समयसे तारोंके वार्षिक लम्बन (Yearly parallax) निरूपणके द्वारा उनके दूरत्व-निर्द्धारणके लिये बहुत चेष्टा की गई है। उक्त लम्बन सुसम्पन्न यन्त्रों द्वारा अवधारित होता है। किसी नक्षत्र एक रेखा सूर्य पर्यन्त और दूसरी रेखा पृथिवी पर्यन्त खींचनेसे जो कोण उत्पन्न होता है, उसे नक्षत्रका लम्बन कहते हैं। यदि उस कोणका परिमाण एक सेकेण्ड हो, तो समझना चाहिये कि प्रस्तावित नक्षत्रका दूरत्व सूर्यके दूरत्वसे २०६००० गुण अधिक है। १८३२से १८३८ ई०के भीतर हेण्डर्सन, बेसेल और पिटर्स महोदयने नक्षत्रोंका लम्बन यथार्थ रूपसे निर्द्धारित किया था।

बेसेलने सबसे पहले स्थिर किया कि स्वान (Swan) नक्षत्रके अन्तर्गत ६१ संख्याओंका जो एक युक्त तारा (Double star) है, उसका लम्बन ०″ ३७ है। इससे निर्णीत हुआ कि उन ताराओंकी दूरी सूर्यकी दूरीसे ५५०००० गुण अधिक है। इस कारण उक्त ताराओंका आलोक भूपृष्ठ पर पहुंचनेमें ८½ वर्ष लगते हैं। आज तक जिन सब नक्षत्रोंकी दूरी मालूम हुई है, उनमेंसे Alpha Centauri (किन्नर नामक तारा सबसे कम दूरी पर है) यह एक अत्यन्त उज्ज्वल तारा है और दक्षिण आकाशमें अवस्थित है। उत्तमाशा अन्तरीपमें हेण्डर्सन और मेकलियर द्वारा इसका लम्बन ०″.८१२८ स्थिर हुआ था। पीछे संशोधित हो कर ०″.८७६ कायम किया गया। उक्त ताराओंका आलोक पृथ्वी पर पहुंचनेमें ३¼ वर्ष लगता है। उज्ज्वलतम तारा लुब्धकका लम्बन ०″ ·१५ निर्णीत हुआ है।

गहरी खोज करनेके बाद अभी यह सम्भव सा प्रतीत होता है, कि एक प्रथम परिमाणके तारोंकी दूरी भूकक्षा-वृत्तके व्यासार्द्धसे न्यूनाधिक ८८६००० गुण है। इस दूरत्वको अतिक्रम कर प्रकाश पहुंचनेमें १५½ वर्ष लगता

है। किन्तु छठे परिमाणके एक तारेका (अर्थात् वह छोटेसे छोटा तारा जो दूरवीक्षणकी सहायताके बिना देखा जाता है। दूरत्व भूकक्षावृत्तके व्यासार्द्धसे ७६०००० गुण है। इस सुदूर पथको पार कर पृथ्वी पर प्रकाशके पहुंचनेमें १२० वर्षसे भी अधिक समय लगता है। जब चक्षुग्राह्य अधिकांश ताराओंका दूरत्व इतना अधिक हुआ, तब जो सब ज्योतिष्क क्षणा बलवान् दूरवीक्षणकी सहायताके बिना दृष्टिगोचर नहीं होतीं, उनकी दूरी किस प्रकार अवधारित होगी? इससे यह सिद्धान्त होता है, कि उन सब नक्षत्रोंका जो प्रकाश हम लोग देखते हैं, वह दो एक वर्ष वा दो एक जीवितकालका नहीं है; लेकिन वह सहस्र वर्ष पहलेसे चला आ रहा है।

ताराओंकी संख्या अगणित है। ताराओंको गिन कर कौन शेष कर सकता है? जितने तारे नयन गोचर होते हैं, उनकी संख्या कुछ सहस्रसे अधिक नहीं है। प्रथम परिमाणके ताराओंकी संख्या १५से २०, द्वितीय परिमाणके ताराओंकी संख्या ५०से ६०, तृतीय परिमाणके ताराओंकी संख्या प्रायः १००, चतुर्थ परिमाणके ताराओंकी संख्या ४००से ५००, और पञ्चम परिमाणके ताराओंकी संख्या क्रमशः अधिक होती गई है। छठे और सातवें परिमाणके ताराओंकी संख्या प्रायः १२००० है। सभी नक्षत्र छायापथके (Milky-way) निकटवर्त्ती प्रदेशमें घने तौरसे अवस्थित हैं। छायापथ भी ११वें, १२वें परिमाणके तारकापुञ्जके निविड़ सन्निवेशके सिवा और कुछ भी नहीं है।

नक्षत्रगण निश्चल नहीं हैं, यह युक्ततारा वा बहुतारा (Multiple stars)-का व्यापार देख कर सहजमें प्रतीत हो जायेगा। युक्त वा बहुताराओंमेंसे एक वा अनेक तारे दूसरेके वा आपसके साधारण भारकेन्द्रके चारों ओर भ्रमण करते हैं। दूरवीक्षणकी सहायताके बिना वे सब तारे पृथक् पृथक् देखे नहीं जाते। गैलिलोने भी इनके अस्तित्वका आविष्कार किया था और इनकी सहायतासे नक्षत्रका वार्षिक लम्बन (Yearly parallax) अवधारण करनेका प्रस्ताव किया था। उसके बहुत समय बाद ब्रैडलो, संकोन और मेयर साहबने युक्त ताराओंके विषयमें बहुत दिमाग लड़ाया था, लेकिन कुछ भी फल न निकला। अन्तमें हर्शेल साहबने बहुत समय तक सोच विचारके बाद इनकी प्रकृतिके सम्बन्धमें अपूर्व सिद्धान्त उद्भावन किया है। स्ट्रुभ, सेमार्ट, एट्किं, साउथ और हर्शेलने मिल कर उत्तमाशा अन्तरीपमें चार वर्ष तक अनुसन्धान द्वारा दक्षिण गोलार्द्धमें ६००० युक्ततारों और बहुतारोंका आविष्कार किया। उनका अधिकांश ही दोके योगसे गठित है; लेकिन फिर अनेक तीन, चार यहां तक कि पांच ले कर भी गठित हुए हैं। इन सब युक्तताराओंका दूरत्व कभी भी अधिक देखा नहीं जाता। वह दूरत्व "१से ३२" से अधिक नहीं है। दो ताराओंके परस्पर निकटवर्त्ती रहनेसे ही वे युक्ततारा कहे जायंगे, सो नहीं। प्रकृत युक्तताराओंमेंसे केवल दो तारे जो एक दूसरेके नजदीक रहते हैं, सो नहीं, बल्कि वे एक दूसरेके चारों ओर परिभ्रमण करते हैं, प्रथम परिमाणके ताराओंमें प्रत्येक छठां तारा बहुतारा है। इसकी अपेक्षा क्षुद्र ताराओंमें बहुताराकी संख्या अपेक्षाकृत विरल है। किसी किसी जगह पर एक तारा दूसरेकी अपेक्षा कहीं बड़ा है; जैसे कालपुरुषके अन्तर्गत रिगेल (वट्वह्नि)। किन्तु अकसर युक्तताराओंकी ज्योति प्रायः एक सी है। अधिकांश स्थानोंमें युक्ततारागण एक वर्णके हैं। किन्तु उनमें एक-पञ्चमांश ताराओंमें वर्णभेद देखा जाता है।

२० वर्ष तक खोज करनेके बाद ८०२ ई०में हर्शेल साहबने यह मत प्रकाशित किया, कि युक्ततारागण परस्पर संश्लिष्ट दो वा दोसे अधिक तारामण्डल हैं, वे नियमित कक्षावृत्तमें साधारण भारकेन्द्रके चारों ओर घूमते हैं। सौर जगत्में गतिका जो नियम प्रवर्त्तित है, उनमें उसी नियमका प्रचलन देखा जाता है, और उनका कक्षावृत्त दीर्घवृत्ताकृति (Elliptical) का है। अतएव ये सब दूरवर्त्ती जड़मण्डल महात्मा न्यूटनके मध्याकर्षण-सम्बन्धीय नियमके वशवर्त्ती हैं। उनमेंसे फिर बहुतोंका प्रदक्षिणके समय स्थूल रूपसे निरूपित हुआ है। हर्कित्तलिसके अन्तर्गत एक तारेका प्रदक्षिण समय ३० वर्ष है। यही सबसे कम है। दूसरे दूसरे ताराओंके प्रदक्षिणका समय एक सौ वर्ष निश्चित

हुआ है। जिन सब स्थानोंमें लम्बन मालूम है, वहां कक्षावृत्तका आयतन निरूपित किया जाता है। इस उपायसे ज्योतिर्विद् पण्डितोंने यह अवधारण किया है कि राजहंस (Cygnus) नक्षत्रके अन्तर्गत ६१ युक्त ताराओंके परस्पर चारों ओर जो कक्षावृत्त है, वह आयतनमें सूर्यके चारों ओर नेपचुनका जो कक्षावृत्त है उससे कहीं बड़ा है। इस प्रकार परिभ्रमणवशतः पहले जो सब तारे पृथक् पृथक् देखे जाते थे, अभी उनमेंसे अनेक एक साथ मिले हुए देखे जाते हैं। हेलिसाहबने निर्द्धारण किया है कि ताराओंकी प्रकृत गति एक दूसरी तरहकी है। एक तारा भिन्न भिन्न दिशामें जा कर गायब हो जाता है। इस कारण प्रयुक्त नक्षत्रोंकी आकृति धीरे धीरे परिवर्त्तित होती है। हाम्बोल्टका कहना है, कि दक्षिण दिक्स्थ क्रुश नक्षत्र चिरकाल तक ठीक वर्त्तमान आकृतिविशिष्ट नहीं रहेगा। क्योंकि जिन चार ताराओंको ले कर उक्त नक्षत्र गठित हुआ है, वे भिन्न भिन्न मार्ग हो कर असमान वेगसे भ्रमण करते हैं। इस सम्पूर्ण रूपसे भग्न हो जानेमें कितने हजार वर्ष लगेंगे, उसकी गणना नहीं।

ज्योतिःशास्त्रमें जिस प्रकार लिखा है, उसका विषय गौर कर देखना आवश्यक है, सूर्य उत्तरायण और दक्षिणायन गतिसे आकाशमण्डलमें परिभ्रमण करते हैं, इन दो सीमाओं वा रेखाओंके मध्य पृथ्वीका जो अंश पतित होता है, उसका नाम मध्यखण्ड है। इस खण्डमें बारह राशि और उसके अन्तर्गत १०१६ नक्षत्र देखनेमें आते हैं। गगनमण्डलके उत्तर जो अंश हैं, उसे उत्तरखण्ड कहते हैं। उसके मध्य ३५ राशि अर्थात् पुञ्ज हैं और तदन्तर्गत १४५६ नक्षत्र हैं। दक्षिणकी ओर जो खण्ड है उसके मध्य ४६ राशि और तदन्तर्गत ८८५ नक्षत्र अवस्थित हैं, यह पाश्चात्य ज्योतिर्विदोंने स्थिर किया है।

उस मध्यखण्डमें जो सब नक्षत्र हैं, उनमेंसे बहुतोंको ले कर एक एक आकृतिकी कल्पना करके पुराकालमें ज्योतिर्विद् पण्डितोंने बारह वर्ग राशि स्थिर की है।

विषुवरेखाके उत्तरकी ओर मेषादि ६ राशि हैं और दक्षिण ओर तुला आदि ६ राशि तिर्य्यक्भावसे अवस्थित है। गगनमण्डलके इन तीन खण्डोंमें जिन सब नक्षत्रोंका विषय कहा गया है उनके सिवा दूरवीक्षणयन्त्रकी सहायतासे अनेक नक्षत्र दृष्टिगोचर होते हैं।

भारतवर्षीय ज्योतिविदोंने उत्तर और दक्षिण खण्डमें जो सब राशि और नक्षत्र है, उनका कोई उल्लेख नहीं किया। इसी कारण किसी ज्योतिर्ग्रन्थमें उन सब राशियों और नक्षत्रोंके नाम नहीं मिलते।

किन्तु उन्होंने मध्यखण्डस्थ मेषादिक्रमसे बारह राशिभुक्त २७ नक्षत्रोंके नाम रखे हैं। साधारण लोगोंका विश्वास है, कि अश्विनीसे ले कर रेवती तक जो २७ नक्षत्र गिने जाते हैं, वे सिर्फ २७ हैं, सो नहीं। सूर्यसिद्धान्त आदि ग्रन्थोंमें अश्विनी प्रभृति एक एक नक्षत्र नहीं हैं उनमेंसे कोई तो एक और कोई उससे भी अधिक नक्षत्रोंसे विरचित हैं।

अश्विनी, इसमें तीन नक्षत्र हैं। इन तीन नक्षत्रोंका अवस्थान अश्वके जैसा है, इसीसे इसका नाम अश्विनी पड़ा है, इत्यादि। इन नक्षत्रोंकी आकृति और अवस्थानादिके विषयमें खगोल देखो। २७ नक्षत्रोंके नाम ये हैं—अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्या, अश्लेषा, मघा, पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, उत्तराषाढ़ा, मूला, पूर्वाषाढ़ा, श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद और रेवती। अभिजित् नामक एक नक्षत्र और है, किन्तु यह नक्षत्र भिन्न नक्षत्र नहीं है, इन्हीं २७ नक्षत्रोंके अन्तर्गत है।

इन २७ नक्षत्रोंके प्रति नक्षत्रको चार भाग करके उसके नौ नौ पाद अर्थात् भागमें एक एक राशि ठीक करके बारह राशियोंमें नक्षत्रचक्र विभक्त किया गया है। इसीसे उन नक्षत्रोंको राशिचक्र भी कहते हैं।

कोई कोई नक्षत्र ऊर्द्ध्वमुख और कोई अधोमुख वा तिर्य्यङ्मुख है, इनमेंसे आर्द्रा, पुष्या, धनिष्ठा शतभिषा, श्रवणा, रोहिणी, उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तरभाद्रपद ये सब नक्षत्र ऊर्द्ध्वमुख है; मूला, अश्लेषा, कृत्तिका, विशाखा, भरणी, मघा, पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, और पूर्वभाद्रपद ये सब नक्षत्र अधोमुख हैं। अश्विनी, रेवती, हस्ता, चित्रा, स्वाति, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, मृगशिरा और अनुराधा

इन सब नक्षत्रोंका एक एक अधिपति निर्दिष्ट है। यथा—अश्विनीका अश्वि, भरणीका यम, कृत्तिकाका, दहन, रोहिणीका कमलज, मृगशिराका शशी, आर्द्राका शूलभृत्, पुनर्वसुका अदिति, पुष्याका जीव, अश्लेषाका फणी, मघाका पितृगण, पूर्वफल्गुनीका योनि, उत्तरफल्गुनीका अर्यमा, हस्ताका दिनकृत्, चित्राका त्वष्टा, स्वातिका पवन, विशाखाका शक्राग्नि, अनुराधाका मित्र, ज्येष्ठाका शक्र, मूलाका निऋति, पूर्वाषाढ़ाका तोय, उत्तराषाढ़ाका विश्वविरिञ्चि, श्रवणाका हरि, धनिष्ठाका वसु, शतभिषाका वरुण, पूर्वभाद्रपदका अजैकपाद, उत्तरभाद्रपदका अहिर्बुध्न और रेवतीका पुष्पा अधिपति है। नक्षत्रके नामसे मासका नामकरण हुआ है, यथा—कृत्तिका और रोहिणी इन दो नक्षत्रोंसे कार्त्तिक, मृगशिरा और आर्द्रासे अग्रहायण, पुनर्वसु और पुष्यासे पौष, अश्लेषा और मघासे माघ, पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी और हस्तासे फाल्गुन, चित्रा और स्वातीसे चैत्र, विशाखा और अनुराधासे वैशाख, ज्येष्ठा और मूलासे ज्यैष्ठ, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ासे आषाढ़, श्रवणा और धनिष्ठासे श्रावण, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपदसे भाद्र, रेवती, अश्विनी और भरणीसे आश्विन।

उन सब मासोंकी पूर्णिमा तिथिमें वे ही सब नक्षत्र होंगे, अर्थात् कार्त्तिकमासकी पूर्णिमा तिथिमें कृत्तिका अथवा रोहिणी नक्षत्र होगा। इसी प्रकार सभी महीनोंमें जानना चाहिये। इस तरह नामकरणका कारण मालूम करनेमें यह साफ साफ जाना जाता है कि पृथ्वी जब जिस राशिमें ठहरती है, तब उसी राशिके स्थितिकालमें उसी नक्षत्रके नामसे मासका उल्लेख हुआ है। किन्तु जिस राशिमें पृथ्वी जब स्थित रहती है, उस समय उसी राशिसे उसकी सातवीं राशिमें सूर्य देखे जाते हैं और उसी उसी राशिकी सातवीं राशिमें वे अस्त होते हैं। अर्थात् जब पृथ्वी विशाखा नक्षत्रमें अर्थात् तुला राशिमें स्थित रहती है, उस समय सूर्य मेषराशिमें देखे जाते हैं। इसी प्रकार सभीका विषय जानना चाहिये।

गगनमण्डलको तीन भागोंमें विभक्त कर उनमेंसे जिन सब नक्षत्रोंका उल्लेख किया गया है, उसके मध्यखण्डमें बारह राशि और तदन्तर्गत २७ नक्षत्र हैं। उन २७ नक्षत्रोंको बारह भाग करके उसकी एक एक राशि नौ पद नक्षत्रमें हुआ करती है। उस गगनमण्डलकी मध्यखण्डाश्रित राशियोंका परिभ्रमण करनेमें किसका कितना समय लगेगा, वह नीचे दिये जाता है। इसके द्वारा उनकी गति और दूरी जानी जा सकती है। ग्रहगण नक्षत्रपुञ्जस्वरूप राशिचक्रका परिभ्रमण करते हैं। उनमेंसे रविको बारह राशिभ्रमण करनेमें एक वर्ष लगता है, अर्थात् मेषराशिके अन्तर्गत अश्विनी नक्षत्रके प्रथमपादसे भ्रमणका आरम्भ कर फिरसे उस स्थान पर आजानेमें एक एक वर्ष लगता है। इसी प्रकार चन्द्रको २७ दिन, मङ्गलको ५४० दिन, बुधको २१६ दिन, वृहस्पतिको १२ मास, शुक्रको ३३६ दिन, शनिको ३० वर्ष, राहु और केतुको १८वर्ष लगता है।

ग्रहोंको बारह राशि भ्रमण करनेमें जो समय लगता है, उसे बारह भाग करनेसे जो काल होता है, वह काल एक एक राशि भ्रमण करनेका निर्दिष्ट समय है। नौ पादनक्षत्रमें एक राशि होती है। उस राशिके भोगकालको ९से भाग देनेसे जो बच जाता है, उसका चौथाई काल एक एक नक्षत्र-भ्रमण करनेका काल है।

रविको एक राशिके भ्रमणका काल १ मास है, अर्थात् अश्विनी नक्षत्रके प्रथम पादसे शुरू कर कृत्तिका पूर्ण एक पाद परिभ्रमण करनेमें १ मास लगता है। इस प्रकार चन्द्रको २।१५ दण्ड, मङ्गलको ४५ दिन, बुधको १८ दिन, वृहस्पतिको १ वर्ष, शुक्रको २८ दिन, शनिको २ वर्ष ६ मास, राहु और केतुको १ वर्ष ६ मास समय लगता है। इसके द्वारा गगनमण्डलके द्वादश भागमें अर्थात् द्वादश राशिको किस राशिमें कौन ग्रह किस समय अवस्थित रहेगा तथा उस राशिके अन्तर्गत नक्षत्रोंमें कब तक भ्रमण करेगा, वह मालूम हो जायेगा।

एकमात्र नक्षत्रानुसार ही राशिकी दशा आदिका निरूपण किया जाता है, उसके फलाफल नाना प्रकारके लिखे गये हैं।

नक्षत्रमान।—जिस किसी नक्षत्रके उदयसे ले कर फिर-

से उदय होनेमें जो समय लगता है, उसे एक नाक्षत्र अहोरात्र कहते हैं। नक्षत्रमान इस प्रकार है—६० अनुपलका एक विपल, ६० विपलका एक पल, ६० पलका एक दण्ड, ६० दण्डका एक नाक्षत्रअहोरात्र, ३० नाक्षत्र अहोरात्रका एक नक्षत्रमास और बारह नक्षत्र मासका एक नाक्षत्र वर्ष होता है। ३६६ अहोरात्र १५।३१।२४ अनुपलका एक सौर वर्ष होता है। अतएव सावन ३६५ दिन १५।३।२४ अनुपलका एक नाक्षत्र अहोरात्रसे अधिक होता है। नक्षत्रोंका उदय देख कर इस नक्षत्रकालका निश्चय होता है। किसी विशेष नक्षत्रके उदय स्थानसे पुनर्वार उसी स्थान पर आनेमें जो समय लगता है, वह किसी प्रकार किसी यन्त्र द्वारा स्थिर करनेसे उस काल द्वारा एक नाक्षत्र अहोरात्रका परिमाण स्थिर होता है। इस नाक्षत्र अहोरात्रका प्रतिदिन बराबर रहता है। नाक्षत्र अहोरात्रमें भी बारह लग्न होते हैं। इस नाक्षत्र दिनके द्वारा परमायु और दशा आदिकी गणना होती है।

नक्षत्रका जाति-निरूपण-अश्विनी और शतभिषा, अश्वजाति; रेवती और भरणी हस्ती, कृत्तिका अजा; रोहिणी और मृगशिरा सर्प, आर्द्रा, हस्ता और स्वाति व्याघ्र, पुनर्वसु मेष पुष्या, अश्लेषा और मघा इन्दुर; पूर्वफल्गुनी और चित्रा महिष; विशाखा और अनुराधा हरिण; ज्येष्ठा कुक्कुर; मूला और श्रवणा वानर; पूर्वाषाढ़ा नकुल; धनिष्ठा पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद सिंह जातिका है। नक्षत्र द्वारा नाम और राशि निर्द्धारित होती है। वह नक्षत्रानुयी नामकरण शतपदचक्रानुसार हुआ करता है। नक्षत्रके चार पादमें चार अक्षर रहेंगे। उस नक्षत्रके मध्य जन्म समय स्थिर कर नक्षत्रके किस पादमें जन्म हुआ है, वह स्थिर करना होता है। पीछे जिस पादमें जन्म होगा नक्षत्रके उस पादमें लिखित नामोंका आदि अक्षर होगा। किस नक्षत्रके किस पादमें जन्म होनेसे क्या नाम होगा उसका विषय नीचे दिया जाता है।

"अ इ उ ए कृत्तिका, ओ व वी वु रोहिणी, वे वो क कि मृगशिरा, कु घ ङ छ आर्द्रा, के को ह हि पुनर्वसु, हु हे हो ड पुष्या, डि डु डे डो अश्लेषा, म मि मु मे मघा, मो ट टि टु पूर्वफल्गुनी, टे टो प पि उत्तरफल्गुनी, पु ष ण ठ हस्त, पे पो र रि चित्रा, रु रे रो त स्वाति, ति तु ते तो विशाखा, न नि नु ने अनुराधा, नो य यि यु ज्येष्ठा, ये यो भ भि मूल, भू ध फ ढ़ पूर्वाषाढ़ा, भे भो ज जि उत्तराषाढ़ा, जु जे जो ख अभिजित्, खि खु खे खो श्रवणा, ग गि गु गे धनिष्ठा, गो स सि सु शतभिषा, से सो द दि पूर्वभाद्रपद, दु थ झ ञ उत्तरभाद्रपद, दे दो च चि रेवती, चु चे चो ल अश्विनी, लि लु ले लो भरणी।"

इनमेंसे जिस किसी नक्षत्रमें जन्म होगा, उस जन्म नक्षत्रका कितना दण्ड है, पहले उसका निर्णय करना चाहिये। नक्षत्रको चार भाग करके उनमेंसे जिस भागमें जन्म होगा, वही पाद जानना होगा। प्रति नक्षत्रमें चार चार करके अक्षर सन्निविष्ट हैं। नक्षत्रके जिस पादमें जन्म होगा, उस पादमें जो अक्षर रहेगा, वही अक्षर आदि अक्षर होगा। जैसे कृत्तिका नक्षत्रके प्रथम पादमें जन्म होनेसे अकार, द्वितीय पादमें इकार, तृतीय पादमें उकार और चतुर्थ पादमें एकार आदि पर नाम होगा। इसी प्रकार और सभी नक्षत्रोंका विषय जानना चाहिये। नाक्षत्रिक दशा और राशि आदिका विवरण दशा और राशि शब्दमें देखो। किस नक्षत्रमें जन्म होनेसे जातबालक किस प्रकारका गुणसम्पन्न होगा, वह प्रत्येक नक्षत्रके नाम और अपरापर विवरण खगोल शब्दमें लिखा है।

२ हारविशेष, २७ नरहारका नाम नक्षत्रमाला है। नक्षत्रमाला देखो।

नक्षत्रकल्प (सं० पु०) अथर्ववेदका परिशिष्टविशेष। इसमें चन्द्रकी अवस्थितिका विषय वर्णित है।

नक्षत्रकान्तिविस्तार (सं० पु०) नक्षत्रकान्तीनां विस्तारो यत्र। धवल यावनाल, सफेद ज्वार।

नक्षत्रकूर्मविभाग (सं० पु०) नक्षत्रकूर्मका विभाग अर्थात् राशिकी प्रधानताके अनुसार देशका अवस्थानभेद।

नक्षत्रगण (सं० पु०) नक्षत्रघटितो गणः समुदायभेदः। नक्षत्रविशेषका समुदायात्मक गणभेद। इस नक्षत्रगणका विषय बृहत्संहितामें इस प्रकार लिखा है—रोहिणी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद और उत्तरफल्गुनी नक्षत्र ध्रुवगण है अर्थात् ध्रुवगण कहनेसे यही सब नक्षत्र पाये जायेंगे। इस ध्रुवगणमें अभि-

षेक, शान्ति, तरु, नगर, बीज और सभी ध्रुवकार्य आरम्भ करना उचित है। मूला नक्षत्र एवं शिव, शक्र और भुजग जिनके अधिपति हैं, वे सब नक्षत्र तीक्ष्णगण हैं। इस तीक्ष्णगणमें अभिघात, मन्त्र, वेताल, बन्ध, बध और भेद संबन्धीय कार्य सिद्ध होते हैं। पूर्वाषाढ़ा, पूर्वफल्गुनी, पूर्वभाद्रपद, भरणी और पितृ नक्षत्रमें उग्रगण होते हैं। उग्रगण नक्षत्र उत्सादन, नाश, शाठ्य, बन्धन, विष, दहन, और शस्त्राघात आदिके सिद्धिलाभके लिये प्रयोज्य हैं। हस्ता, अश्विनी और पुष्या इन तीन नक्षत्रोंमें लघुगण होते हैं। इस लघुगणमें पुण्यकर्म, रति, ज्ञान, भूषण आदि सिद्धिदायक हैं। अनुराधा, चित्रा, पौष्ण और इन्द्राधिपति नक्षत्र मृदुगण हैं। इन मृदुगणमें सुरत, विधि, वस्त्र, भूषण और मङ्गलगीत आदि हितकर होते हैं। विशाखा और कृत्तिका नक्षत्रमें मृदु-तीक्ष्णगण हैं। यह मृदु तीक्ष्णगण विमिश्र फलदायक होते हैं। श्रवणा, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्र तथा वायु और सूर्य जिन सब नक्षत्रोंके अधिपति हैं, वे सब नक्षत्र चरगण हैं। यह चरगण चरकर्ममें हितकर माने गये हैं। (वृहत्संहिता ९८ अ०)

नक्षत्रचक्र (सं० क्लो०) नक्षत्राणां चक्रं यत्र। १ राशिचक्र २ तन्त्रोक्त दीक्षोपयोगी चक्रभेद। शिष्यको मन्त्र देते समय गुरुको चाहिये कि वे नक्षत्रचक्र आदि चक्रसमूह द्वारा मन्त्र स्थिर कर लें। तन्त्रसारमें यह चक्र इस प्रकार लिखा है—

नक्षत्रचक्र—"अ आ अश्विनी देवगणः। इ भरणी मानुषः। ई उ ऊ कृत्तिका राक्षसः। ऋ ॠ ऌ ॡ रोहिणी मानुषः। ए मृगशिरो देवः। ऐ आर्द्रा मानुषः। ओ औ पुनर्वसुर्देवः। क पुष्यो देवः। ख ग अश्लेषा राक्षसः। घ ङ मघा राक्षसः। च पूर्वफल्गुनी मानुषः। छ ज उत्तरफल्गुनी मानुषः। झ ञ हस्ता देवः। ट ठ चित्रा राक्षसः। ड स्वाति देवः। ढ ण विशाखा राक्षसः। त थ द अनुराधा देवः। ध न ज्येष्ठा राक्षसः। न प फ मूला राक्षसः। ब पूर्वाषाढ़ा राक्षसः। भ उत्तराषाढ़ा मानुषः। म श्रवणा देवः। य र धनिष्ठा राक्षसः। ल-शतभिषा राक्षसः। श पूर्वभाद्रपदा मानुषः। ष स ह उत्तरभाद्रपदा मानुषः। अं अः क्ष आ रेवती देवः।" (तन्त्रसार)

नक्षत्रचिन्तामणि (सं० पु०) रत्नविशेष, एक प्रकारका कल्पित रत्न। इसके विषयमें यह प्रसिद्ध है कि उससे जो कुछ मांगा जाय, वह मिलता है।

नक्षत्रज (सं० त्रि०) जो नक्षत्रमें उत्पन्न हो।

नक्षत्रजात (सं० क्लो०) नक्षत्रे तद्विशेषे जातं जन्म। नक्षत्रविशेषमें जन्म, किस नक्षत्रमें जन्म लेनेसे कैसा फल होता है, उसका विषय वृहत्संहिताके १०१ अध्यायमें लिखा है।

नक्षत्रताराराजादित्य (सं० पु०) चन्द्र, नक्षत्र और ताराओंके अधिपति सूर्य।

नक्षत्रदर्श (सं० त्रि०) नक्षत्रं पश्यति अवलोकयति इति दृश-अण्। १ नक्षत्रवीक्षक, जो नक्षत्र देखता हो। (पु०) नक्षत्रं तत्फलं दर्शयति सूचयति दृश-णिच अण्। २ गणक, ज्योतिषी।

नक्षत्रदान (सं० क्लो०) नक्षत्रे नक्षत्रविशेषे दानं। नक्षत्रभेदसे द्रव्यविशेषका दान, पुराणानुसार भिन्न भिन्न पदार्थोंका दान। इसका विषय हेमाद्रि दानखण्डमें इस प्रकार लिखा है कृत्तिका नक्षत्रमें पायस, रोहिणीमें माष रत्न, घृत और दुग्ध मृगशिरा नक्षत्रमें सवत्सा धेनु, आर्द्रामें कृशर (खिचड़ी), पुनर्वसुमें अपूप (आटेकी लिट्टी), पुष्यामें सुवर्ण, अश्लेषामें रौप्य, हस्तानक्षत्रमें हस्ती और रथ, चित्रा नक्षत्रमें उत्तमा धेनु, विशाखामें धेनु, अनुराधा नक्षत्रमें उत्तरीय सहित वस्त्र, मूला नक्षत्रमें मूलक, पूर्वाषाढ़ामें बरतन समेत दही और सानी हुआ सत्तू, अभिजित् नक्षत्रमें घृत और मधु, श्रवणामें कम्बल, धनिष्ठामें वस्त्र और धेनु, शतभिषा नक्षत्रमें गन्ध द्रव्य, पूर्वभाद्रपद नक्षत्रमें, राजमाष उत्तरभाद्र, पद नक्षत्रमें मांस, रेवती नक्षत्रमें कांसा और बछड़ा सहित गो आदि दान करनेसे बहुत अधिक पुण्य होता है और अन्तमें उसे स्वर्ग मिलता है। जो ब्राह्मण विद्या विनयादिसे सम्पन्न हों उन्हींको यह दान देना चाहिये।

नक्षत्रनाथ (सं० पु०) नक्षत्राणां नाथः ६-तत्। चन्द्रमा, पुराणानुसार दक्षको अश्विनी आदि सत्ताईस (नक्षत्र) कन्याओंका विवाह चन्द्रमाके साथ हुआ था, इसीलिये चन्द्रमाको नक्षत्रनाथ कहते हैं।

नक्षत्रनेमि (सं० पु०) नक्षत्रस्य तच्चक्रस्य नेमिरिव। १

ध्रुवतारक, ध्रुवतारा। २ चन्द्र, चन्द्रमा। ३ रेवती। ४ विष्णु।

भगवान् विष्णुने तारामय शिशुमारके हृदयमें ठहर कर ज्योतिष्कमण्डलको नेमिकी नाईं चक्राकारमें घुमाया था, इसीसे भगवान् विष्णुका नेमि नाम पड़ा है।

नक्षत्र (सं॰ पु॰) नक्षत्रं पाति रक्षति इति पा-क। चन्द्र, चन्द्रमा।

नक्षत्रपति (सं॰ पु॰) नक्षत्रं पाति पा डति, वा नक्षत्राणां पतिः ६-तत्। चन्द्र, चन्द्रमा।

नक्षत्रपथ (सं॰ पु॰) नक्षत्रोपलक्षितः पन्थाः, अच् समासान्तः। नक्षत्रचक्रका भ्रमणमार्ग, नक्षत्रोंके चलनेका रास्ता। "अतीतनक्षत्रपथानि यत्र।" (माघ) खगोल देखो।

नक्षत्रपुरुष (सं॰ पु॰) नक्षत्रैः पुरुष इव। व्रतविशेष। नक्षत्रसमूहको पुरुष मान कर यह व्रत किया जाता है, इसीसे इसका नाम नक्षत्र-पुरुष-व्रत पड़ा है।

इस व्रतका विषय वृहत्संहितामें इस प्रकार लिखा है—मूलानक्षत्र नक्षत्रपुरुषके दोनों पांव, रोहिणी और अश्विनी दो जङ्घा, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा दो जरु, पूर्वफल्गुनी और उत्तरफल्गुनी गुह्यदेश, कृत्तिका उ-का कटिदेश, पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद दो पार्श्व, रेवती कुक्षिदेश, अनुराधा वक्षस्थल, धनिष्ठा पृष्ठदेश, विशाखा दोनों भुज, हस्तानक्षत्र दोनों हाथ, पुनर्वसु, हस्ताङ्गुलि, अश्लेषा हस्तनख, ज्येष्ठा ग्रीवा, श्रवणा दो कर्ण, पुष्या मुख, स्वाति दन्त, शतभिषा हास्य, मघा नासिका, मृगशिरा दोनों चक्षु, चित्रा ललाटदेश, भरणी मस्तक और आर्द्रानक्षत्र मस्तकस्थित केश होगा।

पूर्वोक्त नक्षत्रों द्वारा उक्त सभी अवयवोंकी कल्पना कर एक नक्षत्रपुरुष कल्पित करना होता है। जो इस व्रतको करेंगे, उन्हें इसी नियमसे नक्षत्रपुरुषकी कल्पना करनी होगी। यह व्रत चैत्रमासकी कृष्णाष्टमीमें मूलानक्षत्रयुक्त चन्द्रमें किया जाता है। इस दिन विष्णु और सभी नक्षत्रोंकी पूजा कर उपवास करना चाहिये। व्रत समाप्त हो जाने पर अपनी शक्तिके अनुसार कालविद्याविशारद पण्डितोंको सुवर्णके साथ घृतपूर्णपात्र और सरल वस्त्र दान देना चाहिये। जो कावण्यकी इच्छा करते हैं, वे और, इताश और गुड़ दे कर ब्राह्मणोंको अर्चनापूर्वक रौप्यसमन्वित वस्त्र उन्हें दान करें, फिर नक्षत्रपुरुषके पादस्थित नक्षत्रसे ले कर क्रमशः मास मासमें उपवास कर उनके अङ्गस्थ सभी नक्षत्रोंमें अपनी विधिके अनुसार विष्णु और उसी नक्षत्रकी पूजा करें। जो पुरुष इस प्रकार व्रताचरण करते हैं, वे कन्दर्प सदृश रूपवान् होते हैं। यदि स्त्रियां यह व्रत करें, तो वे अप्सराओंके सदृश सौन्दर्य लाभ करती हैं, जब तक नक्षत्रमाला आकाशमें विचरण करेगी, तब तक इस व्रतके करनेवाले उन नक्षत्रोंके साथ अवस्थान करेंगे और जब तक इस लोकमें रहेंगे, तब तक राजाओंसे पूजित हो कर काल यापन करेंगे। (वृहत्संहिता ११५ अ॰)

इस व्रतका विषय वामनपुराणके ७७ अध्यायमें विस्तारित रूपसे लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहाँ उसका उल्लेख नहीं किया गया।

नक्षत्रफल (सं॰ क्लो॰) नक्षत्राणां फलं ६-तत्। नक्षत्र समूहका फल।

नक्षत्रभोग (सं॰ पु॰) नक्षत्राणां राशिचक्रस्थितनक्षत्राणां एकैकस्मिं भोगः। नक्षत्रोंका भोग, २१६०० कलात्मक कालमें बराबर बराबर २७ भागोंका एक भाग ८०० सौ कलारूप भोग होता है।

नक्षत्रमान (सं॰ क्लो॰) सूर्यसिद्धान्तोक्त दिनादि मानभेद। नक्षत्र देखो।

नक्षत्रमार्ग (सं॰ पु॰) नक्षत्राणां मार्गः। नक्षत्रोंका विचरण पथ, नक्षत्रोंके चलनेका रास्ता।

नक्षत्रमाला (सं॰ स्त्री॰) नक्षत्रसंख्यका माला। १ वह हार जिसमें सत्ताईस मोती हों। २ नक्षत्रश्रेणी। ३ हाथियोंकी माला।

नक्षत्रमालिनी (सं॰ स्त्री॰) जातोपुष्पवृक्ष।

नक्षत्रयाजक (सं॰ पु॰) नक्षत्रनिमित्तं दुरुत्थं याजयति यज-णिच, ण्वुल्। नक्षत्रदोष शान्तिकारक ब्राह्मणभेद, वह ब्राह्मण जो ग्रहों और नक्षत्रों आदिके दोषोंकी शान्ति करता हो। महाभारतके अनुसार ऐसा ब्राह्मण निकृष्ट और प्रायः चाण्डालके समान होता है।

"आह्वायका देवलका नक्षत्रग्रामयाजकाः।
एते ब्राह्मणचाण्डाला महापथिकपञ्चमाः॥"
(भारत शान्ति॰ ७६ अ॰)

नक्षत्रयोग (सं॰ पु॰) नक्षत्रभेदे योगः ६-तत्। नक्षत्रों-के साथ दुष्ट ग्रहोंका योग।

नक्षत्रयोगिनी (सं॰ स्त्री॰) नक्षत्रैरभिमानितया युज्यते युज-णिनुण्। दाक्षायणी, अश्विनी आदि नक्षत्र।

नक्षत्रयोनि (सं॰ स्त्री॰) नक्षत्राणां योनिः। विवाह आदि-में योनिकूट, वह नक्षत्र जो विवाहके लिये निषिद्ध हो।

नक्षत्रराज (सं॰ पु॰) नक्षत्राणां राजा ६-तत्, ततो टच् समासान्तः। चन्द्र, नक्षत्रोंके अधिपति।

नक्षत्रलोक (सं॰ पु॰) नक्षत्राणां लोकः ६-तत्। नक्षत्रा-धिष्ठित लोकभेद, वह लोक जहां नक्षत्र रहते हैं। काशीखण्डमें लिखा है—

दक्ष-कन्या नक्षत्रोंने जब महादेवके लिये कठिन तपस्या की थी, तब महादेवने खुश हो कर उन्हें वर दिया था, 'तुम लोग ज्योतिश्चक्रमें प्रधान हो कर तथा मेषादि राशियोंका उत्पत्तिस्थान हो कर चन्द्रलोकसे ऊपर एक स्वतन्त्र लोकमें रहोगो। इस लोकमें तुम-लोगोंका खूब आदर होगा। जो तुम्हारी पूजा और व्रतादि करेंगे, वे तुम्हारे इस लोकमें अवस्थान करेंगे।

(काशीख॰ १५ अ॰)

नक्षत्रवर्त्मन् (सं॰ क्ली॰) नक्षत्राणां वर्त्म। नक्षत्रमार्ग, नक्षत्रोंके चलनेका पथ। खगोल देखो।

नक्षत्रविद्या (सं॰ स्त्री॰) नक्षत्राणां तत् स्थितग्रहा-दीनां चारज्ञानाय विद्या। ज्योतिषविद्या। जिस विद्या द्वारा नक्षत्र आदिके विषयका ज्ञान हो उसे नक्षत्र-विद्या कहते हैं।

नक्षत्रवीथि (सं॰ स्त्री॰) नक्षत्रैस्तद्भेदैः कृता वीथिः। आकाशतलमें नक्षत्र कर्तृक कृता वीथि, नक्षत्रोंकी गति-के अनुसार पथविशेषका नाम वीथि है। इसका विषय बृहत्संहितामें इस प्रकार लिखा है—अश्विनी आदि तीन तीन नक्षत्रोंमें एक एक वीथि होती है। यह वीथि नौ भागोंमें विभक्त है, जिनके नाम ये हैं—नाग, गज, ऐरावत, वृषभ, गो, जरद्गव, मृग, अज और दहन। स्वाती, भरणी और कृत्तिका नक्षत्रमें नागवीथि होती है, किन्तु यह सर्ववादिसम्मत नहीं है। गज, ऐरावत और वृषभ नामक जो तीन वीथि हैं। वे रोहिणीसे लेकर उत्तर-फल्गुनी तक तीन तीन नक्षत्रोंमें हुआ करती हैं। अश्विनी, रेवती, पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद नक्षत्रमें गोवीथि; श्रवणा, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रमें जार-द्गवीवीथि; अनुराधा, ज्येष्ठा और मूलानक्षत्रमें मृगवीथि; हस्ता, विशाखा और चित्रा नक्षत्रमें अजवीथि तथा पूर्वा-षाढ़ा और उत्तराषाढ़ा नक्षत्रमें दहनवीथि होती है। इस प्रकार २७ नक्षत्रोंमें ८ वीथि होनेसे प्रत्येक वीथि तीन बार होती है। अतएव उक्त सभी वीथियोंमें तीन तीन वीथि हैं जो रविमार्गके उत्तर, मध्य और दक्षिण मार्गमें अवस्थित हैं। फिर उनको भी एक एक वीथि है जो यथाक्रमसे उत्तर, मध्य और दक्षिण पथमें विद्यमान है। तीन नागवीथि हैं—जिनमेंसे उत्तर मार्गमें पहिली, मध्यपथमें दूसरी और दक्षिणपथमें तीसरी वीथि अवस्थित है। किसी किसी ज्योतिर्विद्का कहना है, कि नक्षत्रसमूहके नक्षत्रमार्गवर्त्ती योगतारागण उत्तर मध्य और दक्षिण भागमें जिस प्रकार अवस्थित हैं, वीथिमार्ग भी उसी भावमें अवस्थित है। इस मार्गका निरूपण करनेमें कोई कोई पण्डित भरणीसे उत्तरमार्ग, पूर्वफल्गुनीसे मध्यम मार्ग और पूर्वाषाढ़ासे दक्षिण मार्ग ऐसी गणना करते हैं।

शुक्र जिस समय उत्तर वीथिमें रह कर उदय वा अस्त होते हैं, उस समय देशमें सुभिक्ष और मङ्गल होता है। मध्य वीथिमें रहनेसे मध्यफल और दक्षिण वीथिमें रहने-से मन्दफल होता है। आर्द्रा नक्षत्रसे ले कर मृगशिरा तक जो नौ वीथि होंगी, उनमें शुक्रके उदय वा अस्त होनेसे यथाक्रम अत्युत्तम, उत्तमतर और उत्तम, सम, मध्य और न्यून अथवा मन्द, मन्दतर और मन्दतम फल होता है। (बृहत्संहिता ९ अ॰) अन्यान्य फल शुक्रचारमें देखो।

नक्षत्रवृष्टि (सं॰ पु॰) तारापतन, उल्कापात होना, तारा टूटना।

नक्षत्रव्यूह (सं॰ पु॰) नक्षत्राणां व्यूहः समूहः। पुरुष और द्रव्य विशेषका शुभाशुभसूचक नक्षत्रसमूह। बृहत् संहितामें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—सित-कुसुम, अग्निहोत्री, मन्त्रज्ञ, सूत्रभाष्यज्ञ, आकरिक, क्षौर-कार, ब्राह्मण, कुम्भकार, पुरोहित और दैवज्ञ ये सभी कृत्तिका नक्षत्रके अधीन हैं अर्थात् इन सब द्रव्योंका शुभा-शुभ कृत्तिका नक्षत्रसे जाना जाता है। सुगन्ध, पक्वान्न

वस्तु, राजा, धनवान्, योगी, शाकटिक, गो, वृष, जलचर, कृषक, पर्वत और ऐश्वर्य-सम्पन्नगण रोहिणीके अधीन हैं। सुरभि, वस्त्र, पद्म, कुसुम, फल, रत्न, वनचर, विहङ्ग, मृग, याज्ञिक, गन्धर्व, कामुक और पत्रवाहकगण मृगशिरा नक्षत्रके आयत्त हैं। उत्तम धान्य, सत्य, औदार्य, शौच, कुल, रूप, बुद्धि, यश, सेवा और वणिक् समूह पुनर्वसु नक्षत्रके अधीन हैं। यव, गोधूम, सब प्रकारको शाली इक्षुवर्ग, मन्त्रज्ञगण, समस्त नृपति, जलजीवी और याज्ञिकगण पुष्या नक्षत्रके अधीन हैं। कृत्रिम, कन्दमूल फल, कीट, पन्नग, विष, तुष, धान्य, परस्वापहारी और भिषक् अश्लेषा नक्षत्रके आयत्त हैं। शस्यागार और समस्त गृह, अर्थशाली वणिक्, शूरगण, कृषक और स्त्रीद्वेषी व्यक्तिगण मघा नक्षत्रके वशीभूत हैं। नट, युवती, सुभग, गायक, शिल्पी, शुभादृष्ट, कपास, लवण, मधु, तैल और कुमारगण पूर्वफल्गु नी नक्षत्रके अधीन माने गये हैं। इनका विस्तृत विवरण बृहत्संहिताके १५ अध्यायमें देखो।

नक्षत्रव्रत (सं० क्ली०) नक्षत्रनिमित्तं व्रतं। नक्षत्र निमित्तक व्रतभेद। एक एक नक्षत्रके उद्देश्यसे जो व्रत किया जाता है, उसे नक्षत्रव्रत कहते हैं, तिथितत्त्वमें सामान्य रूपसे नक्षत्रव्रतके कालका निर्णय हुआ है। यथा—जिस नक्षत्रमें सूर्य अस्त होंगे, उसे नक्षत्र रात्र और जिस नक्षत्रमें उदय होंगे, उसे नक्षत्र दिन कहते हैं। इस नक्षत्र दिवारात्रके मध्य जिस नक्षत्रमें सूर्य अस्त होंगे, उसी दिन उपवास करना चाहिये, अर्थात् उसी दिन व्रताचरण विधेय है।

"तन्नक्षत्रमहोरात्रं यस्मिन्नस्तं गतो रविः।
यस्मिन्नुदेति सविता तन्नक्षत्रं दिनं स्मृतं॥
उपोषितव्यं नक्षत्रं येनास्तं याति भास्करः।
यत्र वा युज्यते राम निशीथे शशिना सह॥" (तिथितत्त्व)

इस व्रतका विषय हेमाद्रिके व्रतखण्डमें भविष्यपुराणसे इस प्रकार लिखा गया है—

"इत्येते कथिताः कृष्ण तिथियोगा मया तव।
नक्षत्रदेवताः सर्वाः नक्षत्रेषु व्यवस्थिताः॥"

(हेमाद्रि व्रतख०)

नक्षत्रव्रतमें नक्षत्रके अधिष्ठात्री देवताओंकी पूजा करनी होती है। अश्विनी नक्षत्रमें दोनों अश्विनीकुमारका पूजन कर इस व्रतका आचरण करना चाहिये। इस अश्विनीनक्षत्रमें यह व्रत करनेसे दीर्घायु लाभ होता है तथा सभी व्याधियां नाश होती हैं। भरणीमें यमका और कृत्तिकामें अनलका पूजन कर उपवासादिका व्रतानुष्ठान करना चाहिये, इसी प्रकार सभी नक्षत्रोंके उद्देशसे व्रताचरण करनेका विधान है। किसी नक्षत्रका व्रत क्यों न हो, उस नक्षत्रके अधिपति पूजनीय समझे जाते हैं। इस व्रतका विशेष विधान हेमाद्रिके व्रतखण्डमें देखो।

नक्षत्रशवस् (सं० त्रि०) देवताओंके प्रतिगमनशील स्तोतृसमूह।

नक्षत्रशूल (सं० पु०) नक्षत्राः शूला-इव। पूर्वादि दिशाओंमें यात्राकालीन निषिद्ध नक्षत्रविशेष, फलित ज्योतिषमें कालका वह वास जो किसी विशिष्ट दिशामें कुछ विशिष्ट नक्षत्रोंके होनेके कारण माना जाता है। शूलविद्ध होनेसे जैसा अनिष्ट होता है, इन सब नक्षत्रोंमें यात्रा करनेसे वैसा ही अनिष्ट हुआ करता है, इसी कारण इसे नक्षत्रशूल कहते हैं। यदि पूर्व दिशामें श्रवणा या ज्येष्ठा, दक्षिणमें अश्विनी या उत्तरभाद्रपद, पश्चिममें रोहिणी या पुष्या और उत्तरमें उत्तरफल्गुनी या हस्ता नक्षत्र हो, तो उस दिशामें यात्रा आदिके लिये नक्षत्रशूल माना जाता है।

नक्षत्रसत्र (सं० क्ली०) नक्षत्रनिमित्तं सत्रः। नक्षत्र निमित्तक यज्ञभेद। पुराणके अनुसार एक प्रकारका यज्ञ जो नक्षत्रके निमित्त किया जाता है। यह यज्ञ नक्षत्र मासके अनुसार होता है।

नक्षत्रसन्धि (सं० पु०) नक्षत्रयोः सन्धिः। पूर्वनक्षत्रसे उत्तरनक्षत्रमें चन्द्रादि ग्रहोंकी गतिरूप संक्रान्ति।

नक्षत्रसाधक (सं० पु०) महादेव, शिव।

नक्षत्रसाधन (सं० क्ली०) नक्षत्रं साध्यते ज्ञायते अनेन साधिकरणे ल्युट्। ग्रहोंकी नक्षत्रमाससाधन गणनाभेद, वह गणना जिसके अनुसार यह जाना जाता है कि किस नक्षत्र पर कौनसा ग्रह कितने समय तक रहता है। यह गणना सिद्धान्त-शिरोमणि आदि ग्रन्थोंमें विशेष रूपसे लिखी गई है।

नक्षत्रसूचक (सं० पु०) नक्षत्राणि शुभाशुभतया सूचयति सूच-ल्युट्। सिद्धान्ताभिज्ञ ज्योतिर्विद्, वह ज्योतिषी

जो स्वयं भारी गणना आदि न कर सकता हो, केवल दूसरोंके मतके अनुसार ज्योतिषसंबन्धी साधारण काम करता हो।

शास्त्रके जाने बिना जो अपनेको ज्योतिषी बतलाते हैं उन्हें पंक्तिदूषक, पापी वा नक्षत्रसूचक कहते हैं, अथवा जो तिथिकी उत्पत्ति और ग्रहोंके साधनसे अवगत नहीं हैं अथवा दूसरोंके मतानुसार चलते हैं, उन्हें भी नक्षत्र-सूचक कहते हैं।

नक्षत्रसूची (सं॰ पु॰) नक्षत्रसूचक देखो।

नक्षत्रामृत (सं॰ स्त्री॰) योगविशेष, बारह निर्दिष्ट नक्षत्रोंका जब योग होता है, तब उसे नक्षत्रामृत योग कहते हैं। इस योगका विषय ज्योतिःसारसंग्रहमें इस प्रकार लिखा है*—रविवारमें हस्ता, उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, रोहिणी, पुष्या, मूला और रेवती नक्षत्र; सोमवारमें श्रवणा, धनिष्ठा, रोहिणी, मृगशिरा, उत्तरफल्गुनी, पूर्वभाद्रपद, अश्विनी, हस्ता और उत्तरभाद्रपद; मङ्गलवारमें रेवती, पुष्या, अश्लेषा, कृत्तिका, स्वाति और उत्तरभाद्रपद; बुधवारमें अनुराधा, शतभिषा, रोहिणी, कृत्तिका और स्वाती; गुरुवारमें पुष्या, पुनर्वसु, और अनुराधा; शुक्रवारमें अश्विनी, श्रवणा, उत्तरभाद्रपद, उत्तरफल्गुनी, पूर्वभाद्रपद, पूर्वफल्गुनी और अनुराधा तथा शनिवारमें रोहिणी वा स्वाती नक्षत्रका योग होनेसे यह नक्षत्रामृतयोग होता है। यात्रा कार्यमें इस नक्षत्रामृतका योग सर्वश्रेष्ठ है। नक्षत्रामृतयोग होनेसे विष्टि और व्यतीपातादि निषिद्ध योगोंका दोष नहीं रहता। जिस प्रकार सूर्योदय होनेसे अन्धकारराशि विनष्ट होती है, उसी प्रकार इस नक्षत्रामृतके योगमें सभी दोष नाश हो जाते हैं। (ज्योतिःसारसंग्रह)

यह नक्षत्रामृत योग और सिद्धियोग यदि एक दिनमें हो तो उस दिन यात्रा नहीं करनी चाहिये, इस योगको विषयोग कहते हैं।

नक्षत्रविद (सं॰ पु॰) एक वैदिक देवता जिनका नक्षत्रोंमें रहना माना है।

नक्षत्रिन् (सं॰ पु॰) नक्षत्रमस्त्यस्य इति इनि। १ चन्द्रमा। २ विष्णु।

नक्षत्रिय (सं॰ पु॰) नक्षत्राय हितः नक्षत्र-घ। १ नक्षत्राधिष्ठित देवभेद, नक्षत्रोंमें स्थापित एक देवता। २ क्षत्रिय भिन्न, वह जो क्षत्रिय न हो।

नक्षत्री (हिं॰ वि॰) जो अच्छे नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ हो, भाग्यवान्, खुशकिस्मत।

नक्षत्रेश (सं॰ पु॰) नक्षत्राणां ईशः। १ चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर। ३ शुक्ति, सीप।

नक्षत्रेश्वर (सं॰ पु॰) नक्षत्राणां ईश्वरः। १ चन्द्रमा। २ नक्षत्रोंसे काशीमें स्थापित शिवलिङ्गभेद। इसका विषय काशीखण्डमें इस प्रकार लिखा है—

नक्षत्रोंने काशीमें शिवलिङ्गकी स्थापना करके कठोर तपस्या की थी, वही शिवलिङ्ग नक्षत्रेश्वर नामसे प्रसिद्ध है। जो काशीमें नक्षत्रेश्वर महादेवका दर्शन करते हैं, उन्हें नक्षत्रग्रह और राशिसे कभी कष्ट नहीं होता।

विस्तृत विवरण काशीखण्डके १० अध्यायमें देखो।

नक्षत्रेष्टि (सं॰ स्त्री॰) नक्षत्रनिमित्ता इष्टिः मध्यपदलोपि कर्मधा॰। नक्षत्रनिमित्तक यज्ञभेद, नक्षत्र-निमित्तक अर्थात् नक्षत्रके उद्देशसे जो यज्ञ किया जाता है, उसे नक्षत्रेष्टि कहते हैं।

नक्षत्रेष्टका (सं॰ स्त्री॰) इष्टकाभेद, एक प्रकारका यज्ञ।

नक्षद्दाभ (सं॰ त्रि॰) अभिगमनकारी शत्रुओंके हिंसाकारक।

नक्ष्य (सं॰ त्रि॰) उपगमनीय, उपगन्तव्य, नजदीक पहुंचनेके योग्य।

नख (सं॰ स्त्री॰) नह्यते इव शरीरे नह-ख, ततो हलोपश्च (नहेर्हलोपश्च। उण् ५।२३) अङ्ग विकण्टक, उँगलीके

* "ध्रुवगुरुकरमूला पौष्णभान्यर्कवारे,
हरियुगविधियुग्मे फल्गुनीभाद्रयुग्मे।
दिवसकरतुरंगौ शर्वरीनाथवारे,
गुरुयुगनलवातोपान्त्य पौष्णानि कौजे॥
दहनविधिशताह्वया मैत्रभं सौम्यवारे,
मरुददितिभपुष्या मैत्रभं जीववारे।
भगयुगजयुगश्वो विष्णुमैत्रे सिताहे,
श्वसनकमलयोनिसौरिवारेऽमृतानि॥
यदि विष्टिव्यतिपातौ दिनं वाप्य शुभं भवेत्।
हन्यतेऽमृतयोगेन भास्करेण तमो यथा॥"
(ज्योतिःसारसंग्रह)

अगले भागकी हड्डी, नाखून। पर्याय—पुनर्भव करवह, नखर, कामाङ्कुश, करज, पाणिज, अङ्गुलिसम्भूत, कराग्रज, करकण्टक, स्मराङ्कुश, रतिपथ, करचन्द्र, कराङ्कुश। (शब्दरत्नावली)

गर्भस्थित बालकको ६ महीनेमें नख निकलता है। नख और लोम स्वयं न काटना चाहिये और न कि नखको दाँतसे ही काटना चाहिये।

"न छिन्द्यान्नखलोमानि दन्तैर्नोत्पाटयेन्नखान्।"

(मनु ४।६९)

जमीन पर नखसे दाग देना मना है। अङ्गमें नखवाद्य भी नहीं करना चाहिये।

"न नखैर्विलिखेद्भूमिं गाश्च सङ्घट्टयेन्नहि।
न स्वाङ्गे नखवाद्यं वै कुर्य्यान्नाञ्जलिना पिबेत्॥"

(कूर्मपु० उपवि० १५ अ०)

मनुष्य, बानर तथा बहुतसे ऐसे जन्तु हैं जिनके हाथ और पैरकी उंगलियोंके अग्र भागमें नख होते हैं। इतर जन्तुओंके खुर और नखर नखके समजातीय पदार्थ हैं। उपत्वक् रूपान्तरित हो कर नख उत्पन्न करता है। प्रकृत त्वक् (Dermis) अपने छोटे छोटे शिखरोंको फैलाए हुए नखके मूलमें रहता है। उन सब शिखरोंके चारों ओर उपत्वकके सभी कोष देखनेमें आते हैं। ऊपरी भागका कोष चिपटा और नीचेका गोल होता है। उपत्वकके कोष परस्पर एक हो कर क्रमशः घनीभूत होने लगते हैं और अन्तमें अत्यन्त कठिन हो कर नखके रूपमें परिणत हो जाते हैं। इस प्रकार नख जब उंगलीके अग्र भाग पर आ जाता है, तब वह काट डाला जाता है। हाथका नख सप्ताहमें एक इञ्चके तीसवां भागके बराबर और पैरका सप्ताहमें एक इञ्चके एक-सौ बीसवां भागके बराबर बढ़ता है। पीड़ाके समय नखकी वृद्धि नहीं होती और पोषणके अभावसे वह पतला हो जाता है। इसी कारण नखकी अवस्था देख कर कभी कभी रोगका निरूपण किया जाता है। यदि नख नष्ट हो जाय, पर नीचेका त्वक् अक्षत रहे, तो बहुत जल्द फिरसे नख निकल आता है।

(क्ली०) नखमिव आकृतिरस्त्यस्य, इति अर्शआदित्वात् अच्। २ नखी नामक गन्धद्रव्य-विशेष (A vegetable perfume)। आज्ञिकमें यह नखी शब्दसे प्रसिद्ध है। यह समुद्रजात शङ्ख शम्बूक जातीय कोषस्थ प्राणीका (नखाकृति) मुखावरण है। यह देखनेमें इस देशके शम्बुकादिके मुखावरणके जैसा लगता है, जब यह इधर उधर जाता आता है, तब उसका वह मुख विकसित हो कर ऊपरकी ओर हो जाता है। उस समय यह प्राणियोंके पदके नखके जैसा देखनेमें लगता है, इसीसे इसका नाम नखी पड़ा है। जब यह शैलादि ऊँची भूमि पर गमनागमन करता है, तब इसके सन्धिस्थानसे अधिक परिमाणमें लाल टपकती है। जो सब मनुष्य इसका व्यवसाय करते हैं, वे उन्हें संग्रह कर मार डालते हैं, पीछे उन्हें सुखा कर नखाकृति मुख निकाल लेते हैं। यह छोटे बड़ेके भेदसे कई प्रकारका है। जो सब शम्बूकके मुखके सदृश होते हैं, उन्हें छोटी नखी और जो शङ्खादिके मुखके जैसे होते हैं उन्हें शङ्खनखी, व्याघ्रनखी वा बड़ीनखी कहते हैं। इनके सिवा और भी कई जातियोंको नखी हैं, जिनमेंसे किसीकी आकृति तो उत्पलके सदृश, किसीको गजकर्णके सदृश और किसीको अश्वखुरके सदृश होती है। इसका नाम अश्वखुर है। पर्याय—शुक्ति, शङ्ख, खुर, कोलदल, करजाख्य, अश्वखुर, नख, व्याघ्रनख, नखी, करवह, सिम्बी, शफ, चल, कोशी, करज, हनु, नागहनु, पाणिज, बदरीपत्र, कप्य, पण्यविलासिनी, सन्धिनाल पाणिरुह, व्याघ्रायुध, चक्रकारक, शङ्खनख, नखरी। (शब्दरत्नावली)

स्वल्प नखका पर्याय—नखी, हनु, हट्टविलासिनी। इसका गुण श्लेष्मा, वात, अस्र, ज्वर, कुष्ठनाशक, लघु, उष्ण, शुक्रवर्द्धक, वर्णकर, स्वादु, व्रण, विष और मुखदौर्गन्ध्यनाशक है। (भावप्र०) (पु०) ३ खण्ड, टुकड़ा।

नख (फा० स्त्री०) १ गुड्डी उड़ाने और कपड़ा सीनेका एक प्रकारका बटा हुआ बहुत महीन रेशमी तागा। २ गुड्डी उड़ानेके लिये वह पतला तागा जिस पर माँझा दिया जाता है, डोर।

नखकर्त्तनि (सं० स्त्री०) वह हथियार जिससे नाखून काटा जाता है, नहरनी।

नखकुट्ट (सं० पु०) नखं कुट्टति कुट्ट छेदे अण्। नापित, नाई, हज्जाम।

नखक्षत (सं० पु०) १ नाखूनके गड़नेके कारण बना

धुआँ दाग या चिह्न। २ स्त्रीके शरीर परका विशेषतः स्तन आदि परका वह चिह्न जो पुरुषके मर्दन आदिके कारण उसके नाखूनोंसे बन जाता है।

नखखादिन् (सं॰ त्रि॰) नखान् खादितुं शीलमस्य खाद-णिनि। दन्त द्वारा नख-खादक, जो दाँतोंसे अपने नाखून कुतरता हो। मनुके अनुसार ऐसे मनुष्यका अतिशीघ्र नाश हो जाता है।

नखगुच्छफला (सं॰ स्त्री॰) नखइव गुच्छः फलं च यस्याः। निष्पाव भेद, एक प्रकारकी सेम।

नखच्छेदन (सं॰ क्ली॰) नखका कर्त्तन, नखका काटना।

नखचारिन् (सं॰ त्रि॰) पंजेके बल चलनेवाला।

नखजाह (सं॰ क्ली॰) नखस्य मूलं कर्णादित्वात् जाहच्-नखमूल, नाखूनका अगला भाग।

नखता (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका पक्षी जो भारतके सिवा और कहीं नहीं मिलता। यह वर्षाके आरम्भमें दिन भर उड़ा करता है और भिन्न भिन्न ऋतुओंमें भिन्न भिन्न स्थानोंमें रहता है। यह कीड़े मकोड़े और फल आदि खाता है और पाला भी जा सकता है।

नखदारण (सं॰ क्ली॰) नखं दार्य्यतेऽनेन दारि करणे ल्युट्। नखनिकृन्तनार्थे नापितास्त्र भेद, नाखून काटनेका औजार, नहरनी।

नखना (हिं॰ क्रि॰) १ उलङ्घन होना या करना। २ नष्ट करना।

नखनामा (सं॰ पु॰) नीलवृक्ष।

नखनिकृन्तन (सं॰ क्ली॰) निकृत्यतेऽनेन कृत-ल्युट् वा नुम्। १ नखच्छेदनास्त्र, नहरनी। २ लोहमात्र।

नखनिष्पाव (सं॰ पु॰) नखं निष्पवते फलसादृश्येन अनुकरोति, निर्-पू-अण्। निष्पावी भेद, एक प्रकारकी सेम। पर्याय—अङ्गुलिफला, कृष्णनिष्पाविका, ग्राम्या, नखगुच्छफला, ग्रामजनिष्पावी, नखफलिनी। इसका गुण—कषाय, मधुर, कण्ठशुद्धिकर, मेध्य, दीपन और रुचिकारक

नखपद (सं॰ क्ली॰) नखचिह्न।

नखपर्णी (सं॰ स्त्री॰) नखइव पर्णं यस्याः ङीप्। वृश्चिकाक्षुप, बिछुआ घास।

नखपुष्पी (सं॰ स्त्री॰) पृक्का, असवरग नामका गन्धद्रव्य।

नखपुष्पफला (सं॰ स्त्री॰) श्वेतवर्ण निष्पावी, सफेद सेम।

नखपुष्पी (सं॰ स्त्री॰) नख इव पुष्पं यस्याः ङीष्। पृक्का, असवरग नामका गन्ध द्रव्य।

नखपूर्विका (सं॰ स्त्री॰) हरिद्वर्ण निष्पावी, हरी सेम।

नखप्रच (सं॰ क्ली॰) नखस्य प्रचितस्य मयूरव्यंसकादित्वात् समासः। नख और प्रचित।

नखफलिनी (सं॰ स्त्री॰) नख इव फलमस्त्यस्य इति इनि ततो ङीप्। नखनिष्पाव, एक प्रकारकी सेम।

नखभेद (सं॰ पु॰) १ वातरोग भेद। २ कुलत्थ, कुलथी।

नखमुच (सं॰ क्ली॰) नखं मुञ्चति इति क। (मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानं। पा ३।२।५।) इति सूत्रस्य वार्त्तिकोक्त्या क। १ धनु, धनुस। २ चिरौंजीका पेड़। (त्रि) ३ नखमोचक, नाखून काटनेवाला।

नखम्पच (सं॰ त्रि॰) नखं पचति तापयति पच खश् मुम्च। नखतापक, नाखूनको खराब करनेवाला। स्त्रियां टाप्। २ यवागू, मांड़।

नखर (सं॰ पु॰ क्ली॰) नखं रातीति रा-क। १ नख, नाखून। २ अस्त्रविशेष, प्राचीन कालका एक हथियार।

नखरजनी (सं॰ स्त्री॰) नखो रज्यतेऽनया रञ्ज-करणे ल्युट्, न लोपः ङीप् च। द्विवृन्त वृक्ष, मेंहदीका पेड़।

नखरञ्जनी (सं॰ स्त्री॰) रज्यतेऽनया इति रञ्ज-ल्युट् ङीप्, नखस्य रञ्जनी। नखच्छेदक अस्त्रविशेष, नहरनी।

नखरा (फा॰ पु॰) १ साधारण चञ्चलता या चुलबुलापन, बनावटी चेष्टा। २ बनावटी इनकार। ३ वह चुलबुलापन, चेष्टा या चञ्चलता आदि जो जवानीकी उमङ्गमें अथवा प्रियको रिझानेके लिये की जाती है, नाज, चोचला, हावभाव।

नखरा-तिल्ला (हिं॰ पु॰) चोचला, नाज, नखरा।

नखरायुध (सं॰ पु॰ क्ली॰) नखर एव आयुधं यस्य। १ सिंह। २ व्याघ्र, बाघ। ३ कुक्कुर, कुत्ता। ४ ताम्रचूड़।

नखराह्व (सं॰ पु॰) नखरं आह्वयते स्पर्द्धते इति आ-ह्वे-क। करवीर वृक्ष, कनेरका पेड़।

नखरी (सं० स्त्री०) नखरः आकृतिसादृश्येन अस्त्यस्या इति अच्, गौरादित्वात् ङीष्। १ नखी, नखीनामक गन्ध द्रव्य। २ क्षुद्र नखा।

नखरीला (फा० वि०) चोचलेबाज, नखरा करनेवाला।

नखरेखा (सं० स्त्री०) १ नखक्षत, नाखूनका दाग। २ कश्यपऋषिकी एक पत्नी। यह बादलोंकी माता थीं।

नखरेबाज (फा० वि०) जो बहुत नखरा करता हो, नखरा करनेवाला।

नखरेबाजी (फा० स्त्री०) नखरा करनेकी क्रिया या भाव।

नखरौट (हिं० स्त्री०) शरीर परका वह दाग जो नाखून चुभानेसे होता है, नाखूनकी खरौंट।

नखलेखक (सं० त्रि०) नखं लिखति लिख-क न्। जीविकाके लिये दन्तलेखन-शिल्पकारक।

नखबिन्दु (सं० पु०) वह गोल या चन्द्राकार चिह्न जो स्त्रियां अपने नाखूनके ऊपर मेंहदी या महावरसे बनाती है।

नखविष (सं०पु० स्त्री०) नखे विषं यस्य, वह जिसके नाखूनमें विष हो। नर आदिके नाखूनमें विष रहता है। सुश्रुतके मतानुसार बिल्ली, कुत्ते, बन्दर, मगर, मेंढ़क, गोह, छिपकली, पाकमत्स्य, शम्बूक, प्रचलक तथा अन्यान्य चतुष्पदी कीड़ोंके दांत और नाखूनमें विष है।

(सुश्रुत कल्पस्थान ३ अ०)

नखविष्किर (सं०पु० स्त्री०) नखैर्विकिरति वि-क्ट-क, ततो सुट्‌, च। श्येनादि, यह जानवर अपने शिकारको नाखूनसे फाड़ कर खाता है, इसीसे इसका नाम नख-विष्किर पड़ा है। इस प्रकारके जानवरका मांस अभक्ष्य है।

नखवृक्ष (सं० पु०) नखीवृक्षः अच् नखी वृक्षः। नीलवृक्ष, नीलका पेड़।

नखशङ्ख (सं० पु०) नखइव शङ्खः। क्षुद्रशङ्ख, छोटा शंख।

नखशस्त्र (सं० पु० क्ली) नखच्छेदकं शस्त्रं। नख-च्छेदनयोग्य अस्त्रविशेष, नाखून काटनेका औजार नहरनी।

नखशिख (हिं० पु०) १ नखसे लगायत शिख तकके सभी अङ्ग। २ सब अङ्गोंका वर्णन।

नखशूल (सं० पु०) नाखूनका एक रोग। इसमें उसके आस पास या जड़में पीड़ा होती है।

नखहरणी (हिं० पु०) नहरनी।

नखाघात (सं० पु०) नखैराघातः ३-तत्। नखद्वारा आघात। सुरतकार्यमें नायक द्वारा नायिकाके अङ्गमें उसे गरम बनानेके लिये नखसे जो आघात किया जाता है उसे भी नखाघात कहते हैं। किस किस जगह पर नखाघात करना चाहिये, कामशास्त्रमें उसका विषय इस प्रकार लिखा है—

दोनों पार्श्व, दोनों स्तन, दोनों जङ्घ, नितम्ब, कक्षस्थल, कक्षान्त, कपाल, बाहुमूल, ग्रीवा और कण्ठदेश, इन सब स्थानोंमें कामक्रीड़ाके समय नखाघात करना चाहिये। २ युद्धार्थ नखद्वारा आघात, वह चोट वा आक्रमण जो युद्धके लिये नाखूनसे किया जाता है।

नखाङ्क (सं० पु०) नखं अङ्क इव यस्य। १ नखाघात चिह्न, नाखून गड़नेका निशान। (क्ली०) २ व्याघ्रनख।

नखाङ्कुर (सं० पु०) नख, नाखून।

नखाङ्ग (सं० क्ली०) नखस्य अङ्गमिव अङ्गं यस्य। १ नखी, नख नामक गन्धद्रव्य। २ नलिका या नली नामक गन्धद्रव्य।

नखानखि (सं० अव्य०) नखैश्च नखैश्च प्रहृत्य युद्धमिदं प्रवृत्तं। परस्पर नखाघात द्वारा प्रवृत्त युद्ध, वह लड़ाई जो केवल नख गड़ा कर की जाती है।

नखायुध (सं० पु०) नखमेव आयुधं यस्य। १ व्याघ्र, बाघ। २ सिंह। ३ कुक्कुर, कुत्ता।

नखारि (सं० पु०) शिवानुचर विशेष, शिवके एक अनु-चरका नाम।

नखालि (सं० पु०) १ क्षुद्रशङ्ख, छोटा शङ्ख। २ नखश्रेणी, नाखूनकी पंक्ति।

नखालु (सं० पु०) नखतीति नख सर्पणे नख-आलुच्। नीलवृक्ष, नीलका पेड़।

नखाशिन् (सं० पु०) नख अश्नातीति भक्षयतीति अश-णिनि। १ पेचक, उल्लू। (त्रि०) २ नखभक्षक मात्र, जो नाखूनकी सहायतासे खाता हो।

नखास (अ० पु०) १ वह बाजार जिसमें पशु विशेषतः घोड़े बिकते हैं। २ साधारणतः कोई बाजार।

नखि (सं॰ पु॰) नखेनातिक्रामति इति नखग्रतेरेव इ। (अच इः। उण् ४।११८) १ नख द्वारा अतिक्रामक। नखति सर्पति नख-इन्। २ सर्पक।

नखिन् (सं॰ पु॰) नखमस्त्यस्येति नख इनि। १ सिंह। २ व्याघ्र, बाघ। (त्रि॰) ३ विदारणक्षम नखयुक्त पशुमात्र, नाखूनसे किसी पदार्थको चीड़ने या फाड़नेवाला जानवर।

नखी (सं॰ स्त्री॰) नख गौरादित्वात् ङीष्। नख नामक गन्ध द्रव्यविशेष। नख देखो।

नखोंवट—काम्बोडिया देशमें बौद्ध लोगोंका एक प्रसिद्ध मठ। पहले काम्बोडियामें बौद्ध लोग सर्पोंकी उपासना बहुत धूमधामसे करते थे। प्रसिद्ध नखोंवट मन्दिरमें वह उत्सव किया जाता था। उक्त मठका भग्नावशेष आज भी विद्यमान है। वह मन्दिर एक समय पृथ्वीको एक अत्युत्तम अट्टालिकामें गिना जाता था। १८५८ और १८६० ई॰में एम, मौहटने सबसे पहले इसकी नींव डाली। मिष्टर जे टोमसेन उसका एक फोटो ले गये हैं। उसकी गठनप्रणाली अत्यन्त शोभासम्पन्न तथा रोम लोगोंकी डोरिक प्रणालीसी थी। मन्दिरके मूलदेशकी लम्बाई और चौड़ाई ६०० फुट और ऊंचाई १८० फुटके लगभग थी। उसका सर्वाङ्ग नाना प्रकारके कारुकार्यसम्पन्न पत्थरोंसे मण्डित था। उसके प्रत्येक कोणमें सात सिरवाले सांपोंकी मूर्त्तियां रखी हुई थीं। जीवित सांपोंके लिये मन्दिरके प्राङ्गणमें एक पुष्करिणी थी। उन्हीं सब सांपोंकी पूजा होती थी। दशवीं शताब्दीके लगभग वह मन्दिर बनाया गया था। प्रत्नतत्त्वविदोंका कहना है, कि १४वीं शताब्दीके पहले इसका निर्माण हुआ है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। कम्बोज देखो।

नखखास (हिं॰ पु॰) नखास देखो।

नग (सं॰ पु॰) न गच्छतीति न-गम-ड वा दह्यते इति दह-ग, ततो हलोपः दस्य न (दहेर्गो लोपो दश्च नः। उण् ५।६१) १ पर्वत, पहाड़। २ वृक्ष, पेड़। ३ सात संख्या। ४ सर्प, सांप। ५ सूर्य। (त्रि॰) ६ न गमन करनेवाला, न चलने फिरनेवाला, अचल, स्थिर।

नग (फा॰ पु॰) १ अंगूठियों आदिमें जड़नेका शीशे या पत्थर आदिका रंगीन बढ़िया टुकड़ा, नगीना। २ संख्या, अदद।

नगकर्णी (सं॰ स्त्री॰) श्वेत अपराजिता।

नगगन्धा (सं॰ स्त्री॰) रास्ना।

नगज (सं॰ पु॰) नगे पर्वते जायते जन-ड। १ हस्ती, हाथी। (त्रि॰) २ पर्वत जात, जो पर्वतसे उत्पन्न हो।

नगजा (सं॰ स्त्री॰) १ पार्वती। २ पाषाणभेदी लता, पखानभेद।

नगजित (सं॰ पु॰) पाषाणभेदक।

नगण (सं॰ पु॰) पिङ्गल छन्दःशास्त्रमें तीन लघु अक्षरोंका एक गण।

नगणा (सं॰ स्त्री॰) नास्ति गणो यस्याः। लताविशेष, मालकँगनी। पर्याय—पारावतपदी, पिण्या, स्फुटबन्धनी, ज्योतिष्मती, पूतितैला, इङ्गुदी।

नगण्य (सं॰ त्रि॰) १ अगणनीय, जो गणना करने योग्य न हो, बहुत ही साधारण या गया बीता, तुच्छ। २ घृणार्ह, घृणा करने योग्य, नफरत करने लायक।

नगद (हिं॰ पु॰) नकद देखो।

नगदन्ती (सं॰ स्त्री॰) विभीषणकी स्त्रीका नाम।

नगदी (हिं॰ स्त्री॰) नकदी देखो।

नगधर (सं॰ पु॰) पर्वतको धारण करनेवाले, श्रीकृष्णचन्द्र, गिरिधर।

नगनदी (सं॰ स्त्री॰) नगजाता नदी, वह नदी जो किसी पर्वतसे निकली हो।

नगनन्दिनी (सं॰ स्त्री॰) नगस्य नन्दिनी ६-तत्। हिमालयकन्या पार्वती।

नगना (हिं॰ स्त्री॰) नग्ना देखो।

नगनिका (हिं॰ स्त्री॰) १ सङ्कीर्ण रागका एक भेद। २ क्रीड़ा नामक वृत्तका एक नाम। इसके प्रत्येक चरणमें एक यगण और गुरु होता है।

नगनी (हिं॰ स्त्री॰) १ वह कन्या जो रजोधर्मको प्राप्त न हुई हो, वह लड़की जिसके स्तन न उठे हों। २ कन्या, पुत्री, बेटी। ३ नग्ना स्त्री, नंगी औरत।

नगनिकाछन्द (हिं॰ पु॰) नगनिका देखो।

नगपति (सं॰ पु॰) नगस्य पतिः ६-तत्। १ हिमालय, पर्वत। २ चन्द्रमा। ३ तालवृक्ष, ताड़का पेड़। ४ कैलाशके स्वामी, शिव। ५ सुमेरु।

नगपर्यायकर्णी (सं॰ स्त्री॰) अपराजिता।

नगभित् (सं॰ पु॰) नगं भिनत्ति भिद्-क्विप्। १ पाषाणभेदनास्त्रविशेष, प्राचीनकालका पत्थर तोड़नेका एक प्रकारका अस्त्र। २ इन्द्र। पुराणके अनुसार इन्होंने पहाड़ोंके पर काटे थे, इसीसे इनका यह नाम पड़ा। ३ पाषाणभेदी लता।

नगभू (सं॰ पु॰) नगे भूरुत्पत्तिर्यस्य। १ क्षुद्र पाषाणभेदी लता, छोटी पत्थानभेद लता। (स्त्री॰) २ पर्वतभूमि, पहाड़ी जमीन। (त्रि॰) ३ पर्वतजात मात्र, जो पहाड़से उत्पन्न हुआ हो।

नगमाल (सं॰ पु॰) शालिधान्यभेद, एक प्रकारका सुगन्धित धान।

नगमूर्द्धन् (सं॰ पु॰) पर्वतकी चूड़ा, पहाड़की चोटी।

नगर (सं॰ क्ली॰) नगा इव प्रासादादयः सन्ति यत्र। (नगपांशुपाण्डुभ्यश्च। पा ५।२।१०७) इति सूत्रस्य वार्त्तिकोक्त्या र। अनेक लोगोंका वासस्थान, मनुष्योंकी वह बड़ी बस्ती जो गाँव या कस्बे आदिसे बड़ी हो और जिसमें अनेक जातियों तथा पेशोंके लोग रहते हों, शहर।

पर्याय—पुर, पुरी, पुरि, नगरी, पत्तन, पट्टन, पट्टनी, पुटभेदन, पटभेदन, स्थानीय, निगम, कटक, पट्ट।

हम लोगोंके प्राचीन ग्रन्थोंमें लिखा है, कि जहां बहुत सी जातियोंके अनेक व्यापारी और कारीगर रहते हों, तथा देवदेवियोंकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित हों, उसे नगर कहते हैं।

कोई कोई नगरका ऐसा लक्षण बतलाते हैं—जहां आठ सौ ग्रामोंके विचारादि कार्य किये जाते हों, अर्थात् जहां प्रधान विचारालय हो, वही नगर कहलाता है। नगरमें राजाको परिवारोंके साथ रहना चाहिये, यह प्राकार और दुर्गादि द्वारा परिवेष्टित रहे तथा इसका आयतन एक योजन विस्तृत हो। कोई कोई पण्डित पुर और नगरमें ऐसा भेद बतलाते हैं—जहां अनेक ग्रामोंका व्यवहार स्थान अर्थात् विचारालय हो, उसका नाम पुर और पुरसमूहके प्रधानका नाम नगर है।

नगर निर्माणकाल—

"स्थिरराशिगते भानौ चन्द्रे च स्थिरगोदये।
शुद्धे काले दिने चैव नगरं कारयेन्नृपः॥"

(युक्तिकल्पतरु)

जब सूर्य स्थिर राशिमें न रहें, केवल चन्द्रमा स्थिर नक्षत्रमें रहें, और काल तथा दिन विशुद्ध हो, उस समय राजाको लम्बा, चौकोना, तिकोना या गोल नगर बनाना चाहिये। इसमेंसे तिकोना और गोल नगर निन्दनीय माना जाता है। नगरकी चौड़ाई जितनी होगी, उससे एक पाद भी अधिक होनेसे वह दीर्घ कहलाता है। चौकोन होनेसे उसकी चारों दिशा समान रहे। जो नगर तीन ओर समान अर्थात् त्रिकोण हो, उसे तिकोण और जो वलयाकृतिका हो, उसे वर्त्तुल वा गोल कहते हैं। इन चार प्रकारके नगरोंमें दीर्घ नामक नगर स्थापन करनेसे सुखसम्पत्ति मिलती है तथा यह दीर्घकालस्थायी रहता है। चतुरस्र अर्थात् चौकोना नगर चारों प्रकारका फल देनेवाला है, तिकोना नगरसे तीन शक्तिका नाश होता है तथा वर्त्तुल नगर नाना प्रकारका रोगदायक माना जाता है।

नगर—बम्बईके थर और पार्कर जिलेका एक तालुक। यह अक्षा॰ २४° १४´ और २५° १´ उ॰ तथा देशा॰ ७०° ३१´ पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १६१८ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग २५३५५ है। इसमें कुल ३१ ग्राम लगते हैं। आय २८०००) रुपयेकी है। यहां बाजरेकी उपज अच्छी होती है। खेती विशेषतः वृष्टि तथा कूएं पर निर्भर है, इस कारण यहां अक्सर दुर्भिक्ष हुआ करता है।

नगर—पञ्जाबके काङ्गड़ा जिलेके अन्तर्गत कुलू उपविभाग तथा तहसीलका एक नगर। यह अक्षा॰ ३२° ७´ उ॰ और देशा॰ ७७° १५´ पू॰ विपासा नदीके बायें किनारे सुलतानपुर शहरसे १४ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या ५८१ है। यहां पहले कुलूराजाओंकी राजधानी थी। १९०५ ई॰के भूकम्पसे यह नगर बहुत तहस नहस हो गया है। शहरमें डाकघर और टेलिग्राफ आफिस है।

नगर (वा राजनगर) बङ्गालके वीरभूम जिलेका एक नगर और प्राचीन राजधानी। यह अक्षा॰ २३° ५६´ ५०´´ उ॰ तथा देशा॰ ८७° २१´ ४५´´ पू॰के मध्य अवस्थित है। मुसलमानोंने जब बङ्गाल जीता था, उसके पहले यहां हिन्दू राजाओंकी राजधानी थी, राजप्रासाद

प्रायः टूट फूट गया है। फिलहाल यहां अनेक भग्नस्तूप, मसजिद और अपरिष्कार पुष्करिणी देखनेमें आती हैं।

नगर—महिसुरके शिमोग जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १३° ३६´ और १४° ६´ उ० तथा देशा० ७४° ५२´ और ७५° २३´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५३८ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग ४०४५५ है। इसमें कसूरकाई और नगर नामके दो शहर तथा २०५ ग्राम लगते हैं। राजस्व प्रायः ११६०००) रुपयेका है। तालुकका उत्तरी भाग छोड़ कर शेष सभी भाग बड़े बड़े पहाड़ोंसे भरे हैं। इनमेंसे प्रधान पहाड़ कोडचाद्री है जो समुद्रपृष्ठसे ४४११ फुट ऊंचा है। यों तो यहां अनेक नदियां बहती हैं, पर शरावती नदी ही सबसे बड़ी है। सुपारी, पीपर, इलायची और चावल यहांके उत्पन्न द्रव्य हैं। अधिकांश जङ्गलोंमें सुपारीके पेड़ देखनेमें आते हैं।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १३° ४८´ और देशा० ७५° २´ पू०के मध्य शिमोग शहरसे ५५ मील दूरमें पड़ता है। लोकसंख्या सिर्फ ७१५ है। पहले इस नगरका नाम विदनूरी था। १६४० ई०में जब यहां केलाड़ी राजाओंकी राजधानी थी, तब यह विदरूर नामसे प्रसिद्ध हुआ। कहते हैं, कि उस समय इसमें १००००० घरें लगते थे, इसी कारण इसका नाम बदल कर नगर हो गया। १७६३ ई०में यह हैदरअलीके हाथ लगा और उन्होंने इसका नाम हैदरनगर रखा। टीपू सुलतान और अङ्गरेजोंमें जब लड़ाई छिड़ी तब इस शहरको विशेष क्षति हुई थी। पीछे १७८३ ई०में अङ्गरेजोंने इस पर अपना पूरा दखल जमाया। १८८१ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है।

नगर—मन्द्राजके तञ्जोर जिलान्तर्गत, नागपत्तनका एक बन्दर। यह अक्षा० १०° ३२´ और १०° ५०´ उ० तथा देशा० ७९° ३४´ और ७९° ५१´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां सुपारी, बहादुरी काष्ठ तथा घोड़ेका वाणिज्य व्यापार होता है। यहां एक विख्यात मसजिद भी है।

नगरआनन्दपुर—इसका आधुनिक नाम बड़ा-नगर है। बड़ा-नगर और देवनगर देखो।

नगरकाक (सं० पु०) शहरका कौवा, कुत्सार्थक शब्द।

नगरकीर्त्तन (सं० क्ली०) नगरे कीर्त्तनं नगरपरिभ्रमणेन हरिनामसंघोषणं। नगरके रास्ते रास्ते हरिनाम-संकीर्त्तन, वह गाना-बजाना या कीर्त्तन विशेषतः ईश्वरके नामका भजन, जिसे नगरकी गलियों और सड़कोंमें घूम घूम कर लोग करते हैं।

नगरकोटि (सं० पु०) हिमालयके पाददेशस्थित एक नगर।

नगरघात (सं० पु०) नगरं हन्ति हन-अण्। १ हस्ती, हाथी। हन-भावे घञ्, नगरस्य घातः। २ नगरस्थ लोकका हनन, शहरके लोगोंकी हत्या।

नगरकुतर—सन्थाल परगनेके सूत्रधारोंकी एक श्रेणी।

नगरजन (सं० पु०) नगरस्य जनाः। पुरवासी, शहरके लोग।

नगरतीर्थ—गुजरात प्रदेशस्थ नगर नामक एक प्राचीन तीर्थ। गुजरातके राजा विशलदेवके सभाकवि नानककी प्रशस्तिमें नगरतीर्थका उल्लेख देखनेमें आता है। वह स्थान वेदध्वनिसे सर्वदा गुंजित रहता था। यज्ञीय धूमसे उसका आकाश हमेशा परिपूरित रहता था। यहां किसी समय शिवका निवास माना जाता था। बड़नगर देखो।

नगरद्वार (सं० क्ली०) नगरस्य द्वारं ६-तत्। नगरका द्वार, पुरद्वार, शहरपनाहका फाटक।

नगरधनविहार (सं० पु०) बौद्ध लोगोंका एक मठ।

नगरनायिका (हिं० स्त्री०) वेश्या, रंडी।

नगरनारी (हिं० स्त्री०) वेश्या, रंडी।

नगरपति (सं० पु०) नगरस्य पतिः ६-तत्। नगराध्यक्ष, शहरका मालिक।

नगर-पार्कर—१ बम्बईके सिन्धुप्रदेशके अन्तर्गत थर और पार्कर जिलेका एक तालुक।

२ उक्त तालुकका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २४°२१´ उ० और देशा० ७०°४७ पू० अमरकोटसे १२० मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग २४५४ है। यह स्थान अच्छी अच्छी सड़कों द्वारा इसलामकोट, मिथि और पीठापुरसे संयोजित है। १८५९ ई०में यहां विद्रोह हुआ था। हैदराबादसे अंगरेजी सेनाने आ कर उस विद्रोहको दमन किया था। शहरमें एक अस्पताल, दो वर्नाक्यूलर स्कूल और कई एक बालिका-स्कूल है।

नगरपाल (सं॰ पु॰) नगरं पालयति पालि-अण् । नगररक्षक, वह जिसका काम सब प्रकारके उपद्रवों आदिसे नगरकी रक्षा करना हो, चौकीदार ।

नगरपुर (सं॰ क्ली॰) नगरस्य पूः ६-तत्, अच् समासान्तः । एक नगरका नाम ।

नगरप्रान्त (सं॰ पु॰) नगरस्य प्रान्तः । पुरप्रान्त, नगरके समीपका स्थान ।

नगरमर्दिन् (सं॰ त्रि॰) नगरं मृद्गाति मृद-णिनि । १ नगरावमर्दक, शहरको तहस नहस करनेवाला । (पु॰) २ मत्तगज, मस्त हाथी ।

नगरमार्ग (सं॰ पु॰) नगरस्य मार्गः ६-तत् । राजमार्ग, शहरका बड़ा और चौड़ा रास्ता । शुक्रनीतिमें लिखा है,—राजाको भवनसे ले कर उसके चारों तरफ प्रशस्त पथ बनवाना चाहिये । ३० हाथका पथ उत्तम, २० हाथका मध्यम, १० और ५ हाथका अधम माना जाता है । राजमार्ग देखो ।

नगरमुस्ता (सं॰ स्त्री॰) नागरमोथा ।

नगररन्ध्रकर (सं॰ पु॰) नगस्य क्रौञ्चस्य रन्ध्रं करोति कृ-ट । कार्त्तिकेय ।

नगररक्षा (सं॰ स्त्री॰) शहरका शासन, उपद्रव आदिसे नगरकी रक्षा ।

नगररक्षाधिकृत (सं॰ त्रि॰) जो नगरकी रक्षाके लिये नियुक्त किया गया हो ।

नगरवा (हिं॰ पु॰) ईखकी एक प्रकारकी बोआई । इस प्रकारकी बोआई मध्य-प्रदेशके उन प्रान्तोंमें होती है, जहांकी मट्टी काली या करैली पाई जाती है । इसमें खेतोंमें जल सिञ्चनकी आवश्यकता नहीं होती, बल्कि बरसातके बाद जब ईखके अङ्कुर फूटते हैं, तब जमीन पर इसलिये पत्तियां बिछा देते हैं जिसमें उसका पानी भाप बन कर उड़ न जाय, पलवार ।

नगरवायस (सं॰ पु॰) नगरकाक, घृणासूचक शब्द ।

नगरवासिन् (सं॰ त्रि॰) नगरे वसति वस-णिनि । नागरिक, शहरमें रहनेवाला, पुरवासी ।

नगरविवाद (हिं॰ पु॰) दुनियाके झगड़े बखेड़े ।

नगरस्थ (सं॰ त्रि॰) नगरे तिष्ठति स्था क । नगरस्थित, नागरिक, शहरमें रहनेवाला ।

नगरहा (हिं॰ पु॰) नागरिक, शहरमें रहनेवाला ।

नगरहार (सं॰ क्ली॰) १ नगराक्रमण । २ राज्यविशेष, प्राचीन भारतका एक नगर । यह किसी समय वर्त्तमान जलालाबादके निकट बसा था । चीनयात्री युएन-चुवङ्गने अपने भ्रमण-वृत्तान्तमें इसका वर्णन किया है । उस समय यह नगर कपिश राज्यके अधीन था । पहले इस नामका एक राज्य भी था जो उत्तरमें काबुल नदी और दक्षिणमें सफेदकोह तक विस्तृत था ।

नगरादिसन्निवेश (सं॰ पु॰) नगरादीनां सन्निवेशः ६-तत् । नगरादि स्थापन । इसका विषय अग्निपुराणमें इस प्रकार लिखा है,—राजाको चाहिये कि वे अच्छी तरह देख सुन कर नगर बसानेके लिये एक ऐसा स्थान चुन लें, जो एक या आधा योजन विस्तृत हो । हाथी अनायाससे आ जा सके, ऐसा छः हाथ परिमाणका शहरपनाहका फाटक रहे । शहरके अग्निकोणमें स्वर्णकारादि सन्निवेश, दक्षिण दिशामें नृत्यगीत-व्यवसायी; नैऋतमें नट, वाह्निकादि और कैवर्त्त आदिका वासस्थान; पश्चिममें रथ, आयुध और खड्गादि व्यवसायियोंका वास; वायुकोणमें शौण्डिक और कर्माधिकृत भृत्यादिका वास; उत्तरमें ब्राह्मण, यति, सिद्ध आदि पुण्यवान् व्यक्तियोंकी वासभूमि; ईशानकोणमें फल आदि बेचनेवालोंका वास और पूर्व दिशामें बलाध्यक्षोंकी वासभूमि होनी चाहिये । इसके अतिरिक्त अग्निकोणमें विविध सैनिक पुरुष; दक्षिणमें स्त्रियोंके निर्देशकर्त्ता; नैऋतमें अधमजन, पश्चिममें अमात्यवर्ग, कोषाध्यक्ष और शिल्पिगण, पूर्वमें क्षत्रिय, दक्षिणमें वैश्य, पश्चिममें शूद्र और वैद्य तथा चारों ओर अश्व सैन्यका वासस्थान रहना चाहिये । पूर्व दिशामें चरलिङ्गी अर्थात् छद्मवेशी राजपुरुष आदि, दक्षिण दिशामें श्मशानभूमि, पश्चिममें गोधनादि और उत्तरमें कृषिकार्य आदिके स्थान निर्दिष्ट हों । सभी कोणोंमें म्लेच्छगण रह सकते हैं । नगरमें स्थान स्थान पर देवदेवियोंके मन्दिरका होना आवश्यक है । (अग्निपुराण २०० अ॰)

नगराधिकृत (सं॰ पु॰) नगराध्यक्ष, नगरके शासनकर्त्ता ।

नगराधिप (सं॰ पु॰) नगरस्य अधिपः । नगराध्यक्ष, नगरपालक ।

नगराधिपति (सं० पु०) नगरस्य अधिपतिः। नगराध्यक्ष, नगरपति।

नगराध्यक्ष (सं० पु०) नगरे राज्ञा नियोजितः अध्यक्षः। राजकर्त्तृक नियोजित नगर रक्षाके लिये अधिकारिभेद, नगरका वह स्वामी जिस पर नगरकी रक्षा आदिका पूरा पूरा भार हो। महाभारतमें लिखा है, कि प्राचीनकालमें राजाकी ओरसे शासन और न्याय आदिके कामोंके लिये जो अधिकारी नियुक्त किया जाता था, वही नगराध्यक्ष कहलाता था। (भारत शान्तिपर्व ८७ अ०)

२ नगररक्षक, वह जो नगरकी रक्षा करता हो।

नगराह्व (सं० क्ली०) शुण्ठ, सोंठ।

नगरिन् (सं० पु०) शहरमें रहनेवाला मनुष्य, नागरिक शहराती।

नगरी (सं० स्त्री०) नगर-ङीष्। नगर, शहर।

नगरीकाक (सं० पु०) नगर्य्यां काक इव। बक, बगला।

नगरीय (सं० त्रि०) नागरिक, शहरका रहनेवाला।

नगरीरक्षिन् (सं० पु०) नगररक्षक, नगरके रक्षाविधान-कर्त्ता, वह जिस पर नगरकी रक्षाका पूरा भार हो।

नगरीवक (सं० पु०) काक, कौवा।

नगरोत्थ (सं० त्रि०) नगरादुत्तिष्ठति उद्-स्था-क। १ नगरोत्पन्न, जो नगरमें उत्पन्न हुआ हो। (स्त्री०) २ नागरमुस्ता, नागरमोथा।

नगरौकस् (सं० पु०) नगरे ओकः वासस्थानं यस्य। नगर-वासी, शहरके लोग।

नगरौषधि (सं० स्त्री०) नगरजाता ओषधिः। कदली, केला।

नगवत् (सं० त्रि०) नागः विद्यतेऽस्य मतुप्, मस्य व। नगविशिष्ट, पहाड़से भरा हुआ।

नगवाहन (सं० पु०) महादेवका एक नाम।

नगवृश्चिक (सं० पु०) वृश्चिकाली, बईपटा।

नगवृत्तिका (सं० स्त्री०) सल्लकी वृक्ष, सलईका पेड़।

नगस्वरूपिणी (सं० स्त्री०) छन्दोविशेष, एक प्रकारका वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें एक जगण, एक रगण, एक लघु और एक गुरु होता है। इसे कोई कोई प्रमाणी और प्रमाणिका भी कहते हैं।

नगाटन (सं० पु०) नगे वृक्षे अटति भ्रमतीति अट-ल्यु। १ वानर, बन्दर। (त्रि०) २ पर्वतचारी, पहाड़ पर विचरण करनेवाला।

नगाड़ा (हिं० पु०) नगारा देखो।

नगाधिप (सं० पु०) नगानां पर्वतानां अधिपः ६-तत्। १ हिमालय पर्वत। २ सुमेरु पर्वत।

नगानिका (सं० स्त्री०) छन्दोभेद, एक प्रकारका वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें चार चार अक्षर होते हैं, जिनमेंसे प्रति चरणका दूसरा और चौथा वर्ण गुरु होता है।

नगारा (फा० पु०) डुग डुगीकी तरहका एक प्रकारका बहुत बड़ा और प्रसिद्ध बाजा। इसमें एक बहुत बड़ी कूंडीके ऊपर चमड़ा मढ़ा रहता है। कभी कभी इसके साथ इसी प्रकारका लेकिन इससे बहुत छोटा एक और बाजा भी होता है। इन दोनोंको सामने सामने रख कर चोब नामक लकड़ीके दो डंडोंसे बजाते हैं, नगाड़ा, डंका, धौंसा।

नगारि (सं० पु०) नगस्य अरिः शत्रुः। इन्द्र। पुराणमें लिखा है, कि इन्होंने पर्वतोंके पर काटे थे, इसीसे इनका नाम नगारि पड़ा है।

नगावास (सं० पु०) १ वृक्षोपरि अवस्थान, पेड़ पर रहने-की जगह। २ मयूर, मोर।

नगाश्रय (सं० पु०) नगः पर्वतः आश्रय उत्पत्तिस्थानं यस्य। १ हस्तीकन्द, हाथीकंद। (त्रि०) २ पर्वत और वृक्ष पर वासकारी, जो पहाड़ और पेड़ पर रहता हो।

नगी (हिं० स्त्री०) १ रत्न, मणि, नगीना, नग। २ पर्वत पर रहनेवाली स्त्री, पहाड़ी औरत। ३ पर्वतकी कन्या, पार्वती।

नगीना (फा० पु०) १ शोभा बढ़ानेके लिये अंगूठी आदिमें जड़ा हुआ पत्थर आदिका रंगीन चमकीला टुकड़ा, रत्न, मणि। २ एक प्रकारका धारखानेदार देशी कपड़ा।

नगीना—१ युक्तप्रदेशके बिजनौर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २९° १३' और २९° ४३' उ० तथा देशा० ७८° १७' और ७८° ५७' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरि-माण ४५३ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १५६८९८ है। इसमें नगीना और अफजलगढ़ नामक दो शहर तथा ४६४ ग्राम लगते हैं। तहसीलका अधिकांश जङ्गलमय है। रामगङ्गा तथा इसकी सहायक नदी और तहसीलके

मध्य हो कर बह गई है। यहांकी भूमि उर्वरा है। अतः समय समय पर अच्छी फसल लगती है। आबहवा स्वास्थ्यकर नहीं है।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २८° २७´ उ० और देशा० ७८° २६´ पू०के मध्य अवध और रोहिलखण्ड रेलवे पर अवस्थित है। लोकसंख्या २१४१२ के लगभग है जिसमेंसे मुसलमानोंकी संख्या अधिक है। इसके प्राचीन इतिहासका कुछ भी पता नहीं चलता। लेकिन आईन-इ-अकबरीमें लिखा है कि यह शहर किसी समय महाल या परगनेका सदर था। १८वीं शताब्दीमें रोहिलाके अभ्युदयके समय यहां एक किला बनाया गया था। १८०५ ई०में अमीरखांके अधीन पिण्डारियोंने इसे तहस नहस कर डाला था। १८१७से ले कर १८२४ ई० तक यह शहर उत्तरीय मुरादाबाद जिलेका सदर रहा। सिपाही विद्रोहके समय यहां एक छोटी लड़ाई छिड़ी थी। शहरमें बड़ी बड़ी अट्टालिकायें तथा अनेक पक्की सड़कें हैं। प्राचीन किलेमें अभी तहसीली लगती है। तहसीलीके सिवा यहां एक अस्पताल, तहसीली स्कूल और American Methodist mission है। १८८६ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। राजस्व लगभग १२००, रु०का है। प्रति सप्ताहमें दो बार हाट लगती है। यहां नावें, टहलनेकी छड़ी तथा सुन्दर बकस तैयार होते हैं।

नगीनासाज़ (फा० पु०) नगीना बनाने या जड़नेवाला मनुष्य।

नगुरिया—सन्यासीकी एक शाखा।

नगेन्द्र (सं० पु०) नग इन्द्र इव श्रेष्ठत्वात्। १ हिमालय। २ पर्वतश्रेष्ठ।

नगेश (सं० पु०) नगेन्द्र देखो।

नगौकस (सं० पु०) नगो वृक्षो पर्वतो वा ओको निवासस्थानं यस्य। १ पक्षी, चिड़िया। २ शरभ। ३ सिंह, शेर। ४ काक, कौवा। (त्रि०) ५ वृक्ष और पर्वतवासी मात्र, पेड़ और पहाड़ पर रहनेवाला।

नग्न (सं० त्रि०) नजतेर्लज्जेति, अकर्मकात् कर्त्तरि क्त, ततो निष्ठा तस्य न। १ विवस्त्र, जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो, नंगा। २ जिसके ऊपर किसी प्रकारका आवरण न हो। (पु०) २ दिगम्बर जैनभेद। ये लोग कौपीन और कषाय वस्त्र पहनते हैं। ये पांच प्रकारके होते हैं—त्रिकच्छ, कच्छशेष, मुक्तकच्छ, एकवासा और अवासा।

जो स्त्री या पुरुष नग्नावस्थामें हो उसे देखना नहीं चाहिये। नग्न हो कर स्नान, शयन या पाठ आदि कार्य करना मना है।

"न नग्नां स्त्रियमीक्षेत पुरुषं वा कदाचन।
न च मूत्रं पुरीषं वा न वै संस्पृष्टमैथुनम्॥
नोच्छिष्टं संविशेन्नित्यं न नग्नः स्नानमाचरेत्।
न गच्छेन्न पठेद्वापि न चैव स्वशिरः स्पृशेत्॥"
(कूर्मपु० १५ अ०)

३ पारिभाषिक नग्न, पुराणानुसार वह मनुष्य जिसे शास्त्रों आदिका ज्ञान न हो और जिसके कुलमें किसीने वेद न पढ़ा हो। ऐसे आदमियोंका अन्न ग्रहण करना वर्जित है।

"येषां कुले न वेदोऽस्ति न शास्त्रं नैव च व्रतम्।
ते नग्नाः कीर्त्तिताःसद्भिस्तेषामन्नं विगर्हितम्॥"
(मार्कण्डेयपु०)

विष्णुपुराणमें भी लिखा है, कि जो वेद नहीं जानते उनका नाम नग्न है। ऐसे मनुष्य पातकी समझे जाते हैं। जो मनुष्य मोहवश गार्हस्थ्याश्रमके बाद बिना वानप्रस्थ ग्रहण किये ही संन्यासी हो जाते हैं, वे भी नग्न कहलाते और पातकी समझे जाते हैं। ४ वन्दी, कैदी। ५ एक संस्कृत कविका नाम।

नग्नक (सं० पु०) नग्न एव स्वार्थे कन्। नग्न, नंगा।

नग्नकरण (सं० क्ली०) अनग्नः नग्नः क्रियतेऽनेन लख्युन् मुम् च। अनग्नका नग्नताकरण, किसीको नंगा करनेकी क्रिया।

नग्नक्षपणक (सं० पु०) एक प्रकारका बौद्ध संन्यासी या भिक्षु।

नग्नजित् (सं० पु०) गान्धारके राजा। २ कोशल देशके राजा। इनकी कन्याका नाम सत्या था, लेकिन पिताके नामानुसार लोग उसे नाग्नजिती भी कहते थे। नग्नजित्ने प्रतिज्ञा की थी कि जो उनके रक्षित सात महावृषका वध करेगा, उसीसे सत्या ब्याही जायगी। कृष्णने उनकी इच्छा पूरी की, अतः उन्हींके साथ नाग्न-

जितोंका विवाह हुआ। (भागवत १०म स्कन्ध) ३ वास्तु-शास्त्रके रचयिता। ४ एक संस्कृत कवि।

नग्नता (सं० स्त्री०) नग्न भावे तल्। नग्नत्व, विवस्त्रत्व, नंगे होनेका भाव, नंगापन।

नग्नधर—रघुवंशके एक टीकाकार।

नग्नपर्ण (सं० पु०) प्राचीन कालके एक देशका नाम।

नग्नमुषित (सं० त्रि०) मुषितो नग्नः 'राजदन्तादिषु' इति पूर्वनिपातः। धनादि अपहरण हो जानेके कारण नग्नतापन्न, जिसका धन चुराया गया है और वह नंगा हो कर सो रहा है, उसीको नग्नमुषित कहते हैं।

नग्नम्भविष्णु (सं० पु०) अनग्नो नग्नो भवति भू-अर्थे खिष्णुच्। अनग्नका नग्न होना, वह जो नंगा नहीं था, पीछे उसका नंगा होना।

नग्नम्भावुक (सं० पु०) अनग्नो नग्नो भवति नग्न-भू खुकञ् मुम च। अनग्नका नग्न होना।

नग्नयोषित (सं० स्त्री०) नग्ना योषित्। उलङ्ग स्त्री, नंगी औरत।

नग्नवृत्ति (सं० स्त्री०) उणादिसूत्रकी एक वृत्ति। उज्ज्वलदत्तने इसका नामोल्लेख किया है।

नग्नव्रतधर (सं० पु०) १ नग्नव्रताचारी। २ महादेव, शिव।

नग्नहर—प्राचीन गुजरातका एक अंश। स्कन्दपुराणके प्रभासखण्डमें इसका उल्लेख है।

नग्नहु (सं० पु०) नग्नं ह्वयति स्पर्द्धते अनेनेति ह्वे करणे क्विप्। षड्विंशति द्रव्यकृत सुराबीज, वह शराब जो छब्बीस प्रकारके द्रव्योंके मेलसे तैयार होती है। पर्याय—किण्व, कराल, नग्नहु।

२६ प्रकारके द्रव्योंके नाम ये हैं—१ सर्ज, २ त्वक्, ३ सोंठ, ४ पीपर, ५ मिर्च, ६ कपूर, ७ पुनर्णवा, ८ चतुर्जातक, ९ पिपली, १० गजपिप्पली, ११ वंश, १४ वक, १५ इक्षुगन्धा?, १६ चित्रक, १७ इन्द्रवारुणी, १८ अश्वगन्धा, १९ धान्यक, २० यवानी, २१-२२ दोनों प्रकारका जीरा, २३-२४ दोनों प्रकारकी हल्दी, २५ विकङ्कत यव और २६ औषधि, इन्हीं सब द्रव्योंके मेलको नग्नहु कहते हैं।

(वैद्यदीप १९।१)

नग्ना (सं० स्त्री०) नग्न-टाप्। १ विवस्त्रा नारी, नंगी औरत। इसके संस्कृत पर्याय—कोटवी, कोट्टवी, नग्निका और नग्नयोषित हैं। २ अनुद्गतकुचा स्त्री, वह औरत जिसके स्तन उठे न हों।

नग्नाचार्य—एक प्राचीन कवि। सूक्तिकर्णामृतमें इसकी कविता उद्धृत हुई है।

नग्नाट (सं० पु०) नग्नः सन् अटति अट-अच्। दिगम्बर, वह जो सदा नंगा रहता हो।

नग्नाटक (सं० पु०) नग्नाट एव स्वार्थे कन्। दिगम्बर योगी, वह साधु जो सदा नङ्गा घूमा करता है।

नग्निका (सं० स्त्री०) नग्नैव स्वार्थे कन् टापि अत इत्वं। विवस्त्रा स्त्री, वह स्त्री जो नंगी हो कर घूमा करती है। २ अप्राप्तरजस्का, वह स्त्री जो रजोधर्मिणी न हुई हो। पर्याय-गौरी, अनागतार्त्तवा, गौरिका। ३ अजातकुचा कन्या, वह लड़की जिसके स्तन उठे न हों।

नग्रोध (हिं० पु०) वट वृक्ष, बड़का पेड़।

नघना (हिं० क्रि०) पार करना, लांघना, नांघना।

नघमार (सं० पु०) कुष्ठरोग, कोढ़की बीमारी।

नघाना (हिं० क्रि०) उल्लङ्घन करना, लँघाना, डंका देना।

नघारीष (सं० पु०) कुष्ठरोग।

नघुष (सं० पु०) नहुष पृषोदरादित्वात् साधुः। नहुष राजा।

नङ्ग (सं० पु०) नं नतिं गच्छतीति गम-ड, बाहुलकात् मुम्। १ जार, उपपति। २ एक असभ्यजाति, जो विशाखपत्तनके प्रायः ५० ग्रामोंमें वास करती है। इस जातिके क्या पुरुष क्या स्त्री सभी नग्न रहते हैं। इन लोगोंका एक भ्रान्तिमूलक विश्वास है, कि मस्तकको ढंके नहीं रखनेसे बाघ पकड़ता है, इस कारण वे हमेशा अपने अपने मस्तकको ढंके रहते हैं, ये लोग शवको गाड़ते हैं और दश दिनके बाद एक गौ वा भैंसको काट कर अपने बन्धुबान्धवोंको खिलाते हैं।

नङ्गपर्वत—काश्मीरमें हिमालय पर्वतका एक शृङ्ग जो २६६२९ फुट ऊंचा है।

नङ्गाम—बम्बई प्रान्तका एक छोटा राज्य। इसका परिमाण सिर्फ ३ वर्गमील है। स्वत्वाधिकारी राजाओंकी उपाधि ठाकुर है।

नचनिया (हिं० पु०) नृत्य करनेवाला, नाचनेवाला।

नचनी (हिं० स्त्री०) १ करघेकी वे दोनों लकड़ियां जो बेसरके कुलवांसेकी नाईं लटकती होती हैं। इन्हींके नीचे चकडोरसे दोनों राछें बन्धी रहती हैं। इन्हींकी सहायतासे राछें ऊपर नीचे जाती और आती हैं। इन्हें चक या कलहारा भी कहते हैं। (वि०) २ नाचनेवाली, जो नाचती हो। ३ बराबर इधर उधर घूमती रहनेवाली स्त्री।

नचवैया (हिं० पु०) नाचनेवाला, जो नाचता हो।

नचाना (हिं० क्रि०) १ दूसरेको नाचनेमें प्रवृत्त करना, नचानेका काम किसी दूसरेसे कराना। २ भ्रमण करना, किसी चीजको बराबर इधर उधर घुमाना या हिलाना। ३ हैरान या परेशान करना, इधर उधर दौड़ाना। ४ अनेक व्यापार कराना, किसीको बार बार उठने बैठने या और कोई काम करनेके लिये विवश करके तंग करना, हैरान करना।

नचिकेतस (सं० पु०) १ वाजश्रवा ऋषिके पुत्र। २ अग्नि, आग। नाचिकेत देखो।

नचिर (सं० क्लो०) न चिरं न शब्देन सहसुपेति समासः। शीघ्रकाल, थोड़ा समय।

नञ्के साथ यदि चिर शब्दका समास हो, तो अचिर होता है।

नचिरात् (सं० अव्य०) शीघ्र, जल्द, फौरन।

नचेत् (सं० अव्य०) नहीं तो, वैसा नहीं होनेसे।

नच्युत (सं० त्रि०) न च्युतः नञ् वा, न शब्देन सह सुपेति समासः। च्युत भिन्न स्थिर, नित्य, अविनाशी।

नछत्र (हिं० पु०) नक्षत्र देखो।

नजदीक (फा० वि०) निकट, पास, करीब, समीप।

नजदीकी (फा० स्त्री०) १ सामिप्य, पास या नजदीक होनेका भाव। (पु०) २ निकटका सम्बन्ध। (वि०) ३ निकटका, जो समीपमें हो।

नजफ खाँ—इनकी उपाधि अमीर-उल-उमरा, जुल-फिकार उद्दौला था। पारस्यके सफवी राजवंशमें इनका जन्म हुआ था। नादिर शाहने पारस्यके सिंहासन पर बैठ कर पुराने राजवंशके सभी मनुष्योंको जब कैद कर रखा था, उस समय ये भी कैद कर लिये गये थे। दिल्लीके सम्राट् महम्मद शाहने जिस समय नादिरशाहके निकट नवाब सफदरजङ्गके भाई मिर्जा महशीनको दूत बना कर भेजा था, उस समय मिर्जा महशीनके अनुरोधसे नजफ खाँ तथा उनकी बड़ी बहन कारागारसे छोड़ दी गई थी। इनकी बहनके साथ मिर्जा महशीनका विवाह हुआ था। पीछे तीन मनुष्य दिल्लीको आये। महशीनके मरने पर नजफ खाँ अपने भांजे महम्मद कुली खाँके निकट रहते थे जो उस समय इलाहाबादके शासनकर्त्ता थे। सफदर-जङ्गके पुत्र नवाब सुजाउद्दौलासे जब कुली खाँ मारे गये, तब नजफ खाँने बहुतसे अनुचरोंको साथ ले बङ्गालदेशमें प्रस्थान किया। वहां जा कर ये नवाब मीरकाशिमके अधीन काम करने लगे। उस समय मीरकाशिम अंगरेजोंके साथ लड़ाईमें उलझे हुए थे। नजफखाँने इसमें और भी उत्साह दिया। मीरकाशिमने जब नवाब सुजाउद्दौलाको शरण ली, तब नजफ खाँ उन्हें छोड़ बुन्देलखण्डके एक सरदार गुमान सिंहके अधीन काम करने लगे। बक्सरकी लड़ाईमें हार कर सुजाउद्दौला जब भाग गया, तब नजफखाँने अंगरेजोंसे प्रार्थना की, कि अभी वे ही इलाहाबाद प्रदेशके प्रकृत उत्तराधिकारी हैं। अंगरेजोंने उन्हें आदरपूर्वक ग्रहण कर इलाहाबाद प्रदेशके एक अंशका शासनकर्त्ता बनाया। नवाब वजीरके साथ अंगरेजोंकी सन्धिके समय इनका मिथ्या-उत्तराधिकारत्व प्रमाणित हुआ। इस पर अंगरेजोंने इन्हें पदच्युत करके मासिक दो लाख रुपये देनेका बन्दोबस्त कर दिया और शाह आलमके निकट अच्छी तरह सुफारिश कर दी। अंगरेजोंने नजफके प्रति जैसी व्यवस्था कर दी, सच पूछिये तो वे वैसे विश्वासके पात्र न थे। सुजाउद्दौलाके साथ वे गुप्तरीतिसे अंगरेजोंके विरुद्ध षड़यन्त्र कर रहे थे, कोराकी लड़ाईमें नवाबकी यदि जीत होती, तो नजफ उन्हें अवश्य सहायता देते। १७७१ ई०में वे सम्राट्के साथ इलाहाबादको छोड़ कर दिल्ली चले गये। जाटोंके हाथसे इन्होंने आगरा शहरका उद्धार किया, इस कारण सम्राट्ने इन्हें अमीर-उल-उमरा-जुल-फिकार उद्दौलाकी उपाधिसे भूषित किया था। १७८२ ई०को ४८ वर्षकी अवस्थामें इनका देहान्त

हुआ। अन्तिम समय नजफ सम्राट्के मन्त्री हुए थे।

नजम (अ० स्त्री०) कविता छन्द, पद्य।

नजमुद्दौला—बङ्गालके नवाब मीरजाफरके पुत्र। मीरजाफरके मरने पर अंगरेजोंने इनसे कुछ नकद ले कर इन्हें पितृसिंहासन पर बिठाया था और इनके साथ नूतन बन्दोबस्त कर देशरक्षाका भार स्वयं अपने हाथ लिया था।

नजर (अ० स्त्री) १ राजदर्शनार्थ प्रदत्त अर्थोपहार, भेंट। २ राजकोषमें देय अर्थोपहार अधीनता सूचित करनेकी एक प्रथा। इसमें राजाओं, महाराजों और जमींदारों आदिके सामने प्रजावर्गके या दूसरे अधीनस्थ और छोटे लोग दरबार या त्यौहार आदिके समय अथवा किसी अन्य विशिष्ट अवसर पर नकद रुपया आदि हथेलीमें रख कर सामने लाते हैं। यह धन कभी राजकोषमें रख दिया जाता है और कभी केवल स्पर्श कर छोड़ दिया जाता है। ३ अर्थदण्ड संगृहीत अर्थ, वह धन जो अर्थदण्ड द्वारा जमा किया गया हो। ४ निम्नपदस्थ लोक कर्त्तृक उच्चपदस्थ लोकको प्रदत्त उपहार, वह भेंट जो नीच ओहदेके मनुष्य उच्च ओहदेवालोंको देते हैं। ५ दृष्टि, निगाह, चितवन। ६ कृपादृष्टि, मेहरबानीसे देखना। ७ निगरानी, देखरेख। ८ पहचान, परख, शिनाख्त। ९ ध्यान, ख्याल। १० दृष्टिका कल्पित प्रभाव। यह प्रभाव किसी सुन्दर मनुष्य या अच्छे पदार्थ आदि पर पड़ कर उसे खराब कर देनेवाला माना जाता है। प्राचीन लोगोंका तथा आज कलके लोगोंका ऐसा विश्वास है, कि किसी किसी मनुष्यकी दृष्टिमें ऐसी शक्ति होती है कि जिस पर उसकी दृष्टि पड़ती उसमें कोई न कोई दोष या खराबी पैदा हो ही जाती है। यदि ऐसी दृष्टि किसी खाद्य पदार्थ पर पड़ जाय, तो वह खानेवालेको नहीं पचता और भविष्यमें उस पदार्थ परसे खानेवालेकी रुचि भी हट जाती है। इसके सिवा उनका यह भी ख्याल है कि यदि किसी सुन्दर बालक पर दृष्टि पड़े, तो वह बीमार हो जाता है। अच्छे पदार्थों आदिके सम्बन्धमें ऐसा कहते हैं कि यदि उन पर दृष्टि पड़े, तो उनमें कोई न कोई दोष या विकार अवश्य उत्पन्न हो जाता है। किसी विशिष्ट अवसर पर केवल किसी विशिष्ट मनुष्यकी दृष्टिमें ही नहीं, बल्कि प्रत्येक मनुष्यकी दृष्टिमें ऐसा प्रभाव माना जाता है।

नजरबंद (फा० वि०) १ जो किसी ऐसी जगह पर कड़ी देख रेखमें रखा जाय जहांसे वह कहीं आ जा न सके। (फा० पु०) २ जादू या इन्द्रजाल आदिका एक खेल। इनके विषयमें जन साधारणका ख्याल है, कि वह लोगोंकी नजर बांध कर किया जाता है।

नजरबंदी (फा० स्त्री०) १ राज्यकी तरफसे एक प्रकारकी सजा। इसमें दण्डित मनुष्य किसी सुरक्षित या नियत स्थान पर रखा जाता है और उस पर कड़ा पहरा बैठता है। जिसे यह सजा मिलती है उसे कहीं आने जाने या किसीसे मिलने जुलनेकी आज्ञा नहीं होती। २ लोगोंकी दृष्टिमें भ्रम उत्पन्न करनेकी क्रिया, जादूगरी, बाजीगरी।

नजरबाग (अ० पु०) महलों या बड़े बड़े मकानों आदिके सामने या चारों ओर उनके अहातेका बाग।

नजर-बी-उजबक—अकबरके एक मनसबदार। जिस दिन मानसिंह अलीमसजिदके निकट तारिकी जातिको परास्त कर राजाके समीप पहुंचे, उसी दिन नजर-बी और उनके तीन पुत्र कानबर-बे, शादि-बे और बाकी-बेकी अकबरसे जान पहचान हुई थी। सम्राट् उनके वीरत्वादि सुन कर बहुत सन्तुष्ट हुए और उनकी खूब खातिर की। पादशाहनामामें नजर-बे हजारी मनसबदार नामसे प्रसिद्ध है।

नजर महम्मद खाँ—१ बलखके अधिपति। १६४६ ई०में दिल्लीके मुगल-सम्राट्ने इन्हें परास्त कर राज्य छीन लिया था। २ भूपालके एक नवाब। १८१६ ई०में भूपालके नवाब वजीर महम्मदके मरने पर उनके पुत्र महम्मदखां वहांके नवाब हुए।

नजरसानी (अ० स्त्री०) पुनर्विचार या पुनरावृत्ति, किसी किये हुए कार्य या लिखे हुए लेख आदिके उसमें सुधार या परिवर्त्तन करनेके लिये फिरसे देखना।

नजरहाया (अ० वि०) नजर लगानेवाला, जो नजर लगावे।

नजराना (हिं० क्रि०) बुरी दृष्टिके प्रभावमें आना, नजर लग जाना।

नज़राना (अ० पु०) १ भेंट, उपहार। २ जो वस्तु भेंटमें दी जाय।

नज़ला (अ० पु०) १ यूनानी हिकमतके अनुसार एक प्रकारका रोग, इसमें गरमीके कारण सिरका विकारयुक्त पानी ढल कर भिन्न भिन्न अङ्गोंकी ओर प्रवृत्त होता और जिस अङ्गकी ओर ढलता है उसका अनिष्ट कर देता है। कहते हैं, कि यदि नज़लेका पानी सिरमें ही रह जाय, तो बाल सफेद हो जाते हैं, आँखों पर उतर आवे, तो दृष्टि कम हो जाती है, कान पर उतरे, तो आदमी बहरा हो जाता है, नाक पर उतरे, तो जुकाम होता है, गलेमें उतरे तो खाँसी होती है और अण्डकोश-में उतरे तो उसकी वृद्धि हो जाती है। २ जुकाम, सरदी।

नज़लाबंद (फा० पु०) अफीम और चूने आदिका वह फाहा जो नज़लेको गिरनेसे रोकनेके लिये दोनों कन-पटियों पर लगाया जाता है।

नज़ाकत (फा० स्त्री०) सुकुमारता, कोमलता, नाज़ुक होनेका भाव।

नजात (फा० स्त्री०) १ मुक्ति, मोक्ष। २ छुटकारा, रिहाई।

नज़ामत (अ० स्त्री०) १ नाज़िमका विभाग या महकमा। २ नाज़िमका पद।

नज़ारत (अ० स्त्री०) १ नाज़िरका पद। २ नाज़िरका विभाग। ३ नाज़िरका वह आफिस जहाँ वे बैठ कर काम करते हैं।

नज़ारा (अ० पु०) १ दृश्य। २ दृष्टि, नज़र। ३ स्त्री या पुरुषका दूसरे पुरुष या स्त्रीको प्रेमकी दृष्टिसे देखना।

नज़ारेबाज़ी (फा० स्त्री०) स्त्री या पुरुषका दूसरे पुरुष या स्त्रीको प्रेमकी दृष्टिसे देखनेकी क्रिया या भाव।

नजाबत् खाँ खानखाना—सम्राट् आलमगीरके समसामयिक एक प्रान्त व्यक्ति और हजारी मनसबदार। ये नवाब थे। सम्राट् इनकी खूब खातिर करते थे। ये अकबरके समसामयिक मिर्जा सुलेमान बदकशानीके प्रपौत्र रहे। इनका असल नाम मिर्जा सुजा था। १६६४ ई०को उज्जयनी नगरमें इनकी मृत्यु हुई। इनके पिताका नाम था मिर्जा शाहरुख। मिर्जा शाहरुखने अकबरकी कन्या शकुरुन्निसा बेगमसे शादी की थी। शाहरुख देखो।

नजीब उल्ला खाँ—कर्णाट प्रदेशके नवाब महम्मद अलीके भाई। इन्होंने अपनी भरण पोषणके लिये बड़े भाईसे १७५३ ई०में नेल्लूर नामक स्थान पाया था। १७५७ ई०में नजीबउल्लाने भाईके विरुद्ध षड़यन्त्र रचा, लेकिन उसमें कृतकार्य न हो कर पुनः उनकी शरण ली।

नजीब उन्निसा बेगम—अकबर बादशाहकी बहन और खोजा हुसेन नकशबन्दीकी स्त्री।

नजीब खाँ—एक रोहिला सरदार। ये अली महम्मदखाँके शासनकालमें रोहिलखण्ड आये थे और अपने साहस तथा कार्यदक्षता द्वारा थोड़े ही समयके भीतर संभ्रान्त उच्च पद पर नियुक्त हुए थे। बाद इन्होंने दिल्लीमें प्रवेश किया। सफदरजङ्गके विद्रोही होने पर ये उनके विरुद्ध भेजे गये और इन्होंने उसे अच्छी तरह परास्त किया। १७५२ ई०में बादशाह अहमद शाहने इन्हें नजीब उद्दौलाकी उपाधि दी थी। अहमद शाह अबदलीके साथ महाराष्ट्रोंकी जो लड़ाई छिड़ी थी, उसमें ये भी पहुंचे हुए थे। १७७० ई०में इनका देहान्त हुआ।

नज़ीर (अ० स्त्री०) १ उदाहरण, दृष्टान्त, मिसाल। २ किसी मुकदमेंका वह फैसला जो उसी प्रकारके किसी दूसरे मुकदमेमें वैसा ही फैसलेके लिये उपस्थित किया जाय।

नजीरी—एक कवि। इनका जन्मस्थान निशापुरमें था। ये भारतवर्षमें आ कर गुजरातके अन्तर्गत अहमदाबादमें रहने लगे थे। यहां हि० १०२२ सालमें इनका प्राणान्त हुआ।

नजूम (अ० पु०) ज्योतिषविद्या।

नजूमी (अ० पु०) ज्योतिषी।

नज़ूल (अ० पु०) १ सरकारी ज़मीन। २ नजूल देखो।

नञ् (सं० अव्य०) अभाव-संज्ञक। नञ् शब्दकी समास होनेसे यदि उसके बाद स्वरवर्ण रहे, तो नञ्को अनङ् अन् और यदि व्यञ्जन वर्ण रहे, तो विकल्पसे अ होता है। यथा—न-अन्त अनन्त, नान्त, न-च्युत अच्युत नच्युत। नञ्के छः अर्थ हैं, यथा—१ सादृश्य, २ अभाव, ३ अन्यत्व, ४ अल्पत्व, ५ अप्राशस्त्य और ६ विरोध। उदाहरण-अब्रा-ह्मण, यहां पर नञ्का अर्थ सदृश है, अब्राह्मण शब्दसे ब्राह्मणके सदृश नहीं ऐसा समझना चाहिये।

अपाप, न-पाप, यहां पर नञ्का अर्थ अभाव है, अर्थात् अपाप शब्दका अर्थ पापमात्रका अभाव होता है। अघट, न-घट, घटसे अन्य, इसीसे यहां पर अघट शब्दका अर्थ अन्यत्व है। अनुदरी कन्या, अनुदरी, न-उदरी, यहां पर अनुदरी शब्दके नञ्का अर्थ अल्पत्व अर्थात् अल्प उदरविशिष्ट है। अकेशी न-केशी, यहां पर अप्रशस्तकेशी, ऐसा अर्थ होगा। असुर, न-सुर, यहां पर नञ्का अर्थ विरोध है, अर्थात् असुर शब्दसे सुर-विरोधी ऐसा अर्थ होगा। (मुग्धबोधटीका दुर्गादास०)

शिरोमणिने नञ्वादमें पहले 'अभावमात्रं नञोऽर्थः' अभाव ही नञका अर्थ है, ऐसा अर्थ किया है।

नञ्का अर्थ अभाव है। अभाव दो प्रकारका होता है, संसर्गाभाव और अन्योन्याभाव। अभाव यह शब्द जाननेके पहले कुछ नैयायिकोंकी परिभाषाका अर्थ जानना आवश्यक है, यथा जिसका अभाव होता है, उसे 'प्रतियोगी' और जिसमें अभाव रहता है, उसे अनुयोगी कहते हैं। अधिकरणका नाम अनुयोगी और आधेयका नाम प्रतियोगी है।

संसर्गाभाव—संसर्ग सम्बन्ध, संसर्गके आरोपजन्य ज्ञान विषयका अभाव यो संसर्गाभाव है। संसर्गका आरोप अर्थात् प्रतियोगितावच्छेदकके सम्बन्धमें प्रति-योगीका आरोप, जैसे यहां पर यदि घट रहता, तो घटकी उपलब्धि होती, "संयोग सम्बन्धमें घट नहीं है" यहां पर प्रतियोगितावच्छेदक सम्बन्ध-संयोग जानना चाहिये।

उक्त संसर्गाभाव तीन प्रकारका है—प्रागभाव, ध्वंसा-भाव और अत्यन्ताभाव।

पहले कहा जा चुका है, कि जिसका अभाव रहता है, उसे "प्रतियोगी" कहते हैं। जो अभाव अपने प्रति-योगीको उत्पन्न करता है, उसका नाम "प्रागभाव" है। जैसे इस मिट्टीसे घट होगा, अभी घट नहीं है, भविष्यमें होगा, इसी अभावसे घटकी उत्पत्ति है, इसीसे इसका नाम "प्रागभाव" है। जहां या जिस मिट्टीसे भविष्यमें घट होनेकी सम्भावना है, वहां या वह मट्टी उक्त प्राग-भावका अधिकरण वा अनुयोगी है। घटकी उत्पत्ति करके प्रागभाव स्वयं नष्ट हो जाता है। प्रागभावका नाश है, उत्पत्ति नहीं।

ध्वंसाभाव—जिस अभावकी उत्पत्ति है और नाश भी है, उसे "ध्वंस" कहते हैं। उक्त अभावका आकार ऐसा है, जैसे 'इह कपाले घटो ध्वस्तः' दण्डाघातसे इस कपालमें अर्थात् कांकड़से घट नष्ट हो गया है, पहले घट-का अभाव नहीं था, घट था, पीछे दण्डाघात द्वारा घटका अभाव हुआ। किन्तु सहस्रयुगमें भी उक्त अभावका अभाव नहीं होगा। ध्वंसकी उत्पत्ति है, नाश नहीं है प्रागभाव और ध्वंसाभाव यही दो अभाव अनित्य हैं। अत्यन्ताभाव, जो संसर्गाभाव नित्य है, उसीको अत्यन्ता-भाव कहते हैं। अत्यन्ताभावका आकार इस प्रकार है "अत्र घटो नास्ति" यहां पर घड़ा नहीं है, अर्थात् संयोग-सम्बन्धमें यहां घड़ा नहीं है, यही समझा जाता है। इस जगह घटका अभाव समझा गया है, अतएव इस अभावका प्रतियोगी घट है। जैसे ब्राह्मणमें ब्राह्मणत्व, गोमें गोत्व और मनुष्यमें मनुष्यत्व एक एक धर्म अवश्य रहेगा, जिस सम्बन्धमें अभाव माना जाता है, उस सम्बन्धको प्रतियोगिताका अवच्छेदक सम्बन्ध और प्रतियोगीके अंशमें विशेषणीभूत जो धर्म है, उसे प्रतियोगिताका अवच्छेदक धर्म कहते हैं। सुतरां प्रति-योगिताके अवच्छेदक दो व्यक्ति हुए, धर्म और सम्बन्ध। "अत्र घटो नास्ति" यहां पर घट नहीं है, प्रतियोगिता-का अवच्छेदक सम्बन्ध संयोग और अवच्छेदक धर्म घटत्व है। फिर एक नियम यह भी है, कि जो जिसका अवच्छेदक होता है, वह उसका अवच्छिन्न भी होता है और प्रतियोगिता तथा अभाव इन दोनोंका परस्पर निरूप्य निरूपकभाव सम्बन्ध है, अर्थात् प्रति-योगिताका निरूपक अभाव होता है।

अभी सबके मिलनेसे "अत्र संयोगेन घटो नास्ति" इसका अर्थ ऐसा हुआ, संयोग-सम्बन्धावच्छिन्न और घटत्वावच्छिन्न जो घटनिष्ठ (घटमें) प्रतियोगिता है, उस प्रतियोगिताका निरूपक जो अभाव है, वही यहां पर मौजूद है।

इस अत्यन्ताभावके साथ प्रतियोगिताको अधिकरणता-का विरोध है। एक समय एक स्थान पर जो दो पदार्थ नहीं रह सकते, उन्हीं दो पदार्थोंका परस्पर विरोध-व्यवहार हुआ करता है। जिस तरह तम और

दुःखकी विरोधिता। जहां प्रतियोगी (घट)-की अधिकरणता रहती है, वहां उसका अभाव नहीं रहता, जहां घटका अभाव रहता है, वहां घटकी अधिकरणता नहीं रहती, यही विरोध है।

पहले कहा जा चुका है, कि संसर्गाभाव नित्य है, वह नित्य इस अत्यन्ताभाव सम्बन्धमें जानना चाहिये, अर्थात् अत्यन्ताभावकी उत्पत्ति और विनाश नहीं है। सभी समय सब वस्तुओंका अत्यन्ताभाव सब जगह रहता है।

अभी आपत्ति इस बातकी हो सकती है, कि यदि सभी जगह सब वस्तुओंका अत्यन्ताभाव है, तो जहां घटको वर्त्तमान देखते हैं, वहां घटका अभाव प्रत्यक्ष नहीं होता, लेकिन देखा जाता है, कि वहां घट नहीं है अर्थात् घटका अभाव है। फिर ज्यों ही वहां दूसरा घड़ा ला कर रखा, त्यों ही उस घड़ेका अभाव दूर हुआ, फिर घड़ेका अभाव नहीं रहा। लेकिन पुनः घड़ेको उस जगहसे अलग रखने पर ही वहां घड़ेका अभाव हो जाता है। अतएव जिसकी उत्पत्ति और नाश है, उसे किस प्रकार नित्य कह सकते, इसके उत्तरमें नैयायिक लोग कहते हैं, कि जहां घट है, वहां तब भी घटका अभाव है सही, किन्तु उसकी उपलब्धि नहीं होती, घटका अभाव उस समय भी देखा जाता, यदि वह घट वहां प्रतिबन्धक रूपसे बैठा न रहता। इस प्रकार प्रतिबन्धकवशतः ही घटके अभावकी उपलब्धि नहीं होती है। घटको हटा लेनेसे ही प्रतिबन्धक नहीं रहता और तब घटाभाव प्रत्यक्ष हो जाता है।

अन्योन्याभाव—तादात्म्यसम्बन्धमें सम्बन्ध जो अभाव रहता है उसे अन्योन्याभाव कहते हैं, जिस तरह संयोग सम्बन्धमें घट पृथ्वी पर रहता है, उसी तरह तादात्म्य-सम्बन्धमें आप आपमें रहता है अर्थात् तादात्म्य सम्बन्धमें घट घटमें रहता और पट पटमें रहता है। अन्योन्याभावका आकार इस प्रकार है "अयं घटो न" यह वस्तु घट नहीं है, तो क्या पट है? "घट नहीं है" इसी नञ्का अर्थ अन्योन्याभाव है। अन्योन्याभावका दूसरा नाम "भेद" है। अतः जिस अभावके बलसे परस्परका भेद प्रतीत होता है, उसका नाम अन्योन्याभाव है।

यह वस्तु घट नहीं है अर्थात् घट भिन्न है, तो क्या पट है? यहां पर घट और पटकी भिन्नता प्रतीत होती है। अभी सब मिल कर "यह वस्तु तादात्म्यसम्बन्धमें घट नहीं है" इसका अर्थ ऐसा हुआ, "तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्न और घटत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताका निरूपक भेद-विशिष्ट यही पट है।"

उक्त अन्योन्याभावके साथ विरोध प्रतियोगितावच्छेदकके साथ प्रतियोगितावच्छेदक घटत्व जहां रहता है वहां घटका भेद नहीं रहता, घटत्व है घटमें, इस घटमें घटका भेद नहीं रहता। घटका भेद रहेगा सिर्फ घटके सिवा पटादि सभी वस्तुओंमें। इसी प्रकार नञ् अर्थका विचार नञ्वादमें अति विस्तृतरूपसे लिखा है। विस्तारके भयसे उनका उल्लेख नहीं किया गया। यही नञ्वाद नैयायिकका प्रधान ग्रन्थ है।

जहां विधिकी प्रधानता और निषेधकी अप्रधानता जानी जाती है तथा समास पदमें नञ्का प्रयोग नहीं होता, वहां उसे पर्युदास नञ् कहते हैं। यथा—"रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत" रातमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये, यहां पर यह समझा जाता है, कि रात छोड़ कर और सभी समयमें श्राद्ध कर्त्तव्य है। क्योंकि शास्त्रान्तरमें सभी जगह श्राद्धकार्यका विधान है, इसीसे इस श्राद्धकरणके साक्षात् सम्बन्धमें अन्वय हुआ है, विध्यर्थवाचक लिङ्प्रत्ययमें अर्थात् 'कुर्वीत' इसी लिङ्प्रत्यय द्वारा यहां पर विधिकी प्रधानता समझी जाती है। श्राद्ध करना ही होगा, रात्रि छोड़ कर दूसरे समयमें श्राद्ध कर्त्तव्य है और यहां प्रतिषेधकी अप्रधानता हुई है। साक्षात् विध्यर्थवाचक लिङर्थमें नञ् अर्थका अन्वय नहीं होनेसे ही निषेधका अप्राधान्य हुआ। जैसे 'रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत' रातमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये, यहां पर नञ्का अर्थ अन्योन्याभावभेद है अर्थात् नहीं करना चाहि[illegible], यह न जान कर रात्रि भिन्न कालमें करना चाहिये, अर्थ-[illegible] ही भेद नञ्का अर्थ हुआ। भेद रूप निषेधका साक्षा[illegible]त् अन्वय हुआ है, विधार्थवाचक लिङर्थमें अन्वय न[illegible]हीं होता, इसीसे निषेधकी अप्रधानता हुई और यहां [illegible] पर पर्युदास नञ् हुआ।

जहां [illegible] विधिकी अप्रधानता और निषेधकी प्रधानता

तथा नञ् अर्थका अन्वय क्रियामें होता है, वहां उसे प्रसज्य प्रतिषेध कहते हैं। यथा—"नातिरात्रे षोड़शिनं गृह्णाति" अतिरात्र शब्दका अर्थ अतिरात्र नामक यज्ञ और षोड़शी शब्दका अर्थ सोमलतारसपूर्ण पात्र है। अतिरात्र नामक यज्ञमें सोमलतारसपूर्ण पात्र ग्रहण नहीं करना चाहिये। यहां पर विधेय कर्म षोड़शि-ग्रहण हैं, इसके साक्षात् सम्बन्धमें विध्यर्थ वाचक 'लट'के साथ अन्वय नहीं होता, इसीसे विधिको अप्रधानता हुई और नञर्थ न निषेधका विध्यर्थ वाचक लट् अर्थके साक्षात् सम्बन्धमें अन्वय हुआ है, इसीसे निषेधको प्रधानता हुई है। अर्थात् अतिरात्र यज्ञमें सोमलतारसपूर्ण पात्र ग्रहण करना निषेध बतलाया है, 'न गृह्णाति' ग्रहण नहीं करना चाहिये, दूसरे शास्त्रोंमें सोमलतारसपूर्ण पात्र ग्रहण करनेका विधान है, किन्तु अतिरात्र यज्ञमें इसे ग्रहण नहीं करना चाहिये। दूसरे शास्त्रोंमें इसका जो विधान बतलाया है, वही विधेय यहां पर अप्राधान्य और प्रतिषेधका प्राधान्य हुआ। ग्रहण मत करो, यही निषेधका प्राधान्य है, इसीसे यहां पर प्रसज्य-प्रतिषेध हुआ।

फिर ऐसा भी स्थान है, जहां एक ही जगह पर्युदास और प्रसज्य-प्रतिषेध दोनों होते हैं। यथा भोजराज—

"पौषे चैत्रे कृष्णपक्षे नवान्नं नाचरेद्‌बुधः।
भवेज्जन्मान्तरे रोगी पितृणां नोपतिष्ठते॥"

यहां पर "न आचरेत्" इस नञ्का अर्थ प्रसज्य और पर्युदास दोनों होता है। क्योंकि पौष और चैत्र मासमें तथा कृष्णपक्षमें नवान्न श्राद्ध नहीं करना चाहिए; जो करता है, वह जन्मान्तरमें रोगी होता है और श्राद्ध-तृप्तिके लिए पितृलोकमें नहीं पहुँचता।

नवान्न श्राद्ध पौषादिमें नहीं करना चाहिए, क्योंकि जन्मान्तरमें रोगी होता है, इससे यही समझा गया कि यह निन्दाश्रुति है। विधाय यह प्रसज्य-प्रतिषेध है और उक्त श्राद्ध पितृलोकमें उपस्थित नहीं होगा, इससे जाना जाता है, कि श्राद्ध सिद्ध नहीं होगा। सुतरां पर्युदास अर्थात् जहां कार्यकी सिद्धि है, और कुछ प्रत्यय भी है, वहां प्रसज्य-प्रतिषेध है और जहां कार्यकी सिद्धि नहीं है तथा कोई प्रत्यवाय भी नहीं है, यहां पर्युदास होता है। सारांश यह है, कि प्रसज्यको जगह कार्यको सिद्धि होती है सही, लेकिन दोषग्रस्त होना पड़ता है। पर्युदासको जगह न कार्यकी सिद्धि होती और न कार्यके लिए कोई प्रत्यवाय ही होता है। 'रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत' यहां पर रात्रिकालमें श्राद्ध करनेसे श्राद्धको सिद्धि नहीं होगी और रात्रिकालमें श्राद्धके लिए प्रत्यवायभागी नहीं होना पड़ेगा। 'नातिरात्रे षोड़शिनं गृह्णाति' यहां पर कार्यको सिद्धि होगी। किन्तु प्रत्यवायग्रस्त होना पड़ेगा इसीको साधारणतः पर्युदास और प्रसज्यप्रतिषेध जानना चाहिये। रघुनाथ, जगन्नाथ पण्डित, पट्टाभिराम, वेंकटाचार्य, गदाधर, विश्वनाथ आदि रचित नञ्वाद सम्बन्धीय ग्रन्थोंमें विस्तृत विवरण देखो।

नञ्जनगढ़—१ महिसुर राज्य महिसुर जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० ११° ५१' और १२° १४' उ० तथा देशा० ७६° २७' और ७६° ५६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३८४ वर्गमील और लोकसंख्या १०८१७ के लगभग है। इसमें दो शहर और २०६ ग्राम लगते हैं। राजस्व १७१००० रु० है। कब्बनी नामको नदी तालुकके पश्चिमसे पूर्वको बह गई है।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १२° ७' उ० और देशा० ७६° ४१' पू० कब्बनी नदीके किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ५८८१ है। यहां नञ्जनेश्वर नामक शिवका विख्यात मन्दिर है। उक्त मन्दिरको लम्बाई ३८५ फुट और चौड़ाई १६० फुट है तथा यह २४७ स्तम्भोंसे वेष्टित है। माघ मासके शेष भागमें यहां रथयात्रा होती है जिसमें हजारों मनुष्य समागम होते हैं। १८७३ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है।

नञ्जराजपत्तन—दाक्षिणात्यके अन्तर्गत कुर्ग राज्यका एक तालुक। यह अक्षा० १२° २१' और १२° ५१' उ० तथा देशा० ७५° ४१' और ७६° ५' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३५५ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ४२७२० है। इसमें तीन शहर और २८० ग्राम लगते हैं। तालुकका पश्चिमांश पर्वतमय है। हेमावती और कुमारी नामको दो प्रसिद्ध नदियां इस तालुकके पश्चिम और दक्षिणमें बहती हैं।

नट (सं० पु०) नमतीति नम-अट। (अनिदाम्बुखिति।

उण. ४।१०४) १ शैलूषादित्व। या नटति नृत्यति इति-नट-अच्। २ नर्त्तक, वह जो नाट्य करता हो। पर्याय—शैलाली, शैलूष, जायाजीव, कृशाश्वी, भरत, सर्ववेशी, भरतपुत्रक, धात्रीपुत्र, रङ्गाजीव, रङ्गावतारक। ३ अशोक वृक्ष। ४ किष्कुपर्वा, नल नामकी घास। ५ वर्णसङ्कर जातिविशेष। इसकी उत्पत्ति शौण्डिककी स्त्री और शौण्डिक पुरुषसे मानी गई है और जिसका काम गाना बजाना बतलाया गया है। ६ व्रात्य क्षत्रियसे उत्पन्न क्षत्रिय जाति विशेष, मनुके अनुसार क्षत्रियोंकी एक जाति जिसकी उत्पत्ति व्रात्य क्षत्रियोंसे मानी जाती है। ७ रागविशेष, सम्पूर्ण जातिका एक राग। नारदपुराणके अनुसार ये रागके पुत्र माने जाते हैं। रागमालामें इसे रागिणी बतलाया है।

स्वरग्राम—"स ऋ ग म प ध नि ::"

नटनारायण ही नट समझे जाते हैं। अभी नट जातिका राग नौ प्रकारका प्रचलित है जिसे सङ्गीतशास्त्र-व्यवसायिगण नवनट कहते हैं। यथा—शुद्धनट, केदारनट, छायानट, कदम्बनट, हाम्बीरनट, और आहीरीनट। (संगीतसारस०) इसके गानेका समय तीसरा पहर और सन्ध्या है।

८ नृत्यगीत व्यवसायी जातिविशेष, नीच जाति जो गा बजा कर और तरह तरहके खेल तमाशे आदि करके अपना निर्वाह करती है। पूर्व बङ्गालमें इस जातिके लोग अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। प्रवाद है, कि पश्चिमोत्तर प्रदेशकी कथक-जातीय ब्राह्मण श्रेणी ही नवाबी अमलमें ढाका आ कर जातिभ्रष्ट हुई और नट जातिमें परिणत हो गई। फिर किसीका कहना है, कि गलेकी चूड़ी बनानेवाली चुनी जातिकी एक शाखा ही अपनी वृत्ति छोड़ कर नाच गान करने लगी और नट जाति कहलाने लगी। मि० वाईज कहते हैं, कि उनके समयमें बङ्गाल देशमें नट नामकी कोई स्वतन्त्र जाति नहीं थी।

पुराणमें मालाकारके औरस और शूद्राके गर्भसे नट जातिकी उत्पत्ति बतलाई है। नट जातिके लोग कहते हैं, कि वे भरद्वाज मुनिके औरस और किसी अप्सराके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। विक्रमपुरके नटोंका कहना है, कि इन्द्रसभामें किसी देवनर्त्तकने शापभ्रष्ट हो कर पृथ्वी पर जन्म लिया था। उन्हींके वंशधर यह नट जाति है। नट लोग स्थानभेदसे नड़, नट, नर्त्तक और नाटक नामसे पुकारे जाते हैं। इनकी थोड़ी संख्या होनेके कारण ये लोग निम्न श्रेणीकी हिन्दू कन्यासे शादी करके और भी नीच हो गये हैं। इन लोगोंके गोत्र होता है। सबोंका एक गोत्र भरद्वाज है। इनकी उपाधि नन्दी और भक्त है। जो नाच गानमें प्रवीण होते, वे 'उस्ताद' कहलाते हैं। ये लोग शूद्रकी नाईं तीस दिन तक अशौच मानते हैं और साधारणतः वैष्णव हैं। चाण्डाल तथा इसी प्रकारकी दूसरी नीच-जातिके यहां जा कर ये नाच गान नहीं करते। फिलहाल इनका आदर घट जानेसे इन्होंने मुसलमानके यहां भी जाना बंद कर दिया है। मुसलमानोंमें भी बाजुनिया नामक नट सरीखा एक सम्प्रदाय है।

बचपनमें नट बालक नाच गान सीखते हैं। इस समय इन्हें 'बागाती' कहते हैं। किन्तु जवान होने पर भी ये लोग गीत सीखते और जीविकाके लिये मुसलमान नर्त्तकीको गीत सिखाते हैं तथा उनके साथ जा कर जहां तहां सफरदाईका काम करते हैं। एक नर्त्तकी और कई एक नटोंसे एक सम्प्रदाय बनता है। जो नाच गान सीख नहीं सकते, वे खेती बारी करके अपना गुजारा करते हैं। पहले कोई हिन्दू रमणी नर्त्तकी नहीं होती थी, किन्तु अभी वैष्णवी और वेश्या हिन्दू कन्यायें भी यह व्यवसाय करने लग गई हैं। ये लोग भी सारङ्गी, बेहला, मंजीरा, डुग्गी, तबला आदि वाद्ययन्त्रका व्यवहार करते हैं। नट लोग प्रति दिन सुबहमें बिछावनसे उठ कर अपने वाद्य यन्त्रोंको प्रणाम करते हैं। श्रीपञ्चमीके दिन जब तक सरस्वती पूजाका शेष नहीं होता तब तक ये लोग गीतवाद्यका जिक्र तक भी नहीं करते। नट जातिकी स्त्रियां नाच गान सीखती हैं सही, किन्तु जीविकाके लिये वे कभी इधर उधर नाचने गाने नहीं जातीं। वे केवल विवाह आदि अवसरोंमें अपने घरमें ही नाचती गाती हैं। अनेक नट-युवक मुसलमानी नर्त्तकीको सिखाते समय उनके प्रेममें फंस कर मुसलमान बन जाते हैं।

संस्कृत नाटकादिमें नटभटोंका उल्लेख देखनेमें आता है। बहुतोंका विश्वास है, कि हिन्दू राजाके राजत्वकालमें नाटकाभिनय करना इस नटजातिका एक और भी व्यवसाय था। संस्कृत नाटकमें नान्दीपाठी नटको ब्राह्मण बतलाया है। किसी किसी नाटकमें नटको सूत्रधर भी बतलाया है। अभी अभिनयविद्यावित् व्यक्तिको भी नट कहने लग गये हैं, किन्तु इस नटसे नट जातिका बोध नहीं होता। क्योंकि पाश्चात्य प्रणाली द्वारा अभिनयकी प्रथा अवलम्बित हो जानेसे अभी ब्राह्मणादि सभी जातिके लोग उस कलाविद्याका अनुशीलन करते हैं।

८ मथुरामें उरमुण्डनामक पर्वत पर अवस्थित बौद्ध लोगोंका एक विहार। कहते हैं, कि बुद्धदेवने यहां आ कर नट और भट नामक दो नागोंको बौद्ध धर्ममें दीक्षित किया था। उस दीक्षाको चिरस्मरणीय करनेके लिये ही नट और भट नामक दो विहार बनाये गये थे। १० देवनाल, बड़ा नरकट। ११ शोभाञ्जन। १२ परिपेल तृण, केवटीमोथा।

नटकमेलक (सं० क्ली०) हास्यरसप्रधान दृश्यकाव्यभेद। साहित्यदर्पणमें इस पुस्तकका उल्लेख देखनेमें आता है।

नटखट (हिं० वि०) १ अधमी, उपद्रवी, चंचल। २ धूर्त्त, चालाक, चालबाज, मक्कार।

नटखटी (हिं० स्त्री०) बदमाशी, शरारत, पाजीपन।

नटगति (सं० स्त्री०) छन्दोभेद, एक वर्णवृत्त। इसके प्रति चरणमें १४ अक्षर रहते हैं।

नटचर्या (सं० स्त्री०) नटस्य चर्या ६-तत्। अभिनय, नाटक।

नटता (सं० स्त्री०) नटस्य भावः नट-तल्-टाप्। नटत्व, नटका भाव, नटका काम।

नटन (सं० क्ली०) नट भावे ल्युट्। नृत्य, नाच।

नटना (हिं० क्रि०) १ नाट्य करना। २ अस्वीकार करना, कह कर बदल जाना, मुकरना। ३ नृत्य करना, नाचना। ४ नष्ट करना।

नटना (हिं० पु०) १ मकड़ी पकड़नेका एक बड़ा टोकरा जिसका पेंदा चौड़ा होता है, टाप। २ दस खामनेका बांसकी बनी छलनी।

नटनारायण (सं० पु०) नटानां नारायण इव। राग विशेष। हनुमत्‌के मतसे यह मेघरागका तीसरा पुत्र और भरतके मतसे दीपकरागका पुत्र है। लेकिन सोमेश्वर और कल्लिनाथके मतसे यह छः रागोंमेंसे एक है। यह राग हास्य समयमें गिरिजाके मुखसे उत्पन्न हुआ था। इसकी छः पत्नियां हैं, यथा, कामोदी, कल्याणी, आभीरी, नाटिका, सारङ्गी और नट्टहम्बीरा। इसके ग्रह, अंश और न्यास षड्ज हैं। यह सम्पूर्ण जातिका राग है।

रत्नमालाके मतसे मूर्त्ति वा ध्यान—

"श्री वेशधारी पुरुषो नवीनः सङ्गीतशास्त्रे अभिमानधानः।
गायन् सतालं सलयं मनोज्ञः स्यान्नट्टनारायण राग एष॥"

(रत्नमाला)

स्वरग्राम—"स ऋ ग म प धि नि स ::"

(सङ्गीतसारस०)

यह हेमन्त ऋतुमें रातके समय २१ दण्डसे २६ दण्ड तक गाया जाता है। कुछ लोग इसे मधुमाधव, बिलावल और शङ्कराभरणके मेलमें बना हुआ और कुछ लोग कल्याण, शङ्कराभरण, नट और बिलावलके मेलसे बना हुआ सङ्कर राग भी मानते हैं। एक और शास्त्रकारके मतानुसार यह षाड़व जातिका राग है। इसमें निषाद वर्जित है और यह वर्षाऋतुके तृतीय प्रहरमें गाया जाता है। उनके मतानुसार बिलावल, कामोदी, सावेरी, सुहवी और सोरठ इसकी रागिनियां तथा शुद्धनट, हम्बीरनट, सारङ्गनट, छायानट, कामोदनट, केदारनट, मेघनट, गौड़नट, भूपालनट, जयजयनट, शङ्करनट, हीरनट, श्यामनट, वराड़ीनट, विभासनट, बिहागनट और शङ्कराभरणनट इसके पुत्र हैं। लेकिन यथार्थमें ये सब सङ्कर राग हैं जो नट तथा भिन्न भिन्न रागोंके मेलसे बनते हैं।

नटनी (हिं० स्त्री०) १ नटकी स्त्री। २ नट जातिकी स्त्री।

नटपत्रिका (सं० स्त्री०) वार्त्ताकु, बैंगन, भांटा।

नटपर्ण (सं क्ली०) गुड़त्वक्, दालचीनी।

नटभटिकाविहार (सं० पु०) उरुमुण्डस्थित बौद्धविहार, बौद्ध लोगोंका वह विहार जो उरुमुण्ड पर अवस्थित है।

नटभूषण (सं० क्ली०) नटानां भूषणं यस्मात्। हरिताल, हरताल।

नटमण्डन (सं० क्ली०) हरिताल।

नटमल (सं० पु०) एक प्रकारका राग।

नटमल्लार (सं० पु०) सम्पूर्ण जातिका एक सङ्कर राग। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह नट और मल्लारके योगसे बनता है।

नटमल्लारि— रागिणीविशेष। नट और मल्लारके योगसे इसकी उत्पत्ति हुई है।

नटरङ्ग—नटके जैसा रङ्ग वा अभिनय कार्य।

नटबटु (सं० पु०) १ अभिनेताका पुत्र। २ युवक अभिनेता।

नटवर (सं० पु०) नटेषु वरः। १ प्रधान अभिनेता, नाट्य कलामें बहुत प्रवीण मनुष्य। २ नटके जैसा अङ्ग भङ्गी और बोलनेमें चतुर। ३ श्रीकृष्ण जो नाट्यकला और नाटकशास्त्रके आचार्य थे। (त्रि०) ४ बहुत चतुर, चालाक।

नटवासरसों (हिं० पु०) साधारण सरसों।

नटसंज्ञक (सं० पु०) नटस्य संज्ञा यस्य कप्। १ गोदन्ताख्य हरिताल, गोदन्ती हरताल। २ नट।

नटसाल (हिं० स्त्री०) १ कांटेका वह भाग जो निकाल लिये जाने पर भी टूट कर उसी जगह रह जाता है। २ मानसिकव्यथा, कसक, पीड़ा। ३ बाणकी गांसी जो शरीरके भीतर रह जाय। ४ वह फांस जो बहुत छोटी होनेके कारण नहीं निकाली जा सकती।

नटसूत्र (सं० क्ली०) नटस्य तत्कृत्यस्य ज्ञापकं सूत्रं। शिलालि रचित नटकृत्यज्ञापक ग्रन्थभेद।

नटाई (हिं० स्त्री०) किनारीका ताना तननेका जुलाहोंका एक औजार।

नटान्तिका (सं० स्त्री०) अन्तयति नाशयति इति अन्त-णवुल्, टापि अत इत्वं; नटस्य नटकृत्यस्य अन्तिका ६-तत्। लज्जा, शरम। लज्जा होनेसे नाट्य नहीं हो सकता। नटकार्य एकमात्र लज्जासे ही विनष्ट होता है, इसीसे नटान्तिका शब्दका अर्थ लज्जा रखा गया है।

नटिन् (हिं० स्त्री०) १ नटकी स्त्री। २ नट जातिकी स्त्री।

नटी (सं० स्त्री०) नट-अच् ङीष्। १ नली नामक गन्ध द्रव्य। २ वेश्या। ३ नटपत्नी, नट जातिकी स्त्री। ४ रागिणीभेद, एक रागिणीका नाम। हनुमत्‌के मतसे यह दीपक रागकी रागिणी मानी गई है। यह सम्पूर्ण जातिकी है। ग्रीष्मऋतुमें सन्ध्या समय यह गाई जाती है। रागमालामें इसका रूप रक्तवर्णा, युवती, विविधालङ्कारसे सुशोभिता, अश्वारूढ़ा, पुरुषके समान वेश परिधाना बतलाया है। ५ नर्त्तकी, नाचनेवाली स्त्री। ६ अभिनेत्री, अभिनय करनेवाली स्त्री। ७ अशोकवृक्ष।

नटुआ (हिं० पु०) नटदेखो। २ नटईदेखो।

नटेश्वर (सं० पु०) नटानां ईश्वरः। शिव, महादेव। शिवजी नाच गानके बड़े प्रिय थे, इसीसे इनका नाम नटेश्वर पड़ा है।

नट्ट (हिं० पु०) नट देखो।

नट्या (सं० स्त्री०) नटानां समूहः पाशादित्वात् य टाप्। रागिणीविशेष, सङ्गीतमें एक प्रकारकी रागिणी जो प्रायः नटके सामने होती है।

नड़ (सं० पु०) नलतीति नल-अच् लस्य डत्वं। १ नलतृण, नरसल, नरकट। २ गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद, एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिका नाम। ३ एक जाति जिसका पेशा शीशेकी चूड़ियां बनाना है।

नड़क (सं० क्ली०) नल मध्ये अच् संज्ञायां कन्। दो अंशोंके बीच वर्त्तमान नलाकार अस्थिभेद।

नड़कीय (सं० त्रि०) नड़ाः सन्त्यत्र नड़-कुक् च्। (नड़ादीनां कुक् च। पा ४।२।९१।) नलसमूह देश, जहां नल या नरकट बहुत होता है।

नड़प्राय (सं० त्रि०) नड़ः प्रायेण यत्र। नलबहुल देश, जहां नरकट बहुत उपजता है। पर्याय—नड़कीय, नड्वान्, नड्वल।

नड़भक्त (सं० क्ली०) नड़स्य विषयो देशः ऐषुकादित्वात् भक्तल। नड़विषय।

नड़मय (सं० त्रि०) नड़-स्वरूपे मयट्। नल समूहयुक्त, जहां नरकट बहुत पाया जाता हो।

नड़मीन (सं० पु०) नड़स्थितो मीनः। मत्स्यविशेष, भींगा मछली।

नड़श (सं० त्रि०) नड़ अस्त्यर्थे तृणादित्वात्-श। नड़युक्त। नरकटसे आच्छादित।

नड़संहति (सं० क्ली०) नड़ानां संहतिः समूहः। नड़समूह, नरकटका ढेर।

नड़ह (सं० त्रि०) नड़ं अपरिच्छन्नस्थानं हन्ति हन-ड। ललित, कान्त, तीखो, चमक दमक

नड़ागिरि (सं० पु०) नड़प्रधानो गिरिः, किंशुकादित्वात् संज्ञायां पूर्वस्य दीर्घः। नड़प्रधान गिरिभेद, वह पर्वत जिस पर नरकट बहुत होता हो।

नड़ादि (सं० पु०) पाणिनि उक्त गणशब्द समूह। नड़ादिगण ये हैं—नड़, चर, वक, मुञ्ज, इतिक, इतिश, उपक, एक, लमक, शलङ्कु, शलङ्कु, सप्तल, वाजप्य, तिक, प्राण, नर, सायक, दास, मित्र, द्वीप, पिङ्गर, पिङ्गल, किङ्कर, किङ्कल, कातर, कातल, काश्यप, काश्य, काव्य, अज, अमुष्य कृष्णारण, ब्राह्मणवासिष्ठ, अमित्र, लिगु, चित्र, कुमार, कोष्टु, क्रोष्ट, लोह, दुर्ग, स्तम्भ, शिंशपा, अग्रहण, शकट, सुमनस, सुमत, मिमत, ऋच, जलन्धर, अध्वर, युगन्धर, हंसक, दण्डिन्, हस्तिन्, पिण्ड, पञ्चाल, चमसिन्, सुकृत्य, स्थिरक, ब्राह्मण, चटक, वदर, अश्वल, खरप, लङ्क, इन्ध, अस्त्र, कामुक, ब्रह्मदत्त, उदुम्बर, शोण, अलोह, दण्ड। पाणिनिमें छप्रत्ययके लिये और एक गण देखनेमें आता है। यथा—'नड़ादीनां कुक् च' यहां नड़ादिगण यों हैं—नड़, प्लक्ष, विल्व, वेणु, वेत्र, वेतस इक्षु, काष्ठ, कपोत, तृण, कुञ्चा, तक्षन्। (पाणिनि)

नड़ाल—१ बङ्गालके यशोर जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २२° ५८′ और २३° २१′ उ० तथा देशा० ८९° २३′ और ८९° ५०′ पू०के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या ३५२२८१ और भूपरिमाण ४८७ वर्गमील है। इसमें नड़ाल नामका छोटा शहर और ८१० ग्राम लगते हैं। यशोरके अन्य भागोंसे यहांकी आबहवा कुछ अच्छी है।

२ उक्त विभागका एक शहर। यह अक्षा० २३° १०′ उ० और देशा० ८९° ३०′ पू०के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग १२२५ है।

नड़िनी (सं० स्त्री०) नड़ा सन्त्यस्यां इति इनि। नड़युक्त नदी, वह नदी जिसमें सरपत अधिक हो।

नड़िल (सं० त्रि०) नड़स्यादूरदेशादि, इति नड़-इलच्। नड़समीपस्थ आदि, सरपतके समीपका।

नड़ी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी आतिशबाजी।

नड़्या (सं० स्त्री०) नड़ानां समूहः पाशादित्वात् य। नड़समूह, सरपतका ढेर।

नड्वत् (सं० त्रि०) नड़ाः सन्ति प्रायेणात्र नड़-ड्मतुप्। (कुमुदनड़वेतसेभ्यो ड्मतुप्। पा ४।२।८७) ततो मस्य व। नलबहुल देश, जहां सरपत बहुत होता हो।

नड्वल (सं० पु०) नड़ाः सन्त्यत्र नड़-ड्वलच्। (नड़शादात् ड्वलच्। पा ४।२।८८) नल-बहुल देश, वह देश जहां पर सरपत बहुत अधिक हो। (स्त्री०) २ वैराज मनुकी पत्नी भेद, वैराज मनुकी स्त्रीका नाम। (पु०) ३ सरपतकी चटाई। ४ एक वैदिक देवताका नाम।

नड्वाभु (सं० स्त्री०) कुट्टिम, सरपतकी झोपड़ी।

नत (सं० त्रि०) नम कर्तरि क्त। १ नम्रीभूत, झुका हुआ। २ कुटिल, वक्र, टेढ़ा। (क्लो०) ३ तगरपादी। ४ इष्टघटीहीन दिवारात्रार्द्ध काल। ५ छाया द्वारा दिन ज्ञानार्थ धनुःकलाभेद।

इसका विषय ज्योतिषमें इस प्रकार लिखा है—जिस जिस अमावस्याके दिन ग्रहण लगनेकी सम्भावना रहती है, उस दिन अमावस्याके स्थिति दण्डादि जितने हों उन्हें पहले एक जगह रखते हैं, पीछे उस दिनके दिनमानको दो भाग करके उसका एक भाग उस अमावस्याके दण्डसे घटाते हैं। घटाव-फल जितना होगा, वही नतदण्ड कहलाता है। यह नतदण्ड दो प्रकारका है, प्राङ्नत और पश्चान्नत। यदि उस दिनकी अमावस्याका स्थिति दण्ड उस दिनके आधेसे कम हो, तो उसे प्राङ्नत और यदि अधिक हो, तो उसे पश्चान्नत कहते हैं। (फलितज्यो०)

नतकोठियर—दाक्षिणात्यकी एक जातिका नाम। इस जातिके लोग हिन्दूधर्मावलम्बी हैं। इनकी भाषा तामिल है।

नतद्रुम (सं० पु०) नतः द्रुमः नित्यकर्मधा०। एक प्रकारका शालवृक्ष जिसे लताशाल कहते हैं।

नतनाड़िका (सं० स्त्री०) दो पहरसे ले कर रातके दो पहर तकका समय।

नतनाड़ी (सं० स्त्री०) जन्मनाड़िका विशेष।

ज्योतिषीको नत और उन्नतादिका निर्णय करके लग्नादि द्वादश भाव आदिका बलसाधन स्थिर करना चाहिये।

दिनमें जन्मादि होनेसे इष्ट दण्डादिमेंसे उस दिनका यामार्द्ध घटनेसे जो अवशिष्ट रहेगा, उसका नाम नतनाड़िका है। यदि दिनके पूर्व्वार्द्धमें जन्म अथवा प्रश्न हो, तो प्राङ्नत नाड़ी और यदि पराह्णमें अर्थात् दिनके दो पहरके बाद जन्म वा प्रश्न हो, तो उक्त शेषाङ्क पश्चा-

नत नाड़ी होगा। रातको जन्मादि होनेसे रातके प्रथमार्द्ध मानका जितना दण्ड बीत गया है उसके साथ दिनार्द्ध का योग करनेसे जो दण्डादि होगा, वह पश्चान्नत नाड़ी और रातके द्वितीयार्द्धमानके दण्डादिके साथ दिनार्द्ध योग करनेसे जो दण्डादि होगा, वह प्राङ्नत नाड़ी कहलाता है।

३०मेंसे नतदण्डादि घटानेसे जो अवशिष्ट रहेगा, उसका नाम उन्नतनाड़ी है। इसका विषय कुछ बढ़ा चढ़ा कर कहना आवश्यक है।

सूर्यके उदयसे ले कर जब वे ठीक मस्तकके ऊपर आ जाते हैं, तब तकके दिनार्द्धमानको प्रथम दिनार्द्ध और मस्तकके ऊपरसे अस्त हो जाने तकके दिनार्द्धको शेष दिनार्द्ध कहते हैं। इसी प्रकार अस्तसे ले कर जब वे पातालमें हम लोगोंके पैरतले आ जाते हैं, तब तकके निशार्द्धमानको निशार्द्ध और फिर वहांसे उदय तकके निशार्द्धको शेष निशार्द्ध कहते हैं।

प्रथम दिनार्द्धमान प्राङ्नत नाड़ी और शेष दिनार्द्ध पश्चान्नतनाड़ी कहलाता है। इस प्रकार शेष दिनार्द्धमानके साथ प्रथम निशार्द्धमानको संयुक्त करनेसे उसे पश्चान्नतनाड़ी अर्थात् हम लोगोंके मस्तकोपरिसे जब सूर्य हम लोगोंके पैरतले आ जाते हैं, तब तकके समयको पश्चान्नतनाड़ी और शेष निशार्द्धमानको प्रथम दिनार्द्धमानके साथ संयोग करनेसे अर्थात् उस पादतलसे हम लोगोंके मस्तकके ऊपर आने तकके समयको प्राङ्नत नाड़ी कहते हैं। (कोष्ठीप्रदीप)

नतनासिक (सं० त्रि०) नता नासिका यस्य। अल्प नासिकायुक्त, छोटी नाकवाला। पर्याय—अवटीट, अवनाट, अवभ्रट।

नतपत्र—नारियादका प्राचीन संस्कृत नाम।

नतपाल (हिं० पु०) प्रणतपाल, प्रणाम करनेवालेका पालन करनेवाला।

नतपुर—नारियादका आधुनिक संस्कृत नाम।

नतभाग (सं० पु०) नत। (Zenith distance)

नतम (हिं वि०) बांका।

नतमी (हिं० स्त्री०) आसाम प्रदेशमें मिलनेवाला एक प्रकारका पेड़। इसकी लकड़ी चिकनी, मजबूत और लाल रंगकी होती है और उससे मेज, कुरसियां तथा नावें अच्छी बनाई जाती हैं।

नतराम (सं० अव्य०) न आसु तरप्। १ अतिशय नञर्थ, प्रतियोग समानाधिकरण अभाव। २ निरर्रा, सर्वदा, सदा, हमेशा।

नतांश (सं० पु०) वह वृत्त जिसका केन्द्र भूकेन्द्र पर होता है और जो विषुवत् रेखा पर लंब होता है। यह वृत्त ग्रहों आदिकी स्थिति जाननेके काममें आता है।

नताउल (हिं० पु०) पश्चिमीघाट पर्वत पर होनेवाला एक प्रकारका पेड़। इसकी लकड़ी नरम होती है जिससे मेज कुरसी आदि बनती हैं। इसके रेशे मजबूत होते हैं और बड़े बड़े रस्से बनानेके काममें आते हैं। इसके पेड़से एक प्रकारकी जहरीली राल निकलती है जिसे तीरोंमें लगा कर उन्हें जहरीला बनाते हैं। इसका दूसरा नाम असद है।

नताङ्गी (सं० स्त्री०) नतं-अङ्गं यस्याः ङीष्। १ नारी, औरत। २ कर्कटशृङ्गी, काकड़ासिंगी।

नति (सं० स्त्री०) नम-भावे क्तिन्। १ नमन, नमस्कार, प्रणाम। त्रिकोण, षट्कोण, अर्द्धचन्द्राकार, प्रदक्षिण, दण्ड, अष्टाङ्ग और उग्र ये सात प्रकारकी नति अर्थात् प्रणाम हैं।

त्रिकोण—यदि पूर्व मुख पूजा हो, तो पश्चिमसे ईशानकोणमें जा कर रहो और यदि उत्तर मुखमें पूजा हो, तो दक्षिणसे वायुकोणमें आ कर रहो। पीछे वायुकोणसे ईशानकोणमें और तब दक्षिणसे अग्निकोणमें जाओ। बाद अग्निकोणसे नैऋतकोणमें और नैऋतकोणसे उत्तर तथा उत्तरसे अग्निकोणमें जाओ। ऐसा करनेसे त्रिकोणगति अर्थात् नमस्कार होता है। इसी प्रकार दो बार करनेसे षट्कोणीय नमस्कार होता है। यह नति पार्वती और महादेवको अतिशय प्रीतिप्रद है। दक्षिणसे वायुकोणमें और फिर वहांसे दक्षिणकी ओर वापिस आ कर जो नमस्कार किया जाता है, उसे अर्द्धचन्द्र और वर्त्तुलाकारमें प्रदक्षिण करके जो नमस्कार किया जाता है, उसे प्रदक्षिण कहते हैं। अपना आसन त्याग कर बिना प्रदक्षिणके पृथ्वी पर दण्डवत् पतित हो कर जो नमस्कार किया जाता है, उसका नाम दण्ड है। पूर्वोक्त

प्रकारसे पृथ्वी पर दण्डवत् पतित हो कर हृदय, चिबुक, मुख, नासिका, हनु, ब्रह्मरन्ध्र और कण्ठ द्वारा यथाक्रम भूमि स्पर्श करके जो नमस्कार किया जाता है, उसे साष्टाङ्ग नमस्कार कहते हैं। जिस नमस्कारमें वर्त्तुलाकार तीन बार प्रदक्षिण करके ब्रह्मरन्ध्र द्वारा भूमि स्पर्श की जाती है, उस नमस्कारका नाम उग्र है। यह उग्र नमस्कार सबसे श्रेष्ठ है। त्रिकोणादि नमस्कार एक एक महायज्ञके स्वरूप है। अभीष्ट देवोद्देशसे ये सब नमस्कार करनेसे कामना पूरी होती हैं। (कालिकापुराण ६६ अ०)

नमस्कार और प्रणाम देखो।

२ ज्योतिषोक्त गणनाभेद, ज्योतिषमें एक प्रकारकी गणना। फलित ज्योतिषमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—पहले स्फुट दशमोदय स्थिर करना होता है। पीछे उस स्फुट दशमोदयके साथ १५ जोड़नेसे यदि योगफल तीससे अधिक हो, तो उसमेंसे ६० घटावो। अब अवशिष्ट जो रहेगा उसकी प्रथम अङ्क संख्याको फिरसे क्रान्तिखण्डा और अनुखण्डा ले कर एक दूसरेमें घटावो। अब घटावफल जो होगा उससे उसके दूसरे और तीसरे अङ्कको गुना करके एक जातिका बनावो। पीछे उस अङ्कको ६०से भाग दो, भागफलको खण्डके साथ योग करनेसे जो अङ्क होगा, उसका नाम क्रान्ति है। उस क्रान्तिमें १५०० जोड़ कर योगफलसे ७८८।३२ अक्षाङ्कको घटानेसे जो अवशिष्ट रहेगा उसमें १००से भाग दो। बाद भागफल संख्याको नतखण्डा और अनुखण्डा ले कर एक दूसरेमें घटावो अब वियोगफल जो होगा, उसका नाम भोग्य है। उस भोग्य द्वारा गतहत शेषाङ्कमें गुना करके जो होगा, उसे १००से फिर भाग दो। अनन्तर उस भागफलको नतखण्डाके साथ योग करनेसे जो होता है, उसीका नाम नति है।

भास्वतीके मतमें नतिगणना इस प्रकार वर्णित है—

पहले गणना द्वारा शरसाधन स्थिर कर लो। पीछे उस शरको दो जगह रख दो। एक स्थानके अङ्कको एक सौ से भाग दो। लब्धाङ्कमें ११ जोड़ कर दूसरे स्थानके अङ्कसे भाग दो। अब भागफल जो होगा उसे एक स्थान पर रख दो। बाद अपने अपने देशके अक्षांशके साथ उसका योग वा वियोग करो अर्थात् अक्ष और शरको याम्य और साम्य होने पर भी योग करो। ऐसा नहीं होने पर वियोग करना पड़ता है। विषुवरेखाके उत्तरका देश याम्याक्ष और दक्षिणका देश सौम्याक्ष कहलाता है। पूर्वोक्त प्रकारसे योग अथवा वियोग करनेसे जो अङ्क होता है, उसका नाम नति है। (भास्वती) ग्रहणादि गणनामें इसकी आवश्यकता होती है।

नतिगणनाका एक उदाहरण दिया जाता है।—जिस समय इसकी गणना करनी होगी, उस समयका मध्योदय मान लिया ४२।७।४८ है। इसमें १५ जोड़नेसे ५७।७।४८ हुआ। इसके प्रथमाङ्क ५७मेंसे ६० निकाल लेने पर शेष २।५२।१२ रहता है। इसका प्रथमाङ्क २ है, इसलिये क्रान्तिखण्डाका २ कोष्ठको खण्डा ८ अनुखण्डा २१ दोनोंको घटानेसे घटावफल १२ होता है, यही भोग्य है। इस भोग्य द्वारा शेष ५२।१२ में गुणा कर गुणनफलको ६०से भाग देनेसे भागफल १०।२६ होता है। इसे खण्डा ८के साथ जोड़नेसे १८।२६ हुआ। फिर १८।२६ के साथ १५०० जोड़ कर योगफल १५१८।२६में अक्षाङ्क ७८८।३२ घटानेसे शेष ७३०।५४ रह होता है। अब इसमें १००से भाग देने पर भागफल ७ हुआ। इसी प्रकार नतिखण्डाकी २३०।३४ खण्डा और अनुखण्डा २३३।४६को आपसमें घटानेसे ३।१२ होता है। अब ३।१२से हतशेष ३०।५४को गुणा करके गुणनफल १०० द्वारा भाग करनेसे लब्ध ०।५८।१८ हुआ। अब इसको जब खण्डा २३०।३४के साथ जोड़ते हैं तब योगफल २३१।३३।१८ होता है। इसीका नाम नति है। ३ झुकाव, उतार। ४ विनय, विनती। ५ नम्रता, खाकसारी।

नतिक—दिल्लीके गुलमहम्मदखांका दूसरा नाम। इनका बनाया हुआ जहर-अल् मोआज्जिम नामक ग्रन्थ मिलता है। १८४८ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

नतिगे—मुगलोंके एक उपास्य देवता जो भूमिके अधिपति और शस्य, सन्तान तथा पशुओंके रक्षक माने जाते हैं। किसी समय प्रत्येक घरमें इसकी प्रतिमूर्त्ति रहती थी और पूजा होती थी।

नतिनी (हिं० स्त्री०) लड़कीकी लड़की, नातिन।

नतीजा (फा० पु०) १ परिणाम, फल। २ हेतु, कारण। ३ प्रतिहिंसा। ४ पुरस्कार, इनाम।

नतु (सं० अव्य) अन्यथा, नहीं तो।

नतैत (हिं० पु०) सम्बन्धी, रिश्तेदार, नातेदार।

नत्थ (हिं० स्त्री०) नथ देखो।

नत्थी (हिं० स्त्री०) १ कागज या कपड़े आदिके कई टुकड़ोंको एक साथ मिला कर और आर पार छेद करके सबको डोरे वा आलपीन आदिसे एक होमें बांधना या फँसाना। २ इस प्रकार एक होमें नाथे हुए कई कागज आदि जो प्राय: एक ही विषयसे सम्बन्ध रखते हैं, मिस्ल।

नत्यूह (सं० पु०) कठकोड़वा नामको पक्षी।

नथ (हिं० स्त्री०) आभूषण विशेष, एक प्रकारका गहना जिसे स्त्रियां नाकमें पहनती हैं। यह बहुत कुछ गोल बालीसे मिलता जुलता है और सोने आदिका तार खींच कर बनाया जाता है। इसमें प्राय: गूंजके साथ चन्द्रक, बुलाक या मोतियोंको जोड़ी पहनाई रहती है। छोटी नथका नाम बेसर है। हिन्दुओंमें नथ सौभाग्यका चिह्न समझी जाती है।

नथना (हिं० पु०) १ नासिकाका अग्रभाग, नाकका अगला भाग। २ नासिकाछिद्र, नाकका छेद।

नथना (हिं० क्रि०) १ किसीके साथ नत्थी होना, नाथा जाना। २ छिदना, छेदा जाना।

नथनी (हिं० स्त्री०) १ वह छोटी नथ जो नाकमें पहनी जाती है। २ बुलाक। ३ वह छल्ला जो तलवारकी मूठ पर लगा रहता है। नथके आकारकी कोई चीज। ४ वह रस्सी जो बैलकी नाकमें पिरोई जाती है।

नद (सं० क्रि०) १ पूजा करना। २ स्तुति करना, सन्तोष करना।

नद (सं० पु०) नदति शब्दायते 'पचाद्यच्' इति अच्। १ पुंवाचक अकृत्रिम खातावच्छिन्न जलप्रवाह, बड़ी नदी अथवा ऐसी नदी जिसका नाम पुंलिङ्गवाची हो। जो जलप्रवाह पर्वत, ह्रद आदिसे निकल कर स्रोतके रूपमें बहुत दूर बह जाता है तथा किसी दूसरे स्रोत वा समुद्रमें मिलता है, उसको नद कहते हैं। पर्याय—पुनर्नाव, भिद्य, उष्य, चरस्वान्, सिन्धु, भैरव, शोण, दामोदर और ब्रह्मपुत्र आदि नद हैं।

पद्मपुराणमें नदको संख्या दशकोटि बतलाया है। नद अच्। २ एक ऋषिका नाम।

नदथु (सं० पु०) नद अथुच् शब्दे बाहुलकात् अथुच्। वृषभकूजित।

नदन (सं० पु०) शब्द करण, शब्द करना, आवाज करना।

नदनदीपति (सं० पु०) नदनदीनां पतिः ६-तत्। समुद्र सागर।

नदनिमन् (सं० त्रि०) शब्दायमान, शब्द करनेवाला।

नदनु (सं० पु०) नदतीति नद अनुङ् (अनुङ् नदेश्च। उण् ३।५२) १ मेघ, बादल। २ सिंह, शेर। ३ शब्द, आवाज।

नदनुमत् (सं० त्रि०) नदनुः विद्यते ऽस्य मतुप्। शब्द-युक्त, शब्द करनेवाला।

नदम (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी कपास जो दक्षिण देश-में उत्पन्न होती है।

नदर (सं० त्रि०) नदस्य अदूर देशादि अश्वादित्वात् र। १ नद-सन्निहित देशादि, नद या नदीके आस पासके प्रदेश। नास्ति दरो भयं यस्य। २ भयशून्य, निडर, जिसे किसी प्रकारका भय न हो।

नदराज (सं० पु०) नदानां राजा टच् समासान्तः। समुद्र, सागर।

नदारत (हिं० वि०) नदारद देखो।

नदारद (फा० वि०) अप्रस्तुत, गायब, लुप्त, जो मौजूद न हो।

नदाल (सं० त्रि०) नद-बाहुलकात् आल। भाग्ययुक्त, सौभाग्यवान्, तकदीरवाला।

नदि (सं० पु०) नद स्तुतौ इ। स्तुति, प्रशंसा, तारीफ।

नदिया—बङ्गदेशका एक जिला। यह अक्षा० २२° ५३´ और २२° ११´ उ० तथा देशा० ८८° ९´ और ८८° २२´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २७९३ वर्गमील है। इसके पश्चिममें भागीरथी या हुगली नदी, दक्षिणमें २४ परगना, उत्तरमें राजसाही जिला, पूर्वमें पावना और यशोर तथा उत्तर-पश्चिममें मुर्शीदाबाद जिला है। पद्मा नदी इस जिलेको पावना और राजसाहीसे अलग करती है। जलङ्गी नदी नदिया और मुर्शीदाबादके सीमान्त देशमें बहती है। नदिया वा नवद्वीप नामक नगरके नामानुसार इस जिलेका नामकरण हुआ है। जलङ्गी

नदीके तीरस्थित कृष्णनगर इसका प्रधान स्थान है।

जिलेमें नदी तो अनेक हैं, पर वे सभी छिछली हो गई हैं। केवल वर्षाकालमें बड़ी बड़ी नावें बोझ लाद कर जाती आती हैं, दूसरे समय ये सूख कर बहुत सङ्कीर्ण हो जाती हैं। उस समय इनमें अनेक चर पड़ जाते हैं।

यहां चीता और जङ्गली वराह बहुत देखे जाते हैं; कभी कभी बाघ भी नजर आता है। लोगोंको यहां सांपका बड़ा डर रहता है। मछली पकड़ना जिलेका एक प्रधान और अर्थकर व्यवसाय है। वार्षिक वृष्टिपात ५७ इञ्च है।

इस जिलेका बहुत प्राचीन इतिहास मिलता है। William the conquerorके समयमें बङ्गालके सेन-वंशीय राजाओंकी राजधानी गौड़से यहां उठा कर लाई गई। ११९८ ई०में अन्तिम राजा लक्ष्मणसेन मुहम्मद-इ-बख्त्यार खिलजी नामक प्रसिद्ध लुटेरेसे पदच्युत किये गये। फिर उसके बादसे १५८२ ई० तकका कोई विवरण नहीं मिलता। यहांका वर्त्तमान राजवंश प्राचीन और पवित्र है। बङ्गालके राजा आदिशूर हिन्दू-धर्मको पुनर्जीवित करनेके लिये कान्यकुब्जसे पांच ब्राह्मण लाये थे। उनमेंसे एकका नाम भट्टनारायण था और वे ही इस वंशके आदिपुरुष समझे जाते हैं। यहांके महाराज ब्राह्मण वंशके हैं। इन्हें लक्ष्मणसेनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। १६वीं शताब्दीके अन्तमें इस वंशके राजाने मुगल-सेनापति मानसिंहको यशोरके राजा प्रतापादित्यके विरुद्ध खासी सहायता पहुंचाई थी। इस प्रत्युपकारमें उन्हें जहांगीरकी ओरसे १४ परगने मिले थे। १८वीं शताब्दीमें यह वंश उन्नतिकी एक चरम सीमा तक पहुंच गया था। इस वंशमें जितने राजे हो गये हैं, उनमेंसे कृष्णचन्द्रने बहुत ख्याति लाभ की थी। उन्होंने पलाशी-युद्धमें अंगरेजोंका तन मन धनसे साथ दिया था। इस कारण क्लाइवने उन्हें राजेन्द्र बहादुरकी उपाधि और पलाशीयुद्धमें व्यवहृत १२ बन्दूकें दी थीं। कुछ बन्दूक आज भी महाराजके भवनमें देखी जाती हैं। कृष्णचन्द्र संस्कृत साहित्यके परम हितैषी और पण्डितोंके प्रतिपालक थे। वे धार्मिक और विद्वानोंको निष्कर भूमि और अर्थवृत्ति दिया करते थे। उनके वंशधर साहित्यानुरागी और धार्मिक समझे जाते हैं। वंगीय शासनपरिषद्के वर्त्तमान दसस्य महाराज क्षौणीशचन्द्र हैं।

इस जिलेमें ८ शहर और ३४११ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या लगभग १६६०४८१ जिनमेंसे सैकड़े पीछे ४० हिन्दू हैं। आशु और हैमन्तिक धान यहांका प्रधान उत्पन्न द्रव्य है। विस्तृत विवरण नवद्वीप शब्दमें देखो।

नदी (सं० स्त्री०) नदतीति नद-अच ततो ङीप्। स्त्रीवाचक जलप्रवाह। जिन सब जल-प्रवाहोंकी अधिष्ठात्री देवी स्त्री हैं, उन्हें नदी और जिनके अधिष्ठात्री देवता पुरुष हैं, उन्हें नद कहते हैं। जिसका जल-प्रवाह कमसे कम ८००० धनु है, उसीको नदी कहते हैं। पर्याय—सरित्, तरङ्गिणी, शैवलिनी, तटिनी ह्रदिनी, धुनी, स्रोतस्वती, द्वीपवती, स्रवन्ती, निम्नगा, अपगा, आपगा, ह्रादिनी, धुनि, स्रोतस्विनी, स्रोतोवहा, सागर-गामिनी, निर्झरिणी, सरस्वती, समुद्रा, कुलङ्कषा, कूलवती, शैवालिनी, सिन्धु, समुद्रकान्ता, सागरगा, कर्षणी, रोधोवती, वाहिनी।

अन्यान्य पदार्थोंकी नाईं माध्याकर्षणके वशवर्ती हो कर जलकी भी नीचेकी ओर गमन करनेकी प्रवृत्ति है। इसी प्रवृत्तिवश जलप्रवाह नदीके रूपमें गिना जाता है। जिस प्रकार किसी क्रमनिम्न समतलके ऊर्द्ध्वप्रान्तपर एक वर्त्तुल स्थापन करनेसे वह निम्न-प्रान्तमें जा पहुंचता है, उसी प्रकार जलबिन्दु भी क्रम-निम्न भूमिके ऊर्द्ध्वप्रान्तसे हो कर जब चलने लगता है, तब वह निम्नतम प्रदेशमें जा पहुंचता है। मेघ, प्रस्रवण और ह्रदसे अथवा तुषारके गलनेसे नदीका जल संगृहीत होता है। उत्पत्ति-स्थानके निकट नदी बहुत सङ्कीर्ण रहती है, पीछे वह जितनी ही नीचेकी ओर जाती है, उतना ही अनेकों प्रस्रवण और उपनदियोंके जलसे उसका कलेवर बढ़ता जाता है। नदी जिस राह हो कर बहती है, उस राहको उसकी गति और उस प्रवाहसे जो गड्ढा बनता है, उसे उसका गर्भ तथा जिस प्रदेश हो कर नदीका जल बहता है, उस गर्भ-संवहित सभी स्थानोंकी अववाहिका कहते हैं। अव-वाहिका क्रमशः ऊंची हो कर एक सीधमें बस जाती

है। इस सोधको जल-बाध कहते हैं। अववाहिकाका आयतन और जलबाधकी उन्नति देख कर नदीका परिणाम अवधारित होता है। वर्षके भीतर भिन्न भिन्न समयमें नदीका जल घटता बढ़ता है। जिन सब नाति शीतोष्ण देशोंके पर्वतशिखर पर सब दिन तुषार नहीं रहता, वहां नदीकी वृद्धि केवल वृष्टिके ऊपर निर्भर करती है। वृष्टिका जल एक ही बार नदीमें आ नहीं गिरता, क्रमशः जम कर वा क्षरित हो कर धीरे धीरे उसमें गिरता है। इसी कारण उन सब देशोंकी नदियांका परिमाण सब दिन एक सा रहता है और वर्षा जाने पर भी दूर स्थानोंसे जल आ कर नदीको पुष्ट रखता है। किन्तु यह प्रक्रिया देशकी उष्णता, वाष्पोद्गमकी अल्पता, वायुकी आर्द्रता और भूमिकी सच्छिद्रताके ऊपर निर्भर है। ग्रीष्मप्रधान देशोंमें वर्षाके समय नदीकी वृद्धि और ग्रीष्मके समय उसका ह्रास होता है। वह वृद्धि उत्पत्ति-स्थानके निकट सबसे पहले मालूम पड़ती हैं। लेकिन नदीसे दूरवर्त्ती स्थानोंमें तथा वाष्पोद्गमप्रयुक्त निम्नस्थ देशोंमें यह वृद्धि देरीसे मालूम पड़ती है। इसी प्रकार बैशाख मासमें आविसिनियाके निकट नील नदीकी वृद्धि होती है। किन्तु ज्येष्ठ मासके शेष हुए बिना यह वृद्धि कायरो नगरके निकट अनुभूत नहीं होती। प्राचीन लोग इस अद्भुत व्यापारको देख कर विस्मित होते थे, और इसे दैवकार्य समझते थे। आधुनिक देश-पर्यटकोंने अन्यान्य अनेक नदियोंमें इस प्रकारका व्यापार देखा है। नीलकी वृद्धिकी चरम सीमा ४० फुट है और इसमें बाढ़ आ जाने पर २१०० वर्गमील तकको भूमि जल-मग्न हो जाती है। अमेरिकाकी ओरिनको नामक नदीका जल-परिमाण ३०से ३६ फुट तक है, लेकिन जब इसमें बाढ़ आती है, तब यह ४५००० वर्गमील भूमि जल प्लावित कर देती है। ब्रह्मपुत्रकी बाढ़से उत्तर आसामका सभी स्थान दश फुट नीचे जलमें चला जाता है। किन्तु अष्ट्रेलियाकी नदियोंकी बाढ़ इन सबसे कहीं बढ़ी चढ़ी है। वहांकी हकसबरी नामक नदीका जल परिमाण १०० फुट तक बढ़ता है। ग्रीष्म कालमें बर्फके गलनेसे जलकी और भी वृद्धि होती है, किन्तु इस समय वर्षा भी होने लगती है। इसीसे द्रवतुषार और वृष्टि द्वारा कितना जल बढ़ा, इसका निर्णय नहीं किया जा सकता। किन्तु गङ्गा, ब्रह्मपुत्र आदि कितनी नदियोंमें इस कारण कितना जल बढ़ता है वह सहजमें मालूम हो जाता है, क्योंकि वर्षा आरम्भके बादसे उन सब स्थानोंमें तुषारका गलना शुरू होता है। जिन सब स्थानोंमें वर्षाके समय तुषारके गलनेसे जलकी वृद्धि नहीं होती, वहां वर्ष भरमें दो बार बाढ़ देखनेमें आती है। टाइग्रिस, इउफ्रेटिस और मिसिसिपिमें इस प्रकारकी घटना होती है। इन सब नदियोंमें बर्फके गलनेसे जो बाढ़ आती है, वही उनकी बड़ी बाढ़ समझी जाती है।

नदी द्वारा अनेक प्रकारकी नैसर्गिक क्रिया सम्पन्न होती हैं। नदीके जलमें पंकके जम जानेसे वह जमीनमें बहुत फायदा पहुंचाती है। नदी-दूरवर्त्ती पार्वतीय प्रदेशोंकी मट्टीको अपने साथ बहा कर समतलके ऊपर छोड़ देती है जिससे जमीन बहुत उर्वरा हो जाती है। नदीकी गति अनवरत परिवर्त्तित होनेसे पृथ्वीका ऊपरी भाग भी निरन्तर परिवर्त्तित होता है। सभी नदियां देशोंकी मैल अपने साथ बहा कर समुद्रमें डाल देती हैं। नदीके रहनेसे वाणिज्यकार्यकी अशेष सुविधा हो गई है। अधिकांश नदियां समुद्रमें गिरती हैं, बहुत थोड़ी नदियां ऐसी हैं जो देशाभ्यन्तरस्थ ह्रदोंमें मिल गई हैं।

देशके नीचेकी ओर ही नदीकी गति होती है और अधिकांश नदी पर्वत आदि उच्चस्थानसे निकलती हैं, इस कारण थोड़ी दूर तक तो उनकी गति बहुत प्रखर रहती है, लेकिन पीछे समतल भूमिमें आ कर मन्द हो जाती है। देशकी मट्टीकी प्रकृतिके ऊपर नदीकी गति बहुत कुछ निर्भर करती है। अनेक समय भूमिकम्प द्वारा नदीकी गति परिवर्त्तित हुआ करती है, और बहुतसी नदियोंका प्राचीन गर्भ बालू, मट्टी आदि द्वारा भर जानेसे वे नये गर्भ हो कर बहती हैं।

जिस नदीमें नावें नहीं चलतीं, ऐसी नदी जब दो जमींदारोंके मध्य पड़ती है, तब उस नदीमें आईनके अनुसार दोनों जमींदारोंका बराबर बराबर स्वत्व रहता है। किन्तु उस नदीके दोनों पार्श्व यदि एक ही जमींदारकी सम्पत्ति हो, तो समूची नदी उसी जमींदारकी सम्पत्ति मानी जायगी। इसी नियमके अनुसार नदी-गर्भका विभाग हुआ करता है। जिन सब नदियोंमें नावें

जाती जाती हैं, वे सब राजाकी सम्पत्ति हैं। जन साधारण केवल उन नदियोंका जल काममें ला सकते और मछली पकड़ सकते हैं। नाव चलाना और मछली पकड़ना इन दो स्वत्वोंमें नाव चलानेका स्वत्व ही प्रधान है। धीवर नाविकको रास्ता देनेमें बाध्य हैं।

नदीका जल दूषित वा अपरिष्कृत करना किसीका अधिकार नहीं है। यदि कोई ऐसा करे, तो तीरस्थित ग्रामके मनुष्य क्षतिपूरणके लिये उस पर अभियोग ला सकता है। किन्तु यदि वे सब मनुष्य २० वर्ष तक बिना किसी आपत्तिके उस अपकारको सह्य कर ले, तो उन्हें अभियोग करनेको क्षमता नहीं रहती।

भूमण्डलके प्रधान नदियोंके नाम और दैर्घ्य इस प्रकार है—

एशिया।

नाम	दैर्घ्य।
इनिसि	३३२२ मील
इय़ंसि-किय़ं	३३१४ "
लेना	२७६२ "
आमुर	२७२८ "
ओबी	२६७० "
ह्वंहो	२६४४ "
सिन्धु	२२५६ "
ब्रह्मपुत्र	१८०० "
गङ्गा	१८३३ "

यूरोप।

वल्गा	२७६२ "
दानियुब	१७२२ "
नीपर	१२४३ "
डान	११०४ "
डूइना	१०४१ "

अफ्रिका।

नील	२०७२ "
आम्बेजी	२५७८ "

अमेरिका।

मिसिसिपि	२७१६ "
आमेजन	३५४५ "
मेकेञ्जी	२४४० मील
लाप्लेटा	२२१० "
राइवेभोडेलुनट	२१३४ "
सेण्ट लारेन्स	२०७२ "

वैद्यकके मतसे नदीका जल स्वच्छ, लघु, दीपन, पाचन, रुचिकर, तृष्णानाशक, पथ्य, मधुर और कुछ उष्ण होता है। (राजनिर्घण्ट)

पुराणादिमें नदीके असंख्य नाम देखनेमें आते हैं। किन्तु उन सब नदियोंमेंसे अधिकांशके आधुनिक नाम वा अवस्थान जाननेका कोई उपाय नहीं है। इनमेंसे कितनी ऐसी हैं जो पूर्व नामसे ही चली आ रही है और कुछके नाम बदल गये हैं। कितनी नदियोंकी गतिमें अधिक परिवर्त्तन नहीं हुआ और कितनीके गर्भमें बिलकुल परिवर्त्तन हो गया है। पुराणके सिवा वैद्यक चरकादि ग्रन्थोंमें भी अनेक नदियोंके नाम पाये जाते हैं।

नदी शब्दके वैदिक पर्याय ३७ हैं, यथा—अवनि, यह्वा, ख, सीर, स्रोत्य, एनी, धुनि, रुजान, वक्षण, खादोअर्ण, रोधचक्र, हरित्, सरित्, अग्रव, नभन, वधू, हिरण्यवर्ण, रोहित्, सस्रुत, अर्ण, सिन्धु, कुल्या, उर्वी, इरावती, पार्वती, स्रवन्ती, ऊर्जस्वती, पयस्वती, सरस्वती, तरस्वती, हरस्वती, रोधस्वती, भास्वती, अजिर, मातृ और नदी। (वेदनिघण्टु)

पुराणादि वर्णित प्रत्येक नदीका नाम विस्तार हो जानेके भयसे नहीं दिया गया। केवल प्रधान प्रधान नदियोंके नाम दिये जाते हैं—गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु, विपाशा, चन्द्रभागा, यमुना, इरावती, देविका, कुहू, गोमती, धूतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, कौशिकी, निश्चीरा, गण्डकी, चक्षुष्मती, सदानीरा, लौहित्य, ये सब नदियां हिमालय पर्वतके पाददेशसे निकली हैं। वेदस्मृति, वेदवती, सिन्धु, अपर्णा, चन्दना, धूतपापा, चर्मण्वती, विदिशा, वेत्रवती, जयन्ती ये सब नदियां पारिपात्र पर्वतसे उत्पन्न हुई हैं। शोणा, ज्योतिरथा, नर्मदा, सुरसा, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमसा, पिप्पला, करतोया, पिशाचिका, चित्रोत्पला, विशाला, वञ्जुला, बालुका, वाहिनी, शुक्तिमती, विरजा, पङ्किनी इन सब नदियोंका उत्पत्ति-स्थान ऋक्षपर्वत है। मणि-

जाला, शुभा, तापी, पयोष्णी, शीघ्रोदा, वेणा, पाशा, वैतरणी, वेदी, पाला, कुमुद्वती, तोया, दुर्गा, अन्त्या और गिरा ये सब नदियाँ विन्ध्य पर्वतके पाददेशसे निकली हैं। गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, वेणा, वञ्जुला, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, ब्रह्मकावेरी, कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पावती और उत्पलावती ये सब नदियाँ मलय पर्वतसे निःसृत हुई हैं। त्रिसोमा, ऋषिकुल्या, वञ्जुरा, त्रिदिवा, लोकमूलिनी, वंशधारा, महेन्द्रतनया, ऋषिका, अनुमती, मन्दगामिनी और पलाशिनी ये सब नदियाँ शुक्तिमत् पर्वतसे उत्पन्न हुई हैं। कुल पर्वतसे उत्पन्न होनेके कारण ये सब प्रधान नदियोंमें गिनी जाती हैं। इनके सिवा और भी अनेक नदी हैं, लेकिन वे बहुत छोटी हैं।
(वराहपुराण)

कालिकापुराणमें ७ प्रधान नदियोंका उत्पत्ति-विवरण इस प्रकार लिखा है—

ब्रह्मा, विष्णु और महादेवके करतलविगलित वशिष्ठ और अरुन्धतीका विवाहकालीन स्नानीय जल और शान्तिजल पहले मानस-पर्वत-कन्दर पर गिरता है, पीछे वह जल फिर सात भागोंमें विभक्त हो कर मानसपर्वतसे हिमालय पर्वतकी गुहा, सानु और सरोवरमें पृथक् पृथक् भावसे गिरा करता है। इनमेंसे जो जल देवभोग्य शिप्रा सरोवरमें गिरता है, उसीसे शिप्रा नदीकी उत्पत्ति हुई है। विष्णु शिप्रा और हंसा नदीको भूमण्डल पर भेजते हैं। जो जल महाकौषी प्रपातमें गिरता है, उसीसे कौशिकी नदीकी उत्पत्ति है। विश्वामित्र इस नदीको पृथ्वी पर अवतारित करते हैं। जो जल उमाक्षेत्रके महाकाल सरोवरमें गिरता है, उससे कावेरी नदी निकली, हिमालय पर्वतके दाहिने बगल शिवके समीपसे जो जल गिरता है वह जल 'गोमत्' नामक शैलखण्डसे निकलनेके कारण गोमती कहलाया। मैनाक जो सानुसे भूमिष्ठ हुई थी, उस स्थानसे जो जल निकला था, उसका नाम देविका है। हंसावतीके समीपवर्त्ती गुहासे जो जल गिरता है उससे सरयू और जो जल खाण्डव वनके निकट हिमालय पर्वतके दक्षिण पार्श्ववर्त्ती गुहासे इराकुदमें गिरता है, उससे इरावती नदीकी उत्पत्ति हुई है। दक्षिणसागरगामिनी ये सभी नदियाँ गङ्गाकी नाईं पुण्यप्रदा हैं। अरुन्धती और वशिष्ठका विवाहावभृत स्नान-जल ही इन सात नदियोंकी उत्पत्तिका कारण है। ये सब नदियाँ चिरकाल तक रहेंगी।
(कालिकापु० २४ अ०)

इनके सिवा कालिकापुराणके ८० अध्यायमें, मत्स्यपुराणमें और ब्रह्माण्डपुराणमें नदीका विवरण मिलता है। सभी पुराणोंमें थोड़ा बहुत नदी-प्रसङ्ग है।

२ छन्दोविशेष, एक छन्दका नाम। इसके प्रतिपादमें १४ अक्षर रहते हैं, सात अक्षरोंमें यति होती है। इस छन्दके प्रथमसे ले कर षष्ठ, नवम, दशम और द्वादश वर्ण लघु और शेष सभी वर्ण गुरु हैं।

नदीकदम्ब (सं० पु०) नदीनां कदम्बं समूहो यत्र। १ महाश्रावणिका, बड़ी गोरखमुण्डी। (क्ली०) नदीनां कदम्बं ६-तत्। नदीसमूह।

नदीकान्त (सं० पु०) नदीनां कान्तः ६-तत्। १ समुद्र, सागर। नदी कान्ता यस्य। २ हिज्जल वृक्ष। ३ सिन्धुवारक वृक्ष, सिन्धुवार नामका पेड़। ४ जम्बुकवृक्ष, जामुनका पेड़। ५ काकजङ्घालता। ६ लताविशेष, एक लताका नाम। ७ जलवेतस, जलबेंत।

नदीकान्ता (सं० स्त्री०) १ जम्बुकवृक्ष, जामुनका पेड़। २ काकजङ्घालता। ३ ह्रस्वकारवेल्लक, छोटा बेल्लक।

नदीकाश्यप (सं० पु०) शाक्यमुनिके समयका एक मनुष्य।

नदीकुठेरक (सं० पु०) मन्दोवृक्ष।

नदीकूल (सं० क्ली०) नद्याः कूलं। तीर, तट, किनारा।

नदीकूलप्रिय (सं० पु०) नदी कूलं प्रियं अभिमतं यस्य। जलवेतस, जलबेंत। यह विशेषतः नदी किनारे उगता है, इसीसे इसका यह नाम पड़ा।

नदीकूलस्थ (सं० त्रि०) नदीकूले तिष्ठति स्था-क। तटस्थ, किनारेका।

नदीककण्ठ—नेपाली बौद्धोंका एक तीर्थ। कहते हैं, कि एक विशिष्ट योगमें यहाँ स्नान करनेसे श्री और ऐश्वर्यकी वृद्धि तथा शत्रुओंका नाश होता है।

नदीगर्भ (सं० पु०) नद्याः गर्भः ६-तत्। नदीका गर्भ, नदीके दोनों किनारोंके बीचका स्थान।

नदीगायन—मध्यभारतके अन्तर्गत दतियाराज्यका एक नगर।

नदीगूलर (हिं० पु०) लिसोड़ा।

नदीज (सं० क्लो०) नद्या जायते जन-ड। १ स्रोतोञ्जन, काला सुरमा। २ सैन्धव लवण, सेंधा नमक। (पु०) ३ अर्जुन वृक्ष। ४ विटमाक्षिक। ५ यावनाल। ६ हिज्जल वृक्ष। ७ नदीनिष्पाव, बोरो नामका धान। ८ खर्जूरवृक्ष, खजूरका पेड़। ९ नृपतिविशेष, एक राजाका नाम। १० भीष्म, ये गङ्गाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे, इस कारण इनका नाम नदीज पड़ा। (त्रि०) ११ नदीजातमात्र, जो नदीमें उत्पन्न हुआ हो।

नदीजल (सं० क्ली०) नदीका पानी।

नदीजा (सं० स्त्री०) नदीजा-टाप्। १ अग्निमन्थवृक्ष, अरणीका पेड़। २ जलशुक्ति, सीप।

नदीजामुन (हिं० स्त्री०) छोटी जामुन।

नदीतर (सं० त्रि०) नदी-तॄ-अच्। नदीके दूसरे किनारेका।

नदीतरस्थान (सं० क्ली०) नद्याः तरस्थानं अवतरणस्थलं। नदीसे अवतरण स्थान, वह स्थान जहांसे नदी पार की जाय, घाट।

नदीदत्त (सं० पु०) बुद्धदेवका एक नाम।

नदीदोह (सं० पु०) नदीतरणार्थं दोहः शाकपार्थिवादित्वात् कर्मधारयः। वह कर जो नदी पार करनेके बदलेमें दिया जाय, नदी पार होनेका महसूल।

नदीधर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच्, नद्याः धरः। गङ्गाधर शिव, महादेव।

नदीन (सं० पु०) नदीनां इनः पतिः ६-तत्। १ समुद्र, सागर। २ वरुण देवता। ३ वरुणवृक्ष, बरना नामक जंगली पेड़ जो पलाशकी तरहका होता है। ४ धर्मानुवंशीय सहदेवका पुत्र। (हरिवंश २९१४) (त्रि०) न-दीन —इति सहसुपेति-समासः। ५ दरिद्रभिन्न, जो दरिद्र न हो।

नदीनिष्पाव (सं० पु०) नदीसम्भूतजातो निष्पावः। धान्यभेद, बोरो नामका धान। पर्याय—कटुनिष्पाव, कर्बुर, नदीज। इसका गुण—तिक्त, कटु, मलप्रद, गुरु, वातल, कफप्रद, रुक्ष, कषाय और विषदोषनाशक है।

नदीपङ्क (सं० पु० क्ली०) नद्याः पङ्कं ६-तत्। १ नदीकी कीचड़। २ नदीतीरस्थित कर्दमयुक्त स्थान, नदी किनारेका पङ्कमय स्थान।

नदीपति (सं० पु०) नदीनां पतिः। १ समुद्र, सागर। २ वरुण।

नदीपूर (सं० पु०) नद्याः पूः अच् समासान्तः। वह नदी जो बाढ़के जलसे तटस्थित ग्रामोंको प्लावित करती है।

नदीभल्लातक (सं० पु०) जलके किनारे होनेवाला एक प्रकारका भिलावाँ। इसके पत्ते गूमाके पत्तोंके समान होते हैं और फल लाल रंगका होता है। इसका गुण कड़ुआ, कसैला, मधुर, ठंढा, ग्राही, वातकारक और कफपित्त, रक्तपित्त तथा व्रणनाशक है, नदीभिलावाँ।

नदीबहल (सं० पु०) मेषशृङ्गी।

नदीभव (सं० पु०) नद्यां भवति भू-अच्। १ सैन्धव लवण, सेंधा नमक। २ क्षुद्रशङ्ख, छोटा शङ्ख। (त्रि०) ३ नदीजात मात्र, जो नदीमें उत्पन्न हुआ हो।

नदीमातृक (सं० त्रि०) नदीमातेव पोषिका यस्य, ततो कप्। नद्यम्बुसम्पन्न व्रीहिपालित देश, वह देश जहां की खेती बारीका सारा काम केवल नदीके जलसे होता हो और जहां वर्षाके जलकी कोई आवश्यकता न हो, जैसे मिस्र-देश।

नदीमाषक (सं० पु०) मानकन्द, मानकच्चू।

नदीमुख (सं० क्ली०) नदी मुखमिव निःसरणमार्गः। १ वह स्थान जहां समुद्रमें नदी गिरती हो, नदीका मुहाना। २ नदीका जल निकलनेका द्वार।

नदीया (सं० स्त्री०) अग्निमन्थ, अरणीका पेड़।

नदीवङ्क (सं० पु०) नद्याः अङ्कः। बङ्कुर, नदीका टेढ़ापन।

नदीवट (सं० पु०) नदीसमीपजातो वटः। वटवृक्ष, बट या बड़का पेड़।

नदीश (सं० पु०) समुद्र, सागर।

नदीष्ण (सं० त्रि०) नद्यां स्नातीति स्ना-क, ततो षत्वं। (निनदीभ्यां स्नातेः कौशले। पा ८।३।८९) १ नदीमें अवगाहनदक्ष, जो नदीमें स्नान करनेमें खूब चालाक हो। २ नदीज्ञ, जो नदीसे जानकार हो।

नदीसर्ज (सं० पु०) नद्या सर्ज्ज इव। अर्जुन वृक्ष।

नदेयी (सं० स्त्री०) नद्यां भवा ढक्। (नद्यादिभ्यो ढक्। पा ४।२।९३) ततो पृषोदरादित्वात् ह्रस्वः। नादेयी, भूमिजम्बू, छोटी जामुन।

नदेयी (सं० स्त्री०) १ जलवेतस, जलबेंत। २ भूमिजम्बु, छोटी जामुन।

नटेश (नटेश)--एक ताम्रमयी शिवमूर्त्ति। तञ्जोरके किसी मनुष्यने जमीन खोदते समय इस मूर्त्तिको पाया था। शिवके सिर पर जटा है और हाथ चार हैं। एक हाथमें डमरू, दूसरेमें सांप और तीसरेमें अग्नि है। वे एक पतित राक्षसके ऊपर नाच कर रहे हैं। मूर्त्तिकी ऊंचाई ३ फुट ७½ इञ्च और चौड़ाई ३ फुट ३ इञ्च है। किसी समय तञ्जोरमें एक शिव-मन्दिर था। मालूम पड़ता है, कि यह प्रतिमा उसी मन्दिरकी होगी। कब और क्यों यह मूर्त्ति जमीनमें गाड़ी गई थी, इसका कुछ पता नहीं है। यह तीन फुट बालूके नीचे पाई गई थी। उक्त स्थानके कलक्टर साहबने इसे खरीद कर मन्द्राजकी चित्रशालिकामें रख दिया है।

नदोला (हिं० पु०) मिट्टीकी छोटी नांद।

नद्ध (सं० त्रि०) नह्यते इति नह-क्त। १ बद्ध, बँधा हुआ, नड़ा हुआ, नधा हुआ।

नद्धि (सं० स्त्री०) नह-क्ति। बन्धन, रस्सी, नाथ।

नद्ध्री (सं० स्त्री० नह्यतेऽनया नह-ष्ट्रन्, ततो ङीप्। चर्म निर्मित रज्जु, चमड़ेकी डोरी, तांत।

नद्यम् (सं० क्ली०) कृष्णाञ्जन, काला सुरमा।

नद्यादि (सं० पु०) नदी आदिर्यस्य। पाणिनि उक्त ढक् प्रत्यय-निमित्त शब्दगण। यथा—नदी, मही, वाराणसी, श्रावस्ती, कौशाम्बी, काशफरी, खादिरी, पूर्वनगरी, पाठा, माया, शाल्वा, दार्भा, सेतकी। (पाणिनि ४।२।८३)

नद्याम्र (सं० पु०) नद्या आम्र इव। समष्ठिला वृक्ष; कोकुआका पौधा। वैद्यकमें यह दाही, दीपन और कफ-वातघ्न माना गया है।

नद्यावर्त्त (सं० पु०) मत्स्यभेद, एक प्रकारकी मछली।

नद्यावर्त्तक (सं० पु०) यात्राकालीन ज्योतिषोक्त योगभेद। फलित ज्योतिषमें यात्राके लिये एक शुभ योग। यह योग उस समय होता है, जब बुध अपनी राशि पर हो वृहस्पति या शुक्र लग्नमें हो अथवा मङ्गल उपस्थित हो और शनि कुम्भ-राशिमें हो। इस योगमें यात्रा करनेसे उसकी सब कामनाएं पूरी होती हैं। आग जिस प्रकार घासको जला देती है उसी प्रकार उसका शत्रु विनष्ट होता है। इसे नन्द्यावर्त्तक भी कहते हैं।

नद्युत्सृष्ट (सं० त्रि०) नद्या उत्सृष्टः। नदी द्वारा त्यक्त स्थान, वह स्थान जो नदीके हट जानेसे निकल आया हो, चर, गंगबरार। यह चर जिसका जमीनमें जा मिलता है, उसीका वह चर होता है।

नधना (हिं० क्रि०) १ रस्सी या तस्मेके द्वारा बैल घोड़े आदिका उस वस्तुके साथ जुड़ना या बँधना जिसे उन्हें खींच कर ले जाना हो, जुतना। २ सम्बन्ध होना, जुड़ना। ३ किसी कार्यका अनुष्ठित होना, कामका ठनना।

नधाव (हिं० पु०) किसी जलाशयसे जब ऊँची भूमि पर जल चढ़ाना होता है, तब दो या तीन गड्ढे बनाने होते हैं। पहले एक गड्ढेके जलसे आस पासकी जमीन सींच कर फिर उसे दूसरे गड्ढेमें ले जाते हैं और तब वहांसे तीसरे गड्ढेमें ला कर जमीन सींचते हैं। इनमें सबसे नीचेके गड्ढेको नधाव कहते हैं।

नधिया—उत्तर पश्चिम प्रदेशके तथा विहारके ग्वालोंकी एक श्रेणी।

नध्री (सं० स्त्री०) चर्मबन्धनी, चमड़ेकी डोरी, तांत।

ननन्दृ (सं० स्त्री०) न नन्दति सेवयापि न तुष्यति इति नन्द-ऋन्। (नञि च नन्देः। उण् २।९८) भर्त्तृभगिनी, पतिकी बहन, ननद। न-नन्द अर्थात् ये किसीसे परितृप्त नहीं होती, इसीसे इसका नाम ननन्दृ पड़ा है; पर्याय—ननान्दृ, नन्दिनी, नन्दा, पतिस्वसृ। (शब्दर०)

ननद (हिं० स्त्री०) पतिकी बहन।

ननदोई (हिं० पु०) पतिका बहनोई, ननदका पति।

ननसार (हिं० स्त्री०) ननिहाल, नानाका घर।

नना (सं० स्त्री०) न नमति नम-ड, सहसुपेति समासः, ततो टाप्। १ वाक्य। २ माता। ३ दुहिता, कन्या, लड़की। माता और दुहिता ये दोनों नम्रीभूत होती हैं, इस कारण इनका नाम नना रखा गया है। माता सन्तानको स्तन पिलानेके लिये और दुहिता शुश्रूषाके लिये नत या नम्रीभूत होती है।

ननान्दृ (सं० स्त्री०) न-नन्द ऋन्, पृषोदरादित्वात् दीर्घ च। ननन्दृ, ननद।

ननिगेरि—टलेमीके भारत-वृत्तान्तमें इस नामका उल्लेख है। उससे जाना जाता है, कि कुमारिका अन्तरीप और सिंहलके मध्यवर्ती एक द्वीपको ले कर इसका नाम निर्दिष्ट हुआ है।

ननिगैन टलेमीके भारत-भूगोलमें उल्लिखित गङ्गासागरके तीरवर्त्ती एक बहुत प्राचीन नगर।

ननियाससुर (हिं० पु०) स्त्री या पतिका नाना।

ननियासास (हिं० स्त्री०) स्त्री या पतिकी नानी।

ननिहारी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी ईंट।

ननिहाल (हिं० पु०) नानाका घर, ननसार।

ननु (सं० अव्य) १ प्रश्न। २ अवधारण। ३ अनुज्ञा। ४ विनय। ५ आमन्त्रण। ६ अनुनय। ७ विनिग्रह। ८ परकृति। ९ अधिकार। १० सम्भ्रम। ११ आक्षेप। १२ प्रत्युक्ति। १३ वाक्यारम्भ।

ननुच (सं० अव्य) विरोध उक्ति, उलटी बात।

ननोई (हिं० पु०) एक प्रकारका जंगली धान। यह बिना जोते बोए वर्षाकालमें जलाशयोंमें आपसे आप होता है, पसही, तिन्नी।

नन्तव्य (सं० त्रि०) नम बाहुलकात् कर्मणि तव्य। १ नमनीय, आदरणीय पूजनीय। २ झुकाने योग्य, जो कुछ झुकाया जा सके।

नन्द (सं० पु०) नन्दतीति नन्द-पचाद्यच्। १ हर्ष, आनन्द, खुशी। २ हर्षात्मक परमेश्वर। परमेश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, इसीसे उनका नाम नन्द पड़ा है। नन्दति मेघवर्षणात् अच्। ३ भेक मेंढक। पानी पड़ने पर यह बहुत खुश होता है इसीसे इसका नन्द नाम रखा गया है। ४ कुमारानुचर, कार्त्तिकके एक अनुचरका नाम। ५ वेणुविशेष। महानन्द, नन्द, विजय और जय ये चार प्रकारकी वीणा उत्तम हैं। इनमेंसे जो वीणा ग्यारह उँगली की होती है, उसीका नाम नन्द है। ६ मृदङ्गविशेष, एक प्रकारका मृदङ्ग। ७ यज्ञेश्वरका अनुचरविशेष, भागवतके अनुसार परमात्माके एक अनुचरका नाम। ८ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। ९ मदिरागर्भजात वासुदेवका पुत्रविशेष, वसुके एक पुत्रका नाम जिसकी उत्पत्ति मदिराके गर्भसे मानी जाती है। १० क्रौञ्चद्वीपका वर्ष पर्वतविशेष, क्रौञ्चद्वीपके एक वर्षपर्वतका नाम। ११ स्वनामख्यात दत्तक-मीमांसा-ग्रन्थके प्रणेता। १२ गोपभेद, गोकुलके गोपोंके मुखिया। १३ पुराणानुसार नौ निधियोंमेंसे एक। १४ एक नागका नाम। १५ विष्णु। १६ एक रागका नाम। इसे कोई कोई मालकोष रागका पुत्र मानते हैं। १७ पिङ्गलमें टगणके दूसरे भेदका नाम। इसमें एक गुरु और एक लघु होता है। कोई कोई इसे ताल और ग्वाल भी कहते हैं।

नन्द—अति प्राचीनकालमें वर्त्तमान मथुरा जिलेके अन्तर्गत यमुनाके उस पार 'गोकुल' नामका एक नगर था। नन्द उसी गोकुलनगरके गोपोंके अधिपति थे। इनकी पत्नीका नाम था यशोदा। उस समय मथुरामें देवकीके गर्भमें भगवान् श्रीकृष्णने जन्मग्रहण किया। पिता वसुदेव कंसके हाथसे शिशु कृष्णकी रक्षा करनेके लिए उसी रातको सद्यजात शिशुको नन्दके घर ले गये। गोपाधिपति नन्दके बहुतसी गायें थीं, शिशु कृष्ण उन्हीं धेनुओंका रक्षणावेक्षण करते थे। इधर कंसने श्रीकृष्णके जन्म और गुप्त-वृत्तान्तको जान कर उनके बधके लिए गोकुलनगरमें अपने छद्मवेशी चर भेजने लगे। ऐशिक-प्रभासम्पन्न श्रीकृष्ण मायावी चरोंको चमत्कृत करने लगे। परन्तु गोपराज नन्द कंसके उपद्रवोंसे डर गये। उन्होंने बालकको उपद्रुत स्थानमें रखना उचित न समझ वृन्दावन भेज दिया और आप भी वहीं जा कर रहने लगे। इसी स्थानमें श्रीकृष्णने अपना बाल्यकाल अतिवाहित किया था। कृष्णकी उम्र जिस समय बारह वर्षकी थी, उस समय नन्द उनको ले कर देवीमन्दिरमें पूजा करने गये थे। वहां पर रातको एक सर्पने उनके पैरमें चोट की थी। श्रीकृष्णने आ कर जब सर्पके फण पर लात मारी, तब उसने मनुष्याकार धारण कर लिया। यह देख कर सबको आश्चर्य हुआ। एक दिन नन्द कंसके साथ यज्ञमें निमन्त्रित हो, कृष्णको साथ ले मथुरा गये थे। वहां श्रीकृष्णने अपने मातुल कंसका बध कर सिंहासन अधिकार कर लिया। इसके बाद श्रीकृष्ण फिर कभी वृन्दावन नहीं लौटे। दुःखसन्तप्त नन्द उन्हें वहीं छोड़ कर अपने घर गये। किन्तु श्रीकृष्णके वृन्दावनत्यागके साथ साथ नन्दकी जीवनी भी अन्धकारमें डूब गई। इसके बहुत समय पीछे श्रीकृष्ण एक दिन हंस और डिम्बक नामके दो व्यक्तियोंके दमनार्थ गोवर्द्धन पर्वत पर उपस्थित हुए। इस संवादके पाते ही नन्द और यशोदा दोनों उन्हें देखनेके लिए दौड़े आये और उनके दर्शन कर प्रसन्न हुए। महाप्रभाव श्रीकृष्ण नन्द और

यशोदाको देख कर अत्यन्त आनन्दित हुए और कुशल क्षेमादि पूछी। नन्दने कहा—"यदुश्रेष्ठ! सब कुछ कुशल है। गोधन सर्वथा नीरोग और सुखी है। केवल दुःख इतना ही है कि तुम्हारे अब दर्शन नहीं मिलते। इस दुःखसे मेरी बुद्धि लुप्त हो गई है। तुम्हारे सर्वदा दर्शन होते रहें, यही मेरी ऐकान्तिक वासना है।" श्रीकृष्ण उन्हें आश्वासन दे कर घर लौटे। इस साक्षात्‌के बाद नन्दका श्रीकृष्णके साथ शेष साक्षात् प्रभासमें हुआ था।

'वृन्दावनलीलामृत'में इनका वंशक्रम इस प्रकार लिखा है—

देवमित
१ क्षत्रिया — २ वैश्या
१ क्षत्रिया → शूर → वसुदेव (श्रीकृष्णके पिता)
२ वैश्या → पर्जन्य, ऊर्जन्य, राजन्य
पर्जन्य (पत्नी वरीयसी) → उपनन्द, अभिनन्द, श्रीनन्द, सुनन्द, नन्दन
(ये ही श्रीकृष्णके पालक पिता हैं)

इन्हीं नन्दके आलयमें श्रीकृष्णने नाना प्रकारकी लीला की थी। एक दिन नन्द एकादशी उपवास कर शेषरात्रिको यमुनामें स्नान करने गये। इस बीचमें वरुण देवता नन्दको वरुणसभामें ले गये। पीछे श्रीकृष्णने जा कर वहांसे नन्दका उद्धार किया। इस दिन नन्दने जिस स्थान पर स्नान किया, उसका नाम नन्दघाट पड़ गया। ये पूर्व जन्ममें द्रोण नामक वसु थे, फिर ये और इनकी पत्नी नन्द और यशोदाके रूपमें अवतीर्ण हुए।

(भाग० १०।८ अ०)

नन्दके पिताने जब नन्द पर व्रजराज्यका शासनभार छोड़ दिया, तब अन्यान्य भ्राता भी इनके अनुगत हो गये थे। वसुदेवके साथ इनका विशेष बन्धुत्व था। श्रीकृष्णके व्रजपुरी त्याग कर चले जाने पर नन्दने उनके शोकमें अपना शरीर विसर्जन कर दिया था।

(वृन्दावनलीलामृत)

महाभागवतपुराणमें नन्दके विषयमें इस प्रकार विवरण पाया जाता है,—नारदने एक दिन महादेवसे सानुनय प्रश्न किया कि "भगवन्! नन्द और यशोदा इन दोनोंने ऐसा कौनसा पुण्य किया है, जिससे महामायाने स्वयं नन्दव्रजमें यशोदाके गर्भमें जन्मग्रहण किया था? और नन्द वा यशोदा पूर्व जन्ममें कौनसे महापुरुष थे? और क्यों वे महामायाको जन्म समयमें देख न सके थे?'

महादेवने उत्तरमें कहा—"तुमसे सब कहता हूं, ध्यानसे सुनो। नन्द पूर्व जन्ममें दक्ष प्रजापति थे और यशोदा उनकी पत्नी। दक्षयज्ञमें शिवनिन्दा सुन कर सतीके प्राणत्याग करनेके बाद प्रजापति दक्षको जब यह बात मालूम पड़ी कि सती साक्षात् परा-प्रकृति हैं, तब दक्षके दुःखकी सीमा न रही। दक्षने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि 'जिससे सती फिर कन्या रूपमें जन्मग्रहण करें, मुझे ऐसा ही प्रयत्न करना होगा।' परन्तु ऐसा बिना तपस्याके हो नहीं सकता, ऐसा विचार कर दक्ष और दक्षपत्नी दोनों हिमालय पर जा महादेवीके उद्देश्यसे तपस्या करने लगे। इस तरह सौ वर्ष तपस्या की थी। इस पर महामायाने प्रसन्न हो कर दर्शन दिये। दर्शन पाते ही प्रजापति दक्षने सानुनय यह वर मांगा कि यदि हम लोगोंको वर प्रदान करना अभिलषित हो, तो यही वर दीजिए कि आप फिर हमारे घर कन्या रूपमें जन्म-ग्रहण करें। महामायाने उत्तर दिया कि द्वापरके शेष भागमें तुम्हारे औरस और यशोदाके गर्भसे मैं जन्मग्रहण करूंगी, पर अवस्थान न करूंगी और न तुम लोग मुझे पहचान ही सकोगे। देवकार्य सम्पन्न करके मैं तिरोहित होऊंगी। कालान्तरमें दक्षने नन्दके रूपमें और दक्षपत्नीने यशोदाके रूपमें जन्मग्रहण किया। महामायाने भी नन्दव्रजमें जन्म लिया, इस कन्याके होते ही वसुदेव वहां श्रीकृष्णको रख कर इस कन्याको ले गये। नन्द महामायाके वरके प्रभावसे इस बातको जान न सके।

(महाभागवतपु० ५० अ०)

नन्द—कपिलवस्तुके राजा शुद्धोदनके पुत्र और शाक्य बुद्धके वैमात्रेय भ्राता। इनकी माताका नाम माया था। बुद्धने बोधिज्ञान प्राप्त कर कपिलवस्तुमें आ नन्द दीक्षित किया था। नन्दको बौद्ध धर्ममें दीक्षित होने विशेष इच्छा न थी। आप अपनी स्त्री भद्राके

प्रेममें आबद्ध थे। आपने कई बार पत्नीसे शेष साक्षात् करनेके लिए लौटनेकी चेष्टा की थी, परन्तु बुद्धने इनको वटकुञ्जमें ले जा कर भिक्षु बना दिया और सांसारिक प्रेमका अकिञ्चित्करत्व प्रतिपादन करनेके लिए आपको स्वर्ग और नरकके चित्र दिखलाये थे।

नन्द—मगधके सुप्रसिद्ध राजा। इस नामके ९ राजाओंने पाटलीपुत्रके सिंहासनको सुशोभित किया था। इनकी उत्पत्ति और इतिहासके विषयमें नाना मुनिके नाना मत हैं। विष्णुपुराणमें लिखा है,—महानन्दिके पुत्र शूद्रा-गर्भोत्पन्न नन्द वा महापद्म परशुरामकी तरह समस्त क्षत्रियोंका विनाश कर एकच्छत्रा पृथिवीका भोग करेंगे। महापद्मके सुमाली आदि आठ पुत्र, उनकी मृत्युके बाद पृथिवीका भोग करेंगे। महापद्म और उनके पुत्रगण कुल १०० वर्ष राज्य करेंगे। कौटिल्य इन ९ नन्दोंका विनाश करेंगे। इनके बाद मौर्यगण राजा होंगे।

(विष्णुपुराण ४।२४।४-६)

भागवतमें भी ठीक इसी प्रकारका विवरण है। ब्रह्माण्डपुराणमें ऐसा विवरण मिलता है,—राजा विम्बि-सार २८ वर्ष, उसके बाद उनके पुत्र अजातशत्रु ३५ वर्ष, उनके बाद दर्शक ३५ वर्ष, उदायी * २३ वर्ष, उनके बाद नन्दिवर्द्धन ४२ वर्ष और उनके बाद महानन्दि ४० वर्ष राज्य करेंगे। शैशुनागगण कुल मिला कर ३६२ वर्ष राज्य करेंगे। उनके बाद महानन्दिके औरस और शूद्राके गर्भसे निखिल क्षत्रियान्तकारी नन्द जन्म-ग्रहण करेंगे। ये नन्द तथा उनके ८ पुत्र कुल मिला कर १०० वर्ष राज्य करेंगे। इन सबका कौटिल्यके हाथसे उद्धार होगा। (ब्रह्माण्डपुराण उपसंहारपाद)

मत्स्यपुराणमें (२१२ अ०) यह विवरण पाया जाता है; परन्तु राजाओंके राजत्वकालकी संख्याओंमें कुछ हेर फेर है।

कहनेका तात्पर्य यह है, कि सभी हिन्दू पुराणमें लिखा है, कि महापद्म नन्द शूद्राके गर्भसे उत्पन्न होने पर भी महानन्दिके पुत्र थे। परन्तु जैन और बौद्ध ग्रन्थकार-गण इसे स्वीकार नहीं करते। प्रसिद्ध हेमचन्द्राचार्य अपने स्थविरावलीचरितमें नन्दके विषयमें बहुतसी बातें लिखी हैं, जिसका सारांश नीचे लिखा जाता है—

उदायी पिताकी मृत्युके बाद पितृशोकसे अधीर हो उठे। जहां उनके पिता शासनदण्ड परिचालन करते थे, वहां रहना उनके लिए बड़ा ही कष्टकर हो गया। वे सोते, जागते, स्वप्नमें रात दिन पिताको ही देखते थे। इसके बाद वे पिताकी राजधानीको त्याग कर गङ्गाके किनारे पाटलीपुत्र † नगर स्थापन कर, वहां राजत्व करते रहे। क्रमशः बहुतसे राजा इनके पराक्रमसे हृत-राज्य हो गये। इस पर वे उदायीको मारनेकी तरकीब सोचने लगे। एक राज्यभ्रष्ट राजकुमारने उदायीके पास आ कर उनसे सेवक होनेकी प्रार्थना की। राजाने उसकी मीठी बातों पर मुग्ध हो कर उसे अपने गुरुकी सेवाके लिए नियुक्त किया। दुष्ट राजकुमार श्रमणधर्ममें दीक्षित हो गया। उसकी मीठी बातों पर राजा मोहित हो गये। अन्तमें उसी दुर्दान्त राजकुमारने उदायीकी हत्या की। इसी पाटलीपुत्र नगरमें देवाकीर्त्तिके औरस-से एक गणिकाके नन्द नामक एक पुत्र हुआ था। उस नापित कुमारने सुबह उठ कर देखा, सैन्यवर्ग नगरके चारों ओर दौड़-धूप मचा रहा है। नन्दने विस्मित हो कर उपाध्यायसे इसका कारण पूछा। उपाध्यायने उसे अपने घर ले जा कर अपनी दुहिता ब्याह दी और नवीन जामाताको एक डोलीमें बिठा कर नगर परिभ्रमण कराने लगे। राजा उदायीके कोई पुत्र न था। मन्त्री लोग राज-हस्ती, प्रधान अश्व, छत्र, कुम्भ और चामर ये पांच अभि-षेक-द्रव्य ले कर किसको राजा बनाया जाय यही सोच रहे थे। इतनेमें यानारोही नन्द दिखलाई दिये। पाटहातोंने

* मुद्रित मत्स्यभागवतादिमें उदासी वा आजेय रूप पाठ देखा जाता है, परन्तु यह लिपिकरका प्रमाद है। कारण जैन और बौद्धोंके प्राचीन ग्रन्थों तथा हस्तलिखित प्राचीन ब्रह्माण्ड-पुराणादिमें 'उदायी' ऐसा ही पाठ है।

† "तत्राक्षिप्ते मूलदेशे नृपः पुरमकारयत्।
तदभूत्पाटली नाम्ना पाटलीपुत्र नामकम्।"
(स्थविरावलीचरित वा परिशिष्टपर्व ६।१८०)

'उदायी भविता तस्मात् त्रयोविंशत्समा नृपः।
स वै पुरवरं राजा पृथिव्यां कुसुमाह्वयम्।
गङ्गाया दक्षिणे कूले चतुरब्दे करिष्यति॥"
(ब्रह्माण्डपु० उपसंहारपाद)

शीघ्र ही कुम्भ उठा कर नन्दको अभिषिक्त कर उन्हें अपने कन्धे पर बिठा लिया। इसी समय राजाके अश्वने आनन्दसे हेषारव किया और चारों ओर मङ्गल ध्वनि होने लगी। पौरजनोंने यह सब देख भाल कर नन्दको अभिषेकपूर्वक सिंहासन पर बिठाया। इस प्रकार महावीर स्वामीके निर्वाणके ६० वर्ष बाद (अर्थात् ई० ४६६ वर्ष के पहले) नन्द राजा हुए। ‡

ब्रह्माण्डपुराणमें भी उदायी द्वारा पाटलीपुत्र निर्माणका उल्लेख आया है, जो इस प्रकार है—

उस समय कल्पक नामक एक अशेष शास्त्रवित् पण्डित रहते थे। एक दिन नन्दने उन्हें बुला कर मन्त्रिपद ग्रहण करनेके लिये उनसे, अनुरोध किया। परन्तु उन्होंने अवज्ञापूर्वक मन्त्रिपद ग्रहण करना अस्वीकार किया। इस पर राजाने उन्हें तंग करनेके लिए एक उपाय निकाला। जो धोबी कल्पकके वस्त्र धोता था, उन्होंने उससे कह दिया, हमारे आदेशके बिना तुम कल्पकके कपड़े न देना। धोबीने राजाका आदेश पालन किया। दो वर्ष बीत गये, धोबीने किसी तरह भी कल्पकको कपड़े न दिये। कल्पक बड़ी आफतमें पड़े, ऊपरसे गृहिणीकी उत्तेजनासे और भी नाकों दम आ गया। आखिर एक दिन गुस्सेमें आ कर कल्पकने धोबीका पीछा किया और कटारसे उसका सिर उड़ा दिया। धोबिन रोती हुई बोली, "माफ कीजिये महाशय! इसमें हमलोगोंका कुछ कसूर नहीं, राजाकी आज्ञासे आपके कपड़े रोके गये हैं।"

सत्यवादी कल्पकने शीघ्र ही राजाके समीप जा कर अपना अपराध स्वीकार किया। इस बार राजाके आदेशसे कल्पकने मन्त्रिपद ग्रहण कर लिया। इससे पहलेके मन्त्रीको बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने कल्पकको धोखा देनेके लिये उसकी चेष्टाको वशमें कर लिया। कल्पकके पुत्रका शुभ विवाह-दिन उपस्थित हुआ। कल्पकको इच्छा थी, कि राजाको निमन्त्रण दे कर अपने अन्तःपुरमें बुलावें। राजाकी अभ्यर्थनाके लिए उन्होंने छत्र, चमर और मुकुट बनवा लिया था। भूतपूर्व मन्त्रीने चेटीके मुँहसे यह सम्वाद पा कर राजासे कहा, "कल्पक राजा बननेको तैयारियां कर रहे हैं।" नन्दने गुप्तचर भेजे। निदान राजाके आदेशसे कल्पक पुत्र सहित अन्धकूप (कारागार)-में डाल दिये गए। खानेके लिए उन्हें कोदोंके सिवा और कुछ न मिलता था, वह भी पेट भर नहीं। इससे दोनों-मेंसे किसीके भी जीनेकी उम्मेद न थी। राजासे इसका बदला लेनेके लिए कल्पकने अकेले ही उस अन्नको खा कर किसी तरह अपनी जान बचा ली। इधर कल्पककी अनुपस्थितिमें मौका समझ सामन्तोंने पाटलीपुत्र पर धावा मार दिया। इस विपत्तिमें नन्द बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने विचारा, कि कल्पकके सिवा इस विपत्तिसे मेरा उद्धार करे ऐसा और कोई भी नहीं है। राजाने काराध्यक्षसे कहा, "अन्धकूपमें अब कोई अन्न ग्रहण करता है या नहीं? उसे निकाल कर मेरे सामने हाजिर करो।"

राजादेशसे कल्पक अन्धकूपसे निकाले गये। राजानुचरगण उन्हें शिविकामें बिठा कर तमाम नगर-प्राकारकी प्रदक्षिणा करने लगे, विपक्षके लोग कल्पकको देख कर डर गये। अस्तु राजाने उन्हें बड़े आदरके साथ मन्त्रिपद प्रदान किया। कल्पक विपक्षी राजाओं पर शासन करनेके लिए अग्रसर हुए। कल्पकका नाम सुनते ही सामन्तगण भाग गये।

कल्पकके पीछे और भी कई पुत्र हुए थे। नन्दराजने उन सबको धनरत्नसे सन्तुष्ट किया था। नन्दके वंशमें ७ नन्द राजा हुए थे, कल्पकके पुत्रोंने उनका मन्त्रित्व किया था। अन्तमें नवम नन्द राजा हुए। उनके मन्त्री हुए शकटाल जो कल्पकके पुत्र थे। शकटालके दो पुत्र थे, स्थूलभद्र और श्रीयक।

नवम नन्दकी सभामें सुविख्यात कवि वररुचि रहते थे। वे प्रतिदिन १०८ नवीन श्लोक बना कर राजाको सुनाते थे। राजाको कविता अच्छी लगने पर भी, मन्त्री कभी उनकी कविताकी प्रशंसा न करते थे और इसीलिये वररुचिको कुछ प्राप्ति न होती थी। अन्तमें राजकविने शकटालकी स्त्रीकी शरण ली। शकटाल स्त्रीकी बातको टाल न सके। इसके बाद जब वररुचिने राजसभामें अपनी कविता पढ़ी, तब मन्त्रीने उसकी खूब प्रशंसा की। नन्दराजने भी प्रसन्न हो कर पुरस्कारमें १०८ दीनार दिए।

‡ "अनन्तरं वर्द्धमानस्वामिनिर्वाणवासरात्।
गतायां षष्टिवत्सर्यामेष नन्दोऽभवन्नृपः॥"
(स्थविरावलीच० ६।२४२)

इस तरह वररुचिको प्रतिदिन १०८ दीनार मिलने लगे। एक दिन मन्त्रीने राजासे पूछा, 'अब आप प्रतिदिन वररुचिको दीनार देते हैं, किन्तु पहले क्यों नहीं देते थे?' राजाने उत्तर दिया, 'तुम उसकी कविता अच्छी बताते हो, इसीलिए देते हैं।' मन्त्रीने फिर कहा, 'दूसरेकी रचना है, इसलिए मैं प्रशंसा करता हूं।' राजाने पूछा, 'तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि यह दूसरेकी रचना है।' चतुर शकटालने उत्तर दिया, 'मेरी लड़कियां भी इन कविताओंको सुनाया करती हैं।'

शकटालकी यक्षा, यक्षदत्ता, भूता, भूतदत्ता, एणिका, वेणा और रेणा ये ७ कन्यायें थीं। इनमेंसे कोई एक बार, कोई दो बार और कोई तीन बार सुन कर किसी भी श्लोकको कण्ठस्थ कर सकती थी। वररुचिके पूर्ववत् नवीन श्लोक रचनाके सुनाने पर, राजाका सन्देह दूर करनेके लिए शकटालकी कन्याओंने यथाक्रमसे उन श्लोकोंको सुना दिया। राजाको मन्त्रीकी बात पर विश्वास हो गया, उन्होंने दीनार देना बन्द कर दिया। वररुचि अत्यन्त रुष्ट हुए। इसके बाद वे एक यन्त्रमें १०८ दीनार रख कर उसे गुप्तरीत्या गङ्गामें रख आते थे, दूसरे दिन सबके सामने गङ्गाका स्तव करते समय यन्त्रकी सहायतासे उसे पानीके ऊपर ला देते थे और फिर उन दीनारोंको ग्रहण करते थे। वररुचिने घोषणा कर दी थी कि राजा नहीं देते तो क्या, गङ्गा उनके स्तवसे मुग्ध हो कर दीनार प्रदान करती हैं। राजाको यह बात मालूम पड़ी। एक दिन मन्त्रीसे बात जिक्र किया और कहा कि, 'तुम स्वयं जा कर इसकी परीक्षा करो।' सुचतुर मन्त्रीने गुप्तचर भेज कर सब हाल जान लिया।

एक दिन गङ्गामें वररुचिके दीनार रख कर चले जाने पर, गुप्तचर उन्हें उठा लाये और मन्त्रीको सौंप दिया। दूसरे दिन राजा मन्त्रीके साथ गङ्गाकिनारे पहुंचे। कविवरने आ कर पूर्ववत् गङ्गाका स्तव किया, किन्तु अबकी बार गङ्गाने दीनार प्रदान नहीं किया। राजाके सामने वररुचिको बहुत लज्जित होना पड़ा। इतनेमें शकटालने उन दीनारोंको दिखा कर कहा, "ये लो, तुम्हारे दीनार तुम्हें ही सौंपता हूं।" इस प्रकार वररुचिका छल पकड़ा गया। वररुचि मन ही मन शकटाल पर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और किस तरह उनका सर्वनाश हो, यह सोचने लगे। अन्तमें कुछ मूर्ख लड़कोंको उन्होंने यह रटा दिया कि, "राजाको मालूम नहीं शकटाल क्या करेगा, नन्दका उच्छेद कर श्रीयकको गद्दी पर बिठायेगा।" लड़के जहां तहां यही गीत गाने लगे। बाद राजाके कानमें पड़ी। राजाने सोचा जो बात लड़कोंमें भी फैल गई है वह कभी झूठी नहीं हो सकती। राजाने गुप्तचर भेजे। शकटालने पुत्रके विवाहमें राजाको उपहार देनेके लिए उत्तमोत्तम शस्त्र संग्रह किए थे। गुप्तचरोंने यह बात राजासे कह दी। राजाको विश्वास हो गया। परन्तु शकटाल भी कम न थे, वे ताड़ गये। उन्होंने अपने प्रिय पुत्र श्रीयकको बुला कर कहा—"वत्स! हमलोगोंकी मृत्यु आसन्न है, इसलिए मैं चाहता हूं कि यदि मेरे मरनेसे सब कुटुम्ब बच जांय, तो मैं मर जाऊं। राजाके पास जा कर जब मैं उन्हें अभिवादन करूंगा, तब तुम मेरे मस्तक पर तलवार मार देना।" श्रीयकने रोते हुए कहा—'तात! यह काम तो चण्डालसे भी नहीं हो सकता; इसलिए मुझ पर ऐसा कठोर आदेश मत कीजिए।' शकटाल बोले—दूसरा कोई उपाय नहीं है। आखिर मरना तो है ही, तुम्हें मेरा आदेश पालन करना ही चाहिए। यथासमय श्रीयकने पिताकी आज्ञा पालन की। राजा आश्चर्यमें पड़ गये, उन्होंने इसका कारण पूछा। श्रीयकने उत्तर दिया—"सेवक हो कर जो प्रभुके अनिष्टकी चेष्टा करता है, वह पिता होने पर भी मार देने योग्य है।" नन्दराज श्रीयकके उत्तरसे सन्तुष्ट हुए और उन्हें मन्त्रिपद प्रदान किया। किन्तु श्रीयकने पितृसम ज्येष्ठ भ्राताके रहते हुए स्वयं मन्त्रिपद लेना अस्वीकार किया। राजाने उनके बड़े भाई स्थूलभद्रको बुलाया। परन्तु धर्मात्मा स्थूलभद्रने मन्त्री होना स्वीकार न किया। आखिरको श्रीयकने राजदत्त मुद्राधिकारपद ग्रहण किया।

अब श्रीयक कल्पकसे बदला लेनेकी तरकीब ढूंढने लगे। श्रीयकके बड़े भाई स्थूलभद्र पहले एक कोशा नामकी वेश्यासे आसक्त थे, बादमें पिताकी मृत्युसे उन्हें वैराग्य आ गया और वे दीक्षित हो गये। श्रीयक एक

दिन उसी वेश्याके पास गए और रोते हुए उससे बोले—बड़े भाई पिताके शोकमें ही सब छोड़ छाड़ कर वनको चले गए। दुष्ट वररुचि ही पिताकी मृत्युका कारण है, इसलिए उससे बदला लेना हम लोगोंका फर्ज है।

वररुचिको कोशाकी छोटी बहन उपकोशा बड़ी प्यारी थी। कोशाने उसको सिखा दिया कि आज किसी तरह वररुचिको शराब पिलाना चाहिए। उपकोशाने कौशलसे वररुचिको शराब पिलाना सिखा दिया।

शकटालकी मृत्युके बाद नन्दकी सभामें वररुचिका विशेष सम्मान होने लगा था। सभास्थ सभी लोग उनकी खूब प्रशंसा करते थे। यथासमय कोशाने श्रीयकके पास वररुचिके मद्यपानका सम्वाद पहुँचा दिया। श्रीयकने राजासे कह दिया। वररुचिके सभामें उपस्थित होने पर नन्दने उन्हें एक फूल सूंघनेके लिए आदेश दिया। फूलको सूंघते ही उन्होंने कै कर दी। वररुचिके मुंहसे शराबकी बू निकलने लगी। राजाने उन्हें गरम गरम सीसा पिलानेके लिए आदेश किया। वररुचि मर गए, और साथ ही श्रीयक भी सर्वाधिकार-सम्पन्न हो गए।

अब बारह वर्षका अकाल पड़ा। हजारों आदमी भोजनके अभावसे मरने लगे। इसी समय गोल्लविषयमें चणक नामक ब्राह्मणकी पत्नी चणेश्वरीके गर्भसे चाणक्यने जन्म लिया।

चाणक्य श्रावक और सब विद्याओंमें पारदर्शी हो गये। यथासमय उन्होंने एक कुलीन कन्याका पाणिग्रहण किया। एक दिन चाणक्यकी स्त्री अपने भाईके विवाहमें पीहर चली गई। चाणक्यकी अवस्था बहुत शोचनीय थी; इसलिए वे स्त्रीको पीहर जाते समय कुछ गहना वा वस्त्रादि न दे सके थे। उनकी स्त्री मैला लहँगा, मैली चादर, छिन्न पत्रके अलङ्कार और अस्थिके कुण्डल पहन कर गई थीं। परन्तु उनकी अन्य बहनें उत्तम मौसम वस्त्र और अलङ्कारोंसे विभूषित थीं। उनकी पोशाकको देख कर सब हँसी उड़ाने लगीं, जिससे उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। ससुराल पहुंच कर ब्राह्मणीने सब बात अपने पति (चाणक्य)से कही। चाणक्यको बड़ा खेद हुआ। वे अर्थोपार्जनके लिए बाहर चल दिये। उन्होंने सुना था, नन्दराज ब्राह्मणोंको बहुत दान दिया करते हैं।

चाणक्य पाटलीपुत्र जा कर नन्दकी सभामें उपस्थित हुए और वहां उत्तम आसन पर बैठ गये। नन्दकी छाया स्पर्श करके उत्तम आसन पर बैठनेके कारण नन्दपुत्रको चाणक्य पर बड़ा क्रोध आया। इतनेमें एक दासीने आ कर व्यङ्ग-पूर्वक चाणक्यसे कहा—"पण्डितजी, उस आसनसे उठ कर यहाँ आकर बैठिये, वह आसन आपके लिए नहीं है।" चाणक्य नहीं उठे। दासीने उनका कमण्डलु, दण्ड, जपमाला और अन्तमें उपवीत पकड़ कर उठाया, पर तो भी वे टससे मस न हुए। आखिरको दासीने उन्हें पागल समझा और पैर पकड़ कर खींचना शुरू किया। फिर क्या था, चाणक्य आग-बबूला हो कर उठ खड़े हुए और बोले—'मैं प्रतिज्ञा करता हूं, कि नन्दको बन्धु बान्धव, पुत्र-मित्र और वंश सहित निर्मूल करूंगा।' यह कह कर चाणक्य वहांसे चल दिये और मयूरपोषक नामक ग्राममें पहुंचे। इस ग्राममें महत्तरके घर चन्द्रगुप्तने जन्म लिया था। इसके बादका विवरण 'चन्द्रगुप्त' और 'चाणक्य' शब्दमें देखना चाहिए। यहां पुनरुल्लेख करना व्यर्थ है।

चन्द्रगुप्त और पर्वतकी सहायतासे चाणक्यने नन्दका समूल उच्छेद कर अपनी प्रतिज्ञाका पालन किया।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है, वह हेमचन्द्रके अनुसार है। धर्मघोष गणि और विमल गणिने भी अपने अपने ग्रन्थमें ऐसा ही विवरण लिखा है। सोमदेव-कृत कथासरित्सागरमें नन्दका विवरण इस प्रकार लिखा है—

इन्द्रदत्त, व्याड़ि और वररुचि अर्थ-लाभकी आशासे जिस समय नन्दकी सभामें उपस्थित थे, उसके कुछ समय पहले ही नन्दकी मृत्यु हो चुकी थी। सबको सन्तप्त और हताश देख कर इन्द्रदत्तने कहा—"हम लोगोंको हताश न होना चाहिए। मैं मायाबलसे नन्दके शरीरमें प्रविष्ट होता हूं; फिर वररुचि, तुम अर्थके लिए प्रार्थना करना, मैं तुम्हें अभीष्ट अर्थ प्रदान कर पुनः अपने शरीरमें आ जाऊंगा। इतना कह कर इन्द्रदत्त नन्दके शरीरमें प्रविष्ट हो गये और व्याड़ि उनकी प्राणहीन देहकी रक्षा करने लगे।

नन्दके पुनः जीवित हो जानेसे राज्य भरमें महोत्सव होने लगा। किन्तु विचक्षण मन्त्री शकटालको इसमें कुछ

सन्देह हुआ। उस समय राजपुत्र नितान्त शिशु थे। पीछे राजपुत्रका कोई अनिष्ट हो इस ख्यालसे शकटाल-ने नवराजको राज-सिंहासन पर ही रक्खा। परन्तु राज्य-में जितने भी शव (मुर्दे) थे, उन्हें जला डालनेके लिए आदेश दिया। इस प्रकार इन्द्रदत्तको देह भी भस्मीभूत हो गई। फिर व्याडि और वररुचि उन्हीं (नवनन्द)के पास रहे।

इन्द्रदत्त राजासन पर बैठ कर भी वर्तमान अवस्थामें सन्तुष्ट न थे। ब्राह्मणत्वको खो कर शूद्र-देहमें वास करना उनके लिए बड़ा ही कष्टकर था। व्याडि उनसे अर्थ ले कर अपने गुरु उपवर्षके पास चले गये। अकेले वररुचि ही उनके पास रहे और मन्त्री बन गये।

नन्ददेहधारी इन्द्रदत्त योगनन्द नामसे प्रसिद्ध हुए। शकटालने ब्रह्महत्या की थी, उस अपराधसे उन्हें पुत्र सहित अन्धकूपमें डाल दिया गया। खानेके लिए बहुत ही थोड़ा अन्न मिलता था। खानेके न मिलनेसे शकटाल-के सब पुत्र मर गये, अकेले शकटाल बदला लेनेके लिए जीते रहे। धनके मदमें मत्त हो कर योगनन्द क्रमशः अत्याचारी हो उठे। वररुचि राजाके व्यवहारसे अत्यन्त दुःखित हुए। राजाके दोषसे मन्त्रीको बदनामी होती है। इस लिए वररुचिने राजासे अनुरोध किया कि शकटाल अब छोड़ दिये जांय। शकटाल मन्त्री हो गये। कुछ दिन बाद राजा वररुचिसे असन्तुष्ट हो गये और उनके विनाशके लिये चेष्टा करने लगे। इस समय शक-टालने वररुचिको अपने घर छिपा कर उनके प्राण बचा लिये। कुछ दिन बाद ही राजपुत्र हिरण्यगुप्त संज्ञाहीन (बेहोश) हो गये। योगनन्द इस समय वर-रुचिके लिए बड़े तड़फड़ाने लगे। शकटालने राजाके कष्टको देख कर वररुचिको बाहर निकाला। वररुचिने राजपुत्रको अच्छा कर दिया। परन्तु वररुचिको इस कुटिल संसारसे अरुचि हो गई। उन्होंने मन्त्रिपद त्याग कर वानप्रस्थ ग्रहण किया। लोगोंने वररुचिको न देख अनुमान किया कि राजाने उन्हें मार डाला। उनके घर भी यह संवाद पहुंचा। वररुचिकी स्त्री उपकोशा-को बड़ा शोक हुआ; वह अग्निमें जल कर मर गई।

शकटाल मन्त्री तो हो गये, पर उनकी वैर-निर्यातन-स्पृहा दूर न हुई। एक दिन उन्होंने देखा, कि एक कद्का-कार ब्राह्मण खेतमें बैठ कर गड्ढा खोद रहा है। कारण पूछने पर उसने उत्तर दिया, "यह कुश मेरे पैरमें चुभ गया है इसलिए इसे समूल उखाड़ कर फेंक रहा हूं।" शकटालने निश्चय कर लिया कि इसी व्यक्तिसे उनका अभिप्राय सिद्ध हो सकता है। उन्होंने ब्राह्मणको बहुत रुपयोंका लोभ दे कर आगामी अमावस्याके दिन श्राद्धके उपलक्षमें राज-भवनमें आनेके लिए निमन्त्रण दिया। ब्राह्मण और कोई नहीं, चाणक्य ही थे। चाणक्य-ने सोचा था राज-भवनमें उन्हें प्रधान आसन मिलेगा। परन्तु शकटालके परामर्शसे योगनन्दने सुबन्धु नामक एक ब्राह्मणको पहलेसे ही प्रधान आसन देनेका संकल्प कर रक्खा था। चाणक्य राजप्रासादमें पहुंच कर उस आसन पर बैठना ही चाहते थे कि इतनेमें नन्दने उन्हें रोक दिया। इससे चाणक्यने अपना अपमान समझा और क्रोधमें आ कर सात दिनके भीतर नन्दकी मृत्यु होगी ऐसा शाप दे डाला। नन्दने भी उन्हें निकाल बाहर करनेके लिए आदेश किया। इधर शकटाल चाणक्यको अपने घर ले गये और उन्हें नन्दके विरुद्ध भड़काने लगे। चाणक्यने अभिचार-क्रिया द्वारा सात दिनमें ही नन्दका प्राणसंहार किया। बाद शकटालने योगनन्दके औरसजात पुत्र हिरण्यगुप्तका विनाश कर प्रकृत नन्दके पुत्र चन्द्रगुप्तको सिंहासन पर बिठाया। अब चाणक्य चन्द्रगुप्तके मन्त्री हो गये। इस प्रकार शकटालने अपना उद्देश्य साधन कर वानप्रस्थका आश्रय लिया।

(कथासरित्सागर)

सिंहलको महावंशटीका और उत्तर-विहारको अत्थकथामें नन्दका विवरण इस प्रकार लिखा है,—

कालाशोकके बाद धर्माशोक पर्यन्त १२ राजाओंने राज्य किया। कालाशोकके १० पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्रका मातृकुल अति नीच जातीय समझा जाता था। इसलिये वह पुत्र अन्य प्रदेशमें रहता था। कालाशोकको मृत्युके बाद (बुद्ध-निर्वाणके १०० वर्ष बाद ?) उनके ८ पुत्र एक साथ राज्य करते रहे। इस समय एक व्यक्ति वह बल-संग्रह कर दस्युवृत्ति द्वारा देशको रसातल पहुं-चाने लगा। दस्युपति नगरादि लूट कर वनमें जा

जाता था। एक दिन एक अपरिचित व्यक्तिने असीम साहस और उत्साहसे उनके भीषण कार्यमें योग दिया, जिससे वह सबका प्रशंसाभाजन हो गया। उस व्यक्तिने एक दिन दस्युओंके साथ वनमें जा कर उन लोगोंसे पूछा, "तुम लोग किस तरह रहते हो ? उन लोगोंने उत्तर दिया, "तू क्या जानेगा खेती-बारी करना, गाय-भैंस चराना, यह सब हम लोगोंको अच्छा नहीं लगता। तूने जैसा देखा, उसी तरह शहर लूट कर हम लोग मौज करते हैं—बड़े आराममें रहते हैं। दस्युओंकी बात सुन कर उसका मन ललचा उठा। वह दस्युओंमें मिल गया और आराममें रहने लगा। एक दिन दस्युओंने मिल कर नगर आक्रमण किया। नगरवासियोंकी सावधानी और साहसिकतासे दस्य उनका कुछ भी न कर सके ; उलटा उनके दलपतिको ही नागरिकोंने मार डाला। दस्युगण सर्दारके मरनेसे विलाप करने लगे और कहने लगे, अब कौन हम लोगोंकी रक्षा करेगा ? उसी समय नवागत व्यक्तिने बड़े उत्साहके साथ कहा, "कुछ चिन्ता मत करो, मैं तुम लोगोंकी रक्षा करूंगा, मुझे ही दलपति समझो।" दस्युगण 'वाह, 'वाह' करने लगे और उसीको अपना दलपति बना लिया। बादमें ये ही दलपति नन्द नामसे प्रसिद्ध हुए। नन्दने जगह जगह दस्युवृत्ति कर बहुत धनरत्न संग्रह किया और अन्तमें नाना राज्य जय कर पाटलीपुत्रमें अपनी राजधानी स्थापित की। बहुत दिन राज्य करनेके बाद उनकी मृत्यु हुई। नन्दके बाद उनके भाइयोंने (एकके बाद एक) २८ वर्ष तक राज्य किया। ये ही नवनन्दके नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। शेष वा नवम नन्दका नाम धननन्द है। इन्होंने बहुत धन-सञ्चय किया था, इसीलिए इनका नाम 'धननन्द' पड़ा। चाणक्यके कौशलसे ये धननन्द ही विनष्ट हुए थे।

चाणक्य, चन्द्रगुप्त और परीक्षित् शब्द देखो।

नन्द—उत्कलके श्रोत्रिय ब्राह्मणोंकी एक श्रेणी।

नन्दक (सं० पु०) नन्दयतीति नन्द-णवुल्। १ विष्णुमय विष्णुका खड्ग। २ भेक, मेंढ़क। ३ नन्दगोप। ४ नागभेद, एक नागका नाम। ५ असिमात्र। ६ कुमारानुचरविशेष, कार्त्तिकेके एक अनुचरका नाम। ७ धृतराष्ट्रका एक पुत्र। ८ नन्दोत्पत्त। (त्रि०) ९ सन्तोषकारक, दिलासा देनेवाला। १० आनन्ददायक। ११ कुल-पालक, वंश-की रक्षा करनेवाला।

नन्दकवि—१ हिन्दीके एक कवि। सम्वत् १६२५ में इनका जन्म हुआ था। इनकी गणना उत्तम कवियोंमें की जाती थी। हजारामें इनका नाम पाया जाता है।

२ ये भी हिन्दीके कवि थे। इन्होंने 'रामकृष्णगुणमाल' नामक ग्रन्थ बनाया है।

नन्दकि (सं० स्त्री०) पिप्पली, पीपल।

नन्दकिन् (सं० पु०) नन्दकः खड्गः विद्यतेऽस्य इति-इनि। विष्णु।

नन्दकिशोर—१ श्रीवृन्दावनलीलामृतके रचयिता। २ मुग्धबोधके परिशिष्ट और महाभारतके टीकाकार।

नन्दकुमार (सं० पु०) नन्दके पुत्र, श्रीकृष्ण।

नन्दकुमार राय—महाराज नन्दकुमार रायने ईसाकी १८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें जन्मग्रहण किया था। आप बंगाली थे। जिस विप्लवके समय बंगालमें मुसलमानी राज्यका ध्वंस हो कर अंग्रेजोंके राजत्वका सूत्रपात हुआ था, उस समय महाराज नन्दकुमारके समान क्षमताशाली, प्रतिभावान्, सम्भ्रान्त और गौरवान्वित व्यक्ति बंगालियोंमें और कोई भी न था।

महाराज नन्दकुमार पीतमुण्डीग्रामी काश्यप गोत्रीय राढ़ीय ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुए थे। पीतमुण्डीग्रामी कुलीन नहीं, पहले गौणकुलीन और अन्तमें श्रोत्रिय नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। पीतमुण्डियोंमें दो शाखायें हैं—एक धवल और दूसरी मलिन। नन्दकुमारका जन्म धवल शाखामें हुआ था। कौलिक उपाधि पीतमुण्डी होने पर भी बहुत दिन हुए, यह वंश "राय" उपाधि प्राप्त कर उसी नामसे परिचित होता आया है।

नन्दकुमारके पूर्वपुरुषगण मुर्शिदाबाद जिलेके जङ्गीपुर उपविभागके अन्तर्गत बड़ाला ग्रामके निकटस्थ जङ्गल नामक ग्राममें रहते थे। नन्दकुमारके प्रपितामह रामगोपाल रायने भद्रपुरके मथुराभाथ मजुमदारकी कन्याके साथ विवाह किया था। भद्रपुरग्राम पहले मुर्शिदाबाद जिलेमें ही था, अब वीरभूम जिलेमें आ गया है। इसको साधारणतः लोग 'भाद्रा' कहते हैं। मथुरा-

साथ अनाचारदोषके कारण कुलमर्यादामें हीन थे, सुतरां उनकी कन्याका पाणिग्रहण करनेसे रामगोपाल को समाजमें कुछ अपदस्थ होना पड़ा था। इसी अपराधके कारण ग्रामके ब्राह्मणोंने उनके साथ खान-पान भी बन्द कर दिया था। इसलिये बाध्य हो कर रामगोपालको भद्रपुर जाना पड़ा। आत्मीय-स्वजनोंके व्यवहारसे दुःखित और उत्यक्त हो कर ही रामगोपालने ससुरालके निकट वासभवन बनवाया था। किन्तु जहूलका वास भी उन्होंने बिलकुल छोड़ा न था, कभी कभी वहां जा कर भी कुछ दिन बिता आते थे। रामगोपालके दो पुत्र थे; द्वितीय पुत्र चण्डीचरणके दो विवाह हुए थे, जिनमें प्रथमा पत्नीके गर्भसे पद्मनाभका जन्म हुआ था। नन्दकुमार इन्हीं पद्मनाभके पुत्र (तृतीय सन्तान) थे।

महाराज नन्दकुमारके एक पुत्र और तीन कन्याएं थीं। पुत्र गुरुदासको गौड़पतिकी उपाधि मिली थी, इनके कोई पुत्र नहीं हुआ था। इस कारण यहींसे नन्दकुमारके वंशका अन्त हुआ। पुत्रियोंमें श्याममणि बड़ी थी; इनका विवाह जगचन्द्र बन्द्योपाध्यायके साथ हुआ था। इस व्यक्तिके साथ महाराज नन्दकुमारकी जीवनी विशेष रूपसे संश्लिष्ट है। ज्येष्ठा कन्या श्याममणिके पुत्र राजा महानन्द मातुल (गुरुदास)के उत्तराधिकारी हुए थे। अब भी उन्हींके वंशधरगण उसका भोग कर रहे हैं।

नन्दकुमारके बादसे जहूल ग्रामका वास बिलकुल उठ हो गया। नन्दकुमारने राजकार्यके अनुरोधसे मुर्शिदाबाद, कुंजघाटा, कलकत्ता और हुगलीमें वासस्थान बनवाया था। भद्रपुरके भद्रासनको ही आप अपनी पैतृक वासभूमि समझते थे। जहूल ग्राममें अब भी इन पीतमुण्डी रायोंकी कीर्त्तिका अवशेष देखनेमें आता है। महातप नामकी एक पुष्करिणी और उसके पासकी वासभूमिके चिह्न अब भी विद्यमान हैं।

जिस समय महाराज नन्दकुमारका जन्म हुआ था, उस समय औरङ्गजेबकी मृत्यु हो जानेसे मुगल-साम्राज्यमें सर्वत्र विप्लव उपस्थित हुआ था; केवल बङ्गाल ही नवाब मुर्शिदकुली खाँकी अधीनतामें निरुपद्रव था। नवाब मुर्शिदकुली खाँ राजस्व-विभागका कार्य अच्छी तरह समझते थे और इसीलिए उस समय जो भी कर्मचारी उस विभागमें नियुक्त होना चाहते थे, उन्हें उस विषयमें अपनी यथेष्ट योग्यताका परिचय देना पड़ता था। नन्दकुमारके पिता पद्मनाभ इस विषयमें अपनी पारदर्शिताका परिचय दे नवाब-सरकारके अधीन हो गये और अपने समान पुत्र नन्दकुमारको भी उस विषयकी यथेष्ट शिक्षा दी थी। पद्मनाभ क्रमशः फतेसिंह, घोड़ाघाट और सातसइका इन तीन परगनोंके अमीन हुए। मुर्शिदकुली खाँने बहुतसे जमींदारोंसे जमींदारी छीन ली थीं। इन्हीं जमींदारियोंका कर वसूल करनेके लिए नवाबने उन्हें नियुक्त किया था। पद्मनाभ किस समय उक्त पदके अधिकारी हुए, इसका कहीं कुछ उल्लेख नहीं मिलता। उक्त तीन परगनोंसे उन्हें डेढ़ लाख रुपया वसूल करना पड़ता था।

नन्दकुमार पिताके यत्नसे राजस्वविषयक कार्यमें विशेष शिक्षा लाभ कर, उनके कार्यादिमें सहायता पहुंचाते थे। पद्मनाभने कई विषयोंमें पुत्रकी असाधारण प्रतिभाका परिचय पा कर उन्हें अपना सहकारी वा नायब-अमीन बना लिया। इस प्रकार पिता और पुत्र मिल कर कुछ दिनों तक कार्य करते रहे। बादमें नन्दकुमारकी दक्षताकी बात क्रमशः नवाबके कानों तक पहुंच गई।

बङ्गालके सिंहासन पर जिस समय नवाब अलीवर्दी खाँ उपविष्ट थे, उस समय नन्दकुमार हिजली और महिषादल इन दो परगनोंके अमीन नियुक्त हुए। नन्दकुमार स्वयं अमीन हो कर नवाब-सरकारकी आय बढ़ानेके लिए सचेष्ट हुए। इससे उन्हें प्रजा और जमींदारोंकी सुविधा पर हस्तक्षेप भी करना पड़ा और इसी कारण वे प्रजा और जमींदारोंके विरागभाजन हो गये।

अलीवर्दी खाँके समयमें रायरायां चैनराय खालसाके दीवान थे। प्रजा और जमींदारगण नन्दकुमारके विरुद्ध उनके पास अभियोग करने लगे। एक साथ बहुतसी शिकायतें आनेके कारण चैनराय कुछ नाराज हो गए। नाराज होनेका और भी एक कारण था; वह यह कि नन्दकुमार पर करीब ८० हजार रुपये पावने हो गये

थे। आखिर दीवान चैनरायने उन्हें पदच्युत कर मुर्शिदाबाद बुलाया। मुर्शिदाबाद उपस्थित होने पर दीवानने रुपये दाखिल करनेके लिए इन पर बड़ा दबाव डाला। सहसा पदच्युत होनेके कारण वे रुपये तत्काल दे न सके। जब दीवानने किसी तरह भी न माना, तब इनके पिताने रुपये दे कर इन्हें ऋणमुक्त किया। * नन्दकुमारने ऋणमुक्त हो कर नवाब शाह अहमदजङ्गके नायब हुसेनकुली खाँके पास कोई कार्य पानेके लिए अरजी भेजी। परन्तु दीवान चैनरायको मालूम पड़ते ही, उन्होंने हुसेनकुलीको पत्र लिख दिया कि नन्दकुमारको कोई भी काम न दिया जाय। हुसेनकुलीने दीवानकी इच्छाके विरुद्ध इन्हें काम देना पसन्द न किया और इसलिए नन्दकुमारको भी नौकरी न मिली। फिर आपने प्रधान सेनापति मुस्ताफा खाँके पास जाना आना शुरू कर दिया।

मुस्ताफा खाँके साथ इस समय फिर अलीवर्दी खाँके विरोधकी सूचना हुई, मुस्ताफा खाँकी अधीनस्थ सेनाको वेतन न मिला था। मुस्ताफाने इसके लिए नवाबको तत्यक्त कर डाला; इस पर नवाबने उन्हें जमींदारोंसे वसूल करनेके लिए आदेश दे दिया। सैनिक विभागके कर्मचारी पर रुपये वसूल करनेका भार देनेसे अत्याचार होना अनिवार्य है, इस कारण जमींदार लोग आसन्न विपद्की आशङ्कासे घबराने लगे। परन्तु इस विपत्तिसे उन्हें बचावे कौन? स्वयं नवाबका आदेश था। दीवान चैनराय कुछ भी न कर सकते थे; इसलिए वे मुस्ताफा खाँको शान्त करनेके लिए उपाय ढूँढ़ने लगे। इस समय नन्दकुमार मुस्ताफा खाँके अनुगत थे; इसलिए जमींदारोंने उन्हें ही मध्यस्थ कर उन्हींकी शरण ली। इसी कार्यसे नन्दकुमारने अपनी विपत्तियोंकी उपेक्षा कर परहितव्रतमें व्रती होना प्रारम्भ किया। नन्दकुमारकी अपनी अवस्था उस समय अच्छी न थी, तथापि जमींदारोंकी भयावह अवस्था देख मुस्ताफा खाँके पास पहुँचे और जमींदारोंकी तरफसे जामिन होनेका प्रस्ताव किया। मुस्ताफा खाँका उद्देश्य उस समय दूसरा ही था। वे जल्दी जल्दी सैनिकोंका वेतन चुका कर उन्हें सन्तुष्ट रखना चाहते थे और फिर उनकी सहायतासे बिहार पर स्वतन्त्र शासनकर्त्ता बननेके लिए भीतर ही भीतर तैयारियाँ कर रहे थे। इसलिए उस समय जामिन ले कर जमींदारोंको छोड़ देना उनके लिए एक अन्तराय था, किन्तु तो भी उन्होंने नन्दकुमारके सम्मान और अनुरोधकी रक्षा की। नन्दकुमार जामिन तो हो गये, पर मुस्ताफा खाँको जल्दी जल्दी रुपये वसूल कर दे न सके। जमींदारगण भी जामिन हो जानेसे कुछ निश्चिन्तसे हो गए, उन लोगोंने यथासमय रुपये दे कर उपकारीके वचनकी रक्षा करनेमें भी शिथिलता कर दी। इसका फल यह हुआ कि मुस्ताफा खाँ नाराज हो गए और नन्दकुमारको बन्दी कर दीवान चैनरायके पास भेजनेके लिए उद्यत हुए। नन्दकुमार इस संवादको पा कर कलकत्ते भाग आए। किसीको इनके भाग जानेकी खबर न लगी। सम्भवतः इसी समय इन्होंने कलकत्तेमें वासभवन बनवाया होगा। कुछ दिन इसी तरह बीतनेके बाद मुस्ताफा खाँके साथ अलीवर्दी खाँका युद्ध हुआ। इस लड़ाईमें मुस्ताफा खाँ मारे गये। दीवान चैनरायकी भी इसी समय मृत्यु हो गई। अतएव मौका देख नन्दकुमार फिर मुर्शिदाबाद पहुँचे और मुत्सद्दियोंकी खुशामद कर किसी तरह नवाब-सरकारकी तरफसे सातशैका परगनाके अमीन हो गये। यह पद पहले इनके पिताके हाथमें था; वे जिस समय उस पद पर नियुक्त हुए

* १म गवर्नर-जनरल वारेन हेष्टिंगसकी मन्त्रि-सभाके अन्यतम सभ्य मि० बारवेलने उस समय अपनी बहनको जितने भी पत्र लिखे थे, उनमेंसे कुछ मुद्रित हुए हैं। उनमेंसे एकमें बारवेलने इस घटनाका उल्लेख कर लिखा है कि, "उस समय अमीन पद्मनाभ अपने पुत्र पर इतने नाराज हो गये थे कि उन्होंने फिर पुत्रका मुँह न देखा था।" बारवेल हेष्टिंगसके अनुगत थे और नन्दकुमारके विरोधी। इसलिये उनकी बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता। इस प्रकार रुपये बकाया पड़ना उस समयके राजस्व-विभागके कर्मचारियोंके लिये मामूली बात थी—प्रायः सभी दर पावने रहते थे। पद्मनाभ स्वयं अमीन हो कर इस बातको न समझते थे, यह बात असम्भव है. सुतरां पुत्र पर सरकारी रुपये बकाया होनेके कारण उन्होंने पुत्रका मुँह देखना बन्द कर दिया था, यह बात विश्वासयोग्य नहीं है।

थे, सम्भवतः उस समय इनके पिताकी मृत्यु हो गई होगी।

इस समय आपने शेख इजतउल्लासे दो हजार रुपयेका कर्ज लिया। कुछ दिन सातशइकाका काम कर आप मुर्शिदाबाद गए और वहीं हिसाब वगैरह समझवा कर हुगली चले गए। सातशइकाकी आमदनीसे इनकी पूर न पड़ती थी, सम्भवतः इसीलिए अधिक आयकर जीविकाकी तलाशमें आप हुगली गये थे। परन्तु शेख इजतउल्लाने अपने रुपये वसूल करनेके अभिप्रायसे इन्हें पाँच दिन तक रोक रक्खा। शेख रुस्तम नामक एक व्यक्तिने इनका जामिन दे कर ५ दिन बाद इन्हें मुक्त किया। इस समय आप इतने तंग थे कि आपके पास हुगलीसे मुर्शिदाबाद तक जानेका भी खर्च न था। यही कारण है कि आपको चन्दननगर जा कर अपने ओढ़नेका २ हजार रु०का दुशाला १२००) रु०में बेच देना पड़ा, जिनमेंसे १०००) रु० तो इजतउल्लाको भेज दिए और २००) रु० खर्चके लिए अपने पास रक्खे। इसी समय हुगलीके फौजदार महम्मद यारबेग खाँ पदच्युत किये गए थे और उनके स्थान पर छिदायत अली नियुक्त हुए थे।

नन्दकुमार मुर्शिदाबाद पहुंच कर प्रायः युवराज सिराजउद्दौलाके साथ मुलाकात करने जाते थे। किन्तु इस समय वे रुपये पैसेसे इतने तंग थे कि युवराजके साथ मुलाकात करनेके लिए न उनके पास घोड़ा हाथी और न पोशाक। इसलिए वे प्रत्येक बार घोड़ा और पोशाक उधार खरीदते थे और मुलाकात करके लौटनेके बाद उन्हें आधे दामों पर बेच कर कर्जका कुछ अंश चुका देते थे। जब भाग्य विपरीत होता है, तब सभी कार्योंमें विपत्तिका सामना करना पड़ता है। एक दिन नन्दकुमारने युवराजके कानमें कोई बात कही, उससे युवराज उनको स्पर्धा देख क्रुद्ध हो गए और उन्हें लकड़ीसे पीटनेके लिये आदेश दिया। नन्दकुमार शरीरके मजबूत थे, इसलिये किसी तरह अपनी जान बचा कर वहांसे चले आये।

इस घटनाके बादसे सिराज नन्दकुमार पर हमेशाके लिये नाराज हो गये हों, ऐसा नहीं। कुछ दिन बाद नन्दकुमार सिराजके आदेशानुसार नौकरी पानेकी आशासे हुगलीके फौजदारके पास गये। नन्दकुमारने हुगलीके दीवानका पद पानेके लिए प्रार्थना की, परन्तु छिदायत अलीकी इच्छा नहीं थी कि वह पद नन्दकुमारको मिले। इसलिये वे नन्दकुमार पर अत्याचार करने लगे। आखिर आपको वहांसे निराश हो कर मुर्शिदाबाद लौटना ही पड़ा। इस समय भी आपकी आर्थिक स्थिति शोचनीय थी।

कुछ दिन बाद छिदायत पदच्युत हुए और उनके स्थान पर महम्मद यारबेग खाँ नियुक्त हुए। नन्दकुमार यारबेगके मित्र सादकउल्लाके पास जाने आने लगे। सादकउल्ला आपकी कार्य-कुशलतासे परिचित थे। उन्होंने यारबेगसे इनका परिचय करा दिया। परन्तु जब नन्दकुमारने उनसे दीवानीका पद मांगा, तो उन्होंने देना स्वीकार नहीं किया; उस पद पर उन्होंने अपने विश्वासी लहरीमलको नियुक्त किया। फिर आपको हताश हो कर मुर्शिदाबाद लौटना पड़ा।

इसके कुछ दिन बाद लहरीमलकी विश्वासघातकतासे असन्तुष्ट हो कर यारबेगने उन्हें पदच्युत कर दिया। सादकउल्लाने इस समय नन्दकुमारके लिए अनुरोध किया, यारबेग राजी हो गये। नन्दकुमार बहुत दिनोंके बाद ईप्सित पदको पा कर सर्वान्तःकरणसे फौजदारको सन्तुष्ट रखने लगे। यारबेग भी नये दीवानकी कार्य-कुशलतासे अत्यन्त खुश हुए। इस समय दीवान नन्दकुमारके भाग्यने फिर पलटा खाया।

तीन वर्ष बाद यारबेगका भाग्य फूटा, वे पुनः पदच्युत किये गये। यारबेग दीवान नन्दकुमारके साथ हिसाब सुलझानेके लिए मुर्शिदाबाद पहुंचे। वहां उन्हें एक वर्ष लग गया। इसी समय नवाब अलीवर्दी खाँकी मृत्यु हो गई। सिराजउद्दौला नवाब हुए।

कलकत्तेमें अंग्रेजोंको दमन कर सिराज जब लौट रहे थे, उस समय हुगलीमें कोई फौजदार न था। नवीन नवाब अंग्रेजोंकी दुरभिसन्धि समझ गये और उन्होंने हुगलीको अरक्षित रखना उचित न समझा। मिर्जा मुहम्मद हुगलीके और राजा मानिकचंद कलकत्ते के फौजदार नियुक्त हुए। परन्तु मिर्जा मुहम्मद बन्दरका शासन न कर सके, बहुत गड़बड़ी फैल गई। तब शेख उमरउल्ला फौजदार बनाये गये। इसी बीचमें यारबेग-

का हिसाब भी निबट गया और वे चले गये। नन्दकुमार इस समय ठाले बैठे थे, उन्होंने पुनः हुगलीके दीवान बननेके लिए अर्जी पेश की और वह मंजूर हो गई। कुछ दिन बाद उमरबक्स पदच्युत हुए और उनके स्थानमें सिराजने नन्दकुमारको नियुक्त किया, क्योंकि नवाब साहब इनकी कर्मठता, विचक्षणता आदि गुणोंसे परिचित थे।

इस समय कर्नल क्लाइव फरासीसियोंसे चन्दननगर छीन लेनेकी कोशिश कर रहे थे। इस घटनाके कारण नवाबके राज्यमें अंग्रेजों द्वारा बहुत उपद्रव होने लगा। इससे पहले १७५७ ई०में ८ फरवरीको अंग्रेजोंके साथ नवाबकी एक सन्धि हुई थी, जिसमें स्थिर हुआ था कि अंग्रेज लोग किसी कारणसे नवाबके राज्यमें कहीं भी कुछ गड़बड़ी नहीं फैलायेंगे। परन्तु अंग्रेजोंने वह सन्धि तोड़ दी। नवाब साहब भी समझ गये और उन्होंने अंग्रेजोंको निषेध किया। राजा दुर्लभराम एक दल सेना ले कर हुगलीको रवाने हुए। नवाबने फौजदार नन्दकुमारको भी आदेश दिया कि यदि आवश्यकता पड़े तो नन्दकुमार सेना ले कर फरासीसियोंकी सहायता करें।

अंग्रेजोंने नवाबकी इस व्यवस्थाको सुन अपनेको विपदापन्न समझा। वे सोचने लगे, 'इस समय यदि नवाबकी सेना हुगलीमें आ जावे और नन्दकुमार जैसे सुचतुर फौजदार यदि हम लोगोंका उद्देश्य समझ लें, तो फिर चन्दननगर पर आक्रमण करना मुश्किल हो जायगा।' इसलिए अंग्रेजोंने कलकत्ता-निवासी राजा हजारीमल (हुजूरीमल)के बहनोई अमीरचन्दको (इतिहासमें 'उमिचंद' नामसे प्रसिद्ध) अपने पक्षमें मिला लिया और उनके द्वारा फौजदार नन्दकुमारको हस्तगत करनेके लिए कोशिश करने लगे। उमिचन्द देखो। अमीरचन्दने हुगली जा कर नन्दकुमारसे कहा, कि जगत्सेठ आदि सभी प्रधान कर्मचारियोंने अंग्रेजोंको सहायता देना कबूल किया है। जिस पक्षमें जगत्सेठ हैं, उसी पक्षकी विजय है, इसलिए अपने मङ्गलके लिए अब अंग्रेजोंके विरुद्ध जाना उचित नहीं है। जगत्सेठ देखो। अमीरचन्दने इसी प्रसङ्गमें सिराजउद्दौलाकी सिंहासन-च्युतिकी बात भी छेड़ दी थी। इससे नन्दकुमारने समझा, कि सिराजके विरुद्ध वास्तवमें ही षड्यन्त्र चल रहा है और उनका पतन भी अवश्यम्भावी है। परन्तु इसमें बाधा देना उन्होंने उचित न समझा; क्योंकि अंग्रेज क्रमशः बलशाली हो रहे थे और देशीय राजन्यवर्ग उनका सहायक था। इस कारण नन्दकुमारने कौशलसे उन्हें दमन करनेको ठानी और इसीलिए अमीरचन्दका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। किसी किसी अंग्रेज ऐतिहासिक अर्मे (Orme)का कहना है, कि अंग्रेजोंने अमीरचन्दकी मारफत नन्दकुमारको १२०००) रु०की रिश्वत दी थी, इसीलिए उन्होंने उनका प्रस्ताव स्वीकार किया था। परन्तु यह बात असत्य है, क्योंकि उस समय नन्दकुमारकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी और स्वभावतः वे लोभपरायण भी न थे। उनके शत्रुपक्षके लोग भी जब इस बातको स्वीकार नहीं करते, तब इसमें सत्यांश कितना है, यह सहज ही समझमें आ जाता है। ऐतिहासिक गुलाम हुसेनने अपने 'सैर-उल्-मुताखरीन' नामक इतिहासमें नन्दकुमारकी काफी निन्दा की है, किन्तु उसमें इस बातका उल्लेख तक नहीं है। यदि यह बात सत्य होती, तो वे उसका उल्लेख किये बिना कभी न रहते।

कुछ भी हो, नन्दकुमारने इसके बाद फरासीसियोंको सहायताके लिए सेना भेजनेका जो आदेश दिया था, वह रद्द कर दिया और दुर्लभरायके सेना-सहित उपस्थित होने पर उन्हें लौट जानेके लिए आदेश दिया। उन्होंने नवाबको भी इस आशयका पत्र लिख दिया कि अंग्रेजोंके बलाबलका विचार कर फरासीसियोंकी सहायता करना उचित नहीं, यदि की जायगी, तो अपमानित होना पड़ेगा।

सिराजउद्दौलाकी पदच्युतिके षड्यन्त्रमें नन्दकुमारने इस कार्यमें बड़ी सहायता पहुँचाई। चन्दननगर आक्रमण और अधिकार कर अंग्रेज और भी बलवान् हो उठे। अमीरचन्दकी बातमें विभ्रान्त हो कर नन्दकुमारने जिस कौशलसे काम लेना चाहा था, वह हो न सका; कारण सिराजउद्दौलाने उनकी भूल पकड़

लो और उन्हें पदच्युत कर दिया।* नन्दकुमार पदच्युत होनेके बादसे कहां किस प्रकार रहे थे, यह बात मालूम नहीं हो सकी है। सम्भवतः उन्हें अपने भ्रमके लिए आत्मग्लानि हुई होगी और इसीलिए ऐसे विप्लवके समय उन्होंने किसी राजकार्यमें हस्तक्षेप करना उचित न समझा होगा।

पलाशीके युद्धके बाद अंग्रेजोंने विजयी हो कर मीरजाफरको बङ्गालके सिंहासन पर बिठाया। इसी समय क्लाइवने नन्दकुमारको अपना दीवान बनाया। नन्दकुमार भ्रममें पड़ कर, जिस कौशलसे काम लेना चाहा था, उसमें व्यर्थमनोरथ हुए थे, पर उससे अंग्रेजोंकी भलाई हुई। सम्भवतः इसी उपकारका स्मरण कर क्लाइवने इन्हें अपना दीवान बनाया था। जिस क्लाइवने अपने उपकारी अमीनचन्दको जाल दलील बना कर ठगा था, उस क्लाइवके लिए नन्दकुमारके प्रति ऐसी कृतज्ञताका दिखाना अवश्य ही आश्चर्यजनक है; परन्तु ऐसा करनेका एक कारण था। मीरजाफर नवाब हो कर जब पटनेके शासनकर्त्ता राजा रामनारायणका उच्छेद करनेके लिए कटिबद्ध हो गये तब अंग्रेजोंके लिए रामनारायणको रक्षा करना आवश्यक था। ऐसी दशामें क्लाइवको एक सुचतुर और सुकौशली व्यक्तिकी जरूरत थी। इसलिए इन्होंने नन्दकुमारको ही इस पदके लिये चुना, क्योंकि इनमें यह एक विशेष गुण था कि ये जब जिस प्रभुके अधीन कार्य करते थे, तब उन्हींका कार्य ऐकान्तिक भावसे करते थे। नन्दकुमार क्लाइवके दीवान होनेके उपरान्त, उनकी तरफसे वकील बन कर कई बार नवाबके दरबारमें गये थे। किन्तु जब नवाब किसी तरह भी विचलित न हुए, तब क्लाइव सेना-सहित पटना पहुंचे। नन्दकुमार भी उनके साथ गये थे। क्लाइव इनकी कार्यदक्षता और बुद्धिमत्तासे बड़े खुश थे और सब विषयोंमें आपसे परामर्श लेते थे। मीरजाफरके दीवान राजा दुर्लभरायने नन्दकुमारको पटना जाते देख क्लाइवके पास उन्हें ही अपना वकील बना कर भेजा था। इस समय नन्दकुमारकी क्षमता इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि लोग उन्हें "काला कर्नल" कहते थे। बादमें पटनेका कार्य सम्पन्न कर क्लाइव दल सहित मुर्शिदाबाद आये और अपनी प्रीतिके निदर्शनस्वरूप नवाबसे अनुरोध कर नन्दकुमारको हुगली, हिजली आदि स्थानोंकी दीवानी दिलवा दी। इस तरह नन्दकुमार पुनः अपने चिरन्तन प्रभु नवाबके अधीन कार्य करने लगे। अमीरबेग खाँ उस समय हुगली, हिजली आदिके फौजदार थे। नवाब-सरकारमें कार्य पा कर नन्दकुमार अपने नवीन प्रभु (कम्पनी)-के स्नेहसे वञ्चित हुए हों, ऐसा नहीं। कम्पनीके अधीन भी उन्हें एक प्रधान पदकी प्राप्ति हुई। मीरजाफरने सन्धिमें लिखे हुए कुल रुपये राजकोषसे चुका न सकनेके कारण, उसके बदले नदिया और वर्द्धमानका राजस्व अंग्रेजोंको छोड़ दिया। नन्दकुमार १७५८ ई०की १८वीं अगस्तको अंग्रेजोंके अधीन इन दो स्थानोंके तहसीलदार हो गये। इन्हें किश्तोंके समय पर राजाओंको बुला कर राजस्व वसूल करनेका अधिकार दिया गया। इस प्रकार दोनों प्रभुके अधीन उच्च पद पर कार्य करने लगे।

पलाशी-युद्धके बाद नवाब-दरबारमें अंग्रेजोंकी तरफसे एक रेसिडेण्टका रखना अवधारित हुआ। १७५८ ई०में वारेन हेष्टिंग्स उक्त पद पर नियुक्त हुए। वर्द्धमान और नदियाके राजस्व वसूल करनेके सम्बन्धमें नन्दकुमारके साथ हेष्टिंग्सके मनोमालिन्यका सूत्रपात हुआ। किस कारणसे ऐसा हुआ, यह बात पीछे कही जायगी।

मीरजाफरकी आर्थिक स्थिति इस समय बड़ी सोचनीय थी। वे सर्वदा रुपयेके लिए राजा दुर्लभराम और जगत्सेठको तंग किया करते थे। क्रमशः नवाबके साथ दुर्लभरामका विवाद हो गया और उत्तरोत्तर वह बढ़ने हो लगा। इस समय मीरन ढाकाके शासनकर्त्ता थे और

* पूर्वोक्त बारवेल साहबके लिखे हुए एक पत्रमें प्रकट हुआ है कि "नन्दकुमारने ही अंग्रेजोंसे मित्रता करनेके लिए स्वतः प्रवृत्त हो कृष्णकुमार वसु नामक एक व्यक्तिको क्लाइवके पास भेजा था।" यह बात बिलकुल मिथ्या है, क्योंकि समसामयिक अंग्रेज ऐतिहासिक अर्मे नन्दकुमारके विषयमें रिशवतकी बात तक लिख गये हैं, किंतु वे भी इस बातको नहीं कहते और न सैर-उल्-मुताखरीनमें ही इसका कुछ उल्लेख है।

राजा राजवल्लभ उनके दीवान। मीरनने रायदुर्लभसे ढाका-विभागका हिसाब तलब किया। इस तरह चारों ओरसे तंग आ जानेके कारण उन्होंने कलकत्ते आनेका विचार किया, किन्तु मीरनने नवाबकी सेनाको तनखाह न चुकने तक उन्हें रोक रखनेकी कोशिश की। दुर्लभरायने इस विपत्तिसे रक्षा पानेकी इच्छासे नन्दकुमारकी शरण ली। शरणापन्नकी रक्षा करनेके लिए नन्दकुमार हर हालतमें तैयार रहते थे, जिसका एक दृष्टान्त पहले भी आ चुका है। अबकी बार भी वे नवाब असन्तुष्ट होंगे यह जानते हुए भी, दुर्लभरायको अपने साथ कासिमबाजार ले गये और वहांसे उन्हें अंग्रेजोंके आश्रयमें कलकत्ता भेज कर आप हुगली चले गये।

राजा दुर्लभरायके इस पलायनसे नवाब भी उन पर असन्तुष्ट हो गये और अनिष्ट करनेकी कोशिशमें रहे। इसी समय एक विलक्षण घटना हो गई। नवाब एक दिन मसजिदको जा रहे थे, कि रास्तेमें खोजाहादी नामक एक कर्मचारीके कुछ आदमियोंने उन्हें रोक लिया। नवाबने किसी तरह कौशलसे उनके कबलसे निकल कर यह प्रसिद्ध कर दिया कि रायदुर्लभने ही नवाबकी हत्या करनेके लिए उन आदमियोंको तैनात किया था और इस बातको प्रमाणित करनेके लिए एक पत्र भी प्रकाशित किया। नन्दकुमारको क्लाइवका दाहिना हाथ जान नवाबने वह पत्र उनके पास भेज दिया और लिख दिया कि, "यदि आप किसी तरह इस पत्र पर क्लाइवको विश्वास दिला सकें, तो मैं आपको उपाधि और जागीर देनेके लिए तैयार हूं।" नन्दकुमारने नवाबका यह अनुरोधपत्र क्लाइवको दिखा दिया था, जिससे दुर्लभ रायका भविष्यत् भय तो जाता रहा पर नवाब नन्दकुमारसे खूब नाखुश हो गये। किन्तु अंग्रेजोंके भयसे वे इन्हें पदच्युत न कर सके। नन्दकुमार जिस समय यारबेग खांके अधीन हुगलीकी फौजदारीके दीवान थे, उस समय उन्हें १४०००) रु० दिये थे। वे रुपये इतने दिन बाद अवसर और क्षमता पा कर वसूल कर लिये। वर्त्तमान फौजदार अमीरबेग खां भी नन्दकुमारके परामर्शानुसार कार्य करते थे। इस लिए मीरजाफर नन्दकुमार पर क्रुद्ध होनेके कारण उनसे परामर्श लेनेवाले अमीरबेग पर भी खफा हो गये और उन्हें पदच्युत कर अपने दिलकी जलन बुझाई। फिर नन्दकुमारके कार्यमें दोष निकालने लगे, जिससे नन्दकुमार काम छोड़ कर कलकत्ते चले गए। इस समय नवाबके प्रधान हरकारा राजाराम सिंह भी पदत्याग कर कलकत्तेमें आ कर रहने लगे। बादमें दुर्लभराय, नन्दकुमार और राजाराम ये तीनों नवाबके पास वकील भेज कर दुर्लभराम बंगाल, बिहार और उड़ीसाकी दीवानीके लिए, नन्दकुमार नायब दीवानीके लिए और राजाराम अपने पूर्व पदके लिए प्रार्थी होनेकी तैयारियां करने लगे। शारबेलके पत्रमें प्रकट हुआ है कि इसीके साथ नन्दकुमारने अपने पुत्र गुरुदासके लिए कानूनगो-पद दिलाना चाहा था, जिससे दुर्लभरामके साथ उनकी मित्रता शिथिल हो गई थी।

नन्दकुमारने नवाब-सरकारकी दीवानी छोड़ कर अंग्रेज-सरकारकी तहसीलदारीके काममें मन लगाया। नदियाके राजा पर बहुत दिनोंका कर बकाया था। नन्दकुमारने उनको कहला भेजा, कि नियमित समयके भीतर कम्पनीको राजस्व न देनेसे उन्हें बन्दी रहना पड़ेगा। राजा डर कर कलकत्ते दौड़े आये और क्लाइवके शरणापन्न हुए तथा किसी तरह राजस्वका बन्दोबस्त कर अपने राज्यको लौट गये। वर्द्धमानके राजाके पास पियादा भेजने पर उन्होंने महीने महीने कर देना स्वीकार कर लिया।

नवाबके साथ इन दो खासोंके विषयमें अंग्रेजोंकी यह शर्त हुई थी कि पहले कर वसूल हो कर वह मुर्शिदाबाद भेजा जाय और वहां जमा हो कर फिर अंग्रेजोंके पास आवे। इसमें कार्यकी असुविधा होनेके कारण अंग्रेजोंकी कौंसिलने परवाना वसूल करनेके लिए कर्मचारी नियुक्त करनेकी व्यवस्था कर दी और क्लाइवके अनुरोधसे नन्दकुमार ही उस पद पर नियुक्त हुए तथा उन्हें खिलअत भी मिली। नन्दकुमारने वर्द्धमाननरेशसे राजस्व मांगा तो उन्होंने यह बात मुर्शिदाबाद लिख भेजी। अंग्रेज-रेसिडेण्ट मि० हेष्टिंग्सको उस समय तक कलकत्तेकी कौंसिलके बन्दोबस्तकी बात मालूम नहीं थी, इसलिए नन्दकुमार पर बड़े नाराज

हुए और उनसे इसका कारण पूछा। नन्दकुमारने उसके उत्तरमें अपनी नियुक्ति और खिलअत प्राप्तिका हाल लिख भेजा। परन्तु इस पर भी हेष्टिंग्स् सन्तुष्ट न हुए। उन्होंने क्लाइवको लिखा कि, 'पहलेके बन्दोबस्तकी परवाह न कर नन्दकुमारने मालगुजारी वसूल करनेके लिए वर्द्धमान-नरेशके पास पियादा भेजा है और सुना है कि इस कार्यके लिए आप ही ने उन्हें नियुक्त किया है।' उत्तरमें क्लाइवने लिख दिया कि, 'कौन्सिलके सभ्योंने ही नन्दकुमारकी नियुक्ति की है और उन्हींके द्वारा उन्हें खिलअत मिली है। इसलोमें वर्द्धमान और नदियाकी मालगुजारी वसूल हो, यह व्यवस्था कौन्सिल द्वारा हुई है। इस व्यवस्थाका उद्देश्य इतना ही है कि उक्त स्थानोंसे कमें कितने रुपये मिलते हैं, यह बात नवाब-साहबको मालूम न होने पावे। आप वर्द्धमान-नरेशको नन्दकुमारका आदेश पालन करनेके लिए लिख दें।' इसके उत्तरमें हेष्टिंग्स्ने फिर एक पत्र लिखा कि, 'नन्दकुमारने महिषादलके गुमास्तेसे हिसाब तलब किया है। सम्भवतः यह आपकी बिना अनुमतिके हुआ है। जब तक नन्दकुमार अपने अवसरके अनुसार मेरे हाथसे समस्त कार्यभार ग्रहण न कर लेंगे, तब तक मुझे मुरादाबादमें रहना पड़ेगा; शायद इस बात पर आपने ऐसा विचार न किया होगा।' इस पत्रका क्लाइवने क्या उत्तर दिया, यह बात प्रकाशमें नहीं आई। अन्तमें हेष्टिंग्स्ने नन्दकुमार पर नवाबकी विरक्तिकी बात लिखी, जिसके उत्तर में क्लाइवने यह लिख दिया कि, 'नन्दकुमार पर नवाबकी नाराजीका कारण उनका दुर्लभराय और अंगरेजों पर अनुरक्त होना है; इसके सिवा अन्य कोई भी कारण नहीं।'

नन्दकुमारके प्रभुत्वको खर्व करनेके लिए हेष्टिंग्स् इतनी कोशिश क्यों करते थे? उसका एक गूढ़ कारण था। वह यह कि वर्द्धमान और नदियाकी मालगुजारीके रुपये अगर मुर्शिदाबाद ही कर जाते, तो वह मोटी रकम हेष्टिंग्स्की मारफत ही कलकत्ता भेजी जाती और उससे अकवायी हेष्टिंग्स्को कितना लाभ पहुंचता इसकी व्याख्या करना व्यर्थ है। इस व्यक्तिगत आयमें विघ्न पड़नेके कारण ही हेष्टिंग्स् नन्दकुमार पर उस्तत नाराज रहते थे और इसी नाराजी वा विद्वेषके बीजसे अन्तमें नन्दकुमारके जीवननाशी वृक्षका उद्गम हुआ था।

क्लाइवके बाद मि० वन्सिटार्ट कलकत्तेके गवर्नर हुए। ये पहले तो नन्दकुमारकी दक्षतासे सन्तुष्ट हुए, किन्तु हेष्टिंग्सके मित्र होनेसे इनमें भी वही बात आ गई जो हेष्टिंग्स्में थी। क्रमशः वन्सिटार्ट भी हेष्टिंग्स्के कुपरामर्शसे नन्दकुमारके विद्वेषी हो गये। वन्सिटार्ट ने ही मीरजाफरको हटा कर मीरकासिमको गद्दी पर बिठाया था। मीरजाफर पदच्युत हो कर कलकत्ते आये और चितपुर नामक स्थानमें रहने लगे तथा नन्दकुमारके प्रति वृथा विद्वेष त्याग कर उन्हींके शरणापन्न हुए। भूतपूर्व प्रभु पर अत्याचारकी बातें सुनने तथा अंग्रेजोंके सहवाससे दिनों दिन उनके उद्देश्योंसे परिचित होनेसे नन्दकुमारकी आंखें खुल गईं। वे समझ गये कि दिन-पर-दिन अंग्रेज ही देशके सर्वमय कर्त्ता होते जाते हैं, जब जिसको चाहते हैं उसीको नवाब बना देते हैं। इसी समय नन्दकुमारके हृदयमें अंग्रेजोंकी क्षमता घटानेकी वासना उत्पन्न हुई। उन्होंने मीरजाफरको पुनः सिंहासन दिलानेके लिये वचन दिया। मीरजाफर डर गए, किन्तु नन्दकुमारने उन्हें साहस दिया। इसके बाद आपने फरासीसी और बिहार-प्रवासी सम्राट् शाहआलमके साथ पत्रव्यवहार जारी कर दिया। दैव-दुर्विपाकसे एक पत्र अंग्रेजोंके हाथ पड़ गया। वन्सिटार्टको आपके मकान पर और कई एक पत्र मिले। हेष्टिंग्सने उन पत्रों पर भारी दोष लगाया; किन्तु भगवान्की कृपासे उनके षड़यन्त्रसे आप बाल बाल बच गए। किसी किसीका कहना है कि नन्दकुमारने इस सम्बन्धमें महाराष्ट्रनायकोंके साथ भी पत्रव्यवहार किया था।

इस समय अंगरेज-कर्मचारियोंके गुप्त व्यवसायके कारण इष्ट-इण्डिया-कम्पनीको यथेष्ट क्षति और देशमें बहुत अत्याचार हो रहे थे। इस विषयकी चिट्ठी-पत्री नन्दकुमारके हाथ लग गई। कुछ प्रति-हिंसापरवश हो नन्दकुमारने जाफर खांकी मोहरयुक्त एक चिट्ठी क्लाइवके पास भेज दी और उसी विषयकी एक चिट्ठी कम्पनीके

दफ्तरमें दाखिल की। इस कार्रवाईसे अंगरेज कर्मचारीगण आप पर बड़े खफा हुए। इसी समय उनमें दो दल हो गये; एकमें वन्सीटार्ट और हेष्टिंग्स मुख्य थे और दूसरेमें अमियट और एलिस। इसी समय नवाब मीरकासिमके साथ अंगरेजोंके विवादका सूत्रपात हुआ और कर्नलकूट भी इसी समय कलकत्ते पधारे। बिहारकी गड़बड़ी मिटानेके लिये कूटको पटना भेजनेका निश्चय हुआ। एलिस और अमियटके परामर्शानुसार सुचतुर नन्दकुमारको उनके साथ प्रधान कर्मचारीके बतौर भेजे जानेकी व्यवस्था हुई। कूट नन्दकुमारको जानते थे, उन्होंने आनन्दके साथ स्वीकार कर लिया। परन्तु वन्सीटार्टने बाधा दी। अन्तमें कूटके आग्रहसे नन्दकुमारका जाना तो स्थिर हुआ, किन्तु गवर्नरके आदेशसे वे उनके साथ न जा सके, पीछेसे भेजे गये। नन्दकुमार मीरकासिमको अंगरेजोंके विरोधी समझ उनके अधीन कार्य करनेके लिये उत्सुक थे। उनकी इच्छा थी कि मीरकासिमको उपयुक्त परामर्श दे अंगरेजोंके दमनमें सहायता पहुंचावें। इसी उद्देश्यसे उन्होंने कूट साहबकी मारफत नवाबसे पुनः हुगलीकी फौजदारी मांगी, किन्तु नवाबने उन्हें अंगरेजोंके अनुरक्त समझ तथा सिराजके समय हुगलीके फौजदारकी हैसियतसे किये गये व्यवहारका स्मरण कर उनकी अर्जी मंजूर न की।

इसी समय रामचरण रक्षितके हस्ताक्षरका एक पत्र अंगरेजोंके हाथ पड़ा, उसमें बादशाहके सेनापति कामगार खांके लिये अंगरेजोंके विरुद्ध बहुतसी बातें लिखी गई थीं। इसके सिवा और भी एक चिट्ठी पकड़ी गई, जो फरासीसी लॉ साहब और बादशाहका दल उस समय मिल कर अंगरेज-दमनका आयोजन कर रहे थे। अंगरेजोंने ये दोनों पत्र नन्दकुमारके लिखे हुए बतलाये और पुनः उनके पीछे प्रहरी लगा दिये। इसी हालतमें एक वर्ष बीत गया। आखिरको नन्दकुमारने बन्दी दशामें ही गवर्नरको लिखा कि, "ये सब मेरे नाम पर मिथ्या अभियोग लगाये गये हैं यह मेरे शत्रुओंकी रचना है। यदि अंगरेजोंको मुझ पर विश्वास न हो, तो मुझे छोड़ दिया जाय, मैं सपरिवार अन्यत्र जा कर रहूंगा।" गवर्नरने इस आवेदन पत्रपर कुछ भी लक्ष्य नहीं दिया।

इसके बाद मीरकासिमके साथ अंगरेजोंकी लड़ाई छिड़ी। अंगरेजोंने पुनः मीरजाफरको नवाबी देनेके लिये प्रस्ताव किया। मीरजाफर राजी हो गये, किन्तु नन्दकुमारको उन्होंने अपना दीवान बनाना चाहा। अंगरेजोंने पहले तो इस पर आपत्ति की, पर पीछे नवाबके अत्यन्त आग्रह करने पर राजी हो गये। मीरजाफरने नवाबी पानेके पहले ही आपको अपना दीवान बनाया और मीरकासिमके विरुद्ध युद्धयात्रा की। युद्धमें मीरकासिम हारे और उन्हें बादशाह शाहआलम और नवाब-वजीर शुजाउद्दौलाकी शरण लेनी पड़ी। इस समय मीरजाफरके साथ सम्राट्की सन्धि होने पर मीरजाफरने नन्दकुमारको "महाराजा"-की उपाधि दी। तबसे आप 'महाराजा नन्दकुमार' कहलाने लगे। नन्दकुमार बिहारमें रहते समय फिर बादशाहके साथ अंगरेज-दमनका आयोजन करने लगे। काशीनरेश बलवन्त सिंह मध्यस्थ हुए। इस सम्बन्धमें काशीनरेशको लिखा हुआ एक पत्र फिर पकड़ा गया। अबकी बार अंगरेज लोग बहुत ही बिगड़े। जनरल कार्नकने नन्दकुमारको प्रहरी-वेष्टित कर कलकत्ता भेजना चाहा, पर राजा नवकृष्ण (उस समय मेजर आडम्सके मेनशिन थे) तथा अन्यान्य सम्भ्रान्त व्यक्तियोंने अनुरोध कर कार्नकको शान्त किया। बक्सरके युद्धके बाद बादशाह और अंगरेजोंके बीच एक सन्धि हुई। मीरजाफर और नन्दकुमार कलकत्ता होते हुए मुर्शिदाबाद पहुंचे। मीरजाफरने नवाब हो कर नन्दकुमारको खालसाकी दीवानी दी। नवाब मीरकासिमने कई हिन्दू जमींदारोंको, राजस्व वसूल करनेके लिये, मुंगेरके दुर्गमें बन्दी कर रखा था। नन्दकुमारने उन्हें छोड़ दिया। अन्यान्य जमींदारोंने भी मालगुजारी वसूलीसे तंग आ कर आपकी शरण ली। नन्दकुमारने किसको कुछ छोड़ कर और किसीकी किश्ती बाँध कर झगड़ा तय किया।

इसके बाद दो वर्ष तक नवाबकी क्षमता अक्षुण्ण रखनेके लिये नन्दकुमारने अंगरेजोंसे सिर्फ तर्क-वितर्क किया था। अंगरेज लोग नवाबको कठपुतली बनानेकी कोशिशमें जितने भी आगे बढ़ते थे, नन्दकुमार शक्ति अनुसार उतना ही उसमें विघ्न डाले बिना नहीं रहते थे,

और अंगरेज भी उतने ही इनसे नाराज होते जाते थे। अन्तमें २ वर्ष बाद १७६५ ई०में मीरजाफरकी मृत्यु हो गई। सैर-उल्-मुताक्खरीनमें लिखा है, कि नवाब नन्दकुमार पर इतना विश्वास और स्नेह करते थे कि मरते समय उन्होंने मुसलमान हो कर भी नन्दकुमारके अनुरोधसे किरीटेश्वरी देवीका चरणामृत पीया था, इसके बाद ही उनकी मृत्यु हुई थी।

मीरजाफरकी मृत्युके बाद अंग्रेजोंने उनके पुत्र नजम-उद्दौलाको नवाब बनाया। नन्दकुमार मीरजाफरके हितके लिये जो कोशिश किया करते थे, नजमउद्दौला उनसे वाकिफ थे; इसलिए गद्दी पर बैठते ही उन्होंने नन्दकुमारको खालसाका दीवान बनानेके लिए क्लाइवसे अनुरोध किया। मीरजाफरकी मृत्युके समय क्लाइव दूसरी बार गवर्नर हो कर आये थे। भूतपूर्व गवर्नर वन्सीटार्ट विलायत जाते समय एक बहीमें नन्दकुमार द्वारा किये गये स्वतः परतः समस्त दोषोंका विवरण लिख कर अपने भाई जार्ज वन्सीटार्टको * दे गये थे, और कह गये थे कि क्लाइवके आने पर कौन्सिलमें उनके सामने यह अवश्य ही पढ़ कर सुनाया जाय। यथासमय जार्जने उसे कौन्सिल और क्लाइवको पढ़ कर सुनाया। किसी आदमीके सिर्फ दोष संग्रह करके यदि इस प्रकार सुनाया जाय, तो कौन ऐसा होगा जो सहसा उस पर अविश्वास कर सके? क्लाइवकी भी यही दशा हुई। वे नन्दकुमारके विशेष बन्धु होने पर भी अबकी बार इस दोषमालाको सुन कर उनसे नाराज हो गये और इसीलिये उन्होंने नवाबका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया।

मीरजाफरके समयमें महम्मद रेजा खाँ ढाकाके शासनकर्त्ता थे। ये प्रजा पर बड़ा अत्याचार करते थे, इसलिए नन्दकुमारने मीरजाफरके अधीन खालसाकी दीवानी पा कर रेजा खाँके अत्याचारसे प्रजाको मुक्त करनेके अभिप्रायसे नवाब कह कर उन्हें पदच्युत कर दिया था। अब रेजा खाँने मौका देख खालसाकी दीवानी पानेके लिये प्रार्थना की। क्लाइवने नन्दकुमारको उस पद न दे कर रेजा खाँको खालसाका दीवान बना दिया तथा जगत्सेठ और राजा दुर्लभराम-को उनका सहायक नियुक्त किया।

क्लाइव नन्दकुमारको पदच्युत करके ही निश्चिन्त न हुए। उनको सन्देह हुआ, कि कहीं फिर वे कलकत्ते वा मुर्शिदाबादमें रह कर बादशाह और फरासीसियोंके साथ परामर्श न करें, इसलिए उन्हें दूर हटा देना जरूरी है। इस ख्यालसे क्लाइवने उन्हें चट्टग्राम भेजना चाहा। समाचार सुन उनका परिवारवर्ग बहुत व्याकुल हुआ। राजा नवकृष्ण आदि भी दंग हो गए और ऐसा न करनेके लिए क्लाइवसे अनुरोध किया। इस अनुरोधसे या और किसी कारणसे, उस समय नन्दकुमार निर्वासित नहीं हुए।

इसके बाद इष्ट-इण्डिया-कम्पनीने बादशाहसे बङ्गाल और उड़ीसाकी दीवानी प्राप्त की। नवाब नजमउद्दौला सूबेदार और नाजिम मात्र रहे। अब तक जिस कार्यको रायरायांगण, बादमें महाराज नन्दकुमार और उनके बाद अंगरेजोंके अनुग्रहसे रेजा खाँ कर रहे थे, अब उसी कार्यका भार अंगरेज-कम्पनीने स्वयं ग्रहण कर लिया। महम्मद रेजा खाँने नायब सूबादारी करते समय बुद्धि और क्षमताके बल पर अपनेको मुसलमान समाजका नेता बना लिया था। अंगरेज लोग कौशली हैं, उन लोगोंने रेजा खाँके इस प्रभुत्वसे वाकिफ हो सहसा उन्हें दीवानी पदसे अलग न किया। इष्ट-इण्डिया-कम्पनी नाम मात्रके लिए दीवान रही, उन्हींको पूर्ण क्षमता दे नायब-दीवान कर दिया। नवाबकी अधीनतासे मुक्त और अंगरेजोंके बलसे बलवान् हो कर नायब-दीवान महम्मद रेजा खाँ तीन सूबोंके हर्त्ता कर्त्ता बन गए। ढाकाके शासनकालमें उनकी अदम्य अत्याचार-प्रवृत्ति अब बिना बाधाके चारों तरफ फैल गई। इस समय मुसलमान-समाज जैसे महम्मद रेजा खाँको अपना नेता वा पृष्ठपोषक समझता था, उसी प्रकार हिन्दू-समाज भी महाराज नन्दकुमारका अवलम्बन ले अवस्थान कर रहा था। दोनोंमें इस सामाजिक नेतृत्व-की प्रतिद्वन्द्विता में इस समय बंगदेशमें बहुत उपद्रव हुए थे।

* सैर-उल-मुताक्खरीनमें जार्ज वन्सीटार्टका "होशियार जंग" और गवर्नर वन्सीटार्टका "समसउद्दौला"के नामसे वर्णन है।

नन्दकुमार नवाब-सरकारका काम छोड़नेके बाद प्रायः कलकत्तेके प्रासादमें रहा करते थे। इस समय क्लाइवने बन्सीटार्टके शासनकी निन्दा सुनी। इसके अनुसन्धानके लिए प्रवृत्त होने पर वे इसके लिए एक उपयुक्त व्यक्तिकी तलाशमें रहे। अन्तमें महाराज नन्दकुमारको ही सम्पूर्ण उपयुक्त समझ उन्हींको यह भार सौंपा। पहले पहल नन्दकुमारने जो अनुसन्धान किया, उस पर क्लाइवको विश्वास न हुआ, वे गुप्तरीतिसे नन्दकुमारके कार्यके सत्यासत्यके सम्बन्धमें खोज करते थे इस प्रकार बन्सीटार्टके कार्यानुसन्धानसे नन्दकुमार पर लगाए गए बहुतसे दोष मिथ्या प्रमाणित होने लगे। क्लाइव बन्सीटार्टकी प्रतारणा समझ गए और नन्दकुमार पर क्रमशः विश्वास करने लगे, अन्तमें क्लाइवने उन्हींको बन्सीटार्टके राजत्वका एक विवरण लिखनेके लिए आदेश दिया। नन्दकुमारने निरपेक्ष भावसे विवरण लिख दिया। क्लाइव उसे ले कर विलायत चले गए।

क्लाइवके बाद भेलेष्ट गवर्नर हुए। भेलेष्टकी पहले पहल नन्दकुमार पर अच्छी निगाह थी, पर पीछेसे शत्रुओंकी ओरसे उत्तेजना दी जाने पर उनकी निगाह बदल गई। सुना जाता है, कि इस समय नवकृष्ण भीतर ही भीतर इनकी जड़ काटते थे और मौका आने पर प्रकाश्यमें मध्यस्थ बन कर निष्पक्षताका स्वांग दिखाते थे।

१७६८ ई०में कार्टियर कलकत्तेके गवर्नर हुए। इन्हींके समयमें (बङ्गालमें) "छियत्तरिया" (बङ्गला सन् ११७६में) अकाल पड़ा था। नायब-दीवान महम्मद रेजा खांके अत्याचारसे इस समय अकाल और भी भीषण हो गया था। कार्टियरके पास बहुतोंने रेजा खांके विरुद्ध अभियोग उपस्थित किये; जिनमें दो बड़े थे—१ला, महम्मद रेजा खांने दुर्भिक्षके समय बाजारसे सब चावल खरीद कर बहुत ज्यादा भावसे बेचे थे, और २रा साधारण तहबीलसे बहुत रुपये हड़प कर गये थे। कार्टियरके पास अभियोग तो पहुंचे, पर १७७२ ई०में उन्हें पदत्याग पूर्वक विलायत लौट जाना पड़ा।

वारेन हेष्टिंग्स गवर्नर हुए। विलायतसे कम्पनीके डिरेक्टरोंने उन्हें सबसे पहले रेजा खांका विचार करनेके लिए आदेश दिया। हेष्टिंग्सने मुर्शिदाबादके तदानीन्तन रेसिडेण्ट मिडल्टनको, महम्मद रेजा खांको बन्दी करके भेजनेके लिये आदेश दिया। मिडल्टनने निशातबागसे रेजा खांको कैद कर कलकत्ते भेजा।

प्रजाके कष्टसे विशेष कातर हो महानुभाव नन्दकुमारने रेजा खांकी करतूत विलायतके डिरेक्टरोंके कर्णगोचर करानेके लिए अपने ही व्ययसे एक एजेण्ट भेजा था। डिरेक्टरोंने उस एजेण्ट द्वारा पेश किये गये प्रभूत प्रमाणों पर विश्वास करके ही हेष्टिंसको सबसे पहले रेजा खांके लिये नियुक्त किया था।

इस समय बङ्गालमें द्वैतशासन (Double Government) चल रहा था। राजस्व-विभाग अंगरेजोंके हाथमें था और निजामत-विभाग नवाबके हाथमें। निजामतका भार अपने ऊपर न होनेसे अंगरेजी कम्पनी बदस्तूर शासन नहीं कर सकता था। इस कारण हेष्टिंग्स आदि द्वैतशासनसे बड़े नाराज थे। डिरेक्टरोंका आदेश पा कर इसी सूत्रसे हेष्टिंग्स द्वैतशासनको जड़ खोदने लगे।

डिरेक्टरोंने सिर्फ रेजा खांको पदच्युत कर उनके कृतकर्म पर विचार करनेका आदेश दिया था, किन्तु हेष्टिंग्सने ऐसा न कर पटनेके शासनकर्त्ता राजा सिताबरायको भी पकड़वा बुलाया। सिताबरायके विरुद्ध भी तहबील घटतीकी नालिश हुई थी।

हेष्टिंग्सने उन लोगोंको गिरफ़ार तो कर लिया, पर किस तरह उनके दोष प्रमाणित करेंगे, यह न सोच सके। राज्यमें सर्वत्र रेजा खांके कर्मचारी मौजूद थे। सुतरां हेष्टिंग्सको समस्यामें पड़ना पड़ा। डिरेक्टरोंने आदेश देनेके साथ यह भी कह दिया था कि यदि आवश्यकता पड़े तो, वे नन्दकुमारकी सहायता ले सकते हैं। हेष्टिंग्स पहले तो नन्दकुमारसे सहायता लेनेमें इतस्ततः करने लगे पर आखिरको मजबूर हो कर उन्हें नन्दकुमारको बुलाना पड़ा और उनसे सहायताके लिये कहना ही पड़ा। इस समय हेष्टिंग्सने नन्दकुमारसे यह भी कहा कि, "मैं कलकत्तेकी कौंसिलकी सहायतासे आपको बङ्गालका अमीन बनाऊंगा और राजा सिताबराय तथा महम्मद रेजा खां आपको हिसाब बगैरह

समझायेंगे। इस कार्यके लिये मैं अपने पदके अनुसार आपको सहायता पहुंचानेके लिये सम्पूर्ण क्षमताका उपयोग करनेके लिये तैयार रहूंगा।" गवर्नरको इस प्रतिश्रुति पर विश्वास करके महाराज नन्दकुमारने दोनों असामियोंको तहसील घटतीको एक फर्द बना दी। महम्मद रेजा खांने नवाब सरकारके बहुत कीमती जेवर, हाथ, घोड़े और बङ्गला सन् ११७२ से ११७८ तक छः वर्षमें बङ्गाल और ढाकाकी तहसीलसे २० करोड़ रुपये आत्मसात् किये थे। दुर्भिक्षके समय चावल खरीद कर बहुत ज्यादा भावसे बेचे थे। इसके सिवा वे कई सरकारी सम्पत्तिका भोग कर रहे हैं। इत्यादि बहुत सी बातोंकी खोज की और उस विषयके गवाहों भी काफी संख्यामें इकट्ठे किये नन्दकुमारकी कोशिशसे दोष प्रमाणित होने पर रेजा खांने नन्दकुमारको दो लाख और हेष्टिंग्सको दश लाख रुपये की रिशवत देनी चाही। नन्दकुमारने यह बात हेष्टिंग्ससे कही। हेष्टिंग्सने उत्तर दिया कि, "एक करोड़ रुपये देने पर भी मैं निर्दोषिताका सबूत बिना पाये उन्हें छोड़ नहीं सकता।" फसली सन् ११७२के प्रारम्भसे ११८१के अन्त तक राजा सिताब रायने लगभग नब्बे लाख रुपये आत्मसात् किए थे, उन्होंने भी हेष्टिंग्सको चार लाख, नन्दकुमारको एक लाख और रोज साहबको ५० हजार रुपये घूस देने चाहे, पर हेष्टिंग्सने इस पर भी पूर्ववत् महानुभवता दिखाई।

अन्तमें विचार शुरू हुआ। जिस समय यह विचार चल रहा था, उस समय नवाब नजमउद्दौलाके नाबालिग पुत्र मुबारकउद्दौला सिंहासन पर बैठे थे, उनके अभिभावककी नियुक्तिके बारेमें बड़ा तर्क वितर्क चल रहा था। मुबारकउद्दौलाकी माता बाबू बेगम और विमाता मनि बेगम दोनोंने अभिभावक बननेके लिए आवेदन किया था। कम्पनीके डिरेक्टरोंने इस विषयकी मीमांसा और नवाबके दीवान नियुक्त करनेका भार हेष्टिंग्स पर ही डाल दिया।

मनिबेगमने नन्दकुमारकी सहायतासे २॥ लाख रुपयेकी घूस देनेका प्रस्ताव किया। हेष्टिंग्सकी मति मारी गई, अबकी बार वे टाल न सके, स्वीकार कर लिया। नन्दकुमारने गवर्नरके खानसामा, जगन्नाथ और बालकृष्ण तथा अपने कर्मचारी सदानन्द और नरसिंहकी मारफत ये रुपये भेजे थे। इसी समय आपने अपने पुत्र गुरुदासको नवाबके दीवान बनानेके लिये हेष्टिंग्ससे अनुरोध किया। यद्यपि इस समय हेष्टिंग्स नन्दकुमारसे खुश थे, क्योंकि उन्होंने काफी प्राप्ति करा दी थी और रेजा खांके मामलेमें उन्हें यथेष्ट सहायता पहुंचाई थी, किन्तु तो भी एक बार रिशवत ले कर लालसाका द्वार खोल दिया था, इसलिये हेष्टिंग्सने प्रकारान्तरमें नन्दकुमारसे भी कुछ नजर चाही। गवर्नरने जब स्वयं ही प्रकारान्तरमें नजरकी बात छेड़ी, तब नन्दकुमारने भी स्वीकार कर ली। मनिबेगम और राजा गुरुदासकी इस नियुक्तिके लिए उक्त २॥ लाख रुपयेके सिवा नन्दकुमारने और भी (१०४१०५ रु०) हेष्टिंग्सको दिये थे।

इसके बाद राजा सिताब राय और रेजा खांका विचार होने लगा। इसके विरुद्ध खड़े किए गए मुकदमेको सत्य प्रमाणित करनेके लिए नन्दकुमारने बे-शुमार गवाहियां इकट्ठी की थीं। रेजा खांकी तरफ कुल दो सौ गवाहियां थीं। इस मामलेमें करीब दो वर्ष समय लगा था। अन्तमें हेष्टिंग्सने दोनोंको निर्दोष कह कर छोड़ दिया। समस्त अपराधोंके अकाट्य प्रमाण मिलने पर भी हेष्टिंग्स ने उन्हें क्यों छोड़ दिया, यह समझनेमें किसीको देर न लगी, सब समझ गए। राजा सिताबराय छूट तो गए, पर ग्लानिके मारे शीघ्र ही उनका स्वर्गवास हो गया। इनके पुत्र कल्याणसिंहको बिहारके रायरायां पद पर नियुक्त कर हेष्टिंग्सने कुछ मनुष्यत्वका परिचय दिया। रेजा खांके छूट जाने पर लोग दंग हो गये, महाराज नन्दकुमारको पांच आदमियोंमें कुछ अप्रतिभ होना पड़ा, वे हेष्टिंग्सका स्वभाव कैसा जटिल है, इस बातको खूब अच्छी तरह समझ गये। रेजा खां और सिताबराय विचारमें किसी भी कारणसे मुक्त क्यों न हुए हों, इस मुकदमेकी तदबीरमें महाराज नन्दकुमारने हेष्टिंग्सकी जिस तरह सहायता पहुंचाई थी, उसके लिए हेष्टिंग्सको कम-से-कम उनके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए

था; परन्तु उन्होंने, अन्तमें होनों ही दूर रहा, १७७४ ई०के मार्च मासमें जो इस मुकदमेका विवरण विलायत भेजा, उसमें उन्हें शठ, प्रवञ्चक, अकृतज्ञ आदि लिख कर उनकी निन्दा की। किन्तु हेष्टिंग्सने किस व्यवहार वा कार्यके आधार पर यह लिख मारा, उसका कुछ उल्लेख ही नहीं किया। हेष्टिंग्सने रेजा खां और सिताब रायके मुकदमेकी तदवीरके लिए जब नन्दकुमारको नियुक्त किया था, उस समय जो वचन दिये थे, उसका भी पालन नहीं किया।

इसी समय विलायतके प्रधान मन्त्री लार्ड नर्थने भारतकी कार्य शृङ्खलाकी सुव्यवस्थाके लिए "नियामक विधि" (Regulating Act) विधिबद्ध किया। उस विधिके अनुसार हेष्टिंग्स् भारतके गवर्नर जनरलके पद पर नियुक्त हुए और उनका मन्त्रित्व करनेके लिए जनरल क्लेभरिङ्, कर्नल, मनसन और फिलिप फ्रान्सिस ये तीन व्यक्ति अतिरिक्त सभ्य कौन्सिलमें चुने गये। इसी समय सुप्रीमकोर्टकी विचार-प्रणालीको भी सुसंगत करनेके लिए सर इलाइजा इम्पेको प्रधान विचारपति और हाइड, लिमेष्टर और चेम्बर्स को विचार-पति के पद पर नियुक्त किया गया। प्रधान विचारपति सर इलाइजा इम्पे गवर्नर-जनरल हेष्टिंग्सके सहपाठी और घनिष्ट मित्र थे।

१७७४ ई०में अक्टूबर मासके प्रारम्भमें उपर्युक्त नव-नियुक्त कर्मचारिगण कलकत्तेके चांदपालघाटमें आ कर उतरे। उनके सम्मानार्थ फोर्ट विलियमसे २७ बार तोप दागी गई, पर हेष्टिंग्सने उनके सम्मानार्थ कुछ सामान्य कर्मचारियोंको घाट पर भेज दिया था। इस कारण गवर्नर जनरलके समान क्षमताविशिष्ट नवागत मन्त्रि सभाके सदस्यगण हेष्टिंग्ससे कुछ क्षुब्ध हुए। उन लोगोंने समझा, कि हेष्टिंग्सने अपनी श्रेष्ठता और प्रभुता दिखानेके लिए ही ऐसा किया है। एक तरफकी कुछ भूल और दूसरी तरफकी कुछ विवेचनाकी त्रुटिसे उस प्रारम्भिक दिनसे ही मन्त्रि-सभामें मतभेदका बीज पड़ गया। कौन्सिलमें उस समय मि० बारवेल नामक एक व्यक्ति हेष्टिंग्सके पक्षमें थे। कुछ भी हो, अब जब कौन्सिलमें गवर्नरके, आपके आदमी ही सभ्य होते थे। सुतरां गवर्नर द्वारा किये गये अन्यायका कोई प्रतिवाद करनेवाले न रहता था। नूतन मन्त्रि सभामें नवागत मन्त्रियोंने उस कार्यमें हस्तक्षेप किया। रोहिला-युद्धमें गवर्नर-जनरलने जिन मार्गोंका अवलम्बन किया था, नवागत मन्त्रिगण उसके न्याय-अन्याय पर तर्क वितर्क करने लगे। लोगोंको भरोसा हो गया कि अबसे अंगरेज-शासकवर्गके अत्याचारसे सहसा लोगोंको मरना पड़ेगा।

इस समय हेष्टिंग्सके दलबलके अत्याचारसे जमींदार और प्रजा बड़ी तंग आ गई थी। दीवान गङ्गा-गोविन्द सिंह, राजा देवी सिंह, कृष्णकान्त नन्दी, मि० गुडलैड आदि हेष्टिंग्सके सहायक थे और उसके ऊपर मुक्तिप्राप्त रेजा खां और नव अभ्युदित राजा नव-कृष्ण भी कार्यक्षेत्रमें आ गये थे। अत्याचारसे उत्पीड़ित हो कर जन साधारणको महाराज नन्दकुमारकी शरण लेनी पड़ी। नन्दकुमार यद्यपि क्षमताहीन और शासकोंकी दृष्टिमें गिरे हुए थे, तथापि देशके लोग इन्हीं पर विश्वास रखते थे, विपत्ति पड़ने पर इन्हीकी शरण लेते थे, क्योंकि इससे पहले भी कई बार इन्हींसे उनका काम निकला था। इसके सिवा उस समय देशमें ऐसा कोई बड़ा आदमी नहीं था जो गरीबों वा अत्याचारसे पीड़ितोंकी सुनवाई करता हो, इसलिए भी लोग आपकी शरण लेते थे। नवकृष्ण, गङ्गागोविन्द आदिने भी उस समय अत्याचारका बीड़ा हाथमें उठा लिया था नाटोर, वर्द्धमान आदि बङ्गालके शीर्षस्थानीय जमींदारोंने भी नन्दकुमारकी शरण ली थी। नन्दकुमार, क्या करें क्या न करें, इसी समस्यामें पड़ गये। हेष्टिंग्स् इन समाचारोंको सुन कर उत्तरोत्तर इन पर चिढ़ते ही जाते थे। हेष्टिंग्स उस समयसे नन्दकुमारको अपने विरुद्ध षड्यन्त्रकारी समझने लगे।

उधर कौन्सिलके मन्त्रियोंके साथ नन्दकुमारका भी परिचय हो गया. किसी किसीके साथ घनिष्ठत्व भी हो गया। मन्त्रियोंको क्रमशः हेष्टिंग्सके अविश्रान्त उत्कोच-ग्रहणका संवाद मिलने लगा और उसके अनुसन्धानार्थ वे नाना प्रकारसे प्रयत्न करने लगे। अन्तमें नन्दकुमारसे परिचित हो जाने पर उन्हें ही इस कामके लिए उपयुक्त समझ

हेष्टिंग्स्‌के अत्याचारका विवरण लिखनेका भार दिया गया। कारण नन्दकुमार नवाब अलीवर्दी खाँके समयसे उस समय तकको देशको शासनविधि और राजस्वविधिसे खूब परिचित थे। उन्हें तत्कालीन राज्य-सम्बन्धी सभी बातें मालूम थीं; उनके समान उपयुक्त, राज्यकी अवस्थाको जाननेवाला राजकर्मचारी उस समय कोई था नहीं। इसीलिए मन्त्रियोंने उन्हें ही इस कार्यके लिए योग्य समझा। हेष्टिंग्सकी अकृतज्ञतासे नन्दकुमार भी उनसे सन्तुष्ट न थे, इस लिए उन्होंने भी प्रधानतः देशमें फैले हुए अत्याचारके दमनके लिए हेष्टिंग्सके विरुद्ध कार्य करना स्वीकार कर लिया। हेष्टिंग्स इन्हें चक्रान्तकारी समझते थे, पर वास्तवमें इनमें यह दोष नहीं था। ये जिस कामको करते थे उसे खुलो तौरपर करते थे, दुबका-चारी—विश्वासघातकता इन्हें बिलकुल पसन्द न थी। इसी बीचमें और भी एक मौका मिल गया। वर्द्धमान-राज महाराज तिलकचन्द बहादुरकी विधवा पत्नीने हेष्टिंग्सके अत्याचारके कारण कौन्सिल में एक अभियोग उपस्थित किया। बहुतोंका कहना है कि यह काम महाराज नन्दकुमारका ही था; परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। नन्दकुमार यदि ऐसा करना चाहते, तो वे एक वर्द्धमान ही क्यों, बंगालके समस्त जमींदारोंके द्वारा अभियोग करा सकते थे। परन्तु उनका ऐसा उद्देश्य न था। वे अत्याचारोंके अत्याचारको दमन करनेके लिए स्वयं अभियोक्ता हो कर खड़े होनेके लिए प्रस्तुत रहते थे। पुरुषोचित दुःसाहस उनमें मौजूद था।

१७७५ ई॰में ८ मार्चको एक अभियोगका आवेदन-पत्र बना कर नन्दकुमार स्वयं ही कौन्सिलके एक सदस्य मि॰ फ्रान्सिसके हाथ दे आये। इस आवेदनमें आपने हेष्टिंग्सके उत्कोच-ग्रहण, अत्याचारियोंको अवैध रूपसे निष्कृति दान और देशव्यापी अत्याचारके अनुष्ठानकी शिकायतकी थी। हेष्टिंग्सने उनका भी जो अनिष्ट किया था, उसका भी विशेष रूपसे उल्लेख किया था। यह अर्जी फारसीमें लिखी गई थी। मि॰ फ्रान्सिसने ११ मार्चको इसे कौन्सिलमें पढ़ा था।

इस आवेदनमें नन्दकुमारने मीरकासिमके युद्धके समय अंगरेजोंके उपकारार्थ जो कार्य किया था, प्रथमतः उसका उल्लेख किया; उसके बाद महम्मद रेजा खाँने देशमें किस तरह भीषण अत्याचार किया था, उसका भी वर्णन किया। बाद उसके हेष्टिंग्सने उनके प्रति कैसा अत्याचार किया था, एक एक करके सब लिख दिया। कौन्सिलके सभ्योंके विलायतसे आने पर हेष्टिंग्सने स्वयं उन लोगोंके साथ बंगालके अन्यान्य सम्भ्रान्त व्यक्तियोंसे परिचय करा दिया, पर नन्दकुमारसे नहीं कराया। नन्दकुमारके इस बारेमें प्रार्थना करने पर गवर्नरने उत्तर दिया कि, 'मेरा एक शत्रु है, उसके साथ आपकी बड़ी घनिष्टता है, आप लोगोंमें उसे मन्त्रि-सभाके सदस्योंके पास पत्रादि ले जानेके लिए नियुक्त किया है। आप उसकी सहायतासे उनके साथ परिचित क्यों नहीं होते?' उसके बाद गवर्नरने डर दिखा कर कहा था कि, 'मैं अपने मानकी रक्षाके लिए और अपनी सुविधाके लिए सब तरहकी चेष्टाएं करूंगा, किन्तु उससे आपको ही क्षतिग्रस्त होना पड़ेगा।' इसके बाद हेष्टिंग्सने इलियट साहबकी मारफत कौन्सिलके सभ्योंसे महाराजका परिचय करा दिया।

इसके बादसे, विशेषतः हेष्टिंग्सके प्रतिद्वन्द्वी मि॰ फ्रान्सिसके साथ नन्दकुमारका विशेष सौहार्द्य हो जानेके कारण, हेष्टिंग्स् नन्दकुमारको दमन करनेके लिए नाना उपाय अवलम्बन करने लगे। हेष्टिंग्सके इनके साथ वर्द्धमानका मालगुजारी वसूलीके विषयमें नन्दकुमारका विवाद था। सेठ बुलाकीदास नामक एक अग्रवाल जौहरीकी मृत्युके बाद हिसाब आदिके बारेमें मोहनप्रसाद नामक उक्त जौहरीके आममुख्तारके साथ भी नन्दकुमारका झगड़ा था। वर्त्तमान कृष्णघाटाराजवंशके आदिपुरुष जगचन्द्र बन्द्योपाध्याय नन्दकुमारके दामाद थे। इनको महाराज नन्दकुमारने ही बाल्यकालसे पुत्रकी तरह पाला-पोसा, लिखाया-पढ़ाया और कन्या ब्याही थी; अन्तमें बहुतोंसे अनुरोध कर उनको नौकरी भी लगवा दी थी। जिस समय महाराजने यह अभियोग उपस्थित किया था, उस समय भी जगचन्द्र नवाबके दीवान राजा गुरुदासके अधीन नवाब-सरकारमें नायबी कर रहे थे, किन्तु वे ऐसे असन्तुष्ट प्रकृतिके आदमी थे

कि शासकके अधीन काम करना पड़ता था, इसलिए बड़े क्षुब्ध रहते थे। अन्तमें दूसरा कोई उपाय न देख वे आत्म-द्रोही हो गये। हेष्टिंग्स, ग्रेहम, मोहनप्रसाद और जगचन्द्रको हस्तगत कर नन्दकुमारके सर्वनाशके लिए सर्वदा परामर्श करने लगे। मोहनप्रसाद प्रवञ्चक और चक्रान्तकारी थे, इसलिए उस समय क्या अंगरेज और क्या बंगाली, सब उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखते थे; और तो क्या हेष्टिंग्सने स्वयं भी एक दफा उन्हें अपने मकानसे निकाल दिया था और आइन्दा फिर कभी न आनेके लिए कह दिया था। किन्तु अब उन्हीं हेष्टिंग्सने अपना अभीष्ट सिद्धिके लिए—नन्दकुमारको नष्ट करनेके उद्देश्यसे फिर उन्हें अतर और पान दे कर बुला लिया। जगचन्द्रने क्रमशः श्वशुरके साथ साक्षात् करना बन्द कर दिया और उनके विरुद्ध मोहन और हेष्टिंगसके साथ परामर्श-पूर्वक षड़यन्त्र रचने लगे।

नन्दकुमारने अपने आवेदनमें इन सब बातोंका वर्णन कर गवर्नरके कूट उद्देश्यकी बात प्रकट की थी; जिस समय दिल्लीके बादशाहने नन्दकुमारको "महाराजा"की उपाधि और खिलअत दी थी, उस समय प्रथानुसार बादशाहने एक झालरदार पालकी और अन्यान्य राजसम्मान चिह्न प्रदान किये थे। यह सामान जब पटना आया, तब मीरजाफरकी मृत्यु हो चुकी थी, नन्दकुमारकी नायब-सूबेदारी जाती रही थी। उस समय नये नायब सूबेदार महम्मद रेजा खांकी उत्तेजना और भयसे पटनेके शासनकर्त्ता राजा सिताब रायने नन्दकुमारके उस बादशाही उपटौकनको रोक लिया। नन्दकुमारको मालूम पड़ने पर उन्होंने हेष्टिंगससे कहा। हेष्टिंगसने उन्हें मंगा तो लिया, पर नन्दकुमारको न दे कर अपने काममें लगा लिया। महाराज नन्दकुमारने अपने अभियोगमें इस बातका भी उल्लेख कर दिया था। ये बातें उनकी व्यक्तिगत थीं। इसके अलावा उन्होंने रेजा खां और सिताब रायको छोड़ कर हेष्टिंगसने कम्पनीके स्वार्थका तथा साधारणका जितना अनिष्ट किया था, यह बात भी लिख दी थी।

काशीके राजा बलवन्त सिंहके उत्तराधिकारीकी तरफ अंगरेजोंके अधीन खेड़ा-मागुड़ा और विजयगढ़ नामक दो परगनोंके निमित्त, कम्पनीको दीवानी मिलनेकी तारीखसे फसली सन् ११७८ तक २४ लाख रुपये बकाया निकलते थे, परन्तु चेतसिंह द्वारा गुप्तरीत्या उपहार पा कर हेष्टिंग्सने कम्पनीके इस बकाया रुपयेके लिए कोई विशेष प्रबन्ध नहीं किया और तबसे उक्त दोनों परगने काशी-राजके ही अधिकारमें हैं। रंगपुरका बहारबन्द परगना रानी भवानीसे कौशलसे छीन कर हेष्टिंगसने उसे अपने दीवान कृष्णकान्त नन्दीको दे दिया। इससे रानी भवानीको बहुत क्षति हुई है। अभियोग-पत्रमें ये सब बातें भी लिखी गई थीं। अन्तमें नन्दकुमारने यह निवेदन किया था कि, "गवर्नर हेष्टिंग्स साहबके विरुद्ध यह अभियोग खड़ा करके मैं जो भीषण विपद्-सागरमें इच्छा-पूर्वक कूदनेके लिए अग्रसर हो रहा हूं इस बातको मैं जानता हूं, पर क्या करूं दूसरा कोई उपाय नहीं है। गवर्नरके अनुचित कार्योंसे परिचित हो कर भी यदि चुप चाप बैठा रहूं, तो सम्भव है भविष्यमें उनके द्वारा और भी अनिष्ट हो। इसलिए आत्मरक्षार्थ और न्याय-धर्मानुरोध वश मैं आप लोगोंके समक्ष यह अभियोग उपस्थित करता हूं। अब मैं आप लोगोंसे इस विषयमें विशेष ध्यान देनेके लिए प्रार्थना करता हूं।"*

इस अभियोगपत्रके पढ़े जानेके बाद हेष्टिंग्सने मौन भङ्ग करके पूछा—"मैं कौतूहलवश पूछता हूं कि आप पहलेसे इस अभियोगके बारेमें कुछ जानते थे या नहीं?" फ्रान्सिसने उत्तर दिया—"कौतूहलका उत्तर देनेके लिए मैं बाध्य नहीं। हां, गवर्नर पूछ रहे हैं, इस खातिरसे मैं इतना कह सकता हूं कि नन्दकुमारने जब इसे भेजा था, उस समय उनकी पूर्व सूचना और व्यवस्थादि देख कर मैं समझ गया था कि यह गवर्नरके विरुद्ध निश्चय ही अभियोग पूर्ण है। हां, वे अभियोग कौन कौन-से हैं और किस ढंगसे लिखे गए हैं, यह बात मुझे नहीं मालूम थी।" इसके बाद उस दिन सभा भङ्ग हुई।

ता० १३ मार्चको मन्त्रिसभाके अधिवेशनमें नन्दकुमार

* Parliamentary History of England from earliest period to the year 1803, Vol. XXVII, p. 334.

का और एक पत्र पढ़ा गया। इसमें भी नन्दकुमारने पूर्व पत्रके अभियोग सब सत्य हैं, इसका दृढ़ताके साथ समर्थन किया था। इसमें एक जगह लिखा था, कि हेष्टिंगसने बंगालमें आ कर राजस्व और देशकी अवस्थाके विषयमें ज्ञातव्य विषय जाननेके लिए मुझसे सहायता मांगी थी, मैं भी उनकी इच्छाके अनुसार कार्यमें प्रवृत्त हुआ था, उसके बाद जब तक कार्योद्धार नहीं हुआ, तब तक हेष्टिंगस मुझ पर बड़े सन्तुष्ट रहे और मेरे परामर्शानुसार चलते थे, किन्तु ज्यों ही मतलब निकल गया, त्यों ही उन्होंने मुझसे मित्रता नहीं रक्खी, बल्कि शत्रुताका आचरण करने लगे। मेरे लिखनेका उद्देश्य मात्र इतना ही समझें कि जिससे देश और प्रजा तथा कम्पनीके सुख और स्वाच्छन्द्यकी वृद्धि हो, ऐसी पद्धतिसे आप लोग कार्य करें।

इस पत्रको सुन कर कर्नल मनसनने, नन्दकुमारको अपने अभियोगके प्रमाणादि ले कर बोर्डके सामने उपस्थित होनेके लिए प्रस्ताव किया। गवर्नरने इसके विरुद्ध प्रतिवाद किया, जिसका सारांश इस प्रकार है—नन्दकुमारको बोर्डके सामने बुलवानेके प्रस्तावका समर्थन होनेके पहले ही मैं कह देता हूं कि नन्दकुमार मेरे अभियोक्ताके रूपमें बोर्डके सामने आ कर खड़े होंगे, यह मैं जीते जी नहीं सह सकता। इस बोर्डके सामने सामान्य अपराधीकी तरह विचार-प्रार्थी हो कर मैं कदापि खड़ा नहीं हो सकता। अथवा मेम्बरोंको मैं अपने चरित्र और शासनकार्यका विचारक कदापि नहीं समझ सकता। प्रसङ्गवश यह बात भी मुझे कहनी पड़ती है कि यथार्थमें महाराज नन्दकुमार मेरे अभियोक्ता नहीं हैं, जनरल क्लेभरिङ्ग, कर्नल मनसन और फिलिप फ्रान्सिसको ही मैं वास्तवमें कार्यकारक समझता हूं। कानूनके अनुसार इस बातको प्रमाणित न कर सकने पर भी मेरे हृदयके दृढ़ विश्वासके अनुसार मैं इन्हें ही अपना अभियोक्ता समझता हूं। इनको इस गभीर उद्देश्य-साधनके अनुकूल कई सहायक भी मिल गए हैं। जिनमें महाराज नन्दकुमार, वर्द्धमानकी महारानी, दीवान कृष्णनारायण चौधरी और फाऊक भी शामिल हैं।......... फ्रान्सिस इस प्रकारका पत्र बोर्डके सामने स्वयं उपस्थित करके एक मानहानिकर कार्यमें हाथ डाल रहे हैं, यह भी उनके पदके योग्य नहीं है।.........मैंने यह भी सुना है कि नन्दकुमार इन सब कागजातोंको ले कर मनसन साहबके घर गए थे और उनसे बहुत देर तक परामर्श कर यह सब बनाया है। इससे पहले किसी विशेष सूत्रसे मुझे नन्दकुमारके अभियोग-पत्रकी दो नकलें प्राप्त हुई थीं, अब देखता हूं कि मूलांशमें उसमें कुछ परिवर्तन हो गया है। मैं फिर भी कहता हूं, कि मैं बोर्डके सामने अपराधीकी हैसियतसे किसी भी प्रकार खड़ा नहीं होऊंगा, और न बोर्डको ही नन्दकुमारकी गवाही लेने दूंगा। बोर्डको इस प्रकारसे विचार करने वा गवाही लेनेका कोई भी अधिकार नहीं है।"

इस पर बोर्डके सदस्योंमें बड़ी वाक्-वितण्डा हुई। कर्नल मनसनने गवर्नरसे संवाददाताका नाम पूछा। परन्तु हेष्टिंगसने यह कह कर कि आपसे उस व्यक्ति पर विपत्ति आ सकती है, उसका नाम नहीं बताया। बारवेल साहबने गवर्नर साहबके बातकी पुष्टि की। मनसनने उस बातको सम्पूर्ण अलीक ठहराया। बारवेलने भी नन्दकुमारकी उपस्थितिके विरुद्ध आपत्ति की और कहा, "नन्दकुमारको कोई अभियोग करना हो, तो वे गवाही और प्रमाणादि ले कर सुप्रीम-कोर्टमें जा सकते हैं।" अन्तमें बहुत तर्क-वितर्कके बाद जब नन्दकुमारको बोर्डके समक्ष उपस्थित करना ही परामर्श सिद्ध हुआ, तो सेक्रेटरीसे नन्दकुमारको बुलवा लेनेके लिए कहा गया। अब गवर्नर हेष्टिंगस उपायान्तर न देख सहसा बोल उठे, "मैं आजकी यह मन्त्रिसभा भङ्ग करता हूं। मेरी अनुपस्थितिमें इस असम्पूर्ण सभामें यदि कुछ कार्य हुआ, तो वह कानून न्यायसङ्गत नहीं समझा जायगा।" बारवेलने कहा, "जब सभापति द्वारा सभा भङ्ग हो चुकी, तब मैं भी जाता हूं और पुनः प्रथानुसार गवर्नरका आदेश न मिलने तक मैं इसमें शामिल न होऊंगा।"

दोनोंके चले जाने पर अन्य तीन मन्त्री हेष्टिंगसके इस प्रकार उद्धत कार्यको न्यायसङ्गत न समझ स्वयं ही अवशिष्ट कार्य चलाने लगे। नन्दकुमार तो बुलवा कर

उनकी गवाही ली गई। आवश्यकतानुसार नन्दकुमारने प्रमाणस्वरूप मूल दलीलें दाखिल कीं। किसी दलीलके प्रमाणार्थ कृष्णकान्त नन्दीकी उपस्थिति और गवाहीकी जरूरत पड़ी। मन्त्रिसभाने उन्हें बुलवा भेजा, किन्तु उन्होंने जवाबमें लिखा कि, 'मैं इस समय गवर्नरके पास हूं, उनके निषेध करनेसे मैं नहीं आ सका।" मन्त्रियोंने विस्मित और क्रुद्ध हो कर कान्त बाबू और गवर्नरके विरुद्ध इस प्रकारके कार्यके विषयमें अपना मन्तव्य लिख कर सभा भङ्ग कर दी।

इधर हेष्टिंग्स् कौन्सिलमें अपमानित हो कर नन्दकुमारके सर्वनाशके लिए कटिबद्ध हो गए। ग्रेहम, उनके मुन्शी सदरउद्दीन, गङ्गागोविन्द, कृष्णकान्त, नवकृष्ण आदि उनकी सहायताके लिए प्रवृत्त हुए। कमालउद्दीन् खाँ नामक एक व्यक्ति उस समय हिजलीके नमकगोलाके इजारादार थे। दीवान कृष्णकान्त ही इस व्यक्तिके बेनामी पर उस इजाराका भोग करते थे। इस व्यक्तिके पितासे नन्दकुमारकी मित्रता थी। जिस समय कर्जके रुपयोंके लिए हुगलीके शेख इवत उल्लाने नन्दकुमारको पियादा मजील द्वारा ५ दिन आबद्ध रक्खा था, उस समय इस कमाल उद्दीन्के पिता शेख रुस्तमने नन्दकुमारको जमानत दे कर छुड़ाया था। कमाल असत् प्रकृतिका आदमी था, इस कारण नन्दकुमारके साथ उसकी मित्रता अधिक दिन न रही। अन्तमें उसके कृष्णकान्तका बे-नामीदार हो कर हिजलीके नमकके गोलेका इजारादार होने पर कान्त बाबू, बारवेल, हेष्टिंग्स आदिने उससे बहुत घूस लेनी शुरू कर दी। आखिरको वह महा उत्पीड़ित हो कर गङ्गागोविन्द और अर्चडिकन साहबके नाम कौन्सिलमें अभियोग उपस्थित करनेके लिए उद्यत हो गया। नन्दकुमारके साथ उस समय हेष्टिंग्सका विवाद शुरू हो चुका था। उसने मौका देख नन्दकुमारके साथ परामर्श करना चाहा। नन्दकुमारके जामाता राय राधाचरणके साथ बातचीत कर कमालउद्दीन्ने महाराजके पास जा कर कहा, "वह फाउक साहबकी मारफत कौन्सिलमें अपनी अर्जी पेश करना चाहता है, अतएव यदि आप उसके लिए फाउकसे जरा अनुरोध करें, तो [illegible]" नन्दकुमार [illegible] उन्होंने सुननेके साथ ही राय राधाचरणके साथ उसे फाउकके पास भेज दिया। फाउकने भी नन्दकुमारके अनुरोधसे उसके अभियोगको कौन्सिलमें उपस्थित करना स्वीकार कर लिया। तीन वर्षके भीतर उससे बारवेलने ४५ हजार, गवर्नरने बतौर नजरके १५ हजार, अन्सोटाष्टने १२ हजार, राजा राजवल्लभने ७ हजार और कृष्णकान्तने ५ हजार रुपये लिये थे। हेष्टिंग्स्को यह बात मालूम पड़ते ही, उन्होंने ग्रेहमके मुन्शी सदरउद्दीन्की मारफत कमालको हस्तगत कर लिया। हेष्टिंग्सने इसके द्वारा नन्दकुमारके विरुद्ध एक बड़े भारी और भयङ्कर अभियोगका सूत्रपात किया। उन्होंने (१७७५ ई०में १८ अप्रैलको) सुप्रीम कोर्टके जजोंको इस आशयका एक पत्र लिखा, कि कमालउद्दीन्ने आ कर कहा है कि नन्दकुमार और फाउकने उससे बलपूर्वक हेष्टिंग्स, बारवेल आदि नाम पर रिश्वत लेनेका एक झूठा अभियोगपत्र लिखवा लिया है और वे गङ्गागोविन्द आदिके नामका अभियोगपत्र वापिस नहीं दे रहे हैं। जजोंने इसको गवर्नर आदिके विरुद्ध षड़यन्त्रकी चेष्टा समझी और इसकी जांच करनेके लिए प्रवृत्त हुये। पहले कमालउद्दीन्को आवेदन करनेके लिए कहा गया। आवेदनपत्रमें अभियोगको खूब सजा दिया गया। गङ्गागोविन्द और अर्चडिकनके नाम कमालने जो अभियोग पत्र नन्दकुमार और फाउकको दिया था, वह सिर्फ उन्हें डरानेके लिये लिखा गया था, वस्तुतः वह कौन्सिलमें उपस्थित करनेके लिए नहीं दिया गया था। अन्तमें वह जब नन्दकुमारके पास उसे वापस मांगनेके लिये गया, तब नन्दकुमारने उससे कहा कि, "यदि वह गवर्नरके विरुद्ध कोई अभियोगपत्र लिख दे, तो पहलेका अभियोगपत्र वापिस कर सकते हैं।' कमालको बाध्य हो कर अपने मुन्शी द्वारा नन्दकुमारके अभिप्रायानुसार गवर्नरके विरुद्ध अभियोग-पत्र लिख देना पड़ा। उसके बाद राधाचरणके साथ वह फाउकके घर गया, फाउकने उससे पूछा, कि गवर्नरको कितने रुपये दिए हैं? उसने जब यह कहा कि, 'मैंने कुछ नहीं दिया', तब गुस्सेमें आ कर फाउकने एक किताब उठा कर उसके हाथ पर मारी और फिर उससे गवर्नर आदिके नाम रिश्वतका

लेनेका एक रुक्का लिखा लिया। इसके बाद भी कमालने उक्त अभियोग-पत्र वापस पानेके लिए बहुत कोशिश की थी; किन्तु कुछ फल न हुआ।

यथासमय मुकदमा कोर्टमें उपस्थित हुआ। नन्द-कुमारने कहा कि कमाल-उद्दीन्‌ने गङ्गागोविन्द आदिके विरुद्ध लिखा हुआ अभियोग-पत्र किसी दिन वापस नहीं मांगा है, बल्कि कौन्सिलमें पेश करनेके लिए ही बार बार अनुरोध किया है। गवर्नरके विरुद्ध अभियोग-पत्र लिखानेके लिए किसीने भी उसे बाध्य नहीं किया, उसने स्वतः ही लिख कर मुझे दिखाया था। मैंने उसकी वर्णना अच्छी न होनेके कारण उसमें दो एक जगह परिवर्तन करा कर कमाल-उद्दीन्‌के मुन्सीके हाथसे उसकी फिरसे नकल करा दी थी। फाउक साहबने भी साक्षी दी। अन्तमें प्रमाणादिके बलसे मुकदमेकी अवस्था ऐसी हो गई कि नन्दकुमारके विरुद्ध उसका टिकना मुशकिल दीखने लगा। नन्दकुमार बिना किसी विघ्नके छुट जायगी, यह समझ हेष्टिंग्स दूसरी तजवीज सोचने लगे।

मीरकासिमके समयसे कासिमबाजारमें पूर्वोक्त बुलाकी दास सेठकी जवाहरातकी दूकान थी। नन्दकुमारके शत्रु मोहनप्रसाद ही मृत बुलाकीदासके आममुख्तार थे। नन्दकुमारके साथ बुलाकीदासका लेनदेन था। मीरकासिमके समयमें नन्दकुमारने बुलाकीदासके पास एक मोतीकी कण्ठी, एक कलका, एक शिरपेच और चार हीरेकी अंगूठी ये सात चीजें बेचनेके लिए रख दी थीं। अंगरेजोंके साथ मीरकासिमका युद्ध छिड़ जानेसे कासिमबाजार लुट गया और उसीके साथ नन्दकुमारका माल भी लूटा गया। पीछे बुलाकीदासने नन्दकुमारको उसके बदले ४८०२१) रुपये देना मंजूर कर एक अङ्गी-कार-पत्र लिख दिया और चार आने सैकड़ा ब्याज देना भी कबूल किया। उस समय कम्पनीके पास बुलाकी-दासके २ लाख रु० जमा थे। बुलाकीदासने, कम्पनीसे रुपये मिलने पर ब्याज सहित उनके रु० चुकानेके लिए वादा कर दिया। इस दलील पर महताबराय, महम्मद कमाल और बुलाकीदासके वकील सिलावतने (ब-तौर गवाहोंके) दस्तखत किये थे। उसके बाद बुलाकीदास-ने नीचे अपना दस्तखत और मुहर लगा कर नन्दकुमार-को दिया था।

बुलाकीदासके मरनेके बाद पद्ममोहनदास उनकी सम्पत्तिके तत्त्वावधारक हुए और उनकी मृत्युके पश्चात् बुलाकीदासकी पत्नी और गङ्गाविष्णु नामक एक निकट सम्बन्धी सम्पत्तिके अधिकारी हुए। इनके समयमें भी मोहनप्रसाद आममुख्तार थे। पद्ममोहन जिस समय तत्त्वावधारक थे, उसी समय कम्पनीसे २ लाख रु० वसूल हो गये थे। पद्ममोहनने उसमेंसे नन्दकुमारका कर्ज चुका दिया, परन्तु गङ्गाविष्णुने अधिकारी हो कर मोहनप्रसादके परामर्शानुसार नन्दकुमारके नाम एक दीवानी मुकदमा दायर कर दिया। जिस समय यह घटना हुई थी, उस समय तक सुप्रीमकोर्ट नहीं हुआ था, मेयर्स कोर्ट था। गवर्नर स्वयं ही मेयर्स कोर्टके सभापति थे। इस मुकदमेमें बुलाकीदासके अङ्गीकार-पत्रके बल पर नन्दकुमारकी जीत हुई थी। हेष्टिंग्सको यह बात मालूम थी, क्योंकि वे उस समय मेयर्स-कोर्टके प्रेसीडेण्ट थे। अब उन्हें उस अङ्गीकारपत्रकी बात याद आ गई; उन्होंने मोहनप्रसादको बुलवा भेजा। मोहनप्रसादके उपस्थित होने पर उनसे कुछ सलाह हुई। उसके बाद मोहनप्रसादने सुप्रीमकोर्टमें नन्दकुमारके नाम, बुलाकीदासके दस्तखत और मुहर जाल बना कर दलील बनाना और उसके जरिये बुलाकीदासके उत्तरा-धिकारीसे रुपये हड़पनेका एक अभियोग उपस्थित किया। हेष्टिंग्सको मालूम थी कि पहलेके षड्यन्त्रके मुकदमे पार न पा सकेंगे, इसीलिए उन्होंने यह चाल चली। मेयर्स कोर्टके उस पुराने मुकदमेसे यह सूत्र निकाला गया।

उस समय इंग्लैण्डके आईनके अनुसार जालके अपराधमें प्राणदण्ड दिया जाता था; इसलिए ऐसे अप-राधीको उस समय खूनी असामीकी तरह हाजतमें साथ रक्खा जाता था।

मोहनप्रसादका अभियोग १७७५ ई०की ६ठी मईको कोर्टमें उपस्थित हुआ। नन्दकुमार संवाद पा कर कहीं भाग न जांय, इस ख्यालसे जजोंने उसी समय कलकत्तेके शरीफके पास एक परवाना लिख कर भेजा,

जिसमें आदेश था कि, "आप इस पत्रको पाते ही महाराज नन्दकुमारको साधारण कारागारमें आवद्ध रखनेमें क्षण भर भी विलम्ब न करें। मोहनप्रसाद और कमालउद्दीन खाँ नामक दो व्यक्तियोंके इजहारसे कुछ कुछ प्रमाणित होता है, कि उन्होंने जाल किया है, इसके विचारार्थ उन्हें आवद्ध रखनेके लिए आपको आदेश दिया गया है।" प्रधान जज इम्पे इस परवाने पर दस्तखत करके ही चल दिये। जब परवाना निकाले जानेकी तैयारियां होने लगी, तब मि० फ्रैरेट नामक एक प्रसिद्ध अटर्नीने स्वतः प्रवृत्त हो जजोंसे यह कहा कि, "नन्दकुमार मान्य-गण्य सम्भ्रान्त व्यक्ति हैं, ब्राह्मण हैं। यदि सामान्य अपराधियोंकी तरह उन्हें साधारण कारागारमें रक्खा जायगा, तो वे जातिभ्रष्ट हो जांयगे। विचारके बाद मुक्ति प्राप्त होने पर भी उन्हें सम्भवतः समाजमें हेय हो कर रहना पड़ेगा। अतएव आप लोग कृपा कर उन्हें अन्यत्र आवद्ध रखनेके लिए आदेश दीजिए।" जजोंने उत्तर दिया, "तो शामको इम्पेके मकान पर जा परामर्श कर जैसा होगा, वैसा किया जायगा।" रातको ८ बजे संवाद आया कि जजोंके पूर्व आदेशानुसार ही कार्य होगा। यह खबर शीघ्र ही कलकत्ते के चारों ओर जाहिर हो गई। तमाम शहरमें सनसनी फैल गई। नन्दकुमारके घर क्रन्दनध्वनि होने लगी। रातको दस बजे शरीफ मकेबी नन्दकुमारके मकान पहुंचे और उन्हें वहांसे साधारण कारागारमें ले गये। उस दिन राजा गुरुदास, राय राधाचरण, सपुत्र फाउक साहब तथा और भी कुछ आत्मीय-स्वजन अधिक रात्रि तक कारागारमें महाराजके पास थे। लौटते समय गुरुदाससे महाराजने कहा था, "हेष्टिंग्स ही इस षड़यन्त्रके विधाता हैं, यह मैं अच्छी तरह समझता हूं; परन्तु यह मेरी अदृष्टलिपि है—दोष उसका नहीं है। तुम लोग घबराना नहीं, भगवान् मेरी रक्षा करेंगे।"

दूसरे दिन शहरके आपामर साधारण बहुतसे नन्दकुमारसे मिलने आये। बहुतों को प्रवेश करनेसे रोका भी गया। नन्दकुमारने खूब किया, पर वे धैर्यच्युत न हुए। पूर्व रात्रिको उन्होंने कुछ भोजन न किया था। वे म्लेच्छस्पृष्ट साधारण कारागृहमें पूजा आह्निक नहीं कर सकते, सुतरां आहारादि भी नहीं करेंगे, ऐसा उन्होंने निश्चय कर लिया। ज्यों ज्यों दिन बढ़ने लगा, त्यों त्यों उनकी प्यास भी बढ़ने लगी। परिचारकोंसे जोरसे हवा करते रहनेके लिए कह कर आप चुप-चाप बैठे रहे। राजा गुरुदास आदिने फिर कोशिश की कि महाराज कुछ खा-पी लें; कौन्सिलके सभ्यगण भी जजोंसे अनुरोध कर दौड़-धूप करने लगे, परन्तु कुछ फल न हुआ, प्रत्युत जजोंने पण्डितोंसे एक व्यवस्थापत्र लिखवा कर दिखा दिया कि कारागारमें रहनेसे नन्दकुमारकी जाति नष्ट नहीं हो सकती। कौन्सिलके सदस्योंने जिस समय जजोंसे नन्दकुमारके तीन दिन निर्जल उपवासकी बात कह कर अनुरोध किया, उस समय हेष्टिंग्स भी वहां उपस्थित थे; किन्तु जजोंने किसी तरह भी अपना मत न बदला और फिरसे पण्डितोंका व्यवस्थापत्र दिखा दिया।

इम्पे यदि चाहते, तो नन्दकुमारको इस काराक्लेशसे मुक्त कर सकते थे। अन्य किसी स्थानमें या उनके मकान पर ही प्रहरी-वेष्टित कर रख सकते थे। ऐसा करनेसे उनके कर्त्तव्यमें कुछ त्रुटि न होती; बल्कि यश ही बढ़ता। परन्तु वे ऐसा कर न सके; क्योंकि उन्हें डर था कि कहीं उससे हेष्टिंग्सकी वैरनिर्यातन-स्पृहाकी सम्यक् तृप्तिमें कुछ व्याघात न पहुंचे।

जजोंके अनुरोध करने पर कृष्णजीवन शर्मा, वाणेश्वर शर्मा, कृष्णगोपाल शर्मा, गौरीकान्त शर्मा आदि कुछ पण्डितोंने व्यवस्था दी कि, 'कारागारादि जैसे स्थानोंमें, जिसकी छत खुदी हो ऐसे घरमें, म्लेच्छादि संसर्ग-रहित हो कर गङ्गाजलसे स्नान-पूजा पाकादि करनेसे पतित नहीं होता और कारामुक्तिके बाद बिना प्रायश्चित्तके समाजमें गृहीत हो सकता है।' नन्दकुमार इस व्यवस्थाको पढ़ कर हंस दिये। पण्डितोंने नन्दकुमारका काराकष्ट देख कर कहा कि, 'महाराजका यहां आहारादि नहीं हो सकता, पर करनेसे जातिच्युत नहीं हो सकते, सिर्फ चान्द्रायणादि करने मात्रसे ही शुद्ध हो सकते हैं।' कुछ भी हो, नन्दकुमारने यह व्यवस्था ग्राह्य नहीं की; वे पूर्ववत् उपवास ही करते रहे। तीसरे दिन

आपको पीड़ा हुई। इन्होंने डर कर डा० नर्दिसनसे रोगीकी अवस्था पूछी। डाक्टर साहबसे शोचनीय दशाका परिणाम होते ही इन्होंने काराध्यक्ष मैथ इय-फ्लेलको बुलवा कर कारागारके बाहरवाले आंगनमें एक तम्बू लगा देनेके लिए कह दिया। पीछे महाराज उस तम्बूमें स्नान-पूजादि करने लगे।

उधर षड़यन्त्रका मुकदमा पहले दायर होने पर भी, हेष्टिंग्सकी प्रेरणासे जाल करनेके मुकदमेकी तारीख उससे पहले ही डाल दी गई। ८ जूनको विचार शुरू हुआ। ८ जूनको एडवर्ड स्काट, रबार्ट मैक्फार्लेन, टमस स्मिथ, एडवर्ड एलरिंटन जोसेफ, बर्णार्ड स्मिथ, जन रबिनसन, जन फर्गुसन, आर्थर आडी, जन कलिस, सैमुयेल टाउचेट, एडवर्ड सटरथोयेट और चर्ल्स वेष्टन ये १२ जूरी तथा सुप्रीमकोर्टके चेम्बर्स, टाइड, लेमेष्टर ये तीन जज और प्रधान विचारपति इम्पे विचारासन पर बैठे। इलियट साहब द्विभाषी थे। तथा नन्दकुमारकी तरफ अटर्नी जैरेट और बैरिष्टर फरार नियुक्त हुए। फरियादीकी तरफ कमाल-उद्दीन् खाँ, उनका नौकर हुसेनअली, ख्वाजा पिक्रुस, सदरउद्दीन्, मोहनप्रसाद, राजा नवकृष्ण, कृष्णजीवनदास और सहवत पाठक ये आठ व्यक्ति मूल साक्षी थे। नन्द-कुमारकी तरफ भी बहुतसी गवाहियां थीं। फरियादीकी तरफसे यह प्रमाणित करनेकी कोशिश हुई, कि अङ्गीकार-पत्रके तीन साक्षियोंमेंसे सिलावत वकील मर गये हैं, महताबराय नामका कोई व्यक्ति नहीं था और महम्मद कमाल ही कमालउद्दीन् खाँ हैं। नन्द-कुमारकी तरफसे कहा गया कि अङ्गीकारपत्रके तीनों साक्षी मर चुके हैं। महम्मद उद्दीन् खाँ नहीं हैं। फरियादीकी तरफके साक्षियोंने गवाही देते समय बड़ी गड़बड़ी की थी। दोनों पक्ष द्वारा मनोनीत साक्षी कृष्णजीवनकी गवाहीसे भी असामी पक्षको सुभीता हुआ। परन्तु इम्पेने जूरियोंको चार्ज समझाते वक्त सिर्फ फरियादी-पक्षकी गवाहियोंकी बात ही व्याख्या-पूर्वक समझा दी थी। आखिर १५ जूनको अधिक रात्रि तक विचार होता रहा। दूसरे दिन राय सुनाई गई। महाराज नन्दकुमारके लिए प्राणदण्डका आदेश हुआ।

नन्दकुमार कारागारमें जा कर एक दुमंजले मकान पर रहने लगे। आदेशके बाद २२ दिन तक आप उसी कारागृहमें थे। इसी बीचमें आपने फ्रान्सिस और क्लेभरिंगको एक पत्र लिखा था, जिसमें आपने अपनी दोष हीनताकी बात लिखी थी। नवाब मुबारक उद्दौलाने भी इस समय कौन्सिलको पत्र लिखा कि इंग्लैण्डा-धिपकी सेवामें यह संवाद भेजा जाना चाहिए, और जब तक उनका आदेश न आवे, तब तक नन्दकुमारकी फांसी स्थगित रक्खी जावे। परन्तु कुछ फल न हुआ।

इसी बीचमें, जब कि नन्दकुमार कारागारमें थे, षड़यन्त्रवाले मुकदमेका भी फैसला हो गया। उसमें हेष्टिंग्सके विरुद्ध अभियोगमें कोई भी दोषी नहीं ठहरे; किन्तु बारवेलके विरुद्ध, अभियोगमें नन्दकुमार और राधाचरणको दोषी ठहराया गया।

शरीफ मैक्रेबी नन्दकुमारके उन दिनोंके साहस, अविचलता और गाम्भीर्यका विषय विशेष रूपसे लिख गये हैं। ता० ५ अगस्तको प्रातःकालके समय शरीफ साहब कारागारमें उपस्थित हुए। यही दिन फांसीका दिन था। महाराजने रात्रिको अपना हिसाबकिताब देखा था। महाराज शरीफको देखते ही नीचे उतर कर एक घरमें बैठ गये और प्रसन्नचित्तसे अपने तीन ब्राह्मण अनुचरोंको अपनी मृत-देह वहन करनेके लिए इशारा किया। इस समय आपने शरीफके समक्ष क्लेभरिं, मन्सनके लिए सम्मान-सूचक शब्द कहे थे। उन-लोगोंको गुरुदासका तत्त्वावधान करने और उन्हें ब्राह्मण-समाजका नेता समझनेके लिए आपने शेष अनुरोध किया था। उस समय भी आप शान्त और स्थिर थे। शरीफसे समय पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया कि अभी समय नहीं हुआ। यह सुन कर आप ईश्वर-चिन्तामें निविष्ट हो गये। कुछ देर बाद महाराज उठे और उनके परित्यक्त द्रव्यादि राजा गुरुदास ले जायेंगे, ऐसा भाव प्रकट कर पालकीमें जा बैठे। खिदिरपुरके पास कुली-बाजार (आधुनिक हेष्टिंग्स) फांसीका स्थान निर्दिष्ट हुआ था। अनुचर ब्राह्मणोंके उपस्थित होने पर आपने कुछ देर तक जप किया। पीछे इशारा करने पर हाथ बांध कर आपको मञ्च पर चढ़ाया

गया। उसके बाद महाराजका ह्यारा पाले हो उनके अनुचरोंने उनका मुंह ढक दिया। शरोकमें उस समय आपके मुख पर प्रशान्त भाव देखा था। उसके बाद आपको फांसी हो गई। निर्दिष्ट ब्राह्मण अनुचरगण आपके शवको ले गये।

इन लोगोंमेंसे बहुतोंने गङ्गास्नान कर ब्रह्महत्या-दर्शन-जनित पापको शान्ति की। बहुतोंने ब्रह्महत्यासे कलङ्कित कलकत्तेमें रहना हो छोड़ दिया और वे गङ्गाके उस पार चले गये। इसी घटनाके बाद बाली और उत्तर-पाड़ामें ब्राह्मणावासका प्रादुर्भाव हुआ।

उस समय कलकत्तेमें एक रङ्गालय (थियेटर) था, अंगरेज लोग ही उसके अभिनेता थे। उन लोगोंने इम्पे और हेष्टिंगसके अत्याचारोंके आधार पर रङ्गनाट्य बना कर उसका अभिनय भी किया था। *

महाराज नन्दकुमारके चिह्न अब भी विद्यमान हैं, कीर्त्ति भी मौजूद है। आपने भद्रपुरवाले मकानमें लक्ष ब्राह्मणोंको एकत्र कर उनकी पदधूलि संग्रह की थी। इस पदधूलिका कुछ अंश कुञ्जघाटाके राजभवनमें अब भी विद्यमान है। एक लाख ब्राह्मणोंके बैठनेके लिए काष्ठासन बनवाये थे, जिनमेंसे दो-चार अब भी मौजूद हैं। जिस द्वारसे एक लाख ब्राह्मणोंने प्रवेश किया था, वह तोरणद्वार भी मौजूद है। महाराज वैष्णव थे। भद्रपुरमें आपके द्वारा प्रतिष्ठित नवरत्न-मन्दिरमें लक्ष्मीनारायण और वृन्दावनचन्द्र नामक दो विग्रह विराजमान थे। गौरीशङ्कर नामक शिव और आकालीपुरकी भद्रकाली भी आप होके द्वारा स्थापित हुई थीं। भद्रकालीका मन्दिर अब भी ज्योंका त्यों मौजूद है। नवरत्न-मन्दिरका ध्वंसावशेष रह गया है। लक्ष्मीनारायण, वृन्दावनचन्द्र और गौरीशङ्करको प्रतिमा को राजा महानन्द (नन्दकुमारके दौहित्र) भद्रपुरसे कुञ्जघाटामें ले आये थे, जो अब तक वहीं हैं। इनके सिवा और भी आपके कई स्मृतिचिह्न हैं, जिन्हें देख कर आप पर हेष्टिंगस और इम्पे द्वारा किये गये अन्याय-का स्मरण हो आता है।

हेष्टिंग्सकी विचार-प्रणालीको निर्दोष सिद्ध करनेके लिए जिस समय विलायतमें हेष्टिंगसका विचार हुआ था, उस समय राजा महानन्द तथा अन्यान्य हेष्टिंगस-प्रिय लोगोंने भारतसे एक आवेदनपत्र भेजा था।

* Dr. Busteed's Echoes from old Calcutta.

नन्दकुमार विद्याभूषण—राधामाधवतरङ्गिणी नामक संस्कृत काव्यके रचयिता।

नन्दकूप—एक कूप। कालियसर्पदमनके रोज नन्दादि गोपोंने इसे खनन कर जल पीया था। (भक्तमाल)

नन्दगढ़—बम्बई प्रदेशके बेलगाम जिलेके अन्तर्गत खाना-पुर तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १५° ३४´ उ० और देशा० ७४° ४५´ पू० बेलगाम शहरसे २३ मील दक्षिण-में अवस्थित है। लोकसंख्या ६२५७ है। यह वाणिज्य-का प्रधान केन्द्र है। सुपारी, नारियल, नारियलका तेल, खजूर और नमक ये सब वस्तु दूसरे दूसरे देशोंसे यहां आती हैं और यहांसे गेहूं तथा और दूसरे अनाजकी रफ़नी होती है। यहां बहुतसे धनी ब्राह्मणोंका वास है। शहरके पास हो प्रतापगढ़ नामक भग्न दुर्ग देखनेमें आता है। कहते हैं, कि १८०८ ई०में कित्तूरके मल-सरय देशाईने इस दुर्गको बनवाया था।

नन्दगांव—भरतपुर गिरिमालाके शिखरदेश पर अवस्थित एक ग्राम। यहां श्रीकृष्णके पालक पिता नन्दघोष रहते थे, इस कारण यहांके लोग इसका यथेष्ट आदर करते हैं। यहां नन्दरायजीका एक मन्दिर है। रूपसिंह नामक किसी एक जाटने इस मन्दिरको बनवाया था। एक चबूतरेके ऊपर मन्दिर अवस्थित है और बड़ी बड़ी ऊंची दीवारोंसे घिरा हुआ है। इसके ऊपर चढ़नेसे गोवर्द्धनसे ले कर मथुरा जिलेके सभी भू-भाग देखनेमें आते हैं। यह ग्राम उतना शोभासम्पन्न तो नहीं है, लेकिन सुन्दर सुन्दर मकानके रहनेसे कुछ न कुछ शोभा आ हो जाती है। मनसादेवीके मन्दिरके सिवा और जितने मन्दिर हैं वे एक ही कृष्णके भिन्न भिन्न नामों पर प्रति-ष्ठित हैं, यथा—नरसिंहका मन्दिर, गोपीनाथका मन्दिर, यशोदानन्दका मन्दिर, नन्दनन्दनका मन्दिर, राधामोहन-मन्दिर, इत्यादि। यशोदानन्द-मन्दिरको गठन नन्दराय-जीके मन्दिर-सी है। यह भरतपुरके पत्थरोंसे बना हुआ है। ११४ सीढ़ियों पर चढ़ कर मन्दिरके ऊपर जाना पड़ता है। ये सब सीढ़ियां १८१८ ई०में कलकत्तेके

रामप्रसाद बाबूने बनवाई हैं। पर्वतके नीचे व्यवसायियों और यात्रियोंके ठहरनेके लिए अनेक पत्थरके घर हैं और पास ही एक लम्बा चौड़ा उद्यान भी है। उद्यानके बाद पानसरोवर है जिसका घाट वर्द्धमानके किसी राजाने बंधवा दिया है। वहांके लोगोंका कहना है, कि नन्दगांवमें ५६ कुण्ड हैं, किन्तु इस पापयुगमें वे सब कुण्ड देखनेमें नहीं आते। यहांसे पांच मीलकी दूरी पर वर्षण नामका एक स्थान है, जहां कृष्णकी प्रणयिनी राधिकाका जन्मस्थान समझा जाता है।

नन्दगायन—भारतवर्षके मध्यप्रदेशके अन्तर्गत रायपुर जिलेका एक छोटा करद राज्य। यहांके राजा ब्रह्मचारी वैरागी हैं। इनके पोष्यपुत्र उत्तराधिकारी होते हैं।

नन्दगिरि—एक प्राचीन नगर जो किसी समय चित्तोरके निकट बसा हुआ था।

नन्दगोपित (सं० स्त्री०) नन्दाय हर्षाय गोपिता। रास्ना, रायसन नामकी दवा।

नन्दग्राम (सं० पु०) १ नन्दगांव। २ नन्दिगांव, अयोध्याके समीपका एक गांव जहां बैठ कर रामके वनवास-कालमें भरतने तपस्या की थी।

नन्दथु (सं० पु०) नन्द-अथुच् (ट्वितोऽथुच्। पा ३।३।८९) आनन्द, खुशी।

नन्दद (सं० पु०) आनन्द देनेवाला, पुत्र, बेटा, लड़का।

नन्ददास—१ एक प्रसिद्ध संस्कृत पण्डित। इन्होंने निम्बार्क तत्त्वनिर्णय और प्रकाशिनी नामक तत्त्वसारटीका रची है। किसीका मत है, कि ये दोनों ग्रन्थ दो मनुष्योंके बनाए हुए हैं।

२ रामपुर-निवासी एक ब्राह्मण, विट्ठलनाथ जीके शिष्य। इनकी गणना अष्टछापके कवियोंमें की जाती थी इनके बनाए ग्रन्थोंके नाम ये हैं,—नाममाला, अनेकार्थ, पञ्चाध्यायी, रुक्मिणीमङ्गल, दशमस्कन्ध, दानलीला और मानलीला। इन ग्रन्थोंके अलावा इनके बनाए अनेक पद भी पाये जाते हैं, उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं।

"आज अरुण अरुण डोरे लालके दगनि लागत हैं भले।
चन्दन परे पगन अलि मानो कंज दलनि पर चले॥
लालकी पगियामें न समात कुटिल अलि संभिके।
नन्ददास मधुप पुंज मानो सोवतते कमल के॥"

नन्ददाससाधु—एक वैष्णव साधु। भक्तमालमें इनका उल्लेख देखा जाता है। किसी समय कुछ दुष्टोंने इनके नाम पर कलङ्कारोपण करनेके लिए एक मरे हुए बछड़ेको इनके घरमें छिपा कर रख दिया। पीछे वे गांवके बहुतसे लोगोंको वहां बुला लाए। यह षड़यन्त्र जान कर साधुने श्रीकृष्णकी शरण ली और वह बछड़ा तुरन्त जिंदा हो गया। (भक्तमाल)

नन्ददेव—नेपालके ठाकुरी-वंशीय चतुर्थ राजा। इनके समयमें नेपालमें शकाब्द प्रचलित हुआ था।

नन्दन (सं० क्लो०) नन्दयतीति नन्द-ल्यु (नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः। पा ३।१।१३४) १ इन्द्रवन, इन्द्रका उद्यान जो स्वर्गमें माना जाता है। पुराणानुसार यह सब स्थानोंसे सुन्दर है और जब मनुष्योंका भोगकाल पूरा हो जाता है, तब वे इसी वनमें सुखपूर्वक विहार करनेके लिए भेज दिए जाते हैं। २ छन्दविशेष, एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें १८ अक्षर रहते हैं जिनमेंसे ५।७।११।१२।१५।१६ और १८वां वर्ण गुरु और शेष सभी वर्ण लघु हैं। इसके ग्यारहवें और सातवें अक्षरमें यति होती है। (पु०) ३ सुत, लड़का, बेटा। (स्त्री०) ४ सुता, लड़की, बेटी। (पु०) ५ भेक, मेंढक। ६ विष्णु। ७ महादेव। ८ कुमारानुचर, कार्त्तिकेके एक अनुचरका नाम। ९ कामाख्यास्थित पर्वतविशेष, कामाख्या देशका एक पर्वत। यह पर्वत चन्द्रकुण्डके किनारे अवस्थित है। इस पर कामाख्या देवीकी सेवा करनेके लिए सुरपति इन्द्र सदा रहते हैं। चन्द्रदेव प्रति अमावस्याको तीन बार चन्द्रकुण्ड और नन्दन पर्वतका प्रदक्षिण करते हैं। चन्द्रकुण्डके जलमें स्नान कर पीछे इस पर्वत पर चढ़ कर इन्द्रकी पूजा करनेसे महाफल प्राप्त होता है। नन्दनके पूर्व भागमें भस्मकूट नामक एक दूसरा पर्वत है। (कालिकापु० ७८ अ०) १० साठ वत्सरोंमेंसे छब्बीसवां संवत्सर। कहते हैं, कि इस संवत्सरमें अन्न खूब होता है, गौएं खूब दूध देती हैं और लोग नीरोग रहते हैं। ११ गरलविशेष, एक प्रकारका विष। १२ वास्तुशास्त्रके अनुसार वह मकान जो षट्कोण हो, जिसका विस्तार बत्तीस हाथ हो और जिसमें सोलह शृङ्ग हों। १३ केसर। १४ चन्दन। १५ अस्त्रविशेष, एक

प्रकारका अस्त्र। १६ मधुनिष्पाव। १७ सरल देवदारु। १८ रक्ताञ्जन, लालसुरमा। (त्रि०) १९ हर्षक, आनन्द देनेवाला, प्रसन्न करनेवाला।

नन्दन—इस नामके अनेकों ग्रन्थकारोंके नाम मिलते हैं। इनमेंसे एक व्यक्ति श्रीकण्ठचरितके रचयिता कवि मङ्खके समसामयिक थे। दूसरेने संस्कृत 'वर्णाभिधान' नामक ग्रन्थकी रचना की और तोसरेकी बनाई हुई श्राद्धचन्द्रिका मिलती है।

इस नामके एक और व्यक्ति थे जिन्होंने महाभारतकी टीका और मनुसंहिताकी नन्दिनी नामक ग्रन्थकी रचना की है। ये वीरमल्ल नामक एक सामन्तराजके बन्धु थे। इनके पिताका नाम लक्ष्मण था। कोई कोई कहते हैं, कि लक्ष्मण इनके भाईका नाम था।

नन्दनचक्रवर्त्ती—दाक्षिणात्यके विजयनगर अञ्चलके एक राजा। इन्होंने १२०६ ई०में कानुगुण्डामें हरिहरके मन्दिरकी प्रतिष्ठा की।

नन्दनज (सं० क्ली०) नन्दने जायते इति जन-ड। १ हरिचन्दन। २ श्रीकृष्ण। (त्रि० ३ आनन्दजातमात्र।

नन्दनन्दन (सं० पु०) नन्दस्य नन्दनः आनन्दजनकः। १ श्रीकृष्ण। कृष्ण देखो।

भागवतके १०३ अध्यायमें श्रीकृष्णका जन्म विवरण लिखा है। (स्त्री०) २ योगमाया।

नन्दनन्दिनी (हिं० स्त्री०) नन्दस्य नन्दिनी ६-तत्। योगमाया। योगमायाने नन्दकी कन्या हो कर उनके घरमें जन्म लिया था। वसुदेव कंसके भयसे श्रीकृष्णको नन्दके घर रख कर इसी कन्याको साथ ले गये थे। योगमायाके प्रभावसे यह वृत्तान्त कोई नहीं जान सका था। जब कंसने इसे पटका था, तब यह उड़ कर आकाशमें चली गई थी। कृष्ण देखो। हरिवंशके ५८ अध्यायमें इसका विवरण इस प्रकार लिखा है—

"नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा।" (मार्कण्डेयपु०)

नन्दनप्रधान (सं० पु०) नन्दन वनके स्वामी, इन्द्र।

नन्दनमाला (सं० स्त्री०) नन्दना आनन्दजनिका माला। मालाभेद, एक प्रकारकी माला जो श्रीकृष्णको बहुत प्रिय थी।

नन्दनमिश्र—आचेश्वर मिश्रके पुत्र। इन्होंने मैथिलरचित तत्त्वप्रदीपकी तत्त्वप्रदीपोद्दीपन नामक टीकाकी रचना की है।

नन्दनवन (सं० पु०) १ इन्द्रकी वाटिका। २ कर्पास, कपास।

नन्दनसर—काश्मीरका एक छोटा ह्रद। हरिपुर नदी इसी ह्रदसे निकली है। यह हिन्दुओंका एक तीर्थ है।

नन्दनाथ—भास्कररचित नवरत्नमालाके एक टीकाकार।

नन्दनावासी—बङ्गके शाण्डिल्यगोत्रीय वारेन्द्र ब्राह्मणोंका एक ग्रामी।

नन्दन्त (सं० पु०) नन्दत्यनेनेति नन्द-झच्, झच् षित्। (रुहिनन्दि जीविप्राणिभ्यः षिदाशिषि। उण् ३।१२३) १ पुत्र, बेटा, लड़का। २ राजा। ३ मित्र।

नन्दपण्डित—इस नामके दो पण्डित हो गये हैं। प्रथम नन्दराम पण्डित धर्माधिकारीके पुत्र थे। ये १५६८से १५९८ ई०के मध्य विद्यमान थे। इनका दूसरा नाम था विनायक पण्डित। काशीप्रकाशतत्त्वमुक्तावली दत्तकचन्द्रिका, दत्तकमीमांसा, नवरात्रप्रदीप, पराशरस्मृतिटीका, माध्वानन्दकाव्य, प्रमिताक्षरा नामक मिताक्षराकी टीका, विष्णुस्मृतिटीका, श्राद्धकल्पलता, श्राद्धमीमांसा, स्मृतिसिन्धु और हरिवंशविलास ये सब ग्रन्थ इन्हींके बनाये हुए हैं। इनमेंसे काशीराज केशवनायकके आदेशसे १६७८ सम्वत्में वैशवन्ती नामक विष्णुस्मृतिटीका और अङ्गराजपुत्र तथा हरिवंश वर्माके आदेशसे स्मृतिसिन्धु एवं संस्कारनिर्णयकी रचना की है।

द्वितीय नन्दपण्डित श्रीराम शर्माके पुत्र थे। इन्होंने ज्योतिःसारसमुच्चय, स्मार्त्त समुच्चय आदि ग्रन्थ बनाये हैं।

नन्दपाल (सं० पु०) नन्दं आनन्दं निधिविशेषं पालयति पालि-अच्। वरुण।

नन्दपुत्री (सं० स्त्री०) नन्दस्य पुत्री ६ तत्। दुर्गा, योगमाया, नन्दनन्दनी।

नन्दप्रयाग—बदरिकाश्रमके निकटका एक तीर्थ जो सात प्रयागोंमेंसे है। यह अलकनन्दा और नन्दाके योगसे उत्पन्न माना जाता है। प्रयाग देखो।

नन्दप्रभञ्जन वर्मा—कलिङ्गके एक राजा।

नन्दयन्त (सं० पु०) नन्दयतीति नन्दि झच्, झच षित्। (तृभूवहीति। उण् ३।१२८) आनन्दजनक, प्रसन्न करनेवाला।

नन्दरबार—१ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत खानदेश जिलेका एक उपविभाग। २ उक्त विभागका एक नगर। यह अक्षा० २१° २२´ १०´´ उ० और देशा० ७४° १८´ ४५´´ पू०-के मध्य अवस्थित है। यह खानदेशका एक अत्यन्त पुरातन स्थान है।

नन्दराज—सिन्धु प्रदेशके उत्तरका एक नगर। कहते हैं, कि सत्ययुगमें यहां नन्दराज नामक एक राजा रहते थे। उनके सात कन्याएं थीं, पुत्र एक भी न था। सम्मुखा नामक बड़ी राजकुमारी जयलमीरके अन्तर्गत कक नामक स्थानको गई थी। वहां उस देशके एक राजपुत्रके साथ उसका विवाह हो गया था। प्रवाद है, कि यहां जितनी सम्पत्ति थी सभी राजकुमारीके साथ साथ गायब हो गई। लक्ष्मी वृश्चिक रूप धारण कर इस स्थानसे चली गई थीं।

नन्दरानी (हिं० स्त्री०) नन्दकी स्त्री, यशोदा।

नन्दराम—एक विख्यात ज्योतिषी। इन्होंने इष्टदर्पण ग्रहणापद्धति, और प्रश्नतत्त्वकी रचना की है। शेषोक्त ग्रन्थ १७६८ ई०में लिखा गया था। इस नामके एक और व्यक्ति थे जिन्होंने आत्मतत्त्वप्रकाश नामक ग्रन्थ रचा है।

नन्दरामदास—महाभारतके रचयिता बङ्गवासी सुविख्यात काशीरामदासके पुत्र। ये योग्य पिताके योग्य पुत्र थे। पिताकी तरह इन्होंने भी महाभारतकी रचना की थी। विश्वकोष-कार्यालयमें इनका बनाया हुआ महाभारतके द्रोण पर्वका हस्तलिखित ग्रन्थ संगृहीत हुआ है। उस ग्रन्थका अधिकांश पूर्णचन्द्रोदय प्रेसमें छपे हुए काशीराम दासके महाभारतके साथ मिलता जुलता है। किन्तु छापा ग्रन्थसे इनके ग्रन्थमें कहीं कहीं कम श्लोक देखे जाते हैं। लेकिन जितना अंश है, उसका प्रत्येक चरण छापा पुस्तके प्रत्येक चरणसे मिलता है। इसके सिवा काशीरामके छापा ग्रन्थमें जो सब सामान्य सामान्य घटनाएँ हैं अर्थात् अभिमन्युके रणमें दुर्योधनके पद्मनामक एक पुत्रकी मृत्यु, दुर्योधनभ्राताओंके ९९ पुत्रोंकी मृत्यु आदि विषय इस ग्रन्थमें हैं। इनके अलावा छापा पुस्तकमें जो अध्याय जिस क्रममें लिखा गया है, इस ग्रन्थका भी वह अध्याय उसी क्रममें है। पर हां हस्तलिखित ग्रन्थमें अध्यायकी संख्या अधिक है।

नन्दराम कायस्थदेववंशीय काशीरामके लड़के थे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। नन्दरामका कोई विशेष परिचय नहीं मिलता। पिताके मरनेके बाद इन्होंने महाभारतकी रचना की, इसका यह भी एक प्रमाण है, कि पिताके लिखित अनेक भणितांश इन्होंने उद्धृत किये हैं जो मुद्रित पुस्तककी प्रत्येक पंक्तिसे मिलते जुलते हैं। काशीरामके अन्यान्य आत्मीय भी इस प्रकारका महाभारत रच गये हैं सही, लेकिन ऐसा सादृश्य किसीमें देखा नहीं जाता। विश्वकोष-कार्यालयमें काशीराम दासके महाभारतका अति पुरातन एक ग्रन्थ संगृहीत है, जिसमें काशीरामका पूरा परिचय दिया हुआ है। उससे जाना जाता है, कि काशीरामके प्रपितामहका नाम प्रियाकर वा प्रियङ्कर नहीं था। विश्वकोषके "काशीराम देव" शब्दमें "तनुज कमला-कान्त कृष्णदास पिता" इस पाठके नीचे उसमें "अग्रज तात कमलाकान्त कृष्णदास पिता" ऐसा पाठ है। काशी-रामके अनुज गदाधर दासके जगत्मङ्गल नामक ग्रन्थमें उनके वंशका कुल परिचय मिलता है। कवि नन्दराम उत्कलके नरसिंह राजाके समयमें अर्थात् १०५७ सन् वा १५६७ शकाब्दमें विद्यमान थे।

नन्दराम हलदिया—आमेरराजके मन्त्री दौलत सिंहके भाई। ये उक्त राज्यमें सेनापतिका काम करते थे। सीकरके अधि-पति देवीसिंहने जिस समय शेखावाटी प्रदेशमें अपना मस्तक उठाया, उस समय आमेरराजने इन्हें दलबलके साथ उसे दमन करने और कर लेनेके लिए भेजा था। जिस समय इनकी सेना उक्त प्रदेशमें पहुंची, उस समय देवी सिंहका स्वर्गवास हो चुका था। सीकरके सिंहा-सन पर एक अबोध बालक विराजमान था। शेखावाटी प्रदेश कुल सामन्त देवीसिंहके विरुद्ध थे, किन्तु नीतिज्ञ देवी सिंहने आमेरकी राजसभाके सदस्योंसे प्रेम कर रखा था। नन्दराम हलदिया और उनके भाई राज-मन्त्री दौलतसिंह देवीसिंहके मित्र थे। सीकरकी सर-हदमें देवीसिंहके पहुंचने पर वहांके दीवान आदि इनके डेरों पर गये। नन्दराम हलदियाके परामर्श-से उन लोगोंने युद्धकी तैयारी कर ली। नन्दराम भी दिखावटी लड़ाई लड़ने लगा, अन्तमें वे अपने लिये लाख

और राज्यसे लिये दो लाख रुपये ले कर देश लौटे। महाराजको जब यह बात मालूम हो गया, तब उन्होंने नन्दरामकी सम्पत्ति जप्त कर ली और उसे कैद करनेकी आज्ञा दी। परन्तु धूर्त्त नन्द पहले ही भाग गया था।

नन्दलाल (हिं० पु०) नन्दके पुत्र। श्रीकृष्ण।

नन्दलाल—१ एक हिन्दी-कवि। इनकी कविता सराहनीय होती थी, उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं—

"अब घर जिन जावो मोरे प्यारे तुम देखनको जि तरसई।
तुम बिन मोकों कल न परत है छतियां धर धरतई॥
उधो मेरे दुःख हरवेको पाती पठवत हो।
हों तो भिखारी नन्दलाल दरसके सुखी सलोकोंमें कहीं ऐसे अघात हो॥"

२ हिन्दीके एक कवि। इनका सं० १६११में जन्म हुआ था। इनकी कविता सुन्दर होती थी, हजारामें इनके कवित्त पाये जाते हैं।

३ एक हिन्दी कवि। इसका जन्म-सम्वत् १७७४में हुआ था। इनकी कविता सरस होती थी।

नन्दवंश—१ युक्तप्रदेश तथा विहारके ग्वालोंका एक विभाग। २ मगधका एक विख्यात राजवंश। इस वंश का अन्तिम राजा उस समय सिंहासन पर बैठे थे जिस समय सिकन्दरने ईसासे ३२७ वर्ष पूर्व पञ्जाब पर चढ़ाई की थी। विशेष विवरण नन्द शब्दमें देखो।

नन्दवक - वैश राजपूतोंकी एक शाखा।

नन्दवन—नन्दन-कानन, इन्द्रकी वाटिका। मनुष्योंका भोगकाल जब शेष हो जाता है, तब वे इसी स्वर्गीय काननमें आ कर अपना पूर्वरूप छोड़ देते हैं और नया रूप धारण कर लेते हैं। (पुराण)

नन्दवना—अजमीर और उसके निकटवर्त्ती स्थानवासी बनियोंकी एक श्रेणी।

नन्दवनिवर—राजपूतानेका एक श्रेणीका ब्राह्मण। इस श्रेणीके ब्राह्मण विशेषतः मारवाड़में देखे जाते हैं।

नन्दवरिक—तैलङ्ग नियोगी ब्राह्मणोंकी एक शाखा।

नन्दवर्द्धन—मगधके एक राजा। कहते हैं, कि इन्होंने पयोष्णामें मणिपर्वत नामक एक कृत्रिम पर्वतका निर्माण किया था और मगधसे ब्राह्मण-धर्मको उठा कर जातिभेद नहीं रखा था।

नन्दसुन्दर—एक जैन पण्डित। ये हेमचन्द्रकी शब्दानुशासन लघुवृत्तिकी अवचूरि बना गये हैं।

नन्दा—नन्दा और उसकी बहन नन्दवाला। ये दोनों सेनानी नामक ग्रामके किसी सम्भ्रान्त व्यक्तिकी कन्यायें थीं। उन्होंने सुना था, कि बोधिसत्व भविष्यमें एक राजचक्रवर्त्ती होंगे। इसीसे उन्होंने एक दिन खीर बना कर उन्हें खानेको दी थी। बोधिसत्वने एक मणिमुक्ताखचित स्फटिक-पात्रमें उसी खीरको ले कर भोजन करने बाद नदीमें फेंक दिया था। पीछे उन्होंने दोनों बहनोंसे पूछा, 'तुम लोग कौनसा वर चाहती हो' इस पर वे बोलीं, "आप जब राजचक्रवर्त्ती होंगे, तब हम दोनों आपकी पत्नी होऊँगी, यही वर हम चाहती हैं।" बोधिसत्वने उन्हें समझा कर कहा कि वे केवल ज्ञानमें सबोंसे श्रेष्ठ होंगे, न कि विषयविभवमें। "आपको वह दिव्यज्ञान बहुत प्राप्त हो" इस प्रकार आशीर्वाद दे कर वे दोनों चली गईं। (अवदान)।

नन्दा (सं० स्त्री०) नन्दयतीति नन्दि-अच्-टाप्। १ दुर्गा। ब्रह्माने देवी भगवतीसे कहा था, 'हे देवि! तुमने देवताओंका महत्कार्य किया है, अब मेरा एक कार्य करनेको बाकी रह गया है। वह यह है कि तुम भविष्यमें महिषासुरका वध करना।' ब्रह्माकी यह बात सुन देवगण देवीको हिमालय पर्वत पर संस्थापित कर यथास्थानको चल दिये। देवीको हिमालय पर स्थापित कर वे बहुत प्रसन्न हुए थे, इस कारण देवीका नाम नन्दा पड़ा।

दूसरी जगह ऐसा भी लिखा है—देवी सुरलोक, नन्दन कानन और अति पवित्र हिमालय पर रह कर बहुत आनन्दित हुई थीं, इसी कारण इनका नाम नन्दा रखा गया है। २ अलिञ्जर, मट्टीका घड़ा या झंझर आदि जिसमें पानी रखते हैं। ३ तिथिभेद, एक तिथिका नाम प्रतिपद, एकादशी और षष्ठी तिथिका नाम नन्दा है। शुक्रवारको यदि यह नन्दा तिथि पड़े, तो सिद्धियोग होता है, यह यात्रा कर्मोंमें शुभजनक है। ४ सम्पद, सम्पत्ति, दौलत। ५ संक्रान्तिभेद, एक प्रकारकी संक्रान्ति। ६ कामधेनुविशेष, एक प्रकारकी कामधेनु। ७ धर्मराज धर्मकी पत्नी। ८ एक मातृका या बालग्रह। इसके

विषयमें ऐसा कहा जाता है, कि इसके कारण बालक अपने जीवनके पहले दिन, पहले मास और पहले वर्षमें ज्वरसे पीड़ित हो कर बहुत रोता और अचेत हो जाता है। ८ हर्षकी स्त्री, प्रसन्नता। १० सङ्गीतमें एक मूर्च्छनाका नाम। ११ एक अप्सराका नाम। १२ विभीषणकी कन्याका नाम। १३ वर्त्तमान अवसर्पिणीके दशवें अर्हत्‌की माताका नाम। १४ नदीविशेष, एक नदी जो कुवेरकी पुरीके निकट बहती है। १५ पुराणानुसार शाकद्वीपकी एक नदीका नाम। १६ सरवे छन्दका एक नाम। १७ पतिकी बहन, ननद। १८ तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम। १९ सुरसा, लाल तुलसी। २० योनिरोगविशेष, योनिका एक रोग।

नन्दातीर्थ (सं० क्लो०) तीर्थरूप नदीविशेष। महाभारतके वनपर्वमें इस तीर्थका उल्लेख है। हेमकूट पर्वतके पास ही नन्दा और अपरनन्दा नामकी दो नदियां बहती हैं। यहां सदा बहुत तेजसे हवा बहती रहती है, जोरसे पानी बरसता रहता है, साधारण लोग पहुंच नहीं सकते और सर्वदा वेदध्वनि सुनाई पड़ती है, पर कोई वेद पढ़नेवाला दिखाई नहीं देता। यहां बैठ कर यदि कोई तपस्या करना चाहे, तो मक्खियां उसे बाधा डालती हैं और काटने लगती हैं। सवेरे और सन्ध्या यहां अग्निदेवके दर्शन होते हैं। युधिष्ठिर अपने भाइयोंके साथ एक बार इस तीर्थमें गए थे। यहांका आश्चर्य दृश्य देख कर उन्होंने लोमश मुनिसे इसका कारण पूछा था। इस पर मुनिने कहा था, "राजन्! इस ऋषभकूटमें ऋषभ नामक बहुत क्रोधी एक मुनि सदा तपस्या किया करते थे। उन्हें यात्री लोग तरह तरहकी बातें पूछ कर तंग करते रहते थे। इसी कारण उन्होंने, जिससे साधारण मनुष्य यहां न आ सके, वैसा ही करनेके लिए पर्वतको आदेश दिया। तभीसे इस पर्वतने ऐसा रूप धारण किया है। इसके सिवा यह भी सुना जाता है, कि पुराकालमें देवगण नन्दाकी ओर आ रहे थे। बहुतसे लोग उनके दर्शनके लिए साथ हो लिए। किन्तु इन्द्रादिने उन्हें अपना दर्शन देना न चाहा, इस कारण इस स्थानको पर्वत-परिधि द्वारा दुर्गाकारमें बना दिया। इस तीर्थमें जो स्नान करते, उसी समय उनके पाप जाते रहते हैं।" युधिष्ठिरने अपने भाइयोंके साथ इस तीर्थमें स्नान किया था। (भारत वनपर्व ११ अ०)

नन्दात्मज (सं० पु०) नन्दस्य आत्मजः ६-तत्। १ श्रीकृष्ण। (स्त्री०) २ योगमाया।

नन्दादेवी (सं० स्त्री०) दक्षिण हिमालयकी एक चोटी। यह २५००० फुटसे अधिक ऊंची है और जो यमुनोत्तरीके पूर्व है।

नन्दापुराण (सं० क्ली०) एक उपपुराण। मत्स्य और शिवपुराणके मतसे यह तीसरा उपपुराण है। इसके वक्ता कार्त्तिक हैं और इसमें नन्दामाहात्म्य दिया गया है।

नन्दायनीय (सं० पु०) वाष्कलिका एक शिष्य।

नन्दाक—विहारमें शाकद्वीपीब्राह्मणोंका एक सम्प्रदाय।

नन्दावर्त्त (सं० पु०) १ तगरपुष्पवृक्ष। २ मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली।

नन्दाश्रम (सं० पु०) नन्दस्य आश्रमः ६-तत्। तीर्थभेद, महाभारतके अनुसार एक तीर्थका नाम।

नन्दाह्रदतीर्थ (सं० क्लो०) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

नन्दि (सं० पु०) नन्दयतीति नन्द-इन् (सर्वधातुभ्य इन्। उण् ४।११७) १ विष्णु, परमेश्वर। २ नन्दिकेश्वर, शिवके द्वारपाल बैलका नाम। ३ द्यूताङ्ग, एक प्रकारका जुआ। ४ गन्धर्वभेद, एक गन्धर्वका नाम। ५ महादेव, शिव। ६ आनन्द, प्रसन्नता। ७ वह जो आनन्दमय हो।

नन्दिक (सं० पु०) नन्द आनन्दकारणत्वनास्त्यस्य इति नन्द-ठन्। १ नन्दीवृक्ष, तुनका पेड़। २ आनन्द। ३ धववृक्ष, धवका पेड़।

नन्दिकर (सं० पु०) शिव, महादेव।

नन्दिका (सं० स्त्री०) नन्दिक-टाप्। १ इन्द्रक्रीड़ास्थान, वह स्थान जहां इन्द्र क्रीड़ा करते हैं, नन्दनवन। २ अलिञ्जर, मट्टीका नांद जिसमें पानी रखते हैं। ३ किसी पक्षकी प्रतिपद, षष्ठी और एकादशी तिथि। ४ इन्द्रसभा।

नन्दिकाचार्यतन्त्र—एक संस्कृत वैद्यक ग्रन्थ। टोडरानन्दमें इसका मत उद्धृत हुआ है।

नन्दिकावर्त्त (सं० पु०) एक प्रकारका मणि।

नन्दिकुण्ड (सं० क्ली०) नन्दिकृतं कुण्डं। तीर्थभेद,

एक तीर्थका नाम। इस कुण्डमें स्नानादि करनेसे भ्रूण-हत्याका पाप नाश होता है।

नन्दिकेश (सं॰ पु॰) नन्दिकेश्वर, शिवके द्वारपाल।

नन्दिकेश्वर (सं॰ पु॰) नन्दिन ईश्वरस्य। १ शिवद्वार-पाल, शिवके द्वारपाल बैलका नाम। पर्याय—नन्दी, शालङ्कायन, ताण्डवतालिक, नन्दीश्वर, तण्डु। २ शिव-धर्माख्य उपपुराणभेद, एक उपपुराण जो नन्दीका कहा हुआ है और चौथा उपपुराण माना जाता है। इसे नन्दीश्वर और नन्दिपुराण भी कहते हैं।

नन्दिकेश्वर—एक संस्कृत ज्योतिषी, वेदाङ्गरायके पुत्र। इन्होंने १६४२ ई॰के बाद गणकमण्डल और ज्योतिः-संग्रहसार नामक ग्रन्थ बनाये हैं।

नन्दिकेश्वर—बम्बईके बीजापुर जिलान्तर्गत बादामी तालुकका एक ग्राम। यह अक्षा॰ १५° ५७′ और देशा॰ ७५° ४८′ पू॰ बादामी शहरसे तीन मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग ११२७ है। यहांके महाकूट नामक स्थानमें अनेक मन्दिर और शिवलिङ्ग हैं। इसी कारण उस स्थानका महाकूट नाम पड़ा है। कोई कोई इस महाकुण्डको दक्षिणकाशी भी कहते हैं। महाकूटके बीच विष्णुतीर्थ नामक एक तालाब है। कहते हैं, कि अगस्त्य मुनिने यह तालाब खुदवाया था। उसकी गहराई सदा एकसी रहती है। पुष्करिणीमें जहां बँधा हुआ घाट है, वहां एक शिवमन्दिर प्रतिष्ठित है। मन्दिरका प्रवेशद्वारा जलके भीतर है। प्रवाद है, कि देवदास नामक बाराणसीके किसी राजाकी कन्याका मुँह बानरसा हो गया था। राजाको स्वप्न हुआ था कि वह कन्या यदि महाकूटमें स्नान करे, तो उसका मुँह मनुष्यसा हो जायगा। तदनुसार राजा कन्याको वहां ले गये और उन्होंने महाकूटेश्वरका मन्दिर बनवा दिया। पीछे कन्याका मुँह एक सुन्दर स्त्री-सा हो गया था। प्रवेशद्वारके उत्तर-पूर्वमें लज्जा-गौरीका मन्दिर है। लज्जागौरीकी मूर्त्ति काले पत्थर पर खोदी हुई है, वह नंगी है, और उसके मस्तक नहीं है। कथित है, कि किसी समय देवी और शिव-पुष्करिणीमें क्रीड़ा कर रहे थे। इसी बीच कोई भक्त वहां पूजा करने आया। शिवमन्दिरको भाग गये और पार्वती उसी जगह औंधे मुँह पड़ रहीं। बन्ध्या स्त्रियां उस मूर्त्तिकी पूजा करती हैं।

नन्दिकेश्वरकारिका—पाणिनिके ... अष्टाध्यायीमें वर्णित शिव-सूत्रकी गूढ़ व्याख्या। यह कुल २७ श्लोकोंमें रची हुई है। नागेशभट्टके शब्देन्दुशेखरमें यह कारिका उद्धृत है। उपमन्युने इसकी टीका की है।

नन्दिकेश्वरपुराण—एक प्राचीन उपपुराण, यह नन्दीश्वर और नन्दिपुराण नामसे प्रसिद्ध है। देवीभागवत, शक्तिरत्नाकर, निर्णयसिन्धु, आचारादर्श आदि ग्रन्थोंमें तथा हेमाद्रि, माधवाचार्य, रघुनन्दन आदि स्मार्त्तोंसे उद्धृत हुआ है।

कालाग्निरुद्रोपनिषत्, दत्तात्रेयोपनिषत्, दशश्लोकी (वेदान्त), रुद्राक्षमाहात्म्य, शिवस्तोत्र आदि विभिन्न ग्रन्थ नन्दिकेश्वरपुराणके अन्तर्गत माने गए हैं। फिर शिवधर्म और शिवधर्मोत्तर ये दोनों नन्दिकेश्वरसंहिताके अन्तर्गत हैं। आगमतत्त्वविलास और तन्त्रसारमें नन्दि-केश्वरसंहिताके वचन उद्धृत हैं।

नन्दिक्षेत्र—काश्मीरके एक प्राचीन स्थान। यहां विज-येश्वरका मन्दिर है।

नन्दिगढ़—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत खानापुर उपविभागका एक नगर। यह अक्षा॰ १५° २४′ उ॰ और देशा॰ ७४° ३७′ पू॰के मध्य अवस्थित है। इस नगरके पास ही भग्नावशिष्ट प्रतापगढ़ दुर्ग विद्यमान है।

नन्दिगाम—मन्द्राजके कृष्णा जिलेका एक तालुक। यह अक्षा॰ १६° ३६′ और १७° ३′ उ॰ तथा देशा॰ ८०° १′ और ८०° ३२′ पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६७७ वर्गमील है। लोकसंख्या प्रायः १३८८५८ है। इसमें एक शहर और १६८ ग्राम लगते हैं। यहां बौद्धोंके अनेक भग्नावशेष देखनेमें आते हैं।

नन्दिगिरि—इसका दूसरा नाम नन्दिदुर्ग ... है। ... नन्दिदुर्ग देखो।

नन्दिगुप्त—काश्मीरके ... राजाका नाम। इनके पिताका नाम अभिमन्यु ... था। पिताके मरने पर ये काश्मीर-सिंहासन पर ... बैठाये गये। अनन्तर इनकी पितामही दिद्दाने ... स्वयं राज्यभोग करनेकी इच्छासे अभिचार ... इन्हें मारनेका प्रयत्न किया। खेदकी बात है, कि

वह दुराचारिणी अपनी दुरभीलाषा सफल करनेमें समर्थ भी हुई। १ वर्ष १ महिना ११ दिन राजासन पर बैठ कर नन्दिगुप्त परलोकवासी हुए।

नन्दिग्राम (सं० पु०) ग्रामभेद, अयोध्यासे चार कोस पर अवस्थित एक गांव। इसी स्थान पर भरतने रामके वियोगमें चौदह वर्ष तक तप किया था।

नन्दिग्रामी—बङ्गके भरद्वाज गोत्रीय वारेन्द्र ब्राह्मणोंकी एक बस्ती।

नन्दिघोष (सं० पु०) नन्दिः हर्षजनको घोषः यस्य। १ अर्जुनका रथ। यह रथ उन्हें अग्निदेवने प्रसन्न हो कर दिया था। २ वन्दिजनकी घोषणा। ३ मङ्गलघोषणा। (त्रि०) ४ हर्षघोषयुक्त।

नन्दित (सं० त्रि०) आनन्दित, सुखी, प्रसन्न।

नन्दितरु (सं० पु०) नन्दिरानन्दजनकस्तरुः। धवबृक्ष, धवका पेड़।

नन्दितूर्य (सं० पु०) नन्दिप्रियं तूर्यं। वाद्यभेद, प्राचीन कालका एक प्रकारका बाजा। (हरिवंश ८० अ०)

नन्दिदुर्ग—महिसुरके अन्तर्गत कोलार जिलेका एक गिरिदुर्ग। यह अक्षा० १३° २२´ उ० और देशा० ७७° ४१´ पू०में बङ्गलूरसे ३१ मील उत्तरमें अवस्थित है। इसके शिखरदेश पर एक विस्तृत मालभूमि और पुष्करिणी है। १७९१ ई०में लार्ड कार्नवालिसने इस दुर्ग पर अपना अधिकार जमा लिया। पर्वतके नीचे नन्दी नामक एक ग्राम है जहां शिवरात्रिके दिन एक पशुमेला लगता है। हैदरअली और उनके पुत्र टीपूने यह दुर्ग बनवाया था। दुर्गके भीतर एक विख्यात शिवमन्दिर और पांच प्रस्रवणके उत्पत्ति-स्थान हैं। उन पांच प्रस्रवणोंके नाम ये हैं,—उत्तर-पिणाकिनी, दक्षिण-पिणाकिनी, चित्रवती, क्षीरानन्दी और अर्कवती पहाड़ पर नन्दिका एक मुंह खोदा हुआ है जिससे क्षीरानन्दी निकलता है। उक्त पञ्चतीर्थोंका माहात्म्य 'नन्दिगिरिमाहात्म्य'में विस्ताररूपसे वर्णित है।

नन्दिध्वज—कनाड़ी भाषामें लिखित अनुभव-शिखामणि नामक एक ग्रन्थमें नन्दिध्वजके विषयमें निम्नलिखित उपाख्यान पाया जाता है। लोकमाया नामक एक दुरन्त राक्षस था। वह अत्यन्त गर्वित और पराक्रान्त हो कर देवताओंको तंग किया करता था। इस पर देवता लोग इन्द्रके पास गये और अपना दुखड़ा रोने लगे, 'हे देवेन्द्र! हम लोगोंका जो दुःख है उसे ध्यान दे कर सुनिये। दुरन्त लोकमाया, हम लोगोंको निदारुण कष्ट दे रहा है। उसके दौरात्म्यसे हम लोग अपना अपना वासस्थान छोड़ कर जिधर तिधर मारे फिरते हैं।' यह सुन कर इन्द्रने ऐरावतको भलीभांति सज्जित कर लानेके लिये हुक्म दिया और कहा, 'आज ही मैं उसके बलवीर्यकी परीक्षा लूंगा।' इतना कह देवराज इन्द्र गजपृष्ठ पर सवार हुए और अमरसेनाके साथ तुरन्त ही उस दुष्ट राक्षसके पास पहुंचे। राक्षसने उन्हें बहुत कटुवचन कहे। पीछे जब देवेन्द्रने उस भीषण काय राक्षसको आगे होते देखा, तब वे डरके मारे हाथी पर पड़ रहे और उसी समय ब्रह्माके पास भाग गये। ब्रह्मा उन्हें साथ ले क्षीरोदसमुद्रके किनारे भगवान् विष्णुके समीप पहुंचे और कृताञ्जलि हो निवेदन करने लगे। इस पर भगवान् विष्णु गरुड़ पर सवार हुये और लोकमायाके समीप आ कर उससे युद्ध करने लगे। लड़ते लड़ते जब शरीरमें क्लान्ति आ गई, तब वे बोले, 'इसे वध करनेमें हम बिलकुल असमर्थ हैं, विशालाक्ष (शिव) इसे अवश्य वध कर सकते हैं।' यह सुन कर देवगण नीलकण्ठके पास पहुंचे और आद्योपान्त सब बातें कह सुनाईं। शिवजी उसी समय वृषभ पर सवार हुए और एक ही वारमें राक्षसका शिर धड़से अलग कर दिया। बाद वह छिन्न मस्तक उनकी स्तुति करने लगा। महादेवने प्रसन्न हो कर जब उसे वर मांगने कहा, तब वह बोला, 'हे शिव! मेरी इस देहसे पृथ्वीको पवित्र कीजिए।" इस पर महादेवने उसके पृष्ठवंशसे दण्ड, मस्तकसे कलस और चर्मसे पताका प्रस्तुत कर उसका नाम नन्दिध्वज रखा। नन्दि और ध्वज शिवजीके आगे चलने लगे।

नन्दिन् (सं० त्रि०) नन्द-णिनि। १ हर्षयुक्त, जो प्रसन्न हो। (पु०) २ द्वामुष्यायण, शिवका द्वारपाल। ३ मुनिभेद, एक मुनिका नाम। नन्दिकेश्वर देखो। ४ शिवगणविशेष, शिवके एक प्रकारके गण। ये तीन प्रकारके होते हैं—कनकनन्दी, गिरिनन्दी और शिवनन्दी। ५ गर्दभाण्डवृक्ष, पाकरका पेड़। ६ धववृक्ष,

धवका पेड़ । ७ वटवृक्ष, बरगदका पेड़ । ८ नन्दिवृक्ष, तुनका पेड़ । ९ विष्णु । १० एक प्राचीन संस्कृत वैयाकरण । इन्होंने क्षीरस्वामी, सायण, रायमुकुट आदि उद्धृत किये हैं । ११ अभिनयदर्पण नामक नाट्यशास्त्रकार । १२ जैनियोंका एक श्रुतपारग । १३ शिवके नाम पर दाग कर उत्सर्ग किया हुआ कोई बैल । १४ वह बैल जिसके शरीर पर गाँठें हों, ऐसा बैल खेतीके कामका नहीं होता । इसे फकीर लोग ले कर घुमाते और लोगोंको उसके दर्शन कराके पैसे मांगते हैं । १५ उहद । १६ गुच्छकरञ्ज, एक प्रकारका करंज । १७ शुक्ल अपामार्ग, सफेद लटजीरा ।

नन्दिनी (सं० स्त्री०) नन्द-णिनि-ङीप् । १ गङ्गा । २ ननन्दृ, ननद । ३ रेणुका नामक गन्धद्रव्य । ४ कन्या, पुत्री, बेटी । ५ जटामांसी । ६ वशिष्ठकी कामधेनु जो सुरभिकी कन्या थी । रघुवंश पढ़नेसे जाना जाता है कि राजा दिलीपने इसी गौको वनमें चराते समय सिंहसे उसकी रक्षा की थी और इसीकी आराधना करके उन्होंने रघु नामक पुत्र पाया था ।

महाभारतमें लिखा है कि द्यौ नामक वसु अपनी स्त्रीके कहनेसे इसे चुरा लाये थे । वशिष्ठके शापसे उन्हें भीष्म बन कर इस पृथ्वी पर जन्म लेना पड़ा था । भारत १।९९ अध्यायमें विशेष विवरण देखो ।

विश्वामित्र और वशिष्ठके झगड़ेको जड़ यही नन्दिनी थी । रामायणमें इस प्रकार लिखा है—एक दिन विश्वामित्र बहुतसी सेनाओंको साथ ले वशिष्ठके यहां गये । वशिष्ठने इसी गौके प्रभावसे उन्हें इच्छानुसार भोजन कराया । यह विशेषता देख कर विश्वामित्रने वशिष्ठसे यह गो मांगी, पर उन्होंने जब नहीं दिया, तब विश्वामित्र उसे जबरदस्ती ले चले । रास्तेमें नन्दिनीके चिल्लानेसे भिन्न भिन्न अङ्गोंसे म्लेच्छों और यवनोंकी बहुतसी सेनाएं निकल पड़ीं । उन सब सेनाओंके पराक्रमसे विश्वामित्र हार गये । रामायण आदिकाण्ड और भारत १।१७७ अध्यायमें विस्तृत विवरण देखो । ७ पत्नी, स्त्री, जोरू । ८ तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम । ९ स्कन्दानुचर मातृगणविशेष, कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम । १० व्याड़ि मुनिकी माताका नाम । ११ त्रयोदशाक्षरा वृत्ति विशेष, तेरह अक्षरोंके एक वर्णवृत्तका नाम । इसके प्रत्येक पदमें १३ अक्षर रहते हैं जिनमेंसे ३।५।८।११।१३वां अक्षर गुरु और शेष सभी अक्षर लघु होते हैं । १२ दुर्गा । १३ हरीतकी । १४ गुच्छकरञ्ज, एक प्रकारका करंज । १५ शुक्ल अपामार्ग, सफेद लटजीरा ।

नन्दिनीतनय (सं० पु०) नन्दिन्यास्तनयः । व्याड़ि मुनिके पुत्र । इनकी कथा बृहत्संहितामें इस प्रकार लिखा है,—नन्दके राजत्वकालमें उपवर्ष पण्डितके तीन छात्र थे, एकका नाम था पाणिनि, दूसरेका वररुचि और तीसरेका व्याड़ि । उपवर्षका दूसरा नाम कात्यायन था । इन तीन छात्रोंमें पाणिनि अल्पबुद्धिके थे । तर्क वितर्कमें पराजित हो कर महादेवकी तपस्या करके ये बड़े विद्वान् हो गये । पीछे इन्होंने सूत्रपाठ, गणपाठ, धातुपाठ और अनुशासन इन चार भागोंमें व्याकरणशास्त्र समाप्त किया । यह देख कर वररुचिने इनका अवशिष्टांश परिपूर्ण करनेके लिये संक्षेपमें वार्त्तिक प्रस्तुत किया । पीछे व्याड़िने इन दोनोंकी उक्तियोंके न्यायपरिदर्शनके लिये लक्ष श्लोकात्मक संग्रह ग्रन्थकी रचना की ।

नन्दिनीतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम ।

नन्दिपादप (सं० पु०) नन्दवृक्ष, तुनका पेड़ ।

नन्दिपुराण (सं० क्ली०) नन्दिना प्रोक्तं पुराणं । एक उपपुराणका नाम । नन्दिकेश्वर देखो ।

नन्दिपोतवर्मा—पल्लववंशीय एक राजा । चालुक्य-वंशीय राजा द्वितीय विक्रमादित्यने इन्हें युद्धमें परास्त कर मार डाला था ।

नन्दिमित्र—जैन श्रुत-पारगोंमेंसे एक । पद्मसुन्दरके बनाये हुए रायमल्लाभ्युदयकाव्यमें इनका उल्लेख है ।

नन्दिमुख (सं० पु० स्त्री०) १ पक्षिविशेष, एक प्रकारका पक्षी । २ व्रीहिधान्यभेद, एक प्रकारका चावल । ३ महादेव, शिव ।

नन्दिमुखा (सं० स्त्री०) शूकरहित दीर्घ गोधूम, बिना टूंड़का गेहूँ ।

नान्दिमुखी (सं० स्त्री०) १ तन्द्रा, ऊंघ, उँघाई । २ बुबुचर पक्षिविशेष, भावप्रकाशके अनुसार वह पक्षी जिसकी

चोंचका ऊपरी भाग बहुत कड़ा और गोल हो। ऐसे पक्षीका मांस पित्तनाशक, चिकना, भारी, मीठा और लघु, कफ, बल तथा शुक्रवर्द्धक माना जाता है। (भावप्र०)

नन्दियाल—मन्द्राजके कर्णूल जिलेका एक शहर। यह अक्षा० १५° ३०´ उ० और देशा० ७८° २८´ पू० कुन्देरु नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग १५१३७ है। यहां १८९९ ई०में म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। राजस्व २३५००) रु०का है। दक्षिणी महाराष्ट्र रेलवेके खुल जानेसे यह शहर दिनों दिन वाणिज्यका प्रधान केन्द्र होता जा रहा है। यहां एक हाई-स्कूल तथा म्युनिसिपलकी ओरसे एक दातव्य चिकित्सालय है।

नन्दिरुद्र (सं० पु०) शिवका एक नाम।

नन्दिल—जैनोंका एक स्थविर। स्थविरावलीचरितमें इनका विस्तृत विवरण पाया जाता है।

नन्दिवर्द्धन (सं० पु०) नन्दिं वर्द्धयति वृध-णिच्-ल्यु। १ शिव, महादेव। २ पक्षान्त। ३ पुत्र, बेटा, लड़का। ४ मित्र, दोस्त। ५ विमानविशेष, प्राचीन कालका एक प्रकारका विमान। ६ निमिवंशीय राजविशेष, निमिवंशके एक राजाका नाम। ७ मगध देशके मौर्यवंशीय एक राजाका नाम। ८ प्राचीन वास्तुशास्त्रके अनुसार वह मन्दिर जिसका विस्तार चौबीस हाथ हो, जो सात भूमियोंसे युक्त हो और जिसमें २० शृङ्ग हों। (त्रि०) ९ आनन्दवर्द्धक, आनन्द बढ़ानेवाला, जो आनन्द बढ़ावे।

नन्दिवर्मन्—पल्लववंशीय एक राजा।

नन्दिवर्मा पल्लवमल—पल्लव वंशीय एक राजाका नाम।

नन्दिवारलक (सं० पु० स्त्री०) मत्स्यभेद, सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारकी मछली जो समुद्रमें होती है। तिमि, तिमिङ्गल, निवारक और नन्दिवारलक ये सब मछलियां समुद्रमें होती हैं।

नन्दिवृक्ष (सं० पु०) नन्दीवृक्ष देखो।

नन्दिवृष (सं० पु०) कलाय, उड़द।

नन्दिषेण (सं० पु०) कलियुगका अपकृष्ट नृपतिभेद।

नन्दिषेण—१ अजित-शान्तिस्तवमन्त्रके प्रणेता। २ कुमारके एक अनुचरका नाम।

नन्दिस्वामिन्—एक वैयाकरण। क्षीरतरङ्गिणीमें इनका नामोल्लेख है।

नन्दी (सं० पु०) नन्दिन् देखो।

नन्दी—१ बङ्गालके सावर्णगोत्रीय राढ़ी-ब्राह्मणोंका एक ग्राम। २ बङ्गालके कष्ट वैद्य, कायस्थ, मोदरा, नापित, शांखारी, तांती, तिलि और वारुइयोंकी एक उपाधि। ३ बङ्गालके वाहाबजाति क्षत्रियोंकी एक श्रेणी।

नन्दीकोटकूर—मन्द्राजके कर्नूल जिलेका उपविभाग और तालुक। यह अक्षा० १५° ३९´ और १६° १५´ उ० तथा देशा० ७८° ४´ और ७८° १४´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १२५८ वर्गमील और लोकसंख्या १०४१६७ है। इसमें १०२ ग्राम लगते हैं। राजस्व प्रायः २८७००० रु०का है। जिला भरमें यह सबसे बड़ा तालुक है, लेकिन इसका अधिकांश जङ्गलमय है। तुङ्गभद्रा और कृष्णा-नदी इसके मध्य हो कर बह गई हैं। यहांका वार्षिक वृष्टिपात २८ इञ्च है। आबहवा अस्वास्थ्यकर है। मनुष्य हमेशा ज्वरसे पीड़ित रहते हैं।

नन्दीट (सं० पु०) इन्द्रलुप्त व्यक्ति, गंजा सिरवाला।

नन्दीपति (सं० पु०) शिव, महादेव।

नन्दीमुखी (सं० पु०) नन्दिमुख देखो।

नन्दीवृक्ष (सं० पु०) १ कोङ्कणदेशप्रसिद्ध सुगन्धि वृक्षविशेष, कोङ्कण देशमें होनेवाला सुगन्धित तुन नामक पेड़। (Cedrela toona) पर्याय—तूणीक, तूणी, पीतक, कच्छप, नन्दी, कुठेरक और कान्त। गुण—यह कटु, तिक्त, शीतल, पित्त, रक्त, दाह, शिरःपीड़ा, स्वेद और कुष्ठनाशक, सुगन्ध, पुष्टि तथा वीर्यदायक माना गया है। विशेष विवरण तुन शब्दमें देखो।

२ अश्वत्थाकार क्षीरवान् स्वनामप्रसिद्ध वृक्षविशेष, पीपलके आकारका दूध देनेवाला एक प्रकारका पेड़। इसका पर्याय—तुन, कुवेरक, कुणि, कच्छ, कान्तलक, तुणि, नन्दिवृक्ष, कूणि, तुन्द, नन्दिक और नन्दिवृक्षक है।

मिथिलादि प्रदेशोंमें यह तुणी वा तुण नामसे प्रसिद्ध है। इस वृक्षके विषय मतभेद पाया जाता है।

अमरसिंहने इसके कई एक पर्याय स्थिर किये हैं जिन्हें राजनिर्घण्टोक्त पर्यायके साथ मिलानेसे कुछ भी फर्क नहीं पड़ता है। कोई कोई कहते हैं, कि तूत और तून ये दोनों पृथक् पृथक् जातिके वृक्ष हैं जिनमेंसे तून

नामक वृक्ष अमरोक्त तुन्द वा तुन शब्दका और राजनिर्घण्टोक्त तूनी शब्दके अपभ्रंशसे तुन शब्द हुआ है। अमरटीकामें भरतमल्लिकने इसे पीपलके आकारका और वान् वृक्ष बतलाया है। यह अश्वत्थाकारवृक्ष भावप्रकाशोक्त स्थानीवृक्ष है और स्थानभेदसे लोग इसे नन्दीवृक्ष भी कहने लगे हैं। अमर और राजनिर्घण्टोक्त नन्दीको तूनी कहते हैं। २ मेषशृङ्गी, मेढ़ासिंगी।

नन्दीश (सं० पु०) नन्दो ईशस्य। १ नन्दी। भरतोक्त तालभेद, तालोंके सात भेदोंमेंसे एक। ३ शिव, महादेव।

नन्दीश्वर (सं० पु०) नन्दिनः गणविशेषस्य ईश्वरः। १ शिव। २ नन्दीशताल। ३ शिव-द्वारपाल। इसका विषय बराहपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

त्रेतायुगमें नन्दी नामक एक मुनि शिवकी तपस्या कर रहे थे। तपस्यासे सन्तुष्ट हो कर शिवने उन्हें अभिलषित वर मांगनेको कहा। इस पर नन्दीने कहा था, 'यदि आप मुझ पर सन्तुष्ट हैं, तो मुझे यही वर दीजिये जिससे आपके प्रति मेरी अचला भक्ति हो?' यह सुन कर शिवजी बोले, 'तुम मेरे समान रूपविशिष्ट और त्रिलोचन होगे, तथा सब गुणोंसे विभूषित और जरामरणरहित हो कर सुखपूर्वक रहोगे। देवदानव सभी तुम्हारे सम्मान करेंगे और तुम पार्षदोंमें प्रधान समझे जाओगे। आजसे तुम्हारा नाम नन्दीश्वर रखा गया और तुम देवताओंमें प्रधान हुए। यदि कोई तुमसे द्वेष करेगा, तो वह मानो मुझसे ही द्वेष करता है। आजसे तुम मेरी दाहिनी ओर रहो।' (वराहपु०) कूर्मपुराणमें भी इनका विवरण लिखा हुआ है।

४ एक कामशास्त्ररचयिता। वात्स्यायनके कामसूत्रमें और पञ्चसायक नामक ग्रन्थमें इनका मत उद्धृत है। ५ शिवका एक गण। पुराणानुसार यह तोटकका अवतार माना जाता है। कहते हैं, कि यह वामन है, इसका रंग काला है और सिर मुंड़ा हुआ तथा मुँह बन्दर-सा है।

नन्दीश्वराचार्य गोपालाश्रमरूप—अद्वैतब्रह्मविद्यापद्धति नामक दार्शनिक ग्रन्थके रचयिता।

नन्दीसरस (सं० क्ली०) इन्द्रसरोवर।

नन्देर—नांदेर देखो।

नन्दोड़—नांदोड़ देखो।

नन्दोड़—गुजराती ब्राह्मणोंकी एक श्रेणी। सूरतसे १६ मील उत्तर-पूर्व राजपिप्पलाई राज्यकी राजधानी नांदोड़ स्थानके नामानुसार इस श्रेणीका नाम पड़ा है। इनमेंसे अनेक कृषिजीवी और कुछ भिक्षुक भी हैं।

नन्द्यादि (सं० पु०) पाणिनि उक्त शब्दगणविशेष। इस नन्द्यादिगणके बाद ल्यु प्रत्यय लगता है। यथा—नन्दन, वाशन, मदन, दूषण, साधन, वर्द्धन, शोभन, रोचन (संज्ञा अर्थमें सह तप और दम धातु) सहन, तपन, दमन, जल्पन, रमण, दर्पण, संक्रमण, सङ्कर्षण, संहर्षण, जनार्दन, यवन, मधुसूदन, विभीषण, लवण, चित्तविनाशन, कुलदमन, शत्रुदमन। (पाणिनि)

नद्यावर्त्त (सं० पु०) नन्दी नन्दिजनको आवर्त्ती यत्र। १ गृहविशेष, एक प्रकारकी इमारत। ऐसी इमारतके पश्चिम ओर द्वार नहीं रहना चाहिए। यह मनुष्योंके लिए शुभजनक है। २ ईश्वर-मन्त्रविशेष। ३ तगरवृक्ष, तगरका पेड़। ४ मत्स्यभेद, एक प्रकारकी मछली। इसका गुण—संग्राही, कफ और पित्तनाशक है। ५ यात्रायोगभेद। इसे नद्यावर्त्तक योग भी कहते हैं।

नद्यावर्त्तक देखो।

नन्नय (नन्नभट्ट)—एक वैयाकरण। ये जातिके ब्राह्मण थे। इन्होंने सबसे पहले तैलङ्ग भाषामें व्याकरण तथा महाभारतका अधिकांश अनुवाद किया था। ये राजमहेन्द्रीके चालुक्य-वंशीय राजा विष्णुवर्द्धनके समयमें आविर्भूत हुए थे।

नन्नसूरि—सर्वदेवके गुरु और चन्द्रगच्छके आचार्य। ये वप्पभट्टसूरिके शिष्य थे। ८८५ सम्वत्में इनकी मृत्यु हुई।

नन्निलम्—१ मन्द्राजके तञ्जोर जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० १०° ४४' से ११° १' उ० और देशा० ७९° २७' से ७९° ५१' के पूर्वमें अवस्थित है। भूपरिमाण २८३ वर्गमील और लोकसंख्या २१६११८ है। इसमें दो शहर और २४२ ग्राम लगते हैं। राजस्व ११३२००० रु० है। यहां वर्षाकी शिकायत नहीं है।

२ उक्त तालुकका एक शहर, यह अक्षा० १०° ५२'

उ० और देशा० ७८° २६ पू०के मध्य अवस्थित है। लोक-संख्या प्रायः ६७२७ है। मधुवनेश्वरस्वामीका यहां एक प्राचीन मन्दिर है।

नन्नक—महर्षि अत्रिके पुत्र। चन्द्रात्रेयवंशमें यह सबसे गुणवान् राजा निकले थे। बुन्देलखण्डके अन्तर्गत छत्रपुर राज्यमें खाजुराहो नामका एक अत्यन्त प्राचीन नगर है, जहां एक शिलाफलक पाया गया है। उस शिलाफलकमें नन्नुकका वंशपरिचय उत्कीर्ण है।

नन्योरा (हिं० पु०) ननिहाल देखो।

नन्हा (हिं० वि०) छोटा।

नन्हाई (हिं० स्त्री०) १ छोटापन, छोटाई। २ अप्रतिष्ठा, बदनामी, टेठी।

नन्हिया (हिं० पु०) १ एक प्रकारका धान। २ इसी धानका चावल।

नपना (हिं० स्त्री०) नपाई देखो।

नपता (हिं० पु०) एक प्रकारका पक्षी। इसके डैनों पर काली या लाल चित्तियां होती हैं।

नपरका (हिं० पु०) एक प्रकारका पक्षी। इसकी गरदन और पेट लाल तथा पैर और चोंच पीली होती हैं।

नपराजित् (सं० पु०) न पराजीयते परा-जि-कर्मणि क्विप्, 'सहसुपेति' न शब्देन सह समासः। महादेव, शिव।

नपाई (हिं० स्त्री०) १ नापनेका काम। २ नापनेका भाव। ३ नापनेकी मजदूरी।

नपाक (फा० वि०) नापाक देखो।

नपात् (सं० त्रि०) पाति रक्षति पा शतृ-ततो नभ्राड़ित्यादिना नञ् प्रकृतिभावः। १ अरक्षक, जो रक्षक या पालनेवाला नहीं है।

नपात् शब्दका रूप शतृ प्रत्ययान्त शब्दके जैसा होता है, जैसे 'नपान् नपान्तौ' इत्यादि। न पातयति पाति क्विप्। २ अपातक। (पु०) ३ पुत्र, बेटा, लड़का।

नपात (सं० पु०) नास्ति पातो यत्र। देवयानपथ। 'नास्ति पातो यत्र स नपातो देवयानपथः यत्र गतानां पातो नास्ति।' (वेददीप) जिस राह हो कर चलनेसे पतन न हो, उसे नपात अर्थात् देवयान कहते हैं।

नपुंसक (सं० क्ली०) न स्त्री न पुमान् (नभ्राण नपादिति। पा ६।३।७५) इति निपातनात् स्त्रीपुंसयो पुंसक आदेशः। १ क्लीव, हिजड़ा, नामर्द।

पिताका वीर्य और माताका रज जब दोनों बराबर होते हैं, तब सन्तान नपुंसक होती है।

नपुंसकाकी उत्पत्तिका विषय भावप्रकाश आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें इस प्रकार लिखा है—मैथुनकालमें यदि शुक्रकी अधिकता हो, तो पुत्र, आर्त्तवकी अधिकता हो, तो कन्या और यदि शुक्रशोणित दोनों बराबर हो, तो नपुंसक उत्पन्न होता है, अथवा परमेश्वरके इच्छानुसार हुआ करता है।

नपुंसक पांच प्रकारके माने गये हैं। आसेक्य, सुगन्धि, कुम्भीक, ईर्षक और षण्ड। इनमेंसे षण्डके सिवा और सभीको शुक्रधातु उत्पन्न होता है।

इनका लक्षण—पितामाताके अल्पवीर्य द्वारा जो सन्तान उत्पन्न होती है, उसे आसेक्य कहते हैं। शुक्रभोजन करनेसे इस आसेक्य पुरुषका ध्वज उच्छ्रित होता है, अर्थात् यदि आसेक्य पुरुष है,—दूसरे पुरुष द्वारा अपने मुखमें मैथुन करानेसे शुक्रभोजन कराया जाता है, उससे ध्वजकी उन्नति होती है।

जो सन्तान पूतियोनिमें जन्म लेती है, उसे सौगन्धिक अथवा नासायोनि कहते हैं। इस प्रकारकी सन्तान जननेन्द्रिय सूंघ कर मैथुन-कर्म करती है।

जो व्यक्ति गांडू हैं अथवा पुरुषके जैसा दूसरी स्त्रीके साथ सङ्गम करनेमें प्रवृत्त हो जाता है, उसे कुम्भीक कहते हैं। इसका दूसरा नाम गुदयोनि है। दूसरेका मैथुन देख कर जो व्यक्ति कामातुर हो जाता है, उसे ईर्षक कहते हैं। इसका दूसरा नाम दृष्टयोनि है।

मोहवश ऋतुमती स्त्रीके साथ नीचे रह कर सम्भोग करनेसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह ठीक स्त्रीके जैसा देखनेमें लगता है, काम काज भी स्त्रीके सरीखा करता है, उसकी मूंछ दाढ़ी नहीं होती और न उसमें पुरुषत्व ही होता है। ऐसे पुत्रको षण्ड कहते हैं। किन्तु यह षण्डसंज्ञक नपुंसक अधोमुख हो कर दूसरे पुरुषसे सङ्गमकी इच्छा करता है।

वीर्य और रक्त दोनोंके समान होनेसे पुरुष स्त्री प्रकृतिका होता है और उसको नपुंसक कहते हैं, यह न तो पूरा पुरुष हो सकता और न स्त्री।

नपुंसक गर्भवतीका लक्षण—जिस गर्भवती स्त्रीके गर्भकोषमें अर्बुदाकार अर्थात् गोलाकृति आधे भागके फलके सदृश मालूम पड़ता है और दोनों पार्श्व उन्नत दीख पड़ते तथा पेटका अगला भाग कुछ ऊंचा हो जाता है, उसीके गर्भसे नपुंसक सन्तान उत्पन्न होती है।

महाभाष्यमें इस शब्दको पुंलिंग बतलाया है। २ कायर, डरपोक।

नपुंसकता (सं० स्त्री०) १ नपुंसक होनेका भाव, हिजड़ापन। २ एक प्रकारका रोग। इसमें मनुष्यका वीर्य बिलकुल नष्ट हो जाता है और वह स्त्री-सम्भोगके योग्य नहीं रह जाता। ३ नामर्दी।

नपुंसकत्व (सं० पु०) नपुंसकता, नामर्दी।

नपुंसकमन्त्र (सं० पु०) जैनियोंके अनुसार वह मन्त्र जिसके अन्तमें 'नमः' हो।

नपुंसकवेद (सं० पु०) जैनियोंके अनुसार एक प्रकारका मोहनीय कर्म। इसके उदयसे स्त्रीके साथ भी संभोग करनेकी इच्छा होती है और बालक या पुरुषके साथ भी।

नपुंसस् (सं० पु० स्त्री०) न पुमान् आर्षत्वात् न नपुंसकभावः। क्लीव, हिजड़ा।

नप्ता (हिं० स्त्री०) लड़की या लड़केकी सन्तान, नाती या पोता।

नप्तृ (सं० पु०) न पतन्ति पितरो येन नप-तृच् प्रत्ययेन साधु (नप्तृ नेष्टृत्वष्टृ इति। उण् २।८६) पुत्र वा कन्याका पुत्र, नाती या पोता।

पौत्रके जैसा नाती भी उद्धार करता है, इसीसे दुहिताके पुत्रको भी नप्तृ कहा है। शास्त्रमें भी लिखा है—

"दौहित्रोऽपि ह्यमुत्रैनं सन्तारयति पौत्रवत्।" (मनु)

नप्त्रिका (सं० स्त्री०) १ चटकविशेष, गौरैया नामकी चिड़िया। इसका मांस हलका, ठंढा, मीठा, कसैला और दोषनाशक माना जाता है। २ गुडूचिका, गुरुच, गिलोय।

नप्त्री (सं० स्त्री०) नप्तृ-ङीप् (ऋन्नेभ्यो ङीप्। पा ४।१।५) पोती या नातिन। पर्याय—पौत्री, सुतात्मजा, पौत्रिका।

नफर (फा० पु०) १ दास, सेवक, नौकर। २ व्यक्ति, जैसे दस नफर मजदूर। इस अर्थमें इस शब्दका व्यवहार केवल बहुत छोटा काम करनेवालोंकी संख्या आदि प्रकट करनेके लिये होता है।

नफरत (फा० स्त्री०) घृणा, घिन।

नफरी (फा० स्त्री०) १ एक मजदूरकी एक दिनकी मजदूरी। २ मजदूरके एक दिनका काम। ३ मजदूरीका दिन।

नफसानफसी (अ० स्त्री०) १ वह विवाद जो केवल व्यक्तिगत स्वार्थका ध्यान रख कर किया जाय, खींचतान। २ वैमनस्य, लड़ाई, चखा चखी।

नफा (अ० पु०) लाभ, फायदा।

नफासत (अ० स्त्री०) नफीस होनेका भाव, उमदापन।

नफीरी (फा० स्त्री०) तुरही, शहनाई।

नफीस (अ० वि०) १ उत्तम, उमदा, बढ़िया। २ स्वच्छ, साफ। ३ सुन्दर, बढ़िया।

नबी (अ० पु०) ईश्वरका दूत, पैगम्बर, रसूल।

नबेड़ना (हिं० क्रि०) १ निपटना, तै करना। २ अपने मतलबकी चीज ले लेना और शेषको छोड़ देना, चुनना।

नबेड़ा (हिं० पु०) न्याय, फैसला, निपटारा।

नबेरना (हिं० क्रि०) नबेड़ना देखो।

नबेरा (हिं० पु०) नबेड़ा देखो।

नब्दीगर (फा० पु०) वह मनुष्य जो चारजामा बनाता हो।

नब्ज (अ० स्त्री०) हाथकी रक्तवहा नाली जिसकी चालसे रोगकी पहचान की जाती है, नाड़ी।

नब्बे (हिं० वि०) १ जो गिनतीमें पचास और चालीस हो, सौसे दस न्यून। (पु०) २ वह संख्या जो चालीस और पचासके मेलसे बनती हो।

नभ (सं० वि०) नभ-अच्। १ हिंसक, मारनेवाला। (पु०) २ श्रावण मास, सावनका महीना। ३ भाद्र मास, भादोंका महीना। ४ आकाश, शून्य स्थान। ५ चाक्षुष मन्वन्तरमें सप्तर्षिभेद, चाक्षुष मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमेंसे एकका नाम। ६ चाक्षुष मुनिके एक पुत्रका नाम। ७ महादेव, शिव। ८ रामवंशीय राजभेद, हरिवंशके अनुसार रामचन्द्रके वंशके एक राजाका नाम। ९ शून्य, सुना, सिफर। १० आश्रय, आधार। ११ पास, निकट, नजदीक। १२ राजा नलके एक पुत्रका नाम। १३ अभ्रक, अबरक।

१४ जल, पानी। १५ जन्मकुण्डलीमें लग्नस्थानसे दशवां स्थान। १६ मेघ, बादल। १७ वर्षा। १८ विषतन्तु। १९ मृणालसूत्र।

नभःकेतन (सं० क्लो०) सूर्य।

नभःक्रान्तिन् (सं० पु०) नभःक्रान्तं गगनाक्रमणमस्त्यस्येति इनि। सिंह, शेर।

नभःपान्थ (सं० पु०) सूर्य।

नभःप्रभेद (सं० पु०) विरूपके वंशधर। एक वैदिक ऋषिका नाम जो विरूपके वंशज थे। ऋग्वेदमें इनके कई मन्त्र मिलते हैं।

नभःप्राण (सं० पु०) नभसः प्राण इव। पवन, हवा।

नभःसद (सं० पु०) नभसि सीदति सद-क्विप्। १ देव, देवता। २ खगादि, आकाशमें विचरनेवाले पक्षी आदि।

नभःसरित् (सं० स्त्री०) नभसः सरित् ६-तत्। गङ्गा, आकाशगङ्गा, मन्दाकिनी।

नभःसुत (सं० पु०) पवन, हवा।

नभःस्थ (सं० त्रि०) नभःस्थित देखो।

नभःस्थल (सं० पु०) नभःस्थलमिव यस्य। महादेव, शिव।

नभःस्थित (सं० पु०) नभसि स्थितः। नरकविशेष, एक नरकका नाम।

नभःस्पृश् (सं० त्रि०) नभःस्पृशति स्पृश-क्विन्। आकाशस्पर्शी, आकाश छूनेवाला।

नभःस्पृश (सं० त्रि०) नभःस्पृशति स्पृश-क। गगनस्पर्शी, आसमान छूनेवाला।

नभग (सं० पु०) १ वैवस्वत मनुके पुत्रभेद, वैवस्वत मनुके एक पुत्रका नाम। २ पक्षी, चिड़िया। ३ पवन, हवा। ४ मेघ, बादल। (त्रि०) ५ आकाशगामी, आकाशमें विचरनेवाला। ६ भाग्यहीन, अभागा।

नभगनाथ (सं० पु०) गरुड़।

नभगामी (हिं० पु०) १ चन्द्रमा। २ पक्षी। ३ देवता। ४ सूर्य। ५ तारा।

नभगेश (सं० पु०) गरुड़।

नभचर (हिं० पु०) नभश्चर देखो।

नभध्वज (हिं० पु०) नभोध्वज देखो।

नभनीरप (हिं० पु०) चातक, पपीहा।

नभनु (सं० त्रि०) नभ-हिंसायां बाहुलकात् अनु। १ हिंसक। भन् बाहु० अनु। २ शब्दकारक।

नभन्य (सं० त्रि०) नभ हिंसायां कनिन्, नभसि साधु यत् वा नभसि हित इति पृषोदरादित्वात् साधुः। १ आकाशभव, जो आकाशमें उत्पन्न हो। २ हिंसक, मारनेवाला।

नभम् (सं० क्लो०) कमल।

नभश्चक्षुस् (सं० क्लो०) नभसश्चक्षुरिव प्रकाशकत्वात्। सूर्य।

नभश्चमस (सं० पु०) नभश्चमस इव। १ चन्द्रमा २ चित्रापूप। ३ इन्द्रजाल।

नभश्चर (सं० त्रि०) नभसि चरति चर-ट। १ गगनचारी, आकाशमें चलनेवाला। (पु०) २ पक्षी। ३ मेघ, बादल। ४ पवन, हवा। ५ देवता, गन्धर्व और ग्रहादि।

नभस् (सं० क्लो०) नह्यते मेघैरिति नह बन्धने नह-असुन् भश्चान्तादेशः (नहेर्दिवि भश्च। उण् ४।२१०) नभ देखो।

नभस (सं० पु०) नभ शब्दे असच्। १ शब्दाश्रय गगन। २ दशम मन्वन्तरीय सप्तर्षिभेद, हरिवंशके अनुसार दशवें मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमेंसे एकका नाम।

नभसङ्गम (सं० पु० स्त्री०) नभसं गच्छतीति नभ-खच् ततोमुम्। खग, पक्षी, चिड़िया।

नभस्थल (हिं० पु०) नभःस्थल देखो।

नभस्थित (हिं० पु०) नभःस्थित देखो।

नभस्मय (सं० पु०) नभो मयते मय गतौ अच्, वेदे न पदत्वं। आदित्य, सूर्य।

नभस्य (सं० पु०) नभसे मेघाय साधुः नभस्-यत् (तत्र साधुः। पा ४।४।९८) १ भाद्रमास, भादोंका महीना। २ स्वारोचिष मनुके पुत्रभेद, हरिवंशके अनुसार स्वारोचिष मनुके एक पुत्रका नाम।

नभस्वत् (सं० पु०) नभः उत्पत्तिकारणत्वेनास्त्यस्य इति नभस-मतुप्, मस्य वा। १ वायु, हवा। आकाशसे वायुकी उत्पत्ति है, इसलिये वायुकी उत्पत्तिका कारण आकाश है। इसी कारण नभस्वत् शब्दसे आकाशका बोध होता है। (रघु० ४।८) स्त्रियां ङीप्। २ नभस्वती, अन्तर्धानकी पत्नी। (भागवत ४।२४।६)

नभाः (सं० पु०) १ श्रावणमास, सावनका महीना। २ घ्राण, गन्ध। ३ विषतन्तु। ४ पवितयोर्व।

नभा—एक वंशका नाम। फोलरोकुलके ज्येष्ठ पुत्र तिलकसे नभावंशकी उत्पत्ति है। तिलकके पौत्र हमीर सिंहने १७५५ ई०में नभा नामक नगर बसाया। हमीर एक साहसी और उद्यमशील सरदार थे। ये कई गाँव जीत कर पतियालाके आलासिंहके साथ मिल गये और सर-हिन्दके अफगान शासनकर्त्ता जेनखांके साथ लड़ाई छेड़ दी। उस युद्धमें जेनखां मारे गये और हमीरने आमदो नामक प्रदेशको अपने दखलमें कर लिया।

१७७४ ई०में झिन्दके राजा गजपतसिंहने हमीर-को पराजित और कैद कर उनका सङ्गूर नामक नगर लिया था। हमीरके पुत्र यशोवन्त सिंहने अंगरेजोंसे मित्रता कर ली। गवर्नर-जेनरलकी ओरसे उन्हें एक सनद मिली जिसमें लिखा था, कि उन्हें किसी प्रकारका कर नहीं देना होगा और वे अपने सभी पूर्व स्वत्वोंका उपभोग कर सकते हैं। १८०४ ई०में होलकरने जब नभा-में पहुंच कर अंगरेजोंके विरुद्ध यशोवन्तसे सहायता मांगी थी, तब उन्होंने असङ्कुचित भावसे उनकी प्रार्थना नामंजूर कर दी थी। गोरखा-संग्राममें यशोवन्तने अंग्रेजोंको खासी मदद दी थी और काबुल युद्धमें उन्हें छः लाख रुपये कर्ज दिये थे। १८४० ई०में यशोवन्तका देहान्त हुआ। उनके पुत्र देवेन्द्रसिंहमें शासनकर्त्ताके उपयुक्त गुण न थे, बचपनसे वे खुशामदी टट्टुओंसे घिरे रहते थे, इस कारण उनकी क्षमता और प्रभुत्वके विषय-में कुछ भ्रमात्मक विश्वास जम गया था। उन चापलूसों-ने देवेन्द्रसिंहको विश्वास दिलाया था, कि अंग्रेजोंकी शक्ति दिनों दिन ह्रास होती जा रही है। थोड़े ही दिनके भीतर महाराज्य सारा पञ्जाबका प्रधान हो जायेगा। इस भ्रममें पड़ कर १८४५ ई०के सिक्ख-युद्धमें अंग्रेजी सेनाको न तो खाद्यका प्रबन्ध कर दिया और न किसी प्रकारकी सहायता ही दी। इस अपराधमें अंग्रेजोंने देवेन्द्रसिंहको सिंहासनसे अलग कर दिया और उनके लड़के भरपुरसिंहको जिसकी उमर केवल सात वर्षकी थी, उनकी जगह पर बिठाया। भरपुरसिंहको नाबा-लिगी दूर होनेके कुछ समय बाद ही सिपाहीविद्रोह युद्ध हुआ। युवा राजाने उस समय जहां तक हो सका, अकपट चित्तसे अर्थ और रसद दे कर अंग्रेजोंकी विशेष सहायता की। उस उपकारके प्रत्युपकार स्वरूप अंग्रेजोंने उन्हें लुधियाना प्रदेशका प्रधान बना कर बहुत प्रकारके राजसम्मानोंसे विभूषित किया था। अम्बाला दरबारमें लार्ड कैनिङ्गने उनकी कार्यावलीका उल्लेख करते हुए उन्हें यथेष्ट धन्यवाद दिया। १८६२ ई०में राज-प्रतिनिधि लार्ड एलगिनने उन्हें व्यवस्थापक सभाका आसन प्रदान किया। किन्तु उसी वर्ष उनका देहान्त हुआ। वे अपुत्रक थे इस कारण उनके मरने पर उनके छोटे भाई भगवान्‌सिंह राजगद्दी पर बैठे।

नाभा देखो।

नभाक (सं० क्ली०) नभ्नाति व्याप्नोतीति नभ-आक (पिनाकादयश्च। उण् ४।१५) १ तमस्, अन्धकार, अँधेरा। २ राहु। ३ ऋषिविशेष, एक ऋषिका नाम।

नभि (सं० स्त्री०) चक्र, पहिया।

नभीत (सं० त्रि०) न भीतः, वाहुलकात् नञो न अ। जिसे डर न हो, निडर।

नभोग (सं० त्रि०) नभोगच्छति गम-ड। १ नभश्चर, पक्षी, देवता और ग्रह आदि। (पु०) २ जन्मकुण्डलीमें लग्न-स्थानसे दशवां स्थान। ३ दशम मन्वन्तरीय सप्तर्षिभेद, दशवें मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमेंसे एकका नाम।

नभोगज (सं० पु०) नभसि गज इव। मेघ, बादल।

नभोगति (सं० स्त्री०) नभसि आकाशे गतिः। १ आकाश-गमन। (त्रि०) नभसि गतिर्यस्य। २ जो आकाशमें विचरण करता हो।

नभज (सं० त्रि०) नभसि आकाशे जायते जन-ड। आकाश जात, जो आकाशमें उत्पन्न हो।

नभोज् (सं० त्रि०) नभस् जु-क्विप्। आकाशमें व्याप्त, जो आकाशमें हो।

नभोद (सं० पु०) विश्वदेवभेद, हरिवंशके अनुसार एक विश्वदेवका नाम।

नभोदुह (सं० पु०) नभसः दोग्धि प्रपूरयति नभआदि-कामिति नभस्-दुह-क। मेघ, बादल।

नभोदीप (सं० पु०) नभसि दीप इव। मेघ, बादल।

नभोधूम (सं० पु०) नभसि धूम-इव। मेघ, बादल। मेघ आकाशमें धूएंकी तरह फैला रहता है, इसीसे इसको नभोधूम कहते हैं।

नभोध्वज (सं० पु०) नभसि ध्वज इव। मेघ, बादल।

नभोनदी (सं० स्त्री०) नभसो नदी। स्वर्गङ्गा, आकाश-गङ्गा, मन्दाकिनी।

नभोमणि (सं० पु०) नभसो मणिरिव। सूर्य।

नभोमण्डल (सं० क्ली०) नभो मण्डलमिव। गगन-मण्डल।

नभोमण्डलदीप (सं० पु०) नभोमण्डले दीप इव, प्रका-शकत्वात्। चन्द्र, चन्द्रमा।

नभोऽम्बुप (सं० पु०) नभसः अम्बु जलं पिबति पा-क। चातकपक्षी, पपीहा।

नभोयोनि (सं० पु०) महादेव, शिव।

नभोरजस् (सं० क्ली०) नभसो रज इव। अन्धकार, अँधेरा।

नभोरूप (सं० त्रि०) नभसो रूपं आरोपितं रूपमिव रूपं यस्य। १ नीलवर्णयुक्त, नीले रंगका (पशु आदि)। (क्ली०) २ नीलवर्ण, नीला रंग।

नभोरेणु (सं० स्त्री०) नभसि रेणुरिव आवरकत्वात्। नीहार, कुहरा, कुहासा।

नभोलय (सं० पु०) नभसि लयो यस्य वा नभसि लीयते ली-अच्। १ धूम, धूआँ। आकाशमें लीन होनेके कारण इसका नाम नभोलय पड़ा है। (त्रि०) २ गगनलीन-मात्र, जो आकाशमें लीन हो जाय।

नभोवट (सं० पु०) आकाशमण्डल।

नभोवीथी (सं० स्त्री०) नभसि वीथि इव। आकाश-स्थित वीथिरूप पथ।

नभौकस् (सं० त्रि०) नभ आकाशं ओकस्थानं यस्य। अन्तरीक्षचर पक्षी प्रभृति, अन्तरीक्षमें विचरण करनेवाला पक्षी आदि।

नभ्य (सं० पु०) नाभये हितं नाभि-यत् (उगवादिभ्यो यत्। पा ५।१।२) ततो 'नाभिनभञ्च' इति नभादेशः। १ रथादि चक्रावयवके छिलकर तैलादि, वह तेल या चिकनाई जो पहियेमें दी जाय। २ अक्ष, धुरी। ३ पहियेके बीच-का भाग।

नभ्राज् (सं० पु०) नभ्राजते इति भ्राज-क्विप्। मेघ, बादल।

नम्—नम् देखो।

नम (फा० वि०) १ आर्द्र, गीला, तर।

नम (सं० पु०) नमस् देखो।

नमक (फा० पु०) १ एक प्रसिद्ध क्षार पदार्थ। इसका व्यवहार भोज्य पदार्थोंमें एक प्रकारका स्वाद उत्पन्न करनेके लिये थोड़े मानमें होता है। विशेष विवरण लवण शब्दमें देखो। २ कुछ विशेष प्रकारका सौन्दर्य जो अधिक मनोहर या प्रिय हो, लावण्य, सलोनापन।

नमकख्वार (फा० वि०) नमक खानेवाला, पालित होने-वाला, जिसका पालन पोषण किसी दूसरेके द्वारा हो।

नमकदान (हिं० पु०) वह बरतन जिसमें पिसा हुआ नमक रखा जाता है।

नमकसार (फा० पु०) वह स्थान जहाँ नमक निकलता या बनता हो।

नमकहराम (अ० पु०) वह मनुष्य जो किसीका दिया हुआ अन्न खा कर उसीको आँखोंमें उँगली करे, कृतघ्न।

नमकहरामी (अ० स्त्री०) कृतघ्नता, नमकहरामपन।

नमकहलाल (अ० पु०) स्वामिनिष्ठ, स्वामिभक्त, सदा अपने मालिककी भलाई करनेवाला मनुष्य।

नमकहलाली (अ० स्त्री०) स्वामिनिष्ठा, स्वामिभक्ति।

नमकीन (फा० वि०) १ जिसमें नमकके जैसा स्वाद हो। २ जिसमें नमक पड़ा हो। (पु०) ३ नमक डाला हुआ पकवान। जैसे, पापड़, सेव, समोसा आदि।

नमगदसमुद्र—यशोर और चौबीस परगनेके मध्य कपो-ताक्ष और खोलपेटुआ नामक दो नदियाँ मिल कर नमगदसमुद्र कहलाने लगी है। इसका दूसरा नाम पाङ्गासी है।

नमगीरा (फा० पु०) १ ओस आदिसे बचनेका वह कपड़ा जो पलंगके ऊपरी भागमें तान देते हैं। २ छत्र या तिरपाल आदि जिसे धूप और वर्षासे बचनेके लिये किसी स्थानके ऊपर तान देते हैं।

नमत् खाँ—इनका दूसरा नाम मिर्जा मुहम्मद था। शिराज-में इनकी जन्मभूमि थी। १६९३ ई०में इन्होंने नमत्खाँ-की उपाधि पाई और उसी साल ये सम्राट् आलमगीर-की पाठशालाके तत्त्वावधायक और फ़ाम्मंचर नियुक्त हुए। आलमगीरके मरने पर बहादुरशाहने इन्हें नवाब दानिसमन्द खाँ पदवीकी उपाधि दी थी। इन्होंने आदेशसे

इन्होंने 'शाहनामा' नामक ग्रन्थ लिखना शुरू कर दिया था। किन्तु कुछ दिन बाद ही इनकी मृत्यु हो गई। इनकी बनाई हुई अनेक कविता-पुस्तक मिलती हैं जिनमेंसे एकका नाम हुसन-वफ़ा-इश्क है। आलमगीरसे गोलकुण्डा जीते जाने पर इन्होंने जो एक विद्रूपात्मक काव्य लिखा था, उसीका सबसे अधिक आदर होता है। उस काव्यमें ग्रन्थकारने खुद सेनापतिसे ले कर सम्राट् तकको भी बनानेसे न छोड़ा था। उन्होंने प्राच्य पाकप्रणालीके सम्बन्धमें एक उत्कृष्ट पुस्तक भी लिखी है। कोई कोई इन्हें नमतखली खाँ भी कहते थे।

नमत (सं० पु०) नम्यते इति नम-अतच् (भृ-मृ-दृशि यजीति। उण् ३।११०) १ प्रभु, स्वामी। २ धूम, धूआँ। ३ नट। (त्रि०) ४ नम्र, जो झुके।

नमदा (फा० पु०) जमाया हुआ ऊनी कम्बलका कपड़ा।

नमदेव—महिसुरके दर्जियोंका एक विभाग। ये सबके सब कृष्णोपासक हैं।

नमन (सं० क्ली०) नम-ल्युट्। १ प्रणाम, नमस्कार। २ झुकाव।

नमनकुल—सिंहलद्वीपका एक पर्वत। यह प्रायः ७००० फुट ऊँचा है।

नमनीय (सं० क्ली०) नम-अनीयर्। १ नमनयोग्य, जो झुक सके या झुकाया जा सके। २ नमस्कार करने योग्य, आदरणीय, पूजनीय, माननीय।

नमयिष्णु (सं० त्रि०) नम-णिच् बाहुलकात् इष्णुच्। नमनशील, आदर करने योग्य।

नमस् (सं० अव्य०) नाम बाहुलकात् असुन्। १ नमन, नमस्कार। अपनी हीनता दिखलाये बिना प्रणाम नहीं हो सकता, इस कारण स्वापकर्ष-बोधक व्यापारका नाम नमः है। २ त्याग, छोड़ देना। 'पुष्पमिदं विष्णवे नमः' विष्णुके उद्देश्यसे पुष्पका त्याग, यहाँ पर नमस् शब्दके प्रयोगसे त्यागका बोध होता है, अर्थात् पुष्पमें अपना स्वत्व नहीं रहा, वह विष्णुका हो गया। नम्यते इति कर्मणि असुन्। ३ अन्न, अनाज। ४ वज्र। ५ यज्ञ। ६ दान। ७ स्तोत्र।

नमस (सं० पु०) नमतीति नम-असच्, 'अत्यविचमित-मीति। उण् ३।११७) अनुकूल।

नमसान (सं० त्रि०) नमस्य इति नाम धातोः शानच्, ततो यलोपयलोपौ। नमस्कारशील, नमस्कार करने योग्य।

नमसित (सं० त्रि०) नमस्य कर्मणि क्त, ततो य लोपः। कृत-नमस्कार, जिसे नमस्कार किया गया हो, पूजित। पर्याय—पूजित, नमस्थित, अञ्चित, अपचायित, अर्चित और अपचित।

नमस्काट (सं० पु०) महादेव, शिव।

नमस्कार (सं० पु०) नमः शब्दस्य कारः करणं यत्र। १ विषभेद, एक प्रकारका विष। नमः करणं, नमस्-कृ घञ्। २ नति, प्रणाम, स्वापकर्षबोधक व्यापार, झुक कर अभिवादन करनेकी क्रिया। इसका विषय कालिका-पुराणमें इस प्रकार लिखा है,—नमस्कार तीन प्रकारका है, कायिक, वाचिक और मानसिक। फिर हर एकके तीन तीन भेद हैं, उत्तम, मध्यम और अधम। दोनों जानु और मस्तकसे पृथ्वी स्पर्श कर जो प्रणाम किया जाता है, उसे उत्तम कायिक नमस्कार, केवल जानु द्वारा पृथ्वी स्पर्श कर जो नमस्कार किया जाता है, उसे मध्यम और जानु वा मस्तक इन दोमेंसे किसी द्वारा भूमि स्पर्श न करके केवल दोनों हाथोंसे मस्तकमें लगा कर जो नमस्कार किया जाता है, उसे अधम नमस्कार कहते हैं। स्वयं गद्य वा पद्यमय उत्तम श्लोकादिकी रचना कर जो नमस्कार किया जाता है, उसे उत्तम वाचिक, पौराणिक वा वैदिक नमस्कार मन्त्र पढ़ कर जो नमस्कार किया जाता है, उसे मध्यम वाचिक और भाषा वाक्य उच्चारण करके जो नमस्कार किया जाता है, उसे अधम वाचिक नमस्कार कहते हैं। इष्ट, मध्य और अनिष्टगत मनोवेदनाज्ञापनरूप त्रिविध मानस नमस्कार भी तीन प्रकारके हैं, उत्तम, मध्यम और अधम। त्रिविध नमस्कारोंमेंसे कायिक नमस्कार सर्वश्रेष्ठ है। इस प्रकारका नमस्कार करनेसे देवगण सन्तुष्ट होते हैं। (कालिकापु० ७१ अ०)

रातको नमस्कार वा आशीर्वाद करना निषेध है। करनेसे 'प्रातः' इस शब्दका व्यवहार करना होता है।

"रात्रौ नैव नमस्कुर्यात्तेनाशीरभिचारिका।
अतः प्रातःपदं दत्त्वा प्रयोक्तव्ये च ते उभे॥" (भारत)

देवता, ब्राह्मण और गुरु इन पर जब नजर पड़े तभी उन्हें नमस्कार करना चाहिये। जो घमण्डमें आ कर प्रणाम नहीं करता, वह जब तक चन्द्र और सूर्यकी स्थिति है, तब तक कालसूत्रमें जाता और अशुचि तथा यवन हो कर रहता है।

"देवं विप्रं गुरुं दृष्ट्वा न नमेद्यस्तु सम्भ्रमात्।
स कालसूत्रं व्रजति यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥
ब्राह्मणश्च गुरुं दृष्ट्वा न नमेद्यो नराधमः।
यावज्जीवनपर्यन्तमशुचिर्यवनो भवेत्॥"

(ब्रह्मवैवर्त्तपु॰ श्रीकृष्णजन्म)

देवायतन और दण्डीको भी प्रणाम करना चाहिय, नहीं करनेसे वह प्रायश्चित्तके योग्य होता है। किसीके मतानुसार देवायतन-नमस्कार निषिद्ध है। सभा, यज्ञशाला और देवतायतनको देख कर प्रणाम नहीं करना चाहिए। शूद्र यदि बैठ कर प्रणाम करे और ब्राह्मण 'दीर्घायु' लाभ करो, इस प्रकार आशीर्वाद दे, तो दोनों नरकगामी होते हैं। दूरस्थित, जलमध्यस्थ, चलित, मदगर्वित, क्रुद्ध और धावित व्यक्तिको प्रणाम करना मना है। हाथमें पुष्प वा जल लिए और शरीरमें तेल लगाए प्रणाम करना भी निषिद्ध है। जो ऐसी अवस्थामें प्रणाम करता है अथवा आशीर्वाद देता है, दोनों ही नरकगामी होते हैं।

प्रणाम करनेके पहले ही अभिवादन करना चाहिये, नहीं करनेसे उसके दुष्कृतका भागी होना पड़ता है। ब्राह्मणके नमस्कार करने पर उसे स्वस्ति, क्षत्रियको आयुष्मत्, वैश्यको 'वर्द्धताम्' अर्थात् वृद्धि हो और शूद्रको आरोग्य लाभ करो, इस प्रकार आशीर्वाद देना चाहिये।

(मलमासतत्त्व)

पिता वा माताका छोटा भाई यदि उससे उमरमें कम हो, तो उसे प्रणाम नहीं करना। किन्तु गुरुपत्नी, ज्येष्ठ भ्रातृवधू और विमाताको उमर कम होने पर भी उसे नमस्कार करना होता है।

"मातुः पितुः कनीयांसं न नमेद्वयसाधिकः।
नमस्कुर्याद् गुरोः पत्नीं भ्रातृभार्यां विमातरम्॥" (यम)

नमस्कार करने योग्य ये सब व्यक्ति हैं—उपाध्याय, पिता, ज्येष्ठ भ्राता, महीपति, ममेरा श्वशुर, मातामह, पितामह, बन्धु, ज्येष्ठ चाचा और माता, मातामही, पितामही, बड़ी बहन, सास, ददिया सास, धात्री और गुरुपत्नी इन सब गुरुजनोंको देखनेके साथ ही खड़ा हो कर कृताञ्जलि हो प्रणाम करना चाहिये।

(कूर्मपुराण ११ अ॰)

गुरुपत्नी यदि युवती हो, तो उसे पैर छू कर प्रणाम नहीं करना चाहिये।

"गुरुपत्नीन्तु युवतीं नाभिवाद्येत पादयोः।
कुर्वीत वन्दनं भूयो असावहमिति ब्रुवन्॥"

(कूर्मपु॰ ११ अ॰)

नमस्कारी (सं॰ स्त्री॰) नमस्कारस्तदञ्जलिरिव पत्रसङ्कोचोऽस्त्यस्या इनि, अच् गौरादित्वात् ङीष्। १ खदिरिकाशाक, लज्जावंती, लजालू। २ वराहक्रान्ता। अमरटीकामें भरतने लिखा है, कि इसकी पत्तियां अञ्जलिसी होती हैं, और अञ्जलि शब्द नमस्कारव्यञ्जक है, इसीसे इसका नाम नमस्कारी हुआ है। ३ नील-दुर्वा, नीली घास।

नमस्कार्य (सं॰ त्रि॰) नमस्-कृ-ण्यत्। पूज्य, नमस्कार करने योग्य, वन्दनीय।

नमस्क्रिया (सं॰ स्त्री॰) नमस्करोति, नमस्-कृ-श, टाप्। नमस्कार, पूजा।

नमस्ते—एक वाक्य जिसका अर्थ है—आपको नमस्कार।

नमस्य (सं॰ त्रि॰) नाम धातु, कर्मणि यत्, अल्लोपलोपो। पूज्य, नमस्कारयोग्य, आदरणीय।

नमस्या (सं॰ स्त्री॰) नमस्य भावे-अ, स्त्रियां टाप्। पूजा।

नमस्यु (सं॰ त्रि॰) नमस्य छन्दसि उ। १ नमस्कारशील, नमस्कार करनेके योग्य, आदरणीय। (पु॰) २ पुरुवंशीय नृपभेद, पुरुवंशके एक राजाका नाम।

नमस्वत् (सं॰ त्रि॰) नमस्-मतुप्, मस्य व। अन्नवत्, अन्नविशिष्ट, जिसमें अनाज हो।

नमस्विन् (सं॰ त्रि॰) नमस्-मत्वर्थे विनि। नमस्कारस्तोत्रयुक्त।

नमाज (फा॰ स्त्री॰) उपासना, मुसलमानोंकी ईश्वर-प्रार्थना। कुरानमें दैनिक चार बार नमाज पढ़नेकी व्यवस्था है, यथा—सायङ्कालमें (सस) और प्रातःकालमें (सुभा) ईश्वरका महिमा-कीर्त्तन, अपराह्णमें (आसर)

और मध्याह्नमें (जहर) ईश्वरका स्तोत्रपाठ ; इसके अतिरिक्त रातके प्रथम भागमें एक बार और भी नमाज पढ़ी जाती है। नमाजके पहले हाथ पैर धो कर आचमन करना होता है। इस प्रकारके आचमनको 'वजु' कहते हैं। पहले सीधा खड़ा हो कर पश्चिम अर्थात् मक्काकी ओर मुंह किये नमाज पढ़ते हैं। कान छूना, घुटने टेक कर बैठना, शरीरको आधा झुका कर खड़ा होना, जमीन पर लेट रहना और सीधा खड़ा होना, ये सब नमाजके प्रधान अङ्ग हैं।

नमाजके समय एक मुल्ला मस्जिद पर चढ़ कर बहुत जोरसे ईश्वरका आह्वान करता है। इस आह्वानको 'आजान' और आह्वानकारीको मुयेज्जिन कहते हैं। निम्नलिखित वाक्य उच्चारण करके आह्वान किया जाता है ; जैसे—ईश्वर सभीसे बड़े हैं (चार बार), मैं प्रमाण देता हूं, कि एक ईश्वरके सिवा दूसरा देवता नहीं है (दो बार), मैं प्रमाण देता हूं, कि महम्मद ईश्वरके प्रेरित हैं (दो बार), उपासनाके लिये यहां आवो, (दो बार)। मुक्तिके लिये यहां आवो (दो बार), ईश्वर सभीसे बड़े हैं। प्रातःकालमें जो उपासना की जाती है, उसमें कहा जाता है, कि निद्राकी अपेक्षा उपासना श्रेष्ठ है। भारतवर्षके युक्त-प्रदेशीय मुसलमान कई प्रकारकी नमाज पढ़ते हैं; यथा—फजरकी नमाज अर्थात् प्रातरुपासना, जहरकी नमाज मध्याह्नोपासना, आसरकी नमाज अर्थात् अपराह्नोपासना, मग्रिबकी नमाज—अस्तोपासना, आयसाकी नमाज—सन्ध्योपासना, नमाज इसराक—सवेरे ७॥ बजेके समय, नमाज चास्त—सवेरे ८ बजेके समय, नमाज ताहाजुंर—रात १२ बजेके बाद और नमाज-ईयमाजा अर्थात् सत्कारकालीन उपासना।

नमाज समाप्त हो जाने पर उपासक ईश्वरका अनुग्रह मानो हस्तगत करनेकी आशासे अपने दोनों हाथ ऊपर उठाता है और पीछे उस अनुग्रहको अपने सर्वाङ्गमें सञ्चारित कर देता है। मुसलमानोंका स्तोत्र अरबी भाषामें लिखा है।

नमाजगाह (फा० स्त्री०) मसजिदमें नमाज पढ़नेकी जगह।

नमाजबंद (फा० पु०) कुश्तीका एक प्रकारका पेच।

नमाजी (फा० पु०) १ नमाज पढ़नेवाला। २ वह कपड़ा जिस पर खड़े हो कर नमाज पढ़ी जाती है।

नमि—एक साधु, रुद्रटके काव्यालङ्कारके एक टीकाकार। ये शालिभद्रिके छात्र थे। दशनसप्ततिका नामक ग्रन्थमें इनका उल्लेख है। इन्होंने उक्त अलङ्कारटीका ११२५ ई० में बनाई है। यह टीका बड़े कामकी चीज है।

नमि—एक कवि। इनका पूरा नाम अमीर मुहम्मद माजम नमी था। ये अकबरको राजसभाके एक सभासद् थे। इनके बनाए हुए पांच काव्य मिलते हैं। जिनमें दश हजार श्लोक हैं। १५२३ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

नमित्तल्लाम—एक विख्यात अरब देशीय कवि। १००८ ई०में इनका देहान्त हुआ।

नमित (सं० त्रि०) नमोऽस्य सञ्जातः इति तारकादित्वादितच्, वा नम-णिच्-क्त, बाहुलकात् ह्रस्वः। नामित, झुका हुआ।

नमिस (फा० स्त्री०) जाड़ेमें खाये जानेका दूधका फेन जो विशेष प्रकारसे तैयार किया जाता है। पहले दूधको उतार कर उसमें चीनी या मिसरी, इलायची, केसर आदि मिला देते हैं। बाद उसे रात भर ओसमें छोड़ देते हैं और बहुत सवेरे उसे मथानीसे मथते हैं। ऐसा करनेसे उससे फेन निकलता है।

नमी (सं० पु०) नम बाहुलकात् ई। ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम। ये इन्द्रके उपासक थे। इन्द्रने इन्हींके लिये नमुचिको मारा था।

नमी (फा० स्त्री०) आर्द्रता, तरी, गीलापन।

नमीनाथ—जैनोंके वर्त्तमान अवसर्पिणीके इक्कीसवां तीर्थङ्कर। इनका जन्म इक्ष्वाकु-वंशमें हुआ था। इनके पिताका नाम विजय और माताका नाम विप्रा था। इनको च्यवनतिथि आश्विनी पूर्णिमा है और विमानका नाम है प्राणतदेव। श्रावणी कृष्णाष्टमीके आश्विनी नक्षत्रकी मेषराशिमें मथुरा नगरमें इनका जन्म हुआ। ८ मास ८ दिन ये गर्भमें रहे थे। इनके कमलका चिह्न था, शरीरमान १५ धनु, गात्रवर्ण पीला और आयुष्काल १०००० वर्ष था। इन्हें राजाकी उपाधि थी और इन्होंने विवाह भी किया था। मथुरा नगरमें इनकी दीक्षा हुई। इनका दीक्षातरु १००० है। २० दिन उपाय रह कर इन्होंने

दिवकुमारने घरमें दूध पीया था। आषाढ़ी कृष्णानवमीमें इन्होंने दीक्षा ग्रहण की और ८ मास छद्मस्थमें रहे। मथुरा इनकी ज्ञाननगरी मानी जाती है। इनकी गणधर संख्या १७, साधुसंख्या २० हजार और साध्वीसंख्या ४१ हजार है। इनके समयमें ४५० मनुष्य १४वीं पूर्वी, १६०० केवली, १७०००० श्रावक और ३४८००० श्राविका थे। अग्रहायणी शुक्ल एकादशी इनकी ज्ञानतिथि बकुल-वृक्ष इनका दीक्षावृक्ष और कार्योत्सर्ग ही इनका मोक्षासन माना जाता है। वैशाखी कृष्णादशमी इनकी मोक्षतिथि है। समेतशिखरमें इन्होंने मोक्ष लाभ किया। इनके प्रथम गणधरका नाम शुभ और प्रथम आर्याका नाम अमिला है। (जैनशास्त्र)

नमुचि (सं० पु०) न मुञ्चतीति मुच-इन्, सच कित्। १ कन्दर्प, कामदेव। २ दैत्यभेद, एक दानवका नाम। वामनपुराणके अनुसार यह शुम्भ और निशुम्भका तीसरा भाई था। कश्यपके दनु नामक एक स्त्री थी। इसी दनुके गर्भसे तीन पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमेंसे बड़ा शुम्भ, मंझला निशुम्भ और छोटा नमुचि था। (वामनपु० ५२ अ०) ३ विप्रचित्ति नामक दानवका पुत्र। यह दानव पहले इन्द्रका सखा था। इसने सोमरसके साथ इन्द्रका बल हर लिया था। इन्द्रने सरस्वती और अश्विनीकुमारद्वयसे समुद्रके फेनके समान वज्रास्त्र ले कर उसीके द्वारा मारा था। महाभारतमें लिखा है कि जब नमुचिने इन्द्रसे भयभीत हो कर सूर्यरश्मिका अवलम्बन किया, तब उसी जगह इन्द्रके साथ मित्रता कर ली। इन्द्रने इससे प्रतिज्ञा की थी, कि मैं न तो तुम्हें दिनमें मारूंगा और न रातमें, न सूखे अस्त्रसे मारूंगा न गीले अस्त्रसे। पीछे उन्होंने समुद्रके झागके समान एक वज्रास्त्रसे इसका वध किया। (भारत १।४१ अ०) ४ पुष्पधनु, फूलका धनुष।

नमुचिद्विष् (सं० पु०) नमुचिं द्वेष्टि द्विष-क्विप्। इन्द्र, नमुचिसूदन।

नमुचिसूदन (सं० पु०) नमुचिं दैत्यभेदं सूदयति सूद-ल्यु। नमुचिको मारनेवाले इन्द्र।

नमुर (सं० पु०) नम बाहुलकात् उर। नमुचि नामका असुर।

नमूदार (फा० वि०) दृग्गोचर, प्रकट, जो उदित हुआ हो।

नमूना (फा० पु०) १ वह पदार्थ जिसके अनुकरण पर वैसे ही और पदार्थ बनाये जांय। २ ढांचा, ठाठ, खाका। ३ वह पदार्थ जिससे उसके सदृश दूसरे पदार्थोंके स्वरूप और गुण आदिका ज्ञान हो जाय। ४ किसी बड़े या अधिक पदार्थमेंसे निकला हुआ वह छोटा या थोड़ा अंश जिसका उपयोग उस मूलपदार्थके गुण और स्वरूप आदिका ज्ञान करानेके लिये होता है, बानगी।

नमेरु (सं० पु०) नम्यते इति नम बाहुलकात् एरु। १ वृक्षविशेष, एक प्रकारका पुन्नाग। २ रुद्राक्षका पेड़। ३ सरल देवदार।

नमोगुरु (सं० पु०) नमः नमस्कारणीयः गुरुः। ब्राह्मण। ये सभी वर्णोंके गुरु हैं, इनसे सभीसे नमस्कार करने योग्य हैं। इसी कारण नमोगुरु कहनेसे ब्राह्मणका बोध होता है।

नमोवाक (सं० पु०) वच-भावे घञ्, नमसो वाक् वा नमस्काराय उच्यते या वाक् कर्मणि घञ्। १ नमोवचन, नमस्कारका वाक्य। (त्रि०) २ नमस्कारार्थ कथनीय वाक्य, प्रणामके लिए कहने योग्य वचन।

नमोवृध (सं० पु०) वृध भावे क्विप्, नमसोऽन्नस्य वृध् वर्द्धनं यस्मात्। यज्ञ, यज्ञानुष्ठान करनेसे शस्यादि खूब उपजते हैं। इसलिये यज्ञको अन्नवर्द्धक भी कहते हैं। क्योंकि शास्त्रमें लिखा है—

"अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टि वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥" (गीता)

अग्निमें जो आहुति दी जाती है, वह सूर्यलोकको जाती है, सूर्यसे वृष्टि होती है, वृष्टिसे अन्न उपजता है और अन्नसे प्रजा पलती है। एक मात्र यज्ञ ही सबका मूल हैं।

नम्बियुर—मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत कोयम्बतूर जिलेका एक शहर। यह अक्षा० ११° २१´ ३०´´ उ० और देशा० ७७° २२´ पू०के मध्य अवस्थित है।

नम्बिराज—दाक्षिणात्यके गोदावरी प्रदेशका एक राजा। द्राक्षाराम नामक स्थानमें भीमेश्वरका जो एक मन्दिर है, उस मन्दिरमें इनका दिया हुआ (१०५३ शकमें उत्कीर्ण) एक दानपत्र मिलता है।

नम्बिग्राक्षणार—एक साधु पुरुष। इनका दूसरा नाम सुन्दरमूर्त्ति है। इनके बनाये हुए कुछ स्तोत्र मिलते हैं। ये चोलवंशीय राजा राजदेवके पहले विद्यमान थे।

नम्बुरी—मलवार उपकूल (प्राचीन केरलदेश)का उच्च श्रेणीका ब्राह्मण। महात्मा शङ्कराचार्य नम्बुरी ब्राह्मण थे।

नम्बुका अर्थ वेद और तिरीका अर्थ अवगत होता है, अर्थात् ये लोग वेदसे जानकार हैं। इसीसे इस श्रेणीके ब्राह्मणोंका नाम 'नम्बुत्तिरी' पड़ा है और इसीका विकृत रूप नम्बुरी है।

केरलदेश ही इस श्रेणीके ब्राह्मणोंकी आवासभूमि है। जहां पर ये लोग घर देते हैं, वह स्थान 'मन' वा 'इल्लोम' कहलाता है। इनके घरका प्राङ्गणदेश बहुत बड़ा होता है जिसके एक ओर नागोंके लिए स्थान और दूसरी ओर शवदाहके लिए घर श्मशानरूपमें निर्दिष्ट रहता है। इनकी स्त्रियोंको 'अन्तर्जना' अथवा 'अकतमार' कहते हैं। स्त्रियां मोटा कपड़ा पहनती, हाथोंमें पीतलका कंकण, गलेमें सुवर्ण-कण्ठभूषण और कानोंमें कनेठियोंका व्यवहार करती हैं। ये लोग कभी नाक नहीं छिदाती और न कपाल पर कुङ्कुम ही पहनती हैं। केवल ललाट पर चन्दनका तिलक और आंखोंमें काजल लगाती हैं।

हर एक अन्तर्जनाके पास एक एक दासी रहती है, जिसे वृषली वा पिषती कहते हैं। जब ये बाहर निकलती, तब वृषली इनके आगे आगे चला करती हैं। राहमें वे अपना समूचा बदन ढके रहती हैं और तालपत्रकी छतरी व्यवहार करती हैं। यह छतरी इस प्रकार बनी होती है, कि बाहरसे इनका मुख दिखाई नहीं देता।

नम्बुत्तिरीब्राह्मण ६४ प्रकारके नियमोंका पालन करते हैं, यथा—

१। मार्जनीकाष्ठ द्वारा दतुवन न करना।

२। स्नानके समय परिधेय बहिर्वस्त्र अर्थात् लुंगीको उतार न रखना।

३। बहिर्वास अर्थात् लुंगी द्वारा गात्रमजन न करना।

४। सूर्योदयके पहले स्नान न करना।

५। स्नानके पहले रसोई न करना।

६। पूर्व रात्रिके उद्धृत जलको काममें न लाना।

७। स्नानके समय किसी प्रकारकी चिन्ता न करना।

८। किसी विशेष उद्देशसे लाये हुए जलको दूसरे कामोंमें न लाना।

९। ब्राह्मण भिन्न अन्य जातिको स्पर्श करनेसे स्नान अवश्य करना।

१०। अस्पर्शीय जातिके निकट आनेसे स्नान कर लेना।

११। पतितजातिसे स्पृष्ट कूप वा सरोवरका जल स्पर्श करनेसे स्नान करना।

१२। जिस स्थान पर झाड़ू दिया गया हो, उस स्थान पर बिना जल छिड़कके पैर न रखना।

१३। अपने सम्प्रदायका चिह्न कपाल पर धारण करना।

१४। जादू टोना न करना।

१५। पशु चितामें ग्रहण न करना।

१६। सन्तानका जूठा न खाना।

१७। शिवोपासक कभी शिवप्रसादका परित्याग नहीं कर सकता।

१८। हाथसे अन्न न परोसना।

१९। भैंसके घीसे होम न करना।

२०। वात्सरिक श्राद्धमें भैंसके घीका व्यवहार न करना।

२१। सम्प्रदाय-नियमानुसार भोजन करना।

२२। पतित जातिको स्पर्श करके बिना स्नान किये न खाना।

२३। पाठावस्थामें ब्रह्मचर्यका पालन करना।

२४। यथाशक्ति गुरुदक्षिणा देना।

२५। राहमें खड़ा हो कर वेदमन्त्र न पढ़ना।

२६। कन्याविक्रय-निषेध।

२७। व्रतानुष्ठान करके प्रतिष्ठा करना।

२८। रजःस्वला अवस्थामें अलग न रहना।

२९। सूत न कातना।

३०। ब्राह्मणको अपना वस्त्र धोना निषेध।

३१। शूद्रके वात्सरिक श्राद्धमें दान ग्रहण न करना।

३२। पिता, पितामह, मातामह, माता पितामही आदिका वात्सरिक श्राद्ध अवश्य करना और पितृव्योंके उद्देशसे आज्ञानुसार पिण्ड देना।

३३। समावर्त्तनको वात्सरिक कार्यका शेष न करना।

३४। संवत्सर बीत जाने पर सपिण्डदान अर्थात् सपिण्डीकरण करना।

३५। नक्षत्रानुसार वात्सरिक श्राद्ध करना, न कि तिथिके अनुसार।

३६। जाताशौच बीत जाने पर आभ्युदयिक श्राद्ध करना।

३७। दत्तक स्वपिता और गृहीत-पिता दोनोंका श्राद्ध कर सकता है।

३८। मृतको अपने होमके प्राङ्गणमें दाह करना।

३९। संन्यास ग्रहण कर स्त्रियोंके प्रति दृष्टिनिःक्षेप न करना।

४०। परजन्मके लिए कामना न करना।

४१। पिताके संन्यास ग्रहण करने पर पुत्र उसका श्राद्ध नहीं कर सकता।

४२। अन्तर्जनागण परपुरुषका मुख न देखे।

४३। अन्तर्जना अपनी वृषली और तालपत्रको छतरी-को साथ लिए बिना बाहर नहीं निकल सकती।

४४। स्त्रियां नाकमें छिदवावे और पीतलके कङ्कण, चांदीकी बाली तथा कण्ठहारके सिवा दूसरा आभरण पहन नहीं सकतीं। किन्तु अन्य स्त्रियां कण्ठादिमें नाना प्रकारके अलङ्कार पहन सकती हैं।

४५। मादक द्रव्य सेवन करनेसे समाजच्युत होगा।

४६। ब्राह्मण परस्त्रीका संसर्ग न करे, करनेसे समाजच्युत होना पड़ेगा।

४७। शूद्रदेवता स्पर्श न करना।

४८। जो द्रव्य एक बार देवताको चढ़ाया गया हो, उसे दूसरी बार न चढ़ाना।

४९। विवाहादि कार्योंमें होम करना।

५०। भट्ट ब्राह्मणके साथ रह कर अन्य स्वश्रेणीके ब्राह्मणको तथा किसी अन्य ब्राह्मणको आशीर्वाद वा अभिवादन न करना।

५१। पुरुष और स्त्री शुक्लवस्त्र पहने स्त्रियोंके लिए अन्तर और बहिर्वास रहे, अन्तर्वासका परिमाण ५ हाथ हो। इसी वस्त्रसे हिन्दुस्तानी पुरुषके जैसा काछ बांधे साधारण ब्रह्मचारीकी तरह कमरमें बहिर्वास बांधे रहे। पुरुष लंगोटी पहने और बहिर्वाससे साधारण ब्रह्मचारीकी तरह कमर बांधे रहे।

५२। ब्राह्मणके लिये गोमेध निषेध।

५३। एक ही मनुष्य शिव और विष्णुकी पूजा नहीं कर सकता।

५४। विवाहित ब्राह्मण केवल एक यज्ञोपवीत और भट्ट ब्राह्मण कमसे कम दो ग्रन्थियुक्त यज्ञोपवीत पहने।

५५। ब्राह्मणका बड़ा लड़का यथाविधान पाणिग्रहण करे।

५६। ब्राह्मणके बड़े लड़केको छोड़ कर, शेष लड़के वेदाध्ययन और समावर्त्तनक्रियाके बाद नायर स्त्रीसे गन्धर्व-विवाह करे।

५७। मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे पक्वान्न पिण्ड दे।

५८। अन्तर्जनाका मस्तक न मुंड़वावे, उसे ब्रह्म-चारिणी अवस्थामें रहने दे।

५९। सतीदाह निषेध।

६०। सभी पुरुष रूढ़ हो।

६१। जो 'इस्लाम' 'मत' वा 'तारवद' सम्पत्तिका भोग करना चाहे, उसे समाजच्युत कर दे।

६२। कन्याका विवाह रजोदर्शनके बाद करे। नायर और क्षत्रिय जातिकी तालिबन्धक्रिया पुष्पोद्गमके पहले हो। पीछे जवानी आने पर गन्धर्वविधानसे ब्राह्मणके साथ कर दे।

६३। नायर रमणी अन्तर्जनाको प्रसवावस्थामें सेवा करे और उसे अन्नादि पथ्य दे। इनका अन्न ग्रहण करनेसे भी पतित नहीं हो सकता।

६४। नम्बूतिरी ब्राह्मण मध्याह्न भोजनके बाद और-काम कर सकते।

सभी इन ६४ प्रकारके नियमानुसार चलते हैं।

ये लोग ब्राह्म मुहूर्तमें उठ कर यथाविधि प्रातः-शौचादि समाप्त करके सूर्योदयके बाद स्नान करते, पीछे भंगे पैर देवालय जाते और वहां गन्धचन्दनादि लगा कर ग्यारह बजे तक वेदपाठ पढ़ते हैं। तदनन्तर घर आ कर भोजन करते हैं। अपराह्णमें तेल लगा कर स्नान करते हैं और सन्ध्यावन्दनादि समाप्त करके रातको ८ बजेके बाद खा कर सो जाते हैं। ये लोग संस्कृत भाषामें पारदर्शी हैं। ब्राह्मण केवल हिन्दूराजाओंके यहां नौकरी करते। आज तक नम्बूरी ब्राह्मणने अंगरेजोंके अधीन नौकरी नहीं की है।

नम्बुरिरी बालकगण उपनयनके बादसे ही ब्रह्मचर्याश्रम ग्रहण करते हैं। वेदाचार्य शिष्यके मस्तक पर हाथ रख कर धीरे धीरे ताल द्वारा वेद सिखाते हैं। शिष्य भी उसी तालसे वेदाभ्यास कर लेते हैं।

इन लोगोंका ज्येष्ठ पुत्र ही विवाह करता है। इस कारण इनमें अनेक लड़कियां कुमारी रहती हैं। बहुविवाह भी इनमें प्रचलित है।

रजोदय नके बाद जिस कन्याकी अविवाहितावस्थामें मृत्यु होती है, उसके गलेमें कोई ब्राह्मण ताली नामक मङ्गलसूत्र बांध देते हैं, पीछे उसकी अन्त्येष्टिक्रिया होती है।

कन्याके विवाहमें पिताको बहुत खर्च करना पड़ता है। पहले वर और कन्याकी कोष्ठी मिलाई जाती है। पीछे यौतुकका मूल्य कमसे कम २०००) रु० स्थिर होता है। यह विवाह कन्याके 'इल्लोम'में बहुत धूमधामसे होता है। वरकर्त्ता पुत्रके लिये कन्याकर्त्ताके निकट प्रार्थी होते हैं. उनकी स्वीकारता ही वाक्‌दान समझी जाती है। बाद विवाहका दिन स्थिर होता है। उसी शुभदिनमें वर कलाईमें मङ्गलसूत्र बांध हाथमें वंशदण्ड ले कर नायर जातिकी स्त्रियोंके साथ कन्याके इल्लोममें आता है। इधरसे भी नायर जातिकी स्त्रियां नम्बूरिरी ब्राह्मणोंसी पोशाक पहन कर वरको लाने जाती हैं। दीप द्वारा आरति उतारती हैं और 'अष्टमाङ्गल्यम्' नामक गीत गाती हैं। बाद वर और कन्याको अलग अलग गोद पर चढ़ा कर लाती हैं। वहां वे दोनों भर पेट खा लेते हैं। इस प्रकारके भोजनका नाम "अयो निउन्" है। अनन्तर वर अपने हाथमें वंशदण्ड ले कर तथा कन्या दर्पण और तीर ले कर विवाहसभामें आती हैं। कन्याका पिता वरके पैर धो देता है। कोई नायर युवती कन्याकी माता बन कर वहां आती है और दीपालोक झुलाती है। इसी समय दूसरी ओर परदेकी आड़से अन्य नायर युवती एक स्वरसे गीत गाती हैं। इधर कन्या वरके सामने आ कर उसके पैरों पर पुष्पाञ्जलि देती और गलेमें माला डालती है। इस समय वेदमन्त्रका पाठ भी होता है। बाद कन्याका पिता यथाविधान वेदमन्त्र पढ़ कर यौतुकके साथ कन्यादान करता है। इसी समय सप्तपदीगमन आदि सभी कार्य समाप्त हो जाते हैं। पिता कन्याको स्वामीकी सहधर्मिणी हो कर गृहस्थाश्रममें सहायता पहुंचानेके लिये तरह तरहका उपदेश देता है। अनन्तर वर कन्याको ले कर अपने इल्लममें आता है। यहां अन्तर्जना कन्याको घरका काम काज सिखाती है। वह कन्या एक जूही फूलका पेड़ रोपती है और प्रतिदिन उसमें जल देती है। तीसरे दिनमें होम और चौथे दिनमें गर्भाधानक्रिया समाप्त होती है। नव दम्पती जब शय्या पर जाता है, तब दरवाजा बन्द कर दिया जाता है और पुरोहित तत्कालोचित मन्त्रका पाठ करता है। पांचवें दिनमें वर मङ्गलसूत्र और वंशदण्डका परित्याग करता है। गर्भावस्थाके तीसरे, पांचवें और नवें महीनेमें विशेष संस्कारकार्य होता है। प्रसवके बाद अन्तर्जना नायाम खा सकती है, इसमें कोई दोष नहीं लगता।

पुत्रादि होने पर पिता ग्यारहवें दिनमें नामकरण, छठे महीनेमें अन्नप्राशन, तीसरे वर्षमें चूड़ाकरण और पांचवें वर्षमें विजयादशमीके रोज विद्यारम्भ कराता है। सातवें वर्षमें कर्णवेध और उपनयन होता है। अनन्तर वह बालक घरमें रह कर वेदादि पढ़ता है। वेदपाठ हो जाने पर गुरुदक्षिणा दे कर समावर्त्तनकार्य शेष किया जाता है। बड़ा लड़का ही विवाह करता है। छोटे लड़के क्षत्रिया अथवा नायर-युवतीके साथ गान्धर्व विवाह करते हैं।

किसीके मरने पर घरके एक अंशमें दाहकर्म किया जाता है। चिताके ऊपर शव रखनेसे पहले पिण्ड देना होता है। उस समय सभी वेदपाठ करते हैं और नवखण्ड सुवर्ण द्वारा मुखमें अग्नि देते हैं। ये लोग दश दिन अशौच मानते हैं और एकाहारी रहते हैं। अशौचावस्था तक कोई नमक नहीं खाता।

ये लोग अपने बालोंको उतना सजाते नहीं। शुभ्रवर्णका वस्त्र व्यवहार करते हैं। पुरुष लंगोटी लगाता है, ऊपरसे ब्रह्मचारीकी तरह चार हाथकी लुंगी पहनता है और कन्धे पर एक छोटी तौलिया डाले रहता है। कोई कोई कमरमें रस्सीकी करधनी पहनता है।

ब्राह्मणी साधारणतः सती, साध्वी और पतिसेवामें रत

रहती है, कभी भी परपुरुषका मुंह नहीं देखती। जब वे इल्लोमसे बाहर जाती हैं तब सतीत्वके चिह्नस्वरूप तालपत्रकी छतरी लगाये रहती हैं। अन्तर्जनागण यदि किसी कारण भ्रष्टा हो जांय, तो उनका विचार होता है। विचारमें दोषी साबित होने पर उनके सतीत्वकी चिह्नरूपी छतरी छीनी जाती है। उनका विचारकार्य इस प्रकारसे किया जाता है—किसीको उनके सतीत्वके प्रति सन्देह होने पर पहले 'कार्यवेन' (स्टेट मैनेजर) इसका अनुसन्धान करता है। अन्तर्जनाकी वृषली तथा दूसरेकी गवाही ले कर जब वह भ्रष्टा समझी जाती है, तब 'साधनम्' नामक बहि:प्राङ्गणस्थ पांचवें घरमें बन्द रखते हैं और पहरा बैठाते हैं। पीछे राजाको उसकी खबर देते हैं। राजा अन्तर्जनाकी कलङ्क निष्पत्तिके लिये विचार-समिति निर्देश करके अनुज्ञापत्र देते हैं, उस विचार-समितिको स्मार्त्त-विचार-समिति कहते हैं। उस समितिमें राजाके प्रतिनिधि दो श्रौत-विचारक और दो स्मार्त्त विचारक रहते हैं। विचारके समय राजाकी ओरसे भी दो मनुष्य आते हैं, जिनमेंसे एकको शान्तिरक्षक और दूसरेको असक्कोयम् कहते हैं। अन्तर्जना जब तक स्वयं अपने मुखसे दोषको कबूल नहीं करती, तब तक विचारका अनुसन्धान चलता रहता है और कलङ्किनीको अपने मुखसे कलङ्क स्वीकार करानेकी चेष्टा की जाती है। इस दोषको स्वीकार करानेमें अनेक दिन लगते हैं। दोषके साबित नहीं होने पर सभी साध्य साधना करके उसमें क्षमा मांगते हैं। कलङ्किनीके स्वयं दोष कबूलने तथा अपने यारोंके नाम कहनेसे हो वह यथार्थमें दोषी प्रमाणित होती है। उसी समय उसका विचार शेष हो जाता है। पीछे कलङ्किनीको सबके सामने ताली दे कर घरसे निकाल देते हैं। पहले विचारका सार अर्थ उसके सामने पढ़ा जाता है। पीछे नायरजातीय कोई स्त्री आ कर उसका सतीत्वछत्र छीन लेती है। उस समय सभी ताली बजाते हैं, बाद वह वहांसे स्वेच्छानुसार जहां तहां जा सकती है। फिर उसे किसी नियमका पालन नहीं करना पड़ता है। जिसके साथ वह भ्रष्टा होती है, वह पुरुष भी समाजच्युत होता है। दोनों ही घरसे निष्क्रान्त हो कर 'नम्बियर' और 'चक्कियर' नामसे पुकारे जाते हैं। वे दोनों अस्पृश्यमें गिने जाते हैं। उस असतीके आत्मीय उसके मरने पर पद्धतिके अनुसार अन्त्येष्टिक्रिया, प्रायश्चित्त, ब्राह्मण-भोजनादि करके विशुद्ध होते हैं।

ऐसा कठोर दण्ड रहनेके कारण इनमें प्राय: असती देखी नहीं जाती।

सभी नम्बूतिरी ब्राह्मणके थोड़ी बहुत भूसम्पत्ति है और उसीसे अपना गुजारा करते हैं। ये लोग शहरमें जाना पसन्द नहीं करते। रास्तेमें जब कोई शूद्र मिल जाता है, तब 'आया आया' ऐसा शब्द सुनते ही वह दूसरा रास्ता पकड़ लेता है।

नम्बुरी ब्राह्मण साधारणत: दो सम्प्रदायोंमें विभक्त हैं, 'तिरुनवोययोगम्' और 'त्रिचुरयोगम्'। प्रत्येक सम्प्रदायका प्रधान आचार्य 'वद्धन' कहलाता है। जो उत्कृष्ट नम्बूतिरी हैं, वे नम्बुतिपाद या अध्यन नामसे प्रसिद्ध हैं। फिर इनमें भी 'अझुवन्चेरी' श्रेष्ठ समझे जाते हैं। इस प्रकार और भी आठ श्रेणीके नम्बुरी ब्राह्मण हैं जो 'अष्ट-गृहअध्यन' कहलाते हैं।

अग्निहोत्रियोंको 'अक्कित्तिरी अध्यन' कहते हैं। इनमें-से जो सोमयोग कर सकते, वे चोतमिरी अथवा सोम-याजी पद, जो अधनोम याग करनेमें समर्थ हैं, वे 'अदि-तोरी' वा 'अदिश्यरिपद' कहलाते हैं।

जो दर्शनशास्त्र पढ़ते हैं और यागानुष्ठान नहीं करते, उन्हें भट्टद्दत्तिकर वा भट्टात्तिरी कहते हैं। यह सम्प्रदाय ५ श्रेणियोंमें विभक्त है, यथा—वद्धन्, वैदिकन्, स्मार्त्तन्, तान्त्री और शान्तिक।

१। वद्धनोंका नाम उग्रिकन् है। ये लोग वेदाचार्य हैं अर्थात् आप पूजा करते हैं और बालकोंको वेद सिखाते हैं।

२। वैदिकन्—ये लोग वैदिक कार्यका मतामत देते हैं और पूजादिके समय वद्धनोंका कार्यकलाप देखते हैं।

३। स्मार्त्तन्—इस श्रेणीके लोग स्मृतिशास्त्रकी व्यवस्था तथा आचारादिकी मीमांसा करते हैं।

४। शान्तिक—ये लोग होमया पूजादि शान्तिकर कामोंमें लगे रहते हैं।

नम्बुत्तिरीमें कई एक श्रेणीके पण्डित ब्राह्मण देखनेमें आते हैं।

१। 'मुस्‌सद'—ये अष्टवर वैद्य अष्टमस्‌सद नामसे प्रसिद्ध हैं। परशुरामके आदेशसे इन्होंने आयुर्वेद पढ़ा था और उसीके अनुसार ये चिकित्सा करते हैं। इन्हें वेदाध्ययन और संन्यास ग्रहण करनेका अधिकार नहीं है।

२। अष्टचर-ब्राह्मण—ये लोग परशुरामकी आज्ञासे मन्त्रशास्त्रमें पारदर्शी हुए थे, इसीसे इनका नाम मन्त्रोक्त पड़ा है।

३। जिन ब्राह्मणोंने हथियार धारण किया था, वे 'आयुधमाचि' 'ग्रामाकुमार' वा 'रक्षापुरुष' कहलाते हैं। लोगोंके नायकको 'नम्बुत्तिरी' और अधिनायक वा सेनापतिको 'इदपल्ली नम्बुत्तिरी' कहते हैं। अभी ये लोग याजा व्यवसाय करते हैं। उत्तर मलवारमें इन्हें 'नम्बिदि' कहते हैं।

४। जिन सब ब्राह्मणोंने परशुरामसे ग्राम पाये थे, वे ग्रामी कहलाते हैं। अभी मलबारमें इनके दश वंश और कोचीनमें ८ वंश पाये जाते हैं।

५। 'उरिल परिष मुस्‌सद' अथवा 'परदर'।—परशुरामने जब पृथिवीको निःक्षत्रिय कर डाला था, तब उस पापके प्रायश्चित्तके लिए इन्होंको दान दिया था। यह दान ग्रहण करनेके कारण ये लोग पतित हो गये हैं।

६। 'नम्बिदी'—इनके पूर्वपुरुष किसी समय एक राजाकी हत्या करके पतित हुए थे। उत्तर मलवारमें ये लोग नायरोंकी अन्त्येष्टिक्रिया और पौरोहित्य कराते हैं तथा 'राजका नम्ब त्तिरी' नामसे प्रसिद्ध हैं।

७। 'इलादद'—ये लोग दक्षिण मलवारमें नायरोंकी अन्त्येष्टिक्रिया कराते हैं।

८। 'पत्तियुरग्राम-नम्बुत्तिर'—ये लोग उत्तर मलवारमें और दक्षिण कनाड़ामें 'अम्बुवन' अथवा 'तिरुसम्बु' नामसे मशहूर हैं। यद्यपि इन लोगोंका विवाह नम्बुत्तिरियोंकी तरह होता है, तो भी सन्तान पितृसम्पत्ति नहीं पाती, केवल मातृसम्पत्ति पाती है। इनकी कन्या जब विवाहके योग्य होती, तब वे उसे वैदिक नम्बुत्तिरीको कन्यादान कर देते हैं। विवाहके सभी कार्य शेष हो जाने पर लड़का समाजसे अलग कर दिया जाता है और लड़कीके घर जा कर रहने लगता है तथा लड़कीको ही 'तारवड़' सम्पत्तिसे प्रतिपालन होता है।

९। पिदारक्कर—ये लोग भद्रकालीके उपासक हैं और शराब खूब पीते हैं। इनका दूसरा नाम 'भूतरोका' वा 'सर्परोका' भी है। इनकी स्त्रियां परदानशीन नहीं हैं। ये सब ब्राह्मण किस समय पतित हो कर उक्त नामोंसे पुकारे जाते हैं, उसका निर्णय करना कठिन है।

नम्य (सं० त्रि०) नम पवर्गान्तत्वात् कर्मणि यत् न ण्यत्। नमनीय, झुकने योग्य।

नम्र (सं० त्रि०) नमतीति नम-र (नमिकम्पीति। पा ३।२।१६७) १ नत, झुका हुआ। २ विनीत, जिसमें नम्रता हो। (पु०) ३ वेतसवृक्ष, बेंत।

नम्रक (सं० पु०) नम्र इव कायति कै-क। १ वेतसवृक्ष, बेंत। नम्र एव स्वार्थे कन्। (त्रि०) २ नत, झुका हुआ।

नम्रता (सं० स्त्री०) नम्रस्य भावः नम्र-तल् स्त्रियां टाप्। १ नम्रत्व, नम्र होनेका भाव।

नम्रत्व (सं० क्ली०) नम्रभावे त्व। नम्रता, नम्र होनेका भाव।

नम्रप्रकृति (सं० पु०) नम्रा प्रकृतिर्यस्य। नम्रस्वभाव, वह जिसका स्वभाव नम्र हो।

नम्रमुख (सं० पु०) नम्रं मुखं। १ अवनत मस्तक, झुका हुआ सिर। (त्रि०) २ जिसका मस्तक झुका हो।

नम्रमूर्त्ति (सं० त्रि०) नम्रा मूर्त्तिर्यस्य। नत, विनीत, जिसमें नम्रता हो।

नम्रस्वभाव (सं० त्रि०) नम्रः स्वभावो यस्य। नम्र प्रकृति।

नय (सं० पु०) नी-भावे अच्। १ नीति। २ द्यूतभेद, एक प्रकार जुआ। ३ विष्णु। ४ न्याय। ५ नम्रता। ६ जैनदर्शनमें प्रमाणों द्वारा निश्चित अर्थको ग्रहण करनेकी वृत्ति। यह वृत्ति सात प्रकारकी होती है—नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत।

नयकृति (हिं० पु०) नैकृत देखो।

नयक (सं० त्रि०) नय आर्षकादित्वात् वुन्। नीति कुशल।

नयक (नायक)—एक निकृष्ट जाति। इस जातिके मनुष्य जयपुर, मारवाड़, मेवार और मालव आदि स्थानोंमें वास करते हैं। ये लोग वैरागी वा संन्यासी-सा वेश बना कर इधर उधर भ्रमण करते हैं और अवसर पाकर हत्या, चोरी आदि असत् कार्य भी कर डालते हैं।

नयकड़ा—बम्बई प्रदेश और महाराष्ट्र देशको एक आदिम असभ्य जाति।

नयग्राम—सिन्धु नदीके किनारे अवस्थित वर्त्तमान नौसराका प्राचीन नाम। टलेमीके भूगोलमें यह नाम पाया जाता है। दोनों नामका अर्थ नया-शहर है।

नयचन्द्रसूरि—हम्मीर महाकाव्यके रचयिता और जयचन्द्र-सूरिके वंशधर। ये जैन धर्मावलम्बी थे और तोमर-वंशीय विराम नामक किसी राजाके सभासद् थे। विराम अकबरसे ७० वर्ष पहले राज्य करते थे। कहते हैं, कि राजा हम्मीरने स्वप्नमें नयचन्द्रको अपना दर्शन दे कर हम्मीर महाकाव्य लिखनेकी उपयुक्त शक्ति दी थी। यह भी सुना जाता है, कि विराम राजाकी सभामें किसी मनुष्यने एक दिन कहा था, कि प्राचीन कवियोंकी तरह संस्कृत काव्य कोई लिख सके, ऐसा एक भी देखनेमें नहीं आता। यह सुन कर नयचन्द्रने हम्मीरकाव्य लिखनेकी इच्छा की थी। रणस्तम्भपुरके चौहान-वंशीय हम्मीर उक्त काव्यके नायक थे। उस काव्यमें अलाउद्दीन् द्वारा रणस्तम्भपुरका अवरोध, युद्धमें हम्मीरका पतन और राजपूत-महिलाओंका अग्नि-प्रवेश, ये सब विषय काव्याकारमें वर्णित हैं।

नयन (सं॰ क्ली॰) नीयते दृष्टिविषयोऽनेनेति नी करणे ल्युट्। १ चक्षु, नेत्र, आंख। नी प्रापणे ल्युट्। २ प्रापण, ले जाना। ३ यापन, बिताना।

नयन (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी मछली।

नयनगोचर (सं॰ त्रि॰) समक्ष, दिखाई पड़नेवाला, जो आंखोंके सामने हो।

नयनविज्ञक (सं॰ पु॰) दृष्टिविज्ञान-कुशल।

नयनपट (सं॰ पु॰) आंखकी पलक।

नयनपथ (सं॰ पु॰) नयनस्य पन्था ६-तत्। जितनी दूर तक दृष्टि जा सके, नजरके सामनेका स्थान।

नयनपाल—कान्यकुब्जके प्रथम राठोरराज। कहते हैं, कि वे ५२६ सम्वत्में राजा थे। (Tod's Rajasthan.)

नयनपुट (सं॰ पु॰) नयनस्य पुटः। आंखकी पलक।

नयनप्रसाद (सं॰ पु॰) कतकवृक्ष, निर्मलीका पेड़।

नयनप्लव (सं॰ पु॰) आंखसे डबाडब नेत्र।

नयनबुद्बुद (सं॰ पु॰) नेत्रबुद्बुद, आंखका ढेला।

नयनवारि (सं॰ क्ली॰) नयनस्य वारि। नेत्रजल, आंख-का पानी, आंसू।

नयनविषय (सं॰ पु॰) नयनस्य विषयः। १ नयनपथ। २ चक्रवाल।

नयनशोभाञ्जन (सं॰ क्ली॰) नेत्ररोगघ्नाञ्जन, एक प्रकार-का सुरमा जो आंखकी बीमारीमें लगाया जाता है।

नयनसलिल (सं॰ क्ली॰) नेत्रजल, आंखका पानी।

नयनसिंह—पण्डित नयनसिंहके नामसे प्रसिद्ध एक अनुसन्धानी और भूतत्त्ववित्। लगभग १८२५ ई॰में इनका जन्म हुआ था। वर्तमान शताब्दीके मध्य भागमें आप रवर्ट स्लाँजिण्टवाइटके साथ हिमालय पर जरीब डालनेके लिये नियुक्त हुए थे। बहुत दिन तक आपने उक्त साहबके सहायकके रूपमें रह कर हिमालयके अनेक प्राकृतिक तत्त्वोंका आविष्कार किया था। इसके सिवा आपने अपने स्वामीके साथ मध्य-एशियाके प्राकृतिक भूवृत्तान्तोंको स्थिर करनेके लिये अगम साहसके बहुत-से दुर्गम स्थानोंमें पर्यटन किया था। रवर्टकी हत्याके बाद आपने अपने ग्राममें आ कर कुछ दिन शिक्षकका कार्य-सम्पादन किया था।

ब्रुटिश गवर्नमेण्टको त्रिकोणमितिके परिदर्शक तथा और भी अनेक बड़े बड़े अंग्रेज आपकी कार्यकुशलता-से परिचित थे। १८६० ई॰में त्रिकोणमितिके जरीब-विभागके कर्नल मण्टगोमरीने आपको बुला कर कार्यमें नियुक्त किया। अब तक कोई भी विदेशी तिब्बतकी राजधानी लासा नगरके प्रकृति अवस्थानका निर्णय न कर सके थे; किन्तु आप असीम अध्यवसाय, कष्टसहिष्णुता और सतर्कता आदि गुणोंसे १८६६ ई॰में लासा नगरका प्रकृत भूवृत्तान्त प्रकट कर ब्रुटिस गवर्न-मेण्टके ख्यातिभाजन हो गये। इसके बाद दूसरे ही वर्ष आपने थोक जंगलकी प्रसिद्ध स्वर्ण-खनिका परिदर्शन किया। बादमें सात वर्ष तक तुषारगह्वरमें रह कर आपने तिब्बतके पश्चिमसे पूर्व सीमा तक समस्त स्थानोंका परिदर्शन करते हुए अनेक नवीन तथ्योंका आविष्कार किया। इस सुदीर्घ प्रवासकालमें आपने दूसरे लामाकी राजधानीका परिदर्शन, नाना विवरणोंका संग्रह और सानपू नदीकी गतिके विषयमें अनेक अभिमतका प्रका-

भित किये थे। १८७४ ई०के जुलाई मासमें लामाको पोशाक पहन कर आप लेहसे निकल निकल कर तिब्बतकी सीमा अतिक्रम कर गये। पीछे आपको रदखसे १५ मील चल कर ठीक पूर्व की ओर ८०० मील अज्ञात प्रदेशसे जाना पड़ा था। नवप्रदेशमें सानपू नामक तिब्बतकी महानदी प्रवाहित है, जिसके दोनों ओर समुच्च गिरिमाला भूषित है। आप जिस मार्ग से गये थे, वह स्थान समुद्रपृष्ठसे लगभग १५०० फुट ऊँचा होगा। इस मार्ग में बहुत सी सोनेकी खानें, असंख्य ह्रद और स्रोतस्वती एवं उर्वरा शस्यक्षेत्र हैं।

नयनसिंह तेंगरीनर ह्रदके ईशानकोणसे दक्षिणकी तरफ लासा नगरीको गये और वहां छद्मवेशमें तीन महीने रहे। वहां किसीने भी उन्हें अंग्रेजोंका चर न समझा था। इसके बाद एक परिचित मुसलमानके साथ आपकी मुलाकात हुई। उसने इनकी बात प्रकट कर दी। पर ये पहलेसे ही समझ गये और शीघ्र ही तिब्बतसे चले आये। आपके प्रयत्नसे सानपू नदीके कूलवर्ती लगभग १०० मील स्थानका आविष्कार हुआ। लौटते समय आप भूटान गिरिमालाके ऊपरसे चेतंग और तवंग होते हुए आसाम प्रदेशमें पहुंचे। उदलगिरि पर बैठ कर आपने अपना कार्य समाप्त किया। १८७५ ई०की ११वीं मार्चको आप कलकत्ते उपस्थित हुए। वृटिश गवर्नमेण्टने आपके महत्कार्यसे सन्तुष्ट हो कर आपको एक जागीर दी थी। इसके सिवा विलायतकी रायल जिओग्राफिकल सोसाइटीसे भी आपको प्रशंसासूचक एक स्वर्ण-पदक प्राप्त हुआ था। १८८० ई०में (माघमासमें) आपकी मृत्यु हुई थी।

नयनागर (सं० त्रि०) नीतिज्ञ, नीतिपुराण।

नयनाञ्जन (सं० क्ली०) १ कज्जलविशेष, काजल। २ शुर्मा, सुरमा।

नयनानन्द—१ इनका दूसरा नाम भुवानन्द था। ये वाणीनाथके पुत्र और गदाधर पण्डितके भतीजे थे। इनकी कृष्ण और गौरलीलाविषयक पदावली बहुत मधुर हैं। पदकल्पतरुमें इसकी पदावली उद्धृत हुई हैं। २ अमरकोषकी कौमुदी नामक टीकाके रचयिता।

नयनापाङ्ग (सं० क्ली०) नेत्रप्रान्त, आंखकी कोर।

नयनाभिघात (सं० पु०) नयनस्य अभिघातः। सुश्रुतोक्त नयनादिका अनिष्टकर रोगभेद। इस रोगका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—

आँखोंमें हर तरहसे चोट लगनेकी सम्भावना है। आहत होनेसे नेत्रमें संरम्भ, रक्तवर्णता और अत्यन्त वेदना होती है। इसमें नस्य, प्रलेप, परिषेचन, तर्पण, रक्तपित्तका प्रतिकार और दृष्टिप्रसादक्रिया कर्त्तव्य है। यह क्रिया स्निग्ध, शीतल और मधुर द्रव्योंसे की जाती है। स्वेद, अग्नि, धूम, भय, शोक या पीड़ा द्वारा अभिहत होने पर भी प्रतिकार करना उचित है, किन्तु इससे यदि अभिष्यन्द रोग उत्पन्न हो, तो दोषानुसार प्रतिविधान करना चाहिये। नेत्र यदि कुछ अव्याहत हो जाय, तो वाष्प और स्वेदका प्रयोग करनेसे वह तुरन्त आरोग्य हो जाता है। नेत्रपटलमें एक फोड़ा होनेसे वह अनायाससाध्य, दो फोड़ा होनेसे कष्टसाध्य और तीन फोड़ा होनेसे असाध्य हो जाता है।

नेत्रोंके पिच्चट, अवसन्न, शिथिल, स्थानच्युत वा दृष्टिहत होनेसे वह चिकित्सा द्वारा आराम हो जाता है। विस्तीर्णदृष्टि, अल्परोगविशिष्ट अथवा भ्रमदृष्टि होनेसे वह आपसे आप चंगा हो जाता है। प्राणके उपरोध, वमन, वायु और कण्ठरोध द्वारा अवसन्न अर्थात् अन्तःप्रविष्ट नेत्र ऊपर चढ़ जाते हैं। नेत्रके बाहरकी ओर निकल आनेसे श्वास खींचना और मस्तक पर जल देना कर्त्तव्य है। प्रसूतिके स्तनदुग्ध कुपित होनेसे बच्चोंके नेत्रवर्त्ममें सन्निपातज कुकूणक नामक रोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें वे आँख, नाक और ललाट हमेशा मलते रहते हैं और सूर्यकी किरण सह नहीं सकते। आँखोंसे कीचड़ भी खूब निकलता है। ऐसी अवस्थामें लेखन कार्य द्वारा रक्तमोक्षण कराना चाहिये और कटुओंको मधुके साथ मिला कर उससे प्रतिसारित करना विधेय है। प्रसूतिका भी प्रतिकार करना आवश्यक है। इसमें आपाङ्गके फल, मधु और सैन्धवको मिला कर उसे जलपान कराने अथवा पिप्पली, लवण और मधुके संयोगसे जलपान करा कर उल्टी करानेसे शान्ति होती है। यदि

वमन आपसे आप होता हो, तो फिर वमन करानेकी जरूरत नहीं। विशेष विवरण सुश्रुत उत्तर-तन्त्रके ११ अध्यायमें देखो। चक्षुरोग देखो।

नयनाभिराम (सं० पु०) नयनं अभिरमयति अभि-रम-णिच-अण्, वा नयनयोरभिरामो यस्मात्। १ चन्द्रमा। (त्रि०) २ नेत्रानुरागकारक, जो आँखोंको प्रिय लगे।

नयनी (सं० स्त्री०) नीयतेऽनयेति नी करणे ल्युट्, ङीप्। नेत्रकणिका, आँखको पुतली, इस शब्दका प्रयोग यौगिक शब्दके अन्तमें होता है।

नयनी (हिं० वि०) आँखवाली, जिसके आँख हो।

नयनू (हिं० पु०) १ नवनीत, मक्खन। २ एक प्रकारकी मलमल। इस पर सफेद सूतकी बूटियां बनी होती हैं।

नयनोत्सव (सं० पु०) नयनयोरुत्सवो यस्मात्। १ प्रदीप, दीया। दीयेकी रोशनीसे नेत्रोंकी दर्शनशक्ति होती है, इसीसे नयनोत्सव शब्दसे दीप समझा गया है। आलोक ही एक मात्र दृष्टिका प्रतिकारण है। (त्रि०) २ नेत्रोत्सवकारिमात्र।

नयनोपान्त (सं० पु०) नयनयोरुपान्तः ६-तत्। अपाङ्ग प्रदेश, आखका कोना, आँखकी कोर।

नयनोर्द्ध्वरोमराजि (सं० स्त्री०) भ्रू, भौंह।

नयनौषध (सं० क्लो०) नयनयोरौषधं। पुष्पकासीस, पीला कसीस।

नयपाल (सं० पु०) गौड़के पालवंशीय एक प्रसिद्ध राजा। पालवंशमें विस्तृत विवरण देखो।

नयपीठी (सं० स्त्री०) नयस्य पीठीव। द्यूताङ्ग, जुएका एक खेल।

नयलोचन (सं० क्लो०) नय एव लोचनं। १ नीतिरूप चक्षु। (त्रि०) २ नीतिचक्षु, जिसकी आँखें नीति वा न्यायकी ओर जाती हो।

नयवर्त्म (सं० क्लो०) नयस्य वर्त्म ६-तत्। नीतिमार्ग, नीतिपथ, न्यायका रास्ता।

नयविजयगणि—यशोविजयके गुरु और लाभविजयगणिके शिष्य, ज्ञानबिन्दुप्रकरणके प्रणेता।

नयविशारद (सं० पु०) नये नीतिशास्त्रे विशारदः कुशलः ७-तत्। नीतिशास्त्रज्ञ, नीतिकुशल।

नयशास्त्र (सं० क्लो०) नय एव शास्त्रं ६-तत्। नीतिशास्त्र।

नयशील (सं० त्रि०) १ नीतिज्ञ। २ विनीत।

नयसार (सं० पु०) नीतिसूत्र।

नया (हिं० वि०) १ नवीन, नूतन, ताजा, हालका। २ पहलेवालेसे भिन्न, पहले या उसके स्थान पर आनेवाला दूसरा। ३ जिसका अस्तित्व तो पहलेसे हो, परन्तु परिचय हालमें मिला हो, जो थोड़े समयसे मालूम हुआ हो। ४ जिसका आरम्भ पहले पहल अथवा फिरसे, परन्तु बहुत हालमें हुआ हो। ५ जो पहले किसीके व्यवहारमें न आया हो, जिससे पहले किसीने काम न लिया हो।

नयाकनहट्टि—महिसुरके अन्तर्गत चित्तलदुर्ग जिलेका एक शहर। यह अक्षा० १४° २८' उ० और देशा० ७६° ३३' पू०के मध्य चल्लकेरी शहरसे १४ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः २४५८ है। यह शहर नायकसे बसाया गया है। नायक कुरनूल जिलेके सरिमलमका रहनेवाला था और बहुतसे मवेशियोंको साथ ले चरोको खोजमें यहां आया था। पीछे यह शहर चित्तलदुर्गके सरदारोंके हाथ आया। उन्होंने हैदरअलीके अभ्युदय काल तक इसका भोग किया। यहां लिङ्गायतोंके विख्यात महापुरुष तिप्पेरुद्रको समाधि है। उनकी रथ-यात्राके उपलक्षमें यहां हजारों मनुष्य एकत्र होते हैं।

नयागढ़—उड़ीसाका एक छोटा राज्य। यह अक्षा० १९° ५३' से २०° २०' उ० और देशा० ८४° ४८' से ८५° १५' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५८८ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १४०७७८ है, इसके उत्तरमें खण्डपाड़ा राज्य, पूर्वमें रणपुर, दक्षिणमें पुरी जिला और पश्चिममें दशपल्लाराज्य है। यहां अनेक स्थानोंकी मही उर्वरा है, दक्षिणकी ओर अरण्यमय है। यहांका दृश्य बहुत मनोरम है, मध्य हो कर गिरिमाला दौड़ गई है जिसकी ऊँचाई कहीं २००० और कहीं ३००० फुट भी है। धान, रुई, ईख और कई प्रकारके तेलहन अनाज यहांके प्रधान उत्पन्न द्रव्य हैं। १३वीं शताब्दीमें रेवाके राजपूत राजवंशीय किसी व्यक्तिने आ कर यह नगर बसाया था। राजस्व १२०००) रु०का है जिसमेंसे ५५२५) रु० वृटिश गवर्नमेण्टको करमें देने पड़ते हैं। इसमें एक शहर

और ७०५ ग्राम लगते हैं। समूचे राज्यमें १ मिडिल स्कूल, ३ अपर प्राइमरी स्कूल और ४१ लोअर प्राइमरी स्कूल हैं तथा एक चिकित्सालय है।

२ उक्त राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २० ८ उ० और देशा० ८५ ६ पू० के मध्य अवस्थित है। लोक-संख्या लगभग ३३४० है। यहां राजाका वासस्थान है।

नयागायन—१ युक्तप्रदेशके अन्तर्गत बांदा जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २५ ३ ३० उ० और देशा० ७८ २७ ३० पू० अजयगढ़से कालिञ्जरके रास्ते पर अवस्थित है। ग्रीष्मकालमें यहां असह्य गरमी पड़ती है।

२ मध्यभारतके अन्तर्गत बुन्देलखण्डका एक सनद राज्य। इसके उत्तरमें छत्रपुर राज्य है। भूपरिमाण १६ वर्गमील है। लक्ष्मणसिंह नामक बुन्देलखण्डके दस्यु अधिपतिने आत्मसमर्पण करके १८०७ ई०में पांच गावों की सनद पाई थी। १८०८ ई०में उसकी मृत्युके बाद उसका पुत्र जगत्सिंह उत्तराधिकारी हुआ था। जगत् सिंहके मरने पर वृटिश गवर्मेण्टने इसे जब्त करना चाहा, किन्तु जगत्की स्त्री लरै दुलहैयाके अनुरोधसे उसे लौटा दिया। उसने कुंवर विश्वनाथसिंहको गोद लिया था और यही आज कल यहांके राजा हैं। रेवेमें इसकी राजधानी है। इसमें सिर्फ ४ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या ७५७ और राजस्व ११०००) रु०का है।

नयादुमका—सन्थाल परगने और नयादुमका उपविभागका राजकीय प्रधान स्थान। यह अक्षा० २४ १६ उ० और देशा० ८७ १७ ३० पू०में अवस्थित है। यह अंगरेजोंका एक प्राचीन स्थान है। १८५५ ई०में सन्थाल विद्रोहके समय एक सैनिक कर्मचारीने दुमकाका नाम नयादुमका रखा था। दुमका देखो।

नयानपुर—त्रिपुरा जिलेका एक नगर और प्रधान वाणिज्य स्थान। यह विजयागाङ्गके किनारे अवस्थित है। यहां बिक्रया पार करनेके दो घाट हैं।

नयापन (हिं० पु०) नवीनता, नूतनत्व, नया होनेका भाव।

नयाम (फा० पु०) तलवारको म्यान, तलवारको खोल।

नयग्रोध (सं० पु०) न्यग्रोध, वटवृक्ष, बरगदका पेड़।

नर (सं० पु०) नृणातीति नृ-अच्। १ नारी, पुरुष।

'पुत्रे यशसि तोये च नराणां पुण्यलक्षणम्।' (भूरिप्र०)

२ परमात्मा, विष्णु। ३ महादेव, शिव। ४ पुरुष, मर्द, आदमी। ५ देवभेद, एक प्रकारका देवता। ६ छायोकिरतारक अश्व। ७ नरदेवके अवतार अर्जुन।

"नरनारायणौ यौ तौ पुराणावृषिसत्तमौ।
तद्विमाववनुजानीहि हृषीकेशधनञ्जयौ॥"

(भारत १३।४७ अ०)

श्रीमद्भागवतके मतसे ये चौथे अवतार माने जाते हैं। धर्मकी पत्नी मूर्त्तिके गर्भसे इनका जन्म हुआ था। नर और नारायण दो मूर्त्ति होने पर भी ये देखनेमें एकसी लगती थीं। दूसरे कल्पमें नरसिंहने यह मूर्त्ति धारण की। महाभारतमें लिखा है, कि स्वायम्भुव मनुके आधिपत्यके समय नारायण धर्मके पुत्र बन कर नर, नारायण, हरि और कृष्ण इन चार अंशोंमें अवतीर्ण हुए थे। इनमेंसे नर और नारायण ये दो बदरिकाश्रम जा कर कठोर तपस्या करने लगे। तपस्याके समय इनका तेज इतना बढ़ गया, कि देवगण भी इन्हें देख नहीं सकते थे। जिन देवताओं पर ये प्रसन्न होते थे, वे ही इन्हें देख सकते थे। एक समय देवर्षि नारदने इन दोनोंके इच्छानुसार सुमेरु शृङ्गसे गन्धमादन पर्वत पर भ्रमण करते करते इन्हें आह्निक क्रियामें प्रवृत्त देखा था। इस पर इन्होंने पूछा था, "भगवन्! वेदादिमें आपकी महिमा गाई गई है। चतुराश्रमवासी मनुष्य आपकी ही उपासना करते हैं। किन्तु आज आप किस देवताकी उपासना कर रहे थे।" इसके उत्तरमें नारायणने कहा, 'यह अत्यन्त गोपनीय विषय है, किन्तु हम तुम्हारी भक्तिसे नितान्त प्रसन्न हैं, इस कारण जो कुछ कहते हैं, उसे ध्यान दे कर सुनो। जो सूक्ष्म हैं, अविज्ञेय हैं, कार्यविहीन हैं, अचल हैं, नित्य हैं और त्रिगुणातीत हैं, जिनसे सत्त्वादि गुणसमूह उत्पन्न हुआ है, जो अव्यक्त हो कर भी व्यक्त भावसे रहते और प्रकृति नामसे पुकारे जाते हैं, वही परमात्मा हमारी उत्पत्तिके कारण हैं। हम उन्हींको माता, पिता वा देवता जान कर उनकी पूजा करते थे।" भागवतमें एक जगह लिखा है, कि इनकी तपस्या भङ्ग करनेके लिये इन्द्रादि देवताओंने कन्दर्पके साथ अप्सराओंको भेजा था। बाद इन्होंने उन्हें देख कर

देवताओंके अभिमानको चूर तथा अप्सराओंको लज्जित करनेके लिये उसी समय उर्वशीकी सृष्टि की। यही उर्वशी अप्सराओंमें श्रेष्ठा है। उत्पन्न होनेके बाद ही वह देवलोकको भेजी गई। यही नर-नारायण द्वापरके शेष भागमें अर्जुन और श्रीकृष्णके रूपमें अवतीर्ण हुए।

(भागवत, कालिकापु० भारत,)

८ धान्यकपूर तृण, एक प्रकारका क्षुप जिसे राम कपूर, रोहिस, सेंधिया और गंधेल भी कहते हैं। ९ छायाव्यवहारोपयोगी कीलकभेद, वह खूंटी जो छाया आदि जाननेके लिए खड़े बल गाड़ी जाती है, शङ्कु, लम्ब। १० रत्नमिश्रणकारी नरसंख्या, सेवक। ११ गय राजाके पुत्रका नाम। १२ सुधृतिके पुत्रका नाम। १३ भरतवंशीय भवन्मन्युके पुत्रका नाम। १४ काश्मीरके एक राजाका नाम। इनका दूसरा नाम किन्नर था। ये काश्मीरराज द्वितीय विभीषणके पुत्र थे। पिताके मरने पर ये राजा हुए और राज्य भरमें उत्पात मचाने लगे। इन्होंने सिर्फ ३८ वर्ष तक राज्य किया। इनकी स्त्री एक बौद्धसे भ्रष्टा हो गई थी, इस कारण इन्होंने कितने बौद्ध-मन्दिर तहस नहस कर डाले और वितस्ता नदीके किनारे नरपुर नामक एक अतिरमणीय नगरी बसाई। इन्होंने एक ब्राह्मणकी कन्या पर बलात्कार करना चाहा था। नागलोगोंको इसकी खबर लगने पर उन्होंने इन्हें राज्य समेत दग्ध कर डाला। (राजतरङ्गिणी) १५ काश्मीरराज वसुनन्दके एक पुत्रका नाम। इन्होंने कलिगताब्द २५८१से ले कर २६४१ तक राज्य किया। (राजतर०) काश्मीर देखो। १६ दोहेका एक भेद। इसमें १५ गुरु और १८ लघु होते हैं। १७ छप्पयका एक भेद। इसमें १० गुरु और १२ लघु होते हैं। १८ नीलवृक्ष, नीलका पौधा। (त्रि०) १९ जो (प्राणी) पुरुष जातिका हो, मादाका उलटा।

नर (हिं० पु०) १ पानी जानेका एक नल। २ नरकट।

नर—बड़ोदा राज्यके बड़ोदा प्रान्तके अन्तर्गत पेटलाद तालुकका एक शहर। यह अक्षा० २२° २८´ उ० और देशा० ७२° ४५´ पू०के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ६५२५ है। शहरमें एक वर्नाक्यूलर स्कूल और दो धर्मशाला हैं।

नरई (हिं० स्त्री०) १ गेहूंकी बालका डंठल। २ किसी घासका डंठल जो अन्दरसे पोला हो। ३ जलाशयोंमें होनेवाली एक प्रकारकी घास।

नरक (सं० पु०) नृणाति क्लेशं प्रापयति नृ-वुन्। (कृञा-दिभ्यः संज्ञायां वुन्। उण् ५।३५) १ स्वनामख्यात असुर। इसका विवरण कालिकापुराणमें इस प्रकार लिखा है—

रजस्वला धरित्री और भगवदवतार वराहके सम्भोग-से नरकका जन्म हुआ। भगवती धरित्रीका जब वराहसे गर्भ रह गया, तब इस गर्भसे अति पराक्रम-शाली पुत्र जन्म लेगा यह बात ब्रह्मादि देवतागण जान गये और उन्होंने अपनी शक्तिके प्रभावसे गर्भको कठिन कर प्रसवमें रुकावट डाल दी। इधर धरित्रीका प्रसव-समय जब उपस्थित हुआ, तब वे प्रसववेदनासे बहुत बेचैन होने लगीं। किन्तु कुछ भी प्रसव कर न सकीं। यन्त्रणासे मृतप्राय हो कर उन्होंने भगवान्‌की शरण ली। भगवान्‌के वहां पहुंच जाने पर धरित्रीने उनसे कहा, 'भगवन्! आपने जिस समय वराहरूप धारण कर रज-स्वला अवस्थामें मेरे साथ सम्भोग किया था, उसी समय मैंने गर्भधारण किया है। किन्तु आज तक गर्भके प्रसव नहीं होनेसे बहुत बेचैन हो रही हूं; जिससे मेरा यह गर्भ बहुत जल्द भूमिष्ठ हो, उसीका यथोचित उपाय कर दीजिये।' भगवान्‌ने कहा, 'वसु-न्धरे, तुम्हें यह दुःख अब अधिक काल तक सहना न पड़ेगा। तुम्हारे इस गर्भसे महा बलवान् पुत्र जन्म लेगा। इसीसे ब्रह्मादि देवताओंने प्रसवमें बाधा डाल दी है। आदि सृष्टिसे अट्ठाईस चतुर्युगके अन्तर्गत त्रेता-युगमें तुम यह सन्तान प्रसव करोगी। इतने दिनों तक तुम्हें यह गर्भधारण करना पड़ेगा। त्रेतायुगके मध्यभागमें जब श्रीरामचन्द्र रावणका वध करेंगे, तब तुम्हारे गर्भसे बालक भूमिष्ठ होगा। अब तुम्हें इस गर्भधारणका किसी प्रकारका कष्ट भुगतना न पड़ेगा।' इतना कह कर विष्णुभगवान् अदृश्य हो गये। पृथ्वी भी गर्भ होना नाहींकी भांति कष्टरहित हो कर सुखसे रहने लगी। राजा जनकने जब नारदके उपदेशानु-सार यज्ञ किया था, तब उस यज्ञ-भूमिसे दो पुत्र और भुवनमोहनी एक कन्या पृथ्वीसे उत्पन्न हुई थीं। उस

समय पृथ्वीने वहां पहुंच कर राजर्षि जनकसे कहा था, 'राजन्! भुवनमोहिनी यह कन्या मैंने तुम्हें अर्पण की। इस कन्यासे मेरा भार हरण होगा और अनेक प्रकारके मङ्गल कार्य साधित होंगे; किन्तु मेरे सामने तुम्हें एक प्रतिज्ञा करनी होगी, वह यह है—रावण वीरके मारे जाने पर मैं भाररहित हो कर सुखसे पुत्र प्रसव करूंगी, तुम उस पुत्रका जब तक उसका शैशव काल दूर न हो, तब तक प्रतिपालन करना।' यह सुन कर जनकने प्रणत हो इस वाक्यको स्वीकार कर लिया। पीछे रावणवध होने पर पृथ्वीने जहां सीताको प्रसव किया था, वहीं एक पुत्र प्रसव किया। उस पुत्रने जन्म लेनेके साथ ही विष्णुभगवान्‌की आराधना की। वहां पहुंच कर विष्णुने पृथ्वीसे कहा, "देवि! तुम्हारा यह पुत्र महा पराक्रमशाली होगा और जब तक मनुष्य भावसे अवस्थान करोगी, तब तक बहुत सुखसे तुम्हारा दिन व्यतीत होगा। जब मनुष्य-भावका त्याग कर कोई काम करने लगोगी, तभीसे तुम इस पुत्रके जीवनकी आशा त्याग करोगी। सोलह वर्षकी उमरमें तुम धनरत्नादि द्वारा समृद्ध राज्य भार पावोगी। प्राग्‌ज्योतिष नामक उस राज्यकी राजधानी होगी और यह पुत्र नरक नामसे प्रसिद्ध होगा।' इतना कह कर विष्णु अन्तर्हित हो गये। इधर धरित्रीने आधी रातको जनकके पास जा कर बहुत छिपके पुत्रका वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। राजर्षि जनक उसी समय यज्ञभूमिको गये और धरित्री-तनयको ले कर पुत्रको भांति उसका पालन पोषण करने लगे। जिस समय नरक उत्पन्न हुआ था, उसी समयसे पृथ्वी मायाबल द्वारा मनुष्यका रूप धारण कर राजान्तःपुरमें प्रविष्ट हुई। राजर्षि जनकने ब्राह्मण द्वारा उसका यथोचित संस्कार कार्य कराया और जन्मकालीन इस बालकने नरमस्तकमें अपना मस्तक न्यस्त किया था, इस कारण इसका नाम नरक रखा। ऋषियोंकी विधिके अनुसार सभी कार्य किये गये। गौतमपुत्र शतानन्द उस बालकको शिक्षा देने लगे। उनकी शिक्षासे नरक बहुत विनीत हो गये। इधर देवी धरित्री मायारूपसे अन्तःपुरमें रह कर नरकको पालन और विविध रूपसे सुनीति शिक्षा देने लगीं। धीरे धीरे नरक रूप, सामर्थ्य, बलवीर्य, धनुर्वेद वा गदायुद्धमें अन्यान्य सभी राजपुत्रोंको लांघ गये। नरक दिनों दिन ऐसे पराक्रमशाली होने लगे, कि जनक भी मनही मन डरने लगे। सोलह वर्षकी उमरमें हो नरक अजेय हो गये और सोलह वर्ष पूरनेमें तीन मास बाकी हो था, उसी समय धरित्रीने जनकसे आ कर कहा "राजन्! आपने प्रतिज्ञा पालन की है, नरक आपसे प्रतिपालित हो कर सुनीतिपरायण हुआ है। अभी उसे जानेकी अनुमति देवें।' इतना कह कर धरित्री अन्तर्हित हो गईं। जनकने भी उसे स्वीकार कर लिया। धरित्रीने मायारूप धारण कर नरकसे कहा, 'पुत्र! तुम मुझे अपने साथ ले कर गङ्गाकिनारे चलो, वहां मैं तुम्हारे पिताको दिखला दूंगी। जनक तुम्हारे पिता नहीं, पालकपिता मात्र हैं।' नरक धरित्रीकी बात पर विश्वास कर गङ्गाके किनारे पैदल गये। धरित्रीने उस समय मायारूप परित्याग कर अपनी मूर्त्ति धारण कर ली और नरकसे उसका जन्म वृत्तान्त कह सुनाया तथा उसी समय विष्णुभगवान्‌का स्मरण किया। विष्णु उसी समय वहां पहुंच कर बोले, 'नरकके लिए राज्य आदि सभी प्रस्तुत हैं।" इतना कह कर दोनोंने गङ्गाजलमें गोता मारा। नरक बातकी बातमें प्राग्‌ज्योतिष नामक नगरको पहुंच गये। यह स्थान कामरूपके मध्य पड़ता है। यहां उस समय किरात जाति वास करती थी। घटक नामक इनके एक राजा थे। विष्णु और नरकने सभीको लड़ाईमें मार डाला। बाद विष्णुने अपने पुत्र 'नरक'को इस राज्यमें अभिषिक्त किया। प्राग्‌ज्योतिषपुरमें राजधानी स्थापित हुई। विदर्भराजकन्या मायाके साथ नरकका विवाह हुआ। विष्णुने पृथ्वीके सामने पुत्रको सम्बोधन कर कहा, 'पुत्र! मैं तुम्हें यह शक्ति देता हूं, प्राणके जोखिम पर आनेसे हो इसका व्यवहार करना, दूसरे समय कदापि नहीं। यदि चिरकाल तक जीनेकी इच्छा है, तो ब्राह्मण मुनि और देवताओंके साथ कदापि विरुद्धाचरण न करना। इस नियमका उल्लङ्घन करनेसे तुम्हारा प्राण-नाश होगा।' नरकको इस प्रकार उपदेश दे कर विष्णु अन्तर्हित हो गये। नरकने विष्णुसे अभूतपूर्व और प्रशस्त घोड़ोंसे जुते हुए एक रथ पाया था। इसी समय राजर्षि जनक इस स्थान पर पहुंचे और इनको

सेवा सुश्रुषासे नितान्त प्रीत हो कर कुछ काल तक यहां रहे। नरकने मनुष्य-प्रथानुसार बहुत दिनों तक राज्य किया। पीछे त्रेतायुगके अवसान होने पर बाण राजाके साथ इनकी गाढ़ी मित्रता हो गई। बाण असुर भावसे इधर उधर विचरण करता था। नरक भी उसकी संगतिसे बहुत दुर्दान्त हो गये और देवता-ब्राह्मणोंके प्रति अत्याचार करने लगे। इसी बीचमें एक समय वशिष्ठदेव कामाख्यादेवीके दर्शन करने आये, किन्तु नरकने उन्हें पुरमें प्रवेश न होने दिया। इस पर वशिष्ठदेवने कुपित हो कर नरकको शाप दिया, 'तुम अत्यन्त गर्वित हो कर इस प्रकार ब्राह्मणोंके प्रति अत्याचार करने लग गये हो, इस कारण तुम जिनके औरससे उत्पन्न हुए हो, उन्हींके हाथसे बहुत जल्द मारे जाओगे। तुम्हारी मृत्युके बादमें कामाख्या देवीकी पूजा करूंगा और जब तक तुम जीवित रहोगे, तब तक कामाख्या देवी परिजनोंके साथ इस स्थानको छोड़ अन्यत्र जा रहेंगी।' इस पर नरक अपने प्राण समान बन्धु बाणको शरणमें पहुंचे और बाणके उपदेशानुसार ब्रह्माके तपश्चरणमें प्रवृत्त हुए। ब्रह्माने नरककी तपस्यासे संतुष्ट हो उसे वर मांगने कहा। इस पर नरकने कहा, 'प्रभो! जिससे मैं देव, असुर, राक्षस तथा सभी देवयोनियोंसे अवध्य होऊं और जगत्‌में जब तक चन्द्र सूर्य रहें, तब तक मेरी सन्तान-सन्तति अविच्छिन्न भावसे अवस्थान करें तथा तिलोत्तमाकी जैसी रूपगुणसम्पन्ना १६ हजार स्त्रियां और राजलक्ष्मी मेरे घरमें वास करें, यही वर मैं चाहता हूं।' ब्रह्मा 'तथास्तु' कह कर चल दिये। इस प्रकार अभिलषित वर पा कर नरक हृष्टचित्त हो अपने स्थानको चले गये। कालक्रमसे नरकके भगदत्त, महाशीर्ष, मदवान् और सुमाली नामक चार पुत्र हुए। ये सभी पुत्र प्रबल पराक्रमशाली और अजेय निकले। अब नरकने हयग्रीव, क्षुद, सुन्द, उपसुन्द आदि प्रबल बल विक्रमशाली असुरोंको द्वाररक्षा और सेनापति आदि-कार्यों में नियुक्त किया। धीरे धीरे इन्होंने हयग्रीव आदिकी सहायतासे देवराज इन्द्रको परास्त किया और पृथ्वीको नाना प्रकारके कष्ट देने लगे। भगवान् विष्णुने पृथ्वीका कष्ट दूर करनेके लिये कृष्णका रूप धारण किया। देवताओंने रम्भा और तिलोत्तमा जैसी रूप-गुणसम्पन्ना १६ हजार स्त्रियोंकी सृष्टि की। एक दिन वे हिमालय पर्वत पर इधर उधर भ्रमण कर रही थीं, नरक उन्हें हरण कर अपने पुरको लाये। यहां वे उन्हें बहुत सताने लगे। तब देवताओंके आदेशसे श्रीकृष्ण प्रागज्योतिषपुर गये और नरकके साथ घमसान युद्ध करने लगे। अन्तमें भगवान् विष्णुने सुदर्शन-चक्र द्वारा नरकका मस्तक दो खण्डोंमें कर डाला। तब पृथ्वी भाररहित हो कर सुखी हुई और पुत्रकी मृत्यु पर कुछ भी शोकातुर न हुई।

(कालिकापु० ३६।४० अ०)

(नरकासुरका वृत्तान्त हरिवंशके १२०, १२१, १२२ अध्यायमें वर्णित है।)

नरककी मृत्युके बाद श्रीकृष्णने इनके धनागारमें जो धनरत्नादि देखे थे, वे कुबेरके भी भण्डारमें न थे। कृष्ण सबके सब द्वारका पुरीको ले गये।

२ पापभोगस्थान। मृत्युके बाद जहां जा कर भोग करना होता है, उसे नरक कहते हैं। नरकके भयसे कितने लोग ऐसे हैं जो दुष्कर्ममें हाथ नहीं डालते। क्या पुराण, क्या मन्वादिसंहिता सभी शास्त्रोंमें थोड़ा बहुत नरकका प्रसङ्ग देखनेमें आता है। लेकिन नरकके विषयमें बहुतोंका मतभेद है। दर्शनशास्त्रविदोंका कहना है, कि जिस प्रकारके शुभाशुभ कार्य किये जायंगे, भविष्यमें उसी प्रकारके फल भुगतने होंगे। अर्थात् शुभकार्य करनेसे स्वर्ग और पाप कार्य करनेसे नरक होगा। जब हम लोगोंको यह षट्कौशिक देह भस्म हो जाती है, तब हम लोगोंका सूक्ष्म शरीर आकाशस्थ और वायुभूत हो कर अवस्थान करता है। यही सूक्ष्म शरीर स्वर्ग और नरक भोगता है। यह सूक्ष्म शरीर इस प्रकारके उपादानोंसे गठित है, कि ज्वलन्त अग्निमें दग्ध हो जाने पर भी यन्त्रणाके सिवा और कुछ भी अनुभव नहीं करता, इसी कारण इस अवस्थामें इसे यन्त्रणामय शरीर कहते हैं। इसी सूक्ष्म शरीरमें स्वर्ग वा नरकका भोग होता है। अधर्म ही एक मात्र नरकका कारण प्रमाणित हुआ है।

"अधर्मो नरकादीनां हेतुर्निन्दितकर्मजः ।
प्रायश्चित्तादिनाश्योऽसौ जीववृत्ती इमौ गुणौ ॥"

(भाषापरि॰ १६१)

चार्वाक आदि नास्तिकगण स्वर्ग-नरकादिका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते।

"न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः ।"

(चार्वाक)

वे लोग कहते हैं, कि इस देहके भस्म हो जाने पर स्वर्ग नरकादिका भोग असम्भव है । क्योंकि मृत्युके बाद और कुछ बच नहीं रहता । ये सब विचार अप्रामाणिक हैं, इस कारण नरकके विषयमें शास्त्रोंमें जो कुछ लिखा है, वही यहां पर लिखा गया—

भागवतमें नरकका विषय इस प्रकार लिखा है—राजा परीक्षितने शुकदेवसे पूछा था, 'भगवन् ! नरक क्या पृथ्वीका कोई देशविशेष है या ब्रह्माण्डके बहिर्भाग और अन्तरालमें अवस्थित कोई प्रदेश है ?' इस पर शुकदेवने कहा था, 'इस भूमण्डलके दक्षिण और भूमिके नीचे और जलके ऊपर जहां अग्निष्वात्तादि पितृगण हैं, वहीं यम भी स्वगणोंके साथ रहते और मृत व्यक्तियोंको ला कर उनके कर्मानुसार दोषगुणका विचार करते हैं । इसी स्थान पर सभी नरक अवस्थित हैं । इस नरककी संख्या इक्कीस है जिनके नाम ये हैं—तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, शूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, सन्दंश, तप्तसूर्मि, वज्रकण्टकशाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि और अयःपान। इनके सिवा और भी ७ नरक हैं, यथा—क्षारमर्दन, रक्षोगण-भोजन, शूलप्रोत, दन्दशूक, अवटनिरोधन, पर्यावर्त्तन और सूचीमुख । सब मिला कर २८ नरक हैं ।

जो परधन, परस्त्री और पुत्रका अपहरण करते, यम-दूत उन्हें भीषण कालपाशसे बांध कर बलपूर्वक तामिस्र नरकमें डाल देते हैं । यह नरक प्रगाढ़ तमसा-च्छन्न है । पापी इसमें पतित हो कर खाने पीनेके अभाव-से तथा दण्डताड़न आदि द्वारा भांति भांतिकी यन्त्रणासे बहुत बेचैन रहते हैं ।

जो पतिको ठग कर उसकी स्त्रीके साथ सम्भोग करता है, उसे अन्धतामिस्र नरकमें वास करना होता है । यमदूत यहां उसे अनेक प्रकारके कष्ट दे कर पीछे इस नरकमें फेंक देते हैं । इस नरकमें पतित व्यक्तियों-को अशेष वेदना होती है, इसीसे उनकी स्मृति और बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है । यही कारण है, कि ऋषियोंने इस नरकका अन्धतामिस्र नाम रखा है । जो इस संसार-में रह कर 'यही शरीर मैं हूं' और 'यह सभी धन मेरा है' ऐसा जान कर मुग्ध हो जाते हैं और प्राणियोंके प्रति विद्वेषाचरण कर अपना शरीर तथा स्त्री पुत्रादिका पालन पोषण करते हैं, उन्हें रौरवनरक मिलता है । इस नरक-का रौरव नाम पड़नेका कारण यह है, कि इस संसारमें मनुष्य जिस प्रकार जिन सब प्राणियोंकी हिंसा करते हैं, वे स्वकृत कर्मदोषसे जब यम-यातनाका भोग कर चुकते हैं, तब उनके आत्मकृत हिंसा-कर्म रुरु रूपमें परिणत हो कर उसी प्रकार उनकी हिंसा करते हैं । इसी कारण ऋषियोंने इस नरकका रौरव नाम रखा है । (सर्पसे भी अत्यन्त दुष्ट भारमृङ्ग एक प्रकारका प्राणी है, उसीका नाम रुरु है)

महारौरव नरक भी इसी प्रकारका है । जो इस संसारमें अपनेके सिवा और किसीको नहीं जानते, उन्हें भी महारौरव नरक होता है । यहां क्रव्याद नामक रुरुगण मांस खानेके लिए उन्हें अनेक प्रकारकी यातना दे कर मार डालते हैं ।

जो इस संसारमें अत्यन्त उग्र मूर्त्तिके हैं और शरीरका पालन करनेके लिए पशु अथवा पक्षी मार कर उसका मांस खाते हैं तथा जो अत्यन्त निर्दय हैं, यमकिङ्कर उन्हें कुम्भीपाक नरकमें डाल देते हैं और तप्त तेलमें पाक करते हैं ।

जो मनुष्य ब्राह्मणोंके प्रति विद्वेषाचरण करते हैं, वे कालसूत्र नामक नरकमें डाले जाते हैं । यह नरक अत्यन्त भयावह है । इसकी परिधि दश हजार योजन है । यह ताम्रमय चतुष्कोण समानभूमि है । ब्रह्मद्रोही इस नरकमें गिर कर ऊपर सूर्य-किरणसे और नीचे अग्निके उत्तापसे सन्तापित होते हैं । भूख और प्याससे उनकी देहका भीतरी और बाहरी भाग दग्ध हो जाता है । नारकी इस प्रकारकी यन्त्रणासे बेचैन रहता है ।

पशुदेहके रोमोंके संख्यानुसार उसे नरकमें रहना होता है।

जो अनापद्के समय भी इच्छापूर्वक स्वधर्म और वेद-मार्गका परित्याग तथा पाषण्डधर्मका अवलम्बन करते हैं, यमदूतगण उन्हें असिपत्रवन नामक नरकमें ठूंस देते और अत्यन्त प्रहार करते हैं। पापी वहां प्रहारकी यातनासे अस्थिर रहता है।

जो सब राजपुरुष दण्डार्ह व्यक्तिको दण्ड न दे कर अदण्डनीय व्यक्तिको दण्ड देते हैं, वे सब राजा या राज-पुरुष अत्यन्त पापी हैं। इस पापसे इन्हें परकालमें शूकरमुख नामक नरक होता है। मनुष्य जिस प्रकार इक्षुदण्डको पेरते हैं, उसी प्रकार ये लोग भी यमकिङ्करों-से पेरे जाते हैं। इसमें पापीकी यन्त्रणाकी कोई नियत अवधि नहीं रहती।

परमेश्वरने जिसकी जो वृत्ति स्थिर कर दी है, यदि कोई उसकी वृत्तिमें बाधा डाले, तो उसे अन्धकूप नामक नरक होता है। यह स्थान बहुत अन्धकार है। पापी यहां कुछ भी देख नहीं सकते और जिनकी वृत्तिमें बाधा डाली गई थी, वे आ कर अपना बदला चुका जाते हैं।

जो भक्ष्य द्रव्यको सबके सामने औरोंको न बांट कर अकेला खा लेता है और पञ्च यज्ञानुष्ठान नहीं करता, वह परकालमें कृमिभोजन नरकमें जाता है। इस नरकमें सहस्र-योजन लम्बा एक कृमिकुण्ड है। पापी उस कुण्डमें स्वयं कृमि हो कर कृमिभोजन करता है और सभी कृमि भी उसे भोजन करते हैं। इसमें पापीको बहुत कष्ट भुगतना पड़ता है।

जो चोरी करके अथवा बलपूर्वक ब्राह्मणोंके हिरण्य-रत्नादि अपहरण करते हैं और अनापद्कालमें किसी मनुष्यकी सभी वस्तु चुरा लेते हैं, यमदूतगण लौहमय अग्निपिण्ड और सन्दंश द्वारा उनकी देह छिन्न भिन्न कर डालते हैं।

जो पुरुष अगम्या स्त्रीके साथ और जो स्त्री अगम्य पुरुषके साथ सहवास करती है, यमदूत उन दोनोंको परकालमें पहले बहुत जोरसे पीटते हैं। पीछे पुरुषको तप्त लौहमय स्त्रीकी प्रतिमासे और स्त्रीको पुरुषाकृति लौहकी प्रतिमासे आलिङ्गन कराते हैं। जो पश्वादि अयोनिमें गमन करते हैं, यमकिङ्करगण उन्हें नरकमें डाल कर वज्रकण्टकमय शाल्मलीके ऊपर चढ़ा कर छिन्न भिन्न कर डालते हैं। इस पृथ्वी पर जो सब राजन्य अथवा राजपुरुष धर्ममर्यादाका उल्लङ्घन करते, वे वैत-रणी नदीमें पतित होते हैं। यह नदी सभी नरकोंकी खाईस्वरूप है। इस नदीमें सभी जीवजन्तु उन्हें भक्षण करते हैं और वे अधर्मका विषय स्मरण करते हुए विष्ठा, मूत्र, पूय, शोणित, केश, नख, अस्थि, मेद, मांस और वसावाहिनी नदीमें गिर कर अच्छी तरह उपतप्त होते हैं। जो इस लोकमें झूठी गवाही देते हैं अथवा खरीदने बेचनेके समय वा दानके समय झूठ बोलते हैं, पर-लोकमें यमकिङ्करगण उन्हें औंधे मुंह सौ योजन ऊंचे पर्वत-शिखरसे अत्यन्त सङ्कीर्ण अवीचिमत् नरकमें गिरा देते हैं (जहां स्थल और अश्मपृष्ठस्थ जलकी तरह प्रकाश-मान होता है, उसे अवीचिमत् नरक कहते हैं।) यमदूत गण पापीको उस नरकमें डाल कर तिल तिल करके उसका शरीर काट डालते हैं, इससे उसकी मृत्यु नहीं होती। फिर उसे पर्वतके ऊपर ले जाते हैं और वहांसे पुनः उसी नरकमें फेंक देते हैं। इस प्रकार पापी अनेक प्रकारके कष्ट पाते हैं।

जो इस लोकमें दम्भान्वित हो कर दूसरोंको ठगनेके लिये यज्ञानुष्ठान करते हैं और उस यज्ञमें पशुवध करते हैं, उन्हें विशसन नामक नरक होता है। इस नरकमें यमदूत नाना प्रकारका क्लेश दे पापीका अङ्ग काट डालते हैं।

द्विजकुलोद्भव जो मनुष्य इस लोकमें काममोहित हो कर असवर्णा रमणीके साथ सम्भोग करते हैं, यम-पुरुष रेतसे भरी हुई नदीमें उन्हें डाल कर रेत पान कराते हैं।

जो ब्राह्मण वा ब्राह्मणी सुरापान करती है वा कोई दूसरा मनुष्य व्रतस्थ हो कर और क्षत्रिय वा वैश्य यज्ञके लिये सोमपान कर अज्ञताप्रयुक्त मद्यपान करता है, यम देवता उसे नरक ले जाते समय वक्षःस्थल पर चढ़ बैठते हैं और अग्निसंयोगसे द्रवीभूत कृष्णवर्ण लौह द्वारा उसके सर्वाङ्गको अभिषिक्त करते हैं।

जो हीनजाति हो कर अपनेको उच्च बतलाता है

और उच्चवर्णका अनादर करता है वह क्षारकर्दममय नरकमें औंधे मुँह गिरता है और वहाँ बहुत कष्ट पाता है।

जो सब मनुष्य राक्षसके समान उग्रस्वभावके हैं और जनताको कष्ट पहुँचाते हैं, वे मरने पर दन्दशूक नामक नरकमें जाते हैं। इस नरकमें पांच वा सात मुँह-वाले राक्षस रहते हैं जो उनको चूहों की तरह पकड़ पकड़ कर निगल जाते हैं।

जो इस लोकमें अन्धकारमय गर्त्त और कुशूल एवं गह्वरादिमें प्राणियोंको बंद कर कष्ट देते हैं वे परलोकमें विष, अग्नि और धूम द्वारा विषम यातना पाते हैं।

घरमें अतिथिके आने पर जो उस पर गुस्सा करते हैं और गुस्सेसे लाल लाल आँखें कर उन्हें देखते हैं, वे अन्तकालमें जब नरक जाते हैं तब वहाँ वज्रतुल्य तुण्डधारी कङ्कादि पक्षिगण उनकी आँखें निकाल लेते हैं और तरह तरहकी यन्त्रणा देते हैं।

जो मनुष्य इस लोकमें धनके घमण्डसे 'मैं श्रेष्ठ हूँ' ऐसा ख्याल कर टेढ़ी चालें चलता है और धन अपहरण करेगा ऐसा कह कर लोगोंको डरता है तथा दिन-रात धनकी चिन्तामें व्यतिव्यस्त रहता है, वह महापातकी है। इस पापसे वह सूची नामक नरकका भोग करता है। यमदूतगण ताँतियोंकी नाईं उसका समूचा शरीर सूईसे भिद कर सूते गांथ देते हैं।

यमालयमें उक्त प्रकारके असंख्य नरक हैं। सभी पापी पापके तारतम्यानुसार इन सब नरकोंमें पतित हो कर कष्ट भोगते हैं। पीछे पापके क्षय होनेसे हो वे यन्त्रणासे छुटकारा पाते हैं। जब तक पाप-भोग शेष नहीं होता, तब तक वे उसी नरकमें पड़े रहते हैं।

(भागवत ५।२६ अ०)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें नरकका विषय इस प्रकार लिखा है—पापिगण जहाँ यातनाका भोग करते हैं, उसीका नाम नरक है।

"नरकाणाञ्च कुण्डानि सन्ति नाना विधानि च।
नानापुराणभेदेन नामभेदानि तानि च॥
विस्तृतानि गभीराणि क्लेशदानि च जीविनाम्।
भयङ्कराणि घोराणि हे वत्से कुत्सितानि च॥
षडशीतिश्च कुण्डानि संयमन्याञ्च सन्ति च।
निवोध तेषां नामानि प्रसिद्धानि श्रुतौ सति॥"

(ब्रह्मवैवर्त्त पु० प्रकृतिख० २७ अ०)

नरककुण्ड नाना प्रकारके हैं, पुराणके भेदसे उनके नाम भी भिन्न भिन्न हैं। यह स्थान जीवोंका अत्यन्त क्लेशकर है। इसमें ८६ कुण्ड हैं जिनके नाम नीचे दिये गये हैं। यमालयमें जो सब पापी पाप भेदके अनुसार जिन सब कुण्डोंमें रहते हैं, उन्हें नरककुण्ड कहते हैं। किस प्रकारका पापानुष्ठान करनेसे मनुष्य किस नरककुण्डमें जाता है, उसकी एक तालिका नीचे दी जाती है।

नरककुण्ड	पापी।
१। वह्निकुण्ड	कटु वचनोंके बन्धुओंका हृदय दग्धकारक।
२। तप्तकुण्ड	ब्राह्मण और अतिथियोंको जो भोजन नहीं देता।
३। क्षारकुण्ड	निषिद्ध दिनमें वस्त्रमें क्षार-संयोजन-कारक।
४। विट्‌कुण्ड	ब्राह्मणोंका वित्तापहारक।
५। मूत्रकुण्ड	दूसरेका तड़ाग खनन कर जो स्वयं उत्सर्ग करता।
६। श्लेष्मकुण्ड	सबके समक्षमें जो अकेला मिष्टान्न भोजन करता।
७। गरकुण्ड	पिता माता आदिका जो पालन नहीं करता।
८। दूषिकाकुण्ड	अतिथि देख कर जो विरक्त होता।
९। वसाकुण्ड	कोई वस्तु ब्राह्मणको दान दे कर उसे फिर दूसरेको दान देनेवाला।
१०। शुक्रकुण्ड	परस्त्री-गामी पुरुष और पर-पुरुषगामिनी स्त्री।
११। असृक्‌कुण्ड	गुरुजनको ताड़नाकारी वा रक्तपानकारी।
१२। अश्रुकुण्ड	हरिभक्तको देख कर जो उप-हास करता।

१३। गात्रमलकुण्ड — सर्वदा अशुद्ध चित्त और खल-स्वभाव वाला।

१४। कर्णविट्कुण्ड — बधिरको उपहासकारी।

१५। मज्जाकुण्ड — भोजनार्थ जीवहिंसाकारी।

१६। मांसकुण्ड — अर्थलोभसे कन्याविक्रयकारी।

१७। नखकुण्ड }
१८। लोमकुण्ड } श्राद्ध और उपवासादिमें संयम-त्यागी।

१९। केशकुण्ड — जिसके मृण्मय शिवलिङ्गमें केशादि रहता है।

२०। अस्थिकुण्ड — जो विष्णुपद पर पितृपिण्ड नहीं देता।

२१। ताम्रकुण्ड — गुर्विणी अर्थात् गर्भवती स्त्री-गमनकारी।

२२। लौहकुण्ड — ऋतुस्नाता और अवीराका अन्न-भोजी।

२३। तीक्ष्णकण्टककुण्ड — जो स्त्री कटु वचनोंसे स्वामीका तिरस्कार करती।

२४। विषकुण्ड — जो विष प्रयोगसे दूसरेकी जान लेता।

२५। घर्मकुण्ड — घर्मयुक्त हाथसे जो देवद्रव्यादि-स्पर्श करता।

२६। तप्तसुराकुण्ड — शूद्रानुस्नात शूद्रान्नभोजी।

२७। प्रतप्ततैलकुण्ड — दण्ड द्वारा जो वृषको मार भगाता।

२८। कुन्तकुण्ड — कुन्त और लौह वड़िशादि द्वारा जीवहन्ता।

२९। कृमिकुण्ड — मत्स्यभोजी, वृथामांस-भोजी और जो हरि प्रसाद नहीं खाता।

३०। पूयकुण्ड — शूद्रयाजी, शूद्रश्राद्धभुक् और शूद्रशवदाही।

३१। सर्पकुण्ड — जिस सांपके मस्तक पर कृष्णपदचिह्न है उसे मारनेवाला।

३२। मशककुण्ड — जो क्षुद्र जीवको मारनेकी विधि देता।

३३। दंशकुण्ड — जो पशुहत्याकी विधि देता।

३४। गरलकुण्ड — जो मधुमक्खी मार कर मधुसंग्रह करता।

३५। वज्रदंष्ट्रकुण्ड — अदण्ड्यको दण्डदाता।

३६। वृश्चिककुण्ड — अर्थलोभसे प्रजाको दण्ड देनेवाला।

३७। शरकुण्ड }
३८। शूलकुण्ड }
३९। खड्गकुण्ड } शस्त्रधारी, धावक और सन्ध्याहीन तथा हरि-भक्तिविहीन ब्राह्मण।

४०। गोलकुण्ड — अल्पदोषसे कारादण्ड-दाता।

४१। नक्रकुण्ड — जलोत्थित नक्रादि हनन-कारी।

४२। काककुण्ड — लोलुपनेत्रसे परस्त्रीका वक्ष, नितम्ब और मुखदर्शन-कारी।

४३। सञ्चानकुण्ड — स्वर्णापहारक।

४४। वाजकुण्ड — ताम्र और लौहचोर।

४५। वज्रकुण्ड — देव-द्रव्यापहारक।

४६। तीक्ष्णपाषाणकुण्ड — देवता और ब्राह्मणोंका पीतल वा कांसेका द्रव्य चुरानेवाला।

४७। तप्तपाषाणकुण्ड — देवता और ब्राह्मणका रौप्य गो अथवा वस्त्रचोर।

४८। लालाकुण्ड — वेश्यान्नभोजी और तद्वृत्ति जीवी।

४९। मसीकुण्ड — चक्रजीवी और मसीजीवी ब्राह्मण।

५०। चूर्णकुण्ड — देवता वा ब्राह्मणका शस्य, ताम्बूल और आसनचोर।

५१। चक्रकुण्ड — विप्रद्रव्यहरणचक्रकारी।

५२। वक्रकुण्ड — बन्धु और ब्राह्मणके प्रति कुटिल व्यवहारकारी।

५३। कूर्मकुण्ड — हरिशयनमें कूर्म-मांस-भोजी ब्राह्मण।

५४। ज्वालाकुण्ड
५५। भस्मकुण्ड
५६। दग्धकुण्ड
देवता और ब्राह्मणके घृत-तैलादि अपहारक। देवता और ब्राह्मणका गन्धतैल और धात्री चुरानेवाला।

५७। तप्त-सूर्मीकुण्ड — बलपूर्वक वा छलतापूर्वक दूसरेको भूमि हरनेवाला।

५८। असिपत्रकुण्ड — अर्थलोभसे जो मनुष्य दूसरेको खड्ग द्वारा मारता है।

५९। क्षुरधारकुण्ड — जो ग्राम और नगरादि दाह करता है।

६०। सूचीमुखकुण्ड — जो मनुष्य एकके सामने दूसरेकी निन्दा वा वेद और ब्राह्मणकी निन्दा करता है।

६१। गोधामुखकुण्ड — जो दूसरेके घरमें सेंध मारकर द्रव्य चुरता वा गो, छागादि अपहरण करता है।

६२। नक्रमुखकुण्ड — सामान्य द्रव्यापहारक।

६३। गजदंशकुण्ड — गज, तुरग और नरचोर।

६४। गोमुखकुण्ड — जो गवादि पशुको जल पीते समय बाधा देता है।

६५। कुम्भीपाककुण्ड — गो, स्त्री, भिक्षु, भ्रूण और ब्राह्मण-हत्याकारक। अगम्यागामी, दीक्षा और सन्ध्याहीन, तीर्थप्रतिग्राही, ग्रामयाजी, देवल, शूद्र-सूपकार और वृषलीपति।

६६। कालसूत्रकुण्ड — ब्राह्मणका अनिष्ट वा उसी प्रकारका गुरुतर पाप करनेवाला।

६७। अवटोदकुण्ड — कुलटादि षड़्वेश्यागामी द्विज।

६८। अरुन्तुदकुण्ड — चन्द्रसूर्यग्रहण वा उसी प्रकारके निषिद्ध कालमें भोजन करनेवाला।

६९। पांशुभोजकुण्ड — जो मनुष्य वाग्दत्ता कन्याको दूसरेके हाथ सौंपता है।

७०। पाशवेष्टकुण्ड — दत्त वस्तुका अपहारक।

७१। शूलप्रोतकुण्ड — शिवलिङ्ग पूजनमें अभक्तिकारी।

७२। प्रकम्पनकुण्ड — जो ब्राह्मणको भय दिखलाता है वा दन्ताघात करता है।

७३। उल्कामुखकुण्ड — स्वामीके प्रति कटुभाषिणी।

७४। अन्धकूपकुण्ड — शूद्रभोग्या ब्राह्मणी।

७५। वेधनकुण्ड — वेश्या अर्थात् पञ्च वा षट्-पुरुषगामिनी।

७६। दन्तताड़नकुण्ड — युङ्गी अर्थात् सप्ताष्ट-पुंगामिनी।

७७। जालबन्धकुण्ड — महावेश्या अर्थात् अष्टाधिक पुरुषगामिनी।

७८। देहचूर्णकुण्ड — कुलटा अर्थात् स्वामीके सिवा कोई अन्य पुरुषगामिनी।

७९। दलनकुण्ड — स्वैरिणी अर्थात् स्वामीके सिवा अन्य तीन पुरुषगामिनी।

८०। शोषणकुण्ड — पुंश्चली अर्थात् स्वामीके सिवा अन्य दो पुरुषसंसर्गकारिणी।

८१। कषकुण्ड — सवर्णा परपत्नीगामी।

८२। सूर्पकुण्ड — ब्राह्मणी-गमनकारी क्षत्रिय और वैश्य।

८३। ज्वालामुखकुण्ड — जो हाथमें गङ्गाजल, तुलसी और शालग्रामादि ले कर प्रतिज्ञा करने पर भी उसे पूरा नहीं करता, वा मिथ्या शपथ करता है। अथवा जो मित्रद्रोही, विश्वासघाती है वा झूठी गवाही देता है।

८४। जिह्मकुण्ड — नित्यक्रियाहीन, देवतामें अनास्थाकारी और मन्दिरके प्रति उपहासकारी।

८५। धूमान्धकुण्ड — देव और विप्रका धनापहारी।

८६। नागवेष्टनकुण्ड — जो ब्राह्मण भोजनमें वैद्य वा देवल वृत्तिका अवलम्बन करता है वा लाह, लोहा और रसादि बेच कर जीविका निर्वाह करता है।

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण प्रकृतिखण्ड २७-२८ अ०)

अन्यान्य पुराणोंमें भी नरकके अनेक नाम लिखे हैं, विस्तारके भयसे सभी नहीं दिये गये, केवल प्रधान प्रधानके नाम दिये जाते हैं।

नरक	पापी
अधोमुख	असत् प्रतिग्राही, अयाज्ययाजक और नक्षत्रसूचक।
अन्धतामिस्र	जो अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये दूसरोंका अनिष्ट करता है।
असिपत्रवन	वृथा वनच्छेदनकारी।
कालसूत्र	जो अपने पिता और ब्राह्मणके प्रति द्वेष करता है।
कुम्भीपाक	दत्तापहारी।
तप्तकुण्ड	स्वसागामी।
तामिस्र	परवित्त और अपत्य-कलत्रापहारी।
पूयवहा	जो पुत्रोंको न दे कर मिष्टान्न भोजन करता है और जीवनअथकर कार्य करनेमें साहस करता है। जो ब्राह्मण हो कर लाक्षा, मांस, रस, तेल, तिल और लवण विक्रय करता है, जिसका जो जातीय व्यवसाय है उसे न कर जो मार्जार, कुक्कुट, छाग, कुक्कुर, वराह और पक्षीपालन आदि व्यवसाय करता है। जो अभिनय कार्य करके भ्रष्टाचार द्वारा उपार्जित धनसे जीविकानिर्वाह करता है।
महाज्वाला	कन्या वा पुत्रवधूगामी।
महारौरव	जीविकाके लिये जन्तुघाती।
रुधिरान्ध	जो कैवर्त्त मत्स्यादि बेच कर अपनी जीविका निर्वाह करता। कुण्डाशी अर्थात् जीवितभर्त्तृकाके गर्भसे जारजात व्यक्तिका नाम कुण्ड है, उसीका अन्न खानेवाला। माहिषिक अर्थात् जो पत्नीके भ्रष्टाचार द्वारा उपार्जित धनसे अपना गुजारा करता है। पर्व्वकारी, गृहदाही, मित्रघातक, शाकुनिक, ग्रामयाजक और सोमविक्रयकर्त्ता
रौरव	कूटसाक्षी, पक्षपाती, मिथ्यावादी और वृथाजन्तुवधकारी।
शूकरमुख	सुरापायी, ब्रह्मघाती, सुवर्णचोर और इन सब व्यक्तियोंके साथ मित्रताकारी। राजा हो कर अदण्ड्यको दण्डप्रदान और ब्राह्मणको दैहिक दण्डदाता।

(विष्णुपुराण और पद्मपु०)

शास्त्रके अनुसार पाप कर्म करनेसे ही किसी न किसी नरकका भोग अवश्य होता है।

अङ्गरेजीमें नरकको 'हेल' (Hell) कहते हैं। इस शब्दका मौलिक अर्थ पर्व्वतगुहा है, गभीर अन्धकारमय गह्वरगर्त्त है। इससे समाधि-गह्वरका भी बोध होता है। क्रमशः इस शब्दसे मरनेके बाद जीवात्माकी अवस्थाका ज्ञान होता है। जो ऐश्वरिक वा प्राकृतिक नियमोंका उल्लङ्घन कर मृत्युके बाद शास्ति पानेको उपयुक्त होते थे, पहले उनकी उस अवस्थाको 'हेल' कहते थे। लेकिन अभी वह शब्द शास्तिभोगकी जगह अर्थात् नरकका अर्थ समझा जाने लगा है। मरनेके बाद जिस स्थानमें आत्माका पापमोचन करनेकी व्यवस्था थी (जिस तरह Roman Catholic purgatory) उस स्थानको प्राचीन ईसाई लोग हेल कहते थे। उनके पीछे मृतको आत्मा मरनेके बाद जिस स्थानमें रह कर योशुखृष्टके पुनरागमन और महाविचारकी प्रतीक्षा करती है (Limbus Patrum) उस स्थानको भी प्राचीन 'हेल' कहते थे। जिन सब शिशुओंका खृष्टानी अभिषेक (Baptism)

नहीं होता, मृत्यु के बाद उनकी आत्मा जहां रहती है कभी कभी उसे भी प्राचीन ईसाई लोग हेल कहते थे। अन्तमें स्वकृत पापके दण्ड भोगार्थ एक प्रकारका कारागार कल्पित होता है, वह भी ईसाइयोंके मतसे 'हेल' नामसे प्रसिद्ध था। इस हेल वा नरकभोगके समयका परिमाण ले कर अनेक मतभेद हैं। खृष्टानी शास्त्रमें नरककी अवस्थितिके सम्बन्धमें आज तक यही समझा जाता है, कि पृथ्वीके नीचे चिरान्धकार गर्त्तराशि अथवा अन्तरीक्ष तथा पृथ्वी पर जितने अन्धकारपूर्ण गर्त्त हैं, वे सभी नरक हैं, वहीं पापियोंको यथोचित दण्ड मिला करता है। रोमन कैथलिकमें नरक-यन्त्रणाके अनेक प्रकारके विवरण रहने पर भी उनसे यही बोध होता है, कि वहां आत्मा दो प्रकारकी यन्त्रणाओंमें सदा निमज्जित रहती है। इन दो प्रकारकी यन्त्रणाओंके नाम चिरशोक-यन्त्रणा (Pain of loss) और चिरग्लानि-यन्त्रणा (Pain of sense) है। पहली यन्त्रणामें ईश्वरानुग्रह और स्वर्गसुखकी चिरहानि हो जानेसे तज्जनित चिरशोक और दूसरीमें स्वकृत पापके लिये चिरग्लानि होती है।

ईसाइयोंमें पाश्चात्य और प्राच्य (Western and Eastern Churches)के भेदसे इसमें दो मत देखे जाते हैं। प्राच्यके मतमें शेषोक्त यन्त्रणाका अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जाता, किन्तु थोड़ा गौर कर देखनेसे ऐसा बोध होता है, कि दोनों ही यन्त्रणाको दोनों दल स्वीकार करते हैं, केवल यन्त्रणाभोगकी प्रकृति ले कर कुछ विरोध देखा जाता है। प्राचीन ईसाइयोंका मत है, कि महाविचारके दिन एक बार नरकदण्ड हो जानेसे फिर उससे परित्राण होनेकी सम्भावना नहीं रहती, किन्तु ओरिजेन (Origen)के समयसे अर्थात् उनके तथा उनके शिष्योंके व्याख्यानबलसे इस प्रकारका विश्वास दूर हो गया है। बहुतोंका मत है, कि नरक भोगसे आत्माका पाप क्रमशः क्षय हो कर वह विशुद्धता लाभ करती है। पापविशेषसे विशुद्धता लाभके समयकी भी ह्रास-वृद्धि होती है। इस मतको अंगरेजीमें Origenistic theory of the Apocatastasis कहते हैं।

ईसाई धर्मका मत कनस्टान्तिनोपलके द्वितीय अधिवेशनमें दूषित ठहराया गया है। प्राच्य और पाश्चात्यके मतमें नारकीय शास्तिकी प्रकृति ले कर जो मतभेद चला आ रहा है, वह उनके चिरभोगके विषयमें कोई गड़बड़ी नहीं है। न्यू टेष्टामेण्ट नामक बाइबलके खण्डविशेषमें पापीका शास्तिस्थान कई जगह जेहेना (Gehenna) नामसे उल्लेख किया गया है। प्राचीन ईसाइयोंके मतसे नरकमें चिरप्रज्वलित भीषण अग्निका दाह और सर्पवत्, कुम्भीराकृति, शरजिह्व, छागण नामक भीषण प्राणियोंका दंशन और तीक्ष्ण शृङ्गविशिष्ट विकटदन्तयुक्त दैत्योंका पीड़न ही प्रधान माना गया है।

मुसलमान भी चिरनरकमें विश्वास रखते हैं। इन लोगोंके नरकको 'जहन्नम' कहते हैं।

३ कलिके एक पौत्रका नाम। इन्होंने कलिके पुत्र भयके औरस और कलिकी पुत्री मृत्युके गर्भसे जन्म ले कर अपनी बहन यातनासे विवाह किया था। (कल्किपु०) ४ विप्रचित्ति दानवका एक पुत्र। ५ निऋतिके गर्भजात अनृतका पुत्र।

नरककुण्ड (सं० क्ली०) नरकस्य कुण्डं ६-तत्। पापियोंकी यातनाका स्थानभेद, वह जगह जहां पापी कष्ट भोगता है।

नरकगति (सं० स्त्री०) जैनशास्त्रके अनुसार वह कर्म जिसके करनेसे मनुष्यको नरकमें जाना पड़े।

नरकगामी (सं० त्रि०) नरकमें जानेवाला।

नरकचतुर्दशी (सं० स्त्री०) कार्त्तिक कृष्णा-चतुर्दशी। इस दिन घरका सारा कूड़ा करकट निकाल कर फेंका जाता है।

नरकचूर (हिं० पु०) कचूर देखो।

नरकजित् (सं० पु०) नरकं तन्नाम्ना विख्यातं असुरं जयति जि-क्विप् तुक् च। नरकासुरजेता, श्रीकृष्ण। वसुदेवके लड़के श्रीकृष्णने नरकासुरको मारा था, इसी कारण उनका नाम नरजित् पड़ा है। नरक देखो।

नरकट (हिं० पु०) बेंतकी तरहका एक प्रसिद्ध पौधा। इसकी पत्तियां बांसकी पत्तियोंकी तरह पतली और लम्बी होती है। इसके डंठल लम्बे, मजबूत और बीचसे पोले होते हैं। ये डंठल कलमें तथा चटाइयां आदि बनानेके काममें आते हैं। इसके सिवा इनका उपयोग

शुर्की की निगालियां, दौरियां और बैठनेके लिए मोढ़े आदि बनाने और छतें पाटनेमें भी होता है। कहीं कहीं इसके रेशोंसे रस्से भी बनाये जाते हैं।

नरकदेवता (सं० स्त्री०) नरकस्य अधिष्ठात्री देवता। निरयदेवी। पर्याय—अलक्ष्मी, निर्ऋति, कालपर्णी। (शब्दरत्ना०)

नरकपाल (सं० क्ली०) नराणां कपालं ६-तत्। मृत-व्यक्तिकी शीर्षस्थित अस्थिभेद, मुर्देके सिर परकी एक हड्डी। कोई कोई इसे पवित्र मानते हैं, लेकिन उसका कोई प्रमाण नहीं है। यह अशुचि है, छू जाने पर स्नान अवश्य कर लेना चाहिये।

नरकभूमि (सं० स्त्री०) नरकस्य दुःखभेदस्य भोगयोग्या-भूमिः। भोगभूमि, वह स्थान जहां पापी जा कर दुःख भोगते हैं।

नरकभूमिका (सं० स्त्री०) नरकलोक।

नरकमुक्त (सं० पु०) नरकात् मुक्तः। नरकसे मुक्त। नरकसे मुक्त होने पर पुनः जन्म लेना पड़ता है। पुण्य कार्य करनेसे स्वर्ग और पाप कार्य करनेसे नरक मिलता है। जब स्वर्ग और नरकका भोग शेष हो जाता है, तब जीव पुनः जन्म ग्रहण करता है। इसका विषय गरुड़पुराणमें इस प्रकार लिखा है—

नरकसे मुक्त होने पर पापयोनिमें जन्म होता है। जो पतित व्यक्तिसे दान लेता है, वह नरकसे मुक्त हो कर खरयोनिमें जन्म लेता है। उपाध्यायके प्रति अप्रियाचरण करनेसे अथवा मन ही मन उनकी पत्नीके साथ सम्भोगकी इच्छा रखनेसे तथा उनका कोई द्रव्य चुरानेसे नरकमुक्तिके बाद कुक्कुरयोनिमें जन्म होता है।

मित्रको अपमान करनेसे गर्दभ-योनिमें, पिताको तकलीफ देनेसे कच्छपयोनिमें, प्रभुके अन्नसे प्रतिपालित हो कर उन्हें छोड़ किसी दूसरेको सेवा करनेसे वानर, गच्छितके अपहरण करनेसे क्रमि, दूसरेको निन्दा करनेसे राक्षस, विश्वासहारी होनेसे मीन, जो धान चुरानेसे मूषिक, परदाराके साथ सम्भोग करनेसे वृक, भाभीके साथ गमन करनेसे कोकिल, गुरु आदि स्त्रीके साथ सम्भोग करनेसे शूकर, यज्ञदान और विवाहमें विघ्न डालनेसे क्रमि, देवता, पिता और ब्राह्मणको न देकर स्वयं खा लेनेसे काक, बड़े भाईका अपमान करनेसे क्रौंचयोनिमें, शूद्रके ब्राह्मणी-गमन करनेसे क्रमि और उससे उत्पन्न सन्तान कल्पान्त तक कीट-योनिमें जन्म लेता है। अस्त्रहीन पुरुषको मारनेसे गर्दभ, बालक और स्त्री वध करनेसे क्रमि, भक्ष्य-वस्तु चुरानेसे मक्षिका, अन्न चुरानेसे मार्जार, तिल चुरानेसे मूषिक, घी चुरानेसे नकुल, मद्गुर मत्स्य चुरानेसे काक, मधु चुरानेसे दंश, पूप चुरानेसे पिपीलक, कांसा चुरानेसे वायस, काञ्चन चुरानेसे क्रमि, सूती कपड़ा चुरानेसे क्रौञ्च, वर्णक चुरानेसे मयूर, शाक, पत्र और रक्त वस्त्र चुरानेसे जीवकत्व, गन्धद्रव्य चुरानेसे छछूंदर, बांस चुरानेसे शश, काठ चुरानेसे काष्ठकीट, पुष्प चुरानेसे दरिद्रमें, जौ चुरानेसे पङ्गु, शाक चुरानेसे हारीत और जल चुरानेसे चातक योनिमें जन्म होता है। नरकभोग अर्थात् नरकमुक्तिके बाद इन सब योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है।

(गरुड़पु० कर्मविपाक २२८)

नरकल—कोचीन देशका एक बन्दर। यह अक्षा० १०° २ ३०´ उ० और देशा० ७६° १२´ पू०के मध्य अवस्थित है।

नरकल (हिं० पु०) नरकट देखो।

नरकस (हिं० पु०) नरकट देखो।

नरकस्थ (सं० त्रि०) नरके तन्नामो तिष्ठति स्था-क। १ नरकभूमिमें स्थित, जो नरकमें हो। (स्त्री०) २ वैतरणी नदी।

नरकान्तक (सं० पु०) अन्तयति इति अन्तकः, नरकस्य अन्तकः। नरकजित् विष्णु, श्रीकृष्ण।

नरकामय (सं० पु०) नरक आमय इव यस्य। १ प्रेत। नरकरूपः आमयः। २ निरयरोग, नरककी तरह दुःख-दायक एक प्रकारका रोग।

नरकासुर (सं० पु०) नरक देखो।

नरकी (हिं० वि०) नारकी देखो।

नरकीलक (सं० पु०) नरेषु कीलक इव निम्नत्वात्। गुरुघ्न, वह जो गुरुका वध करता हो। इसका दूसरा नाम गुरुघ्न है।

नरकुल (हिं० पु०) नरकट देखो।

नरकेशरी (सं॰ पु॰) नर एव केशरी । १ नरसिंह । नरःकेशरीव वीरत्वात् । २ मानवश्रेष्ठ, वह जो मनुष्योंमें श्रेष्ठ हो ।

नरकेहरि (हिं॰ पु॰) नरकेशरी देखो ।

नरकौकस् (सं॰ पु॰) नरके ओकः वासस्थानं यस्य । नरकवासी, निरयगामी ।

नरकौतुक (सं॰ पु॰) मदारीका खेल ।

नरखेर—मध्यप्रदेशके अन्तर्गत नागपुर जिलेका एक शहर । यह अक्षा॰ २१° २८´ उ॰ और देशा॰ ७८° ३२´ पू॰ नागपुर शहरसे ४५ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है । जनसंख्या ७७२१के लगभग है । यहां एक उत्तम बाजार, स्कूल और थाना है । नगरके चारों तरफ सुन्दर सुन्दर उद्यान रहने पर भी आबहवाकी शिकायत नहीं है । प्रति सप्ताह मवेशीका बाजार लगता है ।

नरगण (सं॰ पु॰) नरस्य गणो यस्मात् । १ नक्षत्रभेद, फलित ज्योतिषमें नक्षत्रोंका एक गण जिसमें उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, रोहिणी, भरणी और आर्द्रानक्षत्र सम्मिलित है । इस गणमें जो जन्म लेता है, वह सुशील और बुद्धिमान् होता है । राक्षसगणके साथ इस गणका विरोध माना जाता है । इसे मनुष्य गण भी कहते हैं । नराणां गणः ६-तत् । २ नरसमूह ।

नरगिस (फा॰ पु॰) १ प्याजके पेड़की तरहका एक पौधा । इसकी जड़ भी प्याजकी गांठ सी होती है । इसमें कटोरीके आकारका सफेद रंगका फूल लगता है । इसको सुगन्ध भी बहुत मनोहर होती है । फारसी और उर्दूके कवि इस फूलके साथ आंखकी उपमा देते हैं । इसके फूलका एक प्रकारका बढ़िया इत्र भी बनाया जाता है । २ इस पौधेका फूल ।

नरगिसी (फा॰ पु॰) १ एक प्रकारका कपड़ा । इस पर नरगिसकी तरहके फूल बने होते हैं । २ एक प्रकारका तला हुआ पकवान ।

नरगुन्द—इसका वर्त्तमान नाम नर्गुन्द है । यहां १०१७ शकमें पश्चिम चालुक्य राजाओंका एक अग्रहार था ।

नरङ्ग (सं॰ पु॰) नृणाति प्रापयतीति नृ-बाहुल्य॰ । नताद्रैरङ्गच्, इति उणादिकोषटीकायृत सुप्रादत्तवचनात्) नारंगी, नारङ्गीका पेड़ ।

नरचन्द्रसूरि—जैन हर्षपुरीय-गच्छके अन्तर्गत एक पण्डित । ये देवप्रभसूरिके शिष्य नरेन्द्रप्रभके गुरु थे । इन्होंने अनर्घराघव नाटककी टोका, न्यायकन्दलीकी टोका, ज्योतिःसारटीका और प्राकृत-दीपिकाकी टोका बनाई है तथा अपने गुरुदेव प्रभसूरि-विरचित पाण्डवचरित काव्य और उदयप्रभप्रणीत धर्माभ्युदय महाकाव्यका संशोधन किया है ।

नरचा (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका पाट वा पटुआ ।

नरता (सं॰ स्त्री॰) नरस्य भावः नर-तल् टाप् । नरत्व, मनुष्यत्व, मनुष्यका धर्म वा भाव ।

नरतात (सं॰ पु॰) राजा, नृपति ।

नरत्व (सं॰ क्ली॰) नर-भावे त्व । मनुष्यत्व, मनुष्य होनेका भाव ।

नरद (सं॰ क्ली॰) नलद लस्य र । नलद देखो ।

नरद (फा॰ स्त्री॰) १ चौसर खेलनेकी गोटी । २ एक पौधा जिसके फूलोंका अरक खींचा जाता है और जिसकी पत्तियां मसालेके काममें आती हैं । ३ शब्द, ध्वनि, नाद ।

नरदन (हिं॰ स्त्री॰) गरजना, नाद करना ।

नरदवां (फा॰ पु॰) पनाला, नल ।

नरदा (फा॰ पु॰) मैला पानी बहनेकी नाली ।

नरदारा (हिं॰ पु॰) १ नपुंसक, हिजड़ा, जनखा । २ जो पुरुष हो कर भी स्त्रियोंका काम करे, डरपोक, कायर ।

नरदिक (सं॰ त्रि॰) नरद क्रियशादित्वात् ठन् । नलदविक्रेता, नलद बेचनेवाला ।

नरदेव (सं॰ पु॰) नरदेव इव पूज्यत्वात् । १ राजा, नृपति । २ ब्राह्मण ।

नरदेवकुमार (सं॰ पु॰) एक ऋषि जिनकी कथा श्रीमद्भागवतमें है ।

नरदेवदेव (सं॰ पु॰) नरः देवदेव इवः । राजा ।

नरद्विष (सं॰ पु॰) नरान् द्वेष्टि द्विष-क्विप् । मनुष्यद्वेषकारी, राक्षस, असुर ।

नरनगर (सं॰ क्ली॰) नरप्रधानं नगरं । नगरभेद, एक

नगरका नाम। नरनगर यहाँ पर नगरका नकार 'पूर्वपदात् संज्ञायाम्' इस सूत्रके अनुसार णत्व हो सकता था, लेकिन क्षुभ्नादित्वके कारण णत्व नहीं हुआ।

नरनाथ (सं॰ पु॰) नरः नाथ इव। नरश्रेष्ठ, राजा, नृपति, नृपाल।

नरनायक (सं॰ पु॰) राजा, नृप।

नरनारायण (सं॰ पु॰) नरश्च नारायणश्च। ऋषिभेद। कालिकापुराणमें इन दो ऋषियोंका उत्पत्ति-विवरण इस प्रकार लिखा है,—

किसी एक समय महाबल शरभरूपी भर्ग महादेवने दन्ताघातसे नरसिंहको दो खण्ड कर डाला। नरसिंहके शरभ दन्ताघातसे दो खण्ड होने पर उसकी नररूप अर्द्ध देहसे महातपा दिव्याकृति मुनिरूपी नर और सिंहाकृति अर्द्ध देहसे महातपस्वी नारायण नामक जनार्दन उत्पन्न हुए। महात्मा नर और नारायणको सृष्टिके प्रधान कारण स्वरूप हरिने नर-नारायणको सप्तर्षिमण्डलके साथ मत्स्यदेवरचित नौका पर रख कर शरभ वराहके निकट गये थे। (कालिकापुराण ३० अ॰)

देवी भागवतमें नरनारायणका विवरण जो लिखा है, वह इस प्रकार है,—

ब्रह्माके हृदयसे धर्म नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह पुत्र अत्यन्त ब्रह्मनिष्ठ निकला। धर्मने गार्हस्थाश्रम अवलम्बन कर दक्ष प्रजापतिकी दश कन्याओंसे विवाह किया। उनके गर्भसे हरि, कृष्ण, नर और नारायण नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। इनमेंसे हरि और कृष्ण प्रतिदिन योगाभ्यासमें निरत रहते थे। इधर नर और नारायण हिमालय पर्वत पर जा कर बदरिकाश्रम-तीर्थमें अत्युत्तम तपस्या करने लगे।

यहाँ नर और नारायणने सौ वर्ष तक कठोर तपस्या की। इनके तपस्तेजसे चराचर अखिल जगत् परितप्त हो उठा। तब देवराज इन्द्र इनका तपोभङ्ग करनेके लिये काम, क्रोध और सत्वगुण निदानक लोभको उत्पादन कर नर-नारायणके सामने उपस्थित हुए। वहाँ जा कर उन्होंने तपोभङ्गके लिए अनेक चेष्टाएँ कीं, किन्तु कुछ भी फल न निकला।

तब इन्द्र कामदेवकी शरणमें पहुँचे। कामदेव वसन्त और अप्सराओंको साथ ले जहाँ नरनारायण तपस्या करते थे वहीं चल दिये। वसन्तके जानेसे ही वहाँ वसन्तऋतु-सी शोभा होने लगी। सङ्गीतनिपुणा रम्भा और तिलोत्तमादि प्रधान प्रधान अप्सरायें उस मनोरम आश्रममें सुमधुर गीत गाने लगीं। उस सुमधुर सङ्गीतको तथा कोकिलोंके मनोहर कूजन और भ्रमरोंकी सुमधुर कलध्वनिको सुन कर उन दोनों ऋषियोंका ध्यान टूट गया। नरनारायण दोनों ऋषि अकालमें ऋतुराज वसन्तका उदय और वनपादपसमूहका पुष्पोदय देख कर चिन्तित हो पड़े। तब नारायणने अत्यन्त विस्मित हो नरऋषिसे कहा, 'भाई! देखो, ये सभी वृक्ष पुष्पित हो रहे हैं और अकालमें वसन्तऋतुका आगमन देखनेमें आ रहा है।' इसी बीच कन्दर्प तथा सभी अप्सरायें उन्हें दीख पड़ीं।

इन्हें देख कर दोनों मुनि बड़े विस्मित हुए। मेनका, रम्भा, तिलोत्तमा आदि आठ हजार पचास अप्सराओंने मुनिको घेर लिया और नाच गान करने लगीं। उनके नाच गानसे खुश हो कर मुनियोंने उन्हें आतिथ्यकार्यके लिये अनुरोध किया।

नर-नारायणको जब मालूम हुआ कि देवराज इन्द्रने उनकी तपस्या भङ्ग करनेके लिए इन सब अप्सराओंको भेजा है, तब उन्होंने इन्द्रको लज्जित करनेके लिये तुरन्त अपनी जाँघसे एक बहुत सुन्दर अप्सरा उत्पन्न की। यह वाराङ्गना महर्षिके उरुसे उत्पन्न होनेके कारण उर्वशी नामसे प्रसिद्ध हुई।

पीछे नारायणने इन्द्रकी भेजी हुई अप्सराओंकी सेवा करनेके लिए उनसे भी अधिक सुन्दर आठ हजार पचास दासियोंकी सृष्टि की। इस पर अप्सराओंने अपने अपने हाथमें उपहार द्रव्य ले कर दोनों मुनिको प्रणाम किया और इस आश्चर्य दृश्यको देख वे उनकी स्तुति करने लगीं। मुनियोंने प्रसन्न हो कर कहा, 'तुम लोग अभिलषित वर माँगो और उर्वशीको अपने साथ ले जाओ, इसे हमने देवराजको उपहारमें दिया।'

अप्सराओंने यह सुन कर कहा, 'प्रभो! हम लोगोंको अत्यन्त कष्ट और तपस्याके फलसे आपके चरणोंका दर्शन हुआ है, आप यदि सन्तुष्ट हो कर हमें वाञ्छित वर

दें, तो जो कुछ हम लोगोंका अभिलाष है, उसे करें। हे देवेश! आप जगत्के पति हैं, अतएव हमलोगोंके भी पति हुए। हमलोग सर्वदा आपकी सेवामें नियुक्त रहेंगी। ये सब उत्पन्न अप्सराएँ आपकी आज्ञासे स्वर्गको चली जाँय और हम सोलह हजार पचास अप्सराएँ यहीं रह कर आपकी सेवामें लगी रहें। आप देवताओंके प्रभु हैं, अतः हमें वाञ्छित वर दे कर सत्य धर्मकी रक्षा कीजिये। धार्मिक मुनियोंने कहा है, कि जो स्त्रियां कामातुरा हैं, उनको आशा भङ्ग करनेसे हिंसाजनित पाप लगता है। अतः आप हमलोगोंको परित्याग न करें।' इस पर नर-नारायणने कहा था, 'हे अप्सरोगण! हम दोनोंने यहां पूरा एक हजार वर्ष जितेन्द्रिय हो कर तपस्या की है, अभी किस प्रकार विषयासङ्गमें लिप्त हो कर उस तपस्याको भङ्ग कर सकते?' फिर अप्सराओंने प्रार्थना की, 'यदि आप स्वर्गकी कामनासे तपस्या करते हैं, तो यह निश्चय समझ लें, कि गन्धमादनकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्वर्ग दूसरा नहीं है। आप इस परम मनोहर सुशोभन स्थानमें सुराङ्गनाओंके साथ परम सुखसे विहार कर परमानन्द रसका अनुभव कीजिये।' तब नारायण मन ही मन सोचने लगे—किस उपायसे ये यहांसे विमुख लौटाई जाँय। अहङ्कार ही संसारदुःखका मूल है। मैं वाराङ्गनाओंको देख कर चुप चाप रह न सका, उनके साथ सम्भाषण किया है, इसीसे दुःखभाजन हुआ। मैंने धर्मव्यय करके नारियोंकी सृष्टि की। इन्द्रप्रेरित वे उत्तम और मनोरम प्रमदागण कामातुर हो कर तपोभङ्गमें प्रवृत्त हुई हैं। यदि अहङ्कारवश इन्हें उत्पादित न करता, तो मेरा यह दुःख प्रसङ्ग उपस्थित न होता। अभी मैं ऊर्णनाभकी नाईं निजकृत सुदृढ़ जालमें आपसे आप फँस गया। इस प्रकार बहुत देर तक तर्क-वितर्कके बाद उन्होंने क्रोध पूर्वक उन काम-कामिनियोंको लौटा देना ही अच्छा समझा।

नर नामक कनिष्ठ धर्मतनयने भाईको चिन्तातुर देख कर कहा, 'महाभाग! आप क्रोधभावका परित्याग कर शान्तभावका अवलम्बन कीजिये, जिससे इस दुर्जय अहङ्कारका विनाश हो। आपको क्या यह मालूम नहीं कि पहले अहङ्कार हीसे ही हम लोगोंकी तपस्या विनष्ट हुई थी और दिव्य सहस्र वर्ष तक असुरेन्द्र प्रह्लादके साथ अत्यन्त अद्भुत संग्राम हुआ था। उस संग्राममें हमलोगोंको यथेष्ट कष्ट भुगतने पड़े थे। प्रह्लादके साथ इनका जो युद्ध हुआ था, उसमें दानवेन्द्र प्रह्लादकी ही हार हुई थी। भगवान् नारायणने स्वयं रणक्षेत्रमें आ कर इन्हें युद्धसे निवृत्त किया था।'

स्वर्गीय वाराङ्गनाओंने कामातुर हो कर पुनः पुनः नारायणसे हठ किया था। इस पर नारायण मुनि उन्हें शाप देनेको उद्यत हुए। लेकिन उनके छोटे भाई नरने उन्हें ऐसा करनेसे रोका। पीछे नारायण अपने रोषभावका परित्याग करके हँस हँस कर मधुर वचनोंमें उनसे कहने लगे, 'हे सुन्दरीगण! इस जन्ममें हम दोनोंने तपस्या करनेका सङ्कल्प किया है, सुतरां ऐसी अवस्थामें हमें संसारी होना किसी प्रकार कर्त्तव्य नहीं है। अतः अभी कृपा करके तुम लोग अपने स्थान स्वर्गको चली जा। यह निश्चय जानना कि जो धर्मज्ञ हैं, वे कदापि दूसरेका व्रतभङ्ग करना नहीं चाहते। तुम लोग सौभाग्यवती हो, अतः कृपा कर हमारे व्रतकी रक्षा करो। हमारी यही प्रार्थना है, कि जन्मान्तरमें हम तुम लोगोंके पति हो सकते हैं। हे विशालाक्षि सुन्दरीगण! अट्ठाईसवें द्वापरयुगमें देवताओंको कार्यसिद्धिके लिये मैं धरातल पर अवश्य ही अवतीर्ण होऊंगा। उस समय तुम लोग भी पृथ्वीतल पर राजकन्याके रूपमें पृथक् पृथक् जन्म ग्रहण करोगी। तभी तुम लोग मेरी पत्नी होगी, इसमें सन्देह नहीं।' यह सुन कर अप्सरायें उद्वेगरहित हो स्वर्गको चली गईं। देवराज इन्द्र यह तपःप्रभाव सुन कर और उर्वशी आदिको देख कर नरनारायणकी भूयसी प्रशंसा करने लगे। ये दोनों मुनि भृगुके शापके कारण और पृथ्वीका भारहरण करनेके लिए अर्जुन और कृष्ण हो कर अवतीर्ण हुए थे।

(देवीभाग० ४।४।१७ अ०)

नरनारि (सं० स्त्री०) नर (अर्जुन)की स्त्री, द्रौपदी, पाञ्चाली।

नरनाह (हिं० पु०) नृप, राजा।

नरनाहर (हिं० पु०) नृसिंह भगवान्।

नरनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका पौधा ।

नरन्धि (सं० पु०) नरो धीयन्ते आरोप्यन्ते अस्मिन् धा आधारे कि पृषोदरादित्वात् मुम् । संसार ।

नरन्धिष (सं० पु०) जगत्पालक विष्णु ।

नरपति (सं० पु०) नरस्य पतिः ६-तत् । राजा । राजा सबोंकी देख रेख करते हैं, इस कारण राजाका नरपति नाम पड़ा है ।

नरपति—कर्णाटका एक राजवंश । इस वंशके केवल २७ राजा हुए जिन्होंने २६६से ८०० ई० तक अर्थात् ५३४ वर्ष तक राज्य किया था ।

नरपति—इनका दूसरा नाम हरिवंश कवि था । ये आम्रदेवके पुत्र और ज्योतिष-कल्पवृक्षके प्रणेता थे ।

नरपतिजयचर्या (सं० स्त्री०) स्वरोदयमूलक ग्रन्थभेद

नरपद (सं० पु०) १ नगर । २ देश ।

नरपशु (सं० पु०) नरः पशुरिव । १ मानवाधम, निकृष्ट मनुष्य, जिस मनुष्यका आचरण पशुके जैसा हो, उसे नरपशु कहते हैं । २ नृसिंह ।

नरपाल (सं० पु०) नरान् पालयति पालि-ण्वुल् । मानवरक्षक, नृप, राजा ।

नरपालि (सं० पु०) क्षुद्रशङ्ख, छोटा शंख ।

नरपिशाच (सं० पु०) जो मनुष्य हो कर भी पिशाचोंकासा काम करे, बड़ा भारी दुष्ट और नीच मनुष्य ।

नरपुङ्गव (सं० पु०) नरः पुङ्गवः वृष इव शूरत्वात् । नरश्रेष्ठ, मनुष्योंमें प्रधान ।

नरपुर—१ वितस्ता नदीके तीरवर्त्ती एक नगर । काश्मीरके राजा नरने यह नगर बसाया था । २ भूलोक, मनुष्यलोक ।

नरप्रिय (सं० पु०) नराणां प्रियः ६-तत् । १ नीलवृक्ष, नीलका पेड़ । २ पारावत, कबूतर । (त्रि०) ३ जो मनुष्योंको अच्छा लगे ।

नरबदा (हिं० स्त्री०) नर्मदा देखो ।

नरबलि (सं० पु०) देवताकी वह पूजा जिसमें नरहत्या की जाती है । नरमेध देखो ।

नरभक्षी (सं० पु०) मनुष्योंको खानेवाला, राक्षस, दैत्य ।

नरभू (सं० स्त्री०) नराणां मनुष्याणां भूर्भूमिः । १ भारतवर्ष, हिन्दुस्तान । २ मनुष्योंकी उत्पत्ति ।

नरभूपाल शाह—एक गोरखाराजा । नेपालराज (भाटगाँवंशीय १८वाँ वा अन्तिम राजा) रणजित्मल्लके राजत्वकालमें इन्होंने नेपाल पर चढ़ाई की थी ।

नरभूमि (सं० पु०) नराणां भूमिः । भारतवर्ष ।

नरम (हिं० वि०) अकठिन, मुलायम ।

नरमट (हिं स्त्री०) वह जमीन जहांकी मट्टी मुलायम हो ।

नरमदा (हिं० स्त्री०) नर्मदा देखो ।

नरमरोआँ (हिं: पु०) एक प्रकारका सफेद वा लाल मुलायम रोआँ जो बुनाईके काममें आता है ।

नरमलोहा (हिं० पु०) वह लोहा जो अग्निमें लाल करके ठण्ढा किया जाता है ।

नरमा (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी कपास । इसे कोई कोई मनवा, देवकपास या रामकपास भी कहते हैं । २ सेमरकी रूई । ३ कानके नीचेका भाग, लोल ।

नरमाना (हिं० स्त्री०) १ नरम करना, मुलायम करना । २ शान्त करना, धीमा करना ।

नरमानिका (सं० स्त्री०) नरं मन्यते या मन-ण्वुल्, टापि अत इत्वं । नरमानिनी, वह स्त्री जिसे मूछ या दाढ़ी हो ।

नरमानिनी (सं० स्त्री०) नरं पुरुषमिव मन्यते मन-णिनि-ङीप् । श्मश्रुयुक्त नारी, वह स्त्री जिसे मूछ या दाढ़ी हो ।

नरमाला (सं० स्त्री०) नराणां तच्छिरसां माला । नरमुण्डकी माला ।

नरमालिनी (सं० स्त्री०) नरस्येव माला केशसमूहो मुखेऽस्त्यस्य इति इनि-ङीप् । १ श्मश्रुयुक्तवदना नारी, वह स्त्री जिसे मूछ या दाढ़ी हो ।

नरमावड़ी (हिं० स्त्री०) वनकपास ।

नरमी (फा० स्त्री०) मृदुता, कोमलता, मुलायमियत ।

नरमेध (सं० पु०) मेध्यते इति मिध हिंसायां भावे घञ्, नराणां मेधो हिंसनं यत्र । नरवधात्मक यज्ञविशेष, एक प्रकारका यज्ञ जिसमें प्राचीन कालमें मनुष्यके मांसकी आहुति दी जाती थी । इस यज्ञमें पुरुष वध किया जाता था, इस कारण इसका नाम नरमेध पड़ा है । शुक्ल यजुर्वेदके ३० और ३१ अध्यायमें लिखा है—ब्राह्मण और क्षत्रिय ये दो वर्ण अतिष्ठकामना करके यह यज्ञ

कर सकते थे। यह यज्ञ चैत्र शुक्ला दशमीसे आरम्भ होता था और चालीस दिनमें समाप्त होता था। अम्बरीष, हरिश्चन्द्र और ययातिने नरमेधयज्ञ किया था। कलिमें यह यज्ञ निषेध है।

नरमान्य (सं॰ पु॰) आत्मानं नरं मन्यते नृ-मन् खश् मुमृच। नृपाभिमानी, वह जो अपनेको राजा कह कर अभिमान करता हो।

नरयन्त्र (सं॰ क्लो॰) यन्त्रविशेष, सूर्यसिद्धान्तके अनुसार एक प्रकारका शङ्कुयन्त्र। इसका व्यवहार धूपमें समय जाननेके लिए होता है। जिस दिन आकाश साफ रहे, उस दिन १२ उँगलोके शङ्कुयन्त्रकी तरह इस यन्त्रसे छाया द्वारा समयका निरूपण किया जाता है।

नरयान (सं॰ पु॰) नरवाह्यं यानं। यानभेद, मनुष्य ढोनेको एक प्रकारकी सवारी।

नरराज (सं॰ पु॰) नराणां राजा, टच् समासान्तः नरश्रेष्ठ।

नरराज्य (सं॰ क्ली॰) नरस्य राज्यं ६-तत्। मनुष्यराज्य।

नररूप (सं॰ त्रि॰) नरस्य रूपमिव रूपं यस्य। नराकार, मनुष्यके जैसा आकृतिवाला।

नररूपिन् (सं॰ त्रि॰) नररूप अस्त्यर्थे इनि। मनुष्यके जैसा आकृतिवाला।

नरर्षभ (सं॰ पु॰) नरश्चासौ ऋषभश्चेति। १ नरश्रेष्ठ। २ महादेव, शिव।

नरलोक (सं॰ पु॰) नराधिष्ठितो लोकः भुवनं। पृथ्वीलोक, संसार।

नरवर—देशविशेष, एक देशका नाम। भक्तमालमें इस देशका उल्लेख है। किसी समय यहां अत्यन्त विष्णुभक्तिपरायण एक राजा रहते थे। जब वे पूजा करने बैठते थे, तब कोई भी इनसे मुलाकात नहीं कर सकते थे। यहां तक कि प्राणहानि होनेकी सम्भावना रहते भी वे पूजा समय ध्यानभङ्ग नहीं कर सकते थे। एक दिन वे पूजा करनेके लिये बैठे ही थे, कि इसी बीच बादशाहने इन्हें बुलवा भेजा। लेकिन नरवर न गये। इस पर बादशाह कुपित हो कर स्वयं पूजास्थान पर आए और इनके पैर काट डाले। इस पर भी वे पूजा परसे न उठे, पूर्व सा ध्यान लगाए बैठे रहे। पीछे पूजा समाप्त हो जाने पर जब वे उठे, तब पैरकी वेदनासे मूर्छित हो उसी जगह गिर पड़े। बादशाहने इनकी भक्तिसे प्रसन्न हो कई एक ग्राम उन्हें दान दिये।

नरवर—१ मध्य भारतके ग्वालियर राज्यका एक जिला। यह अक्षा॰ २४°३२´ से २५°५४´ उ॰ तथा देशा॰ ७७°२२´ से ७८°३२´ पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४०४१ वर्गमील और लोकसंख्या ३८८३६१ है। जिलेका अधिकांश जङ्गलमय है। जमीन बहुत उर्वरा है, अतः समय समय पर अच्छी फसल लगती है। यहांकी प्रधान नदियां सिन्ध, पार्वती और बेतवा हैं। इसमें चन्देरी और नरवर नामके दो शहर तथा १२८४ ग्राम लगते हैं। यह जिला चार परगनोंमें विभक्त है, सीपरी, पिचोर, कोलारस और करेरा। राजस्व प्रायः ६५०००) रु॰का है।

२ उक्त जिलेका एक शहर। यह अक्षा॰ २५°३९´ उ॰ और देशा॰ ७७°५४´ पू॰के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ४८२८ है। कहते हैं, कि पुराकालमें यहां निषादके राजा नल रहते थे। इसका प्राचीन इतिहास बहुत कुछ ग्वालियरसे मिलता जुलता है। १०वीं शताब्दीके मध्यभागमें नरवर और ग्वालियर ये दोनों स्थान कछवाह राजपूतके हाथ लगे। पीछे ११२८ ई॰में परिहारीने इस पर अपना आधिपत्य जमाया और १२३२ ई॰ तक राज्य किया। अनन्तर अल्तमसकी तूती बोली। उन्होंने परिहारको निकाल भगाया और आप खुद राजा बन बैठे। तैमूरके आक्रमण-कालमें नरवर तोमवरोंके हाथ लगा और १५०७ ई॰ तक उन्हींके दखलमें रहा। बाद सिकन्दर लोदीने बारह महीने तक यहां घेरा डाले रहने के बाद इसे अपने कब्जेमें कर लिया। अकबरके समयमें यहां मालवा सूबेके नरवर सरकारकी राजधानी थी। पीछे यह स्थान पुनः कछवाहा राजपूतोंके अधीन आ गया और १८वीं शताब्दी तक उन्होंके दखलमें रहा। बाद इलाहाबाद-सन्धिके अनुसार यह सदाके लिये सिन्धियाके हाथ आ गया।

इस शहरमें जो एक प्राचीन दुर्ग है वह समुद्रपृष्ठसे १६०० फुट तथा धरातलसे ४०० फुट ऊँचा है। यह दुर्ग ५ मील तक दीवारसे घिरा हुआ है। सिकन्दर लोदी यहां छः मास तक रहे थे। इतने समयमें उन्होंने

यहांके प्रायः सभी मन्दिर, मस्जिद तथा अच्छे अच्छे भवन तोड़ फोड़ डाले थे। जाते समय मन्दिरमें जितनी बहुमूल्य चीजें थीं उन्हें भी अपने साथ ले गये। दुर्गमें १६८६ ई०की एक बन्दूक आज तक मौजूद है जो एक समय जयपुरके राजा सिवाईसिंहकी थी। दुर्गके सामने ही एक स्तम्भ खड़ा है जिसमें नरवरके तीनवरोंके नाम खुदे हुए हैं। यहांके पर्वतों पर चुम्बक लोहा पाया जाता है।

३ मध्य भारतके अन्तर्गत मालवा एजेन्सीकी एक ठकुरायत।

नरवरी (हिं० स्त्री०) क्षत्रियोंकी एक जाति।

नरवर्मन्—मेवारके गुहिलवंशीय एक राजा।

नरवल्लभ (सं० पु०) कपोत, कबूतर।

नरवा (हिं० पु०) एक प्रकारका पक्षी।

नरवाई (हिं० स्त्री०) नरई देखो।

नरवाह (सं० पु०) वह सवारी जिसे मनुष्य खींच या ढो कर ले चले।

नरवाहन (सं० पु०) नरो वाहनं यस्य, क्षुभ्नादित्वात् न णत्वं। १ कुवेर। २ नृपतिविशेष, एक राजाका नाम। नरवाह्यं वाहनं। ३ नरवाह्ययान, वह सवारी जिसे मनुष्य खींच या ढो कर ले चले। ४ किन्नर।

नरवाहन—मेवारके गुहिल वंशीय एक राजाका नाम।

नरवाहन—१ हिन्दीके एक सुप्रसिद्ध कवि। ये भौगांवके निवासी थे। इनका जन्म सम्वत् १६००में हुआ था। ये हितहरिवंशरायजीके शिष्य थे। इनकी कथा भक्तमालमें भी मिलती है।

२ एक हिन्दी-कवि। इनकी कविता सरस होती थी, उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं—

"सुनहि राधिके सुजान तेरे हित सुखनिधान
राखरचो श्यामतट लिन्दनन्दिनी।
नृत्य जुवती समूह राग रंग अति कतूह
वागुरस मूल मूलिका अनन्दिनी॥
बंशीवट निकट जहां परम रमण भूमि तहां
सकल सुखद बहे मलय वायु मन्दिनी।
जातीकुन्द विकाश कानन अतिसे सुवास
राका शशि शरद माध विमल चांदनी॥
नरवाहन प्रभु निहारि लोचन भरिमैं नारि
नख सिख सौन्दर्य काम दुःख निकन्दिनी।
विलमय भुज मीव मेलि भामिनी सुखसिन्धु झेलि
नव निकुंज श्याम केलि जगत वन्दिनी॥"

नरवाहनदत्त—वत्सराज उदयनके पुत्र। उदयनकी पटरानी वासवदत्ताके गर्भसे ये उत्पन्न हुए थे। इनका जन्म पाण्डववंशमें था। इन्हींके जीवनकी अलौकिक कथाको ले कर कथासरित्-सागर वा बृहत्कथा रची गई है।

यहां इनका सिर्फ स्थूल विवरण दिया जाता है। ये कामदेवके अंशसे उत्पन्न हुए थे। ये अपने बलसे मानव हो कर विद्याधरोंके एक मात्र चक्रवर्त्ती सम्राट् हो गये थे। इनके पितृपरिषद्के पुत्रगण पारिषद् बने थे अर्थात् यौगन्धरायणपुत्र हरिशिख सेनापति थे, विदूषक वसन्तकके पुत्र तपान्तक वयस्य और प्रतीहार नित्योदितके पुत्र गोमुख प्रतीहार थे। स्वयं रति मदनमञ्चका नामकी मदनक नामक विद्याधरकी कन्या इनकी महिषी थीं। बाद ये रत्नप्रभा आदि अनेकों विद्याधर और नरकन्याओंका पाणिग्रहण कर अन्तमें विद्याधर-चक्रवर्त्ती हुए। (कथासरित्सागर)

नरवाहिन् (सं० त्रि०) नरैर्वाह्यते नर-वह-णिनि। नरवाहन-जिसे मनुष्य ढो सके।

नरविष्वण (सं० पु०) नरं विष्वणति भक्षयति हिनस्ति वा वि-स्वन-अच्। नरहिंसक, राक्षस।

नरवृक्ष (सं० पु०) नीलीवृक्ष, नीलका पेड़।

नरव्याघ्र (सं० पु०) नरो व्याघ्र इव, उपमित कर्मधा०। १ श्रेष्ठ मानव, मनुष्योंमें श्रेष्ठ। २ एक प्रकारका जानवर जो जलमें रहता है और जिसके शरीरके नीचेका भाग मनुष्यके आकारका और ऊपरका भाग बाघके आकारका होता है।

नरशक्र (सं० पु०) नरेन्द्र, राजा।

नरशृङ्ग (सं० क्ली०) नरस्य शृङ्गं ६-तत्। १ अलीक पदार्थ, आकाश कुसुमादिकी तरह मिथ्यावस्तु, बे सिर पैरका पदार्थ। २ नेपाल देशीय ताम्रनिर्मित शृङ्गयन्त्र-भेद, नेपाल देशका नरसिंघा नामका एक बाजा जो तांबेका बना होता है।

नरसख (सं॰ पु॰) नरस्य सखा, 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' इति टच्, समासान्तः। मनुष्यका सखा, मानवबन्धु, नारायण।

नरसंसर्ग (सं॰ पु॰) नरस्य संसर्गः ६-तत्। मनुष्योंका संसर्ग।

नरसरोपेट—मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत कृष्णा जिलेका एक उपविभाग। इसका क्षेत्रफल ७१२ वर्गमील है।

नरसल (हिं॰ पु॰) नरकट देखो।

नरसादर (सं॰ पु॰) १ नरसार, नौसादर। २ मद्यादिका द्रावक।

नरसार (सं॰ पु॰) नरवत् अश्वो सारो यत्र। वणिक्-द्रव्यविशेष, नौसादर। पर्याय—विदल, गोपक, पिण्ड, चोल, गन्धरस, रस।

औषधादिमें इसका व्यवहार होता है। प्रयोग करते समय यह शोध लिया जाता। चूनेके जलमें इसे पाक कर पीछे यत्नपूर्वक दोलायन्त्रकी विधिके अनुसार शोधनेसे यह विशुद्ध होता है। निशादल देखो।

नरसिंग (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका विलायती फूल।

नरसिंगा (हिं॰ पु॰) नरसिंहा देखो।

नरसिंघ (हिं॰ पु॰) नृसिंह देखो।

नरसिंहा (हिं॰ पु॰) तुरहीकी तरहका एक प्रकारका बाजा जो नलके आकारका तांबेका बना होता है और फूंक कर बजाया जाता है। यह जिस स्थानसे फूंक कर बजाया जाता है, उस स्थान पर बहुत पतला होता है और उसके आगेका भाग बराबर चौड़ा होता जाता है। बीचमेंसे इसके दो भाग भी कर लिये जाते हैं और बजानेके बाद पतला भाग अलग करके मोटे भागके अन्दर रख लिया जाता है। पूर्व समयमें यह बाजा रण-क्षेत्रमें व्यवहृत होता था। आजकल यह देहातमें विवाह आदिके अवसर पर बजाया जाता है।

नरसिंह (सं॰ पु॰) नरः सिंह इव, उपमित-कर्मधा॰। १ नरश्रेष्ठ, सिंह आदि कुछ शब्द पुरुषके श्रेष्ठार्थ-ज्ञापक हैं।

नर-इव सिंह इव च आकृतिर्यस्य। २ विष्णु। इनका आधा शरीर मनुष्य-सा और आधा सिंह-सा था। यह अवतार भगवान्‌का चौथा अवतार माना जाता है। हिरण्यकशिपुका वध करनेके लिए भगवान् विष्णुने यह रूप धारण किया था।

इसका विषय हरिवंशमें इस प्रकार लिखा है—सत्ययुगमें दैत्योंके आदिपुरुष हिरण्यकशिपुने कठोर तपस्या करके ब्रह्मासे यह वर मांगा था, 'हे प्रभो! मैं देव, असुर, गन्धर्व, उरग, राक्षस वा मानव किसीसे वध्य न होऊं। मुनिगण मुझे शाप दे न सकें। अस्त्र, शस्त्र, गिरिपादप, शुष्क और आर्द्र पदार्थ द्वारा भी मेरा विनाश न हो और स्वर्गादि किसी लोकमें, दिन वा रात किसी समय मेरी मृत्यु न हो।' ब्रह्माने भी उसे यह मुंहमांगा वर दे दिया। हिरण्यकशिपु इस वरके प्रभावसे अत्यन्त प्रबल हो उठा और स्वर्गलोकका अधीश्वर हो कर देवताओंको नाना प्रकारसे विडम्बित और लाञ्छित करने लगा। देवगण इस अत्याचारको सह न सके और विष्णुकी शरणमें पहुंचे। विष्णुने उन्हें अभयवर दे कर कहा, 'हम बहुत जल्द उस वर-दर्पित दानवेन्द्रको गण-के साथ विनाश करेंगे।' इतना कह कर उन्होंने देव-ताओंको विदा किया और हिरण्यकशिपु किस प्रकार मारा जायगा यह सोचते हुए आप हिमालय पर्वत पर चल दिए। वहां उन्होंने दैत्य, दानव और राक्षसोंको भयावह एक अपूर्व नरसिंहमूर्त्ति धारण करनेको विचारा। उसी समय उनका आधा शरीर मनुष्य-सा और आधा सिंह-सा हो गया। एकमात्र ओंकार ही उनका सहायक हुआ। इनके तेजसे सूर्य भी शर्मा उठे। क्रमशः यह नरसिंह-मूर्त्ति हिरण्यकशिपुके समीप पहुंची। विष्णुने देखा, कि दानवपति अपूर्व सभामें बैठा हुआ है, देवता, गन्धर्व और अप्सरायें नाच गान कर रही हैं।

भगवान् उस सभामें पहुंच कर हिरण्यकशिपुको एक टकसे देखने लगे। इसी समय [illegible] प्रधान [illegible]या प्रह्लादने दिव्यचक्षुसे उस समागत [illegible] में रहा। बाद अपने पितासे कहा, 'महाराज [illegible] [illegible] सन्निधियाके हैं। यह मूर्त्ति देख कर [illegible] [illegible]त अत्यन्त दिव्य-प्रभावशा[illegible] [illegible] [illegible]गोंका दैत्यकुल विनष्ट होगा। [illegible] शरीरमें मानो स्थावरजङ्गमात्मक सभी जगत् विद्यमान है', ये कोई असाधारण पुरुष होंगे।

इस दैत्यपतिने प्रह्लादकी बात सुन कर अपने अनुचरको हुक्म दिया, कि तुम लोग इस सिंहको इसी समय मार डालो। दानवगण प्रबल विक्रमसे उस सिंह पर टूट पड़े और बातकी बातमें दलबलके साथ नष्ट भी हो गये। नरसिंहने अपने शरीरको फैला कर घोरतर सिंहनाद करते हुए दैत्यसभाको छिन्न-भिन्न कर डाला। तब हिरण्यकशिपु स्वयं उन पर कठिनसे कठिन अस्त्रोंकी वर्षा करने लगा। दोनोंमें कुछ देर तक घमसान युद्ध होता रहा।

दानवोंने आ कर विष्णु पर आक्रमण किया, किन्तु अन्तमें वे सबके सब जहांके तहां ढेर हो रहे। इस पर हिरण्यकशिपु आगबबूला हो लाल लाल आंखें कर सभी चीजोंको दग्ध करने लगा। पृथ्वी डाँवाडोल हुई, समुद्रका जल खलबल उठा, सकानन भूधरगण विचलित होने लगे, सारा संसार तमसाच्छन्न हो गया, कुछ भी नजर आने न लगा। घोर उत्पात और भयसूचक वायु बहने लगी। प्रलयकालके जितने लक्षण हो सकते, वे सभी दिखाई देने लगे। सूर्य प्रभाहीन और असितवर्ण हो कर भयङ्कर धूमशिखा निकालने लगे। सप्तसूर्यने भी तिमिरवर्णका आकार धारण कर लिया। आकाशसे घन घन उल्कापात होने लगा। तब हिरण्यकशिपु महाक्रोधसे उद्दीप्त हो हाथमें गदा ले कर तीव्रवेगसे दौड़ा। इस पर अत्यन्त भयभीत हो देवताओंने भगवान् नरसिंहदेवसे प्रार्थना की, 'देव! दुष्टमति हिरण्यकशिपुको अनुचरोंके साथ मार डालिए। आपके सिवा दूसरा कोई इसे मार नहीं सकता, अतः लोकहितके लिए इसे मार कर त्रिलोकमें शान्ति-प्रदान कीजिये।'

देवताओंका आर्त्तनाद सुन कर नरसिंहदेव अत्यन्त भीषण गर्जन करने लगे। इस प्रकार एकमात्र ओंकारकी सहायतासे वे उस दुष्ट दैत्य पर झपटे और उसका पेट उन्होंने नखोंसे फाड़ डाला।

भीषण प्रभु दानवेन्द्र हिरण्यकशिपुके मारे जाने पर पृथ्वी, पृथ्वीके सभी मनुष्य, चन्द्र, सूर्य, ग्रहनक्षत्रादि और नदी शैलादि सभी फूले न समाये। देवगण नरसिंहदेवकी स्तुति करने लगे, अप्सरायें नाच गान करने लगीं। इसके बाद गरुड़ध्वज नारायणने नरसिंह रूपका परित्याग कर अपनी मूर्त्ति धारण कर ली और अष्टचक्र तथा अत्यन्त प्रदीप्त भूतवाहन रथ पर चढ़ कर क्षीरोद-सागरके उत्तरीय किनारे, जहां उनका स्थान था, चल दिये।

(हरिवंश ३०-४८ अ०)

श्रीमद्भागवतमें इसका विवरण इस प्रकार लिखा है—

हिरण्यकशिपु ब्रह्मासे वर पा कर बहुत प्रदीप्त हो उठे। पीछे स्वर्गादि राज्योंको जीत कर उन्होंने स्वयं इन्द्रत्व ग्रहण किया। हिरण्यकशिपुके चार पुत्र थे, जिनमेंसे प्रह्लाद परम धार्मिक और विष्णुभक्ति-परायण था। शुक्राचार्य दानवोंके पुरोहित थे। उनके पुत्र नीतिकुशल सुपण्डित षण्ड और अमार्कने दैत्य-पुत्रोंकी विद्या-शिक्षाका भार लिया था। प्रह्लाद भी उन्हींके निकट पढ़ने लगा। हिरण्यकशिपु भ्रातृवधके कारण विष्णुसे हमेशा द्वेष रखता था।

दैत्यराजने एक समय सब लड़कोंको जांचनेके लिए सभास्थलमें बुलाया। जब प्रह्लादसे प्रश्न किया गया, तब उसने विष्णुके गुण-कीर्त्तनके सिवा और कुछ भी न कहा। इस पर हिरण्यकशिपु बहुत बिगड़ा। लेकिन प्रह्लादने हरिकीर्त्तन न छोड़ा, बल्कि वह धीरे धीरे और लड़कों भी अपने मतमें लाने लगा। इस कारण हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको बहुत सताया, लेकिन प्रह्लादका बाल भी बाँका न हो सका। प्रह्लाद देखो।

जब दूसरे दूसरे लड़के भी प्रह्लादके साथ मिल कर विष्णुभक्त हो गये, तब हिरण्यकशिपुने एक दिन बहुत कुपित हो कर प्रह्लादसे पूछा, 'रे मूढ़! मेरे क्रोध करनेसे त्रिभुवन कांप उठता है और तू निर्भय हो कर मेरे विरुद्ध चल रहा है, अभी बतला, तू किसके बल कूदता है?' इस पर प्रह्लादने कहा, 'राजन्! वह भगवान् केवल मेरा ही बल नहीं है, बल्कि आपका और चराचर जगत्का; यहां तक कि ब्रह्मादि देवताओंका भी बल है। उन्हींके बल पर सभी कूदते हैं। क्योंकि वे ही ईश्वर हैं, वे ही काल हैं, उनका पराक्रम असीम है।' प्रह्लादका ऐसा वचन सुन कर हिरण्यकशिपु अत्यन्त क्रोधित हो बोला, 'रे दुर्बुद्धे! तू बार बार ईश्वर ईश्वर करके मेरी अवज्ञा कर रहा है, तेरा ईश्वर कहां है, अभी जल्दी बोल।' प्रह्लादने कहा, 'ईश्वर सर्वत्र विराजमान हैं।' इस पर

दैत्यराज दाँत पीस कर आँखें लाल लाल कर बोला, 'यदि तेरा ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है, तो क्या इस खम्भेमें भी है?' प्रह्लादने कृताञ्जलि हो उत्तर दिया, 'अवश्य'। इस पर हिरण्यकशिपु हाथमें खड्ग ले कर बार बार उस खम्भेकी ओर लक्ष्य करने लगा और बहुत जोरसे उसमें मुष्टि प्रहार किया। इसी समय उस खम्भेसे एक भयानक शब्द निकला। यह शब्द सुनते ही दैत्यराजका हृदय मानो काँपने लगा। स्तम्भसे नरसिंह-मूर्त्तिको निकलते देख हिरण्यकशिपु आश्चर्यान्वित हो बोला, 'अहो, कैसा आश्चर्य रूप! यह सिंह भी नहीं है और न मनुष्य ही है, हो न हो यह अवश्य सिंहमूर्त्ति है।' हिरण्यकशिपु ऐसा सोच ही रहा था, कि इसी बीच नृसिंहरूपी हरि उस स्तम्भसे निकल पड़े। उनकी आँखें तप्तकाञ्चनकी तरह पिङ्गलवर्णकी थीं, वदन देदीप्यमान था और जटा खूब लम्बी थी। इनका शरीर स्वर्गस्पर्शी था, ग्रीवा छोटी पर मोटी थी, वक्षःस्थल विशाल था और सभी नाखून अस्त्रके समान तेज थे। दश अवतार देखो।

ऐसा रूप देख कर हिरण्यकशिपु तान मार कर बोलने लगा। भगवान् नरसिंह देवने दैत्यराज हिरण्यकशिपुको पकड़ कर भरी सभामें अपनी जंघा पर ले लिया और तेज नाखूनोंसे उनका पेट फाड़ डाला।

इस प्रकार नरसिंहदेवके अनुचरोंके साथ हिरण्यकशिपुके मारे जाने पर त्रिभुवन शान्त हुआ तथा सभी ओर प्रसन्नता छा गई। तब नरसिंहदेव श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे। ब्रह्मा आदि सभी देवगण उनकी स्तुति करने लगे, 'भगवन्! हम लोगोंके सभी अधिकार दैत्योंने विनष्ट कर डाले हैं, अभी हम लोगोंको क्या करना चाहिये। कृपया बतला दें।' इतनी बातें जो देवताओंने कही थीं, वह दूरमें ही रह कर, नजदीक आनेका किसीका साहस नहीं होता था। बाद उन्होंने श्रीको नरसिंह देवके पास भेजा, किन्तु श्री भी वहाँ आ न सकीं। अनन्तर ब्रह्माके कहनेसे प्रह्लाद उनके पास गया और स्तुति करने लगा। इस पर भगवान्‌का क्रोध शान्त हुआ और वे प्रह्लादको वर दे कर अन्तर्हित हो गये।

भागवत ७।१-१० अ० देखो।

विष्णुपुराणके १।१७-२१ अध्यायमें भी प्रह्लादका, नारायणकी नृसिंहमूर्त्ति धारण करनेका तथा उनसे हिरण्यकशिपुके मारे जानेका पूरा विवरण लिखा है। प्रायः सभी पुराणोंमें नरसिंहावतारका प्रसङ्ग थोड़ा बहुत वर्णित है।

नरसिंह—यूएनचुवङ्गके भारत-वृत्तान्तमें जिन सब देशोंका उल्लेख है, उनमेंसे पञ्जाबके नरसिंह देशका भी उल्लेख देखनेमें आता है। यूएनचुवङ्ग पञ्जाबकी राजधानी तकि होते हुए इस नगरमें आये थे। सेखापुरसे ९ मील दक्षिण, अमृतसरसे २५ मील पूर्व-दक्षिण और लाहोरसे भी २५ मील पश्चिममें रनसी नामक स्थानको ही कनिंहम इसी नरसिंह नगरका ध्वंसावशिष्ट स्थान मानते हैं। यहाँ दक्षिण-पूर्वमें ६०० फुट दीर्घ, पूर्व पश्चिममें ५०० फुट विस्तृत और २५ फुट वृहदाकार ईंटोंका स्तूप पड़ा है। सोरा निकालनेवाले इस स्तूपके निकट प्राचीन मुद्रादि पाया करते हैं। यहाँ नौगज अर्थात् नौ गज लम्बे देहधारीकी एक समाधि है।

नरसिंह—कनाड़ी भाषामें महाभारतके रचयिता। जैन कवि पम्पके प्रतिपालक चालुक्यराज अरिकेशरीके अधस्तन ६ठें पुरुषमें नरसिंहका जन्म हुआ था। यही नरसिंह चालुक्यराज युद्धमल्लके पौत्र थे। चालुक्य देखो।

नरसिंह—१ आनन्दलहरीके एक टीकाकार। २ अद्वैतवैदिकसिद्धान्त-प्रणेता। ३ गुणरत्नाकरके प्रणेता। ४ नैषधप्रकाशकके प्रणेता। ५ पारिजातके रचयिता। ६ भारतचम्पूके टीकाकार। ७ वासन्तिका-परिणयके प्रणेता। ८ श्रीनिवास-रचित शिवभक्तिविलासके टीकाकार। ९ काव्यादर्शमुक्तावलीके प्रणेता। इनके पिताका नाम गदाधर, पितामहका कृष्णशर्मा, प्रपितामहका हरिहर और वृद्धप्रपितामहका नाम कीर्त्तिधर था। १० गाविन्दार्णवके प्रणेता। इनके पिताका नाम रामचन्द्र था। ११ काव्यप्रकाशिकाके प्रणेता। इनके पिताका नाम वरदार्य था।

नरसिंह—विजयनगरके नरसिंहवंशीय एक राजा। ये कर्णूल-राज ईश्वरके पुत्र थे। ये ही प्रथम नरसिंह वा नृसिंह और नरस अवनीपाल नामसे प्रसिद्ध थे। शायद १५०९ ई०में ये वर्त्तमान थे। इनकी दो स्त्रियाँ थीं, तिप्पाजीदेवी और नागलादेवी। नागलादेवी नागाम्बिका नामकी नामसे मशहूर थी।

नरसिंह—मिथिलाके राजा। ये कवि विद्यापति प्रतिपालक राजा शिवसिंह रूपनारायणके पितृव्य-पुत्र थे। शिवसिंहके बाद रानी पद्मावती, रानी लक्ष्मीदेवी और रानी विश्वासदेवीने राज्य किया। पीछे १४७३ ई०में ये राजा हुए।

नरसिंह वा नरसा रेड्डि—कार्वेटीनगर नामक जमींदारीके स्थापनकर्त्ता। ग्यारहवीं शताब्दीमें प्राच्य चालुक्यवंशीय राजा विमलादित्यने (१०१६-१०२२ ई०में) इन्हें तिरुपति प्रदेशका शासनकर्त्ता बनाया। वहां इन्होंने अपने नाम पर नरसापुर नामक एक नगर बसाया। इनका आदिवास गोदावरी तीरस्थ पिट्टापुर नगरमें था। ये शाल्ववंशीय थे। इनका पूरा नाम शाल्व नरसा रेड्डि था। १०२३ ई०में ये प्रथम सरदार माने जाने लगे।

इनके वंशके ७ सरदारोंका विवरण मिलता है। शाल्व नरसा रेड्डिके बाद जो विषयाधिकारी हुए उनके नामका पता नहीं चलता। पीछे शाल्व वेङ्कटपति नायडू चोल राजाओंसे अधिकारच्युत हुए। किन्तु उनके पुत्र शाल्व भीम नायडूने पैत्रिक सम्पत्ति पुनः वापिस कर ली। इनके पुत्र शाल्व नरसिंह नायडू अत्यन्त पराक्रान्त थे। चेरराज कीर्त्तिवर्माको किसी समय इन्होंने यथेष्ट सहायता की थी, किन्तु इस प्रत्युपकारके बदले उन्होंने इनके राज्य पर चढ़ाई कर दी। युद्धमें शाल्व भीमकी जीत हुई और इन्होंने स्वाधीनता अवलम्बन कर बहुत विचक्षणतासे ३५ वर्ष तक राज्य किया। इनके पुत्र शाल्व भुजङ्ग नायडूने पाश्चात्य चालुक्यवंशीय राजा सोमेश्वरसे परास्त हो कर उनकी अधीनता स्वीकार कर ली।

राजा सोमेश्वरने शाल्वभुजङ्गको कल्याण नगरमें कैद कर रखा और वहीं पर उनकी मृत्यु भी हुई। इनके बाद दो राजाओंके नाम नहीं मिलते। अन्तिम राजाने पैत्रिक सम्पत्ति उद्धार की। ११३० ई०में चोलराज द्वितीय राजराजने इस वंशके राज्यको अपने अधिकारभुक्त कर केवल २४ ग्राम उनके लिये छोड़ दिये। पीछे चोलराज्यके अधःपतनके समय ११८४ ई०में इस वंशका पुनः अभ्युदय हुआ। औरङ्गावीड रेड्डिवंशके प्रथम पुरुष प्रमय रेड्डि इस समय शाल्व सरदारोंके जामाता हुए। इसके अनन्तर यह वंश पुनः विजयनगरके अधीन हुआ। गीड़िमल्लराजु और बोप्पराजु नामक दो क्षत्रिय भाइयोंने इस राज्यकी सीमा पर उपद्रव करनेवाले एक दलको ध्वंस कर डाला था। पीछे शाल्व सरदारोंने उन्हें अपने राज्यमें आश्रय दिया। क्रमशः मल्लराजु प्रधान मंत्री हुए और अपुत्रक राजाके मरने पर रानी भी सती हो गई। बाद मल्लराजु ही राजा बन बैठे। उन्हींका वंश अभी वर्त्तमान है।

नरसिंह अग्निचित् वाजपेयी—नित्याचारप्रदीपके प्रणेता।

नरसिंह आचार्य—१ कलारीय नामक धर्मशास्त्रके प्रणेता। २ मध्वविजयके टीकाकार। ३ तन्त्रमुद्राविलास नामक तान्त्रिक ग्रन्थके प्रणेता। ये नृसिंह नामसे भी मशहूर थे।

नरसिंहकवि—१ नञ्जराजयशोभूषणके प्रणेता। २ वर्षफल नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता।

नरसिंह कविराज—मधुमती नामक वैद्यक-ग्रन्थके प्रणेता। ये नीलकण्ठभट्टके पुत्र, रामकृष्ण भट्टके शिष्य और विद्याचिन्तामणिके गुरु थे।

नरसिंहज्वर (सं० पु०) वैद्यकके अनुसार एक प्रकारका ज्वर। यह ज्वर चौथिया या चातुर्थिकका उलटा है और तीन दिन तक चढ़ा रहता है। चौथे दिन वह उतरता है और फिर वही क्रम चलता है।

नरसिंहठक्कुर—१ तारापञ्चाङ्ग, ताराभक्तिसुधार्णव और महाविद्याप्रकरण नामक तान्त्रिक ग्रन्थके प्रणेता। २ प्रमाणपल्लव नामक धर्मशास्त्रके रचयिता।

नरसिंहदयाल—एक हिन्दी-कवि। इन्होंने सं० १८००के पूर्व बहुत सी कविताकी रचना की। इनके पद रागसागरोद्भवमें पाये जाते हैं।

नरसिंहदेव—मिथिलाके राजा। इन्होंने राजपण्डित रामेश्वरदेवकी कन्या धीरमतिदेवीसे विवाह किया था। रानी धीरमति विदुषी थी। धर्मार्थ दानके विषयमें रानीने दानवाक्यावली नामक सुप्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थकी रचना की।

नरसिंहदेव—नेपालके एक राजा। ये ठाकुरीवंशके द्वितीय शाखाके ५वें राजा थे। इनके पिताका नाम

मानदेव था। इन्होंने २२ वर्ष राज्य किया। पीछे इनके लड़के रुद्रदेव राजा हुए। नेपाल देखो।

नरसिंहदेव—१ नेपालके अंशुवर्म-वंशीय एक राजा। २ विजयनगरके एक राजा। इन्हींसे विजयनगरके नरसिंहवंशकी उत्पत्ति हुई थी। १४८० ई०में ये राज्य करते थे।

नरसिंहदेव—उत्कलमें इस नामके अनेक राजाओंने राज्य किया। शिलालिपि और ताम्रशासन पढ़नेसे जाना जाता है कि गङ्गवंशीय १म नरसिंहने तुघानखांको जीत कर गौड़नगरके तोरण-द्वार तक धावा मारा था। कणारकका जगद्विख्यात सूर्यमन्दिर इन्हींकी कीर्त्ति है। गांगेय और कोणार्क देखो।

नरसिंहदेव—भेदाधिकारन्यक्कारनिरूपण नामक न्याय ग्रन्थके प्रणेता।

नरसिंहनायक—पाण्ड्यवंशके एक राजा। इन्होंने विजयनगरके राजा प्रथम नरसिंहके हाथसे पाण्ड्यराज्यका उद्धार कर १४९९से ले कर १५०९ ई०तक राज्य किया। इनके बाद तेन्ननायक (१५००-१५१५) और तेन्ननायकके बाद नरस-पिल्लई (१५१५-१५१९ ई०) राजा हुए। इनके समयकी उत्कीर्ण लिपिसे जान पड़ता है कि नरस-पिल्लई विजयनगरके राजा कृष्णदेवरायके भृत्य थे।

नरसिंहपण्डित—"दीपिकाप्रकाश" नामक दार्शनिक ग्रन्थके प्रणेता। वैशेषिक दर्शनका तर्कसंग्रह नामका एक ग्रन्थ है, जिसकी दीपिका नामकी एक टीकाकी आलोचना और व्याख्या करके नरसिंह पण्डितने दीपिका-प्रकाशकी रचना की है। ये रायनरसिंह पण्डित नामसे भी प्रसिद्ध थे।

नरसिंह पञ्चाननमिन्—पद्यतरोतिके प्रणेता।

नरसिंहपुर—मध्यप्रदेशके नर्मद विभागका एक जिला। यह अक्षा० २२° १७´ और २३° १५´ उ० तथा देशा० ७८° २७´ और ७९° ३८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १९७१ वर्गमील है। इसके उत्तर भूपाल राज्य, सागर, दमोह और जब्बलपुर जिला, पूर्वमें सिवनी और जब्बलपुर, दक्षिणमें छिन्दवाड़ा और पश्चिममें होशङ्गाबाद तथा दुधी नदी है। यह नदी नरसिंहपुरको होशङ्गाबाद जिलेसे पृथक् करती है। समूचा जिला नर्मदा नदीके दक्षिणमें पड़ता है। यहां अनेक नदियां बहती हैं, यथा, नर्मदा, शेर, शक्कर, माचारेवा, सितारेवा, दुधी और सोनर। ये सभी नदियां सतपुरा पहाड़से निकली हैं। इनके अलावा हिरन और सिन्धोर नदियां उत्तरसे आ कर नर्मदामें मिल गई हैं।

यहांका जङ्गल उतना घना और विस्तीर्ण नहीं है, पर तो भी बाघ, चीता, साम्बर और नीलगाय यथेष्ट मिलती हैं। आबहवा शुष्क तथा स्वास्थ्यकर है। वार्षिक वृष्टिपात ५१ इञ्च है।

गड़मण्डल वंशीय ४८वें राजा संग्रामसिंहने यह स्थान अपने राज्यमें मिला लिया था। चौरागढ़ दुर्ग उन्हींका बनाया हुआ है। १५६४ ई०में रानी दुर्गावतीकी पराजय और मृत्युके बाद आसफ खाँ चौरागढ़ पर आक्रमण कर वहांसे प्रचुर स्वर्ण मुद्रा और हाथी लूट ले गये थे। १५९३ ई०में जब जुझारसिंहने इस दुर्ग पर आक्रमण किया, तब प्रेम नारायणने कई मास तक दुर्गको बचाये रखा था। १७८१ ई०में मोराजी नामक सागरके महाराष्ट्रीय शासनकर्त्ता इसे जीत कर अपने दखलमें लाये। पीछे १७ वर्ष तक यह उन्हींके हाथमें रहा। उसी समय उत्तरसे अनेक हिन्दू आ कर यहां रहने लगे। भोंसला राजाओंने पुनः महाराष्ट्रोंको यहांसे निकाल बाहर किया। १८१८ ई०में यह अंगरेजोंके शासनाधीन हुआ। किसी समय पिण्डारियोंका यहां खूब प्रादुर्भाव था।

इस जिलेमें ३ शहर और ९६३ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या लगभग ३१५५१८ है। जिनमेंसे ब्राह्मण, राजपूत और बनियेकी संख्या सबसे अधिक है। गेहूं, धान, ईख, कोदों और रूई यहांके प्रधान उत्पन्न द्रव्य हैं। घी, तेलहन, चमड़ा और हड्डीकी दूर दूर देशोंमें रफतनी होती तथा रूई, नमक, चीनी, मट्टीका तेल, तमाखू, गुड़ और चावलकी आमदनी होती है। ग्रेट इण्डियन-पेनिनसुला रेलवे जिलेके मध्य हो कर दौड़ गई है। यहां पक्की सड़ककी लम्बाई ७९ मील और कच्चीकी १३५ मील है।

राजकार्यकी सुविधाके लिये यह जिला दो तहसीलोंमें विभक्त है। नरसिंहपुर तहसील तहसीलदार और

भायब तहसीलदारके अधीन है। नरसिंहपुर और गादरवाड़ा ये दो नगर इस जिलेके प्रधान वाणिज्य स्थान हैं। नर्मदा नदीके किनारे बर्मन-घाट नामक स्थानमें शीतकालमें एक बड़ा मेला लगता है। चिचलीके पीतल-काँसेका बरतन, गादरवाड़ेका एक प्रकारका सूती कपड़ा और नरसिंहपुरका नघर इस जिलेका प्रधान शिल्पजात द्रव्य है। मोहपानीमें कोयला और नर्मदाके उत्तर तेन्दुखेरा नामक स्थानमें उत्कृष्ट लोहा मिलता है।

जिले भरमें ७ चिकित्सालय, २ अङ्गरेजी और ६ वर्नाक्यूलर स्कूल और ८१ प्राइमरी स्कूल हैं।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २२° ३७´ और २३° १३´ उ० तथा देशा० ७८° १´ और ७८° ३८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ११०६ वर्गमील और लोकसंख्या १५८७३८ है। इसमें नरसिंहपुर और छिन्दवाड़ा नामके दो शहर तथा ५३२ ग्राम लगते हैं।

३ नरसिंहपुर तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २२° ५७´ उ० और देशा० ७९° १३ पू०के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या ११२३३के लगभग है। पहले इस शहरका नाम गदरिया-खेरा था। पीछे नरसिंहदेवका एक मन्दिर तैयार हो जानेसे यह नरसिंहपुर कहलाने लगा है। १८६७ ई०में यहां म्युनिसिपलिटी स्थापित हुई है। शहरमें एक यन्त्रालय, एक मिडिल इङ्गलिश स्कूल तथा और दूसरे दूसरे स्कूल एवं तीन चिकित्सालय हैं।

४ पूना जिलेके उत्तर-पूर्व प्रान्तमें भीमा और नीरा नदीके सङ्गम स्थल पर स्थापित एक नगर। यहां श्रीलक्ष्मीनरसिंहका एक मन्दिर है। मन्दिरकी सोपानश्रेणी नदीके गर्भ तक चली गई है। मन्दिर अष्टकोण है और काले पत्थरसे बना हुआ है। इसकी चूड़ा स्वर्णमण्डित और प्रायः ४६ हाथ ऊँची है। वैशाख मासकी शुक्ला चतुर्दशीको यहां दो दिन तक मेला लगता है जिसमें चार हजारसे अधिक मनुष्य समागम होते हैं।

५ उड़ीसाका एक देशीय राज्य। यह अक्षा० २०°२३ और २०° ३७´ उ० तथा देशा० ८४° ५´ और ८५° १७´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १९९ वर्गमील और लोकसंख्या ३६६११ है। इसमें १९२ ग्राम लगते हैं जिनमेंसे कामपुर सबसे प्रसिद्ध है। उत्तरकी अरण्यावृत पर्वतश्रेणी इसे अङ्गुल और हिन्दोलसे पृथक् करती है इसके पूर्वमें बड़म्बा, दक्षिण और दक्षिण-पश्चिममें महानदी तथा पश्चिममें अङ्गुल है। लगभग १६वीं शताब्दीमें धर्मसिंह नामक राजपूतने इस नगरको बसाया था। राजस्व ६६०००) रु०का है जिसमें १४५०) रु० वृटिश गवर्नमेण्टको करस्वरूप देने पड़ते हैं। यहां एक मिडिल वर्नाक्यूलर स्कूल, एक अपर स्कूल और २६ लोअर प्रायमारी स्कूल तथा एक दातव्य चिकित्सालय है।

नरसिंहपुराण (सं० क्लो०) नरसिंहोपवर्णनात्मकं पुराणं। उपपुराणभेद। मत्स्यपुराणमें इस उपपुराणका उल्लेख देखनेमें आता है। इसमें कुल १८००० श्लोक हैं जिनमें नरसिंहका विषय वर्णित है।

जिन सब विषयोंका इसमें वर्णन किया गया है वे ये हैं—प्रथम अध्यायमें मङ्गलाचरण, भरद्वाज प्रश्न और प्रधान तत्त्वादि; २य अध्यायमें युगादि परिमाण; ३य अध्यायमें सृष्टिविवरण; ४र्थ अध्यायमें अनुसृष्टिकथन; ५म अध्यायमें रुद्रसर्ग; ६म अध्यायमें मित्रावरुणके औरसमें अगस्त्य और वशिष्ठकी उत्पत्ति; ७म अध्यायमें मार्कण्डेयकी मृत्युविजय और नारकियोंका उद्धार; ८म अध्यायमें मार्कण्डेयके प्रति नारायणकी प्रसन्नता; ९म अध्यायमें मार्कण्डेयका विष्णुस्तोत्र; १०म अध्यायमें मार्कण्डेयका नारायण-दर्शन; ११वें अध्यायमें यम और यमीका उपाख्यान; १२वें अध्यायमें ब्रह्मचारी और पतिव्रता-सम्वाद; १३वें अध्यायमें संसारवृक्षका लक्षण और नारायणमन्त्र; १४वें अध्यायमें दोनों अश्विनीकुमारकी उत्पत्ति; १५वें अध्यायमें मरुद्गणकी उत्पत्ति; १६वें अध्यायमें राजाओंका वंश-विवरण, १७वें अध्यायमें मन्वन्तर-कथन, १८वें अध्यायमें वंशानुचरित और इक्ष्वाकु विवरण; १९वें अध्यायमें विनायकस्तव; २०वें अध्यायमें सोमवंशानुचरित और निर्माल्यलङ्घनका फल; २१वें अध्यायमें भूगोलविवरण; २२वें अध्यायमें सहस्रानीकचरित; २३वें अध्यायमें हरिकी अर्चना, २४वें अध्यायमें कोटिहोमविधि; २५वें अध्यायमें विष्णुका अवतार कथन; २६वें अध्यायमें मत्स्यावतार वर्णन, २७वें अध्याय-

में कूर्मावतारवर्णन ; २८वें अध्यायमें वराह-अवतार कथन ; २९वें अध्यायमें नरसिंह अवतार और प्रह्लाद चरित; ३०वें अध्यायमें वामनावतार; ३१वें अध्यायमें जामदग्न्यवतार; ३२वें अध्यायमें बलराम और कृष्णका अवतार; ३३वें अध्यायमें कल्कि-अवतार; ३४वें अध्यायमें मुक्तिका अभिलाभ; ३५वें अध्यायमें विष्णुमन्दिर-प्रतिष्ठा; ३६वें अध्यायमें नारसिंह भक्तोंका लक्षण और पुण्यफला-ध्याय; ३७वें अध्यायमें ब्राह्मण-धर्म; ३८वें अध्यायमें क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-धर्म; ३९वें अध्यायमें ब्रह्मचर्या-श्रम-कथन; ४०वें अध्यायमें वानप्रस्थ-धर्म कथन; ४१वें अध्यायमें यति-धर्म; ४२वें अध्यायमें आत्मलाभ; ४३वें अध्यायमें विष्णुकी अर्चना-विधि; ४४वें अध्यायमें विष्णु-पूजाकी साधारण विधि, ४५वें अध्यायमें गुह्यचरित और उनके स्थानकी नामावली; ४६वें अध्यायमें पुण्यमय भौमिक तीर्थकथन; ४७वें अध्यायमें मानसिक तीर्थ-विवरण वर्णित है। इन सब वर्णन-प्रसङ्गमें और भी अनेक विषयोंका वर्णन किया है ।

नरसिंह पोतवर्मन्—काञ्चिपुरके एक पल्लव-वंशीय राजा ।

नरसिंहभट्ट—१ यजुर्वेदचिन्तामणिके प्रणेता । २ अद्वैत-चन्द्रिकाभेदाधिकारटोकाके प्रणेता । ये रघुनाथभट्टके पुत्र, रामचन्द्राश्रम और नागेश्वरके शिष्य थे। इन्होंने किम्भु गो-वंशीय राजा जगन्नाथके कहनेसे उक्त पुस्तककी रचना की ।

नरसिंह भूपति—पलनाद प्रदेशके एक राजा । लोग इन्हें कार्त्तवीर्यार्जुनके वंशधर बतलाते हैं। पालनाचपुरम् नामक स्थानमें इस वंशके राजाओंकी राजधानी थी ।

नरसिंहमिश्र—चतुर्वेदतात्पर्य संग्रहके प्रणेता ।

नरसिंहमूर्त्तिदान (सं० क्लो०) कालिकापुराणोक्त दान-भेद। इसमें स्वर्णादि द्वारा नरसिंहकी मूर्त्ति बना कर दान करते हैं। हेमाद्रिके दानखण्डमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—

सोने या चाँदीकी चतुर्भुज मूर्त्ति बनावे। इसके दाँत चाँदीके, आँखें पद्मराग मणिकी, नख विद्रुमके, भ्रूदेश पुष्पराग मणिके और दोनों कान हीरेके हों। बाद उसे ताम्रपात्रमें रख कर प्रतिष्ठापूर्वक दान करें।

विष्णुधर्मोत्तरमें इसका विधान इस प्रकार लिखा है—

भगवान् विष्णुको नरसिंहमूर्त्ति सोने या चाँदीकी हो। मूर्त्तिका स्कन्धदेश पीन; कटि, ग्रीवा और उदर कृश है, यह नील वस्त्र पहन कर तथा सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हो सिंहासन पर बैठी हुई है। अपने नखोंसे हिरण्यकशिपुका वक्षःस्थल विदारण कर रही है. ऊपरके दोनों हाथोंमें शङ्ख और चक्र हैं। देवगण हिरण्यकशिपुके अनुगत हो कर खड़े हैं। इसी प्रकार नरसिंहमूर्त्ति स्वर्णादि द्वारा बना कर उस पात्रको मधु और खण्डमिश्रसे भर देते हैं। तदनन्तर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और विविध नैवेद्यादि द्वारा यथाविधि उस मूर्त्तिकी वैष्णव मन्त्रसे पूजा करते हैं। मूर्त्तिदान-के समय अठहत्तर सौ तिलाज्य होम करना होता है। कार्त्तिक अथवा वैशाख मासकी पूर्णिमा या द्वादशी तिथिको इसका अनुष्ठान करना उचित है। जो इस व्रतका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें अरण्य आदि किसी स्थानमें भय नहीं रहता है तथा वे अनेक प्रकारके सुख लाभ करते और अन्तको विष्णुपद पाते हैं।

(विष्णुधर्मोत्तर)

नरसिंहमुनि—अद्वैतपक्षरत्न और भेदाधिकारतत्त्वविवे-चना नामक ग्रन्थके प्रणेता ।

नरसिंहयति—विद्याधीशनाथके शिष्य । इन्होंने आथर्व-णोपनिषदखण्डार्थ प्रकाश, ऐतरेयोपनिषदखण्डार्थ प्रकाश और जयतीर्थकृत तत्त्वोद्योतविवरणकी मन्दप्रबोध नामक टीका बनाई है।

नरसिंहयतीन्द्र—न्यायतत्त्व-विवरणके प्रणेता ।

नरसिंहराज—सर्वार्थसिद्धिके टीकाकार ।

नरसिंहराव—बेलगाँव जिलेके अन्तर्गत बदामीनगरके पहाड़ पर बामनबस्तीकोटो (बावाब पर्वत दुर्ग) और रणमण्डलकोटो (युद्धक्षेत्रदुर्ग) नामक दो स्थान हैं। नरसिंहराव नामक एक ब्रह्म ब्राह्मणने बहुतसी अरबी सेनाओंको साथ ले १८४१ ई०में ये दोनों दुर्ग (बदामी) अपने अधिकारमें कर लिये थे। बाद बेलगाँवके अंग्रेजी सेनाने जा कर उन्हें फिर वापिस कर लिया।

नरसिंहराय—ब्रह्मपुरके अधिकारमें बारहवीं शताब्दीको हयशालबल्लाल नामक एक विख्यात राजवंश राज्य

करता था। ये लोग देवगिरिके यादववंशके थे। हयसाल बल्लाल देखो।

इस वंशके जितने प्रामाणिक राजाओंके नाम पाये गये हैं, उनसे ज्ञात होता है, कि इस वंशमें प्रथम विख्यात राजा विनयादित्य १म त्रिभुवनमल्लके अधस्तन तृतीय, ५म और ७म पुरुषमें नरसिंह नामके तीन राजा हुए थे। १म नरसिंह वीरनरसिंह और विजयनरसिंह नामसे भी मशहूर थे। एचल देवीसे इनका विवाह हुआ था। इन्होंने ११४२ ई० से ११८१ ई० तक राज्य किया। बहुतोंका मत है, कि इन्होंने ही यादवोंका विख्यात राजधानी द्वारसमुद्र (आधुनिक हलेविडु) बसाई थी।

२य नरसिंह १म नरसिंहके पौत्र थे। इन्हें भी लोग वीरनरसिंह कहा करते थे। देवगिरिके यादवोंसे युद्धमें परास्त हो कर ये अपने अनेक राज्य खो बैठे थे। १२२३ ई०में ये राजसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इनके समयकी अनेक उत्कीर्ण लिपियां मिलती हैं। ३य नरसिंह २य नरसिंहके पौत्र थे और द्वारसमुद्रनगरमें राज्य करते थे। १२५४ ई०से ले कर १२८६ ई०के मध्य उत्कीर्ण इनके समयकी शिला लिपियां पाई गई हैं। इनके वंशमें रायकी उपाधि भी थी। द्वारसमुद्र देखो।

नरसिंह वाजपेयी—आभोग और वेदान्तकल्पतरुपरिमलखण्डन नामक ग्रन्थके रचयिता।

नरसिंह विष्णु—इनका दूसरा नाम नरसिंहपोतवर्मन् था। नरसिंहपोतवर्मन् देखो।

नरसिंहशास्त्री—१ न्यायप्रकाशिका और न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीकी प्रभा नामक टीकाके प्रणेता। २ जातकशिरोमणिके प्रणेता।

नरसिंहशिला—हिमालयतीर्थमालाके मध्य बदरीक्षेत्रके अन्तर्गत बारह प्रधान क्षेत्रोंमेंसे एक। बदरीनाथ देखो।

नरसिंहसेन—१ वासवदत्ताके एक टीकाकार। ये वैद्य थे। २ पथ्यापथ्यविनिश्चयके प्रणेता विश्वनाथसेनके पितामह।

नरसिंह सूरि—स्वरमञ्जरीके प्रणेता। ये वरदाचार्यके पुत्र थे। लोग इन्हें नृसिंह सूरि भी कहा करते थे।

नरसिभक्त—जूनागढ़निवासी एक भगवद्भक्त। ये काम धन्धा कुछ भी नहीं करते थे, रात दिन भगवद्भक्तिमें मस्त रहते थे। एक दिन इनकी भाभी इन पर बहुत झिड़की और कहोंसे कुछ कमा लानेको कहा। भाभीकी लगती बातोंसे इन्हें इतना दुःख हुआ कि इन्होंने प्राणत्याग करनेका सङ्कल्प कर लिया। इसी उद्देश्यसे एक दिन ये किसी एक निविड़ वनमें चले गये। वहां जा कर इन्होंने अपने सामने एक मन्दिरको देखा और उसी मन्दिरके प्राङ्गणमें वे सो रहे। ऐसे पवित्र आश्रयमें इन्हें अभुक्त अवस्थामें देख स्वयं शिवजी इनके सामने प्रकट हो बोले, 'वत्स! मैं महादेव हूं, तुम्हें वर देने आया हूं; अभी जो चाहो सो वर मांगो।' इस पर नरसिने कहा था, 'देव! मैं अच्छा बुरा कुछ भी नहीं जानता, संसारमें जो उत्कृष्ट वस्तु है, वही मुझे देनेकी कृपा करें।' यह सुन कर महादेव इन्हें वृन्दावनको ले गये और वे दोनों श्रीकृष्णके सामने उपस्थित हुए। इस प्रकार शिवजी इन्हें जगत्का सारतत्त्व कृष्णप्रेम अर्पण कर अन्तर्हित हो गये। इस अमूल्य रत्नको पा कर नरसि आत्मभोला हो गये और सदा श्रीकृष्णके प्रेममें उन्मत्त रहने लगे। कुछ दिन बाद जब ये देशको लौटे, तब सब कोई इन्हें पागल समझ कर उपहास करने लगे।

एक दिन किसी परम वैष्णवको द्वारका जानेकी इच्छा हुई। चोरके डरसे उसने नकद एक सौ रुपये किसी महाजनके पास जमा कर दिये और उससे उतने रुपयेकी एक हुण्डी मांगी। द्वारकामें महाजनका कोई परिचित मनुष्य था ही नहीं कि वह हुण्डी देता, इस कारण उसने ताने मार कर कहा, 'तुम नरसिके पास जाओ, वही तुम्हें हुण्डी दे देगा।'

वह साधु वैष्णव उसकी बातों पर विश्वास कर नरसिके पास गया और बहुत विनीत भावसे बोला, 'महात्मन्! यदि आप मेरे इस रुपयेको अपने पास रख कर इसके बदले द्वारकावासी किसी महाजनके नामसे एक हुण्डी दें, तो मैं कृष्णदर्शन कर सकता हूं, अन्यथा नहीं।' नरसि हरिप्रेममें मग्न थे। वे साधुकी बातें सुन कर सोचने लगे, जगत्के श्रेष्ठ महाजन हरि हैं। वे सचमुच द्वारकामें रहते हैं और मुझे भी पहचानते हैं। मालूम पड़ता है कि वह मनुष्य उन्हींके नाम पर

कुण्डो चाहता है। यह सोच कर इन्होंने हरिके नाम पर एक हुण्डो इस प्रकार लिख दो, "श्रोश्रो श्यामसुन्दर रुपाय ! इस मनुष्यने आपके उद्देशसे मेरे पास एक सौ रुपये जमा कर दिये हैं। अतः आप ऐसा कोई बन्दोबस्त कर दें गे जिससे इसे इतने रुपये वहां मिल जांय।" विश्वासो वैष्णव, जो कुछ हुण्डोमें लिखा था उसे न देख सोधे द्वारकाको चला गया। इधर नरसि बहुत चिन्ताकुल हो कर सोचने लगे, कि जिनके उद्देश्यसे ये रुपये रखे गये हैं वे किस तरह इन्हें पावेंगे। ब्राह्मण वा दरिद्रोंको देनेसे हो ये रुपये उन्हें अवश्य मिल जायगे। ऐसा सोच कर इन्होंने उस रुपयेको उसो समय ब्राह्मण वैष्णवोंमें बांट दिया। उधर वह वैष्णव जब द्वारका पहुंचा, तब कहते हैं, कि श्रोकृष्णने उतने रुपये उसे दे दिए थे। नरसिके दौहित्रके विवाहमें श्रीकृष्ण स्वयं उद्योगी थे। अन्तमें इनको दो कन्याएं कृष्ण प्रेममें दोक्षित हो पिताके साथ हरिनामकोर्त्तन करते करते स्वर्गधामको सिधार गई। देशके राजाने इनको अद्भुत भक्ति और कार्य देख कर कहा था कि जो कोई इनका अपमान करेगा, उसे उचित राजदण्ड दिया जायगा। (भक्तमाल हरिलीला)

नरसिया कवि—१ हिन्दोके एक कवि। ये भक्त कवि जूनागढ़ काठियावाड़के रहनेवाले थे। इनके पद रागसागरोद्भवमें पाये जाते है।

२ एक हिन्दो-कवि। इनको कविता सराहनीय होतो थो। उदाहरणार्थं एक नीचे देते हैं—

"कान्हा तेरे औलंभे हारी।
दूध दही घृत माखन मेरे और मिठाई सारी॥
यामारग जिन आवो कुंवर जी हौं तूले राव कुवारी।
हूं भी हारी और विहारी छूटी विरजकी नारी॥
तू तो ब्रजको ठाकुर कृष्णाजीकी थारी बलिहारी।
नरसैयाकों स्वामी सामलियो मान के विनति हमारी॥"

नरसेज (हिं० पु०) तिखारा नामक ज्वर जिसमें पसो नहीं होते। अतिधारा देखो।

नरसो (हिं० क्रि० वि०) अतरसों देखो।

नरसोब—बीजापुरके बड़े किलेका एक मन्दिर। यह मन्दिर उस किलेके भीतर खाईके ऊपर एक पीपल वृक्षके तले प्रतिष्ठित है। त्रिमुख देवता दत्तात्रेय इस मन्दिरके अधिष्ठाता हैं। बीजापुर देखो।

गुरुचरित्र नामक एक ग्रन्थमें लिखा है, कि कृष्णा नदीके किनारे वादो नामक एक ग्राम है जहां प्राचीन कालमें, एक धोबी रहता था। वह धोबो दत्तात्रेयका परम भक्त था और हमेशा उनके साथ साथ घूमने जाया करता था। पहले दत्तात्रेय धोबोके इस व्यवहार पर बहुत नाखुश रहते थे; पीछे जब उन्हें मालूम पड़ा कि धोबो केवल धम कामनासे उनका अनुसरण करता है, तब उसके प्रति वे बहुत प्रसन्न हुए। एक दिन दत्तात्रेय नदीमें स्नान कर रहे थे और वह धोबो पास हो खड़ा था। इसो बीच राजाको नाव वहां पहुंच गई। यह देख कर रजक बोल उठा, 'अहा! उस राजाका जीवन कैसा सुखमय है, और मेरा कैसा दुःसह क्लेशकर।' रजककी यह बात सुन कर दत्तात्रेयने उससे पूछा, 'क्या तुम अभी राजा होना चाहते अथवा मरनेके बाद?' रजकने मन हो मन सोच कर देखा, कि उसके अधिक दिन जीनेकी सम्भावना नहीं है, तब फिर इस जन्ममें थोड़े दिनोंके लिये राजा होनेसे क्या फल, दूसरे जन्ममें हो राजा होना अच्छा है। यह सोच कर उसने दूसरे जन्ममें हो राजा होनेके लिये दत्तात्रेयसे प्रार्थना की थी। उसीके यत्नसे उक्त मन्दिर बनाया गया।

नरस्कन्ध (सं० पु०) नर-समूहार्थे स्कन्ध। नरसमूह, सभो मनुष्य।

नरहन—भविष्य ब्रह्मखण्डोक्त मगधदेशका एक ग्राम। इसके पास रामपुर ग्राम अवस्थित है।

नरहय (सं० पु०) अश्वरूपी मनुष्य, वह मनुष्य जिसका मुंह घोड़ेके जैसा हो।

नरहर—ब्राह्मणकुलसम्भूत पाञ्चालवासी। अयोध्याक्षेत्रके अन्तर्गत पापमोचनतीर्थ इन्हींसे मशहूर हो गया है। कुसङ्गमें पड़ कर पहले ये देवद्विजहिंसक, वेदनिन्दुक, उत्पीड़क और अत्याचारी हो गये थे। पीछे अयोध्यामें आ कर इस पापमोचन तीर्थमें स्नान करनेके साथ हो उनका सब पाप दूर हो गया और उसी समय स्वर्गसे उनके ऊपर पुष्पवृष्टि होने लगी। तभीसे पापमोचन तीर्थने भी प्रसिद्धि लाभ की है।

(अयोध्यामाहात्म्य १५१)

नरहर (हिं० स्त्री०) पैरकी वह हड्डी जो पिंडलीके ऊपर होती है।

नरहरि (सं० पु०) नर इव हरिः सिंह इव च आकृतिर्यस्य। नरसिंह भगवान् जो दश अवतारोंमेंसे चौथे अवतार हैं।

"केशव धृत नरहरिरूप जय जगदीश हरे।" (गीतगो० १।८)

नरहरि—१ काव्यप्रकाशके टीकाकार। ये अपने ग्रन्थमें अपना परिचय दे गये हैं,—अन्ध्रदेशमें वात्स्य गोत्रमें रामेश्वर उत्पन्न हुए। उनके पुत्रका नाम नरसिंह और नरसिंहके पुत्रका नाम मल्लिनाथ था। मल्लिनाथके भी दो पुत्र थे, नारायण और नरहरि। नरहरिका जन्म १२९८ सम्वत्में हुआ था। संन्यास-धर्म ग्रहण करनेके बाद इन्होंने अपना नाम सरस्वतीतीर्थ रखा था। जब ये काशीमें रहते थे, तभी इन्होंने उक्त टीका रची थी। इसके सिवा इन्होंने मेघदूतकी टीका भी बनाई है। २ अभिनवरामकाव्य और कविकौमुदीके प्रणेता। ३ अहिबलचक्र नामक ज्योतिषग्रन्थके प्रणेता। ४ आथर्वणोपनिषद्व्याख्याके प्रणेता। ५ चन्द्रलक्ष्मीतृप्तिशतक और शृङ्गार-शतक नामक काव्यके प्रणेता। ६ बोधसार नामक काव्य, माधवसिद्धान्तसार और विशिष्टाद्वैतविजयवाद नामक दार्शनिक ग्रन्थप्रणेता। ७ भगवद्गीता-सार-संग्रहके प्रणेता। ८ संस्कारनृसिंह नामक ग्रन्थके प्रणेता। ९ राजनिघण्टु वा निघण्टुराज नामक अभिधानके प्रणेता। ये ईश्वरसूरिके पुत्र थे। १० नरपतिजयचर्या-स्वरोदयके टीकाकार। ये मिथिला-वासी गणेशके पौत्र और नरसिंहके पुत्र माने जाते हैं। ११ कुमारसम्भवके टीकाकार, भास्करके पुत्र। १२ अनुमान-खण्डदूषणोद्धार नामक ग्रन्थके प्रणेता। इनके पिताका नाम यज्ञपति था। १३ भावप्रकाश और भागवततात्पर्य-दीपिकाके प्रणेता। इन्होंने आनन्दतीर्थ प्रणीत ब्रह्मसूत्रानुभाष्यके व्याख्यार्थ भावप्रकाश और उक्त आनन्दतीर्थकृत भागवततात्पर्य-दीपिका बनाई है। इनके पिताका नाम वरदाचार्य था। लोग इन्हें नरहरि, नृहरि वा नृसिंह भी कहा करते थे। १४ वागीभट्टमण्डन नामक न्यायदर्शनीय ग्रन्थके प्रणेता। इनके पिताका नाम सहदेवभट्ट था। १५ नैषधीयटीकाकार। ये स्वयम्भूके पुत्र और विद्यारण्य योगीके समसामयिक थे। ये तैलङ्ग ब्राह्मण थे।

नरहरि—आदिशूरने यज्ञ करानेके लिए जिन पांच कनौज ब्राह्मणको लाए थे, वे उनसे ग्रामादि दानमें पा कर बङ्गाल देशमें बस गए थे। उनमेंसे एकका नाम भट्टनारायण था जिन्होंने क्षितीश नामक शूद्रशालीका पुत्र और अर्थशाली होनेके कारण दान-ग्रहण नहीं किया था। उन्होंने कुछ निष्कर जमीन खरीद कर एक छोटा राज्य बसा लिया। यह राज्य आधुनिक विक्रमपुरके निकट है। भट्टनारायणके निपु नामक एक पुत्र था। निपुकी निम्न छठी पीढ़ीमें नरहरि नामक राजा हुए थे। इन्हींके वंशसे नदीया-राजवंश उत्पन्न हुआ है।

नरहरि उपाध्याय—द्वैतनिर्णय नामक ग्रन्थके प्रणेता।

नरहरि चक्रवर्त्ती—बङ्गाल भक्ति-रत्नाकरके प्रणेता। ये जगन्नाथ चक्रवर्त्तीके पुत्र थे। इनका दूसरा नाम घनश्याम था। इनके भक्तिरत्नाकरका वैष्णवसमाजमें यथेष्ट आदर होता है। ये बड़े भारी कवि थे। इनकी कवितायें सारगर्भ तथा सराहनीय होती थीं। मैथिलु-भाइलके जेरुजलेमकी तथा युएनचुवङ्गके कुशीनगरकी वर्णना विद्वत्-समाजमें जैसी आदृत होती है, नरहरिके नवद्वीप और वृन्दावनकी वर्णना उससे कहीं चमत्कार और आदरणीय है। वैष्णव ग्रन्थमें संस्कृत श्लोकादि उद्धृत कर प्रमाणादिका उल्लेख करना बिलकुल नियमबद्ध है। नरहरिने उसे भी कर डाला है और वे एक नवीन प्रथा भी प्रवर्त्तित कर गये हैं। इनकी रचना बड़ी ही सरल होती थी, पद्य होने पर भी वह गद्यसी मालूम पड़ती थी। ये प्रसिद्ध विश्वनाथ चक्रवर्त्तीके शिष्य थे। "नरोत्तमविलास" और "गौरचरितचिन्तामणि" ये दोनों प्रसिद्ध ग्रन्थ इन्हींके बनाए हुए हैं।

नरहरितीर्थ—स्मृत्यर्थसागर ग्रन्थमें इनका उल्लेख है। ये आनन्दतीर्थके शिष्य और पद्मनाभतीर्थके उत्तराधिकारी थे। इनका पूर्व नाम रामशास्त्री था।

नरहरिदास—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने सम्वत् १९१२में नरहरिदासकी बानी नामक दो ग्रन्थकी रचना की।

नरहरिभट्ट—१ आश्वलायनीय दर्शपूर्ण-मासहोत्र नामक ग्रन्थके प्रणेता। २ मण्डकुण्डप-मण्डलप्रकाशिकाके प्रणेता। ३ रसयोग-मुक्तावली नामक वैद्यकग्रन्थके

प्रणेता । ४ श्रवणभूषणविदग्धमुखमण्डनके एक टीकाकार।

नरहरिशास्त्री—नृसिंहचम्पूके प्रणेता।

नरहरि सरकार—श्रीचैतन्यके आविर्भावप्रसङ्गमें बङ्ग-साहित्य अनेक रत्नोंका अधिकारी हुआ था। बङ्गला साहित्यमें वैष्णव कवियोंका अधिकार बहुत फैला हुआ है और आसन भी बहुत ऊंचा है। इन सभोंके पथ-प्रदर्शक नरहरि ठाकुर थे। इनके पिताका नाम नारायण था। नरहरिके दो पुत्र थे, बड़ेका नाम मुकुन्द था और छोटेका नरहरि। नरहरि सरकार बड़े विद्वान् और सु-पुरुष थे।

श्रीमहाप्रभुके साथ बचपनसे ही इनकी गाढ़ी मित्रता थी। इन्होंने ही सबसे पहले गौरलीलाका पद लिखना आरम्भ किया था। इनके पद बड़े ही मधुर होते थे। ये महाप्रभुसे ८।९ वर्षके बड़े थे, यह वैष्णव ग्रन्थावली पढ़नेसे मालूम होता है। अतएव लोग इनका जन्मकाल १४०० शकमें बतलाते हैं।

श्रीचैतन्यके आविर्भावमें बङ्गसाहित्यमें जो नवस्रोत प्रवाहित होता है, नरहरि ही उसके आदिप्रवर्त्तक वा आदि गुरु माने जाते हैं।

नरहरिसहाय बन्दीजन—हिन्दीके कवि। ये असनीके निवासी थे। इनका जन्म सं० १५८८में हुआ था। ये जलालउद्दीन अकबर बादशाहके दरबारमें थे। असनी गाँव इनको माफीमें मिला था। इनके पुत्र हरिनाथ महाकवि और उदार थे। इस समय भी इनके वंशज बनारस आदि स्थानोंमें पाये जाते हैं। असनीवाला इनका घर खण्डहर पड़ा हुआ है। इनके किसी ग्रन्थका पता नहीं लगता, परन्तु इनके अनेक छप्पय सुने जाते हैं।

नरहरी (सं० पु०) एक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक पदमें १४ और ५के विरामसे १९ मात्राएं तथा अन्तमें १ नगण और १ गुरु होता है।

नरहाट—पटना जिलेका एक परगना। इस जिलेका अधिकांश स्थान अभी गया जिलेके हल्केमें आ गया है।

नरहान—सारन जिलेका एक परगना। धान, कुम्हड़ो, कपास, गेहूं, जौ, अफीम और ईख ये सब द्रव्य प्रधान उत्पन्न द्रव्य हैं।

नरहीरा (हिं० पु०) पाठ या छः पहलका बड़ा हीरा। इसके किनारे खूब तेज होते हैं। कहते हैं, कि ऐसा हीरा जिसके पास होता है वह राजा हो जाता है और उसका वैभव बहुत अधिक बढ़ जाता है।

नरा (हिं० पु०) नरकटकी एक छोटी नली। इसके ऊपर सूत लपेटा रहता है।

नराङ्ग (सं० पु०) नरमङ्गयति अङ्ग-अच्। १ मेढ्र, नाभि, ढोंढ़ी। २ नरव्रण, एक प्रकारका फोड़ा।

नराच (हिं० पु०) १ तीर, बाण, शर। २ पञ्चचामर या नागराज नामक वृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें जगण, रगण, जगण, रगण जगण और अन्तमें एक गुरु होता है।

नराचिका (सं० स्त्री०) वितानवृत्तका एक भेद। इसके प्रत्येक चरणमें तगण, रगण, लघु और गुरु होता है।

नराची (सं० स्त्री०) नरमिवाचिनोति रोमभिरिव कण्टकैः आ-चि-ड गौरादित्वात् ङीष्। १ अमूला कण्टकिनीवृक्ष, एक प्रकारकी कटेरी जिसे जड़ नहीं होती। २ शौरिकी एक स्त्रीका नाम। (हरिवंश १६२ अ०)

नराज (सं० पु०) षोड़शाक्षरपादक वृत्तभेद, सोलह चरणोंका एक वृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें १६ अक्षर होते हैं।

नराज (फा० वि०) नाराज देखो।

नराधम (सं० पु०) नरेषु अधमः ७-तत्। निकृष्ट मानव, नीच मनुष्य।

नराधिप (सं० पु०) नरेषु अधिपः ७-तत्। १ नराधिपति, राजा। २ वृक्षविशेष, सोनापाठा। ३ महारग्वधवृक्ष, बड़ा अमिलतास।

नरान्त (सं० पु०) रुद्रोंकके एक पुत्रका नाम।

नरान्तक (सं० पु०) अन्तयति इति अन्ति ण्वुल्, नराणां अन्तकः ६-तत्। १ रावणके एक पुत्रका नाम। यह राम-रावण-युद्धमें अङ्गदके हाथसे मारा गया था। (त्रि०) २ नरनाशक-मात्र, मनुष्यको संहार करनेवाला।

नरायण (सं० पु०) नराणां अयनं आश्रयस्थानं वा नरा अयनं यस्य। नारायण, विष्णु।

नराश (सं० पु०) नरं अश्नाति अश भोजने अण्। नर-भोजी, राक्षस।

नराशंस (सं॰ पु॰) १ यज्ञ। २ अग्नि। नृशंस-भावे-घञ्। ३ मनुष्योंका प्रशंसन अर्थात् पूजन।

नरासन (सं॰ क्ली॰) नराकार आसनभेद, मनुष्यके आकारका एक प्रकारका आसन। इसका विषय रुद्रयामलमें इस प्रकार लिखा है—यह नरासन १६ प्रकारका है। इस पर बैठ कर साधन करनेसे बहुत जल्द सिद्धिलाभ होता है। इनमेंसे एक मासमें कल्प, दो मासमें हुतकल्प, तीन मासमें योगकल्प, चार मासमें स्थिराश्रय, पांच मासमें सूक्ष्मकल्प, छः मासमें विवेकधी सात मासमें ज्ञानयुक्त, आठ मासमें मन्त्रसंयुक्त और जितेन्द्रिय, नौ मासमें सिद्धिलाभ, दश मासमें चक्रभेदयुक्त, ग्यारह मासमें महावीर और बारह मासमें खेचर होता है। कैसा ही कोई क्यों न हो, नरासन पर जो बैठ कर योगसाधन करता है, उसे अवश्य सिद्धि लाभ होती है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। नरासनावस्थामें औंधे मुंह करके साधना करनी होती है। (रुद्रयामल)

नरिन्द्रकवि—१ हिन्दीके एक प्राचीन कवि। इनका जन्म सं॰ १७८८में हुआ था।

२ एक हिन्दी-कवि। इनका जन्म-सम्वत् १८१४ में हुआ था तथा ये पटियालाके महाराज थे। इनकी कविता सरस होती थी।

नरिया (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका मट्टीका खपड़ा। यह मकानकी छाजन पर रखनेके काममें आता है। यह अर्द्ध वृत्ताकार और लम्बा होता है और इसे 'थपुआ' खपड़ेकी संधियों पर औंधा कर रख देते हैं। ऐसा करनेसे उन संधियोंमेंसे पानी नीचे नहीं टपकने पाता।

नरियाद—१ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत खेड़ा जिलेका एक उपविभाग। इसके उत्तरमें कपादभञ्ज, पूर्वमें ताम्र और आनन्द, दक्षिणमें बरोदाराज्य और पश्चिममें मतार और महमुदाबाद है। इसका क्षेत्रफल २२४ वर्गमील है।

२ उक्त विभागका एक नगर। यह अक्षा॰ २०° ४०´ ४५´´ उ॰ और देशा॰ ७२° ५५´ २०´´ पू॰के मध्य अहमदाबादसे २८ मील पूर्व-दक्षिणमें अवस्थित है। यहां तमाकू और घीका खूब व्यवसाय होता है।

नरिसेमरी—मथुरातीर्थराजिके मध्य एक ग्राम। यहां चैत्र कृष्ण पक्षको एक भारी मेला लगता है जिसे नवदुर्गाका मेला कहते हैं। 'सेमरी' शब्द 'श्यामला-चि' शब्दका अपभ्रंश है। पहले यहां श्यामलादेवीका एक मन्दिर था, उसीके नामानुसार इस ग्रामका नाम पड़ा है। मेला भी उक्त देवीके उद्देश्यसे ही लगाता है। देवीका वर्त्तमान मन्दिर बहुत आधुनिक है। उल्लेखयोग्य विषय इसमें कुछ भी नहीं है। यह एक दीर्घिकाके किनारे अवस्थित है। अभी आगरेके वणिकोंने यहां दो छोटी छोटी धर्मशालाएं बनवा दी हैं। देवीके मन्दिरसे यात्री द्वारा वार्षिक २०००) रु॰की आमदनी होती है। देवीके सेवकगण अभी ३ श्रेणियोंमें विभक्त हो गये हैं; सेमरीके प्राचीन जमींदार, व्रजनगरके जमींदार (ब्रिजका-नगर) और देवीसिंह नगरके जमींदार (देवीसिंहका-नगर)। यहां अमावस्यासे मेला आरम्भ होता है और ८ दिन तक रहता है। अष्टमीका दिन ही मेलेका प्रधान दिन है। उस दिन सांचोलीके मन्दिरमें बहुत भीड़ रहती है। यहां यात्री लोग ठहरते नहीं, दर्शनके बाद ही चले जाते हैं। विभिन्न स्थानके यात्रियोंके लिये विभिन्न दिन निरूपित रहता है। अक्षय-तृतीयाके दिन भी मेला लगता है।

नरी (सं॰ स्त्री॰) नरस्य पत्नी ङीष्। १ मानवपत्नी, स्त्री, नारी। २ वृन्दावनस्थित एक ग्राम, वृन्दावनका एक गांव। श्रीवृन्दावनलीलामृतमें इसका उल्लेख है। राजा कंसकी आज्ञासे जब अक्रूर श्रीकृष्ण और बलरामको ले कर मथुराको चले और उनका रथ अदृश्य हो गया, तब व्रजपुरीके क्या पुरुष क्या स्त्री सभी 'नरि नरि' शब्द करते हुए धूलमें लेट रहे। तभीसे यह स्थान नरी नामसे मशहूर हो गया है। ३ त्वक्, चमड़ा।

नरी (फा॰ स्त्री॰) १ बकरी या बकरेका रंगा हुआ चमड़ा। २ लाल रंगका चमड़ा। ३ सिझ किया हुआ चमड़ा, मुलायम चमड़ा। ४ ताल वा नदीके किनारे होनेवाली एक प्रकारकी घास। ५ ढरकीके भीतरकी नली जिस पर तार लपेटा रहता है, नार।

नरी (हिं॰ पु॰) १ एक प्रकारका बगुला। (स्त्री॰) २ नली, नाली, चुच्छी। ३ एक प्रकारकी बांसकी नली जिससे सुनार लोग आग सुलगाते हैं, फुकनी।

नरई (हिं॰ स्त्री॰) चुच्छी, छोटी नली।

नरवा (हिं॰ पु॰) अनाजको पौधोंको उण्डी जो भीतरसे पोली होती है।

नरगल—बम्बईके धारवार जिलेका एक शहर। यह अक्षा॰ १५° ३४ उ॰ और देशा॰ ७५° ४८ पू॰के मध्य धारवार शहरसे ५५ मील पूर्वमें अवस्थित है। लोकसंख्या ८३२७के लगभग है। यह एक प्राचीन शहर है। यहां १२वीं और १३वीं शताब्दीकी अनेक शिलालिपियां और मन्दिर मिलते हैं। शहर भरमें केवल एक स्कूल है।

नरेन्द्र (सं॰ पु॰) नर इन्द्र-इव; नराणामिन्द्रो वा। १ नरश्रेष्ठ, राजा। २ विषवैद्य, वह जो सांप बिच्छू आदिके काटनेका इलाज करे। ३ श्योनाक वृक्ष, सोनापाठा। ४ आरग्वध, अमिलतास। ५ काष्ठागुरुवृक्ष, अगरका पेड़। ६ छन्दोभेद, एक प्रकारका वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें २१ मात्राएं होती हैं जिनमेंसे १।४।६।१४। १७।२० और २१वीं अक्षर गुरु और शेष सभी अक्षर लघु होते हैं।

नरेन्द्र एक कवि। सुभाषितरत्नाकर ग्रन्थमें इनकी कवितावली उद्धृत हुई है।

नरेन्द्र आचार्य—एक वैयाकरण। विट्ठलके ग्रन्थमें इनका उल्लेख है।

नरेन्द्रदेव नेपालके एक राजा। इनके पिताका नाम अभयदेव था। नेपाल देखो।

नरेन्द्रभवन—एक विहार-स्थानका नाम। काश्मीरके राजा नरेन्द्रने यह विहारभवन बनवाया था।

नरेन्द्रप्रभ—हर्षपुरीय नरचन्द्रसूरिके शिष्य। इन्होंने "अलङ्कारमहोदधि" नामक अलङ्कारशास्त्रीय और "काकुत्स्थकेलि" नामक काव्यकी रचना की।

नरेन्द्रमल्ल—नेपालके एक राजाका नाम। नेपाल देखो।

नरेन्द्रमृगराज—प्राच्य चालुक्यराज विजयादित्यकी उपाधि। चालुक्य देखो।

नरेन्द्रसिंह—पटियालाके एक राजा। १८४५ ई॰में अपने पिता कर्मसिंहके मरने पर ये पटियालाके राजसिंहासन पर बैठे। उस समय इनकी उमर २१ वर्षकी थी। लाहोरके राजाके साथ जिस समय अंगरेजोंकी लड़ाई छिड़ी थी, उस समय इन्होंने अंगरेजोंको, जहां तक हो सका था, मदद दी थी। इस उपकारमें उस समयके गवर्नर जेनरलने १८४७ ई॰में इन्हें एक सनद दी। अंगरेज गवर्नमेण्टने राजाकी रक्षा तथा इनका अधिकार स्थिर करनेके लिये वचन दिये थे। राजाने भी अपने राज्यमें ठगी, सतीदाह, शिशुहत्या और दासविक्रयको रोकनेकी प्रतिज्ञा की थी। १८५७-५८ ई॰के सिपाहीविद्रोहके समय इन्होंने अंगरेजोंकी काफी सहायता पहुंचाई थी।

ये वंशोचित साहस और वीरत्वका काम करके सभी अंगरेजोंके प्रियपात्र हुए थे। विद्रोहके समय जब अंगरेजोंके अनेक कपटी मित्रोंने पीठ दिखाई थी, तब इन्होंने अग्रसर हो कर अपने धनागार और अन्यान्य युद्ध सामग्रीको अंगरेजोंके कार्यमें उत्सर्ग कर दिया था। दिल्लीके राजाने इन्हें अंगरेजोंको मदद पहुंचानेसे पत्र द्वारा निषेध किया था और इसके लिये वे पुरस्कार देनेको भी राजी हो गये थे। महाराजने उस ओर तनिक भी ध्यान न दिया और उस पत्रको अंगरेजोंके पास भेज दिया था। इन्होंने सरदार प्रतापसिंहके अधीन दिल्लीकी ओर एक दल सेना भेजी। उस सेनाने दिल्ली पर चढ़ाई करके पूरी सफलता प्राप्त की। उस समय इन्होंने अंगरेजोंको पांच लाख रुपये कर्ज दिये थे। इस उपकारके लिये उक्त गवर्नमेण्टने इनको खूब खातिर की थी तथा पुरस्कार भी खूब दिये थे। १८६२ ई॰में इनका देहान्त हुआ।

नरेन्द्रसिंह—हिन्दीके एक कवि। इनकी गणना उत्तम कवियोंमें होती थी। इन्होंने सम्वत् १८०३में बालचिकित्सा नामक एक ग्रन्थ बनाया।

नरेन्द्रादित्य—१ काश्मीरके एक राजा। ये गोकर्णके पुत्र थे। इन्होंने ३ मास १० दिन तक राज्यशासन किया था। शासनकालमें इन्होंने भूतेश्वर और अक्षयिनी नामक देव और देवी मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की थी। इनके दीक्षागुरु उग्रदेवने उग्रेश नामक एक देवमूर्त्ति और मातृचक्र नामक दश देवीमूर्त्तियां स्थापित की थीं। ये अपने पुत्र युधिष्ठिरको राज्यशासनका भार सौंप कर इस लोकसे चल बसे।

२ काश्मीरराज द्वितीय युधिष्ठिरके पुत्र लक्ष्मण भी इसी नामसे प्रसिद्ध थे। पिताके मरनेके बाद इन्होंने १३

वर्ष तक राज्य किया। इनके वज्र और कनक नामक दो मन्त्री थे। इनकी महिषीका नाम विमलप्रभा था। नरेन्द्रादित्यकी मृत्युके बाद इनके छोटे भाई रणादित्य राजसिंहासन पर बैठे। (राजत०)

नरेन्द्राङ्ग (सं० पु०) नरेन्द्रः आङ्गा यस्य। कालागुरु, एक किस्मका अगर।

नरेबी (हिं० पु०) एक प्रकारका पेड़। इसकी छालसे एक प्रकारका लाखी रंगका गोंद निकलता है जो शीघ्र सूख जाता है और चमकीला होती है। यह पेड़ शिवसागर और सिलहट (आसाम)में मिलता है।

नरेश (सं० पु०) नराणां ईशः ६-तत्। नरेन्द्र, राजा, नृप।

नरेशकवि—हिन्दीके एक कवि। लोगोंका अनुमान है, कि इन्होंने नायिकाभेदकी कोई पुस्तक लिखी होगी, क्योंकि इनके पद्य उसी प्रकारके पाये जाते हैं।

नरेश्वर—शिवसूत्रके एक टीकाकार।

नरैन—राजपूतानेके अन्तर्गत जयपुर राज्यका एक नगर। यह अक्षा० २६°४८´ उ० और देशा० ७५°१२´ पू०के मध्य जयपुर शहरसे ४१ मील पश्चिम और अजमेरसे ४३ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग ५२६६ है। यह नगर दादूपन्थिसम्प्रदायका एक प्रधान स्थान है। इस सम्प्रदायकी लोकसंख्या अधिक नहीं है। ये लोग निराकार एकेश्वरवादी हैं। इसके याजक विवाह नहीं करते। शहरमें कुल पांच स्कूल हैं।

नरोत—पञ्जाबके अन्तर्गत गुरुदासपुर जिलेकी पठानपुर तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० ३२° १७´ उ० और देशा० ७५°३०´ पू०में अवस्थित है। यहांसे धान और रुई लाहोर तथा अमृतसरमें भेजी जाती है।

नरोत्तम (सं० पु०) नरेषु उत्तमः ७-तत्। १ पुरुषोत्तम नारायण, ईश्वर, भगवान्। २ नरश्रेष्ठ, मनुष्योंमें श्रेष्ठ।

नरोत्तम—१ एक राजा। ये विख्यात नाटककार शेषकृष्ण वा कृष्णपण्डितके प्रतिपालक थे। इन्हींके अनुरोधसे पण्डितजीने पारिजातहरणचम्पूकी रचना की। ये १६वीं शताब्दीके शेष भागमें वर्त्तमान थे। २ अध्यात्मरामायणके एक टीकाकार।

नरोत्तमठाकुर—ऐसा कोई वैष्णव नहीं है जो आपका नाम न जानता हो। आपके जन्मकी निर्दिष्ट तिथि मालूम नहीं। लेकिन जब श्रीचैतन्य महाप्रभुके समयमें ये आविर्भूत हुए, तब १४५३।५४ शकमें आपका जन्म हुआ होगा इसमें सन्देह नहीं। उत्तर राढ़ीय कायस्थवंशीय जमींदार राजा कृष्णानन्ददत्त आपके पिता थे। माताका नाम था नारायणी।

बचपनमें ही नरोत्तमके असाधारण गुण और अद्भुत प्रतिभाने सभीको विस्मित कर दिया था। श्रीगौराङ्ग प्रभुमें आपकी विशेष श्रद्धा थी। यहां तक कि, जहां कहीं उनका कीर्त्तन होता वहां आप बिना पिता माताकी अनुमतिके ही चल देते थे। जब इन्होंने सुना, कि महाप्रभुके अन्तर्द्धान होने पर कितने भक्त और प्रधान प्रधान पार्श्वदगण वृन्दावनमें जा बसे हैं, तब वहां जानेकी इनकी उत्कट इच्छा हो गई।

एक दिन सवेरे नरोत्तम पद्मानदीमें स्नान करने गये। स्नान कर चुकनेके बाद जब ये किनारे पर खड़े हुए, तब एकाएक महाप्रभुके प्रति इनके हृदयमें प्रेम उमड़ आया और ये उसी जगह नाचने लगे।

इधर घरमें बहुत देर तक उन्हें न देख उनकी तलाशमें लोग चारों ओर छूटे। यहां तक कि स्वयं रानी नारायणी भी उन्हें ढूंढ़ते ढूंढ़ते पद्मावतीके किनारे पहुंचीं। बहुतसे लोगोंको अपने सामने खड़े देख उन्हें चैतन्य हुआ। माता पुत्रको गोदमें ले कर बार बार चूमने लगीं। एक दिन वृन्दावन जानेकी इनकी प्रबल इच्छा हुई। फिर कौन रोकनेवाला था, अनेक सम्भ्रान्त लोगोंकी बातों पर जरा भी ध्यान न देते हुए नरोत्तम पिता-मातासे सदाके लिये विदाय ले कर वृन्दावनको चल पड़े। एक तो आप राजकुमार थे, दूसरे उमर केवल सोलहकी थी, पैदल चलनेका अभ्यास नहीं था, इस कारण बहुत कष्टसे तथा धीरे धीरे रास्ता ते करते जाते थे।

अनेक कष्ट झेलते हुए नरोत्तम वृन्दावन पहुंचे। उस समय वहां रूप सनातन नहीं थे, श्रीजीव थे। उनके पास पहुंच कर वह अपरूप बालक छिन्नमूल तरुके जैसा गिर पड़ा। पीछे परिचय होने पर श्रीजीव उन्हें और छात्रोंसे अधिक प्यार करने लगे। अद्भुत

प्रतिभासे थोड़े ही समयके अन्दर आप एक अद्वितीय पण्डित हो गये। श्रीजीव गोस्वामीने उपयुक्त देख कर इसी समय इन्हें 'ठाकुर महाशय'की उपाधि प्रदान की और सारे बङ्गालमें भक्ति ग्रन्थका प्रचार करनेके लिये भेजा। १५०४ शकमें आप दो और सहपाठियोंके साथ वृन्दावनसे रवाने हुए। कुछ समय बाद आपके अनेक शिष्य हो गये। आप कविताकी बहुतसी किताबें बना गये हैं जिनमें प्रधान ये हैं,—प्रार्थनाग्रन्थ, लक्षग्रन्थका सार चन्द्रकान्त प्रेमभक्तिचन्द्रिका, हाटपत्तन, और चौतीसा पदावली। कार्त्तिक मासकी कृष्णा पञ्चमी तिथिको गङ्गाके किनारे आपने देहत्याग किया। इस तिथिको आज भी ठाकुर महाशयका महोत्सव हुआ करता है।

नरोत्तमदास—एक हिन्दी-कवि। ये ब्राह्मणवाड़ी जिला सीतापुरमें रहते थे। इनका बनाया हुआ एक ग्रन्थ है जिसका नाम है सुदामाचरित्र। इसकी कविता मधुर और सरस है।

नरोत्तमपुरी—वेदान्तविषयक 'विचारमाला' नामक ग्रन्थके प्रणेता।

नरोत्तममल्ल—तन्त्ररत्न नामक तान्त्रिक ग्रन्थ-प्रणेता।

नरोर—युक्तप्रदेशके अन्तर्गत बुलन्दशहर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २८° १२´ उ० और देशा० ७४° २५´ ४५´´ पू०के मध्य अवस्थित है।

नरोह (सं० स्त्री०) १ पिंडलीकी हड्डी, नली। २ रस निकालनेकी कोल्हूकी नली।

नरौली—युक्त प्रदेशके अन्तर्गत मुरादाबाद जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २८° २८´ उ० और देशा० ७८° ४५´ पू०के मध्य अवस्थित है।

नर्कट (हिं० पु०) नरकट देखो।

नर्कुटक (सं० क्ली०) घ्राणेन्द्रिय, नाक, नासिका।

नर्गिस (हिं० पु०) नरगिस देखो।

नर्गिसी (हिं० वि०) नरगिसी देखो।

नर्गुन्द—बम्बईके धारवार जिलेके अन्तर्गत नवलगुन्द तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १५° ४३´ उ० और देशा० ७५° २४´ पू० धारवार शहरसे ३२ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १०४१६ है। बीजापुरके मुसलमान राजाओंसे शिवाजीने यह नगर छीन लिया था। शिवाजीने इसे रामराव भावेके हाथ सुपुर्द कर दिया। बाद वृटिश गवर्मेण्टने इसे अपने दखलमें ला कर इस शर्त पर दादाजी रावके हाथ लगा दिया कि वे प्रयोजन पड़ने पर वृटिश गवर्मेण्टको सहायता पहुंचाते रहें तथा चिरकाल तक उनके विश्वस्त बने रहें। लेकिन १८५७ ई०के सिपाही-विद्रोहमें दादाजीने उक्त शर्त तोड़ दी और वे अपने स्वार्थ साधनमें लग गये। इस पर वृटिश गवर्मेण्टने एक दल सेना नर्गुन्दको भेजी और इसे जीत कर अपने मातहतमें कर लिया। यहां शङ्करलिङ्ग और दण्डेश्वरके दो प्राचीन मन्दिर हैं। इसके सिवा १७५० ई०का बना हुआ वङ्कटेशका एक मन्दिर पहाड़के ऊपर एक दुर्गमें प्रतिष्ठित है। वहां आश्विनकी पूर्णिमामें प्रति वर्ष एक भारी मेला लगता है जिसमें हजारों मनुष्य-समागम होते हैं। शहरमें छः स्कूल हैं इनमेंसे एक बालिका स्कूल भी है।

नर्णाल—बेरारके अकोला जिलेके अन्तर्गत अकोट तालुकका एक गिरिदुर्ग। यह अक्षा० २१° १५´ उ० और देशा० ७७° ४´ पू०के मध्य सतपुरा पहाड़के ऊपर अवस्थित है। इसकी ऊंचाई ३१६१ फुट है। जिले भरमें यही स्थान सबसे ऊंचा है। फिरिस्ताके विवरणसे पता लगता है कि यह एक प्राचीन दुर्ग है। बाह्मनीके राजा अहमद शाह वलीने इसका संस्कार किया था। नर्णालके सिवा पहाड़ पर दो और छोटे दुर्ग हैं जो इसे दोनों बगलसे घेरे हुए हैं। इसमें छः बड़े और इक्कीस छोटे प्रवेशद्वार हैं। इसके भीतर १८ पुष्करिणी हैं, जिनमेंसे केवल चारमें बारहों मास जल रहता है। दुर्गके अन्दर चार अत्यन्त सुन्दर प्रस्तरनिर्मित जलाधार हैं। बहुतोंका अनुमान है, कि जैनियोंके अधिकारके समय वे सब जलाधार बनाये गये थे। पुरातन राजप्रासाद, मस्जिद, अस्त्रागार, बारहदुआरी, रङ्गालय, सङ्गीतगृह और अन्यान्य गृह भग्नावस्थामें पड़े हैं। दक्षिण दिशाका शाहनूर द्वार ही सबसे सुन्दर है। यह सफेद पत्थरका बना हुआ है। इसकी दीवारें नष्ट होती जा रही हैं। अभी दुर्गमें कोई नहीं रहता।

नर्त्त (सं० त्रि०) नृत्यति नृत-अच। १ नृत्यकर्त्ता, नाच करनेवाला।

नर्त्तक (सं॰ पु॰) नृत्यतीति नृत-ष्वुन्। (शिल्पिनि ष्वुन्। पा ३।१।१४५) १ नट, नाचनेवाला। २ नलतृण, एक प्रकारको नरकट। ३ चारण, बन्दीजन, भाट। ४ कीलक, खड्गकी धार पर नाचनेवाला। नृत्यकर्त्ताका लक्षण—

"यादृशं नृत्यपात्रं स्यात् गीतं योग्यञ्च तादृशम्।
नृत्यस्य धारणात् पात्रं नर्त्तकः परिकीर्त्तितः॥

और भी

असम्बन्धप्रलापीच सदा भ्रूकुटीतत्परः।
हासप्रहासचतुरो वाचालो नृत्यकोविदः॥"

(संगीतदामोदर)

जैसा नृत्यपात्र होगा, वैसा ही गीत होगा। इस अवस्थामें नृत्यपात्र नाम धारण करनेसे नर्त्तक नाम हुआ है, अथवा जो असम्बन्ध-प्रलापी है, सर्वदा भ्रूकुटी परायण है, हँसने और बोलनेमें खूब चतुर है उसे नर्त्तकश्रेष्ठ कहते हैं। ये लोग नाचगान कर अपना गुजारा करते हैं। ५ सङ्कीर्ण जातिभेद, एक प्रकारकी सङ्करजाति। इसकी उत्पत्ति धोबी पिता और वेश्या मातासे मानी जाती है। ६ गज, हाथी। ७ नृप, राजा। ८ महादेव। ये नृत्यविद्यामें बड़े निपुण हैं और अनेक समय नृत्य भी करते हैं, इसीसे इनका नाम नर्त्तक भी पड़ा है। (भारत १३।१७।४८) ९ मयूर, मोर। १० देव-नल, नरकट। ११ महुआ। १२ मडुआ।

नर्त्तकी (सं॰ स्त्री॰) नर्त्तक षित्वात् ङीष्। नृत्य-कारिणी, नाचनेवाली, रंडी, वेश्या, नटी। संस्कृत-पर्याय—लासिका, लयपुत्री, नटी, लस्या। २ करेणु, हस्तिनी, हथनी। ३ नलिकानाम गन्धद्रव्य, नली।

नर्त्तन (सं॰ क्ली॰) नृत्-भावे ल्युट्। १ अङ्गुलीविक्षेप-भेद, नृत्य, नाच। (त्रि॰) २ नर्त्तक, नाचनेवाला।

नर्त्तनप्रिय (सं॰ पु॰) नर्त्तनं नृत्यं प्रियं। १ नृत्यप्रिय-मात्र, वह जो केवल नाचना पसन्द करता हो। २ मयूर, मोर।

नर्त्तनशाला (सं॰ स्त्री॰) नर्त्तनस्य शाला ६-तत्। नर्त्तनगृह, वह स्थान जहां पर नाच होता हो, नाचघर।

नर्त्तनागार (सं॰ पु॰) नर्त्तनस्य आगारः। नर्त्तनगृह, नाचघर।

नर्त्तोपहारक (सं॰ पु॰) धूलीकदम्ब, एक प्रकारका कदम्ब।

नर्त्तित (सं॰ त्रि॰) नृत-णिच्-कर्मणि क्त। कृतताण्डव, जो नचाया गया हो।

नर्द (फा॰ स्त्री॰) चौसरकी गोटी।

नर्दकी (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी कपास। कोई कोई इसे कटील, निभरी और बगई भी कहते हैं।

नर्दटक (सं॰ क्ली॰) छन्दोविशेष, एक प्रकारका वर्ण-वृत्त। इनके प्रत्येक चरणमें १७ अक्षर होते हैं जिनमेंसे ५।७।११।१४वां अक्षर गुरु और शेष सभी अक्षर लघु होते हैं।

नर्दन (सं॰ क्ली॰) नर्द-भावे ल्युट्। शब्द, भीषणध्वनि, गरज।

नर्दबान (हिं॰ पु॰) १ काठकी सीढ़ी। २ मार्ग, रास्ता।

नर्दा (हिं॰ पु॰) मैला बहनेकी नाली।

नर्बदा (हिं॰ स्त्री॰) नर्मदा देखो।

नर्म (सं॰ पु॰) नृ-मन्। पुरुषमेध यज्ञके वध्य पशुके उद्देशक देवभेद, नरमेधयज्ञका वह देवता जिसके उद्देश्यसे पशुका वध किया जाता है।

नर्मकील (सं॰ पु॰) नर्मणः परिहासस्य कील इव, बन्धनस्थानत्वात्। पति, स्वामी।

नर्मट (सं॰ पु॰) नर्म-अटन्, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ खर्पर, खपड़ा। २ सूर्य।

नर्मठ (सं॰ पु॰) नर्मणि कुशलः, नर्मन्-अठन्। १ नर्मकुशल, वह जो परिहास आदिमें कुशल हो। २ उप-पति, जार, स्त्रीका यार। ३ परिहासक, वह जो हँसी लगाता हो, दिल्लगीबाज। ४ चिबुक, ठोढ़ी, ठुड्डी। ५ चुचुक, कुचाग्र भाग, ढिपनी। ६ मैथुन, स्त्रीप्रसङ्ग।

नर्मद (सं॰ त्रि॰) नर्म-ददाति दा-क। १ केलिसचिव, आनन्द देनेवाला। (पु॰) २ नर्मकुशल, दिल्लगीबाज, मसखरा, भाँड़।

नर्मदा (सं॰ स्त्री॰) १ पृक्का, असवर्ग नामक गन्धद्रव्य। २ भारतवर्षकी एक बड़ी नदी। टलेमीके इतिहासमें इसका नाम नमदस् रखा गया है। पहले यह नदी आर्यावर्त्त और दाक्षिणात्यकी सीमानिर्देशक थी। रेवा

राज्यके अन्तर्गत अमरकण्टक नामक ३४८३ फुट ऊंचा एक पहाड़ है। यही पहाड़ इस नदीका उत्पत्तिस्थान है। यह पश्चिमकी ओर ८०० मील बह कर भरोचके निकट समुद्रमें गिरती है। इसके उत्पत्ति-स्थानके चारों ओर जङ्गल तथा जनशून्य है। किन्तु इस पवित्र नदीके उत्पत्तिस्थानकी रक्षा करनेके लिए कितने धर्मयाजक उस निर्जन स्थानमें कुटी बना कर वास करते हैं। उपरोक्त पर्वतके शिखरदेश पर एक तालाब है, उसी तालाबसे नर्मदा नदी निकल कर प्रायः ३ मील तक तृणपूर्ण प्रान्तके ऊपर वक्रगतिसे बहती हुई अमरकण्टक मालभूमिके प्रान्तदेशमें गिरती है। इसी तीन मीलके भीतर बहुतसे स्रोतोंका जल आ कर इनमें मिल गया है। मालभूमिके प्रान्तदेशसे ७० फुट नीचे गिर कर यह एक जलप्रपात उत्पन्न करती है। इस जलप्रपातका नाम है कपिलधार। यहांसे थोड़ी दूर और आगे जा कर एक दूसरा जलप्रपात बन गया है जिसका नाम है दुग्धधार। कहते हैं, कि किसी समय यहां नदीमें दुग्धस्रोत बहता था।

जब यह अमरकण्टकसे निकली है, तब कहीं तो इसका वेग तेज हो गया है, कहीं यह बहुत नीचे बह चली है, अन्तमें मध्यप्रदेशको पार कर मण्डला पर्वत होती हुई रामनगरके भग्नावशेष-राजप्रासादके निकट पहुंच गई है। उत्पत्तिस्थानसे ले कर यहां तक नदीकी लम्बाई प्रायः एक सौ मील है। एक विस्तृत पार्वतीय प्रदेशमें जितना जल जमा होता है, वह यहीं पर, इस नदीमें मिल जाया करता है। तेज धाराके अनेक शाखाओंमें विभक्त होनेसे बीच बीचमें अरण्यमय द्वीप बन गया है। इसके किनारे निविड़ वन है, जिसके बड़े बड़े वृक्षादि इसे बादलकी तरह ऊपरसे ढके हुए हैं। इसके दोनों किनारे जहां तक नजर दौड़ाई जाती है, वहां तक पहाड़ ही पहाड़ देखनेमें आता है। रामनगरसे मण्डला पर्वत तक नदीमें न तो तेजधार है और न जलप्रपात ही है। इस अंशका जल नीला है और इसके दोनों किनारे सुन्दर सुन्दर वृक्षादिसे सुशोभित हैं। मध्यप्रदेशमें जितनी नदियां बहती हैं उनमें यही सबसे बड़ी तथा मनोरम है। जब्बलपुरके निकट म्यारीघाट पर इसमें वाणिज्यकार्य आरम्भ हुआ है। देखा जाता है, कि नदीमें बहादुरी काठको बहा कर लोग जब्बलपुरके बाजारमें बेचा करते हैं। जब्बलपुरसे ८ मील दक्षिण-पश्चिममें धुरन्धर नामक एक दूसरा जलप्रपात है जिसकी गहराई लगभग ३० फुट होगी। यहांसे यह नदी प्रायः दो मील तक पहाड़के मध्य होती हुई सङ्कीर्ण खातके ऊपर प्रवाहित होती है। इस स्थान पर इसकी लम्बाई ४० हाथसे अधिक नहीं होगी। बाद यह दो सौ मील तक उर्वरा उपत्यकाके ऊपर बह गई है। इस उपत्यकाके एक ओर विन्ध्य और दूसरी ओर सतपुरा पहाड़ है। वर्षाकालमें इसमें सामान्यरूपसे वाणिज्यकार्य चल सकता है। अगहन महीनेमें ब्राह्मणघाटके निकट एक भारी मेला लगता है। मोहपानी और तेन्दुखराके कोयले तथा लोहेकी खानके निकट होती हुई यह होसङ्गाबाद, हन्दिया, निमावर और योगीगढ़को पहुंच गई है और फिर वहांसे एक बार जङ्गलमें प्रवेश करती है। जङ्गलसे निकल कर यह एक गभीर और वेगवती धाराके रूपमें मान्धाता द्वीप पार कर बह चली है।

जब यह मध्यप्रदेश हो कर आई है, तब राहमें इसके कई एक जलप्रपात हो गये हैं। नरसिंहपुर जिलेके उमरिया नामक स्थानमें जो जलप्रपात है उसकी गहराई १० फुट है और मन्धार तथा दादरीके जलप्रपात ४० फुट गहरे हैं। मक्कार, चक्कार, खर्माग, कुड़नोर, बञ्जर, तिमार, सोनार, सेर, मकार, दूधि, कोरामी, सचना, तवा, गञ्जाल और अजनाल ये सब नर्मदाकी शाखा नदी हैं।

मक्राईके निकट नर्मदा मालवकी मालभूमिको छोड़ कर गुजरातके विस्तृत प्रान्तमें प्रवेश करती है। पहले यह ३० मील तक राजपिपलाइ राज्यको गायकवाड़ राज्यसे पृथक् करती है, पीछे ७० मील तक भरोच जिला होती हुई वक्रगतिमें प्रवाहित हो कर काम्बे-समुद्रमें गिरती है। भरोचसे प्रायः २५ मील दूरस्थित रायणपुर तक ज्वार भाठाका प्रकोप देखनेमें आता है। भरोच जिलेमें इसकी तीन उपनदियां हो गई हैं, बाईं ओर कावेरी और अमरावती तथा दाहिनी ओर बूखी। इन सब नदियोंकी लम्बाई ८०१ मील है।

कृषिकार्यके लिये नर्मदाका जल कहीं भी व्यवहृत नहीं होता। गुजरातके अन्तर्गत जो अंश है उसमें नावें आ जा सकती हैं। वर्षाकालमें बड़ी बड़ी भारवाही नावें भरोचसे ६५ मील तलकघारा तक जाती हैं। २००० मन भारविशिष्ट समुद्रपोत ज्वारके समय भरोचके बन्दरमें आते जाते हैं। नर्मदाके तीरस्थ लोगोंका विश्वास था कि नर्मदा कभी उसके ऊपर पुल बनाने नहीं देती; किन्तु बम्बई-बरोदा रेलवे कम्पनीने वह भ्रान्त-विश्वास दूर कर दिया है। उन्होंने १८६० ई०में भरोचके निकट जो पुल बनाया था वह बाढ़से टूट फूट गया। पीछे बहुत खर्च करके उन्होंने फिरसे एक दूसरा पुल तैयार किया है। इसके सिवा नर्मदाके ऊपर तीन और पुल हैं, एक सोत्तकामें, दूसरा होसङ्गाबादमें और तीसरा पेनिनसुला रेलवेका।

इस नदीके और कई एक नाम हैं, यथा—रेवा, मेखलकन्या और सोमसुता। पुराणके मतानुसार नर्मदा विन्ध्यपर्वतसे निकल कर पश्चिममें तमसा नदीमें जा गिरी है, स्कन्दपुराणके अन्तर्गत रेवाखण्डमें नर्मदाका उत्पत्तिविवरण जो लिखा है, वह इस प्रकार है—

नर्मदा तीन बार पृथ्वी पर आई। पहली बार राजा पुरूरवाके समयमें, दूसरी बार सोमवंशीय हिरण्यतेजा नामक एक राजाके समयमें और तीसरी बार इक्ष्वाकुवंशीय राजा पुरुकुत्सके समयमें। ये ही तीनों राजागण महादेवको तपस्यासे सन्तुष्ट कर नर्मदाको स्वर्गसे पृथ्वी पर लाये थे। देवी नर्मदा महादेवके अनुरोधसे ही अवतीर्ण हुई थीं। विन्ध्यगिरिने इनका असह्य वेग धारण किया था। रेवाखण्डमें ये शिवसीमन्तिनीके रूपमें वर्णित हुई हैं। इनका रूप—

"श्यामवर्णा महादेवी सर्वाभरणभूषिता।
मकरासनमारूढ़ा शिवस्यामे व्यवस्थिता॥"

(रेवाखण्ड ३य अ०)

मत्स्यपुराणमें इनका विषय इस प्रकार लिखा है—

नर्मदा सभी नदियोंमें श्रेष्ठ और पापविनाशिनी है। गङ्गा और कुरुक्षेत्रमें सरस्वती ये दोनों भी पुण्या हैं, लेकिन ग्राम और अरण्य सभी स्थानोंमें नर्मदा पुण्यप्रदा है। सरस्वतीका जल तीन दिन और यमुनाका जल सात दिन काममें लानेसे, गङ्गाजल स्पर्श मात्रसे तथा नर्मदाका जल देखनेसे ही आत्मा पवित्र होती है। कलिङ्ग देशके पश्चाद्भागमें अमरकण्टक पर्वतसे यह नदी निकली है। इस नर्मदाके किनारे यदि देवता, असुर, गन्धर्व, ऋषि और तपोधन आदि तपस्या करें तो उन्हें भी बहुत जल्द सिद्धि लाभ हो सकती है। जो नर्मदा नदीमें स्नान करके इन्द्रिय संयमपूर्वक एक दिन उपवास करता है, उसके सौ कुल उद्धार होते हैं। इस नदीमें यथाविधि पितृआदिका पिण्डदान वा तर्पण करनेसे कल्पके अन्त तक पितृगण परितृप्त होते हैं।

यह नदी शङ्करकी देहसे उत्पन्न हुई है, इसीसे जितनी नदियां हैं सबोंमें यह अत्यन्त पुण्यप्रदा है। इसमें स्नानादि कोई पुण्यकार्य करनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है। नर्मदाका स्तव।—

"नमः पुण्यजले आद्यै नमः सागरगामिनी।
नमस्ते पापशमनि नमो देवि वरानने॥
नमोऽस्तु ते ऋषिगणसंसेविते
नमोऽस्तु ते शंकरदेहनिःसृते।
नमोऽस्तु ते धर्मभृतां वरप्रदे
नमोऽस्तु ते सर्वपवित्रपावने॥
यस्त्विदं पठते स्तोत्रं नित्यं शुद्धमना नरः।
ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो विजयी भवेत्॥
वैश्यस्तु लभते लाभं शूद्रश्चैव शुभां गतिम्।
अन्नार्थी लभते ह्यन्नं स्मरणादेव नित्यशः।
नर्मदां सेवते नित्यं स्वयं देवो महेश्वरः॥
तेन पुण्या नदी ज्ञेया ब्रह्महत्यापहारिणी।
नर्मदाया जलं पीत्वा अर्चयित्वा वृषध्वजम्॥
दुर्गतिञ्च न पश्यन्ति तस्य तीर्थप्रभावतः।
एतत्तीर्थे समासाद्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत्॥
सर्वपापविशुद्धात्मा व्रजते रुद्रमन्दिरम्।
जलप्रवेशं यः कुर्यात् तस्मिंस्तीर्थे नराधिप।
हंसयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति॥
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च हिमवांश्च महोदधिः।
गंगाद्या सरितो यावत् तावत् स्वर्गे महीयते॥
अनशनन्तु यः कुर्यात् तस्मिंस्तीर्थे नराधिपः।
गर्भवासे तु राजेन्द्र न पुनर्जायते नरः॥"

(मत्स्यपु० १९० अ०)

जो प्रतिदिन इस स्तोत्रका पाठ करते हैं, उनका मन विशुद्ध रहता है। ब्राह्मण वेद लाभ करते हैं, क्षत्रिय विजयी होते हैं, वैश्य अर्थ लाभ करते और शूद्र शुभगति पाते हैं। जो अन्नप्रार्थी हो कर नर्मदाका स्मरण करते हैं, उन्हें प्रतिदिन अन्न मिलता है। स्वयं महादेव प्रति दिन नर्मदाकी सेवा किया करते हैं, इसीसे नर्मदा अत्यन्त पवित्र और ब्रह्महत्यादि पापनाशिनी हैं। नर्मदाका जलपान करनेसे तथा जलसे महादेवकी पूजा करनेसे सभी प्रकारकी दुर्गतियां नाश होती है। इस तीर्थमें जो प्राण त्याग करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो कर शिवलोकको जाते हैं।

नर्मदाजलमें प्रविष्ट हो कर जो प्राण त्याग करते हैं, वे हंसयुक्त यान पर चढ़ कर रुद्रलोकको जाते हैं और वहां तब तक ठहरते हैं जब तक चन्द्र सूर्य मौजूद हैं। नर्मदाके उत्तरी किनारे सौ योजन विस्तृत जो एक तीर्थ है, वह महेश्वरतीर्थ नामसे प्रसिद्ध है। यह तीर्थ भी पापनाशक माना गया है।

(रेवाखण्डमें और मत्स्यपुराणके १८६ अध्यायसे १९६ अध्याय तक नर्मदा-माहात्म्य वर्णित है।)

नर्मदा—मध्यप्रदेशका एक विभाग। इस विभागमें ५ जिले लगते हैं; यथा, होशङ्गाबाद, नरसिंहपुर, वेतुल, छिन्दवाड़ा और निमार। इसका परिमाणफल १७५१३ वर्गमील है। इसमें ११ नगर और ६१४४ ग्राम लगते हैं। इस नगरके कई एक नाम हैं, यथा—बर्हानपुर, होशङ्गाबाद, खण्डवा, हर्दा, नरसिंहपुर, छिन्दवाड़ा, गड़वारा, सोहागपुर, सेवनी और मोहगांव। यहां गेहूं, धान्य, अन्यान्य आहार्य शस्य, कपास और ईख उपजती है। नर्मदा विभागका राजस्व कुल १७७०१८० रु०का है।

नर्मदासम्भव (सं० क्ली०) नर्मदायां सम्भवति सम्-भू-अच्। नर्मदानदीस्थित बाणलिङ्गभेद। यह लिङ्ग अत्यन्त प्रशस्त है। इसकी आकृति पक्व जम्बूफलकी तरह है। वर्ण मधु-सा अथवा सफेद, नील वा मरकतके जैसा है। जो नार्मदबाणलिङ्ग स्थापित किया जाता है, उसकी आकृति हंसडिम्बकी तरह होनी चाहिये। यह लिङ्ग पर्वतसे नर्मदा नदीके जलमें आपसे आप निकलता है। पुराकालमें बाणासुरने तपस्या करके महादेवसे प्रार्थना की थी। उसी प्रार्थनाके अनुसार महादेव लिङ्गरूपमें उस पर्वत पर अवस्थान करते हैं, इसी कारण इस लिङ्गकी पूजा करनेसे जो फल मिलता है एक बाणलिङ्गकी पूजा करनेसे भी वही फल प्राप्त होता है। इस बाणलिङ्गकी वेदी सोने, चांदी, तांबे वा पत्थरकी होनी चाहिये। उसी वेदीमें इस लिङ्गकी स्थापना करके पूजा करनी होती है। जो प्रतिदिन नार्मदबाणलिङ्गकी पूजा करते हैं, उनकी मुक्ति उनके हाथ है, ऐसा जानना चाहिये। (हेमाद्रि) विशेष विवरण बाणलिङ्गमें देखो।

नर्मदेश (सं० क्ली०) नर्मदया स्थापितो ईशो यत्र। काशीस्थित शिवलिङ्गभेद। इस लिङ्गको नर्मदाने प्रतिष्ठित किया है, इसीसे इसका नाम नर्मदेश वा नर्मदेश्वर पड़ा है। इसकी उत्पत्तिका विवरण काशीखण्डमें इस प्रकार लिखा है—

एक समय मुनियोंने मार्कण्डेयके पास पहुंच कर उनसे पूछा था, 'प्रभो! इस पृथ्वी पर कौन नदी श्रेष्ठ और पापनाशिनी है?' उत्तरमें मार्कण्डेयने कहा था, 'पृथ्वी पर अनेक नदियां हैं उनमेंसे जो समुद्रगामिनी हैं, वही श्रेष्ठ हैं। फिर इनमेंसे भी गङ्गा, यमुना, सरस्वती और नर्मदा प्रधान हैं। गङ्गा ऋग्वेदकी, यमुना यजुर्वेदकी, नर्मदा सामवेदकी और सरस्वती अथर्ववेदकी मूर्त्ति है। इनमेंसे गङ्गा ही सर्वप्रधाना हैं। पुराकालमें नर्मदाने बहुत काल तक ब्रह्माके उद्देशसे तपस्या की थी। ब्रह्मा जब वर देनेके लिये उद्यत हुए, तब नर्मदाने प्रार्थना की, 'यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो जिससे मैं गङ्गाकी बराबरी कर सकूं, वही वर देनेकी कृपा करें।' यह सुन कर ब्रह्माने कुछ मुसकुरा कर कहा, 'जगत्‌में यदि कोई महादेवकी बराबरी कर सके, तो अन्य नदी भले गङ्गाकी बराबर कर सकती है।' ब्रह्माके वचन सुन कर नर्मदा काशी गई और वहां पिलिपिला तीर्थमें त्रिविष्टपके निकट विधिपूर्वक शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा की। इस पर महादेव नितान्त प्रसन्न हो नर्मदाके पास जा कर बोले, 'नर्मदे! मैं तुझ पर बहुत प्रसन्न हूं, अतः अभिलषित वर मांगो।' नर्मदाने विनीतभावसे कहा, 'मैं दूसरा कोई वर नहीं चाहती, सिवा इसके, कि आपके चरणमें मेरी भक्ति सदा बनी रहे।' शिवजी बोले,

'नर्मदे ! जो कुछ तुमने कहा, वही होगा, किन्तु मैं इसके सिवा एक दूसरा वर भी देता हूं। तुम्हारे जलमें जितने पत्थर हैं वे हमारे वरसे लिङ्गरूपी होंगे। गङ्गा सद्यपाप हरण करती हैं, यमुना एक सप्ताहमें और सरस्वती तीन दिनमें ; किन्तु दर्शनमात्रसे ही तुम मनुष्योंके पाप हरण करोगी। तुमसे स्थापित नर्मदेश्वर नामक यह पवित्र लिङ्ग भक्तोंके लिङ्गदायक होगा। इस नर्मदेश्वर लिङ्गका माहात्म्य बहुत अद्भुत है।' इतना कह कर शिवजी उक्तलिङ्गमें अन्तर्हित हो गये।

जो नर्मदेश्वरका यह माहात्म्य सुनते हैं, वे सब प्रकारके पापोंसे रहित हो कर उत्कृष्ट स्थान लाभ करते हैं। (काशीखण्ड ९२ अ०)

नर्मदेश्वर (सं० पु०) एक प्रकारके शिवलिङ्ग जो नर्मदा नदीसे निकलते हैं। नर्मदेश देखो।

नर्मन् (सं० क्ली०) नृ नये मनिन् (सर्वधातुभ्यो मनिन्। उण् ४।१३६) परिहास, हँसी।

नर्मरा (सं० स्त्री०) नर्मन् अस्त्यर्थे र, टाप्। १ दरी, गुफा, खोह। २ भाण्ड, बरतन। ३ निष्फला, वृद्धा स्त्री, बुढ़िया। ४ सरला, एक प्रकारका पेड़। ५ भस्त्री, भाथी, धौंकनी।

नर्मवत् (सं० त्रि०) नर्म विद्यतेऽस्य नर्म मतुप्, मस्य व। १ नर्मयुक्त, जिसमें आनन्द मिले। (स्त्री०) २ नर्मवती, आनन्द, हँसी, दिल्लगी। ३ नायिकाभेद, एक नायिकाका नाम। ४ तदाख्यायिकारूप रासक नाटकभेद, साहित्यदर्पणमें इस नाटकका उल्लेख है।

नर्मसचिव (सं० पु०) नर्मसु सचिवः ७-तत्। परिहाससहाय, वह मनुष्य जो राजाके साथ उसे हँसानेके लिये रहता है, विदूषक।

नर्मसाचिव्य (सं० क्ली०) नर्मसु साचिव्यं। विदूषकका कार्य, हँसी मजाक करनेका काम।

नर्मसुहृद (सं पु०) नर्मसु सुहृद्। नर्मसचिव, वह जो हँसी मजाक करता हो, विदूषक।

नर्मस्फूर्ज (सं० पु०) भयान्त सुख या आमोद।

नर्मस्फोट (सं० क्ली०) सामान्य आमोद, साधारण हँसी दिल्लगी।

नर्मान्—यूरोपीय जातिविशेष। फ्रान्स देशके उत्तरमें नर्मान्दि नामक एक प्रदेश है। वहांके अधिवासी इतिहासमें नर्मान् जाति नामसे मशहूर है। फ्रान्समें जिस समय चार्लस-दि-सिम्पल राज्य करते थे, उस समय अर्थात् ८७७ ई०में रोलो नामक कोई नौरवेके सरदार डेन्मार्कके राजासे भगाये जाने पर फ्रान्सके किनारे उपस्थित हुए और इङ्गलिश चैनेलके पार्श्ववर्त्ती स्थानोंमें उत्पात मचाने लगे। उसके समान उस समय पराक्रान्त जलदस्यु दूसरा कोई नहीं था। उसके अत्याचारसे उत्तर और दक्षिण फ्रान्स, इङ्गलैण्ड और बेलजियम आदि निम्न देश तंग आ गये थे। ये लोग नोर्थमेन अर्थात् उत्तर देशके मनुष्य कहलाते थे। अन्तमें रोलोने ९११ ई०में बहुतसे लोगोंको साथ ले फ्रान्सकी राजधानी पेरिस नगरीको घेर लिया। राजा चार्लस-दि-सिम्पलने उसे ड्यूक आफ नर्मान्दिकी उपाधि दे कर नर्मान्दि प्रदेशमें बसाया। यह राज्य पा कर रोलो दस्युवृत्तिको परित्याग और खृष्टधर्मको ग्रहण करनेमें राजी हुआ। पीछे चार्लसने अपनी लड़की जिसिलके साथ उसका विवाह कर दिया। ९१२ ई०में रोलो रवर्ट नाम धारण कर ईसाई हुए। बाद उन्होंने श्वशुरके दिये हुए सीन नदीसे ले कर एप्ते नदी तक विस्तृत नर्मान्दि राज्यका शासन-भार ग्रहण किया। उन्हींके समयमें नर्मान्दिमें विदेशी लोग आने जाने लगे और बहुतसे लोग यहां बस भी गये। उन्होंने अपने सेनापतियोंको सारा राज्य बांट दिया। अनन्तर वे सब सेनापति उस समयके यूरोपीय सामन्तराज्योंके नियमानुसार रोलोके अधीन सामन्तरूपसे देशाधिकार करने लगे। रोलोको पोती एमाके साथ इङ्गलैण्डाधिप द्वितीय एथेलरेडका विवाह हुआ। १००२ ई०में नर्मान्दिके ड्यूक २य रिचार्डके साथ उनके भगिनीपति इङ्गलैण्डके राजाका विवाद छिड़ा। इसी सु-अवसरमें इङ्गलैण्डराजने नर्मान्दि पर चढ़ाई कर दी। किन्तु आप ही परास्त हुए। १०१३-१४ ई०में जब डेन्मार्कके राजा सोयेनने इङ्गलैण्ड पर आक्रमण किया था, तब एथेलरेड परास्त हो कर पत्नीपुत्रको साथ ले श्यालकके निकट रहने लगे थे। अन्तमें नर्मान्दिके ड्यूक रवर्टने राजा हो कर अपनी पितृ-स्वसाके पुत्रोंके लिये इङ्गलैण्डमें सेना भेजी, किन्तु राह-

में ऐसा भारी तूफान उठा, कि सभी जङ्गी जहाज विपरीत दिशाको जाने लगे। इनके बाद इनके पुत्र विलियम-दि वाएडं राजा हुए। इन्होंने ही १०६५ ई०में इङ्गलैण्डके साथ प्रथम युद्ध आरम्भ किया था। दूसरे वर्ष अर्थात् १०६६ ई०में इन्होंने बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर सेण्ट माइक्लमस नामक पर्व दिनमें इङ्गलैण्डको यात्रा की और उसी साल इङ्गलैण्ड जीत लिया। बाद ये विलियम "दि कङ्करर" (विजेता) नामसे इङ्गलैण्डके राजा हुए। नर्मान्डिकी ड्यूक-कुमारी एथाके विवाहसे ले कर विलियम कास्त्,क इङ्गलैण्ड जीते जाने तक इङ्गलैण्डके साथ नर्मानोंकी विशेष घनिष्टता हो गई। इस सूत्रसे इङ्गलैण्डमें दिनों दिन नर्मानोंका अभ्युदय होने लगा। अन्तमें १०६६ ई०में इङ्गलैण्ड नर्मान्-राजके हाथ आ गया। विलियम-वंशने इङ्गलैण्डमें राज्य आरम्भ कर दिया।

नर्य (सं० त्रि०) नृभ्यो हितं यत्। १ मनुष्यहित, जो आदमीके लायक हो। २ साहसी, वीर। ३ बलवान्, ताकतवर।

नर्री (हिं० स्त्री०) १ ऊसर जमीनमें होनेवाली एक प्रकारकी बारहमासी घास। २ हिमालय पर्वत पर होनेवाला एक प्रकारका पहाड़ी बाँस।

नर्सापुर—१ हैदराबाद राज्यके निजामाबाद जिलेका पूर्ववर्त्ती तालुक। भूपरिमाण ५३७ वर्गमील और लोकसंख्या ५२०५६ थी। इसमें १३८ ग्राम लगते थे और राजस्व एक लाख रुपयेसे अधिकका था।

२ उक्त तालुकका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० १६° २६' उ० और देशा० ८१° ४४' पू०के मध्य अवस्थित है। १३६४ ई०में ओलन्दाजोंने यहां लोहेकी ढलाईका कारखाना खोला था। १६७७ ई०में इसका उत्तरीय भाग अङ्गरेजोंके अधिकारमें आ गया था। आजकल यहां अच्छी अच्छी नावें बनाई जाती हैं।

नर्सिंपुर—१ महिसुर राज्यके हसन जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १२° ४७' उ० और देशा० ७६° १६' पू०के मध्य हेमवती नदीके किनारे अवस्थित है। यह नर्सिंपुर तालुकका प्रधान स्थान माना जाता है। ११६४ ई०में नरसिंह नामक किसी मनुष्यने यहां एक किला बनवाया था। शहरमें सूती कपड़े और तसरका व्यवसाय अच्छा चलता है।

२ महिसुरके हसन जिलेका एक तालुक। भूपरिमाण ४७६ वर्गमील है।

नल (सं० क्ली०) नलतीति नल-अच्। १ पद्म, कमल। (पु०) २ तृणविशेष। संस्कृत पर्याय—धमन, पोटगल, नाल, नड़, कुक्षिरन्ध्र, कीचक, दीर्घवंश, शून्यमध्य, विभीषण, छिद्रान्त, मृदुपत्र, वंशपत्र, मृदुच्छद, लालवंश। गुण—शीत, कषाय, मधुर, रुचिकर, रक्तपित्त प्रशमन, दीपन और वीर्यवृद्धिकारक। (भावप्र०)

नल—१ चन्द्रवंशीय निषधाधिपति वीरसेनके पुत्र। भारत वनपर्व (३।५३।१)में लिखा है—

"आसीत् राजा नलो नाम वीरसेनसुतो वली।
उपपन्नो गुणैरिष्टै रूपवानश्वकोविदः॥"

चन्द्रवंशीय निषधाधिपति वीरसेनके पुत्रका नाम नल था, जो कन्दर्पके समान रूपवान् तथा सकल गुणग्रामविभूषित, अश्वकी परीक्षा और परिचालनविषयके असाधारण पण्डित थे। ये ब्रह्मनिष्ठ, वेदज्ञ और द्यूतविद्यानुरक्त थे। इनके गुणानुरागसे देवगण भी इन पर अनुरक्त थे।

उस समय विदर्भदेशमें भीमपराक्रम राजा भीम राज्य करते थे। राजा भीमने तपस्या द्वारा तीन पुत्र और एक अलोकसामान्या कन्या प्राप्त की थी। इस कन्याका नाम था दमयन्ती। महामति नल, दमयन्तीके रूप और गुणकी कथा सुन, उन पर आसक्त हो गये। यह आसक्ति उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। नल मनका भाव गोपन रखनेके अभिप्रायसे रमणीय उद्यानमें रहने लगे। एक दिन वहां कुछ सुन-ले रंगके हंस दिखलाई दि[illegible] नलने उनमेंसे एकको उठा लिया। उस हंसने म[illegible] स्वरमें नलसे कहा, "आप मुझे छोड़ दें, मैं आपका उप-कार करूंगा। विदर्भदेशमें जा कर मैं दमयन्तीके समक्ष आपके रूपगुणादिकी ऐसी प्रशंसा करूंगा कि फिर वे सिवा आपके अन्य किसीको भी अपना पति न बनावेंगी।' नलने तत्क्षणात् हंसको छोड़ दिया। हंस भी विलम्ब न कर शीघ्र ही विदर्भदेशकी ओर चल दिया। वहां

आ कर उसने दमयन्तीसे कहा, "दमयन्ति! निषधाधिपति नल रूपमें कन्दर्प सदृश हैं। तुम भी रमणियोंमें श्रेष्ठ हो। तुम यदि नलको अपना स्वामी बनाओ, तो विशिष्टके साथ विशिष्टका संयोग हो जाय।" दमयन्तीने हंसके मुंहसे यह बात सुन कर कहा, "मैं पहलेसे ही नल पर अनुरक्त हूं, अब तुम्हारे मुंहसे उनकी प्रशंसा सुन प्रतिज्ञा करती हूं, कि नल ही मेरे पति हैं, नलके सिवा अन्य किसीके भी साथ मैं विवाह न करूंगी। तुम कृपा कर मेरी यह प्रतिज्ञा नलको सुना देना।" हंसने आ कर सब हाल नलसे कह दिया। नल बड़े आनन्दित हुए।

उधर महामति भीमने दमयन्तीको प्राप्तयौवना देख स्वयम्बरकी तैयारियां कीं। स्वयम्बरके लिए सब राजाओंको निमन्त्रण दिया गया। नल राजा भी चले। रास्तेमें देवोंसे उनकी भेंट हो गई। देवोंने नलसे कहा, "तुम हमारी ओरसे दूत बन कर दमयन्तीके पास जाओ और कहो, कि इन्द्र, अग्नि, यम और वरुण ये चारो लोकपाल स्वयम्बरमण्डपमें उपस्थित हुए हैं; चारोंमेंसे जिनको चाहो, उन्हें वरण करो।' नल 'तथास्तु' कह कर चल दिये। देवताओंके प्रभावसे उन्हें कोई देख न सका।

नल दमयन्तीके पास पहुंच कर उनसे कहने लगे—"अयि कल्याणि! मेरा नाम नल है, मैं देवताओंका दूत बन कर यहां आया हूं; इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम ये चारों लोकपाल तुम्हें पानेकी इच्छासे स्वयम्बरमण्डपमें पधारे हैं उनमें किसी एकको अपना पति बनाओ। मैं देवताओंके प्रभावसे लोगोंसे अलक्षित हो कर यहां तक आया हूं। जो कुछ कहना हो सब निवेदन करूंगा।" इसके उत्तरमें, दमयन्तीने देवोंके लिए कोटि नमस्कार कहा, "मैं हंसके मुंहसे आपकी प्रशंसा सुनकर प्रतिज्ञा कर चुकी हूं कि नल ही मेरे पति हैं। अब किस तरह मैं अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग कर द्विचारिणी होऊं?' इस पर नलने देवोंकी तरफसे दमयन्तीको अनेक उपदेश दिये, परन्तु दमयन्ती पर कुछ भी असर न पड़ा; वे बोलीं—"मैं नलको वरण कर चुकी हूं, अब किस तरह देवोंको वरण कर सकती हूं? देवगण धर्मरक्षक हैं; उनकी कृपासे मैं अपने धर्मकी रक्षा करनेमें समर्थ होऊं, यही मेरी कामना है।" दमयन्तीको स्थिरसङ्कल्प देख नल लौट आये और देवोंसे सब वृत्तान्त कह सुनाया।

शुभमुहूर्तमें राजा नल विविध भूषणोंसे विभूषित हो स्वयम्बरमण्डपमें उपस्थित हुए। देवगण भी नलका रूप धारण कर वहां मण्डपमें बैठे थे। इधर दमयन्ती भी सखियोंके सहित स्वयम्बर-सभामें आ पहुंचीं। एक सखी राजाओंके नाम और गुण वर्णन करती हुई चलने लगी। नलके प्रति अत्यन्त अनुराग होनेके कारण दमयन्तीने अन्य राजाओंकी तरफ मुंह उठा कर भी नहीं देखा। चलते चलते जब नलके पास पहुंची, तब वहां उन्हें एक साथ पांच नल बैठे दिखाई दिये। दमयन्ती देवोंकी माया समझ गईं और परम भक्तिके साथ उनकी स्तुति करने लगीं। देवगण सन्तुष्ट हुए। तब उन्होंने देवोंके स्वेद-रहित और स्तब्धनेत्र इन लक्षणोंको देख प्रकृत नलको पहचान लिया और उन्हींके गलेमें वरमाला डाल दी। इस घटनासे देवगण दमयन्ती पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और नलको उनके गुणोंके लिए पुरस्कारस्वरूप ८ वर प्रदान किये। शचीपति इन्द्रने खुश हो कर यज्ञमें प्रत्यक्ष दर्शन देने और उत्तम गति होनेका वर दिया। अग्निने, नल जहां चाहेंगे वहां अग्निका आविर्भाव होगा और लोग अग्नि-सदृश दीप्यमान होगा, ऐसा वर दिया। यमने अन्नमें विशिष्ट रस पाने और धर्ममें उत्कृष्ट मति होनेका वर दिया तथा वरुणने नल जहां चाहेंगे वहां जलका आविर्भाव होने तथा उत्तम गन्धान्वित माल्य पानेका वर प्रदान किया। इस प्रकार नलको आठ वर प्राप्त हुए।

शास्त्रानुसार नलका दमयन्तीके साथ विवाह हो गया। राजगण दमयन्तीका विवाह देख विस्मित एवं विषण्ण-हृदयसे अपने अपने स्थानको चले गये। इन्द्रादि देवगण जिस समय स्वर्गको जा रहे थे, उसी समय कलि और द्वापरका स्वयम्बर-स्थलमें आना हुआ। मार्गमें देवताओंके साथ उन दोनोंका साक्षात् हो गया। देवताओंसे स्वयम्बरका वृत्तान्त सुन कर दोनों नल पर अत्यन्त कुपित हुए। देवोंने उन्हें समझाया कि दमयन्तीने हम लोगोंको

अनुमतिके अनुसार ही ऐसा किया है, पर तो भी उनका क्रोध शान्त न हुआ। सर्वदा वे नलके छिद्र ढूंढ़ने लगे; क्योंकि बिना पापके प्रविष्ट हुए उनके शरीरमें प्रवेश करनेको उनमें क्षमता ही न थी। कालान्तरमें राजा नलके एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। पुत्रका नाम रक्खा गया इन्द्रसेन और कन्याका इन्द्रसेना। इस प्रकार द्वादश वर्ष व्यतीत हो गये, तथापि नलके शरीरमें पाप प्रविष्ट न हो सका। बारह वर्ष बीत जाने पर एक दिन नल मूत्रशौच त्याग कर पाद प्रक्षालन करके ही सन्ध्या करने बैठ गये। कलिने इसी सूत्रसे उनके शरीरमें प्रवेश किया। इसके बाद कलि अन्य रूप धारण कर नलके भ्राता पुष्करके पास गये और बोले, "तुम मेरी सहायतासे अक्षक्रीड़ामें नलको परास्त कर निषधका राज्य लाभ करो।" पुष्कर इस बात पर राजी हो गये और नलके साथ अक्षक्रीड़ामें प्रवृत्त हुए। नलके शरीरमें कलिके प्रविष्ट हो जानेसे, वे दमयन्तीके सिवा राज्यादि सम्पूर्ण सम्पत्ति द्यूतक्रीड़ामें हार गये। इधर दमयन्तीने राजाके पास बार बार आदमी भेजा और निषेध किया। किन्तु नलको किसी तरह भी चैतन्य न हुआ। दमयन्तीको जब मालूम हुआ कि पति द्यूतमें सब हार गये हैं, तब उन्होंने पुत्र-कन्याको वार्ष्णेयके साथ अपने पीहर भेज दिया। नलने हृतसर्वस्व हो दमयन्तीके साथ गृह त्याग दिया और नगरके प्रान्तभागमें तीन दिन रहे। उधर पुष्करने नगर-वासियोंके लिए आदेश निकाला कि, 'यदि कोई नलको सहायता वा आहारादि देगा, तो वह जानसे मार दिया जायेगा।' राजाके भयसे कोई भी नलकी सहायता न कर सका।

नल तीन दिन तक क्षुधासे पीड़ित हो फल-मूलको खोजमें वहांसे चल दिये। दमयन्ती भी उनके साथ चलीं। क्षुधापीड़ित नलको बहुत दिन बाद सुनहले रंगके कुछ पक्षी दीख पड़े, ज्यों ही नलने वस्त्र द्वारा उन पक्षियोंको आच्छादित किया, त्यों ही पक्षीगण उस वस्त्रको ले कर आकाशमें उड़ गये। उड़ते समय पक्षियोंने सम्बोधन-पूर्वक नलसे कहा, "तुम जो अक्षक्रीड़ामें सर्वस्वान्त हुए हो, वह भी हमारे द्वारा ही हुआ है—हम लोगोंने अक्ष हो कर तुम्हारी ऐसी अवस्था कर दी है। अब तुम वस्त्र पहन कर निकले, यह हम लोगोंको सह्य नहीं हुआ और इसलिए इस वस्त्रको भी हम लोगोंने हरण कर लिया।" इस घटनासे नल किंकर्तव्यविमूढ़-से हो गये और दमयन्तीको विदर्भ नगर जानेके लिए उपदेश देने लगे। परन्तु दमयन्तीने नितान्त कातर हो कर कहा, "यदि आप भी चलें तो मैं चल सकती हूं। आपको छोड़ कर स्वर्ग-राज्यकी भी मुझे अभिलाषा नहीं है।"

अनन्तर नल और दमयन्ती एक ही वस्त्र पहन कर चलने लगे। कुछ दूर जा कर दमयन्तीसे चला न गया, वे नितान्त परिश्रान्ता हो कर बैठ गईं। फिर दमयन्ती नलके जङ्घदेश पर मस्तक रख कर सो गई। दमयन्तीके सो जाने पर नल विचारने लगे—दमयन्तीको परित्याग करनेका यही अवसर है। परन्तु वस्त्र एक ही है छोड़ूं तो कैसे छोड़ूं? इस प्रकार चिन्ता करते करते नल अस्थिर हो उठे। शरीरमें कलिके रहनेसे उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी और इसीलिए उन्होंने दमयन्तीको त्यागनेका निश्चय कर लिया। यथासमय सामने एक कोषमुक्त खड्ग दीख पड़ा, नलने झटसे उठा कर उससे वस्त्रके दो खण्ड कर डाले। फिर अत्यन्त सावधानीसे दमयन्तीका मस्तक जमीन पर रक्खा। दमयन्तीकी इस दुर्दशाको देख नल नितान्त अवसन्न हो रोने लगे। एक बार दमयन्तीको छोड़ कर कुछ दूर चले जाते और फिर लौट कर व्याकुल हो रोने लगते थे। इसी प्रकार बार बार जाने आने लगे। अन्तमें हृदयको कुछ दृढ़ करके यह कह कर, 'दमयन्ति! तुम नितान्त पतिपरायणा हो, इसलिए आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, मरुत्‌गण और अश्विनीकुमारद्वय तुम्हारी रक्षा करेंगे,' वहांसे चल दिये। नलकी बुद्धि कलि द्वारा अपहृत होनेके कारण वे अतुलनीय प्रियतमा भार्याको छोड़ कर आगे बढ़ने लगे। कलि उस समय नलके हृदयमें विशेष-रूपसे आविष्ट थे, इसलिए नलकी बुद्धि बिलकुल लुप्त हो गई। वे जनशून्य वनमें अर्द्धनग्ना प्रणयिनी भार्याको निद्रितावस्थामें छोड़ करुण-विलाप करते हुए वहांसे चल ही दिये, फिर न लौटे।

नलके चले जाने पर दमयन्तीकी काल-निद्रा भङ्ग

हुई। उठकर देखा तो नल नहीं। सतो दमयन्ती करुण-भावसे रोने लगीं, उनके रोदनसे वनके पशु-पक्षी भी मानो रोरुद्यमान हो उठे। इसके बहुत दिन बाद दमयन्ती सुबाहुनगरमें उपस्थित हुईं और वहां राजगृहमें कुछ दिन सैरिन्ध्रीके वेशमें रहीं। विदर्भाधिपति भीमने कार्य-कुशल ब्राह्मणोंको इन दोनोंको ढूँढनेके लिए देशा-देशान्तर को भेजा। सुदेवने सुबाहुनगर पहुंच कर दमयन्तीका पता लगाया। उसके बाद दमयन्ती भीमके यहां लाई गईं और वहीं रहने लगीं।

राजा नलने दमयन्तीको त्याग कर गहन वनमें प्रवेश किया। वहां उन्होंने देखा, भयानक दावानल जल रहा है और उस प्रज्वलित अग्निमेंसे कोई बोल रहा है कि 'हे नल! हे पुण्यश्लोक! शीघ्र आओ।' यह सुन कर नलने, 'कुछ भय नहीं है,' ऐसा अभय दे उस अग्निमें प्रवेश किया। उसमें एक महानाग जल रहा था; नलको देख उसने कहा, 'राजन्! नारदके शापसे मुझमें एक कदम भी चलनेकी शक्ति नहीं रही, शीघ्र ही तुम मेरी रक्षा करो। मेरा नाम कर्कोटक है, मैं तुम्हारा मङ्गल विधान करूंगा।' इतना कह कर कर्कोटकने अपना शरीर अङ्गुष्ठ-प्रमाण कर लिया। नल उसे उठा कर निकल आए। तब कर्कोटकने फिर कहा, 'महाराज! आप कुछ कदम आगे बढ़िये।' ज्यों ही नलने १०वीं कदम बढ़ाई, त्यों ही कर्कोटकने उन्हें डँस लिया। कर्कोटकके डँसते ही नलका रूप बदल गया। नलको बड़ा आश्चर्य और दुःख हुआ। तब कर्कोटकने कहा—"राजन्! लोग आपको पहचान न सकें, इसीलिए मैंने आपको डंस कर आपका रूप बदल दिया है। आप जिसके कारण कष्ट पा रहे हैं, वह मेरे विषसे सन्तप्त हो कर आपके शरीरमें अवस्थान करेगा। मेरे प्रसादसे आप किसी भी शत्रु, दंष्ट्री और वेदवित्के भयसे भीत न होंगे। आप आज ही यहांसे अयोध्या चले जाइये और वहांके राजा ऋतुपर्णके बाहुक नामक सारथि बन जाइये। राजा ऋतुपर्ण द्यूतविद्याविशारद हैं, उनके पास रह कर द्यूतविद्या सीखनेसे आपका मङ्गल होगा; फिर पत्नी और पुत्रादिके साथ भी आपका मिलन हो जायगा। जब आपको अपना प्रकृत रूप बनाना हो, तब मेरे दिए हुए वस्त्रयुगलको आप अपने ऊपर डाल दीजिएगा। बस, फिर आपका रूप पहले जैसा हो जायगा।" अनन्तर कर्कोटक उन्हें दोवस्त्र प्रदान कर वहांसे चल दिया।

राजा नल दश दिनमें अयोध्या पहुंचे और राजा ऋतुपर्णके यहां सारथिका कार्य करने लगे। धीरे धीरे राजासे उनका सौहृद्य हो गया। परन्तु दमयन्तीके अभावसे वे सर्वदा विमर्ष रहते थे और प्रतिदिन सोनेके पहले इस श्लोकको पढ़ा करते थे,—

"क्वनु सा क्षुत्पिपासार्त्ता श्रान्ता शेते तपस्विनी।
स्मरन्ती तस्य मन्दस्य कं वा साद्योपतिष्ठते॥"

(भारत वनप० ७६ अ०)

अर्थात् वह तपस्विनी श्रान्त और क्षुत्पिपासासे कातर हो कर इस मूढ़को स्मरण करती हुई कहां सो रही है, और न मालूम किसकी उपासना कर रही है।

दमयन्तीके पितृभवनमें जा कर नलको ढूढ़नेके लिए मातासे प्रार्थना करने पर, भीम-महिषीने राजासे कह कर चारों ओर कार्यकुशल ब्राह्मणोंको भेजा। दमयन्ती-कथित कुछ गाथाएं उन लोगोंने याद कर लीं और उन्हें पढ़ते हुए वे नाना स्थानोंमें पर्यटन करने लगे। परन्तु कोई भी नलका पता न लगा सका।

पर्णाद नामक एक ब्राह्मण नलकी खोजमें अयोध्या पहुंचे। वहां राजा ऋतुपर्णके बाहुक नामक एक सारथिने उनको गाथा सुन कर दीर्घनिश्वास त्याग किया और कहा, "पतिपरायणा कुलीन-स्त्रियां विषमावस्थाको प्राप्त होने पर भी अपने आप ही अपनी रक्षा करती हैं, इस कारण उन्हें स्वर्गको प्राप्ति होती है। पति यदि किसी विपत्तिमें आ पड़ने पर उसे त्याग दे, तो उस पर क्रोध करना उचित नहीं। जो व्यक्ति प्राणरक्षाके लिये चेष्टा करने पर भी पक्षियों द्वारा हृतवस्त्र हो कर नाना प्रकारकी मानसिक पीड़ाओंसे दग्ध होता है, उस पर क्रोध करना श्यामाङ्गीके लिए उचित नहीं है। श्यामाङ्गीको, चाहे वह पति द्वारा सत्कृत हो या असत्कृत, राज्यभ्रष्ट व्यसनातुर पति पर क्रोध न करना चाहिये।"

पर्णादने जब इस प्रत्युत्तरको दमयन्तीसे आ कर कहा, तो दमयन्ती समझ गईं कि ये नलके सिवा और कोई नहीं हैं। नलको बुलानेके लिए उन्होंने एक

अद्भुत उपाय निकाला। उन्होंने सुदेवको बुला कर कहा, "तुम शीघ्र अयोध्या जा कर ऋतुपर्ण राजाको संवाद दो कि दमयन्तीने पुनः स्वयम्बरकी अभिलाषा की है, कल ही स्वयम्बर होगा।" राजा ऋतुपर्ण इस संवादको पा कर विदर्भदेशको जानेकी तैयारियाँ करने लगे। बाहुकके सिवा ऐसा कोई था नहीं जो एक दिनमें विदर्भनगर पहुंचा सके। बाहुकने भी यह संवाद सुना, उनका हृदय विदीर्ण हो गया। राजा ऋतुपर्ण बाहुक और वार्ष्णेयके साथ विदर्भनगरको चल दिये। रथ बड़ी तेजीसे चलाने लगा। मार्गमें राजा ऋतुपर्णने नलको अश्वविज्ञान सिखाया। तब कलि नलके हृदयसे निकल कर विषवमन करने लगा। नल कलिको शाप देना चाहते थे, किन्तु कलि उनके शरणापन्न हो गया और कहने लगा, "राजन्! जो तुम्हारा नाम स्मरण करेगा, उसे कलिका भय न रहेगा।" इस पर नलने उसको क्षमा प्रदान की। अब नल कलिसे मुक्त हो गए। सायङ्कालको सब विदर्भनगर पहुंच गये।

नलने नगरीमें जा कर देखा, कहीं भी कोई उत्सवका चिह्न नहीं है। इतनेमें दमयन्तीने केशिनी नामकी एक सखीको बाहुकके पास भेज दिया। केशिनी आ कर बाहुक नामधारी नलसे नाना प्रकारके प्रश्न करने लगी, उससे उनका सन्देह क्रमशः बढ़ने ही लगा, उसने जा कर सब वृत्तान्त दमयन्तीसे कहा। सब वृत्तान्त सुन कर दमयन्तीने केशिनीकी मारफत मातासे कहला भेजा, "मातः! मैंने बाहुकको नल समझ कर अनेक प्रकारसे परीक्षा की, परन्तु केवल उनके रूप पर मुझे सन्देह है, इसलिए मेरी इच्छा है कि मैं स्वयं उनकी परीक्षा करूं। पितासे कह कर अथवा यों ही, उन्हें अन्तःपुरमें बुलाने अथवा मुझे उनके निकट जानेकी अनुमति दीजिए।" रानीने विदर्भराजसे दमयन्तीकी बात कह दी। राजा भीमने कन्याकी प्रार्थना स्वीकार कर अनुमति दे दी।

दमयन्तीने माताका आदेश ले कर नलको अपने आलयमें बुलाया। नल दमयन्तीको देख कर सहसा शोक और दुःखसे आकुल हो गए, उनकी आंखोंसे आंसू बहने लगे। दमयन्तीने भी ततोधिक शोकसे सुह्यमान हो कर कहा, "बाहुक! क्या तुमने कभी किसी ऐसे धर्मज्ञ पुरुषको देखा है कि जो वनमें निद्रिता स्त्रीको छोड़ कर चला गया हो? पुण्यश्लोक नलके सिवा कौन व्यक्ति ऐसा है जो अममोहिता प्रियतमा भार्याको बिना अपराधके निर्जन वनमें छोड़ कर जा सकता है? मैंने बाल्यकालसे उस महीपालका ऐसा कौन-सा अपराध किया है कि जिससे वे मुझे काननमें निद्रार्त्ता देख परित्याग पूर्वक चले गए हैं? मैंने पहले साक्षात् देवोंको छोड़ कर जिनको वरण किया है—"कहते कहते दमयन्तीका गला भर आया। नलने बड़े दुःखके साथ कहा, "भीरु! मेरा जो राज्य नष्ट हुआ था और मैंने जो तुम्हें त्याग दिया था, यह सब मेरा काम नहीं था, सब कुछ कलिने किया है। पापी कलिने अब मुझे छोड़ दिया है, इसीसे मैं तुम्हारे पास आ सका हूं। परन्तु तुम जिस प्रकार अनुव्रत और अनुरक्त पतिको त्याग कर अन्यको वरण करनेके लिए उद्यत हुई हो, क्या नारी कभी इस प्रकार कर सकती है?" दमयन्तीने नलके इस प्रकार परिदेवित वाक्यको सुन हाथ जोड़ कर कांपते हुए कहा, "निषधनाथ मैंने देवोंकी उपेक्षा कर आपको वरण किया है, ऐसी अवस्थामें मुझे दोष देना उचित नहीं है। आपको पानेके लिये ब्राह्मणगण मेरी कही हुई गाथाओंको पढ़ते हुए चारों तरफ घूमे थे। अनन्तर पर्णादने कोशलनगरीमें आपको देखा, आपने मेरी गाथाके उत्तर दिये हैं। मैंने आपको बुलानेके लिए यह उपाय निकाला है; क्योंकि इस पृथिवी पर आपके सिवा अन्य कोई भी अश्व चला कर एक दिनमें सौ योजन नहीं चल सकता। मैंने मनमें भी कभी असत्कार्यकी चिन्ता नहीं की है। वायु, अग्नि और सूर्य ये सभी साक्षी हैं। ये तीन देवता तीन लोकको धारण किये हुए हैं। या तो वे यथार्थ कहें, या मुझे परित्याग कर दें।" इतनेमें वायुने अन्तरीक्षसे कहा, "नल! मैं तुमसे सत्य कहता हूं, दमयन्तीने मनमें भी कभी असत्कार्य नहीं किया। इन तीन वर्षोंमें हम लोगोंने उनकी रक्षा की है। तुम्हें पानेके लिए ही दमयन्तीने ऐसा उपाय अवलम्बन किया है।" इसी समय स्वर्गसे पुष्पवृष्टि होने लगी। देवदुन्दुभि बजने लगी। नलने भी कर्कोटकका स्मरण कर अपना

द्वारा शरीर आच्छादन किया और उसी समय उन्हें स्वकीय रूप प्राप्त हुआ। दमयन्ती प्रकृत नलको सामने देख उनके चरणोंमें गिर कर उच्च स्वरसे रोने लगीं।

यह सम्वाद शीघ्र ही चारों ओर फैल गया। निषधाधिपति नल तीन वर्ष तक नाना प्रकारके कष्ट सहनेके बाद भार्यासे मिल कर परम आनन्दित हुए।

इधर राजा ऋतुपर्णने जब सुना कि राजा नल बाहुकके रूपमें उन्हींके राज्यमें अवस्थान करते थे, तब वे दमयन्तीसे मिले और अत्यन्त आनन्दित हो नलसे क्षमा मांगने लगे। नलने भी उनसे क्षमा मांगी और अक्ष-विद्याके बदले उन्हें अश्वविद्या प्रदान की। राजा ऋतुपर्ण प्रसन्नचित्त हो अपने राज्यको लौट गए।

नल एक मास विदर्भनगरमें रहे, फिर कुछ धन और सेनादि ले कर अपने देशको चल दिये। स्वदेश पहुंचने पर उन्होंने अपने भाई पुष्करको द्यूतक्रीड़ाके लिए आह्वान किया। दोनोंमें द्यूत प्रारम्भ हुआ; अबकी बार पुष्कर पराजित हुए। पुण्यश्लोक नल पुनः अपने राज्यमें अभिषिक्त हुए। देवगण आनन्दमें आ कर पुष्पवृष्टि करने लगे। राजा नलने पुष्कर पर किसी प्रकारका अत्याचार नहीं किया; वरन् भ्रातृभावसे आलिङ्गन-पूर्वक उन्हें अपने पुरमें ही रक्खा। पहलेकी तरह फिर नल-दमयन्ती सुखसे राज्य करने लगी।

जो लोग नल-दमयन्तीका उपाख्यान सुनते हैं, उनका कलिजन्य भय जाता रहता है। (भारत वनपर्व ५२-६०अ०)

अकबरके सभा-कवि प्रसिद्ध शेख फैजीने इस नल-दमयन्तीके उपाख्यानके आधार पर फारसीमें 'नलदमन' नामक एक मनोहर काव्य रचा है।

२ सूर्यवंशीय निषधराजके पुत्र। (मत्स्यपु० १२ अ०)

३ सूर्यवंशीय निषधराज वीरसेनके पुत्र।(हरिवंश १५।२४)

उपर्युक्त दोनों नल सूर्यवंशीय थे। दमयन्तीके पति पुण्यश्लोक नल चन्द्रवंशीय थे।

४ रामका एक वानर सैनिक। विश्वकर्माका पुत्र। इसी नलने श्रीरामचन्द्रके लिये लङ्का जानेका सेतु बनाया था। (रामायण)

वामनपुराणमें इसका विवरण इस प्रकार मिलता है—नलने ऋतुध्वज मुनिके शापसे विश्वकर्माके औरस और घृताची अप्सराके गर्भसे गोदावरीके किनारे वानर-रूपमें जन्मग्रहण किया था। (वामनपु० ६२ अ०)

५ दानवविशेष, विप्रचित्तिका चतुर्थ पुत्र। सिंहिकाके गर्भसे इसका जन्म हुआ था।

६ यदुके पुत्र।

७ भारतवर्षीय आनद्ध यन्त्रविशेष। यह यन्त्र युद्धके समय घोड़े पर रख कर बजाया जाता है। (यन्त्रकोष)

नल—दाक्षिणात्यका एक पराक्रान्त राजवंश। इस वंशके राजा कोङ्कण-प्रदेशमें राज्य करते थे। बादमें, चालुक्योंने आ कर इनको राजच्युत किया था (५५०-५६० ई०)।

नल—बम्बई प्रान्तके अन्तर्गत अहमदाबाद जिलेका एक ह्रद। अहमदाबादसे यह करीब १८ कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। इसका परिमाण प्रायः ४८ वर्गमील होगा। इसका पानी बारहो महीना नुनखरा रहता है। गरमियोंमें और भी नुनखरा हो जाता है। ह्रदके किनारे नाना प्रकारके वृक्ष हैं, जो कि अकर्मण्य किन्तु सतेज हैं। ह्रदमें बहुतसे छोटे छोटे टापू हैं, जिनमें गरमियोंमें पशु आदि चराये जाते हैं।

नलक (सं० क्ली०) नल इव कायति कै-क। शाखास्थि, नलीके आकारकी हड्डी।

नलक—कालदेवलके एक भतीजेका नाम। ये बुद्धदेवके समसामयिक थे। कालदेवल अपने दैवशक्ति-प्रभावसे जानते थे, कि कुछ दिनोंके बाद शुद्धोदनके एक पुत्र होगा जो एक असाधारण मनुष्य हो कर ज्ञानालोक प्रकाश करेगा। किन्तु उस पुत्रके जन्म लेनेके पहले उनकी मृत्यु होगी, इस कारण वे उक्त आलोकको प्राप्त कर न सकेंगे। इस लिये एक दिन उन्होंने अपने भतीजे नलकको बुला कर कहा, 'नलक! कालक्रमसे शुद्धोदनके ऐशीशक्ति-सम्पन्न एक पुत्र जन्म लेगा। वही पुत्र ज्ञानालोक-सम्पन्न बुद्ध होंगे।' नलक एक सच्चे दिलके आदमी थे। वे अपने चाचाके कहनेका तात्पर्य अच्छी तरह समझ गये थे। एक दिन वे यतिके उपयुक्त गैरिक वस्त्र पहन और हाथमें मृण्मय पात्र ले कर हिमालयके जङ्गलमें चल दिये और वहां कठोर ब्रह्मचर्या द्वारा दिनों दिन पवित्रता लाभ करने लगे। इस प्रकार बहुत दिन बीत जाने पर जब उन्हें खबर लगी कि बुद्धदेव आविर्भूत हुए हैं,

तब वे उनके समीप आये और बहुत दिनोंके इच्छित उपदेश उनसे सुनने लगे। उस उपदेशावलीका नाम नलक-पतिपद है। उपदेशके समाप्त हो जाने पर उन्होंने बुद्धदेवसे विदा मांग कर निर्विघ्नतासे तत्त्वचिन्ता करनेके लिये पुनः हिमालयके जङ्गलमें प्रवेश किया था। बुद्धदेवके उपदेशके प्रभावसे इन्होंने ही सबसे पहले परम विशुद्धि प्राप्त की थी। इसके सात मास बाद हिमालयके शिखर पर चढ़ कर ये स्वर्गधामको पधारे।

नलका (हिं० स्त्री०) नली, नाल।

नलकानन (सं० पु०) १ देशभेद, एक देशका नाम। (क्ली०) २ नलवन, नरकटका जङ्गल।

नलकिनी (सं० स्त्री०) नलकानि सन्त्यस्याः, नलक इनि ङीप्। १ जङ्घा, जाँघ। २ जानुदेश, घुटना।

नलकील (सं० पु०) नलवत् कीलो यत्र। जानु, घुटना।

नलकूबर (सं० पु०) १ कुबेरके एक पुत्रका नाम। मणिग्रीव नामक इसके एक भाई था। एक बार यह अपने भाईके साथ खूब शराब पी कर कैलास पर्वत पर गङ्गाके किनारे एक उपवनमें स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा कर रहा था। उन दोनोंको ऐसी अवस्थामें देख नारदने शाप दिया था, कि तुम अर्जुनवृक्ष हो जाओ। कहते हैं, कि इसी शापसे ये दोनों वृन्दावनमें यमलार्जुन हुए। यहां श्रीकृष्णने इन्हें स्पर्श करके शापमुक्त किया।

(भागवत १० स्क०)

रामायणमें लिखा है, कि एक बार जब रावण दिग्विजय करके लौट रहा था, तब रास्तेमें उसे रम्भा नामक अप्सरा मिली जो नलकूबरके यहां जा रही थी। रावण उसे जबरदस्ती पकड़ कर अपने साथ ले गया। उसी समय रम्भाने उसे शाप दिया था, कि यदि तुम किसी स्त्रीके साथ बलात्कार करोगे, तो तुरंत तुम्हारी मृत्यु हो जायगी। कहते हैं, कि इसी भयसे रावणने सीताके साथ बलात्कार नहीं किया था। (रामायण उत्तर०)

भारतचन्द्रके अन्नदामङ्गलमें लिखा है, कि नलकूबर नारदके शापसे भवानन्द मजुमदार हो कर उत्पन्न हुए थे। उनकी दो स्त्रियोंने चन्द्रमुखी और पद्ममुखी नामसे जन्मग्रहण किया था। भवानन्द मजुमदार देखो।

नलकेरि—कुर्ग राज्यका एक अरण्य। यहां तरह तरहकी लकड़ी मिलती है। इसका परिमाण लगभग ४० वर्ग मील होगा।

नलकोल (हिं० पु०) एक प्रकारका बैल।

नलगङ्गा—बरारके बुलढाना जिलेकी एक नदी। यह बुलढाना नगरके पाससे हो निकल कर बगार नदीमें मिलती है। ग्रीष्मकालमें यह नदी सूख जाया करती है।

नलगोंद—१ हैदराबाद राज्यके मेदक गुलशनाबाद विभागका एक जिला। यह अक्षा० १६° २०´ से १७° ४७´ उ० और देशा० ७८° ४५´ से ७९° ५५´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४१४३ वर्ग मील है। यह जिला चारों ओर पर्वतसे घिरा है। यहांकी प्रधान नदी कृष्णा जिलेके दक्षिण हो कर बह गई है। अगस्तसे अक्तूबर तक यहां मलेरियाका प्रकोप अधिक देखा जाता है। केवल नवम्बरसे ले कर मई तक आबहवा अच्छी रहती है। ग्रीष्मऋतुमें असह्य गर्मी पड़ती है, उस समय तापपरिमाण ११० रहता है।

यह जिला पूर्व समयमें वरङ्गल राजाके अधिकारसे बाहर था। पीछे वरङ्गलके एक शासनकर्त्ताने नलगोंद शहरसे २ मील उत्तर-पूर्व पाङ्गल नामका एक शहर बसाया और वहीं अपनी राजधानी कायम की। पीछे वे राजधानी उठा कर नलगोंदको ले गये। वाह्मनीराज अहमदशाहवलीके शासनकालमें शत्रुओंने इसे एक बार जीता था। वाह्मनीराजके अधःपतनके बाद यह जिला गोलकुण्डाके कुतुबशाही राज्यका एक अंग हो गया। यद्यपि वरङ्गलके राजाने इस पर पुनः अपना अधिकार जमाया, पर अधिक काल वे इसका भोग कर न सके; यह पुनः सुलतान कुली कुतुबशाहके हाथ लगा। गोलकुण्डाके अधःपतनके बाद औरङ्गजेबने इस जिलेको दक्षिण-सूबामें मिला लिया। लेकिन १८वीं शताब्दीमें हैदराबाद राज्यके संस्थापित होने पर यह दिल्ली-साम्राज्यसे पृथक् कर दिया गया।

जिलेमें नलगोंद, देवरगोंद और चलगोंद नामके जो तीन दुर्ग हैं उनकी स्थिति और कारुकार्य देख कर आश्चर्य होना पड़ता है। देवरगोंद दुर्ग सात पहाड़से घिरा है। एक समय यह भयावह तथा अजेय दुर्ग समझा जाता था, लेकिन अभी यह भग्नावस्थामें पड़ा है।

इसमें २ शहर और ८७२ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या सात लाखके लगभग है। सैकड़े पीछे ८५ हिन्दू हैं, तेलगु उनकी भाषा है। खरीफ, ज्वार, बाजरा और कुलथी यहांका प्रधान उत्पन्न शस्य है। जिलेकी आय चौदह लाख रुपयेसे अधिककी है। जिले भरमें २८ प्राइमरी स्कूल, २ मिडिल स्कूल, ८४ बालिका स्कूल और ३ चिकित्सालय हैं।

२ उक्त जिलेका एक तालुक। यहांका भूपरिमाण ८७४ वर्गमील और जनसंख्या डेढ़ लाखसे ऊपर है। इसमें एक शहर और २१६ ग्राम लगते हैं। आय वार्षिक तीन लाख रुपयेसे अधिक है।

३ उक्त जिले और तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १७° ३´ उ० और देशा० ७८° १६´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ६ हजारके करीब है। यह शहर दो पहाड़के बीचमें बसा हुआ है। उत्तरके पहाड़ पर शाह-लतीफकी समाधि है और दक्षिणका पहाड़ ईंटोंकी दीवारसे घिरा हुआ है। पहले जब यह शहर राजपूतोंके अधीन रहा, तब इसका नाम नीलगिरि था; पीछे अल्लाउद्दीन् बहमनशाहके समयमें इसका वर्त्तमान नाम पड़ा है। यहां मीरआलमकी बनाई हुई एक सराय, एक हिन्दूमन्दिर, डाक बंगला, डाकघर, अस्पताल, कारागार, मिडिल स्कूल और एक बालिका स्कूल है।

नलछ—मध्यभारतके अन्तर्गत धार-राज्यका एक विध्वस्त नगर। यह अक्षा० २२° २५´ उ० और देशा० ७५° २८´ पू०, मौसे मन्दू जानेवाले रास्ते पर अवस्थित है। यह मालव-मालभूमिके दक्षिण प्रान्त पर बसा हुआ है, इस कारण इसका दृश्य बड़ा ही रमणीय है। इसके पास ही एक छोटी नदी बह गई है।

नलछिटी—पूर्वी-बङ्गाल और आसामके बाकरगञ्ज जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २२° ३८´ उ० और देशा० ९०° १८´ पू० इसी नामकी नदीके किनारे बसा हुआ है। लोकसंख्या प्रायः २२४० है। एक समय यह एक प्रधान वाणिज्य स्थान था। आज कल यहांसे सुपारी और धान दूसरे दूसरे देशोंमें भेजा जाता है। यहां १८७५ ई०में म्यूनिसपलिटी स्थापित हुई है। आय दो हजार रुपयेसे अधिककी है।

नलडङ्गा—१ यशोर जिलेका एक प्रसिद्ध ग्राम। यहां बहुतसे लोगोंका वास है। यशोरके प्राचीन राजाओंका यहां प्रासाद है।

२ बङ्गालके बारिवन्दका एक प्राचीन ग्राम। भविष्य ब्रह्मखण्डमें लिखा है, कि यहां एक समय नरकटका एक वृहत् जङ्गल था। शुद्धोदनके पुत्र बुद्धदेवके भयसे यहां अनेक ब्राह्मण आ कर रहने लगे थे।

(भविष्य ब्रह्मख० १८।१८-२०)

नलतिगिरि—उड़ीसाके कटक जिलेका एक पहाड़। इसके दो शिखर हैं जहां चन्दनके कुछ वृक्ष देखनेमें आते हैं। पहाड़ पर बहुतसे बौद्ध-मन्दिर हैं जो अभी भग्नावस्थामें पड़े हुए हैं। उनमेंसे कुछ ऐसे भी हैं जिनको यत्नपूर्वक रक्षा की जा रही है।

नलद (सं० क्ली०) नलं द्यति अवखण्डयतीति दो-क। १ पुष्परस, मकरन्द। २ उशीर, खस। ३ जटामांसी, बालछड़। ४ लामज्जक नामक तृण। (त्रि०) नलं ददाति दा-क। ५ नलदाता।

नलदम्बु (सं० पु०) निम्बवृक्ष, नीमका पेड़।

नलदा (सं० स्त्री०) १ जटामांसी, बालछड़। २ राजा रुद्राश्वके औरस और घृताचीके गर्भसे उत्पन्न एक कन्याका नाम।

नलदिक (सं० त्रि०) नलद किशरादित्वात् ष्ठन्। नलदविक्रेता, नलद बेचनेवाला।

नलदियर—तामिल भाषाका एक आदिग्रन्थ। इसमें सब समेत चालीस अध्याय हैं और प्रत्येक अध्यायमें नीतिविषयक दश श्लोक हैं। ग्रन्थके नामकरणके विषयमें निम्नलिखित दन्तकथा प्रसिद्ध है—

किसी एक कान्योलाकी राजाकी सभामें एक दिन ढाई सौ कवि पहुंचे। राजाने उनका उचित सत्कार कर उत्तम आसन बैठनेको दिये। किन्तु राजाके पूर्वतन कविलोग इस व्यवहार पर जल उठे। उन्होंने थोड़े ही दिनोंके अन्दर तरह तरहके कौशल रच कर नवागत कवियोंके ऊपर राजाकी अप्रीति जमा दी। अन्तमें राजाकी अप्रीति यहां तक बढ़ गई कि नवागत

कवि लोग राजाके भयसे निस्तब्ध दो पहर रातको जाम ले कर भागे। भागनेके पहले प्रत्येक कविने एक एक टुकड़े कागज पर एक श्लोक लिख कर अपने तकियेके नीचे रख छोड़ा था। जब राजाको इसकी खबर लगी, तब उन्होंने अपने कवियोंके परामर्शानुसार उन सब कागजोंको नदीमें फेंकवा दिया। कागजके फेंकनेके साथ ही नदीमें उजानकी ओरसे एक भारी बाढ आ गई। इस अस्वाभाविक घटनाको देख कर राजा विस्मित हो पड़े और उसी समय उन्होंने उन कागजके टुकड़ोंको बटोर लानेको कहा। उन रचित श्लोकोंको ले कर यह ग्रन्थ रचा गया है, इसीसे इसका नाम नलदियर पड़ा है।

नलदुर्ग—१ हैदराबाद राज्यका एक जिला। इसका प्राचीन नाम ओस्मानाबाद जिला है।

२ उक्त जिलेका एक प्राचीन तालुक। लोकसंख्या ५६३३५ और भूपरिमाण ३७० वर्गमील है।

३ उक्त तालुकका दुर्ग द्वारा संरक्षित एक नगर। यह अक्षा० १७° ४८´ उ० और देशा० ७६° २८´ पू०के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या ४१११के लगभग है। स्थानीय इतिहासमें यह नगर बहुत प्रसिद्ध है। १८वीं शताब्दीमें मुसलमानोंके आक्रमणके पहले यह यहांके हिन्दूराजाओंके अधिकारभुक्त था। बाद यह बाह्मनी वंशके हाथ लगा और १४८० ई० तक उन्होंके अधिकारमें रहा। बाद १४८० ई०में जब बाह्मनीराज्य विभक्त हो गया, तब नलदुर्ग बीजापुरके आदिलशाही राजाओंके भागमें पड़ा। १८५३ ई०में निजामने नलदुर्ग जिला अंगरेजोंको समर्पण कर दिया। लेकिन १८६० ई०में अंग्रेजोंने पुनः इसे लौटा दिया।

नलनी (सं० स्त्री०) नलिनी देखो।

नलनीरुह (सं० पु०) मृणाल, कमलको नाल।

नलपट्टिका (सं० स्त्री०) नलनिर्मिता पट्टिका। नलनिर्मित पट्टिका, नरकटकी बनी हुई चटाई।

नलपुर (सं० क्ली०) बौद्धशास्त्रोक्त एक प्राचीन नगर।

नलमीन (सं० पु०) नलाश्रयो मीनः। मत्स्यभेद, झींगा मछली।

नलवन—चिल्का झीलका एक द्वीप। इसको परिधि पांच मीलकी है। यहां मनुष्योंका वास नहीं है। दूर दूर स्थानोंसे लोग यहां आ कर नरकट काट ले जाते हैं।

नलवा (हिं० पु०) बैलोंको घी पिलानेको बांसकी टोंटी।

नलसेतु (सं० पु०) नलवानरकृतः सेतुः, मध्यपदलोपि-कर्मधा०। समुद्रोपरि नलवानर कृत सेतु, रामेश्वरके निकटका समुद्र पर बांधा हुआ वह पुल जो रामचन्द्रने नल नील आदिसे बनवाया था। जब रामचन्द्रजीने समुद्र बांधनेके लिए उनसे प्रार्थना की थी, तब समुद्रने कहा था, 'शिल्पि कुशल विश्वकर्माके पुत्र नल नामका जो वानर है वह काष्ठ, तृण, वा प्रस्तरादि जो फेंकेगा, उसीसे मैं बँध जाऊँगा और इस प्रकार जो पुल तैयार हो जायगा, वह नलसेतु नामसे प्रसिद्ध होगा।' रामचन्द्रने भी उसी उपायसे सेतु बँधवाया था। यह सेतु सौ योजन लम्बा और दश योजन चौड़ा है। (भारत वनप० २८२ अ०)

नला (हिं० पु०) १ पेड़ूके अन्दरकी वह नाली जिसमेंसे हो कर पेशाब नीचे उतरता है। २ हाथ या पैरकी नलीके आकारकी लम्बी हड्डी।

नलाई (हिं० स्त्री०) १ नलाने या निरानेका भाव। २ नलानेको क्रिया। ३ नलानेकी मजदूरी।

नलाना (हिं० क्रि०) फसल बोई हुई जमीनको निरर्थक घास आदि दूर करना, निराना।

नलापानि—उत्तर-पश्चिम प्रदेशके अन्तर्गत देहरादून जिलेका एक गिरिदुर्ग। यह अक्षा० ३०° २०´ उ० और देशा० ७८° ८´ पू०के मध्य अवस्थित है। गोरखा लोगोंने नेपाल युद्धके प्रारम्भमें यह दुर्ग बनवाया था, लेकिन उसकी रक्षा कर न सके।

नलिक (सं० पु०) नल, नरकट।

नलिका (सं० स्त्री०) नल इव आकारोऽस्त्यस्या इति नल-ठन्-टाप्। १ नाड़ी नामक सुगन्ध-द्रव्यविशेष। उत्तरापथमें यह नली नामसे प्रसिद्ध है। इसकी आकृति प्रवाल (मूंगे)सी होती है, इसीसे कहीं कहीं इसे प्रवाली भी कहते हैं। पर्याय—विद्रुमलतिका, कपोतचरणा, नलिनी, निमर्ध्या, शुषिरा, आधानी, तुल्या, रक्तदला, नर्त्तकी और नटी। गुण—तिक्त, कटु, तीक्ष्ण, मधुर, कृमि, वात, उदर, अर्श और शूलरोगनाशक तथा मलशोधक। भावप्रकाशमें इसे शीतल, लघु, चक्षु का हितकर, कफ और

विघ्ननाशक, तृष्णा, कुष्ठ, कण्डू और ज्वर नाशक माना है। २ अस्त्रविशेष, प्राचीन कालका एक हथियार। इस अस्त्रके साधारणतः तीन नाम देखे जाते हैं नलिका, नालीक और नाल। वैशम्पायनकृत धनुर्वेद, शार्ङ्गधर संगृहीत धनुर्वेद, शुक्रनीति और वीर-चिन्तामणि आदि ग्रन्थोंमें इस यन्त्रका उल्लेख देखनेमें आता है। इसका उल्लेख रामायण और महाभारतमें भी आया है। पुरा कालमें असुरगण इसी अस्त्रका व्यवहार करते थे। इस अस्त्रका आकार प्रकारादि देख कर कुछ लोगोंका अनुमान है कि यह आज कलकी बन्दूकके समान होता था और इसके द्वारा लोहेकी बहुत छोटी छोटी गोलियां या तीर छोड़े जाते थे।

"नलिका ऋजुदेहो स्यात् तन्वङ्गो मध्यरन्ध्रिका।
मर्मच्छेदकरी नीला॥" (वैशम्पायनोक्त धनुर्वेद)

देह ऋजु, मध्यदेश रन्ध्रविशिष्ट, आकार क्षुद्र और मर्मच्छेदकारक अर्थात् नलिकास्त्रकी काया ठीक सीधी और पतली है, गठन नलकी तरह है, इसी कारण इसका नाम नलिका पड़ा है। इसका मध्यदेश रन्ध्रविशिष्ट है, वर्ण काला है, इससे अयःकाण अर्थात् लोहेकी गोलियां तीरके समान अत्यन्त वेगसे छूटती और शत्रुका मर्मच्छेद करती हैं। इन्हीं सब कारणोंसे जाना जाता है कि यह नलिका एक प्रकार बन्दूक जातीयके सिवा और कुछ भी नहीं है।

"ग्रहणं ध्मापनं चैव च्युतास्त्रेति गतित्रयम्।
तामाश्रित्य विदित्वा तु जेतासमान् रिपून् युधि॥"
(धनुर्वेद)

पहले ग्रहण, पीछे ध्मापन अर्थात् प्रज्वलितकरण, पश्चात् च्युत अर्थात् विक्षकरण,—नलिकाकी ये तीनों क्रियाएं भलीभांति जान लेनेसे आसन्न शत्रुको जय किया सकता है। शार्ङ्गधर-संगृहीत धनुर्वेदमें यह अस्त्र नालीक नामसे उल्लिखित है।

नालीक—इसका बाण लघु अर्थात् छोटा वा पतला होता है। यह लघु नालीक बाण नलयन्त्र द्वारा फेंका जाता है। यह बाण उच्च और दूरके लक्ष्यमें तथा दुर्गयुद्धमें व्यवहृत होता है। इस नलिकास्त्रका वैदिक नाम 'सूर्मी' है। पुराकालमें असुरगण इसी सूर्मीको ले कर देवताओंके साथ लड़ते थे। अभिधानादिमें 'सूर्मी' शब्दका अर्थ 'लौहप्रतिमूर्त्ति' लिखा है। वैदिकग्रन्थोंमें इसका अर्थ लौहस्थूणा वा स्थूणाकार यन्त्रविशेष लगाया है। पहले जिस नलिकास्त्रका व्यवहार होता था और अभी जिस बन्दूकका व्यवहार देखा जाता है, वे दोनों एक आकारके नहीं हैं। पर हां, उसे बन्दूकजातिका हो कह सकते हैं।

सायणमें लिखा है कि लौहनिर्मित वस्तु स्थूणा पदवाच्य है। उसके मध्यप्रदेश अर्थात् भीतरमें छेद रहता है इसके मध्य प्रज्वलित हुताशन है, जो बाहर निकलता है वह भी ज्वलन्त होता है। असुरगण इसी सूर्मीके आघातसे एक बारमें सैकड़ों शत्रुका विनाश करते थे। देवगण भी उसी तरह उन्हें मारनेके लिये शतघ्नी नामक वज्रका व्यवहार करते थे। अथर्ववेदमें लिखा है, कि सीसक द्वारा शत्रु विनष्ट हो सकता है, यथा—

"सीसायाध्याह वरुणः सीसायाग्निरुपावति।
सीसं म इन्द्रः प्रयच्छत् तदङ्गयातु चातनम्॥
यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथानोऽसो अवीरहा॥"
(अथर्व० १।१६।२-४)

इन सब वैदिक मन्त्र आदिका विषय देखनेसे ऐसा मालूम होता है कि यह लम्बा लोहेके खम्भेके जैसा होता है, इसके मध्यदेशमें सुषिर वा रन्ध्र रहता है। मध्यदेशसे प्रज्वलित पदार्थ निकलता है जो एक ही समयमें सैकड़ों शत्रु नाश करता है। मध्यागत पदार्थ सीसेका बना होता है। इन सब वचनोंसे यह साफ साफ मालूम होता है, कि यह बन्दूक-जातीय किसी प्रकारका आग्नेयास्त्र है। शुक्रनीतिमें इस अस्त्रका अच्छा वर्णन है।

महामति शुक्राचार्यने युद्धास्त्रके वर्णनकी जगह पर कहा है, कि युद्धास्त्र प्रधानतः दो प्रकारका है, नालिक और मान्त्रिक। जो सब अस्त्र मन्त्रपाठ करके फेंके जाते हैं, उन्हें मान्त्रिक कहते हैं। मान्त्रिकास्त्रके नहीं रहने पर नालिकास्त्रका प्रयोग करते हैं।

नालिकास्त्र भी दो प्रकारका है, वृहन्नालिक और क्षुद्रनालिक। इनमेंसे क्षुद्रनालिकका परिमाण पञ्च वितस्ति

अर्थात् चार हाथ है। महाभारतमें इस अस्त्रको 'अयः कणप' नामसे उल्लेख किया है। यथा—

"अयःकणपचक्राश्मभुशुण्ड्युद्यतबाहवः।
कृष्णपार्थौ जिघांसन्तः क्रोधसम्मूर्च्छितौजसः॥"

(भारत १।२२५।२५)

टीकाकार नीलकण्ठने भी 'अयःकणप' इस शब्दको नालिक शब्दके पर्यायरूपमें निर्देश किया है और इसकी व्युत्पत्ति भी इस प्रकारकी है, 'अयःकणप अयःकणान् लौहगुलिकान् पिबतीति तत् तथाविधं लौहमयं यन्त्रं येन आग्नेयौषधबलेन गर्भसम्भृता लौहगुलिका क्षिप्यन्ते।' (नीलकण्ठ)

प्राचीनकालमें कूटयुद्ध नहीं होनेके कारण इस अस्त्रका विशेष प्रचार नहीं था। किन्तु बड़े बड़े दुर्गोंके शिरे पर हहनालीक रखे जाते थे, ऐसी वर्णना कई जगह मिलती है। किन्तु काल-प्रभावसे आर्य जातिको अवनतिके साथ साथ यह अस्त्र भी एकबारगी विलुप्त हो गया है। नालीक देखो।

३ जलनिर्गमपथ, जलप्रणाली, नाला, ड्रेन। ४ नलके आकारकी कोई वस्तु, चोंगा, नली। ५ तरकश जिसमें तीर रखे जाते हैं। ६ करेमूका साग। ७ पुदीना। ८ वैद्यकमें एक प्रकारका प्राचीन यन्त्र जिसकी सहायतासे जलोदरके रोगीके पेटसे पानी निकाला जाता था।

नलिकायन्त्र (सं० क्ली०) दकोदररोगमें प्रशस्त यन्त्रविशेष, एक प्रकारका औजार जो दकोदर रोगमें काम आता है।

नलित (सं० पु०) नल्यते इति नल बन्धे क्त। शाकविशेष, एक प्रकारका साग जो नाड़ीका साग भी कहलाता है। वैद्यकमें यह तिक्त, पित्तनाशक और शुक्रवर्द्धक माना गया है।

नलिन (सं० क्ली०) नल बन्धे इनच्। (बहुलमन्यत्रापि। उण् २।४८) १ पद्म, कमल। २ जल, पानी। ३ नीलिका, नील। (पु० स्त्री०) ४ सारसपक्षी। (पु०) ५ जलपाकफल, करौंदा। ६ किञ्जल्क, पद्मकेशर। ७ निम्ब, नीम।

नलिनी (सं० स्त्री०) नलानि पद्मानि सन्त्यत्र नल-इनि, ततो ङीप्। (पुष्करादिभ्योदेशे। पा ५।२।१३५) १ पद्मयुक्त देश, वह देश जहां कमल अधिकतासे होते हों। २ पद्मसमूह, कमलका ढेर। ३ पद्मलता। ४ पद्म, कमल। ५ नदी। ६ नलिका, नलिनी नामक गन्धद्रव्य। ७ व्योमनिम्नगा, गङ्गाकी एक धाराका नाम। मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि पूर्वकी ओर गङ्गाकी जो तीन धाराएं गई हैं उनमेंसे एकका नाम नलिनी, दूसरीका ह्लादिनी और तीसरीका पावनी है। रामायणमें भी नलिनीको गङ्गाकी एक धारा बतलाया है। यह धारा हिमाद्रिमें अवस्थित है। विन्दुसरोवरसे गङ्गाकी जो सात धाराएं निकली हैं उनमेंसे एक नलिनी भी है। (रामायण आदि०) ८ नारिकेल-सुरा, नारियलकी एक शराब। ९ वामनासिका, नाकका बायां नथना। १० छन्दोभेद, एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें पांच सगण होते हैं। इसे मनहरण और भ्रमरावली भी कहते हैं।

नलिनीखण्ड (सं० क्ली०) नलिनीनां समूहः, समूहार्थे कमलादित्वात् खण्डच्। पद्मिनीसमूह।

नलिनीनन्दन (सं० क्ली०) नलिन्या नन्दयति नन्दि-ल्यु। देवोद्यानभेद, कुबेरके उपवनका नाम।

नलिनीपद्मकोष (सं० पु०) नृत्यकालीन हस्तमुष्टिकी पद्मसी आकृति, नाचनेके समय हाथकी एक विशेष आकृति।

नलिनीरुह (सं० क्ली०) नलिन्यां रोहतीति रुह-क। १ मृणाल, कमलकी नाल। (पु०) २ ब्रह्मा। ३ मनःशिला।

नलिनेशय (सं० पु०) नलिने ब्रह्मनाभिपद्मे शेते शी-अच्। विष्णु।

नलिया—१ बम्बई प्रदेशका एक क्षुद्र राज्य। भूपरिमाण १ वर्गमील है। यहांके सत्ताधिकार ठाकुर कहलाते हैं। राजस्व ७४० रु० है।

२ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत अब्दसा उपविभागका एक नगर। यह अक्षा० २३° १८' उ० और देशा० ६८° ५४' पू०के मध्य अवस्थित है। यह कच्छका एक वाणिज्य स्थान है। यहां अनेक व्यवसायी रहते हैं।

नली (सं० स्त्री०) नल-अच्, गौरादित्वात् ङीष्। १ मनःशिला, मैनसिल। २ नलिका, एक प्रकारका गन्धद्रव्य। पर्याय—शुषिरा, विद्रुमलता, कपोतांघ्रि, नटी।

नली (हिं० स्त्री०) १ छोटा या पतला नल, छोटा चोंगा। २ नलके आकारकी एक प्रकारकी हड्डी जो भीतरसे

पोली होती है और जिसमें मज्जा भी होती है। ३ जुलाहोंकी नाल। ४ बन्दूककी नली जिसमें हो कर गोली पहले गुजरती है। ५ घुटनेसे नीचेका भाग, पैरकी पिण्डली।

नलीमोज (फा० पु०) एक प्रकारका कबूतर जिसके पंजे तक पर होते हैं।

नलुआ (हिं० पु०) १ पशुओंका एक रोग जिसमें सूजन पड़ जाती है। २ बांसकी पोर, बांसकी दो गाँठोंका टुकड़ा। ३ छोटा नल या चोंगा।

नलुका (हिं० स्त्री०) १ नलिका, एक प्रकारका गन्ध-द्रव्य। २ जातीवृक्ष, जायफलका पेड़।

नलेश्वर (सं० पु०) नलनृपस्थापित शिवलिङ्गभेद, एक शिवलिङ्गका नाम जिसे राजा नलने स्थापित किया था। (शिवपु०)

नलोत्तम (सं० पु०) नलेषु उत्तमः ७-तत्। देवनल। बड़ा नरसल।

नलोदय—एक संस्कृतकाव्य। इसमें राजा नलका अभ्युदय विवरण लिखा है। यह रघुवंशके कवि कालिदाससे रचा गया है। किन्तु बम्बईके अहमदाबाद नगरमें देहलाको उपाश्रय नामक एक जैन-भण्डार है जिसमें नलोदयके दो हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थ मिलते हैं। उन ग्रन्थोंमें नारायणके पुत्र रविदेव नामक कविको इसके रचयिता बतलाया है। डाक्टर भाण्डारकर इसे देख आये हैं।

नलोपत्तनम्—पहले मलवार उपकूलमें इस नामका एक बन्दर था। इस बन्दरमें फिनिकीय और अन्यान्य प्राचीन पाश्चात्य जातिके लोग वाणिज्य करने आते थे।

नल्य (सं० त्रि०) नलस्यादूरदेशादि बलादि० य। नलके अदूर देशादि।

नल्लमलय ('कृष्णाशैल')—मन्द्राज प्रदेशके कर्णूल जिलेकी एक गिरिमाला। यह अक्षा० १४° ४३' से १६° १८' उ० और देशा० ७८° ४३' से ७६° २६' पू०के मध्य कर्णूल जिलेके दक्षिण प्रान्तमें कृष्णा नदीके किनारे तक विस्तृत है। कड़ापा जिलेमें इस गिरिमालाका लङ्कामलय नाम रखा गया है। यह समुद्रपृष्ठसे १५००से २००० फुट तक ऊंची है। इसकी ऊंची चोटीका नाम वारिशी कुण्ड है जो ३१२२ फुट ऊंचो है। गिरिमालाके मध्य गुण्डला ब्रह्मेश्वर प्रधान है जिसकी ऊँचाई तीन हजार फुटसे ज्यादाकी होगी। इस पर्वतके ऊपर प्राचीन ब्रह्मेश्वर मन्दिरके समीपसे गुण्डलाकामय, जम्पलेरु और पालेरु ये तीन नदियां निकली हैं। हिन्दुओंके लिए यह स्थान महातीर्थ माना गया है। यहांके स्थलपुराणमें इसका माहात्म्य वर्णित है।

इस पर्वत पर दानेदार तथा चमकीले पत्थर और सीसेके साथ रूपे पाये जाते हैं। बाघ आदि हिंसक जन्तु, वनमुरगे तथा तरह तरहके पक्षी नजर आते हैं।

पहाड़ पर केवल 'तेञ्च' और 'यनादि' नामक असभ्य जाति वास करती है। शिकारमें ये बड़े सिद्धहस्त होते हैं। ये लोग कपड़े पहनते हैं सही, लेकिन वह नहीं पहननेके बराबर है। केवल कमरमें कपड़ेका एक टुकड़ा बाध लेते हैं; ये लोग छोटी छोटी झोंपड़ोंमें रहते हैं। दूध और फलमूलादि इनका प्रधान खाद्य है।

पहाड़ पर श्रीशैल, महानन्दी अहोवलम् नामक तीन प्रधान देवमन्दिर भी हैं।

नल्लाबुधकौशिक—एक नाटककार। ये रामचन्द्रके पौत्र और नल्लाबुकके पुत्र थे। शृङ्गारसर्वस्व नामक भाण-जातीय नाटक इन्हींका बनाया हुआ है।

नल्लादीक्षित—एक नाटककार। इनके बनाये हुए "चित्त-वृत्तिकल्याण नाटक" और "जीवन्मुक्तिकल्याणनाटक" नामक दो ग्रन्थ मिलते हैं।

नल्लापण्डित—एक दार्शनिक पण्डित। इन्होंने "अद्वैत-रसमञ्जरी" नामक वैदान्तिक ग्रन्थ रचा है।

नल्ली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी घास जिसे पलवान भी कहते हैं।

नल्व (सं० पु०) नल बाहुलकात् व। चतुःशत हस्त परिमाण, प्राचीन कालकी एक प्रकारकी नाप जो चार सौ हाथकी होती है।

नल्वकी (सं० स्त्री०) नल, नरकट।

नल्वण (सं० पु०) द्रोणपरिमाण, प्राचीन कालका एक प्रकारका मान जो किसीके मतसे सोलह सेरका और किसीके मतसे बत्तीस सेरका होता है।

नल्ववर्त्मगा (सं० स्त्री०) नल्वपरिमितं वर्त्म गच्छतीति गम्-ड। काकाङ्गी, काकजङ्घा।

नवंबर (अं॰ पु॰) अंगरेजो ग्यारहवां महीना। जो ३० दिनोंका तथा अक्टूबरके बाद और दिसम्बरसे पहले होता है।

नव (सं॰ पु॰) नु स्तुतौ भावे अप्। १ स्तव, स्तोत्र। २ रक्तपुनर्णवा, लाल रंगको गदहपूरना। ३ हरिवंशके अनुसार उशीनर राजाके पुत्रका नाम। (त्रि॰) नूयते स्तूयते इति नु-अप्। ४ नूतन, नया, नवीन। नव, नूत, नूतन, नव्य, इदा, इदानीं ये छः नव शब्दके वैदिक पर्याय हैं।

क्रियाविधिमें नवीन द्रव्य प्रशस्त है, केवल घी, गुड़, मधु, धान और लम्बा विड़ङ्ग ये सब द्रव्य नयेमें अच्छे नहीं होते।

नव (त्रि॰ वि॰) नौ, आठ और एक, दशसे एक कम। 'नव' शब्दसे कहीं कहीं ग्रह और रत्न आदि पदार्थोंका भी अभिप्राय लिया जाता है जो गिनतीमें नौ होते हैं।

नवक (सं॰ क्ली॰) नवानां अवयवः संख्यायाः कन्। १ नवसंख्या, एक ही तरहकी नौ चीजोंका समूह। (त्रि॰) नव परिमाणमस्य कन्। २ नवसंख्यान्वित, जिसमें नौ संख्या हो।

इस नवकका विषय काशीखण्डमें इस प्रकार लिखा है—नवक अर्थात् नौ पदार्थ गृहस्थोंके मङ्गलके कारण बतलाये गये हैं। यथा, अभ्यागत व्यक्तिको शक्तिके अनुसार आसनदान, पाद-शौच, भोजन, स्नान, शय्या, तृण, जल, अभ्यङ्ग और दीप। इन नौ पदार्थ द्वारा अभ्यागतकी अभ्यर्थना करनेसे गृहस्थ लोग सिद्धिलाभ करते हैं। पैशुन्य, परदारसेवा, द्रोह, क्रोध, मिथ्याकथन, अप्रियवाक्य, द्वेष, दम्भ और माया ये नौ गर्हित कार्य हैं। ये उन्नतिकामी व्यक्तिके लिये परित्यज्य हैं। प्रतिदिन स्नान, सन्ध्या, जप, होम, वेदाध्ययन, देवतापूजा, वैश्वदेव, पितृतर्पण और अतिथिसेवा ये नौ कार्य प्रत्येक गृहस्थके मुख्य कर्त्तव्य हैं। जन्मनक्षत्र, मैथुन, मन्त्र, गृहच्छिद्र, वञ्चना, आयु, धन, अपमान और स्त्री इन नौ विषयोंको हमेशा छिपाये रखना चाहिये। निर्जनकृत-पाप, अकुत्सितवृत्ति, प्रायोग्य, ऋणपरिशोध, वंशमर्यादा, क्रय, विक्रय, कन्यादान और गुणोत्कर्ष ये नौ विषय प्रकाश करने योग्य हैं। सत्पात्र, मित्र, विनीत, दीन, अनाथ, उपकारी, माता, पिता और गुरु इन नवोंको दान देना चाहिये। वाचाल, स्तुतिपाठक, तस्कर, कुवैद्य, वञ्चक, धूर्त्त, शठ, मल्ल और तोषामोदकारी इन नवोंको दान देना निष्फल है। आपद्‌कालमें अर्थात् भारी विपद् पड़ने पर भी वंशको जोगाए रखना, दारा, शरणागतव्यक्ति, न्यास अर्थात् गच्छित द्रव्य, बन्धक द्रव्य, कुलवृत्ति, निक्षेप अर्थात् बहुत समयके लिए निक्षित पर-द्रव्य, स्त्रीधन और पुत्र इन नवोंका त्याग नहीं कर सकते। त्याग करने पर प्रायश्चित्त करना होता है। उक्त नौ विषयका नाम नवक है। इस नवकका अनुष्ठान करनेसे शुभ होता है। इसके सिवा एक और प्रकारका नवक बतलाया गया है, जो सभी लोगोंका मङ्गलप्रद है। सत्य, शौच, अहिंसा, क्षमा, दान, दया, दम, अस्तेय और इन्द्रिय ये नौ स्वर्गके सोपानस्वरूप हैं। यह नवक गृहस्थोंके स्वर्गमार्गका प्रदीप, साधुओंका अभिमत और पुण्यजनक है। इसका अनुष्ठान करनेसे अनेक प्रकारके मङ्गल होते हैं।

(काशीखं॰ ४० अ॰

शक्तितत्त्वका नवक, पीठशक्तिका नवक, शृङ्गारादि नवरस आदि सभोंका नाम नवक है। इनमेंसे शक्ति-तत्त्वका नवक इस प्रकार है—सच्चिदानन्द परमेश्वरसे शक्ति उत्पन्न हुई थी। फिर शक्तिसे नाद और नादसे बिन्दुकी उत्पत्ति हुई। इन तीनोंको गुणा करनेसे जो नौ संख्या बनती है, उसीका नाम नवक है।

अ, क, च, ट, त, प, य, श और ह इन नौ अक्षरोंको वर्ग-नवक कहते हैं। नवक इस शब्दका तात्पर्य यह है कि जिन नौ पदार्थोंको एकत्रित करनेसे एक शब्दके जैसा व्यवहृत होता है उन्हें नवक कहते हैं। यथा—नवग्रह, नवदुर्गा, नवधातु, नवरत्न, नवरस, नवरात्र, नवलक्षण आदि इन सब शब्दोंको नवक कहते हैं। इन सब शब्दोंका विवरण तत्तद् शब्दमें देखो।

नवकार (सं॰ पु॰) जैनियोंका एक मन्त्र।

नवकारिका (सं॰ स्त्री॰) नवं करोति कृ-ण्वुल्-टाप्, टापि अत इत्वं। १ नवोढ़ा स्त्री, नव विवाहिता स्त्री।

नवकार्षिगूगल (सं॰ पु॰) वैद्यकमें एक प्रकारका चूर्ण इसमें गूगल, त्रिफला और पिप्पली सब चीजें बराबर होती हैं। इसका व्यवहार शोथ, गुल्म, भगन्दर और वातविकार आदिको दूर करनेमें होता है।

नवकालिका (सं० स्त्री०) नवकं नूतनं कलति कल-भूषणे ण्वुल्-टाप्। १ नवीन, युवा स्त्री, नौजवान औरत। २ वह युवती जो हालमें पहले पहल रजस्वला हुई हो।

नवकुमारी (सं० स्त्री०) नौ-रात्रमें पूजनीय नौ कुमारियां। इनमें निम्नलिखित नौ देवियोंकी कल्पना की जाती है—कुमारिका, त्रिमूर्त्ति, कल्याणी, रोहिणी, काली, चण्डिका, शाम्भवी, दुर्गा और सुभद्रा। नवरात्र देखो।

नवकृष्ण देव—कलकत्तेके शोभाबाजार-राजवंशके आदि राजा। ये ईसाकी १८वीं शताब्दीके मध्यभागमें अर्थात् बंगालमें अंगरेजी राजत्वके सूत्रपातके समय विद्यमान थे। मुर्शिदाबादके पास कानसोना नामक कायस्थप्रधान ग्राममें आपके पूर्वपुरुषोंका वास था। आपके पूर्वपुरुषोंमेंसे अधिकांश ही सम्भ्रान्त और गण्य मान्य थे।

इनके वंशकी अद्यतन जितनी भी पीढ़ियोंका विवरण मिला है, उनमें आदि पुरुषका नाम श्रीहरि है। श्री-हरिके बाद ६ठी पीढ़ीमें पीताम्बरदेवने जन्म लिया। इनके चार प्रपौत्र थे—शिवदास चौधुरी, नित्यानन्द, चतुर्भुज और श्रीनाथ। नित्यानन्द रायके दो वृद्धप्रपौत्र थे—आशीनाथ मल्लिक और विजयवल्लभ राय। विजयवल्लभके प्रपौत्रका नाम विद्याधर था। इनके छः पुत्र थे, जिनमें चतुर्थ देवीदास राय 'मजुमदार' उपाधि प्राप्त कर वर्त्तमान चौबीस-परगना जिलेके अन्तर्गत सूड़ा-गाछा परगनाके कानूनगो नियुक्त हुए थे। इनके भी छः पुत्र थे, जिनमेंसे चतुर्थ सहस्राक्षको नवाब मुहब्बत-जंगने कानूनगोका पद दिया था। पंचम पुत्रका नाम राजेन्द्रनाथ था और उनसे छोटेका रुक्मिणीकान्त। रुक्मिणीकान्त 'मजुमदार' उपाधि प्राप्त कर सूड़ागाछा ग्राममें रहने लगे। इन्होंने कर्म-प्राप्तिकी आशासे नवाबके पास अर्जी भेजी। नवाबने उन्हें सूड़ागाछा परगनाके अप्राप्तव्यवहार बालक जमींदार केशवराम राय-चौधरीका तत्त्वावधायक बना दिया और 'व्यवहर्त्ता'की उपाधि प्रदान की। इनके बाद इनके ज्येष्ठ पुत्र रामेश्वर व्यवहर्त्ता उक्त पदके अधिकारी हुए, परन्तु उनके तत्त्वावधायकतामें नवाब-सरकारका राजस्व न चुकाया गया, इसलिये जमींदार केशवरामने उन्हें अपने मकान पर कैद कर रक्खा। रामेश्वर व्यवहर्त्ताके छः पुत्र थे। उनमेंसे द्वितीय रामचरणदेवने मुर्शिदाबाद जा वहांके रायरायाँसे परिचित हो, सूड़ागाछाका जो राजस्व है, उससे ५० हजार रुपये ज्यादा देना कबूल कर उसका भार मांगा। नवाब साहबने उन्हें उक्त परगनेका उहदेदारी (कमिश्नर) बना दिया। इस पद पर नियुक्त होते ही उन्होंने अपने पिताको मुक्त कर केशवरामको कारारुद्ध किया। परन्तु कुछ दिन बाद केशवरामके छूट जाने पर रामचरणने सूड़ा-गाछाका वास छोड़ दिया और गङ्गाके किनारे गोविन्दपुर ग्राममें आ कर रहने लगे। यही गोविन्दपुर सूतानुटीका गढ़ गोविन्दपुर है। इसके बाद रामचरणके पुनःकार्यके लिए प्रार्थना करने पर नवाबने उन्हें हिजली, तमालुक, महिषादल आदि स्थानोंके निमकमहलके करसंग्राहकका पद दिया। इस कार्यमें उन्होंने विशेष पटुता दिखाई; जिससे नवाब मुहब्बतजंगने उन्हें कटकके सूबेदारका दीवान बना दिया। आर्कटके नवाबके भाई मनोरउद्दीन खाँ भाईसे विवाद करके मुर्शिदाबाद भाग आये थे। नवाब अलीवर्दी खाँने उन्हें यथेष्ट सम्मानके साथ आश्रय दिया था। इसी समय उड़ीसामें बर्गियोंका झगड़ा चल पड़ा। नवाबने मनोरउद्दीनको कटकका सूबेदार बना कर भेज दिया। इन्हींके साथ रामचरण दीवान बन कर गये थे। मार्गमें पिण्डारी डकैतों द्वारा ये दोनों ही मारे गये।

रामचरण व्यवहर्त्ताकी मृत्युके बाद उनके परिवार पर बड़ा भारी कष्ट आ पड़ा। उनकी पत्नी तीन पुत्र और पांच कन्याओंको ले कर सूतानुटीके मध्य शोभा-बाजारमें आ कर रहने लगीं। इस समय इनकी अवस्था इतनी शोचनीय थी कि स्वयं मौलिक होने पर भी आपको सामाजिक प्रथाका उल्लङ्घन कर अर्थाभावके कारण कनिष्ठा कन्याको मौलिक कायस्थके घर देनेके लिए बाध्य होना पड़ा था। कुछ भी हो, रामचरणकी विधवा पत्नीने इतने कष्टमें भी पुत्रोंको उर्दू, फारसी आदि अन्य भाषाओंमें कृतविद्य बनानेमें कोई बात उठा न रक्खी। अन्तमें ज्येष्ठ रामसुन्दर प्राप्तवयस्क हो पञ्च-कोट नामक स्थानके दीवान हुए। इनसे गृहस्थीकी हालत सुधर गई। मध्यम माणिक्यचन्द्र ज्येष्ठ भ्राताके

पास चले गये। ११७९ हिजरीमें इन लोगोंको दिल्लीके बादशाहकी कृपासे रायकी उपाधि और हजारी मनसबदारीका पद मिल गया। इनके कनिष्ठ भ्राताका नाम ही नवकृष्णदेव बहादुर था।

नवकृष्णदेवका जन्म १७३२ ई०के लगभग हुआ था। आपने अपनी माताके यत्नसे उर्दू और फारसी भाषामें व्युत्पन्न होते समय अरबी और अङ्गरेजी भाषा भी सीख ली थी। रामसुन्दरके दीवान होनेसे पहले तंगीके कारण प्रत्येक भाईको रोजगारकी कुछ न कुछ तजवीज करनी पड़ी थी। नवकृष्ण उस समय कलकत्ते के धनकुबेर नकू धरसे परिचित हुए। उन्होंने प्रधान प्रधान अंगरेजोंसे इनका परिचय करा दिया। इसी परिचयके फलसे आप वारेन् हेष्टिंग्स्के फारसीके शिक्षक बन गये थे। हेष्टिंग्स् उस समय कलकत्ते इष्ट-इण्डिया-कम्पनीके अधीन एक क्लार्क थे। तीन वर्ष बाद जब हेष्टिंग्स काशिमबाजारकी कोठीमें भेजे गये थे, उस समय नवकृष्ण उनके साथ थे। नवकृष्णने काशिमबाजारमें रह कर फारसी भाषामें विशेष व्युत्पत्ति लाभ की थी।

काशिमबाजारमें रहते समय हेष्टिंग्स् विशेष कथनोपकथनादिके लिए नवकृष्णको बीच बीचमें कलकत्ते भेजा करते थे। नवाब सिराज उद्दौलाके पदच्युत करनेके लिए पहले पहल जो षड़यन्त्र हुआ, उसकी बहुत-सी बातें नवकृष्णको मालूम थीं।

इस षड़यन्त्रमें पूर्णियाके शासनकर्त्ता सैयद महम्मदके पुत्र शौकतजङ्गको बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाका सूबेदार बनानेकी कल्पना हुई थी। नवाब सिराजउद्दौलाको इस षड़यन्त्रका हाल मालूम होते ही उन्होंने शौकतजंगके विरुद्ध सेना भेज दी। इसी समय कलकत्तेके अंगरेज गवर्नर ड्रेकसाहबने राजवल्लभके पुत्र कृष्णदासको मुर्शिदाबाद भेजने और दुर्गसंस्कार बन्द करनेके लिए पत्र लिखा। नवाब मारे क्रोधके आगबबूला हो उठे और पूर्णियामें स्वयं जा कर कलकत्ते पर धावा मारनेके लिये दौड़े। उन्होंने मार्गमें काशिमबाजारकी अंगरेजी कोठी लूट ली और वारेन हेष्टिंग्स् आदि कोठीवालों और रेसिडेण्टोंको कैद कर लिया। नवकृष्ण पहले ही से इस विपत्पातका आभास पा चुके थे। वे हेष्टिंग्स्को होशियार रहनेके लिए तथा कान्समोंटीसे उनका परिचय करा कर संवाद देनेके लिए कलकत्ता चले आये, जिससे कलकत्तेके अंगरेज लोग पहलेसे ही सतर्क हो गये।

नवकृष्णके कलकत्ते आनेके बाद नवाबने कलकत्ते पर आक्रमण करनेके लिये शहरके उत्तरमें (चीतपुरमें) पड़ाव डाला। इसके कुछ दिन पहले मुर्शिदाबादमें और एक षड़यन्त्र हुआ था। राजा राजवल्लभने अंगरेजोंके पास गुप्तरूपसे एक पत्र भेजा था। नवाबके हालसीबागानमें पहुंचनेसे पहले ही राजवल्लभका दूत पत्र ले कर गवर्नर ड्रेकके पास पहुंचा और बोला, "किसी विश्वस्त हिन्दूसे यह पत्र पढ़वाया जाना चाहिये और उत्तर भी उन्हींकी मारफत लिखा जाना चाहिये।" उस समय मुन्शी ताजउद्दीन खाँ नामक एक व्यक्ति इष्ट-इण्डिया कम्पनीका (कलकत्तेमें) मुन्शी था। पहले तो वह मुसलमान था और दूसरे राजा राजवल्लभका विपक्ष; इसलिए गवर्नर साहब किसी हिन्दूकी तलाशमें रहे। उन्हें नवकृष्णकी बात याद आ गई, क्योंकि वारेन-हेष्टिंग्सके शिक्षक होनेसे तथा नकूधरके परिचय करा देनेसे वे आपको जानते थे। ड्रेक साहबका आदमी नवकृष्णकी खोजमें निकला। संयोगवश वे उस दिन किसी कामसे बड़ेबाजार गये थे, वहीं रास्तेमें उनसे ड्रेकके आदमीसे मुलाकात हो गई। उसी समय नवकृष्ण लाट साहबके साथ मुलाकात करने चल दिये। ड्रेकने गुप्तरीतिसे उनके द्वारा पत्र पढ़वाया और उन्हींसे उसका उत्तर लिखवाया। यही सिराजउद्दौलाके सर्वनाशका व्यवस्थापत्र था। उसके बाद ड्रेकने देखा कि इस षड़यन्त्रके सम्बन्धमें अभी लिखा-पढ़ीका काम बहुत कराना है और मुन्शी ताजउद्दीन और नवकृष्ण दोनोंके रहने पर गड़बड़ी होनेकी सम्भावना है; इसलिये ताजउद्दीनको बरखास्त करके उनकी जगह नवकृष्णको रक्खा गया। इनका वेतन ६० रु० मासिक रक्खा गया। इस पदके पानेके बाद आप "नबू मुन्शी" कहलाने लगे।

मुन्शीका काम करते रहनेसे नवकृष्ण ड्रेक और हलवेलके विशेष प्रीति और विश्वासभाजन हो गये। वर्त्त-

भाषामें जिसे परराष्ट्रसचिव (Foreign Secretary) कहते हैं, क्रमशः आपके हाथमें उसी पदके योग्य कार्य सौंपे जाने लगे। सिराजउद्दौला अबकी बार कलकत्ता लूट कर और कलकत्तेका अलीनगर नाम रख कर लौट गए। मन्द्राजसे कर्नल क्लाइव और अडमिरल वाटसन कलकत्तेके उद्धारके लिए भेजे गए। उन लोगोंने आ कर कलकत्ता पर पुनरधिकार किया और ड्रेक, हलवेल और मुनशी नवकृष्णसे सब हाल सुन कर वे भी मुर्शिदाबादके षड्यन्त्रमें शामिल हो गए। क्लाइव नवकृष्णकी कार्यदक्षतासे उन पर विशेषरूपसे विश्वास करते थे। १७५७ ई०में क्लाइवने नवाबके आदेशकी परवाह न कर चन्दननगर पर आक्रमण किया। इस पर नवाबने फिर कलकत्ते पर आक्रमण करनेके अभिप्रायसे फरवरी महीनेमें पूर्वोक्त 'हालसी बागान'में आ कर छावनी डाली। क्लाइवने नवाब सरकारके बलाबलकी जांच करनेके लिए नवकृष्णको नाना उपढौकनके साथ नवाबके पास दूत बना कर भेजा। नवकृष्णने प्रकाश्यभावसे दूतरूपमें जा कर नवाबका क्रोध शान्त कर दिया और सन्धिके लिए प्रार्थना की, किन्तु भीतर ही भीतर नवाबके सैन्यबलका विस्तृत विवरण मालूम कर लिया और आ कर सब क्लाइवसे कह दिया। दूसरे दिन सबेरे बहुत कुहरा हुआ। क्लाइवने मौका देख उसी समय आगे बढ़ कर असतर्क अवस्थामें नवाब पर आक्रमण किया।

इसके पहले नवकृष्णने नवद्वीपाधिपति कृष्णचन्द्रके यहांसे २०० गौड़ बुला कर, उन लोगोंको हालसीबागान, नन्दनबागान और बजबजकी तरफ जंगलोंमें छिपा रक्खा। नवाबके आदमियोंको इसकी जरा भी सनाख न थी। अंगरेजोंकी फौज कलकत्ता आक्रमण कर ज्यों ही आगे बढ़ने लगी, त्यों हो वे लोग उनके अनुबलरूपमें नाना स्थानोंसे निकल पड़े। इससे नवाबकी सेना अंगरेजोंको बलयुक्त समझ साहसहीन हो गई, जिससे क्लाइवने अनायास हो कलकत्ता उद्धार कर लिया। इस समय नवकृष्ण यदि उनके सहायक न होते, तो ब्रटिशकी भाग्यलक्ष्मी हमेशाके लिए बङ्गभूमि छोड़ देती, इसमें सन्देह नहीं। इस बात पर क्लाइव नवकृष्णसे इतने खुश हुए थे कि वे उनसे प्रायः कहा करते थे, 'कोई मौका हाथ लगते हो मैं आपको बड़ा आदमी बना दूंगा।'

रेभरेण्ड लङ् साहबने लिखा है, कि १७५६ ई०में जब सिराजने कलकत्ता आक्रमण किया था, उस समय नवकृष्ण अपनी जिन्दगीकी परवाह न कर फलताके जहाजवासी अंगरेजोंको जुलाईसे दिसम्बर तक छः महीने बराबर रसद पहुंचाते रहे थे *। इस समय नवकृष्ण यदि दुर्दान्त नवाबके आदेशके विरुद्ध अंगरेजोंकी इस तरह रक्षा न करते, तो वे अन्नके अभावसे किस तरह कष्ट पाते, यह सहज ही समझा जा सकता है।

पलाशीके युद्धमें पहले सिराजउद्दौलाके विरुद्ध जो षड़यन्त्र हुआ था, उसमें नवकृष्ण अंगरेजोंके पक्षके यन्त्रस्वरूप थे। जगत्सेठ आदिके साथ सब बन्दोवस्त करनेके लिए क्लाइवने इन्हें छद्मवेशमें मुर्शिदाबाद भेजा था। इस षड्यन्त्रकी सम्पूर्ण लिखा-पढ़ी नवकृष्णसे ही कराई गई थी। मीरजाफरके साथ बन्दोवस्त, उमीचन्दके नामका सफेद और लाल 'चुकली पत्र' सब नवकृष्णसे लिखाये गए थे।

नवकृष्णके मुर्शिदाबादसे लौटने पर, उनके मुँहसे भावी-सुसंवाद सुननेके बाद क्लाइव युद्धयात्राके लिए साहसी हुए थे। जब पलाशीके रणक्षेत्रमें क्लाइव उपस्थित हुए थे, तब नवकृष्ण भी उनके साथ थे। उनके परामर्शसे अनेक जमींदारोंने अंगरेजोंको मदद की थी। कहा जाता है, कि इस समय वर्द्धमानके राजाने कुछ अश्वारोही और नवद्वीपाधिपति कृष्णचन्द्रने कई तोपें भेजी थीं। अंगरेजोंने पहले निश्चय कर रक्खा था, कि जैसा बन्दोवस्त कर दिया है, उसमें अब युद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी; किन्तु समर-क्षेत्रमें जब भीषण गोलाओंकी वर्षा होने लगी, तब दंग रह जाना पड़ा। अंगरेजोंका पद पद पर पदस्खलन और पतन होने लगा। विषम अग्निवृष्टिके सामने अग्रसर हो ऐसा किसीमें साहस न था। क्लाइव आदिने ऐसे विषम-सङ्कटके समय नवकृष्णको हो मीरजाफरके पास भेजनेका निश्चय किया। मुन्शी नवकृष्ण मालिकके कामके लिए जिन्दगीकी परवाह न कर मीरजाफरके शिविरमें उप-

* Rev. Long's Selections from the Unpublished Records, No. 235, p. 93 foot-note.

स्थित हुए। भविष्यमें सिंहासन पानेकी आशाने मीरजाफरको मुग्ध कर दिया, वे तो सेना-सहित युद्ध-क्षेत्रसे चले गये। नवकृष्णने यह संवाद क्लाइवको सुनाया; क्लाइव बड़े खुश हुए। इस तरह पलाशीके युद्धमें अङ्गरेजोंको जय घोषित हुई।

पलाशीके युद्धके बाद क्लाइवने प्रकाश्य दरबारमें मीरजाफरको मुर्शिदाबादके मसनद पर बिठाया। मुन्शी नवकृष्ण भी इस दरबारमें उपस्थित थे। दरबार उठ जाने पर जब वालस्, वाटस्, लुसिंटन्, क्लाइव और अङ्गरेजोंके दीवान रामचन्द राय (आँदुलकी राज-गोष्ठीके पूर्व-पुरुष) नवाबका धनागार देखने गए थे, उस समय भी नवकृष्ण उनके साथ थे। इस धनगारमें-से करीब २ करोड़ रुपये क्लाइव आदिने आपसमें बांट लिए थे। तत्कालीन इतिहास-वेत्ताओंका कहना है, कि इस प्रकाश्य धनागारके सिवा सिराज-उद्दौलाके अन्तःपुरमें भी एक गुप्त-धनागार था। उसका हाल अङ्गरेजोंको मालूम नहीं था। मीरजाफर, अमीरबेग खाँ, अङ्गरेजोंके दीवान रामचन्द्र राय और मुन्शी नवकृष्णको उस धनागारमें करीब ८ करोड़ रुपयेका सोना, चांदी और रत्न आदि प्राप्त हुआ था।

जून मासमें पलाशीका युद्ध हुआ, सुतरां शारदीय पूजाके दिन करीब आ जाने पर भी नवकृष्णने विराट् व्यवस्था करके वृहत् चण्डीमण्डपकी नींव डाल दी और बहुतसे आदमी लगा शीघ्रतासे बनवा कर उसी वर्ष नये मण्डपमें महासमारोहके साथ महामायाकी अर्चना की। शोभाबाजारके राजवंशकी पुरातन अट्टालिकामें अब भी उक्त मण्डप विद्यमान है। लखनऊ, मुर्शिदाबाद आदि स्थानोंसे इस उत्सवमें नर्तकी और नौबत वगैरह बुलाई गई थी। कृष्णानवमीसे पक्षकाल तक यह उत्सव कायम रहा था। अब भी इस राजवंशमें उक्त नियम जारी है। नवकृष्णकी प्रथम पूजामें कर्नल क्लाइव आदि सभी अंग्रेज उपस्थित थे। *

पलाशीके युद्धके बाद मीरजाफर नवाब तो हो गये, पर अंगरेजोंको उन्होंने जितने रुपये देनेका वचन दिया था उतने वे दे न सके, इसलिए प्रादेशिक शासनकर्त्ताओंके साथ उनका विवाद हो गया। इस समय महाराज नन्दकुमार हुगली, हिजली आदि स्थानोंके दीवान थे। इसके बाद १७६० ई०में क्लाइव विलायत चले गये। वन्सीटार्ट कलकत्तेके गवर्नर हुए। मीरजाफरने सन्धिकी शर्तोंमें अंगरेजोंको जो रुपये देने कबूल किये थे, वे न दे सकनेके कारण, उन्हें नदिया और वर्द्धमानका राजस्व वसूल कर लेनेका हक दे दिया। महाराज नन्दकुमार तहसीलदार (क्लाइवके समयमें) हुए। परन्तु वन्सीटार्टके समयमें इससे भी हिसाब चुकता न होने पर, मीरजाफरके दमाद मीरकासिम ससुरके दूत बन कर अंगरेजोंका हिसाब चुकानेके लिए कलकत्ते आये। अंगरेजोने देखा कि मीरकासिमकी योग्यता मीरजाफरसे कहीं अधिक है। बस फिर क्या था, झट उनके साथ नवकृष्णकी मध्यस्थतामें बातचीत और सन्धि स्थिर कर अंगरेजोंने मीरजाफरको पदच्युत कर दिया। मीरकासिमने १७६० ई०में ही नवाब हो कर अंगरेजों-को २० लाख रुपये और वर्द्धमान, मेदिनीपुर और चट्ट-ग्राम ये तीन स्थान दिये। परन्तु इसके बाद १७६८ ई०में मीरकासिमसे अंगरेजोंका युद्ध छिड़ गया और उसमें अंगरेजोंकी जीत हुई। महाराज नन्दकुमार दीवान हुए। उन्होंने मीरजाफरके कर्जके २० लाख रुपयोंमेंसे एक मुश्त २ लाख रुपये भेज दिये। जिस चिट्ठीके साथ ये भेजे गये थे, उस चिट्ठीमें नन्दकुमारने लिखा था, 'नवकृष्णके पास इसकी एक फिहरिस्त भेजी जाती है।'

१७६४ ई०में क्लाइव पुनः भारतके गवर्नर हुए। इस समय नवाब-सरकारमें भी नवकृष्णकी विशेष प्रतिष्ठा थी। आप जैसे अंगरेजोंके पक्षकी खींच करते थे, उसी प्रकार नवाब सरकारकी भी। स्वयं क्लाइव इस बातको स्वीकार कर गये हैं। इस समय गोपनीय पत्रादि

* Persian Dept.—Letters received 1764, L. No 811, dated 26 Dec, 1764. (Nand Coomar to Vansitart,)

* इस राजभवनमें उक्त अवसर होनेवाले नाचको अंगरेज लोग अपने लिए माङ्गलिक समझते हैं, इसलिए अब भी बहुतसे अंगरेज देखनेके लिए उत्सुकता दिखलाते हैं।

भी नवकृष्ण ही मुर्शिदाबाद ले जाया करते थे । §

जिस समय मीरकासिमके साथ अंगरेजोंका युद्ध हुआ था, उस समय मेजर एडम्स् सेनापति बन कर गये थे । नवकृष्ण उनके बेनियन (राजनीतिक मुत्सद्दी) हो कर साथ गये थे । युद्धमें आहत और पीड़ित होने पर मेजर एडाम्स्‌को ले कर आप जिस समय कलकत्ते आ रहे थे, उस समय नवाबके एकदल लुटेरोंने आप पर धावा किया । आपने जिन्दगीकी परवाह न कर कौशलसे मेजर साहबको बचा लिया । इस समय नन्दकुमार विहार-प्रवासी दिल्लीके बादशाहके साथ षड़यन्त्र कर अंगरेज-दमनकी चेष्टा कर रहे थे । जनरल कार्नकको मालूम पड़ते ही, उन्होंने नन्दकुमारको बन्दी कर कलकत्ता भेजना चाहा । इस अवसर पर मुन्शी नवकृष्ण तथा अन्यान्य सम्भ्रान्त पुरुषोंने मध्यस्थ बन कर कार्नकको शान्त किया था । इसके बाद वन्सीटार्ट-लिखित विवरण पढ़ कर क्लाइवने जब नन्दकुमारको सुबेदारीके पदसे हटा कर चट्टग्राममें निर्वासित करनेका संकल्प किया था; उस समय भी राजा नवकृष्ण आदिने मध्यस्थ हो कर अनुरोध किया था, जिससे क्लाइव वैसा करनेसे बाज आये । नन्दकुमार देखो ।

इस समय दिल्लीके बादशाह अंगरेजोंकी सहायतासे दिल्लीकी बादशाहतको सुदृढ़ बनानेकी कोशिशमें थे । १७६५ ई०के मई महीनेमें क्लाइवने मुर्शिदाबाद जा कर नये नवाब नजमउद्दौलाके साथ मुलाकात की । वहांकी व्यवस्था कर फिर वे इलाहाबाद गये । नवकृष्ण उनके साथ थे । अयोध्याके नवाब और मुगल-बादशाहके प्रधान मन्त्री शुजाउद्दौलाके साथ बादशाह शाहआलमका विवाद चल रहा था । शुजाउद्दौलाने बादशाहका इलाहाबाद और कड़ा-प्रदेश अधिकार कर लिया था । अंगरेजोंने मध्यस्थ बन कर यह विवाद मिटा दिया । इसी सूत्रसे नवाब शुजाउद्दौलाने उक्त दोनों प्रदेश अंगरेजोंको दे दिया । अंगरेजोंने उक्त दोनों प्रदेश बादशाहको दे दिये और उसके बदले उनसे विहार, उड़ीसा और बंगालकी दीवानी दे दी । इन कामोंमें जितनी भी लिखा-पढ़ी हुई थीं तथा मसविदा किया था, उन सबमें नवकृष्णका हाथ था और तो क्या, क्लाइवको कड़ा और इलाहाबाद दे कर इसके बदलेमें विहार, उड़ीसा और बंगालकी दीवानी लेनेका परामर्श भी इन्होंने दिया था ।

ये सब महत्कार्य मुन्शी नवकृष्णके द्वारा सुचारुरूपसे सम्पादित होते देख लार्ड क्लाइव उनसे विशेष सन्तुष्ट हुए और बादशाहसे उन्हें "राजाबहादुर"की उपाधि दिला दी । बादशाह भी आपसे खुश थे, इसलिए उन्होंने आपको पांच हजारी मनसबदारीका पद दे कर अपने दरबारका उमराव बना लिया । इस उपलक्षमें नवकृष्णको ३ हजार घुड़सवार, झालरदार पालकी, नगाड़ा, तोग नामक ध्वजा, आसा-सोटा आदि प्राप्त हुए थे । शुजाउद्दौलाने भी इन्हें अलग खिलअत दी थी ।

इसके बाद लार्ड क्लाइव राजा नवकृष्ण बहादुरके साथ काशी लौट आये और वहां उन्होंने राजा बलवन्तसिंहके साथ उनकी जमींदारी और कम्पनीके अधीनस्थ सूबा विहारके सीमान्त-विषयक बन्दोबस्त करनेकी व्यवस्था की । यहां भी सब कार्य राजा नवकृष्णने ही किये थे । इस समय विश्वेश्वरके नाट-मन्दिरमें राजा नवकृष्णने अपने नामसे "नवकृष्णेश्वर" नामक एक शिवमूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की थी । उसके बाद पटना आ कर वहांके शासनकर्त्ता राजा सिताबरायके साथ बन्दोबस्त हुआ । यहां भी राजा नवकृष्णने ही सब काम किया था ।

तदनन्तर कलकत्ते आ कर क्लाइवने महम्मद रेजा खांको मुसलमान समाजका नेतृत्व करते देख उन्हें ही नायब दीवान बनवा दिया । वे उस समय नायब सूबेदार मात्र थे । परन्तु कम्पनीको दीवानी मिल जानेसे वास्तवमें नायब सूबेदारीका पद (खालसाकी दीवानी) कम्पनीका ही रहा, सुतरां क्लाइवने नायब सूबेदारीका पद उठा कर नायब दीवानीके पदकी सृष्टि कर उस पद पर महम्मद रेजा खांको नियुक्त किया ।

महाराज नन्दकुमार उस समय हिन्दू-समाजके नेता थे । क्लाइवने कलकत्ते आ कर राजा नवकृष्णको कम्पनीकी ओरसे उनके कृतकर्मके लिए पुरस्कार देनेका विचार किया । इसी सूत्रसे उन्होंने फिर सम्राट् शाहआलमको

§ Persian Dept.—Letters written 1764 65 No. 218, dated 22 Dec. 1704 & No. 7 of 65 (C. R. Clive Nawab.)

लिख कर १७६६ ई०में राजा नवकृष्णके लिए "महाराजा बहादुर" उपाधिका फरमान मंगाया। इस समय सम्राट्‌ने भी उन्हें छः हजारी मनसबदारीका पद दिया और चार हजार सवार रखनेकी आज्ञा दी। जिस दिन यह खिलअत आई थी उस दिन क्लाइवने स्वयं सब चीजें देखीं थी, नवकृष्ण भी उनके साथ मौजूद थे। इसी समय आर्काटके नवाबके यहांसे एक पत्र आया। क्लाइवने उसे उसी समय नवकृष्णसे पढ़वाया। नवकृष्णने चिट्ठी खोल कर देखी, तो उसमें ऐसी भी कुछ बातोंका उल्लेख था, जिनसे नवकृष्णके स्वार्थमें क्षति होनेकी सम्भावना थी। यह देख कर उन्होंने पत्रको दूसरे रूपमें व्याख्या करके सुना दी।*

आर्काटके नवाबके पत्रमें राजा नवकृष्णका पूर्व-परिचय पा कर लार्ड क्लाइवको महा आश्चर्य हुआ, उन्होंने उसी समय उनके कृतकर्मकी प्रशंसा कर एक स्वर्णपदक बनवाया। इसके बाद एक दिन दरबार लगा कर क्लाइवने उन्हें बादशाहकी दी हुई "महाराज बहादुर"की उपाधि, छः हजारी मनसबदारीका फरमान और दश तरहकी खिलअत (घोड़ा, जोड़ा, चामर, शिरपेच, छतरी, पंखा, हाथी, झालरदार पालकी, घड़ी, और कुण्डल, मोतीमाला आदि रत्नालङ्कार) प्रदान की। उनकी हारक्षाके लिए सिपाही नियुक्त कर दिए और स्वयं हाथ पकड़ कर उन्हें हाथीके हौदे पर बिठा दिया। महाराज नवकृष्ण बड़े ठाटबाटसे बादशाहकी खिलअत और कम्पनीका प्रशंसासूचक स्वर्णपदक ग्रहण कर नगरमें घूमते हुए घर चले। रास्तेमें भीड़ लग गई। महाराजने दरिद्रोंमें रुपये बरसाते हुए घर पहुंचे। इसके बाद क्लाइवने उन पर कम्पनीके कई एक प्रधान प्रधान कार्य भार सौंपे। मुन्शीदफ़्तर (फारसीदफ़्तर) शुरूसे ही नवकृष्णके हाथमें था, उसके बाद क्रमशः आरजबेगी दफ़्तर (आवेदन-पत्रादि ग्रहण-विभाग), मालखाना (धनागार), चौबीस परगनेकी माल-अदालत (राजस्व-सम्बन्धी अदालत), चौबीस परगनेका तहसील-दफ़्तर (कलेक्टरी कचहरी) आदि विभाग भी उन्होंके हाथमें आ गए। इन सबका कार्य आप अपने पाथनाके बगीचेवाले मकानमें बैठ कर ही करते थे।

इसी समय महाराज नवकृष्णकी माताका देहान्त हो गया। कहा जाता है, कि मातृ-श्राद्धमें आपने नो लाख रुपये खर्च किए थे। इस श्राद्धमें आहूत और अनाहूतके आहारकी इतनी चीजोंका आयोजन हुआ था कि सुना जाता है, जिस जगह भण्डार हुआ था (फिलहाल उसे फूलबागान कहते हैं), वहां घी, तेल, दही और दूधके लिए हौज़ बनवाने पड़े थे। नवद्वीपाधिपति कृष्णचन्द्रने, किसी कारण-वश स्वयं उपस्थित न हो सकनेके कारण, अपने ज्येष्ठ पुत्र शिवचन्द्रको भेजा था। इस श्राद्धके उपलक्षमें जो सभा हुई थी, उसकी शोभा बहुत मनोहर थी, उस जमानेमें ऐसी सभा दूसरी जगह न हुई थी। शिवचन्द्रने इस सभाकी खूब प्रशंसा की थी। इस शोभासम्पन्न सभासे ही नवकृष्णका वासपल्लीका नाम सभाबाजार वा शोभाबाजार पड़ा है।

क्लाइवके चले जाने पर वेरलेष्ट कलकत्तेके गवर्नर हुए। उनके समयमें भी नवकृष्णकी उक्त पदमर्यादायें कायम रहीं। वेरलेष्ट आपको बड़ी अच्छी निगाहसे देखते थे, उन्होंने अपने ग्रन्थमें इस बातका उल्लेख किया है। क्लाइवने अन्तिम बार आ कर इन्हें राजनीतिक बेनियन (मुत्सद्दी) बनाया था। वेरलेष्टके समय नवाब मनोरउद्दौलाने जब अंगरेजोंसे अनुग्रहकी प्रार्थना की थी, उस समय उन्होंने महाराज नवकृष्णका आश्रय लिया था।*

वेरलेष्ट भी क्लाइवकी तरह नवकृष्ण पर अत्यन्त विश्वास करते थे और उनसे प्रेम रखते थे। इस समय नवकृष्ण यद्यपि अंगरेजोंके प्रसादसे प्रभूत क्षमताशाली और विपुल अर्थशाली हो गए थे, किन्तु हिन्दूसमाजमें उनकी उतनी प्रतिपत्ति न थी। उस समय मुसलमान-समाजमें महम्मद रेजा खाँ और हिन्दूसमाजमें महाराज नन्दकुमार शीर्षस्वरूप थे। हिन्दुओंकी जातिमाला-कचहरी नन्दकुमारके हाथमें थी। आपामर साधारण लोग

* बंगला "नवप्रबन्ध" २य भाग (बं० सन् १२७६) ८७-८८ पृ०

* Persian Dept.—Letters Received in 1767 68, Letter No. 32 (From Nalob Monier-uddowla to Gov. Verelest.)

सामाजिक विषयोंके लिए नन्दकुमारको ही अग्रेसर होते थे, इसलिए देशको आभ्यन्तरीण प्रभुता उस समय नन्दकुमारको ही प्राप्त थी। इतने पर भी नवकृष्णको उस समय भूसम्पत्ति विशेष न थी, नवापाड़ा नामकी छोटी-सी एक जमींदारी मात्र थी, सुतरां अतुल अर्थ होने पर भी देशीय लोगोंमें उनका विशेष सम्मान न था। राजकोय क्षमता यथेष्ट थी, प्रभुत्वलोलुप अंगरेज-कम्पनीको आप इच्छानुसार उंगली पर नचा सकते थे, नवाब-सरकारमें भी आप इच्छानुसार सु-कु-घटना घटा सकते थे। परन्तु स्वदेशीय समाजकी स्वश्रेणीमें उस समय आपकी कुछ भी प्रतिपत्ति न थी। मातृ-श्राद्धके आयोजनमें उन्होंने इस क्षमताका अभाव खूब ही अनुभव किया था। यद्यपि उनको राज्यके समस्त राजा, महाराज और जमींदारोंको अपने मकानपर बुलानेमें सफलता प्राप्त हुई थी, तथापि उन्होंने अपनेको सामाजिक सम्मानसे वञ्चित समझा और मन ही मन उससे वे दुःखित भी हुए। वह समय कौलीन्य-मर्यादाके पूर्ण आदरका समय था। उस समय नवकृष्ण जैसे एक नूतन अभ्युत्थित मौलिक कायस्थके मातृ-श्राद्ध जैसे सामाजिक व्यापारमें इस तरहके विपुल आयोजनके लिए उन्हें कितना विनय और हीनता स्वीकार करनी पड़ी थी इसका अनुभव वे ही कर सकते हैं जो उस जमानेकी हालतोंसे वाकिफ हैं। कुछ भी हो, मातृ-श्राद्धके बादसे आप सामाजिक प्रभुता प्राप्त करनेमें सचेष्ट हुए। इस चेष्टाके सूत्रपातमें ही आपकी दृष्टि महाराज नन्दकुमार पर पड़ी। आपने देखा कि ब्राह्मणसे ले कर चण्डाल तक सब उन्हींके हाथमें हैं। इसके सिवा नन्दकुमारकी राजनीतिक क्षमता भी उनसे कम न थी। नवकृष्णने निश्चय किया कि नन्दकुमारको किसी तरह नीचा न दिखाए उनका उद्देश्य सिद्ध होना कठिन है, सुतरां वे उस चेष्टामें परोक्षरूपसे नियुक्त हुए। उदीयमान अंगरेज-प्रभुत्व उनकी मुट्ठीमें था, फिर उन्हें फिक्र किस बातकी?

नन्दकुमारका उस समय भाग्यचक्र भी फिर रहा था। अंगरेज लोग कभी उन पर खुश और कभी नाखुश रहते थे। वेरेलेष्टने भी क्लाइवकी तरह पहले उन पर कृपादृष्टि रक्खी थी, परन्तु पीछे शत्रुओंके कान भरने पर वे उनसे नाराज हो गये। सुयोगी नवकृष्णने इस शुभ अवसरको हाथसे जाने न दिया। वेरेलेष्ट जिससे फिर नन्दकुमार पर अनुग्रह न कर सके, इस बातका वे ख्याल रखने लगे। यहींसे नन्दकुमार और नवकृष्णमें परस्पर विवादका सूत्रपात हुआ।

इस समय और भी एक घटना हो गई, जिससे उक्त विवाद दृढ़ीभूत हो गया और नन्दकुमारकी समधिक हानि हुई। नवकृष्ण इस समय विशेष क्षमताशाली हो गये थे। क्षमता प्राप्त होने पर मनुष्यमें कुछ न कुछ अत्याचारप्रवृत्ति जाग उठती है, महाराज नवकृष्णके चरित्रमें भी वही कलङ्क घुस पड़ा। बहुतसे लोग उनके अत्याचारसे दुःखित हो अंगरेजी अदालतमें उनके नाम नालिश करने लगे। अवश्य ही उन अभियोगोंके संबन्धमें दोनों पक्षोंके अनेक प्रवाद और प्रमाण हैं। केवल प्रवाद होने पर उनका बिना उल्लेख किये ही काम चल जाता; परन्तु जब देखते हैं कि उस समयके अदालती कागजातोंमें उनके विरुद्ध उक्त अभियोगोंका उल्लेख है, तब वह बात केवल प्रवाद कह कर उड़ाई नहीं जा सकती। उन अपराधोंके लिये वे अंगरेजी अदालतमें बा-दस्तूर अभियुक्त हुए थे। उस जमानेके मेयर-कोर्टके एक जजने उन अभियोगोंके कुछ कागजात छपा भी दिये हैं। उन्हींके आधार पर नवकृष्णके दो गुरुतर अपराधोंका विवरण लिखा जाता है। इसका उद्देश्य केवल उनके दोषादोषका अनुसन्धान करना नहीं है, प्रत्युत इतिहासकी पवित्रता-रक्षा और सत्यावधारण मात्र है।

उस समय कलकत्तेमें एक प्रकारकी सेशन अदालत थी, जो वर्षमें चार बार खुलती थी। उसका नाम था Court of quarter Sessions (कोर्ट-आफ-क्वाटर सेशन)। इसमें कलकत्तेके गवर्नर प्रधान विचारपति और तीन कौन्सिलके सदस्य विचारक नियुक्त होते थे। विचारमें सहायताके लिए शरीफ द्वारा जूरी नियुक्त होते थे। १७६७ ई०में ४थी मार्चको मोहन कुमार नामक एक व्यक्तिने नवकृष्णके नाम उक्त अदालतमें ग्रैण्ड जूरीके पास नालिश की। मोहनकुमारने अभियोगपत्र नियमानुसार किसी जष्टिस आफ-दी-पीसके

समक्ष शपथ करके नहीं दिया था, इसलिए गवर्नरने उसे विचारार्थ जमींदारी अदालतमें भेज दिया। उस समय फौजदारी विचारके लिए जमींदारी कचहरी नामसे एक अदालत थी, जिसमें बोर्डके एक सदस्य विचारक होते थे। इस अदालतकी तरफसे फौजदारी नालिशका तदारक होता था। गोकुल सुनारने आखिर इसी अदालतमें नालिश की। जिस जष्टिस आफ् दी पीसके यहां गोकुलने नालिश की थी, वही व्यक्ति उस समय जमींदारी अदालतके विचारक थे। २० तारीखको जष्टिस प्लेयरके पास दरखास्त पहुंची। उसका अर्थ इस प्रकार था—बं० ता० १ फाल्गुनको नवकृष्णके एक हरकारेने राम सुनार और राम बनियाके साथ गोकुल सुनारके घर जा कर उसे बुलाया और जबरन् उसके घरमें घुस कर कहा, उसकी बहनको मुनशी नवकृष्णने उपभोगके लिए बुलाया है। गोकुल सुनारने उन लोगोंको यथासाध्य रोका और कम्पनीकी दुहाई देने लगा। इस पर नवकृष्णके आदमी उसको और उसकी माताको पकड़ कर गाली देते हुए नवकृष्णके पास ले गए। दूसरे दिन गोकुल सुनार और उसका छोटा भाई कृष्णसुनार दोनों ही नवकृष्णके सामने उपस्थित किए गए। नवकृष्णने दोनोंको कलक्टरकी कचहरीमें बन्द रखनेका हुकुम दिया। गोकुल और कृष्णसुनारने जामिन देना चाहा, लेकिन नवकृष्णने मंजूर नहीं किया। दो दिन और तीन रात तक वे कचहरीमें बन्द रहे। नवकृष्णने उन्हें भोजन देने और स्वजनोंसे मिलनेका निषेध कर दिया था। १७वीं मार्चको (बं० ११६४ वैशाख मासमें) रातके दश बजे नवकृष्णके ५ पायक और एक बरकन्दाज आ कर गोकुलके छोटे भाईको पकड़ कर ले गये।

मि० बोलट्स कहते हैं, कि गोकुलने नवकृष्ण पर नालिश की। किन्तु अंगरेजोंके उस समयके आईन-अनुसार कोई विचार नहीं हुआ। गोकुल सुनारने जब देखा, कि नवकृष्णके नाम पर न तो वारिण्ट निकाली गई, न उनका जामिन लिया गया और न परवर्ती सेशनमें इसका कुछ विचार ही किया गया, तब उसने जष्टिस फ्लुयरसे मुलाकात की। लेकिन फ्लुयरने उसे आगे बढ़नेसे मना किया और साथ साथ डर भी दिखलाया। पीछे गोकुलने इस विषयमें बार बार दरखास्त दी, लेकिन कोई सुनवाई न हुई। इस प्रकार नवकृष्ण पर और भी कितने अभियोग लाये गये थे।

१७७२ ई०में महाराज नवकृष्णके बाल्यबन्धु और छात्र वारेन हेष्टिंग्स् गवर्नर हुए। इनके १३ वर्ष शासनकालमें महाराज नवकृष्णके प्रादुर्भावकी परिसीमा न थी। १७७५ ई०में अयोध्याके नवाब आसफउद्दौलाकी माता पर जो मि० ब्रिष्टोने अत्याचार किया था। उसका फैसला करनेके लिए हेष्टिंग्सने नवकृष्णको ही भेजा था। १७७८ ई०के प्रारम्भमें हेष्टिंग्सने नवकृष्णके क्षुद्र महाल नपाड़ा आदि ग्रामोंके बदलेमें कलकत्तेके उत्तरांशस्थित सूतानटीकी तालुकदारी प्रदान की।

१७८० ई०में महाराज नवकृष्ण वर्द्धमानके 'आजावली' पद पर नियुक्त हुए। वर्द्धमानाधिपति तिलकचांदकी मृत्यु होने पर उनके नावालिग पुत्र तेजचन्द्रके यहां ८७४७२७) रु० राजस्व बाकी पड़ गया। हेष्टिंग्सके अनुरोधसे महाराज नवकृष्णने उतने रुपये वर्द्धमानाधिपतिको कर्ज दिये और वर्द्धमानकी जमींदारीका तत्त्वावधान अपने हाथ लिया। नाबालिग राजकुमार तेजचन्द्र तीन वर्ष तक शोभाबाजारके राजभवनमें रहे। उस समयका राजकीय कागजात पढ़नेसे मालूम होता है, कि महाराज नवकृष्ण उक्त कार्यके लिये वर्द्धमानराजसे वार्षिक ५००००) रु० पाते थे। वर्द्धमानको महारानीके साथ मनोमालिन्य हो जानेसे पदत्याग करनेको वाध्य हुए।

महाराज नवकृष्णके साथ महम्मद रेजाखांकी गाढ़ी मित्रता थी। इन्होंके यत्नसे जब महम्मद रेजा खाँ और सिताबरायका मुकदमा खारिज किया गया और जब नन्दकुमारके हाथसे हेष्टिंग्सने एक एक करके सब क्षमता ग्रहण की, उस समय वा उसके कुछ दिन पीछे जालिमाला-कचहरीका भार भी ग्रहण कर महाराज नवकृष्णको दिया गया। महाराज नन्दकुमार इस पर कुछ कातर हुए थे। प्रवाद है कि उन्होंने आक्षेप करके कहा था कि हेष्टिंग्सने अन्तमें एक कायस्थके हाथ इस कचहरीका भार दे कर अच्छा नहीं किया। जो कुछ हो इस कचहरीका भार पा कर नवकृष्णका एक प्रधान

मनोकष्ट दूर हुआ। सुतानटीका तालुकदारी और जाति-माला कचहरीका भार पानेसे उनका सामाजिक मान-सम्भ्रम धीरे धीरे बढ़ गया।

वर्द्धमानको राजावली हो महाराज नवकृष्णके राज-नीतिक कार्यका शेषकार्य था। इसके बाद, उन्होंने और किसी राजनीतिक कार्यमें हाथ नहीं डाला।

'महाराज बहादुर'की उपाधि पानेके कुछ समय बाद हो उन्होंने अपने घरमें विग्रहको प्रतिष्ठा की जिसमें लाखों रुपये खर्च किये थे। विग्रहके कुल अलङ्कारादि हीरा-मोतीके थे। गृहदेवताको आह्निक सेवाके लिए इन्होंने विस्तर व्ययका बन्दोवस्त कर दिया।

महाराज नवकृष्णने बेहाला ग्रामसे ले कर कुलपी तक १६ कोसका एक लम्बा सड़क तैयार कराई। वह सड़क आज भी 'राजाका जाङ्गाल' नामसे प्रसिद्ध और वर्त्तमान है। वर्त्तमान शोभाबजार राजभवनको सौध-मालाके मध्य हो कर अभी जो सड़क राजा नवकृष्ण-ष्ट्रीट नामसे पूर्व पश्चिमको चली गई है, वह भी महाराज नवकृष्णको ही बनाई हुई है।

इन्होंने सात विवाह किये थे। पर अदृष्टवैगुण्यवशतः सन्तान एक भी न थी। इनके बड़े भाई रामसुन्दरदेवके पांच सन्तान थी जिनमेंसे नवकृष्णने तृतीय भ्राताके पुत्र गोपीमोहन देवको गोद लिया। किन्तु इसके कुछ दिन बाद ही नवकृष्णकी चौथी स्त्री मेमारी-निवासी रामकनाई वसु मल्लिकको कन्याके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस पुत्रका नाम था श्रीमराज राजा राजकृष्ण बहादुर। इस पुत्रके जन्मोपलक्षमें इन्होंने प्रजाको बाकी मालगुजारी माफ कर दी।

१७९७ ई०, २२ नवम्बरको महाराज नवकृष्ण इस धराधामको छोड़ स्वर्गधामको चल बसे। किस रोगसे इनकी मृत्यु हुई, मालूम नहीं। मृत्युके दिन अभ्यासानुसार दिनके दो बजे सो रहे थे। सन्ध्याके बाद देखा गया कि वे शय्या पर मृतावस्थामें पड़े हैं।

नवकृष्णके विद्यानुराग यथेष्ट था। कृष्णचन्द्रको तरह उनको पण्डित-सभा थी।

उनको सभामें जगन्नाथ तर्कपञ्चानन, राधाकान्त तर्क-वागीश, वाणेश्वर विद्यालङ्कार, अनन्तराम विद्यावागीश, श्रीकण्ठ, कमलाकान्त, बलराम, शङ्कर, चतुर्भुज न्याय-रत्न आदि पण्डितगण सर्वदा उपस्थित होते थे। नवकृष्ण पण्डितोंका जैसा आदर करते थे, वैसे उनके गुणका पुरस्कार भी देते थे।

नवकृष्ण पण्डितोंकी तरह सङ्गीतज्ञ और वादकोंका भी आदर करते थे। मुर्शिदाबाद, लखनऊ, दिल्ली आदि प्रसिद्ध गायक उनके यहां हमेशा आया करते थे और पारितोषिक पाते थे।

एतद्भिन्न नवकृष्णकी और भी अनेक सत्कीर्त्तियां थीं। जातिधर्मनिर्विशेषमें उनका दान था। सिराजुद्दौलाके कलकत्ता आक्रमणके समय कलकत्तेमें अंगरेजोंका जो गिर्जा था वह नष्ट किया गया। तभीसे अर्थाभावके कारण वह गिर्जा फिर बन न सका। नहीं बननेका दूसरा कारण स्थानाभाव भी था। १७८३ ई०में हेष्टिङ्गसने उसी उद्देश्यसे एक सभा की और उस सभामें अंगरेजोंके बीच २६०००) रु०का चन्दा उठा। नवकृष्णने अकेले जमीन देना चाहा और अंगरेजोंके कथनानुसार शहरसे दक्षिण जहां इनकी जमींदारी नहीं थी, ४५०००) रु०में एक टुकड़ा जमीन खरीद कर गिर्जा बनानेके लिए उन्हें दी। वहां जो गिर्जा बनाया गया, वही सेण्टजन्स चर्च कहलाता है।

नवकृष्ण जैसे चतुर, कार्यदक्ष और तीक्ष्णबुद्धि थे, वैसे ही विद्यानुरागी, दयावान् और आश्रित-प्रतिपालक भी थे।

नवखण्ड (सं० पु०) भूमिके नौ विभाग, यथा—भरत, इलावृत, किंपुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य और कुश।

नवखान—हिन्दीके एक कवि। ये बुन्देलखण्डके रहनेवाले थे। संवत् १७९२में इनका जन्म हुआ था। इनको कविता सुन्दर होती थी।

नवगङ्गा—नदिया जिलेमें प्रवाहित माताभङ्गा नदीकी एक शाखा। यह नदी यशोर जिलेके पश्चिम सीमामें प्रवेश कर पहले पूर्वकी ओर पीछे दक्षिणको ओर झिनाईदह, मागुरा, महाटा, नलदी और लक्ष्मीपाशा होती हुई मधुमतीके साथ मिल गई है।

नवग्रह (सं० पु०) १ सूर्यादि नौ ग्रहोंका नाम नवग्रह है।

रवि, सोम, मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु इन नौ ग्रहोंका नाम नवग्रह है। जो कोई काम्य-कर्म करना होता है उसके पहले नवग्रहयज्ञ अवश्य करना चाहिये, नहीं तो वह काम्यकर्म फलद नहीं होता है।

सभी ग्रह रथ पर चढ़ कर आकाशमण्डलमें विचरण करते हैं। इन्हीं नौ ग्रहोंकी दशा मनुष्य भुगते हैं। ग्रहकी दशाका विवरण 'दशा' शब्दमें देखो। कुशण्डिका आदि होम करनेमें भी नवग्रह होम करना होता है।

प्रतिदिन नवग्रह-स्तवका पाठ करना हरएकका अवश्य कर्त्तव्य है। स्तव—

"जवाकुसुमसङ्काशं काश्यपेयं महाद्युतिम्।
ध्वान्तारिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्॥
दधिशङ्खतुषाराभं क्षीरोदार्णवसम्भवम्।
नमामि शशिनं भक्त्या शम्भोर्मुकुटभूषणम्॥
धरणीगर्भसंभूतं विद्युत्पुञ्जसमप्रभम्।
कुमारं शक्तिहस्तञ्च लोहिताङ्गं नमाम्यहम्॥
प्रियङ्गुकलिकाश्यामं रूपेणाप्रतिमं बुधम्।
सौम्यं सर्वगुणोपेतं नमामि शशिनः सुतम्॥
देवतानामृषीणाञ्च गुरुं कनकसन्निभम्।
वन्द्यभूतं त्रिलोकेशं तं नमामि वृहस्पतिम्॥
हिमकुन्दमृणालाभं दैत्यानां परमं गुरुम्।
सर्वशास्त्रप्रवक्तारं भार्गवं प्रणमाम्यहम्॥
नीलाञ्जनचयप्रख्यं रविसूनुं महाग्रहम्।
छायाया गर्भसम्भूतं वन्दे भक्त्या शनैश्चरम्॥
अर्द्धकायं महाघोरं चन्द्रादित्यविमर्दकम्।
सिंहिकायाः सुतं रौद्रं तं राहुं प्रणमाम्यहम्॥
पलालधूमसङ्काशं ताराग्रहविमर्दकम्।
रौद्रं रुद्रात्मजं क्रूरं तं केतुं प्रणमाम्यहम्॥
व्यासेनोक्तमिदं स्तोत्रं यः पठेत् प्रयतः शुचिः।
दिवा वा यदि वा रात्रौ शान्तिस्तस्य न संशयः॥
ऐश्वर्यमतुलञ्चापि आरोग्यं पुष्टिवर्द्धनम्।
नरनारीप्रियत्वञ्च नित्यं तस्योपजायते॥
ग्रहकोऽग्निसम्भो वायुर्वै जायते ग्रहपीडकाः।
ते सर्वे प्रशमं यान्ति व्यासो ब्रूयात्र संशयः॥"
(इति श्रीव्यासविरचितं नवग्रहस्तोत्रं समाप्तम्।)

जो रात वा दिन किसी समय इस नवग्रह-स्तोत्रका पाठ करते हैं, वे अतुल ऐश्वर्य, आरोग्य और पुष्टिलाभ करते हैं तथा उन्हें किसी दूसरे ग्रहका भय नहीं रहता।

ग्रहगण यदि जन्मकालीन राशिचक्रके गोचरमें शुभ वा अशुभ हों, तो मनुष्योंका जन्मफल भी शुभ वा अशुभ होता है। इन सब ग्रहोंकी शान्ति करनेसे अशुभ दूर होता है।

ग्रहोंके उद्देश्यसे यज्ञ करनेमें प्रत्येक ग्रहका विभिन्न मन्त्रसे होम करना होता है। यह मन्त्र प्रत्येक वेदानुसारसे विभिन्न है।

ग्रहोंकी गति ८ प्रकारकी है, यथा—वक्र, अतिवक्र, कुटिल, मन्द, मन्दतर, सम, शीघ्र, शीघ्रतर। ग्रहगण इन्हीं ८ प्रकारकी गतियोंसे ख-मण्डलमें विचरण करते हैं। गतिका विशेष विवरण खगोल शब्दमें देखो।

"विप्रौ शुक्र-गुरू क्षत्रौ कुजार्कौ शूद्र इन्दुजः।
इन्दुर्वैश्यः स्मृतौ म्लेच्छौ सैंहिकेयशनैश्चरौ॥"
(ग्रहभावप्र०)

शुक्र और वृहस्पति ब्राह्मण, मङ्गल और रवि क्षत्रिय, केतु शूद्र, चन्द्र वैश्य तथा राहु और शनि म्लेच्छ जाति है। ग्रहोंका विशेष विवरणादि तत्तद् शब्दमें देखो।

२ बालकोंके अनिष्टकारक ग्रहविशेष। इसका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—बालग्रह नौ हैं। ये दिव्य देहविशिष्ट हैं। इनमेंसे कुछ तो नारी और कुछ पुरुष हैं। शरवनास्थित सद्योजात कार्त्तिकेयकी रक्षाके लिये कृत्तिका, अग्नि और महादेवके तेजसे उनकी सृष्टि हुई है। जो सब ग्रह स्त्रीदेहविशिष्ट हैं, वे गङ्गा, उमा और कृत्तिकाके रजोभागसे उत्पन्न हुई हैं। नैगमेय ग्रह पार्वतीसे उत्पन्न हुआ है और उसका मुख मेषके सदृश है। स्कन्दापस्मार ग्रह अग्निके समान द्युतिविशिष्ट है। यह स्कन्दका सखा है और इसका नामान्तर है विशाख। भगवान् त्रिपुरारिने स्वयं स्कन्दग्रहकी सृष्टि की है। इसका दूसरा नाम कुमार है। कोई कोई अज्ञ व्यक्ति इस स्कन्दको कार्त्तिकेय बतलाते हैं। लेकिन यथार्थमें वह नहीं है। स्कन्ददेव जब देवताओंके सेनापतित्व बने थे। तब दीप्त शक्तिधारी ग्रहोंने उनके पास

जा कर प्रार्थना की थी, 'प्रभो! हम लोगोंका काम अलग अलग बाँट दीजिए।" स्कन्ददेवने उन्हें शिवजीके पास भेज दिया। शिवजीने उनसे कहा था, 'तिर्यक् योनि, मनुष्य और देवता यह त्रिविध सृष्टि एक दूसरेके उपकार द्वारा अवस्थित है। देवगण शीत, ग्रीष्म, वर्षा और वायु द्वारा मनुष्य तथा तिर्यक् जातिको प्रसन्न रखते हैं एवं मनुष्य यज्ञादि द्वारा उन्हें सन्तुष्ट करते हैं। सबोंकी वृत्ति इसी प्रकार विभक्त हो गई है, अभी शेष कुछ भी न रहा। अतः तुम्हारी वृत्ति बालकोंके ऊपर निर्धारित हुई। जो कुलदेवता, पितृगण, ब्राह्मण, साधु और अतिथिकी पूजा नहीं करते, शौचाचाररहित होते तथा भग्न कांस्य-पात्रमें भोजन करते, उनके गृहस्थित बालकोंके ऊपर तुम निःशङ्कचित्तसे आक्रमण कर दो। इसी वृत्तिसे तुम्हारी पूजा होगी।' इस प्रकार ग्रहगण उत्पन्न हो कर बालकों पर आक्रमण करते हैं। जो बालक ग्रहसे आक्रान्त हो जाता है, उसकी चिकित्सा भी नहीं हो सकती। ग्रहोंमेंसे स्कन्द ग्रह ही सबसे श्रेष्ठ है। उन नौ ग्रहोंके नाम ये हैं—स्कन्द, स्कन्दापस्मार, शकुनीग्रह, पूतनाग्रह, अन्धपूतनाग्रह, शीतपूतना, रेवतीग्रह, मुखमण्डिकाग्रह और नैगमग्रह। यही नौ ग्रह क्रमशः बालकों पर आक्रमण करते देखे जाते हैं।

नवग्रहका आकृति-ज्ञान।—अहिताचरण करनेसे अथवा बालक भीत, हृष्ट वा तर्जित होनेसे ये सब ग्रह उनके शरीरमें प्रविष्ट होते हैं। शरीरमें जब ग्रहोंके लक्षण मालूम पड़ने लगे, तब पहले सान्त्वना वाक्यका प्रयोग अवश्य करना चाहिये। उस समय ग्रहग्रसित बालकके दोनों नेत्र स्फीत होने लगते हैं, देहमें शोणितगन्ध आती है, स्तनमें विद्वेष होता है, मुख वक्र मालूम पड़ता है, नेत्रका एक पक्ष स्थिर हो जाता है, उद्विग्नता आ जाती है, दोनों चक्षु भारी हो जाते हैं, मल गाढ़ा हो जाता है तथा बालक थोड़ा थोड़ा रोने भी लगता है। ये सब लक्षण स्कन्दग्रहके हैं। कभी सचेतन, कभी अचेतन, संवद्ध हस्त, पद कम्पन, मलमूत्र निःसरण, शब्दके साथ जृम्भण, मुखमें फेनोद्गम ये सब लक्षण स्कन्दापस्मार ग्रहके समझे जाते हैं। (सुश्रुत २७से ३७ अध्याय)

नवं नूतनं वयो वयसं यस्य। (त्रि०) २ नूतन वय वा वृत, जो हालमें ही बांधा या पकड़ा गया हो।

नवग्व (सं० त्रि०) नवभिर्मासैर्गच्छति गम-ड्व। नय-मास अप्राप्तता द्वारा उत्थित, नौ मासमें फल प्राप्त नहीं होनेसे जो उत्थित होता है, उसे नवग्व कहते हैं। २ नवीन गतिनक्त, नयी चालवाला।

नवचक्राङ्क (सं० पु०) शिव, महादेव।

नवचत्वारिंश (सं० त्रि०) नवचत्वारिंशत् संख्यायां पूरणः डट्। ऊनपञ्चाशत् संख्याका पूरण, उनचासवां।

नवचत्वारिंशत् (सं० स्त्री०) नवाधिका चत्वारिंशत्। ऊनपञ्चाशत् संख्या, चालीस और नौकी संख्या।

नवछात्र (सं० क्ली०) नवीन विद्यार्थी।

नवछिद्र (सं० क्ली०) नव छिद्राणि यत्र। नवद्वार। देहमें नौ छिद्र अर्थात् द्वार हैं।

नवज (सं० त्रि०) नव-जन-ड। नवजात, जो हालमें पैदा हुआ हो।

नवज्वर—ज्वरभेद। इसका सामान्य लक्षण घर्मरोध, देह, इन्द्रिय और मनका सन्ताप है तथा उस समय शरीरमें वेदना भी मालूम पड़ती है। देह-सन्तापसे देहकी उष्णता, इन्द्रिय सन्तापसे इन्द्रियकी विकृति और मनके सन्तापसे मनोविकृति होती है। मनकी अस्थिरता और ग्लानि ही मनका विकृति है। जो ज्वर सात दिन तक रहता है उसे तरुणज्वर कहते हैं।

चिकित्सा-विधान।—ज्वर आने पर चिकित्सकको पहले यह अवश्य जान लेना चाहिये, कि यह ज्वर वात, पित्त, कफसे उत्पन्न हुआ है वा इनमेंसे किसी दोषसे अथवा यह त्रिदोष ज्वर है। यदि चिकित्सक किस दोषसे ज्वर उत्पन्न हुआ है, इसका स्थिर कर न सकें, तो उन्हें साधारण चिकित्सा अर्थात् परस्परकी अविरोधी चिकित्सा करनी चाहिये। रोगीको ऐसे स्थानमें रहना चाहिये जहां हवा न जाती हो।

ज्वररोगीके लिये वायुशून्य स्थान आयुर्वृद्धिकारक और आरोग्यजनक है।

ज्वररोगीके लिये पंखेकी वायु उपकारी है। उनमें-से ताड़के पत्तेके पंखेकी वायुसे वायुनाश और त्रिदोष प्रशमित होता है। बांसके पंखेसे जो हवा की जाती है वह बहुत गरम होती है तथा रक्तपित्तकी प्रकोपकी

बढ़ाती है। षड़ङ्गकी दवासे त्रिदोष नाश, शरीर स्निग्ध और मन तृप्त होता है। नवज्वरीको गुरु और उष्ण वस्त्र द्वारा ढंके रहना चाहिये और ऋतुके अनुसार उसे गरम पानी पीनेको देना चाहिये।

तरुण ज्वरमें कषायका प्रयोग नहीं करना चाहिये, करनेसे सोए हुए कालसर्पको हाथसे स्पर्श करनेके समान हो जायेगा। पीछे भारीसे भारी चिकित्सा करने पर भी वह आरोग्य नहीं होता। षोलह्गुण जलमें पाचन सिद्ध करके चतुर्थांश वा अष्टमांश रहते जो उतार लिया जाता है, उसे भी कषाय कहते हैं। अतः तरुण ज्वरमें उसका भी प्रयोग नहीं करना चाहिये। कषाय रसयुक्त द्रव्यका भी प्रयोग निषिद्ध बतलाया है।

नव ज्वरमें दिवानिद्रा, स्नान, तैलादि मर्दन, मैथुन, क्रोध, प्रबल वायु और श्रमजनक कार्य नहीं करना चाहिये। द्विभोजन अर्थात् प्रातः और रात्रिमें भोजन, गुरुपाक भोजन और श्लेष्मवर्द्धक द्रव्यादि-भक्षण भी निषिद्ध है। तरुणज्वरमें वमन, विरेचन, वस्ति और शिरोविरेचन ये चार प्रकारके शोधन नहीं कराने चाहिये, करानेसे मुखशोष, वमि, मत्तता, मूर्च्छा और अरुचि आदि होती है। हारीतके मतमें—तरुणज्वरमें व्यायाम करनेसे ज्वरकी वृद्धि, मैथुन करनेसे स्तब्धता, मूर्च्छा और मृत्यु तक भी हो जाती है। शीतलपानादि करनेसे भी मृत्यु की सम्भावना है। गुरु द्रव्य खानेसे मूर्च्छा, वमि, मत्तता और अरुचि तथा दिवानिद्रासे विष्टम्भ, दोषका प्रकोप, अग्निमान्द्य, ज्वराधिक्य और धर्मविण्मूत्रका अवरोध होता है। अवस्थाविशेषसे विज्ञ चिकित्सक वमन कराते हैं। वाग्भट कहते हैं कि यदि भोजन करनेके बाद ही ज्वर आ जाय अथवा सन्तर्पण क्रियासे (रसादि धातुसमूहको वृद्धिजनक क्रियासे) किसी व्यक्तिको ज्वर आ जाय, तो वमनयोग्य (गर्भिणी, क्षय, वृद्ध आदि भिन्न) व्यक्तिको वमन कराना आवश्यक है।

तरुण ज्वरमें पाचनादि निषिद्ध है, किन्तु तोयपेयादि निषिद्ध नहीं। षडङ्ग पानीय तरुणज्वरमें देना उपकारी है। (मोथा, पित्तपापड़ा, चन्दन, वाला, सोंठ प्रत्येक द्रव्य दो दो तोला ले कर कूटते हैं। बाद उसे ६४ सेर जलमें सिद्ध करके ३२ सेर अवशिष्ट रहने पर उसे उतार लेते हैं। ठण्ढा हो जाने पर उसे पिलाते हैं, इसीका नाम षड़ङ्ग-पानीय है।) नवज्वरमें शीतल जलका प्रयोग बिलकुल निषिद्ध है। सुतरां यह षड़ङ्ग-पानीय एकान्त प्रयोजनीय है। शरीरमें यदि अधिक वेदना मालूम पड़े, तो गोक्षुर, कण्टकारी और रक्तशाली इन्हें पीस कर पिलाना चाहिये।

औषधादि।—तरुण ज्वरमें औषधका प्रयोग प्रायः नहीं करना चाहिये। लङ्घन, पथ्य, पानीय आदि द्वारा ही ज्वरकी तरुणावस्थामें (अर्थात् प्रथम सात दिन) चिकित्सा करनी चाहिये।

नवज्वरमें रसघटित औषधका प्रयोग कर सकते हैं। रसका प्रयोग करनेमें दोष, रोग, व्यक्ति, देश और कालका विचार कुछ भी नहीं किया जाता।

नवज्वरमें रसघटित तरुणज्वरादि, नवज्वरेभसिंह, त्रिपुरभैरव, मृत्युञ्जयरस, नवज्वराङ्कुश, वैद्यनाथवटी, रत्नगिरिरस, ज्वरसिंहरस, ज्वरधूमकेतु, ज्वरघ्नीवटिका, नवज्वरहरवटि और नवज्वररस प्रयोज्य है।

ज्वरके पांचवें, छठे वा सातवें दिनमें तरुण ज्वरारि औषधका प्रयोग करना चाहिये। औषध-सेवन करनेके बाद विरेचन होनेसे ज्वर दूर हो गया, ऐसा समझना चाहिए। नवज्वरेभसिंहका अनुपान अदरखका रस है। त्रिपुरभैरवका अनुपान अदरखका रस अथवा देशविशेषसे चीनीके साथ सोंठ, पीपल और मिर्च है। यह औषध खिलानेके बाद रोगीको तक्र देना आवश्यक है। मृत्युञ्जयरसका साधारण अनुपान मधु है। यदि रोगी क्षीण न हो अथवा उसे कफका अंश अधिक न रहे, तो चीनी और नारियलका पानी देना उचित है। उससे वातपैत्तिक दाह जाता रहता है। चीनीके जलके साथ नवज्वराङ्कुश भी रोगीको दे सकते हैं। वैद्यनाथवटिका अनुपान पानका रस वा गरम जल है। दोषका बलाबल जान कर १से ४ घंटे तक गोलीका प्रयोग कर सकते हैं। यह औषध सुखविरेचक है। रत्नगिरिके रसका पीपल वा धनियाके काढ़ेके साथ सेवन करना होता है। ज्वरसिंहरस ज्वरोत्पत्तिके चौथे दिनमें वा उसके बाद देना कर्त्तव्य है। ज्वरधूमकेतुका अनुपान अदरखका रस है। तीन दिन तक सेवन करनेसे नवज्वर नष्ट हो

जाता है। ज्वरग्नीवटिका अनुपान गुलञ्चका रस है। इसके सेवनसे ज्वर उसी समय जाता रहता है। नवज्वरहरवटि और नवज्वररस अङ्गाररसके साथ सेवनीय है।

नवज्वररस—नवज्वरमें प्रयोज्य रसघटित वैद्यक औषधविशेष। भावप्रकाशमें इसकी प्रस्तुतप्रणाली इस प्रकार लिखी है,—

शोधित पारद १ तोला, शोधित गन्धक २ तोला, गरल (सर्पविष) ३ तोला, स्वर्णक्षीरी ४ तोला, जयपाल ५ तोला इन्हें नारंगी नीबूके रससे पीस कर विडङ्गके परिमाणकी बड़ी गोली बनाते हैं। प्रतिदिन एक एक गोली अदरखके साथ सेवन करनेसे नवज्वरके सिवा जीर्ण ज्वर, आमघटित ज्वर, सम और विषम ज्वर तथा सभी प्रकारके ज्वर जाते रहते हैं। दावानलके जैसा यह ज्वरनाशक है।

नवज्वरवटि—नवज्वरमें प्रयोज्य रसघटित औषधविशेष। भावप्रकाशमें इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार लिखी है,—

शोधित पारा, शोधित गन्धक, शोधित विष, सोंठ, पीपल, मिर्च, हड़, बहेड़ा, आँवला और शोधित दन्तीबीज बराबर बराबर भाग ले कर चूर्ण करते हैं। बाद उस चूर्णको द्रोणपुष्पीके रसमें घोंट कर पुटपाक करते हैं। पीछे एक उड़दके बराबर गोली बनाते हैं। यह औषध नवज्वरमें फायदामन्द है।

नवज्वरेभसिंह—नवज्वरमें प्रयोज्य औषधविशेष। भैषज्यरत्नावलीमें इसको प्रस्तुत-विधि इस प्रकार है,—

शोधित पारा, शोधित गन्धक, शोधित लौह, शोधित ताम्र, शोधित सीसा, मरिच, पीपल और सोंठ बराबर बराबर भाग, विष अर्द्धभाग (किसीके मतसे समष्टिके अर्द्धभाग)को ले कर जलसे पीसते हैं। बाद २ रत्ती प्रमाणकी गोली बनाते हैं। इसके सेवन करनेसे कठिनसे कठिन नवज्वर आदि रोग दूर हो जाते हैं।

नवड़ा (हिं॰ पु॰) नरसा।

नवत (सं॰ पु॰) नू-अतच्। १ कुथ, हाथीकी झूल। २ कौषेयवस्त्र, रेशमी कपड़ा। ३ कम्बल।

नवतन्तु (सं॰ पु॰) नवः तन्तुः कर्मधा॰। १ नूतन, तन्तु, नया सूता। नवः तन्तु यत्र। २ नूतन तन्तुयुक्त पट, नये सूतेका कपड़ा। ३ विश्वामित्र पुत्रभेद, विश्वामित्रके एक लड़केका नाम।

नवता (हिं॰ पु॰) १ ढालुआँ जमीन, उतार। (स्त्री॰) २ नवीनता, नयापन।

नवति (सं॰ स्त्री॰) नव दशतः परिमाणं यस्य, (पङ्क्तिविंशति-त्रिंशदिति। पा। ५।१।५९) इति निपातनात् साधुः। १ संख्याविशेष, नब्बेकी संख्या। (त्रि॰) २ अस्सी और दश, सौसे दश कम।

नवतिका (सं॰ स्त्री॰) नवं नूतनं तिकते करोतीति, तिक-क-टाप्। १ तुलिका, रंग भरनेकी चित्रकारोंकी कूँची। २ नवति संख्या, नब्बेकी संख्या।

नवतिशस् (सं॰ अव्य॰) नवति नवतीति वीप्सायां शस्। बहुनवति।

नवती (सं॰ स्त्री॰) नवति कृदिकारादिति वा ङीष्। नवति, नब्बेकी संख्या।

नवदण्ड (सं॰ क्ली॰) राजाओंका छत्रविशेष, राजाओंके तीन प्रकारके छत्रोंमेंसे एक प्रकारके छत्रका नाम।

नवदल (सं॰ क्ली॰) नवं दलमिति कर्मधा॰। १ पद्मके केशर समीपस्थ दल, कमलका वह पत्ता जो उसके केसरके पास होता है। २ पद्मादिके जटिलाकार नवपत्र। पर्याय—संवर्त्तिका, संवर्त्ति, संवर्त्ती। ३ सामान्य नूतन पत्र। ४ दलमात्र, पत्ता।

नवदशन् (सं॰ पु॰) नवाधिका दश। १ ऊनविंश संख्या, उन्नीसकी संख्या। (त्रि॰) २ दश और नौ, उन्नीस।

नवदीधिति (सं॰ पु॰) नवदीधितयोऽस्य। मङ्गल ग्रह।

नवदुर्गा (सं॰ स्त्री॰) नव संख्यान्विता दुर्गा। पुराणानुसार नौ दुर्गाएं जिनकी नवरात्रमें नौ दिनों तक क्रमशः पूजा होती है। यथा—शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कुष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी और सिद्धिदा। नवपत्रिका देखो।

नवदेवकुल—प्राचीनकालमें गङ्गाके किनारे इस नामका एक नगर था। युएनचुवङ्गने यह नगर देखा था। उस समय यह अत्यन्त समृद्धिशाली स्थान था। वर्त्तमान नवल इसी नवदेवकुलका नामान्तर है।

नवदोला (सं॰ स्त्री॰) नवा नूतना दोला। नवीनदोला, नया हिंडोला।

नवद्वार (सं॰ क्ली॰) नव द्वारानीव छिद्राण्यादेर्यस्य शरीरमस्य।

साधनत्वात् यत्र। देहस्थ ९ छिद्र, शरीरके नौ द्वार। दो आँखें, दो कान, दो नाक, एक मुख, एक गुदा और एक लिङ्ग या भग यही नवछिद्र हैं। इन्हींका नाम नवद्वार है। प्राचीनोंका विश्वास था और अब भी कुछ लोगोंका विश्वास है, कि जब मनुष्य मरने लगता है, तब उसका प्राण इन्हीं नौ द्वारोंमेंसे किसी एक द्वारसे निकलता है। अन्त्येष्टि-क्रियाके समय इन नौ छिद्रोंमें नौ खण्ड सुवर्ण देने चाहिए।

"नवद्वारेपुरे देही हंसो लेलायते बहिः।" (श्वेताश्वतर०)

नवद्वीप—बङ्गालकी एक विख्यात नगरी और सेनराज लक्ष्मणसेनकी शेष राजधानी। यह साधारणतः नदिया नामसे प्रसिद्ध है। यह अक्षा० २३° २४´ और देशा० ८८° २१´ पू० भागीरथीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या दश हजारसे ज्यादा है।

नामकरण।—कोई इसे नदिया वा नवद्वीप, कोई नूतनद्वीप वा नौ द्वीपसे नवद्वीप नामकी उत्पत्तिकी कल्पना करते हैं। जो नौद्वीपसे नवद्वीपका नाम पड़ना स्वीकारते हैं, उनका कहना है कि गङ्गाके मध्यस्थ चरके ऊपर नदिया अवस्थित है। इस चरके पश्चिम ओर गङ्गा प्रबलवेगसे बहती थी, सुतरां पूर्वांश क्रमशः स्रोतोहीन हो कर चर पड़ गया है। धीरे धीरे उस चरमें खेतीबारी करनेके लिये अनेक लोग बस गये। उस समय एक संन्यासी चरके किसी निर्जन स्थानमें नौदीप जाल कर रातको योगसाधन करते थे। नाविक लोग उन दीपोंको देख कर चलती भाषामें इस स्थानको नदिया कहने लगी। कोई कोई नौद्वीपसे नवद्वीप नामका पड़ना मानते हैं। उन नौ द्वीपों वा ग्रामोंके नाम ये हैं,—१ अन्तर्द्वीप, २ सीमन्तद्वीप, ३ गोद्रुमद्वीप, ४ मध्यद्वीप, ५ कोलद्वीप, ६ ऋतुद्वीप, ७ मोदद्रुमद्वीप, ८ जह्नुद्वीप और ९ रुद्रद्वीप।

नरहरिने भक्तिरत्नाकरमें नवद्वीपके विषयमें जिस उपाख्यानका वर्णन किया है, इतिहासमें उसका कहीं भी जिक्र नहीं है। नरहरिकी वर्णनासे मालूम होता है कि नवद्वीप नामका कोई स्वतन्त्र नगर वा ग्राम नहीं था, उपरोक्त स्थान ले कर नवद्वीप नाम पड़ा है। लेकिन चैतन्यदेवके बहुत पहलेसे नवद्वीप एक स्वतन्त्र नगरमें गिना जा रहा है। इसी नगरमें लक्ष्मणसेनकी राजधानी थी। मालूम पड़ता है कि राजधानीके नाम पर ही राज्यका नाम पड़ा है। हिन्दूराजत्वकालमें नवद्वीप नगर और उसके चतुष्पार्श्ववर्ती उपकण्ठस्थ ग्राम भी नवद्वीप कहलाते थे।

सेनराजाओंके पहले नवद्वीप नगरीका अस्तित्व था वा नहीं, उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। इस अञ्चलकी भूतत्त्वकी पर्यालोचना करनेसे यह सहजमें अनुमान किया जाता है कि पहले यह अञ्चल समुद्रमग्न था। ७वीं और ८वीं शताब्दीमें समुद्रके हट जानेसे वह चरमें परिणत हो गया। इस समय समुद्रमुहानाश्रित बहुतसी नदियां इस अञ्चल हो कर बहती थीं। वर्त्तमान शहरके दक्षिण-पश्चिमकी ओर समुद्रगढ़ नामक ग्रामके निकट एक चर है जिसे त्रिमुहानी कहते हैं। यहां पहले तीन नदियोंका मुहाना था।

वर्त्तमान नगरसे प्रायः दो कोस पूर्व 'सुवर्णविहार' नामक एक छोटा ग्राम है। बहुतोंका विश्वास है कि पालवंशीय राजाओंके समय यहां बौद्धोंका 'विहार' था। आज भी उस स्थान पर प्राचीन अट्टालिकाओंका भग्नावशेष देखनेमें आता है। वे सब भग्न प्रस्तर, इष्टक और स्तम्भादि बौद्धोंके उपकरण से देखनेमें लगते हैं। क्षितीशवंशावली-चरितमें लिखा है कि राजा लक्ष्मणचन्द्रके पूर्वपुरुषोंने इस स्थानसे अनेक माल मसाला ले कर अपने अपने मकानोंमें लगाया है। पहले भागीरथीकी एक शाखा मायापुरके उत्तर हो कर सुवर्णविहार तक बहती थी। उसी शाखामें खड़िया नदी गिरती थी और यह मन्दाकिनी नामसे ग्वालपाड़ाके उत्तर भागीरथीके साथ मिल गई थी। अभी भागीरथीकी गति परिवर्त्तित हो जानेसे प्राचीन गर्भमात्र देखनेमें आता है।

भागीरथीके तटस्थ पुण्यस्थान होने तथा तीन नदियोंके मुहाने पर वाणिज्यादिकी सुविधा रहनेके कारण राजा लक्ष्मणसेनने यहां राजधानी बसाई थी। यहां नवद्वीपके उत्तर-पूर्व आध कोसकी दूरी पर बल्लालदीघी नामक एक दीघी है और दीघीके उत्तर 'बल्लालसेनकी ढीबी' नामक उच्चभूमि है। प्रवाद है, कि यहां बल्लालसेनका मकान था और उन्होंने ही यहां अपने नाम पर 'दीघी'

खोदवाई थी। किसीका मत है कि लक्ष्मणसेनने पिताके नाम पर उक्त दीघी उत्सर्ग की और इसके तीरवर्त्ती परवर्त्तीकालमें बल्लालकी ढीपी कहलाती थी। वास्तविकमें वह लक्ष्मणसेनका प्रासाद था। सेनराजके समय जहां नगर अवस्थित था, वह स्थान अभी भागीरथीके स्रोतमें विलुप्त हो गया है।

उस समय इस स्थान पर भागीरथी द्वारा युक्त प्रदेशके साथ सप्तग्रामका और जलङ्गी नदी द्वारा पूर्व बङ्गके साथ वाणिज्य सम्पन्न होता था। इस वाणिज्यके कारण और पुण्ययोगादिमें स्नानादिके उपलक्षमें यहां बहुसंख्यक मनुष्य एकत्र होते थे और भागीरथी-गर्भमें सैकड़ों नावें शोभा पाती थीं। मुसलमानोंके आक्रमण करने पर सेनराजके हाथसे नवद्वीप जाता रहा और उसकी पूर्व-समृद्धि भी विलुप्त हो गई थी। उस समय हजारों गण्यमान्य मनुष्य नवद्वीपको छोड़ अन्यत्र जा बसे थे। उसी समयसे पूर्वबङ्गकी समृद्धिका सूत्रपात हुआ। महम्मद-इ-बख्तियारके बाद जिन सब मुसलमानोंने लक्ष्मणावतीका शासनाधिकार पाया था, वे अपनी अपनी राजधानीमें ही अधिकांश समय अतिवाहित करते थे, नवद्वीपके प्रति उतना ख्याल नहीं करते थे।

सेनराजाओंके अधःपतनके बाद नवद्वीपमें विलक्षण मुसलमान-अत्याचार जारी था। पर हां, उस समय यहां वाणिज्यका स्थान था, इस कारण व्यवसायिगण अपमानित होते हुए भी दूसरी जगह जा नहीं सकते थे।

तीन चार सौ वर्ष पहले नवद्वीपकी जैसी समृद्धि थी वैसी आज कल नहीं है। प्राचीन नवद्वीपके अधिकांश गङ्गागर्भमें विलीन हो गया है। भागीरथीकी गतिका परिवर्त्तन, वाणिज्यका ह्रास और प्राचीन अट्टालिकादिका गङ्गा-गर्भशायी हो जानेसे नवद्वीपकी लोकसंख्या धीरे धीरे घटती जा रही है।

चैतन्यदेवके आविर्भावके पहले यहां सैकड़ों टोल थे और दूर दूर देशोंसे हजारों मनुष्य विद्याध्ययन करने आते थे। वासुदेव सार्वभौमके समयमें नवद्वीप शास्त्र-चर्चाका केन्द्रस्थल समझा जाता था, नवद्वीपके इसी उन्नत समयमें मुसलमानोंने इस पर दारुण अत्याचार किया था।

चैतन्यदेवके अभ्युदयके पहले मुसलमानी अत्याचार होने पर भी उनके आविर्भाव कालमें नवद्वीपने शान्तभाव धारण किया था।

उस समय रघुनाथ-शिरोमणिने मिथिलाके पक्षधर मिश्रको तर्कयुद्धमें परास्त कर नदियामें न्याय-प्राधान्य स्थापित किया। इस समय नवद्वीपमें रघुनन्दनकी स्मार्त्त-व्यवस्थाके परिवर्त्तनसे बङ्गमें नवयुगकी सृष्टि हुई। इस समय महाप्रभु चैतन्यदेवके अपार्थिव प्रेमके प्रवाहसे नवद्वीप वैष्णव जगत्‌के शीर्षस्थानको पहुंच गया था और वैष्णवोंके निकट नवद्वीप वृन्दावनकी तरह महातीर्थ समझा जाने लगा था। उस समय यहां वैष्णवकी जैसी प्रधानता थी, वह आज भी विलुप्त नहीं हुई है। रघुनाथशिरोमणि यहां न्यायका टोल स्थापन कर जो प्रतिष्ठा लाभ कर गये हैं, आज भी उनके आशीर्वादसे भारतके मध्य नवद्वीप ही न्यायका प्रधान स्थान समझा जाता है। आज भी काशीकाञ्ची द्राविड़ादि नाना स्थानोंसे छात्रगण यहां न्याय पढ़ने आते हैं। अभी यहां १४ टोल देखनेमें आते हैं जिनमेंसे न्यायके ४, स्मृतिके ५, भागवतके २ और साहित्यके ३ हैं। छात्रोंकी संख्या भी दो सौसे कम नहीं होगी। बङ्गालीके अतिरिक्त इन सब छात्रोंमें मैथिल, तैलङ्गी, मारवाड़ी, उड़िया और गौड़ीय आदि हैं। गवर्मेण्टकी ओरसे विदेशीय छात्रोंको २००) रु०की मासिक वृत्ति मिलती है।

राजवंशका संक्षिप्त इतिहास।—यह वंश अपनेको भट्टनारायणके पुत्र निपुकी सन्तान बतलाता है। उनके पूर्व-पुरुषगण पूर्वबङ्गमें रहते थे जहां उनकी अटूट भूसम्पत्ति थी। भट्टनारायणसे नीचे तेरहवीं पीढ़ीमें विश्वनाथने जन्मग्रहण किया। १४०० ई०में इन्होंने मुसलमान राजाओंके अनुग्रहसे कांकदी आदि परगने पाये थे। विश्वनाथके प्रपौत्रके प्रपौत्र काशीनाथके समयमें १५९७ ई०को त्रिपुराधिपतिके हाथी उनकी जमींदारी हो कर जा रहे थे। उनमेंसे एक मतवाला हाथी था, जिसने ग्राममें प्रवेश कर प्रजाका विशेष अनिष्ट किया। इस कारण काशीनाथके आदेशसे वह हाथी मार डाला गया। यह सम्वाद पा कर नवाब बहुत बिगड़े और काशीनाथको कैद करनेके लिये आदमी भेजा। यह

खबर पाते ही काशीनाथ सपरिवार दक्षिण देशको भाग गये। कुछ दिन बाद ये जलङ्गी नदीके निकटवर्त्ती बाग-वान परगनेके अन्तर्गत आन्दुलिया ग्राममें नवाबके लोगों-से बन्दी हुए। रास्तेमें ये राजपुरुषोंके हाथसे मार डाले गये। काशीनाथकी गर्भवती स्त्रीने आन्दुलियावासी हरेकृष्ण समाद्दारका आश्रय लिया। कुछ समय बाद रानीने एक पुत्र प्रसव किया जिसका नाम रखा गया रामचन्द्र। रामचन्द्रको हरेकृष्ण अच्छी तरह पालन-पोषण करने लगे और उनके कोई पुत्र नहीं रहनेके कारण रामचन्द्रको ही अपना उत्तराधिकारी बनाया। इसी कारण रामचन्द्र रामसमाद्दार नामसे प्रसिद्ध हुए।

रामचन्द्रके चार पुत्र थे, बड़ेका नाम भवानन्द था। भवानन्द बाल्यकालसे ही असाधारण धी-शक्तिसम्पन्न थे। बड़े होने पर उन्होंने नवाबको खुश कर १६०४ ई०में कानून-गोका पद और मजुमदारकी उपाधि प्राप्त की। इस समय प्रतापादित्यने अपनी स्वाधीनता घोषणा कर दी। उन्हें दमन करनेके लिये दिल्लीश्वरने मानसिंहको भेजा। भवानन्द उस समय कानूनगो थे। मानसिंहका सम्मान करनेके लिये वे वर्द्धमान गये और उनके साथ साक्षात् किया। मानसिंहने भवानन्दकी अनेक विषयोंमें अभि-ज्ञता और विचक्षणता देख उन्हें अपने साथ रख लिया। प्रतापादित्यको दमन करनेमें उन्होंने मानसिंहको काफी सहायता पहुँचाई थी। इस कारण मानसिंहने यशोरसे लौटते समय भवानन्दको १४ परगनोंकी जमींदारी अर्पण की और दिल्लीयात्राके समय उन्हें अपने साथ ले गये। दिल्लीश्वरने उनके कुल और गुणका परिचय पा कर मानसिंह प्रदत्त १४ परगनोंका फरमान देनेका आदेश किया।

सच पूछिये, तो भवानन्द ही वर्त्तमान नवद्वीप-राजवंशके स्थापयिता थे। उन्होंके समयमें इस वंशकी ख्याति, प्रतिपत्ति और समृद्धिका सूत्रपात हुआ। उनके तीन पुत्र थे जिनमें मँझले गोपाल कार्यकुशल और बुद्धिमान् निकले। इस कारण भवानन्दने उन्हींको अपना उत्तराधिकारी बनाया। बादशाहके दरबारमें इनकी पितासे बढ़ कर खातिरदारी थी। इनके मरने पर छोटे लड़के राजसिंहासन पर बैठे। उन्होंने बुद्धि और कौशलक्रमसे सम्राट् शाहजहान्से कुछ परगने पाये। उन्होंने अपने वास-ग्राममें ब्राह्मणोंको बसाया और उसके चारों ओर खाई खुदवाई जो 'शहरपनार' नामसे प्रसिद्ध है। जनताका जलकष्ट दूर करनेके लिये इन्होंने हजारों रुपये खर्च करके शान्तिपुर और कृष्णनगरके मध्य दिगनगर ग्राममें एक बड़ी दीघी खुदवाई और अनेक अध्यापकोंको विस्तर 'ब्रह्मोत्तर' दिये। इस वंशमें इन्होंने ही पहले पहल बादशाहसे सम्मानसूचक 'हस्ती' उपहारमें पाया था। इनकी मृत्युके बाद बड़े लड़के रुद्र पितृ-सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इन्होंने कृष्णनगर-से शान्तिपुर तक एक पक्की सड़क बनवा कर जनताका कष्ट दूर किया था।

रुद्रके दो रानी थीं—बड़ी रानीके गर्भसे रामचन्द्र और रामजीवन तथा छोटीके गर्भसे रामकृष्ण उत्पन्न हुए। रामचन्द्र अत्यन्त साहसी और मृगयानुरक्त थे। रुद्रकी यह इच्छा न थी कि उनकी मृत्युके बाद राम-चन्द्र उत्तराधिकारी हों। वे रामजीवनको जमींदारी देनेके लिये बादशाहसे अनुमति ले चुके थे। मृत्युके बाद सुचतुर रामचन्द्रने हुगलीके फौजदार और ढाकाके नवाबकी सहायतासे पैतृक जमींदारी हस्तगत की। कुछ दिनके बाद रामजीवनने दलबल संग्रह कर राम-चन्द्रसे जमींदारी छीन ली। रामचन्द्र भी चुप बैठनेवाले थे। उन्होंने भी दूसरे वर्ष रामजीवनको परास्त कर पुनः जमींदारी अपने हाथमें ले ली। कुछ दिन बाद उनकी मृत्यु हो गई। अब रामजीवन निष्कण्टक राज्य करने लगे। लेकिन वे भी अधिक दिन तक राज्य भोग कर न सके। उनके वैमात्रेय भाई रामकृष्णने नवाबके साथ कौशल करके उन्हें ढाकेमें कैद कर लिया और जमींदारी पर अधिकार जमाया। ये नवाबको यथा-नियम राजस्व नहीं देते थे, इस कारण नवाबने उन्हें ढाकामें कैद रखा और वहीं वे पञ्चत्वको प्राप्त हुए।

रामकृष्णके बाद रामजीवन कारामुक्त हो कर जमीं-दारीका उपभोग करने लगे। लेकिन कुछ दिनके बाद ही वे इस धराधामको छोड़ स्वर्गधामको सिधारे।

रामजीवनको तीन पत्नी थीं और उन तीनोंमेंसे चार लड़के थे। उनमेंसे दूसरी पत्नीके गर्भजात रघुराम

सर्वापेक्षा कार्यदक्ष और प्रजारञ्जक थे, इस कारण रामजीवन मरते समय इन्हींको अपना उत्तराधिकारी बना गये।

अत्यन्त साहसी और बलवान् होनेके कारण लोग उन्हें रघुवीर कहा करते थे। एक समय नवाब मुर्शिदकुली खांके साथ राजशाहीके राजाका युद्ध हुआ था। युद्धमें रघुराम नवाबके सेनापतिके साथ गये थे। उनके असाधारण साहस और वीरत्वको देख कर नवाबने उनकी भूरि-प्रशंसा की और गुणके पुरस्कारस्वरूप उन्हें कारामुक्त करनेका हुक्म दिया। ये बड़े दानवीर थे। पूर्वपुरुषका ऋण-परिशोध नहीं करनेके कारण वे अकसर मुर्शिदाबादमें कैद किए जाते थे। किन्तु इस बन्दी अवस्थामें भी दानशीलताका ह्रास नहीं हुआ था। १७२८ ई०में उनकी मृत्यु हुई।

रघुराम अपने वैमात्रेय भाई रामगोपालको बहुत चाहते थे, इस कारण पुत्र कृष्णचन्द्रको उत्तराधिकारी न बना कर रामगोपालको ही अपना उत्तराधिकारी बना गये। किन्तु इस समय कृष्णराम नामक एक व्यक्तिके कौशलसे नाम्नकूट-प्रिय रामगोपाल अधिकारी न हो कर नवाबके आदेशसे कृष्णचन्द्रने ही सारी सम्पत्ति लाभ की। राजराजेन्द्र कृष्णचन्द्र बहादुरके समय नदिया-राज्य उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुंच गया। अपने प्रतापसे हिन्दू-समाजके ऊपर उन्होंने जैसा आधिपत्य जमा लिया था वैसा और किसीके भाग्यमें बदा नहीं। वे अपने अनुगृहीत व्यक्तियों और पण्डितोंको बहुतसी जमीन दान कर गए हैं, जिनके उत्तराधिकारी आज भी वह निष्कर जमीन भोग कर रहे हैं। नदिया जिलेमें ऐसा एक भी गण्डग्राम नहीं है, जहां नदिया-राजप्रदत्त निष्कर जमीन न हो। बहुतोंका कहना है कि यह अपरिमित दानशीलता ही नदियाराजके अधःपतनका मूल है। कृष्णचन्द्र देखो।

राजराजेन्द्र कृष्णचन्द्र बहादुर १७८२ ई०में ७३ वर्षकी अवस्थामें इस लोकसे चल बसे। पीछे शिवचन्द्र राज्यके अधिकारी हुए। इनके समयमें नवद्वीप जो भवानन्दके समयसे ले कर राजा कृष्णचन्द्रके समय तक पुरुषानुक्रमसे उन्नत होता आ रहा था, अब क्षीणा आरम्भ हुआ। यहां तक कि राजस्व बाकी पड़ जानेके कारण जमींदारी नीलाम पर चढ़ गई। इसी चिन्ताके मारे ६० वर्षकी उमरमें (१७८८ ई०को) इनका देहान्त हुआ। उनके एकमात्र पुत्र ईश्वरचन्द्र पैतृक-सम्पत्तिके अधिकारी हुए। वे सुरापानमें मत्त रहा करते थे, जमींदारीकी ओर जरा भी ध्यान नहीं देते थे। १८३२ ई०में गिरिशचन्द्र नामक पुत्र छोड़ आप परलोकको सिधारे।

गिरिशचन्द्रने जब देखा, कि उनके प्रधान कर्मचारी और आत्मीय स्वजनोंके दोषसे ही महामूल्य सम्पत्ति नष्ट होती जा रही है, तब उनके मनमें वैराग्य उत्पन्न हो आया। वे अपना समय देवार्चनामें बिताने लगे। अत्यन्त धार्मिक होने पर वे बड़े ही निर्बोध थे, उनकी बुद्धिके दोषसे पैतृक जमींदारी जो ८४ परगनोंकी थी, अब केवल ५।७ परगनेकी हो गई। अर्थकष्ट होने पर भी वे धर्म-कर्मसे हाथ नहीं खींचते थे। नवद्वीपमें वे दो बड़े बड़े मन्दिर बनवा गए हैं। ५० वर्षकी उमरमें उनका शरीरावसान हुआ।

पीछे उनके दत्तकपुत्र श्रीशचन्द्र राजा हुए। इन्होंने जमींदारीका पुनरुद्धार करनेकी विशेष चेष्टा की और आखिरको सफलता मिल भी गई। आप ब्राह्मधर्मके विशेष पक्षपाती थे। जनसाधारणके लिए ये अनेक हितकर कार्य कर गए हैं। श्रीशचन्द्रकी मृत्युके बाद बड़े लड़के सतीशचन्द्र राजा हुए। ये भी अपने पितामह गिरिशचन्द्रके समान बड़े खर्चीले थे। अतिशय सुरापानजनित रोगसे आक्रान्त हो कर १८७० ई०को इनका देहान्त हुआ। इनके कोई सन्तान न थी। मृत्युके बाद कनिष्ठा पत्नी महारानी भुवनेश्वरी सारी सम्पत्तिकी उत्तराधिकारिणी हुई। इन्होंने क्षितीशचन्द्रको गोद लिया। राजा क्षितीशचन्द्र बुद्धिमान् और सद्विवेचक थे। इनके यत्नसे कृष्णनगर राज्यकी विशेष श्रीवृद्धि हुई। नदिया देखो।

नवधा (सं० अव्य०) नव प्रकारे धाच्। नव प्रकार, नौ गुण, नौ बार।

नवधा-अङ्ग (सं० पु०) शरीरके नौ अङ्ग, यथा—दो आंख, दो कान, दो हाथ, दो पैर और एक नाक।

नवधातु (सं० पु०) नवगुणिता धातुः। नौ प्रकारकी

धातु। स्वर्ण, रौप्य, लौह, सीसक, ताम्र, रङ्ग, तीक्ष्ण (इस्पात), कांस्य और कान्तिलौह इन नवोंको नवधातु कहते हैं।

नवधाभक्ति (सं० स्त्री०) नौ प्रकारकी भक्ति, यथा—श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, सख्य, दास्य और आत्मनिवेदन। भक्ति देखो।

नवन् (सं० त्रि०) नु-कनिन्। १ संख्याभेद, नौ। २ नवसंख्यायुक्त, जिसमें नौ संख्या हो।

नवनवक (सं० क्ली०) नवगुणितं नवकम्। दक्षसंहितोक्त ज्ञातव्य एकाशीति पदार्थ, दक्षसंहिताके अनुसार जानने योग्य इक्यासी पदार्थ।

गृहस्थोंके उन्नतिकारक ८१ पदार्थ बतलाये गए हैं, यथा—नौ अमृत, अन्यविध नौ प्रकारके अल्पदान, नौ कर्म, नौ विकर्म, नौ प्रकाश्य कार्य, नौ सफल कार्य, नौ निष्फल कार्य, नौ अदेय वस्तु और नौ गुप्त कार्य। विशिष्ट व्यक्तिके घर आने पर मन, चक्षु, मुख और वाक्य ये चार पदार्थ उसे सुन्दर रूपसे दें, अर्थात् प्रसन्न मनसे, प्रसन्न दृष्टिसे, सानन्द मुखसे और सुमिष्ट वाक्यों द्वारा उसका स्वागत करे। तदनन्तर प्रत्युत्थान हो कर, 'आइये, बैठिये,' ऐसा कहे। पीछे स्वागत प्रश्न, मिष्टालाप और भोजनादि द्वारा सेवा करे। बाद जाते समय उसे थोड़ी दूर तक पहुँचा आवे। ये नौ कार्य गृहस्थोंके लिए सुधा-स्वरूप हैं। अतः इन्हें यत्नपूर्वक करना हरएक गृहस्थका अवश्य कर्त्तव्य है।

अन्यविध नौ प्रकारके अल्पदान—बैठनेका स्थान, पैर धोनेका जल, बैठनेके लिये कुशासन, पादप्रक्षालन, शरीरमें लगानेके लिए तैलदान, घरमें स्थानदान, सोनेके लिए शय्याका प्रबन्ध कर देना, यथाशक्ति खाद्यवस्तु प्रदान, अतिथिको बिना खिलाये आप खा न लेना, अतिथिके जाने पर उसे आचमनके लिए मट्टी और जल देना ये नौ कार्य भी गृहस्थोंके लिए अवश्य कर्त्तव्य हैं। ये कार्य भी सुधास्वरूप माने गए हैं।

९ कर्म—प्रतिदिन यथासमय सन्ध्यानुष्ठान, स्नान, जप, होम, वेदपाठ, देवपूजा, बलिवैश्व, अतिथिसेवा, पितृलोक, देवगण, मनुष्यगण, दरिद्र व्यक्ति, तपस्विगण और अन्यान्य गुरुजनोंको यथायोग्य विभाग कर देना ये नौ गृहस्थोंके नित्यकर्त्तव्य कर्म हैं। इसका नाम नौकर्म है। जो ये नौ कर्मानुष्ठान करते हैं, उन्हें इस लोकमें कीर्त्ति और धर्म प्राप्त होता है।

नौ विकर्म—मिथ्या-वाक्यप्रयोग, परस्त्रीगमन, अभक्ष्य वस्तुभक्षण (गोमांस आदि), अगम्यागमन, अपेय पान, चौर्य, जीवहत्या, अकार्यानुष्ठान और बन्धुजनोंके साथ अकर्त्तव्य कार्य इन नौ कर्मोंका नाम विकर्म है जो गृहस्थोंके लिए निषिद्ध बतलाया गया है।

नौ गुप्तकार्य—मनुष्यकी परमायु, धन, गृहच्छिद्र, मन्त्रणा, मैथुन, औषध, तपस्या और सम्मानप्राप्ति ये नौ गृहस्थोंके गुप्त कार्य हैं अर्थात् ये नौ कार्य छिपके करने चाहिए।

नौ प्रकाश्य कर्म—आरोग्य, ऋणदान, अध्ययन, निज वस्तुविक्रय, कन्यादान, वृषोत्सर्ग, अनेक लोगोंका अज्ञात पापप्रकाश और जनताके सामने निन्दनीय न होना, ये नौ गृहस्थोंके प्रकाश्यकर्म हैं।

नौ सफलकर्म—माता, पिता, अन्यान्य गुरुजन, बन्धुगण, विनीत व्यक्ति, उपकारी व्यक्ति, दरिद्र मनुष्य, अनाथ लोक और विशिष्ट व्यक्तिको जो दान दिया जाता है वह सफल कर्म समझा जाता है।

नौ विफलकर्म—धूर्त्त, स्तुतिवादक, मूर्ख, अनभिज्ञ, चिकित्सक, कितव, वञ्चक, चाटुकार, चारण और चोरगण इन्हें दान देनेसे कोई फल नहीं होता है, इसीसे इसे विफलकर्म कहते हैं।

नौ अदेयवस्तु—याचनालब्ध, गच्छित, बन्धकी, स्त्री, स्त्रीधन, निक्षेप, उत्तराधिकारसूत्रसे घरमें आगत धनसर्वस्व और साधारण सम्पत्ति इन्हें आपद्‌कालमें भी दान नहीं कर सकते। जो कोई मोहवश करता है, उसे प्रायश्चित्त लेना उचित है।

इन नौ नवां इक्यासी कर्मोंको नवनवक कहते हैं। नवनवकवेत्ता मनुष्यके साथ लक्ष्मी इस लोकमें और परलोकमें हमेशा साथ रहती हैं। जो इस नियमका पालन करते हैं, उन्हें सुख सम्पत्ति प्राप्त होती है और मरने पर वे स्वर्गलोकको जाते हैं। (दक्षसंहिता ३ अ०)

नवनवति (सं० स्त्री०) नवाधिका नवतिः। १ एकोनशत संख्या, निनानवेकी संख्या, ९९। २ तत्संख्यक, वह जिसमें निनानवे संख्या हो।

नवनाड़ीचक्र (सं० क्लो०) नवनक्षत्रयुक्त नाड़ीचक्रम् । चक्रभेद, राजाओंका नवनक्षत्रयुक्त और वक्ररेखात्मक चक्र ।

नवनिध—एक हिन्दी कवि । इनकी गणना उत्तम कवियोंमें की जाती थी । इनकी कविता सरस तथा मधुर होती थी । उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं—

"म्हारो मन मोहोजी बैन बजाय ।
सुनत कामकी पीर उठत है निशिदिन कछु न सुहाय ॥
दिन नहीं चैन रैन नहीं निद्रा तलफत जिय अकुलाय ।
मेरो कह्यो तू मान सखीरी ब्रजनिधे वेग बुलाय ॥"

नवनिधि (सं० स्त्री०) निधि देखो ।

नवनिधि—हिन्दीके एक कवि । इनकी कविता अत्यन्त मधुर होती थी ।

नवनी (सं० स्त्री०) नवं नीयते इति नी-ड, ततो गौरादित्वात् ङीष् । नवनीत, मक्खन ।

नवनीत (सं० क्लो०) नवं नीयतेऽनेन, नव-नी-क्त । १ गव्यविशेष, मक्खन । पर्याय—दधिज, सार, हैयङ्गवीनक । सामान्य गुण—शीतल, वर्णप्रसाधक और बलकारक, सुमधुर, वृष्य, संग्राहक, कफ और रुचिकारक; वात, सर्वाङ्गशूल, कास और श्रमनाशक, सुखकर, कान्ति-पुष्टिप्रद, चक्षुका हितकर और समस्त दोषनाशक है ।

नवोद्धृत गाय और भैंसका मक्खन बालक तथा वृद्ध दोनोंके लिये प्रशस्त है । यह बलकारक और वातवर्द्धक माना गया है । भैंसका मक्खन कषाय, मधुर, शीतल, बलकारक, वल्य, ग्राही, पित्तनाशक और तुन्दद है ।

बकरीके मक्खनका गुण—क्षयकाश, नेत्ररोग और कफनाशक; दीपन तथा बलकारक है । भेंड़ोके मक्खन-का गुण—शीतल, लघु, योनिशूल, कफ, वात और गुद-शूलमें हितकर है । जङ्गली भेंड़ोके मक्खनका गुण—क्लिष्ट गन्धयुक्त, शीतल, मेधानाशक, गुरु, पुष्टि और स्थौल्य-कारक तथा मन्दाग्निदीपन है । हथनीके मक्खनका गुण—कषाय, शीतल, लघु, तिक्त, विष्टम्भि, जन्तु, पित्त, कफ और क्रिमिनाशक है । घोड़ेके नवनीतका गुण—कषाय, कफ और वातनाशक, चक्षुका हितकर, कटु, उष्ण, ईषद वातनाशक है । गदहीके नवनीतका गुण—कषाय, कफ और वातनाशक, बलकर, दीपक, पाकमें लघु और मूत्रदोषनाशक है । ऊटनीके नवनीतका गुण—पाकमें शीतल, व्रण, क्रिमि, कफ और मलदोष-नाशक है । नारीके नवनीतका गुण—रुचिकर, पाकमें लघु, चक्षुका हितकर, दीपक और विषनाशक है । दूध मथ कर जो नवनीत तैयार होता है, वह चक्षुके लिए विशेष उपकारी और रक्तपित्तनाशक, स्निग्ध, मधुर, ग्राही, शीतल, वल्य और वृष्य है ।

प्रस्तुत प्रणाली ।—साधारणतः प्रायः इसी प्रकारसे नवनीत तैयार करते देखा जाता है । पहले पहले दूधको उबाल कर उसे एक अम्लसंयुक्त बर-तनमें छोड़ते हैं । एक दो दिनके बाद उस दहीको मथनेसे सार भाग नवनीत ऊपर उठ आता है और जो असारभाग रह जाता है, वह मट्ठा कहलाता है । उस उद्धृत नवनीतको विशुद्ध जलमें कुछ काल तक रखनेसे वह खूब सख्त हो जाता है । बिना उबाले हुए दूधको मथनेसे भी नवनीत तैयार होता है । इस प्रकार दूधका जो असार भाग रह जाता है, वह किसी काममें नहीं आता । कोई कोई ग्वाला कच्चे दूधसे थोड़ा मक्खन निकाल कर उस दूधको उबाल लेता है और दही जमाता है । वह दही खानेमें स्वादिष्ट नहीं होता । कोई कोई मक्खन निकाले हुए दूधको थोड़े मोलमें बेच लेते हैं । एक और प्रकारसे नवनीत तैयार करते हैं । पहले दूधको उबाल कर उसमें छाली जमने देते हैं । बाद इसी तरह तीन चार दिनकी छालीको एक साथ पीस कर सामान्य जलमें मिला देते हैं । पीछे उसे मथनेसे सार भाग नवनीत ऊपर उठ आता है । तदनन्तर उसे एक दो दिन तक जलमें छोड़ कर कठिन बना लेते हैं । इस प्रकार छालीके मक्खनसे जो घी बनता है उसकी गन्ध और दूसरे प्रकारसे प्रस्तुत घीकी अपेक्षा कहीं अच्छी होती है ।

नवनीतका विषय भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है—मृक्षण, सरज, हैयङ्गवीन और नवनीतके पर्यायक शब्द हैं ।

गव्य नवनीत—हितजनक, पुष्टिकारक, वर्णप्रसादक, बलकारक, अग्निवर्द्धक, धारक, वायु, रक्तपित्त, क्षय, अर्श, अर्दित वायु और कासनाशक है । नवनीत बालक और वृद्ध दोनोंके लिए उपकारी है, छोटे बच्चोंके लिए वह अमृतके समान फलप्रद है ।

महिष नवनीत—वायुवर्धक, कफकारक, गुरु, मेदोवर्धक, शुक्रजनक और दाह, पित्त तथा श्रमनाशक है।

दुग्धोद्भूत नवनीत—चक्षुका हितकारक, रक्तपित्तनाशक, शुक्रवर्धक, बलकारक, अतिशय स्निग्ध, मधुररस, धारक और शीतवीर्य है।

सद्य उद्धृत नवनीत—मधुररस, धारक, शीतवीर्य, लघु और मेधाजनक होता है। मट्ठेका कुछ अंश रह जानेके कारण उसका स्वाद कसैला लिए कुछ खट्टा होता है।

बहुत दिनका नवनीत—गुरु, क्षारसंयुक्त और कटु होता है। अम्लरस रहनेसे यह वमि, कुष्ठरोग, कफ और मेदको वृद्धि करता है। (भावप्र० द्वितीय भाग)

सुश्रुतमें नवनीतका गुण इस प्रकार लिखा है—सद्योजात नवनीत लघु, कोमल, मधुर, कषाय, कुछ अम्ल, शीतल, पवित्र, अग्निवृद्धिकर, सुखप्रिय, मलमूत्रसंग्राहक, वायुपित्त-दमनकारी, तेजस्कर, अविदाही और क्षयकाश, श्वास, व्रण तथा अर्शरोगका शान्तिकर, कफ और मेदवर्धक, बल और पुष्टिकर तथा शोषरोगनाशक है। यह बालकोंके लिए विशेष उपकारी है। कच्चे दूधसे जो मक्खन बनता है, वह अत्यन्त स्निग्धकर, मधुर, शीतल, कोमलता सम्पादक, चक्षुका दीप्तिकर, मलसंग्राहक, रक्तपित्त और चक्षुरोगका शान्तिकर तथा चक्षुप्रसादक है। (सुश्रुत) २ शैलज्या।

नवनीतक (सं० क्ली०) नवनीतात् कायति प्रकाशते कै-क। १ घृत, घी। नवनीत स्वार्थे कन्। २ नवनीत, मक्खन। ३ गन्धक।

नवनीतगणप (सं० पु०) पुराणानुसार एक गणेश या गणपतिका नाम।

नवनीतज (सं० क्ली०) घृत, घी।

नवनीतधेनु (सं० स्त्री०) नवनीतेन कृता धेनुः मध्यपदलोपी कर्मधा०। दानार्थ कृत नवनीतमय धेनुविशेष, दानके लिए एक प्रकारकी कल्पित गौ जिसकी कल्पना मक्खनके ढेरमें की जाती है। बराहपुराणमें इसका विवरण इस प्रकार लिखा है—

पहले जिस स्थान पर यह धेनु दान करनी होती है, उस स्थानको गोबरसे परिष्कार कर लेते हैं। पीछे उस परिष्कृत भूमि पर मृगचर्मके ऊपर नवनीतका बड़ा रखते हैं। नवनीत दो सेरसे कम नहीं होना चाहिये। नवनीतके चतुर्थांशसे एक बछड़ेकी कल्पना करते हैं जिसे उत्तर दिशामें खड़ा कर देते हैं। बाद एक धेनुको कल्पना करते हैं। इसके सींग सोनेके, चक्षु मणि और मुक्ताके, जिह्वा गुड़की, दोनों ओष्ठ पुष्पके, दांत फलके, स्तन नवनीतके, दोनों पैर ईखके, पीठ तांबेकी, पश्चात् कांसेका और खुर चांदीके बने होते हैं। धेनुके साथ चार तिलके पात्र रख देते हैं। बाद चारों ओर दीप जला कर और दो वस्त्रोंसे उस धेनुको ढंक कर निम्नलिखित मन्त्रसे वेदविद् ब्राह्मणको दान देते हैं। मन्त्र—

"पुरा देवासुरैः सर्वैः सागरस्य तु मन्थने।
उत्पन्नं दिव्यममृतं नवनीतमिदं शुभम्॥
आप्यायनश्च भूतानां नवनीत नमोऽस्तु ते॥"

इस प्रकार नवनीत धेनु दान करके तीन दिन तक होम करना होता है। जो यथाविधि यह धेनु दान करते हैं, वे समस्त पापोंसे रहित हो कर शिवसायुज्यताको प्राप्त होते हैं और कल्पान्त तक विष्णुलोकमें वास करते हैं। जो यह धेनु दान करतेदेखते हैं वा इसका वृत्तान्त सुनते हैं अथवा दूसरे मनुष्यको सुनाते हैं, वे सब पापोंसे विमुक्त होते हैं। (वराहपु०)

नवनीतोद्भव (सं० क्ली०) १ दधि, दही। २ घृत, घी।

नवनेन्द्रिकुल—एक पार्वत्य देश। राजेन्द्रचोलदेवने अपने राज्यकालके ७वें और १०वें वर्षके भीतर इसे फतह किया था। इस स्थानको जीत कर वे चालुक्यराज तृतीय जयसिंहको जीतने गये थे।

नवन्दगढ़—एक भग्न दुर्ग जिसकी ऊंचाई ६२ हाथकी है। यह लावरिया नामक ग्रामके निकट अवस्थित है। यहांसे गण्डकी नदी केवल पांच मीलकी दूरी पर है। प्राचीन भग्नावशेषोंमेंसे एक सुन्दर प्रस्तरस्तम्भ है। उस स्तम्भके ऊपर एक सिंहकी मूर्त्ति है और गात्रमें अशोकको आदेशावली खोदी हुई है। यहां मट्टीके अनेक स्तूप देखनेमें आते हैं। बहुतोंका अनुमान है, कि वे सब स्तूप बौद्धधर्मके अभ्युदयके पूर्वतन राजाओंके समाधिस्थान निर्देशक हैं। यहां बौद्धलोगोंके पत्थर और ईंटोंके बने अनेक स्तूप हैं।

नवप—युएनचुवङ्गके भ्रमणवृत्तान्तमें इस राज्यका उल्लेख है। निमो देशमें पर्यटन कर वे प्रायः एक हजार लोग उत्तर-पूर्वका रास्ता ले कर इस राज्यमें आए थे। यह नवपुर शब्दका अपभ्रंश है। इस राज्यको लिवल्यान वा शेनशेन भी कहते हैं। यहांके लोग जंगली स्वभावके हैं, आचार-व्यवहार भी जङ्गली-सा है।

नवपञ्चम (सं० पु०) नव च नवमञ्च पञ्चमञ्च यत्र योगे। विवाहाङ्गराशि कूटभेद। नवपञ्चम देख कर विवाह स्थिर करना उचित है। यदि वरराशिकी अपेक्षा कर कन्याके नवम और पञ्चम स्थानकी राशि हो तथा कन्याकी राशिकी अपेक्षा कर यदि वरको राशि नवम वा पञ्चम स्थानमें हो अर्थात् वरकी राशिसे कन्याकी राशि नवम और कन्याकी राशिसे वरकी राशि ५म स्थानीय हो, तो यह नवपञ्चमयोग होता है। इस योगमें यदि विवाह हो, तो मङ्गलदायक नहीं होता, सन्तान हानि होती हैं।

नवपञ्चाशत (सं० स्त्री०) नवाधिका पञ्चाशत्। संख्या विशेष, उनसठकी संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है, ५८।

नवपत्रिका (सं० स्त्री०) नवमिता पत्रिका। कदली आदि नौ पदार्थ।

केला, अनार, धान, हल्दी, मानकचु, कचू, बेल, अशोक और जयन्ती इन नवोंका नाम नवपत्रिका है। इस नवपत्रिकाका दूसरा नाम नवदुर्गा वा नवपत्रिकावासिनी दुर्गा है। दुर्गापूजामें नवपत्रिका स्थापन करके इसकी पूजा करनी होती है।

आश्विनकी शुक्लासप्तमीको पूर्वाह्णमें नवपत्रिका प्रवेश अर्थात् स्थापित करना होता है। यदि इस सप्तमी तिथिको मूलानक्षत्र पड़े, तो वह दिन बहुत प्रशस्त माना जाता है। नक्षत्रका योग नहीं होने पर भी सप्तमी तिथिको नवपत्रिका प्रवेश कर सकती हैं। दोनों दिन यदि सप्तमी तिथि पड़े, तो दूसरे दिन पत्री-प्रवेश होगा। क्योंकि पूर्वाह्ण समय ही पत्री-प्रवेशके लिये शुभ है।

पूर्वाह्ण छोड़ कर जिस किसी समयमें पत्रीप्रवेश वा विसर्जन किया जाय, वह अनिष्टप्रद होता है।

''पत्रीप्रवेशनं रात्रौ विसर्गः वा करोति यः।
तस्य राज्यविनाशः स्याद् राजा च विकलो भवेत्॥''

(तिथितत्त्व)

यदि कोई रातको पत्रीप्रवेश वा विसर्जन करे, तो उसका राज्य नष्ट होता है। मूलानक्षत्रके अनुरोधमें यदि कोई सप्तमीमें न कर केवल मूलानक्षत्रमें पत्रीप्रवेश करे, तो उसे चारों ओरसे आपत्तियां घेर लेती हैं। सप्तमी तिथिमें ही पत्रीप्रवेश करना चाहिये, मूलानक्षत्र भी इसके लिये प्रशस्त माना गया है।

यह नवपत्रिका जिसका जैसा कुलाचार है, तदनुसार देवीकी बाईं या दाहिनी ओर स्थापित करते हैं।

इस नवपत्रिकावासिनी दुर्गाको 'कला बहु' और कोई गणेशकी स्त्री बतलाते हैं, लेकिन यह बिलकुल भूल है।

नवपत्रिकाकी स्थापना करके विहित मन्त्र द्वारा यथाविधि स्नान करा कर पूजा करनी चाहिये।

नवपत्रिकाकी उत्पत्तिके विषयमें ऐसा लिखा है—

देवीने रम्भाके रूपमें सर्वत्र शान्ति स्थापना की थी, इसीसे रम्भा नवपत्रिकामें एक है। इसकी अधिष्ठात्री देवी ब्राह्मणी है।

"दुर्गे देवि समागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय।
रम्भारूपेण सर्वत्र शान्तिं कुरु नमोऽस्तु ते॥"

महिषासुरके साथ युद्धकालमें देवीने कचीका रूप धारण किया था, इसीसे कची नवपत्रिकाकी द्वितीय है।

''ओं महिषासुरयुद्धेषु कच्चीभूतासि सुव्रते।
मम चायुर्प्रदानार्थाय आगतासि हरिप्रिये॥''

इसकी अधिष्ठात्रीदेवी कालिका है। उमाने हल्दीका रूप धारण किया था, इसलिये हल्दी तृतीय है। इसकी अधिष्ठात्री देवी दुर्गा है।

"ओं हरिद्रे वरदे देवि उमारूपासि सुव्रते।
मम विघ्नविनाशाय पूजां गृह्ण प्रसीद मे॥"

निशुम्भशुम्भके युद्धमें जयन्तीकी पूजा की गई थी, इसीसे जयन्ती चतुर्थ है। इसकी अधिष्ठात्री देवी कार्त्तिकी है।

''ओं निशुम्भशुम्भमथने सेन्द्रैर्देवगणैः सह।
जयन्ति! पूजितासित्वमस्माकं वरदा भव॥''

बिल्ववृक्ष महादेव है और वासुदेव तथा पार्वतीका

प्रिय है, इसीसे बिल्ववृक्ष पञ्चम है। इसकी अधिष्ठात्री देवी शिवानी हैं।

"ओं महादेवप्रियकरो वासुदेवप्रियः सदा।
उमाप्रीतिकरो वृक्षो बिल्ववृक्ष नमोऽस्तु ते॥

रक्तबीजके युद्धमें दाड़िमीने उमाको सहायता की थी, इसीसे दाड़िमी षष्ठ है। इसकी अधिष्ठात्रीदेवी रक्तदन्तिका है।

"ओं दाड़िमि त्वं पुरा युद्धे रक्तबीजस्य सम्मुखे।
उमाकार्यं कृतं यस्मादस्माकं वरदा भव॥"

अशोक महादेवका अत्यन्त प्रिय और शोकनाशक है, इसीसे यह वृक्ष सप्तम है।

"ओं हरप्रीतिकरो वृक्षोऽशोकः शोकनाशनः।
दुर्गाप्रीतिकरो यस्मादस्माकं वरदा भव॥"

मानपत्रमें देवी वास करती हैं, इसीसे मान अष्टम है।

"ओं यस्य पत्रे वसेद्देवी मानवृक्षः शचीप्रियः।
मम चानुग्रहार्थाय पूजां गृह्ण प्रसीद मे॥"

जगत्‌की प्राणरक्षाके लिये ब्रह्माने धान्यवृक्ष निर्माण किया था, इसीसे यह नवम है, इसकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी हैं।

"ओं जगतः प्राणरक्षार्थं ब्रह्मणा निर्मितं पुराः।
उमाप्रीतिकरं धान्यं तस्मात्त्वं रक्ष मां सदा॥"

जिन सब वृक्षोंके नाम कहे गये हैं, उन सभी वृक्षोंकी अधिष्ठात्री देवी न पत्रिकावासिनी दुर्गा हैं।

नौ द्रव्य द्वारा तथा नौ मन्त्रोंसे नवपत्रिकाको स्नान करना चाहिये। मन्त्र यथा—

"ओं कदलीतरुसंस्थासि विष्णोर्वक्षःस्थलाश्रये।
नमस्ते नवपत्रित्वं नमस्ते चण्डनायिके॥१॥
ओं कच्चि त्वं स्थावरस्थासि सदा सिद्धिप्रदायिनी।
दुर्गारूपेण सर्वत्र स्नानेन विजयं कुरु॥२॥
ओं हरिद्रे हर रूपासि शङ्करस्य सदा प्रिये।
हररूपेण देवि त्वं सर्वशान्तिं प्रयच्छ मे॥३॥
जयन्ती जयरूपाणि जगतां जयकारिणी।
स्नापयामीह देवि त्वं जयं देहि गृहे मम॥४॥
ओं श्रीफलश्रीनिकेतोसि सदा विजयवर्द्धनः।
देहि मे हितकामंश्च प्रसन्नो भव सर्वदा॥५॥
दाड़िम्यस्य विनाशाय क्षुन्नाशाय च वैसदा।
निर्मिताफलकामाय प्रसीद त्वं हरिप्रिये॥६॥
स्थिरा भव सदा दुर्गे अशोके शोकहारिणी।
मायात्वं स्थापिता दुर्गे मोमशोकं सदा कुरु॥७॥
ओं मानोमानेषु वृक्षेषु माननीयः सुरासुरैः।
स्नापयामि महादेवि मानं देहि नमोस्तु ते॥८॥
ओं लक्ष्मीस्त्वं धान्यरूपाणि प्राणिनां प्राणदायिनी।
स्थिरात्यन्तं हि नो भूत्वा गृहे कामप्रदा भव॥९॥"
(दुर्गोत्सवपद्धति)

इन नौ मन्त्रोंसे नवपत्रिकाका स्नान कराना होता है। दुर्गा-पूजाके समय नवपत्रिकापूजा होती है। कहीं कहीं कोजागरी लक्ष्मीपूजाके साथ भी नवपत्रिकापूजा होती है।

नवपद (सं० पु०) जैनियोंके उपास्य नवमूर्ति भेद, एक प्रकारकी मूर्त्ति, जिसकी उपासना जैन लोग करते हैं।

नवपद (सं० क्ली०) मात्रावृत्त वृत्तभेद, मात्रावृत्त नामका एक छन्द।

नवपदी (सं० स्त्री०) चौपाई या जनकरी छन्दका एक नाम। चौपाई देखो।

नवपाठक (सं० पु०) नूतनाध्यापक, नया शिक्षक।

नवपाल—भविष्यब्रह्मखण्डोक्त वङ्गदेशान्तर्गत वरद देशका एक ग्राम। यह मेघना नदीके किनारे अवस्थित है।

ब्रह्मखण्डमें लिखा है कि इस नवपालके निकटवर्त्ती कपिलेश्वर मन्दिरमें एक शिवरात्रिको नरनारी उपवास जागरण करेगी। उसे देख कर यदि मन्दिरके ब्राह्मण कामातुर हो जायँगे, तो शिवके क्रोधसे सभी ब्राह्मण मारे जायँगे। (भ० ब्रह्मखण्ड० १८।४५-५६)

नवप्राशन (सं० क्ली०) नवस्य नवान्नस्य प्राशनम्। नवान्नभोजन, नया अन्न या फल आदि खाना।

नवफलिका (सं० स्त्री०) नवं फलं यस्याः कापि अत इत्वं। १ नव्या, युवा स्त्री, नवयौवना। २ नवजातवयस्का स्त्री, वह स्त्री जो हालमें पहले पहल रजस्वला हुई हो।

नवभक्ति (सं० स्त्री०) नवधाभक्ति देखो।

नवभाग (सं० पु०) १ राशिका नवम भाग, त्रिशांशकात्मक राशिका नवम भाग। नवांश देखो। २ नवम भाग मात्र, नवाँ भाग।

नवम (सं० त्रि०) नवानां पूरणः डट् । १ नव संख्याका पूरण, जो गिनतीमें नौके स्थानमें हो, नवां । (पु०) २ लग्नसे अधिक नवम राशि । इस नवमस्थानको जन्मस्थान कहते हैं ।

नवमल्लिका (सं० स्त्री०) नवा नूतना सुत्या वा मल्लिका । १ नवमालिका पुष्प, चमेली । २ नेवारी ।

नवमालिका (सं० स्त्री०) नवा नूतना मालिका मल्लिका पुष्पम् । १ नवमल्लिकापुष्प, चमेली । इस फूलमें अच्छी गन्ध है । लोग इसे वसन्ती, नेवारी या नेवार भी कहते हैं ।

इसका अंग्रेजी नाम Jasminum Sambac है । पर्य्याय—अतिमोदा, ग्रैष्मी, ग्रीष्मोद्भवा, सप्तला, सुकुमारी, सुरभि, शुचिमल्लिका, सुगन्धा, शिखरिणी, नवाली, भद्रवर्मा, देवलता, गन्धनिलया, मालिका, नवमल्लिका । यह अति शैत्य, सुरभि और रोगनाशक माना गया है । २ छन्दोविशेष, एक वर्णवृत्तका नाम । इसके प्रत्येक चरणमें नगण, जगण, भगण और यगण होता है । कोई कोई इसे नवमालिनी भी कहते हैं ।

नवमालिनी(सं० स्त्री०) नवमल्लिका देखो ।

नवमी (सं० स्त्री०) नवम टित्वात् ङीप् । तिथिविशेष, चान्द्र मासके किसी पक्षकी नवीं तिथि । नवमकला-क्षयात्मक तिथिका नाम कृष्णानवमी और नवमकलावर्द्ध-नात्मक तिथिका नाम शुक्लानवमी है ।

नवमी-व्यवस्था—धार्मिक कार्य्योंके लिये अष्टमी-विद्धा नवमी ग्राह्य होती है अर्थात् जिस दिन नवमीका अष्टमीके साथ योग रहेगा, उसी दिन धार्मिक कार्य होंगे । क्योंकि नवमीके साथ अष्टमीका युग्मादर है । पद्मपुराणके निम्नलिखित वचनानुसार भी अष्टमीविद्धा नवमी ग्राह्य है ।

"अष्टम्या नवमी विद्धा नवम्या चाष्टमीयुता ।
अर्द्धनारीश्वरप्राया उमामहेश्वरी तिथि ॥"
(कालमाधवीयधृत पद्मपुराणवचनम्)

माघमासकी शुक्ला नवमीका नाम महानन्दा है । यह नवमी मनुष्योंको अत्यन्त आनन्ददायिनी है । इस दिन स्नान, दान, जप, होम, देवार्चन, उपवास जो कोई धर्मकार्यानुष्ठान किया जाय, वह अक्षय होता है ।

"माघमासे तु या शुक्ला नवमी लोकपूजिता ।
महानन्देति सा प्रोक्ता महानन्दकरी नृणाम् ॥
स्नानं दानं जपो होमो देवार्चनमुपोषणम् ।
सर्वं तदाक्षयं प्रोक्तं यदस्यां क्रियते नरैः ॥" (तिथितत्त्व)

नवमी तिथिसे ले कर नौ वर्ष तक पिष्टेतर भोजन-निवृत्ति है अर्थात् पिष्ट द्रव्यके सिवा अन्य कोई द्रव्य खाना निषेध है । यह नवमी व्रत करनेसे पार्वती बहुत प्रसन्न होती हैं और उसके सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं ।

इस व्रतका सङ्कल्प इस प्रकार किया जाता है, "अद्येत्यादि नवम्यां तिथावारभ्य नववर्षाणि यावत् प्रतिशुक्ल-नवम्यां पिष्टेतरभोजननिवृत्तिव्रतमिति संकल्पे विशेषः ।"
(तिथितत्त्व)

कार्त्तिकमासकी शुक्लानवमीमें जगद्धात्रीपूजा करनी चाहिये । उस दिन प्रातः, मध्याह्न और सायं इन तीनों कालमें पूजा करनेका विधान है ।

तन्त्रके मतानुसार कार्त्तिककी शुक्लानवमीके दिन प्रथम त्रेतायुगोत्पत्ति हुई थी और उसी दिन पहले पहल जगद्धात्रीका पूजन हुआ था । (उत्तरकामाख्यत० ११ पटल)

नवयज्ञ (सं० पु०) नवधान्यनिमित्तः यज्ञः । नवान्न निमित्तक यज्ञ, वह यज्ञ जो नये अन्नके निमित्त किया जाय ।

नवयुवक (सं० पु०) तरुण, नौजवान ।

नवयुवा (सं० पु०) तरुण, जवान ।

नवयोनिन्यास (सं० पु०) तन्त्रसारोक्त न्यासभेद, तन्त्रके अनुसार एक प्रकारका न्यास । यह न्यास बीजमन्त्र द्वारा तीन बार करके करना होता है । पहले दोनों कानोंमें, पीछे चिबुकमें और उसके बाद गण्ड, नेत्र, नासिका, जठर, कुहनी, कुक्षि, जानुद्वय, मूर्द्धा, पादद्वय, गुह्यदेश, पार्श्व-द्वय, हृदय, स्तनद्वय और कण्ठदेश इन सब स्थानोंमें मूल मन्त्रका तीन बार न्यास करनेसे नवयोनिन्यास होता है ।

नवयौवन (सं० क्ली०) नवं यौवनं । अभिनव यौवन, तरुण, जवान ।

नवयौवना (सं० स्त्री०) नवं यौवनं यस्याः । युवती, अभिनव यौवनवती स्त्री, वह स्त्री जिसके यौवनका आरम्भ हो, नौजवान औरत ।

नवरंग (हिं० वि०) १ सुन्दर, रूपवान्, नई छटा वाला । २ नई शोभायुक्त, नये ढंगका, नवेला ।

नवरंगी (हिं॰ वि॰) १ नित्य नए आनन्द करनेवाला। २ हँसमुख, रंगीली, खुशमिजाज।

नवरंगी (हिं॰ स्त्री॰) नारंगी देखो।

नवरङ्ग (सं॰ क्ली॰) नवं यस्मात्। कायस्थ मुख्य कुलीनोंका पञ्चदान और चतुर्थं दृप्तात्मक कुलविशेष।

नवरत्न (सं॰ क्ली॰) नवगुणितं रत्नं। १ नवविध माणिक्यादि रत्न, नौ प्रकारके मणिमाणिक्यादि रत्न मोती, पन्ना, मानिक, गोमेद, हीरा, मूंगा, पद्मराग, लहसुनिया और नीलम ये नौ प्रकारके मणियोंका नाम नवरत्न है।

भावप्रकाशमें हीरा, पन्ना, माणिक, पद्मराग, इन्द्रनील, गोमेद, वैदुर्य, मोती और मूंगा इन नौ रत्नोंको नवरत्न माना है। इनमें पांच महारत्न और चार उपरत्न हैं। वज्र, मोती, माणिक्य, नील और मरकत ये पांच महारत्न तथा गोमेद, पद्मराग, वैदुर्य और प्रवाल ये चार उपरत्न हैं। महारत्न और उपरत्नको मिलानेसे नवरत्न होता है। विष्णुधर्मोत्तरमें नवरत्नके नाम ये हैं—मुक्ताफल, हीरक, वैदुर्य, पद्मराग, पुष्पराग, गोमेद, नीलकान्त, पन्ना और मूंगा।

पुराणके अनुसार ये नौ रत्न अलग अलग एक एक ग्रहके दोषोंकी शान्तिके लिये उपकारी हैं। जैसे, सूर्यके लिये लहसुनिया, चन्द्रमाके लिये नीलम, मङ्गलके लिये माणिक, बुधके लिये पुखराज, वृहस्पतिके लिये मोती, शुक्रके लिये हीरा, शनिके लिये नीलम, राहुके लिये गोमेद और केतुके लिये पन्ना। २ राजा विक्रमादित्यकी एक कल्पित सभाके नौ पण्डित जिनके नाम ये हैं—धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शङ्कु, वेतालभट्ट, घटखर्पर, कालिदास, वराहमिहिर और वररुचि।

ये सब पण्डित एक ही समयमें आविर्भूत नहीं हुए हैं, बल्कि भिन्न भिन्न समयोंमें हुए हैं। लोगोंने इन सबको एकत्र करके कल्पना कर ली है कि ये सब राजा विक्रमादित्यकी सभाके नौरत्न थे। ३ एक प्रकारका हार जिसे गलेमें पहनते हैं और जिसमें नौ प्रकारके रत्न या जवाहिरात होते हैं।

नवरत्नदेवता (सं॰ पु॰) नौ रत्नोंके अधिष्ठातृदेवता।

नवरस (सं॰ पु॰) नवगुणितो रसः। अलङ्कारशास्त्रोक्त शृङ्गारादि नौ प्रकारके रस।

शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शान्त यही नौ रस हैं। काव्यप्रकाशके मतानुसार नाटकमें आठ रस होते हैं।

"अष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः।" (काव्यप्र॰)

किन्तु काव्यमें नौ रस होंगे, नाटकमें शान्तिरस शिष्टोंका अभिलषणीय नहीं है। प्रबोधचन्द्रोदय नाटक शान्ति-रसात्मक है, यह नाटक समप्रधान है, इसीसे यह भरतादिके नाट्यशास्त्रोंके विरुद्ध है।

नवरसमें नौ स्थायी भाव हैं, यथा—शृङ्गाररसमें रति, हास्यरसमें हास, करुणरसमें शोक, रौद्ररसमें क्रोध, वीररसमें उत्साह, भयानकरसमें भय, बीभत्स रसमें जुगुप्सा, अद्भुतरसमें विस्मय और शान्तिरसमें शम स्थायिभाव है। इस नवरससे स्थायिभाव, आलम्बन, विभाव, अनुभाव आदि वर्णित हैं। विशेष विवरण रस शब्दमें देखो।

नवरात्र (सं॰ क्ली॰) नवानां रात्रीणां समाहारः, तत्साधनत्वेनास्त्यस्येति अच्, वा नवभि रात्रिभिर्निर्वृत्तं। १ नय रात्र दिनसाध्य यज्ञभेद, एक प्रकारका यज्ञ जो नौ दिनमें समाप्त होता है।

ऐतरेय-ब्राह्मणमें भी इस यज्ञका विषय लिखा है।

२ नवरात्रसाध्य व्रतभेद, एक प्रकारका व्रत जो नौ दिनोंमें समाप्त होता है। आश्विनकी शुक्लाप्रतिपद्से लेकर नवमी तक यह दुर्गाव्रत किया जाता है।

यह प्रतिपद् यदि अमायुक्त हो, तो उस दिन इस व्रतका अनुष्ठान नहीं करते। द्वितीयायुक्त प्रतिपद् ही इसके लिए प्रशस्त है। दूसरे दिन यह तिथि यदि एक मुहूर्त्त भी रहे, तो उसी दिन नवरात्रव्रत आरम्भ होगा। निम्नलिखित वचनोंसे अमायुक्ता प्रतिपद निषिद्ध मानी गई है।

"अमायुक्ता न कर्त्तव्या प्रतिपद् पूजने मम।
मुहूर्त्तमात्रा कर्त्तव्या द्वितीयादि गुणान्विता॥"

(देवीपु॰, वामरतन्त्र)

"पूर्वविद्धा तु या शुक्ला भवेत् प्रतिपदाश्विनी।
नवरात्रव्रतं तस्यां नकार्यं शुभमिच्छता॥"

(मार्कण्डेयपु॰)

अमावस्या विद्धा प्रतिपद् तिथिमें यह व्रत करनेसे

अनेक प्रकारके अमङ्गल होते हैं। इस व्रतमें प्रतिपद्को घटस्थापन करके सवेरे देवीका आवाहन और पूजन करना होता है।

जो इस व्रतको करते हैं, उन्हें नो दिन तक केवल एक ग्रास खाना पड़ता है। रातको भूमिशयन, कुमारी, भोजन, प्रतिदिन वस्त्रादि दान, बलि और त्रिकालमें देवीका पूजन करना होता है।

"कन्यासंस्थे रवौ शक्र शुक्लामारभ्य नन्दिकां।
अयाची ह्यथ वैकाशी नक्ताशी वाथ वाग्वदः॥
भूमौ शयीत चामंत्रय कुमारीभेजयेन्मुदा।
वस्त्रालंकारदानैश्च सन्तोष्या प्रतिवासरम्॥
बलिश्च प्रत्यहं दद्यादोदनं मांसमाषवत्।
त्रिकालं पूजयेद्देवी जपस्तोत्रपरायणः॥" (देवीपु०)

जयन्तीत्यादि मन्त्र अथवा नवाक्षरमन्त्र द्वारा देवीको पूजा करनेका विधान है। इसमें सङ्कल्प करके घटस्थापन, यथाविधि देवीका आवाहन और षोड़शोपचारसे पूजन करते हैं। बाद माषभक्तबलि अथवा कुष्माण्डबलि दे कर कुमारीकी पूजा करते हैं।

देवीभागवतमें नवरात्रव्रतके विषयमें एक उपाख्यान दिया गया है तथा इसके कुछ नियम भी बतलाए गए हैं जो इस प्रकार हैं,—

पुराकालमें एक धनहीन दुःखी वणिक् कोशलराज्यमें रहता था। उसके अनेक परिवार थे। वह अत्यन्त धर्मशील था। कष्टसे जो कुछ वह प्रतिदिन उपार्जन करता था, उसमेंसे कुछ तो देवता, पितृ और अतिथियोंको समर्पण करता, बाद परिवारवर्गको खिलाता, पीछे जो कुछ बच जाता उसे आप खा लेता था। इस वणिक्का नाम था सुशील। चिन्ताग्रस्त हो कर एक दिन इसने किसी ब्राह्मणसे पूछा, 'भूदेव! ऐसा कौनसा उपाय है जिससे मेरी दरिद्रता दूर हो। मैं धनी होना नहीं चाहता; जिससे मेरे मानकी रक्षा हो, वही उपाय आप कृपया बतला दीजिए। मेरी सन्तान क्षुधातुर हो कर हमेशा रोती रहती हैं। घरमें उतना अनाज नहीं कि उन्हें भर पेट खिला सकूं।' इस पर ब्राह्मणने बहुत प्रसन्न हो कहा, 'यदि तुम अपनी दरिद्रता दूर करना चाहते हो, तो नवरात्रव्रतका अनुष्ठान करो। यह नवरात्रव्रत ज्ञान और मोक्षप्रद है, शत्रुनाशक है तथा सुख और सन्तान वृद्धिजनक है। पुराकालमें रामने सीताके विरहसे कातर हो इस व्रतका अनुष्ठान किया था। जिससे उनके सब प्रकारके दुःख दूर हो गए थे।'

वणिक्ने उस ब्राह्मणकी बात सुन कर उन्हें अपना गुरु बनाया और उनसे मायाबीज मन्त्र ग्रहण किया। पीछे उसने नवरात्रव्रतका अनुष्ठान किया। तदनन्तर नौ वर्ष बीत जाने पर देवी महेश्वरी दो पहर रातको उसके सामने प्रकट हुईं और उसे अनेक प्रकारके वर दिए। उस वरके प्रभावसे उस वणिक्ने नाना प्रकारको सुखसमृद्धिका भोग कर अन्तमें स्वर्गलाभ किया था।

जनमेजयने व्यासदेवसे जब नवरात्रका विषय पूछा था, तब व्यासदेवने यों कहा था, 'यह व्रत प्रीतिपूर्वक वसन्तकालमें अथवा शरत्कालमें ही कर्त्तव्य है। वसन्त और शरत् ये दो ऋतु यमदंष्ट्रा नामसे प्रसिद्ध हैं। ये दो ऋतुएं विशेषरूपसे अशुभ फल देती हैं। इसी कारण जो मनुष्य मङ्गलकी कामना करता हो, उसे यत्नपूर्वक उक्त दो ऋतुओंमें नवरात्रव्रतका अनुष्ठान करना चाहिए। शरत् और वसन्त ऋतुओंमें मनुष्य घोरतर रोगोंसे आक्रान्त रहते हैं, यहां तक कि उनके प्राण भी नष्ट हो जाते हैं। अतः इन सब रोगोंकी शान्तिके लिए भक्तिपूर्वक नवरात्रव्रतका अनुष्ठान करना मनुष्योंका एकान्त कर्त्तव्य है। प्रतिपद् तिथिमें समदेशमें विशुद्ध स्थान पर सोलह हाथका एक स्तम्भ और ध्वजसमन्वित एक मण्डल प्रस्तुत करे। देवीका पूजाकुशल ब्राह्मण द्वारा पूजन करावे और उन्हें प्रसन्न रखनेके लिए नौ, पांच, तीन वा एक ब्राह्मणसे चण्डीपाठ वा देवीपाठ भी करावें। इस प्रकार कार्यारम्भ हो जाने पर वेदीके ऊपर सिंहासन स्थापन करके उस पर आयुधविशिष्टा भुजचतुष्टयसम्पन्ना वा अष्टादशभुजा मुक्ताहार आदि सर्वाभरणविभूषिता, सर्वलक्षणाक्रान्ता सिंहोपरिसंस्थिता, शङ्खचक्रगदापद्मधारिणी देवीकी प्रतिष्ठा करे। यदि प्रतिमाका अभाव हो, तो उस सिंहासन पर पीठपूजार्थ नवाक्षरसंयुक्त मन्त्र और उसकी बगलमें पञ्चपल्लवसमन्वित कुम्भकी स्थापना करे। नाना प्रकारके उपहारोंसे देवीपूजा विधेय है। जो मांसभोजी हैं, वे देवीकी पूजामें

पशुहिंसा कर सकते हैं। पशु-बलिस्थानमें छाग और वन्य वराहका बलिदान ही उत्तमकल्प है। देवीके आगे जिन पशुओंका बलिदान दिया जाता है, वे स्वर्गलाभ करते हैं। यही कारण है, पशुघातीको इसका पाप नहीं लगता। याज्ञिकी हिंसा अहिंसा समझी जाती है। नवरात्र-व्रतमें होमके लिए परिमाणानुसार एक हाथसे ले कर दश हाथ तक त्रिकोणकुण्ड और त्रिकोण स्थण्डिल बनाना उचित है। इस व्रतमें कुमारीपूजा, वैभवानुसार प्रतिदिन एक एक अथवा एक एक वृद्धि करके वा नौ नौ करके कुमारीपूजा करनी चाहिए। कुमारीपूजाका नियम इस प्रकार है—एक वर्षकी कुमारीपूजा कर्त्तव्य नहीं है। दो वर्षसे ले कर दश वर्षकी कुमारीका पूजन उत्तम माना गया है। इनमेंसे दो वर्षकी कन्या ही कुमारी है, तीन वर्षकी त्रिमूर्त्ति, चार वर्षकी कल्याणी, पांच वर्षकी रोहिणी, छः वर्षकी कालिका, सात वर्षकी चण्डिका, आठ वर्षकी शाम्भवी, नौ वर्षकी दुर्गा और दश वर्षकी कन्या सुभद्रा कहलाती है। उमरके अनुसार उक्त नाम ले ले कर कुमारीपूजा की जाती है। हीनाङ्गी, कुष्ठरोगिणी, व्रणान्विता, दुर्गन्धदूषिताङ्गी और दुष्टकुलसम्भवा कुमारीका पूजन नवरात्रव्रतमें निषिद्ध माना गया है। जो कन्या जन्मान्धा, केकराक्षी, काणी, कुरूपा, बहुरोमान्विता, रोगिणी वा किसी प्रकारके यौवन-चिह्नयुक्ता वा अविवाहिता अथवा विधवाके गर्भसे उत्पन्न हुई हैं, वे कुमारी नहीं हो सकती। नवरात्रव्रतमें जो उपवास नहीं कर सकते, वे यदि सप्तमी अष्टमी और नवमी ये तीन उपवास करें, तो कामना सिद्ध होती है।

पृथ्वी पर जो कुछ व्रत और दान कर्म किये जाते हैं उन सबसे यह नवरात्रव्रत विशेष फलदायक है। इस व्रतके करनेसे धन, धान्य, सन्तानवृद्धि, सुखसमृद्धि, आयु, आरोग्य और मोक्ष मिलता है। (देवीभाग० ३।२४-२७ अ०)

जिस प्रकार बङ्गालदेशमें दुर्गोत्सव होता है, उसी प्रकार युक्तप्रदेश, राजपूताने, दक्षिणप्रदेश और उड़ीसामें नवरात्र उत्सव होता है। बङ्गालका दुर्गोत्सव आश्विनके शुक्लपक्षमें होता है, लेकिन नवरात्र सभी जगह आश्विनमासमें नहीं होता, कहीं तो आश्विनमें, कहीं चैत्रमें वासन्ती पूजाके समय होता है।

राजपूतानेमें चैत्र सुदी प्रतिपद् तिथिको नवरात्रोत्सव शुरू होता है और दशहरा अर्थात् विजयादशमीके उत्सवमें समाप्त होता है। असोज नामक स्थानमें ही यह व्रत बहुत समारोहसे किया जाता है। उदयपुरमें महारानाके घरमें इस समय तलवारकी पूजा होती है।

प्रथम दिन नगरके सुपुरुष नर तथा नारियां उद्यानविहार तथा भगवती गौरीके उद्देशसे स्तोत्रपाठ करती हैं और अपनेको अनेक प्रकारकी पुष्पमालाओं तथा पुष्पगुच्छोंसे सजा कर उद्यानमें आनन्द लूटती हैं। झूले पर झूलती और गान करती हैं। यह उत्सव समूचा दिन रहता है, पीछे शामको वे सबके सब अपने घर लौटती हैं। इसे कोई कोई "गौर्युत्सव" भी कहते हैं। लेकिन राजपूत लोग बोल चालमें इसे "गाङ्गोड़" कहते हैं।

सूर्यके मेषराशिमें संक्रमित होनेसे नगरके बहिर्देशसे गौरी और ईश्वरकी प्रतिमा बनानेके लिए मट्टी लाते हैं। प्रतिमाके तैयार हो जाने पर उसे सिंहासन पर प्रतिष्ठित करते हैं। मूर्त्तिके सामने एक जगह थोड़ा कोड़ कर उसमें जो बुन देते हैं। जब जौका पौधा कुछ बड़ा हो जाता है, तब स्त्रियां एक दूसरेका हाथ पकड़ती हुई, देवीके सामने जाती हैं और वहां नाच गान करती हैं। बाद वे जौके उन छोटे छोटे पौधेको उखाड़ कर घर लाती और अपने अपने स्वामी पुत्रको देती हैं। सम्भ्रान्त घरमें पारिवारिक प्रतिमा रहती है और कहीं नगरके बाहर जनसाधारणके लिए प्रतिमा प्रतिष्ठित की जाती है। पीछे एक दिन लोकयात्राका आयोजन होता है। देवदेवीको भलीभांति सजा कर किसी तालाबके किनारे ले जाते हैं। उदयपुर-महारानीकी प्रतिमाकी लोकयात्रा ही बहुत धूमधामसे सम्पन्न होती है। सुरूपा, मृगनयनी और नागिनी वेणीविशिष्टा युवतियां देवीकी सखीके रूपमें हाथोंमें चमर लिए आगे आगे चलती हैं। यात्राके पहले नगाड़ा बजता है और एक लिङ्गगढ़से तोपोंकी आवाज होती है। उस समय सब प्रतिमाको ले कर किसी निर्दिष्ट तालाबको और यात्रा करते हैं। महाराना स्वयं सामन्तोंके साथ नाव पर चढ़ कर वहां पहुंच जाते हैं। राहमें, घाट पर और अट्टालिकाओंकी छत पर दर्शकोंकी अपार भीड़ रहती है।

स्त्रियाँ फूलकी माला पहने हुई चलती हैं। सुसज्जित सिंहासन पर प्रतिमा वाहित होती है और उसके दोनों बगल रमणियां चामर डुलाती जाती हैं तथा सामने आशासोटा लिये स्त्रियां ही आगे आगे चलती हैं। घाट पर जब प्रतिमा पहुंच जाती है, तब महाराना पारिषद-के साथ नाव पर खड़े हो जाते हैं। घाटके जलके किनारे प्रतिमा रखनेके लिए एक सुन्दर मञ्च बना होता है। प्रतिमा जब मञ्च पर बैठाई जाती है, तब महाराना अपना आसन ग्रहण करते हैं। स्त्रियाँ एक दूसरेका हाथ पकड़ मूर्त्तिका प्रदक्षिण और साथ साथ ताली बजा बजा कर स्तोत्रपाठ करती हैं। सामन्तगण गान सुन कर अपने अपने वंशके गौरवसे उत्फुल्ल होते और शिर नीचे कर उन रमणियोंकी सम्बर्धना करते हैं। स्त्रियां भी शिर नीचे किये हुए वीरोंका प्रत्यभिवादन करती हैं। उत्सवके सभी कार्य्य स्त्रियों द्वारा ही किये जाते हैं। गौरी और ईश्वर अन्नपूर्णाके आकारमें बने होते हैं। प्रतिमा जब तक घाट पर रहती है, तब तक गौरीदेवी स्नान करती हैं, ऐसा उन लोगोंका विश्वास है। इसी कारण कोई पुरुष उस समय देवकार्य्यमें हाथ नहीं डालते, डालनेसे मृत्यु होती है, ऐसी सबोंकी धारणा है। कुछ समय बाद महारानाकी प्रतिमा राजभवनको लौटाई जाती है। उस समय महाराना दलबलके साथ नाव पर चढ़ घाटके नाना स्थानों-के अधिवासियोंका उत्सव देखने निकलते हैं। सप्तमी, अष्टमी और नवमी केवल तीन दिन ही इस प्रकारकी धूमधाम होती है। कर्णल टाड अनुमान करते हैं, कि "गङ्गा" और "गौरी" इन्हीं दो शब्दोंके संयोगविकारसे "गाङ्गोड़" शब्द निकला है। अष्टमीके दिन अशोकाष्टमी-का विशेष उत्सव होता है और नवमीके दिनको नव-रात्रिका विशिष्ट दिन समझ कर उस दिन होम किया जाता है। इस दिन सब कोई भगवतीको पूजा चढ़ाते हैं। इस दिन रामनवमीके लिए रामका जन्मोत्सव होता है। उदयपुरके राजप्रासादमें उसी दिन हाथी घोड़े आदि-को भलीभांति सजा कर तथा अस्त्र शस्त्रको परिष्कार कर उनकी पूजा करते हैं। विजयादशमीके दिन "दशहरा" होता है। इस दिन उदयपुरमें सैन्यपरिचालन और कृत्रिम युद्धाभिनय होता है।

पूनामें नवरात्र आश्विनमासमें होता है। प्रतिपद्से नवमी तक "नवरात्र" और दशमीको "दशहरा" उत्सव होता है। प्रभु नामक कायस्थोंमें बहुतसे ऐसे हैं, जो फलमूल खा कर नौ दिन बिताते हैं। नवमीके दिन होम होता है। इन दिनों विवाहिता कोङ्कणी-भाड़वल रम-णियां घर घर घूमती हैं और भगवतीके नाम पर करण्डमें भीख मांग लाती हैं। गृहस्थके घरोंमें इन दिनों सधवा वृद्धा करण्डकी पूजा करती हैं। इस पूजामें एक भाड़वल-दम्पतीको बुला कर सबके सामने खड़ा करते हैं और उनका करण्ड एक चौकीके ऊपर रखा जाता है। जो स्त्रियां पूजा करती हैं वे करण्डके ऊपर तेल, हल्दी और सिन्दूर लेप देती हैं, एक टिकुली भी साट दी जाती है। बाद वे अरवा चावलसे करण्डको भर कर उसकी आरती उतारती हैं। बाद भाड़वल रमणी पूजाकारिणीके कपाल पर तेल, हल्दी, सिन्दूर और टिकुली लगाती है। पुरुष लोग भी इस समय गृहस्थसे चावल और तेल आदि पा कर उन्हें आशीर्वाद देते हैं और शङ्ख बजा कर शुभ-की सूचना करते हैं। इस दिनके सिवा किसीके घरमें किसी उत्सवमें शङ्खध्वनि नहीं होती। उनका विश्वास है, कि दूसरे समय शङ्खध्वनि करनेसे लक्ष्मी भाग जाती हैं। कुमारी और सधवा इन दिनों एक दूसरेके घर हमेशा जाती आती हैं। जिसके घर वे जाती हैं उस घरकी रमणियां उन्हें बैठनेके लिए चटाई देती हैं और तेल, हल्दी, सिन्दूर, फूलकी माला और टिकुली आदिसे उनका स्वागत करती हैं। बाद जाते समय उनके अञ्चलमें मूढ़ी, सुपारी और पैसा बांध देती हैं।

दशहराके दिन कायस्थ लोग प्रातःस्नान कर गृहदेवता-की पूजा करते हैं। स्त्रियां आंगनमें मण्डल करके उसमें पञ्च पाण्डवोंके नाम पर पांच जगह गोबर एक पत्ते पर रखती हैं और उस पर फूल, सिन्दूर वा अबीर छिड़क देती हैं। जिनके घोड़े होते, वे उन्हें अस्तबलसे ला कर घरके सामने खड़ा करती हैं। बाद ये उनके गले तथा चारों पैरमें फूलकी माला पहना देती और पीठ पर शाल आदि बिछा देती हैं। तदनन्तर सधवा गृहकर्त्री दीप, नारियल, बतासा, सिन्दूर, अरवा चावल, पान, सुपारी और रजत-मुद्रा दे कर उनका वरण करती हैं। जिस रजतमुद्रा

द्वारा घोड़ोंको वरण किया जाता है वह अश्वपालकका होता है। अश्वपालकको रुपयेके अलावा पगड़ी और धोती भी मिलती है। इस दिन ये लोग मांस मिष्टान्नादि खूब खाते हैं। ग्रामकी रमणियां अपने पुत्रोंको साथ ले मन्दिर जाती हैं और पूजा चढ़ाती हैं। वहांसे लौट करके दरवाजे पर बैठती और स्वामीकी अपेक्षा करती है। स्वामीके आने पर वे उन्हें एक चौकी पर बिठा कर कपाल पर सिन्दूर लगातीं, मस्तक पर अरवा चावल छिड़कतीं, बताशा और नारियल खानेको देती हैं। तदनन्तर वे उनकी आरती उतारती हैं। स्वामी स्त्रीके हस्तस्थित पात्रमें २से १० रुपये तक देते हैं। बाद वे गृहदेवताके निकट जाकर रक्षित तलवार, बन्दूक, कलम, दवात, छूरी, शास्त्रग्रन्थ आदिकी पूजा करती हैं। इसी प्रकार नवरात्रिको नौ दिन तक भगवतीकी पूजा, होम, चण्डीपाठादि होते है और स्त्रियां हरिद्रादि गान और मङ्गलानुष्ठान करती हैं।

दाक्षिणात्य प्रदेशमें नवरात्रव्रतको ७ वैदिक ब्राह्मण व्रती होते हैं। इनमेंसे एक पौरोहित्य करते, दूसरे तन्त्रधारक होते, तीसरे ललितपारायणके अर्थात् अगस्त्य-कृत हयग्रीव मूर्त्तिका स्तोत्र प्रतिदिन तीन बार पढ़ते, चौथे ऋग्वेदोक्त मन्युसूक्त १०८ बार, पांचवें श्रीसूक्त १०८ बार, छठें महिम्नस्तोत्रपाठ और सातवें वैदिक ब्राह्मण पञ्चाक्षर शिवमन्त्र अर्थात् 'ओं नमः शिवाय' यह मन्त्र चार दिन तक बारह हजार बार पाठ करते हैं। देवीको षोड़शोपचारसे पूजा होती है। रातको पूजा समाप्त हो जाने पर १२ वेदगायक स्वस्तिपाठ करते हैं। स्वस्ति-पाठका नियम—छठीके दिन सामको पहले चित्ति, शिक्षा, ब्रह्मविद्या, भृगुवल्ली और नारायण उपनिषद्का प्रथमांश सप्तमीके दिन सामको मन्त्रपृष्ठ और 'अग्निहोत्रपदम्' तथा अष्टमीके दिन सामको पुरोडाशका प्रथमार्द्ध और नारायण उपनिषदका अवशिष्टांश, 'विश्व-रूपघन' एवं नवमीके दिन सन्ध्या समय 'अरुणम्', 'अपवदन्ति क्रमन्', यजुर्वेदीय ब्राह्मणके तृतीय अष्टकका प्रथम और द्वितीय 'पदम्', आरण्यकका प्रथम 'पदम्', सन्तमित मन्त्रका प्रथम अष्टकका द्वितीय 'पदम्', यथा-क्रम गान करते हैं। इस प्रकारके वेदगानका नाम है स्वस्तिवाचन। स्वस्तिगान शेष हो जाने पर आरती उतारी जाती है। पीछे मन्त्रपूर्वक साथ श्रीसूक्त और भू-सूक्तका पाठ करके पुष्पाञ्जलि देते हैं। इसके बाद पूजा शेष हो जाती है और अन्नका महानैवेद्य भोग लगता है। भोगके बाद व्रतीगण आहार करते हैं। दशमीके दिन ५० वैदिक ब्राह्मण आ कर निरन्नम करते हैं। ये सब ब्राह्मण पृथक् घरमें अन्नादि पाक करके देवीको भोग देते हैं। बाद सभी अपने अपने निर्दिष्ट स्थान पर बैठ, समस्वरसे वेदगान कर भोजनादि करते हैं। प्रायः सभी जगह इस नवरात्रव्रतमें पशुवलि नहीं होती। विजयनगरके महराजके घर तीन दिनमें तीन पशुवलि दी जाती है। इसमें तैलङ्गी ब्राह्मण शामिल नहीं होते, केवल उत्कल ब्राह्मण वलिकार्य कराते हैं।

महाराष्ट्रदेशसे ले कर दक्षिण भारतके ब्राह्मणोंमें वलि-दानकी प्रथा नहीं है। यह प्रथा केवल उत्कल देशसे ले कर पूर्व और उत्तर भारतमें प्रचलित है।

नवराष्ट्र (सं० क्लो०) उशीनर राजाका एक देश जिसे सह-देवने दक्षिणकी ओर दिग्विजय करते समय जीता था।

नवल (सं० पु०) १ नवीन, नूतन, नव्य, नया। २ सुन्दर। ३ नवयुवक, युवा, जवान,। ४ उज्ज्वल, शुभ्र, साफ।

नवल (अ० पु०) मालका किराया जो जहाजवालोंको दिया जाता है।

नवर्च (सं० क्लो०) नव ऋचो यत्र, अच् समासान्तः। नव ऋक्युक्त सूक्तभेद, एक प्रकारका सूक्त जिसमें नौ ऋक् होते हों।

नवल—लखनऊके उनाव जिलान्तर्गत एक प्राचीन जन-पदका विस्तृत भग्नावशेष। यह कल्याणी नदीके किनारे बाङ्गरमौसे एक कोस उत्तर पश्चिममें अवस्थित है। है। यहांके लोगोंका कहना है, कि बाङ्गरमौके अभ्युदयके पहले यह देश बहुत समृद्धशाली था। चीन-परिव्राजक युएनचुवङ्गने इस देशको नवदेवकुल बत-लाया है।

नवलप्रजव-एक हिन्दी-कवि। इन्होंने बहुत-सी कविताएं रचीं; उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं—

"रंग भरे लाल रंग भरी राधा रंगीली प्यारी राधा ।
एकतन एकमन एक समान दोउ
नेकहू न न्यारे होत सकत पल अगाधा ॥
छविसों छवीली भांति नैननिसोंमें
मुसिक्यात मुसकनमें मन बढ़ोहै रङ्ग अगाधा ।
तेसेई नवल सखी तेसेई कुञ्जविहारी
तेसी मेरी प्राणप्यारी पयोमन साधा ॥"

नवलमनस्का (सं॰ स्त्री॰) केशवके अनुसार मुग्धा नायिकाके चार भेदोंमेंसे एक ।

नवलकिशोर मुन्शी—आप एक साधारण व्यक्ति थे, किन्तु निज अध्यवसाय और प्रतिभासे आप बहुत बड़े धनी हो गए। आपने लखनऊमें एक छापाखाना १८५८ ई॰में खोला। उत्तरी-भारतमें यह पहला ही छापाखाना है जिसने भाषाके ग्रन्थोंके प्रकाशनकी ओर सबसे पहले ध्यान दिया है। आज मुन्शी नवलकिशोरका छापाखाना सारे भारतवर्षमें सबसे बड़ा पब्लिशिङ्ग हाउस है। इसने हिन्दी, उर्दू, फारसी और संस्कृतके सब मिला कर चार हजारसे अधिक ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। इस प्रेसके वर्त्तमान अधिपति रायबहादुर मुन्शी प्रयागनारायण साहब भी नित्य नए नए ग्रन्थ प्रकाश कर रहे हैं।

जिस समय यह प्रेस स्थापित किया गया था, उस समय अवध सिपाही-विद्रोहके उपद्रवोंसे भले प्रकार शान्त नहीं हो पाया था। इस प्रेसने अङ्गरेज सरकारके सदुद्देश्योंका सर्वसाधारणमें प्रचार कर चिरस्मरणीय देश-सेवा की। उसीके फलसे और ब्रटिश-सरकारकी कृपादृष्टिसे इस प्रेसकी उत्तरोत्तर उन्नति होती गई। इसके मालिक सरकारके विशेष कृपापात्र बने और इन्हें मान-प्रतिष्ठा भी मिली।

जिस समय यह प्रेस खोला गया था, उस समय इस देशमें रेलका प्रचार नहीं हो पाया था, तथापि मुन्शीजीने सरकारी उच्च कर्मचारियोंकी सहायतासे, कलकत्तेसे छापेखानेकी भारी भारी कलें तथा टाइप आदि अन्य सामान लखनऊ तक मंगवा लिए।

१८५८ ई॰में इस छापेखानेसे एक पत्र अङ्गरेजीमें निकाला गया। इसका उद्देश्य था कि प्रजाके उत्तेजित चित्तको सरकारकी शान्तनीति समझा कर शान्ति स्थापित करे। जब यह उद्देश्य पूर्ण हो चुका, तब वह बन्द कर दिया गया। तथापि उसके शून्य स्थानको उर्दू भाषाके एक दैनिक समाचार-पत्र "अवध-समाचार"ने ग्रहण किया। इसकी नीति प्रजाके मनमें सरकारकी ओरसे विश्वास उत्पन्न कराना है।

सरकारने मुन्शीजीकी राजभक्ति और देशसेवा देख कर उनको सी॰ आई॰ ई॰की उपाधिसे अलङ्कृत किया था।

नवलक्षण (सं॰ क्लो॰) नवमितं लक्षणम्। नौ लक्षण। विश्वका सर्ग, स्थिति, प्रलय और इसका उपादान, गोचर, अपरोक्ष ज्ञान, चिकीर्षा और कर्त्तृत्व इन नौ लक्षणोंमें ब्रह्म प्रमाणित हुए हैं। एक ब्रह्मसे ही संसारकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय होता है। जिससे यह विश्व होता, जीवित रहता और विनष्ट हो जाता है इत्यादि नवलक्षणलक्षित ब्रह्म वेदान्तपरिभाषा आदि ग्रन्थोंमें प्रतिपादित हुआ है।

नवलगुन्द—१ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत धारवारके इसी नामका तालुकका एक शहर। यह अक्षा॰ १५°३३´ उ॰ और देशा॰ ७५°२१´ पू॰ धारवार शहरसे २४ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या लगभग ७८६२ है। यह शहर सूती फर्शके लिये प्रसिद्ध है। यह विभाग तथा इसके चारों ओरके और कई एक स्थान पहले नवलगुन्दके देशाई नामक देशीय राजाके अधीन थे। बाद यह टीपू सुलतानके अधिकारमें आया। तदनन्तर महाराष्ट्रोंने इसे टीपूके हाथसे छीन लिया। मराठी लोग देशाई वंशधरोंको वार्षिक २३०००) रुपये पर्वरिशके लिये देते थे। १७८५ ई॰में पुनः देशाईके वंशधरों और महाराष्ट्रोंमें विवाद छिड़ा। यह विवाद पाँच वर्ष तक चलता रहा। अन्तमें धुन्धुपन्त गोखलेने नवलगुन्द और गदग देशाइयोंसे छीन लिया। १८३७ ई॰में जेनरल मुनरोने गुन्दमें एक फौजी अफसर नियुक्त किया। इस अफसरने अपने बाहुबलसे जिलेका अधिकांश अपने अधिकारमें कर लिया और गोखलेके लड़केको सम्पूर्ण रूपसे परास्त किया। जब गोखलेको इसकी खबर लगी, तब वे उसी समय बदामीसे यहां आए और जेनरल मुनरोसे भिड़ गए। इस युद्धमें भी गोखलेकी ही हार हुई। वहांके

देशाई आज तक भी इसका कुछ अंश जागीररूपमें भोग कर रहे हैं। १८७० ई०में यहां म्युनिसिपल्लिटी स्थापित हुई है। राजस्व ६७००) रु०का है। शहरमें एक चिकित्सालय और तीन स्कूल हैं।

२ बम्बईके धारवार जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १५° २१' से १५° ५३' उ० और देशा० ७५° ५' से ७५° ३३' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५६५ वर्गमील और जनसंख्या लगभग १०५८७६ है। इसमें ३ शहर और ८३ ग्राम लगते हैं। यहां छोटा नरगुन्द, बड़ा नरगुन्द और नवलगुन्द नामके तीन पहाड़ हैं जो उत्तर-पश्चिम और दक्षिण-पश्चिममें विस्तृत हैं। नदीके जलसे ही कृषिकार्य चलता है।

नवलदास—एक हिन्दी-कवि। ये गुरगांव बारावस्तीके निवासी थे। इन्होंने ज्ञानसरोवर, भागवत दशमस्कंध-भाषा और भागवतपुराण भाषा जन्मकाण्ड नामक ग्रन्थ प्रणयन किये।

नवलपुर—बम्बई प्रदेशके खान्देशके अन्तर्गत मेहवास विभागका एक छोटा भील राज्य। जनसंख्या दो तीन सौसे अधिक नहीं है। यहांके भील सरदारोंको पोष्य-पुत्र लेनेका अधिकार नहीं है।

नवलवधू (सं० स्त्री०) केशवके अनुसार मुग्धानायिका चार भेदोंमेंसे एक।

नवलराम—हिन्दीके एक कवि। ये रामचरणके शिष्य थे। इनकी गणना उत्तम कवियोंमें होती थी तथा इन्होंने सर्वाङ्गसार और नवलसार नामक दो ग्रन्थ बनाए।

नवललाल—हिन्दीके एक कवि। इनकी बनाई हुई अनेक कविता पाई जाती हैं। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं,—

"पिय मनहरनी पै मृगनयनी
मान छांडो हो चम्पकवरणी तू विचित्र तरणी।
वे तो नवललाल हेतसो बुलाय लेत तू चन्द्रमुखी
मेरे जान तरफ तरफ जियहोत तेरीमरणी॥"

नवलसिंह—भरतपुरके एक जाट राजा। इनके बड़े भाई रतनसिंह एक छोटा लड़का छोड़ कर परलोकको सिधारे थे। बाद नवलसिंह उक्त शिशुके अभिभावक हो कर राज्य चलाने लगे। १७६८ ई०में भतीजेकी मृत्यु हो गई। बाद आप ही राजा बन बैठे। इस समय महाराष्ट्रगण खूब चढ़े बढ़े थे। उन्होंने भरतपुर राज्य पर आक्रमण कर राजासे कर वसूल किया था। नवलसिंह और उनके भाई रणजित्सिंहसे वल्लभगढ़ जाता था। उस दुर्गके पूर्वाधिकारीने जब दिल्लीसे सहायता मांगी, तब उनकी सहायताके लिए एक दल सेना भेजी गई थी। लेकिन वह सेना इन दो भाइयोंको परास्त कर न सकी। बाद १७७५ ई०में इन्होंने दिल्ली पर चढ़ाई करनेके लिए यात्रा की। राहमें ही नजफ खाँने इन्हें परास्त किया और ये किसी तरह जान बचा कर डिगके दुर्गमें जा कर रहे। १७७६ ई०में उसी दुर्गमें इनकी मृत्यु हुई।

नवलसिंह—हिन्दीके एक कवि। ये झांसीके निवासी थे और राजा सांथरके दरबारमें नौकर थे। इनका जन्म सं० १८०८में हुआ था। इनकी गणना उत्तम कवियोंमें की जाती थी। इन्होंने नामरामायण और हरिनामावली नामक दो ग्रन्थ भी बनाए हैं।

नवला (सं० स्त्री०) तरुणी, नवीन स्त्री।

नवलिङ्ग—स्वयम्भु पुराणोक्त वाघमती नदीतीर्थमालाके अन्तर्गत बौद्धतीर्थविशेष। उक्त पुराणमें लिखा है, कि ब्रह्मा, दश दिक्पाल और कृष्णाराधिका ये सब इस तीर्थमें स्नान करने गये थे।

नववधू (सं० स्त्री०) नवा नूतनपरिणीता वधूः। नूतनपरिणीता स्त्री, वह स्त्री जो हालमें ही ब्याही गई है।

नववध्वागमन (सं० क्ली०) नूतन परिणीता स्त्रीका स्वामिगृहमें प्रथमागमन। विवाहके बाद स्त्री पिताके घरसे पहली बार जो स्वामिके घर आती है, उसीका नाम नववध्वागमन है।

स्त्रीके रविशुद्धि होनेसे अगहन, फागुन और वैशाख इन तीन महीनोंके किसी एक महीनेमें त्रिविध प्रतिलोमग शुक्र और संक्रान्तिदिन छोड़ कर यात्राप्रकरणोक्त और गृहप्रवेशोक्त शुभदिनमें नववधूका आगमन प्रशस्त है। एक ग्रामसे अथवा एक घरसे दूसरे घर जानेमें प्रतिशुक्रका दोष नहीं लगता। यात्राप्रकरणोक्त शुभदिनमें पितृगृहसे यात्रा और गृहप्रवेशोक्त शुभदिनमें स्वामिगृहप्रवेश कर्त्तव्य है।

"चैत्रागारे कुचकुसुमयोः सम्भवो वा यदिस्यात्
कालः शुद्धो न भवति यदा सम्मुखो वापि शुक्रः।
मेषे कुम्भे ऽलिनि च न भवेत् भास्करश्चेत्तथापि
स्वामी भद्रेऽह्नि नववधूं वेशयेन्मन्दिरं स्वम् ॥
मत्स्यैणीवरशोभने दिनपतौ नास्तंगते भार्गवे
सूण्ठे कीटवटाजगी शुभदिने पक्षे च कृष्णेतरे।
हित्वा च प्रतिलोमगौ बुधसितौ जीवस्य शुद्धौ तथा
चानीतागुणशालिनी नववधू र्नित्योत्सवा मोदते ॥"

(ज्योतिस्तत्त्व)

विवाहके बाद स्त्रीके यदि पितृगृहमें स्तनोद्गम और रजोदर्शनका सम्भव हो, उस समयमें तथा यदि विशुद्ध काल न पाया जाय अर्थात् फागुन, वैशाख और अगहन मास न हो, तो स्वामी यात्रोक्त शुभदिन देख कर नववधूको अपने घर ला सकते हैं। यदि ऐसा भी न हो, तो गोचर-शुद्धिमें शुभदिनमें शुक्लपक्षमें नववधू अपने घर आ सकती है।

"काश्यपेषु वशिष्ठेषु भृग्वादित्याङ्गिरःसु च।
भारद्वाजेषु वात्स्येषु पुरः शुक्रो न दुष्यति ॥"

(ज्योतिस्तत्त्व)

काश्यप, वशिष्ठ, भृगु, आदित्य, अङ्गिरा, भारद्वाज और वात्स्य इन सब गोत्रोंका पुरःशुक्र दोषावह नहीं होता।

इसका विषय मुहूर्त्तचिन्तामणि और उसकी टीकामें इस प्रकार लिखा है। नवविवाहिता कन्याके स्वामिगृहमें आनेका नाम नववधू-प्रवेश वा नववध्वागमन है। विवाह दिनसे लेकर १६वें दिनके अन्दर नववधूका प्रवेश कराना होता है। इसमें यदि चन्द्र तारा शुद्धिमें और सुलग्नमें समदिनके मध्य हो, तो दूसरे, चौथे, छठे, आठवें, दशवें, बारहवें, चौदहवें और सोलहवें दिन और यदि विषम दिनमें हो, तो पांचवें, सातवें और नवें दिनमें नववध्वागमन कराना चाहिये।

यदि किसी प्रतिबन्धकवश १६वें दिनके अन्दर नववध्वागमन न हो, तो विषम मास, विषम दिन और विषम वर्षमें नववध्वागमन कर सकते हैं, लेकिन यह कार्य्य विवाहवर्षसे ५वें वर्षके मध्य होना चाहिये यदि यह विवाह वर्षमें करना चाहें, तो विवाह माससे प्रथम, तृतीय, पञ्चम, सप्तम, नवम और एकादश मासमें तथा इन मासोंके विषम दिनमें नववधू-प्रवेश शुभ है। इसमें यदि किसी कारणवश न हो, तो प्रथम, तृतीय वा पञ्चम वर्षके शुभ दिनमें नववधूप्रवेश करा सकते हैं। पांच वर्षके अन्दर भी यदि किसी प्रतिबन्धकवश नववध्वागमन न किया जाय, तो उसके और कोई विशेष नियम नहीं हैं; केवल इच्छानुसार शुभदिनमें करा सकते हैं। (पीयूषधारा)

नववध्वागमनके विहित नक्षत्र प्रभृति—उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, रोहिणी, अश्विनी, पुष्या, हस्ता, चित्रा, अनुराधा, रेवती, श्रवणा, धनिष्ठा, मूला और स्वाति इन सब नक्षत्रोंका नववधूप्रवेश शुभप्रद है। रिक्ता भिन्न तिथि, रवि, मङ्गल और शनि भिन्न वार इसके लिये प्रशस्त है। कोई कोई बुधवारको नववधू-प्रवेशके लिये निषेध बतलाते हैं। बुध नपुंसक है, इस कारण उस दिन नववधूप्रवेश शुभप्रद नहीं होता और शनिवार भी इसी कारण वर्जनीय है। (पीयूषधारा)

विवाहके बाद किस किस मासमें नववधूका पतिगृहमें रहना अच्छा नहीं है, इसका विषय मुहूर्त्तचिन्तामणिमें इस प्रकार लिखा है—

"ज्येष्ठे पतिज्येष्ठमथाधिके पतिं हन्त्यादिमे भर्तृगृहे वधूः शुचौ।
श्वश्रूं सहस्ये श्वशुरं क्षये तनुं तातं मधौ तातगृहे विवाहतः ॥"

(मुहूर्तचि०)

विवाहके बाद नववधू यदि प्रथम ज्येष्ठमासमें स्वामिगृहमें रहे, तो पतिके बड़े भाईको हानि; आषाढ़मासमें रहे, तो सासको हानि; पौषमासमें रहे, तो श्वशुरको हानि होती है। प्रथम अधिक मासमें रहनेसे पतिका और क्षयमासमें रहनेसे स्वयं अपने शरीरका नाश होता है। इसी प्रकार चैत्रमासमें नववधूको पितृगृहमें नहीं रहना चाहिये, रहनेसे पिताको हानि होती है।

विशेष विवरण द्विरागमन शब्दमें देखो।

नववरिका (सं० स्त्री०) नवो वरोऽस्याः। नव-वर-ठन्। नवोढ़ा, नवविवाहिता वधू।

नववर्ष (सं० पु० स्त्री०) नवमितं वर्षम्। १ भारतादि नौ वर्ष। २ नई वर्षा। ३ नूतन वर्ष, नया वर्ष।

नववल्लभ (सं० पु०) एक प्रकारका अगर जिसे दाह-

नगर कहते हैं और जिसकी गिनती गन्धद्रव्योंमें होती है।

नववस्त्र (सं० क्लो०) नवं वस्त्रं कर्मधा०। नवीन वसन, नया कपड़ा। पर्याय—अनाहत, आहत, अहत, तन्त्रक, निष्प्रवाणि और नवाम्बर।

नववस्त्रपरिधान (सं० क्लो०) नववस्त्रस्य परिधानं ६-तत्। नूतन वस्त्र परिधान, नयावस्त्र पहनना। नया वस्त्र शुभ दिन देख कर पहनना चाहिए। इसका विषय शुद्धिदीपिकामें इस प्रकार लिखा है—

रोहिणी, अनुराधा, धनिष्ठा, पुष्या, विशाखा, हस्ता, चित्रा, उत्तरात्रय, अश्विनी, स्वाति, पुनर्वसु और रेवती-नक्षत्रमें, जन्म दिनमें, वृहस्पति, बुध और शुक्रवारमें, तथा विवाह आदि उत्सवमें नया वस्त्र पहनना चाहिये। किसो किसीके मतानुसार सोमवार भी नवीन वस्त्र पहननेका प्रशस्त दिन है।

नव-वासुदेव (सं० पु०) जैनमतानुसार जैन लोगोंके नव-वासुदेव जिनके नाम ये हैं—त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयम्भु, पुरुषोत्तम, सिंहपुरुष, पुण्डरीक, दत्त, लक्ष्मण और श्रीकृष्ण। कहते हैं, कि ये सब ग्यारहवें, बारहवें, चौदहवें, पन्द्रहवें, अठारहवें, बीसवें और बाईसवें तीर्थङ्करोंके समयमें नरक गये थे।

नववास्तु (सं० पु०) नवं वास्तु यस्य। राजर्षिभेद, एक वैदिक राजर्षिका नाम।

नवविंश (सं० त्रि०) नवविंशति संख्याका पूरण, उन्तीसवां, जो क्रमसे अट्ठाईसके बाद हो।

नवविंशति (सं० स्त्री०) नवाधिका विंशतिः। १ नवाधिक विंशति संख्या, बीस और नौकी संख्या, २९। (त्रि०) २ बीस और नौ, तीससे एक कम।

नवविध (सं० त्रि०) नव विधा यस्य। नव प्रकार, नौ तरह। विष्णुने नौ प्रकारके पातकका उल्लेख किया है, यथा—अतिपातक, महापातक, अनुपातक, उपपातक, जातिभ्रंशकर, सङ्करीकरण, अपात्रीकरण, मलावह और प्रकीर्णक।

विष्णुके अष्टदल पद्ममें प्रद्युम्नादि ८ हैं और पद्ममें वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, नृसिंह, वराह और वामन ये नौ नवव्यूह भिन्न हैं।

नवविधान—ब्राह्मधर्मके निर्गुण ईश्वर भक्तोंको ध्यानधारणामें विषयीभूत नहीं हैं, यह जान कर ब्राह्मधर्मावलम्बी स्वर्गीय केशवचन्द्रसेनने अपने शेष जीवनमें बौद्ध, ईसाई, महम्मदीय, चैतन्य और ब्राह्म धर्मका समन्वय करके जो एक उदार मत प्रचलित किया उसीका नाम नवविधान है। नवविधान क्या है, यह निम्नलिखित विषयोंसे जाना जा सकता है।

विधान कहनेसे ही विधाताका बोध होता है। ईश्वरको बिना विधाता समझे विधानका बोध नहीं होता। नवविधानमें ईश्वर है यह विश्वास करना होगा। केवल ईश्वर पर ही विश्वास करनेसे काम नहीं चलेगा, ईश्वर जीवन्त हैं, सदा जाग्रत हैं और सगुण हैं ऐसा जानना होगा।

निर्गुण ईश्वरवाद भारतवर्षमें विशेषरूपसे प्रचलित है। विशिष्ट पण्डितोंने अपना दिमाग लड़ा कर देखा है, यदि ईश्वर हैं, तो वे निर्गुण छोड़ कर सगुण नहीं हो सकते। निर्गुण शब्दसे कोई गुण नहीं है, अपदार्थ नहीं है ऐसा समझा जाता है। विद्वानोंका कहना है कि समस्त विशिष्ट पदार्थोंके गुण हैं। गुणसे पदार्थ समूहका ज्ञान होता है। सभी सृष्टपदार्थ गुणसे ही पहचाने जाते हैं। पदार्थसे यदि गुण अलग कर लिया जाय, तो पदार्थका अस्तित्व नहीं रहता। सृष्टपदार्थ अनेक गुणोंसे परिपूर्ण हैं। उन गुणोंको अलग कर जब केवल सत्ता रह जाती है, तब पण्डित लोग उसीको निर्गुण वा ब्रह्म बतलाते हैं। यही सत्ता अनादि, अनन्त, महान् और एकमेवाद्वितीयम् है। इस परम पदार्थको कोई इच्छा नहीं है, अतः ये कुछ भी नहीं कर सकते। इच्छा एक गुण है। इच्छा रहनेसे ही गुणविशिष्ट हो कर ब्रह्मा निकृष्टत्वको प्राप्त होते हैं। उस समय फिर केवल सत्तामात्र उनकी संज्ञा नहीं रहती। सुतरां इस निर्गुण ईश्वरने संसारकी सृष्टि की, यह असम्भव है। तब प्रश्न उठ सकता है कि सृष्टि किसने की? इस पर विद्वान् लोग कहते हैं कि उन्होंने स्वयं संसारकी सृष्टि तो नहीं की, पर माया नामक एक शक्ति थी उसीसे इन्होंने सृष्टि कराई। उसी माया द्वारा वे एक थे और उसीसे वे अनेक हो गये अर्थात् यह विश्व ही वे हैं। वही सत्ता केवल रूपान्तर है।

सगुण जीव निर्गुण जीवको नहीं समझ सकता। इसीसे भारतवर्षमें देव-देवियोंकी सृष्टि हुई है। जीव साकार है, सान्त है और सगुण है, जैसा ही समझ लें, वैसा उसका आकार है। अतः वह जीव ब्रह्म नहीं हो सकता। जो ख्यालमें नहीं आ सकते, वैसे निर्गुणको, जीवका कोई प्रयोजन नहीं, अर्थात् वे जीवके किसी काममें नहीं आ सकते। अतः नवविधानसे सगुण ब्रह्म ही उपास्य और ध्येय हैं, ऐसा समझा जाता है।

अनन्तकी धारणा कैसी है उसकी भी नवविधानाचार्यने ऐसी व्याख्या की है। हम लोग आकाशका अन्त नहीं कर सकते, कालका अन्त कहां है वह भी नहीं जानते और न दया पुण्य आदि गुणोंका शेष ही जानते हैं। सर्वाङ्ग सुन्दरका अन्त नहीं है। अतः हम लोगोंके सगुण मनमें ही इनका जन्म है। हम शान्त रह कर ही अनन्तका अस्तित्व स्वीकार करते हैं। नवविधान पर विश्वास करनेसे सगुण परमेश्वर पर विश्वास करना होता है। ऐसा विश्वास करनेसे ही हम लोगोंके क्षुद्र मनमें अनन्त ज्ञान आ जाता है, परमेश्वर भी अनन्त हैं यह भी माना जाता है।

यूरोपका ब्राह्मवाद भारतवर्षके जैसा नहीं है। जहां भी निर्गुण ब्रह्मकी कल्पना की जाती है। यूरोपके ब्रह्म निर्गुण होने पर भी सृष्टि करनेके समय इच्छा अवलम्बन करके सगुण हो जाते हैं, मायाका अवलम्बन नहीं करते; किन्तु सृष्टिके बाद उनमें और सृष्टिमें एकत्व नहीं रहता और न रूपान्तर ही रहता है। वे सृष्टिके अतीत, नित्य और स्थायी हैं। उन्होंने जगत्‌की सृष्टि करके उस पर अनेक नियम चलाये थे। उन्हीं नियमोंके अधीन संसार चल रहा है और चिरकाल तक चलेगा। अब ईश्वर भी इन नियमोंको परिवर्त्तन नहीं कर सकते। सुतरां इस प्रकारसे ईश्वरमें भी जीवका प्रयोजन नहीं है। जीव चाहे उनकी पूजा करे, चाहे उनसे प्रार्थना करे, वे कुछ भी कर नहीं सकते। क्योंकि वे नियमाधीन हैं, नियमका उल्लङ्घन किसी हालतसे कर नहीं सकते। भक्तोंकी प्रार्थना सुनना उनके लिये असम्भव है। नियम पालन करना ही उनका एक मात्र धर्म है। धर्म पालित होनेसे जीवका कर्त्तव्य किया गया, ईश्वरसे निकट प्रार्थनाकी आवश्यकता नहीं रही। यूरोपके वैज्ञानिक पण्डितोंका कहना है कि सृष्टिके पहले परमाणुराशि विशृङ्खल भावसे थी, ब्रह्माने उसे एक बार उंगली द्वारा ठोका था। उसीसे परमाणु राशि संक्षुब्ध हो शक्ति और गतिविशिष्ट हो कर घूमने लगी। उसके घूमनेसे तापकी उत्पत्ति हुई। वह उत्ताप घनीभूत हो कर एक अग्निमय मण्डलके रूपमें दिखाई दिया। वही आदि सूर्य हैं। क्रमशः सूर्यका मध्य भाग स्फीत और विच्छिन्न हो कर दूरमें गिरा और सूर्यके आकर्षणसे वह वहीं पर घूमने लगा। इसी प्रकार ग्रह-उपग्रहकी सृष्टि हुई। पीछे ग्रहविशेषके ताप—ह्राससे वाष्पकी, वाष्पसे जलकी, जलसे उद्भिद्‌की, उद्भिद्‌से जल-जन्तु आदि जीवोंकी और पीछे मनुष्यकी उत्पत्ति हुई। तदनन्तर मनुष्य भी बहुतेरे प्राकृतिक नियमोंके अधीन हुए। उन नियमोंका पालन करना उनका धर्म है। अतः ईश्वरकी स्थिति हो सकती है, और है सही, लेकिन उनके साथ जीवोंका सम्बन्ध नहीं हो सकता। यही कारण है, कि यूरोपके ब्राह्मवादमें जन्म, मृत्यु, विवाह, नीति और अनीति ये सब ईश्वरके हाथसे बाहर हैं, केवल अवस्थाका फल है।

नवविधानाचार्य कहते हैं,—ईश्वर चाहे भारतीय दर्शनानुसार निर्गुण ब्रह्म हों, चाहे यूरोपीय दर्शनानुसार नियमाधीन हों, पर जीव ग्राह्य नहीं हो सकता। वे प्राणस्वरूप हैं, सारे संसारमें वर्त्तमान हैं। यूरोपीय वैज्ञानिक पण्डित लोग उत्ताप, ताड़ित, माध्याकर्षण, चुम्बक और आणविक आकर्षण आदिको जो पदार्थिक शक्ति या अवस्थागत गुण मानते हैं, वे नवविधानाचार्यके मतानुसार उन उन पदार्थोंकी शक्तिस्वरूप हैं—परमशक्तिके ही रूपान्तर हैं। वे प्राण और शक्ति रहते निराकार हैं। वे ही भाव और चिन्ता हैं। अतः वे अनन्त हैं। सारी शक्तियां उनसे निकली हैं, इस कारण वे सान्त हैं।

वे अनन्तशक्तिका अवलम्बन करते हुए विश्वसंसार चला रहे हैं। बड़ेसे बड़े तारामण्डलसे ले कर छोटेसे छोटे परमाणुपुञ्ज तकको वे अपने हाथसे चला रहे हैं।

नवविधानाचार्यका यह भी कहना है, कि ईश्वर उनके भक्त हैं अर्थात् प्रत्यादिष्टके निकट तीन भावोंमें

प्रकाशित होते हैं—पितृभावमें, पुत्रभावमें और पवित्र भावमें। उनके सभी भावोंका उनका अस्तित्व प्रतिपादन करना विशेष कठिन कार्य है और इसका प्रतिपादन करना भी विशेष कष्टसाध्य व्यापार नहीं है। प्रति मुहूर्त्तमें प्रति निश्वास प्रश्वासमें वे अपने अस्तित्वका प्रचार करते हैं। पितृभावमें वे इसी प्रकार प्रकाशित होते हैं। वे ही एकमात्र संसारके रक्षक और भक्षक हैं, इसीसे वे पिताके स्वरूप हैं। इसका प्रमाण करना सहज नहीं है। एक बार यदि आकाशकी ओर नजर दौड़ाई जाय, तो देखनेमें आता है कि वे प्रकाण्ड जगत्‌की सृष्टि करके चला रहे हैं। एक एक नक्षत्र और सूर्य तेजोमय तथा गोलाकार हैं। उनके चारों ओर कितने ग्रह उपग्रह घूम रहे हैं। उन नक्षत्रों और सूर्यादिकी गतिके विषयमें यदि एक बार विचार किया जाय, तो विचारशक्ति स्तम्भित हो रहती है। इन सब गतियोंका विषय थोड़ा गौर कर देखिए। पृथ्वी सूर्यसे ९२०००००० मील दूर है। सूर्यको यदि एक गोलाकारका मध्यबिन्दु मान लें, तो उसका व्यास (Diameter) १८६०००००० मील होगा। व्यास मालूम होने पर गोलाकारकी परिधि सहजमें स्थिर की जा सकती है। उस व्यासको ३ $\frac{1}{7}$ से गुना करने पर परिधि निकल आवेगी, अर्थात् ५८५०००००० मील होगी। इसी गोलाकारकी परिधि हो कर पृथ्वी सूर्यके चारों ओर घूमती है। ५८५०००००० मील घूमनेमें पृथ्वीको एक वर्ष लगता है। उतने मील घूमनेमें यदि ३६५ दिन लगते हों, तो २४ घण्टोंमें वह ६७००० मील घूमेगी। इस हिसाबसे पृथ्वी एक मिनटमें ११६ कोस और प्रति मुहूर्त्तमें १८ मील जाती है। मान लो, जितने समयमें 'एक' बोला, उतने समयमें पृथ्वी १८ मील चली गई। यह क्या कल्पनाशक्तिका विषय है? ईश्वरने अपने कार्यमें दिन, घण्टा, मिनट, मुहूर्त और मुहूर्त्तका अल्पांश ठीक कर रखा है। ठीक किस समय पृथ्वी किस स्थान पर रहेगी, सूर्य किस नक्षत्रमें रहेंगे, कौन ग्रह कहां उदित हो कर कहां अस्त होगा, इन सबकी गणना करके हम लोग आकाशकी ओर दृष्टिपात करनेसे देखते हैं, कि ठीक उसी समय ये सब अद्भुत और अभावनीय व्यापार होते हैं। भगवान्‌के राज्यमें एक मुहूर्त्तका भग्नांश भी व्यर्थ जानेकी सम्भावना नहीं; यदि सम्भावना रहती, तो उनके अस्तित्वके प्रति हमेशा सन्देह बना रहता। मुहूर्त्त भरमें विश्वब्रह्माण्डमें प्रलय होता रहता। निःशब्दसे सभी कार्य करते हैं, कोई भी विशृङ्खला नहीं है। इसीसे वे प्रति मुहूर्त्तमें विद्यमान हैं, उसका प्रमाण पाते हैं।

भगवान् पिता हो कर जो सब कार्य करते हैं, वे स्वयं अपने हाथमें रखते, दूसरे किसीके भी हाथमें नहीं देते। एक उदाहरण देनेसे मालूम हो जायेगा। किसी एक वृक्षकी ओर नजर दौड़ावो; यह जड़ और वायुके सञ्चालनसे उद्वेलित होता है, वाह्यतः यही देखा जायगा किन्तु सो नहीं। यह वृक्ष प्रति मुहूर्त्तमें बढ़ता है। इसका जीवन प्रति पत्तेमें, प्रति शाखामें और प्रत्येक शिरामें है। यह वृक्ष पृथ्वीसे मूल द्वारा रस खींच कर जीता है और वायु द्वारा निश्वास प्रश्वास रात दिन लेता है। ये सब व्यापार किसकी शक्तिसे सम्पादन होते हैं? एक बार मनुष्यके शरीरकी ओर दृष्टिपात करो। हमलोग कार्य करते हैं वह सत्य है और कार्य करनेसे हम लोगोंका शरीर भी बढ़ता है। किन्तु जीवनका भार भगवान् हम लोगोंके हाथमें नहीं रखते। रातको निद्रावस्थामें जब अचेतन हो जाते हैं, तब क्या हम लोग अपनेको चला सकते हैं? उस समय हम लोग स्पन्दरहित रहते हैं, किन्तु निश्वास प्रश्वासके लिए एक मुहूर्त्त भी आराम नहीं, यह भार भगवान्‌के स्वयं अपने हाथमें हैं। वे हम लोगोंके शरीरकी कल दिन रात चला रहे हैं। उसका हाल हम लोग कुछ भी नहीं जानते और न समझ ही सकते हैं। ये सब कार्य सुनियमसे चलते देखते हैं और इसके कर्त्ता कौन हैं सो नहीं जानते।

एकमात्र ईश्वर पिताके स्वरूप हैं और सभी कार्य चला रहे हैं। यह हम लोग विज्ञानसे जान सकते हैं। किस प्रकार जीवोत्पत्ति होती है, किस नियमसे विश्व व्यापार चल रहा है, विज्ञानशास्त्र ही हम लोगोंको बतला देता है। सारा जड़-जगत्‌के भीतर एक महाशक्ति कार्य कर रहा है। यही मन ब्रह्म नामसे प्रसिद्ध है। ये विश्वमय हैं और जगत्‌के पिता हैं, हम लोग जितना ही उन्हें जान सकते हैं, उतना ही उनके प्रति हम लोगोंका

विश्वास बढ़ता है। विज्ञान द्वारा पता लगता है, कि वे सभी अवस्थाओंमें इन लोगोंके भीतर कार्य करते हैं। वे भीतर बाहर सभी जगह वर्त्तमान हैं, बिना उनके कोई भी जी नहीं सकता।

ईश्वरका द्वितीय प्रकाश—पुत्रभावमें। उन्होंने ही हम लोगोंको कहा है, कि उनका नियम पालन करना पुत्रका धर्म है। नियम पालन करनेसे पुरस्कार और नहीं करनेसे दण्ड मिलता है। परलोकमें पापका दण्ड और पुण्यका पुरस्कार प्राप्त होता है, यह भी हम लोग उन्हींसे जानते हैं। परलोक नहीं है, इसका प्रतिवाद प्रसिद्ध दार्शनिक सम्प्रदाय नहीं कर सके थे।

भगवान् हम लोगोंको विशुद्ध ज्ञानमें आलोकित करनेके लिए पिताके राज्यपथको पुत्रोंके निकट प्रकाशित करनेके लिए, बीच बीचमें पुत्रभावसे पृथ्वी पर दिखाई देते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि वे मनुष्य हो कर जन्मग्रहण करते हैं। नवविधानाचार्य एक प्रकारके अवतारवादको स्वीकार नहीं करते, बल्कि इस प्रकारके अवतारवादको समूल नष्ट करना ही नवविधान हुआ है, ऐसा बतलाते हैं। अनन्त निराकार ईश्वर किस प्रकार सान्त हो कर साकाररूपमें जन्म ग्रहण कर सकते? मनुष्य सभी धर्मोंके पथ सहज करनेके लिए ईश्वरको मनुष्यत्व आरोप कर उनके अनन्तत्वको नाश कर डालते हैं। मनुष्य ईश्वर हो सकता है वा ईश्वर मनुष्य हो सकते हैं, यह नवविधानाचार्य स्वीकार नहीं करते। ईश्वर जब देखते हैं, तब सभी मनुष्य नितान्त हीनबल हो जाते हैं। सभी पाप आ कर उन्हें अनन्तकी ओर जाने नहीं देते। जड़ पदार्थ आत्माके पथमें नितान्त व्याघात हो कर खड़े रहते हैं। उस समय वे पुत्रभाव भेज कर जगत्‌को पाप-भारसे मुक्त करते हैं। इस प्रकार भगवान् सैकड़ों बार पुत्रभावमें प्रकाशित हो कर जगत्‌का उद्धार करते हैं। किन्तु वे स्वयं शरीररूप धारण नहीं करते। वे अपना एक भाव महापुरुषकी प्रकृतिमें प्रविष्ट करा देते हैं। वह भाव उन्हींका है और वह आ कर पृथ्वीको, संसारको, जड़पदार्थको अर्थात् कामनाको विनाश कर डालता है। वे स्वयं पुत्र हो कर अवतीर्ण होते हैं।

महापुरुषको ले कर नाना प्रकारके कुसंस्कार देखनेमें आते हैं। ईश्वर अवतीर्ण हुए हैं, यह कहनेसे ही लोग कहेगा, कि उन्हें कोई अलौकिक कार्य करना उचित है। कोई कोई अलौकिक शब्दका अर्थ अनैसर्गिक लगाते हैं, किन्तु नवविधानाचार्य इसे स्वीकार नहीं करते।

ईश्वर जन-समाजके उपकारार्थ मनुष्यकी मुक्तिके लिए उनका प्रकाण्ड लक्ष्य पूरा करनेके लिए हमेशा विधान करते हैं। बहुतसे विद्वान् ऐसे हैं, जो धर्मसम्बन्धमें विधान स्वीकार नहीं करते। किन्तु नवविधानाचार्य साधारण विधान और विशेष विधान मुक्तकण्ठसे स्वीकार करते हैं। जो धर्मविधान स्वीकार नहीं करते, वे ही सामाजिक विधान, वैज्ञानिक विधान आदिको स्वीकार करते हैं। गैलीलिओ, न्यूटन, शङ्कराचार्य आदि महापुरुषोंकी ओर यदि ख्याल किया जाय, तो क्या कभी देवशक्तिके ऊपर अविश्वास कर सकते? कभी नहीं। उनकी असाधारण बुद्धि, ज्ञानकी दीप्ति आदि देखनेसे मालूम पड़ता है कि वे सब गुण देवशक्तिके सिवा और कुछ नहीं है। न्यूटनने जमीन पर फलका गिरना देख कर अनुमान किया था, कि पृथ्वी और चन्द्रमामें आकर्षणशक्ति है। उसी आकर्षण-शक्तिसे आकाशमें सूर्य ग्रह आदि अपने निर्दिष्ट स्थान पर निबद्ध हैं। ये सब विधाताकी लीला हैं। यदि ये सब विधान हम लोग मान लें, तो धर्मविधान माननेमें क्या दोष है?

जब ही देखते हैं, कि कोई देश भयानक दुराचारसे आक्रान्त है, अहङ्कार आदिमें लोग डूबे हुए हैं, तब ही उन पापोंके मोचन करनेके लिए एक एक महापुरुष एक एक विधान ले आते हैं। जब रोम और ग्रीस देशोंमें भयानक पापका राज्य था, तब ईसा परित्राता हो कर आविर्भूत हुए थे। इसी प्रकार अरब देशमें पौत्तलिकता नष्ट करनेके लिए महम्मद, भारतकी ब्राह्मधर्म प्रणालीसे रक्षा करनेके लिए बुद्ध और बङ्गदेशको ज्ञानाभिमानसे बचानेके लिए चैतन्य आविर्भूत हुए।

धर्मराज्यमें धर्म ले कर बहुत विवाद हुआ करता है। सब कोई अपने अपने धर्मको श्रेष्ठ बतलाते हैं। इस प्रकार धर्मके साथ तुलना करना महा भ्रम है, सभी धर्मोंमें एक एक विशेष देवभाव है और बहुतसे कुसंस्कार

भी हैं, जैसे, ईसाधर्ममें शैतानमें विश्वास, बौद्ध-धर्ममें पुनर्जन्ममें विश्वास और भारतीय धर्ममें साकार ईश्वरका विश्वास है। मानवके विधानमें धर्म नहीं होता, किस विधानमें कौन देवभाव है, उसे गौर कर देखना ही नवविधानका उद्देश्य है और उन्हीं सब देवभावको ले कर ही नवविधान है। शैतानमें जो विश्वास है उसे ईसाने नहीं बनाया। उनके बहुत पहलेसे यह प्रचलित था। किन्तु ईसाकी सन्तानत्वविषयक कथा अभ्रान्त और निश्चय है। पुनर्जन्मवादकी बुद्धने सृष्टि नहीं की। उनके बहुत पहलेसे यह चला आ रहा है। किन्तु बुद्धके भीतर ईश्वरने जो भाव निविष्ट किया था, वही देवभाव है उसीका नाम निर्वाण है। पुनर्जन्म हो चाहे न हो, निर्वाण सब अवस्थामें सब समाजमें मनुष्यके परित्राण-पथका सहायक है। ईश्वर चाहे साकार हों चाहे निराकार हों, भक्ति मनुष्यका एक परम उपाय है। इसी प्रकार प्रति धर्मका एक एक भाव ले कर नवविधान हुआ है।

विधाताका तृतीय प्रकाश पवित्र भावरूपमें है। खृष्टीय धर्मशास्त्रमें इस पवित्र भावको पवित्रात्मा बतलाया है। नवविधानाचार्य कहते हैं, कि ईश्वरने पिता हो कर विश्वकी सृष्टि की है और पुत्रभावमें मनुष्यको पिताके प्रति कर्त्तव्यकी शिक्षा दी है। जब कोई महापुरुष पृथ्वी पर लीला करते हैं, तब उनका समुदय भाव ईश्वरमें नियुक्त रहता है। उस समय वे जो कार्य करते हैं वा उपदेश देते हैं, वह विधाताका कार्य वा उपदेश समझा जाता है। वे दयापूर्वक जब तक उसका भाव समझा न देंगे, तब तक मनुष्य अपने बलसे कुछ भी जान नहीं सकेगा। पुत्रभावमें प्रकाशित हो कर उन्होंने मनुष्य आत्माको सहसा जाग्रत कर दिया है। पीछे उन्होंने पवित्रात्मा-भावमें प्रकाशित हो कर एक ऐसा नूतन वेग सञ्चालित किया है, एक ऐसे भावकी तरङ्ग उठाई है जिससे जन-समाज व्यथित हो कर एकबारगी स्वर्गकी ओर ऊपर उठ जाता है। उन्हींके आदेशसे उन्हींके कार्य सुफल होते हैं। प्रत्यादेशका नियम केवल एक है, वह है विधिपूर्वक अहङ्कारवर्जित हो कर विधाताको आत्मसमर्पण करना। कामादि रिपुओंके प्रबल होनेसे, अहङ्कारमें चित्तमलिन रहनेसे सरलप्रार्थना नहीं होती। इसीसे जो अपवित्र है उसके सैकड़ों प्रार्थना करने पर ईश्वर आविर्भूत नहीं होते। जब वे देखते हैं, कि हृदय अहं ज्ञानवर्जित हुआ है और अहं पदार्थका किसी प्रकारका भाव नहीं है, तब वे पवित्रात्मा हो कर उस मनको ऊपरकी ओर पितृभवनमें ले जाते हैं। सम्पूर्ण रूपसे स्वार्थ त्याग नहीं करनेसे पूर्ण प्रत्यादेश पानेकी कोई सम्भावना नहीं। भगवान्‌के पुत्रस्वरूप ईसाने भी कहा था, कि जो दीनात्मा हैं वे ही स्वर्गके अधिकारी हैं। इसका अर्थ यह है, कि मनुष्योंको यथार्थमें दीन होना चाहिए, उन्हें धनका गर्व लेशमात्र भी न रहे, विद्या, बुद्धि आदि किसी विषयमें अहङ्कार न करे। उन्हें समझना चाहिए कि हमें कोई नहीं है और न कुछ सम्पत्ति ही है, हम सम्पूर्णरूपसे असहाय, निराश्रय, बन्धुहीन और अनाथ हैं। जब ऐसा दीन भाव आ जायेगा, तब ही भगवान् उस हृदयमें प्रत्यादेश दान करेंगे।

विधाता पापियोंके उद्धारके लिए विधान भेजते हैं। पुण्यात्मा लोग उनके प्रायः समीप ही वास करते हैं, उनके लिए विधानकी कोई भी आवश्यकता नहीं। वे पापियोंको तारनेके लिये पुत्र भेजते हैं। पुत्र अपना जीवन दिखला कर पापियोंको धर्मके पथ पर लाते हैं और धर्मका उपदेश देते हैं। जहां सारल्य नहीं है, वहां भगवान्‌की पवित्रात्माका प्रकाश वा प्रत्यादेश कुछ भी नहीं होता। धर्मजीवनका सारल्य ही एकमात्र सहाय है। नवविधानने पवित्रात्माका अनुभव करने और प्रत्यादेश पानेका अधिकार दिया है।

नवविधान समन्वयका धर्म है। अब देखना चाहिए, कि समन्वय शब्दका अर्थ क्या है। वर्त्तमान जगत्‌की अवस्थाकी ओर जब नजर दौड़ाई जाती है, तब तमाम मतभेद, दलादली और विवाद देखनेमें आता है। एक एक धर्म सत्यधर्मके जैसा है और उसके सामने दूसरा धर्म मिथ्या समझा जाता है। सब कोई अपने अपने धर्मका समर्थन करते हैं। दूसरे धर्मके प्रति आत्मक्रोध जो देखनेमें आता है उसका यही कारण है। एक ऐसा धर्म है जो न तो ईसाई धर्म है, न मुसलमान-धर्म ही है

और न बौद्धधर्म है, बल्कि उसमें ये सभी धर्म हैं। इसी नूतन धर्मका नाम है नवविधान।

१। कोई धर्म क्यों न हो, वह मिथ्या नहीं है। सभी धर्मोंमें सार है।

२। सभी धर्मोंमें अत्यन्त उत्कृष्ट श्रेणीका भक्त है।

३। सभी धर्मोंमें पापकी शान्ति है।

ये तीनों वचन मुसलमान, ईसाई, बौद्ध आदि कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। पृथ्वी पर जितने धर्म हैं वे एक एक मत ले करके हैं। कोई धर्म तो ज्ञानका, कोई भावका और कोई इच्छाका है। किन्तु नवविधानमें सभी गुण हैं। इन तीनोंको यदि एक साथ किया जाय, तो एक प्रकृत धर्म होता है। जिस धर्ममें ज्ञानकी प्रधानता है, लेकिन भक्ति नहीं है, वह धर्म असम्पूर्ण है और जिसमें भक्ति है, लेकिन ज्ञान नहीं है, वह धर्म भांशिकमात्र है। जो धर्म कोई कार्य ले कर है, लेकिन उसमें भक्तिकी नदी प्रवाहित नहीं होती, वह शुष्क है। वही धर्म सर्वाङ्गसुन्दर है जिसमें उक्त दोनों गुण सम्पूर्ण रूपसे पाये जाते हैं। उस धर्ममें एकका आदर और दूसरेका अनादर नहीं है, बल्कि ज्ञान, भक्ति और कर्मयोग ये तीनों गुण प्रकाशित होते हैं। वही मनुष्य श्रेष्ठ है, जिसके मनमें उक्त तीनों भाव समानरूपसे प्रस्फुटित हैं। वही धर्म सब धर्मोंमें श्रेष्ठ माना जाता है। नवविधान ही एक ऐसा धर्म है जिसमें सब धर्मोंके सार पाये जाते हैं। एक एक देवभाव ले कर एक एक धर्म बना है। किन्तु सभी धर्मोंके देवभाव ले कर नवविधान हुआ है। यह सर्वाङ्गसुन्दर धर्म किस प्रकार प्राप्त हो सकता है,—पहले मनका एक भाव स्थिर करना होता है, कोई धर्म ऐसा नहीं है जो अनादरकी दृष्टिसे देखा जाय। विज्ञानमें एक धूलिकणको भी अग्राह्य नहीं कर सकते। जीवशास्त्रमें एक कीटका भी मूल्य है। मनुष्यसमाजकी भित्ति नीति है, उस नीतिकी भीत ईश्वरका आदेश है। लोकसमाज प्रतिष्ठित करनेके पहले नीतिका प्रचार होना आवश्यक है और नीतिप्रचार करनेमें ही ईश्वरको मानना होगा। यदि कोई प्रमाणाभाव समझ कर उनके अस्तित्वमें अविश्वास करे, तो उसके लिये भगवान्ने स्वयं कहा है, "मैं हूं।" मूसाने सबसे पहले आदेशशास्त्रका प्रचार किया। वे ही एकेश्वरवादके प्रधान-शिक्षक माने जाते हैं। बुद्धने निर्वाणतत्त्वका प्रचार किया। पीछे भगवान्ने उस निर्वाणतत्त्वके पथसे आध्यात्मिक प्रकृतिके नियम चलाये। मनुष्यकी प्रकृतिमें एक एक भाव अवश्य है जो देवभाव भी हो सकता है और पशुभाव भी। पशुभावका अर्थ कामना है। यदि धर्मजीवन लाभ करना हो, तो सभी कामनाओंको दूर कर दो। कामनाको दूर करनेसे ही अहंशून्य हो जाओगे। अहंशून्य होनेसे प्रकृतिका यह नियम है, कि एक दूसरा पदार्थ बाहरसे आ कर उस अहंको पूर्ण करेगा। सुतरां भगवान्ने हम लोगोंको कह दिया है कि यदि तुम लोग अपनेको सुधारना चाहते हो, तो कामनाको दूर हटाओ, मनको शून्य करो। शून्य करनेसे ही देखोगे कि देवभावने मनमें अधिकार जमा लिया। यही आध्यात्मिक जगत्का प्रधान नियम है। मन कामनाशून्य होनेसे ही क्या उन्नति चरम सीमा तक पहुंच गई? कभी नहीं। कामनाशून्यता ही धर्मपथका आरम्भ है। इसी समयसे धर्मजीवन शुरू होता है।

भिन्न भिन्न धर्मोंके भावोंको एकत्र करके यदि उनके भीतर हो कर कृपारूपी ताड़ित चालित कर दें, तो वह एक ऐसा स्वतन्त्र धर्म हो जायगा, जो न तो ईसाई धर्म है, न मुसलमान धर्म है और न बौद्ध तथा हिन्दू धर्म ही है, बल्कि उसमें ये सभी धर्म विद्यमान हैं। यह जो नूतन धर्म है इसका नाम नवविधान है।

विश्वासियोंके मध्य एकतासाधन करना ही जीवनका एकमात्र कार्य है। एकतासाधन शब्दका अर्थ है ईश्वरमें विश्वास करना। हम लोगोंको विश्वास नहीं होता, इस कारण हम लोग धर्मकी उपकारिता समझ नहीं सकते। भक्तोंके जीवनमें केवल ईश्वरका आविर्भाव अनुभूत होता है। पृथ्वी पर जितने महापुरुषोंने जन्म लिया है, मानवजातिका दुःखभार दूर करनेके लिये जो जो महापुरुष जीवन विसर्जन कर गये हैं, उनका जीवन-वृत्तान्त सुचारुरूपसे जानना हम लोगोंको उचित है। इसी कारण नवविधानाचार्य तीर्थयात्राका विशेष आदर करते हैं। भारतवर्षमें नाना प्रकारके धर्ममत प्रचलित हैं। यदि कोई धर्म निन्दनीय न हो, तो इस

नवविधानकी आवश्यकता ही क्या ? इस पर नवविधानाचार्य कहते हैं,—जब तक अनैक्य, विरोध, जातिभेद, परस्परकी हिंसा, द्वेष और घृणा रहेगी, तब तक हमें अन्य जातिके अधीन रहना होगा। स्वाधीनताके मूलमें ऐक्य, भ्रातृभाव, आत्ममर्यादा, धर्म, साहस और बलका रहना आवश्यक है, किन्तु धर्म और जातिभेदके कारण इनका रहना बिलकुल असम्भव है। यदि ईश्वर एक होगा, तो धर्म भी एक होगा ; धर्मके एक होनेसे जाति एक होगी, जातिके एक होनेसे भ्रातृभाव होगा, भ्रातृभाव होनेसे विरोध, विसंवाद, द्वेष आदि जाता रहेगा ; उस समय हृदय आपसे आप उच्च हो जायेगा, नये नये बल और उद्यमका सञ्चार होगा। ऐसा होनेसे प्रकृत उन्नति होगी, ईश्वरके जितने खण्ड हैं, उन्हें एक साथ मिला कर एक ईश्वरमें परिणत करना होगा। यह केवल नवविधानसे हो सकता है, इसीसे भारतवर्षमें विभिन्न धर्म रहने पर भी नवविधानका प्रयोजन है। खण्ड खण्ड ईश्वरको एकत्र कर उस पुराकालके एक ईश्वरमें लाना, एक ईश्वरके राज्यमें एक मिलित भ्रातृमण्डली स्थापन करना, जातिभेद दूर करके विश्वास, प्रेम और देशहितैषिताको हृदयका अलङ्कार करना यही नवविधानके कार्य हैं।

विधाता धर्मसमन्वय द्वारा अपना अधिकार प्राप्त करते हैं ईश्वर नवविधानकर्त्ता हैं। पृथ्वी उनका लीलाक्षेत्र है। सभी जातियोंमें वे समय समय पर प्रकाशित होते हैं। ये सब धर्मसमन्वय प्रत्यादेश द्वारा हुआ करते हैं। आत्मविसर्जन करनेसे प्रत्यादेश होता है। भगवान् भक्तोंका अन्तर अधिकार कर उन्हें सब विषयोंसे पूर्ण करते हैं।

यह नवविधान जगत्‌को पूर्णब्रह्म देते आ रहे हैं। सभी धर्मोंका जो सार अर्थात् देवभाव है, वही इस नवविधानका अङ्ग है। सभी देवभावोंको ले कर यह नवविधान बना है, यही केशवचन्द्रका मत है।

केशवचन्द्र सेन और ब्राह्मधर्म देखो।

नवविष (सं० पु०) नौ प्रकारके विष जिनके नाम ये हैं—वत्सनाभ, हारिद्रक, सक्तुक, प्रदीपन, सौराष्ट्रिक, शृङ्गक, कालकूट, हलाहल और ब्रह्मपुत्र।

नवशक्ति (सं० स्त्री०) नवगुणिता शक्तिः। शक्तिनवक, नौ शक्ति जिनके नाम इस प्रकार हैं—प्रभा, माया, जया, सूक्ष्मा, विशुद्धा, नन्दिनी, सुप्रभा, विजया और सर्वसिद्धिदा।

नवशस्य (सं० क्ली०) नवं शस्यं। नूतनशस्य, नया अनाज।

नवशस्येष्टि (सं० स्त्री०) नवशस्यनिमित्ता इष्टिः। सात्त्विक कर्त्तव्य नवशस्य-निमित्तक इष्टिभेद।

नवशायक (सं० पु०) नवविधः शायक इव। पराशरसंहितोक्त नवविध सङ्कीर्ण जातिभेद। पराशरसंहिताके अनुसार ग्वाला, माली, तेली, जोलाहा, हलवाई, बरई, कुम्हार, लोहार और हज्जाम ये नौ जातियां।

ये लोग एक प्रकारके शुद्ध शूद्र हैं। यद्यपि वैश्य शब्दसे कृषिव्यवसायी और शिल्पव्यवसायी दोनोंका बोध हो सकता है, तो भी नवशायकोंके उपवीत नहीं पहनने तथा वेदाध्ययन नहीं करनेसे इनको गिनती शूद्रोंमें की गई है। पर हां विशेषता यह है, कि ये लोग शुद्ध होते है, अर्थात् इनका स्पृष्ट गङ्गाजल, कूपजल तथा और किसी प्रकारका जल ब्राह्मण लोग काममें लाते हैं। किन्तु इन नौ जातियोंमें सभी शुद्ध हैं सो नहीं; जैसे तैलिक यद्यपि यह नवशायकके अन्तर्भुक्त है, तो भी ये लोग मोदक वा नापितको तरह शुद्ध नहीं हैं। नवशायकको छोड़ कर अन्य शूद्रका स्पृष्ट केवल गङ्गाजल ब्राह्मण काममें ला सकते हैं। किन्तु चाहे नवशायक शूद्र हो, चाहे इतरशूद्र हो, किसीका भी स्पृष्ट पक्वद्रव्य ब्राह्मण नहीं खा सकते। नवशायक शूद्र और इतरशूद्रमें पृथक्ता यह है, कि नवशायकोंकी याजकता करनेसे ब्राह्मण पतित नहीं होते, किन्तु अन्यान्य इतर शूद्रोंकी याजकता करनेसे उन्हें पतित होना पड़ता है। यद्यपि शास्त्रमें किसी शूद्रका दान ग्रहण ब्राह्मणोंके लिये निषिद्ध बतलाया है, तो भी कार्यतः अनेक ब्राह्मण नवशायकोंका दानग्रहण किया करते हैं।

नवशिक्षित (सं० पु०) १ वह जिसने अभी हालमें कुछ पढ़ा या सीखा हो, नौसिखुआ। २ वह जिसे आधुनिक ढंगकी शिक्षा मिली हो।

नवशिव—बम्बईके दीपपुञ्जके अन्तर्गत एक क्षुद्र द्वीप।

नवशोभ (सं॰ पु॰) युवक, तरुण, नई शोभावाला।

नवश्राद्ध (सं॰ क्लो॰) मृत्युके बाद विषम दिवसमें प्रेतो-द्देशक श्राद्धविशेष। मरनेके बाद विषम दिनमें प्रेतके उद्देशसे जो श्राद्ध किया जाता है, उसका नाम नव-श्राद्ध है।

निर्णयसिन्धुमें लिखा है, कि मृत्युके पहले, तीसरे, पांचवें, सातवें, नवें और ग्यारहवें दिनमें प्रेतके उद्देशसे जो श्राद्ध किया जाता है, उसे नवश्राद्ध कहते हैं। मरने-के बाद विषम दिनमें नवें दिनके अन्दर एक श्राद्ध किया जाता है। कार्यवश यदि उस दिन श्राद्ध कर न सके, तो ग्यारहवें दिन अवश्य करना चाहिये। इस श्राद्धको विषमश्राद्ध भी कहते हैं। पांचवें, सातवें, आठवें, नवें दशवें वा ग्यारहवें दिनमें जो श्राद्ध किया जाता है, उसका नाम नवश्राद्ध है।

कात्यायनके मतसे—चौथे, पांचवें, नवें, तथा ग्यारहवें दिनमें प्रेतके उद्देशसे किये जानेवाले श्राद्धका नाम नवश्राद्ध है। इस नवश्राद्धमें पहले दो दो करके पिण्ड देना चाहिये, केवल शेष दिनमें एक पिण्ड देनेका विधान है। यह नवश्राद्ध मलमासमें भी हो सकता है। नवश्राद्धोच्छिष्ट कोई वस्तु क्यों न हो, उसे न खाना चाहिये।

प्रायश्चित्त-विवेकमें लिखा है, कि यह नवश्राद्ध आहि-ताग्नियोंका भी होगा। चौथे, पांचवें, नवें और ग्यारहवें दिनमें जो श्राद्ध होता है, उसे नवश्राद्ध कहते हैं। यह नवश्राद्ध आहिताग्नि ब्राह्मणोंको अस्थिसञ्चयके पहले करना चाहिये और अयुग्म ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। यह नवश्राद्ध सान्निक ब्राह्मणोंके लिये भी बतलाया है।

नवषट्क (सं॰ क्लो॰) छः गुणित नवसंख्या, वह संख्या जो छः और नौके गुणा करनेसे बनती हो।

नवषष्टि (सं॰ क्लो॰) नवाधिका षष्टिः। उनसत्तर संख्या, ६९ संख्या। २ तत्संख्यायुक्त। (त्रि॰) ३ ६९संख्याका पूरण, उनहत्तरवां।

नवसंगम (सं॰ पु॰) प्रथम समागम, नयाभिलाप, पति-से पत्नीकी पहली भेंट।

नवसङ्घाराम (सं॰ पु॰) बौद्धविहारभेद, बौद्धोंके एक विहारका नाम।

नवसप्त (सं॰ पु॰) नौ और सात, सोलह शृंगार।

नवसप्तति (सं॰ स्त्री॰) नवाधिका सप्ततिः। उनासीति संख्या, उन्यासी संख्या, ७९।

नवसप्तदश (सं॰ पु॰) नव च सप्तदश च, समासान्त ड। अतिरात्रयागभेद। पुत्राभिलाषी यह यज्ञ करता है।

नवसर (हिं॰ पु॰) नौ लड़का हार।

नवसारि—१ बड़ोदा राज्यका एक प्रान्त वा जिला। इसके उत्तरमें भरोच और रेवाकाण्ठा-एजेन्सी; दक्षिणमें सूरत जिला, बांसदा और डांग; पूर्वमें खान्देश और पश्चिममें सूरत तथा अरबसागर है। इसका भूपरिमाण १९५२ वर्गमील है। यहां किम, तापती, मिनधोल, पूर्णा और अम्बिका नदी बहती हैं। इसमें छः शहर और ७७२ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः ३००४४१ है। सैकड़े पीछे ७५ मनुष्य गुजराती भाषा बोलते हैं। ज्वार, धान, गेहूं, बाजरा, कोदों, नागली, मटर, चना रूई, तमाकू, ईख और केला ये सब यहांके प्रधान उत्पन्न द्रव्य हैं।

यह प्रान्त जङ्गलके लिए प्रसिद्ध है। जङ्गलका रकबा ५४७ वर्गमील है और लाखोंकी आमदनी होती है। यहां अच्छे अच्छे सूती कपड़े बुने जाते हैं। यही यहां-का प्रधान व्यवसाय है। राजस्व १९ लाख रुपयेसे अधिक-का है। विद्याशिक्षाकी जिलेमें विशेष उन्नति है। यहां दो हाई स्कूल, तीन एङ्गलो-वर्नाक्यूलर स्कूल और २११ वर्नाक्यूलर स्कूल हैं।

२ उक्त प्रान्तका एक तालुक। भूपरिमाण १२५ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः ५९८७५ है। इसमें नव-सारी नामक एक शहर और ६० ग्राम लगते हैं। यहां दो नदियां बहती हैं, उत्तरमें मिनधोल और दक्षिणमें पूर्णा। ज्वार, धान, रूई और ईख ये सब यहांके प्रधान उत्पन्न द्रव्य हैं। राजस्व २३७९००) रु॰ है।

३ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा॰ २०° ५७´ उ॰ और देशा॰ ७२° ५६´ पू॰, बम्बईसे १४० मीलकी दूरी पर अवस्थित है। यह एक बहुत प्राचीन शहर है। ग्रीक भौगोलिक टलेमीने इसका नाम नसरिपा रखा है। यहांकी जनसंख्या लगभग २१४५१ है जिनमेंसे हिन्दू, मुसलमान और पारसीकी संख्या सबसे अधिक है। पारसके कुछ जोरोष्ट्रियन (Zorostrian)ने जब

मुसलमानी धर्म को ग्रहण न किया, तब वे ११४२ ई०में मुसलमान राजाओंके भयसे गुजरातको भाग आए और कुछ नवसारीमें बस गए। यहां अपने बचावके लिये उन्होंने शहरका अच्छी तरह संस्कार किया और एक दुर्ग भी बनवाया। आज भी शहरमें पारसीकी संख्या सबसे अधिक है। इनमेंसे कुछ तो सूती कपड़े बुनते हैं और कुछ तांबे, पीतल, लोहे और काठ आदिका व्यवसाय करते हैं। यहां उनका एक मनोहर मन्दिर भी है। कः मास तक शहरकी आबहवा अच्छी रहती है। मल्हारराव गायकवाड़ इस शहरमें रहना बहुत पसन्द करते थे। यहां हाई स्कूल, एङ्गलो वर्नाकुलर स्कूल, पुस्तकालय, पाठागार और चिकित्सालय है।

नवसारिका—नवसारि वा नौसारि-नगरका पूरा नाम। यह गुजरातके अन्तर्गत बड़ोदाकी पूर्णा नदीके किनारे अवस्थित है। नवसारि देखो।

नवसाहसाङ्क—परमार वंशीय एक मालवराज। पद्मगुप्त नामक एक कवि "नवसाहसाङ्कचरित" नामक एक काव्य बना गये हैं। परमार-वंशकी खोदित लिपि भी पाई गई है। इस वंशकी उत्पत्ति पौराणिक उपाख्यानकी तरह है। वशिष्ठ जब आबू-पर्वत पर रहते थे, तब विश्वामित्र एक दिन उनकी होमधेनु चुरा लाये। वशिष्ठने विश्वामित्रको मारनेके लिए यज्ञकुण्डसे एक खड्गधारी पुरुषकी सृष्टि की। यह पुरुष शत्रुको परास्त कर धेनुको वापिस लाए। इनके कार्यसे प्रसन्न हो कर वशिष्ठने इनका परमार अर्थात् शत्रु विजयी नाम रखा। आबू-पर्वत पर परमारकी उत्पत्ति हुई है, इससे अनुमान किया जाता है, कि वहांका अचलगढ़ परमारोंके अधीन था। चन्द्रावती-नगरमें उनकी राजधानी थी। परमार-वंशीय सोमेश्वरप्रदत्त देलवाड़के तेजपाल-मन्दिरमें जो एक प्रशस्ति है उससे परमारके पूर्ववर्त्ती आबूवासी परमार-वंशीय राजाओंके नाम पाये जाते हैं। धूमराज, धुन्धुक, ध्रुवभट्ट आदि परमारके पूर्ववर्त्ती तथा रामदेव, यशोधवल, धारावर्ष, प्रह्लादन, सोमसिंह, कृष्णराज आदि परमारके उत्तरवर्त्ती आबूवासी परमार राजाओंका विशेष विवरण कुछ भी जाना नहीं जाता। १२वीं और १३वीं शताब्दीमें आबूवासी परमारगण अणहिलवाड़के चालुक्य राजाओंके सामन्त थे।

उदयपुर और नागपुरसे परमारवंशीय मालव राजाओंकी दो प्रशस्ति और इस वंशके २य वाक्पति-की खोदित लिपि पाई गई है। इन सबसे पता लगता है, कि इस वंशके उपेन्द्र वा कृष्ण नामक एक व्यक्ति मालवदेशमें पहले पहल अधिष्ठित हुए। उदयपुर प्रशस्तिके मतानुसार इन्होंने मालव जीता था। डा० वार्गेसका मत है कि ये ८वीं शताब्दीमें वर्त्तमान थे। उदयपुरमें जो प्रशस्ति है, उसमें वंशतालिका इस प्रकार लिखी है—

परमार
|
उपेन्द्र (वा कृष्ण)
|
वैरीसिंह
|
सीयक (१म)
|
वाक्पति (१म)
|
वैरीसिंह (२य)
|
हर्ष
├── वाक्पति २य
└── सिन्धुराज (वा नवसाहसाङ्क वा कुमारनारायण)
  |
  भोज
  |
  उदयादित्य

नवसाहसाङ्कचरितमें हर्षका सीयक (२य) वा हर्ष-ध्वज और २य वाक्पतिका उत्पलराज नाम रखा गया है। नागपुर-प्रशस्तिमें २य वाक्पतिका नाम मुञ्ज है और उनकी भूमिदानलिपिमें अमोघवर्ष, पृथ्वीवल्लभ वा श्रीवल्लभ आदि उनकी उपाधियां देखी जाती हैं। भूमिदानपत्रसे पता लगता है, कि २य वाक्पति ९७४ ई०में वर्त्तमान थे। मेरुतुङ्गके प्रबन्धचिन्तामणिमें हर्षराज सिंह नामसे प्रसिद्ध हैं। नवसाहसाङ्कचरितके मतानुसार इन्होंने हूणराज-रत्नपति और खोदित राजाको जीता था; ये हूणराज कौन थे, मालूम नहीं। डाक्टर वार्गेस अनुमान करते हैं, कि ये हूणलोग किसी क्षत्रियवंशके

थे। खोट्टिग मान्यखेटके अधिपति राष्ट्रकूटके सिवा और कोई नहीं थे।

२य वाक्पतिके बाद उनके भाई सिन्धुराज राजा हुए। ये नवसाहसाङ्क और कुमारनारायण नामसे प्रसिद्ध थे। उदयपुरकी प्रशस्तिमें लिखा है कि इन्होंने हूण लोगोंको परास्त किया था। नवसाहसाङ्कचरितमें हूणजयके सिवा कोशल, बागड़, लाट, मूरल आदि देशोंको जयको बातें भी लिखी है। यह बागड़ आधुनिक राजपूतानेके अन्तर्गत डुङ्गरपुर है। मूरलदेश केरलका नामान्तर है। नवसाहसाङ्कचरितमें लिखा है—नर्मदा-किनारेसे ५० गव्यूति दूर रत्नावती नामक एक नगर है जहां किसी समय वज्राङ्कुश नामक एक असुर रहता था। यह असुर नागराजकुमारी शशीप्रभाको हर लाया था। सिन्धुराजने उस असुरको मार कर राजकुमारीका उद्धार किया था। उस युद्धमें विद्याधरोंने सिन्धुराजकी सहायता की थी।

यशोभट नामक सिन्धुराजके एक मन्त्री थे जिनको उपाधि रामाङ्गद थी। प्रबन्धचिन्तामणि पढ़नेसे मालूम होता है, कि सिन्धुराज पहले पहल बड़े ही दुर्दान्त थे। वाक्पतिने इनके अत्याचारसे विरक्त हो कर इन्हें राज्यसे निकलवा दिया था। सिन्धुराज गुजरातमें जा कर रहने लगे। कुछ दिन बाद वे पुनः भाईसे बुलाये गये, किन्तु राज्यमें कदम रखते न रखते फिरसे उत्पात मचाने लगे। इस पर वाक्पतिने इन्हें काठके पिंजरेमें बन्द कर रखा। इसी बन्दी अवस्थाके समय सिन्धुराजके पुत्र भोजने जन्मग्रहण किया। जवान होने पर भोजने वाक्पतिको सावधान हो जानेकी सूचना दी। इस पर वाक्पतिने भोजका सिर काट डालनेका हुक्म दिया। भोजको जब इसकी खबर लगी, तब उन्होंने अपने चाचाके पास एक कविता लिख भेजी। कविता पढ़नेसे ही वाक्पतिके हृदयमें स्नेहका सञ्चार हो आया और उन्होंने भोजको यौवराज्यमें अभिषिक्त किया। तैलपसे वाक्पति मारे जाने पर भोज सिंहासन पर बैठे। नवसाहसाङ्कचरितमें इसकी अन्यथा देखी जाती है।

नवसाहसाङ्कचरितकार पद्मगुप्त दोनों भाइयोंके राजत्वकालमें ही राजकवि थे। सिन्धुराजने इन्हें कविराजकी उपाधि दी थी।

सिन्धुराजने अनेक मन्दिर बनवाये। विष्णु-रामेश्वरका मन्दिर भी उन्हींका बनाया हुआ है। नवसाहसाङ्कचरितमें लिखा है, कि सिन्धुराजके वैदेशिक युद्धमें प्राण गये थे। उनकी मृत्युके बाद राजधानी धारानगर शत्रुओंके हाथ लगा। सिन्धुराजने कब तक राज्य किया, मालूम नहीं।

नवसाहसाङ्कचरित—नवसाहसाङ्क देखो।

नवसिखा (हिं॰ पु॰) नौसिखुआ देखो।

नवसू (सं॰ स्त्री॰) नवं सूते सू-क्विप्। अभिनवप्रसवा स्त्री और गो, वह औरत और गाय जो हालमें बिआई हो।

नवसूतिका (सं॰ स्त्री॰) नवा सूतिः प्रसवो यस्याः वा कप्। १ धेनु, गाय। २ नवप्रसवा स्त्री।

नवाइत—दाक्षिणात्यवासी एक श्रेणीके मुसलमान। लगभग सवा तीन सौ वर्ष हुए, ये अरबसे भारतमें आये थे। ये अन्यान्य मुसलमानोंके साथ नये आये हैं, इसलिये इनका नाम नवाइत पड़ गया है। ये सभी सुपुरुष होते हैं, और इनके शरीरका रंग गोरा होता है। इनकी स्त्रियां बहुत ही सुन्दरी होती हैं; उनके शरीरका रंग दूधिया गुलाबी—देखनेमें अत्यन्त रमणीय होता है। इनमें ऐसी किम्बदन्ती है कि "हजार वर्षसे भी अधिक समय हुआ, सियाकके शासनकर्त्ताने हाशिमवंशीय किसी किसी व्यक्तिको फारससे निकाल दिया था। उनमेंसे कितने ही तो परिवार-सहित जहाजमें बैठ कर पारस्यसागरके मार्गसे भारतके पश्चिमांशमें, कोङ्कणप्रदेशमें और कितने ही कन्याकुमारीमें उतर पड़े। पूर्वोक्त व्यक्तियोंके वंशधर नवाइत कहलाते हैं और शेषोक्त व्यक्तियोंके लब्बई।" इस प्रकारसे लब्बई लोग अपना परिचय देते हैं और अपनेको नवाइत वंशके बतलाते हैं, किन्तु लब्बइयोंकी आकृति देखनेसे यह मिथ्या प्रतीत होती है और मालूम होता है कि ये अशीरीय हैं। नवाइत लोग लब्बइयोंको अपने वंशका नहीं मानते। उन लोगोंका कहना है, कि लब्बई लोग उनके पूर्वपुरुषके रक्खे हुए क्रीतदास और क्रीतदासियोंके वंशधर हैं। नवाइत लोग भारतीय अन्य मुसलमानों या उच्च सम्प्रदायोंके साथ वैवाहिक-सूत्रसे आबद्ध नहीं हुए हैं। इसलिए इस श्रेणीमें अब भी पितृपुरुषोंका

अमल तक भी मौजूद है। कर्णाटकके नवाब भी इन अंगोंका यथेष्ट सम्मान करते थे। इनमेंसे कोई भी समर विभागमें कार्य नहीं करते। सभी अन्यान्य कार्य कर जीवन निर्वाह करते हैं।

नवां (हिं॰ वि॰) जो गिनतीमें नौके स्थान पर हो, आठवें-के बाद और दशवेंके पहलेका, नौवां।

नवांश (सं॰ पु॰) नवमोऽंशः। मेषादि द्वादश लग्नका नवां भाग।

राशिको नौ अंशोंमें विभक्त करनेसे, उसके एक एक अंशका नाम नवांश है। मेष, सिंह और धनु इन तीन राशियोंका मेषसे आरम्भ कर नवांशकी गणना की जाती है, अर्थात् इन तीन राशियोंका प्रथमांश मेष है और मेषका अधिपति मङ्गल है एवं प्रथमांशका अधिपति भी मङ्गल होगा। द्वितीयांश वृष है, वृष राशिके अधिपति शुक्र हैं, यही शुक्र द्वितीयांशका भी अधिपति है। तृतीयांश मिथुन है, मिथुनका अधिपति बुध है, यही बुध तृतीयांशका अधिपति है।

नवांश-चक्र।

	प्रथमांशके अधिपति	द्वितीयांशके अधिपति	तृतीयांशके अधिपति	चतुर्थांशके अधिपति	पञ्चमांशके अधिपति	षष्ठांशके अधिपति	सप्तमांशके अधिपति	अष्टमांशके अधिपति	नवांशके अधिपति
मेष, सिंह, धनु इन तीन राशियोंके अधिपतिके नाम	१ मङ्गल	२ शुक्र	३ बुध	४ चन्द्र	५ रवि।	६ बुध।	७ शुक्र।	८ मङ्गल।	९ वृहस्पति।
मकर, वृष, कन्या इन तीन राशियोंके अधिपतिके नाम	१ शनि।	२ शनि।	३ वृहस्पति।	४ मङ्गल।	५ शुक्र।	६ बुध।	७ चन्द्र।	८ रवि।	९ बुध।
तुला, कुम्भ, मिथुन इन तीन राशियोंके नवमांशके अधिपति	१ शुक्र।	२ मङ्गल।	३ वृहस्पति।	४ शनि।	५ शनि।	६ वृहस्पति।	७ मङ्गल।	८ शुक्र।	९ बुध।
कर्कट, वृश्चिक, मीन इन इन तीन राशियोंके नवांशके अधिपति	१ चन्द्र।	२ रवि।	३ बुध।	४ शुक्र।	५ मङ्गल।	६ वृहस्पति।	७ शनि।	८ शनि।	९ वृहस्पति।

इस प्रकार मेषादि नौ राशियोंके अंशक्रमसे जिस जिस राशिका जो जो ग्रह अधिपति होता है, वे ही उन सब अंशोंके अधिपति होते हैं। इस प्रकार मकर, वृष और कन्या इन तीन राशियोंके मकरादिसे; तुला, कुम्भ, मिथुन इनके तुलादिसे और कर्कट, वृश्चिक तथा मीन इन तीन राशियोंके कर्कटादिसे नवांशकी गणना करनी होती है।

दृष्टान्त—मेष लग्नका परिमाण ४।७७ विपल है। इसका नवां भाग २७ पल २७ विपल २६ अनुपल और ४० प्रत्यनुपल होता है। इसका प्रथम अंश मेष है, मेषका अधिपति मङ्गल है, अतएव मङ्गल ही इस प्रथमांशका अधिपति होगा। सुतरां उक्त २७ पल २७ विपल २६ अनुपल और ४० प्रत्यनुपलमें यदि किसी बालकका जन्म हो, तो उस जात बालकका मङ्गलके नवांशमें जन्म हुआ है, यह स्थिर करना होता है। वह समय बीत जाने पर यदि ५४ पल ५४ विपल ५३ अनुपल और २० प्रत्यनुपलमें जन्म हो, तो मेषका द्वितीय अंश वृष है और वृषका अधिपति शुक्र है। अतएव इस समय जातबालकका जन्म शुक्रके नवांशमें हुआ है, ऐसा जानना चाहिये। क्रमशः ४।७७ विपलसे ले कर मेषलग्नके पूर्ण तक अंशाधिपकी गणना करनी होती है। इन अवशिष्ट राशियोंका नवांश करके गणना करते हैं, नवांशके अधिपतिको सहजमें जाननेके लिए एक चक्र दिया गया है। इसे देखनेसे ही किस अंशमें कौन ग्रह अधिपति होगा, वह सहजमें मालूम हो जायेगा।

नवांशफल—मेषादि द्वादशलग्नके नवांश द्वारा जातबालकके चरित्र, आकृति और चिह्नका विचार किया जाता है। यदि नवांशका अधिपति ग्रह सबसे अधिक बलशाली हो, तो बालकके नवांश कथित चिह्नादि हुआ करते हैं और उस समय चन्द्र यदि सबसे अधिक बलशाली हो, तो बालकके नवांशोक्त स्वभावादि न ले कर चन्द्राधिष्ठित राशिका जैसा लक्षण लिखा है, वही सब फल होगा।

नवांश द्वारा जातबालकके केवल फलाफलकी गणना की जाती है, सो नहीं; इससे प्रश्नविषयक फलाफलका विचार भी किया जाता है।

नवाई (हिं० स्त्री०) विनीत होनेका भाव।

नवागढ़—पञ्जाबके अन्तर्गत बशाहर राज्यका एक दुर्ग। यह मोरलका कान्दा नामक पर्वतश्रेणीके पूर्व-दक्षिणमें एक ऊंचे बांधके ऊपर अक्षा० ३१° १५´ उ० और देशा० ७७° ४०´ पू०के मध्य अवस्थित है। १८१४—१५ ई०में गोरखायुद्धके समय गोरखा लोगोंने इस दुर्ग पर अपना अधिकार जमाया था। किन्तु जब बशाहरके लोगोंने दुर्ग घेर लिया, तब दुर्गस्थ गोरखा सेनाओंने आत्मसमर्पण किया था।

नवागत (सं० त्रि०) जो अभी आया हो, नया आया हुआ।

नवागायन—अरङ्ग और रायपुरके बीचमें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। यहां देवरताल नामक एक सुन्दर पुष्करिणी है। इस पुष्करिणीके पूर्वी किनारे पर अनेक देवालय हैं। प्रवाद है, कि सीताराम और बेणीराम नामक दो बनियोंने मिल कर ये सब मन्दिर बनवाये थे।

नवाङ्ग (सं० त्रि०) नवविधं अङ्गं यस्य। १ नवविध अङ्गयुक्त। (क्ली०) २ सोंठ, पीपल, मिर्च, हड़, बहेड़ा आंवला, चाव, चीता और वायविडङ्ग। ये नौ पदार्थ। ३ पाचनविशेष, सोंठ, अमृत, अब्द, भूनिम्ब और पञ्चमूली इन सब द्रव्योंको मिला कर काथ तैयार करनेसे वात और पित्तोद्भव ज्वर विनष्ट होता है।

नवाङ्गा (सं० स्त्री०) नवाङ्ग-टाप्। कर्कटशृङ्गी, काकड़ासिंगी।

नवाज (फा० वि०) दया दिखलानेवाला, कृपा करनेवाला। इस अर्थमें इस शब्दका प्रयोग केवल यौगिक शब्दोंके अन्तमें होता है, जैसे गरीब-नवाज, बंदः-नवाज।

नवाजिश (फा० स्त्री०) कृपा, दया, मेहरबानी।

नवाजिश खां—१ अकबरकी सभाके पांचहजारी मनसबदार सैयद खांके पुत्र साहुका खांका १०१० हिजरी सन्‌में नवाजिश खां नाम पड़ा।

२ गुलजारदानीश नामक पारस्य ग्रन्थके प्रणेता।

नवाजिश मह्‌म्मद—ढाकाका एक नवाब, अलीवर्दी खांके जमाई।

नवाड़ा (हिं० पु०) एक प्रकारकी नाव।

नवादा—१ गया जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २४° ३१´ और २५° ७´ उ० तथा देशा० ८५° १७ और ८६° ३ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ८५५ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ४५३८६८ है। इसमें नवादा और हिसुआ नामके दो शहर और १७५२ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० २४° ५३´ उ० और देशा० ८५° ३३´ पू०के मध्य खुरी नदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ५९०८ है। यह वाणिज्यका एक प्रधान स्थान है। यहां इष्ट-इण्डियन-रेलवेको एक स्टेशन है।

नवानगर—१ बम्बईके कच्छ उपसागरके तीरवर्त्ती एक देशीय राज्य। यह अक्षा० २१° ४४´ से २२° ५८´ उ० और देशा० ६९° २०´ से ७०° ३३´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३७९१ वर्गमील है। इसके उत्तरमें कच्छ उपसागर और रण नामक लवणभूमि; पश्चिममें अरब सागर और ओख नामक लवणदेश; पूर्वमें मोर्वी, राजकोट, ध्रोल और गोण्डाल आदि देशीय राज्य तथा दक्षिणमें सुरत विभाग है। यह राज्य सामान्यतः समतल है। बडुदा पर्वतका बारह आना भाग इस राज्यमें पड़ता है। यहांका वेणुश्रृङ्ग समुद्रपृष्ठसे २०५७ फुट ऊंचा है। जलसञ्चालन कूपादिसे होता है तथा इसके लिये नगरसे ४ कोस दक्षिणमें एक तालाब भी खोदा गया है। उपसागरके तीरवर्त्ती स्थानोंको आबहवा बहुत अच्छी है। इस राज्यके कन्दोर्णा और भनबर तालुकमें अनेक प्रकारके मर्मर पत्थर (Marble) पाये जाते हैं। कम्भालिया परगनेमें तांबेको खान है। इसके पास ही अजाद द्वीप है जहां लोग चांदीको खान बतलाते हैं। इसमें ६ शहर और ६६६ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या प्रायः ३३६७७९ है। बाजरा, ज्वार, गेहूं और चना ये सब यहांके प्रधान उत्पन्न द्रव्य हैं। यहां गेहूंको खेतीमें जलका प्रयोजन नहीं पड़ता। समुद्रके किनारेसे मुक्ता निकाला जाता है। यहांकी प्रधान नदियां भादर, बन्तु, अजी और उन्द हैं। इनके सिवा रङ्गमती नामकी एक और नदी बहती है जिसके जलसे नाना प्रकारके रंग बनते हैं। रंग भी बहुत बढ़िया होता है, इसीसे नदीका जल बहुत कीमती समझा जाता है। १८६० ई० तक इस राज्यमें पहाड़ी और बहुत अधम मचाते थे। अभी उनका नामनिशान भी नहीं है। यहांका राजस्व २५ लाख रुपयेका है जिसमेंसे १२००९३) रुपये वृटिश-सरकारको, बड़ोदाके गायकवाड़को और जूनागढ़के नवाबको देने पड़ते हैं। राज्य भरमें कुल ८ कारागार और १४ हाजतघर, १२१ स्कूल तथा २२ मेडिकल स्कूल हैं।

२ उक्त राज्यका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २२° २३´ उ० और देशा० ७०° १६´ पू०, बम्बई शहरसे ३१० मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या लगभग ५३८४४ है। १५४० ई०में जाम रावलने यह नगर बसाया था। यह प्रायः पत्थरका बना हुआ है। १६८८ ई०का बना हुआ यहां एक दुर्ग भी है। शहरमें वाणिज्य व्यवसाय खूब चलता है। जरी और रेशमके कार्यके लिये ही यह स्थान मशहूर है। यहांका सुगन्धित तेल और धूपादि बहुत उमदा होता है। कड़ु नामक तिलकको मट्टी इसी स्थान पर बनाई जाती है।

इस राज्यके राजाको उपाधि जाम है। राजा राजपूत वंशके हैं। पुरबन्दरके जेटवा राजपूत वंशीय राजाको परास्त कर इस वंशने राज्य ग्रहण किया है। पहले ये लोग सुमली नामक स्थानमें रहते थे। पीछे १५४० ई०में जाम रावलने नवनगर राजधानी बसाई।

कच्छ देखो।

मुसलमानोंने इसका नाम इसलामाबाद रखा था। कच्छके रावगण जिस वंशके हैं, जाम राजगण भी उसी वंशके माने जाते हैं। ध्रोलराज और राजकोट-राजवंश भी इसी जामवंशसे उत्पन्न हुए हैं। यह राज्य कठियावाड़ प्रदेशके कारद राज्योंमें श्रेष्ठ समझा जाता है। वृटिश सरकारकी ओरसे यहांके राजा वा जामको ११ तोपोंको सलामी मिलती है। राजाको पोष्यपुत्र लेनेका अधिकार है।

नवाना (हिं० क्रि०) विनीत करना, झुकाना।

नवान्न (सं० क्ली०) नवं नूतनं अन्नम्। १ नूतन अन्न, नया अनाज। तत् प्राप्यतयाऽस्त्यस्य अच्। २ नवान्ननिमित्तक श्राद्ध, एक प्रकारका श्राद्ध जो नया अन्न तैयार होने पर पितरोंके उद्देशसे किया जाता है। नवान्नके

दिन श्राद्ध करके नया अनाज खाना चाहिये। धान पकने पर उसके चावलसे देवता और पितरोंको निवेदन करके नया अन्न खानेका विधान है। शास्त्रमें नवान्नकी अवश्यकर्त्तव्यता बतलाई गई है।

"नवोदके नवान्ने च गृहप्रच्छादने तथा।

पितरः स्पृहयन्त्यन्नमष्टकासु मघासु च॥" (श्राद्धतत्त्व)

नवोदक अर्थात् वर्षोपक्रममें, नवान्न अर्थात् नया धान पक जाने पर और गृहप्रच्छादन आदिमें पितृगण अन्नके लिये प्रार्थना करते हैं। नवान्नमें पितरोंके उद्देशसे पार्वण विधि द्वारा श्राद्ध करना होता है। बिना नवान्न श्राद्ध किये जो नया अन्न खाता है, वह पापका भागी होता है। यह नवान्न विशुद्ध दिनमें करना आवश्यक है। इसका विषय ज्योतिःशास्त्रमें इस प्रकार लिखा है—

सूर्य विशाखा नक्षत्र गत होनेसे त्रयोदशी, रिक्ता और नन्दातिथिमें, शनि, मङ्गल और शुक्रवारमें, चैत्र, पौष और कार्त्तिकमासमें, हरिशयनमें, कृष्णपक्षकी मृगनेत्रामें, अष्टम और जन्म चन्द्रमें तथा जन्मतिथिमें, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, पूर्वफल्गुनी, मघा, भरणी, अश्लेषा और आर्द्रानक्षत्रमें नवान्न श्राद्ध या नवान्नभक्षण नहीं करना चाहिये, करनेसे पुत्र और अर्थका नाश होता है। इनके सिवा और सब तिथियों, नक्षत्रों और वारादिमें नवान्न-श्राद्ध वा नवान्न भक्षण प्रशस्त है।

जो श्राद्ध करनेमें असमर्थ हैं वा श्राद्धके अनधिकारी हैं उन्हें देवता और ब्राह्मणको दान करके नया अन्न खाना चाहिये। विधवाओंके लिए यही नियम जानना चाहिये, क्योंकि वे नवान्न श्राद्धका अनधिकारी हैं।

पहले कहा जा चुका है, कि धान पकने पर नवान्नागमकाल उपस्थित होता है। यह नवान्नश्राद्ध प्रत्येक व्यक्तिका कर्त्तव्य नहीं है। घरके जो मुखिया हैं अर्थात् जो पार्वण श्राद्धके अधिकारी हैं, पहले उन्हींको पार्वण श्राद्ध करके नया अन्न खाना चाहिये, पीछे घरवालोंको।

ज्येष्ठानक्षत्रके शेषार्द्धमें सूर्यके गमन समयका नाम मृगनेत्रा है। कृत्तिका, ज्येष्ठा, मूला और पूर्वभाद्रपदमें नया अन्न नहीं खाना चाहिए, किन्तु नवान्नश्राद्ध कर सकते हैं। श्राद्ध करनेके बाद नया अन्न खानेकी विधि है। उसी विधानके अनुसार श्राद्धकर्त्ता दधिसंयुक्त नवौदनको ब्राह्मणसे अभिमन्त्रित करा कर खा सकता है।

जो श्राद्ध करनेमें बिलकुल असमर्थ हैं, वे देवता और ब्राह्मणको दे कर तथा पितरोंके उद्देशसे भोज्योत्सर्ग करके नया अन्न खा सकते हैं। इसे गौणकल्प जानना चाहिए। अगहन, माघ और फागुन ये तीन मास नवान्नके लिए प्रशस्त हैं। यदि इन तीन मासोंमें न कर सकें, तो वे शाखमासमें नवान्न-श्राद्ध करके नया अन्न खा सकते हैं।

यह नवान्न-निमित्तक पार्वण श्राद्ध नये चावलसे किया जाता है। यदि श्राद्धोपयोगी नया चावल न मिले, तो पुराने चावलसे काम चल सकता है।

नवाब (अ० पु०) १ बादशाहका प्रतिनिधि जो किसी बड़े प्रदेशके शासनके लिए नियुक्त हो। २ एक उपाधि जो आज कल छोटे मोटे मुसलमानी राज्योंके मालिक अपने नामके साथ लगाते हैं। ३ एक उपाधि जो भारतीय मुसलमान अमीरोंको अंगरेजी सरकारकी ओरसे मिलती है और जो प्रायः राजाकी उपाधिके समान होती है। (वि०) ४ जो बहुत शान-शौकत और अमीरी ढंगसे रहता हो तथा खूब खर्च करता हो।

नवाबगञ्ज—१ युक्तप्रदेशके बरेली जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २८°४३´ और २७°७´ उ० तथा देशा० ८१°१´ और ८१°२६´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १६? वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः २५४१६० है। यहां रोहिलखण्डका कृषिक्षेत्र बहुत लम्बा चौड़ा है। बीच बीचमें अनेक नदी और नहर हैं। यहांकी देवदा, अपसरा, पङ्गैलि, बाघुल, नकतिया, देवरानिया आदि नदियां प्रधान हैं जो पूर्वसे पश्चिमको बह गई हैं। इसमें ३०३ ग्राम लगते हैं। शारद शस्योंमें धान, ईख, बाजरा और वासन्ती शस्योंमें गेहूं और जौ प्रधान है। नवाबगञ्ज, सेंथल, बरौर, हाफिजगञ्ज आदि स्थानोंमें हाट लगती है। बरेलीसे पीलीभीत तक पक्की सड़क चली गई है।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २८°५२´ उ० और देशा० ८१°१५´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्याप्रायः १४४७ है। यह नगर नवाब आसफउद्दौलाने बसाया है। सिपाहीविद्रोहके समय सर होप ग्रान्टके

अधीन अंगरेजी सेना कई बार यहां बागियोंसे लड़ी थी। १८६८ ई०में यहां म्युनिसिपलिटी स्थापित हुई है। शहरमें एक हाई स्कूल, चार दूसरे दूसरे स्कूल और तीन सराय हैं। इनके सिवा मर्द और औरतके लिये अलग अलग चिकित्सालय है। अनाज और कपड़ेका वाणिज्य भी जोरोंसे चलता है।

३ अयोध्याके बाराबंकी जिलेका एक परगना। इसके उत्तरमें रामनगर और फतेहपुर; पूर्वमें दरियाबाद; दक्षिणमें प्रतापगञ्ज और पश्चिममें देवा परगना है। भूपरिमाण ७८ वर्गमील है। कल्याणी नदी इस परगनेके उत्तर हो कर बह गई है। यहां चीनी और सूती कपड़ेका व्यवसाय ही प्रधान हैं।

नवाबगञ्ज शहर बाराबंकी शहरके समीप ही लखनऊसे साढ़े आठ कोस पूर्वमें अवस्थित है। इसके निम्न हो कर जमुरिहा नामकी नदी बह चली है। इसके निकटवर्ती स्थान अनुर्वर हैं। शहरमें १४ हजार लोगोंका वास है। जिनमें हिन्दूकी संख्या ही सबसे अधिक है। चीनी और कपड़ेका व्यवसाय अच्छा चलता है।

४ अयोध्याके गोण्डा जिलेकी तराबगञ्ज तहसीलका एक परगना। इसके उत्तरमें महादेव और माणिकपुर, पूर्वमें युक्त-प्रदेशका बस्ती जिला, दक्षिणमें घर्घरा नदी तथा पश्चिममें दिगसर और महादेव परगना है। भूपरिमाण १४२ वर्गमील है। मृत महाराज मानसिंह के. सी. एस. आई. यहांके प्रधान तालुकदार थे।

५ उक्त परगनेका एक शहर। यह अक्षा० २६°५२´ उ० और देशा० ८२° ९´ पू० गोण्डासे फैजाबादके रास्ते पर अवस्थित है। जनसंख्या ७०४७ है। १८वीं शताब्दीमें नवाब शुजा-उद्दौलाने यह नगर बसाया था। यहां एक बहुत बड़ा बाजार है। जिले भरमें यही बाजार सबसे बड़ा है। चावल, तेलकर बीज, गेहूं, गोचम आदिका व्यवसाय जोरोंसे चलता है। मिर्जापुर और भाग्यवन्तनगरसे यहां नमक, विलायती कपड़े और मृण्मय द्रव्यादिकी आमदनी आती है। यहां सिर्फ दो स्कूल हैं।

६ अयोध्याके उनाव जिलेका एक शहर। यह उनाव शहरसे ६ कोस उत्तर-पूर्व लखनऊके रास्ते पर स्थित है। जनसंख्या प्रायः २६०० है। पहले यहां तहसीलकी एक सदर कचहरी थी। चैत्रमासके शेषमें दुर्गा और कुमारीदेवीके उद्देश्यसे एक भारी मेला लगता है। लखनऊ और कानपुरसे बहुत लोग इस मेलेमें जुटते हैं।

७ पुर्णिया जिलेका एक ग्राम। यह पुर्णियासे १७ कोस गङ्गाके किनारेसे ६ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। इस ग्रामके दूसरे किनारे गङ्गाके तीर पर अवस्थित सुप्रसिद्ध साहबगञ्ज है। राजमहलसे पूर्णिया तक जो सड़क गई है वह पहले डाकुओंसे भरी रहती थी। इस कारण उन्हें दमन करनेके लिये राजमहलके नवाबने यह शहर बसा दिया है। यहां प्राचीन किलेका भग्नावशेष देखनेमें आता है। चावल, पटसन, तमाकू, मोम और तेलहन अनाजकी यहांसे रफतनी होती है।

नवाबजादा (फा० पु०) १ नवाबका पुत्र, नवाबका बेटा। २ वह जो बहुत शौकीन हो।

नवाबपसन्द (फा० पु०) भादोंके अन्त या क्वारके आरम्भमें होनेवाला एक प्रकारका धान।

नवाबी (हिं० स्त्री०) १ नवाबका पद। २ नवाब होनेकी दशा। ३ नवाबोंका शासनकाल। ४ नवाबका काम। ५ नवाबोंकी सी हुकूमत। ६ एक प्रकारका कपड़ा जिसे पहले अमीर लोग पहना करते थे। ७ बहुत अधिक अमीरी या अमीरोंका-सा अपव्यय।

नवायस (सं० क्ली०) नवभागा आयसा यत्र। औषधभेद, एक प्रकारकी दवा। प्रस्तुत प्रणाली—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, चीतामूल और विडङ्ग प्रत्येक एक एक तोला, लोहा नौ तोला इन्हें जलसे पीस कर गोली बनाते हैं। १ रत्तीसे ले कर क्रमशः ८ रत्ती तक मात्राकी व्यवस्था है। यह पाण्डु और कमलवाई रोगोंमें मधु और घीके साथ सेवनीय है। (भैषज्यरत्नावली पाण्डुरोगा०)

नवारा (हिं० पु०) एक प्रकारकी बड़ी नाव।

नवारी (हिं० स्त्री०) नेवारी देखो।

नवार्चिस् (सं० पु०) नव अर्चींषि यस्य। १ मङ्गलग्रह। (क्ली०) नवं नूतनं अर्चिः। २ नवशिखा।

नवावाद—भविष्यब्रह्मखण्डोक्त बिहारके अन्तर्गत ग्रामविशेष। यहांके भूमिहार मण्डलेश्वर हुए थे।

नवाशहर—१ पञ्जाबके अन्तर्गत जालन्धर जिलेकी दक्षिणपूर्व तहसील। यह अक्षा० ३०°५८´ से ३१°१७´ उ० और

देशा० ७५° ४७´से ७६° १६ पू०के मध्य सतलज नदीके उत्तरीय किनारे अवस्थित है। भूपरिमाण ३०४ वर्गमील और लोकसंख्या १८६३२८ है। इसमें नवाशहर, राहोन और बङ्ग नामके तीन शहर और २७४ ग्राम लगते हैं। आमदनी चार लाख रुपयेसे अधिककी है। गेहूं, ज्वार, चना, जौ, ईख और रूई ये सब यहांके प्रधान उत्पन्न द्रव्य हैं।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० ३१° ८´उ० और देशा० ७६° ७ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ५६४१के लगभग है। मुगल-सम्राट् बाबरके समयमें नौशेर खां नामक एक अफगानने इस नगरको बसाया है। यह शहर दिनों दिन उन्नति कर रहा है।

३ उत्तर-पश्चिम प्रदेशके हजारा जिलेके अन्तर्गत अबोटाबाद तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० ३४° १०´उ० और देशा० ७३° १६ पू०, अबोटाबादसे ३ मील पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या ४११४ है। यहांके क्षत्रिय व्यवसायी ही झेलमके खनिज लवणका व्यवसाय करते हैं, विलायती कपड़े मंगा कर मुजफ्फराबाद और काश्मीरमें भेजते हैं तथा काश्मीरसे घी लाते हैं।

नवाशीति (सं० स्त्री०) नवाधिका अशीतिः। नव अधिक अशीति संख्या, नौ और अस्सीकी संख्या, ८९।

नवासा (फा० पु०) दौहित्र, बेटीका बेटा।

नवासिका (सं० स्त्री०) मात्रावृत्तभेद, एक प्रकारका वर्णवृत्त।

नवासी (हिं० वि०) १ नौ और अस्सी, एक कम नब्बे। (पु०) २ नौ और अस्सीकी संख्या, ८९।

नवाह (सं० पु०) नवं अहः टच् समासान्तः। १ नव दिन, किसी सप्ताह, पक्ष, मास या वर्ष आदिका नया दिन। २ नव दिनका साध्य यागादि, एक प्रकारका यज्ञ जो नौ दिनमें समाप्त किया जाता है। ३ रामायणका वह पाठ-जो नौ दिनमें समाप्त किया जाता है।

नवि (हिं० स्त्री०) वह रस्सी जिससे गायके पैरमें बछड़ेका गला बांध कर दूध दूहते हैं, नोई।

नविका (सं० स्त्री०) नवोऽस्त्यस्या इति नव-ठन्-टाप्, नवि नवं कायति इति वा। नवशब्दयुक्ता, वह जिसमें नौ शब्द पाये हों।

नविन् (सं० त्रि०) १ नौ संख्याका गुणक। २ नवसंख्यायुक्त, वह जिसमें नौ संख्या हो।

नविपूला (सं० स्त्री०) वैदिक छन्दोभेद, एक प्रकारका वैदिक छन्द।

नविष्टि (सं० स्त्री०) नवा इष्टिः वेदे शकन्ध्वादित्वात् लोपः। अभिनव इष्टिभेद।

नविष्ठ (सं० त्रि०) अतिशयेन नविता स्तोता इष्ठन् तृणो-लोपः। अत्यन्त स्तोतृतम।

नविकवि—एक हिन्दी-कवि। इन्होंने 'नवशिख वर्णन' पर एक ग्रन्थ बनाया है।

नवीगञ्ज—१ युक्त प्रदेशके मैनपुरी जिलेका एक ग्राम। यह अक्षा० २७° ११´५०´´उ० और देशा० ७७° २५´२५´´पू०के मध्य, ग्राण्डट्राङ्क रोडके ऊपर अवस्थित है। जनसंख्या १५०० है। हिन्दूकी संख्या ही सबसे अधिक है। यहां एक सराय है। २ बङ्गालदेशके श्रीहट्ट जिलेका एक ग्राम। यह सुर्मानदीकी बारक नामक शाखाकी बगलमें अवस्थित है। यहांसे चावल, शीतलपाटी और नाना प्रकारके तेलहन अनाजोंकी रफ्तनी होती है।

नवीन (सं० त्रि०) नवमेव नव-ख, न्यादेशश्च। १ नूतन, नया। २ अपूर्व, विचित्र। ३ तरुण, जवान, नवयुवक।

नवीन—निम्न ब्रह्मके पेगू विभागके अन्तर्गत प्रोम जिलेकी एक नदी। उत्तर न-वीन और दक्षिण न-वीन नामक दो शाखाओंके मिलनेसे इस नदीकी उत्पत्ति हुई है। पेगूके अन्तर्गत योमापर्वत पर पा-दौकम्भङ्गके उत्तरमें इसकी उत्तरी शाखा निकली है। ञ्यो-मा ग्रामसे आध कोस दूरमें दो शाखाएँ आपसमें मिल गई हैं। दक्षिणी शाखा भी इसी शृङ्गके दक्षिणसे उत्पन्न हुई है। प्रोम-नगरके निकट यह नदी इरावतीमें मिल गई है। योमा-पर्वत परसे इसी नदी द्वारा लकड़ी बहा कर लाते हैं।

नवीन कवि—हिन्दीके एक कवि। इनकी गणना उत्तम कवियोंमें होती थी। इनके बनाए शृङ्गाररसके सुन्दर कवित्त पाये जाते हैं।

नवीनचन्द्र राय—हिन्दीके एक कवि। सम्वत् १८८४में इनका जन्म हुआ था। शैशवावस्थामें ही इनके पिताकी मृत्यु हो जानेसे इनकी शिक्षा अच्छी न हो सकी,

पर इन्होंने अपने ही कौशलसे १६) रु० मासिकसे ले कर ७००) रु० मासिक तकका वेतन भोगा और विद्याव्यसनके कारण अङ्गरेजीके अतिरिक्त संस्कृत तथा हिन्दीकी बहुत अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। आपने इन दोनों भाषाओंमें प्रकृष्ट ग्रन्थ बनाए और विधवा-विवाह पर भी एक पुस्तक रची। इन्होंने पञ्जाबमें स्त्री-शिक्षा पादप का बीज बोया और लाहोरमें नार्मल फीमेल स्कूल स्थापित किया। हिन्दीमें आपने ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका भी निकाली। परोपकारमें ये सदा लगे रहते थे। इनका सम्बत् १८४७में देहान्त हुआ।

नवीनगर—अयोध्याके अन्तर्गत सीतापुर जिलेका एक शहर। यह लोहारपुर शहरसे १॥ कोस उत्तर-पूर्व में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः तीन हजार है। यहां कतेसरके तालुकदारकी सदर कचहरी है। ढाई सौ वर्ष हुए कि मलिहाबादके नवाब सब्बार खांके पुत्रने यह नगर बसाया था। किन्तु आजसे सौ वर्ष पहले गौड़-राजाओंने इस शहरको मुसलमानोंके हाथसे छीन अपने दखलमें कर लिया था। आज भी यह उन्हींके अधिकारमें है।

नवीनता (हिं० स्त्री०) नूतनत्व, नूतनता, नया होने का भाव।

नवीबन्दर—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़ प्रदेशका एक बन्दर। यह पुरबन्दरसे ८ कोस दक्षिण-पूर्व, अक्षा० २१° २६´ उ० और देशा० ६८° ५´ पू०के मध्य अवस्थित है। भादरनदीके मुहाने पर यही एक प्रधान बन्दर है। मौसुमके समय इस नदीमें नौ कोस तक नावें जाती आती हैं। नदीका मुहाना उतना गहरा नहीं है लेकिन पत्थर-मय है। इसी कारण छोटी छोटी नावोंके सिवा यहां बड़ी नावें नहीं आ सकती हैं। शहरका व्यवसाय पहलेसे कुछ कम हो गया है।

नवीभाव (सं० पु०) नव-भू-अभूत तद्भावे च्चि। अनवीनका नवभाव, नया होनेका भाव या क्रिया।

नवीमहम्मद—उर्दूके एक कवि। इन्होंने बहुतसी कविता बनाई हैं। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं—

"अरे रब माली केरे अवरेम महम्दी जाबरे।
नवीय महम्मद ख्वाहुन चढ़ियां मोतियन चोक पुरावरे॥"

नवीयस् (सं० त्रि०) नव-अतिशये ईयसुन्। १ नवतम, बहुत नया। २ अतिशय स्तुत्य, बहुत प्रशंसनीय।

नवोलतीर्थ—बेलगाम जिलेके मध्य मालप्रभा नामक एक प्रसिद्ध नदी है। सौन्दत्ति नामक स्थानसे २ कोस उत्तरमें यह नदी मनोली पर्वतके दो शिखरोंके बीचके गड्ढे हो कर बह गई है। पहले यहां एक पार्वत्य ह्रद था। नदी उस ह्रदमें मिल कर उसका बहुत जल अपने साथ ले जाती थी। कालक्रमसे पहाड़ पर कई प्रकारकी आकृतियां बन गई हैं। इसी स्थानको नवीलतीर्थ और मयूरसरोवर कहते हैं। प्रवाद है, कि पहले नदी पहाड़के चारों ओर घूम कर बहती थी। एक दिन एक मयूर पर्वतके शिखर पर आ बैठा और अपनी पूँछ फैलाकर नदीका उपहास करते हुए बोला, 'इतना वेग रहते घूम कर क्यों बहती हो?' यह सुन कर नदी बहुत बिगड़ी और जिस शिखर पर मोर बैठा हुआ था, बातकी बातमें उस शिखरको भेद करती हुई वहां आ निकली। मयूरने उड़नेका अवकाश नहीं पाया। उसकी देह पर्वतविदारणके साथ साथ छिन्न हो कर आधी एक ओर और आधी दूसरी ओर हो गई जो अभी पत्थरके आकारमें विद्यमान है। यह गल्प और दूसरे प्रकारसे भी सुना जाता है। तभीसे इसका नाम नवीलतीर्थ पड़ा है। यह गड्ढा ३०० फुट गहरा है। ऊपरकी ओर इसका विस्तार १५० फुट और नीचेकी ओर उससे भी ज्यादा है।

नवीस (फा० पु०) लेखक, कातिब, लिखनेवाला। इस शब्दका प्रयोग यौगिक शब्दोंके अन्तमें होता है।

नवीसर—सिन्धुप्रदेशके थर जिलान्तर्गत अमरकोट तालुकाका एक शहर। यह अक्षा० २५° ४´ उ० और देशा० ६९° ४१´ पू०के मध्य अमरकोट शहरसे १० कोसकी दूरी पर अवस्थित है। नवकोटसे ले कर चेलरकी ओर एक सड़क चली गई है। जनसंख्या प्रायः दो हजार है। अधिवासी विशेष कर खेती, पशुपालन और घीका व्यवसाय करते हैं। वस्त्रादि रंगाना ही यहांका प्रधान शिल्पकार्य है। शहरमें रुई, नारियल, अनाज, ऊँट, गाय, बैल, गोचर्म, चीनी, तमाकू, पशम और धातुका कारबार होता है।

नवीसी (फा० स्त्री०) लिखाई, लिखनेकी क्रिया या भाव। इस शब्दका प्रयोग शब्दोंके अन्तमें होता है।

नवेद (हिं० स्त्री०) १ निमन्त्रण, न्योता। २ निमन्त्रण-पत्र।

नवेदस् (सं० त्रि०) न विपरीतं वेत्ति-विद-असुन् नभ्राडित्यादिना, नञ्-प्रकृतिभाव:। विपरीत ज्ञान-शून्य, मेधावी, बुद्धिमान्।

नवेला (हिं० वि०) १ नवीन, नया। २ तरुण, जवान।

नवेली (हिं० वि०) १ तरुणी, नई उमरकी। (स्त्री०) २ तरुणी, युवती, नई स्त्री।

नवोढ़ा (सं० स्त्री०) नवा नूतना ऊढ़ा विवाहिता। १ नव विवाहिता, वधू। पर्याय—वधू, जनी, नववारका, दिकरी, नवयौवना। २ मुग्ध नायिकाभेद, साहित्यमें मुग्धाके अन्तर्गत वह नायिका जो लज्जा और भयके कारण नायकके पास न जाना चाहती हो।

नवोदक (सं० क्ली०) नवं उदकम्। १ नूतन जल, नया पानी। वर्षाकालका नवोदक अर्थात् नया जल तीन दिन और दूसरे समयका दश दिन तक अशुद्ध रहता है। २ वह जल जो नये गड्ढेमें जमा हो गया हो। नवोदक पीनेसे पञ्चगव्य द्वारा उसकी शुद्धि होती है। ३ नवोदक निमित्त पार्वण-श्राद्ध। तिथितत्त्वमें लिखा है कि वर्षा-कालके आरम्भमें नवोदक-श्राद्ध करना चाहिए। यह श्राद्ध सभोंके लिए कर्त्तव्य है। 'सदाप्युक्त:' इस वाक्य द्वारा इसका नित्यत्व प्रतिपादित हुआ है। इस श्राद्ध-कालके सावकाशके लिए त्रयोदशी आदि तिथियोंमें नहीं कर सकते।

त्रयोदशी, जन्मदिन, नन्दातिथि अर्थात् प्रतिपद्, एकादशी और षष्ठी, जन्मराशि, जन्मतारा और शुक्रवार छोड़ कर श्रवणा, पुष्या, मृगशिरा, हस्ता, रेवती, राधा, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, उत्तरफल्गुनी और शुक्लपक्ष नवोदक श्राद्धके लिए प्रशस्त माना गया है।

नवोद्धृत (सं० क्ली०) नवमुद्धृतम्। १ नवनीत, मक्खन। २ नूतनोत्थित, जो तुरन्त निकाला गया है।

नवोनवसर—बेबिलनके एक राजा। इनके समय काल-दियामें ज्योतिषविद्याकी विशेष आलोचना हुई थी। ७४७ ई०को २६वीं फरवरी बुधवारसे इन्होंने एक अब्द-का प्रचार किया। इस अब्दकी गणना ३६५ दिनोंमें होती थी, किन्तु प्रति चौथे वर्षमें आज कलके जैसा एक दिन नहीं बढ़ता था।

नव्य (सं० त्रि०) नूयते स्तूयते इति नु-यत् (अचो यत्। पा ३।१।९७) वा नवमेव यत् (शाखादिभ्यो यत्। पा ५।३।१०३) १ नूतन, नया, नवीन, ताजा। २ स्तुत्य, स्तुति करनेयोग्य। (पु०) ३ रक्तपुनर्णवा, गदहपूर्ना।

नव्यवर्द्धमान (सं० पु०) स्मृतिनिबन्धकारभेद। ये गङ्गे-शोपाध्यायके पुत्र थे।

नव्लुस—पालेस्तिन प्रदेशके प्राचीन राज्य समरियाकी प्राचीन राजधानी। यह नेपेलिस् शब्दका अपभ्रंश है। यहां दश प्रकारकी जातियोंकी राजधानी थी। बाइबलकी पूर्वभागमें इसका नाम सेचेम और उत्तरभागमें साइ-चर बतलाया है। यह एवल और गेरिजिन पहाड़के मध्य अवस्थित है। इसका वर्त्तमान नाम नवुस्ते है। अभी यह एक छोटे ग्राममें परिणत हो गया है।

नव्वाब (हिं० पु०) नवाब देखो।

नव्वाबी (हिं० स्त्री०) नवाबी देखो।

नश् (सं० त्रि०) नश-क्विप्। १ नाशप्रतियोगी, नाशके लायक। भावे क्विप्। २ नाश, बरबादी।

नशन (सं० क्ली०) नश-ल्युट्। नाशशील, जिसका नाश हो, नाशके लायक।

नशा (फा० पु०) १ मादक द्रव्यके व्यवहारसे उत्पन्न होने-वाली दशा। शराब, गांजा, भांग, अफीम आदि एक प्रकारके विष हैं। इसके व्यवहारसे शरीरमें गरमी आ जाती है जिससे मनुष्यका मस्तिष्क क्षुब्ध और उत्तेजित हो उठता है। इतना ही नहीं याद या धारणाशक्ति भी कम हो जाती है। इसी दशाको नशा कहते हैं। साधा-रणत: लोग मानसिक चिन्ताओंसे छूटने या शारीरिक शिथिलता दूर करनेके लिये ही मादक द्रव्यका व्यवहार करते हैं। बहुतसे लोगोंको इन द्रव्योंका ऐसा अभ्यास पड़ गया है, कि बिना उसे पीये तनिक भी उन्हें चैन नहीं पड़ता। साधारणतमीकी अवस्थामें चित्तमें अनेक प्रकार-की उमंगे उठती हैं, बहुत सी नई नई और विलक्षण बातें सूझती हैं तथा साथ साथ चित्त भी प्रसन्न रहता है।

लेकिन अब नशा बहुत हो जाता है, तब मनुष्य उलटी करने लगता है अथवा बेहोश हो जाता है। २ मादक द्रव्य, नशा चढ़ानेवाली चीज। ३ धन, विद्या, प्रभुत्व या रूप आदिका घमण्ड, अभिमान, गर्व, मद।

नशाक (सं० पु०) नश्यतीति नश नाशे-आक (आकः कजादेः सनु कित्। १।२२३ इति उणादिकोषटीकाधृत सूत्र) काकभेद, एक प्रकारका कौवा।

नशाखोर (फा० पु०) वह जो किसी प्रकारके नशेका सेवन करता हो, नशेबाज।

नशिष्ठ (सं० त्रि०) नश-कर्त्तरि टच्। नाशाश्रय, जिसका नाश हो।

नशीन (फा० वि०) बैठनेवाला, इस अर्थमें यह यौगिक शब्दोंके अन्तमें व्यवहृत होता है।

नशीनी (फा० स्त्री०) बैठनेकी क्रिया या भाव।

नशीला (फा० वि०) १ नशा लानेवाला, मादक। २ जिस पर नशेका प्रभाव हो।

नशेबाज (फा० पु०) वह जो हमेशा किसी न किसी प्रकारके नशेका सेवन करता हो, वह जिसे कोई नशा करनेकी आदत हो।

नशोहर (हिं० वि०) नाश करनेवाला।

नश्तर (फा० पु०) एक प्रकारका बहुत तेज,छोटा चाकू। इसका अगला भाग नुकीला और टेढ़ा होता है और प्रायः इसके सिरे दोनों ओर धार रहती है, फोड़े आदिके चीरने और फसद खोलनेमें इसका व्यवहार होता है।

नश्यत्प्रसूतिका (सं० स्त्री०) नश्यन्ती प्रसूतिः सन्ततिर्यस्याः कप्, ततष्टाप्। मृतवत्सा, वह जिसका बच्चा मर गया हो। पर्याय—निन्दू, मृतपुत्रिका।

नश्वर (सं० त्रि०) नश्यतीति नश-क्वरप्। (इण्, नशजिसर्त्तिभ्यः क्वरप्। पा ३।२।१६३) नाशप्रतियोगी, नष्ट होनेवाला, जो नष्ट हो जाय।

नश्वरता (सं० स्त्री०) नश्वर होनेका भाव।

नष्ट (सं० त्रि०) नश-क्त। १ अदर्शनविशिष्ट, जो अदृश्य हो, जो दिखाई न दे। २ अधम, नीच, पामर। ३ प्रचलित, जिसका प्रचार हो गया है। ४ पलायित, जो भाग गया हो। ५ नाशप्रतियोगी, जिसका नाश हो गया हो, जो बरबाद हो गया हो। ६ निष्फल, व्यर्थ। (क्लो०) ७ नाश, बरबादी।

नष्टचन्द्र (सं० पु०) नष्टे दुष्टश्चन्द्रः। सौर भाद्रमासके उभयपक्षकी चतुर्थीमें उदित चन्द्र, भादों महीनेके दोनों पक्षकी चतुर्थीको दिखाई पड़नेवाला चन्द्रमा। इसका दर्शन पुराणानुसार निषिद्ध है।

रविके सिंहराशिमें जानेसे अर्थात् भाद्रमासके दोनों पक्षको चतुर्थी तिथिमें जो चन्द्र उदय होता है उसे देखना नहीं चाहिये। जो प्रमादवश देखता है, उसे कोई न कोई कलङ्क या अपवाद अवश्य लगता है। यहां तक कि नारायणने भी एक बार इस चतुर्थी चन्द्रमाको देखा था जिससे वे मिथ्यापवादग्रस्त हुए थे।

इस नष्टचन्द्रके दर्शन करनेसे इसके प्रायश्चित्त स्वरूप धार्तेयिका वाक्य पाठ करना होता है। उसके दूसरे दिन सवेरे पूर्वमुख वा उदङ्मुख हो कर कुश तिलादि हाथमें ले करके 'ओं अद्येत्यादि सिंहार्कचतुर्थीचन्द्रदर्शनजन्य पापक्षयकामः धार्तेयिका-वाक्यमहं पठिष्यामि' इस प्रकार सङ्कल्प करना होता है। बाद धार्तेयिका वाक्य पढ़ कर जल पीते हैं। मन्त्र—

"सिंहप्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः।
सुकुमारक ! मारोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः॥"
(कृत्यतत्त्व)

पुराकालमें चन्द्रमाने भाद्रमासकी चतुर्थी तिथिको ताराका हरण किया था, इसी कारण उस दिनकी चतुर्थी तिथि दुष्टा समझी जाती है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराणके श्रीकृष्णजन्मखण्डमें ८० और ८१ अध्यायमें इसका विवरण विस्तृत रूपसे वर्णित है।

नष्टचित्त (सं० पु०) उन्मत्त।

नष्टचेतन (सं० पु०) अचेत, बेहोश, बेखबर।

नष्टचेष्ट (सं० त्रि०) जिसको चेष्टा वा गति नष्ट हो गई हो, जिसमें हिलने डोलनेकी शक्ति न रह गई हो।

नष्टचेष्टता (सं० स्त्री०) नष्टा चेष्टा यस्य, तस्य भावः, तल् ततो टाप्। १ दुःख शोकादि द्वारा सब चेष्टाओंका नाश, मूर्च्छा, बेहोशी। २ प्रलय। ३ सात्त्विक भावभेद, एक प्रकारका सात्त्विक भाव।

नष्टजन्मन् (सं० क्लो०) जारज, वर्णसङ्कर, दोगला।

नष्टजातक (सं० क्ली०) नष्टं न ज्ञातं जातं जन्म जन्माधानकालो यत्र कप्। १ जन्म और जन्माधान कालका अपरिज्ञान, जन्म समयका विवरण नहीं जानना। २ प्रश्न लग्नादि द्वारा जन्मकाल-ज्ञानार्थ उपायभेद, एक प्रकारकी क्रिया या उपाय जिसके अनुसार ऐसे मनुष्यको जन्मकुण्डली आदि बनाई जाती है जिसके जन्मके समय और तिथि आदिका कुछ भी पता नहीं रहता। इसीको नष्टकोष्ठी उद्धार कहते हैं।

विशेष विवरण कोष्ठी शब्दमें देखो।

नष्टता (सं० स्त्री०) १ नष्ट होनेका भाव। २ दुराचारिता, वाहियातपन।

नष्टदृष्टि (सं० त्रि०) जिसकी दृष्टि नष्ट हो गई हो, दृष्टिहीन, अन्धा।

नष्टप्रभ (सं० त्रि०) कान्तिरहित, तेजोहीन।

नष्टबुद्धि (सं० त्रि०) बुद्धिहीन, मूढ़, मूर्ख, बेवकूफ।

नष्टभ्रष्ट (सं० त्रि०) जो बिलकुल नष्ट या टूट फूट गया हो।

नष्टमार्गण (सं० क्ली०) नष्टस्य अदर्शनं गतस्य मार्गणम्। अदर्शनगत वस्तुका अन्वेषण, खोई हुई वस्तुको तलाश।

नष्टराज्य (सं० क्ली०) १ मध्यदेशके उत्तर-पूर्व स्थित जनपदविशेष। २ विध्वस्त या हृतराज्य।

नष्टरूप (सं० त्रि०) १ जिसका रूप मनुष्यको दृष्टिसे अगोचर हो, मृत, मरा हुआ।

नष्टरूपा (सं० स्त्री०) अनुष्टुप्छन्दोभेद, अनुष्टुप् छन्दके एक भेदका नाम।

नष्टविष (सं० त्रि०) विषहीन सर्पादि, वह जहरीला जानवर जिसका विष नष्ट हो गया हो।

नष्टबीज (सं० त्रि०) नष्टं बीजं बीजभावो यस्य। निष्फल, बीजभावशून्य, फसल या अन्न जो बोने पर न उगा हो।

नष्टवेदन (सं० क्ली०) हृतवस्तुका अन्वेषण, खोई हुई वस्तुकी तलाश।

नष्टशुक्र (सं० त्रि०) जिसका वीर्य नष्ट हो गया हो।

नष्टा (सं० स्त्री०) १ व्यभिचारिणी, कुलटा। २ वेश्या, रंडी।

नष्टाग्नि (सं० पु०) नष्टो लुप्तः प्रमादालस्यादिना अग्निः वैतानिकोऽग्निर्यस्य। प्रमादादि द्वारा लुप्ताग्नि द्विज, वह साग्निक ब्राह्मण या द्विज जिसके यहांकी अग्नि प्रमाद या आलस्यके कारण लुप्त हो गई हो।

नष्टातङ्क (सं० त्रि०) आतङ्क या चिन्ताका अभाव।

नष्टात्मा (सं० त्रि०) दुष्ट, खल।

नष्टाप्तिसूत्र (सं० क्ली०) नष्टस्य चौरेणापहृतस्याप्तेः साधनं सूत्रं चिह्नम्। अपहृत द्रव्यका लाभसाधन चिह्नभेद, खोई हुई चीजोंका कुछ अंश मिलना जिससे बाकी चीजोंका भी सूत्र मिले।

नष्टाशङ्क (सं० त्रि०) नष्टा आशङ्का यस्य। निर्भय, निडर।

नष्टार्थ (सं० त्रि०) नष्टधन, जिसकी अवस्था शोचनीय हो गई हो, दरिद्र।

नष्टाश्वदग्धरथन्याय (सं० पु०) न्यायभेद, एक प्रकारका न्याय। यह न्याय निम्नलिखित घटना अथवा कहानीके आधार पर है। दो आदमी पृथक् पृथक् रथ पर सवार हो कर किसी वनमें गए। वहां संयोगवश आग लगनेके कारण एक आदमीका रथ और दूसरेका घोड़ा जल गया। कुछ समय बाद जब दोनों मिले, तब एकके पास केवल घोड़ा और दूसरेके पास केवल रथ था। दोनोंके मेलसे घोड़ा रथमें जोता गया और वे दोनों निर्दिष्ट स्थानको पहुंच गये। इस न्याय द्वारा यह प्रतिपादित हुआ है, कि निष्काम शुद्ध धर्मरूप रथमें ज्ञानरूप अश्व संयोजित करके सभी मनुष्य ईश्वरको अवश्य प्राप्त कर सकते हैं। वैदान्तिक पण्डितोंने इस न्याय द्वारा यही प्रतिपन्न किया है। न्याय देखो।

नष्टासु (सं० त्रि०) नष्टयः असवो यस्य। जिसको प्राणवायु उड़ गई हो, मृत, मरा हुआ।

नष्टि (सं० स्त्री०) विनाश, ध्वंस, बरबादी।

नष्टेन्दुकला (सं० स्त्री०) नष्टा इन्दुकला यस्याम्। कुहू, वह अमावस्या जिसमें चन्द्रमा बिलकुल दिखाई न दे।

नस् (सं० स्त्री०) नस-क्विप्। नासिका।

नस (हिं० स्त्री०) १ पुरुषकी मूत्रेन्द्रिय, लिङ्ग। २ शरीरके भीतर तन्तुओंका लच्छा जो पेशियोंके छोर पर उन्हें दूसरी पेशियों या अस्थि आदि कठिन स्थानोंसे

जोड़नेके लिये होता है। साधारण बोलचालमें इसे शरीरतन्तु या रक्तवाहिनी नली कहते हैं। २ पतले रेशे वा तन्तु जो पत्तोंके बीच बीचमें होते हैं।

नसकटा (हिं॰ पु॰) नपुंसक, हिजड़ा।

नसतरंग (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका बाजा जो पीतलका बना हुआ शहनाईके आकारका होता है। इसके पतले सिरे पर एक छोटासा छेद होता है। इस छेद पर मकड़ीके अण्डोंके ऊपर सफेद झिल्ली रखते हैं। बाद शब्द करते समय उस सिरेको गलेकी घंटीके पासकी नसों पर रख कर गलेसे स्वर भरते हैं। इसी प्रकारके दो बाजे गलेकी घण्टीके दोनों ओर रख कर एक साथ ही बजाए जाते हैं।

नसतालिका (अ॰ पु॰) १ फारसी या अरबी लिपि लिखनेका एक ढंग। इसमें अक्षर खूब साफ और सुन्दर होते हैं। २ वह जिसका रंग ढंग बहुत अच्छा और सुन्दर हो।

नसफाड़ (हिं॰ पु॰) हाथियोंका एक रोग। इस रोगमें उनके पैर सूज जाते हैं।

नसर (अ॰ स्त्री॰) १ गद्य। २ ईगल पक्षी, प्राचीन अरबियोंकी देवमूर्त्ति। अनसरिया प्रदेशका धर्म भी नसर उन्तयिर नामसे प्रसिद्ध था। नसर शब्दसे सूर्यका बोध होता है। ईगल पक्षी प्रकाश और सूर्यका चिह्न समझा जाता है। बलबेकनगरके ध्वंसावशिष्ट सूर्यमन्दिरके इष्टकादिमें ईगलवाहन सूर्यमूर्त्ति आज भी पाई जाती है।

नसर खाँ—शम्भलके एक मुसलमान शासनकर्त्ता। शेरशाहके राजत्वकालमें मुसलमानी इतिहास तारिख-इ-शेरशाहीमें लिखा है, कि शेर शम्भलाधिपति नसर खाँकी विधवा पत्नीने गहर कुशानी खाँसे विवाह कर ६० मन सोना पाया था।

नसरतगञ्ज—रोहिलखण्ड विभागके बरेली जिलेके अन्तर्गत रामनगरके उत्तरका एक ग्राम। प्रवादानुसार यही रामनगर महाभारतोक्त उत्तर-पाञ्चालकी राजधानी अहिच्छत्रानगरी है। यह बरेली शहरसे १० कोस पश्चिममें अवस्थित है। अहिच्छत्रका नाम आज भी सुननेमें आता है। रामनगर ग्रामके उत्तर एक बड़ा वन है। यह वन रामनगरके उत्तर आलमपुरकोट और नसरतगञ्ज ग्रामके बीचमें पड़ता है। अभी इसी वनको अहिच्छत्रावन कहते हैं। इन सब स्थानोंमें प्राचीन नगर और दुर्गके भग्नावशेष तथा बौद्धयुगके स्तूपादिके ध्वंसावशेष यथेष्ट देखनेमें आते हैं। भग्नावशिष्ट दुर्गके दक्षिण-पश्चिम कोणमें ४७ फुट ऊँचा साहबे-बुर्ज नामक एक स्तम्भ है, यहांकी जमीन खोदनेसे बीच बीचमें मित्र राजाओंकी मुद्रादि पाई जाती हैं, दुर्ग-भग्नावशेषके उत्तर प्राचीरके निकट एक शिवमन्दिरका खण्डहर है। केवल ६८ फुट ऊँची ईंटोंकी दीवार रह गई है। कनिंहम साहब अनुमान करते हैं कि वह मन्दिर सौ फुटसे भी ज्यादा ऊंचा था। मन्दिरका निम्नांश और वृहत्लिङ्ग आज भी वर्त्तमान है। लिङ्गके टूट जाने पर भी वह अभी ८ फुट ऊंचा रह गया है। इसका घेरा ३½ फुट है इस भग्न लिङ्गको लोग अभी भीमकी गदा कहते हैं। यहां एक स्तूपके ऊपर एक बुद्धमूर्त्ति है जिसे हिन्दू लोग हिन्दू-देवता समझ पूजते हैं। नसरतगञ्जमें जितने देवगण हैं वे भी बौद्ध-हिन्दू-मन्दिरसे संगृहीत हुए हैं। स्तूपके ऊपर गोलाकार ढालकी तरह जो छत थी, वह अभी भग्नस्तूपके ऊपर पड़ी हुई है। यहांके लोग उस छतको "पिसनहारीका छतर" कहते हैं। उस छतका भग्नावशिष्ट अभी जितना रह गया है उसीका व्यास १० फुट है। इससे अनुमान किया जाता है पहले यह छत ५० फुटसे कमका नहीं होगा। कनिंहमका कहना है, कि यही २५० ई॰-सन्से पहलेका बना हुआ अशोक-स्तूप है। इस स्तूपको युएनचुवङ्गने देखा था। नसरतगञ्जसे प्रायः एक सौ गज पूर्वकी ओर एक दूसरे दुर्गका भग्नावशेष देखनेमें आता है जिसका नाम है कोटारी खेरा वा ध्वंसावशिष्ट स्तूप। यहां पहले दिगम्बर सम्प्रदायी जैनियोंका एक मन्दिर था। एक अष्टपला स्तम्भमें उत्कीर्ण एक चरण लिपि देखनेसे मालूम होता है, कि महादरी नामक इन्द्रनन्दीके शिष्यने यहां पार्श्वनाथका एक मन्दिर बनवाया था। यहां नवग्रह चित्रित एक पत्थर भी पाया गया है। जैनियोंके निकट अहिच्छत्र आज भी पवित्र तीर्थ समझा जाता है।

नसरत शाह—गौड़ेश्वर हुसेन शाहके पुत्र। हुसेन शाहके

मरनेके बाद ये बङ्गालके सिंहासन पर बैठे। पहले पहल इन्होंने अच्छी ख्याति पाई थी। आत्मीय स्वजन इनके प्रेमसे मुग्ध हो गये थे। इस समय इन्होंने मिथिला, हाजीपुर, मुङ्गेर आदिको जीत लिया था।

ये कवियों और पण्डितोंके उत्साहदाता थे। इन्हींके आदेशसे वङ्ग भाषामें महाभारतका अनुवाद किया गया था।

नसरत खांके कहनेसे ही परागल खां और छोटो खां नामक उनके दो सेनापतियोंने कवीन्द्र और श्रीकरनन्दी द्वारा महाभारतका प्रचार कराया था। वैष्णव कवियोंकी पदावलीमें भी नसरतका नाम देखा जाता है।

१५२६ ई०के कुछ समय बाद बाबरने बङ्गाल पर चढ़ाई करनेका उद्योग किया था। नसरतने उन्हें दो बार रिशवत भी भेजी थी, लेकिन कुछ फल न निकला। अन्तमें १५७८ ई०को इन्होंने बाबरके साथ सन्धि कर ली। इसी समयसे इनकी प्रकृति कुछ बदल गई। जैसे ही ये सद्गुण-सम्पन्न थे, वैसे ही अत्याचारी हो गये। इनके अत्याचारसे उत्पीड़ित हो कर प्रजा इन्हें मार डालनेकी कोशिश करने लगी। अन्तमें १५३३ ई०को ये किसी एक खोजाके हाथसे मार डाले गये।

गौड़का विख्यात 'सोना मस्जिद' इन्हींका बनाया हुआ है। इनकी मृत्युके बाद इनके भाई महमुद शाह अपने भतीजेको मार कर आप सिंहासन पर बैठ गये।

नसल (अ० स्त्री०) खानदान, वंश।

नसवार (हिं० स्त्री०) सूंघनेके लिये तमाकूके पीसे हुए पत्ते, सुँघनी, नास।

नसहा (हिं० पु०) जिसमें नसें हों।

नसा (सं० स्त्री०) नस् वा टाप्, यद्वा नसते कुटिलतां प्रकाशयति, नस कौटिल्ये अच्, ततो-टाप्। नासिका, नाक।

नसिरखां—१७५० ई०से ले कर १७६० ई० तक रिचार्ड बुरकिर बम्बईके गवर्नर थे। उस समय बन्दर आब्बासी नामक स्थानमें जो अंगरेज कर्मचारी कप्तान थे उन्हें नसिर खां नामक पारस्यराजके अधीनस्थ एक सामन्त राजने रामायनीके निकट चरबो-डकैतोंको दमन करनेका हुक्म दिया था। इन्होंने अपनेको उच्च देशाधीश्वर बतलाया है।

नसिरजङ्ग—१७४८ ई०में निजाम उल् मुल्कके मरने पर उनके द्वितीय पुत्र नसिरजङ्ग दक्षिण प्रदेशके सूबादारी-मसनदके पद पर नियुक्त हुए। इन्होंने अर्काटकी लड़ाईमें महम्मद अली और अंगरेजोंका साथ दिया था। कुछ दिन ये अर्काटमें रहे थे। १७५० ई०में ये फ्रांसीसियोंके विरुद्ध लड़ने गये थे और वहीं काड़ापाके पठान-नवाबके हाथसे मारे गये। इनकी मृत्यु पर चाँद साहब, डुप्ले और पुन्दिचेरीके लोग प्रसन्न हुए थे।

नसिरपुर—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत हैदराबाद जिलेका एक नगर। कहते हैं, कि यह नगर ८८८ ई०में बसाया गया है।

नसिरपुर (नसरपुर)—सिन्धप्रदेशके हैदराबाद जिलेके अन्तर्गत अलाहयार तालुकका एक शहर। यह अक्षा० २५°३१ उ० और देशा० ६८° ३८' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ४५११के लगभग है। दिल्लीके खिलजी वंशीय सम्राट् सुलतान फिरोजशाहने ११५३ ई०में इसे बसाया था। उन्होंने गुजरातसे लौटते समय शहरानदीके किनारे एक दुर्ग भी बनवाया था। पहले यहां तरह तरहके कपड़े बुने जाते थे, पर अभी करघे पर सामान्य धोती साड़ी प्रस्तुत होती हैं। यहांका राजस्व ६०००) रु० है। शहरमें एक छोटी अदालत, अस्पताल तथा एक स्कूल है।

नसिरशाह—उड़ीसाके पठान नवाब कतलू खांका बड़ा लड़का।

नसिरि—भ्रमणकारी अफगानकी एक जाति। ये लोग ग्रीष्मकालमें टोबी और हटूकीमें रहते हैं। जाड़ा पड़ने पर सुलेमान पर्वतके नीचे दामन प्रदेशमें चले जाते हैं।

नसिरि खस्रु—हिजरी पञ्चम शताब्दीके एक कवि। अकबरके समयमें इनकी कविताका खूब आदर होता था।

नसिरुद्दीन्—मध्य एशियाके पखाली नामक स्थानके सुलतान। इनका असल नाम हुसेन खां था। ये एक समय अकबरको सभासे बिना आज्ञा लिये चले आये थे, इस कारण सम्राट्ने हसनबेग बदकशी नामक नौशती मनसबदारको इन्हें दमन करनेके लिये भेजा। हसनबेग इन्हें अच्छी तरह पराजय करके कुछ दिन इन्हींके

राज्यमें ठहर गये थे। किन्तु जब वे भारतको लौट आए, तब फिर नसिरुद्दीन्ने खोई हुई स्वाधीनता प्राप्त की और इसनको सेनाओंको निकाल भगाया। अन्तमें इसनने आ कर पुनः इनका मान मर्दन किया।

नसिरुद्दीन् महमूद—दास राजाओंमें एक भारतीय सम्राट्। रजिया बेगमके बाद इन्होंने ही दिल्लीका सिंहासन सुशोभित किया। १२४६ ई०से ले कर १२६६ ई०के फरवरी मास तक इनका राजत्वकाल था। इनका आचार-व्यवहार उदासीन सरीखा था। राज्यकी आयमेंसे ये एक पैसा भी अपने काममें नहीं लाते थे। पुस्तकादिकी नकल करके जो कुछ उसमें मिल जाता, उसीसे अपना गुजारा करते थे। और सब राजाओंकी तरह इन्हें एकसे अधिक स्त्री वा रखेली न थी। इनकी स्त्री स्वयं अपने हाथसे इनका खाना पकाती थी।

नसिरुद्दीन्-आवदाल-बिन-उमर- अल् वैजभी—एक मुसलमान ऐतिहासिक। इन्होंने पारस्य भाषामें निजाम उत्-तवारिख नामका इतिहास रचा है। ये एक काजी थे। इन्होंने एशियाके सम्राट्, विशेषतः मुगलोंका ही विवरण विस्तार रूपसे लिखा है। सम्भवतः ताब्रिज नगरमें १२८६ ई०को इनकी मृत्यु हुई।

नसी (हिं० स्त्री०) कुसीकी नोक, हलके फारका अगला भाग।

नसीठ (हिं० पु०) बुरा शकुन, असगुन।

नसीनी (हिं० स्त्री०) सीढ़ी, जीना, निसेनी।

नसीपूजा (हिं० पु०) हलकी पूजा। यह पूजा बोनेके मौसिमके पीछेकी जाती है।

नसीब (अ० पु०) भाग्य, प्रारब्ध, किस्मत, तकदीर।

नसीबजला (अ० वि०) जिसका भाग्य खराब हो, अभागा।

नसीबवर (अ० वि०) सौभाग्यशाली, भाग्यवान।

नसीबा (हिं० पु०) नसीब देखो।

नसीम (अ० पु०) ठंढी, धीमी और बढ़िया हवा।

नसीराबाद—१ बङ्गाल प्रदेशके मैमनसिंह जिलेका एक सदर। यह अक्षा० २४° ४६' उ० और देशा० ९०°२४' पू०के मध्य ब्रह्मपुत्रके पश्चिम किनारे अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १४६६८ है। यहां १८६८ ई०में म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। राजस्व ७७०००) रु०की लगभग है। यहां कोई विशेष ऐतिहासिक घटना न घटी। प्राचीन सामग्रियोंमें अभी केवल दो मन्दिर रह गये हैं।

२ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत खान्देश जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २१° उ० और देशा० ७५°४०' पू०के मध्य भादलीसे २ मील दक्षिणमें अवस्थित है। यहां प्राचीन कालकी अनेक समाधियां देखनेमें आती हैं। सातमाल पर्वतके भीलोंने वृटिश आधिपत्यके पहले इस शहरमें कई बार ऊधम मचाया था। १८०१ ई०में जुव नामक एक प्रसिद्ध लुटेरेने इसे अच्छी तरह लूटा। १८०२ ई०में यहां एक भयानक दुर्भिक्ष भी पड़ा था, शहरमें रूईका एक कारखाना और छः स्कूल हैं।

३ बलुचिस्तानके सीबी जिलेका एक उपविभाग और तहसील। यह अक्षा० २७°५५' और २८°४०' उ० तथा देशा० ६७°४०' और ६८°२०' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ८५२ वर्गमील और जनसंख्या ३५७१३ है। इसमें एक शहर और १७० ग्राम लगते हैं।

४ बम्बईके लरकाना जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० २७°१३' और २७°३३' तथा देशा० ६७°१३' और ६८°६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४१७ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ५६५५४ है। इसमें कुल ६५ ग्राम लगते हैं। राजस्व दो लाख रुपयेसे अधिकका है। यहांका प्रधान उत्पन्न द्रव्य धान है। इस तालुककी दक्षिणकी मट्टी खारी है, अतः वहां कोई फसल नहीं लगती।

५ राजपूतानेका एक सैन्य-निवास। यह अक्षा० २६°१८' उ० और देशा० ७४°४३' पू०के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः २२४८४ है। हिन्दूकी संख्या ही सबसे अधिक है। १८१८ ई०में आक् टरलोनीने यह निवास संस्थापित किया है।

६ सिन्धुदेशके अन्तर्गत शिकारपुर जिलेका एक उपविभाग। भूपरिमाण प्रायः ३४३ वर्गमील है। इसमें ८ विभाग और ५४ ग्राम लगते हैं। इसके प्रधान नगरका नाम भी नसीराबाद है। मीर नसिर खांने तलपुरसे प्रायः ४० वर्ष पहले इस नगरको बसाया था। यहां एक उत्तम दुर्ग है।

७ उक्त विभागका एक नगर। यह अक्षा० २७°२३´ उ० और देशा० ६७°५७´ पू०के मध्य पड़ता है।

८ अयोध्याके अन्तर्गत रायबरेली जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २६°१५´ उ० और देशा० ८१°३४´ पू०के मध्य अवस्थित है।

नसीराबाद—१ भविष्य ब्रह्मखण्डोक्त वरद देशान्तर्गत ग्रामविशेष। यह ग्राम कलिके ४००१ वर्ष बीत जाने पर स्थापित हुआ था और हजार वर्ष तक इसका अस्तित्व रहेगा।

२ अयोध्याके सीतापुर जिलेका एक ग्राम। यह मिश्रीली तहसीलके मनुया ग्रामसे ३ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। यहां कलापदेवी और आस्तिकका एक एक पृथक् मन्दिर है। ये दोनों मन्दिर १० वीं शताब्दीके बने हुए हैं। मन्दिरकी अवस्था अच्छी है तथा इनके कारुकार्य भी देखने लायक हैं।

३ अजमेर-मेरवाड़ा जिलेका एक स्कन्धावार।

नसीला (हिं० वि०) जिसमें नशे हों, नसदार।

नसीहत (अ० स्त्री०) १ उपदेश, शिक्षा, सीख। २ अच्छी सम्मति।

नसीहा (हिं० पु०) मुलायम मिट्टीके जोतनेके लिये हलका हल।

नसूढ़िया (हिं० वि०) जिसके देखने, छूने अथवा किसी प्रकारके सम्बन्धसे कोई दोष या हानि हो, मनहूस।

नसूर (हिं० पु०) नासूर देखो।

नस्त (सं० पु०) नसते कुटिलतां प्रकाशमत्यनेन नस-क्त, बाहुलकात् इड़भावः। १ नासिका, नाक। २ नस्य-विशेष, एक प्रकारकी सुंघनी।

नस्तकरण (सं० पु०) एक प्रकारका यन्त्र जिसका व्यवहार भिक्षु लोग नाकमें दवा डालनेके लिये करते थे।

नस्तरन (फा० पु०) १ सफेद गुलाब, सेवती। २ एक प्रकारका कपड़ा।

नस्ता (सं० स्त्री०) नस्त-टाप्। नासाकृत छिद्र, पशुओंकी नाकका छेद जिसमें रस्सी डाली जाती है।

नस्तित (सं० पु०) नस्ता नासाच्छिद्रं जाता अस्य तारकादि तच्। वह पशु जिसकी नाकमें छेद करके रस्सी डाली जाय। पर्याय—नस्योत और नस्योत।

नस्योत (सं० पु०) नस्ये नासिकायां उतं वयनं यस्य। नस्तित देखो।

नस्य (सं० क्ली०) नासिकायै हितं नासिका-यत्, नसादेशश्च। १ नासिकामें देय चूर्णादि, नास, सुंघनी। पर्याय—नस्त और नावन।

"वमनं रेचनं नस्यं निरूहश्चानुवासनम्।
ज्ञेयं पञ्चविधं कर्म मात्रा तस्य प्रवक्ष्यते॥"

(वैद्यकपरिभाषा)

इसका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है,—औषध अथवा औषधके साथ पाक किये हुये घी आदिको नाकके रास्ते प्रयोग करनेका ही नाम नस्य है। यह दो प्रकारका है—शिरोविरेचन और स्नेहन। इन्हीं दो प्रकारके नस्योंके फिर पांच भाग हैं—नस्य, शिरोविरेचन, प्रतिमर्श, अवपीड़ और प्रधमन। इनमेंसे नस्य और शिरोविरेचन ही प्रधान है। नस्यका प्रतिमर्श और शिरोविरेचनका अवपीड़ तथा प्रधमन विकल्प है। इनके मध्य शून्यशिरः व्यक्तिके (अर्थात् जिसकी खोपड़ी खाली जान पड़ती हो) मस्तिष्कको स्निग्ध करनेके लिये, ग्रीवा, स्कन्ध तथा वक्षस्थलको मजबूत बनानेके लिये और दृष्टि प्रसादनके लिये स्नेह प्रयोज्य है।

मस्तक वायु द्वारा अभिभूत होनेसे दन्त, केश और श्मश्रुपपातमें, दारुण कर्णशूल और कर्णक्ष्वेड़में, तिमिररोग, स्वरभङ्ग, नासारोग, मुखशोष, वायुरोग, अकालजात पलितपलित, कठिन वातपैत्तिकरोग, मुखरोग आदि रोगोंमें वातपित्तनाशक द्रव्यके साथ स्नेहको पाक कर इसका प्रयोग करना चाहिये।

तालु, कण्ठ और मस्तक कफ द्वारा अभिव्याप्त होनेसे अरुचि, शिरगौरवशूल, पीनस, अर्द्धावभेदक, क्रिमि, प्रतिश्याय, अपस्मार और गन्धज्ञान नहीं होनेसे इन सब रोगोंमें तथा स्कन्ध-सन्धिके ऊपर अन्य प्रकार कफके विकारमें शिरोविरेचक द्रव्य अथवा उसके साथ पाक किये हुये स्नेहका प्रयोग करना विधेय है। इन दो प्रकारके नस्योंका श्लेष्म-रोगीको खानेके पहले, पित्तरोगीको दो पहरमें और वातरोगीको तीसरे पहरमें प्रयोग करना चाहिये।

स्नेहनस्य-प्रयोगकी प्रणाली—दन्तकाष्ठ वा धूम-

पान द्वारा यदि गलेकी नाली प्रभृति विशोधित हो जाय, तो पाणिपात द्वारा गलदेश, कपोलदेश और ललाटदेश स्निग्ध और मृदु करके वायु, आतप और रजोहीन गृहमें रोगीको उत्तानभावमे सुला दे। उसका हस्तपद प्रसारित, मस्तक किञ्चित् विलम्बित और चक्षु वस्त्रसे आच्छादित रहे। वामहस्तकी प्रदेशिनी द्वारा नासाग्रको थोड़ा उन्नमित करके पकड़े और पीछे दक्षिण हस्त द्वारा नासिकाके विशुद्ध स्रोतके मध्य निरवच्छिन्न भावसे स्नेह नस्यको दे दे ; देनेके समय इस बात पर विशेष ध्यान रहे कि वह चक्षु तक न पहुंच जाय। स्नेहावसेचन करनेसे शिरःकम्प, क्रोध, भाषण, क्षवथु वा हास्य नहीं करना चाहिए। इसका परिमाण प्रदेशिनीके दोनों पर्वोमें निःसृत अष्टविन्दु प्रथम मात्रा, शुक्ति परिमाण मध्यमात्रा और करतल परिमित तृतीय मात्रा है। रोगीके बलके अनुसार इन सब मात्राओंका प्रयोग करना चाहिये। स्नेह-नस्यका किसी तरह गलेके नीचे जाना अच्छा नहीं है। प्रयोजित स्नेह शृङ्गाटकमें प्लावित हो कर जब मुखमेंसे निकलता है, तब उसे फिर धारण न कर निष्ठीवन कर दे ; ऐसा नहीं करनेसे कफ उत्क्लिष्ट हो जाता है। इस प्रकार स्नेहका प्रयोग कर चुकने पर गला, कपोल आदि स्थानोंमें स्वेदका प्रयोग करके धूमपान करे और अभिष्यन्दी द्रव्य भक्षण करे। इस समय रोगीको रजः, धूम, स्नेह, आतप, मद्यपान, शिरःस्नान और क्रोधका परित्याग करना चाहिए।

अब शिरोविरेचनके योग और अभियोगका फल लिखा जाता है। उपयुक्त परिमाणमें सेवित होनेसे मस्तककी लघुता, स्वच्छन्दसे निद्रा, प्रबोध-विकारकी शान्ति, इन्द्रियोंकी शुद्धि और मनका सुख ये सब क्रियायें होती हैं। अधिक परिमाणमें सेवित होनेसे कफप्रसेक, मस्तककी गुरुता और इन्द्रिय विभ्रम होती है। मूर्द्धदेशके अति स्निग्ध होने पर रूक्ष क्रिया कर्त्तव्य है। अति अल्प परिमाणमें सेवित होनेसे इन्द्रियका वैगुण्य, रूक्षता और रोगकी अशान्ति ये सब लक्षण देखनेमें आते हैं। ऐसी हालतमें फिरसे नस्यका प्रयोग करना उचित है। शिरोविरेचनार्थ स्नेहका परिमाण रोगीके बलके अनुसार चार, छः और आठ विन्दु निर्दिष्ट हुआ है।

शास्त्रज्ञोंने नस्य प्रयोगके भी शुद्ध, हीन और अभियोग ये तीन लक्षण बतलाये हैं। यह उपयुक्तरूपसे संशोधित होने पर मस्तककी लघुता, स्रोतपथकी शुद्धि, व्याधिजय, मन और इन्द्रियकी प्रसन्नता, शिरःशुद्धि ये सब लक्षण होते हैं। मस्तकके हीनरूपसे शोधित होने पर कण्डू, उपदेह, गुरुता और स्रोतपथमें कफका संस्रव आदि लक्षण तथा अतिशोधित होने पर मस्तुलुङ्ग, क्षरण, वायुवृद्धि, इन्द्रियविभ्रम, मस्तककी शून्यता आदि लक्षण देखनेमें आते हैं। हीन और अतिशुद्धिकी जगह कफवातनाशक प्रक्रिया करनी होती है। मस्तकके सम्यक् विशोधित होने पर उस पर घृतसेचन कर्त्तव्य है। वायुकर्तृक देह अत्यन्त अभिभूत होने पर एक दिनमें, दो दिनमें, सप्ताहमें या पुनः पुनः अथवा दिनमें दो बार नस्य प्रयोग किया जा सकता है।

शिरोविरेचनकी तरह अवपीड़ भी अभिष्यन्दरोगमें तथा सर्पदंशनजन्य अचैतन्यमें प्रयोज्य है। शिरोविरेचक द्रव्योंमेंसे कोई द्रव्य पीस कर चूर्ण करे। चित्तविकार, कृमि और विषाभिपन्नरोगीके नासारन्ध्रमें नलके द्वारा उस चूर्णका प्रयोग करे। क्षीण व्यक्तिके रक्तपित्तरोगमें शर्करा, इक्षुरस, दुग्ध, घृत और मांसरस इनमेंसे किसी एकका नस्य प्रयोग हितकर है। कृश, दुर्बल, भीरु, सुकुमार और स्त्रियोंकी शिरःशुद्धिके लिए औषधके चूर्णके साथ पक्वस्नेह अर्थात् पकाए हुए तेल आदिका प्रयोग करे।

भुक्त, अपतर्पित, अति तरुण, प्रतिश्यायी, गर्भिणी, पीतस्नेह, पीतोदक, पीतमद्य, अजीर्ण, क्रुद्ध, विषार्त्त, तृषित, शोकाभिभूत, श्रान्त, बालक, वृद्ध, वेगावरोधित और शिरःस्नानाभिलाषी इन सब व्यक्तियोंको नस्यप्रयोग न करना चाहिये। जिस दिन आकाश मेघाच्छन्न रहे, उस दिन भी नस्य प्रयोग विधेय नहीं है।

नस्य वा धूम हीनमात्रा, अतिमात्रा, शीतल, उष्ण वा सहसा प्रदत्त होनेसे वा प्रयोगकालमें मस्तकके अति विलम्बित रहनेसे वा विचलित होनेसे अथवा निषिद्धभावमें युक्त होनेसे व्यापद् होता है। शिरोविरेचनमें दो प्रकारसे व्यापद् होता है—दोषके उत्क्लेश और क्षीणताके कारण। उत्क्लेशके कारण होनेसे शमनशोधनी द्वारा

और क्षयके कारण होनेसे बृंहणीय द्रव्य द्वारा प्रतिविधान करना विधेय है।

प्रतिमर्श चौदह कालमें प्रयोज्य है, यथा प्रातःकाल-में निद्राभङ्गके बाद, दन्तधावनके बाद, घरसे बाहर निकलनेके समय, मूत्रपुरीषत्यागके बाद, कवलग्रहण और अञ्जन प्रयोगके बाद, व्यायाम, व्यवाय वा पथ-भ्रमणके बाद, अभुक्तकालमें, वमनान्तमें और दिवा-निद्राके बाद तथा सायंकालमें। इन सब समयोंमें प्रयोग करनेसे निम्नलिखित फल होते हैं। निद्राभङ्गमें सेवन करनेसे रातको नासारन्ध्रमें सञ्चितमल परिष्कृत होता है और मन प्रफुल्ल रहता है। दन्तप्रक्षालनके बाद सेवन करनेसे दन्त दृढ़ होते हैं और मुखमेंसे सुगन्ध निकलती है। गृहसे निर्गतकालमें सेवन करनेसे रजोधूम आदि नासारन्ध्रमें प्रविष्ट नहीं होते। मलमूत्रावसानमें प्रयोग करनेसे आँखका भारीपन जाता रहता है। अभुक्तकालमें सेवन करनेसे स्रोतपथकी विशुद्धि और लघुता होती है। वमनान्तमें सेवन करनेसे स्रोतपथ-संलग्न श्लेष्मा परि-ष्कृत हो कर अन्नकी रुचि होती है। दिवानिद्राके बाद सेवन करनेसे निद्राजन्य गुरुत्व और मलनाश होता है तथा चित्तकी एकाग्रता उत्पन्न होती है। सायंकालमें सेवन करनेसे सुखसे निद्रा और प्रबोध होता है।

ईषत् उच्छिङ्घित अर्थात् नस्यको सांस भरके खींच लेनेसे यदि वह मुख तक पहुंच जाय, तो उसे प्रति-मर्श कहते हैं। इसमें केवल परिमाणका भेद है।

नस्य ग्रहण करनेसे स्कन्धसन्धिके ऊर्द्धगत रोगोंकी शान्ति होती है, इन्द्रिय निर्मल होती है, मुख सुगन्धित होता है, हनु, दन्त, शिर, ग्रीवा, बाहु और वक्षमें ताकत पहुंचती है तथा वलिपलित, खालित्य आदि रोग नहीं होते।

नस्यके पक्षमें कफजन्य रोगमें तैल, वायुजन्य रोगमें वसा, पित्तमें घृत और वायुयुक्त पित्तरोगमें मज्जा प्रयोज्य है। (सुश्रुत चिकित्सितस्थान ४० अ०)

नासिकाग्राह्य अर्थात् जो औषध नाकमें प्रयोग की जाय, उसीका नाम नस्य है। घृत, तैल और चूर्ण आदि जो सब औषध नासिकामें व्यवहृत होती हैं, उन्हींको नस्य कहते हैं।

"नस्यन्तत् कथ्यते धीरैर्नासाग्राह्यं तदौषधम्।
नावनं नस्य कर्मेति तस्य नामद्वयं मतम्॥"
(चरक)

चरक-सूत्रस्थानके पञ्चम अध्यायमें नस्य-विषयका विस्तृत विवरण लिखा है।

"दिनस्य गृह्यते नस्यं रात्रौ चाप्युत्कटे गदे।"
(चरक चिकि० ५ अ०)

दिनमें ही नस्य लेना प्रशस्त है, यदि पीड़ाकी अति-शय वृद्धि हो तो रातको भी ले सकते हैं। शिरोरोगमें ही नस्य विशेष उपकारी है।

भैषज्यरत्नावलीमें नस्यका विषय इस प्रकार लिखा है—सैन्धवलवण, सोहिञ्जनका बीज, श्वेतसर्षप और कुटका बराबर बराबर भाग ले कर एक साथ मिलावे और छागमूत्रमें उसे पीस कर नस्य दे। इससे तन्द्रा नष्ट होती है। मधुकसार, सैन्धवलवण, वच, मिर्च और पीपरके समभागको पीस कर जलके साथ नस्य देनेसे रोगी चैतन्यलाभ करता है।

पिप्पलीमूल, सैन्धवलवण, पिप्पली और मधुकसार-का समभाग चूर्ण और उतना ही मिर्च चूर्ण, दोनोंको एक साथ मिला कर कुछ गरम जलके साथ नस्य प्रदान करनेसे रोगी बहुत जल्द चेतनलाभ करता है और तन्द्रा, प्रलाप तथा मस्तकका भार जाता रहता है।

लहसुन और मिर्चके समभागको पीस कर कपड़ेमें बाँध कर नस्य लेनेसे श्लेष्मा नष्ट होती है। काली मुरगीके डिम्बके तरलांशका नस्य लेनेसे दुःसाध्य सान्नि-पातिकज्वर भी अतिशीघ्र प्रशमित होता है।

शिरीष पुष्पके रसमें हरिद्रा और दारुहरिद्राका चूर्ण तथा घृत मिश्रित करके नस्य ग्रहण करनेसे चातुर्थक ज्वर दूर हो जाता है।

वकपुष्प वृक्षके पत्तोंके रसका नस्य लेनेसे चातुर्थक ज्वरकी शान्ति होती है। (भैषज्यरत्नावली ज्वराधि०)

पक्व पीनसरोगमें पाठादितैलका नस्य ग्रहण करनेसे वह अति शीघ्र उपशमित होता है। व्याघ्रीतैलका नस्य भी पूतिनासारोगमें हितकर है। त्रिकटु, विडङ्ग, सैन्धव, वृहतीफल, सोहिञ्जनकी छाल और दन्तीमूल प्रत्येक २ तोलाको पीस कर १ सेर तेल और ४ सेर

गोमूत्रमें पाक करके नस्य लेनेसे पूतिनासारोग नष्ट हो जाता है। इन्द्रयव, हिङ्गु, मिर्च, लाक्षारस, कट्फल, त्रिकटु, वच, सोहिञ्जनकी छाल और विड़ङ्ग इनके द्वारा नस्य लेना प्रशस्त है।

कटु तेल १ सेर, गोमूत्र ४ सेर, लाक्षारस ४ सेरमें इन्द्रयव, हिंगु, मिर्च, कट्फल, त्रिकटु, वच, सोहिञ्जनको छाल और विड़ङ्ग कुल मिला कर १ सेरको पाक कर नस्य लेनेसे पीनस और पूतिनासारोग उपशमित हो जाता है।

अपराजिता फलके रसका नस्य लेनेसे अथवा उसकी जड़ कानमें बांधनेसे शिरःपीड़ाकी शान्ति होती है। मिर्च और भृङ्गराजके नस्यसे भी सिरका दर्द दूर होता है। सोंठको पीस कर दूधके साथ नस्य लेनेसे नाना दोषोत्पन्न शिरःपीड़ाकी निवृत्ति होती है।

तिलतैल ४ सेर, छागदुग्ध ४ सेर, भीमराजके रस १६ सेरमें एरण्डमूल, तगर-पादुका, शुलफा, जीवन्ती, रास्ना, सैन्धव, गुड़त्वक्, विड़ङ्ग, यष्टिमधु और सोंठ प्रत्येक ६ तोला ३ माशा और २ रत्तीको चूर कर पाक करे। पीछे इसका नस्य लेनेसे शिरका रोग दूर होता है, केश शिथिल और दन्तादि दृढ़ हो कर दृष्टिशक्ति और बाहुबलको वृद्धि होती है।

कौड़ीकी भस्म २॥ तोला, सोहागेकी खोई २॥ तोला, मिर्च ४॥ तोला और विष १॥ तोला इन सब द्रव्यों को स्तन्यदुग्धमें मर्दन कर नस्य लेनेसे शिरोरोग प्रशमित होता है। (भैषज्यरत्ना० नासारोग और शिरोरोगाधिकार)
२ बैलको नाकको रस्सी, नाथ।

नस्यदान (सं० पु०) नस्य रखनेका आधार, सुंघनी-की डिबिया, नासदान। भारतवासी नस्य रखनेके लिए नाना प्रकारके नस्यदान बनाते हैं। कैथके भीतरसे गूदा निकाल कर उस खोखले भागके ऊपर तरह तरह-की खोदाई करके एक प्रकारका सुन्दर नस्यदान प्रस्तुत करते हैं। साधारणतः काठका खोखला डिम्बाकृतिका बना करके लोग उसीमें नस्य रखते हैं। इसमें एक छेद होता है जो ठेपीसे बन्द रहता है। नस्य निकालते समय उस ठेपीको निकाल लेते और फिर बन्द कर देते हैं। कहीं कहीं शम्बुकके खोखलेमें भी नस्य रखा जाता है। अभी जर्मनी, अष्ट्रिया, इङ्गलैण्ड आदि स्थानोंसे पेष्ट-बोर्ड, हड्डी और काठ आदिके तरह तरहके नस्यदान बन कर आते हैं। शौकीन आदमी प्रायः उसीका व्यवहार करते हैं। धनी लोग सोने चांदीका नासदान काममें लाते हैं।

नस्यधानी (सं० स्त्री०) नस्याधार, सुंघनी रखनेका बरतन, नासदानी।

नस्या (सं० स्त्री०) नासिकायै हिता यत् (शरीरावयवात्। पा ५।१।६) १ नासिका, नाक। २ नासाछिद्र, नाकका छेद।

नस्याधार (सं० पु०) नस्यस्य आधारः ६-तत्। वह पात्र जिसमें सुंघनी रखी जाती है, नासदानी।

नस्योत (सं० त्रि०) नस्यया नासारज्ज्वा उतः। नस्तित, वह पशु जिसकी नाकमें रस्सी आदि डालनेके लिये छेद किया गया हो।

नहँ (हिं० पु०) संयुक्त प्रदेशमें होनेवाला एक प्रकारका बढ़िया चावल।

नह (सं० अव्य०) न च इच। प्रत्यारम्भ।

नहछू (हिं० पु०) नखछोर, विवाहकी एक रस्म। इसमें वरकी हजामत बनती है, नाखून काटे जाते हैं और उसे मेंहदी आदि लगाई जाती है।

नहट्टा (हिं० पु०) नखक्षत, नाखूनसे की हुई खरोंच।

नहन (हिं० पु०) पुरवट खींचनेकी मोटी रस्सी, नार।

नहपान—वर्त्तमान जूनागढ़के निकट अर्थात् सौराष्ट्रराज्यमें किसी समय क्षत्रप उपाधिकारी राजा राज्य करते थे। इन राजाओंके दो स्वतन्त्र वंशोंका परिचय पाया गया है जिनमेंसे खहरातवंशीयगण पहले और चष्टान-वंशीयगण पीछे राज्य करते थे। चष्टानवंशके आदिपुरुष चष्टानने जब राज्य ग्रहण किया, तब उससे कुछ पहले खहरातवंशीय नहपान क्षत्रप राज्य करते थे। इनके समयकी मुद्रा पाई गई है। ये अन्ध्रराज गोमतीपुत्रसे मारे गये। क्षत्रप (Satrap) शब्दका अर्थ सामन्त भूपति है, कोई कोई अनुमान करते हैं, कि खहरात-वंशीय क्षत्रपगण शक-राजाओंके अधीन सामन्तराज थे। क्षत्रप और रुद्रदामा देखो। नहपानके पिताका नाम दिनिक था। डा० भाण्डारकरका मत है, कि गुजरमें

नहपानकी राजधानी थी। ई०सन्‌के पहले ४०से ले कर १२० ई०के अन्दर नहपान वर्त्तमान थे।

इनके जमाई उषवदात (ऋषभदत्त) अपने श्वशुरके अधीन कोङ्कण प्रदेशके शासनकर्त्ता थे। इन्होंने सोमनाथ-पत्तनमें यथेष्ट दानादि किये थे। नहपानके मन्त्री वात्स-गोत्रीय आयमने जुन्नरकी मनमोद-गुणावलीके मध्य एक गुहामण्डप निर्माण किया, जिसमें संन्यासी लोग रहते थे। इनके राजत्वकालके ४६वें वर्षमें गुहामण्डप और उसके पासका एक जलाधार बनाया गया था। वह गुहा आज भी वर्त्तमान है तथा उसके निर्माणकालकी उत्कीर्ण लिपि अब भी अच्छी तरह नजर आती है। गुहामें जो स्तम्भ लगे हुए हैं, वे देखनेमें बहुत मनोरम लगते हैं। नासिक देखो। जष्टिस न्यूटनका कहना है, कि जिस सम्वत्‌को विक्रम सम्वत् कहते हैं, वह इन्हीं नहपानका चलाया हुआ है। विक्रमादित्य देखो।

नहय—भविष्य ब्रह्मखण्डोक्त कीकट-देशान्तर्गत महा-ग्रामविशेष। इन्द्रप्रस्थमें जब विप्रवंशीय राजा राज्य करते थे, उस समय विजयदत्त नामक एक राजपुत्रने इस देशमें आ कर युद्ध किया। युद्धके समय जिस स्थान पर उनका घोड़ा मारा गया, वही स्थान 'नहय' वा 'नहयि' ग्राम नामसे प्रसिद्ध है। सर्पाघातसे जब विजयदत्तकी मृत्यु हुई, तब यह ग्राम तहस नहस हो गया। (ब्रह्म ख०)

नहर (फा० स्त्री०) जल बहानेके लिए खोद कर बनाया हुआ रास्ता। यह खेतोंकी सिंचाई या यात्रा आदिके लिये तैयार की जाती है। बड़ी बड़ी नहरें प्रायः साधारण नदियोंके समान हुआ करती हैं और उनमें बड़ी बड़ी नावें भी चलती हैं। कहीं कहीं दो झीलों या बड़े जलाशयोंका पानी मिलानेके लिये भी नहरें काटी जाती हैं।

नहरनी (हिं० स्त्री०) १ हज्जामोंका एक औजार। यह औजार लोहेका एक लम्बा गोल टुकड़ा होता है और इसका एक सिरा चपटा और धारदार होता है। इससे नाखून काटे जाते हैं। २ इसी प्रकारका एक औजार जिससे पोस्तोंकी ढोंढ़ो चीरी जाती है।

नहरम (हिं० स्त्री०) भारतकी नदियोंमें मिलनेवाली एक प्रकारकी मछली। पहाड़ी झरनोंमें यह अधिकतासे होती है।

नहरी (फा० स्त्री०) वह जमीन जो नहरके पानीसे सींचा जाय।

नहरुआ (हिं० पु०) कमरके नीचेके भागमें होनेवाला एक प्रकारका रोग। पानीके साथ एक विशेष प्रकारका कीड़ा शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है, उसीसे इस रोगकी उत्पत्ति है। इसमें पहले किसी स्थान पर सूजन होती है। बाद छोटासा घाव होता है और तब उस घावमें-से डोरीकी तरहका कीड़ा धीरे धीरे निकलने लगता है जो प्रायः गजों लम्बा होता है। इस रोगसे कभी कभी पैर आदि अङ्ग बेकाम हो जाते हैं।

नहरुवा (हिं० पु०) नहरुआ देखो।

नहला (हिं० पु०) १ ताशके खेलमें वह पत्ता जिस पर नौ चिह्न या बूटियां हों। २ नक्काशी बनानेका एक प्रकार-का औजार जो करनीकी तरहका होता है।

नहलाई (हिं० स्त्री०) १ नहलानेकी क्रिया या भाव। २ वह धन जो नहलानेके बदलेमें दिया जाय।

नहलाना (हिं० क्रि०) स्नान कराना, नहवाना।

नहवाना (हिं० क्रि०) नहलाना देखो।

नहसुत (हिं० पु०) १ नखकी रेखा, नाखूनका निशान। २ पलाशकी तरहका एक पेड़ जिसे फरहद भी कहते हैं। फरहद देखो।

नहां (हिं० पु०) १ धुरी पहनाई जानेका पहिएके ठीक बीचका छेद। २ घरके आगेका आंगन।

नहान (हिं० पु०) १ नहानेकी क्रिया। २ स्नानका पर्व।

नहाना (हिं० क्रि०) १ स्नान करना। शरीरमें जितने रोमकूप हैं, नहानेसे उन सबका मुँह खुल और साफ हो जाता है तथा शरीरकी थकावट भी दूर हो जाती है। भारतवर्ष सरीखे गरम देशोंमें लोग नित्य सबेरे उठ कर शौच आदिसे निवृत्त हो कर स्नान करते हैं और कभी प्रातःकाल तथा सन्ध्या दोनों समय स्नान करते हैं। लेकिन ठंढे देशोंके लोग प्रायः नित्य नहीं नहाते, सप्ताहमें एक या दो बार नहाते हैं। २ शराबोर हो जाना, बिलकुल तर हो जाना। इस अर्थमें 'नहाना' शब्दके साथ प्रायः 'उठना' या 'जाना' संयोज्य क्रिया लगाई जाती है। ३ रजोधर्मसे निवृत्त होने पर स्त्रीका स्नान करना।

नहानी (हिं० स्त्री०) १ रजस्वला स्त्री । २ स्त्रीका रजस्वला होना ।

नहार (फा० वि०) जिसने जलपान आदि कुछ न किया हो, बासी मुंह ।

नहार—बम्बई प्रदेशके रेवाकान्थके मध्य पाण्डुमेहवासगणका एक छोटा राज्य । भूपरिमाण ३ वर्गमील है । इसके प्रधान ग्रामका नाम भी नहार है । इस राज्यके दो अधिकारी हैं जिनकी उपाधि ठाकुर है । राज्यकी आय छः सौकी है । बड़ौदाके गायकवाड़को ३५) रु० करमें देने पड़ते हैं ।

नहारी (फा० स्त्री०) १ जलपान, कलेवा, नाश्ता । २ वह गुड़ मिला आटा जो घोड़ेको सबेरे अथवा आधा रास्ता पार कर लेने पर खिलाया जाता है । ३ मुसलमानोंके यहां बननेवाला एक प्रकारका शोरबेदार सालन जो रात भर पकता है और जिसके साथ सबेरे खमीरो रोटी खाई जाती है ।

नहि (सं० अव्य०) न च हि च । निषेध, कभी नहीं, अभाव । पर्याय—अ, नो, न, अन, अना, ना ।

नहिअन (हिं० पु०) बिछियाकी तरहका एक गहना जो पैरकी छोटी उंगलीमें पहना जाता है ।

नहिक—अरबके प्राचीन पौत्तलिक धर्मके अन्तर्गत देवताविशेष । इनका दूसरा नाम है मुशादजीर । अमरवीन लुहाईने जो तीन देवमूर्त्तियां प्रचलित कीं उनमेंसे ये दूसरे हैं ।

नहियां (हिं० स्त्री०) नहिअन देखो ।

नहिरनी (हिं० स्त्री०) नहरनी देखो ।

नहीं (हिं० अव्य०) एक अव्यय जिसका व्यवहार निषेध या अस्वीकृति प्रकट करनेके लिये होता है ।

नहुष (सं० पु०) नह्यते इति कर्त्तरि कर्मणि वा उषच् । (पुनहिकलिभ्य उषच् । उण् ४।७५) १ नागभेद, एक नागका नाम । २ चन्द्रवंशीय राजभेद, चन्द्रवंशके एक राजाका नाम ।

चन्द्रवंशीय राहुकी लड़की प्रभाके गर्भसे पांच पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें ये नहुष प्रथम थे । इनके शेष चार भाइयोंके नाम क्रमशः वृद्धशर्मा, रम्भ, रजि और अनेना थे । (हरिवंश १८ अ०)

चन्द्रवंशीय आयु राजाके पुत्र, पुरूरवाके पौत्र । इनकी माताका नाम स्वर्भानवी और स्त्रीका नाम अशोकसुन्दरी था । इनके छः पुत्र थे जिनके नाम ये हैं,—यति, ययाति, शर्याति, आयाति, वियति और कृति । इन्होंने तुण्ड नामक एक दैत्यका वध किया था । ये बड़े न्यायपरायण और प्रबल-पराक्रान्त राजा थे । इनके सुशासनसे डकैतोंका नाम-निशान तक भी न था । इन्होंने यज्ञ, तपस्या, वेदपाठ, इन्द्रियनिग्रह और पराक्रम द्वारा त्रैलोक्यका ऐश्वर्य प्राप्त किया था । एक समय अज्ञानवश इन्होंने गोवध किया था । इस पर महर्षियोंने इनके इस गोवध पापको एक सौ एक व्याधिरूपमें विभक्त कर पापमुक्त किया था । किसी समय महर्षि च्यवन प्रयागतीर्थमें जलके अन्दर तपस्या कर रहे थे ; धीवरोंने इन्हें मछलीके साथ पकड़ राजाके हाथ बेच डाला । पुराणमें एक जगह और लिखा है, कि जब इन्द्रने वृत्रासुरको मारा था, उस समय इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी थी । उसके भयसे इन्द्र १००० वर्ष तक कमलनालमें छिप कर रहे थे । उस समय इन्द्रासन पर जब कोई न रहा, तब गुरु वृहस्पतिने नहुषको योग्य जान कुछ दिनोंके लिये इन्द्रपद दिया था । यहां इन्द्राणी पर मोहित हो कर इन्होंने उसे अपने पास बुलाना चाहा । तब वृहस्पतिकी सलाह ले कर इन्द्राणीने कहला भेजा कि, "यदि पालकी पर बैठ कर सप्तर्षियोंके कन्धे पर हमारे यहां आओ, तो हम तुम्हारे साथ चलें ।" यह सुन कर राजाने तदनुसार ही किया और घबराहटमें आ कर सप्तर्षियोंसे कहा—सर्प, सर्प अर्थात् जल्दी चलो, जल्दी चलो । इस पर अगस्त्य मुनिने इन्हें शाप दे दिया कि, 'जा सर्प हो जा' । तब वे वहांसे पतित हो कर बहुत दिनों तक सर्प योनिमें रहे ।

महाभारतमें इनका विवरण इस प्रकार लिखा है—पाण्डवगण जब द्वैतवनमें रहते थे उस समय एक दिन भीमसेन शिकारको बाहर निकले । वहां किसी महाबलिष्ट सर्पने उन्हें पकड़ लिया । भीमके आनेमें विलम्ब होता देख युधिष्ठिर धौम्य पुरोहितके साथ उनकी तलाशमें निकले और जहां वे सर्पसे पकड़े गये थे वहां हो पहुंच गये । सर्प बहुत बड़ा था ; गिरिगुहा ऊपरसे उसके शरीरको ढकी हुई थी । शरीरका

चमड़ा भिन्न भिन्न रंगोंसे सुशोभित था। कान्ति सोने-सी थी, मुख गुहाकार और चतुर्दन्तयुक्त था। युधिष्ठिरने अपने प्रिय भाईको सांपसे घिरा देख कहा, "तुम किस प्रकार इस जालमें फंस गये?" भीमने उत्तर दिया, 'ये नहुष नामक राजर्षि हैं, ब्राह्मणोंके शापसे सांप हो गये हैं।' इस पर युधिष्ठिरने सांपको सम्बोधन कर कहा, 'तुम कौन हो, देवता हो, या दैत्य हो, या उरग हो? सच सच कहो। तुम भीमसेनको क्यों निगल रहे हो? ऐसी कौनसी वस्तु है जिसके देनेसे तुम प्रसन्न हो सकते हो? ऐसा कौनसा उपाय है जिससे तुम इसे छोड़ सकते हो?"

इसके उत्तरमें सर्पने कहा, "हे अनघ! मैं तुम्हारे पूर्व-पुरुष सोमवंशीय आयु राजाका पुत्र हूं; सोमसे निम्न पञ्चम पुरुषमें नहुष राजा नामसे प्रसिद्ध था। मैंने यज्ञ, तपस्या, स्वाध्याय, दम और विक्रमसे सहजमें त्रैलोक्यका ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया था। उस समय वैसा ऐश्वर्य पा कर मुझमें कुछ घमण्ड आ गया। तब मैंने अपनी शिविका ढोनेके लिये हजारों ब्राह्मणोंको नियुक्त किया था। पूर्वकालमें मैं स्वर्गके दिव्य विमान पर चढ़ कर इधर उधर घूमा करता था, अभिमानसे मत्त हो कर किसीकी परवाह नहीं करता। ब्रह्मर्षि, देव, गन्धर्व, राक्षस और पन्नगगण सभी त्रिलोकवासी मुझे कर देते थे। मुझमें ऐसी दृष्टि-शक्ति थी कि जब मैं कभी किसी प्राणीको एक बार देख लेता, तब उसी समय उसका तेज-हरण कर लेता था। हजारों ऋषि मेरी शिविका ढोते थे, इसी कुनीतिसे मैं श्रीभ्रष्ट हो गया। एक समय अगस्त्य मुनि मेरी शिविका ले जा रहे थे कि उस समय मेरे पैर उनके शरीरमें छू गये। इस पर वे बहुत बिगड़े और "तुम ध्वंस हो जा', 'तुम सर्प हो जा' ऐसा शाप दे दिया। उसी समय मैं उस पापसे मैं श्रीभ्रष्ट हो कर विमान परसे औंधे मुंह गिर पड़ा। जब मैंने अपनेको सर्पके रूपमें देखा, तब अगस्त्य मुनिकी नाना प्रकारसे स्तुति की। अगस्त्यने संतुष्ट हो कर मुझसे कहा कि, धर्मराज युधिष्ठिर तुम्हें इस शापसे मुक्त करेंगे। तुम्हारे घोर अभिमान स्वरूप पापका क्षय हो जानेसे पुन: तुम पुण्यफल प्राप्त करोगे। किन्तु इतना होने पर भी मैं ज्ञानशून्य नहीं हुआ था। तुम मेरे कुछ प्रश्नोंके सम्यक् उत्तर दे कर अपने भाईको छुड़ा ले जा।" जब युधिष्ठिरने प्रश्न पूछनेके लिये उससे कहा, तब सर्पने इस प्रकार प्रश्न किया ब्राह्मण कौन है और वेद कौन है? उत्तरमें युधिष्ठिरने कहा, 'सत्य, दान, क्षमा, शीलता, अक्रूरता तपस्या और दया ये सब जिनमें विद्यमान हैं वे ही ब्राह्मण हैं—जो सुख-दुःख-रहित हैं और जिन्हें जाननेसे मनुष्यका शोक दूर हो जाता है वे ही परब्रह्म वेद हैं।' नागराजने और भी कई प्रश्न किये थे जिनका उत्तर युधिष्ठिरने सम्यक् रूपसे दे दिया। इस पर सर्प-रूपी नहुषने संतुष्ट हो कर कहा, 'यदि सभी मनुष्य शूर और सुबुद्धिमान् हों और ऐश्वर्यमद उन्हें मोहित करता हो, तो ऐश्वर्य सुखमें समासक्त सभी पुरुष मोहसे मुग्ध हो सकते हैं। इसका प्रथम उदाहरण मैं ही हूं। महाबल! तुम्हारा भाई निरापद है और तुमसे मेरा शाप दूर हो गया। अत: तुम्हें धन्यवाद है। इतना कह कर नहुषने सर्परूपका परित्याग करके दिव्य-शरीर धारण किया और उसी समय वे स्वर्गको चले गये। (भारत आदि, वन, शान्ति और अनु० प०, भागवत, पद्मपु०)

ऋक्संहितामें भी ये आयुके पुत्र और ययातिके पिता माने गए हैं। (ऋक् १।३१।११, १०।६३।१)

३ सूर्यवंशीय अम्बरीषके एक पुत्रका नाम। इनके पुत्रका नाम ययाति था। (रामायण बाल० ७० स०)

४ मनुपुत्र ऋक्मन्त्रद्रष्टा एक ऋषि। इन्होंने ऋक्-संहिताके ८ मण्डलके १०१ सूक्त बनाए हैं।

(कात्यायनकी ऋग्वेदानुक्रमणिका)

५ कुशिक-वंशीय एक ब्राह्मण राजा। सह्याद्रिखण्डमें पाठारीय जातिके विवरणमें लिखा है कि कुशिक राजाके पुत्र नहुष, नहुषके पुत्र जाङ्गालि और जाङ्गालिके पुत्र कुशिकन थे। यही लोग कौशिकराज वा दोर्गराज नामसे प्रसिद्ध हैं। कुशिक वंशकी कौलिक देवी दुर्गा मानी जाती हैं, इस लिये यह वंश दोर्ग कहलाता है।

६ राजर्षिभेद, एक राजर्षिका नाम। ७ मरुत्‌भेद, मरुत्‌का नाम। ८ परमेश्वर। ९ कृष्ण, विष्णुका नामान्तर। १० मनुष्य, आदमी।

नहुषाख्य (सं० स्त्री०) नहुष आख्या यस्य। तगरपुष्प।

नहुषात्मज (सं० पु०) नहुषस्य आत्मजः। नहुष राजाके पुत्र, राजा ययाति।

नहुष्य (सं० त्रि०) मनुष्य सम्बन्धी।

नह्वर (हिं० स्त्री०) तिब्बतमें मिलनेवाली एक प्रकार-की भेंड़। ये कभी कभी नेपालमें भी आ जाती हैं। जब वर्फ अधिक पड़ने लगता है, तब इनके झुण्ड पर्वत-की चोटीसे उतर कर सिन्धुनदीके किनारे तक भी आ जाते हैं।

नह्सत (अ० पु०) १ खिन्नता, उदासीनता, मनहूसी। २ अशुभ लक्षण।

नांउं (हिं० पु०) नाम देखो।

नांगा (हिं० वि०) १ नंगा देखो। (पु०) २ एक प्रकार-के साधु जो नंगे हो रहते हैं।

नांगो (हिं० वि०) नंगो देखो।

नांद (हिं० स्त्री०) पशुओंको चारा आदि देनेका मिट्टो का एक बड़ा और चौड़ा बरतन, हौदी।

नांदोड़—बम्बईके रेवाकान्य एजेन्सीके अन्तर्गत राज पीपला राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २१° ५४' उ० और देशा० ७३° ३४' पू०, सुरतसे ३२ मील पूर्व-उत्तरमें अवस्थित है। जनसंख्या ११२२६ है। कहते हैं, कि १३०४ ई०में मुसलमान-शासनकर्त्ताओंने नांदोड़के प्रधान को यहांसे निकाल भगाया और नांदोड़ पर अपना पूरा दखल जमा लिया। पीछे मुसलमानोंके अधःपतन होने पर १८३० ई०में नांदोड़ पुनः उनके हाथ आ गया। यहां सूतेका मोटा कपड़ा तैयार होता है।

ना (सं० अव्य०) एक शब्द जिसका प्रयोग अस्वीकृति या निषेध सूचित करनेके लिए होता है, नहीं, न।

नाइत्तिफाकी (फा० स्त्री०) मेलका अभाव, विरोध, फूट, मतभेद।

नाइन—पञ्जाबके अन्तर्गत समूर नामक देशीय राज्यकी राजधानी। यह पार्वत्य राज्य है और हिमालयके ऊपर सिमलासे २० कोस दक्षिणमें अवस्थित है। यह बहुत परिष्कार नगर है। यहांके ग्रहादि पत्थरके बने हुए हैं। राजप्रासाद नगरके बीचमें दण्डायमान है। १८१४ ई०के नेपाल-युद्धमें यह नगर अङ्गरेजोंके अधिकारमें आया। गोरखा लोगोंने इसे समूरके राजासे ले लिया था। युद्ध-के समाप्त हो जाने पर यह फिर राजाको दे दिया गया। समूर देखो।

नाइन (हिं० स्त्री०) १ नाई जातिको स्त्री। २ नाईको स्त्री।

नाई (हिं० स्त्री०) १ समान दशा, एकसी गति। (वि०) २ समान, तुल्य।

नाई (हिं० पु०) नापित, हज्जाम।

नाईपांडे—कान्यकुब्ज ब्राह्मणोंका एक भेद। लगभग चार सौ वर्ष व्यतीत हुए कि मुसलमान लोगोंके साथ मदार-पुरके अधिपति भुमिहार ब्राह्मणोंका भीषण युद्ध छिड़ा। युद्धमें ब्राह्मण परास्त हुए और सबके सब काट मरे। केवल एक अनन्तराम ब्राह्मणकी स्त्री जो गर्भिणी थी बच गई थी। मुसलमानोंके उपद्रवके भयसे वह स्त्री स्यौना नामक किसी नाईके साथ उसको ससुरालमें जा बसी। युद्धमें जो उसके पति, पुत्र, देवर आदि मारे गए थे, उससे वह बहुत दुःखित रहती थी और भोजन नहीं करनेके कारण वह दिनों दिन दुर्बल और शक्तिहीन हो चली। गर्भके दिन पूर्ण होने पर बहुत कष्टसे उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। प्रसव करनेके बाद वह ब्राह्मणी इस लोकसे चल बसी। नाईने उसकी क्रिया ब्राह्मण द्वारा कराई और बालकका जातसंस्कार भी ब्राह्मणोंकी रीतिके अनुसार कराया। बालकका नाम रखा गया गभ्भू। गभ्भूने जब आठवें वर्षमें कदम रखा, तब उस नाईने अपने पुरोहित सुखमणि तिवारीको वह बालक समर्पण कर दिया; क्योंकि उनके एक भी सन्तान न थी। सुखमणि तिवारीजीने उस गभ्भू बालकका यज्ञोपवीत वेद रीतिसे किया और उसे वेदा-ध्ययन भी कराया। काश्यप उसका गोत्र रखा गया। गभ्भूके वंशमें कटोरी और अस्तुरेकी पूजा आज भी शुभ-कार्यमें होती है। यह कटोरी-अस्तुरेका पूजन उस नाईके उपकारके स्मरणका हेतु है।

इसके दो भेद हो गए हैं। जो पढ़े लिखे मनुष्य थे, वे तो अपनेको ब्राह्मण समझ कर कान्यकुब्जोंमें मिल गए और जो पढ़े-लिखे न थे, वे एक अस्तुरे और कटोरी का पूजन करते करते परम्पर स्वजाति वर्गको हजामत भी करने लगे, वही नाईपांडे नामसे प्रसिद्ध हुए। इस

प्रकार परस्पर हजामत करते करते ये लोग अन्य उच्च जातियोंकी भी अन्य नाइयोंकी तरह हजामत करने लगे। अन्तमें इस प्रकार करते करते अपनी असलियतको भूल कर अपनेको नाई ही समझने लगे। परन्तु इनके साथमें इनके ब्राह्मणत्वका पुछल्ला "पांडे" शब्द ज्योंका त्यों बना रहा। इस उपाधिसे ये लोग ब्राह्मण समझे जाते हैं। ये लोग केवल हजामत ही नहीं करते, बल्कि कुछ खेती बारी, कुछ सेवावृत्ति और कुछ शिल्पकारी करते हैं। युक्तप्रदेशके फर्रुखाबाद, कानपुर तथा प्रयाग आदि जिलोंमें ये लोग अधिक संख्यामें रहते हैं।

नाउत (हिं० पु०) मन्त्र-यन्त्रसे भूतप्रेत झाड़नेवाला मनुष्य, ओझा।

नाउन (हिं० स्त्री०) नाइन देखो।

नाउम्मेद (फा० वि०) निराश।

नाउम्मेदी (फा० स्त्री०) निराशा।

नाऊ (हिं० पु०) नाई देखो।

नाकंद (फा० वि०) अशिक्षित, बिना सिखाया हुआ। अल्हड़।

नाक (सं० पु०) नकं सुखमिति अकं दुःखम्, तन्नास्त्य-त्रेति नभ्राड़ित्यादिना निपातनात् प्रकृतिभावः। १ स्वर्ग, जहां दुःख नहीं, भविष्यत्‌में दुःखकी सम्भावना नहीं, उसी स्थानका नाम नाक है। २ अन्तरीक्ष, आकाश। ३ शस्त्रपातविशेष, अस्त्रका एक आघात, जो इस अस्त्रसे विद्ध होता है, उसकी अवश्य मृत्यु होती है।

नाक (हिं० स्त्री०) १ नासा, नासिका। नासिका देखो। २ कपालके कोशों आदिका मल जो नाकसे निकलता है, रेंट, नेटा। ३ लकड़ीका वह डंडा जिस पर चढ़ा कर बरतन खरादे जाते हैं। ४ चरखेमें लगी हुई एक चिपटी लकड़ी जो अगले खूंटेके आगे निकली हुए बेलनके सिरे पर लगी रहती है और जिसे पकड़ कर चरखा घुमाते हैं। ५ प्रतिष्ठाकी वस्तु, शोभाकी वस्तु। ६ प्रतिष्ठा, इज्जत, मान। ७ मगरकी जातिका एक जन्तु। मगर और नाकमें फर्क यह है कि यह उतनी लम्बी नहीं होती, पर चौड़ी अधिक होती है। मुँह भी इसका अधिक चिपटा होता है और उस पर घड़ा या थूथन नहीं होता। पूंछमें कांटे स्पष्ट नहीं होते। यह जमीन पर मगरसे अधिक दूर तक जा कर जानवरोंको खींच ला सकती है। सरयू तथा उसमें मिलनेवाली और छोटी छोटी नदियोंमें यह बहुत पाई जाती है।

नाक—चालुक्य राजवंशके एक राजपुत्र। ये चालुक्य-राज प्रथम आहुमिदेव और प्रथम चावुन्दके भाई थे। निजाम राज्यके अन्तर्गत वर्त्तमान एलबुर्ग नगरमें इनकी राजधानी थी।

नाकचर (सं० पु०) नाके स्वर्गे नभसि वा चरति चर-ट। १ गगनचर देवता और ग्रहादि, आकाशमें विचरण करनेवाले देवता और ग्रह आदि। २ पितृदेवभेद।

नाकड़ा (हिं० पु०) नाकका एक रोग। इसमें नाकके बांसेके भीतर जलन और सूजन होती है और नाक पक जाती है।

नाकतीर्थ—धारापतनतीर्थके निकट एक तीर्थका नाम।

नाकनटी (सं० स्त्री०) स्वर्गकी नर्त्तकी, अप्सरा।

नाकनाथ (सं० पु०) नाकस्य स्वर्गस्य नाथः नायकः ६-तत्। इन्द्र।

नाकनायक (सं० पु०) नाकस्य नायकः। इन्द्र।

नाकनायक-पुरोहित (सं० पु०) नाकनायकस्य पुरोहितः ६-तत्। बृहस्पति।

नाकपाल (सं० पु०) नाकं पालयति पाल-अच्। देवता।

नाकपुर—अयोध्याके अन्तर्गत फैजाबाद जिलेका एक शहर। यह फैजाबादसे २६ कोस दूर तमसा नदीके किनारे अवस्थित है। तीन सौ वर्ष पहले महम्मद नकी नामक किसी मनुष्यने इसे बसाया। शायद पहले इसका नाम नकिपुर था, पीछे अपभ्रंशसे नाकपुर हो गया है।

नाकपृष्ठ (सं० क्ली०) स्वर्गलोक।

नाकबुद्धि (हिं० वि०) जिसका विवेक नाक ही तक हो, क्षुद्रबुद्धिवाला, ओछी समझका। स्त्रियोंकी निन्दामें लोग कहते हैं, कि उनकी बुद्धि नाक ही तक होती है, अर्थात् यदि उन्हें नाक न हो, तो वे अच्छाभला सब खा जाय।

नाकरा—रेवाकाण्ठवासी भीलोंकी एक शाखा। ये लोग नायक और नायकी नामसे भी प्रसिद्ध हैं। "काली प्रजा" नामसे भी ये लोग पुकारे जाते हैं। भील देखो।

नाकलोक (सं० पु०) स्वर्गलोक, आकाशलोक।

नाकवनिता (सं० स्त्री०) नाकस्य वनिता ६-तत्। स्वर्गीय स्त्री, अप्सरा।

नाकपेचक (सं० पु०) इन्द्र।

नाकसद् (सं० पु०) नाके स्वर्गे सीदति सद-क्विप्। स्वर्गवासी, देवता।

नाका (हिं० पु०) १ प्रवेशद्वार, मुहाना। २ वह मुख्यस्थान जहांसे किसी नगर बस्ती आदिमें जानेके मार्गका आरम्भ होता है, गली या रास्तेका आरम्भ स्थान। ३ नगर दुर्ग आदिका प्रवेशद्वार, फाटक। ४ जुलाहोंका एक औजार जो आठ गिरह लम्बा होता है और जिसमें तानेके तागे बाँधे जाते हैं। ५ सूईका छेद। ६ वह प्रसिद्ध स्थान जहां निगरानी रखने या किसी प्रकारका महसूल आदि वसूल करनेके लिए सिपाही तैनात हो। ७ मगरकी जातिका एक जलजन्तु, नाक।

नाकापगा (सं० स्त्री०) नाकस्य स्वर्गस्य आपगा नदी। स्वर्गनदी, मन्दाकिनी।

नाकाबंदी (हिं० स्त्री०) १ प्रवेशद्वारका अवरोध। २ फाटक आदिका छेंका जाना। (पु०) ३ वह सिपाही जो फाटक पर पहरेके लिए खड़ा किया गया हो। ४ सिपाही, चौकीदार, पहरेदार।

नाकाबिल (फा० वि०) अयोग्य।

नाकारा (फा० वि०) बुरा, खराब, निकम्मा।

नाकिन् (सं० पु०) नाकः स्वर्गः वासस्थानत्वेनास्त्यस्येति नाक-इनि। देवता।

नाकिनाथ (सं० पु०) नाकिनां स्वर्गवासिनां नाथः। इन्द्र।

नाकिस (अ० वि०) निकम्मा, बुरा, खराब।

नाकी (हिं० पु०) देवता।

नाकु (सं० पु०) नम्यतेऽनेनेति नम-उ (फलिपाटिनमिमनिजनामिति। उण् १।१८) १ मुनिविशेष, एक मुनिका नाम। २ पर्वत, पहाड़। ३ वल्मीक, दीमककी मट्टीका ढूह, बैमौट। ४ भीटा, टीला।

नाकुल (सं० पु०) नकुलस्य गोत्रापत्यमित्यण्। १ नकुलपुत्र, नेवलेकी सन्तति। (क्ली०) २ शैवमार्गविशेष, शैव लोगोंके एक शाखका नाम। ३ रास्ना। ४ वेमरका मूसला। ५ चव्य। ६ यवतिक्ता। (त्रि०) ७ नकुलसम्बन्ध, नेवलेके ऐसा।

नाकुल (नाकुर)—१ युक्त-प्रदेशके सहारनपुर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २८° ३४ से ३०° १० उ० और देशा० ७७° ७ से ७७° ३४ पू०के मध्य अवस्थित है। यह तहसील चार परगने ले कर बनी है जिनके नाम ये हैं,—सुलतानपुर, सरसावर, नाकुर और गङ्गो। जनसंख्या प्रायः २०३४८४ है। इसमें ३८४ ग्राम और ८ शहर लगते हैं। कहते हैं, कि ४र्थ पाण्डव नकुलने यमुनाके किनारे अपने नाम पर नाकुल नामका एक नगर बसाया था, शायद इसीसे इस प्रदेशका नाम नाकुर वा नकुर पड़ा। यहां एक सुन्दर जैनमन्दिर है।

२ उक्त तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २८° ५६ उ० और देशा० ७७° १८ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या लगभग ५०३० है जिसमेंसे हिन्दूकी संख्या ही सबसे अधिक है। यहां एक अस्पताल, सराय और स्कूल है।

नाकुलि (सं० पु०) नकुलस्येदं अपत्यं वा अत इञ्। १ नकुल सम्बन्धी। २ नकुलापत्य, नेवलेकी सन्तति।

नाकुली (सं० स्त्री०) नकुलेन दृष्टा, पीता वा नकुल-अण्-ङीप्। १ कुक्कुटीकन्द, एक प्रकारका कन्द। यह सब प्रकारके विषों, विशेष कर सर्पके विषको दूर करती है। इसके दो भेद हैं, एक नाकुली और दूसरी गन्धनाकुली। गुण दोनोंका एकसा है। गन्धनाकुली नाकुलीसे अच्छी होती है। पर्याय—सर्पगन्धा, सुगन्धा, रक्तपत्रिका, ईश्वरी, नागगन्धा, अहिभुक्, सरसा, सर्पादनी, व्यालगन्धा। गुण—तिक्त, कटु, उष्ण, त्रिदोष और विषनाशक। २ रास्ना। ३ चविका, चव्य। ४ यवतिक्तालता, यवतिक्ता। ५ श्वेतकण्टकारी, सफेद भटकटैया। (त्रि०) ६ नेवला सम्बन्धी। ७ नकुल नामक पाण्डवका बनाया हुआ।

नाकुलान्ध्य (सं० क्ली०) दृष्टिकी खर्वता।

नाकुसद्मन् (सं० पु०) सर्प, साँप।

नाकेदार (हिं० पु०) १ फाटक पर रहनेवाला सिपाही। २ वह कर्मचारी जो आने जानेके प्रधान प्रधान स्थानों पर किसी प्रकारका महसूल आदि वसूल करनेके लिये तैनात हो। (वि०) ३ जिसमें नाका या छेद हो।

नाकेबन्दी (हिं० स्त्री०) नाकबन्दी देखो।

नाकेश (सं० पु०) स्वर्गके अधिपति, इन्द्र।
नाकेश्वर (सं० पु०) नाकस्य ईश्वरः। इन्द्र।
नकोदर (नकोद)—१ पञ्जाबके अन्तर्गत जलन्धर जिलेकी तहसील। यह अक्षा० ३०° ५६´ से ३१° १५´ उ० और देशा० ७५° ५´ से ७५° ३७´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३७१ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग २२२४१२ है। इसमें ३११ ग्राम लगते हैं। आय चार लाख रुपयेसे अधिककी है।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० ३१° ८´ उ० और देशा० ७५° २८´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या लगभग ८८५८ है। यह एक बहुत प्राचीन शहर है। कहते हैं, कि पहले हिन्दू-कम्बो राजाओंके अधिकारके समय यह नगर वर्त्तमान था। कोई राजपूत सरदार मुसलमान हो गया था और उसीने पहले पहल इसे अपने अधिकारमें किया था। जहांगीरके समय यह स्थान उसी राजपूतवंशीय मुसलमान शासनकर्त्ताको जागीरके रूपमें दे दिया गया। सिख-सरदार तारासिंहने यहांसे मुसलमान शासनकर्त्ताको निकाल कर इसे अपने अधिकारमें कर लिया। पीछे धंवा नामक किसी व्यक्तिने यहां एक दुर्ग बनवाया, उस समय समूचा प्रदेश पर अपना पूरा अधिकार जमा लिया। पञ्जाब-केशरी रणजित्सिंहने १८१६ ई०में इसे जीता। यहांके व्यवसायमें अनाज, चीनी और तमाकू प्रधान है। नगरके बाहर दो सुन्दर मसजिद हैं जो जहांगीरके समयमें बनाई गई हैं। उन मसजिदोंमें बहुत प्राचीन कालकी अनेक सुन्दर तसवीरें सुरक्षित हैं।

इन दो मसजिदोंमेंसे एकमें महम्मद हुसेनी नामक एक व्यक्तिकी कब्र है। १६१२ ई०में जहांगीरके शासनकालमें उनकी मृत्यु हुई थी। प्रत्नतत्त्वविद् कनिंहम अनुमान करते हैं, कि ये ही आईन-इ-अकबरीके लिखित विख्यात तम्बूरावादक महम्मद मुमीन हाफिजक होंगे। यहांके लोग भी उस कब्रको उस्तादकी कब्र कहते हैं। दूसरी मस्जिदमें हाजी जमाल नामक एक व्यक्तिकी कब्र है। हाजीजमालको लोग उक्त "उस्ताद"के एक छात्र मानते हैं। १६५७ ई०में उनकी मृत्यु हुई थी। कोई कोई कहते हैं, कि ये ही शाहजहान्के धर्मोपदेष्टा थे। यहां १८६७ ई०में म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। शहरमें एक ऐङ्गलो वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल और एक सरकारी अस्पताल है।

नाकौकस् (सं० पु०) नाक ओकः वासस्थानं यस्य। देवता, स्वर्गवासी।
नाक्षत्र (सं० क्ली०) नक्षत्रस्येदं नक्षत्र-अण्। १ नक्षत्रसम्बन्धीय। २ नक्षत्रघटित चक्रके परिवर्त्तनात्मक कालरूप दिनभेद। नक्षत्र द्वारा परिमित समयका नाम नाक्षत्रकाल है। यह नाक्षत्रकाल दो तरहसे लिया जाता है। प्रथम नक्षत्रसे ले कर शेष नक्षत्र तक २७ नक्षत्रोंके भोग द्वारा जो नाक्षत्रकाल पूरा होता है, उसे नाक्षत्रमास कहते हैं अर्थात् प्रथमसे शेष पर्यन्त २७ नक्षत्रोंका भोग जब शेष हो जाता है, तब नाक्षत्रमास होता है। यह नाक्षत्रमास नाक्षत्रयाग आदिमें प्रयोजनीय है।

एक नक्षत्रको किसी निर्दिष्ट स्थानसे पुनः उसी स्थान पर आनेमें जो समय लगता है, उसको नाक्षत्र-अहोरात्र कहते हैं। इसी प्रकार तीस दिनोंका जो महीना होता है, उसे नाक्षत्रमास और १२ महीनेका जो वर्ष होता है उसे नाक्षत्रवर्ष कहते हैं। आयु-गणना नाक्षत्र मासानुसार की जाती है।

सत्ताईस नक्षत्रात्मक नक्षत्र मासके यदि मङ्गल वा शनिवारमें जन्मनक्षत्र पड़े, तो उस मासका नाम कल्मष है। यह मास कष्टदायक माना जाता है।
नाक्षत्रिक (सं० पु०) नक्षत्रादागतः, नक्षत्र-ठञ्। नाक्षत्रमास।
नाक्षत्रिकी (सं० स्त्री०) नाक्षत्रिक-ङीष्। नक्षत्रदशा, ग्रहोंकी एक दशाका नाम।

सत्ययुगमें लग्नदशा, त्रेतामें हरगौरीदशा, द्वापरमें योगिनी और कलिकालमें नाक्षत्रकी दशा होती है।
दशा देखो।
नाखनखोम—काम्बोडियाके अन्तर्गत प्राचीन नगर ओङ्कोर वा ओङ्कार नगरका नामान्तर। श्याम देशीय भाषामें इसका अर्थ होता है प्रधान नगर। काम्बोज देखो।
नाखन-वट—काम्बोडियाकी प्राचीन राजधानी ओङ्कोर नगरके बाहर सिकनदीके समीप तालिसाव नामक एक ह्रद है। यह ह्रद ६० कोस लम्बा है। इसका विस्तार

कहीं कहीं १५से ३० कोस तक है। इस झदके उत्तरी किनारे एक विस्तीर्ण समतल क्षेत्र है। उस क्षेत्रमें अनेक प्राचीन कीर्त्तियोंके भग्नावशेष देखनेमें आते हैं। काम्बोजगण काश्मीर प्रदेशसे भाग कर जब काम्बोडियामें रहने लगे थे, तब इस देशमें नागपूजा प्रचलित हुई। १० वों से १४वीं शताब्दीके मध्य यहां अनेक मन्दिरादि बनाए गये जिनमेंसे नाखन-वटका मन्दिर ही सबसे श्रेष्ठ है। यह मन्दिर तालिसाव झदके किनारे ओङ्कोर नगरसे २ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। मन्दिरकी भूमि चौकोन है और चारों ओर आध कोस तक दीर्घ है। मन्दिर देखनेमें बहुत सुन्दर लगता है और वास्तुतत्त्वके लिये विशेष प्रयोजनीय है। इसके चारों ओर २२० गज विस्तृत एक खाई है। पश्चिमकी ओर प्रधान प्रवेशद्वार है जो छः सौ फुट ऊँचा है। कुछ आगे जा कर एक दूसरा क्रूशाकार उच्च पथ है। इसके दोनों बगल दो छोटे छोटे मन्दिर हैं। थोड़ी दूर और जाने पर मूलमन्दिरका बहिःप्राचीर पाता है। यह बहिःप्राचीर १५ फुटके लगभग ऊँचा है। इसके एक ओरकी लम्बाई ६५० फुट और चौड़ाई ५७० फुट है। इसके बीचकी जमीन ३ लाख ७० हजार वर्गफुट है। इसमें तीन प्रवेशद्वार लगते हैं। हरएक ओर ऊंचा स्तम्भ दण्डायमान है। इन सब स्तम्भोंमें बरामदे लगे हुए हैं। इन सब बरामदोंके कारुकार्य और निर्माणकौशल ही इस मन्दिरके विशेषत्व निर्देशक और प्रधान शोभावर्द्धक हैं। बहिःप्राचीर पार करने पर एक दूसरा प्राचीर मिलता है, फिर उसके बाद उसी तरहका एक और प्राचीर है। ये तीनों प्राचीर एक ऊँचाईके नहीं हैं, वरं क्रमोच्च हैं। शेष अन्तःप्राचीरकी ऊंचाई २० फुट है। इन तीनों प्राचीरमें तीन प्रवेशद्वार हैं। रामेश्वर आदि स्थानोंके भारतीय मन्दिरोंके कारुकार्य सुदृश्य होने पर भी वे विशेष शिल्पकौशलपूर्ण नहीं हैं। उन सब मन्दिरोंमें अच्छे अच्छे चित्र नहीं दिये गये हैं, जो कुछ हैं भी वे सुस्पष्टभावसे नहीं है; लेकिन नाखनवट मन्दिरके कारुकार्यमें उद्भावनाकौशल, चित्रकौशल और शिल्पकौशल पूर्ण मात्रामें विराजित हैं। उक्त प्राचीरोंमें झरोखा एक भी नहीं है। ये बड़े बड़े पत्थरोंसे बने हुए हैं। वे सब पत्थर खरोंच कर और काट कर इतनी खूबीसे मिलाये गये हैं कि मालूम नहीं पड़ता इसके जोड़के मुंह कहां हैं। समूची दीवारमें सप्तशीर्ष सर्पमूर्त्ति अङ्कित हैं। दीवारका वैसा चरमोत्कर्ष भास्करशिल्प और कहीं भी देखा नहीं जाता। यहां तक कि इस मन्दिरके अन्यान्य स्थानोंका शिल्पचातुर्य भी सबको मात किए हुए है। प्राचीरमें रामायण-महाभारतीय युद्धादिकी छवि इस प्रकार खींची हुई हैं, कि वे मानो अब भी जीवित हैं। एक दूसरी जगह स्वर्ग, नरक और पृथ्वीकी छवि उत्कीर्ण हैं। कूर्मावतार और समुद्रमन्थनकी छवि भी भलीभांति खोदी हुई है, किन्तु वह अधूरा ही है।

मध्य खण्डमें प्रवेश करनेसे ही प्रधान मन्दिर मिलता है। इस मन्दिरमें पांच शिखर हैं। प्रत्येक शिखर १०० फुट ऊँचा है। सदरीके जैन मन्दिरके साथ इसका आकार बहुत कुछ मिलता जुलता है। उन पांच शिखरके मध्य चार जलाशय हैं। कभी कभी उन जलाशयोंमें इतना जल भर जाता है, कि वह नीचे गिर कर मन्दिरका निम्न अंश कुछ बरबाद कर देता है।

उन सब स्तम्भोंका शीर्ष और निम्न भाग देखनेसे मालूम होता है, कि वे रोमक-डोरिय श्रेणीके स्तम्भोंके जैसे हैं। भारतवर्षमें उस तरहके स्तम्भ कहीं नहीं मिलते। काश्मीरके नागमन्दिरमें जो स्तम्भ लगे हुए हैं, वे ही ग्रीक-डोरिय श्रेणीके हैं। यहां इस प्रकारके स्तम्भोंकी संख्या १५३२ हैं। इसकी गठन-प्रणाली देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि यह मन्दिर तुराणीय भास्कर द्वारा बनाया गया है। इसमें स्त्रियोंकी जो मूर्त्तियां खोदी हुई हैं, वे तातारीय-सी प्रतीत होती हैं, क्योंकि उनकी नाक चिपटी है। मन्दिरका प्राचीन सर्पदेवता तहस नहस हो गया है। पीछे यह बौद्धोंके अधिकारमें आ गया। उनके अधिकारमें आने पर भी इसमें सर्वत्र सर्प-चिह्न दिखाई देते हैं।

यहां अशोकके विषयमें बहुतसी दन्त कहानियां सुनी जाती हैं। बुद्धघोषके आगमनके सम्बन्धमें भी प्रवाद है। १२९५ ई०में कोई चीन परिव्राजक इस मन्दिरके अस्तित्व और सौन्दर्यकी बातें लिख गये हैं। इस नगरसे ७॥ कोस पूर्व पतन-ता-फ्रोम (ब्रह्मपत्तन)

नोमक एक नगरका भग्नावशेष देखनेमें आता है। यहां पहले ब्रह्माका एक मन्दिर था। ओङ्कार नगरके ब्रह्म-पत्तनमें भी ब्रह्माका मन्दिर था।

नाखुना (फा० पु०) १ आँखका एक रोग। इसमें एक लाल झिल्ली-सी आँखकी सफेदीमें पैदा होती है और बढ़ कर पुतलीको भी ढक लेती है। २ मोटे लाल डोरे जो घोड़ोंकी आँखमें पैदा हो जाते हैं। ३ चीरा बांधनेका नोकदार अंगुश्ताना।

नाखुर (हिं० पु०) नहंछू देखो।

नाखुश (फा० वि०) अप्रसन्न, नाराज।

नाखुशी (फा० स्त्री०) अप्रसन्नता, नाराजी।

नाखून (फा० पु०) १ नख, नहं। नख देखो। २ चौपायोंके खुरका बढ़ा हुआ किनारा।

नाखूना (फा० पु०) १ नाखुना देखो। २ बढ़इयोंकी बहुत पतली रुखानी जिससे बारीक काम किया जाता है। ३ एक प्रकारका कपड़ा जो गबरूनकी तरहका होता है। इसका ताना सफेद होता है और बानेमें अनेक रंगकी धारियां होती हैं। इस प्रकारका कपड़ा आगरेमें बहुत बनता है।

नाग—(सं० क्ली०) नगे पर्वते भवः अण्। १ रांगा। २ सीसक। पर्याय—नाग, महाबल, चीन, पिष्ट, योगेष्ट, सीसक। (वैद्यकर०)

रांगे और सीसेके अर्थमें नाग शब्द कहीं कहीं पुलिङ्ग भी व्यवहृत होता है। इसकी उत्पत्तिका विषय भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है,—वासुकि किसी नागकन्याके अलोकसामान्य रूपको देख कर काम-मोहित हो गये थे। इससे वासुकिका शुक्र निकल पड़ा और वह शुक्र नाग अर्थात् सीसकरूपमें परिणत हो गया। यह मानवोंके लिए रोगविनाशक है। पर्याय—सीस, ब्रध्न, वप्र, योगेष्ट, भुजङ्ग और नागेर। यह रङ्ग सदृश गुणदायक और प्रमेहनाशक है। इसके सेवन करनेसे शत नागोंके समान बल होता है, इसीलिए इसका नाम 'नाग' पड़ा है। इससे समस्त रोगोंका नाश, शरीरका उपचय, अग्निदीप्ति, काम और बलकी वृद्धि होती है। इसके द्वारा मृत्यु तकका नाश होता है, अर्थात् सतत सेवन करनेका अभ्यास हो जाने पर मृत्युसे छुटकारा मिल सकता है। रांगा और सीसा यदि पाकविहीन अर्थात् अशोधित हो, तो उसके द्वारा अति कष्टतम कुष्ठ, गुल्म, कण्डु, प्रमेह, वायुरोग, अवसन्नता, शोथ और भगन्दर रोग उत्पन्न होता है। (भावप्र० प्रथमभा०)

सीसक देखो।

३ सर्प, साँप। ४ हस्ती। ५ मेघ। ६ नागकेशर। ७ पुन्नाग। ८ नागदन्तिका। ९ मुस्तक। १० देहस्थित वायुभेद। शरीरके अन्दर नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय ये पांच वायु हैं। जहां नाग शब्द सर्प और हस्ती वाचक होगा, वहां यह शब्द स्त्रीलिङ्ग और पुलिङ्ग होगा। जातिवाचकत्वके कारण 'स्त्रीलिङ्ग ङीप्' होगा। (त्रि०) ११ क्रूराचारी। १२ तिथ्यर्द्धरूप करणभेद।

"नागं न पुंसके रंगे सीसके करणान्तरे।
नागः पन्नगमातङ्गक्रूराचारिषु तोयदे॥
नागकेशरपुन्नागनागदन्तकमुस्तके।
देहानिलप्रभेदेन श्रेष्ठे स्यादुत्तरे स्थितः॥"

(मेदिनी)

नागोंका उत्पत्ति-विवरण वराहपुराणमें लिखा है, जो इस प्रकार है—

ब्रह्माने पहले पहल जब यह जगत् बनाया था, उस समय पहले कश्यपको उत्पन्न किया था। इनके कद्रु नामकी एक स्त्री थी। इस कद्रुके गर्भसे महापराक्रान्त पुत्रोंका जन्म हुआ, जिनके नाम ये हैं—अनन्त, वासुकि, कम्बल, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शङ्ख, कुलिक और अपराजित, ये ही कश्यपके प्रधान वंशधर थे और सब नागके नामसे प्रसिद्ध थे। इनके पुत्रपौत्रादिसे जगत् क्रमशः नाग-परिव्याप्त हो गया था। ये सब नाग अति कुटील, तीक्ष्ण-कर्म और अतिशय विषोल्वण थे। इनके काटने मात्रसे मनुष्य भस्म हो जाया करते थे। क्रमशः नागोंके प्रभावसे विष द्वारा बहुतर प्रजाओंकी हानि होने लगी। तब प्रजाओंने ब्रह्माकी शरण ली और उनसे प्रार्थना की कि, "नागोंसे आपकी सृष्टि प्रतिदिन लोपको और अग्रसर हो रही है, आप इन तीक्ष्ण-विषधरोंके कराल ग्राससे हम लोगोंकी रक्षा कीजिये।' ब्रह्माने कहा, "तुम लोग निर्भय हो कर अवस्थान करो जिससे तुम लोगोंको यह भीति शीघ्र ही दूर हो, इसका मैं विधान करूंगा।" फिर

ब्रह्माने वासुकि आदि नागोंको बुलवाया और अत्यन्त क्रोधके साथ शाप दिया कि, "तुम लोग जिस प्रकार प्रति दिन मेरी सृष्टिका नाश कर रहे हो, उसी प्रकार कल्पान्तरमें सुदारुण मातृशापसे तुम लोग भी क्षयको प्राप्त होओगे।" नागोंने ब्रह्माके मुंहसे उक्त शापको सुन भयभीत हो उनके चरणोंकी वन्दना की और स्तव करने लगे, "ब्रह्मन्! आपहीने हम लोगोंको कुटिल और विषोल्वण बनाया है। अब आप हम लोगोंके लिए पृथक् स्थान निर्दिष्ट कर दीजिए, हम लोग वहीं पर सुखसे अवस्थान करेंगे।" तब ब्रह्माका क्रोध शान्त हुआ उन्होंने नागोंके लिये पाताल, वितल और सुतल इन तीन लोकोंमें रहनेका आदेश दिया और कहा कि "जो लोग कालको प्राप्त हुए हैं, तुम लोग उन्हीं मनुष्योंको भक्षण कर सकते हो। परन्तु जो लोग मन्त्रौषध और गारुड़मण्डल धारण करते हैं, उनका स्पर्श भी नहीं कर सकते।" इस प्रकार ब्रह्माका शाप और प्रसाद प्राप्त कर नागोंने पातालका आश्रय लिया। (वराहपु०)

कद्रुतनयोंने माताके आदेशसे उच्चैःश्रवाकी पूंछ कृष्णवर्ण करना स्वीकार न किया था, इस कारण उसीके शापसे वे जनमेजयके सर्पसत्रमें नष्ट हुये थे। प्रायः नागोंके नाश प्राप्त होने पर आस्तीकगण उनका उद्धार करते हैं। जनमेजय, आस्तीक और कद्रु देखो।

ये नागगण भूमिके नीचे रामणीयक (रमणक) द्वीपमें रहते थे। गरुड़ने इन लोगोंके लिए अमृत आहरण कर अपनी माता विनताका दास्य मोचन किया था। इन्द्रके शापसे सर्पगण गरुड़के भक्ष्य बन गये। इन नागोंके गरुड़-आहृत अमृतको कुशा पर रख स्नान पूजादिके लिए चले जाने पर इन्द्रदेवने उसे हरण कर लिया। नागोंने स्नानादिसे लौट कर देखा तो वहां अमृत नहीं। तब वे जिस कुशासन पर अमृत रख गए थे, उस कुशासनको अवलेहना करने लगे जिससे उनकी जिह्वाके दो खण्ड हो गए। तभीसे सर्पोंको दो जिह्वायें हो गई हैं। (भारत)

नाना पुराणोंमें बहुसंख्यक नागोंका उल्लेख है, जिनमेंसे कुछ प्रधान प्रधान नागोंके नाम दिये जाते हैं। यथा—अकर्कर, अनिल, अपराजित, अश्वतर, आपूरण, आप्त, आर्यक, उग्रक, उपनन्द, उत्कृत, एलापत्र, कम्बल, करवीर, कर्कोटक, कर्कट, कर्कर, कर्दम, कलशपोतक, कल्मष, कालीयक, कुकुन, कुकुर, कुञ्जर, कुटर, कुम्भोदर, कुमुद, कुमुदाक्ष, कुलक, कुलीर, कुष्माण्डक, कुहर, कृशक, कैलासक, कोटरक, कौणपाशन, क्षेमक, खगजय, ज्योतिष्क, तित्तिरि, दधिमुख, दिलीप, धारण, नन्द, नन्दक, निष्ठानक, निष्ठरिक, नील, पद्म, पद्महय, पिङ्गल, पिञ्जरक, पिठरक, पिण्डारक, पुण्डरीक, पुष्प, पुष्पदंष्ट्र, पूर्णभद्र, प्रभाकर, मणि, मणिनाग, मणिभद्र, महापद्म, महोदर, माल्यपिण्डक, मुखर, मुद्गरपिण्डक, मुद्गरपर्णक, मूषिकाद, वधिरान्ध, बहुमूलक, वामन, वालिशिख, बाह्यकुण्ड, विमलपिण्डक, विरज, विरस, विल्वक, विल्वपत्र, विल्वपाण्डर, विशुण्डि, वृत्त, शङ्ख, शङ्खपालक, शङ्खपिण्ड, शङ्खमुख, शङ्खशिरा, शावल, शालिपिण्ड, शिखी, शिरोपक श्रोवह, सम्वर्तक, सम्वृत्त, सुमनोमुख, सुमुख, सुरसा, सुरामुख, सुबाहु, हरिद्रक, हलिक, हस्तिपद, हस्तिपिण्ड, हस्तिभद्र, हेमगुह, आदि।

विविध पुराणोंमें इन सब अनेक बातोंका विवरण तथा अन्यान्य अनेक नागोंका उल्लेख पाया जाता है।

नागोंमें अनन्त, वासुकि, पद्म, महापद्म, तक्षक, कर्कोटक और शङ्ख ये आठ प्रधान नाग अष्टनाग नामसे प्रसिद्ध हैं। मनसाकी पूजा करते समय इनकी पूजा की जाती है।

कमल और अश्वतर इन दो नागोंको सरस्वतीके वरसे सप्तस्वर राग, मूर्च्छना आदि सङ्गीताङ्गका ज्ञान हो गया था। (मार्कण्डेयपुराण)

कालियवंशजात नागोंको हनन करनेसे ब्रह्महत्याके समान पाप होता है। यदि कोई कालियपादपद्म-चिह्न स्थानमें दण्डाघात करें, तो उसे द्विगुण ब्रह्महत्याका पातक लगता है। उसके घरसे शीघ्र ही लक्ष्मी दूर हो जाती है।

"मद्वंशजातान् सर्पांश्च हन्ति यो मानवाधमः।
ब्रह्महत्यासमं पापं भविता तस्य निश्चितम्॥
पद्मपादपद्मचिह्ने यः करोति दण्डताडनम्।
द्विगुणं ब्रह्महत्याया भविता तस्य किल्बिषम्॥
लक्ष्मीर्यास्यति तद्गेहात् शापं दत्वा सुदारुणम्।
वंशापर्येशां हानिर्भविता तस्य निश्चितम्॥"

(ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्णज० १९ अ०)

वासुकि आदि नाग महादेवके भूषण हैं, अर्थात् इन सब नागोंको महादेव अलङ्कार स्वरूप धारण करते हैं।

"वासुक्याद्याश्च ये सर्पा यथा स्थानश्रते हरम्।
भूषयास्त्वक् रहस्य शिरो वाह्वादिषु द्रुतम्॥"

नवीन गृहादि बनानेसे पहले नागशुद्धि देखनी चाहिये। नागशुद्धिके विना गृहादि प्रस्तुत करनेसे नाना विध अनिष्ट होते हैं। नागशुद्धि देखो।

१३ देशभेद। १४ पर्वतविशेष। (भारत)

"शङ्कुटोऽथ ऋषभो हंसोनागस्तथापरः।
कालञ्जराद्याश्च तथा उत्तरे केसराचलाः॥"

(विष्णुपु० २।२।८)

१५ ज्योतिषोक्त करणविशेष। यह करण यात्रा आदि शुभकार्योंमें शुभ समझा जाता है। इस करणमें उत्पन्न बालक कुशील, मित्रोंके प्रति विद्विष्ट और भग्न सहृष होता है। (कोष्ठीप्रकाश)

१६ राजवंशविशेष, एक राजवंश। नागवंश देखो।

नाग—एक वैयाकरणका नाम। श्रीकण्ठचरितमें इनका प्रसङ्ग है।

नागक (सं० पु०) काश्मीरके एक राजाका नाम।

नागकन्द (सं० पु०) नाग इव कन्दं मूलं यस्य। हस्तिकन्द।

नागकन्द (नरकन्द)—पञ्जाबके कुमारसेन राज्यका एक गिरिपथ। हातू शिखरसे उत्तर-पश्चिमकी ओर यह पथ ३१° १५' उ० और देशा० ७७° ३१' पू०के मध्य समुद्रपृष्ठसे ८०१६ फुटकी ऊंचाई पर अवस्थित है। सिमला यात्री चिरतुषारावृत पर्वतमालाकी सुन्दर दृश्यावली देखनेके लिये इसी राह हो कर जाते आते हैं। यहां यात्रियोंकी सुविधाके लिये एक सुन्दर डाकबङ्गला भी बना दिया गया है।

नागकन्यका (सं० स्त्री०) नागानां कन्यका ६-तत्। सर्पोंकी बहन।

नागकन्या (सं० स्त्री०) नाग जातिकी कन्या। पुराणोंमें नागकन्याएं बहुत सुन्दर बतलाई गई हैं।

नागकर्ण (सं० पु०) नागस्य गजस्य कर्णः तदाकारः पर्णोऽस्य। रक्त एरण्डवृक्ष, लाल अण्डीका पेड़। २ हस्तिकर्ण, पलाशवृक्ष, ढाकका पेड़। ३ इन्हींका नाम।

नागकर्णी (सं० स्त्री०) १ आखुकर्णी लता। २ श्वेतापराजिता, सफेद अपराजिता।

नागकिञ्जल्क (सं० क्ली०) नागस्येव किञ्जल्को यस्य। नागकेशर पुष्प, नागकेसर।

नागकुमारिका (सं० स्त्री०) नागस्य कुमारीक कन्-टाप्, पूर्व-ह्रस्व। १ गुड़ची, गुरुच, गिलोय। २ मञ्जिष्ठा, मजीठ।

नागकेशर (सं० पु०) नागस्येव केशरो यस्य। नागेश्वर, एक सीधा सदाबहार पेड़ जो देखनेमें बहुत सुन्दर होता है। पर्याय—चाम्पेय, केशर, काञ्चनाह्वय, केसर, नागकेसर, किञ्जल्क, नागकिञ्जल्क, नागीय, काञ्चन, सुवर्ण, हेमकिञ्जल्क, रुक्म, हेम, पिञ्जर, फणिकेसर, पन्नगकेसर। पुष्पका गुण—अल्प, उष्ण, लघु, तिक्त, कफ, वस्ति, वात, आमय, कण्ठ और शीर्षरोगनाशक। जब यह शब्द क्लीवलिङ्ग होता है, तब नागकेसर पुष्पका बोध होता है।

पाश्चात्य उद्भिद् शास्त्रानुसार इसका साधारण नाम मेसुआ (Mesua) है। यह द्विदल अङ्कुरसे उत्पन्न होता है। पत्तियां इसकी बहुत पतली और घनी होती हैं, जिससे इसके नीचे बहुत अच्छी छाया रहती है। लकड़ी इसकी इतनी कड़ी और मजबूत होती है कि काटनेवालेकी कुल्हाड़ियोंकी धारें मुड़ मुड़ जाती हैं। इसीसे इसे वज्रकाठ (Iron-wood) भी कहते हैं। सिंहलमें इञ्जिनियरिङ्ग कामोंके लिए इसकी लकड़ी बहुत व्यवहृत होती है। यह पेड़ भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न नामसे पुकारा जाता है यथा, नागकेशर, नागास (हिन्दी और पारसी), नागेश्वर, नागकेशर और नागचांपा (बङ्गाल और उड़ीसा), नाहोर (आसाम), नागचम्पा, मोरलाचम्पा (बम्बई और महाराष्ट्र), नाङ्गालमाल्य, नाङ्गाल, शिरुनागप्पू, नागशप्पू (तामिल), नागकेशरम्, गजपुष्पम् (तेलगू), नागसम्पिज (कनाड़ी), केन्द्रचम्पग, वेलुचम्पकम् (मलय), केश्नी (मग), केङ्ग (ब्रह्म), ना-देयमो, ना-गाहा (सिंहल)।

पाश्चात्य उद्भिद् शास्त्रोंमें वैज्ञानिक सूक्ष्म सूक्ष्म प्रभेद ले कर इसके कई भेद बतलाए हैं,—१ Mesua ferrea (साधारण नागेश्वर), २ M. speciosa (नेपाल और सिंहलमें उत्पन्न), ३ M. coromondeliana

(दाक्षिणात्यमें उत्पन्न, इसके पत्ते और फूल बहुत छोटे होते हैं), ४ M. Roxburghii (प्रकृत Ironwood), ५ M. Salicina, ६ M. Walkerians, ७ M. Pulchella, ८ M. Sclerophylla और ९ M. Nagana।

हिमालयके पूरबी भाग, पूरबी बङ्गाल, आसाम, बरमा, दक्षिण भारत, सिंहल आदिमें इसके पेड़ बहुतायतसे मिलते हैं। इसमें चार दलोंके बड़े और सफेद फूल गरमियोंमें लगते हैं जिनमें बहुत अच्छी महक होती है। इसके प्रत्येक फलमें दो बीज रहते हैं। जब फल पक जाता है, तब बीज उसे फाड़ कर बाहर गिर पड़ता है। बीजसे तेल निकलता है जो चर्मपीड़ामें बहुत उपकारी माना जाता है। इसके सूखे फूल औषध मसाले और रंग बनानेके काममें आते हैं। कच्चे फलसे एक प्रकारकी तेलाक्त राल निकलती है।

रंग—नागकेशरके फूलसे भारतवर्षमें एक प्रकारका रंग बनता है, जिससे रेशम रँगा जाता है।

तेल—सिंहलमें इसके बीजसे एक प्रकारका गाढ़ा तेल निकलता है जो दीया जलाने और दवाके काममें आता है। तेलका रंग पीला होता है। कनाड़ामें यह चार रुपये मनके हिसाबसे बिकता है।

औषध—कविराज लोग बहुतसे रोगोंमें इसके फूल व्यवहृत करते हैं। कहीं जगह तो दवाको सुगन्धित करनेके लिए ही इसे काममें लाते हैं। यह सङ्कोचक है। पाकाशयघटित रोगोंमें यह बहुत उपकारी है। प्यास और अधिक पसीना निकलने पर भी इसका प्रयोग किया जाता है। मक्खन और चीनीके साथ इसके फूलोंको पीस कर यदि रक्तस्रावी अर्शकी बलिमें अथवा हाथ पैरमें जब जलन मालूम पड़े, उस समय उसमें इसका प्रलेप देनेसे वह बहुत जल्द आराम हो जाता है। सांपके काटनेमें भी इसके फूल और पत्तोंका रस बहुत उपकारी है।

राल—इसके कच्चे फलोंसे एक प्रकारकी तेलाक्त राल टपकती है। उस रालको तारपिन तेलके साथ मिला कर एक प्रकारका वार्निश तैयार करते हैं। पेड़ और छालसे भी इसी प्रकारकी राल निकलती है। यह राल कच्चे जलमें नहीं मिलती, सिद्ध करने पर मिल जाती है।

दिनाजपुर, रङ्गपुर और उत्तर बङ्गालमें इसके फलके छिलकेका तेल घाव पर लगाया जाता है जो उसके लिए रामवाण-सा काम करता है। चर्मरोगमें यह तेल विशेष लाभदायक है। इसकी छाल और पेड़से जो क्वाथ बनाया जाता है, उसका सेवन करनेसे चिरकालके रोगीका रोग दूर हो जाने पर उनकी दुर्बलता जाती रहती है। काढ़ेका स्वाद तीता होता है। इसके फल लोग खाते भी हैं।

यह पेड़ देखनेमें बहुत सुन्दर होता है, फूलकी महक भी अच्छी होती है। इस कारण संस्कृतके कवियोंने कामदेवके पाँच शरोंमेंसे इसे भी एक शर माना है।

नागकोविल—तामिल प्रदेशकी एक प्रकारकी नागपूजा। मदुराके निकटवर्त्ती वेगै नदीके किनारे जो सांपका मन्दिर है, वहां यह उत्सव खूब धूमधामसे मनाया है। इसमें बहुतसे यात्री जमा होते हैं। नागपूजा देखो।

नागक्षत्रिय—नागवंश देखो।

नागक्षेत्र—नागाह्वय देखो।

नागखण्ड (सं० पु०) पुराणानुसार जम्बूद्वीपके अन्तर्गत भारतवर्षके नौ खण्डों या भागोंमें एक।

नागगन्धा (सं० स्त्री०) नागस्य गन्ध इव गन्धो यस्याः। नाकुलीकन्द, नकुलकन्द।

नागगति (सं० स्त्री०) ग्रहकी एक गति। यह गति उस समय होती है, जब वह नक्षत्र अश्विनी, भरणी और कृत्तिका नक्षत्रमें रहता है।

नागगर्भ (सं० क्ली०) नागः सीसकं गर्भं उत्पत्तिकारणं यस्य। सिन्दूर।

नागचन्द्र—एक कनाड़ी जैनग्रन्थकार। इन्होंने १० काण्डोंका जो जिनस्तोत्र बनाया है, वह बहुत प्रसिद्ध है।

नागचम्पक (सं० पु०) वनचम्पकवृक्ष।

नागचम्पा (हिं पु०) नागकेसरका पेड़।

नागचूड़ (सं० पु०) नागः सर्पः चूड़ायां यस्य। शिव, महादेव।

नागच्छत्रा (सं० स्त्री०) नागस्य फणेव छत्रं छादनं पत्रं यस्याः। १ नागदन्ती। २ नागवल्ली।

नागज (सं० क्लो०) नागात् सीसकात् जायते जन-ड । १ सिन्दूर। २ रङ्ग, फूंका हुआ रांगा । (त्रि०) ३ नागजात मात्र, जो सर्प वा हाथीसे उत्पन्न हो ।

नागजम्बू (सं० स्त्री०) भूमिजम्बू, एक प्रकारका जामुन ।

नागजिह्वा (सं० स्त्री०) नागस्य सर्पस्य जिह्वेव। १ अनन्तमूल । २ स्वर्णक्षीरा, शारिवा । शारिवा देखो ।

नागजिह्विका (सं० स्त्री०) नागस्य जिह्वेव रक्तता यस्याः, कप्, टापि अत इत्वं । मनःशिला (Red arsenic) मैनसिल ।

नागजीवन (सं० क्लो०) नागः सीसकं जीवनं यस्य। रङ्ग, फूंका हुआ रांगा ।

नागजीवनशत्रु (सं० पु०) हरिताल, हरताल।

नागझारी—उज्जयिनीके पञ्चक्रोशके मध्य एक नदी ।

नागतीर्थ (सं० क्लो०) तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम ।

नागतुम्बी (सं० स्त्री०) तुम्बी, छोटा कड़ुआ कद्दू ।

नागतुरु—मन्द्राजके कर्णूल जिलान्तर्गत एक ग्राम। बोलचालमें इसे नागतुर कहते हैं। यहां बहुत प्राचीन चार मन्दिर हैं।

नागत्तर—गङ्गवंशीय एडेम्परस वा एड़ेम्प नामक सम्राट्के एक सेनापति। वीरमहेन्द्र नामक एक राजाके सेनापति अयप्यदेवके साथ इन्होंने युद्ध किया था। उस युद्धमें अयप्यदेव ही मारे गए थे। इस पर सम्राट्ने बहुत प्रसन्न हो इन्हें नागत्तरभट्टकी उपाधि दी और वेमपुर आदि बारह ग्राम दानमें दिये। यही बारह ग्राम मिल कर यहांके कलनाड़ जिलेका प्रधान अंश हुआ है।

नागद—अणहिलवाड़के राजा विशालदेवके एक मन्त्री। ये जातिके ब्राह्मण थे।

नागदत्त—१ गुप्तवंशीय महाराज समुद्रगुप्तके समसामयिक एक राजा। ये आर्यावर्त्तमें राज्य करते थे और युद्धमें समुद्रगुप्तसे पराजित हुए थे।

२ राष्ट्रकूटराजवंशकी एक शाखा पुन्नाट वा पुन्नाड़ नामक स्थानमें राज्य करती थी। काश्यपराष्ट्रवर्मा इस राजवंशके प्रतिष्ठाता थे, नागदत्त इन्हींके पुत्र माने जाते हैं। पुन्नाड़ देखो।

नागदन्त (सं० पु०) नागस्य गजस्य दन्तः। १ हस्तिदन्त, हाथीके दांत। नागदन्तः साधनत्वेनास्त्यस्येति अच्। २ गृहान्तर्गत दारु, दीवारमें गड़ी हुई खूंटी।

नागदन्तक (सं० पु०) नागदन्त स्वार्थे कन्। १ हस्तिदन्त, हाथीदांत। नागदन्तेन कायतीति कै-क। २ भित्तिदारुद्रव्य, नियूंह, दीवारमें गड़ी हुई खूंटी जिसके ऊपर कोई चीज रखी या बनाई जाय।

नागदन्तिका (सं० स्त्री०) नागस्य सर्पस्य दन्त इव पीड़ादायकं पत्रं यस्याः, कापि अत इत्वम्। वृश्चिकालीका पौधा। (Tragia Involucrata)

नागदन्ती (सं० स्त्री०) नागस्य गजस्य दन्त इव फलाद्याकारे यस्याः, ङीष्। १ कुम्भाख्य औषधि। २ श्वेतहस्तिनी। पर्याय—विशल्या, पत्रपुष्पी, विषौषधि, शुक्लपुष्पा, इभदन्ताह्वा, काण्डेरी, कामदूतिका, श्वेतापुष्पा, मधुपुष्पा, विशोधिनी, नागस्फोता, विशालाक्षी, नागफला, विषघ्नणा, सर्पपुष्पी, शुक्लपुष्पी, स्वादुका, गजदन्तिका, सितपुष्पी, सर्पदष्ट्री, नागिनी। गुण—कटु, तिक्त, रक्त, वात, कफ, गुल्म, शूल, उदररोग और कण्डुदोषनाशक।

नागदमन (सं० पु०) नागदौनेका पौधा।

नागदमनी (सं० स्त्री०) नागो दम्यतेऽनया दम-ल्युट्-ङीप्। क्षुद्र क्षुपविशेष, नागदौनेका पौधा। संस्कृत पर्याय—जम्बू, जाम्बवती, वला, नागाह्वा, दमनी, नागगन्धा, वृत्ता, रक्तपुष्पा, जाम्बवी, मोटा, विषापहा, नागपुष्पी, नागपत्रा, महायोगेश्वरी, मलघ्नी, दुःसहा, दुर्भगा। गुण—कटु, तीक्ष्ण, उष्ण, पित्त, कफ, मूत्रकृच्छ्र, व्रण और सर्वग्रहदोष आदि नाशक और सर्वत्र जय, धन और सुमतिप्रदायक है। (भावप्र० राजनि०)

नागदला—एक पेड़ जो बङ्गाल, आसाम, बरमा, मलबार और सिंहलमें होता है। बङ्गालमें इसे 'पोहर' कहते हैं। पद्मकाठ नामसे इसकी लकड़ी बिकती है जो बहुत कड़ी और मजबूत होती है। यह पानीमें बहुत दिनों तक रह सकती है। इससे गाड़ीके पहिये, नाव और अनेक प्रकारके सामान बनाते हैं। इसकी लकड़ी सफेद होती है, लेकिन हवा लगने पर मैली हो जाती है। इसके बीजोंका माड़ा तेल जलाने और शरीरमें लगानेके काममें आता है। इसके छिलकोंका रस तिक्त तो होता है, लेकिन बहुत लाभदायक है।

नागदलोपम (सं० स्त्री०) नागदलस्य नाम्बूलस्य उपमा यत्र। पलपफल, फालसा। पर्याय—अल्पास्थि, परुषक, मृदुफल, परापर, परुष, नीलचर्म, गिरिपिलु, पारावत, नीलमण्डल। कच्चे फलका गुण—उष्ण, अम्ल, पित्तकर और लघु। पक्के फलका गुण—मधुर, शीतल, विष्टम्भी, धातुवर्द्धक, हृदयका हितकारक, पिपासा, पित्त, दाह, रक्त, ज्वरक्षय, क्षत, विसर्प और वातनाशक।

(भावप्रकाश)

नागदा (सं० स्त्री०) हरीतकी, हड़।

नागदास—शैशुनागवंशोद्भूत एक राजा। बारह वर्ष राज्य कर चुकने पर अर्थात् बुद्धनिर्वाणके ५८ वर्ष बाद इन्होंने स्थविर शोणक उपसम्पदा प्राप्त की।

नागदुमा (हिं० वि०) जिसकी पूंछका सिरा सर्पके फनकी तरहका हो। ऐसा हाथी ऐबी समझा जाता है।

नागदेव—१ अणहलवाड़के चालुक्य-राजवंशके आदि पुरुष मूलराजके एक पौत्र। ये १०१० ई०में वर्त्तमान थे। २ एक शास्त्रग्रन्थकार। इनके बनाए हुए आचारदीपिका और निर्णयतत्त्व नामक दो ग्रन्थ मिलते हैं। ३ चिन्तामणिगिलुकके प्रणेता। ४ त्रिविक्रमभट्टप्रणीत दमयन्तीकथा नामक चम्पूकाव्यके टीकाकार। ५ एक ज्योतिषिक ग्रन्थकार। इन्होंने "प्रथिततिथिनिर्णय", "मुहूर्त्तदीपक", "मुहूर्त्तसिद्धि", "रत्नदीपक", "संक्रान्तिफल" और "होराप्रदीप" नामक ग्रन्थ बनाए हैं। ६ गोरकुल नामक स्थानके गणपति-वंशीय अन्तिम राजा। इनका नामान्तर विनायक है। १२७१ ई०में वाघ्रणीराजके साथ इनका युद्ध हुआ था। उसी युद्धमें ये मारे गये।

नागदेवभट्ट—१ आचारदीप नामक शास्त्रग्रन्थके प्रणेता। आचारदीप और निर्णय-तत्त्वकारप्रणीत आचार-दीपिका ये दोनों एक हैं, वा दो, मालूम नहीं।

नागदौन (हिं० पु०) सिमले और हजारेमें मिलनेवाला एक प्रकारका पहाड़ी पेड़। इसकी लकड़ी भीतरसे सफेद और मुलायम होती है और विशेषतः छड़ियां बनानेके काममें आती है। लोगोंका विश्वास है, कि इस लकड़ीके पास सांप नहीं आते। २ नागदौना।

नागदौना देखो।

नागदौना—१ एक प्रकारका क्षुपजातीय वृक्ष। इसका वैज्ञानिक नाम पाश्चात्य उद्भिद् शास्त्रानुसार Artiemisia Vulgaris है। स्थानभेदसे इसके नाम—नागदौना (बङ्गाल), नागदौना, माजतरी, मागुर (हिन्दी), ततीर, बाब्रिर, तर्खा, (पञ्जाबी), बुई मादराण, अफसुनतिन् (पञ्जाबी बाजारमें इसी नामसे खरीदा और बेचा जाता है), तिता पात ((नेपाल), नागदमनी, ग्रन्थीपर्णी (संस्कृत)। मन्द्राजमें नागदौना और ग्रन्थिपर्णीमें प्रभेद है। वहां नागदौनाको मारिकुयन्दु (तामिल) और दवनामु (तेलगू और कर्णाट) कहते हैं। पारसी और अरबीमें इसीका नाम मार्जानजोस है। जो ग्रन्थीपर्णी है, उसे तामिल, तेलगू, कर्णाटी आदि मन्द्राजी भाषामें मचि-पत्तरि, अरबी और पारसीमें अफसुस्ताहन कहते हैं। अङ्गरेजीमें इसे Worm-wood कहते हैं। पश्चिम हिमालय, खासिया पहाड़, मणिपुर और उत्तर ब्रह्मके पर्वत पर यह बहुतायतसे पाया जाता है।

इसमें डालियां और टहनियां नहीं होतीं। जड़के ऊपरसे ग्वार पाठेकी-सी पत्तियां चारों ओर निकलती हैं। ये पत्तियां हाथ हाथ भर पर और दो ढाई अङ्गुल चौड़ी होती हैं। जिस तरह ग्वारपाठेकी पत्तियोंमें गूदा नहीं होता, उसी तरह इसमें भी। पत्तियोंका रंग गहरा हरा होता है, पर बीच बीचमें हलकी चित्तियां भी होती हैं। नागदौनेकी जड़ कन्दके रूपमें नीचेकी ओर जाती है। यह चरपरा, कड़ुआ, हलका, त्रिदोषनाशक, कोठेको शुद्ध करनेवाला, विषनाशक तथा सूजन, प्रमेद और ज्वरको दूर करनेवाला माना जाता है। २ एक प्रकारका कड़ुआ और कटीला दौना। इसके पेड़ लम्बे लम्बे होते हैं। इसकी सूखी पत्तियां लोग कागजों और कपड़ोंकी तहोंके बीच इसलिये रख देते हैं, कि कोड़े उन्हें चाट न जांय।

नागद्रहा—उज्जयनीके अन्तर्गत नागकारी नदीका नामान्तर।

नागद्रुम (सं० पु०) १ सेंहुड़, थूहर। २ नागफनी।

नागद्वीप—विष्णुपुराणोक्त भारतवर्षके नौ भागोंमेंसे एक भागका नाम, सिंहल द्वीपका एक अंश।

नागधर (सं० पु०) महादेव, शिव।

नागध्वनि (सं॰ स्त्री॰) मिश्ररागिणीविशेष, एक सङ्कर-रागिणी जो मल्लार और केदार वा सुहा अथवा कान्हड़े और सारंगके योगसे बनी है। स्वरग्राम—

"नि सा ऋ ग म प॰ ः ः।"

मतान्तरसे यह टङ्काइयसम्भव है, रि प वर्जित है। यह वीररसके साथ दिनको गाया जाता है। स्वरग्राम—

"स॰ ग म॰ ध नि सा ः ः।"

नागध्वनिकानड़ा—मिश्ररागविशेष। यह अठारह कानड़ों-मेंसे एक है। सुतरां यह कानड़ाके समय अर्थात् रातके ११से १५ दण्डके मध्य गाया जाता है। यह कानड़ा और सारङ्गके योगसे उत्पन्न हुआ है। स्वरग्राम—

नि सा ऋ ग म प॰। (सङ्गीतर॰)

नागनक्षत्र (सं॰ क्ली॰) नागाधिष्ठितं नक्षत्रम्। अश्लेषा-नक्षत्र। इस नक्षत्रका अधिपति नाग है।

नागनदी—१ बिहारप्रदेशके दक्षिण रामटेकके निकटवर्त्ती एक नदीका नाम। यह नदी जङ्गलके बीच हो कर चली गई है। इसके किनारे कौ-ग्राम पड़ता है। वहां किसी समय कीर्त्ति नामक राजा राज्य करते थे। उन्होंने भीमको युद्धमें परास्त किया था।

नागनल—कृष्णा जिलेके वापतला तालुकके अन्तर्गत एक ग्राम। यहां ३५० वर्षके दो प्राचीन मन्दिर हैं जिनमें बहुतसी लिपियां भी उत्कीर्ण हैं, लेकिन वे अस्पष्ट हैं।

नागनाथ (सं॰ पु॰) नागानां नाथः ६-तत्। नागोंके अधिपति।

नागनाथ—१ गणिततत्त्व चिन्तामणिके प्रणेता लक्ष्मीदासके प्रतिपालक। २ पर्वप्रदीप नामक ज्योतिषग्रन्थके प्रणेता। ३ माधवकरनिदानके 'निदान-प्रदीप' नामक टीकाकार। ये कृष्ण पण्डितके पुत्र और योगचन्द्रिकाके प्रणेता लक्ष्मणके गुरु थे।

नागनामक (सं॰ क्ली॰) सीसक, सीसा।

नागनामन् (सं॰ पु॰) नागान् नामयति नामि-कालन। तुलसी।

नागनायक (सं॰ पु॰) नागानां नायकः ६-तत्। नागोंका नायक, श्रेष्ठ सर्प।

अनन्त, वासुकि, पद्म महापद्म, तक्षक, कर्कोट, कुलिक और शङ्ख ये आठ अष्टनाग माने जाते हैं। यही नागोंके नायक अर्थात् प्रधान हैं। अष्टनागोंकी पूजा करना हरएक गृहस्थका कर्त्तव्य है।

नागनामा (सं॰ पु॰) १ श्वेत तुलसीवृक्ष, सफेद तुलसी। २ कृष्ण तुलसीवृक्ष, काली तुलसीका पेड़।

नागनायक—पूनाप्रदेश जब देवगिरीके यादवोंके हाथ था, उस समय मराठी वा कोली जातिके सरदार इस देश-पर कई एक स्थानोंमें स्वाधीन हो गए थे। नागनायक उन्हींमेंसे एक थे।

नागनासा (सं॰ स्त्री॰) हस्तिशुण्ड, हाथीकी सूंड़।

नागनियूंह (सं॰ पु॰) नाग इव नियूंहः। नागदन्त।

नागनुर—बम्बई प्रदेशके धारवार जिलेके अन्तर्गत बङ्का-पुरके समीप एक ह्रद। इसमें एक बांध दिया हुआ है जो ३४०० फुट लम्बा है। इसका जल चारों ओर पत्थर-की दीवारसे घिरा हुआ है। बांधके ऊपर आने जाने-के लिए २४ फुट चौड़ा एक रास्ता है। ह्रद उतना गहरा नहीं है। वर्षाके बाद छः मास तक इसमें जल रहता है, पीछे सूख जाता है।

नागपञ्चमी (सं॰ स्त्री॰) नागप्रिया पञ्चमी, वा नागपूजाङ्ग पञ्चमी। आषाढ़ मासकी कृष्णापञ्चमी। इस पञ्चमी तिथिमें मनसा और नागपूजा की जाती है इसीसे इस पञ्चमीका नाम नागपञ्चमी पड़ा है।

जब विष्णु शयन करते हैं, उस समय कृष्णापञ्चमी तिथिको सूही (सीज)के पेड़को स्थापना करके मनसा और नागपूजा करनी होती है। मनसादेवीकी पूजा और उन्हें प्रणाम करनेसे सांपका भय नहीं रहता। इस पूजामें घी और दूधका नैवेद्य लगता है।

इस दिन अपने घरमें नीमकी पत्तियां रखनी चाहिये और ब्राह्मण तथा बान्धवोंके साथ मिल कर उन्हें खाना चाहिये।

वराह पुराणमें लिखा है, कि पञ्चमीको नागगण ब्रह्माका शाप और प्रसाद पाते हैं, इसीसे यह तिथि इन-की बहुत प्रिया है। इस तिथिको दुग्ध द्वारा नागोंको स्नान करानेसे सर्पका भय नहीं रहता। इस दिन अनन्त, वासुकि, पद्म, महापद्म, तक्षक, कुलीर, कर्कोट और शङ्ख इन आठ प्रकारके नागोंकी पूजा की जाती है। अष्ट-नागके सिवा और भी कितने नागोंके नाम तिथितत्त्वमें देखनेमें आते हैं। यथा—

शेष, पद्म, महापद्म, कुलिक, शङ्खपालक, वासुकि तक्षक, कालिय, मणिभद्रक, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक और धनञ्जय। (गरुड़पुराण) अनन्त, शङ्ख, पद्म, कम्बल, कर्कोटक, धृतराष्ट्र, शङ्खक, कालिय, तक्षक, पिङ्गल और मणिभद्रक इन सब नागोंकी पूजा करनेसे दष्टमुक्त होता है अर्थात् पहले दंशित होनेके बाद पीछे मुक्त हो कर स्वर्गलाभ होता है।

भारतवर्षके प्रायः सभी देशोंमें यह व्रत किया जाता है। स्त्रियां ही विशेष कर यह व्रत करती हैं। अन्यान्य स्त्री-व्रतकी तरह यह व्रत भी उनके लिये सुलभ है। बम्बईकी प्रभुकायस्थ-रमणियां यह व्रत जिस प्रकारसे करती हैं, उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है,—

व्रतके दिन प्रभुरमणियां एक काठकी चौकीमें चन्दन वा सिन्दूर लगा कर ८ सांपोंके चित्र अङ्कित करती हैं। इनमेंसे दो बड़े होते हैं और सात छोटे। इनके पाद-मूलमें एक दूसरे पूँछहीन सांपका चित्र बना होता है। उनके पास ही हाथमें दीप लिये एक स्त्रीकी मूर्त्ति भी वहां खड़ी रहती है और एक प्रस्तर-खण्ड तथा सर्पविवर भी बनाया रहता है। विवाहिता स्त्रियां प्रत्येक सांपके चित्र पर भुना हुआ अनाज, उरद, केला, नारियल आदि रख छोड़ती हैं। पास ही पत्तेके दोनेमें दूध भी दे देती हैं। तदनन्तर वे फूल चन्दन और सिन्दूर द्वारा उनकी पूजा करती हैं। पूजा हो जाने पर सब कोई मिल कर सांपोंसे प्रार्थना करती हैं कि उनके बाल बच्चोंका सांप कोई अनिष्ट कर न सके और घरमें सांपका भय भी न रहे। बाद गृहिणी कन्या वधू आदिको एकत्र कर व्रतकी कथा कहने बैठती हैं। कथा इस प्रकार है,—

किसी मण्डलके सात पुत्रवधू थीं। छोटी वधूके न बाप था न मा थी। घरमें सबोंसे छोटी होनेके कारण घरके सभी काम-काज उसे ही करने पड़ते थे। एक दिन सब कोई मिल कर तालाबमें स्नान करने गईं। वहीं पर वह पितृमातृहीना सातवीं बहूकी सुना सुना कर कहने लगीं कि उन लोगोंके बाप भाई सब कुछ हैं; वे समय समय पर उन्हें निमन्त्रण दे कर बुला ले जाते हैं।

यह सुन कर छोटी वधू लज्जित हो रही। जहां ये सब बातें होती थीं, उसके पास ही एक सर्पविवर था। विवरवासी सर्प और सर्पीने उन लोगोंकी सब बातें सुन लीं। उस समय सर्पी गर्भिणी थी। सर्पने कहा, 'इस अवस्थामें तुम्हारी सेवाके लिये एक आदमीकी जरूरत है। इसलिए इस पितृमातृहीना मनुष्य कन्याको यहां ले आता हूं। मैं अपनेको उसका भाई बतला कर तुम्हारे पास उसे ले आऊँगा और तुम्हारे प्रसवकाल तक यहां रख कर पीछे भेजवा दूंगा।' इस पर सर्पी राजी हो गई। बाद एक दिन छोटी बहू गाय चरानेके लिए बाहर निकली। इसी समय उस सर्पने एक दिव्य युवक-मूर्त्ति धारण कर उसके समीप आ कर कहा, 'बहन! मैं तुम्हारा भाई हूं। दूर देश चला गया था, इस कारण इतने दिनों तक मैंने तुम्हारी कुछ भी खोज-खबर न ली। जब तुम बहुत छोटी थी उसी समय मैं परदेश चला गया था। सुतरां तुमने मुझे कभी नहीं देखा। जो कुछ हो, एक दिन तुम्हारी ससुराल जा कर तुम्हें अपने यहां ले आऊंगा। तुम आनेके लिए तैयार हो रहना।' एक दिन घरके जब सब कोई खा चुके थे, तब उसने जूठा अन्न उठा कर कहीं रख दिया और आप बरतन मलने तथा स्नान करनेके लिए बाहर चली गई। इसी बीच वह सर्पी आ कर उस जूठे अनाजको खा गई। जब वह स्नान कर लौटी और उस जूठे अनाजको कहीं न देखा, तब खानेवालेको गाली न दे कर बहुत विनीत स्वरसे कहा,—'अहा! जिसे ऐसी भूख लगी थी, जिसने जूठा खा लिया उसकी भूख शान्त हो जाय।' उसकी मीठी बात सुन कर सर्पी बहुत खुश हुई और उसी दिन उस वधूको अपने घर लानेके लिए उसने अपने स्वामीसे अनुरोध किया। पूर्वसा रूप बना कर वह सांप उस मण्डलके घर गया और अपनेको छोटी वधूका भाई बतला कर अपना परिचय दिया। पीछे उस सर्पने जब उसे अपने घर ले जानेकी इच्छा प्रकट की, तब घरवालोंने भी आज्ञा दे दी। छोटी बहू बिना किसी प्रकारका सन्देह किये अपने नूतन भाईके साथ चली गई। राहमें सर्पने उस वधूको अपना प्रकृत परिचय दिया और कहा, 'गर्त्त-प्रवेश करते समय मैं

साँपका रूप धारण करूंगा और तुम मेरी पूंछ पकड़ कर मेरा अनुसरण करना।' बाद वैसा ही हुआ भी। बहूने विवरमें आ कर देखा कि सुवर्णमय प्रासादमें रत्नखचित हिंडोलेके ऊपर गर्भिणी सर्पी सोई हुई है। बहूके आनेके साथ ही सर्पीके सात सन्तान भूमिष्ठ हुई। बहू हाथमें एक दीप ले कर ज्योंही उन्हें देखने गई, त्योंही उनमेंसे एक शिशु उछल कर उसके शरीर पर चढ़ आया। वह बहू बहुत डर गई और हाथका दीप नीचे गिरा दिया। दीप जो नीचे गिरा उसके आघातसे एक सर्प शिशुको पूंछ कट गई। क्रमशः जब वह शिशु बड़ा हुआ, तब शेष छः शिशु उस पूंछहीन शिशुका उपहास करने लगे। इस पर वह बहुत कुपित हो गया और उस बधूको काटनेका पक्का इरादा कर लिया। इसी उद्देश्यसे उस सर्प शिशुने मण्डलके अन्तःपुरमें प्रवेश किया। उस दिन नागपञ्चमी थी। जब छोटी बहू अपने घरमें बैठ कर नागपञ्चमीका व्रत करके सर्पोंके उद्देश्यसे दूध, केला आदि उत्सर्ग कर रही थी, उसी समय क्रोधित सर्पशिशु वहां पहुंच गया। किन्तु मानवीको सर्पकी पूजा करते देख उसका क्रोध शान्त हो गया। पीछे वह उसके प्रदत्त भोजन खा कर अपने घरको चल दिया। घर पहुंच कर उसने सारा विवरण अपने मातापितासे कह सुनाया। सर्प-सर्पी बहुत खुश हुई और उन्होंने उस बधूको यथेष्ट धन रत्न आदि दिये तथा अनेक पुत्रवती होनेका वर भी दिया।"

यह पुण्यकथा सुन कर प्रभु रमणियां चावलके लड्डू खाती हैं। पूना आदि स्थानोंमें उस दिन सपेरे दर दर घूमते और अपने साँपोंकी पूजा कराते हैं। स्टहस्थकी स्त्रियां भी उन जीवित सर्पोंको दूध, केला, लावा आदि खानेको देती और एक एक पैसा भी देती हैं। इस दिन प्रभुरमणियां पत्तोंके दोनोंमें दूध भर कर उसे घरके एक कोनेमें सांपके उद्देश्यसे रख छोड़ती हैं। इस दिन वे जाता नहीं चलाती और न रसोई ही करती हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा करनेसे सांपोंको दुःख पहुंचता है।

बङ्गाल देशमें नागपञ्चमी व्रतकी जो कथा होती है, उसमें इस देशकी कथासे कुछ फर्क पड़ता है।

सतारा अञ्चलमें भी नागपञ्चमी-व्रत खूब धूमधामसे होता है। इस प्रदेशमें बहुतसे सर्पमन्दिर देखनेमें आते हैं। जहां सर्पमन्दिर है, वहां स्त्रियां मट्टीके सर्प बना कर वा काष्ठासन पर चन्दन और सिन्दूरसे अङ्कित सर्प-चित्र और पूजा-द्रव्यादि ले कर जाती हैं। जब कभी ये सर्पविवर देखती हैं, तब उसे साष्टाङ्ग प्रणाम करती और उस गर्त्तमें दूध और केला फेंक देती हैं। बल्शिया मिरालेन नामक नगरमें नागकुलि नामक एक जातिका सांप है, जिसका विष उतना अनिष्टकर नहीं होता। वहांके लोग नागपञ्चमीके पूर्व दिन उस सर्पको पकड़ कर हंडीमें रखते हैं, पूजाके दिन उसे खानेको देते हैं और दूसरे दिन पुनः वनमें छोड़ देते हैं।

दक्षिण प्रदेशमें कई जगह नागमन्दिर है। मन्द्राज शहरमें इसकी संख्या सबसे ज्यादा है। वहांके बसरापाड़ नामक ग्राममें एक बड़ा नागमन्दिर है जहां प्रति रविवारके सबेरे ब्राह्मण-रमणियां पूजा करनेके लिये आती हैं। मन्दिरके पुजारी जंगली येनडो जातिके हैं।

विशेष विवरण नागपूजा देखो।

नागपति (सं॰ पु॰) नागानां पतिः ६-तत्। १ सर्पोंका अधिपति वासुकि। २ हाथियोंका अधिपति ऐरावत।

नागपत्तन—देशीय लोग इसे नगाईपत्तनम् और अरबी भौगेलिक मालियत्तन कहते हैं। पहले पोर्त्तुगीज इस नगरको चोड़मण्डल नगर (City of Choramandel) कहते थे।

यही नगर अभी मन्द्राजके अन्तर्गत तञ्जोर जिलेका एक प्रधान बन्दर हो गया है और अक्षा॰ १०° ४५´ उ॰ तथा देशा॰ ७८° ५२´ पू॰के मध्य तञ्जोरसे २४ कोस पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ६० हजार है। यहांके बन्दरमें सिंहल, ब्रह्म आदिके साथ वाणिज्य चलता है। यहांसे प्रधानतः सुपारी और वस्त्रादिकी आमदनी तथा चावल और धानकी रफतनी होती है।

करमण्डल उपकूलके मध्य पर्त्तुगीज लोग बहुत पहले यहां आकर बस गये थे। १६६० ई॰में ओलन्दाजोंने यह स्थान जीत लिया। पीछे १७८१ ई॰में यह अंगरेजोंके अधिकारमें आया है। तरङ्गवाड़ी नगर खरीदनेके पहले इस नगरमें तञ्जोरके कलक्टर रहते थे।

लब्बाई नामक एक श्रेणीके मुसलमान अधिक संख्यामें यहां वास करते हैं। ये लोग अरबी और हिन्दूके मेलसे उत्पन्न हुए हैं। यही लोग नगरका अधिकांश वाणिज्य कार्य चलाते हैं। अभी इनमेंसे कुछ लोग ब्रह्म और मलय प्रायद्वीपमें जा कर रहने लगे हैं।

इस बन्दरमें ८० फुट ऊँचे श्वेत स्तम्भके ऊपर चतुर्थ श्रेणीका श्वेत आलोक गृह (Light house of white light) है। इसके पार्श्वस्थ नागोर नामक बन्दर भी इस नगरका अन्तर्निविष्ट समझा जाता है।

यहां बहुत प्राचीन १४ मन्दिर हैं जिनमेंसे १२ शिवमन्दिर और २ विष्णुमन्दिर हैं। कैलासनाथ स्वामीके मन्दिरकी दीवारमें ओलन्दाजी भाषामें जो एक शिलालेख देखा जाता है, वह १७७७ ई०में मृत एक ओलन्दाजके स्मरणार्थ खोदा गया था। यहां पहले चीना पागोड़ा नामक एक स्तम्भ था। अंगरेज गवर्नमेण्टने सेण्टजोसेफ कालेजके पादरियोंके कहनेसे १८६७ ई०में उसे तोड़ फोड़ डाला। चीनपागोड़ाका प्रकृत नाम जिनपागोड़ा है। एक समय यहां बौद्धधर्म खूब चढ़ा बढ़ा था। स्थानीय लोग जिनपागोड़ाको 'पुदुवेलि गोपुर' और अंगरेज लोग कृष्ण पागोड़ा (Black pagoda) कहते थे। स्तम्भ तोड़नेके समय ब्रह्मधातुकी एक प्रतिमा पाई गई है जिसे कोई तो बौद्ध और कोई शैव प्रतिमा समझते हैं। प्रतिमाके निम्न भागमें प्राचीन तामिलाक्षरमें उत्कीर्ण लिपि है। वटेभियाकी चित्रशालिकामें दो रौप्यफलक हैं। इसमेंसे एक तञ्जोरके अन्तिम नायक विजयराघव द्वारा प्रदत्त नेगापाटम् दानका दानपत्र है और दूसरा महाराष्ट्र-राज एकोजी द्वारा प्रदत्त उस दानका प्रतिपोषक अनुज्ञापत्र।

रामञ्ञदेशके राजा धर्मचेटो (धर्मश्रेष्ठी)ने सिंहलसे महाविहार सम्प्रदायकी बौद्ध रीतिनीतिका प्रचार अपने राज्यमें करना चाहा। इसके लिये उन्होंने सिंहलराज भुवनेकबाहुके समीप २४ स्थविर एवं चित्रदूत और रामदूत नामक दो दूत भेजे। लौटते समय जम्बूद्वीप और सिंहलद्वीपके बीच सिन्ना प्रणालीमें जब उनका जहाज पहुंचा, तब एक भारी तूफान आया और पर्वतसे वह जहाज टकरा कर चूर चूर हो गया। आरोहिगण काठ आदिका बेड़ा बना कर किसी तरह जम्बूद्वीपके किनारे पहुंचे।

सिंहल-राजदूतके पास जो कुछ भेंटके सामान थे उनके खो जानेसे वे यहींसे वापिस चले गये। चित्रदूत और उनके साथी स्थविरगण पैदल ही नागपत्तनको पहुंचे। वहां उन स्थविरोंने पदरिका नामक बौद्धाश्रयका दर्शन किया और गुहामध्यस्थ बुद्धमूर्त्तिकी पूजा की। चीनदेशाधिपति महाराजके आदेशसे वह मूर्त्ति बनवाई गई थी। वह स्थान, जहां उक्त मूर्त्ति स्थापित है, समुद्रके किनारे पड़ता है। कहते हैं, कि दन्तकुमार और हेममाला (पति-पत्नी)के तत्त्वावधानमें जब बुद्धदन्त सिंहलको लाया गया, तब पहले वह इसी स्थान पर रखा गया था।

यह नागनाथ नामक एक प्राचीन नागमन्दिर है जिसमें नागनाथ अनन्तकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। उस प्रतिमाके निकट एक वृहत् वल्मीक स्तूप है। लोग कहते हैं, कि उस वल्मीकमें वासुदेवता रहते हैं, इस कारण नैवेद्यादि उसीके निकट चढ़ाया जाता है। यहां "गङ्गाद्रुम" नामक १७० फुट ऊँचा जो एक इष्टकस्तम्भ है वह जैन या बौद्धोंका बनाया हुआ है।

नागपत्तनसे ५ मील पूर्व-उत्तरमें समुद्रके किनारे नागोर नामका एक स्थान है जहां कादेरविलियर सैयद, उनके लड़के महम्मद यसुफ सैयद और पुत्रवधू, जोहार बीबीके प्रसिद्ध समाधिगृह विद्यमान हैं। इस अञ्चलके क्या हिन्दू, क्या मुसलमान सभी कादेरविलियरकी श्रद्धाभक्ति करते तथा उनकी समाधि देखने आते हैं।

नागपत्तनका पेरुमलस्वामी और कायारोहणस्वामीका मन्दिर बहुत मशहूर है। प्रवाद है, कि सत्ययुगमें ब्रह्मा दक्षिणसमुद्रके किनारे महाविष्णुके उद्देशसे तपस्या करते थे। तपस्यासे सन्तुष्ट हो कर विष्णुने उन्हें दर्शन दिये। ब्रह्माने उसी समय वहां एक विष्णुमन्दिर बनवा दिया। उसी मूर्त्तिका नाम अभी पेरुमलस्वामी पड़ा है। कायारोहण स्वामीकी शक्तिका नाम नीलायताची है। स्मार्त्त-ब्राह्मण लोग उनकी विशेष भक्ति और सम्मान करते हैं।

नागपत्नी (सं० स्त्री०) नकुलकन्द।

नागपत्रम् (सं० क्ली०) ताम्बूल दल, पानका पत्ता।

नागपत्रा (सं० स्त्री०) नागदमनं पत्रं यस्याः, टाप्। १ नागदमनी।

नागपत्री (सं० स्त्री०) नागवत् पत्रं यस्याः ङीष्। लक्षणा-कन्द, लक्षण नामका कन्द।

नागपद (सं० पु०) नागवत् पदं स्थानं यस्य। १ सोलह प्रकारके रतिबन्धोंमेंसे दूसरा रतिबन्ध। (क्ली०) २ हस्तिपद, हाथीके पैर।

नागपर्णी (सं० स्त्री०) १ ताम्बूल, पान। २ नागवल्लीलता।

नागपाल—काश्मीरके एक राजा। ये सोमपालके सहोदर भाई थे।

नागपाश (सं० पु०) नागः पाश इव। १ वरुणके एक अस्त्रका नाम। इस अस्त्रसे वे शत्रुओंको बांध लेते थे। रामायणमें लिखा है, कि इन्द्रजित्‌ने इन्द्रसे यह अस्त्र प्राप्त किया था। प्रायः सभी पुराणोंमें इस अस्त्र-का उल्लेख देखनेमें आता है। तन्त्रमें लिखा है, कि ढाई फेरेके बन्धनका नाम नागपाश है। नागपाशसे बन्धन करनेसे ढाई फेरे द्वारा बंधा है, ऐसा बोध होता है।

नागपाशक (सं० पु०) नागपाश इव इति कन्। रति बन्धविशेष।

नागपुत (सं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़का नाम (Bauhinia Anguina)

नागपुर (सं० क्ली०) नागानां पुरं ६-तत्। १ पाताल। २ देशविशेष, एक देशका नाम। अग्निपुराणमें इस देशका उत्पत्ति-विवरण जो लिखा है, वह इस प्रकार है—जब गङ्गा महादेवकी जटासे निकल कर हेमकूट हिमा-लय आदिको लांघ कर आईं, तब खलोल नामक एक दानव पर्वतके रूपमें मार्ग रोकनेके लिये खड़ा हो गया। भगीरथने कौशिकको प्रसन्न करके उनसे एक नागवाहन प्राप्त किया। उस वाहनने पर्वतरूपी दैत्यको विदीर्ण कर डाला। जिस स्थान पर वह दैत्य विदीर्ण किया गया उसका नाम नागपुर रखा गया। ३ हस्तिना-पुरका नामान्तर।

नागपुर—१ मध्यप्रदेशका उत्तरीय विभाग। यह अक्षा० १९° ४२´ से २२° २४´ उ० और देशा० ७८° ३´ से ८१° ३´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २३५२१ वर्ग-मील और लोकसंख्या प्रायः २७०६९८५ है। इस विभागके उत्तर छिन्दवाड़ा, सिवनी और मण्डला जिला; पूर्वमें रायपुर जिला, कावार्धा और खैरागढ़ काङ्कर नामक तीनों देशीय राज्य; दक्षिणमें निजामधिकृत प्रदेश और पश्चिममें बेरारके अन्तर्गत अमरावती तथा बुन नामक जिला है। इस विभागमें विशेषतः गोंड़, बैगा, कावार, कोर्कु, कोल, भील आदि असभ्य जातियोंका वास है। हिन्दूमें कृषिजीवि कुर्मीकी संख्या सबसे अधिक है। इस विभागमें २४ शहर और ७८९८ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त विभागका एक जिला। यह अक्षा० २०° ३५´ से २१° ४४´ उ० और देशा० ७८° १५´ से ७९° ४०´ पू०के मध्य अवस्थित है। इसके पूर्वमें भण्डारा, उत्तरमें छिन्दवाड़ा और सेवनी; दक्षिण-पश्चिममें वर्द्धा, दक्षिण-पूर्वमें चन्दा और पश्चिममें बेरार पड़ता है। सतपुरा पहाड़के निम्न समतलक्षेत्रमें यह जिला अवस्थित है। उत्तर, पश्चिम और पूर्वमें इस जिलेका सीमांश स्वरूप उक्त पर्वतमाला विस्तृत है। इस पर्वतमालासे समूचा जिला तीन समतल विभागोंमें बंट गया है। दक्षिण-पूर्वके समतलमें नन्दानदीकी अववाहिका है। पिल्कापर-शिखरके पश्चिममें वर्द्धानदीकी अववाहिका और वर्द्धा नदीकी उपनदियां जाम और मदारसे भी यथेष्ट जलसञ्चय होता है। पूरबीय समतलक्षेत्रमें वैणगङ्गाकी उपनदियां कनहानसे जलका काम चल जाता है। इस जिलेके पिल-कापर (१८९८ फुट), कलदोली (१३०० फुट) और रामटेक (१४०० फुट ऊंचा) नामक तीन प्रधान पहाड़ हैं। रामटक पहाड़ घोड़के नालके जैसा देखनेमें लगता है। इसके ऊपर प्राचीन दुर्ग और प्राचीन मन्दिरादि बने हुए हैं। ग्रीष्मऋतुमें यहां भारतवर्षके सब स्थानों-से अधिक गरमी पड़ती है। उस समय यहांका ताप परिमाण ११६° हो जाता है।

इतिहास—अत्यन्त प्राचीनकालमें इस देशमें गौलीजातिके सरदार राज्य करते थे। देशीय गानमें इन सरदारोंकी वीरताका वर्णन देवताकी तरह किया गया है। १६वीं शताब्दीके पहलेका कोई विश्वस्त इतिहास नहीं मिलता। उस समय देवगढ़के गोंड़राज्यमें यह जिला सन्निविष्ट था। उसी समय जटवा नामक राजगोंड़ जातिय एक राजा

घाट पर्वतके नीचेका शासन करते थे ; सम्भवतः ये देवगढ़के गोड़राजके भाई थे। इन्होंने ही भोयगढ़ पर्वतका प्राचीन दुर्ग बनवाया। छिन्दवाड़ाके पहाड़ी राज्यको रक्षाके लिए यह दुर्ग बनाया गया था। शायद इस प्रदेशमें जो सब गोड़दुर्गके भग्नावशेष देखनेमें आते हैं वे भी इन्हींके अथवा इनके वंशधरोंके समयके बने हुए हैं। प्रायः १७०० ई०में बखत् बुलन्द नामक एक मुसलमान राजाके समय देवगढ़ राज्य उन्नतिकी चरमसीमा तक पहुंच गया था। दिल्लीके साथ जबसे राजाकी सन्धि हुई, तबसे इस देशमें बहुतसे हिन्दू मुसलमान आ कर रहने लगे। उन्होंने ही नागपुर नगरको बसाया। पीछे उनके लड़के चांद सुलताननने इस नगरमें राजधानी कायम की। १७२८ ई०में चांद सुलतानके मरने पर वली शाह नामक बखत्‌बुलन्दके एक दासीपुत्रने सिंहासन पर दखल जमाया। चांद सुलतानकी विधवा पत्नीने अपने बाल बच्चोंके लिए रेवारके रघुजी भोंसलासे सहायता मांगी। वलीशाह युद्धमें मारे गये। पीछे विधवा रानीके लड़के बुरहानशाह और अकबर शाह यहां राज्य करने लगे। कुछ दिन बाद दोनों भाइयोंमें एक बड़ी भारी लड़ाई छिड़ गई जिसमें बुरहानशाहने १७४३ ई०में रघुजी भोंसलाकी सहायतासे सफलता प्राप्त की।

अकबरशाह हैदराबादको भाग गए और वहीं उन्होंने विष खा कर आत्महत्या कर डाली। रघुजी भोंसलाने इस बार जो बुरहानशाहकी सहायता की थी, वह निस्वार्थ भावसे नहीं, बल्कि अपना मतलब साधनेके लिए। उन्होंने राज्यशासनका कुल अधिकार अपने हाथमें ले लिया और बुरहानशाहको नाममात्रका राजा बना कर कुछ वृत्ति कायम कर दी। बाद नागपुर राजधानीमें रह कर भोंसलाने देवगढ़का अधिकांश अपने राज्यमें मिला लिया।

१७४४ ई०में रघुजीने रेवारसे ले कर कटक तकके कर वसूल करनेकी सनद पेशवासे जबरदस्ती ले ली। १७५६ ई०में रघुजीकी नागपुरमें मृत्यु हुई।

पीछे रघुजीके पुत्र जनोजी नागपुरमें राज्य करने लगे। छत्रिशगढ़ और चन्दा रघुजीके छोटे लड़के माधोजीके हाथ लगा।

पेशवा और निजाममें जब विवाद छिड़ा था, तब जनोजी कभी एक पक्षकी और कभी दूसरे पक्षकी सहायता कर रुपया संग्रह करने लगे।

१७६५ ई०में निजाम और पेशवा जनोजीके इस व्यवहार पर बहुत बिगड़े और दोनोंने मिल कर जनोजी पर आक्रमण कर दिया तथा नागपुर शहरमें आग लगा दी। जनोजी अधिकांश रुपये उन्हें लौटा देनेको बाध्य हुए। इसके चार वर्ष बाद जनोजी और पेशवामें एक सन्धि हुई जिसमें भोंसलाको पेशवाकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। मरनेके पहले जनोजीने माधोजीके लड़के रघुजीको पोष्यपुत्र बनाया। जनोजीके मरने पर माधोजी अपने पुत्रको ले कर नागपुर पहुंचे भी न थे, कि उनके पहले प्रथम रघुजीके भाई सवाजीने शून्यसिंहासन अधिकार कर लिया। पांचगांव नामक स्थानमें दोनोंमें लड़ाई छिड़ी। रणक्षेत्रमें माधोजीने अपने हाथसे भ्रातृवध कर पुत्रका राज्य निष्कण्टक किया। माधोजीने अपना अवशिष्ट जीवन नागपुर राज्यके अभिभावकके रूपमें बिताया। १७७७ ई०में माधोजी अंगरेजोंके साथ सन्धिसूत्रसे आबद्ध हुए। १७८८ ई०में माधोजीका देहान्त हुआ। इसी समयसे नागपुर प्रदेशमें सुचारुरूपसे शासनकार्य चलाने लगे।

द्वितीय रघुजी अन्तमें सिन्धियाके साथ मिल कर अंगरेजोंके विरुद्ध डट गये। असाई और आरगांवमें युद्ध हुआ। देवगांवकी सन्धिके अनुसार रघुजी प्रायः एक तृतीयांश राज्यसे हाथ धो बैठे और सदाके लिये रेसिडेण्ट रखनेको बाध्य हुए। १८१६ ई०में द्वितीय रघुजीके मरने पर उनके अन्ध और पक्षाघातग्रस्त पुत्र पावजी राजा हुए सही, लेकिन राज्य भोग कर न सके। उनके एक भतीजे अप्पासाहब और विधवा पत्नीमें राज्याधिकार ले कर विवाद शुरू हुआ। अन्तमें अंगरेजोंने अप्पा साहबको राजा बनाया। अप्पा साहबने पावजीको विष खिला कर मरवा डाला। राजसिंहासन पर बैठनेके साथ ही वे अंगरेजोंका उपकार भूल गए और पेशवाका साथ दिया। रेसिडेण्टने आत्मरक्षाके लिये थोड़ीसी सेना ले सीताबल्दी दुर्गको अधिकार कर लिया। १८१७ ई०में नागपुरकी मराठी सेनाने इन्हें बहुत तङ्ग किया

और पीछे सीताबर्डी दुर्ग को जीत लिया। अप्पासाहब इस उपद्रवके मूल कारण थे, यह उन्होंने स्वीकार नहीं किया। जो कुछ हो, जब थोड़ी और अंगरेजी सेना रेसिडेण्टकी रक्षाके लिये पहुंची, तब रेसिडेण्टने राजासे आत्मसमर्पण करने और सैन्यसमावेशको अलग कर देनेके लिये अनुरोध किया।

अप्पासाहबने आत्मसमर्पण किया सही, किन्तु सैन्यसमावेशकी ओर कुछ भी ध्यान न दिया। अन्तमें नागपुरमें लड़ाई छिड़ गई जिसमें महाराष्ट्रोंकी हार हुई। अङ्गरेजोंने पुनः अप्पा साहबको गद्दी पर बिठाया। इस समय पावजीको विष देनेकी बात खुल गई और अंगरेजोंके विरुद्ध जो नवीन षड़यन्त्र कर रहे थे, वह भी सब किसीको मालूम हो गया। इस पर अंगरेजोंने उन्हें कैद कर लिया। किन्तु अप्पासाहब बहुत चालाकीसे महादेव पर्वतके समीप भाग गये और वहांसे सीधे पञ्जाबको चले आए।

२य रघुजीके एक शिशु पौत्र ३य रघुजी नामसे सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। १८५३ ई०में अपुत्रक अवस्थामें इनका देहान्त हुआ और यह राज्य ब्रटिश गवर्नमेण्टके हाथ लगा। १८६१ ई०में यहां कमिश्नर नियुक्त हुए।

इसमें १२ शहर और १६८१ ग्राम लगते हैं। शहरमें ८ ही प्रधान हैं, यथा—नागपुर शहर, कामठी, उमरेर, खपा, रामटेक, नरखेर, मोहपा, कल्मेश्वर और सोनेर। जनसंख्या प्रायः ७५१४४४ है जिनमेंसे ब्राह्मण, कुनबी और महाराष्ट्रोंकी संख्या अधिक है। ज्वार और रूई ही यहांकी प्रधान उपज है। डिपटी कमिश्नर और उनके कुछ तहसीलदारों द्वारा विचारकार्य सम्पन्न होता है। विद्यामें भी यह जिला चढ़ा बढ़ा है। यहां ५ हाई स्कूल, १६ मिडिल इङ्गलिश स्कूल, १७ वर्नाक्यूलर स्कूल और १४७ प्रायमरी स्कूल हैं। इसके अलावा मोरिस नामका एक कालेज है जिसमें कानून भी पढ़ाया जाता है। यहां दो शिल्प विद्यालय भी हैं।

३ नागपुर जिलेके मध्यकी एक तहसील। यह अक्षा० २०° ४६´ उ० और २१° २२´ उ० तथा देशा० ७८° ४४´ और ७९° १८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ८७१ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग २८६११७ है। इसमें ४ शहर और ४२७ ग्राम लगते हैं। यहां ११ दीवानी और १५ फौजदारी अदालत, ३ थाना तथा ६ चौकी हैं।

४ नागपुर जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २१° ८´ उ० तथा देशा० ७९° ७´ पू०के मध्य अवस्थित है। यह शहर नाग नामकी नदीके किनारे बसा हुआ है इसीसे इसका नागपुर नाम पड़ा है।

जनसंख्या लगभग १२७३४ है। यहां हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिख, पारसी, यहूदी, ईसाई और मुसलमान जातिके लोग रहते हैं। गेहूं, लवण, देगो और विलायती कपड़े तथा रेशम और मसालेकी आमदनी होती है। १८वीं शताब्दीके आरम्भमें गोण्ड राजा बख्तबुलन्दसे यह शहर बसाया गया। धीरे धीरे यह भोंसलाके अधीन आया। यहां चीफ कमिश्नरकी कचहरी, छोटी अदालत, तहसीली मजिष्ट्रेटकी अदालत, पुलिस, कारागार, अस्पताल, पगलागारद, कुष्ठाश्रम, सीताबर्डी-आतुरालय और अनेक विद्यालय हैं। इनके अतिरिक्त तीन सराय और धर्मशालाएं हैं। शहरमें काले पत्थरके बने हुए भोंसलाका प्रासाद, नौबतखाना, महाराजबाग, तुलसीबाग आदि मशहूर स्थान देखने योग्य हैं। भोंसला राजाओंके समय यहां अनेक उद्यान लगाए गए थे। उद्यानके सिवा उनके बनाए हुए जमा तालाब, अम्बाझारी और तेलिङ्ग खेरी नामक तीन जलाशय भी नजर आते हैं। शहरकी आबहवा स्वास्थ्यजनक है।

नागपुरगम् (सं० क्ली०) सीस धातु, सीसा।

नागपुरी—नेपालके स्वयम्भूक्षेत्रके अन्तर्वर्ती एक अत्यन्त प्राचीन बौद्ध देवमन्दिर। यहां वरुण और अष्टनागकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। स्वयम्भूपुराणके मतानुसार नेपालाधिप गुणकामके समय शान्तिकरने उक्त मूर्त्तियोंकी स्थापना की थी।

नागपुष्प (म० पु०) नागस्य हस्तिनः मदगन्धयुक्तं पुष्पं यस्य। १ पुन्नागवृक्ष। २ नागकेशर। ३ चम्पक, चंपा।

नागपुष्पक (सं० पु०) १ कपित्थवृक्ष, कैथका पेड़। २ स्वर्णयूथिका, पीली जूही। ३ कुम्भाण्ड। ४ पुन्नाग वृक्ष। ५ नागकेसरवृक्ष।

नागपुष्पफला (सं० स्त्री०) नागस्य नागकेशरस्येव पुष्पफले यस्याः । कुष्माण्डो ।

नागपुष्पा (सं० स्त्री०) १ नागदमनी, नागदौना । १ २ मनःशिला ।

नागपुष्पिका (सं० स्त्री०) नागस्य पुष्पमिव पुष्पं यस्याः कप् टापि अत इत्वम् । १ स्वर्णयूथी पुष्पवृक्ष, पीली जूही । २ नागदमनी, नागदौना ।

नागपुष्पी (सं० स्त्री०) नागस्य नागकेशरस्य पुष्पमिव पुष्पं यस्याः ङीष् । १ नागदमनी । २ स्वर्णयूथिका, पीली जूही । ३ मेढ़कशृङ्गी, मेढ़ासींगी ।

नागपूजा—भारतवर्षमें सब जगह नागपूजा प्रचलित है । केवल भारतमें नहीं, बल्कि दूसरे देशोंमें भी नागपूजाकी प्रथा देखनेमें आती है। ईसा जन्मके २००० वर्ष पहले यह पूजा यहूदियोंमें शुरू हुई थी । रोमनगरसे १६ मील दूरवर्त्ती लानुवियम् नामक स्थानमें एक निविड़ अन्धकारमय निकुञ्ज था जिसे लोग सतीकी अधिष्ठात्री देवी जुना (Juno) कुञ्ज कहते थे । उसके पास ही एक वृहदाकार अजगरका वास था। रोमकगण उस अजगरकी यथेष्ट भक्ति करते थे। प्रायः सभी हिन्दू विषधर फणाकी पूजा करते हैं और कभी कभी भारतवर्षके नाना ग्रामवासी हिन्दू रमणियां नागपूजाके लिये वन जाती हैं।

हिन्दू जिस तरह मनुष्यकी मृतदेहका सत्कार करते हैं, उसी तरह अनेक स्थानोंमें निहत सर्पका भी सत्कार किया जाता है। हिन्दू, बौद्ध, जैन आदिकी देवदेवियोंकी प्राचीन मूर्त्तियोंके मस्तक पर छत्राकारमें सर्पफण देखनेमें आते हैं। कहीं तो ३ सर्पफण, कहीं कहीं ७, कहीं ८ वा ११ सर्पफण फैले हुए रहते हैं।

प्रायः सभी पौराणिक ग्रन्थोंमें सर्प अमरत्वका निदर्शनस्वरूप माना गया है। सर्पोंके शरीरसे जो बार बार केंचुल निकलती है और नए विषका जो आविर्भाव होता है उससे यह अनुमान किया जाता है कि सर्प चिरयौवन तथा चिरजीवि है। इजिप्ट और ग्रीसके इतिहासमें भी नागोंके अनेक उपाख्यान लिखे हैं।

गरुड़के साथ नागोंकी जो युद्धकथा सुनी जाती है और गरुड़ने जो नागदमन किया था, पाश्चात्य पण्डित लोग उसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं। गरुड़ विष्णु-उपासकके दृष्टान्तस्वरूप हैं और नागगण कहनेसे शाक्यमुनिके प्रतिष्ठित बौद्ध-धर्मावलम्बी मनुष्योंका बोध होता है। गरुड़ने सचमुच नाग जय किया था, अर्थात् प्रबल वैष्णवधर्मने तेजहीन बौद्धधर्मको परास्त किया था ।

महाभारतादि प्राचीन ग्रन्थोंमें लिखा है, कि परीक्षितके पुत्र जनमेजयने सर्पक्षययज्ञ किया था । उस यज्ञमें राजा जनमेजयने प्रायः सभी सर्पोंको विनष्ट कर डाला था । यदि सचमुच देखा जाय, तो उक्त ऐतिहासिक घटना तदानीन्तन एक यथार्थ घटनाका आभास ले कर वर्णित हुई है । जब जनमेजयने नागपूजा बन्द कर दी, उस समय स्थानीय कुसंस्कारको दूर करके वैदिक सनातन धर्मने उस स्थान पर अपना अधिकार जमा लिया ।

काश्मीर प्रदेशमें सबसे पहले नागपूजा और मनसापूजा प्रचलित थी । अबुलफजलने कहा है, कि ई० सन्के ३५०।४०० वर्ष पहले काश्मीर अञ्चलके प्रायः सात सौ स्थानोंमें नागपूजा होती थी । उस समय सारे भारतवर्षमें नागपूजाकी प्रथा प्रचलित थी।

कहीं तो जीवित गोखुर सर्पकी और कहीं खोदित प्रतिमूर्त्तिकी पूजा होती है । प्रायः प्रत्येक घरमें मनसादेवीके प्रतिरूप मनसाका एक पेड़ रहता है । कई जगह उसी पेड़की पूजा होती है । कहीं कहीं तो ऐसी प्रतिमूर्त्ति है कि एक सर्प अपना फण फैलाए हुए है और कहीं अष्टनागकी प्रतिमूर्त्ति उत्कीर्ण है । अधिकांश जगह दो सर्प एक साथ मिले हुए देखे जाते हैं।

दाक्षिणात्यमें सब ही जगह जहां सांप रहता है वहां पुजारी जाते और सिन्दूर लगाते हैं । चीनीमिश्रित गेहूं और हलदीके चूर्णसे वहां सांपका चित्र अङ्कित करते हैं और सुगन्धित फूलकी माला गूंथ कर उसी जगह लटका देते हैं ।

महाराष्ट्र रमणियां नागपूजाके दिन एक साथ मिल कर नागमन्दिर जाती हैं और एक दूसरेका हाथ पकड़ कर गीत गाती हुई मन्दिरका प्रदक्षिण करती हैं । बाद वे अपने अपने अभीष्ट वरके लिए प्रार्थना करती हैं और भूमिष्ठ हो उन्हें प्रणाम करती हैं । श्रावण मासमें नाग-

पञ्चमी नामका एक हिन्दू पर्व है। उस दिन हिन्दू लोग सर्पको तलाशमें बाहर निकलते हैं और सँपेरेको सहायतासे सर्प पकड़ कर घर लाते हैं। बाद वे भक्तिपूर्वक उसको पूजा कर उसे दूध और अन्यान्य द्रव्य खाने देते हैं। उस दिन बम्बई प्रदेशके प्रत्येक हिन्दू गृहस्थ काठ अथवा कागजमें सर्पको मूर्त्ति अङ्कित कर उसे दीवारमें लटका देते हैं और उसकी अर्चना करते हैं। अजन्ताके गुहामन्दिरमें इस प्रकारको नागपूजाका प्राचीन निदर्शन देखनेमें आता है। छत्रग्रामके पश्चिम दीवारमें एक कैवट साँपकी मूर्त्ति अङ्कित है। साँप जिस प्रकार वक्रगतिसे चलता है, उसी प्रकार चित्र भी है। सर्पउपासकका कहना है, कि ये सब साँप लङ्काकी ओर जा रहे हैं और जब उन्हें कहा जाता है, कि लङ्का जानेमें बहुत दिन लगेंगे, तब वे बहुत अप्रसन्न दीख पड़ते हैं।

कागज पर अङ्कित शिवलिङ्गके ऊपर जो सर्पमूर्त्ति है उसके फन ऊपरकी ओर फैले हुए हैं। कागज पर जो शिवमूर्त्ति है वह व्याघ्रचर्मके ऊपर बैठी हुई है और उसके मस्तक पर सर्प अपना फण फैलाए हुए है तथा शेष अङ्ग उसके गलेमें लिपटा हुआ है। कहते हैं, कि समुद्रमथनके समय जो विष निकला था, महादेव उसे पी गए थे। उस यन्त्रणासे बेचैन हो कर ज्वाला निवारणके लिए उन्होंने सर्पको अपने गलेमें लिपटा लिया था। भगवान् विष्णु जब अनन्तशय्या पर सोए हुए थे, तब सर्पोंने अपने फन फैला कर उन्हें छाया की थी। उन्होंने अपने फनको तब तक फैलाए रखा था, जब तक भगवान्‌ने दूसरा अवतार न लिया।

दक्षिण भारतमें महिसुरके पश्चिमांश सुब्रह्मण्यदेवीका एक मन्दिर है। उस मन्दिरमें मट्टीकी बनी हुई एक प्रतिमूर्त्ति स्थापित है। अधिवासिगण नागोंके उद्देशसे उक्त सुब्रह्मण्यकी पूजा करते हैं। आज भी वहां नागपूजापद्धति पूर्ववत् अक्षुण्ण है।

१८४१ ई०को अहमदनगरमें एक दिन पौर्णमासीनिशिको किसी घरसे दश सर्प बाहर निकले। आश्चर्यका विषय था, वे सब सर्प युगल-अवस्थामें जा रहे थे। इस प्रकार नागमिथुन देख कर एक यूरोपीय युवक बड़े ही आश्चर्यान्वित हुए और उन्होंने यह आश्चर्य घटना अपने एक मित्रसे कह सुनाई। इस पर उनके मित्रने कहा, 'महाशय! मैंने भी एक दिन दो सर्पोंको युगल अवस्थामें देखा था। उस समय वे लेजके ऊपर भार दे कर सीधे खड़े हो गए। भारतवासी इस अवस्थाको साँपका नाच कहते हैं। उनका विश्वास है, कि इस अवस्थामें साँपका देखना सौभाग्यसूचक है। इस समय यदि कोई एक नवीन वस्त्रसे उन्हें ढक दे, तो उसे असीमफल प्राप्त होते हैं। बाद उस वस्त्रको ला कर घरमें रखनेसे लक्ष्मी चिर दिन तक उसके घरमें आवद्ध रहती हैं।'

हिन्दू साधारणतः सर्पका विनाश करना नहीं चाहते, सर्प देखनेसे वे दूसरा रास्ता पकड़ लेते हैं। आधुनिक अंगरेजी भाषाज्ञ हिन्दू-युवक प्राचीन प्रणालीका उल्लङ्घन कर साँपोंके प्राणनाश कर डालते हैं। किन्तु प्राचीन कालमें हिन्दू कभी सर्पोंके प्राणसंहार नहीं करते थे। किसी समय एक गृहस्थके घरमें दो अतिथि पहुंचे। घरका मालिक श्रावक बनिया बाजारका सौदा करने गया था और उसकी स्त्री जल लानेके लिए बाहर गई थी। जब वे दोनों अतिथि गृहस्वामीकी अपेक्षामें बैठे हुए थे, उसी समय एक बड़ा भीषण सर्प उनके सामने पहुंच गया। उसे देखनेके साथ ही उनमेंसे एकने डंडेसे उसका धड़ दबाया और दूसरा डंडा ले कर ज्यों ही उसे मारनेके लिए उद्यत हुआ, त्योंही श्रावक बनियेकी स्त्री, जो जल ले कर पीछेसे आ रही थी, चिल्ला उठी, "महाशय! ठहर जाइये, ठहर जाइये! इसका प्राणनाश मत कीजिये। यह सर्प हम लोगोंके पूर्वज देव हैं। ये मेरी सासके शरीर पर चढ़ जाते और श्वसुरका नाम ले कर कहते हैं, कि उन्होंने ही नर-देहत्याग कर सर्प-देह धारण की है। एक दिन इन्होंने हमारे किसी एक पड़ोसीको काटा, जब विष झाड़नेके लिये ओझा बुलाये गये, तब इन्होंने कहा, 'मेरे पुत्रके साथ इसने विवाद किया था, इस लिए मैंने इसे काटा है। यदि यह मेरे पुत्रके साथ कभी न झगड़े, तो मैं उसे छोड़ सकता हूं, अन्यथा नहीं। तभीसे जब उक्त अजगर किसीके घर जाता है, तब कोई उसे कठोर वचन नहीं कहता। कुछ दिन हुए हम लोग इसे दश कोस दूरमें छोड़ आये थे। लेकिन आश्चर्यकी बात है कि उतना

दूरसे वह फिर यहां लौट आया। मैंने कई बार इसके शरीर पर पैर रखा है, लेकिन इसने कुछ भी मेरा अनिष्ट नहीं किया। जब कभी मैं जल लाने बाहर जाती हूं, तब मेरी सन्तान उसके कान पकड़ कर खेला करती है।" *

यह सुन कर उन दो अतिथियोंने उस सर्पको छोड़ दिया और बहुत विनीत भावसे उससे प्रार्थना की।

कुछ दिन बाद एक बिल्लीने उस सर्पको मार डाला। गृहस्वामीने उसकी मृतदेहका अग्निसंस्कार किया और चितानलमें चन्दनकाष्ठ, नारियल और घी फेंक दिया। ऐसी प्रथा आज भी बहुत जगह प्रचलित है।

नागपूजा तमाम प्रचलित नहीं थी, पृथ्वी पर ऐसे कम स्थान थे जहां नागपूजा होती थी। समस्त एशियाके केवल चीन देशमें कहीं कहीं यह पूजा प्रचलित नहीं थी। इसके सिवा अफ्रिका, काल्दीया, पालेस्तिन, बाबिलन, पारस्य, काश्मीर, काम्बोज, तिब्बत, भारतवर्ष, लङ्काद्वीप आदि सभी स्थानोंमें तथा यूरोपके अन्तःपाती अनेक स्थानोंमें यहां तक कि अमेरिकामें भी कहीं कहीं नागपूजाका प्रचार था, इसका स्पष्ट प्रमाण पाया जाता है।

राजपूत लोग सर्प देवताकी प्रतिमूर्त्ति जो बनाते हैं, उसमें आधा मनुष्यका आकार रहता है। दिवदोरसने सिदोय (शक) जातिकी सर्प-जननीकी आकृति भी इसी प्रकार बतलाई है। हिन्दुओंके मतसे मनसादेवी नागमाता मानी जाती है। उसके भाई अनन्तनाग सर्पोंके राजा हैं। अनन्तका अर्थ सीमारहित है। सर्पोंकी गोलाकार अवस्थामें रहनेसे ही उक्त नाम पड़ा है।

यद्यपि कहीं ऐसा भी उल्लेख है, कि क्षीरोदशायी विष्णुको अनन्तनागने अतलस्पर्श समुद्रके बीच आश्रय दिया था, तो भी पुराणमें एक जगह लिखा है, कि अनन्तनाग ही स्वयं विष्णु हैं। अर्थात् उसी अनादि महापुरुष विष्णुका दूसरा नाम 'अनन्त' है।

जिस प्रकार हिन्दुओंमें सूर्यके पुत्र अश्विनिकुमार-द्वय देववैद्य कह कर प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार ग्रीक और रोमकोंमें एसकुलपियस् (Esculapius) देववैद्य माने जाते हैं। इनके हाथोंका दण्ड दो सर्पोंसे वेष्टित है। फिनिकियोंके नागदेवताका नाम है एवमन्; मिस्रवासियोंका हार्मिस् (Hermes), काल्दियोंका ओब, बाबिलनवासीका बेल इत्यादि विभिन्न देशोंमें नागदेव विभिन्न नामोंसे पुकारे जाते हैं।

लङ्काद्वीप तथा गुजरातवासी आराधना तथा मूसोंका नाश करनेके लिये अपने अपने घरमें सांप रखते हैं। गुजरातवासी कोई भी सांप नहीं मारता, लेकिन कभी कभी उसे पकड़ कर गांवके बाहर छोड़ आता है। सिंहलमें कीड़ा आदि मारनेके लिये सांप पाया जाता है। बहुत प्राचीन कालसे ले कर अलेकसन्दरके समय तक टायरे नामक सर्पका विशेष आदर होता था। यद्यपि आज कल वहां नागपूजा नहीं होती, तो भी एक समय ओफाइट (Ophites), निकोलेटन (Nicoletans) और नष्टिक (Gnostics) नामक ईसाई सम्प्रदायोंमें नागपूजा प्रचलित थी। ओफाइट लोग सर्पकी ईसासे बढ़ कर भक्ति करते थे। वे बक्समें सजीव सर्पको पकड़ कर रखते और उसीको ईश्वर मानते थे। पोलण्ड देशमें उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम समय तक भी नागपूजा होती थी। संसारमें जितनी जातियां हैं वे सर्पोंके प्रति श्रद्धा और भक्ति जो करती थीं, वह निम्नलिखित घटनाओंसे स्पष्ट जाना जा सकता है। पृथ्वीके बहुतसे असाधारण लोगोंने सर्पसे जन्मग्रहण किया है, उनमेंसे कितने अपना परिचय दे गये हैं। रोमक-सेनापति सिपिओ (Scipio Africanus) नागकी सन्तान माने जाते हैं। Augustusका कहना है, कि उनकी माता अटिया (Atia) नामक सर्पसे गर्भवती हुई थी। बहुतोंका विश्वास था, कि अलेकसन्दर नागनन्दन थे।

इन्दोर (Endor)की स्त्रियां ओबकी उपपत्नी मानी जाती हैं। इसराइलके राजा योथमने नागपूजाके लिये सर्प देवताका एक मनोहर मन्दिर बनवाया था।

एशिया माइनरकी कितनी प्राचीन मुद्राओं पर सर्पकी आकृति देखी जाती है। ईसा जन्मके बाद

* Balfour's Cyclopaedia of India, Vol. III (Serpent worship) द्रष्टव्य।

ग्रीक देशमें Esculapiusके दण्डवेष्टित दोनों सर्प देवताके समान सम्मानित होते थे। कहते हैं, कि रोमनगरमें ४६२ ई०में जब हैजेकी बीमारी फैली, तब ग्रीससे एक जीवित सर्प वहां लाया गया था। नगरके सभी मनुष्योंने तथा राजसभाके सदस्योंने मिल कर यथाविधि सम्मानपूर्वक उसकी अभ्यर्थना की थी। इस घटनाके बाद एक दिन रोमनगरके किसी स्थानमें एक सर्प देखा गया। वह सर्प बहुत आश्चर्य अवस्थामें वहां रहता था। यही देख कर रोमवासी उस स्थानको पुण्यक्षेत्र मानने लगे हैं।

पद्मपुराण और गरुड़पुराण इन दो पुराणोंमें कालिय नागका विवरण है। श्रीकृष्णने शैशवावस्थामें उसे मारा था। भारतवर्षमें आज भी कालिय नागकी पूजा होती है। श्रावण मासकी शुक्लापञ्चमीको 'नागपञ्चमी' होती है। भारतवर्षके उत्तरमें, महाराष्ट्रमें और तैलङ्गमें नागपञ्चमीके बदले नागचौथी उत्सव प्रचलित है। यह उत्सव श्रावण मासकी शुक्ला चतुर्दशीमें होता है, इसीसे इसका उक्त नाम पड़ा है। नागचौथी व्रत भारतवर्षके कई स्थानोंमें होता है। नागपञ्चमी-पूजाके दिन हिन्दू रमणियां स्नान कर बहुमूल्य वसन भूषणोंसे सज्जित हो कर नागपूजा करने बाहर निकलती हैं। बाद जहां नागमूर्त्ति स्थापित रहती है, वहां जा कर दूध, पिष्टक, फल, मूल, पान, सुपाड़ी आदिका भोग लगाती हैं और नाना प्रकारकी पुष्प-मालाएं अर्पण करती हैं। इस दिन पूजा करनेके बाद वे नागराजसे अपने अपने अभीष्ट वरके लिये प्रार्थना करती हैं।

हिन्दुओंका विश्वास है, कि नागपूजा करनेसे कोढ़, आँखका आना, वन्ध्यादोष आदि रोग जाते रहते हैं। किसी ब्राह्मणने ढोलका नगरमें एक पुराना घर खरीदा था। उसने उस घरको ध्वस्त कर वहां एक नया घर बनाना चाहा। जब वह जमीन कोड़ने लगा, तब उसने बहुसंख्यक स्वर्णमुद्राविशिष्ट एक कलसीको वेष्टन किये हुए एक प्रकाण्ड अजगर सर्प देखा। रातको उसे स्वप्न हुआ, "तुम इस भग्नमन्दिरको बरबाद मत करो। यह सम्पत्ति मेरी है और मैं ही इसकी रक्षा करता हूं। यदि तुम मेरी बातका उल्लङ्घन करोगे, तो मैं तुम्हारा सत्यानाश कर डालूंगा।" सवेरे ब्राह्मणने उठ कर सांपके शरीर पर गरम तेल डाल दिया और उस भग्नमन्दिरको तहस नहस करके धन-रत्न अपने साथ ले बहुत आनन्दसे घर आया। इसका फल यह हुआ कि उस ब्राह्मणके एक भी पुत्र न हुआ और जो एक लड़की थी उसे भी कोई सन्तान न हुई। यहां तक कि जिन्होंने उस धनका थोड़ा भाग लिया था अथवा जो उसके कर्मचारी और भृत्य हुए थे अथवा जिन्होंने उनके कुलपुरोहितका काम किया था, वे सबके सब निःसन्तान हुए। १८३२ ई०में यह घटना हुई थी। मन्द्राजके निकट तिवेतुर, पेराम्बर, बासरपाड़ी और पश्चिमघाटमें बहुतसे नागमन्दिर देखनेमें आते हैं। कितने हिन्दू यात्री पश्चिमघाटके सुवर्ण-मन्दिरमें जा कर रहते हैं और आते समय वहांसे अपने साथ कीचड़ लाते हैं जिसे वन्ध्या-स्त्री तिलक लगाती और कुष्ठरोगी अपने शरीर पर लेपते हैं।

फारगुसन साहबने लिखा है, कि वृक्षपूजा और नागपूजा सभी मनुष्यजातिका आदिधर्म है। जहां नरबलि दी जाती थी, वहां भी नागपूजाका प्रचार था। मेक्सिको और दाहोमी नामक देशोंमें नागपूजा सर्वसाधारणका प्रिय धर्म था। दाहोमी नागपूजाका एक प्रधान स्थान है। वहां आज भी नागपूजा पूर्ववत् बहुत समारोहसे होती है।

१८७२ ई०में मन्द्राजनगरमें किसी एक असाधारण धीसम्पन्न ब्राह्मणके एक कन्या उत्पन्न हुई। गर्भधारणकालमें एक सर्प देखा गया था, इस कारण उस लड़कीका नाम "नागम्मा" रखा गया। ये सब घटनाएं देख कर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि भारतवर्षमें नागपूजाका प्रभाव खूब बढ़ा चढ़ा था। बौद्ध तथा जैन धर्मग्रन्थोंमें भी नागपूजाका उल्लेख है।

नागपूत (सं० पु०) कचनारकी जातिकी एक लता जो सिक्किम, बङ्गाल और बरमामें बहुत होती है।

नागफण (सं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़का नाम।

नागफनी (हिं० स्त्री०) १ सिंघेके आकारका एक बाजा। इसका व्यवहार नेपालमें अधिक होता है। यह तांबेका बना होता है। इसकी ध्वनि उतनी मीठी नहीं होती। २ थूहरकी जातिका एक पौधा। इसमें टहनियां नहीं

होतीं। साँपके फनके आकारके गूदेदार मोटे दल एक दूसरेके ऊपर निकलते चले जाते हैं। ये दल कुछ नीला-पन लिये हरे और काँटेदार होते हैं। काँटे बड़े विषैले होते हैं। दलोंके सिरे पर पीले रंगके बड़े बड़े फूल लगते हैं। पुष्पका निम्नांश छोटी गुल्लीके रूपका होता है। उसमें लाल रंगका रस भी भरा रहता है। जब फूल झड़ जाते हैं, तब यही गुल्ली बढ़ कर गोल फलके रूपमें परिणत हो जाती है। ये फल खानेमें खटमीठे होते और दवाके काममें आते हैं। इन फलोंका अचार और तरकारी भी बनती है। इसके पौधे किसी स्थानको घेरनेके लिये बाड़ोंमें लगाए जाते हैं। काँटोंके कारण इन्हें पार करना कठिन होता है। ३ एक प्रकार का गहना जो कानोंमें पहना जाता है। ४ नागे साधुओं का कौपीन।

नागफल (सं० पु०) नागस्य पुन्नागस्येव फलं यस्य। पटोल, परवल।

नागफाँस (हिं० पु०) नागपाश देखो।

नागफेन (सं० पु०) अहिफेन, अफीम।

नागबधू (सं० स्त्री०) नागानां वधूः ६ तत्। नागोंकी स्त्री।

नागबधूप्रिय (सं० पु०) सल्लकी निर्यास, धूना।

नागबन्धक (सं० पु०) वह जो जंगली हाथी पकड़ता हो।

नागबन्धु (सं० पु०) नागस्य हस्तिनो बन्धुरिव तत्पोषकत्वात्। १ अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़। २ उदुम्बरवृक्ष, डूमरका पेड़। ३ नागोंका मित्र।

नागबल (सं० पु०) नागानां हस्तिनामयुतस्य बलं यस्य। १ भीमका एक नाम। भीमको दश हजार हाथियोंका बल था। इसका विषय महाभारतमें इस प्रकार लिखा है—एक समय दुर्योधनने इन्हें विष खिला कर नदीमें फेंक दिया और वे नागलोकमें पहुँच गये। नागलोकमें गिरने पर नागोंने उन्हें खूब डसा जिससे उनके शरीरस्थ स्थावर विषका प्रभाव उतर गया और वे स्वस्थ हो कर उठ बैठे। बाद उनके शरीरमें जितने बन्धन लगे हुए थे सबोंको उन्होंने बातकी बातमें तोड़ डाला। नागोंने इनकी अलौकिक शक्ति देख वासुकिके पास यह खबर भिजवा दी। पीछे वासुकिने आ कर भीमसेनके दर्शन किये। इस समय कुन्तीके पिताके मातामह आर्यक नामक एक नागराज थे। इन्होंने दौहित्रके दौहित्र भीमको पहचान कर उनका आलिङ्गन किया। इस पर वासुकि बहुत प्रसन्न हुए और भीमको धनरत्नादि देना चाहा। पर आर्यकने कहा, 'जब आप प्रसन्न हैं, तो धनको इसे कोई जरूरत नहीं। बल्कि ऐसा वर दीजिए जिससे यह बहुत बलवान हो जावे। इस कुण्डमें सहस्र हाथियोंका बल है, अतः यह बालक जहाँ तक इसका जल पी सके वहाँ तक पीनेकी आज्ञा दीजिये।' इस पर वासुकि राजी हो गये। भीम पूर्वकी ओर मुँह कर एक निश्वाससे उस कुण्डका सब रस पान कर गये। रस पी कर वे आठ दिन तक सोए रहे।

बाद भुजङ्गोंने भीमसेनसे कहा, 'तुमने नागदत्त जो वीर्यकर रसपान किया है, उससे तुम्हारे शरीरमें एक हजार हाथियोंका बल होगा।' भीमका नागबल नाम पड़नेका यही कारण है। (भारत १।१२८ १२९ अ०) (त्रि०) २ हस्तितुल्य बलयुक्त, जिसे हाथियोंके समान बल हो।

नागबला (सं० स्त्री०) नागस्येव बलं यस्याः। बला-भेद, गुलसकरी, गंगेरन। (Sid alba) पर्याय—अतिबला, महाबला, गाङ्गेरुकी, झषा, ह्रस्वगवेधुका, गोरक्षतण्डुला, भद्रोदनी, खरगन्धा, चतुःफला, महोदया, महापत्रा, महाशाखा, महाफला, विश्वदेवा, अनिष्टा, देवदन्ता, महागन्धा, घण्टा। गुण—कषाय, उष्ण, गुरु, ग्राही, वृष्य, स्निग्ध, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, प्रमेह, उदर, कण्डु, कुष्ठ, वात, व्रण, क्षत, चर्मरोग और पित्तनाशक, आयुर्वृद्धिकर, क्षीण और क्षयरोगमें हितकर है।

नागबलाघृत (सं० क्ली०) चक्रदत्तोक्त पक्वघृतभेद।

नागबलातैल (सं० क्ली०) १ तैलविशेष, एक प्रकारका तेल जो वातरोगमें काम आता है। २ तिलतैल, तिलका तेल।

नागबुद्ध (सं० पु०) एक बौद्धधर्म-प्रचारक। इनका दूसरा नाम नागबोध है।

नागबुद्धि (सं० पु०) एक वैद्यशास्त्रके प्रणेता। इनका दूसरा नाम नागबोधि है।

नागबेल (हिं० स्त्री०) १ पानकी बेल। २ कोई सर्पाकार बेल जो किसी वस्तु पर बनाई जाय। ३ घोड़ेकी आड़ी तिरछी चाल।

नागभगिनी (सं० स्त्री०) नागस्य भगिनी ६-तत्। वासुकि की बहन जरत्कारु।

नागभिद् (सं० पु०) हस्तिध्वंसकारी सर्पविशेष, एक प्रकारका भारी सांप। (Amphisbaena)

नागभू (सं० स्त्री०) क्षुद्र पाषाणभेद।

नागभूषण (सं० पु०) नागो भूषणं यस्य। महादेव। महादेवके सर्पगण उनके भूषण स्वरूप हैं।

नागभृत् (सं० पु०) नागः क्रूराचारी सन् बिभर्त्ति आत्मानमिति भृ-क्विप्। डुण्डुभ सर्प, एक प्रकारका सांप।

नागभोग (सं० पु०) सर्पविशेष, एक सर्पका नाम।

नागमङ्गल—१ महिसुर राज्यके अन्तर्गत महिसुर जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १२° ४०' से १३° ३' उ० और देशा० ७६° ३५' से ७६° ५६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४०१ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ७६५८१ है। इसमें नागमङ्गल नामका एक शहर और २६६ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १२° ४९' उ० और देशा० ७६° ४७' पू०के मध्य श्रीरङ्गपत्तनसे १४ कोस उत्तरमें अवस्थित है। यहां प्राचीन हिन्दू-राजधानीका निदर्शन पड़ा हुआ है। बहुतसे प्राचीन देवालय और राजप्रासाद भी हैं। यहांके एक प्राचीन मन्दिरसे कोङ्गु राजप्रदत्त एक बहुत पुराना ताम्रशासन पाया गया है। यहां पहले पालिगाके सरदार रहते थे। शहरका अन्तस्थित दुर्ग बहुत प्राचीन है। कोई कोई कहते हैं, कि दुर्गका भीतरी भाग १२७० ई०में और बाहरी भाग १५७८ ई०में बनाया गया है। १६३० ई०में महिसुरके राजाने इस दुर्गको जीता था। पीछे १७९२ ई०में टीपूसुलतानके साथ युद्धके समय मरहट्टोंने यह नगर तहस नहस कर डाला; तभीसे यह सामान्य ग्रामके रूपमें परिणत हो गया।

नागमण्डन—कुमारिकाभक्त चम्पकमुनिकुलजात एक राजा, परायनके पुत्र।

नागमण्डलिक (सं० पु०) अहितुण्डक, सांप पकड़ने या रखनेवाला, सँपेरा।

नागमती (सं० त्रि०) १ लताभेद, एक लताका नाम। (Ocimum Sanctum) २ कृष्णतुलसी, काली तुलसी।

नागमय (सं० त्रि०) हस्तिमंयुत, हाथीसे भरा हुआ।

नागमरोड़ (हिं० पु०) कुश्तीका एक पेच। इसमें जोड़को अपनी गर्दनके ऊपरसे या कमर परसे एक हाथसे घसीटते हुए गिराते हैं। यह पेच धोबीपछाड़ हीकी तरहका होता है। फर्क इतना ही है, कि धोबीपछाड़में दोनों हाथोंसे जोड़को पीठ पर घसीटते हुए फेंकते हैं।

नागमल्ल (सं० पु०) नागेषु हस्तिषु मल्लः। ऐरावत।

नागमहासेन—सिंहलके एक विख्यात राजा। महावंशके मतसे इन्होंने २७५ से ३०२ ई० तक शासन किया।

नागमाता (सं० स्त्री०) १ मनःशिला, मैनसिल। २ मनसादेवी। ३ नागोंकी माता, कद्रु। नागमातृ देखो।

नागमातृ (सं० स्त्री०) नागानां हस्तिनां मातेव भूषकत्वात्। १ मनःशिला, मैनसिल। नागानां सर्पाणां माता। २ मनसा देवी। ३ सुरमा। रामायणमें लिखा है, कि जिस समय हनुमान् समुद्र बांध रहे थे, उस समय देवताओंने उनके बलको परीक्षाके लिये नागोंकी माता सुरमाको भेजा था। (रामायण ६।१।१३१) ४ कद्रु। महाभारतमें लिखा है, कि कद्रुके गर्भसे नागोंको उत्पत्ति हुई थी।

नागमार (सं० पु०) नागं मारयतीति मृ-णिच्-अण्। १ केशराज, काला भंगरा, कुकुर भँगरा। (त्रि०) २ हस्तिमारक। ३ सर्पमारक।

नागमुख (सं० पु०) गणेश।

नागयष्टि (सं० स्त्री०) नागाधिष्ठिता यष्टिः। पुष्करिणी आदिमें स्थित काष्ठभेद, लकड़ी या पत्थरका वह खम्भा जो पुष्करिणी या तालाबके बीचो बीच जलमें खड़ा किया जाता है, लाट। तालाब आदि उत्सर्ग करनेमें नागोंके रहनेके लिये तालाब आदिमें काठका स्तम्भ खड़ा किया जाता है। जलाशयोत्सर्गतत्त्वमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—अष्टनागोंके नाम पृथक् पृथक् पत्रोंमें लिख कर उन्हें जलसे भरे एक घड़ेमें डाल देते हैं। पीछे गायत्रीका पाठ करते हुए घड़ेमें स्थित पत्रोंको हिलाते हैं और उनमेंसे एकको बाहर निकाल लेते हैं। उस पत्रमें जिस नागका नाम लिखा रहेगा, वही जलाधिप होगा। बाद उस नागको यथाविधि पूजा करके दूध और खीर नैवेद्य लगानेका विधान है।

बेल्वक, वारुण, पुन्नाग, नागकेशर, वकुल, चम्पक, बिल्व और खदिर इन्हीं सब काठोंको नागयष्टि बनानी चाहिये। ये सब काठ यदि टेढ़े वा पोले हों, तो उन्हें काममें नहीं लाना चाहिए। उस काठमें शूल और चक्रका चिह्न करके जलाशयमें खड़ा कर देना होता है। चक्र बनानेका नियम यह है—लोहा, ताँबा वा पीतल-का चक्र ही प्रशस्त है। इनमेंसे वापी उत्सर्ग करनेमें १२ उंगलीका, पुष्करिणीमें १६ उंगलीका, सरोवरमें २० उंगलीका और सागर उत्सर्ग करनेमें एक हस्थका चक्र होना चाहिये।

जो नाग जलाशयके अधिष्ठाता होंगे, वे ही उस जलाशयकी रक्षा करेंगे। अष्टनागके नाम ये हैं-अनन्त, वासुकि, पद्म, महापद्म, तक्षक, कुलीर, कर्कोट और शङ्ख।

नागर (सं० त्रि०) नगरे भवः अण्। १ नगरसम्बन्धी। २ नगरमें रहनेवाला। (पु०) ३ देवर। ४ नागरङ्ग, नारंगी। (क्ली०) ५ सोंठ। ६ नागरमोथा। ७ मोथा। ८ रतिबन्धभेद। ९ जनपदभेद, एक देशका नाम। १० नगर नामक स्थानमें प्रचलित अक्षरभेद। नगराय हितं अण्। ११ नगरहित, नगरकी भलाई। १२ नगरमें रहनेवाला मनुष्य। १३ चतुर आदमी।

नागर (हिं० पु०) दीवारका टेढ़ापन जो जमीनकी तंगीके कारण होता है।

नागर—१ गुजरातवासी एक श्रेणीके ब्राह्मण। वहां जितनी श्रेणीके ब्राह्मण हैं, उनमेंसे ये ही प्रधान माने जाते हैं। स्कन्दपुराणके नागरखण्डमें इस श्रेणीकी उत्पत्ति और गोत्रादिका विषय विस्तार रूपसे वर्णित है। देवनागर देखो।

नगर वा वड़नगरमें वास होनेके कारण ये लोग नागर नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। परवर्तीकालमें गुजरातके विभिन्न स्थानोंमें रहनेके कारण ये लोग वड़नगर, विशलनगर, पठोद्रा, प्रश्नोरा, किष्णोरा और चित्रोरा आदि स्थानीय नामोंसे प्रसिद्ध हैं तथा विभिन्न शाखाओंके गिने जाते हैं। आज कल बम्बई प्रदेशके सभी प्रधान स्थानोंमें थोड़ा बहुत नागर ब्राह्मण देखे जाते हैं।

इन लोगोंकी उपाधि आचार्य, भट्ट, पाण्ड्या, रावल, ठाकुर, व्यास आदि हैं।

ये लोग देखनेमें सुश्री, सुडौल और मझोले होते हैं। इनके मस्तकका तृतीयांश शिखावेष्टित रहता है। पुरुषकी अपेक्षा स्त्रियां अधिक सुश्री और रूपवती होती हैं। इनके हाथ पैर छोटे कदके और नाक लम्बी होती हैं।

नागर ब्राह्मणोंमें अधिकांश निरामिषाशी हैं। बहुतेरे ऐसे हैं, जो तेलका भी व्यवहार नहीं करते।

इन लोगोंमें अधिकांश शैव हैं, वैष्णवकी संख्या थोड़ी है। बहुतसे रुद्राक्षमाला धारण करते हैं। स्त्रियां भी कुर्त्ते और चादरका व्यवहार करती हैं, लेकिन वे अपने बालोंको फलोंसे नहीं सजाती और न कोई अलङ्कार ही पहनती हैं।

इन लोगोंकी अवस्था बहुत अच्छी है। जिनकी अवस्था निहायत खराब है, वे भी यजमान गुजराती बनियोंके सिवा दूसरेके यहां भीख नहीं मांगते।

उनमेंसे कुछ शाङ्खायन शाखाके ऋग्वेदी हैं और कुछ माध्यन्दिन वाजसनेय शाखाके यजुर्वेदी; अधिकांश ही स्मार्त्त हैं, और शङ्कराचार्यको परमगुरु मानते हैं। इन लोगोंमें जिनकी अवस्था अच्छी है, वे सोलह प्रकार-के संस्कारोंका पालन करते हैं और जिनकी अवस्था अच्छी नहीं, वे उपनयन, विवाह और और्ध्वदैहिक ये ही तीन प्रकारके संस्कार करते हैं।

सन्तान भूमिष्ठ होनेके पाँचवें दिन षष्ठी-पूजा छोड़ कर और सभी कार्य उच्च श्रेणीके हिन्दूकी तरह करते हैं। बारहवें दिनमें ५ सधवा स्त्रियां आ कर शिशुको झूले पर झुलाती हैं। उसी दिन बच्चेका नाम रखा जाता है। ये सब स्त्रियां हल्दी और एक दूसरेकी मांग पर सिन्दूर लगाती हैं। उपनयनादिमें देशस्थ ब्राह्मणसे अधिक फर्क नहीं पड़ता, केवल वेदीके बदले चौकोन भूमिके चारों बगल कलस रखते हैं। इस समय ये स्वश्रेणी ब्राह्मणोंको भोज देते हैं।

इनमें विधवा-विवाह प्रचलित नहीं है। विधवा सिरको मुंड़वा लेती हैं। ये मङ्गलसूत्र वा किसी प्रकार-का अलङ्कार नहीं पहनतीं। उन्हें ब्रह्मचर्य अव-लम्बन करना होता है।

भावनगर-राजाके प्रधान मन्त्री प्रातःस्मरणीय गौरी-शङ्कर इसी नागर-वंशमें उत्पन्न हुए थे।

२ मैथिल ब्राह्मणोंकी एक श्रेणी।

३ गुजराती बनियोंकी एक श्रेणी।

नागर—१ उत्तर बङ्गालमें प्रवाहित एक नदी। यह पूर्णियासे दिनाजपुर जिलेमें प्रवेश कर प्रायः ८० मील दक्षिणकी ओर आ करके महानन्दामें गिरती है। वर्षाकालमें बोझसे लदी हुई बड़ी बड़ी नावें इसमें जाती आती हैं। उत्तरांशमें इस नदीका गर्भ पत्थरमय है, किन्तु दक्षिणांशमें बालुकामय। इसके किनारेकी अधिकांश जमीन आबाद नहीं होती।

२ उत्तर बङ्गालमें प्रवाहित एक नदी। यह बगुड़ा जिलेके उत्तरसे निकल कर राजशाही जिलेमें प्रवेश करती है। पीछे यहांसे २० मील जा कर गुड़ नामक आत्रेयी-यमुनासङ्गममें मिल गई है।

३ जब्बलपुर और मण्डला जिलेके मध्य विस्तृत गिरिमाला। नर्मदाकी उपत्यका इसके नीचे अवस्थित है।

नागर—सन्थाल परगने और भागलपुरवासी एक श्रेणीके कृषिजीवी। ये लोग पांच शाखाओंमें विभक्त हैं—जेथोत्, पुलोन्स, नागवंशी, कथोतिया और भटनागर। इन सबोंका केवल एक गोत्र काश्यप है। प्रथम दो शाखा छोड़ कर एक दूसरेमें आदान प्रदान हुआ करता है। बहुविवाह उतना प्रचलित नहीं है। पर हां, प्रथमा स्त्रीके वन्ध्या होने पर अन्य स्त्री ग्रहण की जा सकती है। दूसरे दूसरे नीच हिन्दुओंके जैसा इनके विवाहादि होते हैं। सिन्दूरदानही विवाहका प्रधान अङ्ग है। विधवा सगाई कर सकती है।

इनके पुरोहित ब्राह्मण होते हैं। समाजमें ये बहुत हेय समझे जाते हैं, पर दुसाधकी अपेक्षा ये लोग कुछ श्रेष्ठ हैं।

ब्राह्मण अथवा जलाचरणीय किसी दूसरी जातिके लोग इनके हाथका जल नहीं पीते और न किसी काममें हो लाते हैं। इनमेंसे बहुत कुछ ऐसे हैं जिनकी अवस्था अच्छी है। अधिकांश मजदूरी करके अपना गुजारा करते हैं। सारे बङ्गालमें प्रायः चालीस हजार नागरोंका वास है।

नागर—राजपूतानेके जयपुरके अधीन उनियारा राज्यके अन्तर्गत ध्वंसावशिष्ट एक प्राचीन नगर। यह उनियारासे ७२ कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है।

प्रवाद है, कि मान्धाताके पुत्र मुचुकुन्दने यह नगर बसाया है। प्रत्नतत्त्वान्वेषी कार्लाइल साहब यहांसे प्रायः ६००० प्राचीन मुद्राएं संग्रह कर गये हैं, उनमें प्रायः ४० प्राचीन राजाओंके नाम मिले हैं। जो सब मुद्राएं बहुत प्राचीन कालकी हैं वे छेनीसे काटी हुई हैं और उनके बादके प्राचीन मुद्राओं पर बोधिवृक्ष अङ्कित हैं। इनमेंसे किसी किसी मुद्राके ऊपर 'जय मालवानां' ऐसा लिखा हुआ है। इसके सिवा क्षत्रपराज नहपानकी मुद्रा भी पाई गई है। पुराविदोंका अनुमान है, कि यह नगरी ईसा-जन्मके बहुत पहले स्थापित हुई थी। बाद किसी नैसर्गिक आग्नेय उत्पातसे यह ४थी वा ५वीं शताब्दीमें विध्वस्त हो कर भूगर्भशायी हो गई है। अभी जहां कर्कोटगिरिमाला विस्तृत है, वहांसे प्रायः ४१५ वर्गमील पूर्वमें उक्त प्राचीन नगरी अवस्थित थी। कर्कोटगिरिके पास बसे होनेके कारण कोई कोई इसे कर्कोटनगर भी कहते थे।

प्रवाद है, कि यहां कर्कोट-नागवंशीय पराक्रान्त नागराजगण बहुत काल तक राज्य कर गए हैं। कोई कोई अनुमान करते हैं, कि ये बौद्ध थे, क्योंकि यहांसे जितनी मुद्राएं पाई गई हैं, उनमें बोधितरु, बोधिचक्र और बोधिदण्ड अङ्कित हैं।

वर्त्तमान शहर बहुत दिनोंका नहीं है। कोई कोई कहते हैं, कि प्राचीन नगरके पश्चिममें इसीका उपकरण ले कर वर्त्तमान शहर बनाया गया है।

वर्त्तमान शहरमें कई एक प्राचीन मन्दिर हैं। यहांसे जो प्राचीनतम शिलालिपि आविष्कृत हुई है, उसमें १०८० सम्वत् अङ्कित है। प्राचीन नगरकी ओर भी छः मन्दिरोंकी दीवार देखनेमें आती हैं। यहांका मुचुकुन्द-मन्दिर स्थानीय लोगोंके निकट बहुत पवित्र माना जाता है। यहांसे १३२७ सम्वत्में उत्कीर्ण शिलालिपि पाई गई है।

करीब ७५ वर्ष हुए भीषण प्लेगसे वर्त्तमान शहर प्रायः जनशून्य हो गया है। अभी शहरकी अवस्था और आबहवा बहुत शोचनीय है। (विस्तारित विवरण Cunnigham's Archæological Survey Reports, Vol. VI, p. 162-195 देखो।)

नागर—हिन्दीके एक कवि। इनका जन्म सं० १६४२में हुआ था। इनके बनाए हुए कुछ कवित्त हजारामें हैं। इनकी कविता अच्छी होती थी; उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं—

"आधी रात चान्दनी छाय रही।
अति सुकुमारी लड़ैती प्यारी प्रीतम उर लपटाय रही॥
मनसों मन नैनसों नैना तनसों तन उरझाय रही।
नागरिया नागर दोउ राजत लाजत मृदु मुसकाय रही॥"

नागरक (सं० त्रि०) नगरे भवः कुत्सितो प्रवीणो वा वुञ्। १ चौर, चोर। २ शिल्पी, कारीगर। नगर शब्दका अर्थ जहां कुत्सित और प्रवीण होता है वहां वुञ् प्रत्यय लगता है। ३ रतिबन्धविशेष। ४ नागरशब्दार्थ।

नागरकोइल—त्रिवाङ्कुरराज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० ८° १२´ उ० और देशा० ७७° २८´ ४४´´ पू०के मध्य अवस्थित है। यह स्थान त्रिवाङ्कुरकी प्राचीन राजधानी और वर्त्तमान सदर कोटानगरका उपकण्ठ माना जाता है। यहां विद्यालय और मुद्रायन्त्रालय है। त्रिवाङ्कुरमें केवल इसी स्थानसे संवादपत्र प्रकाशित होता है। जनसंख्या प्रायः ११११८७ है, जिसमें हिन्दूकी संख्या ही सबसे अधिक है।

नागरकोमति—तैलङ्गकी कोमतिजातिकी एक श्रेणी। कोमति देखो।

नागरक्त (सं० क्ली०) नागकृतं रक्तम्। १ सिन्दूर। २ सर्प या हाथीका रक्त।

नागरखण्ड (सं० क्ली०) नागरं नाम खण्डम्। स्कन्दपुराणके अन्तर्गत स्वनामख्यात खण्डभेद। इस नागरखण्डके प्रतिपाद्य विषय सभी नारदीयपुराणोंमें इस प्रकार लिखे हैं—

"अतःपरं नागराह्वः खण्डः षष्ठोऽभिधीयते॥" (नारदपु०)

पहले इसमें लिङ्गोत्पत्ति है, पीछे हरिश्चन्द्रोपाख्यान, विश्वामित्रमाहात्म्य, त्रिशङ्कुका स्वर्गगमन, तारकेश्वरका माहात्म्य, वृत्रासुरवध, नागबिल, शङ्खतीर्थ, अचलेश्वर-वर्णन, चमत्कारपुरवृत्तान्त, गयशीर्ष, बालशाख्य, बालमण्ड, मृगाह्वय, विष्णुपद, गोकर्ण, युगरूपसमाप्ति, सिद्धेश्वरवर्णन, नागस, सप्तार्षेय-विवरण, अगस्त्य-विवरण, भ्रूणगर्त्त, नलेश, शार्मिष्ठ, सोमनाथ, जमदग्नि-वधाख्यान, निःक्षत्रियकथन, रामह्रद, नागपुर, जयलिङ्ग, यज्ञभूमि, मुण्डीरादि तीन कालरूपाख्य, सतीपरिणय, बालखिल्य-विवरण, लक्ष्मीशाप, सप्तविंश सोमप्रासाद, अम्बावृद्ध, पादुकाख्य, आग्नेय, ब्रह्मकुण्डक, गोमुख, लोहयष्ट्याख्य, अजापालेश्वरी, शानैश्वर, राजवापी, रामेश, कुशेशाख्य और लवेशाख्य आदि लिङ्गविवरण, अष्टषष्टि समाख्यान, दमयन्तीका खीजातक, रेवती, भद्दिकातीर्थोत्पत्ति, क्षेमङ्करी, केदार, शुक्लतीर्थ, मुखारक-तीर्थ, सत्यसन्धेश्वराख्यान, कर्णोत्पलाकथा, जटेश्वर याज्ञवल्क्य, गौरी, गाणेश, वास्तुपदाख्यान, अजागृह-कथा, सौभाग्यअन्धुक, शूलेश और धर्मराजकथा, मिष्टान्नदेश्वराख्यान, गाणपत्यत्रय, जाबालिचरित, मकरेशकथा, कालेश्वरी-अन्धकाख्यान, अप्सरःकुण्ड, पुष्पादित्य, रोहिताश्व, नागरोत्पत्तिकीर्त्तन, भृगुचरित, विश्वामित्रकथा, सारस्वत, पिप्पलाद और कंसारीशवर्णन, ब्रह्माके यज्ञचरित, सावित्री-आख्यान, रैवत, भर्तृयज्ञाख्य, प्रधानतीर्थ दर्शन, कौरव, हाटकेश्वर, प्रभासक्षेत्र, पुष्कर, नैमिषारण्य, धर्मारण्य आदिका विवरण, वाराणसी, द्वारका, अवन्तीवर्णन, वृन्दावन, खाण्डव और द्वैतवन-वर्णन, कल्प, शाल और नन्द ये तीन ग्राम, असि, शुक्ल और पिलसंग ये तीन तीर्थ, श्री, अर्बुद और रैवत ये तीन पर्वत, गङ्गा, नर्मदा और सरस्वती इन तीन नदियोंका विवरण, शङ्खतीर्थ, बालमण्डन, हाटकेश, क्षेत्रफल-प्रद, विवरण, शाम्बादित्य, श्राद्धकल्प, युधिष्ठिर और अन्धकविवरण, जलशायोत्सर्ग, चातुर्मास्य, अशून्यशयन-व्रत, मङ्कलेश, शिवरात्रि, तुलापुरुष, पृथ्वीदान, वामकेश, कपालमोचनेश्वर, पापपिण्ड, सात्रलिङ्ग और युगमानादि कीर्त्तन, दानमाहात्म्यकथन और द्वादशादित्यकीर्त्तन। नागर ब्राह्मणोंका विवरण इसमें विस्ताररूपसे लिखा गया है, इसीसे इसका नाम नागरखण्ड पड़ा है।

नागरघन (सं० पु०) नागर एव घनः मुस्ता। नागर मुस्ता, नागरमोथा।

नागरङ्ग (सं० पु०) नागस्य नागसम्भूतस्य सिन्दूरस्येव रङ्गोयस्य। वृक्षविशेष, नारंगीका पेड़। (Citrus Aurantium) पर्याय-नारङ्ग, नार्यङ्ग, नागर, ऐरावत, नागरक, वक्राधिवासी, सुरङ्ग, त्वक्गन्ध, नारङ्गी, नारङ्गक, नादेयी, गोरक्ष। इसमें मोठे, सुगन्धित और रसीले फल लगते

है। इसका पेड़ गरम देशोंमें होता है। एशियाके अतिरिक्त यूरोपके दक्षिण भाग, अफ्रिकाके उत्तर भाग और अमेरिकाके कई भागोंमें इसके पेड़ बगीचोंमें लगाए जाते हैं और फल चारों ओर भेजे जाते हैं। नारङ्गीका छिलका मुलायम और पोलापन लिये हुए लाल रंगका होता है और गूदेसे अधिक लगा न रहनेके कारण बहुत सहजमें अलग हो जाता है। भीतर पतली झिल्लीसे मढ़ी हुई फांकें होती हैं जिनमें रससे भरे हुए गूदेके रवे होते हैं। भारतमें जो मीठी नारंगियां होती हैं वे और कई फलोंके समान अधिकतर आसाम हो कर चीनसे आई हैं, ऐसा बहुतसे लोग कहा करते हैं। भारतवर्षमें नारंगियोंके लिये सिलहट, नागपुर, सिक्किम, नेपाल, गढ़वाल, कमाऊं, दिल्ली, पूना और कुर्ग प्रधान स्थान है। नारङ्गीके प्रधान चार भेद कहे जाते हैं—सन्तरा, कंवला, माल्टा और चीनी। इनमें सन्तरा सबसे उत्तम जातिका है। सन्तरे भी देश भेदसे कई प्रकारके होते हैं।

चीन और भारतवर्षके प्राचीन ग्रन्थोंमें नारंगीका उल्लेख मिलता है। संस्कृतमें इसे नागरङ्ग कहते हैं, नागका अर्थ है सिन्दूर। छिलकेके लाल रंग होनेके कारण यह नाम दिया गया है। सुश्रुतमें भी नागरङ्गका नाम आया है। इसके खट्टे फलका गुण—अम्ल, अत्यन्त उष्ण, दुर्जर, वातनाशक, रेचक, हृद्य, पचनेमें गुरु, कुछ मधुर और सुगन्धित है। मीठे फलका गुण—उष्ण, गुरु, बलकारक, अम्ल और रुचिकर, आम, क्रिमि, शूल, श्रम और वातनाशक।

नागरता (सं॰ स्त्री॰) १ नागरिकता, शहरातीपन। २ नगरका रीतिव्यवहार, सभ्यता।

नागरदोल—दोलयन्त्रभेद, एक प्रकारका झूला।

नागरबेल (हिं॰ स्त्री॰) ताम्बूल, पानकी बेल, पान।

नागरमुस्ता (सं॰ स्त्री॰) नागर इव मुस्ता। नागरमोथा। (Cyperus pertenuis) पर्याय—नागरोत्था, नागरादिघनसंज्ञका, चक्राङ्का, नादेयी, चूड़ाला, पिण्डमुस्ता, शिशिरा, वृषध्वाङ्क्षी, कच्छरुहा, चारुकेसरा, उच्चटा, पूर्वकोष्ठसंज्ञा, कपालिनी। गुण—तिक्त, कटु, कषाय, शीतल और कफ, पित्त, ज्वर, अतीसार, अरुचि, तृष्णा, दाह और भ्रमनाशक। (राजनि॰)

इसमें इधर उधर फैली या निकली हुई टहनियां नहीं होतीं, जड़के पास चारों ओर सीधी लम्बी पत्तियां निकलती हैं जो शर या मूंजकी पत्तियोंकी तरह नोकदार और बहुत कम चौड़ाईकी होती हैं। पत्तियोंके ठीक बीचमें एक सीधी सींक निकलती है जिसके सिरे पर फूलोंकी ठोंस मंजरी होती है। इस तृणकी ऊंचाई हाथ भर होती और यह प्रायः तालोंके किनारे मिलता है। इसकी जड़ सूतमें फंसी हुई गांठोंके रूपकी और सुगन्धित होती है। इसकी जड़ मसाले और औषधके काममें आती है।

नागरमोथा (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका तृण या घास। नागरमुस्ता देखो।

नागरबस्ति—तिरहुत जिलेमें छोटी गण्डकके किनारे अवस्थित एक छोटा नगर। यह अक्षा॰ २४° ५२' उ॰ और देशा॰ ८५° ५२' पू॰के मध्य फैला हुआ है। यहां एक थाना और विद्यालय है जो दरभङ्गा नरेशके खर्चसे चलता है।

नागरवाल—गौड़ ब्राह्मणोंका एक कुल नाम। इसे कुछ लोग सासन, कुछ अल्ल और कुछ वंश कहते हैं। गौड़ोंके १४४४ ग्रामोंमेंसे नागोर भी एक नगर था। वहांके गौड़ नागोरवाल कहाते कहाते नागरवाल कहलाने लग गये हैं। यह नागोरनगर आजकल जोधपुर राज्यमें रेलवे ष्टेशन और [illegible] परगना है।

नागरस्त्री (सं॰ स्त्री॰) नागराणां स्त्री ६-तत्। नागरोंकी पत्नी।

नागराज (सं॰ पु॰) नागानां राजा ६-तत् टच् समासान्तः। १ शेषनाग। २ सर्पोंमें बड़ा सर्प। ३ हाथियोंमें बड़ा हाथी। ४ ऐरावत। ५ पञ्चमार या नाराच छन्दका दूसरा नाम। ६ छन्दोग्रन्थकारक पिङ्गलनाग।

नागराज—१ भावशतक, शृङ्गारशतक आदि ग्रन्थोंके प्रणेता। ये टाकवंशमें उत्पन्न हुए थे। इनके पिताका नाम आसप और पितामहका नाम विद्याधर था। २ पद्मावतीभक्त सोमप मुनिके वंशज एक राजपुत्रका नाम। इनके पिताका नाम श्रीवदन था।

नागराजकेशव—काव्यप्रकाशकी पदवृत्ति नामक टीकाकार।

नागराजपल्ली—कृष्णा जिलेके नरसरवापेटसे ८ कोस दक्षिण-में अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। यहां नाग, विष्णु और हनुमान्‌का मन्दिर है। उन सब मन्दिरोंमें उत्कीर्ण प्राचीन कालकी शिलालिपियां भी देखी जाती हैं।

नागरादिक्काथ (सं० पु०) औषधभेद, एक प्रकारकी दवा। प्रस्तुत प्रणाली—सोंठ, खसखसकी जड़, बेलका छिलका, मोथा, धनिया, मोचरस और वाला इनका समान समान भाग ले कर काढ़ा बनाते हैं। इसके सेवन करनेसे सभी प्रकारका ज्वर और दारुण अतीसार नष्ट होता है।

नागराद्यचूर्ण (सं० क्लो०) चूर्णौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—सोंठ, अतीस, मोथा, धवका फूल, रसाञ्जन, इन्द्रजौ, अकवन, बेलसोंठ, कुटकी इनका बराबर बराबर भाग चूर्ण करते हैं। इसका अनुपान मधु और चावलका जल है। ६ वा ८ गुण जलमें चावलको रातमें भिगो रखना चाहिये। पीछे उसी जलके साथ सेवन करनेसे रक्तयुक्त पैत्तिक-ग्रहणीरोग जाता रहता है।

नागराद्यमोदक (सं० पु०) मोदक औषधभेद।

नागराह्व (सं० क्लो०) नागरेति आह्वा यस्य। शुण्ठी, सोंठ।

नागरिक (सं० त्रि०) १ नगर सम्बन्धी, नगरका। २ नगरमें रहनेवाला, शहराती। ३ चतुर, सभ्य। (पु०) नगर-निवासी, शहरका रहनेवाला आदमी।

नागरी (सं० स्त्री०) नगरे भवा, नागर-अण्-ङीप्। १ स्नुहीवृक्ष, थूहर। २ विदग्धनारी, चतुर स्त्री, प्रवीण स्त्री। ३ नागरपत्नी, नागर ब्राह्मणकी स्त्री। ४ अक्षर-भेद, भारतवर्षकी वह प्राचीन लिपि जिसमें संस्कृत और हिन्दी लिखी जाती है। देवनागरी देखो। ५ पत्थर-की मोटाईकी एक बड़ी माप। ६ पत्थरकी बहुत मोटी पटिया, बड़ा भोट। (त्रि०) ७ नगरभव, जो शहरमें उत्पन्न हो।

नागरी—१ उत्तर आर्कट जिलेके मध्यवर्ती एक गिरि-माला। यह गिरिमाला पश्चिमघाट पर्वतके दक्षिण-पूर्वमें फैली हुई है। यहां पीले, सफेद आदि नाना वर्णोंके पत्थर पाये जाते हैं। भूतत्त्वविदोंने स्थिर किया है, कि इसकी गठन उत्तमाशा अन्तरीपके पर्वतकी तरह है।

२ उक्त गिरिमालाका प्रधान शृङ्ग। यह अक्षा० १३° २२' ५३" उ० और देशा० ७९° ३९' २२" पू०के मध्य अवस्थित है। यह समुद्रपृष्ठसे २८२४ फुट ऊंचा है। समुद्रकूलसे ५० मील दूरमें होनेके कारण जब आकाशमें बादल नहीं रहता, तब वहांसे यह साफ साफ देखनेमें आता है। इसके नीचे नागरी ग्राम अवस्थित है। उसके पास ही मन्द्राज रेलवेकी नागरी नामक एक ष्टेशन है। उक्त ग्राममें धानकी फसल अच्छी लगती है।

३ राजपूतानेके चित्तौर नगरसे ५ कोस उत्तरमें अवस्थित एक क्षुद्र नगर और अत्यन्त प्राचीन शहरका ध्वंसावशेष। प्रवाद है, कि राजा हरिचाँदने यह नगर बसाया था। इसका प्राचीन नाम है ताम्रवती नगरी। यहांसे अशोकके समयकी ब्राह्मी अक्षरमें उत्कीर्ण अनेक मुद्राएं आविष्कृत हुई हैं। इसके सिवा यहां ढाई हजार वर्षकी प्राचीन हिन्दुओंकी छेनीसे कटी हुई मुद्राएं और बौद्धस्तूपके भग्नावशेष पाये जाते हैं। कितने प्राचीन मन्दिरोंके भग्नावशेष और भास्करकर्म उक्त नगरका परिचय देते हैं। जब यह स्थान गहलोतोंके हाथ आया, तब यहांकी जितनी प्राचीन देखने योग्य वस्तुएं थीं, सभी चित्तौर लाई गईं। (Cunningham's Archæological Survey Reports, Vol. VI. p. 196-226.)

नागरीकन्या (सं० क्लो०) वन्ध्या ककोंटी, बांझ ककड़ीकी लता जो फलती फूलती कुछ भी न हो।

नागरीट (सं० पु०) नागरीमेटति इट गतौ क। १ लम्पट, व्यभिचारी। २ जार, दोगला। ३ नागरोक्त मङ्गलध्वनि।

नागरीदास—एक हिन्दी-कवि। आप वृन्दावनके निवासी तथा स्वामी पीताम्बरदासजीके शिष्य थे। आपने सम्वत् १८२०में स्वामीजीके पदनकी टीका रची है। इसमें स्वामी हरिदास, विहारिनिदास, विट्ठलविपुल, सरसदास, नरहरिदास तथा स्वयं आपके पदोंकी टीका विस्तृतरूपसे की गई है। यह फूलस कैप सांचीके ३२४ पृष्ठोंमें है। इनकी कविता-गरिमा साधारण श्रेणीकी कही जा सकती है। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं,—

"माई इन आंखयन लगन लगाई।
पैके ही आय आप ही उरझी फिर मोको उरझाई॥
बिन देखे मुखकमल कन्होनी मोपै रही न जाई।
नागरीदास वई विष पावक कैसे रहत छुपाई॥"

नागरक (सं॰ पु॰) नागं रवेतं सादृश्येन प्राप्नोतीति ऋ गतौ बाहु॰ क प्रत्ययेन साधुः । नागरङ्ग, नारङ्गी ।

नागरूपप्रभम् (सं॰ क्लो॰) हरिताल ।

नागरेणु (सं॰ पु॰) नागस्य सीसकस्य रेणुः । सीसक-सम्भव, सिन्दूर ।

नागरेयक (सं॰ त्रि॰) नगरे भवः नगरेस्याय वा नगर-ढकञ् । नगर सम्बन्धी, नगरका ।

नागरोत्था (सं॰ स्त्री॰) नागरादुत्तिष्ठति उद्-स्था-क । नागरमुस्ता, नागरमोथा ।

नागर्य (सं॰ क्लो॰) नागरस्य भावः यक् । १ बुद्धिमानी, चतुराई । २ नागरिकता, शहरातीपन ।

नागल (हिं॰ पु॰) १ हल । २ जूएकी रस्सी जिससे बैल जोड़े जाते हैं ।

नागलक्षण (सं॰ क्लो॰) नागानां सर्पाणां लक्षणं । सर्पोंके भेदादि ज्ञापक चिह्नभेद ।

नागलक्षणका विषय अग्निपुराणमें इस प्रकार लिखा है—नाग, उसके शरीरादि, भावादि, दंशस्थान, मर्म सूतक और दृष्ट चेष्टा ये सब नागोंके प्रधान लक्षण हैं। शेष, वासुकि, तक्षक, कर्कोट, अब्ज, महाम्बुज, शङ्खपाल और कुलिक ये नौ श्रेष्ठ नाग हैं। इनमेंसे प्रत्येक दोके क्रमशः हजार, आठ सौ, पांच सौ और ३० मस्तक हैं तथा प्रत्येक दो दो करके यथाक्रम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रजाति हैं। इनके पांच सौ वंश हैं और पीछे उनसे असंख्य हो गये हैं। फणी, मण्डली और राजिल ये क्रमशः वात, पित्त और कफात्मक हैं। इनमेंसे अनुक्त कालजात दोषमिश्र नागगण दर्वीकर नामसे प्रसिद्ध हैं।

नागोंके चक्र, लाङ्गल, छत्र और स्वस्तिक चिह्न होते हैं। गोनस नागगण दीर्घ और मन्दगामी होते तथा नाना प्रकारके मण्डलाकारमें रहते हैं। राजिल नाग-गण स्निग्ध, ऊर्ध्व और वक्रभावसे नाना रंगोंमें चित्रित होते हैं। व्यन्तर नागगण मिश्र चिह्नविशिष्ट होते हैं तथा वे भू, वर्ष, अग्नि और वायुके भेदसे चार प्रकारके माने गये हैं। इनके फिर २६ भेद हैं। गोनसगण १६ प्रकारके, राजिल १३ प्रकारके और व्यन्तरगण २१ प्रकारके हैं। जो सब सर्प अनुक्तकालमें उत्पन्न होते हैं, उन्हें व्यन्तर कहते हैं।

नागिनियोंके आषाढ़ादि तीन मासोंमें गर्भ रहता है। चार मास तक गर्भ धारण करके वे २४० डिम्ब प्रसव करती हैं उनमेंसे वे पुं और नपुंसक बच्चोंको निगल जाती हैं, केवल नागकन्या जीवित रहती हैं। कृष्ण-सर्पोंके ७ दिनमें आंख फूटती है। एक मासके बाद हो वे बाहर निकलने लगते हैं। १२ दिनमें उन्हें ज्ञान होता है, सूर्यके दर्शन करनेसे हो उनके दांत निकलते हैं। इनमेंसे किसीके ३२ दिनमें और किसीके २२ दिनमें चार बड़े दांत होते हैं। कराली, मकरी, कालरात्री और यमपूतिका नामक सर्पोंके दांतमें विष होता है। ये सब बाईं और दाहिनी राह हो कर चलते हैं। ६ मासके बाद केंचुल निकलती है। नागकी परमायु १२० वर्ष है। दिन और रातको सप्तनाग सूर्यादि वाराधिपति होते हैं। इनमेंसे छः तो प्रतिवारके और सभी कुलिक सन्ध्या समयके अधिपति होते हैं। (अग्निपु॰ २०४ अ॰)

पूर्वोक्त नागलक्षण—दंशन और उसकी चिकित्सा आदिका विस्तृत विवरण अग्निपुराणके २०४, २०५, २०६, २०७, अध्यायमें लिखा है,—

जितने नाग हैं, वे सभी अस्सी प्रकारके हैं। उनमेंसे दर्वीकर २६ प्रकारके, मण्डली २२, राजिमन्त १०, वैकरञ्ज ३ और निर्विष १२ प्रकारके हैं। वैकरञ्ज जातिसे सात प्रकारकी चित्राकी उत्पत्ति हुई है। वे मण्डली और राजिमन्त दोनों गुणविशिष्ट हैं।

जिन सब सर्पोंके मस्तक पर रथाङ्ग, लाङ्गल, छत्र, स्वस्तिक वा अङ्कुशके चिह्न होते हैं, उन्हें दर्वीकर कहते हैं। वे फणाविशिष्ट और शीघ्रगामी होते हैं। जो विविध प्रकारके मण्डलाकारोंमें चित्रित, स्थूल, मन्द-गामी और दीप्तसूर्यके समान आभाविशिष्ट होते हैं, उन्हें मण्डली कहते हैं। जिन सब सर्पोंके शरीरमें चमक-दमक रहती तथा जिनके ऊपर नीचे तमाम भिन्न भिन्न वर्णोंसे चित्रित रहते हैं, वे राजिमन्त कहलाते हैं। जिनके शरीरसे अच्छी गन्ध निकलती है तथा जो सोनेके समान चमकते हैं, वे ब्राह्मण जातिके ; जो स्निग्धवर्णविशिष्ट और जल्दी कुपित हो जाते हैं, वे क्षत्रिय जातिके ; जिनका शरीर कृष्णवर्ण, लोहित, धूम्र वा कबूतरके जैसा तथा वज्रकी तरह मजबूत होता है, वे वैश्य

जातिके और जो मनुष्य, इस्ती अथवा अन्य किसी प्रकार-के वर्ण विशिष्ट होते तथा जिनकी केंचुल बहुत कड़ी होती, वे शूद्रजातिके माने जाते हैं।

दर्वीकरके काटनेसे वायु, मण्डलीके काटनेसे पित्त और राजिमन्तके काटनेसे श्लेष्म कुपित हो जाता है। जो सब नाग असवर्णके समागमसे उत्पन्न होते हैं, उनके विषसे दो दोष कुपित हो जाते हैं। उन दोषोंके लक्षणका विचार कर नागोंके मातापिताको जाति जानी जाती है। रातके शेष भागमें चित्राजाति और अवशिष्ट भागमें मण्डलीजाति तथा दिवाभागमें दर्वीकर जाति इधर उधर विचरण करती है। दर्वीकरके तरुण, मण्डलीके वृद्ध और राजिमन्तके मध्यवयस्क होने पर भी यदि वे काटें, तो मृत्यु अवश्य होती है।

यदि सर्पादि नकुल द्वारा आकुलित हों अथवा जल वा आघातसे अभिहत हों तथा कृश, बालक और वृद्धसे डरते हों, तो जानना चाहिये कि उन सर्पोंके बहुत कम विष है।

जिस प्रकार वीर्य समूचे शरीरमें फैला हुआ है, उसी प्रकार विष भी सर्पोंके शरीरमें व्याप्त है। जब कभी वे गुस्सा करते हैं, तब उनके दाँतोंसे विष झड़ने लगता है। जब तक वे अपना फन उठा कर नहीं काटते हैं, तब तक उनका विष भीतरसे नहीं निकलता।

सुश्रुतमें कल्पस्थानके ३, ४ और ५ अध्यायमें नाग-लक्षण, दंशन और उसकी चिकित्सा आदिका विषय विस्ताररूपसे वर्णित है। सर्प देखो।

नागलता (सं॰ स्त्री॰) नागः सर्पस्तद्वत् लता। नाग-वेलो लता, पानकी लता।

नागलपल्ली—एक प्राचीन ग्राम। यह इलोरासे २१ मील उत्तरमें अवस्थित है। इसके उत्तर-पूर्व अनेक निम्न गिरिश्रेणी नजर आती हैं। इन सब पहाड़ोंके पश्चिम बगलमें एक उपत्यका है, जहां बहुतसे गड्ढे देखनेमें आते हैं। उन सब गड्ढोंमें देवमन्दिर प्रतिष्ठित हैं।

नागलापुर—मन्द्राजके चेङ्गलपट्ट नामक जिलेके मध्यवर्त्ती एक क्षुद्र गिरिश्रेणी। यह अक्षा॰ १३° २४′ से १३° २७′ ४०″ उ॰ और देशा॰ ७८° ४८′ से ७८° ५१′ ५०″ पू॰के मध्य अवस्थित है। यह उत्तरमें नागलापुर-गिरि और पश्चिममें नागरी-गिरिपुञ्जके साथ संयुक्त है। यह पहाड़ साधारणतः १८०० फुट ऊंचा है और इसकी सबसे बड़ी चोटी २५०० फुटकी है। इस पहाड़के ऊपर तीन गिरिपथ हैं।

नागलुति—नन्दिकटकुवसे ५ मील दक्षिणमें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। यहां दो मन्दिर भग्नावस्थामें पड़े हैं उनमेंसे मल्लिना नामक एक मन्दिरमें १५४७ ई॰की खोदी हुई शिलालिपि है। उस शिलालिपिमें विजय नगरके राजा सदाशिवके दानका विषय लिखा है।

नागलोक (सं॰ पु॰) नागानां लोक ६-तत्। नागाधिष्ठित लोक, पाताल।

पाताललोकमें नागगण रहते हैं, ब्रह्माने उन्हें यहां रहने कहा था। एक एक पाताल दश हजार योजन विस्तृत है। पाताल सात हैं, अतल, वितल, नितल, गभस्तिमत्, महातल, श्रेष्ठ सुतल और सातवां पाताल। ये सात पाताल अच्छी अच्छी अट्टालिकाओंसे सुशोभित हैं। यहांकी भूमि सफेद, काली, लाल, पीली, शर्करा, शैली और काञ्चनी होती है। यहां दानव, दैत्य, यक्ष और महानाग सभी प्रकारकी जातियोंका वास है। नारदने एक बार नागोंकी आवासभूमिका परिभ्रमण करके स्वर्गलोकमें जा कर कहा था, कि पाताल स्वर्गलोकसे भी रमणीय है। (विष्णुपु॰ २।५ अ॰)

नागवंश (सं॰ पु॰) १ नागोंकी कुल परम्परा। २ शक जातिकी एक शाखा। पाश्चात्य पण्डितोंके मतानुसार आर्य जातिके भारतवर्ष पर अपनी गोटी जमानेके पहले इस देशमें नागवंशके राजा शासन करते थे। इस वंशने भारतवर्षके विभिन्न स्थानोंका तथा सिंहलका शासन किया था। इसके विषयमें अनेक प्रमाण भी मिलते हैं। ब्रह्माण्डादि पुराणोंमें लिखा है, कि नाग-वंशीय सात राजा मथुरापुरीका भोग करेंगे, पीछे गुप्त-राजगण राजा होंगे। नवनागकी जितनी मुद्राएं पाई गई हैं, उन पर बृहस्पतिनाग, देवनाग, गणपतिनाग आदि नाम खोदे हुए हैं। इससे साफ साफ मालूम होता है, कि नागवंशीय राजगण पहली और दूसरी शताब्दीमें राज्य करते थे। (Coins of the Nine Nagas, in Asiatic Society of Bengal, Pt. 1,

of 1864)। इस नवनागकी राजधानी कहां थी, इस विषयमें मतभेद देखा जाता है सही, किन्तु बहुत तर्क वितर्कके बाद यह स्थिर हुआ कि नरवरमें उनकी राजधानी थी। विष्णुपुराणमें नरवर पद्मावती नामसे प्रसिद्ध है। उक्त नागवंशधरोंने कान्तिपुरी और मथुरामें विजयपताका उड़ाई थी। भी जो सब स्थान भरतपुर, ढोलपुर, ग्वालियर, बुन्देलखण्ड, उज्जयिनी, भिलसा और सागर कहलाते हैं, वे पहले नवनागके अधिकारभुक्त थे। सुना जाता है, कि मालवका कुछ अंश भी उनके अधिकारमें था। इलाहाबादकी खोदित लिपिमें लिखा है, कि समुद्रगुप्तने गणपतिनागको परास्त किया था, गणपतिनागका दूसरा नाम था गणेन्द्र। नरवर राजाओंको जो सब मुद्राएं पाई गई हैं, उनमें गणपतिनागके प्रचलित सिक्कोंकी संख्या ही अधिक है। मगध राज्यमें एक नागवंशकी कथा सुनी जाती है। इन्होंने अपने बाहुबलसे बहुत दिनों तक मगधको अपने अधिकारमें रखा था। किन्तु अन्तमें प्रभूत पराक्रमशाली पाण्डवोंने उनके हाथसे मगधराज्य छीन लिया। गङ्गा और यमुनाके सङ्गम स्थान पर आर्य और पाण्डवोंके साथ मगधके नागवंशीय राजाओंको लड़ाई छिड़ी थी। महाभारतमें खाण्डववन-दाहनका विषय किसी भारतवासी हिन्दूसे छिपा नहीं है। उस समय बहुतसे नाग नष्ट हुए थे और स्वयं श्रीकृष्णने कालिय आदि नागोंका दमन किया था। कोई कोई पाश्चात्य पण्डित इसकी आध्यात्मिक व्याख्या इस प्रकार करते हैं, कि आर्यवंशोद्भव कृष्णने अनार्यसम्भूत नागवंशीय राजाओंको परास्त किया था। इसके सत्यासत्यका विचार पाठकोंके ऊपर निर्भर है, हम इस विषयमें कुछ भी कहना नहीं चाहते। पर हां, इतना अवश्य कह सकते हैं, कि ई०सन्के ६८१ वर्ष पहले नाग-राजगण प्रबल प्रतापसे वहां राज्यशासन करते थे। इसके अनेक प्रमाण भी मिलते हैं। महावीर अलेकसन्दर जब मगध राज्य पर चढ़ाई करनेके लिये उद्यत हुए, तब नागवंशके नन्दराजने उन्हें रोकनेके लिये प्राणपणसे चेष्टा की थी।

रामगढ़ और सीरगुजाके नागवंशीय राजा लोग अपने सिक्के पर सर्पमूर्त्ति अङ्कित करते थे। इसका कारण यह था कि वे लोग नागवंशके थे। सुतरां पूर्व पुरुषोंके सम्मानार्थ नागमूर्त्ति अङ्कित करते थे। सिंहलमें नागवंशीय लोगोंकी संख्या इतनी अधिक है, कि वह स्थान 'नागद्वीप' कहलाता है। भारतवर्षके अन्यान्य देशोंमें भी नागवंशकी पहुंच थी, इसमें सन्देह नहीं। आबी डमोनेकने लिखा है, कि उत्तर अमेरिकामें शकजातीय नागवंशका आविर्भाव हुआ था। इस नागवंशने सिदोयानोंका राज्य भी जीत लिया था। (Cyclopædia of India, Vol. II p. 1042)

नागवंशी (सं० त्रि०) नागोंके वंश या कुलका।

नागवट्ट (सं० पु०) काश्मीरराज कम्पनापतिके एक मन्त्रीका नाम। ये जातिके कायस्थ थे। (राजतर० ८।६७१)

नागवदन—सिंहलके एक बन्दरका नाम। युएनचुवङ्गके कुछ समय बाद यह बन्दर बनाया गया था।

नागवर्त्मन् (सं० पु०) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम। यह तीर्थ सरस्वती नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। यहां पन्नगराज वासुकि स्वयं बहुतसे नागोंके साथ रहते हैं। हजारों ऋषि और देवता यहां आ कर नागराज वासुकिका यथाविधि अभिषेक करते हैं। इस तीर्थमें सांपका कुछ भी डर नहीं होता। (भारत शा० ३८ अ०)

नागवर्द्धन—चालुक्यवंशीय एक राजाका नाम।

नागवलि—मन्द्राज प्रदेशकी एक नदी। इसका दूसरा नाम 'लाङ्गुलिया' है।

मध्य प्रदेशमें गोण्डयाना पहाड़के तीन जलस्रोतोंके आपसमें मिलनेसे यह नदी उत्पन्न हुई है। वहांसे यह दक्षिण-पूर्वकी ओर घूम कर जयपुर होती हुई चिकाकोलके समीप समुद्रमें गिरती है। इसकी लम्बाई १४० मील है। इसके किनारे जितने प्रधान नगर बसे हुए हैं, उनके नाम ये हैं—सिङ्गापुर, विरदा, रायगढ़, पार्वतीपुर, पालकण्डा और चिकाकोल। इसकी प्रधान उपनदियां सालूर और मकवा हैं।

नागवल्लरी (सं० स्त्री०) नाग इव दीर्घा वल्लरी। नागवल्ली, पान।

नागवल्लिका (सं० स्त्री०) नागवल्ली, पानकी लता।

नागवल्ली (सं० स्त्री०) नाग इव दीर्घा वल्ली लता। ताम्बूलवल्ली, पानकी लता, पान। देशभेदसे यह लता भिन्न भिन्न गुणोंकी होती है।

राजनिघण्टमें इसके तीन भेद बतलाये गये हैं, अम्ल-वाटी, श्रीवाटी और सलमी।

अम्लवाटीका गुण—कटु, अम्ल, तिक्त, तीक्ष्ण, उष्ण, मुखशोधक, विदाह, पित्त और अग्निकोपन, विष्टम्भकारक तथा वातनाशक।

श्रीवाटीका गुण—मधुर, तीक्ष्ण और वात, पित्त तथा कफनाशक, सरस, रुचिकर और शीतल।

सलमीका गुण—मधुर, तीक्ष्ण, कटु, उष्ण, पाचन, गुल्म, उदराध्मानानाशक, रुचिकर और दीपन।

गुहागर नामक स्थानमें इसे समशिरा कहते हैं। इसका गुण—चूर्णके साथ रुचिकारक, सुगन्धित, तीक्ष्ण, मधुर, अति हृद्य, सन्दीपन, पुंस्त्वकर, बलकारक, विरेचन मुखसुगन्धिकारक, स्त्रियोंके लिये सौभाग्य-वर्द्धनकर, मदकारक, गुल्म और आध्माननाशक है।

आन्ध्रदेशमें यह पुष्कलिका नामसे प्रसिद्ध है। इसका गुण—कषाय, उष्ण, कटु, पित्त और वातनाशक है। इस देशमें दीर्घफला नामक एक और प्रकारकी नागवल्ली है जो हृवर्णीय, कटु, तीक्ष्ण, हृद्य, कफ और वातनाशक, रुचिकर, दीपन और पाचन मानी जाती है।

विशेष विवरण ताम्बूल शब्दमें देखो।

नागवार (फा॰ वि॰) १ असह्य, जो सहा न जाय। २ अप्रिय, जो अच्छा न लगे।

नागवारिक (सं॰ पु॰) नागस्य गजस्य वा सर्पस्य वारो वारणं प्रयोजनमस्य ठक्। १ हस्तिपालक, माहुत। २ गरुड़। ३ मयूर, मोर। ४ राजकुञ्जर। ५ यूथस्थित गजराज।

नागवास (सं॰ पु॰) नागानां वासः अवस्थानं। १ वह स्थान जहां नागगण रहते हों। २ नेपालकी उपत्यकाके एक ह्रदका नाम।

नागविथा (सं॰ स्त्री॰) १ नागछत्र। २ नागदन्ती।

नागविल (सं॰ क्ली॰) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

नागवीट (सं॰ पु॰) नाग इव श्येटति वि-इट-क। लम्पट, धूर्त्त।

नागवीथी (सं॰ स्त्री॰) नामस्येव वीथी पंक्तिः। १ शुक्र-ग्रहको चालमें वह मार्ग जो स्वाती, भरणी और कृत्तिका नक्षत्रोंमें हो। दक्षिण, उत्तर और मध्यम मार्गोंमेंसे प्रत्येकमें तीन तीन वीथी होती हैं। तीन तीन नक्षत्रोंमें एक एक वीथी मानी गई है। इनमेंसे अश्विनी, कृत्तिका और याम्या नागवीथी है। २ कश्यप पुत्रीभेद, कश्यप-की एक लड़कीका नाम। ३ धर्मकी एक कन्या जिसकी उत्पत्ति यामिसे मानी जाती है।

नागवृक्ष (सं॰ पु॰) नागाख्यो वृक्षः। नागकेशरवृक्ष, नाग-केसरका पेड़।

नागवृन्ता (सं॰ स्त्री॰) वृश्चिकालीक्षुप, बरहंटा नामकी लता।

नागशत (सं॰ पु॰) नागानां शतं यत्र। पर्वतभेद, एक पर्वतका नाम जिसका उल्लेख महाभारतमें आया है।

नागशुण्डी (सं॰ स्त्री॰) नागस्य शुण्डवत् आकृतिरस्य-स्येति, अच् ततो गौरादित्वात् ङीष्। १ डङ्गरीफल, एक प्रकारकी ककड़ी। २ हस्तिशुण्डि नामक क्षुप। ३ ताम्बवल्ली।

नागशुद्धि (सं॰ स्त्री॰) नागानां शुद्धिः। नागोंको शुद्धि। नया घर बनानेमें नागशुद्धिका विचार किया जाता है।

फलितज्योतिषके ग्रन्थोंमें लिखा है कि भादों, आसिन और कातिक इन तीन महीनोंमें नागोंका सिर पूरबकी ओर; अगहन, पूस और माघमें दक्षिणकी ओर; फागुन, चैत और वैशाखमें पश्चिमकी ओर तथा जेठ, असाढ़ और सावनमें उत्तरकी ओर रहता है। पहले पहल नींव डालते समय यदि नागोंके सिर पर आघात पड़े, तो घर बनवानेवालेकी मृत्यु, पीठ पर पड़े, तो स्त्री-पुत्र-की मृत्यु और यदि जंघा पर आघात पड़े, तो अर्थकी हानि होती है। पेट पर आघात पड़नेसे शुभ होता है। इसीसे नागशुद्धिका विचार कर नींव डालना उचित है।

नागश्रीवल्लभ (सं॰ पु॰) सलकी निर्यास।

नागसत्व (सं॰ पु॰) मेषशृङ्गी, मेढ़ासींगी।

नागसम्भव (सं॰ क्ली॰) सम्भवत्यस्मात् सम्भवः नागवत् सम्भवो यस्य। सिन्दूर।

नागसम्भूत (सं॰ क्ली॰) नागात् सीसकात् वासुक्यादितो वा सम्भूतं। १ सीसकसम्भव, सिन्दूर। २ मुक्ताफल-भेद, एक प्रकारका मोती जिसके विषयमें प्रसिद्ध है कि यह वासुकि, तक्षक आदि नागोंके सिरमें होता है।

तक्षक और वासुकि-वंशके जितने पन्नग हैं, उनके

फणके अग्रभागसे नीलद्युति-सम्पन्न एक प्रकारका मोती निकलता है।

नागसरस् (सं० क्लो०) तोर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

नागसाह्वय (सं० क्लो०) नागेन हस्तिना समानः आह्वयो संज्ञा यस्य। हस्तिनापुर।

नागसिन्दूर (सं० क्लो०) सोसक सम्भव सिन्दूर।

नागसुगन्धा (सं० स्त्री०) नागस्येव सुशोभनो गन्धः यस्याः। भुजङ्गाक्षीलता, सर्पसुगन्धा, एक प्रकारकी रास्ना, रायसन।

नागसेन (सं० पु०) १ एक बौद्धस्थविर। इनके अस्तित्वके विषयमें मतभेद देखा जाता है। किसीका मत है, कि नागार्जुन और नागसेन दोनों एक ही व्यक्ति थे। किन्तु नागसेनकृत मिलिन्द प्रश्न पढ़नेसे मालूम होता है, कि नागसेन उत्तर भारतवासी एक बौद्ध थे। लेकिन कुमारजीवकृत नागार्जुनकी जीवनीमें नागार्जुनको दक्षिण भारतवासी बतलाया है। फिर कहीं ऐसा भी लिखा है, कि नागसेन मिलिन्द (Menander)के समसामयिक थे। मिलिन्द ईसा जन्मके १४० वर्ष पहले आविर्भूत हुए, किन्तु नागार्जुन १लो वा दूसरी शताब्दीमें उत्पन्न हुए थे। इसके सिवा दोनोंके चरितमें विभेद भी देखा जाता है। इन सबका विचार करनेसे दोनोंके अस्तित्वमें कोई गड़बड़ी है, ऐसा नहीं कह सकते। महावीरके जन्म लेनेके ३५८ वर्ष बाद आचार्य नागसेनने १८ वर्ष तक धर्मका प्रचार किया। मिलिन्द-प्रश्नमें राजा मिलिन्दके साथ नागसेनके अनेक धर्म-विषयक तर्कोंका उल्लेख है। उन्होंने भारतवर्षके शाकलदेशमें सितिका-मन्दिरमें आश्रय लिया था।

२ समुद्रगुप्तके समसामयिक आर्यावर्त्तके एक राजाका नाम

नागस्तोकक (सं० पु०) वत्सनाभाख्य विष, अमृतविष।

नागस्थान—मथुराके सन्निकट एक ग्राम।

नागस्फोता (सं० स्त्री०) नाग इव स्फोता। १ नागदन्तीवृक्ष। २ दन्तीवृक्ष।

नागहनु (सं० पु०) नागस्य हस्तिनो हनुरिव। नख नामक गन्धद्रव्यविशेष, नखी।

नागहन्त्री (सं० स्त्री०) नागान् हन्तोति हन-तृच् ङोष्। वन्ध्याकर्कोटकी, बाँझककोड़ा, बाँझखखसा।

नागहाँ (फा० क्रि०-वि०) अकस्मात्, अचानक, एकाएक।

नागहानी (फा० वि०) अकस्मात् आई हुई, जो एकाएक टूट पड़ी हो।

नागह्रद—१ मेदपाटकी राजधानी। इसका वर्त्तमान नाम नागोर है। २ रेवाखण्ड वर्णित एक तीर्थ।

नागा—एक प्रकारका संन्यासी। 'नङ्गा' शब्दका अपभ्रंश है। इस सम्प्रदायका शैवसाधु कभी वस्त्र धारण नहीं करते थे, एकदम नंगे रहते थे, इसीसे इनका नाम 'नागा' पड़ा। अभी अङ्गरेजी राज्यमें नंगा घूमना मना है, इसलिये ये राजदण्डभयसे एक कौपीन लगा कर निकलते हैं तथा अन्यान्य वस्त्र भी धारण करते हैं। उस कौपीनको 'नागफणी' कहते हैं। "नागा पहने नागफनी"।

ये सिरकी जटाओंको रस्सीकी तरह बट कर पगड़ीके आकारमें लपेटे रहते हैं। अन्य सम्प्रदायके जितने संन्यासी हैं वे दो वस्त्रखण्ड पहनते हैं, जिनमेंसे एकका नाम डोर और दूसरेका नाम कौपीन है। नागोंकी एक नागफनी ही डोर और कौपीन दोनोंका काम करती है।

ये लोग शरीरमें गेरूमट्टी और भस्म पोतते हैं। ये अपने पास भस्मका एक गोला रखते हैं जिसकी नित्य पूजा करते हैं। भिक्षाके समय भस्मका गोला हाथमें ले कर उसी पर भीख ग्रहण करते हैं। सुनते हैं, कि रौप्यमुद्राके सिवा और कोई दूसरी निकृष्टतर मुद्रा वे गोलेमें ग्रहण नहीं करते।

नागा संन्यासी स्वयं शिष्य नहीं बनते। जब नागादलमें किसीको प्रविष्ट होना होता है, तब अन्यत्र संन्यासीका अवलम्बन कर इस दलमें आ जाते हैं। इस प्रथाको गुरुपक्ष (दीक्षा गुरुका आश्रय)का परित्याग करके देवपक्षका अवलम्बन कहते हैं। इस समय इन्हें निर्जन स्थानमें नंगे दो मास तक कठोर तपस्या करनी पड़ती है। नागादलभुक्त करनेमें महन्तका बहुत खर्च होता है।

इनकी उद्दण्डता और वीरता प्रसिद्ध है। अङ्गरेजी राज्यके पहले ये बड़ा उपद्रव भी करते थे। इनकी उद्दण्डता देख कर कबीरने इन्हें तिरस्कार करते हुए कहा था,—

'हमने ऐसा योगी कभी कहीं पर आज तक नहीं देखा। ये लोग अपने धर्मका पालन तो करते नहीं, केवल इधर उधर वृथा चक्कर लगाते हैं। कहनेके तो ये लोग शिवभक्त और प्रधान गुरु हैं, पर हृद्‌भूमि इनके योगसाधनका स्थान है, माया भक्ष इनका देवता है। क्या कभी दत्तात्रेयने घर नष्ट किया था? क्या शुकदेवने समस्त सैन्य ग्रहण की थी? क्या नारदमुनिने कभी बन्दूकका व्यवहार किया था? क्या कभी व्यासदेवने तुरही नामक बाजा बजाया था? जो धनुर्धारी हैं, वे किस प्रकार अतिथि हो सकते? जिनके पास लोभ है वे किस प्रकार साधु कहला सकते? क्या ही लज्जाका विषय! वे लोग स्वर्णालङ्कार धारण करते हैं, घोड़े, ऊँट आदि संग्रह करते हैं, अनेक ग्राम अधिकार कर बैठे हैं और धनी कहलाते हैं। पासमें यदि दवात रहे, तो स्याहीसे वस्त्र अवश्य मैला होगा।' (दैवनि ६८)

वैष्णवोंके साथ नागाओंका विवाद चिरप्रसिद्ध है। कुम्भमेलाके समय हरिद्वारमें गङ्गास्नान करनेके लिये दूर दूर देशोंसे बहुसंख्यक मनुष्य एकत्रित होते हैं। इस मेलेमें वैरागियोंके साथ इनकी लड़ाई प्रायः हुआ करती थी जिसमें बहुतसे वैरागी मारे जाते थे।

पारसिक भाषामें लिखा हुआ दाविस्तान नामक एक ग्रन्थ है जिसमें लिखा है, कि हरिद्वारमें वैरागियोंके साथ नागाओंकी लड़ाई अकसर हुआ करती है। इस लड़ाईमें वे सैकड़ों वैरागियोंके प्राण नाश करते हैं। बाद वे प्राणके भयसे अपनी मालाको तोड़ कर दोनों कानोंमें कुण्डल पहन लेते हैं। उक्त ग्रन्थमें यह भी लिखा है कि जलाली और मदारी नामक दो मुसलमान सम्प्रदायोंके साथ संन्यासियोंकी जो लड़ाई होती है, उसमें हजारों मुसलमान मारे जाते हैं और उनके पुत्रगण शैवधर्म ग्रहण करते हैं। १७२८ ई०की बात है, कि हरिद्वारमें शैव संन्यासियोंने अठारह हजार वैरागियोंके प्राण नाश किये थे।

नागा संन्यासियोंका ऐसा उग्रस्वभाव देख कर हिन्दू-राजगण उन्हें सेनापद पर नियुक्त करते थे। जयपुरमें आज भी नागासेना मौजूद है।

नागा लोग जिस विभूति-पुञ्जकी पूजा करते हैं, उसे गोला कहते हैं। इनके कई अखाड़े होते हैं जिनमें निरञ्जनी और निर्वाणी ये ही दो मुख्य हैं। भिन्न भिन्न अखाड़ोंका गोला भिन्न भिन्न प्रकारका होता है, जैसे निरञ्जनी अखाड़ेका गोला चक्राकार और निर्वाणीका चतुष्कोण। प्रायः जितने नागे देखे जाते हैं, वे इन्हीं दो अखाड़ोंके हैं। पश्चिमोत्तर प्रदेशमें कहीं कहीं अटल अखाड़ेके भी नागा विद्यमान हैं।

नागा—एक प्रकारकी स्वाधीन पार्वती जाति। आसामके पूर्व नागापर्वत और उसके पार्श्ववर्त्ती देश ही इनकी आवासभूमि है। कछाड़के उत्तरसे ले कर डिहिङ्ग नदी तक इस जातिके लोग देखनेमें आते हैं। इसका 'नागा' नाम क्यों पड़ा, इसके उत्तरमें कोई कोई कहते हैं 'नंगा' शब्दसे इसकी उत्पत्ति हुई है। फिर किसी किसी विद्वान्‌का मत है, कि 'नाग' अर्थात् सर्पसे यह असभ्यजाति नागा कहलाने लगी है। अङ्गामीनागा देखो।

नागाजातिके नाना सम्प्रदाय हैं जिनमेंसे पांच प्रकारके सम्प्रदाय अङ्गरेजाधिकृत स्थानोंमें पाये जाते हैं। उनके नाम ये है—अङ्गामा, रेङ्गमा, कछा, लोटा और सेमा। सभी नागा सम्प्रदाय उसी एक लौहित्यजातिसे उत्पन्न हुए हैं और आदिम अवस्थामें इनके आचार-व्यवहार प्रायः एक-से थे। किन्तु अभी विभिन्न नागा सम्प्रदायोंकी भाषामें इतनी पृथकता हो गई है, कि एक दिनके दूरवर्त्ती स्थानमें जो नागा रहते, वे भी एक दूसरेकी बोली समझ नहीं सकते।

ये लोग देखनेमें उतने सुन्दर तो नहीं लगते, लेकिन खराब भी नहीं हैं। इनके शरीरका रंग ताम्रवर्ण, नाक चिपटी और गण्डदेश कुछ ऊंचा होता है। ये बहुत बलवान् और साहसी होते हैं। युद्धमें तथा शिकारमें ये लोग बड़े ही सिद्धहस्त हैं। इन लोगोंमें प्रधान दोष यह है, कि आपसमें हमेशा लड़ते झगड़ते रहते हैं। गृहस्थेकी हालतमें ये स्त्री और बालककी भी जान ले लेनेमें बाज नहीं आते। जब कोई उनके साथ बुराई करता है, तब वे उसे कभी नहीं भूलते और मौका आने पर बदला लिये बिना छोड़ते नहीं हैं।

ये लोग पहाड़ पर घर बना कर रहते हैं। घरके चारों ओर शत्रुका आक्रमण रोकनेके लिये दीवार खाई

आदि बनी होती है। घरकी लम्बाई २०।२५ हाथ और चौड़ाई ८।१० हाथ होती है।

इनका पहराव नीले अथवा काले रंगका होता है। घरमें ये लोग एक प्रकारका मोटा कपड़ा बुनते हैं और उसीका अंगरखा आदि बनवाते हैं। जो लोग योद्धा हैं, वे छागलोमनिर्मित लालवर्णकी एक चादर-का व्यवहार करते हैं जिसे गलेमें लपेट कर कमर तक लटका लेते हैं।

पुरुषगण यौवनावस्थामें भी नाना प्रकारके अलङ्कार पहनते हैं। बाहुमें गजदन्त अथवा काठका बना हुआ पदक धारण करते हैं। हड्डीको माला और लाल रंगके बेंतकी तड़की यही इनके प्रधान अलङ्कार हैं। ये पैरमें बेंतका कड़ा और कानमें पीतलको कनैठी पहनते हैं; शूकरदन्तसे भी एक प्रकारका कर्णभूषण बना लेते हैं।

स्त्रियां खोपा बांधती हैं। इनके अलङ्कारादि बिलकुल पुरुषसे होते हैं। मुखमें गोदना गोदवाती हैं। कहते हैं, कि गोदना गोदवाए बिना नागा बालिकाओंका विवाह नहीं होता।

लज्जा किसे कहते हैं, नागा लोग यह जानते ही नहीं। जो लड़की खूबसूरत होती है अथवा जिसके साथ इनका मन गड़ जाता है उसीको ये अपनी स्त्री बना लेते हैं।

नागा लोग कभी दूध नहीं पीते; गाय भैंसका जो पालन-पोषण करते हैं, वह खेतीबारी करनेके लिये नहीं, केवल बलिदान और मांसके लिये। ये लोग सब प्रकारके मांस खाते हैं, लेकिन हाथीका मांस विशेष पसन्द करते।

इनका धर्मविषय ज्ञान बहुत सामान्य है। इनका विश्वास है, कि जो इस जन्ममें सत्कार्य करता है, वह मरने पर आकाश जा कर नक्षत्र होता है और जो अधर्म करता, वह सात बार भूतयोनिमें जन्म ले कर पीछे मधुमक्खी होता है। जब उन लोगोंसे आत्माकी बात पूछी जाती है, तब वे कहते हैं कि आत्मा कब्रमें रखी हुई है, पीछे वहांसे कहां चली गई मालूम नहीं।

शिकार और कृषिकार्य ही इनकी प्रधान उपजीविका है। ये लोग बाघ, भालू, हरिण, हाथी आदि जङ्गली जन्तुओंका शिकार करते हैं। हाथीके शिकार करनेमें ये बड़े ही होशियार होते हैं। गड्ढा बना कर उसमें बांसकी नोकीले खूंटे गाड़ते हैं और ऊपरसे कोई सामान्य वस्तु ढक देते हैं। हाथी उसे समतल क्षेत्र समझ कर ज्योंही उस पर पैर रखता है, त्योंही वह धंसविद्ध हो कर वहीं खड़ा रह जाता है। ये तीन तीन वर्षमें जङ्गलको काट कर वहां खेती बारी करते हैं। इस सम्प्रदायके अभी अनेक नागा वाणिज्यादि करने लग गये हैं।

नागाख्य (सं० पु०) नाग एव आख्या यस्य। नागकेशर।

नागाङ्गना (सं० स्त्री०) नागानां अङ्गना। नागोंकी स्त्री।

नागाञ्चला (सं० स्त्री०) नागयष्टि।

नागाञ्जना (सं० स्त्री०) १ हस्तिनी, हथिनी। नागस्येव अञ्जनं कृष्णवर्णत्वं यस्याः। २ नागयष्टि।

नागाधिप (सं० पु०) नागानां अधिपः। १ नागोंके अधिपति, अनन्त। २ हाथी और सर्पके अधिपति।

नागाधिपति (सं० पु०) नागानां अधिपतिः। नागाधिप, अनन्त।

नागानन (सं० पु०) नागस्येव आननं मुखं यस्य। गजानन,

नागान्तक (सं० पु०) नागानां अन्तकः। १ गरुड़। २ मयूर। ३ सिंह।

नागापहाड़—बङ्गाल और आसामका एक जिला। यह अक्षा० २४° ४२´ और २६° ४८´ उ० तथा देशा० ८३° ७´ और ८४° ५०´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरि-माण ३०७० वर्गमील है। इसके उत्तरमें नवगङ्ग और शिवसागर; पश्चिममें काछाड़ पहाड़; दक्षिणमें मणिपुर राज्य और पूर्वमें दिखो और तिजू नदियां हैं।

अहोम राजाके समय यहां नागाजातिने बहुत ऊधम मचाई थी तथा उन्होंने इसके कुछ अंश जीत भी लिये थे। १८३२ ई०में पहले पहल कप्तान जेनकिन और पेम्बरटन इस देशमें आये और उन्होंने नागाओंके साथ लड़ाई छेड़ दी। युद्धमें बहुतोंकी जानें गई थीं। अन्तमें नागाओंकी ही हार हुई। इसमें १ शहर और २८२ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः १०२४०२ है। यहां नागाओंकी संख्या सबसे अधिक है, इस कारण जिलेका

नाम नागापहाड़ पड़ा है। यह जिला प्रायः वन, पर्वत और नदीसे परिपूर्ण है। जङ्गलसे दारचीनी आदि नाना प्रकारके सुगन्धित मसाले, मोम तथा सूती आदिको आमदनी होती है। जङ्गलमें हाथी, गैंडा, भैंस, बाघ, चीता और नाना प्रकारके हरिण पाये जाते हैं। यहांकी प्रधान नदियोंके नाम देयं, धानेश्वरी और यमुना हैं। शासनकार्यकी सुविधाके लिए यह जिला उपविभागोंमें विभक्त है, यथा कोहीमा और मोकोकचुङ्ग। कोहिमामें एक डिपटी कमिश्नर और उनके एक सहकारी अङ्गरेज रहते हैं; कलकत्तेकी हाईकोर्टके साथ इस जिलेका कुछ भी सम्बन्ध नहीं। केवल खूनी मामला जिसमें अङ्गरेज अभियुक्त होते हैं हाईकोर्टमें पेश किया जाता है। जबसे यह जिला वृटिश गवर्नमेण्टके हाथ आया है, तब यहां विद्याकी खूब उन्नति हो रही है। स्कूलके अलावा यहां ३ अस्पताल भी हैं।

नागाभिभू (सं० पु०) बुद्धका नाम त्तर बुद्धदेवका एक नाम।

नागाराति (सं० पु०) नागानां अराति शत्रुः। १ वन्ध्याकर्कोटकी, बांझ ककोड़ा, बांझ खखसा।

नागार्जुन (सं० पु०) काश्मीरके एक बोधिसत्व। ये राजा था। इनके समयमें इस देशमें बौद्धधर्म खूब फैल गया था।

नागार्जुन—विदर्भनगरवासी एक ब्राह्मण। किसी किसीके मतसे ये सौ वर्ष पूर्व और किसी किसीके मतसे ईसासे १५०-२०० वर्ष पीछे हुए थे। इन्होंने आर्यजातिके निकट बौद्धधर्मके आध्यात्मिक वा निगूढ़ रहस्यकी विशेष रूपसे व्याख्या की। उनकी वक्तृता और सुन्दर तर्कशक्तिके प्रभावसे प्राचीन आर्यजातिने साधारण बौद्धधर्मका परित्याग कर तत्त्वपूर्ण बौद्धधर्मका अवलम्बन किया। सात वर्ष तक ये बहुत तन मनसे इस धर्मका प्रचार करते रहे। अन्तमें भारतके प्रधान भूपति ब्राह्मणधर्मावलम्बी भोजभद्रको अपने धर्ममें लाये। तिब्बतमें लामा पुस्तकालयमें एक बहुत प्राचीन पुस्तक है, जिसमें भोजभद्र ईसासे ५६ वर्ष पहले हुए, ऐसा लिखा है।

जिस दिन भोजभद्रने स्वयं बौद्धधर्मका अवलम्बन किया था उस दिन उनकी सभामें दश हजार ब्राह्मण मौजूद थे। वे सब नागार्जुनकी सुन्दर धर्मव्याख्या और सारगर्भ वक्तृतावली सुन कर विमोहित हो गये और उसी समय सिर मुड़वा कर बौद्धधर्ममें दीक्षित हुए। नागार्जुनके पहले यद्यपि बौधधर्मके सारमर्मकी व्याख्या बहुतोंने आरम्भ कर दी थी, तो भी बौद्धधर्मका दार्शनिक रूप पहले पहल नागार्जुनने ही दिया। अतः इनके द्वारा सभ्य और पण्डितसमाजमें बौद्धधर्मका जितना प्रचार हुआ उतना और किसीके द्वारा नहीं। इनके ग्रन्थका नाम माध्यमिकसूत्र है। इसके अलावा बौद्धधर्मसम्बन्धी इन्होंने और भी कई ग्रन्थ लिखे हैं। माध्यमिकसूत्रको इन्होंने दो भागोंमें विभक्त किया। एक भागका नाम है सम्वृति-सत्य और दूसरेका परमार्थ-सत्य। सम्वृतिसत्यमें मायाका मूलतत्त्व और परमार्थ सत्यमें समाधि वा चिन्ता द्वारा महात्माको किस प्रकार जान सकते हैं, यह लिखा है; महात्माको जान लेने पर माया दूर हो जाती है। माध्यमिक-दर्शनका सिद्धान्त यही है, कि साधारण नीतिधर्मके पालनसे ही प्राणी पुनर्जन्मसे रहित नहीं हो सकता। निर्वाण-प्राप्तिके लिए दान-शील, शान्ति, वीर्य, समाधि और प्रज्ञा इन गुणोंके द्वारा आत्माको पूर्णत्वको पहुंचाना चाहिए। ये कहते थे, कि विष्णु, शिव, काली, तारा इत्यादि देवी-देवताओंकी उपासना सांसारिक उन्नतिके लिए करनी चाहिए। नागार्जुनने बौद्धधर्मको जो रूप दिया वह 'महायान' कहलाया और उसका प्रचार बहुत शीघ्र हुआ। धर्मशास्त्रमें ये जैसे अद्वितीय क्षमताशाली थे, चिकित्साशास्त्रमें भी वैसे ही सिद्धहस्त थे।

१०वीं शताब्दीको गौड़ राज्यमें नयपाल नामक राजाकी सभामें चक्रपाणि नामके एक ब्राह्मण रहते थे। उनकी बनाई हुई चिकित्सासंग्रह नामक पुस्तकमें नागार्जुनकृत नागार्जुनाञ्जन और नागार्जुनयोग औषधका उल्लेख है। चक्रपाणिने लिखा है, कि पाटलिपुत्र नगरके स्तम्भके ऊपर नागार्जुनकृत औषधका व्यवस्था-समूह खोदा हुआ था। किंवदन्ती है, कि नागार्जुन इसी प्रकार कई जगह खम्भोंमें नाना प्रकारकी पीड़ाओंकी अनेक व्यवस्थाएँ लिख दिया करते थे। उनका

बनाया हुआ कक्षपुट नामक एक बहुत प्राचीन तन्त्रग्रन्थ मिलता है जिसमें अनेक प्रकारको औषधको व्यवस्था है। उक्त पुस्तक ले कर वे भिन्न भिन्न देशोंमें पर्यटन करते थे और रोगियोंको उक्त तन्त्रानुमोदित औषध देते थे।

कोई कोई नागार्जुनके अस्तित्वके विषयमें नाना प्रकारकी बातें कहा करते हैं। कितने संस्कृत लेखकोंका कहना है, कि काश्मीरके राजा कनिष्क और नागार्जुन एक ही व्यक्ति थे। किन्तु राजतरङ्गिणीमें लिखा है, कि नागार्जुन राजा कनिष्कके समसामयिक थे। बहुतसे बौद्धोंका विश्वास है, कि नागार्जुनसे ही सबसे पहले तान्त्रिक बौद्धमतका प्रचार हुआ।

कक्षपुट, कौतूहलचिन्तामणि, योगरत्नमाला वा योगरत्नावली, लघुयोगरत्नावली और नागार्जुनीय नामक चिकित्साशास्त्र इन्हींके बनाये हुये माने जाते हैं।

नागार्जुनतन्त्र नामक एक तन्त्र भी है। तञ्जोरके पुस्तकालयमें नागार्जुनीय धर्मशास्त्र नामक एक स्मृतिग्रन्थ देखनेमें आता है।

नागार्जुनाञ्जन (सं० क्लो०) अञ्जन औषधभेद। प्रस्तुत-प्रणाली—त्रिफला, त्रिकटु, सैन्धव, यष्टिमधु, तूतिया, रसाञ्जन, प्रपौण्डरीक, विडङ्ग, लोध और ताम्र इन चौदह प्रकारके द्रव्योंको चूर कर बरसाके पानीसे पीसते हैं। बाद उसकी बत्ती बनाते हैं। इसे स्तनदूधमें घिस कर आँखोंमें अञ्जन लगानेसे तिमिर और पटलरोग जाता रहता है। यह पैत्य, पुष्प और रक्तनेत्रमें पलाशके रसके साथ, आसन्न तिमिररोगमें लोधके काढ़ेके साथ और शुक्राच्छादित नेत्रमें छागमूत्रके साथ प्रयोज्य है।

(भैषज्यरत्ना० नेत्ररोगाधि०)

नागार्जुनी—१ मगध देशका एक छोटा पहाड़। यहां अनेक कूपगृह हैं जिनमेंसे छः शिलालिपियां पाई गई हैं। नागार्जुनी और बराबर पहाड़के कूपगृहकी शिलालिपियां यद्यपि बहुत सामान्य हैं, तो भी उन्हें पढ़नेसे भारतवर्षके धर्म और शिल्पविद्याके विषयमें बहुत कुछ बातें जानी जाती हैं। यहांकी पांच लिपियोंमें साफ साफ लिखा है, कि अशोक और उनके पौत्र दशरथने उक्त कूपगृह आजीवकोंको दानमें दिये थे। ये आजीवक कौन थे, इनके विषयमें मतभेद है। कोई उन्हें बौद्ध, कोई जैन और कोई अन्य धर्मावलम्बीके बतलाते हैं। लेकिन सभी प्राचीन ग्रन्थादि पढ़नेसे मालूम होता है कि वे लोग बौद्ध नहीं थे, कोई दूसरे धर्मावलम्बी होंगे। लेकिन इतना तो अवश्य कह सकते, कि वे लोग वैष्णव थे। उक्त शिलालिपि पढ़नेसे यह भी ज्ञात होता है, कि अशोक पहले सभी जातियोंका उनके गुणानुसार आदर किया करते थे। इसीलिए अपने शासनकालके १२।१३ वर्षमें उन्होंने वे सब कूपगृह आजीवकोंके रहने लिये प्रदान किये थे। किन्तु जबसे वे बौद्ध धर्मावलम्बी हुए, तबसे बौद्धोंके सिवा और किसीका आदर नहीं करते थे।

उक्त लिपि पढ़नेसे भारतीय प्रत्नतत्त्वविदोंकी अनेक भ्रमात्मक कल्पनाओंका विषय अवगत होता है। उनका विश्वास था, कि बौद्धलोग ही कूपगृह-निर्माणविद्याके प्रथम आविष्कारक थे। जैनों तथा ब्राह्मणोंने बहुत पीछे यह विद्या सीखी है। बहुत दिनों तक तो जितने कृतविद्य मनुष्य हुए सभोंकी यही धारणा रही। लेकिन प्रत्नतत्त्वविद् भगवान्लाल इन्द्रजीने प्रमाण दे कर यह साफ साफ दिखला दिया है, कि ईसाके बहुत पहले कटकमें उदयगिरिके जितने कूपगृह हैं, वे सभी जैनियोंके बनाए हुए हैं। ब्राह्मणोंके भी कूपगृह-निर्माणके विषयमें अनेक प्रमाण मिलते हैं। अतएव ब्राह्मण और जैन बौद्धोंके बहुत पहले उक्त स्थापत्य-विद्यामें अभिज्ञ थे, इसमें सन्देह नहीं।

नागार्जुनी (सं० स्त्री०) दुग्धिका, दुधिया, दुधिया घास।

नागार्जुनीय (सं० पु०) नागश्च अर्जुनश्च तौ अधिकृत्य कृतो ग्रन्थ-छ। १ नाग और अर्जुनके आधार पर लिखा हुआ एक ग्रन्थ। २ चिकित्सा और धर्मग्रन्थभेद, एक ग्रन्थका नाम जिसमें चिकित्सा और धर्मकी बातें लिखी हैं।

नागालाबु (सं० पु०) नाग इव अलाबुः। कुष्माण्डी, गोल कद्दू, गोल लौकी।

नागाशन (सं० पु०) अश्नातीति अश-ल्यु, नागानां अशनः ६-तत्। १ गरुड़। २ मयूर, मोर। ३ सिंह, शेर।

नागाश्रय (सं० पु०) हस्तिकन्द।

नागाह्व (सं० क्लो०) १ हस्तिनापुर। २ नागकेशर। ३ वनचम्पकवृक्ष।

नागाह्वयम् (सं० क्ली०) नागकेसर।

नागाह्वा (सं० स्त्री०) नागं नागकेशरं आह्वयते स्पर्द्धते इति आ ह्वे-अच्-टाप्। १ लक्ष्मणाकन्द। २ नागवल्लीलता।

नागिन् (सं० पु०) नागोभूषणत्वेनास्त्यस्य इनि। सर्पभूषण शिव, महादेव।

नागिन् (हिं० स्त्री०) १ नागकी स्त्री सांपकी मादा। ऐसा प्रसिद्ध है, कि नागिनमें बहुत विष होता है, इसीसे कुटिल और दुष्टा स्त्रीके लिये इस शब्दका प्रयोग करते हैं। २ बैल, घोड़े आदि चौपायोंकी पीठ पर रोओंकी एक विशेष प्रकारकी भौंरी जो अशुभ मानी जाती है। ३ रोओंकी लम्बी भौंरी जो पीठ या गरदन पर होती है। स्त्रियोंमें ऐसी भौंरीका होना कुलक्षण समझा जाता है।

नागिनी (सं० पु०) १ नागदन्ती क्षुप। २ लक्ष्मणाकन्द।

नागी (सं० स्त्री०) नागस्य पत्नी ङीष्। १ नागपत्नी, सांपकी स्त्री। २ वन्ध्या कर्कोटकी, बांझ ककोड़ा।

नागीगायत्री (सं० स्त्री०) २४ वर्णोंका एक वैदिक छन्द। इसके प्रथम दो चरणोंमें नौ नौ वर्ण होते हैं और तीसरे चरणमें केवल छः वर्ण।

नागीय (सं० पु०) नागकेशर।

नागुला (सं० पु०) १ नेवला। २ नकुली नामक जड़ी।

नागेनहल्ली—एक स्थान जो बरेली जिलेके रायदुर्गसे १८ मील पूर्व-उत्तरमें अवस्थित है।

नागेन्द्र (सं० पु०) नाग इन्द्र इव श्रेष्ठत्वात् उपमितसमास। १ ऐरावत। २ शेष, वासुकि आदि नाग ३ बड़ा हाथी। ४ बड़ा सर्प।

नागेन्द्रमल्ल—नेपालके एक राजाका नाम। नेपाल देखो।

नागेश (सं० पु०) नागानां ईशः ६-तत्। १ अनन्त, शिवनाग। २ प्रसिद्ध संस्कृत वैयाकरण, नागेशभट्ट। (क्ली०) ३ शिवलिङ्गभेद, एक शिवलिङ्गका नाम। ४ तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

नागेशभट्ट—एक अद्वितीय वैयाकरण। इनके पिताका नाम शिवभट्ट और गुरुका नाम हरिदीक्षित था। शृङ्गवेरीराज इनके प्रतिपालक थे। इनके पौत्र अभिराम १८०४ ई०में विद्यमान थे। यों तो इन्होंने अनेक संस्कृत ग्रन्थ बनाए हैं लेकिन निम्नलिखित ग्रन्थ ही प्रधान हैं—

१ अलङ्कारसुधा (कुवलयानन्दटीका), २ अशौचनिर्णय, ३ अष्टाध्यायी पाठ (पाणिनीय), ४ आचारेन्दुशेखर, ५ इष्टकालनिर्णय, ६ कात्यायनीतन्त्र, ७ काव्यप्रदीपोद्योत (काव्यप्रदीपकी टीका), ८ गुरुमर्मप्रकाश (रसगङ्गाधरटीका), ९ चण्डीटीका, १० चण्डीस्तोत्रप्रयोग-विधि, ११ तर्कभाषाकी टीका, १२ तात्पर्य-दीपिका, १३ त्रिकल्प संग्रह, १४ तिथ्येन्दुशेखर, १५ तीर्थेन्दुशेखर, १६ धातुपाठवृत्ति, १७ नैरर्थिवादार्थ, १८ पदार्थदीपिका (न्याय), १९ परिभाषेन्दुशेखर, २० पातञ्जलिसूत्रवृत्तियोग, २१ पातञ्जलिसूत्रवृत्तिभाष्यछाया-व्याख्या, २२ प्रभाकरचन्द्र (तत्त्वदीपिकाकी टीका), २३ प्रयोगसरणि (तन्त्र), २४ प्रायश्चित्तेन्दुशेखर, २५ प्रायश्चित्तेन्दुशेखर-सारसंग्रह, २६ महाभाष्यप्रदीपोद्योत, २७ रसतरङ्गिणीटीका, २८ रसमञ्जरीप्रकाश (रसमञ्जरीटीका), २९ रामायणटीका, ३० लक्षणरत्नमालिका (धर्मशास्त्र), ३१ विषमपदी (शब्दकौस्तुभ-टीका) ३२ वेद-सूक्तभाष्य, ३३ वैयाकरणकारिका, ३४ वैयाकरण-भूषण, ३५ वैयाकरण-सिद्धान्त-मञ्जूषा, ३६ व्याससूत्रेन्दुशेखर, ३७ शब्दरत्न, ३८ शब्दानन्तसागरसमुच्चय, ३९ शब्देन्दुशेखर, ४० संस्काररत्नमाला, ४१ लघुसांख्यसूत्रवृत्ति, ४२ सापिण्डीमञ्जरी, ४३ सापिण्ड्यदीपिका, ४४ स्फोटवाद और ४५ नागोजीभट्टीय व्याकरण।

नागेश्वर (सं० पु०) १ वृक्षविशेष, नागकेसर। २ शेषनाग। ३ ऐरावत।

नागेश्वररस (सं० पु०) औषधविशेष, वैद्यकमें एक प्रसिद्ध रसौषध। प्रस्तुतप्रणाली—पारा, गन्धक, सोना, रांगा, मैनसिल, नौसादर, यवक्षार, सज्जी, सोहागा, लोहा, तांबा, अभ्रक इन सबको बराबर ले कर थूहरके दूधमें मलते हैं। फिर चीते, अडूसे और दन्तीके क्वाथमें मल कर उरदकी दालके बराबर गोली बनाते हैं। इसका अनुपान पानका रस है। इसके सेवन करनेसे गुल्म, प्लीहा, पाण्डु, शोथ और आमानरोग प्रशमित होता है। (भैषज्यर० गुल्मरोगा०)

नागेसरी हिं० वि०) नागकेसरके रंगका, पीला।

नागोजी (सं० पु०) दारुकवनस्थ शिवलिङ्गभेद।

नागोजीभट्ट—नागेशभट्ट देखो।

नागोद (सं० पु०) लोहेका वह तवा या बकतर जिसे अस्त्रोंके आघातसे बचानेके लिए छाती पर पहनते थे, सीनाबंद।

नागोदर (सं० क्लो०) नागवद् वृहदुदरं यस्मात् १ उदरत्राण। २ गर्भिणीका गर्भोपद्रवभेद, गर्भका एक प्रकारका उपद्रव। इसका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—जब शुक्रशोणित वायुसे विकृत हो जाता है, तब जीव सञ्चार न हो कर उदर-आध्मान होता है। यह कभी कभी आपसे आप निकल जाता है। जब इस प्रकार उदराध्मान आपसे आप निवृत्त हो जाता है, तब लोग उसे नैगमेय कर्त्तृक गर्भका गिरना कहते हैं। इसीका नाम नागोदर है। ऐसी अवस्थामें मृदु स्नेहादि क्रिया द्वारा प्रतीकार करना उचित है।

नागोदा (सं० क्लो०) नागवद् वृहदुदरं यस्मात् पृषोदरादित्वात् साधुः। उदरत्राण।

नागोद्भेद (सं० क्लो०) तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम।

नागोर—मन्द्राज प्रदेशके मध्यवर्त्ती तञ्जोर जिलेका एक बन्दर। यह अक्षा० १०° ५०´ उ० और देशा० ७९° ५२´ पू०के मध्य नागपट्टनसे ३ मील उत्तरमें अवस्थित है। यह स्थान वाणिज्यके लिये प्रसिद्ध है। सुपारी, मसाले और टट्टूका व्यवसाय होता है। यहां मुसलमानोंका एक धर्ममन्दिर है जहां प्रतिवर्ष भारतवर्षके सभी मुसलमान एकत्रित होते हैं। १७७१ ई०में तञ्जोरके राजाने नागपट्टनके गोलन्दाजोंके हाथ इसे बेच दिया था। किन्तु कर्णाटके नवावने अङ्गरेजोंकी सहायतासे यह गोलन्दाजोंके हाथसे छीन लिया। पीछे तञ्जोरके राजाने इसे अपने अधिकारमें ला कर १७७६ ई०में अङ्गरेजोंको दे दिया।

नागोध—इलाहाबाद और जव्वलपुरके मध्यवर्त्ती एक प्राचीन नगर। यह भरहुत नामक स्थानसे ६ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित था। उच्चहार नामक राज्यमें परिहार नामके एक राजा रहते थे। यह नगर उन्होंके अधिकारमें था। उक्त राजा नागोधराज नामसे भी मशहूर थे।

नागोर—बीकानीर राज्यके निकटवर्त्ती एक छोटा स्थान जो गायों और बैलोंके लिये भारत भरमें प्रसिद्ध है। ऐसी जनश्रुति है, कि दिल्लीके अन्तिम हिन्दू-सम्राट् महाराज पृथ्वीराजने कोई ऐसा स्थान ढूढ़नेको आज्ञा दी जो गो-पोषणके लिये सबसे अनुकूल हो। लोग चारों ओर छूटे। उनमेंसे एकने एक जङ्गलमें देखा, कि हालकी ब्याई हुई गाय अपने बछड़ेको रक्षा एक बाघसे कर रही है। बाघ बहुत जोर मारता है, पर गाय अपने सींगोंसे उसे मार कर हटा देती है। महाराजके यहां जब इसकी खबर पहुंची, तब उन्होंने उसी जङ्गलको पसन्द किया और वहां नागोर या नवनगर नामक नगर और गढ़ बनवाया।

नागोर (हिं० वि०) नागोरका, अच्छी जातिका (बैल, गाय, बछड़ा) आदि।

नागोरा (हिं० वि०) नागोरका, अच्छी जातिका।

नागौरी (हिं० वि०) नागौरा देखो।

नाच (हिं० पु०) १ वह उछल कूद जो चित्तकी उमङ्गसे हो। नाचकी प्रथा सभ्य असभ्य सब जातियोंमें आदिसे चली आ रही है। क्योंकि यह एक स्वाभाविक वृत्ति है। विशेष विवरण नृत्यशब्दमें देखो। २ नाट्य, खेल, क्रीड़ा। ३ कृत्य, धन्धा।

नाचकूद (हिं० स्त्री०) १ नाच तमाशा। २ आयोजन, प्रयत्न। ३ गुण, योग्यता बड़ाई आदि प्रकट करनेका उद्योग, डींग। ४ क्रोधसे उछलना, पटकना।

नाचघर (हिं० पु०) नृत्यशाला, वह स्थान जहां नाचना गाना आदि हो।

नाचना—बुन्देलखण्डके अन्तःपाती एक क्षुद्र ग्राम। पन्नासे २५ मील दक्षिण-पूर्वमें गञ्ज नामका एक नगर है। इस गञ्ज नगरसे नाचना २ मील पश्चिममें और नागोधसे १५ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यह क्षुद्र ग्राम अजयगढ़ राज्यकी दक्षिणसीमा स्वरूप खड़ा है।

नाचनाका प्राचीन नाम कुठार है जहां एक समय वहांके हिन्दूराजाओंकी राजधानी थी। सम्प्रति जहां नाचना ग्राम अवस्थित है, वहां वर्त्तमान शताब्दीके प्रारम्भमें कोल भीलोंने जङ्गल काट कर बांस घर बनाये। बुन्देल-वासियोंका इतिहास पढ़नेसे जाना जाता है, कि मोहनपालने १५वीं शताब्दीमें कुठारगढ़को घेर

लिया था। कुठारगढ़के बाहर एक स्थान लाखुरा नामसे प्रसिद्ध है। लाखुराका दूसरा नाम लखाहार भी है। प्रवाद है, कि यहांके राजाने इस स्थान पर एक लाख वृक्ष लगाये थे और एक लाख ब्राह्मण-भोजन कराये थे। इसीसे इसका नाम लाखुरा पड़ा है। गञ्जसे जो सड़क नाचना तक गई है, वह जङ्गलसे परिपूर्ण है।

नाचना ग्राममें दो मन्दिर हैं, एक पार्वतीका और दूसरा चतुर्मुख महादेवका। पार्वतीमन्दिरमें अभी कोई मूर्त्ति स्थापित नहीं है; किन्तु महादेवके मन्दिरमें एक प्रकाण्ड चतुर्मुख शिवलिङ्ग देखनेमें आता है यह लिङ्ग प्रायः ४ हाथ ऊंचा है और इसका मस्तक बहुत बड़ा है। इसके चारों मुख पर बहुत सुन्दर चार शिरस्त्राण हैं। उन शिरस्त्राणोंमें मनोरम कारुकार्य अब तक भी अक्षतभावसे वर्त्तमान हैं, इससे जाना जाता है कि इस प्रतिमूर्त्ति पर विद्वेषी मुसलमानोंकी आंखें नहीं पड़ी थीं। उक्त दोनों मन्दिर निविड़ जङ्गलसे ढका हुआ है।

पार्वतीमन्दिरका निर्माण-कौशल और कारुकार्य देख कर आश्चर्य होना पड़ता है। गुप्तराजाओंके समयमें मन्दिरादि और प्रस्तरखोदित मूर्त्तियां जिस ढंगसे बनाई जाती थीं, ये दोनों मन्दिर और दीवारकी तसवीरें भी ठीक उसी ढंगसे बनाई गई हैं। जिस द्वारसे मन्दिरमें प्रवेश होना पड़ता है, उसके ऊपर मकरपृष्ठ पर गङ्गाकी मूर्त्ति और कच्छपपृष्ठ पर यमुनाकी मूर्त्ति स्थापित है। यह अट्टालिका दो तल्लेकी है और चौकोन है, सामनेमें एक प्रवेशद्वार है। द्वितीय तल्लेके बहिर्भाग और अन्तर्भाग दोनों ही साफ सुथरे हैं। प्रकोष्ठकी दीवारमें पहले दो छिद्र थे और उन्हीं छिद्रों हो कर सूर्यकी किरण भीतर जाती और मन्दिरको आलोकित करती थी। आलोकपथकी एक बगल मनुष्य मूर्त्ति और दूसरी बगल सिंहमूर्त्ति थी। लाखुरामें एक शिलालिपि पाई गई है। मालूम होता है, कि यह असंलग्न शिलालिपि अवश्य ही उक्त दो मन्दिरोंमेंसे एक की होगी। उस लिपिमें वाकाटकाधिपति महाराज पृथ्वीषेणके पादानुध्यात व्याघ्रदेवका नाम खुदा हुआ है।

व्याघ्रदेव जयनाथके पिता थे। जयनाथ १७४ और १७७ गुप्तसम्वत्‌में जीवित रहे। अतएव १४० और १५० गुप्तसम्वत्‌में उनके पिताका होना साबित होता है। यह पार्वती-मन्दिर यद्यपि उतना प्राचीन नहीं हो सकता है तो भी उसके निर्माण-कौशल देख कर यह अवश्य प्रतीत होता है, कि वह गुप्तराजाओंके समयमें बनाया गया होगा।

चतुर्मुख महादेवके मन्दिरके साथ पार्वती मन्दिरका कुछ भी सादृश्य नहीं है। केवल इसका एक दरवाजा पूर्वोक्त मन्दिरके दरवाजेके जैसा है और एक पूर्ववत्‌ चौकोन अट्टालिका है। इसका शिखर बहुत ऊंचा है। मन्दिरके बाहरमें भी नाना प्रकारकी छवि हैं। एक स्थानमें चार सिंहमूर्त्ति भग्नावस्थामें भाल के ऊपर बैठी हुई है। यह मन्दिर ६ठी और ७वीं शताब्दीके पहलेका नहीं है।

नाचना (हिं० क्रि०) १ चित्तकी उमङ्गसे उछलना, कूदना तथा इसी प्रकारकी और चेष्टा करना। २ भ्रमण करना, चक्कर मारना, घूमना। ३ इधरसे उधर फिरना, दौड़ना धूपना, स्थिर न रहना। ४ सङ्गीतके मेलमें तालस्वरके अनुसार हावभाव पूर्वक उछलना, कूदना, फिरना तथा इसी प्रकारकी और चेष्टाएं करना। ५ क्रोधमें उद्विग्न और चञ्चल होना, क्रोधमें आ कर उछलना कूदना। ६ थर्राना, कांपना।

नाच-महल (हिं० पु०) नृत्यशाला, नाचघर।

नाचरंग (हिं० पु०) आमोद प्रमोद, जलसा।

नाचार (फा० वि०) १ असहाय, विवश, लाचार। २ व्यर्थ, तुच्छ।

नाचारी (फा० स्त्री०) लाचारी देखो।

नाचिकेत (सं० पु०) १ अग्नि। २ नचिकेता, उद्दालक ऋषिके एक पुत्रका नाम। ३ नाचिकेतोपाख्यान।

महाभारतमें यह उपाख्यान इस प्रकार लिखा है—

नचिकेता महाप्रभावशाली उद्दालकके पुत्र थे। एक समय उद्दालक नदीके किनारे कुश, पुष्प और फलादि भूल आये थे। घर आ कर उन्होंने अपने पुत्रसे वे सब वस्तु वहांसे लानेको कहा। जब नचिकेता नदीके किनारे पहुंचे, तब वे सब चीजें उन्हें न मिलीं और वे घरको लौटे। उद्दालक पुत्रका खाली हाथ देख बहुत बिगड़े और 'बहुत शीघ्र तुम्हें यमदर्शन हो' ऐसा अभिशाप दिया। उद्दालकके इतना कहते न कहते नचिकेताको

प्राणवायु उड़ गई और वे भूमि पर गिर पड़े। पुत्रको मरा देख उद्दालक बहुत विलाप करने लगे। क्रमशः दिन और रात बीत गई, नचिकेता उसी अवस्थामें पड़े रहे। पीछे प्रातःकाल होने पर वे अचिरात् पुनर्जीवित हो उठ कर खड़े हो गये। इस समय वे बहुत दुर्बल हो गये थे और उनके शरीरसे दिव्यगन्ध निकलती थी। उद्दालकने बहुत प्रसन्न हो पुत्रसे कहा, 'वत्स! तुम अपने प्रभावसे सभी शुभलोकोंको देख आए; तुम्हारी यह देह मानवदेह नहीं है।' पिताके इतना कहने पर नचिकेताने अन्यान्य ऋषियोंके सामने उन्हें सम्बोधन करके कहा, "पिता! मैंने आपके आदेशसे यमके घर जा कर सहस्रयोजन विस्तीर्ण सुवर्णकी तरह उज्ज्वल यमसभा देखी। वहां यमने मुझे देख कर बैठनेके लिए एक आसन दिया। मैंने धर्मराजसे कहा,—मैं आपके राज्यमें आया हूं, अभी मैं जिस लोकके उपयुक्त हूं, उसी लोकमें मुझे भेज दीजिए। इस पर यम बोले,—आपके पिता हुताशनके समान तेजस्वी हैं, उन्होंने 'यमदर्शन हो' ऐसा आपसे कहा था, सो आपके यमदर्शन हो गये। अभी आप यहांसे जा सकते हैं। इस पर मैंने बहुत अरजी विनती कर यमसे प्रार्थना की, कि मैं पुण्योपार्जित लोकोंके दर्शन कर घर लौटूंगा, अभी नहीं। तब धर्मराजने मुझे एक उत्कृष्ट रथ पर बिठा वहां भेज दिया। वहां पहुंच कर मैं क्या देखता हूं कि पुण्यात्माओंके लिये नाना प्रकारकी मणि हैं, रत्न हैं और रहनेके लिए सुसज्जित घर भी हैं। वहां जितने प्रकारके उत्तम स्थान हैं उनमेंसे धेनुदानकारीका स्थान ही सबसे उत्तम है। धर्मराजने मुझे उपदेश दिया है, गोदान ही एकमात्र श्रेष्ठ है अतएव आप बिना सोचे विचारे गोदान करने लग जांय। बाद समस्त पुण्योपार्जित लोकोंके दर्शन और यमराजको प्रणाम कर आपके समीप पहुंचा हूं।"

(भारत अनुशासन० ७१ अ०)

कठोपनिषद्में नचिकेताका विवरण इस प्रकार लिखा है,—अत्यन्त धार्मिक वाजश्रवस् नामक कोई राजा थे। उनका दूसरा नाम था गौतम। उन्होंने विश्वजित् नामक एक यज्ञका अनुष्ठान किया। इस यज्ञमें दक्षिणास्वरूप सर्वस्व धन देना होता है। राजाके नचिकेता नामक एक पुत्र था। यज्ञके समाप्त हो जाने पर राजा ऋत्विकोंको दक्षिणा-स्वरूप गो-विभाग करके दे रहे थे। नचिकेता इस समय बहुत बच्चे थे। राजाको ये सब दान करते देख कर नचिकेताके हृदयमें श्रद्धाका सञ्चार हो आया। ऋत्विक्को इस गोदान देते देख उसने पितासे जा कर कहा, 'पितः! क्या किसी ऋत्विक्को मुझे दक्षिणास्वरूप देंगे?' इस प्रकार नचिकेताके दो तीन बार कहनेसे राजा बहुत गुस्सा गए और बोले, 'जा, मैंने तुम्हें यमको दिया।' पीछे राजाने सत्यका पालन करते हुए पुत्रको यमसदन भेज दिया। नचिकेता यमलोक जा कर वहां तीन रात तक ठहरे, उस समय यम ब्रह्मलोकको गए थे। इस कारण यमके साथ उनको भेंट न हुई। बाद जब यम ब्रह्मलोकसे लौटे, तब उन्होंने देखा कि नचिकेता तीन दिनसे अनाहारी अवस्थामें है। इस पर उन्होंने नचिकेतासे कहा, 'तुमने तीन दिनसे कुछ भी खाया नहीं है, अतः तीन जो वर चाहो, वह मांगो।'

यमराजके वचन सुन कर नचिकेताने प्रार्थना की, 'प्रभो! यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं, तो यही वर दीजिए जिससे कि मेरे पिता गौतमके सङ्कल्पकी प्राप्ति हो अर्थात् मैं यमलोकमें आ कर किस प्रकार रहता हूं, यह जो चिन्ता उनके हृदयमें जाग्रत् होगी, सो दूर हो जाय; वे मुझ पर पूर्ववत् प्रसन्न रहें और जब मैं आपके हाथसे मुक्त हो कर घर जाऊं, तो मेरे पिताको एक ऐसी स्मृति हो जाय, कि मानों मैं अभी यमसदनसे आ रहा हूं।' यमने ये सब स्वीकार कर लिये। पीछे नचिकेताने दूसरा वर यह मांगा, कि स्वर्गलोकमें जो जायगी, वे मर्त्यलोककी तरह वहां भी क्षुत्पिपासा, जरा, मृत्यु और शोकातिग हो कर सुखसे अवस्थान करें। यमने दूसरा वर भी दे दिया। अन्तमें नचिकेताने तीसरे वरके लिए इस प्रकार प्रार्थना की, 'मेरे मनमें एक विशेष संशय है, वह यह है, कि जब मनुष्य मर जाता है, तब शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि इन सबके अतिरिक्त जीवात्मा एक और पदार्थ है, लेकिन जीवात्मा नहीं है, कोई ऐसा भी बतलाते हैं, सो क्या बात है, मुझे साफ साफ बतला दीजिए जिससे मेरा यह संशय जाता रहे।' यम नचिकेताकी ऐसी चित्तविशुद्धि देख कर बड़े ही

विस्मित हो गये और तरह तरहके ऐश्वर्यादिका प्रलो· भन दिखाते हुए जिससे यह वर न मांगे, ऐसी कोशिश करने लगे। लेकिन नचिकेताने कहा, 'मैं ऐश्वर्य ले कर क्या करूंगा। यही वर जो मैंने मांगा, एकमात्र अभि· लषणीय है।' इस पर यमने नचिकेताको विषयविरक्ति, चित्तशुद्धि और मोक्षके प्रति ऐकान्तिकी इच्छा जान कर परमात्माके विषयमें उपदेश देते हुए कहा, 'तुम पर· मात्माको जो जानना चाहते हो, यह बहुत कठिन विषय है। मायिक संसारमें वे आच्छन्नभावसे अवस्थान करते हैं, यह केवल ज्ञानसे जाना जाता है। वे अत्यन्त दुर्ज्ञेय और अनादि हैं। अध्यात्मयोग द्वारा उन्हें जान कर विद्वान् लोग हर्ष और शोकसे मुक्त हो जाते हैं। विषयसे चित्तको आकर्षण करके उसे आत्मामें अर्पण करनेका नाम अध्यात्मयोग है।' इस प्रकार यमने तरह तरहके उपदेश दे कर नचिकेताके परमात्म-विषयमें जो सन्देह था, उसे दूर कर दिया। यमने आत्माके विषयमें जो सब गूढ़ उपदेश दिये थे, उन्हें देवता लोग भी नहीं जानते थे।

यमने तीन वरके अतिरिक्त एक और वर दिया था जो इस प्रकार है—नचिकेत शब्दसे अग्निका बोध होता है, अग्नि स्वर्गके सोपान-स्वरूप हैं, वह अग्नि आजसे तुम्हारे ही नामसे पुकारी जायगी। इनके सिवा इन्होंने नचिकेताको तरह तरहकी विचित्र रत्नमालाएँ दी थीं।

समस्त कठोपनिषद्में यम और नचिकेताका वृत्तान्त लिखा गया है। डाक्टर रोयर साहब (Dr. Roer) इस नचिकेताके साथ यूरोपीय प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो (Plato)की तुलना कर गये हैं।

नाचिकेता (सं० पु०) नाचिकेत देखो।

नाचीज़ (फा० वि०) १ तुच्छ, पोच। २ निकम्मा।

नाचीन (सं० पु०) १ दक्षिणमें अवस्थित एक देश। २ इस देशके राजा।

नाज (हिं० पु०) १ अन्न, अनाज। २ खाद्य-द्रव्य, भोजन· सामग्री, खाना।

नाज़ (फा० पु०) १ ठसक, नखरा; चोचला, हाव-भाव। २ घमण्ड, अभिमान, गर्व।

नाज़नीं (फा० स्त्री०) सुन्दर स्त्री, खूबसूरत औरत।

नाज़बू (फा० स्त्री०) मरुवेका पौधा।

नाज़ाँ (फा० वि०) गर्वित, घमण्ड करनेवाला।

नाजायज (अ० वि०) जो नियम विरुद्ध हो, अनुचित, जो जायज न हो।

नाजिम (अ० पु०) १ भारतवर्षके मुसलमानी राज्यकाल में वह प्रधान कर्मचारी जिसके ऊपर किसी देश वा राज्यके समस्त प्रबन्धका भार रहता था। यह राजपुरुष उस देशका कर्त्ता-हर्त्ता होता था और उसकी नियुक्ति सम्राट्की ओरसे होती थी। (वि०) २ प्रबन्धकर्त्ता।

नाजिमउद्दौला—मीरजाफरके पुत्रका नाम। ये भाईमें अकेले थे। अतः पिताके मरने पर अंगरेजोंने इन्होंको उत्तराधिकारी बनानेका विचार किया। जब इनकी उमर बीस वर्षकी थी, तब ये नवाबी पद पर प्रतिष्ठित हुए। केवल २ वर्ष राज्यके बाद १७६५ ई०में इनका देहान्त हुआ। लार्ड क्लाइवने इनके हाथसे राजस्व वसूल करने· का भार ले लिया था। इन्हें मन्त्रिसभाके आज्ञानुसार सभी कार्य करने होते थे। राजा दुर्लभराम, जगत्सेठ, और महम्मद रेजा खाँ उस सभाके अन्यतम सभ्य थे। कम्पनीके एक कर्मचारी मुर्शिदाबादमें रह कर इन लोगोंकी कार्य-प्रणालीकी देख-भाल किया करते थे। नाजिमउद्दौला वार्षिक ५३८६१३१, रु० राजशासनादि· के लिये पाते थे। ये बहुत विलासी थे।

नाजिमउलमुल्क—मुर्शिदाबादके एक नवाब। ये १७८६ ई०में नवाबी पद पर अभिषिक्त हुए।

नाजिर (अ० वि०) १ दर्शक, देखनेवाला। (पु०) २ निरीक्षक, देख-भाल करनेवाला। ३ ख्वाजा, महलसरा।

नाजिरुद्दीन्—अयोध्याके एक नवाब। १८३० ई०में जब इनके पिता गाजिउद्दीन्का शरीरावसान हुआ, तब ये ही नवाब बन बैठे। अयोध्याके प्रधान मन्त्री आगा· मीरके साथ पहलेसे ही इनका विवाद चला आ रहा था। नवाबीपद ग्रहण करनेके बाद इन्होंने मन्त्रीके प्रति बाह्य सद्भाव दिखलाया तो सही, लेकिन थोड़े ही दिनोंके अन्दर उनका गुप्त उद्देश्य प्रकट हो गया। ये मन्त्रीको कार्यच्युत करके उसकी सम्पत्ति जब्त कर लेनेकी चेष्टा करने लगे। मन्त्रीके जो जमीन जामिनमें थी ये उसे भी हड़प करनेकी कोशिश करने लगे। लेकिन वृटिश गवर्मेण्टने ऐसा न होने दिया।

नाजिबउद्दौला—रोहिलखण्डके एक शासनकर्त्ता। अली महम्मदके शासनकालमें ये रोहिलखण्ड आ कर पहले सामान्य सेनानीके पद पर नियुक्त हुए। धीरे धीरे सैनिक विभागमें उच्च पद पाते हुए अन्तमें राजा बन गये। उस समय इनकी उपाधि 'खाँ' थी। पीछे असीम साहस और पराक्रमका परिचय दे कर इन्होंने १७५७ ई०में 'उद्दौला' की उपाधि पाई।

१७६१ ई०में महाराष्ट्रों और अहमदशाह अवदलीके साथ जो लड़ाई छिड़ी थी उसमें ये भी मौजूद थे। युद्धके बाद ये पुनः अमीर उल्-उमराके पद पर नियुक्त हुए। इस समय इनके हाथ दिल्लीनगरका शासनभार और राजपरिवारका तत्त्वावधान-भार सौंपा गया। इन्होंने नजीराबाद नामका एक नगर बसाया और वहीं १७७० ई०में इनकी कब्र हुई।

नाजिस—दाक्षिणात्यकी भूतयोनिविशेष। वहाँके लोगोंका विश्वास है, कि यदि कोई मनुष्य हमेशा रोवे, अधिक बड़ बड़ावे, शरीरको इधर उधर हिलावे डुलावे खानेमें अनिच्छा प्रकट करे, तो जानना चाहिए कि उसके शरीरमें भूतने आश्रय लिया है। उनका कहना है, कि सभी मनुष्योंको भूत लग सकता है, लेकिन पुरुषकी अपेक्षा छोटे बच्चोंको और छोटे बच्चोंकी अपेक्षा स्त्रियोंको अधिकको सम्भावना रहती है। विशेषतः स्त्रियोंको गर्भावस्थामें और बालक बालिकाओंको जन्मसे ले कर बारह वर्ष तककी उमरमें भूतोंका अधिक डर रहता है। प्रेतात्मा प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त है, एक घरभूत और दूसरा बाहरी भूत। यदि घरमें सभी इच्छाएँ पूर्ण होनेके पहले किसीकी मृत्यु हो जाय, तो वह घरभूत होता है। इस प्रकारका भूत कभी कभी अपना नाम 'सम्बन्ध' बतलाता है, अर्थात् परिवारके साथ उसका सम्बन्ध है। यह भूत बिना कारणके किसीको कुछ नहीं कहता, लेकिन अपने परिवारके लोगोंके प्रति अत्याचार किया करता है।

बाहरके भूतोंमें निम्नलिखित भूत प्रसिद्ध हैं। यथा—अखाबुश, असरस, ब्रह्मपुरुष, ब्रह्मराक्षस, अथवा खविस, चुड़ेल, चन्दकाई, दक्षिण, डाइल, यक्षिन्, लाग्व, महशोवा, मस्कोवा, मुजा, नाजिस् इत्यादि।

यदि किसी मुसलमानको उसका मनोरथ पूर्ण हुए बिना मृत्यु हो जाय, तो उसकी आत्मा भूतयोनिमें जन्म ले कर 'नाजिस्' नामसे प्रसिद्ध होती है। नाजिस् एक बार जब किसीके हृदयमें अधिकार कर लेता है, तब उसे भगाना कठिन हो जाता है। केवल मुसलमान ओझा इसे भगा सकते हैं।

नाजुक (फा० वि०) १ सुकुमार, कोमल। २ पतला, महीन, बारीक। ३ सूक्ष्म, गूढ़। ४ थोड़ी असावधानीसे भी जिसके टूटनेका डर हो, थोड़े ही आघातसे नष्ट हो जानेवाला। ५ जिसमें हानि या अनिष्टकी आशङ्का हो।

नाजुकदिमाग (अ० वि०) १ जो रुचिके प्रतिकूल थोड़ी-सी बात भी न सह सके, जो जरा सी बात पर नाक भौं सिकोड़े। २ तुनकमिजाज, चिड़चिड़ा।

नाजुकबदन (फा० वि०) १ कोमल और सुकुमार शरीर-का। २ डोरिएकी तरहका एक महीन कपड़ा। ३ एक प्रकारका गुललाला।

नाजुकमिजाज (हिं० वि०) नाजुकदिमाग देखो।

नाजो (फा० स्त्री०) १ नाज करनेवाली स्त्री, ठसकवाली स्त्री। २ लाड़ली प्यारी स्त्री।

नाट (सं० पु०) नटभावे घञ्। १ नृत्य, नाच। २ देश-विशेष, लाढ़, एक देशका नाम जो पहले कर्णाटकके पास था। ३ रागविशेष, एक रागका नाम। इसे कोई मेघरागका और कोई दीपकरागका पुत्र मानते हैं। इस रसमें वीररस गाया जाता है। (त्रि०) ४ तद्देश-वासी, उस देशका रहनेवाला।

नाटक (सं० त्रि०) नट-ण्वुल्। १ नर्त्तक, नाट्य पर अभिनय करनेवाला। (क्ली०) २ कामाख्या-पर्वतके निकटस्थित पर्वतभेद, एक पहाड़ जो कामाख्या पर्वतके समीप अवस्थित है। इस पर्वत पर महादेव और पार्वती रहती हैं। २ रङ्गशालामें नटोंकी आकृति, हावभाव, वेश और वचन आदि द्वारा घटनाओंका प्रदर्शन, वह दृश्य जिसमें स्वांगके द्वारा चरित्र दिखाए जांय। ३ गद्य पद्य और प्राकृत भाषादिमय ग्रन्थविशेष, वह ग्रन्थ या काव्य जिसमें स्वांगके द्वारा दिखाया जानेवाला चरित्र हो, दृश्यकाव्य, अभिनयग्रन्थ। पर्याय—रूपक, महारूपक।

नाटकका विषय साहित्यदर्पणके षष्ठाङ्कमें इस प्रकार लिखा है—नाटकको गिनती काव्योंमें है। काव्य दो प्रकारके माने गये हैं—दृश्य और श्रव्य। जो काव्य अभिनीत होता है, अर्थात् रङ्गमञ्च पर नटगण खेलते हैं, उसीका नाम दृश्यकाव्य है। नाटक दृश्यकाव्यका एक अङ्ग है। यह दृश्यकाव्य महामुनि वाल्मीकिके समकालिक भरतमुनिसे सृष्ट हुआ है। कहते हैं, कि भरतमुनिने यह ब्रह्मासे सीख कर गन्धर्व और अप्सराओं-को सिखाया था। धीरे धीरे इसका प्रचार सारे संसारमें हो गया।

अग्निपुराणमें भी नाटकके लक्षणादिका निरूपण है। उसमें एक प्रकारके काव्यका नाम प्रकीर्ण कहा गया है। इस प्रकीर्णके दो भेद हैं—श्राव्य और अभिनेय। 'सामने लाने' अर्थात् दृश्य सम्मुख उपस्थित करनेको अभिनय कहते हैं। इस अभिनयके चार भेद हैं—सत्त्व, वाक्य, अङ्ग और आहरण। अग्निपुराणमें दृश्यकाव्य वा रूपकके २७ भेद कहे गये हैं—नाटक, प्रकरण, डिम, ईहामृग, समवकार, प्रहसन, व्यायोग, भाण, वीथी, अङ्क, त्रोटक, नाटिका, सट्टक, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका प्रस्थान, भाणिका, भाणी, गोष्ठी, हल्लीशक, काव्य, श्रीगदित, नाट्यरासक, रासक, उल्लाप्य और प्रेङ्खण। सामान्य और विशेष लक्षणकी गति दो प्रकारकी है; सामान्य लक्षण सबमें रहेगा और विशेष लक्षण कहीं कहीं। पूर्वरङ्गके निवृत्त होनेसे देश, काल, रस, भाव, विभाव, अनुभाव, अभिनय और अङ्कस्थिति ये सब सामान्य पदवाच्य हैं। नाट्य और उसका उपाय त्रिवर्गका साधन है। पूर्वरङ्ग प्रभृति उसकी इति-कर्त्तव्यता यथाविधि करनी होती है। पूर्वरङ्गके बत्तीस अङ्ग हैं। देवता और गुरुका नमस्कार तथा स्तुति और गो-ब्राह्मण राजाके आशीर्वादादि ग्रहण करनेका नाम नान्दी है। नान्दीके बाद सूत्रधारको रूपक करके गुरुपूर्वक्रमसे वंशप्रशंसा और कविका यशोकीर्त्तन, पीछे काव्यका सम्बन्ध और अर्थनिर्देश करना चाहिये। नटी, विदूषक और पारिपार्श्विक ये सब मिल कर मनोहर वाक्य द्वारा सूत्रधारके साथ जो आलाप करते हैं, उसका नाम है आमुख वा प्रस्तावना।

प्रस्तावनाके तीन भेद हैं, प्रवृत्तक, कथोद्घात और प्रयोगातिशय। जिस प्रस्तावनामें सूत्रधार उपस्थित कालका अवलम्बन करके वर्णन करते हैं, पात्रके उस आश्रयमें प्रवेश करनेको प्रवृत्तक कहते हैं। जिसमें सूत्रधारके वाक्य और वाक्यका अर्थ ग्रहण करके पात्र प्रविष्ट होता है, उसका नाम कथोद्घात है। जिसमें सूत्रधार प्रयोग-समूहमें प्रयोगको वर्णना करता है और तदनुसार पात्र प्रविष्ट होता है, उसे प्रयोगातिशय कहते हैं।

किसी इतिवृत्तका अवलम्बन करके नाटकादिकी वर्णना करनी होती है, इसीसे इतिवृत्त ही नाटकका शरीर माना गया है। सिद्ध और उत्प्रेक्षित ये दो इतिहासके प्रभेद हैं। इनमेंसे आगमदृष्ट जो है, वही सिद्ध है और जो कविप्रणीत है, वह उत्प्रेक्षित। नाटकमें बीज, विन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य ये पांच प्रकृति हैं अर्थात् इनसे प्रयोजनसिद्धि होती है। इन पांचों प्रकृतिका नाम कोई कोई पञ्चचेष्टा बतलाते हैं। प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्ति, सद्भाव और नियमिताफलप्राप्ति ये पांच प्रकारके फलयोग हैं। मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्ष, निर्वहण ये पांच प्रकारकी सन्धियां हैं। जो बात मुंहसे कहते ही चारों ओर फैल जाय और फलसिद्धिका प्रथम कारण हो, उसे बीज कहते हैं। जहां नाना प्रकारके अर्थ और रससे बीजकी उत्पत्ति हो तथा काव्यमें वह शरीरानुगत रूपसे विद्यमान रहे, वही मुख कहलाता है। इष्टार्थकी रचना, वृत्तान्तका अनुपक्षय, प्रयोगको रागप्राप्ति, गुह्यका गोपन, आश्चर्य आख्यान, प्रकाश्यका प्रकाश ये सब वर्णना जिसमें पाई जायँ, वह अङ्गहीन नरके जैसा नाटक और काव्यादिमें शोभा नहीं देता। देशसमूहके मध्य भारतवर्ष और कालसमूहके मध्य सत्यादि युगत्रय है। नाट्यमें देशकालभेदसे प्राणधारियोंमें सुखदुःखादिका वर्णन करना होता है और इसमें नृत्य, गीत तथा शृङ्गारादि रस वर्णनीय है। (अग्निपु० ३३८ अ०)

अग्निपुराणके मतसे नाटकके जो सब लक्षण लिखे गये, उनसे नाटकका विषय भलीभांति समझमें नहीं आता। किन्तु साहित्यदर्पणकारोंने जो सब लक्षण बतलाये हैं, उनसे नाटकका विषय सम्यक्-रूपसे जाना जाता है।

पहले लिख चुके हैं, कि दृश्यकाव्यके अन्तर्गत नाटक है। यह अभिनेय है अर्थात् अभिनय करके सामाजिक-वर्गको दिखाना होता है। एक नट रामका रूप धारण करके रामवृत्तान्तका वर्णन करने लगा। उस समय नाट्यदर्शक उसीको राम समझ कर अवस्थानुसार हर्ष और शोकादि प्रकट करने लगे। नट अन्य रूप धारण करके अभिनय करता है, इस कारण उसका नाम रूपक रखा गया है। अवस्थानुरूप अनुकरणका नाम अभिनय है। यह अभिनय चार प्रकारका है—आङ्गिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक। जो अभिनय अङ्गकी चेष्टासे किया जाता है, उसे आङ्गिक, वचनोंसे जो किया जाता है, उसे वाचिक, भेष बना कर जो किया जाता है उसे आहार्य तथा भावोंके उद्रेकसे कम्पस्वेद आदि द्वारा जो अभिनय होता है, उसे सात्त्विक कहते हैं।

यह अभिनेय दृश्यकाव्य दो प्रकारका है—रूपक और उपरूपक। रूपकके दश भेद हैं—रूपक, नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अङ्कवीथी और प्रहसन। उपरूपकके अठारह भेद हैं—नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेङ्खण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीश और भाणिका।

जनसाधारण अभिनेय काव्यमात्रको ही नाटक कहते हैं, लेकिन यथार्थमें वह नहीं है। नाटक दृश्यकाव्यके अन्तर्गत है। पर हाँ, नाटक अभिनेय काव्यमें सर्वप्रधान है। ऊपरमें रूपक और उपरूपकके जो सब नाम बतलाये हैं उनमेंसे प्रत्येकका लक्षण भिन्न भिन्न है, लेकिन सभी नटसे किये जाते हैं। नाटकके जितनेमें लक्षण बतलाए गये हैं, उनमेंसे प्रायः अनेक लक्षण अन्यान्य रूपक और उपरूपकमें रहते हैं तथा उनके अलावा और भी कितने विशेष लक्षण देखे जाते हैं।

यथाक्रमसे दृश्यकाव्यके कुछ लक्षण नीचे दिये जाते हैं। नाटक-लक्षण—

"नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पंचसन्धिसमन्वितम्।
विलासर्द्ध्यादि गुणवद् युक्तं नानाविभूतिभिः॥
सुखदुःखसमुद्भूतिनानारसनिरन्तरम्।
पंचादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्त्तिताः॥
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान्।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः॥
एक एव भवेदंगी शृंगारो वीर एव वा।
अंगमन्ये रसाः सर्वे कार्यं निर्वहणेऽद्भुतम्॥
चत्वारः पंच वा मुख्याः कार्यव्यापृतपूरुषाः।
गोपुच्छाग्रसमग्रन्तु बन्धनं तस्य कीर्त्तितम्॥"

(साहित्यद० ६।२७७ अ०)

किसी एक ख्यातवृत्त अर्थात् प्रसिद्धवृत्तान्तका अवलम्बन करके नाटक लिखना चाहिए अर्थात् रामायण, महाभारत वा कोई पुराण और वृहत्कथा आदि जितने ग्रन्थ चिरमान्य हैं उन सब ग्रन्थोंसे एक वृत्तान्त ले कर नाटक तैयार करना चाहिये। स्वकपोलकल्पित वृत्तान्त होनेसे वह नाटक नहीं कहला सकता। नाटक पञ्च-सन्धियुक्त विलास, नाना प्रकारकी सम्पत्ति, विभूति, सुख-दुःख तथा नाना प्रकारके रसोंसे युक्त होना चाहिये। उसमें पाँचसे ले कर दश तक अङ्क होने चाहिये। नाटकका नायक धीरोदात्त तथा प्रख्यात-वंशका कोई प्रतापी पुरुष या राजर्षि अर्थात् दुष्मन्तके जैसा नृपति वा रामचन्द्रके जैसा अलौकिक क्षमता-शाली राजा अथवा श्रीकृष्णके जैसा महापुरुष होना चाहिये।

नाटकके प्रधान वा अङ्गी रसशृङ्गार और वीर हैं। शेष रस गौण रूपसे आते है। शान्ति, करुणा आदि जिस रूपकमें प्रधान हों वह नाटक नहीं कहला सकता। सन्धिस्थलमें कोई विस्मयजनक व्यापार होना चाहिये। उपसंहारमें मङ्गल ही दिखाया जाना चाहिये। वियोगान्त नाटक संस्कृत अलङ्कार-शास्त्रके विरुद्ध है। चार वा पंच मनुष्योंको प्रधान व्यक्तिके कार्यमें रहना चाहिये। अङ्क गोपुच्छके जैसे होने चाहिये अर्थात् गोपुच्छ जिस प्रकार पहले मोटा और पीछे पतला होता गया है, उसी प्रकार सभी अङ्कोंको बड़ा छोटा बनाना चाहिए। ५से ले कर १० तकके अङ्कसे काम चल सकता हैं। प्रायः सभी नाटकोंमें ७ अङ्क देखनेमें आते हैं। अभिज्ञानशकुन्तल और उत्तररामचरित आदि प्राचीन सभी नाटक सात अङ्कोंमें समाप्त हैं। इन सब अङ्कोंमें गर्भाङ्क करना होता है।

अङ्क—जहां पर नाटकीय इतिवृत्तके एक अंश का शेष होता हो, वहां परिच्छेदको कल्पना करनी चाहिए। उसी परिच्छेदका नाम अङ्क है। एक अङ्कके शेष होने पर सभी नट रङ्गभूमिसे चले जाते हैं। पीछे नये नये नट आ कर अभिनयका आरम्भ करते हैं। इस अङ्कमें नायकके चरित्रका वर्णन रसभावादि द्वारा उज्ज्वल रूपसे करना चाहिए। जिन सब पदोंका प्रयोग करना होगा, उनका अर्थ साफ साफ समझमें आ जाना चाहिए। छोटे छोटे गद्ययुक्त वाक्यका प्रयोग करना चाहिए। अत्यन्त समास-बहुल वाक्य और अधिक पद्य-प्रयोग दोषावह हैं।

नाटककी अवतारणा करनेमें पहले पूर्वरङ्ग, पीछे सभापूजा अर्थात् सभास्थित लोगोंकी प्रशंसा, बाद कवि-संज्ञा अर्थात् नाटकका कथन और प्रस्तावना करनी चाहिए। इसी प्रस्तावना द्वारा पात्रप्रवेश अर्थात् प्रकृत रूपसे नाटकका आरम्भ होता है। रङ्गालयकी विघ्नशान्ति के लिए जो क्रिया अभिनयके पहले की जाती है, उसे पूर्वरङ्ग कहते हैं। इस पूर्वरङ्गका नाम मङ्गलाचरण है। इस पूर्वरङ्गके प्रत्याहारादि अर्थात् ध्यान धारणा आदि अनेक अङ्ग हैं। ये सब अङ्ग रहने पर भी रङ्गालयमें विघ्न-शान्तिके लिए नान्दीपाठ अर्थात् देव, द्विज, नृप आदिका आनन्दजनक स्तव करना चाहिए। जिसमें देवता, ब्राह्मण और नृपादिको शुभानुध्यानपरा स्तुति रहती है, उसका नाम नान्दी है। नान्दी, 'नन्दयति' इति व्युत्पत्ति द्वारा नान्दी शब्द बना है। आनन्द देनेवाली स्तुतिका नाम नान्दी है। यह नान्दी माङ्गल्य शङ्ख, चन्द्र आदिकी सूचक होनी चाहिए। इस नान्दीमें बारह वा अठारह पद होने चाहिए। सुप् अथवा तिङ् विभक्त्यन्त पदको पद कहते हैं अर्थात् पहले एक ऐसे वाक्यकी रचना करनी चाहिए जिसमें देवताओंकी स्तुति और राजाओं-के मङ्गल वर्णित रहे और जिसमें ८ वा १२ पद हों। जहां पर नान्दी ८ पदोंमें समाप्त होती है, वहां वह अष्ट-पदा और जहां १२ पदोंमें समाप्त होती है, वहां द्वादश-पदा कहलाती है।

सूत्रधार रङ्गभूमिमें उपस्थित हो कर अभिप्रेय अभि-नय कार्यकी विघ्नपरिसमाप्तिके लिए जो मङ्गलाचरण करता है, उसीका नाम नान्दी है। स्तवादि द्वारा देव-ताओंको आनन्दित अर्थात् प्रसन्न करता है। इसीसे इस मङ्गलाचरणका नाम नान्दी रखा गया है। नाटकादि ग्रन्थके आरम्भमें जो एक वा एकसे अधिक श्लोक रहते हैं, वह नाटककी नान्दी नहीं है।

नाट्यशास्त्रमें नान्दीके जो सब लक्षण बतलाए गए हैं, वे सब श्लोक उन सब लक्षणोंके नहीं हैं। यथार्थमें वे सब श्लोक ग्रन्थकारके मङ्गलाचरण हैं। 'नान्द्यन्ते सूत्र-धारः' यहींसे ग्रन्थका आरम्भ होता है। ग्रन्थारम्भमें मङ्गलाचरणका होना आवश्यक है, इस कारण कवि लोग स्वप्रणीत नाटकके प्रारम्भमें मङ्गलाचरण लिख देते हैं। 'नान्द्यन्ते' नान्दीके बाद अर्थात् अभिनय आरम्भ करनेसे पहले देवता प्रणामादिरूप नान्दी कीर्तन करके ग्रन्थारम्भ करना होता है। यह नान्दी नाटकका अङ्ग नहीं है। अभिनेतृ-वर्गके अधिकारी सूत्रधारका काम करते हैं। यह काम समाप्त करके वे कहते हैं 'अलमतिविस्तरेण' अधिक कहनेकी जरूरत नहीं अर्थात् नान्दीका अधिक आडम्बर करके समय नष्ट करना निष्प्रयोजन है।

नट पहले पूर्वरङ्गका शेष कर चला जाता है। बाद सूत्रधार आता है। इसे स्थापक भी कहते हैं। यह भी नाटकीय वस्तु, बीज, मुख और पात्र आदिको प्रवेश करा कर चला जाता है, अर्थात् रङ्गमञ्च पर आ कर उसे पहले काव्यार्थ-सूचक मधुर श्लोक द्वारा रङ्ग प्रसादित करना चाहिए। बाद जो नाटक खेला जायगा, उसका अंश और प्रशंसा आदि कर देनी चाहिए। यथा—

"श्रीहर्षो निपुणः कविः परिषदप्येषा गुणग्राहिणी।
लोके हारि च वत्सराजचरितं नाट्ये च दक्षा वयम्॥"

(रत्नावली)

रत्नावलीमें लिखा है, कि "कवि श्रीहर्ष अति सुदक्ष थे, यह सभा भी गुणग्राहिणी है, पृथिवीतल पर वत्सराज-चरित्र अत्यन्त मनोहारी है और हम लोग भी नाट्यकार्यमें दक्ष हैं।" इस वाक्यसे सबोंका गुण गाया गया।

उसके बाद नट, नटी, विदूषक, पारिपार्श्विक वा सूत्रधार ये लोग परस्पर जो कथोपकथन करते हैं, उससे प्रकृत वृत्तान्त जाना जाता है। इसीको प्रस्तावना कहते हैं। सूत्रधार रङ्गभूमिमें प्रविष्ट हो कर नान्दीके बाद

नटविशेषके साथ कथोपकथनमें नाटकप्रणेता कवि और अभिनेय नाटकका उल्लेख करता है तथा प्रसङ्गक्रमसे नाटकीय इतिवृत्त अवतीर्ण कर चुकनेके बाद अपने सहचरोंके साथ रङ्गभूमिसे चला जाता है। पश्चात् नाटक शुरू होता है। इस अंशका नाम प्रस्तावना है अर्थात् ये लोग मधुर आलाप करते हुए जनताके सामने प्रकृत वृत्तान्त सुना कर चले जाते हैं, इसीको प्रस्तावना कहते हैं। ये लोग परस्परमें जो आलाप करते हैं, वह मधुर होना चाहिये।

पार्श्ववर्त्ती अनुचरका नाम पारिपार्श्विक है। यह प्रस्तावना पांच प्रकारकी है,—उद्घात्यक, कथोद्घात, प्रयोगातिशय, प्रवर्त्तक और अवलगित। इनमेंसे जो अगतार्थ है अर्थात् जिसका अर्थ सम्यक् रूपसे समझमें न आवे, उस अर्थको अच्छी तरह जाननेके लिये अन्य पद द्वारा जिस स्थानमें नियोजित किया जाता है उसका नाम उद्घात्यक प्रस्तावना है। अर्थात् एक ऐसे वाक्यकी रचना करनी होगी जिसका पद अगतार्थ हो अर्थात् प्रकृत विषयके साथ अर्थ की कोई सम्बन्ध न हो। इस अगतार्थ पदको लेकर प्रकृत विषयका अर्थ जिसमें भलीभांति मालूम हो जाय ऐसे वाक्यका विस्तार कर सूत्रधारको चला जाना चाहिए, अब पात्रप्रवेश अर्थात् प्रकृत विषयका आरम्भ होगा, ऐसी प्रस्तावनाको उद्घात्यक कहते हैं।

उदाहरण—मुद्राराक्षस-नाटककी प्रस्तावनामें लिखा है-

"क्रूरग्रहः स केतुश्चन्द्रं सम्पूर्णमण्डलमिदानीम्।
अभिभवितुमिच्छतिबलाःदिति॥

अनन्तरं नेपथ्ये—'आः क एष मयि जीवति सति चन्द्रगुप्तमभिभवितुमिच्छतीति॥" (मुद्रारा०)

अतिक्रूर केतुग्रह सम्पूर्णमण्डलचन्द्रको बलपूर्वक अभिभव करनेकी इच्छा करता है। यहां पर केतुग्रह चन्द्रमाको ग्रास करता है, यही समझा जाता है। किन्तु हठात् सूत्रधारकी यह बात सुन कर आकाश गूँज उठा "मेरे चाणक्यके जीते जी राजा चन्द्रगुप्तको बलपूर्वक अभिभव करनेकी कौन इच्छा कर सकता है? यहां पर केतुग्रहका अर्थ क्रूरग्रह और दूसरा अर्थ मलयकेतु है। केतुग्रह जैसा क्रूर है, मलयकेतु भी वैसा ही है। पूर्णिमाका चन्द्र ही ग्रस्त होता है, राजा चन्द्रगुप्त भी परिपूर्ण-मण्डल हैं। सूत्रधारने इस अबोधितार्थ पदको ले कर ही नाटकका प्रस्तावित विषय शुरू हुआ और अन्य पद द्वारा इस पदके अर्थको भी सुसङ्गति हुई अर्थात् मलयकेतुकी सहायतासे क्या राक्षसने परिपूर्ण-मण्डल चन्द्रगुप्तको बलपूर्वक पराभव करनेकी इच्छा की है, यह कथा सुननेके साथ ही सूत्रधार चला गया। अब नाटकीय वस्तुका आरम्भ हुआ। उस समय सभी नट अभिनय करने लगते हैं। अन्यान्य प्रस्तावनाके लक्षण तो लिखे गये, लेकिन विस्तारके भयसे यहां उनका उदाहरण नहीं दिया गया। जरा गौर कर विचारनेसे ही वह आपसे आप स्थिर हो जायगा।

कथोद्घात-प्रस्तावना—

"सूत्रधारस्य वाक्यं वा समादायार्थमस्य वा।
भवेत् पात्रप्रवेशश्चेत् कथोद्घातः स उच्यते॥"

(साहित्यद०)

नट सूत्रधारके वाक्य वा वाक्यविशेषका अवलम्बन कर यदि पात्र प्रवेश करे अर्थात् सूत्रधार जिस वाक्यका प्रयोग करेगा, उसी वाक्य वा उसी वाक्यार्थका अवलम्बन कर नाटकीय विषय आरम्भ हो, तो कथोद्घातप्रस्तावना होगी।

रत्नावलीमें सूत्रधारका वाक्य और वेणीसंहारमें वाक्यार्थ ग्रहण कर पात्रका प्रवेश है।

प्रयोगातिशय—

"यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा॥"

(साहित्यदर्पण ६ परि०)

यदि किसी एक प्रयोगमें दूसरा प्रयोग हो जाय और उस प्रयोगका लक्ष्य करके यदि पात्र प्रवेश करे, तो प्रयोगातिशय-प्रस्तावना होती है।

प्रवर्त्तक—

"कालं प्रवृत्तमाश्रित्य सूत्रधृक् यत्र वर्णयेत्।
तदाश्रयश्च पात्रस्य प्रवेशस्तत् प्रवर्त्तकम्॥"

(साहित्यदर्पण ६ परि०)

उपस्थित कालका आश्रय ले कर सूत्रधार वर्णन करेगा और उस वर्णनका उपलक्ष करके पात्रके प्रवेश

कारमेंसे प्रबन्धका प्रस्तावना होती है अर्थात् एक नट उपस्थित कालका वर्णन करेगा और उसी वर्णनका लक्ष्य करके प्रकृत विषय आरम्भ होगा।

अवलगित —

"यत्रैकत्र समावेशात् कार्यमन्यत् प्रसाध्यते।
प्रयोगे खलु तज्ज्ञेयं नाम्नावलगितं बुधैः॥"

(साहित्यदर्पण)

जहां पर एक विषयका सादृश्य रहता है, वहां उस सदृशताका लक्ष्य करके यदि पात्र प्रवेश करे, तो अवगलित प्रस्तावना होती है। अर्थात् सूत्रधार एक ऐसे विषयका वर्णन करेगा जो प्रस्ताविक विषयके जैसा हो। पीछे उस वाक्यका लक्ष्य करके पात्रप्रवेश अर्थात् प्रकृत विषय आरम्भ होगा।

अभिज्ञानशकुन्तलनाटकमें यह अवलगित-प्रस्तावना देखी जाती है।

जिन सब प्रस्तावनाओंके लक्षण लिखे गये, उनमेंसे किसी एक लक्षणाक्रान्त प्रस्तावनाका होना आवश्यक है। अपनी इच्छानुरूप यदि प्रस्तावना हो, तो वह नाटक नहीं कहा जा सकता। सूत्रधार नेपथ्योक्त अर्थात् आकाश-भाषित सुन कर प्रस्तावना करेगा। प्रस्तावनाके समाप्त होने पर सूत्रधार रङ्गालयसे चला जायगा। बादमें प्रस्तावितविषयका प्रकृत अभिनय आरम्भ होगा।

वर्त्तमान समयमें जो सब नाटकाभिनय होते हैं, उनमें किसी प्रकारकी प्रस्तावना देखी नहीं जाती। आरम्भमें ही ऐसे प्रकृत विषयका आरम्भ होना चाहिये। ख्यातवृत्तका अवलम्बन करके नाटककी रचना करनी चाहिए और ख्यातवृत्तके साथ प्रासङ्गिक अन्यान्य मनोहर वाग्विन्यासका भी होना आवश्यक है। इस वर्णनामें यदि कुछ अतिरञ्जित भी हो, तो भी वह दोषावह नहीं होता।

यह नाटकीय वस्तु दो भागोंमें विभक्त की जा सकती है, एक आधिकारिक और दूसरी प्रासङ्गिक। अधिकारीका जो विषय वर्णनीय होगा, उसका नाम है आधिकारिक और उस अधिकारीके उपकारके लिये जो सब विषय वर्णित होंगे उनका नाम प्रासङ्गिक है। मान लो, रामचरितका अभिनय हो रहा है। राम यहां पर अधिकारी हुए और इनके उपकारके लिये सुग्रीवादि चरित्रवर्णन प्रासङ्गिक हुआ।

नाटकमें स्थानका अच्छी तरह विचार करके पताका-स्थान निर्दिष्ट करना होता है अर्थात् जहां पर पताका-स्थान सन्निवेश करनेमें वर्णनाका चमत्कारित्व हो, वैसे स्थानमें पताकाप्रयोग उत्तम माना जाता है।

पताका —

"यत्रार्थे चिन्तितेऽन्यस्मिन् तल्लिङ्गोऽन्यः प्रयुज्यते।
आगन्तुकेन भावेन पताकास्थानकन्तु तत्॥"

(साहित्यदर्पण)

किसी एक अर्थका विचार करनेमें उस अर्थका लक्षणान्वित एक दूसरा अर्थ यदि अतर्कितभावसे आ पहुंचे, तो पताकास्थान होता है। अर्थात् किसी एक विषयका वर्णन होता है, अतर्कितभावसे एक दूसरा विषय उपस्थित हो कर यदि पूर्व वाक्यका समर्थन करे, तो उसे पताका कहते हैं।

उदाहरण—उत्तर-रामचरितमें लिखा है,—रामचन्द्र सीतादेवीसे कहते हैं, "अयि प्रियतमे! तुम्हारी कोई बात मुझे असह्य नहीं; यदि असह्य है, तो केवल तुम्हारा विरह।" इसी बीचमें प्रतिहारी आ कर कहता है, 'देव! दुर्मुख उपस्थित!' जिस समय रामने कहा, कि एकमात्र तुम्हारा विरह ही असह्य है, उसी समय 'उपस्थित' ऐसा शब्द सुननेमें आया। इससे पूर्वकथित असह्य विरह उपस्थित हुआ यही समझा जाता है। यहां पर यही पताकास्थान हुआ। नाटकके बीच बीचमें इस प्रकारके पताकास्थानकी वर्णना करनी चाहिये। यह पताकास्थान भी कई प्रकारका है।

"सहसैवार्थसम्पत्तिर्गुणवत्युपचारतः।
पताकास्थानकमिदं प्रथमं परिकीर्तितम्॥"

(साहित्यद०)

यदि अतर्किकभावसे अर्थ-सम्पत्ति लाभ हो, तो प्रथम पताकास्थान होगा।

द्वितीय पताकास्थान—नानार्थयुक्त श्लिष्ट रचना-वाक्यका आश्रय ले कर यदि वाक्प्रयोग किया जाय, तो द्वितीय पताकास्थान होता है।

"वचः सातिशयश्लिष्टं नानाबन्धसमाश्रयम् ।
पताकास्थानकमिदं द्वितीयं परिकीर्त्तितम् ॥"
(साहित्यद०)

तृतीय पताकास्थान—फलरूप कार्यका सूचक होनेसे तृतीय पताकास्थान होता है।

चतुर्थ पताकास्थान—सुश्लिष्ट अर्थद्वय पदयुक्त वर्णना-में किसी अर्थान्तरके उसका सूचक होनेसे चतुर्थ पताकास्थान होता है।

नाटकमें नायक वा रसके अनुचित वा विरुद्ध जो सब वर्णना हैं, उनका परित्याग करना उचित है। अथवा किसी दूसरे स्थान पर ऐसे वाक्यकी योजना करनी चाहिए।

"यद्वस्यादनुचितं वस्तु नायकस्य रसस्य वा।
विरुद्धं तत्परित्यज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत् ॥"
(साहित्यद०)

यथा, रामचन्द्र द्वारा छिपके बालिवध, इस प्रकारकी घटना आदिको विरुद्ध वस्तु कहते हैं। उदात्तराघव-नाटकमें रामचन्द्र द्वारा बालिवध-वृत्तान्त परिकीर्त्तित हुआ है।

नाटकीय इतिवृत्तका नीरस अंश जब प्रकृत प्रस्तावमें वर्णित होता है, तब वह सामाजिक-वर्गका विरक्तिकर हो सकता है। यही कारण है, कि नाटककर्त्ताओंने अप्रधान व्यक्तिके मुखमें उस अंशका संक्षेपसे कीर्त्तन करके सरस-अंशका अवतरण किया है। नाटकके ऐसे अंशको विष्कम्भक कहते हैं। विष्कम्भक अङ्कको प्रस्तावनाके जैसा होता है। यह अङ्कके आदिमें ग्रथित रहता है। नाटकमें प्रवेशक वर्णना करनी होती है।

प्रवेशकलक्षण—प्राकृतभाषा रचित कथाविभागका नाम प्रवेशक है। इस प्रवेशकको उभयाङ्कके मध्य और शेषको विष्कम्भके मध्य जानना चाहिए।

चूलिका—यवनिकाके मध्यस्थित सभी मनुष्य जिस कार्यकी सूचना दे देते हैं, उसका नाम चूलिका है।

अङ्कावतार—अङ्कावसानमें सूत्रधार जिस अङ्ककी अवतारणा करते हैं, उसे अङ्कावतार कहते हैं। जो अङ्क समाप्त हो रहा था, उस अङ्कमें जो सब नट अभिनेता थे, उन्हींमेंसे कोई अभिनेता इस अङ्कावतारकी सूचना दे दे। इसको गर्भाङ्क कहते हैं। किन्तु आज कलके नाटक-समूहमें देखा जाता है, कि कई एक गर्भाङ्क मिल कर एक अङ्क होता है। यह अङ्कावतार ठीक उस तरहका नहीं है। यह अङ्कावतार प्रति अङ्कमें करना नहीं होता, किसी किसी अङ्कमें इसे सन्निवेश कर सकते हैं। अङ्कके मध्य अङ्क रखनेके कारण इसका नाम गर्भाङ्क रखा गया।

अङ्कमुख—जिस अङ्कमें सब अङ्कोंकी घटनाएं सूचित रहती हैं उसे अङ्कमुख कहते हैं, उसका दूसरा नाम बीजार्थख्यापक भी है।

नाटकमें प्रधान व्यक्तिको वध वर्णना नहीं करनी चाहिए और न रस तथा वस्तुका ही परस्पर तिरोधान करना चाहिए। अर्थात् रसमें इतिवृत्तयोग और इतिवृत्तमें रसयोग जिससे हो, इसी भावसे वर्णना करनी चाहिए।

नाटकमें प्रयोजन सिद्धिके कारण ५ हैं—बीज, विन्दु, पताका, प्रकरी और कर्म। इन पांचोंका यथायोग्य स्थानमें वर्णन करना चाहिए। जो बात मुँहसे कहते ही चारों ओर फैल जाय और फलसिद्धिका प्रथम कारण हो, उसे बीज कहते हैं; जैसे, वेणीसंहारनाटकमें भीमके क्रोध पर युधिष्ठिरका उत्साहवाक्य द्रौपदीके केशमोचनका कारण होनेके कारण बीज है। नाटकके यथायोग्य स्थानमें बीजकी वर्णना करनी होती है।

विन्दु—सन्दर्भसमूहका विच्छेद होनेसे परवर्त्ती घटनाके साथ जो सम्बन्ध रहता है, उसका नाम विन्दु है, अर्थात् कोई एक बात पूरी होने पर दूसरे वाक्यसे उसका सम्बन्ध न रहने पर भी उसमें ऐसे वाक्य लाना जिनको दूसरे वाक्यके साथ असङ्गति न हो; वही 'विन्दु' कहलाता है।

बीचमें किसी व्यापक-प्रसङ्गके वर्णनको पताका कहते हैं—जैसे उत्तरचरितमें सुग्रीवका और अभिज्ञानशाकुन्तलमें विदूषकका चरित्र-वर्णन। पताका नायकका स्वकीय फलान्तर नहीं है। एक देशव्यापी चरित्रवर्णनको प्रकरी कहते हैं। आरम्भ की हुई क्रियाकी फलसिद्धिके लिए जो कुछ क्रिया जाय उसे कार्य कहते हैं; जैसे, रामलीलामें रावणका वध।

नाटकमें फलाभिलाषोको ५ अवस्थाओंका वर्णन करना चाहिए। यथा— आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम।

प्रधान फलसिद्धिके लिये जो अत्यन्त औत्सुक्य है, उसे आरम्भ कहते हैं।

प्रधान फलप्राप्तिके लिए अतित्वरान्वित जो व्यापार है, उसका नाम यत्न है। विघ्न और विघ्ननाश द्वारा जो फलप्राप्तिको सम्भावना है, उसे प्राप्त्याशा कहते हैं।

सभी विघ्नोंके अपाकृत होनेसे निश्चित जो फलप्राप्ति है, उसका नाम नियताप्ति है और जब सभी फललाभ एककालीन होते हैं, तब ऐसी अवस्थाको फलागम कहते हैं।

नाटकमें जो वर्णनीय विषय है उसमें यथाक्रमसे इन्हीं पांच विषयोंको वर्णना रहेगी अर्थात् क्रम क्रमसे इसी प्रकार ५ भागोंमें विभक्त कर वृत्त समाप्त करना चाहिए।

नाटकको मुखसन्धिमें अर्थात् पहले आरम्भयोगिनी अवस्थाको वर्णना, प्रतिमुखसन्धिमें यत्नयोगिनी अवस्थाको वर्णना, गर्भसन्धिमें प्रत्याशा-योगिनी अवस्थाको वर्णना, विमर्षसन्धिमें नियताप्ति-योगिनी अवस्थाकी वर्णना और उपसंहृति सन्धिमें फलप्राप्तिको वर्णना करनी होती है। अर्थात् क्रमशः इसी प्रकार आरम्भ करके उपसंहार करना होता है। उपसंहारमें सब प्रकारके सम्पद्लाभकी वर्णना करनी होती है। नाटकमें इस प्रकारके वर्णनीय विषय ५ भागोंमें विभक्त हुए हैं,—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्ष और उपसंहृतिसन्धि। इनके लक्षण यथाक्रमसे लिखे जाते हैं।

जिस अंशमें नाना अर्थ और नाना रसादिको सम्भावना हो, उसे मुखसन्धि कहते हैं। अर्थात् पहले नाना प्रकारके रसादि वर्णनच्छलसे मूलवर्णनीय विषयका आरम्भ कर देना होगा। जिस प्रकार रत्नावलीमें नाना रसादि वर्णन-प्रसङ्गमें रत्नावली और वत्सराजका एक दूसरेके प्रति अनुराग; शकुन्तलामें जिस तरह दुष्मन्त और शकुन्तला दोनोंके दर्शनमात्रसे ही आसक्ति, यही मुखसन्धिमें आरम्भ करना होता है।

मुखसन्धिमें आरम्भ हो जाने प्रधान फलसे सम्बन्धसे जैसा जो प्रकाश है, उसे प्रतिमुखसन्धि कहते हैं। प्रतिमुखसन्धिमें ईषत् प्रकाशयुक्त जो मूलवृत्तान्त रहता है उसमें कहीं तो बिलकुल तिरोभावयुक्त और कहीं अनुसन्धानयुक्त जो सम्यक् भावप्रकाश है, उसका नाम गर्भसन्धि है। गर्भसन्धिमें प्राप्त मूलकारणके अभिसम्पात आदि द्वारा अन्तराययुक्त होनेसे वह विमर्षसन्धि कहलाता है।

चारों ओर विनिवेशित समस्त अर्थ एक प्रयोजनसे उपस्थित होता है अर्थात् नायक सभी प्रकारकी अर्थसम्पत्ति लाभ करता है, इसीको उपसंहृतिसन्धि कहते हैं अर्थात् उपसंहारमें सभी प्रकारका मङ्गल प्राप्त होता है, ऐसी वर्णना करनी होगी। जो सब नायक विरहकातर थे, उन्हें विरहिणीसे भेंट करा कर अर्थसम्पत्तिलाभका वर्णन करना आवश्यक है। इस उपसंहारमें वियोगवर्णना नहीं करनी चाहिये।

पहले नाटककी दश अङ्गवर्णना करनी चाहिये। यथा—उत्क्षेप, परिकर, परिन्यास, विलोभन, युक्ति, प्राप्ति, समाधान, विधान, परिभावना और उद्भेद। सन्दर्भ प्रतिपादित अर्थकी समुत्पत्ति अर्थात् संक्षिप्तभावसे उत्थापनका नाम उत्क्षेप है। संक्षिप्तभावसे उत्थित अर्थका बाहुल्यरूपसे विस्तारका नाम परिकर है। पूर्वविस्तृत वर्णनके निश्चयरूपसे संकीर्तन करनेका नाम परिन्यास है। पहले वृत्तान्तका संक्षेपरूप वर्णन, पीछे बहुलीकरण, बहुलीकरणके बाद निश्चय कथन इन तीन अङ्गोंको अलग अलग वर्णना करनी होगी। गुणसमूहवर्णनका नाम विलोभन है। कर्तव्यार्थके निश्चयको युक्ति कहते हैं। सुखलाभका नाम प्राप्ति है। मूलकारणका आगमन अर्थात् प्रधान लक्ष्यरूपसे कीर्तनका नाम समाधान है। सुखदुःखविमिश्रित कार्यका नाम विधान और औत्सुक्ययुक्त वाक्यका नाम परिभावना है। बीजार्थके अर्थात् प्रकृत वर्णनीय विषयके अङ्कुरोदयको उद्भेद कहते हैं। ये दश अङ्ग मुखसन्धिमें वर्णनीय हैं।

प्रति मुखसन्धिमें तेरह अङ्ग रहते हैं—विलास, परिसर्प, विधुत, तापन, नर्म, नर्मद्युति, प्रगमन, विरोध, पर्युपासन, पुष्प, वज्र, उपन्यास और वर्णसंहार। सुरतसम्भोग-विषयमें सम्यक् प्रयोगका नाम विलास है।

यथा—शकुन्तलामें राजा दुष्मन्त शकुन्तलाको लक्ष्य

करके कहते हैं,—"प्रिया शकुन्तलाको पाना मेरे लिये अत्यन्त सुलभ तो नहीं है, लेकिन उसे देखनेकी मेरी उत्कट इच्छा है। अकृतकार्य होने पर भी कामदेव स्त्री-पुरुषके बीच अनुराग उत्पन्न कराते हैं।" यहां पर दुष्मन्तके सुरथविषयक चेष्टाका वर्णन होनेसे ही विलास हुआ।

अभिलषित व्यक्तिके दर्शन नहीं होनेसे उसके अन्वेषणका नाम परिसर्प है। पहले कृतानुनयका अर्थात् आदिमें अनुनय करनेसे उसे स्वीकार नहीं करनेका नाम विधूत है। इष्ट वस्तुका जब कोई उपाय देखा नहीं जाता, तब तापन अर्थात् ताप होता है। परिहासवाक्यको नर्म कहते हैं। परिहासजात धैर्यका नाम नर्मद्युति है, विपद्प्राप्तिका नाम विरोध, कृतानुनयका नाम पर्युपासन, प्रकर्षपूरक वाक्यका नाम पुष्प, परुषवचनका नाम वज्र, प्रसन्नता-सम्पादनका नाम उपन्यास और चातुर्वर्ण्यके मिलनका नाम वर्णसंहार है। नाटकके प्रति मुखसन्धिमें उक्त तेरह अंगोंको यथाक्रमसे वर्णना करनी चाहिये।

नाटकको गर्भसन्धिमें तेरह अङ्ग वर्णनीय हैं—अभूताहरण, मार्ग, रूप, उदाहरण, क्रम, संग्रह, अनुमान, प्रार्थना, आक्षिप्ति, त्रोटक, अधिबल, उद्वेग और विद्रव।

व्याजाश्रय-वाक्यवर्णनका नाम अभूताहरण, यथार्थ कथनका नाम मार्ग, वितर्कयुक्त वाक्यका नाम रूप, उत्कर्षयुक्त वचनका नाम उदाहरण, निर्विकार चित्तमें तत्त्वोपलब्धि अर्थात् यथार्थानुभवका नाम क्रम, प्रियकाय और दानद्वारा कार्य करनेका नाम संग्रह, चिह्नद्वारा साध्यज्ञानका नाम अनुमान, रति अर्थात् अनुराग, हर्ष और उत्सव आदि द्वारा जो प्रार्थना की जाती है उसका नाम प्रार्थना, गुह्यार्थकथनका नाम क्षिप्ति, सकोप वाक्य प्रयोगका नाम त्रोटक, कपटता द्वारा अभिप्रायके अनुसरणका नाम अधिबल और अनिष्टाशङ्का तथा त्रासवशतः जो उद्वेग उत्पन्न होता है उसका नाम विद्रव है।

नाटकको विमर्शसन्धिमें भी निम्नलिखित तेरह अङ्गोंको वर्णना करनी चाहिये। यथा—अपवाद, सम्फेट, व्यवसाय, द्रव, द्युति, शक्ति, प्रसङ्ग, खेद, प्रतिषेध, विरोध, प्ररोचना, विमर्श, आदान और छादन। इन एकका लक्षण यथाक्रमसे लिखा जाता है।

दोषकथनका नाम अपवाद, क्रोधपूर्वक कथनका नाम सम्फेट, प्रतिज्ञा अर्थात् कार्यनिर्देश और साधन-निर्देशके सम्बन्धका नाम व्यवसाय, शोकवेगादि द्वारा उत्पन्न गुरु लोगोंके व्यतिक्रमका नाम द्रव, भर्त्सन और भयप्रदर्शन द्वारा उत्तेजनका नाम द्युति, विद्वेषके प्रशमनका नाम शक्ति, मन और चेष्टासमुत्पन्न श्रमका नाम खेद, अभीष्ट विषयके प्रतीघातका नाम प्रतिषेध, जो कार्य प्रायः ध्वंस-सा हो गया था, उसकी प्राप्तिका नाम विरोधन, उपसंहारके अर्थ विषय प्रदर्शित होनेका नाम प्ररोचना, कार्य-समूहके सम्यक् ग्रहण करनेका नाम आदान और कार्यवशतः अपमानादिके सहनका नाम छादन है।

उपसंहृतसन्धिमें अर्थात् उपसंहारमें चौदह अङ्गोंकी वर्णना करनी होती है। यथा—सन्धि, विरोध, ग्रथन, निर्णय, परिभाषण, कृति, प्रसाद, आनन्द, समय, उपगूहन, भाषण, पूर्ववाक्य, काव्यसंहार और प्रशस्ति ये ही चौदह अङ्ग हैं। इनका लक्षण यथाक्रमसे लिखा जाता है।

बीज अर्थात् विषयके उद्भावनका नाम सन्धि, कर्त्तव्य कार्यके अन्वेषण अर्थात् नाटकीय प्रधान कर्त्तव्यके अनुसन्धानका नाम विरोध, प्रधान कर्त्तव्यकार्यके उपन्यास अर्थात् कीर्त्तनका नाम ग्रथन है। वेणीसंहारमें इसका उदाहरण यों हैं—भीम पाञ्चालीको सम्बोधन कर कहते हैं, 'हे पाञ्चालि! मेरे जीवन रहते दुःशासन कर्षक विपर्यस्त वेणिका तुम अपने हाथसे संहार नहीं कर सकती, मैं स्वयं उसका संहार कर देता हूं।' वेणीसंहार नाटकमें वेणीसंहार प्रधान कर्त्तव्यकार्य है,—यहां पर उसका कीर्त्तन होनेसे ग्रथन लक्षणका समावेश हुआ। अनुभूतार्थके कथन अर्थात् कृतकार्यके कथनको निर्णय और कुशलसूचक वाक्य कथनको परिभाषण कहते हैं। लब्धविषयोंका प्रकाशरूपसे स्थिरीकरणका नाम कृति, शुश्रूषादिका नाम प्रसाद, अभिलषित व्यक्तिके प्राप्तिसम्बलित मनको प्रीतिका नाम आनन्द, सब प्रकारके दुःखोंका अपगमका नाम समय, अद्भुत सम्प्राप्ति अर्थात् आश्चर्य-

भाव—प्रियजन प्रभृतिके समागमका नाम उपगूहन, प्रियवाक्यकथन और दानादिका नाम भाषण, पूर्ववाक्यके समुचित प्रत्युत्तरदानका नाम पूर्ववाक्य है, अर्थात् नाटकके प्रारम्भके पहले कटूक्तिका प्रयोग किया है, पीछे उनमेंसे प्रधान व्यक्तियोंको समुचित शास्तिविधान करके उस वाक्यके यथोचित उत्तरदानको पूर्ववाक्य कहते हैं। अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिका नाम काव्यसंहार है अर्थात् अन्तिम दृश्यमें जो सब मङ्गल अभिलषणीय हैं, जिसके साथ जिसका मिलान होना आवश्यक है, उसीको उपसंहार कहते हैं।

अनन्तर—राजा, देश वा ब्राह्मण आदिकी शान्तिसूचक प्रार्थनाका नाम प्रशस्ति है। नाटकीय विषयका उपसंहार हो जानेसे राजाओंकी मङ्गलसूचक प्रार्थना करनेके बाद अभिनेताको रङ्गमञ्चसे चला जाना चाहिये।

नाटकके पूर्वलिखित ६४ प्रकारके अङ्ग हैं। पञ्चसन्धिमें यथाक्रमसे यही सब अङ्गविन्यास करने होते हैं। रसके अनुरोधसे जब कोई अङ्ग निर्दिष्ट सन्धिमें वर्णित न हो कर अन्य सन्धिमें वर्णित हो, तो वह दोषावह नहीं होगा। पहले रसकी ओर भलीभांति लक्ष्य करना चाहिये। रसभङ्ग करके अङ्गादिका प्रयोग सुसङ्गत नहीं है।

नाटकमें यथाविधि सब अङ्गोंका प्रयोग करनेसे ६ प्रकारके फल प्राप्त होते हैं—इष्टार्थरचना, आश्चर्यलाभ, वृत्तान्तविस्तर, रागप्राप्ति, प्रयोगके मध्य अर्थात् वृत्तान्तके मध्य गोप्यका गोपन और प्रकाश्यका प्रकाशन। अङ्गोंके यही छः प्रकारके फल हैं।

जिस तरह अङ्गहीन मनुष्य कोई कार्य नहीं कर सकता, उसी तरह अङ्गहीन काव्यका भी अभिनय आदिमें प्रयोग करना सुसङ्गत नहीं है। नायक और प्रतिनायक सन्धिका अङ्ग करके सम्पादन करे, उसके अभावमें पताकादि और पताकादिके अभावमें बीज आदिका सम्पादन करना चाहिये।

पहले जो सब लक्षण बतलाये गये हैं, शास्त्रकी मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये उसका अलग अलग विन्यास करना उचित नहीं, लेकिन रसका अनुगामी हो कर जहां जिस अङ्गका वर्णन करनेसे रसकी कोई क्षति न हो, बल्कि उसका उत्कर्ष हो, ऐसे भावसे अङ्गादि संस्थापन करनेको 'इष्टार्थ रचना' कहते हैं। रस कार्यके प्राणस्वरूप शाणका विनष्ट अर्थात् रसभङ्ग करके अङ्गादिका प्रयोग करना सुसङ्गत नहीं है।

जो सब वृत्तियां जिन सब रसोंके साथ विरुद्ध हैं, उन्हें परित्याग करना चाहिए।

शृङ्गाररस-वर्णनमें कौशिकी वृत्ति, वीररसमें सात्त्वती, रौद्र और वीभत्सरसमें आरभटी, इसके सिवा अन्य रसमें भारती वृत्ति होगी। यही चार वृत्तियां नाटककी जननी-स्वरूप हैं, अतः इन्हीं चार वृत्तियोंमें नाटककी रचना करनी चाहिये।

सभी नायिकाओंके मनोहर वेशभूषासे विभूषिता, उनके साथकी सहचरियोंके भी नृत्य-गीत और कामोपभोगके उपचार तथा मनोहर विलासयुक्त वर्णनाका नाम कौशिकी है। इसके चार अङ्ग हैं—नर्म, नर्मस्फूर्ज, नर्मस्फोट और नर्मगर्भ।

सामाजिक वर्गके मनोरञ्जनकर चतुरताके साथ क्रीड़नका नाम नर्म है। यह नर्म तीन प्रकारका है—शुद्धहास्यविहित, सशृङ्गार हास्यविहित और सभयहास्यविहित।

सुखकर भयान्त नव सङ्गमका नाम नर्मस्फूर्ज है। भावादि अर्थात् आकार, इङ्गित और चेष्टा द्वारा भावाभिव्यक्ति अल्पमात्राके सूचित शृङ्गारको नर्मस्फोट कहते हैं। नायक-नायिकाके प्रथम दर्शनसे वा गुणावली सुन कर एक दूसरेके प्रति जो अनुराग उत्पन्न होता है उसे नर्मस्फोट कहते हैं। नायकका गुप्तभावसे जो व्यवहार करता है उसका नाम नर्मगर्भ है। जिस प्रकार मालती-माधव नाटकमें माधवने सखीका रूपधारण कर मालतीको मरणेच्छासे उसे निवृत्त किया था। इसी प्रकार वर्णनको नर्मगर्भ कहते हैं।

सत्त्व, शौर्य, त्याग, दया, सरलता, आनन्द, शोकराहित्य, चमत्कारित्व और अल्पशृङ्गारयुक्त वर्णनका नाम सात्त्वती वृत्ति है। अर्थात् शौर्य आदिकी वर्णनासे सात्त्वती वृत्ति कह सकते हैं। इस वृत्तिके चार भेद हैं—उत्थापक, संहात्य, संलाप और परिवर्त्तक।

शत्रुके उत्तेजनकारी वाक्यका नाम उत्थापक है।

सम्मर्षा आदिका परस्पर पृथक् करण संघात्य, नाना भाव समाश्रय अर्थात् अर्थयुक्त वाक्यमें संलाप और प्रारब्धसे (उद्यतकार्यसे) अन्य कार्य करणका नाम परिवर्त्तक है।

माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोधसे उद्देलित, वध, बन्धन आदि इन सब विषयोंको जो वर्णना की जाती है उसे आरभटीवृत्ति कहते हैं। इसके भी चार भेद हैं; वस्तूत्थापन, सम्फेट, संक्षिप्ति और अवपातन। मायादि द्वारा जब वस्तु उत्थापित होती है, तब उसे वस्तूत्थापन कहते हैं। क्रुद्ध और सत्वरद्वयके समाघात अर्थात् सम्यक् प्रहारका नाम सम्फेट, शिल्पी अथवा अन्य प्रकारकी वस्तु-रचनाका नाम संक्षिप्ति, प्रवेश, त्रास, निष्क्रामण, हर्ष और विद्रव सम्भूत होनेका नाम अवपातन है। जहां पर संस्कृत वाक्यका अधिक प्रयोग है, वहां उसे भारतीवृत्ति कहते हैं।

पहले जो सब लक्षणादि लिखे गये, नाटकमें वे सब लक्षण अवश्य रहने चाहिये। प्रति सन्धिमें प्रत्येक अङ्ग, रसादिमें सात्वती आदि वृत्ति और रसका अविरुद्ध यथा स्थान पर उपन्यास करनेसे नाटक पदवाच्य होगा, अङ्गादि हीन होनेसे अङ्गहीन होगा।

संस्कृत नाटकमें ये ही सब लक्षण विशेषतः देखे जाते हैं; हिन्दी तथा बङ्गला आदि नाटकोंमें उतना नहीं।

नाट्योक्ति—जो दूसरेके सुनने लायक न हो, उसे स्वगत कहते हैं, अर्थात् अभिनयके समय कोई भी नट सन्निहित व्यक्तिसे छिपानेके लिए जिस विषय विशेषका मनही मन आन्दोलन करता है, उसका नाम स्वगत है।

जो सब कोई सुन सके, उसे प्रकाश कहते हैं अथवा अभिनयके समय कोई भी नट दूसरेसे छिपानेके लिए विषय-विशेषका मन ही मन आन्दोलना करके अथवा सन्निहित व्यक्ति जिससे वह सुन न सके, ऐसे अनुच्च स्वरसे सबके सामने जो कहा जाता है उसे प्रकाश कहते हैं।

बहुतसे लोगोंके बीच यदि किसीके साथ कुछ बातचीत करनी हो, तो दूसरे मनुष्यकी ओर हस्ताङ्गुलि निक्षेप करके अनुच्चस्वरसे उसे कहे, ऐसे कथनका नाम जनान्तिक है।

पात्र छोड़ कर दूसरेसे जो वचन उच्चारित होता है, उसे आकाशभाषित कहते हैं। जिससे दूसरा सुन न सके, ऐसे अनुच्चस्वरसे अर्थात् छिप करके जो कथन किया जाता है उसे अपवार्य कहते हैं।

नाटकादिमें दत्ता, सेना वा सिद्धा-अन्त ये सब नाम वेश्याओंके रखने चाहिये। यथा—कामदत्ता, वसन्तसेना आदि। वणिकोंके नाम भी दत्त होते हैं, यथा—धनदत्त आदि। प्रस्तावनामें कथोपकथनके बहाने सूत्रधार दूसरे नटको मारिष भाषामें सम्बोधन करे। मारिष शब्दका अर्थ आर्य, माननीय और आदरणीय है।

प्रस्तावनामें कथोपकथनके बहाने दूसरा नट सूत्रधारको भावशब्दमें सम्बोधन करे। भाव शब्दका अर्थ विज्ञ वा बोद्धा है।

नाटकमें भृत्य राजाको स्वामी वा देव, अधम लोक भट्ट, राजर्षि वा विदूषक वयस्य, ऋषिगण राजन् अथवा उनको जैसी इच्छा हो, वैसा सम्बोधन कर सकते हैं।

नाटकमें विद्वान् पुरुषोंकी भाषा संस्कृत और विदुषी स्त्रियोंकी भाषा शौरसेनीमें तथा इनके सङ्गीतमें महाराष्ट्री भाषाका रहना आवश्यक है। राजान्तःपुर-चारियोंकी मागधी भाषा, चेट (राजभृत्य), राजपुत्र और श्रेष्ठियोंकी अर्द्धमागधी, विदूषककी भाषा प्राच्या, धूर्त्तकी भाषा अवन्तिका, योध और नागरिकोंकी भाषा दाक्षिणात्या, शकारकी भाषा शकारी, दिव्योंकी वाह्लीक, द्रविड़ोंकी द्राविड़ी, आभीरोंकी आभीरा, पुक्कसादिकी चाण्डाली, काष्ठ और पत्रजीवी तथा अङ्गारकारादिकी आभीरी अथवा शावरी, पिशाचोंकी पैशाची, उत्कृष्टा चेटियोंकी शौरसेनिका, बालक, वर्वर, नीच, दैवज्ञ, उन्मत्त और आतुरोंकी शौरसेनिका, ऐश्वर्योन्मत्त, दारिद्र्योपहत और भिक्षुओंकी भाषा प्राकृत होनी चाहिये। उत्कृष्टा स्त्रीकी भाषा संस्कृत होगी। जिस प्रकारके मनुष्य होंगे, उन्हें उसी प्रकारकी भाषाका प्रयोग करना चाहिये। जो सब नियम लिखे गये, उन्हींके आधार पर संस्कृत नाटक प्रस्तुत करना चाहिये।

नाटकके बहुतसे अलङ्कार हैं, जिन्हें नाट्यालङ्कार कहते हैं। नाट्यालङ्कार देखो।

अब प्रकरणादि रूपकके विषय यथाक्रमसे लिखे जाते हैं।

प्रकरण—यह दृश्यकाव्यमें द्वितीय है। इसके

अन्यान्य लक्षण प्रायः नाटकसे हैं। फर्क इतना ही है, कि इसमें वृत्त लौकिक वा कविकल्पित होगा अर्थात् इस प्रकरण नामक नाटककी रचना करनेमें इसका वृत्तान्त लोकप्रसिद्ध वा कविकल्पित होना आवश्यक है। इसका प्रधान शृङ्गार रस होना चाहिए। इसका नायक धीरप्रशान्त है अर्थात् नाटकके जैसा उच्च श्रेणीका व्यक्ति नहीं है। जिसके दया दाक्षिण्य प्रभृति लौकिक साधारण गुण हैं, उसीको धीरप्रशान्त कहते हैं। यह नायक मन्त्री, ब्राह्मण अथवा सम्भ्रान्त-वणिक् और धर्मकामार्थ पर होगा तथा स्वर्गसाधनभूत अक्षयधर्म और स्त्री-पुत्र एवं धनादि विषयोंमें सर्वदा तत्पर रहेगा।

नायिका भेदसे इस प्रकरणको तीन श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं। किसी प्रकरणमें नायिका कुलजा अर्थात् कुलीना होगी, किसीमें भद्रवंशकी प्रतिपालिता कामिनी वा सहचरी होगी और किसी प्रकरणकी नायिका वेश्या एवं प्रथम दो प्रकारकी अर्थात् कुलजा और वेश्या नायिका हो सकती है तथा इसमें कितव, द्यूतकार, विट, चेट आदि परिव्याप्त होंगे।

मृच्छकटिक, मालतीमाधव आदि प्रकरण लक्षणाक्रान्त हैं। प्रकरणमें समाजकी प्रतिकृतिकी वर्णना कर सकते हैं। मृच्छकटिक नाटकमें नायक ब्राह्मण और नायिका वेश्या, मालतीमाधवमें अमात्य नायक तथा 'पुष्पभूषित' प्रकरणमें वणिक् नायक है।

भाण—इसमें धूर्त्तचरित्र और उसकी नाना प्रकारकी दशावर्णना होगी। यह एक अङ्कमें पूरा होगा। इसमें एक नट अर्थात् नायक मात्र अभिनय क्रीड़ा करेंगे। यह नट रङ्गभूमि पर आ कर नाना स्वरों और नाना प्रकारके भाव भङ्गियोंमें विविध व्यक्तियोंको सम्बोधन करके सभासदोंको प्रसन्न करेंगे। यह नायक आकाशभाषित सुन कर उत्तर प्रत्युत्तर देंगे। इनकी भाषा विशुद्ध संस्कृत होगी। सौभाग्य और शौर्यवर्णना द्वारा शृङ्गार वा वीर रसकी सूचना करनी चाहिये। लीलामधुकर और सारदातिलक आदि भाण श्रेणीभुक्त हैं।

व्यायोग—इसका इतिवृत्त पुराणादि प्रसिद्ध होगा। यह गर्भसन्धि और विमर्श सन्धिहीन होगा और एक अङ्कमें पूरा होगा। स्त्री छोड़ कर दूसरे कारणसे युद्ध-वर्णना करनी होगी। इसका नायक अलौकिक क्षमताशाली पुरुष होगा। हास्य, शृङ्गार और शान्तरस भिन्न रस इसका नायक होगा। सौगन्धिकहरण, धनञ्जय विजय आदि व्यायोग श्रेणीके अन्तर्गत हैं।

समवकार—इसका वृत्त ख्यात होगा। देवता और असुरोंका युद्ध-वर्णन ही इसका प्रधान उद्देश्य रहेगा। यह आद्योपान्त वीररससे भरा रहेगा। नाटकोक्त पञ्चसन्धिमेंसे इसमें चार सन्धि सन्निवेशित करनी चाहिए। केवल विमर्शसन्धि निषिद्ध है। नायक धीरोदात्त होगा, प्रत्येकका फल भिन्न भिन्न होगा। उष्णिक् और गायत्रीछन्दमें यह रचा जायगा। वीररस ही इसमें प्रधान है। हस्ती अश्वादिसे परिपूर्ण युद्धक्षेत्र तुमुलसंग्राम और नगरादि ध्वंसका उत्तम रूपसे वर्णन होना चाहिए। यह तीन अङ्कोंमें सम्पूर्ण होगा। 'समुद्रमन्थन' नाटक इसी समवकार श्रेणीके अन्तर्गत है। यह नाटक अभी दुष्प्राप्य है।

डिम, वीर और भयानक रसप्रधान रूपक है। यह चार अङ्कोंमें समाप्त होता है। असुर वा देवता इसके नायक हैं। डिम देखो।

ईहामृग—यह चार अङ्कोंमें पूरा होता है और करुणरसप्रधान है। देव देवी इसकी नायक-नायिका हैं। प्रेम और कौतुक वर्णन इसका प्रधान उद्देश्य है। ईहामृग देखो।

अङ्क—यह अङ्करूपक एक अङ्कमें सम्पूर्ण होता है। किसी प्रसिद्ध वृत्तान्तको ले कर इसकी रचना की जाती है। यह करुणरस प्रधान है। इसमें भूरि शृङ्गार और अन्यान्य रसोंका समावेश होना चाहिए। 'शर्मिष्ठा-ययाति' एक अङ्कनामक रूपक है।

वीथि—इसके सभी लक्षण भाणसे हैं। यह भी एक अङ्कमें पूरा होता है। दशरूपकके मतानुसार इसमें दो अङ्क होने चाहिए।

प्रहसन—यह हास्यरसप्रधान रूपक है और एक अङ्कमें सम्पूर्ण होता है। समाजकी कुरीतिका संशोधन और हास्यजनकका विवरण करना इसका मुख्य उद्देश्य है। राजा, राजपारिषद्, धूर्त, उदासीन, भृत्य

और वेश्या ये सब प्रहसनके पात्र होंगे। इसमें नीच-जातीय पुरुषगण स्त्रियोंकी तरह प्राकृत भाषामें कथोपकथन करेंगे। हास्यार्णव, कौतुकसर्वस्व और धूर्त्त-समागम आदि प्रहसन श्रेणीभुक्त हैं।

यही दश प्रकारके रूपक हैं जिनका विवरण संक्षिप्तभावसे लिखा गया। अभिनेय ग्रन्थ मात्रको ही जनसाधारण नाटक समझते हैं। इस कारण यहां पर उनका लक्षण देना दोषावह नहीं होगा।

उपरूपक—यह १८ प्रकारका है। प्रत्येकका विवरण संक्षिप्तभावसे लिखा जाता है। विशेष विवरण तत्तद् शब्दमें देखो।

नाटिका—नाटिका देखो।

त्रोटक—यह ५से ९ अङ्कोंका हो सकता है। पार्थिव और स्वर्गीय इसके प्रधान वर्णनीय विषय हैं। विक्रमोर्वशी आदि त्रोटक ग्रन्थ है।

गोष्ठी—एक अङ्कमें सम्पूर्ण होता है। इसके नाट्य-प्रदर्शक ९।१० पुरुष और ५।६ स्त्री है। 'रैवतमदनिका' नाटक गोष्ठीके अन्तर्गत है।

सट्टक—इसमें एक आश्चर्य गल्प आद्योपान्त प्राकृत-भाषामें रचा जायगा। 'कर्पूरमञ्जरी' इसीके अन्तर्गत है।

नाट्यरासक—एक अङ्कमें समाप्त होता है। वर्णितव्यविषय प्रेम और कौतुक है। इसमें शुरूसे आखिर तक नृत्य और सङ्गीत रहेगा। नर्मवती और विलासवती आदि नाट्यरासक हैं।

प्रस्थान—यह प्रायः नाट्यरासक सदृश है। किन्तु इसके नायक और नायिका आदि नीच जातिके होंगे। यह भी तालवय-स्वरसंयुक्त नृत्यगीतसे परिपूर्ण है और दो अङ्कोंमें समाप्त होता है।

उल्लाप्य—एक अङ्कमें पूरा होता है। इसका वृत्तान्त पौराणिक होगा। प्रधान वर्णनीय विषय प्रेम और हास्यरस है। बीच बीचमें सङ्गीत होगा। 'देवीमहादेवम्' इसी श्रेणीके अन्तर्गत है।

काव्य—एक अङ्कमें परिपूर्ण होता है। इसमें प्रेमविषयकी वर्णना होगी। बीच बीचमें सङ्गीत और कविता रहेगी। 'यादवोदय' एक काव्य नामक उपरूपक है।

प्रेङ्खण—एक अङ्कमें पूरा होता है। यह वीररसप्रधान होगा। नीच श्रेणीको व्यक्ति इसका नायक होगा। 'वालिवध' इसी श्रेणीके अन्तर्भुक्त है।

रासक—यह हास्यरसोद्दीपक उपरूपक है और एक अङ्कमें सम्पूर्ण होता है। इसके अभिनेता ५ हैं। नायक नायिका ये दोनों उच्च वंशके होंगे। नायिका बुद्धिमती होगी और नायक मूर्ख होगा। 'मेनकाहित' एक रासक है।

संलापक—एकसे चार अङ्कोंमें पूरा होता है। इसका नायक प्रचलित धर्मके विरुद्ध मतावलम्बी होगा। अधिकांश जगह युद्धादिकी वर्णना रहेगी। 'मायाकापालिक' इसी श्रेणीके अन्तर्गत है।

श्रीगदित—एक अङ्कमें सम्पूर्ण होता है। इसकी नायिका लक्ष्मी है, अधिकांश जगह सङ्गीत होगा। 'क्रीड़ारसातल' इसी श्रेणीके अन्तर्भुक्त है।

शिल्पक—इसमें चार अङ्क होते हैं। श्मशान इसका रङ्गस्थल है। नायक ब्राह्मण है और प्रतिनायक चण्डाल। ऐन्द्रजाल और आश्चर्य घटनाका वर्णन करना इसका प्रधान उद्देश्य है। 'कनकावतीमाधव' इसी श्रेणीके अन्तर्गत है।

विलासिका—एक अङ्कमें समाप्त होता है। प्रेम और कौतुक इसका वर्णनीय विषय है।

दुर्मल्लिका—यह हास्यरसप्रधान है और चार अङ्कोंमें समाप्त होता है। "विन्दुमती" इस श्रेणीके अन्तर्भुक्त है।

हल्लीश—एक अङ्कमें पूरा होता है। इसका आद्योपान्त सङ्गीत और नृत्यसे भरा रहता है। अभिनय कार्यमें एक पुरुष और ८।१० स्त्रियोंकी आवश्यकता है। यह बहुत कुछ अपेरा (Opera)से मिलता जुलता है। 'केलि-रैवतक' इसीके अन्तर्गत है।

भाणिका एक अङ्कमें पूरा होता है। हास्यरस इसका प्रधान वर्णनीय विषय है। 'कामदत्ता' भाणिकाके ही अन्तर्गत है।

दश प्रकारके रूपक और अठारह प्रकारके उपरूपकका विषय लिखा गया। ये सभी प्रकारके दृश्यकाव्य नटसे अभिनीत होते हैं, इसीसे ये नाटकमें सन्निविष्ट किए गए।

संस्कृत अलङ्कार-शास्त्रमें जो सब लक्षण लिखे हैं, वही सब लक्षण यहां लिखे गए।

संस्कृत नाटक जिस प्रणालीसे लिखा जाता है, यूरोपीय नाटक उस प्रणालीसे नहीं लिखा जाता। हम लोगोंके देशमें भी जितने नाटकोंका प्रचार हुआ है और हो रहा है वे भी संस्कृत नाटकके आधार पर नहीं लिखे जाते। ये सब नाटक यूरोपीय नाटकके जैसे हैं। इसी कारण यूरोपीय नाटकके कुछ लक्षण और विवरण यहां लिख देना परमावश्यक है।

पाश्चात्य पण्डितोंके मतसे नाटक शब्दका प्रकृत अर्थ इस प्रकार है—भिन्न भिन्न व्यक्तियोंका आपसमें जो ओजस्वी वाक्यालाप होता है, वह उनका अभिनय है; अर्थात् कोई व्यक्ति यदि उनके प्रतिनिधि-रूपमें वे सब आलाप उन्हीं सब भावोंमें प्रकाश करे और उसके अभिनयसे यदि मूल घटनाका विवरण अनुमेय हो, तो उसीको नाटक कहते हैं। साधारण प्रश्नोत्तर (Dialogue), महाकाव्य (Epic) और गीतकाव्य (Lyric)के साथ नाटकका कुछ प्रभेद है। साधारण कथावार्त्ता वा कथोपकथनमें कथकके मनमें शोक, दुःख आदिका उच्छ्वास नहीं होता। किन्तु नाटकमें भावस्रोत अत्यन्त स्पष्ट है तथा घटनावलीका शेषफल बहुत सहजमें समझा जाता है। इसीसे अन्यान्य काव्योंकी अपेक्षा नाटक (दृश्यकाव्य)का आदर बहुत ज्यादा है। महाकाव्य (Epic poetry)में नाम्नोल्लिखित व्यक्तिगण प्रायः रसपूर्ण वाक्यालापमें नियुक्त देखे जाते हैं और वह महाकाव्य केवल वर्णनसे परिपूर्ण रहता है। गीतिकाव्य (Lyric poetry)में अनेक समय वे सब नियम देखे जाते हैं। महाकाव्य यदि तेजःपूर्ण कथावार्त्तासे पूर्ण रहे और जब उद्दिष्ट कार्य वर्णना स्रोतकी उपेक्षा करके परिस्फुट प्रकाशित हो, तो वह नाटक कहला सकता है। नाटक प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त है, वियोगान्त (Tragedy) और हास्योद्दीपक (Comic)। वियोगान्त नाटक उत्सुक मनको आनन्दित करता है अर्थात् जिस घटनाका आरम्भ सुन कर उसका शेष फल भी जाननेकी उत्सुकता होती है, उसे रोकनेकी चेष्टा ही नाटकका उद्देश्य है। हास्योद्दीपक नाटकमें केवल हास्योद्दीपन करना ही उद्देश्य है।

मनुष्य स्वभावतः अनुकरणप्रिय होते हैं। इस अनुकरणप्रियतासे ही नाटककी सृष्टि होती है। बाइबलकी आदिपुस्तकमें नाटकके भावमें बातचीत (Dramatic dialogue) करनेसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। उस ग्रन्थमें गीतिकाव्यके भी अनेक दृष्टान्त देखनेमें आते हैं। यथा—सोलेमनका गान।

विद्वान् लोग ग्रीकवासियोंको ही प्रथम नाटकके रचयिता बतलाते हैं और एथेन्सनगरमें नाटकने पूर्णत्व प्राप्त किया ऐसा उन लोगोंने स्थिर किया है। किन्तु प्रथमावस्थामें वहां दिवनिसस् (Dionysus) देवके उद्देशसे जब कोई उत्सव होता था तब समय समय पर नाटक खेला जाता था। पुराकालीन ग्रीकपण्डितोंका कहना है, कि समवेतसङ्गीत (Choral song)से इसकी उत्पत्ति है। अरिष्टटल् (Aristotle) कहते हैं, कि बाकस (Bacchus) देवके उद्देशसे जो सब गायक गान करते थे, वे ही गायक इस नाटकके स्रष्टा हैं।

यद्यपि आरियन (Arian)ने ईसा-जन्मके ५८० वर्ष पहले करुणरसपूर्ण (Tragedy) नाटकका आविष्कार किया है, तो भी इस ragedy शब्दका मूल अर्थ ले कर बहुतोंने इसकी एक प्रकारकी दूसरी व्याख्या की। उस ट्राजेडी शब्दका धातुगत अर्थ है, Tragos goat छागल और Ode a song गान। इस अर्थसे वे अनुमान करते हैं, कि जब किसी बकरे या भेंड़की बलि दी जाती थी, तब पुरातन नाटक जनताको अभिनयके रूपमें दिखलाया जाता था। अथवा अभिनेतृगण भेंडके चर्म द्वारा शरीर ढक कर अभिनय करते होंगे, इसीसे उक्त नाटकका नाम Tragedy पड़ा है। इसी प्रकार (Comedy) शब्दका अर्थ है Komos a revel आमोदकारी अथवा Kome = a village ग्राम। सुतरां Comedyका धातुगत अर्थ होता है आमोदकारियों वा पल्ली-ग्रामवासियोंका गान; क्योंकि उक्त आमोदकारिगण सदर रास्तेके ऊपर नाटकाभिनयकी क्षमता दिखलाते थे।

ईसा-जन्मके ५३६ वर्ष पहले थेसपिस् (Thespis)ने अभिनयके समय सम्यक् रूपसे कथावार्त्ताकी प्रथा चलाई और गानके मध्य एक अभिनेताको नियुक्त किया।

फ्राइनिकस (Phrynichus)ने ५१२ ई०के पहले थेस्पिसके उस एकमात्र अभिनेताको अभिनेत्रीके कार्यमें नियुक्त किया। फ्राइनिकसके एसकाइलस (Aeschylus)के पहले तक ट्राजेडी नाटकके विषयमें किसी दूसरेने कोई विशेष उन्नतिसाधन न किया।

सुसेरियन (Susarion) भ्रमणके उद्देशसे जब ग्रीस होते हुए जा रहे थे, तब ईसा-जन्मके ५८० वर्ष पहले उन्होंने अपने समयकी दोषावलीको विद्रूप करनेके लिये वहां रङ्गमञ्च पर जो अभिनय किया था, उसीसे (Comedy)की सृष्टि हुई।

गभीर भाव वा गाम्भीर्यसे परिपूर्ण होनेके कारण Tragedy नाटक शहरसे सुशिक्षित और सभ्य अधिवासियोंका तथा Comedy नाटक हास्यरस और रसिकतासे पूर्ण रहनेके कारण असभ्य लोगोंका अत्यन्त प्रिय हो गया है। धीरे धीरे इस विद्रूपात्मक नाटकका शहरमें भी आदर होने लगा है और एपिकारमस (Epicharmus), अरिष्टफेनिस (Aristophanes) आदि कितनोंने इस Comedyके अभिनयार्थ अनेक ख्यातनामा अभिनेता नियुक्त किये। उस समय Tragedyका अभिनय करते समय अभिनेतृगण बड़े बड़े नकाब द्वारा मुख ढक कर, मनुष्यचरित्रमें जितने महत् सद्गुण होते थे, उन्हें व्यक्त करनेकी चेष्टा करते थे। इसी प्रकार Comedyके अभिनेतृगण क्षुद्र और निम्न-गुल्फपादुका तथा विकटाकार नकाब पहन कर मनुष्य-जातिकी निन्दा करते थे।

ग्रीक लोगोंने Comedyको तीन भागोंमें विभक्त किया है,—पुरातन, मध्य और नूतन। इसी नूतन Comedy-से आधुनिक हास्योद्दीपक नाटककी सृष्टि हुई है। आधुनिक Comedy यथार्थमें पुराकालीन Tragedy और Comedyके मेलसे उत्पन्न हुआ है। पुरातन Comedy Tragedyके ठीक विपरीत है। इस पुरातन और नूतन Comedyकी सृष्टि होनेके मध्ययुगमें मध्य Comedy प्रकाशित हुआ। सम्भवत: पिलोपनिसीय युद्ध शेष होनेके बाद ही Comedyका मध्ययुग आरम्भ हुआ है। Comedyके समयसे ही प्रकृत ग्रीक Tragedy आरम्भ हुआ है। एसकाइलस स्वयं ही अखाड़ा-घर (Rehearsal room)से अभिनेताओंको अभिनय करनेकी रीतिनीतिकी शिक्षा देते थे। सफोक्लिस (Sophocles)ने रङ्गमञ्चकी यथेष्ट उन्नति की और एक अतिरिक्त नेताको नियुक्त किया। इउरीपिदिस (Euripides) Tragedyके अनेक उत्कर्ष साधन कर गये हैं।

पूर्वोक्त पद्यलेखकोंके बाद ग्रीसमें Tragedyका एक प्रकारसे लोप हो गया, ऐसा कह सकते हैं। उनके बादसे Tragedy रूपका (Rhetoric)में परिणत हुआ।

रोममें नाटकका प्रचार बहुत पहलेसे था, ऐसा मालूम नहीं पड़ता। रोमके स्थापित होनेके ३८१ वर्ष पीछे जब वहां भयानक महामारी उपस्थित हुई, उस समय इउट्रारियनके निकटसे ही इन लोगोंने पहले पहल अभिनयका भाव ग्रहण किया। प्लटस (Plautus) और टिरेन्स (Terence)के सिवा यहां मिलनान्त नाटक (Comedy) लेखकके और किसी दूसरेका नाम नहीं मिलता। उक्त दो लेखकोंने ग्रीक लोगोंसे Tragedy-का भाव ग्रहण किया है। उनके समयकी एक भी पुस्तक अभी नहीं मिलती। केवल सिनेका (Seneca) नामक एक छोटी पुस्तक देखनेमें आती है जिसमें केवल १० नीरस नाटक हैं।

रोममें जब देवोपासना बहुत प्रबल हो उठी थी, उस समय समस्त नाटक एकबारगी विलुप्त हो गये थे। यहां तक कि, जब वहां खृष्टधर्मका प्रचार हुआ, तब जो लोग रङ्गालय पर अभिनय करते थे, वे वेपटिज्म (ईसाई) होनेसे वञ्चित हुए। रोमके जूलियसने जब इस मर्मका आईन प्रचलित किया, तब आपलीनारई (Apollinarii) और ग्रेगरी (Gregory of Nazianzen)-ने बाइबलसे दो एक घटनाका अवलम्बन कर धर्म-सम्बन्धीय नाटककी अवतारणा करनेकी चेष्टा की थी। किन्तु यथार्थमें वह कार्यके रूपमें परिणत नहीं हुआ।

इस प्रकार मध्ययुगमें (८वींसे १५वीं शताब्दीका समय) नाटक जब धीरे धीरे विलुप्त हो गया, तब इटलीके अधिवासिगण प्रथम नाटकके प्रचार करनेमें कृतकार्य हुए। इटलीमें १६वीं शताब्दीको पहले पहल आधुनिक नाटक मुद्रित हुआ जिसका नाम रखा गया

सफोनिषबा (Sophonisba)'। इसके लेखक ट्रिसिनो (Trissino) थे। पीछे अन्यान्य अनेक Tragedy और Comedyके लेखकों ने क्रमशः कई एक पुस्तकों की रचना की।

१७वीं शताब्दीमें रिनासिनि (Rinuccini)ने उक्त नाटकके गीतोंमें बहुत कुछ हेरफेर करके गीताभिनय (Melo-drama)की सृष्टि की।

मिलन (Milan)के समयसे रवेणा (Ravana)-के समय तक Tragedy और Comedyका बिलकुल आदर नहीं था। गीतिनाट्य (Music Opera)का उस समय अच्छा आदर होने लगा। धीरे धीरे बहुतों ने अच्छे अच्छे नाटक लिख डाले हैं।

नाटकके विषयमें स्पेनका कोई पुरातन इतिवृत्त नहीं मिलता। पर हां, लपेज-डि-भेगा (Lopez-de-Vega), काल्डिरण (Calderon) आदि कितने व्यक्तियों के लिखित नाटकों का उल्लेख मात्र मिलता है।

फरासीसियों के मतसे नाटकमें प्रधानतः तीन गुणों का होना आवश्यक है जिनका नाम है ऐकमत्य (Unity)-स्थापन।

(क) नाटकमें एकमात्र विषय (plot) रहेगा। यदि उसमें छोटी छोटी घटनावलीको संयोजित करनेकी आवश्यकता हो, तो उसे इस प्रकार सन्निविष्ट करना उचित है जिससे वह मूल घटनाका परिपोषक हो।

(ख) सारी घटनाएं एक जगह संघटित होना आवश्यक है।

(ग) सारी घटनाओंका एक ही दिनमें और एक ही कारणसे होना उचित है।

जोडेलो (Jodelle)ने पहले पहल यथारीति पांच अङ्कोंका एक Tragedy नाटक प्रस्तुत कर उसे फ्रान्सके राजा द्वितीय हेनरीके सामने खेला। उनके बाद कर्णेली (Carneille), मलियर (Moliere), रेसिनी (Racine) और भलटेयर (Voltaire) आदि कितने ऐसे हुए जिन्होंने Tragedy लिख कर ख्याति लाभ की। किन्तु उक्त नाटक लिख उन्होंने स्पेन, इटली और लेटिनोंके नाटकों का अनुकरण किया है।

जर्मनीमें लेसिं (Lessing), गेटे (Goethe), सिलर (Schiller) आदि अनेक लेखकों ने अत्युत्कृष्ट नाटक लिखकर Tragedy लिखनेकी क्षमताकी पराकाष्ठा दिखलाई है। किन्तु कबसे यहां नाटकका लिखना आरम्भ हुआ, उसका जानना बहुत कठिन है।

इङ्गलैण्डीय धर्ममन्दिरमें पहले पहल नाटक अभिनय प्रदर्शन (Dramatic exhibition) आरम्भ हुआ था वा नहीं, इस विषयमें सन्देह हो भी सकता है। लेकिन वहांके धर्मयाजक (Clergy) जो उक्त अभिनयका स्वयं सम्पादन करते थे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। पुरोहित लोग (Ecclesiastics) अकसर धर्म-पुस्तकमेंसे दो एक घटनाओंका अवलम्बन कर दो एक पुस्तक लिखा करते थे और अपने आप ही उसका अभिनय भी किया करते थे। उस प्रकारकी पुस्तक साधारणतः दो श्रेणियोंमें विभक्त होती थी। एक श्रेणीकी पुस्तक अलौकिक घटनासमूह (Miracle)के आधार पर रची जाती थी और दूसरी नीतिगर्भ (Moral)-के गल्पके भाव पर। बाइबल्की अद्भुत घटनाओं वा महात्माओंके आधार पर प्रथमोक्त पुस्तकावली और घटनावलीके साथ काल्पनिक दृश्य (Imaginary features)-के संयोगसे द्वितीय प्रकारकी पुस्तक लिखी जाती थी।

यूरोपमें धर्मसंस्कार (Reformation) प्रवर्त्तनके बहुत पहलेसे इस प्रकारकी अभिनयप्रथा प्रचलित थी और उक्त धर्मसंस्कार द्वारा भी उसका ध्वंस नहीं हुआ। १६वीं शताब्दीके मध्यभागसे प्राचीन ढंगसे नाटक लिखनेकी श्रद्धा लोगोंकी कम हो गई और नई प्रणालीसे नाटक लिखे जाने लगे। इङ्गलैण्डमें १५५७को एक Comedy पुस्तक मिलती है जिसका नाम है राल्फ रइष्टर डइष्टर (Ralph Roister Doister)। निकोलस उडल (Nicolas Udall) नामक एक शिक्षक उसके प्रणेता हैं इसके दश वर्ष बाद नर्टन (Norton) और लार्ड बुकहार्ष्ट (Lord Buckhurst)ने पहले पहल Tragedy लिखी। वह पुस्तक अमित्राक्षरच्छन्द-में लिखी गई और उसका नाम रखा गया गर्बुडक (Gorbuduc)। किन्तु वह पुस्तक नीरस, कठिन और अलङ्कारयुक्त वर्णनासे परिपूर्ण थी। शेक्सपीयरके समय तक नाटककी इसी प्रकारकी अवस्था थी। विसप हिलका

ग्रामर गार्टनम निडल (Bishop Stills' Grammer Gurtons' Needle) भी रइष्टर डइष्टरको अपेक्षा उन्नतभावसे लिखी नहीं गई।

मारलो (Marlow) ने पहले पहल रङ्गमञ्चके ऊपर अमित्राक्षरनाटककी अभिनय प्रथाका प्रचार किया। पीछे शेक्सपीयरने नाटक लिखनेमें शक्तिकी पराकाष्ठा दिखलाई। उनके बाद कितनोंने मित्राक्षर और अमित्राक्षर छन्दमें अनेक नाटक लिखे हैं।

चीनके अधिवासी बहुत प्राचीनकालसे नाटकका खूब आदर करते आ रहे हैं। वे लोग नाटककी प्रधान धर्मरक्षाकी चेष्टा नहीं करते। उनका नाटक पांच अङ्कों में अथवा एक प्रस्तावना और ४ अवकाशों (Break) में पूरा होता है। वे लोग अभिनयके साथ सङ्गीतकी योजना करते हैं और नाटकस्थ पद्यका परस्पर मेल रखते हैं। देशके आचार, व्यवहार, रीति, नीति आदिका वर्णन करना ही उनके नाटकका मुख्य उद्देश्य है और नाटककी घटना भी स्वकपोल-कल्पित और सुकौशलसे पूर्ण रहती है।

यूरोपीय नाट्यशास्त्रका पूर्ववर्णित इतिहास पढ़नेसे बहुतसे लोग कहते हैं, कि ग्रीससे ही नाटकका प्रथम सूत्रपात हुआ। प्रसिद्ध जर्मन-पण्डित वेबर (Weber) ने लिखा है, 'कालिदासके ग्रन्थमें ग्रीकदासी (यवनी) का उल्लेख, प्रियदर्शीकी शिलालिपिवर्णित प्राकृतभाषाकी अपेक्षा नातिप्राचीन प्राकृत भाषाका प्रयोग इत्यादि प्रमाणोंसे यह बोध होता है, कि ईसा-जन्मके कई शताब्दी बाद वे सब नाटक रचे गए हैं'(१)।

किन्तु हम पाश्चात्य पण्डितोंके मतानुवर्त्ती न हो सके। ग्रीसदेशमें जब नाटकका नाम तक भी न था, उसके बहुत पहलेसे ही 'नटसूत्र' वा नाटक प्रचलित हुआ है। रामायण, महाभारत, हरिवंश आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें नाटकका प्रयोग यथेष्ट है(२)। पहले ही लिखा जा चुका है, कि हिन्दूशास्त्रके मतानुसार भरतमुनिने ही पहले पहल नाट्यशास्त्र प्रकाश किया। अभी देखते हैं, कि पाणिनि मुनिने शिलालिन् और कृशाश्व नामक दो नटसूत्रकारोंका उल्लेख किया है (३)।

शिलालि और कृशाश्वने नटसूत्रका प्रचार किया। ऐसा कहनेसे शैलाल और कार्शाश्व शब्द द्वारा नटका बोध होता है। कात्यायनने वार्त्तिकमें "शैलाल" शब्द प्रकाशित किया है।

नटसूत्रकार शिलालिका नाम शुक्लयजुर्वेदीय शतपथ-ब्राह्मण (१३।५।३।३), सामवेदीय अनुपदसूत्र (४।५, ५।५, ७।५) आदि अत्यन्त प्राचीन वैदिकग्रन्थोंमें देखा जाता है। विख्यात ज्योतिर्विद् शङ्कर बालकृष्ण दीक्षितने गणना करके बतलाया है, कि चार हजार वर्ष पहले शतपथ-ब्राह्मण रचा गया है (४)। इस हिसाबसे साबित होता है, कि नटसूत्रकार शिलालि चार हजार वर्ष पहले विद्यमान थे। उनके समय ग्रीसमें किसी प्रकारका नाटक प्रचलित न था।

शैलूष शब्दसे नटका बोध होता है। वाजसनेय-संहितामें लिखा है—

"नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं(५) धर्माय सभाचरं॥"

(३०।६।५)

सुतरां देखा जाता है, कि नटका व्यवहार वैदिक समयसे भारतवर्षमें प्रचलित है।

बौद्धोंके प्राचीन धर्मग्रन्थमें भी नाटाभिनयका उल्लेख देखनेमें आता है। जिस समय भगवान् बुद्ध राजगृहमें उपस्थित थे, उस समय मौद्गल्यायन और उपतिष्य नामक उनके दो शिष्योंने सबके सामने अभिनय किया था (६)।

(१) Dr. Weber's Sanskrit Literature, p. 203.

(२) रामायण १।५।१८, २।६९।४, मार्कण्डेयपु० २०।४। महाभारत सभा ३य अ०। हरिवंशमें है—

"रामायणं महाकाव्यमुद्दिश्य नाटकीकृतम्॥"

(हरिवंश ८६७२)

(३) "पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः।"

(पा ४।३।११०)

'कर्मन्दकृशाश्वादिनिः। (पा ४।३।१११)

(४) Indian Antiqurry, for 1895.

(५) 'शैलूषं नटं'—महीधर

(६) Asiatic Researches, Vol. XX, p. 50. अध्यापक लासेनने लिखा है, "In the oldest Buddhistic writings the witnessing of plays is spoken of as something usual." (I. AK. 11, p. 81.)

डाक्टर वेबरके स्वीकार नहीं करने पर भी अध्यापक विलसन आदि ख्यातनामा पण्डितोंने एक वाक्यसे ऐसा स्वीकार किया है, कि भारतीय नाटक भारतवासीका अपना है। नाटकके सम्बन्धमें हिन्दूगण किसी दूसरी जातिके निकट ऋणी नहीं हैं। विलसन साहबने साफ साफ लिख दिया है—

"Whatever may be the merits or defects of the Hindu drama, it may be safely asserted that they do not spring from the same parent, but are unmixedly its own. The nations of Europe possessed no dramatic literature before the fourteenth or fifteenth century, at which period the Hindu drama had passed into its decline." (७)

प्राचीनकालके हिन्दूराजगण नाटकाभिनयमें उत्साह दिया करते थे। कितने तो स्वरचित नाटक स्वयं खेल कर जनताको प्रसन्न करते थे। उनमेंसे कान्यकुब्जाधिपति हर्षवर्द्धन और शाकम्भरीके अधिपति चाहमानवंशीय विग्रहपाल अग्रणी हैं। अजमीरके तारागढ़ पहाड़के एक कोनेमें एक मसजिद है जो प्राचीन हिन्दू-प्रासादके उपकरणसे बनाई गई है। उस मसजिदमें पत्थरके ऊपर दो प्राचीन संस्कृत नाटक खुदे हुए हैं जिनमेंसे एक महाकवि सोमदेवरचित 'ललितविग्रहराज-नाटक' है और दूसरा महाराजाधिराज विग्रहपाल रचित 'हरकेलिनाटक'। शेषोक्त नाटक १२१० सम्वत्‌में (११५३ ई०में) रचा गया है। उक्त दो नाटकोंमें अनेक ऐतिहासिक कथाएं हैं। हिन्दूराजगण नाटकका किस प्रकार आदर करते थे, वह उक्त खोदितलिपि देखनेसे हो जाना जाता है (८)। इस प्रकारका निदर्शन संसारमें और कहीं भी नहीं है।

संस्कृत नाटकमें नाटकावतार देखनेमें आता है जो कविके अद्भुत कवित्वशक्तिका परिचय है। उत्तर-रामचरितनाटकमें इसी प्रकारका नाटकाभिनय देखनेमें आता है। कविने इसके मध्य रामसीताका मिलन दिखलाया है। महाकवि शेक्सपीयर भी सुप्रसिद्ध 'हैमलेट' नामक नाटकमें इस प्रकारका नाटकावतरण करके अपने असाधारण रचनाकौशलका परिचय दे गये हैं।

कालिदास, भवभूति, श्रीहर्ष आदि प्रसिद्ध ग्रन्थकारोंने जो सब नाटक प्रणयन किये हैं, वे पृथ्वीके सर्वप्रधान कवियोंके नाटकके जैसे उत्कृष्ट हैं, यह मुक्तकण्ठसे स्वीकार करना होगा। दशरूप, साहित्यदर्पण, साहित्यसार और कुवलयानन्द आदि ग्रन्थोंमें जिन सब नाटकोंका उल्लेख है, अभी उनका अधिकांश दुष्प्राप्य है; तो भी यदि उनका अनुसन्धान किया जाय, तो कमसे कम ५।६ सौ संस्कृत नाटक अवश्य मिल सकते हैं। कुछ दिन पहले विद्वान् लोग नाटकका कुछ भी आदर नहीं करते थे। यहां तक कि सर विलियम जोन्सको कोई भी नाटकका प्रकृत विवरण भलीभांति समझा न सके थे। राधाकान्त नामक एक ब्राह्मणने नाटक अङ्गरेजी अभिनयके सदृश है ऐसा समझा दिया था। इस देशके लोग पहले अन्यान्य नाटकोंकी अपेक्षा प्रबोध-चन्द्रोदय नाटकको खूब तन मनसे पढ़ा करते थे। पीछे वैष्णवगण भक्तिरसप्रधान चैतन्यचन्द्रोदय, ललितमाधव, विदग्धमाधव, दानकेलिकौमुदी आदि नाटक पढ़ने लगे। किन्तु कालिदास भवभूति आदि प्रधान कवियोंके दृश्य-काव्यसे वे बिलकुल पराङ्मुख थे।

यूरोपमें नाटक खेला जाता है, इसीसे वहां नाटकका खूब प्रचार है। हम लोगोंके देशमें प्रसिद्ध नाटक अभिनयके लिये ही रचा जाता था। भवभूतिने नाट्यकारोंके अनुरोधसे कालप्रियनाथ महादेवके यात्रा-महोत्सवमें अभिनयके लिये उत्तरचरितकी रचना की। मातृगुप्तकी सभामें अभिनयके लिये हयग्रीववध नाटक रचा गया।

किन्तु आजकल रङ्गालयमें अर्थात् थियेटरमें जैसा अभिनय होता है, पहले वैसा अभिनय होता था वा नहीं, उसका निर्णय करना कठिन है।

कृष्णीत-दामोदरमें इसका विषय यत्‌सामान्य लिखा है। रङ्गालय प्रस्तुत करनेके विषयमें वे इस प्रकार

(७) H. H. Wilson's Theatre of the Hindus, Vol. 1, preface, p. XI.

(८) उक्त दो शिलालिपियोंमें खोदित नाटकका कुछ अंश Indian Antiquary, Vol. XX. p. 205ff मुद्रित हुआ है।

लिखे गये हैं—रङ्गालयका विस्तार कमसे कम २० हाथका होना चाहिये। नाटरके नायकको पूव की ओर मुंह किये बैठना चाहिये। नायक जिस ओर बैठेंगे, उसी ओर गायकको खड़ा रहना चाहिये। वे अच्छी अच्छी पोशाकसे अपनेको सजाए रहें और ताल, लय, स्वर आदिमें एकदम पटु रहें। गायकोंके दोनों ओर वाद्यस्थान रहना चाहिये। वादकोंके मध्य कमसे कम ४ मृदङ्गका रहना आवश्यक है। दक्षिणांशमें तुर्यस्थान और पूर्वभागमें यवनिका रहे। अन्त पटको यवनिका कहते हैं। यह यवनिका कपड़ेका परदा विशेष है। इसके अभ्यन्तर नेपथ्य अर्थात् वेशरचनादिका स्थान रहे। तीन वा पांच नट अभिनयकार्य सम्पन्न करें; उन्हें नाट्यविषयमें सुनिपुण रहना चाहिए। अनेक गुणहीन नट वा नटीके रहनेसे कोई काम अच्छा नहीं होता।

नाटकका लम्बा चौड़ा होना उचित नहीं। जो नाटक एक पहरके अन्दर समाप्त हो, वही नाटक अनुरागका विषय होता है, दीर्घ नाटक केवल विरागका कारण होता है। जो नाटक जिस रसप्रधानका होगा, उसमें उसी रसका उद्दीपन होता है। गायकको उसी रसके अनुसार गान करना चाहिए। अत्यन्त प्राचीनकालमें जो अभिनय हुआ करते थे, उनमें चित्रपट काममें नहीं लाए जाते थे। सिकन्दरके आनेके पीछे उनका प्रचार हुआ। अब भी रामलीला, रासलीला बिना परदोंके होती ही हैं।

नाटकलक्षण (सं० स्त्री०) नाटकस्य लक्षणं। नाटकका लक्षण। नाटक देखो।

नाटकशाला (सं० स्त्री०) वह घर वा स्थान जहां नाटक होता है।

नाटका-देवदार (हिं० पु०) भारतवर्षके दक्षिण और लङ्कामें मिलनेवाला एक छोटा पेड़ या झाड़। इसकी लकड़ीसे एक प्रकारका तेल निकलता है जो नावोंमें लगाया जाता है। इस पेड़के फल और पत्तियोंमें पाचन, छेदन और भेदन शक्तियां होती हैं। भारतवर्षमें इसकी पत्तियां और फल दुर्भिक्षमें खाये जाते हैं। नमक और मिर्चके साथ लोग पत्तियोंका शाक बना कर भी खाते हैं।

नाटकावतार (सं० पु०) किसी नाटकके बीच दूसरे नाटकका अभिनय। शेक्सपियरके 'हैमलेट'में भी इसी प्रकार अभिनय होना दिखाया गया है।

नाटकी (हिं० पु०) नाटक करनेवाला, नाटक करके जीविका करनेवाला।

नाटकीय (सं० वि०) नाटके भवः तत्र वर्ण्यः नाटकं-छ। नाटक सम्बन्धी।

नाटना (हिं० क्रि०) १ प्रतिज्ञा आदि पर स्थिर न रहना, इनकार करना। २ अस्वीकार करना।

नाटवसन्त (सं० पु०) रागविशेष, एक राग।

नाटा (हिं० वि०) १ छोटे कदका, छोटे डीलका। (पु०) २ छोटे डीलका बैल या गाय।

नाटाकरञ्ज (सं० पु०) वृक्षविशेष, एक प्रकारका करंज। पर्याय—घृतपूर्ण, प्रकीर्य, पूतिकरञ्ज, पूतिका, पूतिक, सकण्टक, ककुभ, अग्निशिख, शरठ, कलिकाल और सोमवल्क। गुण—कटु, तिक्त, कषाय, बलकर, उष्णल, संकोचक, विरेचक, उष्ण, क्रमि, उदररोग, चर्मरोग, कुष्ठ, गुल्म, योनिदोष, अर्श, व्रण, विस्फोटक और उदावर्त्त-रोग-नाशक।

नाटागढ़—२४ परगनेके अन्तर्गत एक पल्लीग्राम। यहां पीतल और लोहेके अच्छे अच्छे द्रव्य बनते हैं। यहां एक स्कूल भी है जिसका खर्च गवर्नमेण्टकी ओर से दिया जाता है।

नाटाम्र (सं० पु०) तरम्बुज, तरबूज।

नाटार (सं० पु०) नट्या नटस्य वा अपत्यम्-नट आरक्, (आरगुदीचाम्। पा ४।१।१३०) नटीकी सन्तति।

नाटिका (सं० स्त्री०) १ दृश्यकाव्यभेद, एक प्रकारका दृश्यकाव्य। साहित्यदर्पणमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—यह एक प्रकारका नाटक ही है। नाटकमें जिन सब लक्षणोंका विषय लिखा गया है, इसमें भी वे ही सब लक्षण होते हैं। केवल फर्क इतना ही है, कि इसका वृत्तान्त कल्पित होता है, नाटकके जैसा ख्यात-वृत्त अर्थात् पुराणादि प्रसिद्ध नहीं होता। इसमें चार अङ्क होते हैं। नायिका राजकुलोद्भवा और नवानुरागिणी तथा नायक धीरललित होता है। इसमें स्त्री-पात्र अधिक होते हैं। नाटक देखो।

२ रागिणीविशेष, एक रागिणीका नाम। यह नटनारायण, हम्बीर और अहीरी रागके योगसे बनती है और सम्पूर्ण जातिको मानी जाती है। इसका स्वरग्राम यह है—"सा रे ग म प ध नि सा ः"

मूर्त्ति—

"चिरं नटन्ती शुभवंशजन्यो विचित्ररत्नाभरणा कृशांगी।
सुगीततालेषु कृतावधाना नाटी सुशाटी परिधानगीला॥"

ये नटनारायणकी स्त्री हैं। नारदसंहितामें इन्हें कर्णाटकी स्त्री बतलाया है और हनुमन्मतानुसार ये दीपककी स्त्री मानी जाती हैं।

नाटित (सं० त्रि०) नट-णिच्-क्त। १ कृताभिनय, जिसका अभिनय किया गया हो। (पु०) २ अभिनय।

नाटितक (सं० क्ली०) नाटित स्वार्थे कन्। नटकृत्य, वह जो अभिनय करता हो।

नाटेय (सं० पु०) नव्या अपत्यम्। नटी-ढक्। नटीको सन्तति।

नाटेर (सं० पु०) नव्याः अपत्यं नटी ढ्रक्। नटीसुत, नटीको सन्तान।

नाटोर—१ बङ्गाल प्रान्तके अन्तर्गत राजशाही जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २४° ७' से २४° ४८' उ० तथा देशा० ८८° ५१' से ८९° २१' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ४२२३८८ और भूपरिमाण लगभग ८१६ वर्गमील है। इसमें ११ शहर और १७२७ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० २४° २६' उ० और देशा० ८९° १' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ८६५४ है। पहले यही स्थान जिलेका प्रधान सदर था। लेकिन यहांकी आबहवा अच्छी न होनेके कारण रामपुर-बोलियामें सदर उठ कर चला गया। यहां १८६९ ई०में म्यु निसपलिटी स्थापित हुई है। यहां उपविभाग सम्बन्धीय कार्यालय और एक छोटा कारागार है जिसमें केवल १२ कैदी रहे जाते हैं।

इतिहास—लस्करपुर परगनेके नाटोर मौजेमें कामदेवराय नामक एक ब्राह्मण रहते थे। ये पहले बारईहाटीके तहसीलदार थे। इनके तीन पुत्र थे, रामजीवन, रघुनन्दन और विष्णुराम। तृतीय पुत्र पिताके जीते-जी इस लोकसे चल बसे। द्वितीय पुत्र रघुनन्दन पुटिया-राजवंशोद्भव दर्पनारायणके यहां मुख्तारका काम करने लगे। धीरे धीरे ये मुसलमानी आईनसे अच्छी तरह जानकार हो कर नवाब मुर्शिदकुली खांके दीवान भी हो गए थे। नवाब साहबने इनके व्यवहारसे सन्तुष्ट हो कर इन्हें सन्याल परगनेका जमींदार बनाया और साथ साथ राजाकी उपाधि भी दी। ये ही नाटोर राजवंशके आदि राजा हैं। पीछे रघुनन्दनने सन्याल परगना अपने बड़े भाई रामजीवनके हाथ सौंप दिया। रामजीवनने १७०४ ई०में राजाकी उपाधि पाई। धीरे धीरे ये रामकृष्ण आदि अन्यान्य जमींदारोंकी विषय-सम्पत्ति खरीद कर अपने राज्यकी उन्नति करने लगे। १७०६ ई०में दिल्लीके सम्राट् बहादुरशाहने राजा रामजीवनको 'राजाबहादुर'को सनद और बाईस खिलअत दीं, तथा राजछत्र, दण्ड आदि व्यवहार करनेका आदेश दिया।

राजा रामजीवन और राजा रघुनन्दन दोनोंके पास राज्यरक्षाके लिए सेना थी। ये दोनों स्वयं दीवानी और फौजदारीका विचार करते थे। बाद जब निःसन्ताना-वस्थामें दोनोंको मृत्यु हुई, तब राजा रामजीवनकी पत्नीने रामकान्तरायको गोद लिया। दुःखका विषय, कि ये भी बिना कोई सन्तान छोड़े परलोकको सिधारे। इनकी स्त्रीका नाम रानी भवानी था। स्वामीके मरनेके बाद ये ५८ वर्ष तक और जीती रहीं। इनकी यशोकीर्त्ति बङ्गालमें सब जगह फैली हुई है। इन्होंने काशीमें अनेक मन्दिर, घाट और धर्मशाला आदिका निर्माण किया था। इसके अतिरिक्त बङ्गदेशके उत्तर-पश्चिम अञ्चलमें और अन्यान्य स्थानोंमें पुष्करिणी खनन, पान्थनिवास और अन्नसत्र स्थापन आदि अनेक प्रकारके सत्कार्यकी बातें सुनी जाती हैं। ब्राह्मण और गोस्वामीको भी इन्होंने अनेक निष्कर जमीन दान दी थीं।

रानी भवानी देखा।

रानी भवानीने महाराज रामकृष्णको गोद लिया था। बालिग होने पर उन्होंने सम्राट् शाहआलमसे 'महाराजाधिराज पृथ्वीपति बहादुर'की उपाधि पाई थी। अपनी स्वाधीनताको अक्षुण्ण रखनेमें अपनेको असमर्थ देख इन्होंने वैराग्य-अवलम्बन किया। इनके दीवान

आदि जितने कर्मचारी थे, वे सब कोई उनका राज्य हड़प करने लगे। पीछे महारानी भवानीने फिरसे राज्य-भार ग्रहण करना चाहा, किन्तु कम्पनीने उनका आवेदन ग्राह्य न किया।

१७८५ ई०में महाराज रामकृष्णकी मृत्यु हुई। पीछे उनके दो लड़के महाराज विश्वनाथ और शिवनाथने राज्यशासन सुचारुरूपसे किया। वे दोनों विलासी थे। महाराज विश्वनाथकी निःसन्तानावस्थामें मृत्यु हुई। उनकी पत्नी महारानी कृष्णमणिने महाराज गोविन्द-चन्द्रको गोद लिया। बालिग होते न होते ये कराल-कालके गालमें फँस गये। बाद महाराज जगदिन्द्रनाथ राय राजा हुए। फिलहाल यहांकी आय पहलेसे बहुत कम गई है।

नाव्य (सं० क्ली०) नटानां कार्यं नट-ञ। (छन्दो गौक्थिक-याज्ञिक बह्वृचनटात् ञ्यः। पा ४।३।१२९) १ नृत्य-गीत और वाद्य, नटोंका काम। इसका नामान्तर तौर्य-त्रिक है।

नटकृत्यका नाम नाट्य है, नटों द्वारा जो नाच-गान आदि किया जाता है, उसे ही नाट्य कहते हैं। अभिनयको नाट्य कह सकते। २ नटसमूह। ३ नाट्यारम्भक सभी नक्षत्र, वह नक्षत्र जिनमें नाट्यका आरम्भ किया जाता है। अनुराधा, धनिष्ठा, पुष्या, हस्ता, चित्रा, स्वाती, ज्येष्ठा, शतभिषा और रेवती इन नक्षत्रोंमें नाटक आरम्भ करना चाहिए।

नाट्यशास्त्रकी उत्पत्तिका विषय सङ्गीत-दामोदरमें इस प्रकार लिखा है,—पूर्व समयमें एक दिन इन्द्रने ब्रह्मासे नाट्यशास्त्र बनानेका अनुरोध किया था। ब्रह्माने इस प्रकार अनुरुद्ध हो कर सभी वेदोंके सार ले कर पञ्चम नाट्यवेद बनाया। यह उपवेद वा गन्धर्ववेद नामसे प्रसिद्ध है। महादेवने पहले पहल यह उपवेद ब्रह्माको सिखलाया था, बाद ब्रह्माने भरतको। भरतमुनिसे ही इस संसारमें नाट्यशास्त्रका प्रचार हुआ है। शिव, ब्रह्मा और भरतमुनि इसके मूल माने जाते हैं।

(संगीतदामोदर)

देवर्षि और राजा आदिके पूर्व चरित्रकी आलोचना करके नाटकादिरूपमें यह अभिनीत होता है। इस अभिनयसे चतुर्वर्ग फल प्राप्त होते हैं। नाट्य सभोंका चित्तरञ्जक है। जो मनुष्य जो भाव पसन्द करता है, वह उसी भावसे नाट्य द्वारा साफ साफ अनुभव कर सकता है। इस कारण सर्वमनोरञ्जक नाट्य किसको अच्छा नहीं लगता। ४ चेष्टाके द्वारा प्रदर्शन, नकल, स्वांग। ५ स्वांगके द्वारा चरित्रदर्शन, अभिनय।

नाट्यकार (सं० पु०) नाटक करनेवाला, नट।

नाट्यधर्मिका (सं० स्त्री०) नाट्य धर्मोऽस्त्यस्याः क्रियायाः इति ठन्। दर्शनार्थं शास्त्रोक्त तौर्यत्रिकरूप नटकृत्य, नाच, गान और बाजेके रूपमें नटकर्म।

नाट्यप्रिय (सं० पु०) नाट्यं प्रियं यस्य। महादेव, शिव।

नाट्यमन्दिर (सं० पु०) नाट्यशाला।

नाट्यरासक (सं० पु०) एक प्रकारका उपरूपक दृश्यकाव्य। इसमें केवल एक ही अङ्क होता है। नायक उदात्त, नायिका वासकसज्जा, उपनायक पीठमर्द होते हैं। इसमें अनेक प्रकारके गान और नृत्य होते हैं।

नाट्यशाला (सं० स्त्री०) नाट्यस्य नृत्यगीतादेः शाला गृहं। १ प्रासादद्वार समीप गृह, वह घर जो राजभवनके दरवाजेके पास हो। २ वह स्थान जहां पर अभिनय किया जाय, नाटकघर।

नाट्यशास्त्र (सं० पु०) १ नृत्य, गीत और अभिनयकी क्रिया। नाट्य देखो। २ एक प्राचीन ग्रन्थ जिसकी रचना भरतमुनिने की।

नाट्यालङ्कार (सं० पु०) नाट्यस्य अलङ्कारः। नाटकका भूषणहेतु, वह विशेष अलङ्कार जिसके आनेसे नाटकका सौन्दर्य अधिक बढ़ जाता है। सङ्गीतदामोदरमें ऐसे अलङ्कारोंकी संख्या ६८ और साहित्यदर्पणमें ३३ मानी गई है। इनके नाम और लक्षण इस प्रकार हैं—

१ आशीर्वाद—अभिलषित लाभकी सूचनाको आशीर्वाद कहते हैं। २ आक्रन्द—शोक करके विलापका नाम आक्रन्द है। ३ कपट—छलपूर्वक अन्यरूप ग्रहण करनेको कपट कहते हैं। ४ अक्षमा—अत्यन्त अल्पमात्र और परिभव सह्य नहीं करनेका नाम अक्षमा है। ५ गर्व—अहंकारके साथ वाक्यप्रयोगका नाम गर्व है। ६ उद्यम—कार्यारम्भका नाम उद्यम है। ७ आश्रय-कार्य-

वगत: उत्कृष्ट अवलम्बनको आश्रय कहते हैं। ८ उत्प्रासन—जो अपनेको साधु समझता है, लेकिन वह यथार्थमें साधु नहीं है, ऐसे व्यक्तिके प्रति जो उपहास किया जाता है, उसे उत्प्रासन कहते हैं। ९ स्पृहा—रमणीय वस्तुके मनोहारित्वका अवलोकन करके उस वस्तुको पानेकी इच्छाका नाम स्पृहा है। १० क्षोभ—पहले तिरस्कार करके पीछे मनमें जो दुःख होता है, उसका नाम क्षोभ है। ११ पश्चात्ताप—मोह वा अनवधानताप्रयुक्त अवज्ञात विषयका जो ताप है, उसे पश्चात्ताप कहते हैं। १२ उपपत्ति—कार्यसिद्धिके लिए कारणोपन्यासको अर्थात् हेतु दर्शनको उपपत्ति कहते हैं। १३ आशंसा—अभीष्ट लाभके विषयमें मनके व्यापारको आशंसा कहते हैं। १४ अध्यवसाय—प्रतिज्ञात विषयमें दृढ़तर प्रयत्नका नाम अध्यवसाय है। १५ विसर्प—अनिष्ट फलप्रद प्रारब्धका नाम विसर्प है। १६ उल्लेख—अभी कार्य ग्रहण करनेका नाम उल्लेख है। १७ उत्तेजन—स्वकार्य सिद्धके लिए जो प्रयोग किया जाता है, उसका नाम उत्तेजन है। १८ परीवाद—भर्त्सनाको परीवाद कहते हैं। १९ नीति—शास्त्रानुसार कथनको नीति कहते हैं। २० अर्थविशेषण—कथित विषयके तिरस्काररूपसे बार बार कहनेका नाम अर्थविशेषण है। २१ प्रोत्साहन—उत्साहयुक्त वाक्य द्वारा किसी मनुष्यको प्रोत्साहित करनेका नाम प्रोत्साहन है। २२ साहाय्य—विपद्कालमें आनुकुल्य करनेका नाम साहाय्य है। २३ अभिमान—अहङ्कारका नाम अभिमान है। २४ अनुवृत्ति—विनयपूर्वक अनुसरणका नाम अनुवृत्ति है। २५ उत्कीर्त्तन—अतीत वृत्तान्त कहनेका नाम उत्कीर्त्तन है। २६ याच्ञा—स्वयं जा कर अथवा दूत द्वारा किसी प्रकारकी प्रार्थना करनेका नाम याच्ञा है। २७ परिहार—अनुष्ठित अनुचित कार्यको परिहार कहते हैं। २८ निवेदन—अवज्ञात विषयके कर्त्तव्यनिश्चयका नाम निवेदन है। २९ प्रवर्त्तन—कार्यका साधुरूप आचरणका नाम प्रवर्त्तन है। ३० आख्यान—पूर्ववृत्तान्त-कथनका नाम आख्यान है। ३१ युक्ति—कार्यावधारणका नाम युक्ति है। ३२ प्रहर्ष—अति आनन्दका नाम प्रहर्ष है। ३३ शिक्षा—उपदेश देनेका नाम शिक्षा है। (साहित्यद० ६ परि)

नाटोक्ति (सं० स्त्री०) नाट्ये नृत्यगीतादौ या उक्तिः। १ नाटकविषयक वाक्य, वे विशेष विशेष सम्बोधन शब्द जो विशेष विशेष व्यक्तियोंके लिए नाटकोंमें आते हैं। जैसे, ब्राह्मणके लिए आर्य, क्षत्रियके लिए महाराज, सखीके लिए हला, नीच व्यक्तिके लिए हण्डा, चेटीके लिए हञ्जा, स्वामीके लिए आर्यपुत्र, राजश्यालकके लिये राष्ट्रीय, समान मनुष्यके लिए हंहो, राजाके लिए देव, सार्वभौमके लिए भट्ट, भगिनीपतिके लिये आवुत्त, वेश्याके लिए अज्जुका, विद्वान् व्यक्तिके लिए भाव, जनकके लिए आवुक, कुमारके लिए युवराज अथवा भर्तृदारक, राजाके लिए देव वा भट्टारक, राजकन्याके लिये भर्तृदारिका, कृताभिषेका रानीके लिये देवी, अन्य राजपत्नियोंके लिए भट्टिनी, माताके लिए अम्बा, बालाके लिये वासू, पूज्यव्यक्तिके लिए मारिष और ज्येष्ठा भगिनीके लिये अत्तिका इत्यादि।

नाठा (हिं० पु०) वह जिसके आगे पीछे कोई वारिस न हो।

नाड़ (सं० पु०) नाल लस्य ड़। नाल देखो।

नाड़ (हिं० स्त्री०) ग्रीवा, गर्दन। नार देखो।

नाड़पित् (सं० स्त्री०) कण्वमुनिका आश्रम।

नाड़ा (हिं० पु०) १ सूतकी वह मोटी डोरी जिससे स्त्रियां घाँघरां या धोती बांधती हैं, इजारबंद, नीवि। २ लाल या पीला रंगा हुआ गंडेदार सूत जो देवताओंको चढ़ाया जाता है।

नाड़ि (सं० स्त्री०) नाड़यतीति नड़ भ्रंशे नड़-णिच्-इन्। नाड़ी।

नाड़िक (सं० क्ली०) नाड़िरिव प्रतिकृतिः (इवे प्रतिकृतौ। पा ५।३।९६) कन्। १ कालशाक, एक प्रकारका साग जिसे पटुआ भी कहते हैं। २ नाड़ी। ३ घटिका, दण्ड।

नाड़िका (सं० स्त्री०) नाड़ी एव स्वार्थे कन् टाप्। १ घट, क्षण, घड़ी। पर्याय—साधारिका, घटिका। २ कालशाक, एक प्रकारका साग।

नाड़िकेल (सं० पु०) नारिकेल, रस्य ड़त्वम्। नारिकेल, नारियल।

नाड़िचीर (सं० क्ली०) नाड़िरिव चीरं यत्र। निर्वेष्टन, नली।

नाड़िन्धम (सं० पु०) नाड़ीं वंशनलीं धमति नाड़ी-ध्मा-खश्, ततो धमादेशः पूर्वह्रस्वश्च। १ स्वर्णकार, सोनार। उच्चनीचाधिरोहणात् मुहुर्मुहुर्निःश्वासैर्नाड़ीं धमनिं उत्तापयति इति। (त्रि०) २ श्वासकारक, श्वासको जल्दी जल्दी चलानेवाला। ३ भयप्रदर्शनकारी, जिसे देखते ही नाड़ी हिल जाय, दहलानेवाला, भयङ्कर। ४ नाड़िचालनाकारी, नाड़ियोंको हिलानेवाला। ५ नलीको फूंकनेवाला।

नाड़िन्धय (सं० पु०) नाड़ीं धयतीति धेट् पाने खश्, ततो ह्रस्वश्च। नाड़ीपानकर्त्ता, नल द्वारा पीनेवाला।

नाड़िपत्र (सं० क्लो०) नाड़िरिव पत्रं यस्य। नाड़ीच शाकभेद, एक प्रकारका साग।

नाड़िया (हिं० पु०) चिकित्सक, वैद्य।

नाड़ी (सं० स्त्री०) नाड़ि-ङीष्। १ नाल, प्रणालन्तर। दण्डनालीको भी नाड़ी कहते हैं। २ शिरा। ३ गण्डदूर्वा, गाँडर घास। ४ कुहनचर्य्या। ५ षट्क्षणकाल।

शिरार्थ नाड़ीका पर्याय—धमनि, शिरा, नाड़ि, नालि, धमनी, सिरा, धरणी, धरा, तन्तुकी, जीवितज्ञा, सिंहा।

देहस्थित शिराओंको नाड़ी कहते हैं। सुश्रुत, भावप्रकाश और तन्त्रशास्त्रमें इसका विशेष विवरण लिखा है—

"सार्द्धत्रिकोटी नाड़ीनामालयश्च कलेवरम्।
क्रमेण श्रोतुमिच्छामि तद्वदस्व मयि प्रभो॥"

(तोड़लतन्त्र ८ उ०)

भगवतीने महादेवसे पूछा था, "इस शरीरमें साढ़े तीन करोड़ नाड़ियोंका आश्रय हैं अर्थात् इस शरीरमें नाड़ीकी संख्या साढ़े तीन करोड़ है। उन सबका विषय जाननेको मेरी उत्कट इच्छा है, कृपया आप बतला कर मेरे इस कौतूहलको शान्त कीजिये।" इस पर शिवजीने कहा था, "शरीरमें जिस जिस स्थानमें नाड़ियां हैं, उनका हाल कहता हूं, सुनो। लोमकूपमें ७५ लाख नाड़ी हैं, हाथ, मुंह और पैरमें ३ लाख; उदर और पायुदेशमें ३ लाख; सकल गात्रमें ८ लाख; पार्श्वदेश, चर्म और समस्त सन्धि स्थानमें ८ लाख नाड़ियां हैं। इन सब नाड़ियोंमें ईड़ा, पिङ्गला, सुषुम्णा, चित्रिणी और ब्रह्मनाड़ी ये पांच नाड़ियां तथा कुहू, शङ्खिनी, गान्धारी, हस्तिजिह्विका, नदिनी और निद्रा ये ग्यारह नाड़ियाँ सुषुम्णासे उत्पन्न हुई हैं। शरीरमें जो साढ़े तीन करोड़ नाड़ी हैं, उन्हें स्थूल और सूक्ष्म समझना चाहिये। ये सब नाड़ियां नाभिदेशसे निकल कर तिर्यक् और ऊर्ध्वभावसे सारे शरीरमें फैल गई हैं। नाभिकन्द ही इन सब नाड़ियोंका मूल है। इन सब नाड़ियोंमें ७२ हजार स्थूल नाड़ी हैं। शरीरमें जो नाड़ी धमनी कहलाती हैं, वे पञ्चेन्द्रियको गुणवाहिनी और धन्या हैं। इनमेंसे ७ सौ सूक्ष्म नाड़ी हैं। ये सब नाड़ियां अन्नादिका रस समूचे शरीरमें वहन करती हैं और शरीरको पुष्ट बनाये रहती हैं। मृदङ्गके चारों तरफ जिस तरह चमड़ा मढ़ा रहता है, उसी तरह नाड़ियां भी समूचे शरीरमें फैली हुई हैं। इन ७ सौ नाड़ियोंमें २४ परिस्फुट हैं। पुरुषकी दाहिनी ओरकी और स्त्रीकी बाईं ओरकी नाड़ी देख कर परीक्षा करनी चाहिये।"

नाड़ीको शिरा कहते हैं। इसका विषय भावप्रकाश और सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है,—शिरा वा नाड़ीकी संख्या ७ सौ है। जलप्रणाली द्वारा जिस प्रकार उद्यान अथवा खेत सींचा जाता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण शरीर उन सब नाड़ियोंसे रसाभिषिक्त होता है। इससे अङ्ग प्रत्यङ्गकी आकुञ्चन प्रसारणादिके कार्य सम्पन्न होते हैं। वृक्षपत्रके मध्यस्थित डंठलसे जिस प्रकार शाखाप्रशाखाविशिष्ट सूक्ष्म सूक्ष्म शिरायें चारों ओर निकल कर पत्तेको ढकी रहती हैं, उसी प्रकार नाभिदेशसे नाड़ी अर्थात् शिरायें निकल कर और शाखाप्रशाखामें विभक्त हो कर चारों ओर शरीरमें फैली हुई हैं।

शरीरकी समस्त शिरायें नाभिमूलमें संलग्न हैं। जिस प्रकार चक्रके मध्यस्थित नाभिदेशमें चारों ओर आरे लगे हुए हैं, नाभिके चारों ओर भी उसी प्रकार शिरायें लगी हुई हैं।

मूल शिरा ४० हैं जिनमेंसे वायुवाहिनी १०, पित्तवाहिनी १०, कफवाहिनी १० और रक्तवाहिनी १० हैं। वायुवाहिनी नाड़ीकी संख्या १७५ है। वायुका स्थान पाकाशय है। पित्तवाहिनी नाड़ी १७५ है। पाकाशय और आमाशयके मध्यस्थानको पित्तस्थान कहते हैं। कफवाहिनी नाड़ी १७५ है। आमाशय ही श्लेष्माका

स्थान है। रक्तवाहिनी नाड़ी १७५ है। यह यकृत् और प्लोहाके स्थानमें अवस्थित प्रत्येक बाहु और पदमें वायुवाहिनी नाड़ियां पचीस पचीस करके रहती हैं। कोष्ठदेशमें ३४, उसके मध्य मलद्वार और मेढ्रदेशमें ८, दोनों बगलमें दो दो करके ४, पीठमें ६, उदरमें ६, वक्षमें १० स्कन्धसन्धिके ऊपरी भागमें ४१, उसके मध्य ग्रीवादेशमें १४, दोनों कानोंमें ४, जिह्वामें ८, नासिकामें ६, दोनों चक्षुमें ८ ये १७५ वायुवाहिनी शिराएं हैं। जिस प्रकार वायुवाहिनी शिरायें विभक्त हैं, उसी प्रकार अन्यान्य शिराओंको भी जानना चाहिये। केवल अन्तर इतना ही है, कि पित्तवाहिनी, रक्तवाहिनी और श्लेष्मवाहिनी शिराएं दोनों चक्षुमें दश दश करके और दोनों कर्णमें दो दो करके रहती हैं। इस प्रकार ७०० शिरायें शरीरके भीतर अवस्थित हैं।

वायु जब अपनी शिराके मध्य विचरण करती है, तब शारीरिक यन्त्रक्रियाका व्याघात नहीं होता और न बुद्धिशक्ति ही मोहप्राप्त होती है। इस कारण नाना प्रकारकी गुणोत्पत्ति हुआ करती है। वायुके अपनी शिरामें कुपित रहनेसे तरह तरहके रोग उत्पन्न होते हैं। पित्तके अपनी शिरामें सञ्चरण करनेसे शरीरकी कान्ति, अग्निकी दीप्ति, अन्नमें रुचि और शरीरमें स्वास्थ्य प्राप्त होता है तथा अन्यान्य प्रकारके गुण भी उत्पन्न होते हैं। पित्तके अपनी शिरामें कुपित रहनेसे भांति भांतिके पित्तरोग हुआ करते हैं।

श्लेष्माके अपनी शिरामें सञ्चरण करनेसे शरीरकी चिक्कणता, बल, स्फूर्तिभाव, सन्धिस्थानकी दृढ़ता होती है तथा अन्यान्य प्रकारके गुण उत्पन्न होते हैं। किन्तु यदि यह शिराके मध्य कुपित रहे, तो श्लेष्मजन्य नाना प्रकारके रोग होते हैं। रक्तके अपनी शिरामें सञ्चरण करनेसे सब धातुओंकी पुष्टि, शरीरके वर्ण और स्पर्शज्ञानकी तीक्ष्णता होती है तथा अन्यान्य प्रकारके गुण उत्पन्न होते हैं। रक्तके अपनी शिरा कुपित रहनेसे रक्तजन्य नाना प्रकारके रोग हुआ करते हैं।

जिन सब शिराओंकी बात कही गई, वे केवल पित्त अथवा केवल श्लेष्मा वहन करती हैं, सो नहीं। क्योंकि समस्त दोष कुपित और वर्द्धित हो कर जब शरीरके मध्य फैल जाते हैं, तब वे दोष एक दूसरेकी शिरामें प्रवेश कर सञ्चरण करते हैं। जो सब शिरायें वायु द्वारा पूर्ण होती हैं, वे अरुण वर्णकी; पित्तवाहिनी शिराएं उष्ण और नीलवर्णकी; कफवाहिनी शिराएं शीतल और गुरु तथा रक्तवाहिनी शिरायें रक्तवर्णकी और न अधिक ठंडी हैं और न अधिक उष्ण।

इन सब शिराओंमें जब कोई शिरा विद्ध हो जाती है, तब शरीरकी विकलता होती है, केवल विकलता ही नहीं, मृत्युकी भी सम्भावना हो जाती है।

इन अवेध्य शिराओंका विषय संक्षिप्त तौरसे लिखा जाता है। हाथ और पैरमें ४००, कोष्ठदेशमें १३६, मस्तकमें ६४, इनके मध्य हाथ और पांवमें १६ और कोष्ठदेशमें ३२ तथा मस्तकके ऊपरी भागमें ५०, इन सब शिराओंको विद्ध करना कर्त्तव्य नहीं है। हाथ और पैरमें जो एक सौ शिराएं कही गई हैं उनमेंसे जलधरा शिरा एक, उर्वी नामक मर्मस्थानमें स्थित दो और लोहिताक्ष नामक मर्मस्थानमें एक हैं, प्रत्येक हाथ और पैरमें इसी प्रकार चार चार करके १६ अवेध्य शिरायें हैं।

पृष्ठ, उदर और वक्षःस्थलमें अवेध्य शिराएँ ३२ हैं जिनमेंसे विटप और कटिक-तरुण नामक मर्मद्वयमें ८ हैं, प्रत्येक पार्श्वमें जो आठ आठ करके शिराएँ हैं, उनके मध्य भी ऊर्ध्वगामिनी दो, उभयपार्श्वमें पार्श्वसन्धिस्थित दो हैं, पृष्ठदण्डके दोनों ओर जो २४ शिराएँ हैं उनमेंसे दो दो करके चार बृहती नामक शिरा, उदरस्थ शिराके मध्य मेढ्रदेशमें रोमराजीके दोनों बगल दो दो करके चार हैं। वक्षःस्थलमें जो ४० शिराएँ हैं उनमेंसे हृदयदेशमें दो दो करके छः, स्तनमूल, स्तनरोहित, अपलाप और अपस्तम्भ इन चार मर्मस्थानोंमें ८, पृष्ठ, उदर और वक्षःस्थित शिराओंमेंसे ३२ शिराएँ विद्ध नहीं करनी चाहिए। स्कन्धसन्धिके ऊपरी भागमें १६४ शिराएँ हैं जिनमेंसे कण्ठ और ग्रीवादेशमें ५६ हैं। इन ५६के मध्य कण्ठनालीके दोनों बगल शिरामातृका ८, नीला दो, मन्या दो, कृकाटिक नामक मर्ममें दो, और विधुर नामक मर्ममें दो, ग्रीवादेशस्थ इन १६ शिराओंको विद्ध करना कर्त्तव्य नहीं है। हनुद्वयके दोनों बगल आठ आठ करके शिराएँ हैं जिनमेंसे दो दो करके चार सन्धिधमनी अवेध्य हैं।

जिह्वामें ३६ शिराएँ हैं जिनमेंसे रसवाहिनी दो और वाक्‌शक्ति-वाहिनी दो ये चार शिराएँ अवेध्य हैं।

तालुदेशमें एक ओर दोनों नेत्रकी ३८ शिराओंमेंसे अपाङ्ग नामक एक एक करके दो शिराएँ विद्ध नहीं करनी चाहिये। आवर्त्त करके मर्ममें दो, स्थपनी नामक मर्ममें एक और शङ्ख नामक मर्मद्वयमें दश शिराओंमेंसे शङ्खसन्धिके स्थानमें एक एक करके दो शिराए अवेध्य हैं।

मस्तक देशमें बारह शिराएँ हैं जिनमेंसे उत्क्षेप नामक मर्ममें दो, प्रत्येक सीमन्तमें एक एक करके पांच और अधिपति नामक मर्ममें एक शिरा है। ये सब अवेध्य हैं।

पद्मके मूलसे जिस तरह मृणालकी शाखा-प्रशाखा निकल कर जलको ढकी रहती है, उसी तरह नाभि-मूलसे शिराएं निकल कर देहके चारों ओर फैली हुई हैं। (सुश्रुत)

शिरा, धमनी, स्रोत आदि सभी नाड़ीके भेद हैं। धमनीका विषय धमनी और स्रोतमें तथा शिराका विषय शिरा शब्दमें देखो।

सुश्रुताचार्यके मतसे नाभिदेश ही शिरा और धमनीका मूल है। तन्त्रशास्त्रमें भी ऐसा ही लिखा है। किसी किसी तन्त्रमें ऐसा देखनेमें आता है, कि समस्त नाड़ियां मेरुदण्डसे निकली हैं।

"द्वे द्वे तिर्य्यक्‌गते नाड्यौ चतुर्विंशतिसंख्यया।
मेरुदण्डे स्थिताः सर्वे सूत्रे मणिगणाइव॥" (तन्त्र)

मेरुदण्डकी प्रत्येक ग्रन्थिसे दो दो करके नाड़ियां निकल कर प्रत्येक ओर चली गई हैं। आधुनिक शारीर-व्यवच्छेद विद्यामें ऐसा ही देखनेमें आता है। आर्यगणने भी, मेरुदण्डके ऊर्ध्वसे अधोभागमें नाड़ियां लम्बित हैं, ऐसा कहा है। यथा—

"ऊर्ध्वमूलमधःशाखं वृक्षाकारं कलेवरम्।
यथाश्वत्थदले तद्वत् शरीरे नाड्यः स्थिताः॥" (पुराण)

इस प्रकार शरीरके अन्तर्गत मस्तिष्क, मेरुदण्ड और तदन्तर्गत शिराओंके विषयमें आधुनिक पण्डितोंके साथ एक मत देखनेमें आता।

सुश्रुताचार्यका अभिप्राय—गर्भस्थ बालकको शरीर गठन और भरण-पोषणमें जिस रसका प्रयोजन पड़ता है, जननीके शरीरसे वही रस वहन करनेके लिये जो नाड़ी है, वह बालकके नाभिदेशमें संलग्न है। इस कारण नाभिको ही समस्त नाड़ियोंका मूल बतलाया गया है।

हठयोगमें भी नाड़ीका विषय विशेषरूपसे लिखा है। किस नाड़ीके किस समयमें किस भावसे बहनेसे शुभ और अशुभ फल होता है, उसका विषय हठयोगमें वर्णित है। हठयोग शब्द देखो।

नाड़ीप्रकाशमें नाड़ी देखनेका नियम इस प्रकार लिखा है। इसी नाड़ीकी गति द्वारा शरीरका जो शुभाशुभ फल जाना जाता है, उसका विषय यहां संक्षिप्त भावसे लिखा जाता है।—

"वामभागे स्त्रिया योज्या नाड़ी पुंसस्तु दक्षिणे।
इति प्रोक्ता मया देवी सर्वदेहेषु देहिनाम्॥" (नाड़ीप्र०)

स्त्रियोंकी बाईं ओरकी और पुरुषोंकी दाहिनी ओरकी नाड़ीकी परीक्षा करनी चाहिये। अङ्गुष्ठमूलमें जीवसाक्षिणी जो धमनी है, उसकी गतिके अनुसार देहधारियोंका सुख और दुःख जाना जाता है; अर्थात् नाड़ी देख कर शरीरकी सुस्थता और असुस्थताका ज्ञान हो जाता है।

वात, पित्त, कफ, द्वन्द्व, सन्निपात, साध्य और असाध्य विवरण नाड़ी द्वारा जाना जा सकता है।

नाड़ीपरीक्षाका समय।—प्रातःकालमें आचारपूत और सुखोपविष्ट हो कर सुखासीन व्यक्तिकी नाड़ी परीक्षा करनी चाहिये। जो नाड़ीकी परीक्षा करेंगे, उन्हें और जिसकी नाड़ी देखी जायगी, उसे भी स्थिर भावसे बैठना चाहिये। प्रातःकाल ही नाड़ी परीक्षाका उपयुक्त समय है। मध्याह्न कालादिमें उष्णता अधिक रहती है, इस कारण उस समय नाड़ी देखना प्रशस्त नहीं है।

नाड़ी देखनेका निषिद्धकाल।—सद्यःस्नात, सद्योभुक्त, क्षुधातृष्णातुर, आतपसेवी (जो तुरन्त धूप और आगके पाससे आया हो), तैलाभ्यक्त, निद्रित, निद्रावसानकाल और भोजन करनेके बाद नाड़ी परीक्षा नहीं करनी चाहिये।

वायु, पित्त और कफ ये तीन नाड़ियां यथाक्रम बहती

है। पहले वातनाड़ी, बीचमें पित्तनाड़ी और अन्तमें श्लेष्मनाड़ी प्रवाहित होती है। शरीरके सुस्थ रहनेसे नाड़ी स्वच्छ अर्थात् जड़तारहित होती है। इसमें विशेषता यह है, कि प्रातःकालमें नाड़ी स्निग्ध, दो पहरमें उष्ण और सायंकालमें कुछ वेगयुक्त होती है। शरीरके सुस्थ रहनेसे नाड़ीकी गति इसी प्रकार होती है।

शरीर यदि असुस्थ रहे, तो नाड़ीकी विशेषरूपसे परीक्षा करनी चाहिये। किस किस दोषकी अधिकता होनेसे शरीर असुस्थ हो जाता है, वह इसी नाड़ी द्वारा जाना जाता है।

वायुकी अधिकता होनेसे नाड़ी वक्रगति, पित्तकी अधिकतासे चञ्चल और श्लेष्माका प्रकोप होनेसे नाड़ी स्थिर होती है अर्थात् वायुकी अधिकता हो कर जिस समय शरीर असुस्थ हो जाता है, उस समय नाड़ीकी गति वक्र, पित्तमें चञ्चल और श्लेष्मामें स्थिर होती है। मिश्र-दोषमें नाड़ीकी गति भी मिश्र हुआ करती है। यही एक प्रकारकी साधारण नाड़ीगति है।

जिस समय पित्तकी अधिकता होती है, उस समय नाड़ी काक, लावक और भेकादिकी चाल-सी चलती है, श्लेष्माकी अधिकतामें राजहंस, मयूर, पारावत, कपोत, गज और वराङ्गनाकी तरह तथा वायुकी अधिकतामें नाड़ी वृश्चिक-गतिकी तरह चलती है।

द्वन्द्वज नाड़ीगति।—जिस समय नाड़ी कभी तो साँप-की तरह और कभी भेदकी तरह चलती है, उस समय समझना चाहिये कि वायु और पित्तका प्रकोप है। जब यह कभी साँपकी तरह, कभी राजहंसकी तरह चले, तो वातश्लेष्मका प्रकोप और जब कभी भेककी तरह अथवा मयूरकी तरह चले, तो पित्तश्लेष्मका प्रकोप समझना चाहिए।

त्रिदोषज नाड़ीगति।—यदि नाड़ी कभी उरगादि-गति, कभी लावकादि अथवा हंसादिकी तरह गति-विशिष्ट हो, तो त्रिदोषकुपित हुआ है, ऐसा जानना चाहिए। इस त्रिदोषमें नाड़ीकी गति कभी तेज और उसी समय कभी मन्द हो जाती है।

जिस समय नाड़ी पित्तादि गतिक्रमसे अर्थात् वायु, पित्त और कफके अनुसार चलती है, उस समय रोगीको सुखसाध्य समझना चाहिए। जिस समय नाड़ी धीरे धीरे अथवा शिथिलभावसे चले अथवा कभी अत्यन्त व्याकुल-में रह रह कर लयप्राप्त हो जाय और फिर उसी समय अत्यन्त सूक्ष्मनाड़ीका अनुभव हो, तो रोगीको असाध्य जानना चाहिए अर्थात् उसकी मृत्यु निकट आ गई, ऐसा स्थिर करना चाहिए। जिसकी नाड़ीकी गति रथचक्रकी तरह चले अर्थात् कोई नाड़ी स्थिर न रहे, तो रोगको असाध्य जानना चाहिए। जिसका शरीर अत्यन्त उत्तप्त लेकिन नाड़ी शीतल अथवा नाड़ी उत्तप्त और शरीर शीतल हो, तो उसकी अवश्य मृत्यु होगी, इसमें संशय नहीं।

त्रिदोषमें मृत्युके समय भी नाड़ी निश्चल हो कर स्पन्दित होती है। जो नाड़ी अत्यन्त उग्र, अथवा अत्यन्त स्थिर, सूक्ष्म अथवा वक्रगतियुक्त हो, तो उस रोगको असाध्य जानना चाहिए।

मूर्च्छा, शोक, भय आदिमें नाड़ी त्रिदोषजकी तरह चलती है। किन्तु वह स्थायी नहीं है, मूर्च्छाका ह्रास हो जानेसे क्रमशः नाड़ी स्वाभाविकी चालसे चलने लगती है। जब तक नाड़ी स्वस्थानच्युत न हो जाय, असाध्य होने पर भी तब तक चिकित्सा करना विधेय है।

जिस समय जिस रोगीकी नाड़ी मन्दीभावापन्न क्रम और मसृण हो जाती है, वक्रगतिसे चलने लगती है, कभी सर्पगतितुल्य अत्यन्त पुष्ट हो कर फिर क्षीण हो जाती है, उसकी उस मासके अन्तमें मृत्यु अवश्य होती है।

जिसकी नाड़ी थोड़े ही समयके भीतर यदि कभी अतिवेगवान् और कभी शान्त हो जाय और उसे यदि शोथ न रहे, तो उसकी मृत्यु सात दिनमें होगी, ऐसा जानना चाहिये।

ज्वररोगमें नाड़ीगति।—ज्वर होनेसे नाड़ी उष्ण और वेगयुक्त होती है। पित्त छोड़ कर उष्ण नहीं हो सकता, उष्णता ही ज्वरका प्रधान लक्षण है। इसमें ज्वर होनेसे ही पित्तप्रकोप हुआ है, ऐसा जानना चाहिए। वायुकी अधिकता हो कर ज्वर होनेसे नाड़ी वक्र और धावमान होती है। सहज वातजज्वरमें नाड़ी सौम्य, सूक्ष्म, स्थिर और मन्द, तीव्रमारुत ज्वरमें स्थूल और कठिनभावमें

शीघ्रगामी तथा श्लेष्मप्रकोपमें नाड़ी तन्तुसम, मन्द और शीतल होती है।

पित्तज्वरमें नाड़ी द्रुत, सरल, दीर्घ और शीघ्रगामी होती है।

द्वन्द्वज ज्वरमें नाड़ीगति।—वात और पित्तके दूषित होनेसे नाड़ी चञ्चल, तरल, स्थूल और कठिन; वात-श्लेष्म-ज्वरमें ईषदुष्ण और मन्द तथा पित्तश्लेष्मामें नाड़ी सूक्ष्म, शीतल और स्थिर होती है।

भूतज्वरमें नाड़ी बहुत तेजसे चलती है। व्यायाम, भ्रमण, चिन्ता, श्रम और शोकमें नाड़ीकी गति नाना प्रकारकी हो जाती है। कुछ समय बाद वह नाड़ीगति सुस्थकी तरह चलने लगती है।

अजीर्ण रोगमें नाड़ी कठिन, जड़, प्रसन्न, द्रुत, शुद्ध और शीघ्रगामी होती है। मन्दाग्नि और धातुके क्षीण होनेसे नाड़ी धीरे धीरे चलने लगती है। (नाड़ीप्रकाश)

यूरोपियोंके मतसे शरीरके अन्दर छोटी बड़ी जितनी धमनियां वा शिराएं हैं, उनका साधारण नाम नाड़ी है। समस्त शिराएं अपेक्षाकृत स्थूल हैं, उनके मध्य हो कर रक्तस्रोत बहता है, इस कारण गतिका अनुभव सहजमें किया जाता है। विशेषतः हाथके मणिबन्धकी निकटस्थ शिराएं जैसी स्थूल हैं, वैसी ही भासमान (Superficial) हैं। इनकी निम्नस्थ अस्थि (Radical bone)के ऊपर इन्हें दबाना बहुत सहज है, इसी कारण शारीरिक शुभाशुभ अवस्थाका निश्चय करनेके लिए साधारणतः इन शिराओंकी गतिकी परीक्षा की जाती है। नाड़ी (Pulse) कहनेसे अभी व्यवहारके अनुसार इसी मणिबन्धके निम्नस्थ हाथकी शिराका बोध होता है।

नाड़ी वा शिरा अत्यन्त स्थितिस्थापक है। हम लोगोंके रक्ताशय (Heart)से धमनीके छिद्रमें रक्तस्रोत हमेशा प्रक्षिप्त होता है।

जिस समय इस प्रकार रक्त प्रक्षिप्त होता है, उस समय शिराएं फूल उठती हैं, किन्तु तत्पश्चात् ही पुनः उनकी स्थितिस्थापकताके गुणसे पूर्वकी तरह सङ्कुचित अवस्थामें परिणत हो जाती है।

नाड़ी वा धमनीके इस प्रकार आकुञ्चन और प्रसारणका नाम नाड़ीकी गति है। सूक्ष्म शिरामें उस गतिका अनुभव करना कठिन है।

डाक्टर लोग नाड़ीको इस गतिके परिमाण (beat)-के निर्णय द्वारा तथा प्रधानतः उसकी निम्नोक्त कई एक अवस्थाएं देख कर चिकित्सा किया करते हैं।

१। नाड़ीकी गतिका नियम अर्थात् कभी तो नाड़ी प्रबलवेगसे कभी मृदुभावसे और कभी सविराम भावसे चलती है।

२। कभी नाड़ी स्थूल (Full) और कभी सूक्ष्म अवस्थामें रहती है।

३। नाड़ीकी दुर्बलता वा तरलता।

४। नाड़ीका काठिन्य (Tension)।

उन लोगोंका मत है, कि अवस्थाके साथ साथ नाड़ीकी गतिमें भी अन्तर देखा जाता है। शिशु जब मातृगर्भमें रहता है, उस समय नाड़ी * प्रति मिनटमें १४०से १५० बार धड़कती (beat) है। उसके भूमिष्ठ होनेके साथ ही उसकी नाड़ीकी गति १३०से १४० बार हो जाती है। जब उसकी उमर दो वर्षकी होती है, तब १००से ११५ बार, सात वर्षसे ले कर चौदह वर्षकी उमरमें ८०से ९० बार, चौदहसे इक्कीस वर्षकी उमरमें ७५से ८५ बार और इक्कीससे साठ वर्षकी उमरमें नाड़ी प्रति मिनटमें ७०से ७५ बार धड़कती है। इससे भी अधिक उमरके व्यक्तियोंकी नाड़ीगति क्रमशः कम होती है। किन्तु सभी समय यह नियम लागू नहीं है। युवकोंमें कभी कभी किसीकी नाड़ी ६० बारसे भी कम हो जाती है। किसीकी नाड़ी तो ४० बारसे अधिक आन्दोलित होती ही नहीं। फिर किसीकी नाड़ी १०० बार धड़कती हुई देखी गई है। अतः उन्हें किसी प्रकारकी पीड़ा है, इसका अनुभव नहीं किया जा सकता।

फिर स्त्री-पुरुषके भेदसे नाड़ीकी गतिमें प्रभेद देखा जाता है। युवतियोंकी नाड़ी युवकोंकी नाड़ीसे मिनटमें १०से १४ बार अधिक आघात करती है। डाक्टर गाइ (Dr. Guy)का कहना है, कि अवस्थाभेदसे नाड़ीकी गतिमें भी अन्तर पड़ जाता है अर्थात् २७ वर्ष-

* यहां पर मणिबन्धकी निम्नस्थ नाड़ीका आघात (beat) समझना चाहिये।

का कोई स्वस्थ युवक जब बैठा रहता है, तब उसकी नाड़ी साधारणतः ७७ बार, जब खड़ा रहता है, तब ८१ बार और जब सो जाता है, तब ६६ बार आघात करती है। उतनी ही उमरकी युवतीकी नाड़ी उक्त अवस्थाओंमें क्रमशः ८४, ९१ और ७९ बार धड़कती है। जाग्रत् अवस्थाकी अपेक्षा निद्रितावस्थामें नाड़ीकी गति बहुत कम होती है। पीड़ा होने पर रोगविशेषमें १५०से २०० बार और २०से ३० बार तक भी नाड़ी धड़कती है।

असमानगति विशिष्ट नाड़ीको दो श्रेणीमें विभक्त कर सकते हैं। एक श्रेणीमें कभी कभी नाड़ी दूसरीकी अपेक्षा बहुत शीघ्र शीघ्र और कभी बहुत धीरे धीरे चलती है।

दूसरी श्रेणीमें कभी कभी नाड़ी कुछ भी आघात नहीं करती। किन्तु कुछ देर बाद धक धक करने लगती है। एक ही व्यक्तिमें ये दो प्रकारकी गतिविशिष्ट नाड़ियां लक्षित होती हैं। केवल कठिन रोग होने पर नाड़ीकी ऐसी अवस्था देखी जाती है, सो नहीं। कितने लोगोंकी स्वाभाविक नाड़ीकी गति ही इस प्रकारकी है। दुर्बलताके कारण भी किसीकी नाड़ीकी ऐसी प्रकारकी अवस्था हो जाती है। किन्तु मस्तिष्कको पीड़ा और हृद्रोग होनेसे ही साधारणतः नाड़ीकी ऐसी अवस्था हुआ करती है।

रक्तके परिमाणकी कमी वेशीके अनुसार नाड़ीको कभी परिपूर्ण वा स्थूल और कभी अपरिपूर्ण वा सूक्ष्म कह सकते हैं।

रक्तादिकी अत्यन्त अधिकता होनेसे अथवा हृत्-पिण्डके वामकोष्ठ (left ventricle of the heart)-के बहुत काल तक क्रमागत जोरसे कुञ्चित होनेसे तथा सम्भवतः नाड़ीका आवरण शिथिल होनेसे नाड़ीकी पूर्वोक्त अवस्था होती है। साधारणतः रक्तका अभाव होनेसे, हृत्पिण्डके निस्तेज भावमें कार्य करनेसे, शिरा-मण्डलीमें रक्तके अधिक जमनेसे अथवा अधिक ठण्ढ लगनेसे नाड़ी सूक्ष्मावस्थाको प्राप्त होती है।

नाड़ीको दाबनेसे यदि उसकी गति रुक न जाय, तो उसे कठिन (Hard) नाड़ी कहते हैं। नाड़ीके कठिन होनेसे रक्तको निकाल (Venesection) देना उचित है। नरम नाड़ी दुर्बलताकी सूचक है। हृत्पिण्डसे नाड़ीके मध्य जिस वेगसे रक्त प्रचलित होता है, तदनुसार नाड़ीकी सबलता वा दुर्बलताका ज्ञान होता है अर्थात् रक्त यदि प्रबल वेगसे चालित हो, तो नाड़ी भी घन घन आघात करती है और तब उस नाड़ीको सबल नाड़ी कहते हैं। यदि रक्त मृदुभावसे चालित हो, तो नाड़ी भी धीरभावसे आघात करती है और उस समय नाड़ीको दुर्बल नाड़ी कहते हैं। किन्तु यह दुर्बलता वा सबलता बहुत कुछ रक्तके परिमाणके ऊपर निर्भर करती है। सबल नाड़ी साधारणतः शरीरकी सुस्थता ज्ञापक है, किन्तु किसी कारणवश यदि हृत्पिण्डका वाम प्रकोष्ठ (left ventricle of the heart) बहुत पुष्ट हो जाय, तो सभी समय नाड़ीकी सबल अवस्था देखी जाती है; यहां तक कि साधारण शक्तिका ह्रास होनेसे भी नाड़ीकी दुर्बलता लक्षित नहीं होती। नाड़ीकी गतिके अवस्थानुसार यह भिन्न भिन्न नामोंसे पुकारी जाती है। शिरा देखो।

नाड़ीक (सं० त्रि०) नाड़ीव कायति कै-क। १ शाक-विशेष, पटुआसाग। पर्याय—पट्टशाक, नाड़ीशाक। गुण—रक्तपित्त-नाशक, विष्टम्भी और वातप्रकोपक। (भावप्र०)

नाड़ीकपालक (सं० पु०) नाड़ीनां नाड़ीवन्नालानां कलापः समूहो यत्र, कप्। सर्पाक्षीलता, भिड़नी नामकी घास।

नाड़ीकूट (सं० क्ली०) नाड्या रेखाभेदेन कूटं नक्षत्रकूटं ज्ञाप्यं यत्र। विवाहाङ्ग नाड़ीचक्रसूचित नक्षत्रसमूह, नाड़ी-नक्षत्र। विवाह देखो।

नाड़ीकेल (सं० पु०) नारिकेलः पृषोदरादित्वात् साधु। नारिकेल, नारियल।

नाड़ीगति (सं० स्त्री०) नाड़ीनां गतिः ६-तत्। नाड़ीकी गति इससे शरीरका शुभाशुभ स्थिर किया जाता है। नाड़ीज्ञ व्यक्ति नाड़ीकी गति देख कर शारीरिक स्वास्थ्य और अस्वास्थ्यका विषय कह सकते हैं। नाड़ी देखो।

नाड़ीच (सं० पु०) नाड्या चीयते चि बाहुलकात् ड। शाकविशेष, पटुआसाग। पर्याय—केचुक, पेचुली, पेचु, विश्वरोचन। यह नाड़ीशाक दो प्रकारका होता है,

कड़ुआ और मोठा। कड़ुआ भाग रक्तपित्त, क्रमि और कुष्ठनाशक तथा मीठा भाग शीतल, विष्टम्भि, कफ और वातनाशक होता है।

नाड़ीचक्र (सं० क्लो०) नाड़ीचक्रमिव बन्धनस्थानं। १ नाभिस्थल स्थित चक्रभेद, हठयोगके अनुसार नाभिदेशमें कल्पित एक अण्डाकार गांठ जिससे निकल कर सब नाड़ियां फैली हैं। २ रेखाविशेषसे नक्षत्रभेदज्ञापक चक्रभेद, फलितज्योतिषमें नक्षत्रोंके उन भेदोंको सूचित करनेवाला कोष्ठ या चक्र जिन्हें नाड़ी कहते हैं।

विवाह देखो।

नाड़ीचरण (सं० पु०) नाड़ीवत् चरणौ यस्य। पक्षी, चिड़िया।

नाड़ीजङ्घ (सं० पु०) नाड़ीवत् जङ्घा यस्य। १ काक, कौवा। २ मुनिविशेष, एक मुनिका नाम। ३ वकविशेष, एक बगलेका नाम। महाभारतमें इस बगलेका उल्लेख आया है। यह वक काश्यपका पुत्र था और इन्द्रद्युम्न सरोवरके किनारे रहता था। यह महाप्राज्ञ था, वकोंका राजा था और ब्रह्माका अत्यन्त प्रियपात्र तथा दीर्घजीवी था। वह राजधर्मा नामसे मशहूर था

नाड़ीतरङ्ग (सं० पु०) नाड्यां नालायां तरङ्गः यत्र। १ काकोल। २ हिण्डक। ३ रतहिण्डक।

नाड़ीतिक्त (सं० पु०) नाड्या तिक्तः। नेपालनिम्ब, नेपाली नीम। नेपालनिम्ब देखो।

नाड़ीदेह (सं० त्रि०) नाड़ीसारो देहो यस्य। १ अतिकृश, अत्यन्त दुबला पतला। (पु०) २ भृङ्गी, शिवका एक द्वारपाल।

नाड़ीनक्षत्र (सं० क्लो०) नाड़ीस्थितं नक्षत्रम्। त्रनाड़ीचक्र और नवनाड़ीचक्रस्थित नक्षत्रसमूह, वर-वधूकी गणना देखनेके लिये कल्पित चक्रोंमें स्थित नक्षत्र। जिस नक्षत्रमें मनुष्यका जन्म होता है उस, तथा उससे दशवें, सोलहवें, अठारहवें, तेईसवें और पचीसवें नक्षत्रको नाड़ी नक्षत्र वा नाड़ी कहते हैं। जन्मनाड़ीको आद्य, दशवींको कर्म, सोलहवींको सांघातिक, अठारहवींको समुदय, तेईसवींको विनाश और पचीसवींको मानस कहते हैं।

नाड़ीपरीक्षा (सं० स्त्री०) १ मणिवन्धस्थित नाड़ीके घात प्रतिघात द्वारा शरीरका अवस्थानिर्णय, शरीरके शुभाशुभका ज्ञान जो नाड़ीकी गति द्वारा किया जाता है। २ एक वैद्यक ग्रन्थ।

नाड़ीप्रकाश (सं० पु०) एक भैषज्यग्रन्थ। शङ्करसेनने इसकी टीका बनाई है।

नाड़ीमण्डल (सं० पु०) विषुवद्रेखा।

नाड़ीयन्त्र (सं० क्लो०) नाड़ीव नालीव यन्त्रम्। सुश्रुतोक्त शल्योद्धारणाय यन्त्रभेद, सुश्रुतके अनुसार शस्त्रचिकित्सा या चीरफाड़का एक औजार। यह बीस प्रकारका होता है। यह यन्त्र कई कामोंमें आता है। इसमें एक ओर मुंह रहता है। यह शरीरकी नाड़ियों या स्रोतोंमें घुसी हुई चीजको बाहर निकालनेके काममें आता है। शिरा, धमनी, मलद्वार आदि शरीरमें जितने स्रोत अर्थात् द्वार हैं, उनके मुँहके अनुसार अथवा स्थानविशेषके प्रयोजनानुसार इस यन्त्रकी लम्बाई और चौड़ाई होती है।

नाड़ीवलय (सं० क्लो०) नाड्याः घटिकायाः ज्ञानार्थं वलयं वलयाकारं यन्त्रम्। सिद्धान्तशिरोमणिकथित यन्त्रभेद, काल या समय निश्चित करनेका एक यन्त्र, एक प्रकारकी घड़ी। सिद्धान्तशिरोमणिमें इसका पूरा ब्योरा दिया गया है।

नाड़ीविग्रह (सं० पु०) नाड़ीसारो विग्रहो यस्य, अतिकृशत्वात् तथात्वं। अतिकृश भृङ्गी, बहुत दुबला पतला शिवके एक अनुचरका नाम।

नाड़ीव्रण (सं० पु०) नाड़ीसंलग्नो व्रणः। सर्वदा गलद्व्रण, वह घाव जिसमें भीतर ही भीतर नलीकी तरह छेद हो जाय और उसमेंसे बराबर मवाद (पीब) निकला करे। माधवकर निदानमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है,—

"यः शोथ मामभिति पक्वमुपेक्षतेऽज्ञो
यो वा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्तः।
अभ्यन्तरं प्रविशति प्रविदार्य तस्य
स्थानानि पूर्वविहितानि ततः सपूयः॥
तस्यातिमात्रगमनात् गतिरिष्यते तु।
नाड़ीव यद्वहति तेन मता तु नाड़ी॥"

(माधवकर निदान)

भावप्रकाशमें इस नाड़ीव्रणका विषय इस प्रकार

लिखा है,—जो सब मनुष्य अज्ञानतावशतः पक्वव्रणको अपक्व जान कर मवाद (पोव) नहीं निकालते और अहित आहार-विहारकारी व्यक्ति गम्भीर अथवा अत्यधिक पूयसंयुक्त व्रणको उपेक्षा कर पूयस्राव नहीं करते, उनका वह सञ्चित पूय (पोव) त्वक, मांस, शिरा, स्नायु, सन्धि, अस्थि, कोष्ठ और मर्मस्थानको विदारण कर भीतरमें प्रवेश कर जाता है और बहुत दूर चला जाता है, इस कारण सर्वदा पोप निकलती रहती है। सच्छिद्र नलादि नाड़ीकी तरह प्रवाहित है, इस कारण इसे नाड़ीव्रण कहते हैं।

नाड़ीव्रण पांच प्रकारका है - वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और शल्यज।

वातिक नाड़ीव्रणका लक्षण—वातजन्य नाड़ीव्रण कर्कश, सूक्ष्म छिद्रविशिष्ट और वेदनायुक्त होता है। रातको इससे सफेन पीप बहुत निकलती है। पित्तजन्य नाड़ीव्रणमें पिपासा, ज्वर और दाह होता है तथा उससे दिनके समय अधिक परिमाणमें पूयस्राव होता है।

कफजन्य नाड़ीव्रण शुक्लवर्ण और पिच्छिल होता है। इससे भी पीप अधिक निकलती है। यह वेदना-हीन और कण्डुयुक्त होता है।

त्रिदोषज नाड़ीव्रणमें उक्त वातादि तीनों दोषोंके समस्त लक्षण तथा दाह, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, और मुखशोष उत्पन्न होता है। यह रोग कालरात्रिकी तरह अत्यन्त भयङ्कर और प्राणनाशक है।

शल्यज नाड़ीव्रणका लक्षण—विपथगामी शल्य जब त्वक् मांसादिके मध्य प्रविष्ट हो कर अदृश्यभावसे रहता है, तब शीघ्र ही नाड़ीव्रण उत्पन्न होता है, इसे शल्यज नाड़ीव्रण कहते हैं। इससे हमेशा वेदनाके साथ मथित रक्तमिश्रित अथच सफेन उष्णस्राव निकलता रहता है

नाड़ीव्रणका असाध्य और यत्नसाध्य लक्षण—त्रिदोषज नाड़ीव्रण असाध्य और अन्यान्य दोषोंसे उत्पन्न तथा शल्यज नाड़ीव्रण यत्नसाध्य है।

नाड़ीव्रणकी चिकित्सा।—वातज नाड़ीव्रणमें पहले उपनाह (पुलटिस) दे कर व्रणस्थानको कोमल बनावें; पीछे समस्त नाड़ियोंको काट डालें। अनन्तर अपामार्गके फलको भलीभांति पीस कर सैन्धव नमकके साथ क्षत-स्थानको भर दें और ऊपरसे पट्टी बांध दें। दूसरे दिन उसे पञ्चमूलीके काढ़ेसे धो डालें। बाद हिंस्राद्य-तैलका व्यवहार करनेसे व्रणका शोधन, रोपण और पूरण हो जाता है। इस तैलकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार है—तैल ४ सेर, कल्कार्थ जटामांसी, हरिद्रा, कटकी, वच, गोजिह्वा और बिल्वमूल सब मिला कर एक सेर; जल १६ सेर सबको यथाविधान पाक करनेसे हिंस्राद्य-तैल तैयार हो जाता है।

पित्तज नाड़ीव्रणमें दुग्ध और घृत संयुक्त उत्कारिका द्वारा पुलटिस देनी होती है। बाद व्रणस्थान जब कोमल हो जाय, तब शस्त्र द्वारा नाली काट डालते हैं। अनन्तर तिल, नागकेशर, दन्ती और मञ्जिष्ठाको अच्छी तरह पीस कर क्षतस्थानको भर देते और पट्टी बांध देते हैं। दूसरे दिन हलदी, गुलञ्च और नीमके काढ़ेसे क्षतस्थानको साफ करते हैं। बाद उस स्थान पर श्यामा-घृतका प्रयोग करनेसे कोष्ठगत नाड़ीव्रण अच्छा हो जाता है। श्यामाघृतकी प्रस्तुत प्रणाली—घृत ४ सेर, कल्कार्थ अनन्तमूल, निसोथ, त्रिफला, हरिद्रा, लोध और कुटज सब मिला कर एक सेर तथा गायका दूध १६ सेर। यथा-नियम पाक करनेसे श्यामाघृत प्रस्तुत होता है।

कफज नाड़ीव्रणमें पहले कुलथी, उरद, सफेद सरसों, सत्तू और बिल्व द्वारा पुलटिस दे कर व्रण स्थानको मुलायम बनाते हैं। मुलायम हो जाने पर उस स्थानकी नाड़ीको शस्त्र द्वारा काट डालते हैं। बाद नीम, तिल, चीता, दन्ती, सौराष्ट्रमट्टी और सैन्धव नमकको पीस कर क्षतस्थानको भर देते हैं और ऊपरसे पट्टी बांध देते हैं। दूसरे दिन कलञ्ज, नीम, जाती, अकवन आदिके रससे क्षतस्थानको धो डालते हैं। बाद स्वर्जिकाद्यतैलका व्यवहार करनेसे यह कफज नाड़ीव्रण प्रशमित हो जाता है। इसमें सैन्धवाद्य तैल भी विशेष उपकारी है।

स्वर्जिकाद्यतैल—तैल ४ सेर; कल्कार्थ स्वर्जिका-क्षार, सैन्धव, दन्ती, चीता, यूथी, शेवाल और अपाङ्ग बीज सब मिला कर एक सेर, गोमूत्र १६ सेर। अनन्तर यथाविधान पाक करना होता है।

सैन्धवाद्यतैल—तैल ४ सेर; कल्कार्थ सैन्धव, आकन्द, मिर्च, चीता, भृङ्गराज, हरिद्रा और दारुहरिद्रा

सब मिला कर एक सेर। इस तैलका प्रयोग करनेसे वातज और कफज नाड़ीव्रण भी चङ्गा हो जाता है।

शल्यज नाड़ीव्रण—शस्त्र द्वारा शल्य बहिर्गत कर व्रणस्थानकी पीप निकाल देनी चाहिये। बाद नीम और तिलको पीस कर अधिक परिमाणमें घृत और मधुसे क्षतस्थानको भर करके ऊपरसे पट्टी बांध देनी चाहिये। इसमें कुम्भिकाद्यतैलका प्रयोग करनेसे सद्य फल प्राप्त होता है।

थूहर और अकवनके दूध तथा दार्वी द्वारा बत्ती प्रस्तुत कर उसका प्रयोग करनेसे सर्वशरीरगत नाड़ीव्रण अवश्य ही आरोग्य हो जाते हैं। अमलतासका पत्ता, हलदी और कुट इन सबका चूर्ण ८ माशा, मधु ४ तोला और गोमूत्र ८ तोला इन सबको एकत्र पाक कर बत्ती बनाते हैं। बाद इसका प्रयोग करनेसे व्रणशोधित होता है और नाड़ीव्रण नष्ट हो जाता है।

मधु और सैन्धवकी बत्ती बना कर उसे नाड़ीमें प्रवेश करानेसे नाड़ीव्रण नष्ट हो जाता है। दुष्टव्रणमें जो सब तैल कहा गया है नाड़ीव्रणमें भी उसी तैलका प्रयोग करनेसे वह प्रशमित हो जाता है। जातिपत्र, आकन्दका मूल, शोनालुपत्र, छहरकरञ्जका बीज, दन्तीमूल, सैन्धव, सौवर्चल, चीता और यवक्षार इन सब द्रव्योंको थूहरके दूधमें पीस कर बत्ती बनाते हैं। इसका प्रयोग करनेसे नाड़ीव्रण अतिशीघ्र आराम हो जाता है। शूकरकी विष्ठाको जला कर स्याही बनाते हैं। बाद बहेड़ा, आम्रबीज, वरोह, रेणुका, शङ्खिनीबीज और तैलको उसमें मिला कर नाड़ीव्रणमें प्रयोग करनेसे बहुत फायदा होता है।

कर्चूरके स्वरस और सिन्दूरके कल्क द्वारा सरसों तेल पाक करके प्रयोग करनेसे नाड़ीव्रण दूर हो जाता है।

भल्लातकाद्यतैल, सर्जिकाद्यतैल और सप्ताङ्गगुग्गुल नाड़ीव्रणमें विशेष उपकारी है। शारीरव्रणोक्त सब प्रकारके शोधन और रोपणादि क्रिया भी नाड़ीव्रणमें कर्त्तव्य है।

क्षय, दुर्बल और भयशील व्यक्तियोंकी नाड़ीको तथा मर्माश्रित नाड़ीको क्षारसूत्र द्वारा छेदन करना चाहिये। ऐसी हालतमें शस्त्रप्रयोग करना बिलकुल निषेध है। एषणी द्वारा शोषकी गतिका अनुसन्धान कर सुईके छेदमें तागा पिरोते हैं। बाद शोषके एक प्रान्तभागमें उसे घुसो कर बहुत जल्द बाहर निकाल लेते हैं। पीछे उस क्षारसूत्रके दोनों प्रान्तको एक साथ कस कर बांध देते हैं। यदि उसमें छेद न हो, तो क्षारके बलाबलको विवेचना करके दूसरी बार क्षाराक्त सूत्र प्रविष्ट कर अच्छी तरह बांध देते हैं। जब तक उस प्रान्तमें छेद न हो जाय, तब तक इसी प्रकार करते रहना चाहिये। व्रणके क्षारसूत्रसे छिन्न हो जाने पर उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। (भावप्र० चतुर्थ० नाड़ीव्रणाधि०)

भैषज्यरत्नावलीमें नाड़ीव्रणकी बहुत-सी औषधियां लिखी हैं।

नाड़ीशाक (सं० पु०) नाड़ीप्रधानः शाकः। नाड़ीक, पटुआ साग।

नाड़ीशुद्धि (सं० स्त्री०) नाड़ीनां शुद्धिः ६-तत्। नाड़ीशोधन। हठयोगमें इसका विषय लिखा है।

नाड़ीशोधनतैल (सं० क्लो०) तैल औषधभेद।

नाड़ीस्वरसञ्चार (सं० पु०) नाड़ीस्वरे सञ्चारः ७-तत्। नाड़ीभेदसे वायुको बहनरूप गतिभेद। स्वरोदय और रुद्रयामलमें इसका विषय विस्ताररूपसे लिखा है। वामभागस्थित ईड़ानाड़ी हो कर जब अधिक श्वास निकलता है, तब उसे चन्द्रोदय और जब दक्षिणकी ओर पिङ्गलानाड़ी हो कर निकलता है, तब उसे सूर्योदय कहते हैं अर्थात् वाम नासिका द्वारा अधिक श्वास निकलनेको चन्द्रोदय और दक्षिण नासिका द्वारा निकलनेको सूर्योदय कहते हैं। स्वरोदयग्रन्थमें लिखा है, कि यात्रादि अथवा और किसी दूसरे शुभकार्यका फल नासिकाकी ईड़ा और पिङ्गलानाड़ीकी गतिके अनुसार जाना जाता है।

यात्राकाल, विवाहसमय, वस्त्र और अलङ्कार पहननेके समय तथा अन्य शुभकार्यमें चन्द्र शुभ है। उक्त समयमें यदि वामनासापुटमें वायुका सञ्चार अधिक हो, तो वे सब कार्य शुभ होते हैं। विग्रह, द्यूत, युद्ध, स्नान, भोजन, मैथुन, व्यवहार भय और भङ्ग इन सब विषयोंमें सूर्यनाड़ी प्रशस्त मानी गई है। इस समय दक्षिण नासिकामें वायुका सञ्चार अधिक होनेसे वे सब कार्य फलीभूत होते हैं। (शब्दयामल)

मोहन, शान्तिकार्य, दिव्यौषधि, रसायन, विद्यारम्भ और सभी स्थिरकार्य चन्द्रोदयमें अर्थात् जब वामनासिका द्वारा अधिक वायु निकले, तब फलीभूत होते हैं। यात्राकालमें जब जिस नासिकापुट हो कर अधिक वायु निकले, तब पहले वही पद आगे रख कर चलना चाहिये। ऐसा करनेसे कार्यकी सिद्ध होती है।

नाड़ीस्नेह (सं० पु०) नाड्यामिव स्नेहो यस्य। १ नाड़ीमात्रसार, वह जो बहुत पतला हो। २ शिवके एक द्वारपालका नाम।

नाड़ीहिङ्गु (सं० पु०) नाड़ीप्रधानं हिङ्गु। १ हिङ्गुभेद, एक प्रकारको हींग या गोंद। पर्याय—पलाशान्न, जन्तुका, रामठी, वंशपत्री, पिण्डाह्वा, सुवीर्या, हिङ्गुनाड़िका। गुण—कटु, उष्ण, कफ और वातजन्य पीड़ानाशक; विष्ठा, विबन्ध, दोष और आनाहरोग-शान्तिकर। (राजनि०) २ एक प्रकारका वृक्ष जिसमेंसे एक प्रकारकी हींग या गोंद निकलता है। यह गोंद औषधके काममें आता है। इस वृक्षकी पत्तियां बटमोगराकी पत्तियोंसे मिलती जुलती हैं। फूल सफेद और फल पोस्तेके ढेंढ़के समान होते हैं।

नाड़्‌टाना (हिं० पु०) बैलोंकी एक जाति जो मैसूरमें होती है। इस जातिके बैल बहुत बड़े नहीं होते पर मेहनती और मजबूत अधिक होते हैं।

नाणक (सं० क्लो०) अणति शब्दायते इति अन खुल् नआणकम्। १ मुद्राचिह्नित निष्कादि, सिक्का। २ धातु। ३ निष्क।

नाणकपरीक्षा (सं० स्त्री०) धातु-परीक्षा।

नाणकपरीक्षी (सं० पु०) धातुपरीक्षक, वह जो धातुकी परख करता हो।

नात (हिं० पु०) १ नातेदार, सम्बन्धी। २ नाता, सम्बन्ध।

नातपूता—बम्बई प्रदेशके सोलापुर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १७° ५३' ४०" उ० और देशा० ७४° ४७' ३६" पू०के मध्य, पण्ढरपुर शहरसे ४२ मील उत्तर-पश्चिम तथा सतारासे ६६ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। पूनासे सोलापुर तक जो राजपथ गया है, उसी पर यह नगर अवस्थित है। कहते हैं, कि ब्राह्मणी-राजके मन्त्री मालिक-सुन्दरने यह नगर बसाया।

नातरु (हिं० स्त्री०) अन्यथा, और नहीं तो।

नातवां (फा० वि०) दुर्बल, अशक्त, क्षीण, निर्बल।

नाता (हिं० पु०) १ कुटुम्बकी घनिष्ठता, ज्ञातिसम्बन्ध, रिश्ता। २ सम्बन्ध, लगाव।

नाताकत (फा० वि०) जिसे ताकत या बल न हो, निर्बल, कमजोर।

नातिदीर्घ (सं० त्रि०) न अति दीर्घः। जो अधिक लम्बा न हो।

नातिन (हिं०स्त्री०) लड़कीकी लड़की, बेटीकी बेटी।

नातिशीतोष्ण (सं० त्रि०) शीतश्च उष्णश्च न-अति शीतोष्णं। अधिक शीतल भी नहीं और अधिक उष्ण भी नहीं, जो न तो ज्यादा ठंढा हो और न ज्यादा गरम हो।

नाती (हिं० पु०) लड़की या लड़केका लड़का, बेटी या बेटेका लड़का।

नाते (हिं० क्रि० वि०) १ सम्बन्धसे। २ हेतु, वास्ते, लिए।

नातेदार (हिं० वि०) सम्बन्धी, रिश्तेदार, सगा।

नात्र (सं० क्लो०) नम-ष्ट्रन्। वाहुलकात् अन्त्यलोप आत्वञ्च। १ विचित्र, अजूबा। २ प्राज्ञ, विद्वान्, जानकार। ३ शिव, महादेव।

नाथ (सं० पु०) नाथति ईश्वरीभवतीति नाथ ऐश्वर्य्ये अच्। १ ऐश्वर्य्ययुक्त, प्रभु, स्वामी, अधिपति, मालिक। पर्याय—अधिप, ईश, नेता, परिवृढ़, अधिभू, पति, इन्द्र, स्वामी, आर्य, प्रभु, भर्त्ता, ईश्वर, विभु, ईशिता, इन, नायक। २ वह रस्सी जिसे बैल, भैंसे आदिकी नाक छेद कर उसमें इसलिये डाल देते हैं जिससे वेवशमें रहें। ३ एक प्रकारके मदारी जो सांप पालते और नचाते हैं।

नाथ—१ मत्स्येन्द्रनाथके अनुयायी योगियोंकी एक उपाधि, गोरखपन्थी साधुओंकी एक पदवी जो उनके नामोंके साथ ही मिली रहती है। २ एक कविका नाम। १७०० ई०में ये फजलअली खांके सभासद थे। किसी किसीका कहना है 'नाथकवि' और ये दोनों एक ही व्यक्ति थे। नाथकवि देखो। ३ माणिकचन्द्रके एक सभासद। १७४६ ई०में इनका जन्म हुआ था।

नाथकन्य—नेपालके अन्तर्गत एक नगर। एक समय यहां

महामारीका भारी प्रकोप था। बचनेका कोई उपाय न देख अधिवासियोंने देवराज इन्द्र तथा अन्यान्य देवताओं की आराधना की। किन्तु उससे कोई फल न निकला। अन्तमें वे लोग बुद्धकी शरणमें पहुंचे जिन्होंने उन्हें इस भयानक महामारीके फंदेसे बचा लिया।

नाथकवि—एक प्रसिद्ध कवि। १५८४ ई०में इन्होंने जन्मग्रहण किया था। ये 'राग' नामक पुस्तक बना गए हैं। इनकी रची हुई ऋतुसम्बन्धीय कविताएं बहुत मनोहर हैं।

नाथकाम (सं० पु०) आश्रयका अनुसन्धान करना।

नाथकुमार (सं० पु०) एक कविका नाम।

नाथता (हिं० स्त्री०) स्वामित्व, प्रभुता।

नाथत्व (सं० क्लो०) नाथ भावे त्व। प्रभुत्व, प्रभुता।

नाथद्वार—राजपूतानेके उदयपुर राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २४° ५६´ उ० और देशा० ७३° ४८´ पू० बनास नदीके किनारे अवस्थित है। 'नाथद्वार' शब्दका अर्थ ईश्वरका द्वार होता है। यहां एक कृष्णमूर्त्ति है और उसीसे ही इसका नाम नाथद्वार पड़ा है।

मथुरा जिलेमें हिन्दुओंके जितने कृष्णमन्दिर हैं उनमेंसे नाथद्वारके 'श्रीनाथ' अथवा 'नाथजी'का मन्दिर ही सबसे प्रसिद्ध है। कृष्णमन्दिरके अतिरिक्त और भी अन्य सात देवताओंके मन्दिर हैं।

औरङ्गजेबने जब मथुराकी सब कृष्णमूर्त्तियोंको तोड़नेका विचार किया, तब सन् १६७१ ई०में उदयपुरके महाराणा राजसिंह श्रीनाथजीकी मूर्त्तिको मथुरासे उदयपुरकी ओर ले कर धूमधामसे चले। इस स्थान पर जब रथ पहुंचा, तब पहिया कोचड़में धंस गया। लोगोंने कहा, कि श्रीनाथजीकी इच्छा इसी स्थान पर रहनेकी है। महाराणाने एक बड़ा मन्दिर बनवा कर मूर्त्ति वहीं स्थापित कर दी। यही स्थान नाथद्वार नामसे प्रसिद्ध है। इसके आसपासके स्थानोंमें कहीं भी प्राणिहत्या अथवा कैदीको बन्द करनेकी प्रथा नहीं है। भिन्न भिन्न देशोंसे हिन्दू-यात्री विशेषतः वल्लभाचार्यके सम्प्रदायभुक्त वैष्णव इस तीर्थमें आया करते हैं।

नाथनगर—भागलपुर जिलेके अन्तर्गत एक पल्लीग्राम। यह भागलपुर शहरसे २ मील पश्चिममें अवस्थित है। ई० आई० रेलवेका यहां इसी नामका एक ष्टेशन भी है। यहां टसरके अच्छे अच्छे कपड़े तैयार होते हैं जो भागलपुर तथा अन्यान्य देशोंमें भेजे जाते हैं। इसके पास ही भागलपुरके टी० एन० जुबली कालेज पड़ता है।

नाथना (हिं० क्रि०) १ बैल, भैंसे आदिकी नाक छेद कर उन्हें वशमें लानेके लिए रस्सी डालना, नकेल डालना, नाक छेदना। २ किसी वस्तुको छेद कर उसमें रस्सी या तागा डालना। ३ कई वस्तुओं या किसी वस्तुके कई भागोंको छेद कर रस्सी या तागेके द्वारा एकमें जोड़ना, नत्थी करना। ४ लड़ीके रूपमें जोड़ना।

नाथमल्ल - एक संस्कृत भाषाज्ञ पण्डित। इन्होंने 'पिशाचचक्रयुद्धवर्णन' नामक ग्रन्थ बनाया है।

नाथविद् (सं० त्रि०) आश्रयदाता, शरण देनेवाला।

नाथविन्द् (सं० त्रि०) आश्रय देनेवाला अथवा जिसे आश्रय देनेकी क्षमता हो।

नाथहरि (सं० पु०) नाथं हरति स्थानात् स्थानान्तरं नयति नाथ-हृ-इन्। पशु, मवेशी।

नाथिन् (सं० त्रि०) प्रभुयुक्त, जिसे कोई आश्रय देनेवाला हो।

नाथूरामचौबे—हिन्दीके एक कवि। आपने सम्वत् १८७४-में 'चित्रकूटशत' नामक एक ग्रन्थ दोहोंमें रचा। आपकी कविता अच्छी होती थी; उदाहरणार्थ कुछ नीचे देते हैं,—

"चित्रकूट बनवास करु, करि सन्तनको साथ।
आस तजै सब जगतकी, भजै सदा रघुनाथ॥
चित्रकूट सब कामदा, पापपुञ्ज हरि लेत।
छिन छिन उज्जल जस बढ़त, राम भगतिको देत॥"

नाथोक—एक कविका नाम। संस्कृत 'पदावली' इन्होंकी बनाई हुई है।

नाद (सं० पु०) नद-शब्दे भावे घञ्। १ शब्द, आवाज। २ अनुस्वारवदुच्चार्य अर्द्धचन्द्राकृतिवर्णभेद, अनुस्वारके समान उच्चारित होनेवाला वर्ण। इसके पर्याय-अर्द्धेन्दु, अर्द्धमात्रा, कलाराशि, सदाशिव, अनुचार्य, तुरीया, विश्वमातृकला और परा हैं। (वीजवर्णाभिधा०) ३ ब्रह्मस्वरूप घोषविशेष।

"सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात् ।
आसीच्छक्तिस्ततो नादस्तस्माद्बिन्दुसमुद्भवः ॥
नादो बिन्दुश्च वीजञ्च स एव त्रिविधो मतः ।
भिद्यमानात् परादृबिन्दोरव्यक्तात्मा रवोऽभवत् ॥
स रवः श्रुतिसम्पन्नः शब्दो ब्रह्माऽभवत् परम् ॥"
(भागवत)

परमेश्वरके सच्चिदानन्दरूप विभवसे शक्ति, शक्तिसे नाद और नादसे विन्दु उत्पन्न हुआ है। विन्दु ही प्रणव है और इसीको वोज कहते हैं।

अलङ्कारकौस्तुभके द्वितीय स्तवकमें इस प्रकार लिखा है—

"नाभेरूर्द्ध्वं हृदे स्थानान्मारुतः प्राणसंज्ञकः ।
नदति ब्रह्मरन्ध्रान्ते तेन नादः प्रकीर्तितः ॥"
(अलङ्कारकौस्तुभ २ स्तवक)

नाभिदेशके ऊर्द्ध्व हृदय-स्थानसे ब्रह्म रन्ध्रान्तमें प्राण-संज्ञक वायु शब्द उत्पन्न करती है, इसी शब्दको नाद कहते हैं।

सङ्गीतदामोदरमें लिखा है—आकाशस्थित अग्निसे मरुत् निकला है, यह मरुत् नाभिके ऊर्द्ध्वदेशमें सम्यक्-रूपसे उच्चारित हो कर जब मुखमें परिस्फुट होता है, तब उसे नाद कहते हैं। यह नाद तीन प्रकारका है—प्राणिभव, अप्राणिभव और उभयसम्भव। जो देहादिसे उत्पन्न होता है, उसे प्राणिभव; जो नाद वीणासे उत्पन्न होता है, उसे अप्राणिभव और जो वंशादिसे उत्पन्न होता है, उसे उभयभव कहते हैं।

"आकाशाग्निमरुज्जातो नाभेरूर्द्ध्वं समुच्चरन् ।
मुखेऽभिव्यक्तिमायाति यः स नाद इतीरितः ॥
स च प्राणिभवोऽप्राणिभवश्चोभयसम्भवः ॥"
(सङ्गीतदामो०)

ब्रह्माका जो स्थान कहा गया है, जो ब्रह्मग्रन्थिपदवाच्य है, उसके मध्य प्राण अवस्थित है। इस प्राणसे वह्निकी उत्पत्ति हुई है। वह्नि और मारुतके संयोगसे नाद उत्पन्न हुआ है। इस नादके बिना गीत, स्वर और रागादि कुछ भी सम्भव नहीं, इसीसे जगत्को नादात्मक माना है। अतएव बिना नादके ज्ञान और शिव कुछ भी प्राप्त नहीं होता। एकमात्र नाद ही परज्योति है और हरि स्वयं नादरूपी हैं।

"यदुक्तं ब्रह्मणः स्थानं ब्रह्मग्रन्थिश्च यो मतः ।
तन्मध्ये संस्थितः प्राणः प्राणाद्वह्नि समुद्भवः ॥
वह्निमारुतसंयोगान्नादः समुपजायते ॥
न नादेन विना गीतं न नादेन विना स्वरः ।
न नादेन विना रागस्तस्मान्नादात्मकं जगत् ॥
न नादेन विना ज्ञानं न नादेन विना शिवः ।
नादरूपं परं ज्योतिर्नादरूपी परं हरिः ॥"

नाद सङ्गीतका प्राणस्वरूप है। सङ्गीतदर्पणमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—गीत, नृत्य और वाद्य नादात्मक है। नाद द्वारा सभी वर्ण परिस्फुट होते हैं, वर्णसे पद और पदसे वाक्य बना है। यही वाक्य सब कोई सब समय व्यवहृत करते हैं। इस प्रकार जगत् नादात्मक है। यह नाद दो प्रकारका है,—आहत और अनाहत। इनमेंसे आहत नादको मुनिगण उपासना करते हैं। यह गुरूपदिष्ट मातका ही मुक्तिप्रद है। आहतनाद श्रुति आदिसे उत्पन्न हुआ है। यही नाद धर्मार्थकाममोक्षका एकमात्र साधन है। सरस्वतीके अनुग्रहसे कम्बल और अश्वतर नामक नागद्वयने नाद-विद्या प्राप्त कर महादेवका कुण्डलत्व प्राप्त किया था। पशु, शिशु और मृग ये सब नाद द्वारा सन्तुष्ट होते हैं। नाद माहात्म्यको व्याख्या करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है।

सङ्गीतदर्पणमें लिखा है, कि नादरूपी समुद्रके पर-पारसे सरस्वती अवगत नहीं हैं। इसी कारण सरस्वती आज भी मज्जनके भयसे वक्षःस्थलमें तुम्बी धारण करती हैं।

"नादाब्धेस्तु परं पारं न जानाति सरस्वती ।
अद्यापि मज्जनभयात्तुम्बं वहति वक्षसि ॥"
(सङ्गीतद०)

नादोत्पत्तिप्रकार।—आत्मासे प्रेरित चित्त देहस्थित अग्निको आघात करता है। पीछे वह अग्नि ब्रह्म-ग्रन्थिस्थित प्राणको प्रेरण करती है। वह प्राण अग्नि प्रेरित हो कर क्रमशः ऊर्द्ध्वपथ पर विचरण करते करते नाभिमें पहुंच कर वहां अति सूक्ष्म, हृदयमें सूक्ष्म, गल-देशमें पुष्ट, शीर्षदेशमें अपुष्ट और वदनमें कृत्रिम ये पांच

प्रकारके नाद उत्पन्न करते हैं। अर्थात् अति सूक्ष्म, सूक्ष्म, पुष्ट, अपुष्ट और कृत्रिम ये पांच प्रकारके नाद हैं। फिर भी कहा है, कि नकारका नाम प्राण है और दकारको अग्नि कहते हैं। प्राण और अग्निके संयोगसे इसकी उत्पत्ति हुई है, इसीसे इसका नाम नाद पड़ा है।

यह नाद योगिसंवेद्य हैं। इसका विषय हठयोगदीपिकाके ४र्थ अध्यायमें विस्तृतरूपसे लिखा है। इस नादका अभ्यास कर योगी सुखलाभ करते हैं। जो सब मूढ़ व्यक्ति तत्त्वबोधमें अशक्त हैं, उन्हींको यह नादोपासना करनी चाहिये। गोरक्षनाथने ऐसा उपदेश दिया है,—

"अशक्यतत्त्वबोधानां मूढ़ानामपि संमतम्।
प्रोक्तं गोरक्षनाथेन नादोपासनमुच्यते॥"
(हठयोगदी० ४।६५)

श्रीआदिनाथने सपादकोटि भी प्रकारका निर्द्धारण किया है जिनमेंसे यह नादोपासना एक प्रधानतम है।

जो नादोपासना करना चाहते, उन्हें पहले मुक्तासन पर स्थित हो शाम्भवीमुद्राका अवलम्बन करना चाहिये और उस समय एक चित्त हो कर अन्तःस्थ नाद दाहिने कानसे सुनना चाहिये। इस समय श्रवणपुट, नयनयुगल, घ्राण और मुख निरोध करनेको लिखा है। प्रथमतः योगकी चार अवस्थायें हैं, यथा—आरम्भ, घट, परिचय और निष्पत्ति। इसकी प्रथमावस्थामें देहमें किसी प्रकारका आघात नहीं होने पर भी विचित्र ध्वनि सुनी जाती है जिससे आनन्द प्राप्त होता है।

जब नादका पहले पहल अभ्यास किया जाता है, तब नाना प्रकारके महान् नाद सुने जाते हैं। क्रमशः अभ्यास करते करते वह सूक्ष्मतम होता है। पहले समुद्रगर्जन वा मेघध्वनि, भेरी, झर्झर आदि शब्दकी तरह, मध्यसमयमें मर्दल, शङ्ख, घण्टा-ध्वनि वा शब्द, अन्त समयमें किङ्किणी, वंश, वीणा और भ्रमरध्वनिवत् शब्द सुना जाता है। इस प्रकार नाना प्रकारकी ध्वनियोंमेंसे जिससे चित्तविशेष आकर्षित हो, उस नादका लक्ष्य करके उसमें ही चित्तको सुस्थिर करना चाहिये। चित्तके नादासक्त होने पर फिर वह विषयमदमें विमोहित नहीं होता, सुतरां थोड़े ही समयके मध्य चित्त स्थिर हो जाता है। इस प्रकार चित्त एकाग्र हो कर नादका अनुसन्धान करता है। नादसे चित्त प्रवर्त्तित होता है और फिर नादमें ही लीन हो जाता है।

ध्वनिके अन्तर्गत ज्ञेय और ज्ञेयके अन्तर्गत मन है। क्रमशः मन जब विष्णुके परमपदमें लीन होता है, तब वही निःशब्द परब्रह्म है। ऐसी अवस्थाको योगकी चरमावस्था कहते हैं। सर्वदा इस प्रकार नादानुसन्धान करनेसे पापसमूह नष्ट होता है, चित्त और प्राण निरञ्जनमें लीन रहते हैं। उस समय शङ्ख, दुन्दुभि आदिका कुछ भी शब्द सुनाई नहीं देता। चिन्ता दूर हो जाती है, सभी अवस्थाओंका तिरोधान होता है, देह काठकी तरह हो जाती है, योगी मृतवत् हो जाते हैं। ऐसी अवस्था होनेसे हो मुक्ति मिलती है, ऐसा जानना चाहिये। (हठयोगप्र० ४ अ०)

४ स्वनामख्यात मुनिविशेष। ये ईश्वर मुनिके पुत्र थे। इन्होंने न्यायतत्त्व और योगरहस्य नामक दो ग्रन्थ रचे हैं। दक्षिणप्रदेशमें इनकी जन्मभूमि थी। ५ स्रोता। ६ वर्णोंके उच्चारणमें एक प्रयत्न। इसमें कण्ठको न तो बहुत अधिक फैला कर और न सङ्कुचित करके वायु निकालनी पड़ती है। ७ सङ्गीत।

नादज (सं० त्रि०) नादात् जायते जन-ड। नादसे जो उत्पन्न हो।

नादता (सं० स्त्री०) नादस्य भावः नाद-तल् टाप्। शब्दत्व, शब्दका गुण।

नादनघाट—वर्द्धमान जिलेके कालना महकुमेका एक ग्राम यह स्थान वाणिज्यके लिए प्रसिद्ध है।

नादना (हिं० क्रि०) १ शब्द करना, बजना। २ चिल्लाना, गरजना। ३ प्रफुल्लित होना, लहलहाना, लहकना।

नादपुराण (सं० क्ली०) उपपुराणभेद, एक पुराणका नाम।

नादमुद्रा (सं० स्त्री०) मुद्राभेद, तन्त्रकी एक मुद्रा। इसमें दाहिने हाथकी मुट्ठी बांध कर अंगूठेको ऊपरको ओर उठाए रखना पड़ता है।

नादली (अ० स्त्री०) संग यशब नामक पत्थरकी चौकोर टिकिया। इस पर कुरानकी एक विशेष आयत खुदी रहती है और जिसे रोग-बाधा दूर करनेके लिये यन्त्रकी तरह पहनते हैं, हौलदिली। आयतका आरम्भ 'नाद

अलियन' इस वाक्यसे होता है, इसीसे यमनको नादली कहते हैं। हकीमोंका कहना है कि उक्त पत्थरमें कलेजे-को धड़क आदि दूर करनेका विशेष गुण है। छाती पर उसका संसर्ग रहनेसे होलदिल तथा दिल धड़कनेको बीमारी अच्छी हो जाती है। कुछ लोगोंका विश्वास है, कि बिजलीका असर भी, जहां यह पत्थर रहता है, वहां नहीं होता।

नादवत् (सं० त्रि०) शब्दयुक्त, जिसमें शब्द हो।

नादविन्दूपनिषद् (सं० स्त्री०) आथर्वण उपनिषद्भेद।

नादसुर—भोरराज्यके कोङ्कण विभागके अन्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० १८° ३४' उ० और देशा० ७३° २१' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां पहाड़के ऊपर अनेक प्राकृतिक और कृत्रिम कूप हैं। इनमेंसे एक कूपकी दीवारके ऊपर पालिभाषामें दो छत्र शिलालिपि हैं।

नादसेन—हिन्दीके एक कवि। इनकी गणना उत्तम कवियोंमें की जाती थी। इनके बनाए हुए कवित्त सरस और मधुर होते थे। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं—

"रैन बिताय आए हो मोहन कहां जागे रंग रागे।
कौन त्रिया संग बिलम्ब रहे हो होरी खेल कहां पागे॥
तोतरात बतरात बैन हू न आवत आलस्यवश अनुरागे।
नादसेन मनके मतवारेसे आए भाग्य हमारे जागे॥"

नादान (फा० वि०) मूर्ख, अनजान, नासमझ।

नादानी (फा० स्त्री०) अज्ञान, नासमझी।

नादार (फा० वि०) १ जो अपने पास कुछ नहीं रखता हो, जिसके पास कुछ न हो, अकिञ्चन, कंगाल। २ गंजीफेके खेलमें बिना रंग या मीरको बाजी।

नादारी (फा० स्त्री०) निर्धनता, गरीबी।

नादि—जहान्गीरके एक सेनाध्यक्षका नाम। १०२६ हिजरीमें इनका देहान्त हुआ।

नादिक (सं० पु०) देशभेद, एक देशका नाम।

नादिग—एक श्रेणीका नापित। बम्बई प्रदेशमें सब जगह इस श्रेणीके नापित देखनेमें आते हैं। इनके चार सम्प्रदाय हैं—लिङ्गायत, मराठा, राजपूत और सज्जन।

प्रत्येक सम्प्रदायकी भाषा, पोशाक, रीतिनीति और धर्म पृथक् पृथक् है। इन लोगोंको प्रधान उपजीविका क्षौरकर्म है। किन्तु अभी कुछ खेतीबारी भी करने लग गये हैं।

लिङ्गायत सम्प्रदायके नापित प्रधानतः बीजापुरमें रहते हैं। वे लोग हरपदमृत्रको अपना पूर्वपुरुष मानते हैं। पहले ये लोग लिङ्गायत छोड़ कर और किसीकी हजामत नहीं करते थे। किन्तु अभी वह नियम उठा दिया गया है, क्योंकि उससे भलीभांति गुजारा नहीं होता था। इनके प्रधान उपास्य देवता मल्लिकार्जुन, वासवन्न आदि हैं। इनके पुरोहित जङ्गम कहलाते हैं। ये लोग शिवरात्रि, नागपञ्चमी आदि हिन्दूपर्वका पालन करते हैं।

नादिगर—दाक्षिणात्यवासी एक श्रेणीके नापित। धारवार जिलेमें ये अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। मराठा, लिङ्गायत, मुसलमान और भारतवर्षके कितने परदेशी इसी श्रेणीके अन्तर्भुक्त हैं। इनमेंसे लिङ्गायत श्रेणीको संख्या हो अधिक है।

नादित (सं० त्रि०) शब्द करता हुआ, बजाया हुआ।

नादिन् (सं० त्रि०) नद-णिनि। शब्दकारी, शब्द करने-वाला। २ बजनेवाला। (पु०) ३ कालञ्जर गिरिसे उत्पन्न जातिस्मर मृग। इसका विषय हरिवंशमें इस प्रकार लिखा है—

विश्वामित्रके पुत्र गर्गके निकट वाग्दुष्ट, क्रोधन, हिंस्र, पिशुन, कवि, खसृम और पितृवर्त्ती नामके सात शिष्य पढ़ते थे। ये लोग प्रतिदिन सबत्सा दुग्धवती कपिलाको चरानेके लिये जङ्गल जाया करते थे। एक समय उन्हें रास्तेमें भूख लगी और वे गुरुकी गाय मार डालनेको तैयार हो गये। इस पर कवि और खसृम नामक दो साथियोंने उन्हें इस कामसे रोका और बहुत कुछ समझाया भी। किन्तु उन क्षुधातुरोंने एक भी न सुनी और पितृश्राद्धके उद्देशसे गाभीको मन्त्रपूत कर मार ही डाला। बाद वे सबके सब गुरुके पास गये और उनसे बोले, कि आपकी गायको बाघने मार डाला। जब गुरुको मालूम हुआ, कि इन सातोंने ही गायको मार कर खा लिया है, तब उन्होंने शाप दिया जिससे वे सबके सब उसी समय पञ्चत्वको प्राप्त हुए। बाद इस पापसे उन सातोंने कालञ्जर पर्वत पर मृगयोनिमें जन्म लिया।

थे जो जातिस्मर थे। विशेष विवरण हरिवंश २११२२ अध्यायमें देखो।

नादिम (अ० वि०) लज्जित ।

नादिया (हिं० पु०) १ नन्दी। २ वह बैल जिसे योगी ले कर भीख मांगते हैं। ऐसे बैलोंको कोई न कोई विशेष अङ्ग निकल आता है जिससे लोगोंको कुतूहल होता है।

नादिर (फा० वि०) अद्भुत, अनोखा।

नादिरशाह—फारसके अन्तर्गत खुरासान नामक स्थानमें नादिरशाहका जन्म हुआ था। इनका आदि नाम था नादिरकुली खां। कोई कोई इन्हें तहमस्पकुली खां (फारसके अद्वितीय योद्धा) कहते थे। मिरजामहदी-लिखित नादिरशाहके जीवन-चरितके पढ़नेसे मालूम होता है कि तुरकोंके शाह इसलाम सफीके राजत्वकालमें सात जातियां खुरासानमें जा कर बसी थीं। उनमेंसे 'औसर' एक है। नादिरशाह इसी 'औसर'की 'करकालो' शाखासे उत्पन्न हुए थे। इनके भविष्य जीवनके शौर्य और वीर्यको देखनेसे यह स्पष्ट प्रतीत होने लगता है कि आपने 'औसर' शब्दको सार्थक किया था।

आपके बाल्यजीवनके क्रियाकलापोंसे ही यह मालूम हो जाता है, कि आप परिणाममें असाधारण कीर्त्तिध्वजा उड़ा कर जगत्के सम्पूर्ण मनुष्योंको चमत्कृत करेंगे।

नादिरकुली एक सामान्य गड़ेरियेके लड़के थे। नेपोलियन बोनापार्ट जिस प्रकार सामान्य दरिद्रके घरमें जन्म ले कर विशाल फरासीसी राज्यके सिंहासन पर बैठे थे, उसी प्रकार इन्होंने भी गड़ेरियेके घरमें जन्म ले कर फारस, अफगानिस्तान आदिके सिंहासन अधिकार किए थे। सत्रह वर्षकी उम्रमें उजबक नामके एक व्यक्तिने इन्हें कारारुद्ध कर रखा था। चार वर्ष बड़े कष्टसे बिता कर सुचतुर नादिर कौशलसे वहांसे भाग गए। इसके बाद ये अपने देश खुरासान पहुंचे और वहां आपने राजाके अधीन नौकरी कर ली। इस समय नादिरने विशेष रणपाण्डित्यका परिचय दे तातारोंको परास्त कर दिया। परन्तु खुरासानके राजा आपके गुणकी कुछ कदर न कर सके और न आपको कुछ पुरस्कार ही दिया गया। आशानुयायी पुरस्कार न पानेसे आपके हृदयमें अन्य भावोंका उदय हुआ; अधीनता अब अच्छी न लगी।

वीरपुरुषके हृदयमें स्वाधीनतालिप्सा उदित हुई। आपने पिताके भेंड़ बेच कर कुछ रुपये इकट्ठे किए और कुछ असम साहसिक वीरोंको भी एकत्र किया। उनको साथ ले कर आप दस्युवृत्ति करने लगे। धीरे धीरे अन्यून ६००० अनुचर आपके दलभुक्त हो गए। उनको प्राणोंकी ममता न थी, विपत्तिकी आशङ्का न थी; दया-धर्म किस चिड़ियाका नाम है वे नहीं जानते थे। निराश्रय निरुपाय यात्रियोंके धनादि लूट कर अपने आदमियोंको बांट देना, यही नादिरका काम हो गया।

१७२२ ई०में फारसके राजा हुसेनशाहने खिलजोके राजा महमूदको खुरासान सौंप दिया। इस समय इस्पाहान भी उनके हाथ लग गया। परन्तु हुसेनके पुत्र २य शाह तहमस्प इस्पाहनसे भाग कर कैस्पियनहदके तीरस्थ निभृत स्थानमें कालातिपात करने लगे। सम्राट्-पुत्र नादिरशाहके शरणापन्न हुए। नादिरने विपुलविक्रमके साथ शत्रुओं पर आक्रमण कर उनसे खुरासान छीन लिया और १७३० ई०में इस्पाहान नगरमें तह्मस्पको पारस्यके सिंहासन पर बिठा दिया। इस तरह बहुतसे खिलजो और महमूदके पुत्रोंको मार कर नादिर तुर्कोंकी ओर चल दिए। इन्होंने तुर्कियोंसे ताबरोज पुनः ले लिया और अबदलियोंके विद्रोहका दमन किया। सारे अबदली इनके अधीन हो गए और इन्होंके मतको मानने लगे। इनके कुछ समय बाद इन्होंने सुन्नीमत ग्रहण किया। अबदलियोंने भी उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया और सब इनके अनुगत अनुचर हो गए।

नादिरकुलीने अफगानिस्तानसे लौट कर देखा, कि तह्मस्पशाहने तुर्कियोंके साथ सन्धि कर ली है। तह्मस्पशाहकी यह राजकीय क्षमता इनको सह्य न हुई। इन्होंने इसी बहानेसे उन्हें सिंहासनसे उतार दिया और १७३२ ई०में अपने क्षः महीनेके शिशु-पुत्रको राजगद्दी पर बिठा कर स्वयं राज्यशासन करने लगे। इसी समय 'शाह' अर्थात् 'राजा'की उपाधि दे कर पुत्रको ३य अब्बासके नामसे प्रसिद्ध किया। इस सर्वसाधारणकी वाञ्छित गौरव

खाँकी उपाधि प्राप्त करनेसे पहले इन्हें तुर्की और रूसोंके साथ बहुत युद्ध-विग्रह करना पड़ा था। उन लोगोंने फारसके जितने भी स्थान अधिकार किए थे, उन सबको अपने कब्जेमें कर इन्होंने तुर्कियोंके साथ (१७३६ ई०में) सन्धि स्थापन की थी। इसी साल इनके शिशु-पुत्रका वियोग हुआ था। पीछे नादिरके हृदयमें, कैसी आशाका सञ्चार हुआ था, यह सहजमें ही समझा जा सकता है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वे आन्तरिक भावको छिपा कर बाहरसे 'राजा'की उपाधि ग्रहण करनेमें अनिच्छा प्रकट करने लगे थे। परन्तु उमराव लोग उनके मनके भावको समझ गए और सबने उन्हें 'शाह' मान लिया।

कहा जाता है, कि मोघानके समतलक्षेत्रमें समस्त राज-कर्मचारियोंने मिल कर लक्षाधिक प्रजाकी उपस्थितिमें उन्हें राजमुकुट पहनानेकी इच्छा प्रकट की थी। पहले तो इन्होंने स्वीकार नहीं किया ; पर बादमें जब यह मालूम हुआ कि तमाम फारसमें सुन्नीमतका प्रचार हो जायगा, तब उन्होंने उक्त प्रस्तावको स्वीकार कर राजमुकुट ग्रहण किया। यह घटना ई० सन् १७३६ की २६ फरवरीके सुबह ८ बजके २० मिनट पर हुई थी।

इस प्रकार उन्नति-सोपानको अतिक्रम करते हुए नादिरशाह अपने चिराभिलषित स्थान पर पहुंचे। अब युद्धके सिवा ऐसे उच्च आसनकी रक्षाका दूसरा कोई उपाय नहीं, ऐसा सोच कर आप बहु बल संग्रह-पूर्वक दिग्विजयके लिए निकले। प्रथम ही कन्दहार पर आपकी दृष्टि पड़ी। अस्सी हजार सेनाके साथ आपने कन्दहार अवरोध किया। उस समय अबदलियोंने इनको यथासाध्य सहायता पहुंचाई थी। परन्तु कन्दहार जीतना सहज बात न थी। इतनी सुविधाएं होने पर भी आपको एक वर्ष तक अवरोध कायम रखना पड़ा था और बहुत बार वहांसे दूर भी हटना पड़ा था। अन्तमें नगरवासियोंके हतोत्साह हो (१७३८ ई०में) आत्मसमर्पण करने पर, उन्हें वशमें लानेके लिए उनमेंसे बहुतोंको आपने अपने सैन्य-विभागमें नियुक्त कर लिया और सबके साथ अच्छा व्यवहार करने लगे।

जिस समय नादिरशाह अफगानोंके साथ युद्ध कर रहे थे, उस समय आपने भारतके अधीश्वर महम्मदशाहको दूत द्वारा कहला भेजा कि, "भागे हुए अफगानोंको भारतमें स्थान न मिलना चाहिये।" परन्तु पारस्यराजकी प्रार्थना उन्होंने ग्राह्य न की। और तो क्या, उनका एक दूत भी रास्तेमें अफगानों द्वारा मारा गया। इस तरहका गर्हित व्यवहार देख कर नादिरशाह मारे क्रोधके आग-बबूला हो गये। उन्होंने भागनेवाले अफगानोंको भगा कर गजनी और काबुल पर कब्जा कर लिया (१७३८ ई०में) और दिल्लीकी तरफ अग्रसर हुए।

इस समय भारतकी अवस्था शोचनीय थी। मुगल-सम्राट्की दुर्बलताके कारण मराठोंका आधिपत्य यथेष्ट रूपसे वृद्धिको प्राप्त हुआ था। महम्मदशाह राज-कार्यसे पराङ्मुख और व्यसनासक्त थे। नादिरशाहकी आगमनाशङ्का क्षण भरके लिए भी उनके हृदय-पटलमें उदित न हुई थी। इधर नादिरशाह मार्गमें एक छोटी सेनाको परास्त कर निर्विघ्नतया सिन्धुनदी तक अग्रसर हो गये। वहांसे नावोंका पुल बना कर पञ्जाबमें आ गये और दिल्लीसे १०० मीलकी दूरी पर पड़ाव डाल दिया।

१७३९ ई०में करनालमें भारतकी सेनाके साथ इनका युद्ध शुरू हुआ। युद्धका परिणाम क्या हुआ, यह सहज ही मालूम हो सकता है। बीस हजार मुगल-सेना युद्ध-क्षेत्रमें सदाके लिए सो गई। प्रधान सेनापति खान्-इ-दौरान मारे गये और अयोध्याके राज-प्रतिनिधि कैद कर लिये गये।

महम्मदशाहने जब देखा, कि नादिरशाहके साथ युद्धमें जीतना टेढ़ी खीर है, तब उन्होंने पारस्यराजकी अधीनता स्वीकार कर ली और आसफ-जाहको उनके पास भेजा तथा पीछेसे पारिषदोंके साथ स्वयं भी नादिरशाहके समक्ष उपस्थित हुए।

नादिरशाह महम्मदशाहके साथ दिल्लीके राजप्रासादमें रहने लगे और उनकी सेनाको उन्होंने नगरमें शान्ति और प्रजाओंकी रक्षाके लिए नियुक्त किया। दूसरे दिन अफवाह फैल गई कि नादिरशाह मर गये। यह सुन कर अविवेचक व्यक्तियोंने पारस्य-सेना पर सहसा आक्रमण किया और प्रायः सात सौ सैनिकोंको यमपुरी भेज दिया।

नादिरशाह स्वयं उपस्थित हो कर विद्रोह-दमनके लिए जी-जानसे कोशिश करने लगे ; पर किसी तरह भी उपद्रव शान्त न हुआ। चारों ओरसे उन पर लगातार पत्थर और तीरोंकी वर्षा होने लगी। नादिरशाहको लक्ष्य करके किसीने एक गोली छोड़ी। सौभाग्यवश वह बादशाहको देहमें न लग कर पार्श्ववर्त्ती एक उमरावको लगी। इस घटनासे नादिरशाहकी बुझी हुई क्रोधाग्नि फिरसे भभक उठी। वे धैर्य न रख सके। उन्होंने आदेश दिया—"सबको मार डालो।" बस, फिर क्या था ; शोणितप्रिय निष्ठुर सैनिकगण आबालवृद्धवनिता एक तरफसे सबकी हत्या करने लगे।

सैनिकोंके हृदयमें प्रतिहिंसाकी अग्नि जल रही थी। लुण्ठन-लिप्सा और पाशववृत्ति अधिकतर प्रबल हो गई थी। नगरमें आग लगा कर वे नगरवासियोंको अम्लान-चित्तसे शाणित तरवारिका शिकार बनाने लगे। 'नादिर-नामा'में लिखा है, कि इसमें ३०००० आदमी मारे गये थे। परन्तु असलमें इस विप्लवमें १२००००से भी अधिक आदमी मारे गये थे। सुबहसे ले कर शाम तक यह नृशंस हत्याकाण्ड जारी रहा था।

नादिरशाह इस प्रकारका निष्ठुर आदेश दे कर आप मसजिदमें जा बैठे थे। ऐसी अवस्थामें उनके सामने जाय, ऐसा साहस किसको था? परन्तु महम्मदशाह डरते डरते उनके पास पहुंच गये और विनीतभावसे उनसे प्रार्थना की, "मेरे अधिकृतोंकी रक्षा करनी होगी।" नादिरशाहने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और हत्याकाण्ड बन्द करनेके लिए आदेश दिया। आज्ञा पाते ही सुशिक्षित सेना इस निष्ठुर कार्यसे विरत हुई। इसके बाद नादिरशाहने राजकोषस्थ धनरत्नादि तथा मयूरासन ग्रहण किया और जनसाधारणको मृत्युका भय दिखा कर यथेष्ट अर्थ-संग्रह किया। इस तरह आपने भारतवर्षसे प्रायः ८७८ लाख रुपये इकट्ठे किये। इसके सिवा ये स्वर्णमुद्रा, रौप्यमुद्रा, मणिमुक्ता, हाथी, घोड़े और कारुकार्यपटु शिल्पियोंको साथ ले चले। महम्मदके साथ सन्धि की, कि सिन्धुनदका पश्चिम पार नादिरशाहके दखलमें रहेगा। इस प्रकार तैमूर-वंशकी एक कन्याके साथ अपने पुत्रका विवाह कर नादिरशाहने महम्मदको दिल्लीके सिंहासन पर बिठाया और अपने हाथसे उन्हें रत्नालङ्कारसे विभूषित कर राजमुकुट पहनाया। वीरवर नादिरशाह अट्ठावन दिन दिल्लीमें रहे थे और फारसको लौटते समय महम्मदशाहको राजनीति-विषयक नाना शिक्षाएं दे गये थे।

भारतवर्षसे लौटने पर फारसकी प्रजाने इन्हें देख बड़ा हर्ष प्रकट किया था। उनकी आशा निष्फल न हुई। तीन वर्षके लिए नादिरशाहने कर माफ कर दिया। इसके बाद नादिरशाहने खीवा, बुखारा और खारिजम राज्य अधिकार किया। पांच वर्षके भीतर इन्होंने पांच राजाओंको परास्त किया था। *

ये अफगानिस्तानियोंके हाथसे सिर्फ फारसको मुक्त करके ही शान्त न हुए थे। उत्तरमें अक्सस नदी और पूर्वमें सिन्धुनद तक आपने पारस्य-राज्यकी सीमा विस्तृत की थी। तुर्कियोंसे इनका विषम विद्वेष था। उन्हें दमन करनेके लिए इन्होंने तीन बार युद्धयात्रा की थी। वे ताइग्रीस और यूफ्रेटिस नदीके पास न रह सकें, यही इनका सङ्कल्प था। इसी लिए अन्य किसी युद्धमें प्रवृत्त होनेके पहले लेजगी तातारोंने नादिरके भाई इब्राहिमकी हत्या की थी ; नादिर उसीकी प्रतिहिंसामें प्रवृत्त हुए थे।

नादिरशाह पारसिकोंका भी पूरा विश्वास न कर सकते थे ; और तो क्या, वे अपने ज्येष्ठ पुत्र रेजाकुली पर भी अधिकतर सन्दिग्ध रहते थे। कहा जाता है, कि एक दिन नादिरशाह जंगलमें शिकार खेल रहे थे, कि इतनेमें एक गोली आ कर उनके शरीरमें घुस गई। अवश्य ही यह कार्य किसी गुप्तचर द्वारा हुआ होगा, किन्तु इन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्रकी आंखें उपाट लेनेके लिए हुक्म दिया। सभासदोंने बहुत कुछ अनुनय-विनय किया—क्षमा मांगी, पर आपने एककी भी न सुनी ; बल्कि उनका औद्धत्य और परुष व्यवहार पहलेकी अपेक्षा सौ गुना बढ़ गया। नगरमें नरमुण्डोंके ढेर लग गये। शोणितस्रोत प्रवाहित होने लगा। उत्पाटित

---

* अफगानिस्तानके दो राजा अशरफ और हुसेन, बुखाराके एक राजा अबुल फैजी, खारिजमके एक राजा एलबर्ज और दिल्लीके बादशाह महम्मद।

चक्षुओं की ढेरी लग गयी। प्रजा-साधारण जीवनकी आशा छोड़ कर विषयसुख हो किसी तरह समय बिताने लगी। नगर मरुभूमिमें परिणत हो गया।

जीवनकी शेष अवस्थामें शारीरिक अस्वस्थताके कारण नादिरके रोगकी मात्रा इतनी बढ़ गई कि आखिरको वह उन्मत्ततामें परिणत हो गई। एक दिन कहीं जाते जाते सहसा आप घोड़ेसे उतर पड़े और सैन्यदलके बाहर भागने लगे; किन्तु कुछ देर बाद प्रकृतिस्थ हो गये। मस्तिष्कके चाञ्चल्यवश आपने अफगानोंको राजकार्यमें तथा युद्धमें नियुक्त करनेके लिए आह्वान किया। इन निष्ठुर अत्याचारोंके कारण प्रजा इनसे बहुत नाराज हो गई। उमरावोंके षड़यन्त्रसे १७४७ ई०में रविवार तारीख १० मईको रातको उन्होंके निकट-सम्बन्धी अलीकुली खांने उनके वासभवनमें प्रवेश कर दुर्दान्त नादिरशाहको दुनियांसे सदाके लिए बिदा कर दिया। ये ही अलीकुली खां "आदिलशाह" नाम ग्रहण कर सिंहासन पर बैठे थे और इन्होंने नादिरशाहके तेरह पुत्र-प्रपौत्रोंका प्राणसंहार किया था। सिर्फ रेजाकुली खांका चौदह वर्षका पुत्र शाहरुक बच गया था।

नादिरशाही (फा० स्त्री०) १ ऐसा अंधेर जैसा नादिरशाहने दिल्लीमें मचाया था, भारी अन्धेर या अत्याचार। २ नादिरशाहके ऐसा, बहुत ही कठोर और उग्र।

नादिरी—एक कवि। इनके विषयमें केवल इतना ही पता लगता है, कि १००० हिजरीमें ये भारतवर्षको आये थे। दाघिस्तानीने लिखा है, कि इस नामके तीन कवि थे। १म समरकन्दवासी जो हुमायूंके शासनकालमें भारतवर्ष आये। २य सुस्तारके नादिरी और ३य स्यालकोटके नादिरी।

नादिरी (फा० स्त्री०) १ एक प्रकारकी सदरी या बंडी जो मुगल बादशाहोंके समयमें पहनी जाती थी। इसके किनारे पर कुछ काम होता था। इसे कभी कभी खिलअतमें दिया करते थे। २ गञ्जीफेका वह पत्ता जो खेलके समय निकाल कर अलग रख दिया जाता है।

नादिहंद (फा० वि०) जिससे रकम वसूल न हो, न देनेवाला।

नादिहंदी (फा० स्त्री०) अदातव्यता, किसीको कुछ न देनेकी प्रवृत्ति।

नादेन्दल—कृष्णा जिलेके नरसरावुपेत तालुकसे ८ मील पूर्व-दक्षिणमें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। यहां बहुतसे मन्दिर हैं और पत्थरखण्ड पर खुदी हुई देवदेवियोंकी भी अनेक मूर्त्तियां देखनेमें आती हैं।

नादेय (सं० क्ली०) नद्या नादस्य वा इदं तत्र भवं वा नदी वा नद-ढक्। १ सैन्धवलवण, सेंधा नमक। २ सौवीराञ्जन, सुरमा। ३ काशतृण, कांस नामका घास। ४ अम्बुवेतस, जलबेंत। (त्रि०) ५ नदीसम्बन्धी, नदीका। ६ नदीमें होनेवाला।

नादेयी (सं० स्त्री०) नदी-ढक्, ततो ङीप्। १ अम्बुवेतस, जलबेंत। २ भूमिजम्बूक, भुइंजामुन। ३ वैजयन्तिका, वैजयन्ती। ४ नागरङ्ग, नारङ्गी। ५ जवा, अड़हुल। ६ व्यङ्गुष्ठ। ७ अग्निमन्थ, अंगेथु। पर्याय—जय, श्रीपर्णी, गणिकारिका, जया, जयन्ती, तर्कारी, वैजयन्तिका। ८ नागरमुस्ता, नागरमोथा। ९ वाराहीकन्द। १० भूम्यामलकी, भुइंआंवला। ११ एरण्डवृक्ष, अंडीका पेड़।

नादेश्वर (सं० क्ली०) काशीस्थित शिवलिङ्गभेद, काशीके एक शिवलिङ्गका नाम।

नादेहंद (हिं० वि०) नादिहंद देखो।

नादोम्पुर—चट्टग्रामका एक प्रधान बन्दर।

नाडोल—जोधपुरके अन्तर्गत देसुरी जिलेका एक ग्राम। यह अक्षा० २५° २२´ उ० और देशा० ७३° २७´ पू०के मध्य राजपूताना-मालवा रेलवेको जवाली स्टेशनसे ८ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। जनसंख्या लगभग ३०५० है। महमूदकी सोमनाथ-यात्राके समय नाडोलके राजा राय लाखाने अन्यान्य राजाओंके साथ मिल कर उन्हें रोकनेकी कोशिश की थी। यहां महावीरका एक बड़ा ही मनोहर मन्दिर और 'बम वायली' नामका एक प्रकाण्ड जलाशय है।

चौलुक्यवंशीय राजाओंने बहुत जमीन दान की थीं जिनमेंसे कुमारपाल प्रदत्त शासनका नाम 'नाडोल' है।

नादौन—१ पञ्जाबके कांगड़ा जिलान्तर्गत हमीरपुर तहसीलका एक राज्य। भूपरिमाण ८७ वर्गमील है। यहांके प्रधान राजा संसारचांदके पोते हैं। संसारचांदके आरम

योधवीरचांदने अपनी दो लड़कियां रणजित्‌को व्याह दीं। इस पर रणजित्‌ने उन्हें नादोनका राजा बना दिया। राजा योधवीरने १८४८ ई०में कटोच-विद्रोहके समय ब्रटिश गवर्नमेण्टका साथ दिया था। इस प्रत्युपकारके बदले गवर्नमेण्टने उन्हें २६२७०) रु०की एक जागीर दी। योधवीरके लड़के पृथ्वीसिंहने सिपाही-विद्रोहके समय ब्रटिश गवर्नमेण्टका पक्षावलम्बन कर खूब वीरता दिखलाई थी। १८६८ ई०में जब वे राजसिंहासन पर बैठे, तब ब्रटिश सरकारने इन्हें के० सी० एस० आई०-की उपाधि और दश सलामी तोपें दीं।

२ उक्त राज्यका एक नगर। यह अक्षा० ३१° ४६´ उ० और देशा० ७८° १८´ पू० विपाशा नदीके बायें किनारे अवस्थित है। राजा योधवीरचांदने यह नगर बसाया। राजा संसारचांद इस स्थानको बहुत पसन्द करते थे। उन्होंने उक्त नगरसे एक मील दूर नदीके किनारे आमता नामक स्थानमें एक विचित्र राजभवन निर्माण किया। शहरकी जनसंख्या लगभग १४२६ है। यहां साबन और रंग बिरंगकी बांसुरी बनाई जाती है।

नाद्य (सं० त्रि०) नद्यां भवः वेदे ठाण्। नदीभव, नदीमें बहनेवाला।

नाधन (हिं० स्त्री०) चरखेके तकलेमें तागेको रोकनेके लिये लगी हुई एक गोल टिकिया। यह टिकिया पिसी हुई मेथीमें रूई आदि डाल कर बनाते हैं और लिपटे हुए तागेके आगे छेद कर पहना देते हैं।

नाधना (हिं० क्रि०) १ रस्सी या तस्मीके द्वारा बैल, घोड़े आदिको उस वस्तुके साथ जोड़ना या बांधना जिसे उन्हें खींच कर ले जाना होता है, जोतना। २ सम्बन्ध करना, जोड़ना। ३ गूँथना, गुहना। ४ अनुष्ठित करना, ठानना, शुरू करना।

नाधा (हिं० पु०) १ वह रस्सी या चमड़ेकी पट्टी जिससे हल या कोल्हूकी हरिस जूएमें बांधी जाती है, नारी। २ वह स्थान जहां पर पानी कूएं, जलाशय आदिसे निकाल कर फेंका जाता है और जहांसे नालियोंमें होता हुआ वह सिंचाईके लिये खेतोंमें जाता है।

नान (फा० स्त्री०) १ रोटी, चपाती। २ एक प्रकारकी मोटी खमीरी रोटी जो तंदूरमें पकाई जाती है।

नानक (गुरु नानक)—१४६८ ई० (सं० १५२६)में लाहोरको सड़कपुर तहसीलके अन्तर्गत इरावती नदी-तीरस्थ तलवन्दी (वर्त्तमान नाम रायपुर) ग्राममें इनका जन्म हुआ था। इनके समयमें बहलोललोदी दिल्ली-के अधीश्वर थे। इनके पिताका नाम था कालू। ये क्षत्रियोंमें वेदिसम्प्रदायभुक्त थे। इरावती और चन्द्रभागा नदीके मध्यवर्त्ती स्थानमें, उस समय जाट और भट्टी नामक दो जातियोंका वास था जिनमें भट्टी लोग मुसल-मान-धर्मावलम्बी थे। तलवन्दी ग्राम उस समय राय-बुला नामक भट्टिजातीय एक शासनकर्त्ताके अधीन था। जिस घरमें नानकका जन्म हुआ था, लोग उसे "नानाकाना" कहते हैं और सब उस स्थानमें उपा-सना करते हैं। इसके पास ही एक तालाब है, जिसे लोग 'लालकेरा' कहते हैं। कहा जाता है कि नानक बचपनमें वहां खेला करते थे।

नानक सिखोंके धर्मप्रवर्त्तक थे। बचपनसे ही आप परिमितभाषी थे; यहां तक कि विशेष आवश्य-कताके बिना अपने सहचरोंसे भी न बोलते थे। खाने-पीनेकी लालसा उनमें बिलकुल ही न थी; सर्वदा विमर्ष और चिन्ताशील अवस्थामें रहते थे। ईश्वरकी कृपासे धर्ममें आपकी बड़ी आसक्ति थी, धर्मचिन्ताके विषयमें आपका अगाढ़ अनुराग लक्षित होता था।

कहा जाता है, कि फकीरकी उपासनाके बलसे नानकका जन्म हुआ था और उस फकीरने कहा था, कि यह नानक कालान्तरमें पृथिवी पर एक प्रधान व्यक्ति होगा और प्रसिद्धि पायेगा।

नानक फकीरकी उपासनासे पैदा हुआ है और इसी लिए उनमें अस्वाभाविक विमर्षता पाई जाती है, ऐसा विचार कर कालू अपने पुत्र (नानक)को एक वैद्यके घर ले गए और उनसे औषधकी व्यवस्था करनेके लिए कहा। परन्तु उस समय ईश्वरानुग्रहीत शिशु नानकने चिकित्सकको यह बात कही थी कि "जिस जगदीश्वरने हम लोगोंको जीवन, बलवीर्य और वाक्‌शक्ति दी है, जो जगत्‌का एकमात्र नियन्ता है, उस ईश्वरके विरहसे जो कातर है, उसके लिए यह निश्चित कहा जा सकता है कि पार्थिव औषधियोंसे उसका कोई भी प्रतीकार

नहीं हो सकता।" वैद्य शिशुकी धर्मसंगिक वाक्य-परम्पराको सुन कर बिलकुल मुग्ध हो गया और कालू-को समझा दिया कि एकाकी एकान्तवास करना ही नानकके लिए परम औषध है।

सात वर्षकी उम्रमें नानक पहले पहल विद्यालयमें भेजे गए। विद्यालयमें पण्डितजी महाशय जब धर्म-सम्बन्धी उपदेश देते थे, तब आप उसे बड़े आग्रहसे सुनते थे और कभी ईश्वरके विषयमें ऐसे प्रश्न किया करते थे कि शिक्षक भी अति कष्टसे उनको मीमांसा नहीं कर सकते थे। नानकके हृदयमें 'एकमेवाद्वितीयम्' यह विश्वास बचपनसे ही बद्धमूल हो गया था। सयरुल-मुताखिरोनके प्रणेताके मतसे, नानकने एक मुसलमान मौलवीके पास विद्या सीखी थी। वे मौलवी तलवन्दीमें ही रहते थे और मुसलमान-धर्मशास्त्रमें उनका विशेष अधिकार था।

नानकके जीवनका अधिकांश समय निर्जनवास और धर्मचिन्तामें व्यतीत हुआ था। सहचरों और साधारण लोगोंसे पृथक् रहनेके उद्देश्यसे वे बहुत छोटेपनसे ही समय समय पर घर छोड़ कर गहन काननमें जा छिपते थे। कभी कभी यह काननवास इतना दीर्घकाल-व्यापी होता था, कि माता पिता यह समझ लिया करते थे कि पुत्र या तो मार्ग भूल गया है, या हिंसक जन्तुओं-के पेटमें चला गया है। परन्तु पीछे जब विशेष खोज की जाती थी, तब उन्हें फकीरके वेशमें निश्चिन्त-भावसे भ्रमण करते पाया जाता था।

नानक जब नौ वर्षके हुए, तब पिताने उनका हिन्दूशास्त्र-सम्मत उपवीत संस्कार करानेके लिए पुरोहित और बन्धुबान्धवोंको आमन्त्रित किया। सबके उपस्थित होने पर उपनयनका पूर्वकर्त्तव्य अनुष्ठित हुआ। बादमें पुरोहितने नानकको उपवीत धारण करनेके लिये आदेश दिया। नानकने कहा, "उपवीत धारण करनेसे मेरी अवस्था तनिक भी उन्नत न होगी।" इस विषयमें उन्होंने दर्शन-सम्मत बहुत तर्क-वितर्क किया और ब्राह्मणोंको उनके तर्कसे निरुत्तर हो जाना पड़ा। सिखोंके धर्मग्रन्थमें इसका विवरण विस्तृतरूपसे लिखा है, जिसका कुछ अंश नीचे उद्धृत किया जाता है—

"मनुष्य ईश्वरका नाम जप कर आत्माको उन्नत बनावें। उनके लिए प्रशंसा ही श्रेष्ठ उपवीत है। जिन्होंने एक बार ऐसा उपवीत धारण किया है, वे ईश्वरके निकट पहुंचनेके अधिकारी हैं और उस उपवीतको वे कभी तोड़ नहीं सकते।"

नानककी उमर जब पन्द्रह वर्षकी हुई, तब पिताने उन्हें दूकानदारी सिखानेके अभिप्रायसे ४०) रु० दे कर बाला नामक एक नौकरके साथ नमक खरीदने भेज दिया। नानक अपने पिताके कथनानुसार किसी ग्राममें नमक खरीदने चल दिए। चलते चलते रास्तेमें उन्हें भूखे फकीरोंका एक दल नजर आया, नानकका हृदय दयासे पसीज गया। उन्होंने उन चालीस रुपयोंसे खाद्यपदार्थ खरीद कर फकीरोंको भोजन कराया। इस तरह रुपये बरबाद करते देख नौकरने उन्हें फटकार लगाई। नानक-ने कहा—"मैंने वह चीज खरीदी है, कि जिसका फल दूसरे जन्ममें भोगूंगा। मनुष्यके साथ क्रय-विक्रय करने-की अपेक्षा ईश्वरके साथ क्रय-विक्रय करनेसे कहीं अधिक लाभ होता है।"

नानक घर लौट कर पिताके डरसे एक पेड़की डालियोंके बीच जा छिपे। कालूने रुपयोंकी बरबादी-का हाल सुन कर नानकको पीटना शुरू कर दिया। पीछे रायबुलारने अपनी तरफसे ४०) रु० दे कर कालू-का क्रोध शान्त किया। जिस वृक्षमें नानक छिप गये थे, उसका नाम 'मालसाहब' है। पिता द्वारा बार बार मार खाने पर भी नानक अपनी दानशीलताको न छोड़ सके। मौका पाते ही ये घरसे रुपये पैसे ले कर दरिद्रोंको दान कर दिया करते थे। इनके पिताने किसी समय सुलतानपुरमें इन्हें एक दाल-चावलकी दूकान करवा दी थी। किन्तु नानकने दूकानका सामान फकीरोंको बांटना शुरू कर दिया। जहां आपने दूकान खोली थी, उस स्थानका नाम है 'हाटसाहब'। नानकके शिष्यगण अब भी उस स्थानकी तथा उनकी बाट-तराजू वगैरहकी भक्ति भावसे पूजा किया करते हैं।

सांसारिक द्रव्यादिकी रक्षाके विषयमें नानककी ऐकान्तिक शिथिलता देख कर पिताने उस अभावको दूर करनेके अभिप्रायसे सोलह वर्षकी उमरमें आपका

विवाह कर दिया। गुरुदासपुर जिलेमें बटालाके अन्तर्गत लखोकोमें रहनेवाले क्षत्रीवंशीय मूलाकी कन्या सुलक्षमीके साथ आपका पाणिग्रहण हुआ। परन्तु इससे भी उनके पिताकी मनशा पूरी न हुई। विवाह हो जाने पर भी नानक अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तिको छोड़ न सके। नानकी नामक नानकको एक बहन थी। जयराम नामक एक हिन्दूके साथ उनका विवाह हुआ था। ये जयराम दिल्लीके बादशाह बहलोल लोदीके आत्मीय नवाब दौलत खाँ लोदीके अधीन कार्य करते थे। पञ्जाबमें कपूरतल्लाके निकटवर्त्ती सुलतानपुर नामक स्थानमें दौलत खाँकी विशाल जागीर थी। उक्त नवाबके अधीन कार्य करनेके अभिप्रायसे नानक जयरामके पास भेजे गये। नवाबने आप पर अतिथिशालाकी रक्षाका भार अर्पण किया। किन्तु आप इतनी उदारताके साथ दरिद्रोंको दान करने लगे कि थोड़े ही समयमें उक्त अतिथिशालाकी तमाम चीजोंका खातमा हो गया। जो कुछ हो, थोड़े ही समयमें आप वहांका काम छोड़ कर चले आये।

दौलत खाँके अधीन कार्य करते समय, ३२ वर्षकी उमरमें आपके प्रथम पुत्र हुआ, जिसका नाम रक्खा गया श्रीचन्द। इसके चार वर्ष बाद लक्ष्मीदास नामका दूसरा पुत्र हुआ। लक्ष्मीदास जिस समय निहायत बच्चा था, उस समय आप फकीरके वेशमें देश भ्रमणको निकले थे। मरदाना नामक एक वीणा बजानेवाला, लहना (जो कि अन्तमें नानकके उत्तराधिकारी हुए), बाला और रामदास ये चार व्यक्ति आपके सहचर थे।

ईश्वरकी प्रशस्तिके लिए नानक जिन पद्योंकी रचना करते थे अथवा शिष्योंको उपदेश-रूपमें जो कुछ कहते थे, मरदाना उसे वीणा बजा कर गाया करते थे। कहा जाता है, कि आपने धर्मप्रचारके उद्देश्यसे भारतवर्ष, पारस्य, काबुल और एशियाके अन्यान्य स्थानोंमें, और तो क्या मक्का तक परिभ्रमण किया था।

नाना स्थानोंमें परिभ्रमण कर चुकनेके बाद आप गुजरानवालाके अन्तर्गत आमनाबाद नामक स्थानमें लालू नामक सूत्रधरके साथ कुछ दिनों तक रहे। मरदाना जब परिवारके लोगोंको देखनेके लिये अपने घर लौटे, तब रायबुलारने नानकके आगमनकी खबर सुन मरदानाको अपनी दर्शनेच्छा ज्ञापन की। नानकके थोड़े दिन बाद तलवन्डी ग्रामको लौटने पर उनके पिता, माता, श्वशुर, चाचा और अन्यान्य आत्मीयगण वहां आ कर उन्हें पुनः गृहस्थ बनानेके लिए नाना तरहकी कोशिशें करने लगे। परन्तु वे विन्दुमात्र भी विचलित न हुए। उन्होंने उपदेशरूपमें जो बातें कही थीं, उनके कुछ अंश नीचे दिये जाते हैं—

१। "क्षमा मेरी मा है, धैर्य मेरा पिता है और सत्य चचा है। इनकी सहायतासे मैंने मनःसंयम सीख लिया है।"

२। "लालू! यह उपदेश सुनो,—जो लोग संसार-बन्धनसे आवद्ध हैं, वे क्या कभी सुखी हो सकते हैं?"

३। "हे भ्रातः! सुशीलता मेरी सहचरी है; यथार्थ प्रेम पुत्र है; सहिष्णुता मेरी कन्या है; इन लोगोंके सहवाससे मैं बड़े सुखसे कालयापन कर रहा हूं।"

४। "सान्त्वना मेरी चिरसङ्गिनी (स्त्री) है; जितेन्द्रियता मेरी दासकन्या है; ये ही मेरी अति प्रिय और आत्मीय हैं। ये प्रति क्षण मेरे साथ रहती हैं।"

५। "जिस एक एवं अद्वितीय ईश्वरने मुझे बनाया है, वे ही मेरे प्रभु हैं। जो व्यक्ति उस ईश्वरको आत्मसमर्पण न करके अन्यको खोज करता है, उसको यातना सहनी पड़ती है।"

रायबुलार आपकी इस सारगर्भित वक्तृताको सुन कर तथा आपके पाण्डित्य और अमानुषिक भावको देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। यही कारण था, कि आपको तलवन्डीग्राममें रखनेके लिए उन्होंने बहुत-सी जमीन दी थी, परन्तु नानकने उसे लिया नहीं। आपके चचाने घोड़ोंका रोजगार करनेके लिये रुपये दिये, वह भी आपने न लिए और कहने लगे—"शास्त्रपथका अनुसरण कर सत्यरूप अश्वका व्यवसाय कीजिये। अपने खानेके लिए सत्कार्यका अनुष्ठान कीजिए। इन बातोंको असार उपन्यास न समझियेगा। ईश्वरके राज्यमें जानेके लिए मार्ग प्रस्तुत कीजिए, कारण वहां जानेसे चिरसुख भोग कर सकेंगे।"

तदनन्तर आप पुनः देशपर्यटनके लिए निकले थे

और बङ्गदेश तथा यहांकी गिरि-श्रेणियोंमें परिभ्रमण किया था। इस गिरि-भ्रमणके समय प्रसिद्ध योगिवर गोरक्षनाथके साथ आपकी भेंट हुई थी। अफगानिस्तानमें भ्रमण करते समय मरदानाकी मृत्यु हो गई; फिर आप वताला नामक स्थानको लौट कर तलवन्दीकी तरफ रवाने हुए। इतनेमें रायबुलार और कालूकी भी मृत्यु हो गई। मरदानाके पुत्र शाहजादा साहबको साथ ले मुलतानमें तालम्बा नामक स्थानमें उपस्थित हुए। वहां कुछ डकैतोंने शाहजादाको पकड़ कर कैद कर लिया। नानकने अपनी वक्तृताशक्तिके प्रभावसे उन्हें मुग्ध कर अपने धर्ममें दीक्षित कर लिया। वहांसे वे काबुल और कन्दहारको गये। कहा जाता है, कि मार्गमें उन्होंने हाथोंसे पर्वत-स्खलित एक विशाल भूखण्डको थाम लिया था। पर्वत पर उनके हाथोंका चिह्न अङ्कित हो गया था। अब भी उक्त स्थान विद्यमान है, लोग उसे 'पञ्जासाहब' कहते हैं। काबुलसे लौट कर आप फिर कुछ दिनों तक अपने मित्र आमनाबादनिवासी सूत्रधर लालूके साथ रहे थे। इस समय आपके शिष्योंकी संख्या बहुत बढ़ गई थी। सब आपको सिद्ध पुरुष और महाधर्माध्यक्ष समझते थे। समयके परिवर्त्तनके साथ साथ आपकी अवस्थाका भी बहुत कुछ परिवर्त्तन हो गया था। अब समाज और परिवारवर्ग पर आपकी पहलेकी तरह अश्रद्धा वा घृणा न थी।

कुछ दिन लालूके साथ एकत्र वास करनेके बाद, उनको छोड़ कर और बालाको साथ ले आप गुरुहट-मेला देखनेके लिये मुलतान चल दिये। वहां इकट्ठे हुए लोगोंके समक्ष आपने अपने धर्मका सारमर्म कहा। दिल्लीके अधीश्वर इब्राहिमलोदीके करदारोंने वक्तृता सुन कर आपके विरुद्ध सम्राट्के पास आवेदन-पत्र लिख भेजा। इब्राहिम उक्त सम्वाद पा कर क्रुद्ध हुए और नानकको दिल्ली पकड़वा बुलाया और उनका धर्ममत वेद तथा कुरानके मतसे शून्य है, इस अपराधमें उन्हें कारारुद्ध कर रखा। नानकको सात महीना कैद रहना पड़ा था। बादमें मुगलवंशीय बाबरशाहके भारत पर आक्रमण कर १५२६ ई०में पानीपथमें इब्राहिमको पराजित और निहत करने पर नानकको मुक्ति मिली। उसके बाद आप सिन्धुदेश चले गए। वहां बहराम नामक एक शिक्षित मुसलमानके साथ आपका धर्मसम्बन्धी तर्क-वितर्क हुआ था। उस समय आप "आशा" नामकी एक पुस्तक लिख रहे थे।

कहा जाता है, कि नानकने सिंहल-भ्रमण किया था और सिंहलराज शिवनाथ और अन्यान्य बहुत-से व्यक्तियोंको अपने धर्ममें दीक्षित किया था। आप सिंहलमें दो वर्ष पाँच महीने रह कर स्वदेशको लौटे थे।

नानकके इस्ताम्बुल-भ्रमण और तुरुष्कराजके साथ साक्षात्के विषयमें एक प्रवाद है। तुरुष्कराज अत्यन्त अर्थलोभी और प्रजापीड़क थे। किन्तु नानकके उपदेशसे उन्होंने अपना तमाम रुपया फकीरों और दीन-दुःखियोंको दे दिया था तथा प्रजापीड़नका अभ्यास सदाके लिए छोड़ दिया था।

नानकने अपना शेष जीवन इरावती नदीके किनारे (गृहादि निर्माणपूर्वक) बिताया था। आप अपने परिवारके कर्त्ता हुए थे। आपके घरमें सब जातिके लोगोंको आश्रय मिलता था। आप स्वयं फकीरके वेशमें रहते हुए भी बहुसंख्यक लोगों पर प्रभुत्व करते थे। प्रायः सभी आपको धर्मोपदेष्टा समझ कर सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे। आपका खर्च राजाओंसे किसी प्रकार भी कम न था। वहां आपने एक अतिथिशाला खोली थी, जहां बहुसंख्यक दरिद्र प्रतिपालित होते थे। इरावतीके किनारे अब भी आपका वह निवासभवन विद्यमान है, जो कि 'डेरा बाबानानक'के नामसे प्रसिद्ध है।

नानकने जालन्धर जिलेमें करतारपुर नगर संस्थापन कर वहां एक धर्मशाला बनवायी थी। सिख लोग उसे पवित्र स्थान मानते हैं। इसी स्थानमें १५३८ ई०में ७१ वर्षकी उमरमें आपका देहावसान हुआ था। इस दीर्घ समयमें आप लोकहित कार्यमें व्यापृत थे। जीवनके शेष ४० वर्ष ५ मास ७ दिन तक आप "गुरु" नामसे प्रसिद्ध हुए थे। करतारपुरमें स्मरणचिह्न-स्वरूप आपका एक समाधिमन्दिर बनाया गया था। उस जगह प्रति वर्ष नानकके मृत्यु-दिवसमें बहुतसे लोग इकट्ठे हो कर उत्सव करते थे। इरावतीके स्रोतसे अब वह मन्दिर टूट गया है।

फिलहाल आपके पहरनेके कपड़े और अन्यान्य स्मरण-चिह्न एक मन्दिरमें हैं, जो तीर्थ यात्रियोंको दिखलाये जाते हैं। कहा जाता है, कि इनकी मृत्युके बाद मृतदेहके सत्कारके सम्बन्धमें हिन्दुओं और मुसलमानोंमें भारी गोलमाल उठा। मुसलमान लोग इन्हें मुसलमान कहते थे; कारण यद्यपि वे स्पष्ट रूपसे मुसलमान धर्माव-लम्बी न थे, तो भी महम्मदको ईश्वरका दूत समझते थे। वे पौत्तलिकताके विरोधी थे और ईश्वरमें 'एकमेवाद्वितीयं' ऐसा विश्वास उनके हृदयमें बद्धमूल था। इससे इनकी मृतदेहकी कब्रके लिये मुसलमान लोग बद्धपरिकर हुए थे। फिर भी, हिन्दू लोग उन्हें गोंडा हिन्दू-उपाधि देते थे, सुतरां इन लोगोंने उनको मृतदेहको अग्निसात् करनेका दृढ़ सङ्कल्प किया। हिन्दू और मुसलमान इन दोनों सम्प्रदायके मध्य रक्तपातकी सम्भावना हो उठी, दोनों पक्षकी तेज तलवार चमकने लगी। बाद कुछ परिणामदर्शी विज्ञ मनुष्योंने यह सिद्धान्त किया, कि उक्त देह न तो मट्टीमें गाड़ी जाय और न अग्निमें ही भस्मीभूत की जाय—उसे जलमें बहा देना ही उत्तम होगा। यह स्थिर कर जब दोनों पक्षके लोग मृतदेहके पास उपस्थित हुए, तब आश्चर्यका विषय था, कि मृत-देहके आवरण वस्त्रके सिवा और कुछ भी उन्हें दिखाई न दिया। उस समय ऐसा मालूम पड़ा, कि दोनों पक्षों-मेंसे किसी एक पक्षने मृतदेहको चुरा लिया हो। बाद उस कपड़ेके दो खण्ड कर एकको मुसलमानोंने कब्रमें गाड़ दिया और दूसरे खण्डको हिन्दुओंने जला डाला।

नानक विशुद्ध एकेश्वरवादी थे। उनका विश्वास था, कि ईश्वर एक हैं और मनुष्य उन्हें देख नहीं सकता। वे कहते थे, कि पहले संसारमें केवल एक ही विशुद्ध सत्यधर्म स्पष्ट हुआ था और सभी मनुष्य समान वा एक धर्मी थे। बाद मनुष्योंके कौशलसे संसारमें भिन्न भिन्न जाति और भिन्न भिन्न धर्मोंकी उत्पत्ति हुई। वे यह भी कहा करते थे कि 'मैंने कुरान और पुराण दोनों ग्रन्थ पढ़े हैं, किन्तु प्रकृत सत्यधर्म किसीमें भी नहीं है।' ऐसा होने पर भी नानक दोनों ग्रन्थका आदर करते और अपने शिष्योंको उनमेंसे सारसंग्रह कर तदनुसार कार्य करनेका उपदेश देते थे।

हिन्दू और मुसलमान इन दो सम्प्रदायोंके धर्म और समाजगत विरोधभञ्जन तथा दोनों धर्मका पर-स्पर सामञ्जस्य करना ही इनके जीवनका प्रधान व्रत था। इस विषयमें वे बहुत कुछ कृतकार्य भी हुये थे। भ्रातृभाव-संस्थापन, धर्मपथ अवलम्बन और सर्वत्र चिरशान्तिविस्तार करना ही इनके प्रवर्त्तित धर्मका सार उपदेश था।

ईश्वर द्वारा धर्मप्रचारके लिये महम्मदको पवित्र दौत्यकार्यमें प्रेरण और हिन्दूके अवतारवादमें वे विश्वास करते थे। किन्तु महम्मदके जैसा वे कभी यह नहीं कहते थे, कि वे मनुष्योंको जो महा उपदेश वा जो सब वक्तृता देते थे, उसे ईश्वरने उन्हें कह दिया है। वे यह कह कर भी अहङ्कार नहीं करते थे, कि उनमें दैवशक्ति थी, वा जिस शक्तिसे वे कार्य करते थे, वह अन्य व्यक्तिमें नहीं हो सकती। उनका कहना था कि, 'मैं भी साधारण मनुष्योंमेंसे एक हूं और उन्हीके जैसा पापी हूं।'

'मैं ईश्वरके द्वारका एक फकीर हूं' ('तू है निर-ङ्कार, कर्त्तार, नानक बन्दा तेरा') यही धार्मिक नानक-के हृदयका गुह्यरहस्य था। उनके धर्मका सार था, कि ईश्वर ही सर्व-सर्वा हैं, उनमें विश्वास रखना आवश्यक है; वे अयोनिसम्भव, बुद्धिसे अतीत, सर्वशक्तिमान्, अनादि और अनन्त हैं। निर्वाणलाभके लिये सत्य ईश्वर-ज्ञान आवश्यक है, केवल सत्कर्मानुष्ठानसे कुछ नहीं होता है। कोई धर्मोपदेष्टा (Prophet) किसीका कुछ उपकार वा अपकार नहीं कर सकता। ईश्वर ही हम लोगोंके इष्टानिष्टके मूल हैं। अपना अभाव दूर करनेके लिये ईश्वरके ऊपर निर्भर करना ही मानवका कर्त्तव्य है। धर्मोपदेशकगण केवल ईश्वरके आदेशको अनुवाद करने अथवा समझा देनेमें ही समर्थ हैं; इसके अलावा उनमें अपनी कोई क्षमता नहीं है। नानक पुनर्जन्म पर विश्वास करते और कहा करते थे कि मनुष्यकृत पापके लिये आत्मा ईश्वरादिष्ट शास्तिका भोग कर अन्तमें उनके साथ वास करती है।

यद्यपि सत्यकी खोजमें नानक बचपनसे ही पिता माता आदि स्वजनका परित्याग कर देश देशान्तरमें पर्य-

टन करते थे, तो भी भिन्न भिन्न स्थानीय और नाना जातीय विभिन्न प्रकृतिके मनुष्योंके संसर्ग और आलाप-परिचयसे इनके संशय और समाजके ऊपर अश्रद्धाका बहुत कुछ ह्रास हो गया था। अन्तमें वे कर्त्तास्वरूपमें परिवारवर्गके साथ रहने लगे। वे उपदेश दिया करते थे, कि ईश्वरकी उपासनाके लिये संसारका त्याग करना निष्प्रयोजन है। ईश्वरके सामने फकीर और राजामें कुछ फर्क नहीं; जो जहां जिस अवस्थामें रहता है, सबोंके प्रति उनकी समान दया है। नानकप्रणीत "ग्रन्थ" नामक पुस्तकमें उनके धर्मका सारमर्म सविस्तार वर्णित है, इसे 'आदिग्रंथ' कहते हैं। इनके उत्तराधिकारियोंमें-से गुरुगोविन्द नामक एक व्यक्तिने उक्त पुस्तकका द्वितीय खण्ड प्रणयन किया है। किन्तु इस पुस्तकमें उनके शिष्योंका 'धर्मप्रचारके लिये युद्धकी आवश्यकता है" ऐसा मन्तव्य प्रवर्त्तित हुआ है।

उनमें अमानुषिक क्षमता है, ऐसा समझ कर नानक यद्यपि कभी भी अहङ्कार वा मान नहीं करते थे, तो भी उनके शिष्य उनकी भूयसी अनैसर्गिक-क्षमताका उल्लेख किया करते हैं।

नानकके शिष्यगण उन्हें जो ईश्वरके जैसा मानते थे, उसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं। एक दिन किसी व्यक्तिने स्वर्गसे नानकको पुकार कर समीप आनेको कहा। इस पर नानक आश्चर्यान्वित हो बोले, "हे ईश्वर! आपके सामने ठहरनेकी मुझमें क्या शक्ति है?" इस देववाणीने उन्हें आंख मूंद लेनेको कहा। नानकने जब अपनी आंखें मूंद लीं, तब वे अपनेको ईश्वरके सामने उपस्थित देखते हैं। पीछे ईश्वरने उन्हें आंख खोल लेनेको कहा। नानकने वैसा ही किया और 'उत्तम' यह शब्द पांच बार उच्चारित होते सुना। इसके बाद "उत्तम किया है, शिक्षक" यह बात इन्होंने सुनी। तदनन्तर ईश्वरने बातचीत करते समय इनसे कहा था, 'मनुष्य-जातिके शिक्षकरूपमें तुमने कलियुगमें जन्म लिया है और उन्हें धर्म तथा अच्छे रास्ते पर ले जाना ही तुम्हारा कार्य है।'

एक और दूसरा प्रवाद यों है—नानकने एक दिन प्याससे व्याकुल हो अपने बुद्ध नामक गो-रक्षकको निकटवर्त्ती पुष्करिणीसे जल लाने कहा। 'उस पुष्करिणीमें कुछ भी जल नहीं है' उसके ऐसा कहने पर नानकने कहा, "तुम जा कर देखो, यह सूखी नहीं है; जल अवश्य है।" बुद्ध जल लाने गया और पुष्करिणीको जल-पूर्ण देख बड़ा ही आश्चर्यित हुआ। पीछे बुद्धने जल ला कर नानकको दिया और उनका शिष्यत्व स्वीकार भी कर लिया। इसी जगह गुरु-अर्जुनने एक पुष्करिणी खोदवाई जिसका नाम रखा गया "अमृतसर।" नानकके सम्बन्धमें इस प्रकारके और भी अनेक प्रवाद सुने जाते हैं।

आमनाबादके जङ्गलमें किसी स्थान पर नानक सोया करते थे। यहां पत्थर और कङ्कड़ स्तूपाकारमें विद्यमान था। नानक इस स्तूपाकार प्रस्तरराशिको वेदि वा मन्दिरस्वरूप जान वहां धर्मसम्बन्धीय वक्तृता करते थे। यह जगह अभी 'रोरिसाहब' नामसे प्रसिद्ध है।

ये सुलतानपुरके समीप विपाशा नदीमें अनाहार तीन दिन तक ईश्वरध्यानमें निमग्न थे। जिस वृक्षके नीचे ये बैठते थे, वह "बाबाका पेड़" और जिस जगह स्नान करते थे, वह "शान्तिघाट" नामसे मशहूर है।

जब सम्राट् बाबरने पञ्जाब पर चढ़ाई की, तब नानक अपने शिष्योंके साथ पकड़े गए और सम्राट्के समीप लाये गए। इनके साथ बातचीत करते समय विद्वान् सम्राट् बड़े ही प्रसन्न हुए और इन्हें उपहार देनेका निश्चय किया; किन्तु नानकने यह कह कर उसे लेना नहीं चाहा कि, "ईश्वरकी उपासनाके फलसे मेरे मनमें जो आनन्द विद्यमान है, वही मेरा अमूल्य पुरस्कार है और जो ईश्वर सबोंके प्रभु हैं, उन्हींको सन्तुष्ट करना ही मेरा परम उद्देश्य है। अतएव यह ईश्वरसृष्ट राजा परितुष्ट हो वा न हो, इसके लिये मुझे जरा भी चिन्ता नहीं।"

एक दिन बाबरके नौकर उनके लिये अति सुगन्धित और सुपेय जल लाए। बाबरने उसमेंसे थोड़ा पी कर अवशिष्टांश नानकको पीने दिया। इस पर नानकने कहा था,—जो मनुष्य ईश्वर-चिन्तामें मस्त हैं, उसको इस जलसे कुछ भी फायदा नहीं हो सकता।

यह बड़े ही आश्चर्यका विषय है, कि बाबरने अपनी स्वहस्त-लिखित जीवनीमें सिखधर्म-संस्थापक नानकका

नामोल्लेख तक भी नहीं किया। हो सकता है कि, जब बाबरने यह पुस्तक लिखी थी, उस समय इनका नाम इतना फैला न हो। इसलिए उन्होंने इनके विषयमें कुछ भी नहीं लिखा है।

मरनेके समय नानक लहना नामक एक शिष्यको अपना उत्तराधिकारी बना गए थे। इसका कारण यह था, कि ये अत्यन्त प्रभुभक्त और ईश्वरविश्वासी थे। नानकके उत्तराधिकारिगण "गुरु" नामसे पुकारे जाते हैं। सिख देखो।

नानकपन्थी—सिखगुरु नानकने जो नया धर्म चलाया था, उसके प्रचारके लिए वे नाना देशोंमें घूमे थे और उक्त धर्मकी व्याख्या करके भिन्न भिन्न जातिके लोगोंको अपने धर्ममें लाये थे। जो सब मनुष्य उनके प्रवर्त्तित धर्मावलम्बी हुए, वे ही नानकपन्थी नामसे प्रसिद्ध हैं।

नानक और सिख शब्द देखो।

नानकशाही—नानकपन्थियोंके अन्तर्गत एक प्रकारका संन्यासी वा योगी सम्प्रदाय। ये लोग सात भागोंमें विभक्त हैं। प्रत्येक शाखाके लोग नानकको अपना आदि गुरु मानते हैं। पश्चिम भारतमें ये लोग भिक्षुकश्रेणीके मध्य एक नीच सम्प्रदाय समझे जाते हैं। काशीधाममें वे गेरू वस्त्र पहनते और विवाह नहीं करते हैं। नानकप्रणीत 'ग्रन्थ' नामक पुस्तक ही इन लोगोंको धर्मपुस्तक है। किन्तु इस सम्प्रदायके सभी संन्यासी समस्त हिन्दुओंके यहां भोजन करते हैं।

नानकार (फा० पु०) एक प्रकारकी माफी जिसके अनुसार जमींदारको कुछ जमीनकी मालगुजारी नहीं देनी पड़ती। अवधके नवाबोंके समयसे इस प्रकारकी माफी चली आ रही है। नानकार दो प्रकारका होता है—नानकार देही और नानकार दस्मी। यदि किसी गाँवमें कुछ जमीनकी या किसी तअल्लुकेमें कुछ गांवोंकी मालगुजारी माफ है और वह माफी उस ग्राम या तअल्लुकेके साथ लगी हुई है, तो वह नानकारदेही कहलाती है। इस प्रकारकी माफीमें गाँवके हर एक हिस्सेदारका हक होता है। यदि माफी किसी खास आदमीके नामसे होती है तो उसे नानकार दस्मी कहते हैं। इसमें हिस्सेदारोंका हक नहीं होता, पर व्यवहारमें यह बहुत कम माना जाता है।

नानकीन (हिं० पु०) एक प्रकारका मटमैले रङ्गका सूती कपड़ा जो चीन देशसे बाहरको जाता था। पहले पहल इसका बुनना चीनके नानकिङ्ग नामक नगरमें शुरु हुआ था। वर्त्तमान समयमें इस प्रकारका कपड़ा यूरोप आदि देशोंमें तैयार होता है और इसी नामसे पुकारा जाता है।

नानखताई (फा० स्त्री०) टिकियाके आकारकी एक सोंधी खस्ता मिठाई। इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार है—घी और चीनीके साथ घुले हुए चावलके आटेकी टिकिया लोहेकी एक चद्दर पर रखते हैं। फिर चद्दरको दहकते अङ्गारोंसे भरे हुए दो थालोंके बीच इस प्रकार रखते हैं, कि आँच ऊपर और नीचे दोनों ओरसे लगे। जब टिकिया पक जाती हैं और उनमेंसे सोंधाहट आने लगती है, तब चद्दर निकाल ली जाती।

नानगाम—बम्बई प्रदेशके रेवाकांठाके अन्तर्गत एक छोटा राज्य।

नानगुनेरी—१ मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत तिन्नेवेली जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० ८° ९´ से ८° ३८´ उ० और देशा० ७७° २४´ से ७७° ५५´ पू०के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या २०२५२८ तथा भूपरिमाण ७३० वर्गमील है। इसमें दो शहर और २३१ ग्राम लगते हैं। यहांका राजस्व कुल ३६५०००) रु० है। इसके उत्तर-पूर्व तथा बीचमें बहुतसे तालाब हैं जिनमें पहाड़से पानी गिरता है। दक्षिणमें भी असंख्य कूप देखनेमें आते हैं।

२ उक्त तालुकका एक सदर। यह अक्षा० ८° २८´ उ० और देशा० ७७° ४०´ पू०, तिन्नेवेलीसे १८ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या ६५८० है। यहां वैष्णव ब्राह्मणोंका एक मन्दिर है।

नानपार—१ युक्त-प्रदेशके बहराइच और गोण्डा जिलेके अन्तर्गत एक तालुकदारी राज्य। यहांका राजस्व ८ लाख रु० है जिसमें २ लाख रु० गवर्मेण्टको कररूप दिए जाते हैं। शाहजहान्ने रसूल खाँ नामक एक अफगानको बहराइच जिलेकी गड़बड़ीको शान्त करनेके लिये कमीशन मंजूर कर दिया था और कुल राजस्वका दशवां भाग तथा पांच ग्राम भी दिए थे। १८४७ ई०में राजा मुनव्वरअली खांके मरने पर उनकी विधवा

स्त्रियां राज्यके लिए आपसमें लड़ने लगीं। अन्तमें सर जङ्ग बहादुर खां के० सी० आई० ई० यहांके प्रबन्धकर्त्ता बनाये गए और इनके उत्तम प्रबन्धसे यह राज्य उन्नत हो उठा। वर्त्तमान राजा मुहम्मदसादीक खां १८०२ ई०में सिंहासन पर बैठे।

२ उक्त प्रदेशके बहराइच जिलेकी एक तहसील। इसमें नानपार, चर्दे और धर्मनपुर ये तीन परगने शामिल हैं। यह अक्षा० २७° ३८´ से २८° ५४´ उ० और देशा० ८१° ३´ से ८१° ४८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १०५० वर्गमील और जनसंख्या ३२५५८७ है। इसमें एक शहर और ५४६ ग्राम लगते हैं तथा इसके उत्तर-पूर्व और उत्तरमें जङ्गल भी देखनेमें आता है।

३ उक्त तहसीलका एक सदर। यह अक्षा० २७° ५२´ उ० और देशा० ८१° ३०´ पू०, बङ्गाल और नार्थ-वेष्टर्न रेलपथ पर अवस्थित है। यहांकी जनसंख्या १०६०१ है। प्रवाद है, कि निधाई नामक एक तेलीने इसे बसाया था। लगभग १६३० ई०में एक अफगानने शाहजहान्से इस नगरके साथ साथ चार और ग्राम पाये थे। उन्होंने ही वर्त्तमान नानपार राज्य बसाया। इसमें अनेक कार्यालय, दो स्कूल और एक अस्पताल है।

नानपुरकोला—तिरहुत जिलेके मुजफ्फरपुरका एक ग्राम। यह मुजफ्फरपुरसे पुपरी तक जो रास्ता गया है, उसी पर अवस्थित है। यहांसे मुजफ्फरपुर ३२ मील दूरमें है। किसी समय यहां जमींदार बद्रप्रसादका वासस्थान था।

नानपेरिल (अं० पु०) एक प्रकारका छोटा टाइप।

नानबाई (फा० पु०) वह जो रोटियां पका कर बेचता हो।

नानभट्ट—एक संस्कृत कवि। इनके पुत्रका नाम रङ्गलाल और पौत्रका बालकृष्ण था। बालकृष्णके पुत्र रङ्गलालने विक्रमोर्वशीटीका बनाई है।

नानस (हिं० स्त्री०) सासकी माता, ननिया सास।

नानसरा (हिं० पु०) पति या स्त्रीका नाना, ननिया ससुर।

नाना (सं० अव्य०) न-नाञ् प्रत्ययः। १ अनेकार्थ, अनेक प्रकारके, बहुत तरहके। २ अनेक, बहुत। ३ उभयार्थ। ४ विनार्थ।

नाना—बालाजीराव पेशवा साधारणतः इसी नामसे प्रसिद्ध थे।

नाना—१ पूनाके मध्य एक पहाड़ी रास्ता। दाक्षिणात्यसे कोङ्कण इसी राह हो कर जाना होता है। इस राहके समीप 'नानाका अंगठा' नामक एक छोटा पहाड़ नजर आता है। वणिक् लोग नाना प्रकारके द्रव्यादि ले कर इसी राह हो कर आते हैं।

२ एक प्रकारका पेड़ जो बिलकुल सीधा और लम्बा होता है तथा अधिक मोलमें बिकता है।

३ १८८४ ई०में पूना अठारह भागोंमें विभक्त हुआ था जिनमेंसे एकका नाम 'नाना' है। 'नाना' अथवा 'हनुमान' खण्डकी लम्बाई १०४० गज और चौड़ाई ५०० गज है। लोकसंख्या छः हजारके लगभग है। यह स्थान अत्यन्त उन्नतिशील है। दिनों दिन नई नई अट्टालिकाएं शहरकी शोभाको बढ़ाती हैं। यहांके पारसिकोंका अभ्यागार, घोड़पड़ेका प्रासाद, बिठोवाका मन्दिर और रोमनकेथलिकका गिरजा देखने योग्य है।

नाना (हिं० पु०) १ मातामह, माताका पिता, माका बाप। (क्रि०) २ नीचा करना। ३ डालना, फेंकना। ४ प्रविष्ट करना, घुसाना।

नाना (अ० पु०) पुदीना।

नानाकन्द (सं० पु०) नाना बहवो कन्दा यस्य। १ पिण्डालु। २ बहुमूल। (त्रि०) ३ बहुमूलयुक्त।

नानाघाट—१ पूनामें नाना नामक जो गिरिश्रेणी देखी जाती है, उसके ऊपरका एक रास्ता। घाटगढ़से यह गिरिपथ दो मीलकी दूरी पर अवस्थित। यहां शिव और दुर्गाकी प्रतिमूर्त्ति पत्थर पर खुदी हुई हैं। इस गिरिश्रेणीमें १३५ गुहाएं हैं जिनमें ३५ शिलालिपियां खुदी हुई हैं। ये सब लिपियां पढ़नेसे जाना जाता है, कि जुन्नर बौद्ध लोगोंका एक प्रधान स्थान था।

२ पूना जिलेका एक ग्राम। यहां पर्वतकन्दरामें एक मन्दिर है जिसमें पालिभाषामें उत्कीर्ण एक शिलालिपि देखनेमें आती है। उस शिलालिपिमें जो तारीख लिखी हुई है, उससे पता लगता है, कि यह लिपि ईसाजन्मके बहुत पहलेकी खुदी हुई है।

नानात्मवादिन् (सं० त्रि०) नानात्म-वद-णिनि। वह आत्मावादी, जो अनेक आत्मा स्वीकार करते हैं। इन लोगोंका मत है, कि आत्मा एक नहीं है, अनेक है।

प्रतिदेहमें एक एक पृथक् आत्मा है। सांख्यदर्शनमें यह मत मीमांसित हुआ है। इन्होंने प्रमाण द्वारा यह स्थिर किया है, कि आत्मा किसी हालतसे एक नहीं हो सकती। मान लिया जाय कि जन्म, मृत्यु और करण अर्थात् आत्मा यदि एक हो, तो एकके जन्मके समय सबोंका जन्म और एककी मृत्युके समय सबोंकी मृत्यु हो सकती है, लेकिन ऐसा नहीं होता। इन्हीं सब कारणोंसे यह निश्चय है, कि आत्मा एक नहीं है, अनेक हैं। यह नानात्मवाद वेदान्तदर्शनमें खण्डित हुआ है। सांख्य देखो।

नानादरवारी—एक राजविद्रोही ब्राह्मण। १८३८ ई०के आरम्भमें कोली लोग दल बांध कर मह्याद्रिके नाना स्थानोंमें लूट मार मचाया करते थे। अन्यान्य अनेक जातियोंने इस विद्रोहमें साथ दिया था। भाऊखरी, चिमनाजी यादव और नानादरवारी नामक तीन ब्राह्मण इस विद्रोहके नेता थे।

नानादिग्देश (सं० पु०) दिशश्च देशाश्च, नानादिग्देशाः। अनेक दिक् और अनेक देश।

नानादीक्षित—काशीवासी एक महाराष्ट्रीय पण्डित। ये प्रकाशानन्दके शिष्य थे। प्रकाशानन्दकी वेदान्तसिद्धान्त-मुक्तिकाके आधार पर इन्होंने एक टीपिका लिखी थी।

नानाध्वनि (सं० पु०) काहल वीणादि शब्द।

नानान्द्र (सं० पु०) ननान्दुरपत्यम्, बिदादित्वात् अञ्। ननान्दाका अपत्य, ननदकी सन्तति।

नानान्द्रायण (सं० पु०) ननान्दुर्युवापत्ये ननान्द्र-हरितादित्वात् फक्। ननान्दाका युवा अपत्य।

नानाप्रकार (सं० त्रि०) बहुविध, अनेक प्रकार।

नानाफड़नवीस—महाराष्ट्रके एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ। १७६२ ई०में आप पूनाके पेशवा माधवरावके कारकून नियुक्त हुए थे। उस समय आपका नाम था बालाजी जनार्दन भानु। १७६७ ई०में आपको फड़नवीसका पद मिला था।

१७७४ ई०से १८०० ई० तक नाना फड़नवीस पूनाके मन्त्रिपद पर नियुक्त थे। उस समय पूनामें विख्यात आठ राजनीति-विशारदोंके नाम सुननेमें आते थे, जिनमें नाना फड़नवीस और हरिपन्त फड़केका नाम विशेष प्रसिद्ध था। रघुनाथराव जिस समय हैदराबादके निजाम अलीकी गति रोकनेकी चेष्टा कर रहे थे, उस समय नाना फड़नवीस और अन्यान्य मन्त्रियोंने रघुनाथराव-का पक्ष छोड़ दिया था। उस समय नारायणरावकी विधवा स्त्री गङ्गाबाई गर्भवती थीं। नाना फड़नवीस और हरिपन्त फड़के उन्हें ले कर पूनासे पुरन्दर चले गए। उन लोगोंका यह अभिप्राय था, कि उक्त रानीके गर्भसे पुत्र उत्पन्न होने पर उसे पूनाका राजा बनावेंगे। प्रवाद है, कि गङ्गाबाईके साथ और भी कई गर्भवती स्त्रियां थीं। ऐसा करनेका उद्देश यह था, कि कदाचित् रानीका गर्भ नष्ट हो जाय, तो उनकी सन्तानमेंसे किसी-को रानीका गर्भजात पुत्र बतलाया जा सकता है।

इसी समय पूनामें ब्राह्मण अमात्योंका आधिपत्य विशेष-रूपसे था। रघुनाथराव इन ब्राह्मणोंके प्रति अप्रिय हो गए थे। १७७५ ई०में अङ्गरेज-गवर्नमेण्टने कर्नल अपटोन (Colonel Upton)को बम्बई-गवर्नमेण्ट और महाराष्ट्र अमात्योंके बीच सन्धि स्थापनके लिए भेजा। १७७६ ई०-में सन्धि हो गई। यह सन्धि पुरन्दरमें हुई थी। १७७८ ई०में पुनः पूनाके मन्त्रियोंमें परस्पर विवाद उपस्थित हुआ। नाना फड़नवीसके ज्ञातिभ्राता मुरोबा फड़न-वीस विशेष दक्षताका परिचय देने लगे, जिससे नाना फड़नवीसकी ईर्षा प्रबल हो उठी। आप उनकी क्षमता-को नष्ट करनेके लिए प्रयत्न करने लगे। परन्तु रघुनाथ-रावके पक्षके लोगोंने मुरोबाका पक्ष समर्थन किया। गङ्गाबाईकी मृत्युके बाद सखारामको नाना फड़नवीस पर सन्देह होने लगा और वे पुनः रघुनाथरावको शासन-कर्त्ता बनानेके प्रस्तावका समर्थन करने लगे।

अङ्गरेज-गवर्नमेण्टसे नाना फड़नवीसका अत्यन्त विद्वेष था। इसीलिये फरासीसियोंके साथ उनका सद्भाव हो गया था। मुरोबाको पकड़नेके लिये नाना फड़न-वीसने यथेष्ट चेष्टा की थी, किन्तु उनका यह प्रयत्न सफल न हुआ। अन्तमें सुचतुर फड़नवीसने सखाराम बापू द्वारा मुरोबाको अपने दलमें मिला लिया।

इस समय फरासीसी-दूत सेण्ट लूबों (St. Lubin) पूनाके दरबारमें रहते थे। अङ्गरेज-गवर्नमेण्टने उनकी अवस्थितिमें आपत्ति की; नाना फड़नवीसने उन्हें

विदा कर दिया। परन्तु सेण्ट लूँबोंको कह दिया गया, कि यदि वे एक दल फरासीसी सेना ले कर आ सकें, तो महाराष्ट्रगण उन्हें आश्रय देनेके लिये तैयार हैं। इधर अङ्गरेज-गवर्नमेण्टने जब महाराष्ट्रके बीचसे सेना ले कर जाना चाहा, तो इन्होंने उन्हें भी निर्विघ्नतया जानेकी परवानगी दे दी और साथ ही उनकी गति रोकनेके लिए गुप्त रीतिसे महाराष्ट्रीय कर्मचारियों तथा बुन्देलखण्डके शासनकर्त्ताको परामर्श दिया।

१७८५ ई०में माधवराव बीस वर्षके हो गये थे। किन्तु नाना फड़नवीसने उन्हें पूर्ववत् शासनाधीन रखा, किसी प्रकारकी स्वाधीनता नहीं दी। यहां तक कि अन्यान्य जितने भी प्रधान व्यक्ति कारारुद्ध थे, उन पर भी नानाका विशेष लक्ष्य रहा। १७९४ ई०में (युद्धारम्भसे पहले) इन्होंने रघुनाथरावके पुत्र बाजीराव तथा चिमनाजी अप्पा और उनके वैमात्रेय भ्राता अमृतरावको निजाम अलीके साथ नासिकसे यमुनागढ़ भेज दिया। वहां उन लोगोंको विशेष सतर्कताके साथ नजरबन्द रक्खा गया। इस निष्ठुर व्यवहारसे सर्वसाधारण जनता इन पर अत्यन्त असन्तुष्ट हो गई थी। उन्नीस वर्षकी उमरमें बाजीराव धनुर्विद्या, अस्त्रचालना आदिमें देशविख्यात हो गये थे। उनकी गुणगाथा सुन कर माधवराव उन पर मुग्ध हो गये और दोनों मिल कर स्वाधीन भावसे राज्यशासन करेंगे, ऐसा सङ्कल्प कर लिया। यह बात बाजीरावको भी मालूम पड़ी। दोनों एक दूसरे पर आकृष्ट हो गए। किन्तु दोनों हो अधीन थे, कोई भी अपने मनकी बात एक दूसरेको कह नहीं सकते थे। इसी बीचमें बाजीरावने अपने रक्षक बलवन्तरावको मारफत माधवरावके पास सम्वाद भेजा। नाना फड़नवीसको यह बात मालूम हो गई; उन्होंने बलवन्तरावको दुर्गमें बन्दी कर रक्खा और माधवरावका अत्यन्त तिरस्कार किया। माधवरावने दुःखित हो छतसे गिर कर आत्महत्या कर ली। मरते समय वे कह गये थे कि "बाजीराव मेरे राज्यके अधिकारी होंगे।"

अनन्तर नाना फड़नवीसने माधवरावके उक्त अभिप्रायको प्रकट न कर अमतासम्पन्न मन्त्रियोंसे कहा, "बाजीरावके राजा होने पर यथेष्ट विपत्तियोंकी आशङ्का है। अङ्गरेजोंके साथ बाजीरावकी जैसी घनिष्ठता है, उससे साफ झलकता है कि बाजीरावके राजा होने पर अङ्गरेजोंके आधिपत्यकी वृद्धि होगी।" कुटिलबुद्धि नाना फड़नवीसने ये कारण दिखा कर माधवरावकी पत्नीको दत्तक ग्रहण करनेकी सलाह दी। उस नाबालिगकी तरफसे नाना फड़नवीस ही राज्य शासन करेंगे, इस प्रस्ताव पर सब सहमत हो गये। बाजीरावको यह बात मालूम हो गई। उन्होंने उपायान्तर न देख दौलतराव सिन्धियाकी शरण ली और कहा कि "यदि मुझे आप पेशवा बनानेमें सहायता देंगे, तो आपको भी चार लाख रुपयेकी सम्पत्ति उपहारस्वरूप दूंगा।" नाना फड़नवीसको मालूम पड़ते ही उन्होंने परशुराम भाऊको बुलाया और परस्पर परामर्श किया कि सिन्धियाके पास जा कर बाजीरावको पेशवा बनानेके सिवा अन्य कोई उपाय नहीं है। तदनुसार परशुरामने जुन्नर जा कर अपना अभिप्राय कह सुनाया। बाजीराव इस प्रस्तावसे सन्तुष्ट हो गये। पूना आ कर उन्होंने राज्यभार ग्रहण किया और फड़नवीसको मन्त्रियोंमें शीर्षस्थान प्रदान किया। सिन्धियाके मन्त्री बालोबा तांतिया बाजीरावके इस व्यवहारसे सन्तुष्ट न हुए और बहुसंख्यक सेना ले कर पूनाकी ओर अग्रसर हुए। नाना फड़नवीस इस संवादको सुन कर कुछ भीत हुए और सतारा भाग गये। बलोबा तांतियाने प्रस्ताव किया कि माधवरावकी पत्नी बाजीरावके भाई चिमनाजीको दत्तक ग्रहण करें और परशुराम भाऊ उनके मन्त्री हों।

इसी समय नाना फड़नवीस सतारासे मन्त्रीकी पोशाक ले कर पूनाकी ओर आ रहे थे। रास्तेमें उन्हें मालूम हुआ कि परशुराम बाजीरावको हस्तगत नहीं कर सके हैं। इनके मनमें सन्देह हो गया; आप पोशाकको भेज कर सताराके अन्तर्गत वाँई नामक स्थानमें रह कर बाट देखने लगे। इतनेमें परशुराम भाऊने चिमनाजीको पूनाका पेशवा बना दिया और इन्हें पूना आनेके लिए संवाद भेजा। आपने उत्तरमें कहला भेजा कि परशुरामके ज्येष्ठ पुत्र हरिपन्थ यहां आ कर पहले सब बन्दोबस्त कर जांय। हरिपन्थ दूतके वेशमें न आ कर ४।५ हजार अश्वारोहियोंके साथ वहां उपस्थित हुए।

नाना फड़नवीसको यह बात पहलेसे ही मालूम पड़ गई थी, इसलिए वे विलम्ब न कर तत्काल ही रायगढ़के निकटवर्ती महाड़को चल दिये।

अब उपायान्तर न देख नाना फड़नवीसने आम साहसके साथ अपनी छाती बांधी—अर्थात् उन्हें भीरुता दूर करनी पड़ी। एकाग्रचित्तसे आप स्वार्थ-साधनकी चेष्टा करने लगे। लोगोंको वशमें लाना, तरकीब सोचना इत्यादि विषयोंमें इस समय आपने विशेष विचक्षणताका परिचय दिया था। यही कारण है जो तदानीन्तन यूरोपीयोंने आपको महाराष्ट्रीय 'मैकियावेल'की उपाधि दी थी। नाना फड़नवीसके प्रधान शत्रु परशुराम भाऊ और बालोबाने बाजीरावको हस्तगत करना आवश्यक समझा और तदनुसार प्रयत्न करने लगे। इससे पहले नाना फड़नवीसने प्रचुर अर्थ संग्रह किया था। नानाने रुपये दे कर पेशवाकी सेनाके एक प्रधान व्यक्तिको तथा सिन्धियाके एक कर्मचारीको अपने वशमें कर लिया। बाजीरावको एक नौकरसे यह बात मालूम पड़ गई। तुकोजीराव होलकरने इस समय उनकी विशेष सहायता की थी। सिन्धियाके मन्त्री बालोबाने जब देखा कि बाजीराव और बाबाराव दोनों सैन्य संग्रह कर रहे हैं, तब उन्होंने शीघ्र ही बाबारावको कैद कर लिया और बाजीरावको उत्तर भारतकी तरफ भेज दिया। परन्तु बाजीराव अपने रक्षकसे अनुनय-विनय कर रास्तेमें ही ठहर गये। नाना फड़नवीसने निजामको प्रलोभन दे कर वशमें कर लिया था। उनका उद्देश्य सिद्ध हुआ। सिन्धिया सेना भेज कर परशुरामको पकड़नेके लिये चेष्टा करने लगे। बालोबाके भयसे पहले उन्होंने भागनेकी चेष्टा की, पर पीछे वे मार्गमें ही पकड़े गये। नाना फड़नवीस महाड़से आ कर शालपाघाटमें मिल गये। वहां पहुंच कर इन्होंने बाजीरावका क्या उद्देश्य है सो जानना चाहा और इच्छानुसार कार्य होने सकते हैं, इस शर्त पर १७९६ ई०में मन्त्रित्व ग्रहण किया।

कुछ दिन बाद बाजीराव नाना फड़नवीसके शासनसे मुक्त होनेके लिये उपाय सोचने लगे। इसी अभिप्रायसे वे घाटगेके साथ षड़यन्त्र रचने लगे। दोनों मिल कर नाना फड़नवीसको कारारुद्ध करनेकी कोशिश करने लगे। १७९७ ई०में ३१ दिसम्बरको नाना फड़नवीस सिन्धियाके भवनसे लौट रहे थे, कि रास्तेमें अनुचरवर्गके साथ पकड़े गये। आपके शरीररक्षक सैनिकगण आक्रान्त हो कर विच्छिन्न हो गए। घाटगेके आदेशानुसार नाना फड़नवीस और उनके साथियोंका घरद्वार लूट लिया गया। नाना फड़नवीसकी तरफसे प्रतिरोधकी चेष्टा हुई थी, परन्तु उससे कुछ फल न हुआ। सब घरोंमें आग लगा दी गई। मनोहर गृह समूह देखते देखते भस्म हो गये।

जिस समय नानाफड़नवीस आबद्ध अवस्थामें सिन्धियाके शिविरमें अवस्थान कर रहे थे, उस समय बाजीरावने किसी आवश्यकीय कार्यका बहाना कर उनके पक्षके गण्यमान्य व्यक्तियोंको बुलवा भेजा। वे बाजीरावकी चातुरी को समझ न सके। धूर्त्त बाजीरावने मौका पा कर उन्हें कारागारमें डाल दिया। उसके बाद नाना फड़नवीस अहमदनगरके दुर्गमें आबद्ध किये गये।

इसके बाद सिन्धियाके साथ पेशवा बाजीरावका विवाद उपस्थित हुआ। बाजीरावने जब निजामअलीके साथ सन्धिका प्रस्ताव किया, तब सिन्धियाने अन्य उपाय न देख नाना फड़नवीसको कारामुक्त करनेका विचार किया। इससे बाजीरावका दमन और अर्थ-संग्रह इन दो बातोंकी सम्भावना थी। तदनुसार (१७९८ ई०में) सिन्धियाने अहमदनगरके दुर्गसे नाना फड़नवीसको मुक्त कर दिया और इसके बदले १० लाख रुपये ग्रहण किए। इस घटनासे पेशवा और निजामअलीकी सन्धि टूट गई। अनन्तर बाजीराव नाना फड़नवीस और सिन्धियाके साथ सन्धि करनेके लिए उत्कण्ठित हुए। परन्तु सिन्धियाने बाजीरावकी उत्कण्ठाका कारण न समझ, नानाफड़नवीस बाजीरावके प्रधान मन्त्रि-स्वरूप गृहीत होने पर ही उनके प्रस्तावसे सम्मत होंगे, ऐसा अभिमत प्रकट किया। विशेषतः नाना फड़नवीसको मन्त्रिपद पर नियुक्त करना अङ्गरेज-गवर्नमेण्टका अभिप्राय है, ऐसा समझ कर बाजीरावने अन्यान्य कार्योंके रहते हुए भी उनसे मन्त्रित्व ग्रहण करनेको लिए अनुरोध किया। नाना फड़नवीस पहले इस प्रस्ताव पर सम्मत न हुए।

आपने कहा, कि "मेरे शरीर अथवा सम्पत्ति पर कोई भी किसी तरहका हस्तक्षेप न कर सकेंगे, यदि अङ्गरेज-गवर्नमेण्ट इसमें जामिन हों, तो मैं मन्त्रिपद ग्रहण करनेके लिए प्रस्तुत हूं।" नानाफड़नवीसके भयके कारणोंको दूर करनेके लिए एक दिन रातको बाजीराव उनके पास पहुंचे और नाना प्रकारसे उन्हें समझा कर बिना जामिनके कार्य ग्रहण करनेके लिए अनुरोध किया। १७९८ ई०के अक्तूबर मासमें वृद्ध ब्राह्मण नानाफड़-नवीसने पुनः मन्त्रिपद ग्रहण किया। कुछ दिन बाद ही उन्होंने सुना कि फिर उन्हें कैद करनेके लिए कोशिश की जा रही है। इसके बाद जब आपने बाजीरावको विश्वासघातकता-दोषसे दोषी ठहराना चाहा, तब बाजीरावने सब बातें नामञ्जूर कीं और जिसने यह बे-जड़ संवाद दिया था, उसे यथाविधि दण्ड दिया। अब आप विशेष सन्तोषके साथ अपना कर्त्तव्य पालन करने लगे। बाजीराव अबसे आपहीके परामर्शानुसार समस्त कार्य करने लगे। इस समय इन वृद्ध मन्त्रीने बहुतसे गुरुतर कार्य कौशलसे सम्पन्न कर अपनी विलक्षण राजनीतिज्ञताका परिचय दिया था। क्रमशः वार्द्धक्यने आप पर पूरा कब्जा जमा लिया। १८०० ई०की १३वीं मार्चको निःसन्तान अवस्थामें आप परलोक सिधारे।



नानाफड़नवीस।

आपकी मृत्युके बाद आपकी पत्नी लुण्ठनविशिष्ट यथासाध्य धनसम्पत्तिका भोग कर रही थीं, उस पर बाजीराव और सिन्धियाकी नजर पड़ी। वे दोनों इस सम्पत्तिको लेनेके लिए आपसमें लड़ मरे।

नाना फड़नवीस कृष्णवर्ण, क्षीण और दीर्घकाय पुरुष थे। आपकी कार्यकलापोंको देख कर यह स्पष्ट ही प्रतीत होने लगता है कि आप एक गम्भीर और अनुसन्धित्सु राजनीतिज्ञ थे। आपके मुखमण्डल पर बुद्धिका प्राखर्य सर्वदा झलका करता था। आप सत्य-व्रती, मितव्ययी, दानशील और अमतत्पर व्यक्ति थे। आप अङ्गरेजोंकी सरलता और शूरवीरताका सम्मान करते थे। परन्तु राजकार्यके सम्बन्धमें उन्हें शत्रु समझते थे और उन पर विलक्षण हिंसाभाव रखते थे। जीवनके शेषभागमें आपने अपने इष्टानिष्ट पर विशेष लक्ष्य न रख साहस और सरलताके साथ एक देशहितैषीके समान कार्य किया था। आपके साथ पेशवा-राज्यकी सुशासन-प्रणाली भी अन्तर्हित हो गई, इसमें सन्देह नहीं।

नानारूप (सं० क्ली०) नाना रूपाणि कर्मधा०। १ बहु-विधरूप, नाना प्रकारको शक्ल। (त्रि०) नाना रूपाणि यस्य। ग अनेक प्रकार। पर्याय—विविध, बहुविध, पृथग्विध।

नानार्थ (सं० त्रि०) नाना अर्था यस्य। १ अनेकार्थ शब्द, जिन सब शब्दोंके दो वा दोसे अधिक अर्थ होते हैं। २ नानाप्रयोजनयुक्त। (पु०) ३ बहु प्रयोजन।

नानावर्ण (सं० त्रि०) नानावर्णा रूपाणि यस्य। बहुविध शुक्लादिवर्ण। पर्याय—चित्र, किर्मीर, कल्माष, शबल, एत, कर्बुर, विचित्र, शारङ्ग, कब्बर, कर्म्मार और चित्रल। २ ब्राह्मण, क्षत्रियादि वर्णयुक्त।

नानाविध (सं० त्रि०) नाना विधाः प्रकारा यस्य। बहुप्रकार, अनेक तरहके।

नानाशब्दसंग्रह (सं० पु०) नाना शब्दानां संग्रहः। अनेक शब्दोंका संग्रह, अभिधान, शब्दकोष।

नानाशस्त्र (सं० पु०) बहुविध शस्त्र, अनेक प्रकारके हथियार।

नानाशास्त्र (सं० क्ली०) अनेक प्रकारकी विद्या।

नानाशास्त्रज्ञ (सं० त्रि०) नाना शास्त्रं जानाति इति नानाशास्त्र ज्ञा-क। विविध-विद्याविशारद, जो अनेक शास्त्रोंमें पारदर्शी हों।

नानासाहब—पेशवा बाजीरावके उत्तराधिकारी दत्तक-पुत्र। इनका यथार्थ नाम धुन्धूपन्थ था। पेशवा बाजीराव-के (ता० १ जून सन् १८१८ में) भारतीय अङ्गरेज सेनानायक मलकमके समक्ष स्वेच्छा-पूर्वक आत्मसमर्पण करनेके बाद, गवर्नर-जनरल लार्ड डालहौसीके आदेशानुसार, वे कानपुरसे १२ मीलकी दूरी पर बिठूरनगरमें परिवार सहित निरापद रहने लगे। गवर्नमेण्टने उनके भरण पोषणके लिये ८ लाख रुपयेकी वृत्ति और बिठूरमें एक जागीर दी थी। जागीरके अधिवासिगण फौजदारी और दीवानी मुकद्दमेके लिए बृटिश-शासनसे विमुक्त थे। बाजीरावको, विश्वासके साथ सन्धि-पत्रके नियमानुसार चलते चलते अन्तिम दशा उपस्थित होने पर, चिन्ता हुई कि उनकी विपुल सम्पत्तिका उत्तराधिकारी कौन होगा? अन्तमें दत्तकपुत्र ग्रहण करनेका निश्चय कर उन्होंने गवर्मेण्टको अपना मन्तव्य लिख कर भेजा जिसका आशय था कि उनके मरनेके बाद उन्हींके द्वारा धुन्धूपन्थ पेशवा उत्तराधिकारी हो कर उनकी वार्षिक वृत्तिके उत्तराधिकारी होंगे। इसके उत्तरमें गवर्मेण्टने कहा, कि उनकी मृत्युके बाद उनके परिवारवर्गके भरण-पोषणके विषयमें सुव्यवस्था कर दी जायगी। इसके कई वर्ष बाद १८५१ ई०में २८ जनवरीको पेशवा-का देहान्त हो गया। उनके इच्छा-पत्रानुसार उनके दत्तकपुत्र धुंधूपन्थ वा नानासाहब पेशवाकी गद्दी पर बैठे और सम्पूर्ण सम्पत्तिके अधिकारी हुए।

बाजीरावकी मृत्युके समय नानासाहबकी उम्र २७ वर्षकी थी। इस थोड़ीसी उम्रमें ही आपने अपनी शान्त प्रकृति, न्यायपरता, उदारता और मिष्टभाषणके कारण साधारणके हृदयोंको आकृष्ट कर लिया था। इसके सिवा आप बृटिश-गवर्नमेण्टके कमीशनरके परामर्शके बिना कभी कोई कार्य नहीं करते थे। बाजीराव अपनी मिताचारिताके कारण समय समय पर गवर्मेण्टको प्रभूत अर्थ-सहायता पहुंचाया करते थे। मरते समय गवर्नमेण्टके पास वे ३० लाख रुपये नगद तथा अन्यान्य बहु मूल्यवान् द्रव्यादि छोड़ गये थे। उनकी मृत्युके बाद सब सम्पत्ति नानासाहबके हाथ लगी। परन्तु बाजीरावकी दास-दासी और परिवारवर्ग-को संख्या अधिक होने और उनके भरण-पोषणका भार नानासाहब पर पड़नेके कारण, नानासाहबने उस प्रचुर अर्थको भी थोड़ा समझ पितृप्राप्य वृत्ति पानेके लिए कम्पनीको एक आवेदन-पत्र भेजनेका निश्चय कर लिया। इस समय आपके लोकान्तरित पिताके विश्वस्त मित्र सूबेदार रामचन्द्र बन्धु-पुत्रकी सहायताके लिए उपस्थित हुए और इस प्रकार आवेदनपत्र लिख कर कम्पनीके पास भेजा,—

"महाशय कम्पनी जिस प्रणालीसे भूतपूर्व महाराज-का रक्षणावेक्षण करती आई है, उससे नानासाहब वर्त्तमान आवेदनके सम्बन्धमें सम्पूर्ण आश्वस्त और समस्त अमूलक चिन्ताओंसे शून्य हुए हैं। वे अब सिर्फ बृटिश-गवर्मेण्टकी दयाके आधार पर जीवन निर्भर कर कालातिपात करनेके लिए कटिबद्ध हुए हैं। गवर्मेण्ट-की क्षमता और अभ्युदयको देखने पर वे सन्तुष्ट होंगे और भविष्यमें भी उनकी इस हितलिप्साका ह्रास न होगा।"

बिठूरके तदानीन्तन बृटिश कमीशनर मार्मेण्ड साहबने नानासाहबका आवेदन-पत्र उच्च उपाधिकारियों-के पास भेज दिया और उनसे अभिमत मांगा। परन्तु युक्तप्रदेशके तत्कालीन गवर्नर लार्ड टमसनने उस प्रस्तावका अनुमोदन न किया। विशेषतः लार्ड डल-हौसी उस समय भारतके गवर्नर-जनरल पद पर अधिष्ठित थे, इस लिये मणिकाञ्चन संयोगकी तरह टमसन-का आदेश ही सर्वत्र अप्रतिहत रहा। डालहौसीने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि "पेशवा ४३ वर्ष तक वार्षिक ८ लाख रुपये और जागीरका उपस्वत्व भोगते आये हैं। इस दीर्घ समयमें उन्हें प्रायः ढाई करोड़ रुपये मिले हैं। उन्होंने गवर्मेण्टका कोई व्ययभार ग्रहण नहीं किया। उनका कोई औरसपुत्र भी मौजूद नहीं है। वे परिवार-प्रतिपालनके लिये २८ लाख रुपयेकी सम्पत्ति छोड़ गये हैं। अतएव इतनी सम्पत्ति ही उनके परिवार-के भरण-पोषणके लिये पर्याप्त है; गवर्मेण्ट पर उसके लिए दावा नहीं कर सकते।"

डालहौसीका यह आदेश शीघ्र ही बिठूर पहुँचा। जिन महाराष्ट्र पेशवाने कभी भी अपने बहुक्लेश-लब्ध

पर्थ और सैन्यसामन्त द्वारा गवर्मेंटको सहायता पहुंचानेमें कोई भी बात उठा न रक्खी थी, आज बड़े लाट डालहौसीने स्वेच्छापूर्वक उन्हीं अति विश्वस्त अमायिक समदुःखभागी पेशवा बाजीरावके दत्तकपुत्रको पैतृक वृत्तिभोगके लिये अनुपयुक्त ठहरा दिया। बाजीरावकी मृत्युके बाद उनके परिवार-प्रतिपालनके लिए गवर्मेंटने जो व्यवस्था करनेके लिए वचन दिया था, आज उस धर्मको रक्षाके लिए सूक्ष्म विचार कर नानासाहबका आवेदन-पत्र अग्राह्य किया गया। नानासाहबकी वृत्ति बन्द हो गई। डा. टमसन साहब बिठुरकी जागीर पर हाथ न फेर सके, इस लिये वह नानासाहबके अधीन रह गई। परन्तु वहांके अधिवासियोंका विचार-भार गवर्मेंटने अपने हाथमें ले लिया।

इस तरह विना दोषके और अन्यान्यरूपसे पैतृकसम्पत्तिसे वञ्चित हो कर नानासाहबने भारत-गवर्मेंटका मुखापेक्षी न हो सीधा इङ्गलैण्डीय डिरेक्टर सभामें आवेदन करनेका निश्चय कर लिया। शीघ्र ही आवेदन-पत्र लिखवा कर तैयार किया गया और वह यथारीति भारत गवर्मेंटकी मारफत विलायत भेजा गया। इस आवेदन-पत्रमें नानासाहबने अपनी प्रभूत विद्याबुद्धि और सूक्ष्मदर्शिताका परिचय दिया था। उनकी युक्तियां बहुत सारवान् हुई थीं। परन्तु वह सारवान् पत्र भी डिरेक्टरोंको असार प्रतीत हुआ। उन लोगोंने गवर्नर-जनरलका पक्ष खींचा और वही कायम रक्खा, परन्तु नानासाहब सहजमें हताश होनेवाले न थे; उन्होंने पुनः आवेदन-पत्र भेजा। अबकी बार डिरेक्टरोंने भारत-गवर्मेंटको इस आशयका पत्र लिखा कि "आवेदनकारीको कह दिया जाय कि उनको पैतृक-वृत्ति पुरुषानुक्रमिक नहीं है। इस लिए उस पर उनका कोई दावा नहीं है। उनका आवेदन-पत्र सम्पूर्णरूपसे अग्राह्य हुआ।" इस कठोर आदेशके बिठुरमें घोषित होनेसे पहले ही नानासाहब अपने आवेदन-पत्रकी पैरवीके लिये अंग्रेजी-भाषाभिज्ञ आजिमउल्ला नामक एक मुसलमान युवकको विलायत भेज चुके थे। १८५६ ई०की ग्रीष्मऋतुमें आजिमउल्ला इङ्गलैण्ड पहुंचे और एक अङ्गरेजकी सहायतासे वहां नानासाहबका पक्षसमर्थन करनेमें प्रवृत्त हुए। परन्तु डिरेक्टरोंके सामने आजिमउल्लाका समस्त प्रयत्न और चेष्टाएं बिलकुल व्यर्थ हुईं।

इस प्रकार नानासाहब बहुत प्रयत्न और चेष्टा करने पर भी पैतृकवृत्ति लाभमें कृतकार्य न हो सके, किन्तु तो भी वे अङ्गरेजोंके साथ सद्भाव रखनेमें रत्तीमात्र भी उदासीन न हुए। उनका विशाल राजप्रासाद अङ्गरेज अतिथियोंके लिये सर्वदा खुला रहता था। निरपेक्ष अङ्गरेज अतिथिगण आपकी परिचर्यासे यथोचित सन्तुष्ट हो कर सर्वत्र आपका सुयश फैलानेमें कुण्ठित न होते थे। कभी कभी उक्त अतिथियोंको आप अर्थ द्वारा सहायता कर अपनी उदारताका परिचय देते और किसीको रुग्न वा पीड़ितावस्थामें देखने पर तत्क्षणात् उसकी सुचिकित्सा करते थे। इस लिये बहुतसे अङ्गरेज कर्मचारी आपका अत्यन्त सम्मान करते थे।

यौवनके प्रारम्भमें कार्यकुशली होने पर भी नानासाहबके उदार हृदय पर कभी कभी अलसताका आधिपत्य हो जाया करता था। अन्यान्य समस्त गुणोंके होने पर भी उनमें एक महत् दोष यह था कि वे तादृश दूरदर्शी और अभिज्ञ न थे और सर्वदा दूसरोंके प्रदर्शित मार्ग पर चलते थे। यह एक दोष ही उनके सब गुणोंका प्रतिबन्धक हो गया था। इसी एक दोषने उन्हें राजासे रंक, अति विश्वस्त मित्रसे विश्वासघातक शत्रु-रूपमें परिणत कर दिया था।

पहले ही कहा जा चुका है कि आजिमउल्ला नानासाहबके पक्षसमर्थनके लिये विपुल अर्थ संग्रहपूर्वक इङ्गलैण्ड गये थे। किन्तु वहां जिस कार्यके लिये गये थे उसमें असफलता प्राप्त होने पर वे अपनी सुन्दर गठन और प्रेमालापगुणसे वारविलासिनियोंको आकृष्ट करनेमें प्रवृत्त हो गए। अन्तमें तुरुष्क होते हुए भारतको रवाने हुए। तुरुष्क आ कर देखा कि क्रीमियाके युद्धमें समस्त यूरोप भूमिकम्पकी तरह कांप रहा है। मुसलमान-दूत इस अभूतपूर्व युद्धको देखनेकी इच्छासे कौतूहलवश क्रीमियाके समराङ्गणके सम्मुखीन हुए। वहां उन्होंने देखा कि दुर्दान्त फरासीसियोंके भीषण अग्निपात सदृश तोपोंके गोलोंसे सैकड़ों अङ्गरेज एक साथ

धराशायी हो रहे हैं। उनको तीक्ष्ण तलवारोंकी चोटोंसे अङ्गरेज-सेना तितर-बितर हो रही है। यह देख कर उन्होंने मन ही मन अङ्गरेजोंको अकर्मण्य और निर्वीर्य समझा और अपने प्रभुको सहायतासे उन लोगोंको भारतसे निकाल भगानेका निश्चय कर लिया।

बिठुरमें आ कर आजिमउल्ला नानासाहबको अङ्गरेजोंके विरुद्ध कठोर मन्त्रणा दे कर क्रमशः उत्तेजित करने लगे। डालहौसीके अवैध व्यवहारसे नानासाहब मर्माहत, क्रुद्ध और यहां तक कि अङ्गरेज जातिको स्वार्थपर समझ कर जातक्रोध होने पर भी, उन्होंने अङ्गरेजोंके विरुद्ध अस्त्र धारण करनेकी चिन्ता कभी स्वप्नमें भी न की थी। उन्हें विश्वास था कि अङ्गरेजोंके साथ मित्रता रखनेसे कभी न कभी शायद उनको आशा फलवती होगी और सम्भव है कि कभी फिर वे पैतृकवृत्ति पानेके उपयुक्त पात्र समझे जायेंगे। इसी आशासे आश्वासित हो वे अङ्गरेजोंको सन्तुष्ट रखनेमें यत्नवान् थे।

नानासाहबमें अपनी बुद्धिके बल पर काम करनेकी तनिक भी क्षमता न थी। आजिमउल्ला और अन्यान्य वयस्यगण उन्हें जैसा समझा देते थे, वे उसीको यथार्थ समझ वैसा ही सिद्धान्त कर लेते थे और इच्छा न होते हुए भी उनके उपदेशानुसार कार्यमें प्रवृत्त हो जाया करते थे। अब अङ्गरेजोंके विरुद्ध आचरणमें उद्योगी होनेके लिए आजिमउल्ला आदि द्वारा वे नियत प्रोत्साहित होने लगे। कानपुरके समरक्षेत्रमें स्वजातीय और विजातियोंके शोणित-स्रोत प्लावित होनेकी सूचना हुई। तांतियाटोपी नानाके बाल्यबन्धु थे; वे भी अब इनके मन्त्रणादाता हो गये।

कानपुरके अङ्गरेज-कार्यकर्त्ताओंने जब सिपाहियोंकी अवाध्यताका कुछ कुछ आभास पाया, तो पहले वे अपने अपने परिवारकी रक्षाके लिए सुरक्षित स्थान ढूंढ़ने लगे। कानपुरके अस्त्रागारके दक्षिण-पूर्वमें सैनिक-निवासके पास जहां विस्तृत समतलक्षेत्र पर अङ्गरेजोंका चिकित्सालय था, वहीं आत्मरक्षाके लिए उपयुक्त स्थान निर्वाचित हुआ और उसके चारों ओर मिट्टीकी दीवार खड़ी कर दी गई। इसके बाद धनागारकी ओर दृष्टि गई। मजिष्ट्रेट और कलक्टर हिलरसडन साहब प्रथमतः किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गए। पीछे अङ्गरेजबन्धु नानासाहबकी बात उन्हें याद आई। नानासाहब अब तक अङ्गरेजोंके साथ अति विश्वस्तताका परिचय देते आए थे। विशेषतः कलक्टर साहबको यह विश्वास था कि वे केवलमात्र नानासाहबकी सहायतासे ही गवर्मेण्टकी सम्पत्तिकी रक्षा कर सकते हैं। इस लिए उन्होंने नानासाहबको ससैन्य सैन्यसहित कानपुर आ कर कोषागारका भार लेनेके लिये अनुरोध किया।

नानासाहब भी सहायता देनेके लिये प्रतिश्रुत हो कर दो सौ सशस्त्र सेना और दो तोपें ले कर नवाबगञ्ज नामक स्थानमें उपस्थित हुए। १८५७ ई०में २२ मईको धनागार-रक्षाका भार नानासाहबके हाथ सौंपा गया।

इस जगह सिपाहियोंके असन्तोषके कारणकी कुछ समालोचना करना आवश्यक है। भारतमें सैन्य-विभागमें पहले जो बन्दूकें काममें आती थीं, वह युद्धके समय अधिक फलदायी न होती थीं। कारण बन्दूकमें बारूद और गोली भरनेमें बहुत वक्त लगता था। इसलिए लार्ड डालहौसीके शासनकालमें नये ढङ्गकी बन्दूक बन कर भारतमें आईं और उनके व्यवहारके लिए 'टोटा'की सृष्टि हुई।

यह 'टोटा' जब सैन्य-विभागमें भेजा गया, तब यह अफवाह उड़ी कि भारतके हिन्दू और मुसलमानोंकी जाति और धर्म नष्ट करनेके लिये अङ्गरेजोंने इस 'टोटा'की सृष्टि की है; क्योंकि उसमें सूअरकी चरबी लगी है। मईके अन्तमें रसद-विभागके एक अङ्गरेज कर्मचारीके साथ सिपाहियोंकी जो बातचीत हुई थी, उसका कुछ अंश पढ़नेसे ही सिपाहियोंके औद्धत्यका कारण समझमें आ जायेगा। एक सिपाहीने उक्त कर्मचारीसे पूछा,—"अफसर लोग यदि विश्वासघातक नहीं हैं, तो उन्होंने अपना आवासस्थान प्राचीरसे क्यों घेर रक्खा है? वे विविध कौशलसे हम लोगोंकी जाति नष्ट करनेकी कोशिश कर रहे हैं। अभी हालमें हम लोगोंके विरुद्ध कैसा भारी षड़यन्त्र किया जा रहा है। वे जानते हैं कि हम लोग नया 'टोटा' कभी न लेंगे, इसलिए हम लोगोंकी जाति नष्ट करनेके लिए वे गाय और सूअरकी हड्डी मिला कर बड़कीसे आटा भेज रहे हैं।" और एक

व्यक्तिने कहा—"अफसर लोग अस्त्रागार धनागार-रक्षक सिपाहियोंको अलग कर उनकी जगह अङ्गरेजोंको रखनेके लिए आमादा हो रहे हैं।" उन लोगोंने मेरठकी घटनाका उल्लेख करते हुए यह भी कहा कि "टोटा काममें लानेसे इनकार करने पर, वहांके सिपाही दश वर्षके लिए कैदमें डाल दिए गए हैं और जञ्जीरोंसे बांध कर उनसे सड़क बनानेका काम लिया जा रहा है।" इत्यादि।

इस तरहकी अफवाह पर विश्वास कर सिपाही लोग पहलेसे ही उत्तेजित थे। जब उनसे कोषागार-रक्षाका भार ले लिया गया, विशेषतः प्राचीरवेष्टित स्थान जब तोपों द्वारा सुरक्षित किया गया और उसमें समस्त यूरोपीय अङ्गरेज-महिलाओं और बालक-बालिकाओंको लाया गया, तब सिपाहियोंकी हृदय-चुल्लीमें निहित क्रोधाग्नि और भी जोरसे धधकने लगी। वे क्रमशः अधिकतर उग्रता और अवाध्यताका परिचय देने लगे। मुसलमान लोग मसजिदमें उपस्थित हो परामर्श करने लगे। २४ मईको इन लोगोंका प्रसिद्ध पर्व ईदका दिन था। इस लिए अङ्गरेज कार्यकर्ताओंको उस दिन कुछ गड़बड़ी होनेकी सम्भावना थी। किन्तु वह दिन भी निरापद बीत गया। यूरोपीय लोग उपस्थित विपत्तिसे मुक्त होनेके लिए जितनी ही कोशिश करने लगे, सिपाही लोग उतने ही उत्तेजित होने लगे। अङ्गरेजोंको आत्मरक्षार्थ नितान्त व्यस्त देख उन लोगोंके हृदयमें युगपत् भय और आशाका सञ्चार होने लगा। वे सोचने लगे, कि उन पर शीघ्र ही विपत्ति आनेवाली है। साथ ही उन्हें आशा भी होने लगी कि जिनको वे अब तक साहसी और कार्य-निपुण समझते आए थे, वे भी जब प्रतिमुहूर्तमें अधीर और कर्त्तव्यशून्य हो कर साधारण मनुष्योंकी तरह हो रहे हैं, तो ऐसी डरपोक जातिको परास्त करना कुछ असम्भव बात नहीं है। ऐसा सोच कर वे अङ्गरेजोंको अवज्ञापूर्ण दृष्टिसे देखने लगे। धीरे धीरे जब अङ्गरेजी सेना और तोपें यथास्थान बैठाई जाने लगीं, तब अधिनायकके प्रति सिपाहियोंकी श्रद्धा और अनुरक्ति शिथिल होने लगी। अङ्गरेज लोग सिपाहियोंको अपना शत्रु समझने लगे और सिपाही लोग भी अङ्गरेजोंको। इस तरह भय, निराशा और उत्तेजनामें ही मईका महीना बीत गया।

बहुत दिन पहलेसे ही सिपाहियोंका औद्धत्य देखनेमें आ रहा था, किन्तु प्रकाश्यमें अब तक गवर्नमेण्टके विपक्षमें किसी प्रकारका विरुद्धाचरण न करनेसे, सेनापति हुइलरने सिपाहियोंकी पूर्वकथित गर्वित वाक्यावलीको तुच्छ समझा और आत्मरक्षामें कुछ शिथिल-प्रयत्न होने लगे। परन्तु दूरदर्शी लार्ड कैनिंगको भारतके राजनीतिक गगनमें छोटे छोटे मेघोंके सञ्चार दिखाई देने लगे और उनका परिणाम अच्छा न होगा, यह बात भी उन्हें मालूम थी। पूर्वोक्त सिपाहियोंकी उत्तेजना और गर्वित वाक्यावली उस घनीभूत मेघमालाका वज्रनाद मात्र था, यह बात भी उनसे छिपी न थी; किन्तु हुइलरके हृदयमें यह बात बिलकुल भी स्थान न पा सकी। सेनापति हुइलरने लारेन्सकी सहायताके लिए लखनऊ सेना भेजनेका निश्चय कर गवर्नर-जनरलको इस आशयका पत्र लिखा कि "कानपुरके सिपाही शीघ्र ही शान्त हो जायँगे, ऐसी उम्मेद है। मैं बहुत दिनसे उनका अधिनायक हूं, इस लिये वे मेरी परवाह न कर अन्य स्थानोंके सिपाहियोंके उदाहरणका अनुसरण नहीं कर सकते। हां, इतना अवश्य है कि परस्परका मनोमालिन्य दूर न होने तक हम लोग महिलाओं और बालक-बालिकाओंको ले कर प्राचीरवेष्टित सुरक्षित स्थानमें रहेंगे। जब तक सम्पूर्ण सैन्य-मण्डलीमें शान्ति स्थापित न हो, तब तक इसी स्थानमें रहनेकी वासना है।"

इसके बाद ही बनारससे आयी हुई ८४ नं० सेना लारेन्सकी सहायतार्थ लखनऊ भेजी गई। इधर सिपाही लोग अपनी अभीष्ट सिद्धिके लिये पहलेसे ही मौका देख रहे थे। इस समय बिठुरराज दलबल सहित नवाबगञ्जमें ठहरे हुए थे; पूर्वोक्त आजिमउल्ला आदि भी उनके साथ थे। सिपाहियोंने अग्रदूत द्वारा आजिमउल्लाको अपना अपना मत जतला दिया। आजिमउल्लाने भी उनका पक्ष समर्थन कर नानासाहबको अपने पक्षमें लानेका भार अपने ऊपर ले लिया।

प्रवाद है, कि बिठुरराज नानासाहब इस अयथाप्रस्तावसे प्रथमतः किसी तरह भी सम्मत न हुए थे;

परन्तु आजिमउल्ला ही उनकी बुद्धि और बल थे, इस कारण तत्काल ही आजिमउल्लाका प्रयत्न और चेष्टा विफल न हुई। नानाने सिपाहियोंका पृष्ठपोषक होना स्वीकार कर लिया। जून महीनेके प्रथम तीन दिन इसी तरह बहुविध मन्त्रणामें बीत गये। वृद्ध सेनापति हुइलरने सिपाहियोंको क्रमशः पूर्वापेक्षा अधिकतर उत्तेजित देख, अब वाक्पटु ताको ही आत्मरक्षाके लिये एकमात्र बन्धु समझा और यथासाध्य उपदेश देने लगे; परन्तु उनके उपदेशसे कुछ फल न हुआ। देखते देखते उन लोगोंको हृदयनिहित धूमराशि प्रबल शिखाकारोंमें जल उठी।

तारीख ४ जूनको रात्रिको २न'० अश्वारोही-दल पहले पहल अङ्गरेजोंके विरुद्ध नंगी तलवार ले कर खड़ा हुआ। वृद्ध सुबेदार भवानी सिंह उन लोगोंको शान्त करनेके लिए पुनः उपदेश देने लगे, परन्तु कुछ फल न हुआ। उत्तेजित सिपाहियोंने उन पर भी वार किया, जिससे वे जमीन पर गिर पड़े। सिपाहियोंका दल अस्त्रशस्त्र और प्रचुर धन ले कर वहांसे चल दिया। १ नं० पदाति-दल भी उनके पीछे पीछे चला। दोनों दलोंने एकत्र हो कर दिल्ली चलनेका निश्चय किया। मार्गमें नवाबगञ्ज पड़ा, वहां नानासाहबके लोगोंने उन लोगोंका यथोचित आदर और उनके कार्यका अनुमोदन किया। परन्तु ५३ नं० सैन्यदलके कुछ सिपाही यहां धनागारकी रक्षाके लिये नियुक्त थे। वे स्वजातियोंके असत्कार्यमें सहायता न पहुंचा कर अपने मालिकके चिरविश्वस्त बन, मालिकका ऋण चुकानेके लिए शीघ्र ही बद्धपरिकर हुए। दोनों पक्षमें घोर समरानल प्रज्वलित हो उठा। यूरोपीयगण यद्यपि दूरसे दोनों पक्षकी बन्दूकोंकी आवाजें सुन रहे थे, किन्तु तो भी उनका साहस नहीं हुआ कि अपने पक्षकी सहायताके लिए कुछ सैनिक भेजें। सुतरां थोड़ी ही देरमें प्रभुभक्त सिपाहीगण तितर-बितर हो गए। फिर क्या था; धनागार लुट गया, बन्दीगण छूट गये, राजकीय कागजात और अस्त्रागार शत्रुओंके हस्तगत हो गया।

इसके बाद सिपाही लोग हाथियों और बैलगाड़ियों पर रुपये और आवश्यक द्रव्यादि लाद कर मुगल-राजधानी दिल्लीकी तरफ अग्रसर हुए। परन्तु ५३ और ५६ नं०की सेनाने अब तक उन लोगोंका साथ न दिया, इस लिए फिलहाल उन लोगोंने आगे बढ़ना बन्द कर दिया और उक्त दलोंके पास दूत भेजा।

इधर २य अश्वारोही और १म पदाति-दल एकत्र मिलित होने पर भी ५३ और ५६ नं०की सेना अङ्गरेजोंके विरुद्ध सहसा अस्त्र धारण करनेके लिए तैयार वा इच्छुक नहीं थी। उन लोगोंने सारी रात अपने सेनापतिके साथ कवायद करनेके मैदानमें रह कर यथारीति सेनापतिकी आज्ञा पाली थी। अन्तमें अधिनायकोंने अपने अपने दलको खाने-बनानेके लिये छुट्टी दी, प्राचीरवेष्टित स्थानमें आश्रय ले कर उक्त दोनों सिपाहियोंके दल युद्धसज्जा उतार कर खाना बनाने लगे। इसी समय वृद्ध सेनापति हुइलरने अज्ञानताके कारण, भोजन बनाते हुए सिपाहियों पर गोले बरसानेके लिए अनुमति दे दी। उन्होंने सोचा कि अब सिपाही विश्वासयोग्य नहीं रहे। उनको इस अदूरदर्शिताके लिए अङ्गरेजोंको पीछे पछताना पड़ा था। कम-से कम यदि ये दो दल भी अङ्गरेजोंके अनुकूल होते, तो शायद कानपुरके सिपाही-विद्रोहका रूप ही बदल जाता।

कुछ भी हो, सेनापतिके आदेशानुसार सिपाहियोंकी रन्धनशालामें गोले पर गोले आ कर गिरने लगे। सिपाही कुछ देर तो किंकर्त्तव्यविमूढ़ रहे, अन्तमें जब तोपोंका शब्द क्रमशः बढ़ने ही लगा और उनके सामने अग्निमय गोले आ आ कर गिरने लगे, तब वे अभागे सिपाही लोग खाना-पीना छोड़ कर भाग गये। इनमेंसे बहुतसे नवाबगञ्ज पहुंच कर विद्रोही सिपाहियोंमें जा मिले और बहुतसे वहीं छिप रहे और गोलोंकी वर्षा बन्द होने पर उन लोगोंने वृद्ध सेनापतिके पास जा कर अपनी विश्वस्तताका परिचय दिया, जिससे सब अङ्गरेज दंग हो रहे।

विद्रोही सिपाहियोंका दल इस प्रकारसे पुष्ट होने पर वह दिल्लीमें मुगल-सम्राट्के अधीन जानेके लिये तैयार हुआ। नानासाहबको सुपुर्द किया हुआ पूर्वोक्त अङ्गरेज-धनागारका अर्थादि सब दिल्लीकी तरफ भेज दिया गया। पथिपार्श्वस्थ अङ्गरेजोंके गृहादि भग्न और

भस्मीभूत होने लगे। इसतरह नानासाहबप्रमुख सिपाहियोंके नवाबगञ्जसे कल्याणपुर नामक स्थानमें उपस्थित होने पर आजिमउल्ला प्रथम घटनास्थलमें अवतीर्ण हुए। उन्होंने अब देरी न कर नानासाहबको यह समझाना शुरू कर दिया कि 'सिपाहियोंके साथ दिल्ली जानेसे और वहां मुगलराजके साथ मिलनेसे, अङ्गरेजोंको पराजित और मुगलराजको स्वाधीन कर सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु उससे आपको क्या अभीष्ट-सिद्धि होगी? या तो आपको मुगल-राजकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ेगी या मुगलराजके प्रभावमें सिपाही लोग आपको छोड़ देंगे और फिर आप बन्दी दशामें मुगल-राजके कैदियोंकी संख्या बढ़ावेंगे। हां, यदि आप दिल्ली न जा कर कानपुरमें ही रहें, तो कानपुरमें जितनी भी थोड़ी बहुत अङ्गरेजी सेना है, उसको आसानीसे परास्त कर अपनी स्वाधीनता घोषित कर सकते हैं और क्रमशः दल-पुष्टि कर भविष्यमें युद्धार्थ उपस्थित अङ्गरेजोंको भारतसे भगा कर, थोड़े ही दिनोंमें समस्त भारतके एकछत्र राजा हो सकते हैं। फिर आपको सामान्य ८ लाख रुपयेकी वृत्तिके लिये अङ्गरेजोंकी खुशामद न करनी पड़ेगी।'



नानासाहब।

शेषोक्त वाक्योंने नानासाहबके हृदयको सम्पूर्ण रूपसे आकृष्ट किया। वे अब स्थिर न रह सके। वैर-निर्यातनकी वासना उनके हृदयमें प्रबल वेगसे उद्वेल हो उठी। इसमें और भी एक कारण था। वह यह कि वे समझते थे कि इलाहाबाद, लखनऊ आदि गङ्गाके तीरवर्त्ती स्थान (उस समय) जैसे विपर्यस्त हैं, उससे सहजमें अङ्गरेजोंकी सहायतार्थ और सेना कानपुर नहीं आ सकती, सुतरां कानपुरकी नगण्य अङ्गरेजोंको परास्त

करना बहुत आसान है। इसलिये उन्होंने आजिम-उल्लाकी मन्त्रणाको चाणक्यकी मन्त्रणाके समान समझ, सिपाहियोंका नायकत्व ग्रहण किया।

साधारणतः इतिहास-लेखकोंकी पुस्तकोंमें उपर्युक्त मत ही देखनेमें आता है। परन्तु नानासाहबके सहचर तांतिया टोपीने उनके इस अधिनायकत्व-ग्रहणके विषयमें अन्यरूप विवरण बतलाया है। उनके मतसे, सिपाही लोगोंने आजिमउल्लाके सहयोगसे नानासाहबको आवद्ध कर, अपने अभिमतानुसार कार्यमें प्रवृत्त किया था। उनका कहना है कि ३य दलके पदातियों और २य दलके अश्वारोहियोंने धनागारमें आ कर उन्हें और नानासाहबको आवद्ध किया था। उनके साथ जितने भी सिपाही थे, वे सब विद्रोही सिपाहियोंके साथ मिल गये थे। अनन्तर वे उनको, नानासाहबको तथा उनके सिपाहियोंको ले कर दिल्लीकी तरफ चल दिये; कानपुरसे तीन कोस आगे चले जाने पर, नानासाहबके कथनानुसार उस दिन सब वहीं ठहर गये और दूसरे दिन फिर दिल्लीको ओर चल दिये। दूसरे दिन नानासाहबने दिल्ली जाना स्वीकार न किया। अन्तमें सिपाहियोंने उनको अपने साथ कानपुर चल कर युद्ध करनेको कहा, इस पर भी नानासाहब राजी न हुए। तब सिपाहियोंने नानासाहब और उनको (तांतियाको) कैद कर लिया और कानपुर लौट कर युद्ध किया। आखिरको नानासाहबको नितान्त अनिच्छा होने पर भी घटनाचक्रसे ताड़ित हो कर अङ्गरेजोंके विरुद्ध युद्ध करनेके लिए उन्हें बाध्य होना पड़ा था।

कुछ भी हो, नानासाहब उक्त नायकत्व-ग्रहणके बाद आजिम-उल्लाकी मन्त्रणासे भाई बालाराव और बाबाभट्टको बुला कर सिपाहियोंकी सहायतामें प्रवृत्त हुए। सिपाहियोंने इन्हें अपना राजा बना कर घोषणा कर दी। राजाके नामसे भिन्न भिन्न दलके अधिनायक निर्वाचित हुए और वे अपने दलके परिचालनमें व्यापृत होने लगे। सूबेदार टीकासिंह अश्वारोहियोंके सेनापति हुए। जमादार दौलरञ्जनसिंह ५३ नं० दलके सेनापति चुने गये और सूबेदार गङ्गादीन ५६ नं० दलके अधिनायक हुए। मुसलमान लोग भी इस विद्रोही सिपाहियोंके प्रधान अङ्ग थे, किन्तु सम्भवतः महाराष्ट्रीय ब्राह्मण नाना साहबकी प्रीतिके लिए किसीने अधिनायकत्व ग्रहण नहीं किया।

ता० ६ जूनके सबेरे नाना साहबके हस्ताक्षर-युक्त एक पत्र हुइलरके पास पहुंचा। नानासाहब शीघ्र ही प्राचीरवेष्टित स्थान पर आक्रमण करेंगे, यह बात जतानेके लिये ही यह पत्र भेजा गया था। अङ्गरेज लोग इस खबरको पा कर हताश हो गये और अतुल साहसके साथ सेनापति हुइलरके आदेशानुसार अस्त्रधारणक्षम व्यक्ति मात्र ही अपने अपने निर्दिष्ट स्थानमें खड़े हुए और प्रति मुहूर्त्त सिपाहियोंके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। स्त्रियां, बालक और युद्धक्षम प्रायः ८०० अङ्गरेज इस प्राचीरके भीतर समवेत हुए थे। दोपहरमें सिपाहियोंकी तोपोंकी आवाज सुनाई दी। उन लोगोंने मार्गमें बहुतसे अङ्गरेजोंको मारा और अन्तमें आ कर प्राचीर घेर लिया। अङ्गरेज और सिपाहियोंमें परस्पर गोले बरसने लगे। इस युद्धमें अङ्गरेजोंकी कैसी दुर्दशा हुई थी, इसका विवरण सिपाही-विद्रोह-इतिहासके पाठकमात्र जानते हैं। बालक-बालिकाओंके भय-विह्वल चीत्कारसे, रोगियोंके आर्त्तनादसे, स्त्रियोंको अविरल-रोदनध्वनिसे और हताश सैनिक पुरुषों द्वारा अजस्र अग्निवृष्टिसे शीघ्र ही प्राचीरपरिवेष्टित स्थान जीवन्त यमालय वा विशाल श्मशानक्षेत्रके रूपमें परिणत हो गया। २४ जून तक यही हालत रही। २५ जूनको अङ्गरेज लोग हताश हृदयसे अपने अपने दुर्भाग्यकी चिन्ता कर रहे थे, कि इतनेमें प्राचीरके पास एक स्त्री उपस्थित हुई। वह नानासाहबके शिविरसे एक पत्र लाई थी। पत्रमें लिखा था,—"महारानी विक्टोरियाकी प्रजाओंके समीप, लार्ड डालहौसीके कार्योंके साथ जिनका किसी भी अंशमें किसी भी तरहका संस्रव नहीं है और जो अस्त्र छोड़नेकी इच्छा रखते हैं, वे निरापद इलाहाबाद जा सकते हैं।"

यह पत्र आजिमउल्लाके हाथका लिखा हुआ था, परन्तु उस पर दस्तखत किसीके भी न थे। वृद्ध सेनापति उस समय नानासाहब और उनके मन्त्री आजिमउल्लाका विश्वास न करते थे। इस लिये पत्रानुसार

सिपाहियोंको आत्मसमर्पणके लिये उनको इच्छा न हुई। परन्तु अन्तमें प्रधान प्रधान (अफसर)ने सेनानायकोंसे परामर्श कर यह निश्चय किया, कि उनके वर्त्तमान अवस्थानुसार स्त्रियों और रोगियोंकी रक्षाके लिये कोई उपाय न होनेसे अगत्या आत्मसमर्पण करना ही श्रेयस्कर है। उस स्त्रीने नानासाहबके शिविरमें जाकर उत्तर दिया कि अङ्गरेज लोग परामर्श करके उत्तर देंगे। इस लिये सिपाहियोंने गोला बरसाना बन्द रक्खा। दूसरे दिन २६ जूनको आजिमउल्ला और ज्वालाप्रसादके अङ्गरेजोंके मृत्प्राचीरके निकट उपस्थित होने पर कप्तान मूर, ह्वइटो और रोड़ साहबने उनका यथाविधि स्वागत कर नानासाहबके प्रस्तावमें सम्मति प्रदान की। उसके बाद ही सन्धि-पत्रके सम्पूर्ण नियम स्थिरीकृत हुए, जिनका सारांश इस प्रकार है—'अङ्गरेज लोग अपनी तोपें और सब रुपये सिपाहियोंको देंगे तथा वर्त्तमान प्राचीरवेष्टित स्थान छोड़ देंगे। गङ्गाके किनारे घाट पर उनके लिए नावें तैयार रहेंगी और नानासाहब निर्विघ्नतया उन्हें घाट तक पहुंचा आवेंगे। प्रत्येक अङ्गरेजको अपने अस्त्र, बन्दूक और ६० बार गोली चलाने लायक बारूद साथ ले जानेके लिए आज्ञा मिलेगी। उनके आहारके लिए यथायोग्य आटा दिया जायगा। आजिमउल्ला ये सब शर्तें लिख कर नानासाहबके पास गए। शामको फिर सिपाही पक्षके एक आदमीने आ कर कहा कि "महाराजको सभी प्रस्ताव स्वीकार है। किन्तु आज रातको ही यह स्थान छोड़ देना पड़ेगा।"

यह निदारुण आज्ञा अङ्गरेजोंको भयानक कष्टकर मालूम पड़ी। आखिरकार उनके उक्त प्रस्ताव पर राजी न होने पर दूसरे दिन सुबह उक्त स्थान छोड़ कर चले जानेकी आज्ञा प्रचारित हुई। तदनुसार दूसरे दिन २७ जूनको आहत सेना, स्त्रियां और बालक-बालिका-सहित ४५० अङ्गरेज हताश-हृदयसे प्राचीर छोड़ कर सतीचौरा नामक गङ्गाके घाट पर उपस्थित हुए। उन लोगोंको यानवाहनादि यथोचित भावसे दिए गए थे। घाट पर उपस्थित हो कर सब नावों पर चढ़नेके लिए तत्पर हुए। उस समय सिपाही लोग, तांतियाटोपी, आजिमउल्ला और ज्वालाप्रसाद आदि प्रायः सभी गङ्गाके किनारे उपस्थित थे। अङ्गरेजोंके नावों पर चढ़ते ही भेरी बज उठी और उस पवित्र गङ्गाके वक्षःस्थल पर भीषण नृशंस हत्याकाण्ड शुरू हो गया। इस समय सद्यजात शिशुओंको हत्या करनेमें सिपाहियोंके मनमें बिन्दुमात्र भी दयाका उद्रेक नहीं हुआ। इस हत्याकाण्डके शुरू होते ही एक अश्वारोही सिपाहीने तीरवेगसे जा कर नानासाहबको सम्वाद दिया। इस भीषण हत्याकाण्डकी बात सुनते ही नानासाहबके भ्रू युगल कुञ्चित होते देखे गए थे। वे अत्यन्त दुःखप्रकाशक भाव व्यक्त करने लगे। उसी समय उन्होंने हत्याकाण्ड बन्द कर सबको कैद करनेकी आज्ञा भेजी। तदनुसार हत्याकाण्ड बन्द हो गया। नानासाहबको साधारण लोग चाहे कितना ही दोषी क्यों न बतलावें, पर उनका चित्त पेशवाके वंशधरोंके समान उन्नत था, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु वे आजिमउल्ला आदिकी सम्मतिके बिना कोई भी कार्य करनेमें सक्षम न होते थे। आजिमउल्ला और तांतियाटोपी आदि ही इस हत्याकाण्डके मूल कारण हैं, इस बातके बहुत प्रमाण मिलते हैं।

कुछ भी हो, नानासाहबके आदेशानुसार १२५ अंग्रेज बन्दी हो कर कानपुरमें कैद रहे। जिन नावों पर वे इलाहाबादके लिए रवाने हो रहे थे, वे नावें भी तोपोंसे उड़ा दी गईं। सिर्फ एक नाव बड़ी मुश्किलसे बच गई। उस नाव पर कप्तान टमसन, मूर, डेलाफोसी आदि थे। उपस्थित स्थानसे फिलहाल मुक्त हो जाने पर भी वे शत्रुओंके अनुधावकोंके हाथसे छुटकारा न पा सके। बहती बहती नाव जहां भी कहीं पहुंची, वहीं देशी लोगोंने उन पर आक्रमण किया। इस तरह उनमेंसे भी अधिकांश मारे गये तथा ८० आदमी पकड़े और कानपुर भेज दिये गये। अन्तमें विशेष साहसिकताका परिचय दे कर कप्तान टमसन आदि ४ अंगरेज, वृटिश-गवर्मेण्टके नितान्त अनुरक्त अयोध्याके जमींदार राजा दिग्विजयसिंहके आश्रयमें उपस्थित हुए। उनके बहुत यत्नसे वे शीघ्र ही सुस्थता प्राप्त कर २१ दिन तक उनके द्वारा निर्दिष्ट स्थानमें रहे। विस्तृत विवरण जानना

हो, तो "सिपाही-विद्रोह" शब्द देखो। अन्तमें दिग्विजय-सिंहके अनुग्रहसे वे कप्तान हवेलकके दलभुक्त हुए।

इससे कुछ पहले नानासाहबको माल्टआउके उपलक्षमें बिठूर जाना पड़ा था। वहां जा कर १ली जुलाईको आप पेशवाके पद पर बैठे। नवी नवाब नामक एक मुसलमान कानपुरके शासनकर्त्ता नियुक्त हुए। नानासाहबने राजतिलक धारण पूर्वक बहुत आमोद-आह्लादमें कुछ समय बिता दिया। उसके बाद अंगरेजोंकी आगमन वार्त्ता चारों तरफ फैलने लगी। इस समय नानासाहब कानपुरके एक मुसलमानकी एक बड़ी भारी सरायमें उपयुक्त आन्त्रियोंके साथ वास करते थे। इस सरायके पास ही गङ्गाके किनारे बीबीगढ़ नामका एक मकान था। वहां हतावशिष्ट बन्दियोंको आबद्ध रक्खा गया था। फतेगढ़से जो अंगरेज आश्रय-लाभकी आशासे कानपुरके अंगरेज-आवासमें आ रहे थे, वे भी इस बीबीगढ़में बन्द कर दिये गये थे। इस तरह सङ्कीर्ण बीबीगढ़में करीब दो सौसे भी अधिक व्यक्ति अवरुद्ध होनेके कारण उसने अन्धकूपका रूप धारण कर लिया और वह मानो सिपाहियोंकी नृशंसताका परिचय देने लगा। नानासाहबकी आन्तरिक इच्छा न होने पर भी मन्त्रियोंके असन्तुष्ट हो जानेके भयसे उन्हें अंगरेजोंको इस दशामें रखनेके लिए बाध्य होना पड़ा था।

कानपुरके पतन-संवादको सुन कर अंगरेज अब निश्चिन्त न रह सके; रेनल्ड पहलेसे ही कानपुरको रवाना हो चुके थे, सेनापति हवेलक भी सैन्य-सामन्त ले कर रेनल्डकी सहायतार्थ चल दिये। १४ जुलाईकी रातको इन दोनों दलोंमें परस्पर भेंट हो गई। दूसरे दिन ये लोग फतेपुरसे ४ मीलकी दूरी पर बेलिन्दा नामक स्थानमें उपस्थित हुए और सेनाको भोजन बनाने खानेका हुक्म दिया। इतनेमें एक गोला आ कर वहां गिरा। इसलिए शीघ्र ही वे युद्धके लिए तैयार होने लगे।

अंगरेजोंके आनेकी खबर सुन नानासाहबने मन्त्रियोंके साथ परामर्श करके निश्चय कर लिया कि सेनापति टीकासिंह सेनाको सजावेंगे और बाबाभट्ट बारूद तथा गाड़ियोंका इन्तजाम करेंगे। ज्वालाप्रसाद ८ जुलाईको १५०० प्यादे और गोलन्दाज, ५०० घुड़सवार और १५०० हथियारबन्द फौज ले कर इलाहाबादकी ओर अग्रसर होने लगे। टीकासिंहने सैन्यपरिचालनका भार ग्रहण किया था। इन लोगोंने फतेपुर पहुंच कर अङ्गरेजी सेना पर गोले छोड़े थे, उन्हींमेंसे एक गोला उनके पाकस्थलमें आ कर गिरा था।

सेनापति हवेलकके अधीन १४०० वृटिश सेना और ६०० देशी फौज थी। अङ्गरेजोंकी बन्दूकें बहुत अच्छी थीं, जिसमें वे ३०० गजकी दूरी तक विपक्ष दलमें लक्ष्यभेद करते रहे; किन्तु सिपाहियोंकी बन्दूकें वैसी न थी, इस लिए वे पराजित हो कर इतस्ततः भाग गए। इस तरह फतेपुरके युद्धमें परास्त होनेके बाद सिपाहियोंमेंसे बहुतोंने शत्रुता छोड़ दी, बहुतसे स्थानान्तरको भाग गए और बाकी लोग नानासाहबकी सेनामें जा कर मिल गये। अशिक्षित सिपाहियोंने जातिनाशके भयसे उत्तेजित हो कर अङ्गरेजोंको मार कर जैसा औद्धत्य प्रकट किया था, फतेपुरके युद्धमें जयी होनेके बाद शिक्षित और सुसभ्य वृटिश-सेनाओंने भी उससे अधिकतर बर्बरता दिखानेमें कसर न रक्खी। उन लोगोंने फतेपुर और उसके निकटवर्त्ती स्थान तलवार चला कर प्रायः जनशून्य कर दिये। फतेपुर हस्तगत होने पर हवेलक कानपुरकी ओर अग्रसर होने लगे।

फतेपुरकी पराजयकी खबर सुन कर नानासाहबने बहुत सैन्यसामन्तोंके साथ अपने भाई बालारावको अङ्गरेजोंके विरुद्ध भेजा। कानपुरसे २२ मीलकी दूरी पर आओंग नामक स्थानमें उन्होंने पड़ाव डाला। १५ जुलाईको सेनापति हवेलकसे उनका सामना हुआ। इस युद्धमें सिपाहियोंने अत्यन्त पराक्रम दिखाया था, परन्तु अङ्गरेजोंकी बढ़िया बढ़िया तोपों और बन्दूकोंके सामने उनका पराक्रम व्यर्थ गया। अंङ्गरेजोंकी जीत तो हुई, पर उसके बाद पाण्डुनदीका पुल पार करते समय अङ्गरेजोंके साथ सिपाहियोंका एक भीषण संघर्ष हुआ। इसमें भी अङ्गरेजोंकी जीत हुई। उसके बाद प्रसिद्ध कानपुरके युद्धमें जयी होते ही अङ्गरेजोंके हृदयमें वास्तवमें वृटिश-राज्यको चिरस्थायी रखनेकी आशाका सञ्चार हुआ।

इस युद्धमें नानासाहब स्वयं रणभूमिमें उपस्थित थे।

अब वे आत्मरक्षार्थ बिठुरकी तरफ भाग चले। बिठूर पहुंचते ही वे हताश हो गए। उनकी प्रायः सारी फौज तितर बितर हो गई थी। अब क्या करें, आत्मसमर्पण करने पर भी नृशंस हत्याकाण्डके लिए अङ्गरेज लोग उन्हें क्षमा नहीं कर सकते; इस कारण उन्होंने बिठुरसे भाग जाना ही उचित समझा।

इस समय आजिमउल्लाने नानासाहबको पुनः उत्तेजित करनेमें कसर न छोड़ी। वे परामर्श देने लगे, कि बीबीगढ़के अङ्गरेजोंको मार डालनेसे अङ्गरेज लोग हताश हो जायेंगे और फिर बिठुर न आवेंगे। फिर वे निर्विघ्नतया कमसे कम बिठुरका राज्य कर सकेंगे। नानासाहबका विचार बदल गया। इच्छाके विरुद्ध होते हुए भी वे आजिमउल्लाकी अवमानना न कर सके। बीबीगढ़के सब कैदियोंको मार डालनेके लिए आज्ञा दी गई। कहा जाता है, कि अङ्गरेजोंके रक्तसे बीबीगढ़में स्रोत बह चला था। अङ्गरेज लोग इस सम्वादको पा कर लाङ्गूलस्पृष्ट फणिनोकी तरह वीरदर्पसे वैरनिर्यातनकी आशासे बिठुरकी ओर बढ़ने लगे। डरके मारे नानासाहब एक नाव पर चढ़ कर स्रोतस्वती गङ्गाके वक्षःस्थल पर बहते चले गये। इसी समय अफ़वाह फैल गई कि "नानासाहब विजातीयके निष्ठुर आक्रमणसे परित्राण पानेके लिए गङ्गामें कूद पड़े हैं।" कुछ भी हो, इसी छलसे वे बिठुरसे अयोध्या भाग गये। अङ्गरेजोंने आ कर बिठुर पर कब्जा कर लिया और राजप्रासाद जमीनसे मिला दिया।

अयोध्या जा कर नानासाहबने पुनः सेना संग्रह करना शुरू कर दिया। हवेलक लगातार कई युद्धोंमें विजयी हो कर आनन्दसे लम्बे पैर बढ़ा कर लखनऊको चले। नील साहबने कानपुरको रक्षाका भार लिया। २८ जुलाईको उन्नाव नामक स्थानमें नानासाहबको भेजी हुई एक दल सेनाके साथ हवेलकको सेनाका फिर संघर्ष हुआ। परन्तु यह अधिक समय तक न रहा और न इससे अङ्गरेजोंकी विशेष कुछ क्षति ही हुई। इसके बाद अङ्गरेज लोग लखनऊकी तरफ बढ़ने लगे। किन्तु नानासाहब उन लोगोंका पीछा कर रहे थे, इस लिये उनके उद्देश्य-साधनमें बहुत विलम्ब हुआ।

इसके बाद बहुत दिनों तक नानासाहबकी कोई खबर न लगी। नवम्बर महीनेमें तांतियाटोपी और नानासाहब पुनः बहुत-सी सेना संग्रह कर कानपुर-आक्रमणके लिये अग्रसर हुए। यहां उइण्डहम साहबने उनकी गति रोक दी। २४ नवम्बरको पाण्डुनदीके किनारे तांतियाटोपीकी सेनाके साथ उइण्डहमकी सेनाका जो सामान्य संघर्ष हुआ था, उसमें तांतिया पराजित हुए। इसके बाद ही २७ नवम्बरको कानपुरमें दूसरा युद्ध उपस्थित हुआ। इस युद्धमें पहले दिन किसी भी पक्षको जय न हो सकी, दूसरे दिन भी जयलक्ष्मीने, चञ्चल पादविक्षेप-पूर्वक एक बार सिपाहियोंका और एक बार अङ्गरेजोंका आश्रय ले, अन्तमें उस दिन दोनों पक्षोंसे विदा ग्रहण की। दूसरे दिन सर कलिनने लखनऊसे आ कर अङ्गरेजोंका दल बढ़ा दिया। ६ दिसम्बरको पुनः युद्ध प्रारम्भ हुआ। यह युद्ध दिनके १० बजेसे रात तक हुआ था। इस घमसान युद्धमें सिपाही लोग पराजित हो कर चारों ओर भागने लगे। अङ्गरेजोंने बहुत दूर तक उनका पीछा किया और करीब दोपहर रातको वे कानपुर लौटे थे।

दाक्षिणात्यमें नाना साहबके अभ्युदयकी चर्चा फैलने पर मराठे लोग बहुत उत्तेजित हो उठे, किन्तु शीघ्र ही उनकी उत्तेजना प्रशमित हो गई। नाना साहब और तांतियाटोपीके भेजे हुए एक दल सिपाही कोल्हापुर जा कर वहांके प्रधान धनी गङ्गाप्रसादके साथ विद्रोहाचरणको मन्त्रणा कर रहे थे। पुलिस विभागके अध्यक्ष फरजोतके कौशलसे वे सब पकड़े गये।

महाराष्ट्रीय पण्डितगण अब नानासाहब-द्वारा अनुष्ठित धर्मयुद्धको आवश्यकता और न्यायताके सम्बन्धमें काशी आदि स्थानोंमें जा जा कर वक्तृता देने लगे। इससे भी दो-एक जगह विद्रोह उपस्थित हुआ था, किन्तु साधारणतः सहजमें ही सर्वत्र शान्ति स्थापित हुई।

इससे पहले नानासाहब और उनके भाई बालाराव आदि इकट्ठे हो अयोध्यामें अवस्थान कर रहे थे। १८५८ ई०की आखिरी तारीखको वे अयोध्यासे भगा दिए गये। तदनन्तर इन लोगोंने नेपाल जा कर आश्रय लिया, किन्तु वहांके विश्वस्त राजा जङ्गबहादुरको प्रार्थना

करने पर होपग्रैण्टने जा कर विद्रोहियोंको वहांसे दूर कर दिया। इस समय होपग्रैण्टको दो पत्र मिले, जिनमें एक बालारावका था। बालारावने अपने कार्यों के अनुताप प्रकट करते हुए लिखा था कि कानपुरके हत्याकाण्डके विषयमें वे बिलकुल निर्दोष हैं। दूसरा पत्र नानासाहबका लिखा हुआ था, उन्होंने कम्पनीकी शासन प्रणाली पर दोषारोप करते हुए प्रश्न किया था कि—"अङ्गरेजोंको भारतमें आने और हममें विद्रोही कहनेका क्या अधिकार था ?"

इसके उपरान्त, तांतियाटोपीने महाराष्ट्रियोंको नाना साहबके पक्षमें पुनः अस्त्रधारण करनेके लिए विशेष चेष्टा की थी और जगह जगहसे सेना इकट्ठी कर नानासाहबके अनुकूल युद्ध करनेकी कोशिश भी की थी; किन्तु वे क्रतकार्य न हो सके। धीरे धीरे सिपाहियोंको आशा पर पानी फिर गया। चारों तरफ अंग्रेजोंकी पताका उड़ने लगी। अङ्गरेजोंके सौभाग्य गगनने निर्मलतर भाव धारण किया। चारों ओर शान्ति स्थापित होनेकी सम्भावना हो उठी। १८५८ ई०की १८ वीं अप्रीलको तांतियाटोपीकी फांसी होनेके बाद नानासाहबकी भाग्यलक्ष्मी हमेशाके लिये अन्तर्हित हो गई।

इसके बाद, नानासाहबका कोई विश्वासयोग्य संवाद नहीं मिला। बहुत जगह बहुतसे नानासाहब पकड़े गये और बहुतसे मारे भी गये, परन्तु अन्तमें विशेष अनुसन्धान करने पर मालूम हुआ है कि उनमेंसे कोई भी नानासाहब नहीं थे।

नानि—दाक्षिणात्यकी एक शाखा नदी जो भीमा नदीमें गिरती है।

नानिफ—बुन्देलखण्डकी चन्देलजातिकी एक शाखा।

नानिया—एक श्रेणीका ग्वाला। उत्तर-पश्चिम प्रदेश और बिहारमें ये लोग वास करते हैं।

नानिहाल (हिं० पु०) नानीका घर, नाना नानीके रहनेका स्थान।

नानी (हिं० स्त्री०) मातामही, माताकी माता, माकी मा। इस शब्दके आगे 'इया' प्रत्यय लगा कर सम्बन्धसूचक विशेषण भी बनाते हैं, जैसे ननिया सास।

नानुकर (हिं० पु०) अस्वीकार, इनकार, नाहीं।

नानौर—शाहाबाद जिलेका एक परगना।

नानोली—पूना जिलेके अन्तर्गत एक ग्राम। यह तेलिगाँवसे ३ मील उत्तरमें अवस्थित है। यहांसे १ मील उत्तरमें पहाड़के ऊपर बहुतसी गुहाएं देखनेमें आती हैं।

नानोरहाट—त्रिपुराकी गोमती नदीके किनारे एक नगर।

नान्त—राजपूतानेके कोटा राज्यान्तर्गत लादपुर जिलेका एक ग्राम। यह अक्षा० २५° १२´ उ० और देशा० ७५° ४८´ पू०के मध्य, कोटा नगरसे ३ कोस दूर उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। १८वीं शताब्दीके आरम्भमें यह ग्राम कोटाके झाला फौजदारको जागीर स्वरूप दिया गया था। प्रबन्धकर्त्ता जालिमसिंहके समयमें यह उन्नतिको चरम सीमा तक पहुँच गया था, किन्तु आज कल इसकी अवनति हो देखी जाती है।

नान्तरीयक (सं० क्लो०) न अन्तरा-विना भवः अन्तराक अव्ययस्य टिलोपः, ततः स्वार्थे कन्। १ अवश्यभावी, होनहार।

नान्द (सं० क्लो०) नम-इन् वृद्धिश्च। स्तोत्र।

नान्दगाँव—१ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत नासिक जिलेका एक महकूमा।

२ उक्त महकूमेका एक प्रधान नगर। यह नासिक नगरसे ६० मील उत्तरमें अवस्थित है।

३ मध्य प्रदेशके रायपुर जिलान्तर्गत एक करद राज्य। यह राज्य ५ परगनोंमें विभक्त है जिनमेंसे दक्षिण भागका नाम नान्दगाँव है। नागपुर-छत्तीशगढ़-रेलपथ इस राज्य हो कर गया है। इस लिये यह अभी उन्नत दशाको प्राप्त है।

नान्दन—१ अमरावतीका एक उद्यान। २ नन्दनकानन।

नान्दस—बम्बई प्रदेशके महीकाण्ठाके अन्तर्गत एक छोटा राज्य।

नान्दिक (सं० पु०) तोरणद्वार पर मङ्गल चिह्नस्वरूप स्थापित स्तम्भविशेष।

नान्दिकर (सं० पु०) नान्दीं करोतीति क्ट प्रत्यय। नाटकमें नान्दीपाठक सूत्रधार।

नान्दी (सं० स्त्री०) नन्दन्ति देवा यत्र नन्द-घञ् पृषो-दरादित्वात् वृद्धिः ङीप्। १ समृद्धि, अभ्युदय। २ वह आशीर्वादात्मक श्लोक या पद्य जिसका सूत्रधार नाटक आरम्भ करनेके पहले पाठ करता है, मङ्गलाचरण। संस्कृत नाटकोंमें विघ्न-शान्तिके लिये इस प्रकारके मङ्गल-पाठकी चाल है। साहित्यदर्पणके अनुसार नान्दी आठ या बारह पदोंकी होनी चाहिये। लेकिन भरत मुनिने यह दश पदोंको भी लिखी है। यह पाठ मध्य-स्वरमें होना चाहिये।

नान्दीक (सं० पु०) नान्द्यै कायति कै-क। १ तोरण-स्तम्भ। २ नान्दीमुखश्राद्ध।

नान्दीकर (सं० त्रि०) नान्दीं करोतीति कृ-ट। नान्दी-श्लोकपाठकारी, नान्दीश्लोकका पाठ करनेवाला। इसका पर्याय—नान्दीवादी है।

नान्दीघोष (सं० पु०) नान्द्यै घोषः। भेर्यादि शब्द, दुन्दुभि आदिका शब्द।

नान्दीपट (सं० पु०) नान्द्याः वृद्ध्यर्थः पटः। कूपादि मुखबन्धनवस्त्र, कुएंका ढकना।

नान्दीपुर (सं० क्ली०) नान्द्यै पूः अच् समासान्तः। प्राक्‌स्थपुरभेद।

नान्दीपुरी—गुर्जर-राजधानी भड़ोंच नगरके जाड़ेश्वर कटकके बाहरमें अवस्थित एक नगर। यहां गुर्जर राजाओंका एक दुर्ग है।

नान्दीमुख (सं० पु०) नान्द्यै वृद्ध्यर्थं मुखं यस्य। १ कूपादि-मुखबन्धन, कुएंका ढकना। २ वृद्धिश्राद्धभोजी पितृगण।

"नान्दीमुखं पितृगणं पूजयेत् प्रयतो गृही॥" (विष्णुपु०)

पिता, पितामह, प्रपितामह, मातामह, प्रमातामह और वृद्धमातामह ये ६ वृद्धिश्राद्ध भोजन करते हैं।

नान्दीमुख श्राद्धको आभ्युदयिक श्राद्ध कहते हैं, वृद्धिके लिए यह श्राद्ध किया जाता है, इसीसे इसको वृद्धिश्राद्ध भी कहते हैं। रघुनन्दनने आभ्युदयिक शब्दका इस प्रकार अर्थ किया है,—

इष्टवस्तुके लाभका नाम अभ्युदय है, इस अभ्युदयके लिए पितृगणके उद्देशसे जो श्राद्ध किया जाता है, उसका नाम आभ्युदयिक है। यह आभ्युदयिक भूत और भवि-ष्यत्‌के भेदसे दो प्रकारका है। अभ्युदय होगा, इस उद्देशसे जो श्राद्ध किया जाता है, उसका नाम भविष्यत् है, यथा विवाह प्रभृति। विवा-हादिकी जगह विवाह होनेके पहले विवाह होगा, इसी उद्देशसे श्राद्धानुष्ठान किया जाता है, इस कारण इसका नाम भविष्यत् रखा गया है। अभ्युदय होनेके बाद जो श्राद्ध किया जाता है, उसे भूत कहते हैं; यथा—पुत्रजन्मादि।

जिस दिन विवाह आदि होंगे, आभ्युदयिककर्त्ता उसके पूर्व दिन यथाविधि संयम करते हैं, बाद दूसरे दिन यथास्थानमें प्रातःकृत्यादि करके नान्दीमुख श्राद्धका अनुष्ठान करते हैं। निर्णयसिन्धुमें इस प्रकार लिखा है—

पुत्र कन्याका जन्म, विवाह, उपनयन, गर्भाधान, यज्ञ, पुंसवन, तड़ागादि-प्रतिष्ठा, राज्याभिषेक, अन्न प्राशन इत्यादिमें नान्दीमुख श्राद्ध करना ही चाहिए। वृद्धि हुई हो, तो इस श्राद्धका करना अवश्य कर्त्तव्य है। जिस कार्यसे अभ्युदय या वृद्धिकी सम्भावना हो, उसमें भी इसे करना चाहिए। पितृगण अपने वंश-धरोंके अभ्युदयवशतः यह श्राद्ध भोजन कर बहुत प्रसन्न होते हैं, इसीसे इसको नान्दीमुखश्राद्ध कहते हैं। अपनी वृद्धि देख कर जो वृद्धिश्राद्ध नहीं करते, उनके सब कार्य निष्फल और हीन होते हैं तथा उनकी गिनती असुरोंमें की जाती है।

"वृद्धौ न तर्पिता ये वै पितरो गृहमेधिभिः।
तद्धीनमफलं ज्ञेयमासुरो विधिरेव सः॥" (शातातप)

बोपदेव और कालादर्शके मतानुसार निम्नलिखित कार्योंमें नान्दीमुखानुष्ठान विधेय है। सीमन्त, व्रत, चूड़ा, नामकरण, अन्नप्राशन, उपनयन, स्नान, गर्भाधान, विवाह, यज्ञ, तनयोत्पत्ति, प्रतिष्ठा, पुंसवन, गृहप्रवेश, पुत्रादिका मुखावलोकन, आश्रम-स्वीकार, राज्याभिषेक और प्रथम ऋतुदर्शन इन सब कार्योंमें नान्दीमुखश्राद्ध करना चाहिये।

"कन्यापुत्रविवाहेषु प्रवेशे नववेश्मनः।
नामकर्मणि बालानां चूड़ाकर्मादिके तथा॥
सीमन्तोन्नयने चैव पुत्रादिमुखदर्शने।
नान्दीमुखं पितृगणं पूजयेत् प्रयतो गृही॥" (श्राद्धतत्त्व)

पुत्रकन्याका विवाह, नवगृहप्रवेश, सीमन्तोन्नयन, पुत्रादिके मुखदर्शन, नामकरण, चूड़ाकर्म प्रभृति, अन्नप्राशन, पुत्रोत्पत्तिनिमित्तक पुंसवन, गर्भाधान, देवता, वृक्ष और जलाशयादि प्रतिष्ठा, तीर्थयात्रा और वृषोत्सर्ग इन सब कार्योंमें नान्दीमुख विधेय है। तीर्थयात्रा करनेके पहले और वहांसे लौट आने बाद नान्दीमुख करना होता है।

मैथिलपण्डितोंका कहना है—निष्क्रमण और अन्नप्राशनमें यह श्राद्ध करना मना है, लेकिन यह युक्तिसङ्गत प्रतीत नहीं। कारण राजमार्त्तण्ड आदिमें लिखा है—सुतोत्पत्ति, श्राद्ध और अन्नप्राशनमें यह श्राद्ध करना चाहिये।

"नामकर्मणि बालानां चूड़ाकर्मादिके तथा।"

(इत्युक्तेः निष्क्रमान्नप्राशनयोर्न श्राद्धमिति मैथिलाः तत्पूर्वोक्तविरोधात् नानिष्टवेति विरोधात्)

"सुतोत्पत्तौ तथा श्राद्धे अन्नप्राशनिके तथा॥"

(निर्णयसिन्धु)

नान्दीमुख श्राद्धमें पहले माताका श्राद्ध करना चाहिए, फिर पिताका, उसके पीछे पितामह, मातामह आदिका। माता, पितामही, प्रपितामही, पिता, पितामह, प्रपितामह, मातामह प्रमातामह और वृद्धप्रमातामहका भी श्राद्ध करना चाहिये।

"मातृश्राद्धन्तु पूर्वं स्यात् पितॄणां तदनन्तरम्।
ततो मातामहानांच वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम्॥"

(निर्णयसिन्धु)

इस श्राद्धमें विशेषता यह है, कि पूर्वदिनमें मातृश्राद्ध, कर्मदिनमें पितृश्राद्ध और उसके दूसरे दिनमें मातामहश्राद्ध करना होता है। यह करनेमें यदि असमर्थ हो, तो पूर्वदिनमें और उस दिन भी यदि असमर्थ हो, तो पूर्वाह्णमें इसे कर सकते हैं। केवल पुत्रजन्मनिमित्तक जो वृद्धिश्राद्ध किया जाता है, उसमें यह नियम लागू नहीं है। कारण पुत्रजन्म कब होगा, उसका कुछ निश्चय नहीं है। इसीसे इस श्राद्धकालका भी कोई समय निर्दिष्ट नहीं हो सकता। जब पुत्र उत्पन्न होगा, तब ही यह वृद्धिश्राद्ध करना होता है। पुत्रोत्पत्तिके सिवा अन्य जो कोई कार्य हो वह उक्त नियमसे किया जाता है। आधानाङ्ग नान्दीश्राद्ध अपराह्णकालमें विधेय है।

"मातृश्राद्धन्तु पूर्वेद्युः कर्माहनि तु पैतृकम्।
मातामहं चोत्तरेद्युर्वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम्॥"

अत्राप्यशक्तौ स एव—

"पृथक् दिनेष्वशक्तश्चेदेकस्मिन् पूर्ववासरे।
श्राद्धत्रयं प्रकुर्वीत वैश्वदेवन्तु तान्त्रिकम्॥"

वृद्धमनुरपि—

"अलाभे भिन्नकालानां नान्दीश्राद्धत्रयं बुधः।
पूर्वेद्युर्वै प्रकुर्वीत पूर्वाह्णे मातृपूर्वकम्॥"

अत्रि—

"पूर्वाह्णे वै भवेद्वृद्धिर्विना जन्मनिमित्तकम्।
पुत्रजन्मनि कुर्वीत श्राद्धं तात्कालिकं बुधः॥"

इति एतदनियतनिमित्तपरं।

"नियतेषु निमित्तेषु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्।
तेषामनियतत्वे तु तदानन्तर्यमिष्यते॥
इति लौगाक्षिस्मृतेः॥" (निर्णयसिन्धु)

पिता, पितामह और प्रपितामहके जीवित रहते उनके उद्देशसे नान्दीमुख करना बिलकुल निषेध है। पहले लिखा जा चुका है, कि पहले मातृश्राद्ध, पीछे पितृश्राद्ध और उसके बाद मातामहश्राद्ध करना चाहिये। यह नान्दीमुखश्राद्ध मातृप्रभृति तीन तीन करके नवदैवत्यश्राद्ध होगा।

"अकृत्वा मातृयागं तु यः श्राद्धं परिवेषयेत्।
तस्य क्रोधसमाविष्टा हिंसामिच्छन्ति मातरः॥"

(निर्णयसिन्धुधृत शातातप)

इन सब वचनोंके अनुसार पहले माताका श्राद्ध ही करना चाहिये, फिर पिताका, उसके बाद पितामह आदिका। किन्तु सामवेदियोंको नान्दीश्राद्धमें षड़्दैवत्य अर्थात् ६ व्यक्तियोंके उद्देशसे श्राद्ध करना चाहिये। पिता, पितामह और प्रपितामह, मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामह ये ही छः श्राद्धीय पितृगण हैं। पहले मातृश्राद्ध करना चाहिये, केवल इतना ही लिखा है। लेकिन सामवेदियोंके लिये मातृपक्षके पहले पितृपक्ष पिता, पितामह और प्रपितामहका, पीछे मातामहपक्ष मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामहका श्राद्ध करना बतलाया है। इसी प्रकार यजुः और ऋग्वेदियोंके लिये नवदैवत्य, पितृ, मातृ और पितामहका श्राद्ध जानना चाहिये।

नान्दीश्राद्धमें प्रतिमा या पट पर षोड़शमातृका अङ्कित करके पूजा करनी होती है। षोड़शमातृका-पूजाके पहले गणपतिपूजा करनी चाहिये। गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, शान्ति, पुष्टि, धृति, तुष्टि, आत्मदेवता और कुलदेवता ये १६ कुलमातृका वा षोड़शमातृका हैं। इनकी पूजाके बाद घरकी दीवारमें घृत द्वारा ५ वा ७ वसुधारा देनी चाहिए। इसके अनन्तर यथाविहित श्राद्ध करते हैं। (निर्णयसिन्धु) श्राद्धतत्त्वमें इसकी व्यवस्थादिका विषय लिखा है। अन्यान्य विवरण श्राद्धप्रयोग वृद्धिश्राद्ध शब्दमें देखो।

नान्दीमुखी (सं॰ स्त्री॰) नान्द्यै वृद्ध्यर्थं मुखं यस्याः ङीप्। १ सामगोतकी वृद्धिश्राद्धभोजि मातृगण। २ कुधान्यविशेष, एक प्रकारका खराब धान। ३ छन्दोविशेष, एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें दो नगण, दो तगण और दो गुरु होते हैं। ४ अवन्तीनगरवासिनी मुनिकन्या। ये कृष्णलीला दर्शनके लिए व्रजवासिनी हो कर पौर्णमासीके आश्रममें रहती थीं।

(वृन्दावनली॰ भक्तमा॰)

नान्दीवादिन् (सं॰ त्रि॰) नान्दीं वदतीति नान्दी-वद-णिनि। १ नान्दीश्लोकपाठकारी, नान्दीश्लोक पढ़नेवाला। २ नान्दीवादनशील, दुन्दुभि बजानेवाला।

नान्दीश्राद्ध (सं॰ क्ली॰) नान्दीनिमित्तं नान्द्यर्थं वा श्राद्धम्। नान्दीमुखश्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध। नान्दीमुख देखो।

नान्दूरा—बरारके बुल्दाना जिलेका मल्कापुर तालुकान्तर्गत एक शहर। यह अक्षा॰ २०° ४८´ उ॰ और देशा॰ ७६° ३१´ पू॰के मध्य, बम्बईसे ३२४ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। यहांकी लोकसंख्या ६६६८ है। इसमें नान्दूर, बुजुर्ग और नान्दूरखुर्द ये तीन शहर लगते हैं।

नान्देर—दाक्षिणात्यमें अहमदनगरसे २० मील पूर्वमें अवस्थित एक स्थान। यहां अकबरके शासनकालमें अहमदनगरके शासनकर्त्ता खानखानाके पुत्र मिर्जा एरिचके साथ, कुतबशाही और आदिलशाही राज्यके अन्तर्गत जितने राज्य हैं, वहांके शासनकर्त्ता मालिक अम्बरका तुमुल-संग्राम हुआ था। युद्धमें मालिक अम्बरकी ही हार हुई थी।

नान्नूर—वीरभूम जिलेका एक ग्राम। यह सिवड़ीसे १२ कोस पूर्वमें अवस्थित है। यहां कवि चण्डिदासका जन्म हुआ था।

नान्यदेव—नेपालके कर्णाटकवंशीय प्रथम राजा। इन्होंने जयदेवमल्ल और आनन्दमल्लको परास्त कर नेपालके सभी र ज्य जीत लिये थे और भाटगांव नामक स्थानमें ५० वर्ष तक राज्य किया था।

नाप (हिं॰ स्त्री॰) १ किसी वस्तुका विस्तार जिसका निर्धारण इस प्रकार किया जाय कि वह एक निर्दिष्ट विस्तारका कितना गुना है, परिमाण, माप। २ विस्तारका निर्धारण, नापनेका काम। ३ वह निर्दिष्ट लम्बाई जिसे एक मान कर किसी वस्तुका विस्तार कितना है, यह स्थिर किया जाता है, मान। ४ निर्दिष्ट लम्बाईकी वह वस्तु जिसका व्यवहार करके स्थिर किया जाय कि कोई वस्तु कितनी लम्बी, चौड़ी आदि है, मानदण्ड, नपना, पैमाना।

नापजोख (हिं॰ स्त्री॰) नापतौल देखो।

नापतौल (हिं॰ स्त्री॰) १ नापने और तौलनेकी क्रिया। २ परिमाण या मात्रा जो नाप या तौल कर स्थिर की जाय।

नापना (हिं॰ क्रि॰) १ अन्दाज करना, कोई वस्तु कितनी है, इसका पता लगाना। २ किसी वस्तुका विस्तार इस प्रकार निर्धारित करना कि वह एक नियत विस्तारका कितना गुना है, किसी वस्तुकी लम्बाई, चौड़ाई आदिकी परीक्षा करना, मापना।

नापल—औदिच्यसहस्र ब्राह्मणोंकी एक जाति। इनके विषयमें ऐसा लेख मिलता है कि गुजरात देशमें एक धर्मात्मा राजा रहते थे जिनका यह नियम था कि "यदि ब्राह्मणोंके बालक विद्यामें परीक्षोत्तीर्ण हो कर अपनी स्त्री सहित जा कर राजाको आशीर्वाद दें, तो उन्हें दक्षिणामें ग्राम दिया जाय।" तदनुसार दो औदीच्य ब्राह्मणोंके बालक जब विद्यामें परीक्षोत्तीर्ण हो चुके, तब ग्राम-दक्षिणाग्रहणकी इच्छासे वे सोचने लगे, "हमारे स्त्री नहीं है, वरन् हम तो ब्रह्मचारी हैं और राजा बिना गृहस्थके ग्राम नहीं देंगे, अतः क्या होना चाहिये?" अन्तमें दो कन्याएं साथ ले पति-पत्नी स्वरूप वे राजदरबारमें पहुंचे। आशीर्वाद देनेके बाद

उनमेंसे एकको बोरसद और दूसरेको नापल ग्राम दक्षिणामें मिला। राजदरबारसे बिदा हो जब वे दोनों कुमार राहमें जा रहे थे, तब उन्होंने अन्य जातिको स्त्रियोंसे जो साथ जाती थीं, कहा, 'आप दोनों अपना अपना घर चली जावें, हम लोगोंका कार्य सिद्ध हो गया।' इस पर वे बोलीं, 'आप यदि अपनी भलाई चाहते हों, तो हमसे विवाह कर लीजिये, अन्यथा यह हाल राजासे ले जा कहेंगी।' उन दोनोंने डरके मारे उन्हें अपनी स्त्री बना लिया। अतः जिनको बोरसद ग्राम मिला था उनकी सन्तान बोरसद और जिन्हें नापल गाँव मिला था उनकी सन्तान नापल कहलाई।

नापसन्द (फा० वि०) जो पसन्द न हो, जो अच्छा न लगे, अनसुहाता।

नापाक (फा० वि०) १ अशुद्ध, अशुचि, अपवित्र, भ्रष्ट। २ मैलाकुचैला।

नापाकी (फा० स्त्री०) अपवित्रता, अशुद्धता।

नापाकम् (सं० क्लो०) पद्मवोज।

नापाचारण—एक हिन्दी-कवि। इन्होंने बहुतसे फुटकर गीत तथा सरस और सुमधुर कवित्तकी रचना की।

नापाद—बम्बई प्रदेशके कयरा जिलेके आनन्द तालुकान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० २२° २८´ उ० और देशा० ७२° ५८´ पू० बामद रेलवे ष्टेशनसे १४ कोस पश्चिममें अवस्थित है। यहांकी जनसंख्या ५०५२ है। इसके उत्तरमें ५०० गज गोलाकार एक सुन्दर तालाब है। जिसको तजे खाँ नरपाली नामक एक पठानने बनवाया था। यह तालाब ईंटोंकी दीवारसे अष्टकोणके आकारमें घिरा हुआ है। गांवके पूर्व उक्त पठानका बनाया हुआ एक कूप भी है जिसको १८३८ ई०में बड़ौदाके एक सौदागरने मरम्मत की थी।

नापायदार (फा० वि०) १ क्षणभंगुर, जो टिकाऊ न हो। २ जो दृढ़ या मजबूत न हो।

नापायदारी (फा० स्त्री०) १ क्षणभंगुरता, अस्थायित्व। २ अदृढ़ता।

नापित (सं० पु०) न आप्नोति सरलतामिति न-आप-तन् इट् च (नञ्याप इट् च। उण् ३।८७) सङ्करजातिविशेष, नाई, हज्जाम। कुवेरी पुरुष और पट्टिकारी स्त्रीके संयोगसे इस जातिको उत्पत्ति है।

"कुवेरिणः पट्टिकार्यां नापितः समजायत॥"
(परशुराम)

पराशर-पद्धतिमें भी यह मत समर्थित हुआ है। किन्तु विवादार्णवसेतुके मतसे इस जातिको क्षत्रियके औरस और शूद्राके गर्भसे उत्पन्न बतलाया है।

"आर्द्धिकः कुलमित्रश्च गोपालो दासनापितौ।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत्॥"
(मनु ४।२५३)

शूद्रोंमें नापितादि भोज्यान्न हैं। गोप और नापित ये लोग सत्‌शूद्रमें गिने जाते हैं। पराशरपद्धतिमें एक जगह और लिखा है—

"शूद्रकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः।
संस्कृतस्तु भवेद्दासोऽसंस्कारैस्तु नापितः॥" (पराशर)

ब्राह्मणोंसे शूद्रकन्याको गर्भजात सन्तान यदि ब्राह्मणसे संस्कृत न हो, तो उसे नापित और संस्कृत पुत्रको दास कहते हैं। इसके पर्याय ये हैं—क्षुरी, मुण्डी, दिवाकीर्त्ति, अन्त्यावसायी, क्षती, वाल्मीसुत, नखकुट, ग्रामणी, चन्द्रिल, मुण्ड और भाण्डपुट। (अमर, शब्दर०, जटाधर)

नापितजाति मनुष्योंमें बहुत धूर्त्त समझी जाती है।

"नराणां नापितो धूर्त्तः पक्षिणाञ्चैव वायसः।
दंष्ट्रिणाञ्च शृगालस्तु श्वेतभिक्षुस्तपस्विनाम्॥"
(पञ्चतन्त्र ३।७३)

चौरकर्म ही इस जातिकी उपजीविका है। अशौचान्तमें जब तक ये चौरकर्म नहीं करते, तब तक शुद्धि नहीं होती है। तन्त्रके मतसे इनकी स्त्रियां कुलनायिका हो सकती हैं।

"नटी कापालिनी वेश्या कुलटा नापिताङ्गना॥"
(तन्त्रसार)

बृहत्‌संहितामें लिखा है, कि उत्तराभाद्रपदमें शनिके रहनेसे नापितका अमङ्गल होता है। (बृहत्सं० १०।८) नापितजाति कृत्तिकानक्षत्रके अधीन है। (बृहत्सं० १५।१)

बङ्गालमें ६से १० वर्ष तकको अवस्थामें ये लोग अपनी कन्याओंका विवाह करते हैं। घटक पहले विवाहका सम्बन्ध स्थिर करता है, बाद वरपक्षके एक या अधिक लोग कन्याके घर जाते हैं और कन्याको देख कर विवाहका कन्यापण स्थिर कर आते हैं। यह पण

१०० रु०से कम नहीं होता। इसी प्रकार कन्यापक्षसे भी लोग वरके घर जाते और वरको देख कर उसे सुपारी, पान, दूध आदि देते हैं। इस प्रकार विवाह-सम्बन्ध स्थिर समझा जाता है। विवाहके दो दिन पहले वर और कन्यापक्षका कोई आदमी पितृपुरुषके सन्तोषके लिये नान्दीमुखश्राद्ध करते हैं। दूसरे दिन अधिवास होता है। वरको तेल और हलदी लगा कर नूतन वस्त्र पहनाया जाता है और एक सधवा स्त्री थालमें प्रदीप-प्रभृति हिन्दूशास्त्रोक्त उपकरण द्रव्यादि रख कर वरको वरण करती है।

विवाहके दिन वरको सात बार तेल और हलदी लगा कर स्नान और नूतन पट्टवस्त्र पहनाया जाता है। ग्रामकी अथवा समयकी सुविधाके अनुसार वर गाड़ी या पालकी पर चढ़ कर विवाह करने जाता है, साथ साथ नाच-गान भी होता है। जब कन्याके घर बरात पहुंचती है, तब वे उन्हें आदर सत्कारपूर्वक दरवाजे पर ले जाते और कुछ समय बाद वरको छोड़ कर और सबोंको भोजन कराते हैं। तदनन्तर पुरोहित शास्त्रोक्त मन्त्रपाठ करके विवाह कराते हैं। वर, कन्या और कन्याके पिताको भी पुरोहितोक्त मन्त्रपाठ करना पड़ता है। तदनन्तर कन्याका हाथ वरके हाथके ऊपर रख कर सबसे अन्तमें गोत्रवचन पढ़ा जाता है। इस समय विवाह कार्य सम्पन्न हो जाता है। विवाहके बाद दूसरे दिन कन्या स्वामीके साथ ससुराल जाती है और यहां सात दिन रह कर पुनः पीहरको आती है।

नाइयोंमें बहुविवाहप्रथा प्रचलित है। किन्तु साधारणतः ये लोग एक विवाहसे ही सन्तुष्ट रहते हैं। इनकी स्त्री यदि असच्चरित्रा होती है, तब पञ्चायत स्त्री और स्वामी दोनोंको बुला कर विचार करती है। यदि स्त्रीमें किसी प्रकारका दोष साबित न हो, तो स्वामी उसे अपने घरमें रखनेको वाध्य होता है।

इन लोगोंमें वैष्णव-धर्मावलम्बियोंकी ही संख्या अधिक है। शाक्त और शैव भी देखनेमें आते हैं। किन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। ब्राह्मण इनके पुरोहित होते हैं। इन लोगोंमें शवदाहकी प्रथा प्रचलित है। तीस दिन तक अशौच रहता है, तीसवें दिन मृतका पिंडदान करके ये लोग शुद्ध हो जाते हैं।

पराशरके मतानुसार ये लोग नवशाखजातिके अन्तर्गत हैं। ब्राह्मण इनके हाथका जल पीते हैं। इनका भोजन-पहरावा हिन्दुओं-सा होता है। ये लोग सब जगह पुरुषानुक्रमसे चौरकार्य करते हैं और इस कार्यके लिए इन्हें कहीं निष्कर जमीन मिलती और कहीं वार्षिक रकम ठहराई रहती है। बड़े बड़े शहरोंमें ये लोग नकद पैसा ले कर हजामत करते हैं।

हिन्दुओंमें जितने शुभकार्य होते हैं, सबमें नापितकी उपस्थिति आवश्यकीय है। हिन्दू स्त्रीको प्रसूता होने पर अथवा किसी हिन्दूको किसी प्रकारका अशौच होने पर, जब तक ये लोग आ कर नख नहीं काट जाते, तब तक शुद्धि नहीं होती है। कहीं कहीं ये लोग अस्त्रचिकित्सा भी करते हैं। कोई स्फोटक अस्त्र करता है, वसन्त होने पर टीका देता है और कोई फोड़े आदिको चीरता फाड़ता है। ये लोग चिकित्सा-शिक्षाके लिये कविराजके यहां आते हैं। वसन्तटीका नामक एक ग्रन्थ नापितोंका चिकित्सा-ग्रन्थ समझा जाता है किन्तु कोई भी उसे नहीं पढ़ते।

जो कविराजी करते हैं, उन्हें बहुत आमदनी होती है। छोटे छोटे गाँवोंमें उनकी खूब खातीर होती है। कविराजोंके सिवा कोई खेती-बारी करते हैं और कुछ ऐसे भी नापित हैं जो अंगरेजी शिक्षाके गुणसे अच्छे ओहदे पर काम करते हैं।

इन लोगोंमें जातीय एकता खूब घनी है। जब कोई किसी नाईका अनिष्ट करता अथवा बुरी तरहसे पेश आता है, तब वे उसी समय एकत्र हो जाते हैं और उस अनिष्टकारीकी हजामत नहीं करेंगे, ऐसा सङ्कल्प कर लेते हैं। पीछे मीठी बात तथा रुपये पैसे दे कर उनका क्रोध शान्त करना ही पड़ता है, क्योंकि उनके बिना कोई भी शुभकार्य होने नहीं पाता।

जिस तरह हिन्दीमें एक मसल है कि "बिल्ली घर घरकी मौसी कहलाती है," उसी तरह नाई भी है। इससे घरकी कोई बात छिपने नहीं पाती, क्योंकि उसे प्रत्येक घरमें एक न एक दिन जाना ही पड़ता है।

पूर्व बङ्गालमें नापितजातिमें नर्त्तक नामकी एक श्रेणी है जिसे डाक्टर वाइज हिन्दुस्तानका ब्राह्मण-

कथक मानते हैं। कोई कोई उन्हें 'नरि' अंगोभुक्त कहते हैं। आधुनिक मन्त्रोंका कहना है, कि भरद्वाज मुनिके औरस और एक नत्त की कन्याके गर्भसे उनकी उत्पत्ति है।

नापितशाला (सं० स्त्री०) नापितस्य शाला। क्षौरगृह, वह स्थान जहां हजामत की जाती हो।

नाफरमाँ (फा० पु०) गुलेलालाका एक भेद जो कुछ नीलापन लिये होता है।

नाफा (फा० पु०) मृगमदकोश, कस्तूरीकी थैली जो मृगोंकी नाभिमें होती है।

नाबदान (फा० पु०) वह नाली जिस हो कर घरका गलीज मैला पानी आदि बाहर निकल जाता है।

नाबालिग (फा० वि०) अप्राप्तवयस्क, जो पूरा जवान न हुआ हो। कानूनमें कुछ बातोंके लिये २१ वर्ष और कुछके लिए १८ वर्षसे कम अवस्थाका मनुष्य नाबालिग समझा जाता है।

नाबालिगी (फा० स्त्री०) नाबालिग रहनेकी अवस्था।

नाबूद (फा० वि०) जिसका अस्तित्व न रहा हो, नष्ट, ध्वस्त।

नाभ (सं० स्त्री०) नभ-णिच्-क्विप्। आकाशकी वाधिका, चन्द्रमाकी दीप्ति।

नाभ (सं० पु०) सूर्यवंशीय नृपभेद, सूर्यवंशके एक राजाका नाम।

नाभ (हिं० स्त्री०) १ नाभि, ढोंढी, धुनी। २ शिवका एक नाम। ३ अस्त्रोंका एक संहार।

नाभक (सं० क्ली०) नभ-ण्वुल्। वनतिक्तवृक्ष, हरीतकी, हड़।

नाभस (सं० पु०) १ बृहज्जातकोक्त लग्न और तत्तद् स्थान भेदस्थित ग्रहभेद द्वारा योगभेद। लग्न आदि स्थानोंमें ग्रहविशेषके रहनेसे यह योग होता है। बृहज्जातकमें इसका विषय विस्ताररूपसे लिखा है। २ उत्पातविशेष, एक प्रकारका उपद्रव। प्रकृतिका अन्यथाघटन ही उत्पात है। मनुष्योंके अहिताचरण द्वारा पापसञ्चयके कारण उत्सर्ग होता है। देवताओंने मनुष्योंके अपव्यवहारसे विरक्त हो कर सब प्रकारके उत्पातोंकी सृष्टि की है।

उत्पात तीन प्रकारका है—दिव्य, आन्तरीक्ष (नाभस) और भौम। ग्रह, नक्षत्र आदिका उत्पात दिव्य और गन्धर्वपुर तथा इन्द्रधनु आदि आन्तरीक्ष उत्पात है। किसी किसीका मत है, कि आन्तरीक्ष उत्पात शान्ति द्वारा दब जाता है। किन्तु दिव्य-उत्पात कभी शान्त नहीं होता। (बृहत्सं० ४६ अ०)

नाभा—१ पञ्जाब-गवर्नमेण्टके अधीन शतद्रुनदीतीरस्थ एक देशीय राज्य। यह अक्षा० ३०° ८´से ३०° ४२´ उ० और देशा० ७४° ५०´ से ७६° २४´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ८६६ वर्गमील है। वर्त्तमान राजवंश सिन्धुदेशीय जाटवंशसम्भूत फुलके प्रथमपुत्र तिलकसे उत्पन्न है। तिलकने नाभा राज्यमें एक ग्राम बसाया। झिन्दके राजा भी एक ही वंशके हैं और पटियालाके राजा फुलके द्वितीय पुत्र रामसे उत्पन्न हुए हैं। उपर्युक्त तीन वंश ही इसी कारण 'फुलकियन' वंश नामसे प्रसिद्ध हैं। पञ्जाबके गौरवसूर्य रणजितसिंह जब यमुनाके उत्तरांशमें अपनी गोटी जमानेके फिक्रमें थे, तब नाभाके राजाने अङ्गरेजोंसे सहायता मांगी थी। तदनुसार १८०८ ई०के मई मासमें उक्त राज्य ब्रुटिश शासनाधीन हुआ। ब्रुटिश गवर्नमेण्टके एकान्त अनुरक्त राजा यशोवन्तसिंहकी मृत्युके बाद उनके पुत्र राजा देवेन्द्रसिंह राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हुए। किन्तु सिख-युद्धके समय वे अङ्गरेजोंके विरुद्ध हो गए थे, इस कारण ब्रुटिश सरकारने उन्हें वार्षिक ५००००) की वृत्ति दे कर पदच्युत कर दिया और उनके लड़के भरपुरसिंहको सिंहासन पर बिठाया। ये अङ्गरेजोंके अत्यन्त विश्वस्त थे और सिपाही-विद्रोहके समय उन्होंने खाद्य और सैन द्वारा उनकी खासी सहायता पहुँचाई थी। इस कारण अङ्गरेज-गवर्नमेण्टने सन्तुष्ट हो कर उन्हें जजझार राज्य प्रदान किया था जिसकी वार्षिक आय १०६०००) रु० की थी। पीछे उन्होंने जाजपुर जिलेके अन्तर्गत कनोद और बड़वाना परगनेके कुछ अंश ८५०५००) रु० नजर दे कर गवर्नमेण्टसे ग्रहण किए। १८६३ ई०में उनकी मृत्यु हुई। बादमें उनके भाई भगवानसिंह राजा हुए। उनके कोई सन्तान न थी, इस कारण १८७१ ई०में जब उनका देहान्त हुआ, तब १८६० ई०५ मईकी सनदके मर्मानुसार झिन्दके जागीरदार हीरासिंह

राजपद पर निर्वाचित हुए। इनका जन्म १८८३ ई०में. हुआ था। हीरासिंहको मृत्युके बाद रिपुदमनसिंह राजसिंहासन पर बैठे। आज कल ये ही यहांके राजा हैं। इनका पूरा नाम है—एच० एच० राज-राजन श्रीमहाराजा रिपुदमनसिंहजी मालव ब्रारवंश सरमोर, मालवेन्द्र बहादुर; एफ० आर० जी० एस० एम० आर० ए० एस०। इन्हें पन्द्रह तोपोंको सलामो मिलतो है।

नाभा राज्यमें ४ शहर और ४८८ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या तोन लाखके लगभग है। यहांको प्रधान उपज गेहूं, चना, बाजरा, ज्वार और ईख है। विचार कार्य राजा स्वयं करते हैं। उनको मददमें एक सभा है जिसमें ३ सदस्य रहते हैं। वनविभाग, सैन्यविभाग तथा डाकघर आदिको देख रेख करनेके लिये पृथक् पृथक् कर्मचारी हैं। राज्यमें १५० अश्वारोही ७० पदाति, ४० गोलन्दाज और ८०० पुलिस हैं। इसके सिवा पांच सौसे ज्यादा चौकीदार हैं जो रातको गांवोंमें पहरा देते हैं।

राज्य भरमें हाई स्कूल, मिडिल स्कूल तथा एङ्गलो वर्णाक्युलर स्कूल है। बावलमें जो मिडिल स्कूल है उसमें सिख-लड़कोंको छोड़ कर अन्य श्रेणीके लड़कोंको भर्त्ती करनेमें राजासे परामर्श लेना पड़ता है। यहां एक जेल भो है जिसमें केवल १०० कैदो रखे जाते हैं। शिक्षाविभागमें राजाको ओरसे १००००) रु० मिलते हैं।

२ उक्त राज्यका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० ३०´ २३´ उ० और देशा० ७६´ १०´ पू०में अवस्थित है जनसंख्या बीस हजारके लगभग है। राजा हमीरसिंहने १७५५ ई०में इस नगरको बसाया। यह शहर चारों ओर दीवारसे घिरा है जिसमें छः फाटक लगे हुए हैं। शहरके मध्यमें एक किला है और शामबागमें मृत-राजाओंके कीर्त्तिस्तम्भ नगरको शोभा बढ़ाते हैं। शहरके बाहर पुष्प उद्यानमें राजाके प्रासाद बने हुए हैं। चीनी, जौ, गेहूं और तमाकू यहां खूब उपजता है। शहरमें दो हाई स्कूल और लान्सडोन नामक अस्पताल है।

नाभा—नाभादास देखो।

नाभाक (सं॰ पु॰) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

नाभाग (सं॰ पु॰) १ वैवस्वत मुनिके एक पुत्रका नाम (हरिवंश १० अ०) २ सूर्यवंशीय ययाति राजाके एक पुत्रका नाम। इनके पुत्रका नाम अज था। ३ भगीरथ-नन्दन श्रुतके पुत्रका नाम। मत्स्यपुराणमें इन्हें भगीरथका पुत्र बतलाया है।

नाभाग—महाराज दिष्टके पुत्रका नाम। इनका विषय मार्कण्डेयपुराणमें इस प्रकार लिखा है—कश्यपके सात पुत्र थे जो सबके सब काश्यप नामसे प्रसिद्ध हुए। इनमेंसे दिष्टका पुत्र नाभाग था। युवावस्थामें कदम रखनेके साथ हो ये एक दिन अन्यन्त रूपवती किसो वैश्यतनयाको देख अत्यन्त कामातुर हो गये। पीछे स्वयं लड़कोके पिताके पास जा कर इन्होंने लड़कीके लिये प्रार्थना की। इस पर कन्याके पिताने हाथ जोड़ कर कहा, 'आप राजा हैं, हम एक दास हैं। विशेषतः आप वरदाता हैं, हम कभी भी आपको बराबरी नहीं कर सकते। यदि आप इस कन्याका पाणिग्रहण करनेमें विशेष उत्सुक हैं, तो अपने पितासे अनुमति ले कर विवाह कर सकते हैं।' इस पर नाभागने कहा, 'गुरुजनके समीप ऐसी इच्छा प्रकट करना सर्वदा युक्तिविरुद्ध है।' कन्याका पिता बोला, 'यदि आप कहनेसे संकुचते हैं, तब मैं ही स्वयं जा कर राजासे निवेदन कर आता हूं।' इतना कह कर वह राजाके पास गया और सारा हाल कह सुनाया। पुत्रको अभिलाषा देख कर दिष्टने ऋषियोंसे इस विषयमें सलाह लो और तदनुसार ऋषियों द्वारा यह कहला भेजा कि, 'पहले क्षत्रिय-पत्नीका पाणिग्रहण कर पोछे इसे ग्रहण करनेमें कोई दोष नहीं होगा।' नाभाग इस पर राजो न हो उसी समय घरसे बाहर निकल आये। यहां कन्यासे विवाह कर उन्होंने घोषणा कर दो 'जिसमें शक्ति हो, वह मुझसे आकर युद्ध करे।' इधर कन्याके पिताने दिष्टको शरण ली। महाराज दिष्ट धर्मदूषक पुत्रका वध करनेके लिये दलबलके साथ वहां गये। पिता पुत्रमें तुमुल संग्राम छिड़ गया। पुत्रने पिताको शस्त्र और अस्त्र द्वारा पतिक्रम किया। इसी समय परिव्राट् मुनिने अन्तरोक्षसे आ कर युद्धको शान्त किया। नाभाग वैश्यकन्यासे विवाह कर वैश्यत्वको प्राप्त हुए। वे कृषि, पशुपालन और वाणिज्यादि द्वारा

जीविका निर्वाह करने लगी। कुछ समय बाद इन्हें भल-न्दन नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसे माताने 'तुम पृथिवीपाल हो' ऐसा कहा।

नाभाग वैश्यकन्याका पाणिग्रहण कर वैश्यत्वको प्राप्त हुए थे। भृगुवंशीय प्रमतिके शापसे राजा नल वैश्यत्वको प्राप्त हुए थे, पीछे प्रमतिने प्रसन्न हो कर इनसे कहा था 'यदि कोई क्षत्रिय तुम्हारी कन्याका बलपूर्वक पाणिग्रहण कर ले, तो तुम फिर क्षत्रिय हो सकते हो।' नाभागने इस वृत्तान्तसे अवगत हो कर पुनः क्षत्रियत्वको प्राप्त किया था। उनके पुत्र भलन्दन राज्याधिकारी ठहराये गये थे।

(मार्कण्डेयपु० ११३-११५ अ०)

नाभागारिष्ट (सं० पु०) वैवस्वतमुनिके एक पुत्रका नाम।

नाभादास (नाभाजी)—भक्तमालके रचयिता प्रसिद्ध वैष्णव कवि। कृष्णदास पयहारी वल्लभाचार्यके शिष्य थे; नाभादास उन्हींके प्रशिष्य और अगरदासके शिष्य थे। इनका दूसरा नाम था नारायण दास। दाक्षिणात्यमें लगभग १६०० ई०को एक डोमके घर इनका जन्म हुआ था। प्रवाद है, कि ये आजन्म अन्धे थे। जिस समय इनकी उम्र पांच वर्षकी थी, उस समय भारी अकाल पड़ा था और इनके मातापिता इन्हें एक जङ्गलमें छोड़ आये थे। दैवात् उसी समय अगरदास और कील नामक दो वैष्णव इस निराश्रय बालककी ऐसी अवस्था देख विचलित हो गए। कीलके अपने कमण्डलुसे जल ले कर इनकी आंखों पर छिड़कनेसे ही इनके दोनों निमो-लित नेत्र प्रस्फुटित हुए। बाद वे अपनी कुटी पर इन्हें ले गए। यथासमय इन्होंने अगरदाससे दीक्षा ग्रहण की। अधिक उम्र होने पर, अगरदासके यत्नसे ही इन्होंने १०८ छप्पय श्लोकोंमें 'भक्तमाल' नामक साधु-जीवनी प्रकाश की। यह अपूर्व ग्रन्थ कठिन व्रजभाषामें लिखा हुआ है। इनके शिष्य नारायणदासने (शाहजहान्-के राजत्वकालमें) उसे पुनः सरल कर प्रकाश किया था; किन्तु जनसाधारण इस कठिन पुस्तकको भलीभांति समझ नहीं सकते थे। प्रियदासने 'कवित्त' छन्दमें, कविलाग्राम-निवासी लाला जी नामक एक कायस्थने (१७५१ ई०में) 'भक्त-उर्वशी' नामक टीका और बाद १८५४ ई०में तुलसीराम अगरवालाने 'भक्तमालप्रदीपन' नामक ग्रन्थ भक्तमालका उर्दूमें अनुवाद कर प्रकाशित किया। गौड़ीय वैष्णवोंके निकट भक्तमालका विशेष आदर हुआ था। इस पुस्तकके सङ्कलनमें उन्हें कड़तोड़ मिहनत करनी पड़ी थी।

नाभानेदिष्ट (सं० पु०) वैवस्वत मुनिके पुत्र और सूक्तमन्त्र-द्रष्टा एक ऋषि। (ऐतरे ब्राह्मण ५।१४)

नाभारत (हिं० स्त्री०) वह भौंरी जो घोड़ेकी नाभिके नीचे हो। इस प्रकारका घोड़ा ऐबी समझा जाता है।

नाभि (सं० पु०) नह्यते बध्नाति विपक्षादीनिति नह बन्धे नह-इञ् भश्चान्तादेशः (नहोभश्च। उण् ४।१२५) १ मुख्य-नृप, प्रधान राजा। २ चक्रमध्य, पहिएका मध्यभाग, नाह। ३ क्षत्रिय। ४ प्रियव्रतराजाके पौत्र। ५ गोत्र। ६ व्यक्ति या वस्तु। ७ महादेव। (पु० स्त्री०) ८ प्राण्यङ्ग, ढोंढ़ी, धुन्नी। पर्याय—नाभी, तुन्दकूपी, उदरावर्त्त, तुन्दिका, तुण्डी, तुन्दकूपिका, तुन्दि।

विष्णुके नाभिदेशसे कमलज ब्रह्मा उत्पन्न हुए थे। गर्भस्थ बालकके सातवें मासमें नाभि निकलती है। नाभिमें मणिपुर नामक शतदल पद्म है।

तन्त्रमें लिखा है, कि नाभिदेशमें मणिपुर नामक पद्म है। यह पद्म महाप्रभायुक्त है, मेघ और विद्युत्के समान आभायुक्त तथा बहुत तेजोमय है। उस पद्ममें दश पत्र हैं जिनमें ड से फ तक दश अक्षर हैं। महादेव विश्व-दर्शनके लिये उस पद्ममें अधिष्ठित हैं।

८ अग्नीध्रके पुत्र। भागवतमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—

अग्नीध्रके औरस और पूर्वचित्तिके गर्भसे नौ पुत्र उत्पन्न हुए। इनमेंसे नाभि बड़ा था। अग्नीध्रकी मृत्युके बाद नाभिने मेरुतनया मेरु देवीका पाणिग्रहण किया। पीछे ये पुत्रकी कामनासे मेरुदेवीके साथ एकाग्रचित्त हो भगवान्के उद्देशसे यज्ञ करने लगे। भगवान् इस यज्ञसे नितान्त प्रसन्न हो चतुर्भुज मूर्त्तिमें आविर्भूत हुए। ऋत्विकगण भगवान्को चतुर्भुज मूर्त्तिमें अवतीर्ण होते देख नाना प्रकारके स्तव करने लगे। बाद नाभिने, 'आपके सदृश हमें एक पुत्र मिले' यही वर उनसे मांगा।

भगवान्ने ऋत्विकोंसे कहा, "तुमने जो वर मांगा

है, वह नितान्त सुलभ नहीं है। राजाके हमारे सदृश एक पुत्र हो, यही तुम लोगोंकी प्रार्थना है। किन्तु मेरा द्वितीय नहीं है, मैं ही अपना द्वितीय हूं। अतः किस प्रकार राजाके मेरे सदृश पुत्र होगा? जो कुछ हो, ब्राह्मणका वाक्य मिथ्या होना उचित नहीं। क्योंकि ब्राह्मण देवतुल्य और मेरे मुखस्वरूप हैं। जब मेरा द्वितीय नहीं, तब मैं ही स्वयं नाभिकी सन्तान हो कर अवतीर्ण होऊंगा।" यह वर दे कर भगवान् अन्तर्हित हो गये।

कालक्रमसे मेरुदेवी गर्भवती हुईं। यथासमय उनके गर्भसे भगवान् शुक्लमूर्त्ति ऋषभरूपमें अवतीर्ण हुए। यह पुत्र उत्पन्न हो कर तेज, प्रभाव, शक्ति, उत्साह, कान्ति और यश आदि गुणोंमें सर्वप्रधान हुए। इस प्रकार सर्वश्रेष्ठ होनेके कारण नाभिने इसका नाम ऋषभ रखा। नाभि यथासमय ऋषभदेवको राजसिंहासन पर अभिषिक्त कर आप महिषी मेरुदेवीके साथ बदरिकाश्रमको चल दिये और वहां नरनारायणके उद्देश्यसे कठोर तपस्या करने लगे। (भागवत ५।२४ अ०)

नाभिके उद्देशसे महर्षिगण दो श्लोकोंका पाठ किया करते थे—

'राजर्षि नाभिके सदृश कोई भी कर्म नहीं कर सकता। जिस कर्मसे भगवान् स्वयं उनके पुत्रके रूपमें आविर्भूत हुए थे, वह कर्म मनुष्यमात्रका असाध्य है। नाभिको छोड़ कर ब्रह्मतेजःसम्पन्न वैसा कौन है जिसके यज्ञमें पूजित हो कर ब्राह्मणोंने मन्त्रबलसे यज्ञेश्वर भगवान्‌को दिखाया था?" (स्त्री०) १० कस्तूरिकामद।

नाभिकण्टक (सं० पु०) नाभेः कण्टक इव। आवर्त्त, निकली हुई तुन्दी या ढोंढी।

नाभिकपुर (सं० क्ली०) उत्तरकुरुस्थित एक नगर।

नाभिका (सं० स्त्री०) नाभिरिव कायतीति नाभि-कै-क-टाप्। कटभीवृक्ष।

नाभिगुड़क (सं० पु०) नाभिका आवर्त्तभेद, तुन्दीका उभरा अंश।

नाभिगुप्त (सं० पु०) प्रियव्रत राजाके पौत्र जिनके नाम पर कुशद्वीपके बीच एक वर्ष हुआ। (भाग० ५।२०।१५)

नाभिगोलक (सं० पु०) नाभिका आवर्त्तविशेष, तुन्दीका उभरा अंश।

नाभिच्छेदन (सं० पु०) बालकके उत्पन्न बच्चेके नाल काटनेकी क्रिया।

नाभिज (सं० पु०) नाभौ विष्णोर्नाभौ जायते जन-ड। चतुर्मुख ब्रह्मा। विष्णुकी नाभिसे ब्रह्माकी उत्पत्ति है।

नाभिनाड़ी (सं० स्त्री०) नाभेर्नाड़ी ६-तत्। नाभिमें स्थित नाड़ीभेद, नाभिकी नाड़ी जो गर्भकालमें माताकी रसवहा नाड़ीसे जुड़ी रहती है।

नाभिनाल (सं० क्ली०) नाभिस्थितं नालम्। नाभिस्थित नाल।

नाभिनाला (सं० स्त्री०) नाभिस्थिता नाला। नाभी-सम्बन्धी नाड़ी। इसका पर्याय—अमला है।

नाभिपाक (सं० पु०) बालरोगभेद, बालकोंका एक रोग जिससे नाभिमें घाव हो जाता और वह पक जाती है। हरिद्रा, लोध, प्रियङ्गु और यष्टिमधुके साथ सिद्ध तैल अथवा उनका चूर्ण नाभि पर लगानेसे वह रोग बहुत जल्द आराम हो जाता है।

नाभिभू (सं० पु०) नाभौ भूरुत्पत्तिर्यस्य। ब्रह्मा।

नाभिल (सं० त्रि०) दीर्घनाभियुक्त, उभरी हुई नाभिवाला, निकली हुई तुंदीवाला।

नाभिवर्द्धन (सं० क्ली०) नाभेस्तत्स्थनाड्या वर्द्धनं छेदनम्। नाड़ीछेदन, नाल काटनेकी क्रिया।

नाभिवर्ष (सं० पु०) नाभेराग्नीध्रपुत्रस्य वर्षः। जम्बूद्वीपके नौ वर्षोंमेंसे एक भारतवर्ष। आग्नीध्र राजाने अपने नौ पुत्रोंको जम्बूद्वीपके नौ खण्ड दिए। नाभिको जो खण्ड मिला उसका नाम नाभिवर्ष हुआ। अनन्तर नाभिके पौत्र भरतके नाम पर वह भारतवर्ष कहा जाने लगा।

नाभिशोथ (सं० पु०) बालरोगभेद। बालकोंकी नाभिमें यदि सूजन पड़ जाय, तो एक खण्ड मट्टीको आगमें गरम कर उसे दूधमें बार बार डुबोते हैं और सूजन स्थान पर सेंक देते हैं। ऐसा करनेसे नाभिकी सूजन जाती रहती है। (भैषज्यर० बालरोग)

नाभिसम्बन्ध (सं० पु०) नाभेरेकत्र गर्भजातत्वात् सम्बन्धः। गोत्रसम्बन्ध।

नाभी (सं० स्त्री०) नाभि-बाहुलकात् ङीष्। नाभि देखो।

नाभील (सं० क्ली०) नाभीं लाति ला-क। १ नारियोंका

वङ्क्षण, स्त्रियोंको कटिके नोचेका भाग। २ नाभोगाम्भोर्य, नाभिको गहराई, नाभिका गड्ढा। ३ कष्ट, कष्ट। ४ गर्भाण्ड, तुंदीका उभरा अंश।

नाभ्य (सं० त्रि०) नाभेरिदमिति नाभि-यत्। १ नाभिसम्बन्धी। (पु०) २ महादेव, शिव।

नामंजूर (फा० वि०) अस्वीकृत, जो मंजूर न हो, जो माना न गया हो।

नाम (सं० अव्य०) नामयतीति नामतेऽनेन वा नम-णिच् बाहुलकात् ड। १ प्रकाश्य। २ सम्भावना ३ क्रोध। ४ उपगम। ५ कुत्सन। ६ विस्मय। ७ स्मरण। ८ विकल्प। ९ विभक्तिहीन शब्दको नाम, लिङ्ग, वा प्रातिपदिक कहते हैं। यह नाम पांच प्रकारका है—उणाद्यन्त, कृदन्त, तद्धितान्त, समासज और शब्दानुकरण। १० कृष्ण, देवदत्त प्रभृति शब्द। जिससे एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिसे पृथक् किया जाता है, वह उस व्यक्तिविशेषका नाम है। शास्त्रमें लिखा है, कि अपना नाम, गुरुका नाम, कृपणका नाम, ज्येष्ठपुत्र और कलत्रका नाम मरते समय भी न लेना चाहिए। ११ अलीक।

नाम (हिं० पु०) १ वह शब्द जिससे किसी वस्तु, व्यक्ति या समूहका बोध हो, किसी वस्तु या व्यक्तिका निर्देश करनेवाला शब्द। २ प्रसिद्धि, अच्छा नाम, सुनाम।

नाम—दक्षिणप्रदेशमें हिन्दू लोग कपालमें जो तिलक वा चिह्न लगाते हैं, उसे 'नामन्' वा 'नाम' कहते हैं। वैष्णवजाति भी जो कपालमें तिकोना चिह्न धारण करती है, वह भी 'नाम' कहलाता है। कोई कोई साधु कई एक खड़ी रेखाएं कपालमें खींचते हैं और उनके बीच बीचमें बिन्दु वा गोलाकार चिह्न रख देते हैं। कुछ ऐसे साधु हैं जो चक्राकार, त्रिभुजाकार, ढालके जैसा हलसूची, छत्रपिण्ड आकृति तथा दूसरे प्रकारका चिह्न धारण करते हैं। इसका सूक्ष्म अंश नीचेकी ओर झुका रहता है जिसे तिरुनाम वा पवित्र नाम कहते हैं। यह तिलकचिह्न त्रिशूलका प्रतिरूप स्वरूप है जो तीन रेखाओंसे बना होता है। इसके मध्यकी रेखा लोहित और दोनों पार्श्वकी रेखा श्वेतवर्णविशिष्ट होती है। यह चिह्न लगानेके लिये जिस मट्टीका व्यवहार होता है उसका नाम भी 'नाम' है। विशेष विवरण तिलकमें देखो।

नामक (सं० त्रि०) नामसे प्रसिद्ध, नाम धारण करनेवाला।

नामकरण (सं० क्लो०) नाम्नः करणं यत्र। संस्कारविशेष, दश प्रकारके संस्कारोंमेंसे एक।

इसका विषय स्मृतिमें इस प्रकार लिखा है,—

जातबालकका ग्यारहवें वा बारहवें दिनमें नामकरण करना चाहिए। ग्यारहवें दिनके नामकरणको ही उत्तम बतलाया है। ग्यारहवें दिनमें यदि नामकरण न कर सकें, तो बारहवें दिनमें कर सकते हैं।

गर्भाधानसे अन्त्येष्टिक्रिया तक जितने संस्कार हैं, उनमेंसे नामकरण पञ्चम संस्कार है। जातकर्मके बाद यह नामकरण करना होता है। समर्थ व्यक्ति ग्यारहवें दिनका परित्याग कर बारहवें दिनमें नामकरण नहीं कर सकते। गोभिल-गृह्यसूत्रके मतसे जननसे ग्यारहवें दिनमें, शतरात्रमें वा संवत्सरमें नामकरण करना होता है। इसके सिवा जो दूसरा दूसरा समय बतलाया गया है, वह केवल असमर्थ व्यक्तियोंके लिये है न कि समर्थके लिये। समर्थ व्यक्तियोंको मुख्य समयका कदापि उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। नामकरणमें ग्यारहवां दिन ही मुख्य समय है और बारहवां आदि दिन गौण। क्षत्रिय और वैश्यादिके नामकरणका काल इस प्रकार है। क्षत्रियोंके लिये तेरहवां दिन, वैश्योंके लिए सोलहवां दिन और शूद्रोंके लिये बीसवां दिन नामकरणके लिए प्रशस्त है। नामकरण पिताका ही कर्त्तव्य है। पिता यदि विदेशमें रहें, तो वहांसे लौट कर उन्हें नामकरण करना चाहिये। पिताके नहीं रहने पर अन्य कोई कुलवृद्ध नामकरण कर सकते हैं। शतपद-चक्रानुसार नामकरण करना होता है।

गोभिल-गृह्यसूत्रमें नामकरणप्रणाली इस प्रकार लिखी है,—

कुमारको शुभ्रवसन पहना कर माता वामभागमें उपविष्ट हो पिताके हाथमें उसे दे दे। पीछे पत्नी पृष्ठदेशसे पतिकी परिक्रमा कर उसके सामने खड़ी हो जावे। पति यथाविधि वेदमन्त्रका पाठ कर पत्नीके हाथ

कुमारको प्रत्यर्पण करे। बाद होमादिका अनुष्ठान कर नामकरण विधेय है। *

नामकरणपद्धतिके अनुसार इस प्रकार नामकरण करना चाहिए। नामकरणके दिनमें पिता प्रातःकृत्यादि करके विवाह-पद्धतिके अनुसार गौर्यादि षोड़शमातृका और वृद्धिश्राद्ध करे। बाद पत्नीको अपने वामभागमें बिठा कर शिलाफलकमें दो रेखा अङ्कित करे और उसमें उज्ज्वल दीप प्रज्वलित कर कुमारके दक्षिण कर्णमें 'श्री अमुक देवशर्मासि' तथा कन्या होने पर वामकर्णमें 'श्री अमुकी देव्यसि' कह कर नाम रखे। तदनन्तर शान्तिजल द्वारा कुमारको अभिषेचन करके अच्छिद्राव धारण करे। नामकरणमें ककारादिवर्गका प्रथम, द्वितीय अथवा चतुर्थ-वर्ण नामके आदिमें और विसर्गान्त अथवा दीर्घस्वरका अन्तमें रहना विधेय है। इनमेंसे प्रतिष्ठाकामी व्यक्तिको दो अक्षरका और ब्रह्मज्ञानकामीको चार अक्षरका नाम रखना चाहिए। पुरुषके नाममें यदि युक्ताक्षर रहे, तो कोई हर्ज नहीं, किन्तु कन्याके नामके आदिमें युक्ताक्षर नहीं रहना चाहिए। इनके नामके अन्तमें 'दा' का रहना अच्छा है। जैसे—सुखदा, वसुदा, यशोदा इत्यादि।

पारस्कर-गृह्यसूत्रके मतसे पुरुषका नाम तद्धितान्त होना अच्छा नहीं। किन्तु स्त्रीका नाम यदि तद्धितान्त हो, तो कोई दोष नहीं। यथा—गान्धारी, कैकेयी इत्यादि।

नामकरणमें ब्राह्मणका शर्मन् और देव, क्षत्रियका वर्मन् और त्राता, वैश्यका भूति और गुप्त तथा शूद्रका दास अन्तमें रहे और सबोंके पहले 'श्री' शब्द रह सकता है। कालक्रमसे नामकरण संस्कारमें बहुत हेर फेर हो गया है। आजकल जातबालकका ग्यारहवें अथवा बारहवें दिनमें नामकरण संस्कार प्रायः नहीं देखा जाता है। दाक्षिणात्यमें वरं यह नियम बहुत कुछ प्रतिपालित होता है। फिलहाल अन्नप्राशनके समयमें ही नामकरण-संस्कार होते देखा जाता है।

नामकरणके लिये निम्नलिखित नक्षत्र कहे गए हैं, यथा—अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, उत्तरफल्गुनी, स्वाति, अनुराधा, उत्तराषाढ़ा, श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तरभाद्रपद और रेवती। जिस लग्नके प्रथम, चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थानमें शुभग्रह रहे, उस लग्न-में नामकरण प्रशस्त है। (ज्योतिःसारस०)

* "एकादशे द्वादशेवाऽहनि पिता नामकुर्यादिति" श्रुति। एकादश इति। मुख्यकल्पः, "इतरथैव लोपायोगात्।"

गोभिलः—

"जननाद्दशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे संवत्सरे वा नामधेय-करणमिति।" (ज्योतिस्तत्त्व)

"ततश्च नाम कुर्वीत पितैव दशमेऽहनि
देवपूर्वं नराख्यं हि शर्मवर्मादिसंयुतम्॥
शर्मा देवश्च विप्रस्य वर्मा त्राता च भूभुजः।
भूतिर्गुप्तश्च वैश्यस्य दासः शूद्रस्य कारयेत्॥"

गोभिलः—

अयुग्दान्तं स्त्रीणां। अयुग्माक्षरे दान्तं यथा यशोदा इत्यादि।

"देवं गुरुं गुरुस्थानं क्षेत्रं क्षेत्राधिदेवताम्।
सिद्धं सिद्धाधिकारांश्च श्रीपूर्वं समुदीरयेत्॥"
(राघवभट्टकृत प्रयोगसार)

नामकर्म (सं० पु०) १ नामकरणसंस्कार। २ जैन-शास्त्रानुसार कर्मका वह भेद जिससे जीव गति और जाति आदि पर्यायोंका अनुभव करता है। नामकर्म ९३ प्रकारके माने गये हैं, जैसे नरकगति, तिर्यक्गति, द्वीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, अस्थिर, शुभ, अशुभ स्थावर, सूक्ष्म इत्यादि।

नामकल—१ मन्द्राजप्रदेशके अन्तर्गत सेलम जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० ११° १' से ११° २५' उ० और देशा० ७७° ५१' से ७८° ३०' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ७१५ वर्गमील और जनसंख्या ११३८८५ है। इसमें दो शहर और २५६ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० ११° १४' उ० और देशा० ७८° १०' पू०के मध्य अवस्थित है। जन-संख्या प्रायः ६८४३ है। यहां नामकल तालुकके प्रधान कर्मचारी और एक डिपटी कलक्टर रहते हैं। ३०० फुट ऊंचे पहाड़ पर यह नगर बसा हुआ है। एक समय यह हैदरअलीके अधिकारमें था। यहां नामगिरि अम्मन नामको एक प्रसिद्ध मन्दिर है। इसके सिवा और भी दो विद्यामन्दिर हैं। यहां एक हाई स्कूल है।

यहांका घी बहुत उत्कृष्ट होता है और दूसरे दूसरे देशों में भेजा जाता है।

नामकीर्त्तन (सं० पु०) ईश्वरके नामका जप या उच्चारण, भगवान्‌का भजन।

नामग्राम (सं० पु०) नाम और पता।

नामग्राह (सं० वि०) नामग्रहणकारि ग्रह-अण्। १ नाम ग्राहक। भावे घञ्। (पु०) २ नामग्रहण।

नामग्राहम् (सं० अव्य०) नाम-ग्रह-णमुल्। नामधारण कर।

नामजद (फा० वि०) १ जिसका नाम किसी बातके लिये निश्चित कर लिया गया हो या चुन लिया गया हो। २ प्रसिद्ध, मशहूर।

नामदार (फा० वि०) प्रसिद्ध, नामी।

नामदार खाँ—बेरारके अन्तर्गत इलीचपुरका एक शासनकर्त्ता, सलावत् खाँके पुत्र। पिताके मरने पर ये इलीचपुरके शासनकर्त्ता हुए। इन्होंने अपनी बुद्धिके बलसे इलीचपुरमें प्रायः दो लाख रुपये सम्पत्तिकी एक जागीर पाई थी। पीछे नवाबकी उपाधि धारण कर १८४३ ई०में इनका देहान्त हुआ। बादमें उनके लड़के इब्राहिम खाँ उनके पद पर अभिषिक्त हुए।

नामदेव—एक देवभक्त, वामदेवजीके दौहित्र। इनकी कथा भक्तमालमें इस प्रकार लिखी है। ये कृष्णके उपासक थे, इससे इनमें बाल्यावस्थासे ही कृष्णमें सच्ची भक्ति थी। वामदेव कुछ दिनोंके लिए बाहर गए और अपने दौहित्र नामदेवसे कृष्णकी प्रतिमाको प्रति दिन दूध चढ़ानेके लिए कहते गए। नामदेवने मूर्त्तिके आगे दूध रखा और पीनेकी प्रार्थना की। जब मूर्त्तिने दूध न पिया, तब नामदेव आत्महत्या करने पर उद्यत हुए। इस पर कृष्ण भगवान्‌ने प्रकट हो कर उनके हाथसे दूध ले कर पी लिया। नामदेव जब लौट कर आए, तब उन्हें यह व्यापार देख बड़ा आश्चर्य हुआ।

धीरे धीरे यह बात बादशाहके कानों तक पहुँची और उन्होंने नामदेवको बुला कर करामात दिखानेके लिये कहा। किन्तु नामदेवने स्वीकार नहीं किया। एक दिन संयोगवश एक गायका बछड़ा मर गया और वह उसके शोकमें बहुत व्याकुल हुई। इस समय राजाने नामदेवसे कहा, 'यह गाय अपने बच्चेके लिये रोती है, क्या इसके दुःखसे तुम्हें जरा भी दया नहीं आती।' इस पर नामदेवने उस बछड़ेको जिला दिया। किसी समय एक बनियेंने तुलादान कर्ममें उन्हें स्वर्णदान करनेकी इच्छासे बुलाया। नामदेवने तुलसीके एक पत्ते पर कृष्ण नाम लिख कर पलड़े पर रख दिया और तत्परिमित सोना देनेको कहा। बनियेके भण्डारमें जितने धनरत्न थे, सभी दिए गये, लेकिन यह पलड़ा नहीं उठा। इस पर कृष्णनाम-माहात्म्य देख कर वह बनिया उनसे कृष्णनाममें दीक्षित हुआ। एक समय नामदेव रङ्गनाथ ठाकुरके पिछवाड़ेमें बैठ कर हरिकीर्त्तन कर रहे थे। कहते हैं, कि उस समय रङ्गनाथ-मन्दिरका दरवाजा उसी ओर हो गया था। भक्तमालमें इस प्रकारकी अनेक अद्भुत घटनाओंका उल्लेख देखनेमें आता है।

नामदेव—महाराष्ट्रीय एक प्रसिद्ध भक्तकवि। इनके पिताका नाम दामाशेठी और माताका नाम गोनाई था। बहुत दिन तक उन्हें कोई सन्तान न होनेके कारण उन्होंने बिठोवा देवके निकट उपासना की थी। कहते हैं, कि दामाशेठी एक दिन सवेरे जब भीमा नदीमें स्नान कर घर लौट रहे थे, तब रास्तेमें उन्हें बारह वर्षका लड़का यही नामदेव मिला। घरमें ला कर बहुत यत्नपूर्वक वे नामदेवका भरण-पोषण करने लगे। नामदेव स्वयं कहा करते थे, कि वे अपनी माता गोनाईकी प्रथम सन्तान हैं। उनके पिता जातिके छिम्पि अर्थात् दर्जी थे। उनकी स्त्रीका नाम था रजाई।

बचपनसे ही नामदेव बिठोवाके मन्दिरमें आ कर उनकी उपासना किया करते थे। ये सांसारिक विषयों पर बिलकुल विरक्त रहते थे। तुलसीकी माला गलेमें डाल कर रात दिन बिठोवाके ध्यानमें मस्त रहते और ताली बजा बजा कर गान करते थे। कहते हैं, कि वर्त्तमान समयमें बिठोवाको प्रसन्न रखनेके लिए ढाल और करताल ले कर जो सङ्कीर्त्तनप्रथा आरम्भ हुई है तथा पण्ढरपुरमें बिठोवाके देवमन्दिरमें आषाढ़ और कार्त्तिक मासमें देवदर्शनके लिए जो यात्री आया करते हैं, वह नामदेवके समयसे ही आरम्भ हुआ है। उनकी मृत्यु कब हुई, मालूम नहीं। पर हाँ, अपने अभ्

ज्ञानदेवकी मृत्युके उपलक्षमें इन्होंने जो गाथा बनाई, उससे अनुमान किया जाता है, कि १३०० ई० तक ये विद्यमान थे। ज्ञानदेव देखो।

इनकी रची हुई कविताएँ अत्यन्त प्राञ्जलभाषामें लिखी हैं और कई जगह व्यङ्गोक्ति पूर्ण भी हैं। ये सभी कविताएं भक्तिपक्षमें लिखी गई हैं। महाराष्ट्रगण आज भी उन्हें आदरकी दृष्टिसे देखते हैं।

नामदेव नीलारि—जातिविशेष। ये लोग साधारणतः हुबली, करजगी, कोड़, नवलगुगु, रानीवेन्नूर और रण नामक स्थानोंमें रहते हैं। सूतेको नीले रङ्गमें रंगाना ही इनकी उपजीविका है। इन लोगोंकी उपाधि बगाड़े, बसमें, नदरी और पत्ती है। परिश्रमी होने पर भी ये लोग बड़े अपरिष्कार होते हैं। ये लोग सूता रंगा कर बाजारमें बेचते हैं। कोई कोई तो स्वयं अपने घरमें ही उन सूतोंसे कपड़ा बुनता है। हिन्दू-पर्वके दिन ये कोई काम काज नहीं करते। ये लोग धार्मिक होते, ब्राह्मणोंकी भक्ति करते और उन्हींसे पौरोहित्य कराते हैं। पण्ढरपुर और गोकर्ण नामक स्थान ही इनके प्रधान तीर्थ हैं। ये लोग अपने गुरुको नागनाथ कहते हैं जो इनके स्वजातीय होते हैं। धर्मोपदेश देनेके लिए वे नाना स्थानोंमें पर्यटन करते हैं, साथमें शिष्य भी रहते हैं। किन्तु वे कभी भी दूसरेको अपने धर्ममें लानेकी चेष्टा नहीं करते। इस जातिमें बाल्यविवाह, बहुविवाह और स्त्रीत्यागकी प्रथा प्रचलित है। किन्तु स्त्रियां स्वामीके जीवित रहते दूसरा विवाह नहीं कर सकती हैं। इनकी जातीय-एकता बहुत प्रबल है। सामाजिक झगड़ा पञ्चायतसे तय होता है। जो पञ्चायतके फैसलेको नहीं मानता, वह जातसे अलग कर दिया जाता है। ये लोग अपने लड़कोंको पाठशाला भेजते हैं सही, लेकिन वे पैतृकव्यवसायके सिवा और दूसरा कोई व्यवसाय नहीं करते।

नामदेव सिम्पी—महाराष्ट्रवासी एक श्रेणीका दर्जी। ये लोग प्रसिद्ध पण्ढरपुरस्थ बिठोवाके उपासक नामदेवको अपना आदि पुरुष मानते हैं। बम्बई प्रेसिडेन्सीमें प्रायः सब जगह इनका वास है। अहमदनगर जिलेके नामदेव सिम्पियोंमें साधारणतः पुरुष लोग अपने नामके साथ "शेट" शब्दका प्रयोग करते हैं।

इनकी वंशगत उपाधि अवसरे, बगड़े, बकरे, बारबार, बारटेक, बसाले, चोक, डेग़र इत्यादि हैं। एक उपाधिधारी लोगोंमें विवाह शादी नहीं होती। निजामराज्यके अन्तर्गत तुलजापुरकी देवी, नासिकके सप्तशृङ्ग, पूना जिलेके जेजुरी नामक स्थानोंके खण्डोवा और पण्ढरपुरके बिठोवा इनके उपास्य देवता हैं।

ये लोग प्रधानतः शाण्डिल्य और माहेन्द्र-गोत्रधारी होते हैं। इनका रंग काला है, शरीरकी गठन देखनेसे ही ये मजबूत मालूम पड़ते हैं। इनकी भाषा मराठी है।

ये लोग साधारणतः समूचा सिर मुँड़ा लेते हैं, केवल बीचमें कुछ बाल रहने देते हैं। पुरुष सामान्य कोट और चादरका व्यवहार करते हैं तथा स्त्रियां बढ़िया बढ़िया साड़ी और अङ्गरखा पहनती हैं। इनके पुरोहित सिर पर पगड़ी पहने रहते हैं।

ये लोग अत्यन्त परिश्रमी, परिष्कार, परिच्छन्नताप्रिय, मितव्ययी और अतिथिप्रिय होते हैं। लेकिन जुआचोरोंमें ये अव्वल दर्जेके हैं।

सुईका काम ही इनका पुरुषानुक्रमिक व्यवसाय है। कोई कोई नौकरी तथा मजदूरी करके अपना पेट पालता है। स्त्रियां घरकी काम करती हैं और पुरुषोंको सिलाईके काममें मदद भी देती हैं। ये लोग मराठी कुणवियोंकी अपेक्षा जातिमें कुछ हीन हैं। नामदेवकी तरह ये लोग भी वैष्णव सम्प्रदायभुक्त हैं। सब कोई गलेमें तुलसीकी माला पहनते हैं और प्रतिवर्ष आषाढ़ तथा कार्त्तिक मासमें पण्ढरपुरस्थ बिठोवाके दर्शनके लिये जाते हैं।

ये लोग हिन्दू-पर्वका ही पालन करते हैं और संयम उपवासादि भी किया करते हैं। भविष्यवाणी और जादूगरके ऊपर इनको पूरी श्रद्धा है और भूत प्रेतमें ये लोग विश्वास रखते हैं। बाल्यविवाह, बहुविवाह और विधवा-विवाहकी प्रथा खूब प्रचलित है। ये लोग सन्तानादि भूमिष्ठ होनेके बाद पञ्चमरात्रिमें षष्ठीदेवीकी चाँदीकी एक प्रतिमूर्त्ति बना कर पूजा करते हैं और पान, सुपारी, हल्दी, चन्दन, पांच प्रकारके फलका नैवेद्य लगाते हैं। उक्त देवीकी एक दूसरी प्रतिमूर्त्तिके मध्य एक तार छेद कर उसे नवजात शिशुके गलेमें लटका देते हैं।

सन्तान भूमिष्ठ होनेके बादसे तीन दिन तक मधु और रेंडीका तेल पानीमें मिला कर उसे पिलाते हैं, चौथे दिनमें माताका दूध पीने देते हैं। इस समय ये लोग १२ दिन तक अशौच मानते हैं। तेरहवें दिनमें षष्ठी माताके नामसे रास्ते पर फूल, पान, दही मिला हुआ चावल और उपवीत आदि पूजोपकरण द्वारा पांच शिला-की पूजा करते हैं। उसी दिन आत्मीय पड़ोसी आ कर बच्चेका नाम रखते हैं।

बालक दशसे बीस वर्षके भीतर और लड़कियां युवती होनेके पहले ब्याही जाती हैं। वर पक्षवाले पहले विवाहका प्रस्ताव करते हैं। विवाहके पहलेके दिन वरका पिता कन्याको एक साड़ी, एक कुर्त्ती और एक जोड़ा चाँदीका कँगना उपहार देता है और स्वजातीय लोगके सामने कन्याके कपालको सिन्दूरसे रंगा कर उसके हाथमें मिष्टान्न अर्पण करता है। बाद सबको पान सुपारी आदि बांट कर वरका पिता भोजन करता है। तदनन्तर वर और कन्याका पिता वरकन्याका जन्मपत्र ले कर गणकके पास जाता है और विवाहका शुभ दिन स्थिर करा लेता है। शुभ दिनमें जब कन्याको उबटन लग जाती है, तब उस उबटनमेंसे कुछ अंश ले कर वरको लगानेके लिए उसके घर भेज दिया जाता है। उसी दिन वरके यहांसे रोटी, दाल और गुड़ एक थालीमें रख कर कन्याके घर भेजा जाता है। बाद साधारण विवाह-प्रथाके अनुसार विवाहकार्य सम्पन्न होता है। विवाहके समय वर और कन्याकी माला हेरफेर नहीं होती। वरकी माता इस दिन कन्याके घर आ कर पुत्रवधूका मुखावलोकन करती है और उसे चीनी मिश्रित दूध पीनेको देती है। दूसरे दिन वर, बन्धुबान्धव अपनी जातीय प्रथाके अनुसार बाहर टहलने निकलते हैं, साथ साथ बाजा भी बजता है। बाद लौटने पर वर गरम जलसे नहवाया जाता है और गोद पर बिठा कर उसे पांच प्रकारके फल तथा अन्यान्य द्रव्य खानेको दिया जाता है।

ये लोग मृतदाह नहीं करते। इनकी जातीय एकता बहुत प्रबल है। सामाजिक विवादकी मीमांसा पञ्चा-यतसे होती है। जो पञ्चायतका नियम पालन नहीं करता, उसे अर्थदण्ड होता है। बार बार नियम भङ्ग करनेसे जातिच्युत होना पड़ता है। इनके लड़के विद्यालय तो जाते हैं, लेकिन अपना जातीय पेशाके सिवा दूसरा कोई पेशा नहीं करते।

धारवारके नामदेवसिम्पी दो भागोंमें विभक्त हैं। एक सम्प्रदायका नाम है 'नामदेवसिम्पी' और दूसरेका 'लिङ्गायत सिम्पी'। इनको आचार व्यवहारमें स्थानभेदसे फर्क पड़ता है। पूर्वोक्त सम्प्रदाय आश्विनमासमें नवरात्र पूजाके समय मद्य पीता और मांस खाता है।

शेषोक्त सम्प्रदायकी भाषा कनाड़ी है। पुरुष सोनेकी कनैठी पहनते हैं।

पूनाके सिम्पी अनेक भागोंमें विभक्त हैं। पर इनका आचार-व्यवहार बहुत कुछ एक दूसरेसे मिलता जुलता है।

नामद्वादशी (सं० स्त्री०) नाम्नः द्वादशी। व्रतविशेष। यह व्रत अगहन मासकी शुक्लतृतीया तिथिको किया जाता है। इस व्रतमें गौरी, काली, उमा, भद्रा, दुर्गा, कान्ति, सरस्वती, मङ्गला, वैष्णवी, लक्ष्मी, शिवा और नारायणी इन बारह देवताओंकी पूजा होती है। इस व्रतके करनेसे स्त्रियां सौभाग्यवती होती हैं।

"गौरी काली उमा भद्रा दुर्गा कान्ति सरस्वती।
मंगला वैष्णवी लक्ष्मी शिवा नारायणी क्रमात्॥
मार्गतृतीयामारभ्य पूर्णोक्तं लभते फलम्॥"
(देवीपुराण)

नामधन (सं० पु०) एक सङ्करराग। यह राग मल्लार, शंकराभरण, विलावल सूहे और केदारीके योगसे बना माना जाता है।

नामधराई (हिं० स्त्री०) अपकीर्त्ति, निन्दा, बदनामी।

नामधातु (सं० पु०) नाम पूर्वको धातुः। सुबन्त नामक प्रकृतिक प्रत्ययान्त धातुभेद। ये सब सुबन्तपद बादके प्रत्यय द्वारा जो धातु संज्ञा होते हैं, उसे नामधातु कहते हैं। यथा—पुत्रकाम्य, 'आत्मनः पुत्रमिच्छति,' पुत्र इस सुबन्तके उत्तर काम्य प्रत्यय हुआ। यहां पर पुत्रकाम्य नामधातु है। नामधातुके उत्तर भी धातुवत् सब कार्य होंगे। सुबन्तपदके उत्तर कोई प्रत्यय होनेसे ही नामधातु होगा, सो नहीं। निर्दिष्ट कुछ ऐसे सुबन्त

निमित्तक प्रत्यय होते हैं जिनको धातुसंज्ञा होती है। यह धातुसंज्ञक पद ही नामधातु है।

नामधाम (हिं० पु०) नाम और पता, नाम ग्राम, पता ठिकाना।

नामधारक (सं० त्रि०) नाममात्रं धरति न तदर्थं करोति धृ-ण्वुल्। नाममात्रधारक, केवल जिसी नामको धारण करनेवाला, नाममात्रका। जो सब ब्राह्मण वेदपाठ आदि अपने कर्म न करते हों, उन्हें नामधारक कहते हैं।

"अत ऊर्ध्वन्तु ये विप्राः केवलं नामधारकाः।
परिषत्त्वं न तेषां वै सहस्रगुणितेष्वपि॥
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
ब्राह्मणास्त्वनधीयानास्त्रयस्ते नामधारकाः॥"

(पराशर)

वेदादि पाठ नहीं करनेवाले ब्राह्मण, काष्ठनिर्मित हस्ती और चर्मनिर्मित मृग ये तीन केवल नामधारक हैं।

नामधारी (हिं० वि०) नामधारण करनेवाला, नामवाला, नामक।

नामधेय (सं० क्लो०) नामैव नामधेय (भागरूपनामभ्यो धेयः। पा ५।४।२५) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या धेयः। १ नाम शब्दार्थ, नाम। २ नामकरण। (त्रि०) ३ नामवाला, नामका।

नामन् (सं० क्लो०) म्नायते अभ्यस्यते यत् तत्, म्ना-अभ्यासे इति मनिन् (नामन् सीमन् व्योमन्निति। उण् ४।१५०) इति निपातनात् साधुः। १ संज्ञा। पर्याय—आख्या, आह्वा, अभिधान, नामधेय, आह्वान, लक्षण, व्यपदेश, आह्वय, संज्ञा, गोत्र, अभिख्या। २ प्रातिपदिकरूप शब्दभेद।

नाम और धातु यह दो प्रकारकी प्रकृति है। प्रातिपदिक नाम पदवाच्य है। इसके चार भेद हैं,—रूढ़, लक्षक, योगरूढ़ और यौगिक। सङ्केतयुक्त नाम रूढ़पदवाच्य है और इसीको संज्ञा कहते हैं।

यह संज्ञा निमित्तिकी, पारिभाषिकी और औपाधिकी है। यह नाम पांच प्रकारका है—उणाद्यन्त, कृदन्त, तद्धितान्त, समासज और शब्दानुकरण। प्रातिपदिक देखो।

कलिकालमें केवल परमेश्वरका नाम कीर्त्तन ही मुक्तिलाभका प्रधान उपाय है।

"हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥"

(विष्णुधर्म०)

३ उदक, जल, पानी।

नामनामिक (सं० पु०) नाम्नि नामः नमनः प्रह्वता अस्त्यस्य ठन्। परमेश्वर।

"जितमानसिक नामनामिक" (भारत शान्ति० ४० अ०)

नामनिक्षेप (सं० पु०) नामस्मरण।

नामनिशान (फा० पु०) चिह्न, पता, ठिकाना।

नामलेवा (हिं० पु०) विनय और भक्तिपूर्वक नाम स्मरण करनेवाला, नाम लेनेवाला, जपनेवाला।

नाममात्र (सं० त्रि०) नाम संज्ञैव मात्रा यस्य। स्ववीर्यहीन, संज्ञामात्रधारी। जो पहले धनी था, पीछे गरीब हो गया है उसे नाममात्र कहते हैं।

"यथा काकयवाः प्रोक्ता यथाऽरण्यभवास्तिलाः।
नाममात्रा न सिद्धौ हि धनहीनास्तथा नराः॥"

(पञ्चतन्त्र)

नाममाला (सं० स्त्री०) नाम्नः माला ६-तत्। कोषभेद।

नाममुद्रा (सं० स्त्री०) नामाक्षरस्य मुद्रा यत्र। अङ्गुलीयकभेद। अङ्गुलिमें अङ्कित नामाक्षर (Monogram)।

नामयज्ञ (सं० पु०) नाम मात्रेण यज्ञः नामप्रसिद्धये वा यज्ञः। यज्ञविशेष, वह यज्ञ जो केवल नाम या धूमधामके लिये किया जाय। मैं एक ऐसा यज्ञ कर रहा हूं, जैसा कोई दूसरा नहीं कर सकता, इस प्रकार नामके लिये जो यज्ञ किया जाता है, उसीका नाम यज्ञ है।

"आत्मसम्भाविताःस्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्॥"

(गीता १६।१७)

मैं कुलीन हूं, मेरे जैसा दूसरा कोई नहीं है, मैं यज्ञानुष्ठान करूंगा, दान करूंगा, आमोद करूंगा, इस प्रकार अज्ञानविमोहित और अहङ्कार बल, दर्प, काम, क्रोध और असूयापरवश हो कर दम्भके साथ अविधिपूर्वक जो यज्ञ किया जाता है, उसीका नाम नामयज्ञ है। जो

यज्ञ किसी शास्त्रके नियमानुसार नहीं होता, केवल धूम-धामसे किया जाता है, वह भी नामयज्ञ कहलाता है।

इस प्रकारके यज्ञमें कोई फल नहीं मिलता। फलतः जो यह यज्ञ करते हैं, वे अपने ही हाथसे नरकका दरवाजा खोल देते हैं। पीछे असुरयोनिमें उनका जन्म होता है। आत्मकल्याणकामीको नामयज्ञ नहीं करना चाहिये।

नामरूप (सं॰ पु॰) सबके आधारस्वरूप अगोचर वस्तुतत्त्वके परिवर्त्तनशील नानारूप या आकार जो इन्द्रियों को जान पड़ते हैं तथा उनके भिन्न भिन्न नाम जो भेदज्ञानके अनुसार रखे जाते हैं।

वेदान्तमें लिखा है, कि एक ही अगोचर नित्य तत्त्व है। जो अनेक रूप दिखाई देते हैं वे वास्तविक नहीं हैं। वे केवल रूपों या आकारोंके कारण हैं जो इन्द्रियों तथा मनके संस्कारमात्र हैं। समुद्र और तरङ्ग अथवा सुवर्ण और आभूषण दो पृथक् पृथक् नाम हैं। एकीकरण द्वारा आत्मा सुवर्ण और आभूषणमें अथवा समुद्र और तरङ्गमें साधारण गुणविशिष्ट एक ही वस्तु देखती है। सुवर्ण एक पदार्थ है, पर भिन्न भिन्न अवसरों पर बदलनेवाले आकारोंके जो संस्कार इन्द्रियों द्वारा मन पर होते हैं उनके कारण सुवर्णको ही कभी कड़ा, कभी कङ्कन, कभी अंगुठी आदि कहते हैं। इसी प्रकार जगत्के जितने दृश्य हैं, सब केवल नामरूपात्मक हैं। उनके भीतर वस्तुकी सत्ता छिपी हुई है। वेदान्तमें सर्वदा परिवर्त्तनशील नामरूपात्मकरूप दृश्य जगत्को 'मिथ्या' और 'नाशवान्' तथा नित्य वस्तुतत्त्वको सत्य वा अमृत कहते हैं।

नामर्द (फा॰ वि॰) १ नपुंसक, क्लीव। २ भीरु, डरपोक, कायर।

नामर्दी (फा॰ वि॰) नामर्द देखो।

नामर्दी (फा॰ स्त्री॰) १ नपुंसकता, क्लीवता। २ भीरुता, कायरपन, साहसका अभाव।

नामलिङ्ग (सं॰ क्ली॰) नाम च लिङ्गश्च ति नाम्नो वा लिङ्गम्। १ शब्द और लिङ्ग। २ शब्दका लिङ्गभेद, स्त्रीलिङ्ग, पुंलिङ्ग और क्लीवलिङ्ग।

नामलेवा (हिं॰ पु॰) १ नामस्मरण करनेवाला, नाम लेनेवाला। २ उत्तराधिकारी, सन्तति, वारिस, जैसे नामलेवा रहा न पानी-देवा।

नामवर (फा॰ वि॰) प्रसिद्ध, मशहूर, नामी।

नामवरी (फा॰ स्त्री॰) कीर्त्ति, प्रसिद्धि, शुहरत।

नामशेष (सं॰ त्रि॰) नाम्नः शेषो यस्य, नाम आख्या एव शेषो यस्येति वा। १ मृत, मरा हुआ। २ जिसका केवल नाम बाकी रह गया हो, जो न रह गया हो।

नामसंग्रह (सं॰ पु॰) नाम्नां शब्दभेदानां संग्रहः। सभी शब्दोंका संग्रह, अभिधान।

नामसत्य (हिं॰ पु॰) किसी व्यक्ति या वस्तुका ठीक ठीक नाम-कथन चाहे वह नाम उसकी अवस्था या गुणके अनुकूल न हो।

नामा (हिं॰ वि॰) १ नामधारी, नामवाला। (पु॰) २ नामदेव भक्त।

नामाकूल (फा॰ वि॰) १ अयोग्य, नालायक। २ अयुक्त, अनुचित।

नामाख्यातिक (सं॰ पु॰) नाम च आख्यातञ्च तयोर्व्याख्यानो ग्रन्थः नामाख्यात-ठञ्। नामाख्यात प्रतिपादक ग्रन्थका व्याख्यान ग्रन्थ।

नामाङ्क (सं॰ त्रि॰) नाम नामाक्षरमेव अङ्को यत्र। नामाक्षर द्वारा अङ्कित, जिस पर नाम लिखा या खुदा हो।

नामाङ्कित (सं॰ पु॰) जिस पर नाम लिखा या खुदा हो।

नामादेशम् (सं॰ अव्य॰) नाम आदिश नामन् आ-दिश-णमुल्। नाम लेना वा कहना।

नामानुशासन (सं॰ क्ली॰) अनुशिष्यते ऽर्थविशेषवत्तया ज्ञायतेऽनेन अनु-शास-करणे ल्युट्, नाम्न अनुशासनं। शब्दसमूहका अर्थविशेष ज्ञापक ग्रन्थ, अभिधान, कोष।

नामापराध (सं॰ पु॰) नाम्नि नामविषये अपराधः नाम्नः सकाशात् अपराधो वा। साधुनिन्दादिरूप दुरदृष्टजनक व्यापारविशेष।

पद्मपुराणमें लिखा है, कि साधुओंकी निन्दा, गुरुकी अवज्ञा, श्रुति और शास्त्रनिन्दन, हरिनाममें नानार्थवादकल्पन, देवता, गुरु, मातापिता और ब्राह्मणोंकी निन्दा तथा वैष्णवोंकी निन्दा ये सब नामापराध हैं। जो गो, अश्वत्थ, तुलसी, धात्री और राजाओंका निन्दा करते हैं,

वे नामापराधी होते हैं। तीर्थ स्थानकी भी निन्दा नहीं करनी चाहिये। गङ्गा, सरस्वती, श्रीमद्भागवत, महाभारत, गुरु, मन्त्र और महाप्रसाद इन सबकी भी निन्दा करनेसे नामापराधी होना पड़ता है। सज्जन मात्रकी ही निन्दा दोषावह है, साधुनिन्दा सर्वदा वर्जनीय है, करनेसे नामापराधी होना पड़ता है। जो वैष्णवोंकी सेवा नहीं करते, वे भी नामापराधी होते हैं। वैष्णवोंके प्रति शठता, विष्णु, गुरु, पिता और माता एवं ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेसे भारी दोष लगता है। (पाद्म: उ० १०३ अ०)

नामापराधिन् (सं० त्रि०) नामापराधोऽस्त्यस्येति इनि। नामापराधकृत्, जो नामापराध करते हैं। प्रमादवश नामापराध करनेसे नामकीर्त्तन करना चाहिए, इससे नामापराधकृत दोष जाता रहता है।

नामालूम (फा० वि०) अज्ञात, जो मालूम न हो।

नामावली (सं० स्त्री०) १ नामोंकी पंक्ति, नामोंकी सूची। २ वह कपड़ा जिस पर चारों ओर भगवान्‌का नाम छपा होता है और जिसे भक्त लोग ओढ़ते हैं, रामनामी।

नामिक (सं० त्रि०) १ नामसम्बन्धी। २ संज्ञासम्बन्धी।

नामित (सं० त्रि०) झुकाया हुआ।

नामिन् (सं० त्रि०) १ नतार्थ-बोधक। २ दन्त्यवर्ण स्थानमें मूर्द्धन्यादेश।

नामी (हिं० वि०) १ नामवाला, नामधारी। २ प्रसिद्ध, विख्यात, मशहूर।

नामीगिरामी (फा० वि०) प्रसिद्ध, विख्यात।

नामुनासिब (फा० वि०) अनुचित, अयोग्य, गैरवाजिब।

नामुमकिन (फा० वि०) असम्भव, जो कभी न हो सके।

नामूसी (अ० स्त्री०) अप्रतिष्ठा, बेइज्जती, बदनामी, निन्दा।

नामेहरबान (फा० वि०) अकृपालु, जो मेहरबान न हो।

नाम्ना (सं० त्रि०) नामवाला, नामधारी।

नाम्य (सं० त्रि०) झुकाने योग्य।

नाय (सं० पु०) नीयतेऽनेनेति नी करणे घञ् (श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे। पा ३।३।२४) १ नय, नीति। २ उपाय, युक्ति। ३ नेता, अगुआ।

नायक (सं० पु०) नयति प्रापयतीति नी-ण्वुल्। १ नेता, अगुआ। २ श्रेष्ठ पुरुष, जननायक। ३ हारमध्य मणि, मालाके बीचका नग। ४ अग्रेसरिक, सेनापति। ५ शृङ्गारसाधक, साहित्यमें शृङ्गारका आलम्बन या साधक रूपयौवन-सम्पन्न पुरुष अथवा वह पुरुष जिसका चरित्र किसी काव्य या नाटक आदिका मुख्य विषय हो। प्रथमत: यह नायक तीन प्रकारका है, पति, उपपति और वैशिक। विधिपूर्वक पाणिग्रहणकारीका नाम पति है। अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठके भेदसे पति चार प्रकारका है।

नायकके आठ सात्त्विक गुण हैं, यथा—स्वेद, स्तम्भ, रोमाञ्च, स्वरभङ्ग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रणय।

नायककी दश दशाएँ हैं—अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुणकीर्त्तन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और निधन।

साहित्यदर्पणमें लिखा है कि दानशील, ज्ञानी, सुश्री, रूपवान् युवक, कार्यकुशल, लोकरञ्जक, तेजस्वी, पण्डित और सुशील ऐसे पुरुषको नायक कहते हैं। नायक चार प्रकारके होते हैं—धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीरप्रशान्त। जो आत्मश्लाघारहित, क्षमाशील, गम्भीर, महाबलशाली, स्थिर और विनयसम्पन्न हो, उसे धीरोदात्त कहते हैं; जैसे राम, युधिष्ठिर आदि। मायावी, प्रचण्ड, अहङ्कार, दर्प और आत्मश्लाघायुक्त नायकको धीरोद्धत कहते हैं; जैसे भीमसेन। निश्चिन्त, मृदु और नृत्य-गीतादिप्रिय नायकको धीरललित कहते हैं। त्यागी और ज्ञानीनायक धीरप्रशान्त कहलाता है। इन चारों प्रकारके नायकोंके फिर अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ ये चार-भेद किए गए हैं। धीरोदात्तादि सभी नायक चार चार प्रकारके हैं। जो सब स्त्रियों पर समान प्रीति रखता हो, उसे नायक; जो अपराध करने पर भी नहीं डरता, तिरस्कारसे भी नहीं लजाता, दोष दिखला देनेसे भी झूठ बोलना नहीं छोड़ता, उसे धृष्टनायक; जो एक ही विवाहिता स्त्री पर अनुरक्त रहता, उसे अनुकूल-नायक और जो बाहरसे तो प्रेम दिखाता और भीतरसे अन्याय करता है, उसे शठनायक कहते हैं। यह १६ प्रकारका नायक उत्तम, मध्यम और अधमके भेदसे तीन

प्रकारका है। कुल मिला कर ४८ प्रकारके नायक हैं। विट, चेट और विदूषक इत्यादि नायकके सहायक और नर्म सचिव हैं।

शोभा, विलास, माधुर्य, गाम्भीर्य, धैर्य, तेज, ललित और औदार्य ये आठ नायकके सत्त्वज गुण हैं। वीरत्व, कार्यकुशलता, सत्य, महोत्साह, नीचोंके प्रति घृणा और स्पर्द्धा नायकके इन सब गुणोंका नाम शोभा है। विलासके समय दृष्टि, धीरगति, मनोहर और सस्मित वाक्यको विलास कहते हैं। विकारके कारण सत्त्वमें भी चित्तका उद्वेग नहीं होनेसे माधुर्य कहलाता है। भय, शोक, क्रोध और हर्षादिसे चित्तकी निर्विकारताका नाम धैर्य है। परकृत अधिक्षेप और अपमान प्रभृतिका प्राण जाने पर भी नहीं सहन करनेका नाम तेज है। वाक्य और वेशमें मधुरता और शृङ्गारचेष्टितका नाम ललित है। प्रियभाषण, दान और शत्रु के प्रति मित्रके समान व्यवहारका नाम औदार्य है। ६ सङ्गीतकलामें निपुण पुरुष, कलावन्त। ७ छन्दोभेद, एक वर्णवृत्तका नाम। ८ रागविशेष, एक राग जो दीपक रागका पुत्र माना जाता है।

नायक—हिन्दीके एक कवि। इनकी गणना उत्तम कवियोंमें होती थी। दिग्विजयभूषण नामक ग्रन्थमें इनके बनाये पद्य पाये जाते हैं।

नायकभट्ट—एक संस्कृत अलङ्कार ग्रन्थके रचयिता। अभिनवगुप्त आदि आलङ्कारिकोंने इनका उल्लेख किया है।

नायकवंश—दाक्षिणात्यके मध्यवर्त्ती मदुराका एक पराक्रान्त राजवंश। विजयनगरके सेनापति वा नायकसे इस वंशकी उत्पत्ति है, इसीसे इसके वंशधर "नायक" उपाधिसे भूषित हैं। १५५८ ई०में विजयनगरके सेनापति पाण्ड्यराज्यको जीत कर मदुरा राज्यमें शासन करते थे। इस वंशके स्वाधीनभावसे राजत्व करने पर भी वे लोग विजयनगरके राजाको अपना अधीश्वर मानते थे। इस वंशकी तालिका नीचे दी गई है—

१ विश्वनाथ नायक
(१५५८-१५६३ ई०)
|
२ कुमार कृष्णप्प
(१५६३-१५७३)
|
३ कृष्णप्प पेरिय (वीरप्प) — विश्वनाथ
(दोनोंने मिल कर १५७३-१५९५)
|
४ लिङ्गप्प वा कुमार कृष्णप्प — विश्वप्प (विश्वनाथ)
(दोनोंने मिल कर १५९५-१६०२)
|
५ मुत्तु कृष्णप्प
(१६०२-१६०९)
|
६ मुत्तु वीरप्प (१६०९-१६२३) — ७ तिरुमल नायक (१६२३-१६५९) — कुमारमुत्तु
|
८ मुत्तु अड़काद्रि (मुत्तु वीरप्प)
(१६५९-१६६०)
|
९ चोक्कनाथ (चोक्कलिङ्ग) — १० मुत्तु लिङ्ग
पत्नी मङ्गम्माल
(१६६०-१६८२)
|
११ रङ्गकृष्ण मुत्तु वीरप्प
(१६८२-१६८९)
|
१२ विजयरङ्ग चोक्कनाथ
(१७०४-१७३१)
महिषी मीनाक्षी
(१७३१-१७३६)

इस नायकवंशका आदि इतिहास उतना स्पष्ट नहीं है। १५५८ ई०में जब तीन नायक मदुराका शासन करते थे, उस समय वा उसके कुछ समय बाद चन्द्रशेखर नामक एक पाण्ड्यवंशीय राजकुमार मदुराके सिंहासन पर बैठे। इस समय तञ्जोरके चोलराज वीरशेखरने पाण्ड्यराज्य पर चढ़ाई कर दी। चन्द्रशेखर विजयनगरको भाग गये और वहांके राजाकी शरण ली। सदाशिव रायके पदाभिषिक्त रामराजने चोलोंको दमन करनेके लिये कोटिय-नागम-नायक नामक सेनापतिको भेजा। सेनापतिने मदुरा पर अधिकार जमा लिया, किन्तु वे पाण्ड्यराजको सिंहासन पर न बिठा कर खुदमें राजकार्य चलाने लगे। विजयनगराधिप रामराज इस पर बहुत बिगड़े और नागम नायकके पुत्र विश्वनाथको पिताके विरुद्ध भेजा। पिता पुत्रसे परास्त हुए। विश्वनाथ

चन्द्रशेखर पाण्ड्यको कठपुतली सरीखा सिंहासन पर बिठा कर स्वयं राज्य-शासन करने लगे। मदुरामें सुप्रसिद्ध सहस्रस्तम्भमण्डपके प्रतिष्ठाता आर्यनायक वा आर्यनाथने विद्रोहके समय विश्वनाथको काफी सहायता पहुंचाई थी। अभी वे ही विश्वनाथके प्रथम मन्त्री और प्रधान सेनापति बने। विश्वनाथने उन्हें "दलवाय"की उपाधिसे भूषित किया। इस समय मदुरा-राज्यमें चारों ओर शान्ति विराजती थी, नगरकी रक्षाके लिये चारों ओर दुर्ग बने थे, मन्दिरादि नगरकी शोभा बढ़ा रहे थे, कृषिकार्य त्रिशिरापल्ली तक विस्तृत था, उसके लिये स्थान स्थान पर खाई और नहर खुदी हुई थी। विश्वनाथने तञ्जोरराजको कह कर त्रिशिरापल्लीके बदलेमें वल्लमनगर ले लिया। इसके कुछ समय बाद आर्यनाथ तिन्नेवल्ली प्रदेशमें बन्दोबस्त करनेके लिये गये। वहां पञ्चपाण्डव नामक पराक्रान्त पांच सामन्तोंने आर्यनाथके विरुद्ध अस्त्र धारण किया। विश्वनाथ सेनापतिको सहायता पहुंचानेके लिये दलबलके साथ स्वयं वहां गये। किंवदन्ति है, कि उन पञ्चपाण्डवोंके वीर्यप्रभावसे शत्रुकी सेना तितर बितर हो गई। इस पर विश्वनाथने सामन्तोंको ललकार कर कहा, 'सैकड़ों योद्धाओंका रक्तपात करनेका क्या प्रयोजन? आवो, तुम लोग पाँच और हम अकेला युद्ध करें। जो परास्त होगा, उसीको यह देश छोड़ देना पड़ेगा।' इस पर पञ्चपाण्डव बोले, 'ऐसा नहीं, हममेंसे भी किसी एकको चुन कर युद्ध करो; उसकी हार होनेसे ही हम लोग अपनी हार समझेंगे।' अन्तमें जब विश्वनाथने उनमेंसे एकको युद्धमें मार डाला, तब शेष चार बिना कुछ कहे सुने देश छोड़ कर चले गये। इस प्रकार विश्वनाथ नायक उस विस्तीर्ण भूभागके एकछत्र अधिपति हुए। उन्होंने राज्यका सुशासन करनेके लिये ७२ सामन्तोंको ७२ देश शासन करनेके लिये दिये। १५६२ ई०में उनकी मृत्यु हुई। पीछे उनके पुत्र कुमार-कृष्णप्प राज्याधिकारी हुए।

इस समय आर्यनाथने मुसलमानोंको दमन करनेके लिये उत्तराञ्चलकी यात्रा की। इस सुअवसरमें पोरलिग दक्षिहि-नायक विद्रोही हो उठे। किन्तु शीघ्र ही विद्रोह शान्त किया गया और विद्रोही नायक मारे गए। उस समय आर्यनाथ ही राज्य भरके सर्वेसर्वा थे। उन्होंने कितने ही हितकर कार्य किए तथा अनेक हिन्दू-देवमन्दिर बनवाये।

प्रवाद है, कि कुमार कृष्णप्पने सिंहल पर धावा मारा। युद्धमें सिंहलराज मारे गए और सिंहल-राज्य कुमारके हाथ आ गया। कुमार कृष्णप्पने कण्डिको जीत कर वहां अपने सालेको अभिषिक्त किया और आप अपने राज्यको लौट आये। १५७२ ई०में उनका देहान्त हुआ।

बाद उनके पुत्र कृष्णप्प और विश्वनाथ दोनों मिल कर राज्यशासन तो चलाने लगे, पर वे दोनों आर्यनाथके सामने बतौर कठपुतली थे। इस समय 'महाविलिवन' नामक एक सामन्तराज विद्रोही हुए थे। किन्तु वे शीघ्र ही परास्त हुए। इसी समय त्रिचिनापल्ली और चिदम्बरम् दुर्गादि द्वारा सुरक्षित किया गया। १५८५ ई०में कृष्णप्पकी मृत्यु होने पर उनके दो पुत्र कृष्णप्प लिङ्गप्प और विश्वप्प राज्याधिकारी हुए। उनके शासनकालमें मदुरा-राज्यकी श्रीवृद्धि हुई थी। १६०० ई०में प्रसिद्ध आर्यनाथ इस लोकसे चल बसे। अनन्तर विश्वप्प और लिङ्गप्पका भी क्रमशः (१६०२ ई०में) देहान्त हुआ। पीछे उनके चचा कस्तुरी रङ्गप्पने बलपूर्वक राज्यको अपना लिया। किन्तु सात दिनके भीतर वे मार डाले गए और लिङ्गप्पके पुत्र मुत्तु कृष्णप्प राजसिंहासन पर बैठे।

मुत्तु कृष्णप्पने रामनादके प्राचीन मरुववंशीय सेतुपतियोंको पुनः स्वराज्यमें बसाया। उनके समय रावर्ट-डि-नविलियसके अधीन जेसुट पादरीगण मदुरामें प्रबल हो उठे थे। अनेक नीचजाति ईसाधर्ममें दीक्षित हुईं। खृष्टान शब्द देखो।

१६०८ ई०में तीन पुत्र छोड़ कर मुत्तु कृष्णप्प परलोकको सिधारे। इन तीनोंके नाम थे मुत्तु वीरप्प, तिरुमल और कुमारमुत्तु।

मजालिसउल-सलातिन नामक इतिहासके रचयिता महम्मद शरीफने लिखा है कि उक्त मदुरा-राजके साथ साथ उनकी सैकड़ों महिषियां सती हुई थीं।

मुत्तुवीरप्पके राजत्वकालमें तञ्जोरके साथ युद्ध छिड़ा था। इस समय महिसुरसे कुछ सेना आ कर मदुराको

लूट ले गई। वीरप्पने अपने राज्यमें ईसाधर्मके प्रचारमें बहुत छेड़छाड़ की थी। उनके समयमें राजधानी त्रिचिनापल्लीमें थी।

उनकी मृत्युके बाद तिरुमल नायक राजा हुए। वे त्रिचिनापल्लीसे राजधानी उठा कर पुनः मदुरा ले गए। उन्होंने 'महाराजमान्यराज श्रीतिरुमल शैवरी नायणि आयलुगारु'की उपाधि ग्रहण की थी। उन्हींके समयमें मदुराके बड़े बड़े मन्दिर और राजप्रासाद बनाए गए थे। महिसुरके राजाने मदुराराज्य जीतनेके लिए उन्हींके समयमें सेना भेजी थी। दिण्डिगुल नामक स्थानमें दलराय रामप्पय्यने विपक्ष सेनाको परास्त कर महिसुर तक उनका पीछा किया था। १६२३ ई०में जेसुट-प्रवर-रावर्ट-डि-नविलियस पुनः मदुरा पहुंचे। उनकी मनोमुग्धिनी वक्तृतासे बहुतोंने ईसाधर्म ग्रहण कर लिया।

कुछ समय बाद रामनाद प्रदेशमें सेतुपतिके साथ घनघोर युद्ध छिड़ा। युद्धमें तिरुमलको विशेष क्षति हुई। १६५७ ई०में विजयनगरके राजाके प्रति उनकी अश्रद्धा उत्पन्न हुई। विजयनगरके राजाको यह बात मालूम होने पर उन्होंने तिरुमलके विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। तिरुमलने तञ्जोर और जिञ्जीके नायकोंसे सहायता ली। विजयनगरके राजा जिञ्जि पर चढ़ाई करनेके लिए स्वयं पहुंच गए। इसी सुअवसरमें मुसलमानोंने तिरुमलकी प्ररोचनासे विजयनगर पर आक्रमण कर दिया। पीछे वे विजयनगरके दक्षिणांशको अपने अधिकारमें करने लगे। तिरुमलको भी इस समय मदुरामें जा कर आश्रय लेना पड़ा था। पीछे वे गोलकुण्डाके मुसलमानोंके साथ मिल गये। मुसलमानोंने आ कर मदुरा पर अपनी गोटी जमा ली। तिरुमलने किसी प्रकारकी छेड़ छाड़ किये बिना आत्मसमर्पण किया। तिरुमलकी विश्वासघातकताका बदला लेनेके लिये महिसुरके राजाने कई बार तिरुमल पर आक्रमण किया था। अन्तमें १६५८ ई०को मदुरापतिकी ही जीत हुई थी।

मुसलमानी और ईसाई धर्मके ऊपर तिरुमलका बहुत कुछ विश्वास जम गया था। इस कारण ब्राह्मण लोग उनसे बहुत अप्रसन्न रहते थे और इसीसे उनके प्राण गये। बाद उनके प्रकृत उत्तराधिकारी कुमार-मुत्तुने ब्राह्मणोंकी उत्तेजनासे पितृसत्वका परित्याग किया और मुत्तु अळकाद्रि नामक तिरुमलके एक जारज पुत्र सिंहासन पर अभिषिक्त हुए।

अळकाद्रिका दूसरा नाम वीरप्प था। मुसलमानोंके हाथसे बचनेके लिये इन्होंने त्रिचिनापल्लीको सुदृढ़ बना दिया। इधर मुसलमानोंने तञ्जोर और अपरापर स्थानोंको जीत कर अन्तमें त्रिचिनापल्लीमें घेरा डाला। किन्तु उनका अभीष्ट सिद्ध न हुआ। वीरप्पकी ही जीत हुई। १६६० ई०में वे इस लोकसे चल बसे।

बाद उनके पुत्र चोक्कलिङ्ग वा चोक्कनाथ (चोक्कनाथ) सोलह वर्षकी अवस्थामें सिंहासन पर बैठे। पहले मदुराके दुर्वृत्त मन्त्रियोंने उन्हें पदच्युत करनेकी अनेक चेष्टाएं कीं, किन्तु मदुरापतिकी कच्ची उमर होने पर भी उन्होंने अपने बुद्धिबलसे दुर्वृत्तोंका कौशल धूलमें मिला दिया और अपने शासनभार तथा सैन्यापत्य ग्रहण किया। षड़यन्त्रियोंने तञ्जोरमें जा कर आश्रय लिया। दलबलके साथ वहां पहुंच कर चोक्कनाथने उन्हें दमन किया। इस समय तञ्जोराधिपने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। १६६३-६४ ई०में मुसलमानोंने एक दफा और त्रिचिनापल्ली पर आक्रमण किया था। किन्तु इस बार भी निरीह ग्रामवासियोंके रक्तसे अपना हाथ कलङ्कित कर उन्हें रणभूमिमें पीठ दिखानी पड़ी थी। तञ्जोरके नायक विजयराघवने मुसलमानोंकी सहायता की थी, इस कारण चोक्कनाथने उनके राज्य पर भी धावा मारा। इसके कुछ समय बाद ही रामनादके सेतुपति मदुराकी अधीनता अग्राह्य करके विद्रोही हो गये। किन्तु इस बार चोक्कनाथ उन्हें दमन कर न सके। १६७४ ई०में उन्होंने पुनः तञ्जोर पर चढ़ाई कर दी। इस दफा तञ्जोरमें मर्मभेदी वियोगान्त नाटकका अभिनय हुआ था। विजयराघव अपनी मानरक्षा करते समय सपरिवार मार डाले गये *। अळगिरि नामक तञ्जोरके शासनकर्त्ता बनाये गए। १६७५ ई०में चोक्कनाथने चन्द्रगिरिकी राजकन्या मङ्गम्मालका पाणिग्रहण किया।

* Nelson's Manual of Madura Country नामक ग्रन्थमें इस वियोगान्त अभिनयका विस्तृत विवरण लिखा है।

मदुरापति उस पर इतना आसक्त हो गए थे; कि अपने भाई मुत्तु अड़कादिके ऊपर सब राजकार्यका भार सौंप कर आप त्रिचिनापल्लीमें रह उस रमणीके साथ आमोद-प्रमोदमें दिन व्यतीत करने लगे। मन्त्रियोंने अड़कादिके साथ षड़यन्त्र रच कर उन्हें स्वाधीन राजा होनेके लिए उत्तेजित किया। इधर (१६७६ ई०में) शिवाजीके वैमात्रेय भाई एकोजीने तञ्जोरके एक पलायित राजकुमारके साथ मिल कर सारे मदुरा-राज्य पर आक्रमण कर दिया। इस घोर सङ्कटके समय भी चोक्कनाथके होश ठिकाने न आए। वे रमणीके प्रेममें उन्मत्त हो कर सुखसे सोते थे। किन्तु जब उन्होंने सुना, कि अब उनका कोई निस्तार नहीं है, तब तञ्जोरसे मुसलमानोंको निकाल भगानेके लिए आपने अस्त्रधारण किया। इस समय महिसुर राजाने मदुरा जीतनेकी चेष्टा की। उधर शिवाजी भी दाक्षिणात्य पर अधिकार जमानेके लिए प्रभूत सेनाओंको साथ ले अग्रसर हो रहे थे। किन्तु उस समय कोलरून नदीमें बाढ़ आ गई थी, जिससे बहुतसे देश जलप्लावित हो गये, अतः वे वहांसे लौट आनेको बाध्य हुए। शिवाजीके चले जाने पर मुसलमान लोग अच्छा मौका देख गिञ्जीमें शिवाजीके सेनापति पर एकाएक टूट पड़े। किन्तु हार उन्हींकी हुई। इस समय चोक्कनाथने तञ्जोर पर चढ़ाई कर दी। मालूम नहीं, वे किस कारणसे गिञ्जी पर आक्रमण न कर त्रिचिनापल्लीको लौट आए। इस समय महिसुरराज मदुराके अन्तर्गत दो दुर्गों पर अधिकार कर नाना स्थानोंमें लूटमार मचाते थे। चोक्कनाथके मन्त्री गोविन्दप्पने भी इसी सुअवसरमें कौशलक्रमसे चोक्कनाथको कैद कर उनके छोटे भाई मुत्तु लिङ्गप्पको राजसिंहासन पर अभिषिक्त किया (१६७७ ई०में)।

मुत्तुलिङ्गप्पने राजा हो कर रुस्तम् नामक एक मुसलमानको अपना दुर्गरक्षक बनाया। इस व्यक्तिने विश्वासघातकतापूर्वक दुर्गको अपने अधिकारमें कर चोक्कनाथको छोड़ दिया और उन्हें फिरसे राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। उसी मुसलमान दुर्गरक्षकने दो वर्ष तक राज्य किया। इस समय महिसुरराज, राम-नादके सेतुपति, महाराष्ट्रगण और तञ्जोरके मुसलमान सेनापतिगण मदुराको हड़प करनेके लिए अग्रसर हुए थे। महिसुरके सेनापतिने रुस्तमको पराजित किया और मार डाला। अब चोक्कनाथ स्वाधीन तो हो गए, लेकिन महिसुरके सेनापति दुर्गको घेरे ही रहे। उस समय उन्होंने और कोई उपाय न देख शिवाजीके पुत्र शम्भुजीसे सहायता मांगी। शम्भुजीके सेनानायक अर्सुर मल्लने आ कर महिसुरके सेनानायकको परास्त कर कैद किया। अर्सुरमल्लके यत्नसे महिसुराधिकृत अनेक देश लौटा लिए गए। किन्तु सुचतुर महाराष्ट्रसेनापतिने उन सब देशोंमें चोक्कनाथका कुछ भी अधिकार रहने न दिया। इस पर चोक्कनाथको बहुत दुःख हुआ, इसी चिन्तासे उनके प्राण भी निकल गये। बाद उनके पन्द्रह वर्षके लड़के कुमार रङ्गकृष्ण मुत्तु वीरप्प (१६८२ ई०में) राजसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। वे बहुत साहसी और वीर थे। उनके प्रतापसे थोड़े ही दिनोंके अन्दर महाराष्ट्र सेनानायक दुर्गावरोध छोड़ कर देशको लौट गये। रङ्गकृष्णने अपने बाहुबलसे एक एक कर समस्त नष्ट दुर्गोंको अपने अधिकारमें कर लिया और महिसुरकी सेनाओंको मदुराराज्यसे निकाल भगाया। वे कभी भी मन्त्रियों पर विश्वास नहीं करते और स्वयं राजकार्य देखनेके लिये देश देश घूमा करते थे। किसीका कुछ दोष पा लेने पर वे उसे उचित दण्ड देते थे। साथ साथ कार्यक्षम व्यक्तिको उपयुक्त पारितोषिक भी दिया करते थे। ऐसे राजा इस वंशमें कोई भी न हुए थे। १६८८ ई०में वसन्तरोगसे इनकी मृत्यु हुई। मरते समय उनकी एक स्त्री गर्भवती थी। कुछ दिनके बाद ही उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। किन्तु प्रसूति भी उसके चौथे ही दिन पञ्चत्वको प्राप्त हुई। मृत राजाकी माता मङ्ग-म्मालने अपने पौत्रको तीन महीनेकी अवस्थामें राज्या-भिषिक्त किया और उसकी नाबालिगी तक आप राजकार्य देखने लगी। इस बुद्धिमती रमणीके सुशासनसे प्रजा बहुत सुखी रहती थी, चारों ओर शान्ति भी विराजती थी। इन्होंने, त्रिचिनापल्लीसे मदुरा तक जो सड़क गई है, उसकी दोनों बगल तरह तरह वृक्ष लगवाये और बीच बीचमें पथिकाश्रम भी खोल दिये।

मङ्गम्मालमें एक विशेष गुण यह था, कि वे सभी

धर्मावलम्बियोंको एक नजरसे देखती थीं। हिन्दू हो चाहे ईसाई दोनोंका समान आदर करती थीं। १६९३ ई०में रामनादके सेतुपतिने बहुत कष्ट दे कर जेसुटपुङ्गव डि-ब्रिटोके प्राणसंहार किये। इस पर मङ्गम्माल सेतुपतिके ऊपर बहुत बिगड़ी। १६९८ ई०में उनकी सेना त्रिवाङ्कुड़से कर वसूल करने गई और वहीं परास्त हुई। इस कारण मङ्गम्मालने त्रिवाङ्कुड़के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। कोई कहते हैं, कि उस युद्धमें मदुराकी जीत हुई थी और फिर कोई त्रिवाङ्कुड़के राजाकी जीत बतलाते हैं। १७०० ई०में तुँतकुड़ीके ओलन्दाजोंने नायकराजके निकट मुक्ता निकालनेका अधिकार प्राप्त किया था। इस समय तञ्जोरके साथ भी दो एक बार संघर्ष उपस्थित हुआ था, उस समय मदुरा राजसभामें खृष्टीय धर्मयाजक बुशेट (Bouchet)की खूब खातीर हुई थी। मदुरा सेनापति दलवाय नरप्पयने तञ्जोरराज्यको अच्छी तरह लूटा। तञ्जोरके प्रधान मन्त्रीने रिशवत दे कर मदुराके सैन्य-वर्गको वशीभूत कर लिया। १७०१ ई०में मदुरा और तञ्जोरने मिल कर महिसुरराज्य पर चढ़ाई कर दी, लेकिन किसीकी हार जीत न हुई। दूसरे वर्ष दलवाय नरप्पय सेतुपतिके साथ युद्धमें परास्त और निहत हुए। १७०४-५ ई०में नायक-राजकुमारकी नाबालिगी जब दूर हुई, तब राजकार्यका कुल भार उन्हीं पर सौंपा गया। सुयोग देख कर धूर्त्त मन्त्रियोंने मङ्गम्माल पर मिथ्या दोषारोपण किए। उग्रप्रकृतिके नायकराजने उनको कूटाभिसन्धि समझे बिना मातृस्थानीया पितामहीको कैद कर लिया। कारागारमें मङ्गम्मालने भूखों रह कर प्राणत्याग किया। दुष्टोंके उस विचक्षणा रमणीके चरित्रमें मिथ्या दोषारोपण करने पर भी मदुराकी प्रजा आज भी उन्हें माताकी तरह मानती है और उनकी सुख्याति गान करती है। विजयरङ्गके राजत्वकालमें महाजलप्लावनके समय (१७०९ ई०में) और उसके दूसरे वर्ष जो दुर्भिक्ष पड़ा था उसमें प्रजाके कष्टकी सीमा न थी। वह दुर्भिक्ष लगातार दश वर्ष तक रहा था। १७२० ई०में पदुकोटाके तोण्डमान सेतुपतिकी अधीनताका परित्याग करते हुए विद्रोही हो गए। सेतुपति उनका दमन करने गए और आप ही मारे गए। अब रामनादका सिंहासन ले कर बहुत विवाद उठा। रामनादके अधीन शिवगिङ्ग प्रदेश तञ्जोर-राज्यभुक्त हुआ और शेष अंश परवर्त्ती सेतुपतिके हाथ रहा। १७३१ ई०में विजयरङ्गकी निःसन्तान अवस्थामें मृत्यु हुई। उनकी विधवा रानी मीनाक्षी देवीने मदुराका शासनभार ग्रहण किया। उन्होंने बङ्गारु-तिरुमलके पुत्रको गोद लिया। सुयोग देख कर बङ्गारु-तिरुमलने मदुरा पानेकी खूब कोशिश की। उन्होंने त्रिचिनापल्लीमें रानीके प्राण संहार करनेके लिए षड़यन्त्र रचा था, किन्तु आशा पर पानी फिर गया। १७३५ ई०में सफदरअली खाँके अधीन मुसलमानोंने मदुरा, तञ्जोर, त्रिवाङ्कुड़ आदि राज्यों पर चढ़ाई कर दी। इस समय बङ्गारु-तिरुमलने सफदरअलीको रिशवत दे कर वशीभूत कर लिया और उसके द्वारा अपनेको राजा घोषित कराया। इस पर रानी बहुत डर गई और प्रभूत अर्थ द्वारा चाँदसाहबको अपनी मुट्ठीमें कर लिया। अब बङ्गारु-तिरुमल त्रिचिनापल्लीको छोड़ कर मदुराकी ओर भाग गए। चाँदसाहब भी चल दिए, किन्तु १७३६ ई०में वे फिर त्रिचिनापल्लीमें आ कर डट गए। रानी मीनाक्षी सम्पूर्णरूपसे चाँदसाहबके अधीन हो गई। चाँदसाहबने बङ्गारु-तिरुमलके विरुद्ध सेना भेजी। बङ्गारु युद्धमें परास्त हुए और शिवगङ्ग प्रदेशको भाग गए। अभी चाँदसाहब ही मदुराका सिंहासन अधिकार कर बैठे। रानी मीनाक्षीने हताश हो कर आत्महत्या कर डाली। इस प्रकार नायकवंशका शेष हुआ।

नायका (हिं० स्त्री०) १ वेश्याकी मा। २ कुटनी, दूती।

नायकाधिप (सं० पु०) नायकस्य अधिपः ६-तत्। नृप, राजा।

नायकी (सं० पु०) एक रागका नाम।

नायकीकान्हड़ा (हिं० पु०) एक राग जिसमें सब कोमल-स्वर लगते हैं।

नायकीमल्लार (हिं० पु०) सम्पूर्ण जातिका एक राग। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

नायकोट (नयाकोट)—नेपालके अन्तर्गत एक जिला और नगर। यह काटमण्डूसे १७ मील पश्चिम-उत्तरमें विस्तृत है। नगर उक्त जिलेके उत्तरप्रान्तमें बसा हुआ है। अक्ष-

रेजोंके साथ युद्ध होनेके पहले तक वर्त्तमान राजवंश शीत कालमें इसी नयाकोटमें रहते थे। पहाड़के ऊपर अवस्थित होनेके कारण चारों ओरके स्थानसे यह स्थान बहुत ऊँचा है। नयाकोटका समतलक्षेत्र समबाहु त्रिभुज-सा है। इसके दो ओर नदी और तीसरी ओर पहाड़ है। यह स्थान चैत्रसे कार्त्तिक तक अत्यन्त अस्वास्थ्यकर रहता है। इस समय मलेरियाका प्रकोप बहुत देखा जाता है। यहांके जङ्गलमें तरह तरहके पेड़ पाये जाते हैं। पार्वतीय, नेवार आदि जातियां यहां वास करती हैं।

नायडू—कोचीनके उत्तरांशनिवासी एक जाति जो वर्त्तमान समयमें उत्कृष्ट मानी जाती है।

नायडूपालेम्—नेल्लूर जिलेके दरशी नामक स्थानसे १७ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित एक ग्राम। इसके पूर्वमें एक पहाड़ है जिसमें १५१८ सम्वत्‌की उत्कीर्ण एक शिलालिपि देखनेमें आती है।

नायत (हिं० पु०) वैद्य।

नायन (हिं० स्त्री०) नापितका काम करनेवाली स्त्री, नाईकी स्त्री।

नायब (अ० पु०) १ किसीकी ओरसे काम करनेवाला, किसीके कामकी देख-रेख रखनेवाला, मुनीब, मुख़्तार। २ सहायक, सहकारी।

नायबी (अ० स्त्री०) १ नायबका काम। २ नायबका पद।

नायर—१ दाक्षिणात्यकी प्रसिद्ध योद्धाजाति। नायर देखो। २ बड़ी नाव।

नायिका (सं० स्त्री०) नयति या नी-ण्वुल्, टाप्, अत इत्वञ्च। १ दुर्गाशक्ति, दुर्गादेवीकी आठ शक्तियोंका नाम अष्टनायिका है। इस अष्टनायिकाका यथाविधान पूजन करना होता है।

"ततोऽष्टनायिकादेव्या यत्नतः परिपूजयेत्॥
उग्रचण्डां प्रचण्डांच चण्डोग्रां चण्डनायिकाम्॥
अतिचण्डांच चामुण्डां चण्डां चण्डवतीन्तथा॥
पंचोपचारैः संपूज्य भैरवान्मध्यदेशतः॥"

(ब्रह्मवै० प्रकृतिख० ६१ अ०)

२ शृङ्गाररसावलम्बन-विभावरूपा नारी, वह स्त्री जो शृङ्गाररसका आलम्बन हो अथवा किसी काव्य, नाटक आदिमें जिसके चरित्रका वर्णन हो। नायिका तीन प्रकारकी है—स्वीया, परकीया और सामान्यवनिता। नायिका शृङ्गाररसकी आधारस्वरूप है। जो स्वामीके विषयमें अत्यन्त अनुरक्त रहती है उसका नाम स्वीया है। यह स्वीया फिर तीन प्रकारकी है—मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा।

साहित्यदर्पणमें नायिकाका विषय इस प्रकार लिखा है। प्रथमतः नायिका तीन प्रकारकी है, स्वीया, अन्या और साधारण। नायकके जो सब साधारण गुण लिखे गए हैं, नायिकाके भी वे ही सब गुण रहेंगे। इनमेंसे जो विनय और सरलतादियुक्ता तथा पतिव्रता और सर्वदा गृहकार्यमें निरत रहती है, उसे स्वीया-नायिका कहते हैं। यह स्वीया-नायिका मुग्धा, मध्या और प्रगल्भाके भेदसे तीन प्रकारकी है। प्रथमावतीर्ण-यौवना, मदनविकारवती, रतिविषयमें प्रतिकूला, पतिके प्रति मानविषयमें मृदु और अत्यन्त लज्जावतीको मुग्धा-नायिका कहते हैं। विचित्र सुरतयुक्ता और जिसका यौवन तथा मदन प्रवृद्ध हुआ हो, जो वाक्य ईषत् प्रगल्भ और मध्यम लज्जावती हो उसे मध्या कहते हैं। समस्त रतिकार्यमें कुशल, कामान्धा, गाढ़तारुण्य, प्रगल्भा, भावोन्नत और अल्पलज्जायुक्ता होनेसे उसे प्रगल्भा नायिका कहते हैं। फिर मध्या और प्रौढ़ाके धीरा, अधीरा और धीराधीरा ये तीन भेद किये गये हैं। प्रियमें पर-स्त्री-समागमके चिह्न देख धैर्यसहित सादर कोप प्रकट करनेवाली स्त्रीको धीरा, प्रत्यक्ष कोप करनेवाली स्त्रीको अधीरा तथा कुछ गुप्त और कुछ प्रकट कोप करनेवाली स्त्रीको धीराधीरा कहते हैं। धीरा नायिका देखो।

परकीयानायिका प्रौढ़ा और कन्यका यह दो प्रकारकी है। उत्सवादिमें निरता, कुलटा और लज्जाविहीनाको प्रौढ़ा नायिका और जिसका विवाह नहीं हुआ हो, जो नवयौवना और लज्जावती हो उसे कन्यका कहते हैं।

धीरा, कलाप्रगल्भा और वेश्या होनेसे उसे सामान्य नायिका कहते हैं। यह सामान्य नायिका निर्गुणमें द्वेष नहीं करती और न अधिक गुणमें अनुरक्त ही रहती है। यह केवल वित्तमात्रका अवलोकन कर बाहरसे प्रेम

दिखलाती है; वित्तनाश होने पर पुरुषको घरसे बाहर निकाल देती हैं। तस्कर, पण्डक, मूर्ख, सुखप्राप्तधन, जिससे धन माँगने पर तुरत मिल जाय, लिङ्गी और छन्नकाम ये सब मनुष्य प्रायः इनके प्रिय होते हैं। यह नायिका मदनायत्ता और कहीं कहीं सत्यानुरागिणी होती है। यह चाहे रक्ता हो वा विरक्ता, इसमें रति-सुलभ है। इसके भी फिर ८ भेद कहे गए हैं, यथा—स्वाधीनभर्तृका, खण्डिता, अभिसारिका, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, प्रोषितभर्तृका, वासकसज्जा और विरहोत्कण्ठिता।

कान्त रतिके गुणसे आकृष्ट हो कर जिसका साथ परित्याग नहीं करता और जो विचित्र विभ्रमासक्ता है उसे स्वाधीनभर्तृका कहते हैं।

प्रिय अन्यसम्भोगचिह्नित हो कर जिसके पार्श्वमें आगमन करे और जो ईर्षाकषायिता हो उसे खण्डिता-नायिका कहते हैं। जो मन्मथवशंवदा हो कर कान्तको अभिसार करावे वा स्वयं अभिसरण करे उसे अभिसारिका कहते हैं। क्षेत्र, मकान, भग्न देवालय, दूतीगृह, वन, श्मशान, नदी प्रभृतिके तट और अन्धकार स्थान, ये ही आठ अभिसार करानेके स्थान माने गये हैं।

जो क्रोधपूर्वक चाटुकार प्राणनाथको परित्याग कर दूसरेमें सन्तप्त रहती है उसे कलहान्तरिता नायिका कहते हैं।

प्रिय सङ्केतस्थानका निर्देश कर पीछे उस स्थान पर नहीं आता और इस कारण जो विशेष अवमानिता होती है उसे प्रोषितभर्तृका-नायिका कहते हैं।

जो प्रियसे समागत होगा, ऐसा जान अपने कमरे तथा वदनको सजाती है उसे वासकसज्जा कहते हैं। जिसके प्रियका आना निश्चय था लेकिन किसी कारण-वश वह न आ सका, उस विरहातुराको उत्कण्ठिता-नायिका कहते हैं। इत्यादि नाना प्रकार नायिकाके भेद हैं, विस्तार हो जानेके भयसे कुछ नहीं लिखे गये।

इन सब नायिकोंके अट्ठाईस सत्त्वज अलङ्कार हैं। इनमेंसे भाव, हाव और हेला ये तीन अङ्गज; शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य और धैर्य ये ७ अयत्नसिद्ध हैं। लीला, विलास, विच्छित्ति, विव्वोक, किलकिञ्चित, मोट्टायित, कुट्टमित, विभ्रम, ललित, मद, विहृत, तपन, मौग्ध्य, विक्षेप, कुतूहल, हसित, चकित और केलि ये अट्ठाईस प्रकारके अलङ्कार स्वभावज कहलाते हैं।

निर्विकार चित्तमें प्रथम विक्रियाका नाम भाव है। अभिमत नायकको देख कर नायिकाके हृदयमें पहले भाव उपस्थित होता है। भ्रूनेत्रादि विकार द्वारा सम्भोगेच्छा प्रकाश और यदि अल्प परिमाणमें विकार लक्षित हो, तो उसे हाव; जिस समय नायिकाके अत्यन्त विकार लक्षित हों, उसे हेला; रूप और यौवनवशतः जो सौन्दर्य है एवं भोगादि द्वारा जो अङ्गभूषण है उसे शोभा कहते हैं।

मदनवर्द्धित द्युतिका नाम कान्ति और अतिविस्तीर्ण कान्तिका नाम दीप्ति है। सभी अवस्थामें मधुरताको रमणीयता कहते हैं। भयशून्यका नाम प्रागल्भ्य, सर्वदा विनयका नाम औदार्य और आत्मश्लाघारहित अचञ्चला मनोवृत्तिका नाम धैर्य है। अङ्ग, वेश, अलङ्कार, प्रेमवाक्य आदि द्वारा प्रियका अनुकरण करनेसे उसे लीला कहते हैं। प्रियसन्दर्शनादिके लिये यान, स्थान-आसन आदिके वैचित्र्यकरणका नाम विलास, कान्ति-वृद्धि होती है ऐसी अलङ्काररचनाका नाम विच्छित्ति, अत्यन्त गर्ववशतः प्रिय वस्तुमें अनादरका नाम विव्वोक, प्रियजनके सङ्गमादि हर्षजनित हास्य, अनसुरोदन, भय, मान, श्रम, आदिके सम्मिलनका नाम किलकिञ्चित, प्रिया-युक्तचित्तसे प्रियतमकी कथा आदिमें कर्णकण्डूयनादिका नाम मोट्टायित, प्रियतमसे केश, स्तन और अधरादिके चुम्बनसे मस्तक और हस्तादिका जो कम्प होता है। उसका नाम कुट्टमित, प्रियतमके आगमन पर अस्थानमें अलङ्कार धारणका नाम विभ्रम है। सुकुमारता-वशतः अङ्गविक्षेपको ललित; यौवनकालमें गर्वजात विकारको मद; बोलते समय लज्जावशतः अकथनको विहृत; प्रियविरहमें कन्दर्पविकारचेष्टितको तपन, जानी हुई वस्तुको अनजान बतला कर प्रियतमसे पूछने-को मौग्ध्य; प्रियतमके समीप भूषणकी अर्द्धरचना, प्रियतमके प्रति निरीक्षण और मन्द मन्द रहस्यालापको विक्षेप; रमणीय वस्तु देख कर औत्सुक्यको कुतूहल; यौवनप्रकाशजात निरर्थक हास्यको हसित; प्रियके

समीप पति अल्प कारणसे भयविह्वल हो जानेको चकित और विहारकालमें प्रियतमके साथ क्रीड़ाको केलि कहते हैं। नायिकाओंके ये सब स्वभावज अलङ्कार हैं। ये सब अनुरागचिह्न मुग्धा और कन्यकानायिकाके जानने चाहिये। यथा—यह नायकके दर्शनसे हो अत्यन्त लज्जित होती है, सिर उठा कर देख नहीं सकती, प्रच्छन्न भावसे अर्थात् भ्रमण करते करते वा वक्रभावसे प्रियतमको देखती है; प्रियतमसे बार बार पूछो जाने पर अधोमुखो हो कर मन्द मन्द भावमें उत्तर देती है, जिससे दूसरा कोई उसकी बोलोको सुन न सके, इस पर भी विशेष ध्यान रखती है।

सब प्रकारको नायिकोंके ये सब अनुरागचिह्न जानने चाहिये। यथा—ये प्रियतमके पास रहनेमें बहुमान समझती हैं, प्रियतमके विलोकनपथ पर बिना अलङ्कृता हुए नहीं चलतीं। कोई कोई वस्त्रपरिधान अथवा केशबन्धनके बहाने बाहुमूल, स्तन और नाभि दिखाती है, प्रियतमके भृत्योंको वशीभूत और बन्धुके प्रति अत्यन्त सम्मान करती हैं। ये सखियोंके निकट प्रियतमका गुणकोर्त्तन और प्रियको अपना धन दिया करती हैं। प्रियतमके सो जाने पर आप सोती हैं। प्रियके सुख पर सुखी और दुःख पर दुःखी; प्रियको दूरसे देखनेसे भो उसके दृष्टिपथ पर अवस्थान, प्रियतमके सामने कामावेशके साथ आलाप, प्रियतमको किसी बात पर हास्य करके कर्णकण्डूयन, केशबन्धन, और मोचन, कन्यापुत्रादिको चुम्बन, सखोके कपाल पर तिलक, पादाङ्गुष्ठ द्वारा भूमिलिखन, प्रियतमके प्रति सकटाक्ष निरीक्षण, स्वकीय अधरदर्शन, मुखको नीचे किये प्रियके साथ वाक्यालाप, प्रियतम जहां रहता है, वहां कोई बहाना कर बार बार जाना, प्रियके कोई वस्तु देने पर उसे अङ्गमें लगा कर बार बार निरीक्षण, प्रिय-समागममें अतिहृष्टा, विरहमें मलिना और कृशा, प्रियचरित्रमें बहु मान, निद्रिता हो कर अपाङ्गपरिवर्त्तन, सर्वदा अनुरक्ता, सत्य और मधुरवाक्यकथन। इनमेंसे नवोढ़ा अत्यन्त लज्जावती, मध्यमा मध्यमलज्जा और परकीया नायिका लज्जाहीना होती है। नायिकाओंके यही सब अनुरागके लक्षण बतलाये गए हैं। (साहित्यद० ३ परि०)

नायिकाचूर्ण (सं० क्लो०) चूर्णौषधिभेद। यह औषध स्वल्प, मध्यम और बृहत्के भेदसे तीन प्रकारकी है।

स्वल्प नायिकाचूर्ण—पञ्चलवण प्रत्येक डेढ़ तोला, त्रिकटु प्रत्येक दो तोला, गन्धक एक तोला, पारद आध तोला इन सबको एकत्र कर भलीभांति पोसते हैं। मात्रा एक माशासे ले कर आधा तोला तक हो सकती है। यह चूर्ण अग्निवृद्धिकारक और ग्रहणीरोगनाशक है।

मध्यम नायिकाचूर्ण—पूर्वोक्त औषधके परिमाणके दूना होनेसे यह नायिकाचूर्ण होता है। इसके सेवन करनेसे वात, पित्त, कफ, अतीसार, ग्रहणी, कास, श्वास, शूल ज्वर, प्लीहा और आमवात आदि रोग जाते रहते है।

बृहन्नायिकाचूर्ण—चितामूल, त्रिफला, त्रिकटु, विड़ङ्ग, हरिद्रा, भिलावा, यमानो, हिङ्गु, पञ्चलवण, कज्जल, वच, कुट, मोथा, अभ्र, गन्धक, यवक्षार, साचिक्षार, सोहागा, वनयमानो, पारद और गजपिप्पली सबको बराबर बराबर भाग ले कर अच्छी तरह पोसते हैं। इसको गोलो यथायोग्य मात्रामें सेवन करनी चाहिये।

नार (सं० क्लो०) नाराणां समूहः, नर-अण्। १ नरसमूह, मनुष्योंको भोड़। २ सद्योजात गोवत्स, तुरतका जन्मा हुआ गायका बछड़ा। ३ जल, पानी। ४ शुण्ठो, सोंठ। (त्रि०) ५ नरसम्बन्धी, मनुष्यसम्बन्धो। ६ परमात्मासम्बन्धो।

नार (हिं० स्त्री०) १ ग्रीवा, गरदन, गला। २ जुलाहोंकी ढरकी, नाल। ३ नाला। ४ बहुत मोटा रस्सा। ५ सूतकी डोरी जिसे स्त्रियां घाँघरा कसती हैं अथवा कहीं कहीं धोतीकी चुनन बाँधती हैं, नारा, नाला। ६ जूआ जोड़नेकी रस्सी या तस्मा। ७ चरनेके लिये जानेवाले चौपायोंका झुण्ड।

नार—बम्बई प्रदेशके बड़ोदा राज्यके अन्तर्गत पेटलद महकुमेका एक नगर। यह अक्षा० २२° २८' उ० और देशा० ७२° ४५' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां अङ्गरेजो विद्यालय और दो धर्मशालायें हैं।

नारक (सं० पु०) नरक एव प्रज्ञादित्वादण्। १ नरक। २ नरकस्थ प्राणी, नरकमें रहनेवाला जीव।

नारकिन् (सं० त्रि०) नरको भोग्यतयाऽस्त्यस्येति नरक-इनि। नरकभोगी, नरक भोगनेवाला, नरकमें जाने योग्य कर्म करनेवाला।

नारकीट (सं० पु०) १ अश्मकीट, एक प्रकारका कीड़ा। २ स्वदत्ताशाविहन्ता, किसीको आशा दे कर निराश करनेवाला अधम मनुष्य।

नारकेर (सं० क्ली०) नारिकेल, नारियल।

नारङ्ग (सं० क्ली०) नृणातीति नृ-नये बाहुलकादङ्गच् धातोर्वृद्धिश्च। १ गर्जर, गाजर। २ पिप्पलीरस। ३ यमज प्राणी। ४ विट। ५ फलवृक्षविशेष, नारङ्गी। पर्याय—नागरङ्ग, सुरङ्ग, त्वगगन्ध, ऐरावत, वक्त्रवास, योगारङ्ग, योगरङ्ग, सरङ्ग, गन्धाढ्य, गन्धपत्र, वरिष्ठ। इसका गुण—मधुर, अम्ल, गुरु, उष्ण, रोचन, वात, आम, क्रमि, शूल और श्रमनाशक, बलकर तथा रुचिकर है।

इसके केशरका गुण—अत्यम्ल, ईषन्मधुर, बलकारक, वातनाशक और रुचिकर।

नारङ्गक्षीरिणी (सं० स्त्री०) नारङ्गमिश्रिता क्षीरिणी। क्षीरिकाभेद। प्रस्तुत प्रणाली—नारङ्गकी मज्जाको घीमें तल कर उसमें गुड़का रस डाल देते हैं। पीछे पक्व हो जाने पर उसे उतारते हैं। बाद ठंढा हो जाने पर उसमें अर्द्धपक्व दुग्ध मिश्रित करनेसे नारङ्गक्षीरिणी बनती है। इसमें कर्पूरादि डाल कर इसे सुगन्धित करते हैं। इसका गुण विष्टम्भी, वायु और पित्तनाशक तथा गुरुपाक है।

नारङ्गी (हिं० स्त्री०) १ नीबूकी जातिका एक मझोला पेड़। इसमें मीठे सुगन्धित और रसीले फल लगते हैं। २ नारङ्गीके छिलकेका-सा रङ्ग, पोलापन लिए हुए लाल रंग। (वि०) ३ पीलापन लिए हुए लाल रंगका।

विशेष विवरण नागरंग शब्दमें देखो।

नारढ़काठी—गुजरातवासी एक जाति। इन लोगोंका कहना है, कि जब पञ्चपाण्डव १२ वर्ष वनवास बिता कर एक वर्ष अज्ञातवासके लिए छद्मवेशमें छिपे हुए थे, उस समय ढूंढ़ निकालनेके उद्देशसे कौरवोंने चारों ओर गायोंके प्रति उपद्रव आरम्भ कर दिया था। इसी समय कर्ण कौरवोंकी सहायताके लिए जगत्‌में प्रधान नौ-चोर काठी जातिको हिन्दुस्तानमें लाए। उस समय काठी जाति सात श्रेणियोंमें विभक्त थी। यथा—पठगर, पाण्डवा, नारढ़, नारा, माण्डरिया, ठोटरिया और गरिबगुलिया। ये लोग वर्त्तमान काठी जातिके आदिपुरुष हैं। वर्त्तमान काठी लोग उन सात सम्प्रदायोंके साथ संमिश्रणसे उत्पन्न हैं। इनका कहना है, कि इनके आदिपुरुषोंने कौरवोंके साथ मिल कर विराटकी गायोंका हरण किया और कौरवोंकी पराजयके बाद चम्बलनदी किनारे मालव नामक स्थानमें आ कर बस गए। कोई कोई कहते हैं, कि सूर्यवंशीय राजा वृत्तकेतुने जब अयोध्या नगरीसे आ कर मालवमें माण्डवगढ़ राज्य बसाया, उस समय वे ही उन सात काठी सम्प्रदायोंको अपने साथ लाए थे। पीछे वे लोग सौराष्ट्र देशमें फैल गए और इस जातिके वासके कारण ही सौराष्ट्र 'काठियावाड़' नामसे प्रसिद्ध हुआ। अन्तमें इन लोगोंने भुजके समीप पावरगढ़ नामक राज्य स्थापित किया। एक वर्ष इस राज्यमें घोर दुर्भिक्ष पड़ा। पाटगढ़ सम्प्रदायके नेता विशाल अपने सम्प्रदायको तथा अन्यान्य काठीजातिको साथ ले बरोडा पहाड़ पर चले गये। पीछे विशाल कालावड़ नामक स्थानमें आ कर अकेले रहने लगे। बला-चमारडीके राजा धामवालाके पुत्र वेरावलजीने विशालकी कन्या रूपालदीके रूप पर मोहित हो उससे विवाह कर लिया और आप काठी-जातिभुक्त हो गये। वे सूर्यवंशी थे, इस कारण सभी काठी लोग उन्हें अपना प्रधान मानने लगे। अतः वे बरोडा पहाड़ पर जा समस्त जातियोंका प्राधान्य ग्रहण कर ठोङ्ग नामक स्थानमें सिंहासन पर बैठे। उनके तीन पुत्र और एक कन्या थी। उनकी मृत्युके बाद उनके बड़े लड़के वालाजी सिंहासनपर अधिरूढ़ हुए। एक परमार राजपूतके साथ उक्त कन्या माह्कुबाईका विवाह हुआ। यह विवाह सम्भूतवंश जेबलिया काठी कहलाने लगा। वालाजीने काठियोंके आदिम-वासस्थान पावरगढ़में आ कर प्रायः ४०० सौ ग्राम अपने अधिकारमें कर लिए और आप राजा बन कर यहीं रहने लगे। इस समय कच्छके एक विभागका राजा आमशतजी थे जो चाटपारकरके मोढ़ाओंके साथ लड़ाईकी तैयारियां कर रहे थे। उन्होंने वालाजीसे सहायता मांगी। वालाजी स्वयं

दलबलके साथ पहुंच गये और दोनोंने मिल कर पारकरके शासनकर्त्ताके विरुद्ध युद्धयात्रा की। पीछे पारकर जीत कर जब वे लौट रहे थे, तब राहमें ही दोनोंमें विवाद उपस्थित हुआ। इसका प्रतिशोध लेनेके लिए वालाजीने जाम तथा उनके और पांच भाइयोंको मार डाला। केवल उनके छोटे भाई जाम अबड़ाने किसी तरह भग कर अपनी जान बचाई थी। जाम अबड़ाने विपुल सैन्यसंग्रह कर पावरगढ़के विरुद्ध यात्रा की और काठी लोगोंको वहांसे मान नामक स्थानमें मार भगाया। कहते हैं, कि यहां वालाजीके सामने सूर्यदेवने आविर्भूत हो उन्हें फिरसे युद्ध करनेका आदेश दिया तदनुसार वालाजीने पुनः लड़ाई ठान दी और जाम-अबड़ाको अच्छी तरह पराजित किया। बाद जाम अबड़ा कच्छको चल दिये। तभीसे काठी लोग सूर्यदेवके उपासक हैं और वालाजीका वंश वाला कहलाता है।

उक्त-वंशने सम्वत् १४८० तक माननगरमें वास किया। पीछे वालाजीके तीन पुत्र चितलका साम्राज्य जीत कर आत्मीय स्वजन और स्वजातिगणके साथ वहां रहने लगे। वेरावलजीके द्वितीय पुत्र खुमानजीके नागपाल नामक एक पुत्र था। यथासमय नागपालके दो पुत्र हुए, मानसुर और खाचर। मानसुरका वंश खुमान नामसे प्रसिद्ध है। मानसुरके पुत्र नागसुर आवर कुण्डला जीत कर अपने परिवारवर्गके साथ वहां वास करने लगे। ये ही आवर कुण्डलाके खुमान-काठियोंके आदिपुरुष हैं। उनसे वर्त्तमान खाचर-काठी, उनके पुत्र समानन्दके प्रथम पौत्र पाञ्जसे समास्त्रिय, डाण्टा और थोवालिया उत्पन्न हुए हैं। द्वितीय पौत्र नागसुरके काल और नागपाल नामक दो पौत्र थे। नागपालसे वर्त्तमान भड़ली और खम्बालास्थ मखानी जातिकी उत्पत्ति हुई है। काठियोंमें काल अत्यन्त विख्यात थे। उन्होंने सम्वत् १५४२में अपने नाम पर कालासर नामक ग्राम बसाया। उनके सम्बन्धमें प्रवाद है, कि वे शिवजीकी सहायतासे विपुलराज्यके अधिकारी हुए थे। काल-खाचरके चार पुत्र थे—सामट, ठिवो, जावर और भेज। जावरका वंश कुण्डलिया नामसे प्रसिद्ध है। ठिवोके दो पुत्र थे, दान और लख। दानका वंश ठिवानी और लखका वंश लखानी कहलाता है। पालियाके तालुकदार ठिवानी और यशदनके तालुकदार लखानी वंशके हैं। सामटके चार पुत्र थे; राम, नाग, देवाइट और सगाल। चोठिलाके राजा यश परमार गुगलियानाकी स्त्रियोंके प्रति बहुत अत्याचार करते थे, इस कारण गुगलियानाके अधिवासियोंके अनुरोधसे सामटने खाचरको मार डाला और चोठियालाको जीत कर परमारोंको स्थानच्युत किया। १६२२ सम्वत्‌के चैत्र मासमें यह घटना घटी थी। बाद नाग खाचर चोठिलाके सिंहासन पर बैठे। असीम साहससे मुलो परमारोंके विरुद्ध युद्ध कर धराशायी हुए। अनन्तर उनके भाई राम चोठिलाके राजा बने। किन्तु परमारोंके साथ उनका लगातार युद्ध चलता रहा जिससे राजाका धनागार शून्य हो गया। रामके वंशधर रामानी नामसे प्रसिद्ध हैं। सगालखाचरसे शूरगानी और ताजपरा काठी तथा नागखाचरसे नागानी और कालामीकी उत्पत्ति हुई है। चोटाड़ और गढ़वाके अधिवासी गढ़ड़ाकारा देवाइटवंशजात हैं। चोटिलाके शासनकर्त्ता राम खाचरके छः पुत्र थे—चोमल, योगी, मान्ह, भोम, यश और कापड़ो। चोमलका वंश हड़मतिराय और योगीका वंश गिरासियागण उमारदाय कहलाता है। भादरके काठिया लोग भोमके नामानुसार भोमानी नामसे प्रसिद्ध हैं और यशानी लोग यशसे उत्पन्न हुए हैं। छठे पुत्र कापड़ोने धान्धुका नामक स्थान जीत कर वहांके अजमेर और मुसलमानोंको मार भगाया। कापड़ो खाचरके ७ पुत्र थे—१ नागाजन, २ यश, ३ वस्त, ४ हरसुर, ५ देवाइत, ६ छिभा और ७ वालेर। इनमेंसे नागाजन अत्यन्त विख्यात थे। उनके दो पुत्र थे, लाख और मुलुखाचर। उनकी कन्या प्रेमाबाईके साथ गुगलियानाके बभानी धान्धलका (१७१३ सम्वत्‌में) विवाह हुआ था। मुलुखाचरने मेजापुरमें राजधानी बनाई। पीछे उन्होंने आनन्दपुर जीत लिया। लाख-खाचर सापुरके राजा हुए और क्रमशः उन्होंने मेवासा और भादलाको अपने अधिकारभुक्त किया। मुलुखाचरके तीन पुत्र थे—१ वाजसुर, २ राम, ३ सादुल। आनन्दपुरके वर्त्तमान तालुकदार रामवंशोद्भूत हैं। भोंयपू

युद्धविग्रहादिके कारण चोविला जनशून्य हो गया और बहुत समय तक ध्वंसावस्थामें रहा। अनन्तर सादुलमुलु, बाजसुरमुलु और राममुलुने उक्त स्थानमें पुनः बहुतसे लोगोंको ला कर बसाया। लाखुखाचरके औरस और झण्झारियाके गर्भसे भीष, कामप और भान नामक तीन पुत्र तथा अघानी भीमकी बहनके गर्भसे सुर, वीर, बाघ और भोक नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। कामप और भीम भादलामें, बाघ मेवासामें, सुर सापुर चौवाड़ोमें, वीर सनस्रा और पिप्रालीमें तथा भोक अजमेढ़में जा कर रहने लगे थे। सुरके भेलो और नाज नामक दो पुत्र थे जो अपने पिताकी मृत्यु के बाद १८३६ सम्बत्में (१७७८ ई०में) चौवाड़ीके राजा हुए।

नारद (सं० पु०) नारं परमात्मविषयकं ज्ञानं ददाति दा-क अथवा नारं नरसमूहं द्यति खण्डयति कलहेन द्यो-क, वा नारं जलं पितृभ्यो ददाति दा-क। स्वनामख्यात मुनिविशेष, एक देवर्षि। नामनिरुक्ति—

"नारं पानीयमित्युक्तं तत्पितृभ्यः सदा भवान्।
ददाति तेन ते नाम नारदेति भविष्यति॥"
(आगम)

नारका अर्थ जल है, पितृगणको सर्वदा जल दान देनेके कारण इनका नाम नारद पड़ा है।

प्रायः सभी पुराणोंमें नारदका थोड़ा बहुत उल्लेख देखनेमें आता है। श्रीमद्भागवतमें इनका विवरण इस प्रकार लिखा है—

एक समय वेदव्यास अपनेको हीन समझ कर बहुत उदास हो बैठे थे। इसी बीचमें नारदमुनि वहां आ पहुंचे। वेदव्यासने पाद्यादि द्वारा उनका पूजन किया। तब नारदने वेदव्याससे कहा, 'महाभारतका वर्णन तथा परब्रह्मका स्वरूप जानते हुए भी तुम क्यों इस प्रकार उदास बैठे हो?' इस पर व्यासदेव बोले, 'मेरा मन किसीसे परितृप्त नहीं होता।' यह सुन कर नारदने कहा, 'तुमने भगवान्‌का निर्मल यश वर्णन नहीं किया, इसका कारण तुम्हें ऐसा अवसाद उत्पन्न हुआ है। भगवान्‌का निर्मल यश वर्णन करनेसे यह अवसाद दूर हो जायगा। मेरा पूर्वजन्मविवरण जाननेसे तुम्हारा यह संशय जाता रहेगा। मैं अपना पूर्वजन्मवृत्तान्त कहता हूं, ध्यान दे कर सुनो,—

मैं पूर्वकल्पमें अर्थात् गतजन्ममें किसी वेदविद्-ब्राह्मणकी एक दासीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। वर्षाकालमें योगी लोग चार मास तक एक साथ रहते हैं। उस समय मेरी माने उनकी शुश्रुषाके लिये मुझे नियुक्त किया। मैं बालचापल्य, क्रीड़ा और लोभादिका परित्याग कर सर्वदा उनका अनुवर्त्ती रहता था। यद्यपि ऋषि समदर्शी होते हैं, तो भी मेरे प्रति उनकी विशेष कृपा रहती थी।

एक दिन उनकी आज्ञासे मैंने उनका जूंठा प्रसाद खाया। खानेसे हो मेरे सब पाप दूर हो गये। चित्तकी शुद्धि हुई और उनके धर्ममें मेरी रुचि हो गई। वे लोग प्रति दिन हरिकथा गान करते थे जिसे सुननेका हमें भी सौभाग्य प्राप्त होता था। श्रद्धापूर्वक प्रति दिन हरिकीर्त्तन सुनते सुनते श्रीकृष्णमें मेरा अनुराग उत्पन्न हो गया। भगवान्‌के प्रति श्रद्धा होनेसे हो मेरे उज्ज्वल ज्ञानका उदय हो आया। उसी ज्ञानसे प्रपञ्चातीत परब्रह्मस्वरूप आत्मामें अपनी अविद्या द्वारा जो यह स्थूल और सूक्ष्मदेह कल्पित हुई है उसे जान गया। इस प्रकार शरत् और वर्षा इन दो ऋतुओंमें सायं, प्रातः और मध्याह्नकालको महात्मा मुनियोंसे हरिका निर्मलयश विशिष्टरूपसे सुनते सुनते मेरे मनमें रजस्तमोनाशिनी दृढ़भक्ति उत्पन्न हुई। मैं जो इस प्रकार भक्तिसम्पन्न, विनययुक्त, निष्पाप, श्रद्धान्वित और संयतेन्द्रिय हो उन ऋषियोंकी सेवा शुश्रुषा किया करता था, उसके फलस्वरूप जब वे वर्षावसान पर पर्य्यटनको निकले, तब दीनवात्सल्यके गुणसे उन्होंने साक्षात् भगवत्कर्त्तृक कथित गुह्य ज्ञानका उपदेश हमें दिया। उस ज्ञान द्वारा मैं सृष्टिसंहारादिके विधानकर्ता भगवान् वासुदेवकी माया जानने लगा। सर्वनियन्ता पूर्णस्वरूप परब्रह्ममें जो कर्मार्पण है, वही आध्यात्मिकादि तापत्रयकी महौषध है।

मेरे विज्ञानोपदेशक विप्रोंके दूरदेश जानेके बाद मैं निराश्रयभावसे रहने लगा। मेरी माता एकपुत्रा थी, साथ साथ पराधीना भी थी। सुतरां मेरे भरणपोषणकी इच्छा रहते भी, वह मुझे पालन करनेमें बिलकुल असमर्थ थी। उस समय मेरी अवस्था केवल पांच वर्षकी थी।

एक समय मेरी माता रातको किसी कारणवश घरसे बाहर निकली। राहमें उन्हें किसी दुष्ट सर्पने डँस लिया जिससे वह पञ्चत्वको प्राप्त हुईं। उनकी मृत्युको भगवान्‌का अनुग्रह समझ कर मैं उत्तर-दिशाको चल दिया। इस प्रकार नाना स्थानोंमें पर्यटन करते हुए मैं एक निविड़ अरण्यमें पहुंचा। इस समय मैं बहुत थक गया था, इन्द्रियां शिथिल हो गई थीं; अतः एक ह्रदमें स्नान और जलपान कर कुछ सुस्थ हुआ। पीछे उस निर्जन वनमें एक पीपल वृक्षके तले बैठ गुरु मुखसे जैसा सुना था, बुद्धिद्वारा अपने हृदयस्थ परमात्मा-की उसी प्रकार चिन्ता करने लगा। भक्तिवशीभूत चित्त द्वारा भगवान् हरिके चरणारविन्दका ध्यान करनेसे मेरी दोनों आंखें डब डबा आईं। क्रमशः हृदयमें हरि आविर्भूत हुए। उनके दर्शनसे मैं आनन्द-सागरमें गोते मारने लगा। तब परमानन्दप्रवाहमें लीन हो फिर मैंने आत्मा और परमात्माको देख न पाया। उस समय आनन्दमय हो जानेसे ध्याता और ध्येय एक हो गया था। बाद और किसीका अनुभव न हुआ। बहुत समय तक भगवान्‌का वह रूप न देख मैं बहुत व्याकुल हो गया। फिर दूसरी बार मैंने मनःसमाधान किया, पर अभीष्ट सिद्ध न हुआ। निर्जन वनमें बैठ कर भगवद्दर्शनार्थ इस प्रकार बारम्बार यत्न करते रहनेसे ईश्वरने सुमधुरवाणी द्वारा सान्त्वना दे कर मुझसे कहा 'नारद! इस जन्ममें अब तुम्हें मेरे दर्शन नहीं हो सकते। क्योंकि अवशेन्द्रिय कुयोगियोंको मैं अपना दर्शन नहीं देता। पर एक बार मैंने जो अपना रूप तुम्हें दिखाया, वह केवल मेरे प्रति तुम्हारे अनुरागकी वृद्धिके लिए; क्योंकि मुझमें अनुराग होनेसे साधुजन क्रमशः काम क्रोधादिका परित्याग कर सकते हैं। बहुत दिन तक साधुसेवा द्वारा यदि मुझमें अपनी बुद्धि दृढ़ कर सको, तो इस निन्दनीय लोकका परित्याग कर मेरा पार्षद हो सकते हो। मुझमें एक बार बुद्धि निबद्ध हो जानेसे फिर कभी उसका विच्छेद नहीं होता। मेरे अनुग्रहसे प्रलयके बाद भी तुम्हारी स्मृति बनी रहेगी।' इतना कह कर भगवान् अन्तर्हित हो गए।

अनन्तर मैं भी लज्जाका परित्याग कर अनन्तरूप उस भगवान्‌का गुह्यनाम जपने और उनके शुभकार्य-का स्मरण करने लगा। बाद मैं पृथ्वी-पर्यटनको बाहर निकला और मत्सरशून्य हो कर कालकी प्रतीक्षा करने लगा।

पीछे यथायोग्य समयमें मेरी मृत्यु आ पहुंची। अनन्तर भगवान्‌ने पूर्वप्रतिश्रुत विशुद्ध सत्त्वरूप पार्षद-शरीर मुझमें जोड़ दिया और मेरी यह पाञ्चभौतिक देह पतित हुई।

जब भगवान् कल्पावसानमें इस विश्वका संहार कर समुद्र-जलमें सोये थे, तब मैं उनके निश्वासयोगसे उनके भीतर प्रविष्ट हुआ था। सहस्र युगके बाद प्रलयावसान हुआ, तब भगवान् निद्रासे उठे और पुनर्वार सृष्टि करने-की इच्छा प्रकट की। इस समय उनकी इन्द्रियसे मरीचि, अत्रि प्रभृति ऋषिगण उत्पन्न हुए, मेरी भी उसी समय उत्पत्ति हुई। तभीसे मैं अखण्डित ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर विष्णुकी कृपासे त्रिलोकीके बाहर भीतर भ्रमण करने लगा; कहीं भी रोकटोक नहीं। स्वरब्रह्मसे विभूषित देवताकी दी हुई इस वीणाको ले कर हरिकथाका गान करते हुए तमाम पर्यटन करता हूं। जब मैं हरिगुण-गान करता हूं, तब वे मेरे हृदयमें विराजते हैं।

(भागवत १।१६ अ०)

ब्रह्मवैवर्त्तके मतसे, नारद ब्रह्माके मानसपुत्र हैं। ये ब्रह्माके कण्ठसे उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्माने इन पर तथा इनके भाइयों पर सृष्टिकार्यका भार सौंपा। किन्तु जब नारदने देखा कि इस तरह काममें फँसे रहनेसे ईश्वरका ध्यान अच्छी तरह नहीं कर सकते, तब उन्होंने यह कार्य करनेसे अनिच्छा प्रकट की। इस पर ब्रह्माजी बहुत बिगड़े और नारदको शाप दिया। नारद पितृशापसे गन्धमादन-पर्वत पर गन्धर्वयोनिमें जन्म ले उपबर्हण नामसे विख्यात हुए। इस जन्ममें इन्होंने गन्धर्वराज चित्ररथकी ५० कन्याओंसे विवाह किया। इन पचासोंमेंसे मालावती प्रधान थीं। एक दिन ये ब्रह्माकी सभामें रम्भाका नृत्य देखते देखते इतने कामातुर हो गए, कि इनका वीर्य स्खलित हो गया। इस पर ब्रह्माने इन्हें शाप दिया जिससे ये गन्धर्वदेहका त्याग कर नरलोकमें उत्पन्न हुए। उस समय कान्यकुब्ज देशमें द्रुमिल नामका एक गोपराज

रहती थे। उनकी स्त्री स्वामिदोषसे वन्ध्या थी। द्रुमिलको जब इसकी खबर लगी, तब उन्होंने ब्रह्मवीर्यसे पुत्रोत्पादन करनेकी उसे अनुमति दी। तदनुसार कलावती ऋतुस्नाता हो काश्यप नारदके निकट पहुंची और उनसे सन्तानके लिए प्रार्थना की। उसकी बात सुन कर मुनिवर रागान्वित हो वहांसे चल देनेको उद्यत हुए। इसी समय मेनका उस राह हो कर जा रही थी। उसका जकस्वन देख मुनिका रेत: स्खलित हो गया। कलावती ऋतुस्नाता थी, उसी समय वह वहां पहुंची और वीर्य खा कर घर चली गई। क्रमशः उस वीर्ययोगसे कलावतीके गर्भसे गन्धर्व उपवर्हणने मनुष्य हो कर जन्मग्रहण किया। उस समय देशमें अनावृष्टि थी, इस कारण उसका नाम रखा गया नारद। यह बालक दूसरे बालकोंको ज्ञानदान करता था, जातिस्मर और महाज्ञानी था, इस कारण भी इसका नाम नारद पड़ा। काश्यपनारदके वीर्यसे ये उत्पन्न हुए थे, अतएव ये भी मुनियोंके वरसे नारद नामसे प्रसिद्ध हुए थे।

"अनावृष्ट्यवशेषे च काले बालो बभूव ह।
नारं ददौ जन्मकाले तेनायं नारदाभिधः॥
ददाति नारं ज्ञानंच बालकेभ्यश्च बालकः।
जातिस्मरो महाज्ञानी तेनायं नारदाभिधः॥"

(ब्रह्मवै० ब्रह्मख० २१ अ०)

विप्रोंने इन्हें ब्रह्मपुत्र जान कर विष्णुमन्त्रसे दीक्षित किया। यह महाज्ञानी शिशु गङ्गामें स्नान कर विष्णुमन्त्रका जप करने लगा। इस मन्त्रका जप करते करते एक दिन ध्यानमें इन्होंने विष्णुकी द्विभुज मुरलीहस्त और चन्दनचर्चित मूर्त्ति देखी। इस मूर्त्तिको देख कर नारद बहुत प्रसन्न हुए। कुछ कालके बाद जब वह मूर्त्ति तिरोहित हो गई, तब ये शोकसे व्याकुल हो पड़े। इस समय दैववाणी हुई, 'जब यह नश्वर देह नष्ट होगी, तब तुम मेरे दर्शन पाओगे।' यथासमय किसी तीर्थस्थानमें अपने हृदयमें विष्णुका स्मरण करते करते नारदने यह शरीर छोड़ दिया। देहावसान होने पर नारदका शापविमोचन हुआ। अब वे फिर ब्रह्मविग्रहमें लीन हो गये। ब्रह्माने जब फिरसे संसारकी सृष्टि की, तब उनके कण्ठसे ये उत्पन्न हुए।

(ब्रह्मवैवर्तपु० ब्रह्मख० २१।२२ अ०)

वराहपुराणमें लिखा है, कि पूर्व समयमें ये सारस्वत नामक एक ब्राह्मण थे। तपके प्रभावसे कल्पान्तरमें ये फिर ब्रह्माके पुत्र हुए। ये भगवान्‌के तृतीय अवतार थे। इनके मस्तक पर जटाभार, परिधान स्वर्गचीर, हाथमें हेमदण्ड, कमण्डलु और अत्यन्त विचित्र कच्छपी वीणा थी। महाभारतके शल्यपर्वमें लिखा है, कि इन्होंने पहले पहल ब्रह्मासे कुछ गान सीखा। इन्होंने दक्षके सहस्र पुत्रोंको सांख्ययोगका उपदेश दे कर संसारत्यागी बना दिया था। नारदने इन्द्रसे एक सूर्यस्तव सीख कर धौम्यको सिखाया था। युधिष्ठिरने यह स्तव धौम्यसे प्राप्त किया था।

किसी समय नारद श्वेतद्वीपमें गये और वहां विष्णुके निकट मायाका स्वरूप जाननेके लिये आग्रह करने लगे। विष्णु इन्हें अपने साथ ले वृद्ध ब्राह्मणवेशमें वेत्रवती नदीके किनारे हैदल नायक नगरमें पहुंचे। उस नगरमें वीरभद्र नामक एक धनी वैश्य रहता था। विष्णु नारदके साथ उसीके घर अतिथि हुए और उसकी परिचर्यासे प्रसन्न हो, 'तुम्हें अनेक पुत्रपौत्रादि और अशेष धनवाहनादि होंगे' ऐसा वर दिया। अनन्तर वे दोनों वहांसे भागीरथीतटस्थ चैत्रिकाग्रामको चल दिये। यहां एक ब्राह्मण अपने खेतमें हल चला रहे थे। उस दिन ये दोनों उसी ब्राह्मणके यहां मेहमान हुए। ब्राह्मणने इनकी अच्छी सेवा-सुश्रुषा की। किन्तु जाते समय भगवान्‌ने उसे कहा कि, 'कभी भी तुम्हारी खेतीमें उन्नति न होगी और न तुम्हें कोई पुत्ररत्न ही होगा।' राहमें नारदने विष्णुसे पूछा, 'महाराज! ब्राह्मणोंको ऐसा शाप आपने क्यों दिया?' इस पर विष्णुने कहा, 'यह शाप नहीं है, वर है। एक मत्स्यजीवी मत्स्यवध कर वर्ष भरमें जितना पाप कमाता है, लाङ्गलकारी ब्राह्मण एक दिनमें उतना पाप सञ्चय करता है। इसी कारण जिससे उसके पुत्र हो कर पापसञ्चय न करे, उसका उपाय विधान मैं कर आया।' अनन्तर वे दोनों कान्यकुब्ज देश पार कर किसी एक तालाबके किनारे उपस्थित हुए। वहां विष्णुने नारदको स्नान करने कहा, किन्तु स्नान कर ज्यों ही ये बाहर निकले, त्यों ही ये परम रमणीया सुन्दरी स्त्रीके रूपमें

परिणत हो गये। विष्णु भी अन्तर्हित हो गये। इसी समय तालध्वज नामक राजा आ पहुंचे और इन्हें अपनी पत्नीके रूपमें ग्रहण किया। बारह वर्ष तक स्वामीके साथ सुखपूर्वक रहनेके बाद इन्हें गर्भका सञ्चार हुआ। यथासमय इन्होंने एक अलाबू (कद्दू) प्रसव की। उस अलाबूसे गान्धारीके सौ पुत्रोंके जैसे पचास पुत्र उत्पन्न हुए। क्रमशः वे सब पुत्र महाबल पराक्रान्त हो उठे। धीरे धीरे उनके भी अनेक पुत्रादि हुए। अन्तमें वे सबके सब राज्य पानेके लिये कुरुपाण्डवोंकी तरह आपसमें लड़ने झगड़ने लगे। युद्धमें एक एक करके सब मारे गये। यह देख कर ये बहुत दुःखित हुईं और स्वामीके साथ विलाप करने लगीं। इस समय भगवान् विष्णु वृद्ध ब्राह्मणवेशमें और अन्यान्य देवगण द्विजवेशमें वहां पहुंचे और बहुत कुछ उन्हें समझाया बुझाया, लेकिन जरा भी उन्हें शान्त कर न सके। पीछे भगवानने नारदको उसी सरोवरमें स्नान करा कर पुनः पूर्व स्वरूप प्रदान किया। उस समय विष्णुने नारदसे मायाका स्वरूप पूछा था जिसे नारदने हंस हंस कर कह दिया था।

किसी समय भगवान् विष्णुने कौशिकको प्रसन्न करनेके लिए तुम्बुरुको सभामें गान करने कहा। नारद भी उस सभामें उपस्थित थे। तुम्बुरुका गान सुन कर ये जल उठे और विष्णुके उपदेशसे गानशिक्षाके लिये उलूकेश्वरके निकट चल दिए। सहस्र वर्ष तक गान सीखनेके बाद इनके मनमें कुछ अहङ्कार हो आया। तुम्बुरुको परास्त करनेके लिए ये उसके घरकी ओर रवाना हुए। वहां पहुंच कर इन्होंने अनेक विकृताकार स्त्रीपुरुष देखे। जिज्ञासा करने पर उन लोगोंने कहा, 'हम लोग राग और रागिणी हैं। आपके गानसे ही हम लोगोंकी ऐसी दशा हो गई है। तुम्बुरु पुनः गान द्वारा हम लोगोंको शान्ति देंगे, इस कारण यहां पड़े हैं।' नारद उनकी बात सुन कर लज्जित हो गए और नारायणके निकट उपस्थित हुए। नारायणने नारदका आक्षेप सुन कर कहा था, 'तुम अब भी गीतशास्त्रमें पारदर्शी नहीं हुए हो; मैं जब यदुवंशमें कृष्णके रूपमें जन्म लूंगा, उस समय यदि तुम मेरे पास आओगे, तो मैं गानशिक्षाका उपाय बतला दूंगा।'

इस समय नारद जब अम्बरीषराजकी कन्या श्रीमतीसे विवाह करने गए, तब ये बहुत अप्रतिभ हुए थे। श्रीमती देखो।

पीछे यदुवंशमें श्रीकृष्णके अवतीर्ण होने पर नारद गान सीखनेके लिए उनके पास गए। उस समय श्रीकृष्णने नारदको यथाक्रम जाम्बवती और सत्यभामाके निकट दो वर्ष तक गान सिखलाया। किन्तु नारद किसी तरह स्वरायत्त कर न सके। पीछे रुक्मिणीके निकट दो वर्ष तक गान सीखनेके बाद इन्होंने स्वर और वीणायोगकी शिक्षा प्राप्त की। अन्तमें भगवान्ने स्वयं उन्हें अनुत्तम गानयोग सिखलाया। इस समय नारदको तुम्बुरुके ऊपर जो ईर्षा थी, वह तिरोहित हो गई। इस गानशिक्षासे नारद ब्रह्मानन्दमें विभोर हो हरि-गुणगान करते हुए इस संसारमें विचरण करने लगे। (भागवत, ब्रह्माण्ड०, विष्णु०, वराह०, भविष्यपु०, अद्भुत-रामा०)

हरिवंशमें भी नारदको ब्रह्माका पुत्र बतलाया है। ब्रह्मा जब प्रजासृष्टिके लिए उद्यत हुए, तब उन्होंने पहले पहल मरीचि, अत्रि आदिको उत्पन्न किया, पीछे उनसे सनक, सनन्द, सनातन, सनत्कुमार, स्कन्द, नारद और रोषात्मक रुद्रदेवने जन्मग्रहण किया। (हरिवंश १ अ०)

ब्रह्माके मानसपुत्र नारद सप्तर्षियोंमेंसे एक हैं।

ब्रह्माने अपने पुत्रों पर प्रजासृष्टिका भार सौंपा था। पीछे वे सबके सब नारदके वाक्यसे विनष्ट हो गए। इस पर ब्रह्माने इन्हें शाप दिया था, 'तुम सर्वदा तीनों लोकोंमें भटकते रहोगे, कभी भी एक जगह स्थिर नहीं रह सकोगे।'

"तस्माल्लोकेषु ते मूढ़ न भवेद् भ्रमतः पदम्॥"

(विष्णुपु० १।१५अध्याय टीका)

हम लोगोंके पुराणसमूहमें नारद अतुलनीय व्यक्ति माने गए हैं, नारदके साथ ही नारदकी तुलना की जाती है। ऐसा कोई पुराण तथा काव्य नहीं, जिसमें नारद न हों। शिवके विवाहमें नारद घटक थे, वामनके उपनयनमें नारद उद्योगी थे, ध्रुवको तपस्यामें नारद मन्त्रदाता थे, दक्षके दर्पनाशमें भी नारद उपस्थित थे। काव्यादिमें भी जहां जो प्रधान वर्णनीय है, उसमें नारद ही हैं। माघमें—शिशुपालके अत्याचारसे संसार जो

उत्पीड़ित था, नारद उसके उपाय-विधाता थे। नैषधमें दमयन्तीके विवाहके समय नारद देवसभाके दूत थे। इत्यादि प्रायः सभी विषयोंमें नारद विद्यमान थे। इनका स्वभाव कलह-प्रिय भी कहा गया है, इसीसे इधरकी उधर लगानेवालेको "नारद" कह दिया करते हैं; वेदमें इन्हें एक मन्त्रद्रष्टा ऋषि बतलाया है। कात्यायनकी सर्वानुक्रमिकामें लिखा है, कि ये ऋकसंहिताके ८म मण्डलके १३वें सूक्त और नवम मण्डलके १०४वें और १०५वें सूक्तके ऋषि थे।

२ शाकद्वीपस्थ पर्वत विशेष। ३ विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम। ४ प्रजापतिभेद, एक प्रजापतिका नाम। ५ कश्यपमुनिपत्नीजात गन्धर्वभेद, कश्यपमुनिकी स्त्रीसे उत्पन्न एक गन्धर्व। ६ चौबीस बौद्धोंमेंसे एक।

नारद—नेपालके बौद्धोंका कहना है, कि पुराकालमें वाराणसीमें कौशिकवंशमें नारद नामक एक मनुष्य उत्पन्न हुए थे। ज्यों ज्यों उनकी उमर बढ़ती गई, त्यों त्यों वे समझने लगे, कि संसारके आमोद आह्लादकी आसक्ति किसीसे भी परित्यक्त होने की नहीं, इसीसे वे हिमालय पर्वत पर जा कर रहने लगे थे। अन्तमें योगबलसे उन्होंने अलौकिक घटनावलीका साधन करनेको सीखा था। किन्तु संविभाग-प्रणालीमें विशेष अभिज्ञता प्राप्त नहीं कर सकनेके कारण इन्द्र सूर्य और मातलिको साथ ले कर उनको शिक्षार्थ को गए। इन्द्रकी कन्या हिरी नारदके प्रेमपाशमें फँस गई थी। वे लोग नारदको बुद्ध और हिरीको बुद्धकी स्त्री यशोधरा मानते हैं। (महावस्त्ववदान)

नारद—बङ्गालके राजशाही जिलेकी तीन भिन्न भिन्न नदियोंके नाम। इनमेंसे पहली नदी रामपुर-बोआलियासे कुछ दूरमें गङ्गासे निकल कर पुटियाके निकट मूसा खाँसे मिलती है और दूसरी मूसा खाँसे निकल कर नाटोरके मध्य होती हुई पूर्वकी ओर चली गई है। इसकी एक प्रधान शाखा नारद नाम धारण कर दक्षिणकी ओर बहती है। दूसरी नारदनदीमें वर्ष भर नाव जाती आती है।

नारदकुण्ड—वृन्दावनस्थित लीला-स्थानविशेष। यह गोवर्धनके सन्निहित सुमन सरोवरके पास है। यहां नारदने ध्यान करके हरिसाधन किया था, इसीसे इसका नाम नारदकुण्ड पड़ा है। (भक्तमाल, श्रीवृन्दावनलीला)

नारदपञ्चरात्र (सं० क्ली०) नारदकृत पञ्चरात्रतन्त्रभेद। इसमें पांच विषय प्रतिपादित हुए हैं—अभिगमन, उपादान, इज्या, स्वाध्याय और योग। यही पांच प्रकारकी उपासना है। देवतास्थान-मार्जनादि द्वारा संस्कारको अभिगमन, गन्धपुष्पादि द्वारा पूजा करनेको उपादान, देवतापूजाको इज्या, अर्थानुसन्धानपूर्वक मन्त्रजपको स्वाध्याय और अर्थानुसन्धानपूर्वक मन्त्रजप, स्तोत्रपाठ, नामकीर्त्तन और तत्त्वप्रतिपादक शास्त्राभ्यासको प्रयोग कहते हैं। यही पांच विषय नारदपञ्चरात्रके प्रधान वर्णनीय विषय हैं।

नारदपुराण (सं० क्ली०) महापुराणभेद, अठारह महापुराणोंमेंसे एक। महामुनि वेदव्यास इस पुराणके रचयिता हैं। इसमें सनकादिने नारदको सम्बोधन करके कथा कही है और उपदेश दिया है, इसीसे इसका नाम नारदपुराण पड़ा है। इस पुराणके प्रतिपाद्य विषय बृहन्नारदीय पुराणके ९६ अध्यायोंमें इस प्रकार लिखे हैं,—यह पुराण पूर्व और उत्तर दो भागोंमें विभक्त है। इसमें श्लोकसंख्या २५००० हजार है। पूर्वभाग चार पादोंमें विभक्त है, जिनमेंसे प्रथम पादमें सूतशौनक-सम्वाद, सृष्टिका संक्षेपवर्णन और नाना प्रकारकी धर्म-कथाएं वर्णित हैं। द्वितीय पादके मोक्षधर्म-कथनमें मोक्षोपाय-निरूपण, वेदाङ्गकथन, सनन्दन कर्त्तृक नारदके प्रति शुकोत्पत्तिकथन, महातन्त्रमें पशुपाशविमोचन, मन्त्रशोधन, दीक्षा, मन्त्रोद्धार, पूजाप्रयोग, कवच, विष्णुके सहस्रनाम और स्तोत्र, गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव और शक्तिका क्रमशः उपाख्यान-कथन; तृतीयपादमें नारद और सनत्कुमार-संवाद, पुराण-लक्षण-प्रमाण, दानकाल-कथन और चैत्रादि मासकी प्रतिपदादि तिथिका व्रत-विस्तार कथन और चतुर्थपादमें सनातन कर्त्तृक नारदके प्रति बृहदाख्यान-कथन सम्यक् रूपमें वर्णित है। उत्तर भागमें एकादशीव्रतविषयक प्रश्न, वशिष्ठ और मान्धाताका सम्वाद, रुक्माङ्गदकी कथा, मोहिनीकी उत्पत्ति और सम्वाद, मोहिनीके प्रति वसुका शाप और उद्धार, गङ्गाकी पुण्यकथा, गयायात्रा, काशीमाहात्म्य, पुरुषोत्तममाहात्म्य और क्षेत्रयात्रा तथा अन्यान्य धर्मकथाएं,

प्रयागमाहात्म्य, कुरुक्षेत्रमाहात्म्य, हरिद्वारमाहात्म्य, कामोदा-आख्यान, बदरीतीर्थमाहात्म्य, कामाख्या-माहात्म्य, प्रभासमाहात्म्य, पुराण-आख्यान, गौतमाख्यान, वेदपादको तपस्या, गोकर्णक्षेत्रमाहात्म्य, लक्ष्मणका-आख्यान, सेतुमाहात्म्य, नर्मदामाहात्म्य, अवन्तीमाहात्म्य, मथुरामाहात्म्य, वृन्दावनमाहात्म्य, ब्रह्माके निकट वसुका गमन और मोहिनीचरित्रकथन आदि विषय वर्णित हैं। जो इस पुराणको सुनता है वा सुनाता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। यह पुराण यदि पूर्णा तिथिमें सप्तधेनुयुक्त करके किसी उत्तम ब्राह्मणको दान दिया जाय, तो अशेष फल मिलता है।

इसकी अनुक्रमणिका सुननेसे वा सुनानेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

"यः शृणोति नरो भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः।
स याति ब्रह्मणो धाम नात्रकार्या विचारणा॥
यस्त्वेतदिह पूर्णायां धेनूनां सप्तकान्वितम्।
प्रदद्यात् द्विजवर्याय स लभेन्मोक्षमेव च॥
यश्चानुक्रमणीमेतां नारदीयस्य वर्णयेत्।
शृणुयाद्वैकचित्तेन सोऽपि स्वर्गगतिं लभेत्॥"

(बृहन्नारदीयपु० ९६ अ०)

२ उपपुराणभेद, बृहन्नारदीय नामक एक उपपुराण।

नारदशिक्षा (सं० स्त्री०) नारदकृत वर्णोच्चारण-शिक्षाभेद।

नारदसंहिता (सं० स्त्री०) धर्मशास्त्रभेद, एक धर्मशास्त्रका नाम।

नारदा (सं० स्त्री०) १ इक्षुमूल, ईखकी जड़। २ मूर्वा।

नारदिन् (सं० पु०) विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम।

नारदीय (सं० क्ली०) नारदस्येदं नारद छ। १ वेदव्यास कृत नारदके प्रति सनकादिके उपदेशात्मक महापुराणभेद। (त्रि०) २ नारदका, नारद सम्बन्धी।

नारदेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम।

नारना (हिं० क्रि० वि०) थाह लगाना, पता लगाना।

नारफिक (अं० पु०) नारफाक देशमें मिलनेवाली विलायती घोड़ोंकी एक जाति। इस जातिके घोड़े डील डौलमें बड़े सुन्दर और मजबूत होते हैं।

नारवेकार—खानापुर, बेलगाम, चिकोड़ी परगनेमें तथा धारवाड़ आदि स्थानोंमें ये लोग अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। इनमेंसे अनेक गयासे आ कर यहां बस गये हैं। ये लोग अपनेको वैश्य बतलाते हैं इनमें कोई श्रेणी-विभाग नहीं है। इन लोगोंकी भाषा कोङ्कणी और मराठी है।

ये लोग देखनेमें सुश्री लगते हैं। इनमेंसे जो धनी हैं, वे बढ़िया बढ़िया कपड़ा पहनते और जो गरीब हैं वे मराठी वेशमें रहते हैं। ये लोग साधारणतः घी और कपड़ेका व्यवसाय करते हैं। कोई कोई मिष्टान्न तैयार कर बेचता भी है। लेकिन अधिकांश खेती बारी करके अपना गुजारा करते हैं, सन्तानके भूमिष्ठ होनेके १२वें दिनमें उसका नाम रखते हैं। २से ५ वर्षके मध्य सन्तानका मस्तक मुँड़ाते हैं और विवाहके समय उपनयन होता है। पुरुष बीस वर्षके पहले और कन्या ऋतुस्नाता होनेके पहले ब्याही जाती है। इनमें विधवा-विवाहकी प्रथा नहीं है। ये लोग साधारणतः शैव होते हैं और महादेव, गणपति, भगवती, कणका-देवी आदि देव-देवियोंकी पूजा करते हैं।

महाराष्ट्र ब्राह्मण इनके पुरोहित होते हैं। ये लोग हिन्दूशास्त्रोक्त व्रतका पालन करते हैं तथा वाराणसी, गोकर्ण, महाबलेश्वर आदिको तीर्थस्थान मानते हैं। आपसका झगड़ा गांवके प्रधानसे निपटाया जाता है। शङ्करस्वामी प्रति वर्ष इनके गांवोंमें जाते हैं, उस समय गुरुतर विषयोंकी मीमांसा होती है, जैसे—विधवाका गर्भ, अविवाहिता स्त्रियोंका द्वितीय संस्कार, एक साम्प्रदायिक व्यक्तियोंका अन्य नीच जातिके लोगोंके साथ खान पान इत्यादि। ये लोग अपने लड़कोंको अङ्गरेजी पढ़नेके लिये स्कूल भेजते हैं। इस जातिकी उन्नति दिन दूनी और रात चौगुनी होती जा रही है।

नारबेवार (हिं० पु०) आंवल नाल, नाल और खेड़ी आदि, नारापोटी।

नारमन (अं० पु०) १ फ्रान्सके नारमण्डी प्रदेशका निवासी। २ जहाजका रस्सा बांधनेका खूंटा।

नारवे—यूरोपका एक देश। नौरवे देखो।

नारसिंह (सं० क्ली०) नरसिंहमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः अण्। १ नरसिंहचरिताख्यान उपपुराणभेद, एक

उपपुराण जिसमें नरसिंह अवतारकी कथा है।
नरसिंहपुराण देखो।

२ नरसिंह-रूपधारी विष्णु। तैत्तिरीय आरण्यकमें इनकी गायत्री इस प्रकार लिखी है—

"वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि।
तन्नो नारसिंहः प्रचोदयात्॥" (तैत्तिरीय आ० १०।१।७)

३ तन्त्रभेद, एक तन्त्रका नाम।

नारसिंह—मोहिनीदेवताभक्त वैश्य मुनिगोत्रज एक राजा। इनके पिताका नाम श्रीपाल था।
(सह्याद्रिख० १।३३।११९)

नारसिंह—१६वीं और १७वीं शताब्दीमें विजयनगर राज्य इसी नामसे पुकारा जाता था। उस समयकी लिखी हुई फारसी, पोर्त्तुगीज और अङ्गरेजी आदि पुस्तकोंमें विजयनगर-राज्यका नारसिंह नाम देखनेमें आता है। १३४१ ई०में द्वारसमुद्रके बल्लालवंशके अधःपतन होने पर विजयनगरके राजाओंने यह राज्य बसाया। १४८७ ई०में विजयनगरका राजवंश जब विलुप्त हो गया, तब नरसिंह नामक एक तैलङ्ग राजकुमार राज्याभिषिक्त हुए। १५०८ ई० तक वे यहां राज्य करते रहे। उन्हींके नाम पर यह राज्य 'नारसिंह' नामसे प्रसिद्ध हुआ था।

नारसिंहवपुस् (सं० पु०) नरसिंहरूपी विष्णु।

नारसिंही (हिं० वि०) नरसिंहसम्बन्धी।

नारा (सं० स्त्री०) नरस्य मुनेरियं, नर-अण् (तस्येदम्। पा ४।३।१२०) ततष्टाप्। जल, पानी।

"आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः॥"
(मनु० १।१०)

इस श्लोककी टीकामें कुल्लूकभट्टने 'नारा' शब्दकी व्युत्पत्तिकी जगह ऐसा लिखा है, नर-अण् उसके बाद टाप् करके 'नारा' शब्द हुआ है, अण् प्रत्यय करनेसे टाप् न हो कर ङीप् होता है, यह साधारणविधि है। यहां पर ऐसा होनेसे नारा न हो कर नारी ऐसा पद होना चाहिये। किन्तु वेद और स्मृतिके प्रयोगमें विकल्पसे एक पक्षमें टाप् हो कर नारा पद सिद्ध हुआ।

नारा (हिं० पु०) १ कुसुम्भसूत, लाल रंगा हुआ सूत जो पूजनमें देवताओंको चढ़ाया जाता है, मौली। २ सूतकी डोरी जिससे स्त्रियां घाँघरा कसती हैं अथवा कहीं कहीं धोतीकी चुनन बांधती है, इजारबंद, नीवी। ३ वह रस्सी जो हलके जूएमें बंधी रहती है। ४ वृष्टिका जल बहानेका प्राकृतिक मार्ग, छोटी नदी।

नाराच (सं० पु०) नारं नरसमूहमाचामतीति चमु-अदने ड। (अन्येष्वपि दृश्यते। पा ३।२।१०१) १ सकल प्रकार लौहमय बाण, वह तीर जो सारा लोहेका हो। पर्याय—प्रक्ष्वेडन, लौहनाल।

जिस बाणका सर्वाङ्ग लोहेका होता है, उसीका नाम नाराच है। शरमें चार पङ्ख लगे रहते हैं और नाराचमें पांच। वे पंख शरबाणसे कुछ मोटे और बड़े होते हैं। नाराचबाणका चलाना बहुत कठिन है। २ दुर्दिन, ऐसा दिन जिसमें बादल घिरा हो, अंधड़ चले तथा इसी प्रकारके और उपद्रव हों। ३ छन्दोविशेष, एक वर्ण-वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें दो नगण और चार रगण होते हैं। इसे 'महामालिनी' और तारका भी कहते हैं। ४ चौबीस मात्राओंका एक छन्द।

नाराचघृत (सं० क्ली०) १ घृतौषधभेद, वैद्यकमें एक घृत जो घीमें चीतेकी जड़, त्रिफला, भटकटैया, बायबिड़ङ्ग, थूहरका दूध, निसोथकी जड़ आदि पका कर बनाया जाता है। प्रतिदिन दो तोला सेवन करनेसे वात, गुल्म, प्लीहा, उदावर्त्त, अर्श, ग्रहणी आदि रोग जाते रहते हैं। इसका अनुपान उष्णजल, घृतयुक्त यवागू और जङ्गलीमांसका शिरवा है।

प्रस्तुतविधि—घृत एक सेर, कल्कार्थ थूहरका दूध, दन्तीमूल, त्रिफला, विडङ्ग, भटकटैया, निसोथ, चीतेकी जड़ प्रत्येक १ तोला ६ माशा २ रत्ती। व्यवहार मात्रा १ तोला और अनुपान उष्णजल है। इसके सेवन करनेसे उदरामय अच्छा हो जाता है।

२ उदररोगका घृतौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—घृत ७४ सेर, कल्कार्थ लोध, चीतामूल, चई, विडङ्ग, त्रिफला, निसोथ, अतीस, त्रिकटु, बनयमानी, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, दन्तीमूल प्रत्येक दो तोला, गोमूत्र ७१ सेर, थूहरका दूध ४ पल; जल १६ सेर। इस घृतको बृहन्नाराचघृत कहते हैं। इसके सेवन करनेसे उदरी और आमवात आदि रोग बहुत जल्द नष्ट हो जाते हैं।

नाराचचूर्ण (सं० क्लो०) चूर्णौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—चीनी एक पल, निसोथ एक पल, पिप्पलीचूर्ण २ तोला इन सबका चूर्ण करते हैं। बाद खानेसे पहले मधुके साथ २ तोला परिमाणमें अवलेह करनेसे उदावर्त्त रोग नष्ट हो जाते हैं। (भैषज्यरत्ना० उदावर्त्तानाहाधि०)

नाराचरस (सं० पु०) औषधभेद, एक प्रकारकी दवा। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गन्धक, मिर्च प्रत्येक एक एक भाग और उतना ही, जयपाल इन सबको थूहरके दूधमें घोंट कर नारियलके मध्य भागमें रखते हैं। बाद तेज आँचसे पाक करते हैं। नाभिमें इसका प्रलेप देनेसे और इसकी गन्ध लेनेसे विरेचन होता है।

(भैषज्यरत्ना० उदावर्त्ताधि०)

अन्यविध प्रस्तुत प्रणाली—पारा, सोहागा, मिर्च प्रत्येक एक तोला, गन्धक, पिप्पली और सोंठ प्रत्येक दो तोला, निस्तुष जयपाल ८ तोला; इन्हें जलमें पीस कर दो रत्तीकी गोली बनाते हैं। अनुपान तण्डुलोदक हैं। इसके सेवन करनेसे गुल्म और प्लीहोदर नष्ट होता है। (भैषज्यरत्नावली उदराधिका०)

नाराचिका (सं० स्त्री०) नाराचस्तदाकारोऽस्त्यस्या इति नाराच-ठन्-टाप्। १ नाराची, सुनारोंका कांटा। २ छन्दोविशेष, एक वर्णवृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें आठ आठ अक्षर होते हैं जिनमेंसे १।२।३।५।८ वां वर्ण गुरु और शेष लघु होते हैं।

नाराची (सं० स्त्री०) नाराचवदाकृतिरस्त्यस्या इति अच्, गौरादित्वात् ङीष्। स्वर्णतोलकयन्त्र, छोटी तराजू जिसमें बहुत छोटी छोटी चीजें तौली जाती हैं। पर्याय—नाराचिका, एषणिका, एषणी।

नाराज (फा० वि०) अप्रसन्न, रुष्ट, नाखुश, खफा।

नाराजगी (फा० स्त्री०) अप्रसन्नता।

नाराजी (फा० स्त्री०) अप्रसन्नता, अकृपा, कोप।

नाराजोल—मेदिनीपुर जिलेका एक ग्राम। यह पलाशपाई नामक एक छोटी नदीके किनारे अवस्थित है। यहां सूती कपड़े और चटाईका कारखाना है। यहांके राजवंशके विषयमें इस प्रकार जनश्रुति है,—प्रथमतः बर्द्धमान जिलान्तर्गत भीलापुर-ग्रामवासी लक्ष्मणसिंह नामक एक सद्गोपने उड़ीसाके तात्कालिक अधिपतिकी सहायतासे सुलेमानके समसामयिक राजा सुरथसिंहसे मेदिनीपुरराज्य अपने अधिकारमें कर लिया। लक्ष्मणसिंहने सात पीढ़ी तक यहां राज्य किया। इस वंशके अन्तिम राजा अजितसिंह केवल दो विधवा स्त्रीको छोड़ अपुत्रकावस्थामें परलोक सिधारे। पीछे नाराजोलके जमींदार त्रिलोचन खाँ विधवा रानीके अधीन राज्यके शासनकर्त्ता हो कर राजकार्य चलाने लगे। पीछे धीरे धीरे विश्वासघातकतासे त्रिलोचनने राज्यकी सारी सम्पत्ति अपने अधिकारमें कर ली। कालक्रमसे निःसन्तानावस्थामें उनका भी देहान्त हुआ।

पीछे उनके मध्यम भ्रातुष्पुत्र सीतारामने उक्त राज्यभार ग्रहण किया। राजा होनेके कुछ दिन बाद ही उनका शरीरावसान हुआ। कई वर्षोंसे कर बाकी रह जानेके कारण गवर्मेण्टने नाराजोलकी सम्पत्ति अपने अधिकारमें कर ली। १७९३ ई०के नूतन बन्दोबस्तमें सीतारामके बड़े लड़के आनन्दलालने पैतृक जमींदारी नाराजोलका पुनः उद्धार किया। इसके कुछ दिन बाद आनन्दलालकी मृत्यु हुई। उनके कोई सन्तान न रहनेके कारण मरते समय वे अपने छोटे भाई मोहनलाल खाँको मेदिनीपुरका राजा बना गये। १८३० ई०में मोहनलाल इस लोकसे चल बसे। पीछे अयोध्याराम और बाद उनके लड़के महेन्द्रलाल इस विपुल सम्पत्तिके अधिकारी हुए। महेन्द्रलालके मरने पर उनके लड़के नरेन्द्रलाल खाँ राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए।

ये लोग जातिके सद्गोप हैं। देवता और ब्राह्मणके प्रति इनकी विशेष भक्ति और श्रद्धा है।

नारायण (सं० पु०) नारा जलं अयनं स्थानं यस्य। अय गतौ भावे ल्युट्। १ विष्णु, परमात्मा। इस शब्दकी व्युत्पत्ति भिन्न भिन्न पुराणोंसे भिन्न भिन्न तरहसे बतलाई गई है। उनमेंसे कुछ नीचे दिये जाते हैं—

"जह नुर्नारायणो नरः।" (भारत० १३।१४९।३९)

महाभारतके इस श्लोकके भाष्यमें 'नारायण' शब्दकी ऐसी व्युत्पत्ति लिखी है—नर शब्दसे आत्मा, आत्मासे आकाशादि उत्पन्न हुए हैं, इसका कारण नारा नाम हुआ है। यह नारा कारणस्वरूपमें व्याप्त होता है, इसीसे नारायण नाम पड़ा है। श्रुतिमें प्रतिपादित

हुआ है, कि आत्मासे ही आकाश उत्पन्न हुआ है।

"आत्मन आकाशः सम्भूतः" (श्रुति)।

'नर आत्मा ततो जातानि आकाशादीनि नाराणि तानि कार्याणि अयते कारणात्मना व्याप्नुते नारायणः' (भाष्य)

जिससे सभी तत्त्व उत्पन्न हों और जिसमें फिर लीन हो जायँ, उसीका नाम नारायण है।

"नराज्जातानि तत्त्वानि नाराणीति विदुर्बुधाः।
तान्येवायनं यस्य तेन नारायणः स्मृतः॥" (महाभारत)

अयनत्वादिति वा प्रलयः 'यत् प्रयन्त्यति संविशन्ति' इति श्रुतेः। मनुमें लिखा है—

"आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥"
(मनु १।१०)

नर शब्दसे परमात्माका बोध होता है और इसी नरसे सबसे पहले जलकी उत्पत्ति है, इसीसे जलको नारा कहते हैं। नारा ब्रह्मरूपमें अवस्थित परमात्माका सर्वप्रथम अयन वा आश्रय है, इस कारण ब्रह्माको नारायण कहते हैं। जो कुछ देखा जाता है वा सुना जाता है, उन सब वस्तुओंके भीतर और बाहर नारायण अवस्थित हैं, अर्थात् नारायण जगत्के समस्त वस्तुओंमें सर्वत्र विद्यमान हैं।

"यच्च किंचिज्जगत् सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा।
अन्तर्वहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः॥"

किसी मन्वन्तरमें भगवान् विष्णु नर नामक ऋषिके अपत्य हुए थे, इस कारण भगवान्का नाम नारायण हुआ है। (अमरटीकामें भरत)

"नारंच मोक्षणं पुण्यमयनं ज्ञानमीप्सितम्।
ततोर्ज्ञानं भवेद् यस्मात् सोऽयं नारायणः स्मृतः॥"
(ब्रह्मवै० श्रीकृष्णज० १०६ अ०)

नार शब्दका अर्थ मोक्ष और अयन शब्दका अर्थ अभिलषित ज्ञान है, जिससे मोक्ष और ज्ञानविषयक ज्ञान हो, उसे नारायण कहते हैं। और भी लिखा है—

"नाराश्च कृतपापाश्चाप्ययनं गमनं स्मृतम्।
यतो हि गमनं तेषां सोऽयं नारायणः स्मृतः॥"
(ब्रह्मवै० श्रीकृष्णज० १०८ अ०)

पापियोंको नारा कहते हैं, अयन शब्दका अर्थ गमन है, जिससे पापीको गति हो, उसे नारायण कहते हैं।

इस प्रकार नारायण शब्दकी नामनिरुक्ति अनेक प्रकारसे लिखी है। विस्तार हो जानेके भयसे अधिक नहीं लिखा गया। जिनसे यह जगत् और सभी भूत उत्पन्न होते हैं, जीवित रहते हैं और अन्तमें उन्हींमें लीन हो जाते हैं, वही भगवान् परब्रह्म नारायण हैं। वेदके मतसे ये प्रथम पुरुष हैं। (शतपथब्राह्मण १३।६।२।१, शाङ्खायनश्रौतसूत्र १६।१३।१)

ब्रह्मवैवर्त्तके मतसे नारायणको दो मूर्त्ति हैं, द्विभुज और चतुर्भुज। वैकुण्ठमें चतुर्भुज मूर्त्ति है और गोलोकमें द्विभुज मूर्त्ति। महालक्ष्मी और सरस्वती चतुर्भुज नारायणकी पत्नी हैं तथा गङ्गा और तुलसीदेवी द्विभुज नारायणकी।

"श्रीकृष्णस्य द्विधारूपो द्विभुजश्च चतुर्भुजः।
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयं॥
चतुर्भुजस्य पत्नी च महालक्ष्मी सरस्वती।
गंगा च तुलसी चैव देवी नारायणप्रिया॥"
(ब्रह्मवै० प्रकृतिख० ६४ अ०)

नारायणका नामोच्चारण करनेसे सब पाप नष्ट होते हैं। तीन सौ कल्प तक गङ्गादितीर्थमें स्नान करनेसे जितना फल प्राप्त होता है, एक बार नारायणका नाम लेनेसे ही उतना ही फल मिलता है। नारायण, अच्युत, वासुदेव और अनन्त इन सबका नामोच्चारण करनेसे मोक्षलाभ होता है।

जो 'नारायण' यह शब्द उच्चारण करते हैं, उन्हें नरककी हवा कभी खानी नहीं पड़ती।

"नारायणेति शब्दोऽस्ति वागस्ति वशवर्त्तिनी।
तथापि नरके मूढाः पतन्तीह किमद्भुतम्॥"
(महाभारत)

नारायणकी पूजा करनेमें निम्नलिखित रूपसे ध्यान करना होता है।

ध्यान—"ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्त्ती
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः।
केयूरवान् कनककुण्डलवान् किरीटि-
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशंखचक्रः॥" (आदित्यहृदय)

प्रति दिन नारायणकी पूजा प्रत्येक ब्राह्मणका अवश्य

कर्त्तव्य है। शालग्रामशिलापूजाको नारायणपूजा वा विष्णुपूजा कहते हैं। शालग्रामपूजा और विष्णुपूजा देखो।

कौन कौन काम करनेसे नारायणकी प्रीति वा अप्रीति होती है, क्रियायोगसारमें उसका विषय इस प्रकार लिखा है—

"कर्मणा येन विप्रेन्द्र तुष्टिर्मे हृदि जायते।
क्रोधश्च तत् समस्तं ते कथयामि समासतः॥"
(क्रियायोगसार १८ अ०)

विष्णु भगवान् कहते हैं, जिस कामसे मैं प्रसन्न हो सकता हूं, उसका विषय संक्षेपमें कहता हूं। सर्वभूतोंमें दया, निरहङ्कार, मेरे उद्देशसे भक्तिपूर्वक धर्मकार्यानुष्ठान, यथार्थ वाक्यकथन, मिष्ट वस्तु विष्णुके उद्देशसे निवेदन, जिसका मान और अपमान एक-सा है और जो मुझे सर्वभूतोंमें विद्यमान मानते हैं, जो परहिंसा-विहीन हैं, जो सब काम सोच विचार कर करते हैं, गो और ब्राह्मणहितैषी, शास्त्रनियम-परिपालयिता, उपकारकी आशा न रखते हुए दान और मेरे उद्देशसे वित्तदान, यही सब मेरे प्रिय हैं। नारायणके अप्रीतिकर कार्य—हिंसा, क्रोध, असत्य, अहङ्कार, क्रूरता, परनिन्दा, परवञ्चन, विध्वंसन, पिता, माता, भ्राता, पत्नी और भगिनीका त्याग, गुरुजनके प्रति कटुवाक्यप्रयोग, गुरुजनके प्रति अवज्ञा, चाहे जिस उपायसे हो दम्पतीके मध्य मनोभङ्गकरण, परद्रव्यहरण, आरामछेदन, जलाशय नष्टकरण, ग्रामनाश, परको देख कर आकुलता, पापचर्याश्रवण, अनाथ व्यक्तिका द्वेषकरण, विश्वासघातकता, गोचोय हनन, वृषलीपति, अश्वत्थनाश, ब्रह्मा, विष्णु और महेशादिमें भेदबोध, वेदनिन्दा, एकादशीमें आहार, परदारासक्ति, पापमन्त्रणादान, मित्रद्रोह, धातकीनाश, दिनको स्त्रीसङ्गम, रजस्वला-सम्भोग, व्रतस्था सम्भोग, अमावस्याको रात्रिमें भोजन, अमावस्यामें आमिषभोजन, तैलमर्द्दन और स्त्रीसम्भोग, वैष्णवनिन्दा ये सब कार्य नारायणके अप्रीतिकर हैं।
(क्रियायोगसार १८ अ०)

कालिकापुराणमें चतुर्भुज मूर्त्तिका ध्यान इस प्रकार है—

"शङ्खचक्रगदापद्मधरं कमललोचनम्।
शुद्धस्फटिकसंकाशं क्वचिन्नीलाम्बुजच्छविम्॥
गरुडोपरिशुक्लाब्जपद्मासनगतं हरिम्।
श्रीवत्सवक्षसं शान्तं वनमालाधरं परम्॥
केयूरकुण्डलधरं किरीटमुकुटोज्ज्वलम्।
निराकारं ज्ञानगम्यं साकारं देहधारिणम्॥
नित्यानन्दं निरानन्दं सूर्यमण्डलमध्यगम्।
मन्त्रेणानेन देवेशं विष्णुं भज शुभानने॥"
(कालिकापुराण २२ अ०)

तैत्तिरीय आरण्यकमें नारायणकी गायत्री है—

"नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि।
तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्॥" (१०।१।६)

ज्ञानपूर्वक वा अज्ञानपूर्वक नारायणका नाम लेनेसे भवबन्धन दूर होता है। भागवतमें लिखा है—'कान्यकुब्ज देशमें अजामिल नामक एक ब्राह्मणने किसी एक दासीके साथ विवाह कर लिया। अतः सर्वदा दासीके संसर्गसे वे दूषित हो गये और उनके सभी सदाचार विनष्ट हुए। कालक्रमसे उनके दश पुत्र उत्पन्न हुए। सबसे छोटे पुत्रका नाम नारायण था। उस पुत्रके प्रति उनका हृदय हमेशा आकृष्ट रहता था। अजामिलको जब अन्तिम काल उपस्थित हुआ, तब यमदूतगण भयङ्कररूप धारण कर उनके समीप आए। अजामिलने इन्हें देख भयसे व्याकुल हो नारायण नामक पुत्रको बुलाया। मरते समय 'नारायण' ऐसा नाम सुननेसे हो विष्णुदूतोंने यमदूतोंको निकाल भगाया और उस ब्राह्मणको वे विष्णुलोकमें ले गये। इस अजामिलने पापकर्मा होने पर भी पुत्रका नाम नारायण रखा था और सर्वदा उसीका नाम लिया करता था, जिससे अन्तमें वह पापरहित हो विष्णुलोकको प्राप्त हुआ।' (भागवत ६।१ अ०)
विष्णु देखो।

२ दुर्योधनको सैन्यविशेष, दुर्योधनको एक सेनाका नाम। ३ धर्मपुत्र ऋषिविशेष, धर्मके पुत्र एक ऋषि।

"धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्त्यां
नारायणो नर इति स्वतपःप्रभावः।" (भाग० २।७।६)

४ कृष्णयजुर्वेदके अन्तर्गत उपनिषद्विशेष। मुक्तिकोपनिषद्में इस उपनिषद्का नामोल्लेख देखनेमें आता है।

शङ्कराचार्यने इस उपनिषद्‌का भाष्य और आनन्द-गिरिने उसकी टीका प्रणयन की। नारायण और शङ्करानन्दने इस उपनिषद्‌की दीपिका बनाई है।

नारायण—इस नामके अनेक संस्कृत ग्रन्थकारोंके नाम मिलते हैं जिनमेंसे निम्नलिखित उल्लेखयोग्य नाम हैं –

१ एक वैदिक पण्डित। इन्होंने अग्निष्टोमप्रयोग, आचार-चतुर्दशीपरिशिष्ट, कौतुकबन्धनप्रयोग, चयन पद्धति, जीवच्छ्राद्धप्रयोग, महारुद्रपद्धति, रुद्रपद्धति, रुद्र-जपविधि, वृद्धिश्राद्धप्रयोग, स्थालीपाकप्रयोग आदि ग्रन्थ बनाए हैं।

२ एक ज्योतिर्विद्। इन्होंने अमृतकुम्भ, ग्रहलाघव, चमत्कारचिन्तामणि और उसकी टीका लिखी है।

३ एक विख्यात दार्शनिक, रत्नाकरके पुत्र और रामेन्द्र-सरस्वतीके शिष्य। ये समस्त आथर्वण उपनिषदोंकी दीपिका बना गये हैं जिनमेंसे अथर्वशिखा, अथर्वशिरा, अमृतनाद, अमृतबिन्दु, आत्मबोध, आत्मविद्या, आनन्दवल्ली, आरुणीय, ऐतरेय, काठक, कालाग्निरुद्र, कृष्ण, कृष्णतापनीय, केनेषित, कैवल्य, कौषीतक, क्षुरिका, गणपतिपूर्वतापिनी, गर्भ, गारुड़, गोपालतापनीय, गोपीचन्दन, चूलिका, जाबाल, तेजोबिन्दु, तैत्तिरीय, द्वितीय, ध्यानबिन्दु, नादबिन्दु, नारसिंह, नारायण, नीलरुद्र, नृसिंह, परमहंस, पिण्ड, प्रथम, प्रश्न। प्राणाग्निहोत्र, ब्रह्मबिन्दु, ब्रह्मविद्या, ब्रह्मोपनिषद्, भृगुवल्ली, महानारायण, महोपनिषत्, माण्डुक्य, मुण्डक, मैत्रेयी, योगतत्त्व, योगशिखा, रामतापनीय, नारद-पूर्वतापिनी, श्वेताश्वतर, वज्र, षट्‌चक्र, संन्यास, सर्व और हंस आदि उपनिषद्‌की दीपिका मिलती हैं। इन सब दीपिकामें नारायणके पाण्डित्यका यथेष्ट परिचय है।

४ अध्यात्मचिन्तामणिव्याख्यानके रचयिता।

५ कुमारसम्भव और रघुवंशकी 'भावदीपिका' नामक टीकाकार।

६ खण्डव्याख्यानमालाके रचयिता।

७ वल्लभाचार्यकृत जलभेद नामक ग्रन्थके टीकाकार।

८ पल्लवदर्पणके रचयिता।

९ तत्त्वविवाहक नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता।

१० दशावतारोत्पत्ति समयके दीपिकाकार।

११ दिनत्रयमीमांसा नामक स्मार्त्तग्रन्थकार।

१२ देवीमाहात्म्यके एक टीकाकार।

१३ धर्मसुबोधिनी नामक नव्यस्मृतिके संग्रहकार।

१४ राघवेन्द्रके शिष्य, न्यायप्रमाणमञ्जरीके एक टीकाकार।

१५ पद्मलीलाविनाशिनी नामक ज्योतिःग्रन्थके रच-यिता।

१६ पार्वणश्राद्धप्रदीपभाष्यके प्रणेता।

१७ भक्तिभूषणसन्दर्भ और भक्तिसागर नामक भक्ति-ग्रन्थके रचयिता।

१८ गोविन्दपुरनिवासी एक मीमांसक। खण्ड-देवकी भाट्टदीपिकाके आधार पर इन्होंने भाट्टन्यायो-द्योतकी रचना की।

१९ एक प्रसिद्ध वैयाकरण। इन्होंने महाभाष्य-प्रदीप-विवरण बनाया है।

२० मात्रगोत्रनिर्णय नामक धर्मशास्त्रके संग्रहकार।

२१ तैत्तिरीय-विलक्ष्म-लक्षणके रचयिता।

२२ विष्णुस्मृति और विष्णुश्राद्धके रचयिता।

२३ गोविन्दपुर-निवासी एक शाब्दिक। इन्होंने पाणिनि व्याकरणकी शब्दभूषण नामक टीका लिखी है।

२४ सारदातिलकतन्त्रके एक टीकाकार।

२५ शिवगीताकी तात्पर्यबोधिनी नामक टीकाकार।

२६ श्रुतिरञ्जिनी नामक अलङ्कारग्रन्थके रचयिता।

२७ सापिण्डकल्पलतिकाके रचयिता।

२८ सोमप्रयोगके टीकाकार।

२९ हितोपदेशके रचयिता। इन्होंने धवलचन्द्रके आधार पर उक्त ग्रन्थ लिखा है।

३० टापरग्रामके एक ज्योतिर्विद्। इनके पिताका नाम अनन्त और पितामहका नाम हरि था। इन्होंने १५७३ ई०में मुहूर्त्तमार्त्तण्ड और उसकी टीका तथा लुप्तमण्डदर्पण नामक एक ज्योतिर्ग्रन्थ लिखा है।

३१ एक वेदज्ञ पण्डित। ये कृष्णजीके पुत्र और श्रीपतिके पौत्र थे। १५७३ ई०में इन्होंने शाङ्खायन-गृह्यसूत्रभाष्य रचा है।

३२ केशवमिश्रके छन्दोगपरिशिष्टके परिशिष्टप्रकाश नामक टीकाकार। इनके पिताका नाम गोप, पितामह-

का नाम उमापति और प्रपितामहका नाम गदाधर था।

३३ एक ज्योतिर्विद्, दादाभाईके पुत्र और माधवके पौत्र। इन्होंने ताजिकसार-सुधानिधि तथा होरासार सुधानिधिकी रचना की है।

३४ नृसिंहके पुत्र। इन्होंने १३५७ ई०में पाटी-गणितकी रचना की है।

३५ मलयवासी पशुपतिके पुत्र। ये शाङ्खायन-श्रौत-सूत्रकी पद्धति और शाङ्खायन-सूत्रके प्रैषाध्यायका भाष्य बना गये हैं।

३६ माधवकृत गोत्रप्रवरके एक टीकाकार। इनके पिताका नाम मण्डूरि रघुनाथ था।

३७ एक प्रसिद्ध टीकाकार। इनके पिताका नाम रघुनाथ दीक्षित और भ्राताका नाम बालकृष्ण था। इन्होंने उत्तररामचरित, काव्यप्रकाश, मालतीमाधव, राधाविनोद, वासवदत्ता, विद्धशालभञ्जिका, हनुमन्नाटक आदि ग्रन्थोंकी टीका बनाई है। इनके अपेक्षित व्याख्यान नामक उत्तररामचरितकी टीका पढ़नेसे जाना जाता है, कि ये शुकदेव नामक एक व्यक्तिके निकट रहते थे और १६३० ई०में विद्यमान थे।

३८ ग्रहणलिखनानुक्रम नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। इनके पिताका नाम राम था।

३९ एक संस्कृत नाटककार। इनके पिताका नाम लक्ष्मीधर था। इन्होंने कमलाकण्ठीरव नाटक लिखा है। ये काञ्चिदेशके ब्रह्मदेशाग्रहारमें रहते थे।

४० एक भक्तिग्रन्थके रचयिता। इनके पिताका नाम विश्वभट्ट और पितामहका नाम जनार्दभट्ट था। इन्होंने काशीपति हरिदासके आदेशसे १६०८ ई०में पूर्णानन्द-प्रबन्धकी रचना की है।

४१ शाङ्खायनश्रौतसूत्रके पद्धतिकार। इस ग्रन्थमें इनकी वंशावली यों लिखी है—गुर्जरवासी चण्डांशु, तत्पुत्र वामन, तत्पुत्र आदित्य, तत्पुत्र जनार्दन, तत्पुत्र नीलकण्ठ, तत्पुत्र भानु, तत्पुत्र जगन्नाथ, तत्पुत्र श्रीपति और श्रीपतिके पुत्र यही नारायण थे।

४२ ओंकारग्रन्थके प्रणेता, हरिभट्टके पुत्र।

४३ अद्वैतकालानल नामक मध्वमतप्रतिपादक ग्रन्थके रचयिता।

४४ अर्गला, कीलक, देवीकवच आदि स्तोत्रोंके एक टीकाकार।

४५ केशवीय जातकपद्धतिके एक टीकाकार।

४६ न्यायसुधाके एक टीकाकार।

४७ मोक्षधर्म नामक धर्मशास्त्र-संग्रहकार।

४८ सुन्दरराजके शिष्य, सूत्र सिद्धान्तके एक टीकाकार।

४९ सेवनपद्धति नामक संग्रहकार।

५० एक सामुद्रिक। ये ताजिकतन्त्रसारकी टीका बना गये हैं।

नारायण—काण्वायनवंशके ३य राजा। इन्होंने गुप्तराज घटोत्कच पर चढ़ाई की थी।

नारायण—१ एक प्रसिद्ध हिन्दी कवि। ये सुललित कवितामें शिवराजपुरके चन्देल-राजाओंका इतिहास लिख गये हैं।

२ एक हिन्दी कवि। इन्होंने बहुतसी सुन्दर कविताओंकी रचना की। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं,—

"बंसिया काहेको बजाई गोरत जगाई मोरी नींद गंवाई।
चौंक उठी घरसों चली, जब उमगे दोऊ नैन।
कुंज कुंज पूंछत सखी, कौन बजावत बैन॥
कोऊ तो देहो बताई॥
बंशी हो गंसी लगी, बेधन कियो शरीर।
नन्दमहरको लाड़लो, हरे हमरी पीर॥
यह दुख सह्यो न जाई॥
एक कहै सुनरी सखी, खोटी जात अहीर।
कहबेको मनमोहना, हैगो बड़ो बे पीर॥
घर घर करे छल छाई॥
मोरमुकुट शिर पर धरे, गल डाले बनमाल।
त्रिभंगी जादू भरो, देखत रूप विशाल॥
ढूंढ़े हूं नहीं पाई॥
कित जाऊं पाऊं श्यामको, दीज्यो मोहे बताय।
दास नारायण चरण तर, रहूं सदा लपटाय॥
अबतो दरस दिखाई॥"

नारायणआचार्य—१ एक संस्कृत कवि। कार्त्तवीर्या-र्जुनसदर्या और उसके टीकाकार। २ तीर्थप्रबन्धकाव्य और रुक्मिणीविजयकाव्यके भावप्रकाशके टीकाकार। ३ स्फुटदर्पण नामक ज्योतिष ग्रन्थके रचयिता।

नारायणकण्ठ—प्रसिद्ध शैवदार्शनिक, रामकण्ठके पौत्र, और विद्याकण्ठके पुत्र। इन्होंने मृगेन्द्र और मृगेन्द्रोत्तर नामक शैवतन्त्रकी टीका रची है।

नारायण कर्णदेव—विज्ञानतन्त्र नामक वैदान्तिक ग्रन्थकार।

नारायणकवि—चन्द्रकला नामक संस्कृत नाटककार।

नारायणक्षेत्र (सं॰ क्ली॰) नारायणस्य क्षेत्रं। गङ्गाप्रवाहसे चतुर्हस्त-परिमित दूर पर्यन्त स्थान, गङ्गाके प्रवाहसे चार हाथ तककी भूमि।

"प्रवाहमवधिं कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टयम्।
तत्र नारायणः स्वामी नान्यस्वामी कथंचन:॥"
(ब्रह्मपुराण)

इस क्षेत्रके स्वामी स्वयं नारायण हैं। इस स्थान पर दान देना वा लेना निषिद्ध है।

नारायणक्षेत्रमें दीक्षा, देवपूजा, श्राद्ध, तर्पण, परोपकार, स्तवपाठ और मौनव्रत करना चाहिए। यहां नीचालाप परिवर्जनीय है। (बृहद्धर्मपु॰ ४५ अ॰)

नारायणगञ्ज—१ बङ्गाल प्रान्तके ढाका जिलान्तर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा॰ २३° ३४´ से २४° १५´ उ॰ तथा देशा॰ ९०° २७ से ९०° ५९´ पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६४१ वर्गमील और लोकसंख्या प्राय: ६६०७१२ है। इसमें एक शहर और २१७७ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त विभागका एक शहर। यह अक्षा॰ २३° ३७´ उ॰ और ९०° ३०´ पू॰के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या लगभग २४४७२ है। ढाका शहर यहांसे ८ मील दूर पड़ता है। मीरजुम्लाके बनाये हुए कितने दुर्ग इसके निकटवर्त्ती स्थानोंमें आज भी वर्त्तमान है। यहांसे थोड़ी ही दूर पर कदम रसुल नामक मुसलमानोंका तीर्थस्थान है। नारायणगञ्ज पटसनके लिए प्रसिद्ध है।

नारायणगढ़—मेदिनीपुरके अन्तर्गत एक प्राचीन स्थान। यहां प्राचीन हिन्दूकीर्त्ति आज भी विद्यमान है।

नारायणगार्ग्य—नृसिंहगार्ग्यके पुत्र। इन्होंने आश्वलायनश्रौत और गृह्यसूत्रका भाष्य, आश्वलायन-गृह्यकारिकाका भाष्य, आश्वलायन-सूत्रपद्धति और श्रौतसूत्रविधि बनाई है।

नारायण गोसाईं नृपति—प्रश्नवैष्णव नामक ज्योतिषके ग्रन्थकार।

नारायणगौड़—मिश्ररागविशेष। यह वेलावेली, नट और गौड़योगसे उत्पन्न हुआ है। (संगीतरत्ना॰)

नारायणचन्द्र चूड़ामणि—केशवीय वर्षपद्धतिके एक टीकाकार।

नारायणचक्रवर्त्ती—१ भागवतपुराणके एक विख्यात टीकाकार। २ शान्तिकतत्त्वामृत नामक स्मार्त्तके ग्रन्थकार। ३ एक संस्कृत अभिधानके रचयिता। ४ पदार्थकौमुदीके प्रणेता।

नारायणचूर्ण (सं॰ क्ली॰) चूर्णौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—यवानी, हवुषा, धनिया, त्रिफला, कृष्णजीरा, ईषत्कृष्ण जीरा, पिप्पलीमूल, अजगन्धा, कचूर, वृहत् जीरा, त्रिकटु, स्वर्णक्षीरी, चीता, यवक्षार, साचिक्षार, पुष्करमूल, कुट, पञ्चलवण और विडङ्ग इन सब द्रव्योंके बराबर बराबर भाग, दन्ती ३ भाग अर्थात् उक्त एक भागका तिगुना, निसोथ २ भाग, इन्द्रवारुणी २ भाग, शातला ४ भाग इन सबके चूर्णको एकत्र कर अनुपानविशेषसे सेवन करनेसे निम्नलिखित रोग जाते रहते हैं। यह चूर्ण उदररोगमें तक्र द्वारा, गुल्मरोगमें बेरके काढ़ेके साथ, आनद्ध वातमें सुराके साथ, वातरोगमें प्रसन्नाके साथ, विट्भेदमें दधिमण्डके साथ, अर्शरोगमें दाड़िमके काढ़ेके साथ और अजीर्ण रोगमें उष्ण जलके साथ खानेसे ये सब रोग जाते रहते हैं। भगन्दर, पाण्डु, कास, श्वास, गलरोग, हृद्रोग, ग्रहणी, कुष्ठ, अग्निमान्द्य, ज्वर, दंशनजन्य विष, मूलविष, गरदोष और कृत्रिम विषमें यथायोग्य अनुपानके साथ सेवन करनेसे विरेचन हो कर विशेष उपकार होता है। (भावप्रकाश उदररोगाधि॰)

अन्यविध प्रस्तुत प्रणाली—गुलञ्च, विडङ्गबीज, इन्द्रयव, बेलसोंठ, अतीस, भृङ्गराज, सोंठ, मिश्रिपत्र प्रत्येकका चूर्ण समान, उतनाही कुटजकी छालका चूर्ण; इन्हें एक साथ मिलानेसे नारायणचूर्ण बनता है। इसका अनुपान गुड़ और मधु है। इसके सेवन करनेसे रक्तातीसार, शोथ, ज्वर, तृष्णा, कास, पाण्डुरोग, हिक्का आदि रोग नष्ट होते हैं। (भैषज्यरत्ना॰ अतीसाराधि॰)

नारायणघृत (सं॰ क्ली॰) घृतौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—

घृत ७५ सेर, क्वाथके लिये पीपल ७२ सेर, जल २० सेर, शेष ५ सेर, गुलञ्चरस ४ सेर, आँवलेका रस ७॥ सेर, चूर्णके लिये दाख, आमलकी, पटोलपत्र, सोंठ, कटकी, वच प्रत्येक १ पल, इन सबको यथाविधान पाक करनेसे यह घृत प्रस्तुत होता है। इसके पान करनेसे अम्लपित्त, दाह और वमि रुक जाती है।

(भैषज्यरत्ना० अम्लपित्ताधि०)

नारायणक्षलारी—१ छलारी नृसिंहके पुत्र। इन्होंने स्मृतिसार और स्मृतिसंग्रहकी रचना की है।

नारायण तीर्थ—वासुदेवतीर्थ और रामगोविन्दतीर्थके शिष्य और ब्रह्मानन्द सरस्वतीके गुरु। इन्होंने तत्त्वचन्द्र नामक सांख्यकौमुदीकी टीका, न्यायकुसुमाञ्जलिकारिकाकी व्याख्या, भक्तिचन्द्रिका नामक शाण्डिल्यसूत्रकी व्याख्या, भक्त्याधिकरणमाला और उसकी टीका, योगचन्द्रिका, योगसूत्रवृत्ति, वेदस्तुतिकी टीका, वेदान्तविभावनाटीका, सांख्यचन्द्र नामक सांख्यकारिकी टीका, सिद्धान्ततत्त्वविन्दुकी व्याख्या, तत्त्वचिन्तामणि दीधितिकी टीका और न्यायचन्द्रिका नामक भाषापरिच्छेदकी टीका प्रणयन की है।

२ शिवरामतीर्थके एक शिष्यका नाम। इन्होंने भाट्टप्रकाशिका नामक मीमांसा ग्रन्थको रचना की है।

३ बालबोधिनी नामक शङ्कराचार्यरचित आत्मबोधके एक टीकाकार।

४ दक्षिण-मूर्त्तिस्तोत्रके व्याख्याकार।

नारायणतीर्थस्वामी—गङ्गालहरी और उसकी टीकाके रचयिता।

नारायणतैल (सं० क्लो०) तैलौषधभेद, आयुर्वेदमें एक प्रसिद्ध तेल। यह तेल स्वल्प, वृहत् और मध्यमके भेदसे तीन प्रकारका है। यथा—नारायणतैल, मध्यमनारायणतैल और महानारायणतैल।

नारायणतैलकी प्रस्तुत प्रणाली—तिलतैल १६ सेर; क्वाथके लिये विल्वमूलकी छाल, गनियारीमूलकी छाल, सोनापाठा मूलकी छाल, पटोलमूलकी छाल, पालिधामूलकी छाल, अश्वगन्धा, वृहती, कण्टकारी, गन्धभद्रा, गोक्षुर, पुनर्णवा, प्रत्येक दश दश पल; जल २५६ सेर, शेष ६४ सेर; कल्कके लिये शुल्फा, देवदारु, जटामांसी, शैलज, वच, रक्तचन्दन, तगरपादुका, कुट, इलायची, शालपाणि, चक्रकुल्या, रास्ना, अश्वगन्धा, सैन्धव, पुनर्णवा-मूल, प्रत्येक दो दो पल, शतमूलीका रस १६ सेर, दूध ६४ सेर। इन सबको यथानियमसे पाक करनेसे नारायणतैल तैयार होता है। यह तेल पान, अभङ्ग और वस्तिक्रियामें प्रशस्त है। इसके व्यवहार करनेसे पङ्गुता, अधोवात, शिरोरोग, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ, दन्तरोग, गलग्रह, एकाङ्गशोथ, सकम्पनगति, इन्द्रियदौर्वल्य, शुक्रक्षय, वधिरता, अन्त्रवृद्धि आदि रोग तथा स्त्रियोंके गर्भग्रहणव्याघात रोग जाते रहते हैं।

मध्यम नारायणतैल। प्रस्तुत प्रणाली—क्वाथके लिये विल्व, अश्वगन्धा, वृहती, गोक्षुर, सोनापाठा, पालिधा, कण्टकारी, पुनर्णवा, गनियारी, गन्धभद्रा, पटोल इन सबको मिलाकर १२॥ सेर; पाकके लिये जल ५१२ सेर, शेष १२८ सेर, गाय वा बकरीका दूध ३२ सेर, तिलतैल भी ३२ सेर; कल्कके लिये रास्ना, अश्वगन्धा, मौरी, देवदारु, कुट, शालपाणि, चक्रकुल्या, अगुरु, नागेश्वर, सैन्धवलवण, जटामांसी, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, शैलज, रक्तचन्दन, कुट इलायची, मञ्जिष्ठा, यष्टिमधु, तगरपादुका, मोथा, तेजपत्र, भृङ्गराज, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मेद, महामेद, बाला, वच, पलाशमूल, श्वेतपुनर्णवा प्रत्येक दो दो पल; गन्धके लिए कपूर, कुङ्कुम और मृगनाभि सब मिला कर ३ पल। यथानियम पाक कर इस तेलका सेवन करनेसे पङ्गुता, अधोवात, शिरोरोग, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ, दन्तरोग, गलग्रह, एकाङ्गशोथ, सकम्पनगति, इन्द्रियदौर्वल्य, शुक्रक्षय, वधिरता आदि रोग विनष्ट होते हैं। इससे स्त्रियोंका गर्भग्रहणव्याघात भी जाता रहता है। यह तेल वातव्याधि-अधिकारमें अति प्रशस्त औषध है।

महानारायणतैल। प्रस्तुत प्रणाली—तिलतैल ४ सेर; क्वाथके लिये शतमूली, शालपाणि, चक्रकुल्या, कचूर, वच, एरण्डमूल, कण्टकारीमूल, नाटाकरञ्जमूल, गोरक्ष-चक्रकुल्याका मूल, प्रत्येक दश दश पल; पाकके लिये जल ६० सेर, शेष १६ सेर, गाय और बकरीका दूध आठ आठ सेर, शतमूलीका रस ४ सेर; कल्कके लिये पुनर्णवा, वच, देवदारु, शुल्फा, रक्तचन्दन, अगुरु,

अंलज, तगरपादुका, कुट, इलायची, जटामांसी, शाल-पाणि, अश्वगन्धा, सैन्धव, रास्ना प्रत्येक चार चार तोला। भलीभांति पाक इस तेलको शरीरमें मल कर लगानेसे सब प्रकारके वायुरोगोंकी शान्ति होती है तथा कुष्ठ-शूल, पार्श्वशूल, गण्डमाला, वातरक्त, कामला, पाण्डुरोग, अश्मरी आदि रोग भी जाते रहते हैं। भगवान् विष्णुने स्वयं इस तेलकी कथा कही है, इसीसे इसका नाम नारायणतैल पड़ा है।

(भैषज्यरत्ना० वातव्याधि०)

नारायणदत्त—१ सदुक्तिकर्णामृतधृत एक संस्कृत कवि। ये चक्रपाणिदत्तके पिता थे। २ जलाशयोत्सर्गपद्धतिके रचयिता।

नारायणदास—१ भारतयुद्ध-विवाद नामक संस्कृत ग्रन्थकार।

२ हिन्दीके एक कवि। सम्वत् १६१५में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने हितोपदेशकी भाषा छन्दोंमें लिखा।

नारायणदास—अकबरके शासनकालमें से दाक्षिणात्यके एक प्रसिद्ध राठोर राजा थे। अकबरने आसफ खांको इनके साथ लड़नेके लिये भेजा था। युद्धमें इन्हींकी हार हुई थी।

नारायणदास कविराज—१ गीतगोविन्दकी सर्वाङ्गसुन्दरी नामक टीकाके रचयिता। रमानाथने मनोरमामें यह टीका उद्धृत की है।

२ एक प्रसिद्ध वैद्यक ग्रन्थकार। इनके बनाये हुए राजवल्लभ नामक द्रव्यगुण, वैद्यक-परिभाषा और नानौषध परिच्छेद नामक ग्रन्थोंका वैद्यक-समाजमें खूब आदर है।

नारायणदास मिश्र—ये नारायण गोस्वामी नामसे प्रसिद्ध थे। इनके पिताका नाम था ब्रह्मदास। इन्होंने प्रश्नवैष्णव नामक एक बृहत् ज्योतिषशास्त्र और वैद्य वैद्यकशास्त्रकी रचना की है।

नारायणदेव—गजपति वीरनारायण नामसे प्रसिद्ध। इनके पिताका नाम पद्मनाभ और गुरुका नाम कविरत्न पुरुषोत्तम मिश्र था। ये अलङ्कारचन्द्रिका और सङ्गीत-नारायण नामक सङ्गीतशास्त्र बना गये हैं।

नारायणदेव—एक प्रसिद्ध बङ्गकवि। इनके पिताका नाम नरसिंह था। नारायण देवकी वंशावली अनेक शाखाओं और प्रशाखाओंमें विभक्त है। कविता बनानेमें इनकी अपूर्व शक्ति थी। कहते हैं, कि एक रातको इन्होंने स्वप्नमें देखा कि वंशीधारी कृष्ण स्वयं आ कर पद्य लिखनेके लिए उन्हें उत्साहित कर रहे हैं। यद्यपि ये बहुत पढ़े लिखे न थे, तो भी इनकी रचनामें कवित्व-शक्तिका विशेष परिचय मिलता है।

नारायण धर्माधिकारी—एक स्मार्त्त पण्डित। इन्होंने लक्षणकाण्ड और वन्ध्यात्वकारकोपद्रवहरविधिकी रचना की है।

नारायणपण्डित—इस नामके अनेक संस्कृत ग्रन्थकार देखनेमें आते हैं। १ अद्वैतकालामृत नामक वैदान्तिक ग्रन्थके रचयिता। २ लक्ष्मीदासके पुत्र। इन्होंने भीमदास-के कहनेसे गीतगोविन्द बनाया है। ३ नवरत्नपरीक्षा नामक ग्रन्थकार। ४ पाटीकौमुदी नामक ज्योतिःशास्त्र-के रचयिता। ५ शिवस्तुतिकार। इनके पिताका नाम लिकुची था। ६ कृष्णपण्डितके पुत्र, ज्वरनिर्णय और वैद्यवल्लभके टीकाकार। ७ विश्वनाथ पण्डितके पुत्र, विष्टपशुखण्डन-मीमांसाके प्रणेता। ८ हितार्थसूरिके पुत्र, इन्होंने आनन्दतीर्थकृत सदाचारस्मृतिकी एक टीका लिखी है। किसीका मत है, कि इनके पिताका नाम विश्वनाथ था।

नारायणपण्डिताचार्य—१ अणुमध्व-वीजस्तोत्र और विश्व-स्तोत्रके रचयिता। २ त्रिविक्रमके पुत्र एक मध्वमताव-लम्बी प्रसिद्ध वैदान्तिक। इन्होंने मणिमञ्जरी नामक वेदान्त, मध्वविजय नामक मध्वाचार्यकी जीवनी, मन्वार्थ मञ्जरी, विष्णुस्तुति, संग्रहरामायण, अणुमध्वविजय वा अप्रमेयमालिका नामक कितने संस्कृत ग्रन्थ प्रणयन किये हैं।

नारायणपरिव्राजक—यतीश्वर नामसे प्रसिद्ध। इन्होंने अर्थपञ्चक-निरूपणकी रचना की है।

नारायणपाल—पालवंशीय गौड़के एक प्रसिद्ध राजा।

पालराजवंश देखो।

नारायणपुर—१ विजगपत्तन जिलेके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह केन्द्रिलीसे १२ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहां अनेक प्राचीन और शिल्पकार्यविशिष्ट शिव-

मन्दिर हैं। उन सब मन्दिरोंमें शिलालिपियां देखी जाती हैं।

२ उत्तर-पश्चिमाञ्चलमें बलिया जिलेके अन्तर्गत एक अत्यन्त प्राचीन ग्राम। यह गङ्गापुरसे आध कोस दूर गङ्गाके किनारे अवस्थित है। यहां चीनपरिव्राजक युएन-चुवङ्गने नारायणदेवका मन्दिर देखा था। उस मन्दिर-का भग्नावशेष अब भी देखनेमें आता है।

नारायणपेट—हैदराबाद राज्यके महबूबनगर जिलान्तर्गत एक शहर। यह अक्षा० १६° ४५´ उ० और देशा० ७७° ३५´ पू०के मध्य महबूबनगरसे ३६ मील पश्चिममें अवस्थित है। यहांकी लोकसंख्या १२०११ है। यहां बढ़िया रेशमी तथा सूती साड़ी प्रस्तुत होती और दूर दूर देशोंमें भेजी भी जाती है। यहां एक मुनसिफ कचहरी, डाकघर, अस्पताल और बालक तथा बालिकाओंके लिए पृथक् पृथक् स्कूल है।

नारायणपावर—एक प्रसिद्ध व्यक्ति। सतारा जिलेके चिम्मोड़बुद्रुग नामक स्थानमें कृषकवंशमें इनका जन्म हुआ था। ८ वर्षकी अवस्थासे ये विषैले भयङ्कर सांपोंको पकड़ा करते थे। इसी कारण लोग इन्हें नारायणका अवतार मानते थे और कहा करते थे कि ये बहुत जल्द अङ्गरेजोंको भारतवर्षसे निकाल भगावेंगे। बहुतसे रोगी आरोग्य-प्राप्तिकी कामनासे इनके समीप आया करते थे। साँपके काटनेसे ही इनकी मृत्यु हुई।

नारायणप्रिय (सं० पु०) नारायणस्य प्रियः, नारायणः प्रियः यस्य इति वा। १ शिव, महादेव। २ पीतचन्दन। ३ महदेव।

नारायणबन्दीजन—हिन्दीके एक कवि। ये काकूपुर जिला कानपुरके रहनेवाले थे और इनका जन्म सं० १८०८में हुआ था। इन्होंने शिवराजपुरके चन्देल राजाओंकी वंशावली बनाई है।

नारायणभट्ट—१ भास्करभट्टके पुत्र, रूपसनातनके शिष्य। पुराणमें वृन्दावनके बारह वनोंका उल्लेख है। इसके अतिरिक्त अभी जो अनेक वनोंके नाम पाये जाते हैं और हिन्दू तीर्थयात्रिगण जहां पुण्यलाभकी आशासे वहां जाया करते हैं, प्रसिद्ध वैष्णवभक्त इन्हीं नारायणभट्टके यत्नसे उन सब पुण्यभूमिके नामकरण हुए हैं। अभी वृन्दावनमें जो वनयात्रा और रासलीला होती है, वह भी इन्होंसे प्रचारित हुई है। इन सब स्थानोंके माहात्म्यका प्रचार करनेके लिए इन्होंने १५५२ ई०में व्रजभक्तिविलास नामक एक संस्कृत ग्रन्थकी रचना की है। व्रजभक्ति-विलास पढ़नेसे मालूम होता है, कि परमहंस-संहिताके आधार पर उक्त ग्रन्थ रचा गया है। व्रजवासियोंका कहना है, कि वर्षाणके निकटवर्ती ऊँचागांव नामक स्थानमें नारायण रहते थे, किन्तु व्रजभक्ति-विलासमें इन्होंने अपनेको श्रीकुण्ड (वा राधाकुण्ड)वासी बतलाया है। श्रीचैतन्यदेवने वृन्दावनके लुप्ततीर्थका उद्धार करनेके लिये लोकनाथ गोस्वामीको भेजा था। वे अपने जीवनका अधिकांश समय वृन्दावनमें बिता कर उन सब लुप्तस्थानोंका निर्णय करनेमें समर्थ हुए थे। नारायणभट्टने रूपसनातन और लोकनाथकी सहायतासे उन सब स्थानोंका नाम रक्खा था। इनके व्रजभक्ति-विलासमें इस प्रकारके १३३ वनोंका उल्लेख है जिनमेंसे ९१ यमुनाके दाहिने किनारे और ४२ बायें किनारे पड़ते हैं।

२ गोकुलवासी एक विख्यात पण्डित। वल्लभाचार्यने बचपनमें इनसे संस्कृत काव्य और दर्शन शास्त्र सीखा था।

नारायणभट्ट—इस नामके अनेक संस्कृत ग्रन्थकारोंके नाम मिलते हैं—

१ इनका दूसरा नाम नित्यानन्द था। ये श्रीनिवास-विद्यानन्दके शिष्य थे। इन्होंने कल्पलता और नारापद्धति नामक दो संस्कृत ग्रन्थ बनाए हैं।

२ एक ज्योतिषी। इन्होंने समरसिंहरचित ताजिक-तन्त्रसारकी 'कर्मप्रकाशिका' नामक टीका लिखी है।

३ करेलवासी एक प्रसिद्ध कवि। इन्होंने कोटि-विरह, सुभगसन्देश, स्वाहासुधाकर और धातुकाव्य नामक कुछ काव्य, नारायणीय स्तोत्र और प्रक्रियासर्वस्व नामक संस्कृत व्याकरण रचा है।

४ एक टीकाकार। इन्होंने गृहप्रवेशप्रकरण, गोचर-प्रकरण, यात्राप्रकरण और विवाहप्रकरण आदि ग्रन्थोंकी टीका की है।

५ जानकीपरिणय नामक नाटककार।

६ केशवमिश्रकृत तर्कभाषाके एक टीकाकार।

७ तिथिवाक्यनिर्णय नामक ग्रन्थके रचयिता।

८ एक कवि। ये त्रिपुरदहन, दूतवाक्य, राक्षसोत्पत्ति, रामायण-प्रबन्ध और सुभद्राहरण नामक कुछ काव्य लिख गए हैं।

९ दशकर्मपद्धति और धर्मप्रवृत्ति नामक स्मार्त्त-ग्रन्थकार।

१० प्रायश्चित्त-संग्रहकार।

११ नामनिधान नामक कोष और मानवधर्मशास्त्रके भाष्यकार। इनके नामनिधानकोषका रायमुकुटने उद्धृत किया है।

१२ लक्षहोमपद्धतिके रचयिता।

१३ लघुचन्द्रिका नामक योगशास्त्रकार।

१४ विधान-रत्न नामक स्मार्त्तग्रन्थके रचयिता।

१५ वृत्तोक्तिरत्न नामक छन्दोग्रन्थ और परीक्षा नामक उसकी टीकाके रचयिता। तारावंशमें इनका जन्म हुआ था।

१६ वृत्तरत्नाकरके एक प्रसिद्ध टीकाकार। १६०२ सम्वत् (१५४५ ई०)में यह टीका रची गई थी। इन्होंने इस प्रकार अपना परिचय दिया है,—

विश्वामित्रके वंशमें श्रीनागनाथका जन्म हुआ। उनके पुत्र अङ्गदेव, अङ्गदेवके पुत्र गोविन्दभट्ट, गोविन्दभट्टके पुत्र रामेश्वरभट्ट और रामेश्वरभट्टके पुत्र नारायण हुए।

१७ व्युत्पत्तिवादार्थ नामक न्यायग्रन्थके रचयिता।

१८ संस्कारसागर नामक धर्मशास्त्रके प्रणेता।

१९ समलक्षण नामक वैद्यक ग्रन्थकार।

२० साधनदीपिकाके रचयिता। ये कान्यकुब्जीय शङ्करके शिष्य थे।

२१ स्तवचिन्तामणि नामक शैवग्रन्थके रचयिता।

२२ गोभिलगृह्यसूत्रके एक भाष्यकार। रघुनन्दनने इनका भाष्य उद्धृत किया है। इनके पिताका नाम महाबल, पितामहका रामदेव और प्रपितामहका नाम व्यास था।

२३ एक प्रसिद्ध स्मार्त्त, रामेश्वर भट्टके पुत्र और गोविन्द भट्टके पौत्र। ये १६वीं शताब्दीमें विद्यमान थे। इनके बनाए हुए अन्त्येष्टिप्रयोग, अन्त्येष्टिपद्धति, अयननिर्णय, आतुरसंन्यासविधि, आहिताग्निमरणमें दाहादिव्यवस्था, आह्निकविधि, उत्सर्गप्रयोग (जलाशयारामोत्सर्गविधि), कालनिर्णयसंग्रह, माधवकृत कालनिर्णयकी टीका, काशीमरणमुक्तिविचार, गयाकार्यानुष्ठानपद्धति, गयायात्राप्रयोग, गोत्रप्रवर-निर्णय, तिथिनिर्णय, तुलापुरुषमहादानप्रयोग, त्रिस्थलीसेतु, दिव्यानुष्ठानपद्धति, प्रयागसेतु, प्रयोगरत्न, माससीमांसा, रुद्रपद्धति, लिङ्गादि-प्रतिष्ठाविधि, वास्तुपुरुषविधि वृषोत्सर्गविधि आदि ग्रन्थ मिलते हैं। इनके पुत्रका नाम बालकृष्णभट्ट और पौत्रका नाम दिनकर तथा प्रसिद्ध स्मार्त्त कमलाकरभट्ट था।

२४ नारायणभट्टीय नामक प्रसिद्ध स्मृतिनिबन्धकार।

२६ वैष्णवज्योतिशास्त्रके प्रणेता।

नारायणभट्ट—१ एक वैष्णव। ये वृन्दावनके ऊठाग्राममें वास करते थे। ये प्रतिदिन वैष्णवोंको भोज्य द्वारा सेवा किया करते थे। एक समय किसी धनीने इन्हें प्रयागतीर्थ जानेको कहा। इस पर बहुत दुःखित हो कर इन्होंने उस धनीको वृन्दावन और हरिभक्तिमाहात्म्य दिखानेके लिये वृन्दावनमें ही प्रयागतीर्थ दिखलाया था और उन्हें समझा कर कहा था इसी स्थान पर सभी तीर्थ हैं। (भक्तमाल)

२ काशीवासी एक विख्यात पण्डित। औरङ्गजेबके काशीस्थ देवविग्रह नष्ट होनेके पहले इन्होंने ज्ञानवापीके दक्षिणभागमें एक सुन्दर मन्दिरकी प्रतिष्ठा कर उसमें शिवलिङ्ग स्थापित किया था।

(भविष्य ब्रह्मख० ५।८५-८६)

नारायण मिश्र—१ सन्ध्यावन्दनभाष्यकार। २ नारायणमिश्रीय नामक धर्मशास्त्रकार।

नारायणभट्ट आरड़—लक्ष्मीधरके पुत्र। इन्होंने प्रयोगसार वा गृह्याग्निसागर और श्राद्धसागरकी रचना की। इन्होंने भट्टोजीका मत उद्धृत किया है।

नारायणभारती-सारस्वतसारसंग्रह नामक संस्कृत व्याकरणके रचयिता।

नारायण भिषक्—एक प्रसिद्ध वैद्यक ग्रन्थकार। इनके बनाये हुए कर्मप्रकाश, वातरक्तादि-निर्णय, वैद्यचिन्तामणि, वैद्यवृन्द और वैद्यामृत आदि ग्रन्थ मिलते हैं।

नारायणमुनि—१ तत्त्वत्रयनिरूपण और तत्त्वसंग्रह नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता।

२ रघुपतिरहस्य-दीपिकाके रचयिता।

३ गणपतितत्त्वरत्नकाशिका नामक गणेशसहस्र नामके भाष्यकार।

नारायणमुनीन्द्र—न्यासतिलक और न्यासविंशतिकी वेदान्तरक्षा नामक टीकाकार।

नारायणयति—रामायणतत्त्वदर्पणके रचयिता।

नारायणयतीश्वर—सुदर्शनस्तवके रचयिता।

नारायणयाज्ञिक—याज्ञिक पाठक रामचन्द्रके पुत्र और गङ्गाधरके भाई। इनका बनाया हुआ कर्कानुगा पदार्थ-दीपिका नामक एक संस्कृत ग्रन्थ मिलता है जिसमें पौर्णमासेष्टिका विषय वर्णित है।

नारायणरस (सं० पु०) औषधविशेष, एक प्रकारकी दवा। प्रस्तुत प्रणाली—हिङ्गुल, सौराष्ट्रमृत्तिका, रसाञ्जन, मैनसिल, स्वर्ण, पारद, ताम्र, गन्धक, लौह, सैन्धवलवण, अतीस, चई, शरपुङ्खा, विडङ्ग, यमानी, गजपिप्पली, मिर्च, अकवनकी जड़, वरुणकी जड़, सफेद धूना और हरीतकी इन सब द्रव्योंका समान भाग ले कर कटुतैलके साथ मलते हैं और १ माशेकी गोली बनाते हैं। इसका अनुपान मधु है। इसके सेवन करनेसे नाड़ीव्रण और भगन्दर आदि विनष्ट होते हैं।

(भैषज्यर० भगन्दराधिकार)

नारायणराज—एक चोल राजाका नाम।

नारायणराय—विक्रमसेनचम्पू नामक चम्पूकाव्यके प्रणेता।

नारायणराव—बालाजीराव पेशवाके तृतीय पुत्र। ये १७७२ ई०में सिंहासन पर बैठे थे। १७७३ ई०की ३०वीं अगस्तको इनके चाचा रघुनाथरावने इन्हें मार डाला। बाद इनके शिशुपुत्र शिवाजी माधोराव अभिषिक्त हुए।

नारायणलब्धि—एक प्राचीन संस्कृत कवि। सूक्तिकर्णामृतमें इनकी कविता उद्धृत हुई है।

नारायण-वन—मन्द्राज प्रदेशके उत्तर आर्काट जिलेका एक शहर। यह अक्षा० १३° २७´ उ० और देशा० ७९° ३८´ पू०, मन्द्राज रेलवेकी पत्तुर-स्टेशनसे ३ मील पूर्व अरुणनदीके किनारे अवस्थित है।

नारायणवन शब्दसे यह साफ साफ झलकता है, कि पूर्व समयमें यह स्थान जङ्गलसे आच्छादित था। प्रवाद है, कि भगवान् नारायण इस वनमें विचरण करते थे। चतुर्मुख ब्रह्माने एक समय काञ्चीपुरमें अश्वमेध यज्ञ किया था। तभीसे यह स्थान बहुत पवित्र समझा जाता है। इसी स्थान पर 'अमनारा चेरम्मा' वा महिषासुरमर्दिनीने आ कर यज्ञस्थलकी सीमाकी रक्षा की थी। तभीसे वे इस स्थानमें रहती हैं। यह एक पुरातन प्रसिद्धतीर्थ स्थान माना जाता है।

स्थानीय हस्तलिपि पढ़नेसे जाना जाता है, कि तञ्जोरके महाराज कुलोत्तुङ्ग चोलके जारज पुत्र तोण्डीमानने यह स्थान अपने अधिकारमें कर लिया था। उनके प्रपौत्र राजा नारायण देवके शासनकालमें मिथिलापति गवासम्बन तिरुपतिके तीर्थदर्शनको आए थे। यह स्थान देख कर वे इतने प्रसन्न हुए थे, कि उन्होंने यहां राज्य बसाना चाहा। इसके लिए उन्होंने व्यङ्कटेश्वरकी आराधना की। नारायणदेवसे आधा राज्य मिलने पर इसी नारायणवनमें उन्होंने अपनी राजधानी स्थापित की।

गवासम्बन राजाके चार पुत्र थे। पहला आकाश, दूसरा उज्ज्वल, तीसरा व्यङ्कटेश और चौथा वर्मन्। पिताके मरनेके बाद आकाशराज सिंहासन पर बैठे। वर्त्तमान नारायण नगरसे तीन मील दक्षिण इन्होंने आकाशपुर नामक एक नगर बसाया और आकाशराज-कोट्टाई नामक दो दुर्ग बनवाये। आज भी उनका भग्नावशेष देखनेमें आता है।

आकाशराजके यथासमय जब कोई सन्तान न हुई, तब उन्होंने पुत्रेष्टियज्ञ करनेका सङ्कल्प किया। यज्ञस्थलकी सीमा निर्देश करते समय उन्हें एक स्वर्णपद्म मिला जिसमें उन्होंने एक कन्याको देखा। पद्मसे जन्म होनेके कारण कन्याका नाम पद्मावती रखा गया। यज्ञके समाप्त होने पर राजाके यथासमय दो पुत्र उत्पन्न हुए थे।

पद्मावती जब युवती हुई, तब वह नारायण-वनमें घूमने फिरने जाया करती थी। एक दिन व्यङ्कटेशस्वामीने वनमें पद्मावतीको देखा और उसके रूप पर मोहित हो उससे विवाह करना चाहा।

पद्मावतीके अनिच्छा प्रकट करने पर, व्यङ्कटेशने स्वयं राजाके पास जा कर अपना अभिप्राय कह सुनाया। राजाने आज्ञानुसार नारायण-वनमें पद्मावतीका विवाह व्यङ्कटेशस्वामीके साथ कर दिया। राजाके प्रार्थनानुसार वे दोनों उसी वनमें रहने लगे और उन्होंने एक सुन्दर प्रासाद भी बनवा दिया। आज भी वे यहां कल्याण-व्यङ्कटेश नामसे पूजित होते हैं।

आकाशराजके मरने उनके पुत्र वसुदान राज्याधिकारी हुए। अपुत्रकावस्थामें उनका देहान्त हुआ और उनके चाचा व्यङ्कटेश राजा बन बैठे। इनके वंशधरोंने यहां सात पीढ़ी तक राज्य किया। पीछे रामराज नामक किसी राजाने उक्त वंशके अन्तिम राजा विश्वम्भको परास्त कर राज्य अपना लिया। रामराजके वंशधरोंने यहां ग्यारह पीढ़ी तक शासन किया। अनन्तविजय-नगरके राजाने उन्हें पराजित कर राजसिंहासन पर अपना अधिकार जमा लिया। अनन्तर कारवेट-नगरके पोलिगारोंने यह स्थान जीत कर अपने अधिकारमें कर लिया। तभीसे यह नगर उन्हींके दखलमें आ रहा है। आजकाल पोलिगारगण जमींदार कहलाते हैं।

ये लोग अभी कारवेट-नगरमें रहते हैं। पूर्व समयमें इनके कोई आत्मीय नारायणवनमें रहते थे। वह आवास-भवन अभी पुराना और टूट फूट गया है।

कल्याणवेङ्कटेश-मन्दिरके विग्रहकी मूर्त्ति तिरुपतिके विग्रह-सी है, किन्तु उससे कुछ बड़ी है। श्रीरामानुजमतावलम्बी लोग उस विग्रहकी पूजा करते हैं। देव-सेवाके लिये जमींदारोंके कुछ ग्राम दान दिये गये हैं। यहां वेदपाठ जिस ढंगसे होता है, वैसा और कहीं भी देखनेमें नहीं आता। इसके पास ही पद्मावती और धात्रुमाका मन्दिर है। प्रवाद है, कि वेङ्कटेशस्वामी रङ्गनाथ श्रीवल्लीपुरके विष्णु श्रेठीकी कन्या थानूसे विवाह कर नारायणवनमें आ कर रहने लगे थे।

उक्त मन्दिरसे प्रायः डेढ़ मीलकी दूरी पर अगस्त्येश्वरका एक मन्दिर है। यह मन्दिर पुरातन नील (मरकत) पत्थरका बना हुआ है। मन्दिरका कारुकार्य देख कर जी लुभा जाता है। मन्दिरमें जो अनुशासन उत्कीर्ण है, उसके पढ़नेसे जाना जाता है, कि कुलोत्तुङ्ग राजा जब ग्यारह वर्ष राज्य कर चुके थे, तब ८२६ ई०में वेलुरपट्ट मणिवास नागदेव अगस्त्येश्वरदेवके व्ययनिर्वाहार्थ बहुत-सी जमीन दान की थी।

इस मन्दिरसे प्रायः बारह सौ फुटके फासले पर पूर्वोक्त महिषासुरमर्दिनीका मन्दिर कोमपुलापालयम् नामक स्थानमें विद्यमान है। देवीकी मूर्त्ति अष्टभुजा है। एक पद सिंहके ऊपर और दूसरा पद महिषासुरके ऊपर है। मूर्त्ति करीब ८ फुट ऊंची होगी। श्रावण-मासमें १५ दिन तक देवीके उद्देशसे मेला लगता है।

यहांके पुजारी ब्राह्मण नहीं हैं, तकश्रेणीय नामक नीच शूद्र हैं। ये लोग पूजा करते समय यज्ञोपवीत पहन लेते हैं। संस्कृत नहीं जानने पर भी ये लोग मन्त्रोच्चारण करते हैं।

नारायणवन्द्य—एक वङ्गवासी वैयाकरण। इन्होंने १६६५ ई०में धातुरत्नाकर और सारावली नामक संस्कृत व्याकरणकी रचना की है।

नारायणवर्मन् (सं० त्रि०) नारायण मयं परं वर्म। नारायणमय, श्रेष्ठ नारायणकवच। देवराज इन्द्रने इस नारायण कवच द्वारा रक्षित हो कर रिपुसेनाको परास्त किया था और त्रिलोकीकी ऐश्वर्य-सम्पत्ति भोग की थी। इस कवचका विशेष विवरण भागवतके छठे स्कन्धके ८वें अध्यायमें लिखा है।

नारायणवर्मा—गौड़ाधिप धर्मपालके महासामन्ताधिपति। पालराजवंश देखो।

नारायणवलि (सं० पु०) नारायणाय नारायणमुद्दिश्य देयो बलिः। मृतपतितादिका प्रायश्चित्तात्मक कर्मविशेष, वह काम जो पापियोंके मरने पर प्रायश्चित्त रूपमें किया जाता है।

दुर्मरण अर्थात् अवैध आत्मघातियोंकी और्ध्वदैहिक क्रिया करनेके लिये नारायण आदि पञ्चदेवताके उद्देशसे जो बलि दी जाती है, उसे नारायणबलि कहते हैं।

जो अवैधरूपसे आत्मघाती होते हैं, उनकी अशौच वा और्ध्वदैहिक क्रिया कुछ भी नहीं होती। पीछे उनकी यदि और्ध्वदैहिक क्रिया करनी हो, तो नारायणबलि देनी होती है अर्थात् नारायणादि पञ्चदेवताके उद्देशसे बलि दे कर उनकी और्ध्वदैहिक क्रिया की जाती है।

पहले नारायणबलि दे कर पीछे पर्ण-नरदाह करना होता है। अनन्तर श्राद्धादि विधेय है। यह नारायणबलि मृत्युके दिनसे एक वर्ष बाद करनी होती है।

आत्महननका प्रायश्चित्त, तदनन्तर नारायणबलि, उसके बाद पिण्डोदकक्रिया और वृषोत्सर्गादि करने होते हैं।

"कृत्वा चान्द्रायणं पूर्वं क्रिया कार्या यथाविधि।
नारायणबलिः कार्यो लोकगर्हा भयान्नरैः॥
पिण्डोदकक्रियाः पश्चात् वृषोत्सर्गादिकञ्च यत्।
एकोद्दिष्टानि कुर्वीत सपिण्डीकरणं तथा॥
इन्द्रियैरपरित्यक्ता ये नरा मूढ़ा विषादिनः।
घातयन्ति स्वमात्मानं चाण्डालादिहताश्च ये॥"

(हेमाद्रि)

आत्मघातियोंके दाहादि करनेमें अर्थात् जोदहन और वहनादिका कार्य करते हैं उन्हें प्रायश्चित्त करना होता है। यहां तक कि आत्मघातीके लिये अश्रुपरित्याग भी शास्त्रानुमोदित नहीं है। जो वैधपूर्वक आत्म हनन करते हैं, उनको नारायणबलि नहीं देनी होती। उनकी यथाविधि उदकादि क्रिया होगी और जिनकी दैवात् मृत्यु हुई है, उनके लिए भी यह अविधेय है। दैवहतोंके लिए प्रायश्चित्त वा नारायणबलि विधेय नहीं है। केवल जो बुद्धिपूर्वक आत्महत्या करते हैं, उनको परशुद्धिके लिए नारायणबलि विधेय है अथवा गया जा कर पिण्ड देनेसे उद्धार हो सकता है।

"गोब्राह्मणहतानाञ्च पतितानां तथैव च।
ऊर्द्ध्वं संवत्सरात् कुर्यात् सर्वमेवौर्द्ध्वदेहिकम्॥"

(हेमाद्रि)

"नारायणबलिः कार्यः लोकगर्हाभयान्नरैः।
तथा तेषां भवेच्छौत्रं नान्यथेत्यब्रवीद् यमः॥"

(छागलेय)

इसी नारायणबलि द्वारा आत्मघातीकी विशुद्धिता होती है, दूसरे प्रकारसे नहीं।

नारायणबलिका विधान हेमाद्रि आदिके मतानुसार निर्णयसिन्धुमें इस प्रकार लिखा है—शुक्ल एकादशीके दिन नारायणबलि देनी होती है। जो नारायणबलि देते है, उन्हें पहले दक्षिणमुख बैठना चाहिए। पीछे विष्णुको प्रेतकी कल्पना कर पुरुषसूक्त अथवा वैष्णवमन्त्रसे तर्पण करना चाहिये। मन्त्र—

"अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः।
अक्षय्यः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भवः॥"

अनन्तर सङ्कल्प करना होता है, यथा—'विष्णुरोम् तत्सदद्य अमुक गोत्रस्य अमुकस्य दुर्मरणात्मघातजदोषनाशार्थं और्ध्वदैहिक सम्प्रदानत्वयोग्यता सिद्ध्यर्थं नारायणबलिं करिष्ये।' इस प्रकार सङ्कल्प करके पांच घड़ा स्थापन करते हैं जिनमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव, यम और प्रेत इन पांचोंको प्रतिष्ठा करते हैं। इनमेंसे विष्णुकी मूर्त्ति सोनेकी, रुद्रकी तांबेकी, ब्रह्माकी चांदीकी, यमकी लोहेकी और प्रेतकी मूर्त्ति दाभकी होनी चाहिये।

"विष्णुः स्वर्णमयः कार्यो रुद्रस्ताम्रमयस्तथा।
ब्रह्मा रौप्यमयस्तत्र यमो लौहमयो भवेत्।
प्रेतो दर्भमयः कार्यः॥" (निर्णयसिन्धु)

अथवा पूर्वोक्त सभी मूर्त्तियां केवल सोनेकी बना कर स्थापन कर सकते हैं। पीछे उन सब देवताओंका षोड़शोपचारसे और पुरुषसूक्तसे पूजन कर अग्निस्थापन करते हैं तथा यथाविधि चरुपाक करके पुरुषसूक्त द्वारा 'नारायणायेदं' इस मन्त्रसे होम करते हैं।

पीछे देवताओंके आगे दक्षिणाग्रदर्भसे प्रेतको विष्णुरूपमें स्मरण कर प्रेतका नाम और गोत्र उच्चारण करते हैं। बाद मधु, घृत और तिलयुक्त दश पिण्ड और यज्ञोपवीत प्रभृति दे कर 'अमुक गोत्र अमुकशर्मण् प्रेतविष्णुरूपायते पिण्डः उपतिष्ठतां' इस प्रकार कुश और पुरुषसूक्त द्वारा अभिमन्त्रण करते हैं पीछे 'यत्ते यम' इत्यादि मन्त्रसे पिण्डका अनुमन्त्रण, शङ्खोदकसे अभिषिञ्चन और अर्चन कर 'अमुक शर्माणं अमुक गोत्रं विष्णुरूपं प्रेतं तर्पयामि' इस प्रकार पुरुषसूक्तमन्त्रसे तर्पण करते हैं। इसके बाद ब्रह्मादि पञ्चदेवताको आमान्न देना होता है। मन्त्र—

"ब्रह्मविष्णुमहादेवा यमश्चैव सकिंकरः।
बलिं गृहीत्वा कुर्वन्तु प्रेतस्य च शुभां गतिम्॥"

मिताक्षरामें इस प्रकार लिखा है—पूर्वोक्त प्रति देवताके उद्देशसे विविध फल, शर्करा, मधु, गुड़ और

घृत आदि नैवेद्य चढ़ा कर और पिण्डको सम्मन्त्रित कर उन्हें नदीमें फेंक देते हैं। अनन्तर तीन, सात वा पांच ब्राह्मणको निमन्त्रण कर उपवास करते हैं और रातको जगते हैं। सुबहको फिरसे विष्णु, ब्रह्मा, यम आदिको पूजा कर एकोद्दिष्ट-विधिके अनुसार आवश्यक करते हैं। इस प्रकार सङ्कल्प करके ब्रह्मा, विष्णु, शिव, यम और प्रेतका स्मरण कर विप्रोंको बिठाते हैं। अनन्तर प्रेतस्थानमें विष्णुका स्मरण कर आवाहनादि तृप्तिप्रश्न समाप्त करते हैं और ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा यम इन चार देवताओंके उद्देशसे चार पिण्ड दे कर प्रेतके नाम गोत्रादि लेते और विष्णुके नामसे पांच पिण्ड देते हैं। अनन्तर 'प्रेताय इदं तिलोदकमुपतिष्ठतां' यह पढ़ कर सतिलोदक द्वारा ब्राह्मणको परितोष करते हैं। इसो समय कार्य शेष हो जाता है। (विशेष विवरण अनन्त-भट्टकृत अन्त्येष्टिपद्धतिमें लिखा है।)

मिताक्षराके मतसे—जिनकी मृत्यु सांपके काटनेसे हुई है, उनके लिए भी नारायणबलि विधेय है। 'सर्पहते त्वयं विशेषः। संवत्सरं यावत् पुराणोक्तविधिना पञ्चम्यां नागपूजां विधाय पूर्णे संवत्सरे नारायणबलिं कृत्वा सौवर्णं नागं दद्यात् गाञ्च प्रत्यक्षां। ततः सर्वमौर्ध्व-देहिकं कुर्यात्।" (मिताक्षरा प्रायश्चित्ताध्याय आशौचप्र०)

जिनकी मृत्यु सर्पसे हुई है, उनके लिये विशेषता यह है, कि प्रति मासकी शुक्लपञ्चमीको पुराणोक्त विधिके अनुसार अनन्त वासुकी आदि नागोंकी पूजा करनी होती है और ब्राह्मणको भर पेट खीर खिलाते हैं। इस प्रकार वर्ष बीतने पर सुवर्ण निर्मित नाग और गो-दान करके नारायणबलि देते हैं।

बौधायनसूत्रमें भी यह मत समर्थित हुआ है। रघु-नन्दनके मतसे सर्पमृतोंके लिये नारायणबलि देनी नहीं होती।

जो पिण्डाधिकारी हैं, वे ही नारायणबलि देते हैं। नारायणबलिके बाद तीन दिन तक अशौच होता है। अशौचके बाद मृतदेहके श्राद्धादिकर्म करने होते हैं।

जो नारायणबलि देते हैं, केवल उन्हींको अशौच मानना पड़ता है। उनके गोत्र वा वंशज किसीको भी अशौच नहीं होता। नारायणबलिके बिना प्रेतात्माके उद्धारका उपाय नहीं। यदि कोई आत्मघाती हो, तो उसकी सन्ततियोंको नारायणबलि अवश्य देनी चाहिये। जिन आत्मघातियोंके उद्देशसे नारायणबलि आदि नहीं होती, उन्हें अनन्त नरक भोगना पड़ता है।

(निर्णयसिन्धु ५ परिच्छेद)

मिताक्षराके प्रायश्चित्ताध्यायमें जो अशौचप्रकरण है, उसमें इस नारायणबलिका विशेष विवरण लिखा है। विष्णुपुराणोक्त नारायणबलिका विषय भी मिताक्षरामें उद्धृत हुआ है। विस्तारके भयसे यहां अधिक न लिखा गया। पर्णनरदाह और प्रायश्चित्त देखो।

नारायणभामुरी—सभाकौमुदी नामक ज्योतिःशास्त्रकार।

नारायणविद्याविनोद—एक प्रसिद्ध वैयाकरण, वाणीश्वरके पुत्र और जटाधरके पौत्र। इन्होंने संक्षिप्तसारको टीका, शब्दार्थसन्दीपिका नामक अमरकोषकी टीका और भट्टिबोधिनी नामक भट्टिकाव्यकी टीका रची है।

नारायणवेदरकार—नरसिंहके पुत्र, नैषधचरितप्रकाश नामक नैषधटीकाकार।

नारायणवैष्णवमुनि—मन्त्रराजात्मक स्तोत्रकार।

नारायणशर्मन्—रामशर्माके पुत्र इन्होंने १६१८ ई०में पदार्थकौमुदी नामक अमरकोषटीकाकी रचना की है

नारायणशेष—एक विख्यात श्रुतिविद्, शेष वासुदेवके पुत्र और शेष अनन्तके पौत्र। इनका बनाया हुआ बोधा-यनीयश्रौतसर्वस्व नामक एक बृहत् संस्कृत ग्रन्थ पाया जाता है। उस ग्रन्थमें अग्निष्टोम, चातुर्मास्य, दर्शपूर्ण-मास, सौत्रामणि आदि बोधायनीय कर्मकाण्डका विषय विस्तृतभावसे वर्णित है।

नारायणश्रीगर्भ (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद।

नारायणसरस (सं० क्ली०) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

नारायणसरस्वती—गोविन्दानन्द सरस्वतीके शिष्य। इन्होंने १५९२ ई०में शारीरकभाष्यवार्त्तिककी रचना की है।

नारायणसर्वज्ञ—भारतार्थप्रकाशके रचयिता।

नारायणसार्वभौम—एक विख्यात नैयायिक। इनके बनाये हुए प्रतियोगिज्ञान-कारणवाद, प्रतिपादिकसंज्ञा-वाद आदि संस्कृत ग्रन्थ मिलते हैं।

नारायणसिद्धान्तवागीश भट्टाचार्य—अवस्थासार संग्रह नामक स्मृतिनिबन्धकार।

नारायणस्मृति—हेमाद्रि और माधवाचार्य धृत एक प्राचीन धर्मशास्त्र।

नारायणस्वामी—दाक्षिणात्यके पश्चिमांशमें विस्तृत एक धर्मसम्प्रदाय। गुजरात और काठियावाड़में इस सम्प्रदायके बहुसंख्यक लोग देखनेमें आते हैं। किस प्रकार इस सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई उसका परिचय संक्षेपमें देते हैं,—

नारायणस्वामी नामक एक सरवरिया ब्राह्मण इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक हैं। इन लोगोंका विश्वास है, कि नारायणस्वामी नारायणके पूर्णावतार थे। द्वापरयुगमें भगवान् नारायण कठोर तपस्या कर रहे थे। संयोगवश दुर्वासाऋषि वहां आ पहुंचे। नारायण और उनके पार्श्ववर्त्ती ऋषिगण ध्यानमग्न थे। अतः दुर्वासाकी ओर एक बार भी उन्होंने आंख न फेरी। अतिथिसत्कार न हुआ, ऐसा देख कर दुर्वासामुनि बहुत बिगड़े और उन्होंने नारायण तथा ऋषिगणको शाप दिया, "तुम लोगोंने मेरी अवहेला की, इस कारण तुम लोग कलियुगमें भूमण्डल पर अवतीर्ण होगे।"

तदनुसार कलियुगमें सहजानन्दने नारायणरूपमें और ऋषियोंने उनके साङ्गोपाङ्ग हो कर जन्म ग्रहण किया।

निष्कुलानन्द साधु रचित भक्तचिन्तामणि ग्रन्थमें लिखा है—

अयोध्याके अन्तर्गत छुपिया नामक क्षुद्रनगरमें १८३७ सम्वत्के चैत्रमासकी शुक्लनवमीमें नारायणस्वामी उत्पन्न हुए। उनके पिताका नाम हरिप्रसाद था और माताका बाला। लेकिन ज्ञानोदयके मतसे उनके पिताका नाम धर्मदेव और माताका नाम प्रेमवती वा भक्ति था। वे सावर्ण गोत्रज और सामवेदके कौथुमी शाखाध्यायी थे। ये अपने पिताके मध्यम पुत्र थे। इनके बड़े भाईका नाम रामप्रताप और छोटेका इच्छाराम था। बचपनमें सभी इन्हें घनश्याम वा हरिकृष्ण कहा करते थे। उपनयनके बाद ब्रह्मचर्यका पालन करना होता है। इस प्रथाके अनुसार घनश्याम ब्रह्मचारी हो गये। इनके मामाने इन्हें बहुत कुछ समझाया बुझाया, पर इन्होंने एक न सुनी और संसारको बिलकुल परित्याग कर दिया। वे एक दिन भगवत्प्रेममें मस्त हो कर घरसे निकल पड़े, मामा उन्हें पकड़ लानेके लिये उनके पीछे पीछे चले। बारह कोसका रास्ता तय करनेके बाद जब घनश्यामने देखा, कि मामाने अब तक भी उनका पीछा नहीं छोड़ा है, तब उन्होंने घूम कर उनसे कहा, 'आप मेरा पीछा क्यों कर रहे हैं। मेरे भाग्यमें संसारी सुख नहीं बदा है, अतः मैं संसारमें लौट कर न जाऊंगा।'

जिस दिन वे ब्रह्मचारी हुए, उसी दिन उन्हें एक गुरु मिल गए। यथासमय ये गुरुसे दीक्षित हुए। ग्यारहवें वर्षकी अवस्थामें ये केदार बदरिकाश्रम आदि तीर्थदर्शनको चल दिए। रामेश्वरके दर्शन कर ये दाक्षिणात्यके निविड़ वनमें पहुंचे और वहां सूर्यकी आराधना करने लगे। सूर्यने उन्हें दर्शन दे कर कहा, 'तुम जिस किसी कार्यका अनुष्ठान करोगे वही फलीभूत होगा।' बाद घनश्याम 'नीलकण्ठ ब्रह्मचारी' नामसे नाना तीर्थोंमें पर्यटन करने लगे।

१८५६ सम्वत्को जब इनकी उमर १८ वर्षकी थी, तब ये जूनागढ़के निकटवर्त्ती लोज नामक ग्राममें पहुंचे। उस समय वहां मुक्तानन्दप्रमुख रामानन्दमतावलम्बी प्रायः पचास साधु रहते थे। युवक नीलकण्ठके साथ रामानन्दियोंका अच्छी तरह परिचय हो गया। मुक्तानन्दके गुरु रामानन्दसे घनश्यामने सम्वत् १८५७को ११वीं कार्त्तिकको उपदेश ग्रहण किया। उस समयसे इनका नाम सहजानन्द हुआ।

बीस वर्षकी अवस्थासे सहजानन्द धर्मप्रचारमें प्रवृत्त हुए। धीरे धीरे इनके अनेक शिष्य हो गए। इन्होंने समाधिके बलसे एक ऐसी ज्योतिः प्राप्त कर ली थी, कि इनको देखनेसे ही इनके शिष्यगण इन्हें शङ्खचक्रगदापद्मधारी श्रीकृष्ण मानते थे। इनके गुरु रामानन्दने लोगोंके मुखसे यह वृत्तान्त सुन कर पहले तो इनकी इस अमानुषिक शक्ति पर विश्वास न किया, किन्तु पीछे परीक्षा करनेसे उनका भी संदेह दूर हो गया। वे सहजानन्दको अपनी गद्दी पर बिठा कर स्वर्गधामको सिधारे।

पीछे सहजानन्दने कच्छदेशमें आ कर बहुसंख्यक भक्त और कुनबी जातिको अपने मतमें दीक्षित किया। जिन सब कुनबियोंने उनका धर्ममत ग्रहण किया, उनके

पूर्व पुरुषोंने जाति-त्याग नहीं करने पर भी मुसलमानी आचारका अवलम्बन किया था। वे लोग पितृश्राद्ध नहीं करते थे। मृतव्यक्तिको जलाते नहीं, गाड़ देते थे। अभी सहजानन्दके उपदेशसे कुनवी लोग पुनः श्राद्ध और दाहादि कार्य करने लगे हैं।

सहजानन्दने अहमदाबादमें जा कर इस बातका प्रचार किया, 'कि नाना प्रतिमापूजाका कोई प्रयोजन नहीं, एकमात्र नारायणकी सेवा करनेसे ही मुक्तिलाभ होता है।' उनके मुखसे बहु प्रतिमापूजाका निन्दावाद सुन कर ब्राह्मणोंने पेशवाके यहां उन पर अभियोग चलाया। फलतः वाध्य हो कर सहजानन्दको अहमदाबाद छोड़ना पड़ा।

पीछे इन्होंने अहमदाबादके निकट जेतलपुरके गाडड़भान नामक ग्राममें तथा नरियादके निकटवर्त्ती दभण ग्राममें 'महारुद्र' नामक महायज्ञका अनुष्ठान किया था। जब ये जेतलपुरमें रहते थे, तब इनके उपदेशसे कितने लोग साधु हो गए थे।

१८६८ सम्वत्‌को भवनगरराज्यके अन्तर्गत गढ़ड़ा नामक स्थानमें जा कर इन्होंने काठिसरदार दादा-एभल काचरको दीक्षित किया। यहां सहजानन्द कुछ काल तक काठिसरदारके भवनमें रहे थे। ८०० व्यक्तियोंने यहां इनका शिष्यत्व भी स्वीकार किया। जिनमेंसे १५० रमणियां 'सङ्ख्ययोगी' वा संन्यासिनी हुई थीं।

पीछे इन्होंने अपने प्रधान प्रधान शिष्योंको अहमदाबाद, भुज, नरियादके निकट, वड़ताल, जेतलपुर, धोलका, मुलिये आदि स्थानोंमें भेज कर लक्ष्मीनारायणके मन्दिर बनवाए। इनमेंसे अहमदाबादके स्वामी-नारायणका मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है।

इसी समयसे सहजानन्दस्वामी नारायण नामसे प्रसिद्ध हुए। इस समय इनके लाखसे अधिक शिष्य थे। सबोंका विश्वास था, कि स्वामी नारायण श्रीकृष्णके अवतार हैं। १८२५ ई०की २६वीं मार्चको खृष्टानपुङ्गव विशप हिवरके साथ इनकी मुलाकात हुई। विशपसाहब स्वामी नारायणके विषयमें बहुत-सी बातें लिख गए हैं।*

जब स्वामीजी विशपके साथ मुलाकात करने आये थे, उस समय उनके साथ बीस लाख अश्वारोही और बहुसंख्यक सशस्त्र पदाति थे। उस समय स्वामीजीके सब बाल सफेद हो गए थे, सफेद दाढ़ी छातीके ऊपर तक आ गई थी। ये हरवक्त सिर पर पगड़ी रखा करते थे। उनकी उज्ज्वल कान्ति देख कर विशपकी उनके प्रति विशेष श्रद्धा हो गई थी। एक दिन विशपने जब उनका मत सुनना चाहा था, तब स्वामीजीने कहा था, 'भुवनके सृष्टिकर्त्ता ईश्वर एक ही हैं, दो नहीं। जो उनकी शुद्ध प्रेम-भावसे चिन्ता करते हैं, उन्हींके हृदयमें वे वास करते हैं। सारा संसार उन्हींके नियमों पर चल रहा है। मैं उन्हींको श्रीकृष्ण मानता हूं। वे ही ब्रह्म हैं। यह जो कृष्णमूर्त्ति देख रहे हो, यथार्थमें वह ईश्वरकी मूर्त्ति नहीं है। उस ईश्वरको सहजमें पानेके लिए हम लोग इस कमनीय मूर्त्तिकी पूजा करते हैं। वही ईश्वर मानवके परित्राणके लिए खृष्टान, मुसलमान, हिन्दू आदि सभी जातियोंमें अवतीर्ण हुए हैं। भक्तोंके उद्धारके लिये इस कृष्णरूपमें भी वे अवतीर्ण हुए थे। ईश्वरके निकट जातिभेद कुछ भी नहीं है। सभी एक जाति और एक वर्णके हैं। परस्त्रीकातरता और धनलोभ महापाप है। मैं अपने शिष्योंको इस महापापसे बचनेका उपदेश देता हूं। जीवहत्या भी महापाप है। सब जीवोंमें दया दिखलाना ही श्रेष्ठ धर्म है।'

१८८६ सम्वत् (१८२९ ई०)को गढ़ड़ाग्राममें स्वामीजीने काठिसरदारके द्वार पर एक बड़ा मन्दिर बनवाया। उसी वर्ष ज्येष्ठ मासकी शुक्ल दशमीको वे स्वर्गधामको सिधारे। शिष्योंने उनकी पत्थरकी पादुका उक्त मन्दिरमें पूजाके लिए स्थापन की। इसके सिवा स्वामीजीने जहां जहां धर्मप्रचार किया था, वहां वहां उनके शिष्योंने स्मारक स्वरूप "चौड़ा"का निर्माण किया है।

उनकी मृत्युके बाद भी गुजरात और काठियावाड़के हजारों मनुष्य उनके मतानुवर्त्ती हुए हैं। इन सब लोगोंको स्थानीय लोगोंसे कितने कष्ट झेलने पड़े हैं, वह वर्णनातीत है। कितनोंने तो अपने प्राण भी निछावर कर दिये हैं, तो भी स्वामीजीके प्रति अपनी पहला भक्तिसे डिगे न थे।

* Bishop Heber's Journal, (4th ed.) Vol. II. p, 140-144 F.

अन्ध विश्वाससे हजारों मनुष्य स्वामी नारायणका मत मानते हैं और उन्हीं मतके अनुसार धर्मानुष्ठान भी करते हैं।

स्वामी नारायण 'शिक्षापत्र' नामक २१२ श्लोकोंका एक उपदेश ग्रन्थ और ५०० श्लोकोंकी उसकी टीका लिख गये हैं। इसके सिवा इन्होंने इस सम्प्रदायका मत विस्तृत भावसे समझानेके लिये 'सत्सङ्गजीवन' नामक एक बृहत् ग्रन्थ बनाया है जिसमें २४००० श्लोक हैं।

१८२१ ई०में जब इनका मत बहुत दूर तक फैल गया, तब इन्होंने अयोध्यासे रामप्रताप और इच्छारामको बुलवाया था। उन्होंने अपनी गद्दी दो भागोंमें विभक्त कर दी थी, उत्तर भाग और दक्षिण भाग। उत्तरभागकी गद्दी अहमदाबादमें और दक्षिणभागकी बड़ुतालमें प्रतिष्ठित है। उनकी मृत्युके बाद रामप्रतापके पुत्र अयोध्याप्रसादने उत्तरभागमें और इच्छारामके पुत्र रघुवीरने दक्षिणभागमें आचार्यपद प्राप्त किया। बाद अयोध्याप्रसादके पुत्र केशवप्रसाद अहमदाबादकी गद्दी पर और रघुवीरके भतीजे भगवान्प्रसाद बड़ुतालकी गद्दी पर प्रतिष्ठित हुए।

नारायणावली—और्ध्वदैहिक क्रियाविशेष। दाक्षिणात्यमें शैवगोस्वामी इसका पालन करते हैं। उनका कहना है, कि शङ्कराचार्यने यह संस्कार प्रवर्त्तन किया है।

नारायणाश्रम (सं० क्ली०) नारायणस्य आश्रमम्। तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

नारायणाश्रम—नृसिंहाश्रमके शिष्य। इनके बनाये हुए अद्वैतदीपिका-विवरण, भेदधिक्कारसत्क्रिया, नारायणाश्रमीय आदि संस्कृत ग्रन्थ पाये जाते हैं।

नारायणास्त्र (सं० क्ली०) नारायणस्य अस्त्रम्। विष्णुका अस्त्रभेद। शङ्ख, चक्र, गदा और खड्ग ये सब नारायणके अस्त्र हैं।

नारायणी (सं० स्त्री०) नारायणस्य वनिता पत्नी, ङीप्। १ दुर्गा।

"सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥"
(मार्कण्डेयपु० ८१।९)

देवीपुराणमें भगवतीके नारायणी नाम पड़नेके विषयमें लिखा है, कि देवी भगवती नार अर्थात् जल वा नरसमूहकी आश्रयस्वरूपा हैं, इस कारण वे नारायणी कहलाती हैं। देवी चराचर सभी जगत्में परिव्याप्त हैं। २ लक्ष्मी। नाम-निरुक्ति इस प्रकार है—

"यशसा तेजसा रूपै र्नारायणसमागुणैः।
शक्तिर्नारायणस्येयं तेन नारायणी स्मृताः॥"
(ब्रह्मवै० प्रकृतिख० ४५ अ०)

यश, तेज, रूप और गुण आदिमें नारायणकी तुल्या हैं और नारायणकी शक्ति हैं, इसीसे लक्ष्मीको नारायणी कहते हैं।

"नारायणार्द्धाङ्गभूता तेन तुल्या च तेजसा।
तदा तस्य शरीरस्था तेन नारायणी स्मृता॥"
(ब्रह्मवै० श्रीकृष्णजन्म० २७ अ०)

३ शतावरी, सतावर। ४ गङ्गा। ५ मुद्गलमुनिपत्नी, मुद्गलमुनिकी स्त्रीका नाम। ६ श्रीकृष्णकी सेनाका नाम जिसे उन्होंने कुरुक्षेत्रके युद्धमें दुर्योधनको सहायताके लिये दिया था। (पु०) ७ विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम।

नारायणी—मध्यप्रदेशमें गोवाण तहसीलके अन्तर्गत एक स्थान। यह बांदासे १० कोसकी दूरी पर अवस्थित है। यहां ५ देवमन्दिर हैं।

नारायणीतन्त्र—एक प्राचीन तन्त्र। तन्त्रसार, आगमतत्त्वविलास, प्राणतोषिणी आदि ग्रन्थोंमें यह तन्त्र उद्धृत हुआ है।

नारायणीय (सं० त्रि०) नारायणस्येदं नारायण-छ। १ नारायणसम्बन्धी। (पु०) २ महाभारतका एक उपाख्यान। इसमें नारद और नारायण ऋषिकी कथा है। यह विषय शान्तिपर्वमें ३३६-से लेकर ३४८ अध्याय तक लिखा है। ३ तत्प्रतिपादक उपनिषद्भेद।

नारायणेन्द्रसरस्वती—१ पूर्णचन्द्रोदय नामक वैदान्तिक ग्रन्थके रचयिता। २ शतपथब्राह्मणके एक भाष्यकार।

नारायणेन्द्रस्वामी-शङ्कराचार्य विरचित पद्यरत्नके एक टीकाकार।

नारायणोपनिषद् (सं० स्त्री०) उपनिषद्भेद।
नारायण देखो।

नारांश (सं० पु०) नरैराशंस्यते आ-शन्स कर्मणि

यज्ञ, नराशंसाः पितरः तेषामयं भाग । १ पितृगणका सोमपान-साधन चमस, वह चमचा जिसमें पितरोंको सोमपान दिया जाता है। २ पितरोंके लिए चमचेमें रखा हुआ सोम। ३ तद्देवता पितर। ४ मन्त्रभेद, वेदोंके वे मन्त्र जिनमें कुछ विशेष मनुष्य आदिकी प्रशंसा होती है, प्रशस्ति, दानस्तुति। इस मन्त्रके देवता रुद्र हैं।

नाराशंसी (सं० स्त्री०) १ मनुष्योंकी प्रशंसा। २ वेदमें मन्त्रोंका वह भाग जिसमें राजाओंके दान आदिकी प्रशंसा है।

नारिक (सं० त्रि०) १ जलीय, जलका, जलसम्बन्धी। २ आत्मसम्बन्धी, आध्यात्मिक।

नारिकल—मन्द्राज प्रदेशके अधीन कोचीन राज्यके अन्तर्गत एक नगर और बन्दर। यह अक्षा० १०° २´ ३०´ उ० और देशा० ७६° १२´ पू०में मध्य, कोचीन शहरसे डेढ़ कोस पश्चिममें अवस्थित है।

नारिकेर (सं० पु०) नारिकेलः लस्य रः। नारिकेल, नारियल।

नारिकेल (सं० पु०) किम ख्येदये ओकृति च, भावे घञ्, पृषोदरादित्वात् ह्रस्वः। स्वनामख्यात वृक्षविशेष, नारियल। (Cocos nucifera) पर्याय—लाङ्गली, नाड़िकेल, नारिकेर, नारीकेली, नारीकेल, नारीकेरी, नारिकेलि, सदापुष्प, शिरःफल, नारिकेल, रसफल, सुतुङ्ग, कूर्चशेखर दृढ़नील, नीलतरु, मङ्गल्य, उच्चतरु, तृणराज, स्कन्धतरु, दाक्षिणात्य, दुरारुह, ताम्बकफल, दृढ़फल, कूर्चशीर्षक तुङ्गस्कन्धफल, उच्च, सदाफल, शिराफल, करकाम्भस्, पयोधन, सस्तुण, कौशिकफल, फलमुण्ड, घटाफल, मुण्डफल, विश्वामित्रप्रिय, नारकेल, सुभङ्ग, फलकेसर।

(राजनि० शब्दर० भावप्र०)

यह वृक्ष भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न नामसे पुकारा जाता है। पश्चिमाञ्चलमें नारेल या नारियल, बङ्गालमें नारिकेल वा नारकल, अपभ्रंशमें डाब और पक्वावस्थामें झुना, गुजरातमें नारियेर, नारियल वा भाड़ा, बम्बई अञ्चलमें नारेल, नार वा मराड़, महाराष्ट्रमें नारेला, मारलमाड़, तेङ्गिनमार, द्राविड़में तेना, तेङ्गा, तोङ्गाय, तैलङ्गमें नारिकड़म्, तेङ्गायाचेत्तु, मुष्ट- नारिकड़म्, कनाड़ामें तेङ्गिनराक, महिसुरमें नार, अरबमें शजरातुन नारजिल, जौजिहिन्दी, पारस्यमें दरख्ते नागिल, सिंहलमें ताम्बिली और ब्रह्ममें पोङ्ग वा उङ्गबिन् कहते हैं।

यह पेड़ खजूरकी जातिका होता है और खम्भेके रूपमें पचास हाथ ऊपरकी ओर जाता है। इसके पत्ते खजूरहीके पत्तोंसे मिलते जुलते हैं। फूल इसके सफेद होते हैं जो पतली पतली सीकोंमें मञ्जरीके रूपमें लगते हैं। फल गुच्छोंमें लगते हैं जो बारह चौदह अङ्गुल तक लम्बे और छः सात अङ्गुल तक चौड़े होते हैं। फल देखनेमें लम्बोतर और तिपहले दिखाई पड़ते हैं। उनके ऊपर एक बहुत कड़ा रेशेदार छिलका होता है जिसके नीचे कड़ी गुठली और सफेद गिरी होती है। यह गिरी खानेमें बहुत मीठी होती है। नारियल गरम देशोंमें ही समुद्रका किनारा लिए हुए होता है। भारतके आसपासके टापुओंमें यह बहुत होता है। भारतवर्षमें समुद्रतटसे अधिकसे अधिक सौ कोस तक नारियल अच्छी तरह उत्पन्न होता है, उसके आगे यदि लगाया भी जाता है तो किसी कामका फल नहीं लगता। मलबार, करमण्डल उपकूल, अमेरिका और अटलाण्टिक द्वीपमें भी यह पेड़ बहुत लगता है। बङ्गोपसागरके लाक्षाद्वीपपुञ्जमें और निकोबरद्वीपमें नारियलका पेड़ जगह जगह अधिक संख्यामें देखनेमें आता है। अभी अन्दामानद्वीपमें भी इसकी खेती होने लगी है। अन्दामानसे भी ३०।४० मील उत्तर नारिकेल-द्वीपपुञ्जमें (Cocos) यह बिना खेतीके उत्पन्न होता है। एम डि केनडोली (M De Candolle) का कहना है कि, "सम्भवतः भारतीय द्वीपसमूह ही इसका आदिम उत्पत्तिस्थान है और भारतवर्ष, सिंहल तथा चीन देशमें आजसे तीन हजार वर्ष पहले नारियलका पेड़ बिलकुल नहीं था।"

नारियलके रोपनेकी प्रणाली।—पके हुए फलोंको ले कर एक या डेढ़ महीने घरमें रख छोड़े। फिर बरसातमें हाथ डेढ़ हाथ गड्ढे खोद कर उनमें उन्हें गाड़ दे। थोड़े ही दिनोंमें कल्ले फूटेंगे और पौधे निकल आवेंगे। पूससे चैत तथा सावनसे भादों मास तक इसके रोपनेका समय है।

रोपते समय नारियलके ऊपरी भागमें करीब दो इच्च जगह छोड़ दे और उन्हें एक फुटकी दूरी पर बैठावे। गड्ढेमें राख और नमक ऊपरसे डाल दे। नमक खारका काम करता है और नारियलके बीचमें जो कीड़े रहते हैं उन्हें मार डालता है। बीच बीचमें जल भी सींचना होता है। ऐसा करनेसे थोड़े ही दिनोंके अन्दर नारियलका कल्ला बाहर निकल आता है। फिर छः महीने या एक वर्षमें इन पौधोंको खोद कर जहां लगाना हो, लगा दे।

दूसरी बार रोपनेके लिये जो नया गड्ढा खोदा जाता है वह यदि जमीन उर्वरा हो तो छोटे-से हो काम चल सकता है। किन्तु जमीन यदि अच्छी न हो, तो गड्ढेको एकसे दो गज चौड़ा और दो-से तीन फुट गहरा बनावे। जमीन यदि शीतल कर्दमयुक्त हो, तो गड्ढे खोद कर उसमें राख और खार ऊपरसे डाल दे। जमीनके दल दल होनेसे गड्ढेके चारों ओर दीवार खड़ा कर दे।

इन सब गड्ढोंमें १६।१७ हाथकी दूरी पर कल्ला रोपे। जमीन विशेषसे दूरीमें पार्थक्य भी हुआ करता है। गड्ढेमें कल्ला बैठा कर उसके चारों बगलकी सरसभूमिको पत्रावरण द्वारा ढक दे। वह जमीन यदि स्वाभाविक अनुर्वर हो, तो उसमें लवण, राख, सड़ी मछली, छागविष्ठा और अन्यान्य शुष्कखार प्रथम एक वर्ष तक देना होता है। एक वर्षके बाद उसमें नया पत्ता निकलने लगता है। इस समय भी पौधेके चारों बगल राख बिछा दे, तो बहुत अच्छा। प्रति वर्ष वर्षाके पहले इसी प्रकार करना होता है। ४ वर्षके बाद लगभग १२ पत्ते निकल आते हैं और धड़ देखनेमें आता है। पांचवें वर्षमें वह धड़ साफ साफ नजर आता है और २४ पत्ते निकल आते हैं। इसके पांच वर्ष बाद ही फल फलने लगता है। वह पेड़ जब बड़ा हो जाय और उसे यदि दूसरी जगह उखाड़ कर लगाना चाहे, तो एक बड़ा गड्ढा बना कर और उसमें लवण और कुछ खार देनेके बाद पेड़ लगाना होता है। पेड़ उखाड़ते समय यदि कुछ रेशे कट भी जांय, तो कोई हर्ज नहीं। पूर्वोक्त प्रकारसे जो पेड़ लगाया जाता है, उसमें वर्ष भरमें ५०से २०० तक नारियल फलते हैं।

जो जमीन मिश्र और बालुकाविशिष्ट हो तथा जहां सामुद्रिक वायु बहती हो, वहां उत्कृष्ट और अधिक परिमाणमें नारियल उपजते हैं। निम्नोक्त प्रकारकी जमीनमें जो नारियलके पेड़ लगाये जाते हैं वे अच्छे नहीं होते।

१। काली और बालुका मिश्रित जमीन।

२। बालू और कीचड़मिश्रित लौहवत् कठिन जमीन।

३। ऊपर कीचड़ और नीचे बालू।

४। कीचड़ और बालूमिश्रित तथा पथरीली जमीन।

५। वह जमीन जहां मवेशी हमेशा पेशाब करते हैं।

किन्तु बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत काठियावाड़ प्रदेशके गोपनाथ नामक स्थानमें जो नारियलका पेड़ उत्पन्न होता है, वह साधारणतः पहाड़ पर ही हुआ करता है।

महिसुरमें ४ प्रकारके नारियल पेड़ देखे जाते हैं।

१। लोहितवर्ण-विशिष्ट।

२। लोहित और सबूजमिश्रित।

३। सबूजवर्णका।

४। गाढ़ा सबूज वर्णका।

इनमेंसे लोहित वर्णका नारियल अत्यन्त सुस्वादु होता है।

बम्बई प्रदेशमें कई जगह नारियलसे शराब तैयार करते हैं। इसीसे यहां थोड़े ही परिश्रममें नारियल उत्पन्न होता है। मन्द्राज, महिसुर और बम्बई आदि स्थानोंमें भी नारियलका यथेष्ट आदर होता है। बङ्गदेशमें खजूरके पेड़से शराब तैयार होती है, नारियलसे नहीं। इसीसे मालूम होता है, कि यहां कोई भी यत्नपूर्वक नारियलकी खेती नहीं करता। नोआखाली, बाखरगञ्ज, यशोर और २४ परगनेमें नारियलके यथेष्ट पेड़ देखे जाते हैं।

सिंहलमें ५ प्रकारका नारियल होता है।

१। टेम्बिली—इसका वर्ण कमलानीबूके जैसा और आकृति बादाम-सी चिपटी होती है।

२। टेम्बिलीसे इसका आकार अपेक्षाकृत गोल।

३। इसका आकार क्षुद्रपिण्डके जैसा और वर्ण पीताभ।

४। साधारणतः वह नारियल जो सब जगह बाजार में बिकता है।

५। राजहंस डिम्बके जैसा छोटा नारियल। इस प्रकारका नारियल बहुत कम देखा जाता है, लेकिन इसका स्वाद होता है बहुत मीठा।

नारियल पेड़के अनेक दुश्मन होते हैं। जमीन यदि अत्यन्त उर्वरा हो, तो उसमें एक प्रकारका कीड़ा उत्पन्न होता है। उस कीड़ेका मस्तक आभायुक्त धूसरवर्णका होता है। ये सब कीड़े पेड़के रेशे हो कर प्रवेश करते हैं और धड़ भेद कर बाहर निकल आते हैं। अन्तमें वह पेड़ मर जाता है। स्थानविशेषसे ये कीड़े कई प्रकारके होते हैं। इनसे बचनेकी प्रधान औषध लवण है। वृक्षके ऊपर नमक डालनेसे नमक अथवा उसका जल वृक्षके भीतर प्रवेश करता है जिससे कीड़े बाहर निकलने लगते हैं अथवा वहीं मर जाते हैं।

इस वृक्षके काण्डसे कहीं कहीं एक प्रकारका निर्यास या गोंद निकलता है जो देखनेमें स्वच्छ और कुछ लाल वर्णका होता है। नारियलके छिलके और डंठलसे रंग तैयार होता है जो कपड़े आदि रंगानेके काममें आता है।

नारियलसे जो दूध प्रस्तुत होता है उसे चूने वा अन्य रंगके साथ मिला कर यदि उससे दीवार रंगाई जाय, तो दीवार बहुत चकमकाने लगती है और वह रंग भी दीर्घस्थायी होता है।

नारियलके छिलकेसे रस्सी, गद्दी और घोड़ेका साज बनता है। कोचीन, मन्द्राज, लाचाद्वीप, मलबार, सिंहल, सिङ्गापुर आदि स्थानोंके नारियलका छिलका सब जगहसे उत्कृष्ट होता है। नारियलकी यदि बढ़िया रस्सी बनाना चाहे, तो जो नारियल एक वर्षका हुआ है उसे जहां तक हो सके संग्रह करे। पीछे उसके छिलकेको स्थानभेदसे ६से १८ मास तक पानीमें भिगोए रखे। बाद मुद्गर आदि द्वारा उसे पीटने और धूपमें सुखानेसे रेशे या तार तैयार हो जाते हैं। इस तारसे जो रस्सी बनाई जाती है वह देखनेमें सुन्दर और शुभ्रवर्णकी होती है। लाचाद्वीप आदि स्थानोंमें इसी नियमसे रस्सी आदि बनाते हैं। लेकिन किसी किसीका कहना है कि इस प्रकार जो रस्सी बनाई जाती है वह दीर्घस्थायी नहीं होती।

मलबार उपकूल आदि स्थानोंमें मद तैयार करनेके लिये जिन नारियलके पेड़ोंमें छेद कर देते हैं उनका छिलका उत्कृष्ट और सख्त नहीं होता। भारत भरमें मन्द्राज प्रदेशमें ही सबसे अधिक नारियलकी रस्सी बनाई जाती है। १६वीं शताब्दीके मध्यभागमें पहले पहल यूरोपमें नारियलकी रस्सीकी रफ्तनी हुई थी।

नारियलके पत्तोंसे चटाई, परदा और टोकरी आदि बनती हैं। प्रत्येक पत्तेके बीचमें जो सूक्ष्मशलाका रहती है, उससे सम्मार्जनी प्रस्तुत होती है। किसी किसी द्वीपके लोग पत्तोंसे छोटी नावका तिरपाल बनाते हैं। पत्तियां घरकी छाजनमें भी काम आती हैं।

साधारणतः नारियलसे रस्सी, तेल, चीनी, मिष्टान्न और शराब प्रस्तुत होती है। इसका तेल बहुत फायदामन्द है। नारिकेलतैल देखो।

कच्चा नारियल शैत्यकारक, फूल सङ्कोचक और तैल गुणविशिष्ट माना गया है। सुतरां नारियल सब समय औषधमें व्यवहृत होता है; दूध भी औषधके काममें आता है। इसके जलकी उपकारिताके विषयमें किसी किसी डाक्टरका कहना है, कि अपरिपक्व नारियलका जल वा दूध सुगन्धविशिष्ट, पिपासानाशक, शैत्यप्रद और पित्तज्वर तथा प्रस्रावकी पीड़ाके लिए विशेष उपकारी है। अधिक पीने पर भी यह जल कोई नुकसान नहीं करता। किसी किसीने इसे रक्तपरिष्कारक माना है। नारियलकी गरी पुष्टिकारक, स्निग्ध गुणविशिष्ट और मूत्रकारक है। इसका दूध ४से ८ औन्स प्रतिदिन दो तीन बार करके सेवन करनेसे यक्ष्मारोग और धातुविकृतरोग जाता रहता है।

इस दूधमें स्वाद भी यथेष्ट है, यह छोटे छोटे बच्चोंको भी पिलाया जा सकता है। अधिक दूध जुलाबका काम करता है।

नारियलकी गरी और तेलमें भिन्न भिन्न द्रव्य मिला कर भिन्न भिन्न प्रकारकी औषध प्रस्तुत करते हैं। बच्चोंके गलेके भीतर यदि घाव हुआ हो, तो कच्चे नारियलके जलसे वह अच्छा हो जाता है।

नारियलकी कोंपल अति सुस्वादु होती है और ज्वरावस्थामें पित्तनाशक है। पके नारियलकी गरी, भुना हुआ चावल और शर्कराके योगसे एक प्रकारका मिष्ट द्रव्य प्रस्तुत होता है।

नारियलका ताजा रस ताड़ीके समान व्यवहृत होता है। इस रसको कुछ काल तक आंच पर चढ़ानेसे उसका जलांश वाष्प हो कर उड़ जाता है और जो रस बच जाता है वह चीनीके जलके समान मीठा होता है। यदि जलका भाग बिलकुल ही जला दिया जाय, तो उसमें चीनी-सा मिठास आ जाता है। इसी प्रकार नारियलका गुड़ और नारियलकी मिस्री प्रस्तुत होती है। नारियलका हुक्का भी बनता है। पानके साथ सुपारीके बदलेमें नारियलकी मुलायम गरी खाई जाती है।

आयुर्वेदके मतसे इसका गुण—नारियलका फल शीतल, तैलाक्त, दुर्जर, वस्तिशोधन, विष्टम्भी, वृष्य बृंहण, बलकारी, पित्तज्वर, पित्तदोष और दाहनाशक माना गया है। पुरातन वा जीर्ण नारियल पित्तकर, भारी, विदाही और विष्टम्भी है। नवीन फलका जल शीतल, हृदयका हितकारक, दीपन, वीर्यवर्द्धक और हलका है। इसमें विसूचिका, तृष्णा, परिणामशूल, अम्लपित्त, अरुचि, क्षय, रक्तपित्त, वातरक्त, पाण्डु, पित्त और पिपासानाशक गुण है। इसका स्वाद भी बहुत मीठा है। गरीका गुण—कोमल, शीतल, वस्तिशोधक, शुक्रल और वातपित्तनाशक है। पक्व नारियलका गुण—किञ्चित् पित्तकर, रुच्य, मधुर और शीतल। नारियलकी कोंपल कषाय, स्निग्ध, मधुर, बृंहण और भारी। कोमल नारियलकी गरी पित्तज्वर और मूत्रदोषनाशक मानी गई है। नारियलके जलसे प्यास बुझ जाती है। इसमें शीतल, हृद्य, दीपन और शुक्रवृद्धिकर गुण है। कच्चा नारियलका जल प्रायः विरेचन होता है। पित्तज्वरमें कोमल नारियल और उसका जल बहुत फायदामन्द है। नारियल हम लोगोंका एक प्रधान खाद्य है। अष्टमी तिथिमें नारियल खाना निषिद्ध बतलाया है, किन्तु महाष्टमीके दिन देवीका प्रसाद नारियल खा सकते हैं। जो मोहवश अष्टमीके दिन नारियल खाता है वह मूर्ख होता है। कोजागरा रात्रिमें नारियलका जल पी कर जागरण करना विधेय है।

"नारिकेलोदकं पीत्वा कोजागर्ति महीतले।"
(तिथितत्त्व)

कांसेके बरतनमें यदि नारियलका जल रखा जाय, तो वह मद्यके समान हो जाता है। इसीसे कांसेके बरतनमें नारियलका जल नहीं पीना चाहिये।

"नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रपात्रे स्थितं मधु।
गव्यञ्च ताम्रपात्रस्थं मद्यतुल्यं घृतं विना॥"
(कर्मलोचन)

नारियलसे अनेक प्रकारका खाद्य प्रस्तुत होता है। पक्के नारियलको पीस कर उसे घी, दूध और गुड़के साथ मिलानेसे स्वादिष्ट खाद्य तैयार होता है। यह खाद्य लड्डू, चिउड़ा आदि नामोंसे प्रसिद्ध है।

नारिकेलक्षीरी (सं० स्त्री०) नारिकेलोद्भवा क्षीरी। नारियलके जलसे प्रस्तुत एक प्रकारका खाद्य-द्रव्य। प्रस्तुत प्रणाली—नारियलकी गरीका छोटा छोटा खण्ड बनावे। पीछे उसे गोदुग्ध, चीनी और गव्य-घृतके साथ मिला कर मृदु अग्निके उत्तापसे पाक करे। इस प्रकार जो सामग्री प्रस्तुत होती है उसे नारिकेलक्षीरी कहते हैं। गुण—स्निग्ध, शीतल, अत्यन्त पुष्टिकारक, गुरु, मधुर रस, शुक्रवर्द्धक और रक्तपित्त वायुनाशक।

नारिकेलखण्ड (सं० पु०) औषधविशेष, एक प्रकारकी दवा। प्रस्तुत प्रणाली—सुपक्व नारियलके शस्यको शिला पर पीस कर उसे वस्त्रसे निचोड़ लेते हैं। बाद उसमेंसे ४ पल ले कर आध पाव घीमें उसे भून लेते हैं। अनन्तर चार सेर नारियलके जलमें आध सेर चीनी मिला कर उसे छान लें। इस जलमें नारियलकी गरीको पाक करें। पाक सिद्ध हो जाने पर उसे उतार लें और धनियां पीपर, मोथा, बंशलोचन, जीरा, कृष्णजीरा प्रत्येक आध तोला; दारचीनी, तेजपत्र, इलायची, नागकेशर प्रत्येक एक माशा; इन सबका चूर्ण बना कर उसमें डाल दें। इस औषधके सेवन करनेसे अम्लपित्त, अरुचि, क्षयरोग, रक्तपित्त, शूल और वमि दूर हो जाती है। इससे पुरुषत्वकी वृद्धि भी होती है।

वृहन्नारिकेलखण्ड। प्रस्तुत प्रणाली—आठ पल नारिकेलशस्यको शिला पर अच्छी तरह पीस कर उसमेंसे ५ पलको घीमें बघार लें। पीछे सोलह सेर नारियलके जलमें दो

सेर चीनी डाल कर उसे छान लें। अनन्तर उसमें भुना हुआ नारिकेल-शस्य आठ पल, सोंठ चूर्ण चार पल और दूध दो सेर मिला कर धीमी आँचसे पाक करें। वंशलोचन, त्रिकटु, मोथा, दारचीनी, तेजपत्र इलायची, नागकेशर, धनिया, पीपर, गजपीपर और जीरा प्रत्येकका चूर्ण चार पल ले कर इसमें डाल दें और भलीभांति हल कर नीचे उतार लें। इसकी सेवन-मात्रा अर्द्धतोला है। इससे शूल, अम्लपित्त और हृद्रोग आदि जाते रहते हैं। यह औषध बलपुष्टिकर, हृद्य और उत्तम वाजीकरण है।

(भैषज्यरत्ना० शूलाधिकार)

भावप्रकाशमें नारिकेलखण्डकी प्रस्तुत प्रणाली इस इस प्रकार लिखी है—

चार पल नारियलको एक पल गव्य-घृतमें भून कर उसे नारियलके जल और गव्यघृतके साथ पाक करे। पाक समाप्त हो जाने पर उसे उतार ले और ठण्ढा हो जाने पर उसमें निम्नलिखित चूर्ण डाल दे।

चूर्ण यथा—धनिया, पीपर, मोथा, दारचीनी और नागकेशर प्रत्येक आध तोला ले कर उसका चूर्ण बनावे और उसमें डाल दे। इसे अग्निके बलाबलके अनुसार एक पल अथवा आध पल मात्रामें प्रतिदिन भक्षण करे। इससे पुरुषत्व, निद्रा और बलको वृद्धि होती है तथा रक्तपित्त, अम्लपित्त, परिणामशूल और क्षयरोग नष्ट हो जाते हैं।

वृहन्नारिकेलखण्ड-प्रस्तुत-प्रणाली—भलीभांति पीसा हुआ एक प्रस्थ नारियल, अर्द्ध आढ़क बीजरहित कुष्माण्डको एक कुड़व गव्य-घृतमें भून ले। पीछे उसमें एक आढ़क गव्यघृत और दो प्रस्थ चीनी डाल कर उसे धीमी आँचमें पाक करे। भलीभांति पाक हो जाने पर उसे उतार ले और जब ठण्ढा हो जाय तब निम्न-लिखित चूर्ण डाल दे। चूर्ण यथा—छोटी इलायची, धनिया, आंवला, खेतपापड़, मोथा, सुगन्धवाला, खस-खसकी जड़, रक्तचन्दन, त्रिमु [त्रिमृ] केसर, दारचीनी, तेजपत्र और कपूर प्रत्येक चार चार तोला ले कर उसके चूर्णको उसमें मिला दे और उसे एक नवीन बरतनमें रख छोड़ें। इसकी सेवन-मात्रा एक पल है अथवा रोगीके अग्नि-बलको विवेचना कर यथामात्रामें प्रातःकालमें सेवन करावे। इसके सेवन करनेसे अम्लपित्त, ज्वर, पित्त, रक्तपित्त, अरुचि, वातरक्त, पिपासा, दाह, पाण्डु-रोग, कामला, क्षय और परिणामशूल आरोग्य हो जाता है। प्राचीन कालमें भगवान् अश्विनीकुमारने इसे बनाया है। यह वर्णप्रसादक, शरीरका उपचयकारक, शुक्रवर्द्धक और पुरुषत्व, निद्रा तथा बलप्रदायक है।

नारिकेलतैल (सं० क्ली०) नारिकेलफलसम्भव तैल। नारियलका तेल। वैद्यकके मतसे इसका गुण—वाजीकरण, गुरु, क्षीणधातुका पोषक, वात और पित्त-नाशक, मूत्राघात, प्रमेह, श्वास, कास, यक्ष्मा, बुद्धि-लोपमें हितकर और स्तननाशक है।

प्रस्तुत प्रणाली—पके नारियलको इकट्ठा कर उनके छिलकोंको अलग कर दें। उसके बीचमें त्वकावृत जो पदार्थ है उसे कटारीसे काटने पर उसके भीतर शुक्लवर्णका एक प्रकारका कठिन पदार्थ मिलेगा। इसीका नाम नारियलको गरी है। इसी गरीसे तेल तैयार होता है। भारतवर्षमें निम्नलिखित उपायसे नारियलसे स्वच्छ और वर्णहीन तेल बनाया जाता है। पहले नारियलकी गरीको जलमें कुछ काल तक सिद्ध कर पीछे उसे किसी एक यन्त्र द्वारा पीस लेते हैं। तद-नन्तर उस पीसी हुई गरीको जलके साथ मिला कर उबालते हैं। ऐसा करनेसे तेल जलके ऊपर बहने लगता है। यह तेल बहुत परिष्कार और तरल होता है। साधारणतः नारियलकी गरीको घानीयन्त्रमें डाल कर पेषण-क्रिया द्वारा नारियलतैल तैयार होता है।

कहीं कहीं नारियलकी गरीको आगमें या धूपमें भलीभांति सुखा लेते हैं और पीछे उसे घानीमें पीस कर तेल तैयार करते हैं। इस प्रकार भिन्न भिन्न स्थानोंमें भिन्न भिन्न उपायोंसे नारियलसे तेल निकाला जाता है। नातिशीतोष्ण देशमें नारियलका तेल सूअरकी चर्बीकी तरह गाढ़ा और शुभ्र होता है।

ग्रीष्मप्रधान देशोंमें नारियल-तेलका रंग शुभ्र और जलके समान तरल होता है। जब तक यह ताजा रहता है, तब तक इससे सुगन्ध निकलती है, कुछ पुराना हो जानेसे ही वह उग्र गन्धविशिष्ट हो जाता है। दाक्षिणात्यमें सरसों तेलके बदले इसी तेलको काममें लाते

हैं और कहीं कहीं प्रदीपमें, चित्रकार्यमें, साबुन तैयार करनेमें तथा शरीरमें लगानेके काममें व्यवहृत होता है जब यह बहुत ताजा रहता था, तब यह औषधमें भी काम आता है। मन्द्राज प्रेसिडेन्सी और त्रिवाङ्कुड़में नारियल तेलका व्यवसाय खूब चलता है। मालद्वीप और लक्षा-द्वीपमें यह तेल नहीं होता है।

नारियल-तेलका आपेक्षिक गुरुत्व ·९८२ है। परीक्षा करके देखा गया है, कि नारियल तेलमें कितने कठिन और वाष्पीय अम्ल मिले हुए हैं। ग्लोसिरिन अम्ल इसका एक प्रधान अङ्ग है। इस तेलको अन्य द्रव्योंमें मिला कर नाना प्रकारकी औषध प्रस्तुत करते हैं।

नारिकेलद्वीप—प्राचीन संस्कृत साहित्यवर्णित एक द्वीप। कथासरित्सागर पढ़नेसे जाना जाता है, कि भारतीय वणिक् समुद्रपथ द्वारा इस द्वीपमें आते जाते थे। यह द्वीप कहां है? इस विषयमें मतभेद है। कोई कहते हैं, कि अन्दामान द्वीपके निकट नारियलके वृक्षसे घिरी हुई जो छोटी द्वीपावली नजर आती है, वही नारिकेल-द्वीप है। फिर कोई वर्त्तमान मालद्वीपको नारिकेल-द्वीप बतलाते हैं। चीनपरिव्राजक युएनचुवङ्ग इस द्वीपमें गए थे। उनके वर्णनसे ज्ञात होता है, कि सिंहलद्वीपसे (१००० लोग) प्रायः १०० कोस दक्षिणमें नारिकेलद्वीप अवस्थित है। इस हिसाबसे उपरोक्त दोनों स्थानको प्राचीन नारिकेलद्वीप नहीं कह सकते। कोई कोई इसे सुमात्राद्वीपके दक्षिणमें अवस्थित बतलाते हैं।

१६०८-९ ई०के मध्य कप्तान किलिंने सुमात्राके दक्षिणमें इस द्वीपका आविष्कार किया। आविष्कर्त्ताके नाम पर यह किलीं नामसे प्रसिद्ध है सही, लेकिन स्थानीय लोग इसे 'कोको' अर्थात् नारिकेलद्वीप ही कहते हैं। युएनचुवङ्गके वर्णनसे यही नारिकेलद्वीप समझा जाता है।

१८२३ ई० तक इस द्वीपका विशेष विवरण कुछ भी जाना नहीं जाता। पीछे अलेकजण्डर हेयर अनेक मलयदेशीय स्त्री और पुरुषके साथ यहां रहने लगी। पीछे और भी कई एक द्वीप स्थापित हुए। दक्षिण किलिं, उत्तरकिलिं, सेलिम, वेरियल, रस, वाटर, वार-रेक्सन और उसके बारा द्वीप इसी किलिं द्वीपके अन्तर्गत है। अक्षा० ११´ ५०´´ द० और देशा० ९६´ ५१´ ३´´ पू०के मध्य उत्तरकिलिं द्वीप अवस्थित है। इन सब द्वीपोंमें जो बड़े बड़े द्वीप हैं उनमें बारहों मास विशुद्ध जल रहता है। यहां नारियल, सूअर और अन्यान्य गृहपालित पशु तथा ईख मिलती है। ऐडमिरल फिजरयका कहना है, कि इस द्वीपका केकड़ा नारियल और मछली प्रवाल खाती है। कुत्ता मछली पकड़ता है, मनुष्य कच्छपकी पीठ पर चढ़ता है। अधिकांश समुद्र पक्षी वृक्ष पर और इन्दूर प्रायः बड़े बड़े तालके पेड़ पर रहते हैं। यहां सब समय भूमिकम्पका डर बना रहता। दक्षिण किलिं द्वीपमें ९ मील लम्बा और ६ मील चौड़ा एक अल्पगभीर ह्रद है। इस ह्रदका जल स्थिर रहता और इसके चारों ओर नारियलके दरख्त देखे जाते हैं। यहां नारियल-भक्षक, 'बिलुसलेट्रो', 'दस्यु' आदि नाना प्रकारके केकड़े पाये जाते हैं।

नारिकेललवण (सं० क्लो०) लवणौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—जल और छिलकेके साथ नारियलके मध्य सैन्धव नमक भर कर दग्ध करते हैं। बाद उसमेंसे नमक निकाल कर ४ माशेकी गोली बनाते हैं। इसका अनुपान उष्ण जल है। इस औषधके सेवन करनेसे सब प्रकारके परिणामशूल विनष्ट होते हैं।

नारिकेलामृत (सं० क्लो०) औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—सुपक्व नारिकेल शस्यको शिला पर पीस कर कपड़ेमें छान लेते हैं। बाद चार सेरके अन्दाज ले कर चार सेर घीमें उसे बघारते हैं। अनन्तर पाकार्थ नारियलका जल ३२ सेर, गायका दूध ३२ सेर, आंवलेका रस ৴४ सेर, चीनी १२॥ सेर, सोंठ चूर्ण ৴२ सेर इन सबको एक साथ पकाते हैं। आसन्न पाक हो जाने पर प्रक्षेपार्थ त्रिकटु, गुड़त्वक्, तेजपत्र, इलायची, नागेश्वर प्रत्येक १ पल, आंवला, जीरा, धनियां, वंशलोचन और मोथा प्रत्येक ६ तोला, शीतल होने पर आध सेर मधु उसमें डाल देते हैं। मात्रा १ तोलासे २ तोला तक और अनुपान दुग्ध तथा मूंगका जूस है। इसके सेवन करनेसे अम्लपित्त और सब प्रकारके शूल जाते रहते हैं। यह अग्निसन्दीपनकर, रसायन, सब प्रकारके मूत्राघात,

रक्तपित्त और पीनस आदि रोग नाशक है।

(भैषज्यरत्ना० शूलाधिकार)

नारिकेलि (सं० स्त्री०) नारिकेलवृक्ष, नारियलका पेड़।

नारिकेलोदक (सं० क्ली०) नारिकेलजल, नारियलका पानी।

नारियल (हिं० पु०) १ खजूरकी जातिका एक पेड़ जो खम्भेके रूपमें पचास साठ हाथ तक ऊपरको ओर जाता है। विशेष विवरण नारिकेल शब्दमें देखो। २ नारियलका हुक्का।

नारियलपूर्णिमा (हिं० स्त्री०) बम्बई प्रान्तका एक त्योहार। इसमें लोग नारियल ले कर समुद्रमें फेंकते हैं।

नारियली (हिं० स्त्री०) १ नारियलका खोपड़ा। २ नारियलका हुक्का। ३ नारियलकी ताड़ी।

नारी—वर्त्तमान तिब्बतके उत्तर-पश्चिमांशवर्त्ती एक जनपद। गढ़वाल और कुमायुनके मध्य हो कर जो ५ गिरिपथ भोटकी ओर गये हैं, उन्हींको प्रान्तसीमामें वह जनपद अवस्थित है। भोटदेशवासी चीनके राजप्रतिनिधिगण मुगल वा तुरुष्क सेनाकी सहायतासे इस प्रदेशका शासन करते हैं। यहां तातार घोड़ेका मांस खाते हैं। यह प्रदेश बहुत ऊंचा और अनुर्वर है। सिन्धुनदप्रवाहित अंश छोड़ कर यहां बहुत लोगोंका वास है। तिब्बती लोग इस स्थानको नारी-खोरसुम और हिमालयवासी हिमदेश कहते हैं। कहा जाता है, कि पूर्व समयमें यहां नारी वा स्त्री ही शासन करती थी।

नारी (सं० स्त्री०) नुर्नरस्य वा धर्म्या, नृ अञ् (ऋतो-ऽञ्। ४।४।४९ इति वार्त्तिकोक्त्या अञ्) ततो ङीन् (शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्। पा ४।१।७३) स्त्री। पर्याय—योषित्, स्त्री, अबला, योषा, सीमन्तिनी, वधू, प्रतीपदर्शिनी, वामा, वनिता, महिला, प्रिया, रामा, जनि, जनी, योषिता, जोषित्, जोषा, जोषिता, धनिका, महेलिका, महेला, शर्वरी, वोषीत्, सिन्दूरतिलका, सुभ्रू। अलङ्कारके मतसे स्त्रियां प्रशमतः चार जातियोंमें विभक्त हैं, यथा—पद्मिनी, चित्रिणी, शङ्खिनी और हस्तीनी।

"पद्मिनी चित्रिणी चैव शंखिनी हस्तिनी तथा।
चतस्रो जातयो नार्या रतौ ज्ञेया विशेषतः॥"

(रतिमञ्जरी)

पद्मिनी शशक नामक पुरुषसे, चित्रिणी मृगसे, शङ्खिनी वृषभसे और हस्तिनी अश्वसे परितुष्ट रहती है। ये सब स्त्रियां बाला, तरुणी, प्रौढ़ा और वृद्धाके भेदसे चार प्रकारकी हैं। १६ वर्ष तककी स्त्रीको बाला, ३० वर्ष तककी तरुणी, ५० वर्ष तकको प्रौढ़ा और उसके बादकी स्त्रीको वृद्धा कहते हैं। रतिविषयमें बालाको प्राणदायिनी, तरुणीको प्राणहारिणी, प्रौढ़ाको वृद्धकारिणी और वृद्धाको मृत्युदायिनी बतलाया है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें यह नारी तीन प्रकारकी मानी गई है, यथा—साध्वी, भोग्या और कुलटा। जो परलोकका भय रखती, अपने यश और कामको हवशतः सर्वदा स्वामीकी सेवा करती है, उसे साध्वी; जो भोग्यवस्तुकी प्रार्थी हो कर कामसे इसे पतिकी सेवा करती है, उसे भोग्या कहते हैं। जब तक भोग्यानारीको अभिलषित वस्त्र और अलङ्कार आदि मिलते, तब तक वह वशमें रहती है। कुलटा नारी कुलाङ्गारकी जैसी होती है। यह हमेशा स्वामीकी कपटरूपसे सेवा करती है, भक्तिका जरा-सा भी उसमें चिह्न नहीं रहता। वह सर्वदा कामातुरा हो कर नये नये यारोंकी प्रार्थना करती है। इस प्रकारकी नारी अपने यारोंके लिए स्वामी तकको भी मार डालनेमें नहीं हिचकती। जो इस नारी पर विश्वास रखते हैं, उनका जीवन निष्फल है। इसका स्वभाव—हृदय क्षुरधारके जैसा, कार्यसिद्धके लिए वाक्य अमृतोपम, क्रुद्धावस्थामें वाक्य विषतुल्य, प्रकृति कुत्सित और अभिप्राय दुर्ज्ञेय होता है। यह अत्यन्त मायाविनी और साहसमें प्रबला होती है। इसका काम पुरुषसे ८ गुना, आहार दूना, निष्ठुरता चौगुनी और क्रोध छः गुना अधिक है। जितने प्रकारकी नारियां बतलाई गई हैं, सभी दोषकी आकर हैं। इनके साथ किसी प्रकारकी क्रीड़ा वा सुखकी सम्भावना नहीं। इनके साथ सम्भोग करनेसे वपुःक्षय, अत्यन्त प्रीति करनेसे धनक्षय, कलहसे मानन्नाश, सहवाससे पौरुष नष्ट और विश्वास करनेसे सर्वनाश होता है। जब तक धनयौवनादि है, तब ही तक ये वशीभूत रहती हैं; रोगी, निर्गुण और वृद्ध होनेसे ये बात तक भी करना नहीं चाहतीं। (ब्रह्मवै० श्रीकृष्ण० २३ अ०)

मनुका मत है, कि नारी यदि यथानियमसे प्रात-

पालित हों, तो वे कल्याणकारी और श्रीवृद्धिप्रदायिनी होती हैं।

नारियोंको सम्मानपूर्वक भोजन वस्त्रादि द्वारा सर्वदा भूषित करना कल्याणकामी पिता, भ्राता, पति और देवरोंका अवश्य कर्त्तव्य है। जिस वंशमें स्त्रियोंका सम्यक् आदर है, देवता वहां प्रसन्न रहते हैं और जिस परिवारमें स्त्रियोंका मान नहीं, उनकी यागादि सभी क्रियायें निष्फल हैं। जिस परिवारमें नारी सर्वदा दुःखसे रहती है, उस परिवारका बहुत जल्द नाश होता है। स्त्रियां दुःख पा कर जिस वंशको अभिशाप देती हैं, वह वंश अभिचारहतके जैसा शीघ्र ही नाश हो जाता है। जो मनुष्य श्रीवृद्धिकी कामना करते, उन्हें चाहे विविध सत्कार्य कालमें हो, चाहे उत्सवकालमें हो हो, भोजन, वस्त्र और भूषणादि द्वारा नारियोंका आदर करना अवश्य कर्त्तव्य है। (मनु ३।५५-६०)

नारियोंके ६ कार्य दोषावह हैं, यथा—पान, दुर्जनसंसर्ग, पतिविरह, भ्रमण, परघरमें निद्रा और वास।

"पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्।
स्वप्नश्चान्यगृहे वासो नारीणां दूषणानि षट्॥"
(हितोपदेश १।१३२)

स्त्रियोंको किसी समय स्वाधीनता नहीं है। मनुमें लिखा है, कि नारी चाहे बालिका हों, चाहे युवती वा वृद्धा हों, किसी समय उन्हें स्वतन्त्रभावसे कार्य करना उचित नहीं है। इन्हें बाल्यावस्थामें पिताके वशमें, यौवनमें स्वामीके वशमें, स्वामीके मरने पर पुत्रके वशमें रहना चाहिए। ये कभी भी स्वाधीनभावसे रह नहीं सकतीं। इन्हें हमेशा प्रफुल्लचित्तसे कालयापन करना चाहिए। नारियोंको गृहकर्ममें दक्षता, गृहसामग्रीको साफ सुथरा रखनेमें होशियार होना एकान्त आवश्यक है। (मनु ५।१४६-१५०)

स्वामिगृहमें वास, स्वामिसेवा और गृहकार्यमें तत्परता आदि नारियोंका ब्रह्मचर्य माना गया है। स्वामी छोड़ कर इन्हें कोई पृथक् यज्ञ नहीं है, स्वामीकी अनुमति लिये बिना ये कोई व्रत उपवासादि नहीं कर सकतीं। एक स्वामी-सेवा करनेसे ही सब व्रतोंका फल मिलता है।

सामुद्रिक शास्त्रके मतसे—निम्नलिखित चिह्नादि द्वारा नारियोंका शुभाशुभ जाना जाता है;—जिस नारीके पैरमें वज्र, पद्म और हलका चिह्न हो, वह दासी होने पर भी रानीके समान है और नित्य राजभोगमें जीवन व्यतीत करती है। नारियोंकी जांघ रोमशून्य, सुगोल और सरल होनेसे, घुटनोंका संयोगस्थल उच्चनीचता-विहीन होनेसे तथा दोनों घुटनेके समान होनेसे शुभ होता है। स्त्रियोंका ऊरु हाथीकी सूँड़के जैसा स्थूल, सरल, समान, सुवर्त्तुल, सुन्दर, कोमल और सुशीतल होनेसे शुभ समझा जाता है। किन्तु जांघमें यदि रोएं हों, तो अशुभ होता है। दोनों स्तन लोमविहीन, स्थूल, सुवर्त्तुल, कमलकोरकवत् क्रमशः शेषमें सूक्ष्म, कठोर, उन्नत, अविरल और परस्पर समान, ग्रीवादेश कम्बु और शङ्खके जैसा तीन रेखाविशिष्ट तथा वक्षःस्थल लोमशून्य हो, तो शुभलक्षण जानना चाहिये।

जिन स्त्रियोंके अधर और ओष्ठ कुछ लाल, मुख अण्डेके जैसा गोल और मांसल, दन्त कुन्दपुष्पवत् उज्ज्वल और सुदृश्य, वाक्य कोकिल अथवा हंसके जैसा, नासिका समान और परिमित रन्ध्रविशिष्ट होनेसे शुभावह होता है। जिस कामिनीका केशकलाप स्वभावतः स्नेहयुक्त, कृष्णवर्ण, कोमल और कुञ्चित हो तथा मस्तक, हस्त और चरण समभागोंमें विभक्त हों, वह स्त्री सौभाग्यवती समझी जाती है।

जिस नारीके हाथ वा पैरमें अश्व, गज, बिल्वतरु, यूप, वाण, यव, तोमर, ध्वजा, चामर, माला, क्षुद्र पर्वत, कर्णभूषण, वेदिका, शङ्ख, छत्र, कमल, मीन, स्वस्तिक, चतुष्पथ, सर्पफणा, उत्तमरथ और अङ्कुश आदि जो कोई चिह्न हो, वह स्त्री राजमहिषी होती है। जिनका मणिबन्ध निगूढ़ हो, हस्त पद्मके अभ्यन्तर भागके जैसा सुदृश्य हों, करतल न तो निम्न और न उन्नत हो, वे सब स्त्रियां अत्यन्त ऐश्वर्यशालिनी समझी जाती हैं।

नारियोंके ऊर्ध्व रेखा रहनेसे उन्हें सब प्रकारका सौभाग्य लाभ होता है। जो रेखा मणिबन्धसे निकल कर करतलके मध्यभाग होती हुई मध्यमाङ्गुलि तक चली गई है, उसे ऊर्ध्व रेखा कहते हैं। जिसके अङ्गुष्ठके नीचेकी रेखा अत्यन्त छिन्नभिन्न भावमें रहे, उसकी आयु थोड़ी

और वह रेखा यदि दीर्घ भावमें छिन्नभिन्न रहे, तो वह दीर्घायु समझी जाती है। स्त्रियोंके हाथमें इस रेखाके रहनेसे शुभ और नहीं रहनेसे अशुभ होता है। चलते समय जिस स्त्रीके चरणकी कनिष्ठा अथवा अनामिका मट्टीमें न छू जाती हो अथवा तर्जनी वृद्धाङ्गुलीके ऊपर हो कर जाती हो, उस स्त्रीको कुलटा जानना चाहिए। जिस स्त्रीकी जङ्घाके ऊपरी भाग पर दो लोममय और शिरा-विशिष्ट मांसपिण्ड हो, उदर कलसीके जैसा स्थूल और गुह्यदेश वामावर्त्त हो कर कुछ निम्न हो, वह स्त्री चिरदुःखिनी होती है। यदि ग्रीवादेश क्षुद्र और योनि बड़ी हो, तो समझना चाहिए कि उसका कुलध्वंस होगा।

जिस स्त्रीकी गरदन मोटी और आंखें टेढ़ी तथा पिङ्गलवर्णकी अथवा चञ्चल हों, वह अत्यन्त प्रचण्ड और कलहप्रिया होती है। जिस नारीका गण्डदेश सफेद और कुएंके जैसा गहरा हो, वह यदि सतीकी भी तरह रहे, तो भी उसे व्यभिचारिणी समझना चाहिए। जिसके कपाल पर लम्बी रेखा रहे उसका देवर नष्ट होता है। वह रेखा यदि उसके उदर पर रहे, तो श्वशुरकी मृत्यु और यदि नितम्बके ऊपर रहे, तो स्वामीकी मृत्यु होती है, ऐसा जानना चाहिए। जिसके अधरके नीचे रोएं जनमे हों वह असौभाग्यवती और अशुभभागिनी होती है। जिसके स्तन रोएंसे भरे हों, दोनों कान और दांत समान न हों वह स्त्री क्लेशकर होती है। जिस नारीके दन्तमूलमें कृष्णवर्ण मांस रहे, वह चौर्यवृत्ति अवलम्बन करती है और दन्त यदि बड़े बड़े हों, तो स्वामीकी मृत्यु होती है। जिस स्त्रीका हस्त शुष्क, विषम और शिरामय हो, वह दरिद्रा होती है। जिस स्त्रीके पैरकी अनामिका और अङ्गुष्ठ चलते समय मट्टीको न छू जाता हो, उससे पतिकी मृत्यु होती है और पीछे आप स्वेच्छाचारिणी होगी, ऐसा जानना चाहिए। जिस स्त्रीके चलते समय भूमिकम्प हो, वह शीघ्र पतिघातिनी और स्वेच्छाचारिणी होती है। जिसके पैरोंकी उंगलियां आपसमें जुड़ी हों, नख ताम्रवर्ण-से हों, दोनों पैर उच्च शिरायुक्त और कूर्मपृष्ठके जैसे समुन्नत हों तथा गुल्फ गूढ़भावापन्न हो, वह राजश्री होती है। जिस कामिनीके पदतलमें रेखा रहे, वह राज-महिषी होगी, ऐसा समझना चाहिए। जिसकी मध्यमाङ्गुलि अन्य अंगुलिके साथ मिली हो, वह उत्तम उत्तम पदार्थोंका भोग करती है। जिसकी अंगुलियां लम्बी लम्बी हों, वह रमणी कुलटा; जिसकी कृश हों, वह अत्यन्त दरिद्रा; जिसकी खर्व हों, वह अल्प परमायुकी और जिसकी अंगुलि भग्नवत् हों, वह अभागा होती है। अंगुलिके चिपटी होनेसे दासी, विरला होनेसे दुःखिनी और एक दूसरेसे जुड़ी रहनेसे पतिकी मृत्यु होती है। जिस नारीके चरणके नख स्निग्ध, समुन्नत, ताम्रवर्ण, गोलाकार और सुदृश्य हों तथा जिसके पद-तलका पृष्ठदेश उन्नत हो, वह रमणी राजमहिषी होती है। जिस नारीका पार्ष्णिदेश समान हो, वह सुलक्षणा; जिसका पृथु हो, वह दुर्भागिनी; उन्नत हो, तो कुलटा और यदि दीर्घ हो, तो वह दुःखभागिनी होती है। नारियोंके कटिदेशकी परिधि यदि एक हाथकी हो और नितम्ब समुन्नत तथा मसृण हो, तो शुभ समझा जाता है। नारियोंका नितम्ब यदि उन्नत, मांसल और स्थूल हो, तो ऐश्वर्यलाभ और यदि विपरीत हो, तो फल भी विपरीत होता है। नाभिका गभीर और दक्षिणावर्त्त होना मङ्गलदायक है। जिसकी नाभि वामावर्त्त, अगभीर तथा उच्च हो, वह नारी शोभा नहीं देती। नारियोंके स्तनद्वय यदि घन, गोल, दृढ़, स्थूल और समान हो, तो प्रशस्त और वे स्तन यदि विरल तथा शुष्क हों, तो भी कल्याणकर समझा जाता है।

जिस नारीका दक्षिण स्तन उन्नत हो, वह पुत्र और जिसका वाम स्तन उन्नत हो, वह सौभाग्यशालिनी सुन्दर कन्या प्रसव करती है। जिसके स्तनोंका मूल-देश स्थूल और उपरिभाग क्रमशः कृश हो कर अग्रभाग सूक्ष्म हो गया हो, वह रमणी बचपनमें सुखभोग कर पीछे दुःखभागिनी होती है। जिसका पाणितल मृदु, रक्तवर्ण, छिद्ररहित, अल्परेखाविभूषित, प्रशस्त रेखायुक्त और मध्यभागमें उन्नत हो, वह नारी सौभाग्यशालिनी होती है। नारियोंके करतल पर अनेक रेखाओंके रहनेसे विधवा, निर्दिष्ट रेखाके नहीं रहनेसे दरिद्रा और शिराल होनेसे भिक्षुकी होती है। जिस नारीके करतल

पर दक्षिणावर्त्त मण्डल हो, वह नारी राजमहिषी होगी अथवा राजगद्दी पर अभिषिक्त हो कर राजकार्य चलावेगी, ऐसा समझना चाहिये। करतल पर शङ्ख, छत्र और कच्छपका चिह्न रहनेसे वह नारी राजमाता होती है। जिस नारीके अंगुष्ठमूलसे ले कर एक रेखा कनिष्ठांगुलिके मूल तक चली गई हो, वह पतिघातिनी होती है। जिस नारीके चक्षु गोचक्षुके समान और पिङ्गलवर्ण के होते हैं, वह बहुत गर्विता समझी जाती है। कबूतरके जैसा चक्षु होनेसे दुःशीला और रक्तवर्णके होनेसे पतिघातिनी; कोटर-नयना होनेसे दुष्टा, गजचक्षु होनेसे अप्रशस्तलक्षणा और वामचक्षु तिरछा होनेसे पुंश्चली और दक्षिण चक्षु तिरछा होनेसे वन्ध्या होती है। जिसके भ्रूकी बगलमें वा ललाट पर मसा हो, वह नारी राज्यभोग करती है। वाम कपाल पर मसा होनेसे स्त्री सौभाग्यवती समझी जाती है। जिसके शरीर पर तिल अथवा कोई दूसरा ही चिह्न हो, वह सौभाग्यवती; जिसके दक्षिणस्तन पर तिलचिह्न हो, वह चार कन्या और दो पुत्रको माता तथा जिसके वामस्तन पर तिल वा रक्तवर्णका कोई दूसरा चिह्न हो, वह नारी एक पुत्र प्रसव कर विधवा हो जाती है। जिस नारीके गुह्यदेशके दक्षिण पार्श्वमें तिलचिह्न हो, वह राजमहिषी होती है और उसके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह भी राज्यभोग करता है। यदि किसी नारीको नाभिके नीचे तिल वा मसा हो, तो वह सौभाग्यशालिनी होती है।

जिस नारीका ललाट, उदर और भग ये तीनों अंश लम्बे हों, वह श्वशुर, पति और देवर इन तीनोंको संहारकारिणी होती है। स्त्रियोंमें यह भारी ऐब समझा जाता है।

जो नारी गौरवर्णा हो और जिसके बाल बहुत बारीक हों, वह आठ पुत्र प्रसव करती है और विपुल सुखसौभाग्यशालिनी होती है।

कच्छपपृष्ठवत् विस्तृत और हस्तिस्कन्ध सी उन्नतयोनि ही नारियोंको मङ्गलदायक होती है। योनिका वामभाग उन्नत होनेसे पुत्रका जन्म होता है। जो योनिद्वार, अवयवमें विस्तृत, परिमाणमें बृहत् और उन्नत, उपरिभाग पर मूषिकगात्रवत् विरल रोमयुक्त, मध्यभाग पर अप्रकाशित, दोनों पार्श्वमें मिलितप्राय, गठन और वर्णमें कमलदलके जैसा क्रमशः नीचेको और सूक्ष्म, आकृतिमें पीपल पत्रके जैसा त्रिकोण, ये सब लक्षण मङ्गलकर और सुप्रशस्त माने जाते हैं। (सामुद्रिक)

गरुड़पुराणमें भी नारियोंके शुभाशुभ लक्षण इस प्रकार लिखे हैं;—

जिस कामिनीका केश आकुञ्चित, मुख मण्डलाकार और नाभि दक्षिणावर्त्त हो, वह कुलवर्द्धिनी होती है। जिस रमणीकी देहकान्ति सोनेकी तरह समुज्ज्वल और हस्त रक्तपद्मके जैसे हों, वह पतिव्रता और सहस्र नारियोंमें प्रधाना होती है। जिसका मुख पूर्णचन्द्रके जैसा मनोहर, देहप्रभा नवोदित सूर्यको तरह लाल, नेत्रद्वय विशाल, ओष्ठ बिम्बफलके जैसे रक्तवर्ण हों, वह नारी चिरकाल तक सुखभोग करती है, इत्यादि। (गरुड़पुराण) विस्तारके भयसे और अधिक न लिखा गया। २ गुरुत्रयपादक छन्दोभेद।

नारीकवच (सं॰ पु॰) नार्याः कवचः सन्नाह इव यस्य। सूर्यवंशीय मूलकराज। ये राजा अश्मकके पुत्र और सौदासके पौत्र थे। जब परशुराम क्षत्रियोंका नाश कर रहे थे, तब इन्हें स्त्रियोंने घेर कर बचा लिया था, इसीसे यह नाम पड़ा। इन्हींसे क्षत्रियोंका फिर वंश विस्तार हुआ, इससे इन्हें मूलक कहते हैं।

नारीकेल (सं॰ पु॰) नारिकेल देखो।

नारीच (सं॰ क्ली॰) नाड़ी च तुच्छ-रत्नम्। शाकविशेष, नालिताशाक। यह शाक दो प्रकारका है, तिक्त और मधुर। तिक्तका गुण—रक्त, पित्त, क्रिमि और कुष्ठनाशक तथा मधुरका गुण पिच्छिल, शीतल, विष्टम्भी और कफवातकर है।

नारीतरङ्गक (सं॰ पु॰) नारीं तरङ्गयति चञ्चलचित्तां करोति, तरङ्ग क्वतौ णिच्-ण्वुल्। नारीचित्तचञ्चलकारक, स्त्रियोंके चित्तको चंचल करनेवाला पुरुष, जार, व्यभिचारी।

नारीतीर्थ (सं॰ क्ली॰) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम। यहां पांच अप्सराएं ब्राह्मणके शापसे जलजन्तु हो गई थीं। अर्जुनने इनका शापसे उद्धार किया था।

(भारत १।२२६-२७)

नारीदूषण (सं॰ क्लो॰) नारीणां दूषणं ६-तत्। नारियोंका दोषभेद। स्त्रियोंके लिये पांच कार्य अत्यन्त दूषणीय हैं, सुरापान, दुर्जनसंसर्ग, पतिविरह, भ्रमण, दूसरेके घरमें सोना और रहना।

'पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनं।

स्वप्नोऽन्यगृहवासश्च नारीणां दूषणानि षट्॥" (मनु)

नारीमय (सं॰ स्त्री॰) नारी स्वरूपे मयट्। नारीस्वरूप, नारी।

नारीमुख (सं॰ पु॰) नाड़ीमुखं प्रधानं यत्र, कस्य रत्वम्। वृहत्संहिताके अनुसार कूर्मविभागसे नैर्ऋतकी ओर एक देश।

नारीयान (सं॰ क्लो॰) नारीणां यानम्। नारियोंका यान, चखप्रभृति, जनानी सवारी घोड़े इत्यादि।

नारीष्ट (सं॰ त्रि॰) नारीणां इष्टः प्रियः। १ नारियोंका प्रिय, जो स्त्रियोंके मनमाफिक हो। (स्त्री॰) २ मल्लिका, चमेली।

नारीष्ठ (सं॰ स्त्री॰) नार्यां तदानुकूल्ये तिष्ठति स्था-क, षत्वम्। गन्धर्वभेद, एक गन्धर्वका नाम।

नारुकोट—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत गुजरातके पांचमहल जिलेके अधीन एक देशीय राज्य। भूपरिमाण १४३ वर्गमील है। यहां कोलि और नायकड़ नामक दो जातिके लोग रहते हैं। यहांका राजवंश कोलि जातिका है। नायकड़ोंने भीलोंके साथ मिल कर कई बार यहां उपद्रव मचाया था, अभी वे शान्त भावसे रहते हैं। यह देश छोटे छोटे पहाड़ों और निविड़ जङ्गलोंसे घिरा है। यहां पुष्करिणी और कूपके मध्य सुस्वादु जल तथा खानमें अल्प परिमाणमें सोसा मिलता है। यह राज्य पहले गायकवाड़के हाथमें था, किन्तु १८३७ ई॰में प्रजाविद्रोहके समय गायकवाड़ने अङ्गरेजोंसे सहायता ली थी और राज्यका अर्द्धक राजस्व अङ्गरेज-गवर्मेण्टको अर्पण किया। तभीसे यह राज्य अङ्गरेजोंको देखरेखमें है। १८५८ और १८६८ ई॰में यहां पुनः प्रजाविद्रोह उपस्थित हुआ और नायकड़ोंने राज्यस्थापनकी चेष्टा की। जम्बुघोरा इस राज्यके मध्य एक प्रधान स्थान है जहांके अधिपति वा सरदार भीतवर नामक ग्राममें रहते हैं। यह राज्य हृटिश-गवर्मेण्ट द्वारा शासित होता है। १८३८ ई॰के पत्रानुसार राज्यका अर्द्धांश उक्त सरदार वा शासनकर्त्ताको करस्वरूप अर्पण किया गया। यहां एक औषधालय और देशीय विद्यालय है।

नारुन्तुद (सं॰ त्रि॰) न अरुन्तुदः। अनाहत, जिसके शरीर पर किसी प्रकारका आघात न लग सके।

नारू (हिं॰ पु॰) १ जूं, ढील। २ एक रोग। इसमें शरीर पर विशेषतः कटिके नीचे जंघा टांग आदिमें फुनसियां-सी हो जाती हैं और उन फुंसियोंमेंसे सूत-सा निकलता है। यह सूत वास्तवमें कीट होता है जो बढ़ते बढ़ते कई हाथकी लम्बाईका हो जाता है। जब ये कीड़े त्वचाके तन्तुजालमें होते, तब नारू या नहरुवा होता है; जब रक्तकी नलियोंमें होते हैं, तब श्लीपद या फील पाव रोग होता है। इस प्रकारका रोग प्रायः गरम देशोंमें ही होता है।

नारूके कीड़े कई प्रकारके होते हैं। बहुतसे कीड़े जीवधारियोंके शरीरके भीतर रहते हैं और कुछ तालाबों और समुद्रके जलमें भी पाये जाते हैं। सिरकेका कीड़ा इसी जातिका होता है। ये कीड़े यद्यपि पेटके केंचुएसे सूक्ष्म होते हैं पर इनके शरीरकी गठन केंचुओंकी अपेक्षा अधिक पूर्ण रहती है। इन्हें मुंह होता है, अलग अंतड़ी होती है, इनमें स्त्री पुंभेद होता है।

नारेय (सं॰ पु॰) सत्राजितपुत्र भङ्गकारके एक पुत्रका नाम।

नारोजीदादाभाइ—१८२५ ई॰को बम्बई नगरमें पारसिकवंशमें इनका जन्म हुआ था। जब ये केवल चार वर्षके थे, तब ही इनके पिताजी स्वर्गधामको सिधारे। ये योग्य पिताके योग्य पुत्र थे। बचपनसे ही ये बड़े बुद्धिमान् और चतुर निकले। यही कारण था कि इनके चचा और माताने इनको शिक्षाके लिए कुछ भी यत्न न किया। विद्या सीखनेके लिये ये पहले पहल एलफिन्ष्टन कालेजमें भर्त्ती हुए। वहां निज अध्यवसाय और बुद्धिगुणसे ये शीघ्र ही शिक्षकोंके प्रियपात्र बन गए।

इसी कालेजमें इनका विद्याभ्यास शेष हुआ। पीछे आईन सीखनेके लिए इनको विलायत जानेकी बातचीत होने लगी, किन्तु किसी कारणवश इनका जाना रुक

गया। बाद ये एक स्कूलमें सहकारी प्रथम शिक्षकके पद पर नियुक्त हुए। इसके कुछ दिन पीछे इन्होंने एल-फिन्‌ष्टोन कालेजमें गणित और दर्शनशास्त्रके शिक्षकका पद ग्रहण किया। शिक्षक होने पर भी दादाभाइ अपना समय निर्दिष्ट कार्यमें न लगा कर जनसाधारणके हित-कर प्रस्तावके उद्भावन करने और उसे कार्यमें परिणत करनेकी चेष्टामें बिताते थे। बम्बई शहरमें पहले पहल जितने बालिका-विद्यालय स्थापित हुए, वे इन्हींके कठ-प्रतापाधीन बने हैं और चिरकाल तक बने रहेंगे। बालकोंका साहित्य और दर्शन-सभा इन्हींके प्रयत्नसे इतनी उन्नत हो गई है।

चार पांच वर्ष तक ये गुजरातकी "ज्ञानविस्तारिणी-सभा"के सभापति रहे। वहां वे 'समाचारदर्पण' नामक दैनिक सम्वादपत्रमें "प्रक्टिस और डावजिनिसका कथोपकथन" शीर्षक प्रबन्ध लिखा करते थे। बाद १८५१ ई०में इन्होंने खुदसे 'रस्त गुफ़र' नामक एक सम्वादपत्र निकाला और पारसियोंमें आप ही 'एकेश्वर उपासकोंका पथप्रदर्शक" नामक एक नूतन पारसी सभाके प्रथम सम्पादक हुए। इस कार्यमें हाथ डाल कर इन्होंने सभाका उद्देश्य बहुत कुछ सफल कर दिया था। इन्होंने सर्वदेशीय स्त्रियोंकी पूर्वकालीन अवस्थाका विषय लिखा और उसे सम्वादपत्रमें प्रकाशित कर दिया।

व्यवसायके कारण १८५५ ई०में नारोजीने प्रथम इङ्गलैण्डकी यात्रा की। चाहे व्यवसायके कारण हो वा न हो, इङ्गलैण्डके साथ भारतका सम्बन्ध दृढ़ करना ही उनकी विलायत यात्राका प्रधान उद्देश्य था, इसमें सन्देह नहीं। पीछे वे वहांसे आवश्यक पड़ने पर ही भारतवर्ष आते थे, अन्यथा नहीं।

इंगलैण्ड जा कर भारतके तत्त्वान्वेषणके विषयमें और भारतके सम्वादपत्रके प्रति अङ्गरेजोंका मन-आकर्षण करनेके लिये वे विशेष चेष्टा करने लगे। वे बम्बई और अन्यान्य स्थानोंके बन्धु-बान्धवोंके पुत्रोंको अपने साथ विलायत ले गये थे और वहां अभिभावकके रूपमें उनकी सहायता आदि करते थे। वे अत्यन्त सत्य वादी थे। एक बार इन्होंने अपने किसी एक बन्धुको तीन लाख रुपये दे कर ऋणमुक्त किया था। इसमें इनकी सब पूंजी गायब हो गई। १८६८ ई०में जब ये बम्बई लौटे, तब बम्बईकी सभाने इन्हें एक अभिनन्दनपत्र, रुपयेसे भरी हुई एक थैली और उनकी प्रतिमूर्त्ति उपहारमें दी। उस धनसे वे पुनः व्यवसाय करने लगे। १८७२ ई०में इन्होंने बम्बईकी म्युनिसिपल्टिके संस्कारके विषयमें विशेष परिश्रम किया था। १८७४ ई०में दादाजी बड़ोदाके दीवान नियुक्त हुए। एक वर्षके बाद ही इन्होंने इस पदका परित्याग किया। १८७५ ई०में ये बम्बईकी म्युनि-सिपलिटीके सभ्यपद पर निर्वाचित हुए। दश वर्षके बाद ये बम्बई-प्राईन-प्रणयन-सभाके सभ्य हुए। इसके कुछ दिन बाद इन्होंने विलायतकी पार्लियामेण्ट-सभाके सभ्य होनेकी कामनासे वहांकी यात्रा की। १८८६ ई०में इन्होंने फिन्सवारीके हलवरन विभागके लिए जो दरखास्त पेश की, वह पार्लियामेण्टके उदारनीतिक मेम्बरोंसे स्वीकृत हुई। १८९२ ई०में इन्होंने ही सबसे पहले भारतवासियोंके मध्य पार्लियामेण्टमें प्रवेशाधिकार प्राप्त किया था। दो वर्ष बाद ये भारतकी जातीय महासमितिके सभापति हो कर भारतवर्षको लौटे। भारतवासियोंने बहुत सम्मानके साथ उनकी अभ्यर्थना की थी। वे बड़े उद्यमशील और स्वदेशवत्सल थे।

नारोजी पण्डित—विश्वनाथ पण्डितके पुत्र। इनके बनाये हुए लक्षणरत्नमालिका नामक धर्मशास्त्र, लक्षणशतक-काव्य और सूक्तिमालिका नामक संस्कृत कवितासंग्रह पाये जाते हैं।

नारोवाल—पञ्जाबके स्यालकोट जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० ३२° ५´ उ० और देशा० ७४° ५३´ पू०, स्यालकोट शहरसे ३५ मील दक्षिणपूर्व रावीनदीके किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या ५ हजारके लगभग है। प्रायः पांच सौ वर्ष हुए बाजवा भाटी नारूने यह नगर बसाया था। उन्हींके नाम पर नगरका नाम नारोवाल पड़ा है। चमड़ेके व्यवसायके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है। यहां अति उत्कृष्ट घोड़ेका साज और जूता तैयार होता है। शहरमें पञ्जाबी एङ्गलो वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल, थाना, मुन्सफी अदालत और सराय है।

नगरके बाहर एक गिर्जा अवस्थित है। १८६७ ई०में यहां म्युनिसपालिटो स्थापित हुई है।

नार्त्तिक (सं० त्रि०) नर्त्त छेदादित्वात् ठञ्। पत्यन्त नर्त्तनयोग्य, जो खूब नाचनेके काबिल हो।

नार्थब्रूक (North brook)—लार्ड मेयोकी अपमृत्यु के बाद १८७२ ई०को ३री मईको लार्ड नार्थब्रूक गवर्नर-जनरल और राजप्रतिनिधि हो कर भारतवर्षमें आए। उस समय उनकी उम्र ४६ वर्षकी थी। इसके पहले इन्होंने उच्च उच्च राजकार्यों में नियुक्त हो कर राजनीति-विषयमें विशेष अभिज्ञता लाभ की थी। कलकत्ते में आ कर ये अपना प्रान्तस्थ विषय जानने और जिससे उनका शासनकाल शान्तिपूर्ण और समृद्धिसम्पन्न हो उसके लिये विशेष ध्यान देने लगे।

इस समय मध्य-एशियाके रूषियाको ओर लक्ष्य रखना भारत शासनकर्त्ताओंका एकमात्र कर्त्तव्य हो गया था। रूषियावासी जिस अभिमानसे भारतके सीमान्तकी ओर आ रहे थे, उससे नार्थब्रूकके शान्तिसुख-भोगमें बाधा पहुंचनेकी सम्भावना थी। रूषियाने खीवाको जीत लिया। खीवाके खाँने नार्थब्रूकसे सहायताके लिए प्रार्थना की किन्तु वे राजी न हुए। उस समय मध्य एशियाके अधिवासियोंने समझ लिया कि अङ्गरेज लोग रूषियासे डरते हैं, इस समय रूषियावासी यदि चाहे, तो अङ्गरेजोंसे भारतवर्ष छीन सकता है।

नार्थब्रूकके शासनकालका प्रारम्भ उतना शान्तिमय न था। उस समय भी लार्ड मेयोकी शोचनीय मृत्यु जनताके मनमें जागरूक थी। सीमान्तसमस्या क्रमशः जटिलरूप धारण करती जा रही थी और उस समय दुर्भिक्षके सभी लक्षण भी नजर आने लगे। किन्तु लार्ड नार्थब्रूक इन सब अशुभ लक्षणोंसे तनिक भी भयभीत वा विचलित न हो कर प्रशान्तचित्तसे अपने कर्त्तव्य पर डटे रहे। वे न तो आडम्बरप्रिय थे और न अनर्थक व्ययसंकुल भ्रमणादि द्वारा राज्यका खर्च ही बढ़ाना चाहते थे। उक्त प्रकारसे तथा अन्यान्य अनेक सद्गुणों द्वारा उन्होंने थोड़े ही दिनके भीतर प्रजामण्डलका अनुराग अपनी ओर खींच लिया था।

किन्तु मनुष्य कितना ही सावधान क्यों न हो जाय, तो भी वह दैवनिग्रह खण्डन नहीं कर सकता। १८७३ ई०में अनावृष्टिके कारण घोर दुर्भिक्ष पड़ा जिससे बङ्गाल और बिहारमें हाहाकार मच गया। भारतवर्षके जैसा बहुजनाकीर्ण स्थानमें दुर्भिक्षके समान दुःखदायी और कुछ भी नहीं है। इससे एक सौ वर्ष पहले जो दुर्भिक्ष पड़ा था, उसमें लाखों आदमी भूखों मरे थे। १८६६ ई०के उड़ीसा-दुर्भिक्षकी कथा उस समय लोग भूले नहीं थे। ऐसी अवस्थामें फिर दूसरा दुर्भिक्ष उपस्थित! इस कारण देशके लोग व्याकुल हो उठे।

लार्ड नार्थब्रूक और तत्कालिक बङ्गालके लेफ्टेनेण्ट गवर्नर सर जार्ज कैम्बेल दोनोंने मिल कर दुर्भिक्षको दमन करनेमें एक भी कसर उठा न रखी। गवर्मेण्टकी ओरसे प्रचुर धान खरीदा गया और स्थान स्थान पर साहाय्यभण्डार भी खोला गया। फिर १८७४ ई०में लोगोंको दूसरे दुर्भिक्षका सामना करना पड़ा। इस सालका दुर्भिक्ष और सालोंसे कहीं बढ़ा चढ़ा था। यह दुर्भिक्ष मई मासमें प्रकाशित हुआ था। इस बार गवर्मेण्टने २७ लाख ५० हजार मनुष्योंको भोजन दिया था जिसमें २ करोड़ मन अनाज संग्रह किये गये थे।

इसी मई मासमें सुलक्षण भी दिखाई देने लगा। थोड़ा पानी पड़ जानेसे आशुधान बोया गया जिससे लोगोंके मनमें कुछ आशाका सञ्चार हुआ। सभी जगह थोड़ा बहुत आशु और हैमन्तिक धान्य उपज गया। वर्षके शेष होते न होते दुर्भिक्ष भी अन्तर्हित हो गया। लार्ड नार्थब्रूकको चेष्टा और परिश्रम सार्थक हुआ; उन्होंने असंख्य लोगोंको प्राणरक्षा करके अनन्त कीर्त्ति और अक्षय पुण्यलाभ किया है। ये दूसरेके जैसा केवल देशके शासनकर्त्ता हो नहीं थे, बल्कि देशके पालनकर्त्ता भी थे।

लार्ड नार्थब्रूक केवल अङ्गरेजाधिकृत भारतके सुशासनके लिये यत्नवान् थे, सो नहीं, देशीय राजाओंके आचरणके प्रति भी इनका विशेष ध्यान था। १८७४ ई०के दुर्भिक्षमें जब ये उसे दमन करनेमें लगे हुए थे, उस समय भी ये गायकवाड़के अत्याचारकी बातें सुन कर उन्हें सतर्क करनेसे बाज नहीं आए थे। किन्तु गायकवाड़के मल्हाररावने उस ओर कर्णपात न किया।

जब गायकवाड़के विरुद्ध अभियोग प्रमाणित हुआ, तब नार्थब्रूकने उन्हें पदच्युत करके उनके स्थान पर गायकवाड़वंशीय एक कुमारको अभिषिक्त किया। उनमें राज्यका लोभ लेशमात्र भी न था, अगर रहता तो ऐसे सुयोगमें वे बरोदाराज्यको स्वराज्यभुक्त कर सकते थे।

१८७५ ई०के मध्यभागमें आसाम सीमान्त पर कुछ गोलमाल उपस्थित हुआ। आसामके पार्वतीय प्रदेशोंमें नागाजाति वास करती है। अङ्गरेजाधिकृत राज्यके निकटवर्त्ती नागालोग अपेक्षाकृत शान्तप्रकृतिके हैं, किन्तु दूरस्थ पार्वतीय प्रदेशोंके नागा अतीव दुर्दान्त, असभ्य और द्वन्द्वप्रिय हैं। १८७२ और १८७३ ई०में नागोंके साथ सीमान्त-विवाद मिटानेके लिये दो अङ्गरेज कर्मचारी भेजे गये। नागोंके राजाने क्रमागत उन दोनों कर्मचारियोंके साथ विरुद्धाचरण किया था। पीछे नागा लोगोंने उनमेंसे एकको हत्या भी कर डाली थी। १८७४ ई०में तेलिजो नदी और उसके निकटवर्त्ती प्रदेशोंका पर्यवेक्षण करनेके लिये हलकोम साहबके अधिनायकत्वमें कुछ लोग भेजे गये। नागा लोगोंने विश्वासघातकतासे लेफ्टेनेण्ट हलकोम और ७० मनुष्योंको मार डाला।

जब यह सम्वाद कलकत्ता पहुँचा, तो वहांसे बहुत जल्द एक दल अङ्गरेजी सेना नागोंके विरुद्ध भेजी गई। उन्हें वहां पहुंचनेमें सात दिन लगे थे। कुछ काल तो नागोंने बड़ी वीरतासे लड़ाई की, लेकिन अङ्गरेजी सेनाके सामने उनकी वीरता किसी कामकी न थी। बाद अङ्गरेजी सेना उनके अनेक ग्राम तहस नहस करके तथा अनेक गवादि, शस्य और अन्यान्य सामग्री ले कर कलकत्तेको वापिस आई।

१८७५ ई०के प्रारम्भमें ही एशियाकी सीमान्तसमस्याने गुरुतर आकार धारण किया। रूसियाने खोकन्द राज्य पर अधिकार जमा लिया। इस समय अङ्गरेजाधिकृत भारतवर्ष और रूसाधिकारमें केवल बुखारा और खीवाका खानिक अंश ही व्यवधान रहा। रूसिया जिससे अग्रसर न हो सके, इसके लिए विविध चेष्टायें होने लगीं। अन्तमें यह स्थिर हुआ कि रूसवासी अक्षु नदी पार नहीं कर सकते हैं।

लार्ड नार्थब्रूकके शासनके समय महारानी विक्टोरियाके ज्येष्ठ पुत्र प्रिन्स-आफ-वेल्स भारतवर्ष आए थे। उनको इस देशमें आनेकी बहुत दिनोंसे इच्छा थी। पीछे १८७५ ई०की २२वीं अक्तूबरको युवराजके भारतवर्ष आनेका प्रस्ताव पास हुआ। इङ्गलैण्डके किसी किसीने इस प्रस्तावका अनुमोदन तो नहीं किया, लेकिन उनका शुभागमन सुन कर भारतवर्षीय प्रजाके आनन्दकी सीमा न रही। इन्हें पूरी आशा थी कि राजकुमारके इस देशमें आनेसे राजा और प्रजाके बीच सौहार्द्यबन्धन दृढ़ हो कर वर्णगत विद्वेषभाव जाता रहेगा। १२वीं अक्तूबरको युवराज लन्दनसे रवाने हुए और १४वीं नवम्बरके चार बजे दिनको बम्बई पहुंचे। उनकी अभ्यर्थनाके लिये नार्थब्रूक और बम्बईके गवर्नर सर फिलिप ओडहाउस वहां उपस्थित थे। युवराजका भारतवर्षमें आना देशके लिए एक सुखका दिन था। सभी राज्य अकृत्रिम आनन्दमें बहने लगे। चार मास तक भारतवर्षके नाना स्थानोंमें पर्यटन और परिदर्शन करके १३वीं मार्चको राजकुमार स्वदेशको लौट गये।

केवल चार वर्ष तक भारतवर्ष पर शासन करके नार्थब्रूकने पदत्याग किया था। उष्णप्रधान देशोंके जलवायु और राजकार्यकी गुरुतर चिन्तासे उनका स्वास्थ्य कुछ खराब हो गया था। इसके सिवा इङ्गलैण्डको मन्त्रिसभाके साथ किसी किसी विषयमें इनका मतभेद होने लगा। मन्त्रिसभाके साथ मनोमालिन्य ही उनके पदत्यागका एक प्रधान कारण था।

१८७६ ई०की १५वीं अप्रिलको लार्ड नार्थब्रूक कलकत्तेको परित्याग कर तेनासेरिम नामक जहाज पर चढ़ स्वदेशको चल दिए। उनके शासनके प्रारम्भमें दुर्भिक्षसे देशकी अवस्था मलिन तो अवश्य हो गई थी, लेकिन बहुत यत्नसे उस मालिन्यको दूर कर, जाते समय वे खिलखिलाते हुए देशको देखते गये थे।

नार्थब्रूकने किसी गुरुतर युद्धकार्यमें हाथ न डाला था। युद्धके मध्य केवल एक वर्ष तक उन्हें भीषण दुर्भिक्षके साथ युद्ध करना पड़ा था। उस युद्धमें वे विजयी निकले थे। इन्होंने नवराज्य हरण करके वृटिशराज्यके कलेवरकी वृद्धि नहीं की। वे एक जनप्रिय

शासनकर्त्ता थे। समारोह द्वारा लोगोंके नेत्राकर्षण करने वा वीरत्व द्वारा उन्हें त्रासोत्पादन करनेके लिये वे भारतवर्षमें आये नहीं थे। उनके समयमें देशोंमें विद्याशिक्षाकी खूब उन्नति हुई थी। उनके सुशासनके पुरस्कारमें महारानी विक्टोरियाने उन्हें राजसम्मान प्रदान किया था।

नार्पत्य (सं० त्रि०) राजसम्बन्धीय, राजासे सम्बन्ध रखनेवाला।

नार्मत (सं० पु०) पितृसम्बन्धीय, पूर्वपुरुषके नामसे उत्पन्न।

नार्मद (सं० पु०) १ नर्मदासम्भव बाणलिङ्गभेद, शिवलिङ्ग जो नर्मदामें पाया जाता है। २ नर्मदाप्रवाहित जनपदका राजा। (त्रि०) ३ नर्मदासम्भवमात्र, जो नर्मदासे उत्पन्न हो।

नार्मर (सं० पु०) असुरभेद, एक असुरका नाम। इसे इन्द्रने मारा था।

नार्मिन् (सं० त्रि०) नर्मयुक्त, जो बहुत मुलायम हो, जो सहजमें झुक सके।

नार्मेध (सं० क्ली०) सामभेद।

नार्य (सं० पु०) १ नरहितकारीका पुत्र। २ नरहित सम्बन्धीय यज्ञ।

नार्यङ्ग (सं० पु०) नारीणामङ्गमिव शोभनं अङ्गं यस्य। १ नागरङ्ग, नारङ्गी। २ नारीका अङ्ग।

नार्यतिक्त (सं० पु०) किराततिक्त, चिरायता। यह मनुष्योंका हितकर है पर स्वादमें तिक्त है, इसीसे इसका नाम नार्यतिक्त पड़ा है।

नायर—मलवार और तिरुवाङ्कुड़देशवासी प्रसिद्ध जाति। कोई तो इन्हें शूद्र और कोई क्षत्रिय बतलाते हैं।

तिरुवाङ्कुड़के राजा भी इसी जातिके हैं, इस कारण मदुमशुमारीमें इस जातिकी गिनती क्षत्रियमें की गई है। अभी इनमेंसे बहुतोंने नम्बुत्तिरी ब्राह्मणोंका दासत्व स्वीकार करने पर भी पहले ये सेनाविभागमें कार्य करते थे। इनके एक एक नाद वा दलमें ६०० नायर रहते थे। आज भी तिरुवाङ्कुड़में शान्तिरक्षाके लिये नायर-सैन्य नियुक्त है।

ये १८ शाखाओंमें विभक्त हैं,—१ नायर वा नायक २ मेलवज, ३ मेनोक्त, ४ सुप्पिल, ५ पट्टनायक वा पट्टनायक, ६ कुरूप-नायर (दुर्गरक्षक), ७ कैमल, ८ पनिक्कर, ९ किरीयत, १० मुत्तुर, ११ वरे नायर, १२ केदावु, १३ कर्त्तावु, १४ इवादि, १५ निगुनादि, १६ कन्नाड़े, १७ मन्नडियर और १८ मनवालम्। व्यवसायके भेदसे फिर भी इनकी कई श्रेणियां हो गई हैं, यथा—१ परियपेत्तवर (ये लोग वंशपरम्परासे नम्बुरीका दासत्व करते हैं और शूद्र कहलाते हैं), २ चर्णावर (राजाके देहरक्षक), ३ पल्लिच्चन (अर्थात् नम्बुरीके शिविकावाहक), ४ अत्तिकुरिटि (नम्बुरीके दाहकार्यमें साहाय्यकारी), ५ वडकटेन (मन्दिरादिके तैलप्रस्तुतकारी), ६ असुरण (घर आदि बनानेवाला), ७ तरलि (सामरी-राजके दास), ८ वेलुथिदेन (रजकके कर्मकारी) और ९ वेलक्कथलवेन (नापितके कार्यावलम्बी)।

इस जातिकी स्त्रियां ही सर्वसर्वा हैं, इसीसे अनुमान किया जाता है कि इनका नाम नायर वा नायर पड़ा है। लज्जा हिन्दूरमणियोंका हृदयभूषण है, किन्तु वह लज्जा इस नायर-रमणीको है वा नहीं, कह नहीं सकते। लेकिन इतना तो अवश्य है, कि नायर-सीमन्तिनीगण प्रकृत सभ्य होने पर भी, जहां लज्जा करना नितान्त आवश्यक है, वहां कुछ भी न लजातीं। बड़े ही आश्चर्यका विषय है कि राजा, राजपुरुष अथवा कोई कोई गण्य मान्य व्यक्ति जब कभी इनके यहां मेहमान होते हैं, तब ये अपनी छातीको खोले उनके पास आनेमें जरा भी नहीं सकुचतीं। क्या यही सभ्यताका अङ्ग है! घरमें अतिथिके आने पर भी ऐसा ढङ्ग! यदि कोई विदेशी देखता, तो वह उसे वाराङ्गना समझता, किन्तु यही इनका सनातन धर्म है।

पुष्पोद्गमके पहले नायरकन्याका तालिबन्धन वा 'केत्तुकल्याणम्' संस्कार होता है। इस समय घरद्वार अच्छी तरह सजाया जाता है। शुभ दिनमें बन्धु-बान्धव आमन्त्रित हो कर आते हैं, गृहस्वामिनी सबोंको आह्वान कर परितोषपूर्वक भोजन कराती है और ब्राह्मणोंको कुछ दान देती है। जिसकी जैसी अवस्था है, वह उसी प्रकार खर्च करती। अधिकांश जगह खूब धूमधामसे भोज होता है। यह समारोह केवल एक

कन्याके लिये नहीं होता, तारवदमें अर्थात् उस गृह-स्वामिनीके अधीन जितनी कन्याएँ हैं सबका एक ही समय तालिबन्धन होता है। एक ब्राह्मण-बालक वरको सजा जाता है। इस वरको 'मनवलन' वा 'मनलन्' कहते हैं।

लग्न स्थिर हो जाने पर स्त्रियां 'अष्टमाङ्गल्यम्' नामक गीत गाती हैं। मनवलन मनोमोहनवेशमें पहुंचता है और समागत स्त्रियां 'अहा' 'अहा' करके जयध्वनि करती हैं। कन्याका भाई अपनी बहनको मनवलनको बगलमें बिठा देता है। उस समय ज्योतिषी भी वहां खड़े रहते हैं। जब वे शुभलग्नका स्थिर कर देते, तब मनवलन कन्याके कण्ठमें तालिबन्धन कर देता है। सभी आह्लाद-से जयध्वनि करते हैं। उसी दिनसे ले कर तीन दिन तक आमोदप्रमोद तथा भोज होता रहता है।

चौथा दिन वरकी विदाईका दिन है। इस दिन विवाहबन्धनसे मुक्त होता है। विवाहका मूल्यस्वरूप कुछ नकद उपहारादि दे कर ब्राह्मणबालककी बिदाई होती है। इस प्रकार 'केत्त कल्याणम्' कार्य शेष होता है। उसी दिनसे उस ब्राह्मणके साथ फिर कन्याका कोई सम्बन्ध नहीं रहता।

कन्या जब यौवनावस्थामें कदम रखती, तब 'गुण-दोषकारण' स्थिर किया जाता है। इसमें भी गृहस्वामिनी-की सलाह लेनी पड़ती है। गृहस्वामिनी भी अपने भाईके साथ परामर्श कर किसी नम्बुत्तिरी भट्ट अथवा सद्वंशजात किसी नायर युवाके साथ सम्बन्ध स्थिर करती है और गणकको बुला कर वस्त्रदानका एक शुभ दिन ठीक करा लेती है। इस प्रकारके सम्बन्धको 'गुणदोषकारण' कहते हैं। निर्वाचित मनुष्य जब वस्त्र और लगानेका तेल देनेको राजी होता है, तब गणक शुभदिन स्थिर करता है। इस दिन युवतीका बन्धुबान्धव एक साथ मिल कर खूब आमोद-प्रमोद करते हैं। युवक देय वस्तुके साथ नटवरवेशमें पहुंचता है। गृहस्वामिनी पाद्य अर्घ्य द्वारा उसकी अभ्यर्थना करती है। बाद नटवर आत्मीयस्वजनोंके सामने गृह-स्वामिनीके हाथमें कपड़ा रख देता है। अनन्तर एक [illegible] युवतीके हाथमें दी जाती और जब युवती उसे ग्रहण कर लेती है, तब सम्बन्ध दृढ़ हो जाता है। इतना हो जाने पर आत्मीय कुटुम्बगण 'अहा' 'अहा' आह्लाद-सूचक शब्द करते हैं। अनन्तर रातको युवक और युवती निर्दिष्ट [illegible]में जानेको जाता है और गान्धर्व-विवाह सम्पन्न होता है। बाद जब तक दोनोंमें प्रणय और प्रेम रहता है, तब तक रातको दोनों एक जगह रहते हैं। युवकके साथ रहने पर भी युवतीको अलङ्का-रादि देने होते हैं। युवतीको जो कुछ दिया जाता, वह उसका स्त्री-धन समझा जाता है। उस धनमें युवकका अथवा उसके पुत्रका कोई अधिकार नहीं रहता। युवतीके मरने पर उसका स्त्री-धन तारवदकी सम्पत्ति होता है। दोनोंमें मनोमालिन्य होनेसे वो सम्बन्ध टूट जाता है। युवती यदि युवाप्रदत्त वस्तुको लौटा दे, तो फिर दोनोंमें कोई सम्बन्ध नहीं रहता। पीछे दोनों ही दूसरेके साथ सम्बन्ध कर सकते हैं। पर हां, युवती एक समयमें एकसे अधिक 'गुणदोषकारण' नहीं कर सकती। इनके चरित्रमें एक भारी गुण देखनेमें आता है। वह यह है, कि एकके साथ सम्बन्ध रहते वे दूसरोंके साथ व्यभिचार नहीं करतीं। यदि उनका व्यभिचार मालूम हो जाय, तो उन्हें उचित दण्ड दिया जाता है।

कुछ समय पहले किसी किसीके एकसे अधिक 'गुण-दोषकारण' सम्बन्ध रहता था और युवकगण पर्याय-क्रमसे युवतीके साथ सहवास करते थे। वे लोग पञ्च-पाण्डवकी तरह नियमोंमें बद्ध रहते थे। जब कोई युवक युवतीके साथ कोठरीमें रहता था, उस समय दरवाजे पर ब्राह्मण होनेसे दण्ड और स्वजाति होनेसे अस्त्र रख दिया जाता था, उसे देख कर कोई उस ओर जा नहीं सकता। युवती भी निर्दिष्ट समयके मध्य गुणदोषकारीके सिवा भूल कर भी दूसरेके साथ बातचीत नहीं कर सकती थी। जिस प्रकार द्रौपदीको सती कहते हैं, उसी प्रकार नायररमणियोंको भी सती कहनेमें अत्युक्ति नहीं। युवती जिसके संसर्गसे गर्भवती होती है, वही उस सन्तानका पिता कहलाता है। औरसजात पुत्र पिताको पिण्ड देने अथवा पितृसम्पत्ति पानेका अधिकारी नहीं होता। जिसके औरससे जन्म होता है, उस पिताके साथ पुत्रका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। वह 'तारवद'

धनसे प्रतिपालित होता और मातुलको अन्त्येष्टिक्रिया और श्राद्धादिका अधिकारी होता है।

इस जातिमें यह भी एक विशेषता है, कि युवतियां ससुराल नहीं जाती और न स्वामीके साथ विशेष संश्रव ही रखती हैं। वे आजीवन मातृगृहमें ही रहती हैं। उनके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह मातुलका उत्तराधिकारी होता है। यथार्थमें जब किसी नायरके भांजा वा भांजी नहीं रहती, तब वह उत्तराधिकारि-विहीन समझा जाता है। उन्हें वे पोष्यपुत्रकी तरह मानते हैं। ये लोग पोष्यभगिनी भी ग्रहण करते हैं और उसके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता, उसे अपना उत्तराधिकारी बनाते हैं।

पुत्र हो, चाहे कन्या हो, सभी गृहस्वामिनीके अधीन रहते हैं और तारवदधनसे लालित पालित होते हैं। पुत्र जब वयोवृद्ध होता है, तब मातुलके उत्तराधिकारकी हैसियतसे जो कुछ उपार्जन करता, वही उसका निजस्व है, दूसरेके धनमें उसका कुछ भी अधिकार नहीं। कन्याको सम्पत्ति भी उसके अविद्यमानमें तारवदको हो जाती है और घरमें जो बड़ा रहता है, वही उस सम्पत्तिको देख-भाल करता है। वह कार्याध्यक्ष माना जाता है, सभी कार्य उसीके हस्ताक्षर पर होते हैं। किन्तु वह सम्पत्ति दूसरेके हाथ लगा देनेका उसका कोई अधिकार नहीं है।

इन लोगोंमें ऐसी प्रथा रहने पर भी गृहविवाद, भ्रूणहत्यादि पाप कभी सुननेमें नहीं आता।

नायरोंका कहना है, कि परशुरामने जब पृथ्वीको निःक्षत्रिय कर डाला था, तब क्षत्रियरमणियोंने ब्राह्मण-को नियोग कर सन्तान उत्पादन की थी। मलवारको परशुरामक्षेत्र समझ कर यहांके नायर वा क्षत्रियकुलमें आज भी यह प्रथा प्रचलित है।

अभी इस जातिके लोग अङ्गरेजी विद्यासे सुशिक्षित हो कर नाना स्थानोंमें जाने आने लगे हैं। सुतरां युव-तियां अपना 'तारवद' कुछ दिनके लिये परित्याग कर गुणदोषकारीका अनुसरण करती हैं। किन्तु इस प्रकार-की संख्या अधिक नहीं है। कारण इन लोगोंमें नियम है कि कोई युवती दक्षिण मलवारकी सीमा 'कोरपूता' नदी पार नहीं कर सकती। कभी कभी उसका गुण दोषकारी उक्त नदी पार भी कर जाता है, लेकिन युव-तियां कभी भी नहीं।

सन्तानके भूमिष्ठ होने पर उसका मातुल ही जात-कर्मादि सम्पन्न करता है। नामकरणादि तारवदकी स्त्रियों द्वारा ही होते हैं। बालक जब बारह वर्षका होता है, तब कहीं जा कर उसका यथायोचित संस्कार होता है। इस समय पूर्वकालमें सभी अस्त्र धारण करते थे। अभी विभिन्नवृत्ति अवलम्बन करनेके कारण कोई भी अस्त्र नहीं लेता। जिस तारवदके पुरुषगण हमेशासे सैनिक-वृत्ति करते आ रहे हैं, उन्हींके भागिनेयगण इस प्रकार-की प्रथाका पालन करते हैं।

नायरसेना महावीर गिनी जाती है। दाक्षिणात्यके इति-हासलेखक कर्णेल विलक्सने लिखा है,-"The Nairs, or military class, are perhaps not exceeded by any nation on earth in a high spirit of independence and military honour" *

ये लोग वीर होने पर भी निरीह नीच जातिके ऊपर अस्त्र चलानेसे बाज नहीं आते। यही नायर-जीवनका प्रधान दोष है। अस्त्रधारी नायरके राह चलते समय क्या मजाल है कि कोई उन्हें आंख दिखावे। नीच शूद्र बेचारे तो इन्हें दूरसे देख कर ही जान ले कर भागते हैं †। अभी ब्रटिश गवर्नमेण्टके सुशासनसे और अङ्गरेजी शिक्षाके प्रभावसे नायरोंका उद्धत स्वभाव बहुत कुछ दूर हो गया है। उच्च श्रेणीके नायर लोग भी उचित रीतिसे विवाह करने नहीं पाते।

जिस समय दाक्षिणात्यमें अङ्गरेज और फरासीमें घोर विवाद चल रहा था, उस समय इसी नायर-सेनाके कौशलसे अङ्गरेजोंको जान हुई थी ‡। हैदरअलीने इन्हें अनेक बार दमन करनेकी चेष्टा की थी, किन्तु एक बार भी वे कृतकार्य न हुए।

इनका वेशभूषा उतना आडम्बर नहीं होता। स्त्री-पुरुष दोनों ही नम्बुरियोंके जैसा अल्पवेषधारीका

* Wilks' Historical Account of India, Vol. 1. p. 470.

† Buchanan's Journey through Mysore &c, Vol. 11. p. 44.

‡ Orme's Military Transactions, Vol. 1, p. 400.

व्यवहार करती हैं। स्त्रियां कभी भी अपने शरीरको ढके न रखतीं। लेकिन अभी अङ्गरेजी-शिक्षाके गुणसे जब वे घरसे बाहर निकलती हैं, तब एक रूमालसे नितम्ब और वक्षस्थल ढक लेती हैं। बचपनसे ही ये कान छिदा कर मोटी मोटी कर्णठियां पहनती हैं। किसी किसी रमणीके कानमें डेढ़ इञ्चका मोटा रिंग देखा गया है। स्वर्णहार, वलय, चूड़ी, अङ्गुरीय और कमरबन्द इनके प्रधान अलङ्कार है।

स्त्रियां अपने बालको बड़े यत्नसे रक्षा करती हैं किसी किसीका बाल घुटना तक लटका रहता है।

नायर लोग अभी अङ्गरेजी-शिक्षाके प्रभावसे कोट और कमीज पहनने लगे हैं। लेकिन कानमें अब तक भी कर्णठी और कमरबन्द पहनते ही हैं। ये लोग सिरका सब बाल मुँड़वा कर केवल सामनेमें थोड़ी शिखा रख छोड़ते हैं। स्त्री-पुरुष दोनों ही शुद्धाचारसे रहते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

नार्षद (सं० पु०) नृषद ऋषिका पुत्र।

नाल (सं० पु०) नलतीति नल बन्धे नल-ण। (ज्वलितिकसन्तेभ्यो ण। पा ३।१।१४०) १ उत्पलादिका दण्ड, कमल, कुमुद आदि फूलोंकी पोली लंबी डंडी, डाड़ी। २ काण्ड, पौधेका डंठल। (क्लो०) ३ हरिताल, हरताल ४ लिङ्ग। (पु०) नल-घञ्। ५ जलनिर्गम, जल बहनेका स्थान। ६ जलमें होनेवाला एक पौधा। ७ एक प्रकारका बांस जो हिमालयके पूर्व भाग, आसाम और बरमा आदिमें होता है. टोली, फफोल। ८ गेहूं, जौ आदिकी पतली लंबी डंडी जिसमें बाल लगती है। ९ नली, नल। १० बन्दूककी नली, बन्दूकके आगे निकला हुआ पोला डंडा। ११ सुनारोंकी फुकनी। १२ जुलाहोंकी नली जिससे वे सूत लपेट कर रखते हैं, छूंछा, छेंछा, छुच्छा। १३ वह रेखा जो कलम बनाते समय छीलने पर निकलता है। १४ रक्तकी नलियों तथा एक प्रकारके मज्जातन्तुसे बनी हुई रस्सीके आकारकी वस्तु। यह एक ओर तो गर्भस्थ बच्चेकी नाभिसे और दूसरी ओर गोल थालीके आकारमें फैल कर गर्भाशयकी दीवारसे मिली होती है। इस नालके द्वारा गर्भस्थ शिशु माताके गर्भसे जुड़ा रहता है। गर्भाशयकी दीवारसे लगा हुआ जो उभरा हुआ थालीकी तरहका गोल छत्ता होता है उसमें बहुत-सी रक्तवाहिनी नसें चारों ओरसे अनेक शाखा प्रशाखाओंमें आ कर छत्तेके केन्द्र पर मिलती हैं जहांसे नाल शिशुकी नाभिकी ओर गया रहता है। इस छत्ते और नालके द्वारा माताके रक्तके योजक द्रव्य शिशुके शरीरमें आते जाते रहते हैं जिससे शिशुके शरीरमें रक्तसञ्चार, श्वास प्रश्वास और पोषणकी क्रियाका साधन होता है। यह नाल पिण्डज जीवों हीमें होता है। इसीसे वे जरायुज कहलाते हैं। मनुष्योंमें बच्चा उत्पन्न होने पर यह नाल काट कर अलग कर दिया जाता है।

नाल (अ० पु०) १ लोहेका वह अर्द्ध चन्द्राकार खण्ड जिसे घोड़ोंकी टापके नीचे या जूतोंकी एड़ीके नीचे रगड़से बचानेके लिये जड़ते हैं। २ तलवार आदिके म्यानकी साम जो नोक पर मढ़ी होती है। ३ कुण्डलाकार गढ़ा हुआ पत्थरका भारी टुकड़ा जिसके बीचोबीच पकड़ कर उठानेके लिये एक दस्ता रहता है। इसे बलवर्धनके लिये कसरत करनेवाले उठाते हैं। ४ लकड़ीका वह चक्कर जिसे नींवमें डाल कर कूएंकी जोड़ाई की जा... हैं। ५ वह रुपया जिसे जुआरी जुएका अड्डा रखनेवालेको देता है। ६ जुएका अड्डा।

नाल—सूक्तिकर्णामृतधृत एक संस्कृत कवि।

नाल—बम्बई प्रदेशके अधीन खान्देशके अन्तर्गत एक सामान्य भीलराज्य। यहांसे काठके धड़की रफ़्नी होती है।

नालक (सं० पु०) कलाय, उरद।

नालकटाई (हिं० स्त्री०) १ हालके उत्पन्न बच्चेकी नाभिमें लगी हुए नालको काटनेकी क्रिया। २ नाल काटनेकी मजदूरी।

नालकनाद—कुर्ग राज्यके अन्तर्गत एक ग्राम। राजा दह-वीर-राजेन्द्रके समयमें यहां कुर्गराज्यकी राजधानी थी। कुर्गकी वर्त्तमान राजधानीसे यह स्थान २४ मील दूरमें पड़ता है।

नालकी (हिं० स्त्री०) इधर उधरसे खुली पालकी जिस पर एक मिहराबदार छाजन होती है। ब्याहमें इस पर दूल्हा बैठ कर जाता है।

नालन्द—मगधके अन्तर्गत एक प्राचीन बौद्धक्षेत्र और

विद्यापीठ। यह पटनेसे तीस कोस दक्षिण और बड़गांवसे ग्यारहकोस पश्चिम था। किसी किसीका मत है, कि यह स्थान वहां था जहां आज कल तेलाड़ा है।

बौद्धयात्रियोंके विवरणसे जाना जाता है, कि पहले पहल महाराज अशोकने नालन्दामें एक बौद्ध मठ स्थापित किया। चीन-यात्री युएनचुवङ्गने लिखा है, कि पीछे शङ्कर और सुदलगोमी नामक दो ब्राह्मणोंने इस मठको फिरसे बड़े विशाल आकारमें बनवाया। आज भी इसकी दीवारें जो इधर उधर खड़ी मिलती हैं उनमेंसे कई दीवार तीस बत्तीस हाथ ऊंची हैं। कहते हैं, कि इस विद्यापीठमें रह कर नागार्जुनने कुछ दिनों तक उक्त शङ्कर नामक ब्राह्मणसे शास्त्र पढ़ा था। सन् ६३७ ई०में प्रसिद्ध चीन-यात्री युएनचुवङ्गने इस विद्यापीठमें जा कर प्रज्ञाभद्र नामक एक आचार्यसे विद्याध्ययन किया था। उस समय यह स्थान नालन्दा नामसे प्रसिद्ध था। उस समय इतना बड़ा मठ तथा इतना बड़ा विद्यापीठ भारतमें और कहीं नहीं था। बहुत समय तक यह बौद्धोंका एक पवित्र स्थान समझा जाता था। ७वीं शताब्दी तक सैकड़ों बौद्ध-धर्मयाजक यहां एकत्र हो कर धर्म और ज्ञानकी आलोचना करते थे।

ज्ञान और धर्मोपदेश देनेके लिये यहां १०० ख्यातविद्य बौद्धपण्डित नियुक्त रहते थे। तद्भिन्न प्रायः १० हजारसे अधिक याजक और शिष्य यहां रहा करते थे। जिस समय आशोमें बुद्धपक्ष नामक राजा राज्य करते थे उस समय इस मठमें आग लगी और बहुत-सी पुस्तकें जल गईं।

नालन्दर (सं० क्ली०) बौद्धोंका सङ्घाराम।

नालबन्द (फा० पु०) जूतेकी एड़ी या घोड़ेकी टापमें नाल जड़नेवाला आदमी। बम्बई प्रदेशमें बहुत जगह इस जातिके लोग रहते हैं। प्रवाद है, कि ये लोग पहले हिन्दू थे, पीछे दिल्लीश्वर औरङ्गजेबने इन्हें इस्लाम धर्ममें दीक्षित किया। ये लोग अपनेको 'शेख' कहा करते हैं।

ये लोग आपसमें हिन्दुस्तानी और अन्यान्य लोगोंके साथ महाराष्ट्रीय वा कनाड़ी भाषामें बातचीत करते हैं। ये लोग लम्बे, बलवान् और काले होते हैं। स्त्री पुरुष दोनों ही हिन्दू-सा पहिरावा धारण करते हैं। ये लोग परिष्कार और परिच्छन्नताके बड़े ही पक्षपाती हैं। नालबन्दी परिश्रमी तो खूब होते, लेकिन शराब और गांजा अधिक मात्रामें पीते हैं। गाय और घोड़ोंकी टापमें लोहेका खुर जड़ना ही इनकी उपजीविका है।

ये लोग अपनी श्रेणीमें अथवा साधारण मुसलमान सम्प्रदायमें विवाह शादी करते हैं। काजीकी ये लोग अच्छी खातिर करते हैं और उन्हींसे आपसका लड़ाई झगड़ा निपटा लेते हैं। ये लोग सुन्नीमतावलम्बी हैं, किन्तु धर्ममें मति गति नहीं है। साधारणतः ये लोग नितान्त अशिक्षित हैं।

नालबन्दी (अ० स्त्री०) नाल जड़नेका काम।

नालबांस (हिं० पु०) हिमालयके अञ्चलमें यमुनाके किनारेसे ले कर पूरबी बङ्गाल और आसाम तक मिलनेवाला एक प्रकारका बांस। यह सीधा, मजबूत और कड़ा होनेके कारण बहुत अच्छा समझा जाता है।

नालम्बी (सं० स्त्री०) महादेवकी वीणा।

नालवंश (सं० पु०) नालो वंश इव। नाल, नरसल, नरकट।

नालशतीरी (फा० पु०) लकड़ीकी एक प्रकारकी मेहराब जिसमें कई छोटी मेहराबें कटी होती हैं।

नालशाक (सं० पु०) सुरनकी नाल जिसकी तरकारी बना कर लोग खाते हैं।

नाला (सं० स्त्री०) नल-ण, ततष्टाप्। नाल, नरकट।

नाला (हिं० पु०) १ पृथ्वी पर लकीरके रूपमें दूर तक गया हुआ गड्ढा जिससे हो कर वर्षाका जल किसी नदी आदिमें जाता है, जलप्रणाली। २ उक्त मार्गसे बहता हुआ जल, जलप्रवाह। ३ रंगीन गण्डेदार सूत।

नालागढ़—पञ्जाब प्रान्तके सिमला पहाड़ी राज्यमें एक ग्राम। यह अक्षा० ३०° ५४' से ३१° १४' उ० और देशा० ७६° ३९' से ७६° ५६' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण २५६ वर्गमील तथा लोकसंख्या ५२५५१ है। १८१५ ई०के कुछ पहले ही यह ग्राम गोरखा लोगोंसे लूटा गया था। बाद बृटिश-सरकारने उन्हें मार भगाया और वहांएक राजपूत राजा भी स्थापित कर दिया। यहांका राजस्व लगभग १२००००) रु०का है जिसमें ५०००) रु०

ब्रटिश सरकारको कर-स्वरूप देने पड़ते हैं। यहांकी प्रधान उपज गेहूं, जो, ज्वार और अफीम है।

नालायक (अ० वि०) अयोग्य, निकम्मा, मूर्ख।

नालि (सं० स्त्री०) नालयतीति नल-णिच्-इन्। १ नाड़ी, शिरा। २ पद्मादिका खण्ड, डांड़ी। ३ शाकभेद, एक प्रकारका साग।

नालिक (सं० पु०) नल एव नालस्तद्गन्धविशेषः, स भोज्यत्वेनास्त्यस्येति ठन्। १ महिष, भैंसा। (क्ली०) नालमस्त्यस्येति। २ पद्म, कमल। नालः कार्यसाधनत्वेनास्त्यस्येति ठन्। ३ अस्त्रविशेष, एक प्रकारका हथियार। बन्दूकके जैसा इसको भी नलीमें कुछ भर कर चलाते थे। ४ रक्तगन्धबोल। ५ नाड़ीशाक एक प्रकारका साग। ६ चर्मकषा।

नालिका (सं० स्त्री०) नाला एव, स्वार्थे कन् टापि अत इत्वं। १ नाला, छोटी नाल या डंठल। २ नाली। ३ जुलाहोंकी नली जिसमें वे लपेटा हुआ सूत रखते हैं। ४ नालिताशाक, पटुआसाग। ५ एक प्रकारका गन्धद्रव्य। ६ चर्मकषा।

नालिकेर (सं० पु०) नारिकेल, लरयोरैक्यात् रस्य लः लस्य रश्च। १ नारिकेल, नारियल। इस शब्दका कहीं कहीं क्लीवलिङ्गमें भी व्यवहार होता देखा जाता है। नारिकेल देखो। २ कूर्मविभागके अग्निकोणस्थित देशभेद। (वृहत्सं० १४ अ०)

नालिकेरी (सं० स्त्री०) शाकविशेष, एक प्रकारका साग।

नालिजङ्घ (सं० पु०) द्रोणकाक, डोमकौवा।

नालिता (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात शाकभेद, एक प्रकारका पटुआ जिसके कोमल पत्तोंका साग होता है।

नालिनी (सं० स्त्री०) नाकके एक छेद अर्थात् नाथनेका तान्त्रिक नाम।

नालिश (फा० स्त्री०) १ किसीके विरुद्ध अभियोग, फरियाद।

नाली (सं० स्त्री०) नालि बाहुलकात् ङीष्। १ शाककदम्बक, करेमूका साग जिसके डण्ठल नलीको तरह पोले होते हैं। २ हस्तिकर्णवेधनी, हाथियोंका कनछेदनी। ३ पद्म, कमल। ४ घटीयन्त्र, घड़ी। ५ नाड़ी, रक्त आदि बहनेकी नली, धमनी। ६ मनःशिला।

नाली (हिं० स्त्री०) १ जल बहनेका पतला मार्ग, गड्ढा जिसमें हो कर जल बहता हो। २ गलीज आदि बहनेका मार्ग, मोरी, पनाला। ३ डंड करनेका गड्ढा जिसमेंसे हो कर छाती निकल जाय। ४ वह गहरी लकीर जो तलवारके बीचोबीच पूरी लम्बाई तक गई होती है। ५ घोड़ेकी पीठ पर गड्ढा। ६ बैल आदि चौपायोंको दवा पिलानेका चोंगा, ढरका।

नालीक (सं० पु०) नाल्या नलयन्त्रात् कायति शब्दायते कै-क। १ शर, वाण। लघु वाणका नाम नालीक है। यह वाण नलयन्त्र द्वारा फेंका जाता है। पर्वतके ऊंचेसे ऊंचे गह्वरमें और दुर्गयुद्धमें यह वाण काममें लाया जाता है। (क्ली०) २ मत्स्याङ्ग। ३ पद्मसमूह। न-अलीकमिति। ४ सत्य। ५ मृणाल।

नालीकिनी (सं० स्त्री०) नालीकमस्त्यस्य इति नालीक-इनि, ङीप्। पद्मसमूह।

नालीघटी (सं० स्त्री०) नाड्या दण्डकालस्य बोधनार्थां घटी डस्य लः। दण्डादि ज्ञापक घटीभेद, एक प्रकारकी घड़ी जिससे दण्डादिका पता लग जाता है।

नालीप (सं० पु०) कदम्बवृक्ष, एक प्रसिद्ध वृक्ष, कदम्ब।

नालीव्रण (सं० पु०) नालीगतो व्रणः। नाड़ीव्रण, नासूर।

नालुक (सं० त्रि०) १ कृश, दुबला। २ जिसके मुखमें नाल पड़े। (पु०) ३ गन्धभेद, एक गन्धद्रव्य।

नालोट (हिं० वि०) बात कह कर पलट जानेवाला, मुकर जानेवाला, इनकार करनेवाला।

नाल्यपुष्पी (सं० स्त्री०) महाशणपुष्प, एक प्रकारका पटसन।

नाल्व (सं० त्रि०) नलस्यादूर देशादि, मध्वादित्वात् ब्व। नलके समीपका।

नाव (हिं० स्त्री०) लकड़ी लोहे आदिको बनी हुई जलके ऊपर तैरने या चलनेवाली सवारी, जलयान, किश्ती। विशेष विवरण नौका शब्दमें देखो।

नावक (फा० पु०) १ एक प्रकारका छोटा बाण, खास तरहका तीर। २ मधुमक्खीका डङ्क।

नावक (हिं० पु०) केवट, मांझी, मल्लाह।

नावघाट (हिं० पु०) नावोंके ठहरनेका घाट, नदी, झील

आदिके किनारेका वह स्थान जहां नावें ठहरती हों।

नावनम् (सं० क्लो०) नश्य, नस, सुंघनो।

नावना (हिं० क्रि०) १ झुकाना, नवाना। २ प्रविष्ट करना, घुमाना। ३ डालना, फेंकना, गिराना।

नावमिक (सं० त्रि०) नवम्-ठञ्। नवम संख्यायुक्त, जिसमें नो हो।

नावयज्ञिक (सं० पु०) नवयज्ञस्य तत्प्रतिपादकग्रन्थस्य व्याख्यानो ग्रन्थः ठञ्। १ नवयज्ञप्रतिपादक व्याख्यान ग्रन्थविशेष।

नावरा (हिं० पु०) दक्षिणमें होनेवाला एक पेड़। इसको लकड़ी बहुत साफ, चिकनो और मजबूत होतो है। मेज, कुरसो आदि सजावटके सामान इससे बहुत अच्छे बनते हैं।

नावाँ (हिं० पु०) वह रकम जो किसोके नाम लिखो हो।

नावा (सं० स्त्री०) वाक्य।

नावाकिफ (फा० वि०) अनभिज्ञ, अनजान।

नाविक (सं० पु०) नावा तरतोति नो-ठन्। कर्णधार, मांझो, मल्लाह।

जो डांड़, पाल आदि यन्त्रोंकी सहायतासे नदो आदिमें नाव चलाता है, उसोका साधारण नाम नाविक है। नाविक लोगोंका विश्वास भूल कर भो नहीं करना चाहिए। नदो, खाई, आदि जलस्रोत हो कर जानेमें दार्शनिक यन्त्रको जरूरत नहीं पड़ती। सुतरां उस गमनागमनका कोई विशेष नियम लिपिवद्ध करना आवश्यक है। केवल नाविक या मल्लाहके थोड़ा दूरदर्शन और बहुदर्शिता रहनेसे हो वे सहज और निर्विघ्नता पूर्वक उन सब जलस्रोतोंमें आ जा सकते हैं। किन्तु सामुद्रिक नाविकोंको शिक्षित, दक्ष और बुद्धिमान होना आवश्यक है। इसो कारण यहां पर समुद्रमें गतिविधिका नियम और प्रणालो आदि संक्षेपमें दो जाती है।

अति प्राचोन कालमें भारतवासो और इजिप्टवासोके पहले पहल समुद्रमें जाने आनेका प्रमाण मिलता है। मिस्रवासो अर्णवपोतको सहायतासे भारतवर्षमें वाणिज्य करने आते थे। पुराकालोन समुद्रनाविकोंमेंसे फिनोकीय लोग हो विशेष प्रसिद्ध हैं। वे अपने परिचित सभी जातियोंके मध्य समुद्रयानयोगसे व्यवसाय करते थे। वहांका टायर नामक बन्दर पृथ्वो भरमें सबसे प्रधान वाणिज्यबन्दर समझा जाता था। पहले उन्होंने कई एक जहाज प्रस्तुत किए। उन्हीं जहाजोंको सहायतासे वे विदेशमें उपनिवेश स्थापन करनेमें समर्थ हुए थे। फिनोकोय-उपनिवेशमें कार्थेज बहुत प्रसिद्ध था। कार्थेजके अधिवासो लोग यूरोप और अफ्रोकाके पश्चिम उपकूलस्थ जितने स्थान हैं, वहां जहाजको सहायतासे वाणिज्य करते थे। इनके बाद ग्रोकलोग नाव चलानेमें अग्रसर हुए। वे अपने आर्गो नामक जहाज पर चढ़ कर कलचिससे उत्कृष्ट शुभ्र मेषके लोम लाते थे, यह बात हरएकको विदित है। ग्रोकोंके बाद रोमवासियोंने जहाज बनाने और चलानेको विद्या सोख कर अलेकसन्द्रिया नामक बन्दर स्थापन किया। इस बन्दरके स्थापित होनेसे हो कार्थेजका पूर्व गौरव जाता रहा। अलेकसन्द्रिया बन्दर एक समय धनगर्व और वाणिज्य विषयक उन्नतिसे पृथ्वो भरमें सर्वोच्च शिखर पर पहुंच गया था। रोमके ध्वंसके बाद कुछ दिनके लिये यूरोपमें नाव चलानेको विद्याशिक्षा और परिचालन आदिका अधःपतन हुआ। पोछे जेनोआवासो जहाज चलानेमें विशेष पटु निकले। जेनोआके बाद भेनिसके लोगोंने समुद्रयानको उन्नतिमें खूब सफलता पाई। इस समय 'हैनजेटिककलोग' नामक एक दल वणिक्ने वाणिज्य व्यवसायके लिए भारतवर्ष और अमेरिकाके नाना स्थानोंमें नाविकोंके नाव चलानेके अनेक नियम लिपिवद्ध किए जो आज भी 'हैनजेटिककलोग' नामसे प्रसिद्ध हैं। उस समयसे ले कर वर्त्तमान समय तक नाविकविद्याके विषयमें जो उन्नति साधित हुई है, पर्यायक्रमसे उनका विवरण लिपिवद्ध करना सहज नहीं है। जहाज गठन-प्रणालोको उन्नति और जहाज चालित होनेके लिए अभिनवपन्थाका प्रणयन और नूतन नूतन यन्त्रोंका आविष्कार होनेसे हो समुद्रमें आने जानेके लिये जो विशेष सुविधा हुई है, इसमें जरा भो सन्देह नहीं। प्राचोनकालमें डांड़ चलानेवाले जहाजके पाटातनके ऊपर बैठ कर डांड़ चलाते थे। किसो किसो जहाजमें दो तीन भो पाटातन रहते थे। सुतरां जहाजको गति मनुष्यके सामर्थ्यके ऊपर निर्भर रहती थी। अभो

पाटातनके बदले पालका व्यवहार होने लगा है। जिस ओरसे हवा चलती है, उस ओर पाल और डांड़ द्वारा बहुत तेजीसे वे नाव ले जाते हैं। फिर वाष्पीय कलका आविष्कार हो जानेसे दिनों दिन समुद्रयात्रामें विशेष सुविधा होती जा रही है। पूर्वकालमें नाविकोंको जहाज चलानेका काम बहुत असुविधाजनक था। अभी एकमात्र दिग्दर्शनयन्त्रका आविष्कार हो जानेसे वह असुविधा बहुत कुछ जाती रही। पूर्व समयमें नाविकगण दिनको सूर्यकी ओर और रातको ध्रुवतारा (North Star)की ओर लक्ष्य करके जहाज चलाते थे। कुहेरा वा मेघाच्छन्न आकाशके दिन वे भूल कर भी जहाज नहीं चलाते थे। दिग्दर्शनयन्त्रकी सृष्टि हो जानेसे अभी सूर्य वा अन्यग्रह उपग्रहके उदयके आसरे ठहरना नहीं पड़ता है। दिग्दर्शनयन्त्रके हो जानेसे भी उत्कृष्ट मानचित्रके अभावमें बहुत दिनों तक नौयात्राको कोई विशेष सुविधा दीख नहीं पड़ती थी। उस समयका मानचित्र भ्रमसे परिपूर्ण था। पीछे मारकेटर प्रणीत मानचित्रका प्रचार हो जानेसे प्राचीनकालकी जहाज चलानेकी नियमावली और युक्ति बहुत कुछ बदल गई है। अनन्तर लगारिथमकी तालिकाके प्रस्तुत हो जानेसे जहाजचालनोपयोगी सब प्रकारका बड़ा बड़ा अङ्क बनानेका विशेष सुभीता हो गया है। सेक्सटाण्ट, कोयाड्रण्ट और दिग्दर्शनकी सहायतासे सूर्य और अन्यान्य ग्रहोंकी ऊंचाई तथा चन्द्र और दूसरे दूसरे ग्रहोंकी परस्पर दूरीका स्थिर करना अनायास सिद्ध हो गया है। इनके अलावा नाविक लोगोंके पास लगारिथम-तालिका और नौ-पञ्जिका रहती है। सब यन्त्रों और मानचित्र आदिकी सहायतासे नाविकगण अपने अपने जहाजका अक्षांश और देशांश स्थिर कर लेते हैं तथा जहाज परसे दूरवीक्षण द्वारा जो बन्दर वा अन्तरीप नजर आता है उसकी भी अक्षरेखा और द्राघिमा अपना मानचित्र देख कर ठीक करते हैं। मानचित्रसे केवल इतना ही काम नहीं लेते, बल्कि समुद्रपथमें कहां पहाड़ है उसे भी मानचित्रमें देख कर उस राहको छोड़ देते और निःशङ्कचित्तसे दूसरी राह हो कर जहाज आदि ले जाते हैं जिससे उसका कुछ भी नुकसान नहीं होता। इसके सिवा कितने नैसर्गिक व्यापारके प्रति नाविकोंको भी लक्ष्य रखना पड़ता है। क्योंकि सामान्य सहायता ही नाविकोंके लिये विशेष कार्यकारी है, नहीं तो साधारण भूल हो जानेसे ही जहाज टूट फूट जा सकता है, इसमें सन्देह नहीं। स्रोतके बलके प्रति, समुद्र जलके रंगके प्रति (समुद्रतीरके निकटस्थ जलका रंग गभीर जलके रंगकी अपेक्षा भिन्न रहता है) तथा पक्षीके गमनागमनके प्रति नाविकोंका विशेष लक्ष्य रहता है। तूफान आदिका निरूपण करनेके लिये उनके पास हमेशा वैरोमीटर रहता है। इन सब अत्यावश्यक यन्त्रोंकी सहायतासे अभी समुद्रयात्रा बहुत सहज हो गई है।

भारतवासी प्राचीनकालमें जिस जहाज पर समुद्रयात्रा करते उसे 'यानपात्र' कहते थे। इस 'यानपात्र'का बहुत लम्बा चौड़ा विवरण है, लेकिन विस्तारके भयसे यहां नहीं लिखा गया। चीनवासी भी जिस जहाज पर समुद्रमें जाते थे, वह 'यानक' वा 'याङ्क' कहलाता था।

नाविकविद्या (सं० स्त्री०) नौका, जहाज आदि चलानेकी विद्या। नाविकको इस विद्यामें विशेष पारदर्शी होना उचित है।

नाविन् (सं० त्रि०) नौरस्त्यस्य व्रीह्यादित्वात् पक्षे इनि। पोताध्यक्ष, नाविक, कर्णधार, मांझी।

नावी (सं० स्त्री०) श्रेणीबद्ध नौका, जहाज प्रभृति।

नावेल (अं० पु०) उपन्यास।

नावोपजीवन (सं० पु०) नावा उपजीवनमस्य आर्षे अलुक् समास। नौकाचालनोपजीवि जातिभेद, एक प्रकारकी जाति जिसका पेशा नाव, जहाज आदि चालन है। महाभारतमें इस जातिका उल्लेख देखनेमें आता है।

"निषादो मद्गुरं सूते दासं नावोपजीवनम्।"

(भारत अनु० ४८ अ०)

नावोपजीवी (सं० पु०) वह जाति जो नाव जहाज आदि चला कर अपनी जीविकानिर्वाह करता हो।

नाव्य (सं० त्रि०) नावा-तार्यं नौ-यत् (नौवयोधर्मेति। पा ४।४।९१) १ नौकागम्य देशादि, नौकाके बिना जिसका पार करना कठिन हो। (पु०) नवस्य भावः ष्यञ्। २ नूतनत्व, नयापन। ३ तरुणावस्था, जवानी।

नांव्युदक (सं० क्ली०) 'नाविस्थितमुदकम्,' नावि अग्निहोत्रसमाप्तिं यावदुदकम्। १ नौकास्थित जल, नावमेंका पानी। २ अग्निहोत्रार्थ अग्निस्थापनार्थ स्थापित जल। यह जल पीना निषिद्ध है।

नाश (सं० पु०) नश-भावे घञ्। १ ध्वंस, निधन, बरबादी। २ अदर्शन, गायब होना। ३ पलायन, भाग जाना। ४ अनुपलम्भ।

वस्तुका नाश होता है, इसे सांख्यकारगण स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है, कि कारण लयका नाम नाश है। वस्तु जब कारणमें लीन हो जाती है, तब उसे नाश कहते हैं। वस्तुके कारणमें लीन होनेसे सूक्ष्मताके हेतु उसकी उपलब्धि नहीं होती। "नाशः कारणलयः" (सांख्यसूत्र) कारणके साथ नाश है अर्थात् एकीभूत होनेका नाम आत्यन्तिक नाश है। कार्य कारणमें लीन होता है, दूसरी बार उस कारणसे कार्य हुआ करता है, किन्तु आत्यन्तिक नाश होनेसे फिर उससे कार्योत्पत्ति नहीं होती।

नैयायिक लोग नाशको ध्वंसाभाव मानते हैं। यह अभाव नित्य है।

समस्त विषयोंकी चिन्ता करते करते पुरुषको आसक्ति उत्पन्न होती है। इसी आसक्तिसे अभिलाष, अभिलाषसे क्रोध, क्रोधसे मोह, मोहसे स्मृतिभ्रंश, स्मृतिभ्रंशसे बुद्धिनाश और बुद्धिनाशसे विनाश उपस्थित होता है।

असत्याचरण, पारदार्य, अभक्ष्यभक्षण, अश्रौतधर्माचरण अर्थात् शास्त्रानुसार नहीं चलना, ये सब कार्य करनेसे बहुत जल्द कुल नाश होता है। अब्राह्मण और वृषलको वेदकी शिक्षा देनेसे भी कुलनाश शीघ्र होता है।

विनष्ट होनेका पूर्व लक्षण मत्स्यपुराणमें इस प्रकार लिखा है,—जब पुरुष अपने आचार-व्यवहारका परित्याग करते हैं, तब देवता भी उन्हें परित्याग करते हैं। उस समय नाना उपसर्ग उपस्थित होते हैं। यह उपसर्ग तीन प्रकारका है—दिव्य, आन्तरीक्ष और भौम। ग्रह और नक्षत्रगणजनित दिव्य उपसर्ग; उल्कापात, दिग्दाह आदि आन्तरीक्ष और भूकम्पन, जलाशयादिका दूषित होना भौम उपसर्ग है। ये सब उत्पात देखनेसे समझ जाना चाहिए, कि नाश पहुंच गया है।

नाशक (सं० त्रि०) नाशयतीति नश-णिच् ण्वुल्। १ ध्वंसक, नाश करनेवाला, बरबाद करनेवाला। २ वध करनेवाला, मारनेवाला। ३ दूर करनेवाला, न रहने देनेवाला।

नाशकारी (हिं० वि०) नाश करनेवाला।

नाशन (सं० त्रि०) नाशयतीति नश-णिच्-ल्यु। १ नाशक, नाश करनेवाला। (क्ली०) २ उच्छेदन, विलोपन।

नाशपाती (तु० स्त्री०) काश्मीर, हिमालयके किनारे सर्वत्र, दक्षिणमें नीलगिरि, बङ्गलोर आदिमें तथा भारतवर्षमें थोड़े बहुत सब स्थानोंमें मिलनेवाला एक पेड़। यह मझोले डील डौलका होता है। इसके फलकी गिनती मेवामें होती है। इसकी पत्तियां अमरूतकी पत्तियोंके इतनी बड़ी पर चिकनी और चमकीली होती हैं। इसमें सफेद फूल लगते हैं, लेकिन फूलोंके केसर ललाई बैंगनी होते हैं। इसके फल गोल होते और उनके गूदेकी बनावट कुछ दानेदार होती है। बीज गूदेके भीतर बीचोबीच चार छोटे कोशोंमें रहते हैं। फलका अधिकांश श्वेत कठिन गूदा ही होता है इससे इसके कटे हुए टुकड़े मिस्रीके टुकड़ोंके समान जान पड़ते हैं। काश्मीरकी नाशपाती और स्थानोंसे कहीं अच्छी होती है और नाख या नाकके नामसे प्रसिद्ध है। नाशपाती यूरोप और अमेरिकाके प्रायः उन सब स्थानोंमें होती है जहां सरदी अधिक नहीं पड़ती। वहां इसकी लकड़ी पर नक्काशी होती है और उसके ठप्पके समान बनते हैं। आयुर्वेदमें नाशपातीको अमृतफल बतलाया है। यह धातुवर्द्धक, मधुर, भारी, रोचक तथा अजवातनाशक माना गया है। सेब और नाशपाती एक ही जातिके पेड़ हैं।

नाशयित्री (सं० स्त्री०) नाशकर्त्री, नाश करनेवाली।

नाशवान् (सं० त्रि०) नश्वर, अनित्य, नाशको प्राप्त होनेवाला।

नाशित (सं० त्रि०) विनाशित, जिसका नाश किया गया हो।

नाशिन् (सं० त्रि०) नाशः अस्त्यस्येति नाश-इनि। १ नाशविशिष्ट, नष्ट होनेवाला। २ नाशक, नाश करनेवाला।

नासिर-ई-खुस्रु—एक पारसिक कवि। ये हिजरी पञ्चम शताब्दीमें वर्त्तमान थे। ये भावुक कवि और मुसलमान-धर्मावलम्बी सियासम्प्रदायके थे। सम्राट् अकबरशाह-के शासनकालमें इनकी कविताका खूब आदर होता था। इनके बनाये हुए ग्रन्थोंमें फरहङ्ग-इ-जहाङ्गीरी उल्लेखयोग्य है।

नासिर-उल्-मुल्क—पीरवान्प्रदेशवासी एक मुल्ला। जब बैराम खाँ कन्दहारमें रहते थे, तब ये खाँ साहबके विशेष अनुरक्त थे। इनका असल नाम पीरमहम्मद था। जब अकबर दिल्लीके सिंहासन पर बैठे, तब ये बैरामकी सहायतासे अमीरके पद पर प्रतिष्ठित हुए। इसके कुछ दिन बाद पीरमहम्मदने अलवरराज हाजी खाँके विरुद्ध युद्धयात्रा की। युद्धमें हाजी खाँ नौ दो ग्यारह हो गये इस पर इन्होंने अलवर और देवली-सचारी नामक स्थान सरकारी राज्यमें मिला लिये और हीमूके पिताको पकड़ कर उसे इस्लामधर्ममें दीक्षित होनेके लिए अनुरोध किया। अस्वीकार करने पर पीरमहम्मदने उसे मार डाला और लूटका माल अपने हाथ ले कर अकबरके समीप पहुंचे।

देवली सचारीमें हीमूकी जन्मभूमि थी। इस युद्धमें हीमूको परास्त कर इन्होंने नासिर-उल्-मुल्कको उपाधि प्राप्त की। उक्त उपाधिसे भूषित हो कर ये इतने गर्वित हो गये थे, कि अपने एकमात्र आश्रयस्वरूप बैरामकी अवज्ञा करनेसे बाज नहीं आए। अन्तमें शेख गदाईके कहनेसे बैरामने इन्हें बियानादुर्गमें बन्द कर रक्खा; पीछे इन्हें तीर्थयात्रा करनेकी अनुमति दी। बियानासे गुजरात जाते समय राहमें इन्हें आधमखाँसे प्रेरित एक पत्र मिला। उस पत्रके मर्मानुसार ये कुछ काल तक रण-स्तम्भगढ़में ठहरे। जब इन्होंने सुना कि बैरामखाँके अनुचरोंने उनका पीछा किया है, तब वे फिर गुर्जरकी ओर चल दिये। बैरामके इस असद्व्यवहारसे अकबर शाह बहुत दुःखित और क्रोधान्वित हुए। पीरमहम्मदको जब मालूम हुआ कि बैरामकी लाञ्छना और अवमानना हुई है, तब वे पुनः दिल्लीको लौटे। इस बार सम्राट् अकबरने इन्हें 'खाँ'की उपाधि दी। ९६८ हिजरीमें ये सम्राट्के आदेशसे मालवकी जीतने गये। यहां ये अपने सहयोगी आधमकी सहायतासे मालवके शासनकर्त्ता नियुक्त हुए। ९६८ हिजरीमें बाजबहादुरने मालव पर चढ़ाई कर दी। दोनोंमें घनघोर युद्ध हुआ। बाज बहादुर परास्त हुए और इन्होंने उनका बीजागढ़ अपना लिया। पीछे खान्देश जा कर इन्होंने बुरहानपुरकी राजधानीमें लूट-मार मचाई और लूटका माल ले कर वहांसे चम्पत हो गये। राहमें बाजबहादुर इन पर टूट पड़े। ये जान ले कर भागे, किन्तु भागते समय नर्मदा नदीके जलमें इनके प्राण नष्ट हुए।

नासिर-उद्दीन्-महम्मूद—दिल्लीके दासवंशीय राजाओंमेंसे नवम राजा। हिजरी ६४४से ६६४ अथवा १२४६से १२६५ ई० तक इन्होंने शासन किया। ये दिल्लीके सुलतान अलतमसके सबसे छोटे लड़के थे।* १२४६ ई०में इनके भतीजे अलाउद्दीन् मुसायुदके गुप्तभावसे मारे जाने पर ये दिल्लीके सिंहासन पर बैठे। इनका अधिकांश समय विद्याभ्यासमें व्यतीत होता था। राजकार्य-परिचालनका भार बलबनके हाथ सौंपा गया था। नन्दनदुर्ग (देवकाली)-जय, राजपूतानेके अन्तर्गत नरवारराज श्रीचाहड़देवके विरुद्ध युद्ध, चाहड़देवकी पराजय और नरवारदुर्गका अधिकार, नागोरमें इजउद्दीन् बलबन्का विद्रोह ये सब घटनायें इन्हींके शासनकालमें घटी थीं। १२५६ ई०में जब मीरटके राजपूतगण विद्रोही हो उठे थे, तब बलबन्ने बहुत वीरताके साथ उनका दमन किया था। इस समय जङ्गीसखाँके पौत्र पारस्यराज हुलाकूने दिल्लीमें एक दूत भेजा।

बहुत दिन रोगग्रस्त रह कर अन्तमें १२६५ ई०के शेषभागमें इनका प्राणान्त हुआ। ये अत्यन्त मितव्ययी और परिश्रमी थे। यहां तक कि जब पाठाभ्याससे इनका मन ऊब जाता था, तब ये अपने हाथसे कुरान लिखने बैठ जाते थे। अन्यान्य राजाओंकी तरह इनके अनेक स्त्रियां वा बेगम न थीं। इनके केवल एक स्त्री थी जो इनका खाद्य पकाती तथा शय्यारचना आदि

* एलफिनष्टन्, मार्समैन, बिग्रारिज और राबर्ट सिउल आदि ऐतिहासिकोंने इस नासिर-उद्दीन्को अलतमसका पौत्र बतलाया है। किन्तु तबकात-इ-नासिरी नामक सामयिक इतिहासमें ये अलतमसके कनिष्ठ पुत्र माने गये हैं।

काम किया करती थी। फिरिस्ताने लिखा है, 'एक दिन सम्राट्के लिये रोटी पकाते समय बेगमका हाथ जल गया। इस समय बेगमने सम्राट्के सामने एक दासीकी सहायता मांगी। इस पर सम्राट्ने खर्च बढ़ जानेके डरसे बेगमका प्रस्ताव नामञ्जूर किया और साथ साथ उपदेश दिया कि 'सहिष्णुताके साथ अपना कर्त्तव्य कर्म करनेसे अन्तमें ईश्वरका अनुग्रह प्राप्त होता है।' उनकी ऐसी ईश्वरभक्ति और शास्त्रालोचना देख कर ज्ञात होता है, कि इन्होंने अपना सारा जीवन धर्मकर्ममें ही व्यतीत किया था, राजकार्य देखनेका इन्हें कुछ भी अवकाश नहीं मिलता था।

नाशुक (सं० त्रि०) ध्वंसशील, नश्वर, नष्ट होनेवाला।

नाश्ता (फा० पु०) प्रातःकालका अल्पाहार, पनपियाव, कलेवा।

नाश्य (सं० त्रि०) नश-ण्यत्। ध्वंसनीय, नाशके योग्य।

नाष्टिक (सं० त्रि०) नष्टं द्रव्यं स्वामित्वेनार्हति बाहुलकात् ठञ्। १ नष्ट द्रव्यार्ह, नष्ट होने योग्य। २ जिसकी वस्तु नष्ट हुई हो।

नाष्ट्र (सं० त्रि०) नश-णिच्-ष्ट्रन्। नाशक, नाश या बरबाद करनेवाला।

नास (हिं० स्त्री०) १ वह द्रव्य जो नाकमें डाला जाय, वह औषध जो नाकसे सुरकी या सूंघी जाय। २ सुंघनी।

नासकाटापुर—नेपालके अन्तर्गत पाटन (ललितपत्तन) प्रदेशके मध्यवर्त्ती एक प्राचीन नगर। इसका प्राचीन नाम कीर्त्तिपुर है। कीर्त्तिपुर नामक पहले एक छोटा स्वाधीन राज्य था जो पीछे पाटन प्रदेशके अधीन हुआ। चन्द्रगिरिपर्वतके नीचे यह राज्य अवस्थित है।

इसके पश्चिममें इन्द्रस्थान और दक्षिणमें महाभारत नामक प्रदेश है। नगरके उत्तर १॥ कोसकी दूरी पर काठमण्डु पड़ता है। कीर्त्तिपुर नगर वाग्मतीकी एक उपनदीके किनारे अवस्थित है। यह कभी भी बड़ा नगर नहीं था। पर हां, इसकी अवस्थिति वा दुर्भेद्यतावशतः नेपालके प्राचीन इतिहासमें यह बहुत प्रसिद्ध है। किसी समय पृथ्वीनारायणकी विपुल सेना इस उपत्यकामें तीन बार परास्त हुई थी। १७६५-६७ ई०के युद्धमें नेवार लोग तीन वर्ष तक गोरखाओंका सामना करते रहे; तीन वर्षके बाद नेवारोंके परास्त होने पर भी गोरखाओंको दुर्ग और अन्यान्य दृढ़वद्ध स्थान हाथ न लगे थे। पीछे सदय व्यवहारका लोभ दिखला कर और बन्धुत्वका बहाना कर वे देशमें प्रविष्ट हुए थे। देशमें प्रवेश कर उन्होंने देशवासियोंकी नाक और होंठ एक कर डाले थे, तभीसे नगरका प्राचीन नाम कीर्त्तिपुर बदल कर 'नासकाटापुर' रखा गया। यहांके प्राचीन दरबार और मन्दिरादिके भग्नावशेष आज भी देखनेमें आते हैं। १५५५ ई०में यहां हरगौरी मूर्त्तिका एक मन्दिर बनवाया गया था जिसका खंडहर अब तक भी वर्त्तमान है। १५१३ ई०का बना हुआ भैरवका मन्दिर ज्योंका त्यों विद्यमान है। यहां अनेक यात्री एकत्रित होते हैं। यह मन्दिर नेपाल भरमें अत्यन्त प्रसिद्ध है। मन्दिरमें एक व्याघ्रमूर्त्ति चित्रित है, उसीसे इनका व्याघ्रभैरव नाम रखा गया है। १६६५ ई०में शेरिस्ता-नेवारसे निर्मित गणेशमन्दिर भी उल्लेख योग्य है। इसके तोरणके ऊपरी भागमें गणेश, बाईं बगलमें गरुड़ारूढ़ा वैष्णवीदेवी, दाहिनी बगलमें मयूरासीना शक्तिदेवी, महिषारूढ़ा वाराहीदेवी, शवासना चामुण्डादेवी, वैष्णवीकी बगलमें हस्त्यारूढ़ा इन्द्राणीदेवी और इन्द्राणीकी भी बगलमें सिंहारूढ़ा महालक्ष्मीमूर्त्ति खड़ी है। गणेशमूर्त्तिके ऊपरी भागके मध्यस्थल पर भैरवमूर्त्ति, उसके दक्षिणमें ब्रह्माणी और उत्तरमें रुद्राणी है। इन सब मूर्त्तियोंको अष्टमातृका कहते हैं। नगरके दक्षिणमें चिलनदेव नामका एक बौद्धमन्दिर है।

नासत्य (सं० पु०) नास्ति असत्यं यस्य, (नभ्राण्नपान्नेति। पा ६।३।७५) इति नञो प्रकृतिवद्भावः। अश्विनीकुमारद्वय। ये देवताओंमें शूद्र गिने जाते हैं। जहां नासत्य शब्दसे अश्विनीकुमारका बोध होगा, वहां यह शब्द द्विवचनान्त होता है।

नासत्या (सं० स्त्री०) अश्विनीनक्षत्र।

नासपाल (फा० पु०) १ कच्चे अनारका छिलका जो रङ्ग निकालनेके काममें आता है। २ कच्चा अनार। ३ एक प्रकारकी आतिशबाजी।

नासपाती (फा० वि०) नासपालके रंगका, कच्चे अनारके छिलकेके रंगका।

नासमझ (हिं॰ वि॰) निर्बुद्धि, बेवकूफ, जिसे बुद्धि न हो, जिसे समझ न हो।

नासमझी (हिं॰ स्त्री॰) मूर्खता, बेवकूफी।

नासा (सं॰ स्त्री॰) नासते शब्दायते इति नास-अ (गुरोश्च हलः। पा ३।३।१०३) ततष्टाप्, वा नास्यतेऽनया नास करणे घञ् टाप्। १ नासिका, नाक। गर्भस्थ शिशुको ५ महीनेमें नाक उत्पन्न होती है। नासिका देखो। २ द्वारोर्ध्वस्थित काष्ठ, द्वारके ऊपर लगी हुई लकड़ी, भरेटा। ३ वासकवृक्ष, अड़ूसा। ४ नासारन्ध्र, नाकका छेद, नथना।

नासागतरोग (सं॰ पु॰) नासागत रोगविशेष, नाकके भीतरका एक प्रकारका रोग। इसका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है,—

नासारोग ३१ प्रकारका है। यथा—अपीनस्य, पूतिनस्य, नासापाक, शोणितपित्त, पूयशोणित, क्षवथु, भ्रंशथु, दीप्ति, प्रतिनाह, परिस्रव, नासाशोष, चार प्रकारका अर्श, चार प्रकारका शोफ, सात प्रकारका अर्बुद और पांच प्रकारका प्रतिश्याय।

इन ३१ प्रकारके रोगोंका यथायथ लक्षण लिखा जाता है। नासारन्ध्ररोध, धूपन, पुनः पुनः पचन, क्लेदजनन और गन्धरसकी अनुपलब्धि ये सब रोग होनेसे अपीनस रोग समझा जाता है। यह वातश्लेष्मजन्य प्रतिश्यायके साथ समान लक्षणविशिष्ट है।

गलदेश और तालुमूलमें दोष विदग्ध हो कर जब मुख और नासिकासे दुर्गन्ध वायु निकलती है, तब उसे पूतिनस्यरोग कहते हैं।

नासागत रक्त कर्त्तृक मर्मस्थानमें बलवान् पाकके उत्पन्न होनेसे नासापाक रोग समझा जाता है। इस रोगमें क्षत और क्लेद होता है। दोष (पित्त, शोणित और श्लेष्मा)के विदग्ध होनेसे अथवा ललाटदेश आहतप्रयुक्त नासिकासे रक्तमिश्रित पीपके निकलनेसे पूयरक्त रोग होता है।

नासारन्ध्रमें मर्मस्थानके दूषित होनेसे जब नासारन्ध्रसे कफप्रयुक्त वायु शब्द करती हुई निकलती है, तब उसे क्षवथुरोग कहते हैं।

तीक्ष्ण शिरोविरेचनप्रयोग वा कटुद्रव्यके आघ्राण, सूर्यनिरीक्षण अथवा सूत्रादि-द्वारा तरुणास्थि नामक मर्मके उद्घाटित होनेसे क्षवथु (छिका) होता है, इससे पित्तताप मूर्द्धदेशमें सञ्चित हो कर गाढ़ विदग्ध लवणरसविशिष्ट कफ मूर्द्धदेशसे नाक हो कर निकलने लगता है। इसीको भ्रंशथु रोग कहते हैं।

नासारन्ध्रसे जब धूमकी तरह वायु निकलती है और नासारन्ध्र प्रदीप्तकी तरह जलने लगता है, तब उसे दीप्तरोग कहते हैं।

उदानवायु जब कफसे ढक जाती है और स्रोतमार्गमें विकृत रह कर प्राणपथको आवृत करती है, तब उसे नासाप्रतीनाहरोग कहते हैं।

नासिकासे अजस्र विशेषतः रातको यदि निर्मल जलकी तरह आस्राव निकले, तो वह नासापरिस्रावरोग कहलाता है। प्राणरन्ध्रस्थित श्लेष्मा जब वातपित्तसे शुष्क हो जाय और कष्टसे श्वासक्रिया हो, तो उसे नासापरिशोष कहते हैं। प्रतिश्यायादिका विषय पीछे लिखा जायगा।

इसकी चिकित्सा।—पूतिनस्यरोगमें नाड़ीस्वेद, स्नेहस्वेद, वमन और शंसनका प्रयोग करना चाहिए। तीक्ष्णरसयोगमें लघु अन्न, अल्प भोजन, उष्णोदक पान और उपयुक्त कालमें धूम पान कर्त्तव्य है। हिंगु, त्रिकटु, इन्द्रयव, शिवाटी, लाक्षा, कुङ्कुम, कटफल, कुष्ठ, वच, इलायची, विड़ङ्ग और करञ्ज इन सब द्रव्योंको गोमूत्रके साथ सरसोंके तेलमें पाक कर नस्यका प्रयोग करना चाहिए।

नासापाकरोगमें नाकके बाहर और भीतर पित्तनाशक विधान कर्त्तव्य है। पीछे रक्तका भलीभांति साफ कर चीरवृक्षके छिलकेका घीके साथ परिषेचन और प्रलेप देना उचित है।

पूयरक्तरोगमें नाड़ीव्रणकी तरह चिकित्सा करनी होती है। वमन करा कर अवपीड़न, तीक्ष्णद्रव्यका धूम और शोधनी द्रव्यके चूर्णनस्यका प्रयोग करे। क्षवथु रोगमें मूर्द्धदेशमें स्वेदप्रयोग और स्निग्धधूम आदि अन्यान्य वायुरोगोंकी हितकर विधिका प्रयोग करे। दीप्तिरोगमें पित्तजन्य रोगके प्रतीकारकी विधिके अनुसार क्रिया करनी उचित है। प्रतीनाहरोगमें स्नेहपान ही प्रधान है और स्निग्धधूम तथा शिरोविरेचनका भी प्रयोग

हितकर माना गया है। बलातैल और अन्यान्य वायुनाशक द्रव्य भी इस रोगमें फायदामन्द है। नासास्रावरोगमें तीक्ष्ण अवपीड़नका नासारन्ध्रमें नल द्वारा प्रयोग करे और देवदारु तथा चित्रकके साथ मांस और घृतधूमका सेवन करावे। नासाशोषरोगमें क्षीर, घृत और अणुतैलका नस लेना हो सर्वोत्कृष्ट है। घृतपान, मांसरसके साथ भोजन, स्नेहस्वेद और स्नैहिक धूम भी प्रयोज्य है। प्रतिश्यायरोगका विवरण प्रतिश्याय शब्दमें देखो। (सुश्रुत उत्तरत० २२-२३ अध्याय)

भावप्रकाशमें भी नासारोगका विषय लिखा है जो इस प्रकार है। सुश्रुतमें नासागतरोग ३१ प्रकारका बतलाया गया है, किन्तु भावप्रकाशके मतसे वह ३४ प्रकारका है।

यथा—पीनस, पूतिनस्य, नासापाक, पूयशोणित, क्षवथु, भ्रंशथु, दीप्ति, प्रतीनाह, परिस्राव, नासाशोष, पांच प्रकारका प्रतिश्याय, सात प्रकारका अर्बुद, चार प्रकारका अर्श, चार प्रकारका शोथ और चार प्रकारका रक्तपित्त।

जिस रोगमें नाक शुष्क हो जाय, कफसे बन्द हो जाय तथा शुष्क वा कफसे क्लिन्न और सन्तापयुक्त हो जाय एवं घ्राणमें रसका बोध न रहे, उसे पीनस वा अपीनस कहते हैं। यह पीनसरोग वातश्लैष्मिक प्रतिश्यायकी तरह लक्षणविशिष्ट होता है।

दूषित पित्त, रक्त और कफसे गला और तालुमूलस्थ वायु यदि पूतिभावापन्न हो जाय तथा मुख और नाकसे दुर्गन्ध निकले, तो उसे पूतिनस्य कहते हैं।

जिस रोगमें घ्राण संश्रितपित्तके बलवान् होनेसे नाकमें बहुतसे फोड़े हो जाँय और उन सब फोड़ोंके पक जानेसे दुर्गन्धित पीप निकले, तो उसे नासापाक कहते हैं।

रक्तपित्तको अधिकताके कारण अथवा ललाटमें अभिघातादिके कारण नाकसे रक्तमिश्रित पीप निकले, तो उसे पूयरक्त कहते हैं।

घ्राणस्थित शृङ्गाटकमर्मके दूषित होनेसे नाक हो कर कफके बाद अति शब्दयुक्त वायु निकलती है। इस प्रकारके लक्षणविशिष्टरोगको क्षवथु कहते हैं। तीक्ष्ण वा कटुद्रव्यके अतिरिक्त भक्षण करनेसे वा उसका घ्राण लेनेसे किंवा सूर्य निरीक्षण करनेसे अथवा सूत्रादि द्वारा नासावंशास्थि और शृङ्गाटकमर्म घर्षित होनेसे आगन्तुज क्षवथु (छिक्का) उत्पन्न होता है।

पूर्वसञ्चित शिरोगत गाढ़ा लवणरसात्मक और विदग्ध कफ जब पित्तसे तापित हो कर नाकसे गिरने लगे तब उसे भ्रंशथुरोग कहते हैं।

जिस रोगमें नाकके भीतर जलन दे और उससे धूमवत् वायु निकले, वह दीप्तिरोग कहलाता है।

वायुके साथ कफ मिल कर जब नासारन्ध्रको बन्द कर दे, तब उसे प्रतीनाहरोग कहते हैं।

नाकसे पीत वा श्वेतवर्ण गाढ़ा अथवा पतला दोषका स्राव हो, तो उसे नासास्राव कहते हैं।

नासाश्रित श्लेष्मा जब वायुसे शोषित और पित्तसे अत्यन्त परितप्त हो जाय और श्वास लेनेमें कष्ट मालूम पड़े, तब उसे नासाशोष कहते हैं।

प्रतिश्यायका विवरण प्रतिश्याय शब्दमें देखो।

पहले पीनसादिके लक्षण लिखे जा चुके हैं। अब इनको चिकित्साका विषय लिखा जाता है। मस्तककी गुरुता, अरुचि, नाकसे अधनस्राव, स्वरभङ्ग और बार बार निष्ठीवन हो, तो उसे अपक्वपीनस कहते हैं। इस अपक्वपीनसको लक्षणान्वित श्लेष्मा जब गाढ़ा हो कर नासारन्ध्रमें संलग्न हो जाय और स्वर प्रसन्न तथा श्लेष्माका वर्ण विशुद्ध मालूम पड़े, तब उसे पीनसपक्व समझना चाहिये। सब प्रकारके पीनसरोगमें दधि और गुड़के साथ मिर्चका चूर्ण सब समय खिलाना फायदामन्द है।

कटफल, पुष्करमूल, कर्कटशृङ्गी, त्रिकटु, दुरालभा और कृष्णजीरा इन सब द्रव्योंके चूर्ण अथवा क्वाथको अदरकके रसके साथ सेवन करनेसे पीनस और स्वरभेद आदि रोग जाते रहते हैं।

त्रिकटु, चिता, तालीशपत्र, तिन्तिड़ीक, अम्लवेतस, चई और कृष्णजीरा इनका समान भाग, इलायची और दारचीनी चतुर्थांश, इन सबके चूर्णमें दूना पुराना गुड़ मिला कर उसे यथामात्रामें सेवन करनेसे पीनस आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। इस औषधका नाम व्योषादिवटी है।

कण्टकारी, दन्ती, वच, शोभाञ्जन, तुलसी, त्रिकटु,

और सैन्धव इनके चूर्ण द्वारा तैल पाक कर नस लेनेसे पूतिनासारोग दूर हो जाता है।

शोभाञ्जनका वोज, हहतीवोज, दन्तीवोज, त्रिकटु और सैन्धव इनके कल्क तथा विल्वपत्रके रस द्वारा तैल पाक कर उसका सेवन करनेसे भी पूतिनासारोग शान्त हो जाता है। घृत, गुग्गुल और मोमको मिला कर उसका धूम प्रयोग करनेसे क्षवथु और भ्रंशथु नष्ट हो जाता है। सोंठ, कुट, पीपर, विल्वमूल और द्राक्षा इन सब द्रव्योंके क्वाथ और कल्क द्वारा तैल वा घृत पाक कर उसका नस लेनेसे क्षवथुरोग दूर हो जाता है। दीप्तिरोगमें नीम और रसाञ्जनका नस लेना तथा अधप खेद दे कर दुग्ध और जलका परिषेचनपूर्वक मूंगके जूसके साथ सेवन करना चाहिये। नासास्रावरोगमें दोनों नासारन्ध्रमें चूर्णनस्य और नाड़ी द्वारा प्रदेय अवपोड़ तथा देवदारु और चिता द्वारा तीक्ष्ण धूम और छागमांस हितकारक है।

(भावप्र० नासारोगाधि०)

भैषज्यरत्नावलीमें इस प्रकार लिखा है—सब प्रकारके पीनसरोगोंमें पहले निर्वातस्थानमें अवस्थान, स्नेह, स्वेद, धूम और गण्डूषको व्यवस्था करना उचित है। इस रोगमें गुरु और उष्ण वस्त्र द्वारा मस्तक आच्छादन एवं लघु, उष्ण, लवणरस और स्निग्ध द्रव्यका भोजन करना आवश्यक है। पञ्चमूल सिद्ध, दुग्ध, चितामूल, हरीतकी, घृत, पुरातनगुड़ और षड़्यूष ये सब पीनसनाशक हैं। व्योषाद्यचूर्ण, पाठादितैल, व्याघ्रोतैल भी नासारोगमें हितकर है। नाकमें यदि क्रमि हो जाय, तो क्रमिनाशक औषधको गोमूत्रमें पीस कर नाकमें प्रयोग करे और क्रमि नाशक औषधको सिद्ध कर उससे नाक साफ करे। नासिका सम्बन्धीय अन्य रोगोंको दोषानुसारसे यथाविधि चिकित्सा करनी चाहिये। पुरातनगुड़ १०० पल, क्वाथके लिये चितामूल ५० पल, जल ५० सेर, शेष १२॥ सेर, गुलञ्च ५० पल, जल ५० सेर, शेष १२॥ सेर; इन सब द्रव्योंको एकत्र कर उसमें गुड़ घोल दे, पीछे छान कर हरीतकीका चूर्ण ८ सेर दे कर पाक करे। पाक सिद्ध हो जाने पर उसमें सोंठ, पीपर, मिर्च, दारचीनी, तेजपत्ता और इलायची प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल और यवक्षार ४ तोला डाल दे। दूसरे दिन उसमें १ सेर मधु मिलावे। अग्निके बलका विचार कर २ तोलेसे ४ तोला तक इस औषधके सेवनका परिमाण है। इसके सेवन करनेसे नासारोग आदि जाते रहते हैं। इस औषधका नाम चित्रक-हरीतकी है। (भैषज्यरत्ना० नासारोगाधि०)

नासाग्र (सं० क्लो०) नासायाः अग्रं। नासिकाका अग्रभाग, नाकका अगला भाग।

नासाछिन्नी (सं० स्त्री०) छिद-भावे क्त, नासायां छिद्रं छेदो यस्याः, ङीप्। पूर्णिका पक्षी, एक प्रकारकी चिड़िया जिसकी चोंचका दोहरी होना माना जाता है।

नासाज्वर (सं० पु०) वह ज्वर जो नाकके भीतर प्याजकी गांठकी तरहका फोड़ा होनेसे होता है। इस ज्वरमें सिर और रीढ़में बड़ा दर्द होता है। नासाज्वर हुआ है वा नहीं, यदि जानना हो, तो नाभिके मूलमें हाथको कनिष्ठाङ्गुलि रख कर वृद्धाङ्गुलिसे नाक छूनी चाहिए। छूते समय यदि पीठ तथा गुह्यमें दर्द मालूम पड़े, तो नासाज्वर हुआ है, ऐसा जानना चाहिये। जब वह फोड़ा पक जाय, तब कुछ दूबको नाकके पुटमें घुसेड़ कर उसे चारों तरफ घुमावे; ऐसा करनेसे घासके आघातसे रक्तकोष कट कर दूषित रक्त निकल जायगा और दर्द तथा ज्वर दब जायगा।

नासादारु (सं० क्लो०) द्वारोर्ध्वस्थित काष्ठ, द्वारके ऊपर लगी हुई लकड़ी, भरेटा।

नासानाह (सं० पु०) नासिकारोगभेद, नाककी एक बीमारी। इसमें वायुके साथ कफ मिल कर नाकके छेदको बन्द कर देता है। नासागतरोग देखो।

नासान्तिक (सं० त्रि०) नासिका पर्यन्त, नाक तक।

नासापरिशोष (सं० पु०) सुश्रुतोक्त नासागतरोगभेद।

नासागतरोग देखो।

नासापाक (सं० पु०) नासारोगभेद, नाककी एक बीमारी। इसमें नाकमें बहुतसी फुंसियाँ निकलनेके कारण नाक पक जाती है।

नासापुट (सं० पु०) १ नासिकाका मध्यगतरोग, नाकके भीतर होनेवाला एक रोग। २ नाकका वह चमड़ा जो छेदोंके किनारे परदेका काम देता है, नथना।

नासावेध (सं० पु०) नाकका वह छेद जिसमें नथ आदि पहनी जाती है।

नासायोनि (सं० पु०) वह नपुंसक जिसे घ्राण करने पर उद्दीपन हो, सौगन्धिक नपुंसक।

नासारक्तपित्त (सं० स्त्री०) पित्ताधिक्यके कारण नाकसे रक्तका गिरना। नासागतरोग देखो।

नासारोग (सं० पु०) नाकमें होनेवाला रोग। नासागतरोग देखो।

नासार्शस् (सं० स्त्री०) नाकके भीतर फोड़ाका होना। नासाज्वर देखो।

नासालु (सं० पु०) १ कट्फलवृक्ष, कायफल। २ जातीफलवृक्ष।

नासावंश (सं० पु०) नासा तन्मध्यभागो वंश इव उच्चत्वात्। नासापृष्ठस्थित मध्यभाग, नाकके ऊपर बीचोबीच गई हुई पतली हड्डी, नाकका बाँसा।

नासाविवर (सं० स्त्री०) नासाया विवरं। नासिका छिद्र, नाकका छेद।

नासासंवेदन (सं० पु०) संविद्यतेऽनेनेति सं-विद-ल्युट्, नासायाः संवेदनः। काण्डीरलता, काण्डवेल, चिटपिटा, चिचड़ी।

नासास्राव (सं० पु०) नासारोगभेद, नाकका एक रोग जिसमें नाकसे सफेद और पीला मवाद निकला करता है।

नासिक—१ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० १९° ३५´ और २०° ५२´ उ० तथा देशा० ७३° १५´ और ७४° ५६´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५८५० वर्गमील है। इसके उत्तरमें खान्देश जिला, पूर्वमें निजामराज्य, दक्षिणमें अहमदनगर और पश्चिममें थाना जिला, धरमपुर और सुर्गानराज्य है। जिलेके विचारविभागका सदर नासिकमें ही है। सारा जिला पश्चिमांश छोड़ कर समुद्रपृष्ठसे कहीं १३०० और कहीं २००० फुट ऊंचे पर अवस्थित है। इसका पश्चिमांश दाङ्ग और पूर्वांश देश कहलाता है। इस अंशमें अनेक समतल क्षेत्र हैं जो कृषियोग्य और उर्वरा हैं। नासिककी प्रधान नदी ताप्ती और गोदावरी है। इसके अलावा गोदावरीकी और भी कई एक शाखा नदियां नासिकके दक्षिणमें और ताप्तीकी उपनदियां उत्तरमें प्रवाहित हैं। यहांके प्रायः सभी पर्वत पूर्वपश्चिममें लम्बमान हैं। केवल सह्याद्रि पहाड़ उत्तर-दक्षिणमें लम्बा है। महाराष्ट्रोंके साथ जिस समय युद्ध होता था, उस समयके बनाए हुए अनेक दुर्ग यहां विद्यमान हैं। ये सब दुर्ग विगत कालके महाराष्ट्र-गौरवका परिचय देते हैं, यहां खनिज पदार्थ प्रायः कुछ भी देखनेमें नहीं आता। साधारणतः यहांकी जमीन पथरीली है। नासिक जिलेमें वृक्षादिकी संख्या अधिक नहीं है। जङ्गली जन्तुओंमें बाघ, भालू और नाना जातीय हरिण देखनेमें आते हैं।

दूसरी शताब्दीके पहलेसे ले कर दूसरी शताब्दीके अन्त तक बौद्धधर्मावलम्बी अन्ध्रभृत्यके वंशधर इस जिलेके शासनकर्त्ता वा राजा थे। प्राचीन हिन्दुओंमेंसे चालुक्य, राठोर, चन्देल और देवगिरिके यादववंशधरोंके यहां रहनेका काफी प्रमाण मिलता है। मुसलमानी शासनकालमें (१२९५से १७६० ई० तक) यह स्थान कालक्रमसे देवगिरि (दौलताबाद)के शासनकर्त्ता, कुलवर्गके बाह्मनिराज, अहमदनगरके निजामशाहीवंश और औरङ्गाबादके मुगलोंके अधीन रहा। पीछे १७६०से १८१८ ई० तक महाराष्ट्रोंने इस पर अपना पूरा अधिकार जमाया। तदनन्तर यह बृटिश गवर्मेण्टके शासनाधीन हुआ। अंगरेजी अधिकार होनेके साथ ही उन्होंने यहां गो-हत्या कर डाली जिससे यहांके सबके सब बागी हो गये। पीछे १८५७ ई०में भागोजीके कर्तृत्वाधीन रोहिला, अरबी और भीलोंने मिल कर भारी उपद्रव शुरू कर दिया था। यहांके लोग साधारणतः नासिक शहरमें रहना पसन्द करते हैं। सह्याद्रि तराई प्रदेशमें जो सब लोग रहते हैं, उनमेंसे कितने ऐसे हैं जो एक जगह अधिक दिन नहीं रहते। स्थान परिवर्त्तन कर रहना ही इन लोगोंका अभ्यास है। क्योंकि वहांकी जमीन हर दूसरे वर्षमें फसल देती है। ग्रीष्मकालमें ये लोग वनमें जा कर लकड़ी काटते और उसे बाजारमें ला कर बेचते हैं। जब अनाज नहीं मिलता, तब मछली, फल और वृक्षका मूल खा कर जीवन बसर करते हैं। पहाड़ी जातियोंमें भील, कोली, ठाकुर, वाली और काठड़ी प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे कोली लोग सबसे सभ्य हैं और काठड़ी सबसे दरिद्र। मुसलमान और मारवाड़ी दूसरी जगहसे आ कर यहां बस गये हैं। नासिक जिलेमें वर्ष भरमें केवल एक ही बार फसल

लगती है। बाजरा नामक अनाज ही यहांका प्रधान खाद्य है। १३९६से १४०७ ई० तक यहां जो घोर दुर्भिक्ष पड़ा था, उससे नासिक जिला बहुत क्षतिग्रस्त हो गया था। उस दुर्भिक्षका नाम 'दुर्गादेवी दुर्भिक्ष' था जिसे वहांके लोग आज तक भी भूले नहीं हैं। बीच बीचमें यहां प्रायः दुर्भिक्ष हो जाया करता है। १८७२ ई०में यहां बहुत भयानक बाढ़ आई थी जिससे हजारों की जान गई थीं और जात ग्रस्यादिका भी विशेष अनिष्ट हुआ था। १८७६।७७ ई०का दुर्भिक्ष भी उल्लेख योग्य है।

इसी जिलेमें येवला नामक एक स्थान है जहां सूत और रेशमके अच्छे अच्छे कपड़े बनते हैं और बम्बई, पूना, सतारा आदि स्थानोंमें भेजे जाते हैं। नासिकमें तांबे, पीतल और चांदीके बरतन भी बनते हैं। अभी रेलपथ हो जानेके कारण वाणिज्यव्यवसायकी विशेष सुविधा हो गई है। जिलेमें १० शहर और १६३८ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या आठ लाखसे अधिक है। शासनकार्य-की सुविधाके लिये जिला १२ तालुकोंमें विभक्त है। शासनकार्यका कुल भार कलक्टर और तीन सहका-रियोंके हाथ है। कलक्टरके अधीन जज और सब-जज हैं। इनके सिवा और भी २५ कर्मचारी हैं जो विचार-कार्य सम्पादन करते हैं। नासिक जिला दूसरे जिलाओं की अपेक्षा विद्यामें बहुत पीछा पड़ा हुआ है। पर धीरे धीरे लोगोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट होता जा रहा है। आजकल जिले भरमें तीन सौसे ज्यादा स्कूल और बारह चिकित्सालय हैं। यहांका जलवायु कुल मिला कर अच्छा है।

२ उक्त जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १९° ४८' से २०° ७' उ० और देशा० ७३° २५' से ७३° ५८' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४७० वर्गमील और जन-संख्या करीब एक लाखकी है। इसमें १ शहर और १२५ ग्राम लगते हैं। तालुकको आबहवा स्वास्थ्यकर है।

३ नासिक तालुकका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २०° उ० और देशा० ७३° ४७' पू०में अवस्थित है। जन-संख्या बीस हजारसे अधिक है। पहले यहां उत्कृष्ट कागज बनता था, अभी वह व्यवसाय कुछ ढीला पड़ गया है। पीतल और तांबेके व्यवसायके लिये बम्बई प्रदेश भरमें नासिक नगर ही मशहूर है। यहांके भूत-पूर्व पेशवाके नूतन और पुरातन राजभवनमें म्युनिस-पलिटी और कलक्टरी आफिस स्थापित हुआ है। यह नगर बहुत पहलेसे हिन्दुओंका एक पवित्र तीर्थ माना जाता है। रामायणवर्णित पञ्चवटीवन भी नासिकके पास ही गोदावरीके दूसरे किनारे अवस्थित है। कहते हैं, कि सूर्यवंशावतंश रामचन्द्र पिताकी आज्ञा पालन करनेके लिये जानकी और लक्ष्मणके साथ इसी नासिक नगरमें रहे थे। उसी समय लक्ष्मणने रावणकी बहन शूर्पनखाके नाक-कान काट डाले थे। यहांकी गोदा-वरी नदीका दृश्य बहुत मनोहर है। बहुसंख्यक हिन्दू-मन्दिर हिन्दू-देवदेवीकी मूर्त्तियोंके साथ गोदावरी नदी-के दोनों किनारे धवलाकारमें विद्यमान हैं। इन सब देवालयोंमेंसे पञ्चवटीमें जो देवालय है उसमें श्रीराम और सीतादेवीकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। १७८२ ई०में रङ्गराव ओढ़िकारने उस मूर्त्तिकी स्थापना की थी। पञ्चवटीमें रामेश्वरमहादेव नामक एक और मन्दिर है। लोग कहते हैं, कि पेशवा बालाजी बाजीरावके नारशङ्कर-राज बहादुर नामक एक प्रसिद्ध कर्मचारीने १७५४ ई०में उक्त मन्दिरका निर्माण किया है। नासिकके सुन्दर-नारायण नामक मन्दिरमें लक्ष्मी और नारायणकी प्रति-मूर्त्ति खोदित हैं। मन्दिरके सामने रामकुण्ड और अस्तिविलय तीर्थ भी है। एक दूसरे मन्दिरमें लक्ष्मण मूर्त्ति विद्यमान है। इसके अलावा एक गुहामें सीता-देवीकी प्रतिमूर्त्ति खोदित है जिसे सीतागुहा कहते हैं। इस प्रकार कितने देवदेवियोंके मन्दिरसे स्थान परिपूर्ण है। यहां बहुतसी शिलालिपियां भी पाई गई हैं। कोङ्कणस्थ वा चित्तपावन ब्राह्मणोंकी संख्या ही यहां अधिक है। संस्कृतचर्चाके कारण यह स्थान बहुत मशहूर है। कुछ प्रसिद्ध अध्यापकोंकी संस्कृत-चतु-ष्पाठीमें बहुतेरे विद्यार्थी विद्याध्ययन करते हैं। यह स्थान बहुत स्वास्थ्यकर है।

नासिकको बहु प्राचीन शिलालिपियोंसे जो ऐति-हासिक सत्य निकला है, वह इस प्रकार है,—

प्रथम गौतमीपुत्र ; इनका प्रकृत नाम शातकर्णि था।

इनके एक पुत्र थे जिनका नाम था पुड़ुमायो वासिष्ठिपुत्त वा वासिष्ठीपुत्र। यह वासिष्ठी गौतमीपुत्रकी स्त्री मानी गई हैं। पूर्वतन प्रत्नतत्त्वविदोंने लिखा है, कि पुड़ुमायो गौतमीपुत्रके पिता थे, किन्तु पुड़ुमायो गौतमी पुत्रके पिता न हो कर पुत्र होते हैं। इस शिलालिपिमें गौतमीको एक राजाकी माता और एक राजाकी पितामही तथा वासिष्ठीको केवल एक राजाकी माता बतलाया है। अतएव इन दोनोंमें गौतमी बड़ी मानी जाती हैं। और भी अन्यान्य शिलालिपियोंको देख कर डाक्टर भण्डारकरने बतलाया है, कि पुड़ुमायो पिताके राजत्वकालमें अन्यत्र सिंहासन पर बैठे थे। उनके मतमें पुड़ुमायो नासिकके उस अंशमें और उनके पिता गौतमीपुत्र शातकर्णि अपनी राजधानीमें राज्य करते थे। गौतमीपुत्र श्रीयज्ञ शातकर्णि नामक एक राजाने इस वंशमें जन्म ग्रहण किया। उनका उल्लेख कितनी शिलालिपियोंमें देखनेमें आता है। ज्येष्ठ गौतमीपुत्र, "सातवाहन वंशके यशःप्रतिष्ठाता" ऐसा वर्णित रहनेके कारण अनुमान किया जाता है, कि पुराणोक्त अन्ध्रभृत्यवंश ही सातवाहन नामसे प्रसिद्ध था।

गौतमीपुत्र धनकटकके अधिकारी वा प्रभु थे जनरल कनिंहम इस नगरको कृष्णानदीके किनारे मन्द्राजप्रदेशके अन्तर्गत गुण्टूर जिलेमें अवस्थित पुरातन धरणिकोट बतलाते हैं।

उपरोक्त तीन राजाओंके सिवा इस वंशके कृष्णराज नामक एक और राजाका नाम मिलता है। उक्त कृष्णराज और गौतमीपुत्रके मध्यमें अन्यान्य कितने राजाओंने राज्य किया था।

पुराणमें इन दो राजाओंके मध्य और भी १८ राजाओंका नामोल्लेख है। कृष्णराज आदिकी राजधानी नासिकमें और गोमतीपुत्र आदिकी राजधानी गोवर्द्धन नगरमें थी ऐसा अनुमान किया जाता है। विशेषतः एक शिलालिपिमें लिखा है, कि गौतमीपुत्रने खगारातवंशका उच्छेद कर निज वंशका गौरव स्थापन किया। अतएव ऐसा बोध होता है, कि कृष्णराजके राजत्व करनेके समय खगारातवंशधरोंने उन्हें राज्यच्युत करके उनका साम्राज्य छीन लिया। पीछे गौतमीपुत्रने उनके हाथसे पितृराज्यका उद्धार किया।

एक दूसरी शिलालिपिमें लिखा है, कि वीरसेन नामक एक आभीर वा गोपवंशीय एक राजा यहां राज्य करते थे। पुराणमें अन्ध्रभृत्यवंशके उल्लेखके बाद ही इस वंशके राजाओंके नाम हैं। इससे बोध होता है, कि वे समसामयिक राजा थे। आभीर लोग अत्यन्त प्रभावशाली थे, ऐसा जान नहीं पड़ता। केवल नासिकराज्यका यही अंश उनके शासनाधीन था।

१लो शताब्दीमें भारतवर्षके इस अंशमें बौद्धधर्म प्रचलित था। वर्षाके समय भारतवर्षके नाना स्थानोंसे बौद्धभिक्षुक यहांके त्रिरश्मि नामक स्थानमें इकट्ठे होते थे। आस पासके लोग उन्हें वस्त्रादि दिया करते थे। प्रधानतः शिल्पकार और कृषक लोग ही बौद्धधर्मावलम्बी थे। पर हां, ब्राह्मणधर्मका भी इस समय अधःपतन नहीं हुआ था। इस बौद्ध शिलालिपिमें बहुत सम्मानके साथ ब्राह्मणोंकी कथा लिखी है। गौतमीपुत्र 'ब्राह्मणरक्षक' नाम धारण कर अपनेको बहुत गौरवान्वित समझते थे। विदेशीय भिन्न जातियोंने ब्राह्मणधर्म और जाति-विभागके ऊपर जो आघात पहुंचाया था, उसे गौतमीपुत्रने उच्छेद कर डाला था।

नासिक शहरमें १८६४ ई०को म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। यहांका जलवायु स्वास्थ्यकर और मनोहर है। यहां एक हाईस्कूल, दो अस्पताल, दो सब-जजकी अदालत और एक चिकित्सालय है।

नासिकन्धम (सं० त्रि०) नासिका धमति शब्दायमानां करोति नासिका-ध्मा-खश् ततो पूर्वपदस्य ह्रस्वः मुम् च। जो नाकसे शब्द करता है।

नासिकन्धय (सं० त्रि०) नासिका नासाख्य जलं धयति पिबतीति धेट्-पाने नासिका धेट् खश् ततो पूर्वह्रस्वः मुम् च। नासिका द्वारा जलपानकारक, जो नाकसे जल पीता हो।

नासिका (सं० स्त्री०) नासते शब्दायते इति नास-शब्दे-ण्वुल्, टाप्, टापि-अत इत्वं (ण्वुल् तृचौ। पा ३।१।१३३) घ्राणेन्द्रिय, नाक। पर्याय—घ्राण, गन्धवहा, घोणा, नासा, शिङ्घिणी, नासिक्य, नस्या, गन्धनाली, गन्धवन्धा और नक्रा।

नासिकाके जिस अंशसे गन्ध ली जाती है, वह

नासिकाके छिद्राभ्यन्तरमें है। मुखके ऊपर नासिकाका जो अंश उन्नतभावसे देखनेमें आता है, उसका काम केवल गन्धपरिपूर्ण वायुको शरीरके भीतर लाना है नासिकामें जितने प्रकारके यन्त्र हैं उनमेंसे शैङ्घाण स्नायु सबसे विशेष आवश्यक है। वह स्नायु मस्तिष्कके शैङ्घाणकन्द (Bulb) से निकल कर नासिकाभ्यन्तरस्थ अस्थिविशेषके मध्य होती हुई (Ethmoid bone) उक्त अस्थि और अन्य एक अस्थि (Terbinated bone)के विस्तृत अंशके मध्य शाखा प्रशाखाओंमें विभक्त हुई है। इस स्नायुका घ्राणग्राह्य मुखसमूह एक अत्यन्त सूक्ष्म चर्मके ऊपर अवस्थित है। वह चर्म समस्त नासारन्ध्रमें सूतकी तरह फैला हुआ है और इसमें श्लेष्मा कफ द्वारा सरस रहता है। भिन्न भिन्न जीवोंकी घ्राणशक्ति भिन्न भिन्न प्रकारकी होती है। कीट और अन्यान्य अनेक क्षुद्र क्षुद्र जीवोंकी जो घ्राणशक्ति है, वह साफ साफ देखनेमें आती है। किन्तु जिस यन्त्र द्वारा वे इसका अनुभव करते हैं, वह आज भी अज्ञात है। उन्नततर जीवोंके मध्य पूर्वोक्त दो प्रकारके अस्थिविस्तारसे न्यूनाधिक्यके अनुसार घ्राणशक्तिका व्यतिक्रम देखनेमें आता है। अन्यान्य जीवोंके साथ तुलनामें मनुष्यकी उक्त दो अस्थियोंका विस्तार बहुत कम है। उन सब जीवोंमें-से कितने ऐसे जीव हैं जिनकी उक्त दो अस्थियां मुखके भीतरकी ओर बहुत दूर तक लम्बमान हैं और उन अस्थियोंका पतला स्तरसमूह शाखा प्रशाखाओंमें विभक्त है तथा एक दूसरेसे जुड़ कर बड़े आयतनका हो गया है। लेकिन प्रत्येक विभिन्न प्रकारके जीवोंके गन्ध लेनेके विषयमें एक प्रकारकी नैसर्गिक क्षमता देखी जाती है। जैसे, तृणभुक् जन्तुओंके भिन्न भिन्न तृणोंकी गन्धका भलीभांति अनुभव कर सकने पर भी जैवद्रव्यकी गन्ध-अनुमान-शक्ति उनमें कुछ भी देखनेमें नहीं आती। फिर मांसभोजिगण शेषोक्त द्रव्यकी गन्धके सिवा अन्य गन्धका अनुभव नहीं कर सकते। जिस जीवके जीवनधारणके लिये जिस द्रव्यकी आवश्यकता है, उस द्रव्यके अनन्य इन्द्रियोंके अन्तरालमें रहने पर भी घ्राणेन्द्रिय अनायास ही उसका अस्तित्व निर्णय कर सकती है। मनुष्यजाति यद्यपि अनेक द्रव्योंकी गन्ध अनुभव कर सकती है, तो भी किसी द्रव्यकी अति सामान्य गन्धको उसकी घ्राणेन्द्रिय ग्राह्य नहीं कर सकती। मनुष्य और अन्यान्य जीवोंके मध्य गन्ध-अनुभव-शक्तिकी जो इतनी पृथक्ता देखी जाती है, उसका एकमात्र कारण यह है कि मनुष्य गन्धग्रहणशक्तिका अधिक अभ्यास नहीं करते। अमेरिका और एशियाके उत्तर भागके शिकारियोंकी घ्राणशक्ति इतनी प्रबल है, कि उनके शिकारी कुत्तोंकी घ्राणशक्तिकी अपेक्षा उनकी घ्राणशक्ति उतनी कम नहीं है।

पूर्वोक्त शैङ्घाण स्नायु (Olfactory nerves)की गन्ध अनुभव-शक्तिके सिवा यन्त्रणा वा अन्य किसी प्रकारके चैतन्यलाभ करनेकी क्षमता नहीं है। घ्राणेन्द्रिय रसनेन्द्रियके साथ इस प्रकार संलग्न है कि साधारणतः जो हम लोगोंकी घ्राणेन्द्रियका उपयोगी है, वह शरीरपोषक है और जो घ्राणेन्द्रियका अतृप्तिकर है, वह शरीरका अपचयकारक है, इसी घ्राणेन्द्रिय द्वारा अनेक जीवजन्तु अपना अपना खाद्य चुन लेते हैं।

नासिकाग्र (सं० क्ली०) नासिकायाः अग्रं। नासिकाका अग्रभाग, नाकका अगला भाग।

नासिकापाक—नासापाक देखो।

नासिकापुट—नासापुट देखो।

नासिकामल (सं० क्ली०) नासिकायाः मलम्। नासास्थित मल, पोटा, नेटा। पर्याय—शिङ्घाणक, शिङ्घाण, शिङ्घण और सिंहान।

नासिकाशब्द (सं० पु०) नाकका शब्द, वह आवाज जो नाकके द्वारा उत्पन्न हो।

नासिक्य (सं० क्ली०) नासिका एव नासिका स्वार्थे ष्यञ्। १ नासिका, नाक। २ दक्षिण देशभेद, दक्षिणका एक देश, नासिक। ३ अश्विनीकुमारद्वय। इस अर्थमें यह शब्द नित्य बहुवचनान्त है। (त्रि०) ४ नासाभव, नाकसे उत्पन्न।

नासिक्यक (सं० क्ली०) नासिक्यमेव नासिक्य स्वार्थे कन्। नासिका, नाक।

नासीर (सं० क्ली० नास् शब्दे भावे क्विप्, नासा शब्देन ईर्त्ते गच्छतीति ईर गतौ क। १ सेनानायकके आगे चलनेवाला दल यह जयशब्द उच्चारण करते चलता है,

इसीसे इसका नाम नासीर पड़ा है। (त्रि०) २ आगे चलनेवाला।

नासूर (अ० पु०) घाव, फोड़े आदिके भीतर दूर तक गया हुआ नलीके जैसा छेद जिससे बराबर मवाद निकला करता है और जिसके कारण घाव जल्दी अच्छा नहीं होता, नाड़ीव्रण।

नास्ति (सं० अव्य०) न-अस्ति, अस्तीति विभक्तिप्रतिरूपमव्ययं 'सहसुपेति' नशब्देन समासः। अविद्यमानता, नहीं।

नास्तिक (सं० पु०) नास्ति परलोक ईश्वरोवेति मतिर्यस्य इति ठक् (अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः। पा ४।४।६०) अथवा नास्ति परलोको यज्ञादिफलं ईश्वरो वा इत्यादि वाक्येन कायति शब्दायते इति कै-ड। पाषण्ड, ईश्वर-नास्तित्ववादी। जो ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते, उन्हें नास्तिक कहते है। वेदाप्रामाण्यवादी अर्थात् जो वेदका प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते, हिन्दूशास्त्रके मतसे वे भी नास्तिक कहलाते हैं।

"योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः॥"
(मनु २।११)

जो सब द्विज हेतुशास्त्र अर्थात् तर्कविद्याका आश्रय ले कर धर्मके मूलस्वरूप वेद और श्रुतिको अमान्य करते हैं, वे सब वेदनिन्दक नास्तिक पदवाच्य हैं। ऐसे मनुष्योंके साथ यजनयाजनदान प्रतिग्रहादि किसी विषयमें कोई सम्पर्क नहीं रखना चाहिये। नास्तिक शब्दके पर्याय ये हैं—बार्हस्पत्य, चार्वाक और लोकायतिक।

नास्तिक ६ प्रकारका है—माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक, वैभाषिक, चार्वाक और दिगम्बर। चार्वाक, बौद्ध और जैनको ही हिन्दूशास्त्रकारगण नास्तिक बतलाते हैं।

सांख्यादिदर्शनमें नास्तिकके मत खण्डनको जगह बौद्धोंका मत ही खण्डित हुआ है।

नास्तिकगण जो प्रत्यक्ष प्रमाण है, केवल उसीको स्वीकार करते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाणके अतिरिक्त और कोई प्रमाण स्वीकार नहीं करते। ये लोग जो अनुमानके सिवा और कुछ भी नहीं मानते, वह प्रायः सभी दर्शनोंमें खण्डित हुआ है।

चार्वाकके मतसे—आत्मा वा परकाल कुछ भी नहीं है। इस मतसे स्थूलदेह ही आत्मा है, देहनाशके साथ ही आत्माका नाश हुआ करता है। चार्वाकने, वेदका प्रामाण्य स्वीकार करनेकी बात तो दूर रहे, निन्दाकी तौर पर कहा है, कि भण्ड, धूर्त और राक्षस इन तीनोंने मिल कर वेदकी रचना की है। अश्वमेधयज्ञमें यजमानपत्नी अश्वशिश्न ग्रहण करे, इत्यादि विषय भण्ड-रचित, स्वर्गनरकादि धूर्त-प्रणीत और मद्यमांसादिका विषय निशाचरकल्पित है। इसी मतका प्रतिपादन करके चार्वाक नास्तिक नामसे अभिहित हुए हैं।

चार्वाक देखो।

जो ईश्वरका अस्तित्व और वेदका प्रमाण स्वीकार नहीं करते वे ही नास्तिक हैं, इस व्युत्पत्तिके अनुसार चार्वाक ही प्रकृत नास्तिक पदवाच्य हैं।

सर्वदर्शन संग्रहकारने माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक इन चार श्रेणीके बौद्धको ही नास्तिक बतलाया है। यथार्थमें ये लोग नास्तिक हैं, वा नहीं इनका निर्णय करना कठिन है। जगत्स्रष्ट है वा अनादि; ईश्वर हैं वा नहीं, बौद्धलोग इन सब गूढ़ रहस्योंकी आलोचना नहीं करते; इन लोगोंका कहना है, कि जो कुछ है, वह प्रत्यक्ष है। यही स्वीकार कर नामरूपकी आलोचनासे ही बौद्धदर्शन समाप्त है। इस मतमें जगत्को दुःखमय माना है। दुःखका कारण क्या है, किस उपायसे दुःखका विनाश होता है, इन्हीं सब प्रश्नोंकी मीमांसामें बौद्धदर्शन सम्पूर्ण होता है। किन्तु यदि गौर कर देखा जाय, तो मालूम पड़ता है कि बौद्धदर्शन आत्माका अस्वीकार करता है। ये लोग अन्यान्य दर्शनोंके जैसा कर्म और कर्मफलका स्वीकार करते हैं। कर्म और वासना पुनर्जन्मका कारण है। वासनाके निराश होनेसे जन्म नहीं होता, वासनाके रहनेसे ही जन्म होगा। ये लोग आत्माका तो स्वीकार नहीं करते, लेकिन पुनर्जन्म मानते हैं। इनका यः मत विरुद्धसा जान पड़ता है। किन्तु आत्माके नहीं रहने पर भी जीवप्रवाहके

रूपमें जन्म जन्मान्तर रह सकता है। इसीसे आत्माका स्वीकार नहीं करने पर भी जन्मान्तरका स्वीकार किया जा सकता है, इसमें सन्देह नहीं। इसे प्राचीन बौद्धमत जानना चाहिये। वेदान्तदर्शनमें शङ्कराचार्यने बौद्धमत-खण्डनकी जगह लिखा है, कि बुद्धदेवके एक होने पर भी उनके शिष्योंके बुद्धिदोषसे उनका मत अनेक प्रकारका हो गया है। उनके शिष्योंमेंसे जिसने जैसा समझा था, उसने उसी प्रकारका सिद्धान्त ग्रन्थ प्रस्तुत किया। प्रथमतः इनमेंसे तीन प्रकारके वादी देखनेमें आते हैं। कोई कोई सर्वास्तित्ववादी है, कोई केवल विज्ञानास्तित्ववादी है और कोई सर्व शून्यवादी। जो सर्वास्तित्ववादी हैं, उनका कहना है, कि सब कुछ है, घटपटादि बाह्यपदार्थ भी है, ज्ञानादि अन्तरके पदार्थ भी हैं, बाहरमें भूत और भौतिक, अन्तरमें चित्त और चैत्त है। द्वितीय दलका कहना है, कि बाहरमें कुछ भी नहीं है, सब कुछ भीतरमें है। जो कुछ भीतर है, वही बाहरके जैसा प्रतीयमान होता है। तृतीय दल कहता है, कि अन्तरका विज्ञान भी असत् है। इनके मतसे भूत और रूपादि ग्राहक चक्षुप्रभृति भौतिक है, भूत, पार्थिव, जलीय, तैजस तथा वायवीय परमाणुभूतपदवाच्य है, ये यथाक्रमसे खर, स्नेह, उष्ण और चञ्चल स्वभावान्वित हैं। इन सब परमाणुओंने परस्पर संघातप्राप्त हो कर परिदृश्यमान पृथिव्यादिका उत्पादन किया है। रूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञा और संस्कार ये पांच स्कन्ध हैं। ये सब अध्यात्म अर्थात् आन्तर माने जाते हैं। इन लोगोंका मत है, कि संघातजनक सभी पदार्थ अचेतन हैं। परमाणु भी अचेतन हैं और स्कन्ध भी। भोग करता है, शासन करता है और नियम चलाता है, ऐसा कोई स्थिरचेतन नहीं जो उनके प्रभावसे वे सब परमाणु संहत होते हों। विज्ञानके सिवा वे कोई स्थिर चेतन-आत्मा और ईश्वर नहीं मानते। उनका कहना है, कि परमाणु और स्कन्धका कर्त्ता और अध्यक्ष नहीं है। वे स्वतःप्रवृत्त तथा कार्योन्मुख होते हैं और स्वकार्यसाधन करते हैं। बौद्धदर्शन देखो।

दिगम्बरगण भी नास्तिक माने जाते हैं। वेदान्तदर्शनमें ये सब मत खण्डित हुए हैं। यहां तक कि वैशेषिकदर्शन अर्द्धवैनाशिक (अर्द्धनास्तिक) माना गया है।

पाश्चात्य दर्शनविज्ञानोंमेंसे जनष्टुमार्ट मिल और बेन आदि नास्तिक हैं। पाश्चात्य दर्शन देखो।

नास्तिकता (सं० स्त्री०) नास्तिकस्य भावः भावे तल, ततो टाप्। नास्तिकका धर्म, नास्तिकका भाव, ईश्वर, परलोक आदिको न माननेकी बुद्धि।

नास्तिकदर्शन (सं० पु०) नास्तिकोंका दर्शन, दर्शन-दोष।

नास्तिक्य (सं० क्लो०) नास्तिकस्य भावः ष्यञ्। नास्तिकता, ईश्वर परलोक आदिमें अविश्वास।

नास्तितद (सं० पु०) सहकारतरु, आम्रवृक्ष, आमका पेड़।

नास्तिता (सं० स्त्री०) नास्ति तल् टाप्। नास्तित्व, अविद्यमानता।

नास्तिद (सं० पु०) आम्रवृक्ष, आमका पेड़।

नास्तिवाद (सं० पु०) नास्तीति वादः। नास्तिकोंके विरु... और पक्ष समर्थनमें वादानुवाद।

नास्य (सं० त्रि०) नासायां भवं शरीरावयवत्वात् यत्। १ नासाभव, नासिकासे उत्पन्न। २ नासिकासम्बन्धी, नाकका। (क्लो०) ३ बैलकी नाकमें लगी हुई रस्सी।

नाह (सं० पु०) नह बन्धने भावे घञ्। १ बन्धन। २ कूल, किनारा। ३ हिरन फँसानेका फन्दा।

नाह (सं० पु०) नाभि, पहियेका छेद।

नाहक (फा० क्रि० वि०) निष्प्रयोजन, बेमतलब, व्यर्थ, बेफायदा।

नाहन—१ पञ्जाबके अन्तर्गत एक देशीय राज्य। सर्मूर देखो।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० ३०° ३३ उ० और देशा० ७७° २०´ पू०के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग ६२५६ है। शिमला पहाड़से यह ४० मील दक्षिणमें पड़ता है। भारतीय राजधानियोंमें इस स्थानका दृश्य बहुत सुन्दर और मनोहर है। यह शहर एक ऊंचे पहाड़के ऊपर बसा हुआ है। कहते हैं, कि राजा कर्मप्रकाशने १६२१ ई०में इसे बसाया। नेपालयुद्धके समय १८१४ ई०में यह शहर अङ्गरेजोंके

हाथ लगा था। युद्धके समाप्त हो जाने पर यह पुनः समूरके राजाको लौटा दिया गया। शहरमें एक स्कूल, फौजी अस्पताल, कारागार और पुलिस ष्टेशन है। १८८१ ई०में राजा शमशेरप्रकाश जी० सी० एस० आई० यहां इटालियन ढंग पर शमशेरविला नामका एक भवन बना गये हैं।

नाहमूर (हिं० स्त्री०) अस्वीकार, इनकार, नहीं नहीं शब्द।

नाहर (हिं० पु०) १ सिंह, शेर। २ व्याघ्र, बाघ ३ टेसूका फूल।

नाहर—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने सं० १७५४के पूर्व बहुतसी कविताओंकी रचना की। इनकी कविता सराहनीय होती थी।

नाहरस्वांस (हिं० पु०) घोड़ोंकी एक बीमारी जिसमें उनका दम फूलता है।

नाहरू (हिं० पु०) नारू नामका रोग, नहरुवा।

नाहल (सं० पु०) नाहं पर्वतमिस्वरादिकं लाति आश्रयत्वेन गृह्णाति ला-क। म्लेच्छ जातिविशेष।

नाहिर—१४५० ई०को दिल्लीमें जो लोदिवंश राज्य करता था, उसीकी एक शाखा नाहिरवंश है। इन लोगोंने सुलेमानगिरि और सिन्धु नदीके मध्यवर्त्ती किन्तु तथा सीतापुर नामक स्थानमें स्वाधीन राज्य संस्थापन किया था। क्रमशः ये लोग डेराजातसे ले कर बहुत दूर तक अपना राज्य फैलानेमें समर्थ हुए थे। कालक्रमसे पर्वतवासी बेलुचियोंके पराक्रमसे ये लोग राज्यच्युत किये गये। इन्हीं आक्रमणकारियोंमेंसे गाजी खां नामक एक थे, जिन्होंने अपने नाम पर डेरागाजी खां नामका एक शहर बसाया था। नाहिरके राजाओंने १८वीं शताब्दीके प्रारम्भ तक डेरागाजी खांके दक्षिणांश पर शासन किया था।

नाहिल पुवाया—शाहजहानपुरका एक नगर। यहां १७७३ ई०में चन्दनराम कवि प्रादुर्भूत हुए थे। वे गौड़के राजा किशोरीसिंहके सभासद् थे। राजाके नाम पर उन्होंने किशोरीप्रकाश नामक एक पुस्तक लिखी थी। इसके सिवा उक्त कवि शृङ्गारसार, कल्लोलतरङ्गिणी, काव्याभरण, चन्दन-सत् सई और पथिकबोध नामक अनेक हिन्दी ग्रन्थ लिख गये हैं। उनके १२ छात्र थे जो सबके सब उत्कृष्ट कवि समझे जाते थे।

नाहीद बेगम—अकबरशाहके प्रधान उमरा मुहीब अली खांकी स्त्री और कासिम कोकाकी कन्या। कासिमके मरने पर उनकी स्त्रीने पहले मिरजा हुसेनके साथ, पीछे उसके मरने पर सिन्धुराज मिरजा ईसा तार्खान्के साथ विवाह किया था। ईसाके मरने पर उनके उत्तराधिकारी मिरजा बाँकी दोनों बेगमको बहुत तंग करने लगे। इस पर माता और कन्या बाँकीका नाश करनेके लिये षड़यन्त्र रचने लगीं। इसमें वे दोनों पकड़ी गईं, माता कैद कर ली गई और नाहीद बेगमने भक्करके शासनकर्त्ताका आश्रय लिया। बाद वे वहांसे अकबरके पास दिल्ली गईं और सारा विवरण उन्हें कह सुनाया। अकबरने बेगमके स्वामी मुहिब अलीको दलबलके साथ ठठा पर चढ़ाई करनेके लिये भेज दिया।

मुहिब अली देखो।

नाहुष (सं० पु०) नहुषस्यापत्यं पुमानिति नहुष-इञ् (अत इञ्। पा ४।१।९५) नहुषके पुत्र, ययातिराज।

नि (सं० अव्य०) नी-बाहुलकात् डि। उपसर्गविशेष, एक उपसर्ग जिसके लगनेसे शब्दोंमें इन अर्थोंकी विशेषता होती है—१ संघ वा समूह, जैसे, निकर; २ अधोभाव, जैसे, निपतित; ३ भृश, अत्यन्त, जैसे, निरुद्धीत; ४ आदेश, जैसे, निदेश; ५ नित्य, ६ कौशल; ७ बन्धन; ८ अन्तर्भाव; ९ समीप; १० दर्शन; ११ उपरम; १२ आश्रय जैसे, निविशिष्ट, निपुण, निबन्ध, निपीत, निकट, निदर्शन, निवृत्त, निलय। १३ संशय; १४ क्षेप; १५ दान; १६ मोच; १७ विन्यास; १८ निषेध।

नि (हिं० पु०) निषादस्वरका सङ्केत।

निआजी—अफगानोंका एक सम्प्रदाय। ये लोग बन्नू जिलेमें रहते हैं और अपनेको घोरके लोदी राजाओंके द्वितीय पुत्र निआजखांके वंशधर मानते हैं। उक्त लोदीवंशके राजाओंने ९५५ हिजिरीमें भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी और कुमायूनको जीत कर उसे अपनी सन्तानोंके बीच बांट दिया था।

ईशाखां जिला निआज खांके हिस्सेमें पड़ा। उनकी वंशावली आज भी उस स्थानमें विद्यमान है। उनके

४ लाख व्यवसायी सम्प्रदायोंमेंसे प्रायः १६००० लोगों का वास है जिनमेंसे अधिकांश ब्रज और सिन्धु नदीके चारों ओर बस गये हैं। इनकी गोविन्द नामकी एक और शाखा है जो खुरासान और ईरानमें व्यवसाय करती है।

निआमत (अ० स्त्री०) अलभ्य पदार्थ, अच्छा और बहुमूल्य पदार्थ।

निआमतउल्ला—मखजन इ-अफगानी और तारीख-इ-खाँ जहान् लोदी नामक दो पुस्तकके प्रणेता। वे दिल्लीश्वर जहांगीरके नकलनवीस थे।

निआमतपुर—महिसुर राज्यके अन्तर्गत सिमोगा जिलेका एक पल्लीग्राम। यह अक्षा० १४° ८' उ० और देशा० ७५° ३६' पू०के मध्य अवस्थित है। पार्श्वस्थप्रदेश और समतल-क्षेत्रवासियोंका यह प्रधान व्यवसाय-स्थान है। यहांके प्रायः सभी व्यवसायी लिङ्गायत सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त हैं। इसके चारों ओर तरह तरहका अनाज, चीनी और सुपारी उत्पन्न होती है।

निउगिनी—न्यू गिनी देखो।

निउजिलैण्ड—न्यूजीलैण्ड देखो।

निउटन आइजक—न्यूटन आइजक देखो।

निउ-फाउण्डलैण्ड—न्यूफाउण्डलैण्ड देखो।

निंटो (निङ्टी) आसामके अन्तर्गत एक नदी। यह जोहट जिलेके प्रान्तस्थित पर्वतमालासे निकल कर पूर्वकी ओर इरावती नदीमें जा मिली है। माघमासमें भी इसका विस्तार आठ सौ गजसे कम नहीं रहता। यहांसे अमरापुर जानेका एक सीधा रास्ता चला गया है। तुम्कुरके पास इस नदीके किनारे बृहत्शालवन है।

निंदरना (हिं० क्रि०) निन्दा करना, बदनाम करना, बुरा कहना।

निंदाई (हिं० स्त्री०) १ खेतके पौधोंके पासकी घास, तृण आदिको उखाड़ कर या काट कर अलग करनेका काम। २ निरानेकी मजदूरी।

निंदाना (हिं० क्रि०) निराना देखो।

निंदासा (हिं० वि०) जिसे नींद आ रही हो, उनींदा।

निः (सं० अव्य०) एक उपसर्ग। निस देखो।

निःआरिया (निआरिया)—नीच श्रेणीका हिन्दू। आरा-पलामूअञ्चलमें इनका वास है। ये लोग सुनारों या जौहरियोंके यहांसे राख, कूड़ा करकट आदि खरीद कर ले जाते और उसमेंसे माल निकाल कर अपना गुजारा करते हैं। निआरिया देखो।

निःकपट (सं० त्रि०) निष्कपट देखो।

निःकाम (सं० वि०) निष्काम देखो।

निःकारण (सं० वि०) कारणशून्य, अनिमित्त।

निःकासन (सं० क्ली०) निःसारण, बहिष्करण, अपसारण।

निःकासित (सं० त्रि०) निःसारित, निष्कासित, बहिष्कृत।

निःक्रामित (सं० त्रि०) निष्क्रामित, बहिष्कृत।

निःक्षत्र (सं० त्रि०) निर्गोऽस्ति क्षत्रियो यत्र। क्षत्रियरहित स्थान, क्षत्रियशून्य देशादि।

निःक्षत्रिय (सं० त्रि०) क्षत्रिय-शून्य देशादि।

निःक्षिप्त (सं० त्रि०) निर्-क्षिप्-क्त। प्रक्षिप्त, जो फेंका गया हो।

निःक्षेप (सं० पु०) निर्-क्षिप भावे घञ्। १ अर्पण, गच्छित रखनेकी क्रिया या भाव। २ अठारह विवादोंमेंसे एक विवाद। विश्वासपूर्वक अपना द्रव्य दूसरेके पास न्यास या गच्छित रखनेका ही नाम निःक्षेप है। वीरमित्रोदयमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—

"स्वद्रव्यं यत्र विस्रम्भात् निःक्षिपत्यविशङ्कितः।
निःक्षेपो नाम तत्प्रोक्तं व्यवहारपदं बुधैः॥"
(नारद)

अपना द्रव्य निःशङ्कचित्तसे विश्वासपूर्वक दूसरेके पास रखनेको निःक्षेप कहते हैं। पण्डितगण इसे व्यवहारपद कहा करते हैं; अर्थात् गच्छित द्रव्य आवश्यकतानुसार यदि न मिले और जिसके पास गच्छित रखा है, वह यदि फिर उसे न लौटा दे, तो इन सब कारणोंके लिये राजा विचार करते हैं इसीसे इसको व्यवहारपद कहा गया है। इसका दूसरा नाम न्यास है,—

"राजचौरादिकभयाद्दायादानां वञ्चनात्।
स्थाप्यतेऽन्यगृहे द्रव्यं न्यासः स परिकीर्तितः॥"
(बृहस्पति)

राजा, चोरादि तथा बन्धुबान्धवोंके भयसे दूसरेके घरमें जो सब द्रव्य रखे जाते हैं, उन्हींको न्यास कहते हैं।

मनुने इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—सत्कुल-जात, सदाचारसम्पन्न, धर्मज्ञ, सत्यवादी, बहुपरिवार, धनवान् और सम्भ्रान्त मनुष्यके निकट बुद्धिमान् लोग गच्छित रखें और इसी गच्छित रखनेको निःक्षेप कहते हैं। जो मनुष्य जिस प्रकार जिसके हाथ जो द्रव्य रखता है, लेते समय उसे उसी प्रकार वही द्रव्य देना चाहिये। निःक्षेपकारीके सिर्फ एक बार मांगनेसे ही निःक्षिप्त वस्तु दे देनी होगी, यदि वह न दे, तो विचारकर्त्ताको इसका विचार करना चाहिये। इसमें यदि उपयुक्त साक्षी न मिले, तो व्यायाभोग्य वयस्क और रूपवान् चर द्वारा छलक्रमसे हिरण्यादि द्रव्य उसी व्यक्तिके पास रखवावे। बाद निःक्षेपकारी चरके निःक्षिप्त वस्तु मांगने पर, वह यदि उस गच्छित द्रव्यको, जिस प्रकार जिस भावमें दिया गया था, उस प्रकार और उसी भावसे लौटा दे, तो उसे निर्दोष समझना चाहिये। परन्तु वह व्यक्ति यदि उस दूतको निःक्षेप द्रव्य न दे, तो राजा उसे पकड़वा मंगावें और दोनों निःक्षेप वस्तु दिलवा देवें। निःक्षेप और उपनिधि गच्छितकारीके रहते उसके लड़के वा भावी उत्तराधिकारीको देना उचित नहीं। कारण लड़केके मर जाने पर, अथवा उसकी जीवद्दशामें ही गच्छितद्रव्य समर्पण करनेसे उसके नष्ट होनेकी सम्भावना रहती है। अतः ऐसे संशयमें उसे देना अच्छा नहीं। मृतनिःक्षेप्ताके पुत्रादि उत्तराधिकारियोंके पास, जो व्यक्ति गच्छित धन स्वयं ले जा कर प्रत्यर्पण करे, राजा वा निःक्षेप्ताके बन्धुवर्ग उसके पास और भी गच्छित धन है, ऐसा अनुयोग नहीं कर सकते। यदि वे कर दें, तो राजाको कपटव्यवहारका परित्याग कर प्रीतिके साथ उस धनके पानेकी चेष्टा करनी चाहिये और गच्छित रक्षाकारीके चरित्रका विचार कर सान्त्वनावाक्यसे कार्य साधन करना उचित है।

मुद्राङ्कित उपनिधि,—जितनी मुद्राएं दी गई हैं, उतनी कुल लौटा देनेसे गच्छित रक्षाकारी पर कोई दोष मढ़ा नहीं जा सकता। निःक्षिप्त द्रव्य चोरके चुरा लेने, जल द्वारा नष्ट हो जाने या आगमें जल जाने पर उसका वह जिम्मेदार नहीं हो सकता। किन्तु उस द्रव्यमेंसे यदि वह कुछ ले ले, तो वह उसका दायी अवश्य हो सकता है। निःक्षेपके अपलापकारीका और जो बिना निःक्षेप किये ही उसका दावा करे ऐसे व्यक्तिका वैदिक शपथादि तथा सब प्रकारके उपाय द्वारा विचार करना चाहिये। जो निक्षेप अर्पण न करे और जो बिना निःक्षेपके उसका दावा करे, राजा इन दोनोंको सुवर्ण-चोरकी तरह शास्ति दें। अथवा गच्छित वा इच्छित द्रव्यानुयायी धन दण्ड करें। (मनु० ८ अ०)

याज्ञवल्क्यसंहितामें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—कुछ विशेष बातें न कह जो सब वस्तु करण्डपेटिकादिके मध्य रख कर दूसरेके पास रखी जाती है, उसीको निःक्षेप वा उपनिधिक कहते हैं। जिसके पास जो द्रव्य रखा जायगा, उसको उसी प्रकार वह द्रव्य लौटा देना उचित है। यह धन यदि राजा, चोर वा दैवोपद्रवसे विनष्ट हो जाय, तो फिर लौटाना नहीं होगा। किन्तु न्यासकारीके उक्त द्रव्य मांगने पर यदि गच्छित रक्षाकारी न दे और इसके किसी प्रकारके उपद्रव करनेसे वह नष्ट हो जाय, तो राजाको चाहिये कि उसके मूल्यके बराबर उसे अर्थदण्ड करें। जो मनुष्य अपनी इच्छासे इस द्रव्यका उपभोग करे या वाणिज्य द्वारा अपना लाभ उठावे, राजाको उसकी शक्तिके अनुसार दण्ड देना चाहिये। उपभोग करनेसे महीनेमें सैकड़े पांच भाग वृद्धिसमेत, वाणिज्य करनेसे इसके अतिरिक्त लभ्यांश समेत कुल देने होंगे। (याज्ञवल्क्य सं० २ अ० निक्षेपप्र०)

वीरमित्रोदयमें निःक्षेप, उपनिधि और न्यास इन तीनोंके पृथक् लक्षण निर्दिष्ट हुए हैं। गृहस्वामीके सामने सब कुछ गिन कर जो रखा जाय, उसे निःक्षेप और बिना गिने गृहस्वामीकी अनुपस्थितिमें वा उसके लड़केके हाथ जो रखा जाय, उसे न्यास तथा मुद्राङ्कित कर वा सन्दूकमें ताली भर कर जो रखा जाता है, उसे उपनिधि कहते हैं।

पहले जो सब दण्डादिक विषय लिखे गये हैं, वही इन तीनोंमें भी जानना चाहिए।

"असंख्यातमविज्ञानं समुद्रं यन्ति धीयते।

तज्जानीयादुपनिधिं निःक्षेपं गणितं विदुः॥"

(नारद)

वीरमित्रोदयमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है। विस्तारके भयसे यहां नहीं दिया गया।

निःछल (सं० त्रि०) निश्छल देखो।

निःपक्ष (सं० त्रि०) निष्पक्ष देखो।

निःपाप (सं० त्रि०) निष्पाप देखो।

निःप्रभ (सं० त्रि०) नि निर्गता प्रभा यस्य। प्रभाशून्य, जिसमें ज्योति न हो, जिसमें चमक दमक न हो।

निःप्रयोजन (सं० त्रि०) निष्प्रयोजन देखो।

निःफल (सं० त्रि०) निष्फल देखो।

निःशङ्क (सं० त्रि०) निर्नास्ति शङ्का यस्य। १ शङ्कारहित, निर्भय, भयशून्य, निडर। २ जिसे किसी प्रकारका खटका या हिचक न हो।

निःशब्द (सं० त्रि०) निर्गतः शब्दो यस्मात्। शब्दरहित, जहां शब्द न हो या जो शब्द न करे।

निःशलाक (सं० त्रि०) निर्गता शलाका यस्मात् शलाकाया निर्गतो वा। निर्जन, एकान्त, सुनसान।

निःशल्या (सं० स्त्री०) निर्गतं शल्यं यस्याः। १ दन्तीवृक्ष। (त्रि०) २ शल्यारहित। ३ खटकनेवाली चीजसे मुक्त, प्रतिबन्धरहित, निष्कण्टक।

निःशूक (सं० पु०)निर्गतः शूकोऽस्मात्। सुगन्धशालि, एक प्रकारका धान।

निःशेष (सं० त्रि०) निर्गतः शेषो यस्मात्। १ समस्त, सम्पूर्ण, समूचा, जिसका कोई अंश रह न गया हो २ समाप्त, पूरा, खतम।

निःशेषित (सं० त्रि०) निःशेषोऽस्य सञ्जातः, तारकादित्वादितच्। निःशेषप्राप्त, जो समाप्त हो चुका हो।

निःशोध्य (सं० त्रि०) निर्गतं शोध्यं यस्मात् शोध्याद्विर्गतमिति वा। शोधित, सोधा हुआ, साफ किया हुआ।

निःश्रयणी (सं० स्त्री०) निर्निश्चित श्रीयते आश्रीयते अनयेति, श्रि-करणे ल्युट्, टित्वात् ङीष्। काष्ठघटित सोपान, काठ या बांस आदिकी सीढ़ी। पर्याय - निःश्रेणी, अधिरोहिणी, निःश्रेणी।

निःश्रयिणी (सं० स्त्री०) निःश्रयति आश्रयति प्राङ्गणादिस्थानमिति, श्रि-णिनि-ङीप्। निःश्रयणी, काठकी सीढ़ी।

निःश्रेणि (सं० स्त्री०) निर्निश्चिता श्रेणिः सोपानपंक्तिः यत्र। १ अधिरोहिणी, काठकी सीढ़ी। २ खर्जुरवृक्ष, खजूरका पेड़। (पु०) ३ घोटकविशेष, एक प्रकारका घोड़ा। जिस घोड़ेके ललाट देश पर तीन भौंरी रहे, उसे निःश्रेणी कहते हैं। इस तरहका घोड़ा राष्ट्रवृद्धिकर माना जाता है।

निःश्रेणिका (सं० स्त्री०) निःश्रेणिरिव कायतीति, कै-क-टाप्। १ तृणविशेष, एक प्रकारको घास। पर्याय — श्रेणीवला, निरसा, वनवल्लरी। गुण—नीरस, उष्ण, पशुओंका बलनाशक। निःश्रेणिरेव स्वार्थे कन्। २ अधिरोहिणी, सीढ़ी।

निःश्रेणी (सं० स्त्री०) निःश्रेणि कृदिकारादिति वा ङीष्। १ निःश्रयणी, सीढ़ी। २ खर्जुरवृक्ष, खजूरका पेड़।

निःश्रेयस (सं० क्ली०) निर्निश्चितं श्रेयः ततोऽच् समासान्तः (अचतुरविचतुरेति। पा ५।४।७७) १ मोक्ष, मुक्ति।

"वेदाभ्यासस्तपोज्ञानमिन्द्रियाणाञ्च संयमः।
अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम्॥"

(मनु १२।८३)

वेदाभ्यास, तपस्या, इन्द्रियसंयम, अहिंसा और गुरुसेवा ये सब मोक्षकर हैं। २ मङ्गल, कल्याण। ३ विज्ञान। ४ भक्ति। ५ अनुभाव। (पु०) निर्निश्चितं श्रेयो मङ्गलं यस्मात्। ६ शिव, महादेव।

निःश्वास (सं० पु०) निर्-श्वस-भावे घञ्। प्राणवायुका नाकसे निकलना या नाकसे निकाली हुई वायु, साँस।

निःषम (सं० अव्य०) निर्गतं समं यत्र (तिष्ठद्गुप्रभृतीनिच। पा २।१।१७) इति समासः ततो षत्वम्। १ निन्दा। पर्याय—गर्ह्यं, दुःषम। २ शोक, चिन्ता, गम।

निःसन्धि (सं० त्रि०) निष्क्रान्तः सन्धेः सुश्लिष्टत्वात्। १ सन्धिशून्य, जिसमें कहींसे छेद आदि न हो। २ दृढ़, मजबूत। ३ कसा हुआ, गठा हुआ।

निःसामन् (सं० त्रि०) निष्क्रान्तः साम्नः ततो समासः षत्वञ्च। सामरहित।

निःसंशय (सं० त्रि०) शङ्कारहित, जिसमें सन्देह न हो।

निःसङ्कल्प (सं० त्रि०) इच्छारहित।

निःसङ्कोच (हिं० क्रि० त्रि०) बिना सङ्कोचका, बेधड़क।

निःसङ्ग (सं० त्रि०) निर्नास्ति सङ्गो यत्र। १ मेलनरहित बिना मेल या लगावका। २ जिसमें अपने मतलबका कुछ लगाव न हो। ३ निर्लिप्त।

निःसन्देह (सं० त्रि०) १ सन्देहरहित, जिसे या जिसमें कुछ सन्देह न हो। (क्रि०) २ बिना किसी सन्देहके ३ इसमें कोई सन्देह नहीं, ठीक है, बेशक।

निःसत्व (सं० त्रि०) १ जिसको कुछ सत्ता न हो, जिसमें कुछ असलीयत न हो। २ जिसमें कुछ तत्त्व या सार न हो, बिना सतका।

निःसन्तान (सं० त्रि०) जिसके सन्तान न हो, निपूता या निपूती, लावल्द।

निःसन्धि (सं० त्रि०) निर्नास्ति सन्धिर्यत। १ दृढ़, मजबूत। २ सन्धिरहित, जिसमें कहींसे दरार या छेद न हो। ३ कसा हुआ, गठा हुआ।

निःसम्पात (सं० पु०) निर्नास्ति सम्पातो गमनागमन यत्र। १ निशीथ, रात। (त्रि०) २ गमनागमन-परिशून्य, जहां या जिसमें आना जाना न हो, जहां या जिसमें आमदरफ़ न हो।

निःसरण (सं० पु०) निर्-सृ-ल्युट्। १ मरण, मौत। २ उपाय, कठिनाईसे निकलनेका रास्ता। ३ गृहादि-मुख, घरका मुँह या दरवाजा। ४ निर्वाण। ५ निर्गम, निकलनेका रास्ता, निकास।

निःसार (सं० पु०) निर्गतः सारो यस्मात्। १ शाखोट वृक्ष, सहोरेका पेड़। २ श्योनाकवृक्ष, सोनापाठा। ३ खारी मृत्तिका, खारी मट्टी। (त्रि०) ४ साररहित, जिसमें कुछ सार न हो, जिसमें कुछ सत्त्व न हो। ५ जिसमें कुछ असलियत न हो।

निःसारक (सं० त्रि०) रेचक।

निःसारण (सं० क्ली०) निर्-सृ-णिच् भावे ल्युट्। १ निःसारण, निकालना। २ गृहादिका प्रवेशनिर्गमादि-पथ, निकलनेका द्वार या मार्ग।

निःसारा (सं० स्त्री०) निर्नास्ति सारो यस्या। कदली वृक्ष, केलेका पेड़।

निःसारित (सं० त्रि०) निर्-सृ-णिच् कर्मणि क्त। १ बहिष्कृत, निकाला हुआ। पर्याय—अवकृष्ट, निष्कासित। २ सारका अभावयुक्त, जिसमें कुछ भी सार रह न गया हो।

निःसीमन् (सं० त्रि०) निर्गता सीमा यस्मात्। १ सीमारहित, अवधिशून्य, जिसकी सीमा न हो, बेहद। २ बहुत बड़ा या बहुत अधिक।

निःसुकि (सं० पु०) एक प्रकारका गेहूं जिसके दाने छोटे होते हैं और जिसको बालमें टूंड़ या सीगुर नहीं होते।

निःसृत (सं० त्रि०) निकला हुआ।

निःस्नेह (सं० त्रि०) निर्नास्ति स्नेहो यस्य। १ स्नेहशून्य। स्नेह शब्दका अर्थ प्रीति और घृत तैलादि है। २ रसहीन, जिसमें रस न हो। ३ तैलविहीन, जिसमें तेल न हो, जो बिना तेलका बना हो।

निःस्नेहफला (सं० स्त्री०) श्वेतकण्टकारी, सफेद भटकटैया।

निःस्नेहा (सं० स्त्री०) निर्गतः स्नेहो रसो यस्याः। १ अतसी, तीसी। (त्रि०) २ अनुरागरहित, जिसमें प्रेम न हो।

निःस्पन्द (सं० त्रि०) निर्नास्ति स्पन्दो यस्य। स्पन्दरहित, जो हिलता डोलता न हो, निश्चल।

निःस्पृह (सं० स्त्री०) निर्गता स्पृहा यस्य। १ आशाशून्य, इच्छारहित, जिसे किसी बातकी आकांक्षा न हो। २ निर्लोभ, जिसे प्राप्तकी इच्छा न हो।

निःस्यन्द (सं० पु०) १ स्राव। २ क्षरण, निकास।

निःस्रव (सं० पु०) निर्-स्रु-अप्। १ अवशेष, बचत, निकासी। २ निर्गमन, निकास।

निःस्राव (सं० पु०) निः स्रवतीति निर्-स्रु-ण। १ भक्तरस, भातका माँड़। पर्याय—आचाम, मासर। २ क्षरण, निकास। ३ व्यय, खर्च।

निःस्व (सं० त्रि०) निर्नास्ति स्वं धनं यस्य। धनहीन, दरिद्र, कंगाल। इसका लक्षण यों है—

"सूर्पाकारौ विरूक्षौ च वक्रौ पादौ शिरालकौ।
संशुष्कौ पाण्डुरनखौ निःस्वस्य विरलांगुली ॥"

(गरुड़पु०)

जिनके दोनों पैर वक्र, नख सूर्पाकार, पाण्डुरवर्ण और शिराल हों तथा सर्वदा परिशुष्क रहते हों और अङ्गुलि विरल हों, ऐसे मनुष्य दरिद्र समझे जाते हैं।

निःस्वभाव (सं० त्रि०) निर्गतः स्वभावो यस्य। स्वभावशून्य। बौद्धोंके मतानुसार वस्तुमात्र ही स्वभावशून्य है।

"बुद्धाविविच्यमानानां स्वभावो नावधार्यते।
अतो निरभिलप्यास्ते निःस्वभावाश्च दर्शिता ॥"

(लङ्कावतार)

बुद्धि द्वारा विविच्यमान पदार्थोंका स्वभाव निश्चित नहीं किया जा सकता। अतएव वे सब स्वभाव निरभिलप्य और निःस्वभाव हैं, ऐसा दिखलाया गया है।

शून्यवादि बौद्धोंके मतसे वस्तुका स्वरूपत्व स्वीकृत नहीं होता। उन्होंने निःस्वभावको ही स्वभावका कारण बतलाया है।

निःस्वार्थ (सं० त्रि०) १ जो अपना अर्थ साधन करनेवाला न हो, जो अपना मतलब निकालनेवाला न हो। २ जो अपने अर्थ साधनके निमित्त न हो, जो अपना मतलब निकालनेके लिये न हो।

निकक्ष (सं० अव्य०) कक्षस्य समीपम्, सामीप्यार्थे अव्ययीभावः। पश्चिमापर सन्धिसमीप।

निकट (सं० त्रि०) नि-समीपे कटतीति नि-कट-अच्। अदूर, पासका, समीपका। पर्याय—समीप, आसन्न, सन्निकट, सनीड़, अभ्यास, सवेश, अन्त, अन्तिक, समर्याद, सदेश, अभ्यस्त, अभ्यर्ण, सविधा, उपकण्ठ, अभित।

वैदिक पर्याय—तलित्, आसात्, अम्बर, ओवंस, अस्तमीक, आक, उपाक, अर्वाक, अन्तमान, अवम, उपम।

निकटता (सं० स्त्री०) निकट-तल-टाप्। सामीप्य, समीपता।

निकटपना (हिं० पु०) सामीप्य, निकटता।

निकटवर्त्तिन् (सं० त्रि०) निकटे वर्त्तते वृत-णिनि। समीपस्थ, निकटस्थ, पासवाला, नजदीकका।

निकटवर्त्तित्व (सं० क्ली०) निकटवर्त्तिनो भावः त्व। निकटवर्त्तिका भाव।

निकटस्थ (सं० त्रि०) निकटे तिष्ठति स्था-क। समीपस्थ, जो निकटका हो, पासका। २ सम्बन्धमें जिससे बहुत अन्तर न हो।

निकटसम्बन्धीय (सं० त्रि०) निकट सम्पर्कीय, निकट सम्बन्धविशिष्ट, नजदिको रिश्तेदार।

निकटागत (सं० त्रि०) उपस्थित, अभ्यागत, समागत, जो नजदीकमें आ पहुंचा हो।

निकटागमन (सं० क्ली०) निकटे आगमनम्। उपसन्नता, उपस्थिति।

निकन्दन (सं० पु०) नाश, विनाश।

निकती (हिं० स्त्री०) छोटा तराजू, कांटा।

निकन्दरोग (सं० पु०) एक योनिरोग। योनिकन्द देखो।

निकम्मा (हिं० वि०) १ जो कोई काम धन्धा न करे, जिससे कुछ करते धरते न बने। २ जो किसी कामका न हो, जो किसी काममें न आ सके, बेमसरफ, बुरा।

निकर (सं० पु०) निकरोतीति व्याप्नोतीति नि-कृ-अच्। १ समूह, झुण्ड। २ सार। ३ राशि, ढेर। ४ न्यायदेय धन। ५ निधि।

निकर्त्तन (सं० क्ली०) नि-कृत-ल्युट्। १ छेदन, काटनेकी क्रिया। (त्रि०) २ छेदनकारी, काटनेवाला।

निकर्त्तवा (सं० क्ली०) नि-कृ-तव्य। छेदनीय, वह जो काटने योग्य हो।

निकर्मा (हिं० वि०) जो काम न करे, जो कुछ उद्योग धंधा न करे।

निकर्षण (सं० क्ली०) निर्नास्ति कर्षणं यत्र। १ सन्निवेश। २ पत्तनादिमें परिच्छन्न प्रदेश, नगरके बाहर खेलने धूपनेका मैदान। ३ गृहके बाहर विहरणभूमि, घरके बाहरका आंगन। ४ समीपस्थता, नजदीकी। ५ प्राङ्गणादिका सन्निवेश। (त्रि०) ६ कर्षणरहित।

निकलंक (हिं० वि०) दोषरहित, निर्दोष, बेदाग।

निकलंकी (हिं० पु०) विष्णुका दशवां अवतार जो कलिके अन्तमें होगा। कल्कि अवतार।

निकल (अं० स्त्री०) एक धातु जो सुरमे, कोयले, गंधक, संखिया आदिके साथ मिली हुई खानोंमें मिलती है। अग्निसे इसे शुद्ध और परिष्कृत करने पर यह ठीक चांदीकी तरह चमकती है। यह बहुत कड़ी होती है और जल्दी गलती नहीं तथा लोहेकी तरह चुम्बकशक्तिको ग्रहण करती है।

इसका भारीपन ८.२८ है। जर्मनवासी क्रुणष्टाड-ने सबसे पहले १७५१ ई०में इस धातुका पता लगाया। इसे साफ करनेकी प्रणाली आज भी किसीको अच्छी तरह मालूम नहीं। पर हां, इङ्गलैण्डके वर्मिङ्हम शहरके लोग खड़ि और क्लोराइड-आफ-केलसियमके संयोगसे अग्निके उत्तापसे इस मिश्रित धातुको गलाते हैं। पीछे उस मैलरहित परिष्कृत पदार्थको चूर्ण कर फिरसे आग पर चढ़ाते हैं। ऐसा करनेसे धातुगत आर्सेनिक

पिघले जाता है। अवशिष्ट चूर्णको हाइड्रो-क्लोरिक एसिडमें गला कर उसमें ब्लिचिंग पाउडर डाल देते हैं। बाद उस द्रवलोहको अक्सिजन युक्त करके पुनः नीबूके रस (milk of lime)में डुबो देते हैं। ऐसा करनेसे जो चूर्ण नीचे जम जाता है, वह धुल कर साफ हो जाता है। उस तरल पदार्थमें केवल कोबाल्ट और निकल मिली रहती है जो सलफिउरेटेड-हाइड्रोजन नामसे पुकारी जाती है। इसमें क्लोराइड-आफ-लाइम देनेसे कोबाल्ट नीचे जम जाती है। उस समय उसमें केवल निकल मिली रहती है। उस निकलयुक्त तरल पदार्थमें नीबूका रस (milk of lime) देनेसे केवल निकल धातु बच जाती है। यह परिष्कृत धातु चांदीकी तरह चमकती और झुकती तथा लोहेकी तरह गलती है। ६३०° डिग्री (फारनहिट) तापमें उत्तप्त करनेसे इसकी आकर्षण-शक्ति कम हो जाती है। साधारण जल वायुसे इसकी कुछ भी खराबी नहीं होती। उत्तप्त वायुसे यह आक्सिडाइज हो जाती है। तांबेके साथ इसे मिलानेसे यह विलायती (German silver) चांदीके रूपमें हो जाती है। अलुमीनमके साथ इसे मिलानेसे इसमें कुछ कड़ापन आ जाता है। यह धातु कंधार, राजपूताना, तथा सिंहलद्वीपमें थोड़ी बहुत मिलती है। कम मिलनेके कारण इसका मूल्य कुछ अधिक होता है, इसीसे छोटे सिक्के बनानेके काममें यह लाई जाने लगी है।

निकलना (हिं० क्रि०) १ निर्गत होना, भीतरसे बाहर आना। २ व्याप्त या ओतप्रोत वस्तुका अलग होना, मिली हुई, लगी हुई या पैवस्त चीजका अलग होना। ३ गमन करना, जाना, गुजरना। ४ अतिक्रमण करना, एक ओरसे दूसरी ओर चला जाना, पार होना। ५ उत्तीर्ण होना, किसी श्रेणी आदिके पार होना। ६ प्रादुर्भूत होना, उत्पन्न होना, पैदा होना। ७ आरम्भ होना, छिड़ना। ८ स्पष्ट होना, प्रकट होना, खुलना। ९ मिलनेसे अलग होना, पृथक् होना। १० उदय होना, जैसे; चन्द्रमा निकलना। ११ उद्भावित होना, निश्चित होना, ठहराया जाना। १२ किसी एक ओरको बढ़ा हुआ होना। १३ उपस्थित होना, दिखलाई देना। १४ खपना, बिकना। १५ बच जाना, अपनेको बचा जाना। १६ प्रमाणित होना, सिद्ध होना, साबित होना। १७ अपनी कही हुई बातसे अपना सम्बन्ध न बताना, कह कर नहीं करना। १८ प्राप्त होना, सिद्ध होना, सरना। १९ प्रचलित होना, जारी होना। २० लकीरके रूपमें दूर तक जानेवाली वस्तुका विधान होना, फैलाव होना, जारी होना। २१ किसी प्रश्न या समस्याका ठीक उत्तर प्राप्त होना, हल होना। २२ लगातार दूर तक जानेवाली किसी वस्तुका आरम्भ होना। २३ मुक्त होना, छूटना, अलग होना। २४ आविष्कृत होना, नई बातका अलग होना। २५ शरीरके ऊपर उत्पन्न होना। २६ लगाव न रखना, किनारे हो जाना। २७ हट जाना, मिट जाना, दूर होना, जाता रहना। २८ प्राप्त होना, पाया जाना। २९ फट कर अलग होना, उचड़ना। ३० हिसाब किताब होने पर कोई रकम जिम्मे ठहरना। ३१ प्रस्तुत हो कर सर्वसाधारणके सामने आना, प्रकाशित होना। ३२ घोड़े, बैल आदिका सवारी ले कर चलना आदि सीखना, शिक्षित होना। ३३ व्यतीत होना, बीतना, गुजरना।

निकलवाना (हिं० क्रि०) निकालनेका काम किसी दूसरेसे कराना।

निकष (सं० पु०) निकषति पिनष्टि स्वर्णादिकं यत्रेति नि-कष-घ। (गोचरसञ्चरेति। पा ३।३।११९) १ कसौटी, इस पर सोना आदि परखा जाता है। २ कसौटी पर चढ़ानेका काम। ३ हथियारों पर सान चढ़ानेका पत्थर।

निकषण (सं० क्ली०) नि-कष-ल्युट्। १ घर्षण, घिसने या रगड़नेका काम। २ कसौटी पर चढ़ानेका काम। ३ सान पर चढ़ानेका काम।

निकषा (सं० स्त्री०) निकषति हिनस्तीति कष हिंसे पचाद्यच्, ततष्टाप्। १ राक्षसमाता। यह सुमालिकी कन्या और विश्रवाकी पत्नी थी। इसके गर्भसे रावण, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा और विभीषण उत्पन्न हुए थे। (अव्य०) २ निकट, समीप। ३ मध्य, बीच। इस शब्दके योगमें द्वितीया विभक्ति होती है।

निकषात्मज (सं० पु०) निकषायाः आत्मजः। निकषाका पुत्र, राक्षस।

निकषोपल (सं० पु०) निकषनाम उपलः। १ प्रस्तरभेद, कसौटी। २ शाण, सान।

निकस (सं० पु०) निकसति पिनष्टि स्वर्णादिकं यत्र नि-कस-घ। निकष, कसौटी।

निकसना (हिं० क्रि०) निकलना देखो।

निकाई (फा० स्त्री०) १ भलाई, अच्छापन, उम्दगी। २ सौन्दर्य, खूबसूरती, सुन्दरता।

निकाज (हिं० वि०) निकम्मा, बेकाम।

निकाना (हिं० क्रि०) निराना देखो।

निकानोर-ई० सन्‌के ३०५ वर्ष पहले अन्तिगोनसके प्रतिनिधि। इन्होंने मिडिया, पार्थिया, एसिया और सिन्धुमद तकके देशों पर अपना अधिकार जमा लिया था।

निकाम (सं० क्ली०) काम इच्छायां नि-कम-घञ्। १ इष्ट, अभिलषित। २ पर्याप्त, यथेष्ट, काफी। ३ अतिशय, बहुत।

निकाम (हिं० वि०) १ निकम्मा। २ बुरा, खराब। (क्रि० वि०) ३ व्यर्थ, निष्प्रयोजन, फजूल।

निकामन् (सं० त्रि०) नि-कम बाहुलकात् मनिन्। अतिशय अभिलाषयुक्त।

निकाय (सं० पु०) निचीयते इति निचि-घञ्, आदेश्चस्य कः। १ समूह, झुण्ड। २ समानधर्मा व्यक्तिसमूह, एक ही मेलकी वस्तुओंका ढेर, राशि। ३ लक्ष्य। ४ निलय, वासस्थान, घर। ५ परमात्मा।

निकाय्य (सं० पु०) निचीयतेऽस्मिन् धान्यादिकमिति नि-चि-ण्यत् प्रत्ययेन निपातनात् साधुः। गृह, आलय, घर।

निकार (सं० पु०) नि-कृ-घञ्। १ पराभव, हार। २ अपकार। ३ अपमान। ४ मानहानि, अवमानना, अनादर। ५ तिरस्कार, लाञ्छना। ६ धान्यादिका ऊर्ध्वक्षेपण। ७ खलीकार, धिक्कार।

निकार (हिं० पु०) निष्कासन, निकालनेका काम। २ निकास, निकलनेका द्वार। ३ ईखका रस पकानेका कड़ाहा।

निकारण (सं० क्ली०) निकारयति क्लिश्नात्यनेनेति नि-कृ-णिच्-ल्युट्। मारण, वध।

निकारिन् (सं० पु०) यज्ञकरणशील, जिनका स्वभाव यज्ञ करना हो।

निकाल (हिं० पु०) १ निकास। २ पेंचका काट, वह युक्ति जिससे कुश्तीमें प्रतिपक्षीकी घातसे बच जांय, तोड़। ३ कुश्तीका एक पेच। इसमें अपना दहना हाथ जोड़की बाईं ओरसे उसकी गरदन पर पहुंचा कर अपने बायें हाथसे उसके दाहने हाथको ऊपर उठाते हैं और फिर फुरतीके साथ उसके दहिने भाग पर झुक कर अपनी छाती उसकी दहनी पसलियोंसे भिड़ाते तथा अपना बायां हाथ उसकी दहनी जांघमें बाहरकी ओरसे डाल कर उसे चित कर देते हैं।

निकालना (हिं० क्रि०) १ निर्गत करना, भीतरसे बाहर लाना, बाहर करना। २ प्रादुर्भूत करना, उपस्थित करना, मौजूद करना। ३ निश्चित करना, ठहराना। ४ व्यक्त करना, खोलना, प्रकट करना। ५ आरम्भ करना, छेड़ना, चलाना। ६ किसी ओरको बढ़ा हुआ करना। ७ गमन करना, ले जाना, गुजर कराना। ८ अतिक्रमण करना, एक ओरसे दूसरी ओर ले जाना या बढ़ाना। ९ सबके सामने लाना, देखनेमें करना। १० व्याप्त या ओतप्रोत वस्तुको पृथक् करना, मिली हुई, लगी हुई या पैवस्त चीजको अलग करना। ११ ऊपर ऋण या देना निश्चित करना, रकम जिम्मे ठहराना। १२ प्रकाशित करना प्रचारित करना। १३ सिद्ध करना, फलीभूत करना। १४ किसी प्रश्न या समस्याका ठीक उत्तर निश्चित करना, हल करना। १५ लकीरकी तरह दूर तक जानेवाली वस्तुका विधान करना, जारी करना, फैलाना। १६ सङ्कट, कठिनाई आदिसे छुटकारा करना, बचाव करना, निस्तार करना। १७ फलीभूत करना, प्राप्त करना, सिद्ध करना। १८ बेचना, खपाना। १९ नौकरीसे छुड़ाना, बरखास्त करना, कामसे अलग करना। २० फँसा, बँधा, जुड़ा या लगा न रहने देना, अलग अलग करना, छुड़ाना। २१ मेल या मिले जुले समूहमेंसे अलग करना, पृथक् करना। २२ घटाना, कम करना। २३ पास न रखना, दूर करना, हटाना। २४ निर्वाह करना, चलाना। २५ आविष्कृत करना, नई बात प्रकट करना, ईजाद करना। २६ सूईसे बेल बूटे बनाना। २७ घोड़े बैल आदिको सवारी ले कर चलना या गाड़ी आदि खींचना सिखाना, शिक्षा देना।

२८ प्राप्त करना, ढूँढ़ कर पाना, बरामद करना। २९ दूसरेके यहांसे अपनी वस्तु ले लेना। ३० दूर करना, हटाना, न रहने देना।

निकाला (हिं॰ पु॰) १ निकालनेका काम। २ बहिष्कार, निष्कासन, किसी स्थानसे निकाले जानेका दण्ड।

निकाल्य (सं॰ त्रि॰) नि-कल-ण्यत्। चालनीय।

निकाश (सं॰ पु) १ प्रकाश। २ समीप।

निकाष (सं॰ पु॰) नि-कष-घञ्। समुल्लिखन, करण।

निकास (हिं॰ पु॰) १ निकालनेकी क्रिया या भाव। २ निकलनेकी क्रिया या भाव। ३ निर्वाहका ढङ्ग, ढर्रा, वसीला, सिलसिला। ४ प्राप्तिका ढंग, आमदनीका रास्ता, लाभ या आयका सूत्र। ५ सङ्कट या कठिनाईसे निकलनेकी युक्ति, बचावका रास्ता, रक्षाका उपाय, छुटकारेकी तदबीर। ६ वंशका मूल। ७ उद्गम, मूल स्थान। ८ बाहरका खुला स्थान, मैदान। ९ वह स्थान जिससे हो कर कुछ निकले। १० आय, आमदनी, निकाली। ११ द्वार, दरवाजा।

निकासन (सं॰ त्रि॰) निकासते शोभतेऽनेन इति काम-करणे-ल्युट्। तुल्य, तरह, समान।

निकासना (हिं॰ क्रि॰) निकालना देखो।

निकासपत्र (हिं॰ पु॰) वह कागज जिसमें जमाखर्च और बचतका हिसाब समझाया गया है।

निकासी (हिं॰ स्त्री॰) १ निकलनेकी क्रिया या भाव। २ रवना। ३ चुङ्गी। ४ बिक्री, खपत। ५ बिक्रीके लिये मालकी रवानगी, लदाई, भरती। ६ वह धन जो सरकारी मालगुजारी आदि दे कर जमींदारको बचे, मुनाफा। ६ प्राप्ति, आय, आमदनी।

निकाह (अ॰ पु॰) मुसलमानी पद्धतिके अनुसार किया हुआ विवाह। इस विवाहके निदर्शनपत्रका नाम है निकाहनामा। अरब, इजिप्ट और पारस्यमें जो विवाह उत्सव होता है, उसमें निकाह ही प्रधान अङ्ग है। भारतवर्षमें निकाह निकृष्ट विवाहमें गिना जाता है और यह प्रायः निकृष्ट जातियोंमें ही प्रचलित है। भारतवर्षमें निकाहशब्दसे मुसलमानोंमें विवाह विशेषका बोध होता है। पात्र और पात्रीको विवाहबन्धनमें एकत्र करनेके समय काजी जो सब वचन उच्चारण करके एक दूसरेसे मिला देते हैं उसीका नाम निकाह है। दिल्लीके निकटवर्त्ती स्थानोंमें निकाहको बारात कहते हैं।

निकिटिन-आथेनेसियस—एक रूसियवासी परिव्राजक। १४७० ई॰के आरम्भमें पहले पहल ये गुजरात देशमें पधारे; बाद काम्बे और कुलाबा जिलेके चेउलनगर होते हुए जुन्नरको गये। वहां नगरकी शोभा देख कर उन्होंने दबियाल, कालिकट, सिंहल, विदर्भ, विजय-नगर, कुलबर्गा और अपरापर स्थानोंमें पैदल भ्रमण किया। अनन्तर १४७४ ई॰में भारतभूमिकी यात्रा तय कर ये हरमुज, सिराज, इसपाहन, ताब्रिज और त्रिबिजण्डनगर होते हुए अपने देशको लौटे। इन सब नगरोंके दर्शन कर उन्होंने वहांके वाणिज्य, व्यवसाय तथा उत्पन्न द्रव्योंके विषयमें एक किताब लिखी है। उस किताबमें तत्सामयिक काम्बे, हरमुज, दबियाल, कालिकट, सिंहल, विदर्भ और विजयनगरका विषय विशेषरूपसे लिपिबद्ध कर दिया गया है।

निकियाना (हिं॰ क्रि॰) १ नोच कर धज्जी धज्जी अलग करना। २ चमड़े परसे पंख या बाल नोच कर अलग करना।

निकिरी—मुसलमान जातिकी एक उपाधि। ये लोग मछली बेच कर अपना गुजारा करते हैं।

निकिल्बिष (सं॰ क्ली॰) किल्बिषाभाव, पापका अभाव।

निकुच (सं॰ पु॰) लकुच, लकुच, बड़हर।

निकुच्यकर्णि (सं॰ त्रि॰) निकुच्यो संकुचौ कर्णौ यत्र, ततो इच् समा॰। संकुच्यकर्णक, जिसके कान संकुचित हों।

निकुञ्चक (सं॰ पु॰) निकुञ्चतीति नि-कुञ्च कौटिल्ये ण्वुल्। १ परिमाणभेद, एक तौल जो आधी अंजलीके बराबर और किसी किसीके मतसे ८ तोलेके बराबर होती है, कुड़वका चतुर्थांश। २ अम्बुवेतस, जलबेंत।

निकुञ्चित (सं॰ क्ली॰) नि-कुञ्च-क्त। १ अङ्गहारान्तर्गत शिरोविशेष। (त्रि॰) २ सङ्कुचित।

निकुञ्ज (सं॰ पु॰-क्ली॰) नितरां को पृथिव्यां जायते जन-ड, पृषोदरादित्वात् साधु। १ लतागृह, ऐसा स्थान जो घने वृक्षों और घनी लताओंसे घिरा हो। २ लताओंसे आच्छादित मण्डप।

निकुञ्जवन—तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम। श्रीवृन्दावन धामके इस निकुञ्जवनमें श्रीकृष्णचन्द्रजी श्रीराधिकाके साथ विहार करते थे। वृन्दावन देखो।

निकुञ्जिकाम्ला (सं० स्त्री०) निकुञ्जिका कुञ्जोद्भवा अम्ला। कुञ्जिकावृक्षभेद, कुञ्जके वृक्षका एक भेद। पर्याय—कुञ्जिका, कुञ्जवल्लरी। इसका गुण श्रीवल्लीके समान है।

निकुम्भ (सं० पु०) नि-कुभि-अच्। १ दन्तीवृक्ष। २ कुम्भकर्णका एक पुत्र जिसे हनुमान्‌ने मारा था। यह रावणका मन्त्री था। ३ दानवभेद, एक असुरका नाम। ४ प्रह्लादके एक पुत्रका नाम। ५ हर्यश्व राजाके पुत्रका नाम। ६ विश्वदेवभेद, एक विश्वदेव। ७ कुरुसेनापतिके अन्तर्गत नृपभेद, कौरव सेनापतियोंमेंसे एक राजा। ८ कुमारानुचरभेद, कुमारका एक गण। ९ राक्षसेश नामक शिवके एक अनुचरका नाम। १० जमालगोटा। ११ जलवेतस, जलबेंत।

निकुम्भ—१ सूर्यवंशीय एक राजा। अयोध्यामें इनकी राजधानी थी, इनके वंशमें मान्धाता, सगर, भगीरथ, रघु और श्रीरामचन्द्र उत्पन्न हुए थे। निकुम्भके प्रपितामह कुवलयाश्वने धुन्धु नामक दैत्यका वध करके धुन्धुमारकी उपाधि ग्रहण की और इसी नाम पर राजपूतानेमें धुन्धार (जयपुर) राज्य बसाया। इनकी वंशावली निकुम्भ नाम धारण कर यहां वास करती है। अयोध्याका वंश अभी रघुवंश नामसे प्रसिद्ध है। मान्धाता और सगरके साथ हैहय और तालजङ्घोंका नर्मदा नदीके किनारे तुमुल संग्राम हुआ था। तभीसे यहां इस वंशकी एक शाखा वास करती आ रही है। टेडका कहना है, कि निकुम्भके वंशधर बहुत दिनों तक मण्डलगढ़ जिलेमें रहे थे। मेवातके अन्तर्गत अलवार और इन्दोर इन्हींका बसाया हुआ है, ऐसी जनश्रुति है। अभनेरमें इनकी राजधानी थी। मुसलमानोंके आक्रमणके बाद मध्यप्रदेशमें केवल खान्देशके चारों ओर तथा अलवारमें इनका आधिपत्य फैला हुआ था। हुसेनखांके पूर्व पुरुष अलावलखांने उत्तर अलवारवासी निकुम्भोंका अधिकार छीन लिया था।

२ दैत्यविशेष। यह सत्पुरीका राजा था। इसने श्रीकृष्णके मित्र ब्रह्मदत्तकी कन्याओंका हरण किया था इस कारण यह श्रीकृष्णके हाथसे मारा गया।

निकुम्भाख्यबीज (सं० क्ली०) निकुम्भाख्यस्य दन्तिकावृक्षस्य बीजवत् बीजं यस्य। जयपाल, जमालगोटा। जयपाल देखो।

निकुम्भित (सं० क्ली०) नृत्यविषयक अष्टोत्तरशत करणान्तर्गत नृत्यविशेष।

निकुम्भिला (सं० स्त्री०) १ लङ्काके पश्चिम एक गुफा। २ गुफाकी देवी जिसके सामने यज्ञ और पूजन करके मेघनाद युद्धकी यात्रा करता था।

निकुम्भी (सं० स्त्री०) निकुम्भ गौरादित्वात् ङीष्। १ दन्तीवृक्ष। २ कटफल। ३ कुम्भकर्णकी कन्या।

निकुरम्ब (सं० क्ली०) निकुरतीति नि-कुर बाहुलकात् अम्बच्। समूह, झुण्ड।

निकुलीनिका (सं० स्त्री०) निपात, पतन, गिराव।

निकुही (हिं० स्त्री०) एक चिड़ियाका नाम।

निकून (सं० पु०) नरमेधयज्ञके अन्तर्गत षष्ठयूपमें पशुओंके वधोद्देश्य देवताभेद, वह देवता जिसके उद्देश्यसे नरमेधयज्ञ और अश्वमेधयज्ञमें छठे यूपमें पशुहनन होता था।

निकृत (सं० त्रि०) नि-कृ-क्त। १ प्रत्याख्यात, निकाला हुआ। २ शठ नीच। ३ वञ्चित, जो ठगा गया हो। ४ लाञ्छित, बदनाम। ५ तिरस्कृत।

निकृतन (सं० पु०) गन्धक।

निकृति (सं० स्त्री०) नि-कृ-क्तिन्, १ भर्त्सन, तिरस्कार। २ अपकार। ३ दैन्य। ४ पृथ्वी। ५ शठता, नीचता। ६ साध्यासे उत्पन्न धर्मपुत्र एक वसु। ७ क्षेप।

निकृतिन् (सं० त्रि०) शठ, नीच, दुष्ट।

निकृत्त (सं० त्रि०) नि-कृत-क्त। खण्डित, मूलसे छिन्न, जड़से कटा हुआ।

निकृत्तमूल (सं० पु०) निकृत्तं मूलं यस्य। वह वृक्ष जिसका मूल छिन्न हो गया हो।

निकृत्या (सं० स्त्री०) निष्ठुरता, शठता, नीचता।

निकृत्वन् (सं० त्रि०) छेदक, काटनेवाला।

निकृन्तन (सं० त्रि०) निकृन्तति कृत-ल्युट। १ छेदनकारी, काटनेवाला। (क्ली०) कृत-ल्युट्। २ छेदन, खण्डन।

निकृष्ट (सं० त्रि०) नि-कृष-क्त। अधम, नीच, तुच्छ, बुरा।

निकृष्टता (सं० स्त्री०) निकृष्ट भावे तल्-टाप्। निकृष्टत्व, बुराई, अधमता, नीचता।

निकृष्टत्व (सं० पु०) बुराई, मन्दता, नीचता।

निकृष्टप्रवृत्ति (सं० स्त्री०) निकृष्टा प्रवृत्तिः। १ नीच प्रवृत्ति। (त्रि०) निकृष्टा प्रवृत्तिर्यस्य। २ जिसकी प्रवृत्ति नीच हो।

निकृष्टाशय (सं० पु०) निकृष्ट आशयः यस्य। नीचाशय, मन्दाशय।

निकेचाय (सं० पु०) नि-चि यङ्-लुक्, 'आदेश कः' इति चस्य कः। गोमयादिका पुनः पुनः राशीकरण, गोबरका बार बार जमा करनेका काम।

निकेत (सं० पु०) निकेतति निवसत्यस्मिन्निति नि-कित-घञ्। गृह, घर।

निकेतन (सं० क्लो०) निकेतति निवसत्यस्मिन्निति नि-कित् अधिकरणे ल्युट्। १ गृह, घर। २ पलाण्डु, प्याज। ३ जलवेतस, जलबेंत।

निकोचक (सं० पु०) निकोचति शब्दायते नि-कुच-वुन्। अङ्कोटवृक्ष, ढेरा (Alangium hexapetalum)

निकोचन (सं० क्लो०) सङ्कुचन।

निकोठक (सं० पु०) निकोचक पृषोदरादित्वात् साधुः। निकोचक, अङ्कोल, ढेरा।

निकोथक (सं० पु०) नि-कुथ-वुन्। एक वैदिकाचार्य। इनकी उपाधि भायजात्य है।

निकोलसन—बङ्गदेशके सैनिक विभागमें नियुक्त एक ख्यातनामा अङ्गरेज कर्मचारी। वे क्रमशः उन्नति सोपानका अतिक्रम करते हुए लेफ्टिनेण्ट-कर्णलके पद पर पहुंच गये थे। जब ये पञ्जाबके दीवानी विभागमें (Civil Commission) डिपटी कमिश्नर (Deputy Commissioner)का काम करते थे, उस समय ये वहांके अधिवासियोंका विशेष श्रद्धाभाजन बन गये थे। इङ्गलैण्डके अनेक सदाशय महात्माओंने इस देशके उच्चपदका अधिकार पा कर बहुतेरे अधीनस्थ कर्मचारियोंके प्रति सद्व्यवहारका परिचय दिया है। अधीनस्थ व्यक्तियोंने भी भक्ति और श्रद्धाके साथ उनकी सहृदयताका प्रतिशोध किया है। किन्तु निकलसनका अपने अधीनस्थ कर्मचारियोंके प्रति जैसा आधिपत्य था, वैसा किसीका आज तक देखनेमें नहीं आया है। उनके सम्मानार्थ एक दल भारतवासी उन्हें निकोलसनी (The Nicolsoni) अथवा 'निकार सिंही फकीर' नामसे पुकारते थे। पश्चात् गवर्मेण्टको किसी सरकारी कार्यविवरणीमें (Official report) उक्त महात्माके विषयमें निम्नलिखित वाक्य लिखे हैं—
"Nature makes but few such men, and the Punjab is happy to have had one."
"जगत्में ऐसा मनुष्य मिलना दुर्लभ है। पञ्जाबराज्यने सौभाग्यसे ही ऐसा अमूल्य रत्न पाया है।" १८३८से १८४२ ई० तक अफगानोंके साथ जो युद्ध हुआ था, उसमें निकोलसन नियुक्त थे। दिल्लीनगरको दूसरी बार जब अधिकारमें लानेकी चेष्टा कर रहे थे, उसी समय इनका देहान्त हो गया।

निकोलो दि कोण्टी—भेनिस् राज्यको एक सम्भ्रान्त भद्र सन्तान। १४१८ ई०में दमस्कसनगरमें ये वाणिज्य करनेके लिये आये थे। पारस्यदेशके मध्य हो कर मलबार और बङ्गदेश आदि स्थान होते हुए वे स्वदेशको लौटे थे। उन्होंने स्वधर्मका त्याग मुसलमानी धर्मग्रहण किया था। इस अपराधके प्रायश्चित्तमें पोप (Pope Eugene)ने उन्हें अपने दुरूह भ्रमणवृत्तान्तका कीर्त्तन करने कहा था। इस सुयोगमें इन्होंने गुजरात-गङ्गातीर भूमि आदि स्थानोंका अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है।

निकोबर—भारत महासागरका एक द्वीप। यह आन्दामनद्वीपके दक्षिण पड़ता है। इस द्वीपपुञ्जके मध्य ८ बड़े और १२ छोटे द्वीप हैं। इनमेंसे निकोबरद्वीपकी लम्बाई ३० मील और चौड़ाई १२से १५ मील है। इन समस्त द्वीपोंमेंसे ननकौरी बन्दरमें भारतगवर्मेण्टने जहाज बांधनेका अड्डा स्थापित किया है।

निकोबर द्वीप साधारणतः छोटे छोटे पहाड़ोंसे परिपूर्ण है। यहां नारियलके अनेक वृक्ष देखे जाते हैं। यहांके जङ्गलमें एक प्रकारका पेड़ पाया जाता है जिसकी लकड़ी जहाज और घर बनानेके काममें आती है। नाना प्रकारके फल और नाना जातीय पक्षी इन सब द्वीपपुञ्जमें नजर आते हैं। मछली भी कम नहीं मिलती।

निकोबरवासियोंके साथ मलयवासियोंकी आकृति बहुत

कुछ मिलती जुलती है, पर निकोबरवासियोंको आँख देखनेसे वे बिलकुल एक दूसरेसे पृथक् प्रतीत होते हैं। इनका वर्ण तांबेके जैसा और शरीरकी गठन-प्रणाली बहुत अच्छी है। ये बहुत लम्बे नहीं होते; इनकी आंख चीनासी, नाक छोटी और चिपटी, मुंह बड़ा, होंठ मोटी, कान लम्बे, बाल काले और लम्बे तथा सामान्य डाढ़ी होती है।

निकोबरवासी जिन सब ग्रामोंमें वास करते हैं, वे प्राय: समुद्रके किनारे अवस्थित हैं तथा प्रत्येक ग्राममें १५से २० घर हैं। प्रत्येक घरमें २० वा उससे अधिक मनुष्य रहते हैं। मट्टीके ऊपर करीब १० फुट ऊँची खूँटी गाड़ देते हैं जिसके ऊपर वे घर बनाते हैं। इनके घरोंका आकार गोल और झरोखा एक भी नहीं रहता घरके नीचे एक प्रकारका दरवाजा रहता है।

निकोबरवासी साधारणतः मत्स्यजीवी हैं। शूकर, गृहपालित पशुपक्षी, कच्छप, मत्स्य, नारिकेल, जामुन, नाना प्रकारके फल और मेलोरी नामक वृक्षके फलकी रोटी ही इनकी प्रधान खाद्य है। ये लोग बहुत आलसी, डरपोक, विश्वासघातक और सुराप्रिय होते हैं। पूर्व समयमें इनमेंसे अनेक चोरी डकैती करके अपना गुजारा करते थे; किन्तु जबसे यह द्वीप अंगरेजोंके हाथ लगा, तबसे उन्होंने शान्तभाव धारण कर लिया है।

निकटवर्त्ती द्वीपवासी एक दूसरेकी बोली नहीं समझते। ये लोग कुसंस्काराच्छन्न होते, भूतों पर विश्वास करते तथा शवको गाड़नेके पहले उसे कई दिन गांवमें रख छोड़ते हैं। इन लोगोंको कोई लिखित भाषा नहीं है। बहुत प्राचीन कालमें यहां लिखित भाषाके बदले सूर्य, चन्द्र, थाली, लोटा, मनुष्य आदिकी प्रकृतिके चित्र द्वारा अक्षरके कार्य साधित होते थे।

ये लोग एक समय बहुविवाहको घृणा करते हैं। स्त्रीपरित्यागकी प्रथा इनमें प्रचलित है। इनमेंसे प्रत्येक अपनेको प्रधान समझता है। यद्यपि दो एक मनुष्य बड़प्पनके कारण बहुतोंके माननीय हो भी सकते हैं, तो भी वे किसीके ऊपर अपना रोबदाब जमा नहीं सकते।

यहां कृषिकार्यकी कुछ भी चर्चा नहीं है। पर हां, खाद्यके लिए केला, मीठा नीबू (sweet lime), जामुन तथा तरह तरहके फलके पेड़ अवश्य लगाते हैं।

१८६८ ई०में भारतगवर्मेण्टने निकोबर द्वीपको अधिकारभुक्त कर अन्दामानके अध्यक्ष (Superintendent)के शासनाधीन कर दिया। १८७२ ई०में यह द्वीप अन्दामानके चीफ-कमिश्नरके अधीन हुआ और १८८६ ई०में समस्त निकोबर-द्वीप-पुञ्ज अंगरेज गवर्मेण्टके उपनिवेशमें गिना जाने लगा।

यहांका जलवायु अत्यन्त अस्वास्थ्यकर है। मलेरिया ज्वरका प्रकोप यहां खूब देखा जाता है। ऋतुमें वर्षा ही प्रधान है। ग्रेट निकोबरके वनमें एक असभ्यजाति वास करती है। अन्यान्य अधिवासियोंके साथ उनके आकार या चरित्रगतमें कोई सादृश्य नहीं है। सम्भवत: वे अष्ट्रेलियाकी आदिम असभ्यजातिमेंसे होंगे।

निकोश्य (सं० पु० क्ली०) यज्ञीय पशुकी उदरस्थित नाड़ीका अंशविशेष, यज्ञपशुके पेटकी एक नाड़ी।

निकोसना (हिं० क्रि०) १ दांत निकालना। २ दांत पीसना, कटकटाना, किचकिचाना।

निकोसियर—युवराज अकबरके पुत्र। ये पहले राजविद्रोही हुए थे, पीछे राजपद पर प्रतिष्ठित हो कर थोड़े ही समयके अन्दर यमराजके मेहमान बने।

निकौनी (हिं० स्त्री०) १ निराई, निरानेका काम। २ निरानेकी मजदूरी।

निक्का (हिं० वि०) छोटा, नन्हा।

निक्रमण (सं० क्ली०) नितरां क्रमते यत्र नि-क्रम आधारे ल्युट्। स्थान, जगह।

निक्रीड़ (सं० पु०) १ कौतुक, क्रीड़ा, तमाशा। (क्ली०) २ सामभेद।

निक्वण (सं० पु०) क्वण शब्दे नि-क्वण-अप। १ वीणाध्वनि, वीनकी झनकार। २ किंवर प्रभृतिका शब्द। पर्याय—निक्वाण, क्वाण, क्वण, क्वणन, प्रक्वाण, प्रक्वण, सुक्वण, सुक्वण। (भारत)

निक्वाण (सं० पु०) नि-क्वण-घञ्। निक्वण।

निक्षण (सं० पु०) चुम्बन।

निक्षा (सं० स्त्री०) निक्ष-अच्-टाप्। निक्ष्या, जूंका अंडा, लीख।

निक्षिप्त (सं० त्रि०) नि-क्षिप-क्त। १ त्यक्त, फेंका हुआ।

२ किसीके यहां उसके विश्वास पर छोड़ा हुआ, धरोहर, रखा हुआ, अमानत रखा हुआ।

निक्षुभा (सं॰ स्त्री॰) नि-क्षुभ-क-टाप्। १ ब्राह्मणी। २ सूर्यकी पत्नी।

निक्षेप (सं॰ पु॰) १ फेंकने या डालनेकी क्रिया या भाव। २ चलानेकी क्रिया या भाव। ३ छोड़नेकी क्रिया या भाव। ४ पोछनेकी क्रिया या भाव। ५ धरोहर, अमानत, थाती।

निक्षेपक (सं॰ पु॰) निक्षेपकारी, फेंकनेवाला।

निक्षेपण (सं॰ क्ली॰) नि-क्षिप-ल्युट्। १ निक्षेपकरण, फेंकना, डालना। २ छोड़ना, चलाना। ३ त्यागना।

निक्षेपी (हिं॰ वि॰) १ फेंकनेवाला, छोड़नेवाला। धरोहर रखनेवाला।

निक्षेमा (हिं॰ पु॰) निक्षेप देखो।

निक्षेप्तृ (सं॰ पु॰) नि-क्षिप-तृच्। निक्षेपकारी, फेंकनेवाला, छोड़नेवाला। २ धरोहर रखनेवाला।

निक्षेप्य (सं॰ त्रि॰) नि-क्षिप यत्। निक्षेपणीय, फेंकने योग्य, छोड़ने लायक।

निखंग (हिं॰ पु॰) निषंग देखो।

निखंगी (हिं॰ वि॰) निषंगी देखो।

निखंड (हिं॰ वि॰) मध्य, न थोड़ा इधर न उधर, सटीक, ठीक, जैसे निखंड आधी रात।

निखट्टर (हिं॰ वि॰) १ कठोर चित्तका, कड़े दिलका। २ निष्ठुर, निर्दय, बेरहम।

निखट्टू (हिं॰ वि॰) १ अपनी कुचालके कारण कहीं न टिकनेवाला, जिसका कहीं ठिकाना न लगे, इधर उधर मारा फिरनेवाला। २ निकम्मा, आलसी, जिससे कोई काम काज न हो सके।

निखण्डिका (सं॰ स्त्री॰) गुडूचीकन्द, गुलञ्च।

निखनन (सं॰ क्ली॰) नि-खन-ल्युट्। १ खनना, खोदना। २ मृत्तिका, मट्टी। ३ गाड़ना।

निखरना (हिं॰ क्रि॰) १ निर्मल और स्वच्छ होना, मैल छूट कर साफ होना, धुल कर भक होना। २ रङ्गतका खुलना होना।

निखरवाना (हिं॰ क्रि॰) धुलवाना, साफ कराना।

निखरी (हिं॰ स्त्री॰) घृतपक्व, पक्की, सखरीका उलटा। खानपानके आचारमें घी दूध आदिके साथ पकाया हुआ अन्न उच्चवर्णके लोग बहुतसे लोगोंके हाथका खा सकते हैं, पर केवल पानीके संयोगसे आग पर पकाई चीजें बहुत कम लोगोंके हाथकी खाते हैं।

निखर्व (सं॰ पु॰) १ संख्याविशेष, दश हजार करोड़की संख्या। (त्रि॰) २ दश सहस्र कोटि, दश हजार करोड़। नितरां खर्वः। ३ वामन, बौना, नाटा।

निखर्वट (सं॰ पु॰) रावणसैन्यगत राक्षसभेद, रावणकी सेनाका एक राक्षस।

निखवख (हिं॰ वि॰) बिलकुल, सब, और कुछ नहीं।

निखात (सं॰ त्रि॰) नि-खन-क्त। प्रोथित, स्थापित, रखा हुआ, गाड़ा हुआ।

निखाद (हिं॰ पु॰) निषाद देखो।

निखार (हिं॰ पु॰) १ निर्मलपन, स्वच्छता, सफाई। २ शृङ्गार, सजाव।

निखारना (हिं॰ क्रि॰) १ स्वच्छ करना, साफ करना, मांजना। २ पवित्र करना, पापरहित करना।

निखारा (हिं॰ पु॰) शक्कर बनानेका कड़ाह जिसमें डाल कर रस उबाला जाता है।

निखालिस (हिं॰ वि॰) विशुद्ध, जिसमें और किसी चीजका मेल न हो।

निखिल (सं॰ त्रि॰) निवृत्तं खिलं शेषो यस्मात्। सकल, समग्र, सब, सारा।

निखोट (हिं॰ वि॰) १ जिसमें कोई दोष या खोटाई न हो, निर्दोष। २ स्पष्ट, खुला हुआ, साफ। (क्रि॰ वि) ३ विना सङ्कोचके, बेधड़, खुल्लमखुल्ला।

निखोड़ा (हिं॰ वि॰) निर्दय, कठोर चित्तका।

निखोड़ना (हिं॰ क्रि॰) नाखूनसे नोचना, उचाड़ना।

निगंद (हिं॰ पु॰) दवाके काममें आनेवाली एक बूटी जो रक्तशोधक समझी जाती है। इसके सम्बन्धमें प्रवाद है, कि सांप जब केंचलीसे भर आनेके कारण व्याकुल हो जाता है, तब इसे चाट लेता है जिससे केंचली उतर जाती है।

निगंदना (हिं॰ क्रि॰) रजाई, दुलाई आदि रुई भरे कपड़ोंमें तागा डालना।

निगड़ (सं॰ पु॰ क्ली॰) निगलति बध्नातीति नि-गल-अच्

लस्य तुल्यं। १ लौहमय पादबन्धनी, हाथीके पैर बांधनेकी जंजीर, आंदू। पर्याय—शृङ्खल, अन्दूक, हिञ्जीर और अन्दु। (स्त्री०) बेड़ी।

निगड़न (सं० क्ली०) शृङ्खलाबन्धन, जंजीरसे बाँधनेका काम।

निगड़ित (सं० त्रि०) निगड़ोऽस्य सञ्जातः तारकादित्वादितच्। शृङ्खलाबद्ध, जिसके पैर जञ्जीरसे जकड़े हुए हों।

निगड़ी—सतारा जिलेके सतारा शहरसे ११ मील दक्षिण पूर्व और रहिमपुरसे ४ मील दक्षिण पश्चिममें अवस्थित एक ग्राम। यह कृष्णानदीके किनारे बसा हुआ है यहां विख्यात महापुरुष रघुनाथ स्वामीकी समाधि है यह स्थान शिवाजीने गोसाइयोंको दानमें दिया था।

निगण (सं० पु०) निगरण पृषोदरादित्वात् साधुः। होमधूम, होमका धुआं।

निगद (सं० पु०) गद भाषे नि गद-अप्। १ भाषण, कथन। इसका पर्याय—निगाद है। २ शब्दमात्र। ३ आगमोक्त जप। ४ उच्चैःस्वरसे जप, ऊंचे स्वरसे किया हुआ जप। (त्रि०) ५ पुरातन, पुराना।

निगदित (सं० त्रि०) नि-गद-क्त। १ कथित, भाषित, कहा हुआ।

निगन्थनाथ—एक तीर्थिक। उनके सम्प्रदायभुक्त बौद्ध शिष्यगण उनकी लिखी हुई नियमावलीके अनुसार चलते थे। ये लोग ठण्ढा जल नहीं पीते थे। सब समय गरम जलका व्यवहार होता था। ये लोग चोरी या जीवहत्या नहीं करते थे। निर्ग्रन्थ देखो।

निगन्धिक (सं० पु०) सुवर्ण, चम्पक।

निगम (सं० पु०) निगमे पुर्यां भवः, नि-गम-अण्। (तत्र भवः। पा ४।३।५३) १ वाणिज्य, व्यापार। २ पुरी। निगम्यते ज्ञायतेऽनेनेति। ३ वेद।

"कथङ्कारं वाच्यः सकलनिगमागोचरगुण-
प्रभावः स्वं यस्मात् स्वयमपि न जानाति परमम्॥"
(देवीभाग० १।५।६१)

४ वणिक्पथ, वणिकोंकी फेरीका स्थान, हाट, बाजार। ५ निश्चय। ६ अध्वा, पथ, मार्ग। ७ वेदार्थबोधक ग्रन्थभेद। ८ तन्त्रभेद। ९ मेला। १० कायस्थोंका एक भेद। निगम शब्दसे वेदका अर्थ होता है—यास्क प्रभृतिने निगम शब्दका वेद अर्थ लगाया है।

"आद्यं नैघण्टुकं काण्डं द्वितीयं नैगमं तथा॥"
(ऋग्वेदकी अनुक्रमणिका)

११ न्यायदर्शनके मतसे पञ्च अवयवोंके मध्य चरमावयव।

निगमन (सं० क्ली०) निगम्यतेऽनेन करणे ल्युट्। न्यायमें अनुमानके पांच अवयवोंमेंसे एक; हेतु, उदाहरण और उपनयके उपरान्त प्रतिज्ञाको सिद्ध सूचित करनेके लिए उसका फिरसे कथन, साबित की जानेवाली बात साबित हो गई यह जतानेके लिये दलील वगैरहके पीछे उस बातको फिर कहना, नतीजा। जैसे, "यहां पर आग है" (प्रतिज्ञा)। "क्योंकि यहां पर धुआं है" (हेतु)। "जहां धुआं रहता है वहां आग रहती है, जैसे, रसोई घरमें" (उदाहरण)। "यहां पर धुआं है" (उपनय)। इसलिये "यहां पर आग है" (निगमन)।

प्रशस्तपादके भाष्यमें 'निगमन'को प्रत्याम्नाय भी कहा है।

निगमनिवासी (सं० पु०) विष्णु, नारायण।

निगमबोध—दिल्लीके सन्निकटस्थ कालिन्दी (यमुना-नदी) तीरवर्ती एक जनपद। पूर्वकालमें यह स्थान बहुत पवित्र और देवताओंका वासस्थान समझा जाता था। प्रवाद है, कि दानवराज धुन्धु (विशाल नृपति) शाप छुड़ानेके लिये विमान पर चढ़ कर काशी जा रहे थे। रास्तेमें उन्हें प्यास लगी और वे योगिनीपुर (दिल्ली) जल पीनेके लिये उतरे जहां उन्हें एक ऋषि मिले। ऋषिने उन्हें यमुना किनारे निगमबोध नामकी गुफामें नारायणकी तपस्या करनेके लिये कहा। तदनुसार दानवराज तपस्या करने लगे। इस प्रकार तपस्या करते करते जब ३८० वर्ष बीत गये, तब एक दिन पाण्डु-वंशीय हस्तिनापुरके राजा अनङ्गपालकी कन्या सखियों सहित स्नान करनेके लिये यमुनाके किनारे आई और पानी बरसनेके कारण उस गुफामें उसने आश्रय लिया। गुफामें ऋषिको देख उसने उसे स्तुतिसे प्रसन्न किया और यह वर मांगा कि "हम लोग वीरपत्नी हों और सदा एक साथ रहें।" दानवराजने तुम लोगोंकी अभिलाषा पूर्ण

हो" ऐसा वर दिया और अनङ्गपालको लड़कीसे कहा, "तुम्हारा एक पुत्र बड़ा प्रतापी होगा और दूसरा पुत्र बड़ा भारी वक्ता होगा।" इसके उपरान्त दानवराजने काशी जा कर अपना शरीर १०८ खण्डोंमें काट कर गङ्गामें डाल दिया। उसके शिरोंशसे एक प्रसिद्ध भाट और २० खण्डोंसे २० क्षत्रिय वीर अजमेरमें उत्पन्न हुए। इन बीस क्षत्रियोंमें सोमेश्वर प्रधान थे; सोमेश्वरके पुत्र विख्यात दिल्लीश्वर पृथ्वीराज हुए। दूसरे दूसरे अंशोंसे किसीने कनोजमें, किसीने परिहारमें, किसीने झालरमें, किसीने नागोर आदि स्थानोंमें जन्मग्रहण किया। हम लोगोंके सुप्रसिद्ध चांद कवि इसी अंशसे लाहोरमें उत्पन्न हुए थे। (पृथिराज-रायसा)

निगमागम (सं० पु०) वेदशास्त्र।

निगमिन् (सं० पु०) नि-गम-इनि। वेदविद्, जो वेद जानते हों।

निगर (सं० पु०) नि-गृ-अप्। (ऋदोरप्। पा ३।३।५७) १ भोजन। २ एक धरणको तौलमें ५५ मोती चढ़ें, तो उन मोतियोंके समूहका नाम निगर है।

निगर (हिं० वि०) १ सब, सारे। (पु०) २ निकर देखो।

निगरण ((सं० क्लो०) नि-गृ-ल्युट्। १ भक्षण, भोजन। (पु०) २ गला। ३ होमधेनु। रके स्थान पर ल करनेसे 'निगलन' शब्द भी होगा।

निगरां (फा० पु०) १ निरीक्षक, निगरानी रखनेवाला। २ रक्षक।

निगरा (हिं० वि०) जिसमें जल न मिलाया गया हो, खालिस।

निगराना (हिं० क्रि०) १ निर्णय करना, निबटाना। २ पृथक् करना, छाँट कर अलग अलग करना या होना। ३ स्पष्ट करना या होना।

निगरानी (फा० स्त्री०) निरीक्षण, देखरेख।

निगलना (हिं० क्रि०) १ गलेके नीचे उतार देना, घोंट जाना, गटक जाना। २ खा जाना। ३ रुपया या धन पचा जाना।

निगह (फा० स्त्री०) दृष्टि, नजर, निगाह।

निगहबान (फा० पु०) रक्षक।

निगहबानी (फा० स्त्री०) रक्षा, देखरेख, रखवाली, चौकसी।

निगाद (सं० पु०) नि-गद-विकल्पे घञ्। (नौ गदनदपठस्वनः। पा ३।३।६४) निगद, भाषण, कथन।

निगादिन् (सं० त्रि०) नि-गद-णिनि। वक्ता।

निगार (सं० पु०) नि-गृ-घञ्। भक्षण, भोजन।

निगार (फा० पु०) १ चित्र, नक्काशी, बेलबूटा। २ एक फारसी राग।

निगाल (सं० पु०) निगार-रस्य ल। १ भोजन। २ अश्वगलदेश, घोड़ेके गलेका वह भाग जहां घण्टी बांधी जाती है।

निगाल (फा० पु०) १ एक प्रकारका पहाड़ी बांस जो हिमालयमें पैदा होता है। इसे कोई रिंगाल भी कहते हैं। २ घोड़ेकी गरदन।

निगालवान् (सं० पु०) निगालोऽस्त्यस्येति, निगाल-मतुप्, मस्य व। अश्व, घोड़ा।

निगालिका (सं० स्त्री०) आठ अक्षरोंकी एक वर्णवृत्ति, इसके प्रत्येक चरणमें जगण, रगण और लघुगुरु होते हैं। इसे 'प्रमाणिका' और 'नागस्वरूपिणी' भी कहते हैं।

निगाली (हिं० स्त्री०) १ बांसकी बनी हुई नली, निगाल। २ हुक्केकी नली जिसे मुंहमें रख कर धूआं खींचते हैं।

निगाह (फा० स्त्री०) १ दृष्टि, नजर। २ ध्यान, विचार, समझ। ३ परख, पहचान। ४ देखनेकी क्रिया या ढङ्ग, चितवन, तकाई। ५ कृपादृष्टि, मेहरबानी।

निगिभ (हिं० वि०) अत्यन्त गोपनीय, जिसका बहुत लोभ हो, बहुत प्यारी।

निगु (सं० पु०) निगम्यते विद्यतेऽनेनेति नि-गम बाहुल-कात् डु। १ मन, अन्तःकरण। २ मल। ३ मूल। ४ मनोज्ञ। ५ चित्रकर्म।

निगुड़—गुजरातके मध्यवर्ती एक ग्राम। इसके पूर्वमें फलहभद्र, पश्चिममें विहान ग्राम और उत्तरमें दधिथली ग्राम पड़ता है। राजा २य दद्दने यह ग्राम कनोजसे आए हुए प्रसिद्ध ऋग्वेदी ब्राह्मण भट्ट यादवको अग्निहोत्र और अन्यान्य धर्मादिष्ट कर्त्तव्यसाधनके लिये दान किया था।

निगुत् (सं० त्रि०) नि-गुङ् क्विप्, तुक् च। भयादिके कारण अव्यक्त-शब्दकारक।

निगुनी (हिं० वि०) गुणरहित, जो गुणी न हो।

निगुरा (हिं० वि०) अदीक्षित, जिसने गुरुसे मन्त्र न लिया हो, जिसने गुरु न किया हो।

निगूढ़ (सं० त्रि०) निगुह्यते संव्रियते इति नि-गुह-क्त, ढ़त्वं-भावः। (यस्य विभाषा। पा ७।२।१५) १ गुप्त, छिपा हुआ। (पु०) २ वनमुद्ग, मोठ।

निगूढ़ार्थ (सं० त्रि०) जिसका अर्थ छिपा हो। न्याय-सभामें उपस्थित दोनों पक्षवालोंके जो उत्तर उत्तराभास (जो उत्तर ठीक न हो) कह गये हैं उनमें निगूढ़ार्थ भी है। जैसे, यदि पक्षपातीसे पूछा जाय कि क्या सौ रुपये तुम्हारे ऊपर आते हैं और वह उत्तर दे, कि "क्या मेरे ऊपर इसके रुपये आते हैं।" इस उत्तरसे यह ध्वनि निकलती है कि दूसरे किसीके ऊपर आते हैं।

निगूहक (सं० त्रि०) गोपनकारी, छिपानेवाला।

निगूहन (सं० क्लो०) गोपन, छिपाव।

निगूहनीय (सं० त्रि०) नि-गुह-अनीयर्। गोपनीय, छिपानेयोग्य।

निगृहीत (सं० त्रि०) नि-ग्रह-क्त। १ आक्रमित, आक्रान्त, जिस पर आक्रमण किया गया हो। २ पोड़ित। ३ दण्डित। ४ धृत, पकड़ा हुआ, घेरा हुआ। ५ दमित, शासित, जिस पर शासन किया गया हो। ६ वशीकृत, जो कब्जेमें लाया गया हो।

निगृहीति (सं० स्त्री०) नि-ग्रह-क्तिन्। दमन।

निगृह्य (सं० त्रि०) नि-ग्रह-ल्यप्। दण्डनीय, सजाके काबिल।

निगेटिव (अं० पु०) वह प्लेट जिस पर फोटो लिया जाता और जिस पर प्रकाश तथा छायाकी छाप उलटी पड़ती है अर्थात् जहां खुलता और सफेद होना चाहिये वहां काला और गहरा होता है और जहां गहरा और काला होना चाहिये वहां खुलता और सफेद होता है। कागज पर सीधा छाप लेनेसे फिर पदार्थोंका चित्र यथा-यथ उतर आता है।

निगोड़ा (हिं० वि०) १ जिसके ऊपर कोई बड़ा न हो। २ जिसके आगे पीछे कोई न हो, अभागा। ३ दुष्ट, बुरा, नीच, कमीना।

निगोहान—मोहनलालगञ्ज तहसीलके अन्तर्गत एक नगर। यह शहर लखनऊसे २३ मील दक्षिणमें पड़ता है। कहते हैं कि अयोध्याके राजा नहुषने यह नगर बसाया।

निग्रन्थन (सं० क्लो) नि-ग्रन्थ-भावे ल्युट्। मारण, वध, कत्ल।

निग्रह (सं० पु०) नियमेन ग्रहणमिति नि-ग्रह-अप्। (ग्रहवृदिति। पा ३।३।५८) १ अनुग्रहाभाव, पीड़न, सताना। २ बन्धन। ३ भर्त्सन, डांट, फटकार। ४ सीमा, हद। ५ दण्ड, सजा। ६ चिकित्सा, इलाज। ७ विष्णु। ८ महादेव। ९ निरोधरूप योग द्वारा अभ्यास और वैराग्यबलसे मनका निरोध। १० मारण, वध। ११ अव-रोध, रोक।

निग्रहण (सं० पु०) १ दण्ड देनेका कार्य। २ रोकनेका काम, थामनेका काम।

निग्रहना (हिं० क्रि०) १ रोकना। २ पकड़ना, थामना।

निग्रहस्थान (सं० क्लो०) न्यायदर्शनके षोड़श पदार्थोंमेंसे एक पदार्थ। जहां विप्रतिपत्ति (उलटा पुलटा ज्ञान) या अप्रतिपत्ति (अज्ञान) किसी ओरसे हो वहां निग्रह-स्थान होता है। जैसे, वादी कहे—आग गरम नहीं होती। प्रतिवादी कहे कि स्पर्श द्वारा गरम होना प्रमाणित होता है, इस पर वादी यदि बगल झांकने लगे और कहे कि मैं यह नहीं कहता कि आग गरम नहीं होती इत्यादि, तो उसे चुप कर देना चाहिये या मूर्ख कह कर निकाल देना चाहिये। निग्रहस्थान २२ कहे गये हैं—प्रतिज्ञाहानि, प्रतिज्ञान्तर, प्रतिज्ञाविरोध, प्रतिज्ञा-संन्यास, हेत्वन्तर, अर्थान्तर, निरर्थक, अविज्ञातार्थ, अपार्थक, अप्राप्तकाल, न्यून, अधिक, पुनरुक्त, अननु-भाषण, अज्ञान, अप्रतिभा, विक्षेप, मतानुज्ञा, पर्यनुयोज्यो-पेक्षण, निरनुयोज्यानुयोग, अपसिद्धान्त और हेत्वाभास।

(१) प्रतिज्ञाहानि वहां होती है जहां कोई प्रति-दृष्टान्तके धर्मको अपने दृष्टान्तमें मान कर अपनी प्रतिज्ञा को छोड़ता है। जैसे, एक कहता है—शब्द अनित्य है, क्योंकि वह इन्द्रिय विषय है। जो कुछ इन्द्रियविषय

हो वह घटकी तरह अनित्य है। शब्द इन्द्रियविषय है, अतः वह अनित्य है। दूसरा कहता है—जाति (जैसे घटत्व) जब इन्द्रियविषय होने पर भी नित्य है, तब शब्द क्यों नहीं। इसके उत्तरमें पहला कहता है—जो कुछ इन्द्रियविषय हो वह घटकी तरह नित्य है। उसके इस कथनसे प्रतिज्ञाकी हानि हुई।

(२) प्रतिज्ञान्तर वहां होता है जहां प्रतिज्ञाका विरोध उपस्थित होने पर कोई अपने दृष्टान्त और प्रतिदृष्टान्तमें विकल्पसे एक और नए धर्मका आरोप करता है। जैसे, एक आदमी कहता है—शब्द अनित्य है, क्योंकि वह घटके समान इन्द्रियोंका विषय है। दूसरा कहता है-शब्द नित्य है, क्योंकि वह जातिके समान इन्द्रियविषय है। इस पर पहला कहता है—पात्र और जाति दोनों इन्द्रियविषय हैं, पर जाति सर्वगत है और घट सर्वगत नहीं। अतः शब्द सर्वगत न होनेसे घटके समान अनित्य है। यहां शब्द अनित्य है यह पहली प्रतिज्ञा थी; शब्द सर्वगत नहीं यह दूसरी प्रतिज्ञा हुई। एक प्रतिज्ञाकी साधक दूसरी प्रतिज्ञा नहीं हो सकती, प्रतिज्ञाके साधक हेतु और दृष्टान्त होते हैं।

(३) जहां प्रतिज्ञा और हेतुका विरोध हो, वहां प्रतिज्ञाविरोध होता है। जैसे, किसीने कहा—द्रव्य और गुण दोनों एक वस्तु नहीं है (प्रतिज्ञा), क्योंकि उसकी उपलब्धि रूपादिकसे भिन्न नहीं होती। यहां प्रतिज्ञा और हेतुमें विरोध है क्योंकि यदि द्रव्य गुणसे भिन्न है तो वह रूपसे भिन्न हुआ।

(४) जहां पक्षका निषेध होने पर माना हुआ अर्थ छोड़ दिया जाय वहां प्रतिज्ञासंन्यास होता है। जैसे, किसीने कहा—इन्द्रियविषय होनेसे शब्द अनित्य है। दूसरा कहता है जाति इन्द्रियविषय है पर अनित्य नहीं, इसी प्रकार शब्द भी समझिए। इस तरह पक्षके निषेध होने पर यदि पहला कहने लगे कि कौन कहता है कि 'शब्द अनित्य है', तो उसका यह कथन प्रतिज्ञा-संन्यास नामक निग्रहस्थानके अन्तर्गत हुआ।

(५) जहां अविशेष रूपसे कहे हुए हेतुके निषेध होने पर उसमें विशेषत्व दिखानेकी चेष्टा की जाती है, वहां हेत्वन्तर नामका निग्रहस्थान होता है। जैसे, किसीने कहा—शब्द अनित्य है, क्योंकि वह इन्द्रिय-विषय है। दूसरा कहता है, कि इन्द्रियविषय होनेसे ही शब्द अनित्य नहीं कहा जा सकता, कारण जाति भी तो इन्द्रियविषय है, पर वह अनित्य नहीं। इस पर पहला कहता है, कि इन्द्रियविषय होना जो हेतु मैंने दिया है, उसे इस प्रकारका इन्द्रियविषय समझना चाहिये जो जातिके अन्तर्गत लाया जा सकता हो। जैसे, 'शब्द' जातिके अन्तर्गत लाया जा सकता है, पर जाति फिर जातिके अन्तर्गत नहीं लाई जा सकती। हेतुका यह टालना हेत्वन्तर कहलाता है।

(६) जहां प्रकृत विषय या अर्थसे सम्बन्ध रखने-वाला विषय उपस्थित किया जाता है वहां अर्थान्तर होता है, जैसे कोई कहे कि शब्द अनित्य है, क्योंकि वह अस्पृश्य है। विरोध होने पर यदि वह इधर उधर-की व्यर्थ बातें बकने लगे, जैसे हेतु शब्द 'हि' धातुसे बना है इत्यादि तो उसे अर्थान्तर नामक निग्रहस्थानमें आया हुआ समझना चाहिये।

(७) जहां वर्णोंको बिना अर्थकी योजना की जाय, वहां निरर्थक होता है। जैसे, कोई कहे क ख ग नित्य है ज ब ग ड-से।

(८) जब पक्षका विरोध होने पर अपने बचावके लिये कोई ऐसे शब्दोंका प्रयोग करने लगे जो अर्थ प्रसिद्ध न होनेके कारण जल्दी समझमें न आवें अथवा बहुत जल्दी जल्दी और अस्पष्ट स्वरमें बोलने लगे, तब अवि-ज्ञातार्थ नाम निग्रहस्थान होता है।

(९) जहां बहुतसे पदों या वाक्योंका पूर्वपर क्रमसे अन्वय न हो, पद और वाक्य असंबद्ध हों, वहां अपार्थक होता है।

(१०) प्रतिज्ञा हेतु आदि अवयवक्रमसे न कहे जायँ, आगे पीछे उलट पुलट कर कहे जायं, वहां अप्राप्त-काल होता है।

(११) प्रतिज्ञा आदि पञ्च अवयवोंमेंसे जहां कथनमें कोई अवयव कम हो, वहां न्यून नामक निग्रहस्थान होता है।

(१२) हेतु और उदाहरण जहां आवश्यकतासे अधिक हो जायं, वहां अधिक नामक निग्रहस्थान होता

है; क्योंकि जब एक हेतु और उदाहरणसे अर्थ सिद्ध हो गया, तब दूसरा हेतु और उदाहरण व्यर्थ है। पर यह बात पहलेसे नियमको मान लेने पर है।

(१३) जहां व्यर्थ पुनः कथन हो वहां पुनरुक्त होता है।

(१४) चुप रह जानेका नाम अननुभाषण है। जहां वादी अपना अर्थ साफ साफ तीन दफा कहे और प्रतिवादी सुन और समझ कर भी कोई उत्तर न दे वहां अननुभाषण नामक निग्रहस्थान होता है।

(१५) जिस बातको सभासद् समझ गए हों उसीको तीन बार समझाने पर भी यदि प्रतिवादी न समझे, तो अज्ञान नामक निग्रहस्थान होता है।

(१६) जहां पर पक्षका खण्डन अर्थात् उत्तर न बने वहां अप्रतिभा नामक निग्रहस्थान होता है।

(१७) जहां प्रतिवादी इस तरह टालटूल कर दे कि 'मुझे इस समय काम है, फिर कहूंगा' वहां विक्षेप होता है।

(१८) जहां प्रतिवादीके दिए हुए दोषको अपने पक्षमें अङ्गीकार करके वादी बिना उस दोषका उद्धार किए प्रतिवादीसे कहे, कि 'तुम्हारे कथनमें भी तो यह दोष है' वहां मतानुज्ञा नामक निग्रह स्थान होता है।

(१९) जहां निग्रहस्थानमें प्राप्त हो जानेवालेका निग्रह न किया जाय वहां पर्यनुयोज्योपेक्षण होता है।

(२०) जो निग्रहस्थानमें न प्राप्त होनेवालेको निग्रहस्थानमें प्राप्त कहे उसे निरनुयोज्यानुयोग नामक निग्रहस्थानमें गया समझना चाहिये।

(२१) जहां कोई एक सिद्धान्तको मान कर विवादके समय उसके विरुद्ध कहता है, वहां अपसिद्धान्त नामक निग्रह स्थान होता है।

(२२) हेत्वाभास देखो।

निग्रही (हिं० वि०) १ रोकनेवाला, दबानेवाला। २ दमन करनेवाला, दण्ड देनेवाला।

निग्रहीतव्य (सं० वि०) नि-ग्रह-तव्य। निग्रहणीय, जो सजा देनेके योग्य हो।

निग्राभ (सं० पु०) १ निग्राह, आक्रोश, शाप। २ शत्रुके विषयमें

निग्राभ्य (सं० त्रि०) निग्राह्य, ग्रहीतव्य, ग्रहण करनेयोग्य, लेनेके काबिल।

निग्राह (सं० पु०) नि ग्रह-घञ्। (आक्रोशेऽवन्योर्ग्रहः। पा ३।३।४५) निग्रह, आक्रोश, शाप।

निग्राह्य (सं० त्रि०) नि-ग्रह-ण्यत्। निग्रहणीय, ग्रहण करनेके योग्य।

निग्रो—एक प्रकारको असभ्य जाति। अफ्रिकामें इनका आदिम वास था। वर्त्तमान समयमें ये पृथ्वीके अधिकांश स्थानोंमें फैल गये हैं। इनमेंसे मलय उपद्वीप, पूर्वभारतीय द्वीपावली, अन्दामान आदि स्थानोंमें ये अधिक संख्यामें पाये जाते हैं।

मलयजाति और पपुयाजातिके साथ इनका आकार बहुत कुछ मिलता जुलता है। प्रधानतः निग्रोजाति दो भागोंमें विभक्त है—१ खर्वाकार निग्रो और २ बृहत्काय निग्रो। खर्वाकार निग्रोकी लम्बाई ५ फुटसे कमको नहीं है, किन्तु बृहदाकृति निग्रोमेंसे कोई कोई ६ फुटसे अधिक लम्बा होता है। प्रथम श्रेणीके निग्रो क्षीणकायके होते, नाक चिपटी, दाढ़ी बहुत छोटी, बाल घुंघराले और आंखें बहुत छोटी छोटी होती हैं। द्वितीय श्रेणीके निग्रो देखनेमें भयङ्कर लगते हैं। उनके प्रकाण्ड कृष्णवर्ण शरीर, बड़ी बड़ी आंखें, कुञ्चित बाल और सूक्ष्म नासिकाग्र देखनेसे वीरके हृदयमें भी भयका सञ्चार हो जाता है। दोनों प्रकारके निग्रो गाढ़ कृष्णवर्ण और विलक्षण साहसी होते हैं। इनमेंसे बहुतेरे ऐसे थे जो जलपथ पर दस्युवृत्ति करके अपनी जीविकानिर्वाह करते थे। कोई कोई मुसलमान बादशाहके अधीन सैनिक विभागमें काम भी करते थे। शिकार आदि अन्यान्य साहसिक कार्य करनेमें ये बड़े सिद्धहस्त हैं। हरिण, शूकर इत्यादि जङ्गली जन्तुओंका शिकार कर अपना पेट पालते हैं।

अफ्रिकामें निग्रोकी संख्या प्रायः २० लाख है। अमेरिकामें ये कम संख्यामें पाये जाते हैं। लोहित सागर और पारस्यउपसागरके तीरवर्ती स्थानोंमें तथा मलय उपद्वीपमें कमसे कम ५० लाख निग्रो रहते हैं।

हटेण्टट, काफ्रि और निग्रोटा ये तीन निग्रोजातिकी विभिन्न शाखाएं हैं। इसके अलावा अन्दामानद्वीपके पूर्वमें लगभग बारह प्रकारके निग्रो देखे जाते हैं। इनके

आकारप्रकार और रीतिनीतिमें बहुत कम प्रभेद देखा जाता है। विशेष विवरण काफ्रि शब्दमें देखो।

निग्रोध (हिं० पु०) राजा अशोकके एक भतीजेका नाम।

निघ (सं० पु०) नियमितं निर्विशेषेण वा हन्यते ज्ञायते इति नि-हन निपातनात् साधुः। (निघो निमितम्। पा ३।३।८७) समविस्तार दैर्घ्य पदार्थ, वह वस्तु जिसकी चौड़ाई एक सी हो।

निघण्ट (सं० पु०) निघण्टु, सूचीपत्र।

निघण्टिका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका कन्द, गुलञ्च।

निघण्टु (सं० पु०) निघण्टति शोभते इति टीको कुप्रत्ययेन साधुः (मृगय्वादयश्च। उण् १।३८) १ नामसंग्रह। जैसे, वैद्यकका निघण्टु। २ अभिधानविशेष। इसमें वैदिक शब्दोंका अर्थ लिखा है। ३ एकार्थवाची पर्याय शब्द जिसमें निविष्ट हैं, उसे निघण्टु कहते हैं। अमरकोष, वैजयन्ती और हलायुध आदि ग्रन्थोंमें जिस जिस स्थान पर नाम संग्रह है, उस उस स्थानको भी निघण्टु कहते हैं।

निघण्टु तीन अध्यायोंमें विभक्त है। प्रथम अध्यायमें पृथिव्यादि लोक और दिक्कालादि द्रव्यविषयोंके नाम। द्वितीय अध्यायमें मनुष्य और तदवयवादि द्रव्यविषय और तृतीय अध्यायमें मनुष्य तथा उनके अवयवादि द्रव्य और सत्वादि धर्मविषय निबद्ध हैं। यास्कने निघण्टुको जो व्याख्या लिखी है, वह निरुक्तके नामसे प्रसिद्ध है। यह निघण्टु अत्यन्त प्राचीन है, क्योंकि यास्कसे पहले भी शाकपूर्णि और स्थौलष्ठीवी नामक इसके दो व्याख्याकार या निरुक्तकार हो चुके थे। महाभारतमें कश्यपको निघण्टुका कर्त्ता लिखा है। ४ निर्घण्ट, सूचीपत्र।

निघण्टुराज (सं० पु०) नरहरिकृत राजनिघण्टु।

निघरघट (हिं० वि०) १ जिसका कहीं घर घाट न हो, जिसे कहीं ठिकाना न हो, जो घूम फिर कर वहीं आवे जहांसे दुतकारा या हटाया जाय। २ निलज्ज, बेहया।

निघरा (हिं० वि०) जिसके घरबार न हो, निगोड़ा।

निघर्ष (सं० पु०) नि-घृष भावे घञ्। घर्षण, घिसना, रगड़ना।

निघर्षण (सं० क्ली०) नि-घृष-ल्युट्। घर्षण, घिसना, रगड़ना।

निघस (सं० पु०) अद-भक्षणे नि-अद-अप्, ततो घसादेशः (घञपोश्च। पा २।४।३८।) आहार, भोजन।

निघात (सं० पु०) नि-हन-भावे घञ्। १ आहनन, प्रहार। २ अनुदात्त स्वर। ३ अन्य स्वर द्वारा अन्य स्वरका हनन।

निघाति (सं० स्त्री०) निहन्यतेऽनया नि-हन-इञ् कुत्वञ्च (वसि-वपि-यजिराजीति। उण् ४।१२४) १ लौहघातिनी, लौहमयदण्ड। २ वह लोहेका खण्ड जिस पर हथौड़े आदिका आघात पड़े, निहाई।

निघाती (सं० त्रि०) १ आघातकारी, मारनेवाला। २ वध करनेवाला।

निघासन—१ युक्तप्रदेशके खेरी जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २७° ४१´ और २८° ४२´ उ० तथा देशा० ८०° १८´ और ८१° १८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १२३७ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग २८११२३ है। इसमें ३८६ ग्राम और दो शहर लगते हैं। इसके उत्तरमें स्वाधीन नेपाल राज्य, पूर्वमें नानपाड़ा तहसील, दक्षिणमें निघवन और सीतापुर तहसील तथा पश्चिममें लखीमपुर तहसील है। खेरी जिलेमें यह सबसे बड़ी तहसील है। फिरोजाबाद, धौराहाड़, निघासन, खेरीगढ़ और पालिया ये पांच परगने इसके अन्तर्गत हैं।

२ खेरी जिलेका एक परगना। इसके उत्तरमें खेरीगढ़ है, पूर्वमें धौराहाड़, दक्षिणमें भूर और पश्चिममें पालिया है। सरयू नदी इस परगनेमें बहती है।

निघुष्ट (सं० क्ली०) निघुष्यतेस्मेति, नि-घुष भावे क्त। घुष्ट, घोषण।

निघृष्व (सं० पु०) घृषु संघर्षे नि-घृष-क्वन् प्रत्ययेन साधुः (अत्र निघृष्वरिष्वेति। उण १।१५३) १ खुर। २ वायु। ३ खर। ४ मार्ग। ५ वराह। ६ क्षुद्र।

निघ्न (सं० त्रि०) निहन्यते निरुध्यते इति नि-हन अपर्थे क। १ अधीन, आयत्त, वशीभूत। २ आहत, घायल, जख्मी। ३ अवलम्बित, निर्भर। ४ गुणित, गुणा किया हुआ। (पु०) ५ सूर्यवंशीय राजा अनरण्यका पुत्र। ६ एक राजा जो अनमित्रका पुत्र था।

निघ्नक (सं० पु०) हस्तिनापुरके राजा जो असीमकृष्ण-

के पुत्र थे। हस्तिनापुरको जब गङ्गा बहा ले गई, तब इन्होंने कौशाम्बीमें राजधानी बसाई।

निचन्द्र (सं० पु०) दानवभेद, एक दानवका नाम।

निचमन (सं० क्लो०) अल्प परिमाणमें पान, थोड़ा थोड़ा पीना।

निचय (सं० पु०) नि-चि-अच् (एरच्। पा ३।३।५६) १ समूह। २ अवयवादिका लक्षण। ३ निश्चय। ४ निचीयमान, अवयवादि द्वारा वर्द्धमान। ५ सञ्चय।

निचयक (सं० त्रि०) निचये कुशल: आकर्षादित्वात् कन् निचयकुशल।

निचयात्मक (सं० त्रि०) सान्निपातिक।

निचला (हिं० वि०) १ नीचेका, नीचेवाला। २ अचल, जो हिलता डोलता न हो। ३ स्थिर, शान्त, अचपल।

निचलौल—युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलान्तर्गत महाराजगञ्ज तहसीलका एक ग्राम। यह अक्षा० २७° १८' उ० और देशा० ८३° ४४' पू० गोरखपुर शहरसे ५१ मील उत्तरपूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या लगभग १५६४ है यहां ईंटेके बने हुए एक प्रकाण्ड दुर्गका भग्नावशेष देखनेमें आता है।

निचाई (हिं० स्त्री०) १ नीचापन, नीचा देखनेका भाव। २ नीचेकी ओर दूरी या विस्तार। ३ नीचता, ओछापन, कमीनापन।

निचान (हिं० स्त्री०) १ नीचापन। २ ढाल, ढालुवाँपन, ढलान।

निचाय (सं० पु०) नि-चि परिमाणाख्यायां घञ्। राशीकृत धान्यादि, धान आदिका ढेर।

निचिंत (हिं० वि०) चिन्तारहित, सुचित, बेफिक्र।

निचि (सं० पु०) नि-चि बाहुलकात् डि। गोकर्णशिरोदेश, कानोंके सहित गायका सिर।

निचिकी (सं० स्त्री०) निचिना कायति शोभते इति कै-क, गौरादित्वात् ङीष्। उत्तमा गाभि, अच्छी गाय।

निचित (सं० त्रि०) निचीयते स्मेति नि-चि-क्त। १ पूरित। २ व्याप्त। ३ रचित, सञ्चित। ४ सम्य, उपार्जित। ५ सङ्कीर्ण। ६ निर्मित, तैयार।

निचिता (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम।

निचिर (सं० क्लो०) नितरां चिरः प्रादि-समासः। १ अत्यन्त चिरकाल। २ चिरकालवर्त्ती।

निचुक्कण (सं० त्रि०) १ गर्जन। २ बड़बड़ाना।

निचुड़ना (हिं० क्रि०) १ रससे भरी या गीली चीजका इस प्रकार दबना कि रस या पानी टपक कर निकल जाय, दब कर पानी या रस छोड़ना, गरना। २ भरे या समाये हुए जल आदिका दाब पा कर अलग होना या टपकना, छूट कर चूना, गरना। ३ रस या सारहीन होना। ४ शरीरका रस या सार निकल जानेसे दुबला होना, तेज और शक्तिसे रहित होना।

निचुम्पुन (सं० पु०) निचमनेन पूर्यते ततो पृषोदरादित्वात् साधुः। १ समुद्र। २ अवभृथ, वह शेष कर्म जिसके करनेका विधान मुख्ययज्ञके समाप्त होने पर है।

निचुल (सं० पु०) नि-चुल-क। १ हिज्जलवृक्ष, ईंजड़का पेड़। २ वेतसवृक्ष, बेंत। ३ निचोल, आच्छादन वस्त्र।

निचुल—एक कवि। महाकवि कालिदासकृत मेघदूतकी टीकामें मल्लिनाथने इनका उल्लेख किया है। ये कालिदासके समसामयिक और बन्धु थे। इनकी उपाधि कवियोगीन्द्र थी।

निचुलक (सं० क्लो०) निचुल इव प्रतिकृतिः कन् (इवे प्रतिकृतौ। पा ५।३।९६) १ निचोलक, कञ्चुक, अंगा। २ हिज्जलफल, ईंजड़का फल।

निचृत् (सं० स्त्री०) दोषयुक्त छन्द।

निचेकाय (सं० पु०) वह जिसको प्रत्येक तह सजाई गई हो।

निचेतृ (सं० त्रि०) नि-चि-तृच्। लब्ध वस्तुका सञ्चयकर्त्ता।

निचेय (सं० त्रि०) नि-चि-यत्। आचीयमान, जो जमा किया जाय।

निचेर (सं० पु०) नि-चर बाहुलकात् उन् आदेरेत्त्व। नितरां चरणशील, अत्यन्त विचरणशील, वह जो हमेशा घुमता फिरता हो।

निचोड़ (हिं० पु०) १ वह वस्तु जो निचोड़नेसे निकले, निचोड़नेसे निकला हुआ जल रस आदि। २ सार वस्तु, सार, सत। ३ मुख्य तात्पर्य, कथनका सारांश, खुलासा।

निचोड़ना (हिं० क्रि०) १ गोली या रसभरी वस्तुको दबा कर या ऐंठ कर उसका पानी या रस टपकाना, दबा कर पानी या रस निकालना, गारना। २ किसी वस्तुका सार भाग निकाल लेना। ३ सर्वस्व हरण कर लेना, निर्धन कर देना, सब कुछ ले लेना।

निचोल (सं० पु०) निचोल्यते इति चुल-घञ्। १ आच्छादन-वस्त्र, ऊपरसे शरीर ढाँकनेका कपड़ा। २ स्त्रियोंका परिधान-वस्त्र, घूंघटका कपड़ा। पर्याय—निचुल, उत्तरच्छद, प्रच्छदपट। ३ उत्तरीय वस्त्र। ४ वस्त्र, कपड़ा। ५ घाघरा, लहंगा।

निचोलक (सं० पु०) निचोल इव कायतीति कै-क। १ कञ्चुक, चोल, अंगा। २ सन्नाह, बख्तर। पर्याय—कुर्पास, वारवाण, कञ्चुक।

निचौंहा (हिं० वि०) नमित, नीचेकी ओर किया हुआ या झुका हुआ।

निचौहैं (हिं० क्रि०-वि०) नीचेकी ओर।

निच्छवि (सं० स्त्री०) तीरभूक्तिदेश, तिरहुत।

निच्छिवि (सं० पु०) एक प्रकारके व्रात्यक्षत्रिय, सवर्णा स्त्रीसे उत्पन्न व्रात्यक्षत्रियकी सन्तान।

निछक्का (हिं० पु०) वह समय वा स्थान जिसमें कोई दूसरा न हो, निराला, एकान्त।

निछत्र (हिं० वि०) १ छत्रहीन, बिना छत्रका। २ बिना राजचिह्नका, बिना राज्यका। ३ क्षत्रियोंसे हीन, बिना क्षत्रियका, क्षत्रियोंसे रहित।

निछल (हिं० वि०) कपट रहित, छलहीन।

निछला (हिं० वि०) बिलकुल, एकमात्र, बिना मिलावटका।

निछान (हिं० वि०) १ विशुद्ध, खालिस, जिसमें मेल न हो, बिना मिलावटका। २ बिलकुल, निछलता, नितान्त, एकमात्र, केवल। (क्रि० वि०) ३ बिलकुल, एकदम।

निछावर (हिं० स्त्री०) १ एक उपचार या टोटका। इसमें किसीकी रक्षाके लिये कुछ द्रव्य या कोई वस्तु उसके सिर या सारे अंगोंके ऊपरसे घुमा कर दान कर देते या डाल देते हैं, उत्सर्ग, वारफेरा, उतारा। इसका मतलब यह होता है, कि जो देवता शरीरको कष्ट देनेवाले हों वे शरीर और अङ्गोंके बदलेमें द्रव्य आदि पा कर सन्तुष्ट हो जायं। २ वह द्रव्य या वस्तु जो ऊपर घुमा कर दान की जाय या छोड़ दी जाय। ३ इनाम, नेग।

निछेद (सं० पु०) नि-छिद-घञ्। छेदन, कर्त्तन।

निछोह (हिं० वि०) निछोही देखो।

निछोही (हिं० वि०) १ जिसे प्रेम या छोह न हो। २ निर्दय, निष्ठुर।

निज (सं० त्रि०) नियमेन जायते इति नि-जन-ड। १ स्वीय, अपना, पराया नहीं। आजकल इस शब्दका प्रयोग प्रायः 'का' विभक्तिके साथ होता है, जैसे निजका काम। २ प्रधान, खास, मुख्य। ३ यथार्थ, सच्चा, वास्तविक, ठीक, सही। (अव्य०) ४ निश्चय, ठीक ठीक, सटीक। ५ मुख्यतः, विशेष करके, खास कर।

निजकर्मन् (सं० क्ली०) स्वकीय कार्य, अपना काम।

निजकारी (हिं० स्त्री०) १ बंटाईकी फसल। २ वह जमीन जिसके लगानमें उससे उत्पन्न वस्तु ही ली जाय।

निजकृत (सं० त्रि०) स्वकृत, अपना किया हुआ।

निजगल—महिसुरके अन्तर्गत बङ्गलूर जिलेका एक छोटा पहाड़। प्रवाद है, कि एक समय यहां तुमुल संग्राम हुआ था।

निजगुण—एक मराठी कवि। १५२२से १६५७ ई०के मध्य इनका जन्म हुआ था। ये दक्षिण-भारतके लिङ्गायत-सम्प्रदायके मध्य एक विख्यात गायक थे। इनकी रचित सङ्गीतशास्त्रीय पुस्तकका नाम ग्रन्थ-रत्न-निमन्त्रन है। उस ग्रन्थमें राग, रागिणी, स्वर, ताल इत्यादि की उत्पत्ति और स्थायित्वकाल आदि सुन्दर रूपसे वर्णित हैं।

निजगुणशिवयोगी—एक कवि। 'विवेकचिन्तामणि' नामक ग्रन्थ इन्होंका बनाया हुआ है।

निजघास (सं० पु०) पार्वतीके क्रोधसे उत्पन्न गणोंमेंसे एक।

निजघ्नि (सं० त्रि०) नि-हन-कि-द्वित्वञ्च। हननशील, जो हमेशा वध करता हो।

निजधृति (सं० स्त्री०) १ शाकद्वीपस्थित नदीभेद, शाकद्वीपकी एक नदीका नाम। (त्रि०) निजा धृतिर्यस्य। २ धृतिमान्, बुद्धियुक्त।

निजमतावलम्बिन् (सं० त्रि०) आत्ममतवादी, जो केवल अपने मतका अवलम्बन करता हो।

निजमुक्त (सं० त्रि०) स्वभावमुक्त, नित्यमुक्त।

निजस्व (सं० क्लो०) निजस्य स्वं। निजधन, स्ववित्त, अपनी सम्पत्ति, अपना धन।

निज़ा (अ० पु०) विवाद, झगड़ा।

निजात्मानन्दनाथ—एक ग्रन्थकार। इन्होंने श्रीविद्यापूजापद्धति नामक एक संस्कृत ग्रन्थकी रचना की।

निजात्मानन्द प्रकाश—एक संस्कृत ग्रन्थकार, नृसिंहके शिष्य। इनका बनाया हुआ 'महात्रिपुरसुन्दरीपादुकाशंनक्रमोत्तम' नामक ग्रन्थ मिलता है।

निज़ाम (अ० पु०) १ बन्दोबस्त, इन्तज़ाम। २ हैदराबादके नवाबोंका पदवीसूचक नाम। आसफ्जाहीवंशके संस्थापकने 'निज़ाम-उल-मुल्क'की उपाधि पाई थी।

विशेष विवरण निज़ामराज्यमें देखो।

निज़ाम अलीखाँ—दाक्षिणात्यमें निज़ाम-राज्यके प्रतिष्ठाता निज़ाम-उल्-मुल्क-आसफ जाहके चतुर्थ पुत्र। ये हैदराबादके सिंहासन पर चतुर्थ निज़ाम बन कर बैठे। पिताकी मृत्युके बाद पेशवाने जब इनके भाई सलावतजङ्ग पर आक्रमण किया, तब १७५१ ई०में निज़ाम बुरहनपुरसे अहमदनगरकी ओर चल दिये। राहमें उनकी सेनाने रंजनगांव और तेलीगांवधमधेरी नामक स्थान लूटा। यहां महाराष्ट्रोंके साथ निज़ाम-सेनाका घनघोर युद्ध छिड़ा। युद्धमें पराजित हो कर निज़ामने पूनाके निकट भीमा नदीके तीरवर्त्ती कोरेगांव नामक स्थानमें भाग कर अपनी जान बचाई। वे बेरारके शासनकर्त्ता थे। १७५७ ई०में रामचन्द्र यादोन जब पेशवा बालाजी बाजीरावकी सेनासे अपनी राजधानी सिन्दखेरनगरमें नजरबन्द किये गये, तब निज़ाम-अलीने जा कर उनकी रक्षा की थी। १७५८ ई०में निज़ाम दलबलके साथ अकोला पहुंचे और नगरमें लूट मार मचाने लगे। जानूजी भोंसलासे युद्धमें परास्त हो कर बुरहानपुरमें भाग आये और पुनः उनके विरुद्ध यात्रा कर युद्धविजयी हुए थे।

इस समय निज़ामके सेनापति कावोजङ्गने पेशवासे कुछ रिशवत ले कर अहमदनगर-दुर्ग उन्हें छोड़ दिया। इसी सूत्रसे निज़ामके साथ पेशवाका युद्ध छिड़ा। पेशवाने १७६० ई०में भोमा तोरवर्त्ती पेड़गांव-दुर्ग पर अपना कब्जा जमाया और अहमदनगरसे १६० मील दक्षिण-पूर्व उदयगिरि नामक स्थान पर निज़ामको परास्त करके उनसे अहमदनगर और दौलताबाद छीन लिया। १७६१ ई०में पानीपतकी लड़ाईमें महाराष्ट्रगण जब हतबल हो गये, तब निज़ामने पुनः प्रवरा और गोदावरी नदीके सङ्गमस्थान पर निधिवास तालुकके अन्तर्गत हो कर मन्दिरको तहस नहस कर डाला।

जानूजीको परास्त कर निज़ामने औरङ्गाबादको जीत लिया और वहांसे वे हैदराबादकी ओर अग्रसर हुए। १७६१ ई०में वे अपने भाई सलावतको राज्यच्युत और कारावद्ध कर निज़ामराज्यके सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इसके बाद वे इष्ट-इण्डिया-कम्पनीसे सैन्य-साहाय्य पानेके लिये उक्त कम्पनीको उत्तर सरकारके चार विभाग देनेके लिये राजी हुए। इस समय दाक्षिणात्यमें महाराष्ट्र और फरासीसीकी तूती बोल रही थी, इस कारण अङ्गरेज कम्पनीने यह दान लेना अस्वीकार किया। १७६३ ई०में उन्होंने पुनः जानूजी भोंसलाके विरुद्ध लड़ाई ठान दी। पीछे उन्होंने पूना पर चढ़ाई कर उसे ध्वंस कर डाला और नगरका कुछ भाग जला भी दिया। घर लौट कर उन्होंने अपने भाई सलावतका प्राण-नाश किया।

१७६६ ई०में कम्पनीको दिल्लीश्वरसे उत्तर सरकारके ५ विभागके अधिकारकी सनद मिली। अपने अधिकारको जमाये रखनेके लिये कम्पनीने कोण्डपल्ली-दुर्गमें घेरा डाला। इसी वर्ष १२ नवम्बरको हैदराबादके साथ निज़ामकी सन्धि हुई जिसमें यह स्थिर हुआ कि कम्पनीको वार्षिक ८ लाख रु० मिलनेसे वह निज़ामअलीको युद्धके समय सहायता पहुंचाती रहेगी और वह सरकारी राज्य अङ्गरेजके अधिकारमें रहेगा। इसी साल निज़ामने अङ्गरेजोंकी सहायतासे बंगलूर पर (१७६७ ई०में) अपना दखल जमाया और पोलिगारोंका दमन किया। निज़ाम अङ्गरेजों और महाराष्ट्रोंकी सहायतासे हैदरअली पर टूट पड़े। पीछे ये अङ्गरेजोंसे छल करके हैदरअलीके साथ मिल गये। १७६८ ई०में अङ्गरेजोंके साथ

शान्तिस्थापन करनेके लिए उन्होंने १लो मार्चको पुनः अङ्गरेजोंसे बन्धुताके चिह्नस्वरूप वार्षिक ५ लाख रु० ले कर दिल्लीको प्रदत्त सनदको शर्त्त को कायम रखा। अङ्गरेज यथा समय निजामको कर नहीं देते थे; इस कारण निजामने पुनः १७८० ई०में हैदरअलीके साथ मित्रता कर ली।

इस समय दाक्षिणात्यमें टीपू सुलतानका प्रभाव बहुत बढ़ा चढ़ा था। इस कारण १७८८ ई०में निजामने दूत भेज कर उन्हें निषेध किया कि वे अङ्गरेजोंके विरुद्ध कोई कारवाई नहीं कर सकते। टीपू सुलतानने इस पर कुछ भी ध्यान न दिया और वे युद्धके लिये तैयार हो गये। १७८० ई०में निजाम और अङ्गरेज उनका सामना करनेके लिये अग्रसर हुए। इस समय नाना फड़नवीस भी महाराष्ट्रीय सेनाको साथ ले उनको सहायताके लिये आ पहुंचे। निजामने टीपूको परास्त कर कड़ापा जिलेको जीत लिया। इसी वर्ष टीपूने उनसे मेल करके कड़ापाके अलावा गुरमकोण्डा-दुर्ग भी उन्हें दे दिया। बाद निजामने उक्त दोनों स्थान एस रेमण्ड साहबको पारितोषिकके रूपमें दे दिया; क्योंकि उन्होंने निजामको यथेष्ट सहायता की थी। इस पर मन्द्राज सरकार बहुत असन्तुष्ट हुई और कड़ापा पर आक्रमण करनेका भय दिखा कर उन्होंने रेमण्डको उक्त स्थान छोड़ देनेको कहा।

इस समय महाराष्ट्रोंके अभ्युत्थानसे वे दिनों दिन हतोत्साह होने लगे। एक एक करके उन्होंने अधिकांश प्रदेश महाराष्ट्रोंके हाथ सुपुर्द किया। जो कुछ अंश उनके पास बच रहे, उनके लिये वे पेशवाको कर देनेको बाध्य हुए।

माधवरावके राजत्वकालमें जानूजी भोंसले, गोपाल राव और अन्यान्य महाराष्ट्र-सरदारोंकी सलाहसे तथा अपने दीवान विट्ठलसे उत्तेजित हो निजाम अली पूनाको लूटनेके लिए अग्रसर हुए। माधवरावके प्रधान प्रतिनिधि और मन्त्री रघुनाथराव भयभीत हो पूनासे भाग गये। निजामअलीने नगरमें प्रवेश किया और इसे तहस नहस कर डालनेमें एक कसर उठा न रखी। वहांसे लौट कर जब वे गोदावरी नदी पार करके थोड़ी दूर आगे बढ़े थे, उस समय रघुनाथरावने अच्छा मौका देख उन पर गोला बरसाना शुरू कर दिया। इससे निजामकी प्रायः ७००० अफगान सेना विनष्ट हो गई और आपने किसी तरह भाग कर प्राणरक्षा की। हैदराबादनगरमें उनकी राजधानी थी।

पेशवाने जब निजामसे अधिक कर मांगा, तब वे उन पर टूट पड़े और युद्धके लिये तैयार हो गये। १७८१ ई०में माधोजी सिन्धियाकी मृत्यु होने पर महाराष्ट्र-सचिव नाना फड़नवीसकी क्षमता और भी बढ़ गई। दौलतराव सिन्धिया और तुकोजी होलकर इस समय पूनामें थे। उन्होंने नानाको जहां तक हो सका, उत्तेजित किया। बरारके राजा, गोविन्दराव, गायकोवाड़ और अन्यान्य महाराष्ट्र सरदारोंने जयकी आशा रखते हुए नानाफड़नवीसका साथ दिया।

निजाम मञ्जरा नदीके किनारे होते हुए विदर्भसे अग्रसर हुए। अहमदनगरसे ५५ मील दक्षिण-पूर्व खड़ीदा नामक स्थानमें जब वे पहुंचे, तब हरिपन्थ फड़केके पुत्र बाबारावने उन पर आक्रमण किया और अच्छी तरह परास्त किया। १७८५ ई०में इस खड़ीदा युद्धमें महाराष्ट्रोंके परास्त होने पर मुगलसेनाने परान्दाकी ओर यात्रा की। इस समय महाराष्ट्रोंने पुनः आक्रमण किया। निजामने उन पर चढ़ाई करनेके लिए आसद् अलीखाँको रेमण्ड साहबके साथ भेज दिया। इधर पठान सरदार लालखाँने भी निजाम पर हमला कर दिया; लेकिन आप ही परास्त हो जान ले कर भागे।

१७८८ ई०में टीपूके मरनेके बाद औरङ्गपत्तननगर अङ्गरेजोंके हाथ लगा। पीछे १८०० ई०में अङ्गरेजोंके साथ निजामको जो सन्धि हुई उसमें यह शर्त्त लिखी हुई थी कि निजामको सहायताके लिये अङ्गरेजी सेनाकी संख्या बढ़ाई जाय और जो कोई राजा उनके राज्य पर चढ़ाई करेंगे अङ्गरेज उन्हें दमन करनेसे बाज नहीं आवेंगे। इस वर्द्धित सेनाके खर्चके लिये निजामने कड़ापा आदि कई जिले अङ्गरेजोंके हाथ लगा दिये।

१८०३ ई०को ६ठी अगस्तको निजाम अलीका हैदराबादमें देहान्त हुआ। पीछे उनके बड़े लड़के मिर्जा

सिकन्दरजाह राज्याधिकारी हुए। ४२ वर्ष राज्य कर चुकनेके बाद उन्होंने कई बार अङ्गरेजों और महिसुर-राजके साथ मित्रता की थी। इससे अनुमान किया जाता है, कि वे चञ्चल प्रकृतिके थे और कोई कार्य दृढ़तासे नहीं करते थे। अङ्गरेजोंके साथ दोस्ती रहने पर भी वे उन पर विश्वास नहीं रखते थे।

निजाम उद्दीन्—फरगणाके एक सुपरिचित वीरपुरुष। इनके भाईका नाम शमसुद्दीन् था। दोनों भाई महम्मदबख्तियारके अधीन 'जानबाज' सैनिकका काम करते थे।

निजामउद्दीन् नन्दायाम—१४६० ई०में ये सिन्धुप्रदेशके राजपद पर प्रतिष्ठित हुए। कान्दाहारके तुर्क लोग बार बार सिन्धुदेश पर आक्रमण करते थे और इन्हें भक्कर-दुर्ग तथा अपने राज्यका उत्तरांश छोड़ देना पड़ा था। इस प्रकार निरुत्साह हो कर १४८२ ई०में इनका देहान्त हुआ।

निजाम-उद्दीनखाँ—कसूरके शासनकर्त्ता। महाराज रणजित्‌सिंहने इनके विरुद्ध सरदार फतेसिंहको भेजा था।

पहले इन्होंने महाराजकी अधीनता स्वीकार करना न चाहा। पीछे अपने औद्धत्यके लिए इन्होंने खूब पश्चात्ताप किया और अपने भाई कुतबुद्दीन्‌को महाराजके समीप भेजा। कुतबुद्दीन्‌ने महाराजके पास जा कर भाईके प्रतिनिधिस्वरूप क्षमाप्रार्थना की। निजामउद्दीन्‌ने यह भी स्वीकार किया कि कुतबुद्दीन एक दल सेना ले कर लाहोरराजका अनुगमन करेंगे। विश्वासके लिये इन्होंने दो पठान सरदार वासल खाँ और हाजीखाँको लाहोरमें आवद्ध रखा। अनन्तर महाराजने एक हाथी और घोड़ा पारितोषिकमें दे कर कुतबको विदा किया। इस प्रकार निजाम-उद्दीन् रणजित्‌सिंहके अधीन कसूरका भोग निर्विघ्नतापूर्वक करने लगे।

इसी बीच इनके साले वासलखाँ, हाजीखाँ और नाजीबखाँकी जागीर पर इनकी दृष्टि पड़ी और अन्तमें इन्होंने उसे अपने दखलमें कर ही लिया। तदनन्तर उन तीनोंने मिल कर छिपके इन्हें मार डाला। १८०२ ई०में निजाम उद्दीन्‌के मरने पर उनके भाई कुतब उद्दीन् उनके स्थान पर बैठे।

निजामउद्दीन् अहमद, ख्वाजा—तबकात्-इ-अकबरी नामक पारस्यग्रन्थके रचयिता, हिराटवासी ख्वाजा महम्मद मुकीमके पुत्र। इनके पिताकी बाबरशाहसे विशेष जान पहचान थी। बाबरके मरनेके बाद हुमायून् जब गुजरात जीत रहे थे, उस समय ये उनके सहचरके रूपमें आए हुए थे। अन्तमें इन्हें दिल्लीश्वर अकबरशाहके अधीन नौकरी मिली।

कुछ समय बाद ये अकबर शाहके अधीन गुजरातके बक्सि वा सेनाध्यक्षके पद पर नियुक्त हुए। इसी समय इन्होंने १५८३ ई०को तारीख-इ-निजामी वा तबकात्-इ-अकबरी नामक इतिहासकी रचना की। इस पुस्तकमें १३३८से १५८४ ई० तक बङ्गालके स्वाधीन राजाओंका संक्षिप्त इतिहास वर्णित है।

ये ऐतिहासिक बदाउनीके बन्धु और आश्रयदाता थे। १५८४ ई०में इरावती नदीके किनारे इनका प्राणान्त हुआ। इनकी कब्र लाहोर नगरमें जो इनका उद्यान था उसीमें बनाई गई थी।

निजाम-उद्दीन् औलिया, शेख—एक मुसलमान फकीर। ये सफरगञ्जके शेख फकीर-उद्दीन्‌के शिष्य और सैयद अहमदके पुत्र थे। बदावन जिलेमें १२३६ ई०को इनका जन्म हुआ था। ये मुसलमान सम्प्रदायके मध्य विशेष श्रद्धाभाजन और विख्यात साधु समझे जाते थे। १३२५ ई०के अप्रिल मासमें दिल्ली राजधानीमें इनकी मृत्यु हुई। गयासपुरमें उनकी कब्रके ऊपर जो स्मृतिस्तम्भ स्थापित है वह मुसलमान-समाजमें तीर्थस्थान समझा जाता है। समय समय पर मुसलमानगण फकीर होनेकी इच्छासे इस समाधिमन्दिरमें आ कर वास करते हैं। आज भी मुसलमानगण मानसिक देनेके लिए पर्वके दिन इस समाधिमन्दिरमें आते और नमाज पढ़ते हैं।

निजाम-उद्दीन्, शेख—दिल्लीवासी एक विख्यात मुसलमान फकीर। निजामाबादमें इनका जो समाधिमन्दिर है उसमें पारस्यभाषामें उत्कीर्ण १५६१ ई० वा ८६८ हिजरीकी एक शिलालिपि मिलती है।

निजामउद्दीनपुर—तिरहुतके अन्तर्गत एक परगना। इस परगनेमें ८ जमींदारी लगती हैं। सीतामढ़ीमें इसकी सदर अदालत है। इसके उत्तर और उत्तर-पूर्वमें कम-

होली और कमला ; दक्षिण और पश्चिममें महिलालखा न्दिया नदी प्रवाहित है। सीतामढ़ीसे नेपाल तकका रास्ता इसी परगनेके मध्य हो कर गया है।

निजाम-उद्दौला, नवाब—बङ्गालके शासनकर्त्ता मीरजाफर अली खांके ज्येष्ठ पुत्र। ये १७६५ ई०में बङ्गालके शासनकर्त्ता हुए थे। इनका असैल नाम मरफुलवारी और इनकी माताका नाम मणिबेगम था। १७६६ ई०में इनकी मृत्यु हुई, पीछे इनके भाई सैफउद्दौलाने बङ्गालका राज्यभार ग्रहण किया।

निजाम-उल्मुल्क बेहरी—एक ब्राह्मण सन्तान। ये विजयनगरके अन्तर्गत गोदावरी नदीके उत्तरीय किनारे पाथरी नामक ग्राममें रहते थे। बचपनमें ही ये दाक्षिणात्यके बाह्मनीवंशीय सुलतान अहमदशाहकी सेनासे बन्दी हुए। पीछे सुलतानके आदेशसे इसलाम धर्ममें दीक्षित हो ये राजपरिवारके क्रीतदासोंके साथ रहने लगे। सुलतानके ज्येष्ठ पुत्रके शिक्षकसे इन्होंने अरबी और फारसी भाषामें विशेष व्युत्पत्ति लाभ की। १४६१ ई०में सुलतान महम्मदशाह २य जब दाक्षिणात्यके सिंहासन पर बैठे, तब ये एकहजारीके पद पर नियुक्त हुए। ये राजाके बाजपक्षीके प्रतिपालक थे, इस कारण लोग इन्हें बेहरी कहा करते थे। धीरे धीरे ये तैलङ्गके शासनकर्त्ता हो गए। १४८२ ई०में महम्मदके मरने पर ये उनके पुत्र महमूदके राज्यभारपरिचालनके लिए मन्त्रीके पद पर नियुक्त हुए। इनके कार्यसे संतुष्ट हो कर सुलतानने १४८५ ई०में बीड़, अहमदनगर आदि स्थान उन्हें जागीरके रूपमें दिये। पीछे इन्होंने जागीरका कार्यभार अपने बड़े लड़के मालिक अहमद पर सौंप दिया और अपनी क्षमताको अप्रतिहत रखनेके लिए मालिक काजी तथा मालिक पासरफ नामक दो भाइयोंको दौलताबादके शासनकर्त्ता और तहलकारी नियुक्त किया। वे इतने क्षमताशाली हो उठे थे, कि कभी कभी सुलतानके आदेश तकका भी उल्लङ्घन कर डालते थे। १४८८ ई०में विदर्भ-राजभवनमें ये गुप्तभावसे मार डाले गए।

पिताके मरने पर अहमद स्वाधीन भावसे अपनी जागीरका रक्षणावेक्षण करने लगे। पीछे १४८० ई०में सुलतानकी प्रभुताकी उपेक्षा करके अहमदने निजाम-उल्मुल्क बेहरी नाम धारण कर अपनेको अहमदनगरराज बतलाते हुए तमाम घोषणा कर दी। ये ही प्रसिद्ध निजामशाहीवंशके प्रतिष्ठाता थे। निजामशाही देखो।

निजाम-उल्मुल्क—दिल्लीश्वर सुलतान शमस्-उद्दीन् अलत्-मासके प्रधान वजीर। ६२५ हिजरीमें ये सम्राट्की आज्ञासे भक्करदुर्ग जीतनेको गए और उसे जीत कर दिल्लीको वापिस आए। सम्राट्ने उन्हें कमाल-उद्दीन् महम्मद-ई-आबु सैयद जुनायदीकी उपाधिसे भूषित किया। सुलतान रुक्नउद्दीन्के राजत्वकालमें बदायन, मुलतान, हांसी और लाहोर आदि स्थानोंके शासनकर्त्ता जब विद्रोही हो उठे, तब ये डर कर राजधानीसे गील्खुरी नामक स्थानमें भाग गये। वहांसे भी फिर कोल प्रदेशमें जा कर रहने लगे। यहां भी इन्हें चैन न पड़ा और भाग कर ये मालिक-इज-उद्दीन् महम्मद सलारीकी शरणमें पहुंचे। रुक्नके मरनेके बाद अलतमस की कन्या सुलतान रजिया दिल्लीके सिंहासन पर बैठी। इस पर ये महम्मद सलारी, अलाउद्दीन् जानी तथा और कुछ लोगोंके साथ दिल्लीद्वार पर पहुंचे और बहुत उधम मचाने लगे। इस कारण दोनों पक्षोंमें कुछ दिनों तक युद्ध भी चला, इस युद्धमें रजियाकी जीत हुई और वह अब निष्कण्टक हो कर दिल्लीके सिंहासन पर बैठी। इस समय रजियाके मन्त्रियोंने उन्हें सलाह दी, कि यदि बन्धुभावसे निजाम आदिको राजधानीमें बुला कर कैद कर लें, तो निश्चय है, कि शत्रुसंख्या बहुत कम हो जायगी। अन्तमें वैसा ही हुआ भी। निजामदलके अलाउद्दीन्जानी, मालिक सइफुद्दीन् कुजी और उनके भाई रजियाके इस सुचतुर कौशलसे मार डाले गये और कुछ कारागारमें ठूंस दिये गये। किन्तु निजाम-उल्मुल्कने सरमूर बरदारके पार्वत्य-प्रदेशमें भाग कर जान बचाई। यहीं पर १२३८ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

निजाम-उल्मुल्क आसफजाह—दाक्षिणात्यमें निजामराज्यके प्रतिष्ठाता। इनका पहला नाम चीनकुलीच खां था। इनके पिता गाजीउद्दीन् खां फिरोजजङ्ग सम्राट् आलमगीरके विशेष प्रियपात्र थे और उन्होंने सम्राट्के प्रधान कार्य करके विशेष प्रसिद्धि लाभ की थी।

सम्राट् फरुखशियारके राजत्वकालमें ये पहले पांच

हजारोसे सातहजारी मनसबदारके पद पर नियुक्त हुए। इसके कुछ समय बाद ये दाक्षिणात्यके सूबेदारके पद पर प्रतिष्ठित हुए थे। यही पद इनके भविष्यत्-जीवनमें निजामराज्यकी प्रतिष्ठाकी सूचना करता है। हैदराबादमें इनकी राजधानी थी।

दाक्षिणात्यका सूबेदारीपद और निजाम-उल मुल्क बहादुर फतेजङ्गकी उपाधि पा कर कुलीचखाँ अभिमानसे भर आये और महाराष्ट्रोंको लूटने तथा उनसे चौथ वसूल करनेकी इच्छासे औरङ्गाबादको अग्रसर हुए। वहां पहुंच कर इन्होंने अपने अभिप्रायकी सिद्धिके लिए वहांके फौजदार और जिलेदारोंको इस विषयमें एक पत्र लिखा। उन लोगोंके अस्वीकार करने पर इन्होंने १७१३ ई०में महाराष्ट्रोंके साथ लड़ाई ठान दी। लड़ाईमें पराजित हो कर वे वहांसे नौ दो ग्यारह हो गये। इस समय ये मुरादाबादके फौजदार नियुक्त हुए, किन्तु थोड़े ही समयके अन्दर इन्हें यह काम छोड़ देना पड़ा था। कुछ समय बाद ये पाटन और मालवराज्यके सूबेदार हुए। इस प्रकार अपनी उन्नति कर इन्होंने दाक्षिणात्यमें अपनी क्षमताकी जड़ मजबूत रखनेके लिये १७१७ ई०में 'आशीरगढ़' दुर्गको जीत लिया।

निजामकी इस क्रमिक उन्नतिको देख कर अबदुल्लाखाँ और दाक्षिणात्यके अमीर उल-उमरा हुसेनअलीखाँ नामक दो सैयद भाई बहुत ही जल उठे और जहां तक हो सका उनकी बुराईमें लग गये। निजामकी क्षमताको खर्व करनेके लिये हुसेनअलीने अपने सेनापति दिलावर अली खाँ और राजा भीम तथा गजसिंहसे सहायता पा कर निजामके विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। इस युद्धमें दिलावरकी हार हुई और निजाम १७२० ई०में बुरहनपुर नगर पर अधिकार कर बैठे। इसी युद्धमें दिलावरकी मृत्यु हुई।

दाक्षिणात्यमें इस प्रकार अफगानोंको वशीभूत कर ये औरङ्गाबादकी ओर चल दिये और वहां शासनकार्यका सुबन्दोबस्त करके दिल्लीको लौटे। राहमें आलम अली खाँने उन पर आक्रमण कर दिया। युद्धमें आलमकी ही हार हुई और वे मारे गये। इस प्रकार दाक्षिणात्यमें शत्रुपुरीको निष्कण्टक कर ये १७२१ ई०में अपनी राजधानीमें पहुँचे। यहां सम्राट्ने इनकी खूब खातिर की।

सैयद दोनों भाइयोंके मरने पर १७२२ ई०में सम्राट्ने इन्हें आमन्त्रित कर अपना वजीर बनाया और साथ साथ उक्त मान्यके चिह्नस्वरूप योग्य परिच्छद, एक खंजर, मणि-मुक्ताखचित एक कलमदान तथा बहुमूल्य एक हीरेकी अंगूठी दी। इस समय मालव और अहमदाबादवासी तथा दाक्षिणात्यके महाराष्ट्रगण विद्रोही हो उठे। उन्हें दमन करनेके लिये उन्होंने अपने लड़के गाजीउद्दीन्को अपने पद पर प्रतिनिधिरूपमें नियुक्त कर दाक्षिणात्य जानेकी इच्छा प्रकट की। इन्होंने सम्राट्से प्रार्थना करके सूबा हैदराबादमें नियुक्त नाजिम मुबारिजखाँको ४ हजारी पदकी और इमाद् उल्-मुल्क मुबारिजखाँ बहादुर हिजबर-जङ्गकी उपाधि दिलाई। जो मुबारिज इतने दिनों तक विश्वासके साथ निजामके अधीन कार्य करता था, वह आज इस प्रकारके सम्मानलाभसे गर्वित हो उठा और अपनेको दाक्षिणात्यका सूबेदार मान कर निजामकी अधीनता उच्छेद करनेके लिये अग्रसर हुआ।

निजामके मालवकी ओर यात्रा करने पर उनके शत्रु-पक्षीय लोग सम्राट् महम्मदशाहके निकट उनकी झूठी शिकायत करके कान भरने लगे। इसका यह फल हुआ, कि करम-उद्दीन्खाँ नामक एक व्यक्ति वजीर चुने गये। राहमें जब निजामको मालूम हुआ कि वजीरीपद छीन कर किसी दूसरेको दे दिया गया है, तब उन्होंने दिल्लीकी पदोन्नतिकी आशा छोड़ दाक्षिणात्यमें निजामराज्य स्थापन करनेका संकल्प किया।

मालवमें पहुंचनेके साथ ही निजामने मुबारिजको एक पत्र लिखा और निजाम द्वारा वे जो उपकृत हुए हैं उनका भी उल्लेख करते हुए उलाहना दिया। मुबारिजने भी बहुत लगती बातोंमें उन्हें जवाब दिया। दोनोंमें लड़ाई छिड़ गई। औरङ्गाबादसे ४० मील दूर बरारके अन्तर्गत 'सकर खेलड़ा' नामक स्थानमें लड़ाई होने लगी। दाउद-खाँपानीके भाई बहादुरखाँने आ कर मुबारिजका साथ दिया। दोनों ही युद्धमें पराजित हुए और मुबारिज सपुत्र मार डाले गये। ख्वाजा अहमदखाँ नामक उनका एक पुत्र आघात पा कर युद्धक्षेत्रसे भाग गया और

महम्मद-नगर-दुर्गमें जा कर आश्रय लिया। निजामने औरङ्गाबादसे हैदराबादको ओर अग्रसर हो कर इस बालकको अर्थ और जागीरसे खुश कर दिया। पीछे इन्होंने उसे भुलावेमें डाल कर दुर्गको ताली ले ली और स्वयं दुर्ग पर अधिकार कर बैठे।

निजाम अपने जीते जी कभी भी दिल्लीके सम्राट् वंशके विरुद्धाचारी न हुए। दिल्लीश्वर महम्मदशाहने यद्यपि वजीरका पद इनसे छीन भी लिया था, तो भी उनकी बुराईको ओर इनका तनिक भी ध्यान न था। दिल्लीके राजकीय कार्यसंक्रान्त जिस कर्ममें इन्होंने हस्तक्षेप किया था, उससे तैमुरवंशका गौरव खूब बढ़ गया था। दाक्षिणात्यका शासनभार ग्रहण करने पर भी दिल्लीके साथ इनका कुछ भी असद्भाव न था। सम्राट् महम्मदशाहने प्रसन्न हो कर इन्हें 'आसफ जाह'की उपाधि दी और साथ साथ मणिमुक्ता तथा बहुतसे हाथी भी दिये। इतना ही नहीं, सम्राट्ने इन्हें पुनः अह-मदाबाद राज्यके सूबेदारके पद पर नियुक्त किया।

नादिरशाहने जब भारत आ कर अटक पर अधिकार जमाया, उस समय निजाम सम्राट् महम्मदशाहके वकील-उस-सुलतान थे। अमीर-उल-उमरा खाँ दौरानकी मृत्यु होने पर वे 'मीरवक्शी'के पद पर नियुक्त हुए। जब नादिरशाहने दिल्लीकी ओर मुंह फेरा, तब निजाम खाँ-दौरानकी पोशाक पहन कर उनके सामने जा पहुंचे। इस समय बुर्हान-उल्मुल्क नामक एक मनुष्यने विश्वास-घातकता कर और ईर्षापरतन्त्र हो नादिरसे जा कहा कि, "खाँ-दौरान जैसे उपयुक्त व्यक्ति और कोई देखनेमें नहीं आता, सुतरां निजाम जो उनके पदकी आकांक्षा करता है, वह अन्याय है। यदि छलसे भुलावेमें डाल कर निजाम और महम्मदशाह कैद कर लिये जांय, तो सम्भव है कि आप राज्येश्वर हो सकते हैं।" उनकी मन्त्रणासे मुग्ध हो नादिरशाहने जब महम्मदको अपनी छावनीमें आनेका निमन्त्रण किया, तब सम्राट् भी दलबलके साथ वहां पहुंच गये। नादिरने सम्राट से विनय-पूर्वक कहा, "आप अपने नौकरोंको लौट जाने कहें और जितने मान्य गण्य हैं, वे आपके साथ रह कर मेरा आतिथ्य ग्रहण करें।" दूसरे दूसरे व्यक्तियोंके चले जाने पर नादिरने पूर्व परामर्शानुसार सम्राट्, निजाम, अमीर खाँ, इसहाक खाँ, जाबेद खाँ, फिरोज खाँ और जवाहिरखाँको कैद कर लिया।

इसके बाद नादिरशाहने एक दिन विश्वासघातक बुर्हानको बुला कर कहा, 'तुमने जो कन्दहारमें हमें पांच करोड़ मुद्रा देनेको कहा था, सो कहां है, लाओ। तीन दिनके अन्दर जमा नहीं करनेसे, तुम्हारे प्राण जांयगे, याद रहे।' निजाम-उल मुल्क भी उसी जगह उपस्थित थे। नादिरने बहुत क्रोधमें आ कर दोनोंको अनेक कटु वचन कहे, चतुर-चूड़ामणि निजामने अच्छा अवसर देख बुर्हानको विश्वासघातकताका बदला लेनेके लिये अपने आन्तरिक भावको तो छिपा रखा और उसे बढ़ा चढ़ा कर कहा, 'नादिरने बहुत मर्मभेदी बातें कह कर हम लोगोंका अपमान किया है। अतः अभी नादिरके हाथसे मरनेकी अपेक्षा आत्महत्या कर प्राणत्याग करना श्रेय है।' इस प्रकार समझा कर दोनोंने आत्महत्या करनेका संकल्प किया। राहमें जाते समय दोनोंने प्रतिज्ञा की, कि घर पहुंचनेके साथ ही विष खा कर देहत्याग करेंगे। घर पहुंच कर निजामने अपना अभिप्राय सब किसीसे कह दिया। बाद वे एक बरतनमें शरबत डाल कर उसे पी गये और अपनेको एक कपड़ेसे ढक कर सो रहे। बुर्हान यह रहस्य कुछ भी नहीं जान सके और पूर्व प्रतिज्ञानुसार उन्होंने विष खा कर प्राणत्याग किया।

कोई कोई कहते हैं, कि बुर्हानके साथ निजामकी कोई शत्रुता न थी। जब नादिरशाह भारतवर्षमें आ कर सम्राट् महम्मदशाहके साथ लड़ रहे थे, तब उस युद्धमें निजाम और बुर्हान दोनों उपस्थित थे। उसी युद्धमें बुर्हानकी मृत्यु हुई थी। नादिरशाह देखो।

नादिरशाहके चले जाने पर अमीरखाँने बक्शीका पद और इसहाकखाँने खालसाकी दीवानीका पद पाया। ये दोनों सम्राट के बड़े प्रियपात्र हो उठे। इस पर निजामने पुनः अपनी चतुरता दिखलानेकी चेष्टा की। जब इनके स्वभाव पर सबके सब असन्तुष्ट हो गये, तब ये दिल्ली छोड़ कर तिलपत्ग्राममें जा कर रहने लगे। अन्तमें सम्राट्की माताकी मिहर-परवरके कहनेसे अमीरखाँ जा कर उन्हें पुनः राजधानीमें लौटा लाये।

निजाम उल-मुल्कने अपनी चलतीमें राज्यशासनके नियमोंमें बहुत कुछ हेरफेर किया। महाराष्ट्रीयगण जागीरदारोंसे जो 'चौथ' वसूल करते थे, उसे इन्होंने बन्द कर दिया और यह नियम जारी किया कि उतनी रकम वे हैदराबादके राजकोषसे पावेंगे। दूसरी जगह कहीं भी वे चौथ वसूल नहीं कर सकते। इसके अलावा महाराष्ट्रसरदार छोटे छोटे जमींदार वा निरीह प्रजासे जो सैकड़े पीछे १०) रु०के हिसाबसे 'सरदेशमुखी' कर वसूल करते थे। उसे भी इन्होंने बन्द कर दिया। इस प्रकार इन्होंने कमाई सरदार, गुमस्ता और राहदारी सभी कार्य उठा दिये। पहले जो मनुष्य राहदारीका काम करता था, उससे पथिक और व्यवसायी लोग बहुत तंग रहते थे। निजामने इस प्रथाको सदाके लिये बन्द कर दिया था जिससे लोग बिना किसी रोक टोकसे मनमाना विचरण कर सकते थे। महम्मदशाहकी मृत्युके २७ दिन बाद १७४८ ई०की २२वीं मईको वे इस लोकसे चल बसे। बुर्हानपुरनगरमें शाहबुर्हान-उद्दीन्-गरीबके समाधि मन्दिरमें इनकी कब्र बनाई गई थी।

निजामके छः पुत्र थे,—गाजीउद्दीन्, नासिरजङ्ग, सलावतजङ्ग, निजामअली, बसालतजङ्ग और मुगलअली।

इन्होंने 'दीवान आसफ-निजाम-उल-मुल्क' नामक एक ग्रन्थ लिखा था। वह ग्रन्थ टीपू सुलतानके पुस्तकालयमें रखा गया था।

निजामत्—शासनसम्बन्धीय विचारालय।

निजामपत्तन—मन्द्राज प्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत समुद्रतीरस्थ एक बन्दर। यह अक्षा० १५° ५४´ २´´ उ० और देशा० ८०°४२´ ३५´´ पू०के मध्य अवस्थित है। यह स्थान लवणको आढ़तके लिये विशेष प्रसिद्ध है। नमकके सिवा यहांसे काठ भी मछलीपत्तनको भेजा जाता है। अंग्रेजोंने सबसे पहले भारतके पूर्वी किनारे इस बन्दरमें वाणिज्य आरम्भ किया। १६११ ई०की २६वीं अगस्तको उन्होंने यहांसे पण्यद्रव्य अपने मुल्कमें भेजा। १६२१ ई०में एक कारखाना भी खोला गया। उत्तर सरकारका अंश बतला कर निजामने इसे फरासीसियोंको दे दिया। निजाम सलावतजङ्गने १७५८ ई०में यह बन्दर अंग्रेजोंको अर्पण किया। फिरिस्ता इस बन्दरका उल्लेख कर गए हैं। ओलन्दाजोंकी मालय-सेनाने यहां इनसे अंग्रेजोंका संहार किया।

निजामपुर—चट्टग्रामका एक बन्दर।

निजामबाई—दिल्लीश्वर बहादुरशाहकी महिषी और सम्राट् जहान्दरशाहकी माता।

निजामबाद—आजमगढ़का एक शहर। यह प्राचीन नगर जिलेके सदरसे ८ मील पश्चिममें अवस्थित है। मुसलमान राजाओंके पहिले यह हिन्दुओंके अधिकारमें था। निजामउद्दीन् नामक एक मुसलमान फकीरकी कब्र यहां देखनेमें आती है। कब्रके ऊपर पारस्यभाषामें उत्कीर्ण १५६१ ई०की एक शिलालिपि है। प्रवाद है, कि उक्त निजामउद्दीन्से नगरका नाम 'निजामबाद' पड़ा है।

निजाम मूर्त्तजाखाँ, सैयद—एक मुसलमान सेनापति। इनके पिताने किसी ब्राह्मण कन्याके रूप पर मोहित हो कर उससे विवाह कर लिया था। उसी ब्राह्मण-कन्याके गर्भसे मूर्त्तजा उत्पन्न हुए थे। वे अपने पिताके अत्यन्त प्रिय थे। सम्राट् शाहजहान्के राजत्वके पहले वर्षमें इन्होंने पिताके जरिए ३ हजारी सैन्याध्यक्षका पद पाया था। पिताके मरने पर इन्होंने मूर्त्तजाखाँकी उपाधि ग्रहण की।

दाक्षिणात्य प्रदेशमें सम्राट्के अधीन कार्य करते हुए इन्होंने वहांका विद्रोह निर्मूल कर दिया था। पीछे ये लखनऊके फौजदार हुए। सम्राट् शाहजहान्के राजत्वके २४वें वर्षसे इन्हें पिहानीप्रदेशके राजस्वसे २० लाख रुपये वार्षिक वृत्ति मिलने लगी।

निजामराज्य (हैदराबाद)—दक्षिण भारतका एक देशीय राज्य। यह अक्षा० १५° १०´ से २०° ४०´ उ० और देशा० ७४° ४०´ से ८१° ३५´ पू०के मध्य अवस्थित है। बेरारके साथ मिल कर राज्यकी आकृति असमकोण चतुर्भुज-सी है। यह राज्य दक्षिण-पश्चिमसे उत्तर-पूर्वमें प्रायः ४७५ मील लम्बा और उतना ही चौड़ा है। इसके उत्तर और उत्तर-पूर्वमें मध्यप्रदेश, दक्षिण और दक्षिण-पूर्वमें मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत राज्य, पश्चिम और उत्तर-पश्चिममें बम्बईप्रदेशके अन्तर्गत राज्य है। बेरारको अलग कर लेनेसे अवशिष्ट निजामराज्यके पूर्व विभागमें खम्मेत्, नलगोण्ड, महबूबनगर और नगरकर्णूल

उत्तर विभागमें मेदक, इन्दोर, बिदर, यलगण्डल और शिरपुरतण्डुर, पश्चिम विभागमें बिदर, नन्देर, नलदुर्ग; दक्षिण विभागमें रायचुर, लिङ्गसागर, सोलापुर और गुलवर्ग तथा उत्तर-पश्चिम विभागमें औरङ्गाबाद, बीड़ और पर्भानी जिला विद्यमान है। इसकी राजधानी हैदराबादमें है। मन्द्राज प्रदेशके बराबर इस राज्यका क्षेत्रफल ८२६९८ वर्गमील है।

हैदराबादराज्य समुद्रके किनारेसे प्रायः १२५० फुट ऊंचे पर अवस्थित है।

यहां बहुतसे बड़े बड़े पहाड़ हैं। किसी किसी पहाड़की ऊंचाई तो २५०० फुट तक चली गई है। गोलकुण्डामें जो दुर्ग वा सेनानिवास है, वह समुद्र-पृष्ठसे प्रायः २०२४ फुट ऊंचे पर बना हुआ है। ताप्ती नदीकी उपत्यका भूमिका जल केवल पश्चिमकी ओर काम्बे उपसागरमें गिरता है। इसके सिवा और जितने जलके स्रोत हैं वे वङ्गोपसागरमें गिरते हैं।

चारों ओर पर्वत रहनेके कारण यहांकी जमीन पथरीली है। बालाघाट पर्वत-श्रेणी २०० मील, सह्याद्रि-श्रेणी २५० मील और गाविलगढ़श्रेणी १२० मील विस्तृत है। वेणगङ्गा और वर्धाके सङ्गमस्थल पर तथा शेषोक्त नदीके तीरवर्त्ती उपत्यका प्रदेशमें विस्तृत लौह और पथरियाकोयलेकी खान हैं।

इलोरासे १०० मील उत्तर-पूर्वमें और भी कोयलेकी खान देखनेमें आती है।

हैदराबादमें जो सब नदियां प्रवाहित हैं उनमेंसे ये सब प्रधान हैं,—गोदावरी, पूर्णा, प्राणहिता, वरदा, वेणगङ्गा, कृष्णा, भीमा और तुङ्गभद्रा।

जलवायु साधारणतः स्वास्थ्यकर है, जिलेमें जहां बालुका-प्रस्तरमय गिरिमाला है, वहां चक्षुरोगकी बहुत शिकायत है।

इस राज्यमें अच्छे अच्छे घोड़े, हाथी और ऊंट मिलते हैं। सौदागर लोग बहुत दूर दूर देशोंसे उन्हें यहां बेचने लाते हैं।

यहांकी जमीन साधारणतः उर्वरा है, 'लालजमीन' नामक जो एक प्रकारकी लालवर्ण विशिष्ट जमीन देखनेमें आती है, वह वल्मीकगिरिके ध्वंसावशेषसे आहृत है। जमीनमें खाद देनेसे सब समय अच्छी फसल लगती है। यहां रुईकी खेती बहुत दूर तक विस्तृत है। राज्यमें नारियलके अनेक दरख्त हैं जिनके रससे यहांके लोग ताड़ी तैयार करते हैं। धान्य, गेहूं, तरह तरहकी जुन्हरी, ज्वार, बाजरा, सरसों, तिल, रेंड़ी, प्याज, लहसुन, गाजर, धनिया, मूली, गोल आलू, लाल आलू आदि ये सब वस्तुएं यहां खूब उपजाई जाती हैं। लेकिन रुई, नील और ईखकी खेती ही सबसे अधिक होती है।

दौलताबादका लाल अङ्गूर दूर दूर देशोंमें भेजा जाता है, जङ्गलमें तसरके कीड़े, लाक्षा, मोम, मधु और तरह तरहके गोंद मिलते हैं। यहां गोचर्मका वाणिज्य जोरोंसे चलता है।

इस राज्यमें ७८ शहर और २००१० ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या एक करोड़से अधिक है जिसमेंसे मुसलमानोंकी संख्या सबसे ज्यादा है। वे लोग कई सम्प्रदायके हैं जिनमेंसे शेख, सैयद, मुगल और पठान प्रधान हैं। मुसलमानके बाद हिन्दूकी संख्या है। राज्यके दक्षिण-पूर्वमें तेलगु भाषा, दक्षिण-पश्चिम और कृष्णानदीके निकटवर्त्ती स्थानोंमें कनाड़ी भाषा, उत्तर और पश्चिम प्रदेशमें मराठी भाषा प्रचलित है। इसके सिवा कई एक स्थानोंमें नाना प्रकारकी मिश्रित भाषाका व्यवहार होते देखा जाता है।

निजामराज्यसे रुई, सरसों, तीसी, तिल, देशी कपड़ा, चमड़ा, धातु-पात्र और कागजात इत्यादि वाणिज्यके लिये नाना स्थानोंमें भेजे जाते हैं। बिदर-नगरका सुन्दर चित्रित धातु-पात्र, औरङ्गाबाद, कुलबुर्ग आदि स्थानोंका सुनहरी पाड़का देशी कपड़ा बहुत मशहूर है, दौलतपुर दुर्गके निकटस्थ कागजपुरग्राममें जो उत्कृष्ट कागज बनता है उसका तमाम आदर है।

बरारके साथ निजाम-राज्यकी वार्षिक आय प्रायः चार करोड़की है। इसमेंसे तीन अंश राजस्व निजामके भिन्न भिन्न शासनकर्त्ताओंसे और एक अंश वृटिश गवर्मेण्टके कर्मचारीसे संगृहीत होता है।

वृटिश सरकार जिस स्थानसे जो राजस्व वसूल करती है उससे उस स्थानका खर्च निबाह कर जो कुछ बच

रहता उसे निजामको लौटा देती है, यहांकी राजस्व-वसूलको विधि साधारणप्रथासे कुछ विपरीत है। जहां पर जो फसल उत्पन्न होती है, प्रजा उस फसलका आधा अथवा उसका प्रकृत मूल्य करस्वरूप देती है।

हैदराबाद गवर्मेण्टकी एक स्वतन्त्र टकसाल है जहां हालिसिक्का नामक एक प्रकारकी मुद्रा बनती है। यह मुद्रा आकारमें छोटी होने पर भी वजन और मोलमें सरकारी सिक्केको समान है। पूर्व समयमें इस राज्यके नाना स्थानोंमें भिन्न भिन्न आकृतिका सिक्का बनता था और टकसालको संख्या भी अधिक थी।

तुर्कीवंशीय आसफ जाह जो मुगल-सम्राट् औरङ्गजेबके विख्यात सेनापति थे, बहुत दिनोंसे दिल्ली राजधानीमें रह कर इन्होंने युद्ध और राजनीति विषयमें असाधारण क्षमता दिखलाई थी और १७१३ ई०में निजाम उल्‌मुल्कको उपाधि पा कर ये दाक्षिणात्यके सूबेदार वा शासनकर्त्ताके पद पर नियुक्त हुए। उन्हींके समयसे यह उपाधि उनको वंशगत हो गई है।

इस समय मुगल-राज्यमें अन्तर्विवाद चल रहा था और महाराष्ट्रगण कई बार इस पर आक्रमण कर चुके थे। अतः आसफ जाहने अपनी स्वाधीनताकी घोषणा करनेका अच्छा अवसर देखा। पीछे १७४८ ई०में वे स्वाधीन राजा बन गए और हैदराबादमें राजधानी बनाई गई। आसफ जाहके मरने पर राज्य पानेके लिए उनके उत्तराधिकारिगण आपसमें लड़ने लगे। आसफके द्वितीय पुत्र नासिरजंग उनके मरते समय राजधानी हैदराबादमें थे। मृत्यु-संवाद सुननेसे ही इन्होंने धनागार अपने कब्जेमें लिया। सेना भी बहुत आसानीसे इनके अधीन हो गई और इन्होंने यह घोषणा कर दी, कि मरते समय पिता बड़े भाईको उत्तराधिकारीसे वञ्चित कर गए हैं। मुजफ्फरजंग आसफ जाहकी एक प्रिय कन्यासे उत्पन्न हुए थे। कहते हैं, आसफ जाह मरते समय उन्हींको अपना उत्तराधिकारी बना गए थे, अभी वे भी राजा होनेके लिये कोशिश करने लगे। ऐसे समयमें अङ्गरेज और फरासीसोंने दाक्षिणात्यमें अपना अपना प्रभुत्व स्थापन करना चाहा। अङ्गरेजोंने नासिरजंगका और फरासीसियोंने मुजफ्फरजङ्गका साथ दिया। थोड़े ही दिनोंके भीतर फरासीसी कर्मचारियोंके मनोमालिन्य हो जानेसे वे मुजफ्फरजंगको छोड़ कर चले गए। इस समय मुजफ्फर निःसहाय हो गए; अतः नासिरजंगने उन्हें कैद कर लिया। किन्तु नासिरजंग थोड़े ही दिनके अन्दर मारे गये। अब मुजफ्फरजङ्गने अपनेको दाक्षिणात्यका सूबेदार बोल दिया। मुजफ्फर भी बहुत दिन तक उस सुखका भोग कर न सके। एक दल पठानसेनाने उनकी जान ले ली। कहते हैं, मुजफ्फर जब राजा होनेके लिये लड़ रहे थे, तब इन्हीं पठानोंने उनको यथेष्ट सहायता पहुंचाई थी। किन्तु राजा होनेके बाद मुजफ्फरजंगने कुछ भी कृतज्ञता न दिखलाई थी और न उन्हें कुछ पुरस्कार ही दिया। इस पर वे बहुत कुपित हुए और इन्हें मार डाला। इस समय पुनः राज्यमें अराजकता फैल गई। फरासीसियोंने मुजफ्फरजंगके शिशुपुत्रको उपेक्षा कर नासिरजंगके भाई सलाबत्‌जंगको गद्दी पर बिठाया। इसके कुछ दिन बाद ही आसफ जाहके प्रथम पुत्र गाजी-उद्दीन् राज्य पानेकी कोशिश करने लगे। किन्तु अकस्मात् उनकी मृत्यु हो गई और सलाबत्‌जंग ही एकछत्र निजाम हो कर फरासीसियोंके मन्त्रणानुसार राज्य करने लगे। इस समय फरासीसियों और अङ्गरेजोंमें जो लड़ाई आ रही थी वह और भी बढ़ गई। किन्तु अङ्गरेजगौरव क्लाइवके साहस और समरनैपुण्यसे फरासीसी व्यतिव्यस्त हो कर अपने अपने उपनिवेशको रक्षाके लिये सलाबत्‌को छोड़ चले गये।

इस समय सलाबत्‌ने अङ्गरेजोंके साथ सन्धि कर ली और उसी सन्धिके मर्मानुसार उन्होंने फरासीसियोंको अपने राज्यसे निकाल भगाया। १७६१ ई०में सलाबत् अपने भाई निजामअलीसे राज्यच्युत हुए और १७६३ ई०में मार डाले गये। १७६६ ई०में निजाम अलीके साथ अङ्गरेजोंको इस शर्त्त पर एक सन्धि हुई, कि निजाम अली अङ्गरेजोंको सरकार प्रदेश दे देंगे और जरूरत पड़ने पर एक दल सेना दे कर अङ्गरेज निजामको सहायता करेंगे; किन्तु जब सेनाकी आवश्यकता न होगी, तब वार्षिक नौ लाख रु० कर देंगे। निजाम भी अपनी सेनाओंसे अङ्गरेजोंको सहायता करने राजी हुए और

यह भी स्थिर हुआ, कि निजामके भाई बसालतजंग जब तक सद्व्यवहार करेंगे, तब तक उनका अधिकृत सरकार प्रदेश अङ्गरेज गवर्मेण्ट नहीं ले सकती। इस घटनाके कुछ दिन बाद ही निजामअलीने महिसुरके राजा हैदरअलीका साथ दिया तथा और भी कई तरह विरुद्धाचरण करके पूर्व सन्धि तोड़ डाली। अनन्तर १७६८ ई०की सन्धि द्वारा पुनः अङ्गरेजोंके साथ निजामअलीकी दोस्ती हुई। इस बारकी सन्धिमें यह भी लिखा था, कि अङ्गरेज और कर्णाटकके नवाब निजामका प्रयोजन सिद्ध करनेके लिए सर्वदा दो दल सिपाही और अङ्गरेज-चालित छह कमान प्रस्तुत रखेंगे। जब तक वे निजामके कार्यमें लगे रहेंगे, तब तक निजाम उनका सारा खर्च देते रहेंगे। १७७९ ई०में लार्ड कर्नवालिसने निजामको इस आशय पर एक पत्र लिखा, कि १७६८ ई०की सन्धिके अनुसार अङ्गरेज गवर्मेण्ट निजामके कार्य करनेके लिये जो सेना भेजेगी, उसे निजाम अङ्गरेजके मित्र-राजाके विरुद्ध नियोग नहीं कर सकते। दूसरे वर्ष हैदरअलीके पुत्र टीपू सुलतानके साथ जब युद्ध छिड़ा, तब निजाम, पेशवा और अङ्गरेज गवर्मेण्टने आपसमें सन्धि कर ली। कुछ वर्ष बाद निजाम और मरहट्टेमें जब लड़ाई छिड़ी, तब निजामने अङ्गरेजोंसे सहायता मांगी। किन्तु इसके पहले ही महाराष्ट्रोंके साथ अङ्गरेजोंको सन्धि हो चुकी थी। अतः अङ्गरेज गवर्नर जनरल सर-जान सोर निजामको मदद देनेसे लाचार हुए। निजामने बचावका कोई रास्ता न देख मरहट्टोंसे सन्धि कर ली। इस कारण कुछ दिन तक अङ्गरेजोंके साथ उनका मनोमालिन्य चलता रहा था। पीछे लार्ड वेलेस्ली जब गवर्नर जनरल हो कर आए, तब उन्होंने १७९८ ई०में निजामके साथ पुनः सन्धि कर ली। इस समय यह स्थिर हुआ, कि छह हजार सिपाही और उपयुक्त कमान निजामके कार्यमें नियुक्त होंगी और निजाम उनके खर्चके लिए २४१७१००) रु० देंगे।

तदनन्तर टीपूकी मृत्युके साथ साथ जब श्रीरङ्गपत्तनका अधःपतन हुआ, तब उनका राज्य अंगरेज और निजामने आपसमें बांट लिया। निजामके भागमें जो हिस्सा पड़ा वह निजामाधिकृत जिला कहलाने लगा।

निजाम अलीखांका १८०३ ई०में देहान्त हुआ। पीछे उनके लड़के सिकन्दरजाह राजगद्दी पर बैठे। १८२२ ई०में अंग्रेजोंके साथ इनकी एक सन्धि हुई जिससे इन्हें जो चौथ देना पड़ता था वह बन्द कर दिया गया। १८२९ ई०में सिकन्दरजाहके मरने पर उनके लड़के नासिर उद्दौला उत्तराधिकारी हुए। सेनाका खर्च देनेके लिये निजामको जो रुपये देने पड़ते थे, वह कई वर्षोंसे बाकी पड़ गया था। अतः १८५८ ई०में नासिर उद्दौलाने अंग्रेजोंके साथ एक सन्धि कर ली और पचास लाख रुपये देनेका एक इकरारनामा लिख दिया। अंगरेज गवर्मेण्टने भी निजामके लिये अपने खर्चसे दो हजार अश्वारोही और पांच हजार पदातिक तथा चार कमान रख दीं। निजाम उनके खर्चके लिये रुपये नकद तो नहीं दे सके, लेकिन उन्होंने बरार, ओसमानाबाद और रायपुर दोआब अंग्रेजोंके हाथ लगा दिये।

१८५७ ई०में नासिर उद्दौलाकी मृत्यु हुई और उनके लड़के अफजल उद्दौला राजसिंहासन पर बिठाए गए। सिपाहीविद्रोहके समय बहुतसे विद्रोहियोंने उन्हें बहकाया था, लेकिन अपने विश्वस्त मन्त्री सालरजङ्गके कहनेसे उन्होंने अंग्रेजोंके प्रति पूरी सहानुभूति दिखाई और विद्रोहदमनमें काफी सहायता भी पहुंचाई थी। इस पर ब्रिटिश सरकार इन पर बहुत प्रसन्न हुई और १८६० ई०में एक सन्धि स्थापन की। इस सन्धिके अनुसार अंग्रेजोंने बरार छोड़ कर ओसमानाबाद और रायपुर दोआब निजामको लौटा दिया; इतना ही नहीं, पचास लाख रुपयेका जो ऋण था उससे भी उद्धार कर दिया। १८६१ ई०में अफजल-उद्दौला G. C. S. I बनाये गये।

१८६७ ई०में अफजलउद्दौलाकी मृत्यु होने पर उनके लड़के मीर महबूब अलीखां गद्दी पर बैठे। इस समय इनकी अवस्था केवल तीन वर्षकी थी। पीछे बालिग होने पर १८८४ ई०में लार्ड रीपनने इन्हें राजसिंहासन पर अभिषिक्त किया। सर सालरजङ्ग (२य) मन्त्री और महाराज सर कृष्णप्रसाद बहादुर पेशकार बनाये गए। १८०२ ई०में बरारके कुछ निर्दिष्ट जिलेका वार्षिक पचीस

लाख रु० ले कर निज़ामने इस्तमरारी वा सर्वकालिक पट्टा लिख दिया। निज़ामके पास ७१ बड़ी कमान, ६५४ छोटी कमान, ५५१ गोलन्दाज, १४०० अश्वारोही, १२७७५ पदातिक सैन्य और बहुसंख्यक शिक्षित सेना है।

निज़ामराज्यकी राजधानी हैदराबादमें है जिसकी परिधि ६ मीलसे कम नहीं होगी। यह नगर प्राचीर द्वारा वेष्टित है। यहांके प्राय: अधिकांश अधिवासी साहसी और युद्धप्रिय हैं, हैदराबादके चारों ओर नाना गिरिमाला रहनेके कारण नगरकी स्वाभाविक सुन्दरता बहुत मनोहर है। यहांकी जुमामसजिद सर्वत्र मशहूर है। शहरके चारों ओर सुन्दर सुन्दर हर्म्य और मनोहर उद्यान विद्यमान हैं। यहांका कालेज वा 'चार-मिनार' बहुत आश्चर्यजनक है। यह मकान ४ प्रकाण्ड गुम्बजके ऊपर दण्डायमान है और नगरकी प्रधान प्रधान ४ सड़कें इसी स्थान पर आ कर मिली हैं। अभी यह गुदामके काममें आ गया है। विशेष विवरण हैदराबाद शब्दमें देखो।

निज़ाम भक्क—एक मुसलमान जलवाही (भिश्ती)। पटना नगरके समीप शेरशाहके साथ युद्धमें परास्त हो कर भागते समय सम्राट हुमायूं चौसानदीमें डूब गये थे। इस समय यह भक्क नदीसे जल ले जा रहा था। इसकी नजर सम्राट पर पड़ी और बुरी दशामें उन्हें देख यह झट उनके पास गया और वहांसे उन्हें किनारे उठा लाया। सम्राट् प्राण पा कर उसे अपने साथ आगरे ले गए और कृतज्ञता दिखानेके लिये उसे वहांके सिंहासन पर बिठा आध दिनके लिये राजा बनाया। इसी आध दिनके भीतर इसने अपने नाम पर चमड़े के सिक्के चलाये, अमीरकी उपाधि पाई तथा प्रचुर धनरत्न दान किये।

निज़ाम-शाह—दाक्षिणात्यके निज़ामशाही राजवंशके प्रतिष्ठाता। ये ब्राह्मणीवंशके राजमन्त्री निज़ाम उल्-मुल्क-बैहरीके पुत्र थे। इनका असल नाम अहमदशाह था। पिताके मरने पर इन्होंने ब्राह्मणीराजकी अधीनता त्याग कर दी और १४९० ई०को अहमदनगरमें स्वाधीन-भावसे अपनेको राजा बतला कर घोषणा कर दी। उस समयसे ले कर दाक्षिणात्यमें निज़ाम-शाही राजाओंने १६२६ ई० तक शासन किया। इन्होंने मरते समय (१५०८ ई०) तक राज्य किया था।

निज़ामशाह बाह्मणी—दाक्षिणात्यके बाह्मणी-राजवंशका एक बालक राजा। १४६१ ई०में जब इनके पिता हुमायूं शाहकी मृत्यु हुई, तब ये दाक्षिणात्यके सिंहासन पर बैठे। इनकी माता विदुषी, साथ साथ चालाक भी थीं। उन्होंने मन्त्रियोंसे बुला कर कहा, 'मेरे पुत्रकी उमर अभी केवल आठ वर्षकी है—बहुत बच्चा है, इस कारण इसकी अभिभावकरूपमें मैं राजकार्य चलाऊंगी और मन्त्रणागृहमें वा दूसरे दूसरे स्थानोंमें जहां राज्य-सम्बन्धीय किसी प्रकारका विचार होगा, मेरा पुत्र वहां उपस्थित रहेगा।'

बालक निज़ाम बचपनसे ही उत्साही, तेजस्वी और अपनी माता तथा दूसरे दूसरे परामर्शदाताओंके निकट विशेष विनयी थे। उनके पिताके अत्याचारसे प्रजा जो बहुत तङ्ग आ गई थीं, उनके तथा उनकी माताके ऐसे विनय और प्रजावत्सलतासे वे सबके सब सन्तुष्ट हो गईं। इस समय राज्यश्रृङ्खल दृढ़ करनेके लिये बरारके शासन-कर्त्ता महमूद-गवान वजीरके पद पर और तैलङ्गके शासनकर्त्ता ख्वाजाजहान् वकील-उस-सलतनत् नियुक्त हुए।

बालक और स्त्री द्वारा परिचालित राज्य उतना क्षमतापन्न नहीं हो सकता, यह सोच कर उड़ीसा और तैलङ्गके हिन्दूराजाओंने निज़ामके विरुद्ध युद्धयात्रा कर दी और दोनों ही विदर्भके समीप परास्त हुए। पीछे मालवराज महमूद खिलजीने जब बाह्मणी-राज्य पर आक्रमण किया, तब बालक निज़ामने उनके साथ भी विदर्भके समीप लड़ाई ठान दी। इस बार निज़ामकी ही हार हुई। बाद रानी पुत्र निज़ामको ले कर फिरोजाबाद चली गईं और वहींसे गुजरातमें दूत भेज कर सहायता मांगी। गुजरातके शासनकर्त्ता महमूदशाहकी सहायतासे मालवराज परास्त हो कर स्वराज्यको लौट आये। १४६२ ई०में मालवराज महमूद खिलजीने पुन: दौलताबाद होते हुए बाह्मणी राज्य पर धावा मारा। इस बार भी वे पराजित हो आश्रय लेनेको बाध्य हुए। इन सब युद्धोंमें बालक निज़ाम स्वयं उपस्थित थे। १४६३ ई०को विवाहरातमें निज़ामशाहकी मृत्यु हुई।

निजाम-शाही—दाक्षिणात्यमें जब ब्राह्मणी राज्य अधः-पतनको प्राप्त हुआ, तब उससे पांच छोटे छोटे राज्य संगठित हुए; १ला आदिलशाही, २रा कुतबशाही, ३रा निजामशाही, ४था इमादशाही और ५वां वरिदशाही राज्य। इनमेंसे निजामशाही राज्य विजयनगरमें मुसलमान धर्मावलम्बी किसी ब्राह्मणसन्तानसे १४९० ई०में स्थापित हुआ। इसकी राजधानी अहमदनगरमें थी। १५७२ ई०में बरारका इमादशाहीराज्य अहमदनगरके राज्यभुक्त हुआ। १४९० ई०से १६१६ ई० तक निजाम शाहीवंशने राज्य किया था। निजामशाह देखो।

वर्त्तमान अहमदनगरका प्राचीन नाम बाग अर्थात् बागान है। यहां अहमदशाह ब्राह्मणीसेनाको सम्पूर्ण रूपसे परास्त कर जुनरको लौटे थे। पीछे राजकीय क्षमता ग्रहण कर उन्होंने अपने मस्तकके ऊपर श्वेतवर्ण चन्द्रातप धारण किया और १४९४ ई०में अहमद जुनरसे राजधानी उठा कर बागको ले गये।

अहमदनगरके राजाओंसे यह देश भिन्न भिन्न जिलाओं अथवा सरकारोंमें विभक्त हुआ। एक एक जिला पुनः परगना, करजात्, सम्मत्, महाल और तालुक तथा कहीं कहीं देश और प्रान्त नामसे विभक्त हुआ है। उच्च पदस्थ हिन्दू कर्मचारीको राजा, नायक और रायकी उपाधि मिलती थी तथा कितने ही हिन्दू सैन्यदलमें नियुक्त होते थे।

अहमदनगरके द्वितीय राजा बुरहान निजामने १५०८से १५५३ ई० तक शासन किया।

हुसेन-निजाम-शाह (१५५३-६५ ई० तक) अहमदनगरके तृतीय राजा थे। १५६२ ई०में जब विजयनगरके राम राजा और बीजापुरके अली आदिलशाहने उनका पीछा किया, तब वे जुनर पहाड़ पर जा छिपे थे। सलाबत् खांने १५६४से १५८९ ई०के मध्य देशकी विशेष उन्नति की थी।

१५९४ ई०में २य बुरहान निजामके लड़के बहादुर जिनकी उमर बहुत थोड़ी थी, चावन्दग्राममें कारारुद्ध हुए। एक वर्ष बाद वे सिंहासन पर बिठाए गए। १६०० ई०में अहमदनगर मुगलोंके हाथ लगा। १६०५-ई०में मालिक अम्बरने मुरतजा निजाम (२य)को सिंहासन पर अधिष्ठित कर विशेष क्षमता और आधिपत्य प्रकट किए। १६०७-१६२६ ई० तक मालिक अम्बर नाममात्रके राजा रहे, पीछे अहमदनगर राज्य अपनी स्वाधीनता खो कर दिल्लीश्वरके अधीन हो गया। १६३१ ई०में मुरतजा निजाम कारारुद्ध और निहत हुए। पीछे उनके पुत्र सिंहासन पर बिठाए गए।

निजामाबाद—१ हैदराबाद राज्यके गुलशनाबाद कमीश्नरीका एक जिला। यह पहले इन्दोर जिला कहलाता था। इसके उत्तर नान्देर और अदीलाबाद, पूर्व करीमनगर, दक्षिण मेदक और पश्चिममें नान्देर है। भूपरिमाण ३२८८ वर्गमील और जनसंख्या ४६७३६७ है। पूर्व और पश्चिमकी ओर पर्वतश्रेणी देखी जाती है। यहांकी सबसे बड़ी नदी गोदावरी नान्देर और अदीलाबादकी सीमाको निर्धारित करती हुई बह गई है। इसके अलावा और कई एक नदियां इस जिलेहो कर बहती हैं।

यहां बहुत तरहकी लकड़ी पाई जाती है और घने वन जङ्गल भी देखनेमें आते हैं। इन जङ्गलोंमें बाघ, भालू, चीता, भेड़िया, जङ्गली सूअर, हरिण और नीलगाय आदि भी पाई जाती हैं। यहांकी आबहवा गर्मीमें जाड़ेकी अपेक्षा कुछ अच्छी रहती है और फिर वर्षाऋतुमें बिलकुल ही खराब हो जाती है तथा नाना प्रकारकी बीमारियां फैल जाती हैं। यहां हिन्दूकी संख्या ही सबसे अधिक है और आधेसे अधिक मनुष्य तेलगु भाषा बोलते हैं। राजस्व साढ़े चौदह लाख रुपयेसे भी अधिक है।

२ उक्त जिलेका एक तालुक। यहांका भूपरिमाण ५५० वर्गमील और जनसंख्या ७५४८३ है। इसमें एक शहर और १०७ ग्राम लगते हैं जिनमें ३८ जागीर हैं। यहांकी आय लगभग दो लाख पचास हजार रु०की है।

३ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १८° ४०´ उ० और देशा० ७८° ६´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां जिलेका एक अदालत, एक स्कूल, अस्पताल और एक डाकघर है। यहां बहुत तरहके कारखाने भी देखनेमें आते हैं। शहरके दक्षिण-पश्चिममें एक पहाड़के ऊपर रघुनाथ दासका बनाया हुआ एक मन्दिर था जो अभी किलेके रूपमें परिणत हो गया है।

निजामाबादी—बङ्गालदेशवासी 'गौड़कायस्थ' जातिकी एक शाखा। दिल्लीश्वर बलबनके पुत्र नासिर-उद्दीनने लगभग ६०० वर्ष हुए इन्हें बंगाल देशसे ले जा कर पश्चिमाञ्चलके इलाहाबाद सूबेके अन्तर्गत निजामाबाद, भदोई, कोली आदि स्थानोंमें कानूनगोके पद पर नियुक्त किया। सम्भवतः निजामाबाद ग्राममें रहनेके कारण इन गौड़ीय कायस्थोंका निजामाबादी नाम पड़ा है। अभी इनमेंसे अधिकांश सिख सम्प्रदायभुक्त हो कर नानकशाहके शिष्य हो गये हैं। भटनागर देखो।

निजामि-गणजावि—एक विख्यात मुसलमान कवि, इन्होंने गञ्जा नामक स्थानमें जन्मग्रहण किया था। ये साहित्यानुरागी बहराम खाँकी राजसभामें रहते थे। इन्होंने ८११० ग्रन्थ बनाये हैं जिनमेंसे ५ उत्युत्कृष्ट ग्रन्थ 'खामसा' नामसे पण्डित-समाजमें परिचित हैं। पांचोंके नाम ये हैं, मखजानउल्-असरार, लइलो-व-मजनून्, खुसरो-वसीरीन्, इक़ग़ाइकर और सिकन्दरनामा। शेषोक्त ग्रन्थमें १२०० ई०में ग्रीकराज अलेकसन्दरके पूर्व देश-जयका विषय लिखा है। खुसरो असरी और हफ़्ग़ाइकर नामक ग्रन्थ-रचनामें इन्हें १४ निष्कर ग्राम पारितोषिकमें मिले थे। उक्त ग्रन्थोंके अलावा इन्होंने २०००० श्लोकोंका एक दीवान् लिखा था, इनकी मृत्युके विषय कुछ मतभेद देखा जाता है। कोई कोई इनका मृत्यु ११८० ई०में, १२०० ई०में और कोई १२०८ ई०में बतलाते हैं।

निजि (सं० त्रि०) निज शुद्धौ कि। शुद्धियुक्त, जो शुद्धिके सहित हो।

निजिमत् (सं० त्रि०) निजि-मतुप् मस्य व। शुद्धिमान्, शुद्धियुक्त।

निजिघृक्षु (सं० त्रि०) निग्रहीतुमिच्छुः नि-ग्रह-सन्, ततो उ। जो निग्रह करनेमें इच्छुक हो, जो दूसरेको कष्ट पहुंचानेमें हरवक्त तैयार हो।

निजुर् (सं० स्त्री०) हत्या, विनाश।

निझरना (हिं० क्रि०) १ लगा या अटका न रहना, झड़ जाना। २ अपनेको निर्दोष प्रमाणित करना, दोषसे मुक्त बनना, हाथ झाड़ कर निकल जाना, सफाई देना। ३ लगी हुई वस्तुके झड़ जानेसे खाली हो जाना। ४ सार वस्तुसे रहित हो जाना, खुख हो जाना।

निझाना (हिं० क्रि०) आड़में छिप कर देखना, झांक झूंक करना, ताक झाँक करना।

निझोटना (हिं० क्रि०) झपटना, खींच कर छीनना।

निझोल (हिं० पु०) हाथीका एक नाम।

निटर (हिं० वि०) जो उपजाऊ न रह गया हो, जिसका जोर मर गया हो, जिसमें कुछ दम न हो।

निटल (सं० पु०) नि-टल-अच्। कपाल, मस्तक।

निटलाक्ष (सं० पु०) निटले भाले अक्षि यस्य, अच् समासान्तः। शिव, महादेव।

निटोल (हिं० पु०) टोला, मुहल्ला, पुरा, बस्ती।

निठल्ला (हिं० वि०) १ जिसके पास कोई काम धन्धा न हो, खाली। २ बेकार, बे-रोजगार। ३ निकम्मा, जो कोई काम धन्धा न करे।

निठल्लू (हिं० वि०) निकम्मा, जो कोई काम धन्धा न करे।

निठाला (हिं० पु०) १ ऐसा समय जब कोई काम धन्धा न हो, खाली वक्त। २ वह समय जिसमें हाथमें कोई काम धन्धा या रोजगार न हो, वह वक्त या हालत जिसमें कुछ आमदनी न हो, जीविकाका अभाव।

निठुर (हिं० वि०) निर्दय, क्रूर, जो पराया कष्ट न समझे, जिसे दूसरेकी पीड़ाका अनुभव न हो।

निठुरता (हिं० स्त्री०) निर्दयता, हृदयकी कठोरता, क्रूरता।

निठुराव (हिं० पु०) निर्दयता, निठुराई।

निठौर (हिं० पु०) १ बुरी जगह, कुठांव। २ बुरी दशा, बुरा दांव।

निडर (हिं० वि०) १ जिसे डर न हो, जो न डरे, निर्भय। २ साहसी, हिम्मतवाला। ३ धृष्ट, ढीठ।

निडरपन (हिं० पु०) निर्भयता, निडर होनेका भाव।

निड्डीन (सं० क्ली०) नीचैर्ड्डीनं पतनमस्त्यस्मिन्। पक्षियोंकी गतिविशेष, चिड़ियोंकी एक चाल।

निढाल (हिं० वि०) १ अशक्त, सुस्त, शिथिल, पस्त, गिरा हुआ। २ उत्साहहीन, सुस्त, मरा हुआ।

निण्डिका (सं० स्त्री०) मटर। पर्याय—सतीला, तिपटी।

निण्य (सं० त्रि०) अन्तर्हित, गायब, लापता।

नित (हिं० अव्य०) १ प्रतिदिन, रोज। २ सर्वदा, हमेशा।

नितत्नी (सं० स्त्री०) ओषधिभेद, एक प्रकारकी दवा।

नितम्ब (सं० पु०) निभृतं तम्बते आकाङ्क्ष्यते कामुकैरिति नि-तम्ब-अच्, वा नितम्बति पीड़यति नायकचित्तमिति तम्ब-अच। १ स्त्रीकटि, कटिपश्चाद्भाग, कमरका पिछला उभरा हुआ भाग, चूतड़। २ स्कन्ध, कंधा। ३ कूल, तट, किनारा। ४ पर्वतका कटक, पहाड़का ढालुवां किनारा। ५ कटिमात्र, चूतड़।

नितम्बदेश (सं० पु०) पश्चाद्देश, पिछला भाग।

नितम्बिन् (सं० त्रि०) नितम्ब अस्त्यर्थे इनि। नितम्बयुक्त, जिसे चूतड़ हो।

नितम्बिनी (सं० स्त्री०) अतिशय यतो नितम्बोऽस्त्यस्या इति नितम्ब-इनि ङीप्। १ प्रशस्त नितम्बविशिष्टा, सुन्दर नितम्बवाली स्त्री, सुन्दर। २ स्त्री, औरत। (त्रि०) ३ सुन्दर नितम्बवाली।

नितम्भु (सं० पु०) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

नितराम् (सं० अव्य०) नि-तरप् ततो अमु प्रत्ययः। सर्वदा, अनवरत, हमेशा।

नितल (सं० क्लो०) नितरां तले अधोभागो यस्मिन्। सप्त पातालके अन्तर्गत पातालविशेष, सात पातालोंमेंसे एक।

निताई—आसाम प्रदेशके गारोपहाड़ जिलेकी एक छोटी नदी। यह तुरागिरिसे निकल कर दक्षिणकी ओर नाना स्थानोंमें बहती हुई मैमनसिंह जिलेकी काङ्ग नदीमें आ मिली है।

नितान्त (सं० त्रि०) नितास्यतीति तम-कर्त्तरि क्त, ततो दीर्घः (अनुनासिकस्येति। पा ६।४।१५) १ अतिशय, बहुत, अधिक। २ सर्वथा, बिलकुल, एकदम, निरा, निपट।

निटुराई (हिं० स्त्री०) निर्दयता, क्रूरता, हृदयकी कठोरता।

नित्य (सं० त्रि०) नियमेन भवं नि-त्यप (अव्ययात्त्यप्। पा ४।२।१०४) १ सतत, लगातार। पर्याय—अनारत, अश्रान्त, सन्तत, अविरत, अनिश, अनवरत, अजस्र, प्रसक्त, आसक्त, अलब्ध। २ प्रतिदिनका, रोजका। प्रतिदिन शास्त्रानुसार जो सब कार्य किये जाते हैं उसे नित्य कहते हैं। ३ अविच्छिन्न परम्परायुक्त, जिसकी परम्परा विच्छिन्न न हो, जैसे वर्ण। सभी वर्ण नित्य हैं। वर्णका नित्यत्व यदि स्वीकार न किया जाय, तो इनका एक साथ रहना सम्भव नहीं। मान लिया एक वर्ण उच्चारित हुआ, उसी समय उसका ध्वंस हो गया, उससे एक भी शब्द न निकला। किन्तु वर्ण नित्य है, यदि ऐसा स्वीकार करें, तो कोई वर्ण विच्छिन्न नहीं होता, पीछे वर्ण-समूहके एकत्र होनेसे शब्दार्थका कोई व्याघात नहीं होता। ४ उत्पत्ति, विनाशरहित, जिसका कभी नाश न हो, त्रिकालव्यापी। जिसका किसी समय किसी प्रकारका परिणाम न हो, वही नित्य है। सच्चिदानन्द अद्वय ब्रह्म ही एक मात्र नित्य हैं। ब्रह्मके सिवा जितनी चीजें नजर आती हैं, वे अनित्य हैं, यों कहिये कि संसार ही अनित्य है। "ब्रह्मैव नित्यं वस्तु ततोऽन्यदखिलमनित्यम्" (वेदान्तसा०)। ब्रह्मके सिवा अन्य कोई नित्य नहीं है। न्याय और वैशेषिक दर्शनके मतसे परमाणु नित्य-पदार्थ है। किन्तु वेदान्तदर्शनमें यह मत खण्डित हुआ है।

सावयव द्रव्यके सभी अवयव विभक्त करते करते जहां विभागका शेष होगा या जिसका विभाग और हो नहीं सकता, वही परमाणु है। यह परमाणु नित्य है, विश्वब्रह्माण्ड सावयव है। इसकी उत्पत्ति और लय है। परमाणुराशि ही भूत-भौतिक पदार्थोंकी उत्पादक है। नैयायिकोंका यह मत नितान्त भ्रान्तिमूलक है, कारण परमाणु सभी प्रवृत्तिस्वभाव वा निवृत्तिस्वभाव अथवा उभयस्वभाव या अनुभयस्वभाव, इन चार प्रकारके स्वभावोंमेंसे एक प्रकारके स्वभावविशिष्ट हैं, यह स्वीकार करना होगा। किन्तु इन चार प्रकारमेंसे कोई प्रकार प्रमाणसाध्य नहीं है। प्रवृत्तिस्वभाव (सृष्टिकार्यमें उन्मुख) होनेसे प्रलय नहीं हो सकता। निवृत्तिस्वभाव होनेसे सृष्टि नहीं हो सकती। एक ओर प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों स्वभाव रह नहीं सकते। निःस्वभाव होनेसे नैमित्तिक प्रवृत्ति निवृत्ति हो सकती है सही, लेकिन उस मतके समस्त निमित्त (काल, अदृष्ट, ईश्वरेच्छा) नित्य और नियत सन्निहित हैं। सुतरां इससे भी नित्य प्रवृत्तिकी और नित्य निवृत्तिकी आपत्ति हो सकती है।

परमाणुमें रूपादि है, यह स्वीकार करनेसे ही पर-

माणुमें अणुत्व और नित्यत्व इन दोनोंका वपरीत्य पाया जाता है। वैशेषिकोंके मतानुयायी परमाणु परमकारणापेक्षा स्थूल और अनित्य है सही, लेकिन उन लोगोंका ऐसा मत नहीं है।

रूपादि रहनेसे उसमें जो स्थूलत्व और अनित्यत्व है, यह सभी जगह देखनेमें आता है। जितने रूपादिविशिष्ट वस्तु हैं, सभी स्वकारणापेक्षा स्थूल और अनित्य हैं। जैसे, वस्त्र सूत्रको अपेक्षा स्थूल और अनित्य है, फिर सूत्र भी अंशुकी अपेक्षा स्थूल और अनित्य हैं। अंशु और अंशुतर अंशुतमकी अपेक्षा स्थूल और अनित्य है। वैशेषिकोंका परमाणु भी रूपादिविशिष्ट है। सभी परमाणु रूपादिमान् हैं, इसीसे उनका कारण (मूल) है। अतएव परमाणु उस कारणकी अपेक्षा स्थूल और अनित्य है, यह सहजमें अनुमान किया जाता है। वैशेषिकोंके मतसे कारणपरिशून्यभाव पदार्थ नित्य है। वैशेषिकोंके इस नित्यत्वका लक्षण अणुमें असम्भव है। क्योंकि अणुमें भी कारणका रहना अनुमान द्वारा सिद्ध होता है। इनके मतमें नित्यत्वका अन्य कारण लिखा है, वह यह है—अनित्य क्या है? अनित्य विशेषप्रतिषेधका अभाव है। विशेष शब्दका अर्थ जन्यवस्तु है। जो सब वस्तु उत्पन्न होती हैं, वही विशेष पदवाच्य हैं। यह विशेष पदार्थका अभाव है। जो जन्य नहीं है, उसीमें अनित्यशब्द व्यवहृत हुआ है। वही व्यवहार परमाणुकी नित्यताका अन्यतम कारण है, अर्थात् अनित्यशब्द द्वारा नित्यता सिद्ध होती है। वैशेषिकोंके मतमें यह जो नित्यत्वसाधक कारण है, उसमें भी असंशयितरूपसे परमाणुकी नित्यता साधित नहीं होती। क्योंकि इस मतसे 'अनित्य' शब्द सप्रतियोगी अर्थात् सापेक्ष है। यदि कहीं भी नित्यकी प्रसिद्धि रहे, तभी उसकी अपेक्षा वा उसकी प्रतियोगितामें नित्य शब्दका व्यवहार हो सकता है। यदि नित्य कह कर प्रसिद्ध ऐसी कोई वस्तु न रहे, तो अनित्य इस प्रकार समास वा योगशब्द हो ही नहीं सकता। सुतरां यह जानना होगा कि एक सर्वप्रसिद्धसर्वकारण, परम और प्रसिद्ध नित्य है।

वही नित्य पदार्थ परमाणुका भी कारण है, उसका दूसरा ब्रह्म है। परमाणु और वह परमकारण ब्रह्मकी अपेक्षा स्थूल और अनित्य है। (वेदान्तद० २ अ०)

एक मात्र परब्रह्म ही नित्य है, वे ही सभीके कारण हैं, उन्हींसे इस संसारकी उत्पत्ति होती है, उन्हींमें सब स्थित हैं और पीछे उन्हींमें लीन होते हैं।

सांख्यके मतसे पुरुष नित्य और प्रकृति नित्या है। वेदान्तदर्शनमें यह प्रकृतिवाद भी निराकृत हुआ है। वेदान्त देखो। (पु०) ६ समुद्र, सागर। (अव्य०) ७ प्रतिदिन, रोजरोज।

नित्यकर्मन् (सं० क्ली०) नित्यं कर्म। विहित कार्यभेद, वह धर्मसम्बन्धी कर्म जिसका प्रतिदिन करना आवश्यक ठहराया गया हो। जो सब कार्य नहीं करनेसे प्रत्यवायभागी होना पड़ता है, उसीका नाम नित्यकर्म है, जैसे सन्ध्या, यह शास्त्रमें लिखा है। यदि उस कार्यका अनुष्ठान न किया जाय, तो प्रत्यवाय (पाप)का भागी होना पड़ता है।

> "नित्यं नैमित्तिकं चैव नित्यनैमित्तिकन्तथा।
> गृहस्थस्य त्रिधा कर्म तन्निशामय पुत्रक॥
> पञ्चयज्ञाश्रितं नित्यं यदेतत् कथितं तव।
> नैमित्तिकं तथा चान्यत् पुत्रजन्मक्रियादिकम्॥"
>
> (श्राद्धतत्त्वधृत मार्कण्डेयपु०)

गृहस्थोंके लिए तीन कर्म बतलाए गये हैं—नित्य, नैमित्तिक और नित्यनैमित्तिक। पञ्चयज्ञादि कार्य नित्य, पुत्रजन्मप्रभृति जात नैमित्तिक और पर्व श्राद्धादि नित्य-नैमित्तिक है। पञ्चयज्ञ आदि कार्य सभी गृहस्थोंके नित्यकर्म हैं, नैमित्तिक और काम्य कर्मके अतिरिक्त जिन सब कार्योंका विषय शास्त्रमें लिखा है, वही सब कर्म नित्य है। यह नित्य कर्म प्रत्येक व्यक्तिका अवश्य कर्त्तव्य है। समर्थ व्यक्ति यदि नित्य कर्मका अनुष्ठान न करे, तो पतित होता है। जो एक पक्ष तक नित्य कर्मका त्याग करता है, वह प्रायश्चित्तभोगी होता है। एक वर्ष तक जिसने नित्यकर्मका परित्याग किया है, ऐसे व्यक्तिका मुख देखनेसे पाप होता है। यदि दैवात् उसकी भेंट हो जाय, तो सूर्यदर्शन और यदि उसे स्पर्श करे, तो स्नान कर लेना चाहिए।

कब किस हालतमें नित्यकर्म वर्जित हैं, उसका विषय कालिकापुराणमें इस प्रकार लिखा है—जातका

ऊर्ध्वदेश यदि क्षत हो जाय, तो नित्यकर्म और यदि अधोदेशसे रक्तस्राव हो, तो नैमित्तिक कर्म नहीं करना चाहिये। क्षौरकर्म वा मैथुनमें धूमोद्गार उठनेसे वा वमन होनेसे नित्यकर्म निषिद्ध है। अजीर्ण होने पर अथवा कोई वस्तु खाने पर नित्यकर्मका अनुष्ठान नहीं करना चाहिए। जननाशौच वा मरणाशौच होने पर नित्यकर्म वर्जित है। फल मूलादि जो औषधके लिए कल्पित हैं, उन्हें भोजन कर नित्यकर्म किया जा सकता है; लेकिन औषधभिन्न फलादि वा जलपान कर नित्यकर्म नहीं करना चाहिए। जलौका, गूढ़पाद, कृमि तथा गण्डूपदादि जीवोंका जान बूझ कर हस्त द्वारा स्पर्श करनेसे नित्यकर्मका अधिकार नहीं रहता। गुरुनिन्दा करनेसे वा अपने हाथसे ब्राह्मणको प्रहार करनेसे वा रेतःपात होनेसे नित्य कर्मानुष्ठान विधेय नहीं है।
(कालिकापु० ५५ अ०)

सबोंके नित्यकर्म यदि अक्षमताके कारण अङ्गहानि हों, तो भी फलकी निष्पत्ति होती है, अर्थात् कार्यकी सिद्धि अवश्य होती है।

विधिपूर्वक नित्यकर्मका अनुष्ठान करनेसे, प्रतिदिन जो पाप किया जाता है, वह नष्ट होता है। गृहस्थ लोग प्रतिदिन जो पञ्चयज्ञका अनुष्ठान करते हैं, उस पञ्चयज्ञ द्वारा पञ्चसूनाकृत पाप जाते रहते हैं। इसी कारण हर एकको नित्य कर्मका करना अत्यावश्यक है।

वेदोक्त नित्यकर्मके तथा स्नातक व्रतके नहीं करनेसे अहोरात्र उपवासरूप प्रायश्चित्त लेना पड़ता है।

"वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे।
स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम्॥"
(मनु० ११।२०४)

प्रतिदिन जो कार्य किया जाता है, उसे नित्यकर्म वा प्रात्यहिक कर्म कहते हैं। नित्यकर्ममें कौन कौन कार्य करना उचित है, वह आह्निकतत्त्वमें विस्तृतरूपसे लिखा है। प्रातःकालसे ले कर पुनः प्रातःकाल तक जो जो कार्य अनुष्ठेय हैं वे ही उसमें वर्णित हैं, इसी कारण उसका आह्निकतत्त्व नाम रखा गया।

पहले प्रातःकृत्यका अनुष्ठान आवश्यक है।

"ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत स्मरेद्देवान् द्विजानृषीन्॥"
(आह्निकतत्त्व)

ब्राह्म मुहूर्त्तमें जाग कर देवता, द्विज और ऋषियोंका स्मरण करना चाहिये। रात्रिके पश्चिम याम अर्थात् शेष चार दण्डको ब्राह्ममुहूर्त कहते हैं। इस समय जग कर सारी चिन्ताएँ आनेके पहले सुस्थचित्तसे प्रधान प्रधान देवगण, ऋषिगण और अन्य जो कुछ प्रातःस्मरणीय हैं उनका स्मरण करना कर्त्तव्य है। उनके स्मरण करनेसे चित्त प्रसन्न और प्रशान्त होता है।

"ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी
भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतु
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥"
(आह्निकतत्त्व)

ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, रवि, शशी, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, राहु और केतु ये सभी हमारे सुप्रभात करें। विशेष विवरण प्रातःकृत्यमें देखो।

शय्यासे उठ कर विण्मूत्रोत्सर्ग, शौच, आचमन और दन्तधावन करके प्रातःस्नान विधेय है। प्रातःस्नान समाप्त कर प्रातःसन्ध्या और जो साग्निक हैं उन्हें होम करना चाहिये। इन सब कार्योंको प्रथम यामार्द्धकृत्य जानना चाहिये।

पीछे द्वितीय यामार्द्धमें वेदाभ्यास करना होता है। अनन्तर समिध, कुश और पुष्पादि तोड़ना विधेय है। तृतीय यामार्द्धमें पोष्यवर्गके अर्थसाधनमें लग जाना आवश्यक है। माता, पिता, गुरु, आत्मीय स्वजन, दीन-प्रजा, अभ्यागत, अतिथि और अग्निको गिनती पोष्यवर्गमें की गई है। इसी तृतीय यामार्द्धमें इनके प्रतिपालनका उपाय करना होगा।

चतुर्थ यामार्द्धमें स्नान, तर्पण, सन्ध्योपासना, ब्रह्मयज्ञ और देवपूजा विधेय है।

पञ्चम यामार्द्धमें वैश्वदेवादि समाप्त कर अर्थात् देवता, पितृ और मनुष्य तथा कीटादिको अन्नादिका विभाग कर तब आप भोजन करना चाहिये।

षष्ठ और सप्तम यामार्द्ध इतिहास और पुराणादि पढ़नेमें व्यतीत करना चाहिये।

अष्टम यामार्द्धमें लोकयात्राके लिये जो सब कार्य आवश्यक हैं, उन्हें करना चाहिये, पीछे सायंसन्ध्या

विधेय है। सायंसन्ध्या कर चुकने पर रात्रिकृत्य करना होता है। एक प्रहर रात्रि तक दिवाभागमें भ्रमप्रमादवशतः जो सब कार्य नहीं किये गये, उन्हें कर डालना चाहिए। (आह्निकतत्त्व)

अनन्तर यथाविधि भोजनादि करके शयन करना चाहिये। आह्निकतत्त्वमें शयन और दारोपगमनविधि भी लिखी है। तत्तद् शब्द देखो।

आजकल बहुत थोड़े ऐसे हैं जो उक्त नियमोंका पालन करते हैं। पूर्व समयमें हिन्दूमात्र ही इस नियमके अनुसार चलते थे।

नित्यकिशोर—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने बहुतसे स्फुट पदोंकी रचना की है।

नित्यक्रिया (सं० स्त्री०) नित्यकर्म, जैसे, स्नान, संध्या आदि।

नित्यक्षौर (सं० क्ली०) नित्यं कालाकालभावतो रागप्राप्तत्वात् सदातनं क्षौरम्। वैधेतरक्षौर, अवैध केशादि छेदन। जिन सब दिनों और समयोंमें क्षौरकर्म निषिद्ध बतलाया है, उन सब दिनोंमें यदि क्षौरकार्य किया जाय तो वही नित्यक्षौर कहलाता है।

"चूड़ोदिते तिथावृक्षे बुधेन्द्वोर्दिवसे नरः।
नित्यक्षौरं प्रकुर्वीत जन्ममासे न तु क्वचित्॥"
(ज्योतिःसागरसार)

जन्ममासमें कभी भी क्षौरकार्य नहीं करना चाहिये। क्षौरकार्यमें भाद्र, पौष, चैत्र और जन्ममास निषिद्ध है। बुध और सोमवार छोड़ कर अन्य वारको निन्दनीय बतलाया है। नन्दा, रिक्ता, पूर्णिमा, अमावस्या और अष्टमी छोड़ कर अन्य तिथियोंमें क्षौरकार्य करा सकते हैं। रेवती, अश्विनी, पुष्या, ज्येष्ठा, श्रवणा, स्वाती, हस्ता, मृगशिरा, शतभिषा, पुनर्वसु और चित्रानक्षत्रमें क्षौरकार्य प्रशस्त है। पर इनमें विशेषता यह है, कि राजा ब्राह्मणके आदेशसे, विवाहमें, मृतसूतिकाशौचमें, बन्धमोचनमें, यज्ञकर्ममें और परोक्षकार्यमें यदि निषिद्ध दिन भी क्यों न हो, तो भी क्षौर कर्म कर सकते हैं तथा विष्णुका नाम, आनन्दपुर वा पाटलीपुत्र, पुरी, अहिच्छत्रा नगरी और दिति तथा अदितिका स्मरण कर क्षौरकार्य किया जा सकता है। (ज्योतित०)

नित्यग (सं० पु०) आयु, उमर, जिन्दगी।

नित्यगति (सं० पु०) नित्यं गतिर्यस्य। सदागति, वायु, हवा।

नित्यता (सं० स्त्री०) नित्यस्य भावः नित्य तल्-टाप्। नित्यत्व, नित्य होनेका भाव, अनश्वरता।

नित्यदा (सं० अव्य०) नित्य दाच्। सर्वदा, सब समय, हमेशा।

नित्यदान (सं० क्ली०) नित्यं दैनन्दिनं दानं। प्रतिदिन कर्त्तव्य दान, वह दान जो प्रतिदिन किया जाता है।

"नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं दानमिष्यते।
अहन्यहनि यत् किञ्चिद्दीयतेऽनुपकारिणे॥
अनुद्दिश्य फलं तत् स्याद्ब्राह्मणाय तु नित्यकम्॥"
(गरुड़पु०)

नित्य, नैमित्तिक और काम्य यही तीन प्रकारका दान है। इनमेंसे प्रतिदिन किसी उपकारकी प्रत्याशा न कर जो दान ब्राह्मणको दिया जाता है उसे नित्यदान कहते हैं। यह दान अत्यन्त प्रशस्त है, निष्काम भावसे प्रतिदिन दान करना ही नित्यदान है।

नित्यनर्त्त (सं० पु०) महादेव, शिव।

नित्यनाथ—हिन्दीके एक सुप्रसिद्ध कवि। इन्होंने मन्त्रखण्ड-रसरत्नाकर नामक एक ग्रन्थ बनाया है।

नित्यनाथसिद्ध—एक ग्रन्थकार। इनके पिताका नाम शङ्करगुप्त था। इनके बनाए हुये अनेक ग्रन्थ मिलते हैं, यथा—१ रसरत्नसमुच्चय, २ इन्द्रजालतन्त्र, ३ कामरत्न, ४ मन्त्रकोष, ५ यन्त्रावली, ६ मन्त्रसार, ७ रसरत्नाकर, ८ सिद्धखण्ड, ९ सिद्धसिद्धान्तपद्धति। कहीं कहीं इनका नाम नित्यानन्द वा नेमनाथसिद्ध भी लिखा गया है।

नित्यनियम (सं० पु०) प्रतिदिनका बंधा हुआ व्यापार, रोजका कायदा।

नित्यनैमित्तिक (सं० क्ली०) नित्यञ्च तन्नैमित्तिकञ्चेति। नित्यत्व-नैमित्तिकत्व-कर्मभेदयुक्त।

"नित्यं नैमित्तिकं ज्ञेयं पर्वश्राद्धादिपण्डितैः।"
(श्राद्धत०)

पर्व श्राद्धादि कार्य नित्यनैमित्तिक पदवाच्य है, क्योंकि इन सब कार्योंमें नित्यत्व और नैमित्तिकत्व दोनों

हो हैं। पर्व श्राद्ध और प्रायश्चित्त आदि अवश्य कर्त्तव्य हैं और किसी निमित्त (जैसे पापक्षय)से भी किये जाते हैं, इसलिए नित्य और नैमित्तिक दोनों हुए।

नित्यपरिवृत (सं॰ पु॰) एक बौद्धाचार्य।

नित्यपूजा-यन्त्र (सं॰ क्ली॰) एक प्रकारका कवचपूर्ण तावीज।

नित्यप्रलय (सं॰ पु॰) नित्यः प्रात्यहिकः प्रलयः कर्मधा॰ प्रलयविशेष। प्रलय चार प्रकारका है,—नित्य, प्राकृत, नैमित्तिक और आत्यन्तिक। इनमेंसे सुषुप्तिको नित्य प्रलय कहते हैं; जब नींद आती है, तब किसी विषयका ज्ञान नहीं रहता। प्रलयकालमें जिस प्रकार कार्यका बोध नहीं होता, उसी प्रकार निद्रावस्थामें किसी कार्यका ज्ञान नहीं रहता है, इसी कारण इसे प्रलय कहते हैं। सुषुप्तिकालमें धर्माधर्म आदि कारणरूपमें अवस्थित रहते हैं। सुषुप्तिके अवसान पर अर्थात् नींद टूट जाने पर वे सब कार्य होने लगते हैं। अग्निपुराणमें लिखा है, कि प्रतिदिन प्राणियोंका जो लय अर्थात् नाश होता है, उसे नित्य प्रलय कहते हैं। विशेष विवरण प्रलय शब्दमें देखो।

नित्यभाव (सं॰ पु॰) नित्यका भाव, अनन्त।

नित्यमय (सं॰ त्रि॰) नित्य-मयट्। नित्यस्वरूप, अनन्त।

नित्यमुक्त (सं॰ पु॰) नित्यं मुक्तः। सब समय बन्ध-शून्य परमात्मा।

"अहं देवो न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्।
सच्चिदानन्दरूपोहं नित्यमुक्तस्वभाववान्॥"

(आह्निकतत्त्व)

नित्ययज्ञ (सं॰ पु॰) नित्यानुष्ठेयः यज्ञः। प्रतिदिन अनुष्ठेयमान अग्निहोत्रादि यज्ञ। नित्य यज्ञानुष्ठानमें किसी प्रकारके फललाभकी आकांक्षा नहीं रहती। यह यज्ञ साग्निक ब्राह्मणोंको प्रतिदिन करना होता है।

नित्ययुक्त (सं॰ त्रि॰) सर्वदा काममें नियुक्त, जो हमेशा काममें लगा रहता हो।

नित्ययौवन (सं॰ त्रि॰) नित्यं यौवनं यस्य। १ स्थिर-यौवन, जिसका यौवन बराबर या बहुत काल तक स्थिर रहे। (स्त्री॰) २ द्रौपदी।

नित्यवत्सा (सं॰ स्त्री॰) १ साममेद। (पु॰) २ नित्य-वत्सयुक्त।

नित्यवर्ष—राष्ट्रकूट-वंशीय एक राजा। राष्ट्रकूट देखो। जगत्तुङ्गने दो विवाह किए थे, पहली स्त्री लक्ष्मीके गर्भसे नित्यवर्षने जन्मग्रहण किया।

नित्यवर्ष—२य नित्यवर्ष 'कोटोग वा खोटोग' नामसे प्रसिद्ध थे। २य अमोघवर्षके दो पुत्र थे जिनमें बड़ेका नाम नित्यवर्ष अथवा कोटिग वा खोटीग और छोटेका कृष्ण ४र्थ वा कन्नर था। कोटोग बिना कोई सन्तान छोड़े इस लोकसे चल बसे थे। राष्ट्रकूटराजवंश देखो।

नित्यवित्रस्त (सं॰ पु॰) १ चित्तभीत। (क्ली॰) २ हरिण।

नित्यवैकुण्ठ (सं॰ पु॰) नित्यः सनातनो वैकुण्ठः। विष्णुका स्थानविशेष।

"ऊर्ध्वे नभसि संविष्टो नित्यवैकुंठ एव च।
आत्माकाशसमो नित्यो विस्तृतश्चन्द्रबिम्बवत्॥
ईश्वरेच्छावमुद्भूतो निर्लक्ष्यश्च निराश्रयः।
आकाशवत् सुविस्तारश्चामूल्यरत्ननिर्मितः॥"

(ब्रह्मवै॰ प्रकृतिख॰ १५ अ॰)

आकाशमण्डलसे बहुत ऊपर आकाशवत् अनन्त विस्तृत नित्यवैकुण्ठ नामक स्थान है, वहीं भगवान् नारायणका वासस्थान है। यहां नारायण चतुर्भुज-रूपमें वनमालाविभूषित हो कर लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा और तुलसीके साथ रहते हैं। नन्द, सुनन्द और कुमुद आदि पार्श्वचर भी यहां हरवक्त मौजूद रहते हैं।

नित्यशः (सं॰ अव्य॰) नित्य-शस्, प्रत्ययः। १ प्रति-दिन, रोज। २ सर्वदा, सदा, हमेशा।

नित्यसत्त्वस्थ (सं॰ त्रि॰) नित्यं अचलं यत् सत्त्वं तत्र तिष्ठति स्था-क। नित्य धैर्यावलम्बी, सत्त्वगुणावलम्बी। जब रजः और तमोगुण सत्त्वसे अभिभूत होता है, तब उसे नित्यसत्त्वावस्था कहते हैं। इस अवस्थामें जो अवस्थित रहते हैं, उन्हें नित्यसत्त्वस्थ कहते हैं।

"नित्यसत्त्वस्थो निर्योगः क्षेम आत्मवान्"। (गीता)

नित्यसम (सं॰ पु॰) गौतमसूत्रोक्त जात्युत्तरभेद, न्यायमें जो २४ जाति अर्थात् केवल साधर्म्य और वैधर्म्य-से प्रयुक्त खण्डन कहे गये हैं उनमेंसे एक। वह प्रयुक्त खण्डन जो इस प्रकार किया जाय, कि अनित्य वस्तुओंमें भी अनित्यता नित्य है अतः धर्मके नित्य होनेसे धर्मी

भी नित्य हुआ। जैसे, किसीने कहा, शब्द अनित्य है क्योंकि वह घटके समान उत्पत्ति-धर्मवाला है। इसका यदि कोई इस प्रकार खण्डन करे, कि यदि शब्दका अनित्यत्व नित्य है, तो शब्द भी नित्य हुआ और यदि अनित्यत्व अनित्य है तो भी अनित्यत्वके अभावसे शब्द नित्य हुआ। इस प्रकारका दूषित खण्डन नित्यसम कहलाता है।

नित्यसमास (सं० पु०) समासभेद, कुशब्द और आदि शब्दके साथ जहां समास होगा, वह नित्यसमास होता है।

नित्यस्तोत्र (सं० त्रि०) १ सर्वदा प्रशंसित, जिसकी हमेशा तारीफ की जाय। २ सर्वदा पठनीय स्तोत्र।

नित्यहोम (सं० पु०) नित्यं प्रत्यहं कर्त्तव्यो होमः। द्विजोंका प्रतिदिन कर्त्तव्य होम। साग्निक ब्राह्मण प्रतिदिन जिस होमविधिका अनुष्ठान करते हैं, उसे नित्य होम कहते हैं। जब तक जीवन है, तब तक होम करना चाहिये।

'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति' (श्रुति)

नित्या (सं० स्त्री०) नित्य-टाप्। १ देवीको शक्तिभेद, पार्वती। इनके मन्त्रादि तन्त्रसारमें लिखे हैं। २ मनसादेवी। ३ एक शक्तिका नाम।

नित्यानध्याय (सं० पु०) नित्यं सर्वथा यथातथा अनध्यायः अध्ययनाभावः। सर्वदा वर्जनीय वेदपाठकालादि, ऐसा अवसर चाहे वह जिस वार या जिस तिथिको पड़ जाय जिसमें वेदके अध्ययन अध्यापनका निषेध हो।

'इमान्नित्यमनध्यायनधीयानो विवर्जयेत्।
अध्यापनं च कुर्वाणः शिष्याणां विधिपूर्वकम्॥'
(मनु ४।१०१)

अध्ययनशील शिष्य और वेदाध्यापक गुरुको नित्य-अनध्यायका सम्पूर्णरूपसे परित्याग करना चाहिये। नित्य अनध्याय-समूहका विषय इस प्रकार है—

जब पानी बरसता, बादल गरजता और बिजली चमकती हो या आंधीके कारण धूल आकाशमें छाई हो या उल्कापात होता हो, तब अनध्याय रखना चाहिये। (मनु ४ अ०) विशेष विवरण अनध्याय शब्दमें देखो।

नित्यानन्द (सं० पु०) सदानन्द, वह जो सदा आनन्द रहे।

नित्यानन्द—इस नामके कितने कवियों और शास्त्रकारोंके नाम पाए जाते हैं। यथा—

१ वाल्मीकिके शिष्य औरजातकवर्षपद्धतिके प्रणेता।

२ श्रीनिवास विद्यानन्दके शिष्य और ताराकल्पलताके प्रणेता। इनका दूसरा नाम नारायणभट्ट था।

३ पुरुषोत्तमाश्रमके शिष्य। इनकी उपाधि आश्रम थी। इन्होंने ब्रह्मसूत्रवृत्तिन्यायसंग्रह, मिताक्षरा (छान्दोग्योपनिषट्टीका), मिताक्षरा (बृहदारण्यकटीका), शिक्षापत्री और सत्कर्मव्याख्यान-चिन्तामणि आदि ग्रन्थ प्रणयन किये हैं।

४ देवदत्तके पुत्र। इन्होंने इष्टकालशोधन और निषेकविचारसिद्धान्तराजको रचना की है।

५ अद्वैततत्त्वदीपके प्रणेता।

६ क्रमदीपिका, तत्त्वलेश, सिद्धसिद्धान्तपद्धति और सुन्दरीपूजातन्त्र आदि ग्रन्थोंके रचयिता।

७ हिन्दीके एक कवि। इनकी गणना उत्तम कवियोंमें की जाती थी। सं० १७५४के पूर्व इन्होंने बहुतसी सुमधुर और सरस कविताओंकी रचना की। इनका नाम सूदनने सुजानचरित्रमें लिखा है।

नित्यानन्दघोष—एक बङ्गाली कवि। प्रायः तीन सौ वर्षसे अधिक हुए इन्होंने बङ्गलाभाषामें अष्टादशपर्व महाभारत प्रकाश किया।

नित्यानन्ददास—एक प्रसिद्ध बंगाली वैष्णव कवि। ये पदकर्ता बलरामदास नामसे मशहूर थे। इनके पिताका नाम श्रीखण्डनिवासी आत्मारामदास और माताका नाम सौदामिनी था। ये अपने मातापिताके एकलौते लड़के थे। पदकल्पतरु आदि संग्रह पुस्तकोंमें आत्मारामदासकृत कुछ पदावली पाई जाती हैं। पदकल्पतरुको कविवन्दना पदकर्त्ता बलरामदासको 'कविनृपवंशज' (कविराज) बतलाया है। नरोत्तमविलास आदि ग्रन्थोंमें इनका नाम बलराम कविराज लिखा है और वैष्णववन्दनामें ये 'सङ्कीर्तनकारक' और 'नित्यानन्द-शाखाभुक्त' माने गये हैं। इन्होंने प्रेमविलास नामक एक काव्यकी रचना की है जो २० अध्यायोंमें समाप्त हुआ है। इस ग्रन्थमें श्रीनिवास और श्यामानन्दकी कथा ही विशेषरूपसे वर्णित है। करीब चार सौ वर्ष हुए इन्होंने प्रेमविलासकी रचना की।

नित्यानन्दनाथ—रत्नाकरपद्धतितन्त्रके प्रणेता।

नित्यानन्द प्रभु—राढ़देशमें कलनासे २ कोस दक्षिण प्राचीन एकचाका ग्राममें इनका जन्म हुआ था। इनके पिताका नाम हड़ाई पण्डित और माताका पद्मावती था इनका आदि नाम था कुवेर। चैतन्यसम्प्रदायी वैष्णवों का कहना है, कि नित्यानन्द बलरामके अवतार थे।

नित्यानन्द दिन प्रतिदिन शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी तरह बढ़ने लगे। इनके अद्भुत बाल्यखेलका विवरण चैतन्य भागवतमें है। ये भगवान्‌के लीलानुरूप खेल खेलते थे। प्रवीणलोक इनका खेलना देख बड़े ही विस्मित होते और कहते थे, कि इस बालकने किससे इन सब खेलोंकी शिक्षा पाई है? स्वयं इनके पिता इनका खेल देख आश्चर्यित हो रहते थे। आश्चर्यित होनेका और भी एक कारण था; ये जिस समय जो खेल खेलते थे, उस समय उसी भावमें आविष्ट हो जाते थे।

जिस दिन ये लक्ष्मणके शक्तिवाण लगनेका खेल खेलते, उस दिन बड़ी भारी विपद् आ पड़ती थी। शक्तिशेलके आघातसे ये एरण्डवृक्षकी तरह पृथ्वी पर गिर पड़ते और मूर्च्छित हो जाते थे। यह मूर्च्छा खेलकी मूर्च्छा नहीं, भावकी मूर्च्छा थी। एक दिन ये बालकोंके साथ खेल रहे थे, कि इतनेमें इनको मूर्च्छा आ गई। इनको मूर्च्छित देख इनके साथ खेलनेवाले दूसरे बालकोंने चारों ओर खबर दी। बाद प्रवीण व्यक्तिगण आये और इनके मातापिता भी पागलकी तरह क्रीड़ास्थानमें आ पहुँचे, सैकड़ों चेष्टाएं की गईं, बहुत तरहकी ओषधियोंका प्रयोग किया गया, किन्तु नित्यानन्दकी मूर्च्छा न छुटी। सब कोई रोने लगे।

बाद किसी एक आदमीने एक बालकको पुकारा और उसे अभयदान दे पूर्वापर कथा पूछी। उस बालकने डोलते न बोलते नित्यानन्दकी शिक्षा उसे याद आ गई और वह आनन्दित हो बोल उठा, 'अभी नित्यानन्दको जीवित करूंगा।' तब वह बालक हनुमान्‌का रूप धारण कर गन्धमादन लानेको चला। उसके गन्धमादन लाने पर एक दूसरे बालकने (पूर्व शिक्षानुसार) वैद्य बन कर उस औषधको नित्यानन्दकी नाकके पास रखा अनेक चेष्टा करने पर भी जो मूर्च्छा नहीं छुटी थी, वह सामान्य खेलसे ही जाती रही।

नित्यानन्द ग्रामके नयनस्वरूप थे। इनके मातापिताकी बात तो दूर रहो, यहां तक कि ग्रामवासिगण क्षणभर भी इन्हें न देख चारों ओर शून्य ही शून्य समझते थे। इनका खेल जैसा अपरूप था, विद्याशिक्षा भी वैसी ही अद्भुत थी। जब ये बारह वर्षके हुए, तब इनके विवाहकी बात होने लगी। बहुतोंने अपनी अपनी कन्या इन्हें अर्पण करनी चाही। यह देख इनकी माता बहुत आनन्दित हुईं। किन्तु यह आनन्द शीघ्र ही निरानन्दमें परिणत हो गया। अग्रहायण मासके अन्तिम (१४९० ई०)में एक उदासीन, अत्यन्त तेजस्कर आकृतिवाले मनुष्य इनके पिता हड़ाई पण्डितके यहां अतिथि हुए। प्रस्थानके समय इन्होंने हड़ाई पण्डितसे नित्यानन्दकी भिक्षा मांगी। इन्होंने अतिथिको विमुख न कर अत्यन्त दुःखित हो पुत्रको अर्पण किया और वे इस धर्मसङ्कटमें विपथगामी न हों, इसलिये भगवान्‌की प्रार्थना करने लगे। जब उनकी माता पद्मावतीको यह खबर लगी, तब उन्होंने भी वैसा ही किया।

इनके मातापिताका हृदयपिण्ड छिन्नविच्छिन्न हो गया—और अधिक सह न सके। जिस समय नित्यानन्द घरसे बाहर निकले, उसी समय इनके मातापिता जहां थे, वहीं मूर्च्छित हो पड़े रहे उन्हें फिर भी पूर्ण ज्ञान न हुआ और वे पागलकी नाईं रहने लगे।

जो कुछ हो, नित्यानन्द फिर घर न लौटे। इन्होंने यथारीति संन्यासाश्रम अवलम्बन किया। इनके गुरुका नाम था लक्ष्मीपति। बीस वर्षकी उम्र तक इन्होंने तीर्थाटन किया। श्रीमहाप्रभुके गुरु ईश्वरपुरी इस समय वृन्दावनमें थे। इन्होंने देखा कि, एक तरुण संन्यासी पागलकी नाईं श्रीकृष्णके अन्वेषणमें घूम रहा है। ईश्वरपुरीने इनका भाव समझ कर इन्हें पूछा, "ठाकुर! यहां क्या देखते हो, तुम्हारे कृष्णने नवद्वीपमें शचीके घर जन्म लिया है। वहां जावो, वे तुम्हारी ही अपेक्षा करते हैं।" यह सुन कर नित्यानन्द नवद्वीपकी ओर चल दिए।

जिस प्रकार समुद्रमें नदी मिलती है वह कितनी ही बड़ी क्यों न हो, किन्तु उसकी स्वतन्त्रता नहीं रहती उसी प्रकार नित्यानन्दकी जब नन्दन-आचार्यके घर पर

महाप्रभुसे भेंट हुई, तब इनकी स्वतन्त्रता जाती रही।

श्रीमहाप्रभु स्वयं सन्यासी थे, उनके प्रधान प्रधान पार्श्वगणोंमेंसे प्रायः अधिकांश ही संन्यासी थे। इससे यह फल हुआ, कि मनुष्योंका गार्हस्थ्य आश्रमके ऊपर विराग उत्पन्न हो गया। धीरे धीरे झुण्डके झुण्ड अनधिकारी मनुष्य संन्यासी होने लगे; अब इस प्रवाहको रोकना चाहिये। महाप्रभुने देखा, कि नित्यानन्दके सिवा और कोई दूसरा उपाय नहीं है—इनके उदाहरणसे ही मनुष्य मुग्ध हो सकते हैं। तब महाप्रभुने इनके दोनों हाथ पकड़ कर इनसे कहा, 'भाई! जीवके उद्धारके लिये ही तुम्हारा अवतार है, उनकी भलाईके लिये तुम विवाह करो और वे देखें, कि विवाह करनेसे हो धर्म नहीं होता, सो नहीं।' यद्यपि यह कार्य नितान्त अनभिप्रेत था, तो भी इन्होंने प्रभुकी आज्ञा शिरोधार्य कर ली। यथासमय ये गौड़ आये।

ये घूमते घूमते अम्बिका गये। जो कोई इनका मनोमोहनरूप देखता, वही मुग्ध हो जाता था। यहां सूर्यदास पण्डितसे इनकी मैत्री हो गई। सूर्यदासके अनेक यत्न करने पर ये उनके घर गये। उनकी पत्नीने इनके असामान्यरूपदर्शनसे मुग्ध हो इन्हें कन्यादान करनेकी इच्छा प्रकट की। किन्तु सूर्यदास लोकलज्जासे विशेषतः आत्मीय स्वजनोंकी असम्मति देख अज्ञातकुलशीलको कन्यादान न कर सके।

नित्यानन्द वहांसे बिदा हो गङ्गाके किनारे आ कर रहने लगे। दैवात् एक दिन सूर्यदास अपनी कन्या वसुधाकी मृतदेह ले सत्कार करनेके उद्देशसे गङ्गाके किनारे आये। नित्यानन्दने मृतदेह देख सूर्यदासको कहा, "यदि आप इस कन्याके साथ मेरा विवाह कर देनेकी प्रतिज्ञा करें, तो मैं इसे जीवित कर सकता हूं।" सूर्यदासके स्वीकार करने पर उन्होंने उसे जिलाया। सूर्यदास कन्या ले कर घर आये और शुभ दिनमें महा समारोहसे उसका विवाह नित्यानन्दके साथ कर दिया।

इस प्रकार चिर उदासीन अवधूत गृही हुए। कुछ दिन बाद वसुधाके गर्भसे वीरभद्र नामका एक लड़का पैदा हुआ और इन्होंके वंशमें खड़दहके गोस्वामियोंकी भी उत्पत्ति हुई।

नित्यानन्दकी और सब लीलाएं विस्ताररूपसे यहां नहीं दी गईं। चैतन्यचन्द्र देखो। इन्होंने १४५६ शकमें देहत्याग किया।

नित्यानन्द मनोभिराम—एक ग्रन्थकार। ये शैव थे। वचनार्थ नामक ग्रन्थ इन्हींका बनाया हुआ है।

नित्यानन्दरस (सं० पु०) औषधविशेष, एक प्रकारकी दवा। इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार है—हिङ्गुलोत्थ-पारद अर्थात् हिङ्गुल द्वारा शोधित पारा, गन्धक, तांबा, कांसा, रांगा, हरताल, तूतिया, शङ्खभस्म, कौड़ीकी भस्म, त्रिकटु, त्रिफला, लौह, विडङ्ग, पञ्चलवण, चई, पिपरामूल, हवुषा, वच, कचूर, अकवन, देवदारु, इलायची, विद्धक, निशोथ, चितामूल, दन्तीमूल इन सब द्रव्योंका बराबर बराबर भाग ले कर उसे हरीतकीके काढ़ेसे पीसते हैं। बाद दश रत्ती परिमाणकी एक एक गोली बनाते हैं। प्रातःकाल इसका सेवन करनेसे कफवातोत्थ अथवा रक्त-मांसाश्रित श्लीपदरोग नष्ट हो जाते हैं। इसका अनुपान शीतल जल है। यह श्लीपदाधिकारकी उत्तम दवा है तथा अर्बुद, गण्डमाला, वातरक्त, कफवातोद्भवरोग, अन्त्रवृद्धि, वातकफ, गुदरोग और क्रमि आदि रोगोंमें विशेष उपकारी है। श्लीपदरोगमें इसके सिवा और कोई औषध है ही नहीं। इससे अग्निवृद्धि होती है। श्रीमान् गहननाथने संसारकी भलाईके लिये इस औषधका आविष्कार किया है। (भैषज्यर० श्लीपदा०)

नित्यानन्दशर्मा—इन्होंने उपवासनातत्त्व नामक एक ग्रन्थ लिखा है।

नित्यानन्दानुचर—अपरोक्षानुभूतिटीकाके प्रणेता।

नित्यानन्दाश्रम (सं० पु०) एक टीकाकार।

नित्यानन्द देखो।

नित्यानित्यवस्तुविवेक (सं० पु०) नित्यश्च अनित्यश्च नित्यानित्यौ ते च ते वस्तुनी नित्यानित्यवस्तुनी तयोः विवेकः। नित्यानित्यवस्तुका विवेक। वेदान्तमतसे ब्रह्मविद्याको जाननेमें नित्यानित्यवस्तुविवेक आवश्यक है, यह वस्तु नित्य है, यह वस्तु अनित्य है, इसका सम्यक् विवेक वा ज्ञान होनेको नित्यानित्यवस्तुविवेक कहते हैं। ब्रह्म ही एकमात्र नित्यवस्तु हैं। ब्रह्मके अतिरिक्त जो कुछ नजर आता है, वह अनित्य है, इस

प्रकारके ज्ञानका नाम नित्यानित्यवस्तुविवेकज्ञान है।

नित्यानित्यवस्तुविवेकज्ञान ही मुमुक्षुओंका प्रधान सोपान है। जिस प्रकार जनताको मरुमरीचिकामें जलभ्रान्ति होती है उसी प्रकार अविद्याविच्छिन्न जीवको ब्रह्ममें दृश्यभ्रान्ति होती है। यह दृश्यप्रपञ्च मिथ्या है, ब्रह्म ही सत्य है। मुमुक्षुको पहले यही ज्ञान उपार्जन करना होता है। यह ज्ञान जब दृढ़ हो जाता है, तब नित्यानित्यवस्तुविवेक हुआ है, ऐसा जानना होगा यह नित्यानित्यवस्तुविवेक लाभ करनेमें शम, दम, उपरति और तितिक्षा इन चार साधनोंसे सम्पन्न होना चाहिए। इन सब साधनों द्वारा चित्त निर्मल होनेसे 'मैं' यह जो ज्ञान है तथा उसका अवलम्बन जो देह, इन्द्रिय और मन है, सभी भ्रान्तिमात्र है, इसमें सन्देह नहीं। सुतरां मैं-ज्ञान और मैं-ज्ञानका आलम्बन सभी रज्जुसर्पवत् मिथ्या प्रतीत होते हैं। ब्रह्ममें यह ज्ञान जब अविचाल्य होता है, तब आपसे आप 'अहं' ऐसा ज्ञान इन्द्रिय, मन इन सबको त्याग कर ब्रह्ममें लीन हो जाता है।

अहंज्ञानके ब्रह्मावगाही होनेसे ही तत्त्वज्ञान होता है और ज्ञानसे ही मुक्ति होती है। अतएव नित्यानित्यवस्तुविवेक ही तत्त्वज्ञानका प्रधान साधन है।

पहले जिससे नित्यानित्यवस्तुविवेक हो, उसीके लिये चेष्टा करना एकमात्र विधेय है। (वेदान्तसार)

नित्यानित्यसंयोगविरोध (सं० पु०) नित्यस्य अनित्यस्य एकत्र संयोगे विरोधः। नित्य और अनित्य वस्तुका एकत्रावस्थारूप विरोध, भाव और अभावका एकत्रावस्थानरूपविरोध, अर्थात् नित्यवस्तुमें अनित्यवस्तु नहीं रह सकती, भावपदार्थके साथ एकत्रावस्थान सम्भव नहीं।

नित्यानुबद्ध (सं० त्रि०) रक्षाकारी, प्रतिपालक, बचानेवाला।

नित्याभियुक्त (सं० त्रि०) नित्यं अभिसमन्तात् युक्तः योगे व्यापृतः। योगिविशेष, जो केवल इतना ही भोजन करके रहे जितनेसे देह रक्षा होती रहे और सब त्याग करके योगसाधन करे।

नित्याभैरवी (सं० स्त्री०) नित्या तदाख्यया प्रसिद्धा भैरवी। भैरवीविशेष।

नित्यारित्र (सं० स्त्री०) नियत ऋत्विक्‌रूप उदक आकर्षणका काष्ठसाधनयुक्त।

नित्योत्थितहस्त (सं० पु०) बोधसत्त्वभेद।

नित्योदितरस (सं० पु०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—शोधित रस, ताम्र, लोह, अभ्र, विष, गन्धक, इन सब द्रव्योंका समान भाग और उतना ही मिलावा, सबको एक साथ पीस कर ओल और मानकचूके रसमें ३ दिन तक छोड़ देते हैं। बाद मटर भरकी गोली बनाते हैं। इसका अनुपान घृत है। इसके सेवन करनेसे सब प्रकारका अर्शरोग जाता है। (भैषज्यर० अर्शोऽधि०)

निथरना (हिं० क्रि०) १ पानी या और किसी पतली चीजका स्थिर होना जिससे उसमें घुली हुई मैल आदि नीचे बैठ जाय, थिर कर साफ होना। २ घुली हुई चीजके नीचे बैठ जानेसे जलका अलग हो जाना, पानी छन जाना।

निथार (हिं० पु०) १ घुली हुई चीजके बैठ जानेसे अलग हुआ साफ पानी। २ पानीके स्थिर होनेसे उसके तलमें बैठी हुई चीज।

निथारना (हिं० क्रि०) १ घुली हुई वस्तुको नीचे बैठा कर खाली पानी अलग करना, पानी छानना। २ पानी या और किसी पतली चीजको स्थिर करना जिससे उसमें घुली हुई मैल आदि नीचे बैठ जाय, थिरा कर साफ करना।

निथालना (हिं० क्रि०) निथारना देखो।

निद (सं० क्ली०) निन्दि-क वाहुलकात् नलोपः। १ विष। (त्रि०) २ निन्दक, निन्दा करनेवाला।

निदद्रु (सं० पु०) निदात् विषात् द्रांति पलायते इति द्रा मृगय्वादित्वात् कु प्रत्ययेन साधुः। १ मनुष्य। (त्रि०) निर्नास्ति दद्रुर्यस्य। २ दद्रुरोगरहित, जिसे दादका रोग न हो।

निदम्भ (सं० पु०) निश्चित दम्भ।

निदर्शक (सं० त्रि०) निदर्शयतीति नि-दृश-णिच्-ण्वुल्। निदर्शनकारी, दिखलानेवाला।

निदर्शन (सं० क्ली०) निदृश्यतेऽनेनेति नि-दृश-ल्युट्। १ उदाहरण, दृष्टान्त। २ प्रकाशित करनेका कार्य, दिखानेका काम।

निदर्शना (सं० स्त्री०) निदर्शयतीति नि-दृश-णिच् ल्यु-टाप्। काव्यालङ्कारविशेष, एक अर्थालङ्कार जिसमें एक बात किसी दूसरी बातको ठीक ठीक कर दिखाती हुई कही जाती है। इसका लक्षण—

"सम्भवन् वस्तुसम्बन्धोऽसम्भवन् वापि कुत्रचित्।
यत्र बिम्बानुबिम्बत्वं बोधयेत् सा निदर्शना॥"

(साहित्यद० १०।६९९)

जहां सम्भव-वस्तुसम्बन्ध वा असम्भव-वस्तुसम्बन्ध बिम्बानुबिम्बत्वका बोध हो, वहां निदर्शना-अलङ्कार होता है। अर्थात् जहां सम्भववस्तुसम्बन्धके साथ असम्भववस्तुसम्बन्धके प्रणिधानगम्य साम्यत्वका बोध होता है, अर्थात भलीभांति सोच विचार कर देखनेसे जहां समता बोध हो, वहां निदर्शनालङ्कार होगा। यह सम्भव-वस्तुसम्बन्धके साथ असम्भववस्तुसम्बन्धका वा सम्भववस्तुसम्बन्धके साथ सम्भववस्तुसम्बन्धका प्रणिधानगम्य होनेसे होगा।

सम्भववस्तुसम्बन्धके साथ सम्भववस्तुसम्बन्धका उदाहरण—

"कोऽत्र भूमिवलये जनान् मुधा तापयन् सुचिरमेति सम्पदम्।
वेदयन्निति दिनेन भानुमानाससाद चरमाचलं ततः॥"

(साहित्यदर्पण १० परि०)

इस भूमण्डल पर ऐसा कौन व्यक्ति है जो जनताको वृथा कष्ट पहुंचा कर चिरकाल तक सुखसे रह सकता है? कोई नहीं। सूर्य सारा दिन ताप द्वारा जगत्को कष्ट पहुंचा कर चरमाचलको प्राप्त होते हैं। यहां पर दोनों ही सम्भववस्तुका वर्णन हुआ, पहले वाक्यमें कहा गया है, कि जनताको कष्ट दे कर चिरकाल तक सुखसे रह नहीं सकता। दूसरे वाक्यमें कहा गया, सूर्य सारा दिन जनताको कष्ट दे कर चरमावस्थाको प्राप्त होते हैं। यहां पर दो सम्भववस्तुसम्बन्धके प्रणिधान द्वारा समताका बोध हुआ, अर्थात् सूर्य जब संसारको कष्ट दे कर दुरवस्थाको प्राप्त हुए हैं, तब अन्यत्र जनपीड़क भी थोड़े ही दिनके अन्दर दुरवस्थामें पतित होगा, इसमें सन्देह नहीं। इस प्रकार दो वर्णनीय विषयकी समताका बोध हो जानेसे, यहां पर निदर्शना-अलङ्कार हुआ। असम्भववस्तुसम्बन्धनिदर्शना दो प्रकारकी है, एक वाक्यगत और अनेकवाक्यगत। उदाहरण—

"कलयति कुवलयमालाललितं कुटिलः कटाक्षविक्षेपः।
अधरः किसलयलीलामाननमस्याः कलानिधेर्विलासम्॥"

(साहित्यद० १० परि०)

इस कुटिल कटाक्षविक्षेप नीलोत्पलमालाका सौन्दर्य अधर-किसलयकी लीला और आननचन्द्रकी शोभा विस्तार करता है। दूसरा दूसरेका धर्म वहन नहीं कर सकता, किन्तु कविने यहां पर असम्भववस्तुका सम्भव बतला कर समताका प्रदर्शन किया है, इस कारण यहां पर निदर्शना-अलङ्कार हुआ।

अनेकवाक्यगत—

"इदं किलाव्याज मनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति॥"

(साहित्यद० १० परि०)

शकुन्तलाका यह स्वभावसुन्दर शरीर जिन्होंने तपःक्षम करनेकी इच्छा की है, उनका नीलोत्पलके अग्रभाग द्वारा शमीलताछेद जैसा असम्भव है, इस शकुन्तलाके शरीरको तपःक्षम करनेका प्रयास भी वैसा ही है। यहां पर पूर्वोक्त दो विषयोंका साम्य होनेसे निदर्शना-अलङ्कार हुआ।

दृष्टान्त अलङ्कारमें परस्परका समान धर्म द्वय कहे जाते हैं, किन्तु जहां साम्य प्रणिधानगम्य होगा, वहीं निदर्शना-अलङ्कार होगा, निदर्शना और दृष्टान्तमें यही प्रभेद है। (साहित्यद०)

निदाघ (सं० पु०) नितरां दह्यतेऽत्र अनेन वा नि दह-घञ्, न्यङ्क्वादित्वात् कुत्वम्। १ ग्रीष्मकाल, गरमी। २ उष्णा, ताप। ३ घर्म, घाम, धूप।

"ते प्रजानां प्रजानाथास्तेजसा प्रश्रयेण च।
मनोजह्रुर्निदाघान्ते श्यामाभ्रा दिवसा इव॥"

(रघु १०।८३)

निदाघकालमें ये सब वर्णनीय हैं—मल्लिकापुष्प, पाटलपुष्प, ताप, सरोवर, पथिकशोष, वायु, सेक, शक्तु, प्रपा, स्त्री, मृगतृष्णा और आम्रादि फलपाक।

(कविकल्पलता)

सुश्रुतके मतसे—निदाघकालमें मधुर और स्निग्धरस, दिवानिद्रा, गुरुपाकद्रव्यभोजन, व्यायाम, उष्ण आहार, परिश्रम, मैथुन, अतिशोषण कर भोजन या क्रिया और

पित्तकर रसका परित्याग करना चाहिये। सरोवर, नदी मनोहर वन, चन्दन, माल्य, पद्म, उत्पल, तालवृन्तव्यजन, शीतलगृह, घामके समय बहुत कम वस्त्रका पहरना, शरबत पीना और घृतयुक्त मधुरद्रव्य पदार्थका खाना निदाघ समयमें हितकर है। रातको गुड़के साथ दूध पीना फायदामन्द है। शरीरमें चन्दन लगाना और मन्दवायु सञ्चारित स्थान पर प्रस्फुटित कुसुमविकीर्ण शय्या पर सोना प्रशस्त है। (सुश्रुत० ६४ अ०)

४ ऋतुपत्नीजात पुलस्त्य ऋषिके पुत्र, ऋतुपत्नीसे उत्पन्न पुलस्त्य ऋषिके एक पुत्रका नाम। (विष्णु०)

निदाघकर (सं० पु०) निदाघाः उष्णाः कराः किरणानि यस्य। १ सूर्य। २ अर्कवृक्ष, मदार, आक।

निदाघकाल (सं० पु०) निदाघ एव कालः, निदाघस्य कालो वा। ग्रीष्मऋतु, गरमीका समय।

निदातृ (सं० त्रि०) नि-दो-तृच्। निरोधक, रोकनेवाला, छेड़नेवाला।

निदान (सं० क्ली०) नि-निश्चयं दीयतेऽनेनेति नि-दा करणे ल्युट्। १ आदिकारण। २ कारण। ३ वत्सदामादि, बछड़ेका बन्धन। नि-दो छेदे भावे ल्युट्। ४ कारणक्षय। ५ शुद्धि। ६ तपःफलयाचन, तपके फलकी चाह। ७ अवसान, अन्त। ८ रोगनिर्णय, रोगलक्षण, रोगकी पहचान। पर्याय—रोगलक्षण, आदान, रोगहेतु।

रोग किस कारणसे उत्पन्न होता है, उसका कारण जाननेका नाम निदान है। निदान देख कर रोग निर्णय किया जाता है। माधवकारने चरकादि ग्रन्थसे संग्रह कर 'निदान' नामक एक ग्रन्थ लिखा है। वैद्यकमतसे रोगनिर्णयके लिये यही प्रशस्त ग्रन्थ है।

सुश्रुतमें निदानका विषय इस प्रकार लिखा है—सुश्रुतने धन्वन्तरिजीसे पूछा था,—देहव्यवस्थित वायु जब विकृत हो कर कुपित हो जाती है और देहके मध्य जिस जिस स्थानमें आश्रय लेती है, तब वह वहां कौन कौन काम करती है तथा उससे कौन कौन रोग उत्पन्न होते हैं, आपया हमें कहिये। इसके उत्तरमें धन्वन्तरिने कहा था,—भगवान् स्वयम्भु ही वायु नामसे प्रसिद्ध हैं। वे स्वतन्त्र सर्वगत और नित्य हैं। यही वायु प्राणियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और विनाशका मूल है। यह शरीरके दोषोंका स्वामी और रोगोंका राजा है। यह देहमें शीघ्रकार्यकारी और शीघ्रविचरणशील है। वायुके कुपित नहीं होनेसे दोषधातु भी समभावसे रहते हैं, अपने अपने विषयमें प्रवृत्त होते हैं और वायुको सभी क्रियायें भी सरलभावसे हुआ करती है। यह वायु पांच है—प्राण, उदान, समान, व्यान और अपान। ये ही पांचों वायु शरीरकी रक्षा करती हैं। जिस वायुका मुखमें सञ्चरण होती है, उसे प्राणवायु कहते हैं। प्राणवायुसे शरीरकी रक्षा, प्राणधारण और खाया हुआ अन्न जठरमें जाता है। इसके दूषित होनेसे हिचकी, दमा आदि रोग होते हैं।

जो वायु ऊपरकी ओर चलती है, उसे उदानवायु कहते हैं। इस वायुके कुपित होनेसे कन्धेके ऊपरके रोग होते हैं। समानवायु आमाशय और पक्वाशयमें काम करती है। यह वायु जठरस्थित अग्निके साथ मिल कर खाए हुए अन्नको पचाती है और तज्जनित रस समूह पृथक् करती है। इसके बिगड़नेसे गुल्म, मन्दाग्नि, अतीसार आदि रोग होते हैं। व्यानवायु सारे शरीरमें घूमती है और रसोंको सर्वत्र पहुंचाती है। इसीसे पसीना और रक्त आदि निकलता है। इसके बिगड़नेसे शरीर भरमें होनेवाले रोग हो सकते हैं। अपानवायुका स्थान पक्वाशय है। इसके द्वारा मल, मूत्र, शुक्र, आर्त्तव, गर्भ, समय पर खिंच कर बाहर होता है। इस वायुके कुपित होनेसे वस्ति और गुह्य स्थानोंके रोग होते हैं। व्यान और अपान दोनोंके कुपित होनेसे प्रमेह आदि शुक्ररोग होते हैं। सभी वायुके एक साथ कुपित होनेसे वह देह भेद कर बाहर निकल आती है।

वायु विविध प्रकारसे कुपित हो कर जब स्थानविशेषमें आश्रय लेती है, तब वमनादि रोग, मोह, मूर्च्छा, पिपासा, हृद्ग्रह और पार्श्वदेशमें वेदना उत्पन्न होती है।

पक्वाशयमें आश्रय लेनेसे अन्त्रकूज (नाड़ीका शब्द), नाभिशूल, कष्टसे मूत्रनिःसरण, आनाह और कटिदेशमें वेदना होती है। श्रोत्रप्रभृति इन्द्रियस्थानमें आश्रय लेनेसे इन्द्रियकार्यका अभाव होता है। त्वक्का आश्रय लेनेसे विवर्णता, अङ्गस्फुरण, सुप्ति (त्वक्का सङ्कोचभाव)

और त्वक्‌में वेदना होती है। विशेष विवरण सुश्रुत निदान-स्थान देखो।

पूर्वोक्त सभी वायु कुपित हो कर हो रोग उत्पन्न करती हैं।

निदानमें लिखा है—

"सर्व्वेषामेव रोगानां निदानं कुपितो मलाः।" (निदान)

कुपित मल अर्थात् वायु, पित्त और कफ रोगसमूहका निदान है। वायु, पित्त और कफ ये तीन दोष जब कुपित होते हैं, तब शरीरमें तरह तरहके कष्ट उत्पन्न होते हैं। शरीरमें जब कष्ट होता है, तब लक्षण द्वारा स्थिर किया जाता है, कि कौन दोष कुपित हुआ है। इसका पता लग जाने पर उसी दोषकी चिकित्सा करनेसे सभी उपद्रव दूर हो जाते हैं। ८ एक बौद्धभिक्षु। (अव्य०) १० अन्तमें, आखिर। (त्रि०) ११ अन्तिम वा निम्न-श्रेणीका, निकृष्ट, बहुत हो गया बीता, जैसे—उत्तम खेती मध्यम बान, निरघिन सेवा भीख निदान।

निदानार्थकर (सं० पु०) रोगजनक।

निदारुण (सं० त्रि०) १ भयानक, कठिन, घोर। २ दुःसह। ३ निर्दय, कठोर।

निदिग्ध (सं० त्रि०) दिह उपचये निदिह्यतेऽस्मेति दिह क्त। लेपादि द्वारा वर्द्धित, लेप किया हुआ, छोपा हुआ। इसका पर्याय—उपचित है।

निदिग्धा (सं० स्त्री०) निदिग्ध टाप्। १ एला, इलायची। २ कण्टकारी, भटकटैया।

निदिग्धिका (सं० स्त्री०) निदिग्धा स्वार्थे-कन्, कापि अत-इत्वं। १ एला, इलायची। २ कण्टकारी, भटकटैया। पर्याय—प्रत्नाक्रान्ता, स्पृशी, व्याघ्री, भण्डाकी, निदिग्धिका, सिंही, धावनिका, क्षुद्रवृहती, कण्टकारी।

निदिग्धिकागण (सं० पु०) स्वल्प-पञ्चमूल।

निदिग्धिकादि (सं० पु०) जीर्ण ज्वरकी औषधविशेष। प्रस्तुतप्रणाली—कण्टकारी, सोंठ, गुलञ्च सब मिला कर २ तोला, जल ३२ तोला, शेष ८ तोला, प्रक्षेप पिप्पली-चूर्ण अर्द्ध तोला। जीर्ण ज्वर, अरुचि, कास, शूल, श्वास, अग्निमान्द्य, अर्द्दित और पीनसरोगमें यह क्वाथ सेवनीय है। यह ऊर्ध्वगरोगका निवारण करता है, इस कारण इसके सेवनका सन्ध्या समय है। चक्रदत्तके मतसे रात्रिज्वरमें यह क्वाथ सायंकालमें, अन्यत्र प्रातःकालमें सेव्य है। जब पित्तकी प्रधानता देखें, तब पिप्पली-चूर्णके बदले मधु डाल दें।

अन्यविध—गुलञ्च २ तोला, जल ३२ तोला, शेष ८ तोला, प्रक्षेपपिप्पलीचूर्ण अर्द्धतोला; अथवा बेलकी छाल, सोनापाठाकी छाल, गंभारीकी छाल, पटारकी छाल गनियारीकी छाल सब मिला कर २ तोला, प्रक्षेपके लिये पिप्पलीचूर्ण अर्द्ध तोला। इससे जीर्णज्वर और कफ नष्ट होता है। इसे गुलञ्चके रस, पीपरके चूर्ण और मधुरके साथ सेवन करनेसे जीर्णज्वर, कफ, प्लीहा, कास और अरुचिकी शान्ति होती है।

प्लीहाज्वरमें अन्यविध निदिग्धिकादि—शालपर्णि, पिठवन, बृहती, कण्टकारी, गोक्षुर, हरीतकी सब मिला कर २ तोला, जल ३२ तोला, शेष ८ तोला। प्रक्षेप-यवक्षार २ माशा, पिप्पलीचूर्ण २ माशा। इसका पान करनेसे प्लीहाज्वर रुक जाता है। (भैषज्यर० ज्वराधि०)

निदिध्यास (सं० पु०) निदिध्यासन।

निदिध्यासन (सं० क्ली०) पुनः पुनरतिशयेन वा निध्याय-तीति नि ध्यै सन्, ततो भावे ल्युट्। १ पुनः पुनः स्मरण, फिर फिर याद, बार बार ध्यानमें लाना।

श्रुतियोंमें दर्शन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन आत्मज्ञानके लिये आवश्यक बतलाया गया है।

गुरुमुखसे निरन्तर जो श्रुतार्थका विचार होता है उसे निदिध्यासन कहते हैं। यह चित्तकी एकाग्रता द्वारा प्राप्त होता है। पहले श्रुतिवाक्य श्रवण, पीछे मनन, बाद निदिध्यासन बतलाया गया है। यही श्रवण, मनन और निदिध्यासन एकमात्र मोक्षका उपाय है। ब्रह्मात्मज्ञानके बिना दुःखातीत होनेका कोई दूसरा उपाय नहीं। 'ब्रह्म ही मैं हूं' इत्याकार असन्दिग्ध अनुभवका नाम ब्रह्मात्मज्ञान है। इस ज्ञानका प्रधान उपाय श्रवण है। मनन और निदिध्यासन उसका साहाय्यकारी है। शास्त्रकथा सुननेसे ही श्रवण होता है, सो नहीं। गुरु-मुखसे शास्त्रीय उपदेशका सुनना, मनमें उसका विचारित अर्थ धारण करना, ब्रह्ममें ही सभी शास्त्रोंका तात्पर्य है, ऐसा विश्वास रखना, ये सब गुण जब सफल होते हैं, तब ही उसे श्रवण कहते हैं। सैकड़ों मनुष्य वेदान्त अध्ययन

यन करते हैं, 'तत्त्वमसि' महावाक्य भी श्रवण करते हैं और उसका अर्थ आदरपूर्वक ग्रहण करते हैं, इतना होने पर उन्हें तत्त्वज्ञान नहीं होता। फिर यह भी देखा जाता है, कि यद्यपि श्रवण न किया जाय, तो भी तत्त्वज्ञान लाभ हो सकता है। शास्त्रसे पता लगता है, कि कपिल, वामदेव आदि जन्मज्ञानी थे। सुतरां श्रवणका फल तत्त्वज्ञान वा तत्त्वज्ञान श्रवणका कार्य है, यह बात असन्दिग्धरूपसे क्यों कर स्वीकार की जा सकती? इसके उत्तरमें कहना यही है, कि चित्तकी अनिर्मलता और जन्मान्तरीय पाप आदि प्रतिबन्धकमें श्रवणफलतत्त्वज्ञान अवरुद्ध रहता है। प्रतिबन्धकके क्षय होनेसे ही वह उदय हो जाता है। वामदेवादि ऋषियोंका यही हुआ था। उनके पूर्वजन्मके श्रवणने इस जन्ममें प्रतिबन्धकशून्य हो कर तत्त्वज्ञान उत्पन्न किया था, इसी कारण इस जन्ममें उन्हें श्रवण, मनन और निदिध्यासन करने नहीं पड़े थे। अतएव श्रवण ही तत्त्वज्ञानका प्रधान कारण है, मनन और निदिध्यासन उसके सहकारी कारण हैं। 'तत्त्वमसि' महावाक्य श्रवण करनेसे, उसके अर्थमें जो अविश्वास और असम्भवबोध आदि घटना होती है, वह मनन द्वारा दूर हो जाती है। मननके बाद भी यदि स्पष्टरूपसे, मैं ब्रह्म हूं अन्य कुछ भी नहीं है, इसका अनुभव न हो, तो निदिध्यासनकी आवश्यकता होती है। निदिध्यासनमें सिद्धिलाभ कर सकनेसे ही वह अनुभव स्थिरतर हो जाता है। अन्यथा होनेसे नहीं होता। किसी किसी आचार्यका मत है, कि निदिध्यासन ही तत्त्वज्ञानका मुख्य कारण है, श्रवण और मनन इसका सहाय है। श्रवण देखो। २ सजातीय प्रत्ययप्रवाह। ३ अपरायत्त बोध।

निदुगल—महिसुरराज्यके चित्तलदुर्ग जिलेके अन्तर्गत एक दुर्ग-सुरक्षित पहाड़ और उक्त पहाड़के उत्तरकी ओर अवस्थित एक ग्राम। यह अक्षा० १४° ८´ उ० और देशा० ७७° ५´ पू०के मध्य अवस्थित है। पहाड़की ऊंचाई ३७७२ फुट है। ९वीं और १०वीं शताब्दीके मध्य यह पल्लववंशके नोलम्ब सरदारोंके अधिकारमें था। बाद यह चालुक्यके अधीन चोलसरदारोंके हाथ आ गया। तदनन्तर १३वीं शताब्दीमें होसल्याने चोलोंको मार भगाया और इस पर अपना पूरा अधिकार जमा लिया। बाद पोलिगारोंने यहां स्वाधीन भावसे राजत्व किया। उनका प्रासाद आज भी देखनेमें आता है। १७८२ ई०में टीपू सुलतानने यह स्थान अपने दखलमें कर लिया।

निदेश (सं० पु०) नि-दिश-घञ्। १ शासन। २ आज्ञा, हुक्म। ३ कथन। ४ सामीप्य, पास। ५ भाजन। ६ पृथिवी।

निदेशी (सं० त्रि०) नि-दिश-णिनि। आज्ञाकारक, आज्ञा करनेवाला।

निदेष्टृ (सं० त्रि०) निदिशतीति नि-दिश-तृच्। निदेशकर्त्ता, हुक्म देनेवाला।

निद्दावोल—मन्द्राज प्रदेशके गोदावरी जिलेके तनुकु तालुकके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १६° ४५´ २८´´ उ० और देशा० ८१° ४२´ ४१´´ पू०के मध्य मछलीपत्तनसे ६३ मील उत्तर-पूर्व और राजमहेन्द्रीसे १० मील दक्षिण-पश्चिममें गोदावरी और कृष्णानदीके सङ्गम पर अवस्थित है। यहां गोलकोण्डाके इब्राहिमशाहने १५५० ई०में एक दुर्ग बनवाया था।

एकादश भाग समाप्त।